MADHURI VIKRAMI 1987 G.K.U.

111027

1930

11027

RT-0838

111027

का भी काम किया है। शेक्सपियर ने कभी एम्० ए० की डिग्री नहीं हासिल की। वर्ड्सवर्थ, बायरन और शेली कालेज से निकाल देने पर निकलकर चले गये थे। कीट्स और लैंब ने तो कालेज कभी देखा भी न था। वर्तमान युग में कविसम्राट् रवींद्रनाथ को ही देखिए। उन्होंने कालेज और स्कूल से बहुत कम फ़ायदा उठाया। यहाँ हमारा उद्देश्य कालेज अथवा स्कूल की शिक्षा की ओर घृणा उत्पन्न करना नहीं, बल्कि इस सत्य का प्रतिपादन करना है कि किसी भी प्रतिभाशाली व्यक्ति को कारागार में जंज़ीर से जकड़कर कोई काम लेना चाहे, तो वह निरर्थक है। या तो मटकी फूटेगी अथवा दधिवेचन ही छूटेगा। दो में से एक बात का पूर्ण होना अवश्यंभावी है। हरिश्चंद्र का हाल भी प्रतिभाशाली पुरुष-व्याघ्रों के नियमानुसार हुआ। माता-पिता के मर जाने से ऐसे विलक्षण लड़के के हक़ में अच्छा ही हुआ। भगवान् जो कुछ करते हैं, प्राणी के मंगल के लिए करते हैं। उन्हें स्वतंत्रता-पूर्वक घूमने-फिरने का सुअवसर मिला। प्रकृति की गोद में मनमाना बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। नदी-नालों, पशु-पक्षियों और भिन्न-भिन्न जीव-जंतुओं से आत्मीयता स्थापित की। देश-विदेश में जाकर पृथक्-पृथक् जाति के लोगों का संपर्क होने से भिन्न-भिन्न मानव-प्रकृति के अध्ययन का अच्छा मौक़ा मिला। इसलिए जहाँ एक ओर भारतेंदु को

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर ;
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मनमोर।

सूझता है, वहीं दूसरी ओर

आधी कासी भाँड़ भड़रिया, बाँभन औ संन्यासी,
लोग, निकम्मे, भंगी, गंजड़, लुच्चे बेबिसवासी ;
महा आलसी, झूठे, शोहदे, बेफ़िकरे, बदमासी।

पर भी नज़र दौड़ जाती है।

इनकी स्वेच्छाचारिता से हानि यह हुई कि भारतेंदु कुछ अभिमानी निकले। "शठे शाठ्यं समाचरेत्" का मंत्र किसी राज्य-परिचालक के लिए, समय-समय पर जपनीय हो भी सकता है परंतु वास्तविक भद्र पुरुष के लिए भद्रता सर्व-व्यापिका होनी चाहिए। यह अभिमान इनके दिमाग़ में ऐसा घुसा हुआ था कि सिर्फ़ अपने ही को "नगद दमाद अभिमानी के" नहीं बतलाते हैं, बल्कि सत्य हरिश्चंद्र को भी "अभिमानी हरिचंद" पद से अलंकृत करना हेय नहीं समझते। जहाँ पर बुद्धदेव की

नहिं वेरेन वेरानि, सम्मंति ध कदाचन।
अवेरेनच सम्मंति, एस धम्मो सनन्तनो ॥

यह शिक्षा कान में गूँजती है, वहाँ "महा बाँके हम बाँकेन सों" का आदर्श भी अत्यंत नीचे गिर पड़ता है।

हरिश्चंद्र के 'भारतेंदु' होने का तीसरा कारण था — ब्रिटिश-राज्य की सुख-शांति, महारानी विक्टोरिया का मातृस्नेह से परिपूरित भारत-साम्राज्य का प्रजापालन। जिस तरह शेक्सपियर को 'एलिज़ाबेथन' (Elezabethan) काल की सुसंतान कह सकते हैं, उसी तरह भारतेंदु भी, हिंदुस्थान में, अँगरेज़ी राज्य के अमृत-फलस्वरूप थे। भारतेंदु के उस मार्के का कवि होने में उस समय की शासन-प्रणाली का भी संपूर्ण हाथ है। हिंदू-राज्य का अस्त हज़ारों वर्ष पहले हो चुका था। मुसलमानी सल्तनत में, उदार-प्रकृति अकबर बादशाह के समय, हिंदी-कविता की प्रबल बाढ़ आयी, इसमें संदेह नहीं। परंतु आगे चलकर जब मुग़ल-राज्य-लक्ष्मी अंतर्द्धान हो गयी, तो देश छोटे-छोटे तालुक़ों में विभक्त हो गया। मराठा-शक्ति भी पानीपत की लड़ाई में नेस्त-नाबूद हो गयी। ऐसी दशा में देश, लुटेरों और डाकुओं से भर गया था। धन और प्राण संकट में पड़ गये थे। कला-कौशल का तो ऐसे दुर्दिन में पूछना ही क्या? बिलकुल नाश हो गया था। जो कुछ बचा था, नक़ली था। पीछे बंगाल-विजय के बाद कितने ही अंशों में और सिपाही-विद्रोह के उपरांत संपूर्ण रूप में सुख-शांति स्थापित हुई। प्रजा ख़ुशहाल हो गयी। अब, अवसर मिलने पर, लोगों का कला-कौशल की ओर ध्यान आकृष्ट होने लगा। भारतेंदु के समय तक भारतीय जीवन के अंग-अंग में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव फैल चुका था और अँगरेज़ी शिक्षा पाये हुए लोग काफ़ी संख्या में तैयार हो चुके थे। साथ ही अँगरेज़ी पढ़े हुए शिक्षित समुदाय में उस नयी पश्चिमी देशों से आयी हुई ज्योति से ऐसी चकाचौंध हो गयी थी, जैसी भूमंडल के इतिहास में केवल एक बार Renaiscence से योरप में बहु

पुराने ज़माने में हो चुकी थी। इसी से सभी विनष्ट देशी कला-कौशल का पुनर्जीवन हो रहा था। पाखंड-विवाद से जो सद्ग्रंथ लुप्त हो गये थे, पुनः आविष्कृत हो रहे थे। सभी ओर पुनरुत्थान की लहर नज़र आती थी। हिंदू-मुसलमान, दोनों ही प्राचीन गौरव का पुनरुद्धार कर रहे थे। हिंदी-साहित्य में भी गद्य का जन्म हो गया था। लल्लूलाल के बाद राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह के व्यक्तिगत परिश्रम को हरिश्चंद्र ने अपनी प्रतिभाशक्ति के द्वारा नये साँचे में ढाल दिया। अभी तक प्रायः बारह आने हिंदू उर्दू बोलते और अपने कारोबार में इस्तेमाल भी करते थे। हरिश्चंद्र ने उनकी अभिरुचि हिंदी की ओर आकर्षित की। हरिश्चंद्र की ख़ास एक साहित्यिक गोष्ठी के साथ-साथ, भिन्न-भिन्न स्थानों में भी, अनेक हिंदी की सभा-समितियाँ एवं संस्थाएँ स्थापित हुईं।

कहने का तात्पर्य यह कि हरिश्चंद्र-रूपी रासायनिक चूर्ण तीन वस्तुओं के सम्मिश्रण से बना—पहली, गिरधरदास-जैसे बेफ़िक्र पिता और सांसारिक स्वच्छलता; दूसरी, उनकी आज़ादी और प्रकृति की उपासना; तीसरी, महारानी विक्टोरिया के शासन-काल का शांतिमय प्रकाश। यदि इन तीनों तत्त्वों में से किसी एक की भी कमी होती, तो यह चूर्ण सुचारु-रूपेण संपन्न न हो सकता और न उसकी ख़ुशबू ही चारों ओर फैलने पाती।

हरिश्चंद्र के लिए भारतेंदु की उपाधि कहाँ तक जायज़ थी, इस प्रश्न की मीमांसा सिर्फ़ एक बात से हो जाती है। जब कभी पृथ्वी पर चेतन प्राण का आविर्भाव होता है, तब उसके तेज-पुंजप्रकाश में बाहरी दुनिया को चकाचौंध मालूम होता है। टार्च फेकने से जैसे दूसरे की आँख चौंधिया जाती है, टार्च की रोशनी-भर के सिवा उस समय और कुछ नहीं मालूम पड़ता, उसी तरह किसी प्रतिभा-शाली व्यक्ति के तेज में पुराना पदार्थ बिलकुल फीका पड़ जाता है। उसी ओर सबका झुकाव हो जाता है। अधिकांश लोग, प्रायः सभी उसी की प्रखर भावधारा में बहने लगते हैं। प्रतिकूल भाववाली धारा का वेग, कुछ काल तक विलीन-सा हो जाता है। गौरांग महाप्रभु का अवतार होने से जिस प्रकार वैष्णव-साहित्य की भावधारा परिवर्तित हो गई थी, प्राचीन सार्वभौम-जैसे कविगण फीके पड़ गये थे, भारतेंदु की साहित्यगोष्ठी का प्रभाव भी ऐसा ही हुआ। चंद्रकिरण से अंधकार का नाश हुआ, जो तारागण से अभी तक असंभव था। प्राचीन नख-शिख के वर्णन की रुचि जाती रही। 'नायक-नायिका-भेद' का विस्तार मंद पड़ गया। स्वाभाविक कविता की क़दर बढ़ी। फिर गद्य में राजा लक्ष्मणसिंह तथा राजा शिवप्रसाद दोनों ही मलिन हो गये। सभी लोगों ने हरिश्चंद्र की गद्यप्रणाली को अपनाया। अभी तक हिंदी-गद्यशैली का पथ अनिर्दिष्ट दिशा में जा रहा था; हरिश्चंद्र ने उसकी बाग़ मोड़ी और एक निर्दिष्ट रास्ता बतलाकर सुस्पष्ट और सुनिश्चित मार्ग दिखलाया। डॉ० जान्सन के साहित्य-संगठन ने अँगरेज़ी भाषा के प्रति जैसी रुचि उत्पन्न करने का कार्य किया था, हरिश्चंद्र की गोष्ठी को भी प्रायः वही सफलता प्राप्त हुई। अभी तक लोगों को पथ-निर्वाचन में जो दिक़्क़त पड़ती थी, वह सदा के लिए जाती रही। लल्लूलाल और सदल मिश्र की बाज़ी में सदलमिश्र ही का एक प्रकार से विजय-वाद्य बजा। हिंदी के मुहाविरे काम में लाये जाने लगे। हरिश्चंद्र ने ब्रजभाषा के सुस्पष्ट शब्दों से हिंदी का भंडार पूरा किया। न तो इन्होंने राजा शिवप्रसाद की तरह हिंदी-अक्षरों में उर्दू लिखी और न लल्लूलाल अथवा राजा लक्ष्मणसिंह की भाँति संस्कृत लदी हुई हिंदी ही। रास्ता दोनों के बीच से निकाल दिया गया। अभी तक यही वर्तमान है और पथप्रदर्शक का काम देता है।

भारतेंदु ने किन-किन साहित्यिक विषयों का संस्कार किया? इस जिज्ञासा का समाधान तो संक्षेप में इतना ही है कि साहित्य के जितने अंग हैं, लगभग सभी अंगों पर भारतेंदु की छाया पड़ी। परंतु मुख्य तीन विषयों में तो इनकी छाप या मोहर-सी लग गयी है। प्रथम—हिंदी गद्यशैली-निर्वाचन और उसका संस्करण; द्वितीय—हिंदीनाटक का आविष्करण और सामयिक प्रोत्साहन; तृतीय—हिंदीभाषा की कवित्वशक्ति का प्रदर्शन और अपने सिद्धहस्त का निदर्शन।

हिंदी-गद्य-शैली के संबंध में ऊपर यथेष्ट चर्चा हो चुकी है। प्रांतीय और स्थानीय बोलचाल की भाषा के परिवर्तन में खड़ीबोली सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गयी।

हरिश्चंद्र ने इसे अनिश्चितता से निकालकर निर्दिष्ट दिशा में प्रेरित किया । जनता की रुचि उत्पन्न करने के लिए नाट्यकला के आश्रय से उसी खड़ीबोली (High Hindi) के गद्य को सर्वत्र, सर्वव्यापी और परिष्कृत बनाने में समुचित सहायता पहुँचायी । चूँकि भारतेंदु एक असाधारण कवि थे, इसलिए "कविता का लय, सामंजस्य तथा मार्दव" गद्य में भी लाना उनके लिए स्वाभाविक था । इससे उनमें नागरिक चिक्कणता आ गयी । "रुचीनांवैचित्र्यात्" के ख़याल से हास्य, प्रहसन नाना प्रकार के गद्यसाहित्य की ओर भी इन्होंने उचित ध्यान दिया ।

महारानी विक्टोरिया के पूर्व, उस अराजकता के समय में, लोग आपस में मिलकर रहना भूल-सा गये थे । अगर मन्तव्य में पृथकता हुई, तो तुरंत गाली-गलौज और मारपीट शुरू हो जाती थी । अभी महारानी के शासनकाल में जनता क़ानून और कौंसिल गवर्नमेंट के अंदर रहना सीख रही थी । म्युनिसिपैलिटी में साहित्य-शासन मिल चुका था । जनता की प्रतिनिधि-स्वरूप कौंसिल का निर्वाचन होना प्रारंभ हो गया था । इससे पार्टी पालिटिक्स (Politics) की सृष्टि पहलेपहल हुई थी । दैनिक और साप्ताहिक संवाद-पत्र बहुतायत से निकलने लगे थे । लोग यहाँ एक पार्टी की ओर से दूसरी पार्टी को हास्यास्पद बनाना सीख रहे थे । इसीलिए चित्रकारी के व्यंग्यचित्रों (Caricature) के साथ-साथ प्रहसन और व्यंग्य (Satire) का आविष्कार हो रहा था । लोग राजनीतिक असुविधाएँ बोध करने पर शासकों और शासन-प्रणाली पर भी व्यंग्यपूर्ण रचना करके अपने चित्त को परितुष्ट करने लगे थे । इस प्रकार का हास्य और व्यंग्य 'भारत-दुर्दशा", "भारतजननी', "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" में बहुतायत से पाया जाता है । यहाँ हम "भारतदुर्दशा" से एक दृष्टांत उद्धृत करते हैं—

दुनियाँ में हाथ-पैर हिलाना नहीं अच्छा ;
मर ज़ीना पै उठके कहीं जाना नहीं अच्छा ।
बिस्तर पै मिस्ल लोथ पड़े रहना हमेशा ;
बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा ।
फ़ाक़ों से मरिए, पर न कोई काम कीजिए ;
दुनिया नहीं अच्छी है, ज़माना नहीं अच्छा ।

इनमें सामयिक परिस्थिति पर विचार, बड़े हास्यप्रद ढंग से व्यक्त किये गये हैं । जो कुछ हो, पर यह हास्य और व्यंग्य का साहित्य इस बात का द्योतक है कि समय स्वच्छंद था । लोग चैन से रहते थे । अभावग्रस्त विरला ही कोई रहा होगा । हास्य का सीधा अर्थ है "हँसना" । मनुष्य तभी हँस सकता है, जब उसके दिल में फुर्ती हो । दिल उमगे तो गावे गीत । इतिहास इसका साक्षी है । प्राचीन संस्कृत-नाटक-युग में विदूषक अपने प्रलाप से राजा-महाराज का व्यंग्य करते, स्वयं हँसते और उन्हें भी हँसाते थे । समय भी तो सब प्रकार से सुखी था । फिर सम्राट् अकबर के दिल्ली-दरबार में बीरबल का हँसना-हँसाना अथवा इंशा का रँगीले लखनऊ-दरबार में हास्य-प्रहसन किस सामाजिक अवस्था में होता था, इसको सभी समझ सकते हैं । लोगों का पेट भरा रहता था, तो हँसी-मज़ाक से तबीयत बहला लिया करते थे । इस हिसाब से अगर विक्टोरिया-शासन-काल का कोई मूर्तिमान् प्रतिनिधि बचा ढूँढ़ा जाय, तो सम्यक् रूप से वह भारतेंदु हरिश्चंद्र ही निकलेंगे ।

हरिश्चंद्र को किस अर्थ में हिंदी-नाटक का जन्मदाता कहते हैं ? क्या हरिश्चंद्र के पूर्व हिंदी में नाटक था ही नहीं ? इस प्रश्न के उत्तर में नाटक का अस्तित्व इनकार करना तो पूरी अनभिज्ञता होगी । हिंदी में नाटक थे ज़रूर, लेकिन इने-गिने । पंद्रहवीं शताब्दी में सबसे पहले हिंदी में मैथिल-कोकिल विद्यापति के नाटक लिखने का प्रवाद सुनने में आता है । विद्यापति का अनुकरण करके ही लाल झा, हर्षनाथ झा प्रभृति मैथिल-कवियों ने भी गौरीपरिणय, उषाहरण-नाटक प्रस्तुत किये थे । परंतु इनके नाटकों में विशेषता यह थी कि मुख्य-मुख्य पात्रों और पात्रियों से संस्कृत में ही बातचीत करायी गयी थी । केवल संगीत-भर मैथिली या बिहारी हिंदी-भाषा में लिखा गया है । परंतु देव कवि ने १७०० ई० के लगभग जो "देवमाया-प्रपंच" लिखा था, वह संपूर्ण हिंदी में है । उसमें भी अँगरेज़ी-नीति-नाटक (Moral plays) जैसा अथवा स्पेंसर (Spenser) के Faery Queen की तरह कलियुग और उसका पक्ष लेनेवाले नाना प्रकार के पाप, व्यसन, दुराचार आदि रंगमंच पर उतरते हैं । फिर उनके प्रतिद्वंद्वी, योग, मुक्ति,

सत्क्रिया, सत्यता, श्रद्धा, भक्ति, शुद्धि इत्यादि रिपु-दमन में अग्रसर होते हैं । इस कारण उसे भी नाटक उस अर्थ में नहीं कह सकते, जिस अर्थ में शेक्सपियर का 'हैमलेट' (Hamlet) अथवा कालिदास का "शकुंतला"-नाटक है । नवाब वाज़िदअली शाह के दरबार में "इंद्रसभा"-नाटक पहलेपहल उर्दू में निकला था । उसी की नक़ल कर हिंदी में, १८४७ ई० के क़रीब, गोपालचंद ने "नहुष"-नाटक लिखा । इसमें भी स्वाभाविक पार्थिव स्त्री-पुरुषों के परिवर्तन में, देव-देवियाँ, इंद्र और अप्सराएँ काम में लायी गयीं । इसे भी, वर्तमान अर्थ में, नाटक का दर्जा नहीं मिल सकता । फिर नेवाज ने १७०० ई० में अथवा राजा लच्मणसिंह ने जो 'शकुंतला'-नाटक लिखा, वह तो कालिदास का अक्षरशः अनुवाद है । इसलिए उसे हिंदी की अपनी वस्तु कहना निरर्थक होगा । अतएव हिंदी में अगर हरिश्चंद्र ही को प्रथम नाटककार कहा जाय, तो कुछ भी अत्युक्ति नहीं । यहाँ प्रश्न उठ सकता है—क्या हरिश्चंद्र ने कुल नाटक मौलिक लिखे ? नहीं । अपने १८ नाटकों में अधिकांश तो हरिश्चंद्र ने भी संस्कृत, प्राकृत अथवा अँगरेज़ी से उलथा किये । परंतु दो-चार उन्होंने, ख़ास अपनी कल्पना-शक्ति से आविष्कृत किये हैं । उनमें 'चंद्रावली', 'सत्य-हरिश्चंद्र', 'भारतदुर्दशा', 'नीलदेवी' प्रधान हैं । स्वर्गीय श्रद्धेय पंडित रामावतार शर्मा का कथन है कि 'चंद्रावली का भी प्लाट अथवा घटनावली किसी एक संस्कृत नाटक से ली गयी है । परंतु पंडितजी ने इसे अनुवाद नहीं बताया । सत्यहरिश्चंद्र तो चंड-कौशिक के आधार पर बना ही है । मुझे इन अभियोगों के मान लेने में कुछ भी आपत्ति नहीं, और न इससे भारतेंदु का यश तनिक भी मलिन होता है । यदि किसी सुपरिचित व्यक्ति से ईंट, चूना, गारा आदि का आश्रय लेकर हरिश्चंद्र ने एक नूतन सुंदर भवन का निर्माण कर लिया, तो इसमें उस सुपरिचित व्यक्ति की कोई विशेषता नहीं । चतुरता है, तो उस विश्वकर्मा हरिश्चंद्र की शिल्पकारी की । किसी चित्रकार के सुव्यक्त चित्र को देखकर अगर कोई व्यक्ति दावा करे कि यह उसकी पेंसिल देने का फल है, तो इससे बढ़कर भ्रम दूसरा नहीं । उत्तम-से-उत्तम चावल, दाल, नमक, मसाला, घी देने से क्या फल, अगर बावर्ची बेवकूफ़ हो ? रसोई का अच्छा अथवा बुरा बनना निर्भर करता है बावर्ची के हाथ की होशियारी पर । उसी प्रकार एक कथा अथवा गल्प मिल जाने से नाटक की सफलता अथवा असफलता निर्धारित नहीं की जा सकती । यदि ऐसी बात होती, तो शेक्सपियर के कुल नाटक चोरी साबित हो सकते हैं । दुनिया आज उनको आयत्त करने के लिए नहीं मर मिटती । हरिश्चंद्र की 'चंद्रावली' अथवा 'सत्य-हरिश्चंद्र' के विषय में भी यही कथन सार्थक है । देह कहीं की मिट्टी से क्यों न बनायी गयी हो, परंतु रूह भारतेंदु ने ख़ुद फूँक दी है । जादूगर की यष्टि (छड़ी) लगने के साथ, इन दोनों नाटकों के पात्र सजीव हो उठते हैं । चंद्रावली की आंतरित दशा और विरह-व्यथा का चित्र तो अविकल खींच लिया गया है—

> पचि मरत वृथा सब लोग जोग सिरधारी ;
> साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ।
> बिरहागिनि धूनी चारों ओर लगायी ;
> बंसी-धुनि की मुद्रा कानों पहिरायी ।
> अँसुअन की सेली गल में लगत सुहायी ;
> तन धूरि जमी, सोइ अंग भभूति रमायी ।

"सत्य-हरिश्चंद्र" में स्मशान-घाट का, शैव्या के मृतक रोहिताश्व के शव को लेकर स्मशान-घाट जाने का और फिर वहाँ दाह करने के पहले विकल होकर रोने का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक है । यों तो इसमें कहीं-कहीं अस्वाभाविक बातों का भी संयोग किया गया है—जैसे स्वप्न में हरिश्चन्द्र का पृथ्वीदान अथवा अपने मालिक डोमराज की नमक-हलाली के लिए शैव्या से कफ़न का कर वसूल करना इत्यादि । यद्यपि ये घटनाएँ आजकल की दुनिया में कहीं न भी वर्तमान हों, तौभी इतना अवश्य निश्चित है कि यदि कोई पुरुष आज भी हरिश्चन्द्र का संस्कार लेकर दुनिया में जन्म ग्रहण करे, तो उसके संबंध में हरिश्चन्द्र की कुल काररवाई लागू प्रतीत होगी । Given those circumstances, the results will automatically follow. जो कुछ भी टूटी-फूटी वस्तुएँ, सड़े गले मसाले, हरिश्चन्द्र के सामने रख दिये जायँ, इनका अपना x' rays अथवा इनकी अपनी प्रतिभा की किरण पड़ते ही सब चमक उठते हैं । इसी कारण भारतेन्दु को वर्तमान

हिन्दी-साहित्य के अन्तर्गत अभ सबसे बड़ा कला-कुशल साहित्यिक कहा ज इनके जैसा शिल्पी और सृष्टिकर्ता दूसरा नज़र ता । साथ-साथ यह भी कहना पड़ता है कि हरिश्चन्द्र के बाद श्रीनिवासदास, तोताराम, गने, काशीनाथ खत्री, लाला सीताराम इत्यादि भ ने भी नाटक साहित्य में अपनी-अपनी क़िस्मत ग्रां, पर कोई भी जगत्-साहित्य के नाटककारों की ग न आ सका। इसलिए कहना पड़ता है कि दी-नाटक की उत्पत्ति समारोह के साथ हरिश्चन्थों से हुई थी, उसकी मृत्यु भी उन्हीं के साथ-सई । आजकल फिर हिन्दी-नाटक के पुनरुद्धार ष्टा हो रही है। आशा है, प्राचीन गौरव शीघ्र प्रा ।

भारतेन्दु ने प्राचीन संस्कृत ना की जिन बातों को समयोचित समझा, उन्हें हिन्दी-नाटकों में बनाये रक्खा । सिर्फ़ पुरानी होनेजह से उनका परित्याग करना उचित न समझाप ख़ुद फ़रमाते हैं—"नाटकादि दृश्य-काव्यों में ावकि सामग्री, सहृदय, सभ्य मंडली को नितान्त्चेकर है । इससे वह अलौकिक विषय का आश्रय नाटकादि दृश्य काव्य-प्रणयन करना उचित नहंझते थे ।" फिर ग्रीक अथवा लैटिन-युग के ह और स्थान की समता (Unity of timnd place) को भी इन्होंने पूर्णतः स्वीकार किया । संस्कृत-नाटककार इस विषय में चुप परंतु भारतेन्दु ने केवल अपनी चन्द्रावली नाटिकसमय और स्थान की समता का कितने ही अंशों ंपालन किया है। विशेष कर वह स्थान 'चंद्रावली' यमुनातटस्थित अट्टालिका है अथवा घर का टवर्ती कुंजवन है। भारतेन्दु की विवेचना में "कर्त्ता ऐसी चातुरी और नैपुण्य से पात्रगण की ीत रचे कि जिस पात्र का जो स्वभाव हो, वैस उसकी बात भी विरचित हो ।" नाटक में वाचाल्र की मितभाषिता, मितभाषी की वाचालता, मूर्ख क्र-पटुता और पण्डित का मौनी भाव विडम्बना-मात्र। थोड़ी-सी बात में अधिक भाव की अवतारणा ही न-जीवन की महौषधि है । इसके दृष्टांत के लिए जोगिसाथ चन्द्रावली और ललिता की बातचीत पर ग़ौर प परमावश्यक है—

ल०—कहाँ तुम्हारो देस है ?
जो०—प्रेमनगर प्रिय ग्राम ।
ल०—कहा गुरु कहि बोलही ?
जो०—प्रेमी मेरा नाँव ।
ल०—योग लियो केहि कारनें ?
जो०—अपने पिय के काज़ ।
ल०—मंत्र कौन ?
जो०—पिय नाम इक ।
ल०—कहा तज्यो ?
जो०—जगलाज ।

अपनी रचनारीति के अनुसार हरिश्चंद्र के नाटक में शैथिल्य दोष नहीं है। इनके नाटक में उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तीनों वस्तुएँ शामिल हैं, जिससे प्राकृतिक सौंदर्य झलकता है। इनका नाटक केवल उत्तम-उत्तम घटनाओं की गुम्फित माला नहीं है।

भारतेन्दु कैसे कवि थे ? भारतेन्दु की कविता में मानसिक उड़ान के साथ-साथ चित्र-चित्रण भी होता चलता है, बल्कि चित्रकारी में ही आप सिद्धहस्त हैं । रंग-विरंग के चित्रपट आप बात की बात में सामने खींच सकते हैं । इनके शब्द मानों भिन्न-भिन्न रंगों में सराबोर हैं । जहाँ जैसी छवि उतारनी है, ठीक उसी के अनुयायी उचित शब्दों को चुन-चुनकर बिठा देते हैं। और, तुरंत मालूम पड़ता है कि घटना मूर्तिमती है। "A few strokes here and there and the whole picture before us." उदाहरण के लिए स्मशान-वर्णन लिया जाय । जहाँ स्मशान का वर्णन आया, भारतेंदु का दिमाग़ मुर्दाघाट के ख़याल से भर गया । शब्द ऐसे निकलना शुरू हो जाते हैं, जैसे कोई स्मशानघाट में बैठकर वहाँ के अविकल दृश्य का वर्णन कर रहा हो । शब्दों की ध्वनि भी ऐसी निकलती है, जैसे मुर्दे सड़ रहे हों, कौए काँव-काँव शब्द से विभीषिका प्रमाणित कर बीभत्स दृश्य का संकेत कर रहे हों, सियार के दाँत की कटकटाहट निकलती हो, क्रन्दन, रोदन, कलकल, कोलाहल, आर्त्तनाद चारों ओर फैलकर वायुमंडल को आच्छन्न किये हुए हों । साथ-साथ इनका आन्तरिक उपदेश मानव-शरीर की नश्वरता को दिखाना है, जो तुल्य योगिता के द्वारा आप-से-आप सिद्ध हो जाता है ।

सिर पै बैठ्यो काग आँख दोउ खात निकारत ;
खींचत जीभहिं स्यार अतिहि आनँद उर धारत ।
गिद्ध जाँघ कहँ खोदि-खोदिकै मांस उचारत ;
स्वान आँगुरिन काटि-काटि कै खान बिचारत ।

× × ×

सोई मुख, सोई उदर, सोई कर पद दोय ;
भयो आजु कछु और ही, परसत जेहि नहिं कोय ।

काशी में गंगाजी का जो वर्णन भारतेन्दु ने किया है, वह लाजवाब है। यहाँ तो बेटा बाप से कहीं बढ़ गया है। गिरिधरदास का गंगा-वर्णन क्लिष्ट हो गया है ! परंतु भारतेन्दु से बढ़कर भाव-विशद वर्णन होना कठिन है। वर्णन स्वाभाविकता से भरा है, सत्य और प्राकृतिक है। इस स्वाभाविक (Realistic) वर्णन में भारतेंदु अँगरेज़-कवि स्काट की शैली का अनुकरण करते हैं। भारतेंदु अँगरेज़ी भी काफ़ी जानते थे। इसका प्रमाण "दुर्लभ बंधु" है जो Merchant of Venice से अनूदित किया गया है। यहाँ काशी-वर्णन से चार पंक्तियाँ उद्धृत कर, उन्हें इनकी रंगीनी और कारीगरी के सबूत में पेश करता हूँ—

मधुरी नौबत बजत कहूँ नारी नर गावत ;
बेद पढ़त द्विज कहूँ जोगि कहुँ ध्यान लगावत ।
कहुँ सुन्दरी नहात वारि कर युगल उछारत ;
जुग अंबुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत ।

इस प्राकृतिक वर्णन में रंगीनी खराद सुस्पष्ट झलकती है। फिर एक रंग किसी तरह दूसरे से मिलने नहीं पाता। एक फ़ोटो दूसरे से भिन्न है। इस रंगीन काव्य-चातुर्य में केवल केशवदास ही इनके समकक्ष बैठ सकते हैं, दूसरा नहीं। अँगरेज़ी में कीट्स (Keats) जिस तरह रंग से गुल खिलाता है, हिंदी में हरिश्चंद्र भी ठीक उसी तरह रंग के ज़रिये बाग़ को रोशन करते हैं। इन्द्रियगण से कविता का पूरा-पूरा अनुभव हो जाता है। कैसी भी पुरानी वस्तु अथवा घटना क्यों न हो, हरिश्चंद्र अपने शब्दों की चित्रकारी से विशद फ़ोटो हाज़िर कर देते हैं। इससे सिद्ध होता है कि इनके काव्य का ध्येय या तो सौन्दर्य में सत्य दिखाना है अथवा सत्य ही में सौंदर्य झलकाना है। इसी रंगीन शिल्पकारिता के माध्यम से यह ऐसा उड़ते हैं, मानों कल्पित जगत् निर्मित कर वहाँ स्वाधीन हो अन्तरात्मा को पार्थिव विघ्नबाधाओं से मुक्त कर, अपने स्वभाव-चरित्र के अनुकूल, स्वच्छन्द और स्वतंत्र विचरण करते हैं। वहाँ पहुँचकर वह स्वर्गीय आनन्द लूटते हैं, जो दुनिया में दुष्प्राप्य है। यह बात उनके यमुना-वर्णन से प्रमाणित होगी। वह शून्यमंडल में घर बनाकर उसे वास्तव में परिणत कर देते हैं। फिर अपनी कल्पना के डैने पर चढ़कर स्वर्ग, मर्त्य, पाताल और न-मालूम कहाँ-कहाँ सैर कर आते हैं। अतएव इनकी कविता में "सत्यं, शिवं, सुन्दरं" पूर्ण रीति से चरितार्थ होता है। ज़रा ग़ौर कीजिए—

परत चंद्र-प्रतिबिम्ब कहूँ जलमधि चमकायो,
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मनभायो;
मनुहरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो;
कै तरंग कर मुकुर लिये सोभित छबि छायो,
कै रास-रमन मैं हरिमुकुट आभा जल दिखरात है;
कै जल उर हरि मूरति बसतित। प्रतिबिंब लखात है।

कविता

[श्रीउदयशंकर भट्ट शास्त्री]

कविते ! तव कलित कहानी, कमनीय कलापुष्करिणी ;
किन्नरकंठी स्वरलहरी, माधुर्यमोद की सरणी ।
साहित्य सुधा-निर्झरिणी, कोकिल की कुंजकहानी ;
मृदुहासिनि की सुखहँसियाँ, मुग्धा की लज्जित वाणी ।
कुलललना की शर्मीली, आँखों की पुतली चंचल ;
तव अक्षरविन्यासों में, दिखलाती छटा समुज्वल ।

तू अक्षरपुष्प पिरोकर, भावों की लड़ी बनाती ;
वह सजग हुई-सी हँसकर, अलसाती गाथा गाती ।
रमणी के आलिंगन-सी, मदभरी झूमती आँखें ;
वे शिथिल तथा दृढ़ बाहियाँ, करतब तव दिव्य कला के ।
कविते ! निज क्रीडाङ्गण के, उज्ज्वल आलोक दिखाकर ;
तू अमृत सींचती झरझर, जग झूमे गुन-गुन गाकर ।

तव रस की दीपशिखा से, विस्मित विमुग्ध-से होकर ;
कविकुलपतंग मँडराते, पाते कुछ निज को खोकर ।
तव सृष्टि अनोखी का है आलोक अखंड अनश्वर ;
सब दर्शन तव दर्शन का, पाते प्रतिबिंब मनोहर ।

उपनिषद् अंक में तेरे, किलकारी भर-भर गाते,
तू प्रेमपयोद पिलाती, वे ब्रह्मानंद मनाते ।
नंदननिकुंज में तेरे, वैदिक वृक्षों की क्यारी ;
ऋषिमन संगीतसुधा से, अभिषिक्त की गयीं न्यारी ।

मंदार-कुसुम से सुंदर, वे वैदिक मंत्र सनातन ;
मकरंद उड़ाते अब भी, वासित जिससे जगती-जन ।
कवि वाल्मीकि से, कविते, तव कृपाकोर से पावन ;
जो स्वर्गछटा फैलाते, आनंद गूँजता झनझन ।

तव शांतिसरोवर-तट पर, भवभय-आकुल-व्याकुल जन;
सब सृष्टियंत्रणा खोते, आनंद अनंद लिये मन ।
जब प्रकृतिनटी-सी सजनी, तू रसविलास बरसाती ;
सब सृष्टि नाचती छन-छन, मदमाती-सी हो जाती ।

संयम भी भरता आहें, सब भूल ज्ञानगाथाएँ ;
उन्मादिनि नीतिकथाएँ, अतूनी अविवेक कलाएँ ;
जब दुर्गा-सी दुर्धर्षिणि, बन लोमहर्षिणी जग में ;
वीरत्व जगाती नस में, भरती बिजली रग-रग में ।

विच्छिन्न मूल से होते, सब रसविलास के सोते ;
वे क्लीब साहसिक बनकर, दुर्धर्ष वीरता बोते ।
तू खेल अनूठे करती, तेरी यह सृष्टि पहेली ;
करती तू कहीं ठठोली, ब्रह्मा की बनी सहेली ।

उत्थान-पतन देशों का, तेरे करतब हैं सारे ;
हम पड़े मूक मूर्च्छित हैं, तव मदोन्माद के मारे ।
फिर शक्तिमयी बन अम्बे, फिर भैरव राग सुनाकर ;
कर तांडव कुंड कपाले, सज्जित कर हमें जगाकर ।

तूने भारत के देखे दिन सुखमय अविकल मन से ;
तूने निर्माण किये हैं, युग अपने वैभवबल से ।
फिर हममें फूँक निरंतर, अक्षुण्ण शक्ति, अनथक बल;
तेंतीस कोटि कंठों में, जय जय जय ध्वनि हो अविरल ।

प्रेम का प्रभाव

[श्रीयुत अवध उपाध्याय]

(१)

रोशनपंथ सीतापुर के धनवान व्यापारी तथा ज़मींदार थे । इनकी अवस्था इस समय सत्रह वर्ष की थी । इसी वर्ष यह बी० ए० पास हुए थे । यह अपने बाहर के कमरे में चार-पाँच मनुष्यों के साथ बैठे हुए थे । इनके हाथ में 'लीडर' था । वर्तमान परिस्थिति पर विचार हो रहा था । इसी समय विनोदिनी ने उनके कमरे में प्रवेश किया । उसके हाथ में खद्दर की धोतियाँ, तीन अंगौछे और दो कुर्त्ते थे । विनोदिनी के शरीर पर खद्दर के अतिरिक्त और कुछ नहीं था । उसकी अवस्था चौदह वर्ष से अधिक नहीं थी । शरीर गोरा, आँखें बड़ी-बड़ी और मुखाकृति सुंदर थी । विनोदिनी रोशनपंथ की बैठक के एक कोने में खड़ी हो गयी । रोशनपंथ ने उसे देखा और वह प्रथम दृष्टि में ही उस पर मुग्ध हो गये । उन्होंने अपने मन में कहा—"यह लावण्य ! यह माधुर्य !! यह सुकुमारता !!" एक अनजान तथा अपरिचित कन्या पर रोशनपंथ मोहित हो गये । प्रेम का ढंग वास्तव में बड़ा निराला होता है ।

विनोदिनी अब भी खड़ी थी । उसने सब लोगों की ओर देखकर नम्रतापूर्वक कहा—"महाशयो ! मैं श्रीरोशनपंथजी को खोज रही हूँ । क्या आप लोग कृपया उन्हें इस बात की सूचना दिलवा दीजिएगा कि कांग्रेस की एक स्वयंसेविका उनकी सेवा में उपस्थित हुई है ।"

इस बात को सुनकर रोशनपंथ का मन प्रसन्न हो गया और उनका हृदय आनंद से नाच उठा । उन्हें इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई कि यह कन्या मुझे खोजती हुई यहाँ आयी है तथा मेरा नाम भी जानती है । पहले तो उनके मन में आया कि स्वयं कह बैठूँ कि मेरा ही नाम रोशनपंथ है । परंतु ज़मींदारी के रोब तथा धन की महानता के विचार ने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया ।

इसी समय उपस्थित जनता में से एक ने उनकी ओर संकेत किया, विनोदिनी समक्ष गयी और अपने सब कपड़ों को सँभालती हुई उनके सामने बैठ गयी। सब कपड़ों को रोशनपंथ के सामने फैलाकर विनोदिनी ने कहा—"महोदय ! मैं आजकल कांग्रेस की ओर से खद्दर बेंच रही हूँ। क्या आप इनमें से कुछ लेंगे ?" इतना कहने के बाद विनोदिनी चुप हो गयी और उत्सुक नेत्रों से उनकी ओर देखने लगी। रोशनपंथ विदेशी कपड़ों से लैस थे।

रोशनपंथ भी समझ गये कि विनोदिनी की दृष्टि उनके विदेशी कपड़ों की ओर है। उन्होंने कहा—"अवश्य, अवश्य ! मुझे यह सब कपड़ा दे दीजिए। इनका दाम क्या है ?" विनोदिनी ने कहा—"दस रुपया।"

रोशनपंथ ने अपने नौकर से विनोदिनी को दस रुपया दिलवा दिया। उसने रुपया ले लिया, उठ खड़ी हुई, उन्हें धन्यवाद दिया और कमरे के बाहर चली गयी। धन्यवाद देते समय विनोदिनी ने जिन शब्दों का प्रयोग किया था, उन्होंने रोशनपंथ के हृदय के सब कोमल भावों को स्पर्श कर दिया। उनके हृदय में सुंदर सुखद तथा मनोहर रागिनी बजने लगी, जो नूतन प्रेम का प्रथम चिह्न है।

(२)

विनोदिनी के चले जाने के बाद रोशनपंथ का सब मज़ा किरकिरा हो गया। उन्होंने उसके बारे में सब लोगों से पूछा। किसी ने उसके संबंध में कुछ कहा और किसी ने कुछ। एक आदमी ने कहा—"वह स्वयं-सेविका अभी प्रयाग से आयी है। सब लोग उसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं।"

अब रोशनपंथ उसके दर्शनों के लिए तथा उसके शब्दों को सुनने के लिए व्याकुल हो गये। वह अपने मन में कहने लगे कि फिर उससे कैसे भेंट होगी। वह उठ खड़े हुए और उस वाटिका में घूमने लगे, जो उनके मकान से बिलकुल लगी हुई थी। परंतु इस समय महल, बाग, संपत्ति तथा गौरव आदि सब-के-सब उन्हें सूने-से जान पड़ते थे और उस अभाव की पूर्त्ति नहीं कर सकते थे जिसका वह प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे थे।

प्रातःकाल दूसरे दिन रोशनपंथ उसी वाटिका में टहल रहे थे। प्रातःकाल की हवा मंद-मंद बह रही थी और हृदय में संजीवनी शक्ति का संचार कर रही थी। रोशनपंथ मन-ही-मन इस समय विनोदिनी की सुंदरता की प्रशंसा कर रहे थे। वह अपने उमड़े हुए भावों तथा आकुल-यौवन के तूफ़ान को रोकने का प्रयत्न कर रहे थे। इसी समय विनोदिनी ने उस वाटिका में प्रवेश किया। उसे देखते ही उनकी हृदय-कली खिल गयी, उनकी हृदय-वीणा से मधुर तथा मादक गान निकलने लगा और वह बड़े प्रेम से उसकी ओर देखने लगे। अब विनोदिनी उनके पास पहुँच गयी, उसने प्रेमपूर्वक उन्हें अभिवादन किया और तब बड़ी नम्रता से बोली—"महोदय, मैं स्त्रियों के उपयोग के योग्य कुछ खद्दर का सामान लायी हूँ। यदि आज्ञा हो, तो भीतर जाकर उन्हें दिखा आऊँ।" रोशनपंथ ने कहा—"अवश्य, अवश्य। मैं समझता हूँ, आप लौटिएगा...। हाँ, हाँ जाइए।" रोशनपंथ की मुखाकृति पर प्रेम से उत्पन्न घबराहट के चिह्नों को विनोदिनी ने लक्ष्य कर लिया। वह रोशनपंथ के मकान के भीतर चली गयी।

उसके चले जाने के बाद रोशनपंथ ने अपने मन में कहा—संभव है, घर की स्त्रियाँ उसका उचित आदर न करें अथवा खद्दर के सामान को न ख़रीदें। वह स्वयं घर के भीतर चले गये। परंतु इनके जाने के पहले ही स्त्रियाँ हिल-मिल गयी थीं। प्रथम परिचय में ही स्त्रियाँ एक दूसरे की बहुत बातें जान जाती हैं। रोशनपंथ ने अपने घर की स्त्रियों से विनोदिनी की बड़ी प्रशंसा की और वह भी अब इनकी ओर आकर्षित होती हुई जान पड़ी। रोशनपंथ के कहने पर स्त्रियों ने विनोदिनी का सब सामान ख़रीद लिया। विनोदिनी ने चलते समय कृतज्ञता प्रकट की, स्त्रियों को प्रणाम किया, रोशनपंथ को अभिवादन किया, उन्हें प्रेममय नेत्रों से देखा और तब उनके घर के बाहर चली गयी। आज विनोदिनी अपने नेत्रों से प्रेम की वर्षा कर गयी थी। कल तक के पहले की अपरिचित विनोदिनी आज रोशनपंथ को चिर-परिचित-सी जान पड़ी।

(३)

कई दिन हो गये, परंतु विनोदिनी फिर रोशनपंथ के घर नहीं आयी। रोशनपंथ अब उसके दर्शनों के बिना घबड़ाने लगे। वे अपने मन में कहने लगे—"विनोदिनी

मुझे चाहती है या नहीं ? उस दिन वह प्रेममय नेत्रों से अवश्य देख रही थी और संभवतः प्रेम की मूक भाषा में बहुत कुछ कह भी रही थी। तथापि वह फिर इधर नहीं आयी। यदि फिर इधर आयी, तो मैं उससे बहुत कुछ पूछूँगा।" दस दिन बाद विनोदिनी फिर उनके पास आयी। वह एक कुर्सी पर बग़ीचे में बैठे हुए थे। उन्होंने उसे सामने की कुर्सी पर बैठ जाने का संकेत किया। वह आनंदपूर्वक उस कुर्सी पर बैठ गयी और प्रेम के साथ नम्रता से बोली--"महोदय ! मुझे खेद है, मैं बार-बार आपको कष्ट देती हूँ। मैं...।"

रोशनपंथ--"कदापि नहीं, कदापि नहीं। यह आप का घर है। आप सदा यहाँ आ सकती हैं। इधर कई दिनों से आप नहीं आयीं। घर की स्त्रियाँ आपको कई बार स्मरण कर रही थीं।"

रोशनपंथ ने इतना छिपा लिया कि वह स्वयं उसे प्रायः स्मरण किया करते थे। तदनंतर विनोदिनी ने कहा—"आज मैं आपके यहाँ विशेष कार्य से आयी हूँ।"

रोशनपंथ--"कहिए, क्या आज्ञा है ? आपने आज मेरे ऊपर बड़ी कृपा की।"

विनोदिनी--"परंतु मैं डरती हूँ कि आप बुरा न मान जायँ।"

रोशनपंथ--"क्या यह भी संभव है ? आप निःसंकोच भाव से कहिए, डरने की कोई बात नहीं।"

विनोदिनी—"महोदय।"

रोशनपंथ—"कहिए।"

इसके बाद विनोदिनी ने कुछ नहीं कहा, वह बड़ी उत्सुकता से रोशनपंथ के वस्त्रों की ओर देखने लगी, मानो वह उनके वस्त्रों में कुछ खोज रही हो। रोशनपंथ ने उसका अभिप्राय समझ लिया, उन्होंने लज्जित होकर कहा—"क्या आपका अभिप्राय वस्त्रों से है।"

विनोदिनी ने मंद मुसकान के साथ कहा—"जी हाँ, मेरा अभिप्राय यही था। मैं आज आपसे प्रार्थना करने आयी हूँ कि आज से आप केवल स्वदेशी वस्त्रों को ही धारण करें। यदि आपने मेरी यह प्रार्थना मान ली, तो मैं अपने को धन्य समझूँगी। कांग्रेस ने यह भार मेरे ऊपर सौंपा है।"

रोशनपंथ के हृदय के ऊपर प्रेम ने अपना जाल फैला दिया था। उनमें विनोदिनी की बातों को अस्वीकार करने की शक्ति नहीं रह गयी थी। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक कहा--"मैं सहर्ष प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब से मैं केवल स्वदेशी वस्त्रों को ही धारण करूँगा। परंतु मैं आपको यह भी बतला देना चाहता हूँ कि यह प्रतिज्ञा केवल इसीलिए कर रहा हूँ कि आपकी यह इच्छा है, कांग्रेस के कहने से नहीं।"

इतना कहने के बाद रोशनपंथ ने उस मंद-हास्य का आश्रय लिया जो उनके प्रेम को प्रकाशित कर रहा था। विनोदिनी भी मुसुकुरायी और जाने के लिए तैयार हो गयी। परंतु रोशनपंथ ने उससे कहा कि अभी घर में स्त्रियों से मिल लीजिए, वे सब आपको याद कर रही थीं। इसके बाद विनोदिनी उठी, उन्हें अभिवादन किया, फिर आने का वादा किया और उसके बाद उनके घर के भीतर चली गयी।

(४)

विनोदिनी अब प्रायः रोशनपंथ के घर आने-जाने लगी। सब लोग उसका बड़ा आदर करते थे। रोशनपंथ तो उसे चाहते थे ही। परंतु वह यह नहीं जानते थे कि विनोदिनी भी उन्हें चाहती है या नहीं। वह अपने मन में कहते थे कि जिस प्रेम की पीड़ा का मैं अनुभव करता हूँ, उसी का विनोदिनी भी अनुभव करती है या नहीं। इसमें संदेह नहीं कि यह भी मेरी ओर ज़रूर आकर्षित हुई है; परंतु संभव है, वह केवल आकर्षण हो और ऐसा आकर्षण हो जो प्रेम से न उत्पन्न हुआ हो। इस संदेहात्मक स्थिति में अधिक दिन तक वे नहीं रहना चाहते थे। इसलिए उन्होंने विनोदिनी के नाम एक पत्र लिखा—

प्रिय विनोदिनीजी !

जिस दिन से मैंने आपको देखा, उसी दिन से मैं आपकी पूजा करता हूँ। आप धन्य हैं, आपका जीवन धन्य है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि यदि आपकी तरह सब स्त्रियाँ देश के काम में लग जातीं, तो देश का कठिन से-कठिन काम भी सुगमतापूर्वक पूरा हो जाता। मेरा जीवन अब मुझे अधूरा जान पड़ता है। आपके दर्शन के पहले मेरी दशा कुछ और थी और अब कुछ और है। देखें इस प्रेम का क्या परिणाम होता है। मैं आपके दर्शनों के लिए लालायित रहता हूँ। जिस दिन आपके दर्शन नहीं होते, वह दिन व्यर्थ जाता हुआ जान पड़ता है

और मैं आपके दर्शनों के लिए तड़फड़ा उठता हूँ । मज़ा तो यह है कि मैं आपके संबंध में कुछ नहीं जानता ।

आपका
रोशनपंथ

इस पत्र को लिखकर रोशनपंथ ने अपने पास रख लिया और वह बड़ी उत्सुकता से विनोदिनी के आने की प्रतीक्षा करने लगे । विनोदिनी आयी और रोशनपंथ ने उसे धीरे से पत्र दे दिया । जिस समय रोशनपंथ ने उसे पत्र दिया, उस समय उनके मन में संदेह था और हृदय में धड़कन ।

(५)

विनोदिनी ने पत्र लेकर अपने पास रख लिया और घर जाकर उसे पढ़ा । उसने पत्र का उत्तर लिखा—

प्रियतम !

जिस दिन मैंने आपको पहलेपहल देखा, उसी दिन से मैं आपकी हूँ । मेरा हृदय आपके प्रेम से ओत-प्रोत हो गया है । मैं प्रेम के संबंध में कुछ भी नहीं जानती थी और न अभी अधिक जानती हूँ । परंतु मेरा हृदय आपके देखने के लिए तरसता रहता है । मैं अपने मन में इधर कहा करती थी कि मेरे प्रेम की पुकार क्या असफल होगी ? परंतु मैं ठीक-ठीक इस समय नहीं कह सकती कि इस प्रेम का परिणाम क्या होगा । तथापि इतना निश्चय है कि मेरा आपका वैवाहिक संबंध नहीं हो सकता । इसलिए इस नाते से आप मुझे भूल जाइए । इसके अतिरिक्त हमारे और आपके उद्देश्यों में भी बड़ा अंतर है । इसलिए भी हम लोगों को एक दूसरे को भूल जाना ही अच्छा है । युवा अवस्था की इस मादक तान को आप भी रोकिए और मैं भी । इसी में हम लोगों का परम कल्याण है ।

आपकी
विनोदिनी

इस पत्र को विनोदिनी ने रोशनपंथ को दे दिया । इसके बाद इन दोनों से भेंट हुई और परस्पर बातें भी हुईं । वास्तव में ये दोनों यात्री प्रेम-मार्ग पर बहुत दूर तक बढ़ चुके थे । विनोदिनी की हर एक बात रोशनपंथ के लिए आज्ञा का काम करती थी । अल्पकाल ही के भीतर दोनों के उद्देश्यों में भी कुछ अंतर नहीं रह गया । रोशनपंथ ने कांग्रेस के स्वयंसेवकों में अपना नाम लिखाया, खद्दर पहनने लगे और देश-सेवा में जुट गये । रोशनपंथ में इस परिवर्तन को देखकर सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ । विनोदिनी अब उन्हें 'परिवर्तनवादी' कहकर पुकारा करती थी । सारी जनता इनके प्रेम के संबंध में जान गयी । और विनोदिनी ने भी रोशनपंथ से वैवाहिक सूत्र में बँधने की प्रतिज्ञा कर दी । रोशनपंथ के भाग्य का फ़ैसला हो गया ।

(६)

रोशनपंथ के कामों की धूम सारे भारत में मच गयी । सब लोग मुक्त कंठ से इनकी प्रशंसा करने लगे । सरकार की आँखों में भी वे खटकने लगे । अंत में इनके ऊपर मुक़द्दमा भी चलाया गया । जिस दिन इनका मुक़द्दमा होनेवाला था, उस दिन कचहरी में बड़ी भीड़ थी । सब लोग बड़ी उत्सुकता से जज के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे और विनोदिनी भी उत्कंठित तथा चिंतित खड़ी थी ।

जज सा० ने कहा—"तुम्हारा क्या नाम है ?"

रोशनपंथ—"स्वतंत्रता ।"

जज साहब—"क्या काम करते हो ?"

रोशनपंथ—"मैं स्वाधीनता का व्यापारी हूँ ।"

जज साहब—"तुम्हारा उद्देश्य क्या है ?"

रोशनपंथ—"स्वराज्य ।"

इसी प्रकार एक घंटे तक इस न्याय का नाटक होता रहा । अंत में जज साहब ने रोशनपंथ को सरकार का तख़्ता उलटने के लिए षड्यंत्र का अपराधी ठहराया और फाँसी का हुक्म सुना दिया ।

(७)

फाँसी की अवधि केवल एक दिन रह गयी थी । रोशनपंथ के घर के सब लोग उनसे मिल चुके थे । अंत में विनोदिनी को भी उनसे मिलने की आज्ञा मिल गयी थी । जब वह रोशनपंथ के सामने पहुँची, तो बिजली की तरह उनकी ओर ज़ोर से झपटी, उनके पैरों पर अपना मस्तक रख दिया और फिर ज़ोर से चिल्ला उठी—

''प्रियतम ! अब संसार तथा ईश्वर की कोई शक्ति हम लोगों को अलग नहीं कर सकती ।"

रोशनपंथ—"विनोदिनी !"

विनोदिनी—''प्रियतम !"

रोशनपंथ—"इस प्रकार घबड़ाने से काम नहीं चल सकता । देश का काम करने के लिए इस समय धैर्य

धारण करने की आवश्यकता है। इस प्रकार अधीर होना तुम्हें शोभा नहीं देता। हम लोगों का यह मिलन कितना सुखद है।"

विनोदिनी—"मैं संसार की सारी यातनाओं को सह सकती हूँ, सब कष्टों को सह सकती हूँ, परंतु मैं आपके वियोग को नहीं सह सकती, मैं भी अपनी जान दे दूँगी। हम लोगों का यह क्षणभंगुर मिलन कितना कष्टप्रद है।"

रोशनपंथ—"प्रियतमे! क्या तुम वास्तव में मुझसे प्रेम करती हो?"

विनोदिनी—'प्रियतम! यह आपका कैसा प्रश्न है? यदि प्रेम की मूक-भाषा ने इस संबंध में आपसे कुछ नहीं कह दिया है, तो मैं उससे अधिक और कुछ नहीं कह सकती। यदि संभव होता, तो मैं अपने हृदय को खोलकर आपको दिखलाती। जिसके विरह में मैं आज तक आँसू बहाती चली आयी और जिसके प्रेम में लीन होकर मैंने सांसारिक सब कामों को छोड़ दिया, उसी का ऐसा प्रश्न मेरे हृदय को क्यों न चीर डाले।"

रोशनपंथ—"मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम मुझे प्यार करती हो, परंतु मैं अपने जीवन के अंतिम काल में तुम्हारे मुँह से इसके संबंध में सुनना चाहता था। कहो, अपने मुँह से एक बार कहो कि तुम मुझे प्यार करती हो।"

विनोदिनी—"प्यारे।"

रोशनपंथ—'मैं समझ गया। अच्छा यदि वास्तव में तुम मुझे प्यार करती हो, तो जाओ, औरतों की तरह रोना छोड़ दो और दूने उत्साह से देश का काम करो।"

विनोदिनी—"मुझे इस बात से और भी कष्ट पहुँच रहा है कि अज्ञातरूप से मैं ही आपकी मृत्यु का कारण हूँ। यदि मैंने आपसे प्रार्थना न की होती, तो आप न इस काम में पड़ते और न आपको मृत्यु-दंड ही भोगना पड़ता।"

रोशनपंथ—'तो क्या तुम समझती हो, मेरी मृत्यु व्यर्थ जायगी? मृतकों की आह से विलास-भवन गिर पड़ेगा। हम लोगों के रक्त से देश को सींचने की बड़ी भारी आवश्यकता है। इस समय देश के लिए बलि की बड़ी आवश्यकता है। यदि वास्तव में तुम मुझे प्यार करती हो, तो जाओ, दूने उत्साह से देश का काम करो। यह अमूल्य समय उपालंभ देने का नहीं, काम करने का है।"

थोड़ी देर तक और इसी प्रकार की प्रेममय बातें होती रहीं। इसी समय जेल के एक चपरासी ने आकर कहा—'समय हो गया, अब आप जाइए।"

विनोदिनी ज़ोर से चिल्ला उठी—'मैं, मैं बाहर नहीं जा सकती। क्या यह अकेले-ही-अकेले मरेंगे? यह संभव है?"

रोशनपंथ के बार-बार समझाने तथा चपरासी के कई बार कहने पर भी विनोदिनी जेल के बाहर नहीं गयी। अंत में चपरासी ने उसे बलपूर्वक कोठरी के बाहर निकाल दिया और उसमें ताला बंद कर दिया।

× × ×

आज रोशनपंथ की फाँसी का दिन था, जेल के सामने स्त्री-पुरुषों और स्वयंसेवकों तथा स्वयंसेविकाओं की खूब भीड़ थी। विनोदिनी इस समय शोक की मूर्ति बनी हुई थी। कमला-नामक एक स्वयंसेविका उसे सांत्वना देने का निष्फल प्रयत्न कर रही थी। कमला यहाँ की स्वयंसेविकाओं की मुखिया थी। इस समय वह अपने मन में डर रही थी कि कहीं शोकाधिक्य के आवेश में विनोदिनी आत्मघात न कर ले।

सब लोग उत्सुक थे, कुछ लोग जेल के फाटक के दरवाज़ों के बीच के छेद से झाँक रहे थे। जेल के फाटक के सामने बाहर की ओर पुष्प से सुसज्जित रथी रक्खी हुई थी, रोशनपंथ को जलाने की सब सामग्री भी तैयार थी। कोई घी लिये हुए था, तो कोई चंदन, कोई आग लिये हुए था तो कोई लोहा।

जो लोग फाटक से झाँक रहे थे, उनमें से एक ने कहा—"वह! देखो रोशनपंथ जा रहे हैं।" रोशनपंथ ने फाँसी के तख़्ते को चूम लिया और फिर उस पर चढ गये। दो बार "ॐ ॐ" का शब्द सुनाई पड़ा। इसके बाद उन्होंने ज़ोर से कहा—'जननी जन्मभूमि………।" इसके आगे वे कुछ नहीं कह सके; क्योंकि इसी समय 'खट' का शब्द हुआ और उनकी बोली बंद हो गयी। रोशनपंथ के पार्थिव शरीर का अंत हो गया।

थोड़ी देर के बाद रोशनपंथ के मृतक शरीर को लेकर जेल के आदमी बाहर निकले। उन्हें देखते ही विनोदिनी बिजली की तरह झपटी और उस मृतक शरीर को उन आदमियों के हाथों से छीनकर कहा—"इस पवित्र शरीर को छूने का अब तुम्हें कोई अधिकार नहीं

है।" इस दृश्य को देखकर बहुत आदमी रो रहे थे। कुछ एक दूसरे को शांत कर रहे थे। इसी समय स्वयंसेविकाओं ने राष्ट्रीय गान प्रारंभ किया। पहले निश्चय हुआ था कि विनोदिनी भी गाने में सम्मिलित होगी; परंतु ज्यों ही संगीत प्रारंभ हुआ, वह पागलों की तरह दौड़ी और रोशनपंथ के मृतक शरीर से लिपट गयी।

स्वयंसेविकाएँ दो दलों में विभक्त हो गयीं, एक दल स्मशान-घाट की ओर रथी के साथ जाने की तैयारी करने लगा और दूसरा दल शहर की ओर उस काम में उसी क्षण लग जाने के लिए तैयार हो गया, जिसके कारण रोशनपंथ को फाँसी हुई थी। स्वयंसेवक तथा जनता भी इन्हीं दो दलों में विभक्त हो गयी। कमला उस दल की नेता थी, जो शहर की ओर जा रहा था। विनोदिनी स्मशान-वाट की ओर जाना चाहती थी, परंतु कमला उसे अपने साथ ले जाना ही अधिक अच्छा समझती थी। रथी स्मशान-वाट की ओर चल पड़ी, लाख समझाने तथा बहुत कहने पर भी विनोदिनी नहीं मानी और वह भी रथी के साथ ही चल पड़ी। अब कमला तथा कुछ और स्वयंसेविकाओं ने विनोदिनी को बलपूर्वक पकड़ लिया और अपनी ओर उसे घसीटना प्रारंभ कर दिया। विनोदिनी ज़ोर से चिल्ला उठी—"मुझे छोड़ दो, छोड़ दो, छोड़ दो।" परंतु किसी ने उसकी बात नहीं मानी। रथी दूर निकल गयी। विनोदिनी एक बार और चिल्ला उठी--"यह अमनुष्यत्व है।" फिर भी कमला ने उसे नहीं छोड़ा। अंत में विनोदिनी को कमला के साथ शहर की ओर जाना पड़ा।

उसी दिन संध्या के समय एक कन्या रोशनपंथ की हड्डियों तथा राख को एकत्रित कर रही थी। उस समय सब पक्षी अपने-अपने घोसलों में चले गये थे।

वीर-महिलाएँ

[श्रीअंबिकाप्रसाद भट्ट 'अंबिकेश']

(१)

परम प्रवीरता सुकर्म धर्म धीरता का,
पावन सुपाठ आज विश्व को सिखा रहीं;
युद्ध के उमंग में जुड़ी हैं रन-चंडिका-सी,
वीरन को स्वाद जोर जंग का चखा रहीं।
ठेल भय भीति को पछाड़ी, हो अगाड़ी आप,
जग में अमरता के लेख को लिखा रहीं;
धारे केसरीया पट, अड़ीं स्वत्व संगर में,
देवी व्रत-जौहर की जौहर दिखा रहीं।

(२)

पुतली रहीं जो बनीं रतिपति—कौतुक की,
देश दुखहारी चिनगारी बन निकसीं;
गयीं जो बखानी प्रतिमूर्ति काम-वासना की,
सोई आज पुण्य की पिटारी बन निकसीं।
सड़तीं पड़ीं जो अंधकार की गुफा में रहीं,
फाड़ तम-तोम वे तमारी बन निकसीं;
पाँवों की जो बेड़ियाँ बनी थीं, जननी की, आज-
बेड़ी काटने को वे कटारी बन निकसीं।

(३)

रहने न पातीं कभी भीति भावनाएँ पास,
आपही से विषम बलाएँ हट जाती हैं;
देखती जहाँ हैं प्रेमभरे मंजु लोचनों से
रिद्धि-सिद्धि भूरि संपदाएँ पट जाती हैं।
चूर-चूर करतीं गरूर मगरूरियों का,
धूल हो समूल आपदाएँ छूट जाती हैं;
ही-तल कँपातीं दहलातीं दृढ़ता का दिल,
सिंहिनी-सी जहाँ पै सगर्व डट जाती हैं।

(४)

साधना हैं परम समस्त सुखसाधनों की,
क्लेश झेलने को बनी धैर्य की निशानी हैं;
रेणु हैं बनाती पालने में कामधेनु को भी
दलती दयालुता में गौरी की कहानी हैं।
सोते हुए देश को जगातीं प्रहरी-सी बनीं,
जीवन, सँजीवन-सी शक्ति की प्रदानी हैं;
धाम में रमा हैं, उपवन में शची हैं चारु,
बानी हैं सभा में, और युद्ध में भवानी हैं।

धर्म और भगवान् मृत्युशय्या पर ?

[प्रिंसिपल श्रीवासुदेवकृष्ण ताटके एम्० ए०]

सभी प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक जीवन के व्यवहारों में परिवर्तन दिखानेवाली इस २०वीं शताब्दी में इस लेख के शीर्षक-जैसा प्रश्न—भारत की वर्तमान परिस्थिति, विशेष कर सोवियट-रूस (Soviet Russia) की हालत देखते हुए—यदि किसी भारतीय के मस्तिष्क में उत्पन्न हो, तो आश्चर्य ही क्या। 'चाँद' के विगत जनवरी के अंक में इसी विषय पर एक लेख छपा है। इस लेख में संभवतः भारतवर्ष के कट्टर सनातनियों को सावधान करते हुए लेखक महाशय ने लिखा है कि यह देश भी धर्म-भगवान् के बहिष्कार के संबंध में सोवियट-रूस का शीघ्र ही अनुसरण करेगा, और इससे उसके आत्यन्तिक सुख का मार्ग प्रशस्त होगा। प्रस्तुत लेख में इसी बात पर विचार किया जायगा कि कम-से-कम भारतवर्ष के भाग्य में इस प्रकार की भवितव्यता है या नहीं।

लेखक महाशय ने रूस और भारतवर्ष के स्वातन्त्र्य-प्रिय लोगों की बाह्य स्थिति की तुलना करके ही कदाचित् हिंदुस्थान से धर्मोच्चाटन का भविष्य प्रकट किया है। किंतु बाह्य स्थिति भ्रमकारक (Appearances are illusory) भी होती है, जैसे मृगमरीचिका अथवा शुक्तिका में रजत का आभास। किन्हीं दो प्राणियों अथवा राष्ट्रों की यथायोग्य तुलना करनी हो, तो केवल उनके बाह्य रूप से ही काम न चलेगा; उनकी आंतरिक मनः-स्थिति (Psychological) तथा आध्यात्मिक Spiritual स्थिति आदि बातों पर विचार करना भी आवश्यक होगा। तभी उसका निष्कर्ष भी निर्दोष होगा। कौआ और कोयल दोनों देखने में काले होते हैं; परंतु दोनों के गुण-दोषों में उत्तर-दाक्षिण का-सा विरोध पाया जाता है। ठीक इसी प्रकार भारतवर्ष, रूस अथवा अन्य किसी योरपीय राष्ट्र की इस गुण के (आध्यात्मिक गुण) संबंध में तुलना नहीं हो सकती। इसका मूल-कारण है—प्रकृति-भिन्नता तथा ध्येय और जीवनोद्देश्य में महदंतर। इस प्रकार लेखक महाशय के मूल-प्रमेय (Premises) ही ग़लत होने से उनका निष्कर्ष भी सदोष हो, तो क्या आश्चर्य!

प्राणिशास्त्र की दृष्टि से देखें, तो मनुष्य की प्रकृति एवं उसका हृदय शौर्य किम्वा भीरुता, उदारता या लोभ आदि गुणावगुणों से पूर्ण होता है। जिस देश में वह रहता है, उसकी प्रकृति, वहाँ की भौगोलिक परिस्थिति तथा वायुमंडल पर निर्भर रहती है। अतः यह एक सिद्धांत है कि जिस प्रकार मनुष्य की उसी प्रकार किसी राष्ट्र की प्राकृतिक मनःस्थिति उसके भौतिक वायुमंडल से ही निश्चित होती है। लेखक महाशय ने जिस क्षण यह परिणाम प्रकट किया कि रूस की भाँति भारतवर्ष भी धर्म और भगवान् को शीघ्र ही तिलांजलि देगा, उस समय उन्होंने इस स्थूल प्राकृतिक नियम का कुछ भी विचार नहीं किया। इसी कारण उनकी यह भविष्यवाणी भी भ्रमात्मक है। हिंदू-भारतीय राष्ट्र का पिंड—इस गये-गुज़रे ज़माने में भी—आध्यात्मिक है; यह त्रिवार सत्य है; प्राच्य एवम् पाश्चात्य विद्वान् पंडितों ने भी इसे स्वीकार किया है। यही कारण है कि भारतीय तथा इतर राष्ट्रों की आकांक्षाओं और ध्येय में असामान्य अंतर है। भौतिक सुधार और पिंडपुष्टता (Eat drink and be merry) में ही जन्म की सफलता और इति-कर्तव्यता समझनेवाले पश्चिम और ऐहिक जीवन के परे दृष्टि डालकर वैयक्तिक और सामाजिक जीवन को साधन-साध्य न माननेवाले पूर्व-भारत की मनोरचना एवं धार्मिक भावनाएँ एक हो भी कैसे सकती हैं?

हिंदुस्थान का प्राण धर्म है (Religion is the backbone of India)—यह उस महापुरुष का वाक्य है, जिसने पातालनिवासियों (Americans) को बरबस वैदिक धर्म के प्रति प्रेम करना सिखाया, जिसने अमेरिका और योरप के देशों में भी राम कृष्ण के मंदिर स्थापित करवाकर अनेक श्वेतकाय नर-नारियों का ध्यान वेदांत की ओर आकृष्ट किया; जिसके धार्मिक जीवन पर मुग्ध होकर अनेक स्त्री-पुरुषों ने अपने

सुधरे हुए देशों तथा Up-to-date fashonable Society को छोड़ इस दारिद्र्यपूर्ण देश में आना मानों पवित्र तीर्थक्षेत्र की यात्रा करना समझा। विजित राष्ट्र होने पर भी इसकी आध्यात्मिक सत्ता भारतयशेंदु स्वामी विवेकानंद या स्वामी रामतीर्थ के साथ ही नहीं समाप्त हो गयी, वरन् आज भी पश्चिम ने महात्मा गांधी के आध्यात्मिक साम्राज्य को स्वीकार किया है। क्या यह बताने की आवश्यकता है कि महात्मा गांधी का राजनैतिक महत्त्व उनकी आध्यात्मिक तेजस्विता पर ही निर्भर है ? भारतवर्ष में तो उनकी पूजा होने लगी है और सामान्य जनता पर उनका प्रभाव उनकी धार्मिक वृत्ति का प्रदर्शक है। किंतु महात्मा गांधी तो असीम कर्मयोगी होने पर भी महान् भगवद्भक्त हैं। 'Fruit in the hands of God'—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु' तो उनका महामंत्र है गांधीजी को इस देश ने यदि 'महात्मा' की बहुमानसूचक उपाधि दी है, तो वह कौन-सा भाव दर्शाती है ?

धर्म के नाम पर जो अन्याय-अत्याचार होता है, उसका निषेध तथा प्रतिकार उचित ही है। किंतु उससे सत्य धर्म को त्याज्य समझना अथवा उसकी आवश्यकता ही न समझना एक महान् भूल है। देश-काल-परिस्थिति के अनुसार धर्म के बाह्य रूप में उलट-फेर होता ही रहता है; किंतु इससे मूलभूत धर्म में कैसे अंतर पड़ सकता है ? वह तो अविनाशी है। जिस देश में धर्म की नींव इतनी गहरी है कि झूठ-सच व्यापार करनेवाले नाना प्रकार की उपजीविकाओं का आश्रय लेनेवाले प्रत्येक कार्य में ईश्वर का स्मरण करते हैं, जहाँ के नित्य के व्यवहार, भोजनादि तथा विवाह, जनन-मरणादि संस्कारों में भी धर्म ही को मुख्य स्थान दिया गया है, जहाँ देश के दुखी, अपंगु, दरिद्री तथा अन्य संसार-व्यथित प्राणी धर्म के नाम पर समाधान-शांति प्राप्त करते हैं, जहाँ देश का प्रत्येक मनुष्य राजनैतिक अधिकारों के टुकड़ों के लिए नहीं, धर्म-रत्न की संरक्षा के लिए (और वस्तुतः सच्चा धर्म स्वाधीनता से विलग नहीं है) अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए तैयार रहता है और जिस—वसुंधरा के एकमेवाद्वितीय—देश का अर्धनग्न केवल कौपीन धारण करनेवाला, कृष्णवर्ण महापुरुष अपने आध्यात्मिक सौंदर्यपूर्ण जीवन से अखिल संसार को मुग्ध कर सकता है, वहाँ यदि कोई 'धर्म और भगवान् मृत्युशय्या पर'-जैसा अनर्गल प्रलाप करने लगे, तो समझना चाहिए कि कदाचित् उस व्यक्ति का मस्तिष्क ही दूषित है।

अभी तक धर्म के संबंध में जो चर्चा की गयी है, उसका आधार तर्कशास्त्र है—धर्मशास्त्र नहीं। इस कार्य के लिए मैं स्वयं असमर्थ हूँ। परंतु भारतीय होने के कारण मैं इतना तो अवश्य कह सकता हूँ कि यहाँ का अपढ़-से-अपढ़ तथा नीच श्रेणी का भारतीय धर्म-वेदांत-संबंध में पाश्चात्य विद्वानों के बराबर ज्ञान रख सकता है। यदि पाश्चात्य बालक मा के दूध के साथ राजनैतिक आकांक्षाओं का पान करता है, तो प्रत्येक भारतीय बालक भी जन्मघुट्टी के साथ धार्मिक संस्कार ग्रहण करता है। यही कारण है कि यहाँ आज भी धर्मात्मा महापुरुष उत्पन्न होते हैं, यही कारण है कि भारतवर्ष धर्मभूमि कही जाती है। जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य जन्मतः कुछ ध्येय (Mission) रखता है, उसी प्रकार प्रत्येक देश का भी एक प्रमुख कार्य रहता है। भारतवर्ष का एकमात्र ध्येय संसार को शांतिप्रदान करना है और यह शांति सत्यधर्म से प्राप्त होती है। इस प्रकार लेखक महाशय के आद्य प्रमेय (Fundamental hypothesis) अज्ञान-मूलक होने के कारण निष्कर्ष (Conclusion) भी ग़लत निकला। धर्म—सच्चा धर्म सुख-शांति प्रदान करता है। यह शांति-सुख जीवनार्थ अहमहमिका भौतिक सत्ता अथवा ऐश्वर्य नहीं, यह बाह्य वस्तुओं पर निर्भर नहीं; यह आंतरिक (Internal) है—स्वतंत्र है। 'आत्मन्यैवात्मनस्तुष्टः तस्य कार्यं न विद्यते' के अनुसार एक भिखारी भी जगद्विजयी सिकंदर से अधिक ऐश्वर्यपूर्ण हो सकता है। भारतवर्ष का धर्म-सामर्थ्य यही है।

धर्म की चिकित्सा करने, उसका आमूल दिग्दर्शन कराने का यहाँ स्थान नहीं और न मुझमें वह सामर्थ्य ही है। किंतु एक मोटी-सी बात, जिसे लार्ड मेकाले के कथनानुसार प्रत्येक भारतीय बच्चा जानता है, यह है कि धर्म तथा भगवान् कोई बाहरी (External) स्थूल (Meterial) बात नहीं, जो नष्ट हो जायँ। वे आंतरिक हैं—जैसे देह में प्राण। "आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं मंदिरम्"—जहाँ देह मंदिर है और आत्मा शिव है, वहाँ भगवान् का उच्चाटन भी

किस प्रकार हो सकता है ? फिर भी, यह विषय भिन्न तथा गहन है, अतएव यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि धर्म का उच्चाटन तभी हो सकता है जब मनुष्य के 'मनुष्यभाव' का उच्चाटन हो जाय । यह धर्म का भाव ही पशु और मनुष्य की विभिन्नता का सूचक है। लेखक महाशय ने आरंभ ही से 'धर्म' को 'झूठा धर्म' समझा है, और शैतान (Devil) को ही भगवान् समझकर उसके उच्चाटन की चर्चा की है। मुझे विश्वास है कि सत्यधर्म तथा भगवान् के सत्यरूप के संबंध में उनका मुझसे कुछ भी मतभेद न होगा। यहाँ जो कुछ लिखा गया है, वह इसीलिए कि लेखक महाशय के लेख से साधारण पाठकों के हृदय में सत्यधर्म के प्रति संशय या भ्रम न उत्पन्न हो जाय। लेखक महाशय के संबंध में मैंने ऊपर जो कुछ तर्क किया है, वह सत्य है। मैं जानता हूँ कि वह सत्यधर्म से रहित नहीं हो सकते । किंतु केवल तर्कशास्त्र या बौद्धिक व्यायाम करने के उद्देश्य से ही यह लेख लिखा गया हो, तो इस भारतवर्ष में आज तक चार्वाक, लौकायतिक, माध्यमिक आदि अनेकानेक अनीश्वरवादी, पाखण्ड मत चलानेवाले हो गये हैं, जिनके ग्रंथ-समूहों को पढ़कर भी लोगों में से सत्यधर्म की भावना विचलित नहीं हुई। तब 'कोटश्च कीटः' के समान लेखक महाशय के इस लेख का भी क्या मूल्य। यदि लेखक महाशय के विचार सचमुच धर्म-भगवान् के संबंध में गंभीरता लिये हों यानी आत्म-विनोदार्थ न हों, तो यह उनकी केवल आत्म-वंचना ही है।

लेखक महोदय ने सत्य वैदिक धर्म तथा ईसाई एवं मुसलमान मज़हब को एक ही-सा समझा है ; यही उनसे भूल हुई है। सत्य-धर्म मूलतः बाह्य स्थिति पर निर्भर नहीं रहता। अतः उसका लक्ष्य भी आधिभौतिक ऐश्वर्य-धन-संपत्ति नहीं है। जिस धर्म की प्रार्थना का लक्ष्य "Give this day my daily bread" की तरह संकुचित तथा आधिभौतिक है, वह "त्यागेनैकेवामृतत्व मानुषः न ज्ञानेन न दानेन नचेज्यया", "अहिंसा परमो धर्मः", "वासुदेवः सर्वमिति", "निर्वैरः सर्वभूतेषु" इत्यादि वचनों को स्थापित करनेवाले और शांति-सुख का ध्येय रखनेवाले सत्य-धर्म की बराबरी कैसे कर सकता है।

जिस छुआछूत, दलित-अन्याय तथा कामोपभोगरत गुरुघंटाल के कथन और कार्य को धर्म समझकर सामान्य हिंदू-जनता भ्रम-भूल में पड़ी थी और जिस सत्य धर्म के विकृत रूप को ही धर्म समझकर लेखक महोदय ने उसका मज़ाक उड़ाया है, वह धर्म तो कभी का जाता रहा है और उसके स्थान पर सत्य-धर्म की स्थापना हो गयी है; सत्य-धर्म के संस्थापक केवल भारत के ही नहीं, वरन् संपूर्ण जगत् के उद्धारक होकर अवतीर्ण हुए हैं। उन्हीं के सत्य-धर्म-तप से आज भारत के कोटि-कोटि नर-नारी-बालक उस सत्य धर्म के आनंद का उपभोग कर रहे हैं । उन्हीं से संशय-पिशाच-पीड़ित पाश्चात्य राष्ट्रों को भी सुख-शांति प्राप्त होगी, यह भगवान् ही की इच्छा है। उन्हीं की प्रेरणा से आज विराट् भारतवर्ष अपनी दीर्घ-निद्रा छोड़कर केवल एक वर्ष में—अर्थात् अनंतकाल (Eternity) की तुलना में एक क्षण में--जाग्रत् हो गया है भगवान् तथा धर्म सत्य-स्वरूप हैं और सत्य त्रिकालाबाधित दिक्कालद्यनवच्छिन्न है।

पुराणकालीन भारत के इतिहासोज्ज्वल समय के केवल कपोत की प्राणरक्षा के लिए अपना शरीरदान देनेवाले शिवि तथा सत्य की रक्षा में सर्वस्व बलिदान करनेवाले हरिश्चंद्र की तरह आज भी इस रत्नगर्भा भूमि पर त्यागशील, दीनबंधु देशबंधु, सर्वस्व त्याग करनेवाला तपस्वी 'नेहरू-परिवार, मालवीयजी आदि अनेक धर्मात्मा तेजस्वी सूर्य के समान आलोकित हैं; उनके प्रकाश के सम्मुख यदि अंधकारप्रिय, रात्रिचारी पक्षी (Bird of night) के समान किसी मनुष्य को धर्म का प्रकाश न दिखायी दे, तो यह उसी का दुर्भाग्य है।

परिवर्तनशील संसार का यह नियम ही है कि "Old order chageth yielding place to new"—बाह्य परिस्थिति बदलती है, और उसके स्थान पर नवीन समुपस्थित होती है। किंतु यह होने पर भी तदंतर्गत सत्यवस्तु (Absolute) नहीं बदलती । जनन-वर्धन-क्षय तथा बाल्य-तारुण्य-वार्द्धक्य होने पर भी आत्मा नहीं बदलती । अतएव यह कहना भी अनावश्यक है कि इसी प्रकार सत्यधर्म का भी नाश नहीं होता। फोड़ा हो जाने पर औषधोपचार के स्थान में अंग काट डालना कभी उचित नहीं कहा जा सकता।

भारतवर्ष का सहस्रातिसहस्र वर्षों का इतिहास इसे धर्मभूमि सिद्ध करता है। धर्म की ग्लानि अर्थात् धर्म का विकृत रूप होने पर भगवान् का कोई-न-कोई अवतार 'यदायदाहि धर्मस्य' के अनुसार धर्म की संस्थापना करता है। भगवान् बुद्ध श्रीशंकराचार्य और इस युग के 'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च' जैसे भगवान् मोहनदास गांधी सब उसी परम विभूति के दर्शन हैं। मेरी समझ से तो महात्मा गांधी के सत्य-धर्म-तप ही से आज इस विराट् राष्ट्र-पुरुष में चेतनता उत्पन्न हुई है। हिंदुस्थान का वर्तमान राजनीतिक आंदोलन सत्य-धर्म के ही आधार पर स्थित है। इस अवतारी महापुरुष का कार्य धार्मिक है, उसका साधन-तत्त्व निर्वैरत्व तथा अहिंसा से पूर्ण है। आज समस्त देश फिर सत्य-धर्म-पूर्ण हो गया है और इसी से भगवान् की कृपा से उसकी आकांक्षाएँ तृप्त होने के मार्ग में हैं। आज महात्माजी से लेकर छोटे बालक और देवियाँ तक 'सत्याग्रही धर्म-वीर हैं। भारतवर्ष धर्म-भगवान् का भक्त है; उन्हीं की पूजा के लिए मंदिर के कपाट खुल गये हैं; स्वतंत्र मंदिरों की स्थापना हो रही है। वस्तुतः सत्य-धर्म की स्थापना के लिए ही महात्माजी का अवतार हुआ है। सदा ही से इस प्रकार छोटे-बड़े महान् पुरुष अवतीर्ण होकर सत्य धर्म के प्रति भारतीयों को सतत रत रहने का आदेश करते आये हैं। आचारसंपन्न उच्च कुलस्थ ब्राह्मण होने पर भी, काशी से रामेश्वर को चढ़ाने का गंगोदक पिपासाकुल गधे के मुख में डालनेवाले, रोटी ले जानेवाले कुत्ते के पीछे घी की कटोरी लेकर दौड़नेवाले, वेदपाठी शुचिर्भूत रहनेवाले द्विजवर्य होने पर भी, बिछुड़े हुए चांडाल-बालक को गोद में लेकर उसकी माता के पास पहुँचा देनेवाले यदि धर्मशील नहीं कहे जायँगे, तो धर्म-शब्द की व्याख्या ही बदलनी होगी।

भगवान् तथा धर्म का स्वरूप 'सत्यम्, शिवम्, सुंदरम्' है। भारतीयों का वर्तमान आंदोलन सत्यपूर्ण होने से वह शिवकर तथा सुंदर है। और, इसी कारण अखिल संसार उसकी ओर गौरव-दृष्टि से देख रहा है। महात्माजी का मुख्य कार्य सत्य-धर्म की दीक्षा देकर शांति का साम्राज्य स्थापित करना है। धर्म तथा भगवान् की जय हो; सत्य-धर्मारूढ़ भारत-भारतीयों की जय हो!

दीप-निर्वाण

[श्रीशम्भूदयाल सक्सेना साहित्यरत्न]

(मुक्तप्रवाह छन्द)

(१)

जीवन-मरुस्थल में,
हिम-कण-विन्दु-सा—
हाय! वह अचानक अयाचित ही आ गया था;
स्वर्ग-सुख लेकर,
वसन्त-पुष्प-सा मृदुल,
कोमल, ललाम, अभिराम शिशु भाग्यवान।

(२)

सरस हुआ था रसहीन जग—
क्षण-क्षण विश्व की कठोरता,
हाँ, कर्मरत जीवन भी,
जीविका के द्वन्द्व सब
सहनीय हो गये थे,
दुष्टग्रह सो गये थे,
रात्रि के निविड़ सम
शून्य गृह बीच दीप्तिमान हुआ देखकर,
उज्ज्वल, आलोक-पुञ्ज दीप अनुपम एक।

(३)

नीड़ कर बस गये
आकर अचानक थे,
कितने?—असंख्य स्वर्ण-स्वप्न रम्य,
भूलकर मार्ग सब,
उन्नत बरोनियों पर,
मुग्ध मनोमन्दिर में

मेरी चिर-संगिनी के,
रातें वे कैसी थीं सुहावनी सुधांशुमयी !
घुल-घुल किरणों में
बरस रही थी सुधा,
ओसकण गूँथते थे
मोती चुन-चुनकर—
वेणी में निशा की, गुपचुप कर प्रेमालाप।

(४)

गान में विहंगम के
आते थे प्रभात नव,
पुष्पराशि सज्जित,
सलोने से,
मनोहर से,
आशा के रँगीले पंख,
नील नभ-मंडल में ;
विस्तृत भुवन छोड़
रञ्जित क्षितिज पार,
विहँगसमूह साथ होते थे प्रधावित क्यों ?
गुदगुदी थी वह ?
उन्माद था ?
विलास था ?
यौवन का रस था मधुर ?
भव्य कल्पना का स्फटिकनिर्मित विशाल-सा भवन था ?

(५)

भक्तिशून्य,
रिक्त-हाथ,
मन्द-भाग्य,
शुभ्र उत्सर्ग भावनाविहीन
मार्ग के भिखारी को,
अपूर्व भाग्य-भूषित
किया था, किस भूल ने
उस विश्वेश्वर की—ज्ञात किसे दैव हा !

(६)

अक्षत नैवेद्य नहीं,
अर्घ्य, धूप, दीप नहीं,
थाली में पुजापा नहीं,
अञ्जलि में पुष्प नहीं,
ध्यान नहीं—
धारणा, समाधि, तपभाव नहीं,
व्रत नहीं,
त्याग नहीं,
रिक्त—शून्य, दलित, वलित, विश्वबंधन,
विरस तिक्त जीवन में,
देववरदान-तुल्य,
पावन परम पुण्य,
ललित विलास रम्य,
मेरे देव ! पाया था खिलौना वह
किस स्वर्ण-योग में ?
किस सत्कृत्य का—
उपहार था वह हाय !

(७)

भोले भोले तोतले, सलोने मुख के वचन,
स्मित फुहार से,
समुद्रफेन-से धवल,
क्षीर से सरल शुभ्र,
रत्नराशि-से अमूल्य;
लुट गये बिखर-बिखरकर मिट गये,
अनभिज्ञता में सब एक साथ,
मूल्य कुछ भी तो नहीं उनका लगा सका मैं !

(८)

चिह्न नहीं अवशेष
एक भी रहा है हाय !
चित्रपट धुल गया ;
कौन से अदृष्ट ने
आकृति प्रकृति सब
विस्मृत, विलुप्तप्राय
करके, प्रहार किया कोपवज्र, हन्त हा !

वायस्कोप में कला

[पं० कृपानाथ मिश्र एम्० ए० (आनर्स)]

वायस्कोप के कई नाम हैं। अमेरिका में लोग इसे 'मोवीज़' (Movies) कहते हैं और इँगलैंड में पिक्चर्स (Pictures)। फ़्रांस, इटली आदि देशों में इसका नाम सिनेमा (Cinema) है। भारतवर्ष के साधारण लोग इसे वायस्कोप के नाम से जानते हैं। सभी देशों में ऐसे महापुरुष भी होते हैं, जो कुछ न जानकर बहुत कुछ जानने का दावा रखते हैं। ये लोग वायस्कोप को फ़िल्म (Film) कहते हैं। हम भी कहीं-कहीं इसे फ़िल्म ही कहेंगे !

वायस्कोप का जन्म हाल हीं हुआ है। इसका इतिहास अति संक्षिप्त है। जिस प्रकार वायरलेस (Wireless) का जन्म एक वैज्ञानिक आविष्कार के फलस्वरूप हुआ, उसी प्रकार वायस्कोप का जन्म एक दूसरे आविष्कार के सहारे हुआ। फोटोग्राफी स्थगित वस्तुओं की होती है। गतिशील वस्तुओं की फ़ोटोग्राफी का नाम सिनेमेटोग्राफी (Cinematograph) है। यही सिनेमेटोग्राफी वायस्कोप का मूल है।

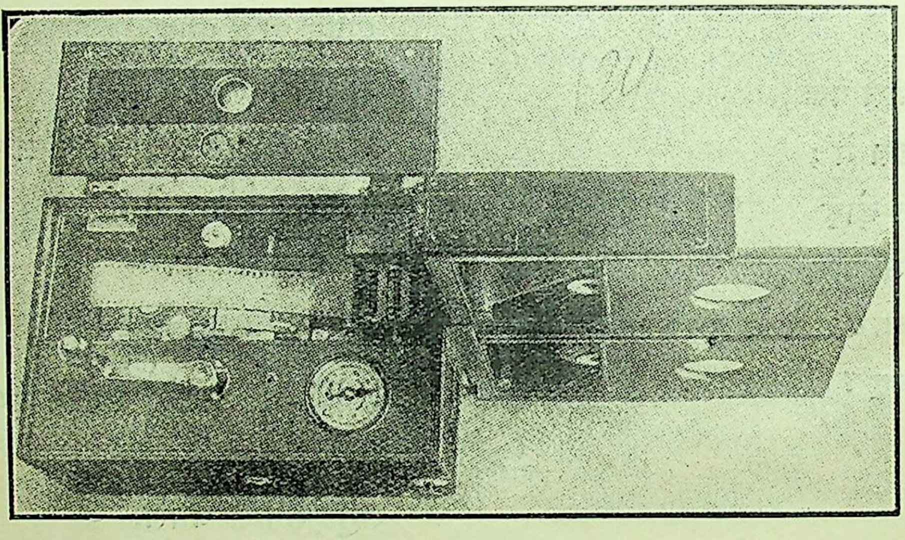

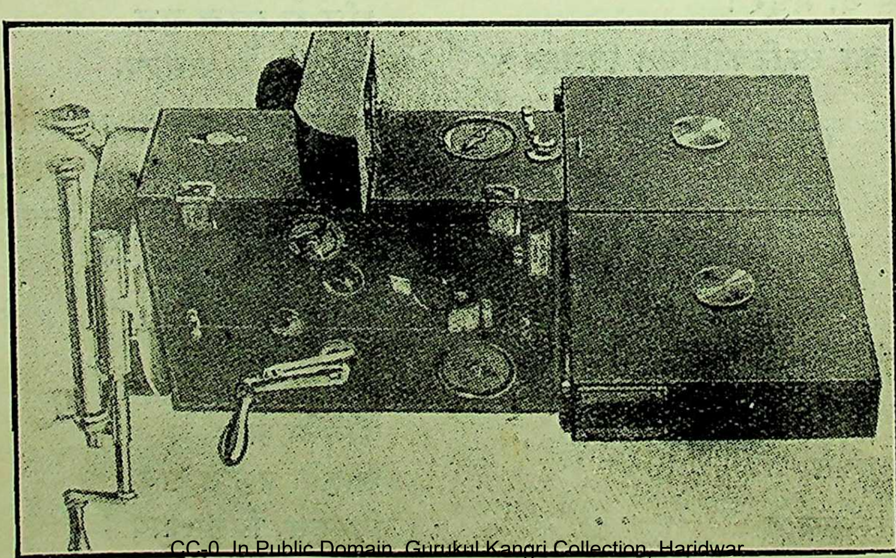

१ — सिनोमेटोग्राफिक केमरा

सिनेमेटोग्राफी का आधार गति है । गति के द्वारा ही गतिशील वस्तुओं के चित्रों का प्रकाश हो सकता है । गति स्वयं भिन्न-भिन्न स्थिर चित्रों की व्यञ्जना है । यही सिद्धान्त वायस्कोप का आधार है । उदाहरण लीजिए—

आप किसी फोटोग्राफर के सामने बैठे हैं । वह

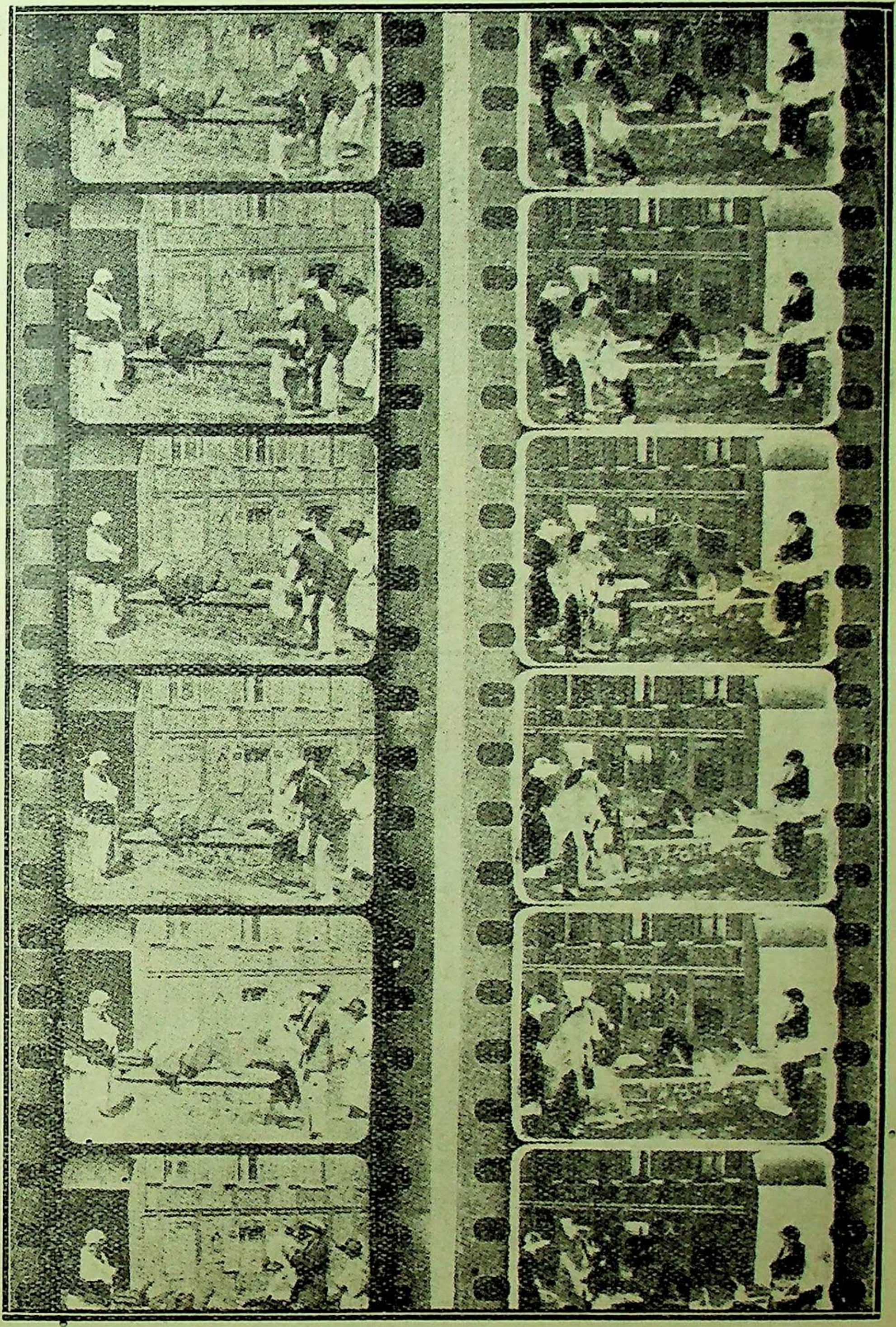

२—भाव और स्थितिपरिवर्तन की फोटोग्राफी

(इन्हीं भिन्न स्थगित चित्रों को हम गतिशील मान लेते हैं)

आपसे कह रहा है—"Ready" । आप प्रस्तुत हो गये; पर प्रस्तुत होने के पूर्व ही आपने विचार लिया कि मेरी मुखाकृति से अमुक भाव प्रकाशित होगा । आप भौं सिकोड़कर अपने को गंभीर बना सकते हैं या दन्तविकास के सहारे सरस बता सकते हैं । पर फोटो में आपके मुख का एक ही स्थगित भाव प्रकाशित होगा । यदि फोटोग्राफर प्रतिसेकंड फोटो लेता रहे, तो आपके मुख के कितने ही भाव प्रकाशित किये जा सकते हैं । यदि प्रतिसेकंड आपके उन भावों के, एक नहीं तीस या चालीस, फोटो लिये जायँ, तो आपके सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव भी केमरे की आँखों से नहीं बच सकते । किसी भाव का प्रतिबिम्ब मनुष्य के चेहरे, अंग और गति में देख पड़ता है । सिनेमेटोग्राफी ऐसे ही प्रतिबिम्ब की फोटोग्राफी है ।

हमारी आँखों में एक दोष या गुण यह है कि वे किसी वस्तु के दर्शन (Vision) को तुरन्त ही नष्ट नहीं कर देती हैं । उनमें दो-एक क्षण के लिए उस दर्शन को क़ायम रखने की शक्ति है, जिसे 'Persistence of Vision' (दृष्टि की स्थिरता) कहते हैं । इसी के द्वारा वायस्कोप में हम ठगे जाते हैं । जब हम किसी को वायस्कोप में दौड़ते देखते हैं, तो उसके 'एक पाँव उठे हुए' फोटो को देखकर हमारी आँखें इतनी निरत हो जाती हैं कि 'दूसरे पाँव उठे हुए' फोटो को परदे में पड़ते हम नहीं देखते । अर्थात् एक को हटा लेने और दूसरे को रखने में जो अल्प समय लगता है, उसे हम ताड़ नहीं सकते हैं । इसी के कारण लगातार स्थगित चित्रों को हम गतिशील मान लेते हैं; वायस्कोप इस भ्रांति का सुन्दर उदाहरण है ।

चित्र २ में छः स्थगित चित्र हैं । कोने में एक पुरुष एक कुत्ते को नीचे झुककर ऊपर उठा लेता है । नीचे झुकने से लेकर ऊपर उठने तक उसके छः चित्र खिंच जाते हैं । इन्हीं चित्रों को खूब तेज़ी से घुमाने के कारण हमारी आँखें इनकी भिन्नता को नहीं देख सकतीं । वे इन्हें एक लगातार गतिशील चित्र मानती हैं । चित्रों के आस-पास के छिद्र बड़े महत्त्व के हैं । इन्हीं के सहारे ये घुमाये जाते हैं ।

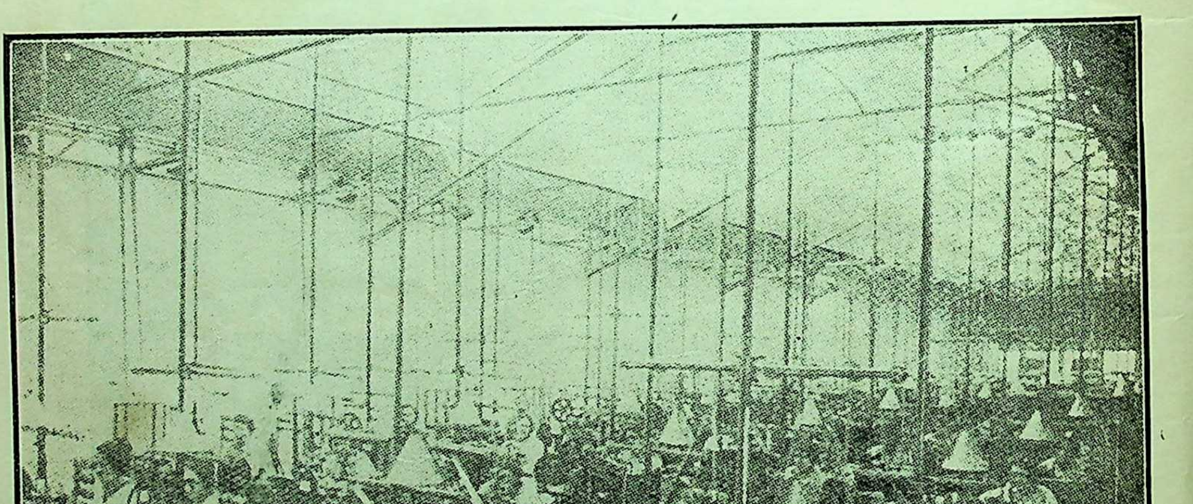

३—फ़िल्म डेवलप करने का विशाल आयोजन

इन चित्रों का नाम फ़िल्म है। बाईं ओर के चित्र पॉज़िटिव (Positive) हैं और दाहनी ओर के नेगेटिव (Negative)। पॉज़िटिव से नेगेटिव करने की रीति को 'डेवलप' (Develop) करना कहते हैं। प्रत्येक स्टुडिओ (Studio) में फ़िल्म डेवलप करने का विशाल आयोजन रहता है। (देखिए चित्र नं० ३) फ़िल्म का वास्तविक साइज़ यही है, जो चित्र नं० २ में है। वायस्कोप के परदे पर ये कोई दो हज़ार गुना बढ़ाकर दिखाये जाते हैं।

स्टुडिओ उस स्थान का नाम है, जहाँ फ़िल्म बनाये जाते हैं। यहीं फ़िल्मसंबंधी सभी कार्य संपन्न होते हैं। आश्चर्य की बात है कि जिस फ़िल्म को हम वायस्कोप के घर में बैठकर दो घंटे में देख लेते हैं, उस फ़िल्म के बनाने में कभी-कभी दो वर्ष लग जाते हैं, करोड़ों रुपये ख़र्च हो जाते हैं, लाखों मनुष्य उसके लिए परिश्रम करते हैं।

स्टुडिओ में ही किसी कथानक का अधिकांश अभिनय किया जाता है। इँगलैंड में आफ़्रिका की मरुभूमि का प्रतिरूप स्टुडिओ में ही तैयार किया जाता है; ऐसी तैयारी को सेट (Set) कहते हैं। (देखिए चित्र नं० ४) आजकल बहुतेरे सञ्चालक (Directors) ख़ास-ख़ास जगहों में फोटो खींचते हैं; ऐसी फोटोग्राफी को External shots कहते हैं। स्टुडिओ के भीतर की फोटोग्राफी का नाम Internal shots है। बाहर के सभी फोटो एक ही बार लिये जाते हैं; ऐसे ही भीतर के भी। कहने का तात्पर्य यह है कि कथानक के विकास के अनुसार फोटो नहीं लिये जाते; संचालक की सुविधा के अनुसार ही फोटो लिये जाते हैं। मान लीजिए कि किसी कथानक का पहला दृश्य एक जंगल में है, दूसरा एक घर में, तीसरा पहाड़ के ऊपर, चौथा घर में, पाँचवाँ घर में; तो संचालक एक बार बाहर के प्रथम और तृतीय दृश्यों को तय कर लेगा, फिर वह भीतर के दृश्यों की ओर अपना ध्यान देगा। सभी चित्र जब लिये जा चुकेंगे, तो सम्पादक (Film-Editor) इन सबको ठीक-ठीक स्थानों में बिठा देगा। फ़िल्म के संपादक का काम बड़े महत्त्व का है। (देखिए चित्र नं ५) काटछाँट के अतिरिक्त वह घटनाओं के यथोचित सामंजस्य (Right sequence) में अपनी प्रतिभा का विकास दिखाता है।

स्टुडिओ में संचालक, अभिनेता (Actor) और संपादक (Editor) के अतिरिक्त एक फोटोग्राफर

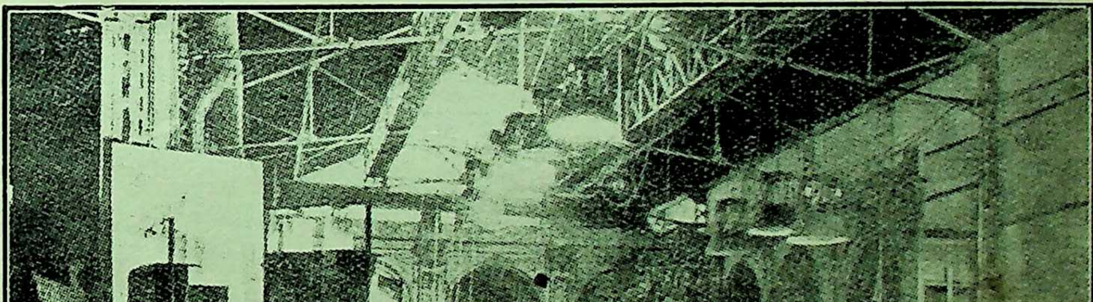

४—स्टुडिओ के भीतर एक सेट (set)

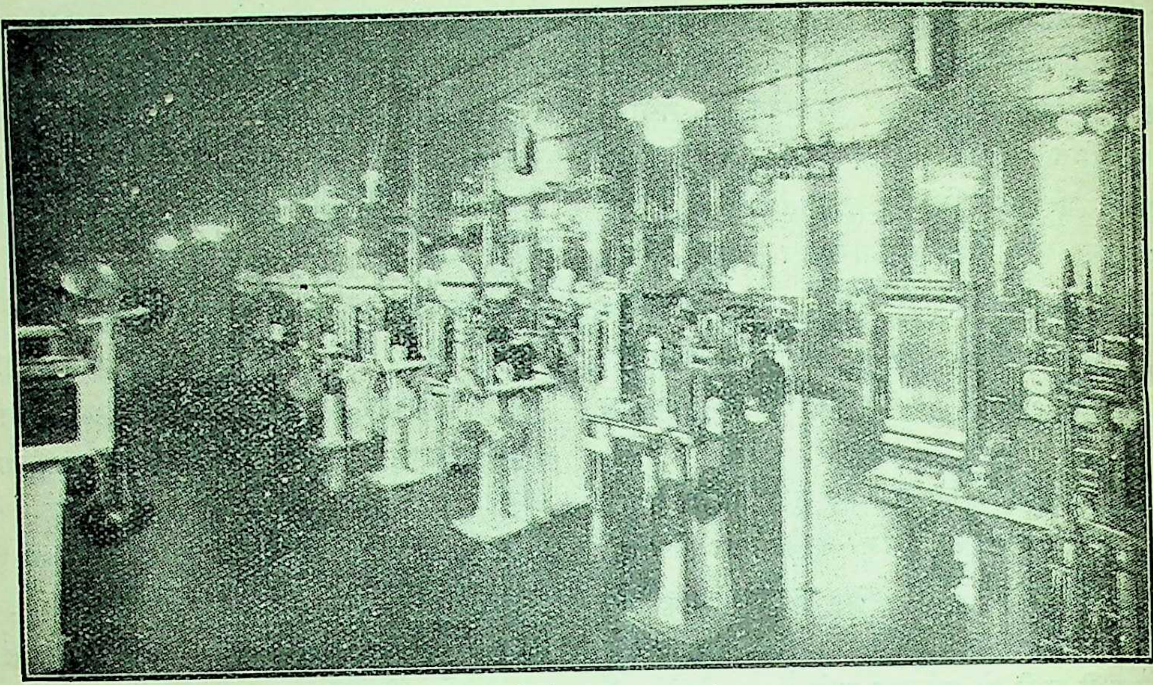

५—फ़िल्म-संपादन-विभाग

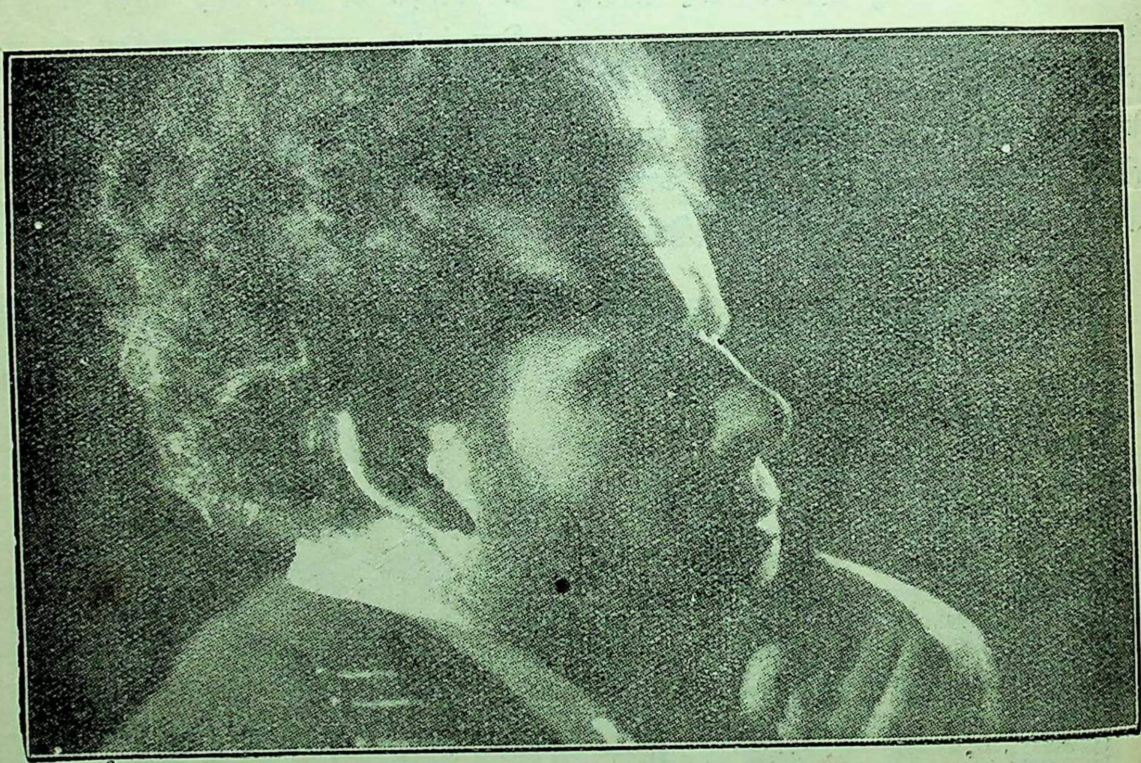

६—इसेन्स्तेन

(रशियन डाइरेक्टर)

होता है, जिसका स्थान इन लोगों से बढ़कर नहीं, तो घटकर भी नहीं है । फ़ोटोग्राफर को स्टुडिओ में सभी केमरामैन (Camera-man) कहते हैं । बहुत-से दृश्यमय (Spectacular) फ़िल्मों में केमरामैन का ही सबसे अधिक महत्त्व है । उसी की से बहुतेरे भ्रांतिमूलक दृश्य दिखाये जाते हैं; जैसे अभिनेता का खूब ऊँची जगह से कूदकर नीचे जाना । वास्तव में अभिनेता दो फ़ीट भी नहीं

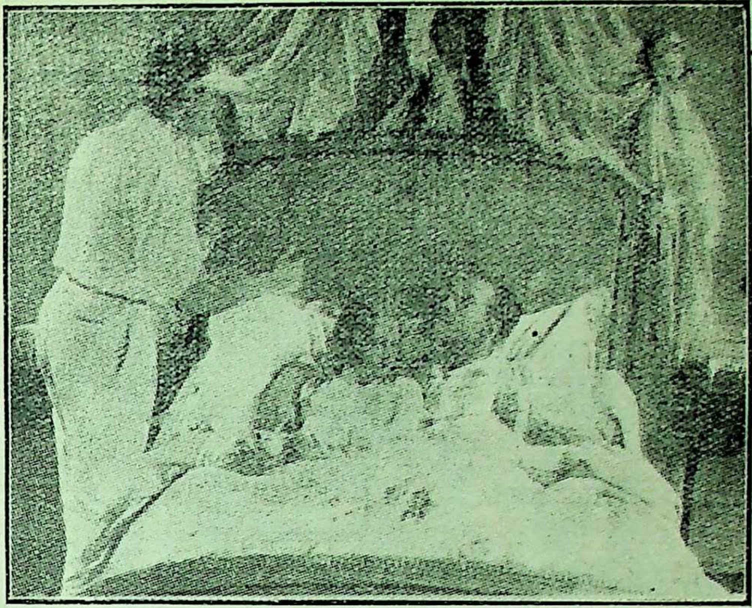

७—एक फ्रेंच डाइरेक्टर

(अभिनेता और अभिनेत्री को सिखा रहा है)

फोटोग्राफर अपने केमरे को इधर-उधर घुमाकर (जिसे Tilting कहते हैं) भ्रांति उत्पन्न करता है । ऐसी भ्रांति का नाम Camera-fake है । इसका एक आश्चर्यजनक उदाहरण लीजिए—

किसी कथानक में एक दृश्य यह है—सेना के साथ किसी महापुरुष की आज्ञा से समुद्र का सूख जाना और उस महापुरुष के इस पार से उस पार चले जाने के बाद समुद्र का जल से फिर भर आना । इस असंभव बात को केमरामैन संभव कर देता है (देखिए चित्र नं० ८)। इसमें पहले आपको वास्तविक समुद्र का रूप दिखाया

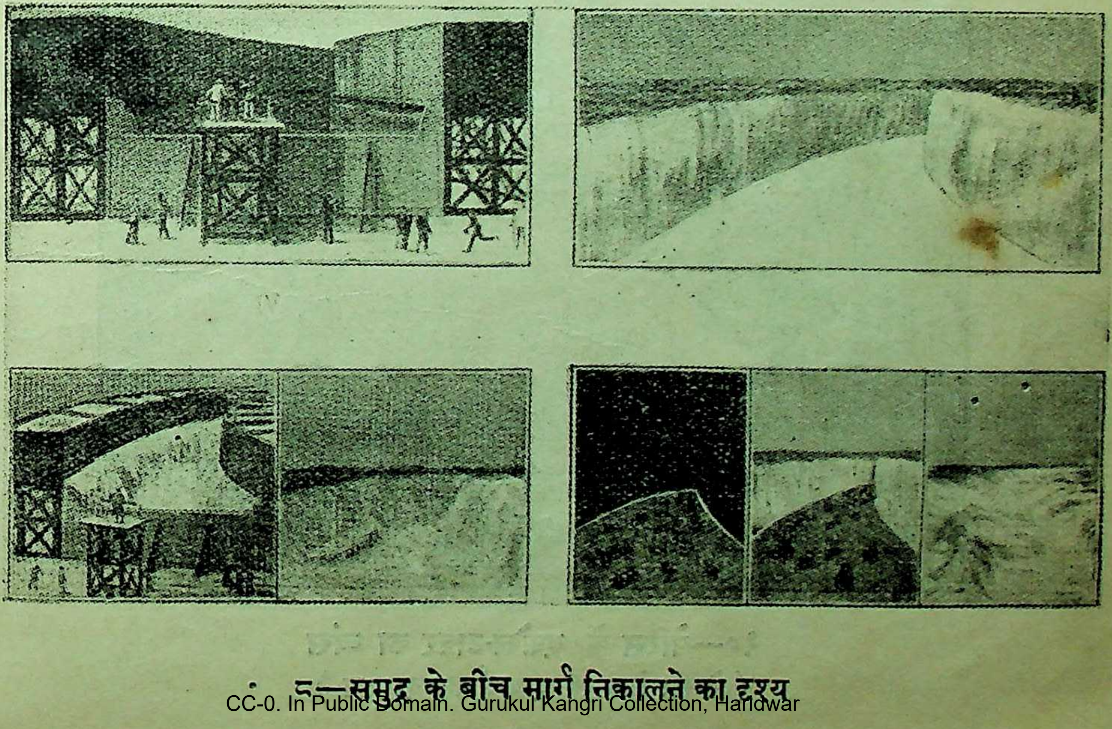

८—समुद्र के बीच मार्ग निकालने का दृश्य

गया। (नं IV के आयोजन को देखें।) दूसरा चित्र (नं IX) दो विशाल जलप्लावित (समुद्र की भाँति) हृदों के बीच रिक्त स्थान का, जिससे समुद्र के बीच मार्ग का आभास मिलता है। तीसरा चित्र (X–XI) सेना के पार होने का; चौथा (VI) क्रमशः समुद्र का जल से भर आने का; पाँचवाँ (XII) वास्तविक समुद्र का। नं० IV और V के सहारे इन कई चित्रों को बनाया जाता है और समुद्र

९—माडलेन के ध्वंस का एक चित्र
(केमरा फ्रेक का दूसरा उदाहरण)

१०—पेरिस के एफ़ेल-टावर का ध्वंस
(केमरा फ्रेक का एक और उदाहरण)

के फट जाने, उसके सूख जाने आदि-जैसी असंभव बातों को केमरामैन संभव कर दिखाता है। यहाँ प्रथम और अंतिम चित्र वास्तविक और शेष सभी कृत्रिम होंगे। ऐसे द्विविध रूप को लोग Composite picture कहते हैं।

केमरा फ़ेक का और एक उदाहरण लीजिए। पेरिस में माडलेन-नामक एक सुंदर मंदिर है। किसी कथानक के एक भाग में इसका ध्वंस अवश्यंभावी है। इससे केमरामैन को तनिक भी चिंता नहीं। वह पहले माडलेन का चित्र ठीक उतारता है; फिर किसी चित्रकार की सहायता से माडलेन के काल्पनिक ध्वंस के भिन्न-भिन्न चित्रों का फोटो लेता है (देखिए चित्र-नं० ६)। इन चित्रों के फोटो को वायस्कोप के परदे पर पड़ते देख हम इनकी सत्यता पर विश्वास कर लेते हैं। किंतु स्मरण रहे कि ऐसे ध्वंस को फोटो में व्यक्त करने के लिए कोई सहस्र चित्रों की आवश्यकता होती है, और इन चित्रों के लिए संचालक को खूब पैसे ख़र्च करने पड़ते हैं। कभी-कभी तो माडलेन-जैसे भवन की हू-बहू नक़ल की जाती है; ठीक वैसा ही प्रस्तर-प्रासाद बनवाया जाता है—ध्वंस के समय के चित्रों में वास्तविकता लाने के लिए।

केमरामैन का सबसे बड़ा काम है केमराकोण (Camera Angle) को ठीक करना। यह केमरा-एंगल (Angle) का आविष्कार अभी आये दिन हुआ है। इसकी सहायता से बहुत-से सूक्ष्म भावों का अनुभव अलक्ष्य रूप से कराया जाता है। मान लीजिए, किसी विशाल मंदिर के भीतर दो पुजारी कुछ विचार कर रहे हैं। यदि आप पुजारियों के निकट जाकर उनका चित्र उतारेंगे, तो आप केवल उनके मुख के भाव को ही प्रकाशित कर सकेंगे। यदि आप दूर से ही, विशाल स्तंभों के निकट से, उनका चित्र उतारेंगे, तो आप मंदिर की विशदता, पवित्रता आदि भावों को प्रकाशित करते हुए—क्रमशः उन दो पुजारियों के निकट आने पर—उनके मुख पर अंकित भावों को चित्र में व्यक्त कर सकेंगे। चित्र-नं० ११ से इन बातों का पता चलेगा। तारीफ़ यह कि हम लोग इन सूक्ष्म बातों के प्रभाव को लक्ष्य नहीं कर सकते; फिर भी इनका प्रभाव पड़ता ही है। इसकी महत्ता पर हम पीछे विचार करेंगे। वायस्कोप में कला का यह एक मुख्य अंग है। इसका आधार मनोविज्ञान है।

केमरा-एंगल की भूल बड़ी भयंकर होती है। इससे कितनेक चित्रों का प्रभाव नष्ट हो जाता है; दृश्यों के सामंजस्य में भी व्याघात पड़ता है। यूगो (Victor Hugo) के उपन्यास L'homme quirit (हँसते हुए पुरुष की कथा) को लोगों ने फ़िल्म

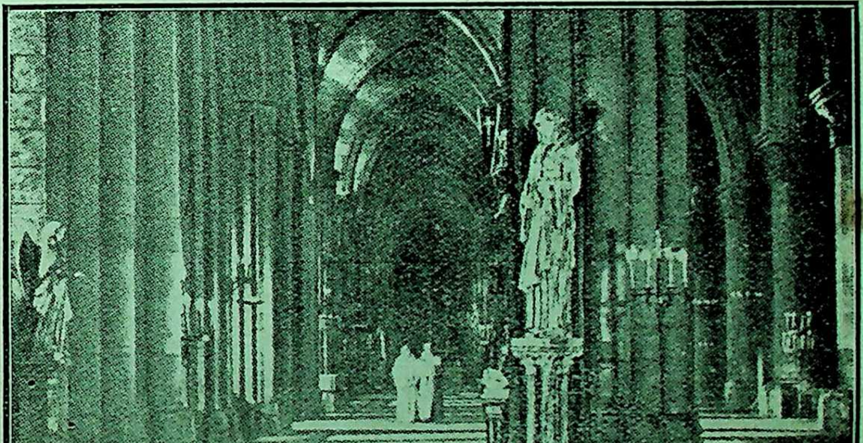

११—केमरा-कोण का उदाहरण

किया। एक स्थल पर जहाँ प्रधान पात्र का निकटवर्ती चित्र (Close-up) होना चाहिए था, वहाँ केमरा-मैन की भूल से एक दूसरी पात्री का निकटवर्ती चित्र उतर आया! इस भूल से समूचे फ़िल्म में एक बड़ा दोष आ गया। इसी दोष के आधार पर बहुतेरे कलाविदों ने इस फ़िल्म की बड़ी निंदा की, यद्यपि इसके प्रधानपात्र का अभिनय सुंदर हुआ था।

कैमरा-एंगल का सर्वोत्तम विकास रशियन और जर्मन-स्टुडिओ में हुआ है (देखिए चित्र-नं० १२-१३)। इसका सचित्र और विस्तृत उल्लेख जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है. हम पीछे करेंगे। यहाँ पर निकटवर्ती चित्र या फ़ोटो (Close-up) के संबंध में कुछ लिखना आवश्यक प्रतीत होता है।

फ़िल्म के इतिहास की दो बातों ने उलट डाला है — (१) केमरा-एंगल ने और (२) क्लोज़-अप ने। क्लोज़-अप की सहायता से हम मनुष्य के चेहरे पर अंकित सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को दिखा सकते हैं। क्लोज़-अप के प्रवर्तक ग्रिफ़िथ साहब हैं, जो अमेरिका के एक प्रसिद्ध फ़िल्म डाइरेक्टर हैं। क्लोज़-अप के साथ ही लोगों ने 'मेक-अप' का भी व्यवहार करना शुरू किया।

१२—रशियन फ़िल्म-पद्धति का एक चित्र
(गोर्की के 'मदर' से)

१३—रशियन फ़िल्म-पद्धति का एक दूसरा चित्र
(गोर्की के 'मदर' से)

मेक-अप अथवा स्वाँग से फ़िल्म-कथानक में व्यापकता का समावेश हुआ। इन दोनों के उदाहरण लीजिए।

क्लोज़-अप के व्यवहार के पहले जब किसी अभिनेता के उच्छ्वसित भाव को दिखाना पड़ता था, तो संचालक मज़े में परदे पर यह वाक्य लिखवा डालता—"तब उसकी आँखों से अश्रुधारा बह चली और वह बिलख-बिलखकर रोने लगा।" आजकल ऐसा वाक्य नहीं लिखा जाता। ऐसा लिखना या लिखवाना मूर्खता समझी जाती है। पहले अभिनेता की छलछलाती आँखों का क्लोज़-अप, फिर उसके गालों पर अश्रुबूँदों का, फिर उसके मुख के हिलते हुए सिरे का—बस इन तीन क्लोज़-अप से सारा काम निकल जाता है। दर्शकों को चित्रों के द्वारा ही भावों का पता चल जाता है; व्यर्थ वाक्यों के प्रयोग से उन्हें कल्पना-शक्ति नहीं दौड़ानी पड़ती।

मेक-अप (Make-up) या स्वाँग से व्यापकता का समावेश इस प्रकार हुआ। मान लीजिए, कथानक के प्रथम अंश में अभिनेता युवा है; पर शेषांश में वह बूढ़ा हो जाता है। वास्तविक संसार में इस प्रकार अभिनय के लिए तो कोई युवा से वृद्ध तुरंत हो नहीं सकता; इसी से स्वाँग की आवश्यकता होती है। मार्के की बात यह है कि थिएटर में स्वाँग का बनावटीपन या कृत्रिमता शीघ्र ही जानी जा सकती है, पर वायस्कोप के स्वाँग को कोई सहज ही लक्ष्य नहीं कर सकता। 'क्लोज़-अप' में सुंदर भाव दिखानेवालों में लोनचेनी का नाम खूब है। इसके स्वाँग भी गज़ब के होते हैं। कभी-कभी तो इसने असंभव को संभव कर डाला है। यूगो के "नोत्रदाम" (Hunchback of Notre Dame)-नामक फ़िल्म में इसका स्वाँग ऐसा हुआ था कि कट्टर-से-कट्टर समालोचक भी इसकी तारीफ़ करने लगे। अभी हाल ही 'The Shock'-नामक फ़िल्म में इसने अपनी खूबी सिर्फ़ 'क्लोज़-अप' में दिखा दी है। एक स्थल पर, विना स्वाँग के ही, इसने अपने मुख को इस कुशलता से विकृत किया है कि दर्शकों को इसके भाव समझने में कठिनता नहीं होती। चित्र नं० १४ से इस बात की पुष्टि होगी।

फ़िल्म को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं—(क) प्रथम श्रेणी के वे फ़िल्म, जिनका उद्देश्य एक नवीन कला का विकास है। इस श्रेणी में रशियन फ़िल्म, दो-तीन जर्मन फ़िल्म और अमेरिका में केवल चार्ल्स चैपलिन के फ़िल्म आते हैं। (ख) द्वितीय श्रेणी के वे फ़िल्म, जिनमें किसी तरह कहीं-कहीं कला की झलक देख पड़ती है—अभिनेता या अभिनेत्री की प्रतिभा के

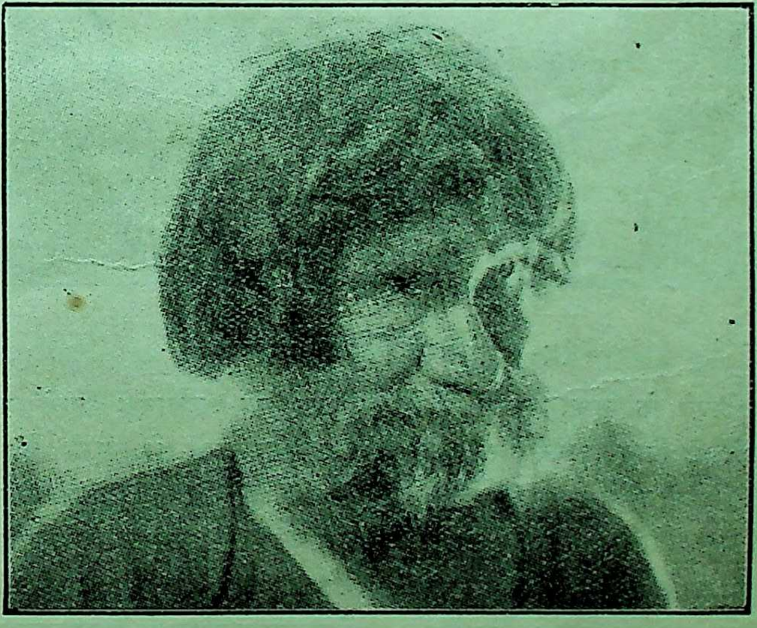

१४—क्लोज-अप में मुख विकृत करने की कुशलता

कारण। (ग) विविध। क श्रेणी के फ़िल्म की महत्ता उसके डाइरेक्टर पर निर्भर करती है। ख श्रेणी के फ़िल्म के गौरव अभिनेता या अभिनेत्री हैं। तृतीय श्रेणी के फ़िल्म में कला नहीं; इसका महत्त्व जनता की माँग पर निर्भर करता है। इस तृतीय श्रेणी के फ़िल्म पर हम विचार नहीं करेंगे। अधिकांश अमेरिकन फ़िल्म इसी श्रेणी के हुआ करते हैं। अमेरिकन फ़िल्म-डाइरेक्टरों के लिए वायस्कोप स्टाक-एक्सचेंज का मार्केट है। जैसी माँग, वैसा ही फ़िल्म—यही उनका सिद्धांत है। गत महायुद्ध के बाद उन्होंने युद्धसंबंधी अगणित फ़िल्म बनवाये। एक ही कथानक को इधर-उधर बदलकर रख देना ही इनका काम था। युद्ध का घाव उस समय योरप के हृदय में इतना गहरा था कि वहाँ के सभी लोगों ने ऐसे फ़िल्मों को पसंद किया। अमेरिकन डाइरेक्टर मालामाल हो गये। कुछ दिनों के बाद युद्ध का जोश कम हुआ और समाज में एक नवीन जिज्ञासा-प्रवृत्ति जाग्रत् हुई। इस प्रवृत्ति का नाम Sex-anolysis है। उपन्यासों में औपन्यासिकों ने इसकी चर्चा की; नाटककारों ने नाटकों का कथानक इसी पर खड़ा किया और फ़िल्म-संचालकों ने इसी के आधार पर फ़िल्म बनवाने शुरू किये। आजकल भी ऐसे ही फ़िल्मों की माँग बहुत है। फलस्वरूप अमेरिकन फ़िल्म में कला का विकास नहीं; बालिकाओं के पाँव देख पड़ते हैं। इस शोचनीय अवस्था के लिए जनता दोषी है या संचालक, या दोनों—यह इस प्रबंध के विचारक्षेत्र के बाहर है।

१५—फ़्रांसीसी फ़िल्म के नमूने

१६—जर्मन फ़िल्म के नमूने

अमेरिकन संचालकों की सबसे भद्दी भूल बड़े-बड़े कथानकों के नष्ट कर देने में हुई है । गेटे (Goethe) के फ़ास्ट को, यूगो (Victor Hugo) के प्रायः सभी मुख्य ग्रंथों को फ़िल्म करने के समय इन संचालकों ने कला की हत्या की है। इनके अत्याचार से पीड़ित होकर कई अभिनेता अमेरिका से योरप चले आये हैं; एक प्रसिद्ध अभिनेत्री (Pola Negri) अभी हाल ही पेरिस में आ गयी है । इसने तो साफ़-साफ़ कह दिया है कि मैं रुपये से अधिक कला की परवा करती हूँ । यह पेरिस में ही कला की उपासना कर रही है । इसके नये फ़िल्म जब निकलेंगे, तो अवश्य देखने लायक़ होंगे ।

अमेरिकन संचालकों की सबसे बड़ी भूल यह हुई कि वे सभी दृश्यों को अतीव दर्शनीय (Stupendously Magnificent) बनाने की चेष्टा करते हैं। इससे हमारे

आश्चर्य के भाव जाग्रत् होते हैं, पर सहानुभूति की वंशी नहीं बजती। साधारण वस्तुओं में भी बड़े कथानक के भाव विद्यमान रहते हैं। एक छोटी-सी चिड़िया घास पर फुदकती हुई उड़ जाती है, इसमें जो रहस्य का भाव छिपा हुआ है, उसे अमेरिकन संचालक नहीं समझते। वे सहस्र एरोप्लेन दिखाकर दर्शकों को चकित कराना जानते हैं, चकित कराते भी हैं; पर अभिनय का अर्थ चकित कराना नहीं, भावान्वित कराना है। इस विषय में अमेरिकन फ़िल्म अत्यंत स्थूल होते हैं; सूक्ष्म बातों का समावेश उनमें नहीं होता। कला की देहरी तक ही वे नहीं पहुँच पाते, मंदिर के भीतर आने की तो बात ही क्या।

किसी के प्रति—

[हिंदी-भूषण श्रीरामलोचन शर्मा "कंटक" बी० ए०]

मन-मंदिर के दीप मनोहर,
कलित कल्पना के उद्देश;
भग्नाशा के शेष चिह्न मृदु,
सुखद स्वप्न जग के संदेश।
टूटी हृत्तंत्री से निकले
रागों के भावार्थ पुनीत!
दग्धमान् अभिलाषाओं के
ज्वालमालमय 'धू-धू' गीत।
सुख-दुख के सीमा-निर्णायक,
भावांबुधि के मंजुल रत्न;
लक्ष्य-बिंदु अपलक आँखों के,
स्मृति-तट-पथ के पथिक अयत्न!
अंतःपुर के देव दिव्य अति,
जीवन-तरु के कुसुम-विकास;
निःस्व हृदय की परम धरोहर,
व्यथित ध्यान के हास-विलास!
आओ, एक बार आ जाओ,
पलकों के अंदर लूँ मूँद!
देखूँ तुम्हें, मुझे तुम देखो,
मिलूँ यथा बूँदों से बूँद।

टर्की में भारी अशांति की संभावना

[श्रीविश्वंभरसहाय विनोद बी० ए०]

गत कुछ सप्ताहों में टर्की से जो समाचार मिले हैं, उनसे टर्की की ठीक-ठीक स्थिति का निश्चय करना बड़ा कठिन है। वास्तव में पिछले इन समाचारों ने संसार में एक नयी खलबली मचा दी है। कोई कहता है कि ग़ाज़ी कमालपाशा की भी वही दशा होगी, जो अमीर अमानुल्ला की हुई। किसी का विचार है कि ख़िलाफ़त तोड़कर कमालपाशा ने अपनी क़ब्र खोद ली। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न विचार आज टर्की के संबंध में पूर्वी तथा पश्चिमी वातावरण में चक्कर लगा रहे हैं। परंतु यदि वास्तव में देखा जाय, तो टर्की की वर्तमान वास्तविक स्थिति समझने के लिए वहाँ के राजनीतिक दलों के इतिहास के पन्ने लौटने पड़ेंगे। इसके पूर्व हम इसका उत्तर दें कि टर्की की वर्तमान हलचल का कारण मुल्ला-दल है या राजनीतिज्ञों की मंडली, यह उचित होगा कि भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों का परिचय प्राप्त कर लिया जाय। संभवतः इसी से इस अशांति का कारण स्वयं स्पष्ट हो जायगा।

गत महायुद्ध के अंत तक टर्की में सर्वोच्च राजनीतिज्ञ दल 'यूनियनिस्ट दल' कहलाता था। इस दल के कर्ता-धर्ता केवल तीन व्यक्ति थे—तलत, जैमाल और अनवर

पाशा। अनवर पाशा का नाम पूर्व और पश्चिम में अति विख्यात है। सच पूछिए, तो वह यूनियनिस्ट दल का अगुवा नहीं था। वह स्वयं बड़ा सज्जन तथा धैर्यवान् था। उसमें एक-एक विशेषता थी। वह जिस काम में हाथ लगाता था, उसे पूरा करके छोड़ता था। तलत इस दल का सच्चा नेता था। इनका साथी जबीद बे भी था, जो कहने को मुसलमान परंतु हृदय से यहूदी था। यह अर्थशास्त्र का आचार्य तथा राजनीति का निपुण पंडित था। डाक्टर नज़ीम बे तथा इस्माइल जंबूलत बे भी इनके पिछलग्गू थे। इस समय कमाल पाशा उन साधारण फ़ौजी अफ़सरों में था, जो इस दल के सहायक थे। परंतु कुछ कारणवश उसकी इन नेताओं से ठीक-ठीक पटती नहीं थी। युद्धसमाप्ति पर यह दल तितर-बितर हो गया। इसके मुख्य-मुख्य नेता देश छोड़कर भाग गये; तलत और जमाल मार डाले गये। अनवर पाशा बोख़ारा में बोलशेविकों के ख़िलाफ़ युद्ध करता हुआ मारा गया। कुस्तुनतुनिया में फिर सुल्तान की तूती बोलने लगी। यह स्थिति बहुत दिनों तक रहने नहीं पायी। अंटोलिया में शीघ्र ही सुल्तान के विरुद्ध आग फैलने लगी। इसी समय इस नवीन दल का संगठन हुआ, जो इस समय टर्की का भाग्यविधाता है।

मुस्तफ़ा कमाल पाशा, जो संसार में गाज़ी पाशा के नाम से विख्यात है, इस दल का नेता हुआ। अवश्य ही उस समय कमाल की स्थिति ऐसी नहीं थी, जैसी आज है। इस दल के प्रमुख व्यक्ति काज़िम कर बक़ीर पाशा तथा रऊफ़ बे थे। ज्यों-ज्यों युद्ध होता रहा, और लोग भी इसी दल में शामिल होते गये। अलीफ़ौद पाशा और रफ़त पाशा अपनी-अपनी फ़ौजें लेकर कुस्तुनतुनिया में आ उपस्थित हुए। सन् १९२१ तक कमाल पाशा राष्ट्रीय फ़ौजों का एक साधारण नेता समझा जाता था। सकरिया के युद्ध में वह प्रधान सेनापति बना दिया गया। इस समय से स्मरना के युद्ध की समाप्ति तक कमाल पाशा की बात टालनेवाला कोई नहीं था। इस्मत पाशा इसका दाहना हाथ था। स्मरना के युद्ध में गाज़ी के सिर विजय का सेहरा बँधा और वह अपने देशवासियों के गर्व और श्रद्धा का पात्र बन गया। साधारण जनता ने उसका हृदय से मान किया। देश की सेना तो उसके संकेतमात्र पर ही मर मिटने को तैयार थी। एक ओर गाज़ी को इस प्रकार का मान मिला था, दूसरी ओर राजनीतिक नेता उससे कुछ खिन्न थे। फ़ौजी तथा दूसरे बहुत-से अफ़सरों के हृदय में यह डाह थी कि कमाल को जनता इतना अधिक क्यों प्यार करती है। सन् १९२२ से २३ तक टर्की के राज्य की बागडोर नेशनल एसेंबली के हाथ में रही। लूसेन की कानफ़्रेंस के पश्चात् सन् १९२३ में गाज़ी ने टर्की में प्रजातंत्र-राज्य (रिपब्लिक) स्थापित कर दिया। जनता ने अपने प्यारे नेता गाज़ी को ही अपना प्रधान चुना। यहीं से कमाल पाशा का उत्थान आरंभ होता है। सुल्तान गद्दी से उतार दिया गया। दूसरे ही वर्ष ख़िलाफ़त भी तोड़ दी गयी और ख़लीफ़ा को देशनिकाला दे दिया गया। अपढ़ जनता में इससे कुछ खलबली अवश्य मची, परंतु पढ़े-लिखे लोग गाज़ी के साथ थे। इस समय गाज़ी के विरुद्ध उन लोगों ने आवाज़ उठायी, जो गाज़ी के दल में स्थान न पा सके थे। रऊफ़ बे उनमें से एक था। सन् १९२४ में इस्मत पाशा स्वास्थ्य सुधारने के लिए अंगोरा छोड़कर प्रि-कपों में जा बसा। फ़ैती बे प्रधान मंत्री बनाया गया। इस समय गाज़ी के विरोध में एक मज़बूत दल खड़ा हो चुका था, जिसने अपना नाम 'रिपब्लिकन प्रोग्रेसिव पार्टी' रक्खा। इसके मुख्य-मुख्य सभासद रउफ़ बे, काज़िम कर बकीर रफ़्त, अलीफ़ौद पाशा तथा अदनन् बे थे। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस नवीन दल में तीन-चार व्यक्ति ऐसे थे, जिनकी सेना-क्षेत्र में काफ़ी इज़्ज़त थी। दोनों दलों में तनातनी थी ही। दोनों ओर से यह प्रयत्न किया जा रहा था कि देखें, फ़ौज़ किसकी सहायता करती है। अब तक गाज़ी की पार्टी का नाम 'पीपुल्स-पार्टी' था। विरोधी दल की देखा-देखी इसका नाम भी 'रिपब्लिकन पीपुल्स पार्टी' रक्खा गया।

गाज़ी अपने इस विरोधी दल को देख नहीं सकता था। उसकी दृष्टि हर समय ऐसे अवसर की खोज में रहती थी कि किसी प्रकार विरोधी दल को कुचल दिया जाय। अंत को ऐसा अवसर आ ही पहुँचा। सन् १९२५ के प्रारंभ में कुर्दिस्तान में बड़ा भारी राजविप्लव हुआ। गाज़ी ने अपने दिल के वलवले निकालने का यह अच्छा अवसर देखा। फ़ैती बे को अयोग्य बताकर प्रधान मंत्री के पद से उतार दिया। इस्मत पाशा फिर उस स्थान

पर आ गया। उधर 'रिपब्लिकन प्रोग्रैसिव पार्टी' को राज्यविद्रोही तथा विप्लवी क़रार दे उसको कुचल दिया। जिसने भी ग़ाज़ी की इस नीति का विरोध किया, उसने तुरंत दंड पाया। मुख्य-मुख्य पत्र दबा दिये गये; बहुत-से संपादकों को देशनिकाला दे दिया गया; प्रेस-क़ानून और भी सख़्त बना दिया गया। मुख्य-मुख्य पत्रों का ग़ाज़ी ने स्वयं संचालन किया। इस सबका फल यह हुआ कि टर्की में ग़ाज़ी का आधिपत्य स्थापित हो गया। ग़ाज़ी ने सबको एक लाठी से हाँकना आरंभ किया। इस समय ग़ाज़ी का देश-भर में ऐसा आतंक छा गया था कि किसी का साहस नहीं था कि उसके विरुद्ध एक शब्द भी कह सके। अवसर मिलते ही सरकारी विज्ञप्ति द्वारा दरवेशग्रोह तोड़ दिया गया। फ़ैज़-टोपी का निषेध हो गया। प्रत्येक इसके लिए बाध्य किया गया कि टोप पहने। एसेंबली में विरोधी दल ने इस बीच में कई बार प्रयत्न किया कि जनता को भड़काकर ग़ाज़ी को नीचा दिखाया जाय, लेकिन किसी में यह शक्ति नहीं थी कि ग़ाज़ी का बाल भी बाँका कर सके। ग़ाज़ी ने जो चाहा, पास कराया, यहाँ तक कि पुराने क़ानून में भी बहुत उलट-फेर कर दिये। जनता ने इन सुधारों का स्वागत किया या नहीं, यह कहना कठिन है। यह अवश्य है कि जनता को ग़ाज़ी में अपार विश्वास था। सब यही समझते थे कि वह जो कुछ भी करता है, उनके भले के लिए ही करता है। सन् १९२६ में ग़ाज़ी ने अपने विरोधी दल को पूर्णतः दबा दिया; फिर भी षड्यंत्रकारी चुपके-चुपके अपना काम करते ही रहे। सन् १९२६ के जून-मास में समाचारपत्रों में छपा था कि "स्मरना में ग़ाज़ी पर हमला हुआ"। इस षड्यंत्र तथा कुर्दिस्तान-विप्लव की जाँच करने के लिए दो स्पेशल अदालतें बिठायी गयीं। फल यह हुआ कि एक बड़े भारी षड्यंत्र का पता चला, जिसमें ग़ाज़ी के विरोधी दल के मुख्य-मुख्य नेता सभी सम्मिलित थे। शुकरी बे, जो पहले कभी केबिनट मंत्री भी रह चुका था तथा इस्माइल जम्बूलत बे, डाक्टर नज़ीम बे, करा कमाल बे और अकल क़ादिर आदि इस षड्यन्त्र के नेता क़रार दिये गये। षड्यन्त्रकारी गिरफ़्तार कर लिये गये। कुछ भागकर विदेशों में जा बसे। जो पकड़े गये, वे फाँसी पर लटका दिये गये। प्रेस-एक्ट और भी सख़्त कर दिया गया। माना कि यह वह समय था, जब लोग ग़ाज़ी में घोर विश्वास और श्रद्धा रखते थे, गाज़ी जो चाहता सो कर सकता था, गाज़ी के कहने से ही प्रजा दिन को रात तथा रात को दिन मानने को तैयार थी; फिर भी ग़ाज़ी की इस स्वेच्छाचारिता से जनता के हृदय में एक प्रकार का डर बैठ गया और उनके हृदयों में ग़ाज़ी के प्रति वह भक्ति न रही, जो इसके पूर्व थी। ग़ाज़ी को भी यह संतोष हो गया कि मुख्य-मुख्य सुधार तो हो ही गये हैं, अधिक झगड़ों में पड़ने से क्या लाभ। ग़ाज़ी ने अपने दरबारियों का दायरा तंग करना आरम्भ किया। इने-गिनों को छोड़कर वह अब किसी से अधिक मिलना अपनी शान से बाहर समझने लगा। यहाँ यह लिखना अनुचित न होगा कि ग़ाज़ी ने जहाँ अपने देश में इतने सुधार किये, वहीं उसने कभी यह प्रयत्न नहीं किया कि जनता को स्वतंत्ररूप के सोचने का अवसर दिया जाय। ग़ाज़ी सदैव स्वतंत्र विचारों का विरोधी रहा है। वह किसी अन्य मनुष्य के स्वतंत्र विचारों को सुनना भी अधिक पसंद नहीं करता। अपनी विचार-धारा के सम्मुख वह समस्त टर्की की सम्मति को भी कोई चीज़ नहीं समझता है। यदि वास्तव में देखा जाय, तो वर्तमान झगड़े की जड़ यही है। सन् १९२७ में राष्ट्रीय एसेम्बली के लिए चुनाव हुआ। ग़ाज़ी के जी-हज़ूरों ने उम्मेदवारों की जो लिस्ट बनाकर दे दी, वही सब चुन लिये गये। कुल चुनाव में केवल एक राय विरोध में पड़ी थी। सन् १९२८ में टर्की ने लेटिन-लिपि अपनाकर कुछ समय के लिए नये सुधार स्थगित कर दिये।

इन इनी-गिनी पंक्तियों से पाठकों को मालूम हो गया होगा कि टर्की में किस प्रकार राजनीतिज्ञ एक दूसरे से ईर्ष्याद्वेष रखते आये हैं। वर्तमान समय में जो भी गड़बड़ हमें टर्की में दिखलायी पड़ती है, उसका मूल-कारण यह दलबन्दी ही है। प्रत्येक दल का यह प्रयत्न रहा है कि जैसे भी हो, दूसरे दल को कुचल दिया जाय। इसी संबंध में हमें सन् १९२७ की एक घटना याद आती है। सन् १९२७ में ग़ाज़ी ने अपने दल की एक बड़ी भारी कांग्रेस अंगोरा में की, जिसमें लगातार कई दिनों तक ग़ाज़ी धुँआधार वक्तृता देता रहा। उसने देश के कितने ही मान्य नेताओं को खूब जलीकटी सुनायीं। केवल

इसलिए कि वह प्रत्येक प्रश्न पर उसकी हाँ में हाँ मिलाना नहीं जानते थे। इतना ही नहीं, बाद की घटनाओं से पता चलता है कि वे लोग भी जो ग़ाज़ी की पार्टी में सम्मिलित हैं, उससे बहुत प्रसन्न नहीं हैं। उनकी भी यह चेष्टा रहती है कि ग़ाज़ी की शक्ति का पंजा ढीला किया जाय। ग़ाज़ी इन सब बातों को भाँप गया है। इन व्याधियों का उसे एक ही इलाज समझ में आया। वह यह कि वह स्वयं ही एक और दल को जन्म दे, जो टर्की की वर्तमान गवर्नमेंट की शासन-प्रणाली में बुराइयाँ निकाला करे। अतः फलस्वरूप कुस्तुनतुनिया में एक पत्र ने जन्म लिया, जिसने लगातार ग़ाज़ी और इस्मत पाशा की राजप्रणाली पर हमले करने आरम्भ किये। ग़ाज़ी ने इस पर बहुत दिनों तक कुछ भी ध्यान नहीं दिया। उलटे पत्र को ऐसा करने के लिए उकसाता रहा। सन् १९२८ में फ़ेती बे पेरिस से लौट आया। ग़ाज़ी से मिलकर उसने टर्की-एसेम्बली में एक नया दल खड़ा किया, जिसका नाम है 'लिबरल रिपब्लिकन पार्टी'। इससे यह स्पष्ट है कि ग़ाज़ी यह अच्छी तरह समझ गया है कि वही लोग जो अभी तक उसकी जीहज़ूरी करते थे, उसके विरुद्ध होते जा रहे हैं। ग़ाज़ी का प्रभाव दिन-प्रतिदिन कम होता जा रहा है। अब वह समय लद गया, जब ग़ाज़ी की आज्ञा ईश्वरीय आज्ञा समझी जाती थी। इसका कारण एक और भी है। इस्मत पाशा, जो इस समय टर्की-पार्लामेंट का प्रधान मन्त्री है, बड़ा निपुण राजनीतिज्ञ है। इस्मत पाशा की इच्छा यह है कि अवसर मिले, तो स्वयं ही ग़ाज़ी के स्थान पर आरूढ़ हो जाय। इस्मत पाशा का जनता तथा सेना में बहुत मान है। इस प्रकार लगभग दो वर्षों से ग़ाज़ी और इस्मत पाशा में तनातनी चली आ रही है। एक ओर ग़ाज़ी और इस्मत पाशा में शक्ति के लिए द्वन्द्व हो रहा है, दूसरी ओर टर्की की अवस्था भी शोचनीय होती जा रही है। टर्की की अवस्था सुधारने में यदि कोई भी सफल हो सकता है, तो वह है गज़ियत पाशा। लेकिन कमाल पाशा यह नहीं चाहता कि गज़ियत पाशा के ललाट पर इन सुधारों का सेहरा बँधे। ग़ाज़ी को यह चिंता रहती है कि कहीं गज़ियत पाशा भी इस्मत पाशा की भाँति उद्दण्ड न हो जाय तथा दोनों मिलकर उसको टर्की की गद्दी से उतार न फेंकें। टर्की की वर्तमान एसेम्बली में कई बार यह प्रयत्न किया गया कि इस्मत पाशा पर अविश्वाससूचक प्रस्ताव पास किया जाय, लेकिन ग़ाज़ी का यह प्रयत्न निष्फल रहा। इस्मत पाशा के विरोध में केवल १३ रायें आयी थीं। इससे पता चलता है कि यदि ग़ाज़ी ने अपने दल को अच्छे प्रकार संगठित नहीं किया, तो आगामी चुनाव में ग़ाज़ी को कदाचित् प्रधान-पद त्यागना पड़े। आज टर्की का वातावरण नेतागीरी की छीना-झपटी के कारण विषाक्त हो रहा है। एक सोचता है कि टर्की का शासन-सूत्र मेरे हाथों में आ जाय; दूसरा सोचता है कि नहीं, टर्की का भाग्य-विधाता मैं ही क्यों न बन जाऊँ; तीसरा सोचता है कि मैं क्या बुरा हूँ, जो अपनी चिरअर्जित शक्ति दूसरों को सौंप दूँ। सभी अपनी रक्षा और विजय के लिए दलबन्दी कर रहे हैं; अपनी व्यक्तिगत महत्ता और गौरव के लिए टर्की के प्रमुख नेता मरे जा रहे हैं। जिसके हाथ में शक्ति है, वह अपने बल और पद के मद में चूर जो चाहता है, कर रहा है। लोग कहते हैं कि कहीं टर्की में भी अफ़ग़ानिस्थान की बीभत्स घटनाओं का हृदयद्रावक अभिनय न होने लगे। यह शंका बिलकुल निर्मूल नहीं है। किंतु सच्चा साक्षी इसका भविष्य होगा।

प्रिया के प्रति—

[श्रीजयकिशोरनारायणसिंह साहित्यालंकार]

सुधा-स्रावी तेरे युगल नयनों की चपलता,
प्रिये ! औ कालिंदी-लहर-शितिमा श्री, तरलता—
कपोलों से लीला-कलहरत धम्मिल्ल-अलि की,
त्रिवेणी की शोभा अहह उस तेरी त्रिवलि की।
हँसी की जो ज्योत्स्ना मृदुल अधरों पै बगरती,
महा मुक्ता बूँदें मदिर मुख में जो छहरतीं ;
उन्हें मैं भूला हूँ इस विरह में भी न तन के,
न होते काँटों से व्यथित अलि प्रेमी सुमन के।
सुधि-स्यंदी तेरे विधु-वदन की कांत किरनें,
सदा आतीं मेरे हृदय-नभ में तूर्ण तिरने ;
भुजा स्वप्नाश्लेषोल्लसित बढ़ के शून्य नभ में,
लिये हाहाकार-प्रबल, फिरती पाणि तल में।
नशा था जो मानोत्तरल-वलयाली-झनक में,
चढ़ाया, धाता भी नवह अलिबाला-भनक में ;
इसी से भृंगों को उस समय सींधे मदन-मे[1]।
छिपाता, राकेश-व्यथित नलिनी के सदन में,
सुषुप्सा से मेरे हृदय पर वे स्विन्न अलकें,
न आती थीं, किंतु प्रणय-मद पीने अतल के ;
इसे जो मानोगी न, कह, प्रणयी झूठ कहते,
उन्हीं के मूलों में अरुण तव क्यों राग बहते।
कली के जो मर्म-मृदुल उर को नीड़ करता,
चकोरी में प्राची गगन-तल निःसीम भरता।
उसी की लीला से प्रणय-प्रतिमे ! प्राणदल में,
खिली जो आशा की विपिन-कलिका कलपपल में[2]।
उसी की तो वीची चपल तरणी तीर लगने,
चली है, औ व्यापी विरह-तट भी दूर भगने।

सम्हालूँगा, कैसे, प्रतनु, पतवार-स्वकर से,
कहीं ग्राव-क्षोणी, तदपि मृदु मंदार परसे।
बजा जाती ऊषा विहग-शहनाई गगन में,
पिकाली भी गाती मधु-प्रमद-माध्वीक वन में।
समाश्लिष्ट-ग्रीवा-रव, कलकलों के सरसते,
प्रसूनों के प्याले, अनिल-छलकाये बरसते।

सभी होते अंभोरुह चलित प्रातः पवन से,
व्यथा देने आता, विपुल वकुलोच्छ्वास वन से।

सुरीले कंठों में, मधुपकुल से सून ललना
कही जातीं, मुग्धे ! अब न मिलने में उछलना।

घन-श्रोणी संध्या खग-मुखर-मंजीर-रसना,
पियालों में हाला भर कुमुद के, राग-वसना।

पिला, शून्य-स्वांत-स्फुट गगन में भी, सु-गहरी
बहा देती, तारा-गण-निविड़-रोमांच-लहरी।

उषा से यों संध्या कथमपि व्यथा-पूर्ण कटती
प्रियाशा की, आगे मगर तरणी शीघ्र फटती।

प्रिये कैसी ज्वाला उबल उठती शीत शशि में,
दया क्या थोड़ी भी अहह इस विश्लेष-असि में ?

पयोदों के सेवा-सजल-उर भी व्याज-शयने,
व्यथा की, हैं ढाते कठिन करका कंज-नयने।
हँसी की भी तेरी वह त्रिपथगा संप्रति हमें,
बनी है स्वप्नों की तरल मृगतृष्णा प्रियतमे।

× × ×

व्यथा पी आँखों को, यह विरह चंद्रोपल करे,
कृशांगों में चाहे, मधु-मरुत-जंज़ीर जकरे।

शुभे, तो भी व्रीड़ा-कुवलयित तेरे नयन के,
भरेंगे, हासों से, हृदय-व्रण मीनाक्षि, मन के।

---

[1] यहाँ 'मदन्मे' शब्द संबोधन में है (मदनस्य मा लक्ष्मीः इस विग्रह से बना है)।

[2] कलपपल शब्द यहाँ विरह के अर्थ में प्रयुक्त है।

कायापलट

[भाई सोमदत्त विद्यालंकार]

गुरुकुल काँगड़ी से लगभग ३ मील की दूरी पर पूर्व की ओर सज्जनपुर-नामक एक गाँव है। इस गाँव में अधिकतर हिंदुओं के घर हैं। गाँव से बाहर चार-पाँच घर चमारों के हैं। एक घर में माजरा नाम का एक चमार रहता था। घर में उसकी स्त्री सुकड़ी, बारह वर्ष की अवस्था का एक लड़का नन्हूँ तथा एक छः वर्ष का बालक रतनू, कुल चार प्राणी थे। चारों प्राणी बड़े आनंद से अपना जीवन-निर्वाह करते थे। एक दिन न-मालूम किस बीमारी से अचानक उनकी गाय खूँटे पर बँधी-बँधी मर गयी। घर-वालों पर विपत्ति का वज्र टूट पड़ा। रिवाज़ के अनुसार माजरा हरिद्वार गंगाजी गया। वहाँ उसे प्रायश्चित्त करना था। वहाँ जाकर वह प्लेग से मर गया। बड़ा लड़का नन्हूँ कुछ दिन बाद खेत में साँप के काटने से मर गया। एक के पीछे एक आपत्ति के आने से सुकड़ी पागल हो गयी। वह दिन-भर अपने छोटे लड़के रतनू को लिये घूमती रहती; अपने जीवन के एक-मात्र अवलंब रतनू को एक मिनट के लिए भी अपनी आँखों से ओझल न करती थी। यदि वह जंगल जाता, तो वह भी उसके साथ वहीं जाती। यदि वह बाहर खेलता, तो वह भी उसके साथ-साथ दौड़ती। जिस प्रकार राजा दिलीप नंदिनी के साथ रहते थे, उसी प्रकार सुकड़ी भी अपने अंतिम अवलंब रतनू के साथ रहती। पर दुर्दैव से यह भी न देखा गया।

× × ×

एक बार ज़िले के एक उच्च राजकर्मचारी इस गाँव से कुछ दूर जंगल में शिकार खेलने आये। चार दिन रहकर वह वहाँ से हरिद्वार की तरफ़ रवाना हुए। उनका सामान ढोने के लिए गाँव से बहुत-से बेगारी पकड़े गये। आठ साल का बालक रतनू भी बेगार से न बच सका। एक छोटी मेज़ तथा एक आरामकुर्सी उसके भी सिर पर लाद दी गयी। जिस तरह स्वप्न में चोर को देखकर पड़ोस के आदमियों को बुलाने के लिए चिल्लाने का प्रयत्न करने पर भी मुँह से आवाज़ नहीं निकलती, वैसी ही हालत साहब को देखकर बुढ़िया की हो गयी। बुढ़िया के मुँह से साहब के सामने एक भी शब्द न निकला। उसके देखते-देखते रतनू उसकी आँखों से दूर हो गया, मानों खूँटे से बँधी हुई गाय की तरह उससे उसका बच्चा अलग कर दिया गया। सबेरे आठ बजे का गया हुआ बालक रतनू रात के नव बजे लौटा। बूँदें पड़ रही थीं। रतनू के शरीर पर एक पतली-सी खद्दर की जाकिट के सिवा और कुछ न था। रतनू का शरीर सर्दी से काँप रहा था। घर आकर उसने कुछ खाया। सबेरे उठा, तो सख़्त बुख़ार। छाती में दर्द भी। सुकड़ी घबरा गयी। गाँव से कुछ दूर पीपल के नीचे एक साधु रहा करता था। वह कुछ दवादारू भी करता था। सुकड़ी दौड़ी हुई उसके पास गयी, पर बहुत अनुनय-विनय करने पर भी बाबाजी ने उसके घर जाना स्वीकार न किया। सुकड़ी हारकर लौट आयी। गाँव में कोई आदमी उसके दुःख में साथ देनेवाला न था। सुकड़ी दिनरात नन्हूँ के सिरहाने बैठकर रोया करती। चार दिन से सुकड़ी के मुँह में दाना भी न गया था। सबेरे छः बजे जब कि सुकड़ी रतनू के सिरहाने बैठी उसके सिर पर हाथ फेर रही थी, पड़ोस में रहनेवाले छित्तर चमार ने आकर उसे धीरज देते हुए कहा—"सुकड़ी! तू जाकर गुरुकुल के डाक्टर साहब को बुला ला, वह बड़े दयालु हैं।" सुकड़ी का पागलपन अब बहुत कुछ दूर हो चुका था। वह छित्तर को रतनू के पास बिठाकर एक गाड़ी किराये करके डाक्टर साहब को बुलाने चली गयी; पर मन में डरती जाती थी कि कहीं डाक्टर साहब भी बाबाजी की तरह आने से इनकार न कर दें।

× × ×

डाक्टर सुखदेवजी गुरुकुल के पुराने सेवक हैं। आज उन्हें गुरुकुल में निर्वाह-मात्र लेकर कार्य करते हुए लगभग पंद्रह वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। गुरुकुल के तीन सौ पचास ब्रह्मचारियों तथा सौ के लगभग अन्य कर्मचा-

रियों की जीवनरक्षा का भार आपके ही ऊपर है। आप बड़े मन से चिकित्सा करते हैं। किसी प्रकार छोटे-बड़े का भेदभाव मन में न रखकर बड़े प्रेम से सबकी चिकित्सा करते हैं। आप पुराने समय के एक सब-असिस्टेंट सर्जन हैं, पर गुरुकुल-निवासियों को आपकी चिकित्सा पर जैसा विश्वास है, वैसा विलायत से बड़ी-बड़ी डिग्री लेकर लौटे हुए डाक्टर पर भी नहीं है। डाक्टर साहब के हाथ की राख में भी उनके भयंकर रोगों के दूर करने की सामर्थ्य थी। आजकल डाक्टर तथा वैद्य बदनाम हैं। कहा जाता है कि ये यमराज के सगे भाई हैं और उससे भी एक क़दम बढ़कर हैं; क्योंकि यमराज तो प्राण ही छीनता है, पर ये प्राण तथा साथ-साथ धन भी छीनते हैं। लेकिन डाक्टर साहब सचमुच संसार में डाक्टरों के इस कलंक को धोने के लिए आये थे। उनके हाथ में कुछ ऐसा जादू था कि कठिन-से-कठिन रोगग्रस्त आदमी की बीमारी—जिसे बड़े-बड़े माने हुए डाक्टर असाध्य कहकर छोड़ देने की सलाह देते थे—दूर कर, अपनी लगन तथा प्रयत्न से यमराज का मुख फाड़कर जबड़ों के नीचे से, बीमार को निकाल लाते थे। आजकल तो अछूतोद्धार की रट हर एक आदमी लगा रहा है; पर जिस समय अछूत शब्द भी अछूत समझा जाता था, डाक्टर साहब उस समय भी अछूतोद्धार के लिए दिनरात एक किये हुए थे। यदि वह घूमते-घूमते कभी किसी गाँव में पहुँच जाते, तो प्यास न होने पर भी किसी चमार या डोम के घर जाकर पानी अवश्य पीते, उन्हें घंटों बैठकर शिक्षा देते। अछूतों से उनके इस प्रकार के प्रेम का रहस्य उन दिनों किसी की समझ में नहीं आया। गुरुकुल के आसपास बीसियों गाँव हैं; आप उनमें बिना बुलाये, बिना फ़ीस के, जाकर उनकी चिकित्सा करते थे।

× × ×

लगभग ११ बजे का समय था। गुरुकुल के ब्रह्मचारी तथा कर्मचारी अस्पताल में आकर कोई मलहमपट्टी करवा रहे थे, कोई दवाई पी रहे थे। कुछ छोटे-छोटे ब्रह्मचारी डाक्टर साहब की कुर्सी के चारों तरफ़ खड़े हुए उनसे हँसीमखौल कर रहे थे। थोड़ी देर बाद एक बुढ़िया ने कमरे के बाहर दरवाज़े से काँपते हुए स्वर में कहा—"बाबूजी! बाबूजी! मेरा लड़का बहुत सख़्त बीमार है, पाँच रोज़ से एक दाना भी मुँह में नहीं डाला। आप चलकर ज़रा देख लें।"

डाक्टर साहब के कानों में उसकी आवाज़ ज्यों ही पड़ी, वह कमांडर के हुक्म पर सिपाही की तरह एकदम काम छोड़कर उठ खड़े हुए, कोट पहना और नंगे पैर ही बुढ़िया के साथ चल पड़े। इसी बीच में नौकर भोजन के लिए थाली लगाकर लाया, तो उससे बोले—'मेज़ पर रख दे, मैं आकर भोजन करूँगा; या रहने दे, मैं वहीं गाँव में कहीं खा लूँगा।" डाक्टर साहब बुढ़िया की किराये पर लायी हुई बैलगाड़ी पर बैठ गये। बुढ़िया पैदल चलने लगी। डाक्टर ने उसे भी साथ बैठ जाने के लिए कहा। गाड़ीवान ने पीछे की तरफ़ मुख मोड़कर कहा--'हुज़ूर! यह नहीं बैठ सकती, यह तो चमारिन है।" डाक्टर साहब को गाड़ीवान की यह बात मन में बहुत बुरी लगी, किंतु इसका कुछ भी जवाब न देकर एकदम गाड़ी से उतर पड़े और बुढ़िया के साथ तेज़ी से क़दम बढ़ाते हुए चलने लगे।

गाँव में पहुँचकर उन्होंने लड़के की नब्ज़, जीभ, छाती, पेट, गला आदि देखकर सुकड़ी से कहा—"माई, तेरे लड़के को निमोनिया है, तू इसे गुरुकुल ले चल। वहीं इसका इलाज होगा।"

सुकड़ी अपने लड़के को गुरुकुल में ले गयी। डाक्टर साहब दिनरात अपने लड़के की तरह उसकी सेवा करते और अपने हाथ से पानी पिलाते। परमात्मा ने उनकी सुन ली। रतनू अच्छा हो गया।

एक दिन डाक्टर साहब ने सुकड़ी को बुलाकर कहा—अब ईश्वर की कृपा से तेरा लड़का बिलकुल अच्छा हो गया है। अगर तू चाहे, तो ले जा सकती है; पर मेरी इच्छा अब इसे भेजने की नहीं होती। यह बड़ा होनहार मालूम पड़ता है। मैं चाहता हूँ कि यह कुछ पढ़-लिख जाय, मैं इसे कंपाउंडर का काम सिखा दूँगा। यह यहीं मेरे पास रहकर ब्रह्मचारियों की सेवा करेगा।

सुकड़ी एकटक डाक्टर की तरफ़ देख रही थी। वह डाक्टर को मनुष्य नहीं, देवता समझने लगी थी। मेले की भीड़ में ग्रामीण पुरुष सेकंड क्लास का टिकट लेकर भी सेकंड क्लास के डब्बे में सीट पर न बैठकर नीचे बैठ जाते हैं। यदि कोई मनुष्य उन्हें ऊपर बैठने को कहे, तो वे उसे मनुष्यरूप में देवता समझते हैं। वे यह नहीं

समझते कि ऊपर बैठने का हमें भी वैसा ही अधिकार है जैसा इसे है। वे इसे अपने ऊपर कृपा समझते हैं। अछूतों की भी यही अवस्था है। परमात्मा ने उन्हें अन्य मनुष्यों के समान ही पैदा किया है। परंतु हम लोगों के व्यवहार ने उन्हें ऐसा दलित कर रक्खा है कि अगर कोई आदमी इनसे मनुष्य-जैसा व्यवहार करे, तो वे उसे देवता समझने लगते हैं। यही अवस्था आज सुकड़ी की थी।

वह डाक्टर के पैरों पर गिर पड़ी और रोती हुई कहने लगी—"महाराज, यह आपका ही लड़का है, मैं तो इसे आपके सुपुर्द कर चुकी। मैं इसके जीवन से निराश हो चुकी थी। आपने ही इसे बचाया है। अब मैं आपकी इच्छा कैसे टाल सकती हूँ। आपके जैसे भगवानों के पास रहकर यह भी कुछ बन जायगा।"

× × ×

रतनू अब 'विद्यारत्न' बन गया है। सब गुरुकुलवासी उसे इसी नाम से पुकारते हैं। वह अब चिकित्सालय में रहकर ब्रह्मचारियों की सेवा करता तथा उन्हीं से ख़ाली समय में बैठकर पढ़ लिया करता था। डाक्टर के प्रभाव से अब पुराने ढंग के बहुत-से लोग भी उससे पहले की अपेक्षा कम घृणा करते थे।

गुरुकुल की धर्मशाला में बिहारी-नामक एक बूढ़ा ब्राह्मण रहा करता था। उसका काम धर्मशाला में आकर ठहरनेवाले लोगों की सेवासुश्रूषा करना था। जाति का ब्राह्मण होने से अन्य नौकर उसे 'पंडित' कहकर पुकारा करते थे। एक दिन बिहारी भंडारे में बैठा भोजन कर रहा था। भंडारे का मिस्सर परभू उसके पास बैठा हुआ बातें कर रहा था और कई रसोइयें तथा कहार भी पास बैठे हुए थे। अन्य बातों के प्रसंग में विद्यारत्न का प्रसंग भी आ गया। परभू ने बिहारी से कहा—"पंडत, अब तुम्हारी पंडताई कहाँ गयी, अब तो तुम भी चमार का छूआ पानी पी गये। जिन बर्तनों में वह खाता है, उन्हीं में तुम भी भोजन करते हो!" बिहारी ने सिटपिटाकर कहा—"नहीं, मैंने कभी उसके हाथ का पानी नहीं पिया। मैं तो जिस दिन से वह आया है, अस्पताल की दवा तक नहीं पीता। मैंने तो अब अस्पताल जाना भी छोड़ दिया है।" परभू ने कहा—"इससे क्या हुआ। वह तो इसी टंकी से आकर पानी भरता है और इसी का पानी तुम पीते हो।" परभू की यह बात सुनकर बिहारी आपे से बाहर हो गया। बूढ़ा तो था ही, शरीर काँपने लगा; कभी परभू को, कभी भंडारेवालों को, कभी विद्यारत्न को और कभी डाक्टर को गालियाँ देने लगा। "तुम्हारे होते हुए तुम्हारे सामने वह पानी भरकर ले जाता है और तुम देखते रह जाते हो! डाक्टर साहब ने उसे मुँह लगा लिया है, सिर पर चढ़ा लिया है। वह चाहें तो दिन-भर इसे बैठे चाटा करें। हमसे यह ऊधम अब नहीं देखा जायगा। या तो विद्यारतन ही यहाँ रहेगा, या हम ही रहेंगे।"—बिहारी अपने पोपले मुँह से इतने क्रोध से बोल रहा था कि मानों दुर्वासा-ऋषि ही आ गये हों। वह अपने क्रोध को और भी अधिक व्यक्त करने के लिए भोजन छोड़कर उठ जाना चाहता था। पर दुर्भाग्य से थाली में अभी बहुत-सा भोजन शेष था। यदि मामूली दाल-रोटी ही होती, तो शायद वह इस थाली को लात भी मार देता; पर थाली में पड़ी हुई खीर उसे ऐसा करने से मना कर रही थी। खीर के कटोरे को मुँह से लगाकर एक ही दम में समाप्त करके वह गुस्से से उठ खड़ा हुआ। हाथ धोकर वह भंडारे से बाहर जाया ही चाहता था कि सामने से विद्यारत्न बटलोही लिये आता दिखायी दिया। वह भंडारे में टंकी के पास आकर रोज़ की तरह पानी भरने लगा। अब तो बिहारी से यह दृश्य अपनी आँखों न देखा गया। धर्मयुद्ध के लिए उसकी भुजाएँ फड़कने लगीं। पैर से जूता निकालकर वह बालक विद्यारत्न पर अपनी सारी बहादुरी दिखाने लगा। यदि भंडारे के अन्य रसोइयें तथा कहार उसे छुड़ा न देते, तो वह अपना सारा ब्रह्मतेज वहीं दिखा देता। "और सब कुछ सहन किया जा सकता है, पर ऐसा अधर्म कभी नहीं सहन किया जा सकता! साले ने हमारा धर्म बिगाड़ रक्खा है।"—इस प्रकार बड़बड़ाता हुआ बिहारी धर्मशाला की तरफ़ रवाना हुआ।

बेचारा विद्यारत्न, जो इस मामले को अभी तक कुछ भी न समझ सका था, रोता हुआ डाक्टर साहब के पास गया। डाक्टर ने उसे पुचकार चुप कराया और कहा—"घबराओ मत, मैं उसे समझा दूँगा। एक दिन वह अपने किये के लिए पछतावेगा।"

बालक विद्यारत्न अब भी रो रहा था। उसे अपना

अपराध अब तक मालूम न हुआ था। डाक्टर साहब ने उसे समझाकर कहा—"अच्छा, आज से तुम पानी भरने मत जाया करो। मैं नत्थू से पानी मँगा लिया करूँगा।"

विद्यारत्न को किसी प्रकार शांत करके डाक्टर साहब भंडारे गये। भंडारे के आदमियों ने सारी बातें (अपना हिस्सा निकालकर) सुना दीं। परभू ने अपने उन वाक्यों का ज़िक्र तक नहीं किया, जिनसे बूढ़े की नसों में वीरता का संचार हो गया था। भंडारे के आदमियों से सारी बात सुनकर डाक्टर साहब धर्मशाला में बिहारी के पास गये। बिहारी डाक्टर साहब को दूर से आता देखकर डरा और खाट पर सोने का बहाना करके लेट गया।

डाक्टर साहब ने अंदर आकर 'बिहारी-बिहारी' कहकर पुकारा। आवाज़ सुनकर आँखें मलते हुए बिहारी उठा और डाक्टर साहब को 'नमस्ते' की। डाक्टर साहब पास की खाट पर बैठ गये और बिहारी से बोले—"बिहारी, मैंने सुना है, आज तुमने विद्यारत्न को जूते से पीटा है!" बिहारी ने नम्रता से उत्तर दिया—"डाक्टरजी, आपने ठीक सुना है, मैं यह सहन नहीं कर सका कि वह उसी टंकी से पानी भरा करे, जिससे हम लोग पानी पीते हैं। वह चमार का लड़का है।" डाक्टर ने कहा—"पर बिहारी! तुम्हें यह भी मालूम है कि वह स्वयं वहाँ पानी भरने नहीं गया? उसे मैंने पानी भरने के लिए कह रक्खा है। यदि तुम्हें बुरा मालूम पड़ा, तो मुझसे कहना चाहिए था। छोटे बच्चे को इस प्रकार बुरी तरह पीटकर तुमने अच्छा नहीं किया।"

यदि डाक्टरजी बिहारी को गुस्से में आकर डाँटते तो संभव था कि वह भी ज़िद में आ जाता। पर डाक्टर साहब को इस प्रकार शांति से बातें करते हुए देखकर बिहारी पर मनों पानी पड़ गया। डाक्टर साहब ने उसे अपने शांत व्यवहार से लज्जित कर दिया। बिहारी खड़ा-खड़ा, ज़मीन की तरफ़ देखता हुआ, अपने दाहने पैर के अँगूठे से ज़मीन को कुरेद रहा था, मानों वह विना बोले ही अपने दुर्व्यवहार के लिए क्षमा माँग रहा था।

डाक्टर साहब ने कहा—"बिहारी, बैठ जाओ। मुझे तुमसे बहुत-सी बातें करनी हैं। अच्छा, तुम यह बताओ कि तुम चमारों से घृणा क्यों करते हो? क्या वे भी तुम्हारी और हमारी तरह आदमी नहीं हैं? कुत्ता, जो इतना नापाक जानवर है, तुम्हारी थाली चाट जाता है और तुम फिर उसी थाली में भोजन कर लेते हो। एक गोमांस का खानेवाला तुम्हारे कुएँ पर आकर पानी भर सकता है, पर एक हिंदू-संतान को तुम ऐसा करने से रोकते हो! चमारों के हाथ का गुड़ मंडी में बिकता है, उनके हाथ का छुआ गुड़ सभी खाते हैं। चमारों के हाथ का बना चमड़े का डोल तो तुम्हारे कुएँ को अपवित्र नहीं करता, पर उसका लोहे का डोल कुएँ को अपवित्र कर देता है! बिहारी, तुम्हारी ये दलीलें हमारी समझ में तो आती नहीं। क्या वे परमात्मा के पुत्र नहीं हैं?"

बिहारी इसका कुछ ठीक उत्तर न दे सका। उसने कहा—"डाक्टरजी, अच्छा यदि आपकी यही इच्छा है, तो आज से वह टंकी से ही पानी भरा करे, मैं उसे कुछ न कहूँगा। मैं आज से भंडारे में भोजन ही न करूँगा।'

डाक्टर—बिहारी, मैंने उसे वहाँ पानी भरने से रोक दिया है। जब तुम लोग स्वयं उसे वहाँ पानी भरने को कहोगे, तभी वह वहाँ से पानी भरेगा। मुझे निश्चय है कि एक दिन तुम स्वयं उसे न केवल पानी भरने के लिए कहोगे, अपितु उसके हाथ से पानी पीने में भी संकोच न करोगे।"

यह कहकर डाक्टर साहब चले गये। उनकी बातों ने बिहारी के कल्पित धर्म के बंधनों को बहुत कुछ ढीला कर दिया था, पर अभी तक वे बंधन बिलकुल खुल नहीं पाये थे।

इस घटना को व्यतीत हुए आज आठ महीने हो चुके हैं। विद्यारत्न अपने सरल तथा भोले स्वभाव के कारण पूर्वापेक्षा बहुत अधिक प्रिय हो गया है। वह प्रतिदिन स्नान करता और एकांत में बैठकर संध्या करता है; सारा दिन बीमारों की सेवा करने में तथा पढ़ने में व्यतीत करता है। गुरुकुल का कोई भी आदमी उसे किसी काम के लिए कहता, तो वह दौड़कर करता है। जो आदमी पहले उससे घृणा करते थे, वे भी धीरे-धीरे उसके स्वभाव तथा चरित्र को देखकर उससे प्रेम करने लग गये हैं।

सन् १९... में सारे देश में इनफ़्लूएंज़ा बड़े भयंकर रूप से फैल गया । सहस्रों की संख्या में लोग इस बीमारी के शिकार होकर मरने लगे । गुरुकुल-जैसा एकांत स्थान भी इसकी विभीषिका के थपेड़ों से न बच सका । बहुत-से ब्रह्मचारियों तथा कर्मचारियों पर इस ज्वर ने आक्रमण किया । गुरुकुल के सुयोग्य डाक्टर साहब खाने-पीने तक की सुध भुलाकर दिन-रात बीमारों की सुश्रूषा में लगे रहते । उनके साथ उनका विद्यारत्न भी बड़ी लगन से बीमारों की सेवा करता था । दुर्भाग्य से एक दिन डाक्टर भी बीमार हो गये; पर शीघ्र ही अच्छे हो गये । बीमारी की हालत में भी वह बराबर चिकित्सालय में जाकर बीमारों को देखते । उनके आगे यमराज को भी हार माननी पड़ी; गुरुकुल के लगभग पाँच सौ निवासियों में से वह मुश्किल से तीन आदमियों को ले जा सका ।

धर्मशाला का बूढ़ा बिहारी इस बीमारी से न बच सका । कुछ दिन तो उसे मामूली ज्वर रहा, पर पीछे से डबल निमोनिया हो गया । डाक्टर साहब उसे उठवाकर रोगीगृह में ले आये । विद्यारत्न दिन रात अन्य बीमारों की तरह उसकी भी सेवा करता । अपने हाथ से प्याला पकड़कर उसे पानी पिलाता, हाथ में कपड़ा लेकर उसके मुख का बलग़म साफ़ करता । पेशाब का बर्तन उठाकर साफ़ करता । एक दिन कमज़ोरी से बिहारी को बिस्तरे पर ही दस्त छूट पड़ा । विद्यारत्न ने झटपट बिना किसी संकोच के बिस्तरा बदल डाला । घृणित-से-घृणित काम करने में भी वह कभी संकोच न करता । भंगी के न होने पर वह स्वयं कपड़े साफ़ कर लेता और पीछे से साबुन से अपने हाथ धो लेता । लगभग एक महीने तक बीमारी की शय्या पर पड़े रहने के बाद बिहारी नीरोग हुआ । वह पुनः धर्मशाला में काम करने लगा । गुरुकुल के सब कर्मचारियों के कहने से विद्यारत्न पहले की तरह भंडारे में जाने लगा । कट्टर-से-कट्टर ख़याल के आदमी भी अब उसे बड़े प्रेम से अपनी पंक्ति में बिठाकर भोजन कराने लगे ।

बिहारी जिस दिन से रोगीगृह से बाहर हुआ है, उस दिन से वह विद्यारत्न के सामने आने में संकोच करता है । उसके सामने जाने में अब उसे लज्जा मालूम पड़ने लगी । उसे अपने पिछले व्यवहार की याद करके आत्मग्लानि होती । बिहारी के उस दिन के दुर्व्यवहार का बदला विद्यारत्न दे चुका था, पर वह बदला उसने प्रतिहिंसा से न देकर सेवा से दिया था । बिहारी हार मान चुका था । अब बिहारी मन-ही-मन घुलने लगा । उसके मन में यह वेदना यहाँ तक बढ़ जाती कि वह सोचता कि एक दिन वहीं भंडारे में वह सब लोगों के सामने उसके पैरों पड़कर माफ़ी माँग ले, ताकि उसके संतप्त हृदय को शांति प्राप्त हो जाय ।

चार-पाँच मास इसी प्रकार बीत गये । एक दिन बिहारी को पुनः ज्वर ने आ घेरा । विद्यारत्न को जब बिहारी के बीमार होने का समाचार मिला, तो वह झट दौड़ा हुआ बिहारी के पास गया । बिहारी उस समय सोया हुआ था । सिर पर रूमाल बँधा हुआ था । विद्यारत्न ने माथे पर हाथ रखकर देखा, तो लगभग १०४ डिगरी ज्वर मालूम पड़ा । विद्यारत्न वहीं खाट पर सिरहाने के पास बैठकर धीरे-धीरे उसका सिर सहलाने लगा । थोड़ी देर बाद बिहारी की नींद खुल गयी । सामने विद्यारत्न को देखकर वह सकुचा । उसकी आँखों से आँसुओं की बूँदें टप-टप करके गिरने लगीं, होठ काँपने लगे; पर मुँह से आवाज़ न निकली । उसने अपने हाथ से विद्यारत्न के हाथों को माथे से हटाकर अलग कर दिया और उसके पैर पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगा । विद्यारत्न ने बिहारी के हाथों से अपने पैर हटाकर कहा—"बिहारीजी, आप ब्राह्मण होकर एक चमार के बालक के पैर पकड़ते हैं" विद्यारत्न के इन शब्दों ने बिहारी को और भी अधिक व्याकुल कर दिया । वह और भी फूट-फूटकर बच्चों की तरह रोने लगा । उसने विद्यारत्न के पैरों को ज़ोर से पकड़कर कहा—"भाई, मुझे अब और शर्मिंदा न करो, मुझे अपने पाप का प्रायश्चित्त करने दो ।" विद्यारत्न से भी अब न रहा गया । वह भी फूट-फूटकर रोने लगा । बिहारी ने उसे छाती से लगाकर अपने हार्दिक प्रेम का परिचय दिया ।

बीमारी के बाद विद्यारत्न और बिहारी में परस्पर बड़ा प्रेम हो गया । बिहारी उसे अपने सगे छोटे भाई से भी बढ़कर प्यार करता । ख़ाली समय में उसी के पास जाकर बैठा-बैठा बातें किया करता ।

उनका प्रेम यहाँ तक बढ़ गया कि बिहारी जब तक कोई पदार्थ विद्यारत्न को न खिला लेता, स्वयं कभी न खाता। दोनों एक थाली में बैठकर भोजन करने में भी संकोच न करते। बिहारी ही विद्यारत्न से प्रेम करता हो, सो बात नहीं, गुरुकुल के अन्य सभी कर्मचारी उससे प्रेम करते थे। उसका व्यवहार ही ऐसा था। इसी व्यवहार से उसने सब पर विजय पायी थी। बिहारी तो अपने पाप का प्रायश्चित्त कर रहा था।

× × ×

एक दिन प्रातः ८ बजे के लगभग विद्यारत्न अस्पताल के स्टोररूम में बैठा हुआ पेट्रोल का कनस्टर खोल रहा था; पास ही अँगीठी में कोयले जल रहे थे। कनस्टर के खुलने से सारा पेट्रोल फैल गया और विद्यारत्न के शरीर पर भी गिर गया। अँगीठी की आग से उसमें आग लग गयी। विद्यारत्न के चिल्लाने से चिकित्सालय का कंपाउंडर दौड़ा हुआ आया। उसने और कोई उपाय न देखकर पास पड़े हुए कंबल से उसके शरीर को रगड़ दिया। इस उपाय से आग तो बुझ गयी, पर उसके सारे शरीर का चमड़ा झुलस गया और छिल गया। गुरुकुल-वासियों को यह समाचार सुनकर बहुत दुःख हुआ। डाक्टर साहब शीघ्र ही विद्यारत्न को खाट पर लिटाकर रोगीगृह में ले गये और उसका इलाज करने लगे। वह दिनरात विद्यारत्न के ही पास रहते। बिहारी भी दिनरात जागकर उसकी सेवा में लगा रहता। वह विद्यारत्न की सेवा करके उसके द्वारा अपनी बीमारी में की हुई सेवा से उऋण होना चाहता था।

यद्यपि डाक्टर साहब ने इलाज में तथा बिहारी ने सेवा में कुछ उठा नहीं रक्खा था, पर दैव को यह मंज़ूर न था। इस दुर्घटना को हुए आज तीसरा दिन था। विद्यारत्न का चेहरा आज कुछ प्रसन्न था। प्रातःकाल ७ बजे बिहारी जंगलदिशा से निवृत्त होने के लिए गया हुआ था। जब वह लौटकर आया, तब उसे मालूम हुआ कि विद्यारत्न अब इस संसार में नहीं है। डाक्टर साहब तथा गुरुकुल के अन्य कर्मचारी शोकसंतप्त हृदय से उसके पार्थिव शरीर के अंतिम संस्कार के लिए तैयारी कर रहे थे।

बिहारी ने अंदर जाकर देखा, विद्यारत्न सचमुच अब इस लोक में न था। वह चुपचाप विद्यारत्न के मुख की तरफ़ देखता रहा। उसकी आँखों में आँसू न थे।

सब कुलवासी विद्यारत्न केशव को उठाकर गंगातट पर ले गये। बिहारी भी सबके साथ भीड़ से अलग चुपचाप चला जा रहा था। वहाँ जाकर चिता तैयार की गयी। विद्यारत्न का पांचभौतिक शरीर चिता पर रख दिया गया। चिता में अग्नि दी ही जानेवाली थी कि बिहारी सारी भीड़ को चीरता हुआ चिता के पास आया। संस्कार करानेवालों से उसने अंतिम बार उसका चेहरा देखने की अभिलाषा प्रकट की। मुख के ऊपर से कपड़ा हटाकर वह कुछ देर तक निर्निमेष नयनों से उसकी तरफ़ देखता रहा। ऐसा मालूम पड़ता था मानों उसे अब तक विद्यारत्न के मरने का निश्चय न था। थोड़ी देर इसी प्रकार चुपचाप खड़ा रहकर वह "विद्यारतन! विद्यारतन! भाई, बोलते क्यों नहीं? क्या तुम सचमुच मुझे बिना क्षमा किये ही छोड़कर चले गये.........लो मैं भी तुम्हारे साथ ही, आया.........मैं...ऐं...ऐं...ऐं........." कहता हुआ गिर पड़ा और फिर "डाक्टरजी मु...झे...भी इसी चिता पर......जला......" कहकर प्राण छोड़ दिये।

सब उपस्थित सज्जन मंत्रमुग्ध की तरह खड़े रह गये। बिहारी की अंतिम इच्छानुसार विद्यारत्न के साथ उसी चिता पर उसका भी संस्कार करा दिया गया!

संस्कार के बाद सब उपस्थित सज्जन दोनों मृतात्माओं की सद्‌गति के लिए प्रार्थना करने के लिए एकत्रित हुए। प्रार्थना के बाद डाक्टरजी ने खड़े होकर सब लोगों को सुनाया कि "पिछली बीमारी में जब कि बिहारी को अपने जीवन की आशा नहीं रही थी, उसने मुझे अपनी बिल लिखायी थी, जिसमें उसने अपना सारा धन, जिसका मूल्य लगभग १०००) है, अपनी मृत्यु के पश्चात् विद्यारत्न के नाम लिखवा दिया था। पर आज दोनों ही हमसे बिदा हो गये। अब जैसी आप लोगों की सम्मति हो, वैसा किया जाय?" उपस्थित लोगों को यह जानकर और भी आश्चर्य तथा दुःख हुआ। कई मनुष्यों ने खड़े होकर अपने विचार प्रकट किये, पर सबसे अधिक विचार यह पसंद किया गया कि इस रुपये से सज्जनपुर ग्राम में एक पाठशाला खोली जाय. और उसमें सब जातियों के बालक इकट्ठे पढ़ा करें। डाक्टर साहब ने अपने पास से १०००) इसमें और जोड़ दिये।

विनाश की ओर—

[श्रीयोगेंद्र झा]

हुआ वह स्वयं विनाश विभोर ;
वीणा के टूटे तारों को,
हाय, निराशा झंकारों को ;
छेड़-छेड़ व्याकुल भावों को,
सतत मचाता शोर।

जीवन के उजाड़-उपवन में,
आग लगाकर भाव-भवन में ;
झुलस-झुलसकर सदा तड़पता,
अरुझाया मन - मोर।

मरुस्थली में मृगजल बनकर,
भरमाते क्यों उस सिकता पर ;
बिलमाते क्यों जो जाता है,
आज अंत की ओर।

मनुस्मृति में स्त्रियों का स्थान

[श्री० रत्नकुमारी देवी 'काव्यतीर्थ']

तस्य कर्म विवेकार्थं शेषाणामनुपूर्वशः ।
स्वायंभुवो मनुर्धीमानिदं शास्त्रमकल्पयत् ॥ अ० १ श्लो० १०२॥
अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम् ।
चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चैव शाश्वतः ॥ अ० १ श्लो० १०७॥

[स्वायंभुव मनु ने इस शास्त्र (मनुस्मृति) का निर्माण, उसके (ब्राह्मणों के) तथा अवशिष्ट वर्णों (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) के भी कर्त्तव्यों की ज्ञानप्राप्ति के लिए किया है। इस शास्त्र में कर्मों के गुणावगुण तथा चारों वर्णों का सनातन आचार सम्पूर्णरूपेण बतलाया गया है।]

मनुस्मृति का स्थान

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि मनुस्मृति का स्थान हिंदुओं के सर्वश्रेष्ठ धर्मग्रंथों में है। यह भारतीय वर्णव्यवस्था तथा आश्रमकर्त्तव्यों के निर्णय का आधार थी और अब भी अधिकांश में है, यह कहना अनुचित न होगा। आज भी धार्मिक विवादों के निर्णय की आवश्यकता पड़ने पर हमें इसी की शरण में जाना पड़ता है और इसका प्रमाण हम विना नाक-भौं सिकोड़े मान लेते हैं। यह हमारे धार्मिक विवादों के निर्णय के लिए 'प्रिवी कौंसिल' समझी जाती है। वर्तमान हिंदू-क़ानून अधिकांश में इसी के आधार पर निर्मित है। इस ग्रंथ में सनातन आचारों का विवेचन है। प्रश्न उठता है कि सनातन माने क्या? सनातन का अर्थ सदा से चला आनेवाला होता है और सदा का अर्थ हमें यहाँ आर्यागमन ही मानना पड़ेगा। यह नहीं माना जा सकता कि यह ग्रंथ उन आचारों और कर्त्तव्यों का वर्णन करता है, जो आदि-आर्यों में प्रचलित थे; क्योंकि—

तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः ।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥ अ० २ श्लो० १८॥
एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ अ०२श्लो०२० ॥

उस (ब्रह्मावर्त्त) देश में चारों वर्णों तथा उनके बीच-वाली संकीर्ण जातियों का जो परंपरागत आचार है, वह सदाचार कहलाता है। इस (ब्रह्मर्षि देश) में उत्पन्न हुए ब्राह्मणादि से पृथ्वी के सब मनुष्य अपने-अपने चरित्र सीखें।

मनुस्मृति में किस देश के आचारों का वर्णन है ?

मनुजी ने ब्रह्मावर्त्तवासियों के आचार को सदाचार माना है और ब्रह्मर्षिदेशवासियों से चरित्र का ज्ञान प्राप्त करने की आज्ञा दी है। ब्रह्मावर्त्त सरस्वती तथा

दृषद्वती के बीच के भूभाग को तथा ब्रह्मर्षिदेश कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पांचाल और शौरसैनिक को कहते थे, जो आधुनिक काल में पंजाब और संयुक्तप्रांत का उत्तरार्द्ध है। आर्यों का ख़ैबर की घाटी से मथुरा तक फैलना दो-चार दिन, मास अथवा वर्ष का कार्य नहीं है। इसमें शताब्दियाँ व्यतीत हो गयी होंगी। इसके कालांतर तथा स्थानांतर के कारण आदि-आर्यों के चरित्रों और आचरणों में कुछ ही नहीं, वरन् महान् अंतर पड़ जाने की संभावना है।

मनुजी ने ब्रह्मर्षिदेशवासियों का चरित्र आदर्श माना है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि उनका अभिप्राय सनातन आचारों तथा कर्त्तव्यों से उन्हीं सामाजिक परिस्थितियों से है, जो उस समय आर्यों में दृष्टिगत होती थी जब कि वे मथुरा तक फैल गये थे। मनु भगवान् के पश्चात् आर्य लोग भारतवर्ष के लगभग सभी भागों में फैल गये। जैसे-जैसे उनका फैलाव हुआ, वैसे-वैसे अन्य स्मृतिकार उत्पन्न हुए, जिन्होंने भारत के विशेष-विशेष भागों के निवासियों की आवश्यकताओं को विशेषतः दृष्टि में रखकर स्मृतियाँ बनायीं। यही कारण है कि आज हम हिंदूधर्मशास्त्र के मिताक्षरा, दायभाग, मिथिला, महाराष्ट्र, गुर्जर तथा दाक्षिणात्य अनेक भेद पाते हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि हिंदूसमाज ने अपने सुदीर्घ जीवनकाल में सभी प्रकार के नियमों, क़ानूनों तथा सामाजिक आचार-विचारों की परीक्षा कर डाली है।

मनुस्मृति का काल

मनुस्मृति का निर्माणकाल विवादग्रस्त है। कोई इसे २,००० वर्ष सं० पूर्व का और कोई केवल १०० वर्ष सं० पूर्व का सिद्ध करते हैं। सर विलियम जोंस इसका निर्माणकाल १,२५० वर्ष सं० पूर्व, ब्यूलर केवल २०० वर्ष सं० पूर्व, विलसन ८०० वर्ष सं० पूर्व और हंटर ५०० वर्ष सं० पूर्व का मानते हैं। परंतु इसके इससे भी अधिक प्राचीन होने के कम प्रमाण नहीं मिलते। जो भी हो, यह तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि यह शास्त्र आजकल का नहीं है, इसकी प्राचीनता पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों ही विद्वत्समाज स्वीकार करते हैं।

मनुस्मृतिनिर्माण का उद्देश्य

अब विषयप्रवेश-स्वरूप में एक बात का विचार और करना आवश्यक प्रतीत होता है। मनुस्मृति के समान क़ानूनी शास्त्र की रचना का कारण क्या हो सकता है? उसके संपादन का विशेष लक्ष्य क्या ठहरता है? उसका निर्माण किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हो सकता है?

हमने देख ही लिया है कि मनुस्मृति सनातन आर्य-आचारों तथा कर्त्तव्यों का विवेचन करती है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि वह तात्कालिक समाज की समालोचना कर उसके आदर्श रूप की कल्पना करती है। उसका लक्ष्य तात्कालिक सामाजिक पापों को दूर कर ऐसे गुणों का समावेश करना है, जिनसे समाज आदर्शत्व को प्राप्त हो अन्य समाजों का शिरोमणि हो जाय। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मनुजी स्वकालीन समाज के अंगप्रत्यंगों पर प्रकाश डालते हुए उसके गुण-दोषों का विवेचन कर एक ऐसा मार्ग निर्दिष्ट करते हैं, जो उनकी दृष्टि में समाज को उच्चतम पद पर स्थापित करने की क्षमता रखता है।

हमारा उद्देश्य यहाँ संपूर्ण मनुस्मृति पर विचार करना नहीं है; हमको केवल उसके उसी अंश पर ध्यान देना है जिसका संबंध स्त्री-समाज से है, तथा यह देखना है कि मनुजी ने तात्कालिक नारीसमाज की समालोचना करने में उसके किन-किन गुणदोषों का अनुभव किया तथा उसे आदर्शत्व के पद पर आरूढ़ करने के लिए किस मार्ग के अवलंबन का विधान किया है। मनुस्मृति के स्त्री-समाज पर विचार करते समय कुछ ऐसे सिद्धांत स्पष्ट भासित होने लगते हैं, जिनका प्रतिपादन मनुजी का लक्ष्य है और उन्हीं की सिद्धि के लिए उन्होंने भिन्न-भिन्न नियम तथा उपनियमों की रचना की है। ये सिद्धांत तीन हैं—(१) संतति की शुद्धता, (२) स्त्री-रक्षा, (३) व्यभिचारप्रतिरोध।

अंतिम दो सिद्धांत पहले के अंतर्गत माने जा सकते हैं, परंतु भिन्न रखने में विषय अधिक स्पष्ट हो जाता है।

अब यह देखना है कि मनुस्मृति के प्रत्यक्ष उदाहरणों में इन सिद्धांतों की झलक कहाँ तक प्रतीत होती है और उनको ध्यान में रखते हुए मनुजी ने अपने आदर्श समाज में स्त्रियों का क्या स्थान रक्खा है और उनको कितने अधिकार देना स्वीकार किया है।

स्त्रीपुरुष की समानता

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्यां च विराजमसृजत्प्रभुः ॥ अ० १ श्लो० ३२॥

[(हिरण्यगर्भ) अपने शरीर को दो भागों में विभक्त कर आधे से पुरुष और आधे से स्त्री बन गया और दोनों के संयोग से विराट् पुरुष की उत्पत्ति की ।]

सृष्टि के आविर्भाव का यह सिद्धांत भगवान् मनु को भी मान्य था । और, उनके काल में यह सर्वमान्य तथा अकाट्य अवश्य ही समझा जाता होगा; अन्यथा इसका उल्लेख मनुस्मृति में कैसे होता ।

इससे यह प्रतीत होता है कि तत्कालीन भारतीय समाज स्त्री और पुरुष के समानाधिकार स्वीकार करता था और उन्हें अन्योन्याश्रित समझता था । परंतु आगे चलकर इस सिद्धांत का अक्षरशः प्रयोग हमें कार्यरूप में नहीं मिलता—दोनों के अधिकारों में अन्तर दृष्टिगत होता है—एक का दूसरे की अपेक्षा श्रेष्ठत्व प्रतिपादित किया जाता है । जैसा कि आगे चलकर हमारे सम्मुख आवेगा।

विवाहयोग्य स्त्रीपुरुष

गुरूणामनुमतो स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ अ० ३ श्लो० ४ ॥
हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छंदो रोमशार्शसम् ।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ अ० ३ श्लो० ७ ॥
नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकांगीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिंगलाम् ॥अ० ३श्लो० ८॥
यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ।
नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशंकया ॥ अ० ३ श्लो० ११ ॥

[गुरु की आज्ञानुसार विधिपूर्वक स्नानादि समावर्त्तनक्रिया को समाप्त करके, शुभ लक्षणयुक्त सजातीय कन्या से विवाह करे । क्रियाहीन, केवल कन्याओं को जन्म देनेवाला, वेद के अध्ययन से रहित, अधिक लोमयुक्त तथा अर्श, क्षय, मन्दाग्नि, मृगी, श्वेतकुष्ठ, गलितकुष्ठ रोग जिस कुल में हो, उस कुल की लड़की के साथ विवाह न करे । जिस कंन्या के बाल भूरे हों, जो अधिकांगी हो, जिसके रोम न हों या बहुत हों, जो सदैव रोग-पीड़िता रहे, जो बहुत बोलती हो, जिसकी आँखें पीली हों, उसके साथ विवाह न करे । जिसके भाई न हो या जिसके पिता को कोई न जानता हो, तो पुत्रिका-धर्म की आशंका से उस लड़की के साथ विवाह न करे ।]

यह हो गयी पूरी डाक्टरी । अब और बचा क्या ? केवल लड़की ही कहाँ रही, उसके कुल-भर की डाक्टरी हो चुकी । इन नियमों से यही अभिप्राय जान पड़ता है कि सन्तति निर्दोष हो । परंतु क्या मनुजी ने केवल कन्या के बापदादों की डाक्टरी की, वर की ओर उँगली भी नहीं उठायी, उसका नाम तक नहीं लिया ? क्या उनकी दृष्टि में पुरुष स्वभाव से ही दोषशून्य हैं ? अथवा उनके दोषों का विवेचन करना वे अनावश्यक समझते हैं ? ऐसा नहीं है । यहाँ पर वह अवश्य ही पक्षपातरहित हैं । जिस प्रकार वह विवाहार्थ कन्या की पूर्ण परीक्षा करते हैं, उसी प्रकार वर को भी परीक्षारहित नहीं छोड़ते । हाँ, इतना अवश्य है कि मनुजी कन्या के बाह्य गुणों पर विशेष ध्यान देते हैं और वर के विषय में अन्तःगुणों की ओर उनका विशेष लक्ष्य दिखता है—

यादृग्गुणेन भर्ता स्त्री संयुज्येत यथाविधि ।
तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा ॥ अ० ९ श्लो० २२॥
उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥ अ०९श्लो० ८८॥
त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥अ० ९श्लो० ९०॥
काममामरणं तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ अ० ९ श्लो० ८९॥

[स्त्री विवाह आदि विधि से जैसे पति से संयुक्त होती है, समुद्र में मिलकर नदी के समान वह वैसे ही गुणवाली हो जाती है । कुल तथा आचार आदि से श्रेष्ठ, सुंदर और सदृश वर मिलने पर विवाह के योग्य अवस्था न होने पर भी कन्या का विवाह कर दे । यदि पिता आदि विवाह न करे, तो ऋतुमती होने पर कन्या तीन वर्ष प्रतीक्षा करे । इसके पश्चात् सदृश वर को स्वयं चुन ले । कन्या ऋतुमती होने पर भी भले ही मरणपर्यंत पिता के घर रहे, परंतु गुणहीन वर को पिता आदि कभी न दें ।]

इससे स्पष्ट है कि मनुजी समगुण वरकन्या के पक्षपाती हैं । ऐसा नहीं है कि उन्होंने कन्या के श्रेष्ठत्व के पीछे पड़कर वर की उपेक्षा ही कर दी हो । उत्कृष्ट वरप्राप्ति के लिए वह असामयिक विवाह तक करने के लिए उद्यत हैं; क्योंकि उनका उद्देश्य ही समगुण संयोग है । इतना ही नहीं, यदि कन्या को उत्कृष्ट वर की प्राप्ति न हो, तो

वह यथावसर तीन वर्ष पश्चात् तक कन्या को अविवाहिता देखने को राज़ी हैं, और कम-से-कम समान गुणवाले को ही कन्या देने के पक्ष में हैं, नीच को नहीं। यहाँ तक कि वह नीच वर को कन्या देने की अपेक्षा उसका कुमारी रहते हुए ही मर जाना श्रेष्ठतर समझते हैं। विवाह-कार्य में अन्यायकर्ता को दंड भी देने की व्यवस्था करते हैं--

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्यायप्र यच्छति ।
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान्॥ अ०८श्लो०२२४

जो मनुष्य दोषयुक्त कन्या का दान विना दोष प्रकट किये ही कर दे, राजा उस पर ९६ पण जुर्माना करे।

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः ।
कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्तानानि शूद्रताम्॥ अ० ३ श्लो०१५॥
शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्यतनयस्य च ।
शौनकस्य सुतोत्पत्त्या तदपत्यतया भृगोः ॥ अ० ३ श्लो० १६

असवर्ण-संयोग-निषेध

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ।
जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥ अ० ३ श्लो० १७ ॥
दैवपित्र्यातिथे यानि तत्प्रधानानि यस्य तु ।
नाश्नन्ति पितृदेवास्तन्न च स्वर्गं स गच्छति ॥ अ० ३ श्लो०१८॥
वृषलीफेनपीतस्य निश्वासोपहतस्य च ।
तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ अ० ३ श्लो० १९॥

जो द्विज अज्ञानवश हीन जाति की कन्या से विवाह करते हैं, वे संतानसहित अपने वंश को ही शीघ्र शूद्र बना डालते हैं। शूद्रा से विवाह करनेवाला ब्राह्मण पतित के तुल्य हो जाता है, यह अत्रि और गौतम का मत है; शूद्रा से संतानोत्पत्ति होने पर वह पतित होता है, यह भृगु कहते हैं। शूद्रा के साथ शयन कर ब्राह्मण अधोगति को प्राप्त होता है और उससे संतानोत्पत्ति होने पर तो ब्राह्मणत्व से ही रहित हो जाता है। जिस ब्राह्मण की विवाहिता शूद्रा होम, श्राद्ध, अतिथिभोजनादि कराती है, उसके हव्यकव्य को देवता पितर ग्रहण नहीं करते और वह ब्राह्मण स्वर्ग को नहीं जाता। जो ब्राह्मण शूद्रा के थूक के संयोग से अपने को दूषित करते हैं, उनके निःश्वास से अपने प्राणों को मलिन बनाते हैं और जो उसकी संतति से संततिवान् होते हैं, उनके उद्धार के उपाय नहीं हैं।

इससे तो वही संतानशुद्धता का प्रतिपादन झलकता है। समाज में वर्णसंकरता का प्रवेश न हो, इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए इन नियमों की रचना की गयी है, ऐसा भासित होता है। अस्तु, यहाँ तो अजाति-संबंध का निषेध होता है, पर साथ ही मनुजी यह भी कहते हैं कि--

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीत वरादपि ।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥ अ०२ श्लो० २३८ ॥
स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् ।
विविधानि च रत्नानि समादेयानि सर्वतः ॥ अ० २ श्लो० २४०॥
शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते ।
ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः ॥ अ०३ श्लो०१३

[शुभविद्या को श्रद्धापूर्वक नीच से भी ग्रहण कर ले। मोक्ष के द्वारभूत तत्त्वज्ञान को चांडाल से भी सीखे तथा नीच कुल से भी स्त्रीरत्न को ले ले। स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शौच, सुंदर वचन और अनेक प्रकार के शिल्प जहाँ से भी प्राप्त हों, वहीं से उन्हें ले लेना चाहिए। शूद्र की शूद्रा ही स्त्री होती है; वैश्य की शूद्रा और वैश्या दोनों हो सकती हैं, क्षत्रिय की शूद्रा, वैश्या और क्षत्राणी ये तीन हो सकती हैं; तथा ब्राह्मण को शूद्रा, वैश्या, क्षत्राणी और ब्राह्मणी चारों ही से विवाह करने का अधिकार है।]

इन श्लोकों में तो पक्ष ही उलटा दिया है। सरसरी दृष्टि से देखने पर तो ज्ञात होता है कि मनुजी स्वयं अपना ही विरोध कर रहे हैं, परंतु ऐसा नहीं है। वह आगे कहते हैं—

सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि ।
कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशोवराः ॥ अ० ३ श्लो० १२
न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः ।
कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते ॥ अ० ३ श्लो० १४

[यथार्थतः (पहले तो) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को सवर्णा से ही विवाह करना चाहिए; परंतु कामियों के लिए ब्राह्मणी, क्षत्राणी, वैश्या और शूद्रा; क्षत्राणी, वैश्या और शूद्रा; वैश्या और शूद्रा भी स्वीकृत (प्रशस्त) हैं। विपत्ति पड़े हुए भी (सवर्णा स्त्री न मिलने पर भी) ब्राह्मण और क्षत्रिय को शूद्रा को, भार्या बनाने का उपदेश किसी भी इतिहास में नहीं पाया जाता।]

इन श्लोकों से यह स्पष्ट है कि मनुजी का हृदय पूर्व-कथित श्लोकों का अनुमोदन नहीं करता। समाज की

आवश्यकतानुसार उन्हें यह अपवाद बनाने पड़े हैं। इससे यह भासित होता है कि मनुजी के समय में भारतीय आर्यसमाज कुछ पतित हो चला था, अथवा यों कहिए कि वह मनुजी के आदर्शनियमों को मानने के लिए पूर्णत: तैयार नहीं था। वह कामपाश में अधिकाधिक ग्रसित होने के कारण धार्मिक नियमों में कुछ स्वेच्छानुकूल परिवर्तन कराना चाहता था। इस प्रकार के विवाह-संबंध समाज में प्रचलित थे, पर मनुजी उन्हें रोकना चाहते थे। अन्य अनेक स्थलों पर भी मनुजी ने असवर्णा स्त्री से विवाह का परोक्ष रीति से निषेध किया है। उसे अधिकार कम दिये हैं, उसे सवर्णा से प्रत्येक दशा में हीन ठहराया है, उसकी संतति को भी सवर्णा की संतति की अपेक्षा निम्नतर कहा है।

वरकन्या की वैवाहिक स्वतंत्रता

मनुजी ने संपूर्ण वैवाहिक अधिकार वर और कन्या के पिता आदि के लिए सुरक्षित रक्खे हैं, परंतु उन्होंने इस कार्य के लिए वरकन्या को भी कुछ स्वतंत्रता अवश्य दी है। देखिए—

अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम्।
नैनः किञ्चिदवाप्नोति न च यं साधिगच्छति॥ अ० ९ श्लो० ९१॥

[यदि पिता आदि के न देने पर कुमारी स्वयं ही अपना पति चुन ले, तो उसे कुछ भी पाप नहीं होता। उसका पति भी पापमुक्त रहता है।]

और भी—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥ अ० ९ श्लो० ९०

[यदि पिता आदि विवाह न करें, तो ऋतुमती होने पर कन्या तीन वर्ष प्रतीक्षा करे, इसके पश्चात् सदृश वर को स्वयं चुन ले।]

विवाह में धन का प्रश्न

यहाँ वे वय:प्राप्त कन्या के स्वयं पति चुन लेने पर उसे केवल निरपराधिनी ही नहीं ठहराते, वरन् उसे आज्ञा देते हैं कि वह सदृश पति को चुन ले।

न कन्यायाः पिता विद्वान् गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि।
गृह्णन् शुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी॥ अ० ३ श्लो० ५१
आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत्।
अल्पोऽप्येवं महान्वापि विक्रयस्तावदेव सः॥ अ० ३ श्लो० ५३

[कन्या का विद्वान् पिता वर से ज़रा भी धन न ले, यदि लोभवश थोड़ा धन ले भी ले, तो उसे संतान बेचने का पाप होता है। कोई कहते हैं कि आर्ष-विवाह में वर से गो का एक जोड़ा लेना चाहिए। यह मिथ्या है; क्योंकि थोड़ा अथवा अधिक लेना बेचना ही है।]

यदि कन्या के संबंधी तनिक भी धन ले लेवें, तो वे संतति बेचनेवाले हो जावें। दहेज़ आदि का मनुस्मृति में स्पष्टरूपेण परिमाण नहीं बतलाया गया है। कन्या को वस्त्रालंकारों से भूषित करके उसका दान करने का एक-दो स्थलों में उल्लेख मिलता है—

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः॥ अ० ३ श्लो० २७
यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।
अलङ्कृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रकीर्त्तितम्॥ अ० ३ श्लो० २८

[जिस विवाह में विद्या और आचारवाले वर को बुलाकर, उत्तम वस्त्रालंकारों से कन्या को भूषित कर उसका दान किया जाता है, उसे ब्राह्मविवाह कहते हैं। यज्ञ के कर्म के विस्तृत होने पर तथा ऋत्विज के यज्ञ का कर्म कराने पर कन्या को अलंकारों से भूषित कर जिस विवाह में कन्या का दान किया जाता है, वह दैव-विवाह कहलाता है।]

बालविवाह

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः॥ अ० ९ श्लो० ९४

[३० वर्ष का वर बारह वर्ष की सुंदरी से विवाह करे और २४ वर्ष का वर ८ वर्ष की कन्या को स्त्री बनावे। इससे शीघ्र विवाह करने में धर्म की हानि है।]

यहाँ पर एक बात खटकती है। ३० वर्ष का वर तथा बारह वर्ष की कन्या और २४ वर्ष का वर तथा आठ वर्ष की कन्या का संबंध मनुजी ने किस सिद्धांत पर निश्चित किया है? वर की अवस्था बहुत कुछ अनुचित दिखती है। भला इस जोड़ी का मिलान कहाँ तक ठीक हो सकता है।

मनुस्मृति में विवाह-बंधन-विच्छेद

मनुजी भी किन्हीं विशेष अवसरों पर विवाह-बंधन-विच्छेद के पक्षपाती दिखते हैं।

विधिवत् प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम्।
व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम्॥ अ० ९ श्लो० ७२

अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रुषिता गृहात् ।
सा सद्यः सन्निरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ॥ अ० ९ श्लो० ८३

[विधि से ग्रहण की हुई स्त्री को भी पुरुष, यदि वह कलंकित निकले तो त्याग दे; जो रोगिणी हो, दूषित हो अथवा जो अधिक या हीन अंगों को छिपाकर ब्याही गयी हो, उसे भी त्याग दे । जो स्त्री घर से कुपित होकर निकल भागे, उसे उसी समय रोकना चाहिए, अथवा पिता आदि के पास छोड़ देना चाहिए ।]

परंतु उनके मत से इस क़ानून का उपयोग पुरुष ही कर सकता है, न कि स्त्री । दुर्गुणा दुष्टा स्त्री को पति त्याग सकता है; परंतु वे ही दुर्गुण पति में हों, तो स्त्री को उसे त्यागने का अधिकार नहीं दिया गया । यहाँ पर भी वही सामाजिक आवश्यकता की झलक प्रतीत होती है । आदर्शरूप से वे इस प्रथा से सहमत नहीं दिखते । उनका यथार्थ कथन तो यह है—

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति । अ० ८ श्लो० ३८९
न निष्क्रियविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या विमुच्यते ।
एवं धर्मं विजानीमः प्रजापतिविनिर्मितम् ॥ अ० ९ श्लो० ४६

[माता, पिता, पुत्र तथा स्त्री त्यागने योग्य नहीं होते । बेचने अथवा किसी को देने पर भी पति से स्त्री छूट नहीं सकती । ऐसे आदि-प्रजापति के कहे हुए धर्म को हम मानते हैं ।]

मनुस्मृति में विधवा तथा विधुर-विवाह

कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः ।
न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥ अ० ५ श्लो० १५७
आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी ।
यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम् ॥ अ० ५ श्लो० १५८
मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ अ० ५ श्लो० १६०
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ॥ अ० ९ श्लो० ६५ ॥
सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते ।
सकृदाह ददामीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् ॥ अ० ९ श्लो० ४७॥

[स्त्री शुभ फूल, मूल, फलों से, थोड़ा आहार करके, भले ही शरीर को क्षीण बना ले, परंतु पति की मृत्यु के बाद दूसरे का नाम भी ग्रहण न करे । क्षमाशीला, नियमयुक्ता ब्रह्मचारिणी, पतिव्रता के सर्वश्रेष्ठ धर्म की इच्छा रखती हुई विधवा स्त्री मरणपर्यंत स्थिर रहे । पति के मर जाने पर साध्वी स्त्री ब्रह्मचारिणी रहती हुई अपुत्रा भी स्वर्ग चली जाती है, जैसे वे ब्रह्मचारी गये थे । विवाह की विधि में विधवाविवाह नहीं कहा गया । धन का विभाग एक ही बार होता है, कन्यादान एक ही बार होता है और कोई वस्तु किसी को एक ही बार दी जाती है । ये तीनों कार्य सज्जन एक ही बार करते हैं ।]

इन श्लोकों से ज्ञात होता है कि मनुजी विधवा स्त्री को संन्यासिनी ही बनाना चाहते हैं । वह विधवा-विवाह के पक्षपाती नहीं हैं । परंतु आप विधवाओं के समान विधुरों को भी संन्यासी बनने का उपदेश नहीं देते—

एवं वृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम् ।
दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ अ० ५ श्लो० १६७॥
भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि ।
पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥ अ० ५ श्लो० १६८ ॥

[इस प्रकार की पतिव्रता स्त्री को यदि वह पहले मर जावे, तो धर्म का जाननेवाला पुरुष श्रौत तथा स्मार्त अग्नि से तथा यज्ञपात्रों से दग्ध कर दे । अन्त्य कर्म में पहले मरी हुई स्त्री का दाहकर्म करके पुरुष फिर से विवाह कर ले ।]

इतना ही नहीं, मनुजी एक स्त्री के जीवित रहते हुए भी कुछ विशेष स्थितियों में पुरुषों को दूसरा विवाह करने की आज्ञा देते हैं—

मद्यपासाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् ।
व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिंसार्थघ्नी च सर्वदा ॥ अ०९ श्लो० ८०॥
वन्ध्याष्टमेधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा ।
एकादशे स्त्री जननी सद्यस्त्वा प्रियवादिनी ॥ अ०९ श्लो०८१ ॥
या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः ।
सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित् ॥ अ०९श्लो०८२॥

[जो स्त्री मद्य पीनेवाली, दुष्टाचारिणी, प्रतिकूल आचरण करनेवाली, रोगिणी, हिंसा करनेवाली तथा व्यर्थ धन व्यय करनेवाली हो, तो उसके जीवित रहते हुए भी पुरुष को दूसरा विवाह कर लेना चाहिए । यदि स्त्री वंध्या हो तो आठवें वर्ष में, संतान मर जाती हो तो दशवें वर्ष में, लड़की-ही-लड़की होती हों तो ग्यारहवें वर्ष में और कटुभाषिणी हो तो उसी समय दूसरा विवाह कर लेना चाहिए । जो रोगिणी हो परंतु हितैषिणी हो, तो उसकी आज्ञा लेकर दूसरा विवाह करे और कभी

11/027

उसका अपमान न करे ।] हाँ, वह दूसरा विवाह कर लेने पर भी पहली स्त्री का, यदि वह सुशीला हो तो, तिरस्कार करने की आज्ञा नहीं देते ।

मनुस्मृति में नियोगक्रिया

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया ।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥ अ० ९ श्लो० ५९ ॥
विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि ।
एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथञ्चन ॥ अ० ९ श्लो० ६० ॥
द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः ।
अनिवृत्तं नियोगार्थं पश्यन्तो धर्मतस्तयोः ॥अ० ९ श्लो० ६१॥
विधवायां नियोगार्थे निवृत्ते तु यथाविधि ।
गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तयेतां परस्परम् ॥ अ० ९ श्लो० ६२ ॥

[स्त्री को चाहिए कि संतान के न होने पर देवर या अन्य किसी सपिंड से नियुक्त होकर अभिलषित संतान उत्पन्न करा ले । विधवा में नियुक्त पुरुष को चाहिए कि वह घृताक्त होकर तथा मौन का आश्रय लेकर केवल एक ही पुत्रोत्पत्ति करे । इस विषय के जाननेवाले दूसरे आचार्यों का मत है कि एक पुत्र का होना न होने के समान है, अतएव वह पुरुष धर्मपूर्वक नियुक्त होकर दूसरा पुत्र उत्पन्न करे । विधवा में यथाविधि नियोग-कार्य समाप्त हो जाने पर वे दोनों परस्पर गुरु और वधू के समान व्यवहार करें ।]

इससे यह ज्ञात होता है कि मनुजी के समय में यह क्रिया प्रचलित थी । कभी एक पुत्र के लिए और कभी अधिक के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है । नियोगकाल के पश्चात् नियुक्ति का संबंध उच्च धार्मिक हो जाता था । कोई-कोई कहते हैं कि यह क्रिया संततिवृद्धि के लिए थी । समाज की जनसंख्या कदाचित् कम रही होगी, अतएव उसकी वृद्धि का उपाय निकालना अनिवार्य हो गया होगा, जैसा कि अन्य समाजों में पाया जाता है; परंतु इस युक्ति से संतोष नहीं होता । यदि ऐसा ही था, तो एक अथवा दो संतान के लिए ही इसका उपयोग क्यों किया गया, सदा के लिए पुनर्विवाह क्यों न करा दिया गया ? मनुजी ने विधवाविवाह का खंडन क्यों किया ? किसी का कथन है कि अपत्या विधवा के दुःख को दूर करने और अवशिष्ट आयु में उसकी रक्षा के लिए इस युक्ति का आविष्कार हुआ होगा, परंतु यह भी अनुपयुक्त ही दीखता हैं; क्योंकि इस दशा में भी वही विधवाविवाह अधिक उपयुक्त दीखता है । और अग्रसर होने पर हमें ज्ञात हो जाता है कि यह तात्कालिक समाज में एक भीषण दोष था । मनुजी स्वयं ही इसका विरोध करते हैं । इसकी उत्पत्ति के संबंध में वह कहते हैं—

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः ।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति ॥ अ० ९ श्लो० ६६
स महीमखिलां भुञ्जन् राजर्षिप्रवरः पुरा ।
वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः ॥ अ० ९ श्लो० ६७
ततः प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम् ।
नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः ॥ अ० ९ श्लो० ६८

[विद्वान् ब्राह्मणों ने इस पशुधर्म की बड़ी निंदा की है । लोगों में इसका प्रचार वेन के शासनकाल में हुआ था । उस राजा ने सारी पृथ्वी का उपभोग करते हुए काम से हतज्ञान होकर वर्णों को संकर कर डाला था । तब से जो मनुष्य अज्ञानवश होकर विधवा स्त्री को संतान आदि के लिए नियुक्त करता है, उसकी साधुमंडली में निंदा होती है ।]

इस प्रकार इस प्रथा को चलानेवाला राजा वेन था । उसने स्वेच्छावश इसे चलाया । सत्पुरुष इसे निंद्य समझते हैं । इससे सिद्ध हुआ कि यह जनसंख्या-वृद्धि या विधवा-सुख के लिए नहीं बनायी गयी थी । और भी—

नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः ।
अन्यस्मिन्हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम् ॥ अ० ९ श्लो० ६४
नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ।
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ॥ अ० ९ श्लो० ६५

[द्विजों को चाहिए कि वे विधवा स्त्री को दूसरे से नियुक्त न करावें, क्योंकि ऐसा करने पर सनातन-धर्म नष्ट हो जाता है । वैवाहिक मंत्रों में कहीं भी नियोग का उल्लेख नहीं है और विवाहविधायक शास्त्र में कहीं भी विधवा-विवाह का कथन नहीं है ।]

इस प्रकार मनुजी इस प्रथा को निंद्य समझते हैं तथा उसके निषेध का उपदेश देते हैं ।

स्त्रियों के सांपत्तिक अधिकार

स्वेभ्योंऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक् ।
स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिताःस्युरदित्सवः ॥ अ० ९ श्लो० ११८
मातुस्तु यौतुकं यत्स्यात् कुमारीभाग एव सः ।
दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम् ॥ अ० ९ श्लो० १३१

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीति कर्मणि ।
भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥ अ० ९ श्लो० १९४
पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलंकारो धृतो भवेत् ।
न तं भजेरन्दायादा भजमाना पतन्ति ते ॥ अ० ९ श्लो० २००
अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् ।
मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम् ॥ अ०९ श्लो० २१७

[भाई अपने-अपने अंश का चतुर्थ भाग कन्याओं को दें। यदि किसी कारण से न दें, तो पतित समझे जायँ। माता का धन उसकी मृत्यु के बाद कुमारी का ही होता है। (अपुत्र नाना का सारा धन लड़की का लड़का ही ले।) विवाह के समय अग्नि के समीप जो धन मिले, पिता के घर से पतिगृह-गमन के समय जो धन मिले, प्रसन्नता के लिए जो धन पति आदि दें तथा भाई, माता और पिता से मिला हुआ धन "स्त्रीधन" कहलाता है। पति के जीवित रहते हुए जो अलंकार स्त्री धारण करती हो, (उसकी मृत्यु के उपरांत) उसे बंधु-बांधव स्त्री से न लें; यदि ले लें तो पतित हो जायँ। यदि किसी स्त्री का पुत्र अनपत्य ही मर जाय, तो वह धन उसी स्त्री (माता) का हो और माता के मरने पर पिता की माता को वह प्राप्त हो।]

स्त्रियों के नैयायिक अधिकार

ख़ैर, सांपत्तिक अधिकार तो जो हैं सो हैं ही। संसार के प्रायः बिरले ही समाज में उन्हें इससे अधिक सांपत्तिक अधिकार दिये गये होंगे। परंतु मनुजी ने उन्हें नैयायिक अधिकारों से सर्वथा ही वंचित रक्खा है।

एको लुब्धस्तु साक्षी स्यात् बह्व्यः शुच्योऽपि न स्त्रियः ।
स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु दोषैश्चान्यैश्च ये वृताः ॥ अ० ८ श्लो० ७७

[लोभरहित एक ही पुरुष साक्षी हो सकता है, परंतु पवित्र होने पर भी बहुत-सी स्त्रियाँ नहीं हो सकतीं; क्योंकि उनकी बुद्धि अस्थिर रहती है और दूसरे बहुत से दोषों से ये व्याप्त रहती हैं।]

और तो और, न्यायालय में साक्षी देने तक का उन्हें अधिकार नहीं दिया गया। आश्चर्य यह है कि एक साधारण पुरुष के सामने, जो केवल निर्लोभी हो, बहुत-सी स्त्रियाँ, जो पूर्णतः पवित्र हों, कोई चीज़ नहीं हैं। इसका कारण क्या हो सकता है, यह तो मनुजी ही पूर्णरूपेण जान सकते हैं। कदाचित् उनके समय में स्त्रियों की बुद्धि इतनी चपल रही हो कि उसपर तनिक भी विश्वास न किया जाता हो। किंतु आजकल मनुजी के इस सिद्धांत को लोग कहाँ तक मान सकते हैं, यह संदेहास्पद है।

इस प्रकार स्त्रियों से संबंध रखनेवाली मनुमहाराज की लगभग सभी बातों का दिग्दर्शन हो गया। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि मनुस्मृतिकार ने स्त्री-समाज के साथ सद्व्यवहार किया या दुर्व्यवहार; न्याय किया है अथवा अन्याय। हमारे आधुनिक समाज में इस प्रश्न को लेकर गहरा मतभेद हो गया है। एक समुदाय भगवान् मनु को स्त्री-समाज का शत्रु मानता है और अपने समर्थन में उनके निम्न-लिखित वाक्यों को उद्धृत करता है—

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ।
न स्वातंत्रेण कर्त्तव्यं किञ्चित्कार्यं गृहेष्वपि ॥ अ० ५ श्लो० १४७
बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने ।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतंत्रताम् ॥ अ०५ श्लो० १४८
पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मनः ।
तेषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्यौ कुर्यादुभे कुले ॥ अ० ५ श्लो० १४९
यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता चानुमते पितुः ।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं न च लंघयेत् ॥ अ० ५ श्लो० १५१
विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः ।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥ अ०५ श्लो० १५४
नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम् ।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥ अ० ४ श्लो० १५५

[बालिका, युवती अथवा वृद्धा स्त्री को घर में भी कोई कार्य स्वतंत्रता से न करना चाहिए। स्त्री को बाल्यावस्था में पिता के, युवावस्था में पति के तथा स्वामी की मृत्यु के पश्चात् पुत्रों के अधीन रहना चाहिए। किसी भी दशा में उसके लिए स्वतंत्रता का विधान नहीं है। पिता, पति तथा पुत्रों से पृथक् नहीं रहना चाहिए; क्योंकि ऐसा होने पर स्त्री, पिता तथा पति दोनों के कुलों को कलंकित कर देती है। जिस पुरुष को पिता या पिता की आज्ञा से भाई दे देवे, उसी की जीते-जी स्त्री सेवा करे और उसके मर जाने पर भी उसका उल्लंघन न करे। पति के आचरणरहित, कामी अथवा निर्गुण होने पर भी साध्वी स्त्री को देवता के समान उसकी सेवा करनी चाहिए। स्त्रियों के लिए किसी भी यज्ञ का विधान नहीं है, कोई व्रत अथवा उपवास उन्हें न करना

चाहिए; वे केवल पति की ही सेवा द्वारा स्वर्ग में उच्च स्थान प्राप्त कर सकती हैं।]

परंतु भगवान् मनु स्त्रीजाति के शत्रु नहीं थे, यह सिद्ध करना कठिन नहीं है। उनके इन श्लोकों को भी पढ़ना ही होगा—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते तत्र सर्वाफलाः क्रियाः॥ अ० ३ श्लो० ५६
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा॥ अ० ३ श्लो० ५७
जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः।
तानि कृत्या हतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥ अ० ३ श्लो० ५८
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारे सूत्सवेषु च॥ अ० ३ श्लो० ५९
सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥ अ० ३ श्लो० ६०
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते॥ अ० ३ श्लो० ६२

[जहाँ स्त्रियाँ सम्मानित की जाती हैं, वहाँ देवता प्रसन्न रहते हैं, और जहाँ इनका अनादर होता है, वहाँ सारे शुभ कृत्य विफल हो जाते हैं। स्त्रियाँ जहाँ दुःखित रहती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और जहाँ ये प्रसन्न रहती हैं वह सदा वृद्धि को प्राप्त करता रहता है। अपमानित होकर स्त्रियाँ जिस कुल को कोसती हैं, वह कृत्यादल के समान चारों ओर से नष्ट होने लगते हैं। अतः ये स्त्रियाँ उत्सवादिकों के समय भूषण-वसन तथा भोजनादि से, उन्नति की इच्छा रखनेवाले मनुष्यों द्वारा सदा सम्मानित की जानी चाहिएँ। जिस कुल में पति पत्नी से तथा पत्नी पति से संतुष्ट रहते हैं, वह कुल सर्वदा कल्याण का भागी रहता है। स्त्री यदि प्रसन्न रहे, तो सारा कुल प्रसन्न रहता है; यदि वह दुःखित रहती है, तो सब कुछ बुरा लगता है।]

पुरानी लकीर को पीटनेवाला एक दूसरा समुदाय मनुस्मृति के प्रत्येक वाक्य को ब्रह्मवाक्य मानता है और उससे तिल-भर भी हटने की सम्मति देनेवालों को भर-पेट कोसता है। हमारी तुच्छ बुद्धि में ये दोनों समुदाय भ्रम में हैं। मनुस्मृति के स्त्रीसंबंधी कई नियमोपनियम वर्तमान स्त्रीसमाज के लिए नितान्त अनिष्टकर हैं। इसी प्रकार योरप से उधार ली हुई बीसवीं शताब्दी की स्त्रियों के अधिकारों की सूची को सामने रख मनुस्मृति-काल को स्त्रीजाति का शत्रु सिद्ध करना अन्याय की पराकाष्ठा है। भगवान् मनु न तो स्त्रीसमाज के शत्रु थे और न विशेष पक्षपाती ही। आज स्त्रीसमाज तथा पुरुष-समाज के अधिकारों में पृथक्त्व स्थापित कर जो एक प्रकार का अप्राकृतिक युद्ध छेड़ दिया गया है, उसकी या तो मनुकालीन समाज में कल्पना ही नहीं की गयी थी अथवा स्वयं मनु को उस पर विचार करना अभीष्ट न था। उन्होंने अपने युग के मनुष्यसमाज के लिए और उसमें भी विशेषकर भारतीय मनुष्य-समाज के लिए—ख़ासकर गंगायमुना से सिंचित आर्यावर्त्त में बसनेवाले मनुष्यसमाज के हित के लिए—अपने नियमोपनियम बनाये हैं। यदि हम भगवान् मनु तथा उनके ग्रन्थ मनुस्मृति की निष्पक्ष आलोचना करना चाहते हैं, तो हमें तात्कालिक समाज की आवश्यकताओं का ज्ञान होना अनिवार्य है। ज़रा अनुमान कीजिए कि शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक, तीनों प्रकार के गुणों से विशेषतः संपन्न और तात्कालिक मानव-सभ्यता के लगभग उच्चतम शिखर पर आरूढ़ मुट्ठी-भर आर्यों का समूह भारत के सबसे अधिक उर्वर पंजाब तथा गंगायमुना के दोआब पर आकर क़ब्ज़ा कर लेता है। उस समूह के लगभग सभी ओर या तो नितान्त बर्बर अथवा अर्धसभ्य जातियों के लोग बसे हैं या अन्य लोग, जो पशुबल से तो युक्त हैं, किंतु अन्यान्य गुणों से न्यूनाधिक शून्य हैं। इस परिस्थिति में आर्यजाति के नेताओं को क्या करना चाहिए? वे अपने समाज को चारों ओर से उमड़नेवाले अनार्यों के सागर में डुबोकर सदा के लिए अपना अस्तित्व मिटा सकते हैं अथवा यदि वे चाहें, तो अपने श्रेष्ठत्व की रक्षा के नाम पर कमर कसकर खड़े हो सकते हैं और अपने बुद्धिबल से आवश्यक उपायों का अवलंबन कर न केवल अपनी रक्षा कर सकते हैं, वरन् मानव-सभ्यता की उन्नति में विशेष सफलता प्राप्त कर सकते हैं। यदि उन्होंने प्रथम मार्ग का अवलम्बन किया होता, तो आज भारतीय इतिहास कैसा होता, इसकी कल्पना भी असंभव है। किंतु उन्होंने इसी द्वितीय पथ का अनुसरण किया और भारतीय इतिहास में संसार-भर के लिए जो आदरणीय

बातें हैं, उनका श्रेय उनके इसी निश्चय को है। इस निश्चय को कार्यरूप में परिणत करने का भार तत्कालीन जिन महापुरुषों पर था, उनमें भगवान् मनु का स्थान बहुत ऊँचा है। संपूर्ण भारतीय इतिहास के प्रत्येक पृष्ठ को काला किये विना हम मनुजी के मुख पर कालिख नहीं लगा सकते। मनुकालीन समाज के सामने सबसे बड़ा प्रश्न आत्मरक्षा का था। मुट्ठी-भर आर्यों की सन्तति विशुद्ध आर्य रहेगी अथवा धीरे-धीरे वर्णसंकरों की वृद्धि हो जायगी, यह कठिन समस्या उपस्थित थी। आत्मरक्षा का प्रश्न था। आर्यरक्त की शुद्धता का प्रश्न था और वह निर्भर था अनार्यों के साथ वैवाहिक संबंध से बचने पर। इस वैवाहिक संबंध से आर्य-स्त्री-समाज का विशेष संबंध था; क्योंकि किसी भी पुरुष का अनार्य-स्त्री के साथ संबंध करना-न-करना उसकी इच्छा पर निर्भर हो सकता था। किंतु स्त्री-समाज के शारीरिक शक्ति में हीन होने के कारण अनार्य उन पर बलप्रयोग भी कर सकते थे। संक्षेप में अनार्यों से आर्य-स्त्रियों की रक्षा करने पर आर्यजाति के पृथक् अस्तित्व का प्रश्न अवलम्बित था। हमारी यह कोरी कल्पना नहीं है। इसे सिद्ध करने के लिए मनुस्मृति के दो श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च।
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन भार्यां रक्षन्हि रक्षति॥ अ० ९ श्लो० ७॥
यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम्।
तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः॥ अ० ९ श्लो० ९॥

[मनुष्य अपनी संतति, चरित्र, वंश, स्वयं और अपने धर्म की रक्षा, स्त्री की रक्षा करते हुए ही कर सकता है। स्त्री जैसे पुरुष का सेवन करती है, संतति भी वैसी ही होती है। अतः पवित्र संतति के लिए स्त्री की रक्षा करे।]

यदि हम इस सिद्धांत को सामने रखकर मनुस्मृति का अध्ययन नहीं कर सकते, तो उसके तथा मनु भगवान् के साथ न्याय करना हमारे लिए असंभव है। मनुजी ने स्त्रियों को देवी कहकर ही संतोष नहीं किया, वरन् उन्हें गृह में सभी प्रकार के अधिकार देकर गृहदेवी बना दिया। यदि उन्होंने "न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति" नियम बनाया, तो उसका अर्थ केवल यही है कि गृह के बाहर के जीवनसंग्राम में उसे स्वतन्त्रता नहीं है। जहाँ तक गृह का संबंध है, वह केवल स्वतन्त्र ही नहीं, वरन् गृहस्वामिनी है। यदि वह घर और बाहर, दोनों जगह परतन्त्र कर दी गयी होती, तो भारतीय इतिहास में हमें राम, कृष्ण, भीम और अर्जुन आदि महापुरुषों के दर्शन ही न होते।

हमारा निज का मत यह है कि मनु महाराज ने अपने युग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए स्त्रीसमाज के साथ न्याय किया है। आज समय के परिवर्तन से हम स्त्रीसमाज के अधिकारों में परिवर्तन कर सकते हैं, पर मेरी तुच्छ बुद्धि में यह परिवर्तन सोच विचार के बाद होना चाहिए। इस समय तो पाश्चात्य समाज के अंधअनुकरण की ही विशेष धूम दिखायी देती है। "पुरुषों से स्त्रियाँ किसी भी प्रकार कम नहीं हैं, इसलिए उन्हें समान अधिकार मिलने चाहिए"—इसी प्रकार का तर्क चारों ओर सुनायी पड़ता है। मेरे विचार में यह तर्कशैली दोषयुक्त है। स्त्रीपुरुष न तो समान ही हैं और न असमान ही। न कोई छोटा है और न कोई बड़ा। प्रकृति ने जिसे जैसा निर्मित किया है, वह वैसा ही रहेगा। प्रकृति के बंधन को तोड़ना नितांत असंभव है। इसमें स्त्रीजाति का लाभ नहीं; क्योंकि इससे वह अपने व्यक्तित्व को खो बैठेगी।

प्रचार के लिये **च्यवनप्राश** आधा दाम

वीर्यविकार, धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, नपुंसकता, दमा, जीर्ण ज्वर, राजयक्ष्मा, फेफड़े और जिगर के रोगों पर रामबाण है। ४० तोले का मूल्य ४) रु०, १ सेर का ६) रु०, आधा दाम ४० तोला २) रु०, १ सेर का ३) रु०। डाकख़र्च पृथक्।

सत शिलाजीत

मूल्य ५ तो० ५) रु०, १० तो० ९) रु०, आधा दाम ५ तोला २॥) रु०, १० तोले का ४॥) रु० ६६

पता—संजीवन कं०, नं० ३०, कनखल (यू०पी०)

तकली का नाच

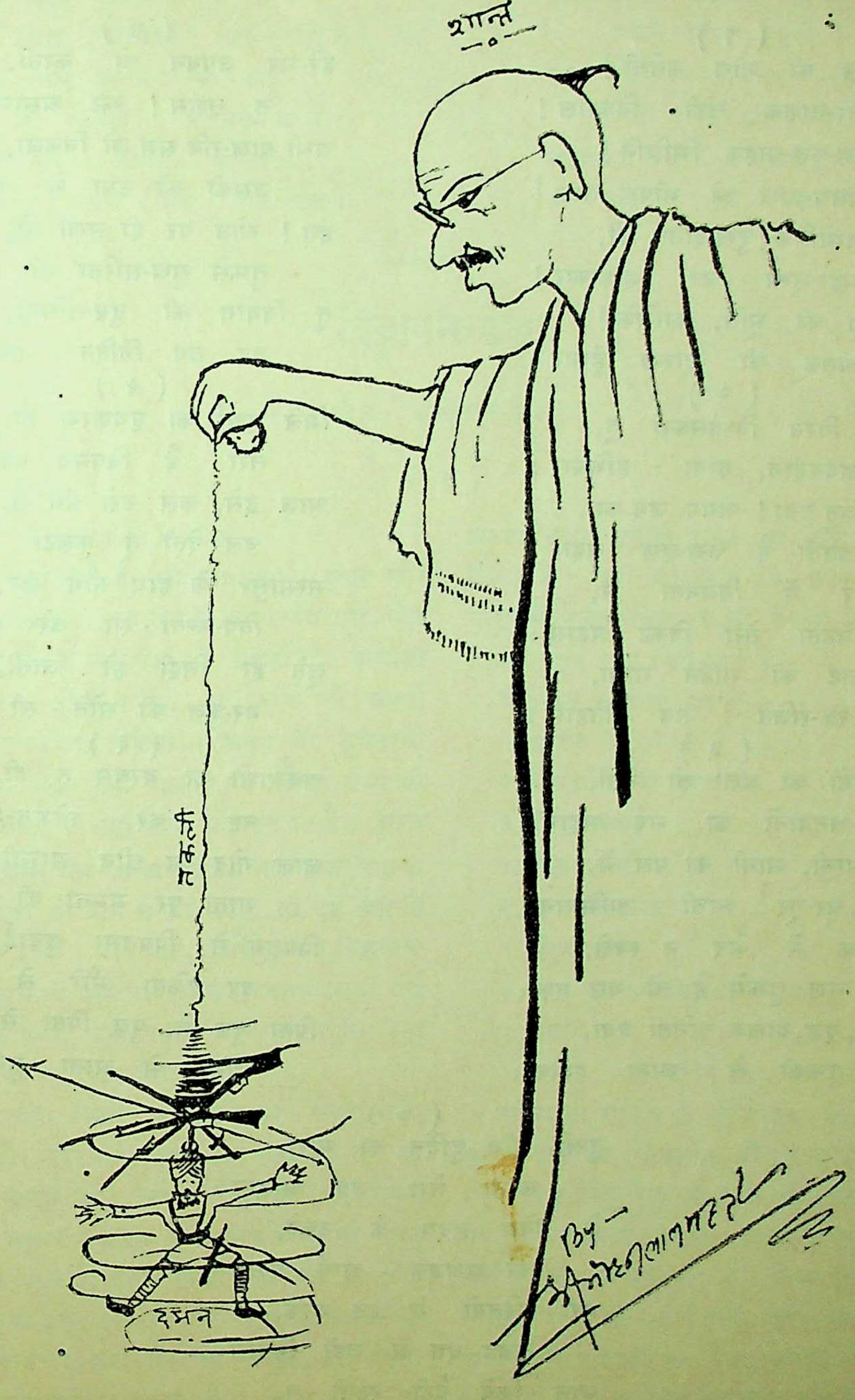
शान्त
तकली
दमन
By— श्री मोहनलाल महतो

मृत्यु !

[श्रीहरिशरण श्रीवास्तव 'मराल' बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

(१)
भैरव-दल की नीच नर्तकी !
नर-नाशक चंडी विकराल !
प्राण-पक्षि-कुल-ग्राहक भिल्लिनि !
प्रलय-काल की भीषण ताल !
अयि विभीषिके ! दुख-दानव की,
महा-शून्य का हाहाकार !
निष्ठुरता की मूर्ति, कालिके !
अंतक की दारुण हुंकार !

(२)
विपुल विश्व विध्वंसकरी तू,
हृदयहीन, हत्या - हथियार ;
जीव, जंतु क्या ! जंगम जग का
करती है क्षण-क्षण संहार ।
अंधकार में निर्जनता में,
उठता तेरा विकट प्रहास ;
मार-काट की गर्हित गाथा,
रक्त-रंजिते ! तव इतिहास ।

(३)
बलवानों का बल खो देती,
धनवानों का गर्व महान ;
अभिमानी, मानी का पल में,
चूर-चूर करती अभिमान ।
राव-रंक में भेद न रक्खे,
गुण तुझमें है तो बस एक ;
तरुण, वृद्ध, बालक, वनिता क्या,
तुझको ले जाना प्रत्येक ।

(४)
हरे-भरे उपवन को करती,
तू नृशंस ! झट अस्तव्यस्त ।
अभी बाल-रवि सम जो निकला,
उसको करे उषा में अस्त ।
हंत ! स्रोत पर ही सूखी यों,
तुझसे सुख-सरिता की धार ;
तू वियोग की दुष्ट-संगिनी,
वह तव निंदित नातेदार ।

(५)
मिले हुओं का पृथक्करण ही,
तेरा है विषमय व्यापार ;
आज इसे, कल उसे संग ले,
चल देती तू कुलटा नार ।
भस्मासुर के हाथ माँग कर,
विष-कन्या - सा करे सनेह ;
छूते ही मिट्टी हो जाती,
नर-कुल की सोने - सी देह ।

(६)
अबलाओं का बरबस तू ही,
नष्ट करे शोभन-शृंगार ;
लाल गोद का छीन मारती,
माता पर ममता की मार ।
प्रियतम से प्रियतमा छुड़ाई,
दूर किया भौंरे से फूल ;
पिता पुत्र से, पुत्र पिता से,
भगिनी से भ्राता सुख-मूल !

(७)
दुखी, दीन दुर्दिन का मारा,
करता तेरा जब आह्वान ;
ले नैवेद्य हृदय के टुकड़े,
करे अश्रुजल - अर्घ्य - प्रदान ।
भरी बस्तियों से हट करके,
ऊजड़ वन में जहाँ निवास ;
मान किये बैठी रहती तू,
आती नहीं उसी के पास ।

(८)

है अजेय तू, तुझसे मानी
बड़े-बड़ों ने भी है हार ;
तदपि जीत तुझको लेता है,
सिद्ध जानकर तेरा सार।
उसके लिए प्रकृति-प्रतिभा का,
तू केवल परिवर्तन-काल ;
धूपछाँह-सा जीना मरना,
तू संध्या वह प्रातःकाल।

(९)

पंचतत्त्व से प्राण हटाकर,
दे देती तू संकट घोर ;
इससे ही बतलाते तुझको,
प्राणी इतना, मृत्यु ! कठोर।
सच पूछो तो पतझड़ पीछे,
ज्यों वसंत की मिले बहार ;
महाकाल की माया-सी तू,
एवं नव - जीवन - दातार।

विज्ञापन-कला

[श्री पं० छन्नूलाल द्विवेदी]

(२)

विज्ञापन के अंग

अच्छी वस्तु वही है, जो सर्वांगपूर्ण, सुंदर और आकर्षक हो। जब उसके अंग-प्रत्यंग पूर्ण और सुंदर होंगे, तभी वह आकर्षक हो सकती है; अन्यथा वह अधूरी होगी और पाठकों का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकेगी। अपंग या कुरूप की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता; पर सौंदर्य सभी को आकर्षित करता है। यही हाल विज्ञापन का है। अगर विज्ञापन में किसी अंग का अभाव रह गया या उसका कोई अंग पूर्णता को प्राप्त न कर सका, तो वह कदापि आकर्षक नहीं होगा। यही नहीं, इसके कारण विज्ञापन-दाता का उद्देश्य भी पूरा नहीं होगा। जनता उसकी ओर ध्यान ही नहीं देगी, उसे पढ़ना और विज्ञापित वस्तु को ख़रीदना तो बहुत दूर रहा।

अगर विज्ञापन तैयार करनेवाले को उसके अंगों, उनके कार्य और उद्देश्य का पूरा ज्ञान नहीं है, तो वह कदापि एक अच्छा और सफल विज्ञापन नहीं तैयार कर सकता। मनुष्य के शरीर के विभिन्न अंगों का जिस प्रकार विभिन्न कार्य है, उसी प्रकार विज्ञापन के अंगों के भी विभिन्न कार्य हैं। इन सब अंगों के कार्य मिलकर ही एक ऐसा दृश्य उत्पन्न करते हैं, जो पाठकों को सहसा अपनी ओर आकर्षित करता है। उस दृश्य की अच्छाई-बुराई पर ही पाठक का विज्ञापन पढ़ना अवलंबित है। यही कारण है कि आज अमेरिका और योरप में केवल विज्ञापन की तैयारी में ही सैकड़ों और हज़ारों रुपए व्यय किये जाते हैं।

विज्ञापन के आठ अंग हैं—

१. हेडिंग या शीर्षक
२. सबहेडिंग या उपशीर्षक
३. विषय-प्रवेश
४. विषय-चर्चा
५. मूल्य-विवरण
६. प्रेरक वाक्य
७. वस्तु या कार्यालय का नाम
८. पता

हेडिंग या शीर्षक

हेडिंग या शीर्षक ही विज्ञापन का प्राण है। इसी की अच्छाई पर विज्ञापन की अच्छाई और सफलता निर्भर है। वस्तु कैसी ही उपयोगी, सस्ती और अच्छी क्यों न हो, यदि उसके विज्ञापन का शीर्षक अच्छा नहीं है, तो उसका प्रचार और बिक्री यथेष्ट नहीं होगी। विज्ञापनदाता को या विज्ञापन तैयार करनेवाले को सबसे अधिक ध्यान इसी पर देना चाहिए। अच्छा शीर्षक विज्ञापन के अन्य दोषों को प्रायः ढक लेता है।

शीर्षक प्रायः विज्ञापन के आरंभ में होता है। अधिकतर शीर्षक ही से विज्ञापन का आरंभ होता है। शीर्षक बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए; अधिक-से-अधिक सात-आठ शब्दों का हो। कम शब्दों का शीर्षक जल्दी पढ़ा जा सकता है। एक ही नज़र में वह पाठकों के ध्यान में आ सकता है और याद भी रह सकता है। अधिक शब्दों का और बड़ा शीर्षक पाठक न तो एक निगाह में देख ही सकते हैं और न उसे याद ही रख सकते हैं। शीर्षक की भाषा और भाव ऐसे हों, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विज्ञापित वस्तु पर प्रकाश डालते हों, उसकी उपयोगिता और उपादेयता बतलाते हों। आजकल बहुधा देखने में आता है कि लोग ऊटपटाँग शीर्षक लिख डालते हैं और उसी के बूते अधिक बिक्री की आशा करते हैं। पुनः निराश होने पर पत्र को, अपने भाग्य को या परिस्थिति को कोसते हैं; पर अपनी त्रुटि पर ध्यान नहीं देते।

अच्छा और भावपूर्ण शीर्षक यदि आठ शब्दों में भी नहीं बन सकता, तो उपशीर्षक का उपयोग करना चाहिए, उपशीर्षक के संबंध में आगे यथास्थान विस्तारपूर्वक लिखेंगे।

शीर्षक कई प्रकार के होते हैं। जहाँ, जब और जिस अवस्था में जो उपयुक्त जँचे, उसका वहीं प्रयोग करना चाहिए। न कि एक ही प्रकार के शीर्षक को जन्म-भर का पट्टा लिख दिया जाय। उदाहरण के लिए अमृतधारा का विज्ञापन देखिए, समयानुसार उसके विज्ञापन का शीर्षक बदलता रहता है। इससे वह सभी प्रकार और श्रेणी के तथा सभी प्रकार की प्रकृति के लोगों पर अपना प्रभाव जमा सकता है। कोई मनुष्य आलसी होता है, कोई बहुत चालाक, कोई बहुत परिश्रमी और कोई बहुत सीधा-सादा। सभी को एक प्रकार का शीर्षक नहीं आकर्षित कर सकता। यदि विज्ञापन का शीर्षक नियमानुकूल बदलता नहीं रहेगा, तो उसका यथेष्ट प्रभाव नहीं पड़ सकता। शीर्षक तैयार करते समय इस बात का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए कि विज्ञापित वस्तु पुरुषों के उपयोग की है या स्त्रियों के उपयोग की। यह भी ध्यान में रहे कि किस श्रेणी के मनुष्यों में इसका अधिक प्रचार अभीष्ट है। सभी वस्तुएँ तो सब श्रेणी के मनुष्यों के काम की हो नहीं सकतीं। जनता अपनी हैसियत, आमदनी और आवश्यकता के अनुसार ही किसी वस्तु को ख़रीदेगी। अतः जैसे लोगों के अधिक काम की जो चीज़ हो, उसके विज्ञापन का शीर्षक उस श्रेणी के मनुष्यों की प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुसार ही होना आवश्यक है। कारण, वह शीर्षक उनको आकर्षित कर सकेगा। अगर वस्तु स्त्र्युपयोगी है, तो उन्हीं की आवश्यकतानुसार शीर्षक बनाना चाहिए। अन्यथा अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती।

शीर्षक के प्रकार

१. सूचनात्मक या वर्णनात्मक
२. आदेशात्मक
३. प्रश्नवाचक
४. निरर्थक

(१) सूचनात्मक या वर्णनात्मक—इस प्रकार के शीर्षक बहुत साधारण होते हैं, आसानी से लिखे भी जा सकते हैं। जैसे—"ब्राह्मी बादाम पाक" "सुँघनी साहू का सबसे प्राचीन कारख़ाना" "मदनमस्त चूर्ण" "आधे मूल्य में वाटरप्रूफ़" आदि। इस प्रकार के शीर्षक एकदम व्यर्थ नहीं जाते, उनका कुछ-न-कुछ प्रभाव पड़ता है; पर ऐसे शीर्षकों का प्रभाव थोड़ा बहुत उन्हीं पर पड़ता है, जिनको इनकी आवश्यकता होती है। ऐसे शीर्षकों को देखकर उन्होंने विज्ञापन पढ़ा और वह उनकी इच्छा को प्रबल कर सका तथा उसकी उनको आवश्यकता हुई, तभी वे विज्ञापित वस्तु को ख़रीदेंगे। किंतु ऐसे शीर्षक सर्वसाधारण को आकर्षित करने में अधिक सफल नहीं होंगे।

(२) आदेशात्मक—इस प्रकार के शीर्षक अधिक ज़ोरदार होते हैं। यह इतनी आसानी से लिखे भी नहीं जा सकते। पर इस श्रेणी के शीर्षक लिखते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना पड़ता है कि उससे ख़रीदार के स्वाभिमान पर आघात नहीं पहुँचता। अतः ऐसे शीर्षक लिखते समय ख़रीदार की प्रवृत्ति और आवश्यकताओं का पूरा ख़याल रखना पड़ता है। ऐसे शीर्षक की भाषा सरल, विनीत पर आदेशयुक्त होनी चाहिए। आदेश का भाव प्रायः पाठक के हृदय में अनेक विचार उत्पन्न करेगा। फलतः विज्ञापित वस्तु की आवश्यकता भी सहसा प्रतीत होने लगेगी। यह आवश्यक नहीं कि वह उसी समय उस वस्तु को ख़रीद ले, पर उसका ध्यान

उसके हृदय में सदा बना रहेगा और सुविधा उपस्थित होते ही वह अपनी आवश्यकता पूर्ण करने की चेष्टा करेगा। इस प्रकार के शीर्षक के उदाहरण ये हैं—

'स्वतंत्र बनो", "स्वावलंबी हो", "दुर्बलता दूर कीजिए", "फ़ोटोग्राफ़ी सीखिए" 'स्वस्थ बनिए", "घर बैठे डाक्टर बनिए' आदि।

(३) प्रश्नवाचक—इस प्रकार के शीर्षक का भी प्रभाव ख़ूब पड़ता है। पर ऐसे शीर्षक तैयार करते समय इस बात का ध्यान रहना आवश्यक है कि उसमें व्यक्तिगत आक्षेप न हो। अगर पढ़नेवाले की व्यक्ति पर कटाक्ष होता है, तो शीर्षक का असर उलटा पड़ता है। जैसे "क्या आप गंजे हैं?" "क्या आपको कम दीखता है?" आदि शीर्षक पढ़कर पाठक चिढ़ जायगा। वह कभी ऐसे विज्ञापन पढ़ने की चेष्टा नहीं करेगा। अगर ये ही शीर्षक इस ढंग से लिखे जायँ—"क्या आपको बालों की कोई शिकायत है?" "क्या आपको नेत्र-संबंधी कोई शिकायत है?" तो पाठक को यह प्रतीत होगा कि विज्ञापनदाता उससे सहानुभूति प्रकट करता है और उस शिकायत को दूर करने के लिए वह तत्पर है। ऐसा विचार उत्पन्न होते ही जो पाठक इन रोगों से ग्रस्त है, उस विज्ञापन को पढ़ेगा और फलतः वह उस दवा को ख़रीदेगा भी।

प्रश्नवाचक शीर्षक सदा विज्ञापित वस्तु से प्रत्यक्ष रूप में संबंधित रहने चाहिए।

(४) निरर्थक—जैसा नाम से प्रकट होता है, इस प्रकार के शीर्षक विज्ञापित वस्तु से प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी रूप में संबंध नहीं प्रदर्शित करते। ऐसे शीर्षक सदा अस्पष्ट होते हैं। उदाहरण—"१०००) का इनाम", "आवश्यक सूचना", "ज़रा इधर भी देखिए" आदि। इस प्रकार के शीर्षक में जो भारी ख़राबी होती है, वह यह है कि वह उद्देशित ख़रीदारों को अपनी ओर आकर्षित नहीं करता, यों भले अन्य साधारण व्यक्ति इसे देख जायँ, पर ख़रीदें नहीं। मान लीजिए किसी को सिगरेट का विज्ञापन देना है। वह इस बात को घोषित करना चाहता है कि जो उसकी सिगरेट को ख़राब या हानिकारक सिद्ध कर देगा, उसे वह १०००) का इनाम देगा। इस प्रकार वह सिगरेट के शौक़ीनों को उसकी सिगरेट पीने अर्थात् ख़रीदने के लिए आह्वान करता है, ताकि उसकी बिक्री हो, पर "१०००) इनाम" से उसके मन की बात ध्वनित नहीं होती और सिगरेट पीनेवाले शौक़ीन उसे और कोई चीज़ समझकर उसे पढ़ते नहीं। अन्य बेकार लोग, निठल्लू लोग, जिनके पास कोई काम नहीं है, ख़ाली बैठे ऐसे पैसे कमाने की तरकीब सोचा-विचारा करते हैं, वे ही उस शीर्षकवाले विज्ञापन को बड़े चाव से पढ़ेंगे, पर न उनके पास सिगरेट ख़रीदने को पैसे हैं और न अन्य प्रकार की सिगरेटों का अनुभव ही, फिर उनके पढ़ने से विज्ञापन-दाता को फ़ायदा ही क्या हुआ। इस प्रकार के शीर्षक-वाले विज्ञापन कोई कामकाजी, परिश्रमी या उद्यमी नहीं पढ़ेगा। कारण उसको अपने काम ही से फ़ुरसत नहीं कि वह ऐसे धोखे की टट्टी में हाथ डाले। अतः ऐसे शीर्षक न लिखना ही श्रेयस्कर है।

हेडिंग या शीर्षक का मुख्य कर्त्तव्य आकर्षित करना है। अतः उसका टाइप भी बहुत आकर्षक होना आवश्यक है। अगर यह उचित जँचे कि हाथ से लिखा हेडिंग अधिक अच्छी और सुंदर जँचेगा, तो हाथ ही से लिखकर उसका ब्लाक बनवा लिया जाय। यह आवश्यक नहीं कि सदा टाइप की ही शरण ली जाय। पर हाँ, हेडिंग की लिखावट या टाइप सुंदर और स्पष्ट होनी चाहिए।

सब-हेडिंग या उपशीर्षक

हेडिंग अगर बड़ा हो और स्थान कम, तो उसे दो लाइनों में लिखे! अगर शीर्षक (हेडिंग) अधिक-से-अधिक सात-आठ शब्दों में सुंदर और भाव-पूर्ण नहीं बन सकता, तो सब-हेडिंग का प्रयोग करना चाहिए। कारण, पाठक एक बार नज़र फेरने में अधिक से अधिक सात-आठ शब्दों ही को देख सकता है। अतः अगर सब-हेडिंग की आवश्यकता प्रतीत हो, तो वह हेडिंग के नीचे लिखी जाय, पर उसका टाइप हेडिंग से विभिन्न होना चाहिए और जहाँ तक हो छोटा हो। सब-हेडिंग भी बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए। वह भी छोटा पर हेडिंग के पूर्ण आशय को प्रदर्शित करनेवाला हो।

कोई-कोई विज्ञापनदाता आवश्यकतानुसार एक से अधिक सब-हेडिंगें लिखते हैं, पर यह बड़े अभ्यास और अनुभव का कार्य है। कारण अधिक सब-हेडिंगों

के प्रयोग से प्रायः विज्ञापन की सुंदरता नष्ट हो जाने का डर रहता है और विज्ञापन बड़ा हो जाने की भी आशंका । पर बड़े या अनेक वस्तुओं का एक साथ विज्ञापन देने में प्रायः ऐसा हुआ करता है । अगर हेडिंग से ही मतलब निकल जाता हो, तो सब-हेडिंग की आवश्यकता नहीं । यदि अनिवार्य ही समझा जाय, तो वह स्पष्ट और भावपूर्ण तथा हेडिंग से सुसंबद्ध हो ।

(क्रमशः)

स्त्रियों के गर्भाशय के रोगों की ख़ास चिकित्सिका

श्रीमती गंगाबाई की

पुरानी सैकड़ों केसों में कामयाब हुई, शुद्ध वनस्पति की औषधियाँ

बंध्यात्व और गर्भाशय के रोग दूर करने के लिये

गर्भजीवन प्रशंसापत्र

गर्भजीवन
रजिस्टर्ड

से ऋतु-संबंधी सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं। रक्त तथा श्वेत प्रदर, कमलस्थान ऊपर न होना, पेशाब में जलन, कमर का दुखना, गर्भाशय में सूजन, स्थान-भ्रंशी होना, मेद, हिस्टीरिया, जीर्ण तथा प्रसूति-ज्वर, बेचैनी, अशक्ति आदि और गर्भाशय के तमाम रोग दूर हो जाते हैं। यदि किसी प्रकार भी गर्भ न रहता हो, तो अवश्य रह जाता है। क़ीमत ३) मात्र। डाक-ख़र्च पृथक्।

गर्भरक्षक
रजिस्टर्ड

से गर्भ का कुसमय गिर जाना, गर्भ-धारण करने के समय की अशक्ति, प्रदर, ज्वर, खाँसी और ख़ून का स्राव आदि सभी बाधक बातें दूर होकर पूरे समय में सुंदर तथा तंदुरुस्त बच्चे का जन्म होता है। हमारी ये दोनों औषधियाँ लोगों को इतना लाभ पहुँचा चुकी हैं कि ढेरों प्रशंसा-पत्र आ चुके हैं। मूल्य ४) मात्र। डाक-ख़र्च अलग।

गर्भरक्षक प्रशंसापत्र

हाल के प्रशंसापत्रों में कुछ नीचे पढ़िए—लोग क्या कहते हैं !

बंबई ठेकाना महालक्ष्मी ता० २०।१०।३०

आपकी औषधी से मेरी पत्नी के लड़के का जन्म हुआ वह अभी चौदह रोज़ का है—महीजी माधव

नोदलपाडा—(पापा नदरबाग) ता० २५।१०।३०

आपने मेरी पत्नी के लिए औषधी भेजी थी उससे गर्मी के दर्द को आराम होकर लड़की का जन्म हुआ। वह अभी तेरह माह की है—अजमशी बालजी देसाई

कालोल—(डी० पंचमहल) ता० २६।१०।३०

मेरी पत्नी के लिए जो दवा दिया था उससे फायदा होकर लड़के का जन्म, तीन रोज का हुआ—मिस्त्री भोगीलाल मंगथजी

बरगड (डी० संबलपुर) ता० २७।६।३०

मैं आपकी दवाई मेरी औरत के लिए और दूसरी जगेपर परीक्षा के लिए दिया था वह दो जगह पर संपूर्ण सफल हुई—जयशंकरदासजी

धमीज—(डी० अहमदाबाद) ता० १७।१०।३०

परमात्मा की कृपा से आपकी दवाई सफल हुई अभी मेरी पत्नी के गर्भ के आठवें मास चले—भोगीलाल गोइताराम

गोडीया बाजार-करांची ता० २६।१०।३०

मेरी देवरानी को मेरे जैसी बीमारी थी उसको मेमसाहिब ने नस्तरक्रिया करने को कहा था किंतु आपकी औषधि से संपूर्ण फायदा होगया मीराबाई C/o पापरदास ईश्वरदास

याद रक्खो कि ऐसे एक दो नहीं, किंतु सैकड़ों प्रशंसा-पत्र मिल चुके हैं।

अपनी तकलीफ़ की पूरी हक़ीक़त साफ़ लिखो ! २१

पता—गंगाबाई प्राणशंकर, गर्भजीवन औषधालय, रीची रोड, अहमदाबाद

पुस्तकालय
111027
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

अवसर

[श्रीसाधुशरण]

हँस लो ऐ मतवाले फूल !
तुरत आयँगी निर्दय घड़ियाँ ;
बिखर पड़ेंगी नरम पँखुड़ियाँ ;
लिये-लिये आशाओं को तुम—
बहते पहुँचोगे उस कूल ॥ हँस० ॥

देखो हवा झझकती आती ;
कलियाँ कंपित हैं कतराती ;
उनसे भी तो कोमल हो तुम—
बहुत कठिन उस यम का शूल ॥ हँस० ॥

छिद्र हृदय का हिलमिल भर लो ;
प्रेम-सुधा-रस-वर्षण कर लो ;
चूको मत जब तक यह अवसर—
फिर तो होओगे ही धूल ॥ हँस० ॥

सेना में भारतीयत्व

[श्रीदीनानाथ व्यास विशारद]

प्रत्येक मनुष्य का प्रधान कर्तव्य है कि वह अपने देश को बाहरी हमलों से बचावे। इसके लिए उसका शिक्षित होना परमावश्यक है। यदि वह इसके लिए तैयार नहीं, तो कोई उसे नागरिक कहने के लिए उद्यत नहीं। यदि यह कह दिया जाय कि इस विषय में शिक्षा प्राप्त करना उसका कर्तव्य है, तो किसी को भी इसमें शांति नहीं। यहाँ तक कि इसमें उसका दिल भी शांत नहीं होता। अपने देश को बाहरी हमलों से बचाना प्रत्येक नागरिक का जन्मसिद्ध अधिकार है। यदि वह इस तरह कार्य करने से रोका जाय, तो वह रोकनेवाले को दबा सकता है, किंतु भारतवर्ष-जैसे पराधीन देश में इन बातों को कार्यरूप में लाना नितांत दुरूह है। आंग्ल शासन-कर्ता भारतीयों को उनकी मुल्की हिफ़ाज़त से कर्तव्य-च्युत एवं अधिकार-हीन कर रहे हैं। भारतीय सेना (जल एवं थलसेना) जो रक्षा (Defence) के लिए नियुक्त है, वह प्रायः सर्वांग में आंग्लजनों से ही परिपूर्ण है। भारतीय सेना का भारतीय विभाग सिर्फ़ सहायता के लिए नियत है। वह हिस्सा देश की सेवा एवं समाज-रक्षा के लिए नहीं वरन् नौकरी के उद्देश्य को पूर्ण करने के ही लिए नियत है। इस विभाग में भारतीयों की कुछ ही जातियों को भरती किया जाता है और इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जाता है कि उनमें कहीं देशसेवा के भाव जाग्रत् न हो जायँ। उनको विशेषतः यही शिक्षा दी जाती है कि नौकरी ही तुम्हारा मुख्य उद्देश्य है, तुम नागरिक नहीं हो, न हो सकते हो। जब कभी लड़ाई या अन्य कोई आवश्यकता आ पड़ती है, तो भारत-सरकार आंग्लसेना से ही परामर्श करती है एवं उन्हीं अधिकारियों पर विश्वास रखती है। हाँ, कटने-मरने के लिए यदि कोई है, तो वे हैं भारतीय। भारतीय अधिकारियों को तो कोई पूछता भी नहीं। आंग्ल-भारतीय सेना एवं जलसेना Imperial Military Organisation का एक विभाग है। यद्यपि यह सेनाविभाग अपने-आप पूर्ण है, तो भी

स्वराज्य-सरकार से इसका कोई संबंध नहीं, न उसमें इसका स्थान ही है; क्योंकि इनमें वास्तविक स्वाधीनता की बू भी नहीं। साथ ही इसके प्रत्येक कार्य नियमित एवं संकुचित रूप से होते हैं। औपनिवेशिक स्वराज्य का Dominion army पर पूरा अधिकार रहता है, अर्थात् वह सेना भारतीय अधिकारियों द्वारा संचालित होती है और औपनिवेशिक सरकार ही उस पर अपना अधिकार रखती है। जो राष्ट्र की एक-मात्र आधार एवं दाहिनी भुजावत् है, यदि वह दूसरों के हाथों में हो और यदि विदेशी ही उसका संचालन करें, तो स्वराज्य असंभव है। सेना में भारतीयत्व इसीलिए नहीं अपनाया जाता कि इस मुल्क का राज्य नहीं, न इस मुल्क की राय से ही राज्यप्रबंध होता है। परंतु हवा अब दूसरी बहने लगी है और हम अब सेना में भारतीयत्व की आशा करते हैं तथा यह भी आशा रखते हैं कि वह स्वराज्य-सरकार के ही हाथ में हो। अभी भी भारतीय सेना विदेशियों के पूर्णाधिकार में है। यह व्यवस्था इस तरह हो सकती है कि उस सेना के अधिकार एवं विभाग भारतीयों के हाथ में दे दिये जायँ और इस नयी संरक्षक सेना की उचित सलाह एवं सहायता के लिए एक चतुर एवं सुप्रबंधकारिणी कमेटी नियत कर दी जाय और वह कमेटी संरक्षण-संबंधी सब कार्यों का संबंध कैबिनेट (Cabinet) से रक्खे। परंतु आजकल की व्यवस्था बहुत शोचनीय है। संरक्षण के व्यय, नीति तथा संगठन (Organisation) के लिए भारतीय क़ानून-कारिणी सभा की शक्ति नहीं के बराबर है। सरकार व्यर्थ ही इस विषय में अपनी डींग मारती है। सन् १९२७ में सर एंड्रयूस्कीन कमेटी (Sir Andrew Skeen Committee) ने भारत सरकार के सम्मुख कई प्रस्ताव रक्खे, जिनमें स्पष्टतया यही दिखाया गया था कि जहाँ तक हो सेना में भारतीयपन बहुत ही शीघ्र लाना चाहिए। परंतु सरकार के कानों पर जूँ नहीं रेंगी। भारत-सरकार सेना के भारतीयपन से नाराज़ी प्रकट नहीं करती, परंतु प्रत्यक्ष कार्यरूप में लाने से पीछे हटती है। इसीलिए हम भी सेना-संबंधी कार्यों में पूर्ण स्वतंत्र होना चाहते हैं। आजकल विदेशी सरकार इस बात की परवा नहीं करती कि संरक्षण के लिए कितनी फ़ौज की आवश्यकता है। वह अंधाधुंध सेना भरती करती ही चली जाती है। साथ ही व्यय भी अपरिमित होता ही चला जाता है। वह व्यय होता किसका है? भारत का और क्या यह सेना भारतीयों का नमक खाकर भारतीयों को कुछ फ़ायदा पहुँचाती है? कुछ भी नहीं। इन सब बातों पर विचार करके यह निष्कर्ष निकलता है कि हिंदुस्थानियों को अपने संरक्षण के लिए स्वतः ही खड़ा हो जाना परमावश्यक है। कई भारतीय इस माँग को भारत-सरकार के सम्मुख रख रहे हैं, परंतु अभी फल कुछ नहीं निकला। आम तौर से इँगलैंड के सत्वाधिकारियों ने इसमें भी बाधा डाल रक्खी है, वे हिंदुस्थान को अधिक स्वतंत्रता देने को तैयार नहीं। सन् १९१९ की ईशर-कमेटी ने लिखा है—

"We are confronted with evidence of the continued reluctance of the India Office to relinquish into the hands of the Government of India greater freedom in the administration of the army, even in cases where this could be done without compromising the administration of the army at home or contravening the sound principle of the uniformity in military policy. We are strongly of opinion that greater latitude should be allowed to the Governor-General in Council and the Commander-in-chief in India in matters affecting internal military Administration."—Esher Committee.

भावार्थ—भारतीय ऑफ़िस इँगलैंड (India office) ने जो भारतीय सरकार को सेना-विभाग के सुचारु प्रबंध के लिए स्वतंत्रता दे रक्खी है और उस प्रबंध में असावधानी प्रकट कर रक्खी है, साथ ही भारत को जो स्वतंत्रता धीरे-धीरे दी जा रही है, उसका हम भय सुबूत तथा गवाहियों के पूर्ण विरोध करते हैं। जहाँ हम सब कार्य अपनी शक्ति एवं सलाह के साथ यहीं तय कर सकते हैं, वहाँ सब मामले हमसे अलग क्यों तय किये जायँ। हमारी यह प्रबल धारणा है कि गवर्नर जेनरल अर्थात् वाइसराय और भारतीय सेनापति (Commander-in-chief)

को और भी शक्ति प्रदान करनी चाहिए, जिससे वे सुविधानुसार भारतीय सेना के आंतरिक कार्यों का पूर्णरूप से नियंत्रण कर सकें और करते रहें।

सर पुरुषोत्तमदास-ठाकुरदास जो १९२२ की लॉर्ड इंचकेप कमेटी (Lord Inchcape's Committee) के सदस्य थे, लिखते हैं—

"This interference of the Secretary of State is not confined to questions of Imperial interests or to broad lines of policy, but extends to such administrative details as the comforts of Britlsh soldiers or the emoluments of officers."

भावार्थ—सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट की इस तरह की रुकावट से न तो सरकार का ही फ़ायदा है, न इसमें कोई भविष्योन्नति की नीति का पालन है, वरन् यह रुकावट तो ब्रिटिश-सिपाहियों तथा अफ़सरों के आराम तथा विलासादि की ही अभिवृद्धि करने में सहायक हो रही है।

हम लोगों की इच्छा तो यह है कि सिविल अधिकारीवर्ग हमेशा सेना-अधिकारीवर्ग पर अधिकार रक्खे, परंतु स्पष्ट तो यह नज़र आ रहा है कि सेना के अधिकारिवर्गों के हाथ में ही सिविल अधिकारीवर्ग हैं। हमारी सेना की नीति और बचाव (Defence) की स्कीम में बाहरी दख़ल बिलकुल नहीं होना चाहिए। मांटफ़ोर्ड रिपोर्ट में (Montford Report) खुले शब्दों में भारत-सरकार के इस विषय के विचारों का दिग्दर्शन करते हुए स्पष्ट बताया गया है—

The responsibility for India's defence is the ultimate burden which rests on the Government of India, and it is the last duty of all which can be committed to inexperienced or unskillful hands. So long as India depends for her internal and external security upon the army and navy of the United Kingdom, the measure of self determination which she enjoys must be inevitably limited. We cannot think that the Parliament would consent to the employment of British arms in support of a policy over which it had no control and of which it might disapprove. The defence of India is an Imperial question; and for this reason the Government of India must retain both the power and means of discharging its responsibilities for the defence of the country and to the Empire as a whole."

भावार्थ—भारत-सरकार के ऊपर भारत की रक्षा (Defence) की पूरी ज़िम्मेदारी एवं बोझ आ पड़ा है। जब तक भारतवर्ष अपनी रक्षा की चिंता न करते हुए भारतीय सेना एवं जलसेना के ऊपर अवलंबित है, तब तक वह अपने पैर पर खड़े होने योग्य नहीं। विदेशियों का यह भी कहना है कि उसमें अभी उतनी अक़ल भी नहीं। हम इस बात के समझने में असमर्थ हैं कि पार्लमेंट अँगरेज़-सेनापतियों को सेना-सामग्री के ख़र्च के लिए कैसे आज्ञा दे देगी? उसे तो इसमें हाथ भी नहीं डालना चाहिए। भारतवर्ष का बचाव एक राजकीय प्रश्न है, इसलिए भारतवर्ष की सरकार को देश के बचाववाले अधिकारों को अपने ही हाथ में रखना पड़ता है।

इतना होने पर भी हमारे सेना-संबंधी कार्यदक्षता में कौन विघ्न डालता है? हिंदुस्थानियों को सेना के कार्य में होशियार बनाने की बिलकुल कोशिश नहीं की जाती; बल्कि हिंदुस्थानियों पर यह दोषारोपण किये जाते हैं कि वे इस कार्य के योग्य नहीं, उनको कैसे ऐसी ज़िम्मेदारी के काम सौंपे जायँ? सन् १९२७ की स्कीन-कमेटी (Skeen Committee) ने अँगरेज़ों द्वारा लगाये गये इन झूठे अभियोगों का पूर्ण प्रदर्शन किया। उस कमेटी द्वारा सेना में भारतीयपन लाने की ज़ोरों से सिफ़ारिश की गयी। परंतु पालन तो किया गया उन बातों का, जिन बातों का कमेटी द्वारा खंडन हुआ था।

हथियार रखने के क़ायदों के अनुसार (Arm's Rules) हमेशा से ही योरपियनों या पूर्वी हिंदुस्थान में रहनेवाली जातियों को तरजीह दी जाती है। इससे मामूली गोली-बारूद और हथियार, इन्हें विना लाइसेंस के रखने का अधिकार हो जाता है। आर्म्सरूल्स (Arm's Rules) में इतनी गुंजाइश के होते हुए भी सिर्फ़ कुछ ही ईसाई-वाले-

टियर कॉर्प्स (Volunteer Corps) में भरती किये गये, बाक़ी कोई भी हिंदुस्थानी नहीं लिया गया। अपनी रक्षा के लिये हथियार रखने की जो आज्ञा थी, वह भी वापस ले ली गयी। इस तरह यह भी अधिकार छीन लिया गया। और उन्हें सेना-विभाग के योग्य न समझा गया। भारतवर्ष की यह दशा सन् १९१४ तक रही। सन् १९२० में Territorial Force Act (टैरिटोरियल फ़ोर्स-एक्ट) क़ायम हुआ। इसके पहले ही लॉर्ड लिटन के ज़माने में (Arm's Act) आर्म्स-एक्ट के अनुसार भारतीय निहत्थे कर दिये गये थे। यह एक्ट १८७८ में क़ायम हुआ था। उपरोक्त नये एक्ट से नागरिकता एवं बचाव की संभावना हुई और जनता में स्वरक्षा एवं सैनिक-जीवन की जागृति फैली। अभी तक हिंदुस्थान सरकार द्वारा सैनिक-शिक्षा प्राप्त करने से रोका गया था। यहाँ तक कि उक्त विषयक भावों का आना भी हानिकर था। सारा राष्ट्र १८७८ के क़ानून के अनुसार निःशस्त्र कर दिया गया था। बाहरी जातियों को अर्थात् एंग्लो-इंडियन, यूरेशियन एवं अन्य जातियों को लायसेंस स्वतंत्रता से इसलिए दिया गया कि वे जातियाँ धर्म, कर्म, जाति इत्यादि में भारतीयों से भिन्न होने के कारण झट ही रात-दिन होनेवाली घटनाओं की ख़बर भारत-सरकार को दे दें। सेना का भारतीय विभाग नेपाली और पूर्वी लोगों द्वारा भर लिया गया। इन जातियों का नाम सैनिक-जाति (Martial Race) रक्खा गया। जो भारतीय सेना-विभाग में रक्खे जाते हैं, उन्हें सेना की उच्च शिक्षा नहीं दी जाती, न उनको नागरिकता की ही झलक देखने को मिलती है। उनको राष्ट्रीय विचारों एवं सहानुभूति से बिलकुल अलग रक्खा जाता है। उसमें शूरता एवं वीरता के भाव नहीं भरे जाते। वे तो इस तरह की कठपुतली बना दिये जाते हैं, जो विना बिचारे मालिक के इशारे पर नाँचें। वे नौकरी के भावों से इस तरह परिपूर्ण हो जाते हैं कि विना आगा-पीछा सोचे मालिक के हुक्म का पालन करते हैं। यदि उनसे कोई आशा करे, तो वह आशा व्यर्थ है।

इस तरह की सेना का नाम तो रक्खा जाता है "राष्ट्रीय सेना" (National Army); परंतु यह सेना सिवा भारतवर्ष के दबाने के और किसी काम में नहीं आती। इस भारतीय या राष्ट्रीय सेना को तो स्वदेशी शिक्षा-प्राप्त सेना होना चाहिए। इसमें वे ही भाव भरे जाने चाहिए जो भारत की प्राचीन वीरता का स्मरण दिलावें। भारतीयों को इसकी प्रत्येक शाखा अर्थात् जलसेना से लेकर वायु-सेनापर्यंत पूर्ण जानकारी होनी चाहिए, तब ही हमारी स्वाधीनता (Self-Government) सफल कही जा सकती है। अँगरेज़ों ने हमारे सैनिक-भावों को बढ़ाया नहीं। उनका यही प्रधान कर्तव्य है कि वे भारतीयों को शिक्षित बनाकर उनके अधिकार उन्हें वापस दे दें। लोगों को अयोग्य कहकर पीछे पड़े रहने देना तथा जनता में अविश्वास फैलाना ही पर्याप्त नहीं है। संपूर्ण एशिया इस समय अपनी राष्ट्रीय सेना से सुसज्जित है। नागरिकता का चारों तरफ़ विकास हो रहा है। आधुनिक सेनाएँ नवीन हथियारों एवं सैन्य-कला से पूर्णतया अभिज्ञ हैं। अपने-अपने आवश्यकतानुसार सभी अपने ही देश में हथियारों को बनाते हैं। सभी देशों में सेना की उच्च शिक्षा देने के लिए कालेज इत्यादि कई साधन हैं। परंतु इस अभागे देश भारतवर्ष को सैनिक-शिक्षा पाना बिलकुल मना है। आश्चर्य तो यह है कि मना करनेवाले स्वयं इस विद्या को भारतवर्ष के पैसे से ही सीखते हैं। हमारे अर्ध-शिक्षित पड़ोसियों तक ने इस विषय में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है। हम नहीं कह सकते कि आगे हमारा और कितना पतन होगा। हमारी इस दुर्दशा का एक-मात्र ज़िम्मेदार इँग्लिस्तान ही है। ये बातें कोरी कल्पना के क़िले नहीं, वरन् हमारे पतन का एक दर्दनाक चित्र हैं। ये वे ही सच्चे कारण हैं, जिनसे आज हमारा राजनैतिक पतन हुआ है। यह प्रश्न राजभक्ति या अराजकता का नहीं, वरन् भारतवर्ष के रहनेवालों की रक्षा का प्रश्न है।

हम भारतीयों के जीवन का एक भाग सैनिक-जीवन होना भी परमावश्यक है। हमें धार्मिक भोलेपन की तरह विना बिचारे आज्ञाओं का पालन नहीं करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य एवं अधिकार है कि वह विना रोक-टोक के सेना में भाग ले। सेना के अधिकारियों का यह मुख्य कर्तव्य है कि भरती के समय जाति-पाँति का भेद न रक्खें।

आजकल भारतवर्ष में अँगरेज़ी फ़ौज प्रायः ६६००० है, हिंदुस्थानी १३८००० है, रियासतों की प्रायः २७०००

है। अँगरेज़ी-सेना का हिंदुस्थानी-सेना से चौगुना व्यय है, यद्यपि अँगरेज़ी सेना आधे के बराबर है; ग़दर के बाद से अँगरेज़ी सेना ब्रिटिश-इंपीरियल सेना (British Imperial army) में समझी जाती थी, परंतु सन् १८९७ से सेना में रिज़र्व-सिस्टम(Reserve System) का पालन होने से, १८९५वाली प्रेसीडेंसी सेना-प्रणाली (Presidency Army System) रोक दी गयी और समस्त भारतवर्षीय सेना एक कर दी गयी। भारतवर्ष कमांडर-इन-चीफ़ के आधिपत्य में चार भागों में बँट गया। सन् १९२१ में सेना में कई विभाग एवं सुधार हुए और सेना सुदृढ़ कर दी गयी। हथियारों एवं जल-थल-सेना आदि में भी कई परिवर्तन हुए। भारतीयों की मुख्य माँग यही है कि सेना में भारतीयपन अत्यंत शीघ्रता से लाया जाय, जिससे सेना भारतवर्ष पर कुछ सहानुभूति प्रकट कर सके। भारतीय सेना के दो भाग हैं—(१) वायसराय के आधिपत्य में (२) बादशाह के आधिपत्य में। पहली के अधिकार बँधे हुए हैं, वह सिर्फ़ आज्ञा ही देती है। अधिकतर इस सेना में लोग दर्जे-ब-दर्जे ही लिये जाते हैं, नये नहीं भरती किये जाते। लेकिन युद्ध के पहले कोई भी भारतीय बादशाही कमीशन (Imperial Commission) में नहीं रक्खा गया था। ये जगहें आजकल उन्हीं भारतवासियों को दी जाती हैं, जो सेंडहर्स्ट (Sandhurst) के रायल मिलिटरी-कालेज (Royal Military College) से उत्तीर्ण होते हैं। जो भारतीय ब्रिटिश-आफ़िसरों के बराबर दर्जे चाहते हैं, उन्हें अवश्य ही सेंडहर्स्ट (Sandhurst) से सैन्य शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। सेंडहर्स्ट में भारतीयों के लिए सिर्फ़ १० जगहें ख़ाली रहती हैं। लेजिसलेटिव असेंबली में भी एक सेंडहर्स्ट भारतीय की माँग हुई थी। सरकार ने, बादशाही कमीशन (King's Commission) में भारतीय विद्यार्थियों की भरती में सुधार हो तथा भारत में ही एक कालेज स्थापित किया जाय, जिसमें भारतीयों को सैन्य शिक्षा दी जा सके इस निमित्त एक कमेटी सन् १९२५ में उपरोक्त बातों की जाँच के लिए क़ायम की, जिसका नाम सर एड्रयूस्कीन-कमेटी रक्खा गया। इस कमेटी की रिपोर्ट १९२७ में छप गयी थी। परंतु इस कमेटी की सिफ़ारिशों पर सरकार ने बिलकुल ध्यान नहीं दिया।

आजकल भारतवर्ष की सेना ६ भागों में विभक्त है—

१. ब्रिटिश रेग्यूलर सेनाएँ (British Regular Forces)
२. भारत की सेना(Regular Indian Forces)
३. सहायक सेना (Auxiliary Forces)
४. टेरीटोरियल सेना (Territorial Indian Forces)
५. रिज़र्व सेना (Reserve Indian Army)
६. रियासती सेना,

सहायक सेना और टेरीटोरियल सेना सन् १९२० से क़ायम हुई। Territorial Force Act के अनुसार भारतवर्ष के बहुत-से भागों में यूनिवरसिटी तालीम(University Training Corps) क़ायम हुई, जिसमें सैनिक-शिक्षा की उपयोगिता एवं सिद्धांतों के साथ-ही-साथ सुशासन (Discipline) का उपयोग एवं महत्त्व भी दिखाने की चेष्टा की गयी। सन् १९२५ की शिया-कमेटी (Shea Committee) का कहना है कि राष्ट्रीय सेना का बीजारोपण University Training Corps को ही समझना चाहिए। इसका प्रारंभिक उद्देश्य तो शिक्षा-संबंधी था, परंतु बाद में यह सेना-विभाग के अफ़सरों को भरती करने का एक-मात्र साधन हो गयी।

सेना के कई हिस्से कर दिये गये हैं, जिनमें पदाति-सेना, घुड़सवार-सेना, हथियारबंद सेना, वायुसेना एवं जलसेना आदि कई मुख्य भाग हैं। आफ़िसरों के शिक्षा-निमित्त देहरादून इत्यादि जगहों में स्कूल हैं। रायल-इंडियन नेवी (Royal Indian Navy) भी रायल ब्रिटिश नेवी (Royal British Navy) की शाखा है, जिस पर ब्रिटिश-अधिकार है। सन् १९२७ से Navy Act के अनुसार स्वतंत्र भारतीय बेड़ा क़ायम हो गया।

सेना का वार्षिक व्यय प्रायः ५५ से ६० करोड़ रुपये तक होता है अर्थात् संपूर्ण भारतवर्ष की आमदनी का तिहाई हिस्सा। भारतवर्ष की सेना को जहाँ तक हो, अब जल्दी ही राष्ट्रीय ढंग स तालीम देनी चाहिए;

क्योंकि एशिया एवं अन्य देश इतने समुन्नत हो चुके हैं कि न-जाने कब कौन-सी घटना घट जाय । आजकल संसार के राजनैतिक वायुमंडल एवं राष्ट्र भाव दूषित हो रहे हैं । ऐसे समय प्रत्येक देश को सतर्क रहना अत्यंतावश्यक है ।

जड़ में घुन भी लगी है । इस सेना-संबंधी प्रत्येक सामान विदेश से ही मँगाते हैं; ख़ास कर प्रधान वस्तुएँ, जिनमें तीन चौथाई हिस्सा ख़र्च हो जाता है, इँगलैंड से ही आती हैं । अभी इस दिशा में बहुत बड़े सुधार और परिमार्जन की आवश्यकता है ।

पेशाब के भयंकर दर्दों के लिये एक नयी और आश्चर्यजनक ईजाद याने—

(प्रमेह) सूज़ाक की हुक्मी दवा

"गोनोकिलर"

(रजिस्टर्ड)

COCK BRAND
REG. TRADE MARK
Gono Killer

गोनोकिलर—पेशाब और धातु के दर्दों को मार हटाने और निर्मूल करने के लिये एक ही ऐसी दवा है कि जिसका इस्तेमाल करने से रोगी को कभी निराश होना ही नहीं पड़ता । बड़े-बड़े वैद्य, हकीमों और डाक्टरों की दवाएँ और इंजेक्शन (टीका) लेकर आप परेशान हो गए हों, अँगरेज़ी, जर्मन, फ्रेंच और अमेरिका की पेटेंट दवाओं में फ़ज़ूल ही पैसा बरबाद करके आप बिलकुल नाउम्मेद हो गए हों, तब आख़िरी इलाज की हैसियत से हमारा 'गोनोकिलर' इस्तेमाल बेखटके कीजिएगा । 'गोनोकिलर' एक ही और बिना जोखिम का वनस्पति का अक्सीर और रामबाण इलाज है, इसमें शक न लावें ।

चाहे जैसा पुराना व नया सूज़ाक कैसा ही भयंकर क्यों न हो, पेशाब में मवाद आना, जलन होना, पेशाब रुक-रुककर होना या बूँद-बूँद आना, मूत्राशय के अंदर घाव या सूजन का होना और औरतों के सफ़ेद पानी का जाना और इस क़िस्म की तमाम भयंकर बीमारियों को जड़ से नष्ट कर देते हैं और ख़राब हुई धातु को सुधार पुष्ट और गाढ़ा बना देते हैं । कई डाक्टरों द्वारा इसकी तारीफ़ की गई है । मूल्य २० गोली की शीशी ३) डाक-व्यय अलग ; तीन बोतल ६) रुपए में । एक साथ लेनेवाले को डाक-व्यय माफ़ ।

पता—डाक्टर डी० एन० जसानी, १३७ कीका स्ट्रीट, बंबई नं० ४

तार का पता—"गोनोकिलर" बंबई । हर एक दवाफ़रोशों के यहाँ बिकता है ।

वीर-ज्योति

[श्रीद्वारकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेंद्र']

आँख खुल जाती है त्रिलोचन की तीसरी-सी,
दृष्टि में खलों की चकाचौंध लग जाती है;
'रसिकेंद्र' शक्ति महाशक्ति की समाती आके,
आत्म-बल-विजय की तोप दग जाती है।
रीति होती धर्म की, प्रतीति कर्म-योग पर,
साथ होती जीत, प्रीति-नीति पग जाती है;
भीरुता-विभावरी का विभव विनाश होता,
जब जगती में वीर-ज्योति जग जाती है।

तान

[श्रीसुधाकर दीक्षित 'सुधा']

कब से लगाये कान क्षितिज पै चुपचाप,
देखो अनजान ये झुका हुआ है आसमान,
कब से समाधि-लीन लगन लगाये ध्रुव-
फेरता धरा की ओर दृष्टि निज भासमान।
विपुल विकल बना तड़पै द्रवित उर,
कब से अपार सिन्धु फेंक रहा है उफान;
नभ को गुँजानेवाली, ध्रुव को हिलानेवाली,
सिंधु को सुलानेवाली, अब तो सुना दो तान।

हिंदी 'य-श्रुति' की परीक्षा

[पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी शास्त्राचार्य]

हमारे बड़े-बड़े कहे जानेवाले लेखकों की भाषा भी कुछ इस ढंग पर लिखी हुई मिलती है कि अहिंदी-भाषा-भाषियों के लिए एक ही धातुरूप का यथार्थ स्वरूप समझना मुश्किल हो जाता है। एक ही लेखक की भाषा में 'दिए' और 'दिये' दोनों ही प्रकार के प्रयोग दुर्लभ नहीं हैं। फिर यदि एक बड़ा लेखक किसी पद का प्रयोग एक ही तरह से बराबर करता आ रहा है, तो दूसरा बड़ा लेखक उसी प्रयोग को दूसरी तरह से प्रयोग करने में भी काफ़ी सचेष्ट दिखाई देता है। फलतः 'हुए', 'हुये' और 'हुवे' ये तीनों ही रूप हिंदी में स्वतंत्रतापूर्वक लिखे जाते हैं। यद्यपि जिस प्रकार 'दिये' या 'दिया' में 'य-श्रुति' लिपि के रूप में आ गयी है[1], उसी प्रकार 'हुए' में व-श्रुति के लिपिबद्ध होने का काफ़ी अवकाश है। फिर भी एक ही लेखक "शर्माजी आते हुए दिखाई दिये"—(प्रेमचंद, सप्तसरोज पृ० १०२) लिख सकता है। इस वाक्य में 'हुए' के साथ जो रियायत है, वह 'दिये' के साथ नहीं। इससे भी अधिक आश्चर्य का विषय यह है कि 'दिखाई' में 'य-श्रुति' को न देखनेवाला लेखक 'सुनायी' में उसे सुन लेता है! "रोने-चिल्लाने की आवाज़ उन्हें सुनायी देती थी" (—वही पृ० ८२)

२. हिंदी पर भिन्न-भिन्न भाषाओं का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है। फलतः उसके लेखकों का भिन्न-भिन्न रूप लिखना बहुत आश्चर्य की बात नहीं। पर यह वांछनीय अवश्य है कि उसके लेखक यथासंभव एक ही प्रभाव से प्रभावित हों। इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए हिंदी य-श्रुति (और साथ ही व-श्रुति) की प्रकृति की परीक्षा के लिए नीचे कुछ प्रपंचों की अवतारणा आवश्यक समझी गयी।

३. प्राकृत में एक नियम है कि अनादि स्थित असंयुक्त क, ग, च, ज, त, द प, य और व का प्रायः लोप हो जाता है। उदाहरणार्थ 'सागर' शब्द में के 'ग'-कार के लोप हो जाने पर 'साअर' मात्र रह जाता है[2]।

---

[1] "प्रगट हो गयी थी"—राजा शिवप्रसाद। "अशुद्धियाँ हो गई हों"—ला० भगवानदीन। इन दो विद्वानों ने "गयी" और "गई" का दो तरह से प्रयोग किया। पहले में य-श्रुति है, दूसरे में नहीं।

[2] कगचजतदपयवां प्रायो लोपः—वररुचि २.२।

पर सर्वत्र ऐसा नहीं होता । वररुचि के सूत्र में जो 'प्रायः' पद आया है, उसका अर्थ करते हुए भामह कहते हैं कि जहाँ श्रुति-सुख लोप न करने से ही होता हो, वहाँ लोप नहीं होता । उदाहरणार्थ—'सुकुसुम' शब्द में 'क' के लोप कर देने से पद-श्रुति कटु हो जायगा, अतः यहाँ उसका लोप नहीं हुआ ! मार्कंडेय का भी यही मत है[3] । हिंदी प्राकृत के इस प्रभाव से बहुत प्रभावित है । हम आगे इसकी जाँच करना चाहते हैं ।

४. आर्ष, अर्द्धमागधी तथा जैन-प्राकृत में अकार के बाद के 'अ' का उच्चारण अति लघु प्रयत्नोच्चारित यकार की तरह किया जाता है[4] । जैसे अर्द्धमागधी में 'पाआल' (पाताल) शब्द 'पायाल' और 'रअअ' (रजत) शब्द 'रयय' की भाँति उच्चारित होगा[5] ।

५. इस नियम में 'अकार' के बाद के 'अ' को य की तरह (लघुप्रयत्न) उच्चारित बताया गया है, पर पं० विधुशेखर शास्त्री ने इसके अनेकों अपवाद दिखाये हैं । उदाहरणार्थ, आपने 'धम्मसंगहणि', 'दस वैकालिक' (सेठ देवचंद लाल भाई जैन पुस्तकोद्धार कांड, बंबई), समराइच्च कहा (Biblis Indi.) सुर सुंदरी कहा (काशी) के अनेक पदों का उल्लेख किया है ।[6] हिंदी की यकार-श्रुति की परीक्षा करते समय इस अपवाद की विशेष रूप से जाँच करनी होगी ।

६. संस्कृत में दो स्वरवर्ण एक साथ नहीं रहते । उनमें संधि हो जाया करती है । पर 'य-श्रुति' का मूल संस्कृत में पाया जाता है । साथ ही 'व-श्रुति' भी संस्कृत में पायी जाती है, जिसको प्राकृत में एकदम भुला दिया गया है । दो स्वरों के एकत्र रहने के उदाहरण बहुत कम होने पर भी 'य-श्रुति' को समझने के लिए यथेष्ट हैं । "राम आगतः", "स एव" "विष्ण एहि", "हर एहि", "अग्नी अत्र" रामकृष्णवमू आसाते"—आदि उदाहरणार्थ पेश किये जा सकते हैं ।

पाणिनि के अष्टाध्यायी से तीन सूत्र इस बात की परीक्षा के लिए उद्धृत किये जाते हैं—

(क) भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि ८।३।१७

(ख) व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य ८।३।१८

(ग) लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९

(क) के अनुसार भो, भगो, अघो और अ के बाद का विसर्ग य हो जाता है । यदि उसके बाद अश् (अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व; र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज ब ग ड द) के अक्षर हों । उदाहरण के लिए "रामः + आगतः"= "रामय+आगतः"="रामयागतः" होगा यह पाणिनि का अपना मत है ।

(ख) के अनुसार ऐसे स्थानों में (पदांत स्थित) य और व लघुप्रयत्नोच्चारित होते हैं[7] । यह शाकटायन का मत है ।

इसी आशय का नियम हेमचंद्र ८. १. १७७ ; शुभचंद्र १. ३. १; मार्कंडेय २.१ आदि वैयाकरणों ने भी दिया है । इस निबंध में शुभचंद्र के उद्धरण पं० विधुशेखर शास्त्री के एक लेख से उद्धृत किया गया है ।

३. प्रायोग्रहणतश्चात्र कैश्चित्प्राकृतकोविदैः ।
यत्र नश्यति सौभाग्यं तत्र लोपो न मन्यते ॥

४. अवर्णो य-श्रुतिः ।

क-ग-च-जेत्यादिना लुकि सति शेषोऽवर्णः, अवर्णात् परो लघुप्रयत्नतर य-कारश्रुतिर्भवति । हेम. ८. १. १८० इसके अतिरिक्त त्रिविक्रम १. ३. १० ; शुभ १.३.५; चण्ड ३. ३५ भी द्रष्टव्य हैं ।

५. 'लोक' शब्द के क-कार के लोप होने पर 'लोअ' प्राकृत पद बनता है । यहाँ य-श्रुति नहीं होनी चाहिए । क्योंकि यहाँ अकार के पूर्व ओकार है, अकार नहीं (अकार कहने से ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत तीनों प्रकार के अकार का ग्रहण है । उ० दे० पाआल । जहाँ ह्रस्व अकार ही अभिप्रेत होगा, वहाँ संस्कृत-व्याकरण की भाँति 'अत्' कह दिया जायगा ।) । परंतु हिंदी में ओकार के बाद यकार-श्रुति पायी जाती है । उदाहरण के लिए 'लोचन' शब्द 'लोअन' होके 'लोयन' हुआ है ।

"बाल, कहा लाली भई **लोयन** कोयन माँह ।
लाल तिहारे दृगन की परी दृगन में छाँह ॥"

—बिहारी

६. शांतिनिकेतन पत्रिका, वैशाख, (वंगाब्द) १३२७ ।

७. यस्योच्चारणे जिह्वाग्रोपाग्रमध्यमूलानां शैथिल्यं जायते स लघूच्चारणः ।—सिद्धांतकौमुदी ।

(ग) के अनुसार य और व का एकदम लोप हो जाता है। यह शाकल्य का मत है।

इसी प्रकार हरे + एहि इस स्थान में

(क) के अनुसार 'हरयेहि'—पाणिनि

(ख) के अनुसार लघुप्रयत्नोच्चारित यकार होगा। (इस प्रकार के य के नीचे विंदु देकर'य़' को इस प्रकार हम लिखेंगे।) अतः 'हरय़ेहि' यह पद होगा—शाकटायन।

(ग) के अनुसार 'हर एहि' यों होगा—शाकल्य।

अर्थात्—संस्कृत में य-श्रुति के बारे में तीन मत हैं—

१. शाकल्य—बिलकुल लोप। यह नियम महाराष्ट्री प्राकृत में है।

२. शाकटायन—लघुप्रयत्नोच्चारण—यह नियम अर्द्ध-मागधी प्राकृत में है।

३. पाणिनि—पूर्ण य और व-श्रुति—बिहारी के 'लोयन' में यही नियम दिखायी देता है।

७. यद्यपि विसर्ग का य हो जाना ही यहाँ उल्लिखित है, पर भाषा-विज्ञान व्याकरण की बहुत अधिक परवा नहीं करता। भाषा-विज्ञान के अनुसार दो स्वरों के बीच के फाँक को पूरा करने के लिये ही 'य' या 'व' का आगम होता है। "राम+आगतः" इसी प्रकार का प्रयोग आरंभ में होगा। फिर उच्चारण की सुविधा के लिए "रामयागतः" ऐसा हो गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से शाकल्य का प्रयोग पहले का है, पाणिनि का बाद का और शाकटायन का मध्य का।

भाषा-विज्ञान और व्याकरण का मत-भेद श्रद्धेय पं० विधुशेखर शास्त्री के इस उदाहरण से अधिक स्पष्ट हो जायगा। वेद में "मैत्रावरुण + ओस्" इस स्थान पर "मैत्रावरुणयोः" हो जाता है। लौकिक संस्कृत में भी "राम+ओस्"=रामयोः हो जाता है। यहाँ पर पाणिनि ने एक सूत्र से 'अ' को 'ए' बनाकर संधि द्वारा उक्त रूप साधन किया है। (ओसि च ७। ३।१०४)। पर भाषा-विज्ञान के अनुसार 'य' कार यहाँ दो स्वरों के फाँक को पूरा करने के लिए ही आया है।

७ क. निम्न-लिखित स्थानों में संस्कृत में य-श्रुति पायी जाती है—

दायि (दा+इ), अज्ञायि (ज्ञा+इ) ; दायिन् (दा+इन्) ; भूयिष्ठ (भू+इष्ठ)। पाणिनि 'दायि' में युक् का आगम करते हैं [illegible]।

'गायति' रूप 'गै' धातु से बनता है। भाषा-विज्ञान के अनुसार, धातु का रूप 'गा' मान लेने से 'गा+श्रति'='गायति' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। 'गा' रूप मान लेने पर जहाँ भाषा-विज्ञान के अनुसार सरलता होती है, वहाँ व्याकरण की दृष्टि से भी कम लाघव नहीं है। इन प्रपंचों के लिए हम पाठकों को पं० विधुशेखर शास्त्री के लेख को पढ़ने की सिफ़ारिश करके हिंदी के रूपों की ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हैं।

८. पुरानी हिंदी का ध्यान आते ही पहले पृथ्वीराज रासो पर ध्यान जाता है, पर उक्त पुस्तक का लिखित रूप सैकड़ों वर्ष पीछे का है। इसीलिए भाषा-विज्ञान की दृष्टि से उसका महत्त्व बहुत कुछ कम हो जाता है (See Prof. Grierson's remarks in his entroduction to पद्मावती)। फिर भी उसका उपयोग इस निबंध में करने का प्रयत्न किया जायगा। पहले हम 'राज-विलास'-नामक राजस्थानी हिंदी के ग्रंथ के प्रयोगों को देखें—

८ क. अकार के बाद अ कार रहने पर य-श्रुति का होना इस ग्रंथ से सिद्ध होता है। उदाहरण के लिए, मय (मद=मअ=मय)—पृ० १७६ पद्य १७६; सरनागय (शरणागत=सरनाग अ=सरनागय) पृ० १७६, १७३; १८५। १० सिंगारयं (शृंगारकम्=सिंगार अं[९] = सिंगारयं); सारयं; गीतयं; दामयं; अभिरामयं =[१०] पृ० १११. ६१. ६२. ६३. ६४; गय (गज=गअ=गय) १६८. १२८; राय (राज=राअ=राय) १८५. ६, महाराय. १६३. ५७ आदि।

---

८. दुर्भाग्यवश बहुत कम हिंदी-पुस्तकों का प्रकाशन इस दृष्टि से ठीक कहा जा सकता है।

९. शृंगारक के शृ का ऋकार 'इ' हो गया है। प्राकृत में ऋकार 'अ', 'इ' और 'उ' इन तीन रूपों में बदलता पाया जाता है। (ऋतोऽत्। इदृष्यादिषु उदृत्वादिषु। प्राकृत प्रकाश १, २७, २८, २६।)। पालि में भी ऐसा होता है उ०, ऋषि=इसि—(गन्त्वासो धम्मराजा **वनमिसि** पतनं—दास-बंसो) हिंदी में भी इस नियम का प्रयोग बिरल नहीं है। आगे चलकर कहीं-कहीं इस नियम की विशेष आवश्यकता होगी।

१०. पृथ्वीराज-रासो ऐसे प्रयोगों से भरा पड़ा है। 'घरि [illegible]' 'भूपयं' 'पुट्ठयं' इत्यादि।

८ ख. अत् (अकार ह्रस्व) के बाद ईकार रहने पर य नहीं पाया जाता।

उदाहरण के लिए—भेटई ९०. ५५; नई २३५. २६ ब्याहई, साहई पृ० १११. ६६ इत्यादि।

८ ग. अकार के बाद एकार ओकार रहने से य-श्रुति का ठीक नियम इस संस्करण से स्पष्ट नहीं होता। संभव है कि संपादक ने इस विषय पर काफ़ी ध्यान न दिया हो, या यह भी संभव है कि ऐसे स्थानों पर विकल्प का ही प्रयोग होता हो। उ०—गए (१७३. १५८) में य-श्रुति नहीं है, पर हये (१७२. १५२); दयो (१८९. २४) में है।

८ घ. इकार के बाद प्रायः य-श्रुति है। उ०—किये (१७२, १५२); हीय (११३, ७८); हिय (१२६. ४९) इत्यादि। कहीं-कहीं नहीं भी है। उ०—लिए (११३. ७८) आदि। इकार के बाद उकार रहने से नहीं है। सिड, जिड, पिड।

८ ङ. ओकार के बाद इकार, उकार रहने से य-श्रुति नहीं है। उ०—तोऊ, सोई (१८५. ६)।

८ च. उकार के बाद अकार रहने से नहीं है। हुअ (२३५,२७); सुअ(सुत=सुअ)१७६. १७३ तथा१७४[11]।

८. छ आकार के बाद उकार रहने से य-श्रुति नहीं है। वाउ, दाउ (९१. ६६) प्रभृति।

९. आठवें प्रक्रम की इन सात बातों को ही हम पहले लेते हैं। पाठकों को याद रखना चाहिए कि य-श्रुति महाराष्ट्री प्राकृत में नहीं होती[12]। पर प्राकृत के ग्रंथों में इसका प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। प्राकृत और पुरानी हिंदी के ग्रंथों से ८ क का नियम पुष्ट होता है। गौडावहो में—सयल (सकल)—श्लो० ८१०; सायर (सागर)—श्लो० ८१३; कलयलो (कलकलः);—श्लो० ८११ प्रभृति इसके प्रमाण हैं। इस ग्रंथ में, यद्यपि इसकी भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है, य-श्रुति का अभाव नहीं है।

कुछ अन्य प्राकृत ग्रंथों के भी प्रयोग देखिए—‘गोरोयण-कय-तिलओ” (गोरोचनकृततिलकः)—सुरसुंदरी चरिअं, पृ० १०। इसमें ‘कय’ (कृत=कअ=कय) में य है, पर पास ही ‘तिलओ’ (तिलकः) में नहीं है। “पंकय (पंकज=पंकअ=पंकय)—भविसयत्त कहा, पृ० १; णवयण (नवजन=अवअण=णवयण) वही; ‘कया’ (कृता=कआ=कया) इत्यादि।

पृथ्वीराज रासो और पद्मावती (पद्मावत)[13] में इस नियम का भारी व्यभिचार पाया जाता है। कुछ उदाहरण दिये गये—होइ फुलाएल तेल (पद्० पृ० १०१), हार न होइ पराए हाथा (पद्. पृ. १०१) गिंभए (पृ० रा० पृ० २९३) इत्यादि। कहीं-कहीं अपवाद भी मिलता है।

१०. ८वें प्रक्रम का ख भाग प्रायः सभी प्राकृत और हिंदी की पुस्तकों से समर्थित है। कुछ उदाहरण दिये गये—‘तहलोय बन्धु’—भविसयत्तकहा; ‘कमलावई’ सुरसुंदरी कहा श्लो० १२१, “धूअ टरइ रवि टरइ” पृ० रा० पृ० २६५; हिअइ-पद्मावती, पृ० १६५; ‘वईठा’—रत्नावली पृ० ९७ इत्यादि।

११. पद्मावती में अकार के बादवाले एकार और ओकार के पूर्व एकदम यकार नहीं आता। पृथ्वीराज रासो में आता है। “रिष्ण सिष्ण धाये सु सव—पृ० ३७; ‘भयौ’ पृ० २५४ औ २५८; “चहुवान कन्ह आयौ

---

[11] पृ. रा. से ऐसे प्रयोग अनेक दिखाये जा सकते हैं—हुअ देवासुर जुद्ध; मंडिगजिन बहुबल ‘उअर’—पृ० १८९

[12] महाराष्ट्री प्राकृत के सेतुबंध (काव्य) कर्पूरमंजरी (राजशेखर का नाटक) आदि इत्यादि ग्रंथों में ‘य’ का एकदम अभाव है। पर गौडावहो में य-श्रुति विरल नहीं है। हेमचंद्र के प्राकृत-व्याकरण में य-श्रुति को केवल अर्द्धमागधी ही तक परिमित नहीं रक्खा गया है। कूमदीश्वर “क्वचिद् यत्वं वा” कहकर हेमचंद्र के मत के अनुयायी जान पड़ते हैं। महाराष्ट्री की पाठशिक्षा में मार्कंडेय का मत है कि “अनादावदितौ वर्णौ पठितव्यौ एकारवत्।” अनादि स्थित अकार और इकार (अत् और इत्) यकार की भाँति पढ़े जाने चाहिए। हिंदी के पाठकों को याद रखना चाहिए कि प्राकृत नें व-श्रुति की चर्चा नहीं है।

[13] इस लेख में ‘पद्मावती’ से पं० सुधाकर द्विवेदी और डा० ग्रियर्सन के संस्करण (बंगाल एशियाटिक सोसाइटी) अभिप्रेत है। आप लोगों ने ग्रंथ को इसी नाम से प्रकाशित कराया है। ‘पद्मावत’ से ना० प्र० सं० का अभिप्राय है। पहली पुस्तक का ही उपयोग इस लेख में प्रामाणिक समझना चाहिए। दूसरा संस्करण हमारे सामने नहीं है।

[14] पृथ्वीराज-रासो, ना० प्र० सभा० संस्करण।

अभंग" । पद्मावती में से—"खेलि गये कत"—पृ० ७३; पराए पृ० १०१ इत्यादि । रत्नावली में प्रायः यही नियम है । उदाहरणार्थ, "भए समुद अवगाह"—पृ० ६५; "जनु विधि अपने कर चिकनाये"—पृ० ७७; इत्यादि ।

१२. ८वें प्रक्रम के घ को छोड़कर अन्य सभी विभाग सभी जगह समान रूप में पाये जाते हैं । घ के लिए य-श्रुति विषयक ये उदाहरण लिये जाते हैं—'णिग्र-सहि-यण-संजुत्ता (निज-सखि-जन-संयुक्ता)—(सु० सुं० च०) थहराइया (पृ० रा०—पृ० ३३); नियर (निकट)—रत्नावली पृ० ३६; आदि । इस नियम के अपवाद भी हैं—"आइ विआध ढुका लेइ टारी"—पद्मावती पृ० १११; 'दिआ' पद्० पृ० १६५; सो अउगुन कत कीजिये" पद्० पृ० ११६; 'वी इ संवेलिओ (बीचि संवेलितः)—गौडावहो; 'तीए'—सु० सुं० च० श्लो० १२२ 'भणिओ'—वही श्लो० १२३, इत्यादि[१५] ।

१३. ८ के ङ, च और छ प्रायः सर्वत्र के एक-से हैं । अपवाद भी कम नहीं हैं ।[१६] । उदाहरण दिये जाते हैं—

८. ङ और छ के लिए—'अविसाउ अराउ अकोउ हल्लु ।' भविसयत्त कहा पृ० १:. 'अणाइवंतु'—वही ।

८ च के लिए—'धूअ' पृ० रा०, पृ० २५७ और २६५; 'धुअ जनु भुअ अवतार लिय'—पृ० रा० पृ०......; 'सुआ', 'सुअटा' (शुकः) पद्० पृ० १६ 'भुअंग' (भुजंग) पद्० पृ० १६२ और रत्नावली पृ० १६५; 'फगुआ देत बनैन"—बिहारी । इत्यादि ।[१७]

१३ क. ऊपर जो उद्धरण दिये गये हैं, उनसे य-श्रुति की पुष्टि होती है । इन स्थानों में यकार पूर्ण रूप से उच्चारण किया जाता है । लघु-प्रयत्नोच्चारित यकार के लिखने की प्रथा हिंदी में नहीं है । इसीलिए जिस स्थान पर लघूच्चारण है, उस स्थान पर या तो यकार

---

१५. बहुत-से क्रियापद, भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न तरह से उच्चारण किये जाते हैं । इसीलिए लोकप्रिय ग्रंथों के क्रियापद मूल-रूप में नहीं मिलते । जिस रूप में मिलते हैं, वह भी इस विषय की दृष्टि से कम महत्त्व के नहीं हैं । कारण यह है कि य-श्रुति उच्चारण का ही विषय है । फिर भी कवि ने किस रूप में मूल-शब्द का प्रयोग किया है, यही यहाँ वांछित है । गोस्वामी तुलसीदास के ग्रंथ और बिहारी की सतसई आदि ग्रंथ अधिक लोकप्रिय होने के कारण बहुत विकृत हो गये हैं, फिर भी प्रस्तुत लेखक के मत से उनके क्रियापदों की अपेक्षा उनके संज्ञाशब्द अधिक विश्वसनीय रूप में पाये जाते हैं । उदाहरणार्थ—'जामवंत के वचन सोहाये' का 'सोहाये', 'सुहाए', 'सोहाए', 'सुहाये' प्रभृति अनेक रूपों में मिलता है, परंतु "सिय पिय की" में 'सिय' सर्वत्र एक है । यह पद उक्त प्रक्रम में रक्खा जा सकता है । सीता=सीआ=सिया । (आगे हम दिखायेंगे कि 'आ' के पूर्व का इकार य-श्रुति के समय ह्रस्व हो जाता है ।) इसी प्रकार (कायर=कातर=काअर=कायर), इत्यादि ।

१६. अपवाद के लिए जो उदाहरण दिये जायँगे, उन पर लेखक बहुत कम विश्वास रखता है । कारण यह है कि एक ही शब्द ग्रंथ में अनेक बार जिस रूप में आया है, अचानक वह दूसरे रूप में जब दिखायी देता है, तो न तो वह अपवाद ही कहा सकता है और न विकल्प ही । संपादकों की अनवधानता या परंपरागत लेखकों की उच्चारण-प्रवणता ही उसका कारण कही जा सकती है । पृथ्वीराज-रासो का यह पद अपवाद का उदाहरण कहा जा सकता है—"चहुवान कन्ह आयौ अभंग"—पृ० ३१६ पद्य १३५ । चहुवान में य नहीं वश्रुति है । पर इसकी बायीं ओर ३१८ वें पृष्ठ के १२८ पद्य में पाँच बार यही शब्द 'चहुआन' छपा है । ३१३ पृष्ठ के ७१ वें पद्य में भी चहुवान शब्द छपा है, पर अन्यत्र 'चहुआन' शब्द ही अधिक दिखायी पड़ता है । इसी प्रकार रत्नावली में कई जगह 'कुँवर' शब्द है और कई जगह 'कुँअर' । इस प्रकार की ग़लतियों से व-श्रुति की प्रबलता का प्रमाण पाया जाता है ।

प्राकृत में भी व-श्रुति पायी जाती है । 'उवविट्ठो' (उपविष्टः=उअइट्ठो=उवविट्ठो ।)—सु० सुं० च० श्लो० १३८; 'रूवं' (रूपम्=रूअं=रूवं)—वही श्लो० १२२; इसी प्रकार 'आवुध' (आयुध=आउध=आवुध); कंडूवन (कण्डूयन); थोवेण (स्तोकेन=थोएण=थोवेण=थोड़े हि०) आदि ।

१७. यहाँ इन सात नियमों की चर्चा की गयी । इस संबंध के अन्य नियमों के उदाहरण जान-बूझकर नहीं दिये गये । पाठक अवधान पुरःसर देखने से देखेंगे कि ऊपर के उद्धरणों से अन्य कई परिणाम बड़ी आसानी से निकाले जा सकते हैं । उदाहरणार्थ एकार के बाद इकार और उकार का ज्यों-का-त्यों रहना ऊपर के उदाहरणों से ही स्पष्ट है । लेह, देउ, भेउ आदि प्रयोगों से यह बात स्पष्ट हो जायगी ।

लिखा ही नहीं गया या लिखा भी गया तो पूर्ण य कार की ही तरह। फिर भी, प्राचीन पुस्तकों में ऐसे स्थान खोजने से मिल सकते हैं, जिससे इस लघुप्रयत्नोच्चारण का अनुमान आसानी से किया जा सकता है। उदाहरण के लिए चंदबरदाई का यह पद्य लीजिए—

"चहुआन सूर सोमेस सुअ,
धुअ जनु मुअ अवतार लिय"

इस पद्य में 'सुअ' और 'लिय' का अनुप्रास मिलाया गया है। वस्तुतः 'लिय' के 'य'कार का उच्चारण 'अ' और 'य' के बीच का है। इसी प्रकार अ का भी उच्चारण वैसा ही है। तात्कालिक बोलचाल में 'लिय' का 'य' इकार के बाद होने के कारण 'य' के रूप में कुछ लंबा होकर—आ गया है और 'सुअ' का 'य' उकार के बाद होने के कारण ह्रस्व होकर लिखा नहीं गया है। वस्तुतः ये शब्द 'सुय' और 'लिय' हैं। ऐसा समझने पर इस अनुप्रास की मिलान की बात समझ में आ जाती है।

पूरा उच्चारण न होने के कारण अकार के बाद का 'य'कार पूर्ववर्ती वर्ण के साथ मिलकर 'ऐ' की भाँति उच्चारित होता है। ऐसे स्थानों में भी लघूच्चारण ही समझना चाहिए। तुलसीदास के अनेक प्रयोग इसी श्रेणी के हैं। उदाहरणार्थ, वैन (वचन=वअन=वयन=वैन); मैन (मदन=मअन=मयन=मैन); विधुवैनी (विधुवदनी=वअनी=वयनी=वैनी) इत्यादि।

कहीं-कहीं 'आय्' 'ऐ' होने के बाद पुनः 'य'-श्रुति का कारण हो गया है। भ्राता=भाआ=भाय् आ=भैया; इसी तरह मैया भी।

कहीं-कहीं 'य'-श्रुति अत्यंत हल्की होने के कारण एकार में बदल गयी है। चित्रकर=चित्रअर=चित्रयर=चितेरा।

पद्मावती, पृथ्वीराज-रासो, रत्नावली और भाव-विलास के अनेक अन्त्यानुप्रासों की आलोचना करने से लघुप्रयत्नोच्चारण का अनुमान सहज ही में हो जाता है।

अनेक स्थलों में 'अय्' 'ऐ' के रूप में आया है और उसका अनुप्रास 'इय्' से मिलाया गया है—"मन हरनि हरत मन पिक्खि कै। जनु विधना अपहत्थ किय"—पृ० रा०।

१४. आकार के बाद ओकार का उच्चारण करने से व् की एक हल्की ध्वनि होती है। यही बात आकार बाद एकार के साथ य् की हल्की ध्वनि के बारे में कही जा सकती है। यह नियम अँगरेज़ी लिखने खूब व्यवहृत होने लगा है। रावबहादुर लिखते सम Rao Bahadur लिखना एक साधारण बात हो गय है। हिंदी में हम कितने ही शब्दों के दो रूप पाते हैं पृथ्वीराज-रासो और पद्मावत में ऐसे उदाहरण विर नहीं हैं। उदाहरण के लिए 'पाँव', 'पाँय' और 'राव' 'राय' इन शब्दों को लीजिए। 'पाय' का 'य' चाहे य श्रुति का विषय हो, पर 'पाव' का 'व' ऐसा नहीं है पिछले प्रक्रमों से यह स्पष्ट है। पाय=पाअ=पाद (सं० राय=राअ=राज; इन शब्दों की सिद्धि यों हो जाती है पर पाव=पाओ=पादो=पादः से बनता है। अर्थात् 'पा शब्द पदांत शब्द का रूप है। फिर पाय शब्द नि भक्तिक का रूप क्यों है? अगर यहाँ कुछ समाधा हो भी जाय, तो 'पायँगे' 'पायेंगे' और पावेंगे' शब्द कैसे बनेंगे? इस प्रपंच में विसर्ग का पचड़ा जाता है। विना इस मसला के हल हुए 'किये' 'हुए' का हल होना भी असंभव है। अतः पाठ से कुछ धैर्य की आशा रक्खी गयी।

१५. उत्तर-पश्चिम प्रदेश के अधिवासी 'ह' को, य वह अनादि स्थित है तो प्रायः लोप करके उच्चारण क

---

१८. 'जाओ'—'जाव्'; 'आओ'—'आव्'; 'खाए'-'खाये'—'खाय्' इत्यादि लिखित और कथित प्रयोग विषय के उदाहरण के लिये जा सकते हैं। प्राकृत (महारा में य और व-श्रुति का भरसक बचाव ही दिखायी देता है, पाठकों को श्रीहर्ष की नाटिकावली की एक प्रसिद्ध आर्या देते इसको पढ़ने से हठात् आ के बादवाले ओकार के साथ व् उच्चारण हो ही जाता है—

दुल्लह जणाणुराओ लज्जा गरुई परव्वसो अप्पा।
पिय सहि विसमं पेम्मं मरणं सरणं णवरि एक्कम्॥

१९. कृतः=किओ=कियो; कृतः=किआ=किया; कृताः=किये। भूतः=हूओ=हुओ; भूतः=हूआ=हुआ। इन शब्द कुछ खास नियमों से कृ का ऋकार इकार हो गया है (इ दिषु—प्रा. प्र.) और हूअ का ऊ कार उकार हो गया शेष सारा झगड़ा विसर्ग का है। विसर्ग एक जगह दूसरी जगह आकार और तीसरी जगह एकार हो गया है

हैं। 'शहर' को 'शैर' की तरह सुना जाता है। विसर्ग का उच्चारण हल्का 'हकार' के समान ही है। इसलिए विसर्ग का उच्चारण भी कुछ ऐसा ही होना आश्चर्य की बात नहीं है। साथ ही पिछले उद्धरणों से पाठकों को 'शैर' उच्चारण में लघूच्चारित यकार के आभास की धारणा हो गयी है। 'ऐ' का 'ए' के रूप में बदलना असंभव नहीं है।[20] इस प्रसंग में सबसे अधिक मनोरंजक बात यह है कि स 'स' ही 'ह' हो जाता है। प्राचीन भाषा के अध्ययन से हम बहुत आसानी से एक तथ्य पर पहुँच सकते हैं।

'सप्त' का 'हफ्त', 'सिंधु' का 'हिंदु' आदि सरहद्दी प्रयोग विरल नहीं हैं। बहुत प्राचीनकाल में संस्कृत में भी यही नियम किसी-न-किसी रूप में पाया जाता है। आज भी इसका अप्रत्यक्ष उदाहरण खोजा जा सकता है। विसर्ग जो वस्तुतः हल्का 'ह' है, स का ही रूप है। पाणिनि के अनुसार 'स' पहले 'र' होता है, फिर विसर्ग (ससजुषो रुः) अर्थात् 'स्' विसर्ग (ह्) के रूप में आ जाता है।

यही 'ह्' और भी कोमल होकर अ के रूप में आ जाता है। इस प्रकार 'कृतस्', 'कृतः' होकर फिर 'कृतअ' और 'कृतै' 'कृते' के रूप में आ जाता है। यही रूप 'किये' बन जाता है।[21] भाषाविज्ञान के विद्वानों के मत से 'ए' कार का उच्चारण अनादिकाल से वैसा ही नहीं है, जैसा हम पाते हैं। यह वस्तुतः 'अय्' के रूप में उच्चारित होता था। 'ऐ' भी इस रूप में नहीं बल्कि 'आय्' के रूप में उच्चारित होता था।

१६. इसकी जाँच कीजिए—

अ+इ=ए; ए+अ=अय
अ+ए=ऐ; ऐ+अ=आय

अर्थात् अ+इ+अ (ए+अ)=अय (यहाँ इ+अ=य हुआ है)
और अ+ए+अ (ऐ+अ)= आय
या अ+अय=आय (यहाँ सवर्ण दीर्घ का नियम ठीक बैठता है)।

ध्यान से देखने से मालूम होगा कि यहाँ संधि के नियम बिलकुल वैज्ञानिक रूप से हैं। केवल खटकनेवाली बात है ए+अ=अय और ऐ+अ=आय। क्योंकि ए में 'अ' के साथ 'इ' इतना घिसकर मिल गया है कि अब 'ए' एकदम पृथक् स्वर हो गया है। अब यहाँ संध्यक्षर का गंध भी नहीं है। यदि इसे '$\underset{\smile}{\text{अइ}}$' और '$\underset{\smile}{\text{अय}}$' के बीच का उच्चारण समझें, तो समस्या हल हो जाती है। यही बात ओ (अ उ और अव् के बीच का उच्चारण) के बारे में भी ठीक है। यहाँ हमारा इतना ही मतलब है कि अय् का ए हो जाना इस दृष्टि से अत्यधिक संभव और सुगम मार्ग है।

१७. विसर्ग का ओ होना पूर्वीय उच्चारण का प्रभाव है। प्राकृत या पाली में विसर्गांत अकार का ओकार होता है। यह बात बंगाल, आसाम की उच्चारणप्रवणता से समझी जा सकती है। इन भाषाओं में यद्यपि उन स्थानों पर ओ लिखा नहीं जाता, पर कथित भाषा में प्राकृत और पाली का रूप ज्यों-का-त्यों पाया जाता है। 'पाय' और 'पाव' की सिद्धि के लिए इतना प्रपंच अलं समझा गया।

१८. संस्कृत में नियम है कि य-श्रुति होने पर दीर्घ ईकार और ऊकार ह्रस्व हो जाते हैं। 'य-श्रुति' में 'व-श्रुति' का भी समावेश समझना चाहिए। 'भी+आ'=भिया; ही+आ=हिया इत्यादि। हिंदी में यह नियम पाया जाता है। आदमी+ओं=आदमियों इत्यादि।

१९. सारांश, हिंदी में य-श्रुति और व-श्रुति दोनों ही मिलती है, पर य-श्रुति सर्वत्र और व-श्रुति क्रिया-भिन्न पदों में पायी जाती है। संज्ञापदों में भी इसका (व-श्रुति) का प्रयोग बहुत कम ही मिलता है।

२०. हिंदी पर पाली का भी कम प्रभाव नहीं पड़ा है। फलतः उसी के अनुसार इसमें भी 'य' की जगह 'व' और 'व' की जगह 'य' की श्रुति भी पायी जाती है। उदाहरण के लिए पाली के निम्नलिखित श्रुतियों को देखिए—

ति+अंगुलं=तिवंगुलं; ति+अंगिकं=तिवंगिकं। प+उच्चति=पवुच्चति; भंते+उदिक्खति=भंतावुदिक्खति।

तेसु+एव=तेसुयेव; सो+एव=सोयेव; ते+एव=तेयेव इत्यादि।

---

[20] पेत पत्—प्रा० प्र०।

[21] उर्दूवाले 'पटनः' लिखते और 'पटने' पढ़ते हैं।

प्रेमी-मन

[श्रीप्रियंवदा कुमारी]

बसिबोई करै मन या ही धनी,
तऊ बावरो दूरि ही जानत है;
गुनिबोई करै उनहीं के गुनै,
कछु आन विचार न आनत है।

मचलोई रहै सदा जोहिबे को,
बहराओ कितीक न मानत है;
सजिबोई करै छिन स्वागत-साज,
छिनै मैं वियोगहिं ठानत है।

कामिनिया ऑईल का क्या काम है ?

यदि
दिमाग़ को शान्ति देना,
आवश्यकतानुसार बालों को ख़ुराक पहुँचाना,
बालों को जीवनतत्त्व प्रदान करना,
अपने दिमाग़ को ताज़ा तथा सफलीभूत बनाना,
बालों को लम्बा और चमकदार रेशम-तुल्य बनाना

हो, तो इसको इस्तेमाल कीजिए

आजकल की वर्तमान स्थिति में अनेकों प्रकार के दूसरे-दूसरे नाम के तेल निकल रहे हैं, जिनके उपयोग से आपको तेलों के प्रति श्रद्धा जाती रहती है, परन्तु यहाँ तो लाखों व्यक्ति इसकी प्रशंसा करके गारंटी देते हैं

कि,

कामिनिया ऑईल ही बालों का सर्वस्व है। हरएक मंगलमय त्योहारों के अरुणोदय में अपने केश-कलापों को कामिनिया ऑइल से सँवारिए। क़ीमत प्रति शीशी १)

प्रत्येक शहर तथा गाँव में प्रसिद्ध दूकानदार से मिल सकता है—बा हर से मँगाने में वी.पी. ख़र्च ।=) पृथक् पड़ता है। ३ शीशी का २॥=) पो० ख़र्च ॥।) आना पृथक्। आध आने के टिकट आने पर नमूना शी० मुफ़्त भेजा जाता है।

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)

रूमाल पर कुछ बूँदें छिड़क देने से फुलवारी की तरह ख़ुशबू पसर जाती है। आज ही १ शीशी मँगाकर आज़माइश कर लीजिए।

मूल्य ½ औंस प्रति शी० २) ¼ औंस १।) रु०
,, १ ड्राम ,, ,, ॥।) डाक-व्यय पृथक्
दो आने के टिकट आने पर नमूना शीशी मुफ़्त भेजी जाती है।

सोल एजेंट— २०

दी ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी २८५, जुमा मसजिद मार्केट, बंबई नं० २

पं० मंगलदेव शर्मा जर्नलिस्ट

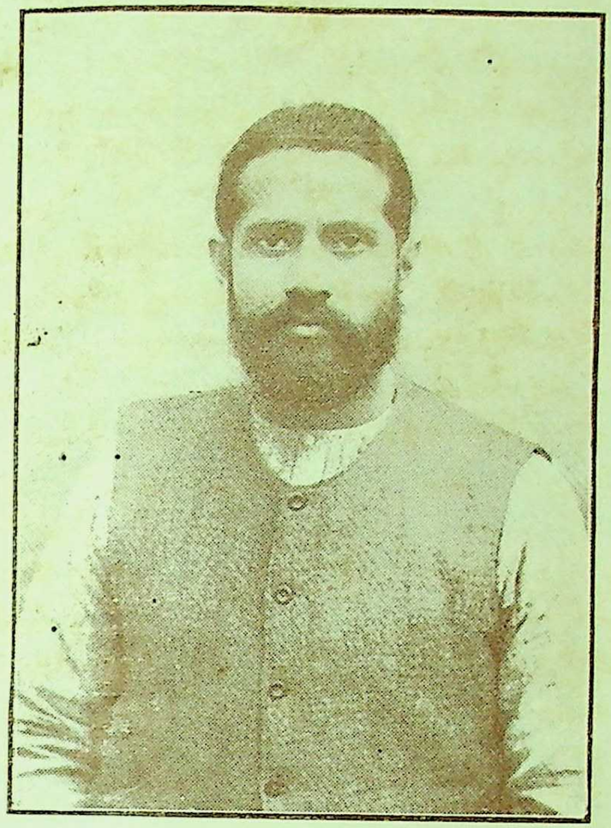

आप हिंदी के चिरपरिचित साहित्य-सेवी हैं और कई दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रों का संपादन कर चुके हैं।

पं० छन्नूलाल द्विवेदी

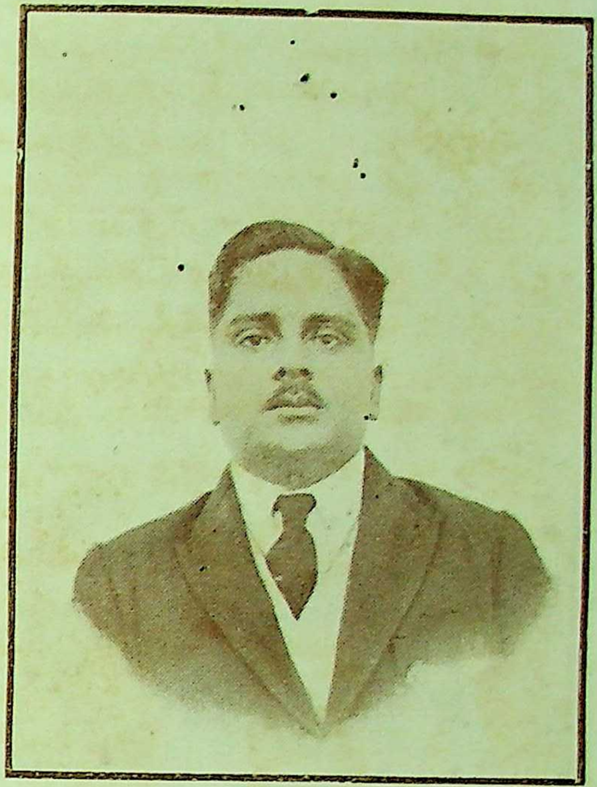

आप हिंदी के उदीयमान लेखक हैं और आजकल विशेष रूप से विज्ञापन-कला का अध्ययन कर रहे हैं।

चि० हरिशंकर विद्यार्थी

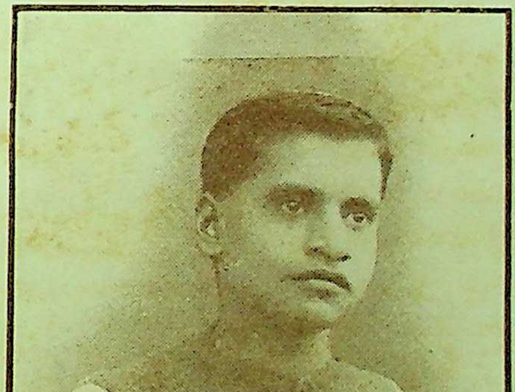

हिंदू-मुस्लिम एकता पर बलिदान हो जानेवाले
श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी का प्रतापी प्रतिबिंब

"जयपुराधीश की परंपरा और सर्वाधिकार-प्राप्ति" लेख से संबद्ध

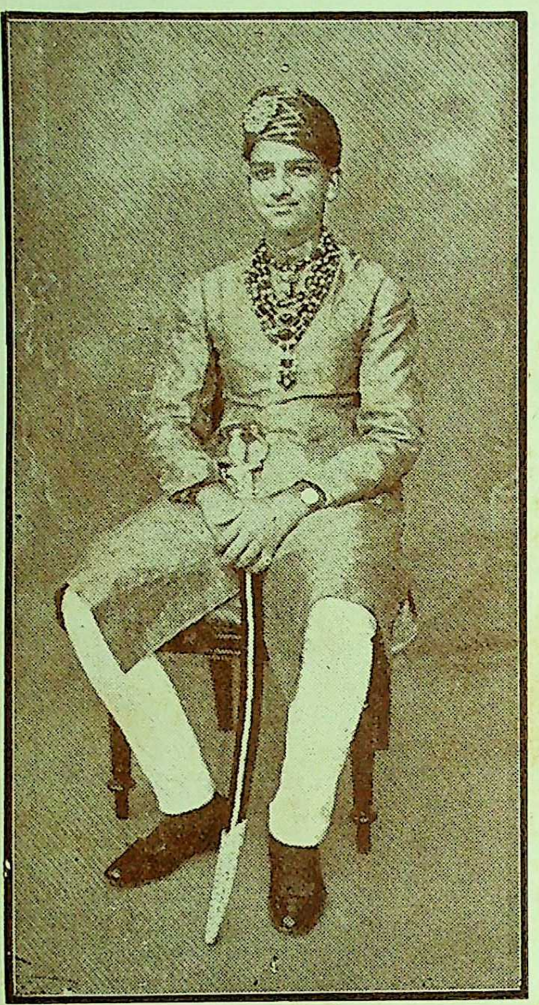

[१—दरबारी पोशाक में]

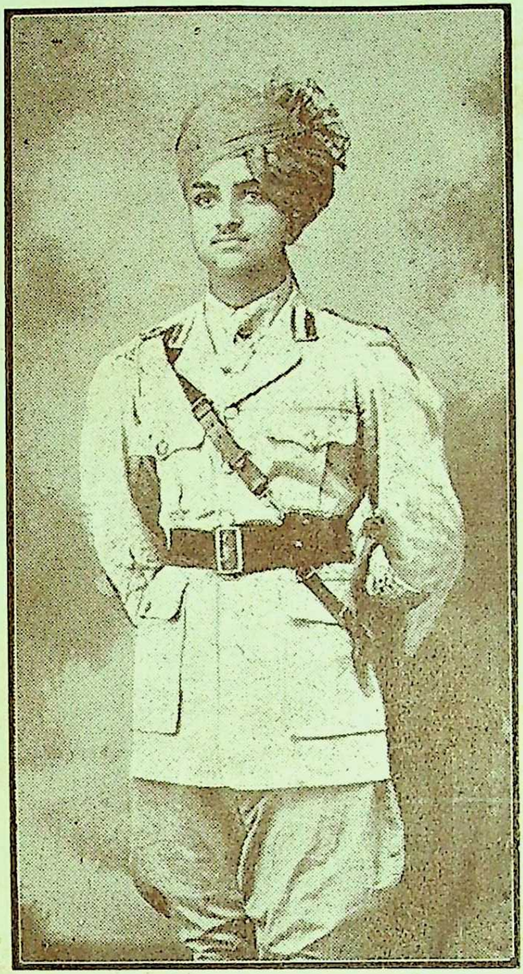

[३—स्क्वाड्रन कमांडर के वेष में]

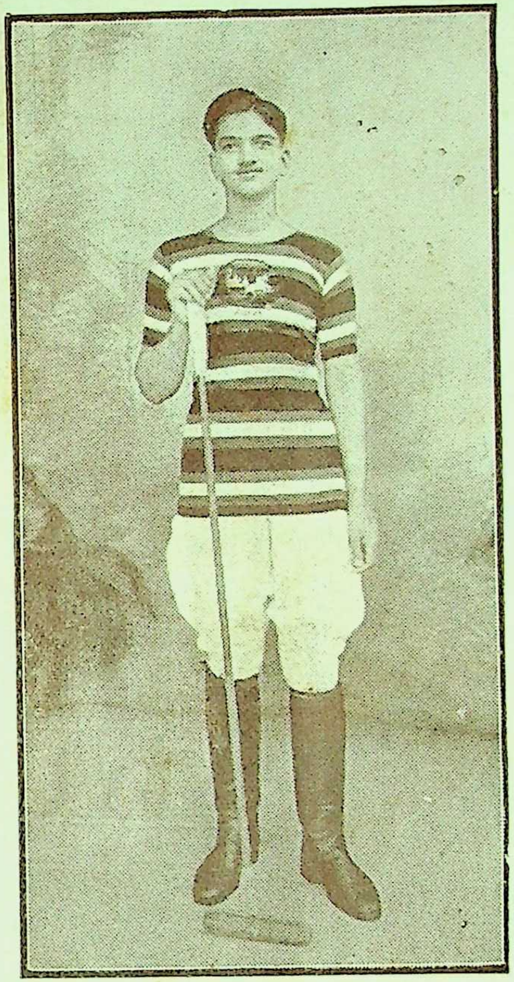

[२—खिलाड़ी की पोशाक में]

महाराजाधिराज सवाई श्रीमानसिंहजी (द्वितीय) जयपुर-नरेश

N. K. Press, Lucknow.

जयपुराधीश की वंशपरंपरा और सर्वाधिकार-प्राप्ति

[श्रीकुमार प्रतापनारायण 'कविरत्न']

जयपुर के हिज़ हाइनेस सर आमदे राजहाय हिंदुस्थान राजराजेंद्र महाराजाधिराज सवाई श्रीमान्‌सिंहजी (द्वितीय) का प्रसिद्ध वंश अतीव पावन और प्राचीन है । सूर्यकुल के सूर्य-भगवान् श्रीरामचंद्रजी के युवराज महावीर कुश के आप वंशज हैं और कछवाह राजपूत-सरदारों का आधिपत्य ग्रहण करने का परम सौभाग्य आप ही को प्राप्त है । कई विद्वानों ने कछवाह शब्द को कुश ही का अपभ्रंश माना है । परंतु मेरी अल्प बुद्धि के अनुसार यह भ्रम-मूलक ही नहीं नितांत अनुचित भी है । कुश के पुत्र का नाम कूर्म था, जिसका अर्थ कछवा है और इसी से कच्छवाह या कछवाह शब्दों का प्रादुर्भाव हुआ है ।

जयपुराधीश के पूर्वपुरुषों का निवास और शासन प्रथमतः रोहात-प्रदेश में था । ईस्वी सन् की दसवीं शताब्दी में कछवाह-कुल-भूषण महाराजा नल ने नरवर-नामक नगर का निर्माण कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया । इनके वंशजों ने ग्वालियर पर भी अपना आधिपत्य जमाया और कई शताब्दियों तक वहाँ पर शासन भी किया । ग्वालियर के एक शिलालेख से यह प्रतीत होता है कि ९७७ ई० में वहाँ पर वज्रदामाजी नामक एक महान् प्रतापी महाराजा राज्य करते थे । कन्नौज के राजा विजयपाल परिहार पर विजय प्राप्त करके इन्हीं महाराजा ने उससे ग्वालियर का राज्य छीना था ।

वज्रदामाजी के पश्चात् उनके पुत्र मंगलराजजी ने ग्वालियर का राज्य-सिंहासन सुशोभित किया । जयपुर और अलवर के भी कछवाह-राजकुल की उत्पत्ति महाराजा मंगलराज के छोटे पुत्र सुमित्रजी से है । इनके बाद क्रमशः मधुब्रह्मजी कहान, देवानीकजी, ईश्वरीसिंहजी और सोढ़देवजी हुए । सोढ़देवजी के पुत्र दूलेरायजी थे । ये वज्रदामाजी के अष्टम वंशधर थे और इनको तेजकरणजी, दूल्हारायजी या दूलहरायजी भी कहते हैं । इन्होंने ११२८ ई० में ग्वालियर छोड़ा । मोरन के चौहान-राजा की सुयोग्य कन्या से इनका पाणि-ग्रहण हुआ और देवासा, जिसे आज द्योसा कहते हैं, इनको दहेज में मिला । दूलेरायजी ने द्योसा पर ही अपना अधिकार नहीं जमाया, किंतु मीनों, बड़गूजरों और राजपूतों से द्योसा के आसपास का प्रदेश भी, जो ढूंढार (ढूंढाड़) नाम से प्रसिद्ध है, धीरे-धीरे छीन लिया । महाराज मनु ने ढूंढार को ब्रह्मर्षिदेश के अंतर्गत माना है, किंतु वैदिक काल में यह मत्स्य-देश के नाम से प्रसिद्ध था । महाभारत में भी इसका वर्णन मिलता है । बैरार, जिसे आज बैराठ भी कहते हैं, इस देश की राजधानी थी और इसमें पांडवों ने अपने वनवास के दिन व्यतीत किये थे ।

दूलेरायजी ने पहलेपहल माच-नामक स्थान को जीता और रामगढ़ नाम रखकर उसकी सीमा बढ़ाई । जहाँ पर विजय प्राप्त हुई थी, वहाँ पर दूलेरायजी के पिता सोढ़देवजी ने एक छोटा-सा मंदिर बनवाया और उसमें अपनी कुलदेवी जामवा माता की स्थापना भी की । इसी कारण यह प्रांत जमवारामगढ़ के नाम से आज भी प्रसिद्ध है ।

दूलेरायजी के बाद काकिलजी हुए । इन्होंने खोह, गैरोर, कोटवाड़ा, खातीपुरा इत्यादि प्रदेशों को और १०३७ ई० में अंबर को भी, जिसे अब आमेर कहते हैं, जीत लिया और मीनों को अपना सेवक बनाकर उस स्थान को अपनी राजधानी बनाया । इनका बनवाया हुआ अंबिकेश्वर-महादेव का मंदिर इनके कीर्त्ति-स्तंभ के रूप से आमेर में आज भी विद्यमान है । इनके पीछे आमेर के जितने राजा हुए, उनमें से पंजुनजी (पजूनजी) का नाम वस्तुतः उल्लेखनीय है । क्योंकि दिल्ली के अंतिम हिंदू-सम्राट् पृथ्वीराजजी ने इनकी वीरता पर मुग्ध होकर अपनी बहिन का इनके साथ विवाह किया और इनको अपना प्रधान सेनापति भी बना लिया । ११९२ ई० में ये पृथ्वीराजजी की ओर से मुहम्मद ग़ोरी के साथ घमसान युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए ।

पजूनजी से सातवीं पीढ़ी में उदयकरणजी आमेर

की राजगद्दी पर बैठे। इनके चौथे पुत्र बालाजी के पौत्र के शेखावाटी-नामक प्रांत हाथ लगा। कछवाह-राजपूतों में शेखावत नामक एक उपशाखा का प्रादुर्भाव इन्हीं के नाम पर हुआ एवं इन्हीं के छोटे भाई बरसिंह से नरु (नरूका)-नामक एक और उपशाखा फैली। उदयकरणजी से पाँचवीं पीढ़ी में पृथ्वीराजजी हुए। इनके बहुत-से पुत्र थे, जिनमें से केवल १२ ही जीवित रहे। इन बारहों पुत्रों को अलग-अलग जागीरें मिलीं, जो बारह घरानों या कोटड़ियों के नाम से आज भी प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक कोटड़ी का पृथक्-पृथक् वर्णन करना हमें अभीष्ट नहीं, क्योंकि हम इतिहास लिखने नहीं बैठे और न हम साहित्य-सुधा-पिपासु होने के कारण, इस दुस्साध्य कार्य में सफलीभूत ही हो सकते हैं। किंतु जयपुर के वर्तमान महाराजाधिराज का कुछ संक्षिप्त जीवन-चरित्र एवं वाइसराय महोदय से १४ मार्च १९३१ को उनकी सर्वाधिकार-प्राप्ति के विषय में ही हमें कुछ कहना है। किसी की वंशपरंपरा के वर्णन विना उसका जीवन-चरित्र अधूरा-सा प्रतीत होता है। ऐसा जानकर ही हम उनके राजवंश के दिग्दर्शन-मात्र को अप्रासंगिक नहीं समझते और ब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठ के कुल में उत्पन्न होने के कारण अनधिकार चेष्टा भी नहीं मानते। ऐसी दशा में अनुभवी इतिहासवेत्ता इस लेख का उपहास नहीं करेंगे और कहीं त्रुटि भी रह जाय, तो उसे क्षन्तव्य ही समझेंगे।

ऊपर कहा जा चुका है कि उदयकरणजी से पाँचवीं पीढ़ी में पृथ्वीराज हुए। इनके पीछे बिहारीमलजी आमेर की गद्दी पर विराजे। कछवाह-वंश में आप ही प्रथम ऐसे नरेश थे जिन्होंने मुग़ल-सम्राट् का स्वामित्व स्वीकार किया। इनके पुत्र भगवानदासजी अकबर के प्रिय मित्र थे। क्योंकि इन्होंने सरनाल की लड़ाई में अकबर के प्राण बचाये थे। यह ५,००० अश्वारोहियों के अध्यक्ष तथा पंजाब के सूबेदार भी रह चुके थे। इनके निस्संतान होने के कारण इनके भतीजे मानसिंहजी ने (१५९०-१६१४) राज्य-सिंहासन को सुशोभित किया। यह अत्यंत पराक्रमी और महान् राजनीतिज्ञ थे। बड़े ही शूरवीर एवं साहसी थे। अकबरी नवरत्नों की माला के यदि आपको सुमेरु कहा जाय, तो कुछ अत्युक्ति नहीं। आपके कृपाण की कांति कट्टर अफ़गा को कालिका के समान प्रतीत होती थी। आप राजनीतिज्ञ-कूटता बहुत-से राजपूत-सरदारों को उ समय भी खटकती थी और आज भी। किंतु अपने प्र पर डटे रहना, चाहे वह प्रण कैसा ही क्यों न हो, बात भी तो दुस्साध्य एवं प्रशंसनीय है।

मानसिंहजी के पीछे उनके पुत्र भावसिंहजी

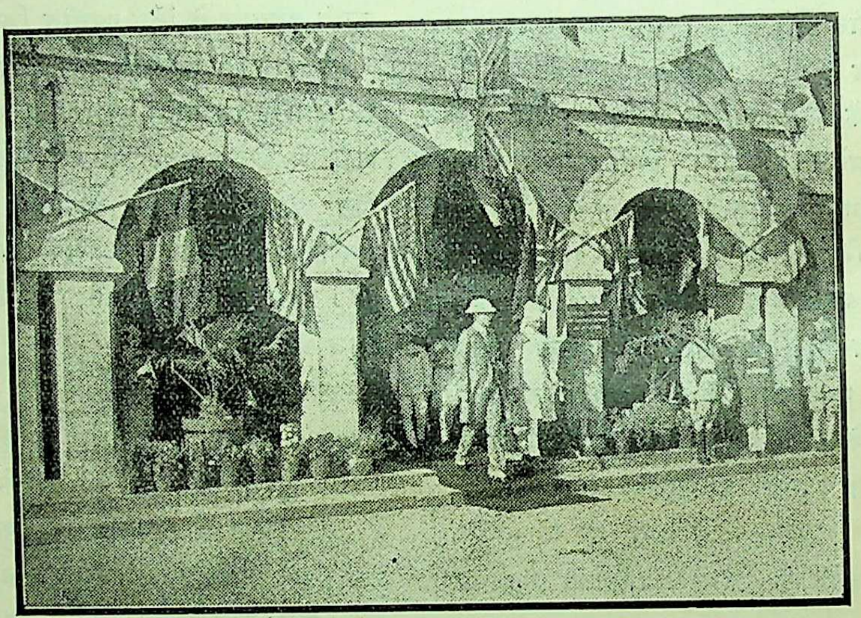

(४)

वाइसराय के साथ स्टेशन से आते हुए जयपुर-नरेश

इनके बाद इनके भतीजे महासिंहजी ने आमेर का राज्य किया। महासिंहजी के पश्चात् मिर्ज़ा राजा जयसिंहजी उनके उत्तराधिकारी हुए। महाराष्ट्र के वीर-शिरोमणि शिवाजी को वशीभूत करने का सौभाग्य इन्हीं को प्राप्त है। कहा जाता है कि औरंगज़ेब ने इनकी बढ़ती हुई कीर्त्ति और उत्कट वीरता से घबराकर इनको किसी युक्ति से विष दिलवा दिया था। इसके बाद क्रमशः रामसिंहजी और बिशनसिंहजी हुए। तत्पश्चात् सवाई जयसिंहजी (द्वितीय—१६९६-१७४३) आमेर के सिंहासन पर आरूढ़ रहे। इनका कुछ विस्तृत वर्णन करना हमें यों वांछित है कि ये वे महाराजा थे, जिनके निर्माण किये हुए इस जयपुर की बनावट और सजावट की ख्याति भारतवर्ष के कोने-कोने में फैल रही है। साथ ही जो अपनी वीरता एवं कीर्त्ति के चिरस्थायी स्तंभों के साथ-साथ अपनी अद्वितीय ज्योतिषशास्त्र-निपुणता के ज्वलंत प्रमाण भी छोड़ गये हैं।

यह महाराजा एक विलक्षण प्रतिभाशाली मनुष्य थे। शिल्प-कार्य तथा वैज्ञानिक शास्त्र में बड़े ही निपुण थे। आप वीर थे, विद्वान् थे, ज्योतिर्विज्ञान के ज्ञाता थे और कई बेधशालाओं के विधाता भी। इतिहास में अधिकांश ऐसे ही राजाओं का जीवन-चरित्र मिलता है, जिन्होंने कूटनीति से अथवा वीरधर्म के पालन से अपने वैरियों को पराजित करके स्वकीर्त्ति की स्थापना की है। पर हमारे विद्वान् महाराजा ने न केवल राजनीति, वीरता और साहस ही में अपना पूर्ण परिचय दिया है, बरन् गणित-शास्त्र में भी अपनी अनुपम योग्यता दिखलायी है। आप राजनैतिक क्षेत्रों में, भीषण रणस्थलों में भी अपनी विजय-पताका फहराते हुए दृष्टि-गत होते थे और विज्ञान के अपार पारावार में भी या यों कहिए कि प्रकृति की असंख्य सूक्ष्मताओं के अगाध समुद्र में भी आप ग़ोता लगाते हुए दिखलायी देते थे। वैभव और विज्ञान का यह कैसा सुयोग था। लक्ष्मी और सरस्वती का यह कैसा सुंदर सहवास था! वीरता के कीर्त्ति-स्तंभ, चाहे वे कैसे ही कठिन धातुओं से निर्मित हों, एक-न-एक दिन समय के प्रभाव से सर्वनाश को प्राप्त हो सकते हैं, परंतु आपके विज्ञान की बेधशालाएँ तब तक विद्यमान रहेंगी जब तक सूर्य और चंद्रमा

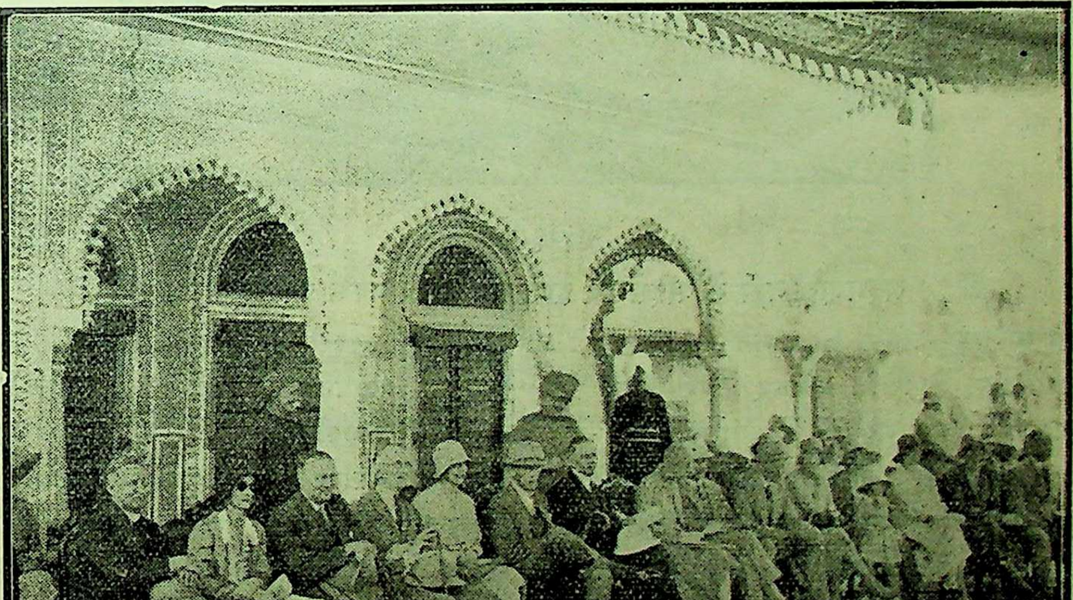

(५)

मुबारिक महल के आगे लिया हुआ ग्रूप

प्रकाशमान् हैं, जब तक सभ्यता एवं मानव-हृदय में ज्ञान प्राप्त करने की उत्कट उत्कंठा बनी रहेगी । राजनीति के पेचों में, चालों में, उलझनों में और कई प्रकार के संकटों में पड़े रहने पर भी ज्योतिष-शास्त्र की आपने जैसी उन्नति की वैसी शायद ही किसी ने की हो। गणित की कई अरबी-पुस्तकों का आपने संस्कृत में सुंदर अनुवाद किया है । विस्तार-भय से हम उनका वर्णन करने में असमर्थ हैं । ग्रहों का बेध लेने के लिए आपने जयपुर, दिल्ली, बनारस, उज्जैन, मथुरा प्रभृति बड़े-बड़े नगरों में ऐसी बेधशालाएँ बनवायी हैं कि जिनमें ग्रहों की सूक्ष्म-गतियों को जानने के लिए ऐसे-ऐसे यंत्र आविष्कृत हैं, जिन्हें देखकर नयी सभ्यता के विदेशी ज्योतिषी आज भी दाँतों अँगुली दबाते हैं, आपकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं; आपके ज्योतिर्विज्ञान के ज्ञान को असाधारण बखानते हैं और अपनी हार मानते हैं । जयपुर के यंत्रालय में, जो भारतवर्ष में सबसे महान् और मूल्यवान् है, आप एक ऐसे यंत्र का निर्माण कर गये हैं, जिसकी उँचाई ९० फ़ीट है और जो संसार में सबसे बड़ा "सन डायल" माना जाता है ।

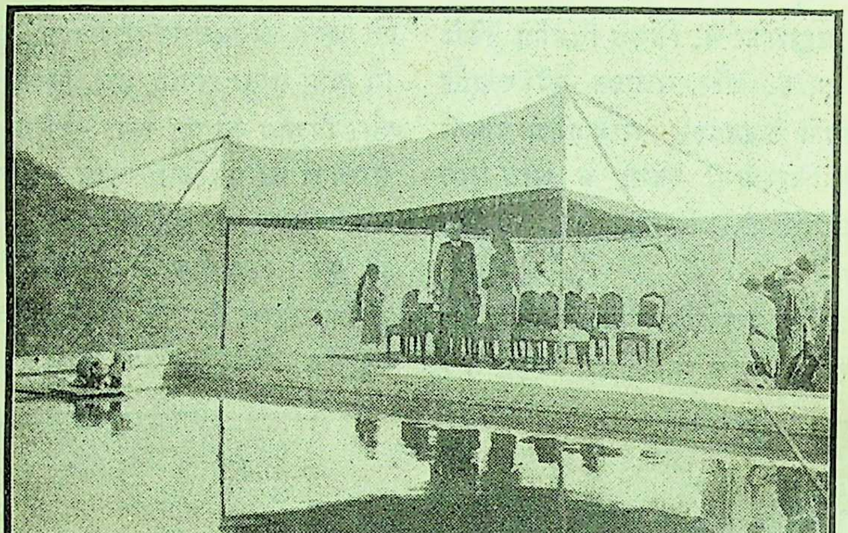

(६)

लक्ष्मणडूँगरी में वाइसराय द्वारा नये वाटर-वर्क्स का उद्घाटन

आप हिंदू-जाति और हिंदू-धर्म के परम हितैषी थे । मुहम्मदशाह से जज़िया कर आप ही ने माफ़ करवाया था । आपके राजनैतिक जीवन का अधिकांश भाग ज्योतिर्विज्ञान, समाजसुधार, कला-कौशल में ही व्यतीत होता था । आत्माभिमान और स्वावलंबन का पाठ भी खूब पढ़े थे । उदयपुर के महाराणा के दिल के दाग़ आप ही ने धोये थे । आपने मुसलमानों के विरुद्ध उनसे मेल कर लिया और शादी व्यवहार भी करने लग गये । संस्कृत-भाषा, संगीत, चित्रकला इत्यादि की उन्नति के लिए आजकल ऐसे ही महाराजाओं की आवश्यकता है, जो अपना तन, मन, धन उसके लिए अर्पण कर सकते हों । आपके बाद, आपके १७२८ ई० में निर्माण किये हुए प्रसिद्ध जयपुर के राज्य सिंहासन पर, क्रमशः ईश्वरीसिंहजी, माधोसिंहजी, पृथ्वीसिंहजी (द्वितीय) प्रतापसिंहजी, जगतसिंहजी, मोहनसिंहजी और जयसिंहजी (तृतीय) विराजे। इनके पश्चात् इनके पुत्र रामसिंहजी ने राज्य-सिंहासन सुशोभित किया । आप बड़े ही दूरदर्शी, बुद्धिमान् और विद्वान् थे । सुप्रसिद्ध सिपाही-विद्रोह में आपने सरकार की बहुत अच्छी सहायता की और उसके द्वारा कोटकासिम का परगना भी प्राप्त कर लिया । १८६४ ई० में दत्तक लेने की सनद भी आपको मिल गयी । अपनी प्रिय प्रजा के हितसाधन में आप बहुत तत्पर रहते थे । इस संबंध में कई सच्ची किंवदंतियाँ प्रचलित हैं, पर उनके उल्लेख को स्थानाभाव रोक रहा है । यद्यपि जयपुर जैसे अत्यंत रमणीय एवं विशाल-

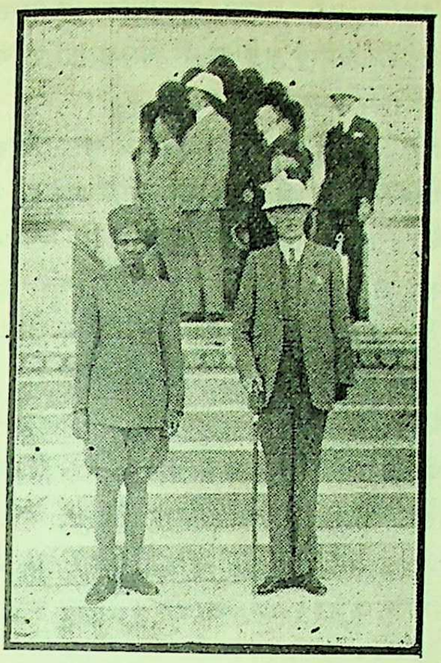

(७)
आमेर के पुराने महलों को देखने के बाद
लौटते हुए वाइसराय और महाराजा

काय नगर को बसाने का सुयश सवाई जयसिंहजी (द्वितीय) को ही प्राप्त है, किंतु उसकी अभिवृद्धि करनेवाले, समुन्नति करनेवाले एवं सुयोग्य रीति से सजानेवाले आप ही थे। विस्तार-भय के कारण जय-नगर के अनुपम सौंदर्य का हम दिग्दर्शन भी नहीं करा सकते।

आपने इसमें निर्मल जल के नल लगवाये, बड़ी-बड़ी सड़कें बनवायीं, गैस की रोशनी का प्रबंध किया। राज्य में रेलवे का प्रवेश करवाया, विद्या और कला-कौशल की अभिवृद्धि के लिए अँगरेज़ी कालेज़, संस्कृत-कालेज, आर्ट्स-स्कूल और कन्या-पाठशाला का निर्माण कराया। आप बड़े दयालु और दानी थे। १८६८ के अकाल में आपने अपने राज्य में आनेवाले अनाज का महसूल माफ़ कर दिया और बहुत-से अन्य उपयोगी कार्य भी किये। मेयो-हास्पिटल, जगत्प्रसिद्ध म्यूज़ियम और रामनिवास-बाग़ आप ही के कला-प्रेम के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। गवर्नमेंट में भी आपका बड़ा भारी सम्मान था। आप दो बार वाइसराय महोदय की लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य भी रह चुके थे। आपको जी० सी० एस्० आई० और जी० सी० आई० ई० की पदवियाँ भी मिली थीं। १८७७ ई० के दिल्ली-दरबार में आप पधारे थे। आपकी सलामी में ४ तोपों की वृद्धि कर दी गयी अर्थात् २१ तोपों से आपकी सलामी ली जाने लगी। इंपीरियल कौंसिल के भी आप सभासद रहे थे। आप वस्तुतः विविध गुण-संपन्न, उदार, बुद्धिमान्, प्रजा-प्रिय और शिक्षित महाराजा थे। आपका १८८० ई० में वैकुंठवास हो गया। आपकी मुसाहिबी (Primeminister-ship) का प्रतिष्ठित पद पाने का सौभाग्य इस लेखक के

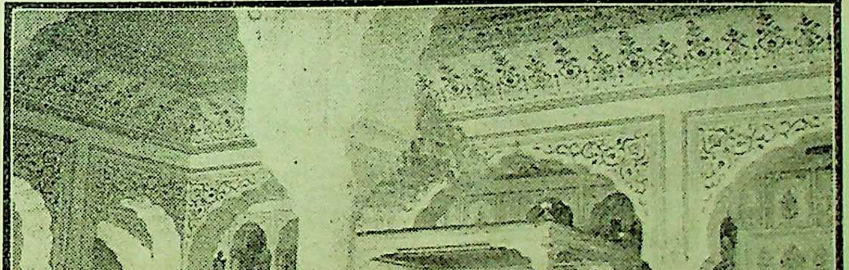

(८)
जयपुर दरबार का दृश्य
(सिंहासन पर लार्ड इर्विन और महाराजा मानसिंहजी)

पूज्य प्रपितामह पुरोहित श्रीरामप्रसादजी को प्राप्त हुआ था ।

आपके पीछे राजावत-कुल के एक सरदार, ईसरदा के १९ वर्षीय ठाकुर साहब कायमसिंहजी ने राजगद्दी को सुशोभित किया और अपना माधोसिंहजी (द्वितीय) नाम रक्खा । आप भी रामसिंहजी के समान ही प्रजाप्रिय थे । अँगरेज़ी और संस्कृत-कालेज की बहुत कुछ उन्नति और स्थान-स्थान पर प्राइमरी तथा सैकेंड्री स्कूलों का निर्माण आप ही के समय में हुआ । प्रजा को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करना ही आपका आदर्श ध्येय था । वाणिज्य-व्यापार को भी आपने अच्छी तरक़्क़ी दी और "इकानामिकल एंड इंडस्ट्रियल म्यूज़ियम" की तथा एक शिल्प-प्रदर्शिनी की भी स्थापना की । नगर में और बड़े-बड़े ग्रामों में अस्पताल खोले गये । रेलवे-लाइन की और सड़कों की खूब ही वृद्धि की गई । १९०० ई० के भयंकर दुर्भिक्ष में आपने "आल-इंडिया-फेमीन-फंड" को २५ लाख रुपये प्रदान किये और अपने राज्य में सिंचाई की सुविधा के लिए कई बाँध भी बँधवा दिये । ऐतिहासिक स्थानों का, पुराने मकानात का और सवाई जयसिंहजी की बनाई हुई सभी बेधशालाओं का आप ही ने जीर्णोद्धार करवाया था ।

महाराजा साहब सच्चे वैष्णव थे और हिंदूधर्म के परम पक्षपाती होकर भी दूसरे धर्मों की उन्नति में व्याघात पहुँचाने का विचार तक नहीं करते थे । सम्राट् सप्तम एडवर्ड की ताज़पोशी के समय आप बड़े ही अनूठे ठाट-बाट के साथ विलायत पधारे थे । इस महान् यात्रा के लिए आपने एक नवीन जहाज़ बनवाया था और उसमें अन्य आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त गंगाजल और हाथ धोने की मिट्टी तक भी यहीं से रख ली गयी थी । इँगलैंड-यात्रा के पश्चात् आप १९०२ और १९०३ के दिल्ली-दरबारों में पधारे और विक्टोरिया-क्रास भी प्राप्त किया । १९११ में आपने वर्तमान सम्राट् और सम्राज्ञी का जयपुर-स्टेशन पर बहुत अच्छा स्वाग किया और शुभागमन की ख़ुशी में किसानों की तौ के ५० लाख रुपये भी माफ़ कर दिये । आप नरें मंडल के सदस्य थे और उसमें प्रतिवर्ष जाते भी सभी पदवियों के साथ आपका शुभ नाम यह है

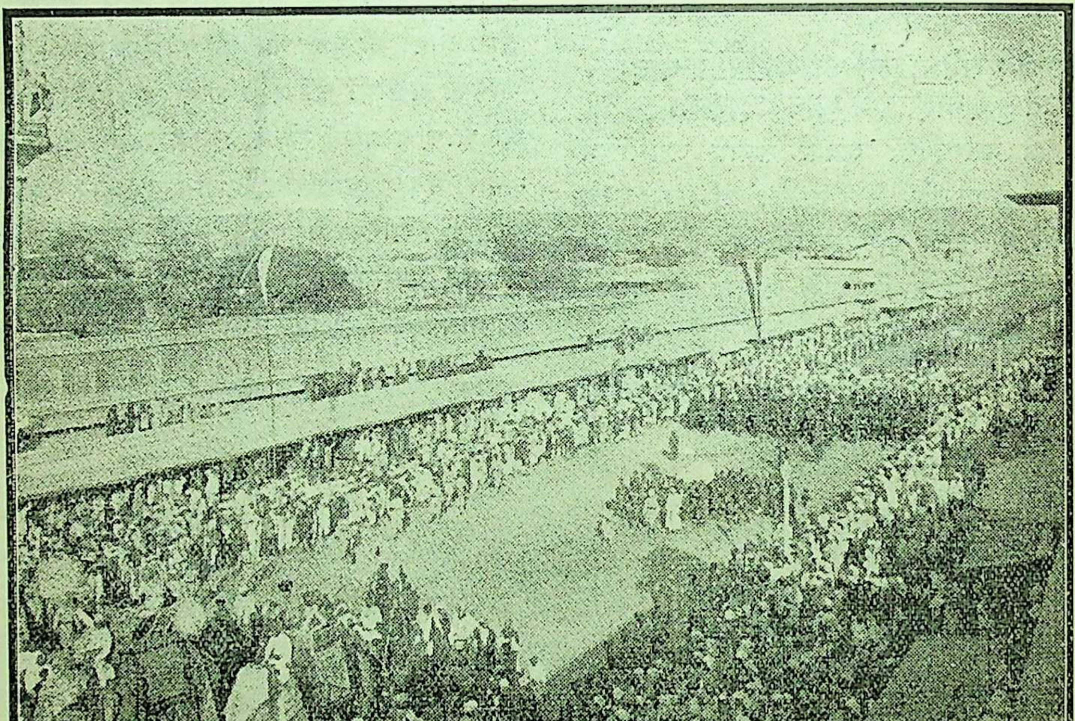

(९)

वर्तमान जयपुर-नरेश की सवारी

मेजर जनरल हिज़ हाईनेस सर आमदे राजहाय हिंदुस्थान राजराजेंद्र महाराजाधिराज सवाई श्रीमाधोसिंहजी बहादुर जी० सी० एस्० आई०, जी० सी० आई० ई०, जी० सी० वी० ओ, जी० पी० ई०, एल्० एल्० डी० (एडन०)। इस लेखक के पूज्य पिताजी श्रीरामप्रतापजी को आप ही ने जयपुर-कौंसिल का मेंबर बनाया था।

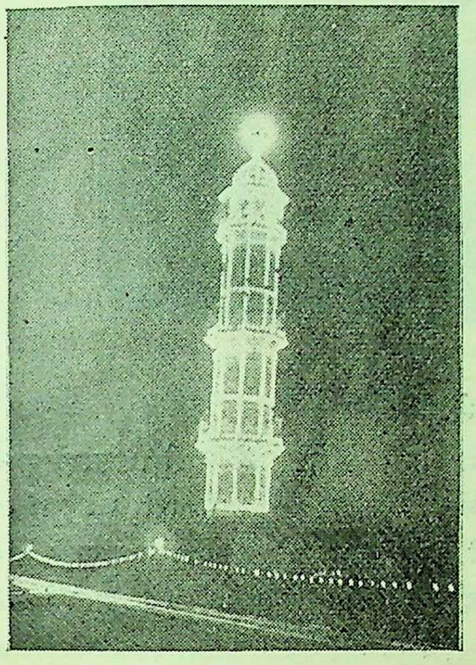

(१०)

ईश्वरलाट की रोशनी

आपके बाद ईसरदा के ठाकुर साहब के छोटे पुत्र मोरमुकुटसिंहजी, जिनको आपने २४ मार्च १९२१ को दत्तक लिया था, सवाई मानसिंहजी (द्वितीय) नाम रखकर ७ सितंबर १९२२ को जयपुर के राज्यसिंहासन पर विराजे। आप चित्र नं० १ में, जो १९२८ में "दी राजपूताना फ़ोटो आर्ट स्टुडियो" ने लिया था, दरबारी पोशाक पहने कुर्सी पर विराजमान हैं। यह स्टुडियो जयपुर क्या राजपूताने-भर में फ़ोटो और चित्रकारी के काम में अद्वितीय है। महाराजा साहब का यह निजी स्टुडियो है। आप इसमें कई बार पधारकर इसको सम्मानित और उत्साहित कर चुके हैं। ये सभी चित्र इसी स्टुडियो के बनाये हुए हैं।

श्रीदरबार साहब राज्यगद्दी को सुशोभित करने के पहले कोटा के एक स्कूल में पढ़ते थे। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात"—इस लोकोक्ति के अनुसार आपने अपनी असाधारण बुद्धि का परिचय उक्त पाठशाला के सभी अध्यापकों एवं छात्रों को दिया था; किंतु यह कोई भी नहीं जानता था कि यह बालक निकट भविष्य में जयपुर का महाराजा—२५ लाख प्रजा का भाग्य-विधाता—होनेवाला है। इस समय आपकी १० वर्ष की अवस्था थी।

कौंसिल आफ़् रीजेंसी ने आपको १९२३ में शिक्षा प्राप्त करने के लिए मेयो-कालेज, अजमेर भेज दिया। यह लेखक भी आपका कालेज-फ़ेलो रहा है। अतः आपके स्वभाव से और कुशाग्र-बुद्धि से बहुत कुछ परिचित है। दूसरे इस लेख के लेखक को जयपुर के रामबाग़-पैलेस में आपके दर्शन करने का—आपसे वार्तालाप करने का प्रायः प्रतिदिन ही सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। मेयो-कालेज में आप प्रतिवर्ष अच्छी श्रेणी में पास होते थे और पोलो (चित्र नं० २), क्रीकिट, हाकी, टेनिस इत्यादि खेलों में प्रायः प्रथम ही रहा करते थे। पढ़ाई और खेलों में आपको दत्तचित्त और दक्ष जानकर वहाँ के प्रिंसिपल साहब ने आपको १९२७ में "मेयो-कालेज कलर्स" प्रदान किया और १९२८ में मानीटर, ड्रिल के इंसट्रक्टर और स्काड्रन के कमांडर भी (चित्र नं० ३) आपको बना दिया। यह सम्मान आपकी उच्च पदवी (पोज़ीशन) के कारण नहीं, किंतु आपकी वास्तविक योग्यता के कारण ही प्राप्त हुआ। सभी खेलों में कमाल हासिल करके आपने १९२९ में द्वितीय श्रेणी में डिप्लोमा पास किया। आपके विद्या-प्रेम, परिश्रम-शीलता और विलक्षण बुद्धि का ज्वलंत प्रमाण इससे बढ़कर और क्या हो सकता है।

मेयो-कालेज के अध्यापक तथा छात्र आपके सद्गुणों की मुक्त-कंठ से प्रशंसा करते थे। आपकी सैकिंड लैंग्वेज़ हिंदी थी। रामायण (सं० रामचरित-मानस) से और शेक्सपीयर के ड्रामों से आपको विशेष प्रेम था। आपकी मधुर मुसकान, सुडौल एवं गठीला सुंदर शरीर, प्रेमपूर्ण वार्तालाप और सरल स्वभाव मेयो-कालेज के व्यक्तियों को ही नहीं, किंतु सभी मिलनेवालों को विमोहित कर लेता है। आपका शुभ विवाह ३० जनवरी १९२४ को वर्तमान जोधपुर महाराज की बहन से हुआ है और ईश्वर ने आपको एक महाराजकुमारी भी प्रदान की है।

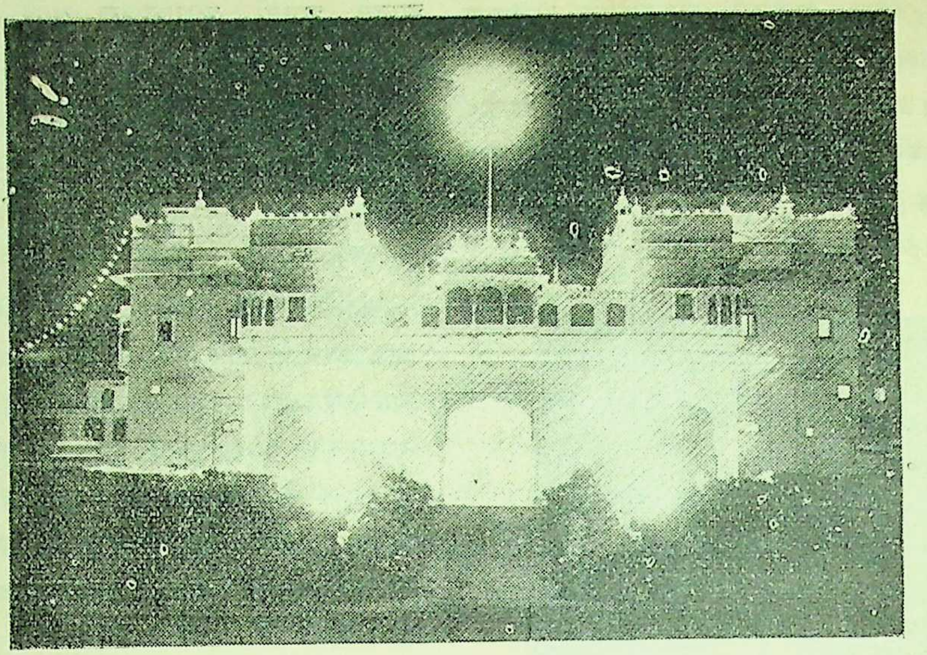

(११)
रामनिवास बाग़ की रोशनी

२० जुलाई १९२९ को डिप्लोमा पास करके आप "दी रायल मिलीटेरी एकेडमी, वोल्विच" में उच्च मिलीटरी-शिक्षा प्राप्त करने के लिए विलायत गये। वहाँ भी आपने अच्छा नाम पैदा किया। टाइंस आफ़् इंडिया, पायोनीयर इत्यादि उच्च कोटि के कई पत्रों में आपकी सच्चरित्रता एवं बुद्धिमत्ता के विषय में कई बार लेख निकल चुके हैं। आप वहाँ सम्राट् तथा प्रिंस आफ़् वेल्स से मिले और उनसे बहुत देर तक बड़ी ख़ूबी के साथ वार्तालाप भी किया। एक वर्ष का कोर्स एक ही वर्ष में समाप्त करके ता० ४ अक्टूबर १९३० को आप जयपुर वापस आ गये। यहाँ आकर नवंबर के प्रथम सप्ताह से ही आपने राज्य के सारे महकमों की देख-भाल प्रारंभ कर दी और ग्राम-ग्राम में दौरा करके अपनी प्रजा के सुख-दुःख का ज्ञान प्राप्त किया। आपने कई सम्मानित ट्राफ़ीज और पोलो के कप भी जीते हैं। उनमें से कुछ चित्र नं० १२ में विद्यमान हैं। "आल इंडिया पोलो चैंपेन शिप्" का वाइसराय-कप भी, जिसे आपने जनवरी के द्वितीय सप्ताह में जीता है, टेबिल पर बीचोंबीच रक्खा है। इसके अनुसार ही बाक़ी के दूसरे कप को जीतना भी अत्यंत दुस्साध्य कार्य था, किंतु आपकी दक्षता के सम्मुख वह अत्यंत सरल हो गया। आप अब हिंदुस्थान-भर में पोलो के एक बड़े भारी खिलाड़ी समझे जाते हैं। घोड़े के सवार और शिकारी भी अद्वितीय हैं। गोली का निशाना भी कमाल का लगाते हैं। संक्षिप्त में यही कहना सर्वथा योग्य है कि आपमें राजोचित सभी गुण विद्यमान हैं।

(१२)
खेलों में जीते हुए कप

असाधारण योग्यता के प्रभाव से ही आपको २०वें वर्ष में राज्य के सर्वाधिकार मिल गये। २२वें वर्ष में अख़्तियारात देने के दृढ़ नियम को सरकार क्यों तोड़ती, यदि आपमें विशेष गुणों का समावेश न होता। वस्तुतः आपमें भाग्य और बुद्धि की असाधारणता स्पष्ट दृष्टि-गत होती है। वाइसराय महोदय यहाँ १३ मार्च को ८½ बजे प्रातःकाल पधारे। चित्र नं० ४ से महाराजा साहब के साथ आपका जयपुर-स्टेशन से बाहर पधारना प्रतीत होता है। आपने १०½ बजे ड्योढ़ी में पधारकर राज्य के लवाज़मे (हाथी, घोड़े, ऊँट, रथ आदि) का निरीक्षण किया। चित्र नं० ५ वह ग्रूप है, जो लवाज़मा देखने के समय मुबारक महल के आगे लिया गया था। लंच के बाद ३ बजे आप लक्ष्मणडूँगरी पधारें और वहाँ नये वाटर-वर्क्स को खोलने की रस्म अदा की (चित्र नं० ६)। तत्पश्चात् आप टी लेने के लिए आमेर के पुराने महलों में पधारे। चित्र नं० ७ वहीं पर "गणेश-पोल" की सीढ़ियों पर लिया गया था।

ता० १४ मार्च को २ बजे एक बहुत बड़ा दरबार ड्योढ़ी के दीवानख़ाने में हुआ। उसमें वाइसराय महोदय ने २½ बजे पधारकर महाराजा साहब को राज्य के सर्वाधिकार दिये। इसी समय महाराजा साहब ने एक छोटा-सा वक्तव्य दिया और राज्यतिलक की ख़ुशी में पुरानी बक़ाया और हासिल का चौथा हिस्सा किसानों को माफ़ कर दिया। चित्र नं० ८ दरबार का है और ९ वाँ सवारी का है, जो सर्वाधिकार-प्राप्ति के पीछे महाराजा साहब ने उसी समय की थी। रात को रामबाग़-पैलेस में वाइसराय को एक बैंकेट दिया गया। दो दिन तक जयपुर का सौंदर्य और भी बढ़ गया था। बाज़ार और सड़कें भी ख़ूब ही सजाई गई थीं। बिजली की रोशनी भी पर्याप्त की गई थी। चित्र नं० १०-११ से ईश्वर लाट (सरगासूली) और रामनिवास-बाग़ के म्यूज़ियम की रोशनी प्रतीत होती है। वाइसराय महोदय उसी रात को १०½ बजे दिल्ली वापस चले गये। सभी काम बड़ी ही ख़ूबी के साथ सानंद समाप्त हो गये।

महाराजा साहब अब प्रतिदिन रामबाग़ में ही राज्य का कामकाज दत्तचित्त होकर करते हैं। दीन-दुखी की पुकार सुनते हैं। और उसका उचित समाधान भी करते हैं। हमें आशा है कि आप अपने आदि-पुरुष श्रीरामचंद्रजी को आदर्श मानकर ही शासन करेंगे। भगवान् से हम प्रार्थना करते हैं कि आप दीर्घायु हों।

प्रसिद्ध डॉक्टरों से बहुपरीक्षित और बड़े-बड़े समाचार-पत्रों व समालोचनाओं से उच्चप्रशंसित

[illegible] REGD.

Beware of Misnomer Imitations.

उत्थानशील पेशी के उत्तेजक, शक्तिवर्द्धक, श्रेष्ठ औषधि। पुरुषत्व-हानि, सुज़ाक, गर्मी (गनोरिया), स्वप्न-विकार, धातु-संबंधी रोगों और विकारों को दूर करने में इसके समान दूसरी दवा नहीं। अंत्रस्थ इनहिबेटारी नर्व के ऊपर क्रिया करके १ ख़ूराक में दीर्घ स्तम्भन-शक्ति आ जाती है। सूचीपत्र मुफ़्त। मूल्य एक शीशी १॥), २ शीशी ४।) महसूल अलग।

जि. वी. सि. पि. वर्कस्, हाटखोला (३६) कलकत्ता

Agents—Baldeo Prasad Anantalal Jauhari, Chowk, Allahabad. Kemp & Co. Ltd., Bombay. Srikrishn and Bros., Madras, Abdullabhai & Sons, Jubbulpur, Amrit Pharmacy, Nagpur.

१९०० ख़ीष्टाब्द नदीया सेसन कोर्ट और १९१० ख़ीष्टाब्द फरीदपुर कोर्ट से विजयी, देश विदेश के बहु संभ्रांत मनुष्य से प्रशंसित, प्रत्यक्ष फलप्रद। कवच के साथ गारन्टी देते हैं।

लक्ष्मी-हनुमान-कवच—सर्व सिद्धिदाता। धारण से प्रचुर अर्थ, आयु, आरोग्य, स्वास्थ्यसौंदर्य, विद्या, सौभाग्य, बन्धु, पुत्रलाभ, लाटरी और घुड़-दौड़ में जयलाभ, परीक्षा में उत्तीर्ण, थोड़े ही परिश्रम में व्यवसाय-वाणिज्य में शीघ्र उन्नति और कास लगना होता है। लक्ष्मी अचला होके बैठती है। मूल्य ५) डा० ख़र्च ।=) आना। सूचना मुफ़्त।

सिद्धवशीकरणकवच—धारण में शत्रु और मित्र वश होके अनुगत और वाध्य होते हैं, मूल्य ५।॥), महसूल ।=) विदेश के आर्डर के साथ पूर्ण मूल्य व म० १॥=) पेशगी चाहिये।

आर. एन. शर्मा. शोभाबाज़ार कलकत्ता (१०८)

गजेंद्र-मोक्ष

[श्रीगिरधारीलाल वैश्य वकील 'व्रजेश']

नलिनी विविध रंग जाति विश्व-सर बीच,
सरस स्वतंत्रतांबु संग जहाँ साँधी है;
दासता तपन ताप तापित व्यथित चित्त,
स्वादु वारि जानि उतै धायो जिमि आँधी है।
शासन विदेशी ग्राह हलतै दबोच्यो ताहि,
अंत मैं 'व्रजेश' करुना पै आस बाँधी है;
सत्याग्रह-गरुड़ सँवार्‌यो, ग्रह टार्‌यो आय,
भारत-गयंद को गोविंद भयो गाँधी है।

हिंदी में उचित वक्ताओं की आवश्यकता

[प्रो० पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०]

शीर्षक को देखकर आपको आश्चर्य होगा कि इसमें समालोचकों की जगह 'उचित वक्ताओं' शब्द का प्रयोग क्यों किया गया है। इसका कारण है, और वह यह कि हिंदी में अभी उचित वक्ता शब्द का अर्थ नहीं बिगड़ा है। उसका वही अर्थ है—उचित कहनेवाला। समालोचक शब्द का अर्थ कुछ बदल गया है। उचित कहनेवाला उचित ही बात कहता है; वह किसी को बुरी लगे या भली। काम तो यही समालोचक का भी है, किंतु रुपये लेकर मनमानी व्यवस्था बेचनेवाले पंडितों की भाँति हिंदी के कितने ही लेखकों ने समालोचना को प्रशंसा का पर्यायवाची बना डाला है। 'खरी कहैया, दाढ़ीजार' होता है, सो जिसे दाढ़ीजार बनना हो, वह खरी कहे। हिंदी में ऐसे लोग कम हैं जो दाढ़ीजार बनने को तैयार हों। परिणाम यह हुआ है कि 'परस्परं प्रशंसंति अहोरूपमहोध्वनि' का बाज़ार गर्म हो गया है और इस हिंदी की दूकान पर घटिया और चोरी के माल की भी खूब प्रशंसा की जाती है। जिससे और लोग भी अपनी योग्यता को बढ़ाने और सत्साहित्य का निर्माण करने की जगह घटिया और चोरी का माल तैयार करके वाहवाही लूट कर हिंदी-साहित्य को एक ऐसे कोने में ढकेल रहे हैं, जहाँ से उसका सुस्वस्थरूप में निकलना कठिन हो जायगा। इस काम के लिए—बुरे को भला कहने के लिए—लोगों ने पश्चिम से आये हुए या सनकियों द्वारा प्रयोग में लाये गये 'कला की दृष्टि' आदि शब्दसमूहों की आड़ ले ली है। परिणाम यह हुआ है कि भूलों से भरे अनुवादों, कठिन शब्दों से रहित अथवा सरल शब्दों के भी ऊटपटांग अर्थ देनेवाले कोषों, भद्दी तुकबंदियों के संग्रहों, मुहावरे से रहित व्याकरण की अनगिनती भूलों से भरी हुई भाषा में लिखी पुस्तकों, दूसरों की खोज को चुराकर लिखे हुए थोथे पोथों आदि का प्रचार खूब हो रहा है और हिंदी में जिनका काम समालोचना करना है, वे इनके लिए प्रायः लिख देते हैं कि 'पुस्तक उपादेय है, बड़े परिश्रम और खोज से लिखी गयी है' अथवा 'लेखक की प्रतिभ अद्भुत है, उड़ान ऊँची है, हृदय में खलबली मच जाती है, छपाई-सफ़ाई अच्छी है' आदि। उचित

बातरूपी तेज़ क़ैंची से काम लेनेवाले मालियों के अभाव में समालोचक नाम को बिगाड़नेवाले दब्बू और पर-कृपा-निर्भर लोगों द्वारा घासकूड़ा बढ़ाया जा रहा है। उद्यान जंगल में परिणत हो रहा है। कोई कहने-सुननेवाला नहीं। कहिए तो बुरे बनिए।

यदि कुपढ़ हिंदी-लेखक ऐसा करें, तो चाहे कोई कुछ न भी कहे, रोना तो यह है कि समझदार और मर्मज्ञ भी या तो वही राग अलाप रहे हैं, या चुप हैं। यदि कोई उचित बात कहने का साहस दिखाता है, तो सबका बुरा बन जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि इस विषय में अब एक अलग आदर्श खड़ा किया जाय, और वह समर्थ और निर्भय लेखकों का एक मंडल बनाकर। इस मंडल का कर्तव्य हो कि वह कूड़ा-कर्कट को हटाने के लिए कठोर-से-कठोर शस्त्रों को काम में लावे। जब तक ऐसा न किया जायगा, तब तक हिंदी में समालोचकों और संपादकों के रूप में ख़ुशामदी टट्टू बढ़ते रहेंगे और साहित्यिक उठाईगीरों और डकैतों की संख्या कम न होगी। यह कठिन और कठोर कर्तव्य है, पर हिंदी के भविष्य को देखते हुए अत्यावश्यक भी है। आशा है, हिंदी-लेखक इस ओर ध्यान देंगे।

मुखबिलास मसाला
REG No.
MUKH BILAS MASALA

मगाओ मुफ्त मगाओ

अगर आप पान खाने के शौकीन हैं तो हमारा मुखबिलास मसाला व ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट पान में जरूर खाइये खुश्बूदार व खुश-जायका है ।।

(मुखबिलास मसाला)

कीमत मुखबिलास मसाला छोटी डि० फ़ी दरजन १।।।=) बड़ी डि० फ़ी दरजन ३।।।)
कीमत ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट छोटी डि० फ़ी दरजन २) बड़ी डिब्बी फ़ी दरजन ४।।)
फ़ैन्सी पुड़िया ।।।)।। सैकड़ा

[नोट] ज्यादा हाल जानने के लिये नमूना कैलेन्डर और नोटिस मुफ्त मंगाइये ।।

पता— पं० प्यारेलाल शुक्ल
प्यारे लाल शुक्ला स्ट्रीट कानपुर ।।

ताम्बूल अम्बरी टिकिया
पानमें खाइये
TAMBUL-AMBARI
TABLETS
TO BE USED WITH BITTLES

(ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट)

अर्चना

[श्री० क्षमारानी माथुर]

निज अनुराग राग रंजित कर तव अधराधर ओर ;
हृदय तिमिर-अंजन अंजित कर फिर युग लोचन कोर ।
अश्रुकणों का अर्घ्य दान दूँ, हो आनंद-विभोर ;
आशा-अक्षत ले, बन जाऊँ तव सुख-चंद्र चकोर ।
हे मेरे प्रिय इष्ट !

तुझे है श्रेय,
मैं ध्यानी तू ध्येय—
चंदन-चर्चित कनक-कलेवर, लेकर फिर सम्मुख आ नटवर,
हृदय-पात्र में पुष्प चयन कर—
तुझे चढ़ाऊँ भोर ;
हे मेरे चित चोर !

विश्व-कल्याण

[श्रीयुत वियोगी हरि]

(१)

हे अज्ञेय देव ! कितने वादों और कितने संप्रदायों ने अपने-अपने दायरे में तुझे बाँध लेने का प्रयत्न किया, पर वाह रे खिलाड़ी ! साफ़ निकल गया, आज तक किसी के भी बंधन में न आया । तुझे बाँधते-बाँधते बुद्धि स्वयं बँध गयी । तुझे छूने के लिए तर्क भी दौड़ते-दौड़ते लँगड़ाने लगा । ज्ञान का होश-हवास जाता रहा । दलील दब गयी । वेद दाँतों में उँगली दबाये रह गये, बेचारे 'नेति-नेति' ही कहते रहे । शास्त्रों को तो अनेक बार मुँह की खानी पड़ी । संप्रदायों की आँखें तिलमिला गयीं । मज़हबों की भी तेरे आगे एक न चली । इन सबने तेरी नयी-से-नयी रिसर्च की और अब भी करते ही जा रहे हैं, पर कुछ पूरा न पड़ा । जब किसी जानकार से पूछा कि ख़ुदा के बारे में उसने अपने इल्म से क्या जाना, तो जबाब मिला—'यही जाना कि अब तक कुछ नहीं जाना !'

(२)

धर्म या मज़हब तो तेरे विरह की तड़प को, शराब की तरह, बस थोड़ी देर के लिए भुला देगा ।

(३)

ख़ुदी के नशे में चूर वे कूपमंडूक पंडित और वे कठमुल्ले राहेख़ुदा क्या ख़ाक दिखायेंगे । अरे, वह तेरा 'गोकुल गाँव का पेंड़ा ही न्यारा' है ।

(४)

और सारी बातें तो अब भी उस धर्म-नगरी मौजूद हैं, पर प्यारे सिरजनहार, एक तू ही व लापता है । बारात तो है, पर दूलह नहीं है । उस सुं उद्यान में आज भी फूलों की कमी नहीं है, पर करें क्य ऐसी रंग-बिरंगी फुलवारी को लेकर, जिसमें तेरी लग की न तो वह भीनी-भीनी महक हो, न तेरे प्रेम क वह प्यारा-प्यारा पराग ?

(५)

धर्म का अर्थ 'सत्य' नहीं, 'स्वार्थ' है । मज़हब क मतलब 'ईमान' नहीं, बल्कि 'मतलब' है । मतलब ब गया, तो सब बन गया । धर्म एक गूढ़ रहस्य है, ए बड़ी आड़ है, एक अच्छा पर्दा है । वहाँ बैठकर च जितने पाप किये जा सकते हैं । उस बस्ती में गुना की छूट है । बुरे-से-बुरे कर्म हम चाहे जितने किये जा बस, धर्म की ओट लिये रहें ।

(६)

वहाँ आस्तिक तो प्रायः सभी हैं, पर ईश्वर विश्वास किसी एक का भी नहीं है । उस नगरी नास्तिक एक भी नहीं है, पर अपने कर्मों से ईश्वर उपहास करनेवाले वहाँ अनेक हैं । यही तो उ ख़ूबी है !

(७)

वे जो हृदय से शपथपूर्वक तेरे साथ अपना संबंध-विच्छेद कर चुके हैं, आज तेरी रक्षा का भार अपने कंधों पर उठा रहे हैं, यह धर्म का एक ख़ासा मख़ौल नहीं तो क्या है ? बेचारे रूस ने यह बुरा ही क्या किया, जो झूठे ईश्वर का बायकाट करने के लिए अपनी आवाज़ बलंद की ? जिस झूठी स्वार्थ-वासना को हम सब धर्म-दंभी पवित्र ईश्वर-सत्ता का नाम दे बैठे हैं, उसे यदि किसी ने खुल्लमखुल्ला हिम्मत के साथ ठुकरा दिया, तो क्या यह ईश्वर-विद्रोह हो गया ? पर बलिहारी है समय की सूझ पर !

(८)

वहाँ से तो यह वीरान मैदान ही बहुत अच्छा है। यहाँ न वेद की बातें सुन पड़ती हैं, न कुरान या बाइबिल की। यहाँ न मठ या मंदिर है, न मसजिद या चर्च। न संघ है, न मिशन। न कोई मत है, न मज़हब। खुला आकाश है, खुली हवा है। मीलों तक प्रेमियों के दिल का रक़बा फैला हुआ है। तेरी दया के बारहमासी झरने झर रहे हैं। यहीं तू हँसता-खेलता मिलेगा, यहीं तेरे प्रेम का राज़ खुलेगा।

(९)

जो ब्रह्मांड के रोम-रोम में समाया हुआ है, वह मंदिर या मूर्ति से अलग होगा यह कल्पना ही निराधार है। विश्व-रमण राम ! तू कहाँ नहीं है ? प्यारे, मूर्ति में भी तू है, और मूर्ति के बाहर भी तू है। बुतपरस्त में भी तू है, और बुतशिकन में भी तू ही है।

(१०)

कैसे तेरे मंदिर में आऊँ ? कैसे तेरे सम्मुख व्यर्थ अभिमान का भागी बनूँ ? अपने को औरों से उच्चतर मानते हुए मन में अमित अभिमान का उदय तो होगा ही। मैं निस्संदेह महान् और पवित्र हूँ तभी तो अपने परमपिता की पुनीत सेवा में उपस्थित होने का मुझे जन्म-सिद्ध अधिकार प्राप्त हुआ है। उन अधम अछूतों से तो मैं हज़ार दर्जे अच्छा हूँ, जो मंदिर के अंदर सिर भी नहीं रख सकते ! ऐसी क्षुद्र अभिमानमयी भेद-भावना तो मन में आएगी ही। तू मेरी इस झूठी ऊँचाई के अभिमान को क्या पसंद करेगा ? एक बच्चा तो तेरी प्यार-भरी गोद में आकर बैठ जाय और दूसरा दूर से ही तरसा करे। पिता को क्या यह विषम व्यवहार अच्छा लगेगा ? तेरी मुझ पर सदा एक-सी कृपा बनी रहे, इसीलिए मैंने द्विजाति-अधिकृत मंदिरों से असहयोग कर रक्खा है। जो प्रभु-पूजा का स्थान मेरे दलित भाइयों के लिए नियत है, वही मेरे लिए भी है। जहाँ वे हैं, वहीं मैं हूँ। मैं उनसे बड़ा नहीं, उनसे बढ़कर नहीं। यही मेरे मंदिरों में न जाने का मुख्य कारण है।

(११)

तू किसी ख़ास संप्रदाय या ख़ास जाति की ही संपत्ति नहीं है। हर कोई तेरा है और तू हर किसी का है। मत-मज़हब के बखेड़ों से तू सदा दूर रहा है। मज़हब का कच्चा क़ानून तेरी प्रेम-रस-धारा के निरंतर प्रवाह को आज तक रोक नहीं सका।

(१२)

देव-मंदिर की फाटक-बंदी करना भी क्या कोई धर्माज्ञा है ? अरे, तेरे सामने कौन बड़ा और कौन छोटा ! कौन ऊँचा और कौन नीचा ! तेरा मंदिर भाड़े का मकान नहीं है, वह किसी ख़ाला का घर नहीं है।

(१३)

मेरा आज भी कुछ ऐसा विश्वास है कि तेरे दरबार में तो दीन-दुर्बल का ही आदर होता है। जहाँ दीन और दलित दुतकारे जाते हों, वह तेरा दरबार ही नहीं है। झूठे दींदार अपनी ज़बरदस्ती से दौलत के पुतलों को स्वर्ग के राज्य में ठेल-ठालकर ले जाना चाहते हैं, पर वे वहाँ घुसने न पायेंगे, यह निश्चय है। केवल वे ही वहाँ प्रवेश पा सकेंगे जो आज यहाँ रोके जा रहे हैं।

(१४)

तेरा अपमान अब तो नहीं देखा जाता। क्यों न मैं विद्रोही बन जाऊँ, इन मज़हबी डकैतों और ईमान के ठग सौदागरों के ख़िलाफ़ ? कहाँ तक देखी-सुनी जायगी, धर्म के पवित्र नाम पर तेरी सत्ता की विचित्र विडंबना, तेरा यह सार्वभौम धर्म-तिरस्कार ! आँखें देखते-देखते पथरा जायँगी, सुनते-सुनते कान पक जायँगे। एक दिन ठंडे से भी ठंडा हृदय विद्रोह की आग से जल उठेगा।

(१५)

आज बड़ों के बड़े-से-बड़े पाप-कृत्य भी तेरी ही ओट में छुपा लिये जाते हैं, और तेरी ही सत्ता के नाम पर छोटों के अच्छे-से-अच्छे सुकर्म भी धूल में मिला दिये जाते हैं !

तेरा ही नाम लेकर समाज के बड़े आदमी आसमान पर चढ़ा दिये जाते हैं, और नाथ, तेरी ही अनकृपा का भय दिखाकर दीन और दुर्बले रसातल में फेंक दिये जाते हैं! मालूम होता है, ईश्वर अब सिर्फ़ अमीरों के ही काम का रह गया है।

(१६)

मैं धर्मवान् हूँ या धर्म-च्युत, मैं आस्तिक हूँ या नास्तिक, मैं मूर्ति-पूजक हूँ या मूर्ति-निंदक, इन सबका समझनेवाला तो नाथ, एक तू है, यह भेड़ियाधसान मज़हब की पब्लिक नहीं। इन लोगों के दिये फ़ैसले को मैं फ़ैसला ही नहीं मानता। फ़ैसला देनेवाले ये सब होते कौन हैं? पहिले ख़ुद अपना तो फ़ैसला कर लें।

(१७)

दिल में तेरे मिलने के लिए तड़प हो, लगन हो तो कोई भी रास्ता तेरा हाथ पकड़ा देगा, वर्ना अच्छे-से-अच्छे रास्ते में भी झूठी बनावट ही है। सभी सच्चे हैं और सभी झूठे हैं। तू मिल गया तो सब सच्चे, और परदे की ओट में रहा, तो फिर झूठे तो हैं ही। तेरा दीदार न मिला, तो वह खोज ही किस काम की, वह रास्ता ही किस मतलब का?

(१८)

अपने धर्म में जो जितना ही ज़्यादा कट्टर होगा, उतनी ही ज़्यादा उसकी तारीफ़ होगी। कट्टर वह जो दूसरों को काटने दौड़े। हाँ, पक्का धार्मिक वह, जो सद्भाव और सहिष्णुता को ठुकरा चुका हो।

(१९)

सारांश--सच्चाई, सहिष्णुता और ईश्वर-भक्ति का कट्टर धार्मिकों के संसार में कोई मूल्य ही नहीं। वहाँ तो तास्सुब से भरी कट्टरता ही धर्म की सच्ची कसौटी है।

(२०)

मतलब यह कि दीन की बौखलाई हुई दुनिया में प्यार करनेवाले 'मनुष्य' का मूल्य नहीं, वहाँ तो काटनेवाले कट्टर 'जानवर' की इज़्ज़त है। वहाँ सरल सहृदयों की नहीं, बल्कि कुटिल कट्टरों की घनी आबादी है।

(२१)

लड़ते-झगड़ते तो आपस में हम लोग हैं, पर चोटें सब तेरे ही ऊपर पड़ती हैं। मंदिर तोड़े जाते हैं तो तेरे, और मसजिद गिरायी जाती हैं तो तेरी। हिंदू मारा गया, तो तेरा ही एक पुत्र गया और मुसलमान का ख़ून हुआ, तो तेरा ही एक बेटा जान से हाथ धो बैठा! तुझ पर कैसी लाठियाँ पड़ रही हैं। कोई तेरे दाहने हाथ पर चोटें करता है, तो कोई बायें हाथ पर। मूर्ख जानते हुए भी यह नहीं जानते कि दोनों हाथ हैं तो परमपिता विराट् पुरुष के ही।

(२२)

इस जगद्व्यापी विद्वेष का लय अब महाप्रलय में ही होगा—ऐसा जान पड़ता है। इस विद्वेष ने ही कल्याणकारी धर्म का ध्वंस किया, इसी ने सामाजिक संगठन को छिन्न-भिन्न कर दिया और इसी ने हमारी स्वर्ग-श्रेष्ठ पृथिवी को नरक से भी निकृष्ट बना दिया। इसी ने दंभ-पूर्ण स्वार्थ की सृष्टि की और इसी ने ईश्वरीय सत्ता का तिरस्कार करके हमारा आत्म-पतन कराया। इस दुष्ट के अनेक रूप हैं। कहीं धर्म विद्वेष फैल रहा है, कहीं वर्ग-विद्वेष फूल रहा है और कहीं वर्ण-विद्वेष फल रहा है।

Buy
only
Mohini
Flute
harmonium, known by its name. The only durable and reliable harmonium produced.
Price:—SINGLE REED. Rs. 25, 30, 35, 40.
VIOLIN or FIDDLES - From Rs. 12.
DOUBLE REED. Rs 40, 50, 60
CORNET from
Rs. 40.
CLARIONET—
Rs. 65.
Order with Rs. 5/- in advance and mention nearest Ry. Station Catalogue on application.
30M
MOHINI FLUTE Co.
9-2, Arpuli Lane, (I. R.) Calcutta.

(२३)

ईसा, सुकरात, मंसूर, सरमद या दयानंद बचाना चाहते, तो अपने प्राण बचा सकते थे। अफ़सोस कि वे मज़हब के वकील न हुए। उन्होंने उस तर्क से काम न लिया, जो धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म सिद्ध कर देता है। जान पड़ता है वे लोग धर्म के क़ानून से अनभिज्ञ थे। वह क़ानून, जो स्याह को सफ़ेद और सफ़ेद को स्याह कर सकता है!

(२४)

मैं उन खुदमस्तों के चरणों की धूल अपने मस्तक पर चढ़ाना चाहता हूँ, जिनकी न जाति का पता हो, न धर्म का, जो समाज के सज़ायाफ़्ता हों, धर्म के ठुकराये हुए हों। वे कुछ ऐसे बहके हुए हों कि मंदिर में नमाज़ पढ़ते हों, मसजिद में कीर्तन करते हों, गिरजे में आरती उतारते हों! मैं तो अब ऐसे ही गुदड़ी के लालों की क़दमबोसी करना चाहता हूँ, जो तेरी खोज में शास्त्रार्थ को छोड़ चुके हों, तर्क-शृंखला को तोड़ चुके हों।

(२५)

संभव है, इस सद्धर्म-शून्य युग में हमारी यह विश्व-क्रांति भी हमें कोई उद्धार का मार्ग दिखा जाय। धार्मिक जगत् में विप्लव करना ही होगा अथवा वह होकर ही रहेगा।

(२६)

हमने आज तक अपमान ही तो अपने जीवन का किया है। बुद्धि का अपमान हमने किया, हृदय का अपमान हमने किया और आत्मा का भी अपमान हमीं ने किया। इन्हीं उपकरणों से तो जीवन का निर्माण होता है। ऐसे तुच्छीकृत उपकरणों के समूह को हमने धार्मिक जीवन का नाम देकर, परमात्मन्! तेरी सत्ता का केवल उपहास ही तो किया है!

(२७)

हृदय में कभी कर्म-शून्य कुछ कोमल वृत्तियाँ जगीं भी तो क्या? कभी-कभी पाप-जनित दुर्बलताओं से भी तो हमारी अंतर्वृत्तियाँ कोमल हो जाया करती हैं। किंतु हे सुंदरतम! ऐसी निर्जीव कोमल वृत्तियों की धुँधली आँखों से तेरा सुखद सौंदर्य न अब तक दिखायी दिया है, न कभी दिखायी देगा। यह दुर्गति हुई है हमारे स्नेह-शून्य हृदय की!

(२८)

उन दिनों धर्म की नसों में त्याग का उष्ण रक्त दौड़ता था। अनासक्ति की अमृत प्राण-शक्ति इसे स्वयं भगवान् ने दी थी। त्याग और अनासक्ति की रक्षा हम कायरों से न हो सकी।

(२९)

जीवन-संग्राम में हम अमर विजय चाहते हैं, तो एक जीवित विश्व-धर्म खोजना ही होगा। रूठे हुए मालिक! उसी नवनीत का नज़राना देकर हम तुझे मना सकेंगे, रिझा सकेंगे। हम ऐसी भेंट तेरे चरणों पर चढ़ाना चाहते हैं, देवाधिदेव! जो साधारण जनता की तैयार की हुई हो। वह मनुष्य-निर्मित हो, न पशु-निर्मित हो, न देव-निर्मित। हमें विश्वास है, तू अपनी मधुर मुस्कान के मोती हमारी उस भेंट पर ज़रूर बिखेर देगा। यदि विप्लव-युग की हमारी उस नव भेंट को, हे सुंदरतम, एक बार भी तू ने अपनी मीठी मुस्कान से छू दिया, तो हम धर्म-भ्रष्ट सामान्य सेवक कृतकृत्य हो जायँगे।

(३०)

हे विश्वेश! तेरा संकेत जिस धर्म की ओर हुआ है, वह विश्व-धर्म न तो नूतन ही होगा, और न पुरातन ही। विश्व उस सामान्य धर्म की साधना करता हुआ नवीनता में प्राचीनता और प्राचीनता में नवीनता देखेगा।

(३१)

प्रज्ञा से प्राचीन और क्या हो सकता है? उस विश्व-धर्म की साधना हम प्रज्ञा के ही द्वारा करेंगे।

(३२)

माना कि धर्मशास्त्र प्राचीन हैं, पर शास्त्रों की जननी प्रज्ञा तो उनसे भी प्राचीन है। अतः विश्व-धर्म में प्रज्ञा को आदर पहिले दिया जायगा और शास्त्रों को पीछे। यही तो उसकी पुनीत प्राचीनता होगी।

(३३)

प्राण-शक्ति उसमें भावना की होगी—वही, ज्ञान और कर्म की अविरोधिनी भक्ति-भावना। वही, वासना को लात मारकर साधना को आलिंगन देनेवाली अध्यात्म-भावना। भावना ही तो सत्य में अक्षय सौंदर्य की सृष्टि रचेगी।

(३४)

वह मंदिर सार्वजनिक होगा, सबका होगा। वह भिन्नता में अभिन्नता का दर्शन करावेगा। नक़शा एक नया-सा होगा। मंदिर पर शिखर भी होगा, गुम्बद भी होगा और स्टीप्ल भी होगा। उस पर कलश भी होगा, पंजा भी होगा और क्रास भी होगा। सत्य का सर्वत्र वास है, अतः उपासना के समय पूरब-पच्छिम का कोई झगड़ा न रहेगा। अल्लाह किस तरफ़ नहीं है? राम ही की तो सारी दिशाएँ हैं। मंदिर के हर कोने में काशी होगी और हर कोने में काबा। वहाँ के साधक प्यारे पवित्र पत्थरों को चूमेंगे भी और दंडवत् प्रणाम भी करेंगे।

(३५)

प्रार्थना के मंत्र संस्कृत प्राकृत में भी हैं, अरबी-फ़ारसी में भी हैं, और लैटिन अँगरेज़ी, जर्मन आदि भाषाओं में भी वैसे ही हैं। अरे, प्रार्थना की भाषा तो हृदय की भाषा है। वहाँ अपने-अपने अंतस्तल से निकली हुई प्रार्थनाओं से सभी तुझे मनायेंगे, सभी तुझे रिझायेंगे।

(३६)

अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष के समन्वय-पथ पर ही हमें अब अपना जीवन-रथ ले चलना होगा।

(३७)

कर्मवाद का आदर करते हुए भी साधक अपनी कमज़ोरियों का लेखा, मेरे न्यायाधीश, तेरे पैरों के पास रख दिया करेंगे। तुझसे पर्दा न रक्खा जायगा। सामर्थ्य दे कि हम सब असमर्थ साधक अपना-अपना पर्दा हटाकर तुझसे क्षमा की भीख माँग सकें।

(३८)

मत-विद्वेषी, वर्ण-विद्वेषी और वर्ग-विद्वेषी धार्मिक एवं सामाजिक क़ानूनों के बनानेवाले न होंगे। अदालतों में धर्म की दुहाई न दी जायगी, ईमान का सौदा वहाँ तय न किया जायगा। मतभेद तो होगा, पर प्रेम-भाव में कोई अंतर न आने पायेगा। आत्म-समता के सूत्र में विषमता के विविध मोती गुँथे रहेंगे।

(३९)

हमें प्रेम का दर्शन करना है, अतः संकीर्णता की सीमा लाँघनी ही होगी। धर्म में हमें सरल सत्य की झाँकी देखनी है, अतः सहिष्णुता का अवलंब लेना ही होगा। हमारा भावी धर्म आर्य-धर्म, बौद्ध-धर्म, इस्लाम-धर्म या ईसाई-धर्म तक ही सीमित न रहकर ए व्यापक 'विश्व-धर्म' होगा। परम-प्रभु के चरणों समीप हमें यही विश्व-धर्म ले जायगा।

(४०)

मत-मज़हबों की अँधेरी और गंदी कोठरियों में कुछ-कुछ प्रकाश आने लगा है। अब कट्टरता के मारे दम घुटा करेगा। हमें भी खुले आसमान के नीचे आज़ाद की हवा मिलेगी। जगत्पिता! जिस दिन हम सब बच्चे तेरी गोद में खूब किलक-किलककर खेलेंगे, उसी दिन हमारी अनेक युगों की असफल साधना सफल होगी।

बस, तो अब चलो—
विश्व-धर्म की शरण में;
चलो, सब मिलकर उपासना करें—
विश्व-धर्म के मंदिर में;
चलो, हम सब साधक प्राण-पण से लग जायँ—
विश्व-धर्म के प्रचार में;
चलो, एक स्वर में बोलते चलें—
विश्व-धर्म की जय।

ख़ून साफ़ करनेवाली हुक्मी दवा
डॉ. वामन गोपाल का
Trade Mark
सार्सा परिला
इनके सेवन से उपदंश (गर्मी)
लक़वा, संधिवातादि भयंकर रो
साफ़ निर्मूल होते हैं। क़ीमत १)
डा० म० अलग।
डा० गौतमराव केशव की शक्तिवर्द्धक
फॉस्फरस पिल्स
डा० गौतमराव केशव ऐंड संस, बंबई

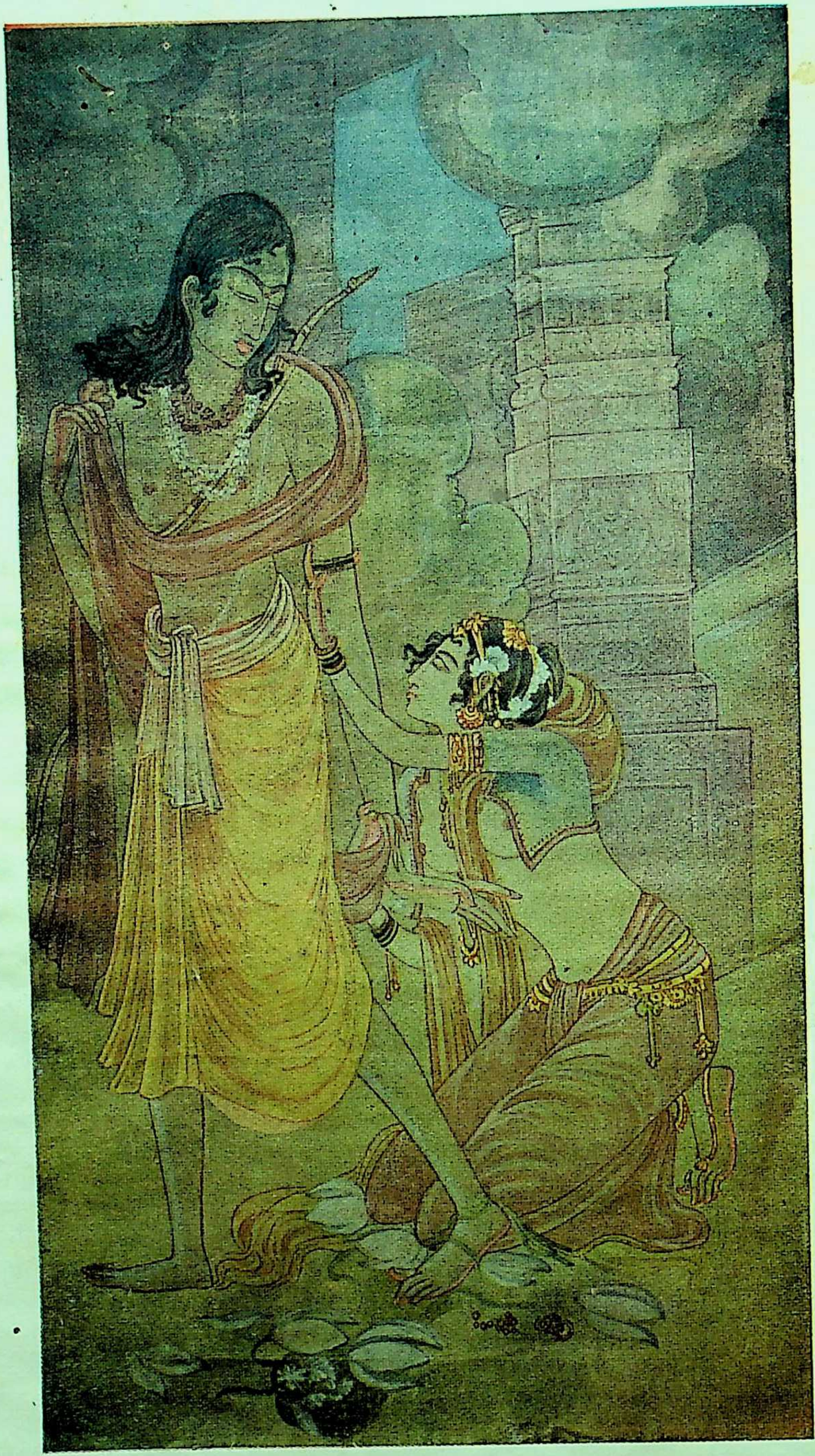

अर्जुन और उर्वशी

[चित्रकार—श्रीरामगोपाल विजयवर्गी]

N. K. Press, Lu

लड़कपन में नादानी से प्रकृति-विरुद्ध कुकर्मों द्वारा पुंसत्व या मर्दानगी खो बैठनेवाले निराश न हों।

क्योंकि

स्वास्थ्य-रक्षा और चिकित्सा-चंद्रोदय सात भाग के लेखक

बाबू हरिदास वैद्य

वीर्य-संबंधी रोग धातुक्षीणता, प्रमेह-जिरियान, स्वप्नदोष, उपदंश या गर्मी, सोज़ाक और वातरोगों की चिकित्सा में

सिद्धहस्त और अनुभवी हैं।

हज़ारों ज़िंदगी से मायूस रोगी जिन्होंने अज्ञानता-वश, स्कूली लड़कों की सुहबत से, स्वभाव-विरुद्ध कुकर्मों द्वारा अपनी ज़िंदगी ख़राब कर ली थी, अपनी पुंसत्व-शक्ति खो दी थी, सांसारिक सच्चा सुख भोगने के बिलकुल नाक़ाबिल हो गए थे, बाबू हरिदासजी की सुचिकित्सा से फिर से मर्द हो गए और संसारी सुख भोगते हुए सुख से जीवन यापन कर रहे हैं।

सच्चाई का सुबूत

आजकल विज्ञापनबाज़ों के चटकीले-भड़कीले विज्ञापनों के धोखे में आकर लाखों लोग ठगा चुके हैं, इसलिये उनका सच्चे लोगों पर भी विश्वास नहीं। सच्चाई का सुबूत यही हो सकता है कि विज्ञापनदाता, जिन रोगियों को फ़ायदा पहुँचा हो, उनके प्रशंसा-पत्रों की नक़ल भी विज्ञापनों में दे दिया करें। पर प्रमेह, धातुरोग एवं नामर्दी वग़ैरः रोगों के रोगी अपने ऐसे रोगों के संबंध की बातें सर्वसाधारण के सामने आने में शर्म की बात और बेइज़्ज़ती समझते हैं। तो भी कुछ सज्जन ऐसे भी होते हैं, जिन्हें अपने रोग की बातें प्रकाशित कराने में कोई बुराई नहीं दीखती। हमारे बुरे काम और उनके अंजामों को देखकर, अगर दूसरे लोग उनसे बचें और सुखी हों, तो इससे बढ़कर पुण्य की बात और क्या हो सकती है? जिन सज्जनों ने हमें अपने प्रशंसा-पत्र प्रकाशित करने की आज्ञा दे दी है, उनमें से एक धनी मानी, मध्य प्रदेश के मालगुज़ार बाबू कन्हैयालालजी पँवार महोदय के पत्रों का सारांश यहाँ प्रकाशित करते हैं। उन्होंने हमें ऐसा करने की आज्ञा दे दी है।

ध्यान रहे

सभी रोगियों का पत्र-व्यवहार गुप्त रक्खा जाता है। इस नियम का पालन कड़ाई से किया जाता है। अधिकांश बंद लिफ़ाफ़े की चिट्ठियाँ स्वयं बाबू हरिदासजी देखते हैं, चाहे विलंब क्यों न हो जावे, क्योंकि बुढ़ापे के कारण उनकी शक्ति दिन-पर-दिन घटती जाती है। जिनका उन पर दृढ़ विश्वास और श्रद्धा है, वे अधीर भी नहीं होते और चिढ़ते भी नहीं।

लीजिए, देखिए

बाबू कन्हैयालाल साहब पँवार, मालगुज़ार मौज़ा पिंडरई, पोस्ट खवासा, ज़िला सिवनी-छपारा क्या लिखते हैं —

"मैं नीचे की चंद लाइनें ईश्वर को साक्षी करके शपथपूर्वक लिखता हूँ। उद्देश्य यही है कि मेरे अन्य भाई मेरी तरह खड्डे में गिरने और जीवननाश करने से बचें और जो गिर पड़े हों, वे बाबू हरिदासजी से इलाज कराकर नीरोग, निर्दोष और तंदुरुस्त हों।

"मैंने अज्ञानावस्था में, मुष्टि-मैथुन (हस्त-मैथुन) द्वारा अपना सत्यानाश आप कर लिया था। अब-कि शरीर की वृद्धि और विकाश का समय था, मैंने अप्राकृतिक कुकर्मों द्वारा उसकी वृद्धि और विकाश में बाधा डाली और उसे बेकाम बना लिया। मेरा सब कुछ खो गया था, कुछ भी बाक़ी नहीं था। मुझे एक-एक रात में तीन-तीन बार स्वप्न-दोष होते थे, हर बार पेशाब के साथ सफ़ेद-सफ़ेद धातु गिरती थी। शरीर पीलियेवाले की तरह पीला हो गया था। कोई काम करने की ताक़त न रहती थी। सच्चे संसारी सुख के लिये रोता और तरसता था। मैं अपनी ज़िंदगी से आरी और सब तरह से निराश था। पर मेरे भाग्य में संसार का सुख बदा था, इसलिये मेरी तक़दीर ने ज़ोर खाया। बाबू साहब की लिखी 'चिकित्सा-चंद्रोदय' मेरी नज़र आई। ईश्वर की कृपा से, मेरा बाबू साहब से पत्र-व्यवहार हुआ। आपके पहले ही पत्र से, आपके प्रति, मेरे हृदय में अनंत श्रद्धा और विश्वास का उदय हुआ।

“मैंने बाबू साहब के पास २००) दो सौ रुपए के दो नोट और अपने रोग का पूरा विवरण लिख भेजा। आपने मुझे समय-समय पर अनेक दवाइयाँ दीं। मैंने उन्हें विधिवत्, पथ्यापथ्य का ध्यान रखकर, सेवन किया। शुरू से ही दवाओं ने फ़ायदा दिखाना शुरू किया और अंत में ८।१० महीने दवा सेवन करके मैं सब तरह से नीरोग और सुखी हो गया। पहले स्वप्न-दोष बंद हुए। धातु का पेशाब के आगे गिरना रुका। चंदनादितैल की मालिश से शरीर लाल हो गया और कुंदन की तरह दमकने लगा। शरीर में शक्ति का स्रोत उमड़ने लगा। आनंद-वर्द्धक और सुधावलेह के सेवन से सुस्ती एकदम रफ़ूचक्कर हो गई तथा दिमाग़ में तरी, हृदय में शांति का संचार हुआ। शरीर में चौगुनी शक्ति और चेहरे पर रौनक़ आ गई। बहुत क्या, मुझे बेहद फ़ायदा हुआ। धातुक्षीणता प्रमेह स्वप्न-दोष निर्बलता, शरीर का पीलापन, इंद्रिय का बाँकपन और उसकी कमज़ोरी वग़ैरः रोग जो मेरे सत्यानाशी कामों से उत्पन्न हुए थे, एक-एक करके रफ़ा हो गए। अब मैं पूर्ण स्वस्थ और नीरोग हूँ। बाबू साहब दीर्घजीवी हों, यही मेरी ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना है।”

बाबू कन्हैयालालजी सकसेना, हेडमास्टर, स्कूल महीदपुर, परगना पछार रियासत गवालियर लिखते हैं —

“श्रीमान् के औषधालय से यह सेवक तख़मीनन ४०) की दवा मँगाकर इस्तेमाल कर चुका। मुझे आपकी दवाओं से अच्छा लाभ हुआ। कितने ही सज्जन मेरी शकल देखकर कहते हैं कि पहले से आपकी शकल बहुत ही अच्छी है। मैं श्रीमान् का कृतज्ञ हूँ और रहूँगा।”

बाबू कामताप्रसादजी साहब, वकील, आनरेरी मैजिस्ट्रेट व सुपरिंटेंडेंट जेल, बस्ती लिखते हैं—

“पहले मैं बिलकुल काम न कर सकता था, पर अब आपकी दवाओं के सेवन से सब काम कर लेता हूँ। आपके “एरंड-पाक” से क़ब्ज़ में भी विशेष लाभ हो रहा है।

परमात्मा आपको चिरंजीवी रक्खे। भारतवर्ष का जो महान् उपकार आपने “चिकित्सा-चंद्रोदय” (सात भाग) और “स्वास्थ्य रक्षा” इत्यादि अमूल्य पुस्तकों की रचना करके किया है, वह मेरे-ऐसे तुच्छ मनुष्य की लेखनी से बाहर है। वास्तव में, इन पुस्तकों ने आपके नाम और कीर्ति को अचल-अमर कर दिया है।”

बस, समझदारों के लिये इतना ही क्या कम है?

हमारी दो बातें

अगर आपको सचमुच ही अपनी ज़िंदगी प्यारी है, अगर आप गृहस्थ-सुख भोगने के अभिलाषी हैं, तो चिंता न कीजिए। बाबू हरिदासजी को अपने रोग का पूरा विवरण, साफ़ काग़ज़ पर, साफ़ नागरी-अक्षरों में, लिख भेजिए। साथ ही रोग की व्यवस्था के लिये कम-से-कम ॥) या एक रुपए के पोस्टेज स्टांप भेजिए, आपको लिख भेजा जायगा कि क्या रोग है, कितने समय में, किन-किन दवाओं से आराम होगा और कितना ख़र्च पड़ेगा।

विशेष सूचना

यद्यपि कारोबार कलकत्ते में ही है, तथापि बुढ़ापे के कारण बाबू हरिदासजी ज़्यादातर “मथुरा” में ही रहते हैं। अतः पत्र-व्यवहार नीचे के पते पर करना चाहिए—

हरिदास ऐंड कंपनी

लाल दरवाज़ा——गंगा-भवन, मथुरा (यू० पी०)

मेरी कुटिया

[श्री० सूर्यनाथ तकरू बी० ए०]

बनी फूस की मेरी कुटिया, दीवाने मत आग लगा ;
अभी-अभी ही वह सोया है, ठोकर दे मत उसे जगा ।
मेरे उस खोये यौवन की, एक याद तो रहने दे ;
देखे थे सुख-स्वप्न जहाँ पर पड़ा वहाँ तो रहने दे ।

× × ×

सर्वनाश औ प्रलय चित्र, लय होजायँगे अपने आप ;
निष्ठुर! पागल! ओ मतवाले! याद करेगा अपने पाप !!

नये चिह्न और धीरेन्द्रजी *

[श्रीजगमोहन 'विकसित']

संयुक्त प्रांत की हिंदुस्तानी एकेडेमी ने इलाहाबाद से हिंदी में 'हिंदुस्तानी' नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका निकाली है। उसका पहला अंक जनवरी १९३१ में प्रकाशित हुआ है। इस पहले अंक में श्रीधीरेंद्रजी वर्मा एम्० ए० का एक लेख 'हिंदी में नयी ध्वनियाँ तथा उनके लिए नये चिह्न' शीर्षक है। यही लेख प्रस्तुत लेख का आलोच्य विषय है।

सबसे पहले हम धीरेंद्रजी को इस बात के लिए धन्यवाद देना चाहते हैं कि आपने इस आवश्यक विषय की ओर एक बार फिर हिंदी-संसार का ध्यान आकर्षित किया है और 'हिंदी में प्रत्येक ध्वनि के लिए पृथक् चिह्न हैं तथा प्रत्येक चिह्न किसी-न-किसी व्यवहृत

---

* इस लेख का आलोच्य विषय 'हिंदुस्तानी' में प्रकाशित 'हिंदी में नयी ध्वनियाँ तथा उनके लिए नये चिह्न' शीर्षक लेख है। इसलिए इस लेख को 'हिंदुस्तानी' में ही प्रकाशित होना चाहिए था। किंतु प्रकाशित हो रहा है 'माधुरी' में और वह भी विलंब के साथ। इसके लिए, आशा है, 'हिंदुस्तानी' के पाठक हमें क्षमा करेंगे। हिंदुस्तानी एकेडेमी में हमने इस लेख को फ़रवरी के दूसरे ही सप्ताह में भेज भी दिया था। एक महीने से भी अधिक समय बीत जाने पर, रिमाइंडर पाकर भी, कई दिन और लेकर, मार्च के तीसरे सप्ताह में 'हिंदुस्तानी' के संपादक श्रीरामचंद्र टंडन ने निम्न-लिखित शब्दों के साथ लेख लौटाया।

"हिंदी की नयी ध्वनियाँ और धीरेंद्रजी' शीर्षक आपका लेख लौटा रहा हूँ। मुझे खेद है कि हमारे संपादक-मंडल ने इसे हिंदुस्तानी में प्रकाशनार्थ स्वीकार नहीं किया। 'देवनागरी लिपि में सुधार की आवश्यकता' शीर्षक एक लेख हमें दें तो बहुत अच्छा हो।"

'हिंदुस्तानी' के संपादक-मंडल में पाँच सज्जन हैं,—डाक्टर ताराचंद एम्० ए०, डी० फ़िल् (आक्सन), डाक्टर बेनीप्रसाद एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन), श्रीयुत धीरेंद्र वर्मा एम्० ए०, श्रीयुत कृष्ण बलदेव वर्मा और श्रीयुत रामचंद्र टंडन एम्० ए०, एल्-एल्० बी०।

'हिंदुस्तानी' की नीति की ओर हम हिंदी-संसार का ध्यान आकर्षित करते हैं।

—लेखक

ध्वनि का द्योतक है' हिंदी की इस विशेषता को सुरक्षित रखने की आवश्यकता प्रकट की है। पंचम अनुनासिक व्यंजनों के लिए भी अनुस्वार के चिह्न का प्रयोग करना चिंत्य विषय है। इस ढंग में बड़ी त्रुटि यह है कि भिन्न-भिन्न ध्वनियों के लिए एक ही चिह्न हो जाता है; हम सत्य के संबंध में स्पष्ट स्वीकारोक्ति के लिए भी आपको साधुवाद देते हैं।

तदनंतर हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि धीरेंद्रजी-जैसे विद्वान् व्यक्ति के लेख में जिस सुचिंतना और अध्ययनशीलता का दर्शन होना चाहिए, उसका नितांत अभाव है। लेख में आदि से अंत तक प्रायः विचारहीनता छलक रही है।

'हिंदी में नयी ध्वनियाँ तथा उनके लिए नये चिह्न' शीर्षक पढ़कर हमने समझा था कि आपने इस लेख में हिंदी पर सांगोपांग विचार किया होगा। पर समूचा लेख पढ़ जाने पर यह जानकर बड़ा विस्मय हुआ कि आपकी विचार-धारा केवल अक्षरों तक ही सीमित है। 'मेरा' और 'उसमें' तथा 'नेता' और 'उसने' में क्या सादृश्य और वैसादृश्य की अनुरूपता नहीं है? फिर 'उसमें' और 'उसने' लिखने में एक ही शैली से क्यों नहीं काम लिया जाता? 'रुपया' यदि 'रुपया' हो जाय तो क्या हिंदी की स्पष्टता और स्पष्ट न हो जाय?—आदि पर आपने विचार नहीं किया है। आप अक्षरों से आगे नहीं बढ़े। इस अवस्था में "हिंदी में नयी ध्वनियाँ तथा उनके लिए नये चिह्न" यह व्यापक शीर्षक क्या अनुपयुक्त नहीं है?

"ए ऐ ओ औ के दीर्घ रूपों के अतिरिक्त व्रजभाषा कविता तथा हिंदी की कुछ ग्रामीण बोलियों में ह्रस्व ए ऐ ओ औ का व्यवहार भी मिलता है। उदाहरणार्थ निम्न-लिखित पंक्तियों में अधोरेखांकित ए ऐ ओ औ के उच्चारण ह्रस्व हैं, शेष के दीर्घ--

(क) अवधेस के द्वारे सकारे गई
सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकिहौं सोचबिमोचन को
ठगिसी रहि जे न ठगे धिक से।
(तुलसी)

(ख) कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै
पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
(तुलसी)

(ग) बेझरी, देहरिया, बेरिया, दोसरि
बोलाइ, चोट्टा।
(अवधी शब्द)"

हम पहले व्रजभाषा कविता की बात लेते हैं। कृपय निम्न-लिखित व्रजभाषा की कविता के उदाहरण देखि और अधोरेखांकित अक्षरों के उच्चारणों पर विचा कीजिए--

(क) पूतना के पय पान करो
तन पूतना ते बिसवास बगारत।
(देव)

(ख) कूबरी सी अति सूधी बधू
बरु पायो भलो घनश्याम सो सूधो।
(देव)

(ग) तुलसी तेहि काल कृपाल विना
दूजो कौन है दारुण दुःख दमैया।
(तुलसी)

अब बतलाइए, व्रजभाषा में केवल 'ह्रस्व ए ऐ ओ औ' का ही व्यवहार मिलता है या ह्रस्व आ, ई, ऊ का भी?

"अ इ उ के ह्रस्व और दीर्घ रूपों के समान ए ऐ ओ औ के भी दो-दो रूप समझे जाने चाहिए।"

अ, इ, उ के ह्रस्व और दीर्घ रूपों से आपका क्य तात्पर्य है? अ, इ, उ ह्रस्व रूप हैं और आ, ई, दीर्घ रूप? ('हिंदुस्तानी' पृष्ठ ११०, चित्र ३) इ दशा में हमारे दिये हुए उदाहरणों में आ, ई, ऊ जो रूप आये हैं, वे क्या हैं? यदि आपके उदाहरणों ए ऐ ओ औ ह्रस्व हैं, तो हमारे उदाहरणों में भी आ ई, ऊ ह्रस्व हैं।

इस प्रकार अ, इ, उ के अब दो-दो रूप ही नहीं तीन-तीन रूप हैं। इस तीसरे रूप का आप नामकर कीजिए और अपने वाक्यों का संशोधन कीजिए। आप यह कहना अ इ उ के ह्रस्व और दीर्घ रूपों के सम अशुद्ध है और यह कहना अपर्याप्त है कि ए ऐ ओ के दो-दो रूप समझे जाने चाहिए।

अ, इ, उ के एक और उच्चारण की बात हम आप सामने रखते हैं—

(क) लीला तुम्हारी अति ही विचित्र।
(ख) पहाड़ सी है उठती जलोर्मि?
(ग) पायो उन्हीं ने जग-जन्म-लाहु।

ऊपर के उदाहरणों में अधोरेखांकित, अंतिम अक्षरों की मात्राएँ, छंद की निश्चित गति के अनुसार अ, इ, उ क्रमशः अपने दीर्घ रूप में आ, ई, ऊ पढ़ी जाती हैं।

नीचे के उदाहरण में, अधोरेखांकित ऋकार की मात्रा पर भी ध्यान दीजिए—

आनंददायी यह शब्द मातृ

इसलिए "आ इ ई उ ऊ के उच्चारण में कोई ऐसे विशेष परिवर्तन या उपभेद नहीं हुए हैं जिनके लिए प्रचलित लिपि में नये चिह्नों की आवश्यकता हो।" इस शब्द-योजना में अकार और ऋकार को भी स्थान दीजिए और फिर देखिए कि आपके विचारानुसार इनमें परिवर्तन या उपभेद हुए हैं या नहीं—प्रचलित लिपि में नये चिह्नों की आवश्यकता है या नहीं?

एक और संशोधन कीजिए, कष्ट के लिए क्षमा। आप कहते हैं कि व्रजभाषा की कविता में ही ये प्रयोग मिलते हैं, पर हमें विवश होकर कहना पड़ता है कि जी नहीं, खड़ीबोली में भी मिलते हैं। नीचे की पंक्तियों के अधोरेखांकित स्थलों पर विचार कीजिए—

बन बीच बसे थे फँसे थे ममत्व में
　एक कपोत कपोती कहीं,
दिन-रात न एक को दूसरा छोड़ता
　ऐसे हिले-मिले दोनों वहीं।
बढ़ने लगा नित्य नया-नया नेह
　नयी-नयी कामना होती रहीं,
कहने का प्रयोजन है इतना
　उनके सुख की रही सीमा नहीं।

('प्रभा' से)

आठ सगण का यह वही छंद है जिसका प्रयोग तुलसीदासजी ने 'अवधेस के द्वारे……' इत्यादि में किया है और जिसका नाम छंद-शास्त्रकारों ने 'चंद्रकला' अथवा 'दुर्मिल' दिया है। दोनों रचनाओं को एक ही गति पर पढ़िए।

जो हो, पद्य पर विचार करने से अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ में से प्रत्येक मात्रा के दो-दो रूप हो जाते हैं। आपकी धारणा के अनुसार यदि इन सबके लिए अलग-अलग चिह्न बनाये जायँगे तो ग्यारह चिह्न बनाने पड़ेंगे। हिंदी-टाइप-राइटर यों ही बड़ा है, उसमें पूरे ग्यारह चिह्न बढ़ाने पड़ेंगे! यह चिंत्य है।

हम समझते हैं कि केवल एक चिह्न से ही काम चल जायगा। स्थानानुसार दीर्घत्व और ह्रस्वत्व प्रदर्शित करनेवाली उसकी दो शक्तियाँ मान ली जायँ। वह चिह्न ह्रस्व स्वरों और उनकी मात्राओं पर अर्थात् अ, इ, उ और ऋ तथा इनकी मात्राओं पर दीर्घत्व व्यक्त करेगा और दीर्घ स्वरों तथा उनकी मात्राओं पर अर्थात् आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ तथा इनकी मात्राओं पर ह्रस्वत्व व्यक्त करेगा। या फिर दो चिह्न यथेष्ट हैं। ग्यारह चिह्न बनाने की आवश्यकता नहीं है। चिह्न कैसे हों, यह सोच समझकर उलझनों को सुलझाकर स्थिर करना पड़ेगा।

रही हिंदी की ग्रामीण बोलियों की बात। ग्रामीण बोलियों के इतने व्यापक और प्रशस्त क्षेत्र में, आश्चर्य है, आपने केवल अवधी को ही टटोला है। ग्रियर्सन महोदय ने आर्य भाषाओं से संबंध रखनेवाली ५४४ बोलियों का उल्लेख किया है। इसमें हिंदी की बोलियों की संख्या निकालकर देखिए, अवधी का क्या अनुपात होता है? देश के पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर प्रशस्त अंचलों में दृष्टि दौड़ाइए और ग्रामीण बोलियों पर विचार कीजिए तो न केवल आ, ई, ऊ के ही वरन् अन्य अनेक नवीन उच्चारण मिलेंगे जिनके लिए आपको नवीन चिह्न सिरजने की आवश्यकता देख पड़ेगी।

ग्रामीण बोलियों के पीछे आप क्यों पड़ गये हैं, समझ में नहीं आता। लिखने-पढ़ने की भाषा में, साहित्य की भाषा में ग्रामीण बोलियों के प्रत्येक रूप को स्थान नहीं मिला करता। इसीलिए इस दृष्टि से नये चिह्नों की आवश्यकता पर विचार करना हमारी समझ में सर्वथा निरर्थक है।

"मैया, बलैया, गैया, जौन, लौटे, कैके आदि शब्द नीचे लिखे ढंग से लिखे जा सकते हैं—

मइया, बलइया, गइया, जउन, लउटे, कइके आदि। ऐसा करने से ऐ-औ के दोनों उच्चारणों को प्रकट करने के लिए दो पृथक् रूप हो जावेंगे।

तब क्या 'अवैध' को 'अवइध' और 'दौर्बल्य' को 'दुउर्बल्य' लिखने की सम्मति आप देते हैं?

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।

संस्कृत में तो दौर्बल्य ही रहेगा न ? इसके नीचे हिंदी रूपांतर दिया जाय और उसमें 'दौर्बल्य' शब्द लाया जाय तो क्या 'दउर्बल्य' लिखा जाय ? यदि नहीं, तो 'पैर-वैध' और 'और-दौर्बल्य' आदि शब्दों के उच्चारणों का पृथक्करण कैसे हुआ ? अथवा आपका नियम क्या संस्कृत शब्दों में लागू न होगा ? और तब क्या हिंदी सीखनेवालों को, इस प्रकार के संस्कृत शब्दों की, जो हिंदी में व्यवहृत होते हैं, एक लंबी तालिका रटना पड़ा करेगी ?

ब्रजभाषा के दो स्वरों की चर्चा करके आपने उनके लिए चिह्नों की कल्पना की है और उदाहरण दिये हैं। उदाहरण देने के अनंतर आपने लिखा है—"इनके उच्चारण ह्रस्व और दीर्घ दोनों संभव हैं।" एक ओर तो आप 'मैया' को 'मइया' का रूप देकर ऐ आदि के सम्मिलित उच्चारणों को अलग करने का प्रयास करते हैं और दूसरी ओर ऐसे नवीन चिह्नों के रखने की सम्मति प्रदान करते हैं जिनका उच्चारण ह्रस्व और दीर्घ दोनों हो। इसका क्या तात्पर्य ?

एक बात और भी तो है। इकार लिखकर 'मइया' 'बलइया' आदि शब्दों का उच्चारण आप इसलिए ठीक करा लेंगे कि 'मइया' में 'मइ' के अनंतर यति है। अर्थात् 'मइ' एक साथ कहकर, थोड़ा-सा रुककर 'या' का उच्चारण किया जाता है। 'बलइया' में भी 'ब' के अनंतर यति है। 'ब' कहकर, कुछ रुककर 'लइया' एक साथ बोला जाता है। परंतु 'जउन' के संबंध में यह बात नहीं है। दीर्घमात्राहीन तीन अक्षर-वाले शब्दों में, चाहे वे 'कमल' के समान हों जिनका अंतिम अक्षर हलंत बोला जाता है और चाहे 'शरण' के समान जिनका अंतिम अक्षर अकारयुक्त बोला जाता है, पहले अक्षर के अनंतर ही यति होती है। इस दशा में 'जउन' का उच्चारण जो आप चाहते हैं, वह न होकर 'ज-उन' होगा। 'दउर्बल्य' पर विचार कीजिए। 'लड़कियाँ' के अनुरूप है या 'लकड़ियाँ' के ? देखिए 'द' के अनंतर यति है, या नहीं ?

"ऐसा करने से (मात्राएँ हटाकर इ, उ लिख देने से जैसे 'मैया' के स्थान पर 'मइया' तथा 'जौन' के स्थान पर 'जउन' आदि) ऐ औ के दोनों उच्चारणों को प्रकट करने के लिए दो पृथक् रूप हो जायँगे।"

जी नहीं, पृथक् रूप नहीं हो जायँगे। यह हम ऊपर भली भाँति दिखला चुके हैं। अब यहाँ हमें आपसे केवल इतना कहना है कि इस स्थल पर भी आपका विचार अधूरा ही रह गया। आपने केवल ऐ, औ पर ही विचार किया है, ए ओ पर नहीं। ऐ औ के समान ही तो ए ओ की भी दशा है। हिंदी में वस्तुतः 'एक, एकाई' आदि में ए की, 'पैर, अवैध' आदि में ऐ की, 'कठोर, दोहराना' आदि में ओ की और 'और, दौर्बल्य' आदि में औ की जो ध्वनियाँ हैं, उनको अलग व्यक्त होने की आवश्यकता है। पर चार चिह्नों की आवश्यकता नहीं, एक ऐसे चिह्न के निर्माण की आवश्यकता है जो इन स्वरों में से प्रत्येक में मिलाकर, एक साथ ही लिखा जा सके। क्योंकि यदि अलग से लिखना पड़ेगा या क़लम उठाकर लिखना पड़ेगा तो समय अधिक लगेगा और शीघ्र लेखनगति नाक-भौं सिकोड़ेगी। ग्रियर्सन महोदय के हीन अनुकरण पर, कविता में मात्राओं के लिए नये चिह्न बनाने में आपने 'हिंदुस्तानी' के पृष्ठ ११० में जो प्रयास किया है, वह प्रयास यदि इस स्थल पर करते तो प्रयास के सदुपयोग की चेष्टा कही जा सकती थी। यद्यपि सफलता न मिलती।

"ऋ स्वर का उच्चारण अब न संस्कृत में होता है और न हिंदी में। हिंदी में इसके वर्तमान उच्चारण के लिखने की स्वतंत्रता हो जानी चाहिए। यदि इ तरह के परिवर्तन न किये गये तो हिंदी में भी उ लिपि की तरह अनावश्यक अक्षरों की धीरे-धीरे भस्मा हो जायगी।"

श्वेतकुष्ठ की अद्भुत जड़ी

प्रिय पाठकगण ! औरों की भाँति मैं प्रशंसा करना नहीं चाहता। यदि इसके तीन बार के लेप से इस रोग की सफ़ेदी जड़ से आराम न हो, तो दूना मूल्य वापस दूँगा। जो चाहें ≠) का टिकट भेजकर प्रतिज्ञापत्र लिखा लें। मूल्य ३)

वैद्यराज—पं० महावीर पाठक, नं० ५, दरभंग

आपके 'अब' से यह स्पष्ट है कि संस्कृत में पहले ऋ का उच्चारण होता था, पर अब नहीं होता है। तो बताइए, अब ऐसी कौन-सी अघटित घटना घटित हो गयी जिससे ऋ का उच्चारण अब संस्कृत में नहीं होता? नहीं होता—इसके कौन-कौन से प्रमाण आपने एकत्र किये हैं? संस्कृत के विद्यालयों के वैदिक विभाग में सस्वर साम गान की शिक्षा देनेवाली, 'स्वजनं श्वजनं' आदि प्रसिद्ध शब्दयोजना की रचना करनेवाली पंडित-मंडली ऋकार के उच्चारण की उपेक्षा करती हो, यह बात समझ में नहीं आती।

आपके ऊपर के वाक्य में 'अब' शब्द 'हिंदी' पर भी वैसे ही अन्वित है, जैसे 'संस्कृत' पर। फिर प्रश्न उठता है कि यदि हिंदी में लोग पहले ऋ का उच्चारण करते थे तो अब क्यों नहीं करते, अब क्या हो गया है? ऋ का उच्चारण जो लोग रि करते हैं, वे भूल करते हैं। इस भूल को ही प्रधानता देकर तो आपने हिंदी में ऋ का वर्तमान उच्चारण रि नहीं मान लिया? यदि हाँ, तो शकार को भी तो लोग सकार बोलते हैं। इसलिए शकार को भी हटा देना चाहिए। दंत्य स की अपेक्षा तालव्य श के उच्चारण में जिह्वा को कुछ कष्ट होता है, लोग इस कष्ट से बचते हैं और शकार के स्थान पर सकार बोलते हैं। इस कष्ट से लोग और भी त्राण पा सकेंगे, यदि टवर्ग को हटाकर केवल तवर्ग से ही काम लिया जाने लगे।

परिवर्तन किया नहीं जायगा। ऋ के स्थान पर लोगों को रि लिखने की स्वतंत्रता दी नहीं जायगी, इसलिए लोग लिखेंगे नहीं, फिर भी हिंदी में अनावश्यक अक्षरों की भरमार हो जायगी। कैसे?

मान लीजिए, लोग ऋ के स्थान पर रि ही लिखने लगें तो रि हिंदी में पहले से ही विद्यमान है। इस दशा में बढ़ने का प्रश्न ही नहीं उठता। उलटे ऋकार से काम न लिया जायगा, ऋकार वर्ण कम हो जायगा। कृपया सोचिए कि अनावश्यक अक्षरों की भरमार हो जाने की बात समझाने के लिए आपने यह कैसा अनावश्यक और अनुपयुक्त उदाहरण चुना है।

उर्दू-लिपि की तरह अनावश्यक अक्षरों की भरमार—आपकी यह बात भी समझ में नहीं आती। अरबी और फ़ारसी के भिन्न-भिन्न शब्द भिन्न-भिन्न अक्षरों से बनते हैं और स्वतंत्र अर्थ के द्योतक होते हैं। 'सम' जो 'से' से लिखा जाता है उसका अर्थ 'वह स्थान' है। जो 'सीन' से लिखा जाता है उसका अर्थ 'विष' है और जो 'साद' से लिखा ज़ाता है; उसका अर्थ 'बहरापन' है। इस अवस्था में आपके अनावश्यक अक्षरों का क्या अर्थ है?

एक बात और है। ऋ को हटाकर 'नृप' आदि शब्द आपकी सम्मति में क्या 'न्रिप' आदि के समान लिखे जाने चाहिए? इस अवस्था में नकार में रकार मिलाना और फिर इकार की नीचे-ऊपर मात्रा बनाना ऋकार की मात्रा की अपेक्षा तीन गुना से भी अधिक समय व्यय करना होगा। त्वरा लेखन की दृष्टि से आप सोचिए कि आपकी सम्मति कितनी सदोष है!

एक ओर तो आप वकार के दो उच्चारण दिखलाकर नये चिह्न की सृष्टि करते हैं और दूसरी ओर ऋ को रि में विलीन कर देने की चेष्टा! वकार पर आपने जिस प्रकार सूक्ष्म विचार किया है उसी प्रकार ऋ और रि के उच्चारणों पर भी सूक्ष्म विचार कीजिए। ऋ के स्थान पर रि लिखना उपयुक्त नहीं है।

हल् पर विचार करते हुए, अब से ८ वर्ष पहले हमने लिखा था कि यदि ऐसे सभी स्थलों को हल् से विभूषित कर दिया जाय तो 'हल् की सैकड़ों विद्युत् रेखाएँ एक साथ फूट पड़ेंगी और हिंदी लिपि आलोकमय हो जायगी।' यह बात 'हिंदुस्तानी' के पृष्ठ ११० के चित्र को देखकर एक बार फिर हमें स्मरण हो आयी। "प्राय: प्रत्येक शब्द में इसके लगाने की आवश्यकता पड़ेगी।" इस अवस्था में कितना काम बढ़ जायगा! और जब यह हल् लिखने से, छपने से छूटेंगे, टूटेंगे तब अनुमान और अटकल से पढ़ने के लिए प्रस्तुत ही रहना पड़ेगा। अतएव यह विषय चिन्त्य है। हल् को सम्मिलित रूप में लिखकर मोड़ देने की बात भी अधिक युक्तिसंगत नहीं जँचती; क्योंकि शीघ्र लिखने में हल् के इस रूप का ऋ की मात्रा से सादृश्य हो जायगा और हल् तथा ऋ की मात्रा का अंतर व्यक्त करना कठिन हो जायगा। हाँ, इस प्रसंग में हम एक बात की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना उचित समझते हैं। आपने 'समझना' के 'मकार' पर अल्प अ की कल्पना की है, पर इस कल्पना में अधिक तत्त्व नहीं है। बात यह है कि 'समझना' में 'सकार' के अनंतर

यति है, इसलिए सकार पर कुछ विरमित होकर शेष तीनों अक्षर एक साथ कहे जाते हैं। यति-काल दोनों में अंतर होने का भ्रम उत्पन्न कर देता है; अंतर वस्तुतः नहीं है।

स्पर्श वर्णों का क्रम है—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग। आपने चाहा है कि इस क्रम में परिवर्तन किया जाय और कवर्ग टवर्ग, चवर्ग, तवर्ग और पवर्ग क्रम कर दिया जाय। कारण आपने दिखलाया है कि चवर्ग का उच्चारण दन्त्य वर्णों के अधिक निकट होता है तथा टवर्ग का अंदर को हटा हुआ। आपकी यह सम्मति भी अधिक युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती। एक ही प्रकार की ध्वनियाँ दो विभिन्न स्थानों से ध्वनित होकर टवर्ग और तवर्ग नाम पा गयी हैं। इसलिए निकट रहने से, तुलनात्मक प्रणाली से सीखने-सिखाने में सरलता पड़ती है। कवर्ग के अनंतर टवर्ग रखकर उसके पास तवर्ग उठा ले जाने की अपेक्षा, तवर्ग के पहले टवर्ग उठाकर रखना, जैसा है, अधिक युक्तियुक्त जान पड़ता है।

"श तथा ष में भेद अब बिलकुल भी नहीं रह गया है। अतः इनमें से एक ही से दोनों का काम सहज में लिया जा सकता है। शश्ठी या पृश्ठ देखने में कुछ ही दिनों आँखों को बुरे लगेंगे।"

फिर वही प्रश्न उठता है कि क्या हो गया है अब, जो भेद अब बिलकुल भी नहीं रह गया है? आपका यह 'अब' सचमुच बहुत विलक्षण है! दोनों अक्षरों के उच्चारण स्थान अलग-अलग हैं। जिन्हें शुद्ध उच्चारण का ध्यान रहता है, वे दोनों का स्पष्ट उच्चारण व्यक्त करते हैं। रही काम लेने की बात, सो काम तो आप श और ष का स से ही ले सकेंगे। सस्ठी या पृस्ठ या प्रस्न भी तो देखने में कुछ ही दिनों आँखों को बुरे लगेंगे!

व्याकरणकार तो हकार के घोषत्व में संदेह नहीं करते। फिर भी, यदि आपकी धारणा के अनुसार 'ह' अघोष ही हो गया हो, तो भी 'प्रायः' को 'प्रायह्' लिखने की सम्मति देकर, निस्संदेह आपने समय-विनाश का एक और साधन जुटा दिया है। क्योंकि 'ह' लिखकर उसे हल् करने की अपेक्षा विसर्ग के दो बिंदु बना देना अपेक्षाकृत अल्प-समय साध्य है।

'क्ष' का वास्तविक रूप 'क्श' नहीं है, 'क्ष' है और 'ज्ञ' का 'ग्य' नहीं है, 'ज्ज' है। इसका उच्चार सामान्यतः 'ग्य नहीं है, वरन् 'ग्यँ' है, पर कुछ सज्ज इसे 'ज्ज' भी बोलते हैं। यह बात भी आपको ध्या में रखनी पड़ेगी।

"फ़ारसी-अरबी वर्णमाला में पायी जानेवाली कुछ नयी ध्वनियों के लिए क, ख आदि अक्षरों के नीचे बिंदु का व्यवहार बहुत दिनों से हो रहा है।"

हो रहा है, पर आंशिक रूप में, और वह भी अशुद्धता की भरमार के साथ, ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय आदि से प्रकाशित शत-शत ग्रंथों में फ़ारसी-अरबी शब्दों के लिए क, ख आदि अक्षरों के नीचे बिंदु का व्यवहार नहीं होता। जहाँ बिंदु का व्यवहार होता है वहाँ बहुधा बिंदु की छीछालेदर देख पड़ती है। आजकल के हिंदी के समाचारपत्र उठाकर देखिए। जहाँ बिंदु होना चाहिए, वहाँ छूट जाता है, और जहाँ न होना चाहिए, वहाँ लग जाता है, क्यों? बहुधा इन पत्रों के संपादक उर्दू का अच्छा ज्ञान नहीं रखते। पर, सबसे बड़ा कारण है, कंपोज़ीटरों का उर्दू की इल्मियत से प्रायः कोरा होना। वे बेचारे पेट के लिए प्रकाशक की इच्छा पर निछावर होते हैं और अँधेरे में ढेला फेंकते हैं। ढेला कभी निशाने प बैठता है और कभी इधर-उधर जा गिरता है।

बात यह है कि खबर, जरूरत, दरखास्त, सिफारिश, अहमक, सिर्फ, शौक, सख्त, खौफ, फौज, नाज, आखिर, ताकत, तनखाह, खुश, गरीब, सफर, करीब, चीज, मौका, संदूक, आवाज, कायदा, कानून, फायदा, बगल, हजार, बाजार, वक्त, खराब, फतह, गिरफ्तार, फैसला, इंतिजाम, दरवाजा, गुस्सा, नजर, खू दाखिल, खारिज, खरीद, गौर, खयाल, जाहि मुलाकात, जमीन, कसम, कत्ल, कदम, नाहक, फि खामोश, तेज, खूबसूरत, आफत, अफसर, हाजि मुकाबला, खंजर, जरा, चीख, सजा, जिंदगी, खा जोर, गुजर, खैरियत, यकीन, रकम, तरफ, खता- आदि फ़ारसी और अरबी के इतने अधिक शब्द हिं में व्यवहृत हैं कि उनकी कोई छोटी तालिका न बनाई जा सकती। इस प्रकार का सूत्र नहीं गढ़ा सकता कि खली, घी, जी, दही, मोती, हाथी, पा तथा व्यवसायवाली तेली आदि और संबंधसू पड़ोसी, स्वामी आदि शब्दों को छोड़कर अन्य ईकार

शब्द प्रायः स्त्रीलिंग होते हैं। हिंदी में व्यवहृत होनेवाले फ़ारसी और अरबी शब्दों की कोई पूरी तालिका अब तक हिंदी में नहीं बनी है। इसलिए इन शब्दों में बिंदुओं का शुद्ध प्रयोग केवल हिंदी जाननेवाला व्यक्ति नहीं कर सकता है। ठीक प्रयोग वही कर सकता है, जिसे उर्दू का अच्छा ज्ञान है। व्यवहार बहुत दिनों से हो रहा है—कहकर, आपने अपने को सस्ते में छूटा हुआ समझ लिया है। पर बात ऐसी नहीं है।

"उर्दू तथा फ़ारसी के तत्सम शब्दों को लिखने के लिए इनका (क, ख आदि के नीचे बिंदुओं का) व्यवहार अवश्य करना चाहिए।"

हम भी आपका अनुमोदन करते, यदि वे शब्द सचमुच तत्सम बन जाते। क्या क, ख आदि के नीचे बिंदु लगा देने से ही फ़ारसी, अरबी के शब्द तत्सम शब्द हो जाते हैं? 'भारत में गरीबों की संख्या अधिक है।' इस वाक्य में व्यवहृत 'गरीबों' शब्द के नीचे बिंदु लगा देने से ही क्या 'ग़रीबों' तत्सम शब्द हो गया? 'गरीब' अरबी शब्द है। अरबी व्याकरण के अनुसार 'गरीब' का बहुवचन 'गरीबों' नहीं होता। 'ग़रीबों' बिंदु पाकर भी अरबी भाषा के विचार से अशुद्ध रूप है। अरबी, फ़ारसी के शब्दों का, जब इस प्रकार अशुद्ध व्यवहार होता ही है तब बिंदु ही पर दुराग्रह क्यों? ग़रीबी, ख़राबी, चीज़ें, ख़रीदना, दाग़ना आदि बिंदु पाकर क्या तत्सम शब्द हो जाते हैं?

अरबी और फ़ारसी पर ही इतना मोह क्यों है—संस्कृत और प्राकृत पर क्यों नहीं है? अरबी, फ़ारसी की अपेक्षा संस्कृत और प्राकृत का हिंदी से घनिष्ठ संबंध है। इस स्वत्वांदोलन के सजीव युग में आप संस्कृत और प्राकृत के स्वत्वों पर क्यों पानी फेर रहे है? संस्कृत और प्राकृत के भी सब शब्दों को तत्सम रूप में क्यों नहीं देखना चाहते? 'सात घोड़े जा रहे हैं।' के स्थान पर 'सप्त घोटक जा रहे हैं।' और 'आज हाथ न उठा' के स्थान पर 'अज्ज हत्थ न उठा' आदि लिखने की सम्मति आप क्यों नहीं देते? आप कहेंगे कि ये शब्द हिंदी बन गये हैं, इनको अब संस्कृत और प्राकृत बनाना ठीक नहीं है, तो महानुभाव, खरीदना, खरीदनेवाले, खरीदते हैं, खरीदे गए, खरीदो—ये हिंदी नहीं, क्या अरबी हैं?

(शेषांश आगामी संख्या में)

५००) इनाम

महात्मा-प्रदत्त— श्वेतकुष्ठ (सफ़ेदी) की अद्भुत वनौषधि तीन दिन में पूरा आराम। यदि सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों, विज्ञापनदाताओं की दवा करके निराश हो चुके हों तो इसे लगाकर आरोग्य हों। मू० २)

जिन्हें विश्वास न हो ‐) का टिकट लगाकर शर्त लिखा लें, न फ़ायदा साबित होने पर ५००) इनाम।

हज़ारों प्रशंसा-पत्रों में से एक—ता० २६।६।३० को रामगती शर्मा विशारद वैद्यशास्त्री गोरखपुर ज़िला से लिखते हैं—आपकी दवा तीन बार मैंने मँगाया नोटिस के अनुसार पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। आप पुनः सच्ची दवा शीघ्रातिशीघ्र भेजने की कृपा करें।

पता—**अखिलकिशोरराम**
११६ नं० ३०, पो० कतरीसराय (गया)

होम्योपैथिकमेटीरिया मेडिका

डाक्टर मुकर्जी-लिखित हिंदी की वृहत होमियोपैथिकमेटीरिया मेडिका छपगई। यह पुस्तक समस्त होमियोपैथिकशास्त्र का सार है। ऐसी पुस्तक आज तक नहीं छपी होमियोपैथिक की समस्त गूढ़ बातें इसमें वर्णन की गई हैं। इस पुस्तक को विना पढ़े होमियोपैथिक चिकित्सा करना असंभव है। घर बैठे डाक्टरी सीखने का यह अपूर्व अवसर है। पृष्ठ-संख्या ६००, मू० १५)

प्रकाशक—

N. Ando & Sons, Farrukhabad,
U. P.

२७

पहला प्यार

[श्री० मोहनलाल महतो 'वियोगी']

छिपा आँसू में मचले-भाव
छिपा नयनों में आह, खुमार,
छिपाकर गीतों में उच्छ्वास
किया जब मैंने पहला प्यार।
लिपटकर सौरभ-सा मुझमें
चूम पलकों को बारंबार,
कहा यौवन ने भर आँखें—
"बुरा है विष से पहला प्यार।"
चैत आलस्यमयी आयी
आ गयी अपराधिनी बयार,
कहा, मेरे अंतरतर से—
"न करने देना पहला प्यार।'
निशा ले ओस-आँसुओं के
क्षणस्थायी-चमकीला-हार
कहा—"ले 'हार', सभी कुछ हार
यही है प्यारे, पहला प्यार।"

खेल अधरों पर बन मुस्कान
उसी पर अपना यौवन वार
कहा कविता ने—"अपने को
मिटा देना है पहला प्यार।"
हृदय को मसल चुटकियों से
हाय, अपनापन आज बिसार
जन्म की प्रिया निराशा ने
कहा—"मैं ही हूँ पहला प्यार।"
कचट, वेदना सभी सखियाँ—
अश्रु, आहों से कर शृंगार,
मचल बोलीं—"कर देंगी देव
सफल हम तेरा पहला प्यार।"
शेष, वसुधा के कण-कण में
व्यक्त कर अपने को साकार,
कहाँ—"मेरा है मोहक रूप
मुग्ध यह तेरा पहला प्यार।"

देव, यह मेरा मधुर दुलार,
बन गया किसी हृदय का भार,
किसी का कोमल अत्याचार
किसी का अल्हड़ पहला प्यार।

अंधी दुनिया

[श्रीऋषभचरण]

(१)

आज फिर लड़ाई......! शकुन बुरे दिखायी देते हैं। काशीनाथ ठिठक गया। बीरो की मा, मक्खन की भाभी, श्रीराम की बहू खिड़कियाँ खोले खड़ी थीं। बिस्सो, जग्गी, रमेश और परसादी, धूल में सने, हाथों में बेढंगे तार के घेरे लिये, थोड़ी देर को खेल बंद कर, खेल से अधिक मनोरंजक घटना का अवलोकन कर रहे थे......!

काशीनाथ भय, क्षोभ, आशंका और अनुमान से दग्ध होता हुआ, घर के सामने जा खड़ा हुआ। लड़के भाग गये, बीरो की मा ने पल्ला नीचा कर लिया, मक्खन की भाभी ने खिड़की बंद कर ली। श्रीराम की बहू लंबा घूँघट काढ़कर पीछे हट गई।

जैसे हठात् पट-परिवर्तन हो गया!

भीतर घर में मा के कर्कश कंठ का घोर निनाद गूँज रहा था।—"हाय! इस डायन ने मेरा सत्यानाश कर दिया! लौंडा मेरा अलग हाथ से निकल गया, ब्याह किया, तो घर का सब-कुछ उसमें स्वाहा हो गया! अब यह डायन हरामज़ादी मुझे जला-जलाकर मार डालना चाहती है। अरे, इस तरह जला-जलाकर क्यों मारती है, एक दिन ख़सम से संखिया मँगाकर खिला क्यों नहीं देती? झगड़ा साफ़ हो जाय, तेरी जान का बवाल कटे।"

चिर-अभ्यस्त 'हाय! हाय!' और धमाधम छाती पीटने की ध्वनि साथ ही किसी कोमल-कंठ से निकली हुई अव्यक्त रुदन-ध्वनि और मूक-व्यथा! स्तब्ध हो काशीनाथ गली के पत्थरों पर नज़र गाड़कर खड़ा रह गया। जिस भयानक ज्वाला से उसका अंतस्तल धक्-धक् कर रहा था, उसे कौन जाने?

अब करे क्या?

वहीं खड़े-खड़े उसने रौद्र-रस का एक चटख़ारा और लिया, और पत्थर को तोड़नेवाले मा के भयानक वाक्य-कणों को अधूरा ही सुन, धीरे-धीरे वापस चल दिया। हाय! लाड़ों में पली, एक वर्ष की ब्याही उस सुकुमारी की क्या दशा होगी!

(२)

जब तक ब्याह न हुआ था, मा के पेट में पानी न पचता था। ज़रा बुख़ार आता तो गिड़गिड़ाकर हाथ जोड़ती, और कहती—"अरे मेरे लाल! मैं तो सूखा पेड़ हूँ; अब चली तब चली! देख, मैं तो मर ही जाऊँगी, पर तू...तुझे रोटी के भी लाले पड़ जायँगे। देख, मान जा, हाथ जोड़ती हूँ, ब्याह कर ले। लाला रायप्रसाद की लड़की पढ़ी-लिखी है, परी-सी सुंदर है, उसे देख ले, समझ ले। देख, मेरे जीते-जी...!"—इत्यादि। कहीं जाना होता, तो कहती—"देख, कैसी तकलीफ़ है। बहू घर में हो, तो एक जनी बैठी तो नज़र पड़े! मान जा, समझ जा!" कभी किसी की बहू को देखती, किसी के बच्चे को देखती, तो बेटे के आगे, आँखों में आँसू भर लाती, और ठंडी साँस लेकर कहती—'हाय बेटा! क्या मुझसे ऐसी दुश्मनी है! मेरे दिल की क्या दिल में ही रहेगी?" बहुधा यह भी कहती—"मेरी उमर तो बेटा, अब इस क़ाबिल नहीं है कि मैं घर के धंधों में बख़्त बिताऊँ। मेरा यह समय तो रामनाम जपने, धर्म-ध्यान करने, दर्शन-मेले में बीतना चाहिए। मेरे बेटा, जल्दी से तेरा ब्याह हो जाय, तो मैं इस जंजाल से छुट्टी लूँ।

काशीनाथ पचीस वर्ष का था, एफ़० ए० तक पढ़ा था, रेलवे में नौकर था, और मा की प्रकृति से परिचित था। वह उसके जीते-जी विवाह न करना चाहता था। स्वभाव का बहुत शांत, स्तब्ध और सहनशील था। मा के अनुनय-विनय, प्रार्थना के उत्तर में वह केवल चुप रह जाता, या धीरे-से हँस देता और काम में लग जाता।

तीस वर्ष की उम्र में यह बेटा पैदा हुआ था। और चालीस वर्ष की उम्र में विधवा हो गई थीं। अब मा की उम्र पचपन वर्ष की है। बेटे के प्रति जैसा स्निग्ध

प्रेम उसके हृदय के एक कोने में विद्यमान है। दूसरे कोने में जगत् के प्रति वैसी ही क्रूरता, पशुता और भयानकता भरी हुई है।

काशीनाथ सब समझता था, और ब्याह के बाद के भयानक दृश्य देखता था। चुप रहता था, ब्याह न करता था और हँसी-ख़ुशी मा की सेवा करता था।

पर, एक बार, जब मा के बचने की आशा न रही, तो मजबूर होकर उसे झटपट ब्याह करना ही पड़ा।

कहना न होगा कि उम्मीद न रहने पर भी मा मरी नहीं; ग़रीब काशीनाथ का भविष्य गंदा करने के लिए बच गई।

(३)

बहू आई, तो मा की सारी बीमारी काफ़ूर हो चुकी थी। कँखते-कूँखते प्यार से घर में लाई, रस्में भुगताईं, प्यार की बातें कीं, गोद में लिटाया, मुँह चूमा, और पुराने वक़्तों की अपनी परमप्रिय सोने की सिकड़ी मुँह-दिखाई में दी।

अबोध बहू ने सास के हृदय में अतुलनीय स्नेह देखा, और वह झट-झट अपनी मा को भूलने लगी।

पर द्विरागमन के बाद जब आई, तो स्पष्ट नीलाकाश में धूमकेतु का आभास मिलने लगा। स्नेह पुराना पड़ रहा था। उत्तरदायित्व के भयानक परिश्रम का गट्ठर सामने ला रक्खा गया था, शासन-दंड अथवा सास-दंड हाथ में सम्हाल लिया गया था और बड़प्पन के रोब और गंभीरता के भार ने मिलकर सूरत में, स्वर में, चेष्टा में भयानक परिवर्तन उपस्थित कर दिया था।

काशीनाथ ने यह परिवर्तन देखा, तो काँप उठा। रोज़ रात को घंटों पत्नी को तोते की तरह पढ़ाने लगा। 'लक्ष्मी बहू', 'सास बहू', 'आदर्श बहू'—और न जाने क्या-क्या—ढेर-की-ढेर पुस्तकें ला पटकीं, रोज़ सुबह उठते ही सास के पैर छूकर प्रणाम करने की आदत डाल दी, सास को खिलाकर खुद खाने का कठोर नियंत्रण कर दिया। रात को एक घंटा सास के पैर दबाना अनिवार्य कर दिया।

और उस सुशीला, सुकुमारी नव-वधू ने सिर झुकाकर ख़ुशी-ख़ुशी यह सब-कुछ स्वीकार कर लिया!

बहू का 'लक्ष्मी-पन,' 'देवी-पन' और 'सरस्वती-पन' और 'मेरी लाडो!', 'मेरी बच्ची!', 'मेरी बावली!'—संबोधन, तो द्विरागमन में आने तक ही ख़त्म हो चुके थे। अब हठात् उसमें नये-नये दोषों के अन्वेषण की गुंजाइश हो गई।

बहू ज़िद्दिन है। मेरे पैर दबाती है—ख़सम को ख़ुश करने के लिए, मना करती हूँ, तो हटती नहीं।

बहू मुझे देख नहीं सकती। मुझे जलाने के लिए खाना कम खाती है और सूख-सूखकर ख़सम को मेरे ख़िलाफ़ उभाड़ना चाहती है।

बहू के चरित्र में भी कुछ दोष मालूम पड़ता है। हमेशा बाप के घर जाने के लिए ज़िद करती है। कोई बाप के घर का आया कि उसके साथ लगने की इच्छा करने लगी।

बहू मुझसे जलती है। मुझसे बात करना पसंद नहीं करती। दिन-भर वाहियात किताबें पढ़ा करती है। ज़रा मैं सुनाने को कहती हूँ, तो इतनी जल्दी-जल्दी सुनाने लगती है कि कुछ समझ में नहीं आता। धीरे पढ़ने को कहती हूँ, एकदम इतना धीरे पढ़ने लगती है कि जी ऊब जाय।

बहू मुझे पंगु, तिरस्कृता, काग-उड़ानी, आश्रित बनाकर रखना चाहती है। घर के काम में हाथ नहीं लगाने देती।

इन दोषों की खोज लगाकर सास अक्सर बीरो की मा से, मक्खन की भाभी से, तुझसे, मुझसे विचार-विनिमय करने लगी। और इस परामर्श के फल-स्वरूप, अपना अस्तित्व क़ायम रखने और अन्य बहुओं और सासों के सामने एक उदाहरण या नज़ीर पेश करने के लिए बहू पर दमन करना स्थिर हुआ।

(४)

काशीनाथ सब सहता है, आँखों में आँसू भरे रहते हैं। और महीने में पंद्रह दिन, और दिन में एक बार कभी-कभी दोनों वक़्त बेचारे को रोटी नसीब नहीं होती। चेहरा उसका पीला हो गया है और पत्नी बेचारी सूखकर सींक-सी रह गई है। सारा आनंद, सारा उत्साह, सारा सुख नष्ट हो गया है और दिन में न-जाने, कितने बार पत्नी के या मा के या अपने मर जाने की कामना किया करता है।

दुनिया देखती है, पर बोलती नहीं। 'मामूली बात है', 'घर-घर मिट्टी के चूल्हे हैं', 'जहाँ चार बर्तन जुड़ते हैं, खटकते ही हैं'—इत्यादि उक्तियों द्वारा दुनिया के लोग इस भयानक गृह-कलह के प्रति सामान्य-भाव से उपेक्षा प्रकट कर, अपने-अपने कामों में लग जाते हैं।

पर, भावुक, गंभीर, मन-ही-मन जलनेवाले अभागे काशीनाथ के हृदय का हाल पढ़ने की किसे फ़ुरसत है?

एक दिन अकस्मात् सुना गया—काशीनाथ ने मा को अलग कर दिया!

दुनिया के लोगों की नींद इस सनसनीदार घटना से टूटी, और अनुसंधान किया गया, तो पता लगा—आधी-रात में बहू को लेकर काशीनाथ तन-तनहा जुदा हो गया है। मा रात को जागी, तो बेटे-बहू दोनों ग़ायब!

अब मा की हालत कोई देखता। रोती, चीख़ती, चिल्लाती गली-भर में फिर आई और हरएक परिचित को अपनी दुःख-गाथा सुना आई।

तीन दिन तक बेटे-बहू का पता न लगा। चौथे दिन एक आदमी बारह रुपये लिये आया और मा से बोला—"काशीनाथ ने दिये हैं।"

"कैसे?"

तो मालूम हुआ, एक महीने का ख़र्च! हर महीने मिला करेगा।

(४)

पता उस आदमी से लग ही गया। दूर के एक मुहल्ले में छः रुपये मासिक का मकान लिया है, खाट-बिछौने, बर्तन-भाँडे नये ख़रीदे हैं और अब मा की सूरत देखने का इच्छुक नहीं है।

तब मा के रुदन का परिवर्द्धित कंठ-स्वर लोगों के कान में पड़ा और क्रोध से फुंकारता हुआ, कुछ वयोवृद्ध, गण्य-मान्य सज्जनों का दल एक जगह इकट्ठा हुआ। काशीनाथ को बुलाया गया। पंचायत का छोटा-मोटा संस्करण हुआ।

काशीनाथ आया, और साथ ही लोगों का रोब और उनकी ऐंठ दुचंद हो गये।

"देखो काशीनाथ"—एक वृद्ध ने यथा-साध्य नम्र होकर कहा—"तुम पढ़े-लिखे समझदार हो। जो नासमझ और मूर्ख हैं, वे अगर बहू के कहे में आकर मा का तिरस्कार करें, तो क्षम्य हैं........"

काशीनाथ ने चिढ़कर बीच ही में कहा—"तो आप मुझे सबसे ज़्यादा नासमझ और मूर्ख समझकर क्षमा कीजिए।"

तब, सुर्मई आँखोंवाले, मोटे-ताज़े चंदूलाल ने कहा—"अरे बेहया! तुझे शर्म नहीं आती? चुल्लू-भर पानी में डूब नहीं मरता? जिसने तुझे पाला, परवरिश की, ख़ुद गीले में सोकर तुझे सूखे में सुलाया, ख़ुद तकलीफ़ सहकर तुझे आराम पहुँचाया। तू इस तरह, काम निकल जाने पर, उसे छोड़कर अलग हो गया......"

क्षोभ और अपमान से काशीनाथ का सिर नीचा हो गया, मुँह से एक शब्द न निकल सका।

अब एक और सज्जन बोले—वाह री दुनिया! ब्याह करते ही पर निकल आये! अरे, तुझे कुछ तो शर्म आनी चाहिए थी? लुगाई हरामज़ादी में ऐसे लाल लग गये कि ज़रा नहीं दबाई जा सकती! क्यों? लानत है, ऐसी मर्दूमी पर। देख, हमारा भतीजा रामचंद है, उसकी बहू ने कहा—'अलग हो जायँ!' तो बोला—'अपने बच्चे को लेकर तू अलग हो जा, मेरी मा का बच्चा उसके साथ रहेगा।' समझा—यह है असली मरदों की बात! क्या तेरे हाथों में दम नहीं, जो औरत नहीं दबती?

स्तब्ध और सहनशील काशीनाथ क्रोध से अधीर हो उठा। क्षुब्ध स्वर में बोला—"हमारे घर की लड़ाई........"

"अरे, यह तो मामूली बात है, जहाँ दो बर्तन होंगे खटकेंगे ही!"

"......मा का स्वभाव......"

"यही तो आजकल के नौजवानों की भूल है। अरे, कहीं एक हाथ ताली बजती है?"

काशीनाथ जानता है कि सचमुच एक ही हाथ ताली बजी थी। पर समझाये कैसे?

बोला—"देखिए साहब, मैंने सारा ज़ेवर-रुपया, कपड़ा-लत्ता छोड़ दिया, घर भी छोड़ दिया, और उसके ख़र्च के लिए भी जो कुछ बनता है देता हूँ—अब आप लोग मुझे माफ़ करें। मैं पास उसे नहीं रख सकता! हमारा निर्वाह अब हो नहीं सकता........!"

कई सज्जन एक साथ गरज उठे—"अरे पापिष्ठ ! यह क्या तूने दाल-भात का कौर समझा है ? अरे, सब तो उस बेचारी ने तेरी पढ़ाई-लिखाई, ब्याह-शादी में ख़र्च कर दिया । अब उसके पास बचा क्या है ? अरे नीच, उस बेचारी विधवा को यों धोखा देकर क्या तू आसानी से बच जायगा ? याद रख, अभी हम लोग मर नहीं गये हैं ।"

उन पहलेवाले वयोवृद्ध सज्जन ने नर्म होकर कहा—"देखो बेटा, तुम्हारा यह काम अच्छा नहीं हुआ । तुम्हारी मा को हमने समझा दिया है । ज़रा दोनों को समझाते रहो । वह बहू भी अभी बच्ची है । बुढ़िया अगर तुम लोगों को कुछ तकलीफ़ देती है तो आराम भी देती ही है । अब की बार तो हमारा कहना मानकर उसे रख लो । देखो, तुम बड़े समझदार......।"

× × ×

काशीनाथ को आत्म-समर्पण करना ही पड़ा ।

(६)

मा फिर आ गई है । सारे क्षोभ, अपमान, लांछना को पीकर काशीनाथ उसे ले आया है । ले तो आया है, पर दुनिया के लोगों के प्रति उसका मन भयानक घृणा से भर रहा है । जब मा को लेने गया था, तो उनमें से कई आदमी उसे मिले, जिन्होंने पंचायत में जो जी चाहा, बका था । उन्होंने अब हँसकर बोलना चाहा । काशीनाथ ने झिड़क दिया और मा को लेकर सीधा घर आ गया ।

इस थोड़े से समय ने और दुनिया के अंधेपन ने काशीनाथ को कुछ का कुछ बना दिया है । अब वह जीते-जी मा को न छोड़ेगा, पर बरदाश्त भी न करेगा, खुल्लमखुल्ला पत्नी का पक्ष भी लेगा और समय आने पर मा की ख़बर भी......।

मा इस परिवर्तन की बात नहीं जानती । वह तो गर्व और अभिमान से फूल रही है । आख़िर जीत उसी की रही ! दबना कैसा, अब तो वह ख़ूब दमन करेगी, ख़ूब दबायेगी और ख़ूब शान से शासन करेगी ।

काशीनाथ दुनिया के अन्धेपन से लाभ उठाने का प्रण कर चुका है । और मन-ही-मन एक बीभत्स संकल्प भी कर चुका है । न सहेगा, न चुप रहेगा, न रोटी छोड़ेगा और......लड़ाई न होगी, तो छेड़कर लड़ाई करेगा ।

छेड़कर......करने की नौबत न आई । उस दिन बात-बेबात की लड़ाई शुरू हो गई । वही किताब पढ़ने का मामला । बहू मन-ही-मन पढ़ रही थी । सुनाने
प्रस्ताव हुआ । पहले जल्दी-जल्दी पढ़ने की शिकाय
हुई, फिर समझा-समझाकर पढ़ने की आज्ञा हुई, फि
बे-हद धीरे-धीरे पढ़ने का अभियोग लगा ।

और इस अभियोग के साथ-ही-साथ सास महाशय
ने क्रोध से बिलबिलाकर दाँत पीसकर, आँख काढ़
बहू का सिर दीवार से टकरा दिया !!

सिर फूट गया और रक्त बहने लगा ।

शाम को बेटा लौटा, तो मा सिर पीट-पीटकर कहे
लगी—"क्या इसीलिए मुझे बुलाकर लाया था
इसीलिए—जला-जलाकर मारने ? देख, तेरी बेग
ने यह क्या किया है ? ज़रा-सी बात पर सिर फो
लिया । अरे, बाबा रे, यह छलछंदिन तो मुझे किस
दिन फाँसी पर लटकवा देगी । वाह, बेटा, वाह ! अच्
मेरी ख़ातिरदारी की !!"

मा भयानक मुँह बनाकर सिर हिलाने लगी ।

ऊपर जाकर उसने बहू से पूछा । रोते-रोते सच-स
सब बता दिया गया और ज़ख़्म और ख़ून भी दि
दिया गया ।

तब बेटे ने शांत भाव से कोट उतारकर खूँटी
टाँगा, दायें हाथ से कोने में रक्खा हुआ मज़बूत
उठाकर बाईं हथेली पर दो-तीन बार पटका और धी
धीरे नीचे आकर भीतर से किवाड़ बंद कर लिये ।

बेटे की उग्र-मूर्ति देखकर मा चीख़ पड़ी......।

वह चीख़ ज़बर्दस्ती दबा दी गई और हाथ
जाने तक काशीनाथ का पशुत्व-भाव अनर्थ करता रहा

× × ×

एक सप्ताह तक मा घर से न निकली, निकलने
न दी गई । जब मार के चिह्न मिट गये
स्वतंत्रता मिली ।

छूटते ही पहुँची मुरब्बियों के पास और रोया जा
दुखड़ा । ख़ूब हाय-तोबा मचाई, धरना दिया
हाथ जोड़-जोड़कर बिनती की ।

एक सप्ताह तक रोज़ सुबह जाती, शाम को आ
पर कुछ फल न हुआ । न पंचायत जुड़ी, न काशीना
जवाब तलब किया गया ।

'अंधी दुनिया' ने वही 'बर्तन खड़कनेवाली'
कहकर मा का अभियोग डिसमिस कर दिया !!

स्वराज्य-पथ

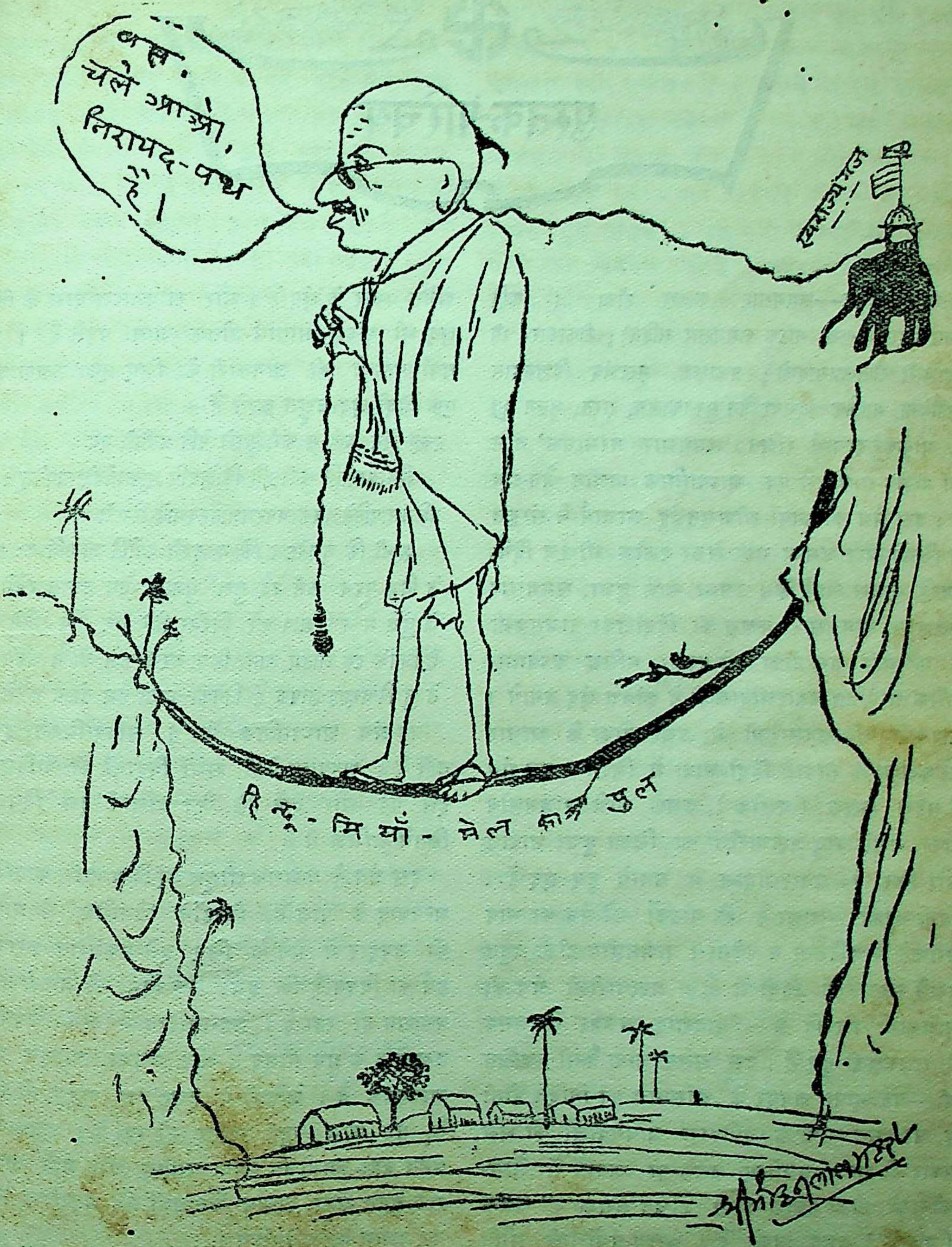
बस, चले आओ, निरापद-पथ है।
स्वराज्यगढ़
हिन्दू-मियाँ-मेल का पुल

पुस्तक-परिचय

राजमल्लीय—समयसार कलश टीका (कवि बनारसीदासजी-कृत नाटक समयसार सहित); टीकाकार, श्री ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी; प्रकाशक, मूलचंद किशनदास कापड़िया, मालिक दिगंबर जैन पुस्तकालय, सूरत; मूल्य ३)

श्रीकुंदकुंदाचार्य रचित 'समयसार मरमागम' नाम का प्राकृत-भाषा में एक आध्यात्मिक प्राचीन जैन-ग्रंथ है। उस ग्रंथ की कापी श्रीअमृतचंद आचार्य ने संस्कृत में लिखी और उसका भाव लेकर श्लोक भी रच दिये, जिन्हें कलश कहते हैं। उसका नाम हुआ, समयसार कलश। समयसार कलश की हिंदीटीका राजमल्लजी ने की और उस टीका को पढ़कर प्रसिद्ध अध्यात्म-रसिक श्रीपंडित बनारसीदासजी ने कवित्त छंद बनाये। ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी ने उसी टीका के आधार पर कलशों के भावार्थ हिंदी-भाषा में लिखा। इस ग्रंथ में पहले कलश (श्लोक), उसके नीचे राजमल्लीय टीका, उसके बाद ब्रह्मचारीजी का लिखा हुआ भावार्थ और फिर पं० बनारसीदास के बनाये हुए छंद हैं। इतना काफ़ी मसाला है कि पाठकों को ग्रंथ का भाव समझने में कठिनता न पड़ेगी। राजमल्लीय टीका बहुत पुराने समय की हिंदी में है। ब्रह्मचारीजी ग्रंथ की भूमिका में लिखते हैं—"बादशाह अकबर के समय में राजमल्लजी हुए हैं। उस समय भाषा कैसी प्रचलित थी—यह भाषा जयपुर के आसपास की विदित होती है, यह ज्ञान भाषा के इतिहास जाननेवालों को भले प्रकार हो जाय, इसलिए उनके ही वाक्यों में जैसी-की-तैसी टीका प्रकाश करना उचित समझा।" कलश (श्लोक) बहुत अच्छे हैं। काव्य-ग्रंथों की भाँति शार्दूलविक्रीडित, मंदाक्रांता और शिखरिणी आदि अनेक प्रकार के छंद हैं। और श्रीबनारसीदास के हिंदी छंद भी अच्छे भावार्थ-द्योतक जान पड़ते हैं। हम यहाँ पाठकों की जानकारी के लिए एक कलश और एक हिंदी छंद उद्धृत करते हैं—

त्यक्तं येन फलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं
  किन्त्वस्यापि कुतोऽपि किञ्चिदपि तत्कर्मावशेनापतेत्।
तस्मिन्नापतिते त्वकम्पपरमज्ञानस्वभावे स्थितो
  ज्ञानी किं कुरुतेऽथ किं न कुरुते कर्मेति जानाति कः॥

जे निज पूरब कर्म उदै सुख, भुंजत भोग उदास रहैंगे।
जे दुख में न विलाप करें, निरबैर हिये तन ताप सहैंगे॥
है जिनके दृढ़ आतम ज्ञान, क्रिया करके फल को न चहैंगे।
ते सु विचच्छण ज्ञापक हैं, तिनको करता हम तो न कहैंगे॥

यह ग्रंथ आध्यात्मिक ग्रंथ है, सांप्रदायिकता इसमें नहीं है। अध्यात्म-प्रेमी सभी विद्वानों को चाहिए कि इसे पढ़ें और देखें कि जैन आचार्य इस विषय के कितने अभिज्ञ थे।

इस ग्रंथ के प्रकाशक श्रीमूलचंद किशनदास कापड़िया धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने 'जैनमित्र' के ग्राहकों को उपहार में देने के लिए इसे प्रकाशित कराया। हर्ष का विषय है कि इधर कुछ दिनों से जैन-ग्रंथों का प्रकाशन हो रहा है। जैन-साहित्य में सभी विषयों के उच्चकोटि के ग्रंथ मौजूद हैं और उनका प्रकाशन बहुत आवश्यक है। जैनियों ने इधर कुछ ध्यान तो दिया है, पर काम बहुत धीमा हो रहा है। इसके लिए बहुत बड़ा आयोजन करना चाहिए, और जहाँ तक हो सके बहुत शीघ्र प्राचीन जैन-ग्रंथों को प्रकाशित करने का उद्योग करना चाहिए।

× × ×

क्लोमयाथातथ्यम्—लेखक और प्रकाशक, वैद्य पं० हरिप्रपन्नजी, श्रीभास्कर औषधालय, तीसरा भाई वाड़ा, बंबई; मूल्य ।=)

लेखक महोदय आयुर्वेदशास्त्र के प्रकांड विद्वान् हैं। आपने 'रसयोगसागर' नाम का एक बृहद् ग्रंथ लिखा है। शायद उसी ग्रंथ में लिखे हुए क्लोमविवरण को पढ़कर वैद्य पं० कवडे शास्त्री क्लोम स्थान से सहमत नहीं हुए और उन्होंने एक निबंध लिखकर क्लोम का कोई दूसरा स्थान बताया। क्लोम किसे कहते हैं, और वह शरीर में किस स्थान पर है, यही बहस है। यह पुस्तक उसी निबंध के उत्तर में लिखी गयी है। शास्त्रीजी का निबंध तो हमें पढ़ने को नहीं मिला, पर इस पुस्तक में उद्धृत उनके वाक्यों से जान पड़ता है कि उनका मतभेद पाश्चात्य विचार के आधार पर है, और पं० हरिप्रपन्नजी का उत्तर वेद, ब्राह्मण और आयुर्वेद के प्रमाणों से। पुस्तक में इतना अच्छा शास्त्रार्थ है, जिसे पढ़कर लेखक की विद्वत्ता, मनन-शीलता और निर्भीकता प्रकट होती है।

× × ×

माता की कृपा—लेखक और प्रकाशक, श्रीकुमार चिदानंद, आसाम बंगाल, सारस्वत मठ, कोकिलामुख, जोड़हाट, आसाम ; बँगला पुस्तक का अनुवाद ; मूल्य ।)

श्रीकुमार चिदानंद, परमहंस स्वामी निगमानंद सरस्वती देवजी के शिष्य हैं। स्वामीजी ने जिस प्रकार माता (ब्रह्मविद्या, महाशक्ति) की आराधना करके उसकी कृपा से सिद्धि लाभ की है, वही विवरण शिष्यजी ने इस पुस्तक में दिया है। मूल पुस्तक बँगला में है, उसके पाँच संस्करण हो चुके हैं। हिंदी-अनुवाद का यह पहला संस्करण है। इसके अनुवादक पं० पुरुषोत्तम शर्मा भट्ट तैलंग हैं। प्रकाशक के पते से पुस्तक मिल सकती है।

चंडिकाप्रसाद अवस्थी

× × ×

फल, उनके गुण तथा उपयोग—लेखक, श्रीकेशव-कुमार ठाकुर ; प्रकाशक, छात्रहितकारी पुस्तक-माला, दारागंज, प्रयाग ; आकार प्रकार डबलक्राउन १६ पेजी, छपाई साफ़ ; पृष्ठ-संख्या २१४, मूल्य अजिल्द १), सजिल्द १॥), प्रकाशक से प्राप्त।

हिंदी में अपने ढंग की यह अकेली पुस्तक है। पुस्तक वैद्यक, यूनानी तथा डाक्टरी तीनों मतों के नियमों के आधार पर है। (१) जीवन-शक्ति (२) हमारे भोजन के पदार्थ (३) हमारी भूल और उसका परिणाम (४) हम बीमार क्यों पड़ते हैं (५) फलाहार क्यों सर्वोत्तम है (जिसमें भोजन के प्रत्येक प्रकार की वैज्ञानिक विवेचना है) (६) फलों के संबंध में संसार के विद्वान् और (७) संसार की जातियों में फलाहार का प्रभाव इत्यादि बिषयों पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने फल तथा तरकारियों के गुण-दोषों की विवेचना की है। संग्रह उपयोगी है और लेखक महोदय इस पुस्तक के लिये धन्यवाद के पात्र हैं।

× × ×

अनमोल रत्न—लेखक, साहित्यरत्न पं० रामबहोरी शुक्ल बी०ए० ; प्रकाशक, छात्रहितकारी पुस्तकमाला; दारागंज, प्रयाग; आकार प्रकार डबलक्राउन १६ पेजी ; छपाई-सफ़ाई उत्तम, पृष्ठ-संख्या २३० ; मूल्य १।); प्रकाशक से प्राप्त।

इसमें महात्मा बुद्ध, श्रीशंकराचार्य, सम्राट् हर्ष प्रभृति १७ महापुरुषों की संक्षिप्त जीवनियाँ हैं। भाषा तथा घटनाएँ—दोनों में पुस्तक नीची कक्षाओं के छात्रों के लिए बहुत उपयोगी है ; क्योंकि इसमें कक्षाओं के लिए निर्वाचित पाठ्य पुस्तकों से अधिक मसला है।

× × ×

पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ—लेखक, हिंदीभूषण पं० जगपति चतुर्वेदी विशारद; प्रकाशक, छात्रहितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग ; आकार प्रकार डबलक्राउन १६ पेजी ; छपाई-सफ़ाई उत्तम ; पृष्ठ-संख्या २०६ ; मूल्य १) ; प्रकाशक से प्राप्त।

इस पुस्तक में प्रत्येक देश तथा प्रत्येक समय के अन्वेषकों की यात्राओं का सरस वर्णन है। पुस्तक छात्रों के लिए उपयोगी है ; क्योंकि अभी साहित्य-प्रेमियों की रुचि इस बिषय की ओर नहीं गयी है।

× × ×

अछूत—लेखक, श्री० आनंदिप्रसाद श्रीवास्तव ; प्रकाशक, विश्वग्रंथावली, ५०६, दारागंज, प्रयाग; आकार प्रकार डबल-क्राउन १६ पेजी, छपाई उत्तम, पृष्ठ-संख्या ११८; मूल्य १) प्रकाशक से प्राप्त।

यह लेखक का पहला नाटक है। पुस्तक अच्छी है ; रंगमंच पर खेलने की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

लेखक ने इसमें प्रचलित नाटकों के दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया है। पुस्तक में कहीं-कहीं कृत्रिमता तो अवश्य आ गई है किन्तु लेखक ने इसमें अछूतों के महत्त्व का अच्छा दिग्दर्शन कराया है।

× × ×

एकांतवास--लेखक, श्रीगणेश पांडेय; प्रकाशक, छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग; आकार प्रकार डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठ-संख्या १३८; प्रकाशक से प्राप्त।

यह पुस्तक छोटी-छोटी कहानियों का संग्रह है, जो कि भावपूर्ण तथा सुरुचिपूर्ण है। 'जीवन का मूल्य', 'भाग्य चक्र' और 'उपकार' आदि कहानियाँ ऊँचे दर्जे की हैं।

इरिहरनाथ शुक्ल 'सरोज'

× × ×

बालक प्रहलाद--(कहानीमय जीवन-चरित्र) लेखक, पं० भगवतीप्रसाद बाजपेयी; प्रकाशक, 'शिशु' कार्यालय, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या ५८; मूल्य ।=)

लेखक के ही शब्दों में, "वीर तथा आदर्श पुरुषों के जीवन-चरित्र बच्चों के लिए बड़े काम की चीज़ होते हैं। वे उनके दिलों पर वीरता, त्याग और सेवा-भाव के चित्र खींच देते हैं। उनका उनके जीवन पर अमिट प्रभाव रहता है।"

जैसा कि नाम से ही प्रकट है, प्रस्तुत पुस्तक में बालक प्रहलाद के जीवन की भक्ति-पूर्ण सभी घटनाओं का वर्णन बड़ी ही सरल और बोलचाल की भाषा में लिखा गया है। इसे पढ़ने से मनोरंजन और शिक्षा दोनों ही प्राप्त हो सकते हैं। पुस्तक बच्चों के लिए बड़े काम की चीज़ है। तीन चित्र भी दिये गये हैं, जिनसे उसकी उपयोगिता और भी अधिक बढ़ गई है।

× × ×

बाल-शिक्षामाला--लेखक, पं० रामगोपाल मिश्र बी०एस-सी०; प्रकाशक, स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या १०४; मूल्य ।-)

महाभारत की अनेक सुंदर शिक्षाप्रद कथाओं को संक्षेप रूप में लिखकर इस संग्रह में एकत्र करके लेखक महोदय ने वास्तव में बच्चों का बड़ा उपकार किया है। कुल मिलाकर २६ छोटे-छोटे पाठ इसमें दिये गये हैं। जिनमें कुछ तो भारतवर्ष के भौगोलिक ज्ञान का परिचय कराते हैं और अधिकांश सब महाभारत के कथांश का। हर पाठ के अंत में उससे मिलनेवाली शिक्षा का सार भी प्रायः पद्य में दे दिया गया है। भाषा सरल है। बच्चे इसे पढ़कर काफ़ी शिक्षा और सदुपदेश ग्रहण कर सकते हैं। इसकी उपयोगिता के संबंध में इतना ही लिख देना पर्याप्त है कि कई प्रांतीय स्कूलों के पुस्तकालयों में इसे चुना गया है। और यह पुस्तक का द्वितीय संस्करण है।

तारादत्त उप्रेती

× × ×

न्यू मिडिल स्कूल एलजबरा और न्यू हाई-स्कूल एलजबरा--लेखक, श्रीयुत आनंदस्वरूप सिनहा एम्० ए०, एल्-टी०; प्रकाशक, मैकमिलन कंपनी, कलकत्ता; मूल्य ३)

जब से वर्नाक्यूलर, हाईस्कूल और मिडिल स्कूलों की शिक्षा का माध्यम बनाई गई तभी से बीजगणित की एक ऐसी उपयुक्त पाठ्य पुस्तक की अनिवार्य आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा था, जो हिंदी या उर्दू में हो। इस बहुत बड़ी कमी को पूरा करने का श्रेय श्रीयुत सिनहा को है। आपकी पुस्तक परिवर्तन-काल की है, जब कि न तो प्राचीन रीति का परित्याग किया जा सकता है और न एकाएक नई रीति पूर्ण रूप से ग्रहण की जा सकती है। अँगरेज़ी के पारिभाषिक प्रयोगों के साथ-साथ उनके हिंदी-उर्दू पर्याय भी दे दिये गये हैं, जिससे शिक्षक और छात्र दोनों का काम बहुत आसान हो गया है। आलोच्य पुस्तक में एक विशेषता यह भी है कि प्रत्येक नयी प्रश्नावली के आरंभ में अभ्यासार्थ बहुत-से मौखिक प्रश्न दे दिये गये हैं। लेखक ने कई बातों में मौलिकता का परिचय दिया है। उदाहरणार्थ 'धनात्मक और ऋणात्मक संख्या' विषयक अध्याय एक नवीन रीति से लिखा गया है तथा विषय का स्पष्टीकरण चित्रों और उदाहरणों से किया गया है। 'कोष्टक' संबंधी अध्याय गुणा के अध्याय से पहले रक्खा गया है। यह भी एक बिलकुल नया विचार है। 'अवशिष्ट साध्य' पर पूरा एक अध्याय लिखा गया है। पुस्तक की छपाई और सजधज आकर्षक है। चित्र साफ़ हैं और मूल्य कम है। आशा है इस पुस्तक से छात्रों को बीजगणित के मोटे-मोटे सिद्धान्तों का ज्ञान बहुत आसानी से होगा और शिक्षकों के लिए भी यह उपयोगी सिद्ध होगी।

ओंकारनाथ सक्सेना (एम्० ए०, एल्-टी०)

× × ×

बहूरानी—लेखक, साहित्यरत्न श्री० शंभूदयाल सक्सेना, प्रकाशक, साहित्य-निकेतन, दारागंज, प्रयाग; साइज़ क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या १७०; कागज़ एंटिक; किंतु छपाई साधारण; मूल्य सजिल्द २)

बहूरानी में कई गृहस्थियों का स्वाभाविक चरित्र-चित्रण किया गया है। जीवन में उलट-फेर, मानवी भावनाओं का चढ़ाव-उतार और स्त्री-कर्तव्य के निदर्शन का अच्छा सम्मिश्रण हुआ है। कमला का चरित्र अत्यंत पवित्र एवं नारी-जीवन की एक रहस्यमयी निधि है। मेरी राय में उपन्यास सुंदर और उपयोगी है। महिलाओं को अवश्य पढ़ना चाहिए। सक्सेनाजी का परिश्रम सराहनीय है। मुझे पुस्तक का २) मूल्य अधिक मालूम हुआ। प्रकाशक महाशय को इस पर विचार करना चाहिए।

× ×

'भजन-संग्रह' (दूसरा भाग)—संग्रहकर्ता श्री-वियोगी हरि; मूल्य =) —इसमें कुछ साधु-संतों के भजनों का संक्षिप्त संग्रह किया गया है। 'सेवा के मंत्र'—अनुवादक, श्रीकाशीनाथ नारायणजी त्रिवेदी, मूल्य दो पैसा। इस पुस्तिका में श्रीअरंडेल महोदय की The way of Service से कुछ सूक्तियाँ इकट्ठी की गयी हैं जो कि वास्तव में मंत्रों से कम नहीं है। 'सप्त-महाव्रत'—मूल्य -)—इसमें महात्मा गांधीजी के सात प्रवचनों का संग्रह है जो यरवदा मंदिर से आश्रमवासियों के नाम समय-समय पर आते रहे। गुजराती से हिंदी का अनुवाद श्री त्रिवेदीजी ने किया है। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह और अभय का सुंदर विश्लेषण ही सप्त-महाव्रत' के नाम से प्रकाशित किया गया है। 'समाज-सुधार'—लेखक, श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार; मू० -); मैंने इस छोटी-सी पुस्तिका को बहुत ही पसंद किया। देश, काल और पात्र का विचार करके पोद्दारजी ने वास्तविक वैदिक रीति से सुधार के जो ढंग बताए हैं वे अनुकरणीय हैं। समाज के परिष्करण के साथ-साथ उपसंहार में जो धार्मिक पुट दे दी गयी है वह सुधार में संजीवनी का काम देगी।

यह चारो पुस्तिकाएँ गीता-प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित हुई हैं और वहाँ के मैनेजर को पत्र लिखने पर मिल सकती हैं। छपाई भी अच्छी है और मूल्य बहुत ही उचित रक्खा गया है। सर्वसाधारण को लाभ उठाना चाहिए। हम श्रीघनश्यामदासजी को भी उनकी सुरुचि और सत्कार्य के लिए बधाई देते हैं।

रामसेवक त्रिपाठी

× × ×

विज्ञापन-परिचय

(१) डावर (डा० एस० के० बर्मन) लिमिटेड ४, ताराचंददत्त स्ट्रीट कलकत्ता का संवत् १९८८ का पंचांग हमें प्राप्त हुआ है। कई वर्षों से यह पंचांग प्रकाशित होकर मुफ़्त ही बाँटा जाता है। इसमें तिथियों का विवरण, लग्नसारिणी, दशकर्ममुहूर्त, प्रसिद्ध तीर्थस्थानों का संक्षिप्त परिचय, विभिन्न प्रांतों की छुट्टियों की लिस्ट आदि अनेक उपयोगी बातें दी गई हैं। कई एकरंगे और तिरंगे धार्मिक चित्र भी दिये गये हैं। पंचांग संग्रहणीय है। यह कार्यालय अपनी लाभप्रद औषधियों के लिए भी काफ़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। 'अर्क कपूर' को मैंने कई बार स्वयं आज़माया और हैज़ा, बदहज़मी एवं कई अन्य उदररोगों पर गुणदायक पाया। इस कार्यालय के 'केशराज' तेल की बड़े-बड़े नेता तक प्रशंसा कर चुके हैं। 'ओटो-निहारिन' और 'ओटो-स्नो' भी अपने ढंग की अत्यंत सुंदर और मनमोहक वस्तुएँ हैं। हम अपने पाठकों से उक्त कारख़ाने की चीज़ों को अपनाने का अनुरोध करते हैं।

(२) पं० ख्यालीरामजी वैद्य द्विवेदी का आयुर्वैदिक औषधालय इंदौर में बहुत प्रसिद्ध है। आपके यहाँ देशी औषधियाँ शुद्धतापूर्वक तैयार की जाती हैं। सारे भारतवर्ष से शास्त्रोक्त उत्तम औषधियों के लिए माँग आती रहती है। इस औषधालय में स्वदेशी दवाओं का अच्छा स्टाक तैयार रहता है। वैद्य और हकीम लोग भी आपके कार्यालय से लाभ उठाते रहते हैं। हमने आपके यहाँ के निर्मित च्यवनप्राश की परीक्षा की और लाभदायक पाया। स्वदेशी के इस युग में स्वदेशी औषधियों से लाभ उठाना प्रत्येक पुरुष का कर्तव्य है। हमें आशा है कि इस कार्यालय की औषधियों से जनता को संतोष प्राप्त होगा। जो सज्जन चाहें उपर्युक्त पते से पत्रव्यवहार कर सकते हैं।

उद्यान

१. भारत-वंदना

जय-जय प्यारे हिंदुस्थान।
फल-फूलों की शोभा न्यारी,
पादप-पुंज अमित सुखकारी,
स्वर्ग-संपदा तुच्छ विचारी,
देता जीवन-दान।
जीवन-वायु-अन्न हैं सुखकर,
ऋतु वसंत मृदु मंजुल मनहर,
मन आह्लादित हुआ श्रेष्ठतर—
सुन प्रभात का गान।
यहीं चंद्र, तारे मुस्काते,
यहीं सूर्य निज तेज दिखाते,
यहीं स्वलीला ईश रचाते—
ले अवतार महान।
गौरवशाली देश हमारा,
सब देशों में हमको प्यारा,
उपकृत सारा राष्ट्र तुम्हारा,
तुझ पर हों बलिदान।

दीनानाथ व्यास

× × ×

२. रचनाओं के लिए पुरस्कार

साहित्य-सेवा एक व्यसन भी है और पेशा भी। पेशा या व्यवसाय से मतलब हमारा यह है कि बहुत-से लेखक अपनी रचनाओं के लिए पुरस्कार लेते हैं । कितने ही लेखक हमारे हिंदी-जगत् ही ऐसे हैं जो अपनी रचनाओं के लिए कुछ पुरस्कार नहीं लेते । महामना टालस्टाय ने अपनी संपूर्ण रचनाओं का अधिकार मुफ़्त में दिया था । उनकी पुस्तक को कोई भी प्रकाशि करा सकता था । सच पूछिए तो साहित्यि रचनाओं का मूल्य रुपयों में नहीं चुकाया जा सकता लेखक या कवि अपनी रचना में संसार का प्रदर्श करता है ।

पर फिर भी एक कवि या लेखक अपनी प्रतिभाजन उत्तमोत्तम रचनाओं को संसार के सामने रखे, तो ज़रू है कि वह 'नोन तेल लकड़ी' की चिंताओं से मुक्त रहे यह बात गद्य-लेखक के लिए अधिकतर लागू है । क या तो हद से ज़्यादा मग्न हो या हद से ज़्यादा दुः हो, तभी उससे प्रथम कोटि की रचनाएँ हो सकती हैं आजकल हमारे हिंदी-साहित्य की बुरी दशा है कोई संस्था या राजा कवियों या लेखकों का संरक्ष करनेवाला नहीं है । उन्हें प्रकाशक ने आठ दस रुपये फ़ार्म जो दे दिया वह ले लेते हैं आज हिंदी संसार में रचनाओं के लिए जो पुरस्कार मिलता है, वह नहीं के बराबर है । समझते हैं कि श्रीप्रेमचंद, प्रोफ़ेसर रामदास गौ आदि कुछ लेखकों को छोड़कर शायद ही कोई लेख हो जिसे बीस रुपये फ़ार्म से ऊपर पुरस्कार मिलता हो कलकत्ते का साहित्यिक 'मार्केट' तो बहुत ही गिरा हु है । ३) ४) फ़ार्म जो पुरस्कार पाते हैं वह अपने धन्य मानते हैं । और सच पूछिए तो हिंदी में २) फ़ार्म पर लिखनेवाले भी कितने ही उपन्यासका नाट्यकार और अनुवादक मिल जायँगे । आत्म-सम्मा

---

१. जल।

खोकर इस प्रकार दर-दर मारे-मारे फिरने का एक प्रधान कारण उनकी दरिद्रता है। किसी तरह जीवन-निर्वाह करते हैं। दूसरी तरफ़ यदि हम इँगलैंड आदि पश्चिमी देशों की ओर दृष्टि डालते हैं और वहाँ के लेखकों की आर्थिक अवस्था देखते हैं तो दाँतों-तले उँगली दबा लेनी पड़ती है। समाचारपत्र और मासिक पत्रों के कहानी-लेखकों को एक-एक और दो-दो हज़ार पाउंड प्रति कहानी तक पुरस्कार मिलता है। यहाँ विशेष अवस्थाओं में भी गल्प-लेखकों को अधिक-से-अधिक पचास रुपये और साधारणतः पाँच से दस रुपये तक मिलते हैं। अच्छे लेखकों को दो और तीन रुपये प्रति पृष्ठ के हिसाब से पुरस्कार मिलता है।

लायड जार्ज को अपनी जीवनी लिखने के लिए पंद्रह रुपया प्रति शब्द मिला है। यहाँ क्या हाल है? लेखकों को पंद्रह रुपया फ़ार्म भी नहीं मिलता। साथ-ही-साथ हम यह भी कह देना चाहते हैं कि इँगलैंड के लेखकों को हमेशा से इतना अधिक पुरस्कार नहीं मिलता आया है। अँगरेज़ी साहित्य के 'केशव' मिल्टन को अपने सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ "पैरेडाइज़ लास्ट" को पाँच पौंड में बेचना पड़ा था और यदि हम आज से सौ वर्ष के पूर्व के हिंदी-साहित्य की तत्कालीन अँगरेज़ी साहित्य से तुलना करें तो हमें यह मालूम होगा कि जितना पुरस्कार हिंदी के कवियों को मिला है उतना और किसी भाषा के कवियों को न मिला होगा। 'भूषण' को जितना पुरस्कार मिला था उतना बहुत कम कवियों को मिला होगा। उनके पुरस्कार मिलने और शिवाजी से परिचय होने के संबंध में दो मत हैं। कहते हैं, संध्या समय 'भूषण' एक देवालय में ठहरे। शिवाजी महाराज वेष बदलकर घूमते-घूमते उस देवालय में पहुँचे। 'भूषण' का परिचय और महाराष्ट्र आगमन का उद्देश्य जानकर उन्होंने शिवाजी-विषयक कुछ कविताएँ सुननी चाहीं। 'भूषण' ने निम्नलिखित छंद महाराज को सुनाया—

इंद्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुलराज है।
पौन बारिवाह पर संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है।
दावा द्रुम दुंड पर चीता मृग झुंड पर,
'भूषन' बितुंड पर जैसे मृगराज है;
तेज तमअंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों म्लेच्छबंस पर सेर सिवराज है।

शिवाजी ने उस छंद को १८ बार पढ़वा कर सुना। जब पढ़ते-पढ़ते भूषण थक गये और उन्नीसवीं बार पढ़ने से इनकार कर दिया, तब शिवाजी ने अपना परिचय देकर कहा—"हमने प्रतिज्ञा की थी कि जितनी बार आप यह छंद पढ़ेंगे, उतने ही लाख रुपया, उतने ही हाथी और उतने ही गाँव देंगे। आपके भाग्य में इतना ही था।" कोई इसे दूसरी तरह से कहते हैं। जिसके अनुसार उन्हें ५२ लाख रुपया, ५२ हाथी और ५२ गाँव मिले। जो कुछ हो 'भूषण' को बहुत काफ़ी पुरस्कार मिला, इसमें संदेह नहीं। वास्तव में 'भूषण' की कविताएँ ऐसी ही जोशीली होती थीं कि मनुष्य उद्वेग में आकर जो कुछ दे दे थोड़ा था। कहते हैं, छत्रसाल ने एक कविता सुनकर उनकी पालकी उठा ली थी।

ओड़छा-नरेश इंद्रजीतसिंह को एक करोड़ रुपया जुर्माना हुआ था। इसे 'केशवदास' ने माफ़ करवाया था—यह बात काफ़ी प्रसिद्ध है।

'पद्माकर' को राजा रघुनाथ राव भोंसला की दानशीलता का एक कवित्त में वर्णन करने पर इक्कीस लाख मुद्रा, उतने ही गाँव और हाथी मिले थे। कवित्त यह है—

संपति सुमेर की कुबेर की जो पावै ताहि,
तुरत लुटावत बिलंब उर धारै ना;
कहै 'पदमाकर' त्यों हेम हय हाथिन के,
हलके हजारन के बितरे बिचारै ना।
गंज गज बकस महीप रघुनाथ राव,
आप गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना;
याही बिधि गिरिजा गजानन को गोय रही,
गिरि ते गरे ते निज गोद ते उतारै ना।

'पद्माकर' को कई नरेशों से बहुत-से पुरस्कार मिले थे। जयपुर-नरेश सवाई जगतसिंह ने एक समस्यापूर्ति पर उन्हें सोलह हाथी, सोलह गाँव तथा पचीस हज़ार नक़द दिया था।

महाकवि बिहारीलाल को अपने हरएक दोहे के लिए एक अशर्फ़ी मिर्ज़ा राजा जयसिंह से मिलती थी।

सुप्रसिद्ध 'कवि सरदार' काशीराज महाराज ईश्वरीनारायणसिंह के यहाँ महीने में एक बार जाते थे। उन्हें वहाँ १००) और एक दुशाला हर दफ़े मिलता था।

इसी तरह हिंदी के बहुत-से प्राचीन कवियों को अपनी कविता के लिए प्रचुर धन मिला है। उस समय का भारत आज का भारत न था। उस समय कवियों को धन की कमी न थी। अब तो पेट की चिंता है और फिर भी कोई नहीं पूछता है।

अभी पचास वर्ष भी नहीं हुए भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने ज्योतिष के सुप्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी को सिर्फ़ एक दोहे के लिए सौ रुपया दिया था। वह दोहा यह था—

"राजघाट पर बँधत पुल, जहँ कुलीन की ढेर।
आज गये कल देखि के, आजै लौटे फेरि॥"

इसमें विशेषता 'आज' और 'कल' पर है। कल शब्द दो अर्थी है।

सुप्रसिद्ध हिंदी-काव्य-मर्मज्ञ लाला भगवानदीन को एक लेख "रूस पर जापान क्यों विजयी हुआ" के लिए २००) पुरस्कार मिला था।

सुना है, श्रीप्रेमचंदजी को अपने 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' उपन्यासों के लिए भी काफ़ी पुरस्कार मिला है।

यह है संक्षेप रूप में हमारे हिंदी-साहित्य के प्राचीन और नवीन लेखकों और कवियों के पुरस्कार का हाल। पर ज्यों-ज्यों मातृ-भाषा हिंदी का क्षेत्र बढ़ता जायगा और साथ-ही-साथ हिंदी-पुस्तकों का प्रचार बढ़ता जायगा त्यों-त्यों प्रकाशकों और लेखकों की आर्थिक अवस्था सुधरती जायगी।

फ़ारसी-कवि फ़िरदौसी को 'शाहनामा' के लिए महमूद ग़ज़नवी ने साठ हज़ार स्वर्णमुद्रा देने को कहा था। परंतु सम्राट् ने वास्तव में साठ हज़ार रजतमुद्रा ही प्रदान कीं। इस पर फ़िरदौसी सम्राट् से बहुत असंतुष्ट हो गया। सम्राट् ने यह सुनकर फ़िरदौसी के पास फिर से ६०००० स्वर्णमुद्रा भेजा। लेकिन मुद्रा पहुँचने के ठीक पहले फ़िरदौसी मर गया था और उसकी लाश उस समय घर से निकल रही थी। 'अनवरी' को भी इसी तरह से अपनी रचनाओं के लिए प्रचुर धन मिला था।

क़ानी नामक फ़ारसी कवि को अपने क़सीदों के लिए लाखों रुपये मिले थे।

अब ज़रा पश्चिम की ओर आइए। यह कहा जा चुका है कि मिल्टन ऐसे श्रेष्ठ कवि को अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना के लिए पाँच पौंड मिला था। बाद में प्रकाशक की कृपा से उसे दस पौंड और मिले।

महाकवि शेक्सपियर को अपने सर्वश्रेष्ठ नाटक "हैमलेट" के लिए सात पौंड अर्थात् सौ रुपये से कुछ अधिक मिला था। आज शेक्सपियर यदि जीवित होता तो लोगों का अनुमान है कि वह केवल इस पुस्तक का अधिकार बेच कर पचास लाख से अधिक पैदा कर सकता था।

कविवर जान ड्राइडन को बड़ी मुश्किल से एक दस हज़ार लाइन की रचना के लिए छः आना प्रति पंक्ति के हिसाब से पुरस्कार मिला था।

"गोल्ड स्मिथ' की रचनाओं से हिंदी के अधिकांश पाठक परिचित होंगे। स्वर्गीय पं० श्रीधर पाठक ने उसकी कई पुस्तकों का बहुत सुंदर पद्यात्मक अनुवाद किया है। उस कवि को अपनी पुस्तक 'पथिक' (Traveller) के लिए इक्कीस पौंड पुरस्कार मिला था। जब डाक्टर जानसन ने उसकी सुप्रसिद्ध गद्य पुस्तक "दी विकार साफ़ वेकफ़ील्ड" (इस पुस्तक का हिंदी-अनुवाद पं० ऋषीश्वरनाथ भट्ट वकील कर चुके हैं) साठ पौंड में एक प्रकाशक के हाथ बिकवा दी तो गोल्ड स्मिथ ने अपने को बड़ा भाग्यवान् समझा।

स्वयं डाक्टर जानसन को ही अपनी "कवियों की जीवनियाँ" (Lives of the poets) एक पेंस में लाइन के हिसाब से बेचनी पड़ी थी। जब उसकी मा का देहांत हो गया तो उसके पास एक पैसा भी न था। बेचारे ने अपनी एक और रचना "रैसेलस" (Rasseles) को बेचकर मृत्यु माता की दाहक्रिया की थी।

"ग्रे" (Gray)—जिसकी प्रसिद्ध "एलजी" (मर्सिया) हरएक अँगरेज़ बच्चे के ज़बान पर रहती है—को अपनी अमर रचनाओं के लिए चालीस पौंड मिले थे।

यह उन कवियों और लेखकों के पुरस्कार की चर्चा है जिनकी वजह से आज अँगरेज़ी साहित्य सर्वोपरि है और प्रकाशक आज लाखों रुपया पैदा कर रहे हैं लेकिन यह एकांगी विवरण है। अँगरेज़ी में—जैसे पहले ही कहा जा चुका है—रचनाओं के लिए प्रचुर पुरस्कार

मिला है। 'हेले' (Hayley) को 'काउपर' (Cowper) की जीवनी लिखने के लिए ग्यारह हज़ार पौंड मिले थे। पर जब 'काउपर' की जीवनी राबर्ट संदे (Robert Sonthey) ने लिखी, तब उसे एक हज़ार पौंड मिला।

एलेकज़ेंडर पोप (जिसकी Essay on man और Essay on criticism सुप्रसिद्ध रचनाएँ हैं) को प्राचीन कवि 'होमर' (Homer) के काव्यों का अनुवाद करने के लिए आठ हज़ार पौंड मिले थे। परंतु आगे चलकर एक कवि और उपन्यास-लेखक को इतना अधिक पुरस्कार मिला कि जिसके आगे यह सब पुरस्कार तुच्छ जान पड़ने लगे। इस लेखक का नाम है—सर वाल्टर स्काट। 'स्काट' को बारह उपन्यासों के लिए एक लाख. दस हज़ार पौंड मिले थे। दस हज़ार पौंड उसे सिर्फ़ एक उपन्यास के लिए मिले। कुछ दिनों तक वाल्टर स्काट की आमदनी पचास गिनी अर्थात् लगभग आठ सौ रुपये प्रति दिन तक हो गई थी। मरने के समय उसके पास तीन लाख रुपये थे। इसके पहले बहुत-सा रुपया वह क़र्ज़ अदा करने में ख़र्च कर चुका था।

लार्ड 'बायरन' की पुस्तकों का जितना प्रचार था. उस हिसाब से वह रुपया कुछ भी न कमा सका। फिर भी अपनी रचनाओं से उसने बीस हज़ार पौंड कमा लिया था।

"टामस मूर" को अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक लालःरुख (Lallah Rookh)—इस रचना में भारत के प्रति बड़े अच्छे उद्गार हैं। एक कविता की प्रथम पंक्ति का आरंभ ही इसी प्रकार है—(Sweet Indian land ! whose air is balnu)—के लिए लाग मैंस कंपनी से तीन हज़ार पौंड मिले थे। बेचारे "टामस कैम्पबेल" को अपनी पुस्तक "आशाओं के सुख" (Pleasures of Hope) के लिए केवल साठ पौंड ही स्वीकार करना पड़ा।

यह हुई कवियों और साहित्यिक गद्य-लेखकों की बात। अब इतिहासकारों की ओर दृष्टिपात कीजिए। इतिहासकारों ने भी इतिहास-ग्रंथों को लिखकर प्रचुर धन कमाया है। 'स्मोलेट' को एक मामूली ऐतिहासिक ग्रंथ के लिए दो हज़ार पौंड मिले थे। ऐतिहासिक विद्वान् राबर्टसन को "चार्ल्स प्रथम"(Charlls I) नामक पुस्तक लिखने के लिए साढ़े चार हज़ार पुरस्कार रूप में प्राप्त हुए। इतिहास के विद्यार्थियों से 'गिबन' (Edward Gibbon) का नाम छिपा न होगा। वह इँगलैंड का सर्वश्रेष्ठ इतिहास-लेखक माना जाता है। उसकी सर्व प्रशंसित पुस्तकें हैं--"डिक्लाइन ऐंड फाल आव दी रोमन इंपायर" (Decline and fall of the Roman Empire) यह पुस्तक सिर्फ़ इतिहास के विद्यार्थियों द्वारा ही नहीं पढ़ी जाती है, बल्कि अँगरेज़ी साहित्य के प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा मनन की जाती है। शैली (Style) बनाने के लिए लोग इस पुस्तक को विशेष रूप से पढ़ते हैं। इस अमर पुस्तक के लिए 'एडवर्ड गिबन' को दस हज़ार पौंड मिले थे।

भारत में अँगरेज़ी शिक्षा को सरकारी रूप से प्रारंभ करनेवाले सुप्रसिद्ध विद्वान् लार्ड मेकाले को इँगलैंड का इतिहास लिखने के लिए बीस हज़ार पौंड पुरस्कार मिला। हास्य और उपन्यास-लेखक चार्ल्स डिकेन्डस को कितना पुरस्कार मिला यह बिलकुल ठीक नहीं मालूम। पर फिर भी वह मृत्यु के पश्चात् अपनी पुस्तकों की कमाई से एक लाख पौंड छोड़ गया था। हिंदी-संसार में 'वेनिटी फ़ेयर' और 'रंगभूमि' पर श्रीअवध उपाध्याय काफ़ी लिखा-पढ़ी कर चुके हैं। इससे हिंदी-पाठक इस पुस्तक से बहुत कुछ परिचित हो गये होंगे। सचमुच में 'थैकरे' की एक श्रेष्ठ रचना है। इसी "वेनिटी फ़ेयर" के लिए 'थैकरे' को एक हज़ार गिन्नी पारश्रमिक मिला था। 'न्यूकम्स' (New comes) से उसे चार हज़ार पौंड मिले। एक मासिक पत्र से उसे चार हज़ार पौंड की वार्षिक की आय थी। 'बुलवरलिटन' को कुल रचनाओं के लिए तेंतीस हज़ार पौंड से अधिक मिले थे। चार्ल्स किंगस्ले को 'आल्टनलाक' (Alton Locke) से केवल डेढ़ सौ पौंड मिला था। श्रीमती जीन आस्टिन (Jean Austin) अपने उपन्यासों से केवल सात सौ पचास पौंड कमा सकीं।

श्रीमती जार्ज इलियट को अपनी एक पुस्तक 'रोमोला' (Romola) के सात हज़ार पौंड मिले। 'आडम बीड' (Adam Bede) के लिए उसे चालीस हज़ार पौंड मिले थे। अमेरिका के सुप्रसिद्ध कवि लांगफेलो (जिसकी कविता Tell me not in mournful numbers, Life is but an empty dream, शोक-भरे शब्दों में मुझसे कहो न जीवन है सपना)—

बहुत प्रसिद्ध है—को एक कविता पर तीन हज़ार डालर मिले थे।

यह हुई पुराने कवियों के लेखकों और कवियों की चर्चा। इस युग के अँगरेज़ी लेखक रुपया कमाने में बहुत ही बढ़े-चढ़े हैं। मिस्टर बेरी को "दी लीटिल मिनिस्टर" नामक पुस्तक लिखने पर पचास हज़ार पौंड मिले थे। उन्हें चार सौ पौंड प्रति एक हज़ार शब्द के पीछे पारश्रमिक मिला था। मिसेज़ राइस ने "मिसेज़ विग्स ऑव दी कैबेज पैच" (Mrs. Wiggs of the Cabbage Patch) नामक पुस्तक लिखी है। उसे उन्होंने 'रायल्टी' पर दी है। पुस्तक में कुल बीस हज़ार शब्द हैं। उन्हें उससे बीस हज़ार पौंड अर्थात् एक पौंड प्रति शब्द मिला।

सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका स्वर्गीया मिस मेरी 'कारेली' ने जितना रुपया अपने उपन्यासों द्वारा कमाया, उतना बहुत कम लेखकों को मिला होगा। उन्हें हर एक पुस्तक के लिए कम-से-कम बीस हज़ार पौंड मिले थे। सुप्रसिद्ध कवि और लेखक नोबेल-पुरस्कार पानेवाले श्रीरुडयार्ड किपलिंग को भी क़रीब-क़रीब इतना ही पुरस्कार मिला है। किपलिंग साहब को सिर्फ़ आठ कहानियों के लिये आठ हज़ार पौंड से ऊपर पुरस्कार रूप में मिल चुके हैं। एक कविता के लिए उन्हें ढाई हज़ार रुपये मिले थे। 'किम' (Kim) के लिए उन्हें एक रुपया प्रति शब्द के हिसाब से पुरस्कार मिला है। सर हालकेन—जिनकी पुस्तक "दी प्राडिगल-सन" और "दी इटर्नल सिटी" बहुत प्रसिद्ध है—को भी बहुत अधिक रुपया मिला है। उनकी पुस्तक 'इटर्नल सिटी' का अनुवाद हिंदी में अमरपुरी के नाम से हो चुका है। सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ विंसन चर्चिल को अपनी पिता की जीवनी लिखने के लिए आठ हज़ार पौंड मिले हैं। भूतपूर्व भारत-मंत्री और 'इँगलिश मैन ऑव लेटर्स' सीरीज़ के संपादक स्वर्गीय लार्ड मार्ले को ग्लैडस्टोन (Gladstone) की जीवनी लिखने के लिए दस हज़ार पौंड पुरस्कार मिला था।

UTERINE
ELIXIR

स्त्रियों की ताक़त बढ़ानेवाली एक बहुत मशहूर दवा बड़े-बड़े डाक्टर, सर्जन्स, हकीम और आम पबलिक द्वारा इसकी ख़ूब प्रशंसा हो चुकी है।

(क्रेब ब्रंड)
युटरीन एलीकभीर
रजिस्टर्ड

स्त्रियों को स्त्रीधर्म के समय जो पीड़ा होती है, अथवा सफ़ेद प्रदर (जरि-
यान का जाना) वा, स्त्रीधर्म के समय लोहू के अधिक गिरने से जो कमज़ोरी
आती है, जिसके कारण से शरीर का कमज़ोर हो जाना और सूती का रोग बच्चा जनने
के बाद जो होता है, शरीर का रंग धोला-पीला के फीका पड़ जाता है, लोहू
शरीर में नहीं रहता है याने पांडुरोग की अवस्था हो जाती है, मानो शरीर में
चक्कर आना तमाम बदन में जलन होना या दुखना, रक्त प्रदर, याने पैर में चलने
या रोग से कमज़ोरी आना, अन्दरूनी जगह में दुखना, चश्का चलना, गर्भ
अधूरा गिरना, पेट गर्भाशय कमर इत्यादि स्थानों में वेदनायुक्त दुखना, स्त्रीधर्म
साफ़ व नियम से नहीं आना, पेट में गुल्म याने गाँठ का बनना इत्यादि स्त्रियों के तमाम शारीरिक व गर्भाशय
के रोगों को यह यूटरीन एलीकभीर दवा रामबाण की माफिक मिटाती है। सच्ची भूख लगाकर पाचन
करती है, शरीर में हर्ष, उत्साह और चैतन्यशक्ति को लाती है, निद्रा सुख से आती है, शरीर व चेहरे का
रूपरंग तेजवान करती है।

सेवनविधि मात्रा—एक चमचा याने तीन मासा से आठ मासा तक शरीर का बलाबल देखकर पानी के साथ कुछ थोड़ा खुराक लेने के बाद दिन में तीन वक़्त ले सकते हैं। खाली पेट में नहीं। क़ी० २।) रु० डाक व पेकिंग चार्ज अलग।

एजेंटों की ज़रूरत है।
सोल एजेंट—एम्० डी० बोरा ऐंड को ७१ प्रिंसेस स्ट्रीट, बंबई नं० २ पोस्टबाक्स २००१
तार का पता—"MEDICA" Bombay.
पेटेंट दवाएँ, ड्रग्स, डाक्टरी औज़ार और अस्पतालों की ज़रूरियात की सारी चीज़ें भेजनेवाले।

आजकल के लेखकों में सर आर्थर कोनन डायल, हालकेन, एच० जी० वेल्स, आर्नल्डबेनेट, वीलियम, ली० के आदि ने अपनी रचनाओं द्वारा प्रचुर धन कमाया है। 'कोनन डायल' ने तो 'शेरलाकूज़ होम्ज़' (Sherlock Holmes) से ही कितना रुपया कमाया होगा ! प्रेतविद्या में लगे रहने पर भी वह उपन्यास लिखते जाते हैं। चार्ल्स गार्विस के उपन्यासों का प्रचार नवयुवकों में बहुत है। उन्होंने अपने प्रेमपूर्ण उपन्यासों से बेहद रुपया कमाया था। यह कहा जा चुका है कि श्रीलायड जार्ज को आत्मचरित्र लिखने के लिए पंद्रह रुपया प्रति शब्द मिला है। मिस्टर आस्किथ—अब लार्ड आक्सफ़ोर्ड की स्त्री मारगट अस्किथ ने लिखकर बहुत रुपया कमाया है। उन्हें केवल अपनी डायरी के लिए पंद्रह हज़ार पौंड पुरस्कार मिला है। 'आत्मचरित्र' और 'प्लेसेज़ ऐंड परसंस' नामक दो पुस्तकों स उन्होंने खूब धन कमाया है। जिन लेखकों को नोबेल-पुरस्कार मिल चुका है वह कम-से-कम सवा लाख रुपया कमा चुके हैं। नोबेल-पुरस्कार पानेवालों में मुख्य मारिस मैटरलिंक, विलियम बटलर इट्स, रवींद्रनाथ ठाकुर, बर्नडशा, किपलिंग, रोमें रोलां, अनातोल फ्रांस, नट हैमसन आदि हैं। जर्मन राष्ट्रपति वान हिंडेनवर्ग को भी अपनी जीवनी लिखने के लिए दस हज़ार पौंड मिले हैं। भूतपूर्व क़ैसर को अपने 'आत्मचरित्र' के लिए चालीस हज़ार पौंड मिला है । जगत्प्रसिद्ध उपन्यासकार मि० हचिंसन को इफ़ विंटर कम्ज (If winter comes) के लिए सत्तर हज़ार पौंड मिला है।

अब भी "टिट बिट्स" (Tit Bits) आदि पत्रों में हरएक विनोदपूर्ण नोट लिखने के लिए एक पौंड पुरस्कार मिलता है । 'पायोनियर' भी २५) से ५०) प्रति कालम तक पुरस्कार देता है । सुना है, सुप्रसिद्ध भारतीय अँगरेज़ी लेखक संत निहालसिंह को महाराज गायकवाड़ की जीवनी के लिए प्रचुर पुरस्कार मिला है।

बँगला-लेखकों में शरत् बाबू ने अपनी रचनाओं से पर्याप्त धन कमाया है।

संक्षेप में पाठकों के सामने सुप्रसिद्ध लेखकों और कवियों को उनकी रचनाओं के लिए क्या पुरस्कार मिला है, रख दिया गया है। इससे पाठक उस देश की तत्कालीन साहित्यिक अवस्था का बहुत कुछ पता पा सकते हैं। *

श्यामलाल

× × ×

२. समस्यापूर्ति पर हाथीदान

नीलगाँव, ज़िला सीतापुर के स्वर्गीय ठाकुर दुर्गाबख़्श सिंहजी बड़े गुणग्राहक, रईस तथा हिंदी-साहित्य के मर्मज्ञ एवं प्रेमी थे। इस कारण ३० वर्ष पूर्व नीलगाँव में भी ख़ासी काव्य-चर्चा रहा करती थी।

उस समय के बहुसंख्यक कवि ठाकुर साहब के दरबार में प्रतिवर्ष आते, महीनों ससम्मान टिकाये जाते तथा जाते समय नियत बिदाई पाते थे। इनमें से कोई-कोई यदा-कदा ठाकुर साहब को प्रसन्न कर विशेष पुरस्कार तथा समुचित दान भी पा जाया करते थे।

काव्य के ज्ञाता होने के कारण ठाकुर साहब आगत कवियों को प्रायः समस्याएँ भी दिया करते तथा तत्काल पूर्तियाँ कराया करते थे। लखनऊ के स्वर्गीय पं० देवदत्त जी वाजपेयी की एक तत्काल समस्यापूर्ति पर प्रसन्न हो आपने उन्हें २००) एक बढ़िया रूमाल में बाँधकर समर्पित किये थे। स्व० पं० भैरवप्रसाद वाजपेयी "विशाल" कवि को तो आपने मासिक वेतन नियत कर वर्षों टिकाया भी था।

ढोलपुर, ज़िला रायबरेली के स्व० कवि लछिराज, विश्वनाथ, जीवन संतन, लोचन, लोटन, लालता तथा परमेश, दासापुर ज़िला सीतापुर के द्विज बलदेव भी नीलगाँव में प्रायः पधारा करते थे । ठा० हिमंचलसिंहजी तो वहीं रहते ही थे।

एक समय कवि परमेशजी को ठा० दुर्गाबख़्शसिंहजी ने करुणारस की एक समस्या दी, जिसकी पूर्ति कविजी ने यद्यपि साधारण ही की तथापि ठाकुर साहब ने प्रसन्न हो उन्हें २,२००) के मूल्य का एक हाथी प्रदान किया। समस्या थी—"चीर छूटन चहतु है।" पूर्ति अधोलिखित है।

नैन भरि बारी, कर ऊरध पसारी टेरि,
द्रौपदी पुकारी उर धीर ना लहतु है;
संत-हितकारी सुख-सदन-बिहारी मधु-
मथन खरारी नाम अरि को दहतु है।

---

* इस लेख के लिखने में 'थार्टन हाल' साहब की एक पुस्तक से कुछ सहायता ली गई है। —लेखक

अरज हमारी सुनि लीजिए मुरारी,
केहि कारन बिसारी बेदबानी यों कहतु है ;
ये हो बनवारी प्रभु लागिए गोहारी,
लाज जाति है हमारी, चीर छूटन चहतु है ।

सन् १९१२ में हौलपुर के लोटनराय कविरत्नेश ने लेखक को उल्लिखित संवाद सुनाया। कवि परमेशकृत छंद सुनकर इस अकिंचन ने भी दो छंद उसी समस्या की पूर्तिस्वरूप लिखे थे। देखिए—

बिपतिबिदारी, बृंदाबिपिनबिहारी बाल
पूतना पछारी, बानि बेद उमहतु है ;
अघासुरहारी, नख गिरिवरधारी कंस-
बंस ध्वंसकारी दास त्रास ना सहतु है।
गरुड़ सवारी काँधे पीतपटधारी कहै
द्रौपदी पुकारी उर धीर ना धरतु है ;
मेरी अब वारी, काहे करत अबारी नाथ,
सरन तिहारी चीर छूटन चहतु है ॥ १ ॥
सागर सभा मैं कर भँवर दुसासन सों,
लाज को जहाज आज गति ना गहतु है ;
गौतम की नारी गीध गनिका उबारी, धाये
गज की गोहारी निगमागम कहतु है।
पाल्यो प्रहलादै पद ध्रुव को अचल दीन्हो,
सेवरी की सेवा महि महिमा महतु है ;
बीर बलबीर, मीर परी है गंभीर धीर
आवत न तीर, चीर छूटन चहतु है ॥ २ ॥

राधेनारायण वाजपेयी "प्रजा-वैद्य"

× × ×

४. भिखारी

(१)

वह मंदिर की भग्न मूर्तियों में बैठा न-जाने क्या सोचा करता था। उसके नेत्रों में एक स्वप्न की-सी छाया खेलती थी। उसके हाथ टूटी-सी तंत्री-तारों के साथ खेल करते थे। उसके संगीत में कोई अर्थ न था, केवल विषाद की एक काली आभा थी। जब कभी ताम्रपर्णी की तरंगों को चूमकर वायु समीपवाले तरु-पत्रों को हिलाती, भिखारी न-जाने किस अतीत की कुपित स्मृति का ध्यान कर सिहर उठता।

उस मार्ग से बटोही कम चलते थे। राजपथ का भूला पथिक यदि उसे देखकर दया करता, तो भिखारी की क्षुधा-तृप्ति का संयोग हो जाता। नहीं तो वह अपने पीड़ित हृदय को लेकर उसी मंदिर की सीढ़ियों पर लेट जाता था। नगर-निवासी उस स्थान पर बहुत रात्रि बीते भूलकर भी न जाते।

राजकन्या में अभी बाल्य सुलभ चापल्य था। उसे भिखारी की दशा देखकर प्रसन्नता हुई। एक सखी से कहा—'जा, इसकी तंत्री छीन ला।' उत्तर मिला—'तुम्हीं न जाओ, मुझे तो भय लगता है।'

वह छम-छम करती मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ गई। उसने देखा, भिखारी का ध्यान उधर नहीं है। पत्रों के मर्मर शब्द से आकर्षित होकर भिखारी ने उधर देखा।

कितने सुंदर नेत्र थे! क्यों रानी, तुमने उनमें कौन-सी दुःख-कहानी पढ़ी, जो ठिठक गयीं।

'भिखारी! तुम इतने उदास क्यों हो?'

'रानी, संसार के थपेड़े! अदृश्य की करतूत!!'

'ठीक से बतलाओ न, तुम्हें राजकोष से धन मिल जायगा।'

'अब तो असमर्थ और असहाय नेत्रों के करुण संदे को सुनने की इच्छा शेष है।'

तब से राजकुमारी नित्य वहाँ आकर बैठती।

(२)

'क्यों री रानी, तू किस-किस के पास बैठ फिरती है?'

'तुमसे किसने कहा, माँ?'

'वही, तेरी सहेली 'तरल' बतलाती थी।'

'मैं उससे खूब लड़ूँगी।'

'लड़ेगी तो सही, पर पहले मुझे बता।'

रानी के चंचल नेत्रों में एक शांति-सी आ गयी।

'माँ, उसको बड़ा दुःख है।'

'तो तुझे उससे कौन काम? थोड़ी-सी भिक्षा दे देती

'वह धन का भिखारी नहीं हैं, माँ। उसे चोट ल है, वह सहानुभूति चाहता है।'

'तुझे यह सब बातें करनी कहाँ से आ गयीं? मैं अ ही उसे ठीक भिक्षा दिलवा दूँगी।'

राजकन्या के नेत्रों में आँसू छलक आए।

'उसे कष्ट न पहुँचाना, माँ। मैं अब उसके न जाऊँगी।'

76325

माता ने कुछ आश्चर्य से अपनी पुत्री की ओर देखा, फिर धीरे-धीरे एक ओर चल दी।

(३)

भगवान् बुद्ध का कथन है—दुःख से जीवन की कालिमा धुल जाती है।

सुवर्ण-पतन के निवासियों ने देखा, भिखारी के मुख पर शांति थी। वह नित्य की भाँति फटे वस्त्र पहने था। किंतु उसके मलिन मुख पर एक नैसर्गिक ज्योति थी। राजसेवक उसे कारागार लिये जा रहे थे। एक धनी अपने कंठ के लिए पुष्पमाला ले रहा था। कुछ सोचकर उसने कहा—

'आज रहने दो।'

× × ×

रानी बैठी हुई तट की ओर देख रही थी। पास के वृक्षों से आकर शीतल वायु उसके शरीर को स्पर्श कर रही थी। उसने देखा, एक पक्षी लहरियों में आकर धीरे-धीरे स्नान करने लगा। बट के तने पर कई जीव चढ़ रहे थे। एक पक्षी ने ऊपर से कुछ पत्ते गिरा दिये, पीछे से किसी ने आकर उसके नेत्र मूँद लिये—

"मैं माँ से कहूँगी कि रानी अकेली बैठी न-जाने क्या सोच रही थी।"

(४)

भिखारी कारागार में बड़ी गंभीरता से रहता था। वह काम विना किसी चीं-चपड़ के कर लेता था। सेवक उससे रुष्ट रहते थे। 'न-जाने कैसा मनुष्य है! पीटने से चूँ नहीं करता।' बाह्यदुःख से बढ़कर आंतरिक वेदना होती है।

× × ×

एक दिन कारागार का द्वार खुला। सेवकों ने एक वृद्ध-से बंदी को ठेलकर निकाला—

'अब तो हँसो या रोओ।'

उसने विना उत्तर दिये अपनी टूटी तंत्री पर हाथ फेरा। तार न-जाने रोये या हँसे!

(५)

रानी बड़ी हो गई थी। उसका विवाह हो गया था। एक सघन रात्रि को वह अपने प्रासाद में शय्या पर लेटी कुछ विचार कर रही थी।

पथ पर उसे एक टूटी-सी झंकार सुनाई दी। उसके हृदय पर एक परिचित छाया पड़ी—

"क्या जीवन अश्रु-माला है?"

प्रकाशचंद्र गुप्त

× × ×

५. अँखियाँन

लैकर सम्मुख आरसी, निरखत निपट अयान;
आपुहि चित चकित भई, लखि बड़री अँखियाँन।
कंजन खंजन की कहा, मीन, हरिन उपमान;
इन आँखिन लौं लखि द, त्रै जग में आँखियाँन।
किते न कानन में रमे, त्यागि मान कुल कान;
चंद्रानन अवलोकि कै, कानन लौं अँखियाँन।
का जल धार खरी लखौ, मतवारी! अँखियाँन;
काजल धार खरी लखौ, मतवारी अँखियाँन।

हनुमानप्रसाद गुप्त "कवि मान"

× × ×

६. नशा

मैं घर लौट रहा था। देखा, फाटक के सामने बंबे के पास बड़ी भीड़ लगी है। एक मनुष्य, जो देखने में पागल-सा मालूम होता था, बरांडी की ख़ाली बोतल में बंबे का पानी भर-भरकर पी रहा था। शायद जनता उसी के विचित्र कांड को देखकर हँस रही थी, और लड़के शोर मचा रहे थे। इस लीला को देख मुझे भी हँसी आ गयी। किंतु उस बेचारे की दशा देख मेरे हृदय से करुणा और सहानुभूति के भाव भी फूट निकले। जनता की हँसी और व्यंग्य-बौछारों से उद्धार कराकर मैं उसे अपने घर ले आया। आराम-कुरसी पर बैठाकर मैंने कहा—'मेरे पास बहुत अच्छी विस्की (whisky) है, क्या तुम उसे पीओगे?'

कृतज्ञता से पागल की आँखें उज्ज्वल हो गयीं। हाथ की बोतल दूर रखकर वह बोला – आपकी बड़ी दया है।

मेरा आदेश पाकर एक लड़का पागल के वास्ते एक बोतल बरांडी की उठा लाया। अंतरात्मा से वह बेचारा मुझे आशीर्वाद देता हुआ उस बोतल को ख़ाली कर गया। तब मैंने हँसते-हँसते पूछा —'बरांडी की ख़ाली बोतल में बंबे का पानी भरकर और पीकर तुम लोगों को क्यों हँसा रहे थे? उसमें तुम्हें क्या आनंद मिलता था?'

पागल ने कहा—"महाशय! अब तो मैं वैसा नहीं कर रहा हूँ। नशे के विना मैं पागल हो गया था। विस्की या बरांडी मिलने पर मैं शराब की बोतल में पानी

भरकर क्यों पीने जाऊँगा ? जब असल वस्तु न मिल सकी तो बाध्य होकर असली के स्थान पर बोतल में नक़ली चीज़ भरकर और असली की कल्पना कर उसे ही पी रहा था। उससे दिल की साध तो न मिटती थी, पर हाँ ख़याल कुछ बदल जाता था। असली या नक़ली चीज़ कुछ भी न मिलने से तो मेरे प्राण ही निकलने लगते हैं। कृपानिधान ! इस समय मैंने असली वस्तु पाई है, अब लोगों को नक़ली चीज़ पीकर हँसाने की ज़रूरत नहीं है। अभीष्ट पदार्थ के न पाने पर यह सब करना पड़ा था।''

पागल की कथा सुनकर मेरे ज्ञान-चक्षु खुल गये। उसकी बातें अक्षरशः सत्य प्रतीत होने लगीं। यह तो उस पागल का मत था, परंतु हम लोगों का भी तो बिना किसी नशे के काम नहीं चलता। चाहे वह नशा धर्म के विषय का हो, स्वदेश-हित का हो या विश्व-प्रेम का हो। जब नशा करनेवाला ख़ाली पात्र ही को लेकर उसमें जल भरकर पीता और अपने मन को कल्पना द्वारा सांत्वना देता है, तब इस लीला को देख-देख संसार क्यों हँसता है !

फिर कोई सहृदय पुरुष हम लोगों के सामने एक नवीन मदिरा-पूर्ण पात्र लाकर रख देता है। तब उस पुराने पात्र को दूर फेंककर हम लोग नये नशे में लग जाते हैं। तब दूसरे लोगों की हँसी रुक जाती है।

उस बोतल को समाप्त कर लेने के बाद उस पागल में कुछ स्फूर्ति आ गयी। प्रीति-पूर्ण दृष्टि से उसने मेरी ओर देखकर कहा--महाशय ! आप क्या सोच रहे हैं ? आप भी कुछ पीजिए। क्या, कोई मनुष्य नशे से बचा हुआ है ? किसी को पीने का नशा है, किसी को खाने का नशा है, किसी को सोने का नशा है, किसी को लड़ने का नशा है, किसी को प्रेम का नशा है, किसी को पढ़ने का नशा है, किसी को चोरी का नशा है--यहाँ तक कि पृथ्वी को घूमने का नशा है, और नदी को बहने का नशा है--कहाँ तक कहूँ, सारा संसार ही नशे में है।

मैंने हँसते-हँसते कहा--तुम्हारे साथ बातचीत करने में मज़ा भी आया और एक सत्य का पता भी लग गया। लो, एक प्याला और लो, इसे पीकर तृप्त हो लो और मुझे भी........।

कैलाशपति

× × ×

सुन्दरता का जिगरी दोस्त
और मददगार

आपका आइना क्या कहता है ?

क्या आपका चेहरा ख़ुश्क, बुड्ढा या मुरदा सा मालूम होता है ? क्या आपके चेहरे पर झाइयाँ और झुर्रियाँ धीरे धीरे बढ़ रही हैं जो कभी बहुत सुन्दर और भरा हुआ था ?

अफ़ग़ान स्नो

आपको एक नई सुन्दरता का रास्ता दिखाएगा। आपकी सूरत और खाल मुलायम पड़ जायगी और तमाम दिन ताज़ी और सुन्दर रहेगी। यह आश्चर्यकारक तरीक़ा है जो बहुत आसान और सहूलियत का है और जिससे चेहरे के तमाम दाग़ बहुत जल्दी दूर होकर चाम में और गोरापन आ जाता है। तमाम हिंदुस्तान में हज़ारों स्त्रियाँ अपने हिन्दुस्तान के सामान से और हिन्दुस्तानियों द्वारा इस बनी हुई चीज़ के व्यवहार से अपने चमड़े को तरोताज़ा और सुन्दर बना रही हैं। सर्वत्र मिलता है।

140c ई० एस्० पाटनवाला, १८२।८४, अब्दुलरहमान स्ट्रीट, बम्बई नं० ३

७. आम्रवृक्ष और क्षमा

हे बालक ! तुम आम्रवृक्ष को कितना सदा सताते हो ;
तब भी उससे क्षमा सदृश गुण शोक नहीं तुम पाते हो।
तोड़ डालियों को उसके तुम प्रतिदिन दँतवन हो करते ;
तोड़ जलाते भी हो उसको सदा तंग करते रहते।
जभी टिकोरा लगता उन पर ढेला तुम बरसाते हो ;
कच्चे फल डाली को नित ही तोड़ मरोड़ सताते हो।
तब भी तुम पर क्रुद्ध न होता मीठा-मीठा फल देता ;
खाते हो सानंद जिसे तुम कैसा यह बदला देता।
गर्मी के तुम असह धूप में खेल-खेलकर थक जाते ;
दौड़ उसी के नीचे आकर शांति मधुर तब तुम पाते।
देखो इस निर्जीव वृक्ष को जब है ऐसा उत्तम ज्ञान ;
तुम तब होकर मनुज सभी को देते क्यों न क्षमा का दान।
हाथी के पीछे तो कुत्ता सदा भूकता है रहता ;
पर हाथी उसकी बोली पर ज़रा न ध्यान कभी धरता।
यों ही उत्तम लोग न पर की कटु बातों को करते कान ;
इससे ही सब लोग उन्हीं का करते हैं तन-मन से मान।
क्षमारहित हैं क्षुद्र न उनसे कोई प्रेम कभी करता ;
सबकी आँखों के वे कंटक सब कोई उनसे लड़ता।
बालकवृंद ध्यान दो बातों पर तुम क्षमावान हो लो ;
सभी दुर्गुणों की कालिख को क्षमा स्वच्छ जल से धो लो।
भाई-बहिन सभी की भूलों को तुम भूल दिखाओ प्यार ;
जो अपकार करे उसका भी करते रहो सदा उपकार।
कुलदीपक प्रिय पात्र सभी के सब दुर्गुण तम के नाशक ;
बन जाओगे 'इंदु' जगत के मार्गप्रदर्शक तुम बालक।

श्रीहरिश्चंद्रप्रसाद 'इंदु'

× × ×

८. गद्य-काव्य

(१)

सुंदर,
कौन हो तुम,
जो अचानक स्पर्श कर हृदय को कँपा देते हो ?
तुम्हें देखा किसने है,

कल्पना के स्वप्नलोक से खींचकर तुम्हें इस पृथ्वी पर कौन ला सका है ?

परंतु, फिर भी तुम सारे संसार की अंतिम आकांक्षा क्यों हो ?

हे अज्ञात,

इच्छा होती है कि अपना शरीर, अपनी आत्मा, अपना सब कुछ चूर-चूर करके तुम्हारे चरणों में बिखेर दूँ, परंतु अपने अस्तित्व का मोह सदा ही मेरी इच्छाओं का नियंत्रण कर देता है।

प्रार्थना है.

तुम्हारे और मेरे बीच बहनेवाली इस धारा में स्नान कर मैं अधिक पवित्र हो सकूँ।

तुमसे मैं कुछ नहीं चाहता।

केवल यही कि दिन रात, तुम्हारी ओर देखा करूँ, जिससे मैं सुंदर बन सकूँ।

(२)

भावनाओं का एक तूफ़ान-सा उठा था। उसी के आवेश में आकर मैं गाने लगा। इसमें मेरा स्वार्थ कौन-सा था ?

मैं क्या जानता था कि मेरे ये गीत अपने छोटे-छोटे पंखों पर उड़ते हुए तुम्हारे पास तक जा पहुँचेंगे।

मैं गाना कहाँ जानता था, परंतु तुम्हारे स्पर्श के तूफ़ान में आकर ही मैं पागल हो उठा और अपनी टूटी खँजरी पर अलापने लगा।

मेरी तानें फैल गयी थीं, मेरी आवाज़ के टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे—परंतु मैं इस बात की चिंता क्यों करूँ ?

मुझे संतोष तो इस बात का है कि मेरी ये छोटी-छोटी-सी कड़ियाँ तुम्हारे चरणों तक पहुँच सकीं।

आज जब आवेश की आँधी समाप्त हो चुकी है, चित्रों की अंतिम रेखाएँ पूरी हो गई हैं, मुझे तुम्हारा ही चित्रपट तुम्हारे हाथों सौंपने में संकोच हो रहा है।

शांतिप्रसाद वर्मा

× × ×

६. अहमद

अहमद पड़ोस के पार्क में जाने के लिए जैसे ही घर से निकला, वैसे ही सड़क पर जाते हुए लोगों से उसने सुना—आज बड़ा अच्छा मैच होगा। गोरे भी अच्छा खेलते हैं और कालेज के लड़के भी ग़ज़ब के खिलाड़ी हैं।

अहमद का जी ललचा उठा। उसने सोचा—'चलो हम भी चलें।' वे लोग मैच ही देखने जा रहे थे। अहमद भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ा।

मैदान में पहुँचकर अहमद बड़े चाव से मैच देखने लगा। मैच बंद होते-होते दिन डूब गया। भीड़ कम हो चली, अहमद को भी घर लौटने की बात याद आयी।

कुछ दूर तक तो अहमद ठीक चला, पर आगे चलकर राह भूल गया। कलकत्ता आये अभी उसे दस दिन भी न हुए थे। वह लोगों के साथ, बहुत-सी गलियों और सड़कों में घूमता हुआ मैच के मैदान तक पहुँचा था।

अहमद पहले तो समझता रहा कि इधर-उधर चलकर घर खोज लेंगे। पर, जब घंटों भटकने पर भी घर का पता न लगा तब वह घबड़ाया। एक चौराहे पर उसने लोगों से पूछा—

अकबरहाता के लिये किधर जायँ?

एक ने कहा—

अकबरहाता? अकबरहाता कहाँ है? किस पाड़ा (मुहल्ला) में? लेन, स्ट्रीट—कुछ और बताओ। ऐसे, कोई क्या बतावे कि अकबरहाता के लिए किधर जाओ।

अहमद ने कहा—

हाँ, लेन, लेन बतलाता हूँ।

अहमद ने बहुत सोचा, पर उसे लेन का नाम न याद आया। अहमद को कोई घर की राह कैसे बतलाता। वह वहाँ से और आगे बढ़ा, एकआध ठौर उसने और भी अकबरहाता का पता पूछा। पर, जिन लोगों से उसने पूछा, उन सबने यही कहा कि हम नहीं जानते।

अहमद बड़ा निरास हो गया। उसकी जेब में कुछ पैसे पड़े थे। उसने सोचा—'सियालदा-स्टेशन से घर मिल जायगा।' वह अपने चाचा के साथ सियालदा-स्टेशन में ही उतरा था। ट्राम की सड़क पूछता हुआ वह गलियों से निकलकर चौड़ी सड़क पर आया और ट्राम पर चढ़कर सियालदा-स्टेशन पहुँचा। स्टेशन से वह उस ओर चला, जिधर वह चाचा के साथ घर—अकबरहाता—गया था। पर थोड़ी ही दू जाकर उसे जान पड़ा कि राह नहीं मिल रही है।

रात बहुत जा चुकी थी। ट्राम भी बंद हो गयी थी। ट्राम चलती भी होती तो अहमद जाता कहाँ? फि पैसे भी तो अब उसकी जेब में न थे। वह स्टेशन की ओर लौट पड़ा।

अभी तक वह घर ढूँढ़ने की धुन में था! वह कितना थक गया है—इस ओर उसका ध्यान ही न गया था। वह घंटों भटकता रहा था। अब उसने देखा, पै उठाये नहीं उठते। मुसाफ़िर-ख़ाने के एक कोने मे सुनसान देखकर वह बैठ गया। माँ की याद आयी,

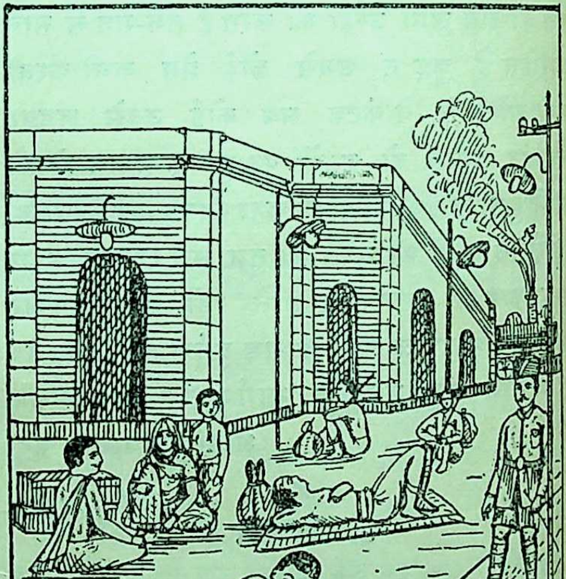

वह बड़ी देर तक हुसक-हुसककर धीरे-धीरे रोता रहा

आँखों से आँसू निकल पड़े। फिर, उधर कानिस्टिबिल को आता देखकर, वह आँखें पोंछकर लेट गया। थका तो था ही, लेटते ही नींद आ गयी। जब आँख खुली, सबेरा हो चुका था।

अहमद उठा। उसने सोचा, अब दिन में घर ढूँढ़ लेंगे। कुछ दूर चलकर उसने देखा, बड़ी भीड़ लगी है, बाजे बज रहे हैं। पास पहुँचकर वह बाजा सुनने लगा। इतने ही में उसे रामकुमार देख पड़ा। अहमद की जान में जान आयी। रामकुमार उसी स्कूल में और उसी क्लास में पढ़ता था, जिसमें अहमद। अहमद दौड़कर रामकुमार के पास पहुँचा। उसने अपनी सब कहानी कह सुनायी, फिर कहा—

भाई, तुम अच्छे मिले। यहाँ से साथ-साथ स्कूल चलेंगे। फिर वहाँ से तो घर की राह जानते हैं।

रामकुमार ने कहा—

पर, अहमद, आज तो हम स्कूल जायँगे नहीं। हमारी बहन का ब्याह है।

क्या हो रहा है मन्नू? ये कौन है?—उधर से निकलते हुए, रामकुमार के पिता सेठ छाजूमल ने पूछा। वे रामकुमार को मन्नू कहा करते थे। रामकुमार ने उत्तर में कहा—

बाबूजी, ये हमारे क्लास में पढ़ते हैं। कलकत्ता नये-नये आये हैं। कल रात में राह भूल गये, घर नहीं मिला।

छाजूमल ने देखा, वह लड़का बड़ा उदास है, उसका मुँह उतरा हुआ है। वे जाते-जाते रुक गए। अहमद की पीठ में हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—

बेटा, बताओ, घर का कुछ पता-ठिकाना याद है?

प्यार-भरी बात सुनकर अहमद रो पड़ा। छाजूमल ने उसके आँसू पोंछते हुए कहा—

रोओ नहीं बेटे, तुमको तुम्हारे घर अभी पहुँचवाये देते हैं।

छाजूमल ने अहमद से सब बातें पूछीं। कैसे घर से चला था, कैसे रात में भटकता रहा, कैसे सियालदा-स्टेशन पहुँचा—सब बातें अहमद ने कह सुनायीं। कुछ सोचकर छाजूमल ने कहा—

अकबरहाता, अकबरहाता कौन? वह तो नहीं, जहाँ हामिदअली वकील रहते हैं?

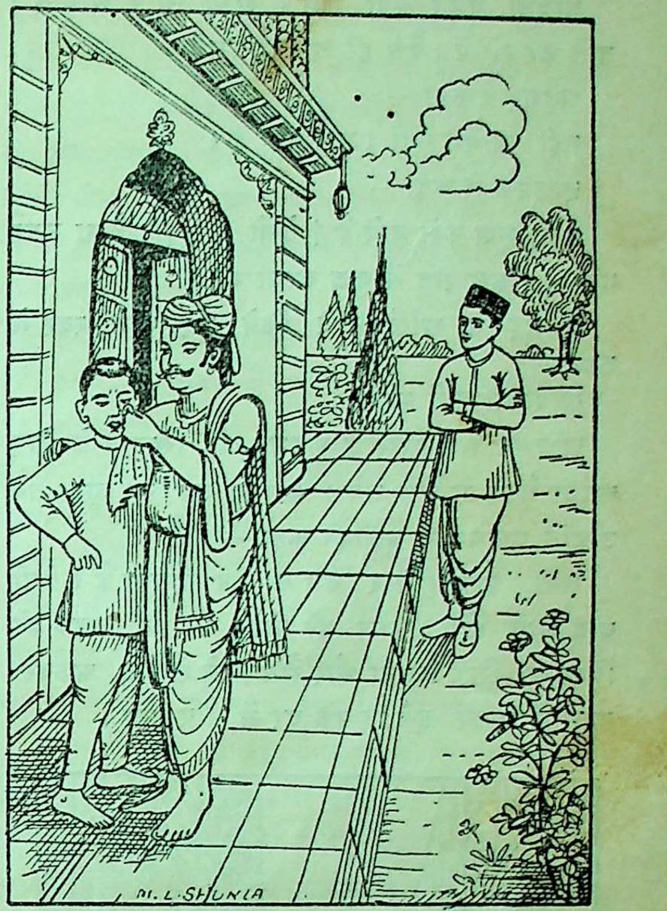

रोओ नहीं बेटे, अभी घर पहुँचवाये देते हैं

अहमद ने कहा—

हाँ, हाँ, वे तो हमारे पड़ोस ही में रहते हैं।

ठीक है, तो अकबरहाता सैयदसले लेन में है—छाजूमल ने कहा।

सैयदसले लेन का नाम अहमद कल से सोचता रहा था, पर उसे हज़ार सिर पटकने पर भी याद न आया था। अब उसे भरोसा हुआ कि घर मिल जायगा।

अहमद के पास जो पैसे थे, वे ट्राम में जा चुके थे। वह कल से भूखा था, उसका मुँह सूख गया था। उसके उतरे हुए और सूखे मुँह को देखकर छाजूमल ने सोचा कि यह लड़का कल से भूखा भी है। उन्होंने रामकुमार की ओर देखकर कहा—

मन्नू, तुम अपने साथ के पढ़नेवालों को खाने-पीने को नहीं पूछते क्या?

रामकुमार कुछ लजा गया, उसने कहा—

बाबूजी, पूछते क्यों नहीं। अभी तो ये आये हैं। बातें कर रहे थे। वैसे ही आप आ गये।

अहमद ने कहा—

नहीं, खायँगे नहीं। भूख नहीं है।

छाजूमल ने कहा—

क्यों, भूख क्यों नहीं है? देखो तो, मुँह कैसा उतर गया है। कल रात में कुछ खाया था?

अहमद ने आँखें नीचे किये हुए, धीमे स्वर से कहा—

खाया तो नहीं था।

छाजूमल रामकुमार से अहमद को खिलाने के लिए कहकर बैठक में चले गये। अहमद जब खा चुका तब उन्होंने ड्राइवर को बुलाकर कहा—

सुनो, हावड़ा में ६ बजे की ट्रेन देखना है। वंशी बाबू आते होंगे। उधर ही मोटर पर इस लड़के को बिठलाए लिये जाना और सैयदसले लेन में, अकवर-हाता में जाकर, इसे, इसके घर में सौंप देना।

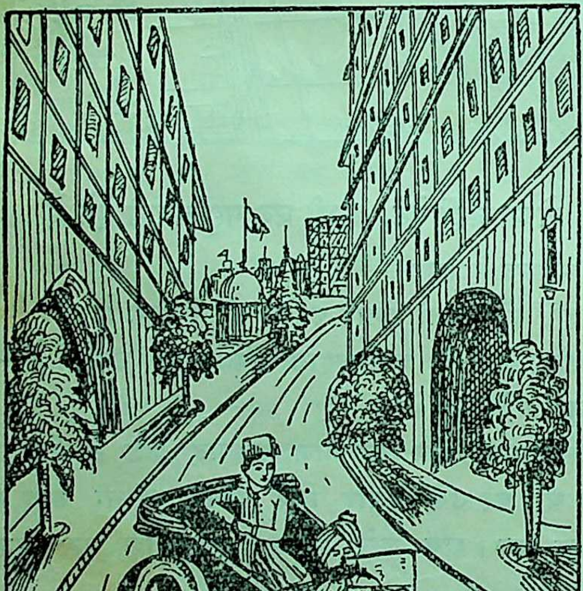

अहमदमोटर, पर बैठकर घर आया

अहमद मोटर पर बैठकर घर आया। घरवाले से हैरान थे। उन्होंने इधर-उधर अहमद को खोजा था। उनकी हैरानी बहुत बढ़ गई थी। यह थी कि कलकत्ता में हिंदू-मुसलमानों का दंगा अभी महीना भर भी न बीता था। नगर में अब सनसनी फैली रहती थी।

अहमद को देखकर घरवालों को अपार आनंद हुआ। अहमद भी अब रात के सब दुख भूल गया था। मोटर पर चढ़कर आया था। उसके लिए मोटर एक नयी सवारी थी। अभी तक वह गाँव में रहता था। इससे पहले वह कभी मोटर पर न चढ़ा था।

श्रीजगमोहन 'विकसित'

× × ×

१०. भ्रमर से

रे मस्ताने भ्रमर! हमारे उपवन में,
गूँज-गूँजकर,
घूम-घूमकर,
फूलों का रस लेता है।
निडर विचरता, भस्म रमाये निज-तन में।
बहुत सवेरे,
करता फेरे,
झूठे सब कर देता है।
लूट-लूट आनंद, खिसक जाता क्षण में।
मान रहा हूँ,
जान रहा हूँ,
तू इस गुण का वेत्ता है।
पर तेरी यह लूट अखर जाती मन में।
क्योंकि, यह सुमन,
मंजु-हार वन,
"नेह" इन्हें जो सेता है।
शोभेंगे, उसके प्रिय के उर-प्रांगण में,

शंभूदयाल त्रिपाठी

× × ×

११. आद्यशक्ति का जागरण

(क्रमागत)

श्रीमती सरलादेवी अम्बालाल

श्रीमती सरलादेवी अहमदाबाद के प्रधान लक्षीश्वर और मिल-मालिक सेठ अम्बालाल साराभाई की धर्मपत्नी हैं। यों तो सत्याग्रह के आरंभ से ही आपकी सहानुभूति आन्दोलन के साथ थी और आप किसी-न-किसी रूप में उसमें योग-दान दे रही थीं, पर गत अक्टूबर में वायसराय द्वारा निकाले गये आर्डिनेंस नं० ९ से तो वे ऐसी प्रभावित हुईं कि उन्होंने उसी महीने से गुजरात प्रांत के डिक्टेटरशिप-जैसे जोखों-भरे पद-भार को अपने ऊपर ले लिया।

श्रीमती सरलादेवी अम्बालाल

नये आर्डिनेंस के जारी होते ही गुजरात प्रांतिक कांग्रेस कमेटी ग़ैर क़ानूनी क़रार दे दी गयी। उसके दफ़्तरवाले मकान पर भी जब पुलीस ने क़ब्ज़ा कर लिया, तो २७ अक्टूबर को अहमदाबाद में कमिटी के दूसरे आफ़िस की स्थापना समारोहपूर्वक दूसरे मकान में की गयी। श्रीमती सरलादेवीजी ने उस मकान पर पुलीस और जनता की उपस्थिति में राष्ट्रीय ध्वजारोपण किया।

श्रीमतीजी का जीवन अभी एक वर्ष पूर्व अत्यंत अमीराना था। वे रेशम और जवाहरातों से लदी रहती थीं। लेकिन इस आंदोलन में वे और उनकी दोनों पुत्रियाँ—कुमारी मृदुला और कुमारी भारती—ने सब ऐश्वर्य त्यागकर सादी खादी का सिपाहियाना बाना पहना और साधारण ग्रामीण की भाँति जीवन धारण कर धरना आदि आंदोलन-कार्य में दिन-रात सहयोग दिया।

वयोवृद्धा सरलादेवीजी में ऐसा गंभीर परिवर्तन क्यों हुआ, इस संबंध में उन्होंने एक पत्र-प्रतिनिधि से कहा था—"इस समय जब कि महात्माजी तथा अन्य हज़ारों भारतीय जेलख़ाने में हैं, तब कोई भी स्वाभिमानी भारतीय बाहर कैसे रह सकता है।"

गत सितंबर में रणपुर-अत्याचार-जाँच-कमिटी की एक सदस्या की हैसियत से आप गिरफ़्तार की गयी थीं और अन्य सदस्यों के साथ आपको भी सज़ा दी गयी थी, लेकिन पीछे अपील में सब लोग छूट गये।

नवंबर में आप अपनी पुत्री मिस मृदुला सहित पुनः गिरफ़्तार की गयीं और दोनों को एक-एक हज़ार रुपया जुर्माने की सज़ाएँ दी गयीं। आंदोलन के समय आपकी पुत्री मिस भारती अहमदाबाद ज़िला शराब पिकेटिंग-मंडल की मंत्रिणी और मिस मृदुला विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार की अगुआ थीं।

श्रीमती आत्मादेवी

श्रीमती आत्मादेवी अमृतसर की एक विशेष सम्मान-प्राप्त महिला हैं। वे वहाँ की महिलाओं की अग्रणी और महिला-स्वयंसेवक-दल की कप्तान हैं। अपनी सहयोगिनी सिख महिला सरदारनी कर्तारकुमारी के साथ अपने नगर में खूब राष्ट्रीय कार्य करती रही हैं। अमृतसर आंदोलन के घनघोर युग में देश के ख़ास ज़िंदा क्षेत्रों में रहा है। यह नगर अब तक बहुत कुरबानी कर चुका है। भारत में कपड़े की एक ज़बरदस्त मंडी होने के कारण अमृतसर के कार्यकर्ताओं को पिकेटिंग में बहुत बलिदान करना पड़ा।

श्रीमती आत्मादेवीजी गत ३० अक्टूबर को चार मास के लिए दुबारा जेल भेजी गयी थीं, जेल से लौटकर आप फिर काम में जुट पड़ीं। पिछली चार मार्च के दिन, आपके एक भाषण को आपत्तिजनक बताकर ताज़ीरात हिंद की दफ़ा १०८ के अनुसार आपको तीसरी

श्रीमती आत्मादेवी

बार फिर गिरफ़्तार किया गया, लेकिन पीछे गांधी-इरविन-समझौते के अनुसार आप पर से मुक़दमा उठा लिया गया ।

श्रीमती पूर्णदेवी

श्रीमती पूर्णदेवीजी लाहौर के प्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्ता लाला ठाकुरदास की धर्मपत्नी हैं । श्रीमतीजी अपने पति के साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन में पूर्णतया भाग ले रही थीं और उनकी प्रथम जेल-यात्रा के उपरांत तो उन्होंने आंदोलन में दिन-रात एक कर दिया था । यही कारण है कि स्वर्गीय पंजाबकेसरी की पुत्री आदरणीय बहन पार्वतीदेवी के साथ गत १३ अक्टूबर को आपसे भी १०-१० हज़ार के ज़मानत-मुचलके तलब किये गये, जिनको न देकर लाहौर की यह दोनों माननीय महिलाएँ ६-६ मास के लिए जेल चली गईं । गत १९ नवंबर को इन देवियों को सज़ाएँ सुनाई गयीं । श्रीमती पूर्णदेवीजी के पति लाला ठाकुरदास उनके मुक़दमे के फ़ैसले से एक दिन पूर्व, १८ नवंबर को दुबारा पकड़े

श्रीमती पूर्णदेवी

गये । जेल में पार्वतीदेवीजी को 'ए' क्लास में गया, लेकिन इन्हें 'सी' में । पूर्णदेवीजी पर संशो फ़ौजदारी क़ानून के अनुसार भी मामला चलाया था, लेकिन पीछे वह उठा लिया गया ।

सरदारनी करतारकौर

श्रीमती करतारकौर (कर्तार कुमारी) अमृ की एक मुख्य सिख-महिला कार्यकर्त्री हैं । वे वह अकाली-महिला-वालंटियर जत्थे की जत्थेदारनी पिकेटिंग का प्रबंध आपके अधीन रहा है । अमृ के सुप्रसिद्ध सिख-मंदिर 'दरबार साहब' पर सफलतापूर्वक धरना दिया है,—आपके अनुरोध अनुनय से वहाँ जानेवाले अनेक यात्रियों ने वि वस्त्र का त्याग किया है ।

एक बार जेल हो आने के उपरांत गत अक्टूबर में पुलीस ने उनका चालान दफ़ा १२४ ए (राज में फिर किया था, लेकिन गत १९ नवंबर को अ से वे रिहा हो गयीं । अतिरिक्त मजिस्ट्रेट बाबा सोह

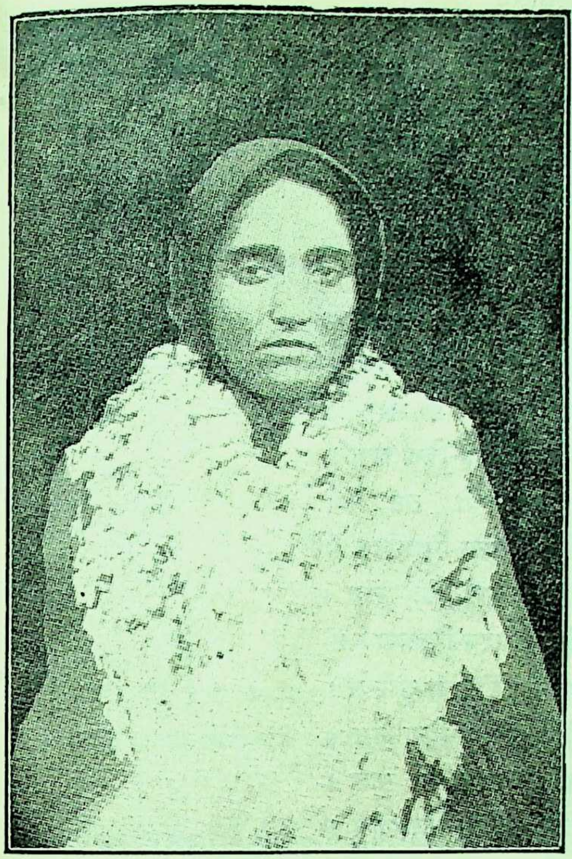

सरदारनी करतारकुमारी

ने अपने फ़ैसले में लिखा कि अभियुक्ता पर जिन भाषणों के लिए मामला चलाया जा रहा है, वे दफ़ा १२४ ए० के अंतर्गत नहीं आते। उन्होंने इन भाषणों में केवल जेल की आपबीती सुनाई है और वह राजद्रोह नहीं है। आप ज्यों-की-त्यों फिर काम में लग पड़ीं।

दिसंबर में वे तीसरी बार फिर गिरफ़्तार की गयीं, और उन्हें तीन मास की सख़्त क़ैद की सज़ा दी गयी। गत चार मार्च के दिन आप लाहौर की ज़नानी जेल से अपनी सज़ा भुगत कर रिहा हुईं। अमृतसर में उनका धूमधाम से स्वागत हुआ, जुलूस निकाला गया और जालियाँवाला बाग़ में आपका सार्वजनिक भाषण हुआ।

(अपूर्ण)

मंगलदेव शर्मा

× × ×

१२. आँसू !

आह दुखिया की, या कराह हौ वियोगिनि की,
प्रेमी-प्रेम या धौं मानिनी के मान मौन हौ;
आनँद के विंदु हौ, विथा हौ की नवोढ़ती की,
भाव के शरीर या अनोखे रस रौन हौ।
रूप खानि जाये तारिका की शान धारे वृत्त,
नीलम या द्रग-सीप-मोती छवि भौन हौ;
वारि कन वरूनी वलाहक, "व्रजेश" बहु-
रूपिया लौं ऐसे तुम आँसू कहौ कौन हौ?

श्रीराघवेंद्रशर्मा त्रिपाठी "व्रजेश"

× × ×

१३. प्रेम-पंथ

वारि के वियोग में विकल मीन देते प्राण,
दीपक पै प्रणयी-पतंग मिट जाते हैं;
कष्ट सहते हैं मकरंद के लिए मलिंद,
वारिद को देख के मयूर मँडलाते हैं।
ताकते ही रहते चकोर चंद्रमा को व्यर्थ,
चातक न स्वातिबुंद पाके अकुलाते हैं;
प्रेमी प्राण देके प्रेथ-पंथ करते पवित्र,
विश्व में पताके निज नाम के उड़ाते हैं।

कुँवर भोजेंद्रप्रतापसिंह

× × ×

१४. आँसू के प्रति

लगी आँख किसी से, हुआ क्या तुम्हें?
चुपके-चुपके दिल में दहते।
ढुलके किस वेदना से घुलके?
कुछ तो हमसे अपनी कहते।
बड़े प्यार से मैंने छिपाया तुम्हें,
पलकों में बिठाया व्यथा सहते।
पर छोड़ मुझे, किसी बावले से—
बहके बुरे और गये बहते।

विद्यार्थी भगवतीप्रसाद मिश्र "करुणाकर"

× × ×

१५. हिंदू विश्व-विद्यालय

स्वरकार—गौरीशंकरसिंह]
साहित्याचार्य, साहित्य-रत्न ।

[**शब्दकार**—पं० सीताराम चतुर्वेदी 'हृदय'
बी० ए०, विशारद ।

राग भैरवी

(गीत)

हमारे देश का अभिमान हिंदू विश्व विद्यालय ।
हमारी जाति का है प्राण हिंदू विश्व-विद्यालय ॥
सरलता विश्व का बंधुत्व अपने धर्म पै मरना ।
सकल गुण शील की है खान हिंदू विश्व-विद्यालय ॥
जगत्रयतारिणी मातेश्वरी भागीरथी तट पै ।
बना है भारती का स्थान हिंदू विश्व-विद्यालय ॥
कला-विज्ञान की शिक्षा पुरातन धर्म की रक्षा ।
सुविद्या धर्म का है मान हिंदू विश्व-विद्यालय ॥
सदा 'ध्रुव' है विमल यश और त्यागी 'डे' सदा सुस्थिर ।
इसी से पा रहा सम्मान हिंदू विश्व-विद्यालय ॥
अनेकों कर्म वीरों के 'हृदय' की भावना का फल ।
हमारे 'मालवी' की जान हिंदू विश्व-विद्यालय ॥

स्थायी

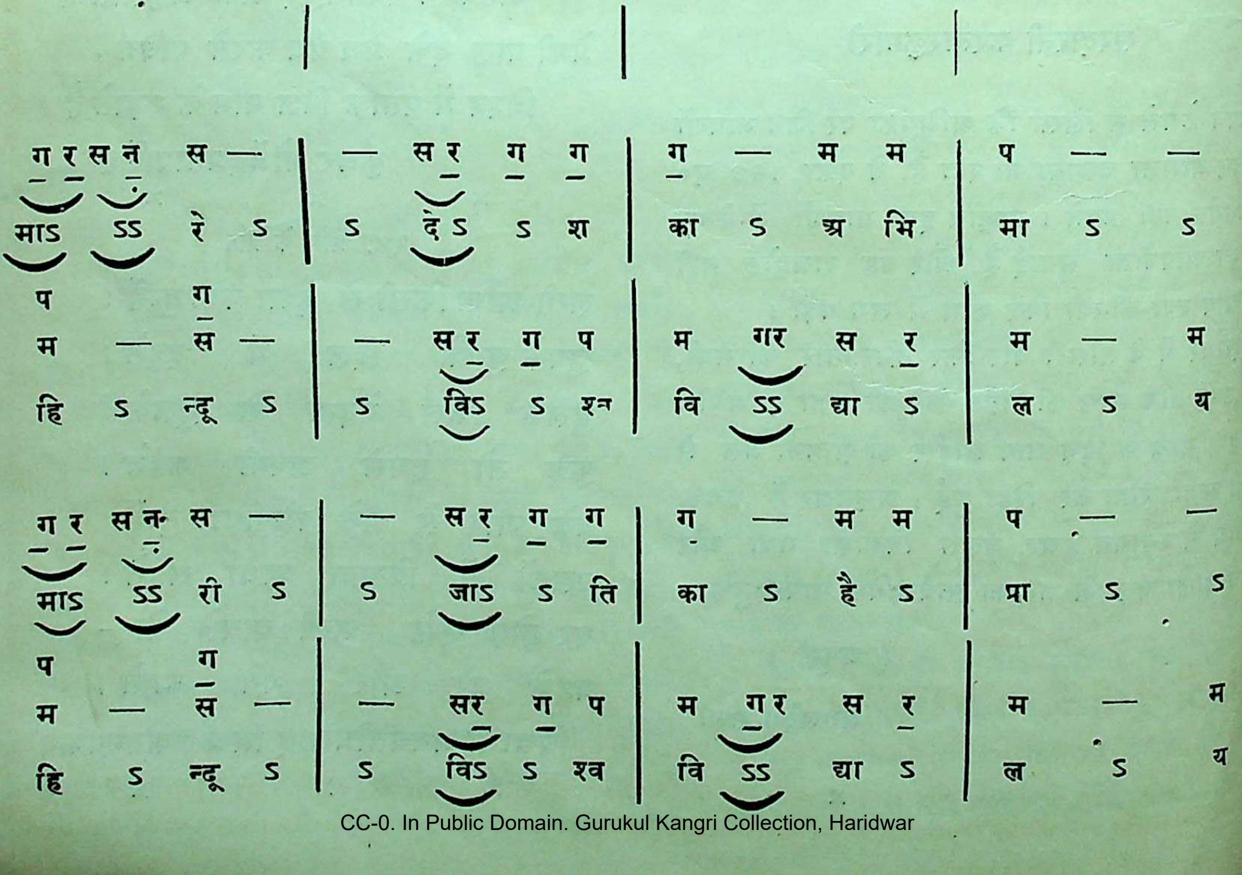

ग र स न स — | — स र ग ग | ग — म म | प — —
माऽ ऽऽ रे ऽ | ऽ देऽ ऽ श | का ऽ अ भि | मा ऽ ऽ
प ग
म — स — | — स र ग प | म गर स र | म — म
हि ऽ न्दू ऽ | ऽ विऽ ऽ श्व | वि ऽऽ द्या ऽ | ल ऽ य
ग र स न स — | — स र ग ग | ग — म म | प — —
माऽ ऽऽ री ऽ | ऽ जाऽ ऽ ति | का ऽ है ऽ | प्रा ऽ ऽ
प ग
म — स — | — सर ग प | म गर स र | म — म
हि ऽ न्दू ऽ | ऽ विऽ ऽ श्व | वि ऽऽ द्या ऽ | ल ऽ य

अंतरा

															म स
धन	संरं	सं	—	—	सं	—	सं	सं	—	सं	रं	गं	—	—	सं
रऽ	लऽ	ता	ऽ	ऽ	वि	ऽ	श्व	का	ऽ	व	ऽ	न्धु	ऽ	ऽ	स्व
न	सं	नध	प	—	न	—	ध	सं	—	प	ध	म	—	—	म
अ	प	ने	ऽ	ऽ	ध	ऽ	र्म	पै	ऽ	म	र	ना	ऽ	ऽ	स
ग	म	रस	स	—	सर	ग	ग	ग	—	म	—	—	प	—	म
क	ल	गुऽ	ण	ऽ	शीऽ	ऽ	ल	की	ऽ	है	ऽ	ऽ	खा	ऽ	न
ग	म	र	स	—	सर	ग	प	म	गर	स	र	म	—	म	स
हि	ऽ	न्दू	ऽ	ऽ	विऽ	ऽ	श्व	वि	ऽऽ	द्या	ऽ	ल	ऽ	य	ह
२				×				२				×			
न	क	धि	न	ध	धि	न	धि	न	क	धि	न	ध	धि	न	धि

शेष अंतरे भी इसी प्रकार बजेंगे।

श्रीमान् पं० भरतखंडेजी के अनुसार स्वरलिपि का संकेत है।

चिड़चिड़ाते कमज़ोर
बच्चे
डोंगरे का
बालामृत
पीने से
तन्दुरुस्त, ताक़तवर, पुष्ट
व आनंदी बनते हैं।

नक़ली दवा से ख़बरदार रहो।

क़स्बे-क़स्बे में बिकता है।

१३६ मालिक—के० टी० डोंगरे कं० गिरगाँव, बंबई

आलोक

१. दशावतार-मीमांसा

पुराणों में सहस्रों बातें ऐसी पायी जाती हैं जिनकी वैज्ञानिक अनुकूलता न मिलने से वे असंभव-सी प्रतीत होती हैं। इसी कारण प्रारंभ में पाश्चात्य विद्वान् पुराणों को निःसार और हेय वस्तु मानकर गप्पाष्टकों का पोथा कहने लगे थे । और उन्हीं के अनुकरण पर अँगरेज़ी शिक्षित भारतीय संगठन में भी वही प्रथा चल पड़ी थी। अगस्त्य ऋषि का समुद्रशोषण, वशिष्ठ की नंदिनी, अहल्या का शापोद्धार, मोहनी-मोहन, समुद्र-मंथन, देव-दानव-युद्ध, विश्वामित्र-वशिष्ठ-विवाद इत्यादि ऐसी ही कथाएँ थीं, जिन पर अन्य समाज बहुधा आक्षेप किया करते थे। यही नहीं, आर्यसमाज के उपदेशक तक पुराणों पर इसी प्रकार के आक्रमण कर उपहास किया करते थे। ये महानुभाव इन कथाओं में कोई ऐतिहासिक, सामाजिक अथवा दार्शनिक तथ्य मानने को प्रस्तुत न थे, अपित सर्वथा त्याज्य कहने में भी संकोच न करते थे। परंतु कई भारतीय संस्कृतज्ञ विद्वानों के गंभीर विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि ऐसी पौराणिक गाथाएँ किसी-न-किसी सामाजिक, राजनैतिक अथवा दार्शनिक तथ्य की ओर संकेत करती हैं। इस प्रकार के अन्वेषकों में स्वर्गीय पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ, श्रद्धेय पं० मधुसूदनजी ओझा तथा पं० सातवलेकरजी मुख्य हैं। इन्होंने बहुत-सी पौराणिक गाथाओं की वैदिक अनुकूलता करके वैज्ञानिक रीति पर अत्यंत मनोहर मार्मिक और गंभीर विवेचन किया है, जिससे भारतीय समाज में विचारों की क्रांति-सी हो गयी है। इन विद्वानों में प्रथम और तृतीय सज्जन आर्यसमाज के अनुयायी हैं और द्वितीय महानुभाव सनातनधर्म के माननेवाले हैं। इन उदाहरणों से विदित होता है कि आर्यसमाज में विवेचन शैली का अधिक प्रचार है। उसकी स्थापना ही वैदि अन्वेषण के आधार पर हुई है। अतः उसमें ऐ विद्वानों की अधिकता है। उसके पीछे सनातनी पंडि भी उसी अनुकरण पर चलने लगे। परंतु काशी अधिकांश प्राचीन शैली के पंडितों में इस प्रणाल का अभाव-सा दृष्टिगोचर होता है।

अस्तु, आज उक्त महानुभावों के गंभीर विचारों तरह तो नहीं, परंतु एक साधारण विचार हम भी विद्वा के समक्ष रखते हैं। आशा है, विद्वत्समाज इस पर अप विचार प्रकट कर अनुगृहीत करेगा।

वेदों में दशावतार का वर्णन आया है। पुराण केवल इन्हीं के आधार पर रचे गये हैं। उन आलंकारिक रूप से सहस्रों गाथाएँ भरी पड़ी हैं। दशों की प्रार्थना में निम्नलिखित छंद बहुत प्रचलित है पूज्यपाद मालवीयजी महाराज बहुधा इसे अ व्याख्यान के प्रारंभ में कहा करते हैं। छंद यह है—

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते ।
दैत्यान् दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ॥
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते ।
म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिधृते कृष्णाय तस्मै नमः ॥

इससे स्पष्ट होता है कि मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिं वामन, परशुराम, रामचंद्र, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि क्रमशः विष्णु भगवान् के दश अवतार माने जाते हैं पुराणों में भी यही क्रम पाया जाता है। इन द वतारों में (१) सबसे प्रथम मत्स्य (मछली) अवतार हुआ माना गया है। सृष्टि के आदि में केवल जल ही जल था, स्थलभाग भी जल से आपू

हो रहा था, उस समय मछली ही पानी में निवास कर करती थी। अतः जीवों में प्रथम मछली की रचना हुई जो पानी से बाहर नहीं रह सकती थी। पाश्चात्य विद्वानों और वैज्ञानिकों का भी यही मत है। मछली को समुद्र में परिभ्रमण करते देख आर्यों को भी समुद्रभ्रमण की उत्सुकता हुई और मछली का आधार लेकर उसी आकृति में नौका का आविष्कार किया, जिससे सागर-भ्रमण में अधिक सुगमता हो गयी। पुराणों में सबसे प्रथम महाराज सत्यव्रत के नौका-संचालन का वर्णन मिलता है। अतः मानना पड़ेगा कि महाराज सत्यव्रत इसके प्रथम आविष्कारक थे। इसी नौका का आश्रय पाकर दानवों से उक्त महाराजा ने वेदों का उद्धार किया। समुद्र-संचालन, विदेश गमन आदि कार्यों में नवजीवन आ गया। व्यापार-कार्य बढ़ गया। अतः कृतज्ञता प्रदर्शनार्थ मत्स्य को ईश्वर का अवतार कहा गया। इसकी महत्ता का अनुमान करकेइस आविष्कार का श्रेय मत्स्य भगवान् को दिया गया। पुराणों में महाराज सत्यव्रत और मत्स्य भगवान् का घनिष्ठ संबंध कहा गया है।

(२) द्वितीय अवतार कच्छप भगवान् का हुआ, जो जलजवि है। परंतु जल और थल दोनों स्थानों में निवास कर सकता है। यह उस समय हुआ होगा जब जल से भूमि रिक्त होने लगी होगी। कच्छप जल में डुबकी लगाने में अधिक पटु होता है। विस्तृत होने के कारण जल की तह से ऊपर आने में उसे सुगमता होती है। अतः मानव-समाज ने जल-संतरण और गंभीर जल में ग़ोता लगाने का आविष्कार इसी को लक्ष्य करके किया था। समुद्र-मथन से १४ रत्नों का निकलना कच्छप भगवान् की सहायता से ही माना जाता है। तभी से रत्न, मोती आदि बहुमूल्य पदार्थ समुद्र-तल से निकाले जाने लगे और समुद्र का नाम रत्नाकर प्रसिद्ध हुआ। समुद्र से हाथी, घोड़े आदि भी पकड़कर निकाले गये जो मानव-समाज के लिए अत्यंत उपयोगी प्रमाणित हुए। समुद्र-मथन कर १४ रत्नों का निकालना हमारे इसी भाव का द्योतक है। इसका संपूर्ण श्रेय कच्छप भगवान् को दिया गया। इस कथा से कच्छप भगवान् का कितना घनिष्ठ संबंध है, इस विवरण के जाननेवाले इससे भली भाँति परिचित हैं। अतः कृतज्ञता प्रदर्शनार्थ कच्छप को भी विष्णु भगवान् का अवतार माना गया।

(३) तृतीय अवतार वाराह भगवान् का माना जाता है, जो स्थल का जीव होते हुए भी जल-प्रिय प्राणी है। इसका प्रादुर्भाव उस समय हुआ जब जल से भूमि रिक्त होकर जंगल के रूप में परिणत हो रही थी। यत्र तत्र कीचड़ और जलयुक्त गड्ढे बन गये थे। इस जीव ने हिरण्याक्ष दैत्य के वध में सहायता प्रदान कर आर्यों को विजय दिलायी थी। (संभवतः यह भी किसी विशेष घटना का आलंकारिक वर्णन है) वाराह का भक्ष्य पुरीषादि घृणित वस्तुएँ हैं। अतः इन अशुद्ध पदार्थों से भूमि को शुद्ध करके निवास योग्य कर दिया। पुराणों में विवरण मिलता है कि हिरण्याक्ष ने पुरीष का कोट रचा था जिसे वाराह भगवान् ने तोड़ा था। अतः यह कथा उक्त वर्णन की पुष्टि करती है। पृथ्वी को पाताल ले जाने का आशय अपवित्र करने से है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी भरत के मुख से "रसा रसातल जैहै तबहीं" वाक्य कहलाकर इसी भाव का प्रदर्शन कराया है। अतः यहाँ भी कृतज्ञता प्रदर्शनार्थ वाराह भगवान् को ईश्वरावतार माना गया था।

(४) चौथा अवतार नृसिंह भगवान् का हुआ था, जो कि जंगली जीव (सिंह) और मनुष्य के मेल से रचा हुआ माना गया था। यह प्राणी जंगलों के विस्तार पर हुआ था। उस समय अन्य वन्य पशु भी अधिक हो चुके थे। मेरा अनुमान है कि हिरण्यकश्यप के मारने के लिए आर्यों ने सिंहों से सहायता ली होगी। संभवतः आवश्यकतानुसार उन्हें ट्रेंड करके अपने काम के लिए उपयोगी बना लिया होगा, जिसके पीछे देवी की सवारी में भी सिंह का रहना पुराणों में पाया जाता है। इस युद्ध में आर्य-सिद्धांत मानने के कारण हिरण्यकश्यप का पुत्र प्रह्लाद भी दैत्यविरोधी माना गया, जिसने सत्याग्रह करके दैत्यों को खूब छकाया था। अंत में मनुष्य और सिंह की संयुक्त शक्ति ने हिरण्यकश्यप सहित दैत्यों का नाश कर दिया और यह चौथा अवतार नृसिंह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अब तक ये चार अवतार जलचर व थलचर में से माने गये, जिनके आविर्भाव से सृष्टिक्रम का अनुमान सुगमता से लगाया जा सकता है।

(५) पाँचवाँ अवतार वामन भगवान् का हुआ, जो आकार में छोटे शरीर का माना जाता है। जिसमें

बुद्धि का विकास भी साधारण मात्रा में पाया जाता है। राजा बलि के छलने में इन्होंने साधारण बुद्धि ही का परिचय दिया था, जिसमें उन्हें कुछ स्वयं भी पराधीन होना पड़ा था। उस समय तक समाज कुछ अधिक सभ्य नहीं हो पाया था; परंतु विराट् स्वरूप की भावना उस समय तक उत्पन्न हो चुकी थी, जिसका सबसे प्रथम वर्णन वामन भगवान् ने किया था।

(६) छठा अवतार भगवान् परशुराम का हुआ, जिनमें शारीरिक शक्ति और बाणविद्या का प्राधान्य था। अन्य प्रकार के शस्त्र भी प्रचलित हो गये थे। फरसे का प्रयोग भगवान् परशुराम बाहुल्य से किया करते थे। क्रोध की मात्रा भी उनमें अधिक थी। वर्णव्यवस्था भी स्थापित हो चुकी थी। क्षत्रियों के अत्याचार से तंग आकर ब्राह्मण परशुराम ने क्षत्रियों के विरुद्ध अस्त्र उठाया और उनका लोप-सा कर दिया था। न्याय और व्यवस्था की स्थापना नहीं हुई थी। अंत में सुशील और विनयी राम से इन्हें भी हार खानी पड़ी।

(७) सातवाँ अवतार मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचंद्र का हुआ। यह पूर्ण अवतार माना जाता है। इनमें उन समस्त उत्तम गुणों की पूर्णता पायी जाती है, जिनकी एक मनुष्य में कल्पना की जा सकती है। सदाचार अत्युच्च कोटि का था। माता-पिता की आज्ञा पालन, पतिभक्ति, भ्रातृभक्ति, एकपत्नीव्रत, राजनैतिक चातुर्य, प्रजा का सद्धर्मयुत पालन आदि गुणों का इनमें बाहुल्य था। वही काल आर्यों के सामाजिक जीवन के लिए आदर्श माना जाता है। इन्हीं भगवान् का आदर्श चरित्र पारिवारिक जीवन के लिए अत्यंत उपयोगी प्रमाणित हुआ। नीति और धर्म, समाज के मुख्य अंग बन गये थे। इसी से भगवान् रामचंद्र आदर्श मर्यादापुरुषोत्तम माने जाते हैं। भारतीय गार्हस्थ्य जीवन पर इनका बड़ा गहरा और अमिट प्रभाव पड़ा है। इसी का प्रताप है कि हिंदू-समाज आज तक जीवित है।

इसी समय के पश्चात् आचारिक पतन प्रारंभ होता है।

(८) आठवाँ अवतार भगवान् कृष्ण का होता है। यह कूट-नीति के महान् और प्रथम आचार्य थे। भगवद्गीता में इसका अच्छा विश्लेषण पाया जाता परंतु इस काल में सदाचार की मात्रा बहुत न्यू गयी थी। सामाजिक पतन हो रहा था। भाई में युद्ध हो रहे थे। कौरव-पांडव इसके प्रत्यक्ष प्र हैं। शराबख़ोरी की प्रबलता थी, जिसके कारण य समाज नष्टप्राय हो चुका था। जुआ भी धर्म का बन गया था। बहु-विवाह का प्रचार अधिक थ स्वयं भगवान् कृष्ण ने कई विवाह किये थे। छल-क के आधार पर ही समाज चलाये जा रहे थे। भग श्रीकृष्ण ने स्थिति सँभालने का प्रयत्न किया। काल के लिए बला टल गयी। परंतु उसके ही अनाचार-दुराचार आदि दुर्गुण भर गये समाज में वाममार्गी, कौलमार्गी आदि संप्रदायों प्रबलता हो रही थी, जिसके सँभलने की संभा भी प्रतीत न होती थी।

(९) ऐसे समय में भगवान् बुद्ध का प्रादु हुआ। यह नवाँ अवतार था। इन्होंने अहिंसा प्रचार किया। यज्ञों में पशुवध बंद कराया। व्यवस्था, जो जकड़-सी गयी थी और जिसके का उसमें अनेकों दोष भी आ गये थे, तोड़ दी ग संघ और विहार स्थापित किये गये। सदाचार प्रचार हुआ। इनके प्रबल प्रताप से उस समय स में नवजीवन आगया था। परंतु पीछे बौद्धों में तांत्रिक प्रयोग प्रचलित हो गये। नास्तिकवाद गया। भारतीय सभ्यता का रूपांतर होने ल देशभक्ति भी जाती रही थी। ये लोग विदेशियों मिलकर आक्रमण कराने लगे, जिससे इस धर्म भारत से लोप हो गया; परंतु बुद्ध भगवान् को ई का अवतार मानते रहे।

(१०) पौराणिक कल्पनानुसार दसवाँ अव अभी होनेवाला है, जिसका स्वरूप संघ के रूप में होने का अनुमान किया जा सकता है। 'संघे श कलौ युगे' से भी यही भाव प्रकट होता है। कारण समाज में पुनः परिवर्तन होने की संभावना

अस्तु, दश अवतारों का वैज्ञानिक विश्ल पाठकों के सम्मुख है। इससे हमारे प्रारंभिक क्रम और प्राचीन सामाजिक विकासक्रम का अ ज्ञात हो जाता है। इन अवतारों के सूक्ष्म विश्ल

से बहुत-सी प्राचीन बातों का पता चल जाता है। इस विचार से हमारे भविष्य का मार्ग भी प्रशस्त होता है। इसकी संपूर्ण सामग्री का आधार पौराणिक कथाएँ हैं, जिनको कल्पना द्वारा विकसित किया गया है। संभव है, इसमें कुछ भूल हो। परंतु अधिकांश कल्पनाएँ भी उन्हीं कथाओं में अंतर्निहित हैं—विद्वत्समाज को इस पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। मेरा अनुमान है कि दशावतार की कल्पना बुद्धावतार के पीछे कल्पित की गयी है, जिनका कुछ आभास वैदिक मंत्रों में मिलता है और उन्हीं के आधार पर ये दश अवतार मानें गये हैं।

भगीरथप्रसाद दीक्षित

× × ×

२. अस्तित्व

देती है दिखायी दिव्य-ज्योति ही सदैव तेरी,
छायी है ललाई लाल लाल बाल-रवि में;
नीरद में नीलिमा समायी है सलोनी मंजु,
सुछवि छिपी तेरी छपाकर की छवि में।
श्यामता समुद्र में है, सुधा वसुधा में भरी,
कोमल कुसुम है, कठोरता है पवि में;
व्याप्त कण-कण में है तेरी ही महत्ता भारी,
फिर भला कैसे कहे, शक्ति कहाँ कवि में!

चंद्रनाथ मालवीय "वारीश"

× × ×

३. जीवन के दो मार्ग

गार्हस्थ्य जीवन में प्रविष्ट होने पर सभी विचारशील पुरुषों को इस बात के जानने की आकांक्षा होती है कि दैहिक एवं आत्मिक शांति के साथ संतोषपूर्वक जीवन-निर्वाह करने का सबसे उत्तम मार्ग कौन-सा है? इस विचार के उत्पन्न होने पर उसे अनेकानेक धर्म तथा मत-मतांतर में लिखे हुए विविध कर्म-कांड देख पड़ते हैं। कहीं उपासना का उल्लेख मिलता है तो उसमें शिव, शक्ति, विष्णु, भैरव के विभेद देख पड़ते हैं। कहीं ज्ञान मिलता है तो उसका पारावार ही नहीं है। कहीं कर्म प्रधान कहा गया है, तो कर्म की व्याख्या का झगड़ा पड़ता है। इसी प्रकार किसी मत में निराकार ब्रह्म की उपासना के साथ-ही-साथ विधवा-विवाह और नियोग है, किसी में तलवार से स्वमत प्रचार है। किसी में यज्ञादि-पशुबलि की ही प्रधानता है इत्यादि। साधारण ऋषियों के वचनों को देखते हैं तो विभिन्नता की पराकाष्ठा दिखलायी पड़ती है। कोई धर्म के १० लक्षण बतलाते हैं, कोई परोपकार को पुण्य और पर-पीड़न को पाप कहते हैं इत्यादि।

साधारण योग्यता का मनुष्य इस गोरखधंधे में पड़कर चकित और किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है शांति उसे छोड़कर दूर भाग जाती है। अभी चार ही दिन हुए एक सुयोग्य वयोवृद्ध, उच्चपदप्राप्त व्यक्ति ने कहा कि हमको बड़ा भारी उद्वेग हो रहा है, हमारा मन बिलकुल अशांत हो रहा है, अतएव हम एक ऐसे मत की खोज में हैं, जहाँ हमको शांति मिले। इतने सुयोग्य जीवन में सफलता की कोटि पर पहुँचे हुए व्यक्ति की इस दशा से मैंने एक पाठ पढ़ लिया। वह यह कि जीवन में कभी-न-कभी सर्वोत्तम मार्ग की खोज का भाव अवश्य ही उत्पन्न होता है—जैसा हमने ऊपर लिखा है। आध्यात्मिक संस्कारवाले विचारशील पुरुषों के सामने यह प्रश्न शीघ्र ही उपस्थित हो जाता है। जो केवल भौतिक सफलता के पीछे पड़ जाते हैं, उनके सामने यह प्रश्न जीवन के संध्या-काल में आता है। इन दूसरे प्रकार के मनुष्यों का अंतिम समय बड़ा ही दुःखप्रद होता है। ऐसी अवस्था में यदि वह मनुष्य अधिक विचारशील हुआ और मत-मतांतर की भूलभुलैया में न पड़ा तो उसको किसी एक मत का अवलंबन मिलने से शांति मिल जाती है। अन्यथा उसके लिए अंतिम समय अत्यंत भयानक और दुःखप्रद हो जाता है। विशेषतः इस कारण से कि जीवन की पहली अवस्था में मनुष्य अपनी बुद्धि से जो कुछ भला या बुरा कर चुका उसका चित्र आँखों के सामने आ जाता है और उसका प्रतिकार अब शक्ति के बाहर हो जाता है। अस्तु, तात्पर्य यह कि जीवन के सर्वोत्तम मार्ग की जटिल समस्या प्रत्येक मनुष्य के सामने उपस्थित होती है। अतएव उत्तम यही है कि दुःखद अवस्था को प्राप्त होने के पहले ही वह हल कर ली जाय।

हमने जीवन के दो मार्ग बतलाने का संकेत किया है। हम यह न बतलावेंगे कि इस मार्ग में जाकर क्या करना चाहिए। कारण कि हम जीवन व्यतीत करने का सिद्धांत ही बतला देंगे; फिर इस सिद्धांत को आदर्श मानकर कार्य-प्रणाली निर्धारित कर लेना थोड़ी ही बुद्धि की बात होगी। एक बात और है; यदि हम सिद्धांत बतलाने के बदले या सिद्धांत के साथ-ही-साथ कार्य-प्रणाली भी बतलाने लगें, तो दुनिया भर के मत-मतांतरों के सदृश हमारी बातों में भी तर्क-वितर्क, परिहार, विकल्प आदि का गोरखधंधा खड़ा हो जायगा। यह स्वाभाविक बात है; क्योंकि जब कोई कार्य-प्रणाली निर्धारित करने बैठेगा तो उसे मनुष्य की विविध अवस्थाओं, देश, काल, स्थिति आदि का विचार रखना होगा और उन के अनुसार प्रणाली निर्धारित करनी होगी। और वह भी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार। यही कारण है कि धर्म-पुस्तकें गोरखधंधा बन जाती हैं और लोग उसका तात्पर्य न समझकर उन पर श्रद्धा नहीं रखते। अतएव उत्तम पक्ष यही है कि सिद्धांत बतला दिया जाय और फिर उसे आदर्श मानकर अपनी अवस्था, देश, काल आदि के विचार से कार्य-प्रणाली स्थिर कर लेना व्यक्तिविशेष पर छोड़ दिया जाय। विचारशील पुरुषों के लिए यही उत्तम भी है। सिद्धांत उन्हीं के लिए है जो उसे समझ सकें। सिद्धांतों को न बतलाकर उनसे निकले हुए कार्य-क्रम को बतला देना कम बुद्धि-वालों के ही लिए उपयोगी है। साधारण धर्म-पुस्तकों में इसीलिए सिद्धांत का उल्लेख नहीं रहता कि वे कम बुद्धिवालों के लिए होती हैं। जिनकी बुद्धि अच्छी है उनको शास्त्र, उपनिषद् आदि पढ़ना चाहिए, जहाँ सिद्धांतों का उल्लेख एवं विवरण है।

इतनी भूमिका के बाद पाठक समझेंगे कि हमने किसी सिद्धांत का आविष्कार किया है। भला इतनी बुद्धि मुझमें कहाँ? हम तो केवल उसी सिद्धांत के माननेवाले हैं जिसको मनु भगवान् ने (औरों ने भी) सूक्ष्म रूप से लिखा है। वह है निवृत्ति और प्रवृत्ति का। मनु भगवान् ने लिखा है कि जीवन के दो मार्ग हो सकते हैं। एक निवृत्ति का और दूसरा प्रवृत्ति का। निवृत्ति का अर्थ है छुटकारा और प्रवृत्ति का अर्थ है फँसना। निवृत्ति और प्रवृत्ति का प्रयोग संसार के होता है, अतएव निवृत्ति का अर्थ संसार से छुटक और प्रवृत्ति का अर्थ संसार में फँसना है। संसार किसे हैं, यह भी समझ लेना चाहिए। एक संसार हम आप सब अपने सामने देख ही रहे हैं। दृष्टि से देखने पर वह संसार प्रकृति और (अर्थात् जड़ और चेतन), माया और ब्रह्म (अज्ञान और ज्ञान), परमाणु और परमा (अर्थात् जड़ और चेतन), सूक्ष्म और का संयोग जान पड़ता है। जिन जड़ों का नाम दिया है, उनमें से एक निःशक्त वा स्थूल (इंद्रियों से जिसका पता लग सके) Passive (निष्क्रिय) है तथा दूसरा शक्ति सूक्ष्म ज्ञानगम्य और Active (सक्रिय) ये जोड़े संसार में (समष्टि रूप में) तो हैं संसार की प्रत्येक वस्तु में भी हैं। मनुष्य के में देखिए तो शरीर जड़ और बुद्धि चेतन है। दोनों जोड़ों के रूप रूपांतर गुण और परि स्वरूप ज्ञान और अज्ञान, भला और बुरा, सुख दुःख, पुण्य और पाप, सत् और असत् देह आत्मा है। एक को भौतिक और दूसरे को आ कहते हैं।

ऊपर कह चुके हैं कि प्रवृत्ति संसार में फँसने निवृत्ति संसार से छुटकारे को कहते हैं। अब का अर्थ समझकर प्रवृत्ति और निवृत्ति का अर्थ हुआ। प्रवृत्ति माने जड़, अज्ञान और भौतिक के पड़े रहना अर्थात् उसी को सत्य और श्रेष्ठ मा उसी में लिपटे रहना। निवृत्ति माने चेतन, आत्मिक का पीछा करना अर्थात् उसी को सत्य उत्तम मानकर (जो वस्तुतः सत्य और उत्तम है) और रुचि रखना हुआ। दूसरे शब्दों में प्रवृत्ति सुख की इच्छा रखने और उसी को प्राप्त करने रहने को और निवृत्ति आत्मिक आनंद की इच्छा और उसी को प्राप्त करने में लगे रहने को कहते और भी मोटी तरह से प्रवृत्ति इंद्रियों के सुख को की और तदुपयोगी कर्म को तथा निवृत्ति आत्म आनंद को बढ़ाने और तदुपयोगी कर्म को कह प्रवृत्ति से मनुष्य को देह का सुख होता है और

अगर आप जातीयता के रंग में डूबे हुए हैं तो

"प्रेमचंद" द्वारा संपादित

हंस

अवश्य पढ़िए, जिसके एक-एक शब्द में जातीयता की स्फूर्ति भरी हुई है।

विशेषताएँ

हंस—में प्रति मास हिंदी के सर्वमान्य गल्पलेखकों की उत्तम गल्पें छपती हैं। दुनिया की प्रसिद्ध और सिद्धहस्त गल्पकारों की कहानियों के अनुवाद भी दिए जाते हैं।

हंस—में हिंदी, उर्दू, अँगरेज़ी, मराठी, गुजराती की पत्रिकाओं के चुने हुए विचारपूर्ण लेखों की आलोचना की जाती है, जिससे आप संपूर्ण संसार की विचारधारा से परिचित हो सकते हैं।

हंस—के राजनैतिक लेख और संपादकीय टिप्पणियाँ हिंदीसाहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं।

हंस—निष्पक्ष होकर साहित्य में नीरक्षीर का विवेक करता है।

विशेषांक

जनवरी में उसका विशेषांक बड़ी सजधज से निकला है। संसार साहित्य की गल्पों का ऐसा सुंदर संग्रह आपने न देखा होगा। जनवरी से ग्राहक बननेवालों को विशेषांक भी मिल जायगा। सालाना चंदा केवल ३।।)

मैनेजर 'हंस'

सरस्वती-प्रेस, काशी

कविविनोद वैद्यभूषण प० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य आविष्कारक

अमृतधारा द्वारा निर्मित

सौन्दर्य सम्बन्धी कुछ औषधियां

चित्तमोहनी—(रजिस्टर्ड) इस उबटन को स्नान के समय छाइयाँ इत्यादि दूर हो जाती हैं। चेहरे की कान्ति दिन प्रति-दिन निखरती जाती है। मूल्य १) नमूना ।)

दिलसुन्दरी—(रजिस्टर्ड) इस तैल को स्नान के बाद मलते हैं। जो चेहरे को चमकाता है और दाग़ व कील आदि को दूर करता है। स्नान के पहले चित्तमोहनी और स्नान के बाद दिलसुन्दरी लगावें तो फिर क्या कहना है। मूल्य १), नमूना ।)

बागफूल तैल--(रजिस्टर्ड) यह बालों के समस्त तैलों का राजा है। बालों को नर्म और मुलायम बनाता है और बढ़ाता है, सिर को ठण्डा रखता है। केवल सुगन्धित ही नहीं मस्तिष्क के ल [illegible] गुणकारी है। मूल्य १)

मुखरोब—(रजिस्टर्ड) मूछें बढ़ाने का तेल। यह तैल न केवल मूँछों को बढ़ाता ह, बल्कि हर एक स्थान के बालों को भलीभांति बढ़ाता है और उनको सुदृढ़ व कोमल बनाता ह। रोबदार मूँछोंवाला चेहरा कितना भला मालूम होता है। मूल्य २), नमूना ।≈)

बाल उड़ाने की अद्वितीय औषधि--इस दवाई को पानी में घोल कर लगाने से एक मिनट के अन्दर कोमल से कोमल स्थान के बाल साफ़ हो जाते हैं। जिसने मँगवाया उसी ने गुण गाया। मूल्य ।≈), नमूना -)॥

पान का मसाला--पान खानेवालों को साफ़ पान नहीं मिलता बड़ा कष्ट होता है, इस वास्ते यह मसाला बनाया गया है। एक चुटकी पान पर रख लीजिए पान तैयार है। वैसा ही रंग और स्वाद आयेगा। इसके उपरान्त मुख की दुर्गन्धि को दूर करता है। कफ व रतूबत को सुखा देता है। मूल्य १)

प्राण सुख—(रजिस्टर्ड) छाती को ढलकने से बचाता है और ढलकते हुए को असली दशा में लाता है। स्त्रियों के लिए बहुत ही काम की दवा है। मूल्य ४), नमूना १)

पान की गोली—वे लोग जो पान का बड़ा पत्ता मुँह में डाले बिना ही पान का आनन्द लेना चाहें वे इन गोलियों को खावें एक गोली खाने से पान का स्वाद भी आयेगा और रंग भी, और शेष गुण पान के मसाला जैसे हैं। मूल्य ६० गोली १), ३० गोली ॥)

पत्र व्यवहार करने का पता--**अमृतधारा १२ लाहौर।**

विज्ञापक--मैनेजर अमृतधारा औषधालय, अमृतधारा भवन, अमृतधारा रोड, अमृतधारा डाकखाना, लाहौर।

) का आनंद होता है। एक से कभी
, वरन् कुछ मिलने से अधिक की इच्छा
में ऐसा नहीं होता। एक का सुख
जब तक वह काम समाप्त नहीं होता।
ास, मन भर जाना इत्यादि होता है।
-सा बना रहता है।

नेवृत्ति का अर्थ समझने से यह जान
त्ति बुरी और निवृत्ति अच्छी होती
से दूर भागना चाहिए और निवृत्ति
चाहिए। अर्थात् निवृत्ति ही जीवन
र्ग है। किंतु ऐसा नहीं है। यद्यपि
अवश्य है तो भी इसमें एक दोष है
ऐसा करना संसार की जड़ में ही
अर्थात् यदि संसार के सभी प्राणी
अनुसरण करने लगें तो न कोई
ारिक काम करेगा, न संसार रहेगा।
भी नहीं है, क्योंकि हम ऊपर कह
ह संसार ही (मनुष्य भी) ज्ञान
ो मिलाकर बनाया गया है।
भव है कि संसार (मनुष्य) का
य और दूसरा न रहे। विकारयुक्त
संसार का अनिवार्य भाग है,
। अतएव मनुष्य में प्रवृत्ति अवश्य
उसके उच्छेदन का प्रयत्न निष्फल
गवान् ने बतलाया है कि सर्वोत्तम
वह है जिसमें निवृत्ति को प्रधान और
पद दिया जाय। अर्थात् प्रवृत्ति का
कया जाय; पर निवृत्ति का आदर्श भी

ा समझने में कठिन है। इसलिए इसको
लिए स्वयं मनु भगवान् ने अपने इस
नुसार जीवन की जो कार्य-प्रणाली
सका उदाहरण बहुत ही आवश्यक है।
लेकर उन्हें उस सिद्धांत के
[वि ही लीजिए
में प्रवृत्ति
वृत्ति यह

हुई कि पुरुष और स्त्री दोनों स्वसंयोग का अधिकाधिक दैहिक सुख अनुभव करें। निवृत्ति यह हुई दोनों इस संयोग से दूर भागें। अब इसमें प्रवृत्ति और निवृत्ति का, जैसा ऊपर लिखा है, सम्मिश्रण कीजिए--पर यह ध्यान रहे कि निवृत्ति को प्रधान और प्रवृत्ति को गौण पद होना चाहिए। फल यह हुआ कि स्त्री-पुरुष संयोग हो अवश्य, किंतु इस भावना, इस विचार एवं इस आयोजन और प्रकार से कि विषय-लोलुपता का संस्कार न पड़ने पावे। यह इस प्रकार संभव है कि मनुष्य शरीर और बुद्धि दोनों से बना है। अतएव जिस काम में ये दोनों लगा दिये जायँगे, उसका परिणाम यह होगा कि मनुष्य की रुचि उस काम की ओर बढ़ती जायगी और उसकी उस काम को करने की आदत पड़ जायगी, तथा उसी के अनुरूप उसके विचार हो जायँगे। अर्थात् वही काम उस मनुष्य का संस्कार हो जायगा। किंतु यदि किसी काम में मनुष्य का केवल शरीर लगे (जो मनुष्य की अप्रधान वस्तु है) और बुद्धि (जो प्रधान वस्तु है) न लगे तो मनुष्य की न तो उस ओर रुचि बढ़ेगी और न तो उसको उस काम का संस्कार हो सकता है। इसी को ध्यान में रखते हुए मनु भगवान् ने स्त्री-पुरुष-संयोग कार्य-प्रणाली स्थिर की है। अब उदाहरण लीजिए। सबसे पहले मदांधता की रोक इस प्रकार की गयी कि स्त्री और पुरुष बनने-ठनने से मुग्ध न होकर जवानी के अविचारवश होकर जहाँ हो तहाँ संबंध न जोड़ लें, वरन् दोनों का संबंध उनके माता-पिता समझ-बूझकर करेंगे। फिर स्त्री-पुरुष यों ही काम की तीव्रता में एक दूसरे से मिल न लें, इसके लिए यह रक्खा गया कि दोनों को मिलने के पहले उनका विवाह-संस्कार होना चाहिए जिसमें कामुकता की एक बात भी न होकर पूजा-पाठ और बड़े-बूढ़े तथा ईश्वर की साक्षी देकर अमुक-अमुक कर्तव्यों का (सुख-विलास का नहीं) पालन करने की दोनों प्रतिज्ञा करें। फिर विवाह का अर्थ सुख-विलास न समझा जाय। इसलिए यह रक्खा गया कि विवाह का उद्देश्य पैतृक तथा सृष्टि के संस्थापन रक्खा जाय। गर्भाधान-संस्कार क्रिया को पढ़िए तो मालूम पड़ेगा कि घड़ी-घड़ी संकल्प और मंत्र पढ़ना पड़ता है, जिससे कामुकता का

कविविनोद वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य आविष्कार

अमृतधारा द्वारा निर्मित

सौन्दर्य सम्बन्धी कुछ औषधियां

चित्तमोहनी—(रजिस्टर्ड) इस उबटन को स्नान के समय
छाइयाँ इत्यादि दूर हो जाती हैं। चेहरे की कान्ति दिन प्रति-दिन निखरती जाती है
१) नमूना ।)

दिलसुन्दरी—(रजिस्टर्ड) इस तैल को स्नान के बाद मलते हैं। जो चेहरे को
है और दाग़ व कील आदि को दूर करता है। स्नान के पहले चित्तमोहनी और
बाद दिलसुन्दरी लगावें तो फिर क्या कहना है। मूल्य १), नमूना ।)

बागफूल तैल--(रजिस्टर्ड) यह बालों के समस्त तैलों का राजा है। बालों
और मुलायम बनाता है और बढ़ाता है, सिर को ठण्डा रखता है। केवल सुगन्धित
मस्तिष्क के ल गुणकारी है। मूल्य १)

मुखरोब—(रजिस्टर्ड) मूछें बढ़ाने का तेल। यह तैल न केवल मूँछों को बढ़ाता
हर एक स्थान के बालों को भलीभांति बढ़ाता है और उनको सुदृढ़ व कोमल ब
रोबदार मूँछोंवाला चेहरा कितना भला मालूम होता है। मूल्य २), नमूना ।=)

बाल उड़ाने की अद्वितीय औषधि--इस दवाई को पानी में घोल कर
एक मिनट के अन्दर कोमल से कोमल स्थान के बाल साफ़ हो जाते हैं। जिसने मँगव
ने गुण गाया। मूल्य ।=), नमूना -)॥

पान का मसाला--पान खानेवालों को साफ़ पान नहीं मिलता बड़ा कष्ट होता
वास्ते यह मसाला बनाया गया है। एक चुटकी पान पर रख लीजिए पान तैयार है
रंग और स्वाद आयेगा। इसके उपरान्त मुख की दुर्गन्धि को दूर करता है। कफ
को सुखा देता है। मूल्य १)

प्राण सुख—(रजिस्टर्ड) छाती को ढलकने से बचाता है और ढलकते हुए क
दशा में लाता है। स्त्रियों के लिए बहुत ही काम की दवा है। मूल्य ४), नमूना १)

पान की गोली—वे लोग जो पान का बड़ा पत्ता मुँह में डाले विना ही पान क
लेना चाहें वे इन गोलियों को खावें एक गोली खाने से पान का स्वाद भी आयेगा
भी, और शेष गुण पान के मसाला जैसे हैं। मूल्य ६० गोली १), ३० गोली ॥)

पत्र व्यवहार करने का पता--**अमृतधारा १२ लाहौर।**

विज्ञापक--मैनेजर अमृतधारा औषधालय, अमृतधार

धारा डाकखाना, लाहौर।

से शांति
मन नहीं
होती है
तभी तक
समाप्त ह
दूसरा स्
प्रवृत्ति
पड़ता है
है, अतए
की ओर
का सर्वो
यह बात
और वह
टाँग अड़
निवृत्ति
विवाह अ
दूसरे य
भी चुके
और अ
फिर यह
एक भाग
सृष्टि में
वह रहेग
रहेगी अ
होगा।
जीवन का
प्रवृत्ति को
आचरण
सामने रं
यह ब
समझाने
सिद्धांत
बतलायी
हम दो-च
सहारे स
सबसे
जो संसार
और नि

से शांति-संतोष का आनंद होता है। एक से कभी मन नहीं भरता, वरन् कुछ मिलने से अधिक की इच्छा होती है और दूसरे में ऐसा नहीं होता। एक का सुख तभी तक रहता है, जब तक वह काम समाप्त नहीं होता। समाप्त होते ही ह्रास, मन भर जाना इत्यादि होता है। दूसरा स्थायी एक-सा बना रहता है।

प्रवृत्ति और निवृत्ति का अर्थ समझने से यह जान पड़ता है कि प्रवृत्ति बुरी और निवृत्ति अच्छी होती है, अतएव प्रवृत्ति से दूर भागना चाहिए और निवृत्ति की ओर झुकना चाहिए। अर्थात् निवृत्ति ही जीवन का सर्वोत्तम मार्ग है। किंतु ऐसा नहीं है। यद्यपि यह बात सत्य अवश्य है तो भी इसमें एक दोष है और वह यह कि ऐसा करना संसार की जड़ में ही टाँग अड़ाना है। अर्थात् यदि संसार के सभी प्राणी निवृत्ति मार्ग का अनुसरण करने लगें तो न कोई विवाह आदि सांसारिक काम करेगा, न संसार रहेगा। दूसरे यह संभव भी नहीं है, क्योंकि हम ऊपर कह भी चुके हैं कि यह संसार ही (मनुष्य भी) ज्ञान और अज्ञान को मिलाकर बनाया गया है। फिर यह कब संभव है कि संसार (मनुष्य) का एक भाग रह जाय और दूसरा न रहे। विकारयुक्त सृष्टि में विकार संसार का अनिवार्य भाग है, वह रहेगा ही। अतएव मनुष्य में प्रवृत्ति अवश्य रहेगी और उसके उच्छेदन का प्रयत्न निष्फल होगा। मनु भगवान् ने बतलाया है कि सर्वोत्तम जीवन का मार्ग वह है जिसमें निवृत्ति को प्रधान और प्रवृत्ति को गौण पद दिया जाय। अर्थात् प्रवृत्ति का आचरण तो किया जाय; पर निवृत्ति का आदर्श भी सामने रहे।

यह बात ज़रा समझने में कठिन है। इसलिए इसको समझाने के लिए स्वयं मनु भगवान् ने अपने इस सिद्धांत के अनुसार जीवन की जो कार्य-प्रणाली बतलायी है, उसका उदाहरण बहुत ही आवश्यक है। हम दो-चार उदाहरणों को लेकर उन्हें उस सिद्धांत के सहारे समझाने का यत्न करते हैं।

सबसे पहले पुरुरु और स्त्री के संबंध को ही लीजिए जो संसार की सबसे प्रधान चीज़ है। इसमें प्रवृत्ति और निवृत्ति का सिद्धांत लगाइए। तो प्रवृत्ति यह हुई कि पुरुष और स्त्री दोनों स्वसंयोग का अधिकाधिक दैहिक सुख अनुभव करें। निवृत्ति यह हुई दोनों इस संयोग से दूर भागें। अब इसमें प्रवृत्ति और निवृत्ति का, जैसा ऊपर लिखा है, सम्मिश्रण कीजिए--पर यह ध्यान रहे कि निवृत्ति को प्रधान और प्रवृत्ति को गौण पद होना चाहिए। फल यह हुआ कि स्त्री-पुरुष संयोग हो अवश्य, किंतु इस भावना, इस विचार एवं इस आयोजन और प्रकार से कि विषय-लोलुपता का संस्कार न पड़ने पावे। यह इस प्रकार संभव है कि मनुष्य शरीर और बुद्धि दोनों से बना है। अतएव जिस काम में ये दोनों लगा दिये जायँगे, उसका परिणाम यह होगा कि मनुष्य की रुचि उस काम की ओर बढ़ती जायगी और उसकी उस काम को करने की आदत पड़ जायगी, तथा उसी के अनुरूप उसके विचार हो जायँगे। अर्थात् वही काम उस मनुष्य का संस्कार हो जायगा। किंतु यदि किसी काम में मनुष्य का केवल शरीर लगे (जो मनुष्य की अप्रधान वस्तु है) और बुद्धि (जो प्रधान वस्तु है) न लगे तो मनुष्य की न तो उस ओर रुचि बढ़ेगी और न तो उसको उस काम का संस्कार हो सकता है। इसी को ध्यान में रखते हुए मनु भगवान् ने स्त्री-पुरुष-संयोग कार्य-प्रणाली स्थिर की है। अब उदाहरण लीजिए। सबसे पहले मदांधता की रोक इस प्रकार की गयी कि स्त्री और पुरुष बनने-ठनने से मुग्ध न होकर जवानी के अविचारवश होकर जहाँ हो तहाँ संबंध न जोड़ लें, वरन् दोनों का संबंध उनके माता-पिता समझ-बूझकर करेंगे। फिर स्त्री-पुरुष यों ही काम की तीव्रता में एक दूसरे से मिल न लें, इसके लिए यह रक्खा गया कि दोनों को मिलने के पहले उनका विवाह-संस्कार होना चाहिए जिसमें कामुकता की एक बात भी न होकर पूजा-पाठ और बड़े-बूढ़े तथा ईश्वर की साक्षी देकर अमुक-अमुक कर्तव्यों का (सुख-विलास का नहीं) पालन करने की दोनों प्रतिज्ञा करें। फिर विवाह का अर्थ सुख-विलास न समझा जाय। इसलिए यह रक्खा गया कि विवाह का उद्देश्य पैतृक तथा सृष्टि के संस्थापन रक्खा जाय। गर्भाधान-संस्कार क्रिया को पढ़िए तो मालूम पड़ेगा कि घड़ी-घड़ी संकल्प और मंत्र पढ़ना पड़ता है, जिससे कामुकता का

नाम भी नहीं रह जाता । जब बालक उत्पन्न हुआ तो और सब हर्ष आह्लाद तो पीछे रहा, सबसे पहले नान्दीमुख श्राद्ध करना पड़ता है । ये सब बातें इस प्रकार रक्खी गयी हैं कि दैहिक सुख पीछे पड़ जाय । गार्हस्थ्य जीवन समाप्त होते ही वानप्रस्थी होकर जंगल में रहो । फिर संन्यासी हो जाओ । इतना ही नहीं, विषयविलास के अवरोध के लिए पातिव्रत एवं एक पत्नीव्रत के भी नियम रख दिये गये हैं ।

दूसरा उदाहरण लीजिए । संसार की जितनी वस्तुएँ हैं, उनसे सुख उठाने के पूर्व पूजा-पाठ होना आवश्यक है । फूल विना देवता को चढ़ाये स्वयं न सूँघे । पक्वान्न बनाओ तो पहले देवता को भोग लगाओ । नये अन्न और फल पैदा हों तो पहले देवता को चढ़ाओ इत्यादि । इन बातों को थोड़ा न समझना चाहिए, इनका मनुष्य के भावों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है ।

यही सिद्धांत भारतवर्ष के संपूर्ण वेद-शास्त्रों में आदर्श रूप से मिलता है और हमें पूर्ण आशा है कि जो कोई भी इसको जानेगा, वह उसके गौरव की प्रशंसा अवश्य ही करेगा । संसार के सब देशों के आचरण का मिलान करने से भी जान पड़ेगा कि यह सिद्धांत अचूक है । देखिए, योरप प्रवृत्ति मार्ग पर आँखें बंद करके चल रहा है, जिसके परिणाम उनका अधिकाधिक अशांति, नित्य बढ़नेवाला असंतोष एवं रागद्वेषादि हैं । भारतवर्ष अब भी निवृत्ति की ही ओर है जिसका परिणाम यह है कि उसे दैहिक कष्ट तो है, पर मानसिक कष्ट उतना नहीं है ।

एक बात और । किसी को यह न समझना चाहिए कि यह सिद्धांत सार्वभौम अथवा सर्वावस्थागत नहीं है । हमने उदाहरण में पूजा-पाठ का उल्लेख किया है, उससे भ्रम न होना चाहिए । भारतवर्ष में पूजा-पाठ था, अतएव हमारे महर्षियों ने उसी से प्रवृत्ति का अनुरोध किया है । जहाँ ये न हों वहाँवाले पाठ, अध्ययन एवं संयम आदि से ही कर सकते हैं ।

हरिहरनाथ

× × ×

४. जिज्ञासा

किसकी विशालता समायी नील-अंबर में,
किसकी हरीतिमा में छायी हरियाई
कोमलता पुष्प में है किसकी अनूप भरी,
सिंधु में गंभीरता भी किसकी समाई
उच्च शृंग बीच चंद्र उच्चता है किसने दी,
किसकी मधुर बोली बालकों ने पाई
तेज किसका है सूर्य, चाँदनी में हँसा कौन,
तम भरी रात की कहाँ की कजराई है।
सौरभ में सौरभ हो सुरभित हुआ कौन,
पौन में प्रवाहित हो कौन सरराता
कल-कल शब्द करता है जल बीच कौन,
कौन झरने से कल सुषमा झराता
कोकिल के कंठ से पियूष बरसाता कौन,
बिज्जु में विलास 'चंद्र' कौन दिखलाता
तारों का समूह, आह ! कौन निज पुष्पहार—
तार-तार कर, तार विश्व का बताता है।

रामचंद्र साहित्यरत्न (बी० ए०
एल्-एल्० बी०)

× × ×

५. शहद

भारतवर्ष में शहद का व्यवहार प्राचीन क
से चला आता है । संसार के अन्य देशों में
प्राचीन लोगों को शहद का व्यवहार अच्छी तरह मा
था । किंतु उस समय वे लोग शहद का व्यवहार च
के स्थान में किया करते थे ; क्योंकि चीनी उनके
एक बिलकुल अज्ञात वस्तु थी । ईसाइयों के धर्म
बाइबिल में शहद का वर्णन कई प्रसंगों में किया
है । अँगरेज़ी कवि शेक्सपीयर ने भी अपने कई नाटक
शहद का ज़िक्र किया है । किंतु ऐसा मालूम पड़त
कि उस समय के लोगों को भोजन के सिवा और
दूसरे रूप में शहद का उपयोग मालूम नहीं
संभव है कि वे घाव और चोट में शराब या जैतून के
के साथ शहद को मिलाकर पीड़ित स्थान पर
करने की क्रिया को जानते हों ।

औषधि के रूप में पहले-पहल इन लोगों ने शहद का व्यवहार करना कब शुरू किया—यह अज्ञात है। इँगलैंड में सैक्सन लोगों के समय से औषधिरूप में शहद का व्यवहार होने लगा है और तब से इसका इस रूप में व्यवहार किया जाना क्रमशः बढ़ ही रहा है। किंतु भारतवर्ष के लोग तो स्मरणातीत काल से ही औषधि के रूप में शहद का प्रयोग करना जानते हैं और वास्तव में शहद का व्यवहार दवा के रूप में जितना इस देश में होता है, उतना और कहीं होता भी नहीं।

छोटे-छोटे लड़कों को सर्दी और जुकाम के अवसर पर देने के लिए तथा आयुर्वेदीय औषधियों के साथ अनुपान के रूप में व्यवहार करने के लिए प्रायः हरएक घर में शहद संचित करके रखा जाता है। नेत्रसंबंधी कई रोगों के लिए भी शहद एक उत्कृष्ट दवा है। प्रायः समस्त आयुर्वेदीय औषधियों में किसी-न-किसी रूप में शहद का व्यवहार किया जाता है। पद्ममधु के गुणों से हमारे देश के लोग पूर्णतया परिचित हैं। नारंगी के फूलों का शहद भी अपने विशेष स्वाद के लिए प्रसिद्ध समझा जाता है। प्राचीन ग्रंथों में विभिन्न जाति की मधुमक्षिकाओं द्वारा संचित नाना भाँति के शहद की बड़ी प्रशंसा की गयी है। पुराना और ताज़ा दोनों तरह के शहद में पौष्टिक पदार्थों की मात्रा विशेष रूप में पायी जाती है। जिन लोगों के शरीर में चर्बी का अंश अधिक होता है, उन्हें शरीर का मोटापन कम करने के लिए रोटी के साथ शहद का व्यवहार करना चाहिए।

शहद एक अत्यंत पौष्टिक पदार्थ है। हमारे देश में नवजात शिशु के लिए यह एक प्रधान खाद्य पदार्थ समझा जाता है। बच्चों के शरीर को पुष्ट करने के सिवा शहद उनके आँत को भी साफ़ रखता है और प्रारंभ में बच्चे की जीवन रक्षा के लिए उसका आँत साफ़ रहना अत्यंत आवश्यक है। माता के दूध के साथ-साथ शहद का व्यवहार उसके पौष्टिक और मुलायम रेचक गुणों के कारण किया जाता है।

एलोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली में शहद का व्यवहार अनेक रूप में किया जाता है। Honey of Borax, Cuomel Oxymel आदि औषधियाँ शहद के संयोग से तैयार की जाती हैं। इनमें पहली दवा का प्रयोग मुख के अंदर पैदा होनेवाले फोड़ा, घाव आदि में किया जाता है। Cuomel का प्रयोग शरीर के व्रणों पर लेप के रूप में किया जाता है। Oxymel का प्रयोग गले के घाव में किया जाता है। कफ होने पर जो पट्टी पेशानी के ऊपर लगायी जाती है, उसमें शहद का प्रधान भाग रहता है। बच्चों को सर्दी हो जाने पर उन्हें शहद तुलसी की पत्तियों के रस के साथ अथवा मयूरपंख की भस्म के साथ दिया जाता है।

शहद एक अच्छा Carbo-hydiate के रूप में है। इसमें ४/५ भाग Carbo-hydiate और १/५ भाग जल का अंश है। रासायनिक क्रिया द्वारा विश्लेषण करने पर शहद में अंगूर, गन्ना और मीठे फल के मिठास का अंश पूर्ण मात्रा में पाया जाता है। इसके सिवा शहद में एक प्रकार का लसीला द्रव्य, जल, मोम, खनिज द्रव्य, पुष्परेणु आदि पदार्थों का भी किंचित् अंश पाया जाता है। शहद के और भी कई गुण हैं। मुख और गले की कफसंबंधी झिल्लियों की शुष्कता को दूर करने के लिए शहद का व्यवहार पानी के साथ मिलाकर या यों ही कुल्ली करने में किया जाता है। सर्दी के कारण गला बैठ जाने पर शहद का उपयोग लाभप्रद होता है, क्योंकि इससे कफ ढीला बनकर अधिक मात्रा में गिरने लगता है। इसलिए शरीर के अवयव को साफ़ करने का भी गुण पाया जाता है। इसमें आर्द्रता को बढ़ाने और मुख तथा गले की झिल्लियों की रेखाओं को शीतल करने का गुण है। तरल अथवा गोली के रूप में औषधियों को मीठा बनाने के लिए भी शहद का उपयोग किया जाता है।

किसी वस्तु को चिरकाल तक सुरक्षित रखने का एक विशेष गुण शहद में पाया जाता है। शहद में डुबोकर चिरकाल तक फलों को रखा जा सकता है और वे ख़राब नहीं होने पाते। सर जार्ज वाट ने अपनी एक पुस्तक "Commercial Products of India" में लिखा है कि आसाम की खसिया पहाड़ियों में बसनेवाली कई क़ौमें मृतक की लाशों को शहद में डुबोकर बहुत समय तक सुरक्षित रखती हैं। मिस्र देश के प्राचीन निवासी भी इस काम में शहद का प्रयोग किया करते थे। मधुमक्खियों में अपने छत्तों में मधु संरक्षित रखने की एक विशेष प्रकार की अंतर्वृत्ति देखी जाती है। छत्तों के

कोषों में मधु संचित करने के पूर्व वे डंक मारकर उसमें अपना विष किंचित् मिला देती हैं।

भारतवर्ष में सर्वत्र शहद प्रचुर परिमाण में पाया जाता है; किंतु मधुमक्षिकाओं को पालने की ओर लोगों का ध्यान बहुत कम है। मधुमक्षिकाओं के छत्ते भारत के पहाड़ी और जंगली प्रदेशों में सर्वत्र पाये जाते हैं। पहाड़ के चट्टानों में जो छत्ते लगे रहते हैं, उनमें अत्यधिक मात्रा में शहद पैदा होता है। इसके बाद वृक्षों में लगे छत्तों से।

कभी-कभी मधु विषाक्त भी पाया जाता है। यूनानी इतिहास-लेखक गोनोफोन ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि विषाक्त मधु खाने से एक वार बहुत-से सैनिकों पर विष का प्रभाव पड़ गया था। अतएव यथासंभव शहद के व्यवहार में सतर्क रहना चाहिए और विशुद्ध मधु का ही व्यवहार करना चाहि आमतौर से जो शहद बेचा जाता है, उसमें और चीज़ें मिला दी जाती हैं जिससे वह भ्रष्ट हो जाता सर्वोत्कृष्ट प्रकार का मधु वही है जिसका रंग हल्का और जो पारदर्शी हो। शहद से मोम और Prop lisine ये और दो प्रकार की चीज़ें तैयार की जा हैं। मोम का व्यवहार बहुत से मरहमों और प्लास में तथा साबुन बनाने में किया जाता है। मधुमक्ष जिस चीज़ से अपने छत्ते को जोड़ती है और प्लास का काम लेती है उसे Propolis कहते हैं इसमें रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने का विशेष गु पाया जाता है।

जगन्नाथप्रसाद मिश्र (बी० ए०, बी-एल्०

× × ×

दुर्घटनाजनित
लगी हुई
चोट, ज़ख़्म, दर्द आदि पर
लगाने का विख्यात
'हील-एक मरहम'
(रजिस्टर्ड)

फ़ुटबाल, क्रिकेट, जमनाष्टिक, कसरत आदि के खिलाड़ियों और कल-कारख़ाने में काम करनेवालों की आकस्मिक चोट से तुरंत आराम पाने के लिये इसे सर्वदा अपने पाकेट में रखना चाहिए।
मू० प्रति डि० ॥=) डा० म० तीन डि० तक ।=)

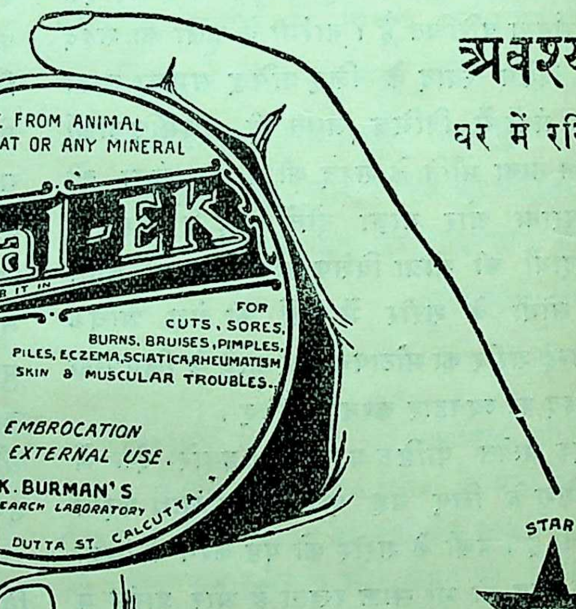
FREE FROM ANIMAL OIL OR FAT OR ANY MINERAL
PURELY VEGETABLE
Heal-EK
RUB IT IN
FOR CUTS, SORES, BURNS, BRUISES, PIMPLES, PILES, ECZEMA, SCIATICA, RHEUMATISM SKIN & MUSCULAR TROUBLES.
SKB
TRADE MARK
THE EMBROCATION FOR ALL EXTERNAL USE.
DR. S. K. BURMAN'S RESEARCH LABORATORY
5, TARA CHAND DUTTA ST. CALCUTTA.
N.B

अवश्य
घर में रखिए!

STAR
TRADE SKB MARK
REGISTERED

पता—डाबर (डा० एस० के० बर्मन) लिमि०, पोस्ट बॉक्स नं० ५५४, कलकत्त

लखनऊ (नं० २५, अमीनाबाद-पार्क) में हमारे एजेंट, किंग मेडिकल हा

६. मलिक मुहम्मद जायसी

कबीर, तुलसी, सूर और जायसी हिंदी के कवि ही नहीं, महात्मा भी हैं। इन महानुभावों के विषय में कुछ सुनने की लालसा बराबर बनी रहती है। पर दुःख की बात यह है कि हमको इन लोगों के व्यक्तिगत जीवन की बहुत ही कम झलक मिलती है। हमारी प्राचीन परिपाटी यह थी कि लोग अपने जीवन-वृत्त को प्रायः गुप्त ही रखते थे। उन लोगों के विचार में किसी के जावन की महिमा उसके परित्याग ही में थी। संन्यासी लोग तो अपना नाम तक बदल देते हैं। पर आधुनिक परिपाटी में किसी के जीवन-वृत्त से परिचित होकर उसके व्यक्तित्व की थाह लगाना आवश्यक होता जा रहा है। अस्तु, हम लोग भी अब इन महात्माओं के काव्य के साथ-ही-साथ इनके जीवन का भी अवलोकन करना चाहते हैं। कबीर, तुलसी और सूर के जीवन से हम उतने अपरिचित नहीं हैं, जितने जायसी के। अतः यहाँ पर हमारा प्रयत्न जायसी से ही कुछ परिचय प्राप्त करने का है।

जायसी के विषय में अभी बहुत ही कम छानबीन हुई है। शुक्लजी ने जो कुछ जायसी के लिए किया है, वह स्तुत्य होने पर भी पर्याप्त नहीं है। विद्वानों का कर्तव्य है कि वे यथाशक्ति उसकी पूर्ति में दत्तचित्त हों।

शुक्लजी का कथन है—"इनका जन्म कब, कहाँ और किसके घर हुआ, इसका कुछ पता नहीं।" सचमुच इसका पता लगाना बहुत ही कठिन है। परंतु यदि विद्वानों के हृदय में यह बात बैठ जाय तो पता लगे विना रह ही नहीं सकता। काम तो बहुत ही कठिन है; पर इसके लिए हाथ बढ़ाना वामन का चंद्रमा छूना नहीं कहा जा सकता, उसको वृत्त पर देखना भले ही हो सकता है। अस्तु, पहले हमको इसी प्रश्न पर विचार करना है कि जायसी का उदय कब हुआ। उदय के साथ-ही-साथ अवसान भी लगा रहता है। अतः उदय से अवसान तक का समय विचारणीय है।

जायसी के समय से परिचित होने के लिए आज हम उनकी पोथियों का ही सहारा लेते हैं। अखरावट के पृष्ठ ३६१ पर जायसी के ये पद्य मिलते हैं—

"कहौ मंत्र जो आपनि पूँजी ; खोलु किवारा ताला कूँजी।
साँठि बरिस जो लपई-झपई ; छन एक गुपुत जाप जो जपई।
जानहु दुवौ बराबर सेवा ; ऐसन चलै मुहमदी खेवा।"

प्रस्तुत पद्यों से स्पष्टतः जायसी के विषय में कुछ अवगत न होने पर भी हमारी धारणा है कि 'साठि बरिस' से तात्पर्य उनकी अवस्था से है। हमारी समझ में 'आपनि' शब्द से कुछ ऐसा ध्वनित होता है। यदि यह ठीक है तो अखरावट का निर्माण जायसी के साठवें वर्ष में होना सिद्ध है।

'अखरावट का रचनाकाल' नामक लेख में हमने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि इसका रचनाकाल संवत् १५५६ के लगभग है। अतः हम इस पर कुछ अधिक विचार करना नहीं चाहते। यदि हमारा विचार ठीक है तो जायसी का जन्मसंवत् १४९६ या इसी के लगभग सिद्ध होता है।

पदमावत के रचनाकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद है। पर इस मतभेद से हमारे विवेचन में कुछ गड़बड़ी नहीं आ सकती। जायसी शेरशाह के समय में जीवित थे। हम अपने कथन के पुष्टीकरण में पदमावत का यह पद्य—"सेरसाहि देहली सुलतानू। चारिउ खंड तपै जस भानू"—पेश करते हैं। शेरशाह ने १७ मई सन् १५४० में हिमायूँ को पराजित किया था, अतः जायसी की यह वंदना सन् १५४० के प्रथम की नहीं हो सकती है। मिश्रबंधु-विनोद का कथन है कि यह वंदना शेरशाह के अंतिमकाल अथवा सन् १५४४ वा १५४५ में बनी। पर हमारी समझ में इसका काल सन् १५४२ ई० के लगभग मानना ही अधिक संगत जान पड़ता है। "जो गढ़ नएउ न काहुहि चलत शेर सो चूर ; जब वह चढ़ै भूमिपति, सेरसाहि जग सूर।" आदि पद्यों से कुछ यही ध्वनित होता है। यही नहीं, यदि यह वंदना ग्रंथ की समाप्ति पर शेरशाह के समय में बनी—जैसा कि मिश्रबंधु कहते हैं—तो इसका रचनाकाल शेरशाह के राज्याभिषेक के ५ वर्ष बाद मानना कुछ अधिक संगत नहीं जान पड़ता।

मिश्रबंधुओं ने जायसी का कविताकाल संवत् १५७५ से १६०० तक माना है। उनके विचार में यही संवत् १६०० शेरशाह का निधन संवत् भी है। शुद्ध इतिहास की दृष्टि से यह विचार कुछ भ्रामक है। मिश्रबंधुओं का अनुमान है कि अखरावट पदमावत के बाद बना है। इससे उनके कथन में कुछ असंगति-सी आ जाती है। हम यह पहले से ही सिद्ध कर चुके हैं कि अखरावट पदमावत

से पूर्व की रचना है, अतः हमारे विचार में कुछ गड़बड़ी नहीं जान पड़ती। हमारी समझ में उनकी कविता का आरंभ संवत् १५७५ से पूर्व ही हो गया था। संभवतः संवत् १५५० से संवत् १६०० तक जायसी का कविता काल मानना अधिक उचित जान पड़ता है।

पदमावत के उपसंहार में जायसी अपनी अवस्था का परिचय इस प्रकार देते हैं—

"मुहमद बिरिध बैस जो भई ; जोबन हुत सो अवस्था गई।
बल जो गएउ कै खीन सरीरु ; दिस्टि गई नैनहिं देह नीरु।
दसन गये कै पचा कपोला ; बैन गए अनरुच दै बोला।
बुधि जो गई देह हिय बौराई ; गरब गंड तरहुँत सिरनाई।
सरवन गये ऊँच जो सुना ; स्याही गई सीस भा धुना।
भँवर गये केसहिं देइ भूवा ; जोबन गएउ जीति लेइ जूवा।
जौ लहि जीवन जोबन साथा ; पुनि सो मीचु पराए हाथा।
बिरिध जो सीस डुलावै, सीस धुनै तेहि रीस।
बूढ़ी आऊ होइ तुम्ह, केइ यह दीन्ह असीस॥"

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट ही है कि जायसी अपनी वृद्धावस्था से ऊब गये थे। वह मरना चाहते थे, पर मर नहीं पाते थे। पदमावत में इस बुढ़ापा का संकेत कई स्थलों पर होता है। अतः हम तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जायसी का जीवन एक शतक से कम नहीं कुछ अधिक ही होना अधिक समीचीन है। हमारी समझ में जायसी का जीवनकाल संवत् १४६६ से संवत् १६०० के लगभग तक सिद्ध होता है। यह अवस्था बड़ी होने पर भी असंभव नहीं कही जा सकती। हिंदी के बहुत-से कवि इससे भी अधिक जीवित रहे हैं।

हमको जो कुछ निवेदन करना था, हम कर चुके; पर जी नहीं चाहता कि हम जायसी के निकट पहुँचकर भी उनसे अपरिचित ही रह जायँ। यथासाध्य उनसे परिचित होने का प्रयत्न अनिवार्य हो रहा है। अनुमान और कल्पना को बढ़ने दें।

जायसी जायस के निवासी तो नहीं थे, वे स्वयं कहते हैं—"जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू।" लोग कहते हैं कि ये ग़ाज़ीपुर में उत्पन्न हुए थे। सात वर्ष की अवस्था में माता (शीतला) की कृपा से इनकी एक आँख जाती रही। ये स्वयं लिखते हैं कि "एक नयन कवि मुहमदगुनी" अथवा "मुहमद बाईं दिसि तजा एक सखन, आँखि।" ये माता-पिता के बिछोह के बाद अन होकर साधु-फ़क़ीरों की मंडली में रहने लगे। इन सत्संग बहुत ही व्यापक तथा विस्तृत था। इन कबीर का पूरा प्रभाव पड़ा तो; पर उनकी अक्खड़ दूर ही रह गयी। ये सूफ़ी थे। इनके गुरु शेख़ मुहीउद् का स्थान कालपी था—"नगर कालपी हुत गुरुथानू। संभवतः इनका रंग पक्का और लावण्यहीन था। "मो का हँसेसि कि कोहरहि" हमें लाचार करता है हम इनके सौंदर्य तथा रूप के पीछे न पड़ें। हमा समझ में ये अविवाहित थे। पर वास्तविक प्रेम पीर से विज्ञ थे।

पदमावत के अध्ययन से यह स्पष्ट अवगत हो जाता कि ये उदार, भावुक तथा मिलनसार थे। बहुत धर्मों तथा मतों से परिचित थे। कुछ योग-क्रिया भी उनकी गति थी। मानवता के ये सच्चे उपासक विधि और लोक को मानते थे, अहंकार से बच ज पर भी आत्मविज्ञापन और नाम की लालसा—हम्हँ सं हुई बोल—में आ ही गये। इनकी बुद्धि सदैव त रहती थी। जो कुछ सम्मुख आया उसको हृदयं कर लिया। कहीं-कहीं मिथ्या ज्ञान भी भर देते जिससे स्पष्ट हो जाता है कि यह पढ़े-लिखे विद्वान् न थे। इनके ज्ञान को पंडितों का प्रसाद तथा सत्सं का फल समझना चाहिए। साधु होने पर भी राजनीति से परिचित थे। कट्टर तथा धर्मांध मुसलमा से इनकी नहीं पटती थी। शेरशाह से इनकी मै जान पड़ती है। महाराज जगतदेव के साथ यह शेरशाह के सहायक थे। कालपी से सहसराम इनका दौरा था। इनके विचार में हिंदू और मुसलम एक ही पिता के पुत्र हैं। इनकी क्षमता तथा प्रशंसनीय थी। इनके समय की परिस्थिति का पदमावत से भली भाँति लग जाता है। संभवतः स बड़ी बात जो आजकल की दृष्टि में गड़ेगी वह इन बहुविवाह-पोषण है। हमें यह दृढ़ विश्वास है कि विद्वानों की कृपा हो तो जायसी की जीवनी भी प्र हो जाय। यह उसी का अनुष्ठान है।

चंद्रबली पांडे

सूर्य पर धूल !

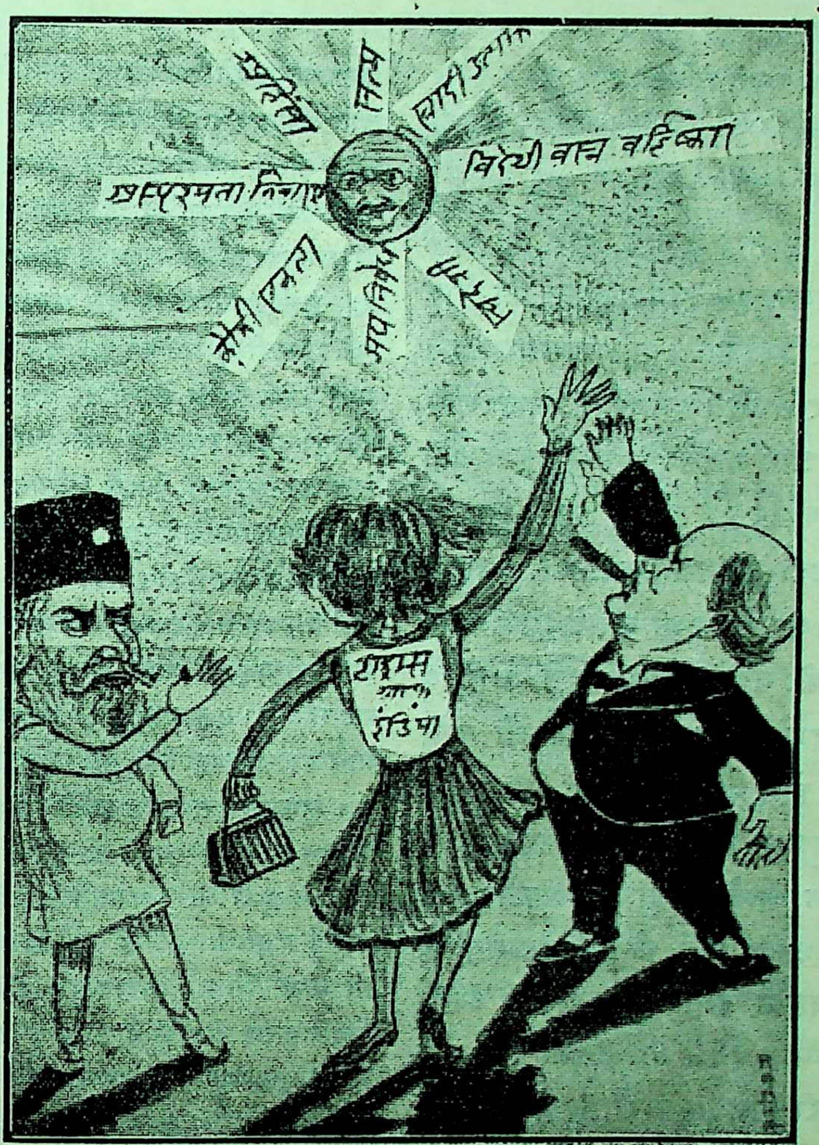
स्वदेशी
सत्य
खादी प्रचार
विदेशी वस्त्र बहिष्कार
अस्पृश्यता निवारण
कौमी एकता
मद्यनिषेध
अहिंसा
टाइम्स आफ इंडिया

बड़े मौलाना, टाइम्स आफ़ इंडिया और मि० चर्चिल अनंत परोपकारी सूर्य पर धूल फेंकने का कैसा विफल प्रयास कर रहे हैं !!

(बंबई-समाचार से)

सम्पादकीय विचार

१. हमारी प्रार्थना !

ऐसा ज्ञात होता है कि 'माधुरी' के हाल के कुछ अंकों ने अधिक लोकप्रियता प्राप्त की है। हम चाहते हैं कि सुधारों में और वृद्धि की जावे एवं उसकी गंभीरता-पूर्ण उपयोगिता का क्षेत्र और विस्तीर्ण कर दिया जावे। परंतु अकेले हम इस काम को नहीं कर सकते। हम अपने आदरणीय लेखकों, कवियों और सहयोगियों से यह प्रार्थना करते हैं कि वे कृपाकर हमें अपनी स्पष्ट सम्मति द्वारा हमारी त्रुटियों और कमियों को बताकर उनके निराकरण का उपाय भी बतावें। हम अपने प्रेमी पाठकों से भी यही विनती करते हैं कि वे भी अपनी राय हमारे पास शीघ्र भेजने की कृपा करें। इनके प्राप्त होने पर ही हम यह स्थिर कर सकेंगे कि किस प्रकार 'माधुरी' की विशेष श्रीवृद्धि करके वास्तविक कार्य किया जा सकता है। क्या हम यह आशा करें कि हिंदी-जगत् के हितैषी और विद्वान् हमारे-जैसे नगण्य व्यक्ति की प्रार्थना पर ध्यान देंगे? हम उनकी इस कृपा के अत्यंत आभारी होंगे। हमारी इच्छा है कि हम अधिक-से-अधिक लोकमत का संचय करके उससे लाभ उठावें।

विनीत—

रामसेवक त्रिपाठी (संपादक 'माधुरी')

× × ×

२. विश्व-व्यापी अशांति

इस समय समस्त विश्व के विशाल प्रांगण में घोर अशांति के स्पष्ट चिह्न दिखायी देते हैं। ज्ञात होता है, जैसे पृथ्वी का प्रत्येक ज़र्रा मर्माहत होकर अपनी कष्टकथा कहने के लिए, स्वार्थांधता के झकोरों चोटें खाता हुआ, बावले की भाँति सर्वत्र च लगा रहा है। कहीं पेट की ज्वाला के कारण असं जीव भस्म हुए जा रहे हैं, कहीं नारकीय यंत्रणाओं द्वारा मनुष्यता का पशुता में परिवर्तन किया जा रहा कहीं भूकंप, अग्निकांड और मज़हब की बड़वाग्नि धध रही है, कहीं घृणित एवं संकुचित स्वार्थवृत्तियों के कार पृथ्वी नरक से भी गई-बीती नज़र आ रही है। जि देखिए उधर हाहाकार और घोर चीत्कार का करु क्रंदन स्पष्ट सुनायी देता है। वैभव, विलास, यशोलि एवं क्षणिक वैयक्तिक सुख के लिए लाखों निरीह जी का बलिदान हो रहा है। प्रवृत्ति—कलु एकांगी प्रवृत्ति—इतनी बढ़ गयी है कि धूर्तता अनीश्वरवाद की चरम सीमा पर पहुँचने का प्रय कर रही है। एक अनिश्चित उद्देश्य के साथ अनिश्चि मार्ग पर लोकप्रवृत्तियाँ बड़ी तेज़ी से दौड़ लगा हैं। सुख-साधना एवं शांति-स्थापना की जितनी अधिक चेष्टाएँ की जाती हैं, उतनी ही अधिक व्याप के साथ दुःख और अशांति का क्षेत्र विस्तीर्ण होता रहा है। इसका कारण यही समझ में आता है कि तो अभी रोग का निदान ही ठीक नहीं हो सका निरीक्षकगण अनाड़ी हैं अथवा सब-कुछ जान-बूझ भी, घोर स्वार्थ से आच्छन्न प्रवृत्तियाँ उस रोग के देने में ही अपना लाभ सोचती हैं। किंतु इन प्रवृ की स्वच्छंद वृद्धि अंत में संसार के लिए नाशकारी सिद्ध होगी—इसमें ज़रा भी संदेह नहीं करना चाहि

विश्व के मानचित्र पर एक सरसरी नज़र डा से हमें उपरोक्त कथन की सत्यता सिद्ध करने में कुछ सहायता मिल सकती है। भारतवर्ष को ही ली दरिद्रता, दासता, सामाजिक पतन, वास्तविक धर्म ह्रास और बेकारी की असह्य यंत्रणा देश को जर्जरीभू रही हैं। अन्न-वस्त्र का भी प्राप्त होना अत्यंत कठि रहा है। श्रमजीवी अपना खून-पसीना एक कर

अपने बच्चों की पेट की ज्वाला को भी शांत नहीं कर पाता। त्याग और कष्ट-सहन में तो भारत प्रसिद्ध ही है, फिर भी निकट भविष्य में उसके उद्धार का कोई साफ़-सुथरा मार्ग नहीं दिखायी पड़ता। अफ़ग़ानिस्तान में अमीर अमानुल्लाहख़ाँ के गद्दी छोड़ने के बाद से उथल-पुथल जारी है और अब तक कोई स्थायी शांति-व्यवस्था के समाचार नहीं सुनायी देते। जापान को इधर तो भूकंप और ज्वालामुखी सताते रहते हैं, उधर उसके बढ़ते हुए व्यापार पर अमेरिका की शनिदृष्टि बराबर लगी रहती है और वह हर समय सशंकित रहता है। चीन के गृहयुद्ध ने चीन का बहुत बड़ा अपकार किया है और वहाँ कई दल हो गये हैं। वहाँ बोल्शेविक लोगों के प्रोपोगैंडा करने का समाचार पत्रों में यदा-कदा नज़र आ ही जाता है। चीन की आर्थिक दशा भी बुरी है। लोग अस्तव्यस्त और बिखरे हुए-से हैं। चीन में अन्य देशीय बाशिंदों के हक़ों पर जो नियंत्रण चीन ने हाल ही में किया है, उससे वे देश क्षुब्ध हो उठे हैं। फ्रांस मित्र-मंडल में तो है, पर संतुष्ट नहीं दिखायी देता। इधर विलासिता के कारण वहाँ की आवश्यकताएँ भी बढ़ रही हैं। जर्मनी पिछले महासमर में तबाह हो चुका था, परंतु उसने अपनी क्षतिपूर्ति बड़ी शीघ्रता से की है। उसका व्यापार भी ख़ूब तरक़्क़ी कर रहा है। लेकिन देश के हृदय में पिछला घाव अभी ताज़ा बना हुआ है। नवीन संहारक यंत्रों और गैसों के बनने के समाचार अब भी हमारे कानों में पड़ रहे हैं। इधर मित्रदल ने युद्ध के तावान का भार उस पर इतना डाल दिया है कि बेचारा व्याकुल हो उठा है। रूसी साम्यवाद का संपर्क वहाँ तक फैल गया है। टर्की के मुस्तफ़ा कमालपाशा की नवीन निर्वाचन-विजय ने प्रजातंत्र के भावों को एक और सुदृढ़ भित्ति का आधार दे दिया है। स्पेन-जैसे पुराने राजतंत्र के अचानक नाश ने योरप में खलबली पैदा कर दी है। वहाँ अब प्रजातंत्र की स्थापना हो गयी है। किंतु सुव्यवस्था करने में अभी समय लगेगा। मुसोलिनी इटली की कायापलट करता है और मिश्र में सत्याग्रह संग्राम छिड़ गया है। दक्षिणी अफ़्रीका का आंदोलन अभी जारी है। अमेरिका में रंग भेद का अभी दौरदौरा बना हुआ है और यद्यपि वहाँ प्रजातंत्र का रूप है, पर सत्ता अभी धनिकों की ही दिखायी देती है। वह अपने व्यापार को संसार-भर में व्याप्त देखना चाहता है। संसार का सबसे बड़ा धनी देश होकर भी वह अभी संतुष्ट नहीं है। कई बड़े देशों को क़र्ज़ देकर उन पर अपना प्रभाव जमाये हुए है और सैन्य शक्ति बढ़ाने से भी बेख़बर नहीं है। रूस का हाल तो दुनिया से निराला ही है। वह साम्यवाद का केंद्र हो रहा है। वह संसार भर से राजसत्ता उठा देने के लिए जी तोड़ प्रयत्न कर रहा है। उसकी सेना बहुत बड़ी है और उसका प्रचार विश्वव्यापी है। वहाँ युद्धप्रवृत्ति दिनोदिन बढ़ रही है। इँगलैंड अपनी प्रभुता और सत्ता को क़ायम रखने के लिए अपने आधीनस्थ देशों को बराबर अपने नियंत्रण में रखना चाहता है। उसके ऊपर अमेरिका का जो ऋण लदा हुआ है, उससे उद्धार पाने का और कोई दूसरा मार्ग उसे नज़र ही नहीं आता। साथ ही बढ़ी हुई अपव्ययिता को पूर्ण करने के लिए उसके हाथ में दूसरा कोई भी साधन नहीं है। इधर भारत के बहिष्कार आंदोलन के कारण वहाँ का व्यापार चौपट हो रहा है और बेकारी की हालत दिनोदिन ख़तरनाक होती जा रही है। एक ओर देशवासी गला दबा रहे हैं, दूसरी ओर आधीनस्थ देश अपने अधिकार माँग रहे हैं। सच पूछिए तो इँगलैंड इस समय बड़ी दबसट में आ पड़ा है। निःशस्त्रीकरण कान्फ़्रेंसें हो रही हैं, पर दिलों में कुछ और ही है। सभी अपनी-अपनी सैन्य शक्ति को अधिक मज़बूत कर रहे हैं। पिछले युद्ध में जीते हुए देश अपने नियंत्रण का दायरा और बढ़ाना चाहते हैं। अपना राज्य और विस्तृत करना चाहते हैं। जितनी ही सुख-सुविधा के लिए विज्ञान और कलपुर्ज़ों की वृद्धि की जाती है, उतनी ही बेकारी की कष्टकहानी बढ़ती जा रही है। इधर धनिकों की मोहलिप्सा अनंत होती जाती है और उधर उनसे लाखों-करोड़ों गुने अधिक कंगालों की कंगाली ज़ोर पकड़ती जाती है। इस समय अमीरी-ग़रीबी, सत्ता-विवशता और धर्म-अधर्म के बीच में एक विकराल युद्ध छिड़ा हुआ दृष्टिगोचर होता है। कालचक्र भी बड़ी तेज़ी से घूम रहा है। हम नहीं कह सकते कि ऊँट किस करवट बैठेगा। क्योंकि योरप के आसमान में तो भावी महा संग्राम के काले बादल अभी से चक्कर काटते दिखलायी पड़ते हैं।

किंतु इतना हम कह देना अनुचित नहीं समझते कि वर्तमान संसार की सत्ताधारी शक्तियाँ यदि वास्तव में

संसार के अंदर स्थायी शांति स्थापित करना चाहती हैं तो उन्हें सब से पहले अपने दिलों को साफ़ करना होगा। कूटनीति को मिटाकर और अपने बढ़ते हुए स्वार्थ को तिलांजलि देकर व्यापक उदार-नीति को पालन होगा। भोग-विलास की नाशकारी प्रवृति को हटाकर सादगी का अनुसरण करना होगा और अपने आधीनस्थ देशों के साथ पवित्र मैत्रीपूर्ण भावों का संस्थापन आवश्यक होगा। मनुष्य के प्रकृतिदत्त अधिकारों में स्वच्छंदता देनी होगी, और रंग भेद, वर्णभेद जैसी कलुषित भावना का अंत कर देना पड़ेगा। मनुष्यता और मानव-जीवन का मूल्य आँकना होगा। प्रेम और सद्भावना का अटूट रिश्ता एक दूसरे देश से जोड़ना होगा। परस्पर हित-साधना का पवित्र उद्देश्य उस संबंध को और मज़बूत बनावेगा। जहाँ हृदय में पवित्रता और कार्य में उदारता है वहाँ सहयोग प्र करना अनिवार्य है, जहाँ सहयोग है वहाँ कष्टों औ विभिन्नताओं का परिष्करण संभव है। जहाँ परिष्का की नीति अपनाने का विचार अपील करता है वहाँ कटु के लिए स्थान शेष नहीं रहता। जब कटुता रही तो प्रेम का प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी है। सहनशीलता सिखाता है और सहनशीलता शांति का मुख्य लक्षण है। जब तक विश्व के शांति इच्छुक शक्तिशाली राष्ट्र उपरोक्त बातों की ओर ध्या देकर उन्हें कार्य में परिणत नहीं करते, तब तक स्था शांति का सुख-स्वप्न देखना निरर्थक होगा।

× × ×

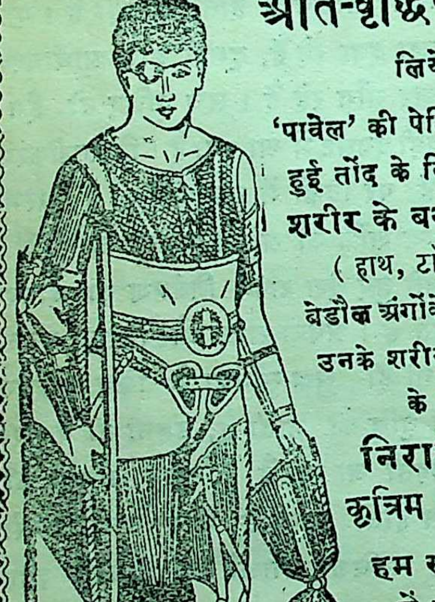

आँत-वृद्धिवालों के
लिये
'पावेल' की पेटियाँ और बढ़ी हुई तोंद के लिये कमरबन्द
शरीर के बनावटी टुकड़े
(हाथ, टाँग इत्यादि)
बेडौल अंगोंकेसुधारनेकेलिये
उनके शरीर की मिलावट
के अनुसार
निराले साधन
कृत्रिम अवयवों को
हम सस्ती क़ीमत
में बनाते हैं।
हमारा ही एकमात्र ऐसा कारख़ाना है जिसमें होशियार और अनुभवी भारतीय कारीगरों की देख-रेख में कार्य होता है। और केवल भारतीयों का ही धन लगा हुआ है।
पता—एन० पॉवेल एंड कं० बंबई नं० ४

सुंदर दाँत
बनाए रहने के लिये
पॉवेल की मशहूर
क्रिमिन्थाईन
का
प्रयोग कीजिए
यह सर्वोत्तम
जंतुनाशक,
दाँत स्वच्छ करनेवाली
प्रसन्नतावर्धक
टूथ क्रीम है।
हमारी सभी दवाइयाँ हमेशा ताज़ी मिलती हैं। क्योंकि वे हमारे कारख़ाने में ही बराबर बना करती हैं। सूचीपत्र पत्र आने पर मुफ़्त भेजा जाता है।
पता—एन० पॉवेल एंड कं० बंबई नं० ४

३. स्वर्गवास !

अभी हाल ही में हिंदी के एक विद्वान् साहित्यसेवी का स्वर्गवास हो गया। आपका शुभ नाम श्रीकृष्ण बलदेवजी वर्मा था। आप कालपी के निवासी थे। हमें कई बार आपसे मिलने-मिलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। कई वर्षों से आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। पिछली बार ५-६ महीने हुए जब वर्माजी हमारे यहाँ पधारे थे और केशवदासजी के संबंध में अपने नवीन अन्वेषणों की अनेक बातें बतलायी थीं। आपने इतिहास-संबंधी भी अच्छी खोज की थी। नम्रता आपमें बहुत थी। आप उन पुरुषों में थे जो चुपचाप अपने कर्तव्य का पालन करना जानते हैं। और दिखावे से सदा दूर भागते हैं। आपने कहा था कि मेरा स्वास्थ्य काम नहीं देता अन्यथा सामग्री मेरे पास काफ़ी है और उसके प्रकाशित होने पर हिंदी का बहुत कुछ हित हो सकता है। आप वृद्ध थे, किंतु उत्साह आपमें युवकों का-सा था। आपकी मृत्यु से हमें बड़ा दुख हुआ। हिंदी-संसार से हिंदी का एक सच्चा और विनम्र हितैषी उठ गया। पर विधि के विधान को कौन मेट सकता है? हम दुखित परिवार के साथ अपनी समवेदना प्रकट करते हैं और स्वर्गस्थ आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि।

× × ×

४. संयुक्तप्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन

विगत २, ३ और ४ मई को मिरज़ापुर में प्रांतीय राजनीति-सम्मेलन बड़ी सफलतापूर्वक हुआ। यह पचीसवाँ सम्मेलन था और सजावट में सादगी का ही विशेष ध्यान रक्खा गया था। प्रांत के बहुत-से प्रभावशाली नेता उपस्थित थे, प्रतिनिधियों की संख्या ५०० के लगभग थी। जनता का जमाव भी काफ़ी था। स्वागताध्यक्ष मुंशी संकटाप्रसादजी ने अपना भाषण प्रारंभ करते हुए उपस्थित प्रतिनिधियों और दर्शकगणों का स्वागत किया। मुंशीजी ने कहा कि मिरज़ापुर ने अपना हिस्सा वर्तमान लड़ाई में भी चुकाया है। हिंदू-मुस्लिम दंगों की ओर इशारा करते हुए आपने कहा कि अब समय आ गया है जब हम अपनी स्थिति आप समझने की कोशिश करें और इस एकता की नींव को परस्पर विश्वास और प्रेम के आधार पर दृढ़ करें। आपने कहा कि हमें अपने सेनापति म० गांधी का पदानुसरण करना चाहिए और विराम संधि के इस समय में भी अपनी शक्तियों को मज़बूत करते रहना चाहिए। इससे अगली गोलमेज़ कान्फ़्रेंस या अगली लड़ाई दोनों में सहायता मिलेगी। आपने प्रांतीय सरकार द्वारा गांधी-इर्विन-समझौते को पूर्णरूप से पालन न करने की बात भी कही। इसके बाद मनोनीत सभापति श्रीतसद्दुक़ अहमदख़ाँ शेरवानी ने अपना एक छोटा-सा भाषण दिया। आपने पं० मोतीलालजी, मौलाना मुहम्मदअली और श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी की असामयिक मृत्यु पर दुःख प्रकट करते हुए उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। आपने कहा कि यद्यपि हमारे पास कोई शस्त्र नहीं थे फिर भी हमने आत्मिक बल के भरोसे युद्ध छेड़ा और कामयाबी भी एक बड़े हद तक हासिल की। संसार की दृष्टि भारत पर है। हम दिखाना चाहते हैं कि हमारा उसूल केवल घटना क्रम नहीं, बल्कि जीवन का एक सिद्धांत है और उसे हम पूरा करेंगे। जिसके बारे में यह कहा जाता है कि वह नंगा और भिखारी फ़क़ीर है, उसके सामने आज बड़े-से-बड़े पुरुषों के मस्तक नत हो रहे हैं। अहिंसा के इस युद्ध में हमारे भाइयों की अपेक्षा हमारी बहिनों ने बहुत बड़ी वीरता दिखायी है। हमें नौजवानों से जैसी आशा थी वैसा सहयोग हमें उनसे प्राप्त नहीं हुआ। आगे श्रीयुत शेरवानी ने गांधी-इर्विन-समझौते के संबंध में कहा कि हमारे विपक्षी-दल की दाल नहीं गल पायी और कांग्रेस में पहले से भी अधिक एकता स्थापित हो गयी। हमें आपस में लड़ाने के भी खेल खेले गये, दो-चार जगह कुछ सफलता भी हुई, लेकिन अब हम समझ गये हैं। अगर साम्प्रदायिकता का नाश न होगा तो आज़ादी हासिल करना कठिन है।

साम्प्रदायिकता राष्ट्रीयता के लिए ज़हर है। इससे अविश्वास और घृणा की सृष्टि होती है एवं आपसी दंगों का सूत्रपात होता है। आपने इसे सर्वथा त्याग करने की अपील की और कहा कि अब आगे से सम्मिलित चुनाव करके हमें कम-से-कम १० वर्ष अनुभव करना चाहिए, क्योंकि पिछले १० वर्ष में हम पृथक् निर्वाचन का लाभ खूब देख चुके। आपने खादी को अपनाने और मादक

द्रव्यों को त्यागने की अपील की, साथ ही कराँची के स्वराज्य-प्रोग्राम का स्पष्टीकरण भी किया। अंत में आपने आपसी विश्वास और संघटन पर ज़ोर दिया।

सम्मेलन में बहुत-से सामयिक और आवश्यक प्रस्ताव भी पास हुए। इस उत्सव में स्त्रियाँ भी अच्छी संख्या में पर्दे को तोड़कर उपस्थित हुई थीं। 'लीडर' के संवाददाता का कहना है कि सम्मेलन में राजनीतिक जागरण का सबसे बड़ा प्रबल चिह्न यह प्रकट हुआ कि सैकड़ों हिंदू-मुसलमानों ने एक साथ बैठकर कच्चा भोजन ग्रहण किया। लोगों की धारणा है कि कई दृष्टियों से यह सम्मेलन पिछले सम्मेलनों से अधिक सफल और महत्त्वपूर्ण रहा। स्वागत-समिति ने अभ्यागतों की सुविधा और भोजन का अत्युत्तम प्रबंध किया था।

इस सम्मेलन के एक प्रस्ताव और उसके संशोधित स्वीकृत रूप से स्पष्ट पता चलता है कि लोगों का यहाँ आम ख़याल क्या है। कहा जाता है कि संरक्षणों के रहते हुए और उन पर पुनः विचार का मौक़ा देने का वादा एवं निश्चय प्राप्त न करते हुए कांग्रेस या महात्माजी का राउंडटेबिल कान्फ़्रेंस में सम्मिलित होना व्यर्थ है। वर्तमान अवस्था में विलायत के गर्मदलवाले लोगों की एकांगी दलील, भारत की प्रांतीय सरकारों का समझौता-पालन में उपेक्षादृष्टि एवं शिथिलता और ब्रिटिश सरकार का राजनीतिक दृष्टिकोण उस विचार को और भी पुष्ट कर रहा है।

विराम-संधि को स्थायी संधि का रूप तभी प्राप्त हो सकता है जब महात्माजी की तरह ब्रिटिश-सरकार का प्रत्येक ज़िम्मेदार व्यक्ति भी शुद्ध हृदय से भारत के साथ सम्मानपूर्ण सहयोग दे और अपने अधीन देश को अपना मित्र बनाकर उसकी उचित एवं स्वाभाविक आकांक्षाओं को पूर्ण करे। इसी सहयोग पर संसार की शांति निर्भर है। ईश्वर करे, इँगलैंड और भारत के बीच ऐसी अटूट मैत्री शीघ्र स्थापित हो।

× × ×

५. हिंदी-साहित्य-सम्मेलन

इसी मास के अंतिम सप्ताह में, कलकत्ते के अंदर अखिल भारतवर्षीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन होने जा रहा है। कुछ समय से सम्मेलन की दशा संकटापन्न एवं विरोधी परिस्थितियों के कारण दिखायी देती है। आर्थिक अवस्था तो अच्छी है ही नहीं, साथ ही आपसी सहयोग की भी कमी नज़र आ रही है। हम नहीं कह सकते कि सम्मेलन के अंदर और कौन-सी त्रुटियाँ हैं जो इसे दलबंदी के दलदल की ओर खींच रही हैं। हमारा तो केवल इतना ही कहना है कि यह संस्था हिंदी की एक प्रतिष्ठित संस्था है। इसके द्वारा हिंदी का बहुत कुछ उपकार हुआ है। बड़े-से-बड़े विद्वानों और नेताओं का सहयोग इसे प्राप्त हो चुका है। भविष्य में भी हमें सम्मेलन के द्वारा बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। अस्तु, हिंदी-प्रेमियों और हितैषियों का एकमात्र कर्तव्य यह है कि वे प्राणपण से ऐसी चेष्टा एवं उद्योग करें जिससे इस संस्था का भविष्य उज्ज्वलतर हो, उसका आर्थिक संकट दूर हो और सबका सहयोग प्राप्त करने में कोई अड़चन उपस्थित न होने पावे। व्यक्तिगत स्वार्थों को तिलांजलि देकर समूचे राष्ट्र-हित-साधन का ही दृष्टिकोण सामने रक्खा जावे। कर्मशील व्यक्तियों का सहयोग सहर्ष प्राप्त किया जावे और सम्मेलन का क्षेत्र अत्यंत उदार तथा विस्तीर्ण बना दिया जावे। जिस हिंदी भाषा को हम राष्ट्रभाषा कहने का दावा करते हैं, जो इतने बड़े विशाल देश की भाषा होने का गर्व प्राप्त कर रही है, उसी की एकमात्र अखिल भारतीय संस्था को हम अपनी कमज़ोरियों अथवा अपनी किसी भी प्रकार की अकर्मण्यता के द्वारा नष्ट हो जाने दें, तो इससे बढ़कर शर्म की और कोई बात नहीं हो सकती। इतना ही नहीं, बल्कि हम तो यह स्पष्ट कहते हैं कि सम्मेलन की हीनावस्था का प्रत्येक हिंदी-भाषा-भाषी ज़िम्मेदार है। उसे समझना चाहिए कि वह हिंदी से प्रेम करके केवल भाषा की ही सेवा नहीं करता प्रत्युत राष्ट्रनिर्माण में सहायक बनता है। राष्ट्रीयता का जागृति मंत्र फूँकने में राष्ट्र भाषा के उत्थान और प्रचार की कितनी बड़ी आवश्यकता है, यह किसी भी समझदार व्यक्ति से छिपा नहीं है। संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष महात्माजी स्वयं हिंदी के लिए सतत उद्योग करते हैं। इस सम्मेलन को उनका भी सहयोग प्राप्त हो चुका है। हिंदी का विकास एक अच्छे पैमाने पर हो रहा है। जिन प्रांतों में हिंदी कहीं नज़र भी न पड़ती थी, वहाँ आज अनेकों हिंदी संस्थाएँ दिखलायी

देती हैं। सच तो यह है कि हम बहुत दूर तक बढ़ चुके हैं। अब हम किसी प्रकार भी पीछे लौटने का विचार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से करें तो यह आत्मघात के सदृश्य होगा। हमने सम्मेलन को अपनी प्रतिनिधि संस्था बनायी। विभिन्न लोगों के हाथों में उसका संचालन सूत्र रहा! अपने अपने बल अनुमान सभी ने कार्य किया। परिष्करण और उन्नति के लिए हमेशा गुंजाइश रहती है। मनुष्य में कमज़ोरियाँ होती ही हैं, वे ही मनुष्य संस्थाओं में भी काम करने आते हैं। यदि उनसे कुछ बन बिगड़ जाय तो उसे भूलकर आगे की ख़बर लेना ही बुद्धिमानी है।

प्रसन्नता की बात है कि श्रीजगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' कलकत्ता-अधिवेशन के सभापति निर्वाचित हुए हैं। रत्नाकरजी के संबंध में कुछ भी कहना व्यर्थ है, क्योंकि हिंदी-जगत् उनसे भलीभाँति परिचित है। किंतु हम रत्नाकरजी से इतना निवेदन कर देना चाहते हैं कि आप अधिवेशन में इस बात का प्रयत्न अवश्य करें कि आपसी विद्रोह का द्वेष दूर हो जावे और सम्मेलन पर कुछ व्यक्तियों का आधिपत्य-सा न रहकर समस्त राष्ट्रवासियों की वह सम्पत्ति बन जावे। दलबंदी का द्वंद्व समाप्त हो जावे और प्रत्येक इच्छुक सेवा करनेवाले को इसमें योग देने का मार्ग खोल दिया जाय। जातीय संस्थाओं की तरह उसे कुछ व्यक्तियों के हाथ की कठपुतली न बना रखा जावे। हमारी प्रत्येक हिंदी-प्रेमी से भी ही अपील है कि वह ऐसा करने में रत्नाकरजी की पूरी सहायता करे। जितना अधिक सहयोग हम प्त कर सकेंगे उतना ही ज़्यादा हम सफलता की ंज़िल की ओर अग्रसर हो सकेंगे। हमारा विश्वास है के यदि सम्मेलन इस नीति का स्वागत करेगा तो सकी बहुत-सी अड़चनें अनायास दूर हो जावेंगी। गवान् करे, यह अधिवेशन सफलता और प्रेम के साथ माप्त हो और उसका भंविष्य अत्यधिक मंगलमय हो।

× × ×

६. विद्यार्थीजी के स्मारक के लिए एक लाख की अपील

श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी हमारे देश के एक तेजोमय न थे। कानपुर की लज्जाजनक दुर्घटनाओं में उनके से लोकप्रिय कर्मवीर का उठ जाना शोकमय और खदायी तो है ही किंतु जिस वीरता से उनका अंत हुआ वह देश-भर का सिर ऊँचा कर रहा है। हिंदू-मुसलिम-एकता की स्थापना में यह देश का सबस बड़ा बलिदान हुआ है और देश के सामने एक नया आदर्श रख रहा है। गणेशशंकरजी की जीवनी और उनकी मृत्यु सदा देश की एक अमूल्य और प्यारी स्मृति रहेगी और लाखों हिंदू और मुसलमानों को ठीक मार्ग पर रखने के लिए अँधेरे में प्रकाश दिखलाती रहेगी। गणेशशंकरजी का शरीर भस्म हो गया किंतु उनके कृतज्ञ देशवासी उनकी कीर्ति को जीवित रखेंगे। गणेशशंकरजी की मृत्यु से कुछ विशेष ज़िम्मेदारी तुरंत उनके देशवासियों पर आ गयी है। एक तो जो ज़िम्मेदारियाँ गणेशशंकरजी पर थीं, उनमें से कुछ विशेष का भार देश को अपने ऊपर लेना है। साथ ही अपनी स्नेहमयी कृतज्ञता का ऐसा स्वरूप देना है, जो उनकी याद बनाये रखे और उनकी आत्मा को प्रिय हो। करांची-कांग्रेस के अवसर पर संयुक्तप्रांत के प्रतिनिधियों ने एक सभा करके हम लोगों में से कुछ व्यक्तियों की एक समिति बनाकर गणेशशंकरजी के स्मारक के संबंध में आवश्यक काम करना उसके सुपुर्द किया था। उस समिति ने हम में से शेष को उसमें पीछे और जोड़ लिया। हम लोगों ने अब यह निश्चय किया है कि देश से कम-से-कम एक लाख रुपये का दान माँगा जाय और वह दान निम्न-लिखित कामों में लगाया जाय—

(१) गणेशशंकरजी के कुटुंब की सहायता।

(२) 'प्रताप ट्रस्ट' की सहायता। गणेशशंकरजी ने एक ट्रस्ट बनाकर हिंदी के प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र 'प्रताप' का संचालन उसी के अधीन कर दिया था। श्रीगणेशशंकरजी ने देश की मुख्य सेवा अपने जीवन में इसी 'प्रताप' पत्र द्वारा की थी। ट्रस्ट की सहायता इसीलिए की जायगी कि 'प्रताप' की नींव मज़बूत हो जाय।

(३) उस स्थान के समीप, जहाँ गणेशशंकरजी ने हिंदू और मुसलमानों की रक्षा में अपने शरीर का त्याग किया, एक जल-स्रोत (फ़व्वारा) या स्तंभ या इसी प्रकार का कोई दूसरा स्मारक खड़ा करना।

(४) कानपुर ज़िले के नरवल ग्राम में स्थापित आश्रम के कार्य की सहायता करना। गणेशशंकरजी ने अपने जीवन में इस आश्रम की स्थापना की थी।

इस आश्रम द्वारा लगभग २०० ग्रामों का संगठन किया गया। चर्खा-कातना और खादी प्रचार इस संगठन का एक मुख्य अंग है।

(५) बचे हुए धन को संयुक्तप्रांतीय कांग्रेस-कमेटी को इस शर्त पर भेंट करना कि इससे 'गणेशशंकर राष्ट्रीय सेवा-संघ' की स्थापना हो। यह सेवा-संघ वही काम करे, जो इस समय संयुक्तप्रांतीय राष्ट्रीय सेवा-संघ कर रहा है अर्थात् प्रांत-भर में राष्ट्रीय काम में पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ताओं के निर्वाह के लिए सहायता करना।

हम लोगों का अनुरोध है कि गणेशशंकरजी की सेवाओं और उनके महान् बलिदान का स्मरण कर ऊपर दिये हुए शुभ कामों के लिए हमारा देश कम-से-कम एक लाख रुपया शीघ्र दे दे और इस प्रकार अपनी कृतज्ञता का कुछ प्रदर्शन करे। हम लोगों ने अपनी समिति का ख़ज़ांची श्रीयुत श्रीप्रकाशजी को बनाया है। कुल रुपया श्रीयुत श्रीप्रकाशजी सेवाश्रम सिगरा बनारस छावनी के पते से आना चाहिए।

जवाहरलाल नेहरू
सुंदरलाल
तसद्दुक़ अहमद शेरवानी
श्रीकृष्णदत्त पालीवाल
मोहनलाल सक्सेना
गोविंदवल्लभ पंत
(डा०) मुरारीलाल
पुरुषोत्तमदास टंडन
कृष्णकांत मालवीय
दामोदरस्वरूप सेठ
रफ़ी अहमद किदवई
शिवप्रसाद गुप्त
श्रीप्रकाश

उपरोक्त अपील की ओर हम अपने पाठकों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। यहाँ इस बात को दुहराने की आवश्यकता नहीं है कि श्रद्धेय विद्यार्थीजी की सेवाएँ अमूल्य हैं और उनका बलिदान अपनी शान का अद्वितीय है। यह तो बड़े सौभाग्य का विषय है कि 'स्मारक-समिति' ने अपनी अपील द्वारा प्रत्येक राष्ट्र और राष्ट्र-भाषा प्रेमी व्यक्ति को विद्यार्थीजी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने का एक सुगम मार्ग बतला दिया। उनके लगाये हुए पौदों को थोड़े ही कष्ट और सहयोग से सीं का साधन सामने रख दिया और उन स्वर्गस्थ आत्मा को संपूर्ण शांति देने योग्य प एवं स्थायी कार्यक्रम की आयोजना उपस्थित दी। अब हमारा कर्तव्य क्या है? यह स्पष्ट है। अविलंब उस एक लाख की रक़म को पूरी दें। इसके द्वारा हम न केवल स्वर्गीय आ के प्रति अपना स्नेह प्रदर्शित करेंगे; व समस्त राष्ट्रीय जागृति में हिस्सा बँटाकर अ कर्तव्य का पालन करेंगे। ऐसी पवित्र सेवा मूर्ति के ऊपर तो न जाने कितने लाख क्षण में न्यौछावर किये जा सकते हैं। हमारा विश है कि केवल कानपुर ही इस रक़म को पूरी कर सकता है; लेकिन आवश्यकता बात की है कि सारा देश इस कार्य में योग जिस समूचे देश और जिस विस्तीर्ण राष जीवन के लिए उन्होंने अपनी जान दी, विशाल संघ का, स्वर्गीय आत्मा के स्तव भागीदार बनना और बनाना औचित्यपूर्ण हमारा विश्वास है कि जिस व्यक्ति के में 'स्मारक-समिति' की यह अपील वह सादर और श्रद्धापूर्वक अपना क पालन करने में एक क्षण का भी विलं करेगा।

× × ×

७. मेरी लँगोटी

इस सप्ताह के हिंदी 'नवजीवन' में लँगोटी के संबंध में महात्मा गांधी ने जो म और तत्त्वपूर्ण विवेचन किया है वह भारतवासी के हृदयंगम करने योग्य महात्माजी कर्मयोगी हैं। उनके प्रत्येक आ में आत्मा की पुकार, अखिल मानव-समा

शुभकामना और भारतीय प्राचीन तात्त्विक मर्यादा की छाप लगी रहती है। नीचे के नोट में महात्माजी ने अपनी लँगोटी के संबंध में फैली हुई भ्रमभावनाओं का समाधान किया है। साथ ही भारत और योरप को अपने असली स्वरूप को पहचानकर आचरण करने का भी उपदेश दिया है। गांधीजी ने भारतीयता के असली स्वरूप का जो ज्ञान प्राप्त किया है वह उनके प्रत्येक कार्य में झलकता है। महात्मा जी कहते हैं—

“दिल्ली में व्यापारी मण्डलों की सभा के सामने मैंने कहा था कि भारतीय संस्कृति को हमें पश्चिम के हमलों से नष्ट न होने देना चाहिए। इस कथन से एक आलोचक बिगड़ उठे हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति को मेरी लँगोटी से मिला दिया है और फिर उसकी निन्दा की है।

मि० चर्चिल ने सारी दुनिया में मेरी लँगोटी का विज्ञापन करने की बिना माँगे कृपा की है। इसलिए, जैसा कि उक्त टीकाकार ने किया है, उसका मज़ाक उड़ाने का रिवाज-सा पड़ गया है। अतएव मुझे उसका अर्थ समझा देना चाहिए।

सन् १९२१ में मौलाना मुहम्मदअली और मैं दक्षिण भारत की यात्रा को जा रहे थे कि वॉल्टेर में मौलाना गिरफ़्तार कर लिये गये। बेगम मुहम्मदअली से, जो सफ़र में हमारे साथ थीं, मौलाना को इस तरह जुदा कर दिया गया। मेरे दिल पर इसका गहरा असर पड़ा। बेगम साहबा ने तो बहादुरी के साथ जुदाई को सहा और मद्रास की सभाओं में हाज़िर रहीं। उन्हें मद्रास में छोड़कर मैं मदुरा तक गया। रास्ते में अपने डब्बों में मैंने लोगों की भीड़ पर इस घटना का कोई असर न पाया। प्रायः बिना किसी अपवाद के वे सब रंग-बिरंगे विदेशी कपड़े पहने थे। उनमें से कुछ के साथ मैंने बातें कीं और उनसे खादी पहनने के लिए कहा! क्योंकि अलीभाइयों को छुड़ाने के लिए मेरे पास खादी के सिवा और कोई रास्ता न खुला था। उन लोगों ने तो सर हिलाकर यह कहा—‘हम इतने ग़रीब हैं कि खादी खरीद नहीं सकते और खादी तो बहुत महँगी है।’ इस बात की मूल में छिपे हुए सत्य को मैं पहचान गया। मैं कुर्ता, टोपी और पूरी धोती पहने था। इन लोगों ने जब अर्धसत्य कहा था, तभी चार इंच चौड़ी और करीब उतने ही फुट लम्बी लँगोटी को छोड़कर अनिवार्यरूप से नंगे रहनेवाले करोड़ों लोग अपने नग्न अवयवों द्वारा नग्न सत्य का उच्चारण कर रहे थे। अतएव सभ्यता का त्याग किये बिना यदि मैं एक-एक इंच कपड़े का त्याग कर सकूँ, तो उन करोड़ों आधे नंगे लोगों के रहन-सहन के साथ अधिक समानता जोड़ सकूँ। इसके सिवा और अधिक पुरअसर जवाब मैं उन लोगों को क्या दे सकता था? फलतः यह परिवर्तन मैंने मदुरा की सभा के बाद दूसरे दिन सवेरे ही कर डाला।

इसलिए इसमें लँगोटीवाली सभ्यता का तो सवाल ही नहीं है। लँगोटी पहनने के सिवा मेरे पास और कोई चारा ही न था। परन्तु जिस हद तक लँगोटी सादगी की निशानी है, उस हद तक वह भारतीय संस्कृति का प्रतीक भले मानी जाय। भारतीय संस्कृति उन संस्कृतियों का मिश्रण है जो भिन्न-भिन्न धर्मों से निकलकर, भौगोलिक तथा दूसरे वातावरण में मिली हैं, और उस वातावरण के प्रभाव से जिनका रूपान्तर हुआ है। इस प्रकार मुसलमानी सभ्यता अरबिस्तान, तुर्की, ईजिप्ट और हिन्दुस्थान में एक ही नहीं है, बल्कि उस पर उन-उन देशों की परिस्थिति का असर पड़ा है। इसी कारण भारतीय संस्कृति भारतीय ही है। वह न सम्पूर्णतया भारतीय संस्कृति है, न इसलामी और न कोई दूसरी। यह सब संस्कृतियों का मिश्रण है और उसका सच्चा स्वरूप पूरबी है। उक्त वाक्य कहते समय मेरी कल्पना में यह संस्कृति थी और अपने को भारतीय कहलानेवाले हरएक स्त्री-पुरुष का धर्म है कि वह इस संस्कृति को अपनावे, इसका रक्षक बने और इसपर होनेवाले आक्रमणों का सामना करे।

यूरोप के सुधार यूरोपियनों के लिए अवश्य अनुकूल हैं, परन्तु अगर हम उनकी नकल करेंगे, तो उससे हिन्दुस्थान की बरबादी होगी। इसका यह मतलब नहीं कि उनमें जो अच्छा और ग्राह्य हो वह भी न लेना। उसी प्रकार इसका यह अर्थ भी नहीं है कि उनमें जो खराब बातें घुस गई हैं यूरोपियनों को भी उनका त्याग न करना पड़ेगा। शारीरिक भोगों की अविरत शोध और उनकी वृद्धि, एक ऐसी ही खराब चीज़ है और मैं हिम्मत के साथ कहता हूँ कि जिन भोगों के वे गुलाम बन रहे हैं उनके भार से दबकर अगर वे तबाह होना न चाहते हों, तो स्वयं उन्हें भी अपनी जीवन-दृष्टि को नया रूप देना पड़ेगा। हो सकता है कि मेरा यह ख़याल ग़लत हो, पर इतना तो मैं जानता हूँ कि भारतवर्ष का इस सोने के हरिन के पीछे दौड़ना निश्चय ही मौत को गले

लगाना है। 'सादा जीवन और उच्च विचार,' एक पश्चिमीय तत्त्ववेत्ता के इस सूत्र को हमें अपने हृदय-पट पर लिख रखना चाहिए। आज यह तो स्पष्ट है कि करोड़ों को उच्च रहन-सहन मिलना असंभव है, और हम मुट्ठीभर लोग, जो जनसाधारण के लिए विचार करने का दावा करते हैं—उच्च रहन-सहन की मिथ्या खोज में उच्च विचार को खो बैठने का जोखिम उठा रहे हैं।"

× × ×

८. साहित्य-सत्कार

'विशाल भारत' हिंदी-संसार की लगभग चार वर्ष से सेवा कर रहा है। उसकी गणना हिंदी के उच्चकोटि के मासिकपत्रों में है। कुछ समय हुआ जब कि इस पत्र का 'कलाअंक' प्रकाशित हुआ था, यह अंक अपने ढंग का सुंदर निकला। चित्रकला-संबंधी लेख तथा अन्य उपादेय सामग्रियों से इसका कलेवर सुसज्जित था। यद्यपि इसमें चित्रकला के संपूर्ण अंगों पर प्रकाश नहीं डाला जा सका तो भी प्रस्तुत सामग्री परिश्रम और खोज की द्योतक अवश्य है। इस अंक के द्वारा पाठकों की रुचि चित्रकला की ओर आकर्षित होगी। हम 'विशाल भारत' के संपादक श्रीबनारसीदास चतुर्वेदी को इस सत्श्रम के लिए धन्यवाद देते हैं। मैनेजर 'विशाल भारत' १२०।२ अपर सरकुलर रोड कलकत्ता के पते पर लिखने से यह अंक मिल सकता है।

'सुकवि' ने भी विगत मास में अपना 'हास्यरसांक' प्रकाशित किया है। इस अंक का मू० ॥) है। इसके संपादक सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय सुकवि पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' हैं। 'सुकवि' सुकवि-समाज की अच्छी सेवा कर रहा है। हास्यरसांक में नए-पुराने हिंदी-उर्दू कवियों की हास्य की रचनाएँ प्रकाशित की गई हैं और उसमें मनोरंजन का अच्छा मसाला है। मुझे आशा है कि काव्य-प्रेमी सुकवि को पूरा सहयोग देंगे। मैनेजर 'सुकवि' फ़ीलख़ाना कानपुर से उक्त अंक प्राप्त हो सकता है।

'विजय' के अभी तक तीन अंक निकले हैं। 'श्रीकृ संदेश' ही विजय के रूप में हमारे सामने आया पत्र साप्ताहिक है और सचित्र। संपादक हैं स्वना धन्य पं० लक्ष्मणनारायणजी गर्दे। वार्षिक मू० ५) किंतु ३१ मई तक ग्राहक बननेवालों को ४) रु० में मिलेगा। पत्र सब प्रकार से सुंदर और पठनीय प्रेमी पाठकों को शीघ्र ग्राहक बनकर 'विजय' अमर कर देना चाहिए। पता—हिंदी-पुस्तक-एजें २०३ हरिसन रोड, कलकत्ता!

दैनिक 'जन्मभूमि' लाहौर से हाल ही में प्रका हुआ है। यह बड़े आकार के चार पेजों का दै समाचारपत्र है। मू० १२) वार्षिक है। संपादक हैं श्रीउर्मिला देवी शास्त्री और श्रीचंद्रगुप्त विद्यालंका हर्ष का विषय है कि पंजाब में भी हिंदी का प्र बढ़ रहा है। हमें आशा है कि 'जन्मभूमि' के द्वारा सुरुचि में और भी वृद्धि होगी। हम पत्र को फूला-फला देखना चाहते हैं और उसका हार्दिक स्वा करते हैं। पता है मैनेजर दैनिक "जन्मभूमि" लाहै

"त्यागभूमि" नाम की मासिक पत्रिका कुछ समय बंद थी। श्री पं० हरिभाऊजी उपाध्याय के जेल से बा आने पर अब इसका प्रकाशन साप्ताहिक रूप में आरंभ हो गया। उसका वार्षिक मू० ३॥) है। त्यागभू की नीति निर्भीक और उसके लेखों में जीवन बलिदान की अच्छी पुट रहती है। हमारा विश्वास कि मासिक संस्करण की तरह इस साप्ताहिक संस्करण भी पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त होगी। हम उपाध्या को उनकी लगन और तत्परता पर बधाई हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि 'त्यागभू चिरजीवी हो।

पता-मैनेजर "त्यागभूमि" सस्ता साहित्य मण्डल अज

× × ×

स्वप्नदोष की अद्भुत जड़ी

महाशय,
स्वप्न-दोष के समान सुख और आयु को हरनेवाला कोई रोग नहीं। यदि आप दवा कराकर निरा हो गए हों, तो इसे ज़रूर आज़मावें। एक ही दिन में स्वप्न-दोष को बंद न कर दे तो दूना दाम वापस। मू ३) रु०। ग़रीब विद्यार्थियों को १) रु० माफ़।

पता—शुक्ल औषधालय, लहेरियासराय।

६. बीसवीं सदी की सती !

'बंबई-समाचार' के २३ अप्रैल के अंक में लुहाणा जोत की एक स्त्री के सती होने का समाचार छपा था ; एक महिला ने महात्माजी को पत्र भेजकर उनसे प्रार्थना की कि आप अपने विचार 'नवजीवन' द्वारा प्रकट कर इस विषय में प्रकाश डालें ताकि विशेष जानकारी प्राप्त हो। महात्माजी ने इसका जो उत्तर दिया है वह ज्यों-का-त्यों नीचे उद्धृत किया जा रहा है। वैवाहिक संबंध क्या वस्तु है, सती का क्या धर्म है, पातिव्रत में किन भावों का समावेश है और सती होना कहाँ तक युक्तिसंगत है आदि प्रश्नों का अत्यंत सुंदर विवेचन किया गया है। हमें विश्वास है कि हमारे पाठकों के लिए यह उपदेश लाभदायक सिद्ध होगा । इस विषय में हमें टीका-टिप्पणी करने की भी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती । महात्माजी कहते हैं—

"मुझे आशा है, ये समाचार सच नहीं हैं। अगर वह बहन मरी है, तो रोग से या आकस्मिक घटना से मरी है, आत्महत्या करके नहीं। बीसवीं सदी या दूसरी किसी भी शताब्दी की सती के लक्षण एक ही प्रकार के होने चाहिए। सती वह है, जो पति के जीवित रहते और उसकी मृत्यु के बाद सत्यपरायणा रहकर सेवा करे और मन, वचन तथा कर्म से निर्विकार रहे। पति के पीछे आत्महत्या करने में ज्ञान नहीं, अज्ञान है। ऐसा करने में बड़ा अज्ञान तो आत्मा के गुण के विषय में है। आत्मामात्र अमर है। वह सर्वव्यापक है। एक देह के छूटने पर दूसरी देह निर्माण करती है, और यों करते-करते अन्त में देहातीत हो सकती है। यह बात सच है, अनुभवसिद्ध है और आज अनुभवगम्य है। ऐसी दशा में पत्नी को पति साथ मरने से क्या लाभ ?

और विवाह शरीर का नहीं, आत्मा का है। अगर विवाह शरीर ही का हो, तो पति के मरने पर मोम के पुतले या फोटो से ही संतोष क्यों न कर लिया जाय ? अगर विवाह एक शरीर-विशेषधारी जीव के साथ का ही सम्बन्ध हो, तो उस शरीर के नष्ट होने पर विवाह का भी अन्त हो जाता है, और आत्महत्या करने से वह शरीर पुनः मिल नहीं सकता। एक के नाश के साथ दूसरे शरीर का नाश करना, तो 'दोनों दीन से गये पाण्डे' वाली मसल को चरितार्थ करना है।

विवाह शरीर द्वारा आत्मा का होता है, और एक आत्मा की भक्ति से अनेक आत्मा की, अर्थात् परमेश्वर की भक्ति सिद्ध करने की कला सीखने का भेद विवाह में छिपा हुआ है। इसी कारण अमर मीरा गा चुकी है—

'मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरा न कोई।'

यानी सती स्त्री की दृष्टि में विवाह विकार तृप्त करने का साधन नहीं होता, बल्कि 'एक की दवा दो' इस न्याय से पति में लीन होकर सेवाशक्ति बढ़ाने का साधन है।

इसलिए सच्ची सती अपना सतीत्व सप्तपदी के समय से ही सिद्ध करती है। वह साध्वी बनती है, तपस्विनी बनती है, पति की, कुटुम्ब की और देश की सेवा करती है। वह घर-गिरस्ती में फँस जाने के और भोग भोगने के बजाय अपना ज्ञान बढ़ाती है, त्यागशक्ति बढ़ाती है, और पति में लीन होकर जगत्मात्र में लीन होना सीखती है।

ऐसी सती पति की मृत्यु पर दुःख नहीं करती, पागल नहीं बनती; बल्कि पति के समस्त सद्गुणों को वह अपने में प्रकट करेगी और उसे अमर बनावेगी। और यह सोचकर कि सम्बन्ध आत्मा से था, वह फिर से ब्याह करने का विचार तक न करेगी।

पाठक देखेंगे कि मेरी कल्पना की सती विवाह के आरम्भ से ही निर्विकार है, इसलिए वह सन्तान उत्पन्न न करेगी, विषयभोग न करेगी। ऐसी सती विवाह-बन्धन में बँधे ही क्यों ? कोई यह सवाल पूछे, तो वह उचित होगा। परन्तु हिन्दूसंसार में विवाह के बारे में स्त्री या पुरुष की पसन्द का कोई सवाल ही नहीं होता। और आजकल के इस भले-बुरे सुधारों के युग में कुछ लोग संयम के हेतु से ब्याह करते हैं। मैं कबूल करता हूँ कि इसके मूल में सूक्ष्म मूर्च्छा—मोह—है। फिर भी कुछ ऐसे पाये जाते हैं, जो निर्विकार रहने का निश्चय करके सम्बन्ध जोड़ते हैं। ऐसा एक उदाहरण मुझे अपने अनुभव से इस समय याद आ रहा है। विवाह करते समय भोग की इच्छा थी, परन्तु बाद में संयमवृत्ति के प्रबल होते ही निर्विकार जीवन बिताने का प्रयत्न करनेवाले दम्पति के एक से ज़्यादा उदाहरण मेरी आँखों के सामने इस वक्त तैर रहे

हैं। अतः पाठक यह न समझें कि मेरी कल्पना को हक़ीक़त में कहीं स्थान ही नहीं है।

परन्तु साधारण विवाह का विचार करें, तो सती स्त्री की जिन शक्तियों को ऊपर गिना चुका हूँ, उनमें प्रजापालन की शक्ति को बढ़ाना होगा। यानी सती स्त्री मर्यादा में रहकर सन्तान की उत्पत्ति के कार्य में भाग लेगी और बालक या बालकों का उचित प्रकार से लालन-पालन करके उन्हें सुशिक्षित बनाकर देश के सेवा-धन में वृद्धि करेगी।

जो बातें ऊपर मैं सती स्त्री के विषय में कह चुका हूँ, वे सत्पति पर भी लागू होती हैं। अगर स्त्री को पति के प्रति सतीत्व सिद्ध करना उचित है, तो पति को भी अपना सत्व सिद्ध करना आवश्यक है। हमने स्त्री के साथ पति को जलते हुए नहीं सुना; इसलिए हम यह मान लेते हैं कि पति के साथ पत्नी के जल मरने की प्रथा चाहे जब शुरू हुई हो, वह अज्ञान-मूलक है। और किसी समय उसमें कुछ भी रहस्य था, ऐसा साबित हो सके, तो भी इन दिनों तो उसमें घोर अज्ञान ही है, इस सम्बन्ध में कोई भी बहन अपने मन में सन्देह न रक्खें। स्त्री पति की दासी नहीं, उसकी सहचारिणी है, अर्द्धांगिनी है, मित्र है, इसलिए उसी के साथ बराबर हक़ भोगनेवाली है, उसकी सहधर्मिणी है। इस कारण एक दूसरे के प्रति और जगत् के प्रति दोनों के कर्त्तव्य समान हैं।

अतएव अगर उक्त लुहाणा बहन मरी हो, तो उसने व्यर्थ ही आत्महत्या की है। वह ज़रा भी अनुकरणीय नहीं। कोई कहेगा कि उसके मरने की क्षमता की स्तुति तो करें? मेरा मन वैसा करने से भी इनकार करता है। क्योंकि दुष्ट कर्म करनेवाले में भी मरने की शक्ति हम देखते हैं; परन्तु उस शक्ति की स्तुति करने का धर्म हम स्वीकार नहीं करते; ऐसी दशा में इस अज्ञान बहन के मरने की शक्ति की स्तुति करने के भ्रम में पड़ी हुई बहनों को अनजान में भी भ्रम में डा का पाप मैं क्यों अपने सिर लूँ? सतीत्व के मानी हैं, पवित्र की पराकाष्ठा। यह पवित्रता आत्महत्या करके सिद्ध न की जा सकती, जीकर उसका कठोर पालन किया जा चाहिए।"

अत्रे का "नागरी" लेखन-यन्त्र

(पहिला परिपूर्ण हिन्दी)

टाइप राइटर

सुंदर आकार, सरल रचना, सुंदर और सुडौल अक्षर, मात्रा और चिह्नों से परिपूर्ण मूल्य में कम होने प भी मज़बूत, अनेक संस्थाओं तथा संस्थानों में का में लाया जा रहा है।

आज ही लिखिए—

बच्छराज कम्पनी लिमिटेड

44c. ३९५ कालबादेवी, बम्बई नं० २

वैद्य हकीम बनने का सुगम साधन

यदि आप हकीम तुलसीप्रसाद अग्रवाल संचालक "बालजीवन घुट्टी" की बनाई हुई "तुलसी अनुभवसार" पुस्तक को ध्यानपूर्वक पढ़ लेंगे तो आप निःसंदेह वैद्य-हकीमों के समान अपनी और दूसरों की प्रत्येक बीमारी का इलाज बड़ी उत्तमता के साथ करने योग्य बन जावेंगे और यदि आप चाहेंगे तो इसके द्वारा औषधि व इलाज में घर बैठे सैकड़ों रुपया कमाने लगेंगे। मूल्य प्रति पुस्तक १।) तीन पुस्तक ३) डाकव्यय अलग।

बाल जीवन घुट्टी रजिस्टर्ड बालकों के बुखार, खाँसी, अजीर्ण, दूध डालना, दस्त होना आदि प्रत्येक रोग को दूर करने और दुबले पतले बालकों को मोटा-ताज़ा बलवान् बनाने के लिये प्रसिद्ध महौषधि है। मीठा होने से बालक इसको प्रसन्न होकर पी लेते हैं, सब जगह सौदागरों के यहाँ बिकती है। मूल्य प्रति शीशी।-) सौदागरों से प्रति दर्जन २॥) १२ दर्जन २४) डाकव्यय अलग।

मुफ़्त लो—जो सज्जन १० हिन्दी पढ़े प्रतिष्ठित लोगों के नाम पूरे पते सहित लिखकर भेजेंगे उनको "आरोग्य दीपक" पुस्तक मुफ़्त भेजी जावेगी।

पता—बालजीवन-घुट्टी-कार्यालय—अलीगढ़ शहर यू० पी०

चूहा-घूसनाशक दवाई

RATINE
रॅटाईन
DR. GUNE. KARAD, (S.M.C.)

इससे चूहे और घूस मर जाते हैं और बाक़ी बचे हुए सब भाग जाते हैं। खेत, बग़ीचे और मकान में सर्वत्र इसका व्यवहार किया जा सकता है। मूल्य प्रति पुड़िया =), १२ का १), ४० का ३), १२ पैकेट से कम का वी० पी० नहीं भेजा जाता। पोस्टेज ४० पैकेट तक का ।) ११२

डा० गुने, पो० कराड, ज़ि० सतारा

धातुपुष्ट की अद्वितीय दवा

"सुबह शाम सुंदर जलपान
खाय बूढ़ तो होय जवान"

दिल दिमाग़ बल वीर्य वर्धक !!!

वीर्यराज-मोदक

क्या मेवा मिश्रित स्वादिष्ट पुष्टई है। इसके थोड़े ही दिनों के सेवन से देह में नई कांति झलकने लगती है। वीर्य को शुद्ध कर गाढ़ा तथा लसीला बनाता है। धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन और नामर्दी को दूर कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ बनाता है। १) में १६ लड्डू।

पता—आयुर्वेदाचार्य आ० महोपाध्याय,
पं० श्रीधर्मनाथ मिश्र काव्यतीर्थ,
भास्कर महौषधालय, दानापुर कैंट।

स्त्रियाँ अच्छी चीज़ पसंद करती हैं

श्रीमती अन्नाचंदी, एम० ए० (आनर्स)

संपादिका "श्रीमथी" कोट्टायाम ।

लिखती हैं—

मैंने आपका लोध्रा इस्तेमाल किया
और मासिक-धर्म-संबंधी सभी
शिकायतों के लिये उसे सर्वश्रेष्ठ
औषध पाया । इसका सुंदर स्वाद,
स्वेच्छानुसार भोजन, इसके सेवन
की प्रसन्नता को बढ़ाते हैं ।

अपने केमिस्ट से माँगो

या

केसरीकुटीरम्,

हिंदुस्तानी केमिस्ट्स और ड्रगिस्ट्स,

इग्मोर, मदरास

५६

ज़मींदारों, काश्तकारों व बाग़वालों के लिए

एक अपूर्व अवसर

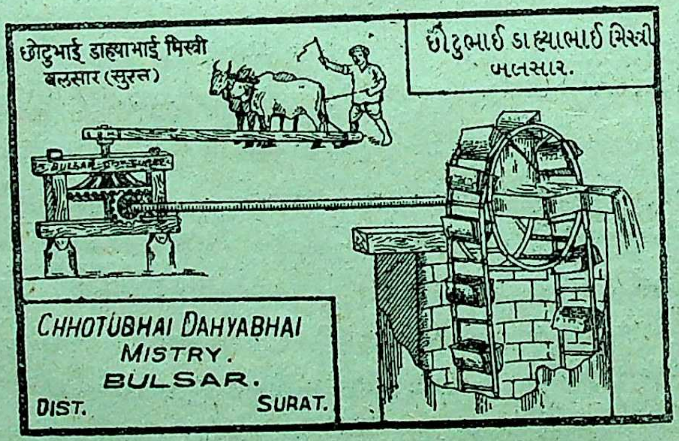
छोटुभाई डाह्याभाई मिस्त्री
बलसार (सुरत)
છોટુભાઈ ડાહ્યાભાઈ મિસ્ત્રી
બલસાર.
BULSAR
CHHOTUBHAI DAHYABHAI
MISTRY.
BULSAR.
DIST. SURAT.

बैल और इंजन से चलनेवाले

१००० से १२००० गैलन पानी फ़ी घंटे खींचते हैं ।

हमारी मशीनें बहुत मज़बूत और देरपा होती हैं व दूसरी रहटों की अपेक्षा बहुत कम ख़र्चे व कम बैलों के साथ और बहुत कम वक़्त में ज़्यादा पानी खींचती हैं इसलिए हमारी रहट सबसे अच्छी और सबसे सस्ती हैं । सचित्र सूचीपत्र व अधिक हालात जानने के लिए नीचे लिखे पते पर पत्रव्यवहार कीजिये ।

मैसर्स छोटू भाई डाह्या भाई मिस्त्री,

पन्डरसन रोड बलसार (ज़िला सूरत) बी० बी० ऐण्ड सी० आई० आर० ।

स्त्रियों का अमृत याने

स्त्रियों को शक्ति देनेवाली शरीर पुष्ट बनानेवाली दवाई

सुंदरीसाथी (रजिस्टर्ड)

घर-घर लाखों स्त्रियाँ सेवन करती हैं, सैकड़ों प्रमाणपत्र मिले हैं, हर एक डाक्टर और वैद्य अपने मरीजों में सूरत से उसका इस्तेमाल करते हैं।

प्रत्येक विलायती दवावाला और पंसारी प्रत्येक देहातों में बेचते हैं।

क्योंकि

सुंदरीसाथी——स्त्रियों के रोग—प्रदर, रक्तवात, सोमरोग, धातु वा पानी का जाना, शरीर दुर्बल होकर लोहू का फीका पड़ना, गर्भाशय पर सूजन, जीर्णज्वर, विसर्प, दम, कमर और पीठ में दर्द होना, पेड़ू और सिर का दर्द, शरीर टूटना, सुआरोग, दस्त, खाँसी, बार-बार गर्भ का गिरना, बच्चे पैदा होकर मर जाना, इन रोगों को बिलाशक मिटाता है. उसका अनुभव लाखों स्त्रियों ने किया है। प्रसूतिकाल में यह दवा पिलाने से सुआरोग होता ही नहीं और शरीर में कूवत आती है।

सुंदरीसाथी——स्त्रियों को पिलाने से ऊपर लिखित तमाम रोग रफ़ा हो जाते हैं, शरीर पुष्ट बनता है, लोहू सुधरता है, शरीर में ताक़त आती है, लोहू और बल बढ़ता है, गर्भाशय निरोग होता है, गर्भाशय के विकार से यदि प्रजा न होती हो तो वह अवश्य होती है, बन्ध्या स्त्रियों के गर्भाशय-संबंधी दर्द रफ़ा होकर संतति होती है, शरीर का वजन बढ़ता है, फीकापन दूर होकर शरीर पर लाली आ जाती है।

आप सुंदरीसाथी की एक बोतल सेवन करें, इससे स्त्रियों के तमाम रोग रफ़ा हो जायँगे, हजारों रुपये बच जायँगे, मृत्यु के मुँह में पड़ी हुई लाखों स्त्रियों को सुंदरीसाथी ने बचाकर जीवनदान दिया है। तीन बोतल पीनी पड़ती हैं। एक बोतल की क़ीमत १) तीन बोतल की क़ीमत रु० २-१०-० ।

हरएक गाँव में पंसारी और विलायती दवा बेचनेवालों के यहाँ बिकती है।

दवे केमीकल एन्ड फ़ार्मास्युटीकल वर्क्स,
रीचीरोड—अहमदाबाद और कालबादेवी रोड-बंबई

लाइफ़ इन्श्युरेंस
[बीमा]

मुफ्त

प्रबंधक हिंदुस्तानी
और हिंदुस्तानियों के लाभ के लिये।
सत्याग्रहियों के लिये विशेष सुविधा

यदि आप अधिक प्रीमियम (मासिक चंदा) नहीं दे सकते तो कोई सोच की बात नहीं। आप अपने बाल-बच्चों के लिये अच्छी पूँजी छोड़ जाने के लिये अपनी ज़िंदगी का बीमा स्वतंत्रता से

एजेंटों की आवश्यकता है।

न्यू बंबई बैंकिंग, कारपोरेशन, लिमिटेड

में कराइए।

हेड आफ़िस——१७, इलिफ़न्स्टन सर्किल, फोर्ट, बंबई।

सच्ची शक्ति क्यों संग्रह नहीं करते ?

आँतों को ख़राब होने से रोकती हैं

पाचन-शक्ति ख़ूब बढ़ाती हैं
भारी-से-भारी भोजन पचाती हैं

ज्ञानतंतु की कमज़ोरी

साधारण कमज़ोरी

हर प्रकार की कमज़ोरी दूर करती हैं—

तंदुरुस्ती-ताक़त को बढ़ाती हैं।

—:o:—

प्रत्येक ऋतु में उपयोगी है।

क्या ?

झंडु की

सुवर्ण-मिश्रित

मकरध्वज गुटी

स्वल्प चंद्रोदय मकरध्वज
भैषज्य रत्नावली ध्व०

पूर्णचंद्रोदय तथा सुवर्ण और
चंद्रोदय का अनुपान मिलाकर
बनाई हुई सुनहरे खोलवाली

सुंदर मनोहर गोलियों से

सच्ची शक्ति का संग्रह करो

झंडु फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बंबई नं० १४

लखनऊ के एजेंट—ज्ञानेन्द्रनाथ दे, कमला भण्डार, ८ श्रीरामरोड।
प्रयाग के एजेंट—लक्ष्मीदास ऐंड ब्रादर्स ४६, जॉनस्टनगंज।
दिल्ली के एजेंट—बालबहार फ़ार्मेसी, चाँदनी चौक।
कानपुर के एजेंट—पी० डी० गुप्ता ऐंड कं०, जनरलगंज।

क़ीमत एक तोला ८)

मकरध्वज का विवरणपत्र और
आयुर्वेदिक दवाइयों का सूचीपत्र आज ही मँगाइए।

संसार की सबसे अधिक अद्भुत मशीन

मानव-शरीर-रहस्य

(दो भाग)

लेखक, डॉ० मुकुंदस्वरूप वर्मा, बी० एस-सी०, एम्० बी० बी० एस०
चीफ़ मेडिकल ऑफ़िसर बनारस हिंदू युनिवर्सिटी, काशी

भावी वैद्य और डाक्टर ही नहीं सर्वसाधारण भी इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं।

स्वस्थ-शरीर ही जीवन का सच्चा सुख उठा सकता है।

सैकड़ों रंगीन और सादे चित्रों ने तथा सरल और सुबोध भाषा ने विषय को सुगम और मनोरंजक बना दिया है।

"लीडर" इलाहाबाद—

A perusal of the volumes of Manav Sharir Rahashya gives a clear idea of structure and making of the human machine and will help our intelligent reader to keep it in a fit and efficient condition. An invaluable help to Ayurvedic Physicians to acquire modern knowledge of anatomy and physiology

रा. ब. कैप्टन पीताम्बर पंत, आई. एम्. एस्. (रिटा.)
सिविल सर्जन, उन्नाव –

"The author has succeeded well in his aim in pushing such a work for popular instruction. It could also be profitably introduced in the many indigenous Ayurvedic Medical School.........to have some elementary idea of the Basic work on which the structure of modern medicine stand

पं० कृष्णप्रसादजी वैद्य, स्था. प्रिंसिपल, आयुर्वेद-महाविद्यालय, पाटन—

It is the first of its kind in Indian vernaculars, and as such it has met with the long felt want of a manual of Physiology

नागरी प्रचारिणी-सभा काशी द्वारा लेखक को २००) और सोने के रेडिची-पदक से पुरस्कृत।

साहित्य-सुमन-माला के ग्राहकों को यह पुस्तक पौने मूल्य में मिलेगी।

पुस्तक में क्या है—

भाग १

१ परमाणु और सेल
२ मानव-साम्राज्य का निर्माण और उसकी शाखाएँ
३ आधार और प्रेरक संस्थान
४ संधियाँ
५ मांसपेशी
६ रक्तवाहक-संस्थान
७ श्वास-संस्थान
८ पाचक-संस्थान
९ यकृत्

भाग २

१० वृक्क और उसका कार्य
११ त्वचा
१२ मानव राज्य का संचालक
१३ शरीर की कुछ ग्रंथियाँ
१४ ज्ञानेंद्रियाँ
१५ नेत्र
१६ कर्णेन्द्रिय
१७ उत्पादन
१८ जाति की उत्पत्ति
१९ आनुवंशिक परंपरा
२० वृद्धि वृद्धावस्था और मृत्यु

दोनों भागों का मूल्य ५)

इस कूपन को आज ही भेजिए।

नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ

प्रिय महाशय,

कृपया एक सेट 'मानव-शरीर-रहस्य' का शीघ्र वी० पी० से भेजिए।

नाम..
पता..
शहर..

पुस्तकालय की शोभा ऐसी ही पुस्तकों से है

विज्ञान-वार्ता

लेखक

श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी

मूल्य १।=)

यह वैज्ञानिक युग है। ज़माने के साथ चलने के लिये हर एक व्यक्ति को विज्ञान-संबंधी थोड़ी-बहुत बातें जानना आवश्यक ही नहीं, वरन् अनिवार्य है।

हिंदी में अभी तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं नज़र आई जो जनता को आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञानों का दिग्दर्शन भी करा सके।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह विज्ञान-वार्ता निकाली गई है।

विषय-सूची से ही आपको इसे पढ़ने की ओर अनेक ज्ञातव्य बातें जानने की उत्कट इच्छा होगी।

एक बार इस पुस्तक को पढ़ जाइए और फिर देखिए आपने कितनी नई बातें मालूम कीं।

यू० पी० के शिक्षा-विभाग से पुस्तकालय के लिये स्वीकृत।

विज्ञान-वार्ता में क्या है?

विज्ञान की महत्ता
प्रतिभा
पृथ्वी
पृथ्वी की प्राचीनता
अक्षांश और रेखांश
मार्तंड-महिमा
दीप्तिमंडल और सूर्याभास
मंगल
मंगल के चित्र
मंगल ग्रह तक तार
ग्रहों पर जीवधारियों के होने का अनुमान
आँख की फ़ोटोग्राफ़ी
शरीर के भीतरी भागों के फ़ोटो
रंगीन छाया-चित्र
भारत की चित्र-विद्या
अध्यापक वसु के अद्भुत आविष्कार
वानस्पतिक सज्ञानता
कृत्रिम-प्राण-संचार की चेष्टा
ध्वनि
संगीत के स्वर
विकास-सिद्धांत
न्याय-शास्त्र का महत्त्व
संपत्ति-शास्त्र
रेडियम
मूँगा
तार द्वारा ख़बर भेजना
हिसाब लगानेवाला यंत्र
कुछ आधुनिक आविष्कार
रक्त-विज्ञान

मैनेजर, नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

पढ़िए और अपना जीवन सुधारिए

काम-कुंज

मूल्य २॥)

लेखक—श्रीसंतराम बी० ए०

स्त्री-पुरुष-संबंधी कितनी ही ऐसी बातें हैं, जिनके न जानने से मनुष्य को जीवन का सच्चा सुख और आनंद नहीं मिलता। धन, जन और विद्या के होते हुए भी उनके चित्त को ईप्सित शांति नहीं मिलती। स्त्री-पुरुष-संबंधी शास्त्र की अनभिज्ञता के कारण सुविख्यात और लोकमान्य नेताओं को, उच्च पदाधिकारियों को, लक्ष्मी के लाड़लों को, सरस्वती के सपूतों को भी जीवन का सच्चा सुख नहीं मिलता। उस सुख की प्राप्ति के लिये वे निरंतर मथा करते हैं। जिसके अभाव से वे चिंताओं और अनेक प्रकार के रोगों के शिकार बने रहते हैं। पवित्र और सच्चा प्रेम उनको आकाश-कुसुमवत् मालूम होता है। कारण, वह स्त्री के हृदय को समझ नहीं सकते, स्त्री-प्रेम की परख नहीं कर सकते, उनकी मौन भाषा को समझने की उनमें शक्ति नहीं, उनके संकेत का उन्हें ज्ञान नहीं, उनकी सहिष्णुता का उनके यहाँ कोई आदर नहीं, उनके आचार-विचार के रहस्य समझने की बुद्धि नहीं, उनकी अजेय शक्ति का उन्हें भान नहीं, उनके प्राकृतिक सौंदर्य की सराहना नहीं; तब फिर जीवन का आनंद कहाँ? काम-कुंज को पढ़िए और इसके रहस्य को जानिए।

काम-कुंज
अश्लील नहीं है

विषय-सूची

- स्त्री-सौंदर्य
- गृहस्थों के प्रति
- सखी-हृदय
- स्त्रियों की मौन भाषा
- संकेत
- अजेय शक्ति
- काम-शास्त्र और स्त्रियाँ
- स्त्री प्रेम के लिये सर्वस्व दे सकती है
- स्त्री की सहिष्णुता
- सती-धर्म पालन के कुछ उपाय
- वेश्या-वृत्ति
- स्त्री को पुरुष की संगति पसंद है या स्त्री की
- पश्चिम की आधुनिक स्त्री
- महाशक्ति
- अबलाओं के आँसू

प्रत्येक गृहस्थ को इसे
एक बार अवश्य पढ़ना
चाहिए

मैनेजर, नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

आप कैसे कहानी-लेखक बन सकते हैं ?

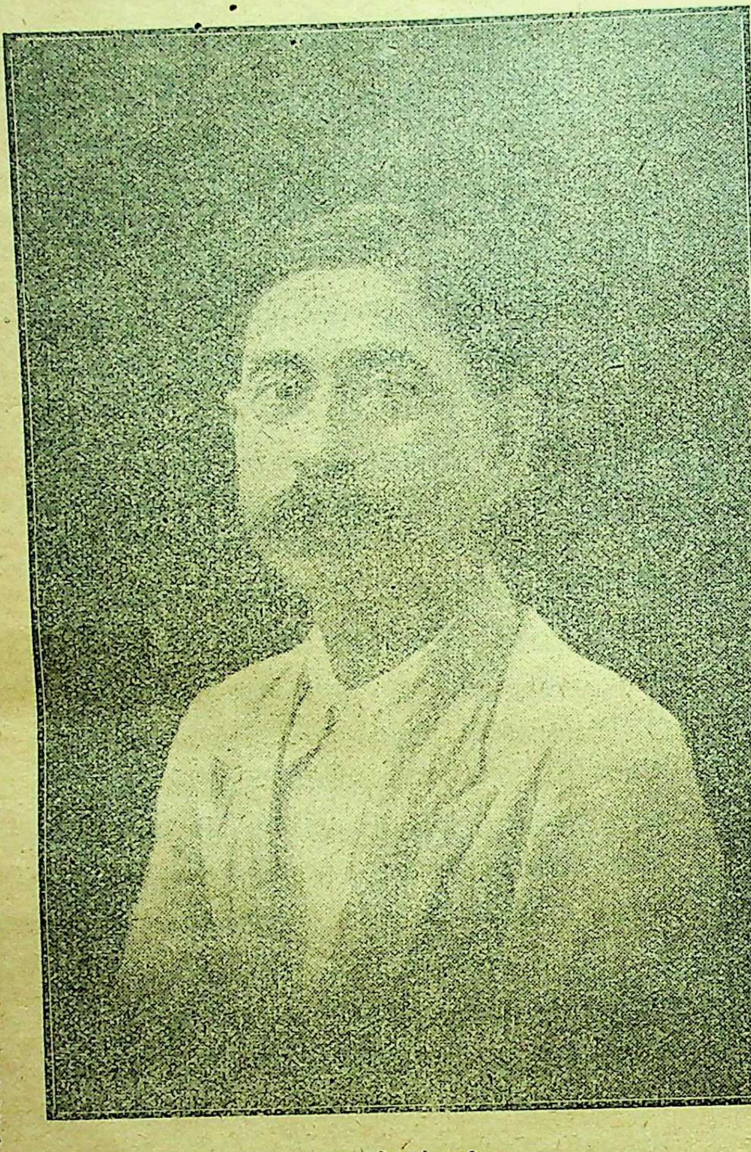

श्रीप्रेमचंदजी

कहानी लिखने में श्रीप्रेमचंदजी उस्ताद हैं, अपना सानी नहीं रखते। आपके भाव मर्मभेदी और भाषा टकशाली होती है। एक नहीं अनेक बार पढ़िए, चाहे जब पढ़िए, सदा नया मज़ा आएगा। कभी उसे समाप्त किये बिना नहीं छोड़ेंगे। कभी आप कहेंगे, मेरे ही ऊपर कहानी लिखी गई है, कभी कह उठेंगे, 'यह तो अमुक व्यक्ति का हाल है। यही कहानी की कसौटी है। आप उसे सच्ची घटना समझेंगे, कोरी कल्पना नहीं। इनकी कहानी में आप क्या देखेंगे ?

मनोरंजन और शिक्षा का अपूर्व योग, समय का सदुपयोग और बुद्धि का विकास, साहित्यकाज्ञान और देश-दुर्दशा का अनुमान

इनके आदर्श भाव और अनुपम शैली ने तो कितनों को कहानी लिखने की ओर आकृष्ट किया और वे अ अच्छे कहानी-लेखक हो गये हैं। क्या आप भी ऐसे उत्कृष्ट लेखक के भाव भाषा और शैली का अनुकरण कर अपनी आमदनी का मार्ग खोलन नहीं चाहते ?

अग्नि-समाधि और अन्य कहानियाँ

स्वयं पढ़िए और अपनी स्त्री तथा लड़के लड़कियों को भी पढ़ने को दीजिए। कहानी द्वारा उत्कृष्ट-जीवन कर्त्तव्य-ज्ञान, सामाजिक-अवस्था का ज्ञान और प्रचलित कुरीतियों और अवगुणों का मूलोच्छेद कैसे हो सक है, यह इसके पढ़ने से मालूम होगा। भाव, भाषा और शैली तो अनूपम और आदर्श हैं। मूल्य १।)

आज़ाद-कथा (दो भाग)

इसे पढ़ते समय कभी आप आश्चर्य से उँगली दबाएँगे, कभी आनंद से उछल पड़ेंगे और कभी हँसते-हँसते लोटन क़बूतर हो जायँगे। इसमें नवाबी समय के लखनऊ जीवन का जीता-जागता ख़ा है। मूल्य दोनों भागों का ४।)

साहित्य-सुमनमाला के ग्राहकों को ये पुस्तकें पौने मूल्य में मिलेंगी.

नवलकिशोर प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.

महाशय,

कृपया अग्नि-समाधि और अन्य कहानियाँ तथा आज़ाद दोनों भाग वी. पी. से शीघ्र भेजिए। बड़ा सूचीपत्र भी।

नाम और पता

लड़के क्या चाहते हैं ? कहानी और क़िस्से ।

तो उन्हें आप

बाल-कथा-कौमुदी—मूल्य ॥=)

और

प्यारी कहानियाँ—मूल्य ॥)

क्यों नहीं देते ? दोनों शिक्षाप्रद, कौतूहलवर्द्धक और मनोरंजक कहानियों से भरी हैं ।

* * *

वैचित्र्य-चित्रण

लेखक

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी

मूल्य ॥=)

इसमें सृष्टि की अजूबात का वर्णन बड़ी मार्मिक भाषा में किया गया है । पुस्तक में अनेक नई और आश्चर्यजनक बातें पढ़कर आनंद उठाइए । इसका हर एक पृष्ठ नई-नई और अचरज में डालनेवाली बातों से भरा है । समय के सदुपयोग और ज्ञान-वृद्धि का सरल और मनोरंजक साधन ।

* * *

ज्योतिष तत्त्व प्रकाश

लेखक

दैवज्ञ चक्रचूड़ामणि, विद्यावारिधि पं० लक्ष्मीकांत कांडपाल, ज्योतिषाचार्य

इसे अगर हम ज्योतिष-शास्त्र का सार कहें, तो अत्युक्ति नहीं होगी । भाषा का साधारण ज्ञान रखनेवाला भी इससे ज्योतिष-शास्त्र-संबंधी अनेक ज्ञातव्य बातें जान सकता है । ऊपर मूल श्लोक देकर उसके नीचे बहुत सरल और सुंदर भाषा में उसका मतलब समझाया गया है । लग्न, मुहूर्त्त, फलादेश आदि बातें और इस संबंध की अन्य आवश्यक बातें जानकर इस विषय में अच्छी योग्यता प्राप्त की जा सकती है । पुस्तक को सर्वोपयोगी और विषय को सरल बनाने में कोई बात उठा नहीं रक्खी गई है । सजिल्द पुस्तक का मूल्य ५)

पं० आनंदवल्लभ पांडेय, ज्योतिषी, ज्योतिषशास्त्र कार्यालय, कोटा, नैनीताल—

पुस्तक इतनी उत्तम आपने बनाई है मानो गागर में सागर को भर दिया है । कोई भी विषय आपने नहीं छोड़ा ।

मिलने का पता—मैनेजर, नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ ।

UNIQUE OPPORTUNITY ! AVAIL OF I

A BOON TO BOOK-LOVERS

-at 25 % off-

As They Are Slightly Soiled.

Names of Books.	Price. Rs.	a.	p.
Anderson's Popular Tales—			
Anderson's Fairy Stories	0	12	0
,, Stories for the Young ...	0	12	0
Beeton's Ready Reckoner ...	0	12	0
Bunyan's Pilgrim's Progress ...	0	12	0
The Bible, Students' Hand-book ...	0	12	0
Cobbett's English Grammar ...	0	12	0
County Court Hand-book ...	0	12	0
Conquerors and Captives ...	0	12	0
The Doctor by Geo. Black, M B. (Edin.) and others.	0	12	0
Complete Etiquette for Ladies ...	0	12	0
Five Weeks in a Balloon ..	0	12	0
House-Holders' Law Book ...	0	12	0
How to Dance	0	12	0
The young wifes' Advice Book ...	0	12	0
Sea air and Sea Bathing ...	0	12	0
Sleep and How to obtain it ...	0	12	0
The skin Health and disease ...	0	12	0
Eyesight and How to care of it ...	0	12	0
Line Upon Line by the Author of Peep of Day, Part I	0	12	0
Line Upon Line by the above Author, Part II.	0	12	0
The Law of Landed Property ...	0	12	0
Mansfield Park	0	12	0
The Married Women's Property Act	0	12	0
Northanger Abbey ...	0	12	0
Our Nurses and the Work they have to do.	0	12	0
The Peer and the Woman ...	0	12	0
Hearing and How to keep it ...	0	12	0
Sick Nursing	0	12	0
Debit and Credit (novel) ...	2	8	0
Queechy	0	12	0
Sylvia's Illustrated Lady's Lace Book	0	12	0
The Students' illustrated Bible	0	12	0

Names of Books.	Pr Rs	a.
Dictionary.		
Sandford and Merton ...	0	12
Dombey & Son ...	1	4
Sandford and Merton by Thomas Day.	0	12
Robinson Crusoe	0	12
The Wide Wide World ...	0	12
Concise Guide to Health	0	6
Queechy	0	8
Webster's Pocket Pronouncing Dictionary of the Eng. Language.	1	0
Below the Surface	2	8
The Essays of Adam Smith ...	2	8
Memorable Men and Noteable Events, &c.	2	13
Coil and Current or the Triumphs of Electricity.	2	8
Famous Musical Composers ...	2	8
Gressy and Poietiers ...	2	10
The Karak-orams and Kashmir, an account of a journey.	7	8
The Log of a Jack Tar ...	1	8
Paul and His Friends ...	2	8
How we kept the Flag Flying ...	2	4
Hume's History of England in 3 Vols. complete.	7	8
Hubert Ellis	2	8
Master Missionaries	2	8
History of Rome	2	13
History of Greece	2	13
Sydney Smith's Essay... ...	2	8
Sandfort Merton	1	8
Sandfort Merton (small edition) ...	1	2
Robinson Crusoe	1	14
The Story of the Nations—Vedic India	3	4

To be had of—Manager, Book-Depot, N. K. Press, Luckno

कुछ चुनी हुई स्त्रियोपयोगी पुस्तकें

भार्या-हित

अँगरेज़ी पुस्तक Advice to a wife का हिंदी अनुवाद। मासिक-धर्म, गर्भाधान, प्रसव-पीड़ा और बच्चे को दूध पिलाना इत्यादि अनेक उपयोगी विषय बड़ी उत्तमता से वर्णन किए गए हैं। पृष्ठ-संख्या ३२०; मूल्य ।॥)

महिला-हितैषिणी

इसमें स्त्री-संबंधी सभी उपयोगी और ज्ञातव्य विषयों का समावेश बड़ी सुंदर और सरल भाषा में किया गया है। प्रत्येक गृहिणी को इसकी एक प्रति अपने पास अवश्य रखनी चाहिए। पृष्ठ-संख्या २३०; मूल्य १)

स्त्री-उपदेश

आर्य-ललनाओं के लिये यह बड़ी उपयोगी है। इसमें अनेक शिक्षाप्रद और मनोरंजक उपदेश दिए गए हैं। भाषा भी ऐसी सरल है कि साधारण पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ इसे सहज ही में समझ सकती हैं। पृष्ठ-संख्या १७८; मू॰ ॥)

स्त्री-सुबोधिनी

नया और सचित्र संस्करण

स्त्रियों के लिये इससे बढ़कर उपयोगी और उत्तम पुस्तक दूसरी कोई नहीं है। पृष्ठ-संख्या ७६८; मूल्य सजिल्द पुस्तक का २॥)

स्त्री-दर्पण

इसमें विद्यानुरागिनी लड़कियों और स्त्रियों का परमार्थ-साधन, गृह-कार्य की प्रवीणता और अनेक प्रकार की अमूल्य शिक्षाएँ अति सरलतापूर्वक वर्णन की गई हैं। पुस्तक लड़कियों के पढ़ने-योग्य है। पृष्ठ-संख्या १६४ मू॰ ॥)

शिवनारायण-भजनमाला

संगीत और मनोरंजन का अपूर्व साधन। ग़ज़ल, ठुमरी, दादरा, कजरी, ख़्याल आदि में ईश्वर-संबंधी सुंदर और उत्तम भजनों का अनोखा संग्रह। पृष्ठ-संख्या २४०; मूल्य ॥)

पतिव्रता-स्त्रियों के जीवन-चरित्र

अगर आप चाहते हैं कि हमारी स्त्रियाँ वीर संतान उत्पन्न करें या हमारी बहनें और कन्याएँ सुचरित्रा एवं सुशीला बनें, तो एक बार इस पुस्तक को अवश्य उनके हाथ में दीजिए। पृष्ठ-संख्या ३५८; मूल्य १=)

नारी-चरितमाला

यदि आपको अपने देश की सुचरित्रा, आदर्श और विदुषी स्त्रियों के चरित्रों से अपनी प्यारी स्त्रियों, बहनों या कन्याओं को उत्तमोत्तम उपदेश देने हों, तो इस पुस्तक को अवश्य ख़रीदें। मूल्य ॥=)

मैनेजर, नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

भगवद्गीता भाषा

अठारहों अध्याय माहात्म्य सहित,

सुंदर, सचित्र और सरल भाषा में

टाइप बड़ा; पृष्ठ-संख्या ४८८; मूल्य १=)

संस्कृत न जाननेवाले वृद्ध स्त्री-पुरुषों के लिये यह अति उत्तम पुस्तक है

तुलसीकृत

रामायण गुटका

सुंदर ग्लेज़ कागज़ पर ॥)

रफ़ कागज़ ।=)

साहित्य-सेवियों और राम-भक्तों के लिये नित्य पाठ करने के लिये यह जेबी गुटका सर्वोत्तम है ।

विनय-पत्रिका

टीकाकार स्व० बैजनाथजी ।

यह पुस्तक बहुत दिनों से अप्राप्य थी । मूल्य ३)

हिंदी-अँगरेज़ी-शिक्षक

यानी

इंगलिश-टीचर

घर बैठे बहुत थोड़े समय में अँगरेज़ी सीखने की सर्वोत्तम पुस्तक । केवल इसी को पढ़कर काम चलाऊ अँगरेज़ी सीखी जा सकती है । तार या चिट्ठी आने पर इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी । मूल्य ॥)

तुलसीकृत

रामायण मध्यम सू

मूल्य १।=)

अपने ढंग की यह भी बहु सस्ती पुस्तक है । हर एक व्य को इसकी एक प्रति अप पास रखनी चाहिए ।

बीजक कबीरदास

श्रीकबीरदासजी की वा का संग्रह । टीका श्रीवि नाथसिंहजी ने की है । सजिल्द ३)

कालिदास
और
शेक्सपीयर

प्रणेता—श्रीछन्नूलाल द्विवेदी—

अँग्रेज़ी और संस्कृत नाटकों की ख़ूबियाँ देखना हो और समय का सदुपयोग करना हो, तो इसे अवश्य पढ़िए । पढ़ने में उपन्यास-सा आनंद आता है । मूल्य २)

सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—

मैनेजर, नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

THE

"His Master's Voice"

CAMP MODEL

"हिज़ मास्टर्स वायेस" केम्प माडेल।

यह मशीन जिस ख़ूबसूरती के साथ आवाज़ को तेज़ करती है वह वेशक आदमी की अक़्ल से बाहर है। अपने क़ायदे के मुताबिक़ यह बाजा गाने के हर लफ़्ज़ को अलग-अलग और उसके सुर-ताल, राग-रागिनी और मुख़्तलिफ़ साज़ों की असली ख़ूबी का बिलकुल ठीक-ठीक नमूना अपने सुननेवाले के आगे पेश करता है।

लेकिन अगर आपको इसमें ज़रा भी शुभा हो तो मेहरबानी करके अपने आस-पास के किसी ग्रामोफ़ोन डीलर की दूकान पर जाकर ख़ुद उसकी ख़ूबियों का अन्दाज़ा कर लीजिए।

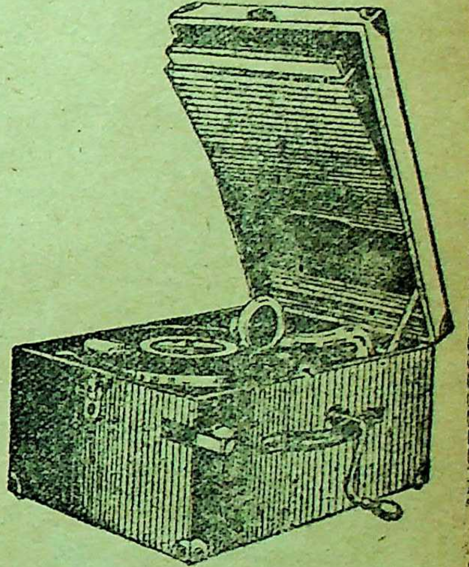

डबल स्प्रिंगवाला केम्प माडेल नं० ११२

मूल्य—१६५) रुपैया।

दी ग्रामोफ़ोन
कम्पनी लिमिटेड,
दमदम और बम्बई।

HIS MASTER'S VOICE

लाइफ़ इन्श्युरेंस

[बीमा]

प्रबंधक हिंदुस्तानी
और हिंदुस्तानियों के लाभ के लिये।
सत्याग्राहियों के लिये विशेष सुविधा

मुफ्त

यदि आप अधिक प्रीमियम (मासिक चंदा) नहीं दे सकते, तो कोई सोच की बात नहीं। आप अपने बाल-बच्चों के लिये अच्छी पूँजी छोड़ जाने के लिये आप अपनी ज़िंदगी का बीमा स्वतंत्रता से

एजेंटों की आवश्यकता है।

न्यू बंबई बैंकिंग, कारपोरेशन लिमिटेड

में कराइए

हेड आफ़िस—**१७, इलिफ़िन्स्टन सर्किल, फ़ोर्ट, बंबई।**

चूहा-घूसनाशक दवाई

RATINE
रॅटाईन
DR. GUNE. KARAD, (S.M.C)

इससे चूहे और घूस मर जाते हैं और बाक़ी बचे हुए सब भाग जाते हैं। खेत, बग़ीचे और मकान में सर्वत्र इसका व्यवहार किया जा सकता है। मूल्य प्रति पुड़िया =), १२का १), ४०का ३), १२ पैकेट से कम का वी॰पी॰ नहीं भेजा जाता। पोस्टेज ४० पैकेट तक का ।) ११३

डा॰ गुने, पो॰ कराड, ज़ि॰सतारा

धातुपुष्ट की अद्वितीय

"जाड़े में मज़ेदार जलपान
खाय बूढ़ तो होय जवान"

दिल दिमाग़ बल वीर्य वर्धक !!!

वीर्यराज-मोदक

क्या मेवा मिश्रित स्वादिष्ट पुष्टई है। इसके थोड़े ही दिनों के सेवन से देह में नई कांति झलकने लगती है। वीर्य को शुद्ध कर गाढ़ा तथा लसीला बनाता है। धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन और नामर्दी को दूर कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ बनाता है। १) में १६ लड्डू।

पता—**आयुर्वेदाचार्य आ॰ महोपाध्याय,**
पं॰ श्रीधर्मनाथ मिश्र काव्यतीर्थ
भास्कर महौषधालय, दानापुर कैंट

सिद्ध भैरव कवच

(चाँदी के तावीज़ में)

यह कवच ३५ वर्ष की कठिन तपस्या के बाद एक महात्मा की कृपा से प्राप्त हुआ है और उन्होंने सिद्ध भी करा दिया है। इसके द्वारा १—होनहार स्वप्न में ज्ञात होना, २—प्रेतबाधा दूर होना, ३—मुक़दमा में जीत, ४—संतान-प्राप्ति, ५—परीक्षा में पास होना, ६—नौकरी मिलना, ७—तब्दीली, ८—तरक़्क़ी, ९—वशीकरण, १०—रोग मुक्ति, ११—आत्मरक्षा, १२—विवाह होना इत्यादि कार्य पूर्ण होते हैं। डाकव्यय-सहित मूल्य ३)

नोट—१—किसी महाशय को एक से अधिक भेजने की आज्ञा नहीं।
२—विधवा नं॰ ४ व ९ के लिये न मँगावें।
३—पत्र गुप्त रखे जाते हैं। मँगानेवाले अपना कार्य लिखें।

गंडा—बालरोगादि शांति पर क़ीमत ॥) जन्मपत्र २) वर्षफल १)

पता—**सिद्धि-आश्रम, झाँसी नं॰ २**

अब आप क्यों विदेशों का मुँह ताकते हैं

जब कि

जुग्गीलाल कमलापत काटन मिल्स में सुन्दर से सुन्दर और मज़बूत धोती जोड़े, साड़ियाँ, मलमल, दुपट्टे तथा अन्य सूती सामान भारत की पूँजी से और भारतीयों ही के परिश्रम से विदेशी माल से भी उच्च कोटि का तैयार होता है।

जुग्गीलाल कमलापत होज़री फ़ेक्टरी में तरह तरह के ऊनी-स्वेटर व स्वेटर-कोट तथा मोज़े और बनियायन एवं अन्य सामान ऊनी और सूती प्रस्तुत कराया जाता है।

और

जुग्गीलाल कमलापत जूट मिल्स में हेसियन रंग बिरंगे केनवास, तिर्पाल, गनीबैग और सुतली इत्यादि बनते हैं।

हमारा प्रत्येक माल शुद्ध स्वदेशी है और प्रत्येक देशभक्त बिना किसी हिचकिचाहट के इसे इस्तेमाल कर सकता है। सस्तेपन और मज़बूती में तो अद्वितीय ही है और इन्हीं सब कारणों से भारत के कोने-कोने में बिकता है। हमारे यहाँ ग्राहकों की सुविधा का भी विशेष ध्यान रक्खा जाता है।

पत्र व्यवहार—**जुग्गीलाल कमलापत.**

काटन-स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स कम्पनी लिमिटेड, कानपुर.

हज़ारों बचाइए ! हज़ारों कमाइए !!

"सुगंधी व्यापारियों के लिये अमूल्य संधि"

सुगंधी-अर्क

सिर्फ़ "घोड़ा छाप" का ही विशुद्ध स्वदेशी है।

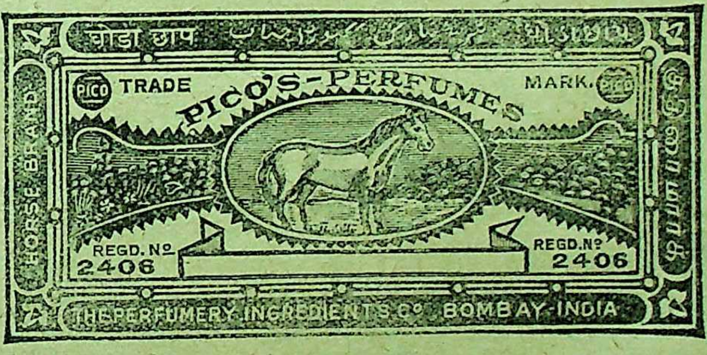
घोड़ा छाप
PICO TRADE MARK.
PICO'S-PERFUMES
HORSE BRAND
REGD. No 2406
REGD. No 2406
THE PERFUMERY INGREDIENTS Co BOMBAY-INDIA

विदेशी और नक़ली छाप से हमेशा सावधान रहिए।

हमारे कार्यालय के प्रख्यात एवं अधिक दिनों तक टिकाऊ एसेंस काम में लाने से आपको हज़ारों रुपयों की बचत होगी. क्योंकि अल्प मूल्य में ही उनसे बहुत माल बनता है।

हर प्रकार की नित्य व्यवहार की सुगंधित चीज़ जैसे सुगंधित तेल, ओटो, इत्र, सेंट, साबुन, गुलाब-जल, धूप-बत्ती, ज़र्दा-तमाखू, पान के मसाले, गोलियाँ, बाम, लवेंडर, क्रीम, मुँह में लगाने के पाउडर, मरहम, लोशन, सुगंधित नास (हुलास) इत्यादि इसी प्रकार की हज़ारों चीज़ें तैयार करने में सहायता देता है। असली स्वदेशी घोड़ा छाप एसेंस, अर्क़, मसाले इत्यादि की बिक्री हमारे यहाँ किफ़ायत से होती है। मूल्य-पत्रिका मुफ़्त।

डी० जी० गोरे की कं०, २१, मंगलदास रोड, बम्बई नं० २.

سمن بغرض انفصال مقدمہ

مقدمہ نمبر ۱۶۱۴ سنہ ۱۹۳۰ع خفیفہ

بعدالت جناب بابو شیوچرن صاحب بہادر منصف شمالی مقام اوناو

شیخ مصطفیٰ حسین ولد احمد حسین قوم شیخ ساکن حیدور پرگنہ و تحصیل ملیح آباد ضلع لکھنؤ مدعي

بنام

بنام مسماۃ بڑاو بیوہ گنگا بخش قوم ٹھاکر ساکن موضع دھمیانہ پرگنہ اوراس ضلع اوناو مدعاعلیہ

ہرگاہ مدعي نے تمہارے نام ایک نالش بابت ۶۶ روپیہ کے دایر کي ہے لہذا تم کو حکم ہوتا ہ تم بتاریخ دوسري ماہ جنوري سنہ ۱۹۳۱ع بوقت ۱۰ دس بجے دن اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مہ کے حال سے قرار واقعي واقف کیا گیا ہو اور جو کل امورات اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس ساتھہ کوئي اور شخص ہو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدہي دعویٰ مدعي مذکور کي اور ہرگاہ وہي تاریخ جو تمہارے احضار کے لیئے مقرر ہے واسطہ انفصال قطعي مقدمہ کے تجویز ہوئي ہے پس تم ازم ہے کہ اپنے جواب دعویٰ کي تائید میں جن گواہوں کی شہادت پر یا جن دستاویزات پر تم استدلال کرنا ے ہو اُسي روز اُن کو پیش کرو*

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ہوگے تو مقدمہ بغیرحاضري تمہارے مسموع اور فیصل ہوگا*

آج بتاریخ ۲۱ ماہ نومبر سنہ ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاري کیا گیا*

جج

اردر ۵ رول ۲۰ ضابطہ دیواني

سمن بغرض انفصال مقدمہ

مقدمہ نمبر ۹۲۷ خفیفہ ابتدائي سنہ ۱۹۳۰ع

بعدالت جناب کنور رگھوراج بہادر صاحب منصف کنڈہ مقام پرتاب گڈہ

رام نراین ولد بھگواندین برہمن مصر ساکن پورہ بیربل پرگنہ ڈھینگوس تحصیل کنڈہ ضلع پرتاب گڈہ مدعي

بنام کالو ساکن بیربل مذکور

بنام کالو ولد کامتا قوم درزی ساکن پورہ بیربل پرگنہ ڈھینگوس تحصیل کنڈہ ضلع پرتاب گڈہ مدعاعلیہ

ہرگاہ مدعي نے تمہارے نام ایک نالش بابت مبلغ ۱۲۱ روپیہ ۲ آنہ کے دایر کي ہے لہذا تم کو حکم ہوتا ہ تم بتاریخ ۱۳ ماہ جنوري سنہ ۱۹۳۱ع بوقت ۱۰ دس بجے دن اصالتاً یا معرفت وکیل کے مقدمہ کے حال سے قرار واقعي واقف کیا گیا ہو اور جو کل اُمور اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا ں کے ساتھہ کوئي اور شخص ہو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدہي دعویٰ ی مذکور کي کرو اور ہرگاہ وہي تاریخ جو تمہارے احضار کے لئے مقرر ہي واسطے انفصال قطعي مہ کے تجویز ہوئي ہے پس تم کو لازم ہے کہ اپنے جواب دعویٰ کي تائید میں جن گواہوں کي ت پر یا جن دستاویزات پر تم استدلال کرنا چاہتے ہو اُسي روز اُن کو پیش کرو*

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ہوگے تو مقدمہ بغیر حاضري تمہارے مسموع اور فیصل ہوگا*

آج بتاریخ ۲۹ ماہ دسمبر سنہ ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاري کیا گیا*

جج

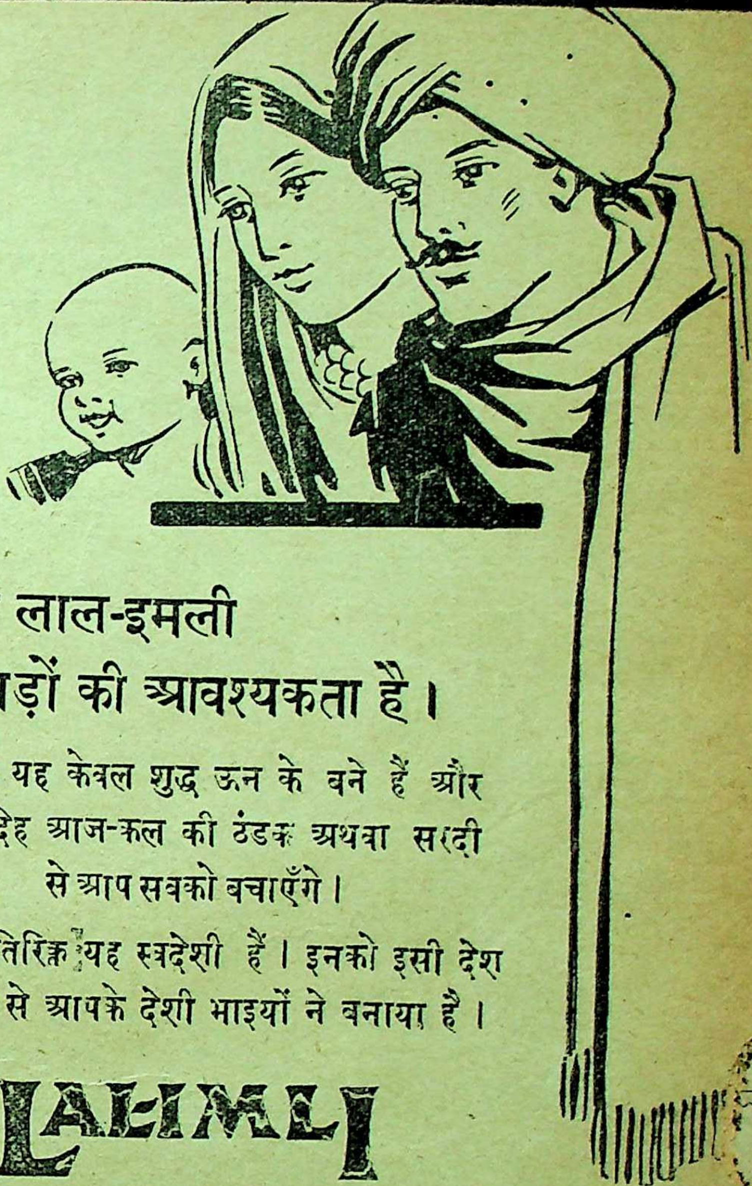

आपके घर में लाल-इमली के कपड़ों की आवश्यकता है।

क्योंकि यह केवल शुद्ध ऊन के बने हैं और निस्सन्देह आज-कल की ठंडक अथवा सरदी से आप सबको बचाएँगे।

इसके अतिरिक्त यह स्वदेशी हैं। इनको इसी देश के ऊन से आपके देशी भाइयों ने बनाया है।

लोइयाँ
टुईड
फ़्लालैन
स्वेटर
पुलओवर
नीचे पहिनने के कपड़े
मोज़े
स्टाकिंग्ज़
इत्यादि

LALIMLI

स्वदेशी

शुद्ध ऊनी कपड़े

LALIMLI
REGISTERED
TRADE MARK

लाल-इमली की एजेंसियाँ।

इलाहाबाद..................चौक
कानपुर......................मेस्टनरोड
आगरा........................सेडका बाज़ार
लखनऊ....................२६ अमीनाबाद पार्क

अपनी स्थानीय लाल-इमली-एजेंसी में जाकर खरीदिए या सीधे हमको लिखिए।

दि कानपुर ऊलन मिल्स, कानपुर

जो पचास वर्ष के अधिक समय से इस देश में ऊनी माल बनाते हैं।

सचित्र हिन्दी साप्ताहिक

मुफ़्त पढ़िये ।

देश विदेश के ताज़े समाचारों और सुंदर नये चित्रों से परिपूर्ण हिंदी साप्ताहिक 'स्वतंत्र' पाँच हज़ार शिक्षकों पुस्तकालयों, अछूत भाइयों, किसानों तथा श्रमजीवियों को एक साल के लिये मुफ़्त दिया जा रहा है । पेकिंग डाकव्यय के लिये १) का मनिआर्डर भेजकर लाभ उठाइये । धनी सज्जन इस रियायत से लाभ न उठाएँ । वे एक साल के लिये २) भेजने की कृपा करें ।

व्यवस्थापक—'स्वतंत्र'

४८, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता ।

सुंदर घुंघुराले बाल

बनाकर क्या आप प्रशंसित होना चाहते हैं ? तो 'कर्लवेभ' का व्यवहार कीजिये। इसके सेवन से एक ही रात में बाल घुँघुराले चमकदार हो जाते हैं । इससे कोई हानि नहीं होती, न देखने से यही मालूम होता है कि आपने कोई चीज़ लगा रखी है । असली माल है । दाम १॥) पैकेट

दि इण्डस्ट्रियल होम,

हेस्टिङ्गस कलकत्ता।

छप गया !

रवीन्द्रनाथ का नया उपन्यास

"कुमुदिनी" मूल्य ३)

रवीन्द्रका—**"गल्पगुच्छ"**

मूल्य १॥)

"भेड़ियाधसान"—मूल्य १॥)

'विशाल-भारत'

का

कला-अंक !

आगामी जनवरी १९३१ में निकलेगा

अभी से ग्राहक बनिये

वार्षिक मूल्य ६) छःमाही मूल्य ३)

पता—मैनेजर 'विशाल-भारत' कार्यालय,

१२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकता।

वैद्य हकीम बनने का सुगम साधन

यदि आप हकीम तुलसीप्रसाद अग्रवाल संचालक "बालजीवन घुट्टी" की बनाई हुई "तुलसी अनुभवसार" पुस्तक को ध्यानपूर्वक पढ़ लेंगे तो आप निःसंदेह वैद्य-हकीमों के समान अपनी और दूसरों की प्रत्येक बीमारी का इलाज बड़ी उत्तमता के साथ करने योग्य बन जावेंगे और यदि आप चाहेंगे तो इसके द्वारा औषधि व इलाज में घर बैठे सैकड़ों रुपया कमाने लगेंगे। मूल्य प्रति पुस्तक १) तीन पुस्तक ३) डाकव्यय अलग।

बाल जीवन घुट्टी रजिस्टर्ड बालकों के बुखार, खाँसी, अजीर्ण, दूध डालना, दस्त होना आदि प्रत्येक रोग को दूर करने और दुबले पतले बालकों को मोटा-ताज़ा बलवान बनाने के लिये प्रसिद्ध महौषधि है। मीठा होने से बालक इसको प्रसन्न होकर पी लेते हैं, सब जगह सौदागरों के यहाँ बिकती है। मूल्य प्रति शीशी।-) सौदागरों से प्रति दर्जन २॥) १२ दर्जन २४) डाकव्यय अलग।

मुफ़्त लो—जो सज्जन १० हिन्दी पढ़े प्रतिष्ठित लोगों के नाम पूरे पते सहित लिखकर भेजेंगे उनको "आरोग्य दीपक" पुस्तक मुफ़्त भेजी जावेगी।

पता—बालजीवन-घुट्टी-कार्यालय—अलीगढ़ शहर यू० पी०

गवर्नमेण्ट से रजिस्टर्ड (जौहर शिलाजीत)

पानी समान पतली और मलिन धातु को श्वेत तथा गाढ़ा करके बीसों प्रकार के प्रमेह अर्थात् पेशाब के पहले या पीछे धातु जाना, धब्बा लगना, पथरी, सुज़ाक, मुखरोग स्वप्नदोष, धातु-क्षीणता, निर्बलता आदि वीर्य सम्बन्धी समस्त रोगों के दूर करने में रसायन है। तथा मन्दाग्नि, जीर्ण ज्वर, दर्द, गुर्दा, चोट, गठिया, खाँसी, दमा, कफ, क्षय, कृमि पाण्डु, मृगी, उन्माद, वात, बवासीर, कुष्ठ आदि भयङ्कर रोगों में परम लाभदायक है एवं स्त्रियों के मासिक दोष प्रदर, प्रसूति सम्बन्धी रोगों को नष्ट करती है, मूल्य ४० दिन की खूराक ५ तोला ४) १० तो० ७॥) डाकखर्च पृथक्।

पता—**मैनेजर शिलाजीत-डिपो** नं० ११. हरद्वार, यू० पी०

बहुक्म जनाब ठाकुर सुरेंद्रविक्रमसिंह साहेब बहादुर मुंसिफ़ रायबरेली ख़फ़ीफ़ा

समन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नम्बर २०२१ ख सन् १९३० ई०

बअदालत मुंसफ़ी रायबरेली मुक़ाम रायबरेली

गुरदयाल वल्द मंगल मिश्र क़ौम ब्राह्मण साकिन देहली व कुम्हरावाँ ज़िला रायबरेली मुद्दई

बनाम—रामलाल………………मुद्दाअलेह

बनाम रामलाल वल्द परसादा क़ौम अहिर साकिन गनहरी परगना हैदरगढ़ ज़िला बाराबंकी

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत मुब० ७६) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ २२ बाइस माह जनवरी सन् १९३१ ई० बवक़् १० बजे दिन असालतन् या मारफ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रारवाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावै मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के नजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ २८ माह नवम्बर सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

नवजीवन की प्राप्ति कैसे ?

कल्याण कल्पद्रुम के व्यवहार से। यदि आप किसी प्रकार के भयानक से भयानक रोग, सड़े-गले घाव रक्तविकार, प्रदर, प्रमेह, अतीसार, नेत्र दर्द, रतौंधी, दाँत दर्द, सैन, भगंदर, उकवत, जहरबात, बर्रे, बिच्छू के डंक इत्यादि से तंग हो, जीवन से हताश हो बैठे हैं, तथा डाक्टर, वैद्यों ने लाचार हो दवा करना छोड़ दिया है तो कल्याण कल्पद्रुम का व्यवहार करे। दाम ॥) शीशी

महाशक्तिबाणः—पेट के तमाम रोगों की रामबाण दवा है। दाम ।=) शीशी।

करोड़ों घर ख़ाक क्यों हो गये

इसलिये कि व्याधि मूल ज्वर की उचित दवा न होने से। आज तक जो दो-चार उत्तम ज्वर की द है प्राय: उनमें कमज़ोरी, गर्मी का होना प्रधान दो है। जिससे ज्वर छूटने पर भी कई भयानक रो का सामना करना पड़ता है। अतः हमने श्रीकृष्ण रस ज्वर की शर्तिया तुरत फ़ायदेमंद दवा निकाली जिससे गर्मी कमज़ोरी होती ही नहीं। दाम ॥) शी

दद्रुदमन—दाद-खाज की अपूर्व, विना जल जड़ से नाश करनेवाली दवा है। दाम ।) शी०

नोटः—कोई भी दवा १ दर्जन लेने से चौथाई दाम माफ़। सूची मुफ़्त

मैनेजर—बिहार आयुर्वैदिक फार्मेसी, लक्ष्मीपुर, (गोरखपुर)

साधना औषधालय
ढाका (बंगाल)

ब्रांच—श्याम बाज़ार, कलकत्ता (ट्राम डिपो के पास)

अध्यक्ष—**जोगेशचन्द्र घोष, एम्० ए०, एफ्० सी० एस्० (लंडन)**

भूतपूर्व प्रोफ़ेसर रसायनशास्त्र भागलपुर-कालेज

सच्ची और पूर्णतः पवित्र होने की गारंटी है। सभी औषधियाँ आयुर्वेदशास्त्र के अनुसार ही तैयार की जाती हैं। सूचीपत्र फ़्री भेजा जाता है।

पूरा विवरण आने पर सावधानी से सभी रोगों की व्यवस्था फ़्री कर दी जाती है।

मकरध्वज (स्वर्ण-सिंदूर)

(पवित्र और असली सोने से युक्त)

सभी रोगों के लिए रामबाण है। शरीर की इस दवा के सेवन से पूरी-पूरी शुद्धि हो जाती है।

दाम ४) तोला

शुक्रसंजीवन

यह पुरुषत्व-हीनता आदि रोगों की अपूर्व औषध है। दाम १६) सेर

सारिवादिमरस

आतशक और सूज़ाक के लिए आश्चर्य गुणका औषध है। इसमें धातु की सभी बीमारियाँ खराबियाँ दूर हो जाती हैं।

अबलाबांधवयोग

स्त्रियों के सभी रोगों की इससे बढ़कर कोई औ तैयार नहीं हुई है। प्रदर का नाम नहीं रहता मासिक बिलकुल ठीक; दाम १६ मात्रा का २), ५० मा

"We Grow Bigger as we Serve,
We Serve Better as we Grow."

BISWAS & SONS.
MODEL FLUTE

You pay for our "MODEL FLUTE" Harmoni you buy our 50 years' wide experience—a predo nent feature in our trade.

People say it paying—why not you ? We are stockists of all sorts of MUSICAL INSTR MENTS. Illustrated catalogue free on applicatio

BISWAS & SONS,
5, Lower Chitpore Road., (Dept. M. 8) CA'CUT

लेख-सूची

पृष्ठ

१. हंस के प्रति—(कविता)—[लेखक, सुकवि घासीराम ६८९

२. अपराध-विज्ञान—[लेखक, पं० रमाशंकर मिश्र एम्० ए, बी० एल्... ... ६९०

३. जयपुर (सचित्र)—[लेखक, पं० विद्याभास्कर शुक्ल ६९५

४. अशेष और शेष—(कविता)—[लेखक, श्रीयुत मोहनलाल महतो 'वियोगी' साहित्यालंकार ७०३

५. देव का वैराग्यशतक—[लेखक, पं० विष्णुदत्त शुक्ल ७०४

६. स्वर्ग-सुख (कहानी)—[लेखक, पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी ७११

७. ख़ैयाम की रुबाइयाँ (कविता)—[लेखक, पं० बलदेवप्रसाद मिश्र एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, एम्० आर० ए० एस्० ... ७१९

पृष्ठ

८. महाकवि भूषण की इतिहास अनुकूलता (४)—[लेखक, श्रीयुत रामचंद्र-गोविंद काटे ७२१

९. डाकू (कहानी)—[लेखक, श्रीयुत गुप्तेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव 'कहानी-रंजन' ... ७२८

१०. बलाहक (कविता)—[लेखक, पं० रमाशंकरमिश्र 'श्रीपति' कविरत्न ७३३

११. उपाध्यायजी और अद्वैतवाद—[लेखक, श्रीयुत वासुदेवशरण अग्रवाल एम्० ए०, एल्-एल्० बी० (ऑनर्स) ... ७३४

१२. त्याग (कहानी)—[लेखक, श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव एम्० ए० ... ७४९

१३. बहता हुआ फूल (कविता)—[लेखक, श्रीयुत यमुनाप्रसाद चौधरी 'नीरज' बी० ए०, बी० एल्० ... ... ७५४

१४. उन्माद (कहानी)—[लेखक, श्रीयुत प्रेमचंद ७५६

१५. आलोचना और पुस्तक-परिचय—

महात्माजी का आदेश

सात लाख गाँवों को आज़ाद कीजिए

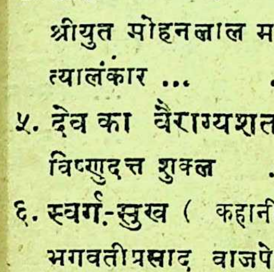

अत्यन्त उद्योग के पश्चात् इस अजीब 'पाकेट चर्खा' का आविष्कार किया गया है। इसके द्वारा बड़े चर्खे के समान सूत काता जाता है। इससे स्त्री, पुरुष, लड़के सभी बहुत आसानी के साथ रास्ता चलते-चलते सूत कात सकते हैं। आकार छोटी और वज़न में क़रीब आधा पाव का है। इस राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रत्येक व्यक्ति को साथ रखकर देश का उद्धार करना धर्म है। क़ीमत सिर्फ़ १) रुपया ३ लेनें से डाकख़र्च माफ़। ६ लेने से डाकख़र्च माफ़ और १ चरख़ा मुफ़्त।

पता—यूनियन क़मर्शियल स्टोर,
३ ब्रजुकुमारसेठ लेन डिपार्ट (२६) बिडन स्ट्रीट,
कलकत्ता।

धर्म साक्षीकर—

निष्फल लिखने से क़ीमत वापिस देंगे।

संतान निरोध—गर्भ निवारक सर्वश्रेष्ठ महौषधि सिर्फ़ एक बार के ऋतुकाल में १० दिन खानें से ज़िंदगीभर के लिये गर्भ निरोध होता है। औषधि बिलकुल निर्दोष और १३ वर्ष से सैकड़ों जगह में पूर्ण परीक्षित है। क़ीमत५)

कामिनी विहार—१ घंटे पहिले १ गोली दूध के साथ निगल जाइए और इसका मज़ा ज़िंदगी भर याद रखिए। दवा अत्यन्त पौष्टिक और निर्दोष है। १६ गोली १) ४० गोली २)

शेर की चर्बी—जोवन को जोखिम में डालकर प्राप्त। टेढ़ा और पतलापन, सुस्ती, कमज़ोरी, नपुंसकता, आदि इंद्रिय-संबंधी समस्त रोगों को दूर कर मज़बूत और दीर्घ करने की अचूक सर्वमान्य निर्दोष एक ही दवा है। ५ तोले में पूर्णफल। क़ीमत ४), १ तोला १)

पुत्रदा-रसायन—पुत्र जीवक, लक्षमणा, शिवलिंगी वंध्याकर्कोटी आदि दिव्य महौषधि द्वारा प्रस्तुत। प्रदर, ऋतुदोष, जरायु और बच्चेदानी की ख़राबी. मृतवत्सा, वंध्यापन आदि सर्व स्त्री रोगों को दूरकर गर्भ स्थापन करती है। गुरुदेव की दया से प्रायः सुंदर और दीर्घजीवी पुत्र ही होता है। अमीरों से ११) सर्वसाधारण से क़ीमत ५)

नोट—प्रत्येक दवा गारंटी पत्र के साथ भेजी जाती है।

पता—डाक्टर एस.सी. भादुरी एम.बी. वैद्यशास्त्री
[illegible] मंडी रोड मथुरा यू.पी.

विबाहित आनन्द

सजिल्द सचित्र

मूल्य १) एक-रुपैया डाक ।)

"मेरे सुसर ने मेरे पति को विवाह से पूर्व यह पुस्तक पढ़ने को दी थी। हमारे जीवन में जो इतना आनन्द का संचार है तो इस का कारण वह कहते हैं कि यही पुस्तक है जिस में विवाहित जीवन सम्बन्धी प्रत्येक विषय खोल कर लिखे हैं। "वह" तो इसे पूजते ही हैं।" (प्रियम वदा)

लेखक – **कविराज हरनाम दास बी.ए.**
लाहौर

स्वप्न-दोष
की
अद्भुत जड़ी

स्वप्न-दोष के समान सु
और आयु को हरनेवाला कोई
रोग नहीं । यदि आप द
करके थक गए हों, तो इस जड़ी
को ज़रूर आज़मावें । यदि य
एक ही दिन में धातु को स्तंभि
करके स्वप्न-दोष बंद न कर दे
तो दूना दाम वापस दूँ ।
चाहें प्रतिज्ञा-पत्र लिखवा लें ।
दाम ३) रु० ग़रीब विद्यार्थि
के लिये १) माफ़ ।

मिलने का पता—

पं० रामावतार शुक्ल
मौ० धोई, दरभंगा ।

प्रसिद्ध डॉक्टरों से बहुपरीक्षित और बड़े-बड़े समाचार-पत्रों व समालोचनाओं से उच्चप्रशंसित

Beware of Misnomer Imitations.

एसेन्स REGD फास्फरिया-पिल REGD.

उत्थानशील पेशी के उत्तेजक, शक्तिवर्द्धक, श्रेष्ठ ओषधि । पुरुषत्व-हानि, सुज़ाक, गर्मी (गनोरिया), स्वप्न-विकार, धातु-संबंधी रोगों और विकारों को दूर करने में इसके समान दूसरी दवा नहीं । अंत्रस्थ इनहिबेटारी नर्व के ऊपर क्रिया करके १ ख़ूराक में दीर्घ स्तम्भन-शक्ति आ जाती है । सूचीपत्र मुफ़्त । मूल्य एक शीशी १॥), ३ शीशी ४।) महसूल अलग ।

जि. वी. सि. पि. वर्कस्, हाटखोला (३६) कलकत्ता

Foreign orders to be paid in full advance.

१९०० खीष्टाब्द नदीया सेसन को
और १९१० खीष्टाब्द फरीदपुर को
से विजयी, देश विदेश के बहु संभ्रा
मनुष्य से प्रशंसित, प्रत्यक्ष फलप्र
कवच के साथ गारन्टी देते हैं।

लक्ष्मी-हनुमान-कवच——सर्व सिद्धिदाता धारण से प्रचुर अर्थ, आयु, आरोग्य, स्वास्थ्यसौंद विद्या, सौभाग्य, बन्धु, पुत्रलाभ, लाटरी और घो दौड़ में जयलाभ, परीक्षा में उत्तीर्ण, थोड़ा ही प श्रम में व्यवसाय-वाणिज्य में शीघ्र उन्नति और क लगना होता है । लक्ष्मी अचला होके बैठती है मूल्य ५) डा० ख़र्च ।=) आना । सूचना मुफ़्त ।

सिद्धवशीकरणकवच—धारण में शत्रु मित्र वश होके अनुगत और वाध्य होते हैं, मूल्य ३ महसूल ।=) विदेश के आर्डर के साथ पूर्ण मूल्य म० १॥=) पेशगी चाहिये ।

आर. एन. शर्मा, शोभाबाज़ार कलकत्ता (

अध्यक्ष—श्रीविष्णुनारायण भार्गव

वर्ष ९ खंड १ | पौष, ३०७ तुलसी-संवत् (१९८७ वि०) | संख्या ६ पूर्ण संख्या १०२

हंस के प्रति—

चुभि जैहैं तीछन पगन तरवन तव,
कहाँ लगि हेरि-हेरि कंटक निपाटौगे;
जैहैं पच्छ उरझि सुरझि सकिहैं न फेरि,
ह्वै करि विपच्छ ठाट कौन विधि ठाटौगे।
'घासीराम सुकबि' कमल मुकतान बिन,
घोंघिन के भीतर सु कौन रस चाटौगे;
असित कराल काग संगति अँगेजि, पोख-
रीन मैं मराल काल कब लगि काटौगे।

घासीराम

अपराध-विज्ञान

अपराध-विज्ञान का उद्देश्य तथा क्षेत्र

अपराध-विज्ञान के द्वारा हम समाज से अपराध के रोग को हटाते हैं । समाज-संगठन की वजह से वैयक्तिक जीवन का बचाव तथा उसकी उन्नति होती है । अपराधरूपी व्याधि के लग जाने से समाज का अनिष्ट होता है । हज़ारों साल से लोग इस समस्या के हल करने में लगे हुए हैं, परंतु पूरी सफलता प्राप्त होती नहीं देख पड़ती । इसका मुख्य कारण यह है कि हम अपराध के बाह्य कारणों पर तो दृष्टि डालते हैं, परंतु उसकी अंदरूनी बातों पर ध्यान नहीं देते । अपराध-रूपी वृक्ष की टहनियों को हम काटते हैं, पर उसकी जड़ काटने की तरफ़ ध्यान नहीं देते । अपराध-विज्ञान के ज़रिए तो हम उसकी जड़ को काट सकते हैं । इस शास्त्र से यही सामाजिक लाभ होता है । सभ्यतारोपण के ज़रिए पशु-रूपी मनुष्य वास्तविक मनुष्य बनाया जाता है । अपराध-विज्ञान का उद्देश्य यह होता है कि वह अपराधी को सच्चा सभ्य मनुष्य बनावे । इस तरह हम देखते हैं कि इस शास्त्र का स्वार्थ विश्वव्यापी है ।

अपराध-विज्ञान का दूसरे-दूसरे शास्त्रों से घनिष्ठ संबंध रहता है । लौम्ब्रोज़ो (Lombroso) * ने प्राणि-शास्त्र के आधार पर परंपरागत स्वभाव के सिद्धांत को क़ायम किया था । उन्होंने शरीर-परिच्छेद शास्त्र, प्राणि-धर्मगुण-शास्त्र, मानसिक-व्यथा-हरण-शास्त्र, मानव-शास्त्र तथा इतिहास के आधार पर अपनी राय क़ायम की थी । पशु-शास्त्र तथा वनस्पति शास्त्र के अध्ययन से यह बात साबित की गई थी कि अपराधी के आदर्श का सृष्टि में बहुत ही नीचा स्थान है । इन्हीं शास्त्रों के वास्तविक ज्ञान के ज़रिए उनके सिद्धांत का खंडन किया जा सकता है । अपराध के शारीरिक कारणों को जानने के पहले रोगनिदान-शास्त्र से जानकारी हासिल करना ज़रूरी है । मानव-जाति-विज्ञान, मानव-जातीय संस्कृति-शास्त्र, पर्वन-शास्त्र आदि का ज्ञान भी अपराध की समस्या के हल करने में ज़रूरी है; अपराध-विष समाज-शास्त्री को राजनीति, अर्थशास्त्र तथा समाज-शा का ज्ञान होना निहायत ज़रूरी है । मनोविज्ञा के सिद्धांतों से परिचित होने के पहले अपराध मानसिक कारणों का पता लगाना मुश्किल है । अपरा विषयक-दृश्य निदान-शास्त्र (Criminal Phenomenology) का अध्ययन करने के लिये अपरा विषयक कला, भाषा, साहित्य, मनोविज्ञान, मज़ तथा अंधविश्वास से परिचित होना ज़रूरी है अपराध-अन्वेषक को शरीर-शास्त्र तथा प्रकृतिविज्ञ के पंडितों से मदद लेनी पड़ता है । नीति-शास्त्र, मज़ और न्याय के मूल-सिद्धांतों से परिचित होने पर अपराध को समाज से दूर किया जा सकता है ।

अपराध-विषयक क़ानून के पंडितों को इस शास्त्र अध्ययन करना निहायत ज़रूरी है । अपराध-विज्ञान जानकारी हासिल न करने पर क़ानून की शिक्षा अ रह जाती है । अपराध-विज्ञान अपराध-विषयक क़ानून शिक्षा की आख़िरी मंज़िल है । सभ्य संसार के दंड-विध में नियमशील उन्नति लाने के पहले अपराध-विज्ञ के मूल-सिद्धांतों से परिचित होना क़ानूनवेत्ताओं लिये ज़रूरी है * ।

अपराध विज्ञान की व्याख्या

इसके पूर्व कि हम अपराध-विज्ञान की व्याख्या क अपराध की व्याख्या करना ज़रू मालूम पड़ता है । अपराध कि कहते हैं ? —'अपराध' शब्द से कार्य का बोध होता है, जिसका फल दंड है । तब प्र यह उठता है कि किसी कार्य के करने में ग़फ़लत हो यदि वह अपराध क़रार दिया जाय, तो इस तरह ग़फ़लत भी कार्य में सम्मिलित है या नहीं । बें (Bentham), आस्टिन (Austin) और डा मर्सियर (Dr. Mercier) का मत है कि

---

* Italian founder of the Science.

* Vide the Principles of Criminology. Pp. 1-

किसी कार्य के न करने के लिये इच्छा-शक्ति का प्रयोग करना पड़े, तो वह कार्य करना ही समझा जायगा।*

अपराध एक ऐसा कार्य है, जिसके लिये क़ानून द्वारा सज़ा मिले; यही इसकी सरल व्याख्या है। तब अपराध ऐसा कार्य हुआ जिसके लिये इलज़ाम लगाया जा सके। इलज़ाम लगाने के लिये एक ऐसे शख़्स का होना ज़रूरी है, जिस पर अपराध का प्रभाव पड़े। तब अपराध एक ऐसा कार्य हुआ, जिससे किसी दूसरे शख़्स को चोट अथवा नुक़सान पहुँचे। यदि किसी कार्य से किसी ऐसे जानवर को चोट पहुँचे, जो किसी मनुष्य की मिलिकयत नहीं, तो वह कार्य पाप हो सकता है, अपराध नहीं। यदि किसी कार्य के फलस्वरूप हिंदुओं के मुहल्ले की सड़क पर गाय मर जाती है, तो इससे उनके मज़हबी भाव पर चोट पड़ती है, और उस कार्य का प्रभाव उन पर अवश्य पड़ता है। इस तरह यह सिद्ध हुआ कि अपराध का प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मनुष्यों पर पड़ता है। सवाल यह उठता है कि यदि किसी कार्य से केवल किसी व्यक्ति को नुक़सान पहुँचे, पर समाज को उससे कोई हानि न हो, तो वह कार्य अपराध समझा जायगा या नहीं। प्रारंभिक काल में समाज व्यक्तिगत नुक़सान को अपना नुक़सान नहीं समझती थी, और अपराध के आधुनिक भाव से उस समय के लोग अपरिचित थे। इससे प्रकट हुआ कि अपराध एक ऐसा कार्य है, जिससे समाज को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से नुक़सान पहुँचे। यदि कोई कार्य समाज-विरुद्ध हो और उसके लिये यदि समाज घृणा प्रकट करे, तो वह अपराध समझा जयगा या नहीं। वह हरगिज़ अपराध नहीं समझा जा सकता; क्योंकि कोई कार्य अपराध तभी समझा जा सकता है, जब राज-संस्था क़ानून द्वारा सज़ा देकर उसका बदला ले। इस बात का निर्णय राज-संस्था ही को करना पड़ता है कि कौन-सा कार्य अपराध है। राज-संस्था किसी व्यक्ति अथवा संघ के नालिश करने पर अथवा स्वयं प्रत्यक्ष रूप से अपराध पर विचार कर सकती है, अपराधी से क्षतिपूर्ति करा सकती है अथवा उसे सज़ा दे सकती है। अस्तु, जिन कार्यों का बदला क्षतिपूर्ति के ज़रिए लिया जाता है, वे "टॉर्ट" (Tort) कहलाते हैं; जिन कार्यों के बदले राज-संस्था सज़ा देती है, वे अपराध कहलाते हैं।

अपराध एक ऐच्छिक कार्य है और इसलिये किसी कार्य की ज़िम्मेदारी नीयत पर बहुत कुछ निर्भर रहती है। अगर कोई पागल, जिसे भले-बुरे का ज्ञान नहीं है, कोई अपराध करे, तो क़ानून की नज़र में वह अपराध नहीं समझा जाता है। कुछ ऐसे कार्यों को भी अपराध की श्रेणी में रक्खा जाता है, जिसमें अपराधी को अपराध का ज्ञान न रहते हुए भी सज़ा दी जाती है—जैसे ख़राब जिंसों की बिक्री। कुछ ऐसे कार्य भी अपराध क़रार दे दिए जाते हैं, जो केवल मना करने की वजह से अपराध बन जाते हैं। जैसे—इस देश में सड़क की बाईं तरफ़ से गाड़ी ले चलना पड़ता है; दाहने तरफ़ ले जाना अपराध होगा। परंतु जर्मनी, फ़्रांस आदि देशों में सड़क की दाहनी ओर से गाड़ी ले जाने का हुक्म है। ऊपर यह कहा जा चुका है कि समाज-विरुद्ध ही होने से कोई कार्य अपराध समझा जा सकता है। यदि उसी कार्य से समाज की रक्षा हो, तो वह हरगिज़ अपराध नहीं समझा जा सकता है। युद्ध में दुश्मनों का मारना ख़ून नहीं समझा जाता; क्योंकि उससे समाज की रक्षा होती है। इसी नीति के अनुसार भगवान् कृष्ण ने कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन को उत्साहित किया था। इस तरह अपनी रक्षा के लिये हर मनुष्य को इख़्तियार होता है कि वह ज़रूरत पड़ने पर अपना बचाव ख़ुद करे और नेकनीयती के साथ ऐसा करने में यदि कोई आदमी मारा भी जाय, तो वह अपराध नहीं समझा जाता है।

देश-काल के लिहाज़ से भी अपराध की भावना में फ़रक़ रहता है। सुमात्रा-द्वीप के बट्टा लोग आज भी, और स्कैंडिनेविया के लोग ऐतिहासिक समय के पहले, यह समझते थे कि पुत्र का यह फ़र्ज़ है कि मा-बाप को, जब वे ऐसी बीमारी के शिकार हों जिससे चंगे होने की कोई आशा न हो, मार डालें।* राजपूतों में

---

* Of Section 32 of the Indian Penal Code (Act XLV of 1890) which runs thus:—

"In every part of this code, except where a contrary intention appears from the context, words which refer to acts done entend also to illegal omissions.

* Of—"Society will have recognized and legalized the citizen's right to suicide, or enthanasia, at his own request... . It will take

लड़कियों के क़त्ल करने की प्रथा आम तौर पर जारी थी। प्राचीन स्पार्टा के लोग लड़कों को चोरी करने के लिये उत्साहित करते थे। लैंगिक स्वच्छता के बारे में भी यही कहा जा सकता है। टैहीटी (Tahiti) के वहशी लोग मेहमानों के पास अपनी पत्नी को एक रात के लिये भेजना मेहमानदारी का फ़र्ज़ समझते थे। महाभारत में भी इसी रिवाज़ का ज़िक्र किया गया है *। बहुपति-विवाह की प्रथा प्राचीन समाजों में ज़ोरों से प्रचलित थी। कुछ अर्द्ध-सभ्य समाजों में बच्चा पैदा करने के लिये स्त्री यदि व्यभिचार करे, तो पति उस पर नज़र-अंदाज़ करता था। स्पार्टा की छोकड़ियाँ अखाड़े में नंगी होकर कुश्ती लड़ती थीं। सैंडविच द्वीप (Sandwich Iles) की कुछ जातियों में खुले आम गर्भाधान करने की प्रथा प्रचलित है। इस तरह हम देखते हैं कि अपराध के क्षेत्र का विस्तृत तथा संकुचित होना प्रत्येक समाज के सामाजिक तथा नैतिक आदर्श पर बहुत कुछ निर्भर है। अपराध-विज्ञान वह शास्त्र है, जिसके ज़रिए हम अपराध का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करते हैं †।

अपराध, अधर्म तथा पाप

यहाँ इस बात पर कुछ प्रकाश डाला जायगा कि अपराध (Crime), अधर्म (Vice) ‡ तथा पाप (Sin) में क्या फ़रक़ है। एक ही कार्य अपराध, अधर्म अथवा पाप समझा जा सकता है—केवल दृष्टिकोण में फ़रक़ होने की वजह से। उदाहरण के लिये वेश्यागमन अधर्म भी और पाप भी है, परंतु यह अपराध नहीं है। अगर रा संस्था इस काम के लिये सज़ा देने की व्यवस्था क तो वह अपराध क़रार दिया जायगा। राज-संस्था विरुद्ध कार्य करना अपराध होता है। समाज की नै धारणा के ख़िलाफ़ काम करना अधर्म कहलाता है, मज़हब की आज्ञा के विरुद्ध आचरण करना पाप सम जाता है। बेरेनीनो (Berenini) ने अपराध व्याख्या इस तरह की है—"अपराधों से ऐसे वैयक्तिक समाज-विरुद्ध प्रेरणाओं के कारण घटित कार्यों बोध होता है, जिनके कारण मौजूदा समाज-गठन धक्का पहुँचता है और किसी निश्चित समय में नि लोगों की साधारण नैतिक धारणा को चोट पहुँचती है

अपराध की अस्वाभाविकता

जब हम देखते हैं कि समाज का अधिकांश का नियम पालन करता है और सा जिक नियम के विरुद्ध काम करने को संख्या बहुत कम होती है, सहसा यह कहना पड़ता है कि अपराध एक अस्वाभा कार्य है। चूँकि अपराध जीवन-धारा के प्रवाह में पैदा करता है, इसलिये यह अस्वाभाविक कहा है। परंतु डर्कहीम (Durkheim) के विचा अपराध सामाजिक हित को मदद पहुँचाता है, कारण समाज सुधार की तरफ़ अग्रसर होती है इसी की वजह से वह हमेशा चौकन्ना रहती है †।

---

the form, not of painful and difficult self-execution, but of an easy and aquiable induction of artificial sleep, from which the patient will not wake."

Hymen by Norman Haire (Kegan Paul) Pp. 42-43.

* "The story narrated in the Mahabharat (Adi Parva, ch. 128) of Svetketu's protest against the custom of an honoured guest being allowed to lie down with the host's wife for a night or two, goes to show the looseness of marriage tie."

A Peep into Ancient Indian Sociology, by Dr. R. Shamsastry, published in the anuals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, vol XI—p. 204.

† Vide the Principles of Criminology Pp. 4-14.

‡ Of—'Whatever act receives social approbation is regarded as Dharma and w ever act meets with social cond emnatio Adharma.

—A peep into Ancient Indian Socio p. 212.

* Berenini's definiton is that c are 'punishable acts which determine individual and anti-social motives, di the existing social order and in most shock the average morality of a given p at a given time—Ferri's Criminal Soci p. 81. I have taken the quotation from P ples of Criminology by Mr. K.S. Pillai

† Durkheim regards crime to be ssolutly linked to society, as a 'fac public safety and an integral part o healthy Social body:—Principles of Cri logy, p. 14.

दृष्टि से अपराध अस्वाभाविक समझा जाता है; क्योंकि यह मानव-स्वभाव के विरुद्ध होता है। डेसपाईन (Despine) और गैरोफ़ेलो (Garofalo)-जैसे प्राणि-शास्त्र-विषयक नीति-वैज्ञानिकों का भी मत है कि हासिल किए हुए अच्छे गुणों के ग़ायब हो जाने से अपराध का जन्म होता है, इसलिये यह नियम-विरुद्ध (Anomalous) समझा जाना चाहिए। इनको समाज-शास्त्रियों का यह मत मान्य है कि मनुष्य स्वभाव से वेईमान होता है और नैतिक आचरण तथा भावना हासिल की हुई चीज़ होती है। अध्यात्मशास्त्रियों के मत से अपराध मानव-स्वभाव के परिमित होने का एक स्वाभाविक नतीजा है। अल्ब्रेक्ट (Albrecht) का मत है कि प्राणि-शास्त्र की दृष्टि से अपराध एक स्वाभाविक कार्य है, अपराधी भी ख़ुदगर्ज़ी को सामने रखकर काम करता है जिस तरह दूसरे-दूसरे जीव उसी प्रेरणा के अधीन होकर काम करते हैं। परंतु इटालियन-स्कूल अपराध को एक अस्वाभाविक काम समझता है। वे लोग अपराध को एक क़िस्म का रोग समझते हैं।

डाक्टर बटैग्लिया (Battaglia) का मत है कि अपराध अपराधी की ज़रूरत को पूरा करने का नतीजा है। जब कोई ज़रूरत बग़ैर पूरी हुए रह जाती है, तब तकलीफ़ शुरू होती है; इस तरह की तकलीफ़ से शरीर की काम करने की ताक़त कम हो जाती है, मानसिक गड़बड़ी हो जाती है। शरीर इस दुःख से मुक्त होने की कोशिश करता है। कभी वह किसी दूसरे को नुक़सान पहुँचाए बग़ैर इस काम में सफलता प्राप्त करता है और कभी सामाजिक हितों को धक्का पहुँचाकर अपना काम करना है, और इस तरह अपराध की उत्पत्ति होती है†।

ऐतिहासिक दिग्दर्शन

आधुनिक काल में डाक्टरों ने अपराधियों का अध्ययन करना प्रारंभ किया। सन् १६५६ ईस्वी में स्काच डाक्टर टॉमस ऐबरक्रौंबी (Thomas Abercromby) ने ऐसे संगदिल अभ्यस्त अपराधी की मानसिक दशा को, जिसकी बुद्धि में कोई गड़बड़ी नहीं देख पड़ती, नैतिक पागलपन (Moral insanity) का नाम दिया है। परंतु उस समय इसे कोई भी सज़ा से बरी करने अथवा उसमें कमी होने का कारण नहीं समझता था। अंतिम सदी में मानसिक-रोग-निदान-शास्त्र (Psychiatry) के विकास ने इस मत को ख़त्म किया कि पागल को सज़ा के लिये सही दिमाग़ क़रार देना चाहिए। सन् १८०१ ईस्वी में पाइनल (Pinel) ने पागलों पर एक पुस्तक लिखी *। उसी समय से दंड-विधान तथा पागलपन-विद्या में झगड़ा शुरू हुआ। सन् १८३५ ई० में प्रिट्चर्ड (Pritchard) ने 'नैतिक पागलपन' का प्रयोग मानसिक लकवे के अर्थ में किया। सन् १८४६ ई० में इँगलैंड में क्लैप्हैम (Clapham) और क्लार्क (Clarke) ने एक पुस्तक इसी विषय पर प्रकाशित कराई †। लौंब्रोज़ो ने पहले मानसिक-रोग-निदान-शास्त्र का परीक्षात्मक अध्ययन करना शुरू किया। कपाल-लक्षण-विद्या (Phrenology) से भी अपराधियों के दिमाग़ के अध्ययन करने में बड़ी मदद मिली है। सन् १८४० ई० में केरस (Carus) ने अपराधियों के खोपड़े की बनावट के बेडौलपन पर ध्यान आकर्षित किया। सन् १८४४ ई० में लौवरने (Lauvergne) ने बेरहम ख़ूनियों के बारे में बहुत-से अपराधियों के खोपड़े की जाँच कर अपनी राय क़ायम की। सन् १८४७ ई० में ल्यूकस (Lucas) ने प्राणि-शास्त्र के आधार पर यह राय क़ायम की कि अपराध करने की प्रवृत्ति वंश-परंपरागत है ‡। सन् १८५७ ई० में मोरेल (Morel) ने इस सिद्धांत की व्याख्या की कि प्राचीन आदर्श गिरने पर लोग अपराध करते हैं। मनोविज्ञान के आधार पर डेसपाईन (Despine) ने सन् १८६९ ई० में एक पुस्तक में + नैतिक नियम-विरुद्धता का उल्लेख किया है। सन् १८७० ई० में टॉमसन ने अपनी पुस्तक × प्रकाशित कराई। सन् १८७३ ई० में मौडस्ले (Maudsley) ने इस बात को मान लिया है कि स्वभाव-प्रेरित अपराध नैतिक पागलपन है।

---

† Vide the Principles of Criminology Pp. 14-16.

* "A medical and philosophical Treatise on mental Alienation."

† "Outlines of the Insane and the Criminal."

‡ 'Treatise on natural Heredity'

+ 'Natural Psychology.'

× 'Psychology of Criminals.'

सामाजिक दृष्टि से अपराध का अध्ययन अफलातून के समय से राजनीतिज्ञ तथा न्यायाधीश करते चले आ रहे हैं। आधुनिक समय में बहुत-से पंडित सर टॉमस मूर (Sir Thomas Moore) से लेकर राबर्ट औवेन (Robert Owen) तथा एंजेल्स (Engels) तक इस विषय पर अपना मत प्रकाशित करते आ रहे हैं। स्थिति-वर्णन-शास्त्रियों (Statisticians) ने भी इस विषय का अध्ययन किया है। सन् १८६९ ई० में क्वेटले (Quetlet) ने अपनी पुस्तक * में इस मत को प्रकाशित किया है कि समाज अपराध के लिये वातावरण तैयार करता है और अपराधी उसे पूरा करता है। उन्होंने जलवायु के लिहाज़ से इस बात को प्रकाशित किया है कि गरमी के चढ़ाव-उतार से अपराध का नियम-बद्ध संबंध है।

इस तरह आधुनिक अपराध-विज्ञान का जन्म हुआ। बेकेरिया (Beccaria) ने सन् १७३८–१७९४ ई० में बहुत-सी पुस्तकों को प्रकाशित कराया और इसी समय से योरप के दंड-विधान में सुधार का सूत्रपात हुआ। अपराध-विषयक क़ानून के विकास में पहले-पहल इटली ने हाथ लगाया। लौंब्रोज़ो ने इस सिद्धांत को निकाला कि जन्म से अपराधी का नमूना मिलता है, इन्होंने आधुनिक अपराध-विज्ञान की नींव डाली। इन्होंने बहुत-सी पुस्तकों को प्रकाशित कराया है। † सन् १८७९ ई० में बॉरडियर (Bordier) ने फ़्रांस में अपराधियों की खोपड़ियों का अध्ययन कर अपराध-विषयक पैतृक-लक्षण-उदय (Criminal atanism) के सिद्धांत को प्रकाशित किया। सन् १८२१ ई० में प्रोफ़ेसर फ़ेरी (Professor Ferri) ने फ़्रांस में इस सिद्धांत को क़ायम किया कि अपराध के तीन कारण होते हैं — वैयक्तिक, जगत्-संबंधी तथा सामाजिक। रैफ़ेल गैरोफ़ेला (Raffaelle Garofalo) ने अपनी पुस्तक ‡ में अपराध के नैसर्गिक तथा कृत्रिम सिद्धांत को प्रकाशित किया। मानव-वैज्ञानिक लौंब्रोजो, समाज-शास्त्री फ़ेरी तथ गैरोफ़ेलो, इटैलियन स्कूल के तीन प्रमुख पंडित हैं।

इटैलियन स्कूल के मत के खंडन करने के कार्य दूसरे-दूसरे स्कूलों का प्रादुर्भाव हुआ। सन् १८२५ ई में रोम में अपराध-विज्ञान पर अंतरराष्ट्रीय कांग्रेस बैठक हुई; इसमें लैकेसैग्नी (Laccasagne) अपराध के सामाजिक कारणों पर विशेष ज़ोर दिया। कांग्रेस की दूसरी बैठक सन् १८२९ ई० में पेरिस में हु प्रोफ़ेसर मौनूव्रीर (Prefessor Monouvrier की अध्यक्षता में, परिस्थिति के क़ायल फ़्रेंच स्कूल ने इ लियन स्कूल के मत का घोर प्रतिरोध किया। ख़ास इट में लौंब्रोज़ो के सिद्धांत का विरोध सन् १८२३ ई० में शु हुआ। उसी साल ट्यूरैटी (Turati) ने फ़ेरी के जव में एक छोटी-सी पुस्तक लिखी। † बाद को फ़ेरी ने दू पुस्तक (Socialism and Criminality) लिखी सन् १८२९ ई० में डाक्टर कोलोजानी (Dr Col janni) ने एक पुस्तक में अपराध के आर्थिक कार पर विशेष ज़ोर दिया। ‡

जर्मनी में भी इस विषय पर पंडितों का ध्यान आकर्षि हुआ। हंस कुरेल्ला (Hans Kurella) लौंब्रोज़ो अनुयायी था। डाक्टर बेयर (Dr. Baer) ने अप पुस्तक (The Criminal) में लौंब्रोज़ो के सिद्धांत ज़बरदस्त विरोध किया। प्रोफ़ेसर नाके (Professo Naeke) ने लौंब्रोज़ो के नैतिक पागलपन के सिद्धांत कड़ी समालोचना की। प्रोफ़ेसर हरवौन लिज़्ट (Professo Hervon Liszt) ने इस मत को प्रकाशित किया कि अपराध वैयक्तिक तथा सामाजिक कारणों का नतीजा है सन् १८९५ ई० में सोमर (Sommer) ने अपनी पुस्त (Criminal Psychology) में अपराध के अंदरू कारणों पर विशेष ज़ोर दिया। इँगलैंड में डाक्टर एलि (Dr. Ellis) ने अपनी पुस्तक (The Criminal

---

* 'Social Physics.'

† 'The female offender', 'Political Crimes', 'Legal Psychiatric Expertism', 'Methods of Procedure, Penal Casustry', 'Crime—its Causes and Remedies' etc.

‡ 'Criminology.'

* He said: "Societies have the Crimina they deserve."

† Turate's pamphlet was, "Crime an the Social Question" in answer to Ferr "Educatien, Environment and Crimnality

‡ Criminal Sociology.

में इटैलियन स्कूल के मत को मान लिया है। अमेरिका में सन् १८९६ ई० में मैकडोनेल्ड (MacDonald) की पुस्तक (Abnormal man) प्रकाशित हुई। डब्ल्यू० डी० मॉरिसन (W. D. Morrison) ने अपनी पुस्तक (Crime and its Causes) प्रकाशित कराई। कॉरोल डी० राइट (Corrall D. Wright) ने एक पुस्तक (The Relation of Economic Conditions to the Causes of Crime) लिखी। हॉर्सले (Horseley) की पुस्तक (How Criminals are made) से व्यावहारिक मदद मिलती है। अमेरिका में और भी बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं। सन् १९०९ ई० में शिकागो (Chicago) में अपराध-विषयक क़ानून तथा अपराध-विज्ञान के अध्ययन के लिये एक राष्ट्रीय संस्था क़ायम की गई है। * इसने अपराध-विज्ञान-संबंधी बहुत सी पुस्तकों का उल्था अँगरेज़ी में किया है। आधुनिक अपराध-विज्ञान का इतिहास यहाँ पर ख़त्म होता है। †

रमाशंकर मिश्र

---

* National Institute of Criminal Law and Criminology.

† Principles of Criminology by Dr. Pillai—p. 16-21.

जयपुर

जयपुर देखने की मेरी इच्छा बहुत पुरानी थी, पर अनवकाश जाने देता तब न! आख़िर एक दिन पहुँच ही तो गया। ठहरने के स्थान पर पहुँचते ही जल्दी-जल्दी शौच, कुल्ला-दातुन, स्नान-ध्यान से निवृत्त हो - वर्षों से मन में दबाई हुई इच्छाओं को पूरा करने के लिये—घूमने को निकल पड़ा।

मेरे एक मित्र ने जयपुरवासी बा० महताबचंद खारैड को एक पत्र लिख दिया था, मैं खारैडजी से जाकर मिला। एक घंटे की बातचीत में ही आपसे वर्षों का-सा मेल हो गया। आप साहित्य-सम्मेलन के विशारद हैं, बड़े ही मिलनसार और सज्जन व्यक्ति हैं। पैतृक आय के कारण आपको कमाने की चिंता नहीं सताती। हिंदी से आपको बहुत प्रेम है उसके प्रचार के लिये आप निरंतर उद्योग करते रहते हैं। मेरे जयपुर में रहने तक मेरे साथ रहने और जयपुर के दिखलाने का भार आपने अपने ऊपर ले लिया। आपके ही सत्संग से मेरी जयपुर-यात्रा सफल हुई।

जयपुर में देखने को बहुत कुछ है, क्योंकि यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान है। सबसे पहले हम लोग "गलता"-नामक स्थान देखने गए। गलता जयपुर से क़रीब तीन मील दूर पहाड़ों की तराई में है। पहाड़ पर घुमावदार सड़क गई है; रास्ते में जगह-जगह मंदिर हैं। गलता में कई मंदिर हैं। एक झरना झर-झर करता हुआ अतीत की स्मृति दिलाता है। झरने में एक कृत्रिम गोमुख लगा है, उसके दोनों ओर कटे हुए बड़े ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं। झरने के आगे दो पक्के कुंड हैं, बहुत-से आने-जानेवाले नित्यप्रति उनमें स्नान करते हैं। प्राकृतिक दृश्य बड़ा सुंदर है। यद्यपि इस समय कुंडों का पानी गंदा था, झरना भी बहुत मंद गति से बह रहा था, तो भी वर्षा के दिनों में यहाँ बहुत आनंद आता होगा।

पहाड़ के ऊपर से जयपुर बड़ा सुंदर दिखलाई देता है। सड़कें तो इतनी सीधी बनी हुई हैं कि शहरपनाह के पूर्व-पश्चिम—दरवाज़े चाँदपोल सूरजपोल—बिलकुल साफ़ सीध में दिखलाई पड़ते हैं। मालूम होता है, जयपुर दो हिस्सों में बराबर-बराबर बँटा हुआ है।

१० बज चुके थे, धूप हो गई थी, आराम का समय था, पर खारैडजी भला कब माननेवाले थे। मुझे साहित्य-पाठशाला में ठहराकर "मैं अभी आता हूँ" कहकर थोड़ी देर में एक घोड़ागाड़ी के साथ आ पहुँचे।

बोले—'आमेर चलिए।' आमेर-महल देखने के लिये राज्य की ओर से एक चिट्ठी मिलती है, तब महल देख सकते हैं। आमेर, शहर से ५-६ मील दूर है, पहाड़ी रास्ता है। दो पक्की सड़कें हैं। एक तो ऊँचे पहाड़ों पर बिलकुल ऊपर ही ऊपर जयपुर से आमेर को गई है। उस पर किसी को जाने की इजाज़त नहीं। राज्य की ओर से पहरा रहता है। दूसरी सड़क पहाड़ों के किनारे-किना पहाड़ों को काटती हुई गई है, उस पर लोग आते-जाते हैं।

आमेर के चारों ओर पहाड़ हैं, उन पर भी मज़बूत बड़ी- बड़ी दीवारें बनी हुई हैं। मुझे तो यह देखकर आश्चर्य होता

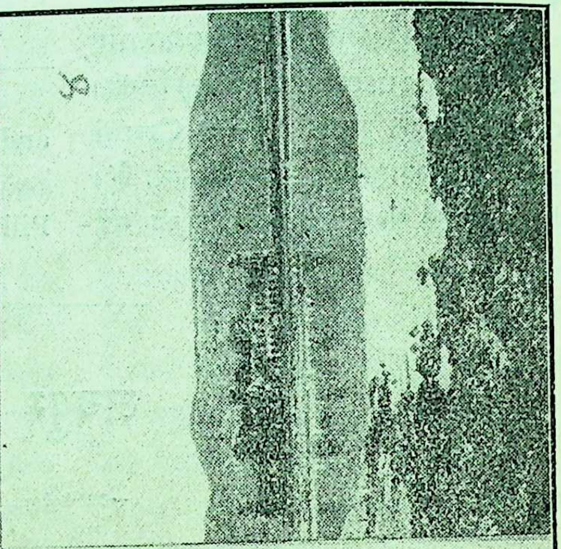

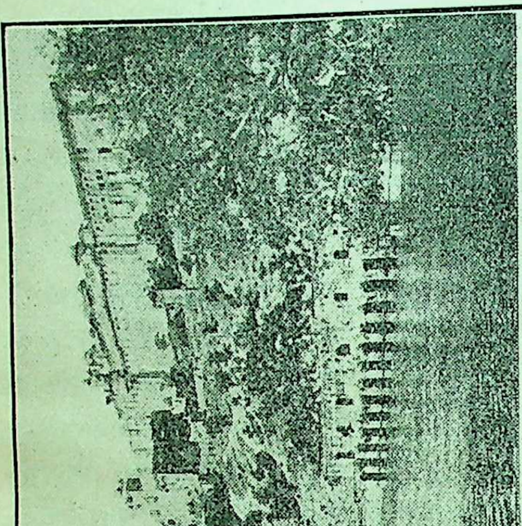

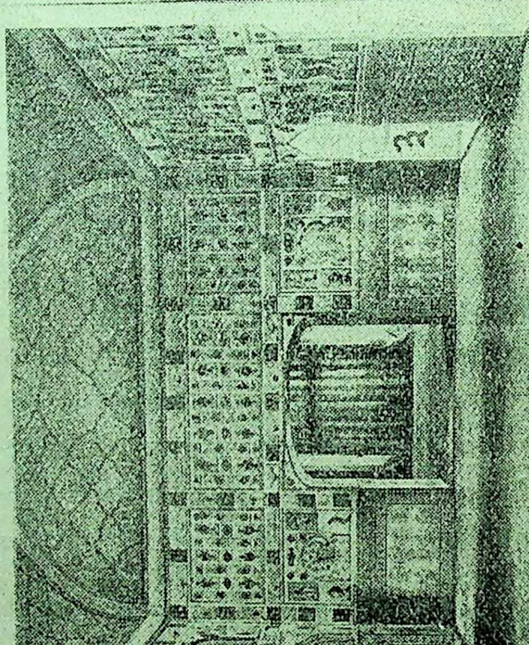

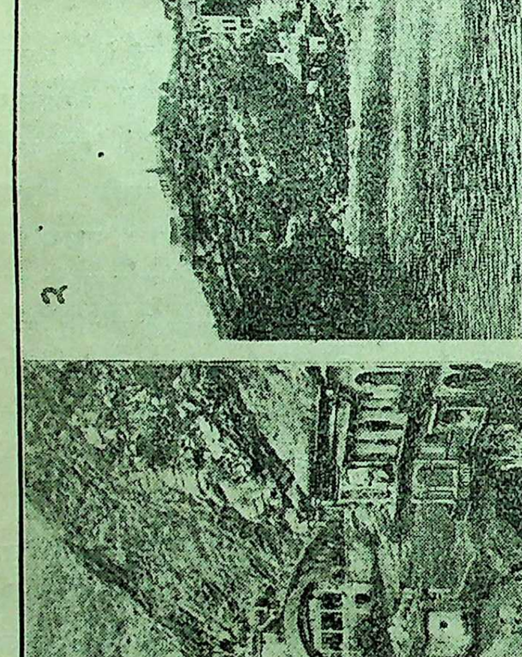

नं० १—गलता, नं० २—आमेर-महल और आगे का सरोवर, नं० ३—आमेर का भीतरी दृश्य, नं० ४— जल-महल

था कि इतने ऊँचे पर, न जहाँ कोई रास्ता है न पानी, किस प्रकार आठ-आठ नौ-नौ कोस लंबी ऐसी विशाल प्राचीरें बनाई गई होंगी । सचमुच वे बनानेवाले बड़े हिम्मतवर और कुशल कारीगर होंगे । आमेर का विशाल महल भी बहुत ऊँचे पर है । कमज़ोर आदमी तो चढ़ते ही चढ़ते थक जाय । महल देखने लायक़ है, भीतर का शीशे का काम गए-गुज़रे भारत के श्रेष्ठ कला-कौशल की गवाही देता है । मुद्दतें गुजर गईं, पर मालूम यही होता है कि बिलकुल नई कारीगरी है । संगमरमर पत्थर पर बेल-बूटों और पत्तियों की सुंदर सफ़ाईदार खुदाई देखने लायक़ है ।

महल से मिला हुआ एक देवी का मंदिर है जिसे शिलादेवी का मंदिर कहते हैं । मंदिर में दुर्गा की विशाल मूर्ति है । कहते हैं, यह मूर्ति राजा मानसिंह, बंगाल के प्रसिद्ध राजा प्रतापादित्य के यहाँ से लाए थे । उस समय जो बंगाली पुजारी था, उसी के वंशज अब तक उसके पुजारी हैं ।

आमेर महल क़रीब ४ फर्लांग के घेरे में है । पूरे महल के नीचे पक्का कुंड है, जो जल से भरा रहता है । युद्ध-समय में जलकष्ट न हो, यह कुंड इसीलिये बनवाया गया था ।

जयपुर-आमेर के बीच में, क़रीब ५ मील के दायरे में, लगभग चार हाथ ऊँची दीवार का एक घेरा खिंचा हुआ है । भीतर का भाग ज़मीन से नीचा है । इस ५ मील के दायरे के बीचोंबीच एक मकान बना हुआ है, जो इतना मज़बूत है कि इस समय उसकी छत पर ८-१० बड़े-बड़े वृक्ष जम गए हैं । पता लगाने पर मालूम हुआ कि राजा मानसिंह का बनवाया हुआ यह जल-महल है ।

पहले राजा लोग कभी-कभी आकर इसमें रहते थे, चारों ओर जल भर दिया जाता था । वे इसमें विहार करते थे । उस दृश्य का चित्र ही जब बड़ा सुंदर मालूम होता है, तो वास्तविक दृश्य कितना सुंदर मालूम पड़ता होगा ।

हाँ, एक बात बतलाना मैं भूल ही गया । जब आमेर-महल से हम लोग बाहर होने लगे, तो देखा कि दरवाज़े पर ५-६ मज़दूर बैठे जयपुरी भाषा में कुछ गिड़बिड़-गिड़बिड़ कर रहे हैं । "आप इन्हें जानते हैं, ये कौन हैं ?" —खारैंडजी ने मुझसे पूछा । मैंने फ़ौरन् जवाब दिया—"हाँ, ये मनुष्य हैं ।" उन्होंने कहा—"यह तो ठीक है, पर ये मीना हैं ।" "मीना कैसे ?"—मैंने पूछा । उत्तर मिला—"मीना एक जाति है । पहले यहाँ इन्हीं लोगों का राज्य था । ये लोग बड़े बहादुर होते हैं, हारना तो कभी जानते ही नहीं । वर्तमान जयपुर-नरेशों के पूर्वज दुर्लभराव ने बड़ी चालाकी से कुछ परकोट-रक्षकों को मिलाकर अपने सैनिक भीतर पहुँचा दिए और पहाड़ों में छिपा दिए । दीवाली का दिन था, राजघराने के तमाम मीना लोग राजा-सहित हथियार छोड़कर पुराने रिवाज के अनुसार, महल के आगे बड़े जलकुंड में विहार कर रहे थे । दुर्लभराव ने एकदम धावा बोल दिया और आमेर पर कब्ज़ा कर लिया । मीना लोग चूँकि वीर होते हैं, इससे उनको यह समझा-बुझाकर ख़ास जगहों पर नियुक्त कर दिया कि "राज्य तुम्हारा ही है, हम तो केवल प्रबंध करते हैं ।" तब से ख़ज़ानों पर, क़िलों पर और ख़ास-ख़ास स्थानों पर अब तक इन्हीं लोगों की नियुक्ति होती आती है और किसी भी कार्य के करने से पहले इनसे पूछ लेने की रस्म अदा कर ली जाती है । इन लोगों पर राजा का पूरा विश्वास रहता है । ये लोग ख़ुद मर मिटते हैं, पर विश्वासघात नहीं करते । ख़ज़ाने की दो तालियों में से एक इनके पास और दूसरी राजा के यहाँ रहती है । खारैंडजी मुझे ये बातें सुना रहे थे । मैं एकटक उन मीना लोगों की ओर देख रहा था ।

आमेर तथा जयपुर के चारों ओर और भी कितने ही खँडहर, मंदिर, मकानात दिखलाई पड़ते हैं, जो इस बात के प्रमाण हैं कि किसी समय ये स्थान बहुत रमणीय और शोभासंपन्न रहे होंगे । इतिहास-अन्वेषकों को यहाँ प्रचुर सामग्री मिल सकती है ।

जयपुर का रामनिवास भी देखने लायक़ है । यह कई मील के घेरे में है । जब तक मैं वहाँ रहा, इसे रोज़ देखा । एक तिहाई हिस्सा बाग़, दो तिहाई हिस्सा जंगल समझिए । इसी बाग़ में एक ओर चिड़िया-घर है, जिसमें जंगली पालतू जानवर, चिड़ियाँ, शेर, चीता आदि रक्खे गए हैं । इसी में एक ओर म्यूज़ियम है ।

यों तो अजायब-घर में क़रीब-क़रीब मैंने वही चीज़ें देखीं, जो लखनऊ-कलकत्ते के अजायब-घरों में हैं, परंतु यहाँ एक विशेषता है—दीवालों पर बहुत बड़े-बड़े चित्र बनाए गए हैं, जिनमें कहीं पौराणिक काल के, कहीं ईसा के समय के वहाँ के, कहीं चीन देश के तथा अन्य-

अन्य देशों के, ऐतिहासिक घटनाओं के, चित्र खींचे गए हैं ।

यह तो हुआ परकोट-परिवेष्टित जयपुर को चहारदीवारी की सीमा का वर्णन । अब चहारदीवारी के भीतर की थोड़ी सैर कीजिए ।

एक दिन खारैडजी ने मुझे ले जाकर एक ऐसी जगह खड़ा कर दिया, जिसके दोनों ओर विशाल इमारतें नज़र आती थीं । "आप मुझे यहाँ कहाँ ले आए"—मैंने पूछा । खारैडजी ने बतलाया कि बाईं ओर यह हवा-महल और दाहनी ओर महाराज-कालेज है । महाराज-कालेज में बी० ए० तक की शिक्षा दी जाती है । शिक्षा-भवन देखने लायक़ है । हवा-महल को मैं बड़ी देर तक ध्यान से देखता रहा । महल-वहल तो कुछ था नहीं । बहु बढ़िया कटावदार, चित्रित, सहस्रों खिड़कियों, झँझरि और छिद्रों से युक्त एक गगनचुंबी दीवार दिखलाई दी जिसकी मोटाई दो हाथ से अधिक न होगी । दीवा बहुत सुंदर बनी हुई है । वास्तव में वह है तो दीवार पर मालूम होता है, प्राचीन चित्रकारी के नमूनास्वरू किसी बड़े महल, मंदिर या गढ़ का एक प्रदर्शनीय भा है । मैं जहाँ तक समझ सका, प्रतिक्षण सहस्रों छि से हवा सनसनाते रहने के कारण ही इसका नाम ह महल रक्खा गया होगा ।

जयपुर का ज्योतिष-यंत्रालय भी दर्शनीय स्थानों से एक है । एक बड़े भू-भाग में धूपघड़ी, राशियों

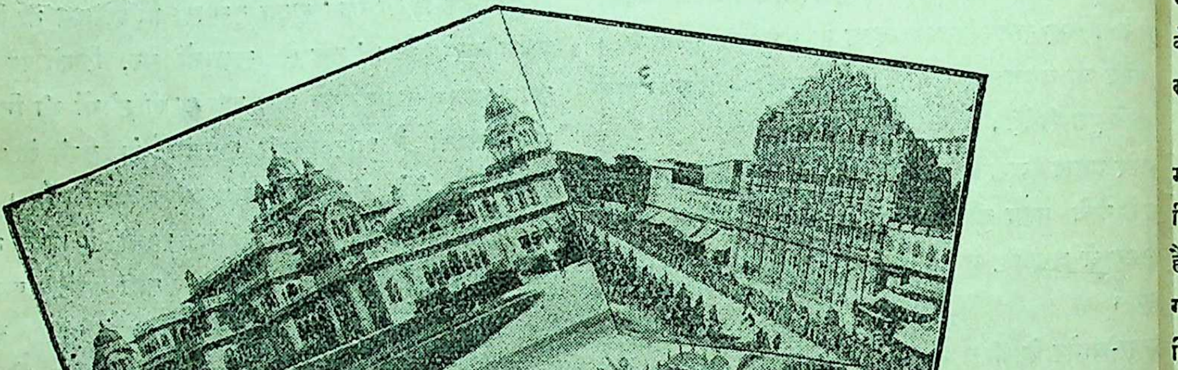

नं० ५—म्यूज़ियम हाल, नं० ६—हवा महल,
नं० ७—संस्कृत कालेज, नं० ८—महाराज-कालेज, नं ९—ज्योतिष-यंत्रालय

चक्र, खगोल, ग्रहों की चाल आदि के ज्योतिष-संबंधी भिन्न-भिन्न चित्र बने हुए हैं।

आर्ट-स्कूल, संस्कृत-कालेज, आयुर्वेद-कालेज आदि कितने ही शिक्षणालय यहाँ हैं, जिनमें विविध विषयों की शिक्षा दी जाती है। एक साहित्य-पाठशाला है, जिसमें साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं की पाठविधि पढ़ाई जाती है। इस विषय में आचार्य श्रीमथुरानाथजी भट्ट, प्रोफ़ेसर महाराज-कालेज, का प्रयत्न और निःशुल्क शिक्षा-दान स्तुत्य है। सौजन्य की तो भट्टजी मूर्ति ही हैं।

यह देखकर अत्यंत हर्ष हुआ कि यहाँ छोटे-बड़े सब प्रकार के स्कूलों, कालेजों आदि में उच्च-से-उच्च शिक्षा निःशुल्क दी जाती है, किसी प्रकार की फ़ीस आदि नहीं ली जाती। ब्रिटिश-राज्य में तो इस फ़ीस-डाइन के ही कारण हज़ारों होनहार बालक शिक्षा से वंचित रह जाते हैं!

जयपुर में मंदिरों की भरमार है। सैकड़ों नहीं, हज़ारों मंदिर हैं, जो अभी के नहीं, बहुत समय के बने हुए हैं। जितने भी स्कूल-कालेज आदि हैं, वे सब मंदिरों में ही हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि वहाँ से मूर्तियाँ हटा दी गई हों। एक तरफ़ बराबर पूजा-अर्चा होती है; रिक्त स्थान शिक्षा के लिए है। जहाँ जयपुर में यह हाल है, वहाँ प्रयाग आदि तीर्थस्थानों के मंदिरों को देखिए कि विद्यार्थी पास भी नहीं फटकने पाते, चाहे मंदिर बिना झाड़ू और चिराग़ों के ही क्यों न पड़े रहें।

जयपुर की तमाम रियासत तीन भागों में बँटी हुई है। एक भाग राज्य के अधिकार में है। दूसरा भाग राज्य-घरानों में जागीरों के रूप में दिया हुआ है। तीसरा भाग दान में बँटा हुआ है। यह सुनकर हँसी आती है और आश्चर्य होता है कि दूसरी जगह दान ब्राह्मणों और दान-पात्रों को ही दिया जाता है, परंतु यहाँ वेश्याओं को भी, जिन्हें यहाँ भगतिन कहते हैं, राज्य की ओर से जागीरें बँधी हुई हैं। वे मज़े से गुलछर्रें उड़ाती हैं। उन्हीं में से एक का चित्र यहाँ देखिए।

राज्य की ओर से एक पब्लिक लायब्रेरी भी है। क्या ही भव्य इमारत है। मैंने जिस समय उसका बाहरी स्वरूप देखा, उसी समय से भाँति-भाँति के भावों के साथ उसके देखने की उत्कट अभिलाषा लग गई। आख़िरकार तीसरे दिन उसके भीतर पहुँच ही तो गया। किंतु जितनी आशा से गया, उतना ही निराश लौटा। "नाम बड़े दर्शन थोड़े"—यह हाल था। वहाँ अधिक पुस्तकें अँगरेज़ी की हैं, वे भी ओल्ड टाइप की विशेष उपयोगी नहीं। हिंदी की पुस्तकें नहीं के बराबर हैं। समाचारपत्रों के विषय में तो कुछ पूछिए नहीं। केवल हिंदी, उर्दू, अँगरेज़ी के ३-४ पत्र बहुत नरम पालिसीवाले ही आते हैं। लायब्रेरी जैसी उपयोगी होनी चाहिए, वैसी नहीं है।

जयपुर की एक वेश्या और उसका ज़ेवर

जयपुर का चन्द्रमहल, जो महाराज का ख़ास महल है, बहुत सुंदर बना हुआ है। मैं महल की बग़ीची में घूम रहा था, थोड़ी दूर पर महल के सामने एक मठिया-सी दिखलाई दी। मैंने समझा कि शिवजी की मठिया होगी, जैसी कि प्रायः बग़ीचों या वाटिकाओं में हुआ करती है। मैं उसकी ओर दर्शन की लालसा से लपका, पर सामने पहुँचकर देखा कि यहाँ एक 'कुत्ताजी' विराजमान हैं। मालूम हुआ, वह एक कुत्ते का स्मारक है, जो राजा साहब के घर में पत्रवाहक का काम करता था।

अब जयपुर का और कुछ मज़ेदार हाल सुनिए—देखने में जयपुर बड़ा सुंदर शहर है। दो-चार ख़ास-ख़ास सड़कें हैं, जो काफ़ी चौड़ी हैं। सड़कें सब बिलकुल सीधी एक-सी बनी हुई हैं। दूर तक एक लाइन-सी दिखलाई देती है। मुझ-सरीखे नए आदमी को तो सड़कों से बड़ा भ्रम होता होगा। शहर में बिजली की रोशनी है। बाज़ारों के जितने मकान हैं, सब एक ढंग के हैं और दूकानों को छोड़कर सबके दरवाज़े पीछे की ओर हैं। बाज़ार के कुल मकान एक ही रंग से रँगे हैं और राजाज्ञा के अनुसार उनकी रँगाई प्रतिवर्ष होती है। बाज़ार में खड़े होने से सब मकानों की पीठ दिखाई देगी। इससे गंदगी कम और बाज़ारों की सुंदरता तथा शोभा अधिक मालूम होती है। जयपु के तमाम मकान संदूक़ के मानिन्द बने हुए हैं, प प्रत्येक मकान में सैकड़ों छोटी-छोटी खिड़कियाँ औ छेद रहते हैं। वहाँ शायद मकानों की यह एक ख़ास शो समझी जाती है। मकानों की दीवारें बहुत पतली हो हैं। आठ-आठ अंगुल आसार की दीवारों पर कई- मंज़िल ऊँचे मकान सधे हुए हैं। देखकर आश्च होता है कि यहाँ के चूने का जोड़ कितना मज़बूत होता सड़कों पर २०-२०, २५-२५ क़दम की दूरी पर शि गणेश आदि देवी-देवताओं की मठियाँ बनी हुई मैंने देखा—जयपुर में प्रत्येक घर के दरवाज़े के ऊ एक आला है, उस आले में गणेशजी की मूर्ति है;

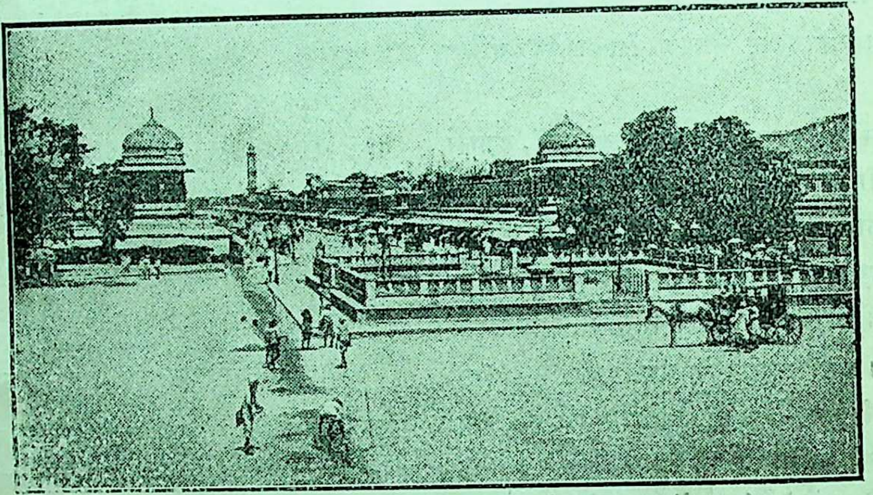

मानिक-चौक-बाज़ार

परकोटे का एक फाटक

यदि उस घर में कोई विवाह आदि ख़ुशी का कार्य हो चुका है, तो दरवाज़े के इधर-उधर दीवालों पर हाथी का चित्र बना हुआ है । किसी भी मंगलकार्य में दरवाज़े पर चित्र बना देना वहाँ एक शकुन या शुभ चिह्न माना जाता है ।

शहर-परकोटे के अजमेरी फाटक के पास मुझे दो बालिश्त के अंतर पर रेल की-सी दो पटरियाँ दूर तक दिखलाई दीं । मैंने बड़े आश्चर्य से पूछा—"क्या यहाँ शहर के भीतर भी रेल चलती है ? बहुत छोटी है । उत्तर मिला—"हाँ, यहाँ जे० के० के० आर० चलती है । ' मैंने पूछा—"इसके मानी"? खारेडजी ने कहा—"जयपुर-कूड़ा-करकट-रेलवे । जनाब, यह लोहे के इंजिन से नहीं, भैंसों के इंजिन से चलती है । आठ-आठ नौ-नौ कूड़े के डब्बे एक में जोड़ दिए जाते हैं और दो भैंसे आगे जोत दिए जाते हैं; बस, रेलगाड़ी इन पटरियों पर दौड़ने लगती है । यदि गाड़ी निकलते समय महाराज

पनिहारिन

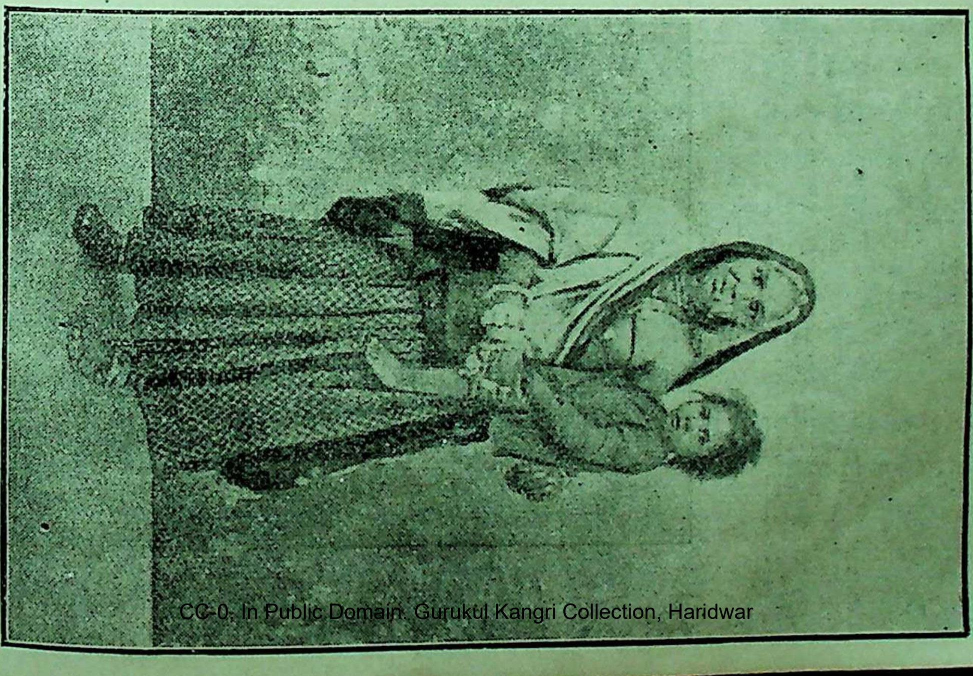

जयपुरी वेश-भूषा में एक स्त्री

साहब भी आ जायँ, तो उन्हें भी उसके निकल जाने तक रुकना पड़ेगा !" मैंने कहा—"यह जे० के० के० आर० तो ख़ूब है ।"

जयपुर के बाज़ारों में जितने पुरुष निकलते हैं, उतनी ही स्त्रियाँ । उनकी वेश-भूषा व परदा कैसा होता है, यह चित्र में देखिए, हाँ, बड़े घरों की कोई-कोई स्त्रियाँ—जो मुख पर लंबा घूँघट किए रहती हैं—दो उँगलियों के बीच से एक आँख को बाँकी-झाँकी देती रहती हैं । यहाँ मुझे कोई विधवा तो दिखलाई ही न दी; क्योंकि विधवा-सधवा की वेश-भूषा में कोई अंतर नहीं । यदि कोई भीतरी अंतर हो, तो वहाँ के निवासी ही जानें । वहाँ की यह कहावत बिलकुल ठीक है—"धन्य राजा जी थारो देश, राण सुहागिल एकै भेश ।" ठसक की चाल तो पुरुषों को भी मात करती है ।

वास्तव में प्रेम एक विचित्र वस्तु है, जो सभी को वश में कर लेता है। मैं एक दिन प्रातः काल ६॥ बजे बाज़ार गया, तो देखता क्या हूँ कि जगह-जगह दूकानदार झोली में ज्वार आदि के दाने लिए सड़क पर फेंक रहे हैं और हज़ारों कबूतर निडर होकर बड़े प्रेम से उन्हें चुग रहे हैं । मजाल है, उस समय कोई सड़क पर निकल जाय; वे चाहे दब जायँ, पर उड़ते नहीं । वहीं मस्तानी चाल से विचरते और दाने चुगते रहते हैं । उसका एक दृश्य चित्र में देखिए ।

यह दृश्य १-२ घंटे रहता है । यह तमाशा एक दिन नहीं, तीसों दिन होता है । इसी तरह वहाँ अक्सर लोग चीलों से भी खेल करते हैं । उर्द के बड़ों के टुकड़े ऊपर को उछालते हैं, सैकड़ों चीलें ऊपर मँडराने लगती हैं और फेंके हुए टुकड़ों को ऊपर-ही-ऊपर लपक लेती हैं ।

यहाँ मुझे एक नई सवारी का नाम सुनने में आया, जिसको कहते हैं—हाथीगाड़ी । इस पर सब नहीं, केवल महाराज साहब चढ़ते हैं, वह भी हमेशा नहीं, साल में केवल एक दिन—दशहरे के रोज़ । प्रत्यक्ष नहीं तो हम आप कम-से-कम महाराज साहब की हाथीगाड़ी का चित्र ही देख लें । देखिए, क्या मज़ेदार गाड़ी बनी हुई है ।

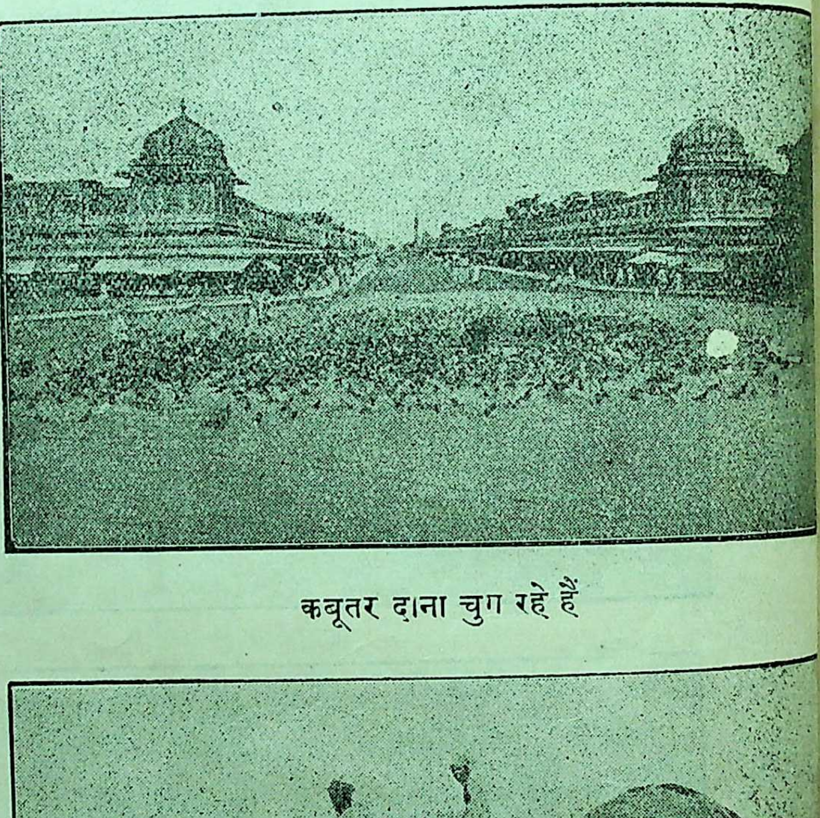

कबूतर दाना चुग रहे हैं

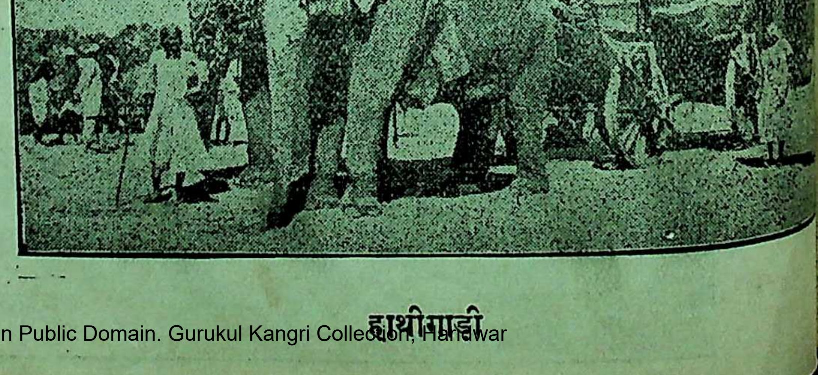

हाथीगाड़ी

जयपुर में चरखे भी अधिक चलते हैं; क्योंकि अधिकांश स्त्रियाँ जो बड़े-बड़े घेरदार लहँगे पहनती हैं, वे खद्दर के ही होते हैं। और-और पोशाकों में भी खद्दर का उपयोग होता है। मुसलमानों की आबादी कम होने पर भी जयपुर का तमाम कारबार प्रायः उन्हीं के हाथ में है।

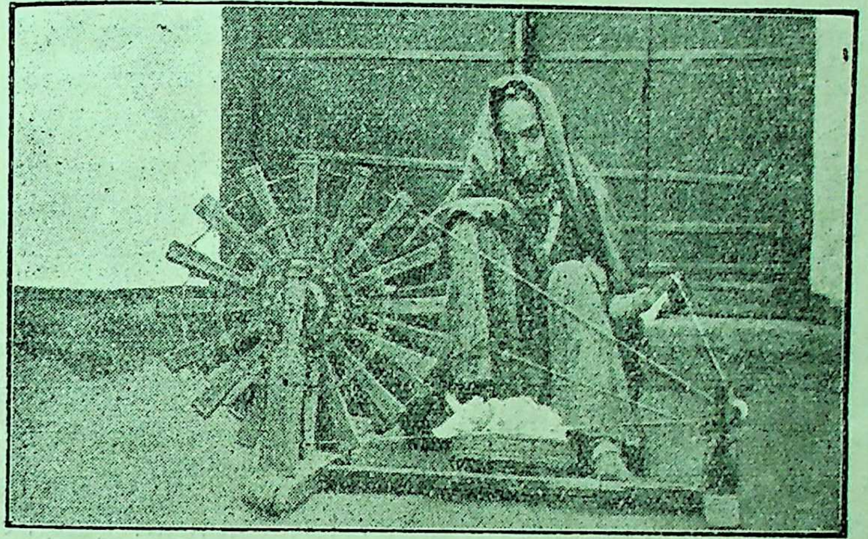

बुढ़िया चरखा कात रही है

संक्षेप में जयपुर-नगर ऐतिहासिक, सुंदर और देखने लायक़ है। मुझे कई दिन हो चुके थे। क़रीब-क़रीब दर्शनीय स्थानों को देख भी चुका था, फिर भी उसके ऐतिहासिक दृश्य, पर्वतमालाएँ और 'गलता'-जैसे कुंड अपनी ओर खींच रहे थे; नौकरी का आफ़िस अपनी ओर आकर्षण-प्रयोग कर रहा था। अंत में बा० दामोदरलालजी इंजीनियर, जिनके सत्संग से विशेष मनोरंजन हुआ, पं० मनोहरदत्तजी, बा० प्रभुदत्तजी तथा खारैंडजी आदि नवपरिचित मित्रों को धन्यवाद देता हुआ एक दिन रात की गाड़ी से भाग खड़ा हुआ।

विद्याभास्कर शुक्ल

अशेष और शेष

अभी कुछ है प्याले में शेष,
मूर्छित मन, साक़ी से कह दो यह मेरा संदेश,
क्षण-भर है निशि का सुषमा-धन,
क्षण-भर है दीपों का नर्तन,
क्षण-भर है तारों का यौवन,
क्षण-भर है रजनीगंधा के यौवन का आवेश,
पारिजात सुमनों का जीवन,
मलयानिल का शीतल चुंबन,
नव-कलियों का गोपन-सिहरन,
देख न लेगा ज़रा ठहरकर क्या हताश राकेश,
चित्रकार तूलिका उठा ले,
गायक, वीणा को सुलझा ले,
ओ कवि! जीवन का फल पा ले,
ऊषा के घूँघट में छिपता है सपने का देश,
पिला दे अब दो घूँट अशेष!
नहीं कुछ है प्याले में शेष।

श्रीमोहनलाल महतो "वियोगी"

देव का वैराग्य-शतक

माननीय मिश्रबंधुओं द्वारा हिंदी-नवरत्न में स्थान पाने के बाद से 'देव' साहित्य-क्षेत्र में एक विवाद का विषय बन गए हैं। ऐसी अवस्था में उनके संबंध में प्रशंसात्मक या निंदात्मक किसी प्रकार की कोई बात लिखना भयावह हो गया है। परंतु जो कुछ लिखा जायगा, वह स्तुति या निंदा के सिवा और होगा ही क्या? इसलिये विवशता है। तथापि इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है और इसके लिये प्रयत्न भी किया जायगा कि जो बात लिखी जाय, वह न्याय्य हो—पक्षपात या अतिरंजन से दूर हो। फिर भी मानव-स्वभाव की असमर्थता के कारण यदि अनजान में किसी प्रकार का पक्षपात हो जाय, तो उसके लिये मैं प्रारंभ में ही क्षमा-याचना किए लेता हूँ।

ग्रंथ-निर्माण की परिस्थिति

'वैराग्य-शतक' देवजी का प्राय: अंतिम ग्रंथ है। जिन विषयों का इसमें वर्णन किया गया है और वर्णनशैली जितनी विदग्ध है, वह देव-जैसे शृंगाररस-प्रेमी कवि के लिये जीवन के अंतिम समय में ही संभव है। वैराग्य-शतक के एक-एक छंद से प्रतिध्वनित होता है कि ग्रंथ जीवन की जरावस्था में लिखा गया है। संसार-सागर की कुटिल तरंगों के थपेड़े खाने के बाद मनुष्यों में वैराग्य-भावना का जाग्रत् होना एक प्रकार से अवश्यम्भावी-सा होता है। दीर्घ काल तक संसार की मृगतृष्णा में पड़े रहकर स्वभावतः उसकी नि:सारता का अनुभव होने लगता है। हमारे सामने ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जहाँ मनुष्यों ने स्वभावोचित असमर्थता के कारण पार्थिव धनसंपत्ति की मृगतृष्णा में पड़कर अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग इधर-उधर लोगों की मिथ्या प्रशंसा करते हुए या अनावश्यक गुणगाथा गाते हुए बिता दिया और बुढ़ापे में, जीवन के अंतिम दिनों में, सबसे परांमुख होकर उस परमपिता भगवान् में लौ लगाई। महाकवि देवजी भी इसी श्रेणी के मनुष्य थे। वह बड़े अच्छे कवि थे, इसमें तनिक भी संदेह नहीं; किंतु मालूम यह होता है कि वह अ कविता द्वारा धन या कीर्ति (दो में से कोई एक या दो उपार्जन करने के लिये उत्सुक थे। हाँ, यह बात अ थी कि वह सम्मान और आत्मगौरव खोकर तथा क शक्ति का दुरुपयोग करके, नरेशों की मिथ्या प्रशंसा क धन या कीर्ति कमाने की इच्छा नहीं रखते थे। फि धन या कीर्ति के मायाजाल में ही उनका तमाम ज बीता और उस पर भी वह भाग्य के इतने हीन थे उनकी कामनाएँ कभी पूर्णत: फलवती नहीं हुईं। उ अच्छी-से-अच्छी कविता की और वह अच्छे-से-अच्छे दरबार में पहुँचे, परंतु कहीं भी उनका समुचित स नहीं हुआ। वह एक योग्य संरक्षक खोजते ही रहे वह उन्हें कभी मिला ही नहीं। हाँ, थोड़े सम लिये महाराज भोगीलाल एक ऐसे व्यक्ति अवश्य जिन्होंने उन्हें संतोष दिया; अन्यथा उनका समस्त ज असंतोष और निराशा में ही बीता। असंतोष, नि पराजय, विफलता आदि संसार-सागर की कुटिल हैं। इनके थपेड़े देवजी को ख़ूब लगे। अंत में उनकी खुलीं और उन्होंने अपना ध्यान सांसारिक माया-जा हटाकर सच्चिदानंद भगवान् की ओर लगाया। को इसी अवस्था में उन्होंने अपना 'वैराग्य-शतक लिखा। अपनी इस अवस्था का अभिव्यजन उ वैराग्य-शतक की चारों पचीसियों में किया है।

जगद्दर्शन-पचीसी में—

केसव से गंग से प्रसिद्ध कबि-केहरि से,
कालहि गए जु वृथा कालहि बितावही;
साहन की सेवा सुख नाहिं न बिचारि देखो,
लोभ के उमाहन पै पीछे पछितावही
दूजे हाँस रही जो न दूजो हौं सराहौं देव,
देव के हिए में देवी देव सरिता वही;
खाँड्यो खल संग बन माँड्यो हरि रंग मन,
छाँड्यो मौजपन सु खिताब में सिताब

प्रमेही, नपुंसक और धातु-रोगियों के लिए

खुशख़बरी !!

कौन पढ़ा-लिखा नहीं जानता कि स्वास्थ्यरक्षा और चिकित्साचंद्रोदय के

लेखक

बाबू हरिदासजी

प्रमेह, धातुरोग, शीघ्रपतन और नामर्दी के इलाज में पूर्ण अनुभवी हैं ? आपका लिखा

चिकित्साचन्द्रोदय

चौथा भाग

देखने से, वहमी से वहमी के दिल में यह विश्वास अटल हो जाता है कि उपर्युक्त रोगों की चिकित्सा में, बाबू साहिब के समान अनुभवी बहुत कम चिकित्सक होंगे। उनका लिखा चिकित्साचंद्रोदय पढ़-पढ़कर अनेक वैद्य इन रोगों के इलाज में कामयाबी हासिल करके धन और मान कमा रहे हैं। हज़ारों रोगी केवल उनके ग्रंथ को पास रखकर और उसमें लिखे उपाय करके सफल-काम हुए हैं। आप एक बार उनके लिखे चिकित्साचंद्रोदय के सात भाग देखिए तो सही। अगर सातों भाग एकदम खरीदने की हिम्मत न हो तो पाँच रुपए दस आने का मोह छोड़कर उनका लिखा चतुर्थ भाग ही देखिए। उसे देखते ही आपको सातों भाग मँगाकर ही चैन आवेगा।

बहुत लिखने को स्थानाभाव है। अगर आप लड़कपन की नासमझी के कारण, कुसंगति के फलस्वरूप हस्तमैथुन–हैंड-प्रैक्टिस, मास्टरबेशन वग़ैरह करके अपने तईं संसार-सुख भोगने के अयोग्य बना चुके हैं, आपको ज़िंदगी भारस्वरूप मालूम होती है, प्रसंग में ज़रा भी आनंद नहीं आता, चैतन्यता नहीं होती, शीघ्र ही स्खलित हो जाते हैं, अपनी लक्ष्मी की तृप्ति नहीं कर सकते, आपका वीर्य पाखाने के समय काँखने से निकल जाता है, आपका दिल काम-धंधे में नहीं लगता, हर समय उदासी छाई रहती है, स्मरण-शक्ति घट गई है, चेहरा लंबा हो गया है, आँखें खड्डों में घुस गई हैं, तो आप

हरिदास ऐंड कंपनी कलकत्ता के मालिक

बाबू हरिदासजी

को अपना पूरा हाल लिखिए। शर्म को उठाकर छप्पर पर रख दीजिए। आपके पत्र को वे ही ख़ुद देखेंगे। बंद पत्रों को उनके मैनेजर महाशय भी खोल नहीं सकते। साथ ही ।) के पोस्ट-स्टाम्प क्लर्क की उज़रत वग़ैरह को साथ भेजिए। वे आपके रोग का नाम, आराम होगा या नहीं, अगर आराम होगा तो कितने दिनों में—क्या दवा सेवन करनी होगी। उसकी क़ीमत क्या होगी, लिख भेजेंगे। फिर आपकी तसल्ली हो, तो उनसे दवा मँगाकर सेवन कर और अपना जीवन सफल करें।

पत्रव्यवहार—**हरिदास ऐंड कंपनी**

गंगा-भवन, मथुरा सिटी

के पते से करें, क्योंकि बाबू साहब बुढ़ापे के कारण, ज़ियादातर मथुरा में ही रहने लगे हैं। दूसरी वजह यह है कि वे दवा के मामले में किसी का भी विश्वास नहीं करते, अपने सामने दवाएँ मथुरा में ही बनवाते हैं। इसलिये ताज़ी दवाएँ मथुरा में ही मिलती हैं। वहीं से बनकर कलकत्ते की दूकान पर आती हैं।

अच्छा, अगर आपको हमारी बातों पर विश्वास न हो, तो एक सज्जन की ख़ुश होकर लिखी हुई चिट्ठी नीचे देखिए। इससे ज़ियादा तसल्ली कराने का तरीक़ा हमें और नहीं मालूम।

एक सच्चा प्रशंसा-पत्र

बाबू नंदकिशोर शर्मा, हाई स्कूल रायबरेली से लिखते हैं—

जिस रोग में आज भारत के ९० प्रतिशत पुरुष ग्रसित हैं, जिस रोग ने असंख्य नव-युवकों का जीवन निःसार बना दिया है, और जिस कराल व्याधि के कारण नित्य ही सहस्रों युवक प्राण तक त्यागते हैं—उसके निवारण करने का सच्चा मार्ग मैं बताता हूँ। आशा है, मेरे देशभाई इस राह पर चलकर अपने इष्ट स्थान—मंज़िले-मक़सूद—तक पहुँच सकेंगे।

"मेरे एक अनन्य मित्र........को प्रमेह, धातुराग और नपुंसकता का मर्ज़ था, वह मृत्यु-दायक (Death dealing) हस्तमैथुन की कुटेव में फँस गए थे। उनके दुःख की सीमा नहीं थी, कारण कि वह अब क्लीबता (नामर्दी) को प्राप्त हो गए थे। युवती—उठती जवानी की स्त्री को इठलाती देखकर मरने पर तत्पर हो जाते थे। परंतु ईश्वर की दया से अथवा अपने भाग्यबल से, उन्होंने मुझसे, एक सच्चे मित्र के नाते, अपनी संपूर्ण मर्मस्पर्शी कथा कह दी। मैंने उन्हें आश्वासन (तसल्ली) दिया।

बाबू हरिदासजी वैद्य कलकत्ते वाले को, जो आजकल मथुरा में रहते हैं, मैं बहुत दिनों से जानता था। उनकी सुख्याति भी मैंने सुनी थी। अतएव अपने मित्र के लिये मैंने उक्त वैद्यजी से तिला नं० १—मूलिकादि तेल—लगाने के लिये और केशरपाक आदि खाने के लिये मँगवा दिया। नतीजा यह हुआ कि इन दवाओं के सेवन से मेरे मित्र महाशय पूर्ण नीरोग और संसारसुख भोगने योग्य हो गए। इन्द्रिय-दोष तो बिलकुल जाता रहा। वीर्य-रोग में थोड़ी-सी कसर है। इलाज चल रहा है, आशा ही नहीं प्रत्युत दृढ़ आशा है कि वह ज़रा-सी कसर भी पूरी हो जावेगी।

अंत में मेरी अपील अपने उन देशवासियों से है, जो उक्त व्याधियों के शिकार हो चुके हैं तथा अपने जीवन तक को खोने को तैयार हैं कि वे बिना किसी संदेह के, बिना अधिक देर किये, सीधे बाबू हरिदासजी वैद्य से अपना इलाज करावें। यहाँ किसी प्रकार की धोखेबाज़ी नहीं है। नपुंसकता, शीघ्रपतन और धातु-रोगियों का इलाज यहाँ सब जगह से अच्छा होता है। औषधियों का लाभ सच्चा और निश्चित है। हाँ, बाबूजी के इलाज में देर भले ही हो, पर काम सच्चा तथा पक्का होता है।

पता—हरिदास एंड कंपनी,
गंगा-भवन, मथुरा यू० पी० (सिटी

आत्मदर्शन-पचीसी में—

छिन-छिन छीन छिन छीनत छपाकी छेम,
छिमा न धरत छुधा छोभ सों छयौ फिरै ;
घर-घर दौरै द्वारकापति को द्वार तजे,
सेवत अदेव देव देवते भयो फिरै ;
स्वारथ न सूझत परारथ न बूझत,
अपारथ ही झूझत मनोरथ मयो फिरै,
होय हरि चाकर तो चाकर जगत होय,
जगत को चाकर है कूकर भयो फिरै।

तत्त्वदर्शन-पचीसी में—

तेरो घर घेरे आठौं याम रहै आठौं सिद्धि,
नवो निधि तेरे बिधि लिखिय ललाट है ;
देव सुख साज महाराजनि को राज तूही,
सुमति सु सोए तेरे कीरति के भाट है ;
तेरे ही अधीन अधिकार तीन लोक कोसु,
दीन भयो क्यों फिरै मलीन घाट बाट है ;
तोमें जो उठत बोलि ताहि क्यों न मिलै डोलि,
खोलिए हिए में दिए कपट-कपाट है।

और प्रेम-पचीसी में—

ऐसो हौं जु जानतो कि जैहै तू बिसै के संग,
एरे मन मेरे हाथ-पाँव तेरे तोरतो ;
आजु लगि कत नरनाहन की नाहीं सुनि,
नेह सो निहारि हारि बदन निहोरतो ;
चलन न देतो देव चंचल अचल करि,
चाबुक चेतावनीन मारि मुँह मोरतो ;
भारो प्रेम पाथर नगारो दै गरे सों बाँधि,
राधाबर विरुद के बारिद में बोरतो।

लिखकर प्रत्येक पचीसी के वर्णित विषय का तारतम्य निभाते हुए इस तुच्छ मनोवृत्ति को जी भरकर कोसा है। प्रेम-पचीसी में तो वह बिलकुल खड्गहस्त हो गए हैं। उनका यह पश्चात्ताप और यह प्रबोध ही वैराग्य-शतक का निर्माता बना।

शतक का संगठन

ऊपर के उद्धरणों से यह बात स्पष्ट होगी कि वैराग्य-शतक चार विभागों में बाँटा गया है और प्रत्येक विभाग को पचीसी के नाम से पुकारा गया है। इस प्रकार तमाम शतक जगद्दर्शन, आत्मदर्शन, तत्त्वदर्शन और प्रेम इन ४ पचीसियों में विभक्त है। ये पचीसियाँ उसी क्रम से एक के बाद एक लिखी गई हैं, जिस क्रम से उनका यहाँ वर्णन किया गया है। यह क्रम कितना समीचीन है, यह बतलाने की आवश्यकता शायद ही हो। देवजी की सूक्ष्मदर्शिता का यह क्रम ही एक बड़ा सुंदर प्रमाण है। इस क्रम में ही उन्होंने वैराग्य-विषय की सक्रम मीमांसा कर दी है। पहले जगत् का ज्ञान, फिर अपना ज्ञान, फिर तत्त्व या वस्तुस्थिति का ज्ञान और इस निचोड़ के बाद प्रेम—यह वैराग्य का स्वाभाविक विकास-क्रम है। देख लिया कि जगत् क्या है, हम कौन हैं और वास्तविकता क्या है और फिर इन सब बातों से जो निष्कर्ष निकला—इस सिंधुमंथन के बाद जिस रत्न की प्राप्ति हुई, उससे प्रेम हुआ। वास्तविक प्रेम या विराग इसी प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद हो भी सकता है। विना समस्त परिस्थितियों का अध्ययन किए, विना सबका स्पष्ट ज्ञान प्राप्त किए, किसी वस्तु के साथ प्रेम या विराग होना संभव ही नहीं। देवजी का उक्त क्रम ही एक इतने बड़े सिद्धांत की शिक्षा दे डालता है।

वैराग्य-शतक में प्रेम-पचीसी का स्थान

स्थूल दृष्टि से देखने पर वैराग्य-शतक में जगद्दर्शन आदि पहली तीन पचीसियों के स्थान पाने का औचित्य तो समझ में आ जाता है, परंतु प्रेम-पचीसी की बात में भ्रम-सा होने लगता है। प्रेम और वैराग्य! यह एक विकट विरोधाभास प्रतीत होता है। कहाँ प्रेम और कहाँ वैराग्य! साधारण बुद्धि से ये बातें परस्पर विरोधिनी प्रतीत होती हैं। परंतु देव साधारण बुद्धि के कवि न थे। उनमें असाधारण प्रतिभा थी। वह बड़े सूक्ष्मदर्शी थे। वह जानते थे कि जिन्हें लोग एक दूसरे का प्रतिद्वंद्वी समझते हैं, वही सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर अभिन्न-मित्र प्रतीत होते हैं। वैराग्य और प्रेम में कोई भेद नहीं, किंतु उसी समय जब वे दोनों अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गए हों। उस समय नहीं कि जब चित्त में यह ज्ञान बना हुआ हो कि मैं तो 'अ' को प्यार करता हूँ और यह 'अ' नहीं है, इसलिये यह मेरा प्रेम-पात्र नहीं है; किंतु उस समय जब यह अवस्था हो गई हो कि 'अ'—जिसे मैं प्यार करता हूँ—चारों ओर दिखाई पड़ रहा है—उस समय जब सृष्टि की समस्त वस्तुओं में अपने प्रियतम की ही झाँकी हो रही हो। पाषाण-हृदय गिरिगुफाओं से, जड़ वृक्षवल्लियों से, अचेतन

नदी-निर्झर से, शून्य आकाश से, पृथ्वी के एक-एक अकिंचन कण से हमें वही मोहनी मूर्ति दिखलाई पड़ रही हो। उस अभिनंदनीय प्रेम और वैराग्य में फिर भेद करना संभव नहीं होता। उस समय प्रेमी और विरागी का एक ही लक्षण हो जाता है। विरागी 'अ' से वैराग्य करना चाहता है। वह उस समय तक पूर्ण विरक्त नहीं कहा जा सकता, जब तक उसके हृदय में यह पहचान बनी रहती है कि अमुक वस्तु 'अ' है, इसलिये उससे विराग करना चाहिए और अमुक वस्तु 'अ' नहीं है, इसलिये उससे विराग न करना चाहिए। जब चित्त में इस प्रकार का भाव रहा, तब पूर्ण वैराग्य कहाँ रह गया। सच्चा विरक्त तो वही है, जो संसार के अणु-अणु में अपनी वैराग्य-वस्तु के ही दर्शन करता हो। इस प्रकार अपनी परा काष्ठा को पहुँचकर वैराग्य और प्रेम दोनों के लक्षण एक हो जाते हैं। प्रेमी और विरागी, दोनों एक ही 'अ' के द्रष्टा हो जाते हैं। दोनों को संसार में 'अ' के सिवा और कुछ नहीं दिखलाई पड़ता। देवजी ने प्रेम और वैराग्य का यही साथ निबाहा है। प्रेम-पच्चीसी में वर्णित देव का प्रेम लौकिक प्रेम नहीं; उसमें अलौकिकता है, निर्लिप्तता है, अपनेपन को खो देने का भाव है, विराग है। वह प्रेम की परा काष्ठा है। प्रेम-पच्चीसी के छंदरत्न वैराग्य का आदर्श-संदेश है। संसार के समस्त व्यापारों से निर्वेद धारण कर, लाज, काज, भय सबको तिलांजलि दे, दुःख, सुख, यश, कलंक किसी की कुछ परवा न कर, गुरुजनों और कुटुम्बियों से भी मुख मोड़ प्रेम-पच्चीसी की प्रेमिकाएँ "एकै अभिलाख लाख लाख भाँति लेखती हैं"। इसीलिये मनीषी देव ने वैराग्य-शतक में अपनी प्रेम-पच्चीसी को स्थान दिया है। अस्तु।

विषय-प्रतिपादन

पुस्तक वैराग्य-शतक के नाम से लिखी गई है और स्वभावतः इसका विषय भी वैराग्य ही है। परंतु इस विषय का प्रतिपादन जैसा प्राचीन काल से होता चला आया है, उसी शैली पर नहीं हुआ। उन बातों की उपेक्षा की गई हो, ऐसा भी नहीं है। वे बातें भी पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। संपूर्ण आत्मदर्शन-पच्चीसी और संपूर्ण तत्वदर्शन-पच्चीसी इसी प्राचीन पद्धति से भरी पड़ी है। इस प्रकार अधिक नहीं तो आधा स्थान प्राचीन प्रणाली को दिया गया है। परंतु देव इतने ही से संतुष्ट हो बैठ जानेवाले न थे। प्राचीन प्रणाली अच्छी थी, इसलि उसको उचित स्थान देना आवश्यक ही था। परं नवीन पद्धति का अवतरण भी कवि की प्रतिभा के र युक्त ही था। इसलिये जगद्दर्शन और प्रेम-पच्चीसी-नाम दो पच्चीसियाँ और सामने आईं। आत्मज्ञान औ तत्वज्ञान द्वारा वैराग्य की शिक्षा की प्रणाली प्राचीन उसका पूर्ण उल्लेख दूसरी और तीसरी पच्चीसियों में, इन्हीं नामों के अनुरूप लिखी गई हैं, मिलेगा। आदि-अं की दो पच्चीसियों की प्रतिपादन-प्रणाली भिन्न है। जग र्शन-पच्चीसी में संसार की रोज़-रोज़ घटनेवाली घटना का उल्लेख है; परंतु ख़ूबी यह है कि वह उल्लेख इस ढं से किया गया है कि उनको पढ़कर संसार से विरक्त हो की भावना सहज ही मन में उत्पन्न होती है। पच्चीसी में वर्णित प्रत्येक घटना संसार के प्रति उपे और ग्लानि के भाव पैदा करती है और यही भाव भाव हैं, जो वैराग्य को जन्म देते हैं। इस प्रकार सांसारि घटनाओं के वर्णन द्वारा भी वैराग्य का उपदेश हो जा है। रही प्रेम-पच्चीसी, सो वह तो वैराग्य का मूर्तिम उदाहरण है। प्रेम-पच्चीसी की प्रेमिकाएँ पूरे वैरागि के रूप में सामने दिखलाई पड़ती हैं और उनकी ए एक चेष्टा उनका अनुकरण करने के लिये प्रोत्साहि करती हुई-सी मालूम होती है। इन पच्चीसियों से विष प्रतिपादन इतना गठा हुआ बन गया है कि मन मुग्ध जाता है। पहली पच्चीसी में वैराग्योत्पादक घटनाओं चित्र खींचकर उस भावना को उद्दीप्त किया; बीच दो पच्चीसियों में ज्ञान-चर्चा कर उद्दीप्त भावना में स्थ और गहरा रंग चढ़ाया और अंत में वैराग्य का स चित्र भी सामने खड़ा कर दिया—दिखला दिया वैराग्य का यह रूप होता है। घटनाओं से हृदय भाव जाग्रत् न हुआ, तो उपदेशों का असर होगा; उप भी सार्थक न हुए, तो वैरागियों को सामने देखकर विचार होगा ही, कहाँ तक हृदय पत्थर बना डाला जाय अँगरेज़ी में एक कहावत है कि उपदेश देने की अपे करके दिखा देना अधिक प्रभावशाली होता है। देवजी ने करके दिखा दिया है। उन्होंने उपदेश भी और तदनुरूप आचरण करनेवाली मूर्तियाँ भी प्र दिखला दीं। इस प्रकार विषय-प्रतिपादन की

प्रणाली को जो जन्म दिया, वह तो दिया ही, साथ ही अपने वर्णन की प्रभावशालिता भी कई गुना अधिक बढ़ा दी।

लेखन-शैली

लेखन-शैली भी आदि से अंत तक देवजी की अपनी है। जिस ढंग से बातों का उल्लेख उन्होंने किया है, उस ढंग का मिलना भी अन्यत्र दुर्लभ है। फिर भी अपनी शैली की पृथक्ता क़ायम रखते हुए भी, उस समय तक प्रचार में आई हुई प्रायः सब शैलियों का उदाहरण भी उन्होंने पेश किया है—

बागो बनो जर पोस को तामहिं ओस को हार तन्यो मकरी ने।
पानी में पाहन पोत चल्यो चढ़ि कागद की छतरी सिर दीने॥
काँख में बाँधिकै पाँख पतंग के देव सुसंग पतंग को लीने।
मोम के मंदिर माखन के मुनि बैठे हुतासन आसन कीने॥

आदि में कबीर-शैली के—

थावर जंगम थूल अथूल जिती जग जंतु की जाति जनाई।
जे रज अंडज स्वेदज औ उद्भिज्ज चहूँ युग देव बनाई।
अंतर जाके निरंतर ते उपजै बिनसै तिहि माँहिं समाई।
बाहर भीतर सो अध ऊर्ध रह्यो भरिपूरि अकास की नाई॥

आदि में संतकवि-शैली के, और—

संपति में ऐंठि बैठि चौतरा अदालति के,
बिपति में पैन्हि बैठे पाँय झुनझुनियाँ;
जेतो सुख संपति हतोई दुख बिपति में,
संपति में मिरजा बिपति परे धुनियाँ।
संपति से बिपति बिपतिहू तें संपति है,
संपति औ बिपति बराबर के गुनियाँ;
संपति में कायँ-कायँ बिपति में भायँ-भायँ,
कायँ-कायँ भायँ-भायँ देखी सब दुनियाँ॥

आदि में सूक्तिकार-शैली के प्रत्यक्ष उदाहरण मिलेंगे। वैराग्य-जैसे विषय के वर्णन की यही शैलियाँ उस समय तक प्रचलित थीं। किंतु देवजी की अपनी लेखन-शैली निराली है और उसका दिग्दर्शन स्थान-स्थान पर होता है। प्रेम-पचीसी में तो उनकी शैली बड़ी ही अनोखी बन पड़ी है। वह उनका प्रिय विषय था, इसलिये उसमें यह अनोखापन आना स्वाभाविक ही था। देवजी की वर्णन-शैली बड़ी मार्मिक होती थी। उनकी विशेषता इस बात में थी कि वह अत्युक्तियों का सहारा लेकर नहीं, बिलकुल स्वाभाविक ढंग से बातें कहते थे। उनकी सूक्तियाँ शून्य आकाश से नहीं, सरस मानव-हृदय से बातें करती थीं। उन्होंने कल्पना का कचूमर नहीं निकाला, प्रत्युत प्रतिभाशाली विज्ञ सूक्ष्मदर्शी की भाँति मानव-हृदय के मर्म-स्थलों को टटोल-टटोलकर रख दिया है। उनकी कविता तल्लीनता, अभिन्नता, एकरूपता का ख़ज़ाना है। उन्होंने जिस विषय का वर्णन किया है, तन्मय होकर किया है। उनकी उक्तियाँ विद्यार्थियों द्वारा सुनाए जानेवाले पाठ-जैसी नहीं होती थीं, वे उनके हृदय के अविकल उद्गार के रूप में श्रुतिगोचर होती थीं। इस संबंध में एकआध उदाहरण दे देना अनुचित न होगा।

श्याम मथुरा गए हैं, व्रजबालाएँ विरहिणी हैं, उद्धव महाराज उपदेश देने आए हैं, उनकी (गोपियों की) दशा पर करुणा करके विरह से बचने के लिये उद्धवजी उन्हें व्रत, नियम, संयम, प्राणायाम, आसन, ध्यान आदि करके योगाभ्यास का उपदेश देते हैं। किंतु व्रजबालाएँ साधारण श्रेणी की प्रेमिकाएँ नहीं थीं; उनका प्रेम लौकिक नहीं था, जो योगयाग की आवश्यकता पड़ती। वे तो नैसर्गिक प्रेम की पुजारिनी थीं। उनका प्रेम अलौकिक था। उसमें असाधारणता थी। अस्तु, उद्धवजी को जवाब मिलता है—

जो न जी में प्रेम तब कीजै व्रत नेम,
जब कंजमुख भूले तब संजम विसेखिए;
आस नहीं पी की तब आसन ही साधियतु,
सासन कै साँसन कौ मूँदि पति पेखिए।
नख सों सिखा लौ सब श्याममई बाम भई,
बाहिरहू भीतर न दूजो लेख लेखिए;
जोम करि मिलैं जो बियोग होय बालम सों,
ह्याँ न हरि होंहिं तब ध्यान धरि देखिए॥

कैसी अनूठी उक्ति है। अपने प्रेमपात्र के साथ कैसी ज़बर्दस्त तन्मयता है? घनिष्ठता और एकरूपता का अंत है। विरहिणी बालाएँ अपने विरह का अनुभव ही नहीं करतीं। कैसे अनुभव करें? उनकी तो रग-रग श्याममय हो रही है। वियोग कहीं हो भी। उद्धवजी को टका-सा जवाब मिल गया। उनकी एक-एक बात गिन-गिनकर उड़ा दी गई।

अब ज़रा आवागमन की साँकरी गली की ओर चलिए। यह गली बड़ी संकीर्ण है। इसमें दो के एक साथ चलने की गुंजाइश नहीं है। चाहे निकट-से-निकट

संबंधी हो, चाहे घनिष्ठ-से-घनिष्ठ मित्र हो, कोई भी साथ नहीं चल सकता। रास्ता ही नहीं, दो निकलेंगे कहाँ से। उस रास्ते में तो बस अकेले आना और अकेले जाना हो सकता है। जन-परिजन, धन-वैभव सब ज्यों-के-त्यों पड़े रह जायँगे। कोई वहाँ से साथ होकर न निकल सकेगा। इसीलिये देवजी उपदेश देते हैं—

भीर सों न भूलै बीर, चलत न एक तीर,
तीर तरकस को सो झूठो ठक हेला है;
तेरे हाथ दीपक समीप तेरे सूधी बाट,
वाट जिन परे तू तो हाट-हाट खेला है।
प्रभुताई पायी पाँय औरन परत कत,
होहु वलि गुरु क्यों बिचल होत चेला है;
आह जनि छोड़ै देव दूसरे की राह नहीं,
आवत अकेला जग जात हू अकेला है॥

कितना विशद वर्णन है। संसार के मिथ्या संबंध को त्याग कर सच्चिदानंद परमात्मा के पवित्र चरणों में श्रद्धा और भक्ति की अंजलि समर्पित करने का कितना ओजस्वी उपदेश है!

प्रेम

वैराग्य-शतक में वर्णित प्रेम से मालूम होता है कि देवजी बड़े ऊँचे प्रेम के उपासक थे। देवजी के प्रेम-मद्य का पान करनेवाला सदा मतवाला ही बना रहता है, एक बार उस रंग में रँगा कि सूरदास की काली कमली की भाँति फिर उस पर कोई दूसरा रंग नहीं चढ़ता। उस नशे की खुमारी कभी दूर नहीं होती। और जो उसको पीकर मर जाता है, वह तो अमरत्व को प्राप्त हो जाता है। उनके प्रेम को चखकर फिर अमृत के भी चखने की इच्छा नहीं होती। प्रेम-पचीसी में वह अपने प्रेम की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

जाके मद मात्यो सो उमात्यो है कहूँ न कोई,
बूड़्यो उघर्यो न तर्यो शोभासिंधु सामु है;
पीवत ही जाहि कोई मर्यो सो अमर भयो,
बौरान्यो जगत जान्यो मान्यो सुख-धामु है।
चख कै चखक भरि चाखत ही जाहि फिरि,
चाख्यो न पियूष कछु ऐसो अभिरामु है;
दंपति सरूप ब्रज औतर्यो अनूप सोई,
देव कियो देखि प्रेमरस प्रेम नामु है।

फिर उसी प्रेम को व्याख्या करते हुए वह आगे कहते हैं—

× × ×

ध्रुव प्रहलाद हिय हुअ अहलाद जासों,
प्रभुता तिलोकहू की तिन सम तूली है;
बेदम से बेद मतवारे मतवारे परे,
मोहे मुनि देव देव सूली उस सूली है

× × ×

ध्रुव, प्रह्लाद आदि जिस प्रेम के पुजारी होंगे, वह कितना पवित्र और कितना उत्कृष्ट होगा, यह स्पष्ट ही

मन

शतक के अन्यान्य विषयों की अपेक्षा देव ने मन बहुत अधिक लिखा है। प्रत्येक पचीसी में और स्थानों पर, मन के ऊपर देवजी का कुछ-न-कुछ उल्लेख श्य पाया जायगा। आत्म-दर्शन-पचीसी में तो और अधिकता से यह वर्णन दृष्टिगोचर होता है। उस प्रशंसा की बात तो यह है कि इतना अधिक लिखने भी जो कुछ लिखा है, अद्वितीय है। जहाँ पर इस का विशेष रूप से उल्लेख किया है, वहाँ सबसे देवजी उसकी चंचलता का ही वर्णन करते हैं। ने अपने विषय-विश्लेषण में कितनी सूक्ष्मदर्शिता से लिया है, इसका उदाहरण हमें यहीं से मिलता है। म सबसे प्रधान गुण चंचलता है। देवजी ने इसी नस ताड़कर पकड़ा है। इस विषय में पदार्पण करते ही कहते हैं—

हाय कहा कहौं चंचल या मन की मति में मति मेरी भुल
हौं समुझाय कियो रसभोग न देव तऊ तिसना विनस
दाड़िम दाख रसाल सिता मधु ऊख पिए औ पियूष से
पै न तऊ तरुनी तिय के अधरान के पीबे की प्यास बुझ

मन की चंचलता का कितना सुंदर वर्णन है। और उसके हठ दुराग्रह का कितना मार्मिक व्यंग्य है कितना दुराग्रही है कि समझाए समझता ही नहीं। भी मन का यह रोग असाध्य नहीं है। इसीलिये मन को सँभाले रखने और बहुत बुद्धिमानी के साथ लगाने की शिक्षा देते हैं। वह जानते हैं कि यह बड़ी मूल्यवान् है। यदि गाँठ से गिर गई, तो असंभव ही समझिए। इसलिये बहुत सोच-सम ऐसे स्थान पर इसका समर्पण कीजिए, जहाँ यह लिया जाय, नहीं-नहीं 'आपनसो' कर लिया जाय-हो जाय। वह कहते हैं—

गाँठिहु ते गिरि जात गए यह पैये न फेरि जु पै जग जोवै।
ठौर ही ठौर रहै ठग ठाढ़ेई पीर जिन्हैं न हँसै किन रोवै॥
दीजिए ताहि जो 'आपन सो' करै देव कलंकनि पंकनि धोवै।
बुद्धि-बधू को बनाइ कै सौंपु तू मानिक सो मन धोखे न खोवै॥

इसी सिलसिले में आगे चलकर मन-मीत का वर्णन आया है। मन-मीत शब्द हमारे कानों में कई बार आया होगा, परंतु आज तक उसकी मिताई का प्रमाण नहीं मिला। देवजी ने इस बात की चेष्टा की है। उन्होंने सिद्ध करने की चेष्टा की है कि वास्तव में मन मीत है। वर्णन मित्रता का है। मैत्री की जननी हैं वासनाएँ, और वासनाओं की जननी हैं ज्ञानेन्द्रियाँ। जहाँ ज्ञानेंद्रिय-जन्य वासनाओं की जितनी अधिक तृप्ति होती है, वहाँ मैत्री भी उतनी ही अधिक घनिष्ठ होती है। एक ज्ञानेंद्रिय-जन्य वासनाओं को तृप्त करनेवाले मित्र की अपेक्षा अनेक ज्ञानेंद्रियाँ-जनित वासनाओं की तृप्ति करनेवाला मित्र अधिक घनिष्ठ होता है और चूँकि इंद्रियाँ पाँच ही हैं, इसलिये पाँच ज्ञानेंद्रियों से उत्पन्न होनेवाली वासनाओं को तृप्त करनेवाला मित्र सबसे अधिक घनिष्ठ होगा। देवजी का मनमीत इसी प्रकार का सर्वश्रेष्ठ मित्र है। वह अनूप रूप दिखाकर नेत्रेंद्रिय को, राग सुनाकर कर्णेंद्रिय को, सुगंध सुँघाकर घ्राणेंद्रिय को, रसभोग कराकर जिह्वा को और संभोग में रखकर स्पर्शेंद्रिय (त्वचा) को—इस प्रकार पाँचों ज्ञानेंद्रियों को तृप्त करता है। अब देवजी के शब्दों में ही उनके मित्र की बड़ाई सुनिए—

रूप अनूप दिखावत ही जिहि राग सुनावत बैस बिताई।
सूँघे सुगंध किए रसभोग संजोगनि सों न घरीक रिताई॥
देवहिं राज दियो घर ही में सभा अपनी सब जोरी जिताई।
मोहिं मिल्यो जब ते मनमीत तजी तबते सबते मैं मिताई॥

प्रथम दो चरणों में पाँचो ज्ञानेंद्रियों की वासनाओं को तृप्त करने की बात कहकर तृतीय चरण में और आगे कदम बढ़ाया जाता है। वह मित्र देव को अपने (मन के) घर का राजा बना देता है (देवजी मन पर शासन करने लगते हैं) और अपनी सभा की (भाव-सभा की) सब जोड़ियों पर (दुःख-सुख, हर्ष-शोक आदि द्वंद्वों पर) विजय दिलाता है। (देवजी इन द्वंद्वों से परे—द्वंद्वातीत हो जाते हैं) ऐसा सुंदर मीत पाकर देवजी क्यों न सबसे मिताई तज देते।

कुछ उपमाएँ

देवजी ने मन को मानिक की उपमा कई स्थलों पर दी है—

"या मन मानिक के सुनि पारख मोल तिहूँ पुरराजन माख्यो।"

× × ×

"मानिक सों मन खोलिए काहि कुगाहक नाहक के बहुतेरे।"

× × ×

"बुद्धि-बधू को बनाइकै सौंपु तू मानिक सों मन धोखे न खोवै।"

"मन मानिक है हरि हीरा गाँठि बाँध्यो हम

× × ×

ताहि तुम बनज बतावत हौ कौड़ी को।"

आदि कई स्थलों पर इस प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। इससे मालूम होता है कि देवजी को यह उपमा अधिक पसंद आई थी। उन्होंने इस उपमा को इतना पसंद क्यों किया, इस विषय में निश्चयपूर्वक तो कहा ही क्या जा सकता है; परंतु मालूम यह होता है कि उसकी समानताओं ने ही उन्हें विशेष रूप से आकृष्ट किया था। मन बड़ा मूल्यवान् पदार्थ है। समस्त इंद्रियों में सबसे अधिक मूल्यवान् मन ही माना गया है। इसलिये उसके उपमान के लिये भी मूल्यवान् पदार्थ की ही आवश्यकता थी। यह बात 'मानिक' में विद्यमान थी ही। दूसरे, मन बुद्धि और चेतना आदि प्रकाशों से प्रकाशित रहता है, वह प्रकाश भी मानिक में मिलता है। और सबके बाद इस प्रकार के मूल्यवान् और प्रकाशवान् अन्यान्य पदार्थों की अपेक्षा मानिक में यह विशेषता और है कि मन के साथ उसमें श्रुतिमधुर अनुप्रास भी आ जाता है। इन सब गुणों से युक्त ऐसे सुंदर उपमान का प्रयोग देवजी कैसे छोड़ देते?

मन-मानिक की भाँति ही देवजी ने ख्याल खिलौना का प्रयोग भी कई स्थलों पर किया है। "ख्यलनि की ख्यालनि खिलौना ज्यौं खिलायगे", "ख्याल ख्याल में मढ़्यो फिरै", "ख्याल ख्याल ही के खेलि-खेलि", "ख्याल के खिलौना खेल खेलत खिलाड़ी है"—आदि अनेक स्थलों पर इस उपमा का प्रयोग किया गया है। ख्याल को आत्मा का खिलौना बनाना कितना समीचीन है, यह थोड़ा-सा विचार करने पर बड़ी सरलता के साथ समझ में आ जायगा। हमारे यहाँ गुड्डी-गुड्डा का खेल बहुत प्राचीन है। छोटे-छोटे बच्चे—खेलने की उम्रवाले बच्चे—प्रायः यही खेल खेला करते थे। अब भी इसका चलन है। देव के समय में तो और भी अधिक रहा होगा। हमारा शरीर किस पुतले से कम है? अतः आत्मा के लिये

खाल का यह खिलौना कितना उपयुक्त है । उस पर भी खाल खिलौना का मनोहर अनुप्रास । इस प्रकार के चुभते हुए उपमान देवजी ने ख़ूब ढूँढ़ निकाले हैं । खाल की खोल और खाल की परवाल आदि उपमाएँ बहुत प्रचलित हैं । देवजी ने भी उनका उल्लेख किया है । परंतु उनमें वह सुंदरता नहीं, जो खाल खिलौना में है; क्योंकि खाल परवाल आदि की समीक्षा करते ही वीभत्सता आने लगती है, जिससे खिलौना बिलकुल अछूता रहता है । इतना ही क्यों, इसके प्रतिकूल खिलौने में रोचकता आती है ।

कुछ रूपक

उपमाओं की भाँति ही देवजी ने रूपक भी बहुत चुस्त बाँधे हैं । दो एक रूपकों की बानगी देखिए । बाज़ार का रूपक है । बाज़ार भी ऐसा-वैसा नहीं, देह-नगर का बढ़िया बाज़ार लगा है । सब सामान जुटा है । आयु का दिन है, जीव-रवि उगा हुआ है गुर (गुरु और गुड़) की बिक्री हो रही है । मोह की गोनियाँ (बोरे) बेची जा रही हैं । बिके हुए माल पर छितीश की छाप लगती है, यमराज निरीक्षण के लिये उपस्थित है और बनिए भी मौजूद हैं । शाम को बाज़ार के उठ जाने का भी ज़िक्र है । सभी कुछ तो है । बाज़ार का और सामान ही क्या बाक़ी रहा ? यह सामान सजाकर देवजी कहते हैं—

आवत आयु को द्यौस अथोतु गए रबि जीव अँध्यारि में ऐहै ।
दाम खरे कै खरीद खरो गुर मोह की गोनिन फेरि बिकैहै ॥
देव छितीस की छाप बिना जमराज जगाती महा दुख दैहै ।
जात उठी पुर देह की पैठ अरे बनिए बनि ए नहिं रैहै ॥

सन्निपातावस्था का एक रूपक और उल्लेख योग्य है । इसमें देवजी समस्त संसार को सन्निपातग्रस्त पाते हैं । वह कहते हैं—

लोभ कफ, क्रोध पित्त, प्रबल मदन वात,
मिल्यो सन्निपात उतपात उलच्यो रहै ;
आकबाक बकि-बकि औचक उचकि चकि,
दौरि-दौरि थकि-थकि मरन पच्यो रहै ।
सब जग रोगी है सँयोगी औ वियोगी भोगी,
पथन रहन मनोरथन रच्यो रहै ;
होय अजरामर महौषधि सँतोष सेवै
पावै सुख मोच्छ जो त्रिदोष से बच्यो रहै ।

त्रिदोष--कफ, पित्त, वात के—बिगड़ने से ही सन्नि होता है । वे तीनों दोष यहाँ मौजूद हैं । सन्निपा रोगी बकता, झकता, उचकता, भागता है। वही हो रहा है । इसके बाद त्रिदोष से बचानेवाली, सन्नि से मुक्ति प्राप्त करानेवाली औषध भी प्रस्तुत है । सा यह कि सन्निपात पैदा होने से उससे अच्छा होने का सामान यहाँ प्रस्तुत है ।

कुछ मंतव्य

देवजी की कविता को पढ़नेवाले जानते हैं कि वह सूक्ष्मदर्शी और उदार विचार के पुरुष थे । वैराग्य- में भी उनकी इन भावनाओं का प्रतिबिंब स्थान- पर लक्षित होता है। इन वर्णनों में एक ओर उनकी दर्शिता और दूसरी ओर उदार भावना दोनों का सुंदर समन्वय पाया जाता है । अपनी उदारता में वह तक बढ़े हुए मिलते हैं कि शैव, वैष्णव, सनातनी, समाजी हिंदू-मुसलमान आदि छोटे-छोटे सांप्र संकीर्ण विचार-क्षेत्रों से बहुत दूर प्रांत और देश— चहारदीवारी लाँघकर विश्व के अखंड विस्तीर्ण क्षे में समान रूप से विचरते हुए पाए जाते हैं । दे वैराग्य-शतक में विश्व-प्रेम की बड़ी उदात्त भाव अभिव्यंजन किया है । वह जन्म की सार्थकता ही इसमें थे कि ऊँच-नीच हिंदू-मुसलमान, शैव-शाक्त का संकीर्ण छोड़कर प्राणि-मात्र का हितसाधन किया जाय । इसी उन्होंने जगद्दर्शन-पचीसी में कहा है—"जीवन को जगजीवन सों हित करि जग में भलाई करि लेय लेयगो।" इस प्रकार का वाक्य अकस्मात् ही केवल बार निकल पड़ा हो, ऐसी बात नहीं है । इसी आश बातें अन्यान्य स्थलों पर भी व्यक्त की गई हैं आत्मदर्शन-पचीसी में "जेई जगमीत तेई जग में जन सज्जन सुशील सुख शोभा सरसाहिंगे" और दर्शन-पचीसी में "मानत सनेह सब ही सों मन है" आदि । इन पुनरावृत्तियों-से स्पष्ट प्रकट कि देवजी का मत इस संबंध में बिलकुल इसी प्रकार वह इस बात पर भी बराबर ज़ोर दे पाए जाते हैं कि ईश्वर की प्रभुता पहचानने मनुष्य को विश्वास से काम लेना चाहिए, त पार्थिव प्रयोगों द्वारा उसकी सत्ता का प्रमाण भूल है । अदृष्ट के दृष्ट प्रमाण कहाँ संभव हो स

उनमें तो विश्वास ही काम देता है। 'विश्वासो फलदायकः' के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं है। इसीलिये देवजी ने प्रतीति और विश्वास की महिमा बहुत गाई है। यदि ईश्वर से साक्षात्कार करना है, तो विना प्रतीति किए हो ही नहीं सकता—"जोगी जपी तपी पंडित प्रेमी प्रतीति विना पचि हारे न पायो", "पाइए प्रगट परमेश्वर प्रतीति में"—आदि वाक्यों में उन्होंने इसी सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। एक बात पर और ज़ोर देते हुए भी वह पाए जाते हैं। वह है एकांतनिष्ठा। सांसारिक मृग-तृष्णा की उपेक्षा कर अनन्य भाव से परमात्मा की शरण स्वीकार करना उनका बड़ा व्यापक और बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपदेश है। "एकै अभिलाख लाख-लाख भाँति देखियत देखियत दूसरो न देव चराचर में", "एक मन मेरो मेरे काम को न रह्यो देव श्याम रंग ह्वै करि समानो श्याम रंग में", "जौही लौं न जाने अनजाने रही तौलौं अब मेरो मन भाई बहकाए बहकत नाहिं", "नख सों शिखा लौं सब श्याममयी बाम भई बाहिरहू भीतर न दूजी लख लेखिए"—आदि अनेक उदाहरणों में उन्होंने एकांतनिष्ठा का महत्त्व भिन्न-भिन्न रूपों में दर्शाया है। यह एकांतनिष्ठा कितनी अभीष्ट है, इसकी विवेचना करने की न तो आवश्यकता है और न प्रसंग ही। इतना जान लेना पर्याप्त है कि एकांतनिष्ठा सफलता की सबसे प्रधान कुंजी है। अस्तु।

उपसंहार

सब बातों पर विचार करने से मालूम होता है कि वैराग्य-शतक बड़ा ही अनूठा ग्रंथ है। हिंदी-साहित्य का यह बड़ा मूल्यवान् रत्न है। यह बात अवश्य है कि इसका मूल्य आध्यात्मिक है। भौतिक उपयोगितावाद के इस युग में इस प्रकार की कविताओं का समादर प्रायः कम ही होता है। किंतु कविता आख़िरकार कविता ही है और उसमें उपयोगिता के उस स्थूल रूप को देखने की इच्छा करना भ्रांति है। वहाँ पर उपयोगिता के सूक्ष्म रूप के दर्शन होते हैं। वह भी उपयोगिता ही है, जिससे मानव-हृदय के उन सोए हुए सुकुमार भावों को जाग्रत् होने का अवसर मिलता है, जिनके होने से कोई मनुष्य पूर्ण मनुष्यत्व प्राप्त कर सकता है। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर इस प्रकार की कविताएँ भी अनुपयोगी न ठहरेंगी। मेरी धारणा है कि यदि उदारता और सहृदयता के साथ वैराग्य-शतक का अध्ययन किया जायगा, तो ग्रंथ सब दृष्टियों से अत्यंत उत्कृष्ट सिद्ध होगा।

विष्णुदत्त शुक्ल

स्वर्ग-सुख

(१)

मातावदल नगर का नामी मिस्त्री था। साइकिल और मोटर-साइकिल दुरुस्त करने के काम में वह उस्ताद था। इस संबंध का कोई भी काम उसकी दूकान से वापस न जाने पाता था। अब वह वृद्ध हो चला था। उसके गाल पचक रहे थे। चेहरे पर झुर्रियाँ स्थान जमाने लगी थीं। आँखें गड्ढों में धँसी जा रही थीं। बात यह थी पिछले दस वर्ष उसने बड़ी मिहनत में बिताए थे। सड़क के चौराहे के कोने में, बड़े अच्छे मौक़े पर, उसकी दूकान थी। इसलिये सबेरे से लेकर रात के बारह बजे तक उसके यहाँ ग्राहकों का आना-जाना बराबर लगा रहता था। ख़ासी आमदनी की बात ठहरी। इसी प्रलोभन में मातावदल की दूकान रात के बारह बजे तक खुली रहती थी।

मातावदल ने अब रुपया भी काफ़ी पैदा कर लिया था। उसकी दूकान पर अब कई छोटे-छोटे लड़के काम करते थे। अब मातावदल को अकसर फ़ुरसत रहती थी। जब कभी लड़के शैतानी कर बैठते, तो मादाबदल किसी को पकड़कर चपत लगाता, किसी के कान मल देता और किसी-किसी को दो-चार खरी-खोटी सुना देता। लड़के थोड़ी देर में मिल जाते और आपस में हँसो करने लगते। इन्हीं लड़कों में एक लड़का रघुआ नाम का था। कोई-कोई उसे रग्घू भी कहा करते थे। पर असल में क्या रघुआ और क्या रग्घू,

दोनों ही नाम उसके बिगड़े हुए नाम थे । वास्तव में नाम उसका बड़ा दिव्य था—राघव ।

उस लड़के का 'राघव' नाम जैसा दिव्य था और जैसे उसको पुकारनेवाले उसे 'रघुआ' कहकर एक हलके प्यार की छाप लगा देते थे, वैसे हो राघव का स्वभाव भी कुछ कम दिव्य न था । वह बड़ा हँसोड़ था, बड़ा दिल्लगीबाज़ । वह अपने सब साथियों को ख़ूब हँसाया करता था ।

मातबदल को अब खाँसी आने लगी थी । जब वह किसी पर बिगड़ने लगता था, तो खाँसीके साथ-साथ उसकी साँस भी उखड़ पड़ती थी । दोपहर को मातबदल घर पर खाना खाने न जाता, किसी-न-किसी लड़के को घर भेजकर खाना मँगा लेता था । एक दिन पानी बरस रहा था । ऐसी झड़ी लगी थी कि किसी लड़के का दूकान से निकलकर सड़क पर आना कठिन हो रहा था । दोपहर हो गई थी । सब लड़के बारी-बारी से, समय निकालकर, छाता लगाकर अपने-अपने घरों से खाना खा आए थे । अब मातबदल की बारी थी । जिस समय लड़के खाना खाने के लिये गए थे, उस समय तो उतनी ज़ोर से पानी नहीं बरसता था, पर अब तो क्षण को भी पानी का बरसना बंद नहीं हो रहा था । यह हालत देखकर मातबदल बड़बड़ाने लगा । वह इस तरह बकने लगा—अब यह पानी भी दम नहीं लेगा । कितनी देर से देख रहा हूँ, साला बंद ही नहीं होने आता है ।...पराँठे तो भीग ही जायँगे, आलू-गोभी का साग भी सत्यानास हो जायगा ! कैसा साला......उँह......झड़ी लगाए हुए है ।

रघुआ ने मुँह नीचे किए हुए, अपने साथियों की ओर एक बार आँखों का चक्कर लगाकर धीरे से कहा—बुड्ढा बकरा सनका—सनका । बस, अब......(तब तक एक साथी इस्माइल ने ज़रा-सा हँस दिया) खाँसना ही चाहता है ।

रघुआ यह कहकर चुप हो गया । इस्माइल हँस-हँसाकर टेढ़ा-तिरछा मुँह बनाने लगा । तिरबेनी से न रहा गया, वह ठट्ठा मारकर हँस पड़ा । रघुआ धीरे से कह उठा—लो बचू, अब की मरम्मत हुए बिना...... । वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि बुडढा बोला—क्या है रे तिरबेनी, बड़ी हँसी छूट रही है । आऊँ क्या ? सालों को बीसों मरतबे समझाया, मानते ही नहीं आज एक-एक को देखूँगा—क्यों हँसता है बे बोल तो !!

तिरबेनी ने मुँह लटका लिया । वह बोला— नहीं दादा, यह रघुआ......देखो-देखो, अभी— हँसी लगा रहा है ।

बुड्ढा बोला—वह तो चुपचाप टायर लगा रहा है साला झूठ बोलता है । इतना कहकर वह उठा चला तिरबेनी के चपत जमाने । एक दो-तीन, अरे-ओ- चटापट, देखते-देखते, उसके, पाँच-सात चपतें बैठ बुड्ढा कहता गया—ले साले, ले साले, और हँसेगा ।

तिरबेनी कहता गया—नहीं दादा—नहीं दा अब नहीं ।

लेकिन सच पूछो तो मातबदल बहुत सहती हुई पोले हाथों से, लगाता था । वह खुद यह चाहता था कि तिरबेनी चपतें सहन न कर सके रोने लगे । उसे किसी का रोना बहुत बुरा लगता था ।

बुड्ढा चपतें लगाकर, लौटकर अपने बिछे हुए पर बैठ भी न पाया था कि रघुआ बोल उठा— साला फुर्तीला है । रघुआ इतना ही कह पाया था बुड्ढे ने मुँह घुमाकर, एक-आध सफ़ेद-सफ़ेद चम वाले बालोंवाली भौंहें चढ़ाकर पूछा—क्या है रे रघुआ

रघुआ बोला—कुछ नहीं दादा, एक बुड्ढा था, सो चटपट मेरी टोकनी से एक धान की खील कर चट कर गया और मैं देखता ही रह गया । साला बदमाश है, बड़ा खुर्रांट ।

रघुआ की बात पर इस्माइल और तिरबेनी दोनों दोनों फिर खिलखिला पड़े । बात यह थी कि के पास जो टोकरी रक्खी थी, उसमें अब धान की गिनती की तीन रह गई थीं । और, वहाँ किसी पता न था ।

इसी समय एक ग्राहक आकर तिपाई पर बैठ और कहने लगा—मेरी साइकिल का टायर दो फट गया है । उसमें टायर के टुकड़े रख दे ज़रूरत है ।

बुड्ढे ने जैसे कुछ सुना न हो । वह कह रहा देखा आपने, साले सब-के-सब शैतान के बच्चे हैं ।

में हँसते हैं, और मुझे बहला देते हैं । अभी-अभी इस छोकरे की खोपड़ी गरम करके लौटा था कि देखो, फिर हँसने लगा ।

ग्राहक बोला—अजी, जाने भी दीजिए, लड़के ठहरे । लड़कों का स्वभाव ही... ।

बुड्ढा बिगड़कर बोल उठा—जाने क्यों दे जनाब ! यह दूकान है, या कोई चंडूखाना ।

ग्राहक—बड़ी जल्दी आपका मिजाज़ गरम हो जाता है। मैंने तो धीरे से आपसे कहा और आप इस तरह बिगड़ उठे ।

अब बुड्ढा कुछ शांत होकर बोला—बिगड़ने की बात नहीं है बाबूजी, ये सब-के-सब बड़े शैतान हैं, आप इन्हें नहीं जानते ।

ग्राहक—ख़ैर, होगा । आप भी तो कभी लड़के रहे होंगे । क्या आप बिलकुल सीधे-सादे—एकदम—बहुत ही अच्छे लड़के रहे होंगे ? मुझे तो यक़ीन नहीं होता । माफ़ कीजिएगा ।

अब मातावदल ने भी थोड़ा मुसकरा दिया । वह बोला—ख़ैर, कहिए आपका काम क्या है ?...और हाँ रे रघुआ, देख पानी कुछ मध्यम हुआ, जा तो, खाना ले आ ।

रघुआ ने चट से एक नई साइकिल ली और चल खड़ा हुआ । इस्माइल बोला—बाबूजी, रघुआ नई साइकिल ले गया ।

बुड्ढा बोला—देखी, बाबूजी आपने, उस छोकरे की शैतानी ! नई साइकिलें ग्राहकों के लिये ली गई हैं या इन बदमाशों के लिये ?

ग्राहक—आपका कहना भी ठीक है । पर आप इसकी निगरानी क्यों नहीं रखते ?

बुड्ढा—निगरानी !......अब निगरानी—आप ही बतलाइए, जब तक ख़बर पाऊँगा, तब तक वह लेकर चंपत हो जायगा ! यही तो इनकी बदमाशी है । और मैं आपसे अर्ज़ क्या कर रहा हूँ ।

ग्राहक—अच्छा, अब हमारे फटे टायर के अंदर टुकड़े तो रखवा दीजिए । कितनी देर से बैठा हूँ ?

(२)

मातावदल के घर में उसकी बुढ़िया पत्नी थी और एक कन्या । बच्चे तो उसके कई हुए थे, पर कुछ ही दिनों तक अपनी लीला का आलोक दिखाकर अंतर्द्धान हो जाते रहे थे । कन्या अभी छोटी ही थी । कोई सात वर्ष की होगी । भगवान् शंकर की अनुकंपा से ही उसकी यह कन्या बची है, बुढ़िया का ऐसा ही विश्वास था । वह शंकर की बड़ी भक्त थी । जब से उसने अपनी सुध सँभाली, तब से एकादशी को बराबर उपवास रहती आ रही है । इसीलिये बड़ी आशा से उसने अपनी इस कन्या का नाम पार्वती रक्खा था ।

पार्वती ही उस बुढ़िया के अँधेरे घर का प्रकाश थी । जब कभी वह जो चीज़ चाहती, तब, उसी समय, उसके लिये, वही चीज़ बुढ़िया मँगा देती थी । एक मास्टरनी उसे पढ़ाने को उसके घर पर आती थी । बुढ़िया और बुड्ढे, दोनों का विश्वास था कि लड़कियों के स्कूल में पार्वती को भी अगर पढ़ने को भेजा जायगा, तो वह पढ़ेगी तो कम, लेकिन शौक़-ज़ौक और फ़िजूलख़र्ची ज़्यादा सीख लेगी । इसीलिये पार्वती की शिक्षा उसके घर पर ही होती थी । लेकिन पढ़ने में उसका जी नहीं लगता था । वह तो दिन-भर मुहल्ले की लड़कियों के साथ खेला करती थी । मास्टरनी आती, तो उसे कभी मालूम होता, आज पार्वती की तबीयत ठीक नहीं है, उसके सिर में दर्द है, वह आज नहीं पढ़ेगी । कभी मालूम होता, आज उसकी गुड़िया का ब्याह है, भला आज पढ़ने का क्या काम ? इस तरह पार्वती की शिक्षा का कार्य बहुत ही मंद गति से चलता था । बड़ी मुश्किल से वह साल डेढ़ साल में मामूली नाम लिखना सीख सकी थी ।

रघुआ जब मातावदल के लिये खाना लेने आता, तो थोड़ी देर के लिये पार्वती रघुआ के साथ भी हँस-खेल लेती थी । रघुआ पार्वती को परेशान किए बिना न मानता । वह कभी उसके सिर के बालों में खोंसने के लिये गुलाब के फूल ले आता ; कभी अँगरेज़ी खट-मिट्ठी धीरे-धीरे रस चूसनेवाली मिठाई । वह जब मिठाई ले आता, तो पार्वती को दिखा-दिखाकर खाने लगता । पार्वती झपटकर उसके हाथ या जेब से मिठाई छीन लेने की चेष्टा करती । इस तरह अब तक एक-आध बार गुथकर आपस में लड़ न लेते, एक-आध बार इधर से उधर भाग न लेते और अन्य किसी तरह की और कोई बात न होती, तो धोखे से

चिकोटी काटकर एक दूसरे को हँसा या ऊपरी मन से ऊँ-ऊँ करके रुला न लेते थे, तब तक दो में से किसी को संतोष न होता था। शिकायतें कभी बुढ़िया के पास पहुँचतीं और कभी सीधे माताबदल के पास। कभी रघुआ कहता—देखो बाबूजी, दीदी ने मेरी टोपी कीचड़ में फेंककर गंदी कर दी है, कभी पार्बती कहती—नहीं दादा, मैंने यह कुछ नहीं किया है। इसी ने मेरी गुड़िया का सिर हिला-हिलाकर उखाड़ डाला है। बेचारा माताबदल जब कभी दोनों पक्षों की बात सुनने बैठता और चाहता कि कुछ-न-कुछ फ़ैसला कर दिया जाय, तो वह दोनों को अपराधी पाकर हैरान हो उठता और ऊपर मन से कहने लगता—यह रघुआ बड़ा शैतान हो गया है, क्यों री? अब इसको निकाल दिया जाय। क्यों? पार्बती उस समय मुँह लटका लेती और उसके मुँह से फिर कोई बात सहसा नहीं निकलती थी। माताबदल अपने पोपले मुँह पर मंद-मंद हास्य छिटकाता हुआ पार्वती के पीछे पड़ जाता था। वह यह जानते हुए भी कि पार्बती रघुआ का हटाया जाना पसंद न करेगी, बार-बार इसी की बातें करने लगता था। लाचार होकर पार्बती को कहना पड़ता—नहीं दादा, रघुआ की मैं कोई शिकायत थोड़े ही करती हूँ। उसने जब मेरी शिकायत की, तब फिर मुझे भी उसकी शिकायत करनी पड़ी। नहीं तो, वैसे, मैं उससे कुछ ज़्यादा नाराज़ थोड़ा ही हूँ। माताबदल पार्बती का यह उत्तर पाकर जब कहता—तो रघुआ बड़ा ही अच्छा लड़का है। क्यों न? जाड़ा आ गया है, उसके लिये ऊनी कोट बनवा दिया जाय, क्यों?

पार्बती उसी समय आकर वृद्ध माताबदल की गोद में बैठकर कभी उसकी दाढ़ी के बाल सहलाने लगती और कभी उसके कोट के बटन खोलने लगती थी। यही माताबदल के प्रश्न का उत्तर होता था। और उस समय माताबदल अपने जीवन को धन्य मानकर निहाल हो जाता था।

(३)

रघुआ दूकान में ही सोता था। उसके घर-द्वार कोई न था। जब उसने अपनी सुध सँभाली थी, तब उसने अपने आपको गंगा घाट पर भीख माँगते हुए पाया था। माताबदल एक दिन गंगा स्नान करके ज्यों ही लौटने लगा, त्यों ही रघुआ पैसे लेने के लिये कई लड़कों साथ उसके पीछे पड़ गया। और लड़के तो अन्य बो से कुछ पैसे पा चुके थे, पर उस दिन रघुआ को एक पै भी न मिला था। इसीलिये वह बड़ी दूर तक माताब के पीछे-पीछे चला आया। अन्य लड़के लौट गए। माताबदल ने अपनी जेब टटोली, तो एक भी पैसा था। रुपए ही रुपए थे। विवश होकर उसे क पड़ा—यहाँ तो पैसे नहीं हैं। और तू इतनी दूर त मेरा पीछा करता हुआ आ रहा है, इसलिये अब तु लौटाऊँगा भी नहीं। चल, दूकान पर तुझे पैसे दूँगा इस तरह रघुआ माताबदल की दूकान तक उसके पी पीछे चला आया था।

दूकान पर बक्स से पैसे निकालकर ज्यों ही मा बदल रघुआ को पैसे देने लगा, त्यों ही उसके मन आया कि उसका हाल-चाल भी पूछ देखूँ। इसलिये संदूकचे के ऊपर रखकर माताबदल ने पूछा—पैसे ले क्या करेगा, बोल?

रघुआ तब ज़रा और छोटा था। यही ५-६ वर्ष रहा होगा। उसके बालों में कड़ुआ तेल पुता हुआ था साथ ही धूल भी काफ़ी जमी हुई थी। स्वस्थ देह एक फटा-पुराना चीकट कुरता था, जिसकी बाहें हाथों पार कर जातीं, यदि वे लौटाई न गई होतीं। कुरते लंबाई पैर की गाँठों को पार कर गई थी। इस कुरते सिवा उसके बदन पर कोई दूसरा कपड़ा न था। इ लिये कहना होगा, भीतर से वह नंगा था।

खीसें बाकर, आगे के बड़े-बड़े दो दाँत दिखा हुए, रघुआ ने कहा—जिबेली खायँगे—जिबेली।

माताबदल की छोटी कन्या पार्बती तब ढाई-ती वर्ष की रही होगी। वह भी तोतली बोली बोल लगी थी। इसीलिये 'जिबेली' शब्द के सम में माताबदल को ज़रा भी देर न लगी। उस मन में आया कि उसे एकदम से उठाकर उस धूलि-धूसरित मुख चूम ले, पर कुछ सोचकर स्थिर रहा।

अब माताबदल ने पूछा—तेरी मा कहाँ है?

रघुआ—मा—मा, क्या जाने कहाँ चली गई। बारह दिन से मिली ही नहीं। सभी जगह ढूँढ़ फिरा।

माता०—तो वह कहीं चली गई !

रघुआ ने कुछ उत्तर न दिया । उसकी आँखों में आँसू झलक आए ।

मताबदल ने फिर पूछा—और तेरा बाप कहाँ है ?

रघुआ ने उत्तर दिया—मैं नहीं जानता ।

मातावदल मन-ही-मन कहने लगा—बेचारा अनाथ है । फिर वह बोला—अच्छा, अब तुम कहाँ जाओगे ?

रघुआ—वहीं अपने साथियों के पास जाऊँगा, और कहाँ ।

माता०—वहाँ जाकर क्या करोगे ?

रघुआ—पैसे मागूँगा, जिबेली खाऊँगा और घूमूँगा ।

माता०—रात में कहाँ रहते हो ?

रघुआ—अपने साथियों के साथ, जहाँ जी में आया, वहीं सो रहा ।

माता०—अगर तुम मेरे यहाँ रहो, तो कैसा हो ? रोज़ जलेबी खाने को मिलेंगी, कपड़े भी पहनने को मिलेंगे । इसके सिवा जो कुछ तू चाहेगा, वह भी दिया जायगा ।

रघुआ कुछ सोचने लगा ।

मातावदल भी रघुआ के मन का भाव ताड़ने की चेष्टा करने लगा । थोड़ी देर तक जब रघुआ मौन रहा, तो मातावदल ने फिर पूछा—बोलो, क्या कहते हो ?

रघुआ ने कहा—मैं तुम्हारे यहाँ नहीं रहूँगा ।

माता०—क्यों ?

रघुआ फिर चुप था । मातावदल ने कहा—तुम्हें मेरे यहाँ कोई तकलीफ़ न होगी । यह कहकर उसने अपने यहाँ काम करनेवाले एक लड़के तिरबेनी से मिठाई और जलेबी मँगाकर रघुआ को खिलाई ।

रघुआ ख़ुशी-ख़ुशी मिठाई खाने लगा । आज उसने पेट-भर मिठाई खाई । मिठाई खाने के बाद उसने निकट ही सड़क पर लगे हुए पाइप में पानी पिया । अब वह बड़ा ख़ुश देख पड़ा ।

मातावदल ने कहा—ये लड़के दूकान में काम करते हैं, इन्हीं के साथ खेला करना । क्यों, है न तुम्हारा जोड़ ?

रघुआ ने ख़ुश होकर, दाँत बाकर कहा—हाँ ।

बस, रघुआ मातावदल के यहाँ हँसी-ख़ुशी से रहने लगा । एक-आध बार जब उसे अपने पुराने साथियों की याद आई, तो वह भग भी गया । पर उनके साथ रहकर फिर वह भूख न सह सका और फिर लौट आया । जब कभी उसका कोई साथी मिल जाता, तब वह देर तक उससे तरह-तरह की बातें करता रहता । कभी-कभी उसकी इच्छा उसका साथ देने की भी हो आती, पर उस गंदे जीवन से उसे अब घृणा हो गई थी । इस तरह रघुआ मातावदल के घर और बाहर से धीरे-धीरे पूरी तरह मिल गया ।

(४)

पार्वती अब सयानी हो रही थी । उसके मृदुल चंचल स्वभाव में गंभीरता आने लगी थी । दौड़कर चलना, रघुआ पर किसी विशेष वस्तु के लिये एकदम से आक्रमण करना, साधारण-सी बात पर उससे मान करना या ठट्ठा मारकर हँसना धीरे-धीरे कम हो चला था ।

लेकिन रघुआ का लड़कपन अभी तक वैसा ही बना था । जब कभी मौज में आता, ज़रा भी सड़क ख़ाली देखता, तो वह चट साइकिलबाज़ी के हथकंडे दिखाने लगता था । कभी साइकिल पर चढ़े-चढ़े उसका अगला पहिया उठा लेता, कभी दो साइकिलें लेकर क्षण-क्षण में एक से दूसरी पर आता-जाता और दोनों को बराबर चलता रखता, कभी उसकी 'सीट' पर पेट के बल लेट जाता, पैर 'कैरिएर' पर पीछे रख लेता और दोनों हाथों से दोनों ओर के पैडिल घुमा-घुमाकर साइकिल दौड़ाता और जब चाहता, तभी चट से साइकिल खड़ी करके नीचे आ जाता । इस तरह के खेल दिखलाते हुए उसे अपार हर्ष होता था । एक बार रघुआ ये खेल दिखलाने में व्यस्त था, उसी समय एकाएक पार्वती दूकान पर आ गई । दूकान के अंदर बैठी हुई वह चुपचाप रघुआ के खेल देखती रही । एक बार रघुआ दो साइकिलों को चलाते हुए दोनों की सीटों पर उछल-कूद कर रहा था । एकाएक सामने एक आदमी आ गया । रघुआ ने उसको बचाने की चेष्टा की, तो धड़ाम से दोनों साइकिलों को लेकर सड़क पर आ रहा । दर्शकों ने करतल-ध्वनि की और उसी समय पार्वती भी हँस पड़ी । फिर तो रघुआ दूकान में पार्वती को बैठा हुआ देखकर बहुत लजा गया । वह दूकान की ओर बढ़ा, तो उसने देखा पार्वती उसकी ओर देखकर मुँह में रूमाल लगाए हुए

मुसकरा रही है। अब तो रघुआ और भी कट गया। माताबदल उसे संतोष देते हुए बोला—क्या हुआ, जो गिर पड़ा। दर्जनों खेल दिखलानेवाला खिलाड़ी यदि कभी एक-आध बार संयोग से चूक जाय, तो इससे क्या होता है।

रघुआ इस पर कुछ बोला नहीं। पर कोई एक भाव उसके मन को मसोसने लगा। बार-बार उसके जी में आया, अगर मैं अपने मन में साइकिल पर पूरी तरह से अधिकार होने का अभिमान न करता, तो काहे को आज मुझे पार्बती के सामने लज्जित होना पड़ता। बार-बार वह अपनी चंचलता को धिक्कारने लगा। उसका चेहरा बिलकुल उतर गया।

रघुआ को अन्यमनस्क देखकर पार्बती ने कहा—दादा, मैं तो रग्घू भैया के खेल देखकर एकदम से चकित हो गई।

यह कहकर पार्बती रघुआ की ओर देखने लगी।

माताबदल बोला—हाँ बेटी, रघुआ साइकिल का मास्टर है।

पार्बती बोली—कहीं नुमायश या मेला हो और वहाँ रग्घू भाई अगर अपने इस तरह के करिश्मे दिखलाने का तमाशा करें और टिकट लगा दें, तो सैकड़ों रुपए पैदा कर सकते हैं।

मातावदल—वैसे ही रघुआ कौन कुछ कम पैदा करता है। अब उसने रुपया जमा करना शुरू कर दिया है। तीन-चार सौ रुपया तो जमा कर लिया होगा। क्यों रे?

रघुआ प्रसन्नता से गद्गद हो गया। उल्लसित मुख से, अपने दोनों बड़े-बड़े दाँत बाहर निकालकर वह बोला—हाँ दादा, अब तो पूरे चार सौ रुपए हो गए।

मातावदल—फिर क्या है, जहाँ एक हज़ार पूरे हो गए, रघुआ का ब्याह कर दूँगा।

रघुआ ने पार्बती की ओर देखते हुए कहा—नहीं दादा, मैं ब्याह-वाह नहीं करूँगा। इसी तरह बड़े मज़े में हूँ।

मातावदल—दुत्! पागल कहीं का! यह क्या कहता है! ब्याह नहीं करेगा, तो क्या तेरे लिये रोटी पो-पोकर खिलाने को पार्बती यहाँ बैठी रहेगी।

रघुआ एकायक अप्रतिभ हो गया। उसकी समझ में नहीं आया कि अब वह क्या उत्तर दे। और कुछ इधर-उधर न देखकर वह एक ग्राहक की साइकिल की मरम्मत करने में लग गया। इतने में दो ग्राहक आ गए। मातावदल की बात ज्यों-की-त्यों रह गई। पार्वती भी घर की ओर चल दी।

(४)

पार्वती का ब्याह हो गया। वह अपनी ससुराल चली गई। घर पर पार्वती की बुढ़िया मा ही अकेली रह गई। रोटी बनाने के लिये एक महराजिन आने लगी। कुछ दिनों तक तो पार्वती का अभाव बहुत खटका रहा; पर धीरे-धीरे सब काम ढंग पर आ गया।

जब कभी पार्वती की मा की तबियत ख़राब होती, तो वह सोचती, यदि इस समय मेरी पार्वती होती और मेरे निकट बैठती, सिर में दर्द होता तो तेल की मालिश करती; पैरों में दर्द होता तो पैर दाबती। हाय, इस समय मेरी पार्वती भी नहीं है—

मातावदल के कोई लड़का न था। उसके प्राणों की निधि, उसकी एकमात्र आशा, अगर कोई थी, तो पार्वती। सो वह भी अपने घर की हुई। अब रघुआ ही निरंतर उसके सामने रहता था। लेकिन तब और अब के रघुआ में बड़ा अंतर हो गया था। पहले तरह-तरह की रँगीली बातें करके चुहलबाज़ी करने और लोगों को सदा हँसाते रहने में ही उसका सारा समय जाता था। और न सही, तो वह अपने साथियों से लड़ बैठता था, कुछ देर के लिये यही एक नुसख़ा बन जाता था। पर अब रघुआ एक युवक के रूप में आकर मातावदल की दूकान का मिस्त्री था। उसके साथी स्माइल और तिरबेनी भी धीरे-धीरे चले गए थे। तिरबेनी कहीं मोटरड्राइवर हो गया और स्माइल ने उन्नति करके साइकिल की दूकान खोल ली थी। पहले जब कभी रघुआ को भूख लगती, तो वह झट मातावदल के लिये खाना लाने के बहाने घर को चंपत हो जाता था। अब दोपहर के बाद एक भी बज जाता है और रघुआ काम छोड़कर खाना खाने नहीं जाता। उधर मातावदल घर पर पड़ा रहता है। उसे दम आती है। खाँसी तो उसके साथ जन्म को लगी हुई है। जब कभी रघुआ को खाना खाने के लिये देर हो जाती, तो महराजिन खाना ढककर चल देती। खाना ठंढा हो जाता। रघुआ

कभी पहुँचता, तो उसी ठंढे खाने को पेट के अंदर जैसे-तैसे छोड़ लेता था। पहले चार पराँठे खाने की भूख होती, तो पार्वती से मीठी-मीठी सोंधी-सोंधी बातें करते-करते, चुटकियाँ बजाते हुए, छः खा जाता और कुछ मालूम न पड़ता था। अब चार की भूख होते हुए भी दो हो मुश्किल से पेट में छोड़ पाता था। देर हो जाने पर मातावदल कहता—आज तो तुमने बड़ी देर कर दी रग्घू।

रग्घू या तो कुछ उत्तर ही न देता, अथवा कह देता—हाँ दादा, काम ही ऐसा आ गया था।

मातावदल—काम-ही-काम देखते हो, कुछ शरीर भी तो देखा करो। इसी से सब कुछ लगा है। तुमसे रोज़ कहता हूँ, ब्याह कर लो, लेकिन तुम मेरी कुछ सुनते ही नहीं।

लेकिन रघुआ ऐसी बातों का उत्तर देना नहीं जानता।

जब कभी पार्वती ससुराल से आती, तो एक नया संसार निर्मित हो जाता। उसके माता-पिता उससे बातें करते हुए फूले न समाते। पार्वती के लिये तरह-तरह का भोजन तैयार कराया जाता, बंगाली मिठाई और फलों की घर में काफ़ी इफ़रात रहती। कभी घर में गाना गानेवाली बुलाई जातीं और रात के एक बजे तक संसार का स्वर्ग मातावदल के घर के आँगन में नाचा करता। इस प्रकार उन दिनों आनंद-विनोद मातावदल के परिवार के कोने-कोने में समाया रहता था।

लेकिन रघुआ के मुख पर सदा गंभीरता की छाप रहती। पार्वती जब कभी कोई बात उससे कहती, तो वह बड़ी विनम्रता के साथ उसका उत्तर देकर चुप हो जाता। रघुआ का यह शुष्क व्यवहार पार्वती बहुत दिनों तक टालती रही। एक दिन जब उसका जी न माना, तो उससे कहा—राघव भैया, आज मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहती हूँ।

रघुआ ने चकित होकर कहा—मुझसे!

पा०—हाँ, तुम्हीं से।

रघु०—क्या, कहो।

पा०—देखती हूँ, तुम्हारा स्वभाव ही एकदम से बदल गया है। मुझसे भी तुम एकदम फटे-फटे से रहते हो। इस तरह बातें करते हो, जैसे मैं इस घर के लिये कोई नई हो गई हूँ। क्या बचपन की बातें भी तुमने अपने हृदय से निकाल कर फ़ेंक दी हैं? क्या तुम्हें कभी इतना अवकाश नहीं मिलता कि तुम घड़ी-दो घड़ी को मुझसे भी मिलो, कुछ अपनी बात सुनाओ, कुछ मेरी सुनो?

रघुआ चुप था।

पार्वती ने कहा—मैंने जो कुछ कहा, क्या तुमने उसे सुना नहीं?

रघुआ ने फिर भी कुछ उत्तर नहीं दिया। उसकी आँखों में आँसू भर आए।

पार्वती ने कहा—मैंने तुमको कभी दूसरा नहीं समझा। मेरे घर में तुम सदा मेरे भाई को तरह रहे हो। लेकिन ससुराल से आने के बाद तुममें बड़ा परिवर्तन देख रही हूँ। वह हँसना, वह मसखरी की बातें करना, वह छीन-झपट और वह मान-विरोध तो जैसे तुम सदा के लिये भूल गए हो! सच बताओ, क्या तुमको यहाँ कुछ कष्ट है?

रघुआ ने अब भी कोई उत्तर नहीं दिया।

पार्वती उसी तरह कहती गई—देखती हूँ, तुम्हारे मुख पर वह श्री भी अब नहीं रही है। सुनती हूँ, न तुम्हें खाने की परवा है, न पहनने की। दादा ने बतलाया है, वह तुमसे कह-कह के हार गए, पर तुम अपना ब्याह भी करने के लिये तैयार नहीं हो। यह सब कैसी बातें हैं? तुम पागल तो नहीं हो गए हो?

अब रघुआ चुप न रह सका। उसने अपने आँसू पोंछ डाले और कहा—आप ये सब बातें मुझसे क्यों पूछती हैं? मैं आपकी बातों का उत्तर तो न दूँगा, लेकिन—लेकिन मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपका इन बातों से क्या प्रयोजन है?

पा०—क्या कहते हो, किससे ये बातें कर रहे हो? क्या तुमसे ये बातें पूछने का मुझे अधिकार नहीं है?

रघु०—न, तुम्हें इन बातों के पूछने का कभी अधिकार नहीं था, यह मैं नहीं कहता। लेकिन अब वह अधिकार......।

रघुआ की आँखें लाल थीं। उसका मुख एकदम तमतमा उठा था। उसने कहा—मैं इस संबंध में अब आपसे क्या कहूँ। आपके शरीर में कहीं 'हृदय' नाम की कोई चीज़ है या नहीं, मैं तो यही निश्चय नहीं कर सका।

पार्वती ने गंभीर होकर कहा—तुम भूल कर रहे हो राघव ! तुमने अभी संसार नहीं देखा है । देखा भी है, तो दूर से; उसका अनुभव तो क़तई नहीं किया। तुम्हारी ही तरह मैं भी रोना जानती हूँ । तुम तो पुरुष-जाति के हो । तुम उतना रोना जानते भी नहीं, जितना मैं जानती हूँ । जितना तुम रोते हो, उससे अधिक मैं रोती हूँ । लेकिन ज़रा दूर तक सोच देखो । इस रुदन में क्या रक्खा है ?

रघुआ एकटक पार्वती की बातें सुनता रहा। वह कुछ बोला नहीं। पार्वती कहती गई—और ये बातें पूछने के अधिकार की बात जो तुमने कही, सो उसमें भी तुमने भूल की है । यदि वह अधिकार मुझे कभी था, तो क्या तुम समझते हो कि वह कभी मुझसे छिन भी सकेगा ? मैं सच कहती हूँ राघव, मुझसे वह अधिकार कोई नहीं छीन सकता ।

रघुआ ने देखा, पार्बती का प्रफुल्ल मुख एकदम से उतर गया है, उसके गले का स्वर एकदम से विकृत होना चाहता है।

पार्वती कहने लगी—तुम मेरे जितने निकट तब थे, अब उससे भी अधिक निकट हो । तुम ब्याह कर लेते, तो मैं तुम्हें सहज ही में यह समझा सकती कि वास्तव में तुम मेरे कितने निकट हो

रघुआ ने कहा—आपकी बातें बड़ी कठिन हैं । मैं उन्हें सुनते हुए सुखी तो होता हूँ, पर फिर भी उन्हें समझता नहीं । शायद समझ भी न सकूँगा ।

पार्वती—तुम कैसे ना-समझ हो, यह मैं जानती हूँ । तुम कैसे ज़िद्दी हो, यह भी मुझसे छिपा नहीं है। लेकिन तुम मेरी एक बात मानो, ब्याह कर लो ।

रघुआ—किससे ?

पार्वती के मुख पर मुसकराहट दौड़ गई । रघुआ भी हँसने लगा।

पार्बती बोली—बड़े बने हुए हो ।

रघुआ—लेकिन तुमसे अधिक नहीं ।

पार्वती—बड़े ढीठ हो गए हो ।

रघुआ—लेकिन तुमसे अधिक नहीं ।

पार्वती—अब तुम पिटोगे ।

रघुआ—क्या अभी कुछ कसर रह गई है । इतना पिट चुका हूँ कि अभी तक छाले अच्छे नहीं हुए हैं।

पार्वती—देखूँ तो, दो-एक ।

रघुआ ने छाती खोलकर दिखा दी। बोला—देख लो

पार्वती ने देखा, रघुआ के बदन की एक-एक पसली गिनी जा सकती है । वह बोली—वाक़ई बहुत दुब हो गए हो ।

रघुआ—लेकिन अब जल्दी ही तगड़ा हो जाऊँगा।

पार्वती—कैसे ?

रघुआ—बस, दो-तीन महीने में देख लेना।

पार्वती—तो मेरी कही मान लोगे—ब्याह क लोगे न ?

रघुआ हँसने लगा ।

पार्वती—सच बोलो, क्या पक्का कर लिया ?

रघुआ—हाँ ।

पार्वती—कहाँ—किसके साथ ?

रघुआ—अब यह न पूछो ।

पार्बती—देखो, अब तुम पिटना चाहते हो।

रघुआ—जितना पीटना था, पीट चुकीं । अब पीट सकोगी ।

पार्वती—तो बोलो, अब तुम इस तरह तो न रहोगे, जैसे आजकल रहते हो ।

रघुआ—नहीं ।

पार्वती—अच्छा, मेरी क़सम खाओ ।

रघुआ—मैं किसी की क़सम नहीं खाता।

पार्वती—तो मेरे शरीर पर हाथ रखकर कहो।

रघुआ—बस, हो चुका । अब अधिक मुझे वि न करो ।

दोनों की बातें अभी समाप्त न हो पाई थीं कि राजिन ने दो थालियों में खाना परोसकर दोनों को खाने को बुलाया। दोनों अठखेलियाँ करते हुए खाने लगे । पार्वती ने कचौड़ी-तरकारी का एक रघुआ के मीठे दूध में छोड़ दिया। रघुआ ने दो चमचा मीठा दूध पार्बती को तरकारी में दिया । इसी तरह दोनों हँसते-हँसाते रहे ।

खाना खाने के बाद रघुआ ने माताबदल से मैं आज सिनेमा देखने जाऊँगा और ज़रा देर से

पार्बती ने कहा—दादा, मैं भी जाऊँगी ।

माताबदल बोला—चली जाओ अपने रघुआ के साथ । रघुआ, इसको भी साथ लेता जा।

(६)

पाँच वर्ष और बीत गए। न माताबदल इस संसार में है, न उसकी बुढ़िया। लेकिन रघुआ अब भी दूकान का मैनेजर है। पार्वती अब ससुराल छोड़कर यहीं अपने पिता के घर आ गई है। उसका स्वामी यहीं, एक बैंक में, एकाउंटेंट होकर आया है।

रघुआ अब भी अविवाहित है। वह सदा प्रसन्न रहता है और दूकान पर बैठा हुआ पार्वती के बच्चों को खिलाया करता है। उन बच्चों को हँसाने-खिलाने में उसने अपने जीवन को मिला दिया है।

एक बार रघुआ के सामने पार्वती ने अपनी नन्ही-सी बच्ची से पूछा—तारा, तू किसकी बच्ची है, बता तो।

तारा ने रघुआ की ओर उँगली उठा दी। दोनों निहाल हो गए। रघुआ ने अपने मन-मानस में तैरकर अनुभव किया, संसार का स्वर्ग-सुख भी, जान पड़ता है, ऐसा ही है।

पार्वती ने तारा को गोद में उठाकर उसका मुख चूम लिया। बोली—तू बड़ी रानी बिटिया है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

ख़ैयाम की रुबाइयाँ

(१)

यौवन में उत्साहित होकर
मैंने देखे संत अनेक;
और ध्यान से उनके प्रवचन
सुने तर्क-संयुत सविवेक।
किंतु न कुछ भी समझ सका मैं,
मिली न इस रहस्य की थाह;
गया वहाँ जिन पैरों, लौटा
उन पैरों ही, उस ही राह।

(२)

उनकी संगति से जो मैंने
बोए ज्ञान-बीज अभिराम;
तथा बढ़ाता रहा जिन्हें मैं
सहकर वर्षा-सरदी-घाम।
उन्हें पकाकर मैंने पाया
केवल यह ही शस्य महान्;
"आया जलप्रवाह-सा जग में,
जाऊँगा अब पवन समान''।

(३)

क्या जाने कैसे प्रदेश से,
क्या जाने क्यों, किसके ज़ोर;
ध्येयहीन जल के प्रवाह-सा,
बहता आया हूँ इस ओर।
और छोड़कर मृगतृष्णा-सी
इस ऊसर अवनी के स्थान;
बहा जा रहा हूँ, क्या जाने,
कहाँ आज मैं पवन समान।

(४)

"किन लोकों से भगकर आए!
किसका था पाया आदेश?
अनुमति की परवाह न कर
अब भागे जाते हो किस देश?"
वृथा—वृथा, ये प्रश्न वृथा हैं!
वृथा मान-अपमान-विचार;
इस मदिरा की घूँटों में, बस,
डूबेगा स्मृति का संसार।

बलदेवप्रसाद मिश्र

दोहन

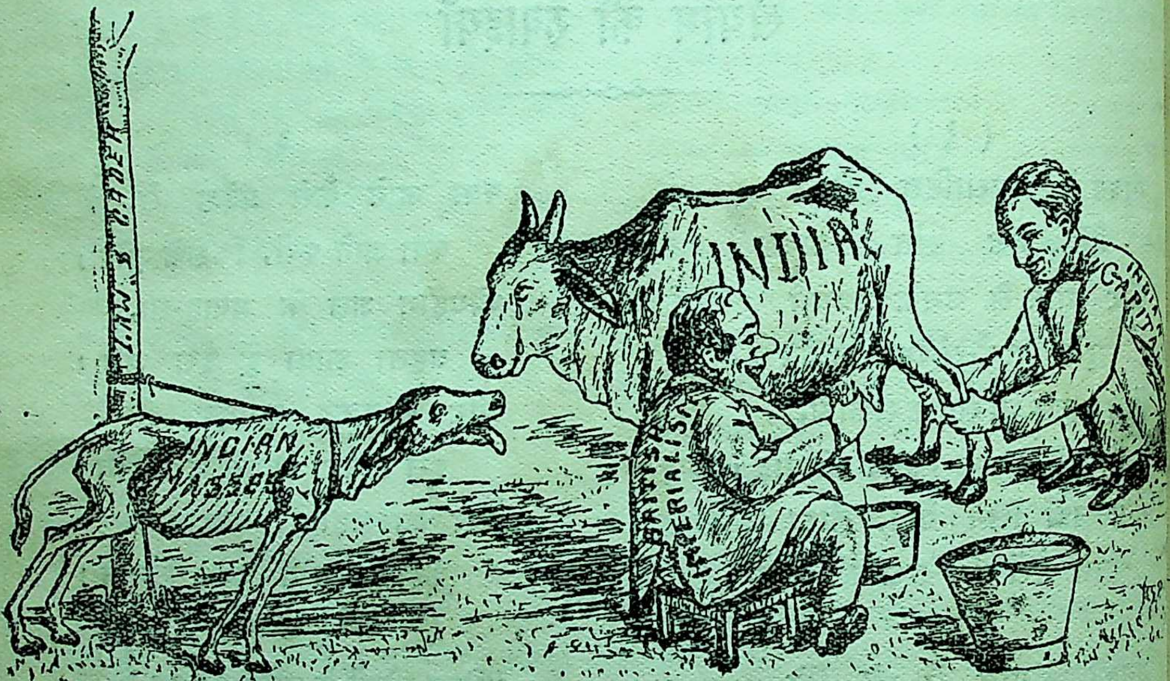
LAW & ORDER
INDIAN MASSES
INDIA
BRITISH IMPERIALIST
INDIAN
CAPITAL

महाकवि भूषण की इतिहास-अनुकूलता

(४)

औरंगज़ेब-शिवाजी-भेंट

भूषणजी की कविता से शिवाजी के संबंध की जितनी ऐतिहासिक घटनाओं का पता चलता है, उन सबकी अपेक्षा औरंगज़ेब की आगरेवाली भेंट का वर्णन भूषणजी ने अधिक किया है। अफ़ज़लख़ाँ, शायस्ताख़ाँ बहलोलख़ाँवाली घटनाओं तथा सालेरी के भीषण युद्ध का वर्णन भूषणजी ने दस-ग्यारह अथवा उससे भी कम छंदों में कर दिया है; परंतु इस भेंटवाली घटना में उन्होंने चौदह * छंद लिखे हैं। इससे ज्ञात होता है कि स्वयं भूषणजी भी इस घटना को वैसा ही महत्त्वपूर्ण समझते थे।

इस भेंट का कारण जैसा इतिहास में पाया जाता है, यह है—

"मिर्ज़ा राजा जयसिंह ने शिवाजी की सिफ़ारिश देहली-दरबार से की कि बीजापुरवालों के साथ लड़ने में तथा मुल्क † हस्तगत करने में शिवाजी ने दरबार की पर्याप्त सहायता की है, इसलिये दरबार उनका यथोचित आदर तथा सम्मान ‡ करे।" बादशाह ने इसका उत्तर अत्यंत प्रसन्नता से दिया। और, इस उत्तर के साथ शिवाजी से भेंट करने की इच्छा × प्रदर्शित करके (शिवाजी के लिये) बहुमूल्य पोशाक भी भेजी, जो शिवाजी को आगरे जाते समय रास्ते ही में मिली थी+।

भूषणजी ने आगरे की रवानगी के संबंध में सिर्फ़ इतना ही कहा है—'ह्याँ तें गयो चकतै सुख दैन को।' अर्थात् यहाँ (दक्षिण) से चकत्ता (औरंगज़ेब) को सुख देने के लिये शिवाजी गए। मिर्ज़ा राजा जयसिंह का शिवाजी की सिफ़ारिश दरबार से करना, शिवाजी का भेंट के लिये उद्यत होना तथा बादशाह का शिवाजी के लिये पोशाक भेजना, यह बातें इस बात का पता देती हैं कि भेंट के पूर्व बादशाह और शिवाजी में हित-संबंध स्थापित हो चुके थे, कोई विरोधी भाव नहीं रहा था। इसी से भूषणजी ने 'ह्याँ तें गयो चकतै सुख देन को' लिखा है। परिणामतः भूषणजी का यह वर्णन उपर्युक्त परिस्थिति के अनुरूप कहा जा सकता है। (शिवराज-भूषण, छंद २०४) [उद्धृत अवतरण में जो 'ह्याँ तें' शब्द आया है, वह विचारणीय है। काव्य-रचना के समय भूषणजी यदि दक्षिण में उपस्थित न होते अथवा अन्य किसी स्थान पर होते, तो 'ह्याँ तें' शब्द प्रयुक्त न हुआ होता। जहाँ वक्ता को स्वयं स्थिति-स्थान का निर्देश करना अभिप्रेत होता है, वहाँ स्थान के नाम को जगह सामान्यतः 'ह्याँ तें' (यहाँ से) शब्द की योजना हुआ करती है। इस छंद में भी यह शब्द इसी अर्थ में बहुत ही स्वाभाविकता तथा सरलता से व्यवहृत हुआ है। इस शब्द का प्रयोग भूषणजी ने अपनी कविता में एक जगह और किया है। यथा—औरंग जो चढ़ि दक्खिन आवै तो ह्याँते सिधावै सोऊ बिनु कप्पर। शि० भू०—छंद ३२०। उद्धृत अवतरण में तो यह शब्द दक्खिन का अर्थ स्पष्ट सूचित करता है। भूषणजी को शिवाजी के समसामयिक न माननेवाले इस मामूली (सामान्य) शब्द पर अवश्य विचार करें।]

---

* शिवराज-भूषण छंद ३४, ३८, ७८, १४८, १८६, १६८, २०४, २०६, २६५, ३०६, ३१०; शिवाबावनी छंद १५-१६ तथा फुटकल छंद ४६।

† समासदी बखर, टिप्पणी ५२।

‡ प्रो० सरकार महोदय ने बखरों के आधार पर यह भी अनुमान किया है कि शिवाजी को दक्षिण की सूबेदारी देने की सिफ़ारिश मिर्ज़ा राजा ने की होगी। 'त्याने (जयसिंगाने) दक्षिणच्या सुभेदारीची लालूच दाखविली असेल हें अगदीं संभवनीय दिसतें'—पृष्ठ १०४।१०६ (शिवाजी, शिवकाल मराठी)।

× शिवाजी से भेंट करने की इच्छा इस पत्र से पूर्व भी औरंगज़ेब ने प्रदर्शित की थी। पहले पत्रों के सिलसिले में और जयसिंह के उत्तर में यह पत्र और पोशाक भेजी गई।

+ शिवकालीन पत्र-सार-संग्रह, पत्र नं० ११२३।

दरबार का दिन

दरबार का दिन १२वीं * में सन् १६६६ नियत हुआ था। वह बादशाह की पचासवीं क़मरी सालगिरह का दिन था, और इसी रोज़ बादशाह का तुलादान होनेवाला था। दरबार भी ख़ूब सजाया गया था और इस रोज़ शिवाजी से दरबार में भेंट होना ठहरा था (शिवाजी, शिवकाल पृ० १०६)।

भूषणजी की कविता से यद्यपि दरबार की कोई निश्चित तारीख़ नहीं पाई जाती, तथापि इसका पता अवश्य मिलता है कि किसी 'जशन' के रोज़ यह दरबार हुआ था, और दरबार की सजावट इंद्र को लजानेवाली थी। यथा—

जसन के रोज़ यों जुलूस गहि बैठो जोऽब इंद्र आवै सोऊ लागै औरँग की परजा। शि० भू०—छंद १६८।

बादशाह को सलाम न करना

दरबार में जाने के बाद शिवाजी ने ज़मीन चूमकर डेढ़ हज़ार अशरफ़ी नज़र और छः हज़ार रुपए निछावर किए।

—औरंगज़ेबनामा, खंड ३ पृ० ६७

फ़ारसी तवारीख़ों को विश्वस्त माननेवाले श्रीयुत मि० सरकार महोदय ने अपने 'शिवाजी-शिवकाल' (मराठी एडिशन) में ठीक इसी का अनुवाद किया है। पृष्ठ १०६

भूषणजी सलाम करने तथा नज़र पेश करने की घटना के सर्वथैव विरुद्ध हैं। नज़र पेश करने का हाल तो उक्त चौदह छंदों में कहीं नहीं पाया जाता। बादशाह को सलाम न करने का वर्णन नीचे लिखे चार अवतरणों में मिलता है। यथा—

"नायो न माथहि दक्खिननाथ न साथ में फौज न हाथ हथ्यारो।"—शि० भू० ११८।

ठान्यो ना सलाम भान्यो साहि को इलाम...१६७।

प्रगट करी रिस साह को सरजा करि न सलाम—३०१।

जानि ग़ैर मिसिल गुसैल गुसा धारि उर कीन्हीं न सलाम न बचन बोले सियरे—शिवाबावनी, छंद १७।

यहाँ पर हमको पूज्य मिश्रबंधुओं का यह अनुभ
सत्य-सा प्रतीत होता है कि "भूषणजी जब अपने ना
को ख्याति बढ़ाने को कोई असंभव अथवा असत्य
कहते थे, तो उसे एकआध बार दबी ज़बान कहकर
देते थे, परंतु उसे बार-बार बड़ा ज़ोर देकर नहीं क
थे।" अर्थात् जो बात उन्हें विश्वसनीय और स
मालूम होती, उसे वह बार-बार कहते थे, जैसा कि गुस
ख़ाने और सलाम के विषय में उन्होंने कहा है (भूमि
भूषण-ग्रंथावली पृ० ७४)। फ़ारसी तवारीख़ों के लि
सभासदी बखर में तीन सलाम करने का वर्णन पाया ज
है, परंतु वहाँ पर सलाम की उपपत्ति इस तरह ल
गई है कि यह तीनों सलाम बाहशाह के लिये
किए गए, किंतु एक श्रीशम्भुमहादेव के प्रति, दू
श्रीभवानीजी के प्रति और तीसरा अपने पिता शह
के प्रति। जैसे—

"पादशाहा बोलला जे, 'आवो शिवाजी राजे'
बोलतांच राजियांनीं तीन सलाम केले, मनांत
धरिला कीं, श्रीशम्भुमहादेव एक, दुसरा श्रीभवानी, ति
महाराज पितियास, ऐसे तीन सलाम केले—सभास
बखर, पृ० ४६।"

यह तो ज़ाहिर है कि बखर-ग्रंथ शिवाजी के स
कालीन नहीं है, पश्चात् के हैं। समसामयिक इँग्लि
ताजिरों के चार-पाँच पत्रों में जो इस संबंध में उपल
हैं, न तो शिवाजी का बादशाह के प्रति मुजरा करने
ज़िक्र है और न नज़र पेश करने का ही। इन पत्रों में
भेंट की घटना का अन्य वर्णन इतिहास से ठीक मिल
जुलता है। (शिवकालीन*पत्र-सार-संग्रह, पत्र-नं० ११
११२९, ११३६, ११४१—पृ० ३१४, ३१७, ३१९)

---

* मुंशी देवीप्रसादजी रचित औरंगज़ेबनामे से दरबार की तारीख़ १८ ज़ीक़ाद, ज्येष्ठ-वदि ५, १३ में पाई जाती है। खंड ३ पृष्ठ ६७।

* गत १७ मार्च को भारत-इतिहास-मंडल, पूना की ओ
शिवाजी महाराज की त्रिशतसांवत्सरिक जयन्ती मनाई गई।
शुभ अवसर पर जो शिवस्मारक ग्रन्थावली प्रकाशित हुई
उसमें 'शिवकालीन पत्र-सार-संग्रह'—दो भागों में—प्रका
हुआ है, जिसमें मराठी, फ़ारसी, पोर्तुगीज़, डच, इँ
आदि समसामयिक २३४० पत्र मराठी में संग्रहीत हुए
उपर्युक्त पत्र Enlish factories in India,
Sir William Foster, Vol. 12, Page 1
175-176 से उद्धृत किए गए हैं। इस संग्रह से शि
महाराज के इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ा है।

२१३६ नं० के पत्र में तो यहाँ तक बताया गया है कि यदि दरबार में शिवाजी की मान-खण्डना न होती, तो वह अवश्य कोरनिशात बजा लाते और अपनी राजनिष्ठा व्यक्त करते; क्योंकि बादशाह के कई बार निमंत्रित करने पर वह इसी उद्देश्य से दरबार में आए थे। यथा—"बादशहानें बारंबार आमंत्रण केल्यामुलें शिवाजी स्वतः ला सुरक्षित समजून बादशाहाला कुर्निसात करून राजनिष्ठा व्यक्त करण्या करितां म्हणून गेला; परंतु दरबारांत गेल्यावर आपल्या पेक्षां कमी दर्जा चें उमरावाँ चे खालीं उभें केल्या मुलें बादशहाची पर्वा न करितां तो निधडया छातीचा वीर संतापून तिरस्करानें दरवाराचा त्याग करून निघून गेला।"

इसी तरह पत्र नं० ११२९ में पाया जाता है कि "शिवाजी ने दरबारी शिष्टाचार (दरबारी अदब के नियमों) का उल्लंघन किया, इसलिये उन्हें कई दिनों के लिये दरबार में आने की मुमानियत हो गई।" पत्र-नं० ११२८ से भी इसका पता चलता है कि "दरबार में ादशाह के सामने जाने पर जो शिवाजी का बर्ताव हुआ, ह बादशाह को पसंद न आया, इसलिये शिवाजी के ाथ कठोरता का व्यवहार किया गया।" यद्यपि इन दो त्रों में सलाम न करने का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, तथापि रबारी नियमों का उल्लंघन यथा बादशाह को पसंद आनेवाला व्यवहार बादशाह के सामने जाते सलाम न करने के सिवा और कौन-सा हो कता है?

स्वयं मिर्ज़ा राजा जयसिंह को इसकी आशङ्का थी क शिवाजी बादशाह के सामने नम्र न होंगे, इसलिये नों बाप-बेटों—जयसिंह-रामसिंह—ने शिवाजी के थ मित्रता का व्यवहार किए जाने का अभिवचन दिया ा। (पत्र-नं० ४४७) (शिवाजीला बादशहा पुढ़े नम्र ायास भाग पाडणें अशक्य असत्यामुळें मसिंह वा त्याचा बाप यांनीं त्याला मित्रत्वानें वागविाचें वचन देऊन औरंगजेबाकडे पाठविलें होतें -पृ० ३१९) इन समसामयिक पत्रों से भली भाँति दिन होता है कि भूषणजी का कथन (बादशाह सलाम न करने का) बिलकुल सत्य है और निरी कुरसोहाती नहीं है।

गैरमिसिल ठाढ़ो सिवा

दरबार में पंचहजारी * सरदारों में खड़ा करने का वर्णन भी बिलकुल ठीक पाया जाता है। सभासदी बखर में इसकी अधिक स्पष्टता है कि शिवाजी को राजा जसवंतसिंह के बाद खड़ा किया गया था। यह उस समय पंचहजारी सरदार थे। यह जसवंतसिंह वह थे, जो कई बार दक्षिण में शिवाजी से हार चुके थे। इसीलिये सभासदी बखर में कहा गया है—"जसवंतसिंगा सारखा उमराव! याच्या पाठी माझ्या लष्करांनीं पाहिल्या असतील" शिवाबावनी के छंद-नं० १६ का "राजा जसवंत को बुलायकै निकट राखे" यह वर्णन शिवाजी की भेंट से संबंध रखनेवाला अवश्य है, परंतु यह निश्चित नहीं मालूम होता कि यह वर्णन दरबार की भेंट के समय का है अथवा ग़ुसलख़ानेवाली भेंट का; क्योंकि इसी छंद के तीसरे चरण में "भूषन तबहुँ ठिठुकत ही ग़ुसुलख़ाने सिंह लौं झपट" इस तरह का वर्णन हुआ है, जिससे ग़ुसुलख़ानेवाली भेंट से इस वर्णन का संबंध होना पाया जाता है। यह बहुत संभव है कि जसवंतसिंह के सदृश "स्वामिकाज + की लाज रखनेवाले" दोनों समय उपस्थित हों।

इस प्रकार अनुचित स्थान पर खड़ा करने से अपमानित होने पर शिवाजी अतिशय क्रुद्ध हुए और अनबन होने का ब्योंत स्पष्टतः दिखाई देने पर, (जयसिंह-पुत्र) रामसिंहजी ने शिवाजी को बरजने का बहुत कुछ प्रयत्न किया, परंतु शिवाजी ने एक न माना। 'धूमधाम कै न मान्यो रामसिंह हू को बरजा' —शि०भू०, छंद १९८।

यह वर्णन सभासदी बखर के, 'मग रामसिंग धीर धरणें म्हणून बोलूँ लागले'—(अर्थात् रामसिंह ने धैर्य धारण करने—सब्र करने के लिये कहा)—इस वर्णन से ठीक मिलता है।

---

* पंचहजारिन बीच खड़ा किया मैं उसका कुछ भेद न पाया।

—शि० भू० २०९

+ राजा जसवंत को बुलाय कै निकट राखे, तेऊ लखैं नीरे जिन्हैं लाज स्वामि-काज की।

शि० बावनी, छंद १६

दरबार में शिवाजी निःशस्त्र * थे, यह भूषणजी का वर्णन भी इतिहास से ठीक पाया जाता है, यथा—

दशद्वादशसाहस्रैरश्वावाराधिपैः स्थितम् ।
तथाप्यश्स्त्रककरः क्रूरत्वं न विमुक्तवान् ॥ ३७।२

† पर्णाल पर्वत ग्रहणाख्यान

आगरा अथवा देहली

शिवाजी और औरंगज़ेब की यह भेंट आगरे में हुई है; क्योंकि इस समय के तीन महीने पूर्व से ही औरंगज़ेब आगरे में आकर रहा था, जैसा कि औरंगज़ेबनामे में कहा गया है—

"सन् १६६६,४ फ़रवरी को बादशाह जमना में होकर आगरे पहुँचे। मसलिहत देखकर कुछ दिनों के लिये वहीं रहे और बेगमों को देहली से बुला लिया।"

—औरंगज़ेबनामा, पृ० ६५

इस समय दरबार आगरे में होते थे, और शिवाजी तारीख़ ६, सन् १६६६ को आगरे पहुँचे।

—शिवाजी-शिवकाल, पृ० १०६

भूषणजी के छंद ७६ से इस भेंट का आगरे में होना पाया जाता है, जैसा कि "रस खोट भरा ते अगोट आगरे में सातौ चौकी डाँकि"। अर्थात् वचनभंग आगरे मे और यहीं पर सात चौकियाँ बिठाई गईं। बखर में इस भेंट का देहली में होना लिखा गया है, जो नहीं प्रतीत होता। स्वर्गीय लोकमान्य ति महाराज ने 'जेधे शकावलि' के संबंध में लिखते कहा है—"इकडील बखरीं तून दिल्लीस भेट मा जे उल्लेख आहेत त्यांचा अर्थ इतकाच कीं, ही स्थूल मानानें मोगलाचे राजधानीत म्हणजे झाली" अर्थात् यहाँ की बखरों में देहली में भें का जो उल्लेख है, उससे स्थूलतः यही समझना कि यह भेंट मुग़लों की राजधानी में हुई—शिव प्रदीप, पृ० १५। भेंट के समय बादशाह आगरे में करते थे, इसका ज़िक्र ऊपर आ चुका है।

'जेधे शकावलि' में भूषणजी के सदृश 'चौकी' श प्रयोग किया गया है, यथा—"शिवाजी राजे आग जाऊन औरंगजेवाची भेट घेतली, विधाड होऊन ओस चौकिया दिल्या।" अर्थात् राजा शिवाजी पहुँचकर बादशाह औरंगज़ेब से मिले, अनबन राजा को चौकियाँ दी गईं। इससे मालूम होता उस समय मराठी तथा हिंदी में 'पहरे में देना' इस में 'चौकी देना' इस पद का प्रयोग होता था। आ की मराठी में इसका प्रचार नहीं रहा है।

बंधन से मुक्ति

अन्य इतिहास-ग्रंथों से मालूम होता है कि छुटकारा पाने के लिये शिवाजी ने एक उपाय सोचा। पहले बीमार होने का बहाना कुछ दिनों पश्चात् बीमारी से सुधर जाने के स दरबारी लोगों में पहुँचाए; और इसकी ख़ुशी तथा मिठाई के बड़े-बड़े पिटारे वज़ीरों और अ सरदारों के पास रवाना करते रहे। एक रोज़ पाकर अपनी जगह विश्वस्त नौकर रखकर पिटारे में जा बैठे पिटारे में शहर के बाहर जहाँ पर घोड़े पहले ही से तैयार खड़े थे पर सवार होकर ऐसा निकल गए कि किसी को कान ख़बर न होने पाई।

भूषणजी की कविता से उक्त घटना का प चलता, उन्होंने इशारतन् सिर्फ़ इतना ही कहा मीर उमरावों के बीच में से और ठौर-ठौर की

---

* साथ में फौज न हाथ हथ्यारो—शि० भूषण छंद १८६।
जोर सिवा करता अनरत्थ भली भई हत्थ हथ्यार न आया।
—२०६

† 'पर्णालपर्वत ग्रहणाख्यान' की रचना 'जयराम' कवि ने की है। यह शिवाजी के समकालीन थे। संस्कृत की तरह मराठी और हिंदी में भी इन्होंने शिवचरित्र की रचना की है। जैसा उनके इन श्लोकों से पाया जाता है—ततः श्रीमच्छिवेनेयं सुरती लुंठिता पुनः। तद्वृंदवमहाराष्ट्रभाषायुग्मेन वर्णितम् ॥ २६ ॥ तदप्यहो महाराष्ट्रहिन्दुस्थानभवेन वै। भाषायुग्मेन विहितं ततः सह्याद्रिमस्तकः ॥ ३२ ॥ इस पर्णालपर्वत ग्रहणाख्यान' के विषय में प्रो० सरकार ने अपने 'शिवाजी-शिवकाल' में 'फ़ार (बहुत) विश्वसनीय व उपयुक्त ग्रंथ' कहा है। इससे इसकी सत्यता का पता चलता है। परंतु खेद है कि इनकी शिवाजी-विषयक हिंदी-कविता कहीं नहीं पाई जाती। भूषणजी का वर्णन इनके वर्णन से बहुत कुछ मिलता हुआ पाया जाता है; क्योंकि दोनों समकालीन तथा एक ही दरबार में रहा करते थे।"

बाँध कर 'परेवा' (कबूतर) के सदृश ऐसा निकल गए कि किसी को ख़बर न लगी। पलँग ज्यों-के-त्यों पड़े रहे। सब देहलीवाले हाथ मलते रहे (फुटकल छंद ४६)। कबूतर के सदृश निकल जाने का वर्णन भूषणजी के समकालीन जयराम कवि के इस वर्णन से बिलकुल मिलता-जुलता है—

द्रष्टव्यं स्वामिभिस्तत्र कियद्यत्नेन रक्षितः।
तथापि **पक्षिवत्तूर्णं** पुत्रेण सह निर्गतः॥

पर्णालपर्वत-ग्रहणाख्यान, अध्याय २।३८

गुसलखाना

शिवराज-भूषण के छंद नं० ३४, ७६, २०४, २०६, २६५ और शिवाबावनी के छंद १६ इन छः छंदों में .गुसलख़ाने का वर्णन हुआ है। भूषणजी के इस वर्णन से इसका अवश्य पता चलता है कि दरबार के सिवा .गुसलख़ाने में भी बादशाह से भेंट हुई। 'कीन्ही तब नौरँग ने भेंट सिवराज की'। यह शिवा-बावनी के छंद १६ का वर्णन .गुसलख़ानेवाली भेंट का ही परिचायक है। दरबार के रोज़ शिवाजी बादशाह के अपमानकारक बर्ताव से क्रुद्ध हुए थे और दरबारी उमरा उन्हें मना * रहे थे, परंतु शिवाजी उस रोज़ फिर दरबार में नहीं आए। और उन्हें चौकियाँ दी गईं। मालूम होता है, भूषणजी वर्णित .गुसलख़ानेवाली भेंट दराबर के कुछ दिनों पश्चात् हुई। सभासदी बखर में .गुसलख़ाने के संबंध में एक अपूर्ण-सा उल्लेख पाया जाता है; वह इस प्रकार—"ऐसे किती एक गोष्टी बोलून एकांतीं **गुसलखानियांत भेटीस** बोलाविलें (म्हणजे) भेटी घेऊन मजकूर बोलूँ" अर्थात् बादशाह के एकांत में—,.गुसलख़ाने में—बुलाने पर उनके साथ इस प्रकार संभाषण करेंगे। उद्धृत अंश .गुसलख़ानेवाली भेंट से पूर्व का पाया जाता है; बादशाह शिवाजी से एकांत में मिलना चाहते थे, और शिवाजी भी, इस एकांत की भेंट में बादशाह से क्या कुछ बोलना चाहिए, इस संबंध में विचार कर रहे थे। बहुत संभव है, इसके थोड़े ही पश्चात् बादशाह शिवाजी से मिले हों और वह मिलन भूषणजी के कथनानुसार तथा उस समय की शाही प्रथा के अनुसार एकांत में—.गुसलख़ाने में हुआ हो। यहाँ पर भी बादशाह ने अपनी सुरक्षितता के लिये उमरावों के सफ़ (फड़) बाँधे और शिवाजी को शस्त्र † रहित होकर आने का हुक्म दिया। अनंतर भेंट की। .गुसलख़ाना ऐसे ही अवसरों के लिये नियत था। औरंगज़ेबनामे ‡ से इसका पता चलता है कि उन दिनों राजकारण-विषयक ख़ास-ख़ास सभा (मजलिसें) .गुसलख़ाने में हुआ करती थीं, और सिर्फ़ विश्वस्त सरदारों को .गुसलख़ाने तक आने की इजाज़त थी। .गुसलख़ाने की दरोगाई एक इज़्ज़त का ओहदा समझी जाती थी और वह ख़ास-ख़ास सरदारों को ही सरफ़राज होती थी। इससे भी अनुमान हो सकता है कि दरबार के सिवा .गुसलख़ाने में अवश्य भेंट हुई होगी। उस समय बादशाही .गुसलख़ाना ख़ाली स्नानागार नहीं कहा जाता था।

मिर्ज़ा राजा जयसिंह को पैंतीस क़िले देना

शि०भू०छंद नं० २१२-२१३ में भूषणजी ने मिर्ज़ा राजा जयसिंह को क़िले देने का हाल लिखा है। छंद २१३ में इनकी संख्या भी नियत कर दी है। पैंतीस क़िले सौगुना बड़ाई लेने के लिये शिवाजी ने राजा जयसिंह को दिए। सभासदी+ बखर में सत्ताईस और औरंगज़ेबनामे × में तेंतीस क़िले देने का वर्णन है। कहीं-कहीं बत्तीस तथा तीस क़िले देने का भी ज़िक्र है, परंतु ३५ क़िले देने का वर्णन अधिक विश्वस्त माना जाता है और भूषणजी भी ठीक यही कहते हैं। जयसिंह से दबकर शिवाजी ने पैंतीस क़िले पहले दिए। तत्पश्चात् दोनों में जो संधि हुई, उसमें २३ क़िले बालाय घाट और निज़ामशाही तलकोंकन मुग़ल-दरबार को देना

---

* अरे ते गुसुलखाने बीच ऐसे उमराय लै चले **मनाय महाराज शिवराज को**।—शि० भू० ३४।

बादशहा नें त्याच्या **समाधाना करितां अनेक सरदार पाठविले**, अर्थात् बादशाह ने उसके (शिवाजी के) मनाने के लिये कई सरदार भेजे।—पत्र-सार-संग्रह, पृ० ३१७, पत्र-नं० ११३६।

† हटकि हथ्यार फड़ बाँधे उमरावन के, कीन्हीं तब नौरँग ने भेंट शिवराज की।—शि० बावनी १५।

‡ औरँगज़ेबनामा, भाग दूसरा, खंड चौथा, पृ० ७।८, १६।२४।

+ पृ० ४४।५३।

× खंड तीसरा पृष्ठ ६३।

क़रार पाया और शेष बारह क़िले (छोटे-बड़े) शिवाजी के लिये रहे। पत्र-सार-संग्रह पत्र-नं० १०६४।१०७७ (छं० २१३ में "दिन दोऊ ना लगाए गढ़ लेत पंचतीसको" प्रयाग तथा काशी की प्रतियों में लिखा गया है, जो प्रतिलिपि की भूल मालूम होती है; क्योंकि छं० २१२ में उसके विरुद्ध यह वर्णन है कि 'यह क़िले कैयो बरस में लिए गए'—लेत की उगह देत होना चाहिए)।

नवसेरीख़ान

शि० भू० छंद नं० ३०७ में नवसेरीख़ान के साथ अहमदनगर में जो भीषण युद्ध होने का वर्णन भूषणजी ने किया है, वह जेधे-शकावलि, शिवापूर दफ़्तर की याददाश्त तथा शिवापूर देशपांडे-बही की शकावलि से मिलता-जुलता है—शिवचरित्र प्रदीप पृ० १८,४०,४६। उपर्युक्त शकावलियों से यह युद्ध १५७९, ज्येष्ठ-महीने में होना पाया जाता है।

प्रो० सरकार के शिवकाल से, इस युद्ध में शिवाजी की हार होने का पता चलता है, और सन् १६६४ में फिर यशस्विता से अहमदनगर के लूटने का वर्णन है। पृ० ७७।

प्रो० सरकार वर्णित सन् १६६४ की लूट के समय नवसेरीख़ान का कहीं निर्देश नहीं है, इससे भूषण-वर्णित घटना से उसका संबंध नहीं पाया जाता। भूषणजी का वर्णन शक १५७९ सन् १६५७ की नवसेरीख़ानवाली घटना से संबंध रखनेवाला है। प्रो० सरकार के शिवाजी-शिवकाल में इस युद्ध की तारीख़ ४ जून, सन् १६५७ है; 'जेधे शकावली' में नियत तारीख़ नहीं है, महीना (ज्येष्ठ) लिखा हुआ है; शिवापुर दफ़्तर की याददाश्त में आषाढ़ शुद्ध ३, शक १५७९ लिखा हुआ है। संभवतः यह तीनों मितियाँ (तारीख़ें) एक दूसरी से मिलती-जुलती हैं।

यह युद्ध नासिर (नवसेरी) ख़ान के साथ हुआ। इसका पता तो प्रो० सरकार के शिवचरित्र से अवश्य चलता है, परंतु उनका यह वर्णन कि "मावलीदल के परास्त होने से शिवाजी इस युद्ध से खिसक * गए," युक्ति-युक्त नहीं जान पड़ता। सभासदी बखर (इसको प्रो० सरकार विश्वसनीय मानते हैं) के पृष्ठ यह उल्लेख है—"मग अमदानगर शहर मा मोगलाशीं मोठें युद्ध केलें—सातशें घोड़े पाडाव के हत्ती ही पाडाव केले, द्रव्य बहुत सांपडलें"—अ अहमदनगर में मुग़लों से घमासान युद्ध हुआ, सात घोड़े और हाथी लूट लिए गए, द्रव्य भी बहुत मिल इससे पाठक स्वयं विचार करें कि शिवाजी इस यु पराजित हुए अथवा विजयी? अब इस उल्लेख के सं में एक आक्षेप यह हो सकता है कि इसमें भी नौसे ख़ान का नाम नहीं है, अतः यह सन् १६५७वाले से संबंध रखनेवाला नहीं है; इस शंका के समा के लिये पहले उद्धृत अवतरण के 'मग' तत्पश्चात् अनंतर—शब्द पर विचार करना चाहिए। अहमद के पहले (वैशाख वद्य १२ * शक १५७९, ३० एप्रि १६५७ को) जुन्नर पर शिवाजी ने धावा किया और तत्पश्चात् एक महीने के अंदर ही अहमदनगर चढ़ाई की। इसलिये सभासदी बखर में जुन्नरवा घटना के दो पंक्तियों बाद ही अहमदनगर की घ लिखी गई है। यद्यपि बखर में घटना का काल दिया गया है, तथापि अनुक्रम की दृष्टि से (जुन्न बाद) यह वर्णन आया है। इससे सन् १६५७ का समझा जा सकता है। नौसेरीख़ान के नाम तथा के निर्णय के लिये जेधे-शकावलि से सहायता मिल है। जेधे-शकावलि का वर्णन इस प्रकार है—

शक १५७९ हेमलंबी संवतसर

वैशाख मासीं जुन्नर लुटलें—वैशाख में जुन्नर लिया। ज्येष्ठ मासींनौसीरखान यासी युद्ध अ नगरी राजश्री सिवजी राजे यांणीं केलें।

अर्थात् ज्येष्ठ के महीने में नौसेरीख़ान के साथ अ दनगर में राजा शिवाजी ने युद्ध किया।

सभासदी-बखर—जेधे-शकावलि के वर्णन के साथ भूषणजी ‡ का वर्णन पढ़ा जाय; तो मालूम होगा इस युद्ध में शिवाजी की ही जीत हुई है।

---

* शिवाजी-शिवकाल, मराठी संस्करण, पृष्ठ ३५।

* शिवापुर दफ़्तर की याददाश्त पृ० ५० शि० च० प्र

† शिवा-शिवकाल, पृ० ३१९।

‡ अहमदनगर के थान किरवान लैकै,
नवसेरी खान ते खुमान भिरयो बलतें;

प्यादन सों प्यादे पखरैतन सों पखरत,
बखतरवारे बखतरवारे हल ते ।
'भूषन' भनत एते मान घमसान भयो,
जान्यो न परत कौन आयो कौन दल ते ;
सम वेष ताके तहाँ सरजा सिवा के, बाँके
बीर जाने हाँके देत मीर जाने चलते। ३०७।

—शिव० भूषण

इस युद्ध में शिवाजी की जीत होने का पता इससे मिलता है कि इस घटना के थोड़े ही दिनों बाद जुन्नर तथा अहमदनगर के नियत सरदारों (मुलतफ़तख़ान, नासिरख़ान, मीरजुमला) के नाम औरंगज़ेब ने अतिशय क्रुद्ध होकर पत्र लिखे हैं, और उन्हें यह हिदायत की है कि शिवाजी का मुल्क जला दिया जाय, उसकी प्रजा का क़त्लेआम किया जाय जो शिवाजी से मिल-जुलकर रहें, उनके सिर उड़ा दिए जायँ † इत्यादि । यदि इस युद्ध में नौसेरीख़ान की फ़तह होती, तो औरंगजेब इस प्रकार न चिढ़ता, और न ऐसे क्रोधभरे पत्र लिखने की आवश्यकता ही होती ।

रामचंद्र-गोविंद काटे

---

† शिवाजी-शिवकाल पृ० ३५, पत्र-सार-संग्रह, लेखांक ७३३ ।

डॉ. वामन गोपाल
का
सार्सा परिला

AMAN GOPAL
REGISTERED
COMPOUND LIQUID EXTRACT
OF RED JAMAICA
RED SARSAPARILLA
Samrao Kesheo & Sons

बिगड़े लोहू को सुधार कर शरीर में शुद्ध रक्त की वृद्धि करता है। इसके सेवन से दूषित रक्त और सभी विकार, गर्मी, चाँदी-प्रमेह वग़ैरह सब निर्मल होते हैं। ७८ वर्षों से हज़ारों लोग लाभ उठा रहे हैं। अनेक सुवर्णपदक मिले हैं। मूल्य ११) और

डॉ. गौतमराव केशव की
धातु, रक्त, मनोत्साह और शक्तिवर्धक पौष्टिक
फॉस्फरस पिल्स
गो० डा० गौतमराव केशव अनसन ठाकुरद्वार, बंबई २

५००) इनाम

महात्मा-प्रदत्त—श्वेतकुष्ठ (सफ़ेदी) की अद्भुत वनौषाध तीन दिन में पूरा आराम । यदि सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों, विज्ञापनदाताओं की दवा करके निराश हो चुके हों तो इसे लगाकर आरोग्य हों। मू० २)

जिन्हें विश्वास न हो ⁄) का टिकट लगाकर शर्त लिखा लें, न फ़ायदा साबित होने पर ५००) इनाम।

हज़ारों प्रशंसा-पत्रों में से एक—ता० २१।१।३० को रामगती शर्मा विशारद वैद्यशास्त्री गोरखपुर ज़िला से लिखते हैं—आपकी दवा तीन बार में मँगाया नोटिश के अनुसार पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। आप पुनः सच्ची दवा शीघ्रातिशीघ्र भेजने की कृपा करें ।

पता—**अखिलाकिशोरराम**
११६ नं० ३०, पो० कतरीसराय (गया)

होम्योपैथिकमेटीरिया मेडिका

डाक्टर मुकर्जी-लिखित हिंदी की बृहत होमियोपैथिकमेटीरिया मेडिका छपगई। यह पुस्तक समस्त होमियोपैथिकशास्त्र का सार है। ऐसी पुस्तक आज तक नहीं छपी होमियोपैथिक की समस्त गूढ़ बातें इसमें वर्णन की गई हैं । इस पुस्तक को बिना पढ़े होमियोपैथिक चिकित्सा करना असंभव है। घर बैठे डाक्टरी सीखने का यह अपूर्व अवसर है । पृष्ठ-संख्या ६००, मू० १५)

प्रकाशक—
N. Ando & Sons, Farrukhabad,
U. P.

डाकू

बड़ा ही घना जंगल था । कोसों तक इधर-उधर झाड़ी ही झाड़ियाँ थीं । मतंग वृक्षराज अपने वैभव से उन्मत्त झूम रहे थे और डूबते हुए सूर्य की लालिमा उनसे लिपटती जा रही थी । पशु-पक्षी बसेरा लेने जा रहे थे और धीरे-धीरे सन्नाटे का साम्राज्य फैल रहा था । किंतु जंगल के बीचवाले कुटीर से किसी स्त्री का करुण क्रंदन निकलकर पाषाण एवं चट्टानों को भी पिघला रहा था ।

कुटीर में एक टिमटिमाता हुआ चिराग़ जल रहा था । वहीं बैठी हुई एक परम सुंदरी स्त्री ज़ार-ज़ार रो रही थी । उसकी गोद में चार-पाँच महीने का बच्चा था । उसी को वह छाती से लिपटाए हुए रो रही थी, मानों इस क्रंदन द्वारा किसी खोई हुई चीज़ को वह ढूँढ़ना चाहती थी या किसी को बुला रही थी । किंतु दीवारों से टकराकर वह आर्तनाद लौट जाता और फिर सन्नाटे में विलीन हो जाता था ।

बच्चा बहुत भूखा था । वह छाती से लिपटा हुआ माता का स्तन चूस रहा था । हाँ, जब तब वह चौंक पड़ता और ऊपर मुँह उठाकर देखने लगता था । वह उसे हृदय से लिपटा लेती । यदि फिर भी वह न मानता, तो कलेजा पत्थर करके उसे दो बार पुचकार भी देती । पुचकारते समय में दुःखों को भूलकर उसके प्यारे मुखड़े पर मोती बिखेर देती—नहीं उँडेल देती । वह हक्का-बक्का होकर और भी रोने लगता ।......... हाय, वह इस समय अपने लाल को कैसे मनाती ? एक समय था, जब वह उसे अच्छी तरह रिझाती थी और घंटों उसकी बलैयाँ लिया करती थी । किंतु आज यह असंभव था । जिसे हम कभी अपने ही हाथों किए रहते हैं, वही कार्य एक दिन असंभव कार्यों की श्रेणी में आ जाता है । बच्चा सो गया, किंतु वह अभी रो ही रही थी कि डाकू आया । कितनों का ख़ून उसकी आँखों में नाच रहा था । कितनों के धन का मद उसका माथा घुमा चुका था । पौरुष एवं पुरुषार्थ का अभिमान उसके अंग-प्रत्यंग से झलक रहा था । आते ही उसने बड़े कड़े स में कहा—"क्या रोती ही रहोगी ?" स्त्री ने धीरे कातर स्वर में कहा—"तो क्या रोने भी नहीं दोगे ?"

पश्चात्ताप और विषाद की आँधी ने डाकू को दिया । किंतु दया अथवा आँसू किसे कहते हैं, यह मालूम नहीं था । वह नहीं समझता था कि संसार इनकी भी आवश्यकता है । उसकी समझ में असंख्य लुटाना और उसे एकत्रित कर सर्प-मणि-जैसा सुरक्षि रखना ही उसका सर्वमान्य साधन, तप, एवं व्रत था । और शांति से उसे प्रयोजन न था । वासना का आह्वा और लोभ का मनन ही उसका सर्वप्रधान उद्देश्य था ।

कुछ क्षणों तक वह किंकर्तव्य-विमूढ़ खड़ा रहा-उसके हृदय-पटल पर मानव-भावों का उदय हो आ था । किंतु इस नई ज्योतिमाला से उसकी आँखें चौंधियाने लगीं । अस्तु, कोशिश करके उसने इसे बुझा दिया और अमानुषता के अंधकार में उसका सच्चा स्वरू झलकने लगा । पाषाण-हृदय निर्मम पड़ा था । जिह्वा छुरिका ज़ख्मों को ज़हरीला करने के लिये तुली थी और पाशविक वृत्ति, उद्दंड अत्याचार के लिये लँगोटा बाँ तैयार थी ।

डाकू ने कुछ देर बाद कहा—"कहता हूँ चुप रहो ।"

स्त्री—"कैसे ?"

डाकू—"जैसे भी हो सके ।"

स्त्री—"यदि तुम्हीं मेरी जगह होते !"

डाकू—"तो क्या ?"

स्त्री—"तब शायद तुम भी मेरी तरह ही रोते !...... अच्छा हटो, जाओ, दया करो ।—किंतु तुम यहाँ आ ही क्यों ? धन के नाम तो मेरे पास कानी कौड़ी भी नहीं । फिर—फिर मेरे पास एक डाकू का क्या काम अब कोई चीज़ नहीं, जिसका प्रलोभन तुम्हें खींचकर मेरे पास लाए । कृपा करो ! अह, दया करो !! मुझे रोने दो और रो-रोकर मरने दो । रोने में तथा रो मरने में बड़ा आनंद है ।"

ये बातें कहते-कहते स्त्री की आँखें सूख गईं। उनमें से अहंकार, द्वेष, तृष्णा, खेद एवं विषाद की चिनगारियाँ उड़ रही थीं। फिर भी वह उस भयंकर डाकू के खरूए पैरों को पल में सहस्र बार चूम रही थी। केवल इसीलिये कि वह उसे रोने दे।

जब तक वह अपनी कह रही थी, डाकू चुपचाप सुनता रहा। फिर बातें समाप्त होने पर वह कुछ सोचता चला गया। जितनी देर वह वहाँ खड़ा रहा, उसके मुख-प्रदेश में खेद और पश्चात्ताप की छाया आ-आकर उसकी मुखाकृति को बदल जाती थी। कभी वह एक का रंग जमा जाती, कभी दूसरे का। किंतु किसी एक का रंग स्थायी न रहने पाता, न चोखा होने पाता था। उसके अंतस्तल में दो विपरीत भावों का घोर संघर्षण हो रहा था। एक से वह परिचित था, किंतु दूसरे से अनभिज्ञ। ....उसकी पाशविक तथा मानवीय वृत्तियों की हार-जीत उसके मुख-मुकुर में झलक रही थी!

× × ×

अँधेरी रात मानों खीझकर आई। काली, गोरी अच्छी या बुरी सभी चीज़ों को ग्रास कर बैठी थी। दुनिया के कोने-कोने को अपनी काली कमरी से ढक, अपने एकोहम् की वृत्ति को प्रसन्न करती प्रसन्नता की साँसें ले रही थी—संसार का हृदय डर से काँप रहा था। थके-माँदे एवं भयातुर मानव निद्रा की गोद में जाकर छिपे हुए थे। डाकू भी उस घने वट की छाया तले चौतरे पर पड़ा खर्राटें ले रहा था। ऐसी रात्रि में वह कम सोता था, कारण इससे उसकी साँठ-गाँठ थी। इसी के काले राज्य में उसकी ललह थी। पाँसे उसी के पड़े थे। उसने सोने-चाँदी के थैले ठुनका दिए। और उसके तथा उस काली रजनी के सिवा उन्हें कोई भी नहीं देख सका। गोपनीय गुप्त ही रहता है, बात फूट नहीं सकती थी। दोनों ही एक दूसरे के विश्वस्त थे।

आधी रात ढल चुकी थी। भोर की हवा अब कुछ देर में उठने ही को थी कि वह चौंककर उठ बैठा। दो-चार अँगड़ाइयाँ लीं और फिर पड़ रहा। किंतु निद्रा ऐसों की सेविका नहीं। वह संतोष की तो चेरी है, किंतु वासना की बैरिन है।—डाकू फिर उठ बैठा, खड़ा हो गया और टहलने लगा। सर थामा, आँखें मींजी और भुनभुनाने लगा......।

"अह, कल ही की, की हुई बातें और आज स्वप्न देखता हूँ!! काम चाहे जितना भी भयंकर रहा हो, उसे करते मेरा रोयाँ तक न सिहरा। किंतु आज, अभी स्वप्न में, फिर भी उन्हीं कर्मों का कर्त्ता था।—और मैं थर-थर काँप रहा था। कलेजे को जूड़ी हो आई, आँखें जलने लगीं और सर को तो मानो कोई हथौड़े से पीट रहा हो।—आश्चर्य नहीं यदि मुझे बुख़ार हो आया हो।.........अह, पैर लड़खड़ा रहे हैं। इस शेर के-से बूते को क्या हो गया? लोहे के पैर लड़खड़ाने क्यों लगे? नहीं समझ सकता।............अह!"

कहते-कहते वह बैठ गया। हाथों पर सिर रख लिया और फिर कहने लगा—"वह कितना सुंदर था। यदि वह कोई अजीब पुतला होता, तो मैं उसे देखने से न ऊबता। शायद उसे अपनी झोपड़ी में रख छोड़ता और दो फूल-पत्तियों से उसे साजकर देखता और निहाल होता। किंतु मेरे लिये रुपया उससे भी प्यारा निकला। मैंने समझा, उसके पास बहुत है और राह का रोड़ा फेंकने के लिये उसके ख़ून से अपनी तलवार लथपथ कर ली। वैसे ख़ून को भी मैंने नहीं देखा था। उसकी गोरी गरदन से निकलती हुई ख़ून की धारा मेरे हृदय में सीधे ढलने लगी थी। हृदय उसी से भर गया और घाव-सा दुखने लगा था!"

"वह अपनी स्त्री और नवजात पुत्र को नाव पर लिये न-जाने किस मनसूबे से कहाँ जा रहा होगा। नाव आधी दरिया में थी, जभी मैं तैर गया, किंतु नाहक ही मैंने दौड़ मारी। वहाँ रुपया के नाम छदाम भी न था।.........और वह माँझी भी मुझसे ख़ूब लड़ा। मर्द था, उसके ऐसा जवान मैंने कम देखा है। पर उसे भी पार लगा दिया। और शिकारी के क्रोध में इन दोनों स्त्री और बच्चे को व्यर्थ ही यहाँ खींच लाया। किंतु नहीं, उस समय तो सोचा था, बच्चे को बलि देने के लिये और स्त्री से रसोई कराने के लिये। आज भी मेरा विचार बदला नहीं। किंतु न-जाने क्यों उस नन्हे से खिलौने से मुझे मोह होता है, और उस सुंदरी से कुछ भी कहते डर लगता है। जब वह रोती थी, तभी जी में आया, उसके केश खींच ज़मीन पर गिरा दो एँड़ लगाऊँ......किंतु चार आँखें होते ही मेरी मरदानियत ढीली पड़ गई। उसके पति का स्वरूप आँखों पर चढ़ आया

और अपने किए का पछतावा होने लगा । यों तो मैंने हज़ारों को झपट दी होगी और द्रव्य से घर भर दिया है ; किंतु ऐसी ग्लानि की चुभती ज़हरीली बरछी से मेरे हृदय को किसी की भी याद ने जर्जरित न किया होगा ।

“..........जैसे ही नाव पर मैं चढ़ गया था, उसने कहा था—'कुछ भी नहीं है'.........मैं उजड्ड था, तलवार खटखटाने लगा । उसने कहा—'क्यों, क्या चाहते हो ? सब कुछ उपस्थित हैं, ले लो !' और बस, मेरे सामने गरदन झुका दी थी । मुझमें अपने पौरुष का अभिमान हो आया । मैंने कहा—'युद्ध और धन चाहता हूँ ।' बोला—'धन तो है ही नहीं, फिर दूँ कहाँ से । किंतु यदि वह दूसरी वस्तु चाहते हो, तो मुझे भी शस्त्र दो, तुम्हारी युद्ध-पिपासा मिटा दूँ ।' मूर्ख ने मेरे क्रोध में आँच दे दी । मैं खीझ उठा और वार कर दिया । उसकी स्त्री ने बच्चे को लिए हुए मेरे पैरों को पकड़ लिया, माँझी ने जो अब तक खड़ा था, दौड़कर मेरे हाथ को पकड़ लिया । किंतु बल का मद भी बुरी चीज़ है । मैं उसी के नशे में चूर हो गया । झटककर दूसरा वार किया और उसका काम तमाम कर दिया । स्त्री मूर्छित हो गई, किंतु माँझी मुझसे लिपट पड़ा । घंटों घमासान युद्ध रहा । किंतु मैंने उसकी निशस्त्रता का लाभ उठाया । उसे मार गिराया । फिर दोनों लाशों को गंगा में बहा, उस नौका को अपने तीर खे लाया ।”

वह चुप हो गया । फिर कलेजा सहलाने लगा । धरती पर पड़ रहा और कराहने लगा । किंतु आज उसे डर लगता था । वह यहाँ नहीं ठहर सका । उस कुटी की राह ली, जहाँ उसके बंदी, स्त्री और बच्चा, पड़े बिलख रहे थे ।

× × ×

भोर के सूर्य चमक रहे थे । उनकी सौरभ-किरणें जहाँ-तहाँ छिटक रही थीं, और वह उसी द्वार पर सोच-मग्न खड़ा था । रात-भर जो अग्नि उसके अंतस्तल में जलती रही, उसके ताप एवं धुएँ से उसका मुख स्याह हो गया था । आँख का रंग उतर गया था और चमड़ा झुलस-सा गया था । जो बुढ़ापा पचहत्तर वर्ष की अवस्था में भी उसे भूल बैठा था, उसी ने आज अकस्मात् उसके “कल्ले कब्ज़ों” को पकड़ उन्हें ढीला और समा कर डाला ।

यहाँ तक नहीं, आज ज्वर की ज्वाला उसे व्याकु कर रही थी । वह डर रहा था कि कहीं उसकी मृत्यु हो जाय । किंतु शीघ्र ही जी में जीवन का कुछ मोह हो आता । वह सोचता 'जान के बदले जान' दूँगा उस बच्चे की बलि शायद मेरा कल्याण कर सके ।

आह, उसकी यह कामना स्वार्थ का कैसा ज्वलं उदाहरण थी । यह मानव-हृदय की निर्दयता, उद्दंड तथा जीवन-तृष्णा की चरम सीमा थी । हिंसा करके वह अपना कल्याण चाहता था । किंतु यह भयंकर भू थी । पशुवृत्ति उसके हृदय में यह संकल्प करती हु हलकी साँसें ले रही थी और मनसूबा किसी को में खड़ा लज्जा से धँसा जाता था ।

जान से प्यारी इस धरातल में कोई भी वस्तु नहीं उसके रक्षार्थ हम एक बार अपना सर्वस्व देने को तैयार हो जाते हैं । हम सब कुछ देकर भी अपने नहीं देना चाहते । अपने को खोकर भी हम “अपने को जैसी जर्जर वस्तु को क्यों ढोते फिरते हैं ? यह ए कठिनतर समस्या है । हाँ, तो यह वृत्ति हम सभी है, फिर स्वार्थ के पुतले डाकू में यह क्यों न होती उसने बलि के प्रश्न को हल कर डाला । तर्क के झमेले को पछाड़ दे मारा और फिर निश्चय कर लिया कि ब करना ही है, तो आज ही और अभी क्यों न करे । व उठ खड़ा हुआ । एक बार पुनः तामस ने उसके ढी रगों को सीधा कर दिया । वह सीधा उसकी कोठरी चला । वहाँ पहुँचा और जाकर खड़ा हो गया ।

निर्दयता करते समय बड़े-से-बड़े निर्दयी का दिल एक बार दहल जाता है—किंतु जिसकी जै लत रहती है, वही हृदय के सभी भावों को दबा सर्वोपरि हो जाती है । कुछ देर वह भी दुविधा खींचा-तानी में रहा । फिर बंदिनी सरला से बोला—

“हमें बच्चा दे दो ।”

सरला इस आकस्मिक माँग पर चौंक उठी । धीरता से काम लेते हुए उसने पूछा—“ किस लिये ?”

यह बड़ा कड़ा प्रश्न था । और प्रश्न का निशा भी उसके दिल पर बे-तरह पड़ता था । वह इ

सहज तथा सादा होते हुए भी उसे अट्टहास-प्रद प्रतीत हुआ। वह लज्जित हो गया, पछतावे में पड़ गया। करुणा से कातर हो शोक का शिकार बन बैठा। किंतु ये घूँट एक आचरणहीन डाकू को बड़ी कड़ुवी लगी। जिस बाड़े में उसे कोई अदृश्य शक्ति खींचे लिए जाती थी और रह-रहकर तीते प्यालों को उसके होठों से लगाती जाती थी, वह उससे निकल भागा और अपने पुराने मैदान में आकर खीझ उठा। उसने तमककर कहा—"मैं उसे बलि देने के लिये चाहता हूँ।"

उसके 'हूँ' शब्द के साथ ही मानों भू-मंडल उसकी ओर त्योरियाँ वदल हुंकार कर उठा। कहीं दूर-प्रदेश से कल्याणकारिणी जगद्धात्री के वीर-वाहन का भो हुंकार सुनाई पड़ने लगा और चमकने लगा वही मैया का गर्व-गर्वित खड्ग। डाकू काँप उठा। पर क्या पैर पीछे धरता? नहीं, भला सिंह और शूर कब मुड़ते हैं?

उसने सरला को चुप उद्भ्रांत बैठी देख, फिर कहा—"एक बार पुचकार ले अपने बेटे को, फिर दे दे मुझे, मैं उसे काली को भेट करूँ। देर न लगा।"

व्यथिता अपने होश में न थी। वह इस समय समझ नहीं रही थी कि वह क्या कह रहा है। वह फिर भो चुप रही।

कुछ देर के बाद सरला ने कहा—"नैराश्यसागर में डूबने से वचने के लिये आशा के इस तिनके को भी न रहने दोगे। क्या इस नन्हे-से खिलौने पर तुम्हें तरस नहीं आता?............हा जननी!"

डाकू—"व्यर्थ समय क्यों नष्ट करती हो? जी चाहे इसे दो बार पुचकार लो!.........वरना, मैं इसे लिए जाता हूँ।" यह कहते हुए बड़ी रुष्टता से वह सरला की गोद से बच्चे को छीनने लगा।......आनंदस्वरूप बालक चिल्ला उठा और देवीस्वरूप जननी रो उठी। किंतु वह छीन ही ले-गया और वह धरती पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी!—उसके आगे संसार अंधकारमय था। वह बच्चे को बाँह के नीचे दबाकर चलता हुआ और वह मूर्छित हो गई।

× × ×

दीना को मूर्छा भी शरण न दे सकी, मुँह मोड़कर चली गई!!......धरणी पर खूब छटपटाई, खूब तड़पी, खूब रोई कि हठात् पागलों की नाईं उठ खड़ी हुई और लगी बड़बड़ाने.........क्यों, कहाँ वह छीनकर ले गया है मेरा लाल?......मा काली को बलि चढ़ाने के लिये? क्या अपनी संतान का मैया भक्षण करेगी? क्या निरीह बालक के निर्दोष रक्त से उसकी रक्त-पिपासा तृप्त होगी? उफ़्! मेरा प्यारा, मेरा प्राण, मेरा हृदय, मेरा लाल.....और खाद्य किसका? मेरी स्नेहमयी मैया का.........। क्यों, क्या पूछने की आज्ञा होगी जननी कि तुम्हें अपने बच्चों का रक्त कैसा लगता है? तड़पती जान को देखकर मनुष्य में भी देवतों की-सी दया जग उठती है, किंतु नहीं, यही क्या तुम्हारे आहार-विहार के लिये समुचित दृश्य है?.........नहीं, नहीं मा, मैं इसे नहीं मानूँगी। एक बार तू भी कहेगी, तो मैं इसे हँसी समझ तुम्हारी कृपालुता का वास्तविक रूप जानने के कारण तुम्हारे चरणों पर आँखों की मोतियाँ उड़ेल दूँगी। मनुष्य ही नहीं, देवता भी कहते हैं—"दुःख-भयहारिणी हो, लोकोपकार के लिये आर्द्रचित्त हो।

"क्या यह सभी असत्य है? नहीं कदापि नहीं!......किंतु कैसे मानूँ यह, यदि मेरी ही गोदी का गुलाब चुन लिया गया तुम्हारी थार में सजे जाने के लिये!.........अच्छा यही सही, लो खा लो मेरे बच्चे को।......किंतु विश्वास रक्खो, उसे तुम्हारे कौर से झपटकर निकाल लूँगी और तुम्हें बतला दूँगी कि माता तुम नहीं, मैं हूँ।.........जननी! आज तुम्हारी वेटी तुम्हें मातृत्व की शिक्षा देने पर उद्यत है। क्षमा करना इस धृष्टता को!.........वह निर्दयी, हत्यारा, क़साई, तुम्हारे आगे उसे 'डित कर देगा, तुम उसके मनोहर गुलाबी रक्त का पान करोगी?......छीः...मातृत्व, धिक्कार है तेरे नाम को! मा, क्या मुझे यह तुमको स्मरण दिलाना पड़ेगा कि मातृत्व पाषाणवत् नहीं होता, बरन् कोमल और मृदुल......!"

अपनी कंचुकी से एक तीक्ष्ण-छुरिका निकालकर वह बकती-झकती काली-मंदिर की ओर बड़ी तेज़ी से चल पड़ी।

× × ×

वह यों ही झूमती मंदिर के द्वार पर पहुँची। उतावली थी, पगली थी, निर्बुद्धि थी। सब कुछ कर जाने के लिये उद्यत थी। किंतु चौखट पर पहुँचते ही विचित्र

दृश्य आँखों के सामने था । डाकू उसे देखते ही उसके चरणों में "माता मुझे क्षमा करो" कहते हुए आ गिरा ।

सरला ने देखा, उसका पुत्र माता के पदपद्मों के निकट बैठा हुआ प्रसन्नचित्त खेल रहा है, और देवी की मूर्ति के अधरों पर मातृत्व की सजीव मुस्कुराहट खेल रही है, मानो सरला से वह पूछ रही है कि क्या वह मातृत्व जानती है अथवा नहीं ?

सरला का हृदय आनंद, मोह, करुणा, लज्जा एवं विस्मय से भर गया । डाकू के अंतस्तल में आज एक विचित्र ज्योति जग रही थी । आश्चर्यजनक परिवर्तन प्रवेश कर चुका था ।

यह सब कुछ लीलामयी जननी का आमोद
अभिनय था ।

डाकू और सरला दोनों ही मातृपद-पंकज पर लो
एवं आनंदाश्रु बहाने लगे । फिर शीघ्र ही मंदिर में आर
आरंभ हो गई और पत्ते-पत्ते माता की आरती में घं
देते हुए कह रहे थे—

सर्वस्यार्त्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते !!

श्रीगुह्येश्वरप्रसाद श्रीवास्त

मगाओ मुफ्त मगाओ

अगर आप पान खाने के शौकीन हैं तो हमारा मुखबिलास मसाला व ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट पान में जरूर खाइये खुशबूदार व खुशजायका है ॥

मुखबिलास मसाला
REG No. 109
TRADE MARK
MUKH BILAS MASALA

(मुखबिलास मसाला)

कीमत मुखबिलास मसाला छोटी डि० फ़ी दरजन १।।।=)बड़ी डि० फ़ी दरजन ३।।।) कीमत ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट छोटी डि० फ़ी दरजन २।) बड़ी डिब्बी फ़ी दरजन ४।।) फ़ैन्सी पुड़िया ।।।)।।। सैकड़ा

[नोट] ज्यादा हाल जानने के लिये नमूना कैलेन्डर और नोटिस मुफ्त मंगाइये ॥

पता— पं० प्यारेलाल शुक्ल
प्यारे लाल शुक्ला स्ट्रीट कानपुर ॥

ताम्बूल अम्बरी टिकिया
पान में खाइये
TAMBUL-AMBARI
TABLETS
TO BE USED WITH
BITTLES

(ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट)

बलाहक !

१

हम अनुमाने, मौन ठाने, हरि आने चित्त ,
कोऊ तपसी हौ, बैस तप माँहि काटौगे ;
हौ तुम प्रबुद्ध, बोधि आजु काग-मंडलीन ,
बेद औ पुरानन के पुन्य-ठाट ठाटौगे ।
पै तुम लखाने काग हू तें गए बीतें यार ,
करिकै अनर्थ और पाप-पुंज पाटौगे ;
चीकने बने हौ काह, भीतरै भरी भँगार ,
तुम तौ बलाहक हौ, घोंघिन ही चाटौगे ।

२

जतन किए हू पै न पाए चखि हंस चाल ,
सिखत बलाहकजू ! आपनी बिसरिगे ;
साथ के सखा हू बनि बैठे आपदा मैं बाम ,
चुँथत मराल-पंख, पंख हू उचरिगे ।
छूट्यो मानसर बास, लागे मुकता न हाथ ,
सूख्यो पंक, मीन मुए, ताल हू उजरिगे ;
इतके तज्यो है साथ, उतके गह्यो न हाथ ,
बनिकै त्रिसंकु व्यर्थ, बीच मैं बगरिगे ।

३

जोपै बदो होतो मानसर ही बलाहकजू , तौ तुम बकुल-कुल काहे अवतरते ;
ऊपर तें साधु जैसे सूधे न लखाते कबौं, भीतर तें हुमकि न मीन गप करते ।
बैठि अरबिंदन पै भद्रता बिचित्र धारि , करिकै ठठोली काहे हंस-हँसी भरते ;
होते जुपै भीतरौ के ऊजरे ज्यों ऊपर के , सुजन सराहिबे की बानि चित्त धरते !

४

राखत न दोह कोह, सरल सुभाउ हंस ,
बंस इनके न सुने, पैज ते पछरिगे ;
इन अन्हवायो तोहिं, मानस मैं दै सुपास ,
औगुन तिहारे आपु ही तें तौ उघरिगे ।
तौहूँ भाँति-भाँतिन के पायो परितोष नीके ,
संबुक सवाद तोहिं, मूरुख ! बिसरिगे ;
खायो पै पचाय नहिं पायो मुकतान तातें ,
दोऊ दृग मोतिया के बिंदुन बिगरिगे ।

५

ये तौ राजबंस अवतंस महाभाग हंस ,
जानि तोहिं खोटो, तऊ खोरि इन भाख्यो ना ;
जैसी चलि आई रीति इनके सनातन तें ,
तैसी अभिलाषैं इन पूरीं, एक राख्यो ना ।
करि उपकार अपकार ही लह्यो है अंत ,
तैं नहिं सकान्यो, इन मन माँहि माख्यो ना ;
तौहूँ नहिं आए बाज, फूट के बप्यो है बीज ,
तैसेई लुनौगे, कबौं कटु फल चाख्यो ना ।

रमाशंकर मिश्र "श्रीपति"

उपाध्यायजी और अद्वैतवाद

'माधुरी' की पूर्ण संख्या ७० में हमने श्रीगंगाप्रसादजी उपाध्याय के अद्वैतवाद-शीर्षक लेखों की जो आलोचना लिखी थी, उस पर पूज्य पंडितजी ने जो वक्तव्य छपाया है वह प्रथम तो उनके अत्यधिक क्षोभ का परिचय देता है और दूसरे उसमें वही तर्कशैली और वे ही विषय अत्यधिक हेर-फेर के साथ पुनः उठाए गए हैं जिनका अत्यंत सरल स्पष्टीकरण हमने अपने उपर्युक्त शीर्षक पूर्वलेख में किया था । फिर भी मान्य संपादकजी के अनुरोध से हम कुछ विवेचनरूप में पूज्य उपाध्यायजी और पाठकों के चरणों में निवेदन करना चाहते हैं । यह विषय ही ऐसा है, जो मतभेद को शरण देता है । अर्पण और दर्शन, ये साधना की दो परम गति हैं । अर्पण में ध्वनि और दर्शन में आलोक है । एक का क्षेत्र भक्ति और दूसरे का ज्ञान है; एक में संगीत-कविता है, दूसरे में शास्त्रार्थयुक्त विवेचन । एक का संबंध हृदय से है, दूसरे का बुद्धि से । कविता ने अपने साम्राज्य से भेद को निकाल दिया है, परंतु दर्शनशास्त्र जब तक कि वह उच्चातिउच्च कोटि का सानुभव न हो, भेद को आश्रय देता ही है । परंतु काव्य की तरह दर्शन में भी प्रेम और मीठी वाणी का व्यभिचार नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे लेख से उपाध्यायजी को अप्रसन्नता हुई है । हम पूज्य पंडितजी से इसके लिये क्षमा चाहते हैं; क्योंकि वह वय धर्म कर्म और विद्या में सब प्रकार हमारे अर्घ्य हैं ।

स्वयं हमें उपाध्यायजी के अद्वैतवाद पर लेख लिखने से अप्रसन्नता बिलकुल नहीं हुई । हाँ, इतना अवश्य प्रतीत हुआ था कि उन लेखों में शंकर-दर्शन का विवेचन ठीक नहीं हुआ और उनसे बहुत कुछ भ्रम उत्पन्न होने की सम्भावना थी, इसलिये हमने समाधान लिखा था । उपाध्यायजी-जैसे विद्वान् को फिर उन्हीं शंकाओं की उलझन है, इससे पुनः कुछ विस्तार से लिखने को विवश होना पड़ा है । अत्यंत शिष्ट भाषा और संयत भाषा आदि शब्द, सौजन्य और क्षमायाचना की रीति से लिखे थे; क्योंकि अपने साहित्य में दुर्भाग्य से चली हुई जो अभद्र समालोचना की शैली है, उसकी ओर मेरे मन में बड़ी घृणा है । पूर्व लेख के आरंभ में ही हम यह कह दिया था कि शंकर को ठीक-ठीक पाठकों के साम उपस्थित करना पहली आवश्यकता है, यदि हम चाह हैं कि उस धुरंधर दार्शनिक के साथ कहीं अन्याय न क बैठें । शंकर की लेखनी सहस्रशीर्षा होकर अनंत स्था पर इस बात को कहती है कि सृष्टि के व्यवहारगत नाम रूपों के मूल में एक अविकारी, अविनाशी, नित्य, अद्वै अमृत, वस्तुतत्त्व को मत भुलाओ, सदा सर्वत्र उस दर्शन करो । इस मौलिक दृष्टिबिंदु की अवहेलना क जो समालोचक बार-बार नाक-कान और मेज़-कुर्सी पट पटककर यह प्रश्न करता ही जाय कि इन भेदों को तु तथ्य क्यों नहीं मानते, तो उसके चरणों में केवल अंजलि कर्म ही विधेय है । जगत् के जो असंख्य भेद हैं, वे व्य हार-सत्य हैं, उनमें ब्रह्म की स्वाभाविकी ज्ञानबल-क्रि का विषय दृष्टिगोचर हो रहा है, उनकी सत्ता का पृथ पृथक् ग्रहण वांछनीय नहीं । केवल एक मूल-उपाद कारण को ही ध्यान में रखकर यदि ब्रह्म के विवर्त प विचार किया जाता (और यदि पूज्य पंडितजी भी ऐसा ही करने की कृपा करते), तो मानों प्रश्नकर्ता एकदम वेदां तथा अन्य दर्शनों के मूल-भेद से ही टक्कर लेता औ विषय भी थोड़े स्थान में आ जाता । "नेह नानास्ति किंच मृत्योः स मृत्युमाप्नोति उनानेह पश्यति, एकमेवाद्वितीयम्" आदि अनेक श्रुतियों के आशीर्वाद से शंकराचार्य ने कार्य करण संघात से व्याकृत जगत्प्रपंच या नामरूपों के मू में स्थित एक सत्य तत्त्व के अनुसंधान और प्रतिपाद द्वारा संसार का अनंत कल्याण किया है । शंकर समान ज्ञानविज्ञान-सिद्ध निर्भय दार्शनिक संसार में नहीं हुआ । एक अनुभव अभेद अद्वैत की ओर ले जाता है दूसरे की प्रतिज्ञा भेद की सत्यता-प्रतिपत्ति है । भेद तात्पर्य जगत् की वस्तुओं के उपादान कारण के भेद से है सांख्य, जगत् के उपादान कारण से सृष्टि जिस प्रकार मानत है, उसको शंकर ने थोड़े ही में इस प्रकार लिख दिया है—

सांख्यानां त्रयो गुणाः साम्येनावतिष्ठमानाः प्रधानम् । न तु तद्व्यतिरेकेण प्रधानस्य प्रवर्तकं निवर्तकं वा किंचिद्बाह्यमपेक्ष्यमवस्थितमस्ति । पुरुषस्तूदासीनो न प्रवर्तको न निवर्तक इत्यतोऽनपेक्षं प्रधानं......। २।२।४

अर्थात् तीन गुण जब साम्य अवस्था में रहते हैं, वह सांख्यों की प्रधान है । उस प्रधान का प्रवर्तक या निवर्तक कोई बाह्य कारण नहीं है, वह अचेतन होते हुए भी स्वतः सृष्टि-प्रक्रिया में प्रवृत्त हो जाती है । पुरुष (विभु और नाना होते हुए) उदासीन रहता है, न प्रवर्तक है, न निवर्तक । प्रकृति सत्य है, वह स्वयं ही अव्यक्त से व्यक्त हो जाती है । अद्वैत वेदांत इस प्रकार संसार के नाना विनियमों में अचेतन को अधिकारी नहीं मानता । शंकर ने डिंडिमघोष के साथ ब्रह्म को ही अभिन्न निमित्त और उपादान कारणवाला माना है । ब्रह्म का स्वभाव निरुपाधि या निर्गुण रूप (Transcendental) तब तक प्रतीत नहीं हो पाता, जब तक वह उपहित अर्थात् उपाधि संयुक्त होकर नामरूपों में व्याकृत न हो जाय—यही निर्गुण का सगुण (Immanent) होना है । शंकर के शब्दों में यों है—

यदि हि नामरूपे न व्याक्रियेते, तदा अस्यात्मनो निरुपाधिकं रूपं न प्रतिख्यायेत । यदा तु पुनः कार्यकरणात्मना नामरूपे व्याकृते भवतः, तदा अस्य रूपं प्रतिख्यायेत (बृहदारण्यक भाष्य २।५।१९)

विना नामरूप के व्याकृत हुए आत्मा के निरुपाधिक रूप की ख्याति न हो सकती । कार्य और करण (इंद्रियों) के संघात से एक प्राणबीज क्रमशः स्थूल होता हुआ नामरूपों में व्यक्त होता है, तभी उस ईश्वर का रूप ख्यात होता है । स्थावर से लेकर प्राणस्पंदन-पर्यन्त उत्तरोत्तर विशिष्ट सृष्टि-प्रक्रिया निरर्थक नहीं है, इसके द्वारा उसी विभूतिमत् का स्वभाव प्रकट हो रहा है । इस प्रकार यह जगत्प्रपंच सार्थक है । सृष्टि से प्रलय तक का स्पंदन किसी निष्ठुर जड़ स्वभाव का व्यर्थ अट्टहास नहीं, बरन् सर्वप्राणभृत्-क्रियात्मक सूत्र-संज्ञक अंतर्यामी ब्रह्म का स्वभाव-प्रवर्तन है । प्रश्न है कि मूल में जो चेतन निर्गुण तत्त्व है, वह किस प्रकार विविध मूर्त पदार्थों में व्याकृत हो सकता है । इसका उत्तर वह सृष्टि-क्रम है जैसा शंकर ने दिया है । यह प्रतीयमान् जगत् मूल-कारण से अन्य नहीं, जैसे कुंडलकटक सुवर्ण से अन्य नहीं । इसके अनन्यत्व की ओर ही ध्यान दिलाना शंकर को वारंवार अभीष्ट है । कुछ लोग दूध और दही के विपरिणाम का उदाहरण लेकर समझते हैं कि ब्रह्म से जगत् भी इसी प्रकार पृथक् हो जाता होगा । इन लोगों के लिये शंकर ने कहा है कि त्रिकाल में भी कारण से कार्य अन्य नहीं हो सकता, वर्षशत में भी दूध रूप कारण से दही अन्य नहीं हो सकता । यथा—

तस्मात्क्षीरादीन्येव द्रव्याणि दध्यादिभावेनावतिष्ठमानानि कार्याख्यां लभन्त इति न कारणादन्यत्कार्यं वर्षशतेनापि शक्यं निश्चेतुम् । तथा मूलकारणमेवान्त्यात्कार्यात्तेन तेन कार्याकारेण नटवत्सर्वव्यवहारास्पदत्वं प्रतिपद्यते । २ । १ । १८

अर्थात् क्षीर ही दधिभाव से अवस्थित होकर कार्यरूप में परिणमित कहा जाता है । कारण से अन्य कार्य नहीं हो गया । दही को पृथक् समझने लगना ही नानात्व की ख्याति है । फिर दूध दही एक-एक पदार्थ का नाम लेकर कार्यकारण का अनन्यत्व कहाँ तक दिखा सकते हैं । संक्षेप में गाय, भैंस, घास, दूध, दही, खोया इन सब कार्याकारों के पीछे एक मूल-कारण है । वही नट की तरह नानारूप रखकर सब व्यवहारों में प्रतीत हो रहा है । वह कारण अभिन्न निमित्त-उपादान है ।

यहाँ विपक्षी की आपत्ति यह है कि कुलालादिक की तरह ब्रह्म को निमित्त करण (Efficient cause) मानने में कुछ हानि नहीं, लेकिन जगत् ठहरा सावयव, अचेतन और अशुद्ध, उसका उपादान कारण भी वैसा ही होना चाहिए, क्योंकि कार्यकारण में सरूपता होती है, पर ब्रह्म है निष्कल, निष्क्रिय, शांत, निरवद्य और निरंजन, इसीलिये ब्रह्म के अलावा उपादानकरण कुछ और मानना चाहिए (वेदांत-भाष्य १।४।२३) ।

शंकर ने इस पर कहा है—

एवं प्राप्ते ब्रूमः—प्रकृतिश्चोपादानकारणं च ब्रह्माभ्युपगन्तव्यं निमित्तकारणं च । न केवलं निमित्तकारणमेव । कस्मात् । प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् ।

अर्थात् प्रकृति या उपादानकारण भी ब्रह्म ही है, निमित्तकारण भी वही है । केवल निमित्तकारण ब्रह्म नहीं है; क्योंकि जो प्रतिज्ञा और दृष्टांत ऋषियों की श्रुतियों में मिलते हैं, उनसे ऐसा ही निष्कर्ष निकलता है । हमने यह बात वैशाख के लेख में स्पष्ट कर दी थी कि शंकर ने श्रुति और आगम प्रमाणों को सब तर्कों से अधिक

श्रद्धास्पद माना है; औपनिषदिक ज्ञान स्वानुभूतिकोटि का है, इसलिये एक स्वानुभवी महात्मा के लिये ऐसा करना स्वाभाविक भी था। परंतु जिनको श्रुतिप्रमाण के अतिरिक्त इस विषय पर स्वतंत्र विचार करना हो, उनके लिये भी शंकर ने विमर्शसामग्री प्रस्तुत की है।

निमित्त कारण किसी वस्तु की सृष्टि के लिये ही आवश्यक होता है, जैसे कुंडल बनाने के बाद सुवर्णकार के लोप हो जाने से कुंडल की स्थिति निर्बाध रहती है। उपादानकारण अपने स्वरूप से वस्तु में चला जाता है; जैसे सुवर्णकटक और कुंडल में। उपादानकारण के विना सृष्टि स्थिति और लय कुछ नहीं हो सकता।

यद्धि यस्मात्प्रभवति यस्मिंश्च प्रलीयते तत्तस्योपादानं प्रसिद्धम् (२।१।२५)

जिसका प्रभव और लय जिसमें होता है, वही उसका उपादान कहलाता है। अब जगत्रूप कार्य की सृष्टि ब्रह्म से होती है, यह निर्विवाद है, उसका लय भी अंत में उसी में हो जाता है, स्थितिकाल में भी ब्रह्म के विना जगत् की सत्ता बाधित हो जाती है, एक क्षण के लिये भी विना चेतन के इसकी स्थिति संभव नहीं—इससे ब्रह्म ही इसका कारण है। इसीलिये शंकर ने एक ब्रह्म को निमित्त और उपादान दोनों ही कारण कहा है। फिर विपक्षी के पास इसके लिये कौन-सा पुष्ट प्रमाण है कि चेतन आत्मा विकारात्मक परिणाम कर ही नहीं सकता। कर्तृत्व और कर्मत्व एक ही वस्तु में हो नहीं सकते, यह अटल नियम नहीं है। ऊर्णनाभि बाह्य साधन की अपेक्षा न करके स्वयं ही जाले का सृजन और ग्रास करने में स्वतंत्र है। आस्तिक भाव से शंकर ने देवादिक को भी इसी कोटि का स्वप्रभाव से कर्तृत्व-कर्मत्वयुक्त मानकर ब्रह्म के साथ उदाहरण-सादृश्य दिखाया है। ब्रह्म के मन के रेत से प्राण-स्पंदन, फिर प्राणांश के संहत होने से बाह्य आधार या घनवस्तुएँ यही सृष्टि क्रम है। शंकर ने इसी प्रकरण में आगे कहा है—

पूर्वसिद्धोऽपि हि सन्नात्मा विशेषेण विकारात्मना परिणमयामासात्मानमिति। विकारात्मना च परिणामो मृदाद्यासु प्रकृतिषूपलब्धः ।१।४।२६।

अर्थात् आत्मा या ब्रह्म प्रकृति है; क्योंकि वह स्वयं किसी का विकार नहीं। वह कार्य की उत्पत्ति से प्राक्-सिद्ध है, तो भी वह विकृतिरूप में अपना विशेष विपरिणाम कर सकती है। मिट्टी जैसे प्रकृति होती हुई कपाल आदि विकारों को जन्म देती है (घट की दृ मिट्टी उसकी प्रकृति है, पर और जल आदि की दृ मिट्टी भी विकृति हो सकती है, परब्रह्म स्वयं प्रकृति ही है) ऐसे ही ब्रह्म भी मूल-प्रकृति है, जो ना की ख्याति के पीछे छिपी है।

इस जगत् प्रपंच के पाप-पुण्य से ब्रह्म अणुमात्र लिप्त नहीं होता; क्योंकि कारण में कार्य के का कोई दोष संक्रांत नहीं हो सकता। यहाँ प्रश्न सकता है कि जन्ममरणजरारोगादि अनेक अनर्थ-- मय जगत् को रचा ही क्यों; यदि रचा ही गया, तो को प्रसन्न करनेवाली हितमयी सृष्टि ही क्यों न बना गई—इत्यादि बातों का उत्तर शंकराचार्य ने विस्तार प्रयोजनाधिकरण और इतरव्यपदेशाधिकरण में है। जगत् अनादि है, उसमें बीजांकुर-न्याय से और लय चल रहे हैं। यह प्राण-स्पंदन अनंत है। सृष्टि से पहले था यह बात केवल दार्शनिक अर्थ में ठीक (Logical sense only) है, अन्यथा जगत् नहीं था, ऐसे समय की कल्पना भी नहीं हो सक जीवों के नित्य स्वभाव के अनुरूप सुख-दुःख होते ब्रह्म में विषमता नहीं है। इसमें प्रत्येक बात के ख्यान के लिये यहाँ स्थान नहीं है। इसका विचार की रीति से पृथक् लेख का विषय है। फिर भी पा को एक बात स्मरण रखनी चाहिए। वह यह कि जगत् को शंकराचार्य ने जहाँ एक ओर माया की उप युक्त चेतन ब्रह्म का विवर्त माना है, वहीं साथ-साथ आत्मा का परिणाम भी कहा है। कुछ लोग परि शब्द से सांख्य की प्रधान से उत्क्रांत होनेवाली का ही ग्रहण करते हैं। उन्हें विवर्त शब्द कुछ करता है। वेदांत में परिणाम और विवर्त दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है। शंकर ने कितने पर परिणाम शब्द का प्रयोग किया है—

परिणामतेऽनपेक्ष्य बाह्यं साधनं—परिपूर्णशक्तिकं २।१।२४ कथं पुनः पूर्वसिद्धस्य सतः कर्तृत्वेन व्यवस्थि क्रियमाणत्वं शक्यं संपादयितुम्? परिणामादिति ब्रूमः १।

अर्थात् जिस आत्मा में कर्तृत्व (निमित्तकारणयोग था, उसी में कर्मत्व (उपादानकारणयोग्यत्व) आ गया? उत्तर है—परिणाम से।

यहाँ निमित्त और उपादान या विवर्त और परिणाम में विरोध नहीं है। जगत् को चेतन की दृष्टि से विवर्त कहा जाता है, और माया, प्रकृति या शक्ति की दृष्टि से विपरिणामी। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि माया-उपहित चेतन में विवर्त-उपादानता है और केवल माया में परिणामी उपादानता है। शंकर को समझने के लिये जिस उदारबुद्धि की आवश्यकता है (या डाक्टर जाली के मतानुसार Freedom from wrongly interpreting its technical terms) उससे विचार करके देखें, तो पता चलता है कि ब्रह्म और जगत् के अनन्यत्व का संतत प्रतिपादन करते हुए भी उन्होंने व्यवहार-पक्ष में कार्य-प्रपंच का प्रत्याख्यान नहीं किया है। इसका विवरण आगे करेंगे।

वेदांत का इतना स्पष्टीकरण जान लेने पर यदि हम उपाध्यायजी के खंडन को देखते हैं, तो पता चलता है कि पंडितजी ने शंकर के मूल-अभिप्राय (अर्थात् परमार्थपक्ष में कार्यकारण-अनन्यत्व) को बार-बार भुला दिया है। वेदांत में जगत् को मिथ्या कहा गया, उसका तात्पर्य यह कि ब्रह्म का रूपांतर जगत् है। जगत् बदलनेवाला है अर्थात् ब्रह्म जगत्‌रूप में भासित होता है और जगत् भी फिर बदलकर अपने पूर्वकारण में आ सकता है। यदि सांख्य भी बदलने का यह अर्थ ले ले, तो क्या विरोध हो? परंतु अन्य दर्शन यह नहीं मानते कि जगत् भी कारणरूप में बदलकर अपने पूर्वरूप ब्रह्म को प्राप्त हो सकता है। अँगूठी, कड़े आदि सब बदलनेवाले हैं। पर जिसकी अपेक्षा से ऐसा कहा जाता है, वह चीज़ सुवर्ण है। अँगूठी कड़े की अपेक्षा से कुंडल में नहीं बदलती, बल्कि सुवर्ण की अपेक्षा से बदलती है। इसलिये कटक-कुंडल अँगूठी ये वाणी के विकार हुए, इन्हें केवल नाम का आलंबन है, वस्तुतः स्थिति नहीं। ऐसे ही वेदांत जब जगत् को बदलनेवाला कहता है, तब उसका अर्थ विचारणीय है। जगत् सृष्टि से लेकर प्रलय तक अनेक रूप धरता है; पर उनकी सत्ता अव्यभिचारी नहीं है, केवल नाम-मात्र है। यह बदलना जिसकी सापेक्षता से कहा जाता है, वही चीज़ महत्त्व की है। वह मूल-कारण ब्रह्म है। सांख्य आदि जिनका नाम उपाध्यायजी गिनाते हैं, इसी अर्थ में बदलनेवाला नहीं मानते, वहाँ सापेक्षता प्रधान की ही है। इसी से वेदांतकृत मिथ्या अर्थ से उनका विरोध होता है। अशिक्षित मनुष्य जब 'संसार को बदलनेवाला मानता है', तब उसका ध्यान वेदांत की तरह ब्रह्म-प्रकृति के विकारात्मक परिणाम की ओर नहीं रहता। उपाध्यायजी जिस अशिक्षित मनुष्य का नाम लेते हैं, वह कारण के धर्मों से अलग ही कुछ स्वतंत्र धर्म 'बदली हुई चीज़' में मान लेता है, पर वेदांत का सिद्धान्त तो इससे ठीक दूसरा है—

अपीतिरेव हि न संभवेद्यदिकारणे कार्यं स्वधर्मेणैवावतिष्ठेत। अनन्यत्वेऽपि कार्यकारणयोः कार्यस्य कारणात्मत्वं न तु कारणस्य कार्यात्मत्वम्। २।१।९

न हि विशेषदर्शनमात्रेण वस्त्वन्यं भवति स एवेति प्रत्यभिज्ञानात्। २।१।१८

जब कारण भविष्यद्रूप में कार्य बदलता है, तो कारण की सत्ता कार्य में रहती है, इसीलिये फिर पूर्वरूप होते समय कार्य की कोई हस्ती नहीं रह जाती; क्योंकि वह कारणात्मक था। कारण कार्यात्मक कभी नहीं होता, अर्थात् कार्य की आत्मा कारण में नहीं जाती, बल्कि कारण की आत्मा कार्य में। जब हमने कहा कि जगत् बदल गया, तब कारणात्मक कार्य का तात्पर्य है। ब्रह्म ज्ञान या विद्या है। तदितर अज्ञान या अविद्या हुई। यही प्राणबीज है। जगत् अविद्या (न+विद्या), या अज्ञान (न+ज्ञान) जब कहा गया, तब वह अपने मूलकारण से मिथ्या हो गया (बदल गया), परंतु अपनी दृष्टि से यद्यपि उसका अस्तित्व नहीं है, तथापि शून्य भी नहीं है। इसलिये वेदांत का मिथ्यात्व शून्यवाद से बिलकुल भिन्न है। इस दृष्टि से जगत् में शून्य नहीं, माया उपहित चेतन ब्रह्म ही है। रज्जु में सर्प का भ्रम होता है, परंतु सर्प को भ्रम के समय रज्जु का आलंबन है। वैसे ही मरीचि जल को ऊपर प्रदेश का आलंबन रहता है। इसीलिये नितांत असत् नहीं कहा जा सकता। आकाश-कुसुम और शश-विषाण की तरह मृगतृष्णिका का जल आरंभण-शून्य नहीं है। इस प्रकार की ख्याति (प्रतीति) का नाम वेदांत की परिभाषा में अनिर्वचनीय अर्थात् सत् और असत् दोनों से ही विलक्षण ख्याति है। शून्यवादी असत्य ख्याति कहते हैं अर्थात् अभाव से भाव हो जाता है (Unreal Ishwara or empty individual-self)। क्षणिक विज्ञानवादी आत्मख्याति मानते हैं अर्थात् रज्जु में तथा अन्य भी किसी देश में सर्प का नितांत अभाव है, केवल बुद्धि ही

सब पदार्थों के आकार को धारण करती है (Objects are all mental ideas only)। न्याय और वैशेषिक मत में अन्यथा ख्याति है अर्थात् बाँबी में सच्चा सर्प दिखता है, उसी के बल से रज्जु अन्यथा सर्पवत् प्रतीत होती है, यद्यपि रज्जु में सच्चा सर्प नहीं है। सांख्य मत में अख्याति है अर्थात् रज्जु का सामान्य ज्ञान होता है, उसके विशेष का ज्ञान नहीं होता। वेदांत ने विस्तारपूर्वक इन सबका खंडन करके अनिर्वचनीय प्रतीति मानी है। अर्थात् यदि अविद्या का कार्य सर्प सत् होता, तो रज्जु के ज्ञान से उसका बाध न हो सकता, इसलिये सत् नहीं। और जो असत् होता, तो बंध्यापुत्र की तरह प्रतीति ही न होती; और प्रतीति होती है, इसलिये असत् भी नहीं। किंतु सत् असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय है। इसलिये जगत् को उपनिषदों में सत्-असत् दोनों ही कहा गया है। जगत् को बदलनेवाला कहता हुआ वेदांती वैलक्षण्य पर दृष्टि रखता है। अर्थात् ब्रह्म चेतन, जगत् अचेतन—इनकी विलक्षणता बदलने का लक्ष्य है।

ब्रह्म उपकारी और जगत् उपकार्य है। इस भाव की निष्पत्ति ही बदलना है। दोनों में अत्यंत सारूप्य (Absolute equality) मानें, तो वस्तु एक हो जाय, कार्यकारण भाव ही प्रलीन हो जाय। इसलिये कार्यकारण भाव का अस्तित्व स्वीकार करना पहली बात है। यह व्यवहार पक्ष है, यही बदलना है। फिर उस कार्यकारण का अनन्यत्व जानना परमार्थ पक्ष है, और उसी से जगत् मिथ्या है।

पारिभाषिक शब्दों तथा दर्शन के अगम्य सिद्धांतों, यहाँ तक कि वाणी से अगम्य स्वयं ब्रह्म को भी लौकिक, संस्कृत या शब्दों में समझाने में न शंकर को आपत्ति है, न हमें और न अन्य किसी धीमान् को हो ही सकती है। परंतु यदि बोलचाल की भाषा के तरल शब्दार्थ में मूल-सिद्धांत का हो आप काया-कल्प कर डालें, तो अवश्य ही कहा जायगा कि आपने अन्याय किया। हमने किसी अशुभ मुहूर्त में 'बोलचाल' न लिखकर केवल एक बार 'बाज़ारू' शब्द लिख दिया था। उसके पुरस्कार में उपाध्यायजी ने एक सौ एक बार बाज़ारू की आवृत्ति करके उसका मानों रूप ही खड़ा कर दिया है। महात्मा तिलक या अन्य वेदांती पर्याय देकर ही—तर्क से नहीं—अपने विरोधियों का मुँह बंद कर सके हैं या उपाध्याय के अनुसार उन्होंने पीछा छुड़ाया है, यह बात कौन मा सकता है ? इसके अनुसार तो शंकराचार्य भी पर्याय दे देकर ही अपने विरोधियों को घुमाते रहे। पर्यायों पटल में झंपित आक्षेप-सूर्य को पुनः प्रकाशित करने श्रेय तो अद्वैतवाद के लेखक को ही है। संस्कृत से भा बनाने में पर्याय तो देने ही पड़ेंगे। यदि पर्याय दें, पंडितजी कहते हैं कि पर्याय की सफ़ाई है; यदि विस्तार समझावें, तो कहें कि केवल विस्तार से समझा दि गया है। वेदांत जब रज्जु में सर्प का उदाहरण देता तब सर्प का भ्रम न तो प्रमाण (आँख) के दोष है, न प्रमेय (रज्जु) के दोष से, न प्रमाता के दो स्वार्थ, असावधानी आदि दोष से है। बल्कि एक चौथ दोष मंद प्रकाश या तिमिर से ऐसा होता है। यही स्व जगत् के मिथ्यात्व अर्थात् नानात्व की प्रतीति में अवि का है। उपाध्यायजी बदलने का साधारण बुद्धिवा अर्थ देकर फिर वेदांत से झगड़ते हैं कि तुम इस अर्थ अनुसार अपने सिद्धांत को मंडित नहीं कर सकते। आ मेज़ का उदाहरण देते हुए लिखा है—"मेरे सम मेज़ है। यह चौकोर है, इसकी सतह हिलती नहीं, अपनी आँख को कुछ-कुछ मिचमिचाता हूँ, तो मेज़ ब हुई मालूम होती है, परंतु मैं यह नहीं कहता कि बदल गई; क्योंकि तबदीली मुझमें हुई है, मेज़ में नहीं। यदि उपाध्यायजी जन्म-भर बिना रुके आँखें मिचमि ही चले जायँ और यह भी भूल जायँ कि बिना मिचमि हुई भी आँखें होती हैं, तब तो वह अपने में प्रमातृत्व मानकर यह कहेंगे या नहीं कि मेज़ दरअस्ल बदली मालूम होती है। जिस समय आँखों में कुछ विकार उत्पन्न करके आप मेज़ को बदलकर देखते हैं, उस स आपको कहना ही पड़ेगा कि मेज़ बदल गई। और आप यह भी भूल जायँ कि यह विकार (मिचमिचा आपका ही उत्पन्न किया हुआ है और थोड़ी देर के लि ही है, तब तो सचमुच मेज़ को आप अन्यथा ही सम लगेंगे। आपके उदाहरण से वेदांत का विरोध वास्तव तो है नहीं, परंतु आप दो अवस्थाओं की मिलाव ऐसा कर देते हैं। आपका मेज़ को बदली हुई न झना आँख मिचमिचाने के बाद का ज्ञान है, और आप नेत्रविकृति के समय भी मेज़ के बदलने के अ

नहीं पड़े, तो इसका कारण नेत्रविकार के कारण मेज़ का न बदलना नहीं है, बरन् आपको अपने शरीर का जैसा ज्ञान है. उस ज्ञान में अच्छी आँख के बजाय सचमुच मिचमिचाती हुई आँख के ज्ञान न होना ही कारण है। इसी तरह वेदांत में जगत् भी अन्य नहीं होता, केवल कूटस्थ चिदाभास जीव का अविद्यारव्य अध्यास है। ज्ञानी उसके पारमार्थिक रूप को जान लेता है, व्यवहार-पक्ष में मेज़ की स्थिति मानकर वह भी उस पर लिखने बैठता ही है। हाँ, उसके परमार्थ-ज्ञान का उसकी 'भाषा' अर्थात् लोकस्थिति को संस्कृत करने के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

नेत्रों में विकार उत्पन्न करके उपाध्यायजी ने एक नए संसार की सृष्टि की, वहाँ मेज़ आदि सब पदार्थ भी वैसे ही बदल गए। अब बढ़ई जिस मेज़ को चीड़-फाड़ डालता है, उसका उदाहरण लेते हैं। इसमें भी वेदांत से विरोध नहीं। परंतु जब बौद्धों के समान जाग्रत् और स्वप्न की अवस्थाओं को (आपके पक्ष में विकृत नेत्र की मेज़ और दोषशून्य मेज़ के संसारों को) मिलाकर तर्क करते हैं, तभी हेत्वाभास रच जाता है। पहले लेखों में भी उपाध्यायजी ने यही भूल की थी और हमने इसका सविस्तर समाधान और स्पष्ट विवेचन वैशाख के लेख में (मा० पृ० ४८८) जाग्रत् और स्वप्न के हाथी के उदाहरण में कर दिया है। शारीरक भाष्य में इसका स्पष्टीकरण जो देखना चाहें, वे २।२।२९ सूत्र को देखें। वहाँ शंकर ने ज़ोर देकर कहा है कि स्वप्न के अनुभव को हेतु बनाकर जाग्रत् की उपलब्धि का अपलाप हम सहन नहीं कर सकते। और स्वप्न-जागरित का वैधर्म्य भी भली भाँति दिखाया है (दर्शितं तु वैधर्म्यं स्वप्नजागरितयोः)। नेत्रों में विकार उत्पन्न करके (जो आपकी स्वप्नावस्थारूप है) मेज़ का बदलना तथा नेत्रों को विकारशून्य करके (जो जाग्रत्-अवस्थारूप है) मेज़ का अपने हाथ से या बढ़ई के हाथ से बदलना—इन दोनों में कुछ अंतर नहीं, यदि आप बदलना रूप ज्ञान के प्रमाता (Knowing Agent) भी उसी-उसी अवस्था के लें। मेज़ के मूल में लकड़ी थी; चीरने के बाद भी लकड़ी ही है। लकड़ी की अपेक्षा से मेज़-रूप रचना-विशेष और चिरी हुई लकड़ी दोनों ही अवस्थांतर-मात्र हैं। मेज़ और ईंधन ये दो शब्द-मात्र या नाम हैं, जो लकड़ी के विकार से उत्पन्न हुए हैं। लकड़ी सत्य और वाचारम्भण नामधेय मिथ्या हैं। विकृति मेज़ और ईंधन की प्रकृति लकड़ी है, परंतु लकड़ी अंतिम प्रकृति नहीं, वह स्वयं किसी की अपेक्षा से विकृति है। वेदांत तथा अन्य दर्शनों की खोज मूल-प्रकृति की ओर है। वेदांत उसे चेतन ब्रह्म कहता है जिसके विवर्त से ये नामरूप ऐसे ही भासित होते हैं, जैसे सागर में वीचि, बुद्बुद् आदि। जो लोग अचेतन को ही मूल-प्रकृति कहकर रुक जाते हैं, उनसे प्रश्न है कि क्या वह किसी की विकृति नहीं, क्या उसमें स्वयं व्याकृत होने की सामर्थ्य है, क्या चेतन ब्रह्म उस पर कुछ प्रभाव डाल सकता है, अचेतन और चेतन की सहस्थिति में उनका संबंध क्या हो सकता है, ब्रह्मस्वभाव के किसी धर्म का कार्य में आना आपको स्वीकृत है या अशेष धर्मों की विलक्षणता अभिप्रेत है अथवा केवल चैतन्य का ही प्रधान में निराकरण है? सांख्यों का असंग अकर्तापुरुष जो नाना है, चेतन की आवश्यकता को बिलकुल नहीं सुलझा पाता। पर वेदांत निमित्त और उपादान दोनों कारणों की अभिन्नता ब्रह्म में दिखाकर लोक व्यवहार में प्रपंच को सत्य मानता है। शंकर ने ही इसे कितनी बार कहा है—

न चास्य प्रसिद्धस्य भोक्तृभोग्यलक्षणविभागस्य बाधनं युक्तम् ।२।१।१३।

अर्थात् व्यवहार-प्रसिद्ध भोक्ता और भोग्य (विषयी और विषय, ब्रह्म और जगत्) का विभाग (प्रकृति और विकृति रूप वैलक्षण्य) इसका बाधन संभव नहीं। उपाध्यायजी लिखते हैं—"वस्तुतः विवर्त का अर्थ ही यह है कि वस्तु हो न, परंतु दृष्टि पड़े।"

इसके लिये संस्कृत का लक्षण भी दिया है—अतात्त्विकोऽन्यथाभावः विवर्त इति उदीरितः। ठीक है। परंतु आपने इसे वेदांत की दृष्टि से समझाने की कोशिश क्यों नहीं की। वस्तु हो न, परंतु दृष्टि पड़े—तो क्या वेदांत अभाव से भाव मानता है? यह तो शून्यवाद हो गया, जिसका शंकर ने खूब खंडन किया है। वस्तु तो ब्रह्म है ही, वही, जगत्रूप में देख पड़ रहा है। शून्यवादियों के तर्क निराश्रित होने के कारण वितंडारूप से लोगों को केवल भ्रम में डालनेवाले हैं—

अभावाद्भावोत्पत्तिं कल्पयद्भिरभ्युपगतमपह्नुवानैर्वैनाशिकैः सर्वो लोक आकुलीक्रियते ।२।२।२६।

इसलिये वेदांत की रीति से विवर्त का स्पष्टीकरण आवश्यक है। उपादान के समान सत्तावाला और अन्यथा-स्वरूप परिणाम कहलाता है। जैसे अपने उपादान दुग्ध के समान सत्तावाला कहिए व्यावहारिक सत्तावाला दधि-मिष्ठ दुग्ध से अन्यथा कहिए अम्ल है, इससे दुग्ध का परिणास है वैसे ही उक्त प्रपंच भी अविद्या के समान व्यावहारिक सत्तावाला और अरूप अविद्या से अन्यथा अर्थात् रूपवाला होने के कारण अन्यथा-स्वरूप भी है, इसी से अविद्या का परिणाम कहाता है। अब विवर्त देखिए—अधिष्ठान से विषमसत्तावाला अन्यथा-स्वरूप विवर्त कहाता है। जैसे व्यावहारिक और पारमार्थिक सत्तायुक्त रज्जु में केवल व्यावहारिक सत्तावाली सर्प-उपाधि है, वही परमार्थ दशा में बाधित हो जाती है, पर रज्जु बाधित नहीं होती, इससे रज्जु का विवर्त है। वैसे ही माया-उपहित (Super-imposed) चेतन में केवल व्यावहारिक सत्तायुक्त और उस दशा में अबाधित प्रपंच चेतन से बाधित होने के कारण उससे अन्यथास्वरूप भी है। यही चेतन का विवर्त है। अधिष्ठान जो ब्रह्म है उससे विषम सत्ता जगत् की है, इससे अतात्विक है और ब्रह्म से अन्यथा भाव (विशेष वैलक्षण्य) भी है अर्थात् अन्यथा-स्वरूप है। दोनों लक्षणों में शब्दों के भेद से बात बिलकुल एक है। तिलक ने जो लक्षण विवर्त का दिया है, उससे उनके दिए हुए दृष्टांत में बिलकुल विरोध नहीं है। "उस नाम-रूप से ढका हुआ और उसी के मूल में सदैव एक-सा ही स्थित रहनेवाला अमृत वस्तु-तत्व ही—वह आँखों से भले ही न देख पड़े—ठीक-ठीक सत्य है।" (गीता-रहस्य)।

उपाध्यायजी मेरे अस्तित्व-विहीन और लोकमान्य के 'मिथ्या उसको नहीं कहते, जो अस्तित्व में है ही नहीं' शब्दों को लेकर परस्पर विरोध दिखाते हैं। यदि यह वास्तव में विरोध होता, तो बड़ी आसानी से उपाध्यायजी शंकर के ही दोनों प्रकार के शब्दों को उद्धृत कर स्वयं वेदांत के आचार्य में भी स्व-व्याघात दोष दिखा सकते थे। 'अस्तित्व में है ही नहीं' यह कहने से शश-विषाण की तरह शून्यवाद का पक्षपाती वेदांत नहीं है, इसलिये मिथ्या उसको नहीं कहते, जो अस्तित्व में है ही नहीं, यह वाक्य ठीक ही है। यह उत्तर असत् ख्याति के लिये है। अब हम चेतन को बराबर अधिष्ठान कहते हैं, तो अस्तित्व में है नहीं, यह कैसे मान लें। सत्ता तो (सच्चिदानंद लक्षण) में और जड़ प्रकृति में भी यही कारण और कार्य का समान धर्मत्व है। ब्रह्मणो तर्हि सत्ता लक्षणः स्वभाव आकाशादिष्वनुवर्तमानो दृ ।२।१।६। अर्थात् ब्रह्म का सत्ता लक्षण स्वभाव आकाशा में आता हुआ देखा जाता है। पुनः परमार्थ पक्ष में को अस्तित्वविहीन इसलिये कहा जाता है, क्योंकि ज्ञान से उसकी सत्ता का बाध होता है। उपादान निमित्तकारण दोनों ही जब ब्रह्म में अभिन्न हैं, तब णामी प्रपंच भी अपने अधिष्ठान के बिना सत्य है। जैसे—

यथा घटकरकाद्याकाशानां महाकाशानन्यत्वं, यथा च तृष्णिकादीनामूषरादिभ्योऽनन्यत्वं दृष्टनष्टस्वरूपत्वात्, स्व नुपाख्यातत्वात्, एवमस्य भोग्यभोक्त्रादिप्रपञ्चजातस्य ब्रह्म रेकेणाभाव इति द्रष्टव्यम्। इदं शास्त्रीयं ब्रह्मात्मत्वमवग स्वाभाविकस्य शारीरात्मकत्वस्य बाधकं सम्पद्यते, रज्ज्वादि इव सर्पादिबुद्धीनाम्। बाधिते च शारीरात्मत्वे तदाश्रयः स स्वाभाविको व्यवहारो बाधितो भवति ।२।१।१४।

अर्थात् घटाकाश महाकाश से जैसे अन्य नहीं, से मृगजल जैसे अन्य नहीं है, क्योंकि उसी में दृ नष्ट होता है और मृगजलादि के अपने रूप की कुछ नहीं, ऐसे ही भोक्ताभोग्य लक्षण, इस प्रपंच का भी के बिना अभाव ही है। जब शास्त्रीय ब्रह्मात्मक ज्ञान हो जाता है, तब जो जगत् शरीरात्मक ज्ञान है, उसका बाध अर्थात् नानात्व भ्रम अपास्त ज्ञा जाता है। इस प्रकार जो विरोध उपाध्यायजी को पड़ा, वह शंकर में भी है, पर वह वस्तुतः विरोध क्योंकि एक ही वस्तु में पिता की दृष्टि से पुत्रत्व पितामह की दृष्टि से पौत्रत्व धर्म रह सकते हैं। ध्यायजी कहते हैं कि सीप में चाँदी आदि का अस्तित्वयुक्त और नाशवान् इन दोनों धर्मों के लिये, मत दीजिए। दृष्टांत तो लोक में से लेने ही पड़ेंगे, उनका सामंजस्य बताना दृष्टांतदाता का कर्तव्य है। से स्वतंत्र सीप की चाँदी नहीं है, चाँदी के बिना निर्बाध रहती है। पर सीप का अस्तित्व जब ए अखंडनीय मान लिया, तब उसकी चाँदी का भी आलंबन से यदा-कदा भान हो ही सकता है (तृष्णिका में जल का सर्वदा भास रहता है)।

उपाध्यायजी कहते हैं—"परंतु बाज़ारवालों के भावों की मीमांसा की जाय, तो इससे भी कुछ और ही नतीजा निकलता है। वस्तुतः किसी मनुष्य को झूठा इसलिये नहीं कहते कि वह कभी कुछ कहता है और कभी कुछ। उसको झूठा इसलिये कहते हैं कि वह घटना के विरुद्ध बोलता है इत्यादि।" घटना के विरुद्ध तथा 'कभी कुछ और कभी कुछ' कहने में बिलकुल भेद नहीं है। पहले कभी कुछ शब्द के मानें एक बात दूसरे कभी कुछ के मानें दूसरी बात है। इस प्रकार दो बातें यदि एक ही घटना के विषय में कही जायँगी, तो निश्चय ही घटना के विरुद्ध बोलना हो जायगा। इस संबंध में दिए हुए हाथी के उदाहरण में वही पुरानी भ्रांति है। आपने कई घटनाएँ ले लीं और कभी कुछ कभी कुछ के विरोध को मिटा दिया। यदि आप एक ही घटना को लें, तब ठीक उदाहरण ऐसे होगा—हाथी आया, यह सत्य है। फिर उसी आदमी ने कहा—नहीं, हाथी नहीं आया। अब घटना के विरुद्ध भी हो गया तथा कभी कुछ और कभी कुछ भी हो गया। इसी तरह हाथी बैठा, नहीं भी बैठा; चला गया, नहीं गया आदि में विरुद्ध भाषण करनेवाले को झूठा अवश्य कहा जायगा। यदि एक काल की क्रिया को ही आप यों कहें—हाथी बैठा, उसी क्रिया को कहें हाथी उठा, तो भी झूठ ही है। एक क्षण में उठा, दूसरे क्षण बैठा, इस प्रकार के वाक्य को संसार में कोई झूठा नहीं कहेगा।

"यदि मैं या श्रीअग्रवालजी या अन्य कोई पुरुष दिन-भर एक ही बात कहा करे और 'कभी कुछ और कभी कुछ' न कहे, तो लोग क्या कहेंगे?" इसका उत्तर यह है कि यदि घटना एक है, तो उसके विषय में दिन-भर क्या, दो-चार वर्ष भी जब कभी आपसे प्रश्न किया जायगा, आपको एक ही बात कहनी पड़ेगी। भिन्न-भिन्न घटनाओं के विषय में प्रश्न होने पर यदि आप भिन्न-भिन्न बातें न कहेंगे और एक ही जवाब देंगे, तो लोग कहेंगे कि इन्हें ताज का नगर दिखाना चाहिए। उपाध्यायजी विद्यासंपन्न हैं, इस प्रकार के मिश्रित दृष्टांत देते समय थोड़ा भी विचार करने से उन्हें स्वयं सब स्पष्ट हो जाता।

शंकराचार्य का पक्ष ब्रह्मकारणवाद है। वह बार-बार सर्वात्मभाव की ओर ले जाते हैं। नामरूप में अनंत भेदों की ओर जाना है। ये भेद नाम के अतिरिक्त और कुछ हस्ती नहीं रखते। वाचारम्भणं विकारो नामधेयं, मृत्तिकेत्येव सत्यम्। मिथ्या शब्द को लेकर जो कल्पनाएँ की थीं, वे ही दृश्यमात्र के लिये भी हैं। "हम कब कहते हैं कि दृश्यमान् जगत् अविनाशी है?" विज्ञवर, आप जगत् की मेज़-कुर्सी को चाहे पृथक्-पृथक् अविनाशी न कहें, परंतु उनके एक मूल कारण प्रधान को तो अविनाशी कहते हैं, उसका लय आप नहीं मानते, उसकी स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करते हैं। यही आपके और वेदांत के अविनाशी के अर्थ में भेद है। वेदांत उस प्रकृति को भी ब्रह्म की विकृति मानता है। आप दृश्यमान् का दिखाई पड़नेवाला अर्थ लेकर केवल मिट्टी, बर्तन आदि स्थूल पदार्थों की ओर ही लक्ष्य रखते हैं। वेदांत नामरूपात्मक कहकर स्थावर से आकाश और प्राणबीजपर्यंत मूर्त-अमूर्त सब पदार्थों को ले लेता है। आपने कहा—"जो दिखाई पड़ता है, वही तो रूपात्मक है।" यह तो ठीक है। परंतु केवल इतना ही अर्थ लेने से वायु और आकाश का सन्निवेश नामरूपात्मक में आप कैसे कर लेंगे? इसीलिये हमने नामरूपात्मक में सब पदार्थों का सन्निवेश करने की दृष्टि से उस पारिभाषिक शब्द का बोलचाल के दिखाई पड़नेवाले शब्द की अपेक्षा से समर्थन किया था। शब्दों के लिये विवाद करने से सिद्धांत हानि निर्बाध बनी रहती है। दिखाई पड़नेवाले में नामरूपात्मक सब पदार्थ आ जायँ, तो दृश्यमान् के लिये उसे ही रखिए, हम सहमत हैं। दृश्यमान् से केवल स्थूल पदार्थों का ग्रहण बालबुद्धि है, नामरूपवाले सब पदार्थों (All objects having for theirself name and form) का ग्रहण दर्शन सम्मत है। प्रसंगानुकूल वेदांत में स्थूल पदार्थों के लिये भी दृश् धातु आई होगी, इसमें क्या हानि है।

हमने अपने पूर्व लेख में वर्तमान विज्ञान की गति का उल्लेख किया था। वह अद्वैत की ओर गति-शील है। सौ से अधिक मूल-तत्त्व (Elements) मानने के दिन गए। अर्थात् इनके नानात्व की परेशानी मिट गई और मूल द्रव्य एक ही है, यह इलैक्ट्रन के ज्ञान से सिद्ध हो गया है। इतना एकत्व मालूम हुआ कि सब पदार्थों का कारण ईथर है, जो प्रचंड शक्तिमय है। अब दूसरी गति एकत्व से अद्वैत की ओर ही हो सकती है। विज्ञान का अगला क़दम उन्नति के मार्ग में और कुछ

हो ही नहीं सकता। मैटर एक है, शक्ति दूसरी है, अभी तक विज्ञान इनके अभेद को प्रयोगगम्य नहीं बना सका। पर खोज का विषय •यही है कि क्या अंत में ये दोनों एक ही हैं। यदि एक सिद्ध हो सकें, तो अद्वैत तो मिल जायगा, पर वह अद्वैत जड़ाद्वैत होगा; क्योंकि ब्रह्म या चेतन का अद्वैत विज्ञान की प्रयोगशाला का विषय नहीं। दार्शनिक उस अद्वैत में सृष्टिकामना आदि प्रक्रियाएँ होने के कारण उसे कामना-समर्थ, इसलिये चेतन कहता है, अनुभव उसके आनंदमय स्वरूप को भी पहचान लेता है। रही प्रयोगशाला टूटने की बात—वेदांत से यदि शंकर ऐसा परिणाम निकालते, तो उनकी लेखनी भी टूट जाती; व्यवहार में सबको सत्य और नाना मानकर वह काम न करते, तो भाष्य-लेखन और पर-पक्ष-निराकरण की क्रियाओं का जन्म ही कहाँ होता। जिसने जन्म लिया है, वह इन अध्यासों से एक क्षण-भर के लिये भी नहीं बच सकता।

कारण से जो हमारा तात्पर्य है, उसे हम कई बार ऊपर लिख चुके हैं—निमित्त और उपादान की अभिन्नता (Non-separateness of Efficient and Material causes) वेदांत को इष्ट है। रस्सी के साँप दिखने का कारण, जैसा आप लिखते हैं, देखनेवाले का भ्रम नहीं है। कहना यों चाहिए कि रस्सी में साँप दिखना ही भ्रम है। उस भ्रम का कारण कुछ और है। वह प्रमाता प्रमाण प्रमेय दोष से इतर मन्द प्रकाश है। इसी प्रकार ब्रह्म पक्ष में वह अविद्या-नामक अध्यास है। यह एक देश में होता है या सर्वदेश में, ब्रह्म सावयव है या निरवयव, अध्यास के अणुमात्र भी दोष ब्रह्म में लिप्त होते हैं या नहीं, ब्रह्म में विषमता और निष्ठुरता है या नहीं—आदि जिन आक्षेपों के पुलिंदे को खोलने की धमकी-मात्र उपाध्यायजी ने दी है, उसी को शारीरक मीमांसा में शंकराचार्य ने स्वयं खोलकर उसका निराकरण भी कर दिया है। पाठक उस पुलिंदे को खुला हुआ देखना चाहें, तो शांकर-भाष्य में देख लें। पर जो सिद्धांत त्रिकाल में भी अपोह्य नहीं है, वह यह है—चेतनमेकमद्वितीयं ब्रह्म क्षीरादिवद्देवादिवच्चानपेक्ष्य बाह्यसाधनं स्वय परिणाममानं जगतः कारणमिति स्थितम्। २।१।२६।

उपाध्यायजी ने हमारे लेख का उद्धरण देते हुए लिखा है कि हमने शब्दों की भूलभुलैया उत्पन्न कर दी है। बार-बार पढ़कर देखने से भी उसका अर्थ हमें अस्पष्ट नहीं मालूम होता, विशेषतः उसके लिये जिसने पूर्व में आई हुई स्वप्न और जाग्रत् की मीमांसा को लिया है। उपाध्यायजी लिखते हैं—"शंकर को कि दृष्टान्त अभीष्ट था, यह तो उनके सिद्धांतों तथा ग्रं स्पष्ट ही है।" पर पाठक इसे शंकर के शब्दों मे सुन लें, तो अच्छा हो—

यदुक्तं बाह्यार्थापलापिना स्वप्नादिप्रत्ययवज्जागरितगोचरा स्तंभादिप्रत्यया विनैव बाह्यार्थेन भवेयुः प्रत्ययत्वाविशेषा तत्प्रतिवक्तव्यम्। अत्रोच्यते—न स्वप्नादिप्रत्ययवज्जाग्र भवितुमर्हन्ति। कस्मात् वैधर्म्यात्। वैधर्म्यं हि भवति स्वप्नजा

अर्थात् बाह्य अर्थों को असत् कहनेवालों की दलील है कि स्वप्न में जिन पदार्थों की प्रतीति होती पदार्थ मिथ्या हैं। जागरित में भी पदार्थों की प्र होती है। प्रतीति दोनों में समान धर्म हुआ, इस जाग्रत् के स्तंभादिक भी स्वप्न के स्तंभ की तरह प की बाह्य स्थिति के बिना ही हैं। इस पर शंकर क कि बात ऐसी नहीं है—स्वप्न और जाग्रत् में भे भेद क्या है, यह उन्होंने आगे बताया है—(१) बाध और (२) स्मृति-उपलब्धि। जब आदमी से जागता है, तब उसके स्वप्न के अनुभव बाधि जाते हैं। लेकिन जागरित दशा के स्तंभादि अवस्था में भी बाधित नहीं होते और फिर पदार्थों की स्मृतिमात्र (Mental states) होती जाग्रत् में उपलब्धि होती है। स्मृति और उपलब्धि अंतर प्रत्यक्ष ही है, अर्थात् पदार्थ का एक में वि और दूसरे में संप्रयोग है। शंकर का अभीष्ट गया। वह स्वप्न की तरह जाग्रत् के पदार्थों को नहीं कहते। पदार्थों की बाह्य स्थिति उन्हें स्वीकृ पर परमार्थ दृष्टि से वह उनके मूल में एक अमृत-त मान रहे हैं; क्योंकि बिना कारण के कार्यों की पृथक् क्षण-भर भी नहीं रह सकती। इस प्रकार अनन्यत और शंकर का लक्ष्य है। नाशवान्, अस्तित्वविहीन और परिणाम इन सब शब्दों के समन्वय का हम ऊपर कर चुके हैं। उपाध्यायजी लिखते हैं—" प्रश्न तो यह है कि जो चीज़ दिखाई पड़े अर्थात् जो रूपात्मक हो, उसको हम विवर्त कैसे कहें?" हमने दृश्य को विवर्त का हेतु अनेक स्थानों पर सिद्ध किया है। को चेतन ब्रह्म की दृष्टि ही से बार-बार विवर्त कहा

आप तरंग को विवर्त कहते हैं । जल की एक आकृति विशेष तरंग रूप में दिखाई पड़ती है, जिसका बाह्य रूप है । परंतु समुद्र से अलग क्षण-भर के लिये भी तरंग नहीं । पर तरंग अपने पक्ष में सत्य है । विवर्त के ऐसे ही अर्थ को ब्रह्म और जगत् पक्ष में भी घटाते हैं । नामरूपात्मक को एक मूल-प्रकृति की अपेक्षा से आप भी विकृति मानते हैं । नामरूप को परिणाम कहने में तो आपको भी बाधा नहीं है । अब यदि उपादान और निमित्त कारणों को अभिन्न सिद्ध कर दिया जाय, तो जिस नामरूप को केवल उपादान की दृष्टि से आप परिणाम मान चुके हैं, उसे ही अभिन्न निमित्तोदादान (या उपहित चेतन) की दृष्टि से विवर्त कहने में कुछ विरोध नहीं पड़ता । यही मूल-प्रश्न है । स्वाश्रयस्व विषय पक्ष को स्वीकार करते हुए शंकराचार्य ने इस अभिन्नता और अनन्यत्व को भली भाँति दिखाया है ।

उपाध्यायजी ने ९९ और एक फ़ी सदी का विभाग करके विचित्र तर्क की प्रतिष्ठा की है । '९९ मनुष्यों को रस्सी, रस्सी दिखती है, एक को साँप; अब किसकी बात मानें ?' प्रथम तो ९९ की ओर जाना ही नियम नहीं है । एक मनुष्य अभय है, ९९ कायर, हम किसका पक्ष लें । उपनिषद् कहता है—अभयं वै जनक प्राप्तोऽसि । स्वानुभव की अवस्था अभय की अवस्था है, उसमें ब्रह्म निष्पन्न स्वयंसिद्ध ज्ञात हो जाता है । तदितर जन ब्रह्मज्ञान से शून्य हैं, अतएव परमार्थ विषय में उनकी बात का प्रमाण नहीं । पर रस्सी में साँप का भ्रम तो सौ में सौ मनुष्यों को अपने जन्म में भी कभी न कभी हुआ ही है । ज्ञानी को ज्ञान हो जाने के बाद भी रस्सी में साँप का भ्रम क्या नहीं होता ? किन्हीं-किन्हीं को यह भ्रम कई बार हो चुका है और होता रहेगा । रस्सी में जो आवरण है, उसका भंग तब होता है, जब हमारे अंतःकरण की वृत्ति रज्जु-आकार से उसकी प्रतीति कर लेती है । एक बार ऐसा कर चुकने के बाद भी मंद प्रकाश तिमिरादि से पुनः भ्रम हो जाता है । व्यवहार-प्रतीति ज्ञानी-अज्ञानी सभी को हो रही है, पर दोनों के व्यवहार-जन्य कर्मों के फल में बड़ा अंतर है । एक नानात्व जड़ वस्तुओं में समूढ़ है, दूसरा नानात्व मोह से मुक्त होकर अद्वैत अमृत में रम रहा है । उपाध्यायजी ने ९९ और एक को अलग-अलग बाँटते हुए प्रथम ही भूल की है । ९९ पुरुष उस समय के ले लिए जब उन्हें सर्प का भ्रम नहीं है और १ पुरुष उस अवस्था का लिया जब उसे भ्रम है । असल बात तो यह है कि भ्रम का समय भी उन सौ मनुष्यों के जीवन में है, और भ्रम से मुक्ति का समय भी सबके लिये है । आपको जो नियम बनाना हो, पूरे शतसंख्यक के अनुभव से ही बनाइए । व्यवहार में सौ फ़ी सदी ज्ञानी-अज्ञानी सभी बाह्य अर्थों की सत्ता की प्रत्यक्ष उपलब्धि कर रहे हैं । परमार्थ में सौ फ़ी सदी का अनुभव (यदि उसे प्राप्त करने की सभी कोशिश कर लें) चेतन ब्रह्म के ही आनंद को सत्य अमृत वस्तु देखेगा । ध्यान रहे कि अनुभव शब्द से उठते-बैठते सोते-जागते हर वक़्त का सब तरह का 'तजुर्बा' नहीं ले लेना है, अनुभव का वेदांतगत अर्थ स्वानुभूति या आत्मज्ञान है । केवल पुस्तक पढ़कर जो ब्रह्मैकत्व या सर्वात्मभाव की बात कहते हैं, उनका अनुभव भी यहाँ अभिप्रेत नहीं है; क्योंकि चित्रलिखित गौ को जिसने देखा है, उसका गौ-विषयक अनुभव प्रमाण नहीं है । इसलिये जो वस्तुतः ज्ञानी है—और आत्मानुभव जगत् में सबको प्राप्त हो सकता है—उन्हीं का अनुभव मानने योग्य है ।

उपाध्यायजी कहते हैं—"जगत् विनाशशील है; क्योंकि इसका आदि और अंत है । परंतु विवर्त वह है, जिसका न आदि हो, न अंत ।" यदि इतने विरोध में आपका विवाद है, तो ज्ञात होना चाहिए कि शंकर ने जगत् को भी अनादि-अनंत कहा है । प्रलय और सृष्टि एक ही सिक्के के दो रूप हैं । वह भी प्रवाह है । प्रलय में यह कौन कह सकता है कि जगत् का अंत हो गया ? अध्यास अनादि-अनंत है, इसके लिये किसी सूत्र का भाष्य उठाने से पहले ही शंकर ने भूमिकारूप में लिखा है—

> एवमयमनादिरनन्तो नैसर्गिकोऽध्यासो मिथ्या प्रत्ययरूपः सर्वलोकप्रत्यक्षः ।

अर्थात् अध्यास का सभी लोगों को प्रत्यक्ष है, वह अनादि और अनंत है । यह आद्य अध्यास नैसर्गिक है, ब्रह्म के स्व-भाव से ही प्रवृत्त हो रहा है । श्वेताश्वर उपनिषद् में इसे ही 'स्वभाविकी ज्ञानबलक्रिया' कहा गया है । यह देवादिदेव की आत्म-शक्ति स्वगुणों से ही निगूढ़ है । परिपूर्णशक्तिकं ह्म, न तस्यान्येन केनचित्पूर्णता संपादयितव्या ।२।१।२४।—अर्थात् ब्रह्म स्वयं परिपूर्ण शक्ति है, कुम्हारादिक की तरह डचक्र आदि

अन्य साधनों से उसकी परिपूर्णता करने की आवश्यकता नहीं।

अब जगत् का अनादित्व सुनिए—

यथा च कारणं ब्रह्म त्रिषु कालेषु सत्वं न व्यभिचरत्येवं **कार्यमपि जगत्** त्रिषु कालेषु सत्वं न व्यभिचरति।२।१।१६।

अर्थात् कारण ब्रह्म तीनों कालों में सत्तायुक्त रहता ही है, वह कारण है। कारणात्मक जो कार्य है, वह भी तीनों कालों में रहता है, चाहे सृष्टि में हो चाहे प्रलय में। शंकर ने गीता-भाष्य(१३।१९)में यहाँ तक कहा है कि यदि जीव और जगत् ये दो ईश्वर की प्रकृति नित्य न हों, तो ईश्वर का नित्य-ईश्वरत्व ही खंडित हो जाय। तस्य नित्यसिद्धस्य ईश्वरस्य सृष्टि-स्थिति-संहृति-विषयं नित्यज्ञानं भवतीति १।१।५। अर्थात्—नित्यसिद्ध ईश्वर का सृष्टि-स्थिति और संहार-विषयक ज्ञान भी नित्य ही रहता है। संसार अनादि है (अनादित्वात् संसारस्य २।१।३५—The creation is described in the Vedanta as not an event in time done once for all—कोकिलेश्वर शास्त्रीकृत अद्वैतफिलासफी,पृ०४)। उत्पत्ति से पूर्व वह कौन-सा विषय है, जो विषयी के ज्ञान में रहता है? इसका उत्तर है—व्याचिकीर्षिते नामरूपे—अर्थात् वे नाम-रूप जिनको उत्पत्ति के समय व्याकृत होना है। पहले और पीछे का प्रश्न केवल दार्शनिक (Logical) है, यह हम पूर्व में बता चुके हैं। अतात्विक और नाशवान् का जो समन्वय ऊपर बताया गया है, वही नाशवान् और कल्पित का है। स्थूल पदार्थों की दृष्टि से व्यवहार में इन दोनों के अर्थों में भेद भी हो सकता है। कपास को दही समझना मृगजल की कोटि का ही भ्रम है। इस प्रकार के भ्रम में शशविषाण या आकाश-कुसुम के भ्रम से विलक्षण प्रतीयमान वस्तु नितान्त असत् नहीं है, क्योंकि आलंबन-सहित है। न नितांत सत है; क्योंकि सत्य ज्ञान से मिथ्या हो जाती है। इसलिये मिथ्या या अनिर्वचनीय प्रतीतिवाली है। आप जिसको कल्पना कहते हैं, वह अभाव से भाव की उत्पत्ति की ओर लक्ष्य करती है, जो शून्यवाद का रूपांतर है। हम भी इसे स्वीकार करते हैं कि वेदांत में कल्पित का यह अर्थ नहीं है। जगत् को अतात्विक कहकर हम आपको शून्य (Void) में नहीं छोड़ते, बल्कि उसके मूल में एक चेतन पदार्थ को भरा हुआ देखते हैं, इसलिये चेतन को कारण मानना 'बच्चोंवाली बात' कैसे हो गई? अविद्या विषय को हमने पूर्व-लेख में पृ० ४८९ से ४८ तक स्पष्टता के लिये विस्तार से समझाया था। उ ध्यायजी की अपील पाठकों से है और हमारी भी आप हमारे इस प्रकरण को कृपया फिर पढ़ लें, प्रसंग का पता चल ही जायगा। उपाध्यायजी लिखे हैं—"विषय का अर्थ यहाँ विस्तार (स्कोप) नहीं है। शंकर ने इसी प्रकरण में कई बार विषय और विषयी शब्दों को प्रयुक्त किया है। विषयी को अँगरेज़ी Subject और विषय को Object कहते हैं। ये सब्जेक्ट आब्जेक्ट हैं कौन? विषयी को शंकर अस्मत् प्रत्यय गोचर चिदात्मा अर्थात् चैतन्य कहा है विषय को युष्मत् प्रत्यय गोचर कहा है। ब्रह्म से ले ब्रह्मांड तक के दो भेद हैं—मैं और तू। यही मैं-तू का द्वैत है, अकेला 'मैं' अभेद है। इसलिये 'तू' में सारे ज का सन्निवेश है। यह अनंत-विस्तार-मय 'तू' अविद्या कारण होता है, इसी को शंकर ने अविद्यावत् (Depen dent on Avidya) कहा है। इस अविद्यावत् विस्तार क्या है, तू से वाच्य जो कुछ है वह सभी इसके अं आ जाता है। इसलिये वेदशास्त्र और पुराण, प्रत्यक्ष अ मान और उपमान, व्यासजी, शंकर और उपाध्यायजी सब अविद्यावत् हुए। इसी अर्थ को विवृत करने के लि हमने विषय का अर्थ स्कोप किया था। इस अर्थ में उ ध्यायजी रत्ती-भर भी सिद्धांत की हानि नहीं दिखा सके अपनी इस प्रत्यालोचना में उपाध्यायजी ने अवि शब्द के 'बाज़ारू अर्थ' और 'शांकरी अर्थ' दोनों ही दि हैं। हम पूछते हैं कि यदि आप इन दोनों में कुछ समझते हैं, तो पहला अर्थ देने की आवश्यकता ही क्या थी? शंकराचार्य ने उपोद्घात में स्पष्ट लिखा है— लक्षणमध्यासं पण्डिता अविद्येति मन्यन्ते—अर्थात् लक्षणवाले अध्यास को पंडित अविद्या मानते हैं। अज्ञा अविद्या, माया, प्रकृति, शक्ति, ये सब एक वस्तु के ना हैं—स्वरूप का आच्छेदन करनेवाले को अज्ञान कहते हैं ब्रह्मविद्या से जिसका बाध हो, वह अविद्या है। देशकाल दिक सामग्री विना दुर्घट पदार्थ की अपनी इच्छा उत्पत्ति करना माया है। सृष्टि के उपादान-योग्य त गुण-प्रधान स्वरूप को प्रकृति कहते हैं। वह क स्वतंत्र नहीं है, चेतन के आश्रित ही है। इससे श

भी कही जाती है (साधु निश्चलदासकृत विचार-सागर, पृ० १६७)। उपाध्यायजी से हमारा निवेदन है कि कृष्णपक्ष और अँधेरे पाख में वस्तुस्थिति की दृष्टि से हम भी कोई भेद नहीं मानते। अध्यास या अविद्या एक ही है। हमको मतलब तो अध्यास के लक्षण से है। उसको शंकर ने विस्तार-सहित दे ही दिया है। शंकर के 'अतस्मिन् तद्बुद्धि' को उपाध्यायजी भी मानते हैं, और हम भी। पर इसको मानते हुए भी (शंकर के युक्ति-प्राबल्य की प्रशंसा करते हुए भी) आपने शंकर के ही—कथं पुनरविद्यावद्विषयाणि प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानि शास्त्राणि चेति—वाक्य और उसके भाष्य को अपने शब्दों में घसीटकर उलट-पुलट डाला है, यह दुर्भाग्य है। उसको आपने शंकर की ही रीति से समझने का बिलकुल प्रयत्न नहीं किया। आपके आक्षेप का निचोड़ यह है—शंकर कहते हैं, वेदशास्त्र तथा प्रत्यक्षादि प्रमाण अविद्या के आश्रित हैं, भला यह कैसी बात। वेद भी अविद्यावद् और प्रमाण भी अविद्यावद्? इसका विस्तृत विवेचन पहले लेख में है, संक्षेप में फिर सुनिए—मनुष्य में आत्मा और देह है। आत्मा जब देह में बसने आई, उसी क्षण उसने देह के धर्मों का अध्यास किया। उसमें मैं और मेरा, यह प्रतीति हुई। चेतन आत्मा को भोजनादि कार्यों की अनध्यस्त अवस्था में कुछ आवश्यकता नहीं। क्षुधा पिपासा प्राण के धर्म हैं, आत्मा प्राण नहीं, इसलिये भोजन का करना न करना आत्मा के लिये एक-सी बात है। पर जब देह का आवरण हुआ, तब आहार से लोग आत्म-प्रीणन समझते ही हैं। दूसरा उदाहरण शंकर ने ही दिया है—मान लीजिए मेरे सामने वेद-पाठ हुआ, मैं उसका प्रमाता साक्षी हूँ। विना कर्णइंद्रिय का अपने में अध्यास किए प्रमाता होना असंभव है। इसलिये असंग आत्मा प्रमाता हो ही नहीं सकती। इंद्रियों के और देह के धर्मों का आत्मा द्वारा धारण करना अध्यास ही है; क्योंकि ये धर्म उसमें त्रिकाल में भी नहीं हैं और आत्मा के देह छोड़ देने पर अकेले देह में भी ये नहीं रहते, इसलिये प्रमातृत्वादि बुद्धि अतस्मिन् तद्बुद्धि अथवा आत्मा में अविद्याकृत अध्यास ही हुई। जब आत्मा परमार्थपक्ष में प्रमाता नहीं हो सकती, तब प्रमाण भी कहाँ रहे। व्यवहार-पक्ष में जब शरीर धारण किया है, तब इंद्रियों से तदनुरूप कार्य करना तो ज्ञान के लिये भी इष्ट ही है। शंकर ने यह कब कहा है कि आँखों से हम देखना बंद कर दें, पर वह चाहते हैं कि नानात्व का त्याग कर सर्वभूतेषु आत्मानं, आत्मनि सर्वभूतानि की दृष्टि से देखें। उन्होंने सैकड़ों बार यह कहा है कि लोक के अनुभव में प्रमाण सोलह आने ठीक हैं, शरीर धरना भी लोक-स्थिति का ही एक रूप है, उसमें रहकर सुवर्ण की खोज में लोग सोने की खान में जाते हैं, मिट्टी से कुंडल कोई नहीं बनाने बैठता। ऐसा इसलिये कि करनेवाले और सामग्री दोनों ही एक अवस्था की वस्तुएँ हैं। अपने तर्क में स्वप्न और जाग्रत् की तरह यहाँ भी दो दशाओं को मिलावट आप नहीं कर सकते। वेद क्यों अविद्यावद् है? वेद की आज्ञा है—ब्राह्मण यज्ञ करे। आत्मा में ब्राह्मणत्व और शूद्रत्व कहाँ रक्खा है, इसलिये जब तक किसी में ब्राह्मणत्व का अभिमान न मान लिया जाय, वेद को आज्ञा व्यर्थ हो जाती है। वेद आदि शास्त्रों का ज्ञान देहत्व, ब्राह्मणत्व, स्वर्गाभिलाषत्व आदि अनेक धर्मों की आत्मा में कल्पना करने के बाद ही चरितार्थ हो सकता है, यही कल्पना अध्यास या अविद्या है। उसको पुरस्कृत करके ही वेद की सार्थकता है। उपाध्यायजी कहते हैं कि अथातो ब्रह्म जिज्ञासा वाले वेदांतशास्त्र को या वेद को, जिसमें ब्रह्म का निरूपण है, आप अविद्यावद् मानिए, तो उससे आपका ब्रह्म-ज्ञान सत्य कैसे हो जायगा। शंकर ने भी इस प्रश्न को उठाया है—विपक्षी कहता है—

ननु एकत्वैकान्ताभ्युपगमे नानात्वाभावात्प्रत्यक्षादीनि लौकिकानि प्रमाणानि व्याहन्येरन्निर्विषयत्वात्, स्थाण्वादिष्विव पुरुषादिज्ञानानि । तथा विधिप्रतिषेधशास्त्रमपि,...मोक्षशास्त्रस्यापि शिष्यशासित्रादिभेदापेक्षत्वात्तदभावे व्याघातः स्यात् । कथं चानृतेन मोक्षशास्त्रेण प्रतिपादितस्यात्मैकत्वस्य सत्यत्वमुपपद्येतेति ।...कथं तु असत्येन वेदान्तवाक्येन सत्यस्य ब्रह्मात्वस्य प्रतिपत्तिरुपपद्येत ?

अर्थात् यदि आपके हिसाब से बिलकुल एकत्व मान लें, तो नानात्व के अभाव से प्रमाणों का नाश हो जाय; क्योंकि प्रमाणों के लगने के लिये विषय तो रह ही नहीं गया। इसी तरह कर्मकांड भी निर्विषय हो जायगा। शिष्य और गुरु के भेद के विना कौन किसको मोक्षशास्त्र पढ़ाएगा, उसकी ज़रूरत ही न रहेगी। फिर

मोक्षशास्त्र और वेदांत-वाक्य तो अनृत हो गए, उनसे सत्य ब्रह्म की प्राप्ति कैसे होगी ? इसका थोड़े में उत्तर यह है कि एकांत एकत्व (Absolute unity) जब तक शरीर का अध्यास है, तब तक संभव ही नहीं, फिर ब्रह्मात्मैकत्व ज्ञान के होने से पहले तक भेदभाव है, उसके बाद शिष्यादि का भाव बचता ही नहीं । दो ज्ञानियों का परस्पर अविद्याकृत भेद मिट ही जाता है । वेदांत-वाक्य असत्य इस दृष्टि से हैं कि वे शब्दमय हैं और अस्ति भाति प्रिय अर्थात् सच्चिदानंद ब्रह्म की दृष्टि से शब्द अर्थात् नाम अतात्विक है, क्योंकि अनिर्वचनीय को, जिसे श्रुति नेति-नेति ही कहकर चुप हो रहती है 'ऐसा है, ऐसा है' यह कहना एक प्रकार से अनृत ही है । सत्य जो ब्रह्म, अनृत जो तदितर सब कुछ, इन दोनों को मिथुनीकृत्य अर्थात् मिलाकर लोकव्यवहार चल ही रहा है । दार्शनिक दृष्टि से उपाध्यायजी का खंडन आत्मा के लिये अतात्विक है, इसलिये उसका यह समाधान भी अनर्घ्य है । दूसरी बात यह है कि वेदांत, शास्त्र, उपनिषद् और संतवाणी ही एक ऐसा साधन है, जिससे आत्मा के स्वरूप की शिक्षा मिलती है, उसी से अविद्या-निवृत्ति का फल संभव है, और कोई विद्या तो जगत् में ऐसी है नहीं, जिससे इस विषय के बोध की लेश भी उपलब्धि हो सके ।

उपाध्यायजी पुनः पूछते हैं—"एक वस्तु में दूसरी वस्तु का धर्म मानना ही अविद्या हुई । जैसे रस्सी को साँप मानना या चींटी को घोड़ा मानना, या बर्फ़ को आग मानना । और शांकर मत में प्रत्यक्षादि प्रमाण अविद्या-जन्य हैं, अतः यह कैसे विश्वास के योग्य हो सकते हैं ? क्या बर्फ़ को आग मानकर या सीपी को चाँदी मानकर जो व्यापार करेगा, उससे कुछ लाभ हो सकेगा ?" यहाँ उपाध्यायजी अंतिम या मूल सत्य को भुला देते हैं और समझ लेते हैं कि केवल सीप की चाँदी मिथ्या है, खान की चाँदी सत्य है । खान की चाँदी भी परमार्थपक्ष में मूल सत्य नहीं है, यही तो वेदांत का कथन है । सीप की चाँदी का व्यवहार भी तब सत्य होता, जब हमें ख़रीदने और बेचनेवाले दोनों ही उस काल्पनिक जगत् में विश्वास रखनेवाले मिल सकते । हमें तो खान की चाँदीवाला संसार मिला है, उसी के प्राणी हम भी हैं, जहाँ वस्तुओं की प्रतीति का साधन स्मृति नहीं उपलब्धि है । इसलिये उस व्यावहारिक जगत् में खान की चाँदी काम की पर जैसे सीप की चाँदी का असली चाँदी के मूल्य नहीं, वैसे ही ब्रह्मपक्ष में जहाँ चेतन ही एक है, चाँदी आदि सर्व विकृति का भी कुछ मूल्य जब आप कहते हैं कि "जो हमको सूर्य प्रतीत हो वह सूर्य नहीं है, कुछ और है, फिर इस ज्ञान की योगिता ही क्या ?" तब कृपया यह मत भूलि 'कुछ और का मतलब यह है कि ब्रह्म ही का विव जिस दृष्टिबिंदु को लेकर हम नेह नानास्ति किंचन लगें, उसके मूल्य की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी वही तो एक तत्व है, जिसके ज्ञात होने पर और जानना शेष नहीं रहता, तथा जिसका ज्ञान संप्राप्ति और अज्ञान महती विनष्टि है । 'रेत के बर्फ़ जमाने, जुगनू की आग से फूस जलाने और फुटक से चर्खा कातने' की अनर्गल बातें तो वे विरुद्ध तब कही जा सकती थीं, जब वह बाह्य ज उपलब्धि का अपलाप करके किसी भ्रम के जग सत्य कहता होता । पर उस आचार्य को प्रणाम स्पष्ट-से-स्पष्ट शब्दों में यह लिख रहा है—

> सूत्रकारोऽपि परमार्थाभिप्रायेण तदनन्यत्वमित्याह । हाराभिप्रायेण तु स्याल्लोकवदिति महासमुद्रस्थानीयतां कथयति । अप्रत्याख्यायैव कार्यप्रपञ्चं परिणामप्रक्रियां सगुणेषूपायेषूपयोद्यते इति ।२।१।१४

अर्थात् सूत्रकार ने भी केवल परम अर्थ के वि लक्ष्य में रखकर जगत् का उससे अनन्यत्व क व्यवहार में तो स्वयं व्यासजी ने ही 'स्याल्लोकवत्' महासमुद्र से ब्रह्म की तुलना की है और कार्यप्र प्रत्याख्यान न करके परिणाम-प्रक्रिया को स्वीका है। उपाध्यायजी वेदांतमें सब अतात्त्विक (Unreal) हैं, उसके तत्त्व (Realistic element) को नहीं अध्यास के फलरूप प्रत्यक्ष आदि निरुपयोगी नहीं—इसका उत्तर यह है कि उपादान का परिणा कारण से कुछ विशेष धर्म अपने में उत्पन्न क अन्यथा कारण और कार्य यह भेद ही न हो सके। विशेष धर्मों से जो कार्य का स्व-भाव है क प्रतीति होती है। यदि ऐसा न हो, तो एक मिट्टी विविध भांडों में कुछ मूल्यभेद न रहे । पर भेद अर्थात् प्रत्येक का विशेष धर्म उसके साथ है । इ

मृगजल का भी विशेष धर्म है। उसका भी उपयोग, अच्छा या बुरा, थोड़ा या बहुत, निकल ही आवेगा, विशेष धर्म की सार्थकता तभी होगी। जिसने मृगजल देखा नहीं, उसको उसका ज्ञान कराने में कुछ उपयोग है। यदि कोई व्यक्ति ऐसा हो जाय कि वह मृगजल के सौंदर्य को देखकर प्रसन्न होता रहे, तो उसका उपयोग हो ही गया। सोने के गहने की भी जो एक आकृति एक मनुष्य को पसंद हो, वह दूसरे को व्यर्थ हो सकती है, यद्यपि मूल सोना दोनों के लिये समान स्पृहणीय है। ब्रह्म से सोने का विवर्त कहनेवाला मनुष्य अभाव से भाव नहीं कहता; क्योंकि ब्रह्म अभाव नहीं, सद्भाव है। अध्यास अख़्तियारी है या ग़ैर-अख़्तियारी—यह प्रश्न सृष्टि-प्रवाह को अनादि मानते हुए उत्पन्न ही नहीं होता। यदि कोई ऐसा समय होता, जब जगत् की असत्ता की कल्पना की जा सकती, तो ज़रूर यह पूछने की बात थी कि ब्रह्म ने अपने को सृष्टि रूप में व्यक्त ही क्यों होने दिया। फिर यदि संसार ब्रह्म की सत्ता से स्वतंत्र सत्तावाला कहा जाय, तभी आप ब्रह्म की परतंत्रता का प्रश्न उठावें अन्यथा नहीं। यहाँ तो चेतन के स्व-भाव में ही यह शामिल है कि अध्यास हो, अर्थात् वह सृष्टि चले, जिस सृष्टि में अनादिगुण के कारण पौर्वापर्य का प्रश्न उठता ही नहीं। परंतु अध्यास-आत्मक सगुण ईश्वर (Immanent) से परिशिष्ट निर्गुण ब्रह्म (Transcendental) भी रहता ही है। एतावानस्य महिमा-अतो ज्यायांश्च पूरुषः। उपाध्यायजी प्रश्न उठाते हैं—"क्या ग़लतियाँ भी क्रमबद्ध हुआ करती हैं?" एक ग़लती करने के बाद जो उसका संतान या विस्तार है, वह निश्चय ही पहली ग़लती का फल होने से उससे संबद्ध ही चलता रहता है। हाँ, दो जुदा हस्तीवाली ग़लतियों में कोई क्रम या संबंध नहीं देख पड़ेगा। इसका सार यह कि ब्रह्म के जिस अध्यास की हम चर्चा करते हैं, वह नाना नहीं, एक है। उसी एक मूल अध्यास के परिणाम का सब विकास है। आपके दिए हुए उदाहरण में कुर्सी पर बैठने और लिखने में क्रमबद्ध संबंध क्या है? कुर्सी पर बैठकर लिखना ही अनिवार्य नहीं है, खाना भी खाया जा सकता है। लेख लिखकर समाचार-पत्र में भेजना अनिवार्य नहीं है, वह घर में भी पड़ा रह सकता है। इसलिये आपके जोशीले उदाहरण में सार बात कुछ नहीं है। जगत् में जिस अध्यास की हम चर्चा करते हैं, उसके बाद के सब 'परिणामों में हमें अनिवार्य कार्यकारण भाव देख पड़ता है।

उपाध्यायजी पूछते हैं—"ज्ञानी कौन है......उसको प्रत्यक्ष आदि न होंगे।" आत्म और अनात्म के विवेक को जाननेवाला ज्ञानी है, नाना रूपों में एक तत्व का दर्शन करनेवाला ज्ञानी है। एकत्व का ज्ञान होते हुए भी ज्ञानी पुरुष को देह रहते प्रत्यक्षादि का ज्ञान अवश्य होता रहेगा; केवल अंत में वह अमृत तत्व में मिल जायगा। (यस्माद्भूयो न जायते)। आत्म-अनात्म के विवेक को जीव जब समझ लेता है, तब उसकी इंद्रियाँ भी तदनुरूप ही आचरण करने लगती हैं। इंद्रियाँ जीव की करण हैं, इससे जीव की वृत्ति का उनके साथ घनिष्ठतम संबंध है। यह हमारे ऊपर व्यर्थ का दोष लगाना है कि हम इंद्रियों के विकास तथा शिक्षण से रुष्ट हैं। हम तो इंद्रियों को उस लक्ष्य की साधना में लगाने के इच्छुक हैं, जहाँ ज्ञान के सूर्य से तिमिर रहता ही नहीं। अपने व्यवहार में ज्ञानी सदा यही कहता है कि मैं आँख से देखता हूँ। देखना-रूप धर्म के लिये तो विवश होकर आत्मा में आँख का अध्यास करना पड़ेगा। किंतु जब दर्शन की रीति से 'मैं देखता हूँ' इस वाक्य की विवेचना कराई जायगी, तब अवश्य ही नेत्र और आत्मा के अन्यत्व की ओर ध्यान दिलाया जायगा।

अब विवेक पद को लीजिए। जो व्यक्ति सहृदयता से एक बार भी समझने की कोशिश न करे, उसे त्रिकाल में भी नहीं समझाया जा सकता। पूज्य उपाध्यायजी अपने प्रसंगवित् होने का दावा करते हैं और इस प्रकार की अप्रामाणिक बात लिखते हैं—"डंडे को अपने शरीर का अहितकर और घास को उस शरीर का हितकर समझना "विवेक" है या "अविवेक।" इसमें वि पूर्वक विच् धातु लगता है या नहीं। आपके मत में विच् धातुवाला विवेकी पुरुष क्या करेगा? यदि कोई डंडा लेकर आवे, तो वह कहेगा...डंडे से मेरे शरीर को कोई हानि नहीं होने की।" उपाध्यायजी का मतलब यह है कि शंकर भी घास की ओर लपकने को विवेक और डंडे से भागने को अविवेक कहते हैं, पर शंकराचार्य हाथी पर चढ़कर जिस बात की घोषणा करते हैं, उसे उपाध्यायजी नहीं सुनते। यथा—

पश्वादीनां च प्रसिद्धोऽविवेकपुरःसरः प्रत्यक्षादिव्यवहारः। तत्सामान्यदर्शनाद् व्युत्पत्तिमतामपि पुरुषाणाम् प्रत्यक्षादि-व्यवहारस्तत्समान इति निश्चीयते।

अर्थात् पशुओं का प्रत्यक्षादि व्यवहार अविवेककृत है।

अब भी न-जाने उपाध्यायजी इस बात को मानेंगे या नहीं कि शंकर के शब्दों में पशुओं का डंडे से भागना और घास की ओर लपकना, ये दोनों ही अविवेक हैं। ज्ञानी को डंडा दिखाकर यह कहना कि शरीर को अनात्म प्रतिपादित करोगे, तो हम डंडा मारकर दिखाएँगे कि तुम्हारे चोट लगती है, बर्बरता के युगों की बात होगी। जिसके ऊपर सदा नंगी तलवार लटकती हो, ऐसे किसी मस्तिष्क ने आज तक वेदांत की तो बात क्या, सामान्य-से-सामान्य दर्शन का भी उद्घाटन नहीं किया।

उपाध्यायजी ने एक अवतरण देकर कहा है कि हमने उनके शब्दों में परिवर्तन करके उनका खंडन किया है। उपाध्यायजी जिन्हें 'अपने शब्द' कहते हैं, वे यदि उन्हीं के होते तो हम उन्हें विपर्यस्त कामाओं के बीच में क्यों न रखते। असली बात यह है कि हमने उपाध्यायजी के भाव को ही दूसरे शब्दों में अवश्य रख दिया था। उपाध्यायजी ने लिखा है कि "अध्यास के किसी अर्थ में आत्मा, शरीर या इंद्रियों में अपना अध्यास नहीं करता।" हमने भी यही लिखा है—

"उपाध्यायजी कहते हैं कि आत्मा का देह और इंद्रियों को मैं समझना अध्यास के किसी लक्षण के अंतर्गत नहीं है।" पहले हमने दिखाया था कि अध्यासों के चारों लक्षणों के अनुसार देहेंद्रियाध्यास सच्चा उतरता है। साधक-साधन संबंध के विषय में निवेदन है कि अध्यास-अध्यस्त का संबंध सब संबंधों के मूल में है।

मुखमस्तीति वक्तव्यम् वाली बात से एक कालम पहले ही (पृ० ४६५-१) उपाध्यायजी के लेख का उ समाप्त हो गया था। जहाँ यह लिखा था कि हम डा सन की लीला का परिचय पाठकों को बताना चाहते उससे आगे का सब अंश डायसन के विषय में है। अपने ऊपर घटाकर उपाध्यायजी ने मुझे प्रोक्रस्टीज़ पलँग की सी मेहमाँनिवाज़ी करनेवाला तथा पेट काट वाला कहकर अनजान में अपने बहुत सारे अमर्ष परिचय दे दिया है। ड्यूसन के संबंध में तो उपाध्याय का और मेरा एक मत था। वह पहले लेख में क चुका हूँ। हम दोनों ही बादरायणाचार्य को श्रे मानते हैं, पर ड्यूसन ने आगम-प्रमाण से घबड़ाकर निष्कर्ष निकाला कि वेदांत-सूत्रों से अलग उप षद्विद्या का व्याख्यान करना चाहिए; क्योंकि उपनि के सच्चे अर्थ को वेदांतसूत्र विवृत नहीं कर सके। में मितव्ययिता आदि नियमों के जिन परिणामों लेकर आपने अद्वैत की असंगति दिखाई थी, मैंने नियमों का उसी मर्यादा तक उत्तर दिया था। दुःख है कि उपाध्यायजी की समस्त पुस्तक पढ़े बि केवल प्रकाशित अंशों के आधार पर वह विवेचन कि था। पंडितजी कहते हैं कि इसमें और भी अ अद्वैतों का खंडन है। अच्छा हो यदि उपक्रम कहीं पंडितजी इसका निर्देश करके ग्रंथ के अनुबं चतुष्टय को स्पष्ट कर दें।

इस प्रकार के दार्शनिक विवेचन में मतभेद स्वा विक है। बिना अनुभव की कोटि के केवल शुष्क त की प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न आभास्यमान हो जाता जिनकी स्वानुभूति में ब्रह्म ही निष्पन्न वस्तु है, वे गए हैं—मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य उ नानेह पश्यति।

वासुदेवशरण अग्रवा

पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी की लिखी हुई दोनों पुस्तकें प्रत्येक गृहस्थ को मँगाकर अवश्य पढ़नी चाहिए।

धर्मशिक्षा
मूल्य १)
गार्हस्थ्यशास्त्र
मूल्य १)

पता—तरुण-भारत-ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग।

त्याग

हेनरी चारपाई पर पड़ा था। कुछ क्षण पश्चात् उसने करवट ली और पास ही बैठे हुए अपने बड़े भाई से कहा—"टाम, क्या तुम आज भी घूमने नहीं गए ?"

टाम—हेनरी, मुझे अकेले जाते अच्छा नहीं लगता। तुम भी अच्छे हो जाओ, तब जी भरकर घूम लेंगे।"

हेनरी के नेत्र सजल हो गए। उसने टाम का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा—"भाई, तुम मेरे पीछे अपना स्वास्थ्य क्यों बिगाड़ रहे हो। छः महीने से न तो तुम सर्कस ही में जाते हो और न कहीं और ही। क्या इस तरह तुम भी एक बीमार के पीछे अपने सुख और शांति के दिन वृथा नष्ट नहीं कर रहे हो ?"

टाम हेनरी के सिर पर हाथ फेरता हुआ बोला—"हेनरी, सर्कस में अब काम करने को जी नहीं चाहता। तुम्हारे बिना मुझसे कुछ किए नहीं होता। भाई, मुझे जब वे दिन याद आते हैं कि जब हम दोनों सर्कस में बड़े-बड़े काम करके दर्शकों का मन मोह लेते थे, तो हृदय फटने लगता है।" इतना कहकर टाम ने अपना मुँह फेर लिया।

हेनरी उस क्षणिक निस्तब्धता को भंग करता हुआ बोला—"टाम, मैं तुम्हारे इस अथाह प्रेम का बदला यदि प्राण देकर भी चुका सकूँ, तो अपने को धन्य समझूँगा।

टाम—"टट-टट—अच्छा आज तुम बाग़ को न चलोगे ?"

हेनरी—"चलो न"

टाम ने हेनरी को गोद में उठा लिया और बड़े आराम से ले जाकर घास पर पड़ी हुई एक बेंच पर लिटा दिया। वायु के मंद-मंद झोंके से हेनरी के मुर्झाए हुए मुख पर प्रसन्नता की झलक आ गई। टाम का सहारा लेकर वह उठ बैठा और फिर टाम से कहने लगा—"भाई, इस हरी-हरी घास पर ख़ूब लोटने को जी चाहता है, मगर......" इतना कहते-कहते उसका गला भर आया और उसने टाम के वक्षःस्थल में अपना मुँह छिपा लिया।

टाम ने उसको धैर्य देते हुए कहा—"हेनरी, अधीर न हो, डाक्टर ने कहा है कि अब तुम कुछ ही दिन में अच्छे हो जाओगे।"

हेनरी—"देखो"

हेनरी के इस एक शब्द में इतना दुःख और इतनी निराशा भरी हुई थी कि टाम के नेत्र सजल हो गए। उसने अपने भाई को हृदय से लगाकर कहा—"हेनरी, परमात्मा दयालु है, वही तुम्हारे कष्ट को दूर करेगा।"

इसी समय किसी ने सुरीले स्वर में कहा—"आमीन"

दोनों ने घूमकर देखा, सामने लैली खड़ी थी। दोनों के मुख खिल उठे। लैली उनकी बाल्य-अवस्था की साथिन थी।

लैली हेनरी के पास बैठ गई। उसने बैठते ही पूछा—"हेनरी, आज तबीयत कैसी है ?"

हेनरी (कुछ दुखित स्वर में)—"कोई विशेष फ़ायदा नहीं।"

टाम—"लैली, डाक्टर ने कहा है कि यह महीने-भर में ही अच्छे हो जायँगे, परंतु फिर भी यह निराश ही होते जाते हैं।"

हेनरी—"लैली, छः महीने बीमार हुए हो गए, और डाक्टर हमेशा ऐसा ही कहते आए, फिर कैसे विश्वास करूँ। मैं तो समझता हूँ कि मैं अच्छा होने को बीमार नहीं पड़ा हूँ।"

लैली—"तुम पागल हो। अच्छे न होगे, तो मेरे संग विवाह कौन करेगा !"

हेनरी का मुख लाल हो गया और टाम उद्विग्न हो उठा। फिर वह बनावटी हँसी हँसकर बोला—"लैली, तू बड़ी बदमाश है।"

तीनों हँस पड़े। कुछ देर बाद टाम ने कहा—"लैली, यदि तुम हेनरी के पास बैठी रहो, तो मैं डाक्टर के यहाँ हो आऊँ।"

लैली—"जाओ।"

टाम चला गया। उसके जाने के बाद हेनरी ने कहा—

"लैली।" लैली उसका मुख देखने लगी, किंतु हेनरी किसी गंभीर विचार में लीन था।

लैली ने हेनरी को हिलाते हुए पूछा—"क्या है हेनरी ?"

हेनरी—"लैली, क्या तुम्हें वे दिन याद हैं, जब हम और तुम बाग़ में दौड़-दौड़कर एक दूसरे को फूलों से मारते थे और फिर किसी घनी झाड़ी में छिपकर बैठ रहते थे ?"

लैली—"याद क्यों नहीं हैं।"

हेनरी—"वे सुख के दिन थे। लैली, अब कभी मुझमें वह स्फूर्ति न आवेगी।" यह कहते-कहते उसके नेत्र भर आए।

लैली—"तुम शीघ्र ही अच्छे हो जाओगे; फिर इतने दुखित क्यों हो ?"

हेनरी—"लैली, मुझे बीमारी का दुःख नहीं और न बीमारी से मैं भयभीत होता हूँ।"

लैली—"फिर क्या दुःख है, हेनरी।"

हेनरी चुप रहा। वह लैली का मुख टकटकी लगाए देख रहा था। लैली हँस पड़ी। उसने कहा—"हेनरी, क्या देख रहे हो ?"

हेनरी ने फिर भी कुछ उत्तर नहीं दिया। लैली ने अब की झुँझलाकर कहा—"हेनरी, बोलते क्यों नहीं ? क्या लैली पर विश्वास नहीं ?"

हेनरी—"लैली को छोड़कर और किसको विश्वास-पात्र समझ सकता हूँ।"

लैली—फिर बतलाओ न, तुम्हें क्या मानसिक कष्ट है ?"

हेनरी—"घोर अशांति है और वह भी तुम्हारे कारण ?"

लैली (आश्चर्य के साथ)—"मेरे कारण, मैंने क्या किया है ?"

हेनरी—"किया तो कुछ नहीं लैली, यह मेरे ही मनोविकार का फल है। हृदय में हर समय कोई कहता है कि इस बीमारी के फलस्वरूप लैली तेरी नहीं रही। लैली के हृदय में अब तेरे लिये वह स्थान नहीं।"

लैली (हँसकर)—"बस, इसी से इतने विह्वल हो। परंतु हेनरी, मैं तो तुम्हें अब भी वैसा ही चाहती हूँ।"

हेनरी (लैली का हाथ अपने हाथ में लेकर) "लैली, और यदि मैं सर्वदा के लिये ही लँगड़ा गया और उठने-बैठने से मजबूर रहा तो..."

लैली—"यह नहीं हो सकता, तुम शीघ्र ही अ हो जाओगे ?"

इसी समय टाम आ गया। हेनरी ने और कुछ कहा। एक गहरी साँस लेकर मुँह फेर लिया। टाम दवा पिलाकर पूछा—"हेनरी, कैसे हो ?"

हेनरी—"भीतर चलूँगा।"

टाम फिर हेनरी को उसी प्रकार उठा ले गया, पाई पर उसे लिटाकर लैली और टाम खाने चले ग खाने के समय टाम चुप था। उसके मुख पर चिंता रेखा थी। खाते-खाते उसने सिर उठाकर देखा। की दृष्टि उसी की ओर थी।

टाम ने पूछा—"लैली, क्या हेनरी के साथ करोगी ?"

लैली ने मुँह बनाकर कहा—"नहीं", और कुछ कर पुनः "हाँ" कहा। इसके पश्चात् वह बड़े ज़ोर हँस पड़ी। टाम ने फिर सिर नीचा कर लिया। कनखियों से उसकी तरफ़ देख रही थी। टाम को देखकर उसने आलू उठाकर टाम को मारा और हँसने लगी। टाम ने कहा—"लैली, तू बड़ी बद है। हर समय तुझे मज़ाक़ ही सूझता है।"

लैली—"टाम, क्या नाराज़ हो ?"

टाम ने उसकी ओर देखा। लैली गंभीर थी। ने कहा—"नहीं तो लैली, भला नाराज़ क्यों होऊँ।"

लैली—"तो फिर इतने चुप क्यों हो ?"

टाम—"कुछ नहीं यों ही।"

लैली—"टाम, तुम मुझसे कोई बात छिपा सकते। मैं तुम्हारे इस अस्वाभाविक मौन का जानती हूँ। क्यों, बतलाऊँ ?"

टाम—"क्या है ?"

लैली—"ईर्षा।"

टाम—"किससे ?"

लैली—"हेनरी से।"

टाम चुप हो गया। एक ग्लास शराब पीकर लैली से कहा—"लैली, मैं हेनरी के लिये सब त्याग सकता हूँ।"

लैली ने हेनरी की ओर गर्व से देखा। और टाम का हाथ पकड़कर उसने कहा—"टाम, तुम आदमी नहीं।"

टाम—"इसी से मुझसे घृणा है ?"

लैली—"तुम देवता हो, देवता से किसी को घृणा होती है।"

टाम—"लैली, तेरी बातें कुछ समझ में नहीं आतीं। तुझे मुझसे घृणा भी नहीं और प्रेम भी नहीं !"

लैली हँस पड़ी। उसका सुंदर मुख, उसके सजल नेत्र और उसकी कोमल मधुर वाणी, सभी टाम को बेसुध बनाने लगे। उसी अवस्था में उसने लैली से पूछा—"लैली, क्या मैं कभी इससे अधिक की आशा कर सकता हूँ ?"

लैली ने उत्तर दिया—"हाँ, किंतु शीघ्र ही नहीं" कहकर वह फिर हँसने लगी और हँसते-हँसते हेनरी के कमरे की ओर भाग गई। टाम बैठा ही रह गया।

लैली ने जाकर देखा, तो हेनरी को सोते पाया। लैली जाना ही चाहती थी कि हेनरी ने उसी दशा में कहा—"लैली !"

लैली ने देखा, उसके नेत्र बंद थे और वह घोर निद्रा में था। लैली झुककर उसके मुख की ओर देखने लगी। इसी समय हेनरी ने फिर कहा—"मेरी लैली" और उसके साथ-ही-साथ उसके दोनों हाथ लैली की गर्दन में पड़ गए। लैली चौंक पड़ी। उसने देखा, हेनरी अब भी सो रहा था, वह बड़ी शीघ्रता के साथ कमरे से चली गई।

जाते समय लैली ने देखा, टाम उसी प्रकार बैठा था। लैली ने एक गहरी साँस ली। उसके नेत्रों में आँसू थे।

× × ×

तीन सप्ताह बीत गए। हेनरी कुछ-कुछ अच्छा होने लगा था। अब वह लकड़ी के सहारे खड़ा होता, कभी-कभी लैली का सहारा लेकर वह कमरे में इधर-उधर टहलता। टाम अब भी उसको गोद में उठाकर बाग़ ले जाता था। अब टाम बहुधा शाम को घूमने जाता था। ऐसे अवसर पर लैली को वह हेनरी की देख-भाल के लिये छोड़ जाता।

एक दिन हेनरी ने लैली से कहा—"लैली, डाक्टर ने समुद्र-तट पर जाकर कुछ दिन रहने की राय दी है।"

लैली—"हाँ-हाँ, अवश्य जाना चाहिए।"

हेनरी—"लैली, तुम भी चलो।"

लैली—"क्यों, मैं क्या बीमार हूँ ?"

हेनरी—"लैली, तुम्हारे चलने से मैं बड़ी जल्दी अच्छा हो जाऊँगा।"

लैली—"वाह-वाह, क्या मैं कोई डाक्टर हूँ।"

हेनरी—"हाँ, तुम मेरे मानसिक विकार की एक-मात्र औषध हो।"

लैली—"हेनरी, यदि मेरी माता को कोई आपत्ति न हुई, तो अवश्य चलूँगी।"

हेनरी (हर्ष से पुलकित हो)—"लैली, तुम्हें अनेकानेक धन्यवाद।"

इसी समय टाम आ गया। हेनरी ने टाम से कहा—"भाई, लैली भी हमारे साथ चलने को राज़ी है। अब हमें बड़ा आनंद आएगा।"

टाम (हर्षित होकर)—"तब तो बड़ा अच्छा है !"

इसके चार दिन पश्चात् टाम, हेनरी और लैली अपने घर से विदा हुए। डोवर से कुछ दूर पर एक बहुत सुंदर गाँव था। टाम इसी गाँव के पास जा बसा। वहाँ की रमणीयता अपार थी। वहाँ की स्वच्छ वायु और सुंदर दृश्यों ने उन तीनों को मोह लिया। लैली तो स्वभावतः समुद्र से प्रेम रखती थी। वहाँ वह नित्य ही प्रातःकाल और संध्यासमय घूमने जाया करती। कभी-कभी टाम भी साथ हो लेता, परंतु बहुधा वह अकेले ही जाती। हेनरी अभी अधिक नहीं चल सकता था।

एक दिन संध्या को उसके जाने के पश्चात् घोर वर्षा होने लगी। लैली बिना छाते के गई थी, इसी से टाम और हेनरी चिंताग्रसित हो रहे थे। वर्षा के साथ-ही-साथ बर्फ़ भी गिरने लगी। सर्दी ऐसी थी कि दाँत कटकटा रहे थे। लैली समुद्र के किनारे-किनारे मीलों तक चली जाती थी। इधर दूर-दूर पर मछलीवालों के झोपड़ों के सिवा और कोई घर न थे।

रात अधिक होते देखकर हेनरी ने टाम से कहा—"ऐसा न हो लैली किसी सुनसान जगह में बैठी हो। उसके पास शीत से बचने के लिये कोई गरम कपड़ा भी नहीं है ?"

टाम—"अब मैं उसे खोजने जाता हूँ !"

टाम एक गरम लबादा पहने और बर्फ़ से बचने को

एक छाता लिए घर से निकला । लैली के लिये उसकी बाँह के ऊपर एक और लबादा पड़ा था । चलते समय हेनरी ने कहा—"टाम, एक शीशी में ब्रांडी भी लेते जाओ ।"

टाम—"ख़ूब याद दिलाई"— इतना कहकर उसने आलमारी खोली और एक अद्धा जेब में रखकर तेज़ी से चल दिया ।

टाम ने बाहर आकर देखा, तीव्र झंझावात था । हवा के साथ-ही-साथ बर्फ़ के छोटे-छोटे टुकड़े आकर ऊपर गिरने लगे । सारी भूमि बर्फ़ से ढकी हुई थी । टाम सीधा उसी तरफ़ चल दिया, जिधर लैली रोज़ जाया करती थी । लगभग दो मील जाने के पश्चात् कुछ मछलीवालों के झोपड़े मिले । टाम को पूर्ण आशा थी कि लैली यहीं होगी । उसने दो-एक मछलीवालों से उसके विषय में पूछा । एक वृद्ध ने कहा—"आई तो वह यहाँ अवश्य थी, किंतु ठहरी नहीं, आगे बढ़ गई ।"

टाम ने कहा—"क्या आपमें से कोई भी मुझे उसका पता लगाने में सहायता दे सकते हैं ?" कई नवयुवकों ने एक दूसरे की ओर देखा और सिर झुका लिया । उनके नेत्र स्पष्ट कह रहे थे कि ऐसे समय में कौन जाने का साहस करेगा; किंतु एक ने टाम का उतरा हुआ मुख देखकर कहा—"महाशय, चलिए, मैं चलता हूँ ।"

टाम ने प्रसन्न होकर उसका हाथ पकड़ लिया । उसकी आँखों में कृतज्ञता थी । टाम और वह अजनबी युवक चल खड़े हुए । बहुत दूर जाने के पश्चात् भी लैली का कहीं पता न चला । टाम की घबराहट क्षण-क्षण बढ़ती जाती थी । उसने एक गहरी साँस ली और कहा—

"युवक, मुझे भय है कि लैली अब इस संसार में नहीं है।"

युवक ने कुछ उत्तर न दिया । उसकी चुप्पी बता रही थी कि उसे भी इसमें अधिक संदेह नहीं । लौटते समय युवक ने कहा—"महाशयजी, अच्छा हो कि इस बार हम समुद्रतट से कुछ हटकर चलें, कदाचित् पानी के कारण वह किसी वृक्ष के नीचे बैठ रही हो ।"

टाम युवक के पीछे हो लिया । इस जगह से थोड़ा ही जाने के पश्चात् एक घने वृक्ष के नीचे दूर पर कोई चीज़ पड़ी-सी मालूम हुई । टाम ने दौड़कर देखा, वह लैली थी । उसने उसे हिलाकर कहा—"लैली" किंतु कुछ उत्तर न मिला । टाम ने देखा कि उसका शरीर बर्फ़ से जकड़ा हुआ था । उसने बर्फ़ को झाड़कर, लैली को लबादे में छिपा लिया और फिर जेब से शराब नि उसके मुँह में डाली, परंतु फिर भी उसे होश न युवक ने कहा—"महाशयजी, इन्हें मेरे घर तक चलिए, वहाँ उचित उपचार किया जा सकता है ।

टाम ने लैली को गोदी में उठा लिया । इस टाम के हृदय में भी वैसा ही तीव्र तूफ़ान उठ रहा था, कि उसके चारों ओर था । तूफ़ान था भय और का । हृदय में आता—"यदि लैली मर गई तो यह ध्यान आते ही उसके नेत्रों में बहिया आ जाती ।

आख़िर वह लैली को उस युवक के घर ले आया । की माता ने लैली को आग के पास लिटा दिया । ख़ूब गरम कपड़े उसको उढ़ा दिए गए । क्षण-क्षण उसके मुख में ब्रांडी डाली जाने लगी । कुछ देर लैली ने आँखें खोलीं । चारों ओर देखकर उसने टाम के मुख पर अपने नेत्र जमा दिए, और स्वर में पूछा—"टाम, मैं कहाँ हूँ ।"

टाम—"एक दयालु सज्जन के घर ।"

लैली ने उस वृद्ध पुरुष और स्त्री की ओर कृत भरी दृष्टि से देखा । उसकी आँखों से अश्रु का एक ढुलककर उसके कपोलों पर आ जमा । वृद्धा ने सांत्वना देते हुए कहा—"बेटी, ईसू बड़ा दयालु है लैली ने नेत्र बंद कर लिए, उसे निद्रा आ गई ।

लैली बड़ी देर तक सोती रही । टाम उसके बैठा रहा । युवक और वृद्धा भी बैठे थे । सुबह को थी, जब उसने आँख खोली । टाम को पा देखकर उसने कहा—"टाम, तुम सब अभी तक बैठे हो ।"

वृद्धा—"बेटी, चिंता में कहीं नींद आती है ।"

लैली ने युवक की ओर देखा । उसके मुख प के चिह्न थे । एक क्षण पश्चात् उस युवक ने पूछा— उस वृक्ष के नीचे क्यों बैठ गई थीं ? गाँव तक आ तो आपको यह घोर कष्ट न उठाने पड़ते ।"

लैली—"मुझे क्या पता था कि बर्फ़ पड़ने ल मैंने तो समझा था कि पानी कम होने पर चल दूँ जब बर्फ़ गिरने लगी, तो मुझे मजबूर होकर वहीं जाना पड़ा । धीरे-धीरे बर्फ़ मेरे ऊपर जमने लगी अचेत हो गई । मुझे नहीं मालूम कि आप किस मुझे वहाँ से लाए ।"

वृद्धा ने सब हाल सुनाया। लैली किसी गंभीर विचार में लीन हो गई। इसी समय टाम ने कहा—"लैली, सुबह की सफ़ेदी चारों ओर फैल रही है। बादल भी छट गए हैं और बर्फ़ गिरना भी बंद है। अब अगर तुम्हारी तबियत ठीक हो और पैदल चल सकती हो, तो चलो, हेनरी चिंतित होगा।"

लैली—"चलो, मैं अच्छी हूँ।"

लैली और टाम उस वृद्धा और युवक को धन्यवाद देकर चल दिए। लैली टाम के सहारे चल रही थी। कुछ दूर जाने के बाद उसने टाम से कहा—"टाम, आज तुमने मेरी जान बचाई। इसके लिये मैं सदा तुम्हारा आभार मानूँगी।"

टाम ने उसकी ओर देखा। लैली के नेत्रों में कृतज्ञता थी और कृतज्ञता की ओर से प्रेम की झलक। टाम हर्ष से विह्वल हो उठा। उसने लैली को हृदय से लगा लिया और उसके कपोलों पर प्रेम की छाप लगा दी। लैली ने टाम को अलग करते हुए कहा—"टाम, क्या तुमने केवल स्वार्थ के वशीभूत होकर ही मेरा उद्धार किया है?"

टाम ने देखा, लैली की आँखों में तिरस्कार था। उसने लज्जित होकर कहा—"लैली, क्या नाराज़ हो गई? अच्छा, क्षमा करो।"

लैली—"अब कभी तो ऐसा न करोगे?"

टाम—"नहीं।"

18

लैली ने हँसकर टाम का हाथ पकड़ लिया। हार्दिक क्षमा का परिचय इससे बढ़कर और क्या दिया जा सकता था। टाम का मुख खिल उठा।

घर पहुँचकर लैली ने देखा कि हेनरी किसी गंभीर विचार में मग्न खिड़की के पास खड़ा है। उसकी मुख-मुद्रा से विदित होता था कि वह रात-भर सोया नहीं। आँसुओं के चिह्न भी स्पष्ट थे। वह इतना ध्यान-मग्न था कि लैली के आने का उसे पता ही न लगा।

लैली ने चुपके-चुपके जाकर उसके कंधे पर हाथ रक्खा। हेनरी चौंक पड़ा। किंतु लैली को देख उसने उसका हाथ पकड़कर पूछा—"लैली, तुम कब आईं?"

लैली—"अभी तो आ रही हूँ।"

हेनरी—"और टाम?"

लैली—"वह अपने कमरे में हैं। उन्हीं ने तो मेरा उद्धार किया, नहीं तो मैं मर चुकी थी।"

हेनरी (भर्राई हुई आवाज़ में)—"लैली, अब तो कभी ऐसे समय अकेले घूमने न जाओगी!" इतना कहते-कहते उसके आँसू निकल आए।

लैली—"नहीं हेनरी, कभी नहीं।"

हेनरी ने लैली का गाढ़ आलिंगन किया। एक क्षण पश्चात् लैली ने अलग होकर कहा—"हेनरी, मैं तो टाम की जीवन-भर आभारी रहूँगी।"

इसी समय टाम ने कमरे में पैर रक्खा। उसने आते ही कहा—"लैली, अब कभी आभारी होने की बात न कहना। मैंने तो केवल अपना कर्तव्य-पालन किया है।"

लैली—"टाम, तुम मनुष्य नहीं, देवता हो।"

टाम—"लैली, यह तुम्हारा भ्रम-ही-भ्रम है।"

हेनरी के पूछने पर टाम ने सारा हाल बतलाया। मछलीवालों की उदारता के विषय में सुनकर हेनरी ने पुलकित हो कहा—"टाम, हमको उन सबकी दावत करनी चाहिए।"

टाम—"अवश्य, मैं दो-एक दिन में उनको निमंत्रण भेज दूँगा।"

हेनरी अब समुद्रतट पर टहलने आने लगा। लैली बहुधा हेनरी के साथ ही रहती, मगर कभी-कभी टाम के साथ नाव में बैठकर घूमने चली जाती। टाम तो अपना अधिक समय नाव ही में बिताता। वह घंटों ग़ायब रहता। कभी-कभी हेनरी चिंतित भी हो उठता, किंतु टाम एक सिद्धहस्त नाविक था।

उसी सप्ताह में टाम ने उस साहसी युवक और उसके मातापिता को निमंत्रण दिया। रात को दस बजे तक वे टाम के घर पर रहे। लैली ने हर प्रकार उनकी आव-भगत की। वह बार-बार उस युवक से कहती—"युवक, तुमने मुझे जीवन-दान दिया।"

युवक लज्जावश सिर झुका लेता, किंतु उसकी माता उत्तर देती—"बेटी, ईसू की कृपा थी, नहीं तो मनुष्य क्या कर सकता है।"

हेनरी उन दयालु मनुष्यों को भेजने चल दिया, किंतु वृद्धा ने उसे शीघ्र ही वापस कर दिया। उसने कहा—"बेटा, सर्दी में अधिक न चलो, अभी तुम कमज़ोर हो।"

हेनरी लौट आया। घर पहुँचकर उसने टाम और

लैली को बाग़ में एक घने वृक्ष के नीचे बैठे देखा। हेनरी चुपके-चुपके जाकर उनके पास ही छिपकर बैठ गया। लैली ने कहा—"टाम, तुमने मेरी जान बचाई है, मैं तुम्हारे सुख के लिये सब कुछ कर सकती हूँ।"

टाम—"लैली, मैं बदला नहीं चाहता।"

लैली—"टाम, फिर क्या चाहते हो ?"

टाम—"प्रेम का एक बूँद। लैली, मैं तुझे प्यार करता हूँ। तेरे विना जीवन व्यर्थ प्रतीत होता है, तेरे विना सुख नहीं।"

लैली चुप थी। उसके नेत्रों से अश्रु की धारा बह रही थी।

टाम ने फिर कहा—"लैली, मैं सदा से ही तेरे प्रेम में रँगा हूँ, किंतु मैंने कभी अपने हार्दिक भावों को तुझपर प्रकट नहीं होने दिया। लैली, बोलो—बोलो क्या तुम मुझसे प्रेम नहीं कर सकती ?"

लैली फिर चुप थी। उसकी आँखों से आँसू और वेग से गिरने लगे। कुछ समय तक निस्तब्धता रही। फिर टाम ने कहा—"लैली, मैं समझ गया कि तुम किसी दूसरे से प्रेम करती हो, परंतु मुझ पर कृपा करके इतना बतला दो कि क्या मैं भी कभी आशा कर सकता हूँ या नहीं ?"

लैली—"टाम, हेनरी के रहते हुए ऐसी आशा व्यर्थ है।"

टाम—"लैली, हेनरी के सुख में मैं कभी बाधा डालूँगा, परंतु प्रतिज्ञा करो कि मेरे इस भेद को हेनरी पर खुलने न दोगी।"।

लैली (सिसकते हुए)—"टाम, तुम देवता हो मैं एक अधम स्त्री।"

दोनों घर चले गए। हेनरी वहाँ खड़ा-खड़ा लगा—"टाम के सुख के लिये मुझे कठिन करना होगा।"

× × ×

दूसरे दिन टाम और लैली ने देखा कि हेनरी नहीं उसकी खाट पर एक पत्र मिला। उसमें लिखा था—

"टाम! लैली कहती है कि मेरे रहते वह तुम्हें नहीं कर सकती। तुम्हारे सुख के मार्ग में मैं बड़ा कंटक हूँ, इसी से तुम्हें और अपनी मातृभू छोड़कर जा रहा हूँ। कहाँ—सो नहीं कह सकता समस्त अपराध क्षमा करना।

—हेनं

टाम रो पड़ा। उसके मुख से निकला—"हेनरी, तु यह महान् त्याग अद्वितीय है। तुम सच्चे भाई हो।"

बहुत खोज की गई, किंतु हेनरी को फिर कि न देखा।

रामेश्वरप्रसाद श्रीवा

बहता हुआ फूल

फूल! असहाय सुकोमल फूल !
निठुर किन हाथों ने है हाय,
मसल फेंका तुमको इस भाँति ?
पड़े हो तुम सरिता के बीच
जहाँ बहता है तीव्र प्रवाह,
तरंगें उठती हैं बेढंग
और है जहाँ न जल की थाह।
आह नन्हें-से छोटे फूल,
तुम्हारा होगा कैसा हाल।
कहाँ तुम अतिशय कोमल फूल,
बना है जो सुषमा की खान,
कहाँ अति भीषण धारे रूप
कठिन लहरें ये वज्र समान।
कहाँ वन—वह कोयल की कूक
और अलिगण का मीठा प्यार,
कहाँ जल का भीषण निर्घोष
और सत्वर-गति क्रुद्ध बयार।
आह, निर्दय विधि ने किस भाँति
किया निर्दय परिवर्तन हाय
याद आता है तुमको क्या न

मनोरम वह सुंदर उद्यान,
खिले थे मृदु टहनी में जहाँ
अमियसम सिंचित रसकर पान।
याद आता है क्या वह काल
झुलाता था जब मृदुल समीर,
बिखर पड़ता था जब सौंदर्य
लगी रहती अलियों की भीर।
सुगंधित, पा तेरा संसर्ग
हुआ था जब समग्र उद्यान,
पथिक हो जाते थे बेहोश
निरख छविमय तेरी मुसकान।
आह, सपने में भी उस समय
हुआ होगा तुमको क्या ख़याल—
'तीव्र गति से है आता चला
भयानक पीड़ाओं का काल'।
हरे! कैसी विधि की यह नीति
और कितना निर्दय व्यापार।
क्षुद्र इस जीवन में उस रोज़
तुम्हारा था कितना सम्मान!
सभी आँखें थीं तेरी ओर
और था सबको तेरा ध्यान।
किंतु तुम वही, अकेले आज
झेलते हो हा कष्ट अनेक,
भयानक पीड़ाओं में हाय
नहीं है दिखता साथी एक।
बहे जाते हो तुम निरुपाय
भयानक सरिता में हो म्लान;
सिखाये जाते हो तुम किंतु
सुखों की अस्थिरता का ज्ञान।
अरे, जाओ हे सुंदर फूल!
यही है इस दुनिया की रीति।

यमुनाप्रसाद चौधरी 'नीरज'

चिड़चिड़ाते कमज़ोर
बच्चे
डोंगरे का
बालामृत
पीने से
तन्दुरुस्त, ताक़तवर, पुष्ट
व आनंदी बनते हैं।
क़स्बे-क़स्बे में बिकता है।
नक़ली दवा से ख़बरदार रहो।
मालिक—के० टी० डोंगरे कं० गिरगाँव, बंबई

उन्माद

(शेषांश)

(६)

जेनी ने जब मनहर का पत्र पाकर पढ़ा तो मुस्कराई । उसे मनहर की इच्छा पर शासन करने का ऐसा अभ्यास पड़ गया था कि इस पत्र से उसे ज़रा भी घबराहट न हुई । उसे विश्वास था कि दो-चार दिन चिकनी-चुपड़ी बातें करके वह उसे फिर वशीभूत कर लेगी । अगर मनहर की इच्छा केवल धमकी देना न होती, उसके दिल पर चोट लगी होती, तो वह अब तक यहाँ न होता । कब का वह स्थान छोड़ चुका होता । उसका यहाँ रहना ही बता रहा था कि वह केवल बँदरघुड़की दे रहा है ।

जेनी ने स्थिरचित्त होकर कपड़े बदले और तब इस तरह मनहर के कमरे में आई, मानो कोई अभिनय करने स्टेज पर आई हो ।

मनहर उसे देखते ही ज़ोर से ठट्ठा मारकर हँसा । जेनी सहमकर पीछे हट गई । इस हँसी में क्रोध या प्रतिकार न था । इसमें उन्माद भरा हुआ था । मनहर के सामने मेज़ पर बोतल और ग्लास रक्खा हुआ था । एक दिन में उसने न-जाने कितनी शराब पी ली थी । उसकी आँखों में जैसे रक्त उबला पड़ता था ।

जेनी ने समीप जाकर उसके कंधे पर हाथ रक्खा और बोली—क्या रात-भर पीते ही रहोगे ? चलो आराम से लेटो, रात ज़्यादा आ गई है । घंटों से बैठी तुम्हारा इंतज़ार कर रही हूँ । तुम इतने निष्ठुर तो कभी न थे ।

मनहर खोया हुआ-सा बोला—तुम कब आ गईं बागी, देखो मैं कब से तुम्हें पुकार रहा हूँ । चलो आज सैर कर आएँ । वहीं नदी के किनारे तुम अपना वही प्यारा गीत सुनाना जिसे सुनकर मैं पागल हो जाता हूँ । क्या कहती हो, मैं बेमुरौवत हूँ । यह तुम्हारा अन्याय है बागी । मैं क़सम खाकर कहता हूँ ऐसा एक दिन भी नहीं गुज़रा जब तुम्हारी याद ने मुझे रुलाया न हो ।

जेनी ने उनका कंधा हिलाकर कहा—तुम यह ऊल-जलूल बक रहे हो । बागी यहाँ कहाँ है ।

मनहर ने उसकी ओर अपरिचित भाव से दे कुछ कहा फिर ज़ोर से हँसकर बोला—मैं या मानूँगा बागी । तुम्हें मेरे साथ चलना होगा। व तुम्हारे लिये फूलों की एक माला बनाऊँगा...।

जेनी ने समझा यह शराब बहुत पी गए हैं। ब कर रहे हैं । इनसे इस वक़्त कुछ बातें करना व्यर्थ चुपके से कमरे के बाहर चली गई । उसे ज़रा-सी हुई थी । यहाँ उसका मूलोच्छेद हो गया । जिस आ का अपनी वाणी पर अधिकार नहीं, वह इच्छा पर अधिकार रख सकता है ।

उसी घड़ी से मनहर को घरवालों की रट-सी गई । कभी बागेश्वरी को पुकारता, कभी अम्माँ कभी दादा को । उसकी आत्मा अतीत में वि रहती, उस अतीत में जब जेनी ने काली छाया भाँति प्रवेश न किया था और बागेश्वरी अपने सरल से उसके जीवन में प्रकाश फैलाती रहती थी ।

दूसरे दिन जेनी ने जाकर उससे कहा—तुम शराब क्यों पीते हो ? देखते नहीं तुम्हारी क्या हो रही है ?

मनहर ने उसकी ओर आश्चर्य से देखकर क 'तुम कौन हो ?'

जेनी—क्या मुझे नहीं पहचानते ? इतनी भूल गए ?

मनहर—मैंने तुम्हें कभी नहीं देखा । मैं तुम्हें पहचानता ।

जेनी ने और अधिक बातचीत न की । उसने म के कमरे से शराब की बोतलें उठवा लीं और नौकरों ताकीद कर दी कि उसे एक घूँट भी शराब जाय । उसे अब कुछ-कुछ संदेह होने लगा ; क्योंकि हर की दशा उससे कहीं शंकाजनक थी जितनी

समझी थी। मनहर का जीवित और स्वस्थ रहना उसके लिये आवश्यक था। इसी घोड़े पर बैठकर वह शिकार खेलती थी। घोड़े के बग़ैर शिकार का आनंद कहाँ।

मगर एक सप्ताह हो जाने पर भी मनहर की मानसिक दशा में कोई अंतर न हुआ। न मित्रों को पहचानता, न नौकरों को। पिछले तीन बरसों का उसका जीवन एक स्वप्न की भाँति मिट गया था।

सातवें दिन जेनी सिविल सर्जन को लेकर आई, तो मनहर का कहीं पता न था।

(७)

पाँच साल के बाद बागेश्वरी का लुटा हुआ सोहाग फिर चेता। मा-बाप पुत्र के वियोग में रो-रोकर अंधे हो चुके थे। बागेश्वरी निराशा में भी आस बाँधे बैठी हुई थी। उसका मायका संपन्न था। बार-बार बुलावे आते, बाप आया, भाई आया, पर वह धैर्य और व्रत की देवी घर से न टली।

जब मनहर भारत में आया, तो बागेश्वरी ने सुना वह विलायत से एक मेम लाया है। फिर भी उसे आशा थी वह आएगा। लेकिन उसकी आशा पूरी न हुई। फिर उसने सुना वह ईसाई हो गया है और आचार-विचार त्याग दिया है। तब उसने माथा ठोंक लिया।

घर की अवस्था दिन-दिन बिगड़ने लगी। वर्षा बंद हो गई और सागर सूखने लगा। घर बिका, कुछ ज़मीन थी वह बिकी, फिर गहनों की बारी आई, यहाँ तक कि अब केवल आकाशी वृत्ति थी। कभी चूल्हा जल गया, कभी ठंढा पड़ा रहा।

एक दिन संध्या समय वह कुएँ पर पानी भरने गई थी कि एक थका हुआ, जीर्ण, विपत्ति का मारा जैसा आदमी आकर कुएँ की जगत पर बैठ गया। बागेश्वरी ने देखा तो मनहर! उसने तुरंत घूँघट बढ़ा लिया। आँखों पर विश्वास न हुआ, फिर भी आनंद और विस्मय से हृदय में फुरेरियाँ उड़ने लगीं। रस्सी और कलसा कुएँ पर छोड़कर लपकी हुई घर आई और सास से बोली—अम्माजी, ज़रा कुएँ पर जाकर देखो, कोई आया है। सास ने कहा—तू पानी लाने गई थी, या तमाशा देखने। घर में एक बूँद पानी नहीं है। कौन आया है कुएँ पर?

“चलकर देख लो न।”

“कोई सिपाही-प्यादा होगा। अब उनके सिवा और कौन आनेवाला है। कोई महाजन तो नहीं है?”

“नहीं अम्मा, तुम चलो क्यों नहीं चलतीं।”

बूढ़ी माता भाँति-भाँति की शंकाएँ करती हुई कुएँ पर पहुँची, तो मनहर दौड़कर उनके पैरों से चिमट गया। माता ने उसे छाती से लगाकर कहा—तुम्हारी यह क्या दशा है मानू? क्या बीमार हो? असबाब कहाँ है?

मनहर ने कहा—पहले कुछ खाने को दो अम्माँ। बहुत भूखा हूँ। मैं बड़ी दूर से पैदल चला आ रहा हूँ।

गाँव में ख़बर फैल गई मनहर आया है। लोग उसे देखने दौड़े। किस ठाट से आया है। बड़े ऊँचे पद पर है, हज़ारों रुपए पाता है। अब उसके ठाट का क्या पूछना। मेम भी साथ आई है या नहीं?

मगर जब आकर देखा तो आफ़त का मारा आदमी, फटे हालों, कपड़े तार-तार, बाल बढ़े हुए जैसे जेल से आया हो।

प्रश्नों की बौछार होने लगी—हमने तो सुना था तुम किसी बड़े ऊँचे पद पर हो?

मनहर ने जैसे किसी भूली बात को याद करने का विफल प्रयास करके कहा—मैं! मैं तो किसी ओहदे पर नहीं हूँ।

‘वाह! तुम विलायत से मेम नहीं लाए थे?’ मनहर ने चकित होकर कहा—‘विलायत! विलायत कौन गया था?’

“अरे! भंग तो नहीं खा गए हो! तुम विलायत नहीं गए थे?”

मनहर मूढ़ों की भाँति हँसा—मैं विलायत क्या करने जाता।

“अजी तुमको वज़ीफ़ा नहीं मिला था? यहाँ से तुम विलायत गए। तुम्हारे पत्र बराबर आते थे। अब तुम कहते हो मैं विलायत गया ही नहीं। होश में हो, या हम लोगों को उल्लू बना रहे हो।”

मनहर ने उन लोगों की ओर आँखें फाड़कर देखा और बोला—मैं तो कहीं नहीं गया। आप लोग जाने क्या कह रहे हैं।

अब इसमें संदेह की गुंजाइश न रही कि वह अपने होश-हवास में नहीं है। उसे विलायत जाने के पहले की सारी बातें याद थीं। गाँव और घर के हरेक आदमी

को पहचानता था, सबसे नम्रता और प्रेम से बातें करता था, लेकिन जब इँगलैंड, अँगरेज़ बीबी और ऊँचे पद का ज़िक्र आता, तो भौचक्का होकर ताकने लगता। बागेश्वरी को अब उसके प्रेम में एक अस्वाभाविक अनुराग दीखता था, जो बनावटी मालूम होता था। वह चाहती थी कि उसके व्यवहार और आचरण में पहले की-सी बेतकल्लुफ़ी हो। वह प्रेम का स्वाँग नहीं, प्रेम चाहती थी। दस ही पाँच दिनों में उसे ज्ञात हो गया कि इस विशेष अनुराग का कारण बनावट या दिखावा नहीं, बरन् कोई मानसिक विकार है। मनहर ने माँ बाप का इतना अदब पहले कभी न किया था। उसे अब मोटे से मोटा काम करने में भी संकोच न था। वह जो बाज़ार से सागभाजी लाने में अपना अनादर समझता, अब कुएँ से पानी खींचता, लकड़ियाँ फाड़ता और घर में झाड़ू लगाता था। और अपने घर में ही नहीं, सारे महल्ले में उसकी सेवा और नम्रता की चर्चा होती थी।

एक बार महल्ले में चोरी हुई। पुलिस ने बहुत दौड़धूप की, पर चोरों का पता न चला। मनहर ने चोरों का पता ही नहीं लगा दिया, बल्कि माल भी बरामद करा लिया। इससे आसपास के गाँवों और महल्लों में उसका यश फैल गया। कोई चोरी हो जाती तो लोग उसके पास दौड़े आते, और अधिकांश उसके उद्योग सफल होते थे। इस तरह उसकी जीविका की एक व्यवस्था हो गई। वह अब बागेश्वरी के इशारों का गुलाम था। उसी की दिलजोई और सेवा में उसके दिन कटते थे। अगर उसमें विकार या बीमारी का कोई लक्षण था, तो इतना ही। यही सनक उसे सवार हो गई थी।

बागेश्वरी को उसकी दशा पर दुख होता था, पर उसकी यह बीमारी उस स्वास्थ्य से उसे कहीं प्रिय थी जब वह उसकी बात भी न पूछता था।

(८)

६ महीनों के बाद एक दिन जेनी मनहर का पता लगाती हुई आ पहुँची। हाथ में जो कुछ था, वह सब उड़ा चुकने के बाद अब उसे किसी आश्रय की खोज थी। उसके चाहनेवालों में कोई ऐसा न था, जो उसकी आर्थिक सहायता करता। शायद अब जेनी को कुछ ग्लानि भी आती थी। वह अपने किए पर लज्जित थी।

द्वार पर हार्न की आवाज़ सुनकर मनहर निकला और इस प्रकार जेनी को देखने लगा उसे कभी देखा नहीं है।

जेनी ने मोटर से उतरकर उससे हाथ मिलाया अपनी बीती सुनाने लगी—तुम इस तरह मुझसे कर क्यों चले आए? और फिर आकर एक पत्र भी लिखा। आख़िर मैंने तुम्हारे साथ क्या बुराई की फिर मुझमें कोई बुराई देखी थी, तो तुम्हें चाहि मुझे सावधान कर देते। छिपकर चले आने से क्या हुआ। ऐसी अच्छी जगह मिल गई थी, वह भी हा निकल गई।

मनहर काठ के उल्लू की भाँति खड़ा रहा।

जेनी ने फिर कहा—तुम्हारे चले आने के बा ऊपर जो संकट आए, वह सुनाऊँ तो तुम घबड़ा जाओ मैं इसी चिंता और दुख से बीमार हो गई। तुम्हारे मेरा जीवन निरर्थक हो गया है। तुम्हारा चित्र मन को ढारस देती थी। तुम्हारे पत्रों को आदि से तक पढ़ना मेरे लिये सबसे मनोरंजक विषय था। मेरे साथ चलो। मैंने एक डाक्टर से बातचीत की वह मस्तिष्क के विकारों का डाक्टर है। मुझे आशा उसके उपचार से तुम्हें लाभ होगा।

मनहर चुपचाप विरक्तभाव से खड़ा रहा, मानों कुछ देख रहा है न सुन रहा है।

सहसा बागेश्वरी निकल आई। जेनी को देखते ताड़ गई कि यही मेरी युरोपियन सौत है। वह उसे आदर-सत्कार के साथ भीतर ले गई। मनहर भी पीछे-पीछे चला गया।

जेनी ने टूटी खाट पर बैठते हुए कहा—इन्होंने ज़िक्र तो तुमसे किया ही होगा। मेरी इनसे शादी हुई है।

बागेश्वरी बोली—यह तो मैं आपको देखते ही गई थी।

जेनी—इन्होंने कभी मेरा ज़िक्र नहीं किया?

बागेश्वरी—कभी नहीं। इन्हें तो कुछ याद ही आपको तो यहाँ आने में बड़ा कष्ट हुआ होगा?

जेनी—महीनों के बाद तब इनके घर का पता वहाँ से बिना कुछ कहे-सुने चल दिए।

"आपको कुछ मालूम है इन्हें यह शिकायत है

“शराब बहुत पीने लगे थे। आपने किसी डाक्टर को नहीं दिखाया?”

“हमने तो किसी को नहीं दिखाया।

जेनी ने तिरस्कार करके कहा—क्यों? क्या आप इन्हें हमेशा बीमार रखना चाहती हैं।

बागेश्वरी ने बेपरवाई से जवाब दिया—मेरे लिये तो इनका बीमार रहना इनके स्वस्थ रहने से कहीं अच्छा है। तब वह अपनी आत्मा को भूल गए थे, अब उसे पा गए।

फिर उसने निर्दय कटाक्ष करके कहा—मेरे विचार में तो वह तब बीमार थे, अब स्वस्थ हैं।

जेनी ने चिढ़कर कहा—नानसेंस! इनकी किसी विशेषज्ञ से चिकित्सा करानी होगी। यह जासूसी में बड़े कुशल हैं। इनके सभी अफ़सर इनसे प्रसन्न थे। वह चाहें तो अब भी इन्हें वह जगह मिल सकती है। अपने विभाग में ऊँचे-से-ऊँचे पद तक पहुँच सकते हैं। मुझे विश्वास है कि इनका रोग असाध्य नहीं है, हाँ विचित्र अवश्य है। आप क्या इनकी बहन हैं?

बागेश्वरी ने मुसकिराकर कहा—आप तो गाली दे रही हैं। वह मेरे स्वामी हैं।

जेनी पर मानो वज्रपात-सा हुआ। उसके मुख पर से नम्रता का आवरण हट गया और मन में छिपा हुआ क्रोध जैसे दाँत पीसने लगा। उसके गरदन की नसें तन गईं, दोनों मुट्ठियाँ बँध गईं। उन्मत्त होकर बोली—बड़ा दग़ाबाज़ आदमी है। इसने मुझे बड़ा धोखा दिया। मुझसे इसने कहा था मेरी स्त्री मर गई है। कितना बड़ा धूर्त है। यह पागल नहीं है। इसने पागलपन का स्वाँग भरा है। मैं अदालत से इसकी सज़ा कराऊँगी।

क्रोधावेश के कारण वह काँप उठी। फिर रोती हुई बोली—इस दग़ाबाज़ी का मैं इसे मज़ा चखाऊँगी। ओह! इसने मेरा कितना घोर अपमान किया है। ऐसा विश्वासघात करनेवाले को जो दंड दिया जाय, वह थोड़ा है। इसने कैसी मीठी-मीठी बातें करके मुझे फाँसा। मैंने ही इसे जगह दिलाई। मेरे ही प्रयत्नों से यह बड़ा आदमी बना। इसके लिये मैंने अपना घर छोड़ा, अपना देश छोड़ा, और इसने मेरे साथ ऐसा कपट किया।

जेनी सिर पर हाथ रखकर बैठ गई। फिर तैश में उठी और मनहर के पास जाकर उसको अपनी ओर खींचती हुई बोली—मैं तुझे ख़राब करके छोड़ूँगी। तूने मुझे समझा क्या है...।

मनहर इस तरह शान्त भाव से खड़ा रहा मानो उससे कोई प्रयोजन नहीं है।

फिर वह सिंहिनी की भाँति मनहर पर टूट पड़ी और उसे ज़मीन पर गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठी। बागेश्वरी ने उसका हाथ पकड़कर अलग कर दिया और बोली—तुम ऐसी डायन न होतीं, तो उनकी यह दशा ही क्यों होती।

जेनी ने तैश में आकर जेब से पिस्तौल निकाला और बागेश्वरी की तरफ़ बढ़ी। सहसा मनहर तड़पकर उठा, उसके हाथ से भरा हुआ पिस्तौल छीन कर फेंक दिया और बागेश्वरी के सामने खड़ा हो गया। फिर ऐसा मुँह बना लिया मानो कुछ हुआ ही नहीं।

उसी वक़्त मनहर की माता दोपहरी की नींद सोकर उठीं और जेनी को देखकर बागेश्वरी की ओर प्रश्न की आँखों से ताका।

बागेश्वरी ने उपहास के भाव से कहा—यह आपकी बहू हैं।

बुढ़िया तिनककर बोली—कैसी मेरी बहू। यह मेरी बहू बनने जोग है बँदरिया। लड़के पर न-जाने क्या कर-करा दिया, अब छाती पर मूँग दलने आई है।

जेनी एक क्षण तक ख़ूनभरी आँखों से मनहर की ओर देखती रही। फिर बिजली की भाँति कौंदकर उसने आँगन में पड़ा हुआ पिस्तौल उठा लिया और बागेश्वरी पर छोड़ना चाहती थी कि मनहर सामने आ गया। वह बेधड़क जेनी के सामने चला गया, उसके हाथ से पिस्तौल छीन लिया और अपनी छाती में गोली मार ली।

प्रेमचंद

छाया-दर्शन

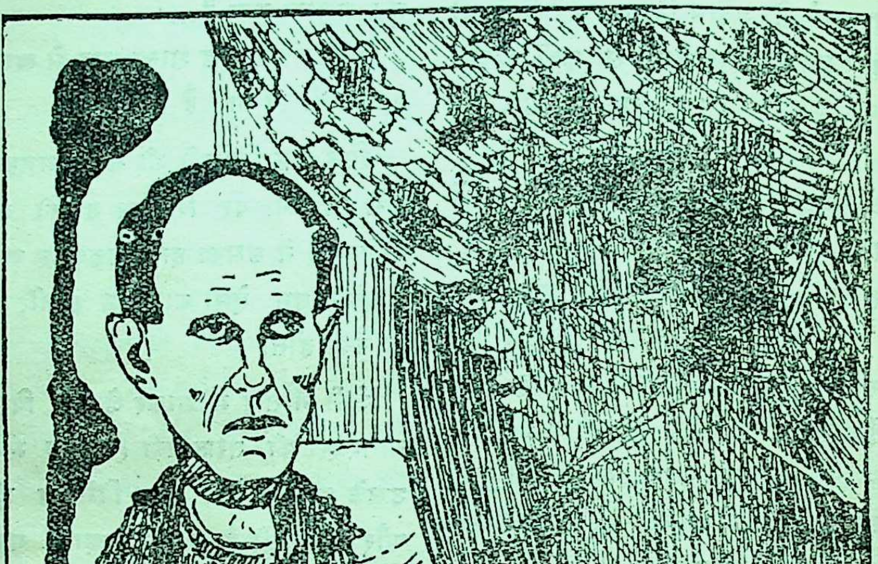

लार्ड अर्विन और ब्रेल्सफोर्ड

आलोचना और पुस्तक-परिचय

The Rival of Dr. Tagore (अँगरेज़ी)—लेखक, प्रो॰ शैवाल, 'मोहिंद्र' कालेज, पटियाला; प्रकाशक, वही; मूल्य लिखा नहीं ।

पुस्तक के शीर्षक से यह कल्पना की जाती है कि उसमें डा॰ टगोर के प्रतिद्वंद्वी कवि के जीवन या उसके काव्य पर ही प्रकाश डाला गया है, परंतु पुस्तक पढ़ने से विदित होता है कि लेखक महोदय ने डा॰ टगोर के प्रतिद्वंद्वी के जीवन पर कम, डा॰ टगोर के शांति-निकेतन के जीवन पर अधिक प्रकाश डाला है। आपने 'शांतिनिकेतन' के वातावरण में विश्व-कवि की वह विश्व-वाणी नहीं सुनी, जो आज विश्व में समादर की वस्तु हो रही है। आपको वहाँ 'हाथी के दाँतों' के दर्शन हुए (I wonder if the poets too, have double hearts like the teeth of elephant). लेखक अपने 'दर्द दीवाने' पंजाबी युवक-कवि का संदेश लेकर शांति-निकेतन पहुँचे थे। वहाँ आपको रवि बाबू से मिलने और आश्रमवासियों के हृदय तक पहुँचने में जो कटु अनुभव हुए, उसी का फल यह 'पुस्तक' है। लेखक 'कवि' के काव्यरूप को शांति-निकेतन के 'राजसी उत्तरायण' में न देख सके। आपको वहाँ प्रांतीयता, आडम्बर-प्रियता और हृदयहीनता ही देख पड़ी और देख पड़ी 'परस्परं प्रशंसन्ति, अहो रूपमहोध्वनि:' की भावना। विश्व-कवि के अन्य आलोचकों का भी यह मत है कि वह अपने जीवन का अपने काव्य से तादात्म्य नहीं स्थापित कर सके। श्री॰ पूर्णसिंह ने उनकी कविता की आलोचना करते हुए लिखा था—"Tagore's mysticism is too abstract and impersonal in nature." 'टगोर' जयदेव के समान अपने काव्य में तन्मय नहीं दिखते। उनके 'विश्वप्रेम' ने उन्हीं की स्वाभाविक रागात्मिका वृत्तियों से उनकी चिंतना का सामंजस्य नहीं होने दिया। इसी से यदि प्रो॰ शैवाल को विश्व-कवि का 'हृदय' उनकी 'वीणा की झंकार' से पृथक् देख पड़ता है, तो आश्चर्य ही क्या है! प्रो॰ शैवाल ने इस पुस्तक में पंजाब के एक अज्ञात कवि के हृदय का किंचित् परिचय कराया है। साथ ही यह विश्वास भी दिलाया है कि यह कवि 'रवींद्र' की 'कल्पना' की उड़ान से भी बहुत ऊँचा उड़ा है। आपने अपने कथन के समर्थन में रवि बाबू और पंजाबी कवि की एक-दो कविताओं की तुलनात्मक आलोचना

भी की है। स्त्री के रहस्यमय सौंदर्य को मनुष्य की कल्पना छू भी नहीं सकती—इस भाव की ओर इंगित करते हुए पंजाबी कवि कहता है—

> Even in the fullness of thy charms,
> Thou art too vagul like moon,
> We can not pierce thy mystic shroud,
> Then why shouldst thou lurk there.
> Behind these masks and veils ?

'पंजाबी कवि' की एक कल्पना की बानगी और लीजिए—

> The gardener rears a rose but can't
> Control its scent, it runs
> With any breeze it likes.

(माली गुलाब को पनपाता है, पर वह उसकी सुरभि को अपने तक ही सीमित नहीं रख सकता—वह उसके वश में नहीं रह सकती। वह किसी भी समीर के झोंके के साथ बह जाती है।) स्थानाभाव से हम पंजाबी कवि के सुकुमार हृदय से प्रवाहित होनेवाली और भी मीठी काव्य-धाराओं का परिचय नहीं दे सकते। तो भी हमसे उसकी निम्नलिखित पंक्तियों के उद्धृत करने का लोभ-संवरण नहीं हो सका। प्रेमिका के हृदयालिंगन के पूर्व यदि मेरी मृत्यु हो जाय, तो हे देव! मेरे इन आँसुओं को, जिन्हें मैं तेरे अनंत अंचल में बिखेरे जाता हूँ, 'उस' तक पहुँचा देना—

> Poor Lord, I go for thee, But if
> I die before I cross
> Her high threshold, I pray, convey
> My tears which I for her
> Leave here in thy Eternity.

हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि प्रो० शैवाल पंजाब के इस उत्कृष्ट कवि को साहित्यिक जगत् में रवि बाबू से टक्कर लेने के लिये उपस्थित कर रहे हैं। हम किसी कवि के व्यक्तित्व के भक्त नहीं, हम तो 'कविता' के सौंदर्य के उपासक हैं। यदि शैवालजी के 'कवि' हमें टगोर की कल्पना से भी ऊँचे जगत् में ले जाते हैं, तो हमें उनकी महानता स्वीकार करने में आपत्ति न होगी। हमें दुःख है, जैसा कि प्रो० शैवाल ने अपनी भूमिका में लिखा है कि कुछ हिंदी के प्रकाशक पंजाबी कवि की, रवि बाबू की कवि-ताओं से तुलना प्रदर्शित करनेवाली, पुस्तकों को प्रका करने में भयभीत हो रहे हैं। इसी से उन्हें अपनी पु के विरुद्ध अँगरेज़ी में पुस्तिका को प्रकाशित करना रहा है। प्रो० साहब की शुद्ध साहित्यिक भावना क़द्र करते हुए भी हम उनकी आलोचना-शैली से भिन्न मत रखते हैं। आपने इस पुस्तक में रवि के प्रति 'खीझमयी भावना' रक्खी है—आलोचना Tone कहीं-कहीं अधिक उग्र एवं उच्छृंखल भी हो है। पुस्तक को आदि से अंत तक पढ़ने से यह होता है कि कोई अपमानित 'पंजाबी भाई' किसी सानी 'बंगाली माशा' से 'मल्लयुद्ध' करने को पड़ा है। आपकी 'भाषा' में इसी भावना की 'लल है। फिर भी, पुस्तक पढ़ने में कम आनंद नहीं पुस्तक में व्यंग्य-चुटकियों की कमी नहीं। लेखक किसी घटना का वर्णन करना ख़ूब जानते हैं। भाषा निर्दो काव्यमय है। साहित्यिक जगत् की सीमा को 'प्रांती से बाँध देने के भी हम हामी नहीं हैं। प्रो० शैवा कवि की रचनाएँ यदि काव्य की ऊँची सतह पर होने योग्य होंगी, तो वह शैवालजी के ही नहीं, पंजा नहीं, भारत के ही नहीं, विश्व के सर्ववंद्य कवि हम शैवालजी के 'पंजाबी कवि' की कविताओं के संग्रह की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हैं।

विनयमोहन

× × ×

मोक्षप्रदीप (केरलीय भाषा से अनुवादित)—लेखक, स्वामी ब्रह्मानंद 'शिवयोगी'; अनुवादक व प्रकाशक निष्कलानंद; पृष्ठ-संख्या ३८८; स्कूली साइज़, काग़ उत्तम; मूल्य २॥); मिलने का पता—स्वामी निष्क देहरादून (यू० पी०)।

इस ग्रंथ में मूल-लेखक स्वामी ब्रह्मानंद 'शिवयो का एक चित्र और आप ही की लिखी एक की चटपटी भूमिका भी है एवं आदि-अंत में बातों का और भी संपुट है। इसकी प्रकर के नामों में—जाति-भेद-खंडन-प्रकरण, कलिका खंडन-प्रकरण, यज्ञादि-खंडन-प्रकरण, भिक्षाटन प्रकरण आदि और 'मनःसिद्धौ जातिभेद-त्याग 'मनःसिद्धौ शास्त्रादि-निराकरण-सिद्धिः' इस मनःसिद्धौ के साथ प्रायः १८ प्रकरण, इनके

दूसरे नामों के कुल मिलाकर ३८ प्रकरण हैं । इस पुस्तक को देखने से ज्ञात होता है कि उक्त शिवयोगीजी महाराज ने वेद से लेकर साधारण विषय तक के ग्रंथों को अपनी अलौकिक योगशक्ति के प्रभाव से विचार की कसौटी पर घिस डाला एवं पूर्णब्रह्म को झटपट हथियाकर ख़ूब ही बारीकी से पहचाना है, और प्राचीन-नवीन दार्शनिकों के अज्ञान, भ्रम, माया, मोह को एकबारगी ही कूट-पीटकर देशनिकाला दे दिया है । समझ में नहीं आता कि वर्तमान युग में किन साधन-सामग्रियों से इस मोक्षप्रदीप का स्वागत करके जिज्ञासुगण भव-सागर के पार उतरने में सफल होंगे, किस मठ या पीठ में इस योगाभ्यास के लिये समाधि लगानी पड़ेगी ? और उसके लिये उपयुक्त पात्र कहाँ से सर्वतोभद्र मिल सकेंगे ? क्योंकि ऐसे मार्ग के पथिकों को '...मणिराकरोद्भवः प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभौ' होना पड़ेगा । अस्तु ! स्वामीजी ने दोनों हाथ लड्डू बाँटे हैं । जिसके भाग्य में बदा होगा, उसी को स्वाद का भी अक्षय सुख मिलेगा ।

हर्ष की बात है कि सांप्रत काल में हिंदी-साहित्य की सेवा आध्यात्मिक, दार्शनिक आदि तलस्पर्शी विचार-वैचित्र्यों के द्वारा भी भर-पेट की जा रही है ।

× × ×

श्रीहस्तसंजीवनम्—श्रीमहामहोपाध्याय श्रीमेघविजयगणिविनिर्मितम् । संक्षिप्तलहर्याख्यव्याख्यया विभूषितम् । जैनशिल्पज्योतिषविद्यामहोदधि-श्रीमज्जैनाचार्यजयसूरीश्वरचरणान्तेवासिना प्रतापमुनिना संशोधितम् । तच्च प्रकाशिका मुनिश्रीमोहनलालजीजैनग्रंथमाला, इंदोर सिटी (मालवा), वीर-संवत् २४५६ । पृष्ठ-संख्या २३८+५६=२६४; मूल्य ३); पता—मुनि श्रीमोहनलालजी जैनग्रंथमाला-कार्यालय, पीपली बाज़ार, द्राखवाला जैन-मंदिर, इंदौर सिटी (मालवा) ।

यह जैन-संप्रदाय के अनुसार हस्तरेखा-विचार (Palmistry) पर संस्कृत में श्लोकबद्ध एवं टीका-समेत लंबा-चौड़ा ग्रंथ है । आदि में संपादक प्रताप मुनिजी की लिखी तीन पत्रों की संस्कृत में ही ऐतिहासिक भूमिका भी है । और तीन चित्र हैं, जिनके नीचे क्रम से लिखा है—(१) विश्ववंद्य परमपूज्य प्रातःस्मरणीय मुनि महाराज- श्रीमोहनलालजी महाराज, (२) परमपूज्य प्रातःस्मरणीय मुनि महाराज श्रीमोहनलालजी के पट्टधर शिष्य पन्यासजी श्रीहर्षमुनिजी महाराज, (३) श्रीमंधिर स्वामी शासनाधिपति अधिष्ठायिका पंचागुली महादेवी । यह तीसरी महादेवीमूर्ति सिंहवाहिनी, अष्टादश भुजाओं में भिन्न-भिन्न आयुधों से सज्जित है । यह हाथ की पाँच उँगलियों में निवास करनेवाली महादेवी हैं । इन्हीं के अखंड प्रताप से यह 'हस्तसंजीवनम्' नाम सार्थक जानना चाहिए । इसके सिवा भिन्न-भिन्न हस्तचित्र कई हैं और बड़ी गहरी छान-बीन करके शुभाशुभ फलों का विचार किया गया है तथा कुछ अधिक मनोनियोग से समझ में आता है ; क्योंकि 'नारिकेलफलसम्मितं वचः' वाली बात है । जैनपंडितों के सिवा दूसरे लोग भी टक्कर लेने से लाभ उठा सकते हैं ।

इन दिनों अँगरेज़ी, बँगला, हिंदी और संस्कृत में दो-चार उत्तम ग्रंथ इस विषय पर प्रकाशित हो चुके हैं । लखनऊ-नवलकिशोर-प्रेस के प्राचीन आचार्य श्रीशक्तिधर सुकुलजी का ग्रंथ, जो कई बँगला-ग्रंथों के आधार पर रचा गया है, सर्वसाधारण के प्रयोजनीय है । कई वर्ष हुए कलकत्ते के 'हिंदी-वंगवासी' आफ़िस से सामुद्रिक का एक छोटा संस्कृत-ग्रंथ हिंदी-अनुवाद के साथ निकला था । उसका आरंभ 'समुद्र उवाच' से किया गया है । समय ने पलटा खाया है, सत्य की खोज में लोग तत्पर हैं ।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

× × ×

डाल्टन-प्रणाली—लेखक, डाक्टर रत्नसिंह रावत ; प्रकाशक, स्वाधीन प्रेस, अल्मोड़ा; पृष्ठ-संख्या ६५; मूल्य ॥)

इस समय शिक्षक-समुदाय के सामने यह बहुत बड़ा प्रश्न है कि प्रारंभिक शिक्षा की क्या प्रणाली हो । जनता की ओर से यह शर्त लगी हुई है कि प्रणाली ऐसी हो, जिससे माता-पिता तथा सरकार पर ख़र्च का भार कम हो । यों तो पाश्चात्य देशों में अनेक शिक्षाविधियाँ निकली हैं, परंतु वे हमारे लिये उस समय तक उपयोगी नहीं हो सकतीं, जब तक हम उन्हें सस्तगी की कसौटी पर न कस लें ।

इधर कुछ समय से पाश्चात्य देशों में प्रारंभिक शिक्षा के लिये किंडर-गार्टन तथा मांटसीरी-प्रणाली का और माध्यमिक शिक्षा के लिये डाल्टन-प्रणाली का प्रचार किया जा रहा है । अस्तु, देश की आर्थिक स्थिति तथा उसमें

अविद्या का विस्तार देखते हुए यह निश्चय करना है कि शिक्षाक्षेत्र में इन प्रणालियों का कहाँ तक प्रचार हो सकता है और यदि हो सकता है, तो किस रूप में।

इन प्रणालियों का प्रचार पाश्चात्य देशों के शिक्षा-विकास की उस अवस्था में हुआ है, जब वहाँ अविद्या का प्रश्न हल हो चुका है। वहाँ ६० फ़ी सदी जनता शिक्षित हो गई है। इस शिक्षा से देशों की समृद्धि बढ़ गई है और उनकी सामाजिक दशा में भी परिवर्तन हो गया है। अब वे शिक्षाविधि को उन्नत करने की फ़िक्र में हैं। हमारे यहाँ अभी अविद्या का प्रश्न ही नहीं हल हो पाया है, इसलिये शिक्षाविधि को उन्नत करने की ओर अभी जनता का उतना ध्यान नहीं है, जितना विस्तार की ओर।

परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि पाश्चात्य देशों ने इस ओर जो ज्ञानप्राप्ति की है, उससे हम लाभ न उठावें और अपनी शिक्षाप्रणाली की उन्नति न करें। इस विचार से हम प्रस्तुत पुस्तक का स्वागत करते हैं और देहात के प्रारंभिक तथा माध्यमिक शिक्षालयों के अध्यापकों से अनुरोध करते हैं कि वे उस पुस्तक का मंथन करें और इन पाश्चात्य प्रणालियों के सिद्धांतों के अनुसार अपनी पढ़ाई के ढंग को उन्नत करने का प्रयत्न करें। शर्त यही है कि पढ़ाई का ढंग बदलते समय इतना वे अवश्य देख लें कि नए ढंग से ख़र्च तो नहीं बढ़ रहा है। यदि नए ढंग से ख़र्च कम हो जाय, तो और भी अच्छा हो।

डाल्टन-प्रणाली की ओर ध्यान से देखिए, तो मालूम होगा कि यह हमारी गुरुशालाओं की पाठ्य-प्रणाली का पश्चिमी अनुरूप-मात्र है। हमारे गुरुजी का ढंग यह था कि ४० या ५० लड़के बैठे हैं, कोई हिसाब कर रहा है, कोई हिंदी पढ़ रहा है, कोई जोड़-बाक़ी लगा रहा है, तो कोई ब्याज-बट्टे तक पहुँच गया है; कोई अक्षर-ज्ञान तक पहुँचा है, तो कोई बही लिखने योग्य भी है—सभी को गुरुजी एक साथ पढ़ा रहे हैं, सब अपनी-अपनी चाल से उन्नति कर रहे हैं। यही ढंग डाल्टन-प्रणाली में है। भेद केवल इतना है कि लड़कों को अपना-अपना काम बता दिया जाता है और अध्यापक नियत अवधि पर उसकी जाँच करते रहते हैं। अँगरेज़ी ढंग की डाल्टन-प्रणाली में काग़ज़ और किताबों का ख़र्च बहुत बढ़ जाता है।

परंतु देहात की माध्यमिक शालाओं में ख़र्च बढ़ाने ढंग नहीं रखना चाहिए। लड़के स्लेट या तख़्ती पर करके बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। उनके पाठ्य-पुस्तक का ख़र्च ही यथेष्ट है। यदि सामान की आवश्यकता हो, तो देहात ही से वस्तुओं द्वारा वह तैयार किया जाय। चित्रों को कर उनके द्वारा पढ़ाने में उतना आनंद नहीं है, काले तख़्ते पर खरिया से चित्र बनाकर पढ़ाने में है।

प्रस्तुत पुस्तक में खेल द्वारा प्रारंभिक शिक्षा के ढंग बताए गए हैं, उनमें ख़र्च बढ़ने की संभावना मालूम होती। लेखक महोदय अपने अनुभव से रहे हैं, इसलिये आशा है कि पुस्तक में आपने जिस प्रणाली के उदाहरण दिए हैं, वे मार्गप्रदर्शन के अध्यापकों को यथेष्ट होंगे। हमारा विचार तो यह है कि यदि इन नवीन प्रणालियों का समझदारी से किया जाय, तो शिक्षा का ख़र्च प्रति विद्यार्थी कम सकता है; क्योंकि प्रचलित प्रणाली में बचत की क़ाफ़ी गुंजाइश है।

कालिदास

× × ×

सिद्धप्रयोगपारिजात—लेखक और प्रकाशक, मुरारीलाल शर्मा वैद्यशास्त्री, हवेली खरगपुर (मुंगेर); मँझोला (डबलक्राउन १६ पेजी); छपाई और काग़ज़ जनक; पृष्ठ-संख्या १३८; मूल्य १)

श्रीपं० मुरारीलालजी वैद्यशास्त्री, मालूम होता चिकित्सा का कार्य बहुत दिनों से कर रहे हैं। इस में उन्होंने अपने अनुभूत शास्त्रीय, गुरु-परंपरागत अन्य प्रकार से उपलब्ध प्रयोगों का संग्रह छपाया। आपका कहना है कि "मेरे ३० वर्ष बल्कि इससे २-४ वर्ष अधिक के अनुभव से जो जाना गया है आयुर्वेद-समुद्र से उत्तमोत्तम निकाला हुआ रत्न परंपरा से तथा पुरानी हस्तलिखित पुस्तक के (से) बार आजमाया हुआ प्रत्यक्ष फलप्रद प्रयोग साधारण मनुष्यों व वैद्यों के लिये निष्कपट भाव लिखा जाय, तो आयुर्वेद की उन्नति किसी अंश में हो।" इसी के आगे आपने लिखा है—

"अनुभूत प्रयोगों का भूत आज समस्त संसार आयुर्वेद-प्रेमियों के मस्तक पर चढ़ा हुआ है।

आयुर्वेद के समस्त प्रयोग अनुभूत हैं, मिथ्या एक भी नहीं, कारण त्रिकालज्ञ तपोनिष्ठ महर्षियों की तपोबल से सहस्रों वर्ष की आयु होती थी और अनेकानेक बार का आज़माया हुआ प्रयोग ही लिखते थे, बिना आज़माया एक भी नहीं, किंतु जैसी हालत में जो प्रयोग चलाना चाहिए, यह साधारण मनुष्य नहीं जानते, वैद्यवर जानते हैं और बिना निदान यानी बग़ैर रोग की पहचान हुए, कोई भी उत्तम-से-उत्तम प्रयोग रहे, लाभ नहीं करता।"

हम आपकी इन बातों से सहमत हैं। आशा है, समझदार वैद्य और सद्गृहस्थ लोग आपके इन प्रयोगों का अनुभव करके लाभ उठावेंगे।

× × ×

अनुभूत बालचिकित्सा—लेखक, प्रकाशक, आकार, छपाई, कागज़ आदि सब पूर्वोक्त; पृष्ठ-संख्या ८७ और अंत में ६ पृष्ठ का परिशिष्ट; मूल्य ॥=)

पुस्तक का विषय उसके नाम से ही प्रकट है।

दोनों पुस्तकें प्रकाशक से प्राप्य।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

कामिनिया ऑईल का क्या काम है ?

KAMINIA
OIL
for
HAIR

यदि
दिमाग़ को शान्ति देना,
आवश्यकतानुसार बालों को खूराक पहुँचाना,
बालों को जीवनतत्त्व प्रदान करना,
अपने दिमाग़ को ताज़ा तथा सफलीभूत बनाना,
बालों को लम्बा और चमकदार रेशम-तुल्य बनाना
हो, तो इसको इस्तेमाल कीजिए

आजकल की वर्तमान स्थिति में अनेकों प्रकार के दूसरे-दूसरे नाम के तेल निकल रहे हैं, जिनके उपयोग से आपको तेलों के प्रति अश्रद्धा आती रहती है, परन्तु यहाँ तो लाखों व्यक्ति इसकी प्रशंसा करके गारंटी देते हैं

कि,

कामिनिया ऑईल ही बालों का सर्वस्व है। हरएक मंगलमय त्योहारों के अरुणोदय में अपने केश-कलापों को कामिनिया ऑइल से सँवारिए। क़ीमत प्रति शीशी १)

प्रत्येक शहर तथा गाँव में प्रसिद्ध दूकानदार से मिल सकता है—बाहर से मँगाने में वी. पी. ख़र्च ।=) पृथक् पड़ता है ३ शीशी का २॥=) पो० ख़र्च ॥।) आना पृथक्। आध आने के टिकट आने पर नमूना शी० मुफ़्त भेजा जाता है।

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)

रुमाल पर कुछ बूँद छिड़क देने से फुलवारी की तरह ख़ुशबू पसर जाती है। आज ही १ शीशी मँगाकर आज़माइश कर लीजिए।

मूल्य ½ औंस प्रति शी० २) ¼ औंस १।) रु०
,, १ ड्राम ,, ,, ॥।) डाक-व्यय पृथक्
दो आने के टिकट आने पर नमूना शीशी मुफ़्त भेजी जाती है।

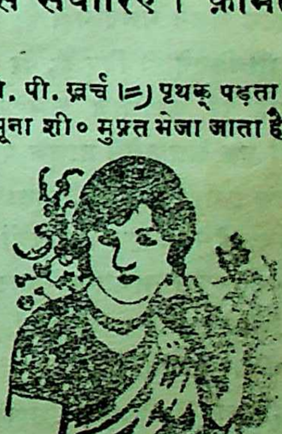

सोल एजेंट—
२०
दी ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी २८५, जुमा मसजिद मार्केट, बंबई नं० २

स्वप्नवासवदत्ता—अनुवादक, श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त; प्रकाशक, साहित्य-सदन चिरगाँव, झाँसी; सुंदर आवरणयुक्त जिल्द, छपाई-सफ़ाई बहुत बढ़िया; काग़ज़ भी चिकना और मोटा; आकार छोटा और पृष्ठ-संख्या सवा सौ; मूल्य दस आने।

उक्त साहित्य-सदन से प्रकाशित 'साहित्य-मणि-माला' की यह तीसरी मणि है। बहुत सुंदर है। संस्कृत-साहित्य में महाकवि भास का नाम सुप्रसिद्ध है। आप कवि-कुल-गुरु कालिदास से भी बहुत प्राचीन हैं। नाट्य-रचना में आप कालिदास से कम नहीं हैं। अभी थोड़े ही दिन हुए, आपके तेरह ग्रंथ-रत्नों का पता चला है। उनमें से यह 'स्वप्नवासवदत्ता' अन्यतम है।

इस नाटक में पाठकों को रस-सुधा के अतिरिक्त यह स्वर्गीय दृश्य भी देख पड़ेगा कि एक पति की दो पत्नियाँ, समय पड़ने पर, किस उदारता से रह सकती हैं। वासवदत्ता का चरित्र बड़ा ही उदार और उदात्त है और उससे भी बढ़कर उसकी सपत्नी पद्मावती का।

अनुवाद भी अच्छा हुआ है; परंतु गुप्तजी स्वतंत्र रचना में जैसे कृतकार्य होते हैं, वैसे अनुवाद में नहीं। यह कटु सत्य कहने के लिये अंतरात्मा प्रेरणा करती है। पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है, हिंदी की स्थायी चीज़ है। यह नाटक खेलने योग्य भी है।

× × ×

पृथ्वीराज चौहान (नाटक)—लेखक, श्रीगोविंदरामजी गुप्त 'वसंत'; प्रकाशक, बेलवेडियर-प्रेस, प्रयाग; छपाई-सफ़ाई और काग़ज़ साधारण; पृष्ठ-संख्या दो सौ से ऊपर, और मूल्य १।)।

नाटक खेलने योग्य नहीं है; क्योंकि बहुत बड़ा है। चित्र भी कितने ही दिए हैं; पर सब भद्दे और बेढंगे! मुख-पृष्ठ पर पृथ्वीराज और संयोगिता का चित्र है, जिसमें उक्त सम्राट् ऐसे मालूम पड़ते हैं, जैसे कोई ग्रामीण बदमाश! यही हाल संयोगिता का है! भीतर के भी सब चित्र ऐसे ही हैं। भाषा में ग़लतियाँ कम हैं; पर वह है बिलकुल साधारण—नाटक के अयोग्य। भावों में गांभीर्य नहीं है। परंतु हाँ, लेखक का उद्देश्य और विषय अच्छा है।

भूमिका में लेखक महाशय दृश्यकाव्य-प्रचलित 'स्वगत-कथन' से बहुत चिढ़े हैं और प्रकृत नाटक में इस महाव्याधि से बचने की प्रतिज्ञा की है, परंतु खेद इच्छा रखते हुए भी आप नहीं बच सके हैं। पद पर स्वगत-कथन भरे पड़े हैं; परंतु उनकी स्व 'स्वगत' लिखकर नहीं की गई है। हाँ, एक आवि और हुआ है—'अर्द्ध-स्वगत' का! यह 'अर्द्ध-स्व क्या बला है और -स्वगत से इसमें क्या अंतर है?

नाटक में दिए हुए पद्यों में से अधिकांश अच्छे पड़े हैं। लेखक महाशय नाटक की अपेक्षा अन्यकाव्य प्रणयन में शायद अधिक सफल हो सकते हैं। मिलाकर पुस्तक तो बुरी नहीं है, पर मूल्य कुछ अ जान पड़ता है।

× × ×

अंजना सुंदरी (नाटक)—लेखक, श्रीउमाशं मेहता; प्रकाशक, एस्० एस्० मेहता एण्ड ब्रादर्स, छपाई सफ़ाई और काग़ज़ साधारण; पृष्ठ-संख्या लगभग स और मूल्य (अजिल्द का) ॥।); प्रकाशक से प्राप्य।

इसका कथानक पौराणिक है, जिसका संबंध हनुमान्‌जी के जन्म से है। श्रीहनुमान्‌जी की मा अं देवी के पातिव्रत्य का प्रदर्शन है। इनकी कथा श्रीसीत के निर्वासन और पुनः सम्मिलन से बिलकुल मिल जुलती है।

कथानक उत्तम होते हुए भी नाटक बिलकुल और बेढंगा है; प्रत्युत 'नाटक' नाम पाने का अधि भी नहीं है। भाषा अशुद्ध और मुहाविरे ग़लत भावों का तो नाम ही न लेना चाहिए। पद्य के ना बीच-बीच में अंडबंड तुकबंदियाँ हैं—निरी बे-सि की! इसको भक्तजन पढ़ें, तो अवश्य आनंद आ किंतु यदि कोई साहित्यिक हुआ, तो बारह आने और कम-से-कम तीन घंटे का समय व्यर्थ गया सम तीन ही घंटे फिर पछताने में लगाएगा।

मेरी राय में तो लेखक महाशय नाटक न लि कहानी-सी कुछ लिखते, तो अच्छा होता; सा मा-बहनों के लिये कुछ उपयोगी होती।

× × ×

मोहन-मोहिनी (नाटक!)—लेखक, पं० श्री नारायणजी क० चतुर्वेदी और प्रकाशक भी वही आदि 'थर्ड क्लास'; पृष्ठ-संख्या ६२ और मूल्य ॥) (!)

वह 'चौबे-लक्ष्मी-लता' का प्रथम गुच्छ

जाता है और वह ज़मीन को उपजाऊ बनाने में बड़ा लाभकारी होता है। इसलिये ऐसा कहा जाता है कि सबसे अच्छा खाद्य वह है, जिसमें अधिक मूत्र हो। मान लो, हम अपने बैल को ज्वारी खिलाते हैं, तो उसका सबसे अधिक लाभदायक भाग, जिसे ज्वारी के पौदे ने ज़मीन से लिया था, गोबर और मूत्र के रूप में निकल आता है। परंतु याद रक्खो, खाद्य के गुण जानवर के भोजन पर निर्भर हैं। यदि जानवर को खाने को अच्छा

	नत्रजन	फ़ास्फोरिक एसिड	पोटाश
ओट या जई का पयाल	०.५०	०.२४	१.००
गेहूँ ,, ,,	०.४५	०.२४	०.८०
जौ ,, ,,	०.४०	०.१८	१.००
ब्रेकन (Bracken) ,, ,,	१.४	०.२	०.१
Peat Moss ,, ,,	०.८	०.१	०.२

यह औसत १०० पौंड खाद का बताया गया है।

स्त्रियों के गर्भाशय के रोगों की ख़ास चिकित्सिका

श्रीमती गंगाबाई की

पुरानी सैकड़ों केसों में कामयाब हुई,　　शुद्ध वनस्पति की औषधियाँ

वंध्यात्व और गर्भाशय के रोग दूर करने के लिये

ग र्भ जी व न प्र शं सा प त्र

गर्भजीवन रजिस्टर्ड से ऋतु-संबंधी सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं। रक्त तथा श्वेत प्रदर, कमलस्थान ऊपर न होना, पेशाब में जलन, कमर का दुखना, गर्भाशय में सूजन, स्थान-भ्रंश होना, मेद, हिस्टीरिया, जीर्ण तथा प्रसूति-ज्वर, बेचैनी, अशक्ति आदि और गर्भाशय के तमाम रोग दूर हो जाते हैं। यदि किसी प्रकार भी गर्भ न रहता हो, तो अवश्य रह जाता है। क़ीमत ३) मात्र। डाक-ख़र्च पृथक्।

गर्भरक्षक रजिस्टर्ड से गर्भ का कुसमय गिर जाना, गर्भ-धारण करने के समय की अशक्ति, प्रदर, ज्वर, खाँसी और ख़ून का स्राव आदि सभी बाधक बातें दूर होकर पूरे समय में सुंदर तथा तंदुरुस्त बच्चे का जन्म होता है। हमारी ये दोनों औषधियाँ लोगों को इतना लाभ पहुँचा चुकी हैं कि ढेरों प्रशंसा-पत्र आ चुके हैं। मूल्य ४) मात्र। डाक-ख़र्च अलग।

ग र्भ र क्ष क प्र शं सा प त्र

हाल के प्रशंसापत्रों में कुछ नीचे पढ़िए—लोग क्या कहते हैं!

बंबई ठेकाना महालक्ष्मी ता० २०।१०।३०
आपकी औषधी से मेरी पत्नी के लड़के का जन्म हुआ वह अभी चौदह रोज का है—महींजी माधव

नोदलपाडा–(पापा नदरबाग ता० २५।१०।३०
आपने मेरी पत्नी के लिए औषधी भेजी थी उससे गर्मी के दर्द को आराम होकर लड़की का जन्म हुआ। वह अभी तेरह माह की है—अजमशी बालजी देसाई

कालोल–(डी० पंचमहल) ता० २६।१०।३०
मेरी पत्नी के लिए जो दवा दिया था उससे फायदा होकर लड़के का जन्म तीन रोज का हुआ—मिस्त्री भोगीलाल मंगथजी

बरगड (डी० संबलपुर) ता० २७।६।३०
मैं आपकी दवाई मेरी औरत के लिए और दूसरी जगेपर परीक्षा के लिए दिया था वह दो जगह पर संपूर्ण सफल हुई—जयशंकरदासजी

घर्मीज–(डी० अहमदाबाद) ता० १७।१०।३०
परमात्मा की कृपा से आपकी दवाई सफल हुई अभी मेरी पत्नी के गर्भ के आठवें मास चले—भोगीलाल गोड़तारास

गोडीया बाजार-करांची ता० २६।१०।३०
मेरी देवरानी को मेरे जैसी बीमारी थी उसको मेमसाहिब ने नस्तरक्रिया करने को कहा था किंतु आपकी औषधि से संपूर्ण फायदा होगया
मीराबाई C/o पापरदास ईश्वरदास

याद रक्खो कि ऐसे एक दो नहीं, किंतु सैकड़ों प्रशंसा-पत्र मिल चुके हैं।
अपनी तकलीफ़ की पूरी हक़ीक़त साफ़ लिखो।　　२१
पता—गंगाबाई प्राणशंकर, गर्भजीवन औषधालय, रीची रोड, अहमदाबाद

स्वप्नवासवदत्ता—अनुवादक, श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त; प्रकाशक, साहित्य-सदन चिरगाँव, झाँसी; सुंदर आवरणयुक्त जिल्द, छपाई-सफ़ाई बहुत बढ़िया; कागज़ भी चिकना और मोटा; आकार छोटा और पृष्ठ-संख्या सवा सौ; मूल्य दस आने ।

उक्त साहित्य-सदन से प्रकाशित 'साहित्य-मणि-माला' की यह तीसरी मणि है। बहुत सुंदर है। संस्कृत-साहित्य में महाकवि भास का नाम सुप्रसिद्ध

महाव्याधि से बचने की प्रतिज्ञा की है, परंतु खेद इच्छा रखते हुए भी आप नहीं बच सके हैं। पद्य पर स्वगत-कथन भरे पड़े हैं; परंतु उनकी स्व 'स्वगत' लिखकर नहीं की गई है। हाँ, एक आवि और हुआ है—'अर्द्ध-स्वगत' का ! यह 'अर्द्ध-स्व क्या बला है और -स्वगत से इसमें क्या अंतर है ?

नाटक में दिए हुए पद्यों में से अधिकांश अच्छे पड़े हैं। लेखक महाशय नाटक की अपेक्षा श्रव्यकाव्य

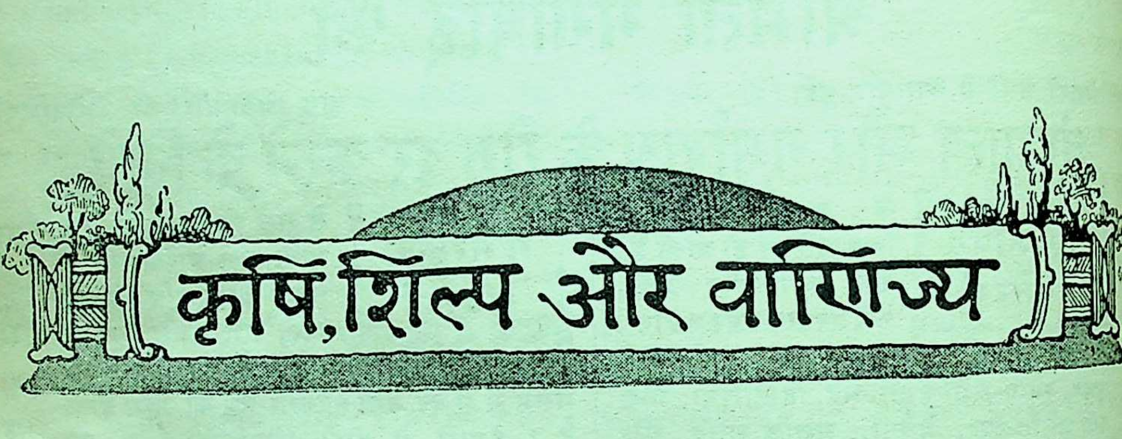

कृषि, शिल्प और वाणिज्य

१. गोबर की खाद

भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है। यही कारण है कि यहाँ पर ७० फ़ी सदी आदमी देहातों में रहते हैं। किंतु खेद के साथ लिखना पड़ता है कि ऐसा बड़ा कृषिप्रधान देश होकर भी यहाँ की फ़सलों की पैदावार दिन-पर-दिन कम होती जाती है । इसका मूल-कारण एक-मात्र यही है कि यहाँ के लोग लगातार एक खेत में बार-बार वही फ़सल लगाते हैं और खाद का उपयोग तो वे शायद जानते ही नहीं । ऐसा कोई किसान न होगा, जिसके पास थोड़ी बहुत मवेशी न हों। इन मवेशियों का जो गोबर होता है, उसका वे क्या करते हैं ! इसको वे खाद के उपयोग में न लाकर किसी दूसरे ही काम में लाते हैं। वे इसके कंडे बनाते और ईंधन के काम में लाते हैं या मकान वग़ैरह की लिपाई उससे करते हैं। यदि वे इस गोबर का ईंधन के रूप में उपयोग न करें, खाद के रूप में उपयोग करें, तो वे ज़मीन को उपजाऊ बनाकर, अच्छी-अच्छी फ़सलें पैदा कर देश की हालत को और ख़ुद अपनी हालत को सुधार सकते

यद्यपि यह देखा गया है कि अधिकतर किसान मंज़ूर करते हैं और ख़ुद समझते हैं कि गोबर की देने से ख़रीफ़ की फ़सल और कछवारों की फ़सलों अधिक लाभ होता है और उनकी पैदावार भी गुना बढ़ जाती है, फिर भी कुछ किसान ऐसे मिलेंगे, जो यह समझते हैं कि गोबर की खा लेशमात्र भी लाभ नहीं होता ।

गोबर की खाद से मतलब है—सड़ा हुआ या सड़ा गोबर, मूत्र और कूड़ा-कचरा इत्यादि । यह सब के खाद्यों से पुराना और साधारण है। प्रायः आधे अधिक घास वग़ैरह और प्रायः सब चूनी-भूसी इत्यादि जो जानवरों को खिलाई जाती है, पच जा और बाक़ी गोबर के रूप में निकल आती है। है और जो पची हुई चीज़ बहुत ख़ून बनाती है और जो नत्रजन और पोटाश रहता है, वह मूत्र के निकल आता है। इसलिये गोबर कड़ा रहने से उस मूत्र मिल जाता है, उससे बहुत ही अच्छा खाद

जाता है और वह ज़मीन को उपजाऊ बनाने में बड़ा लाभकारी होता है। इसलिये ऐसा कहा जाता है कि सबसे अच्छा खाद्य वह है, जिसमें अधिक मूत्र हो। मान लो, हम अपने बैल को ज्वारी खिलाते हैं, तो उसका सबसे अधिक लाभदायक भाग, जिसे ज्वारी के पौदे ने ज़मीन से लिया था, गोबर और मूत्र के रूप में निकल आता है। परंतु याद रक्खो, खाद्य के गुण जानवर के भोजन पर निर्भर हैं। यदि जानवर को खाने को अच्छा दिया जाता है तो उसके गोबर और मूत्र से जो खाद्य बनेगा, वह भी अच्छा और लाभकारी होगा। इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि अच्छी खली खिलाओगे, तो उससे अच्छा खाद्य मिलेगा; क्योंकि अच्छी खली तभी कही जा सकती है, जब उसमें अधिक तेल हो. परंतु अच्छा खाद्य तभी कहा जा सकता है जब उसमें अधिक नत्रजन हो। अलसी की खली, जिसमें सिर्फ़ सात फ़ी सदी तेल रहता है, दूसरी क़ीमती खलों की अपेक्षा, जिसमें दस फ़ी सदी तेल रहता है, अच्छा खाद्य देती है। इसके सिवा मूत्र का अच्छापन जानवर पर भी निर्भर है। जिन जानवरों में अधिक चर्बी होती है, वे सिर्फ़ ५% नत्रजन रखते हैं, बाक़ी सब मूत्र में बहा देते हैं। परंतु बढ़नेवाले जानवरों (बछड़े इत्यादि) और दूध देनेवाली गायों को अधिक नत्रजन की आवश्यकता पड़ती है, इससे उनका मूत्र कम लाभकारी होता है; क्योंकि उसमें नत्रजन कम रहता है। इससे चर्बीवाले जानवर, बछड़ों और दूध देनेवाली गायों की अपेक्षा अच्छा खाद्य देते हैं।

जब देखा जाता है कि मूत्र में बहुत-सा पोटाश और आधे से अधिक नत्रजन रहता है, तो किसी तरह भी उसे बरबाद न होने देना चाहिए; उसमें घास इत्यादि कूड़ा-कचरा मिला देना चाहिए तथा सड़ाकर खाद्य बना लेना चाहिए। ऐसा करने से सिर्फ़ कूड़ा-कचरा ही नहीं सड़ जाता है, बल्कि गोबर का खाद्य इससे बहुत अच्छा और लाभदायक बन जाता है; क्योंकि उसमें बहुत-सी उपयोगी वस्तुएँ मिली रहती हैं। कूड़े-कचरे आदि में भी काफ़ी तादाद में नत्रजन और पोटाश रहता है। इसमें क़रीब एक टन में १८ शिलिंग उपजाऊ बनाने की वस्तुएँ रहती हैं। खाद्य में कूड़े-कचरा का औसत नीचे दिया जाता है।

	नत्रजन	फ़ास्फ़ोरिक एसिड	पोटाश
ओट या जई का पयाल	०.५०	०.२४	१.००
गेहूँ ,, ,,	०.४५	०.२४	०.८०
जौ ,, ,,	०.४०	०.१८	१.००
ब्रेकन (Bracken) ,, ,,	१.४	०.२	०.१
Peat Moss ,, ,,	०.८	०.१	०.२

यह औसत १०० पौंड खाद का बताया गया है। ब्रेकन और पयाल बहुत ही अच्छे होते हैं। मोटी और रेतीली मिट्टी में यह बहुत ही लाभदायक हैं। Peat Moss का बहुधा उपयोग ही नहीं होता; क्योंकि पयाल बहुत तादाद में मिलता है।

खाद की आवश्यकता

जब हम कोई भी फ़सल उगाते हैं, तो वह अपने-आप बढ़ने के लिये कुछ-न-कुछ भोजन चाहती है। उसका कुछ भोजन हवा में से और कुछ ज़मीन की मिट्टी के लवण में से प्राप्त होता है। यदि हम हर साल फ़सलें लगाते और बेचते जायँ और ज़मीन को कोई चीज़ न दें, तो ज़मीन ग़रीब याने कम उपजाऊ हो जायगी। अच्छी फ़सलें लेने के लिये हमें ज़मीन को भी खिलाना अति आवश्यक है और ज़मीन का सबसे उत्तम भोजन वही पदार्थ है जो हमको जानवरों से गोबर और मूत्र के रूप में मिलता है। सचमुच यदि किसान सावधान है याने वह जो कुछ फ़सल से पैदा करता है उसी में से वह जानवरों को खिलाता है, तो बहुत सरलता से जो कुछ ज़मीन में से निकलता है, उसे भी उसे वापस कर सकता है।

खाद की अच्छाई किन बातों पर निर्भर है ?

(१) जो जानवर खाद देता है, वह किस प्रकार का है। इसका प्रभाव खाद पर किस तरह से पड़ता है, यह उपर बताया जा चुका है, (२) जानवर किस काम के लिये रक्खा गया है, (३) कितना गीलापन और कितना कचरा खाद्य में है, (४) भोजन जो जानवर को दिया जाता है, (५) किसान की सावधानी, जिससे किसी प्रकार की हानि न हो।

यह देखा गया है कि एक मन भेड़ों का खाद्य एक मन बैल के गोबर के खाद्य से अधिक उपयोगी है। इस लेख में पहले ही बता चुके हैं कि जितना अच्छा भोजन जानवर को मिलेगा, उतना अच्छा खाद्य वह देगा।

खाद की तैयारी

मूत्र दो तरह से बचाया जाता है—(१) गायों और बैलों की सार की फ़र्श को पत्थरों से पटवाने से और जानवरों की पिछाड़ी की तरफ़ एक नाली होने से मूत्र को इकट्ठा कर सकते हैं। इस फ़र्श को पानी से धोना चाहिए, परंतु जितना कम हो सके, उतना कम पानी काम में लाना चाहिए। और, यह सब गोबर उठाने के बाद करना उचित है। पानी से धोने से मूत्र नाली में बह जाता और एक गड्ढे में जमा होता है। वहाँ से वह खाद्य के गड्ढे में डाला जाता है।

(२) कोई ऐसी चीज़ रखने से, जो मूत्र को सोख ले, काम चल सकता है। इसका कचरा, घास, पत्ते और सूखी मिट्टी उपयोगी है। अक्टोबर से जून तक सूखी मिट्टी बहुत लाभदायक है। बरसात में यह अधिक उपयोगी नहीं है। यह सूखी मिट्टी कई प्रकार से काम में लाई जा सकती है; परंतु नीचे लिखी रीति बहुत ही उपयोगी है। बरसात समाप्त होने के बाद मिट्टी और कचरा सब अलग कर देना चाहिए। सार का फ़र्श खोदना चाहिए और इतना खोदना चाहिए कि पहले वह ६"–८" गहरा हो जाय। इस खुदी हुई जगह में ३"–४" ऊँची सूखी मिट्टी डालनी चाहिए। यह सूखी मिट्टी चार हफ़्ते तक मूत्र सोखेगी, परंतु इसकी सहायता के लिये इसको क़रीब एक हफ़्ते तक ढीला कर देना चाहिए। चार हफ़्ते के बाद इस ३" ऊँची सूखी मिट्टी और डालनी चाहिए। इसी हर बार करते जाना चाहिए।

गोबर

इसके लिये यह बात ध्यान में रखना चाहिए गोबर में बहुत पानी न भरने पावे और वह बहुत भी न पावे। हमें उसे अच्छी तरह से ठाँसकर गड्ढे रखना चाहिए।

इसका परिमाण जानवरों की गिनती पर है। जितने ज़्यादा जानवर रक्खोगे, उतना ही गड्ढा बनाना आवश्यक है। एक आयताकार गहरा खोदा जाता है। इसके किनारे पर चारों एक दीवार बनाई जाती है, जो सिर्फ़ ज़मीन सतह तक रहती है। दोनों तरफ़ लंबाई में और तरफ़ चौड़ाई में दीवार ऊँची बनाई जाती है, काफ़ी गहराई आ जाय। एक तरफ़ दीवार नहीं बनाई जाती है कि भरने में और ख़ाली में सहूलियत रहे। इसके ऊपर एक मामूली छप्पर जाता है, जो लकड़ी के छोटे-छोटे खंभों पर रहता है। इससे पानी और धूप की रुकावट रहती है।

जब यह बनकर तैयार हो जाय तो फिर इसमें मूत्र, कचरा आदि भरना चाहिए और इस तरह अच्छा खाद्य तैयार कर लेना चाहिए।

गोबर-खाद्य का प्रभाव

खाद्य	१० साल की कपास की औसत पैदावार	विना खाद्य पर लाभ	१० साल की ज्वार की औसत पैदावार	विना खाद्य पर
	पौं०	पौं०	पौं०	पौं०
१ गोबर और मूत्र	७०८	३८७	८०२	३७१
२ गोबर	५२३	२०२	६७१	२४०
३ मूत्र	५२१	२००	६५५	२२४
४ कोई खाद्य नहीं	३२१	...	४३१	...

बाल-महिला-मनोरंजन

१. निवेदन

जगदीश ! तुम्हारी छाया में,
हम नाम और यश प्राप्त करें;
अपने प्रिय-दुखिया भारत का,
सब शोक और संताप हरें।
विचलित न कभी हों क्लेशों से,
साहसी, वीर, बलवान बनें।
धीमान् बनें, गुणवान् बनें,
मा की सच्ची संतान बनें।
उर ओज-उमंगों से भर दो;
“कवि नेह” यही हमको वर दो।

शम्भूदयाल त्रिपाठी “नेह”

× × ×

२. सीख

फूलों से हम हँसना सीखें,
भौंरों से गुनगुन गाना;
कोयल से स्वतंत्र हो सीखें,
हम स्वतंत्रता अपनाना।
दूध और पानी से सीखें,
मेल सभी से नित करना;
दृढ़ होना पर्वत से सीखें,
जल से सबका हित करना।
पाकर शक्ति हवा से सीखें,
नहीं गर्व से भर जाना;
सीखें मछली से स्वदेश—
के लिये तड़पकर मर जाना।

गौरीशंकर “लहरी”

× × ×

३. वीर हक़ीक़तराय

बालको ! तुम इस पवित्र भारतवर्ष के अन्न-जल से पाले-पोसे जा रहे हो, यह तुम्हारी जन्मभूमि है। इसके प्रति तुम्हारे बहुत-से कर्तव्य हैं, जिन्हें तुम बड़े होने पर करोगे। इस समय तुम्हें कम-से-कम इतना अवश्य जान लेना चाहिए कि यह भूमि किसलिये और क्यों प्रसिद्ध है। यों तो धन के लिये अमेरिका, विज्ञान के लिये जर्मनी, राजनीति के लिये ब्रिटेन, हठ के लिये टर्की एवं व्यापार और कलाकौशल के लिये जापान प्रसिद्ध हैं ही, किंतु इस गए-गुज़रे समय में भी यह भारतभूमि धर्म के लिये ही मशहूर है; क्योंकि यहाँ के बूढ़े-जवान, लड़के-बच्चे, स्त्री-पुरुष सब अपने-अपने काम धर्म की दुहाई देते हुए करते आए हैं। आज हम तुम्हें एक ऐसे बालक की कहानी सुनाते हैं, जिसने धर्म की रक्षा के लिये अपने प्राण तक भी हँसते-हँसते दे दिए। तुममें कितने ऐसे हैं, जो तनिक सज़ा, थोड़ी झिड़की, मामूली नाक-भौं चढ़ाने के डर से बात-बात में झूठ बोलते हैं—एक पेंसिल, एक दस्ता काग़ज़, एक दोना मिठाई, दो-चार फल के लोभ में पड़कर सब कुछ करने पर तैयार हो जाते हैं। पर जिसकी कहानी हम तुम्हें बतलाना चाहते हैं, उसने धर्म-रक्षा के लिये सब तरह के कष्ट सहे; मारपीट, हथकड़ी-बंधन, डाँट-डपट आदि सब कुछ सहन किया। माता-पिता, बंधु-बांधव, पत्नी-परिवार आदि किसी की भी बातों पर कान नहीं दिए। यहाँ तक कि प्यारे प्राणों तक से हाथ धो लिए। वह बालक अपनी धर्मनिष्ठा के लिये प्रसिद्ध है, वह मरने पर भी अमर है और उसका नाम हरएक भारतवासी रात-दिन जपता है। उसका नाम है हक़ीक़तराय।

पंजाब-प्रदेश का नाम तुमने सुना होगा। प्रदेश की भूमि वीर-प्रसू कहलाती है— भारत का द्वार है। इसी प्रदेश में स्यालको नामक एक स्थान है। वहाँ आज से बहुत पहले मुग़लों के राजकाल में बागमल-नामक धनी आदमी रहता था। वह जाति का खत्री उसके माघशुक्ल पंचमी (वसंतपंचमी) वार (सं० १७९१) एक पुत्र हुआ। जिस बागमल के इस लड़के ने जन्म लिया, उस बागमल और उसकी स्त्री, दोनों बूढ़े हो चले इसलिये बालक के जन्म से उनके आनंद ठिकाना न रहा। पड़ोस के लोग भी बागमल व्यवहार से बहुत प्रसन्न रहा करते थे, इस वे लोग भी ख़ुशी के मारे फूले नहीं समा सभी बागमल और उसकी पत्नी को बधाई दे लिये आने लगे। अच्छे मुहूर्त में बागमल ने हित और जाति-भाइयों को बुलाकर सबों भोज दिया। सबों ने इस होनहार बालक नाम 'हक़ीक़त' रक्खा। पुरोहित ने हक़ीक़त हाथ देखा और उसे होनहार बतलाया।

बालक हक़ीक़त की पढ़ाई-लिखाई अपने मा पिता के द्वारा ही पहले-पहल शुरू हुई। स्वयं बड़े धर्मिष्ठ थे। रोज़ गीता-रामायण धार्मिक पुस्तकों का पाठ करते थे। इससे अपने पुत्र हक़ीक़त को भी धर्मात्मा युधिष्ठिर, बालक ध्रुव, प्रह्लाद, राम-कृष्ण आदि की कंठाग्र कराईं। माता ने भी जब-तब सदु देकर हक़ीक़त को सुयोग्य बनाने में कसर न की। जब बालक हक़ीक़त आठ का हुआ, तब उसके माता-पिता ने उसे म में पढ़ने को भेजा। पढ़ने-लिखने में ह भोंदू नहीं था। उसकी अपूर्व योग्यता को दे

मौलवी-मुल्ला सभी चकित होते थे। सहपाठियों में उसका आतंक छा गया। वे लोग उससे स्पर्द्धा करने लग गए।

यद्यपि हक़ीक़त बालविवाह का विरोधी था, तो भी उसे पिता और माता की हठ के सामने सिर झुकाना पड़ा। फलतः उसकी शादी अमरसिंह-नामक एक सिख की लड़की से हो गई। अमरसिंह ने भी हक़ीक़त को सिख गुरु गोविंदसिंह, तेगबहादुर आदि के जीवन-चरित सुनाए। इस समय हक़ीक़त की उमर ग्यारह साल की थी। अभी तक वह मौलवी साहब के यहाँ पढ़ता था।

एक दिन की बात है कि मौलाना साहब पाठशाला से कहीं चले गए और लड़कों के साथ हक़ीक़त पाठशाला में ही रहा। उसके साथी सब बड़े उद्दंड थे। मौलवी साहब के न रहने से वे लोग लगे ऊधम मचाने। आप तो ऊधम मचाते थे ही—बेचारे हक़ीक़त को भी अपने साथ खेल में शरीक होने के लिये दिक करने लगे। वह सीधा बालक अपने पढ़ने-लिखने में मग्न था। इससे उन आवारों की बातें उसे अच्छी नहीं लगीं। उसने खेल में शरीक होने से साफ़-साफ़ इनकार कर दिया। दुष्ट लड़कों ने उसकी पुस्तकें फेंक दीं, पेंसिल छीन ली और हाथ पकड़-पकड़कर उठने को विवश किया। इस पर भी जब हक़ीक़त टस से मस नहीं हुआ, तब उन लोगों ने उसे और तरह से चिढ़ाना शुरू कर दिया। आख़िर गाली तक की नौबत आ गई। दुष्टों ने सरल हक़ीक़त के मा-बाप को हिंदू-देवी-देवताओं के नाम ले-लेकर बुरे शब्द कहे। बार-बार उन लोगों के मुँह से दुर्वचन निकलते देखकर अब हक़ीक़त से न रहा गया। उन सबकी बेहूदगी पर उसे बड़ा क्रोध आया। पर फिर भी उसने बड़ी नम्रता से कहा—"जैसे तुम्हारे लिये फ़ातिमा है, वैसे ही हम हिंदुओं के लिये देवी-भवानी। यदि फ़ातिमा के लिये कोई आदमी कड़वी बात मुँह में लावे, तो तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा—उसी तरह तुम्हें यह भी समझना चाहिए कि देवी-भवानी के लिये कटुवाक्य ज़बान पर लाना भारी गुनाह है। तुम हमारी देवी-भवानी को गालियाँ नहीं दे रहे हो, ये गालियाँ तो सीधे तुम्हारी फ़ातिमा को मिल रही हैं।" इतनी बात ज्यों ही हक़ीक़त के मुँह से बाहर निकलीं कि वे दुष्ट आगबबूला हो उठे। 'काफ़िर'—'काफ़िर' कहते हुए निरपराध हक़ीक़त पर टूट पड़े, जैसे दया उन्हें छू तक न गई हो। वे निठुरता से इस बालक को चपत, घूँसे, मुक्के आदि लगाकर लगे पीटने। उसके रोने-धोने की किसी ने कुछ परवा न की।

इतने में एक तरफ़ से क़ाज़ीजी आ रहे थे। क़ाज़ी ने लड़कों से इस रोआ-रोहट का कारण पूछा। दुष्ट लड़कों ने सच्ची बातों में नमक-मिर्च मिलाकर निर्दोष हक़ीक़त की झूठ-मूठ शिकायत कर दी। उन लोगों ने एक स्वर से कहा—"इस काफ़िर हक़ीक़त ने हमारी फ़ातिमा को बड़ी बुरी गालियाँ दी हैं।" इतना कहना था कि क़ाज़ी लाल-लाल आँखें किए हक़ीक़त की ओर झपटे और कहा—"शैतान! बोल क्या बात है? तूने रसूलज़ादी को गालियाँ दी हैं, क्यों!" बालक हक़ीक़त ने क़ाज़ी की बात सुनकर सारी घटना ज्यों-की-त्यों सुना दी। उसकी बात पर क़ाज़ी और भी आपे से बाहर हो गए और दाँत पीसते हुए बोले—"तुमको अपनी जान भारी हुई है, जो तुम फिर भी उन्हीं बातों को दुहरा

रहे हो ? अच्छा कुछ हर्ज नहीं; तुमको अपनी करनी का मज़ा चखाता हूँ।" इतना कहकर उन्होंने और-और लड़कों से सामने की कोठरी खोलने को कहा। जब उनमें से एक लड़के ने कोठरी के किवाड़ खोल दिए, तब क़ाज़ीजी ने हुक्म दिया कि इस बदज़ात काफ़िर को, हाथ-पैर ख़ूब कसकर बाँधकर, इस कोठरी में बंदकर दो और ऊपर से ताला लगा दो। देखते रहो कि कोई इसे खोलने न पाए। उन दुष्ट लड़कों ने ऐसा ही किया। बेचारा सुशील हक़ीक़त नाहक उस सज़ा का शिकार हुआ।

हक़ीक़त उस कमरे में बंद कर दिया गया। इतना ही नहीं, उसके कोड़े लगाए गए। खाना-पीना कुछ नहीं दिया गया। जब यह ख़बर बागमल को मिली, तो वह सिर पर पाँव दिए दौड़े आए—क़ाज़ी से सज़ा का कारण पूछा—अनेक आरज़ू-मिन्नत की; पर सब विफल हुआ। क़ाज़ी ने कहा—"मैंने जो कुछ कह दिया, सो कह दिया। इस मुसलमानी सल्तनत में कोई काफ़िर फ़ातिमा को गालियाँ दे और वह ज़िंदा छोड़ दिया जाय, ऐसा होने का नहीं। शरह के हुक्म को कोई टाल नहीं सकता। तुम्हारी हम कुछ सुनने को नहीं। बेचारा बागमल हाथ मलते घर लौट आया। उसके और उसके अड़ोस-पड़ोस के लोगों के घरों में मातम छा गया। हक़ीक़त की मा दम-दम पर मौत माँगती थी। बागमल मूर्च्छित हो गिर पड़ा।

कुछ काल के बाद बागमल को होश आया। पड़ोस के लोगों ने बहुत धीरज दिया तथा सूबेदार के यहाँ अपील करने को कहा। लोगों के कहने पर बागमल ने सूबेदार के यहाँ अपील की। पहले तो सूबेदार भी कुछ नहीं सुनता था,
आख़िर बहुत कहने-सुनने पर उसने कहा
अगर हक़ीक़त मुसलमान होना क़ुबूल करे,
के पैरों पर सिर रखकर सलाम करे और द
में अपने क़ुसूर की माफ़ी के लिये आरज़ू करे,
उसकी जान बख़्शी जा सकती है। इसके
प्यादों की हिरासत में हक़ीक़त दरबार में हा
किया गया। सूबेदार ने अपना बयान सुना
और पूछा—"मुसलमान बनना चाहते हो
जान देना चाहते हो ?"

हक़ीक़त ने सूबेदार की बातें बड़े ध्या
सुनीं। उसने उत्तर दिया—"नवाब सा
मुझे अपने प्राण से अपना धर्म कहीं
प्यारा है। एक तो मैंने कोई क़ुसूर नहीं कि
दूसरे और मैं ही सताया गया हूँ। आप
खाल खींचकर या दीवाल में चुनवाकर ही
क्यों न ले लें, पर मैं हिंदू-धर्म-जैसा पवित्र
कभी छोड़ने का नहीं। धर्म छोड़कर मुसल
होने की अपेक्षा मृत्यु का हृदयालिंगन
कहीं श्रेष्ठ है। मुझे हिंदू-धर्म की छाया में
हुए भंगी की तरह जीवन व्यतीत करना
है, पर मुसलमान होकर राज्य-सुख भो
मंज़ूर नहीं।"

सूबेदार हक़ीक़त से ऐसे कोरे जवाब
आशा नहीं करता था। दरबार के सभी
बालक हक़ीक़त का दृढ़तापूर्ण उत्तर सु
चकित हो गए। हक़ीक़त की स्त्री, उसके
बाप-परिजन—परिवार सब यही सोचते थे
प्रत्येक को अपना प्राण संसार के सभी सु
प्यारा है और हक़ीक़त अभी निरा बालक
वह अवश्य मुसलमान होना स्वीकार कर
और इस तरह मुसलमान रहकर भी हम
के सुख का आधार बना रहेगा। पर उ

लोगों ने हक़ीक़त की बातें सुनीं, वे हताश हो गए। उन लोगों को संसार अंधकारमय दिखाई पड़ा। एकटक से सब इस अमर बालक के मुख की ओर देखते और इसकी करतूत का ख़याल कर चौंक पड़ते। रह-रहकर आनंद के मारे वे पुलकित हो उठते थे। माता-पिता, स्त्री और परिजनों की आँखें अश्रुजल से ओतप्रोत थीं। उनके आँसू सुख और दुःख दोनों के द्योतक थे। सुख इसलिये कि बालक हक़ीक़त धर्मभक्त साबित हुआ, उसे अपने प्राण से धर्म प्यारा जँचा; और दुःख इसलिये कि उनकी आँखों का एकमात्र तारा हक़ीक़त आज संसार से उठ जायगा। दर्शकों में से कुछ यह भी सोचते थे कि यह तो मरकर भी अमर रहेगा। इसका नाम भारत की हरएक संतान श्रद्धा से लेगी। उस समय वे अपने लिये भी ऐसा ही शुभ अवसर ढूँढ़ते थे और ईश्वर से प्रार्थना करते थे कि हमारी भी मृत्यु इसी के सदृश हो। माता-पिता, पत्नी और दर्शकों में जिनको जान प्यारी मालूम होती थी, वे सब हक़ीक़त को ज़िंदा देखना चाहते थे। इसलिये उन लोगों ने बालक हक़ीक़त से बहुत कुछ कहा भी कि मुसलमान होकर भी प्राण की रक्षा करो। अगर जिओगे, तो बहुत कुछ कर सकोगे। इस तरह कुछ समय तक दरबार आश्चर्य के समुद्र में डूबा हुआ-सा प्रतीत हुआ। सभी सोच-विचार में मग्न थे।

सूबेदार ने बहुत सोचने के बाद हक़ीक़त को लालच देना शुरू कर दिया। जागीर देने, सुंदर भवन बनवा देने, अपनी लड़की से शादी कर देने की प्रतिज्ञा की और कहा कि मुसलमान हो जाओ। पर हक़ीक़त, हक़ीक़त में वीर बालक था, सत्य पर मर मिटनेवाला और धर्मपरायण था। विधर्मी होने की अपेक्षा मृत्यु उसे अधिक प्यारी थी। अतः वह अपनी बात पर डटा रहा। वह तनिक भी विचलित नहीं हुआ। उसने कहा—"हम हिंदू हैं और हिंदू रहेंगे। जिएँगे तो हिंदू-धर्म के लिये, मरेंगे तो हिंदू-धर्म के लिये। तुम जागीर की क्या कहते हो—उसे तुम छीन सकते हो; भवन और विलास की सामग्रियाँ नष्ट हो सकती हैं; तुम्हारी लड़की मुझे तलाक़ दे सकती है—सो भी नहीं, तो एक दिन वह अवश्य मर जायगी। मेरा शरीर भी एक-न-एक दिन अवश्य नष्ट हो जायगा। तब फिर अपनी आत्मा को मैं क्यों कलंकित करूँ? धर्म की वेदी पर अन्याय से लड़ते हुए, अत्याचार को सहते हुए, हँसते-हँसते शरीर छोड़ना मरना नहीं, जीना है। जो मरना नहीं जानता, वह जीना भी नहीं जानता। बस, इतना ही कहूँगा। तुम्हारे सामने मैं खड़ा हूँ—जो चाहो सो करो। मुझे मुसलमान तुम किसी तरह नहीं बना सकते।" माता-पिता को भी उसने प्रणाम किया और कहा कि आपका लड़का आज मर नहीं रहा है, बल्कि अमर हो रहा है।

सभी ने हक़ीक़त की बातें सुनीं। सूबेदार ने भी हारकर अपनी क्रूर आज्ञा जारी कर दी। हक़ीक़त जल्लाद के द्वारा वधस्थान पर पहुँचाया गया। वहाँ फाँसी पर लटका दिया गया। उसने हँसते-हँसते प्राण दिए। मरने के समय ये ही उसके अंतिम शब्द थे—"मेरे शोणित के एक-एक बूँद से भारत में, हिंदू-धर्म की छाया में, ऐसे बालक पैदा होंगे, जो सत्य के लिये, धर्म के लिये, न्याय के लिये ख़ुशी से अपने प्राण देंगे।"

जगन्नाथप्रसादसिंह

× × ×

४. बन्धन-दुःख

तट बन्धन तोड़ने के लिये सिन्धु
सदा करता है कुलाहल भारी।
नित नाचते वायु के इङ्गित पै
इसी दुःख से मेघ स्रवें दृग-वारी।
फिरें उडुगण शृङ्खला में जकड़े
निशिनाथ की विक्षत छाती है सारी।
मघवा की महत्ता भी क्यों न मिले
पर बन्धन सर्वथा है दुखकारी।

आर्यमित्रा देवी

× × ×

५. बदला

(१)

आज दिल्ली की होली है। गली-गली में रक्त के फ़व्वारे छूट रहे हैं। सड़कों पर रक्त का छिड़काव हो रहा है। नालियों में पानी के स्थान में रक्त बह रहा है। छोटे-छोटे खपरैलों से लेकर गगनचुंबी अट्टालिकाएँ तक भी रक्त में नहा रही हैं। तंग गलियों में रक्त की नदियाँ उमड़ चली हैं, जिनमें मनुष्यों की खोपड़ियाँ कछुओं के सदृश डूबती उतराती बही चली जा रही हैं। मनुष्यों के हाथ-पैर मछलियों की तरह छप्-छप करते इधर-उधर उछलकूद मचा रहे हैं।

मुसलमान सिपाही जो सामने आता है, उसे मौत के घाट उतार रहे हैं। "अल्ला हो अकबर।" "तैमूर की जय!" चारों ओर यह शब्द ही सुनाई पड़ते हैं। इन शब्दों की भयंकरता के आगे घायलों के चीत्कार और पीड़ितों के हाहाकार दब-से गए हैं।

दिल्ली की प्रजा में भगदड़ मची हुई है। जिधर जिसका सींग समाता है, वह उधर ही को भाग निकलता है।

चूड़ीवाली गली में इस समय कोई यवन सि नहीं देख पड़ता। चारों ओर मौत का-सा स छाया हुआ है। केवल रक्त के बहने की धीमी आवाज़ आ रही है।

एक ग़रीब स्त्री, एक बालक और बालिका के पकड़े 'छिपती हुई' रक्त में छप्-छप् करती जा रही है।

कुछ आहट पा, चौंककर स्त्री ने पीछे ओर देखा। भय के मारे उसका चेहरा पड़ गया। बालिका उसका अंचल पक रो उठी।

लगभग पन्द्रह-बीस यवन सैनिक घोड़ों चढ़े वहाँ आ धमके। अपने सरदार का पाते ही उन्होंने स्त्री को बाँधकर एक डो बैठा लिया। उस डोली में और भी कई बँधी हुई अपने-अपने भाग्य को कोस रही

सरदार ने हाथ से कुछ संकेत किया और सवार जिधर से आए थे, उधर ही को चल

एक छोटे-से चबूतरे के निकट बालक बालिका किंकर्त्तव्य-विमूढ़-से खड़े थे।

(२)

लगभग पचास स्त्रियाँ तोपों के मुँह प खड़ी थीं। प्रत्येक तोप के पीछे एक-एक जलता हुआ पलीता लिए खड़ा था। केवल सर की आज्ञा की देर थी।

"अब भी समय है"—अफ़सर ने स्त्रि संबोधन कर कहा—"मेरी बात मान जाओ

किन्तु उसे कुछ उत्तर न मिला।

अफ़सर के एक-दो-तीन कहते ही सब पर एक साथ ही बत्ती रख दी गई। बड़े धमाके के साथ निरीह स्त्रियों के हाथ-पैर आकाश में उड़ते दिखाई देने लगे।

76325.

सर्दी (Winter) में शरीर को पुष्ट बनाइए

कविविनोद वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य आविष्कारक अमृतधारा, ५ दर्जन वैद्यक पुस्तकों के रचयिता, सम्पादक "देशोपकारक" तथा पुरुषों के गुप्त रोगों के विशेषज्ञ ने मनुष्य के शरीर को सोना बनानेवाली लगभग ६ दर्जन अकसीरें तैयार की हैं, जिनमें किंचित् का वर्णन नीचे दिया जाता है। जो सविस्तर चाहें वे "नपुंसकत्व" नामी पुस्तक आध आने का टिकट भेजकर विना मूल्य मँगवा सकते हैं। मगर विद्यार्थी इसके वास्ते पत्र न भेजें। जो सज्जन ओषधि मँगवाना चाहें, वे अपनी अवस्था के अनुसार जो अक्सीर अपने लिए उचित समझें, मँगवा लें। यदि स्वयं न चुन सकें, तो वृत्तान्त लिखकर १) फ़ीस के साथ जो कि आरम्भ में केवल १ बार ली जाती है, भेज दें। श्रीपण्डितजी से ओषधि तज़वीज़ कराके सूचना दे दी जायगी या भेज दी जायगी, जैसा आप लिखेंगे। इन अक़सीरों के प्रभावशाली होने के भरोसे पर इनका नमूना भी दिया जाता है—

अक्सीर न० १—यह पुरुषों के विशेष रोगों की उत्तम ओषधि है। शुक्रमेह, शीघ्रपतन को हितकर है, और निर्बलता को दूर करने के लिए अद्वितीय है। मूल्य ६४ गोली ४), ३२ गोली २), नमूना ८ गोली ॥)

अशूगरी—उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त मूत्र में शकर आने के लिए एक ही ओषधि है, हर प्रकार के प्रमेह के लिए अद्वितीय है। मूल्य ३२ गोली ४), नमूना १)

अक्सीर नं० ५०—उपर्युक्त गुणों में अद्वितीय है। जगत् में कोई पौष्टिक ओषधि इसकी तुलना नहीं कर सकती है। पहली गोली ही अपना स्वास्थ्यदायक प्रभाव दिखाती है। अमीरों के वास्ते है। मूल्य १५ गोली ७), ८ गोली ४)।

अक्सीर नं० ११—शीघ्रपतन, शुक्रमेह, अनिद्रा को दूर करने के अतिरिक्त हृदय, मस्तिष्क, यकृत, आमाशय, मूत्राशय को भी बल देती है। मूल्य ६४ गोली १०), १६ गोली २॥) रु० नमूना ४ गोली ॥=)

अक्सीर न० १९—शुक्रमेह, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, प्रमेह, जीर्णज्वर, ज्वर के बाद ही निर्बलता को दूर करनेवाली, आनन्ददायक, पौष्टिक, उत्तेजक और हृदय, मस्तिष्क को बल देनेवाली है। मूल्य ३२ गोली ४), नमूना १)

अक्सीर नं० २०—वृद्ध को युवा और युवा को मल्ल बनाने के वास्ते यह योग शिवजी महाराज का वह निर्मित है। जो खाँसी, नज़ला, जुकाम, श्वास, पाण्डु आदि को भी हितकर है। मूल्य ६४ गोली ४), नमूना॥)

अक्सीर नं० ३०—इससे वीर्य बहुत बढ़ता है। उसके पश्चात् पुंस्त्व बढ़ना आरम्भ होता है। इसलिये स्वप्नदोषादि को हितकर है। मूल्य एक पाव २), नमूना ॥)

अक्सीर नं० ३१—२० प्रकार का प्रमेह, या मूत्ररोग, अर्श, श्वास, अपाचन आदि को लाभकारी है और शुक्रमेह को भी हितकर है। मूल्य ३२ गोली १), नमूना ।)

अक्सीर नं० ३४—(क) शुक्रमेह के वास्ते अद्वितीय ओषधि है, मूल्य ३२ गोली २), नमूना ॥)

अक्सीर नं० २४—(ख) जो इसके अतिरिक्त हृदय, मस्तिष्क, मूत्राशय, यकृत, आमाशय आदि को बल देता है। मूल्य ३२ गोली ५), नमूना १।)

अक्सीर नं० ३६—वीर्य को गाढ़ा करती और बढ़ाती है, मस्तिष्क को ताज़ा करती है, दृष्टि को बढ़ाती है। शीघ्रपतन दूर होता है। दूध में मिलाकर खाते हैं। मूल्य एक पाव २), नमूना ॥)।

अक्सीर नं० ४०—स्वप्नदोष को अद्वितीय ओषधि विद्यार्थियों के लिए विशेषकर लाभकारी है। मूल्य ३२ गोली १), नमूना ।)

दत्त तिला—जब चाहो मलो, न पानी का परहेज़ न ज़ख़म। मूल्य २)।

पत्र तथा तार का पता—**अमृतधारा १२ लाहौर।**

विज्ञापक—मैनेजर अमृतधारा औषधालय, अमृतधारा भवन, अमृतधारा रोड, अमृतधारा डाकख़ाना, लाहौर।

१ आर्डर देते समय पत्र में यह जरूर लिखिए कि "माधुरी" में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

२

दो शक्तिशाली वस्तु सेवन कीजिए !

(१) शरीर पर बहार आवेगी !
(२) चेहरे की रंगत सुर्ख होगी !
(३) नेत्रों और मस्तिष्क का तेज बढ़ेगा !
(४) शरीर पुष्ट तथा कांतिमय होगा !

१

स्वादिष्ट

'डाबर द्राक्षारिष्ट'

इसमें अंगूर का रस प्रचुर परिमाण में है। लगातार सेवन करने से शरीर की प्रत्येक इंद्री सबल, व सतेज व क्रियाशील होकर चेहरा उत्साहित व श्रीसंपन्न आजाता है।

मूल्य है—आधा सेर की बोतल १॥), डाक-महसूल ॥।=)

२

महारसाय

'डाबर च्यवन

इसके वि
सेवन करने से न
रोग ही नष्ट हो
प्रत्युत मनुष्य क
वन भी दीर्घ होजा
स्वस्थ शरी
सेवन करने से
बढ़ता है। तथा
परिवर्तन के
सेवन करने से
रोग होने का
नहीं रहता है।
मूल्य—एक प
२० मात्रा १॥)
महसूल ॥=)

डाक्टर एस० के० बर्मन,

(विभाग नं० १३१) नं० ४, ताराचंददत्त स्ट्रीट,

कलकत्ता।

एजेंट—

लखनऊ (अमीनाबाद पार्क) में 'किंग मेडिकल हाल'।

सहसा 'गुडुम' 'गुडुम' करके दो शब्द हुए और एक सिपाही की लाश के साथ-ही-साथ अफ़सर की मृतदेह भी भूमि पर लोटने लगी।

सिपाहियों ने आश्चर्य-चकित होकर देखा—सामने की पहाड़ी पर एक बालक और एक बालिका बन्दूक़ें ताने खड़े थे। बन्दूक़ों की नलियों में से धुँआ निकल रहा था।

तेजनारायण काक 'क्रांति'

× × ×

६. तेरी भूल

(१)

तू समझे है, बीत रहा है
उनका जीवन सुखमय शांत ;
एक बार ही आकर लख ले ,
हैं वे कितने दुखी अशांत।

(२)

तू समझे है, उन्हें न आता
है बिलकुल ही तेरा ख़्याल ;
तू ही बतला दे मुझको ,
समझावें कैसे दिल का हाल।

(३)

अच्छा, तूने क्या न किसी को ,
किया कभी तन-मन से प्यार ?
तब तू अपने इसी हृदय से ,
ले यह बातें स्वयं विचार।

(४)

अगर नहीं, तो सुन ले मुझसे ,
हाल बता दूँ मैं उनका ;
समाचार अति दुखद सुना दूँ ,
उनके तन-मन-जीवन का।

(५)

भोजन में रुचि रह न गई कुछ ,
छूट गया सारा आराम ;
वे तो पा एकांत सदा ही ,
रटते रहते तेरा नाम।

(६)

उनके नयनों में, तेरी ही ,
फिरती रहती है तस्वीर ;
भीतर आग लगी रहती है ,
बाहर से वे हैं गंभीर।

(७)

चाहे अगर बनाना उनके
जीवन को तू सुख का सार ;
एक बार, हाँ, एक बार ही ,
कह दे उनको करती प्यार।

सरोजिनी देवी

× × ×

७. आद्यशक्ति का जागरण

(क्रमागत)

श्रीमती हंसा मेहता

श्रीमती हंसा की शिक्षा बड़ौदे में हुई है। संस्कृत से स्वाभाविक प्रेम होने के कारण इसी को दूसरी भाषा के तौर पर साथ लेकर, सन् १९१८ में, आपने बड़ौदा-कालेज से बी० ए० पास किया। इस परीक्षा में आपने दर्शन-शास्त्र (फ़िलासफ़ी) में ऑनर्स प्राप्त किया। उनकी विदेश जाने की बड़ी इच्छा थी, इसलिये १९१९ में वह इँगलैंड चली गईं।

पत्रकार-कला सीखने की आपकी लालसा थी, इसलिये लंदन-युनिवर्सिटी में वह जर्नलिज़्म पढ़ने लगीं। उन दिनों श्रीमती सरोजिनी नायडू भी वहीं थीं। श्रीमती हंसा उनके साथ मिलती-जुलती रहीं। १९२० के जून मास में संसार-भर की स्त्रियों की एक कान्फ़्रेंस उनके सामाजिक और राजनीतिक उद्धार के प्रश्न पर विचार करने को जेनेवा में हुई। श्रीमती सरोजिनी नायडू के साथ श्रीमती हंसा भी उस कान्फ़्रेंस में भारत की प्रतिनिधि की हैसियत से गईं। वहाँ भारत के स्त्री-समाज के हित की बातें इन दोनों ने कान्फ़्रेंस को सुझाईं।

दूसरे वर्ष नवम्बर मास में वह अमेरिका गईं, वहाँ की महिला-संस्थाओं का निरीक्षण किया और भारत लौट आईं। मई में वाशिंगटन में एक महिला-सामाजिक सम्मेलन हो रहा था, श्रीमती हंसा उसमें भारत की ओर से शामिल हुईं। वहाँ आपका भारतीय सामाजिक

रीति-नीति पर भाषण हुआ। इसके बाद अमेरिका के दो अन्य महिला-सम्मेलनों में भी आपने प्रमुख भाग लिया।

अगस्त १९२३ में जापान के महिला-विश्वविद्यालय को देखने के लिये श्रीमती हंसा जापान गईं। आप कुछ देर से वहाँ पहुँचीं, कालेज बंद हो चुके थे; लेकिन फिर भी आपने सब कुछ देखने-भालने का प्रबंध कर लिया। जापान के प्रलयंकर भूकम्प के समय आप टोकियो में थीं।

श्रीमती हंसा मेहता

१९२४ ई० में भारत लौटकर उन्होंने डाक्टर जीवराज मेहता से, जो लंदन के एम्० डी० हैं और जो उस समय बड़ौदे के चीफ़ मेडिकल अफ़सर थे, विवाह किया। डा० मेहता भी दृढ़ राष्ट्रवादी हैं। श्रीमती हंसा की अवस्था इस समय ३३ वर्ष की है। सामाजिक सुधार के काम करने की उन्हें सदैव धुन रही है। सन् १९२० से वह बम्बई की राष्ट्रीय स्त्री-सभा की कार्यकारी सदस्या हैं और खद्दर की प्रचारिका रही हैं।

श्रीमती पेरिन कप्तान के गिरफ़्तार किए जाने के बाद श्रीमती हंसा मेहता बंबई की युद्धपरिषद् की संचालिका और बंबई-प्रांतिक कांग्रेस-कमेटी की प्रेसीडेंट मनोनीत हुईं।

श्रीमती हंसा मेहता भी श्रीमती कमला चट्टोपाध्या की भाँति पाश्चात्य प्रणाली के स्त्री-आंदोलन की समर्थ और सहायिका हैं। भारत की अँगरेज़ी-शिक्षा-प्राप्त महि लाओं की संस्था भारतीय महिला-परिषद् (विमेन इंडियन एसोसियेशन) की आप संयुक्त मंत्रिणी है परिषद् के अंतर्गत अपने प्रकार के स्त्री-शिक्षा-प्रचार औ समाजसुधार की योजनाओं में आप हाथ बँटाती रही है

श्रीमती हंसा ग्रेजुएट हैं। योरप और अमेरिका आपकी तालीम हुई है। आप बड़ौदे के भूतपूर्व बीकानेर के वर्तमान प्रधान सचिव सर मनुभाई पु मेहता की पुत्री हैं। आपके पति डाक्टर जीवराज मेह एम० डी० इस समय बंबई के किंग एडवर्ड मेमोरिय हास्पिटल के डीन (प्रमुख अधिकारी) हैं।

श्रीइंदुमती गोयनका

श्रीमती इंदु, श्रीयुत पद्मराज जैन-जैसे सुयोग्य पिता सुयोग्य पुत्री हैं।

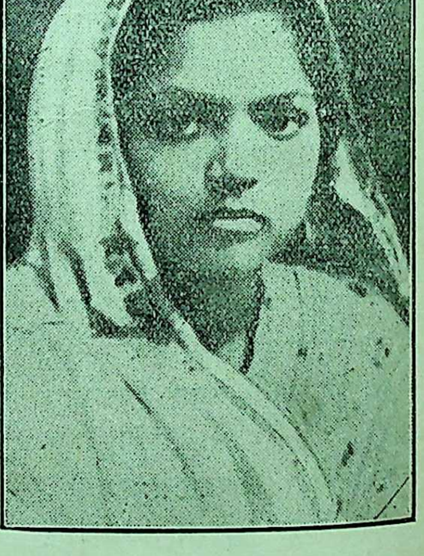

श्रीमतो इंदुमती गोयनका

जैनजी पुराने सामाजिक कार्य-कर्ता और देशसेवी है यही कारण है कि आपकी पुत्री पर भी इतनी छोटी अवस् में देश-भक्ति का ऐसा आदर्श प्रभाव पड़ा है। श्रीम इंदुमती अभी कल तक एक मारवाड़ी सेठ घराने की लाड़ गुड़िया थीं। केवल १५$\frac{१}{२}$ वर्ष की एक सुकुमार बालि राजनीति-कर्मक्षेत्र की कठिनाइयों को भला क्या जाने

आपने कालेज छोड़कर राष्ट्रीय सेवा में भाग लिया। उन्होंने एक राष्ट्रीय महिला-समिति की स्थापना की। वह और उनकी समिति की महिलाएँ पिकेटिंग करने लगीं। इसी आंदोलन में आपको ६ महीने की सज़ा दी गई है।

बंगाल से और मारवाड़ी समाज से जेल गई हुई महिलाओं में आप सबसे पहली हैं। आपका विवाह भी अभी ६ मास पूर्व हुआ है। आपके पति देहली के बाबू केशवदेव गोयनका ग्रेजुएट और देशप्रेमी व्यवसायी युवक हैं। वह जर्मनी हो आए हैं, और इस समय कलकत्ते-में अपना स्वतंत्र कार-बार कर रहे हैं। इंदुमती! केशवदेव का विवाह-संस्कार बहुत आदर्श रूप से केवल २००) में, वैदिक विधान से, सुविद्वानों द्वारा संपन्न हुआ था। सेठ जमनालाल बजाज के बाद मारवाड़ी-समाज में इस प्रकार का यह दूसरा आदर्श है।

जिस देवी का आदि ऐसा उज्ज्वल है, उससे भविष्य में भी देश और समाज को आशा करना स्वाभाविक है।

श्रीमती लाडोरानी ज़ुत्शी

श्रीमती लाडोरानी ज़ुत्शी पंजाब-प्रांतीय कमेटी की आठवीं सभानेत्री और युद्ध-परिषद् की डिक्टेटर थीं। वह १५ अगस्त को आधीरात को लाहौर में गिरफ़्तार की गईं। १८ ता० को उन्हें मैजिस्ट्रेट मि० डिसने की अदालत में पेश किया गया। उनसे कहा गया कि ३०००) की ज़मानत और मुचलके पर मुक़दमे के दिनों के लिये उन्हें रिहा किया जा सकता है, लेकिन आपने इससे इनकार कर दिया।

अभियोग आप पर था राजद्रोहपूर्ण भाषण करने और सरकार के ख़िलाफ़ नफ़रत फैलाने का। आपकी ऐसी ग्यारह स्पीचें आपत्ति-जनक समझी गईं, और चूँकि उनके द्वारा श्रीमती लाडोरानी ने गवर्नमेंट के प्रति प्रजा में विद्वेष के भाव जाग्रत् किए थे, इसलिये उनसे दफ़ा १०८ के मुताबिक़ एक साल तक "सद्व्यवहार बनाए रखने के लिये" दस हज़ार का मुचलका और इतनी ही रक़म की दो ज़मानतें तलब की गईं।

श्रीमती लाडोरानी ने ज़मानत-मुचलका देने से इनकार कर दिया; अदालत की कारवाई में कोई भाग नहीं लिया। आपको एक साल सादी क़ैद की सज़ा दी है।

श्रीमती लाडोरानी पं० मोतीलाल नेहरू के सगे भानजे पं० लाडिलीप्रसाद ज़ुत्शी (ऐडवोकेट, प्रयाग-हाईकोर्ट) की पत्नी हैं। इधर कई वर्षों से वह अपने पीहर लाहौर में रहती हैं। आपकी चारों लड़कियाँ भी आपके साथ हैं, जो सब-की-सब ग्रेजुएट हैं, और जिनमें से दो इस समय पंजाब के राष्ट्रीय-संग्राम में अपनी मा की भाँति ही काम कर रही हैं।

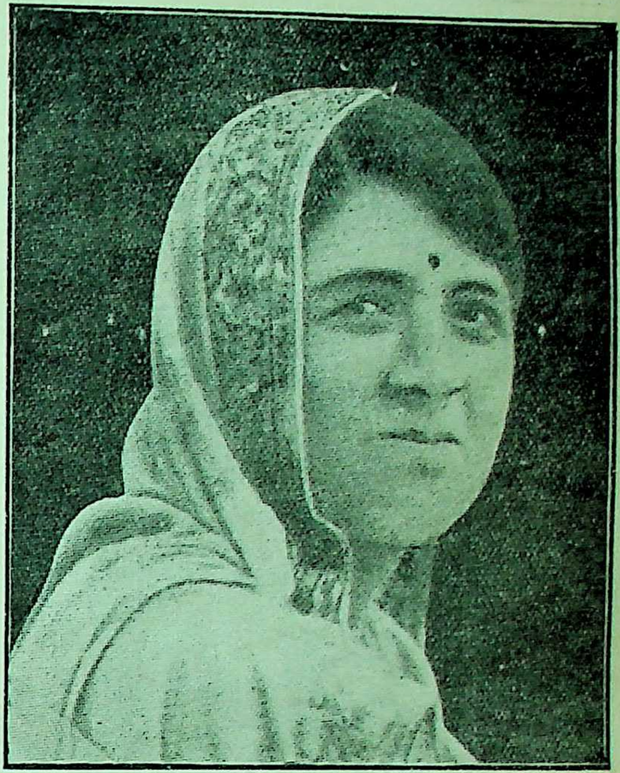

श्रीमती लाडोरानी ज़ुत्शी

श्रीमती उर्मिलादेवी शास्त्री

मेरठ के महिला-समुदाय को जाग्रत् और संगठित कर क्षेत्र में ला खड़ा करने का श्रेय केवल श्रीमती उर्मिलादेवी को है। आर्यसमाजी पिता की पुत्री होने से समाज-सेवा की धुन आपमें पैतृक है और यही कारण है कि ब्याह के बाद अपने पति के पास मेरठ आते ही आपने महिला-उत्थान आदि सामाजिक सुधार के कामों में हाथ डाल दिया। आपके उद्योग से गत जनवरी मास में, आपकी अध्यक्षता में, स्त्रियों की एक कांनफ्रेंस मेरठ में हुई, जिसमें स्त्रियों के क़ानूनी अधिकारों के संबंध में कई उपयोगी निश्चय स्वीकृत हुए।

काश्मीर के कला-संपन्न वायुमंडल में पली हुई एक धनिक पिता की पुत्री श्रीमती उर्मिलादेवीजी को किस प्रेरणा ने सत्याग्रह-जैसे दुरूह मार्ग का पथिक बनाकर, कारागार की एवं अन्य अनेक यातनाओं से निश्चिंत

करके देश के स्वाधीनता-पथ की ओर अग्रसर किया, इसकी एक छोटी-सी कथा है।

उससे वह समझ गईं कि जब तक भारत की जनता मूक पशुओं की भाँति दासता की विकट ज़ंजीरों में जकड़ी हुई है, तब तक समाज-सुधार या धर्म-प्रचार के सब आयोजन व्यर्थ है।

श्रीमती उर्मिलादेवी शास्त्री

अस्तु, मेरठ की महिलाओं ने केवल कपड़े पर विजय नहीं प्राप्त की, उन्होंने अँगरेज़ी माल के बॉ कर-आंदोलन को भी चलाया। श्रीमती उर्मिला यहाँ भी सबसे आगे थीं।

श्रीमती उर्मिलाजी ने मेरठ के बाहर देहात में जाकर काम किया। कभी-कभी तो इन्हें इतना बोल पड़ता था कि इनका गला पड़ जाता, और तब लगाकर आप बोलतीं। आपके हृदय में जैसा प्रेम है, परमात्मा ने वक्तृत्वशक्ति भी आपको वैसी ओजमय प्रदान की है। एक दिन मेरठ की वेश्या की एक मीटिंग में आप बोल रही थीं, उधर उन वेश्या की आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी थी। परि यह हुआ कि वेश्याओं ने शराब न पीने, खादी प और चरख़ा कातने की प्रतिज्ञा कर ली।

१७ जुलाई की रात को श्रीमती उर्मिलादेवी ने महती सभा में अपना प्रभावशाली भाषण दिया। आपका अंतिम भाषण सिद्ध हुआ।

१८ ता० को प्रातःकाल पाँच बजे ही आप गिरफ़ कर ली गईं, और ६ मास सादी क़ैद की सज़ा सुनाई गई।

श्रीमती उर्मिलादेवी काश्मीर-प्रवासी पंजाबी चिरंजीलाल (ठेकेदार, श्रीनगर) की पुत्री हैं। की आप विदुषी हैं, संस्कृत और अँगरेज़ी भी जानती

आपके पति श्रीधर्मेंद्रनाथजी 'घोर आर्यसमाजी' हुए भी खादी और गांधी के अधिक समीप हैं, समाज के क्षेत्र में रहते हुए भी उनका अपना वा बिलकुल अलग है। श्रीमती उर्मिलाजी से भ समाज को अभी बहुत आशा करनी चाहिए। पर करे, हमारा यह अनुमान सत्यसिद्ध हो।

मंगलदेव

साहित्य और विज्ञान

१. हिंदी-साहित्य-सागर का एक 'नूतन-काव्य-रत्न'

हिंदी-भाषा ही एक ऐसी भाषा है, जो संसार की समस्त भाषाओं की अपेक्षा सर्वांगपूर्ण, सरस, सरल एवं सर्वश्रेष्ठ भाषा कही जा सकती है। इसका साहित्य-क्षेत्र विशाल है। इसमें विषय-बहुलता, विचार-गंभीरता तथा मौलिकता-मधुरता का अद्भुत सम्मेलन है। काव्य के लक्षण, गुण, दोष, रीति, रस-भाव आदि की जो विशद व्याख्याएँ हिंदी-साहित्य में की गई हैं, उनके जोड़ का साहित्य, उन्नति की चरम सीमा को प्राप्त आधुनिक इँगलैंड के बृहत् साहित्य-भंडार में भी कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। अतएव ऐसी सर्वगुणसंपन्न भाषा के साहित्य-ग्रंथों की रक्षा करना हिंदी-भाषा-भाषी सज्जनों के लिये ही नहीं, वरन् संसार के समस्त शिक्षित समाज के लिये भी आवश्यक व साथ-ही-साथ मंगल-प्रद भी है।

यह संतोष की बात है कि हिंदी के अनेक प्रेमियों ने इस भाषा के प्रचार एवं इसके ग्रंथ-संरक्षण-कार्य में स्तुत्य प्रयत्न किया है और कर रहे हैं। विश्व-भारती, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन आदि संस्थाओं द्वारा हिंदी साहित्य-ग्रंथों के प्रचार, संशोधन, अनुसंधान, निर्माण, वृद्धि आदि का कितना अपूर्व हितसाधन हो रहा है और होगा, इसका विस्तृत-विवरण विश्व का भावी इतिहास बतलाएगा।

इतना सब होते हुए भी अभी इस कार्य के हेतु बड़े परिश्रम एवं खोज की आवश्यकता है; क्योंकि अभी प्राचीन हिंदी-साहित्य की बहुत-सी बहुमूल्य हस्तलिखित पुस्तकें ग़रीब गृहस्थों के यहाँ फटे-पुराने चिथड़ों में लिपटी हुई पड़ी हैं, जिनके अस्तित्व का लोगों को पता तक नहीं है। हज़ारों पुस्तकों को आज भी कीड़े-मकोड़े खा रहे हैं। इस प्रकार हिंदी के प्राचीन

धुरंधर विद्वानों के बहुमूल्य ग्रंथों का बड़ी द्रुत गति से एक ओर नित्यप्रति ह्रास भी हो रहा है। यदि इसकी उपेक्षा की जायगी, तो बड़ी हानि होगी, जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती। अतएव इस हानि को यथाशीघ्र रोकने की बड़ी आवश्यकता है। इसी भाव से प्रेरित होकर आज कुछ दिनों से मैं इस कार्य में यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा हूँ, जिसके फल-स्वरूप अब तक मुझे अपने ही गृह में, प्राचीन पुस्तकालय में, २५-२६ सुंदर अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रंथ-रत्न प्राप्त हो गए हैं, जिनके प्रकाशित कराने का पूर्णतः प्रयत्न भी कर रहा हूँ। प्राप्त ग्रंथों में से एक अपूर्व ग्रंथ का परिचय आज प्रेमी पाठकों को दिया जाता है।

इस ग्रंथ का नाम है "भ्रमर-गीत"। इसके रचयिता 'संत-रसिक'-नामक कवि हैं। यह भक्त-कवि महोदय कहाँ के निवासी थे, पूरा-पूरा इनका क्या नाम था, किस संवत् में और कहाँ इन्होंने इस ग्रंथ की रचना की, इत्यादि कुछ भी इस पुस्तक द्वारा स्पष्ट नहीं होता। आदि में केवल इतना लिखा है—

श्रीगणेशाय नमः। अथ भ्रमर-गीत प्रारम्भतें।

इसके बाद ग्रंथ शुरू हो जाता है। ग्रंथ-कर्ता ने अपना परिचयात्मक कोई विशेष छंद नहीं लिखा। हाँ, केवल एक पद द्वारा अपने श्रीगुरुदेव की वंदना की है, जिससे ज्ञात होता है कि उक्त कवि वृंदावन-वासी रसिकाग्रगण्य श्रीस्वामी हरिदासजी के शिष्य हैं। स्वामीजी सम्राट् अकबर के समय में थे। वह पद इस प्रकार है—

जय जय श्रीगुरु अवास, वृंदावन किए वास,
जय जय 'हरिदास-स्वामि' जासु बोध बोधे;
जप, तप, व्रत, धर्म, नेम, ज्ञान हू विराग प्रेम,
स्वारथ-परमारथ-पथ, पग-पग, जिन सोधे।
करत सखी सुख अनूप, विधिप्रपंच तजि निरूप,
राधा-माधव-स्वरूप, भाव-भवन रोधे;
'संत-रसिक' विषय त्रास, लुठत चरन किए आस,
दीजै निज टहल महल, रहिमनादि बोधे।

इस ग्रंथ के लिपि-कर्ता का भी कुछ पता न
है। अत में केवल इतना लिखा है—

इति श्रीभ्रमर-गीते प्रेम-कल्पद्रुमे संत-रसिक-विर
तायां श्रृंगार भक्ति-ज्ञान-विरह-फलम् संपक्कं संपूर
समाप्तम् सुभमस्तु मंगलं ददात्।

इस तरह यह ग्रंथ-रत्न ३६ पेज में,
छंदों में, पूर्ण होता है। इस ग्रंथ में लिखी
भाषा का सौष्ठव सराहनीय और माधुर्य आस्वा
है। कवि की सहृदयता, आत्मशुद्धि, उसक
कल्पनातीत भावुकता एक-एक पद से प्र
हो रही है। गाने योग्य मधुर रचना का
रसमय यह एक अद्भुत और अनूठा ग्रंथ है
ग्रंथ-कर्ता भक्त-प्रवर 'संत-रसिक' कवि, यो
श्रीकृष्णचंद्र की अनन्य भक्ति में हिंदी-साहित्य
काश के प्रचंडांशुमाली श्रीसूरदासजी की सम
करते दिखाई देते हैं, तो अलंकार से ओत-प्रो
प्रासाद-वर्णन-वैचित्र्य में कविकुल-कुमुद-कला
श्रीतुलसीदास महाराज से बाज़ी लेते मालूम हो
हैं। इन्होंने अपने छोटे-से ग्रंथ में निष्काम-ध
त्याग-धर्म, अनन्य-भक्ति, विश्व-प्रेम के उच्च
आदर्श का जैसा मनोहर विचित्र चित्र खीं
है और सरस, सरल भाषा में जिस अपूर्व सौंद
एवं अलौकिक चरित्र की सुखद सृष्टि की है
वह हिंदी-भाषा के साहित्य में सदैव अ
रहेगी।

मैंने अतृप्त तृष्णा से 'भ्रमर-गीत' का सुध
रस पान किया है, जिससे मेरी आत्मा को बहु
कुछ शांति मिली है, उसी के दो-चार पद्यों
यहाँ उद्धृत कर आशा करता हूँ कि भावु
महानुभाव इन्हें पढ़कर अवश्य प्रसन्न होंगे।

१—राग केदारा

मधुकर साँवरे के नैन।
लगे जाहि सु जानि उनकी चुभन चोपी पैन।
रहत कसकत चतुर चितवनि चलनि चंचल सैन;
'संत-कवि' लै वारिए झष, कंज, खंजन—मैन।

२—रागिनी भैरवी

धन्य सब गोपिकावृंद बड़ भागिनी।
भगति-पाथोधि वर प्रेम जल नेम भरि,

कृष्ण - पद - कंज मन - मधुप अनुरागिनो ;
आप संभाखते भक्ति-मति पावहू,
स्वामि-पद प्रीति भे, दरस तव भामिनी ।
जानि गुरु-मात-पद-कमल सिर नावहू,
छमब मम वाक्य-कटु-'संत-कवि'-स्वामिनो ;

३—राग केदारा

हमैं इक श्याम ही की आस ।
हमकों कोटि मोक्ष सम ऊधव केशव रहस विलास ।
विश्व-विमोहन मूरति पिय की पाई विनहि प्रयास ;
ताहि विहाय सुधा-सागर कों क्यों ओस बुझावैं प्यास ।
जो तुम व्यापक ब्रह्म बतावत सो न हमैं बिसवास ;
तदपि जु कछु उपाय करि देखे होत न बोध प्रकास ।
'संत-रसिक' ज्यों धूप सूर्य को तत्तरूप त्यों भास ;
सोऊ सुलभ नहीं बिरहिन कों जिनकी सुरति न पास ।

४—राग केदारा

सजनी श्याम कों यों जान ।
निराकार निरीह निर्गुन बिरज अज निर्बान ।
भक्ति-हित कछु काल तुम्हरे गेह निवसे आन ;
प्रेम-परिपूरन तुम्हारे मानि ताकी कान ;
मोहि पढ़व प्रबोध मिस निज देहि कों दृढ़ ज्ञान ;
होहि जातें ब्रह्मरति तजि विषय मोह गलान ।
पर्म मति सुनि धर्म भाग्यो गुनत रैन सिरान ;
'संत-कवि' ब्रज बाम जागीं, करत हरिगुन गान ।

५—राग वसंत

मग चलत मोह अस कह कृपाल ।
मम बिरह बिसूरन तजहु बाल ।
हमकों तुमकों कछू नाहिं भेद ;
देखहु बिचार चित तजहु खेद,
तुममें हम इहि विधि सो बसंत ।
जिस (?) कला सकल तुम गोपि-वृंद,
जिमि भानु भास चाँदनी चंद ;
आतमा ज्ञान देखौ बिचार,
निज आप रूप आपहिं निहार ;
मम विषयनि रति जन जानि बाम,
लखु जोग ध्यान आतमाराम ।
जो चहौ मोहिं, मम निकट वास,
कर जोग ध्यान ज्ञानहिं प्रकास ।
'कवि-संत' विश्वव्यापक अनंत,
उर कमल मध्य देखौ बसंत ।

६—राग वसंत

उर ब्रह्म ज्ञान कर धरहु धीर ।
तजि विषय विसूरनि विषय पीर ।
देखहु विचार कर चित्त चाहि ;
जग वसत ब्रह्म सब हृदय माहिं ।
हममय तुममय हरिमय वसंत ;
ध्यावत जोगी जन साधु-संत ।
'कवि-संत' जीति प्रकृतैं पचीस ;
नरनारि भाव तजि भजहु ईस ।

७—राग देश

कबहुँ जदुबंस-मनि मो सुरति करहिंगे ।
गोधन गिरि कों उठाइ इंद्र कोप तें बचाइ,
दावानल भाँति विरह-वारिधहु तरहिंगे ।
अंकुस धुज कुलिस कंज चौकि चक्र धनुष मंजु,
अर्धचंद्र चिह्नित पद भवन मम ढरहिंगे ।
कछनी कटि ललित लाल मुक्तामनि कंठमाल,
उन्नत उर, भुज विसाल सीस मम धरहिंगे ।
केसर कौ तिलक भाल भ्रुकुटि विकट दृग विसाल,
ससि मुख पर स्वेद-जाल देखि सुख भरहिंगे ।
मधुर-मधुर बजत बेन मोहहिं सतकोटि मैन,
कोकिलवत बैन सुने दुसह दुख दुरहिंगे ;
सोहहिं सिर मोरपच्छ कटि पट कसि धेनु रच्छ,
पूरब ब्रजबास आचरन आचरहिंगे ।
'संत-रसिक' दरस आस वृंदावन किए वास,
मेरे दुख दुसह त्रास कृष्णजू हरहिंगे ।

८—राग विलावल

एक दिना प्रभु बैठि सुखासन गोपिन का सुधि आनि कही है,
है धिक या प्रभुता सिगरी जबलौं ब्रजकी सुधि नाहिं लही है ।
ऊधव बेगि हकारि कही ब्रज जाहु सखा मम काज सही है,
गोपिन गोपन के धन-जीवन प्रानअधार रहे हमही हैं ।
जादिन हौं ब्रज त्याग कियौ उन घेरि लियौ मग रोकि रही है,
तादिन तें सुधि लीन्ह न हौं उनके अब प्रेम बढ़ौ अतिही है ।
नंद समेत सबै ब्रज लोग त्रिया बिरहानल ताप दही है,
ज्ञान बिहीन दुखी 'कवि-संत' सुईश्वर सों पहिचान नहीं है ।

९—राग कान्हरा

मधुकर वृंदाबन दृग देखे ।
अधमहु जीव परमपद पावत होत भगत जन लेखे ।
श्रीवृंदाबन मात विदित जग वृंदाबन में देवी,

रच्छा करत सकल ब्रज जन की जे पद-पंकज-सेवी ।
करियो जाय प्रनाम मोहि द्रुत चरन कमल सिर नाई ,
करि पूजा मम बिनयै करब जिहिं देखहुँ पद सुखदाई ।
वृंदाबन वृंदाबन देवी जा दिन नैन निहारौं ,
'संत-रसिक' बड़ भाग आपनो ता दिन हृदय बिचारौं ।

१०—राग भैरव

उद्भुत आसनासीन जदुबंस - मनि ,
नील जलदाभ तन पीतपट छबि घनी ।
मुकुट सिर, श्रवन कुंडल, तिलक भाल,
उर माल बैजंति श्रीवत्स कौस्तुभ-मनी ;
कंस चानूर मुर मुष्टि तोसल दलनि ,
बाहु बलसालि जुग दीनजन-रच्छिनी ;
चरन जलजाभ जुग निरखिमन, हरखि जन ,
'संत' गहि पतित कहि जयति गोकुलधनी ।

११—राग केदारा

अनख अलसात ललचात तिरछात वर ,
तड़प तलफंत नवरस सुछाके ।
कंज अलि खंज मृग मीन क्यों पटत रहु ,
बिस्व बस करन बानैत वाके ।
सकल अनुराग बैराग षट राग जग ,
त्रिगुन मुनि देव बस होहिं जाके ।
भनत 'कबि संत' सोइ रसिक जन मुकुट मनि
राधिका-रमन-दग मित्र जाके ।

१२—राग देश

मानिए हठि छाँड़ि सिखावन ,
सुगति मूल अघ-ओघ-नसावन ।
त्यागहु कर्म उपासन नेमा ,
विषम फाँसि नर बिषयक प्रेमा ।
श्रुति प्रनीति करि ज्ञान प्रचारू ,
दस बसि करि षट तजहु बिकारू ।
जोग जुगति करि ध्यान बिचारी ,
चेतन पुरुष लखौ ब्रज नारी ;
जातें बिरह बिपत बिलगाई ,
ब्रह्मानंद न हृदय समाई ।
'संत-रसिक' पद यह निर्बाना ,
मोच्छ पंथ गहु तज अज्ञाना ;

पीतांबरराव भट्टाचार्य

× × ×

२. आलोचन-कला

आश्चर्य तो हमको उन लोगों पर होता है, जो अलंकारवाद की धज्जियाँ उड़ाते हुए कलावाद का विज्ञाप बाँटते फिरते हैं । विलायत का कलावाद हमारे यहाँ अलंकारवाद से कुछ कम ही जान पड़ता है, अधि नहीं । विश्वास न हो तो 'अनन्यवाद' और 'कलावा की समुचित समीक्षा कर देखिए । कलावादियों कथन है कि कला का उद्देश्य कला ही है । यदि उन बात मान लें, तो मनुष्य-जीवन का उद्देश्य भी मनुष् जीवन ही है । फिर मनुष्य अपने उद्देश्य से विचलि हो कला के फेर में क्यों पड़े ? सच बात तो यह है कला की सत्ता मानव-व्यापार के परे सिद्ध ही नहीं सकती । वह साध्य नहीं, साधन है । अस्तु, कला उद्देश्य कला नहीं, मानव-व्यापार ही है । मानव-व्यापा की अभिव्यंजना ज्यों-ज्यों सौंदर्य का प्रकाशन करती जा है, त्यों-त्यों कला का परिष्कार होता रहता है । मान जीवन में जो स्थान लावण्य का है, मानव-व्यापार वही स्थान कला का है । लावण्य को देखकर जि प्रकार हम देही की ओर खिंचते हैं, उसी प्रकार कला देखकर देही की कृति की ओर बढ़ते हैं । अतः क का नाम सुनकर न तो हमको मंत्रमुग्ध की भाँति कुछ लुटा देना चाहिए और न विस्मय में पड़कर कुछ गँवा देना चाहिए । उस पर विना विचार किए हम अपना काम चला सकते हैं और चलाते आए हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट ही है कि आलोच कला के कला-शब्द से कुछ भयभीत या सजग हों की आवश्यकता नहीं है । आवश्यकता है समालोचना की समीचीन समीक्षा एवं समुचि विवेचना की ।

प्रायः लोग कहा करते हैं कि समालोचक छिद्रान्वे होते हैं और उनकी साहित्यिक असफलता ही उन समालोचक बनाती है । उनकी दृष्टि में समालोच केवल छिद्रान्वेषण ही है । हमारा ध्येय यहाँ पर प्रकार की थोथी आपत्तियों पर विचार करने का है । हम तो समालोचना के मूल में पैठकर उस यथार्थता को हृदयंगम करना चाहते हैं । यहाँ पर यह कह देना अनुचित नहीं समझते कि इस हमारी दृष्टि साहित्य की समालोचना पर ही है ।

हमारा विवेचन भी साहित्य की दृष्टि से ही होगा, सम्मति देने के विचार से नहीं।

प्रत्येक व्यक्ति कवि या लेखक भले ही न हो, पर आलोचक तो अवश्य ही है। यह एक ऐसा सत्य है, जिसकी उपेक्षा प्रायः लोग किया करते हैं। जब कभी हम किसी वस्तु को देखते हैं, तो उस पर कुछ-न-कुछ विचार कर ही लेते हैं। ये ही विचार हमारे और उस वस्तु के बीच एक संबंध स्थिर कर देते हैं और हमको विवश करने लगते हैं कि हम उसके प्रति कुछ धारणा भी बना लें। और जब हम इन धारणाओं को प्रकट करते हैं, तब एक प्रकार से सम्मति ही देते हैं। पर यह सम्मति उस सम्मति से भिन्न होती है, जैसी वैद्य या वकील प्रायः दिया करते हैं। इस सम्मति में हमारे हृदयगत भाव भी रहते हैं। यह सम्मति उस निर्णय से भी भिन्न होती है, जिसको जज लोग प्रायः दिया करते हैं। यही नहीं, उस आदेश से भी यह भिन्न होती है, जिसको धर्माचार्य लोग बराबर देते फिरते हैं। इसमें वह छाप भी लगी रहती है, जो हमारे मनोविकारों का फल कही जा सकती है। तो क्या यह सम्मति ही समालोचना है?

प्रभाववादियों का कथन है कि प्रत्येक वस्तु का प्रभाव हम पर पड़ता है। हम जब कभी किसी कविता या लेख को पढ़ते हैं, तो उसका जो कुछ प्रभाव हमारे हृदय तथा मस्तिष्क पर पड़ता है, हम उसी को दूसरों पर प्रकट करते हैं। अतः यह प्रकटीकरण ही समालोचना है। अभिव्यंजनावादियों का कथन है कि यह ठीक है। हमको कुछ कहना अवश्य है, चाहे वह बुद्धिगत हो चाहे हृदयगत; पर हम उसको एक विशेष ढंग से कहना चाहते हैं, उसमें कुछ चमत्कार लाना चाहते हैं। अतः हमारी दृष्टि में उस अभिव्यंजना का प्रत्यक्षीकरण ही समालोचना है। यह सुनते ही निर्णयवादी कह उठता है कि नहीं, यह कथन ठीक नहीं। वास्तविक स्थिति तो यह है कि हम किसी वस्तु के गुण से परिचित होते ही उसके प्रति कुछ विचार स्थिर कर लेते हैं, और अन्य वस्तुओं से उसकी विशेषता भिन्न कर लेते हैं। अतः उसके प्रति कुछ धारणा भी बन जाती है। यह धारणा एक प्रकार से निर्णय ही है। अतः हमारे विचार में इस निर्णय का स्पष्टीकरण ही समालोचना है।

योरप की संस्कृति दौड़ लगाने में बहुत ही पटु है। वहाँ चारों ओर दौड़-धूप हो रही है। जिसके सामने जो कुछ आ गया, वह उसी का झंडा ले आगे बढ़ चला और उसी को सब कुछ कहने लगा। उसके कहने का ढंग बहुत ही मोहक है। यही कारण है कि उसका आंशिक सत्य भी पूर्णतः सत्य अवगत होता है। उस बात को सामने रखकर जब हम उपर्युक्त विवाद पर दृष्टि डालते हैं, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक वाद अंशतः ठीक है, सर्वतः कदापि नहीं। हृदयंगम करने के लिये इसको एक उदाहरण के साथ समझना चाहिए। कल्पना कीजिए, समालोचना एक त्रिभुज है, जिसकी भुजाएँ—प्रभाव, अभिव्यंजना एवं निर्णय हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि जिस व्यक्ति के सामने जो भुजा होगी, वह उसी को त्रिभुज का आधार मानेगा। पर वस्तुतः त्रिभुज का आधार एक भी नहीं या तीनों ही हैं। अतएव समालोचना के लिये तीनों ही वाद आवश्यक हैं। विशिष्ट प्रभाव, विशिष्ट अभिव्यंजना एवं विशिष्ट निर्णय के सामंजस्य से ही समालोचना का रूप खड़ा होता है। हमारे यहाँ इन्हीं वादों का सूक्ष्मरूप—भाव, विभाव और अनुभाव के परिपाक से निष्पन्न—रस है। अस्तु, किसी वस्तु के रस का प्रत्यक्षीकरण ही उसकी समालोचना है।

यदि कवि भावप्रधान और लेखक विचारप्रधान होता है, तो समालोचक उभयप्रधान। समालोचना के लिये भावुकता तथा विद्वत्ता दोनों ही अपेक्षित हैं। यदि समालोचक भावुक नहीं है, तो वह कवि के हृदय की सच्ची अनुभूतियों की थाह नहीं लगा सकता, और यदि वह मनीषी नहीं है, तो उन अनुभूतियों का मूल्य आँकने में वह कदापि समर्थ नहीं हो सकता। लेखक के मनोविकारों, मनोवेगों तथा चित्तवृत्तियों का अध्ययन करने के उपरांत उनका मूल्य आँका जाता और उनका लेखा लिया जाता है। यदि उनकी बातें समाज, देश एवं काल के अनुकूल पड़ीं, तो उनका निदर्शन करना आवश्यक हो जाता है। समालोचक के विचार अब समाज के विचारों की उपेक्षा नहीं करते, प्रत्युत उन पर उचित ध्यान देते हैं। इस प्रकार समालोचना के सहारे हम अपनी संस्कृति तथा सभ्यता का परिचय प्राप्त करते या करना चाहते हैं। अतएव समालोचक का काम व्यापक पांडित्य का अर्जन करना और उसके बल पर प्रस्तुत विषय की समीचीन समीक्षा करना भी है। इस

समीक्षा के लिये प्रतिभा और मेधा के साथ ही साथ प्रज्ञा भी अनिवार्य है । प्रज्ञा अपना काम तभी भली भाँति संपादित कर सकती है, जब वह मनोवेगों से मुक्त हो । किसी भाव के आवेश में सुंदर कविता बन जाती है, पर सुंदर समालोचना तो स्थिर तथा स्वच्छ बुद्धि ही कर सकती है । इस दृष्टि से समालोच्य कवि या लेखक के प्रति विशेष श्रद्धा भी आवश्यक नहीं है । सहानुभूति से हमारा काम भली भाँति चल सकता है ।

समीक्षा के क्षेत्र में एक बहुत ही पुराना प्रश्न प्रायः खड़ा होता है । लगे हाथों उसको भी देख लेना संगत जान पड़ता है । प्रश्न यह है कि किसी कवि या लेखक की समालोचना किस दृष्टि से करनी चाहिए ? कुछ लोगों का कथन है कि समालोच्य वस्तु की समीक्षा उसी की दृष्टि या कवि-दृष्टि से ही होनी चाहिए। परंतु कुछ लोग इसका विरोध करते हुए कहते हैं कि किसी की समालोचना हमको या तो अपनी दृष्टि से करनी चाहिए, या शास्त्रों की नियमित दृष्टि से । यदि सच पूछिए, तो तीनों दृष्टियों से काम लेने पर ही सत्समालोचना हो सकती है । हमारे विचार में तो एक भी दृष्टि ऐसी नहीं है, जिसकी आवश्यकता समालोचक को कभी न पड़े । समालोचक का ज्ञान-भंडार जितना ही व्यापक तथा विस्तृत होगा, उतना ही वह सत्समालोचना में समर्थ होगा । अपने समय की बातों को हम सरलता से समझ लेते हैं, और प्राचीन बातों को हृदयंगम करने के लिये विशेष प्रयत्न करते हैं । फिर भी उनके विषय में हमारा ज्ञान अधूरा ही रह जाता है । अतः प्राचीन विचार-धारा से भली भाँति परिचित होने पर ही प्राचीन कवियों तथा लेखकों की आलोचना करनी चाहिए । प्रायः यह देखने में आता है कि कुशल समालोचक भी, उक्त विचारधारा से अपरिचित होने के कारण, समीक्षा के क्षेत्र में मिथ्या प्रलाप करते फिरते हैं और यशस्वी कवियों की कीर्ति को कलंकित कर ही दम लेते हैं। विदेश के समालोचकों को इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिए । सत्य संसार में बिखरा पड़ा है । उस पर सभी का अधिकार है । किसी मुख्य जाति ने उसका ठेका नहीं ले रक्खा है । अतः समालोचक को समझ-बूझकर हाथ लगाना ही उचित है ।

चंद्रबली पांडेय

३. भौतिक विज्ञान का नोबेल-पुरस्कार

इस वर्ष के भौतिक विज्ञान का नोबेल-प्राइज़ भार वैज्ञानिक श्रीचंद्रशेखर-वेंकटेश रमन महोदय को हुआ है । उक्त घोषणा होने के चार दिवस पूर्व ही लैण्ड की सुप्रसिद्ध रॉयल सोसाइटी ने आपको ह्यु पदक देकर सम्मानित किया था ।

यों तो नोबेल-प्राइज़ हर साल किसी-न-किसी वै निक को मिलता ही है; परंतु यह पहला अवसर है यह गौरव एक भारतीय वैज्ञानिक को प्राप्त हुआ है सर सी० वी० रमन ने कहीं बाहर जाकर शिक्षा नहीं की और न किसी विदेशी प्रयोगशाला ही में वैज्ञानिक अन्वेषण किए हैं । इसलिये जो सुवि वैज्ञानिक अन्वेषण के लिये योरपीय देशों में प्राप्त है आपको कभी प्राप्त नहीं हुईं । भारत में वैज्ञानिक अ षण के लिये जो-जो असुविधाएँ हैं, वे पाठकोंसे छिपी नहीं यह सब होने पर भी रमन महोदय ने जो कुछ किया इसके लिये उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी ही है

रमन महोदय का जन्म ७ नवम्बर, स० १८८८ ई० ट्रिचनापल्ली में एक साधारण वंश में हुआ था। आ पिता श्रीचंद्रशेखर ऐयर वहीं किसी स्कूल के शिक्षक रमन महोदय के जन्म के कुछ ही दिनों बाद वाल्ट के एक कालेज में आपको गणित के प्रोफ़ेसर का स्थ मिल गया । श्रीचंद्रशेखर ऐयर गणित और भौति शास्त्र दोनों के अच्छे पंडित थे और साथ ही साथ विद्या में भी अनुराग रखते थे ।

बाल्यावस्था ही से रमन महोदय की वैज्ञा प्रतिभा चमक उठी । आपने बी० ए० में भौतिक वि लिया । लोगों ने आपको इतिहास लेने की राय दी परंतु तेरह वर्ष के बालक रमन ने इनकार करते हुए कि "मैं वही विषय लूँगा, जिसमें मेरी विशेष अभि है ।" अपनी कक्षा में रमन सबसे प्रखर-बुद्धि छात्र निर्द्धारित Experiments के अलावा और भी Ex riments करने की धुन आपको बराबर लगी रहती

बी० ए० का परीक्षा-फल निकला । रमन सर्व आए और भौतिक शास्त्र का 'अरनी स्वर्ण-पदक' किया । इसके उपरान्त आपने भौतिक शास्त्र में एम० की पढ़ाई प्रारम्भ की । एक दिन की बात है कि एक सहपाठी श्री० वी० अप्पाराव को नादशास्त्र

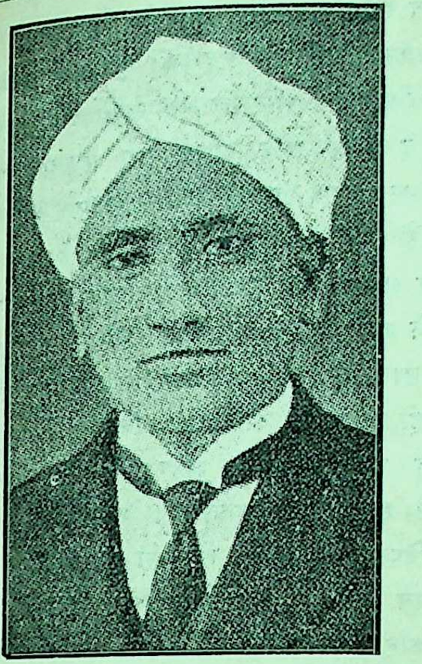

सर सी० वी० रमन महोदय

Experiment में कुछ संदेह हुआ और उसका निराकरण करने के लिये वह अपने प्रोफ़ेसर जोंस के पास गए । परंतु प्रो० जोंस उस समय उस संदेह का निराकरण न कर सके । श्रीरमन महोदय ने उस Experiment को स्वयं किया और उस विषय पर लार्ड रेले महोदय के वक्तव्य को पढ़ने के उपरान्त उस Experiment के करने का एक नवीन तरीक़ा निकाला, जो पुराने तरीक़े से कहीं अच्छा था । उस नवीन तरीक़े की प्रशंसा स्वयं लार्ड रेले महोदय ने की और बालक रमन के पास बधाई का पत्र भेजा । इस घटना से उत्साहित हो रमन ने उस विषय पर एक गवेषणा-पूर्ण लेख लिखकर लंदन के प्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्र "फ़िलासॉफ़िकल मैगज़ीन" में भेजा जिसको उसके संपादक ने सहर्ष स्वीकार किया । दूसरे वर्ष एक और लेख जिसका प्रकाशशास्त्र से सम्बन्ध था, लिखकर एक दूसरे पत्र "Nature" में भेजा । उसे भी उसके संपादक ने सहर्ष स्वीकार कर लिया ।

एम० ए० की परीक्षा देने के उपरान्त आपकी इच्छा विदेश जाकर अध्ययन करने की हुई । इसके लिये आपको मदरास-सरकार से छात्रवृत्ति भी मिल जाती; परंतु इसमें एक ऐसी बाधा उपस्थित हुई, जिससे आप को अपना विचार स्थगित करना पड़ा । श्रीरमन का स्वास्थ्य बहुत ही ख़राब था । आपके स्वास्थ्य की परीक्षा लेने पर डाक्टरों ने आपको विदेशयात्रा करने की राय न दी ।

उस समय अर्थ-विभाग के अफ़सरों की नियुक्ति एक परीक्षा द्वारा होती थी । यह परीक्षा बड़ी कठिन समझी जाती थी और भारत-सरकार द्वारा संचालित होती थी । इस प्रतिद्वंद्विता में भाग लेने के लिये प्रति वर्ष भारतवर्ष के चुने-चुने विद्यार्थी कलकत्ते में एकत्र होते थे । श्रीरमन ने इसी परीक्षा में शामिल होने का निश्चय किया और अध्ययन करने के लिये आप कलकत्ते आए । बहुत ही अल्पकाल में उन्हें ऐसे-ऐसे विषयों का अध्ययन करना पड़ा जिनमें उनका तनिक भी चाव न था । जैसे इतिहास, संस्कृत और अर्थशास्त्र ।

परीक्षा प्रारंभ होने के कुछ ही दिन पूर्व आपको समाचार मिला कि आपने मद्रास-विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा में प्रमुख स्थान प्राप्त किया है । यही नहीं, आपने भौतिकशास्त्र में इतने अधिक नंबर प्राप्त किए थे, जितना कि उनके पूर्व के किसी छात्र ने न प्राप्त किया था । इस सुसंवाद ने श्रीरमन के उत्साह को बहुत बढ़ा दिया और आप दुगने परिश्रम से आगामी परीक्षा की तैयारी में लग गए । और, इस बार भी विजयश्री आप ही को प्राप्त हुई । आप उत्तीर्ण छात्रों में सर्वप्रथम हुए ।

इस प्रकार १९ वर्ष की छोटी उम्र में रमन महोदय भारत-सरकार के अर्थ-विभाग में डिप्टी डाइरेक्टर जेनरल जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर आसीन हुए ।

कौन जानता था कि वही उन्नीस वर्ष का बालक एक दिन विदेशों में जाकर भारत का मस्तक ऊँचा करेगा ? कौन जानता था कि ऐसे पद के पाने के बाद भी बालक रमन विज्ञान की चिन्ता करेगा ? सबने तो यही सोचा होगा कि रमन की ज़िन्दगी अब आराम से बीतेगी और वह अपने अवकाश के दिनों को शिमला या दार्जिलिंग के शिखरों पर गौरांग महाप्रभुओं की संगति में व्यतीत करेंगे ।

परंतु नहीं । रमन उन साधारण पुरुषों में न थे, जिनके जीवन का उद्देश्य ज़िन्दगी को खेल-कूद में बिता देना रहता है । वह तो उन महापुरुषों में हैं, जिनके जीवन का उद्देश्य सत्य का अन्वेषण करना है ।

अस्तु, एकाउंटेंट जनरल होने पर भी श्रीरमन अपने चिरसहचर विज्ञान को नहीं भूले। आपकी नियुक्ति कलकत्ते ही में हुई थी। एक दिन, जब आप ट्राम द्वारा डलहौज़ी स्कायर से सियालदह की तरफ़ जा रहे थे, आपको दृष्टि एक साइनबोर्ड पर पड़ी, जिसमें बड़े-बड़े अक्षरों से लिखा था—"The Indian Association for the cultivation of Science." पहले तो आपने अपने नेत्रों पर विश्वास न किया, परंतु जब ग़ौर से देखा तो आपका भ्रम दूर हुआ। आप तुरंत वहीं उतरकर उस भवन में घुस गए।

उपरोक्त संस्था सर आशुतोष आदि ने विज्ञान की उन्नति के लिये स्थापित की थी। जिस समय रमन महोदय वहाँ पहुँचे, उस संस्था की एक बैठक तुरंत ही समाप्त हुई थी। श्रीरमन ने उस संस्था के सेक्रेटरी डा० अमृतलाल सरकार से परिचय प्राप्त किया और उन्हें अपने उन लेखों को दिखलाया, जिन्हें उन्होंने कालेज के दिनों में लिखा था। डा० अमृतलाल सरकार ने आपको सब प्रकार की सहायता देने का वचन दिया और आप शीघ्र ही उस संस्था के सदस्य हो गए। बहुत शीघ्र आपकी प्रतिभा और विद्वत्ता की छाप वहाँ के लोगों पर पड़ गई और आप उस संस्था की प्रयोगशाला के प्रधान बना दिए गए। अब आपके अवकाश का पूरा समय प्रयोगशाला ही में व्यतीत होने लगा।

परंतु इसी बीच में आपकी बदली रंगून को हो गई। वहाँ जाने पर भी आपका वैज्ञानिक अध्ययन जारी रहा। मार्च, १९१० ई० में आपके पिता की मृत्यु हो गई। आप छः महीने की छुट्टी लेकर मदरास आए। यहाँ पर भी जब कभी अवसर मिला, आप मदरास-विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में जा पहुँचते थे।

सन् १९११ ई० में आपकी बदली फिर कलकत्ते की हुई। अब की बार आप तार और पोस्ट-विभाग के डाइरेक्टर जनरल होकर आए। पुनः आपका काम पूर्ववत् जारी हो गया।

सन् १९१५ ई० में सर आशुतोष ने सर तारकनाथ पालित और डाक्टर रासबिहारी घोष की सहायता से कलकत्ते में साइंस-कालेज की स्थापना की। साथ-ही-साथ 'पालित चेयर' के नाम से भौतिक विज्ञान के लिये एक प्रोफ़ेसर के पद की भी स्थापना हुई। सर आशुतोष ने श्रीयुत रमन को उस पद के लिये सबसे अ योग्य पाकर, उनसे उस पद को स्वीकार करने के अनुरोध किया। श्रीरमन ने सहर्ष अपनी नौकरी स्तीफ़ा दे दिया और अपने नए पद पर आरूढ़ गए। अब तक आप उसी स्थान को सुशो कर रहे हैं।

रमन महोदय का सारा समय अब प्रयोगशाला में बीतने लगा। उस समय से आज तक आपने आपके छात्रों ने भौतिक शास्त्र के विविध विषयों कितने ही महत्त्वपूर्ण आविष्कार किए हैं।

परंतु आपका सबसे महत्त्वपूर्ण आविष्कार प्रका शास्त्र में, हाल ही में, हुआ है। आपने एक नई कि का आविष्कार किया है, जिसका नाम आपही के पर 'रमन किरण' पड़ा है। रमन महोदय के आविष्कार ध्वनिशास्त्र और प्रकाशशास्त्र में हुए उन आविष्कारों को समझने के लिये उच्च वैज्ञा ज्ञान की आवश्यकता है, इसलिये उसकी चर्चा व्यर्थ है।

सन् १९२१ ई० में कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने आ डी० एस्० सी० की उपाधि देकर सम्मानित किया। १९२४ ई० में आप विदेश-यात्रा के लिये निकले योरप, रूस, अमेरिका आदि देशों में भ्रमण करने पश्चात् १९२५ ई० में भारत लौटे। आप जहाँ वहीं आपका पूरा स्वागत हुआ। बड़े-बड़े वैज्ञानि ने दिल खोलकर आपकी प्रशंसा की।

१९२९ ई० में जो वैज्ञानिक कांग्रेस हुई, उसके सभापति बनाए गए और सभापति की हैसियत से जो विद्वत्तापूर्ण भाषण किया था, उसकी सबने मु से प्रशंसा की थी। इसी साल भारत-सरकार आपको 'सर' की उपाधि मिली।

यों तो आपकी प्रशंसा सब वैज्ञानिकों ने की थी नोबेल-प्राइज़ पाने के कारण अब आपकी गणना के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकों में होने लगेगी।

रमन महोदय सिर्फ़ वैज्ञानिक ही नहीं हैं, शिक्षा-संबंधी विचार भी बड़े उच्च हैं। इसका भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों में दिए गए उनके भा मिलता है। आपके भाषण बड़े ही सरस और होते हैं। आपका रहन-सहन बिलकुल सादा है।

आप अपने छात्रों पर विशेष कृपा रखते हैं। आपके छात्र भी आप पर बड़ी श्रद्धा रखते हैं। आपके कितने ही छात्र भिन्न भिन्न सम्मानित पदों पर सुशोभित हैं। कलकत्ते में आपकी एक निजी प्रयोगशाला है, जिसमें आप अपने छात्रों के साथ अन्वेषण का काम करते हैं। आप इँगलैंड की रायल सोसाइटी के सदस्य भी हैं। भारत में अभी तक चार या पाँच ही व्यक्तियों को इस संस्था के सदस्य होने का गौरव प्राप्त है।

श्रीरमन महोदय की आयु अभी थोड़ी ही है। ईश्वर आपको बड़ी आयु दे, जिससे आप विज्ञान की उन्नति कर भारत का गौरव बढ़ा सकें।

भृगुनाथनारायणसिंह

तुरंत ग्राहक बनिए ! आज ही आर्डर दीजिए !!

हिंदी-जगत् का गौरव बढ़ानेवाली

शक्ति

(मासिक पत्रिका)

शीघ्र ही प्रकाशित होगी। महिलाओं के लिये इसमें ख़ास ढंग से सामग्री दी जावेगी। कविताओं, कहानियों और उत्तम लेखों से पत्रिका का कलेवर ख़ूब सजाया जायगा। अपने ढंग की यह अद्वितीय पत्रिका होगी। वार्षिक मू० ४) रु०, छः मास का २।) रु०।

पता—संचालक "शक्ति" लखनऊ।

जीवन-ज्योति

ईश्वर और अनीश्वरवाद

सुप्रसिद्ध साहित्यसेवक मिश्रबंधु महाशयों का लिखा हुआ 'ईश्वर और अनीश्वरवाद'-विषयक लेख 'माधुरी' की पूर्ण संख्या ७३ में प्रकाशित हुआ था। लेखकों ने बहुत-से अनुमान और शंकाओं को उपस्थित करते हुए—ईश्वर को सृष्टिकर्ता होना चाहिए, इस बात की पुष्टि की है, साथ-ही-साथ विशेषज्ञों से—प्रार्थना की है कि वे उस पर अपने विचार प्रकट करें। मैं विशेषज्ञ तो नहीं हूँ, किंतु जैनदर्शन के आधार पर खंडनरूप से कुछ लिखने का प्रयत्न करता हूँ।

लेखकों ने एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण विवाद-ग्रस्त विषय को निर्णय के लिये सबके सामने उपस्थित किया है। संसार में ईश्वर को सृष्टिकर्ता माननेवालों की संख्या बहुत ज़्यादा है, ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को मानते हुए उसे सृष्टिकर्ता न माननेवालों की संख्या बहुत कम है। पर किसी बात को माननेवालों की संख्या बढ़ जाने या घट जाने से तो उसका निर्णय नहीं होता है। वास्तव में वस्तु के यथार्थ स्वरूप के निर्णय करने की सदिच्छा से किए गए समीचीन तर्क-वितर्क से ही सत्य की प्राप्ति होती है। अपने बुज़ुर्गों ने जो कुछ कहा है, वह सत्य है, यह विना विचार के मान लेना अन्धविश्व है। इसी एक अन्धविश्वास की वजह से, केवल एक के नाम पर, दुनिया में सैकड़ों पापकर्मों की सृष्टि हुई मनुष्य-समाज में, ख़ास करके हिंदुओं में, परस्पर अनेक उत्पादक लड़ाई-झगड़ों का बीज कोई है, तो वह अ विश्वास है। जब तक इसका अंत न होगा, तब त मनुष्य-समाज को वास्तविक शांति नहीं मिल सक प्राचीन विषयों के उपदेश भले ही सत्य हों, उन्हें त वितर्क की कसौटी पर जाँच कर सत्य को जान लेना मनु मात्र का कर्तव्य है। सत्य कोई बाज़ार की चीज़ न जो सुलभता से मिल जाय। उसके लिये तो कठिन परिश्रम करना पड़ता है तो भी किसी-कि भाग्यवान् को ही उसकी प्राप्ति होती है। सिर्फ़ ईश्वर के यथार्थ स्वरूप का निर्णय हो जाय और उसे मानने लग जायँ, तो समझ लो कि हज़ारों से चले आ रहे धार्मिक झगड़ों का अंत हो चुका, उससे मनुष्य-समाज को बहुत कुछ सच्ची शांति जायगी।

अस्तु। आप लोग लिखते हैं—"संसार में नियमों का साम्राज्य पाया जाता है, और अनियमता प्राय: है ही नहीं। अब हम पूछते हैं कि ये नियम बिना किसी बनानेवाले के क्या आप-ही-आप बन गए ?...यदि आप उसे स्वभाव (Nature) कहेंगे, तो हम पूछेंगे कि वस्तु का स्वभाव आप-ही-आप स्थिर कैसे हो सकता है......वैज्ञानिकों ने ख़ूब अनुसंधान करके किसी ज्ञानयुक्त रचयिता का होना अधिक संभव बतलाया है........"

उत्तर—संसार में नियमों का साम्राज्य पाया जाता है और अनियमता प्राय: है ही नहीं—यह बात सर्वथा नहीं कही जा सकती; क्योंकि नियमित और अनियमित दोनों बातें देखने में आती हैं। यदि संसार का कार्य नियमानुकूल ही होता रहता है, तो (हर समय) सदैव हर एक बात में परिवर्तन देखने में क्यों आता है ? यह संसार परिवर्तनशील है, इस यथार्थ नीतिवाक्य को कौन नहीं जानता ? ध्यानपूर्वक देखा जाय, तो एक दिन के बराबर दूसरा दिन नहीं रहता। बहुत-सी बातों में परिवर्तन प्रत्यक्ष देखने में आता है। प्रत्येक ऋतुकाल में भी यही बात है। जब कि इस वर्षाऋतु में सर्वत्र ख़ूब पानी बरसना चाहिए, पर कहीं-कहीं पर पानी बिलकुल बरसता ही नहीं। वहाँ के बेचारे ग़रीब ख़ूब चिल्लाकर रोते हुए ईश्वर का नाम लेते हैं, पर ईश्वर इतना निर्दय है कि उस तरफ़ ध्यान ही नहीं देता। और कहीं-कहीं पर इतना पानी बरसता है कि वहाँ के बहुत-से ग्राम पानी से बह जाते हैं। तब आप ही बताइए कि संसार में नियमों का साम्राज्य कहाँ रहा ?

संसार की प्रत्येक वस्तु अनंतगुणात्मक है। वे गुण पुनः सामान्य और विशेषरूप में विभक्त हैं। सामान्य गुण वह है, जो तमाम वस्तुओं में पाया जाय। जैसे —वस्तु का अस्तित्व इत्यादि। विशेष गुण वह है, जो ख़ास-ख़ास वस्तुओं में ही पाया जाता है। जैसे— अग्नि का उष्णत्व, जल का शीतलत्व इत्यादि। अग्नि का उष्णत्व-विशिष्ट गुण अग्नि से कोई अलग वस्तु नहीं है, उसी में है। यदि अग्नि से उष्णत्व कदाचित् अलग हो जाय, तो अग्नि कोई वस्तु ही नहीं ठहरती। बिछुड़ना (Separation) उसी का होता है, जो संयोग से उत्पन्न है। जो जिसका ख़ास अपना स्वरूप है, उसका बिछुड़ना कैसा ? सुवर्ण से हज़ारों तरह के आभूषण बनवाइए, पर सुवर्णत्व सबमें पाया जायगा। वैसे ही दुनिया में जहाँ-जहाँ उष्णत्व देखेंगे, वहाँ-वहाँ पर किसी-न-किसी रूप में अग्नि अवश्य होगी। कहीं पर उष्णत्व तो रहे और अग्नि न रहे, यह बात कदापि संभव नहीं। अत: अग्नि का उष्णत्वविशिष्ट गुण उसका वस्तुस्वरूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार सूर्य की किरणों में उष्णता और चंद्रमा की किरणों में शीतलता, नियत समय पर उनका उदय और अस्त होना, गेहूँ के पेड़ में गेहूँ पैदा होना इत्यादि वस्तुस्वरूप उद्भूत ख़ास गुण हैं। इन गुणों से वस्तु का तादात्म्य संबंध है, और इनका अस्तित्व अनादि है। यह बात आगे प्रकरणांतर में जाकर स्पष्ट हो जायगी।

यदि वस्तु का निज स्वरूप-गुण-समुदाय आप-ही-आप स्थिर नहीं हो सकता—जैसे पाट-पटादि पदार्थों का कर्ता प्रत्यक्ष देखने में आता है वैसे ही उन सबको परस्पर जोड़नेवाला कर्ताहर्ता कोई ईश्वर अवश्य है—तो ईश्वर भी एक वस्तु है, उसका कर्ता कौन है ? तमाम संसार की वस्तुओं से ईश्वर एक अलग वस्तु नहीं हो सकता। ईश्वर में भी वह लक्षण अवश्य घटना चाहिए, नहीं तो वह लक्षण अव्याप्त दोष से दूषित हो जायगा। यदि एक ईश्वर का कर्ता दूसरा ईश्वर, दूसरे का तीसरा; तीसरे का चौथा मानते जायँगे, तो अनवस्था-दोष आ जायगा। अंतिम निष्कर्ष यह स्वीकार करना पड़ेगा कि संसार में कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं, जिनका कोई कर्ता-हर्ता है ही नहीं। और, यह सिद्धांत स्वीकार करने पर कि बिना बनानेवाले के कोई भी पदार्थ बनता नहीं, यह बात बनती नहीं। अगर थोड़ी देर के लिये मान लिया जाय कि ईश्वर ने सूर्य-चंद्र को बनाया। अब प्रश्न उठता है, कब बनाया ? बनाने का समय ज़रूर होगा। और, कितनी देर में बनाया ? "बनाना" यह शब्द इस बात का द्योतक है कि पहले सूर्य-चंद्रमा का अस्तित्व ही नहीं था, किसी ने उन्हें बनाया। अब फिर प्रश्न उठता है कि कौन-कौन के पदार्थों के संयोग से चंद्र-सूर्य बने ? वह कार्योत्पत्तिभूत उपादान वस्तुएँ कहाँ से आईं ? उनका कर्ता कौन है ? यदि उनका कर्ता भी ईश्वर है, तो ईश्वर निराकार है या साकार ? यदि आप ईश्वर को निराकार मानते हैं, तो निराकार ईश्वर से साकार जगत् की उत्पत्ति कैसे ? साकार पदार्थों से साकार पदार्थ ही बनता है,

यह बात जगत्प्रसिद्ध है। किसी निराकार वस्तु से साकार वस्तु बन जाती है, तो आकाशकुसुम की भी उत्पत्ति हो सकती है। यदि ईश्वर साकार है, तो उसमें संसारी जीवों के-जैसे हाथ, पैर, नाक, रसनादि अंगोपांग भी अवश्य होने चाहिए। इनके रहने से ईश्वर और साधारण मनुष्यों में कुछ भी भेद नहीं रहा। जैसे हम संसारी राग-द्वेषों से युक्त हैं, वैसे ही ईश्वर भी राग-द्वेषी ठहरा। अतएव सूर्य-चंद्रमादि पदार्थों का कर्ता वह नहीं हो सकता।

यदि आप सृष्टिकर्ता ईश्वर को सर्वव्यापी मानते हों, तो ईश्वर आकाश की तरह सब जगह व्यापक ठहरा। ऐसा मानने पर पूर्वापर विरोध आता है। यदि ईश्वर सर्वव्यापक है, तो वह जगत् का कर्ता कभी नहीं हो सकता; क्योंकि जो सर्वव्यापी होता है, वह हलन-चलन नहीं कर सकता—जैसे आकाश। हलन-चलन के लिये स्थान की ज़रूरत होती है। ईश्वर के सर्वव्यापक होने से स्थान कहीं रहता नहीं। या तो ईश्वर को कर्ता मानिए; नहीं तो सर्वव्यापक मानिए। यह दोनों बातें एक दूसरी से विरुद्ध हैं—ईश्वर में रह नहीं सकतीं। इससे भी सिद्ध होता है कि ईश्वर सूर्य-चंद्रमादि पदार्थों का कर्ता नहीं है।

यदि आप ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानते हों, तो बताइए, ईश्वर ने अपनी सर्वशक्ति से बुरी बातों का अस्तित्व क्यों नहीं मिटा दिया? क्यों ज़हरीले जानवर. कड़वे बदबूदार पदार्थ और दुःख देनेवाली चीज़ें बनाईं? जगत् में क्यों हिंसा, झूठ, चोरी वग़ैरह—पापकर्म देखने में आते हैं? इन सबको ईश्वर ने क्यों नहीं मिटा दिया? शराब-जैसी धर्म-कर्म को नाश करनेवाली चीज़ों को क्यों उत्पन्न होने दिया? इन सब बातों में ईश्वर ने अपनी शक्ति का उपयोग नहीं किया? अगर आप इस प्रकार कहेंगे कि यदि ये चीज़ें न होतीं, तो लोगों को अच्छे-बुरे कर्मों की तमीज़ नहीं रहती। ये तो इसलिये बनाई गईं कि लोग उनको छोड़ें, धर्मानुकूल चलें, ईश्वर को प्रसन्न करें। अजी महाराज! यह कैसी विचित्र बात है। इससे तो यह सिद्ध होता है कि ईश्वर ने ही मनुष्यों से बुरे काम कराए। जब बनाते वक़्त जीव-कर्म-रहित और सब बराबर थे, तब उनको शरीरधारी बनाकर क्या लाभ निकला? उन्हें जनम-मरण-रोग-दुःखादि से पीड़ित क्यों बना दिया? यदि बनाया भी, तो अ बातों को ही क्यों नहीं रक्खा? बुरा बातों से हानि के क्या लाभ हुआ? इसका जवाबदेह ईश्वर के और कौन है? आजकल सौ में अस्सी आ ईश्वराज्ञा के विरुद्ध कार्य करते हैं। जिधर देखिए, सिवा बुराई के भलाई के काम बहुत कम देखने आते हैं। ईश्वर तो भविष्य की बातें जानता था, जान-बूझकर क्यों बुराई पैदा कर लोगों को बुरे कर्म तरफ़ झुकाया? यदि ईश्वर ने जान-बूझकर किया, वह हमारा हितैषी नहीं रहा। जब हितैषी नहीं तो हमको उस पर क्यों श्रद्धा होनी चाहिए? हमारा शत्रु ठहरा। यदि लोगों ने मनमानी की, तो ने ऐसा क्यों होने दिया? अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं किया? यदि शक्ति का प्रयोग करते हुए भी लो नहीं माना, तो ईश्वर सर्वशक्तिमान् कहाँ रहा? बातों से यह सिद्ध होता है कि 'ईश्वर सूर्य-चं पदार्थों का कर्ता नहीं है।' आगे चलकर आप लिखा है—"या तो ऐसा मानना पड़ेगा कि विना संसार आप-ही-आप बनकर नियमपूर्वक स्थिर हो क्योंकि हम उसे उस दशामें अपने नेत्रों से देख रहे हैं— यह कि विना पदार्थों की सहायता के ईश्वर सदा और अपनी इच्छानुसार उसने पदार्थों एवं संसार की की। पहली बात को मानने में अकाट्य वाधाएँ साम जाती हैं, पर दूसरी में नहीं। सुंदर नियम इस में विना किसी ज्ञान और चैतन्ययुक्त सत्ता के सहारे नहीं बन सकता। वह सत्ता अवश्य ही परम शक्ति और महान् होगी। तब उसे सारे संसार और मंडलों को अपनी इच्छामात्र से ही बना डालने में सी वाधा हो सकती थी।" पहली बात के मानने अकाट्य वाधा है, उसको यदि आप विस्तार से लि तो उस पर विचार किया जा सकता था। बहुत-सी बा की शंका स्वयमेव उठाकर मैं ही उत्तर दे चुका। य यही बात सत्य है कि ईश्वर सदा से था? कैसे निराकार या साकार? हम सब लोगों के-जैसा! का भी खंडन ऊपर हो चुका। अब ईश्वरेच्छा के में विचार किया जाता है। आधार के विना आधेय पदार्थ ठहर ही नहीं सकता। यह प्रकृ अटल नियम है। इच्छा-आधेय के लिये आ

कोई शरीरादि पदार्थ अवश्य होना चाहिए। विना आधार के भी आधेय पदार्थ ठहर सकता है, तो स्वपुरुष का अस्तित्व क्यों न मान लिया जाय? थोड़ी देर के लिये मान लीजिए कि ईश्वरेच्छा से ही संसार का कार्य होता है। तब प्रश्न उठता है कि वह ईश्वरेच्छा नित्य है या अनित्य। यदि नित्य है, तो ईश्वरों को सदैव इच्छा-सहित होते रहना चाहिए। इससे तो इनकी सब शक्ति नष्ट हो जायगी; फिर सूर्य-चंद्रमादि पदार्थों को बना नहीं सकते। यदि ईश्वरेच्छा को अनित्य मानते हुए एक इच्छा के बाद दूसरी इच्छा, दूसरी के बाद तीसरी इत्यादि क्रम से मानना हो, तो अनवस्था दोष आता है। समस्त संसार में क्षण-मात्र समय में जितना भी कार्य होता है, उतनी ही इच्छा ईश्वर को क्षण-मात्र समय में होती है। ऐसा मानेंगे, तो भी ठीक नहीं है। क्योंकि युगपत अनेक इच्छाओं का प्रादुर्भाव ईश्वर में नहीं हो सकता। यदि ईश्वर की एक ही इच्छा को युगपत नाना देश में होनेवाले नाना कार्यों की उत्पत्ति में, कारण मान लिया जायगा, तो क्रम से अनेक कार्यों का विरोध आ जायगा। उसकी इच्छा का सर्वदा अभाव हो जायगा और ऐसे इच्छा करते रहने से उन्हें लाभ क्या? विना लाभ के मंद बुद्धिवाला बालक भी कोई कार्य नहीं करता है। इन बातों से सिद्ध होता है कि ईश्वर सूर्य-चंद्रमादि पदार्थों का कर्ता नहीं है।

इसी तरह ईश्वर को जगत्कर्ता मानने पर अनेक शंकाएँ उठती हैं और सैकड़ों प्रश्न उठते हैं; उसके सारे गुण नष्ट हो जाते हैं। न तो वह सर्वज्ञ रहता है, न हितोपदेशक; बल्कि रागी-द्वेषी मनुष्य के समान परिमित शक्तिवाला रह जाता है। ऐसा मानना मानों ईश्वर को अपमानित करना है। अतएव ईश्वर जगत्कर्ता नहीं है और उसे जगत्कर्ता न मानने से कोई बाधा भी नहीं आती है। विज्ञानशास्त्र इन बातों को स्पष्ट बतलाता ही है और प्रत्यक्ष देखने में भी यही है कि इस विज्ञान-संसार में जितने भी पदार्थ बनते हैं, वे सब स्वयमेव एक दूसरे से मिलने या बिछुड़ने से और अपने-अपने स्वभाव से ही बनते रहते हैं। दो चीज़ों के मिलने से तीसरी चीज़ बन जाती है, और समय-समय पर उनकी हालत बदलती रहती है। न कोई चीज़ सर्वथा नष्ट होती है; न कोई नवीन वस्तु, जिसका पहले किसी रूप में अस्तित्व ही नहीं था, ऐसी पैदा होती है। एक वस्तु की हालत का बिलकुल बदल जाना दूसरी वस्तु को पैदा करता है, और उस बदल जानेवाली चीज़ का नाश होना कहा जाता है। परंतु वस्तु का गुण चाहे उसकी कैसी ही हालत हो, कदापि नहीं बदलता। सब गुण ज्यों-के-त्यों रहते हैं। यह वस्तु का या द्रव्य का लक्षण है।

संसार में जितने भी द्रव्य और अद्रव्य पदार्थ हैं, वे सब अनादि हैं। यह बात अनुमान से भी सिद्ध होती है। जैसे—मनुष्य पैदा नहीं हो सकता, यदि उसके मा-बाप न हों। इस कारण यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि स्त्री-पुरुष अनादि हैं। यदि कोई इसके विरुद्ध यह कहे कि विना मा-बाप के मनुष्य पैदा हो सकता है, तो इस बात को उसे सिद्ध करना पड़ेगा; क्योंकि असंभव बात को सिद्ध करने का उत्तरदायित्व कहनेवालों पर ही होता है। इस समय कोई मनुष्य आकर यह कहे कि अमुक स्थान में ईश्वर की शक्ति से एक मनुष्य पैदा हो गया है, तो इस बात को कोई भी न मानेगा, और सभी इस बात को असंभव बताएँगे। जब मनुष्य का विना मा-बाप के होना सिद्ध नहीं हो सकता, तो जगत् के किसी समय उत्पन्न होने के वास्ते कोई भी युक्ति नहीं हो सकती है। अब स्त्री-पुरुष अनादि हैं, तो वे विना स्थान के ठहर नहीं सकते हैं। इस कारण यह भी मानना पड़ेगा कि ऐसी जगह भी अनादि है, जिस पर आदमी ठहर सकें। इसी प्रकार मनुष्य विना हवा-पानी-अन्न के जी नहीं सकता। अतएव यह बात भी माननी पड़ेगी कि हवा, पानी और भोजन के पदार्थ भी सदा से हैं। मनुष्य जो साँस भीतर से बाहर निकालता है, वह बुरी होती है। इस कारण हवा के साफ़ करने का कोई द्वार न हो, तो सारी हवा थोड़ी देर में बुरी हो जायगी और मनुष्य जी न सकेगा। इस कारण यह भी मानना पड़ेगा कि सदा से वह द्वार भी उपस्थित है, जिससे वायु साफ़ होती है। पदार्थ-विज्ञान से यह भी ज्ञात होता है कि पेड़ निकली हुई गंदी हवा को अपने भीतर लेता है और वह हवा बाहर निकालता है, जो मनुष्य के साँस लेने लायक़ हो, अर्थात् वृक्ष हवा साफ़ होने का साधन है। इसके अतिरिक्त वृक्ष की उत्पत्ति भी बीज से ही है और बीज वृक्षों से होता है। कोई कह सकता है कि बीज और वृक्ष, इन दोनों पदार्थों में किसकी उत्पत्ति पहले हुई? यदि

बीज की उत्पत्ति पहले मानें, तो विना वृक्ष के बीज कहाँ से आया ? यदि वृक्ष की उत्पत्ति प्रथम मान ली जाय, तो विना बीज के वृक्ष कहाँ से आया ? कोई महाशय यह कह देते हैं कि उन दोनों चीज़ों में किसी एक की उत्पत्ति प्रथम अवश्य होनी चाहिए। तब मैं उनसे पूछता हूँ कि एक, विना दूसरी के सहारे कहाँ से कूद पड़ी ? अर्थात् बीज-वृक्ष भी का अनादि होना सिद्ध है। इसके अतिरिक्त मनुष्य के भोजन के वास्ते वृक्षों की आवश्यकता है। अतएव जब मनुष्य, हवा, पानी, भोजन, वृक्ष और जगह अनादि है, तो इसका अर्थ यह है कि संसार अनादि है। मनुष्य जितना पानी पीता है, वह भी ख़राब हो जाता है अर्थात् पसीना और मूत्र होकर निकलता है। यदि पानी के साफ़ होने का द्वार न हो, तो थोड़े समय में समस्त पानी ख़राब हो जायगा। अतएव पानी के साफ़ हो जाने के वास्ते भी कोई द्वार अनादि से अवश्य होना चाहिए। पानी पर घाम पड़ने से वह सूख जाया करता है और अन्य जो पदार्थ पानी में मिले हुए होते हैं, वह वहीं पर पड़े रह जाते हैं। अर्थात् घाम निर्मल जल को अलग कर लेता है, पानी सूखकर भाप बन जाता है और इस भाप से मेघ बन जाते हैं। इसीलिये मेघ का पानी निर्मल होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि पानी के साफ़ करने का काम सूर्य करता है। अतएव जब संसार सदा से है, तो सूर्य भी सदा से है। मनुष्य को और प्रकार से भी सूर्य की अत्यंत आवश्यकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि सूर्य अनादि है और वह अवश्य किसी वस्तु पर टिका हुआ नहीं, अधर में है। अधर किस प्रकार है, यह ज्योतिषशास्त्र पढ़ने से ज्ञात होता है। अतएव सूर्य-चंद्र आदि के अधर में होने और घूमने के वास्ते नक्षत्रों की आवश्यकता है और जब कि संसार अनादि है, तो नक्षत्र भी अनादि हैं। इसके अतिरिक्त ज्योतिषशास्त्र पढ़ने से यह बात भी ज्ञात होती है कि संसार के वास्ते जैसे सूर्य की आवश्यकता है, इसी प्रकार चंद्र और अन्य नक्षत्रों की भी आवश्यकता है। अर्थात् सब अनादि है *।

आगे चलकर आप लोगों ने लिखा है कि "संसार की सभी बातों को यदि ध्यान से देखा जायगा, तो बड़ी बुद्धिमत्ता एवं चतुरता पाई जायगी। वैज्ञानिकों को विदित है कि केवल आँखों की बनावट में कितने चातुर्य से काम लिया गया है; प्रत्येक पेड़, पौदे, जीव एवं मनुष्य कैसे छोटे-छोटे पदार्थों से बनते और कैसे बढ़कर भारी हो जाते हैं। मनुष्य प्रायः एक फ़ुट का पैदा होकर बढ़ते-बढ़ते २॥ से फ़ीट तक कैसे हो जाता है, और उसकी हड्डियाँ बढ़ने से क्यों नहीं टूट जातीं ? अथवा खाल क्यों नहीं फट जाती ? यह सभी बातें अवश्य आश्चर्यजनक हैं......।"

संसार की वस्तुओं की बनावट में जो वैचित्र्य और चातुर्य दिखाई देता है, उसका प्रधान कारण चैतन्य (जीव) और अचैतन्य (निर्जीव) पदार्थों का अनादि-कालीन संबंध है। जब जीव और निर्जीव पदार्थों के स्वरूप और उनके भेद-प्रभेदों को समझ लेंगे, तभी तमाम वस्तुओं का सामान्य स्वरूप सरलता से समझ में आ जायगा। इस विशाल संसार में अनंतानंत जीव और जीवों से अनंतानंत गुण, निर्जीव पदार्थ अनादि काल से विद्यमान हैं, और अनादि काल तक विद्यमान रहेंगे। जीव का लक्षण चैतन्य या ज्ञानस्वरूप और निर्जीव का अचैतन्य-जड़स्वरूप है। इन स्वरूपभूत लक्षणों से कोई वस्तु अपना स्वरूप कदापि नहीं छोड़ती। जीव अनादि काल से मोह और अज्ञान के कारण शुभाशुभ कर्मों के अनुसार सूक्ष्म और स्थूल शरीर को पाकर नाना पर्यायों में परिभ्रमण कर रहा है। किंतु जीव निर्जीव शरीर के साथ मिला हुआ दिखाई देने पर भी, निर्जीवरूप में परिणत नहीं हुआ; पर सोने में मिली हुई मि सुवर्णरूप में दिखाई देने पर भी जैसे सुवर्ण से पृथक् वस्तु है, वैसे ही जीव भी शरीर से एक भिन्न वस्तु है।

संसार की कोई वस्तु सर्वथा नष्ट नहीं होती; उनके पर्याय प्रति समय बदलते जाते हैं, जिससे देखने वालों को नवीन वस्तु का प्रतिभास होता रहता है। किसी भी नवीन वस्तु को आप देखिए, उसके तमाम परमाणु कुछ समय के पहले किसी अवस्था में और कुछ समय के बाद और किसी पर्यायरूप में बदल जाते हैं। यह तो हुआ स्थूल कार्य। इसी प्रकार कालद्रव्य के निमित्त से तमाम वस्तुओं में प्रति समय * नवीन पर्याय की उत्पत्ति एवं पूर्व पर्याय का नाश होता रहता है; लेकिन कालद्रव्य के पर लोक में सर्वत्र व्याप्त हैं।

---

* "सृष्टि-कर्तृत्व-खंडन" ग्रंथ से।—लेखक।

* 'समय' अत्यंत सूक्ष्म काल का नाम है।

जैन-दर्शन कहता है कि संसार के समस्त प्रदेशों* में अत्यंत सूक्ष्म जीवों के झुंड-के-झुंड निवास करते हैं। एक जल का बिंदु अनंत सूक्ष्म जीवों का पिंड है। इस संबंध में अँगरेज़ी साप्ताहिक पत्र "पीयरसन" में एक वैज्ञानिक महोदय "जल के जीवधारी"-नामक लेख के प्रारंभ में लिखते हैं—"किसके विचार में आएगा कि किसी ताल या झील के स्वच्छ जल का एक बिंदु स्वयं वनस्पति और सूक्ष्म जीवों का एक पूर्ण कुंड है ? किंतु यह बात सत्य है और विज्ञानवेत्ता सूक्ष्म वस्तुओं को देखने के यंत्र—दूरबीन—से इसको प्रत्यक्ष देखते हैं। जल का जो बिंदु सामान्य नेत्रों से देखने से मोती-सा निर्मल दिखाई देता है, वही परीक्षा करने से वनस्पति-जीवों से भरा हुआ सिद्ध होता है। ………इत्यादि †। कहने का तात्पर्य यह है कि जल में, आकाश में, मिट्टी के अंदर, हवा में, जीवित वनस्पतियों में, सब जगह सर्वत्र अनंतानंत सूक्ष्म जीवों के झुंड-के-झुंड निवास करते हैं। एक हरा फूल तथा पत्ता अनंत सूक्ष्म जीवों के संयोग से बना हुआ है। जब तक वे सूक्ष्म जीव उसमें निवास करते हैं, तब तक उसमें अनेक तरह का प्राकृतिक आश्चर्यकारी सौंदर्य दिखाई देता है। जब वे मर जाते हैं, तब वह कांतिहीन होकर सूख जाता है, जैसे सूखे पत्तों से भरा हुआ वृक्ष।

अब उन सूक्ष्म और स्थूल जीवों का परस्पर संबंध, और कालद्रव्य के निमित्त से होनेवाले परिवर्तन का दृष्टांतपूर्वक विवेचन किया जाता है। आज ही पैदा हुए एक शिशु का उदाहरण लीजिए। यह शिशु का मूल शरीर आज से ९ महीने पहले रजोवीर्यरूप में था, जिसमें अनंत अत्यंत सूक्ष्म जीव रहते थे, और उन जीवों का शरीर रजोवीर्य परमाणुरूप में था। उसी में इस शिशु की आत्मा या जीव कहीं से किसी पूर्व-पर्याय को आयुष्य के अंत में छोड़कर, शुभाशुभ कर्म के अनुसार, उस पिंड में आकर प्रधान रूप से पैदा हुआ। उस जीव के संयोग के पहले वह पिंड केवल रजोवीर्य-रूप में था। उसमें और कोई विशेष बात नहीं थी। प्रधानभूत दूसरे जीव के आकर (पैदा होते ही) बसते ही प्रति समय वह पिंड बढ़ने लगा। जो पिंड एक समय में एक इंच लंबा था, वही दो-तीन महीने में दो-तीन इंच बढ़ गया। और, बढ़ते-बढ़ते नौ महीने में एक फ़ुट के बराबर होकर अब शिशु के रूप में सामने है। यही शिशु बढ़ते-बढ़ते एक दिन बाल, युवा और वृद्धावस्था को क्रमशः प्राप्त करेगा। अब देखिए, शिशु के बढ़ने का कार्य उस समय से, (जब पिंड में प्रधानभूत आत्मा आकर पैदा हुई। तब से) चालू है। प्रति समय वह अत्यंत सूक्ष्म रूप से बढ़ते-बढ़ते आज शिशुरूप में है। वैसे बढ़ने में हड्डियों के टूट जाने और खाल के फट जाने की संभावना तभी होती, जब शरीर के एक प्रदेश के परमाणु तो बढ़ते तथा अन्य प्रदेशों के परमाणु ज्यों-के-त्यों चुप रहते। किंतु वस्तुस्थिति तो वैसी नहीं रही। शरीर के तमाम सूक्ष्म परमाणुओं में प्रति समय समान वृद्धि होती रही। अतः हड्डियों के टूट जाने की और खाल के फट जाने की संभावना ही नहीं रही। इसी तरह संसार के तमाम पदार्थों में बढ़ने और घटने का कार्य समान रूप से होता रहता है। जहाँ कहीं पर नियमविरुद्ध हुआ, तुरंत ही सबको स्पष्ट मालूम पड़ जाता है। जैसे—बहुत-से फल पूरा पक जाने पर भी फूट नहीं जाते, हाँ, कोई-कोई फल स्वयं फट जाता है।

उपर्युक्त घटनाओं को ध्यान से देखिए। कालचक्र के चमत्कार से जो वस्तु एक समय अनाजरूप में थी, वही किसी दूसरे समय रजो-वीर्य-रूप में परिणत हुई, तीसरे किसी समय पिंडरूप में, चौथे किसी समय शिशुरूप में, पाँचवें किसी समय बालकरूप में, छठे किसी समय युवक रूप में, और सातवें किसी समय वृद्धरूप में परिणत हो जायगी। इस बढ़ने में बाह्य आहारादि पदार्थ भी उपादान रूप से होते हैं, साथ ही साथ मूल-वस्तु भी बढ़ने में प्रधान रूप से रही। तभी यह कार्य यथानियम हुआ। इस परिवर्तन के कारणभूत काल-परमाणु अरूप होते हुए भी इस लोक में सर्वत्र व्याप्त है। उन्हीं के निमित्त से उस पिंड में प्रति समय परिवर्तन होता रहा।

---

* प्रदेश उतने स्थान को कहते हैं, जितने स्थान का आक्रमण एक अत्यंत सूक्ष्म परमाणु करे।

† यह लेख श्रीनाथूराम प्रेमीजी द्वारा संपादित "जैन-हितैषी"-पत्र में प्रकाशित हुआ था।

अनादि काल से जीव, अज्ञान और मोह के कारण नाना शरीररूपों में परिणत होकर संसार में परिभ्रमण कर रहा है। यह बात मैंने ऊपर प्रसंगवश कही है। उस संबंध में जैनदर्शन का कर्मसिद्धांत कहता है कि जैसे तपाया हुआ लोहे का गोला पानी में पड़ते ही चारों तरफ़ से पानी को खींचता है, वैसे ही संसार का प्रत्येक जीव प्रति समय मन, वचन, काया की चंचलता, क्रोधादि कषाय की तीव्रता और मंदता के अनुसार अनंत सूक्ष्म पुद्गल (निर्जीव) परमाणुओं को खींचता रहता है, (उन परमाणुओं को कर्म-परमाणु की संज्ञा दी गई है।) और पूर्व काल में खींचे हुए परमाणुओं को प्रति समय छोड़ता रहता है। जिन नवीन परमाणुओं को वह खींचता है, वे आत्मा के चारों तरफ़ चिपटकर उसकी स्वाभाविक अनंत गुणों को दबा देते हैं। जैसे खाए हुए अन्न से रक्त, हड्डी, मेद, मज्जा, वीर्यादि बनते हैं, वैसे ही उन चिपटे हुए परमाणुओं के सामान्य से आठ भेद, विस्तार से एक सौ अड़तालीस भेद हो जाते हैं, और निश्चित समय तक आत्मा के साथ रहकर, किसी समय शुभाशुभ फल देकर फिर जाते रहते हैं। इस प्रकार बाह्य नवीन परमाणुओं को खींचने और खिंचे हुए परमाणुओं को छोड़ते रहने का कार्य सर्वदा चालू है। कोई जीव किसी समय कैसी भी अवस्था में रहे, यह कार्य, स्वयमेव सर्वदा चालू रहता है। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तुदर्शक यंत्र भी उन्हें नहीं देख सकता, इतने सूक्ष्म वे परमाणु हैं। जब जीव-विशेष क्रोधादि कषायों से युक्त होता है, तब बहुत ज़्यादा परमाणु आकर चिपटते हैं। शांतचित्त होकर जब रहेगा, तब बहुत कम परमाणुओं को खींचेगा। पर यह है कार्य सर्वदा चालू। यही परमाणु मिलकर नवीन आगामी शरीर के लिये कारणभूत हो जाते हैं। अर्थात् एक शरीर दूसरे शरीर के लिये, दूसरा तीसरे शरीर के लिये, तीसरा चौथे के लिये, चौथा पाँचवें के लिये, पाँचवाँ छठे के लिये क्रमशः कारण हो जाते हैं। यह परंपरा अनादि काल से चालू है।

अब यहाँ पर एक प्रश्न उठ सकता है। वह यह कि चैतन्य जीवों के ऊपर निर्जीव परमाणु अपना प्रभाव कैसे जमा देते हैं? इसका उत्तर यह है कि यद्यपि निर्जीव पदार्थों में इतनी ताक़त नहीं है कि वे चैतन्य जीव के ऊपर बिना कारण आक्रमण करें, तथापि जब जीव ही आक्रमण करवाने के लिये तैयार हो जाता है, तब बाह्य पदार्थ उन पर अपना प्रभाव जमा देते हैं। जैसे—मदिरा यह नहीं कहती कि तुम मुझे पीकर मस्त हो जाओ। जब मनुष्य ही रसनेंद्रिय के वशीभूत होकर उसे पीता है, तभी वह उन पर अपना प्रभाव जमा देती है। मदिरा पिया हुआ मनुष्य नशे में इतना मस्त हो जाता है कि कुछ काल तक उसे इस बात का ही पता नहीं रहता कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया, क्या कर रहा हूँ, और मुझे क्या करना चाहिए। इसी प्रकार अनादि काल से अनंतानंत जीव मोह और अज्ञानरूपी मदिरा से मस्त होकर नाना पर्याय में जन्म लेते, और मरते हैं। इस प्रकार की परंपरा अनादि काल से चालू है। जब कोई जीव अज्ञान से अत्यंत तीव्र पापकर्म करता है, उस समय खींचे हुए परमाणु अशुभ रूप में परिणत हो जाते हैं। जब वे अपनी स्थिति पूरी करके उदय में आते हैं, तो वही जीव पशु, पक्षी, वनस्पति पर्याय में, अर्जित किए हुए अशुभ कर्म के फल के अनुसार, पैदा होकर अत्यंत दुःख भोगते रहते हैं। जब जीव कालांतर में [illegible] शुभ कर्म करता है, तो मनुष्य-पर्याय को प्राप्त करता है और मनुष्यों में भी बड़े-बड़े विद्वान्, प्रतिभाशाली व्यक्तियों की श्रेणी में हो जाता है। कर्म-सिद्धांत का मुख्य तात्पर्य यह है कि जो जैसे कर्म करता है वह वैसे ही फल अवश्य पाता है। "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।" उस कर्मफल को बढ़ाने या घटाने में कोई भी व्यक्ति समर्थ नहीं। संसारी जीव इसलिये दुःख पाता है कि वह अपने निज स्वरूप सहजानंद शुद्ध चैतन्य को भूलकर, कर्मफल-शरीर को ही अपना स्वरूप मानकर उसकी रक्षा के लिये मनमाने कर्म करता है। प्रत्येक व्यक्ति प्रत्यक्ष देखता है कि शरीर ज्यों-का-त्यों रहते हुए भी, आयुष्य पूर्ण होते ही, आत्मा या जीव शरीर को छोड़कर झट चले जाते हैं। ऐसे दृश्य को देखकर संसार की नश्वरता को सोचते हुए कुछ समय तक सभी वैरागी हो जाते हैं, पश्चात् ज्यों-की-त्यों मनमानी करते हैं। कारण, अनादिकाल के मोह और अज्ञान ने उन्हें इतना पराधीन बना दिया है कि उन्हें सच्ची आत्महित की बात रुचती ही नहीं।

प्रत्येक व्यक्ति को यह बात सदा याद रखनी चाहिए कि उसे सच्चा सुख, शांति उसकी अंतरंग आत्मा से ही

होगा; क्योंकि वह चैतन्य सच्चे सुख, शांति का पिंड है। बाहर के पदार्थों से कदापि सुख नहीं प्राप्त हो सकता है। प्रत्येक जीव अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, और अनंत वीर्यादि अनंत गुणों का अखंड पिंड है, अतः एक क्षुद्र-से-क्षुद्र चींटी भी कालांतर में परमात्मा या ईश्वर स्वयं बन सकती है। पर अंतरंग गुणों का विकास करना न करना जीवों के हाथ में है। उन अंतरंग गुणों का विकास तभी होगा, जब जीव अपने मन की बाह्य प्रवृत्ति से हटाकर अंतरंग प्रवृत्ति में (आत्मस्वरूप-चिंतन में) लगावे। जैसे बड़े-बड़े वैज्ञानिक लोग अपने मन की और प्रवृत्ति को किसी एक तरफ़ झुकाकर आश्चर्यकारी अनेक पदार्थों का आविष्कार करते हैं, वैसे ही कोई मनुष्य अंतरंग आत्मगुणों के विकास के लिये निरंतर बहुत काल तक परिश्रम करे, तो बहुत-से गुणों का विकास आजकल भी प्राप्त हो सकता है। प्राचीन काल के बड़े-बड़े तपस्वी यही एक अध्यात्म तपस्या के असाधारण माहात्म्य से बहुत-सी आश्चर्यजनक ऋद्धि-सिद्धि को प्राप्त करते थे। आजकल लोगों की प्रवृत्ति उस तरफ़ बिलकुल नहीं है। अतः असाधारण महात्मा लोग बहुत कम हैं। आजकल भी आत्मविशुद्धि और तपस्या का माहात्म्य बतलाने के लिये ही मानो हम लोगों के सामने संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष महात्मा गांधी विद्यमान हैं। देश-विदेश के बड़े-बड़े विद्वान् उनके बहुमूल्य वचनों को वेदवाक्य के समान मानते हैं। जहाँ कहीं पर महात्मा गांधी आ जाते हैं, तो लाखों आदमी उधर टूट पड़ते हैं। उनके प्रत्येक वाक्य को इतने आदर और चाव से सुनते हैं कि देखकर बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ता है। यह सब आत्मगुणों के विकास का माहात्म्य है। यही शक्ति हम सबकी आत्मा में अव्यक्त रूप से विद्यमान है। महात्माजी में व्यक्त रूप से विद्यमान है, इतना ही फ़रक़ है। इनके-जैसे प्रभावशाली महात्मा को देखकर साधारण बुद्धिवाले यह कह देते हैं कि यह ईश्वर का अवतार हैं, पर यह बात युक्तिसंगत नहीं है; क्योंकि ऐसे अल्पज्ञों की कल्पना से ही दुनिया में सैकड़ों मत-मतांतरों की उत्पत्ति हुई, और अंधश्रद्धा बढ़ते-बढ़ते प्रत्येक धर्म-पथ के लाखों-करोड़ों अनुयायी बन गए। एक ने दूसरे का दुश्मन बनकर संसार में अशांति फैला दी। यथार्थ में बात यह है कि महात्मा गांधी-जैसे असाधारण पुरुष संसार में जितने भी हो गए और भविष्य में जितने भी होंगे, वे सभी हम लोगों के-जैसे मनुष्य हैं, सभी हम लोगों के-जैसे अल्पज्ञ रहे हैं, अर्थात् सभी का ज्ञान और अनुभव परिमित रहा है। प्रबल पुरुषार्थ से आत्मा के अनंत गुणों का विकास करना या ईश्वरत्व, सर्वज्ञता प्राप्त करना कोई ऐसी-वैसी बात नहीं है, जो सरलता से प्राप्त की जा सके। उसके लिये योग्य काल, मानसिक और शारीरिक विशेष शक्ति, दीर्घ आयुष्य की आवश्यकता है। यह सब सामग्री प्राप्त हो, तभी करोड़ों मनुष्यों में कोई एक प्रचंड वीरशिरोमणि, मानसिक कमज़ोरियों को दूर करते हुए, प्रबल आत्मशक्ति से सैकड़ों वर्षों तक घोर तपस्या करते हुए, तपस्यारूपी अग्नि में मोह और अज्ञानरूपी ईंधन को भस्म करके, स्वात्मस्वरूप अनंत ज्ञानादि, अनंत गुणों को प्राप्त करता है। उसी का नाम ईश्वर है। यथार्थ में हम सब लोग अव्यक्त रूप से ईश्वर हैं; क्योंकि योग्य सामग्री मिलने पर प्रबल पुरुषार्थ से स्वात्मस्वरूप को प्राप्त कर सकते हैं। ईश्वरत्व को प्राप्त शुद्धात्मा लोक के अग्रभाग में जाकर विराजमान होती है। पुनः वहाँ से संसार में आकर, अवतार लेते हुए, इस संसार के झगड़ों में नहीं फँसती है।

मा० वर्द्धमान हेगडे

संगीत और विनोद

शब्दकार—"सूरदास"] राग बहार—तीन ताल [**स्वरकार**—गौरीशंकरसिंह आचार्य

गीत

जा जा रे भ्रमरा दूर दूर ।
तेरो सो रंग-श्रंग है उनको ,
जिन मेरो मन कियो चूर-चूर ।
जब लगि तरुन फूल महकत है ,
तब लगि रहत हजूर जूर ।
"सूरश्याम" मतलब के मधुकर ,
ले लें कली-रस घूर-घूर ।

स्थायी

न	तिं	तिं	ना	ना	धिं	धिं	ना	ना	ध	धिं	ना	ना	धिं	धिं	ना
														ध	ति
														जा	ऽ
		सां				म		सं							
सां	—	नि	प	म	प	ग	—	नि	ध	नि	सां	—	सां	ध	ति
जा	ऽ	रे	ऽ	भ्र	म	रा	ऽ	दू	ऽ	र	दू	ऽ	र	जा	ऽ
नि	—	नि	नि	सां	—	सां	सं	नि	सां	रें	सां	नि	सां	नि	प
ते	ऽ	रो	सो	र	ऽ	ङ्ग	अ	ऽ	ङ्ग	है	ऽ	उ	न	को	ई
								सं							
सां	सां	नि	प	म	प	ग	म	नि	न	नि	सां	—	सां	ध	ति
जि	न	मे	रो	म	न	कि	यो	चू	ऽ	र	चू	ऽ	र	जा	ऽ

अंतरा

ग	ग	म	म	नि	ध	नि	सां	—	सां	सां	नि	सां	नि	सां	—
अ	व	ल	गि	त	रु	न	फू	ऽ	ल	म	ह	क	त	है	ऽ
सां	सं	मं	रें	सां	नि	सां	रें	नि	सां	रें	सां	नि	प	ग	म
त	ब	ल	गि	र	ह	त	ह	जू	ऽ	र	जू	ऽ	र	जा	ऽ

सा	—	स	म	—	म	म	प	म ग	ग	ग	म	रे	रे	सा	सा
सू	ऽ	र	श्या	ऽ	म	म	त	ल	ब	कें	ऽ	म	धु	क	र
सां	—	सं नि	नि	म	प	म ग	म	सं नि	ध	नि	सां	—	सं	ध	नि
ले	ऽ	लें	क	ली	ऽ	र	स	धू	ऽ	र	धू	ऽ	र	जा	ऽ
०				१				×				३			

बहार-लक्षण

रिध तीवर कोमल निगम, उतरत धैवत टार।
सम संवादी वादि तें, समझो राग बहार॥

× × ×

१. अर्थ-वैचित्र्य

येन ध्वस्तमनोभवेन बलिजित्कायः पुरा स्त्रीकृतो
यश्चोद्वृत्तभुजङ्गहारवलयो गङ्गां च योऽधारयत्।
यस्याहुः शशिमच्छिरो हर इति स्तुत्यं च नामामराः
पायात् स स्वयमन्धकक्षयकरस्त्वां सर्वदो माधवः॥

उपर्युक्त श्लोक किसी कवि ने अपने मित्र के पास आशीर्वाद के रूप में भेजा था। इस श्लोक को शिव और विष्णु दोनों के पक्ष में बहुत थोड़े रूपांतर के साथ संघटित करने में कवि ने बड़ा ही कौशल दिखलाया है। थोड़ा ध्यान देने से भाव स्पष्ट समझ में आ जाता है। पाठक देखें। भावार्थ नीचे दिया जाता है। शिव के पक्ष में—

कामदेव का ध्वंस करनेवाले, विष्णु के शरीर को (त्रिपुरासुर के वध के समय) छेदनेवाले, विषधर सर्पों का हार और वलय रखनेवाले, सिर पर गंगा और चंद्रमा को धारण करनेवाले और अंधक राक्षस का वध करनेवाले उमा के पति (धव) अर्थात् शिव तुम्हारी रक्षा करें।

उपर्युक्त श्लोक ही बहुत थोड़े रूपांतर के साथ निम्नलिखित रूप में विष्णु के पक्ष में संघटित होता है—

येन ध्वस्तमनोऽभवेन बलिजित्कायः पुरा स्त्रीकृतो
यश्चोद्वृत्तभुजंगहारवलयोऽगं गां च योऽधारयत्।
यस्याहुः शशिमच्छिरोहर इति स्तुत्यं च नामामराः
पायात् स स्वयमन्धकक्षयकरस्त्वां सर्वदो माधवः॥

अर्थ—जन्मरहित (अभव), शकट (अन) को पैरों से परावर्तित करनेवाले, बलि को जीतनेवाले, मोहिनी का रूप धारण करनेवाले (कायः पुरा स्त्रीकृतः), उद्धत स्वभाववाले, सर्पों के हरण करने (खाने) का बल रखनेवाले, गरुड़ पर यात्रा करनेवाले, गोवर्द्धन पर्वत और पृथ्वी को धारण करनेवाले, चंद्रमा का मन्थन करनेवाले, राहु का सिर काटनेवाले और अंधक अर्थात् यादवों के नाशक माधव तेरी रक्षा करें।

× × ×

२. विदेश-गमन

मा गा इत्यप्यमङ्गलं व्रज पुनः स्नेहेन हीनं वचः
तिष्ठेति प्रभुता यथारुचि कुरुष्वेषाप्युदासीनता।
इत्यालोच्य मृगीदृशी जलधरप्रारम्भसंसूचके
प्रादुर्भूतकदम्बकोरविटपे दृष्टिस्समारोपिता॥

नायक विदेश जाने को प्रस्तुत है। नायिका भावी विरह-जनित दुःखों का अनुमान कर बहुत ही अधीर हो रही है। उसके लिये यह समय बहुत ही विकट है। वह यह नहीं समझ पाती कि किन शब्दों में अपने हृदय की भावना प्रकट करे, जिससे उसके प्रियतम का जाना स्थगित हो जाय। नाना प्रकार के भावों के सागर में वह डूबती-उतराती है। वह सोचती है—

"मत जाओ" यह अमंगलसूचक शब्द है; 'जाओ' यह भी एक स्नेहहीन हृदय-वेधक वचन होगा। 'ठहरो' कहने से प्रभुता का भाव झलकने लगता और 'इच्छानुसार करो' यह भी उदासीनता के भाव का द्योतक होने के कारण जिह्वा पकड़ लेता है। उसे कोई शब्द ही नहीं मिलता, जो उस समय कहने के उपयुक्त हो। अंत में उसे एक युक्ति सूझ पड़ती है। वह नवपल्लवित कदंब की डालों को सजल नेत्रों से देखने लगती है, जो वर्षा के समागम की सूचना दे रही थीं।

कवि की क्या ही अनुपम सूझ है! कैसे लोकोत्तर भाव हैं! कवि की वर्णन-शैली देखने ही लायक़ है।

सत्यव्रत शर्मा "सुजन"

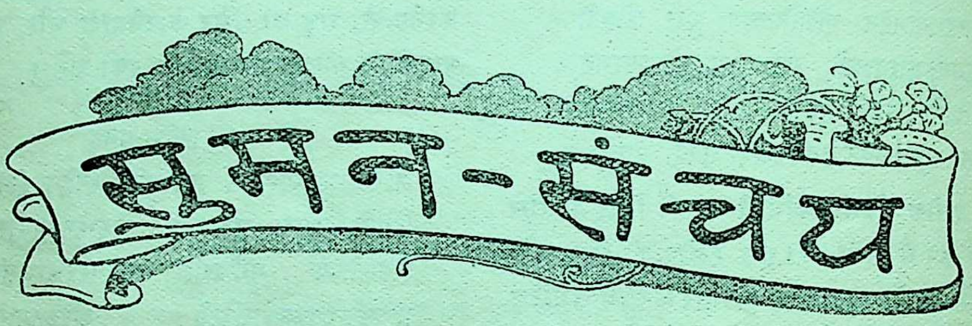

सुमन-संचय

१. भूल-सुधार

आज-कल हिंदी के लेखक संस्कृत-शब्दों का प्रयोग तो ख़ूब करते हैं, परंतु यह नहीं समझते हैं कि जिस अर्थ में संस्कृत के जिस शब्द का प्रयोग करते हैं, वह वास्तव में उसका बोधक है, या नहीं; आँख मूँदकर लिखते जाते हैं। उदाहरणार्थ 'जयन्ती' शब्द को लीजिए। कुछ लोगों ने इसे जन्मोत्सव या वर्षगाँठ का बोधक समझ लिया है। परंतु यह उन लोगों की भूल है। हिंदी-शब्द-सागर में भी यही अर्थ लिखा है। हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि जिस शब्द-सागर के बनाने में लाखों रुपए और कई वर्ष लगे हों, उस शब्द-सागर में भी इस प्रकार की भयंकर भूल हो।

'जयन्ती' शब्द संस्कृत-भाषा का है। संस्कृत के शब्द-स्तोम महानिधि-नामक कोष में श्रीयुत प्रोफ़ेसर श्रीतारानाथ तर्कवाचस्पतिजी ने इस प्रकार लिखा है—जयन्ती० स्त्री० जयति रोगान् अन्यान्यौषधानि वा जि-शतृ-ङीप्। जरायां, नादेय्यां, दुर्गाभेदे "जयन्ती मङ्गला काली" इति मन्त्रः। पताकायां जयन्ती वृक्षे, रोहिणीसहिता कृष्णमासे च श्रावणेऽष्टमी। अर्द्धरात्रादधश्चोर्ध्वं काल व्यापि यदा भवेत्। जयन्ती नाम सा प्रोक्ता-इत्यु लक्षणे योगभेदे च। फिर देखिए, हिंदी के प्रसिद्ध लेख श्रीयुत पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी एम्० आर० ए० एम् अपने संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ-नामक कोष में जयन् शब्द का अर्थ इस प्रकार लिखते हैं—

जयन्ती (स्त्री०) पताका। इन्द्रपुत्री। दुर्गा का नाम संस्कृत के किसी भी कोष में जयन्ती-शब्द का अर्थ कि की वर्षगाँठ या जन्मोत्सव के अर्थ में नहीं आता है अतएव तुलसी-जयन्ती, प्रताप-जयन्ती और हरिश्च जयन्ती इत्यादि के प्रयोग हिन्दी में ठीक नहीं हैं। हिंदी वर्तमान लेखकों से निवेदन है कि संस्कृत-शब्दों का किसी संस्कृतज्ञ पंडित से पूछकर तब उनका प्रयोग कि करें। अन्यथा हिंदी की और उनकी, सुधी-समाज में हँ ही होगी। आशा है, हिंदी-शब्द-सागर के वि सम्पादकगण भी द्वितीय संस्करण में इस भूल सुधार देंगे।

गिरिजाप्रसाद शर्मा

× ×

२. एक नम्र निवेदन

हिंदी के विद्वानों से मेरा एक नम्र निवेदन है। मैं विद्यापति की एक कविता पढ़ रहा था, मुझे उसका अर्थ समझ में नहीं आया। कविता क्या है, एक पहेली है। कविता में असीम सौन्दर्य है, अपूर्व माधुर्य है, शब्दों का अर्थ भी बहुत सरल है, फिर भी इस पहेली का भाव समझ में नहीं आता। मैंने बहुत चेष्टा की, पर मेरे सब प्रयत्न विफल हुए। अतएव मैंने आज विद्वन्मंडली की शरण ली है। आशा है, हिंदी के विद्वान् मुझे इसका अर्थ बतलाने की कृपा करेंगे। नीचे वह कविता दी जाती है—

"कुसुमित कानन कुंजे बसि।
नयनक काजर घोरि मसि।
नख सों लिखलि नलिनी-दल-पात।
लिख पठाओल आखर सात।
पहिलहिं लिखलनि पहिल बसन्त।
दोसरें लिखलनि तेसरक अन्त।
लिख नहिं सकली अनुज बसन्त।
पहिलहिं पद अछि जीवक अन्त।
मनहिं विद्यापति आखर लेख।
बुध जन हों, से कहथि बिसेख।"

यही कविता या पहेली है। यह उस नायिका के पत्र-लेखन के विषय में है, जिसका पति प्रवासी है।

जो सज्जन इस कविता या पहेली का अर्थ बतलाने की कृपा करें, वे कृपया उस अर्थ को 'माधुरी' में प्रकाशित करा दें।

क्या हिंदी के विद्वान् मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान देंगे?

जयनारायण मल्लिक

× × ×

३. रसना

चेरी स्वाद ही की निसि द्यौस तो बताओ भला,
वधिकन हाथ पसु-रासि क्यों न मारी जाय;
धारना "ब्रजेस" जब ऐसी अविचार की है,
बात-बात ही में तब ही तो कही गारी जाय।
'ना' की संगिनी है क्यों दुरित दुरासा करै,
रोज ही दुखाई जासों जनता बिचारी जाय;
आरस असील मुख बैठी बस ना है, तब
कस ना विचारो यह रस-ना पुकारी जाय।

राघवेंद्र शर्मा "ब्रजेश"

× × ×

४. संगीताचार्य वैद्यनाथ

प्राचीन भारत के राजा-महाराजाओं ने सङ्गीतशास्त्र की अद्भुत शक्तियों से प्रभावित एवं प्रसन्न होकर इसे विशेष महत्त्व प्रदान किया था। उनकी छत्रच्छाया में इसकी आशातीत उन्नति हुई और अनेक सङ्गीताचार्यों ने जन्म लेकर अपने आश्चर्यजनक कौतुकों से संसार को ऐसा चकित कर दिया कि उन्हें आज हम कपोल-कल्पित कथाएँ कहकर अपने संकुचित विचारों का परिचय देते हैं।

कविता और सङ्गीत का अटूट संबंध है; हम इनको भिन्न नहीं कर सकते। यदि एक पुष्प है, तो दूसरा पराग; एक वीणा है, तो दूसरा उसका सुमधुर स्वर। मानव-मस्तिष्क में इनका पूर्ण रूप से विकास होते ही हृदय एक अलौकिक आलोक से जगमगा उठता है। भारतीय इतिहास के प्रोज्ज्वल पृष्ठ इसके सजीव साक्षी हैं। औरंगज़ेब-भूषण, तैमूर-दौलत तथा हुमायूँ-बैजू के संवाद इस बात के ज्वलंत उदाहरण हैं। आज मैं इसी श्रेणी के एक सुप्रसिद्ध सङ्गीताचार्य के जीवनवृत्त को सुविज्ञ पाठकों के सम्मुख उपस्थित करता हूँ।

इनका जन्म गुजरात-प्रांत के चंपानेर-नामक स्थान में एक साधारण स्थिति के नागर-ब्राह्मण के घर हुआ था। शैशवावस्था से ही इन्हें सङ्गीत से प्रेम था। यह अपने गान में ऐसे तल्लीन हो जाते थे कि इन्हें आगंतुकों के आने और जाने का कुछ ध्यान ही न रहता था। इसी कारण लोग इन्हें बावरा (बावला) नाम से संबोधित करने लगे। इनका असली नाम वैद्यनाथ था, जो कालांतर में बिगड़कर बैजनाथ, बैजू और बैजू बावरा हो गया। उन दिनों सङ्गीत-शिक्षा का केन्द्र ग्वालियार था। संगीतशास्त्र और कला के प्रगाढ़ पण्डित, ध्रुपद-नामक गायन के आविष्कारक और ग्वालियार के शासक ने एक बृहद् सङ्गीतशाला की स्थापना की थी। बैजू बावरे ने यहीं पर सङ्गीतशास्त्र का अध्ययन किया था और शिक्षा-समाप्ति के पश्चात् वह कुछ काल तक अध्यापक भी रहे थे। इनके गुरु आचार्य हरिदास स्वामी थे और

सुप्रसिद्ध गायक तथा कवि तन्ना मिश्र (तानसेन) और नायक गोपाल इनके गुरुभाई थे ।

सप्त प्रगट सप्त गुप्त नायक गोपाल ध्यायो,
तानसेन ताको बैजू पाषाण पिघलायो ।—'तानसेन'

उपर्युक्त सङ्गीतशाला के नष्ट हो जाने पर, सन् १५३६ ई० के लगभग बैजू बावरे ने गुजरात के सुलतान मोहम्मद ने दरबार में नौकरी कर ली और शीघ्र ही सुलतान के परम प्रिय प्रेमपात्र बन गए । राजदरबार में सम्मानित होने पर भी इन्हें नाम-मात्र का गर्व न था । स्वामिभक्त बैजू शीघ्र ही भागकर सुलतान से आ मिले । इनको देखते ही सुलतान ने प्रसन्न होकर कहा कि जो कुछ मैंने खोया था और जिसे मैं ईश्वर से माँग रहा था, वह मुझे मिल गया, अब किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं ।

एक बार बैजू एक भड़भूँजे के भार पर बैठे कुछ गा रहे थे । भड़भूजे ने चने भूनने के लिये बर्तन को गर्म किया । यह देखते ही बैजू बोल उठे—मेरी पीठ दीपक राग से गर्म हो रही है, तुम उसी पर चने क्यों नहीं भून लेते । भड़भूँजे ने पीठ पर हाथ रक्खा, तो वास्तव में वह बहुत गर्म थी ।

वैद्यनाथ एक असाधारण गायक ही न थे, वरन् हिंदी के अच्छे ज्ञाता और कवि भी थे । उन्होंने संगीत "ओकदेशा", "रागसागर" और "रागतरङ्ग" आदि कई ग्रंथ रचे थे । किंतु 'रागसागर' और कुछ स्फुटिक कविताओं के अतिरिक्त शेष अप्राप्य हैं । बैजू बावरे के जन्म-मरण आदि की विस्तृत बातों का पता ठीक नहीं चलता । आशा है, हमारे सहृदय साहित्यान्वेषी पाठक इस पर प्रकाश डालने का विशेष प्रयत्न करेंगे । हम उनकी 'काली-वंदना' का एक उदाहरण यहाँ पर उद्धृत कर लेख को समाप्त करेंगे । काली की स्तुति में उन्होंने कितनी ही रचनाएँ की हैं । वह एक सहृदय, सच्चे, सच्चरित्र, सदय, सरल, सादे और धर्मपरायण व्यक्ति थे । एक बार मुग़ल-सम्राट् हुमायूँ ने गुजरात गढ़ पर आक्रमण कर अपना अधिकार स्थापित कर लिया । सुलतान कुछ साथियों के साथ भाग गया । हुमायूँ ने क़िले के भीतर के मनुष्यों को वध करने की आज्ञा दे दी । बैजू भी वहीं पर थे । एक मुग़ल-सरदार ने इनको बादशाह के सामने पेश किया और सङ्गीत-सम्राट् कहकर इनका परिचय कराया । क्रुद्ध हुमायूँ ने कर्कश में गाने की आज्ञा दी । गाना प्रारंभ हो गया । की एक ही तान में श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो गए । बाद का सारा क्रोध काफ़ूर हो गया । उसने प्रसन्न होकर कहा—"बैजू ! माँगो जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो, मैं दूँगा।" बैजू ने कहा—महाराज ! मानव-वध बंद कर दिया क़त्ल बंद हो गया । बादशाह ने फिर कहा—" माँगो" । बैजू ने प्रार्थना की कि बंदी मुक्त कर जायँ । हुमायूँ ने क़ैदियों के छोड़ने की आज्ञा दे अफ़सरों ने कुछ आपत्ति की ; किंतु बादशाह बोले— तो एक साधारण बात है, यदि बैजू सा बादशा माँगता, तो भी मुझे देना पड़ता ।

पाठको ! यह है प्राचीन सङ्गीत-शास्त्र की अलौकि असीम शक्ति की एक झलक और साधु सङ्गीतज्ञ के हार्दि भाव का एक साधारण नमूना है, जिसके आधार पर उन काली-उपासक होने का अनुमान किया जा सकता है

राग भैरव—चौताल

जय काली कल्याणी खप्रधारिणी गिरिजा,
घनश्यामा चण्डी चामुंडी छत्रधारिणी ।
जग-जननी ज्वालामुखी आदिजोति अनंता ।
देवी अन्नपूर्णा आनंदी तरण तारिणी,
जोगिनी जय रक्षाकरणी विन्ध्यवासिनी,
ललित बहुचरा भवानी असुरदलनी महिषासुरमर्दि
हिमगिरि हिंगलाज रानी काश्मीरी शारदा,
कामरू कामदया तुलजा "बैजु" भक्त सुखकारि

रामशंकर मि

× × ×

५. कल-कौमुदी

गोरी गरबीली गृहपति की गृहिणि है, कि
सुंदर सलोने सामवेद का प्रकास है;
गोपियों के मानस की चारु शुभ्र कांति है, कि
सूर-तुलसी की काव्य-कला का प्रकास है;
किंवा कीर्तिवाहिनी 'करीर-कुंज-कोकिल' की
रजतमयी सु-सीढ़ियों का ही प्रकास है;
आसमान अभ्र है कि कल-कौमुदी से प्यारी
तेरी कुंद कलियों का छाया सुप्रकास है।

गंगाचरण दीक्षित 'आकु

× × ×

६. एक विस्मृत हिंदू-सम्राट्

इतिहास देश की सभ्यता का दर्पण है। परंतु दुर्भाग्य-वश यह दर्पण सदैव से ही पक्षपातरूपी धूलि से मलिन होता रहा है। कोई भी इतिहास-लेखक अपने समय की घटनाएँ पक्षपात-रहित होकर नहीं लिख सकता। परंतु उन घटनाओं की यथार्थता कुछ समय बाद, जब उनकी विवेचना केवल ऐतिहासिक दृष्टि से की जाती है, अवश्य ही प्रकट हो जाती है।

यहाँ एक ऐसे ही ऐतिहासिक व्यक्ति के चरित्र की विवेचना की जायगी, जिसकी महत्ता समसामयिक इतिहासकारों के पक्षपात के कारण बिलकुल नष्ट-सी हो गई है। यह व्यक्ति राजा हेमचंद्र था। उस समय के इतिहासकारों ने इसको हेमू लिखा है, जैसे राना संग्रामसिंह के समय के लेखकों ने उसको साँगा लिखा है। हेमू, हुमायूँ और अकबर का समकालीन था और उसने दिल्ली में पहले आदिलशाह सूर का मंत्री बनकर, और फिर राजा होकर बहुत दिन तक शासन किया। अब तक सब इतिहासकार हेमू के इतिवृत्त के लिये उस समय के मुसलमान लेखकों का पूर्ण विश्वास करते रहे थे, परंतु इधर कुछ समय से इस विषय पर काफ़ी विवाद हुआ है, जिसके फलस्वरूप हेमू के इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ा है।

हेमू के समय के मुसलमान लेखकों ने उसका थोड़ा-सा हाल लिखकर ही संतोष किया है, जिसमें उन्होंने उसको बक्काल, काफ़िर और नीच लिखा है। यह लिखना भी स्वाभाविक ही था, जब हम जानते हैं कि वे लोग हेमू के शत्रुओं में थे। परंतु वर्तमान समय के विद्वानों ने इन लेखकों का पूर्णरूपेण विश्वास करके, हेमू के साथ अवश्य ही अन्याय किया है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ विंसेंट स्मिथ ने भी मध्यकालीन मुसलमान लेखकों का विश्वास करके, हेमू को 'रिवाड़ी का निवासी और बनिया जाति की धूसर-शाखा का सदस्य' लिखकर ही संतोष किया है। उन्हीं इतिहास-लेखकों के आधार पर स्मिथ महोदय ने 'हेमू की नीच जाति, दुर्बल देह तथा हिंदू-धर्म की कठिनाइयों' पर भी अपनी सहानुभूति प्रकट की है। यहाँ पर यही दिखाया जायगा कि (कही जानेवाली 'हिंदू-धर्म की कठिनाइयों' के अतिरिक्त) यह सब बातें भ्रमात्मक हैं।

वास्तव में हेमू न तो बनिया जाति का अंग था, न रिवाड़ी का निवासी। इस ग़लती का कारण यही मालूम होता है कि हेमू धूसर था। उत्तर-भारत में इसी नाम की दो जातियाँ हैं। इनमें से एक तो भार्गव-जाति है, जो वधूसरा नदी-तट पर, जिसकी उत्पत्ति का श्रेय महाभारत में महर्षि भृगु की वधू को दिया गया है, बसने से वधूसर अथवा धूसर कहलाई, और जो संभवतः गौड़ ब्राह्मणों की एक शाखा है, जैसा कि गौड़पादसंग्रह के इस श्लोक से मालूम होता है—

'भार्गवा द्विविधाः प्रोक्ता गौडाः सारस्वतास्तथा।
धूसरा भार्गवा सर्वे गौडवंशसमुद्भवाः॥'

दूसरी संयुक्त प्रांत में बसनेवाली धूसर बनिया-जाति है। सन् १८९१ के जन-संख्या-विवरण (Census Report) में भी यह भेद स्वीकृत किया गया है। अब इस बात का काफ़ी प्रमाण मिल गया है कि हेमू धूसर ब्राह्मण था, तथा धूसर बनिया जाति से उसका कोई संबंध न था। पटियाला-राज्य के अंतर्गत कानौड़-ग्राम के निवासी कुछ भार्गव अपने को हेमू के चचेरे भाई नौनिधिराय की संतान बतलाते हैं, और उनके पास उस समय के ऐतिहासिक पत्र और सनदें भी हैं। इन भार्गवों के पूर्व-पुरुष पहले अलवर-राज्य के अंतर्गत देहरा-नामक स्थान में रहते थे। अतएव हेमू भी इसी स्थान का निवासी रहा होगा। मेजर मनोहरलाल भार्गव ने, जो इसी वंश के हैं, कृपा करके मुझे हेमू के वंश के बारे में ठीक-ठीक विवरण दिया है। मुझे उनसे मालूम हुआ है कि हेमू का वर्ण ब्राह्मण, जाति धूसर, वंश भार्गव, गोत्र गालव, वेद यजुस्, शाखा माध्यंदिनी और कुल देवता वरुण था। अतएव यह स्पष्ट है कि हेमू जाति का ब्राह्मण था और उसका निवासस्थान देहरा था।

अब यह देखना है कि हेमू, जैसा कि मुसलमान इतिहासकारों ने लिखा है, व्यवसाय में भी दूकानदार था अथवा नहीं। हाल में जो विवेचनाएँ हुई हैं, उनसे तो यही ज्ञात होता है कि यह मुसलमान लेखकों की कपोल-कल्पना है और उन्होंने हेमू का अपमान करने के लिये ही ऐसा लिखा है। हेमू के पूर्वजों के नामों से ही यह स्पष्ट विदित होता है कि उसके कुलवाले बहुत काल से सामंतों की गणना में थे। हेमू का वंशवृक्ष इस प्रकार है—

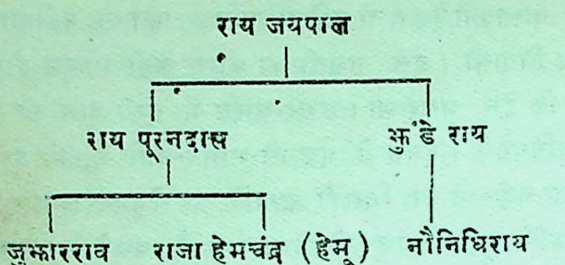

इसके अतिरिक्त मैंने हेमू के तथा उसके पिता के कुछ पुराने चित्र भी देखे हैं, जो बिलकुल राजोचित हैं और जिनसे हेमू का प्रारंभ में एक क्षुद्र व्यापारी होना अथवा दुर्बल होना मिथ्या प्रमाणित होता है।

मध्यकालीन भारतवर्ष के इतिहास में निस्संदेह हेमू का बहुत उच्च स्थान है, जो मुसलमान इतिहासकारों के पक्षपात के कारण उसे नहीं मिल सका है। हेमू की गणना भारतीय इतिहास के सबसे बड़े योद्धाओं में की जा सकती है। वह बाईस लड़ाइयों का विजेता था और, जैसा कि इम्पीरियल गज़ेटियर (Imperial Gazetteer) में लिखा है, एक शक्तिशाली व्यक्ति, महान् योद्धा और चतुर शासक था। उसने मुग़लों को भी, जो टर्डी बेग की अध्यक्षता में लड़ रहे थे, हरा दिया था; परंतु पानीपत की लड़ाई में उसका अचानक पतन हो गया। इस लड़ाई में हेमू की तोपों पर विपक्षियों का अधिकार होने के बाद, यद्यपि उसका जीतना कठिन हो गया था, तथापि उसने जो वीरता दिखाई, उससे उसके जीतने की पूर्ण आशा हो गई थी। परंतु उसकी आँख में एक बाण लग जाने से भारतवर्ष का इतिहास बदल गया। मुसलमान इतिहास-लेखक बदायुनी ने भी स्वीकार किया है कि हेमू के धावे से अकबर की सेना त्रस्त हो गई थी। उसकी आँख में तीर लगने के बाद उसको मृत समझकर उसकी बहुत-सी सेना भाग गई; परंतु उसने तुरंत आँख से बाण निकालकर और उसको बाँधकर फिर लड़ना शुरू किया, परंतु वह अधिक काल तक न जी सका। इन सब बातों से स्पष्ट है कि हेमू अपने देश की स्वतंत्रता के लिये मरते समय तक लड़ा और जब उसको मुसलमानों ने पकड़ा, तब वह या तो मर गया था या मृत-तुल्य हो गया था (क्योंकि बदायुनी के वाक्य के दोनों अर्थ हो सकते हैं)। उसका आचरण इतना वीरोचित था कि बेवरिज (Beveridge) महोदय की राय में 'वह विजय का पात्र था'। स्मिथ महोदय भी कहना ही पड़ा है कि वह 'एक योग्य सेना और शासक था'।

निस्संदेह हेमू भारतवर्ष का अंतिम हिंदू-सम्राट् वह एक कट्टर हिंदू था और उसने हिंदू-जाति की त्रता के लिये उतनी ही तत्परता से युद्ध किया, तत्परता से राना संग्रामसिंह, राना प्रतापसिंह छत्रपति शिवाजी ने किया। आश्चर्य है कि 'हिंदू का स्वातंत्र्य-प्रेम'-जैसी उत्तम पुस्तक के लेखक ने पुस्तक में हेमू का ज़िक्र तक नहीं किया! हेमू योग्यता का यही काफ़ी प्रमाण है कि एक हिंदू होने पर भी उसने धर्मांध अफ़ग़ानों को वश में कर लिया और उन्हीं की सहायता से सिंहासन पर बैठकर विक्रमादित्य की पदवी धारण इसी प्रकार शिवाजी की सेना में भी मुसलमान थे। यद्यपि हेमू ने सूरों का छीना, तथापि उसने उचित ही किया। आदिल-जैसे ऐयाश शासक के अनाचार से देश लिया। भारतीय इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण प्राचीन समय में पुष्यमित्र ने भी मौर्यों से, जो समय शक्तिहीन हो गए थे, सिंहासन छीनकर को अराजकता से बचाया था। हेमू ने भी ठीक ही कार्य किया। यद्यपि हेमू थोड़े समय तक ही को सुव्यवस्थित रख सका, तथापि वही बात शेरशाह भी लागू है, और उसको सब एक महान् मानते हैं। इसलिये यह स्पष्ट है कि हेमू मध्यका भारत का एक महान् हिंदू-सम्राट् था।

पुरुषोत्तमलाल

× × ×

७. हीरे !

१

काँच की माला लिए फिरता रहा,
सोचा सदा मणिमाल बताना;
देखा भी है पुखराज कभी भला!
धोखा दिया किया नित्य बहाना।

आब नहीं जिस चीज़ में है, उसे
दूर ही से हमने पहचाना ;
हैं हम जौहरी जौहर के, ज़रा
होश-हवाश से भाव पटाना।

२

ओढ़के शेर की खाल सदा, अरे
गीदड़ चाल चला मनमानी ;
पानी चढ़ाके दिखाया था काँच को,
और बना हमसे गुरु ज्ञानी।
है ठग जो ठगता जग को फिरे,
याद रहे यह बात गुमानी ?
पारखी जौहर देखके जाँचते--
है इसमें कितना चढ़ा पानी।

३

देखते रत्न को, हैं कसते सदा,
मोल दिया करते मनभाया ;
जाते हैं ताड़ उसे झट 'प्रेम' वे
खोटा-खरा यहाँ जो कुछ आया।
भाजी भटे का हाट न यहाँ, मणि-
माणिक का सदा ठाट लखाया ;
कंचन काँच छिपाए छिपा नहीं,
रंग उड़ा--गया ज्यों ही तपाया।

प्रेमनारायण त्रिपाठी 'प्रेम'

× × ×

८. तुम्हारी मुरली

मोहन ! उषा अपने प्रियतम के स्वागत में लीन होकर अपना अस्तित्व मिटा चुकी थी। सूर्य की रश्मियों की ज्योति चारों ओर फैलाये बड़ी देर हो चुकी थी, पास का गाँव बड़े सवेरे से ही जाग उठा था। इस समय तो वहाँ बड़ी खलबली थी। सब अपने-अपने कामों में तन-मन से व्यस्त थे। परंतु गोकुल की गोपियाँ अब भी न-जाने क्यों पड़ी थीं। ऐं, प्रकाश फैला था और गोपियाँ सो रही थीं !—गोकुल की गोपियाँ ? अरे, वे तो सबसे पहले उठ बैठती थीं, उनका जीवन एक विचित्र समस्या थी, वे तो पास के गाँव के लिये आदर्श थीं। इतनी गहरी नींद ! क्या उनके लिये अभी अंधकार ही होगा ? उनके अनुयायी कितने आगे बढ़ गए, आँखों से ओझल हो गए। हा, गोकुल का इतना पतन !

सहसा तुम्हारी मुरली बज उठी। झंकार से हृदय काँप उठा, नसों में नवीन रक्त दौड़ने लगा, गोपियाँ सोते-सोते चौंक पड़ी हैं, इतनी बड़ी जागृति ! नशा चढ़ गया, बड़ा अद्भुत था, क्यों, इतना अधिक दिन ! और हम सोती रहीं ! पल-भर में ही चारों ओर खलबली मच गई, सब भाग पड़ीं। नन्हें-नन्हें बच्चे भी चलने को मचल पड़े। बच्चे और उनका मचलना—क्या कभी मान सकते हैं ? युवकों के हृदय कूदने लगे, वृद्ध निकल पड़े।

अब भी तुम्हारी मुरली उसी गति से बज रही थी।

घड़ी-भर में ही चारों ओर लाखों की भीड़ हो गई। तुम्हारी वंशी अब भी बज रही थी। सबने एक स्वर में कहा—

"मोहन ! तुम्हारी मुरली में जीवन का सार भरा है, बजने दो, ज़ोरों से बजने दो, परसों की तरह बजाकर बंद न कर देना, बजने दो, हम इस पर अपना जीवन निछावर कर देंगी। मोहन, बजने दो—ज़ोरों से बजने दो।"

तुम्हारी वंशी अब भी वैसे ही बज रही थी। दसों दिशाएँ प्रतिध्वनित कर रही थीं—"क्यों, इतना अधिक दिन ! और, हम सोती थीं..."

त्रिभुवनशंकर तिवारी

× × ×

६. टोना

१

सूर्यरश्मि के जाल न होते
सुंदर फूल नहीं खिलते ;
मधुर पराग न होता तो
ये भौंरे क्यों रोते फिरते !

२

दीपक की चमकीली शिखा
न होती, क्यों पतंग गिरते ?
चंद्र न यदि आकर्षक होता
उस पर क्यों चकोर मरते ?

३

आँखों के अभाव में कैसे
हृदय ख़ज़ाना यह लुटता?
हरा-भरा उद्यान भला क्यों
पल-भर में उजाड़ दिखता?

४

यह उलझी-सी विकट पहेली
लुटे हृदय का है रोना!
उस अज्ञात कौतुकी का
अथवा है आकर्षक टोना!

"विमल"

× × ×

१०. समस्या-पूर्ति

यद्यपि हिंदी साहित्य-संसार में समस्या-पूर्ति की प्रथा चिरकाल से चली आती है, तथापि संप्रति इसका ठीक-ठीक पता नहीं लग सकता कि पहले-पहल किसने किस कवि को कौन-सी समस्या दी और उसकी किसी कवि ने कैसी पूर्ति की? अथवा, इसका चलन कब से चला?

३५ वर्ष पूर्व से, साहित्य के नित्य परिशीलन से, इन पंक्तियों के लेखक को, इनसे पुरानी समस्या-पूर्ति, कालपी-नगर-निवासी सुकवि 'श्रीपतिजी' की मिली है।

'मिश्रबंधु-विनोद' के द्वितीय भाग, पृष्ठ ५०५ पर श्रीपति भट्ट नामधारी कवि का विवरण मिलता है। पर यह ठीक पता नहीं चलता कि उक्त श्रीपति भट्ट कवि कालपीवाले ही थे, अथवा कोई अन्य। विनोद में तो केवल यही लिखा है कि यह महाशय गुजराती ब्राह्मण थे, तथा बाँदा के नव्वाब सैयद हिम्मतख़ाँ के नाम पर "हिम्मतप्रकाश"-नामक ग्रंथ, सं० १७३१ में बनाया था।

उधर कालपीवाले श्रीपति कवि-कृत अमुद्रित अपूर्ण "शृंगार-सरोज"-नामक ग्रंथ में, जो गँधौली के "श्रीव्रज-राज-पुस्तकालय" में वर्तमान है, यह दोहार्द्ध मिलता है।

"सुकवि कालपी नगर को, द्विजमणि श्रीपतिराय"

श्रीपति कवि-कृत समस्या-पूर्ति का जो छंद मिलता है, उससे प्रकट होता है कि वह किसी अकबर-नामक बादशाह, नव्वाब या रईस की दी हुई समस्या की पूर्ति है, क्योंकि समस्या यह है—

"करौ सब आस अकब्बर की"

इस संबंध में किंवदंती है कि 'सुकवि श्री मानव-काव्य कभी नहीं करते थे। वह अपनी कविता केवल देव-वर्णन ही करते थे।

अकबर के दरबार में अन्य कविगण भी थे, उन्हें निज आश्रयदाता अकबर से कहा कि श्रीपतिजी श्रीमान् का नमक जन्म भर खाया, पर कभी आ प्रशंसा में एक छंद तक न बनाया। अकबर सा ने कहा कि आप लोग उन्हें कोई ऐसी समस्या दें उन्हें विवश हो दरबार की तारीफ़ करनी ही पड़े। प्र एत्र उल्लिखित समस्या की पूर्ति सुकवि श्रीपतिजी निम्न-लिखित सवैया-छंद में की। उन्होंने समस्या-पू तो कर दी, पर अपना प्रण नहीं छोड़ा।

एक को छाँड़िकै दूजो भजै, सु जरै रसना अस लब्बर
अबकी दुनियाँ गुनियाँ जु भई, वह बाँधती पोट अटब्बर
"कवि श्रीपति" आसरा राम ही को, हम ओट गही बड़े जब्बर
जिनको हरि में परतीति नहीं, सो करौ सब आस अकब्बर

इधर १०० वर्ष के बीच समस्या-पूर्ति-विषयक कवियों के अनेक छंद मिलते हैं। जो कविगण दरबारों में भ्रमण करते थे, उन्हें राजा-महाराजाओं दी हुई समस्याओं की पूर्तियाँ करनी पड़ती थीं। में भी परस्पर समस्याओं का आदान-प्रदान हुआ था, एवं पूर्तियाँ भी पर्याप्त हुआ करती थीं।

गँधौली के स्व० सुकवि लेखराजजी ने अपने कवि मित्र की समस्या की पूर्ति इस भाँति की थी—

गारे जबै परिफंद में ग्राह के गोबिंद को गजराज
हारे जबै गढ़रौं चलिकै तब पाँयन जाय कै आप
बारेन राखि लियो ब्रज बूड़त, यों लेखराजहि टेरि
कारे जु राखन हैं भुजचारि तौ का बिगरै भुज द्वै के

दासापुर ज़ि० सीतापुर-निवासी स्व० पं० ब प्रसाद अवस्थीजी भी अपने समय के राजा-रईसों दरबारों में भ्रमण करते तथा समस्या-पूर्ति करने में हस्त थे। इन्होंने समस्या-पूर्ति-प्रकाश-नामक एक छपवाया था, जिसमें भिन्न-भिन्न राजा-रईसों की समस्याओं की पूर्तियों के प्रचुर छंद प्रकाशित हुए थे।

कवि बलदेवजी ने दरबारों में प्रतिज्ञा कर रक्खी थी

दीजिए समस्या चट कवित बनावैं,
जो पै कलम रुकै तो कर कलम कराइए।

लेख के दीर्घ हो जाने के भय से अवस्थीजी का समस्या-पूर्ति-संबंधी कोई छंद यहाँ नहीं लिखते। केवल उनकी उक्त प्रतिज्ञा ही पर पाठक संतोष करें।

स्व० सुकवि लेखराजजी के ज्येष्ठ पुत्र कविवर "द्विजराज" जी ने भी कई मित्र-कवियों को प्रदत्त समस्याओं की पूर्तियाँ की थीं, जिनमें से भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी की समस्या की पूर्ति पाठकों के विनोदार्थ नीचे लिखते हैं—

समस्या—"दिन द्वै ते पियूष निचोरै लगी।"

पूर्ति—सवैया

फरकैं लगीं खंजन-सी अँखियाँ, भरि भायन भौहैं मरोरै लगी।
अँगराय कछू अँगिया की तनी, छवि छाकी छिनाछिन छोरै लगी॥
बलि जैबे परै "द्विजराज" कहै मन मौज मनोज हिलोरै लगी।
बतियान अनंद सों घोरत सी दिन द्वै ते पियूष निचोरै लगी॥

द्विज बलदेवजी के ज्येष्ठ पुत्र स्व० द्विज गंगजी भी खूब समस्या-पूर्ति करते तथा कराते थे। एक बार इनकी कई समस्याओं की पूर्तियाँ गँधौली के वर्तमान कवि "हर्ष" जी ने की थीं, जिनमें से एक अधोलिखित है—

समस्या—"मयंक मानसर मैं"

पूर्ति—कवित्त

साजि कै सिंगार सारी मोतिन किनारीदार,
ओढ़ि लीन्ही सुंदरि सुघर जो कदर मैं;
गही गोल आरसी बिसाल सौंहे आपनेई,
हेरी दुति आनन की प्यारी रूप बर मैं।
देखि प्रतिबिंब को अनोखी सुखमा को कहै,
उपमा "हरष" यह आवत नजर मैं;
तारन समेत थिर ह्वैकै नीर बीच मानो,
मज्जत अवक्र है मयंक मानसर मैं।

कवि पं० देवदत्तजी वाजपेयी "पुरंदर" भी सिद्धहस्त समस्या-पूर्तिकर्ता हैं।

महमूदाबाद के राजा स्व० अमीरहसनख़ाँ की आठ समस्याओं की पूर्तियाँ, कोई २४-२५ वर्ष पूर्व, आपने तत्काल की थीं, जो ३-४ वर्ष पूर्व माधुरी के किसी अंक में, कविचर्चा-शीर्षक-स्तंभ में, प्रकाशित हुई थीं। परंतु इस स्थान पर भी पुरंदरजी कृत समस्या-पूर्ति का एक छंद लिखे बिना लेखनी आगे नहीं चलती।

समस्या—"ऐसी ऋतु कौन जामैं मदन सतावै ना।"

पूर्ति—कवित्त

ऐसो कौन पुरुष जो धन सों न प्रीति राखै,
पाय प्रभुताई कों गरूर घिरि आवै ना;
लखिकै सु कामिनि कटाक्ष अनियारे दृग,
ऐसो को जितेंद्रिय जु प्रेम चित लावै ना।
भाषत "पुरंदर" सु ऐसो कौन नीतिवान,
करि कै प्रतीति जो अनीति दरसावै ना;
ऐसो कौन सदन, नँदन बिन सोहै जौन,
ऐसी ऋतु कौन जामैं मदन सतावै ना?।

४०-५० वर्ष पूर्व समस्या-पूर्ति-विषयक मासिक पत्रिकाएँ भी ख़ूब निकलीं, तथा सुकवि, कवि, कवीश्वर नामधारी कई मासिक पत्र इस समय भी निकल रहे हैं।

काशी-कविमंडल की मासिक पत्रिका में अच्छे-अच्छे कवियों की उत्तमोत्तम पूर्तियाँ प्रकाशित हुआ करती थीं, जिनमें स्व० पं० अंबिकादत्त व्यास, स्व० पं० सुधाकर द्विवेदी, पटने के बाबा सुमेरहरि "सुमिरेश", लखनऊ के लाला हनुमानप्रसाद, गँधौली के स्व० पं० युगलकिशोर मिश्र "सुकवि ब्रजराज" तथा काशी के द्विज बेनी प्रभृति के नाम उल्लेख योग्य हैं।

उपर्युक्त सब कवियों का एक-एक छंद भी लिखने से निबंध अति दीर्घ हो जाने की आशंका है, अतएव इच्छा होने पर भी नहीं लिख सकते।

काशी-कविमंडल या समाज के सभापति कांकरौली-नरेश श्रीबालकृष्णलाल गोस्वामी तथा मंत्री स्व० बाबू रामकृष्ण वर्मा, संपादक "भारत जीवन" तथा प्रेस के प्रोप्राइटर भी अच्छी समस्या-पूर्ति करते थे।

३०-३५ वर्ष पूर्व रसिक-समाज कानपुर की रसिक वाटिका में बहुसंख्यक कवि-मधुकरों की गुंजार भी कम न थी। इसके अध्यक्ष मल्लावाँ-निवासी स्व० पं० ललिताप्रसाद त्रिवेदी तथा मंत्री स्वनामधन्य स्व० राय देवीप्रसाद "पूर्ण" कविजी थे।

इसी बीच में बिसवाँ ज़िला सीतापुर से स्व० पं० देवीदत्त त्रिपाठी 'दत्त' द्विजेंद्रजी "काव्य-सुधाधर" में समस्या-पूर्ति-विषयक बहुसंख्यक तत्कालीन कवियों के छंद मासिक रूप से कई वर्ष तक प्रकाशित करते रहे। बिसवाँ-कवि-मंडल की समस्या-पूर्ति के प्रचुर छंद प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक के भतीजे स्व० "सुकवि विशालजी"

कृत भी समय-समय पर 'काव्य-सुधाधर' में प्रकाशित हुए थे, जिनमें से एक पूर्ति इस प्रकार है—

"समस्या— चंद्रकला"

पूर्ति—सवैया

यक शंभु के सीस पै बास करै, पुनि दूसरी अंबर मैं बिमला,
पुनि तीजी बिराजत बूँदी के बीच, जो श्री "बलदेव" की प्रेम-पला।
सब हाल "बिसाल" कहा लौं कहै, "कविदत्तजू" बेगि बताओ भला,
इनमैं "बिसवाँ कबि मंडल" में यह कौन-सी राजति चंद्रकला ?

बिसवाँ-कवि-मंडल के कवियों में पं० भगवानदीन 'दीन' कवि की पूर्ति भी खासी चुटीली होती थी, तथा लखनऊ-विश्वविद्यालय के प्रथम कवि-सम्मेलन में भी दीनजी-कृत कई पूर्तियाँ सुनने में आई थीं। काव्य-सुधाधर में दीनजी की निम्नांकित पूर्ति भी यथासमय छपी थी—

समस्या—"वृषभानु लली को"—पूर्ति सवैया

बंशी बजाइबो गाइबो तान, गरे भुज मेलिबो छैल छली को,
"दीन" बिछाइबो सेज प्रसून की, पायँ पलोटिबो कुंज-थली को।
रोय रहै सुधि आवत ही, उर पै कर धारिबो छ्वै त्रिबली को,
एकौ घरी घनश्याम की सूरति, भूलै नहीं बृषभानु लली को॥

काव्य-सुधाधर के समय में ही रानीकटरा, लखनऊ से, लाला हज़ारीलाल कलवार द्वारा, उनके शिलायंत्र से, "रसिकचंद्रिका"-नामक मासिक पत्रिका का प्रादुर्भाव हुआ था। इसमें भी विविधि कवियों के, समस्या-पूर्ति के, प्रचुर पद्य प्रकाशित होते थे। इसके कवियों में मुख्यतः लखनऊ के स्व० लाला हनुमानप्रसाद तथा ला० बालचंद्र जैनी "मुदाम" कविजी थे। इसी बीच में नीमच से भी समस्याएँ निकलती थीं, जिनकी उत्तम पूर्तियों पर कवियों को पुरस्कार भी मिलते थे।

"रसिकचंद्रिका" की पहली समस्या "तारन समेत तारापति फीको परिगो" की पूर्ति कवि 'मुदामजी' ने इस भाँति की थी—

कवित्त

राका की सु रैनि प्यारी बैठी थी अटारी पर
सीसफूल बायु की झकोरन उघारगो।
बोलि उठे कुक्कुट कमल बिकसन लागे
मोर होत जानि कै मलिन्द बृन्द अरिगो॥
कहत "मुदाम" कबि गजर बजन लागे
जागे घड़ियाली कहूँ चक कोष भरिगो।
भागि गए राहु औ चकोर भ्रम खाय-खाय
तारन समेत तारापति फीको परिगो॥

इसी साल भाद्र-मास में काशी-कवि-मण्डल पत्रिका में स्व० ला० हनुमानप्रसाद का अधोलिखि छंद प्रकाशित हुआ था—

समस्या—

"नन्द के अनन्द भये जै कन्हैयालाल की"।
देव दुख मन्द भये कंस के निकन्द भये
चन्द भये सकल निद्वन्द ज्योति जाल की।
बसुदेव देवकी सुछन्द भये "हनूमान"
मची दधि कीच द्वारे भीर गोपी-ग्वाल की॥
भादौं बदी आठैं आठ योग युत आधीराति
जसुदा की गोद मोद माया मोह जाल की।
सब सुखकन्द भये प्रभु जगबन्द भये
नन्द के अनन्द भये जै कन्हैयालाल की॥

इधर कोई १०-१२ वर्षों से कवि-सम्मेलनों की फिर मची है। गत वसंतपंचमी के दिन तो इसी लख में २ कवि-सम्मेलन थे! इन कवि-सम्मेलनों में समस्या-पूर्तियों तथा निर्द्धारित विषयों पर सामयि कवियों के रचित पद्यों का प्रमोद प्राप्त होता है।

प्रायः सभी साहित्यिक संस्थाओं के समारोह उत्सवों पर कवि-सम्मेलनों का आयोजन किया जाता इस अकिंचन को पहलेपहल स्थानीय विश्वविद्याल बृहत् हाल में, श्रीबाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर" अधिनायकत्व के प्रथम कवि-सम्मेलन के अवसर उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जिसे सम्भ सात-आठ वर्ष हुए होंगे।

अन्य बहुसंख्यक समस्याओं के अतिरिक्त एक सम "बने रहैं" भी थी, जिस पर यह सवैया सुनाया

प्रीति की ज्योति जगाय दुहून मैं, जो नहिं लीडर मुक्त मने
पूरन पाछिलों बैर बिसारि न जो इसलाम औ आर्य तने
"राधे प्रवीन" नवीन विचार सों जो नहिं बंधु को बंधु गने
पूत नहीं करतूत सरै कोऊ, जौ लौं अछूत अछूत बने

लखनऊ-विश्वविद्यालय के द्वितीय कवि-सम्मेलन अन्य समस्याओं के साथ ही "नहीं" भी एक स थी। अस्तु, स्वयं न उपस्थित हो सकने के कारण श्री मोहनलाल दीक्षित कवि "मोहन" द्वारा निम्नलि छंद भेजे थे, जिन्हें मोहनजी के कथनानुसार उप

पेशाब के भयंकर दर्दों के लिये एक नयी और आश्चर्यजनक ईजाद याने—

(प्रमेह) सूज़ाक़ की हुक्मी दवा

"गोनोकिलर"

(रजिस्टर्ड)

COCK BRAND
REG. TRADE MARK
Gono KILLER

गोनोकिलर—पेशाब और धातु के दर्दों को मार हटाने और निर्मूल करने के लिये एक ही ऐसी दवा है कि जिसका इस्तेमाल करने से रोगी को कभी निराश होना ही नहीं पड़ता। बड़े-बड़े वैद्य, हकीमों और डाक्टरों की दवाएँ और इंजेक्शन (टीका) लेकर आप परेशान हो गए हों, अँगरेज़ी, जर्मन, फ्रेंच और अमेरिका की पेटेंट दवाओं में फ़जूल ही पैसा बरबाद करके आप बिलकुल ना उम्मेद हो गए हों, तब आख़िरी इलाज की हैसियत से हमारा 'गोनोकिलर' इस्तेमाल बेखटके कीजिएगा। 'गोनोकिलर' एक ही और विना जोखिम का वनस्पति का अक्सीर और रामबाण इलाज है, इसमें शक न लावें।

चाहे जैसा पुराना व नया सुज़ाक कैसा ही भयंकर क्यों न हो, पेशाब में मवाद आना, जलन होना, पेशाब रुक रुककर होना या बूँद-बूँद आना, मूत्राशय के अंदर घाव या सूजन का होना और औरतों के सफ़ेद पानी का जाना और इस किस्म की तमाम भयंकर बीमारियों को जड़ से नष्ट कर देते हैं और ख़राब हुई धातु को सुधार पुष्ट और गाढ़ा बना देते हैं। कई डाक्टरों द्वारा इसकी तारीफ़ की गई है। मूल्य ४० गोली की शीशी ३) रुपया, डाक-व्यय अलग ; तीन बोतल ६ रुपए में। एक साथ लेनेवाले को डाक-व्यय माफ़।

पता—डाक्टर डी० एन० जसानी, १३७ कीका स्ट्रीट, बंबई नं० ४

तार का पता—"गोनोकिलर" बंबई

बवासीर

ख़ूनी या बादी, नई या पुरानी ख़राब-से-ख़राब चाहे जैसी बवासीर हो सिर्फ़ एक बार के सेवन से जादू के मानिंद असर कर अद्भुत फ़ायदा देता है। तीन रोज़ में जड़ से नाश। परहेज़ की कोई ज़रूरत नहीं, अधिक तारीफ़ व्यर्थ। फ़ायदा न हो तो चौगुने दाम वापस, की० २)

फ़क़ीरी सुरमा

यह सुरमा आँख के तमाम रोगों पर जैसे फूला, माड़ा, परवाल, रतौंधी, दिनौंधी, रोहे, गुहेरी, लाली, मोतियाबिंद को विना चीर-फाड़ के आराम करने में रामबाण है। कुछ रोज़ के सेवन से चश्मा लगाने की आदत छूट जाती है। क़ी० १।), तीन शीशी ३)

बहिरापन

कान के तमाम रोगों पर जैसे कान में पीब आना, जलन, खुजली, कान में भयंकर वेदना, कान बहना, तथा बहिरापन नाश करने में हमारा चमत्कारी 'बहिरोद्दीपन तेल' अमोघ है, हज़ारों कम सुननेवाले अच्छे हुए। फ़ायदा न हो तो दाम वापस। क़ी० २)

पता—शक्तिसुधा कार्यालय, चौथा कुम्हारवाड़ा, बंबई नं० ४।

मैसूर बैंगलूर प्रदर्शिनी से स्वर्णपदक प्राप्त

इन्डोबाम

सर्व शारीरिक दर्दों पर अप्रतिम मलहम संग्रह रक्खो

सिर दर्द, बदन दर्द, कमर दर्द, संधिवात, इत्यादि के लिये तुरंत यह मलहम दर्द के स्थान पर मालिश कर लेवे. दर्द के अंदर प्रवेश करके बेचैनी दूर कर देगा। मूल्य प्रति डब्बा ॥=), ३ डब्बा १॥) ख़र्च अलग; =) का टिकट भेज देने से नमूना डब्बी मुफ़्त दिया जाता है।

कर्णिका सारसा परिला।

किसी भी कारण से यदि शरीर के अंदर ख़ून ख़राब हो गया हो तो तुरंत यह सारसा परिला सेवन करना शुरू कर देवें। तमाम विकार दूर करके ख़ून साफ़ कर देगा और पूर्ववत् ताकत आ जायगी। अक्सर जाड़े में ख़ून ख़राब हो जाते हैं तो देरी न करें, तुरंत मँगाकर आजमाइश कर लें। मूल्य प्रति शीशी १।), ४ शीशी का ४) रु० ख़र्च अलग।

पता—कर्णिक ऐग्यू मिक्श्चर डीपो गिरगांव बम्बई ४।

अत्र का "नागरी" लेखन-यन्त्र

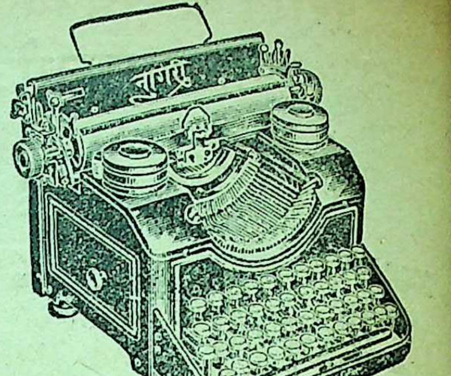

(पहिला परिपूर्ण हिन्दी)

टाइप राइटर

सुंदर आकार, सरल रचना, सुंदर और सुडौल अक्षर, मात्रा और चिह्नों से परिपूर्ण मूल्य में कम होने पर भी मज़बूत, अनेक संस्थाओं तथा संस्थानों में काम में लाया जा रहा है।

आज ही लिखिए—

बच्छराज कम्पनी लिमिटेड

३६५ कालबादेवी, बम्बई नं० २

साध्य, असाध्य रोगों से मुक्त होने के बाद पाचनक्रिया की पुनर्रचना के लिये, मंदाग्नि, अजीर्ण, वायु और दाह मिटाने के लिये मुँह, आमाशय और आँतों में पाचकरस नियमित उत्पन्न करने के लिये

अग्नि-संजीवन

सेवन कीजिए

यह आयुर्वेदानुसार मूल्यवान् वनस्पतियों से तैयार किया हुआ स्वादिष्ठ अवलेह है। मूल्य २८ तोले की शीशी १) डा० ख़० ॥-)

लखनऊ के एजेन्ट—दी हिमालियन स्टोर्स अमीनाबाद-पार्क

आफ़िस—अग्निसंजीवन-कार्यालय (मा) ३५४ कालबादेवी रोड, बंबई

जनता ने कई बार पढ़वा बड़े ध्यान एवं विनोद से सुना था।

सवैया

न सराहिये सूर तिन्हैं कबहूँ जिनके मुख पै कछू शानै नहीं।
कहौ कौन मराल बखानै, जिन्हैं पय पानी के न्याय को ज्ञानै नहीं।
परखी न जिन्हैं 'कवि राधे' कछू गति जौहर की मन मानै नहीं।
नर नारी से ते पगचारी भले जे कवीन की उक्ति को जानै नहीं॥

× × ×

बाहर भीतर आन बान यक रखते कच्ची शान नहीं,
शीत उष्ण सुख-दुख में समता विषम मान अपमान नहीं।
कञ्चन काँच मृत्तिका माणिक फूल शूल असमान नहीं,
सबमें स्वयं आपमें सब हैं जिन्हें पृथकता ज्ञान नहीं॥

× × ×

करें समस्यापूर्ति सहस्रों एक छंद का ज्ञान नहीं,
वाचक लक्षक व्यंजक हैं क्या?—सरस विरस का ध्यान नहीं;
शब्दा अर्था चित्रा भूषण दूषण की पहचान नहीं,
स्वर्णपदक लटकाए फिरते जिसकी कोई शान नहीं॥

कोई ४-५ वर्षों से तो कविसम्मेलनों ने ऐसी असाधारण उन्नति की है कि अब वे लड़कों के उपनयन, विवाह तथा लड़कियों के विवाह एवं गयाजी के ब्रह्मभोज तक में होने लगे हैं। गत १५ मार्च को सायंकाल अमीनुद्दौला-पार्क में स्थानीय कांग्रेसकमेटी के मेले में भी एक कविसम्मेलन हुआ था, जिसमें कोई समस्या तो न थी, पर राष्ट्रीय विषय पर १५-१६ कवियों ने हिंदी तथा उर्दू में निज-निज रचित पद्य सुनाए थे। स्थानीय अशरफ़ाबाद के लाला हीरालाल रस्तोगी के मकान पर एक स्थायी कविसम्मेलन भी तीन-चार वर्ष पूर्व कई मास तक होता रहा, पर इधर उसका कुछ समाचार नहीं मिला। कदाचित् अब बंद हो गया हो।

कई कविसम्मेलनों में आदि से अंत तक उपस्थित रहने तथा बहुसंख्यक कवियों की पूर्तियाँ सुनने से ज्ञात हुआ कि यद्यपि समस्या-पूर्ति करने की प्रवृत्ति तो नवीन कवियों में प्रबलरूप से बढ़ रही है, तथापि काव्य-शास्त्र के पठन-पाठन की परिपाटी का लोप-सा होता जाता है। परिणाम में अधिकांश नवीन उत्साही युवक-कवियों की ऊटपटाँग पूर्तियाँ सुनने में आती हैं। क्या ही अच्छा हो यदि उत्साही प्रेमी युवक कविगण काव्यशास्त्र का नियमानुसार अध्ययन कर समस्या-पूर्ति किया करें। कम-से-कम उन्हें साहित्य के साधारण नियमों का परिचय तो अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिए। यह कुछ ही काल के साधारण परिश्रम से प्राप्त हो सकता है। किसी कविसम्मेलन या समारोह में, निजकृत छंदों के पाठ के पूर्व, यदि वे किसी योग्य कवि से अपने छंदों का साधारण संशोधन ही करा लें, तो वे उपहास के पात्र बनने से बच सकते हैं; क्योंकि किसी भी कला में प्रवीण होने के तीन ही मुख्य कारण या साधन हैं, जिन्हें शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास कहते हैं। सुकवि प्रतापसाहि ने अपने काव्यरीति-संबंधी ग्रंथ 'काव्यविलास' में कहा भी है कि—

कवित बनत है शक्ति ते, बढ़त अभ्यास सँयोग।
व्युतपति ते अति चारुता, कहत सयाने लोग॥

गोस्वामी तुलसीदासजी की यह चौपाई भी इस प्रसंग में ध्यान देने योग्य है—

जो प्रबध बुध नहिं आदरहीं; सो श्रम बृथा बाल कवि करहीं।

अंत में कविसम्मेलनों के आयोजनकर्ताओं से भी कुछ शब्द कहे विना नहीं रहा जाता। कविसम्मेलन करने के पूर्व उन्हें यह भी विचार कर लेना आवश्यक है कि कविता ऐसी वस्तु नहीं है कि किसी को आज्ञा अथवा इच्छानुसार, किसी निर्दिष्ट समय के भीतर, किसी स्वीकृत समस्या की पूर्ति पर बनाई जाय, और वह उत्तम ही हो, किंवा उसमें लोकोत्तर चमत्कार हो। सच्ची और उत्तम कविता तो वही होती है, जो सत्कवियों अथवा मस्ती के मस्तिष्क से स्वयं समय-समय पर प्रकट हो जाती है।

राधेनारायण वाजपेयी "प्रजावैद्य"

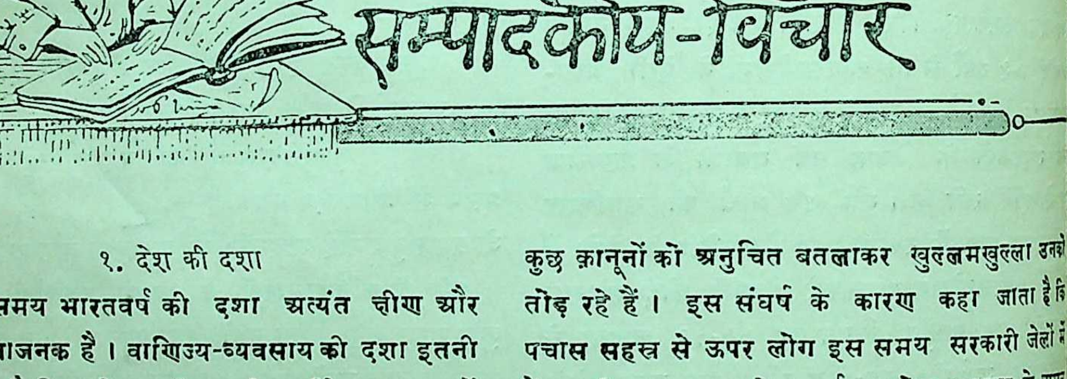

सम्पादकीय-विचार

१. देश की दशा

इस समय भारतवर्ष की दशा अत्यंत क्षीण और चिंताजनक है। वाणिज्य-व्यवसाय की दशा इतनी बिगड़ी हुई है कि ग़रीब-अमीर सभी आर्थिक समस्याओं की उलझनों में पड़े हुए हैं। व्यापार की अवस्था जैसी शिथिल इस समय हो रही है, वैसी इधर पिछले बहुत-से वर्षों में नहीं सुनी गई थी। व्यापार-शैथिल्य का प्रधान कारण संसारव्यापी सस्ताभाव है। इस सस्तेपन के कारण सभी देशों में बेकारों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जाती है। भारतवर्ष को यदि संसारव्यापी व्यापार-शैथिल्य का ही सामना करना पड़ता, तो कोई बात न थी; पर यहाँ राजनीति-संबंधी आंदोलन ने जलती आग में घी का काम कर रक्खा है। महात्मा गांधी द्वारा संचालित भद्र-अवज्ञा-आंदोलन देश-भर में ऐसा व्याप गया है कि यह कहना कठिन है कि इसका परिणाम क्या होगा। अमन और क़ानून की रक्षा के लिये जहाँ सरकार पूर्ण उद्योग कर रही है, वहाँ आंदोलनकारी लोग सरकार के कुछ क़ानूनों को अनुचित बतलाकर खुल्लमखुल्ला उनको तोड़ रहे हैं। इस संघर्ष के कारण कहा जाता है कि पचास सहस्र से ऊपर लोग इस समय सरकारी जेलों में हैं। राष्ट्रीय महासभा के समर्थक लोग सरकार के अमन और क़ानून की रक्षा करानेवाले उद्योग को उग्र दमन बतला रहे हैं और सरकार कांग्रेस के आन्दोलन को खुली हुई बग़ावत। सरकार को अपने पार्थिव बल पर पूरा विश्वास है और भद्र-अवज्ञा-आंदोलन के संचालकों को अपने आत्मिक बल पर पूरा भरोसा है। सरकार का ख़याल है कि वह अपने प्रयत्नों में सफल हो रही है और आंदोलन दब रहा है; परंतु कांग्रेस-दल का मत है कि आंदोलन प्रतिदिन अधिक गंभीर और प्रभावशाली होता जा रहा है। सरकार अपने मत का समर्थन इस बात से कर रही है कि अब कई मास पूर्व की अपेक्षा सभाओं में भीड़ कम जमा होती है और बहुत-से अभियुक्त अदालतों में उपस्थित होकर माफ़ी माँग लेते हैं। उधर कांग्रेस-वाले अपने आंदोलन का प्रभाव बायकाट के वर्धमान

प्रभाव से दिखलाते हैं। हाल में विलायती वस्त्र-व्यवसाय-संबंधी जो आँकड़े प्रकाशित हुए हैं, उनसे यह जान पड़ता है कि भारत में आनेवाले विलायती कपड़े का परिमाण कई महीनों से बराबर घटता ही जा रहा है। इसके सिवाय करबंदी का आंदोलन भी ज़ोर पकड़ रहा है और कई प्रांतों में अब नगरों को छोड़कर आंदोलन ग्रामों में घुस रहा है। महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आंदोलन के पूर्ण प्रभाव के रहते हुए भी खेद के साथ लिखना पड़ता है कि बम और रिवाल्वरों के द्वारा कुछ विकृत-मस्तिष्क अराजक उत्पात कर रहे हैं। हाल में कई प्रतिष्ठित पुलिस-कर्मचारियों की हत्या हुई है, जिनमें तीन अँगरेज़ मुख्य हैं। प्रत्येक समझदार भारतवासी इस आततताईपन के काम की घोर निंदा किए विना नहीं रह सकता है। लोगों को सरकार से इस बात की शिकायत है कि जेलों में राजनैतिक क़ैदियों के साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा है। महात्मा गांधी जेल में स्वस्थ और प्रसन्न हैं। मालवीयजी और भूतपूर्व प्रेसिडेंट पटेल का स्वास्थ्य जेलों में चिंताजनक हो रहा है। नेताओं के अभाव का प्रभाव आंदोलन पर बहुत कम पड़ रहा है तथैव स्त्रियों के उत्साह में कमी नहीं दिखलाई पड़ रही है। लंदन में गोलमेज़-सभा का काम ज़ोरों के साथ हो रहा है, पर ऐसा जान पड़ता है कि हिंदू-मुसलमानों के मत-भेदरूपी भँवर में पड़कर सभा कोई उपयोगी काम न कर पावेगी। यद्यपि इँगलैंडवालों पर भारतीय प्रतिनिधियों के व्यक्तित्व का भारी प्रभाव पड़ा है, फिर भी अनुदार लोगों के संगठित आक्रमण से भारतवर्ष में उक्त सभा के प्रति अविश्वास बढ़ रहा है। विचार किया जाता था कि दिसंबर तक शायद राजनैतिक क़ैदी छोड़ दिए जायँ और इस प्रकार भारत का विक्षुब्ध राजनैतिक वातावरण शांत बनाया जाय, पर यह आशा भी पूर्ण नहीं हुई। वर्तमान वायसराय लार्ड अरविन का शासन-काल भी समाप्ति पर आ गया है और भारत का भावी वायसराय कौन होगा, इस बात को लेकर लोग तरह-तरह के अनुमान कर रहे हैं। सारांश भारत में इस समय असंतोष, दमन, राष्ट्रीय उत्साह और शासन की उग्रता के भाव इस प्रकार से आपस में टकरा रहे हैं कि कोई नहीं कह सकता है कि इससे किस समय कैसा भयंकर परिणाम उपस्थित हो जाय।

× × ×

२. निवेदन

'माधुरी' पत्रिका के संपादन-कार्य एवं पूज्य पिताजी के स्वर्गवास के बाद घर के प्रबंध में पड़ जाने के कारण इधर चार वर्ष से मेरा ग्रंथ-रचना का काम बिलकुल रुका हुआ है। दो-तीन पुस्तकें अधूरी लिखी पड़ी हैं, परंतु अब तक उनके पूरी होने की नौबत नहीं आई है। गत वर्ष मैंने 'माधुरी' के स्वामी से प्रार्थना की थी कि वे मुझे 'माधुरी' के काम से छुट्टी दे दें, जिसमें मैं शांतिपूर्वक अपनी अधूरी पुस्तकों को पूरा कर सकूँ और नई पुस्तकों का लिखना प्रारंभ करूँ, पर मेरी यह प्रार्थना सफल नहीं हुई। उसी समय मैंने श्रद्धेय पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी, रायसाहब बाबू श्यामसुंदरदास, पं० कृष्णकांत मालवीय, पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी, पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी तथा बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त आदि प्रसिद्ध साहित्य-सेवियों से सम्मति माँगी थी कि मेरे लिये पुस्तक-रचना का काम अधिक अच्छा है अथवा 'माधुरी' पत्रिका के संपादन का कार्य। पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी को छोड़कर और सभी सज्जनों ने मुझको यही सलाह दी कि 'माधुरी' पत्रिका का काम करते हुए पुस्तक-रचना का काम करो। पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी की स्पष्ट सम्मति थी कि मेरे लिये पत्रिका के संपादन की अपेक्षा पुस्तक-रचना का काम अधिक श्रेयस्कर है। यह आज से १४,१५ महीने पहले की बात है। एक साल और बीत गया और 'माधुरी' का काम करते हुए पुस्नक-रचना के काम को अग्रसर कर सकने में मुझे सफलता नहीं मिली। विवश होकर नवंबर मास में मैंने 'माधुरी' के संपादन-कार्य से इस्तीफ़ा दे दिया, जिसको कई सप्ताह के बाद मेरे विशेष आग्रह पर मुंशी विष्णुनारायणजी ने खेदपूर्वक स्वीकार कर लिया। 'माधुरी' के संपादन-काल में मेरे और 'माधुरी' के स्वामी के बीच में जो सद्भाव और स्नेह स्थापित हुआ था, ईश्वर की कृपा से वह आज भी ज्यों-का-त्यों बना है। 'माधुरी' पत्रिका पर कृपा करनेवाले सज्जनों से मेरी विनीत प्रार्थना है कि वे 'माधुरी' को अब भी उसी प्रकार अपनाते रहें, जिस प्रकार मेरे संपादन-काल में उनका प्रेम भाव था। माधुरो के प्रेमियों से मैं उन अपराधों, त्रुटियों और भूलों के लिये भी क्षमा चाहता हूँ जो मेरे कारण, 'माधुरी' में पाई गई हों। अंत में

जगदीश्वर से यही प्रार्थना है कि वह 'माधुरी' की श्रीवृद्धि चिरकाल तक करता रहे। भविष्य में जो सज्जन मुझसे पत्र-व्यवहार करना चाहें, वे गँधौली, सिधौली, ज़ि० सीतापुर के पते पर पत्र भेजें।

कृष्णविहारी मिश्र

× × ×

३. समस्या-पूर्ति

हिंदी-कविता के इतिहास में 'समस्या-पूर्ति' की प्रथा का भी एक विशेष स्थान है। इस समय भी समस्या-पूर्ति का ख़ासा प्रचार है। हिंदी के एकाध कविता-संबंधी पत्रों का अस्तित्व तो समस्या-पूर्ति-प्रथा पर ही निर्भर है। हिंदी में समस्या-पूर्ति करने की चाल कई सौ वर्ष से प्रचलित है। कविता-कला के पारखी कई विद्वानों का कहना है कि समस्या-पूर्ति की प्रथा सच्ची और स्वाभाविक कविता का विकास रोकती है। उसके कारण भावों का स्वच्छंद प्रस्फुटन नहीं होने पाता है। समस्या-पूर्ति करनेवाले कवि के हृदय में यदि कोई बढ़िया भाव उठता भी है, तो वह समस्या की संकुचित सीमा के कारण विशदरूप में प्रकट नहीं हो पाता है। काठ के जूतों के कारण जैसे चीनी स्त्रियों के पैर कमज़ोर और विकृत हो जाते हैं, वैसे ही समस्या के कारण अच्छे भाव का भी अंग-भंग हो जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि समस्या-पूर्ति वास्तविक कविता का बड़ा उपकार नहीं कर सकती है; परंतु प्रायः यह बात भी देखने में आती है कि कभी-कभी अच्छे कवि के हाथों में पड़कर समस्याश्रित छंद भी सुंदर बन जाता है। इस नोट का लेखक समस्या-पूर्ति प्रथा का समर्थक नहीं है, पर वह इस बात को भी मानने के लिये तैयार नहीं है कि समस्या-पूर्ति की प्रथा हिंदी-कविता का सर्वथा संहार कर रही है। समस्याओं की पूर्ति से पद्यरचना का प्रारंभ करनेवाले अनेक साहित्य-सेवी बाद में स्वच्छंद मौलिक कविता करने में समर्थ हुए हैं। यह बात अवश्य कहनी पड़ती है कि समस्यापूर्ति के आश्रय में जो छंद बनते हैं, उनमें हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क का कौशल प्रायः अधिक दिखलाई पड़ता है। कवित्व-शक्ति के विकास के लिये समस्या-पूर्ति का ही एक-मात्र सहारा लेना अनुचित है, परंतु उसका सर्वथा तिरस्कार भी अनावश्यक है। कभी-कभी तो यह भी दिखलाई पड़ता है कि समस्या-पूर्ति-प्रथा का विरोधी कवि भी अपनी स्वाभाविक रचना के लिये स्वयं अपने पसंद की कोई समस्या अपना लेता है और फिर उसी के आश्रय में बहुत-से छंद बनाता चला जाता है। जिस प्रकार समस्या भाव को एक निर्धारित सीमा के भीतर ही रखने का उद्योग करती है, उसी प्रकार समस्या-पूर्ति-प्रथा को भी कविता-क्षेत्र के एक निर्दिष्ट स्थान के भीतर ही रहने देना ठीक है। समग्र कविता-क्षेत्र पर समस्या-पूर्ति का आतंक अत्यंत हानिकारक और अनुचित है।

यहाँ पर स्वर्गवासी पं० युगलकिशोर मिश्र 'व्रजराज' (इस नोट के लेखक के पितृव्य और गुरु) के कुछ ऐसे छंद दिए जाते हैं, जो किसी-न-किसी समस्या का आश्रय लेकर बने हैं। इस नोट का लेखक इन छंदों पर टीका-टिप्पणी करना नहीं चाहता है; पर उसका विश्वास है कि समस्या के संकुचित दायरे में बंद रहने पर भी उनमें भाव का विकास विकृत नहीं दिखलाई पड़ता है।

(१)

कविन सिंगार को सरूप करि मान्यो तुम्हैं,
साँवरे विचारि ताकी उपमा दिए के हौ।
भादौं की अँध्यारी मैं जनाम अधराति आए,
नंद के अजिर याते चोरीहू किए के हौ।
साँवरे के साथी सदा जाहिर जगत अरु,
विषधर साँवरे की गोद मैं लिए के हौ।
साँवरी करत अरु ऊपर के साँवरे हौ,
साँवरे सुजान तुम साँवरे हिए के हौ।

(२)

सेतताई जन्हुजा असितता तरनिसुता,
लालिमा दृगनि भारती निहारियतु है।
संगम तिहूँ को मिले पुन्यथल पूरो होत,
अचरज हेरि कै हिए बिचारियतु है।
भृकुटी चढ़ाय कै अनख भरी आली कत,
पीतम पै कुटिल कटाछ डारियतु है।
अनुचित उचित सँभार करिबे है अरी,
तीरथ के तीर काहू तीर मारियतु है।

(३)

पहिले निज नैनन माहिं वसाय भली विधि सों रसरीति करी ;
अब देखिबे को तरसैं अँखियाँ निसिहू दिन आँसू की लाय झरी।
ब्रजराज न चाहिए ऐसी तुम्हें करि रीति इती अनरीति करा ;
हम हीं यह लाल अनीति करी तुमसों बिन जानें जो प्रीति करी।

(४)

नारिन के काज करि जानति न नीके त,
अनारिन के साथ सीखे कारज अनारी के ;
गाढ़े करि छान्यो लाख लाखिमा मिलान्यो रह्यो,
हाय कैसे लेख लिखे निपट गँवारी के।
रंग न सुरंग लसै गहिरी ललाई अति,
सुलुप सुढार अंग संगिनि हमारी के ;
हाहा हठि नाइनि निहारु तौ निहोरे लेखि,
जावक के भार पग उठत न प्यारी के।

(५)

जग जीतनहार 'मनोज' निहारि डर्‌यो अब मोकों कहा करनै ;
उपजो यह ज्ञान तनै बस ह्वैबो अजोग सबै जगमैं बरनै।
तुरतै तजि और प्रपंच को जाल जँजाल को छोरि गह्यो चरनै
मनो या भय तें 'मन' मेरो सदा ही रहै सिवसंकर की सरनै।

(६)

सोने पग पैंजनी मढ़ाय चोंच सोनहीं सों,
सोने को अवास बास तेरो अभिलाखौंगी ;
सोने थार भोजन पियाय पय सोने जाम,
सोनचिरी जोरी हेत ब्योंत करि राखौंगी।
जो पै ब्रजराज कान आनि हैं न बानि तू,
प्रभात जानिबे को तौ न नेकु मन माखौंगी ;
पच्छी ह्वैकै पच्छी तू बिपच्छिन बिपच्छी करु,
एरे तामचूर सोनचूर तोहिं भाखौंगी।

(७)

वारि चुके तन रूप कथा सुनि त्यों मन चित्रहि के लहिबे पर ;
सापने मैं धन वारि दियो पहिराय छला छिगुनी गहिबे पर।
रोक्यों जु तैं ब्रजराजहि वा दिन री मुख चूँबन के चहिबे पर ;
ना कहिबे पर वारे हैं प्रान कहा अब वारि हैं हाँ कहिबे पर।

(८)

कामरी ओढ़ें इतै चले आवत रावरे को तौ कछू नहीं भै है ;
जो कहूँ टूटिहै मोती कि माल तौ नंदबबा को धनीपनो जैहै।
दूरि रहो ब्रजराज खरे उत मोहि इतो अठिलैबो न भैहै ;
साँवरे छैल छुओगे जो मोहिं तौ गातन मोरे गोराई न रैहै।

× × ×

४. साहित्य-सेवियों का स्वर्गवास

१—पं० रामजीलाल शर्मा

पं० रामजीलाल शर्मा के असामयिक स्वर्गवास से हिंदी-साहित्य-संसार की बड़ी क्षति हुई है। पंडितजी बड़े ही मिलनसार, योग्य और उत्साही साहित्य-सेवी थे। आपने हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का काम कई साल तक योग्यतापूर्वक किया था। आपकी बनाई कई पुस्तकें हिंदी-संसार में ख़ूब लोकप्रिय हैं। आपके चलाए 'विद्यार्थी' और 'खिलौना' पत्रों का भी हिंदी-जनता में

पं० रामजीलाल शर्मा

अच्छा आदर है। पं० रामजीलाल शर्मा लोकरुचि को पहचानने में बड़े कुशल थे। पुस्तक-निर्माण, पत्र-संचालन एवं प्रेस-व्यवसाय में इसी कारण आपको सफलता मिली थी। विगत गोरखपुर-साहित्य-सम्मेलन में जब इस नोट के लेखक से पंडितजी की भेंट हुई थी, उस समय आप पूर्ण स्वस्थ थे और कोई भी यह ख़याल न कर सकता था कि उनका जीवनकाल इतना शीघ्र समाप्त हो जायगा। पंडितजी के आकस्मिक स्वर्गवास से हमें बड़ा दुःख है और शोक-संतप्त परिवार से हमारी हार्दिक सहानुभूति है। ईश्वर करे, उनके सुपुत्र पं० रघुनंदन शर्माजी 'विद्यार्थी' 'खिलौना' तथा अन्य पुस्तकों द्वारा पंडितजी के समान ही हिंदी-संसार की सेवा करने में समर्थ हों।

२—लाला भगवानदीन

लाला भगवानदीनजी हिंदी के प्राचीन साहित्य के मार्मिक विद्वान् थे। उनकी समालोचना-शैली चुभती हुई और खरी होती थी। उनकी कविता में प्राचीनता और संयम की झलक थी। उनकी टीकाएँ विद्यार्थियों के काम की होती थीं। लाला भगवानदीनजी मिलनसार सज्जन और सरल प्रकृति के पुरुष थे। उनकी रुचि अपने ढंग की अनोखी थी। उन्हें जो कुछ पसंद पड़ता था, उसकी वह दिल खोलकर प्रशंसा करते थे और जो चीज़ नहीं रुचती थी, उसकी अत्यंत उग्र निंदा। लाला भगवानदीनजी नूतन और पुरातन भावों के समन्वय से बने एक विशेष ढंग की जीवित संस्था थे। उनमें एक विचित्र अनूठापन था। इस नोट के लेखक से लालाजी का कई साहित्यिक बातों में मतभेद था, पर यह मतभेद उस स्नेह और श्रद्धा में बाधक न था, जो उसके हृदय में लालाजी के व्यक्तित्व के संबंध में थी। लालाजी के स्वर्गवास से हिंदी-संसार की, विशेष कर के पुरानी हिंदी-कविता पर प्रेम करनेवाले साहित्य-समाज की भारी क्षति हुई है। ईश्वर परलोक में लालाजी की आत्मा की सद्गति करे और उनके दुखी परिवार को जिसमें उनका शिष्यमंडल भी सम्मिलित है, इस कठोर दुःख के सहने की शक्ति प्रदान करे।

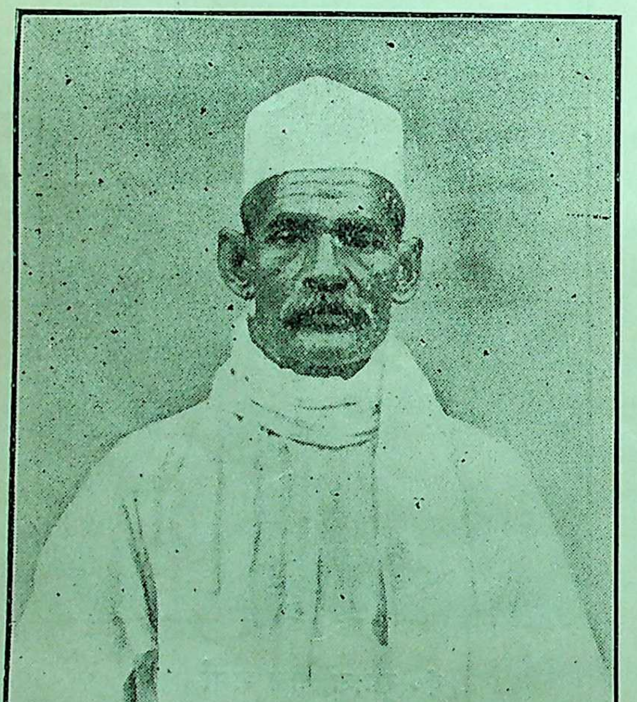

लाला भगवानदीन

३—सेठ अर्जुनदास केडिया

सेठ अर्जुनदासजी केडिया उन विद्वान् साहित्य-सेवियों में थे, जो बाह्याडंबर से कोसों दूर रहते थे। पुरातन-साहित्य-सेवी कैसे होते थे, इसके वे उदाहरण थे। अलंकार-शास्त्र में उनकी अच्छी गति थी। हाल ही में 'भारती-भूषण' नाम से उन्होंने अलंकार-शास्त्र पर हिंदी में एक अच्छी पुस्तक लिखी थी! केडियाजी कविता भी सुंदर करते थे। इस नोट के लेखक को केडियाजी के दर्शन का सौभाग्य नहीं प्राप्त था; परंतु उनकी 'भारती-भूषण' पुस्तक की भूमिका लिखने के प्रसंग में उनके सुयोग्य पुत्र श्रीशिवकुमारजी केडिया के दर्शन और सत्संग से उसे बड़ा आनंद प्राप्त हुआ था। केडियाजी के दुखी परिवार और विशेषरूप से पितृ-वियोग से शोक-संतप्त श्रीशिवकुमारजी केडिया के साथ हमारी हार्दिक सहानुभूति है। ईश्वर करे, परलोक में उनकी आत्मा को सद्गति हो। इनकी जीवनी बाद में प्रकाशित की जायगी।

× × ×

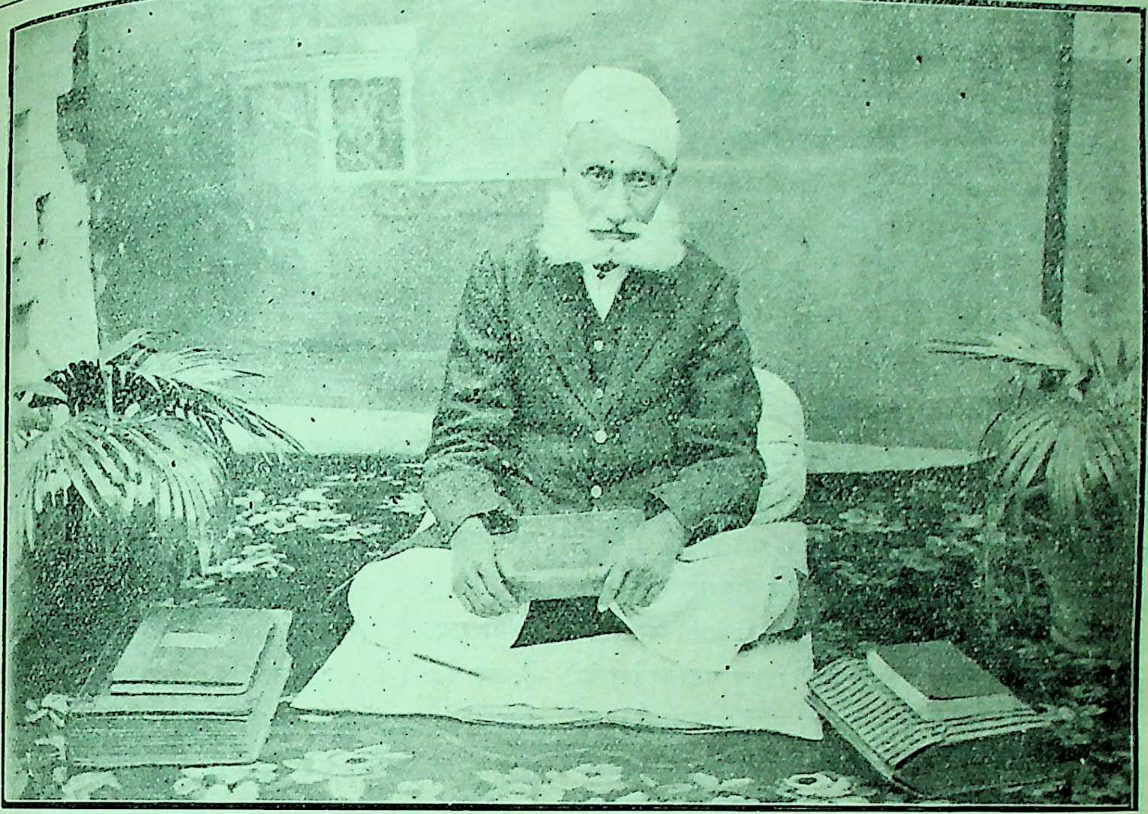

सेठ अर्जुनदास केडिया

سمن بغرض اِنفصال مقدمہ

مقدمہ نمبر ۱۴۲۳ سنہ ۱۹۳۰ع ابتدائي خفيفہ

بعدالت خفيفہ منصفي طرب‌گنج مقام گونڈہ

پرشادي عمر ۶۵ سال ولد دوارکا چوبے ساکن موکل‌پور پرگنہ و ضلع گونڈہ مدعي

بنام بلیسر

بنام † بلیسر عمر تخمیناً ۶۰ سال ولد پہلی اهیر ساکن ڈرسیا بازار پرگنہ ڈمسر ضلع گونڈہ وارد حال مدعا علیہ
مقام پیگوي گوال‌بستي ضلع اصیڑي ملک برهما

هرگاہ مدعی نے تمهارے نام ایک نالش بابت ۱۴۵ روپیہ تمسکي کے دائر کی هے لهذا تمکو حکم هوتا هے کہ تم بتاریخ ۲۱ ماہ جنوري سنہ ۱۹۳۱ع بوقت ۱۰ بجے دن اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعي واقف کیا گیا هو اور جو کل اُمور اهم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتهہ کوئي اور شخص هو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر هو اور جوابدهي دعوی مدعي مذکور کي کرو اور هرگاہ وهی تاریخ جو تمهارے احضار کے لیئے مقرر هے واسطے انفصال قطي مقدمہ کے تجویز هوئي هے پس تم کو لازم هے کہ اپنے جواب دعوی کی تائید میں جن گواهوں کي شهادت پر یا جن دستاویزات پر تم اِستدلال کرنا چاهتے هو اُسي روز اُن کو پیش کرو*

مطلع رهو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ هوگے تو مقدمہ بغیر حاضري تمهارے مسموع اور فیصل هوگا*

آج بتاریخ ۱۶ ماہ دسمبر سنہ ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مهر عدالت سے جاري کیا گیا*

جج

५. संपादकीय विचारों का अभाव

प्रेस-आर्डिनेंस के यौवनकाल में मुझे स्थानीय अधिकारी-मंडल के दो उत्तरदायी सज्जनों से साक्षात्कार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सलाह के तौर पर एक सज्जन ने 'माधुरी' के संपादकीय स्तंभों में राजनीति-संबंधी चर्चा की गंध भी न आने देने की बात कही तथा दूसरे सज्जन ने 'माधुरी' के द्वारा कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार-कार्य में सहायक बनने की ओर इशारा किया। 'माधुरी' साहित्य-प्रधान पत्रिका है। राजनीति की चर्चा उसका लक्ष्य नहीं है फिर भी चूँकि साहित्य में सार्वजनिक जीवन का प्रतिबिंब रहता ही है, इसलिये 'माधुरी' के संपादकीय स्तंभों में भी यदि कभी राजनैतिक घटनाओं का यथातथ्य वर्णनमात्र आ जाय, तो आश्चर्य की बात नहीं। पर इस वर्णन का यह मतलब नहीं है कि 'माधुरी' वर्तमान आंदोलन का समर्थन करती है अथवा विरोध। 'माधुरी' का क्षेत्र साहित्य है, राजनीति नहीं। जब वह कांग्रेस के पक्ष का समर्थन करना अपना ध्येय नहीं मानती है, तब वह उसके विरोध की चर्चा क्यों करे? इसी प्रकार 'माधुरी' राजनीति की छानबीन में संलग्न नहीं रहती है, पर इसका यह भी अर्थ नहीं है कि वह अपनी संपादकीय नीति किसी के इशारों पर अवलंबित रक्खे। निदान प्रेस-आर्डिनेंस के समय तथा दो एक मास बाद भी अन्य पत्रों के समान 'माधुरी' में भी संपादकीय नोटों का अभाव रहा। पाठकगण इसके लिये क्षमा करें।

कृष्णविहारी मिश्र

× × ×

६. महासमर का संधिपत्र

सन् १९१४ में योरप में जो विकराल समर हुआ था, उसका पूर्ण उत्तरदायित्व विजयी राष्ट्रों ने जर्मनी पर रक्खा था। समय के प्रवाह से अब विजयी और विजित राष्ट्रों के बीच में पहले का कटु असद्भाव बहुत कुछ कम हो गया है। संसार के राजनीति मर्मज्ञ और इतिहास के विद्वान् अब महासमर के संबंध में अपने विचार प्रकट करने लगे हैं। हाल में The Word tomorrow पत्र में Mr. Kirby Page नाम के एक विद्वान् लेखक ने वि महायुद्ध के संबंध में एक विचारपूर्ण निबंध प्रकाशि किया है। इस निबंध में संसार के प्रमुख राजनी तिज्ञों एवं इतिहास-लेखकों के विचारों का सारां संग्रहीत किया गया है। समय की गति भी बड़ी विचि होती है। जहाँ आज से १५ वर्ष पूर्व सभी लोग ए स्वर से महासमर प्रारंभ करने का सारा दोष जर्मनी के मत्थे मढ़ते थे, वहाँ आज यह हाल है कि अधिकां राजनीतिज्ञ इस दोष से जर्मनी को मुक्त पाते हैं। उनका कहना है कि युद्ध का उत्तरदायित्व जर्मनी पर नहीं है इतना ही नहीं, उनका यह भी कहना है कि जब जर्मनी क़सूरवार नहीं है, तब वरसेलीज़ का संधिपत्र अनुचित और अन्यायपूर्ण है। उक्त संधिपत्र के द्वा जर्मनी और उसके मित्र राज्यों का जिस प्रकार अंग किया गया है तथा जर्मनी को जैसा अर्थ-दंड दिया ग है, वह किसी से छिपा नहीं है। इस समय के राजनीति उक्त संधिपत्र को रद्द कराने के पक्ष में हैं। उनकी दली यह है कि जर्मनी को दंड देने का विधान तो इसी ब पर किया गया था कि वह दोषी है, पर जब उसका दो

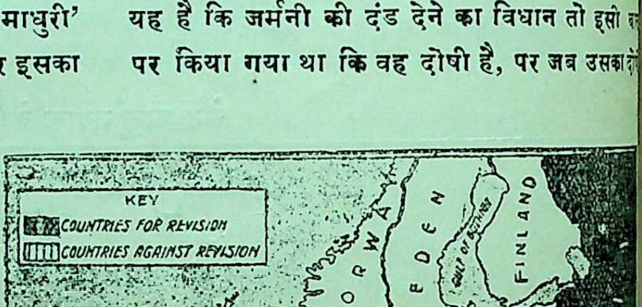
KEY
▨ COUNTRIES FOR REVISION
▥ COUNTRIES AGAINST REVISION
NORWAY
SWEDEN
GULF OF BOTHNIA
FINLAND
ESTONIA
LATVIA
RUSSIA
GREAT BRITAIN
SCOTLAND
IRELAND
WALES
ENGLAND
NORTH SEA
DENMARK
BALTIC SEA
HOLLAND
GERMANY
POLAND
CZECHOSLOVAKIA
AUSTRIA
HUNGARY
RUMANIA
SWITZERLAND
FRANCE
YUGOSLAVIA
ITALY
ADRIATIC SEA
BULGARIA
GREECE
ASIA
PORTUGAL
SPAIN
CORSICA
SARDINIA
SICILY
MEDITERRANEAN SEA
ATLANTIC OCEAN
AFRICA

होना सिद्ध नहीं होता है, तब वह दंडित क्यों किया जाय तथैव जिस संधिपत्र के द्वारा इस दंड की व्यवस्था की गई है, वह उचित क्यों समझा जाय । वरसेलीज़ के अनुचित संधिपत्र को रद्द कराने का आंदोलन इस समय संसार में ज़ोरों से चल रहा है । नीचे एक नक़शा दिया जाता है। इसके देखने से पाठकगण अनुमान कर सकते हैं कि योरोप के बहुत से राष्ट्र संधिपत्र के रद्द कराने के पक्ष में हैं । जिन राष्ट्रों का रंग नक़शे में काला दिखलाया गया है वे सभी संधिपत्र के विरुद्ध हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि यदि संधिपत्र रद्द न कर दिया जायगा, तो योरप में एक बार फिर घमासान मच जायगा ।

× × ×

७. द्यौसरिया देव

९ मई सन् १९२२ को आगरे के बाबू रामप्रसादजी, प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता ने इस नोट के लेखक को एक पत्र लिखा । उक्त पत्र में यह प्रस्ताव किया गया था कि इस नोट का लेखक बाबू रामप्रसादजी के लिये देव कवि के उत्कृष्ट छंदों का एक संग्रह लिख दे । उक्त प्रस्ताव के उत्तर में प्रकाशक महोदय को लिखा गया कि संग्रह का काम यथावकाश किया जायगा, पर यदि इस बीच में वे अपने मित्रों द्वारा इटावा से देवजी के जीवनचरित्र की कुछ सामग्री एकत्रित करा दें, तो बड़ी कृपा हो। बाबू रामप्रसादजी ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया और अपने मित्र बाबू बदरीनारायणजी एम्० ए० को इटावा में देवजी के विषय में खोज करने के लिये लिखा । बाबू बदरीनारायणजी एम्० ए० बाबू धर्मनारायणजी वकील के भाई हैं और इटावा में मुहल्ला बजरिया में रहते हैं । प्रकाशकजी के पत्र के उत्तर में बाबू बदरीनारायणजी ने उनको ७ मई सन् १९२३ को एक पोस्टकार्ड लिखा । बाबू रामप्रसादजी ने उक्त पोस्टकार्ड इस नोट के लेखक के पास भेज दिया । यहाँ पर उक्त पोस्टकार्ड की प्रतिलिपि दी जाती है ।

इटावा
७ मई १९२३

बा० रामप्रसादजी,

मैंने आपको मैनपुरी से कार्ड लिखा था । यहाँ आकर मैंने तलाश किया । यहाँ पर उनके एक वंशज पं० नीलकंठ हैं । उनका कहना है कि कुसमरा ज़िला मैनपुरी में देव के और भी वंशज मौजूद हैं और यह भी कहते हैं कि वहाँ शायद उनकी लिखी कुछ हस्तलिखित पुस्तकें भी मिल सकती हैं । उनका यह भी कहना है कि वह सनाढ्य ब्राह्मण नहीं थे, देवशर्मा ब्राह्मण थे । मिश्र-बंधुओं ने उनके विषय में पूरी तलाश नहीं की । अगर आप आवें या आपके पुस्तक-रचयिता आवें, तो पं० नीलकंठ आपके साथ पूरा-पूरा पता लगाने और सहायता देने के लिये कुसमरा जाने को तैयार हैं । देव ने लिखा है 'द्यौसरिया के वंश में' सो पं० नीलकंठ का कहना है कि 'द्यौसरिया' देवशर्मा का बिगड़ा हुआ रूप है, वह सनाढ्य नहीं थे । मेरे विचार से अगर आपके ग्रंथकर्ता पं० नीलकंठ के साथ कुसमरा जावें, तो यथार्थ पता लग सकता है और संभव है कि कुछ ग्रंथ भी हाथ लगें ।

भवदीय
बदरीनारायण

इस प्रकार इस नोट के लेखक को सन् १९२३ में यह बात पहलेपहल मालूम हुई कि देव कवि के वंशज इटावा और कुसमरा में मौजूद हैं तथा वे अपने को सनाढ्य ब्राह्मण न मानकर देवशर्मा ब्राह्मण बतलाते हैं । संवत् १९८१ में 'हिंदी-नवरत्न' ग्रंथ का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ । इसके पृष्ठ १९७ पर ग्रंथकार लिखते हैं—

"इटावे में हमने पूछ-जाँच की, तो विदित हुआ कि यह दुसरिहा कान्यकुब्ज-ब्राह्मण थे, और पंसारी-टोला, बलालपुरा (शहर इटावा) में रहते थे ।"

बाबू बदरीनारायणजी के पत्र और नवरत्नकारों के लेख के अनुसार इस नोट के लेखक ने भी अपनी 'देव और विहारी' पुस्तक के पृष्ठ २६४ और २८९ (द्वितीय संस्करण संवत् १९८२) पर देव के विषय में इस प्रकार लिखा—

"देवजी देवशर्मा (द्यौसरिहा=दुसरिहा) थे"

पृष्ठ २६४

"देवजी देवशर्मा (द्यौसरिया या दुसरिहा) ब्राह्मण थे, जो अपने को कान्यकुब्ज बतलाते हैं ।"

पृष्ठ २८९

९ अक्तूबर सन् १९२५ को मिश्र-बंधुओं को देवजी के वंशजों द्वारा उक्त कवि का वंशवृत्त प्राप्त हुआ । इस

नोट के लेखक ने उक्त वंशवृत्त का कुछ अंश अक्तूबर सन् १९२५ के 'साहित्य-समालोचक' में प्रकाशित किया। उक्त पत्र के पृष्ठ ३३७ पर इस संबंध में जो चर्चा की गई है वह इस प्रकार है:—

"देवकवि काश्यपगोत्री कान्यकुब्ज दिउसरिहा दुबे थे। इनके वंशज मौज़ा कुसमरा ज़िला मैनपुरी में अब भी रहते हैं।"

फ़रवरी सन् १९२८ ई० की 'माधुरी' में श्रीयुत बाबू जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' ने 'श्री देवदत्त कवि का शिवाष्टक'-शीर्षक एक लेख लिखा है। उक्त लेख में देव कवि वंशात्मज मातादीन द्विवेदी की एक चिट्ठी भी दी हुई है, जो उन्होंने २४ जून सन् १९२५ ई० को काशी के प्रसिद्ध साहित्य-मर्मज्ञ श्रीयुत रायकृष्णदासजी को लिखी थी। मातादीनजी का कथन है:—

"देवजू दुबे इटावे के दिउसरिहा कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।"

इसके बाद इस नोट के लेखक और पं० मातादीनजी से पत्र-व्यवहार प्रारंभ हुआ और उनके यहाँ से देव कवि के ग्रंथ का एक हस्तलिखित पृष्ठ भी मिला। मातादीनजी का कहना है कि वह पृष्ठ स्वयं देवजी के हाथ का लिखा है। इस पृष्ठ का ब्लाक बनवा लिया गया है और वह 'माधुरी' के विशेषांक में प्रकाशित भी किया जा चुका है। पं० मातादीनजी अपने एक पत्र में लिखते हैं:—

"काश्यप मुनि के कुल में संदीपनि मुनि हुए जिनके कुल में देवशर्मा कन्नौज में बास करते थे और काश्यपगोत्री मिश्र थे; परंतु दो वेद (साम-यजु) के पढ़ने से द्विवेदी कहलाये। उनके कुल में बलभद्र पैदा हुए, जिनकी संतानें हम लोग इटावा में आये; जहाँ अब भी तीन थोक मुहल्ला लालपुरा पंसारी टोला में वर्तमान हैं। देवशर्मा शब्द ही से बिगड़कर देवसरिहा-द्यौसरिहा-दिउसरिहा कहाए।"

अपने दूसरे पत्र में पं० मातादीनजी ने अपने संबंधों का वर्णन किया है। उन्होंने अपने संबंधियों की एक सूची भी दी है, जो इस प्रकार है :—

"भारद्वाजगोत्र कान्यकुब्ज ब्राह्मण

१—त्रिवेदी लहुरी के स्थान मैनपुरी।
२—त्रिवेदी जेठी के स्थान बहवलपुर (फ़र्रुख़ाबाद)
३—दुबे बरुआ के स्थान बुढ़ौली (मैनपुरी)
४—दीक्षित गढ़मऊ } स्थान बेवर (मैनपुरी)
५—दीक्षित डौंडियाखेरा }

शाण्डिल्यगोत्र कान्यकुब्ज ब्राह्मण

६—दीक्षित अंटेर के स्थान कन्नौज (फ़र्रुख़ाबाद)
७—दीक्षित हँसराम ,, बहवलपुर (फ़र्रुख़ाबाद)
८—मिश्र हमीरपुर स्थान नारायणपुर–करपिया(मैनपु

कात्यायनगोत्र कान्यकुब्ज ब्राह्मण

९—मिश्र जगदीशपुर स्थान फ़र्रुख़ाबाद
१०—मिश्र लवानी स्थान अकबरपुर (फ़र्रुख़ाबाद)
११—दुबे पतेउँजा स्थान सिरदामई (फ़र्रुख़ाबाद)

उपमन्युगोत्र कान्यकुब्ज ब्राह्मण

१२—दुबे कला के स्थान नादेमऊ (फ़र्रुख़ाबाद)

सांकृतगोत्र कान्यकुब्ज ब्राह्मण

१३—शुक्ल नभेल पुरनिया स्थान पहुपपुर (फ़र्रुख़ाबाद)

मातादीनजी तथा उनके और भाई-बंदों से यह भी मालू हुआ कि सन् १९२५ के जून मास में मैनपुरी के कलेक्ट मिस्टर देसाई देवजी की बनाई और उन्हीं के हाथ लिखी चार पुस्तकें मातादीनजी के यहाँ से ले गए हैं, अब तक उन्होंने वापस नहीं की हैं। श्रीयुत हरिश्चं वर्मा 'चातक' अतरौली पो० छिबरामऊ ज़िला फ़र्रु बाद के रहनेवाले हैं। यह स्थान 'कुसुमरा' से बहुत नहीं है। कुसमरा में इनकी कुछ रिश्तेदारी भी है। नोट के लेखक ने इनसे भी कुसमरा के मातादीनजी के विषय में पूछा था। इन्होंने स्वयं कुसमरा में जा जाँच की और लिखा कि मातादीनजी आदि कान्यकु ब्राह्मण हैं। इसी प्रकार स्वर्गवासी कौशलेंद्रजी राठौ भी जाँच-पड़ताल करके यही सूचना दी कि मातादी का घराना कान्यकुब्जों का है और वे दुसरिहा कान्यकु कहलाते हैं। इनका निवासस्थान भी कुसमरा समीप ही है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि इस समय 'दु रिहा' अल्ल से जो लोग प्रसिद्ध हैं, उनका यह कथन क तक उचित है कि 'देवशर्मा' शब्द ही बिगड़ते-बिग दुसरिहा रूप में प्रचलित हो गया। ऊपर जो वि दिया गया है, उससे यह बात प्रकट है कि मातादी आदि के कथनानुसार देवशर्मा, द्यौसरिहा, देवसरि दिउसरिहा और दुसरिहा शब्दों द्वारा जिस वंश-वि

का बोध होता है वह एक ही है, केवल शब्द के रूपों में भेद है। 'देवशर्मा' शब्द कम पढ़े लोगों में 'देवशरम' अथवा 'देवसरम' रूप में आज भी प्रचलित है। जिस प्रकार 'पच्छिम' दिशा में रहनेवालों को 'पछैंहा' शब्द द्वारा संबोधित करते हैं, उसीप्रकार 'देवशर्मा' (देवसरम) के वंशजों को 'देवसरिहा' कहना हमें अनुचित नहीं प्रतीत होता है। 'पच्छिम' में रहनेवालों को जैसे 'पच्छिमिहा' नहीं कहते, वैसे ही 'देवसरम' की संतान को 'देवसरमिहा' न कहकर, 'देवसरिहा' कहने में ही सुभीता जान पड़ता है। 'देवसरिहा' को 'द्यौसरिहा' भी उसी प्रकार कह सकते हैं, जैसे 'देवमई' ग्राम को 'द्यौमई' अथवा 'देवगृह' को 'द्यौहरा'। कम पढ़े-लिखे लोग 'देवता' को 'देउता' रूप में पुकारते हैं। इसी प्रकार 'देवसरिहा' का 'देउसरिहा' भी कहा जाना असंभव नहीं है। देवमई तथा देवकली ग्राम क्रम से द्यौमई, द्यौकली तो कहलाए ही, पर उन्होंने देउमई, दिउमई, देवकली दिउकली रूप भी पाए। 'देउसरिहा' भी इसी प्रकार 'दिउसरिहा' रूप पा गया। 'दिउसरिहा' में 'दिउ' का उच्चारण 'द्यू' से बहुत मिलता है। संभवतः कुछ लोग 'दिउसरिहा' को 'द्यूसरिहा' पुकारने लगे। फिर 'द्यूसरिहा' उच्चारण की सरलता के विचार से 'दूसरिहा' पुकारा जाने लगा; जैसे द्युति का दुति और यही 'दूसरिहा' अब उसी प्रकार से 'दुसरिहा' रूप में प्रचलित है, जैसे, 'दूसरा' का 'दुसरा' रूप। निदान इस नोट के लेखक की राय में मातादीनजी आदि का यह कथन यथार्थ जान पड़ता है कि दुसरिहा, दिउसरिहा और द्यौसरिहा इन सबका उद्गम-स्थान 'देवशर्मा' से है। 'द्यौसरिया' और 'द्यौसरिहा' रूपों में 'या' और 'हा' का भेद वैसा ही है, जैसा कि 'कनपुरिहा' 'कनपुरिया', 'भोजपुरिया' भोजपुरिहा' में है। 'हा' के स्थान में 'या' का प्रयोग कुछ अधिक शिष्टता लिये हुए है। इस नोट के लेखक का पहले यह ख़याल था कि 'देव' कवि ने छंद की तुक मिलाने के लिये 'दुसरिहा' को ही 'द्यौसरिया' रूप में लिखा है, पर अब 'देवसरिहा' शब्द के क्रमशः बिगड़नेवाले रूपों पर ध्यान देने से यह जान पड़ता है कि 'देवसरिहा' का ही बिगड़ा रूप 'द्यौसरिहा' या 'देवसरिया' और यही शब्द बिगड़ते-बिगड़ते 'दुसरिहा' के रूप में आ गया है। 'द्यौसरिहा' अल्ल के समान ही अपने पूर्वजों अथवा स्थान के नाम को लेकर 'ख्यूरहा', 'ब्यौसरिहा' एवं 'ख्यूलहा' अल्ल के दुबे भी होते हैं। मुद्रित कान्यकुब्ज-वंशावलियों से इस कथन की यथार्थता जानी जा सकती है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसका सारांश यह है कि इटावा में कुछ लोग ऐसे हैं जो अपने को देवशर्मा ब्राह्मण का वंशज बतलाते हैं। इन्हीं लोगों की बिरादरी के कुछ लोग कुसमरा में भी हैं। उन लोगों का यह भी कहना है कि देवशर्मा ब्राह्मण के वंशज ही देवसरिहा, द्यौसरिया, दिउसरिया अथवा दुसरिहा कहलाते हैं। ये लोग अपने को कान्यकुब्ज ब्राह्मण मानते हैं और उनके संबंध भी भिन्न-भिन्न गोत्रों के कान्यकुब्जों के साथ हैं। इनके अड़ोस-पड़ोस में रहनेवाले लोग भी उनकी गणना कान्यकुब्जों में करते हैं। परंतु देखना यह है कि इन लोगों के कथन के अलावा छपी हुई कान्यकुब्ज-वंशावलियों से इस बात की पुष्टि होती है अथवा नहीं। एतदर्थ इस नोट के लेखक ने कई वंशावलियों को ध्यान से देखा। इस संबंध में जो बातें मालूम हुईं वे नीचे दी जाती हैं—

कान्यकुब्जों की सबसे पुरानी मुद्रित वंशावली जो इस नोट के लेखक के देखने में आई वह 'कान्यकुब्ज-दर्पण' है। इसका प्रथम संस्करण सन् १८८९ में तथा द्वितीय संस्करण १८९८ में प्रकाशित हुआ था। द्वितीय संस्करण की जो प्रति इस समय लेखक के पास उपस्थित है, उसकी भूमिका में लिखा है कि जिस हस्तलिखित प्रति के आधार पर यह वंशावली प्रकाशित की जाती है, उसका लिपि-काल संवत् १६६६ है। इस वंशावली के पृष्ठ ३६ पर लिखा है कि ४ विश्वा मर्यादा के बिसुनखेर वाले काश्यप गोत्री देवसरिहा कान्यकुब्ज होते हैं। इसी वंशावली के ६६ पृष्ठ पर देवसरिहा दुबे का भी उल्लेख है। अन्य वंशावलियों के देखने से भी पता चला कि 'देवसरिहा' अल्ल के कान्यकुब्ज होते अवश्य थे। यद्यपि भिन्न-भिन्न वंशावलियों में देवसरिहा अल्लवाले कान्यकुब्जों की विश्वा मर्यादा और कहीं-कहीं गोत्र और आस्पद में विभिन्नता है; परंतु इतनी बात तो निर्विवाद प्रकट है कि प्राचीन कान्यकुब्जों की वंशावलियों के लिये देवसरिहा अल्ल कोई नई और अनोखी बात न थी। ऐसी दशा में जब पं० मातादीनजी और

उनकी बिरादरी के लोग अपने को देवसरिहा कान्यकुब्ज कहते हैं, तब उनकी बात पर विश्वास न करने का कोई कारण नहीं दिखलाई पड़ता है। उधर इटावा के कान्यकुब्ज दुबे लोगों का तो प्रायः सभी कान्यकुब्ज-वंशावलियों में उल्लेख है। कुछ लोगों का ख़याल है कि इटावा में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की बस्ती कम है, पर यह बात भी भ्रम-मूलक है। इटावा डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर (सन् १९११ का संस्करण) के तीसरे अध्याय में पृष्ठ ६६-६७ पर स्पष्ट लिखा है—

Third on the list come Brahamans, of whom in 1901 there were 96, 643 or 12-77 percent of the Hindus......Throughout the district with the exception of Aurayia, they belong chiefly to the Kanakubja division. Most of the Kanaujia Brahamans are of the Dubey family..........In the Tehsil Aurayia Sandh Brahamans of the Sengrya and Murha gotras are found.

इटावा ज़िले में औरैया तहसील को छोड़कर और सब कहीं ब्राह्मणों में कनौजिया जाति के लोग ही अधिक हैं। और कनौजियों में भी दुबे-वंश के लोगों की ही संख्या अधिक है।

'कान्यकुब्ज-दर्पण' 'और इटावा डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर' के उपर्युक्त कथनों पर विचार करके इस नोट के लेखक को मातादीनजी तथा उनके और भाई-बंदों को द्योसरिया (दुसरिहा) कान्यकुब्ज ब्राह्मण मानने में कोई आपत्ति नहीं दिखलाई पड़ती है। जो महाशय दुसरिहा में अपमान-जनक भाव का बोध करते हैं, उनसे सविनय प्रार्थना है कि वे एक बार प्रतिष्ठित कायस्थ-कुल के "श्रीवास्तव दूसरे" शाखावाले पुरुषों से पूछें कि क्या उनको अपने आपको 'श्रीवास्तव दूसरे' कहने में किसी प्रकार की लज्जा समझ पड़ती है? क्या 'दूसरे' शब्द का प्रयोग अपमान-जनक है? फिर कान्यकुब्ज 'दुसरिहा' तो 'देवशर्मा' का बिगड़ा रूप बतलाया जाता है, न कि 'दूसरे' का।

मातादीनजी और उनकी बिरादरी के लोग दुसरिहा कान्यकुब्ज भले ही हों, पर इससे यह बात कैसे प्रमाणित मानी जाय कि ये लोग देव कवि के वंशज हैं। आगे बात पर विचार किया जायगा।

देव कवि ने अपने 'भावविलास'-ग्रंथ में एक पर लिखा है:—

> दिल्लीपति नवरंग के आज़म साहि सपूत;
> सुन्यो सराह्यो ग्रंथ यह अष्टयाम संजूत।

इससे प्रकट होता है कि बादशाह औरंगज़ेब के आज़मशाह ने देव कवि की प्रशंसा की थी और वे आश्रित कवि थे। कुसमरा-निवासी पं० मातादीनजी के "बखतेशविलास" नाम का एक ग्रंथ है, उसके श्रीभोगीलाल कवि हैं। 'बखतेशविलास' की यह इस नोट के लेखक के देखने में भी आई है। लिपिकर्ता स्वयं भोगीलालजी हैं और इसका लिपि संवत् १८५७ है। भोगीलालजी ने इसमें अपना दिया है:—

> काश्यपगोत्र द्विवेदिकुल कान्यकुब्ज कमनीय;
> देवदत्त कबि जगत मैं भए देव रमनीय।
> जिनको श्रीनवरंगसुत आजमसाह सुजान;
> जाहर करो जहान मैं मानसहित सनमान।
> तिनके पुरुषोत्तम भए सकल सुमति के ईस;
> निपुनन उक्ति सुजुक्ति मैं उद्यत उक्ति फनीस।
> तिनके सोभाराम सुत कबिबर भए विनीत;
> सीता श्रीरघुनाथ के चरचे चरन पुनीत।
> तिनके भोगोलाल सुत बरनत बखतबिलास-

इस परिचय से प्रकट है कि भोगीलाल के शोभारामजी, पितामह पुरुषोत्तमजी और देवदत्तजी थे। भोगीलालजी के प्रपितामह बहुत बड़े कवि थे और औरंगज़ेब के बेटे शाह ने इनका बड़ा सम्मान किया था। या तो विलास' के कर्ता देव और भोगीलाल के प्रपिता दोनों एक ही व्यक्ति थे या भिन्न-भिन्न। दोनों एक ही है और दोनों का सम्मान करनेवाला भी एक ही है। देव कवि का समय और भोगी प्रपितामह का समय भी एक ही पड़ता है। में १०० में ९९ प्रतिशतक यही अधिक संभव होता है कि दोनों व्यक्ति एक ही हैं। देव कवि "द्योसरिया" कहते हैं और ऊपर जो कुछ लिखा उससे "द्योसरिया" कान्यकुब्ज ठहरते हैं। उधर

लालजी देव को "कान्यकुब्ज कमनीय" कहते भी हैं। ऐसी दशा में देव को कान्यकुब्ज द्योसरिया ब्राह्मण मानना ही युक्तियुक्त जँचता है। देवजी की जिस हस्तलिखित प्रति में 'द्योसरिया' पाठ है, उसकी प्रामाणिकता में यदि किसी को संदेह हो तो उसको चाहिए कि वह देव कवि की अन्य हस्तलिखित प्रतियों का हवाला दे, जिनमें दूसरा पाठ हो। उसको लिखना चाहिए कि देव कवि के ग्रंथों की उसने कितनी हस्तलिखित प्रतियाँ देखी हैं? उनका लिपि-काल क्या है? उन प्रतियों में, सबमें या अधिक-से-अधिक कितनी प्रतियों में 'द्योसरिया' से 'भिन्न' पाठ है? तथा किसी प्रति में 'द्योसरिया' पाठ भी है या नहीं? उन प्रतियों की प्रामाणिकता के विषय में अन्य बातें भी लिखी जानी चाहिए। यों ही किसी प्रति को संदिग्ध मान लेने से तो काम नहीं चल सकता है। यदि कहा जाय कि देव कवि ने स्वयं अपने को कान्यकुब्ज क्यों नहीं लिखा? तो इसका उत्तर यही है कि यह तो कवि की इच्छा पर निर्भर था, वह चाहता तो अपना पूर्ण परिचय देता; परंतु उसने ऐसा न करके केवल 'द्योसरिया' लिखा। संभव है, जिस समय उसने 'द्योसरिया' लिखा हो, उस समय इस एक ही शब्द के प्रयोग से उसको लोग देवसरिहा कान्यकुब्ज ब्राह्मण समझते हों और उसने अपना इतना ही परिचय पर्याप्त समझा हो। आज भी यदि कोई कान्यकुब्ज अपने को 'मँझगइयाँ' कहता है, तो लोग तुरंत जान लेते है कि वह माँझगाँव स्थानवाला कात्यायनगोत्री मिश्र है अथवा 'धोबिहा गोपनाथी' कहने से तुरंत लोग जान जाते हैं कि वह शांडिल्यगोत्री उन गोपीनाथजी मिश्र का वंशज है, जिन्होंने धोबी से लड़कर प्रसूतिका-गृह के वस्त्र स्वयं धो लिये थे। ऐसे बहुत-से उदाहरण हैं। 'बखत-विलास' ग्रंथ से जो उद्धरण ऊपर दिया गया है, उससे इतना तो स्पष्ट ही है कि आज से १३० वर्ष पूर्व होनेवाले भोगीलाल कवि अपने को कान्यकुब्ज द्विवेदी वंशोद्भव देव का परपोता मानते थे। देव कवि ने 'सुखसागर-तरंग' ग्रंथ की रचना महमदी के अकबर-अलीख़ाँ के लिये की है। भरतपुर के महाराज जवाहरसिंह की प्रशंसा में भी उनके छंद मिलते हैं। इन दोनों नरेशों के समय पर विचार करने से देवजी का मृत्युकाल संवत् १८२५ के लगभग पड़ता है। उनका जन्मकाल संवत् १७३० में हुआ था (संवत् सत्रह सै छियालिस चढ़त सोरही वर्ष कढ़ी + देव मुख देवता भाव-विलास सहर्ष) इस प्रकार यह बात स्पष्ट है कि वे ९५ वर्ष की दीर्घ आयु प्राप्त करके स्वर्गवासी हुए। भोगीलालजी ने जब १८५७ में 'बखत-विलास' ग्रंथ बनाया और राजदरबारों में जाने लगे, तब १८५७ में यदि उनकी अवस्था ३५-३६ वर्ष की रही हो, तो आश्चर्य नहीं। इस प्रकार उनका जन्म संभवतः देवजी के जीवन-काल में ही संवत् १८२१-२२ के लगभग हुआ होगा। देवजी के एक प्रधान आश्रयदाता का नाम राजा भोगीलाल था। इनके विषय में देवजी कहते हैं—

भोगीलाल भूप लाख पाखर लिवैया जिन
　　लाखन खरचि-रचि आखर खरीदे हैं।

इस नोट के लेखक का अनुमान है कि अपने उदार आश्रयदाता के स्मारक-स्वरूप ही उन्होंने अपने परपोते का नाम भोगीलाल रक्खा होगा। कहा जा सकता है कि भोगीलाल कवि ने अपने को द्योसरिया कान्यकुब्ज क्यों नहीं लिखा। उत्तर में निवेदन है कि यह बात सर्वथा कवि की इच्छा और रुचि पर निर्भर है। जहाँ देवजी 'द्योसरिया' जैसे संकेतसूचक शब्द से अपना परिचय देते हैं, वहाँ भोगीलालजी संकेत से संतुष्ट न होकर 'कान्यकुब्ज' कहकर अपने को प्रकट करते हैं। परंतु जब वे अपने प्रपितामह के उसी आश्रयदाता आदि का उल्लेख कर देते हैं, जिसका स्वयं देवजी भी उल्लेख करते हैं, तब उनके संबंध में किसी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता है। इन्हीं भोगीलालजी के प्रपौत्र पं० मातादीनजी हैं।

कुसमरा में देवकवि के लगाए हुए कुछ वृक्ष भी मौजूद हैं। उक्त गाँव में जाकर स्वर्गीय कौशलेंद्रजी ने उन वृत्तों को देखा और गाँववालों से उनके विषय में पूछा। सबने यही बतलाया कि ये वृक्ष देव-कवि के लगाए हुए हैं, जो पं० मातादीनजी आदि के पूर्वज थे। एक महाशय ने इस पर यह विनोद किया है कि वृक्षों के अस्तित्व से और देव-कवि के कान्यकुब्ज ब्राह्मण होने से क्या सबंध है? क्या कान्यकुब्जों के लगाए वृत्तां में कोई विशेषता होती है? उत्तर में निवेदन है कि किसी जाति-विशेष के पुरुष द्वारा लगाए वृक्षों में कोई विशेषता नहीं होती है, परंतु जहाँ पर किसी व्यक्ति-विशेष के लगाए वृत्त, मंदिर या अन्य कोई स्मारक चिह्न

मिलता है वहाँ उस व्यक्ति के विषय में बहुत-सी बातों के ज्ञात होने की संभावना रहती है । मनुष्य उसी स्थान में वृक्षारोपण और मंदिर-निर्माण करता है, जहाँ उसका रहना अधिकतर होता है । ऐसी दशा में उस स्थान के लोग उक्त व्यक्ति के कुल, शील, स्वभाव, विद्या और वैभव से परिचित हो जाते हैं और वहाँ के निवासियों को वृक्ष लगानेवाले और मंदिर बनवानेवाले के विषय की ज्ञातव्य बातें मालूम रहती हैं । वृक्ष लगानेवाले या मंदिर निर्माण करानेवाले के समसामयिक निवासियों की मृत्यु हो जाने के बाद भी उक्त निवासियों के वंशजों में परंपरा से इन बातों की चर्चा बनी रहती है; क्योंकि स्मारकचिह्न के उक्त स्थान-विशेष में मौजूद रहने से सदा ही उस स्मारक के निर्माता के विषय में ज्ञान करने का कुतूहल बना रहना नितांत स्वाभाविक है कुसमरा में यदि कुछ प्राचीन वृक्ष मौजूद हैं, जिन वहाँ के निवासी देव-कवि के लगाए बतलाते हैं यह भी कहते हैं कि देव कवि पं० मातादीनजी पूर्वज एवं कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, तब कोई कारण मालूम होता है कि उनकी बातों पर विश्वास न कि जाय । देव-कवि के लगाए वृक्षों में कान्यकुब्जता छाप नहीं लगी है, पर उन वृक्षों का अस्तित्व संभावना को पुष्ट करनेवाला है कि कुसमरा गाँव लोगों से देव-कवि के कुलादि का यथार्थ पता लगा जा सकता है ।

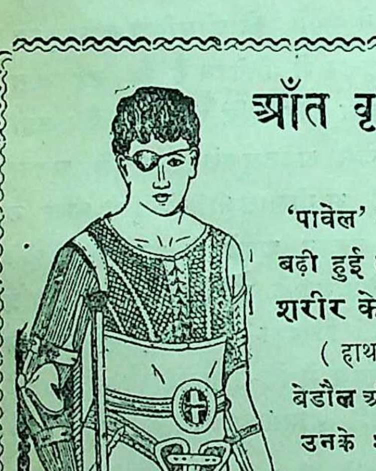

आँत वृद्धिवालों के

लिये

'पावेल' की पेटियाँ और
बढ़ी हुई तोंद के लिये पट्टा
शरीर के बनावटी टुकड़े
(हाथ, टाँग इत्यादि)
बेडौल अंगोंकेसुधारनेकेलिये
उनके शरीर की मिलावट
के अनुसार
निराले साधन
कृत्रिम अवयवों को
हम सस्ती क़ीमत
में बनाते हैं ।

हमारा ही एकमात्र ऐसा कारखाना है जिसमें होशियार और अनुभवी भारतीय कारीगरों की देख-रेख में कार्य होता है । और केवल भारतीयों का ही धन लगा हुआ है ।

पता—N. Powell & Co., Bombay No. 4

"पावेल" की मशहूर दवाइयाँ

काडलिवर आइल इमलशन

मय हाइपो फॉसफेइस आफ़ लाइम सोडा
और मय क्रिया सार
(तोन सूरतों में बनाया जाता है)

कफ़, खाँसी, जीर्णज्वर, साधारण कमज़ोरी, और बीमारी के बाद की कमज़ोरी के लिये अत्यन्त लाभदायक ओषधि ।

सीरप हायपोफ़ॉस्फाइट लाइम

सीने की तमाम शिक़ायतों, जीर्णज्वर, कुकुर खाँसी और मरणासन्न बच्चों के लिये ।

एलिक्झिर ग्लीसरो फॉस्फाइट कंपाउंड

कमज़ोर दिल और दिमाग़ के लिये एक पौष्टिक दवा ज़िंदगी बढ़ानेवाली और जिगर की तमाम कमज़ोरी को दूर करती है ।

हमारी सभी दवाइयाँ हमेशा ताज़ी मिलती हैं, क्योंकि वे हमारे ही कारख़ाने में, बराबर बना करती हैं।

सूचीपत्र पत्र आने पर भेजा जाता है ।

पता—N. Powell & Co., Bombay No. 4

मेस्मेरेज़म योगविद्या

सच्ची करामात

सिखलानेवाली पुस्तक

इस पुस्तक के साधनों द्वारा आप चाहे जिस स्त्री-पुरुष की मृतक आत्मा को बुलाकर चाहे जैसा गुप्त भेद पूछ लो, मनुष्य को दृष्टिमात्र से वशीभूत करना, बेहोश करके भूत-भविष्य का हाल जानना, चोरी व गड़े धन का पता मालूम करना, साँप-बिच्छू का विष उतारना, मेस्मरेज़म के प्रयोग से कठिन-से-कठिन रोगों को आराम करना मू० १) डा० ख० ।=)

८४ आसनों का रंगीन चित्रोंवाला

असली कोकशास्त्र

वशीकरण यंत्र मुफ़्त है

इसमें स्त्री-पुरुषों के जाति-भेद, लक्षण, गर्भधारण और सहवास के नियम, बाँझ का इलाज़, मनचाही संतान पैदा करना, विवाहयोग्य जोड़ा मिलान, सामुद्रिक, शकुन अनेक रोगों के रामबाण नुस्ख़े, वशीकरण यंत्र मंत्र तंत्र हैं, मू० १) डा०म० ।=)

सरकार से **शैतानबटी** रजिस्टर्ड

की एक गोली खाकर घंटों जोबन का आनंद लूटिए! याद रखिए एक गोली ही घंटों पीछा न छोड़ेगी १ शीशी मूल्य १।)

विलायती हैण्ड कैमरा

इस विलायती ख़ूबसूरत हैंड कैमरे से एक बच्चा भी बड़ी आसानी से हर स्त्री, पुरुष, महल, इमारत, बाग़ बग़ीचा, सीन-सीनरी आदि का मनोहर फ़ोटो ३॥×२॥ इञ्च साइज़ का खींच सकता है। मूल्य ३) डाकख़र्च ॥=) इसके साथ तस्वीर खींचने का प्लेट, काग़ज़, मसाला तथा खींचने की तरकीब मुफ़्त है।

पता—रामसिंह शर्मा दरीबा स्ट्रीट, अलीगढ़

समाधि

संसार के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में से एक "लास्ट डेज़ आव पांपियाई" का अनुवाद, साधारण संस्करण १।) विशेष संस्करण २)

वर्तमान रूस

संसार को स्वर्ग बनाने की कल्पना यदि किसी देश ने की है, तो वह रूस है। एक आज़ाद देश कितनी जल्दी और कितनी ऊँची उन्नति की छलाँग मारकर सबके आगे आ सकता है, रूस इसका जीता-जागता उदाहरण है। और इन्हीं बातों का विस्तृत वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। ले० 'प्रताप' के संपादक कारागार-प्रवासी श्रीदेवव्रत शास्त्री हैं। पृष्ठ-संख्या २७५ और मूल्य १॥) सजिल्द २)

हमारी अन्य नई पुस्तकें

महात्मा गांधी का विश्वव्यापी प्रभाव ॥=) वल्लभ भाई पटेल की जीवनी ॥=) मुकुल १) यौवन, सौंदर्य और प्रेम १॥) साहित्य-समालोचना १) नारी-जीवन १ मुसकान (उपन्यास) १=) प्रेम की पीड़ा ॥) बाबूसाहब २) यौवन और उसका विकास ॥।) फाँसी १)

साहित्य-मंदिर, दारागंज, प्रयाग

श्रीभृगुसंहिता ज्योतिष-महाशास्त्र

यह ज्योतिष का सर्व-शिरोमणि ग्रंथ भाषा-सहित छपा है। इससे भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीन जन्म का हाल मालूम होता है और सब विषय पाप, कष्ट आदि की शांति के दान, मंत्र, अनुष्ठान, यत्न व अनेक सुखों के मार्ग जान पड़ते हैं। पंडितों के लिये यह महाविद्या कल्पवृक्ष के समान है। संपूर्ण ग्रंथ का मूल्य २०) रुपए। डाक-ख़र्च २॥) रुपया और पुस्तकों का सूचीपत्र मुफ़्त भेजते हैं।

पता—पं० गंगाशरण-हरदेवसहाय 'ज्ञानसागर प्रेस', मेरठ सिटी

लंदन की मशहूर ईजाद

(A Wonderful Magic Ring)

अमल मुहब्बत का एक दिलफ़रेब हैरतअंगेज़ ईजाद

अमल मुहब्बत के ख़्वाहिशमंद हमारा मिस्मरेज़म के असूलों से तैयार किया हुआ "वंडर मैजिक रिंग" उँगली में डालकर जिस किसी से चाहिए और कैसा ही पत्थर दिल, मग़रूर और सख़्त कलामा से पश आनेवाला क्यों न हो इसके पास चले जायें तो वह उसी वक़्त दुनिया की तमाम दौलत और अजायबात छोड़कर आपकी तरफ़ खिंचा चला आएगा ग़रज़ कि आपकी जुदाई कुबूल करना उसे अज़हद दुशवार हो जायगा। नीज़ किसी मुकद्दमे के लिये ज़रूरी काम के लिये या हाकिम के पास इसको पहन कर जाना मुकम्मिल कामयाबी का बायस है। इसके अलावा रात को यह रिंग पहन कर सो जाने से मुर्दा रूहों से बातचीत करना, किसी खोई हुई क़ीमती चीज़ का पता चलाना, ग़ैर शख़्स के दिली ख़यालात दरियाफ़्त करना, ग़ैर मुमालिक की सैर करना, हवा में उड़ते हुए नज़र आना—यह सब कुछ आप ख़्वाब में देख सकते हैं—ज़रूरतमंद असहाब माहिरान इंगलैंड की ज़रूर क़द्र करें—जिन्होंने ख़ास तज्रुबा के बाद इस चीज़ को पबलिक में पेश किया है—क़ायदे के लिहाज़ से इसकी क़ीमत अगर पचास रुपए भी रक्खी जाय तो कम है—मगर अब कुछ अर्से के लिये इसकी क़ीमत सिर्फ २) दो रुपए और ग़लत साबित करनेवाले को एक हज़ार रुपये नक़द ईनाम दिया जायगा।

नोट—हम आप शायक़ीन असहाब से पुर ज़ोर सिफ़ारिश करते हैं कि इस नायाब तोहफ़े को ज़रूर बिल ज़रूर एक दफ़ा इस्तेमाल करें। चूँकि २) दो रुपए एक मामूली रक़म है---इश्क़ व मुहब्बत में हज़ारों नहीं बल्कि लाखों रुपए बरबाद कर देते हैं—बिल आख़िर मायूसी ही हुई है।

मैनेजर—दी लंडन मिस्मरेज़िम हाल पोस्ट बाक्स नं० ३३ लाहौर

Manager the London Mesmerism Hall, Post Box No. 33, Lahore.

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, संयुक्त-प्रांत, प्रयाग से प्रकाशित ग्रंथ

१

मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था

लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह युसुफ़ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्० । सुंदर छपाई, बढ़िया काग़ज़, कपड़े की जिल्द, रायल साइज़ के १०० पृष्ठ, उर्दू या हिंदी संस्करण, मूल्य १।)

२

मध्यकालीन भारतीय संस्कृति

लेखक, राय बहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा । सुंदर छपाई, बढ़िया काग़ज़, कपड़े की जिल्द, रायल साइज़ के २३० पृष्ठ तथा २४ हाफ़टोन चित्र, मूल्य ३)

३

कवि-रहस्य

लेखक, डा० गंगानाथ झा । सजिल्द, रायल साइज़ के ११६ पृष्ठ, मूल्य १।)

४

चर्म बनाने के सिद्धान्त

लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी० । सचित्र, आयवरी फ़िनिश पेपर, कपड़े की जिल्द, रायल साइज़ के २०४ पृष्ठ, मूल्य ३)

५

हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट

लेखक, राय बहादुर लाला सीताराम बी० ए० । मूल्य १॥)

६

जन्तु-जगत

लेखक, बाबू ब्रजेशबहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी० । सचित्र मूल्य ६॥)

ये पुस्तकें छप रही हैं

१

हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता

लेखक, डा० बेनीप्रसाद, एम्० ए०, डी० एस्-सी० ।

२

अरब और भारत के संबंध

लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी । अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा । मूल्य ४)

३

लि क्रिसन रुकमणी री राठौड़राज प्रिथीराज री कही—संपादक, श्रीयुत सूर्यकरण पारीक ।

४

धोखा-धड़ी

(Skin Game by J. Galsworthy)—अनुवादक, पंडित ललिताप्रसाद शुक्ल, एम्० ए० ।

नाटक

५

चाँदी की डिबिया

(Silver Box by J. Galsworthy)—अनुवादक, बाबू प्रेमचंद, बी० ए० मूल्य १॥)

नाटक

६

न्याय

(Justice by J. Galsworthy) अनुवादक, बाबू प्रेमचंद, बी० ए० ।

मिलने का पता—हिन्दुस्तानी एकेडेमी यू० पी०
इलाहाबाद

ऐसा कौन है जिसे फ़ायदा नहीं हुआ

सुधासिन्धु

कफ, खाँसी, हैज़ा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट दर्द, कै, दस्त, जाड़े का बुखार, बालकों के हरे-पीले दस्त और ऐसे ही पाकाशय की गड़बड़ से उत्पन्न होनेवाले रोगों की एकमात्र दवा, मुसाफिरी में लोग इसे ही साथ रखते हैं। कीमत ॥)

बालसुधा

बच्चों को बलवान्, सुंदर और सुखी बनाने के लिये सुख-संचारक-कम्पनी मथुरा का मीठा "बालसुधा" पिलाइये। कीमत ॥।)

तत्काल गुण दिखानेवाली ४० वर्ष की परीक्षित दवाइयाँ सब दुकानदारों के पास मिलती हैं।

दद्रुगजकेशरी

दाद चाहे पुराना हो या नया, मामूली हो या पकनेवाला, इसके लगाने से विना जलन और तकलीफ के अच्छा होता है। कीमत ।)

द्राक्षासव

तत्काल बल बढ़ानेवाली कब्ज, कमजोरी खाँसी और नींद न आना दूर करता है, बुढ़ापे के सभी कष्टों से बचाता है, पीने में मीठा स्वादिष्ट है, कीमत तीन पाव की बोतल २), छोटी १) डाकखर्च जुदा।

डाकखर्चः—एक से दो सुधासिंधु या दद्रुगजकेशरी ।=), एक बालसुधा ॥), एक द्राक्षासव बड़ी बोतल १॥=) छोटी ॥।≡)

मिलने का पता—सुख-संचारक-कम्पनी, मथुरा।

WHENEVER YOU ARE OUT FOR

SHOPPING

PLEASE DO NOT FORGET TO

VISIT THE FOLLOWING PLACES

and thus

You will save from 5% to 15%

1. The Criterion Restaurant

Confectioners & Caterers Hazratganj, Lucknow

2. The Criterion Stores

Wine & Provision Dealers Hazratganj, Lucknow

3. The Criterion Stores

Wine&General Merchants, Mullital Nainital.

Proprietor—M. P. Srivastava.

हिंदोस्तान का सबसे पुराना पाल एंड संस का

असली मोहन फ्लूट

गारंटी ३ वर्ष

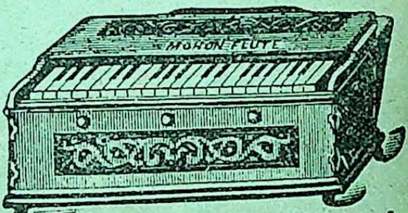

हारमोनियमों का राजा हिंदुस्तानी गा और जलवायु के लिये उपयुक्त। मीठी आवाज़ देखने में सुंदर और टिकाऊ।

सिंगल पेरिस रीड ३५) से ४०) तक

डबल पेरिस रीड ६०) से ६५) तक

बैंजो फ्लूट

सिंगल जर्मन रीड २२) से २५) तक

डबल जर्मन रीड ३५) से ४०) तक

ऑर्डर के साथ ५) पेशगी भेजिए।

पाल ऐंड संस, ६।१।२, आरपुली लेन

तार का पता—
"मोहन-फ्लूट,
कलकत्ता" (म) कलकत्ता।

भारत सरकार से रजिस्टर्ड

संजीवन मूरि

प्लेग, हैज़ा, निमोनिया, कफ, खाँसी, दमा, शूल, संग्रहणी, बालकों के हरे-पीले दस्त व दूध पटकना आदि रोगों की ३० साल की परीक्षित अचूक दवा है—दाम १शीशी ॥) डाक ख़र्च अलग दर्जन ५) मय डाक-ख़र्च।

प्रभाकर आमला आइल

अद्‌भुत आयुर्वेदिक औषधियों से तैयार किया हुआ यह तेल सिर में दर्द, चक्कर आना, दिमाग़ी थकावट आदि को दूर करके ठंडक, आराम व गुदगुदापन पैदा करता हुआ बालों को मुलायम, चमकदार, लंबे वा भँवरे के समान स्याह करता है। इसकी मनोहर सुगंध को तो कहना ही पड़ेगा कि अद्‌भुत है—दाम १२ औंस की कुप्पी १॥) डाक-ख़र्च॥।), छोटी शीशी ६ औंस की ॥।-) डाक-ख़र्च ॥-)।

ज़्यादा हाल जानने के लिये बड़ा सूचीपत्र मँगाइए।

माधुरी स्नो

चेहरे के काले दाग़, धब्बे दूर करके मुँह का रंग गोरा, मुलायम व सुर्ख़ बनाती है। मुँह से मनोहर सुगंध बराबर रात-दिन २४ घंटे आती है। दाम फी शीशी १) डाक ख़र्च ।≡) तीन के ३।) मय डाक-ख़र्च कपड़ों में रखने के खुशबूदार कार्ड ॥।) दर्जन।

प्रदरान्तक

स्त्रियों के सब प्रकार के प्रदर व मासिक-धर्म की ख़राबी कमज़ोरी कमर पेट पेड़ू के दर्द आदि को दूर करके शरीर का तंदुरुस्त ताकतवर फुर्तीला व ख़ूबसूरत बनाकर नीरोग औलाद पैदा करने योग्य बनाता है। दाम १ शीशी १॥) डाक-ख़र्च ।≡) तीन शीशी ५) मय डाक-ख़र्च।

मिलने का पता—मैनेजर, सुखसागर-औषधालय, झाँसी।

शास्त्रीय हिन्दी हार्मोनियम गाइड

बाजे की पेटी बजाने को सिखलानेवाली पुस्तक, ४० रागों के आरोह-अवरोह-लक्षण, स्वरूप, विस्तार, १०४ प्रसिद्ध गायनों का स्वर-ताल-युक्त नोटेशन, सुरावर्त, तिल्लाने इत्यादि पूरी जानकारी-सहित, द्वितीय आवृत्ति, पृष्ठ-संख्या २००, क़ीमत १॥) रुपया डाक-ख़र्च ।=) विषयों का और गायनों का सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइए।

गोपाल सखाराम एण्ड कम्पनी
कालबादेवी रोड, बंबई नं० २

हर प्रकार की उत्तम रबर की मुहर
ऐसी २॥) से
सूची मुफ्त
जी. सी. खत्री, रबर स्टाम्प, काशी

सीधी लाइन की सादी मुहर (केवल अक्षरों की दो लाइनें, दो इंच लंबी और आधा इंच चौड़ी तक) छापने का सामान सहित मूल्य १), डाक-ख़र्च ।≡); बड़ी होने से दाम अधिक होगा। हिंदी, अँगरेज़ी, उर्दू तथा बँगला कोई भाषा हो। अंडाकार मुहर जैसी ऊपर नमूना है २॥) मय सामान। डाक-ख़र्च एक मुहर।≡), दो का॥) और तीन का ॥≡); काम देखकर ख़ुश होंगे।

मिलने का पता—
जी० सी० खत्री, रबर स्टांपमेकर,
बनारस सिटी।

५०००) की चीज़ ५) में

मेस्मिरेज़्मविद्या सीखकर धन व यश कमाइए

मेस्मिरेज़्म के साधनों द्वारा आप पृथ्वी में गड़े धन व चोरी गई चीज़ का क्षण-मात्र में पता लगा सकते हैं। इसी विद्या के द्वारा मुक़द्दमों का परिणाम जान लेना, मृत पुरुषों की आत्माओं को बुलाकर वार्तालाप करना, बिछुड़े हुए स्नेही का पता लेना, पीड़ा से रोते हुए रोगी को तत्काल भला-चंगा कर देना, केवल दृष्टि-मात्र से ही स्त्री-पुरुष आदि सब जीवों को मोहित एवं वशीकरण करके मनमाना काम कर लेना आदि आश्चर्यप्रद शक्तियाँ आ जाती हैं। हमने स्वयं इस विद्या के ज़रिए लाखों रुपए प्राप्त किये और इसके अजीब अजीब करिश्मे दिखाकर बड़ी-बड़ी सभाओं को चकित कर दिया। हमारी "मेस्मिरेज़्मविद्या"-नामक पुस्तक मँगाकर आप भी घर बैठे इस अद्भुत विद्या को सीखकर धन व यश कमाइए। मूल्य सिर्फ़ ५) डाक-महसूल सहित, तीन का मू० मय डाक-महसूल १३)

हज़ारों प्रशंसा-पत्रों में से एक

(१) बाबू सीतारामजी बी० ए०, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता से लिखते हैं—मैंने आपकी "मेस्मिरेज़्मविद्या" पुस्तक के ज़रिए मेस्मिरेज़्म का ख़ासा अभ्यास कर लिया है। मुझे मेरे घर में धन गड़े होने का मेरी माता द्वारा दिलाया हुआ बहुत दिनों का सन्देह था। आज मैंने पवित्रता के साथ बैठकर अपने पितामह की आत्मा का आह्वान किया और गड़े धन का प्रश्न किया। उत्तर मिला "ईंधनवाली कोठरी में दो गज़ गहरा गड़ा है।" आत्मा का विसर्जन करके मैं स्वयं खुदाई में जुट गया। ठीक दो गज़ की गहराई पर दो कलसे निकले। दोनों पर एक-एक सर्प बैठा हुआ था। एक कलसे में सोने-चाँदी के ज़ेवर तथा दूसरे में गिन्नियाँ व रुपए थे। आपकी पुस्तक यथा नाम तथा गुणः सिद्ध हुई।

मैनेजर मेस्मिरेज़्म हाउस, नं० ६, अलीगढ़।

पं० चंद्रशेखर वैद्यशास्त्री की अनुभूत ओषधियाँ

ब्राह्मी बादाम पाक

बादाम तो वैसे ही शरीर और दिमाग़ को ताक़त देने में अपूर्व है। ६४ वीर्यवर्द्धक ओषधियों के साथ ब्राह्मी शामिल करके बादाम का यह सर्वोत्तम और स्वादिष्ट पाक हमने बनाया है। यह अत्यन्त धातु-पौष्टिक है। प्रमेह बहुत शीघ्र ही इसके सेवन से जाता रहता है। जिनका वीर्य पतला पड़ गया हो, वे इसे अवश्य खायँ; यह वीर्य को गाढ़ा और पुष्ट करता है। जिन्होंने इसे आज़माया है उन्होंने ही इसकी तारीफ़ लिखी है। चाहे जैसी दिमाग़ी कमज़ोरी हो इसके सेवन से जाती रहेगी। स्मरण-शक्ति की कमी, पुराना सिर-दर्द, आँखों से पानी जाना, कम दीखना, चक्कर आना आदि सबको अक्सीर है। इसके सेवन से एक माह में ही काफ़ी बल बढ़ जाता है। सूखा और मुर्झाया हुआ चेहरा इससे भर जाता है और दमकने लगता है। मूल्य १२) रु० सेर, आध सेर का ६॥), पाव भर के ३।=), १० तोले १॥।=)। शुद्ध शिलाजीत ॥) तोला।

मर्दकर्दम तिला—इसकी मालिश से गया-गुज़रा नामर्द भी मर्द हो जाता है। शिथिलता, वक्रता आदि ख़राबियाँ दूर करके यथेष्ट लम्बाई और स्थूलता प्रदान करता है। कुछ दिन लगकर लगाना लाज़िमी है। मूल्य छोटी शीशी २), बड़ी शीशी ५)

मँगाने का पता—**ब्राह्मी औषधालय, अलीगढ़।**

---

२) में १०) रोज़ कमाइए

साइनबोर्ड बनानेवाले ख़ूब रुपया कमाते हैं। यही देखकर हमने 'फनपेन्टिंग या साइनबोर्डसाज़ी' नाम की पुस्तक इस इल्म के एक ऐसे उस्ताद से लिखवाई है, जो कि २५) से ५०) रु० रोज़ तक साइनबोर्ड बनाकर पैदा कर रहे हैं। यह एक हाथ की दस्तकारी है, जिसे सिर्फ़ तीसरे चौथे दरजे तक हिंदी या उर्दू जाननेवाला हर भाई आसानी से सीखकर २५) नहीं तो पाँच से १०) रोज़ तो पैदा कर ही सकता है। और आज़ादी से रोज़ी कमा सकता है। पुस्तक में ३०० से ऊपर चित्र हैं। पब्लिक ने इसे पसंद भी ख़ूब किया है। मू० २) डा०-म० ।=)।

मँगाने का पता—**मैनेजर, शारदा कम्पनी, अलीगढ़।**

भारतवर्ष भी अपना बल और अधिकार दिखा रहा है।

मुश्क का साबुन

युवावस्था की झलक है।

अगुरु सोप

खाल को मुलायम करके सुगंधि से भरता है।

पर्ल सोप

अधिक-से-अधिक रंग लाता और कम-से-कम मेहनत लेता है।

जाड़े का तोहफ़ा

उज्ज्वल और पवित्र ग्लेसरीन

मिलने का पता—**नेशनल सोप ऐंड केमिकल वर्क्स, कलकत्ता।**

शक्ति का ख़ज़ाना यानी पृथ्वी पर का अमृत

मदनमंजरी

यह दिव्य गोलियाँ दस्त साफ़ लाती हैं, वीर्य-विकार-संबंधी तमाम शिकायत नष्ट करती हैं और मानसिक व शारीरिक प्रत्येक प्रकार की कमज़ोरी को दूर करके नया जीवन देती हैं। क़ी० गोली ४० की डिब्बी १ का १)

३८

मेहमर्दनचूर्ण

सुज़ाक की हुक्मी दवा—फ़ी डिब्बा १)

अंडवृद्धिहरचूर्ण

पोता बढ़ जाने की शर्तिया दवा। फ़ी डिब्बा ३)

रमणविलासिनीवटिका

वीर्य-स्तंभन के लिये अक्सीर दवा। फ़ी डिब्बी १)

राजवैद्य नारायणजी केशवजी

हेड ऑफ़िस—जामनगर (काठियावाड़)

लखनऊ एजेंट—निगम मेडिकलहाल, नाला फ़तेगंज

दिल्ली एजेंट—जमनादास कुं० चाँदनी चौक

इलाहाबाद एजेंट—मेसर्स दुबे ब्रदर्स, चौक

र० ट्रेड मार्क **अमृतगुटिका** "जेनस" नं० ३०२

अशक्त स्त्री-पुरुषों के लिये ताक़त की बढ़िया दवा

इसके सेवन से कमर का दर्द, पिंडलियों का दुखना, आँखों की कमज़ोरी, बदन की सुस्ती, काम-काज में दिल न लगना, नया या पुराना प्रमेह, बदन और इंद्रियों की शिथिलता, मुख, बग़ल या पेशाब के रास्ते से धातु स्खलित होना, शौच के समय धातु गिरना, मग़ज़ ख़ाली पड़ जाना, चेहरा शुष्क इत्यादि बहुत से दर्द को दूर करके जवानी का मज़ा लूटने के लिये बदन मोटा और ज़ोरदार होता है। हरएक मौसम में उपयोग हो सकता है। दाम ३२ टिकियों की एक ट्यूब का २) रु०, डाकख़र्च अलग। सूचीपत्र मुफ़्त मँगा देखिए। हर जगह दवाफ़रोशों के यहाँ भी मिलेगी।

पता—जे० एन० शेठना, ३८
मु० पो० नड़िआद (गुजरात)

डॉ॰ आई॰ एम्॰ मल्लिक्स (एम्॰ ए॰, एम्॰ डी॰, बी॰ एल॰) पेटेंट

इक-मिक-कुकर

शुद्ध, स्वस्थ, गर्म और स्वादिष्ट भोजन के लिये

नई ईजाद, उपयोगी और साइंटिफ़िक तरीक़े से बना हुआ

भोजन की ५ चीज़ों को एक साथ एक घंटे में बिना देखे-भाले
१ पैसे की लागत के ईंधन में तैयार करता है।

सबसे अच्छा, सादा, हाथ में रखनेवाला, कम ख़र्च

सफ़र करनेवालों के लिये एक ज़रूरी चीज़ है और जिन्हें भोजन आसानी से नहीं पचता है, उनके लिये एक न्यामत है।

आजही आर्डर दें।

मैनेजर,

टेली ग्राम "Ic Mic Cooker" / फ़ोन "B. B. 859"

इक-मिक-कुकर्स लिमि॰
२६, कालेज स्ट्रीट, कलकत्ता

पो॰ बा॰ नं॰ ७८०३
बऊ बाज़ार पो॰ आ॰

स्त्रियाँ अच्छी चीज़ पसंद करती हैं

श्रीमती अन्नाचंदी, एम्॰ ए॰ (आनर्स)

संपादिका "श्रीमथी" कोट्टायाम।

लिखती हैं—

मैंने आपका लोध्रा इस्तेमाल किया और मासिक-धर्म-संबंधी सभी शिकायतों के लिये उसे सर्वश्रेष्ठ औषध पाया। इसका सुंदर स्वाद, स्वेच्छानुसार भोजन, इसके सेवन की प्रसन्नता को बढ़ाते हैं।

अपने केमिस्ट से माँगो

या

केसरीकुटीरम्,
हिंदुस्तानी केमिस्ट्स और ड्रगिस्ट्स,
इग्मोर, मदरास

सच्ची शक्ति क्यों संग्रह नहीं करते ?

आँतों को ख़राब होने से रोकती हैं

पाचन-शक्ति ख़ूब बढ़ाती है
भारी-से-भारी भोजन पचाती हैं

ज्ञानतंतु की कमज़ोरी

साधारण कमज़ोरी

हर प्रकार की कमज़ोरी दूर करती हैं—

तंदुरुस्ती-ताक़त को बढ़ाती हैं।

—:०:—

प्रत्येक ऋतु में उपयोगी है।

क्या ?

झंडु की

सुवर्ण-मिश्रित

मकरध्वज गुटी

स्वल्प चंद्रोदय मकरध्वज
भैषज्य रत्नावली ध्व०

पूर्णचंद्रोदय तथा सुवर्ण और
चंद्रोदय का अनुपान मिलाकर
बनाई हुई सुनहरे खोलवाली

सुंदर मनोहर गोलियों से

सच्ची शक्ति का संग्रह करो

झंडु फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बंबई नं० १४

लखनऊ के एजेंट—ज्ञानेन्द्रनाथदे, कमला भण्डार, ८ श्रीरामरोड।
प्रयाग के एजेंट—लक्ष्मीदास एंड ब्रादर्स ४६, जॉनस्टनगंज।
दिल्ली के एजंट—बालबहार फ़ार्मेसी, चाँदनी चौक।
कानपुर के एजेंट—पी० डी० गुप्ता एड कं०, जनरलगंज।

क़ीमत एक तोला ८)

मकरध्वज का विवरणपत्र और

२ आयुर्वेदिक दवाइयों का सूचीपत्र आज ही मँगाइए।

प्रत्यक्ष फल देनेवाले अत्यंत चमत्कार

यदि आपको यंत्रों से लाभ न हो तो दाम वापस किए जायँगे। हरएक यंत्र के साथ हम गारंटी-पत्र भेजते हैं।

नवग्रह-यंत्र

मूल्य ४।)

इसको धारण करने से मुक़द्दमे में जीत, नौकरी मिलना, कामों को तरकीब।

सुखपूर्वक प्रसव, गर्भ और वंश की रक्षा होती है।

शनि-यंत्र—इसके धारण करने से शनि का कोप होने पर भी संपत्ति नाश नहीं होती; बल्कि धन, आयु, यश, मानसिक शांति, कार्य-सिद्धि, सौभाग्य और विवाद में जीत होती है। मूल्य ३।=)।

सूर्य-यंत्र—कठिन रोगों से आराम होने की एक ही उत्तम औषध है। मूल्य ५≡)

धनदा-यंत्र—इसको धारण करने से ग़रीब भी राजा के समान धनी हो सकता है। मूल्य ७॥=)

महाकाल-यंत्र—वंध्या-बाधक और मृतवत्सा नारियों को सच्चा फल देनेवाला है। मूल्य ११॥-)

वँगलामुखी-यंत्र—शत्रुओं को वश और नष्ट करने में तत्काल फल देनेवाला है। मूल्य ६=)

महामृत्युंजय-यंत्र—किसी प्रकार के मृत्यु-लक्षण क्यों न देख पड़ें, उन्हें नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है। मूल्य ८=)

श्यामा-यंत्र—इसको धारण करने पर क़र्ज़ से छुटकारा, अधिक धन और पुत्र-लाभ का एक ही उपाय है। इस कवच के धारण करनेवाले की कुछ भी बुराई शत्रु से नहीं हो सकती और वे उसको हरा सकते हैं। मूल्य ६॥=)

नरसिंह-यंत्र—प्रदरबाधक, हिस्टीरिया (कभी-कभी मूर्च्छा होना) और मृगी को नष्ट करता है। वंध्या को भी संतान होती है। भूत, प्रेत, पिशाच से बचाता है। और वंश की रक्षा करने में ब्रह्मास्त्र है। मूल्य ७।-)

हाईकोर्ट के जज, एकाउंटेंट-जेनरल, गवर्नमेंट प्लीडर, नवाब, राजा, ज़मींदार महाशयों से अत्युत्तम प्रशंसा-पत्र और सहायता प्राप्त— **ज्योतिर्विद् पंडित श्रीवसंतकुमार भट्टाचार्य ज्योतिर्भूषण,**

Tele.—Astrologer, Calcutta २६ **हेड ऑफ़िस—१०५, ग्रे स्ट्रीट, कलकत्ता।**

संस्थापित सन् १८७९ मूल्य साधारण !! नियम उदार !!

अपर इंडिया कूपर पेपर मिल्स कं० लिमि०

लखनऊ

में

सब तरह के काग़ज़ बनते हैं

जैसे :—

सफ़ेद	बादामी	White	Badamies
क्रीमलेड्स	ब्राउन	Cream Laid	Brown
वोव्स्	रंगीन	Woves	Coloured
सुपीरियर बादामी	ब्लाटिंग	Superior Badami	Blotting इत्यादि

बिना मूल्य नमूने और रेट के लिये सेक्रेटरी को लिखिए।

कुछ चुनी हुई स्त्रियोपयोगी पुस्तकें

भार्या-हित

अँगरेज़ी पुस्तक Advice to a wife का हिंदी अनुवाद । मासिक-धर्म, गर्भाधान, प्रसव-पीड़ा और बच्चे को दूध पिलाना इत्यादि अनेक उपयोगी विषय बड़ी उत्तमता से वर्णन किए गए हैं । पृष्ठ-संख्या ३२०; मूल्य ॥)

महिला-हितैषिणी

इसमें स्त्री-संबंधी सभी उपयोगी और ज्ञातव्य विषयों का समावेश बड़ी सुंदर और सरल भाषा में किया गया है । प्रत्येक गृहिणी को इसकी एक प्रति अपने पास अवश्य रखनी चाहिए । पृष्ठ-संख्या २३०; मूल्य १)

स्त्री-उपदेश

आर्य-ललनाओं के लिये यह बड़ी उपयोगी है । इसमें अनेक शिक्षाप्रद और मनोरंजक उपदेश दिए गए हैं । भाषा भी ऐसी सरल है कि साधारण पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ इसे सहज ही में समझ सकती हैं । पृष्ठ-संख्या १७८; मू० ॥)

स्त्री-सुबोधिनी

स्त्रियों के लिये इससे बढ़कर उपयोगी और उत्तम पुस्तक दूसरी कोई नहीं है । पृष्ठ-संख्या ८३६; मूल्य सजिल्द पुस्तक का २॥)

स्त्री-दर्पण

इसमें विद्यानुरागिनी लड़कियों और स्त्रियों का परमार्थ-साधन, गृह-कार्य की प्रवीणता और अनेक प्रकार की अमूल्य शिक्षाएँ अति सरलता-पूर्वक वर्णन की गई हैं । पुस्तक लड़कियों के पढ़ने-योग्य है । पृष्ठ-संख्या १६५ मू० ॥)

शिवनारायण-भजनमाला

संगीत और मनोरंजन का अपूर्व साधन । ग़ज़ल, ठुमरी, दादरा, कजरी, ख़्याल आदि में ईश्वर-संबंधी सुंदर और उत्तम भजनों का अनोखा संग्रह । पृष्ठ-संख्या २४०; मूल्य ॥)

पतिव्रता-स्त्रियों के जीवन-चरित्र

अगर आप चाहते हैं कि हमारी स्त्रियाँ वीर संतान उत्पन्न करें या हमारी बहनें और कन्याएँ सुचरित्रा एवं सुशीला बनें, तो एक बार इस पुस्तक को अवश्य उनके हाथ में दीजिए । पृष्ठ-संख्या ३५८; मूल्य १=)

नारी-चरितमाला

यदि आपको अपने देश की सुचरित्रा, आदर्श और विदुषी स्त्रियों के चरित्रों से अपनी प्यारी स्त्रियों, बहनों या कन्याओं को उत्तमोत्तम उपदेश देने हों, तो इस पुस्तक को अवश्य ख़रीदें । मूल्य ॥=)

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ ।

भगवद्गीता भाषा

सुंदर, सचित्र और सरल भाषा में

अठारहों अध्याय माहात्म्य सहित, सुंदर और सरल भाषा में

टाइप बड़ा; पृष्ठ-संख्या ४८८; मूल्य १≈)

संस्कृत न जाननेवाले वृद्ध स्त्री-पुरुषों के लिये यह अति उत्तम पुस्तक है

तुलसीकृत

रामायण गुटका

सुंदर ग्लेज काग़ज़ पर ॥)

रफ़ काग़ज़ ।≈)

साहित्य-सेवियों और राम-भक्तों के लिये नित्य पाठ करने के लिये यह जेबी गुटका सर्वोत्तम है।

विनय-पत्रिका

टीकाकार स्व० बैजनाथजी।

यह पुस्तक बहुत दिनों से अप्राप्त थी। मूल्य ३)

हिंदी-अँगरेज़ी-शिक्षक

यानी

इँगलिश-टीचर

घर बैठे बहुत थोड़े समय में अँगरेज़ी सीखने की सर्वोत्तम पुस्तक। केवल इसी को पढ़कर काम चलाऊ अँगरेज़ी सीखी जा सकती है। तार या चिट्ठी आने पर इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मूल्य ॥।)

कालिदास और शेक्सपीयर

संस्कृत और अँगरेज़ी न जाननेवालों के लिये संस्कृत और अँगरेज़ी साहित्य की ख़ूबी जानने के लिये इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। साहित्य-सेवियों के लिये तो यह बड़े काम की चीज़ है। दोनों साहित्य की ख़ूबियाँ इसमें ख़ूब दिखाई गई हैं। मूल्य २)

तुलसीकृत

रामायण मध्यम मू

मूल्य १।≈)

अपनी ढंग की यह भी बहु सस्ती पुस्तक है। हर एक व्य को इसकी एक प्रति अप पास रखनी चाहिए।

बीजक कबीरदास

श्रीकबीरदासजी की वा का संग्रह। टीका श्रीवि नाथसिंहजी ने की है। मू सजिल्द ३)

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.

साहित्य-सुमन-माला की कुछ चुनी हुई पुस्तकें

बाल-कथा-कौमुदी

लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित

इसमें बालोपयोगी सुंदर, सुबोध और शिक्षाप्रद कहानियों का संग्रह है । कहानी सब एक-से-एक बढ़कर हैं। बड़ी चटपटी और मज़ेदार हैं । बालक उसे बड़े चाव से पढ़ते हैं । एक बार शुरू करके समाप्त किए बिना कभी नहीं छोड़ेंगे । बालकों में पढ़ने की इच्छा पैदा करने के लिये जैसी कहानियों की आवश्यकता है, इसमें की सब कहानियाँ वैसी ही हैं । बालक ही नहीं, बड़े स्त्री-पुरुष भी इनमें मनोरंजन का काफ़ी मसाला पाएँगे । बड़े टाइप और सरल भाषा में लिखी हुई पुस्तक का मूल्य केवल ॥=) रक्खा गया है ।

प्यारी कहानियाँ

लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित

यह भी बालोपयोगी है । इसमें भी छोटी, सुंदर, मनोरंजक और सुबोध कहानियों का संग्रह है । मूल्य ॥) ।

निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं—

१ वैचित्र्य-चित्रण—लेखक, साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी । मूल्य ॥=)
२ अग्नि-समाधि और अन्य कहानियाँ—लेखक, श्रीप्रेमचंदजी । मूल्य १)
३ ठलुआ-क्लब—लेखक, श्रीगुलाबराय एम्० ए०, एल्-एल्० बी० । मूल्य ।॥)
४ बाल-कथा-कौमुदी—लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित । मूल्य ॥=)
५ प्यारी कहानियाँ—लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित । मूल्य ॥)
६ मानव-शरीर-रहस्य—लेखक, डाक्टर मुकुन्दस्वरूप वर्मा एम्० बी० बी० एस्० चीफ़ मेडिकल आफ़िसर, काशी विश्व-विद्यालय । मूल्य प्रथम भाग २॥), द्वितीय भाग २॥ ।
७ काम-कुंज—लेखक, श्रीसंतराम बी० ए० । मूल्य २॥)
८ विज्ञान-वार्ता—लेखक, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी । मूल्य १=)

—शीघ्र प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें—

१ कवित्त-रत्नाकर
२ तीन तिलंगे
३ डेविड कापर फ़ील्ड
४ सूक्ति-सुधा

मिलने का पता—नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.

साहित्य-सुमन-माला की नई और निराली पुस्तक

काम-कुंज
अश्लील नहीं है

विषय-सूची

- स्त्री-सौंदर्य
- गृहस्थों के प्रति
- सखी-हृदय
- स्त्रियों की मौन भाषा
- संकेत
- अजेय शक्ति
- काम-शास्त्र और स्त्रियाँ
- स्त्री प्रेम के लिये सर्वस्व दे सकती है
- स्त्री की सहिष्णुता
- सती-धर्म-पालन के कुछ उपाय
- वेश्या-वृत्ति
- स्त्री को पुरुष की संगति पसंद है या स्त्री की
- पश्चिम की आधुनिक स्त्री
- महाशक्ति
- अबलाओं के आँसू

प्रत्येक गृहस्थ को इसे
एक बार अवश्य पढ़ना
चाहिए

काम-कुंज

मूल्य
२॥)

लेखक—श्रीसंतराम बी० ए०

स्त्री-पुरुष-संबंधी कितनी ही ऐसी बातें हैं, जिनके न जानने से मनुष्य को जीवन का सच्चा सुख और आनंद नहीं मिलता। धन, जन और विद्या के होते हुए भी उनके चित्त को ईप्सित शांति नहीं मिलती। स्त्री-पुरुष-संबंधी शास्त्र की अनभिज्ञता के कारण सुविख्यात और लोकमान्य नेताओं को, उच्च पदाधिकारियों को, लक्ष्मी के लाड़लों को, सरस्वती के सपूतों को भी जीवन का सच्चा सुख नहीं मिलता। उस सुख की प्राप्ति के लिये वे निरंतर मथा करते हैं। जिसके अभाव से वे चिंताओं और अनेक प्रकार के रोगों के शिकार बने रहते हैं। पवित्र और सच्चा प्रेम उनको आकाश-कुसुमवत् मालूम होता है। कारण, वह स्त्री के हृदय को समझ नहीं सकते, स्त्री-प्रेम की परख नहीं कर सकते, उनकी मौन भाषा को समझने की उनमें शक्ति नहीं, उनके संकेत का उन्हें ज्ञान नहीं, उनकी सहिष्णुता का उनके यहाँ कोई आदर नहीं, उनके आचार-विचार के रहस्य समझने की बुद्धि नहीं, उनकी अजेय शक्ति का उन्हें भान नहीं, उनके प्राकृतिक सौंदर्य की सराहना नहीं; तब फिर जीवन का आनंद कहाँ? काम-कुंज को पढ़िए और इसके रहस्य को जानिए।

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

श्रीप्रेमचंदजी

की
नई पुस्तक

अग्नि-समाधि तथा अन्य कहानियाँ

मूल्य १।)

शीघ्र मँगाइए। अब थोड़ी ही प्रतियाँ रह गई हैं।

पढ़िए और लेखक की क़लम की करामात के क़ायल होइए।

वैचित्र्य-चित्रण

इसमें ६ अध्याय हैं—नराध्याय, वानराध्याय, जलचराध्याय, स्थलचराध्याय, उद्भिज्जाध्याय, प्रकीर्णकाध्याय जिनमें द्विवेदीजी ने सृष्टि की अजूबात का वर्णन बड़ी मार्मिक भाषा में किया है। पुस्तक में अनेक नई और आश्चर्य जनक बातें पढ़कर आनंद उठाइए। पढ़ने में उपन्यास से बढ़कर मज़ा आता है। मूल्य ।।=)

वैचित्र्यचित्रण

वैचित्र्यचित्रण

लेखक, **श्रीमहावीरप्रसाद द्विवेदी**

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

UNIQUE OPPORTUNITY ! AVAIL OF

A BOON TO BOOK-LOVERS

-at 25 % off-

As They Are Slightly Soiled.

Names of Books.	Price. Rs. a. p.
Anderson's Popular Tales—	
Anderson's Fairy Stories	0 12 0
„ Stories for the Young ...	0 12 0
Beeton's Ready Reckoner ...	0 12 0
Bunyan's Pilgrim's Progress ...	0 12 0
The Bible, Students' Hand-book ...	0 12 0
Cobbett's English Grammar ...	0 12 0
County Court Hand-book ...	0 12 0
Conquerors and Captives ...	0 12 0
The Doctor by Geo. Black, M. B. (Edin.) and others.	0 12 0
Complete Etiquette for Ladies ...	0 12 0
Five Weeks in a Balloon ...	0 12 0
House-Holders' Law Book ...	0 12 0
How to Dance	0 12 0
The young wifes' Advice Book ...	0 12 0
Sea air and Sea Bathing ...	0 12 0
Sleep and How to obtain it ...	0 12 0
The skin Health and disease ...	0 12 0
Eyesight and How to care of it ...	0 12 0
Line Upon Line by the Author of Peep of Day, Part I	0 12 0
Line Upon Line by the above Author, Part II.	0 12 0
The Law of Landed Property ...	0 12 0
Mansfield Park	0 12 0
The Married Women's Property Act	0 12 0
Northanger Abbey ...	0 12 0
Our Nurses and the Work they have to do.	0 12 0
The Peer and the Woman ...	0 12 0
Hearing and How to keep it ...	0 12 0
Sick Nursing	0 12 0
Debit and Credit (novel) ...	2 8 0
Queechy	0 12 0
Sylvia's Illustrated Lady's Lace Book	0 12 0
The Students' illustrated Bible	0 12 0

Names of Books.	Pric Rs. a.
Dictionary.	
Sandford and Merton ...	0 12
Dombey & Son ...	1 4
Sandford and Merton by Thomas Day.	0 12
Robinson Crusoe	0 12
The Wide Wide World ...	0 12
Concise Guide to Health	0 6
Queechy	0 8
Webster's Pocket Pronouncing Dictionary of the Eng. Language.	1 0
Below the Surface	2 8
The Essays of Adam Smith ...	2 8
Memorable Men and Noteable Events, &c.	2 13
Coil and Current or the Triumphs of Electricity.	2 8
Famous Musical Composers ...	2 8
Gressy and Poietiers ...	2 10
The Karak-orams and Kashmir, an account of a journey.	7 8
The Log of a Jack Tar ...	1 8
Paul and His Friends ...	2 8
How we kept the Flag Flying ...	2 4
Hume's History of England in 3 Vols. complete.	7 8
Hubert Ellis	2 8
Master Missionaries	2 8
History of Rome	2 13
History of Greece	2 13
Sydney Smith's Essay... ...	2 8
Sandfort Merton	1 8
Sandfort Merton (small edition) ...	1 2
Robinson Crusoe	1 14
The Story of the Nations Vedic India	3 4

To be had of—Manager, Book-Depot, N. K. Press, Lucknow

साहित्य-सुमन-माला की अद्भुत और अनोखी पुस्तक

विज्ञान-वार्ता

लेखक
श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी

मूल्य १।=)

यह वैज्ञानिक युग है। ज़माने के साथ चलने के लिये हर एक व्यक्ति को विज्ञान-संबंधी थोड़ी-बहुत बातें जानना आवश्यक ही नहीं, वरन् अनिवार्य है।

हिंदी में अभी तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं नज़र आई जो जनता को आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञानों का दिग्दर्शन भी करा सके।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह विज्ञान-वार्ता निकाली गई है।

विषय-सूची से ही आपको इसे पढ़ने की और अनेक ज्ञातव्य बातें जानने की उत्कट इच्छा होगी।

एक बार इस पुस्तक को पढ़ जाइए और फिर देखिए आपने कितनी नई बातें मालूम कीं।

विज्ञान-वार्ता
में
क्या है ?

विज्ञान की महत्ता
प्रतिभा
पृथ्वी
पृथ्वी की प्राचीनता
अक्षांश और रेखांश
मार्तंड-महिमा
दीप्तिमंडल और सूर्याभास
मंगल
मंगल के चित्र
मंगल ग्रह तक तार
ग्रहों पर जीवधारियों के होने का अनुमान
आँख की फ़ोटोग्राफ़ी
शरीर के भीतरी भागों के फ़ोटो
रंगीन छाया-चित्र
भारत की चित्र-विद्या
अध्यापक वसु के अद्भुत आविष्कार
वानस्पतिक सज्ञानता
कृत्रिम-प्राण-संचार की चेष्टा
ध्वनि
संगीत के स्वर
विकास-सिद्धांत
न्याय-शास्त्र का महत्त्व
संपत्ति-शास्त्र
रेडियम
मूँगा
तार द्वारा ख़बर भेजना
हिसाब लगानेवाला यंत्र
कुछ आधुनिक आविष्कार
रक्त-विज्ञान

नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

साहित्य-सुमन-माला के

स्थायी ग्राहकों के नियम

(१) स्थायी ग्राहक-सूची में नाम लिखानेवाले सज्जनों को प्रवेश-शुल्क के ॥) पेशगी भेजने पड़ेंगे।

(२) स्थायी ग्राहकों को माला में प्रकाशित सभी ग्रंथ पौने मूल्य पर दिए जायँगे। प्रत्येक ग्राहक ग्रंथ-माला की प्रकाशित पुस्तकों की प्रतियाँ अपनी इच्छानुसार एक से अधिक हर समय मँगा सकते हैं।

(३) नवीन पुस्तकों के प्रकाशित होने पर सूचना दी जायगी। १५ दिन तक पत्रोत्तर का आसरा देखकर वी० पी० लेना स्वीकार समझकर पुस्तकें वी० पी० से भेज दी जायँगी। पुस्तकें यथासाध्य ४-५ एक साथ भेजी जायँगी, जिससे ग्राहकों को डाक-ख़र्च की बचत होगी।

(४) नवीन पुस्तकों में ग्राहकों को सभी पुस्तकें लेना आवश्यक नहीं है। यह उनकी इच्छा पर निर्भर है। परंतु वर्ष-भर में कम-से-कम ५) की पुस्तकें लेना प्रत्येक ग्राहक को आवश्यक है।

(५) जिस ग्राहक के यहाँ से दो बार वी० पी० वापस लौट आएगी, उसका नाम स्थायी ग्राहक-सूची से पृथक् कर दिया जायगा।

(६) स्थायी ग्राहकों को नवलकिशोर-प्रेस से प्रकाशित हिंदी और उर्दू-पुस्तकें (रीडरों को छोड़कर) पौने मूल्य पर दी जायँगी।

नोट—हमारी प्रकाशित पुस्तकों का सूचीपत्र सूचना मिलने पर मुफ़्त भेजा जाता है।

आदेश-पत्र

सेवा में—

व्यवस्थापकजी, बुकडिपो, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ.

प्रिय व्यवस्थापकजी,

आपकी ग्रंथ-माला के उद्देश्य और विशेषताएँ तथा स्थायी ग्राहकों के नियम पढ़े। सब स्वीकृत हैं। मैं आपकी ग्रंथ-माला का स्थायी ग्राहक बनना चाहता हूँ। कृपया मेरा नाम स्थायी ग्राहक-सूची में लिख लीजिए। प्रवेश-शुल्क के ॥)
मनीऑर्डर से भेजता हूँ
पहली वी० पी० में जोड़ लीजिए
और नवीन पुस्तकें जो भी इस ग्रंथ-माला में प्रकाशित हों, उसकी सूचना नियमानुसार भेजते रहिए।

योग्य सेवा लिखिएगा।

भवदीय

[हस्ताक्षर कीजिए]

मेरा पता

____

____

____

[**नोट**—नाम और पता साफ़-साफ़ अक्षरों में लिखने की कृपा कीजिए]

THE

"His Master's Voice"

CAMP MODEL

"हिज़ मास्टर्स वायेस" केम्प माडेल।

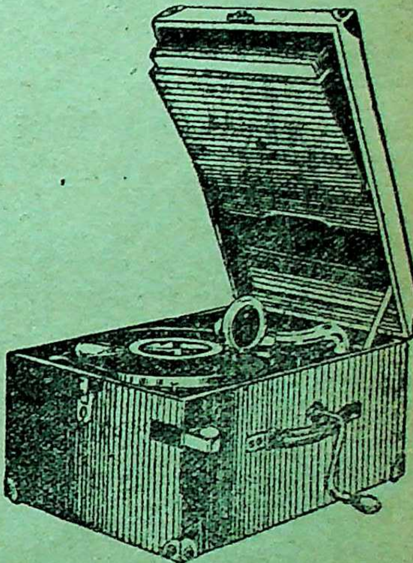

यह मशीन जिस ख़ूबसूरती के साथ आवाज़ को तेज़ करती है वह बेशक आदमी की अकल से बाहर है। अपने क़ायदे के मुताबिक़ यह बाजा गाने के हर लफ़्ज़ को अलग-अलग और उसके सुर-ताल, राग-रागिनी और मुख़्तलिफ़ साजों की असली ख़ूबी का बिलकुल ठीक-ठीक नमूना अपने सुननेवाले के आगे पेश करता है।

लेकिन अगर आपको इसमें ज़रा भी शुभा हो तो मेहरबानी [illegible] आस-पास के किसी ग्रामोफ़ोन डीलर की दूकान जाकर ख़ुद उसकी ख़ूबियों का अन्दाज़ा कर लीजिए।

डबल स्प्रिंगवाला केम्प माडेल नं० ११२

मूल्य—१६५) रुपैया।

दी ग्रामोफ़ोन
कम्पनी लिमिटेड,
दमदम और बम्बई।

भारत सरकार से रजिस्टर्ड

संजीवन मूरि

प्लेग, हैज़ा, निमोनिया, कफ, खाँसी, दमा, शूल, संग्रहणी, बालकों के हरे-पीले दस्त व दूध पटकना आदि रोगों की ३० साल की परीक्षित अचूक दवा है--दाम १ शीशी ॥) डाक ख़र्च अलग दर्जन ५) मय डाक-ख़र्च।

प्रभाकर आमला आइल

अद्‌भुत आयुर्वेदिक औषधियों से तैयार किया हुआ यह तेल सिर में दर्द, चक्कर आना, दिमाग़ी थकावट आदि को दूर करके ठंडक, आराम व गुदगुदापन पैदा करता हुआ बालों को मुलायम, चमकदार, लंबे वा भँवरे के समान स्याह करता है। इसकी मनोहर सुगंध को तो कहना ही पड़ेगा कि अद्‌भुत है--दाम १२ औंस की कुप्पी १॥) डाक-ख़र्च ॥।), छोटी शीशी ६ औंस की ॥।-) डाक-ख़र्च ॥-)।

माधुरी स्नो

चेहरे के काले दाग़, धब्बे दूर · के मुँह
गोरा, मुलायम व सुर्ख़ बनाती है। [illegible]
सुगंध बराबर रात-दिन २४ घंटे आती [illegible]
शीशी १) डाक-ख़र्च ।≈) तीन के ३।) मय
कपड़ों में रखने के खुशबूदार कार्ड ॥।) दर्जन।

प्रदरान्तक

स्त्रियों के सब प्रकार के प्रदर व मासिक-धर्म
ख़राबी कमज़ोरी कमर पेट पेड़ू के दर्द आदि
दूर करके शरीर को तंदुरुस्त ताकतवर फुर्तीला
ख़ूबसूरत बनाकर नीरोग औलाद पैदा करने यो
बनाता है। दाम १ शीशी १॥) डाक-ख़र्च ।≈)
शीशी ५) मय डाक-ख़र्च।

ज़्यादा हाल जानने के लिये बड़ा सूचीपत्र मँगाइए।

मिलने का पता—मैनेजर, सुखसागर-औषधालय, झाँसी।

शास्त्रीय हिन्दी हार्मोनियम गाईड

बाजे की पेटी बजाने को सिखलानेवाली पुस्तक, ४० रागों के आरोह-अवरोह-लक्षण, स्वरूप, विस्तार, १०४ प्रसिद्ध गायनों का स्वर-ताल-युक्त नोटेशन, सुरावर्त, तिल्लाने इत्यादि पूरी जानकारी-सहित, द्वितीय आवृत्ति, पृष्ठ-संख्या २००, क़ीमत १॥) रुपया डाक-ख़र्च ।=)

विषयों का और गायनों का सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइए।

गोपाल सखाराम एण्ड कम्पनी
कालबादेवी रोड, बंबई नं० २

न है।

हर प्रकार की उत्तम रबर की मुहर
ऐसी २॥) रु०
सूची मुफ्त
जी. सी. खत्री १६८ स्टाम्प, काशी

सीधी लाइन की सादी मुहर (केवल अक्षरों की
लाइनें, दो इंच लंबी और आधा इंच चौड़ी तक)
का सामान सहित मूल्य १), डाक-ख़र्च ।≈)
होने से दाम अधिक होगा। हिंदी, अँगरेज़ी, उर्दू
बँगला कोई भाषा हो। अंडाकार मुहर जैसी
नमूना है २॥) मय सामान। डाक-ख़र्च एक मु
दो का ॥) और तीन का ॥≈); काम देखकर ख़ु

मिलने का पता—
जी० सी० खत्री, रबर स्टांपमेकर,
बनारस

सम्मन बनाम [illegible] करार दाद् उमूर तनक़ीह तलब

मुक़दमा नं० २२६ सन् १६३०

अदालत जनाब बाबू गुलाबचन्द श्रीमान् साहेब, मुंसिफ हवाली, लखनऊ.

डाक्टर प्यारेलाल वल्द मु० श्यामबिहारीलाल कायस्थ साकिन

चाह छाछू शहर लखनऊ..............................मुद्दई

बनाम

जाकिरअली मुद्दाअलेह

बनाम—जाकिरअली वल्द शेख़ एवजअली साकिन मौजा मंडियाव परगना महोना तहसील मलिहाबाद ज़िला लखनऊ वाज़े होकि मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत दख़लयाबी व वासिलात के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुकुम होता है कि तुम ब तारीख़ तेरह १३ नवम्बर सन् १६३० व वक़्त १० बजे दिन पर असालतन या मारफ़त वकील के जो मुक़दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाकिफ़ किया गया हो और जो कुल उमूरात अहम मुतलिक़े मुक़दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदेही दावा मुद्दई मज़कूर की करो।

आज ब तारीख़ २० (बीस) सितम्बर १६३० मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत से जारी किया गया।

नोट (१) फरीक़ैन मुक़दमा हाज़ा को हिदायत दी जाती है कि अगर किसी गवाह से कोई काग़ज़ सबूत में दाख़िल कराना हो तो ब तारीख़ ११ ग्यारह नवम्बर सन् १६३० दाख़िल करो और अगर दाख़िल करो तो दरख्वास्त इज़ाज़त दाख़िला काग़ज़ात पेश करो।

(२) और तुमको हुकुम दिया जाता है कि बयान तहरीरी बतारीख़ पांच ५ नवम्बर सन् १६३० तक गुजरानो वक़्त हाज़िरी दफ़्तर मुंसफी हवाली लखनऊ १० बजे से चार बजे तक

होम्योपैथिकमेटीरिया मेडिका

डाक्टर मुकर्जी-लिखित हिंदी की बृहत होमियोपैथिकमेटीरिया मेडिका छपगई। यह पुस्तक समस्त होमियोपैथिकशास्त्र का सार है। ऐसी पुस्तक आज तक नहीं छपी होमियोपैथिक की समस्त गूढ़ बातें इसमें वर्णन की गई हैं। इस पुस्तक को बिना पढ़े होमियोपैथिक चिकित्सा करना असंभव है। घर बैठे डाक्टरी सीखने का यह अपूर्व अवसर है। पृष्ठ-संख्या ६००, मू० १५

प्रकाशक—
N. Ando & Sons, Farrukhabad,
U. P.

२७

श्वेतकुष्ठ की अद्भुत जड़ी

प्रिय पाठकगण! औरों की भाँति मैं प्रशंसा करना नहीं चाहता। यदि इसके तीन बार के लेप से इस रोग की सफ़ेदी जड़ से आराम न हो, तो दूना मूल्य वापस दूँगा। जो चाहें ‐) का टिकट भेजकर प्रतिज्ञापत्र लिखा लें। मूल्य १)

१६

वैद्यराज
पं० महावीर पाठक, नं० ५, दरभंगा।

शक्ति का ख़ज़ाना यानी पृथ्वी पर का अमृत

मदनमंजरी

यह दिव्य गोलियाँ दस्त साफ़ लाती हैं, वीर्य-विकार-संबंधी तमाम शिकायत नष्ट करती हैं और मानसिक व शारीरिक प्रत्येक प्रकार की कमज़ोरी को दूर करके नया जीवन देती हैं। क़ी० गोली ४० की डिब्बी १ का १)

२८

मेहमर्दनचूर्ण

सूज़ाक की हुक्मी दवा—क़ी डिब्बा १)

अंडवृद्धिहरचूर्ण

पोता बढ़ जाने की शर्तिया दवा। क़ी डिब्बा ३)

रमणविलासिनीवटिका

वीर्य-स्तंभन के लिये अक्सीर दवा। क़ी डिब्बी १)

राजवैद्य नारायणजी केशवजी

हेड ऑफ़िस—जामनगर (काठियावाड़)
लखनऊ एजेंट—निगम मेडिकलहाल, नाला फ़तेगंज
दिल्ली एजेंट—जमनादास कु० चाँदनी चौक
इलाहाबाद एजेंट—मेसर्स दुबे ब्रदर्स, चौक

र० ट्रेड मार्क

अमृतगुटिका

"जेनस" नं० ३०२

अशक्त स्त्री-पुरुषों के लिये ताक़त की बढ़िया दवा

इसके सेवन से कमर का दर्द, पिंडलियों का दुखना, आँखों की कमज़ोरी, बदन की सुस्ती, काम-काज में दिल न लगना, नया या पुराना प्रमेह, बदन और इंद्रियों की शिथिलता, मुख, बग़ल या पेशाब के रास्ते से धातु स्खलित होना, शौच के समय धातु गिरना, मग़ज़ ख़ाली पड़ जाना, चेहरा शुष्क इत्यादि बहुत से दर्द को दूर करके जवानी का मज़ा लूटने के लिये बदन मोटा और ज़ोरदार होता है। हरएक मौसम में उपयोग हो सकता है। दाम ३२ टिकियों की एक ट्यूब का २) रु०, डाकख़र्च अलग। सूचीपत्र मुफ़्त मँगा देखिए। हर जगह दवाफ़रोशों के यहाँ भी मिलेगी।

पता—जे० एन० शेठना, २८
मु० पो० नडीआद (गुजरात)

साधना औषधालय

ढाका (बंगाल)

अध्यक्ष—जोगेशचंद्र घोष, एम्० ए०, एफ़्० सी० एस्० (लंडन)
भूतपूर्व प्रोफ़ेसर रसायनशास्त्र भागलपुर-कालेज

सच्ची और पूर्णतः पवित्र होने की गारंटी है। सभी औषधियाँ आयुर्वेदशास्त्र के अनुसार ही तैयार की जाती हैं। सूचीपत्र फ़्री भेजा जाता है।
पूरा विवरण आने पर सावधानी से सभी रोगों की व्यवस्था फ़्री कर दी जाती है।

मकरध्वज (स्वर्ण-सिंदूर)

(पवित्र और असली सोने से युक्त)

सभी रोगों के लिए रामबाण है। शरीर की इस दवा के सेवन से पूरी-पूरी शुद्धि हो जाती है।

दाम ४) तोला

शुक्रसंजीवन

यह पुरुषत्व-हीनता आदि रोगों की अपूर्व औषध है। दाम १६) सेर १४०

सारिवादिसरस

आतशक और सूज़ाक के लिए आश्चर्य गुणकारक औषध है। इसमें धातु की सभी बीमारियाँ और ख़राबियाँ दूर हो जाती हैं।

अबलाबांधवयोग

स्त्रियों के सभी रोगों की इससे बढ़कर कोई औषध तैयार नहीं हुई है। प्रदर का नाम नहीं रहता और मासिक बिलकुल ठीक; दाम १६ मात्रा का २), ४० का ४)

कुछ चुनी हुई स्त्रियोपयोगी पुस्तकें

भार्या-हित

अँगरेज़ी पुस्तक Advice to a wife का हिंदी अनुवाद। मासिक-धर्म, गर्भाधान, प्रसव-पीड़ा और बच्चे को दूध पिलाना इत्यादि अनेक उपयोगी विषय बड़ी उत्तमता से वर्णन किए गए हैं। पृष्ठ-संख्या ३३०; मूल्य ।।।)

महिला-हितैषिणी

इसमें स्त्री-संबंधी सभी उपयोगी और ज्ञातव्य विषयों का समावेश बड़ी सुंदर और सरल भाषा में किया गया है। प्रत्येक गृहिणी को इसकी एक प्रति अपने पास अवश्य रखनी चाहिए। पृष्ठ-संख्या २३०; मूल्य १)

स्त्री-उपदेश

आर्य-ललनाओं के लिये यह बड़ी उपयोगी है। इसमें अनेक शिक्षाप्रद और मनोरंजक उपदेश दिए गए हैं। भाषा भी ऐसी सरल है कि साधारण पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ इसे सहजही में समझ सकती हैं। पृष्ठ-संख्या १७८; मू० ॥)

स्त्री-सुबोधिनी

स्त्रियों के लिये इससे बढ़कर उपयोगी और उत्तम पुस्तक दूसरी कोई नहीं है। पृष्ठ-संख्या ८३६; मूल्य सजिल्द पुस्तक का २॥)

स्त्री-दर्पण

इसमें विद्यानुरागिनी लड़कियों और स्त्रियों का परमार्थ-साधन, गृह-कार्य की प्रवीणता और अनेक प्रकार की अमूल्य शिक्षाएँ अति सरलतापूर्वक वर्णन की गई हैं। पुस्तक लड़कियों के पढ़ने-योग्य है। पृष्ठ-संख्या १६५ मू० ॥)

शिवनारायण-भजनमाला

संगीत और मनोरंजन का अपूर्व साधन। ग़ज़ल, ठुमरी, दादरा, कजरी, ख़्याल आदि में ईश्वर-संबंधी सुंदर और उत्तम भजनों का अनोखा संग्रह। पृष्ठ-संख्या २४०; मूल्य ॥)

पतिव्रता-स्त्रियों के जीवन-चरित्र

अगर आप चाहते हैं कि हमारी स्त्रियाँ वीर संतान उत्पन्न करें या हमारी बहनें और कन्याएँ सुचरित्रा एवं सुशीला बनें, तो एक बार इस पुस्तक को अवश्य उनके हाथ में दीजिए। पृष्ठ-संख्या ३२८; मूल्य १=)

नारी-चरितमाला

यदि आपको अपने देश की सुचरित्रा, आदर्श और विदुषी स्त्रियों के चरित्रों से अपनी प्यारी स्त्रियों, बहनों या कन्याओं को उत्तमोत्तम उपदेश देने हों, तो इस पुस्तक को अवश्य ख़रीदें। मूल्य ॥=)

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

भगवद्गीता भाषा

सुंदर, सचित्र और सरल भाषा में

अठारहों अध्याय माहात्म्य सहित, सुंदर और सरल भाषा में

टाइप बड़ा; पृष्ठ-संख्या ४८८; मूल्य १≈)

संस्कृत न जाननेवाले वृद्ध स्त्री-पुरुषों के लिये यह अति उत्तम पुस्तक है

तुलसीकृत

रामायण गुटका

सुंदर ग्लेज कागज़ पर ।।)

रफ़ कागज़ ।≈)

साहित्य-सेवियों और राम-भक्तों के लिये नित्य पाठ करने के लिये यह जेबी गुटका सर्वोत्तम है ।

* * *

विनय-पत्रिका

टीकाकार स्व० बैजनाथजी । यह पुस्तक बहुत दिनों से अप्राप्त थी । मूल्य ३)

हिंदी-अँगरेज़ी-शिक्षक

यानी

इँगलिश-टीचर

घर बैठे बहुत थोड़े समय में अँगरेज़ी सीखने की सर्वोत्तम पुस्तक । केवल इसी को पढ़कर काम चलाऊ अँगरेज़ी सीखी जा सकती है । तार या चिट्ठी आने पर इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी । मूल्य ।।।)

तुलसीकृत

रामायण मध्यम मू

मूल्य १।≈)

अपनी ढंग की यह भी बहु सस्ती पुस्तक है । हरएक व्य को इसकी एक प्रति अप पास रखनी चाहिए ।

* * *

बीजक कबीरदास

श्रीकबीरदासजी की वा का संग्रह । टीका श्रीवि नाथसिंहजी ने की है । सजिल्द ३)

कालिदास और सेक्सपीयर

संस्कृत और अँगरेज़ी न जाननेवालों के लिये संस्कृत और अँगरेज़ी साहित्य की ख़ूबी जानने के लिये इसे अवश्य पढ़ना चाहिए । साहित्य-सेवियों के लिये तो यह बड़े काम की चीज़ है । दोनों साहित्य की ख़ूबियाँ इसमें ख़ूब दिखाई गई हैं । मूल्य २)

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.

साहित्य-सुमन-माला की कुछ चुनी हुई पुस्तकें

बाल-कथा-कौमुदी

लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित

इसमें बालोपयोगी सुंदर, सुबोध और शिक्षाप्रद कहानियों का संग्रह है। कहानी सब एक-से-एक बढ़कर है। बड़ी चटपटी और मज़ेदार हैं। बालक उसे बड़े चाव से पढ़ते हैं। एक बार शुरू करके समाप्त किए बिना कभी नहीं छोड़ेंगे। बालकों में पढ़ने की इच्छा पैदा करने के लिये जैसी कहानियों की आवश्यकता है, इसमें की सब कहानियाँ वैसी ही हैं। बालक ही नहीं, बड़े स्त्री-पुरुष भी इनमें मनोरंजन का काफ़ी मसाला पाएँगे। बड़े टाइप और सरल भाषा में लिखी हुई पुस्तक का मूल्य केवल ॥=) रक्खा गया है।

प्यारी कहानियाँ

लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित

यह भी बालोपयोगी है। इसमें भी छोटी, सुंदर, मनोरंजक और सुबोध कहानियों का संग्रह है। मूल्य ॥)।

निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं—

१ वैचित्र्य-चित्रण—लेखक, साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी। मूल्य ॥=)
२ अग्नि-समाधि और अन्य कहानियाँ—लेखक, श्रीप्रेमचंदजी। मूल्य १)
३ ठलुआ-क्लब—लेखक, श्रीगुलाबराय एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ॥)
४ बाल-कथा-कौमुदी—लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित। मूल्य ॥=)
५ प्यारी कहानियाँ—लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित। मूल्य ॥)
६ मानव-शरीर-रहस्य—लेखक, डाक्टर मुकुंदस्वरूप वर्मा एम्० बी० बी० एस्० चीफ़ मेडिकल आफ़िसर, काशी विश्व-विद्यालय। मूल्य प्रथम भाग २॥), द्वितीय भाग २॥)
७ काम-कुंज—लेखक, श्रीसंतराम बी० ए०। मूल्य २॥)
८ विज्ञान-वार्ता—लेखक, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी। मूल्य १।=)

—शीघ्र प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें—

१ कवित्त-रत्नाकर
२ तीन तिलंगे
३ डेविड कापर फ़ील्ड
४ सूक्ति-सुधा

मिलने का पता—नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.

साहित्य-सुमन-माला की नई और निराली पुस्तक

काम-कुंज

मूल्य २॥)

लेखक—श्रीसंतराम बी० ए०

स्त्री-पुरुष-संबंधी कितनी ही ऐसी बातें हैं, जिनके न जानने से मनुष्य को जीवन का सच्चा सुख और आनंद नहीं मिलता। धन, जन और विद्या के होते हुए भी उनके चित्त को ईप्सित शांति नहीं मिलती। स्त्री-पुरुष-संबंधी शास्त्र की अनभिज्ञता के कारण सुविख्यात और लोकमान्य नेताओं को, उच्च पदाधिकारियों को, लक्ष्मी के लाड़लों को, सरस्वती के सपूतों को भी जीवन का सच्चा सुख नहीं मिलता। उस सुख की प्राप्ति के लिये वे निरंतर मथा करते हैं। जिसके अभाव से वे चिंताओं और अनेक प्रकार के रोगों के शिकार बने रहते हैं। पवित्र और सच्चा प्रेम उनको आकाश-कुसुमवत् मालूम होता है। कारण, वह स्त्री के हृदय को समझ नहीं सकते, स्त्री-प्रेम की परख नहीं कर सकते, उनकी मौन भाषा को समझने की उनमें शक्ति नहीं, उनके संकेत का उन्हें ज्ञान नहीं, उनकी सहिष्णुता का उनके यहाँ कोई आदर नहीं, उनके आचार-विचार के रहस्य समझने की बुद्धि नहीं, उनकी अजेय शक्ति का उन्हें भान नहीं, उनके प्राकृतिक सौंदर्य की सराहना नहीं; तब फिर जीवन का आनंद कहाँ? काम-कुंज को पढ़िए और इसके रहस्य को जानिए।

काम-कुंज

अश्लील नहीं है

विषय-सूची

स्त्री-सौंदर्य
गृहस्थों के प्रति
सखी-हृदय
स्त्रियों की मौन भाषा
संकेत
अजेय शक्ति
काम-शास्त्र और स्त्रियाँ
स्त्री प्रेम के लिये सर्वस्व दे सकती है
स्त्री की सहिष्णुता
सती-धर्म-पालन के कुछ उपाय
वेश्या-वृत्ति
स्त्री को पुरुष की संगति पसंद है या स्त्री की
पश्चिम की आधुनिक स्त्री
महाशक्ति
अबलाओं के आँसू

प्रत्येक गृहस्थ को इसे एक बार अवश्य पढ़ना चाहिए

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

श्रीप्रेमचंदजी
की
नई पुस्तक

अग्नि-समाधि तथा अन्य कहानियाँ

मूल्य १।)

शीघ्र मँगाइए। अब थोड़ी ही प्रतियाँ रह गई हैं।

पढ़िए और लेखक की क़लम की करामात के क़ायल होइए।

वैचित्र्य-चित्रण

वैचित्र्य चित्रण

इसमें ६ अध्याय हैं—नराध्याय, वानराध्याय, जलचराध्याय, स्थलचराध्याय, उद्भिजाध्याय, प्रकीर्णकाध्याय जिनमें द्विवेदीजी ने सृष्टि की अजूबात का वर्णन बड़ी मार्मिक भाषा में किया है। पुस्तक में अनेक नई और आश्चर्य जनक बातें पढ़कर आनंद उठाइए। पढ़ने में उपन्यास से बढ़कर मज़ा आता है। मूल्य ॥=)

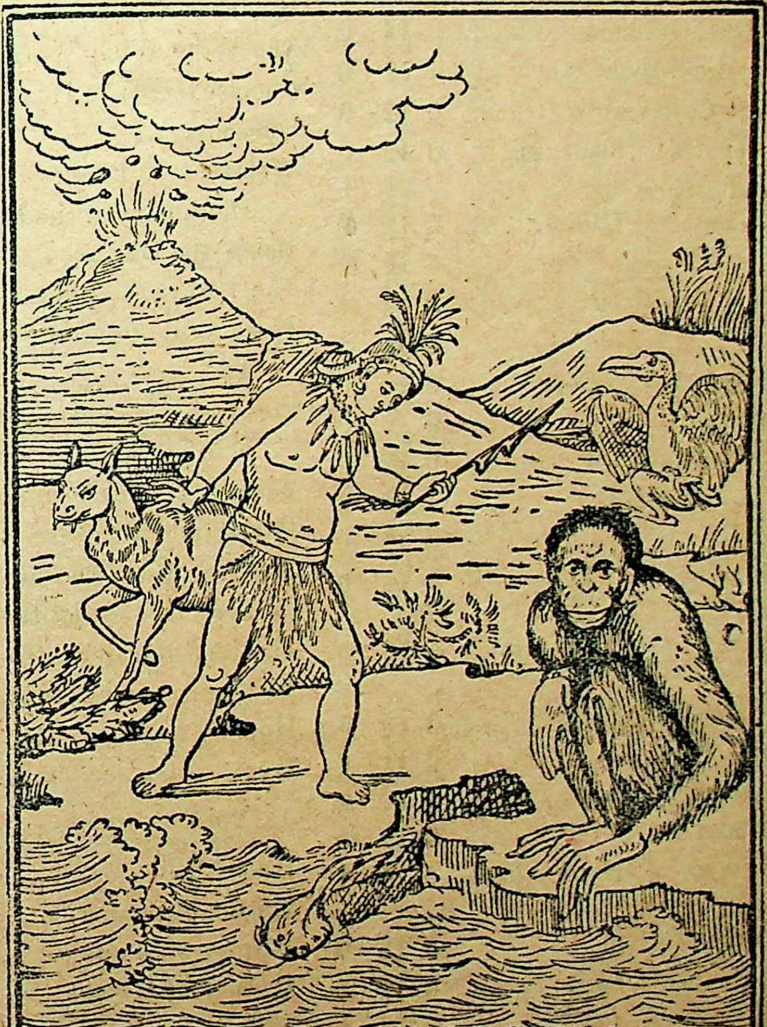

वैचित्र्य चित्रण

लेखक, **श्रीमहावीरप्रसाद द्विवेदी**

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

UNIQUE OPPORTUNITY ! AVAIL OF

A BOON TO BOOK-LOVERS

-at 25 % off-

As They Are Slightly Soiled.

Names of Books.	Price. Rs.	a.	p.
Anderson's Popular Tales—			
Anderson's Fairy Stories	0	12	0
,, Stories for the Young ...	0	12	0
Beeton's Ready Reckoner ...	0	12	0
Bunyan's Pilgrim's Progress ...	0	12	0
The Bible, Students' Hand-book ...	0	12	0
Cobbett's English Grammar ...	0	12	0
County Court Hand-book ...	0	12	0
Conquerors and Captives ...	0	12	0
The Doctor by Geo. Black, M. B. (Edin.) and others.	0	12	0
Complete Etiquette for Ladies ...	0	12	0
Five Weeks in a Balloon ...	0	12	0
House-Holders' Law Book ...	0	12	0
How to Dance	0	12	0
The young wifes' Advice Book ...	0	12	0
Sea air and Sea Bathing ...	0	12	0
Sleep and How to obtain it ...	0	12	0
The skin Health and disease ...	0	12	0
Eyesight and How to care of it ...	0	12	0
Line Upon Line by the Author of Peep of Day, Part I	0	12	0
Line Upon Line by the above Author, Part II.	0	12	0
The Law of Landed Property ...	0	12	0
Mansfield Park	0	12	0
The Married Women's Property Act	0	12	0
Northanger Abbey ...	0	12	0
Our Nurses and the Work they have to do.	0	12	0
The Peer and the Woman ...	0	12	0
Hearing and How to keep it ...	0	12	0
Sick Nursing	0	12	0
Debit and Credit (novel) ...	2	8	0
Queechy	0	12	0
Sylvia's Illustrated Lady's Lace Book	0	12	0
The Students' illustrated Bible	0	12	0

Names of Books.	Price Rs.	a.	p.
Dictionary.			
Sandford and Merton ...	0	12	
Dombey & Son ...	1	4	
Sandford and Merton by Thomas Day.	0	12	
Robinson Crusoe	0	12	
The Wide Wide World ...	0	12	
Concise Guide to Health	0	6	
Queechy	0	8	
Webster's Pocket Pronouncing Dictionary of the Eng. Language.	1	0	
Below the Surface	2	8	
The Essays of Adam Smith ...	2	8	
Memorable Men and Noteable Events, &c.	2	13	
Coil and Current or the Triumphs of Electricity.	2	8	
Famous Musical Composers ...	2	8	
Gressy and Poietiers ...	2	10	
The Karak-orams and Kashmir, an account of a journey.	7	8	
The Log of a Jack Tar ...	1	8	
Paul and His Friends ...	2	8	
How we kept the Flag Flying ...	2	4	
Hume's History of England in 3 Vols. complete.	7	8	
Hubert Ellis	2	8	
Master Missionaries	2	8	
History of Rome	2	13	
History of Greece	2	13	
Sydney Smith's Essay... ...	2	8	
Sandfort Merton	1	8	
Sandfort Merton (small edition) ...	1	2	
Robinson Crusoe	1	14	
The Story of the Nations Vedic India	3	4	

To be had of—Manager, Book-Depot, N. K. Press, Lucknow

साहित्य-सुमन-माला की अद्भुत और अनोखी पुस्तक

विज्ञान-वार्ता

लेखक

श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी

मूल्य १।=)

यह वैज्ञानिक युग है। ज़माने के साथ चलने के लिये हर एक व्यक्ति को विज्ञान-संबंधी थोड़ी-बहुत बातें जानना आवश्यक ही नहीं, वरन् अनिवार्य है।

हिंदी में अभी तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं नज़र आई जो जनता को आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञानों का दिग्दर्शन भी करा सके।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह विज्ञान-वार्ता निकाली गई है।

विषय-सूची से ही आपको इसे पढ़ने की और अनेक ज्ञातव्य बातें जानने की उत्कट इच्छा होगी।

एक बार इस पुस्तक को पढ़ जाइए और फिर देखिए आपने कितनी नई बातें मालूम कीं।

विज्ञान-वार्ता में क्या है ?

- विज्ञान की महत्ता
- प्रतिभा
- पृथ्वी
- पृथ्वी की प्राचीनता
- अक्षांश और रेखांश
- मार्तंड-महिमा
- दीप्तिमंडल और सूर्याभास
- मंगल
- मंगल के चित्र
- मंगल ग्रह तक तार
- ग्रहों पर जीवधारियों के होने का अनुमान
- आँख की फ़ोटोग्राफ़ी
- शरीरके भीतरी भागों के फ़ोटो
- रंगीन छाया-चित्र
- भारत की चित्र-विद्या
- अध्यापक वसु के अद्भुत आविष्कार
- वानस्पतिक सज्ञानता
- कृत्रिम-प्राण-संचार की चेष्टा
- ध्वनि
- संगीत के स्वर
- विकास-सिद्धांत
- न्याय-शास्त्र का महत्त्व
- संपत्ति-शास्त्र
- रेडियम
- मूँगा
- तार द्वारा ख़बर भेजना
- हिसाब लगानेवाला यंत्र
- कुछ आधुनिक आविष्कार
- रक्त-विज्ञान

नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

साहित्य-सुमन-माला के

स्थायी ग्राहकों के नियम

(१) स्थायी ग्राहक-सूची में नाम लिखानेवाले सज्जनों को प्रवेश-शुल्क के ॥) पेशगी भेजने पड़ेंगे।

(२) स्थायी ग्राहकों को माला में प्रकाशित सभी ग्रंथ पौने मूल्य पर दिए जायँगे। प्रत्येक ग्राहक ग्रंथ-माला की प्रकाशित पुस्तकों की प्रतियाँ अपनी इच्छानुसार एक से अधिक हर समय मँगा सकते हैं।

(३) नवीन पुस्तकों के प्रकाशित होने पर सूचना दी जायगी। १५ दिन तक पत्रोत्तर का आसरा देखकर वी० पी० लेना स्वीकार समझकर पुस्तकें वी० पी० से भेज दी जायँगी। पुस्तकें यथासाध्य ४-५ एक साथ भेजी जायँगी, जिससे ग्राहकों को डाक-ख़र्च की बचत होगी।

(४) नवीन पुस्तकों में ग्राहकों को सभी पुस्तकें लेना आवश्यक नहीं है। यह उनकी इच्छा पर निर्भर है। परंतु वर्ष-भर में कम-से-कम ५) की पुस्तकें लेना प्रत्येक ग्राहक को आवश्यक है।

(५) जिस ग्राहक के यहाँ से दो बार वी० पी० वापस लौट आएगी, उसका नाम स्थायी ग्राहक-सूची से पृथक् कर दिया जायगा।

(६) स्थायी ग्राहकों को नवलकिशोर-प्रेस से प्रकाशित हिंदी और उर्दू-पुस्तकें (रीडरों को छोड़कर) पौने मूल्य पर दी जायँगी।

नोट—हमारी प्रकाशित पुस्तकों का सूचीपत्र सूचना मिलने पर मुफ़्त भेजा जाता है।

आदेश-पत्र

सेवा में—

व्यवस्थापकजी, बुकडिपो, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ.

प्रिय व्यवस्थापकजी,

आपकी ग्रंथ-माला के उद्देश्य और विशेषताएँ तथा स्थायी ग्राहकों के नियम पढ़े। सब स्वीकृत हैं। मैं आपकी ग्रंथ-माला का स्थायी ग्राहक बनना चाहता हूँ। कृपया मेरा नाम स्थायी ग्राहक-सूची में लिख लीजिए। प्रवेश-शुल्क के ॥) मनीऑर्डर से भेजता हूँ / पहली वी० पी० में जोड़ लीजिए और नवीन पुस्तकें जो भी इस ग्रंथ-माला में प्रकाशित हों, उसकी सूचना नियमानुसार भेजते रहिए।

योग्य सेवा लिखिएगा।

भवदीय

[हस्ताक्षर कीजिए]

मेरा पता

[**नोट**—नाम और पता साफ़-साफ़ अक्षरों में लिखने की कृपा कीजिए]

लेख-सूची

पृष्ठ

१. विवशता (कविता)—[लेखक, श्रीयुत गोपालशरणसिंह ४१७
२. काव्य-साहित्य—[लेखक, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" ४१८
३. फूल-पत्ते (कविता)—[लेखक, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" ... ४२६
४. मसूरी (सचित्र)—[लेखक, श्रीयुत कुबेरनाथ पाठक ४२७
५. नेह-नाटक (कविता)—[लेखक, पं० रामशंकर शुक्ल "रसाल" एम्० ए० ... ४३८
६. रंगभूमि और वैनिटी फ़ेयर (२) [लेखक, श्रीयुत रुद्रनारायण अग्रवाल बी० ए० ... ... ४३८
७. उषा का आह्वान (कविता) —[लेखक, श्रीयुत बनवारीलाल विशारद ४५१
८. मिलन (कहानी)—[लेखक, पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र ४५३

पृष्ठ

९. सूक्ति-कुंडल (कविता)—[लेखक, श्रीयुत सत्यदेव परिव्राजक (जर्मनी) ... ४५८
१०. बिहारी की सतसई और उसके टीकाकार (२)—[लेखक, पं० किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री ४५९
११. मुकुर के प्रति (कविता)—[लेखक, श्रीयुत के० पी० दीक्षित 'कुसुमाकर' ... ४६३
१२. स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी 'दीन' (सचित्र)—[लेखक, श्रीयुत देवाचार्य देव ४६४
१३. दीपक-दीप्ति (कविता)—[लेखक, श्रीयुत कुमार प्रतापनारायण ४७४
१४. कालिदास का मदन-दहन—[लेखक, श्रीयुत सुमंगलप्रकाश ४७५
१५. पवित्र-परिवर्तन (कविता)—[लेखक, पं० रामसेवक त्रिपाठी ४८३
१६. चोर (कहानी)—[लेखक, श्रीयुत दामोदरदास ४८४
१७. भारतीय वीर-देवियाँ (कविता)—[लेखक, श्रीयुत "रसिकेंद्र" ४९२

سمن بغرض قرارداد امور تنقیح طلب

مقدمہ نمبر ۸۶ سنہ ۱۹۳۰ع دیوانی

عدالت جناب منصف صاحب بہادر صفیپور مقام اوناو

لالتاسنگھ ولد گجودھرسنگھ قوم ٹھاکر ساکن رتنپور مزرعہ دھرموپور پرگنہ ڈیرہپور ضلع کانپور مدعی

بنام جگناتھسنگھ وغیرہ

بنام جگناتھسنگھ و ہردیوسنگھ پسران لال شاہسنگھ قوم ٹھاکر ساکن موضع سادیپور پرگنہ بانگرمؤ ضلع اوناو مدعاعلیہ

واضح ہو کہ مدعی نے تمہارے نام ایک نالش بابت ۷۶۲ روپیہ کے دایر کی ہے لہذا تم کو حکم ہوتا ہے کہ تم بتاریخ ۷ سات ماہ نومبر سنہ ۱۹۳۰ع بوقت ۱۰ بجے پر اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل امورات اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھ کوئی اور شخص ہو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدہی دعوی مدعی مذکور کی کرو اور تم کو ہدایت کی جاتی ہے کہ جملہ دستاویزات کو جن پر تم بتائید اپنی جوابدہی کے استدلال کرنا چاہتے ہو پیش کرو *

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ہوگے تو مقدمہ تمہارے غیرحاضری میں مسموع اور فیصل ہوگا
آج بتاریخ ۹ ماہ اکتوبر سنہ ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاری کیا گیا *

تنبیہہ—اگر بیانات تحریری کی ضرورت ہو تو لکھنا چاہئے کہ تم کو (یا فلاں فریق کو جیسی صورت ہو) حکم دیا جاتا ہے کہ بیان تحریری معہ جملہ کاغذات بتاریخ ۳۱ ماہ اکتوبر سنہ ۱۹۳۰ع تک گذرانو

اگر کوئی عدالت بموجب آرڈر ۵ قاعدہ ۳ مجموعہ ضابطہ دیوانی مدعاعلیہ کی اصالتاً حاضری کی ضرورت سمجھے تو فارم (O-1) (یا O-2) استعمال کرے اور محض الفاظ "یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل امور اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھ کوئی اور شخص ہو کہ جواب ایسے سوالات کا دے سکے" قلمزد کر دے *

وقت حاضری بدفتر عدالت منصفی صفیپور مقام اوناؤ ۱۰ دس بجے سے ۴ چار بجے تک *

۹

पृष्ठ

१८. वायोलिन (सचित्र)—[लेखक, पं० गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इंद्र" ... ४६३

१९. कोकिल के प्रति (कविता)—[लेखक, पं० मातादीन शुक्ल साहित्यशास्त्री, काव्य-भूषण ४६७

२०. मयूर-नृत्य (कविता)—[लेखक, श्रीयुत शिवनंदनसहाय ४६७

२१. खोज (कविता)—[लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीनारायणसिंह "ईश" ४६७

२२. आलोचना और पुस्तक-परिचय—[लेखकगण, श्रीयुत वासुदेवशरण अग्रवाल एम्० ए०, साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ और श्रीयुत कालिदास कपूर एम्० ए०, एल्० टी० ... ... ४६६

२३. कृषि, शिल्प और वाणिज्य—[लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानंद वर्मा और श्रीयुत दुर्गादत्त जोशी... ... ... ५०५

२४. बाल-महिला-मनोरंजन—[लेखकगण, कुमारी सुशीला भल्ला "हियहार", श्रीयुत

Buy
only
Mohini
Flute

harmonium, known by its name. The only durable and reliable harmonium produced.

Price:—SINGLE REED. Rs. 25, 30, 35, 40. VIOLIN or FIDDLES From Rs. 12.

DOUBLE REED. Rs 40,50,60

CORNET from
Rs. 40.

CLARIONET—
Rs. 65.

Order with Rs. 5/- in advance and mention nearest Ry. Station. Catalogue on application.

MOHINI FLUTE Co.,
9-2, *Arpuli Lane, (I. R.)* Calcutta.

آرڈر ٥ رول ٢٠ ضابطہ دیوانی

سمن بغرض انفصال مقدمہ

مقدمہ نمبر ٦٨٧ سنہ ١٩٣٠ع خفیفہ

بعدالت جناب کنور رگھوراج بہادر صاحب بہادر منصف کنڈہ مقام پرتاب گڈھ

بلدیو ولد درشن برہمن تیواری ساکن موضع اسرھی پرگنہ رامپور تحصیل کنڈہ ضلع پرتاب گڈھ مدعی

بنام رامناتھہ

رامناتھہ ولد شنکر برہمن تیواری ساکن پورہ بنشی پرگنہ رامپور تحصیل کنڈہ ضلع پرتاب گڈھ مدعاعلیہ۔

ہرگاہ مدعی نے تمہارے نام ایک نالش بابت مبلغ ١١٣ روپیہ کے دایر کی ہے لہذا تم کو حکم ہوتا تم بتاریخ ٣١ اکتیس ماہ اکتوبر سنہ ١٩٣٠ع بوقت ١٠ دس بجے دن اصالتاً یا معرفت وکیل کے مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل امور اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا کے ساتھہ کوئی اور شخص ہو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدہی دعوی مذکور کی کرو اور ہرگاہ وہی تاریخ جو تمہارے احضار کے لئے مقرر ہی واسطے انفصال قطعی کے تجویز ہوئی ہے پس تم کو لازم ہے که اپنے جراب دعوی کی تائید میں جن گواہوں کی پر یا جن دستاویزات پر تم استدلال کرنا چاہتے ہو اسی روز ان کو پیش کرو*

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ہوگے تو مقدمہ بغیر حاضری تمہارے مسموع اور فیصل ہوگا*

آج بتاریخ ٧ ماہ اکتوبر سنہ ١٩٣٠ع میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاری کیا گیا*

جج

पृष्ठ

गौरीशंकर 'शांत, श्रीयुत बच्चनप्रसाद-सिंह, श्रीयुत फणींद्र और श्रीयुत मंगलदेव शर्मा जर्नलिस्ट ५११

२५. साहित्य और विज्ञान—[लेखक, पं० कामताप्रसाद गुरु एम्० आर० ए० एस्० और श्रीयुत केशवप्रसाद वर्मा ५२०

२६. जीवन-ज्योति—[लेखकगण, श्रीयुत विश्वेश्वर ब्रह्मचारी, श्रीयुत के० एल्० तैलंग और श्रीयुत धन्नूलाल शर्मा बी० ए०, बी० एल्० ... ... ५२९

२७. संगीत और विनोद—[लेखक. श्रीयुत गौरीशंकर सिंह संगीत-शिक्षक और श्रीयुत राजाराम त्रिपाठी विशारद ५३९

२८. सुमन-संचय—[लेखकगण, श्रीमती सुशीलादेवी त्रिपाठी, श्रीयुत आत्माराम देवकर, श्रीयुत यदुनंदनप्रसाद "नवल", श्रीयुत "सम्राट्", पं० जगन्नाथप्रसाद मिश्र बी० ए०, बी० एल्०, श्रीयुत केदारनाथ अग्रवाल "बालेंदु", श्रीराजेश्वरीप्रसाद, श्रीयुत कृष्णचंद्र मुग्दल "दुःखित" और श्रीयुत मुकुंदीलाल गुप्त ५४१

चित्र-सूची

१—रंगीन

१. पाकशाला

२. हंस-दमयंती

२—व्यंग्य-चित्र

पृष्ठ

१. वेतन में न्यूनता ४५२

२. गोलमेज़-सभा के लिये आयोजन ... ४९८

इजलास जनाब ठाकुर सुरेंद्रविक्रमसिंह साहब बहादुर मुंसिफ़ रायबरेली ब अख्तियार ख़फ़ीफ़ा।

समन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़दमा

मुक़दमा नं० १२५० सन् १९३० ई०

अदालत मुंसिफ़ रायबरेली मुक़ाम रायबरेली।

यदुनन्दन नायक व महादेवप्रसाद क़ौम बरहमन साकिन गिरधरपूर उवौहया परगना मवापार ज़िला गोरखपूर...मुद्दई

बनाम

बलकरनसिंह..मुद्दाअलेह

बनाम बलकरनसिंह व छेदासिंह साकिन सिघनामऊ परगना जगदीसपूर ज़िला सुलताँपूर।

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत ८८)॥ के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम तारीख़ २१ माह नवम्बर सन् १९३० ई० बवक़्त १० बजे असालतन् या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रारवाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ १३ माह अक्तूबर सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

अज

वक़्त हाज़िरी मुंसिफ़ी रायबरेली १० से ४ बजे तक।

डॉ० आई० एम्० मल्लिक्स (एम्० ए०, एम्० डी०, बी० एल०) पेटेंट

इक-मिक-कुकर

शुद्ध, स्वस्थ, गर्म और स्वादिष्ठ भोजन के लिये

नई ईजाद, उपयोगी और साइंटिफ़िक तरीक़े से बना हुआ

भोजन की ५ चीज़ों को एक साथ एक घंटे में बिना देखे-भाले
१ पैसे की लागत के ईंधन में तैयार करता है।

सबसे अच्छा, सादा, हाथ में रखनेवाला, कम ख़र्च

सफ़र करनेवालों के लिये एक ज़रूरी चीज़ है और जिन्हें भोजन आसानी से नहीं पचता है, उनके लिए एक न्यामत है।

आज ही आर्डर दें।

मैनेजर,
टेली ग्राम "Ic Mic Cooker" फ़ोन "B. B. 859"
इक-मिक-कुकर्स लिमि०
२६, कालेज स्ट्रीट, कलकत्ता
पो० बा० नं० ७८०३
बऊबाज़ार पो० आ०

समन बग़रज़ क़रारदार उमूर तनक़ीह तलब

मुक़द्दमा नम्बर २१७ सन् १९३० ई०

अदालत श्रीमान् पंडित प्यारेलाल भार्गव साहब बहादुर मुंसिफ़ जनूबी हरदोई मुक़ाम हरदोई।

सालिकराम मु० रामसिरी वग़ैरा

बनाम

मानकचन्द वल्द लाला दयालदास रस्तोगी दुकानदार शहर फ़र्रुख़ाबाद मुहल्ला पुरी खयालीराम ज़िला फ़र्रुख़ाबाद मुद्दा

वाज़े हो कि मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत् ७३५) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है तुम बतारीख़ २१ माह ११ सन् १९३० ई० वक़्. १० पर असालतन् या मारफत वकील के जो मुक़द्दमे के हा क़रार वाक़ई वाकिफ़ किया गया हो और जो कुल उमूरात अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमा का जवाब दे सके या कि साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़कूर करो और तुमको हिदायत की जाती है कि जुमला दस्तावेज़ात को जिन पर बताईद तुम अपनी जवाबदि इस्तदलाल करना चाहते हो पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा तुम्हारी ग़ैरहाज़िरी में मसमू फ़ैसल होगा।

आज बतारीख़ २६ माह १० सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत से ज़ारी किया गया।

जज

वक़्. हाज़िरी बदफ़्तर १० बजे से ४ बजे तक

तुरंत मँगाइए !   मूल्य में ख़ास कमी !!   तुरंत मँगाइए !!!

"माधुरी" के प्रेमी पाठकों के लिये सुविधा !

नीचे लिखी हुई संख्याएँ भी मिल सकती हैं—

प्रथम वर्ष की संख्याएँ

(नोट—इन संख्याओं में बड़े ही सुंदर चित्र और हृदयग्राही लेख निकले हैं)

इस वर्ष में पहली, दूसरी, चौथी, पाँचवीं, सातवीं संख्याओं को छोड़कर शेष सभी संख्याएँ (१ से लेकर १२ तक) मौजूद हैं। किंतु बहुत ही थोड़ी तादाद में हैं। इस प्रथम वर्ष की संख्याओं की धूम सारे भारतवर्ष में हो चुकी है। ३, ६, ८ वीं संख्याओं में से हरएक का मूल्य न्योछावर-मात्र १) होगा। ९, १०, ११, १२ का मूल्य प्रति संख्या ॥।) होगा। इस वर्ष का पहला सेट नहीं है। दूसरा सेट ६) रु०।

दूसरे वर्ष की संख्याएँ

इस साल की १३ से लेकर २४ तक सभी संख्याएँ मौजूद हैं। जिन प्रेमी पाठकों को ज़रूरत हो, तुरंत ही मँगा लें। क़ीमत प्रत्येक संख्या की ॥।=); इन संख्याओं के सुंदर सुनहरी जिल्दवाले सेट भी मौजूद हैं। बहुत थोड़े सेट शेष हैं, तुरंत मँगाइए। अन्यथा बिक जाने पर फिर न मिलेंगे। मूल्य फ़ी सेट ५) रु०।

तीसरे वर्ष की संख्याएँ

इस वर्ष में २६, २९, ३०, ३४, ३५ और ३६ वीं संख्या को छोड़कर बाक़ी (२५ से ३६ तक) सब संख्याएँ मौजूद हैं। प्रत्येक का मूल्य ।॥) है। जो संख्या चाहिए मँगाकर अपनी फ़ाइल पूरी कर लें। इन संख्याओं के बहुत थोड़े जिल्ददार सेट बाक़ी हैं। जिन सज्जनों को चाहिए ५) फ़ी सेट के हिसाब से मँगवा लें। दोनों सेट एक साथ लेने पर ८॥) में ही मिल सकेंगे।

चौथे वर्ष की संख्याएँ

२७ से ४८ संख्या तक सभी संख्याएँ मौजूद हैं। मूल्य प्रति संख्या ॥।) है। इस वर्ष के भी जिल्ददार बहुत ही सुंदर सेट मौजूद हैं। मूल्य फ़ी सेट ५) रु०।

पाँचवें वर्ष की संख्याएँ

४९ से ६० तक, सभी संख्याएँ मौजूद हैं। मूल्य प्रति संख्या ॥=) आना।

छठे वर्ष की संख्याएँ

इस वर्ष में ६६ वीं संख्या को छोड़कर शेष सभी संख्याएँ (१ से लेकर ११ तक) मौजूद हैं। मूल्य प्रति संख्या ॥=) आना।

मैनेजर "माधुरी" नवलकिशोर-प्रेस, हज़रतगंज, लखनऊ।

समन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नम्बर ६७५ सन् १६३० इब्तिदाई ख़फ़ीफ़ा ।

बअदालत ख़फ़ीफ़ा मुंसफ़ी तरबगंज मुक़ाम गोंडा ।

केशोराम वल्द कामताप्रसाद क़ौम बरहमन गाँव लौसीला परगना गोंडा ज़िला गोंडा

मुद्दई

बनाम

भवानीप्रसाद

मुद्दाअलेह

बनाम भवानीप्रसाद वल्द रामनाथ बरहमन शुकुल गाँव बेलवा शुकुल परगना गोंडा ज़िला गोंडा वारिदहाल हैदराबाद सिंध

मुद्दाअलेह

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत् २२७=)॥ के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ ११ ग्यारह माह नवम्बर सन् १६३० ई० बवक़्त १० असालतन् या मारफ़त वकील के जो मुक़द्दमे से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावै मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताइद में जिन गवाहों की शहादतपर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो ।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मसमू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ २० माह अक्तूबर सन् १६३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

वक़्त हाज़िरी बदफ़्तर मुक़ाम तरबगंज मुकाम गोंडा १० बजे से ४ बजे तक ।

समन क़तई

मुक़द्दमा नम्बर ६५ सन् १६३० ई०

अदालत पंडित हरीशंकर चतुर्वेदी मुंसिफ़ साहब बहादुर जनूबी मुक़ाम उन्नाव ।

अयोध्याप्रसाद वल्द अँगनू क़ौम बरहमन साकिन खुटहा नौगवाँ परगना हड़हा ज़िजा उन्नाव ....मुद्दई

बनाम

पंडित शिवसहाय वग़ैरह मुद्दाअलेह

१—पंडित शिवसहाय वल्द रामचरन बरहमन साकिन घाटमपुर परगना घाटमपुर ज़िला उन्नाव । } मुद्दाअलेह
२—पुतान वल्द गंगा बरहमन साकिन शहर कानपुर मोहल्ला चौक सराफ़ा ।

वाज़े हो कि मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत् मंसुखी पुरोनोट के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ २० बोस माह नवम्बर सन् १६३० ई० वक़्त १० दस बजे पर असालतन् या मारफ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूरात अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमा का ज़वाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और तुमको हिदायत की जाती है कि जुमला दस्तावेज़ात को जिन पर तुम बताईद अपनी जवाबदिही के इस्तदलाल करना चाहते हो पेश करो ।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा तुम्हारी गैरहाज़िरी में मसमू और फ़ैसल होगा ।

आज बतारीख़ २७ माह अक्तूबर सन् १६३० ई० मेरे दस्तख़त और मोहर अदालत से ज़ारी किया गया ।

जज

वक़् हाज़िरी बदफ़्तर मुंसफ़ी जनूबी मुकाम उन्नाव १० से ४ बजे तक ।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, संयुक्त-प्रांत, प्रयाग

से प्रकाशित ग्रंथ

१

मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था

लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह युसुफ़ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्० । सुंदर छपाई, बढ़िया कागज़, कपड़े की जिल्द, रायल साइज़ के १०० पृष्ठ, उर्दू या हिंदी संस्करण, मूल्य १।)

२

मध्यकालीन भारतीय संस्कृति

लेखक, राय बहादुर महामहोपाध्य पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सुंदर छपाई, बढ़िया कागज़, कपड़े की जिल्द, रायल साइज़ के २३० पृष्ठ तथा २४ हाफ़टोन चित्र, मूल्य ३)

३

कवि-रहस्य

लेखक, डा० गंगानाथ झा । सजिल्द, रायल साइज़ के ११६ पृष्ठ, मूल्य १।)

४

चर्म बनाने के सिद्धान्त

लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी० । सचित्र, आयवरी फ़िनिश पेपर, कपड़े की जिल्द, रायल साइज़ के २०४ पृष्ठ, मूल्य ३)

५

हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट

लेखक, राय बहादुर लाला सीताराम बी० ए० । मूल्य १॥)

६

जन्तु-जगत

लेखक, बाबू ब्रजेशबहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी० । सचित्र मूल्य ६॥)

ये पुस्तकें छप रही हैं

१

हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता

लेखक, डा० बेनीप्रसाद, एम्० ए०, डी० एस्-सी०।

२

अरब और भारत के संबंध

लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

३

वेलि क्रिसन रुकमणी री राठौड़राज प्रिथीराज री कही—संपादक, श्रीयुत सूर्यकरण पारीक।

४

धोखा-धड़ी

(Skin Game by J. Galsworthy)—अनुवादक, पंडित ललिताप्रसाद शुक्ल, एम्० ए०।

नाटक

५

चाँदी की डिबिया

(Silver Box by J. Galsworthy)—अनुवादक, बाबू प्रेमचंद, बी० ए० मूल्य १॥)

नाटक

६

न्याय

(Justice by J. Galsworthy) अनुवादक, बाबू प्रेमचंद, बी० ए०।

मिलने का पता—**हिन्दुस्तानी एकेडेमी यू० पी०**

इलाहाबाद

७ मुख्य विशेषताएँ

"इंकोग्राफ्स" को बेचो

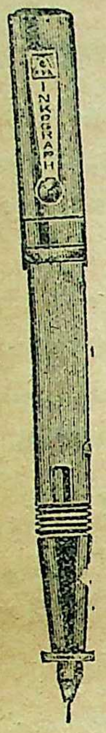

१. यह एक सुन्दर, आसानी से और आराम के साथ और साथ ही सबसे तेज़ लिखनेवाली क़लम है।

२. यह असल के साथ ही एक ही बार में तीन या चार कारबन की कापी भी निकालती है।

३. इसकी रोशनाई बराबर निकलती है और आप चाहे जितनी तेज़ी से लिखिए आपको लिखते हुए कभी रुकना न पड़ेगा।

४. आप चाहे जिस तरीक़े से लिखिए इसकी गोलाकार १४ कैरेट गोल्ड की लिखने की क़लम न झुकेगी, न फैलेगी और न ख़राब होगी।

५. इससे आप लाइनें खींच सकते हैं।

६. लिखना और अच्छा हो जाता है।

७. यह क़लम बड़ी कारीगरी का नमूना है और ज़िन्दगी भर काम देने के लिए विज्ञान की सबसे नवीन ईज़ादों से यह बनाई गई है। साथ ही इससे मसाले की ख़राबी के लिए हम १० वर्ष की गारंटी भी करते हैं जो गारंटी कभी किसी क़लम के लिए नहीं की गई है।

मारके	क़ीमत		
नं० १४ बी	६),	नं० ३ यक्स	१०)
,, १४ एम्० एक्स	१२),	,, १७ ,,	१४)
,, ६ एक्स	१५),	,, १५ एम् यक्स	१४)

पोस्टेज और पैकिंग अलग

मेसर्स जे० जे० शाह ऐंड सन्स
पो० बा० नं० २१८३,
कालबादेवी रोड, बम्बई

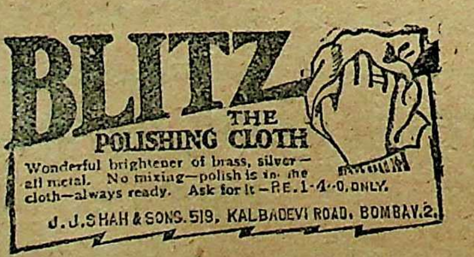
BLITZ THE POLISHING CLOTH
Wonderful brightener of brass, silver—all metal. No mixing—polish is in the cloth—always ready. Ask for it—RE. 1-4-0. ONLY.
J. J. SHAH & SONS. 519, KALBADEVI ROAD, BOMBAY.2.

इनलार्जमेंट के साथ मुफ़्त

हर एक इन्लार्जमेंट के साथ हम एक सुन्दर पोर्से प्लेट मीनिएचर (Procelette Miniature) जो ब्रोचेज़ (Brooches) आदि में लगाने यो होते हैं, उन लोगों को बिलकुल मुफ़्त देंगे जो अप आर्डर के साथ इसका कटिंग भेजेंगे। इन्लार्जमेंट किसी फोटोग्राफ से किया जायगा फिर वह चा जितना छोटा, पुराना या बिगड़ा हो, "१६×२० का कनवस के ऊपर रोशनाई का चार्ज १२॥) Ric Sepia पर १५) वाटर कलर जिसमें कई रंग हों उसका २५) आपको संतोष होने की गारंटी होगी असल वैसी ही वापस दी जायगी। आधा चा पेशगी।

पता—

यूनिवर्सल फोटो इन्लार्जिंग कं
पो० बा० नं० २१८३, म० ल०।
कालबादेवी बम्बई नं० २

रैपिड डुप्लीकेटर

इसमें १० मिनट में १०० सुंदर साफ़ कापी निकलती हैं एक या कई में भी निकाली जा सकती हैं। रोश या रोलर लगाने की ज़रूरत नहीं। ख़र्चा नहीं होता। कुछ इंतिज़ार की रत नहीं। स्टेंसिल का काम नहीं कोई पुराना तरीक़ा इसमें नहीं है। काग़ज़ पर आप लिखिए, या टाइप कर लीजि कोई तसवीर बना लीजिए और आपको १० मि बिला तकलीफ़ के १०० कापी तैयार मिल जा यह अन्य किसी बेशक़ीमती मशीन से अच्छी है सौदागरों, बैंकों, दलालों, क्लबों, कालेजों, रेलवे आदि के लिए विशेष उपयोगी है।

केवल फुलिस्केप साइज़ मय सब सामान दा पैकिंग और पोस्टेज अलग। ५) पेशगी

मेसर्स जे० जे० शाह ऐंड स
पो० बा० २१८३, एम्० एल्० कालबादे
बम्बई नं० २

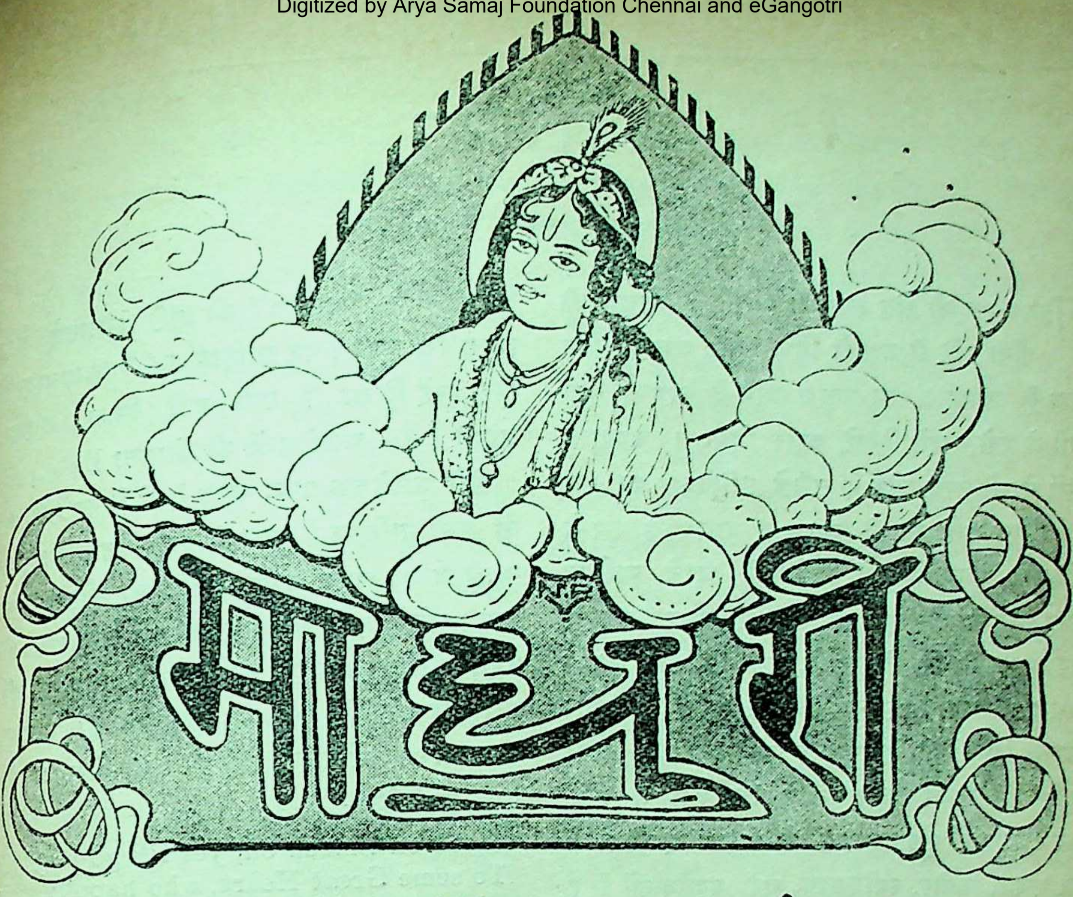

अध्यक्ष—श्रीविष्णुनारायण भार्गव

वर्ष ९ खंड १ | कार्त्तिक, ३०७ तुलसी-संवत् (१९८७ वि०) | संख्या ४ पूर्ण संख्या १००

विवशता

तुम चाहते हो न हमें दिल से,
यह तो न किसी से बताया करो;
हमको तुम नाहक दोष न दो,
कुछ और ही बात बनाया करो।

इतनी तो दया दिखलाया करो,
तुम नाथ ! हमें न भुलाया करो;
तरसाया करो तड़पाया करो,
कलपाया करो पर आया करो।

गोपालशरणसिंह

काव्य-साहित्य

मनुष्य-मन की श्रेष्ठ रचना काव्य है । विचार की ऊँची दृष्टि से उसकी निष्कलुषता तक पहुँचकर शब्दब्रह्म से उसका संयोग प्रत्यक्ष करने के पश्चात् यहाँ के लोगों ने उसे ब्राह्मी स्थिति क़रार दिया । अन्यान्य देशवालों ने भी तरह-तरह के तरीक़े इख़्तियार कर एक अप्रत्यक्ष दिव्य शक्ति को ही काव्य के कारण के रूप से सिद्ध किया । काव्य में यदि कोई कवि अपने व्यक्तित्व पर ख़ास तौर से ज़ोर देता हो, तो इसे उसका अक्षम्य अहंकार न समझ, मेरे विचार से, उसकी विशाल व्याप्ति का साधन समझना निरुपद्रव होगा । कारण, अहंकार को घटाकर मिटा देना जिस तरह पूर्ण व्याप्ति है—जैसा भक्त कवियों ने किया, उसी तरह बढ़ाकर भूमा में परिणत कर देना भी पूर्ण व्याप्ति है—जैसा ज्ञानियों ने किया । शंकर, कबीर, रवींद्रनाथ, गेटे बढ़नेवालों में हैं और तुलसीदास, सूरदास तथा अपर भक्त कवि आदि अहंकार की भूमि से घटनेवालों में, दोनों जैसे एक ही शक्ति की अणिमा और द्राघिमा विभूति हों । काव्य के विचार के लिये भाषा, भाव, रस, अलंकार आदि आलोचक के लिये यथेष्ट शस्त्र हैं । विचार केवल काव्य का उचित है, न कि अन्य असंगत बातों का ।

जिस तरह कवियों पर एकदेशीयता के दोष लगाए जाते हैं, उसी तरह प्रायः अधिकांश आलोचक भी अपने ही विवर के व्याघ्र बने बैठे रहते, अपनी ही दिशा के ऊँट बनकर चलते हैं । जैसे, हिंदी-साहित्य की पृथ्वी पर अब व्रजभाषा का प्रलय-पयोधि नहीं है, वह जलराशि बहुत दूर हट गई, राष्ट्रभाषा के नाम से उससे जुदा एक दूसरी ही भाषा ने आँख खोल दी, पर "धृतवानसि वेदम्" के भक्तों की नज़र में अभी यहाँ वही सागर उमड़ रहा है । नहीं मालूम, "बेवक़ की शहनाई" के और क्या अर्थ हैं । एक समस्या पर ५२ ज़िले के कवि ढेर हो जाते हैं । "प्रेमचंद"जी के उपन्यासों ने नई जान डाल दी, भाषा का सरल संगत प्रवाह बहा दिया, "प्रसाद" जी की प्रतिभा के सूर्य का मध्याह्नकाल हो गया । "पंत"जी के "पल्लव" की परी सोलहवें साल क़दम रख चुकी ; पर साहित्य का मंगलाप्रसाद पारि षिक इन्हें मिला ? क्यों नहीं मिला, कारण जानते हैं ?—आलोचकों की योग्यता !!!

ऐसे आलोचक प्रायः सभी देशों में रहते हैं । हि तो अभी बालिका है, उसकी इज़्ज़त नहीं की जाती न की जाय ; समय उसके सेवकों को और बड़ा पुरस्कार देगा । अँगरेज़ी, जिसके प्रतापका सूर्य कभी अस्त होता नहीं, ऐसे सदाशयों से ख़ाली नहीं । टामस हार्डी अ उस दिन मरे हैं । तब भी साहित्य की पताका ए तरह आकाश में फहरा रही थी । पर तिरस्कार के हार्डी कहते हैं—

"Mock on ! mock on, yet I'll go pray
To some Great Heart, who happily may
Charm mental miseries away."

(हँसो, मजाक़ करो, फिर भी मैं किसी महान् आ से प्रार्थना करता जाऊँगा जो कदाचित् मानसिक दु को अपनी प्रभा से चकित कर हटा सकती है ।)

बंगाल में जब रवींद्रनाथ की प्रतिभा की कि सत्साहित्यिकों के हृदय के कमलों को खोल रही थीं सब लोग उनकी प्रशंसा करने लगे थे, उस समय कि विरोध हुआ था ! रवींद्रनाथ ने एक पद्य में इ कैफ़ियत दी थी । उसमें उनके कवि-हृदय का क स्रोत ही फूट पड़ा है ।

"अश्रु झलिछे शिशिरेर मत,
पोहाइये दुख-रात !"

[ये आँसू हैं, मित्र, (शब्द नहीं) जो ओस की तरह दुःख की रात पार कर अब चमक रहे हैं ।]

"जान कि बंधु, उठियाछे गीत
कतो व्यथा भेद करि ।"

(हे मित्र, क्या तुम जानते हो, ये गीत कि व्यथा पार कर निकले हैं ?)

एक दिन सुमित्रानंदन को भी आलोचनाओं से ऊ कर भवभूति की तरह इस भाषा में लिखना पड़ा

"न पिक-प्रतिभा का कर अभिमान,
मनन कर मनन, शकुनि नादान !"

गोस्वामी तुलसीदास को इन आलोचकों से कम घबराहट न थी।

"भाषा-भनित मोरि मति थोरी।
हँसिबे ज़ोग हँसे नहिं खोरी।"

ज़रा सोचिए तो, समालोचकों की किस वृत्ति का इन पंक्तियों से परिचय मिलता है। श्रीहर्ष के मामा ने कहा, मैंने काव्य के दोष-दर्शन के लिये व्यर्थ ही इतना परिश्रम किया, तुम्हारे नैषध में सब दोष एकत्र मिल जाते हैं। और यह वह नैषध है, संस्कृत-साहित्य में जिसकी जोड़ का दूसरा काव्य-ग्रंथ है ही नहीं, जिसके उदय से किरातार्जुनीय और शिशुपाल-वध-जैसे महाकाव्यों की प्रभा मंद पड़ गई। आलोचकों की कृपा जिन पर नहीं हुई, ऐसे भाग्यवान् कवि संसार में थोड़े ही होंगे।

जिन तीन साहित्य-रथियों का मैं ज़िक्र कर चुका हूँ, "प्रेमचंद"जी, "प्रसाद"जी और "पन्त"जी, वे कृति तैयार करनेवाले हैं, उनकी आलोचनाएँ कैसी भी हों, वे आलोचनाओं से पहले हैं, पीछे नहीं। आज भी हिंदी-साहित्य के व्याकरण की निंदा होती है, महात्मा गांधी-जैसे श्रेष्ठ मनुष्य का कहना है कि यू० पी० वालों की भाषा ठीक नहीं होती—अगर कोई ऐसे हैं, तो महात्माजी को इसका ज्ञान नहीं, पर इससे हिंदी-साहित्य की प्रगति नहीं रुक रही, और भाषा के व्याकरण पर दोष देनेवालों की दिक़तें भो, बामुहाविरा हिंदी लिखनेवाले यू० पी० के बड़े-बड़े साहित्यिकों को, जिन्हें अपर दो-एक साहित्यों के व्याकरण का भी ज्ञान है, मालूम हो जाती हैं। इसके कारण के लिखने की यहाँ जगह नहीं। मैं सिर्फ़ यही कहूँगा कि व्याकरण जिस तरह भाषा का अनुगामी है, समालोचक उसी तरह कृति का। कृति की दुर्दशा करके, यदि उस कृति के फूल खुले हैं और उनमें सुगंध है, समालोचक अपना जितना भी ज़बरदस्त ठाट खड़ा करे, वह कभी टिक नहीं सकता। इसलिये समालोचक को कृति के साथ ही रहना चाहिए। "प्रसाद"जी की आजकल जैसी आलोचनाएँ निकल रही हैं, उनमें अस्सी फ़ी सदी आलोचना सहानुभूति से रहित और आक्रमण है। पंडित रामचंद्र शुक्ल की "काव्य में रहस्यवाद" पुस्तक उनकी आलोचना से पहले उनके अहंकार, हठ, मिथ्याभिमान, गुरुडम तथा रहस्यवादी या छायावादी कवि कहलानेवालों के प्रति उनकी अपार घृणा सूचित करती है। ऐसे दुर्वासा-समालोचक कभी भी किसी कृति-शकुंतला का कुछ बिगाड़ नहीं सके, अपने शाप से उसे और चमका दिया है।

फूल का मुख्य गुण है उसकी सुगंध, कृति का मुख्य गुण उसकी रोचकता। पर जिस तरह चीनियों को घी में बदबू मिलती है और सोड़े में डुबोकर जीते हुए तिलचट्टे खाने में स्वाद, उसी तरह यदि पूर्वोक्त-जैसे कृतिकारों की रचनाएँ किसी को रुचिकर प्रतीत न हों और गुणों की गणना से दोषों की ही संख्या बढ़ रही हो, तो संदेह उन्हीं की रुचि-योग्यता पर होगा, जो एक हिंदुस्थानी चीज़ को अँगरेज़ी चीज़ (Cheese—पनीर) बना डालते हैं (कहते हैं, जिस पनीर में कीड़े पड़ जाते हैं—सड़कर बदबू आने लगती है, वह खाने में ज़्यादा स्वाददार समझी जाती है, कारण, कीड़े कुछ मीठे होते हैं)। दूसरा कारण यह भी है कि "उग्र"जी की कृति पढ़कर समालोचक अपनी आलोचना की तोप में बर्नार्डशा, डी० एल्० राय और रोमाँरोलाँ को भरकर दागते हैं। "उग्र"जी भी बर्नार्डशा होते यदि आपका समाज अँगरेज़ों के समाज की तरह शिक्षा तथा सभ्यता की उतनी ही सीढ़ियाँ तय किए हुए होता। रही बात योग्यता की, सो "उग्र"जी की योग्यता का पता लगाने से पहले बर्नार्डशा की ही योग्यता का पता लगाकर बतलाइए कि वह किस विश्व-विद्यालय से Ph. D होकर निकले हैं, जो यह फ़िलासफी छाँट रहे हैं, और कहाँ के वह साहित्य के डाक्टर हैं, जो नोबेल-पुरस्कार प्राप्त कर लिया। जैसे उनके लिये अँगरेज़ी सुगम है, वैसे ही "उग्र"जी के लिये हिंदी; उनके अँगरेज़ी के चित्र, अँगरेज़-समाज के परिचायक हैं, "उग्र"जी के हिंदी के चित्र हिंदी-समाज के परिचायक। आपको अच्छा न लगे, तो चीन या विलायत चले आइए, यहाँ क्यों व्यर्थ घी की बदबू में सड़ रहे हैं ?

कृतिकार कहाँ से सौंदर्य, सत्य और भावना पाता है, यह भारतीयों के स्वर से कंठ मिलाकर राबर्ट ब्रिजेज़ ने कहा है—

"Thy work with beauty crown,
thy life with love ;

Thy mind with truth uplift to God above;
For whom all is, from whom was all begun;
In whom all Beauty, Truth and Love
are one."

(तुम्हारी कृति सौंदर्य-किरीटिनी हो, तुम्हारा जीवन सप्रेम; तुम्हारा मन सत्य के साथ ऊपर ईश्वर तक चढ़ा हुआ हो; जिसके लिये ही सब कुछ है, जिससे सब शुरू हुआ, जिसमें सब सौंदर्य, सत्य और प्रेम एक है।)

सत्य या ईश्वर ही का वह रंग है, जो रस के रूप से कृतिकार की आत्मा के भावों की तरंग को पाठक की आत्मा से मिला देता है। अनेक प्राणों में एक ही प्रकार की सहानुभूति, एक ही मधुर राग बज उठता है। ब्रिजेज़ के ये भाव भारत के हृदय में चिरंतन सत्य की प्रतिष्ठा पा रहे हैं। इन पंक्तियों में सत्य का जो सूत्र है, उससे भारत और इँगलैंड बँधा हुआ है। दोनों आत्माएँ एक हैं, जातिगत कोई भी वैषम्य यहाँ नहीं।

प्रिया के चित्र को कितनी ख़ूबसूरती से कविवर विलियम् शेक्सपियर खींचते हैं! देखिए—

"Mine eye hath play'd the painter and
hath stell'd
Thy beauty's form in table of my heart;
My body is the frame where in it is held,
And perspective it is best painter's art.
For through the painter must you see
his skill,
To find where your true image pictured lies,
Which in my bosom's shop is hanging still,
That hath his windows gazed with
thine eyes.
Now see what good turns eyes for eyes
have done;
Mine eyes have drawn thy shape, and
thine for me
Are windows to my breast................"

(मेरी आँखों ने चित्रकार का काम किया। तुम्हारे सौंदर्य की तस्वीर मेरे हृदय की मेज़ पर रख दी। मेरा शरीर उसका साँचा है, जिसके अंदर वह रक्खी है। शीशे के अंदर से देख पड़ती हुई-सी वह सर्वश्रेष्ठ चित्रकार की कला है; क्योंकि उस चित्रकार के भीतर से तुम अवश्य उसकी कुशलता प्रत्यक्ष कर लोगी। तुम स लोगी, कहाँ तुम्हारी सच्ची मूर्ति खिंची हुई रक्खी वह तस्वीर मेरे हृदय की दूकान में निस्तब्ध लटक है, जिसे देखने के झरोखे तुम्हारी हेरती हुई आँखें अब देखो कि आँखों ने आँखों को कैसा बदला दि मेरी आँखों ने तुम्हारी तस्वीर खींच ली, और तुम्ह आँखें मेरे लिये मेरे हृदय की खिड़कियाँ हैं।) कि कमाल है!

"लोचन-मगु रामहिं उर आनी।
दीन्हे पलक-कपाट सयानी।"—

में स्नेह का प्रकाश तो है, पर इतना बड़ा सौं अवश्य नहीं। क्या इस तरह के भाव को, यदि इ दो एक कारण—जैसे, मेज़ का उल्लेख है, हटा दि जायँ, तो क्या किसी भारतीय के लिये अपनी कहने में कोई असुविधा हो सकती है? इस प्रकार एक उक्ति और याद आई—

"नयन झरोखे बैठि कै, सबको मुजरा लेय।
जाकी जैसी चाकरी, ताको तैसो देय।"

भावों की उच्चता पर कुछ भी नहीं कहना, पर क की जो ख़ूबसूरती शेक्सपियर में है, वह इसमें नहीं। इस तरह के भाव—"तेरे नैनन-झरोखे झाँकता सो कौन है" अनेक लड़ियों में गुँथे मिलते हैं। हिंदी में कहीं मैंने शेक्सपियर की-सी पढ़ी है, मुझे स्मरण नहीं। प्रिया और प्रियतम के का आदान-प्रदान इस तरह की उक्तियों से बढ़ा दि जाता है, इसलिये सांसारिक दृष्टि से इस कला को बड़ा महत्त्व प्राप्त है।

"I fear thy kisses, gentle maiden,
Thou needest not fear mine,
My spirit is too deeply laden
Ever to burthen thine,
I fear thy mien, thy tones, thy moti
Thou needest not fear mine;
Innocent is the heart's devotion
With which I worship thine."
—P. B. Shelley.

(हे धीर कुमारी, मुझे तुम्हारे चुंबनों से भ पर तुम्हें मेरे चुंबनों से नहीं घबराना चाहिए,

मेरी शक्ति इतनी दबी हुई है कि वह तुम्हारी शक्ति का भार नहीं सँभाल सकती ।

मैं तुम्हारी छवि, वाणी और गति से डरता हूँ, पर तुम्हें मेरी चेष्टाओं से नहीं डरना चाहिए; क्यों ? हृदय के जिस अर्घ्य से मैं तुम्हें पूजता हूँ, वह निर्दोष है ।)

शेली की इन पंक्तियों में, कविता-कुमारी की साधना कर वह कितना कोमल बन गया था, इसका प्रमाण मिल जाता है । प्रायः कवियों को हम कुमारियों की पूजार्चना करते हुए, अनेक प्रकार की स्तुतियों से उन्हें प्रसन्न करते हुए देखते हैं । पर शेली अपनी सुंदरी कुमारी की छवि, शब्द तथा गति से भी डरता है, जैसे कुमारी की गति से उसी के सुकुमार प्राण काँप उठते हों—इतनी कोमलता ।

कल्पनामय, शब्दों में प्रांजल रवींद्रनाथ—

"अलख निरंजन—
महारव उठे बंधन टूटे
करे भय-भंजन ।
वक्षेर पाशे घन उल्लासे
असि बाजे झंझन ।
पंजाब आजि उठिले गरजि—
"अलख निरंजन ।"
एसेछे से एक दिन
लक्ष पराणे शंका ना जाने
ना राखे काहारो ऋण ।
जीवन मृत्यु पायेर भृत्य
चित्त भावनाहीन ।
पंच नदीर घिरि दशतीर
एसेछे से एक दिन ॥
दिल्ली-प्रासाद-कूटे
होथा बार-बार बादशाजादार
तंद्रा जेतेछे छुटे ।
कोदेर कंठे गगन मंथे
निविड़ निशीथ टूटे,
कादेर मशाले आकाशेर भाले
आगुन जेसेछे फुटे ॥

("अलख निरंजन" महान रव उठता, बंधन टूट जाते, भय दूर हो जाता है । कटि में सोल्लास असि झन-झन बज रही है । आज पंजाब "अलख निरंजन" गरज उठा ।

वह भी एक दिन था, जब लाखों प्राण शंका नहीं जानते थे । किसी का ऋण नहीं रखते थे । जीवन और मृत्यु पैरों के भृत्य-से थे, चित्त चिंता से रहित । पाँचों नदियों के दसों तट घेरकर वह भी एक दिन आया था ।

दिल्ली के प्रासाद-कोट में बार-बार बादशाहज़ादे की आँख खुल रही है । आधी रात के स्तब्ध आकाश को मथता हुआ यह किनका कंठ है ?—आकाश के भाल पर फूटती हुई यह किनके मशालों की आग है ?)

कल्पना, चित्रण तथा ओज एक ही पद्य में मिल जाता है, पढ़कर हृदय की काव्य-तृष्णा मिट जाती है । हिंदी में यदि चारों ओर से परकोटा घेरकर अन्य देशों तथा अन्य जातियों की भावराशि रोक रक्खी गई, तो इस व्यापक साहित्य के युग में हिंदी के भाग्य किसी तरह भी नहीं चमक सकते, और उसके साहित्य में महाकवि तथा बड़े-बड़े साहित्यिकों के आने की जगह, चिरकाल तक "बनी रहे—ठनी रहे" होता रहेगा । पुराना साहित्य हिंदी का बहुत अच्छा था, पर नया और अच्छा होगा, इस दृष्टि से उसकी साधना की जायगी । पुराने साहित्य का जितना दायरा था, नए का उससे बहुत अधिक बढ़ गया है । जो लोग व्रजभाषा के प्रेमी हैं, उनसे किसी को व्यक्तिगत द्वेष नहीं, जब तक वे हिंदी की नवीन संस्कृति के बाधक नहीं बनते । पर जब वे अकारण हिंदी की नवीन कृतियों को नीचा दिखाने पर तुल जाते हैं, प्रायः व्रजभाषा की श्रेष्ठता ज़ाहिर करने के लिये, तब उनकी इस रुचि की वजह उन्हें प्रबल करके साहित्य के व्यापक मैदान से हटा देना चाहिए । उनके द्वारा साहित्य का उपकार नहीं हो सकता । वे तो सिर्फ़ मनोरंजन के लिये काव्य-साधना करते हैं, किसी उत्तरदायित्व को लेकर नहीं उनकी आँखों में दूर तक फैली हुई निगाह नहीं है । वे अपने ही घर को संसार की हद समझते हैं । साहित्यिक प्रतिस्पर्द्धा क्या है, अपने व्यक्तित्व को साहित्य के भीतर से एक साहित्यिक किस प्रकार बढ़ा सकता है, अपर साहित्यों से भावों के आदान-प्रदान के लिये कैसी शिष्टता, कितनी उदारता होनी चाहिए, किस-किस प्रकार के भावों से अपना प्रकृति-गत स्वभाव बना लेना चाहिए, वे नहीं जानते । कौन-से भाव सार्वजनीन और कौन-से एकदेशीय हैं, उन्हें पता नहीं । चिरकाल से एक ही समाज के

चित्र देखते-देखते उनकी रुचि उन्हीं के अनुसार बन गई है, वे उसे बदल नहीं सकते और जब बदली हुई कोई अच्छी भी रुचि उनके सामने रक्खी जाती है, तब अपनी अपार भारतीय संस्कृति की दोहाई देकर उसके देशनिकाले पर तुल जाते हैं। पर यदि इनसे पूछा जाता है कि वे किसी भी एक क़ायदे का बयान करें, जो उनकी चिरंतन भारतीय संस्कृति हो और जिस ढंग की संस्कृति दूसरे देशों में न हो, तो महाशय-गण उत्तर देने की जगह दुश्मन की तरह देखने लगते हैं। कोट के सामने आधुनिक मिर्ज़ई की प्राचीनता-भक्ति की तरह उसके पहननेवाले यदि विचारपूर्वक देखेंगे, तो मिर्ज़ई भी उनकी सनातन पोशाक न ठहरेगी। एक बार बनारस में अपनी गुर्जरी पवित्रता की व्याख्या करते हुए मेरे एक मित्र ने कहा, हम लोग पीतांबर पहनकर खाते हैं। इस बीसवीं सदी में उनका पीतांबरधर दिव्य रूप आँखों के सामने आया तो बड़ी मुश्किल से हँसी को रोकना पड़ा, जैसे आजकल के वकीलों का रूटबा देखकर अकस्मात् जटायू की याद आ जाती है। मैंने मन-ही-मन कहा, पहले के आदमी पीतांबर पहनकर भोजन करते थे या दिगंबर होकर, यह सब बतलाना बहुत कठिन है। पर अगर ज़रा अक़्ल का सहारा लिया जाय, तो दिगंबर रहना ही विशेष रूप से सनातनधर्म जान पड़ता है, कारण सनातन पुरुष के बहुत बाद ही कपड़े का आविष्कार हुआ होगा, और इस प्रथा को माननेवाले सिद्ध नागे महाराजों का इस समय भी कमी नहीं। अस्तु, अभिप्राय यह कि भारतीयता के नाम पर जिस कट्टरता तथा सीमित भावों और कार्यों का प्रचार किया जाता है, रक्षा की जाती है, वह अस्तित्व को क़ायम रखने की जगह नष्ट ही करती है। अस्तित्व तो व्याप्ति ही से रह सकता है। यहाँ का सनातनधर्म व्याप्ति है भी।

देखने के लिये जो दो-चार उद्धरण दिए गए हैं, उनमें उच्चतम वेदांत-वाक्य से लेकर शृंगार के अत्यंत आधुनिक चित्र तक हैं, पर वे अभारतीय होकर भी भारतीय हैं। कारण उनमें प्रकाश तथा जीवन है। जो भाव या चित्र किसी देश की विशेषता को सूचित करते हैं, वे उतने अंश में एकदेशीय हैं। पर जहाँ मनुष्य मन के आदान-प्रदान हैं, वहाँ वह व्यापक साहित्य ही है। सिर्फ़ उसके उपकरण अलग-अलग होते हैं। शेक्सपीयर की नायिकाओं के परिच्छद एकदेशीय हो सकते हैं, पर उनकी आत्मा, प्यार, भाव व्यापक हैं। परिचय के लिये जिस तरह यहाँ के भावों की गहनता, त्याग, सतीत्व की शिक्षा आवश्यक है, उसी तरह वहाँ के प्रेम की स्वच्छता, तरलता, उच्छ्वसित वेग यहाँवालों के लिये ज़रूरी है। इस समय वहाँवालों का ख़ूनी प्रेम भी शक्ति-संचार के लिये यहाँ आवश्यक-सा हो गया है। यह है आसुरी, राक्षसी गुण अवश्य, पर कभी-कभी दुर्बल देवताओं में राक्षस ही प्रबल होकर बल पहुँचाते हैं, और कभी देवताओं के नायक विष्णु भी सती असुर-पत्नी का सतीत्व नष्ट करते हुए नहीं हिचकते। हिंदी के भारतीय लोगों ने "तुलसी" की कथा पढ़ी होगी। यहाँ के साहित्य में मद्य-पान बहुत कम है, पर वेदों में मादक सोम-रस की जैसी महिमा है, प्रायः सभी लोग जानते हैं, और मद्य के प्रचार का कहना क्या? जिस गुजरात में अब ताड़ी के पेड़ कट रहे हैं, वहीं द्वापर में अवतार-श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी के वंशज यादवों ने शराब पीकर एक ही दिन में अपना संहार कर लिया था। शायद शराब का ऐसा रोचक इतिहास मद्यप योरप भी नहीं दे सकता। शराब अच्छी भी है, बुरी भी अवश्य। यहाँ मैं देश-प्रेम की बातें नहीं कर रहा। साहित्य की शराब मुझे तो अत्यन्त रुचिकर जान पड़ती है और विना विचार के ही भारतीय कर लेने की इच्छा होती है। किसी मुसलमान विद्वान् ने कहा था, योरप शराब से डूबा हुआ है, पर कहीं के धर्म ने भी शराब की तारीफ़ न करनेवाले एशिया ने शराब की कविताओं से योरप को मात कर दिया। शराब से सख़्त नफ़रत करनेवाले कितने ही पंडितों को मैं जानता हूँ, जिन्हें दवा के रूप से ब्रांडी दी गई और वे विना शिखा हिलाए पी गए। सुना है, यदि दवा के तौर पर प्रतिदिन थोड़ी-सी शराब पी जाय, तो स्वास्थ्य को निहायत फ़ायदा पहुँचाती है। यों तो मैं जानता हूँ, हर खाद्य पेट में पहुँचकर पहले शराब बनता और नशा पहुँचाता है, उसी के रासायनिक अनेक रूप शरीर की जीवनी शक्ति बनते हैं। नशे के नींद के बाद ही जागरण का आनंद मिलता है और जागरण की ज़रूरत के साथ नींद की भी आवश्यकता सिद्ध होती है। इसी तरह इन दिव्य भारतीयों को इस प्रसन्न करने के लिये आसुर शराबी भाव भी आवश्यक

हैं। पर देश के साहित्यिक सुधारपंथी नेतागण अवश्य इसके ख़िलाफ़ विद्रोह खड़ा कर मेरी स्त्री की तरह अपनी दिव्यता का परिचय देंगे।

यहाँ ज़रा अपनी धर्मपत्नीजी की दिव्यता का परिचय दे लूँ। खेद है कि अपनी दिव्यता के कारण ही वह इस समय दिव्यधामवासिनी हो रही हैं। पंडितों ने मेरा और उनका संबंध पत्रा देखकर जोड़ा था, मुझे और उन्हें देखकर नहीं। इसलिये विवाह के पश्चात् मेरी और उनकी प्रकृति वैसे ही मिली, जैसे पंडितों की पोथियों के पत्र एक दूसरे से मिले रहते हैं। वह अखंड भारतीय थीं और मैं प्रत्यक्ष राक्षस—रोज़ मांस खाता था। उन्होंने मुझे विश्राम-सागर, पद्म-पुराण, शिव-पुराण, और न-जानें कौन-कौन-से ग्रंथ, गुटके और पाद-टिप्पणियाँ दिखलाकर कहा, इससे बड़ा पाप होता है, तुम मांस खाना छोड़ दो। तब मैं कुछ मूर्ख था, और वह मुझसे हिंदी में ज़्यादा पंडिता थीं। मांस खाने से कितनी भयंकर सज़ा मिलती है, उसके जो चित्र उन्होंने दिखलाए, उनके स्मरण-मात्र से मेरे प्राण सूख जाते। कुछ दिनों तक मैंने मांस खाना छोड़ दिया। तब मेरा स्वास्थ्य मुझे छोड़ने लगा। स्वास्थ्य की चिंता तो होती थी, पर यमदंड के भय के सामने स्वास्थ्य का विचार न चलता था। मेरी पत्नी को मेरे स्वास्थ्य का उतना भय न था, जितनी प्रसन्नता उन्हें मेरे मांस छोड़कर भारतीय बन जाने की थी। धीरे-धीरे सूखकर काँटा हो गया। एक दिन नहाने के लिये जा रहा था, कुएँ पर मेरे एक पूज्य वृद्ध ब्राह्मण मिले। मुझे देखकर बड़े तअज्जुब में आए, पूछा "तुम क्या हो गए?" मैंने कहा, "मांस छोड़ दिया, इसलिये दुबला हो गया हूँ।" उन्होंने कहा, "तो मांस क्यों छोड़ा?" मैंने कहा, "विश्राम-सागर में लिखा है, बड़ा पाप होता है, मरने पर मांसाहारी को यम के दूत बड़ा दंड देते हैं।" उन्होंने पूछा, "तुमने अपनी इच्छा से छोड़ा या किसी के कहने पर?" मैंने सचसच बतला दिया। उन्होंने कहा "तो तुम फिर खाओ, कनवजियों को पाप नहीं होता, उनको वरदान है।" मैंने पूछा, "कहीं लिखा भी है?" उन्होंने कहा, "हाँ, है क्यों नहीं? वंशावली में है।" मुझे वैसी प्रसन्नता आज तक कभी नहीं हुई। पत्नी पर बड़ा ग़ुस्सा आया। उनसे तो मैंने कुछ भी न कहा, शाम को बाज़ार से आधा सेर मांस तौला लाया। मकान में लाकर रक्खा, तो श्रीमतीजी दंग। उस समय मेरे घर के और लोग विदेश में थे। श्रीमतीजी रूमाल में खून के धब्बे देखकर समझ गईं, पूछा, यह क्या है? मैंने कहा "मांस"। "तो क्या फिर खाओगे?" मैंने कहा, "हाँ, हमें वरदान है।" श्रीमतीजी हँसने लगीं? पूछा—"कहाँ मिला यह वरदान?" "हमारे पूर्वजों को मिला है, वंशावली में देख लो, तुम्हें विश्वास न हो।" श्रीमतीजी ने कहा, "खुद तो पकाते हो ही, अपने मांसवाले बरतन अलग कर लो, और जिस रोज़ मांस खाओ, उस रोज़ न मुझे छुओ और न घर के और बरतन और तीन रोज़ तक कच्चे घड़े नहीं छूने पाओगे।" मैंने कहा, "इस समय तो रोज़ खाने का विचार है, क्योंकि पिछली कसर पूरी कर लेनी है।" उन्होंने कहा, "तो मुझे मेरे मायके छोड़ आओ" मैंने कहा "लिख दो, कोई ले जाय; नहीं तो नाई भेज दो, किसी को बुला लावे; मैं जहाँ मांस पकाता हूँ, वहीं दो रोटियाँ भी ठोंक लूँगा।" श्रीमतीजी चली गईं। पत्रा-प्रेम इसी तरह तीन-चार साल कटा। चार महीने मेरे यहाँ रहतीं, आठ महीने मायके। अंतिम बार मायके में इंफ्लूएंज़ा के साल, उन्हें भी इंफ्लूएंज़ा हुआ। मैं तब बंगाल में था। मेरे पास तार गया। जब मैं आया, तब महाप्रयाण हो चुका था। क़स्बे के डाक्टर मेरे परिचित मित्र थे। उनसे मिला, तो अफ़सोस करने लगे। कहा, "फेफड़े कफ से जकड़ गए थे, प्यास ज़्यादा थी, मैंने पानी की जगह अखनी पिलाने के लिये कहा, वैसी ही डाक्टरी दवा भी देने के लिये पूछा, उन्होंने इनकार कर दिया, कहा, दस बार नहीं मरना है।" इस दिव्य भावना ने अगर कुछ भी मेरे साथ सहयोग किया होता, तो शायद यह अकाल मृत्यु न हुई होती और जीवन भी कुछ सुखमय रहता। इस तरह साहित्य को जीवित रखने के लिये उसमें अनेक भाव, अनेक चित्रों का रहना आवश्यक है, और जब कि अपने-अपने स्थान पर सभी भाव आनंदप्रद और जीवन पैदा करनेवाले हैं। व्यापक साहित्य किसी ख़ास संप्रदाय का साहित्य नहीं। शराब, कबाब, नायिका, निर्जन साज और संगीत के कवि उमरख़य्याम की इज़्ज़त साहित्य-संसार के लोग जानते हैं। ग़ालिब मशहूर शराबी थे। पर उनकी कृति

कितनी सुंदर है ! व्यापक भावों के कवि रवींद्रनाथ ने भी इससे फ़ायदा उठाया है—

"कालि मधुयामिनीते ज्योत्स्ना-निशीथे
कुंजकानने सुखे
फेनिलोच्छल यौवन-सुरा
धरेछि तोमार मुखे ।
तुमि चेये मोर आंखी परे
धीरे पात्र लयेछ करे
हेसे करियाछ पान चुंबनभरा
सरस बिंबाधरे
कालि मधुयामिनीते ज्योत्स्ना-निशीथे
मधुर आवेश-भरे ।।

(कल वसन्त-ज्योत्स्ना की अर्धरात्रि को सुख से बग़ीचे के कुंज में छलकती हुई फेनिल यौवन की सुरा मैंने तुम्हारे मुख पर रक्खी थी । तुमने मेरी आँखों की ओर देखकर धीरे से पात्र (प्याला) हाथ में ले लिया, और हँसकर चुंबनों से खिले हुए सरस बिंबाधरों से मधुर आवेश में आ पी गईं ।)

यहाँ रवींद्रनाथ से एक बड़ी ग़लती हो गई है । पहले उन्होंने "यौवन-सुरा" लिखकर सुरा के यथार्थ भाव में परिवर्तन करना चाहा था । वहाँ उन्होंने तरंगित यौवन को ही सुरा बनाया है । पर अंत तक नहीं पहुँच सके । क्योंकि अंत में उनकी प्रिया की जो क्रिया है, वह सुरा पीने की ही है, यौवन-सुरा पीने की नहीं । विदेशी भावों को लेते समय ज़रा होश दुरुस्त रखना चाहिए । मुसलमानी सभ्यता के कवि इस कला में एकच्छत्र सम्राट् हैं । एक जगह और रवींद्रनाथ ने लिखा है—

"दुःख-सुखेर लच्च धाराय
पात्र भरिया दियाछि तोमाय
निठुर पींड़ने निगाड़ि वच्च
दलित द्राचा सम "

(दुःख और सुख की लाखों धाराओं से मैंने तुम्हारा प्याला भर दिया है—अपने वक्ष को निठुर पीड़नों से दलित द्राक्षा की तरह निचोड़-निचोड़ कर ।)

"दलित द्राक्षा" का भाव उमरख़य्याम का है । सुरा की कविताओं में मुसलमानों ने कमाल कर दिया कि मयख़ाने को मसजिद से बढ़कर बतला दिया और पाठकों को पढ़कर आनंद आता है ।

"दूर से आए थे साकी सुनके मयख़ाने को हम ।
बस तरसते ही चले अफ़सोस पैमाने को हम ।।"

क्या यहाँ मयख़ाना मंदिर नहीं और पैमाना अ का कटोरा ?

"मय भी है, मीना भी है, सागर भी है, साकी नहीं ।
दिल में आता है लगा दें आग मयख़ाने को हम ।।"

यहाँ साक़ी क्या अमृत पिलानेवाला गुरु नहीं ?

इस तरह शराब के लक्ष्य से बहुत बड़ी-बड़ी बा कह दी गई हैं जिनका किसी भी साहित्य के गर्व हो सकता है । उर्दू-शायरी की काफ़ी निंदा पर काल के सुधारकों ने की है । पर यह प्रायः सब मानते हैं कि पहले की शायरी का आनन्द दुष्प्राप्य है ।

काव्य-साहित्य में लक्ष्य तथा भाव की परीक्षा जाती है, उपकरणों की नहीं ।

"क़िस्मत को देखिए कि कहाँ टूटी जा कमन्द ।
दो-चार हाथ जब कि लबे बाम रह गया ।।"

असफलता की कितने सुंदर सरस ढंग से वर्णना सफलता तक पहुँचाकर असफल कर दिया ।

हमारे काव्य-साहित्य की दृष्टि बहुत व्यापक हो चाहिए, तभी उसका कल्याण हो सकता है । परि कवियों के हृदय में पूर्व के लिये अपार सहानुभूति चली थी । उनका यही साहित्यिक पौरुष तथा आज संसार-भर में फैला हुआ है । ये सत्रहवीं अठारहवीं सदी की बातें हैं, वर्डस्वर्थ और उनके कालरिज(Samuel Tailor) ने पूर्व का वर्णन किया इधर दो सौ वर्ष में पश्चिमी सभ्यता का वैज्ञा चमत्कार कहाँ तक पहुँचा है, इसका हिंदी-भाषियों भी यथेष्ट ज्ञान है ।

"………the Great Mogul, when he
Erewhile went forth from Agra or La
Rajas and Omrahs in his train………"
—Wordswo

लाहौर या आगरे से यात्रा में राजा और उम को लेकर चलते हुए प्रतापी मोग़ल-बादशाह का है । इस समय के इँगलैंड के कुछ आगे-पीछे होने कवियों में पूर्व के साथ शेली का प्रगाढ़ प्रेम देख है । पूर्व के रहस्यवादियों तथा सन्तों को वह चाव से

करता है। "Lines to an Indian Air" (लाइंस टू ऐन इंडियन एयर), "Revolt of Islam" (रिवोल्ट आव् इस्लाम), "Queen Mab" (क्वीन् माब) आदि-आदि अनेक कविताएँ, काव्य-नाटक, खंड-काव्य हैं, जिनमें शेली ने पूर्व की बड़ी इज़्ज़त की है। ब्रह्म, शिव और बुद्ध भी उसकी रचना में हैं। कीटस भी पूर्व की छवि से मुग्ध है। भारत का उल्लेख उसने भी किया है। भारत के अमर स्नेह में डूबा हुआ है। पूर्व देशों का इनमें सबसे ज़्यादा ज्ञान बायरन को था। उसने तुर्किस्तान की सैर भी की थी और इस तरह काव्य में अपना प्रत्यक्ष अनुभव लिखा है, जिससे उसकी वे रचनाएँ और भी महत्त्वपूर्ण हो गई हैं। "The Corsair", "The Bride of Abydos", 'The Seige of the Corinth" आदि रचनाएँ उसके भ्रमण के ही कारण साहित्य को मिलीं। लीला, ज़ुलेखा आदि उसकी प्रधान पात्रियाँ हैं। नैपोलियन की उसने तैमूर से तुलना की। और भी बहुत कुछ उसने लिखा। टेनीसन ने भी पूर्व पर काव्य लिखे। टेनीसन फ़ारस के सौंदर्य पर मुग्ध था। परंतु फिर भी पूर्व पर टेनीसन की बहुत श्रद्धा न थी।

कुछ हो व्यापक साहित्य की इस प्रकार सृष्टि हुई। गद्य की बात नहीं लिखी गई। यह सब पूर्व के लिये इँगलैंड का पद्य-प्रवाह है। पर हमारे साहित्य में क्या हो रहा है—यह भारतीय है, यह अभारतीय, असंस्कृत। धन्य है हे संस्कृति के बच्चो!—नस-नस में शरारत भरी, हज़ार वर्ष से सलाम ठोंकते-ठोंकते नाक में दम हो गया, अभी संस्कृति लिए फिरते हैं।

सबसे बड़ी आफ़त ढा रहे हैं कुछ साहित्यिक सुधारपंथी, जो स्वयं तो कुछ लिख नहीं सकते, दूसरों की कृति पर हमला करके महालेखक बन जाना चाहते हैं। सुधार और प्रोपागांडा से साहित्य मंज़िलों दूर है। "प्रसाद"जी की जैसी आलोचना निकली है, जैसा दोष भाषा-क्लिष्टता का बनारसीदासजी ने उन पर लगाया है, वह यदि वास्तव में मनुष्योचित शौर्य तथा पर्यवेक्षण के साथ आलोचनाएँ करते हैं, तो मैं उनसे कहूँगा, आप डी० एल० राय के ऐतिहासिक नाटकों को पढ़िए, फिर देखिए नव साल की बच्ची और दो रुपिट्टी का नौकर गज़-गज़ भर के समस्त पद बोलते हैं या नहीं, और यह देखकर, यदि अभी तक आप आँख मूँदकर ही राय महोदय के पीछे-पीछे चलते आए हों, एक वैसा ही नोट जैसा 'प्रसाद'जी की भाषा के संबंध में लिखा है, उसी लहजे में लिखकर "मार्डन रिव्यू" में छपवा दीजिए, मैं तभी आपकी इस आलोचना को आपकी मर्यादा के योग्य समझूँगा। अवश्य यहाँ प्रत्यालोचना की जगह नहीं। समय मिला तो अन्यत्र लिखूँगा। पर यह ज़रूर है कि आलोचकों ने वरदान से "प्रसाद"जी को शाप ही अधिक दिया है, जो एक बहुत बड़के साहित्यिक अन्याय में दाख़िल है। आलोचकों ने अपने को जितना बड़ा समझदार समझ लिया है, यदि कुछ हद तक "प्रसाद"जी को भी उसी कोटि में रखते, तो इतनी बड़ी त्रुटि न होती।

साहित्य में अनेक दृष्टियों का एक साथ रहना आवश्यक है, नहीं तो दिग्भ्रम होने का डर है। इसीलिये मैंने तमाम भावों की एक साथ पूजा करने का समर्थन किया। हिंदी के साहित्यिकों का अन्याय सीमा को पार कर जाता है। उन्हें अपनी सूझ के सामने दूसरे सूझते ही नहीं। हमें उनकी आँख में उँगली कर-करके समझाना है, और बहुत शीघ्र वैसे संकीर्ण विचारवालों को साहित्य के उत्तरदायी पद से हटाकर अलग कर देना है। तभी साहित्य का नवीन पौधा प्रकाश की ओर बढ़ सकेगा। हमें अपने साहित्य का उद्देश्य सार्वभौमिक करना है, संकीर्ण एकदेशीय नहीं। राष्ट्रभाषा को राष्ट्र-भाषा के रूप से सजाना और अलंकृत करना है।

सूर्यकांतत्रिपाठी "निराला"

फूल-पत्ते

चौपदे

है जिन्हें तोड़ना भले ही वे,
तोड़ लें आसमान के तारे।
ए फबीले इधर-उधर फैले,
फूल ही हैं हमें बहुत प्यारे।
जो हमें भेज दे रसातल को,
यों हवा में कभी नहीं मुड़ते।
चींटियों का लगा-लगाके पर,
हम नहीं आसमान पर उड़ते।
सूझकर सूझता नहीं जिनको,
सूझवाले कहीं न हों ऐसे।
कब कहाँ कौन पा सका पारस,
देस के काम दास के पैसे।
क्यों टटोला करें अँधेरे में,
सींक-सा क्यों हवा लगे डोलें।
क्यों बुनें जाल उलझनें डालें,
आँख अपनी न किस लिये खोलें।
सूझता है नहीं अँधेरे में,
जोत में ही सदा रहेंगे हम।
क्यों किसी आँख में करें उँगली,
बात देखी-सुनी कहेंगे हम।
दिन अँधेरा भरा नहीं होता,
जगमगाती नहीं सभी रातें।
है खुला दिल खुली हुई आँखें,
फिर कहें क्यों न हम खुली बातें।
बाल की खाल काढ़ते रहता,
है करामात बात को खोता।
जो उसे गढ़ न दे बना कोई,
बात गढ़ना बुरा नहीं होता।
बाँधने से हवा नहीं बँधती,
हो सकेंगे कभी न सच सपने।
दूसरे रंग लें जमा, हम तो,
मस्त रहते हैं रंग में अपने।
हों हमारे कलाम क्यों मीठे,
वे शहद से भरे न छत्ते हैं।
किस तरह हम उन्हें अमोल कहें,
पास मेरे तो फूल-पत्ते हैं।

"हरिऔध"

मसूरी

हिमालय की गोद सदियों पहले से दुनिया के सामने आकर्षण की नई चीज़ रही है । कितने गौरव से, कितने उल्लास से हिमालय ने अपनी अनंत रत्नराशि को चुन-चुनकर हम भारतीयों के लिये दे रक्खा है, कुछ कहना नहीं । हिमालय का विशाल वक्षस्थल हमारे पूर्वजों की अपनी चीज़ थी । उन्होंने समझा था, हिमालय का हृदय कितना कोमल, कितना रसीला है । हाँ, कोमलता और रसीलापन तो अब भी है, पर उसमें आलस्य की बीसवीं सदी का वह लोच और आवर्तें की वह तरलता आ गई है, जिससे शायद हिमालय का हृदय फटकर बह चला है । आह भारत की कितनी विभूतियाँ, कितना सौंदर्य अनंत में विलीन हो गया होगा, कौन कह सकता है । आज तो हमें पाश्चात्य सभ्यता का नग्न चित्र हिमालय की गोद में विहँसता दिखाई देता है । जहाँ कहीं देखिए, हिमालय की तपोभूमि प्रेम के पुजारियों से, सरकारी आफ़िसों-दफ्तरों से और विलासिता के रंग में रँगे हुए हमारे देशी नरेशों से भरी पड़ी है । सब जगह हमारे गौरांग प्रभुओं और भारत के पूँजीपतियों के अड्डे हैं, हमारे शासकों के विहारस्थल हैं, विलासियों के श्रीनिकेतन हैं । यहाँ न तो मैदानों की लपटती लू चलती है, और न भोग-विलासमय जीवन में कोई बाधा है, बस यहाँ मज़ा-ही-मज़ा है ।

यों तो गर्मी से बचने के लिये, आनंद और मौज का जीवन बिताने के लिये लोग शिमला, नैनीताल, दार्जिलिंग, लैंसडाउन तथा ऐसे ही अन्यान्य हिम-प्रांतों में जाते हैं, किंतु सच पूछिए तो जितनी सुंदरता, जितना आकर्षण और सादगी मनुष्य और प्रकृति, दोनों ने मिलकर मसूरी को दिया है, उतनी और किसी को नहीं । पर्वतमालाओं से घिरी मनोहर छटा, नेत्ररंजक हरियाली, जलप्रपातों की मधुर वीणा और पक्षियों का मधुमय कलरव मसूरी के लिये प्रकृति की अपनी देन है । मसूरी को इसी रूपराशि और अनुपम सौंदर्य में अपना नाम 'पहाड़ी-प्रांतों की रानी (Queen of the Hill Stations) बना रक्खा है । इसमें कोई अतिशयोक्ति, कोई बढ़ावा नहीं । मसूरी में किसी भी जगह रुक जाइए, आप देखेंगे, प्रत्येक व्यक्ति का मुखमंडल चाहे वह अँगरेज़ हो चाहे हिंदुस्थानी, युवक हो चाहे युवती, एक अजीब आभापन से आलोकित रहता है । क्योंकि उसे न तो किसी एम्० एल्० सी० से मिलने जाना है और न किसी और के यहाँ किसी बात की सिफ़ारिश ही लेकर दर-दर की ख़ाक छाननी है, जिसकी चिंता में बेचारा व्याकुल हो । जितने मिलते हैं, सभी अनोखे ढंग के अल्हड़ और सैलानी से जान पड़ते हैं । कोई तो झरनों को देखने जा रहा है, हाथ में बजाय टेस्टमोनियल के पुलिंदे या इसी क़िस्म की और चीज़ें लेने के, तसवीर खींचने का केमरा है, खाने-पीने की कुछ चीज़ें हैं या दूरबीन है । किसी को पहाड़ की चोटियों की पड़ी है । पाँव बढ़ाए हुए कितनी द्रुतगति से जा रहा है, न तो शौक़ है ऐसेंबली के मेम्बरों से मिलने का, साहबों को दावत देने का और न इम्तिहान के नतीजे की ही कतर-ब्योंत करने का । कुछ लोग पैसे के धनी हैं । उन्हें नाच-रंग में मज़ा आता है, डांडी-रिक्शे, पैदल, जैसे बन पड़ता है, बेचारे स्टीफल, पिलैडियम, सेवाय और-और जगह पर बड़ी आतुरता से धावा बोलते हैं, मानों चींटियाँ मिश्री की महक पा गई हों या मधुमक्खियाँ फूलों की गंध । मसूरी कोई औफ़िशियल जगह तो है ही नहीं जहाँ लोग कलेक्टर, कमिश्नर, गवर्नर, वायसराय से मतलब गाँठने जायँ । जाते वे ही लोग हैं जिन्हें स्वतंत्रता प्रिय है, शुभ्र श्वेतांगियों की कमनीय कलाबाज़ियों और अठखेलियों में जिन्हें मज़ा आता है । यहाँ सभी एक हैं, कोई भेद नहीं । एक दूसरे से बराबर की हैसियत से मिलते हैं । एक दूसरे की प्राइवेट दिनचर्या से बिलकुल संबंध नहीं (Live ond let live, smile and let smile) अपने मौज से रहो और दूसरों को भी मौज से रहने दो । ख़ुद भी हँसो और दूसरों

को भी हँसने दो । यही यहाँ का एक दूसरे का संबंध है । आजकल के अन्य पहाड़ी जगहों की अपेक्षा बहुत कुछ अंशों में यह संबंध, मेरी समझ से, यहाँ व्यवस्थित भी रक्खा गया है ।

देहरादून से हमें मसूरी जाना होता है । देहरा-रेलवे स्टेशन से चौदह मील ऊपर, शिवालिक के समानांतर पूर्व से पश्चिम जानेवाली पहाड़ी पर मसूरी बसी हुई है ! प्रकृति के आँचल में मसूरी का यह भव्य रूप कितना मोहक, कितना आकर्षक है, देखनेवालों से यह छिपा नहीं है । दूनघाटी का मुकुट मसूरी का दक्षिणी भाग है । सर से नीचे की तरफ़ दूनघाटी कोसों ज़मीन पर हरी साड़ी की अलबेली छटा दिखलाती है । लोगों का कहना है कि दुनिया की ख़ूबसूरत घाटियों में हिमालय और शिवालिक के बीच की यह दूनघाटी भी एक है । हिंदुस्थान की कोई भी पहाड़ी जगह ऐसी नहीं है, जिसके इतने नज़दीक देहरादून ऐसा शहर हो । जिस दिन बादल न हों, उस दिन देखिए, मालरोड से साफ़ दिखलाई देता है । गंगा बाँई और यमुना दाहिनी ओर शिवालिक से गलबहियाँ करती हुई दूर मैदान में चली जा रही हैं । कितना सुंदर दृश्य है । और जगहों में भी सुंदर दृश्य देखने को हमें ज़रूर मिलते हैं, पर इसी तरह चलते-फिरते सड़कों से नहीं । उनको देखने के लिये ऊँची चोटियों से देखना होता है । फिर चढ़ाई में सारा मज़ा किरकिरा पड़ जाता है । दिन में ही नहीं रात में इसी सड़क से देहरादून की रोशनी देखने में आती है । सच, आप ही बताइए, मसूरी की ओढ़ी हुई साड़ी (दून-घाटी) पर ये अमूल्य जवाहरात कैसे जड़े गए हैं ? यही तो मनुष्य ने प्रकृति को दिया है । यों भी सरकुलर-रोड से मसूरी ही को देखिए, गले में मनोहर चमकती हुई मोतियों की माला शोभायमान् है । कितना उल्लास, कितनी मस्ती छा जाती है । दिन में देखिए, यहाँ से उत्तर-हिमालय का हिम-मंडित श्वेत शिखर देख पड़ता है । बरसात के बाद उजेली रात में इस सुंदरता की झाँकी देखने को ख़ूब मिलती है । कितना रमणीक दृश्य आँखों के सामने नाचने लगता है । मनुष्य प्रकृति की इस मनोहर छटा के सामने अपने को नन्हा सा बच्चा समझने लगता है । उसके अंदर श्रद्धा, प्रेम और भक्ति का उदय होने लगता है ।

अभी कल ही से मसूरी ने अपने कलेवर को का यह रूप-रंग दिया है । उन्नीसवीं शताब्दी के पू तक मसूरी में न तो आज की तरह चहल-पहल और न खेल-तमाशे ही थे । उजाड़ और वीरान थी । लोगों ने १८१४ से समझना शुरू किया कि जगह इतनी आरोग्यवर्द्धक और स्वास्थ्यप्रद है । स पहले मि० शोर और कैपटेन यंग ने केमलस्बैक पर छोटा-सा झोपड़ा डाल रक्खा था । आज भी मुलि (Mullinger) और ह्वाइट पार्क फ़ारेस्ट (Wh Park Forest—Amefield) कैप्टेन यंग के मसूरी में शायद पहले घर हैं । मि० शोर ने बड़ी दौड़ के बाद टेहरी राज्य से मसूरी की हद में आनेवाली ज़ कई शर्तों पर ली थी, जिसके लिये अब भी शायद देना पड़ता है । १८३२ में करनल एवरेस्ट ने पार्क अपना आफ़िस बनाया, और फिर १८४२ में म्युनि लिटी क़ायम की गई । स्टेशन-लाइब्रेरी सन् १८४ खोली गई । तब से मसूरी दिन दूनी रात चौ तरक्क़ी पर है ।

मसूरी (Mussoorie) नाम क्यों पड़ा, यह ठीक नहीं कहा जा सकता । यहाँ आसपास की पहा पर मसूरी नाम का जंगली बेर बहुतायत से पैदा है । बहुतों का कहना है कि इसी से इस स्थान-को भी 'मसूरी' नाम मिला है । कुछ लोग मंसूरी इसे कहते हैं । इस नामकरण के लिये एक ऐतिहा प्रमाण भी मिलता है । मंसूर नाम का कोई प्रभाव गया है, जिसका इन पहाड़ियों पर कुछ दिनों आधि रहा है । मंसूर से होते-होते मसूरी हो गया होगा । कुछ हो, इसके नाम से कोई बहस नहीं । तो इतना तो मानना ही होगा कि यह जगह पौराणिक से लेकर अब तक ऐतिहासिक युगों से घनिष्ट संबंध रही है । इसमें संदेह नहीं कि यह स्थान हिमालय उस तपोभूमि में से रहा होगा, जिसे हम आज के से परिचित पाते हैं । लोगों का कहना है कि यहाँ के पहाड़ों पर श्रीराम और लक्ष्मण को रावण के के लिये वर्षों तपस्या करनी पड़ी थी । महाभारत में जब पांडव हिमालय गलने चले, तो उस सम लोगों को यहाँ कुछ काल के लिये रुकना पड़ा चकरौता में, जो यहाँ से कुछ ही मील दूर है,

एक विजय-सूचक पत्थर, अशोक द्वारा खुदाया हुआ, देखने को मिलता है।

और बातें तो मसूरी की सुंदरता, उम्दगी और अलौकिकता दिखाने को हैं ही, पर साथ ही एक और बड़ी बात है, और वह है यहाँ का जलवायु। यहाँ के जलवायु के विषय में दुनिया की बड़ी लंबी-चौड़ी बातें कही गई हैं, पर किसके लिये? मेरी समझ में यहाँ के जलवायु का असर केवल महलों की प्राणप्रतिष्ठित प्रतिमाओं पर ही पड़ता होगा, जिन्हें मैदानों की लू-बक्कड़, हवा-पानी तथा आज की ग़रीब भारत की दुनिया नापसंद है, अहितकर है और बेचारी तंदुरुस्ती पर छापा मारनेवाली है; नहीं तो वहाँ के निवासियों को, जिनके मुँह पर मनों गट्ठर ढोते-ढोते बीस-बाईस वर्ष से ही झुर्रियाँ पड़ने लगती हैं, आँखे खोहों में जा बैठती हैं, गाल पिचक जाते हैं और होठ सिकुड़ने लगते हैं, वहाँ की स्वर्गीय जलवायु अपने छू-मंतर का प्रभाव बेचारों को किस अपराध से न दिखाती। मर-मरकर दिन-रात काम करते हैं, तब भी बुरी हालत है। जहाँ कहीं पहाड़ी नर-नारी मिलते, लल्ला साहब और हममें घंटों बेचारों की बेकसी और ग़रीबी की चर्चा चलती। हाँ, उधर तिब्बतवाले तो ज़रूर तंदुरुस्त, मेहनती और मज़बूत होते हैं। हमलोग देखते, मसूरी में बहुत कुछ शारीरिक श्रम से संबंध रखनेवाले रोज़मर्रा के काम इन्हीं के ज़िम्मे रहते थे। मकानों को बनाने, सड़कों को ठीक करने और पहाड़ों को तोड़ने में तिब्बत की तरफ़ के ही कुली थे।

तो भी यहाँ की आबहवा की बुनियाद को, जिसकी प्रशंसा के पुल बँधे है, इस बेरहमी से मिटा देना मेरे लिये कोरा अन्याय होगा। शायद इस अपराध से मैं बचने भी न पाऊँ। इसलिये यहाँ की आबहवा की कुछ विशेषताएँ मैं अपने प्रेमी पाठकों को बताता जाऊँ, तभी अच्छा है। यहाँ की आबहवा की तारीफ़ में शायद सबसे बड़ी एक बात यह भी कही जा सकती है कि इधर डेढ़ सौ वर्षों से भारत को मिले तोहफ़ों में से पहाड़ों पर से एक भी नहीं आने पाया है। न तो कहीं यहाँ सड़कों पर कालरे के रोगी चिथड़े लपेटे मिलते हैं, और न प्लेग-मलेरिया के प्रकोप से कराहते दुधमुहे बच्चे। किस बेदरदी, किस बेरहमी से इन सहस्रों संक्रामक रोगों से आज हमारी मुक्ति हुआ करती है, भला कौन कहेगा! सुनते हैं, यहाँ इसका नाम ही नहीं। यहाँ न मैदानों की ग़रीबी है और न इससे उपजनेवाली दुनिया-भर की तमाम आफ़तें। अँगरेजों ने मसूरी को वह चमन बना रक्खा है, जहाँ मौसमबहार मैदानों की हू-हू करती लू से सहमकर इन पहाड़ियों की शरण ले लेता है। इधर वसंत जाता है—तमाम मुसीबतों का सताया हुआ, उधर इसका स्वागत होने लगता है। लोग झुंड-के-झुंड पहुँचना शुरू करते हैं। कितना नशा, कितनी उत्सुकता उनके चेहरों पर रहती है, यह देखते ही बनता है। जनवरी से मार्च तक का मौसम बहुत ठंढा होता है। बर्फ़ गिरती है, सूरज नहीं निकलता और दिन बहुत बुरे होते हैं। हवा बहुत तेज़ चलती है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि ऊपर टीन की छतें भी उड़ जाया करती हैं। आधे मार्च तक मसूरी बिलकुल सुनसान जान पड़ती है। स्कूल-कालेज और लोगों के बहलाव

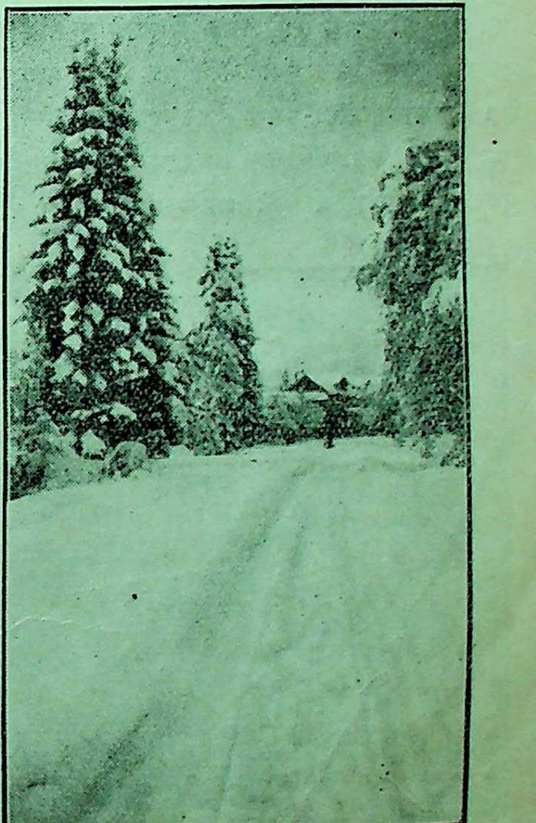

जाड़े में

की सारी संस्थाएँ बंद रहती हैं। एप्रिल से लोग आने लगते हैं। मसूरी की मायाविनी मूर्ति फिर धीरे-धीरे दूज के चाँद की भाँति छविमयी होने लगती है। यौवन की एक नई रेखा, जीवन के प्रभात की पहली किरण मसूरी के मोहक मुखड़े पर खेलने लगती है। नई मस्ती, नया अनुराग और अलौकिक सुंदरता की नशीली आभा मसूरी के अंग-अंग से चंद्रज्योत्स्ना की भाँति बरसने लगती है। अाक्टोबर तक मसूरी अपनी रूपराशि को नाना प्रकार से सजती रहती है; कभी खिले पुष्पों के संग हँसती और कभी लता-द्रुमादिकों से अटखेलियाँ करती है। सारा अंचल हँसते हुए फूलों से लद जाता है। इन दिनों मसूरी की शोभा बहुत बढ़ जाती है। जाड़ा आता है—आह! मसूरी का सारा आकर्षण, सारा वैभव, सारी सम्पत्ति कितनी निर्ममता से, कितनी बेरहमी से बर्फ़ के नीचे दबनी शुरू होती है। थोड़े दिनों के लिये मसूरी भूल जाती है—अपनी सारी ममता, सारा सौंदर्य और सारी विलास-प्रियता—शांत और स्थिर, चिरवियोगिनी की नाईं इसका एक-एक चण सिसकियाँ भरते बर्फ़ में जमता जाता है। इठलाता शरद-समीर पैंतरे बदलता आता, और चला जाता है। बर्फ़िस्तान का दृश्य देखनेवाले सैलानी युवक और युवतियों की मगन टोली आँख उठाकर मसूरी को एक बार देखती और खिलखिला उठती है। बच्चे-बच्चियों से भरे स्लेजेज़ (बर्फ़ पर चलनेवालों पहिए की गाड़ी) और स्केटस कुमार और कुमारियाँ मनचाहा आ लिया करती हैं। पर क्या मसूरी ने किसी से अपने दुःख की कहानी कही है—किसी से या किसी से प्रार्थना की है? यही तो की आब-हवा का रूप है, जो के सामने रक्खा गया है।

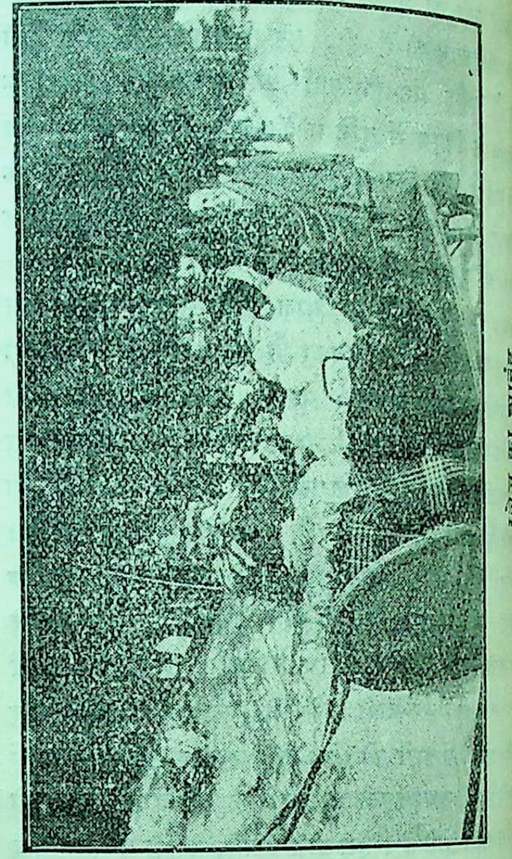

स्लेज का आनंद

लड़के तथा लड़कियों का आनंद

× × ×

रोज़ की-सी संध्या थी। मह के पत्र की प्रतीक्षा में हम लो थे। थे तो हम रुद्रपुर में, पर त मसूरी के लिये चटपटा रही संयोग से रात को पत्र मिला। साहब ने कहा—बस, कल ही राम-दो-तीन; नहीं तो उधर काले

खुल जायगा। फिर सारा मज़ा जाता रहेगा। मैंने कहा—बहुत ठीक, मसूरी पहुँचने में ही अब कल्याण है। उस साल देरी कर दी थी, पूरा मज़ा भी नहीं मिल पाया। सुबह हुई। हम लोग चलने को तैयार हुए। जाड़े के कपड़े सुखाए गए। सारा सामान ठीक किया गया। यही पड़ी थी कि कब मसूरी पहुँचें। रात की ट्रेन से हम लोग मसूरी के लिये चल पड़े। फिर न पूछिए, कितनी परेशानी, कितने तरद्दुद से चार-पाँच दिन ट्रेन के काटने पड़े। जेठ की दुपहरी। धधकती लू चलती थी। आँख, कान, नाक धूल से भरती जाती थी। तबियत घबड़ाती थी। सारा दिन और सारी रात सोते-बैठते और रह-रहकर करवटें बदलते बीतती थीं। सब मंज़ूर था, सामने एक मनोहर प्रतिमा थी, जिसकी दुनिया-भर की हमारी परेशानी, आफ़तें और मुसीबतें बलैयाँ लेती थीं। हम क़ुर्बान थे और हमारी सारी शक्तियाँ मोहित थीं। हमारी गाड़ी भी तो सारी आफ़तों को चीरती हुई बड़े वेग से हाँफती आगे बढ़ती जा रही थी। इसे भी तो कोई ऐसी ही आतुरता रही होगी।

प्रातःकाल देहरादून पहुँचे। यहाँ हमें शांति मिली। सारी परेशानी और ट्रेन की थकावट का मलाल जाता रहा। पर्वतमालाओं को चूम-चूमकर हवा की सरस हिलोरें मन्थर गति से आने लगीं। उनके अंदर गज़ब का उन्माद था, जो हमें मसूरी के लिये व्याकुल बना रहा था। मसूरी के लिये हम लोग चल पड़े। देहरादून से राजपुर तक तो पहले ही से बराबर मोटरें आती-जाती हैं। किंतु अब की साल से मसूरी के एक मील नीचे सनी व्यू (Sunny View) तक पहाड़ काटकर मोटर का रास्ता बना लिया गया है, और मोटरें आने-जाने लगी हैं। राजपुर तक तो हम लोग मोटर में थे। मज़े-मज़े चले आए। मोटरवाले को पैसा दिया और धीरे से आ बैठे; पर इधर राजपुर से मसूरी तक पैदल चलने की ठनी। मैदान का चलना तो था नहीं। चले जा रहे हैं झूमते हुए, यहाँ ता मानो फूँक-फूँककर सीढ़ियों पर पैर रखना था। होश ठिकाने आ गए। आँखों के सामने तितिलियाँ उड़ने लगीं। एक लाज थी। वह यह कि महाराज यों भी मसूरी से राजपुर तक कभी-कभी आते-जाते रहते हैं। फिर हम लोगों के लिये यह एक झेंप की बात होती कि हम मोटर से आते और पहाड़ की चढ़ाई से डर जाते। दूसरी बात यह कि हमें पूरा मज़ा भी न मिल पाता। बस, हम लोगों ने चढ़ना शुरू किया। रास्ते में एक डाक्टर साहब और एक अन्य सज्जन, दो महाशय और मिले। मज़ा दोबाला हो गया। रास्ते में दुनिया-भर की बातें होती जातीं। मोटर चलने से लोग इस रास्ते से बहुत कम आने-जाने लगे हैं। साँप की तरह लोटती मोटर की सड़क को हम लोग बख़ूबी चलते हुए देख रहे थे। रह-रहकर मोटरें, बच्चों की मोटरों की तरह इधर-उधर भागती नज़र आती थीं। अब इस रास्ते कुली भी कम आने लगे हैं। अपना सामान अब अपने पास कार ही में लोग रखते हैं। तब भी आप लकड़ी, पटरे तथा और भी तरह-तरह के सामान पीठ पर लादे हुए कुलियों से बच नहीं सकते। ये आपस में 'फाल्तू' (Faltoo) नाम से प्रसिद्ध हैं। मनों बोझ इनकी पीठ पर होता है। इनको देखकर आप कह उठेंगे—अरे! यह कैसा अन्याय! जिस मसूरी में स्वर्गीय सुख है, बहिश्त के मज़े हैं, विलास का राज है और जहाँ

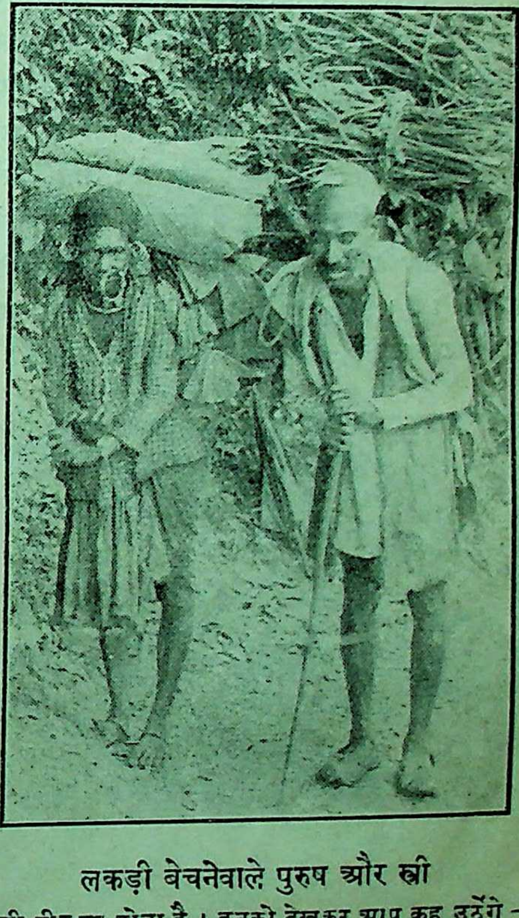

लकड़ी बेचनेवाले पुरुष और स्त्री

ऐश्वर्य की सामग्री है, वहाँ यह नारकीय जीवन कैसा ! पेट की जलन कैसी ! क्यों, क्या स्वर्ग में भी नरक की यातना भुगतनी होती है ? वह पहाड़ी मार्ग जिसे देखने से भय होता—नीचे गहरे खड्ड, सामने आकाश को छूती हुई भयावह ऊँची पहाड़ की दीवाल ! कुली बेचारे मसूरी की सारी ऐश्वर्य-सामग्री अपने सिर-माथे ढो-ढोकर पहुँचाते रहते हैं । कैसा भयंकर पहाड़ी मार्ग है और कैसे साहसी ये कुली हैं ! राजपुर से मसूरी को सामान ढोते रहते हैं, और मसूरी में, जहाँ कोई भी गाड़ियाँ नहीं हैं, ये कुली डांडी और रिक्शा (Ricksha) चलाते हैं—वह भी दिन-रात । नींद आई, पहाड़ों की टेक दे सो लिया । मानो इन्हें न तो ठंढ लगती है और न थकान । बेचारों के जीवन में न हर्ष मालूम पड़ता है और न विषाद । रात-दिन नधे-से रहते हैं । इनमें न चोरी है न दग़ाबाज़ी—बड़े विश्वसनीय, ईमानदार, शुद्ध तथा थोड़े में संतुष्ट होनेवाले । इनकी क़तार-की-क़तार आपके असबाब को ढोती हुई राह में नज़र आती है । देखिए, पसीने से भीगे जा रहे हैं, बोझ के मारे झुके हुए हैं, किंतु आगे चलते ही जाते हैं । जब ज़्यादा थक जाते हैं, तो थोड़ी देर के लिये किसी पहाड़ में टिककर दम ले लेते हैं । इन बेचारों के चेहरे से कितनी ग़रीबी, कितनी बेकसी टपकती है । इनकी बदौलत देश का गया पैसा कुछ भी तो लौट आता है, यही बड़े भाग्य की बात है ।

सबसे मज़े की बात है आँखों के सामने मसूरी का
दिखाई देना और रह-रहकर छिप जाना । इसमें कु
अजीब कौतुक-सा जान पड़ता है । हाफ़ वे हाउस (Ha
Way House) के आगे चलने पर यों ही मसूरी आँखों
के सामने आती और चली जाती है । लोग समझते हैं
अब तो हम पहुँच गए । पर सच कहिए, तो चलना अ
घंटों है । हम लोग पूरे चार घंटों में मसूरी पहुँचे । रा
में पानी ख़ूब बरस रहा था । ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ते,
और पानी से तंग होते जाते थे । एक बात हम लोगों
बड़ी अच्छी की थी । बारलोगंज (Barlowganj) से
चलते समय ग्रैंड इंडियन होटल में महराज को फ़ोन क
दिया था । इसलिये वहाँ पहुँचने से पहले सबके लि
भोजन तैयार था । महाराज, लल्ला साहब और मैं स
लोग खाने बैठे । दिन के दो-सवा दो थे, जब हम लो
दोपहर का भोजन कर रहे थे । तब से शायद ही अ
भोजन में जल्दी की गई होगी । सुबह होते, नव-साढ़े
नव से हम लोग स्केटिंग (Skating) करने रि
(Rink) चलते । महाराज को फ़्रेंच पढ़ना रहता था
इसलिये वह हम लोगों की अपेक्षा बहुत 'पंक्चुअल' थे
ठीक सात बजे अपने फ़्रेंच-टीचर के पास पहुँच जा
महाराज के लिये बहुत ज़रूरी था । विद्यार्थी तो ह
लोग भी थे, किंतु उस समय पढ़ने की लगन उन्
थी । रिंक में पहुँचने पर कभी-कभी स्केटिंग करते हु
हमें महाराज मिलते थे । फ़्रेंच प
के बाद वहीं चले आते । जाने
दूसरे ही दिन हम लोग रिं
लोगों को स्केट करते देखने गए थे
महाराज ने कहा—तुम लोग
सीख लो, कोई मुश्किल नहीं । कु
ही दिन में ऐसे ही स्केट क
लगोगे । इधर प्राण संकट में प
कहाँ मसूरी आए थे सैर-स
करने और कहाँ स्केटिंग में दम-
दम पटकनियाँ खाना पड़ेंगी । दे
थे, लोग यों ही पटाखे की
चारों खानें चित्त गिरते थे । न
खियों की तो और बुरी हालत
बेचारे न स्केट पहने खड़े रह

दूध बेचनेवालों का एक गिरोह

थे और न आगे चल ही सकते थे। आफ़त थी। सबसे बड़ी झेंप तो तब मालूम देती थी कि इधर चोट आई और उधर गैलरी से लड़के-लड़कियों की हँसी आने लगी। ख़ैर सीखनेवाले सीखते थे और स्केट करनेवाले तीर की तरह सारे हाल का बड़ी ख़ूबी से चक्कर भी दे डालते थे। उनमें ग़ज़ब की लचक और कमाल रहता था। देखकर तबियत सचमुच रीझ जाती थी। उनका पैर अनोखे ढंग से सधा रहता था। न तो उनको झिझक मालूम देती और न गिरने की ही कोई शंका रहती। उनकी चाल क्या ख़ूब थी। मालूम देता, फ़रिश्ते के पर लगे हों। हाँ, तो हम लोगों का भी गला न छूटा। राम-राम कहकर दूसरा दिन बीता; पर तीसरे ही दिन से हमलोग बराबर स्केटिंग करने जाने लगे। इससे एक प्रकार की कसरत भी हो जाती और एक इल्म से जानकारी भी होती थी। जो कुछ भय था, वह बस पहले ही दिन था। फिर न तो किसी प्रकार की झिझक मालूम देती और न किसी प्रकार का भय। अच्छे खेलाड़ियों के लिये तो स्केटिंग बड़े कौतुक की चीज़ थी। वे स्केटिंग के साथ-साथ डांस भी करते जाते थे। उनके पैर बहुत सधे रहते थे। पर हम लोगों ने तो चक्कर दे लेना तक ही अच्छी तरह सीख लिया। महाराज को अभ्यास था, वह स्केट बख़ूबी कर लेते।

यों भी अनेकों मनबहलाव की चीज़ें आजकल मसूरी में जहाँ-तहाँ हैं। कुछ तो मनोविनोद के लिये हैं, और कुछ का स्वास्थ से भी घनिष्ट सम्बन्ध है। सबसे बढ़कर स्वास्थ्यकर और विनोद की चीज़ मसूरी के झरने हैं। वहाँ आप चलिए, आपको बड़ा ही मानसिक आनंद और शांति मिलेगी। केम्टी (Kempty falls), मोसी (Mossy falls), भट्टा (Bhatta falls), हार्डी (Hardy falls) और सहस्रधारा विशेष दर्शनीय हैं। झरनों के विषय में तो कहना ही क्या है, उन पर कुछ-न-कुछ हमारे सभी कवियों ने लिखा है। साधारण बुद्धि भी इस प्रकार इनके अनंत काक के सतत प्रवाह को सोचते ही सिहर उठती है। वे गाते

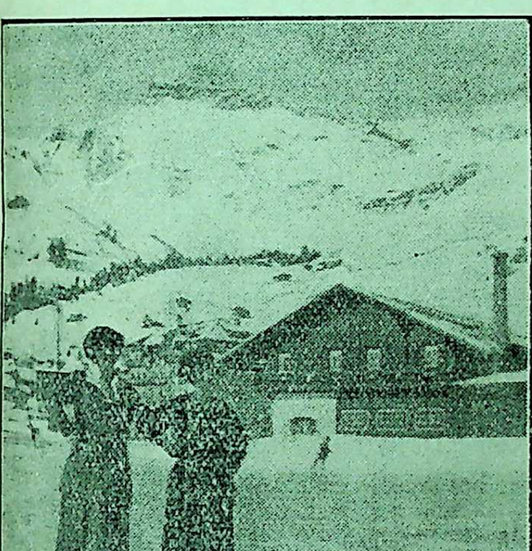

जाड़े में बर्फ़ पर स्केट करते हुए

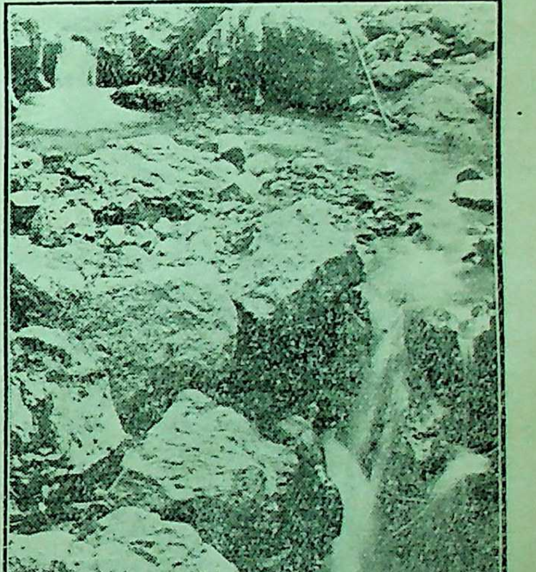

मासी-झरना

हैं कोई ऐसा गीत, जिसमें वेदना भरी है, आह छिपी है। उनके राग में कितनी कसक, कितना अंतर्दाह ओतप्रोत है, कौन कह सकता है। गिरते हैं, प्रेमी के पथ पर पानी बनकर। सरिताएँ समुद्र के संग मिलने जाती हैं, और बेचारे ये निर्झर उनका आँचल पकड़े देखते हैं—पीछा छुड़ाए नदियाँ कितनी मस्ती से बलखाती नीचे चली जा रही हैं। इनका झर-झर रोना, मानो कहता है, यही तो दुनिया है।

झरनों के अलावा पहाड़ की चोटियाँ भी ऐसी हैं, जहाँ से हमें प्रकृति की सुंदरता का नमूना देखने को मिलता है। एक लाल टिब्बा (Lall Tibba) है। इसकी ऊँचाई समुद्र-सतह से हज़ार फ़ीट है, शायद मसूरी में यही सबसे ऊँची जगह है। यहाँ से हिमालय का हिममंडित श्वेत शिखर साफ़-साफ़ देख पड़ता है। बदरीनाथ, केदारनाथ, नंदादेवी, श्रीकांत आदि अनेक स्थानों की रमणीक झाँकी यहाँ से देखने को मिलती है। कुहरा जब न रहे, तभी इधर के मैदान और उधर के उपर्युक्त स्थानों के पहाड़ी दृश्य देखे जा सकते हैं। नहीं तो मुफ़्त की पहाड़ की चढ़ाई सर उठानी पड़ती है, क़ाफ़िया तंग हो जाता है। पछताना पड़ता है, सो अलग। मसूरी की सारी जगहें पैदल या डांडी-रिक्शे से ही पहुँचनी होती हैं। बहुत जगहें तो ऐसी हैं, जहाँ डांडी और रिक्शे का कोई बस नहीं चलता। अपने पाँवों की ही ख़ैरियत मनानी पड़ती है। अच्छा हुआ मसूरी में बिजलियों-सी तड़ मोटरें अपनी दानवी दौड़ नहीं लगातीं ; नहीं तो सा लुत्फ़ जाता रहता। न वहाँ वह शांति रह पाती और मसूरी की वह गंभीरता और कमनीयता। हमारे शहरों में देखिए, पता नहीं कब किधर से मोटर बला डकारती चली आए, जी चाहे जिसको दबा कुचल दे। मसूरी में अभी तक तो इसका डर नहीं है।

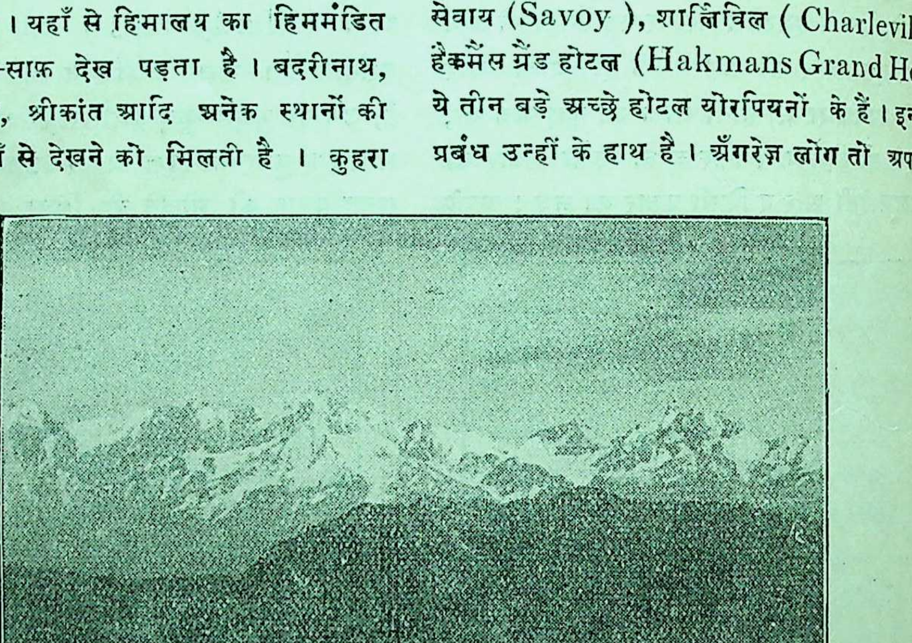

बदरीनाथ की बरफ़ से ढकी हुई पहाड़ियाँ

मसूरी में रहने के लिये सबसे सुंदर प्रबंध होटलों का है। बहुत साफ़, बड़े रम्य और लुभानेवाले यहाँ के होटल हैं। इनका प्रबंध, इनकी सफ़ाई और सज-धज सा हिंदुस्थान के होटलों को मात करनेवाली कही जाती है। दो सौ से लेकर हज़ारों तक के महीने के होटल हैं। सेवाय (Savoy), शार्लिविल (Charlevile) और हैकमैंस ग्रैंड होटल (Hakmans Grand Hotel)—ये तीन बड़े अच्छे होटल योरपियनों के हैं। इनका प्र प्रबंध उन्हीं के हाथ है। अँगरेज़ लोग तो अपनी समझकर इनमें रहते ही हैं और इनके लिये सुबीता है ; किंतु हमारे मनचले हिंदुस्थानी भाई भी ग़ज़ब शौक़ीन होते हैं। तबियत नहीं मानती, और सुनते हज़ार झेंप खाते हुए भी इन्हीं होटलों में अपना अड़ाए रहते हैं। यहाँ कई हिंदुस्थानी होटल भी अच्छे हैं। इनके मालिकों का प्रबंध, रोज़-रोज़ का का व्यवहार बहुत बढ़िया और सभ्य रहता है। हम

ग्रांड इंडियन होटल में थे । यह लाइब्रेरी के पास ही है। होटल तो छोटा-सा है, किंतु बड़ा सुंदर है । रहन-सहन तथा खाने-पीने का प्रबंध यहाँ का अच्छा है ही, साथ-ही-साथ इसके मालिक सरदार साहब बड़े मिलनसार और हँसमुख जान पड़ते थे । योरपियनों के बीच रहते हुए उन्हें अपनी भारतीयता का काफ़ी ख़याल था । ऐसी जगह इन होटलों को खोलकर हमारे देश का लाखों रुपया अँगरेज़ बाहर ले जाते हैं और तुर्रा यह कि रहनेवालों पर शान भी गाँठते रहते हैं । सुना, कोई साहब ऐसे ही किसी होटल के प्रोप्राइटर से मिलने गए। उनको खद्दर पहने देख प्रोप्राइटर बेचारा बुरी तरह चौंक पड़ा और कहने लगा—आप तो साहब, ऐंटी-ब्रिटिश हैं, यह ठीक नहीं । होटल में ऐंटी-ब्रिटिशों के लिये जगह नहीं। क्या हुआ, ठीक पता नहीं । शायद अपना-सा मुँह लिए उन्हें लौट आना पड़ा । नमक-मसाले के व्यापार के लिये जब मुग़ल-सम्राटों के सामने नाक रगड़नी थी, उस समय ऐंटी-ब्रिटिश होने का ख़याल इन्हें था कि नहीं, यह हम नहीं जानते । आज हमारे ऐंटी-ब्रिटिश होने को इन्हें पड़ी है ।

थोड़े में मसूरी को देखने के लिये इसके पाँच टुकड़े किए जा सकते हैं । देखिए—बारलोगंज से स्कूल-कालेज और इनसे संबंध रखनेवालों के निवासस्थान का भू-भाग है । दूसरा हिस्सा लाइब्रेरी-बाज़ार से लेकर मालरोड और केमल्सबैक रोड का है । यही हिस्सा मसूरी की सभी जगहों से अधिक रम्य, आकर्षक और सुहावना है । यहाँ स्टेशन-लाइब्रेरी है ही, सामने बैंड स्टैंड है । यहाँ बैंड बजता है, और नीचे मैदान का सुंदर दृश्य दिखाई देता है । सारी सड़क सिनेमा-घरों तथा अनेक मन-बहलाव की चीज़ों से सजी है । मैजेस्टिक सिनेमा, स्टीफल, पिलेडियम, आक्शन् घरों तथा रिंक और पिक्चर-पैलेस मसूरी की ख़ास-ख़ास आनंद मनाने की जगहें हैं, जहाँ नाच-तमाशे हुआ करते हैं । रिंक में स्केटिंग तो होती ही है, साथ-ही-साथ कभी-कभी सिनेमा और नाटक भी होते रहते हैं । यहाँ हर साल अखिल भारत-वर्षीय वाक्सिंग टूर्नामेंट होता है । उस दिन बड़ा जलसा मनाया जाता है । रिंक के सामने ही तिलक-मेमोरियल-लाइब्रेरी है । यहीं हमें पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ देखने को मिल सकती हैं । स्टेशन की लाइब्रेरी तो केवल योरपियन और ऐंग्लो-इंडियन लोगों के लिये ही है, वहाँ हम हिंदुस्थानियों की गुज़र नहीं । तीसरा हिस्सा विनसेंट हिल (Vincent Hill) और हैप्पी वैली (Happy Valley) का है । हैप्पी वैली में आजकल तेरह-चौदह टेनिस कोर्ट हैं । यही एक चीज़ है, जो पहाड़ के लिये अचम्भे की कही जा सकती है।

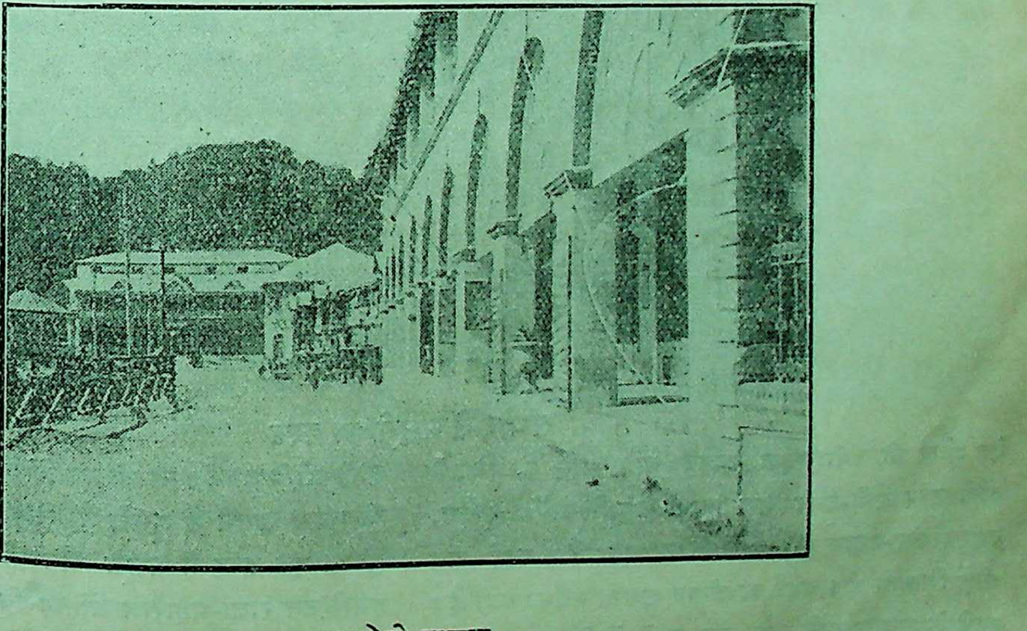

लाइब्रेरी-बाज़ार

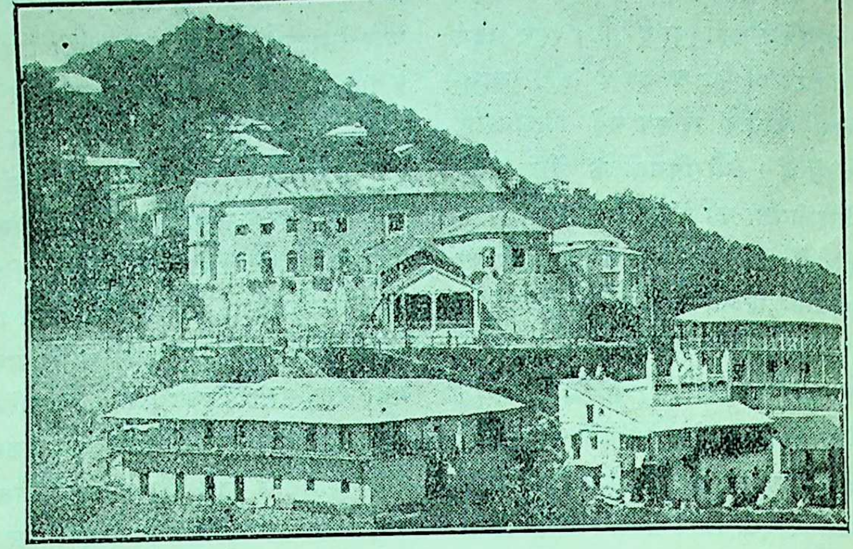

रिंक और तिलक-लाइब्रेरी

यहाँ "हैप्पी वैली क्लब" भी है । चौथा और पाँचवा हिस्सा लंधौर बाज़ार (Landour Bazar) और लंधौर डिपो (Landour Depot) है । लंधौर बाज़ार तो मैदान के शहरों का एक नमूना है । बीच में क़रीब डेढ़ मील की लंबी सड़क दाहने और बाएँ हैं, जिसके दोनों ओर ऊँची-ऊँची गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ हैं । बस, यही लंधौर-बाज़ार है । क़ाफ़ी घना बसा है । यहाँ सब चीज़ें मिलती हैं । यहाँ का जीवन उतना महँगा नहीं है । रहने के मकान सस्ते और कम दामों में किराए पर मिल सकते हैं, पर है गंदा और सकरा । केवल रोज़ी-रोज़गार करनेवालों के लिये है । लंधौर से आगे 'डीपो' आता है । यहाँ मिसनरी और गोरे सिपाही रहते हैं तमाम डीपो इन्हीं से भरा पड़ा है । बीच-बीच में छोटी-छोटी दूकानें या तो पहाड़ियों की हैं या देश की । बस, इतने में मसूरी है, जिसको हमने देखा सुना । एक शब्द में मसूरी अँगरेज़ों की दुनिया है, हमारे उन राजा-महाराजाओं की विहारभूमि है, जि जीवन का मूल-मंत्र है खाओ, पीओ, मौज करो।

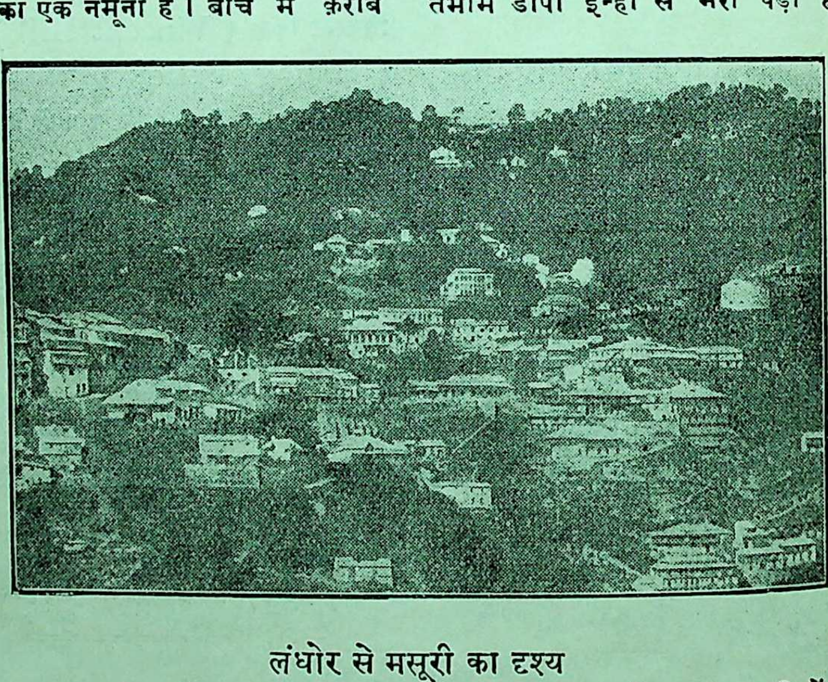

लंधौर से मसूरी का दृश्य

मसूरी से दून का मैदान

खिड़की के बाहर

अब हम लोगों की घर चलने की ठनी । फिर वही बेचैनी, वही उतावलापन । एक-एक च्रण पहाड़ जान पड़ता था । दिन के चार बजे चलने को तैयार हुए । महाराज सनी व्यू (Sunny View) तक साथ थे । हम लोग मोटर में बैठे । मोटर चलनी शुरू हुई । पग-पग नीचे खड्ड में ले जा रही थी । कितने वेग से, कितनी आतुरता से ! एक बार, दो बार हमने दूर सनी व्यू के एक पहाड़ी टीले पर महाराज को देखा । फिर मसूरी का विमान उस सुरलोक की परी के समान पृथ्वी से ऊपर उठता दिखाई देने लगा, जो एक बार मृत्युलोक में आई थी । हम मोटर में बैठे हुए नीचे चले जा रहे थे—शांत और स्थिर । मोटर पहाड़ के खड्ड में थी । इधर भी पहाड़, उधर भी पहाड़, ऊँचा और भयावह ! सामने गहरी, अथाह खाड़ियाँ थीं, और घनी वृक्षों से लदी हुई आँखों के सामने मसूरी का मोहक रूप सिनेमा के चित्र की तरह आया और ग़ायब हो गया । हाँ, दूर से ट्रेन में बैठे हुए रात को हम मसूरी की बिजली की रोशनी देखते रहे । लो यह भी लोप हो गई । देखते-ही-देखते सारी बत्तियाँ तारे बनकर आकाश में नाचने लगीं । एक बार, दो बार, कई बार देखा; कुछ दिखाई नहीं दिया । रात्रि के घने अंधकार ने मसूरी को अपने में समेट लिया था । सामने काले मेघ की तरह पहाड़ की ऊँची दीवाल नज़र आने लगी—भयंकर डरावनी । कुछ ही घंटे पहले जिसकी एक-एक पत्तियाँ हमसे ठठोलियाँ करती थीं, जो फल हँसते थे, लताएँ होड़ लगाती थीं, वे सब न-जाने कहाँ चले गए ।

कुबेरनाथ पाठक

नेह-नाटक

मान रचि राख्यौ नेह-नाटक जौ कल्पित कै,
ताही कौ प्रतच्छ करि चाह साँचिवे की है;
आली! ह्वै चुक्यो है सब कृत्य नृत्य नाँदी आदि
पारी त्यों पुरोचन 'रसाल' राँचिवे की है।
नैपथ्य मैं कै दियो अनंग पूर्व रंग-राग,
बस अब वेर पट के उलाँचिवे की है;
करि मन-मोहन सुरूप नट-नैनन कौ,
रूप-रंग-मंच पै उमंग नाचिवे की है।

रामशंकर शुक्ल "रसाल"

रंगभूमि और वैनिटी फ़ेयर

(२)

(पूर्ण संख्या ८० से संबद्ध)

अब यहाँ संक्षेप में वैनिटी फ़ेयर के जार्ज आसबर्न का परिचय दे देना अनिवार्य हो गया है।

जार्ज आसबर्न सेडली का धर्मपुत्र था और पिछले २३ वर्षों से इस परिवार का सदस्य था। जब वह डेढ़ महीने का था, तो उसे जान सेडली ने एक चाँदी का प्याला भेंट किया था......आदि......(४१); उसका पिता किसी समय कौड़ी-कौड़ी को मुहताज था, जिसे सहायता देकर सेडली ने इस उरूज पर पहुँचाया था, जो दंभी था, विश्वासघातक था और अपने भूतपूर्व आश्रयदाता सेडली की विपदवस्था के दिनों में उनके बराबर बिच्छू की तरह डंक मारता रहता था (२७७); पुत्र विलासी था, अपव्ययी था, खुशामदपसंद और घमंडी था (१६४—१६७, २८४—२६५, २६६—३०८, ३२८—३४६)। मतलब यह है कि विनय के साथ किसी दशा में भी तौले जाने योग्य नहीं था।

रही राजकुमार होने की बात। सो जार्ज आसबर्न यदि राजकुमार होने योग्य था, तो अमेलिया राजकुमारी समझी जानी चाहिए थी। स्वयं जार्ज आसबर्न के पिता के शब्दों में अमेलिया का पिता उससे दस हज़ार पाउंड का अधिक धनी था (तीसरा भाग ६६)। अमेलिया जार्ज को अपनी संपन्नावस्था में ही राजकुमार समझ थी—क्यों? इसलिये नहीं कि वह मालदार था, व स्वयं भी कम न थी, बल्कि इसलिये कि वह इस विलासप्रियता पर मुग्ध थी, उसकी गलमुच्छों प आसक्त थी और उसकी ऐंठ-अकड़ पर मरती थी—ठी ऽकार जिस प्रकार संसार की अन्य अगणित बालिका अपने प्रेमियों पर मोहित होती थीं, हैं और रहेंगी रंगभूमि की सोफ़िया विनय के वैभव पर आसक्त थी, उसके ऐश्वर्य को तुच्छ समझती थी। यदि विन जार्ज आसबर्न की नाईं सोफिया को अमेलिया सम कर अपने कृत्यों की डींग मारते, आत्मप्रशंसा करते, शायद उसे उनसे अरुचि हो जाती (४६१)। जब उ विनय और प्रभुसेवक ने कविता के निर्णय के लि न्यायाधीश बनाया, तब भी विनय की ओर देखकर उस मन-ही-मन कहा था—कैसा आदर्श जीवन है। (१२३ इसी को कहते हैं Distostion of facts!

इसके बाद हमारे मित्र, अवधजी ने एक लंबा उद्धरण देकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि

लिया की भावी ननद उसे हीन दृष्टि से देखती थी। उन्हें आश्चर्य होता था कि 'आसबर्न उस पर न-मालूम क्यों मुग्ध हो गया है।' वे उसे समझातीं कि 'यदि तुम अमेलिया से विवाह करोगे, तो तुम्हारे त्याग की मात्रा बहुत ही अधिक कही जायगी।' यहाँ अवधजी ने अनावश्यक विस्तार से काम लिया है, हम इतने से ही संतुष्ट हैं।

यहाँ कई प्रश्न उठते हैं। क्या अमेलिया और आसबर्न की भाँति सोफ़िया और विनय भी विवाह करने को उत्कंठित थे?—क्या इन्दु के हृदय में भी वही मनोवृत्ति काम कर रही थी, जिसके वशीभूत होकर आसबर्न-भगिनियों ने अपने भाई को मना किया था?—(यहाँ हास्यरसाचार्य थैकरे ने अपनी स्वभावसिद्ध व्यंग्यपटुता के साथ स्रीजाति के इस विस्मय का चित्र खींचा है, जो किसी सुंदरी बालिका के गुलाबी गालों और नील नेत्रों को देखकर उद्भूत होता है। थैकरे कहता है—"माना कि इस नैतिक आदर्शवादिनी प्रिय जाति के कथनानुसार रूप की अपेक्षा गुण कहीं मूल्यवान् पदार्थ हैं......और यह भी माना कि साधुतापूर्ण स्रीचरित्र—जिसकी महिलाओं की दृष्टि में इतनी महत्ता है—एक भोले-भाले. सुस्मित और कौशलरहित, कोमल और नैसर्गिक आभा से कांत, मुखड़े की अपेक्षा अधिक गौरव और यश का पदार्थ है—पर हतभाग्य निरीह बालिकाओं को जिन्हें रूप का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है, इसी में अपनी सांत्वना समझनी चाहिए कि कुछ भी हो, आदमी तो उनकी आराधना करते हैं!") क्या उसके हृदय में यही स्रीसुलभ कुत्सित भावना अपना काम कर रही थी?—और क्या वह भी सोफ़िया को आसबर्न-भगिनियों की भाँति नीचा समझती थी? रंगभूमि में इन सब बातों का पता तक नहीं है। सोफ़िया ने अपने प्रेम को अंत तक दबाने का प्रयत्न किया, और विनय तो स्वयं उपाध्यायजी की ज़बानी अपने को धोखा देता रहा था, वह कई-कई दिन तक घर में न आता, सेवा-समिति के कार्यों में व्यस्त रहता, मिस सोफ़िया की ओर आँख तक उठाकर न देखता, उसके साए से भागता। इंदु ने इस भेद को जान लिया, पर उसके हृदय पर कुत्सा ने क्षण-भर के लिये भी अधिकार नहीं किया। उसने तो सोफ़िया से स्वयं कहा कि यदि धर्म बाधक न होता, तो माताजी उसे अपनी पुत्रवधू बनाकर छोड़तीं (और स्वयं अवधेशजी ने भी इसका उद्धरण दिया है)। वह उसे नीच समझती थी?—तनिक भी नहीं। उसने इस संबंध के विषय में कभी गंभीरता के साथ विचार किया था?—ज़रा भी नहीं। और यह बात उदयपुर में विनय के आत्मकथन से प्रकट है 'समझ गया, इंदु की सरलता ने यह आग लगाई है। उसने हँसी-हँसी में अम्माजी से कह दिया होगा। न-जाने उसे कभी बुद्धि होगी या नहीं। उसकी तो दिल्लगी हुई, और यहाँ मुझ पर जो बीत रही है, मैं ही जानता हूँ।" वास्तव में उसने विनय को सोफ़िया से प्रेम करने से कभी रोका ही नहीं था। उसे डर था कि कहीं विनय सोफ़िया की आँखों से न गिर जाय (और कोई भी स्नेहमयी बहन इसे सहन नहीं कर सकती) और इसी साधुभावना से प्रेरित होकर जिसमें माता का सदनुष्ठान भी सम्मिलित था—उसने विनय को इस पथ पर जाने से रोका था। विनय उस पथ पर बहुत आगे बढ़ चुका था, उसने अपना अपराध स्वीकार किया, उस मार्ग से लौट सकने में असमर्थता प्रकट की, पर साथ-ही-साथ इंदु को यह भी आस्वासन दिया कि 'इस आग की एक चिनगारी या एक लपट भी सोफ़ी तक न पहुँचेगी'। वह थैकरे का कामुक आसबर्न, उच्छृंखल आसबर्न, कुत्सित मनोवृत्तियोंवाला आसबर्न न था। उसने प्रतिज्ञा की कि 'मेरा सारा शरीर भस्म हो जाय, हड्डियाँ तक राख हो जायँ, पर सोफ़ी को इस ज्वाला की झलक तक न दिखाई देगी'। (यहाँ प्रतिभासंपन्न लेखक की लेखनी अत्यंत सजीव हो उठी है) उसके हृदय में पश्चात्ताप की वेदना हो रही थी। उसने निश्चय किया कि 'जितनी जल्दी हो सके, वहाँ से चला जाय'। पर उपाध्यायजी अपने सविस्तर उद्धरण में यह अंश भला क्यों सम्मिलित करने लगे!—उससे गणितीय समिकरण की असिद्धि की जो आशंका थी! हाँ, उन्होंने यह लिखने की उदारता अवश्य दिखाई है—'तदनंतर विनय इसे सोफ़िया से गुप्त रखने और हट जाने की प्रतिज्ञा करता है'। जार्ज आसबर्न ने भी कुछ ऐसा ही किया था क्या? फिर सादृश्य कहाँ रहा?

हमारे मित्र उपाध्यायजी को सीधी-सादी बात को जटिल रूप दे देने, बात का बतंगड़ खड़ा कर देने, सुई का

फावड़ा बना देने और नई-नई बातों के आविष्कार करने का बड़ा शौक़ है। हम अमेलिया के चरित्र-चित्रण में यह बात स्पष्ट कर आए हैं कि वह आवश्यकता से अधिक लजीली है, अपनी भावी ननदों के सामने बावली-बौरंगी बनी बैठी रहती है, और वे उसे बेहूदा और बेशऊर ख़याल करती हैं। पर वह जार्ज आसबर्न के कई-कई दिनों तक सूरत न दिखाने पर तंग आकर उसके पिता के घर जाती है। उसके वहाँ जाने का उद्देश्य जार्ज आसबर्न को देख आना रहता है, पर वहाँ पहुँचते ही वह अपनी ननदों की असह्य सहृदतया से विकल हो जाती है और वहाँ से किसी-न-किसी प्रकार निकल भागने का अवसर देखती है। अवधजी कहते हैं कि 'अमेलिया मानापमान का कुछ भी विचार नहीं करती। यद्यपि आसबर्न की बहनें उसे नहीं चाहती थीं (पर इंदु तो सोफ़िया के पीछे जान देती थी!), तथापि वह उसके पास जाने में तनिक भी नहीं लजाती थी।'......आदि।

इसके बाद अवधजी कहते हैं—'अब यह देखना चाहिए कि इस संबंध में सोफ़िया के विचार कैसे थे और दोनों प्रेमिकाओं में कुछ समानता है या नहीं।'...इसके बाद उन्होंने रंगभूमि के १५६ पृष्ठ का उद्धरण देकर बीजगणितीय नैपुण्य के साथ सिद्ध किया है कि सोफ़िया 'तनिक भी नहीं लजाती थी।' हम दोनों प्रेमिकाओं के प्रेम, उनकी आधार-भूत स्थितियों, उनके लक्ष्यों और उनकी आकांक्षाओं को स्पष्ट रूप से लिख आए हैं। यदि अमेलिया और सोफ़िया के प्रेम में कोई सादृश्य स्थापित किया जा सकता है, तो रेबेका और सोफ़िया की उससे भी अधिक सुगमता से समता हो सकती है। उसमें आप निर्लज्जता भी पाएँगे और निर्भीकता भी। इस स्थान पर सोफ़िया की दशा तो उस प्रेम-वेदना-विकल प्राणी-जैसी है, जो अपने भाव-गोपन में अंत में असमर्थ हो जाता है, और अपने विश्वास-पात्र व्यक्ति के सामने हृदय खोलकर रख देता है। सोफ़िया अपने भाई पर विश्वास रखती थी; क्या अमेलिया भी अपनी ननदों पर विश्वास रखती थी? (और विस्मयकारी बात यह है कि यहाँ समालोचक महोदय ने प्रभुसेवक को बात-की-बात में इंदु के पद पर अधीष्ठित किया है। आख़िर सादृश्य भी तो किसी प्रकार स्थापित करना ही था!) शायद पाठक इतने ही से संतुष्ट हो जायँगे।

तदनंतर उपाध्यायजी ने यह पता लगाने का किया है कि 'वैनिटी फ़ेयर में विवाह के संबंध में आ के माता-पिता (हम अवधजी को विश्वास दि चाहते हैं कि आसबर्न की माता उस समय से पहले मर चुकी थी) की क्या राय है और इसी के सार रंगभूमि में विनय तथा विनय की प्रेमिका सो के माता-पिता की क्या राय है।'

अब देखिए क्या-क्या शिगूफ़े खिलते हैं। सुनिए—

'आसबर्न का पिता नहीं चाहता था कि उसके पु विवाह अमेलिया से हो। उसका पूर्ण विश्वास था यह बात वास्तव में सत्य भी थी कि आसबर्न की अमेलिया से बहुत ही अधिक धनवान् तथा श्रेष्ठ हो सकती थी। अतएव वह इस विवाह के बहुत विरुद्ध था। वह स्पष्ट रूप से अपने पुत्र से कह कि तुम अपनी शादी अमेलिया से मत करो। वह को अमेलिया से बोलने तक के लिये मना कर दे इसीलिये जब एक दिन आसबर्न अमेलिया से करता था, तब आसबर्न की बहन ने उससे कहा— लिया से क्यों बातें कर रहे हो? पिताजी तो मना हैं, परंतु आसबर्न ने कहा—अमेलिया से मैं अवश्य बातचीत करूँगा। कोई शक्ति ऐसी नहीं, जो मुझे लिया से बातचीत करने से मना कर सके।' (इस के अंतिम अंश के प्रारंभिक भाग में सुखसागर के लालित्य और अंतिम भाग में क़ुरान के उर्दू भा शब्दसौष्ठव देखने को मिलता है। हाँ, 'मना कर के स्थान पर 'कर सके मना' हो जाता, तो वाक्य भी चटपटा बन जाता।) पाठकगण आसबर्न के के संबंध में जो कुछ कहा गया है, उसका ध्यान र

इसके बाद आपने वैनिटी फ़ेयर का एक उद्धरण है, जिसमें वर्णित है कि किस प्रकार जार्ज का कांक्षी पिता—जो खींच-तानकर एक लार्ड के परि अपना रक्त-संबंध प्रसिद्ध करना चाहता था—जो बड़े आदमी को देखते ही भीगी बिल्ली की तरह से अभिवादन करता था—जो शुष्क था, दंभी निरंकुश-प्रकृति था, चिड़चिड़ा और संकी था—जो शराब बहुत पीता था, अपने से अधिक लिखे आदमी के सामने दब्बू बन जाता था, प ख़रीदकर छोड़ देने की शक्ति रखता था, ख़ुशाम

था और अपनी हठ के आगे किसी की नहीं सुनता था—संक्षेप में जो यशलोलुप था, धनलोलुप था और केवल सभ्य समाज में प्रवेश पा सकने की लालसा से लड़के को हाथों की थैलियाँ देता था, जिनसे वह लार्डों के लड़कों के साथ निकृष्ट जीवन व्यतीत करता था; जो जब तक उसकी स्त्री जीवित रही, उसे नाना प्रकार के दैहिक और मानसिक कष्ट देता था, जिसने अपनी पुत्र-वधू अमेलिया के साथ पाशविक व्यवहार किया था—और जो कुँअर भरतसिंह या रानी जाह्नवी से उसी प्रकार समता किए जाने के अयोग्य था, जिस प्रकार कोई अन्य वासना-लोलुप धनी पं० मोतीलाल नेहरू या उनकी धर्मपत्नी से समता किए जाने के अयोग्य है (और इस तुलना की कल्पना-मात्र से हृदय काँप उठता है)—हाँ, हम कह रहे थे कि अवधजी ने एक उद्धरण देकर दिखाया कि किस प्रकार जार्ज का महत्त्वाकांक्षी पिता अपने पुत्र का नाम कुलीनों और तेजस्वियों के नाम के साथ देखकर परमोल्लास और अभिमान से फूल जाता था और किस प्रकार उसे आंतरिक विश्वास हो गया था कि उसका पुत्र अवश्य ही प्रतापी बैरन देश प्रस्थापक होगा। (आश्चर्य है, अवधजी ने यशोलोलुप वृद्ध आसबर्न का मर्यादा-लोलुप महेन्द्रकुमार के साथ सादृश्य स्थापित क्यों नहीं किया!) जार्ज आसबर्न के पिता के चरित्र का विशद अध्ययन करने के लिये पाठकों को वैनिटी फ़ेयर के निम्नलिखित पृष्ठ देखने चाहिए -१६६—१६७—१७३, २४४, २७१, २९२—२९५, ३१९—३३२; दूसरा भाग ११५—१२५, २३१—२३७, २८३, २८६, ३३९, ३४०; तीसरा भाग २४, २७—२९, ३०, ४०—८६, ८७—८८, ९९—१०६।

अब विनय की माता जाह्नवी की क्या आकांक्षा थी, क्या चरित्र था, कैसी मनोवृत्तियाँ थीं, सो स्वयं सहृदय अवधजी के उद्धरण की सहायता से ही देखिए। अवधजी कहते हैं—'अब पाठकों को आसबर्न के पिता के उपर्युक्त कथन से रानी जाह्नवी के कथन का मिलान करना चाहिए।' हम भी इससे अधिक कुछ नहीं चाहते—'रानी जाह्नवी ने सोफ़िया से कहा—बेटी......। फिर तो वीरतापूर्ण कथाओं के पढ़ने का मुझे ऐसा चस्का लगा कि राजपूतों की ऐसी कोई कथा नहीं, जो मैंने न पढ़ी हो। उसी समय से मेरे मन में जाति-प्रेम का भाव अंकुरित हुआ। एक नई अभिलाषा उत्पन्न हुई—मेरी कोख से भी कोई ऐसा पुत्र जन्म लेता, जो अभिमन्यु, दुर्गादास और प्रताप की भाँति जाति का मस्तक ऊँचा करता। मैंने व्रत किया कि पुत्र हुआ, तो उसे देश और जाति के हित के लिये समर्पित कर दूँगी।.........विनय इन लोगों के साथ जा रहा है और मैं गर्व से फूली नहीं समाती कि मेरा पुत्र जातिहित के लिये यह आयोजन कर रहा है, और तुमसे सच कहती हूँ, अगर कोई ऐसा अवसर आ पड़े कि जातिरक्षा के लिये उसे प्राण भी देना पड़ें, तो मुझे ज़रा भी शोक न होगा। इसी प्रकार पृष्ठ २५१ में रानी ने जातीय गर्व का उल्लेख किया है।'

'एक दिन रानी जाह्नवी ने देखा कि विनय सोफ़िया की ओर प्रेमपूर्ण दृष्टि से देख रहा है और सोफ़िया भी विनय पर लट्टू है। बस, अब क्या कहना है। (अभी तो बहुत कुछ कहना है)। रानी जाह्नवी का विकसित शांत मुखमंडल तमतमा उठा, मानों बाग़ में आग लग गई। अग्निमय नेत्रों से विनय की ओर देखकर बोली—तुम कब जा रहे हो? तदनंतर रानी से उन्हें वहाँ से जाने के लिये विवश कर दिया। रानी डर गईं कि यहाँ रहने से विनय सोफ़िया से विवाह कर लेगा। रानी को यह विवाह पसंद नहीं था, इसीलिये रानी ने विनय को खदेड़ कर ही दम ली (? लिया)'। पर रंगभूमि के पाठक, विनय सोफ़िया के विवाह की आशंका से डरी नहीं थीं। उनके जातिगर्व-गर्वित हृदय को इस बात के विचार-मात्र से आघात पहुँचा कि एक पुत्र जिसे उन्होंने देश को अर्पण किया था—जिसका जीवन त्यागमय बनाने के लिये स्वयं उन्हें अनेक शारीरिक कष्ट उठाने पड़े थे—(पर अवधजी लेखक की इस उक्ति से नाराज़ हैं; वह कहते हैं कि रानी जाह्नवी का यह कथन कि उन्हें जाति की अधोगति को देखकर अपनी विलासिता पर लज्जा आती थी, उसके उद्धार के लिये उन्होंने अपने पुत्र को न कभी गद्दों पर सुलाया, न कभी महरियों और दाइयों की गोद में जाने दिया, न मेवे खाने दिए, अस्वाभाविक है। उन्हें विश्वास नहीं होता कि राजकुमार विनय को बाल्यावस्था में कोई मेवा न मिला हो।' उनकी समझ से 'इतनी दासियों के रहते हुए यह भी संभव नहीं मालूम होता कि विनय दासियों की गोद में न गया हो।' किंतु हम उन्हें परामर्श देंगे कि

लेखक के कथन को ही चुपचाप मान लिया करते हैं—अन्यथा गति ही क्या है ? यदि हम लेखक के चरित्र-चित्रण में इस प्रकार आशंका करने लगेंगे, तो टालस्टाय की सर्वोत्कृष्ट रचना War and Peace के पीरी-जैसे कामुक और आलसी जीव का एक दार्शनिक के रूप में कायाकल्प असंभव हो जायगा और विक्टर ह्यूगो को अपनी फ्रेंच साहित्य की—मेरी समझ से विश्वसाहित्य की—अमूल्य संपत्ति Les Miserable के जीन वल-जीन-जैसे पतित और अधम जीव को साधु के रूप में परिवर्तित करने के असाधारण रचनाकौशल के पुरस्कार में मिली हुई स्विनबर्न-जैसे विख्यात कवि और कला-विवेचक की सनद, जो सहृदयता और कृतज्ञता व्यक्त करने में अपनी सानी नहीं रखती—The son of Consolation (शांति-सांत्वना का पुत्र)—लाचार होकर वापस करनी पड़ेगी ।) जिनके प्राण तक बलिदान करने में वह पश्चात् पद नहीं थीं—उनके जीवन के महान् उद्देश्य, एक-मात्र आकांक्षा, स्वर्गीय अनुष्ठान और नैसर्गिक व्रत की, इस प्रकार गर्हित वासनाओं में फँसकर, इस बुरी तरह हत्या करने पर उतारू है । इसीलिये उन्हें क्रोध आ गया था, मुँह तमतमा उठा था—भीति का तो कहीं चिह्न भी नहीं था—यह वस्तु उनके स्वभाव के लिये अभिभ्रणीय (Incompatible) थी । इसी ज़रा-सी बात का अवधजी ने इतना बतंगड़ खड़ा किया है । अब तो पाठकों की समझ में आ गई न ? अस्तु ।

हमने पाठकों से वादा किया था कि हम उनका कुछ 'शिगूफ़ों' से मनोरंजन करेंगे, लीजिए। पाठकगण, अभी यह तो न भूले होंगे कि अवधजी ने कहा था कि इस विवाह-संबंध के वरपक्ष के पिता बहुत ही विरुद्ध थे। (यद्यपि वस्तुस्थिति ऐसी न थी । वह तो रेबेका से प्रेम-संबंध स्थापित करनेवाले वैनिटी फ़ेयर के जोसेफ़ सेडली के पिता जान सेडली की नाईं, उदासीन थे, और आश्चर्य है, यह बात निपुण विवेचक की दृष्टि से कैसे बच गई । सादृश्य तो बड़ी सुविधा के साथ स्थापित हो सकता था !) पर अब—सुनने के लिये तैयार रहिए, हृदय को कड़ा कीजिए, और इस विस्मयकारी आश्चर्य-व्यापार को देखिए और अवाक् रह जाइए। कुँवर विनयसिंह के पिता कुँअर भरतसिंह—कहते कष्ट होता है—जिस प्रकार पायनियर के संपादक मि० विल्सन के प्रति लेख The disinherited father की बदौ महान् पं० मोतीलाल नेहरू अपने तेजस्वी पुत्र पं० ज हरलाल के पिता के पद से च्युत कर दिए गए थे—अ पितापद से लादावा कर दिए गए। अब उन्हें डाबिन का पार्ट खेलना पड़ेगा, वह इस विवाह-संबंध से अ मत हो गए और इतने ही से संतुष्ट नहीं रहे; उन्होंने कन्या के पिता-माता को भी राज़ी करने का प्रयत्न किया क्यों ?—क्योंकि वैनिटी फ़ेयर में भार्ता डाबिन ने बर के माता-पिताओं को राज़ी करने की चेष्टा की थी; य आपत्ति इस समय उठाना व्यर्थ है कि साहब आ तो डाबिन की एक अलग सत्ता मान चुके हैं; इसका कुँअर भरतसिंह में निरूपण किस प्रकार कर दीजिएगा।

सोफ़िया की मा अमेलिया की मा की तरह अस मत नहीं थी । अमेलिया की मा तो इस संबंध को हृद से चाहती थी । 'उसने प्रेमी-प्रेमिका को कमरे जी भरकर आलिंगन-चुंबन करने के लिये छोड़ दि (२७१) अवधजी को सोफ़िया की मा का सादृ अमेलिया की मा के साथ स्थापित करना चाहिए था, उन्होंने ऐसा नहीं किया है । उन्होंने मा का काम पि से लिया है । अर्थात् विनय के पिता कुँअर भरतसि संधिसंदेशवाहक का रूप धारण करके सोफ़िया की के पास पहुँचते हैं, जो अमेलिया के पिता का काम दे है । अब यह देखना चाहिए कि सोफ़िया की मा अमेलिया के पिता में क्या अंतर है । जिन्होंने 'रंगभूमि' पढ़ी होगी, वे अच्छी तरह जानते होंगे कि मिसेज़ सेवक संकीर्णहृदया, धर्मोन्मादिनी और तीखे स्वभा वाली थीं । वह धार्मिक मतभेद होने पर अपनी लड़ को घर तक से निकाल सकती थीं और कुत्सा का हाल था कि रानी जाह्नवी-जैसी सहृदया महिला उनका हृदय अपने आदर-सत्कार से न जीत सकी थी वह सोफ़िया के आत्म-हत्या कर लेने पर विक्षिप्त हो थी और आए-गयों को 'आड़े हाथों' लिया करती (और इस दृष्टि से तो अवधजी को मिसेज़ सेवक तुलना मिसेज़ सेडली से करनी चाहिए थी) । मि सेडली बड़े उदार विचार के थे, अपने अच्छे दिनों जी खोलकर ख़र्च किया करते थे, अपनी पत्नी और को प्राणों से अधिक प्यार करते थे । वह प्रसन्नचित

और अपने मोटे लड़के का मज़ाक़ उड़ाया करते थे। विपत्ति के दिनों में वह विक्षिप्त नहीं हुए। उन्हें अपनी शोचनीय स्थिति का ज्ञान हो गया। वह बड़े आदमियों को देखते ही नम्रता के साथ बातें करते थे और अपने समृद्धिपूर्ण अतीति की चर्चा करके क्लबवालों की नाक में दम कर देते थे। वह अपने धेवते को बाग़ में खिलाने ले जाते और किसी के पूछने पर उसके मृत सैनिक पिता का बड़े गौरव के साथ परिचय देते थे। (२५—२६, ३१-३२, ३८—४०, ४८, १७२, २२५—२२७, २३८—२४१; दूसरा भाग १६१, १६३—१६७, २४४—२७१, २७३, २७८, ३३६; तीसरा भाग ३६, ६८—६९, ९५, ९६—९९।) असह्य विपत्ति का दुर्बल हृदय प्राणियों पर दो प्रकार का प्रभाव पड़ता है। या तो वह इस कोलाहलपूर्ण संसार के दैनिक आनंद या शोक के उत्सवों से उपरामवृत्ति धारण कर लेता है, उनसे अपने को एक विशिष्ट प्रकार का जंतु समझने लगता है, जिसका अवशिष्ट मानवसमाज से कोई सम्पर्क नहीं रहता और वह अपनी स्थिति में ही अकथनीय गर्व की अनुभूति करने लगता है। (कुछ-कुछ सेमुयेल बटलर की तरह *); या फिर उसे अपनी वस्तु-स्थिति का आवश्यकता से अधिक बोध रहता है। वह दूसरों की पदमर्यादा को अपनी स्थिति के तराज़ू पर रखकर तोलता है। वह अपने को अधम, क्षुद्र और पतित समझता है, आत्मगौरव से वंचित एक घृणित, गर्हित प्राणीमात्र! वह अपने से उच्च स्थितिवालों के आदर का भूखा रहता है। विक्टर ह्यूगो के शब्दों में 'तिरस्कृत व्यक्ति आदर का इच्छुक रहता है' (Ignominy wants respect) और दोनों मनोवृत्तियों वाले व्यक्तियों में, प्रेमचंदजी के शब्दों में, दिशाओं का अंतर है। कहना न होगा कि मिसेज़ जान सेवक पहले वर्ग से संबंध रखती थी और मि० सेडली दूसरे वर्ग से।

और इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को थोड़ी देर के लिये जाने दीजिए। 'अमेलिया के पिता उसका विवाह आसबर्न से नहीं करना चाहते थे—इसका अवधजी के पास क्या प्रमाण है। वैनिटी फ़ेयर में तो साफ़-साफ़ लिखा है कि वह इस विवाह-संबंध से नहीं, वर के क्रूर-हृदय पिता वृद्ध आसबर्न से क्रुद्ध थे। इसके अतिरिक्त दोनों की सगाई किसने तोड़ी थी? वृद्ध आसबर्न ने। वह अपने घोर शत्रु को आत्मसमर्पण करने को तैयार न थे। उनकी असहमति कृत्रिम थी, और उनका रोष अस्थायी था। डाबिन को—जो जार्ज आसबर्न का मित्र था, जो दोनों पक्षों में सुलह कराकर विवाह कराना चाहता था, और जिसे अवधजी की रंगभूमि में हम कुँअर भरतसिंह के रूप में देखते हैं—थैकरे के शब्दों में "उतना भय मि० सेडली के रोप का न था, जितना वरपक्ष के पिता का था, और उसे स्वीकार करना पड़ा कि उसे रसेल स्क्वेयर के उस क्रूर वृद्ध व्यापारी के आचरण के विषय में अत्यंत संदेह है। डाबिन ने सोचा कि उन्होंने विवाह का निषेध कर ही दिया है। और वह अच्छी तरह जानता था कि वृद्ध आसबर्न कैसे दृढ़ निश्चय के ज़िद्दी आदमी थे और अपनी बात पर किस बुरी तरह जम जाते थे" (२७१—२७२)।

जब यह शांति-संदेशवाहक मि० सेडली के पास पहुँचा और उसने इस संधि का भूमिकाभास आरंभ किया और उनके भावी जामाता का ज़िक्र उठाया, तो वृद्ध सज्जन ने चिढ़कर कहा, तब क्या वह मुझसे समवेदना प्रकट करता है? (२७७) दुरवस्था में हमें अपने शत्रु की समवेदना से अधिक और कोई वस्तु असह्य नहीं होती। शत्रु सामने आया और हम अपनी निम्नावस्था भूले, हमने मुखमण्डल पर उपेक्षा की मुस्कराहट उत्पन्न की, ऐंठ के साथ गर्दन उठाई और बग़ल से निकल गए। हम ऐसी स्थिति में अवसर ताकते रहते हैं कि किसी प्रकार उसे लांछित और अपमानित करने का अवसर मिले। होश-हवास दुरुस्त होने पर शायद हम उसे अत्यंत कुत्सित कार्य समझते, पर उस समय शत्रु को आघात पहुँचा सकने के सुखकर विचार से हम उन्मत्त हो जाते हैं। अतः जब डाबिन ने उन्हें विश्वास दिलाया कि इस विवाह से रसेल स्क्वेयर के मानी व्यापारी को असह्य आघात पहुँचेगा, तो "अपने शत्रु आसबर्न को ऐसा निर्मम आघात पहुँचाने के विचार से वृद्ध सज्जन को कुछ सांत्वना मिली... उनके मुखमंडल पर संतोष की-सी आभा उदित हो गई।" और अंत में उन्होंने यह कहकर बातचीत समाप्त की कि "भई, तुम लोग बड़े

---

* प्रसिद्ध समालोचक एडवर्ड शैनक्स के शब्दों में सेमुयेल बटलर 'महा घमंडी' (Morbidly Vain) था।

शैतान हो" (२७८) और स्वीकृति मिल गई। और इतने पर अवधजी कहते हैं "ऐसा सादृश्य! कितना आश्चर्य है!" हम भी उनके स्वर में स्वर मिलाकर कहते हैं—"ऐसा वैषम्य! कितना आश्चर्य है!"

इसके आगे अवधजी लिखते हैं—'रंगभूमि में सोफ़िया एक ऐसा पत्र लिखती है, जिसे पढ़कर विनय का हृदय विदीर्ण हो जाता है और वे शोक-सागर में डूबने-उतराने लगते हैं।...इसी प्रकार वैनिटी फ़ेयर में अमेलिया ने भी अपने प्रेमी आसबर्न को इस प्रकार लिखा था ...।' इसके बाद आपने वैनिटी फ़ेयर का पत्र उद्धृत किया है।

रंगभूमि के २४६ पृष्ठ पर हमें लिखा मिलता है—

"एक दिन इन भावनाओं ने उसे इतना व्याकुल किया कि वह रानी के कमरे में जाकर विनय के पत्रों को पढ़ने लगी ...! देखूँ मेरी ओर कोई संकेत है या नहीं...। विनय के पत्र ऐसी ही वीरकथाओं से भरे हुए थे। सोफ़िया यह हाल पढ़कर विकल हो गई। वह इतनी विपत्ति झेल रहे हैं और मैं यहाँ आराम से पड़ी हूँ। वह इसी उद्वेग में अपने कमरे में आई, और विनय को एक लंबा पत्र लिखा, जिसका एक-एक शब्द प्रेम में डूबा हुआ था। अंत में उसने बड़े प्रेम-विनीत शब्दों में प्रार्थना की कि **मुझे अपने पास आने की आज्ञा दीजिए, मैं अब यहाँ नहीं रह सकती।**"

अमेलिया का पत्र पारस्परिक संबंधविच्छेद की सूचना है, सोफ़िया का पत्र प्रेम में डूबा हुआ। अमेलिया ने पत्र अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिये लिखा था, जिसके जार्ज आसबर्न के पास पहुँचने के समय शायद वह उसके पहले प्रेमपत्रों के पुलिंदों से अपना सिगार सुलगा रहा होगा, या बाज़ियाँ बद रहा होगा, या घूँसेबाज़ी का आनंद ले रहा होगा या निश्चिंत मन से शराब पी रहा होगा। सोफ़िया ने पत्र अपनी स्वतंत्र इच्छा से लिखा, किसी के दबाव से नहीं? अवधजी का यह कथन ठीक नहीं है कि "इतना ही नहीं, दोनों उपन्यासों में प्रेमिकाओं ने स्वयं ऐसा पत्र नहीं लिखा, किंतु दोनों ही ऐसा करने के लिये विवश की गई थीं।"

केवल घटनाओं के आधार पर ही यदि अवधजी सादृश्य स्थापित करने लगेंगे, तो संसार का कोई विर ही उपन्यास इस आरोप से बच सकेगा। ऐसा कौन-उपन्यास है, जिसमें प्रेमी प्रेमिका को, या प्रेमि प्रेमी को पत्र नहीं लिखती? सादृश्य स्थापित करने के लिये यह भी प्रमाणित करना अनिवार्य है कि वस्तु दोनों प्रकार के पत्र एक-जैसी परिस्थिति में लिखे ग एक-जैसे भावों से प्रेरित होकर लिखे गए, और उन दूसरे पर एक जैसा प्रभाव पड़ा। अन्यथा रेबेका राउन को पत्र लिखा था और मिसेज़ ट्यूट ने पिंकरटन को एक पत्र में लिखा होता है—'मैं स्वयं इस सं को तोड़ देना चाहती हूँ, क्योंकि हम लोगों की स् बहुत ही बिगड़ गई है और ऐसी दशा में आ संबंध नहीं हो सकता, और दूसरा पत्र विनयसिंह प्रार्थना करता है कि वह उसकी लेखिका को अ पास आने की आज्ञा दें, क्योंकि वह अब वहाँ न रह सकती।"

एडवर्ड शैंक्स ने अपनी एक पुस्तक की भूमिका लिखा है—"समालोचक बनने की इच्छा रखनेवाले लो को मानव-जाति के मनोविज्ञान का अध्ययन क चाहिए।" और, कोई समझे या न समझे, अवध समझ गए होंगे कि इस उद्धरण से हमारा आशय है।

तदनंतर अवधजी ने अमेलिया की समानता सोफि के साथ तनिक स्पष्ट रूप से स्थापित की है, और बार नहीं दो बार; और ऐसे-वैसे नहीं, बीजगणि समीकरणों की सहायता से, और अंत में सफलतापू सिद्ध कर दिया है कि अमेलिया का प्रेमी और कोई है, स्वयं विनय है, जो रंगभूमि में सोफ़िया के प्रेमी पार्ट खेलता है। पर इतने परिश्रम की तो कोई आव कता न थी। यह तो आप पहले भी अनेक बार आए हैं। और शायद इस बीजगणितीय समीकरण अवधजी का जी भी उकता गया होगा। अब एक नई खोज की है। वैनिटी फ़ेयर में तो वृद्ध आसब और वृद्ध सेडली का कुछ व्यापारिक संबंध था रंगभूमि में भी वही बात है। ऐसा सादृश्य! कि आश्चर्य है!

वैनिटी फ़ेयर के १७२ पृष्ठ पर वृद्ध आसबर्न पुत्र को अमेलिया से प्रेम-संबंध तोड़ने की सला

हुए कहते हैं—"मैं इस बात से इनकार थोड़े ही करता हूँ कि मैं सेडली ही की बदौलत बना हूँ ; या यह कहना चाहिए कि उन्होंने मुझे वह रास्ता दिखा दिया जिस पर चलने से अपने बुद्धि-कौशल के प्रताप से मैं बन गया। और मैंने सेडली के प्रति इसकी कृतज्ञता भी दिखा दी है। तुम मेरी चेक-बुक देखो तो पता चले। जार्ज, मैं तुमसे भेद की बात कह देता हूँ, मैं सेडली के व्यापार को विश्वास की दृष्टि से नहीं देखता। ...... और जब तक हमें दहेज़ में अमेलिया के साथ दस हज़ार पाउंड न मिले, तुम उसके साथ शादी मत करना। मैं किसी कँगले की लड़की को अपने घर में नहीं घुसेड़ना चाहता।"

अवधजी ने रंगभूमि के जिस स्थान से कुछ अंश उद्धृत किया है, वहीं हमें लिखा मिलता है ; "कुँअर साहब सांसारिक पुरुष न थे।...... धूर्तों ने उन्हें मानव-चरित्र का छिद्रान्वेषी बना दिया था।... पर संयम-शीलता जहाँ इतनी सशंक रहती है, वहाँ लाभ का विश्वास होने पर उचित से अधिक निःशंक हो जाती है।... उनकी दृष्टि में जान सेवक अब केवल धन के उपासक न थे, बरन् हितैषी मित्र थे। ऐसा आदमी उन्हें मुग़ालता न दे सकता था। बोले—जब आप इतनी किफ़ायत से काम करेंगे, तो आपका उद्योग अवश्य सफल होगा, इसमें कोई संदेह नहीं। आपको शायद अभी मालूम न हो, मैंने यहाँ एक सेवा-समिति खोल रक्खी है। कुछ दिनों से यही ख़ब्त सवार है। उसमें इस समय लगभग एक सौ स्वयंसेवक हैं।... मैं चाहता हूँ कि उसे आर्थिक कठिनाइयों से सदा के लिये मुक्त कर दूँ ....। उसके निर्विघ्न संचालन के लिये एक स्थायी कोष की व्यवस्था कर देना चाहता हूँ।... आपके अनुमान में कितने रुपए लगाने से एक हज़ार की मासिक आमदनी हो सकती है?"

"जान सेवक की व्यावसायिक लोलुपता ने अभी उनकी सद्भावनाओं को शिथिल नहीं किया था। जान सेवक ऐसा उत्तर देना चाहते थे, जो स्वार्थ और आत्मा दोनों ही को स्वीकार हो।"

अवधजी लिखते हैं—"जान सेवक ने कुँअर साहब को ख़ूब धोखा देने का प्रयत्न किया है और झूठ-सच बोलकर हिस्से बेचने का प्रयत्न किया है।"

यहाँ पर अवधजी की शतोमुखी विवेचनात्मिका प्रतिभा में वस्तुस्थिति और अतिशयोक्तिपूर्ण और मन-गढ़ंत बातों का कुछ ऐसा विलक्षण सम्मिश्रण हो गया है कि विश्लेषण करते नहीं बनता। इसका सुगम उपाय यह है कि हम हरएक बात को नंबरवार रखते जायँ।

१. वैनिटी फ़ेयर में द्रव्य-लालसा के वशीभूत होकर वर का पिता दस हज़ार पाउंड की इच्छा करता है।

रंगभूमि में वर का पिता पचास हज़ार के हिस्से ख़रीदता है (अर्थात् रुपए देता है, लेता या लेने की आकांक्षा नहीं करता।) इससे भी बड़ी बात यह है कि वह निःस्पृहभाव के साथ स्वयंसेवक-मंडली की आर्थिक समस्या को सुधारने के लिये ऐसा करता है।

२. वैनिटी फ़ेयर का वृद्ध आसबर्न अपने 'प्रतिद्वंद्वी' वृद्ध सेडली को घृणा, कुत्सा और द्वेष की दृष्टि से देखता है। वस्तुतः वह अपने लड़के को उसकी लड़की से संबंध-विच्छेद करने की सलाह (जो आगे चलकर आदेश के रूप में परिवर्तित हो जाती है) देता है।

रंगभूमि के कुँअर भरतसिंह की दृष्टि में उनके 'मित्र और हितचिंतक' जान सेवक (और जान सेडली और जान सेवक, क्या इन दोनों में विलियम डार्विन और विलियम क्लार्क जैसा नाम-सादृश्य नहीं है?—जान सेवक भी लड़की का पिता था और जान सेडली भी!—ऐसा सादृश्य! कैसा आश्चर्य है!) 'अब केवल धन के उपासक न थे, बरन् हितैषी मित्र थे।' कंपनी के हिस्से ख़रीद लेने से दोनों का सौहार्द्र दृढ़तर हुआ और उपन्यास के अंत तक अक्षुण्ण बना रहा, वृद्ध आसबर्न और वृद्ध सेडली की तरह कुत्सा और द्वेष में परिणत नहीं हो गया।

३. हमने भी वैनिटी फ़ेयर को ध्यान से पढ़ा है और हम कह सकते हैं कि आसबर्न और सेडली में व्याव-सायिक संबंध किसी प्रकार का न था। ऊपर के उद्धरण से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। सेडली बाज़ार-भाव का एक दलाल था और आसबर्न एक व्यापारी था। यदि किसी को आर्थिक सहायता देने से व्यापारिक संबंध स्थापित हो जाता है, तो ऐसा अवसर शायद गणितज्ञ अवधजी को भी अनेक बार पड़ा होगा।

हाँ, जान सेवक और कुँअर भरतसिंह का व्यापारिक संबंध भी था।

वैनिटी फ़ेयर और रंगभूमि की एकरूपता का एक और उदाहरण लीजिए । हमारे सहृदय मित्र अवधजी लिखते हैं—"जब आसबर्न का उसके पिता से मनमुटाव हो गया, तब उसके पिता ने उसे धन देना बंद कर दिया । आसबर्न का पिता समझता था कि जब आसबर्न को द्रव्य की आवश्यकता होगी, तब वह अवश्य ही दौड़कर मेरे पास आवेगा । परंतु आसबर्न ने इसकी कुछ भी परवा नहीं की । इसका अंतिम फल यह निकला कि आसबर्न को रुपए माँगने के लिये अपने पिता के यहाँ आने का अवसर नहीं मिला और पुत्र पिता के द्रव्य से वंचित रह गया । इन दिनों आसबर्न और उसके पिता में कोई बातचीत नहीं होती थी । आसबर्न प्रायः घर आता ही न था । परंतु दोनों में लज्जा और ग्लानि के भाव उदय हो गए थे । पिता ने पुत्र को अपना अंतिम निश्चय सुना दिया कि जब तक तुम अपने इस विचार को नहीं बदलोगे, मैं तुम्हें कुछ भी द्रव्य नहीं दे सकता । (और इतने पर भी 'दोनों में लज्जा और ग्लानि के भाव उदय हो गए थे !')

इसके बाद आपने रंगभूमि के ७७२ पृष्ठ का हवाला दिया है, जिसमें वर्णित है कि किस प्रकार विनयसिंह के पाँडेपुर के सत्याग्रह में भाग लेने पर सरकार के कोप से भयभीत होकर जान सेवक के परामर्शानुसार कुँअर भरतसिंह ने जायदाद को कोर्ट आफ़ वार्ड्स के सिपुर्द कर दिया था, किस प्रकार वह हुक्काम की हाँ में हाँ मिलाना हेय समझते थे—किंतु किस प्रकार 'हुक्काम की नज़रों में गड़ना, उनके हृदय में खटकना, इस हद तक कि वे शत्रुता पर तत्पर हो जायँ, उन्हें बेवक़ूफ़ी मालूम होती थी—' किस प्रकार वह 'विनय को सीधी राह पर लाने' के लिये चाहते थे कि 'सोफ़िया से उसका विवाह हो जाय—' किस प्रकार उनका दृढ़ विश्वास था कि वे 'इस बेड़ी में जकड़कर उसकी उद्दंडता शांत' कर सकेंगे—किस प्रकार वह इसीलिये जान सेवक और उनकी पत्नी से (जो इस संबंध की घोर शत्रु थीं) मिले और (जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं) उनकी सलाह से उन्होंने जायदाद कोर्ट्स आफ़ वार्ड्स के क़ब्ज़े में दे देने का निश्चय किया—किस प्रकार उन्होंने प्रत्यक्ष में विनय के लिये कोई व्यवस्था करने में असमर्थ होने के कारण अपनी वृत्ति में से कुछ-न-कुछ देते रहने का निश्चय किया—और इसी लिये किस प्रकार वह अपने एक उत्तराधिकारी को न्याय स्वत्व से वंचित करते लज्जित होकर उससे आँखें चुराते थे—पर किस प्र वह इसके लिये विवश हो गए थे, अन्यथा सरकार कोप की आशंका थी ।

आर्ज आसबर्न के पिता अपने पुत्र का विवाह धनी कन्या से कराना चाहते थे । जार्ज आस असहमत हुआ । ज़िद्दी थे ही, उसे घर से निक दिया । जब उन्हें सूचना मिली कि उसने अमेलिया विवाह कर लिया, तो उन्होंने उसे अपनी संपत्ति वंचित कर दिया । उन्होंने उसे बड़ी ताकीद कर दी वह भविष्य में उनसे किसी प्रकार का संबंध न रखे वह इतने कलुषित और क्रूर हृदय के थे, ऐसे निष्ठुर निर्मम थे कि पुत्र के युद्ध में मारे जाने पर भी उन्हों उसे क्षमा नहीं किया; उसकी निराश्रय पत्नी को आश्र नहीं दिया । वह अपने पुत्र को प्यार करते थे, प्रा से भी अधिक; "उस पर उन्हें कितना-कितना अभिमा था !" (३२८) पर वह निरंकुश प्रकृति के और अपनी इच्छा में किसी का व्याघात न सह सक थे । वह उसके घोर शत्रु हो जाते थे । चाहे वह उनका पुत्र ही क्यों न हो । वैनिटी फ़ेयर के दूसरे भाग ११५ पृष्ठ पर लिखा मिलता है—'बस, अब मेल कोई संभावना नहीं थी (उनका पुत्र वाटर लू युद्ध काम आ चुका था) । सबसे बड़ी बात तो यह थी अब उनके तिरस्कृत और क्रुद्ध गर्व को विनीत शब्दों सांत्वना देने का साधन नष्ट हो गया था और विषाक्त उष्ण रक्तप्रवाह को स्वाभाविक गति पर की कोई संभावना न थी । और यह कहना कठि कि इस घमंडी पिता के हृदय को किस प्रकार की वेद ने व्यथित किया—इतना कि उनका पुत्र अब क्षमा परिधि से बाहर चला गया था या यह कि जिस की उनके गर्व को आशा-प्रतीक्षा थी, वह उनके हाथ निकल गई ।" "वह अपने पुत्र को अब भी प्यार थे और अब भी उन्होंने उसे क्षमा नहीं किया (दूसरा भाग ११८) ।

एक पिता किसी निर्दिष्ट कन्या से अपने पुत्र विवाह कराने के लिये स्वयं प्रयत्नशील होता है । इ उसकी उद्दंडता नष्ट हो जायगी और वह बंधन में

सरकार के कोप से बच जायगा और अपनी पैतृक संपत्ति का उपभोग करेगा। दूसरा पिता एक निर्दिष्ट कन्या से विवाह न करने का अपने पुत्र को कड़ा आदेश देता है, और उसके आज्ञाभंग करने पर अपनी संपत्ति से उसे वंचित कर देता है, उसे अंत तक क्षमा नहीं करता और उसकी विधवा की शक्ल नहीं देखना चाहता। अंतरम्! महदन्तरम् !! (पर अवधजी कहेंगे 'कैसा सादृश्य है ! कितना आश्चर्य है !')

हम पीछे एक स्थान पर दिखा चुके हैं कि अवधजी की सम्मति में 'रानी जाह्नवी का यह कथन' कि उन्होंने विनय को न कभी गद्दों पर सुलाया, न कभी महरियों और दाइयों की गोद में जाने दिया और न कभी मेवे खाने दिए, बड़ा 'अस्वाभाविक मालूम होता है'। पर चूँकि वैनिटी फ़ेयर में इस बात का ज़िक्र है, इसलिये उसी के आधार पर अवधजी की रंगभूमि में भी उसका प्रसंग आया है। अवधजी का विचार है कि अमेलिया के अपने पुत्र को स्नेहाधिक्य के कारण (अवधजी ने लिखा है, 'इतना अधिक प्यार करती थी'; पाठकगण इस मार्मिक वाक्य को भूल न जायँ, आगे इससे काम पड़ेगा) 'किसी दूसरे की गोद में भर सक नहीं जाने' देने के ही 'आधार पर रंगभूमि में उक्त विषय ठूँस दिया गया है, जो' उनकी राय में 'बहुत ही अस्वाभाविक हो गया है'। क्योंकि उन्हें 'विश्वास नहीं होता कि राजकुमार विनय को बाल्यावस्था में कोई मेवा न मिला हो'। हमें भी विश्वास नहीं होता कि उपाध्यायजी ने जान-बूझकर ऐसा अन्याय कर डाला हो। अस्तु।

रंगभूमि के पाठक अच्छी तरह जानते हैं कि रानी जाह्नवी ने विनय को महरियों और दाइयों की गोद में न देकर और मेवों से वंचित रखकर, किस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिये कष्टसहिष्णु बनाया था। अतएव उसके संबंध में अधिक कहकर हम अनावश्यक विस्तार नहीं करना चाहते। अब हमें वैनिटी फ़ेयर की अमेलिया और उसके स्नेहपालित पुत्र का वर्णन करना है, जिससे पाठकों को पता लग जायगा कि दोनों के लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा और आचार-व्यवहार में कैसा आकाश-पाताल का अंतर है। [आश्चर्य की बात तो यह है कि अवधजी ने यहाँ अमेलिया के साथ—सोफ़िया की नहीं —(क्योंकि उस अभागी को असमय ही आत्महत्या करनी पड़ी थी; और यह बात स्वयं अवधजी की समझ में भी असंभव थी, क्योंकि 'यहाँ तो विनय का विवाह हो नहीं हो पाया है' और 'आसवर्न के पुत्र के पार्ट के अनुसार विनय के पुत्र का वर्णन हो ही नहीं सकता, इसलिये'—पाठकगण इस रसायन-क्रिया को हृदयङ्गम कर लें—'आसवर्न के पुत्र का भी कुछ अंश विनय में ही आना चाहिए') रानी जाह्नवी की अनुरूपता स्थापित की है।]

सहृदय पाठकगण अमेलिया के चरित्रविश्लेषण को देखकर इस बात से पूर्णतः अवगत हो गए होंगे कि वह एक सीधी-सादी भोली-भाली ऐहिक सुखों की इच्छुक बालिका थी, जो एक स्मृति-मात्र को अपने हृदय में पंद्रह-पंद्रह वर्ष तक रखकर उसकी आराधना कर सकती थी, जिसका सारा सुख-आनंद अपने बच्चे के पोषण में केंद्रित था—(और क्या बच्चों का पोषण माताओं के लिये स्वयं एक अनिर्वचनीय—ऐसा जिसकी तुलना केवल दांपत्य-सुलभ सहवास से ही की जानी संभव है, क्योंकि वह भी अपने आनंद की एक निजी सत्ता रखता है—विलास-भावना समुद्भूत सुख नहीं है ?) जो बच्चे को उसके धर्मपिता को थोड़ी देर के लिये खिलाने की अनुमति क्या देती, उस पर अपनी अतुल कृपा-वर्षा समझती; जो इस फ़िक्र में लगी रहती कि बच्चे का बालसुलभ स्नेह और किसी की सहानुभूति की ओर आकृष्ट न हो जाय, जो दरिद्र जीवन में आप भूखों रहकर उसे अच्छी-अच्छी चीज़ें खिलाती, आप फटे-पुराने कपड़े पहनकर अपने विवाह के कपड़े काट-छाँटकर उसके लिये तड़क-भड़क के कपड़े तैयार करती, जिसकी भीरुता और वात्सल्य-स्नेह ने बच्चों को अनिवार्यतः हठी, क्रोधी और शासन-प्रिय बना दिया था। (रंगभूमि के १४८ पृष्ठ पर लिखा हुआ है "नित्य कम्बल बिछाकर ज़मीन पर सोता और कंबल ही ओढ़ता है, पैदल चलने में कई बार इनाम पा चुका है। जलपान के लिये मुट्ठी-भर चने, भोजन के लिये रोटी और साग, बस इनके सिवा संसार के और सभी भोज्य पदार्थ इसके लिये वर्जित से हैं।") जो उस लड़के की घोर शत्रु हो जाती, जो नन्हें जार्जी को उँगुली छुआता, जो एक बार एक लड़के के साथ उसके द्वंद्वयुद्ध की कथा सुनकर अधमरी-सी

हो गई थी (रंगभूमि के १४९ पृष्ठ पर हम उसकी माता को कहते पाते हैं—"उसे प्राण भी देना पड़े, तो मुझे ज़रा भी शोक न होगा ।" ८५९ पृष्ठ पर उसकी माता उसकी आत्महत्या के बाद सोफ़िया को सांत्वना देती है—"क्यों रोती हो बेटी ? विनय के लिये ? वीरों की मृत्यु पर आँसू नहीं बहाए जाते, उत्सव के राग गाए जाते हैं...।" आदि)। कदाचित् एक बात भी ऐसी नहीं है, जिससे हम विनय को जार्जी के समान कह सकें। बीजगणितीय समीकरणों की बात दूसरी है !

आशा है, पाठकों को विनय के पालन-पोषण का ढंग अवधजी की तरह 'बहुत ही अस्वाभाविक' न लगता होगा। जाह्नवी के इसी कथन में उपन्यास के विनय से संबंध रखनेवाले अंशों की मार्मिकता निहित है।

इसके बाद एक बार आपने फिर अपने कथन का प्रतिपादन किया है। आप लिखते हैं कि वैनिटी फ़ेयर का आसबर्न ही रंगभूमि का विनय है और वैनिटी फ़ेयर में आसबर्न की प्रेमिका अमेलिया थी और उसने अपने विवाह के पहले मन में कभी दूसरे पुरुष की कल्पना तक नहीं की, और अमेलिया के माता-पिता एक प्रकार से इस विवाह के विरुद्ध थे (जो अब से कुछ ही देर पहले घोर विरुद्ध थे !) किंतु अमेलिया के मन से आसबर्न कभी दूर नहीं हुआ, और अपने पिता के कहने से अमेलिया ने आसबर्न को एक कड़ा पत्र तो अवश्य लिख दिया, पर उसमें अमेलिया ने अपनी ओर से कड़े शब्दों का नहीं प्रयोग किया। (हृदय में भगवद्भक्ति का उद्रेक हो रहा है) और वह तो आसबर्न से ही अपनी शादी करना चाहती थी।

बस, अवधजी का यह कथन है। अब से कुछ देर पहले अवधजी ने अमेलिया के पत्र के साथ सोफ़ी के पत्र का सादृश्य स्थापित किया था, जिसका विवेचन हम कर आए हैं। अब अवधजी को मालूम हुआ है कि उसमें कोई कड़ा शब्द नहीं था, और वह तो आसबर्न से ही अपनी शादी करना चाहती थी। सोफ़िया ने भी पत्र लिखा था, और कमबख़्त इतने ही से संतुष्ट नहीं हुई। वह विनय को जेल में भी दिक़ करने पहुँच गई और बोली—"अच्छा, अब तैयार हो जाओ।"

अभागे क़ैदी ने सशंकित नेत्रों से ताकते हुए पूछा—"किस बात के लिये।" पर संतोष की बात है कि किसी बलिदान के लिये तैयार नहीं किया जा रहा बात सिर्फ़ जेल से बाहर हो जाने तक सीमित जिसके एक सप्ताह बाद वह उससे दिल्ली में मिलेगी, और फिर विधाता भी उन्हें अलग सकेगा।

यह बोलती-चालती भाषा में डबल सादृश्य लाता है !

पर हम अवधजी से विनीत भाव से पूछेंगे कि वैनिटी फ़ेयर में भी "बौरंगी ऐनी" "छैल आप को, मुक्ति का (या मौत का, एक ही-सी बात है परवाना लेकर, किसी क़ैदख़ाने में गई थी ? अभी तो आप केवल वस्तुस्थिति का ही विकृत परिच थे—किसी हद तक क्षंतव्य बात थी—अब आप की उड़ाने लगे ! हमने भी वैनिटी फ़ेयर पढ़ा है, एक बार नहीं, कई बार, और ऐसे-वैसे नहीं, नि लगा-लगाकर पुस्तक का सत्यानाश करके ; प ऐसी कोई घटना दृष्टिगोचर न हुई। हमारे Standard Literature Company, Lon का इंपीरियल ऐडीशन है। यदि और किसी प्रे संस्करण में ऐसी कोई बात हो, तो क्या हम आशा कि उपाध्यायजी उसकी सूचना देकर हमें उ करेंगे ?—हम धन्यवाद भी देंगे।

आगे बढ़िए। वैनिटी फ़ेयर में आसबर्न की अमेलिया से हो जाती है और तब दोनों ब्रिसेल जाते हैं। यहाँ दोनों में कुछ मनमुटाव-सा जाता है। इस समय यद्यपि वे दोनों एक ही पर हैं, और सब प्रकार से साथ-ही-साथ है, किंतु प्रायः वे मिलते नहीं।...इस समय दोनों विवाह हो चुका था और दोनों सहवास का आनंद सकते थे। उनके मार्ग में कोई बाधा नहीं थी, स्वयं अपने मार्ग के कंटक बने हुए थे'। यह कथन नहीं, अवधजी का है। इस लेखक में इतना साहस था कि वास्तविकता की ऐसी घोर हत्या करता। यह कथन अवधजी से संबंध रखता है।

आगे आप लिखते हैं—"अब यह देखना चाहि 'रंगभूमि' में भी विनय और सोफ़िया की द कहीं थी, या नहीं। क्या रंगभूमि में कहीं दोनों

होने पर भी एक दूसरे से नहीं मिलते थे।" हम पाठकों को विश्वास दिला देना चाहते हैं कि 'रंगभूमि' में विनय और सोफ़िया की दशा ऐसी कहीं नहीं थी, दोनों ख़ूब ज़ोर-शोर के साथ मिलते थे और दोनों में किसी प्रकार का मनमुटाव नहीं था। पर जिस कुत्सित मिलन की ओर विवेचक महोदय का निर्देश है, वह दोनों में असंभव था; क्यों?—सामाजिक बंधनों के कारण। क्या उपाध्यायजी की दृष्टि में उनका कोई महत्त्व नहीं है, और क्या उन्हें सोफ़िया को रेबेका की भाँति विनय को लार्ड स्टेइन बनाकर भ्रष्ट जीवन बिताते देखकर संतोष होता? अमेलिया और जार्ज में मनमुटाव था, क्यों?—जार्ज रेबेका के पीछे लगा फिरता था, रातों घर न आता था, शराबख़ोरी करता था, जुआ खेलता था। पर यह अवधजी को कैसे ज्ञात हुआ कि दोनों सहवास का आनंद न उठा सके और कोई बाधा न होने पर भी अपने मार्ग के कंटक स्वयं बने रहे? आप तो अभी-अभी जार्ज और अमेलिया के पुत्र की तुलना विनय से कर आए हैं?

वास्तव में वैनिटी फ़ेयर में इस बात का ज़िक्र तक नहीं है। सीधी-सादी बात वह थी जो हम ऊपर लिख आए हैं, जब कि विनय और सोफ़ी का परस्पर संसर्ग-विषयक संयम सोफ़ी की दृष्टि में अपने लिये नहीं, विनय के लिये आवश्यक था। वह ऐसा कोई कर्म करने को तैयार न थी, जिससे विनय का अपमान, उसकी अप्रतिष्ठा अथवा उसकी निंदा हो। उसकी समझ से आत्मिक मिलाप के लिये कोई बाधा नहीं होती; पर सामाजिक संस्कारों के लिये अपने संबंधियों और समाज के नियमों की स्वीकृति अनिवार्य थी, 'अन्यथा वे लज्जास्पद हो जाते हैं।' और यदि सोफ़ी ऐसा कोई असंयत कर्म कर बैठती, तो शायद अवधजी ही सबसे पहले उसकी रेबेका के साथ तुलना करते! (पर संतोष की बात है कि अब ऐसे भय का कोई कारण नहीं है।)

इसके बाद अवधजी ने एक लंबे-चौड़े प्रकरण में कुछ अजीब गुल खिलाए हैं। आप कहते हैं कि वैनिटी फ़ेयर में आसवर्न की मृत्यु हुई, सो भी लड़ाई में; रंगभूमि में भी विनय की मृत्यु हुई, और लड़ाई में हुई (शायद आत्मघात और युद्ध-संबंधी मृत्यु में अवधजी के निकट कोई भेद नहीं है—क्या आत्मघाती मनुष्य को अपनी हत्या करने से पहले, अंतर्द्वंद्व का सामना नहीं करना पड़ता?) आसवर्न की स्मृति में गिरजे में एक स्मारक पाषाण खड़ा किया गया, जिसे देखकर उसकी बहनें अपने हृदयावेश को न रोक सकीं और रोने लगीं, विनय को आत्महत्या के बाद सोफ़िया उसे देखने के लिये चल पड़ी; पर शोकातिरेक के वशीभूत होकर मार्ग में एक मील के पत्थर पर बैठकर बिसूर-बिसूर कर रोने लगी (पर आपकी सम्मति में गिरजेवाला पाषाणचिह्न उपयुक्त है और मीलवाला अनुपयुक्त; साथ ही आपकी राय में सोफ़िया का वहाँ बैठना असमयोचित था और इसे मार्ग में रुकने की कोई आवश्यकता नहीं थी, और हम इसके उत्तर में उन्हें एक बार फिर ऐडवर्ड शैन्क्स के कथन की याद दिलाना ही पर्याप्त समझते हैं और आगे बढ़ते हैं); दोनों पुस्तकों में युद्धों के अवसर पर दोनों नायिकाएँ समरस्थली से दूर रहती हैं;—वैनिटी फ़ेयर में अमेलिया वाटरलू से १४-१५ मील दूर रहती है और रंगभूमि में सोफ़िया पांडेपुर से एक-आध मील, और यदि सोफ़िया समरस्थली में ही उपस्थित रहती, तो भी यदि १४-१५ की दूरी से एक-आध मील की दूरी का परिमाण सादृश्य के रूप में परिवर्तित हो सकता है, तो एक-आध इंच या एक-आध फ़ीट का भी क्यों नहीं?—इस सर्वसम्मत नियम की व्यापकता में किसी को संदेह ही क्या हो सकता है?—और इसीलिये हम उपाध्यायजी से प्रार्थना करेंगे कि आपने उदयपुरवाले 'वाटरलू' में सोफ़िया की उपस्थिति की चर्चा नाहक़ छोड़ दी। उपर्युक्त नियम से बीजगणितीय समीकरणों की सहायता से दोनों का सादृश्य बड़ी सुविधा के साथ स्थापित हो सकता है—हाँ, अपने विषय पर आना चाहिए (और यदि पाठकों को अप्रासंगिक बातें अरोचक मालूम हों, तो वे उन्हें न पढ़ें); वृद्ध आसबर्न अपने पुत्र की मृत्यु पर शोक करते हैं, सोफ़िया भी शोक करती है। (यहाँ उसने विनय के पिता का परिधान पहन लिया था, जिस प्रकार वह, आसवर्न की बहनों की नाईं, मील के पत्थर पर बैठते समय, विनय की बहन के रूप में परिवर्तित हो गई थी—पर इतनी कृपणता की तो कोई आवश्यकता न थी, क्या विनय के पिता भरतसिंह को शोक न हुआ होगा?—और क्या आसवर्न की बहनों का पार्ट खेलने के लिये विनय की बहन

इंदु मौजूद नहीं थी ?) वृद्ध आसबर्न अपने पुत्र की मृत्यु का कारण अपने-आपको समझते हैं, और सोफ़िया भी पत्थर पर बैठी-बैठी (अर्थात् इंदु के रूप में) विनय की हत्या का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेती है । (कुँअर भरतसिंह का कलेवर पहने ! ऐं न ?—अर्थात् इस समय वह सोफ़िया, इंदु, कुँअर भरतसिंह तीनों का मिश्रित मातम मनाने का महत्त्वपूर्ण भार अपने ऊपर लेती है ! उस समय बेचारी के जी में रह-रहकर ये भाव उठ रहे होंगे—

मेरी क़िस्मत में ग़म गर इतना था ;
दिल भी या रब कई दिये होते ।

और हम नन्हीं-सी सोफ़ी की इस असहायावस्था में हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं । (हे भगवान्, इस रहस्यवाद की जटिल समस्या को यह जड़जीव किस तरह हल कर सकेगा !)

एक और बात है । जिस प्रकार दूरी या नैकट्य के न्यूनाधिक परिमाण परस्पर सादृश्य स्थापित करने में कोई व्याघात उपस्थित नहीं करते (या नहीं कर सकते, एक ही बात है), उसी प्रकार यदि घंटों, दिनों या महीनों का अपेक्षाकृत अंतर परस्पर एकरूपता स्थापित करने में कोई बाधा न दे सके, तो पाठकों को विस्मय-आश्चर्य से मुँह बाने का क्या अवसर हो सकता है ? वाटरलू युद्ध की रात्रि को अमेलिया जागी (प्रेम की किस अवस्था में अथवा प्रणय की किस श्रेणी पर ?—सो नगण्य-सी बात है । वास्तव में वह युद्ध-यात्रा की सूचना से पूर्णतः अनभिज्ञ थी और अपने पति को रेबेका के साथ प्रेमालाप करते देखकर अन्य सब स्त्रियों की भाँति मूक वेदना के साथ पलँग पर आ पड़ी थी) इसलिये नहीं कि आसबर्न युद्ध में जा रहा है, बल्कि उसको नाच से वापसी की प्रतीक्षा में । सोफ़ी भी जागी—विनय उदयपुर को रवाना हो गया—इसके सात-आठ महीने बाद सोफ़िया भी वहाँ जा पहुँची—(और आसबर्न विदा के कुछ ही घंटों बाद गोली का शिकार हो गया था) ।—उसके बाद एक दंगा हुआ, जिसमें सोफ़िया और विनय दोनों मौजूद थे—फिर एक वर्ष तक विनय सोफ़िया को डाकुओं के पंजे से छुड़ाने की चेष्टा करता रहा—फिर दोनों एक वर्ष तक भीलों के गाँव में रहे—फिर कई महीने तक दोनों बनारस में साथ-साथ रहे—उसके सोफ़िया स्वयं उसे पांडेपुर के संघर्ष में सम्मिलित का कारण बनी—और तब कहीं जाकर विनय के निकले अर्थात् 'युद्धयात्रा'—(यदि उदयपुर-गमन युद्धयात्रा कहा जा सकता हो तो—) की रात को के तीन साढ़े तीन वर्ष बाद ! ऐसा अवधजी का गणितीय एकीकरण ! 'आप तो गणितज्ञ ठहरे, इन बंधनों की क्या चिंता !' (पर अवधजी वाक्य से मुझ पर नाराज़ न हों, यह सम्मति है)

हम अवधजी के आरोपों का अपने ब्रैकटों की यता से साथ-ही-साथ उत्तर भी देते चले आए हैं, शायद वे पर्याप्त होंगे । फिर भी हम अपने पाठकों के पूर्ण संतोष के लिये कुछ अधिक काम लेना चाहते हैं ।

१. अमेलिया युद्धयात्रा की रात्रि को युद्ध की से नहीं, किंतु स्त्री-सुलभ सौतिया डाह से जागी थी; सोफ़िया प्रेम के प्रारंभिक स्टेज में वियोग होने असह्य वेदना से जागती रही थी ।

२. आसबर्न यात्रा के थोड़े ही घंटों बाद मारा था, जब कि विनय तीन साढ़े तीन वर्षों तक रहा था और अंत में अपने ही हाथों प्राणघात मरा था ।

३. आसबर्न के पिता के शोकोद्रेक और सोफ़िया शोकोद्रेक में कोई समता स्थापित नहीं की जा वह अपने पुत्र को अब भी प्यार करते थे और उन्होंने उसे क्षमा नहीं किया था (वैनिटी फ़ेयर, भाग ११८) । 'उसे इस समय प्रबल आकांक्षा हुई वहाँ जाते ही मैं भी उनके चरणोंपर गिरकर दूँ ।............... मैंने अपने जीवन को दिया, ऐसे नररत्न को धर्म की पैशाचिक बलिदान कर दिया' (रंगभूमि ८४८) ।

४. आसबर्न की बहनों को अपने मृत भाई का देखकर, उसकी मृत्यु के कई महीने बाद, पुनः हो आई । अर्थात् उस स्मृति के जागृत करने का मात्र कारण वह स्मारक पत्थर था । सोफ़ी के से उस मील के पत्थर का कोई संबंध न था । हृदयावेग को दमन न कर सकी । उसके हृदय में

उठ रहे थे—'वहाँ कैसे जाऊँ ? कैसे उन्हें स्पर्श करूँगी ? उनकी मरणावस्था का चित्र उसकी आँखों के सामने खिंच गया। उनकी मृत देह रक्त और धूल में लिपटी हुई भूमि पर पड़ी हुई थी। इसे उसने जागते देखा था। उसे इस जीर्णावस्था में वह कैसे देख सकेगी ?' (कैसा स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी चित्रण है।)

५. आसबर्न की मृत्यु का समाचार किसने सुनाया, यह कहीं कुछ नहीं लिखा हुआ है। वाटरलू-युद्ध से वापस आते हुए सैनिकों में से किसी ने कह दिया होगा। सोफ़िया को यह समाचार नायक राम-नामक एक विशिष्ट व्यक्ति ने सुनाया।

६. वाटरलू-युद्ध और पांडेपुर के सत्याग्रह की कोई तुलना नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त आसबर्न युद्ध करता हुआ दूसरों के हाथों मारा गया, जब कि विनय सैनिकों और जनसाधारण के पारस्परिक भीषण संघर्ष के प्रतिरोध के प्रयत्न में अपने हाथों !

आशा है, इतने से पाठकों की संशय-निवृत्ति हो जायगी।

रुद्रनारायण अग्रवाल

उषा का आह्वान

१

होकर सचेत आँख खोलकर देखा जब,
नीरव निशा में तो निराशा ही नवीन थी ;
मंद था मयंक मुख रश्मि-राशियों से हीन,
दीन-सी कुमोदिनी थी, कौमुदी मलीन थी।
क्रांति लय-कारी "बनवारी" चारों ओर थी, न-
शोर करती हुई चकोरी रसलीन थी ;
क्षीण था निपट रजनी का मुकता का पट,
फट कर प्राची, ज्योति-राशि में विलीन थी।

२

शीतल-सुगंधयुत मंद था समीर और
दिव्य था दिगंत आसमान भासमान था ;
कली में विकास था फलों में परिपाक था,
अवाक् चक्रवाक में सुयोग का विधान था।
विहँग-बिहान था प्रकृति-मुसकान और—
उदित उद्यान था, अपूर्व अलि-गान था ;
मनोमुग्धकारी 'बनवारी' अवधान था या—
मंगल-निधान यह उषा का आह्वान था।

बनवारीलाल

वेतन में न्यूनता

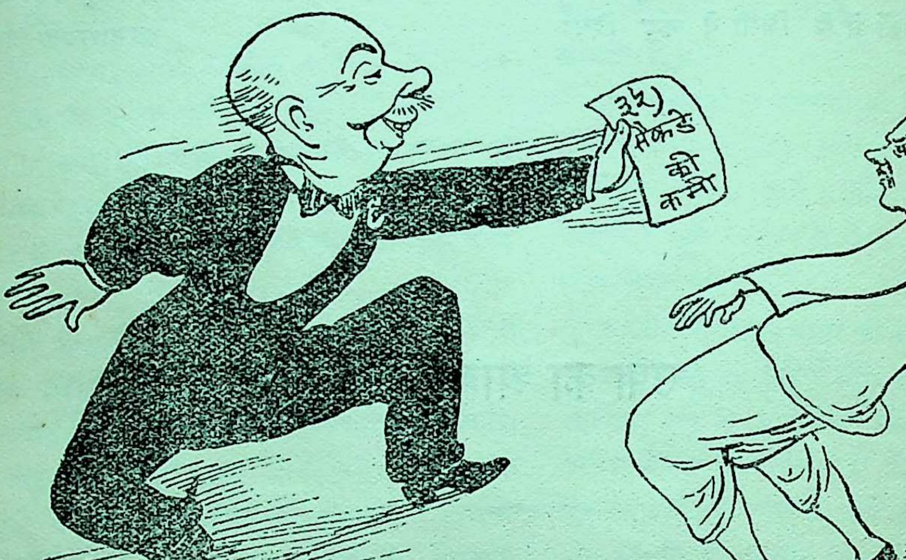

मिलन

प्रकाश अपने मा-बाप का अकेला लड़का था। जिस साल उसने लखनऊ-विश्वविद्यालय से बी० ए० पास किया, उसके माता-पिता के आनंद की सीमा न रही। प्रकाश ही उनकी अभिलाषाओं का केंद्र था। वे उसी का मुँह देखकर जीते थे। उनकी वृद्धावस्था में प्रकाश ही उनका जीवनसर्वस्व था। प्रकाश के पिता बाबू शिवसहाय, मेरठ के प्रसिद्ध वकीलों में गिने जाते थे। शहर में उनकी अच्छी ख्याति थी। ईश्वर की कृपा से उन्होंने यश एवं प्रतिष्ठा के साथ धनोपार्जन भी ख़ूब किया था। उनकी हार्दिक इच्छा यह थी कि प्रकाश भी उन्हीं की तरह वकालत पास करके मेरठ में ही प्रैक्टिस शुरू करे।

गरमी की छुट्टियाँ आरंभ हो गई थीं। प्रकाश घर आया। संध्या को वह कहीं घूमने जाने के विचार में था। उसकी छोटी बहन मुन्नी ने आकर बड़े प्यार से उसका हाथ पकड़कर कहा—"भैया, मैं भी चलूँगी।" प्रकाश ने उसे गोद में उठाकर कहा—"अवश्य—तुझे आज कंपनीबाग़ घुमाने अवश्य ले चलूँगा।" मुन्नी खिलखिलाकर उसके गले से लिपट गई। प्रकाश का हृदय भ्रातृ-स्नेह से विकसित हो उठा। मुन्नी की आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं, उसने कहा—"भैया, तो मैं कपड़े पहन आऊँ"। उत्तर की प्रतीक्षा न कर वह भाई की गोद से कूदकर भीतर चली गई। प्रकाश थोड़ी देर तक घर की ओर देखता रहा। फिर बोला—भगवन्! तुमने शैशव को ही मानवजीवन में सर्वोत्तम बनाया है, जिसमें पवित्रता, सुख, अज्ञानता और कौतुक का प्रेमरूप में अद्वितीय सम्मिश्रण रहता है।

× × ×

मुन्नी का हाथ पकड़े हुए प्रकाश धीरे-धीरे कंपनीबाग़ की रविशों पर टहल रहा था। मुँह से कुछ गुनगुनाता भी जाता था। फूलों से निकलती हुई भीनी-भीनी सुगंध चित्त को प्रसन्न कर रही थी। बाग़ के किनारे-किनारे मोरपंखी के वृक्ष लगे थे। उनका स्पर्श करके ठंढी-ठंढी हवा चल रही थी। सामने गुलाब के फूल पर एक रंगबिरंगी तितली आकर बैठी। मुन्नी उसे देखते ही पकड़ने दौड़ी। तितली एक फूल से उड़कर दूसरे पर जा बैठी, मुन्नी ने वहाँ भी उसका पीछा न छोड़ा। उसने तितली को पकड़ने के लिये सैकड़ों प्रयत्न किए, किंतु वह हाथ न आई। प्रकाश मुन्नी की चेष्टाओं को देख रहा था और मन-ही-मन हँसता जाता था। तितली गुलाब की क्यारी छोड़कर उड़ चली। मुन्नी चिल्लाती हुई उसके पीछे दौड़ी—"भैया, मैं इसे लूँगी"। प्रकाश ने रोका, किंतु मुन्नी तितली के पीछे पागल हो रही थी। लाचार वह भी बहन के पीछे-पीछे चला। तितली जाकर एक चंपा के फूल पर मँडराने लगी। मुन्नी बराबर उसके पीछे दौड़ती चली जा रही थी। उसका ध्यान तितली पर था। राह में एक पत्थर से ठोकर खाकर वह गिर पड़ी और रोती-रोती बोली—"तितली, तितली"। प्रकाश ने मुन्नी को गिरते देखा। वह कुछ पीछे था। वह तेज़ी से आगे बढ़ा ही था, किंतु उसके वहाँ तक पहुँचने के पहले ही दो कोमल हाथों ने मुन्नी को उठा लिया था। प्रकाश अवाक् रह गया। एक षोड़शी बालिका मुन्नी को गोद में लिए बड़े प्रेम से उसके कपड़ों की धूल झाड़ रही थी। मुन्नी को सिर में हलकी-सी चोट आ गई थी। प्रकाश ने फ़ौवारे के जल में अपना रूमाल भिगोकर आहत स्थल पर बाँध दिया। इसके बाद उसने अत्यंत कृतज्ञता-पूर्ण दृष्टि से बालिका की ओर देखा। बालिका भी उसकी ओर निर्निमेष नेत्रों से देख रही थी। दोनों की आँखें चार हुईं। बालिका लजाकर नीचे की ओर देखने लगी। संध्या के समय अस्त होते हुए सूर्य की आभा उसके मुखमंडल पर पड़कर उसे भी अपने समान प्रदीप्त बनाने की चेष्टा कर रही थी। उसके शुभ्र ललाट पर स्वेदकण झलक रहे थे। बालिका एक पारसी साड़ी पहने थी। यद्यपि वह असाधारण सुन्दरी न थी, तो भी सुशीलता, सरलता और सहृदयता की मनोरम मूर्ति-सी ज्ञात होती थी। प्रकाश ने मुन्नी को अपनी गोद में उठाकर कुछ

हिचकते हुए कहा—"देवि ! मैं आपकी इस कृपा का धन्यवाद देने में असमर्थ हूँ। मैं आपका चिर-ऋणी रहूँगा"। बालिका ने कुछ उत्तर न दिया, किंतु उसके नेत्र उसके मनोगत भावों को प्रकट कर रहे थे। केवल एक बार उसने अपनी शर्मीली आँखों से प्रकाश की ओर देखा। फिर सिर नीचा किए हुए शीघ्रता से एक ओर चली गई। प्रकाश ने देखा—थोड़ी दूर पर एक पालकी-गाड़ी खड़ी थी, बालिका अपनी दासी के साथ जाकर उस पर बैठ गई। क्षण-भर बाद गाड़ी कंपनीबाग़ पार करके सिविल लाइंस की ओर जाती हुई दिखाई दी। प्रकाश ने एक ठंढी साँस ली। मुन्नी को लेकर फिर घर को चल दिया।

× × ×

प्रकाश अपने कमरे में एक आरामकुर्सी पर आँखें बंद किए पड़ा था। मेज़ पर लैंप जल रहा था। उसके सामने एक किताब खुली पड़ी थी, वह किसी गंभीर चिंता में निमग्न था। पिछले दिन की घटना ने उसके चित्त पर बड़ा प्रभाव डाला था। वह भी उसके जीवन का एक नया पृष्ठ था। उसके मुँह पर निराशा की झलक प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रही थी। वह कुछ सोच रहा था। इतने में नीचे सड़क के ऊपर से किसी के गाने की आवाज़ आई—"सबै दिन नाहिं बराबर जात"। इस गाने में स्वर न था, लालित्य न था, रस न था; किंतु न जाने क्यों प्रकाश इसे सुनकर चौंक पड़ा। उसने खिड़की से झाँककर नीचे देखा। एक भिखमंगा सड़क पर गाता चला जा रहा था। रात्रि की निस्तब्धता में उसका गीत कोने-कोने से प्रतिध्वनित होकर गूँज रहा था। प्रकाश कुछ देर तक खड़ा सुनता रहा। इसके पश्चात् लौटकर फिर कुर्सी पर लेट रहा। घड़ी की ओर दृष्टि डाली, साढ़े ग्यारह बज चुका था। रात्रि का द्वितीय प्रहर था, किंतु प्रकाश की विचित्र दशा थी। उसकी आँखों में नींद न थी। मेज़ से किताब उठाकर दो-चार पृष्ठ उलटे। उसे भी एक ओर रख दिया, लैंप बुझाकर बाहर छत पर आया। रात्रिकालीन, शीतल और मंद वायु की अपूर्व बहार थी।

आकाश में असंख्य तारिकाओं के मध्य में दिव्य लावण्य-युक्त पूर्ण शशधर विराजमान थे। ज्योत्स्ना से पृथ्वी प्रसन्न हो रही थी। प्रकाश ने ऊपर की ओर देखकर ठंढी साँस ली। सुनील स्वच्छ आकाश में तारों की अवर्णनीय शोभा थी। उसमें प्रकाश ने किसी हृदयाधि मूर्ति का पूर्ण आभास देखा। उसके मन में व्यथा थी। यद्यपि वह मानसिक आवेगों को यथासा गुप्त रखने का प्रयत्न कर रहा था, तो भी उसके चेहरे चढ़ाव-उतार उसके आंतरिक भावों को प्रदर्शित क था। जिस दिन अपरिचित बालिका से कंपनीबाग़ साक्षात् हुआ, उसी दिन से प्रकाश की जीवनचर्या अपूर्व परिवर्तन होने लगा। बालिका के रूप-गुण-मा एवं सलज्ज व्यवहार ने उसके हृदय पर अधिकार लिया। उसी लावण्यमयी मूर्ति को प्रकाश ने अप हृदयमंदिर में स्थापित किया। पवित्र प्रेम का भी सौं अपूर्व होता है। प्रकाश प्रतिदिन कंपनीबाग़ जाता, प फिर उस अनुपम प्रभा के दर्शनों से वंचित लौट आता उसी आराध्य देवी के चिंतन में प्रकाश के दिन बीत लगे। बालिका के परिचय से वह सर्वथा अनभिज्ञ था, वह अपने हृदय से उस मूर्ति का ध्यान न त्याग सका।

प्रकाश थोड़ी देर तक छत पर टहलता रहा। फिर आप-ही आप बोल उठा—"भगवन्, तुमने इस जगत् में स्मृति वियोग दोनों की सृष्टि की है, फिर क्या कारण है, जो ए को ही प्रधानता देकर दूसरे को उससे विमुख रखते हो क्या तुम्हारे समदर्शी होने का यही प्रमाण है ?"

× × ×

"विनोद, तुम लखनऊ से कब आए ?"—प्रका ने पूछा।

"कल शाम की ट्रेन से।"

"और कोई आया है ?"

"कोई नहीं, केवल मैं ही आया हूँ, बनारस जाने विचार था, किंतु तुम्हारे भी कुछ समाचार न मिले सोचा, तुमसे भी भेंट कर लूँ।"

"तो अभी दो-चार दिन तो रहोगे ही, संभवतः मैं तुम्हारे साथ बनारस चलूँ।"

"हाँ, परसों रात की गाड़ी से जाने का विचार है

विनोद प्रकाश का सहपाठी था। दोनों अभिन्नहृ मित्र थे। विनोद लखनऊ में ही रहता था। उसके सेक्रेटरी के दफ़्तर में काम करते थे। गर्मी का छु में विनोद अपनी फूफी के पास बनारस जा रहा प्रकाश से मिलने वह मेरठ आया था।

"इतने शीघ्र चले जाओगे ?"—प्रकाश ने कहा—"अभी दो-चार दिन तो ठहरो।"

"नहीं प्रकाश, मुझे बनारस जाना ही पड़ेगा। बड़ा आवश्यक कार्य है। अगर तुम भी चलो, तो बड़ा अच्छा रहे।"

"यदि तुम परसों न जाकर दो दिन बाद चलो, तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ। बनारस देखने की मेरी भी बड़ी इच्छा है। परसों पिताजी आ जायँगे। उनसे आज्ञा लेना आवश्यक है।"

"अच्छा—जो तुम चलने को कहो, तो मैं दो दिन और ठहर जाऊँगा।"

"तो ठीक हो गया ?"

"हाँ, बिलकुल ठीक।"

"प्रकाश, भाई अब बिदा दो तो, चलूँ। कल सबेरे फिर भेंट होगी।"

"नहीं विनोद, ठहरो कुछ जलपान तो कर लो, तब जाना।" "मुन्नी मुन्नी"—प्रकाश ने पुकारा।

"आई भैया"—कहती हुई मुन्नी कमरे में आ खड़ी हुई।

"जाओ, कुछ जलपान के लिये ले आओ।"

मुन्नी चली गई—थोड़ी देर बाद एक चाँदी की तश्तरी में कुछ मिठाई ले आई। दोनों मित्र खाने बैठे। प्रकाश बोला—"विनोद, तो बनारस में ठहरने का क्या प्रबंध किया जाय ?"

"क्यों ? जहाँ मैं ठहरूँगा, वहीं तुम भी रहना। स्थान खोजने की आवश्यकता ?"

"किंतु मेरा विचार गंगाजी के तट पर किसी रमणीय स्थान में ठहरने का था ?"

"फिर कोई और स्थान ठीक करो। मैं तुम्हारे साथ ही ठहरूँगा।"

"श्याम बाबू मेरे पिता के बड़े मित्र हैं। उनकी एक कोठी बनारस में दशाश्वमेधघाट पर है। पिता से कहूँ, तो वहाँ ठहरने का प्रबंध हो जाय। अच्छा स्थान है।"

"यदि वहाँ रहने का प्रबंध हो सके, तो फिर कहना ही क्या है।"—हाथ धोते-धोते विनोद ने कहा।

"अवश्य। पिताजी को आने दो, उनसे कहूँगा। वह श्याम बाबू को पत्र लिख देंगे। सब काम हो जायगा।"

"अच्छा प्रकाश, तो यह काम तुम्हारे ज़िम्मे रहा। अब इस समय मैं चलता हूँ। कल सबेरे आऊँगा, तब और बातें होंगी। प्रणाम।"

"प्रणाम भाई।"

विनोद चला गया।

× × ×

बनारस पहुँचकर दोनों मित्र श्याम बाबू की हवेली में ठहरे। गंगा का किनारा निकट होने के कारण वह स्थान बहुत ही रमणीक था। हवेली के सामने एक छोटा-सा बग़ीचा था, जिसने उस स्थान की शोभा दुगनी रक्खी कर थी।

प्रातःकाल गंगास्नान के उपरांत शहर घूमने की ठहरी। विनोद तो अपनी फूफी के यहाँ चला गया। प्रकाश ने एक ताँगा किराए पर करके शहर की राह ली। अनेक देवमंदिरों का दर्शन करने के पश्चात् छावनी के निकट आकर उसने ताँगेवाले को बिदा किया और पैदल ही एक ओर चल पड़ा। दिन चढ़ रहा था। क्रमशः धूप तेज़ होती जाती थी, किंतु प्रकाश किसी धुन में मस्त चला जा रहा था। वह कितनी दूर निकल आया, इसका उसे किंचित् ज्ञान न रहा। अकस्मात् अपने पीछे आती हुई मोटर का हार्न सुनकर वह चौंक पड़ा। उसने ज्यों ही चाहा कि रास्ते से हटकर फ़ुटपाथ पर हो रहे, त्यों ही उसे मोटर का धक्का लगा और वह सड़क पर गिरकर बेहोश हो गया। मोटर भों-भों करती हुई उसके ऊपर से निकल गई।

× × ×

जब प्रकाश होश में आया, तो उसने अपने को अस्पताल के कमरे में एक पलँग पर पाया। आहत स्थान से रक्त अधिक निकल जाने के कारण उसका सिर चक्कर खा रहा था। निर्बलता के लक्षण स्पष्ट थे। उसने अपने को एक अपरिचित स्थान में पाकर आश्चर्य से इधर-उधर दृष्टि डाली। देखा, सामने कुर्सी पर एक नर्स बैठी हुई किताब पढ़ रही है। प्रकाश ने अपने सिर पर हाथ रक्खा, तो ज्ञात हुआ कि पट्टी बँधी हुई है। एक-एक करके पहले की सब घटनाएँ उसके ध्यान में आ गईं। उसने कुछ बोलने की चेष्टा की, परंतु निर्बलता के कारण मुँह से शब्द न निकला। नर्स ने उठकर एक मात्रा ओषधि प्रकाश के मुँह में टपका दी।

प्रकाश को कुछ चेतनता आई। उसने दाहनी ओर करवट लेते हुए अति क्षीण स्वर में पूछा—"मिस, मैं कहाँ हूँ ?"

नर्स ने कहा—"महाशय, आप सिविल हास्पिटल में हैं। कहिए, कुछ कष्ट तो नहीं है ?"

प्रकाश ने उसकी बात सुनी-अनसुनी करके फिर पूछा—"मुझे यहाँ कौन लाया ?"

"महाशय, आप मोटर के नीचे आ गए थे। आपके सिर में बड़ी चोट लगी है। यहाँ एक लेडी, आपको दाख़िल करा गई है।"

"क्या आप उनका नाम बता सकती हैं ?"

"नहीं, मुझे उनका नाम तो नहीं मालूम। शायद अस्पताल के रजिस्टर पर हो। बतलाइए आपको तकलीफ़ तो नहीं हो रही है।"

प्रकाश ने फिर कुछ अन्यमनस्क भाव से कहा—"मैं कितने समय से यहाँ हूँ ?"

"आपको हास्पिटल में दाख़िल हुए आज तीसरा दिन है। लगभग साठ घंटे के बाद आपकी बेहोशी दूर हुई है। कहिए, सिर में दर्द तो नहीं है ?"

"नहीं, अब अच्छा हूँ। केवल थोड़ी कमज़ोरी मालूम होती है।"

नर्स उठकर चली गई। प्रकाश फिर बिछौने पर करवटें बदलने लगा।

× × ×

संध्या के समय प्रकाश बरामदे में आरामकुर्सी पर लेटा हुआ "पायोनियर" पढ़ रहा था। अस्पताल के नौकर ने आकर कहा—"बाबूजी, एक मिस साहब आपसे मिलना चाहती हैं—वही हैं, जो उस दिन आपको अपनी गाड़ी पर लाकर अस्पताल में दाख़िल करा गई थीं। बड़े साहब से अभी इजाज़त लेकर आई हैं।"

"तुम उन्हें पहचानते हो ? क्या वही मुझे यहाँ लेकर आई थीं ?"—प्रकाश ने पूछा।

"हुज़ूर की बात—मैंने उन्हें अच्छी तरह पहचाना है। वही आपको यहाँ लाई थीं।"

"जाओ, भेज दो।"

नौकर ने एक कुर्सी लाकर रख दी। फिर बाहर चला गया।

थोड़ी देर बाद एक युवती ने आकर प्रकाश को प्रणाम किया। युवती की वेष-भूषा साधारण थी, तो भी वह अपूर्व सुंदरी ज्ञात होती थी। उसके शरी गुलाबी रंग की बनारसी साड़ी बड़ी भली मा देती थी। चाल-ढाल से वह किसी भले घर की बा जान पड़ती थी। प्रकाश ने उसके प्रणाम का देकर अख़बार नीचे डालते हुए कहा—"बैठिए।"

वह कुर्सी पर बैठ गई। फिर पूछा—"अब कैसे हैं ?"

"अच्छा हूँ।—"प्रकाश ने कुछ लजाते हुए दिया।

"यहाँ किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं है ?"

"नहीं, कष्ट तो कोई नहीं है; परंतु घर के समाचार नहीं मिले हैं ?"

"आपका निवासस्थान कहाँ है ?"

"मेरठ।"

"मेरठ !"—युवती ने बड़े आश्चर्य में क प्रकाश ने अकचका कर उसके मुँह की ओर दे चेहरा कुछ परिचित-सा ज्ञात हुआ। वही बड़ी- लजीली आँखें थीं—शुभ्र ललाट, हँसता हुआ पू मुखमण्डल। प्रकाश के मुँह से बात न निक अस्फुट स्वर में उसने कुछ कहा ! उसका सारा बदन रहा था। दोनों एक दूसरे की ओर कई क्षण तक रहे। युवती की आँखों में आँसू छलछला आए। ने घबड़ाकर आँखें बंद कर लीं।

× × ×

जब प्रकाश कुछ स्वस्थ हुआ, तो उसने चकित अपने चारों ओर देखा, उसके पास कोई न था, हो चला था। मेज़ पर दवा की शीशी के पास विज़िटिंग कार्ड चमक रहा था। उस पर लिखा "कुमुद।"

× × ×

जून की २७वीं तारीख़ थी। पिता का तार प्रकाश मेरठ वापस आ गया। घर आने पर उसने कुछ सुना, उससे वह व्याकुल हो उठा। बाबू शिव ने बिना प्रकाश को बतलाए ही उसका विवाह रस के रईस बाबू हरगोविंददयाल के यहाँ प लिया था, विवाह का मुहूर्त इत्यादि सब प्रका अनुपस्थिति ही में निश्चित हो चुका था। २ जु लग्न थी। माता के द्वारा प्रकाश को सब हाल

हुआ। यह भी सुना कि लड़की पढ़ी-लिखी, सुंदर, सुशील और गृहकार्य में दक्ष है। अपने पिता की वह एक-मात्र संतान है। घर के सब लोग विवाह की तैयारी में लगे थे। प्रकाश अकेला अपने कमरे में बैठा सिर पीट रहा था। उसके मन में रह-रहकर यही भावना उठती थी कि उसके पिता का, बिना उसकी राय लिए, विवाह ठीक कर लेना कहाँ तक उचित था। प्रकाश पाश्चात्य सिद्धांतों का समर्थक था, किंतु उसके पिता पुराने विचारों के आदमी थे। उन्होंने विवाह के विषय में लड़के से सलाह लेना बिलकुल अनावश्यक समझा। यह प्रथा न थी।

तिलक चढ़ चुका था। पर बेचारा प्रकाश! उसका सब उत्साह, उसकी समस्त अभिलाषाएँ, आकांक्षाएँ, उसके उत्कृष्ट विचार सब पूर्वप्रचलित सामाजिक प्रथा की वेदी पर बलिदान हो चुके थे। प्रकाश अपने मनोवेगों को यथासाध्य दबाने की चेष्टा करता था, पर सब व्यर्थ। उसकी उद्विग्निता उसके चेहरे से स्पष्ट थी। उसे कुमुद का ध्यान था। कौन कुमुद? उसकी मनोनीत अधिष्ठात्री देवी कुमुद। जीवनसर्वस्व कुमुद, जिसको प्रथम साक्षात् में ही वह अपना हृदय दे चुका था। वह हृदय अब दूसरे का कैसे हो सकता था। हाय! उस कुमुद को भी आसुरी प्रथा की भेंट चढ़ना पड़ा। प्रकाश के मन में अनेक प्रकार के विचार क्रमशः उठे और नष्ट हो रहे थे। कभी वह घर से भाग जाने का विचार करता, कभी आत्महत्या करके अपने दुःखमय जीवन की समस्त ज्वालाओं से शांति पाने की सोचता। परंतु कर्तव्य! उसकी कुम्हलाती हुई आशाओं पर विजयी होकर उसे वर्तमान परिस्थिति में संतोष करने का उपदेश दे रहा था। उसी कर्तव्य के सम्मुख प्रकाश लाचार हो गया। अपने जीवन में कभी उसने माता-पिता की आज्ञा नहीं टाली थी, किंतु क्या उसका यही अंतिम परिणाम था। प्रकाश का हृदय अंतर्ज्वाला से धधक उठता था। मन कहता था डूब मरो, ऐसे जीने से न जीना ही अच्छा है। कर्तव्य कहता था—नहीं, संसार में कर्म ही सर्वप्रधान है। मातापिता की आज्ञा मानना तुम्हारा धर्म है। उनके आदेश-पालन के सम्मुख इस जगत् के संपूर्ण पदार्थ तुच्छ हैं। आशा बिचारी निरुत्साह होकर एक कोने में मुँह छिपाए पड़ी थी।

इस प्रकार एक शिक्षित आर्यसंतान के भावी जीवन-रूपी भाग्य का निपटारा हो रहा था।

× × ×

विवाह कार्य सकुशल समाप्त हो गया। बारात लौट आई। मातापिता का हृदय उत्साह और उमंग से उछला पड़ता था। उन्होंने सर्वगुणसंपन्न सुशीला वधू पाई थी। उनके आनंद की सीमा न थी। छोटे से लेकर बड़े तक सब लोग प्रसन्न थे। कन्यापक्षवालों ने देने-लेने में कोई कसर न रक्खी थी। सब लोग प्रशंसा कर रहे थे। किंतु प्रकाश!—उसके जीवन की सब आशाओं का अंत विवाह के साथ ही होना था। वही एक हृदय था, जो कर्तव्य की बेड़ियों में जकड़ा जाकर प्रकट में शांत पर वास्तव में चिता की नाईं धू-धू करके जल रहा था। विधाता की लीलाओं को कौन जान सकता है। प्रकाश ने अपने भाग्य को—दैव को ही—दोषी ठहराया। उसे सांसारिक जीवन से एकदम घृणा हो गई। उसने पूर्ण त्याग को ही उन्नति का मंत्र मानकर उसे ही अपनाने का विचार किया।

वाह रे हिंदू समाज—तेरी बलिहारी है।

× × ×

रात को लगभग दस बजे थे। प्रकाश अपने कमरे के किवाड़ बंद किए लैंप के सामने अकेला बैठा स्वामी रामतीर्थ की कोई पुस्तक पढ़ रहा था। उसकी मानसिक ज्वाला शांत न हुई थी। पुस्तक में उसका जी नहीं लग रहा था, पर आँखों में नींद भी न थी। कभी पढ़ते-पढ़ते रुककर वह कुछ सोचने लगता था। अपने भावी जीवन का चित्र उसकी आँखों के आगे घूम रहा था, जो निराशा के कलि-कलेवर से आच्छादित होकर धूमिल दिखाई देता था।

उसने पुस्तक बंद करके मेज़ के नीचे डाल दी। फिर आप-ही-आप कहने लगा—

'शोक, इन महात्माओं को देखिए। वेदांत का कैसा ढोंग रचकर एक पाखंड बनाते हैं, कैसे-कैसे सिद्धांत निश्चित करते हैं, किंतु फिर भी धर्म की ओट में, कर्तव्य की आड़ में अत्याचार होते देखकर इनका हृदय नहीं पसीजता। प्रथा—सामाजिक प्रथा—आसुरी प्रथा—इसी से भारतीय समाज का सत्यानाश हुआ। न विचारों की स्वतंत्रता है न कार्य की। हम भारतीयों

के जीवन का रहस्य इसी प्रथा के परदे से ढका है। इसी प्रथा द्वारा हम मनुष्य से पशु बनाए जाते हैं। हम अपने अधिकारों से वंचित किए जाते हैं, समाज का यही शासन-दण्ड है। ऐसे समाज को धिक्कार है, जो शिक्षित जनता के मार्ग में कंटक बनकर उसका वास्तविक स्वत्व छीन लेता है। मैं ही नहीं, मेरे-जैसे सैकड़ों मनुष्य इस समाज के प्रथा-रूपी अस्त्र का लक्ष्य बन चुके हैं। उनका जीवन भी मेरे जीवन के सदृश नष्ट किया जा चुका है। ऐसे समाज को दूर ही से प्रणाम है। बड़े-बड़े सुधारक बनते हैं, किंतु केवल वाणी से, कर्म से नहीं! यदि जीवित रहा, तो इस समाज में एक ऐसी क्रांति उत्पन्न करूँगा, जिसकी प्रचंड उष्णता में प्रथा का समूल अंत हो जायगा। वह विप्लव ऐसा अद्भुत और विकराल होगा कि उसकी लपेट में आकर सारा भारतीय समाज.........''

इसके आगे प्रकाश कुछ न कह सका।

× × ×

कमरे का किवाड़ धीरे से खुल गया। प्रकाश चौं उठा। वह घबराकर एक क्षण द्वार की ओर देखता रहा। उसकी नवविवाहिता पत्नी ने कमरे में प्रवेश किया। प्रकाश उठकर खड़ा हो गया। इसके पहले दोनों कभी साक्षात् न हुआ था।

लज्जित भाव से उसने घुटनों के बल बैठकर प्रका के दोनों पैर पकड़कर कहा—"प्राणेश!"

प्रकाश ने पत्नी के मुँह पर दृष्टि डाली। उसं आँखों में आँसू छलछला आए। उसने कहा—"कुसु तुम!" आगे उसके मुँह से कोई बात न निकली।

दोनों मिल गए। छत पर ज्योत्स्ना छिटकी हुई थ चंद्रदेव आकाश में हँस रहे थे। प्रकृति की शांत गोद सारा लोक अचेत था। केवल पवनदेव निशासुं से अठखेलियाँ कर रहे थे।

वह अपूर्व "मिलन" था।

लक्ष्मीशंकर मिश्र

सूक्ति-कुंडल *

कुंडलिया

मित्र! टाँग के दर्द से, नहीं हुआ हूँ पार;
दवा दारु उपचार ने, किया मुझे लाचार।
किया मुझे लाचार, बिगाड़ा मैंने पैसा;
गए बीत छः मास, हाल वैसे का वैसा।
कहे 'देव' भर आह, दर्दघटना है विचित्र;
हट-हट आवे लौट, बड़ा सत्याग्रही, मित्र!

शालिनी

आते मौक़े, तात! उत्थानवाले;
ले लेते हैं, लाभ जी-जानवाले।
वे पाते हैं, स्थान सम्मानवाले;
जो जाते हैं, जूझ ईमानवाले।

भुजंगी

कहाँ है नहीं जो बहे धार में?
रहे जो तना तेग की मार में।
सदा हो डटा बीच मैदान में;
सभी वार दे देश की आन में।

दोहा

जीवन तो रणखेत है, जूझो निर्भय हो
तिलक-विजय जिन पाइया, बड़भागी हैं सो
बाधा-बाधा करत है, तू मूरख नाद
बाधा का बध बिन किए, क्या पाएगा भा

सत्यदेव परिव्राजक (जर्मनी

---

* अनुभवसागर से।

बिहारी की सतसई और उसके टीकाकार

(२)

बिहारी की सतसई तुलसी-सौरभान्वित वह 'मानस' नहीं है, जो राजहंसों के सेवन-योग्य हो। यह तो बिहारी का विहार-सरोवर है, जो अपने ढंग का अवश्य अनूठा है, सुंदर है, चेतोहर है। परंतु अत्यधिक 'विहार' होने के कारण कहीं-कहीं इस सरोवर का जल बिलकुल पंकिल हो गया है, अतएव अपेय भी है। हाँ जो जल के दोष दूर करके उसका स्वच्छ भाग ग्रहण करने में पटु हैं, वे आवश्यकतानुसार इसके जल का सेवन कर भी सकते हैं; परंतु जो ऐसी सामर्थ्य से वंचित हैं, उन्हें इधर न झुकना चाहिए, विशेषतः 'अपरिपक्व-मति' जनों को। कारण, इसके अंधाधुंध सेवन से बड़े भारी और कष्टातिशयकर रोगों के हो जाने का डर है—असाध्य बीमारियों के हो जाने का ख़तरा है।

"बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ, छोटे मियाँ सुभान अल्लाह!" बिहारी ने तो अपने 'रसिक' आश्रय-दाता मिर्ज़ा जयसिंह को खुश करने के लिये जो कुछ किया है, सो किया ही है; पर उसके टीकाकार कहीं-कहीं और भी आगे बढ़ गए हैं! हद कर दी है! इस लेखमाला में आगे इसका आभास मिलेगा।

हम इस सतसई के विषय को, अधिकांश में दूषित, पर उसके अभिव्यक्त करने के ढंग को बहुत बढ़िया समझते हैं—विषय जीवन को और उसके अभिव्यंजन का ढंग मन को हरनेवाला है। थोड़े में यही हमारी इस काव्य के विषय में सम्मति है।

सतसई का पहला दोहा है—

मेरी भौ बाधा हरौ, राधा-नागरि सोय ;
जा तन की झाईं परे, स्याम हरित दुति होय।

दोहा बहुत बढ़िया है और वस्तुतः सतसई के मस्तक पर ही विराजमान होने के योग्य है। अक्षर प्रसन्न हैं—सब साफ़ झलकता है। पर खेद की बात है कि इस मंगलाचरण के दोहे से ही टीकाकारों ने अपनी कुत्सित मनोवृत्ति का परिचय देना शुरू कर दिया है। एक तो 'ठोंक-पीटकर' इस दोहे के 'विविध' अर्थ करके अनर्थ कर डाला गया है—बेचारे दोहे की दुर्दशा कर डाली गई है; फिर एक ऐसा अर्थ करने की धृष्टता भी की गई है, जो शिष्ट साहित्य-समाज में अक्षम्य अपराध है। हरि कवि ने अपनी टीका में इस दोहे का बड़ा ही उच्छृंखल—अश्लील—अर्थ किया है। परंतु अतिशय खेद की बात तो यह है कि यह अश्लील अर्थ 'संजीवन-भाष्य' में भी ख़ूब नोन-मिर्च लगाकर उद्धृत किया गया है। ऐसा दोष करके फिर 'अनुवादी न दुष्यति' लिख देने से अपराध-परिमार्जन नहीं हो सकता। अर्थ देखिए—

"१—अथवा—नायिका—(श्रीराधा) को मानिनी देखकर नायक (श्रीकृष्ण) प्रार्थना (मिन्नत, ख़ुशामद) करते हैं कि 'हे राधा नागरि ! मेरी भौ (भय) बाधा, हरौ, अर्थात् तुम्हारा मान (कोप-नाराज़गी) देखकर जो मुझे भौ (भय) है, उससे उत्पन्न बाधा (दुःख) को हरो। अभिप्राय यह कि मान छोड़ प्रसन्न हो जाओ। नायक महात्मा मान छोड़ने का ढंग बताते हैं और काम की बात पर आते हैं—क्या करके, 'सोय—' या को अर्थ हमारे पास शयन करिकै।" तुम्हारे तन की कांति पड़ने से हमारा (श्रीकृष्ण का) जो यह श्याम शरीर है, 'सो, सानंद होत है।' क्यों न हो, हुआ ही चाहे।"

—संजीवन-भाष्य

कहिए, यह घासलेट-साहित्य है, या क्या ? संजीवन-भाष्य के निर्माता घासलेट-साहित्य के प्रमुख विरोधियों में होकर भी अपनी क़लम से ये गंदे शब्द लिखते हैं ! पाठक इस औचित्य या अनौचित्य पर स्वयं सोचें !

इस दोहे के पदों पर विचार करते हुए 'संजीवन'-भाष्य-कार लिखते हैं—"मेरी भव-बाधा" शब्द में (शब्दों में ?) उपासक-बोधक 'मेरी' पद से—"जगन्नाथस्याऽयं सुरधुनि ! समुद्धार-समयः—" के

समान अपनी अधमतातिशयता (अपना अधमतातिशय ?)-द्योतन द्वारा इष्टदेव की निरतिशय महिमा की ध्वनि निकलती है !''

विचार करने पर ऊपर लिखी बातें भ्रम-पूर्ण सिद्ध होती हैं। न तो 'मेरी' पद से कोई ध्वनि निकल सकती है और न कुछ; शर्माजी ने जो पंडितराज का पद्यांश मिसाल के तौर पर पेश किया है, उसके 'जगन्नाथस्य' पद में अवश्य वह ध्वनि है। उस पद्यांश का भाव यह है कि हे भगवति सुरधुनि ! (गंगे !) यह जगन्नाथ के समुद्धार का समय है, ज़रा सँभलकर हाथ बढ़ाइए, यह मामूली पतित नहीं, पतिताग्रगण्य 'जगन्नाथ' है ! यहाँ वस्तुतः 'जगन्नाथस्य' पद से प्रार्थयिता अपना अधमतातिशय-द्योतन करता है।

बात यह है कि यहाँ गंगाजी से प्रार्थना करनेवाले स्वयं जगन्नाथ हैं; अतएव सर्वनाम 'मम' का प्रयोग होना चाहिए था, 'जगन्नाथस्य' का नहीं। इसीलिये यह 'जगन्नाथस्य' पद अनुपपन्न होकर अधमतातिशयविशिष्ट-मदर्थ का बोध कराता है। प्रकृत दोहे के 'मेरी' पद में यह कुछ भी नहीं है, कोई बात ही नहीं है। सीधा-सादा 'मेरी' पद का प्रयोग है, जो अपने सामान्य अर्थ का अभिधान करता है। ध्यान रखने की बात है कि 'अर्थान्तर-संक्रमित-वाच्य'-नामक ध्वनि लक्षणा-मूलक है, और लक्षणा तभी होती है, जब कोई पद बाधित हो, अनुपपन्न हो, जैसे 'जगन्नाथस्याऽयं सुरधुनि ! समुद्धार-समयः' अथवा 'वीर-सतसई' के इस द्रौपदी-प्रणयानुरोध में—

''जाहु भलैं कुरुराज पहँ, धारि दूतवर वेष ;
जैयौ भूलि न कहुँ वहाँ केशव ! **द्रौपदि** केश।''

'वीर-सतसई' के इस दोहे के 'द्रौपदि' इस अंश में अवश्य वह अर्थान्तर-संक्रमित-वाच्य ध्वनि है। 'मेरी भौ (भव) बाधा' में 'मेरी' पद बाधित या अनुपपन्न नहीं है जिससे लक्षणा करनी पड़े और फिर उससे वह ध्वनि—व्यंग्य—निकले, जो उक्त लक्षणा का फल है। सारांश यह कि इस 'मेरी' पद में कोई भी ध्वनि नहीं है।

एक बात और। शर्माजी ने इस 'मेरी' पद से 'इष्टदेव की निरतिशय महिमा' की भी ध्वनि निकाली है ! यह कैसी रही ! यह कैसी 'मेरी' है, जो एक-से-एक बढ़कर ध्वनि-कुमारों का विश्रृंखल जनन करती चली जाती है ! साहित्यिक बंधुओं के सोचने की बात है

फिर भी आगे लिखा है—''काव्य प्रकाशके प्रकरणोदाहृतः—

त्वामस्मि वच्मि विदुषां समवायोऽत्र तिष्ठति।
आत्मीयां मतिमास्थाय स्थितिमत्र विधेहि तत्॥

पद्य के 'त्वां' 'अस्मि' 'विदुषां' आदि पदों के सम 'मेरी' पद में लक्षणा-मूलक अविवक्षित-वाच्य अर्थान् संक्रमित रूप ध्वनि है।''

'काव्य-प्रकाश' और 'साहित्य-दर्पण' आदि में उक्त वाक्यगत उक्त ध्वनि के उदाहरण में उद्धृत किया गया है इस पद्य के 'त्वां' 'अस्मि' और 'वच्मि' पदों से ध्वनि निकलती हैं; पर 'विदुषां' पद से कोई भी ध्वनि निकलती। न-जाने, शर्माजी ने क्या सोचकर 'विदुषां' ध्वनि निकलना लिखा है ? मालूम नहीं, क्या ध्वनि उन्हों इससे निकाली है ? ख़ैर, जो है, सो तो है ही। पर मिसाल से भी शर्माजी को अभीष्ट-सिद्धि नहीं होती— इस पद्य के सहारे भी उस 'मेरी' से वह ध्वनि निकल सकती। इस संस्कृत पद्य में वे सब पद, जिन वे ध्वनियाँ निकलती हैं, एक प्रकार से अनुपपन्न हैं, एव लक्षणा करके कुछ विशिष्ट अर्थ प्रतिपन्न होता और इसीलिये, फल-स्वरूप, वे-वे ध्वनियाँ निकलती हैं

संस्कृत-पद्य में 'अस्मि' अव्यय 'अहम्' के अर्थ में है जिससे बात कही जा रही है, वह सामने ही है, फिर 'त्वां' के कहने की कोई ज़रूरत नहीं। इस 'त्वां' पद अनुपपन्न होकर अन्य-व्यावृत्तिविशिष्ट लक्षित कराता है, जिससे निरतिशय प्रेम व्यक्त होता है वक्ता का अभिप्राय है कि मैं तुझसे—सिर्फ़ तुझसे— बात कहता हूँ, यदि और कोई होता, तो मुझे ग़रज़ न पड़ी थी ! इसी प्रकार अहमर्थक 'अस्मि' अनुपपन्न है। 'वच्मि' क्रिया का कर्ता 'अहम्' या मर्थक 'अस्मि' के अतिरिक्त और कोई हो ही सकता। तो फिर इस दशा में 'अस्मि' के देने की ज़रूरत न थी। यों यह पद अनुपपन्न होकर हितकारि विशिष्ट अहमर्थ लक्षित कराता है, जिससे अत्यंत हि षिता और वत्सलता अभिव्यक्त होती है। मतलब कि मैं—केवल मैं—हूँ, जो तुझे ऐसी सीख की बात रहा हूँ। और कोई तुझे ऐसी बातें बताने का नहीं। तरह 'वच्मि' भी है। वह भी अनुपपन्न होकर 'कहता

इस सामान्य अर्थ को छोड़कर 'उपदेश करता हूँ'—इस विशिष्ट अर्थ को लक्षित कराता है और उसके आतिशय्य का ध्वनन करता है।

परंतु प्रकृत दोहे का 'मेरी' पद किसी भी दशा में बाधित या अनुपपन्न नहीं है, जिससे उक्त ध्वनि निकले। यदि दोहे में 'मेरी' पद न हो, तो वह अर्थ किसी प्रकार निकल ही नहीं सकता, जो कवि को, इस मंगलाचरण के कर्ता को अभिप्रेत है। 'मेरी' पद के विना—'भव-बाधा हरौ'—जन्म-मरण की पीड़ा और अन्य सांसारिक दुःख श्रीराधा दूर करें, किसके ?—सो कुछ खुलासा नहीं। अतएव यहाँ 'मेरी' पद आवश्यक है, वह अनुपपन्न नहीं है; इसीलिये लक्षणा का प्रवेश-द्वार बिलकुल बंद है, जिसके विना वह ध्वनि यहाँ शशशृंगायमाण है, जिसके स्वप्न 'संजीवन-भाष्य' में देखे गए हैं।

इस दोहे के अलंकारों को गिनाते हुए शर्माजी अपने 'संजीवन-भाष्य' में लिखते हैं—"दूसरे अर्थ में 'हेतु अलंकार है—

"हेतोर्हेतुमता सार्द्धं वर्णनं हेतुरुच्यते।" (कुवलयानन्द)
'हेतु' अलंकृत होय जब, कारण कारज संग।"
—भाषाभूषण

अर्थात् जहाँ हेतु—(कारण) पूर्वक हेतुमान् (कार्य) का वर्णन किया जाय, वह 'हेतु' अलंकार कहाता है—जैसे यहाँ राधाजी का पीत वर्ण और श्रीकृष्णजी का श्याम वर्ण हरे रंग के होने में कारण है।"

शर्माजी का यह सब लिखना और उनके प्रमाणभूत 'कुवलयानन्द' तथा 'भाषा-भूषण' का यह 'हेतु'-लक्षण, सब कुछ ग़लत-ग़लत और बेमज़े का है। कारण और कार्य के एक साथ ही होने में 'हेतु' नहीं, 'अतिशयोक्ति' अलंकार का एक भेद होता है। जैसे—

समसेव समाक्रांतं द्वयं द्विरदगामिना।
तेन सिंहासनं पित्र्यं मण्डलं च महीक्षिताम् ॥

गजगामी रघु ने अपने पिता का सिंहासन और राजाओं के मंडल को एक साथ ही अधिकृत किया। मतलब यह कि राजगद्दी पर बैठते ही अनति विलंब सब राजाओं को दबा दिया। यहाँ कारण—सिंहासनाधिरोहण—और कार्य—राजाओं के मंडल को दबाना—एक साथ ही कहे गए हैं। ऐसा कहने में ख़ास चमत्कार है, जो अलंकार का बीज है। यदि इसी प्रकार का कारण कार्य-सहभाव अभिप्रेत है, तो ऐसी जगह 'हेतु' नहीं, 'अतिशयोक्ति' अलंकार होगा—इसका वह भेद, जो कारण-कार्य के सहवर्णन में होता है। सो, यहाँ 'हेतु' अलंकार नहीं है। 'हेतु' तो तब होता है, जब कारण का कार्य के साथ अभेद कथन किया जाय, जैसे संस्कृत के इस पद्य में—

"तारुण्यस्य विलासः समधिकलावण्यसम्पदो हासः।
धरणितलस्याभरणं युवजनमनसो वशीकरणम् ॥"

यहाँ वशीकरण का हेतु नायिका है, जो वशीकरण रूप से कही गई है।

सारांश यह कि 'कुवलयानन्द' और 'भाषा-भूषण' में जो 'हेतु' का लक्षण किया गया है, वह ग़लत है। जिसे इन्होंने 'हेतु' लिखा है, वह 'अतिशयोक्ति' अलंकार का एक भेद है। पर इस दोहे में यह 'अतिशयोक्ति' भी नहीं है और 'हेतु' तो है ही नहीं। फलतः इन लक्षणों के आधार पर शर्माजी ने जो इमारत खड़ी की थी, वह बैठ गई।

अनवरख़ाँ के अनुसार इस दोहे में शर्माजी ने एक नया अलंकार 'श्लेषाभास' भी लिखा है—'भव-बाधा' में 'भव' शब्द के अनेकार्थता को लक्ष्य में रखकर अनवरख़ाँ ने 'श्लेषाभास' भी लिखा है। अर्थात् 'भव-बाधा' समस्त-पद-गत 'भव' शब्द में, हे भव शिव ! मेरी बाधा हरो' इत्यादि भ्रम होता है।"

वस्तुतः न तो यहाँ 'हे भव शिव !' आदि का भ्रम ही होता है और न यह कल्पित अलंकार ही है। यदि कहीं भ्रम हो भी, तो इस प्रकार का कोई अलंकार वैचित्र्याभाव के कारण हो नहीं सकता और न किसी साहित्य-ग्रंथ में इस अद्भुत अलंकार की कोई कथा ही है। मालूम होता है, 'पुनरुक्तवदाभास'-नामक शब्दालंकार की धुँधली स्मृति ही इस नवीन अलंकार-कल्पना की भूल का कारण है।

इसी प्रकार कितने हो मनगढ़ंत अलंकारों और अर्थों की कल्पना की गई है। एक और अर्थ किया गया है।

"२—अथवा—तुम्हारे तन की झाईं (कांति) जब मिलाप (समागम) के समय हमारे (श्रीकृष्ण के) शरीर पर पड़ती है, तब श्याम—श्यामवर्ण शृंगाररस या (रतिपति) काम—सो पल्लवित होता है।"(संजीवन-भाष्य)

फिर "कामदेव और शृंगाररस दोनों का वर्ण श्याम है। सो, यहाँ 'साध्यवसाना' लक्षणा करके 'श्याम' पद से श्यामवर्ण-विशिष्ट 'काम' या शृंगार' का ग्रहण करना चाहिए।" इस प्रकार यह लिखकर, आगे साध्यवसाना लक्षणा का लक्षण आदि लिखकर सोदाहरण इसकी उत्पत्ति की गई है। शर्माजी की यह सब कल्पना निरी कल्पना ही है—कुछ तथ्य इसमें नहीं है। न तो इस दोहे का यह अर्थ ही हो सकता है और न 'श्याम' से 'काम' या 'शृंगार' का ग्रहण ही। साध्यवसाना लक्षणा का तो ठिकाना ही नहीं है। यह लक्षणा—या कोई भी लक्षणा—तभी होती है, जब मुख्यार्थ बाधित हो, और रूढ़ि किंवा प्रयोजन, इन दो कारणों में से कोई भी एक अवश्य हो। यहाँ न तो 'श्याम' पद बाधित ही है और न कुछ। यदि किसी प्रकार 'श्याम' पद अनुपपन्न मान भी लिया जाय, तो भी रूढ़ि या प्रयोजन का अभाव होने से उक्त लक्षणा अशक्य है। यहाँ ल करने का प्रयोजन तो कोई है ही नहीं, न शर्मा लिखा ही है और न मेरी बुद्धि में सम्भावित हो रही रूढ़ि, सो, 'श्याम' पद की रूढ़ि 'काम' या ' में नहीं, श्रीकृष्णचंद्र में ही है। सो इस प्रकार साध्यवसाना लक्षणा हो नहीं सकती। 'श्याम' प 'काम' या 'शृंगार' का बोध हो नहीं सकता, अतएव का सहारा लेकर किया जानेवाला वह ऊटपटाँग कभी समर्थित हो नहीं सकता।

इसी प्रकार और भी कितनी ही मज़े की बातें दोहे पर विभिन्न टीकाकारों ने—संजीवन-भाष्यकार भी—लिखी हैं। उन सबका उल्लेख करने के न तो यहाँ स्थान ही है और न अवकाश ही। जो अभिलाषी हों, वही इसका आनंद लें।

किशोरीदास वाज

चिड़चिड़ाते कमज़ोर
बच्चे
डोंगरे का
बालामृत
पीने से
तन्दुरुस्त, ताक़तवर, पुष्ट
व आनंदी बनते हैं।
क़स्बे-क़स्बे में बिकता है।
नक़ली दवा से ख़बरदार रहो।
मालिक—के० टी० डोंगरे कं० गिरगाँव, बंबई

मुकुर के प्रति—

(१)

भूषित सदैव करते हो कररंज वह,
सुखद सनेह की सुधा को वरसाते तुम;
प्रीतम की मूर्ति हृद्मंदिर बसा के मंजु,
आँखों से मिलाने में न आँख सकुचाते तुम।
रूपरस पीकर अघाते नहीं वार-वार,
वाहर दिखाते कभी उर में छिपाते तुम;
आरपार हृदय दिखाके अपना ये शुभ्र,
जग को कठिन प्रेम-पंथ सिखलाते तुम।

(२)

मिलते हमें हैं जब प्राणाधार मंदिर में,
आँखें सकुचाके पाँव पर अड़ जाती हैं;
उठती नहीं हैं समझावे कितना भी कोई,
जाने कौन मंत्र यह मौन मन गाती हैं।
जाते हो हृदयधन ढूँढ़ती व्यथित होके,
जाने फिर हाय इतना क्यों अकुलाती हैं;
मुकुर ! तुम्हीं हो धन्य देखते ही मूर्ति वह,
आँखों से समोद बस आँखें मिल जाती हैं।

(३)

जग में न स्वच्छ तुम-सा है और कोई कहीं,
कालिमा ज़रा-सी लगते ही रूठ जाते तुम;
ऊषा जिस छवि पै लुटाती माल मोतियों की,
उसके ही कर में सप्रेम छवि पाते तुम।
थकित हुए हैं चित्रकार चित्र-चित्रण में,
चित्र उसका ही शीघ्र उर में वनाते तुम;
मलिन हृदै में हृदयेश हैं न आते कभी,
मुकुर ! यही क्या सव जग को सिखाते तुम ?

(४)

जिस रूपराशि पै करोड़ों कंज खिलते हैं,
उसका ही हृदयसरोज विकसाते तुम;
छाया-मात्र जिसकी छिपाए फिरता है चंद्र,
मूर्ति छविधाम वह अंक में बिठाते तुम।
जिस प्रतिबिंब पै मचलता नदी में नीर,
शांति से उसे ही नित्य उर से लगाते तुम;
अंग प्रति अंग में वसाके मूर्ति प्रीतम की,
भाग्य तक हाथ में उन्हीं के सौंप देते तुम।

(५)

सहके वियोग-यातनाएँ घवराते नहीं,
रवि सम प्रखर प्रकाश दिखलाते तुम;
चाहे कितना भी दुख देवें अनुदारता से,
"आह!" तक जीभ पै कभी भी नहीं लाते तुम!
जानते भली विधि कठोरता हो प्रेमियों की,
तो भी निशिवासर उन्हीं के गुण गाते तुम;
मुकुर! तुम्हीं तो रूपराशि के पुजारी धन्य,
आँखें दिखलाते वह हृदय दिखाते तुम।

के० पी० दीक्षित "कुसुमाकर"

स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी ‘दीन’

जन्म

लाला भगवानदीनजी ‘दीन’ का जन्म फतेहपुर (हसवा) ज़िलांतर्गत बरवट ग्राम में श्रीयुत मुंशी कालिकाप्रसादजी बख़शी के घर, श्रावण शुक्ल ६ संवत् १९२३ वि० को हुआ था। आप श्रीवास्तव दूसरे कायस्थ थे। आपके पूर्व-पुरुष पहले रायबरेली में निवास करते थे। अनंतर ग़दर के समय वे लोग रामपुर चले गए और वहीं उन्हें स्थानीय नवाब की ओर से ‘बख़शी’ का सम्मानसूचक ख़िताब मिला था।

नामकरण

प्राय: देखा जाता है कि समय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये होनेवाली महान् पुरुषों की जन्म-घटनाओं में कुछ-न-कुछ दैवी शक्ति अवश्य अंतर्हित रहा करती है। कविवर ‘दीन’-जी का जन्म भी इस ईश्वरीय नियम के अनुसार ही हुआ था। आपके माता-पिता के बहुत कालपर्यंत कोई भी संतति न हुई थी। अंत में किसी साधु ने आपकी माता को संतानोत्पत्ति के लिये भगवान् सूर्य की कठिन तपस्या का विधान बताया। तदनुकूल उस देवी ने ज्येष्ठ-मास की कड़ी धूप में अनुष्ठान आरंभ किया था और प्रति रविवार को वह सूर्योदय के समय एक थाली में प्रज्वलित चतुर्मुख दीपक के साथ अन्य पूजन सामग्री संकलित कर सूर्याभिमुख खड़ी हो जाया करती थीं। ज्यों-ज्यों सूर्य भगवान् घूमते, आप भी घूमतीं और सूर्यास्त होने पर संकलित सामग्री से भगवान् का पंचोपचार पूजन कर वहीं लेट रहा करती थीं। इस प्रकार दो रविवार तक तो वह देवी अपने अनुष्ठान में पूर्णत: कृतकार्य हुईं; किंतु तीसरी बार मध्याह्न होते-होते सूर्य के प्रखर ताप के कारण वह वहाँ बेहोश हो गिर पड़ीं। अनंतर भगवान् के प्रसाद से हिंदी-साहित्याकाश के लिये सूर्यवत् आपको एक पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ और इसीलिये आपका नाम भगवानदीन रक्खा गया।

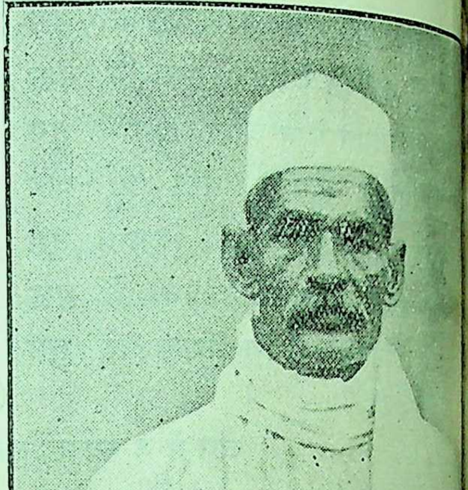

स्व० लाला भगवानदीन ‘दीन’

पारिवारिक स्थिति एवं शिक्षारंभ

‘दीन’जी के पिता साधारण स्थिति के गृह बहुधा आजीविकावश उन्हें रहना पड़ता था। अतः उन्हें को माता के पास रखकर ही उर्दू-फ़ारसी की आरंभिक शिक्षा दिलानी आरं जब ‘दीन’जी की अवस्था ग्यारह वर्ष की हुई, माता का देहावसान हो गया, जिससे आपके पि अपने साथ बुंदेलखंड नौकरी पर ले गए। वहाँ छावनी में अपने फूफा के पास रहकर ‘दीन’जी ने की विशेष शिक्षा प्राप्त की। चार वर्ष पीछे घर लौट आए और वहाँ दो वर्ष तक मदरसे में आपने इसी समय अपने दादा से, जो एक पुरुष थे, साधारण हिंदी सीखी। अनंतर

प्रमेही, नपुंसक और धातु-रोगियों के लिए

खुशख़बरी !!

कौन पढ़ा-लिखा नहीं जानता कि स्वास्थ्यरक्षा और चिकित्साचंद्रोदय के

लेखक

बाबू हरिदासजी

प्रमेह, धातुरोग, शीघ्रपतन और नामर्दी के इलाज में पूर्ण अनुभवी हैं ? आपका लिखा

चिकित्साचन्द्रोदय

चौथा भाग

देखने से, वहमी से वहमी के दिल में यह विश्वास अटल हो जाता है कि उपरोक्त रोगों की चिकित्सा में, बाबू साहिब के समान अनुभवी बहुत कम चिकित्सक होंगे। उनका लिखा चिकित्साचंद्रोदय पढ़-पढ़कर अनेक वैद्य इन रोगों के इलाज में कामयाबी हासिल करके धन और मान कमा रहे हैं। हज़ारों रोगी केवल उनके ग्रंथ को पास रखकर और उसमें लिखे उपाय करके सफल-काम हुए हैं। आप एक बार उनके लिखे चिकित्साचंद्रोदय के सात भाग देखिए तो सही। अगर सातों भाग एकदम ख़रीदने की हिम्मत न हो तो पाँच रुपये दस आने का मोह छोड़कर उनका लिखा चतुर्थ भाग ही देखिए। उसे देखते ही आपको सातों भाग मँगाकर ही चैन आवेगा।

बहुत लिखने को स्थानाभाव है। अगर आप लड़कपन की नासमझी के कारण, कुसंगति के फलस्वरूप हस्तमैथुन—हैंड-प्रैक्टिस, मास्टरवेशन वग़ैरह करके अपने तईं संसार-सुख भोगने के अयोग्य बना चुके हैं, आपको ज़िंदगी भारस्वरूप मालूम होती है, प्रसंग में ज़रा भी आनंद नहीं आता, चैतन्यता नहीं होती, शीघ्र ही स्खलित होजाते हैं, अपनी लक्ष्मी की तृप्ति नहीं कर सकते, आपका वीर्य पाखाने के समय काँखने से निकल जाता है, आपका दिल काम-धंधे में नहीं लगता, हर समय उदासी छाई रहती है, स्मरण-शक्ति घट गई है, चेहरा लंबा हो गया है, आँखें खड्डों में घुस गई हैं, तो आप

हरिदास ऐंड कंपनी कलकत्ता के मालिक

बाबू हरिदासजी

को अपना पूरा हाल लिखिए। शर्म को उठाकर छप्पर पर रख दीजिए। आपके पत्र को वे ही ख़ुद देखेंगे। बंद पत्रों को उनके मैनेजर महाशय भी खोल नहीं सकते। साथ ही ।) के पोस्ट-स्टाम्प क्लर्क की उजरत वग़ैरह को साथ भेजिए। वे आपके रोग का नाम, आराम होगा या नहीं, अगर आराम होगा तो कितने दिनों में—क्या दवा सेवन करनी होगी। उसकी क़ीमत क्या होगी, लिख भेजेंगे। फिर आपकी तसल्ली हो, तो उनसे दवा मँगाकर सेवन करें और अपना जीवन सफल करें।

पत्रव्यवहार—**हरिदास ऐंड कंपनी**

गंगा-भवन, मथुरा सिटी

के पते से करें, क्योंकि बालू साहब बुढ़ापे के कारण, ज़ियादातर मथुरा में ही रहने लगे हैं। दूसरी वजह यह है कि वे दवा के मामले में किसी का भी विश्वास नहीं करते, अपने सामने दवाएँ मथुरा में ही बनवाते हैं। इसलिये ताज़ी दवाएँ मथुरा में ही मिलती हैं। वहीं से बन-कर कलकत्ते की दूकान पर आती हैं।

अच्छा, अगर आपको हमारी बातों पर विश्वास न हो, तो एक सज्जन की ख़ुश होकर लिखी हुई चिट्ठी नीचे देखिए। इससे ज़ियादा तसल्ली कराने का तरीक़ा हमें और नहीं मालूम।

एक सच्चा प्रशंसा-पत्र

बाबू नंदकिशोर शर्मा, हाई स्कूल रायबरेली से लिखते हैं—

जिस रोग में आज भारत के ९० प्रतिशत पुरुष ग्रसित हैं, जिस रोग ने असंख्य नव-युवकों का जीवन निःसार बना दिया है, और जिस कराल व्याधि के कारण नित्य ही सहस्रों युवक प्राण तक त्यागते हैं—उसके निवारण करने का सच्चा मार्ग मैं बताता हूँ। आशा है, मेरे देशभाई इस राह पर चलकर अपने इष्ट स्थान—मंज़िले-मक़सूद—तक पहुँच सकेंगे।

"मेरे एक अनन्य मित्र........को प्रमेह, धातुरोग और नपुंसकता का मर्ज़ था, वह मृत्यु-दायक (Death dealing) हस्तमैथुन की कुटेव में फँस गए थे। उनके दुःख की सीमा नहीं थी, कारण कि वह अब क्लीवता (नामर्दी) को प्राप्त हो गए थे। युवती—उठती जवानी की स्त्री को इठलाती देखकर मरने पर तत्पर हो जाते थे। परंतु ईश्वर की दया से अथवा अपने भाग्यबल से, उन्होंने मुझसे, एक सच्चे मित्र के नाते, अपनी संपूर्ण मर्मस्पर्शी कथा कह दी। मैंने उन्हें आश्वासन (तसल्ली) दिया।

बाबू हरिदासजी वैद्य कलकत्ते वाले को, जो आजकल मथुरा में रहते हैं, मैं बहुत दिनों से जानता था। उनकी सुख्याति भी मैंने सुनी थी। अतएव अपने मित्र के लिये मैंने उक्त वैद्यजी से तिला नं० १—मूलिकादि तेल—लगाने के लिये और केशरपाक आदि खाने के लिये मँगवा दिया। नतीजा यह हुआ कि इन दवाओं के सेवन से मेरे मित्र महाशय पूर्ण नीरोग और संसारसुख भोगने योग्य हो गए। इन्द्रिय-दोष तो बिलकुल जाता रहा। वीर्य-रोग में थोड़ी-सी कसर है। इलाज चल रहा है, आशा ही नहीं प्रत्युत दृढ़ आशा है कि वह ज़रा-सी कसर भी पूरी हो जावेगी।

अंत में मेरी अपील अपने उन देशवासियों से है, जो उक्त व्याधियों के शिकार हो चुके हैं तथा अपने जीवन तक को खोने को तैयार हैं कि वे बिना किसी संदेह के, बिना अधिक देर किये, सीधे बाबू हरिदासजी वैद्य से अपना इलाज करावें। यहाँ किसी प्रकार की धोखेबाज़ी नहीं है। नपुंसकता, शीघ्रपतन और धातु-रोगियों का इलाज यहाँ सब जगह से अच्छ होता है। औषधियों का लाभ सच्चा और निश्चित है। हाँ, बाबूजी के इलाज में देर भले ही हो। पर काम सच्चा तथा पक्का होता है।

पता—हरिदास ऐंड कंपनी
गंगा-भवन, मथुरा यू० ० (सिटी)

अवस्था में फ़तेहपुर के इँगलिश स्कूल में आप भरती हुए, जहाँ से सात वर्षों में एंट्रेंस-परीक्षा पास की। स्कूल में भरती होने के कुछ ही दिनों पश्चात् आपके लाड़-प्यार के एकमात्र आधार दादाजी का भी देहांत हो गया। ऐसी दशा में आपके पिताजी ने आपकी देखरेख का कुल भार वहाँ अपने घनिष्ठ मित्र श्रीपुत्तू सोनार को सौंप दिया।

शिक्षा का विकास एवं गार्हस्थ्य-जीवन में प्रवेश

'दीन'जी लुटपन से ही विनय की मूर्ति तथा भक्ति के उपासक थे, अतः आप पर श्रीपुत्तू चाचा के स्नेह-स्रोत के प्रवाह का सहसा उमड़ पड़ना स्वाभाविक ही था। दूसरे, उनके कोई संतान भी न थी। इसलिये 'दीन'जी को दादाजी का वियोग भूल-सा गया। साथ ही, श्रीपुत्तू सोनार के एक विधवा बहन भी थी, जो निःसंतति हो अपने रँडापे के दिन वहीं खे रही थी। कहना न होगा कि इन मनियाँ बुआ के कारण 'दीन'जी का मातृ-वियोग भी बहुत कुछ हलका हो गया। इन मनियाँ बुआ का शरीरपात अभी ३-४ वर्ष पूर्व हुआ है और 'दीन'जी पर बराबर इनका स्नेह एक-सा पाया गया। अस्तु; इस प्रकार शिक्षा पाते हुए 'दीन'जी जब आठवीं कक्षा में पहुँचे, आपकी अवस्था बाईस वर्ष की थी। अतः श्रीपुत्तू चाचा ने विना इनके पिताजी से पूँछ-ताँछ किए ही इनका ब्याह कर दिया। यहाँ तक कि इनकी शादी में इनके पिताजी सम्मिलित भी न हो सके। इसी समय आपने आठवीं कक्षा पास की। उस समय तक वह स्कूल मिडिल तक ही था, अतः 'दीन'जी की विद्योपार्जन-संबंधी पिपासा ने उन्हें व्यग्र-सा बना दिया। उधर, श्रीपुत्तू चाचा ने भी आगे शिक्षा दिला सकने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी, जिससे आपकी वह व्यग्रता और भी बढ़ गई। किंतु संयोगवश उसी साल उस स्कूल के हाई-स्कूल होने की आज्ञा प्रांतीय शिक्षाविभाग से आ गई और अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होने के कारण 'दीन'जी को दो वर्ष के लिये आठ रुपए मासिक की छात्रवृत्ति भी मिलने लगी। किंतु इतने में 'दीन'जी का सपत्नीक निर्वाह होना असंभव था, अतः प्रधानाध्यापक से मिलकर आपको एक ट्यूशन भी करनी पड़ी और आपने वहीं से एंट्रेंस परीक्षा पास की।

आजीविका एवं काव्योदयकाल

अब लालाजी ने प्रयाग आकर वहाँ कायस्थ-पाठशाला में नाम लिखाया। इस समय आपको पाठशाला से वृत्ति मिलती थी और गृहस्थी के बोझ के कारण दो-एक जगह ट्यूशन भी करनी पड़ती थी। एफ़० ए० तक शिक्षा प्राप्त करने के अनंतर आपको गृहस्थी की झंझटों के कारण लाचार हो पढ़ना छोड़ना पड़ा और आप वहीं कायस्थ-पाठशाला में अध्यापक नियुक्त हो गए। वहाँ आपने डेढ़ वर्ष काम किया, बाद प्रिंसपल की अनुमति से स्थानीय ज़नाना-मिशन-गर्ल्स हाईस्कूल में छः मास तक फ़ारसी के शिक्षक होकर रहे। अनंतर आप राज्य-स्कूल के सेकेंड मास्टर होकर छत्रपुर (बुँदेलखंड) चले गए और सन् १८९४ से १९०७ तक वहीं रहे। इस बीच आपको हिंदी-साहित्य के अध्ययन का ख़ासा अवसर प्राप्त हुआ। यद्यपि हिंदी की ओर आपकी अभिरुचि पहले से ही उत्पन्न हो चुकी थी और आप फ़तेहपुर में अपने दादाजी को, जो एक परम भक्त पुरुष थे, नित्य तुलसीकृत रामायण का पाठ सुनाया करते थे और एक बार अपने पिताजी के साथ हरिद्वार जाने पर वहाँ दो मास रहकर उन्नीस वर्ष की अवस्था में "कृष्णचौसठिका"-नामक कविता भी बनाई थी; तथापि आपको साहित्यिक प्रतिभा के विकास का अवसर पहलेपहल छत्रपुर में ही प्राप्त हुआ। यहाँ आप अवकाश के समय बाबू जगन्नाथ-प्रसाद के पुस्तकालय की पुस्तकें पढ़ा करते थे और प्राचीन कवियों की कविता के अध्ययन के लिये आपको प्रायः राजकीय पुस्तकालय से यथेष्ट सहायता मिलती थी, जहाँ प्राचीन हिंदी-साहित्य के ग्रंथों का अच्छा संग्रह अब भी मौजूद है। इसके अतिरिक्त वहीं आपने श्रीगंगाधर व्यासजी से अलंकार तथा काव्य के कुछ नियम भी सीखे। बस, अब क्या था! आपकी साहित्यिक प्रतिभा प्रदीप्त हो उठी, आपका कवि-हृदय कमनीय कल्पनाओं के क्षेत्र में स्वतंत्र विचरण करने लगा, एवं आपके काव्य-कौशल की चर्चा चारों ओर छिड़ गई।

अनुभवज्ञान

बुँदेलखंड में रहकर 'दीन'जी को प्रांतीय भाषाओं की जानकारी का अच्छा अवसर मिला। दूसरे, आप अव्वल दरजे के अनुभवी पुरुष थे। वहाँ रहते हुए नित्य संध्या समय आप कभी

पर्वतशृंगों पर, कभी किसी नदी या सरोवर के तट पर, कभी जंगलों में एवं कभी प्रसिद्ध गठौरा की प्रशस्त युद्ध-भूमि में टहलने निकल जाया करते थे। छुट्टियों के दिन तो आप प्रायः दिन-भर का सफ़र लगाया करते थे। आपकी यह प्रकृति-पर्यवेक्षण एवं तत्संबंधी ज्ञान की लिप्सा जीवन में कभी कम न पाई गई। यहाँ तक कि बुँदेलखंड में एक बार आपकी इच्छा शेर की माँद देखने की हुई। फलस्वरूप आप अपने एक मित्र के साथ पहाड़ की ओर निकल पड़े। ऊपर जाकर, एक घने जंगल में, आपको एक माँद दिखाई दी और ज्यों ही आप झुककर माँद में झाँकने लगे, आपको भीतर चमकती हुई आँखें दिखाई दीं, साथ ही गुर्राहट का कुछ शब्द भी सुन पड़ा। अब आप लोग वहाँ से खिसक आए। दूसरी बार, एक समय आप घूमते हुए किसी सघन वन में निकल गए और वहाँ एक पर्वत-शिला पर बैठ तुलसीकृत 'विनय-पत्रिका' के पद, जिन्हें आप सदा गाया करते थे, गाने लगे। इतने में आप क्या देखते हैं कि सामने से एक अजगर आ रहा है, जो शिला से थोड़े फ़ासले तक आकर ठमक गया। 'दीन'जी उस पद को निर्भयता के साथ गाते ही रहे। अजगर भी बड़े ध्यान से उसे सुन रहा था। पद समाप्त होने पर आपने उत्कंठा के साथ पूछा—"क्या और पद सुनाऊँ?" इस पर अजगर ने स्वीकृति में सिर हिलाया और 'दीन'जी ने और भी दो-एक पद गाकर सुनाए। जब अजगर चलने लगा, तो दीन' जी ने फिर पूछा—"क्या कल भी आकर कुछ पद सुना जाऊँ?" इस पर भी अजगर ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी। 'दीन'जी बराबर सात दिनों तक संध्या समय वहाँ जा-जाकर विनय-पत्रिका के पद गाया करते, जिसे सुन अजगर नित्य आकर उन्हें सुना करता। अंतिम दिन पुनः आने के लिये पूछने पर अजगर ने सिर हिलाकर निषेध किया और फिर 'दीनजी' ने भी वहाँ जाना बंद कर दिया। किंतु इस घटना ने 'दीन'जी को आश्चर्यान्वित अवश्य कर रक्खा था। अतः उन्होंने वहाँ के एक पहुँचे हुए साधु से पूछा, जिस पर उन्होंने बताया कि अजगर के वेष में लक्ष्मणजी आते थे; क्योंकि उस वन में उनका निवास-स्थान है। इसे सुन 'दीन'जी पुनः कई बार वहाँ गए, किंतु अब उस अजगर के दर्शन कहाँ? कहने का तात्पर्य इतना ही कि 'दीन'जी स्वभाव से ही निर्भय प्रकृति-पर्यवे अनुभवी पुरुष थे, जिसके कारण आपकी कविताएँ सजीव हुआ करती थीं। कहना न होगा कि इस के प्राकृतिक तथ्यों के समावेश द्वारा कविता में चोज़ आ जाया करता है, उसे सहृदय व्यक्ति ही सकते हैं! यही कारण है कि आज दिन भी आदि-वाल्मीकि तथा कवि-कुलगुरु कालिदास का काव्य-जगत् में ऊँचा पाया जाता है। 'दीन'जी कविता-संबंधी ये बातें, साहित्य-प्रेमियों के समक्ष भविष्य में ही उनकी कविताओं का संग्रह हो जाने दिखाई जा सकेंगी, ऐसी हमें आशा है। यहाँ पर बात यह और भी ध्यान देने योग्य है कि 'दीन'जी कुछ दिनों से एक महाकाव्य 'मित्रादर्श' लिख रहे थे, लिये बहुत-सा प्राकृतिक मसाला संग्रह करने के आपको गत वर्ष सुदामापुरी, द्वारकाजी आदि स्था जाना पड़ा था।

काव्योत्थान-काल एवं साहित्य-सेवा का आरंभ

जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, 'दीन'जी छत्रपु सन् १८९४ से १९०७ तक— वर्ष—रहे। इतने दिनों के आपने हिंदी के प्राचीन काव्य ख़ासा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। ही आप अरबी, फ़ारसी की बहुत उच्च शिक्षा पहले प्राप्त कर चुके थे। अतः आपकी खड़ीबोली की कवि में इन दोनों के गंगा-जमुनी सम्मिश्रण ने उस सम विकासोन्मुख खड़ीबोली के पद्य-क्षेत्र में युगांतर-सा कर दिया था, जिसके लिये हिंदी-काव्य-जगत् को 'दीन का चिरऋणी रहना पड़ेगा। इसके प्रमाण में आपका बहुत बड़ा वीररसात्मक ग्रंथ "वीर-पंचरत्न" उप किया जा सकता है, जिसे आपने बाद को काशी में लिखा था। उधर छत्रपुर में उन दिनों काव्यांगों का अ करने के पश्चात् आपने 'शृंगार-शतक', 'शृंगार-वि तथा 'तुलसी-सतसई' के दोहों पर कुंडलियाँ की की थी और हिंदी-साहित्य के प्रचारार्थ 'कवि-स और 'काव्य-लता'-नामक दो सभाएँ एवं 'भारती-भ नामक एक पुस्तकालय भी खोल रक्खा था। ' लता'-नाम्नी सभा के सदस्यगण कविताएँ बना करते थे, जिन्हें उनके गुरु श्रीपं० गंगाधर शुद्ध किया करते थे। इस समय 'दीन'जी

कविताओं के अतिरिक्त बड़े चुटीले फाग भी लिखे हैं, जिनका बहुत बड़ा संग्रह आपके घर में मौज़ूद है। आपके फागों का सम्मान वहाँ के राज-घराने में विशेष रूप से था और होली के दिनों में वे गाए जाते थे। उस समय आपकी फुटकल कविताएँ तथा लेख 'रसिकमित्र', 'रसिक-वाटिका', 'लक्ष्मी-उपदेश-लहरी' आदि स-सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में बराबर छपा करते थे। सन् १९०५ ई० में 'दीन'जी को गया से निकलनेवाली मासिक पत्रिका 'लक्ष्मी' का संपादन-कार्य भी मिला, जिसे आपने बड़ी योग्यता के साथ बहुत दिनों तक निकाला।

विस्तृत साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश

अब 'दीन'जी का मन छत्रपुर से उचटा। कारण, आप एक विस्तृत साहित्य-क्षेत्र में आकर काम करना चाहते थे। इसके लिये आपने काशी को उपयुक्त स्थान समझा और उन्होंने अपने दो काशीस्थ मित्रों को इसके लिये पत्र भी लिखे। इन मित्रों ने 'दीन'जी की योग्यता की चर्चा श्रीबाबू श्यामसुंदरदासजी से की। उन्हीं दिनों बाबू साहब को संयोगवश छत्रपुर की ओर जाना भी पड़ा और वह 'दीन'जी से वहीं मिलकर, उनकी योग्यता देख उन्हें काशी बुला लाए। इस समय आपको काशी में दो काम करने को मिले। एक तो आप हिंदू-स्कूल में पर्शियन के अध्यापक नियुक्त हुए, दूसरे नागरी-प्रचारिणी सभा से निकलनेवाले प्राचीन कवियों के ग्रंथों का संपादन इन्हें सौंपा गया, जिसे आपने बड़ी उत्तमता के साथ किया। उसी के फल-स्वरूप प्राचीन कवियों के कितने हो अमुद्रित पड़े हुए दुर्बोध ग्रंथ-रत्न प्रकाशित हो साहित्य-संसार की शोभा अद्यावधि बढ़ा रहे हैं। इनमें 'हिम्मतबहादुर-विरदावली', 'सुजानचरित', 'राजविलास' आदि ग्रंथों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। 'लक्ष्मी'-पत्रिका का संपादन तो आप पहले से ही कर रहे थे। जिस समय आप नागरी-प्रचारिणी-सभा में कार्य कर रहे थे, उसी समय 'हिंदी-शब्द-सागर' के नाम से हिंदी का एक बहुत बड़ा कोश निकालने का सभा ने निश्चय किया। लालाजी उसके पाँच उप-संपादकों में से एक उप-संपादक बनाए गए और आपने बड़े अध्यवसायपूर्वक 'म' तक उसका संपादन भी किया। बाद को अपनी स्पष्टवादिता के कारण आपको सन् १९१८ के लगभग सभा से हट जाना पड़ा, और वहाँ से छूटते ही आप हिंदू-विश्व-विद्यालय में हिंदी के लेक्चरार नियुक्त हो गए।

व्यापक साहित्य-सेवाएँ एवं आलोचना-क्षेत्र

'दीनजी' पुराने कँडे के परम अध्यवसायी पुरुष थे। आपको जीवन में काम करते रहने की जितनी अधिक धुन रहा करती थी, उसकी चौथाई फ़िक्र भी नाम पैदा करने की नहीं रहा करती थी। इसी अध्यवसाय के कारण 'दीन'जी एक ओर तो नागरी-प्रचारिणी सभा में रहकर प्राचीन कवियों के अनेकानेक ग्रंथों का संपादन कर रहे थे, दूसरी ओर घर पर भी 'वीर-पंचरत्न'-सरीखे लोकप्रिय ग्रंथ की रचना, 'बिहारी-बोधिनी', 'कवितावली' आदि ग्रंथ-रत्नों की प्रामाणिक टीकाएँ तथा 'सूक्ति-सरोवर', 'अलंकार-मंजूषा' आदि अति प्रचलित ग्रंथों का निर्माण करते जाते थे। काशी आने के बाद आपका यह नियम-सा हो गया था कि वह प्रतिवर्ष एक नई पुस्तक निकाला करते थे। इसके अतिरिक्त समय-समय पर समालोचना-क्षेत्र के परिष्कार एवं हिंदी-साहित्य के प्रचार के लिये निरंतर विद्यादान की ओर भी आपका ध्यान बराबर बना ही रहता था। आपके कई आलोचनात्मक लेख 'बिहारी और देव' के नाम से कई पत्र-पत्रिकाओं में बड़ी शान के साथ निकल चुके हैं, जिनमें आपने हिंदी-साहित्य-संसार में कविवर बिहारी को कविवर देव से ऊँचा आसन दिलाया है। दूसरी ओर लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् श्रीपं० कृष्णविहारी मिश्रजी ने 'देव और बिहारी'-शीर्षक एक आलोचनात्मक निबंध लिखा था, जो पुस्तकाकार भी प्रकाशित हो चुका है।

हिंदी-साहित्य-विद्यालय की स्थापना

जिस समय 'दीन'जी सभा में काम कर रहे थे, उसी समय सन् १९१५ के लगभग हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की स्थापना हुई और उसकी परीक्षाओं का प्रचार-कार्य प्रारंभ हुआ। ऐसी दशा में काशी के कुछ छात्रों में इन परीक्षाओं की ओर विशेष अभिरुचि का होना स्वाभाविक था। फलस्वरूप उन्होंने सम्मेलन की परीक्षाएँ देने का दृढ़ संकल्प कर पारी-पारी से सभी स्थानीय विद्वानों के दरवाज़े खटखटाए, पर सभी के पास समयाभाव ही रहा। अंत में यह उत्सुक विद्यार्थीवृंद 'भगवान' के दरवाज़े पहुँचा। सर्वत्र से निराश इन विद्यार्थियों की दीनावस्था को 'दीन'जी तुरंत समझ गए और पढ़ाने की सहर्ष स्वीकृति दी

नहीं दी, वरन् दूसरे ही दिन से अपने घर में ही पढ़ाना भी आरंभ कर दिया। जब विद्यार्थियों की संख्या अधिक बढ़ी, तब घर में स्थानाभव के कारण 'दीन'जी उन्हें स्थानीय कंपनीबाग़ की हरी-हरी घास पर पढ़ाने लगे। किंतु बरसात के दिनों में पानी के कारण कठिनाई होने लगी। अतः ये लोग नागरी-प्रचारिणी सभा के बरामदे में एकत्र होने लगे। पर इनकी इस प्रकार की अद्भुत लगन से न-जाने क्यों सभा के संचालकों को भय हुआ। फल-स्वरूप सभा की हद के भीतर पढ़ाई ग़ैरक़ानूनी क़रार दी गई। अंत में यह बैठक 'हिंदी-साहित्य-विद्यालय' के रूप में परिणत होकर सनातन-धर्म-स्कूल और दयानंद-स्कूल के पुराने भवनों से होती हुई मालती-शारदा-सदन-पुस्तकालय, चौक में आ गई है। कहना न होगा कि यह विद्यालय अब बहुत प्रौढ़ावस्था को पहुँच चुका है और इसके संचालकों ने 'दीन'जी की स्मृति को सदैव बनाए रखने के लिये इसका नाम "भगवान 'दीन'-साहित्य-विद्यालय" कर दिया है। इस विद्यालय द्वारा कितने ही छात्र अब तक हिंदी-साहित्य की उच्च शिक्षा प्राप्त कर हिंदी-संसार में बहुत कुछ काम कर रहे हैं और भविष्य में भी इससे बहुत कुछ उपकार होने की आशा है। इस विद्यालय के संबंध में विशेष गौरव की बात यह है कि 'दीन'जी का यह एक-मात्र कीर्ति-स्तंभ आरंभ से ही हीन आर्थिक दशा में होते हुए भी, लालाजी की अपूर्व लगन एवं अध्यवसाय के कारण हिंदी-साहित्य-संसार में बड़ी शान के साथ काम करता आया है। इसमें पढ़कर कितने ही छात्र 'साहित्य-रत्न' तथा 'विशारद' हो चुके हैं। अब तक सम्मेलन की 'साहित्य-रत्न' उपाधि-परीक्षा को प्रथम श्रेणी में पास करने का गौरव यदि किसी को प्राप्त हुआ है, तो इसी विद्यालय के एक छात्र को हुआ है। विशारद-उपाधि-परीक्षा में तो इसके छात्र कितनी ही बार सर्वप्रथम तथा द्वितीय आए हैं एवं किसी समय इसका नतीजा शतप्रतिशत तक हुआ है।

प्रकृति एवं काव्य-कौशल

हिंदू-विश्वविद्यालय में लेक्चरार हो जाने पर 'दीन'जी, पहले से ही संबंध-विच्छेद पर भी, यदा-कदा नागरी-प्रचारिणी सभा के कार्यकर्ताओं के आग्रहवश प्राचीन काव्य के संपादन का कार्य कर दिया करते थे। जिस समय सभा ने 'तुलसी-ग्रंथावली' के संपादन निश्चय किया, लालाजी से इस कार्य में सहयोग- देने की प्रार्थना की गई। उस समय लालाजी गोस्वामी तुलसीदासजी के प्रति अपनी प्रगाढ़ श्र भक्ति का परिचय देते हुए इस कार्य को बिना कि पुरस्कार के करने की उदारता दिखाई थी। लालाजी प्रकृति के संबंध में विशेष महत्त्व की एक बात यह कि वह यद्यपि समय की गति को भली भाँति समझ बूझते थे, तथापि पुस्तक-प्रकाशन के समय उन भूमिका के विस्ताररूपी आडंबर के बाज़ारूपन उन्हें बहुत चिढ़ थी। यही कारण था कि पहले ब दिनों तक आप बराबर ग्रंथों की भूमिकाओं में उत ही बातें दिखाया करते थे, जितनी विशेष महत्त्व हुआ करती थीं। हाँ, इधर आकर आपके दो- ग्रंथों में जो भूमिका-विस्तार पाया जाता है, वह कुछ प्रिय शिष्यों के आग्रहवश आपको करना पड़ा है यही कारण है कि बिहारी और केशव-सरीखे म कवियों के ग्रंथ-रत्नों की अत्यंत प्रामाणिक एवं सु टीकाएँ करने का महान् श्रम उठाते हुए भी, आ इनकी भूमिका के विस्तार से हाथ खींचना पड़ा 'कठिन काव्य के प्रेत' आचार्य केशव की कविता संबंध में यह कहावत मशहूर थी—"कवि को दे चहै बिदाई, पूँछै केशव की कबिताई"—सो लालाजी ज़बरदस्त क़लम की करामात के आगे वह कितनी सु हो गई, इसका पूरा परिचय उसके अध्येताओं को भ भाँति प्राप्त हो चुका होगा। लालाजी का ब्रज, बुं खंडी तथा अवधी भाषाओं पर इतना अधिक अधि था कि आपको जिस किसी कठिन-से-कठिन छंद का अर्थ लगाते देर नहीं लगा करती थी। आपके इस का पता बहुतों को लग चुका था और कितने ही बहुधा नए-नए छंदों को लेकर उनका अर्थ लगवाने पास आया करते थे। इतना ही नहीं, आपने अपने हि साहित्य-विद्यालय में इसके लिये एक कठिनाई-नि सभा ही खोल रक्खी थी, जिससे बाहरवाले भी लाभ उठाया करते थे।

सादगी एवं मिलनसारी

लालाजी आजीवन सादगी की प्रतिमूर्ति तथा मि सारी के सच्चे उपासक थे। अतिरिक्त भी आपमें जो अनेक हारिक सद्गुण पाए जाते थे,

स्पष्टवादिता एवं विनोदशीलता के गुण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'दीन'जी को गर्मी की छुट्टियों में अपने गाँव बरवट में मोटी धोती की कछनी काछे, कंधे पर एक अँगोछा तथा हाथों में सोंटा-खुरपी लिए बाग़ को जाते हुए जिस किसी ने देखा होगा, उससे देश की प्राचीन सादगी का अद्भुत रहस्य किसी प्रकार भी छिपा हुआ न रह गया होगा। आप बाल्यावस्था में प्रकृति के कुछ चंचल भी थे। वह अन्य बालकों के साथ नित्य प्रातःकाल बाग़ में जाते और चरने को जाती हुई भेड़ों के झुंड में से किसी पिछड़ी हुई भेड़ को पकड़ ये लोग उसे एक गड्ढे में लिटा देते और उसकी गर्दन पर जूता रख दिया करते थे, जिससे वह चुपचाप पड़ी रह जाती थी। कुछ देर बाद चरवाहों को दूर निकल गया देख ये उस भेड़ को उठाकर छोड़ देते और जब वह 'में-में' करती पीछे-पीछे दौड़ती, तो चरवाहे भेड़ को पीछे छूटी हुई समझ घबड़ा-से जाते। पेड़ों पर चढ़कर कूदना, निकटवर्ती नदी-तालाबों में जाकर तैरना आदि तो आपके नित्य के कार्य थे। आप अपनी मिलनसारी के गुण के कारण आजीवन सबके प्रिय थे। क्या शिक्षा-जीवन, क्या साहित्य-क्षेत्र और क्या अध्यापक-जीवन—सदैव आप अपने इस गुण के कारण अपने सहपाठी, मित्र, छात्र तथा सहाध्यापकों के प्रिय रहे। यहाँ तक कि कभी-कभी आपके मित्रों द्वारा जान-बूझकर भी किए गए आपकी विद्वत्ता की आज़माइश के प्रश्नों का उत्तर आप, इसे जानते हुए भी, बड़े प्रेम से दिया करते थे और जब कभी मौक़ा आ जाता, तो आप हाज़िर जवाबी से भी नहीं चूकते थे। हिंदू-विश्व-विद्यालय तथा हिंदी-साहित्य-विद्यालय में पढ़ाने का आपका ढंग भी अनोखा ही था। आप जिस कक्षा में पढ़ाने को जाते, सबसे पूर्व छात्रों को ख़ूब हँसाकर पढ़ाना आरंभ करते। आपका कहना था कि हँसने से मस्तिष्क में विकास एवं प्रफुल्लता आती है, जिससे विद्यार्थी आसानी के साथ अपने पाठ से अभ्यस्त हो सकते हैं। कहा जाता है कि आपके अध्यापन-संबंधी उत्कर्ष को, संभवतः सहन न कर सकने के कारण किसी ने एक बार इसकी शिकायत आपकी कक्षा में शोर अधिक होने के ब्याज से मालवीयजी तक पहुँचाई थी। लालाजी के पास जिस समय भी जो आदमी आता, उससे—कहो कैसे चले?—यह विना पूछे आप न रहते और उसकी बातों को बड़े प्रेम के साथ सुन अपनी सामर्थ्य-भर उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते। आप स्पष्टवादी तो इतने अधिक थे कि अपने समय को व्यर्थ नष्ट होता देख, अपने बड़े-से-बड़े प्रेमी तक से "अच्छा, अब आप जाइए, मुझे काम करना है।"—यह कहते तनिक भी नहीं सकुचाते थे। उन लोगों से लालाजी की सदा चिढ़ रहा करती थी, जो नाम के पीछे सदा दीवाने से फिरा करते हैं, आपका यह अटल सिद्धांत था कि काम करो, नाम स्वयं पीछे-पीछे दौड़ा फिरेगा। अपनी स्पष्टवादिता के ही कारण आपको अगर-मगर के कँटीले रास्ते से सदा झिझक थी और कभी-कभी तो काम आ पड़ने पर इस प्रकार की बातें करनेवालों से बेहद चिढ़ भी जाया करते थे। दीनदयालु वह परले दर्जे के थे। कितने ही विद्यार्थी उनसे रुपए और पुस्तकें बातें बनाकर हो झटक ले जाते। अपनी विनोदशील प्रकृति के कारण आप अपने मित्रों एवं छात्रों के सम्मुख सदा हँसते हुए ही पाए जाते थे। यहाँ तक कि आपने अपने अनेक मित्रों के विभिन्न विनोदात्मक नाम 'मुग्धा नायिका', 'परकीया नायिका' आदि रख छोड़े थे। कहने का तात्पर्य इतना ही कि 'दीन'जी में जितनी अधिक सादगी थी, उतनी ही मिलनसारी भी थी और जितनी अधिक स्पष्टवादिता थी, उतनी ही विनोदशीलता भी पाई जाती थी।

व्यापकता

'दीन'जी की विद्वत्ता सर्वतोमुखी थी। आप सुकवि थे, समालोचक थे, लेखक थे, अनुवादक थे, टीकाकार थे और थे कुशल संपादक। 'दीन'जी ने समय-समय पर बहुत-सी कविताएँ की हैं, किंतु खेद है कि अभी तक आपके 'वीर-पंचरत्न' और 'नवीन बीन'-नामक दो ही ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। आपने कविता के लिये उर्दू की बहरों के ढंग पर एक नया छंद ही निकाल रक्खा था। इसके अतिरिक्त आपने पद तथा अन्य प्रचलित छंद भी कहे हैं। आप कविता करते समय रसों के अनुकूल छंद का प्रयोग करना अत्यावश्यक समझते थे। समस्यापूर्ति में आप इतने अधिक पटु थे कि कवि-सम्मेलनों में जाकर विना अपना हाथ दिखाए नहीं आते थे। आपकी कविताएँ बहुधा राष्ट्रीय भावों से ओत-प्रोत और शिक्षाप्रद हुआ करती थीं। इधर आपको कुछ ऐसी धुन-

सी बँध गई थी कि प्रायः कुल पूर्तियाँ आप श्रीराम-जानकी के संबंध की ही किया करते थे, जिससे आपकी अनन्य रामभक्ति का पता मिलता है। आपने 'मित्रादर्श'-नामक महाकाव्य तथा 'महाराष्ट्र देश की वीरांगनाएँ''-नामक खंडकाव्य भी लिखना आरंभ किया था, किंतु इनके थोड़े-से अंश ही लिखे जा सके। समालोचना-क्षेत्र में तो आपके उस्तादी के हाथ इतनी सफ़ाई से पड़ते थे कि पाठकों के सम्मुख आलोच्य कवि के वास्तविक गुण-दोषों का चित्र-सा खिंच जाया करता था। किंतु कभी-कभी आप इसमें अपनी स्पष्टवादिता का इतना अधिक समावेश कर दिया करते थे कि आधुनिक युग के कुछ लोगों को वह खटकती हुई-सी मालूम पड़ा करती थी। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि समस्त काव्यांगों के ज्ञाता एवं प्रकृति के परम पुजारी होने के कारण आप समालोचना-क्षेत्र में आलोच्य कविता की तह तक की बारीकियों को सहज ही दिखा सकने में सदा समर्थ पाए जाते थे। कहना न होगा कि हिंदी-साहित्य में पिछले दिनों के संकुचित समालोचना-क्षेत्र के प्रसार का बहुत कुछ श्रेय 'दीन'जी को प्राप्त है। 'दीन'जी की लेखन-शैली एक विचित्र ढंग की थी। आपकी भाषा, साधारण बोल-चाल की उर्दू-मिश्रित बामुहावरा हुआ करती थी। मँजी हुई भाषा में चुस्त मज़मून बाँधना आपको सदा पसंद था। फलस्वरूप आवश्यकता से अधिक लेख-विस्तार को आप नापसंद करते थे। 'दीन'जी का अनुवाद भी विद्वत्तापूर्ण हुआ करता था। अनुवाद करते समय मूल-लेखक के भावों के विलुप्त न होने का आप सदा ध्यान रखते थे। संपादन-कला और टीकाकारी में तो 'दीन'जी इतने अधिक सिद्धहस्त थे कि हिंदी-साहित्य के कितने ही दुर्बोध प्राचीन ग्रंथों को, जिन्हें क्लिष्टता के कारण बहुत कम लोगों को पढ़ने का साहस होता था, सर्वसाधारण के लिये सुबोध बना दिया। किसी ग्रंथ का संपादन करते समय उसमें पाठांतर कर देना आपको रुचिकर न था, इसलिये बहुधा आप ऐसे अस्पष्टार्थ स्थलों के लिये मूल-पाठ से मिलता-जुलता कोई साभिप्राय पद ही ढूँढ़ निकाला करते थे; क्योंकि पाठांतर देकर प्रस्तुत विषय को घपले में रख छोड़ना आप संपादकों की कमज़ोरी समझते थे। 'दीन'जी ने इस क्षेत्र में इतना अधिक काम किया है कि उसके कारण कुछ लोगों को आपके कोरे संपादक तथा टीकाकार होने का भ्रम-सा हो गया है। किंतु ऊपर दिखाई गई आपकी साहित्य-क्षेत्र की व्यापकता को देखते हुए यह उन लोगों का भ्रम ही कहा जायगा। यह बात दूसरी है कि इस क्षेत्र में आप इतने अधिक सिद्धहस्त हो गए थे कि अपना सानी नहीं रखते थे। आपकी टीकाएँ बड़ी विशद हुआ करती थीं। इसका कारण आपका अगाध ज्ञान-बल ही था।

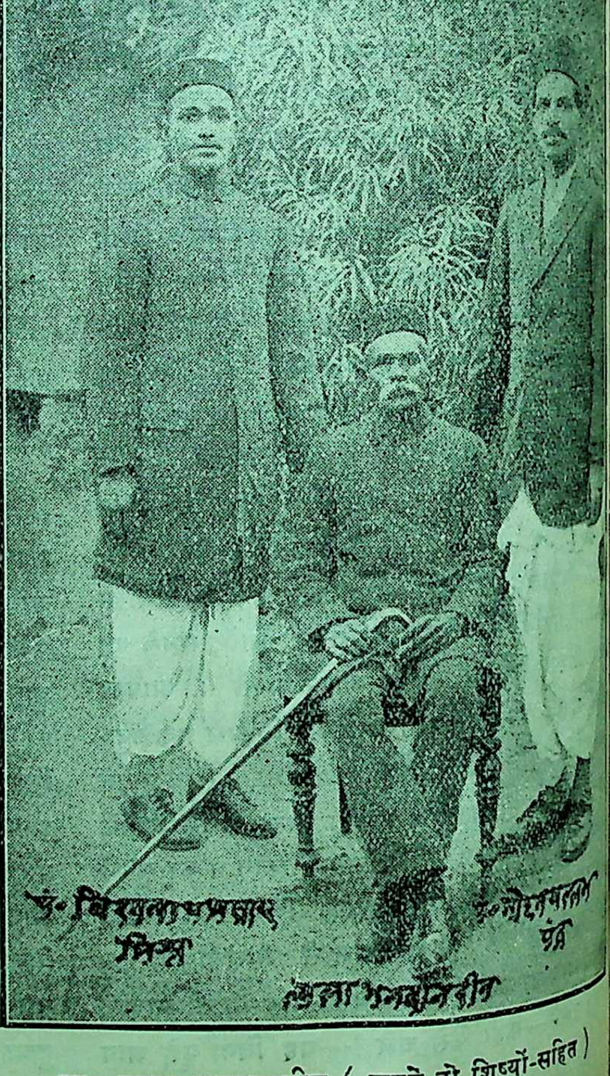

स्व० लाला भगवानदीन (अपने दो शिष्यों-सहित)

आपकी साहित्यिक जानकारी इतनी बढ़ी-चढ़ी हुई थी कि किसी कविता का अर्थ करते समय कवि के मर्म को टटोलते आपको देर ही न लगती थी। इसके अतिरिक्त साहित्य के गौण अंगों—ज्योतिष, वैद्यक, तंत्रशास्त्र आदि—में भी आपका ख़ासा प्रवेश था। आपने अलंकार पर 'अलंकार-मंजूषा' तथा व्यंग्य पर 'व्यंग्यार्थ-मंजूषा' नामक रीति-ग्रंथ भी लिखे हैं। 'दीन'जी की अध्यापन-शैली इतनी मनोहर थी कि घंटों पढ़ने के बाद भी विद्यार्थियों का मन पढ़ने से नहीं उचटता था। आपके पढ़ाए हुए कितने ही छात्र कवि, लेखक, संपादक आदि होकर हिंदी-साहित्य-संसार में बहुत कुछ काम कर रहे हैं। आपके छात्रों में मुख्य ये हैं—राय गोविंदचंद्र बी० ए० विशारद, श्रीपं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र 'मुकुंद' साहित्यरत्न, श्रीपं० रामचंद्र शर्मा 'साहित्य-रत्न', श्रीपं० श्रीदेवाचार्य 'देव' साहित्यरत्न, श्रीबाबू कृष्णदेवप्रसाद गौड़ एम्० ए० एल्० टी० विशारद, श्रीपं० बेचन शर्मा 'उग्र', श्रीपं० मोहनवल्लभ पंत बी० ए० विशारद, श्रीपं० रमाकांत चौबे विशारद, श्रीबाबू कालिकाप्रसाद विशारद (सहकारी संपादक 'आज'), श्रीपं० रामप्रसाद पांडेय विशारद, श्रीपं० जगन्नाथप्रसाद शर्मा 'रसिकेश' एम्० ए०, श्रीबाबू बजरंगबली गुप्त विशारद, श्रीपं० श्रीकृष्ण शुक्ल विशारद आदि।

कुटुंब

लालाजी अपने माता-पिता की एकमात्र संतान थे। आपकी तीन शादियाँ हुई थीं और उनसे कई संतानें भी हुईं, किंतु सभी काल-कवलित हो गईं। आपकी दूसरी शादी प्रसिद्ध कवियित्री श्रीमती बुँदेलाबाला के साथ हुई थी। आपने स्वयं इन्हें पढ़ा-लिखाकर सुशिक्षित एवं कवियित्री बनाया था। आजकल आपकी विधवा पत्नी 'बाला'जी की छोटी बहन हैं। लालाजी अपने बाद अपनी विधवा स्त्री, पुस्तकें, हिंदी-साहित्य-विद्यालय (अब भगवान 'दीन'-साहित्य-विद्यालय) तथा शिष्य छोड़ गए हैं। सुना जाता है कि स्थानीय नागरी-प्रचारिणी सभा लालाजी के स्मारकस्वरूप उनका चित्रोद्घाटन करनेवाली है।

समादृत ग्रंथ तथा पुरस्कृत लेख एवं कविताएँ

'दीन'जी ने यों तो अनेक ग्रंथों का संपादन, प्रणयन, टीका-टिप्पणी, अनुवाद आदि किए हैं, किंतु आपके 'वीर-पंचरत्न' का समादर हिंदी-संसार में विशेष रूप से है। यहाँ तक कि मध्यप्रदेश में यह पुस्तक घर-घर पाई जाती है और इसके अध्याय-के-अध्याय लोगों को याद हैं, जिन्हें वे गीति-काव्य की भाँति गाया करते हैं। आपकी 'अलंकार-मंजूषा' ने साहित्य-संसार में विशेष ख्याति पाई है। 'भक्ति-भवानी'-नामक कविता लिखने पर कलकत्ते की बड़ाबाज़ार-लाइब्रेरी से आपको एक स्वर्ण-पदक मिला था। 'रूस पर जापान क्यों विजयी हुआ?'-शीर्षक निबंध के लिये एक बार आप एक सौ रुपए के पुरस्कार से पुरस्कृत किए गए थे। आपने कई एक प्राचीन कवियों की प्रामाणिक जीवनियाँ भी लिखी हैं।

रुग्णावस्था के कुछ संस्मरण

माया-नटी के आदेश से विकराल काल के छाया-रूप परदे के भीतर कविवर 'दीन'जी के जीवन-नाटक का अंतिम दृश्य, लगभग चौंसठ वर्ष की अवस्था में ही, बड़ी तेज़ी के साथ तैयार किया जा चुका था। इसके आरंभ का समय ता० ६ जुलाई सन् १९३० ई० का मध्याह्नोत्तर-काल नियत था, जब कि 'दीन'जी अपनी गर्मी की छुट्टियाँ बरवट गाँव (फ़तेहपुर) में ही बिता, कालेज खुलने का समय सन्निकट देख, अपने काशीस्थ मित्रों एवं छात्रों के सम्मिलन-रूपी विविध मनोरथों के रथ पर सवार हो घर से निकल पड़े। रेल पर सवार होते-होते आपको बड़े ज़ोरों का ज्वर चढ़ा और ज्यों-त्यों रात में आप काशी पहुँचे। सबेरा होते ही आपके बाएँ अंग में, काँख के नीचे, कुछ लाल सूजन देख पड़ी, जो दिनोंदिन बढ़ती जाती थी और उसकी असह्य वेदना ने आपको व्याकुल कर रक्खा था। यहाँ आने पर सभी साध्य उपाय किए गए, किंतु ज्वर में अंतर पड़ने पर भी सूजन में किसी प्रकार की कमी न हुई। अनंतर ता० १९ जुलाई को स्थानीय किंग एडवर्ड अस्पताल के इन्चार्ज डाक्टर एल्० एन्० राय बुलाए गए और उन्होंने सूजन के रोग का निदान "इरिपलास" (जहरबात) के नाम से किया। डाक्टर से यह भी पता चला कि 'दीन'जी के उसी बाएँ कंधे पर जो एक बड़ा मसा था, उसकी निवृत्ति के लिये लालाजी द्वारा उस पर आम के टूँसे का रस

लगाए जाने पर, उसके फट जाने से उसका विष उनके अंग में फैल गया है ! साथ ही, डाक्टर की राय उन्हें अस्पताल ले चलने की हुई, और 'दीन'जी ता० १९ को अस्पताल पहुँचाए गए। कौन जानता था कि 'दीन'जी आजीवन अपने कंधे पर काल को ढोए फिरते हैं। इतने पर भी काल को तरस न आई ! न आई !

अस्पताल का जीवन सर्वथा दुःखकर होते हुए भी अपने प्रिय विद्यालय के छात्र-मंडल के बीच 'दीन'जी सदा प्रफुल्लित ही पाए जाते थे। यौवनकाल में हृदय में सवेग बहनेवाली रसिकता का वह प्रवाह यद्यपि कुछ मंद पड़ गया था, तथापि उसका प्रवाह निरंतर जारी था और उनके प्रकृति-पर्यवेक्षण की पूर्वाभिलाषा, बहुत अधिक अशक्त होते हुए भी, ज्यों-की-त्यों पाई जाती थी। अस्पताल पहुँचते ही वहाँ अचानक कोयल कुहुक पड़ी। इसे सुन 'दीन'जी-सरीखा रसिक एवं प्रकृति-पर्यवेक्षी पुरुष भला रोग-शय्या पर कैसे लेटा रह सकता था ! वह कहने पर तुरंत उठाकर बैठाए गए; किंतु उनका दूसरा अनुरोध उन्हें कोयल तक ले चलने का उस समय पूरा न किया जा सका। फलस्वरूप कुछ देर बाद, अपने को वहाँ अकेला पा वह स्वयं कोयल के शब्द की ओर चल पड़े। इतना ही नहीं, उन्हीं दिनों अस्पताल में ही अपने छात्रों का एक वर्षा-कवि-सम्मेलन करने के लिये आप परम उतावले देख पड़ते थे, जिसमें स्वयं भी अपनी कविताएँ सुनाने की अभिलाषा प्रकट करते थे। अस्पताल में २-३ दिन ही बीत पाए थे कि सूजन को बैठता हुआ देख सबके हृदयों में आशा की झलक कुछ दिनों के लिये आभासित हो उठी। इसी समय, एक दिन 'दीन'जी को कविवर 'देव' की यह सवैया याद आई—

"माखन सौं मन दूध सौं जोबन हैं दधि तैं अधिकै उर ईठी,
छैल रँगीलिका छाछिके आगे समेत सुधा बसुधा सब सीठी;
नैननि नेह चुवै कवि 'देव' बुझावत चैन वियोग अमीठी,
ऐसी रसीली अहीरी अहै कहु क्यों न लगै **मनमोहनै "मीठी"**

इसे वहाँ उपस्थित छात्रों को सुनाकर "मनमोहनै मीठी" शब्दों को लेकर आप 'देव' कवि की ज़बाँदानी पर बेहद झुँझला उठे और कहने लगे कि लालाजी तो शब्दों पर मरनेवाले हैं। जब दूध, दही, माखन आदि सब सामान अहीरिन के साथ ही मौजूद हैं, तो "मनमोहनै मीठी" कैसा ? इतने में आपके एक प्रिय शिष्य ने यह कहा कि गुरुजी, क्या यहाँ 'गोपालहिं' शब्द चाहि आप मुस्कराकर कहने लगे—'हाँ, यही मैं भी हूँ।' 'दीन'जी के इन शब्दों में ज़बाँदानी की गर्वोक्ति मौजूद थी, इसे कोई सहृदय व्यक्ति ही सकता है। हिंदी-साहित्य-क्षेत्र के इस महारथी ने जीवन में जिस व्रत का अवलंबन कर रक्खा था, वह आजीवन, मरते दम तक, पूरा प्रयासी पाया किंतु 'दीन'जी का वह प्रयास भ्रांत आधार पर स्थित न हुआ, बल्कि सदा सत्य आधार ही ढूँढ़ता

अस्तु, इसके दो-एक दिन बाद ही लोगों की की वह झलक दुराशारूप में परिणत हो गई। आपकी वह सूजन स्वयं तो बैठ गई, किंतु त्रिदोष- भयंकर रोग को उसने उत्पन्न कर दिया, दस्तों का तांता बर आठ दिनों तक बँधा रहा. रही-सही शक्ति भी जाती तथा आपके हृदय में तेज़ी के साथ उठी हुई श्वास कन ने सभी के दिलों को धड़का दिया। इतने पर 'दीन'जी का ज्ञान पूर्ववत् बना रहा, आपकी रसिकता सरस बिरवा मुरझाने न पाया और ज़बाँदानी का पस्त न हुआ। आशा की झलक ने दुबारा फिर खाया, किंतु अधिक दिनों तक वह न रह सकी। की वह बैठी हुई सूजन निर्मूल न हुई थी, जिससे पाते ही ता० २५ की शाम को दाहनी कनपटी पर कालरूप में आ डटी। प्रातःकाल, नित्य के नियमानु डाक्टर ने सुई लगाई। सुई देते समय नित्य की "सीताराम-सीताराम" की रट लगाते हुए आज झुँझलाकर कह बैठे—"यार ! तुमने तो बाँह छेद डाली, इतने छेद तो आशिक-माशूक भी करते हैं।" 'दीन'जी ने इस वाक्य से, इस अशक्तावस्था में भी, डाक्टर से कोमल शब्दों में की भिक्षा कैसे मार्मिक ढंग पर माँगी थी, इसे सहृदय व्यक्ति ही समझ सकता है ! धन्य ! साहित्य के आजीवन दीवाने 'दीन' और आपका कवि- जिसने मरते दम तक आपका साथ देते हुए की दारुण-से-दारुण यंत्रणाओं तक को भुला रक्खा इसी दिन आपने अपने एक छात्र से यह भी कहा मैं डाक्टरों की दवाओं से नहीं अच्छा होऊँगा। अच्छा कवि-सम्मेलन करो और मुझे बढ़िया भाँग छनाकर कविताएँ सुनाओ, तो मैं अच्छा हो

76325

स्वर्गवास

इसके अनंतर ता० २८ जुलाई, सन् १९३० ई० का वह दिन उपस्थित हुआ, जिसने हिंदी-संसार की कितनी ही आशाओं पर पानी फेर दिया, साहित्यिक क्षेत्र पर वज्रपात का कारण हुआ और कविता-कामिनी को अंत में विधवा बनाकर ही छोड़ा। अर्धरात्रि से ही कफ के प्राबल्य तथा कनपटी की सूजन के गलेपर्यंत भयानक रूप में प्रसार के कारण लालाजी की बेचैनी अधिक बढ़ गई। प्रातःकाल हुआ और—और उसके गर्भ में एक साहित्यिक के जोवन की अनित्यता का कुछ प्रत्यक्ष आसार लक्षित हो रहा था तथा विकराल काल की छाया उसमें प्रच्छन्न रूप से अंतर्हित थी। ऐसी दशा में लालाजी की अर्जित सुकृति-राशि ने ज़ोर पकड़ा और अपने अमर कीर्तिस्तंभ 'हिंदी-साहित्य-विद्यालय' के प्रति आपके प्रगाढ़ प्रेम में उफान आया। चट पालकी मँगाई गई और आप विद्यालय-भवन में लाए गए। यहाँ पहुँचते ही बग़ल के श्रीराधा-कृष्ण के मंदिर से विष्णु-चरणोदक आया, जिसे पानकर आपने बहुत कुछ सांत्वना प्राप्त की।

भगवान् के अत्यंत क्षीण हो जाने के कारण आज का दिन भी शीघ्र ही बीत चला। संध्या के रूप में विकराल काल की छाया प्रकट हो चली, जिसकी सहायता पा रोग-राहु ने आज रात में साहित्यिक संसार में अवश्य राहज़नी करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। संभवतः यही कारण था कि भगवान् दिनकर आज शीघ्र ही भाग निकले। संध्या हो चुकने पर बग़ल के ठाकुरद्वारा में आरती हुई और लालाजी को आरती दी गई। राहु बराबर अपनी ताक में लगा हुआ था, जिसके कारण अपने सहायक मित्र भगवान् का भावी अनिष्ट स्मरण कर हिमकर भी चिंतित देख पड़ता था। एक प्रहर रात बीतते-बीतते भय-विह्वल हिमकर ने अपनी ज्योति क्षीण कर दी, ताकि राहु को अंधकार में मार्ग ही दिखाई न दे सके। हुआ भी यही, भुवनभास्कर भगवान् तो पहले से ही भाग निकले थे, हिंदी-साहित्याकाश के भगवान् में उसे उनका भ्रम हुआ और उसने आ दबाया। 'दीन' जी के जीवन-नाटक का अंतिम भयावह कारुणिक दृश्य समाप्त हुआ, उनके नेत्रपटलों का अंतिम परदा पड़ गया, दर्शक चीख़ उठे और प्रकृति निस्तब्ध हो उठी।

देवाचार्य देव

पलंग के फूल

जिस पुरुष का वीर्य शीघ्र पात हो जाता है उसकी स्त्री को सुख प्राप्त नहीं होता है। इसकी एक गोली प्रसंग के समय से १ या १॥ घंटे पहले सेवन करने से यह दोष दूर हो जाता है और स्तंभन शक्ति बढ़ जाती है। क़ीमत एक शी० ३॥) रुपया

एम० यू० बंगाला ऐंड को०, आगरा।

प्रचार के लिये   च्यवनप्राश   आधा दाम

वीर्यविकार, धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, नं सकता, दमा, जीर्ण ज्वर, राजयक्ष्मा, फेफड़े और जिगर के रोगों पर रामबाण है। ४० तोले का मूल्य ४) रु०, १ सेर का ६) रु०, आधा दाम ४० तोला २) रु०, १ सेर का ३) रु०। डाकख़र्च पृथक्।

सत शिलाजीत

मूल्य ५ तो० ५) रु०, १० तो० ९) रु०, आधा दाम ५ तोला २॥) रु०, १० तोले का ४॥) रु०   ९९

पता—संजीवन कं०, नं० ३०, कनखल (यू०पी०)

कन्याओं को वज़रिये डाक सिखलाते हैं

दी इण्डियन टेलरिङ्ग कालेज

होशियारपुर (पंजाब)

११० लिबास सीखकर अपनी सूटिंग शाप खोल लें। याद रक्खो, धनी पुरुष धनी नहीं, हुनरमंद ही धनी है। २मास कटाई, २मास सिलाई, नियम आजही मँगवाओ।

९८   अद्वितीय पुस्तकें हिंदी-उर्दू

५ कोट १७२ प्रश्न, कपड़ा लगाने पर ४८ चित्र १) १२ कमीज़, २५८ प्रश्न ५९चित्र ॥) अद्वितीय छत्री॥) ८ पाजामें ॥)। फ्राक पिन्नीकोर ॥) दौलत दर्ज़ियाँ ५)

दीपक-दीप्ति

(१)

तेरी प्रशंसा क्या करें,
तू श्रेष्ठ और अनूप है;
हे दीप! इस संसार में
तू ब्रह्म का ही रूप है।

(२)

उपकार में तल्लीन हो,
नर नित्य पाते हैं तुझे;
तो भी न गाते गुण कभी,
पर वे जलाते हैं तुझे।

(३)

तू निज दशा को देखकर,
होना कभी मत शोक में;
है, क्योंकि मिलता सुख नहीं
उपकारियों को लोक में।

(४)

आश्चर्य है इस बात का,
तू स्नेह-युत होकर भला;
करता नहीं है स्नेह, पर
देता शलभ को है जला।

(५)

प्रेमी-निरादर कर महा,
जो लूटते असु-संपदा;
तेरी तरह वे भी जगत में,
हैं जला करते सदा।

(६)

नीचे हुआ तमयुक्त क्यों,
द्युतिमय बनाकर गेह को;
करता मुदित क्यों तू हमें,
अपनी जलाकर देह को।

(७)

खाकर तिमिर तू ज्योति को,
उत्पन्न कैसे कर रहा?
क्यों कालिमा से कांतिमय,
है गेह को तू भर रहा?

(८)

संभव यही, है उगलता,
तू भुक्ततम को इस तरह;
है भस्म रह सकती बता,
तेरे उदर में किस तरह?

(९)

है कामिनी-शृंगार में,
जो काम आता सर्वदा;
है लोचनों का हार जो,
या है, अलौकिक संपदा।

(१०)

है यामिनी जब जगत की,
तेरा दिवस होता तभी;
उस काल तू सो जायगा,
जब जाग जाते हैं सभी।

(११)

कर प्राप्त उच्चासन सदा,
सम्मान पा करके महा;
है प्राणियों को प्रेम से
उपदेश तू यह कर रहा।

(१२)

"मेरे सदृश ही जागती,
है ज्योति तुममें कांतिमय;
पर, दीप्ति मेरी भ्रांतिमय
है और वह सुख-शांतिमय।

(१३)

"मुझको जलाने से कभी,
उद्धार हो सकता नहीं;
मन का अँधेरा वंधुओ,
मुझसे मिटेगा क्या कहीं?"

(१४)

"उससे मिलाओ ज्योति को,
अपनी मिटाओ आपदा;
है जगमगाती ज्योति जो
सर्वत्र, सबमें, सर्वदा।"

कुमार प्रतापनाराय

कालिदास का मदन-दहन

(शेषांश)

किंतु कालिदास का पूरा कुमारसंभव तथा उनके अन्य ग्रंथ पढ़ने पर एक और बात भी मन में स्थान कर लेती है। कालिदास उस समय के कवि थे, जब भारतवर्ष में पौराणिक देवताओं का अस्तित्व विश्वसनीय था ; और जल के देवता वरुण, आग के देवता अग्नि, मृत्यु के देवता यम आदि की ही भाँति मनोविकारों के देवता और देवी काम और रति माने जाते थे। पौराणिक कथाओं के अनुसार मदन-दहनवाली इस प्रसिद्ध घटना के पूर्व 'काम' भी अन्य देवताओं की भाँति शरीरधारी था, और इसी घटना के बाद वह अशरीरी, अतनु, होकर संसार में रहने लगा।

मेरा विश्वास है कि कालिदास अपने काव्यों में हमारे सामने तत्कालीन भारत के उस विश्वास को लेकर ही आते हैं। यह बात और स्पष्ट हो जाती है, जब हम आगे देखते हैं कि मदन-दहन होने पर काम की स्त्री रति का विलाप एक पूरे सर्ग में कराया जाता है। वास्तव में देखा जाय, तो काम-विकार के नष्ट होने पर 'रति' नाम की किसी वस्तु या विकार का बाक़ी रह जाना और विलाप करना असंभव है। पर कालिदास काम के देव-स्वरूप को स्वीकार करते हैं और प्रत्येक देवता के साथ उसकी पत्नी का होना स्वाभाविक होने के कारण वे 'रति' को भी अपने काव्य से हटा नहीं सकते ! और इसी विश्वास के अनुसार वे इंद्र और काम का संवाद करा देते हैं। हमें भी कवि के इस विश्वास के होते हुए भी, उसके साथ उसी रस का उपभोग करते हुए चलने में कोई आपत्ति तब तक नहीं है, जब तक वह इस विश्वास के कारण किसी स्थान पर यह न भूल जाय कि काम वास्तव में एक विकार है। अर्थात् वह उसके शरीरी होने से कोई अनुचित लाभ न उठाए।

इस प्रकार कवि ने अपना क्षेत्र बहुत कोमल, बहुत नाज़ुक बना लिया है। देखें, वह कितना सफल होता है !

अब तक कथा के साथ-साथ हम शंकर के आश्रम के पहरेदार नंदी के प्रसंग तक आ चुके हैं ; और यहीं से यह कोमल क्षेत्र और कोमल होता जाता है, अतः आगे बढ़ने के पहले हमें इस प्रसंग पर भी कुछ विचार कर लेना चाहिए।

वसंत की सेना का आगमन, प्रकृति का उद्दीपक परिवर्तन देखकर शिव के गणों का नायक नंदी अन्य गणों को सावधान रहने का संकेत करता है। उसकी आज्ञा का तुरंत पालन होता है। गण ही नहीं—वे तो उसके अधीन थे ही—पर सारा कानन (शायद कानन का रूपक गणों के साथ बाँधा गया है !) उनकी आज्ञा मानता है, शांत हो जाता है। सारा लड़ाई का जोश ठंढा हो जाता है।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि यह नंदी कौन है ? क्या वास्तव में शंकर का कोई सेवक है ? पर यदि ऐसा है, तो उसने वसंत द्वारा परिचालित प्रकृति को किस तरह वश में किया ?

मेरी समझ में इसका बड़ा सुंदर अर्थ इस प्रकार होगा। शंकर समाधि-मग्न हैं। अपनी आत्मा का अवलोकन कर रहे हैं। उनकी सारी इंद्रियाँ इस समय अचेत हैं। उनकी देह, उनके बाह्य उपकरण, सब निर्जीवप्राय हैं। क्योंकि शंकर का ध्यान उधर नहीं ! शंकर की देह के इन बाह्य उपकरणों का ही रूपक शायद नन्दी के साथ बाँधा गया है। नंदी का यहाँ मुख्य कार्य यही होता है कि वह प्रकृति के उद्दीपन को रोक देता है। दूसरे शब्दों में—वसंत-जनित प्रकृति का उद्दीपन शंकर की देहस्थित भिन्न-भिन्न इंद्रियों के साथ टकराना चाहता है, उन्हें भी उद्दीप्त करना चाहता है। यदि वे इंद्रियाँ चेतन होतीं, तो अप्सराओं के गाने से शंकर के कान मुग्ध हो जाते, फूलों की सुगंध से घ्राणेंद्रिय मत्त हो उठती, शीतलवायु के स्पर्श से शरीर रोमांचित हो उठता, वह सुहावना दृश्य देखकर आँखों में एक विचित्र भाव

उत्पन्न हो जाता। पर शंकर समाधिस्थ थे, उनकी इंद्रियों से टकराकर प्रकृति की वह उद्दीपन-शक्ति नष्ट हो गई; अर्थात् उस उद्दीपन का शंकर की इंद्रियों पर कोई प्रभाव न पड़ा—और इस प्रकार, नंदी की आज्ञा से प्रकृति की चंचलता दूर हो गई!

किंतु—

"दृष्टिप्रपातं परिहृत्य तस्य कामः पुरःशुक्रमिव प्रयाणे।
प्रान्तेषु संसक्तनमेरुशाखं ध्यानास्पदं भूतपतेर्विवेश ॥४३॥

काम शंकर के आश्रम में घुस जाता है। नंदी की देखरेख का कोई फल नहीं होता। क्यों? इसीलिये कि काम सूक्ष्म विकार है। वह जाकर उन अचेतन इंद्रियों में स्थान कर लेता है। ज्यों ही शंकर सचेत होंगे—उनकी इंद्रियाँ 'काम' के आदेश से मचल उठेंगी। और इस प्रकार काम का शंकर के आश्रम में इस प्रकार प्रवेश करना बड़ा रहस्य-पूर्ण है।

वहाँ जाकर कामदेव क्या देखता है—

"स देवदारुद्रुमवेदिकायां शार्दूलचर्मव्यवधानवत्याम्।
आसीनमासन्नशरीरपातः त्रियम्बकं संयमिनं ददर्श ॥ ४४ ॥
पर्यङ्कबन्धस्थिरपूर्वकायं ऋज्वायतं सन्नमितोभयांसम्।
उत्तानपाणिद्वयसन्निवेशात्प्रफुल्लराजीवमिवाङ्कमध्ये ॥ ४५ ॥
भुजङ्गमोन्नद्धजटाकलापं कर्णावसक्तद्विगुणाक्षसूत्रम्।
कण्ठप्रभासङ्गविशेषनीलां कृष्णत्वचं ग्रन्थिमतीं दधानम् ॥४६॥

एक देवदारु के वृक्ष के नीचे सिंह-चर्म पर संयमी शंकर समाधि में बैठे हैं। पर्यंक-बंधन आसन लगाए हैं। शरीर बिलकुल सीधा है। दोनों कंधे झुके हुए हैं। गोद में उत्तान रक्खे हुए दोनों हाथ खिले हुए कमलों के समान जान पड़ते हैं। उनका जटा-कलाप साँपों से बँधा हुआ है। कानों में दुहरी अक्षमाला पड़ी हुई है, और ग्रंथि-युक्त कृष्ण मृग के चर्म का आर्जन धारण किए हुए हैं।

यह तो हुआ शंकर का शारीरिक स्थूल वर्णन! जिससे कामदेव ख़ूब परिचित था। पर आगे जो कुछ देखा वह कामदेव के लिये विशेष भावोत्पादक था।

"किञ्चित्प्रकाशस्तिमितोग्रतारैः भ्रूविक्रियायां विरतप्रसङ्गैः।
नेत्रैरविस्पन्दितपक्ष्ममालैः लक्ष्यीकृतघ्राणमधो मयूखैः ॥ ४७ ॥
अवृष्टिसंरम्भमिवाम्बुवाहमपामिवाधारमनुत्तरङ्गम्।
अन्तश्चराणां मरुतां निरोधान्निवातनिष्कम्पमिव प्रदीपम् ॥४८॥
कपालनेत्रान्तरलब्धमार्गैः ज्योतिःप्ररोहैरुदितैः शिरस्तः।
मृणालसूत्राधिकसौकुमार्य्यां बालस्य लक्ष्मीं ग्लपयन्तमिन्दोः ॥४९॥
मनोनवद्वारनिषिद्धवृत्ति हृदि व्यवस्थाप्य समाधिवश्यम्।
यमक्षरं क्षेत्रविदो विदुस्तमात्मानमात्मन्यवलोकयन्तम् ॥ ५०

उनके आँखों की भीषण, चमकदार पुतलियाँ नि होकर नासिका की ओर देख रही थीं और भौंहें चढ़ी थीं। क्या यह रूप देखकर भी कामदेव न डरा होगा?

अंतश्चर प्राणादि वायु-समूह को रोकने से उ विचित्र ही आकृति हो गई थी। कवि इस संबंध में उपमाएँ देता है। (१) वे विना बरसते हुए बादलों समूह के समान जान पड़ते थे। (२) अथवा वे तरं हीन समुद्र की भाँति थे। (३) या वायु-रहित स्थान में निश्चल दीप-शिखा को भाँति!

कितनी उत्तम उपमाएँ हैं! शंकर की समाधि-अव का कैसा सुंदर चित्र है। उनकी गंभीरता और निश्च का अपूर्व दृश्य सामने आ जाता है। उनके सि कपाल-नेत्र की राह जो ज्योति के अंकुर निकल रहे उनके आगे बालेंदु की शोभा फीकी पड़ रही थी। कि शांत दृश्य है।

वे अपने मन को समाधि द्वारा भीतर-ही-भीतर द्वारों के मार्ग से हटाकर अपने वश में करके उस को अपने ही में देख रहे थे, जिसे आत्मज्ञानी अक्षर, अनाशवान् कहते हैं।

शंकर का इतना सुंदर वर्णन पढ़ते-पढ़ते भी पाठक यह वर्णन अधिक विस्तृत-सा जान पड़ता है, उसका ऊबने लगता है—वह सोचने लगता है कि वह 'किरातार्जुनीय' के नारद-वर्णन से कुछ कम नहीं! संस्कृत के कवियों के वर्णनों की इस अहैतुक वि पर झुँझलाना ही चाहता है कि सहसा वह देखता है

स्मरस्तथाभूतमयुग्मनेत्रं पश्यन्नदूरान्मनसाप्यधृष्यम्।
नालक्षयत्साध्वससन्नहस्तः स्रस्तं शरं चापमपि स्वहस्तात् ॥

(अर्थात्—इतने पास से शंकर का यह रूप दे कामदेव डर के मारे इस प्रकार जहाँ का तहाँ ह गया कि उसके हाथ से धनुष-बाण कब गिर गए उसे जान भी न पड़ा!)

पाठक का सारा संदेह दूर हो जाता है। क प्रतिभा के सामने मस्तक झुका देता है। कवि ने भी समाधि-अवस्था से मदन को भयभीत करा है। इसकी पूर्ति वह कदापि इतनी सफलता से सकता, यदि वह शंकर की समाधि-अवस्था का

शांति पूर्ण तेजस्वी मूर्ति का, उनकी प्रभावमयी गंभीरता का इस प्रकार वर्णन न करता ! यदि संक्षिप्त रूप में शंकर का वर्णन करके कवि कामदेव के हाथों से डर के मारे धनुष-बाण छुड़वा देता, तो यह अस्वाभाविक-सा जँचता । शंकर का प्रभाव तो उससे अवश्य कुछ बढ़ जाता, पर कामदेव सर्वथा कायर बन जाता । फिर वह शिव को जीतने चला ही किस बूते पर था ? किंतु अब ऐसा होना महा स्वाभाविक है, परम सुंदर है !

पर अब तो इस प्रकार कवि सारा काम ही चौपट किए दे रहा है । इस प्रकार डरकर यदि काम अपने कार्य से विमुख हो गया, तब तो कुछ बात ही नहीं हुई । किंतु कालिदास ने यह विघ्न भी डालकर अपना काम ही बनाया है, और वह भी बड़ी ख़ूबी के साथ !

जिस समय कामदेव इस प्रकार भयभीत होकर जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया, उसी समय—

निर्वाणभूयिष्ठमथास्य वीर्य्यं संधुक्षयन्तीव वपुर्गुणेन ।
अनुप्रयाता वनदेवताभ्यामदृश्यत स्थावरराजकन्या ॥ ५२ ॥

अपने शरीर की शोभा से कामदेव के निर्वाण-प्राप्त वीर्य को प्रज्वलित करती हुई-सी पार्वती आती दिखाई पड़ीं ।

कैसा अपूर्व दृश्य है ! इसी बहाने पार्वती का सौंदर्य भी कितने स्वाभाविक रूप से कितने उच्च शिखर पर पहुँचा दिया गया है । जिसे देखकर कामदेव की गई हुई हिम्मत फिर लौट आई । वह यथार्थ ही असामान्य सुंदरी होगी ।

इस प्रकार पहले कामदेव को शंकर के रूप से डराकर, उसको उसके कार्य में निरुत्साह करके कवि ने फिर पार्वती को बुलाकर जिस ख़ूबी से उसमें फिर उत्साह उत्पन्न किया है—यह सब अत्यंत कवित्वपूर्ण है, परम सुंदर कल्पना है ! इससे इसमें कितना नाट्य-सौंदर्य बढ़ जाता है, यह रसिक पाठक ही अनुभव कर सकते हैं ।

गोसाईंजी ने इस समय यहाँ पार्वती को नहीं बुलाया है । संभवतः पार्वती को काम का अस्त्र बनाना भक्त तुलसीदास को न रुचा हो ! किंतु यदि यथार्थ में देखा जाय, तो पार्वती के न होने पर कामदेव का अपना काम पूरा कर लेना एक अनर्गल कल्पना ही है ! मैं पहले ही कह चुका हूँ कि कालिदास यद्यपि कामदेव को एक देवता समझकर, एक व्यक्ति मानकर, उसकी कहानी कह रहे हैं ; पर वे यह कभी नहीं भूले कि वह एक मानसिक विकार है । वे उसके वास्तविक स्वरूप को भूल जाने का दुस्साहस नहीं कर सके । तभी तो उन्होंने विना किसी स्त्री के काम का कार्य पूरा होते नहीं समझा । यह बराबर उनके ध्यान में था कि दोनों आलम्बन-विभावों (नायक-नायिका) के विना काम का कार्य अधूरा ही रहता है । काम का कार्य शृंगार-रस से संबंध रखता है । नायक के मन में काम-विकार उत्पन्न करने के लिये जो सर्वोत्तम साधन हो सकते थे, उन्हीं से यहाँ कालिदास ने काम लिया है । सबसे पहले नायक के आसपास उसने शृंगार-रसोत्पादक वायुमण्डल बनाने की आवश्यकता समझकर उद्दीपन-विभाव उत्पन्न किया । यह काम वसन्त की सहायता से संपन्न हुआ । सारी प्रकृति मत्त होकर नायक को उन्मत्त करने का प्रयत्न करने लगी । किन्नरियाँ नाना प्रकार के सुंदर गीत गाने लगीं । उद्दीपन-विभाव का पूरा सामान कर दिया गया । साधारण कामी पुरुष के मन को उत्तेजित करने के लिये तो इतना ही पर्याप्त होता है; उसका मन इतने ही से विचलित हो जाता है । किंतु संसार में ऐसे पुरुष भी कम नहीं, जिनके मन केवल उद्दीपन-विभाव से ही विचलित नहीं होते । फिर ये तो शंकर ही थे । उन पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा । अब कामदेव का असली साधन था—नायिका ! शृंगार-रस का कार्य है नायक-नायिका में परस्पर रति उत्पन्न करना, किंतु जब नायिका ही न होगी, तब नायक के मन में रति उत्पन्न होगी ही किसके लिये ? काम का यही तो मुख्य साधन है । उसके विना काम से शंकर को जीतने का प्रयत्न कराना उसके वास्तविक स्वरूप को समझने के सिवा क्या है ! काम एक मानसिक विकार है, जो नायक-नायिका में परस्पर एक दूसरे के प्रति उत्पन्न होता है—यह एक साधारण बात है ।

पर गोसाईंजी को संभवतः काम के वास्तविक स्वरूप का ध्यान न रहा । वे उसे एक व्यक्ति ही समझकर सब कुछ करा गए । मानो वह भी कोई ऐसा ही साधारण प्रकार का शत्रु था, जो तीर चलाकर किसी को मार डालता ।

अस्तु ! यहाँ पार्वती का आना नितांत आवश्यक था और उन्हें लाकर कालिदास ने अपनी पूर्ण प्रतिभा का परिचय-मात्र दिया है ।

पार्वती की शोभा का, उनके सौंदर्य का वर्णन भी कालिदास ने यहाँ परिस्थिति के अनुकूल ही किया है। उस समय पार्वती जो आभूषण पहने थीं, वे सब पुष्पों के ही थे। कवि जानता था कि ऐसे समय, जब कि वहाँ का सारा वायु-मंडल ही प्रकृति की सुंदर छटा दिखा रहा है, पार्वती का पुष्प-शृंगार ही सबसे सुंदर जान पड़ेगा—और सारे शृंगार इस समय फीके पड़ जायँगे। इस प्रकार इस दृश्य में एक प्रकार का सात्त्विक सौंदर्य भी लाने का प्रयत्न किया गया है। वे उस समय साक्षात् प्रकृति देवी की ही मूर्ति बन गई थीं। वन-देवियाँ उनके पीछे आ रही थीं। अशोक के फूलों के गहनों के सामने पद्मराग मणि फीकी पड़ती थी; कर्णिकार के फूल सोने को लज्जित करते थे; सिंधुवार के फूल मोतियों के कलाप जान पड़ते थे—इस प्रकार उनके सारे आभूषण पुष्पमय ही थे। यही नहीं, बल्कि कवि तो उन्हें चलती-फिरती हुई लता के ही रूप में देख रहा है। कैसी सुंदर कल्पना है। स्तनों के भार से मानो कुछ झुकी हुई-सी पार्वती के साथ फूलों के बोझ से झुकी हुई लता का कैसा सुंदर साम्य है। कामदेव की दूसरी प्रत्यंचा के रूप में जो केसर की माला की करधनी वे पहने थीं, उसके कुछ नीचे खिसक जाने के कारण वे हाथ में उठाए हुए हैं! कैसा सुंदर चित्र है, कितना स्वाभाविक! उनके सुगंधित निश्वास से खिंचकर एक भौंरा उनके बिंबाधर के पास मँडरा रहा है, जिसे चंचल दृष्टि से देखती हुई वे अपने हाथ के कमल से हटा रही हैं। कैसा सजीव चित्र है! धन्य हो कवि! रति को भी लज्जित करनेवाली ऐसी सर्वांग-सुंदरी पार्वती को देखकर जितेंद्रिय शिव को भी जीतने का 'काम' को विश्वास हो गया—

पार्वती का यह विचित्र रूप-वर्णन अपूर्व है। संस्कृत के छंदों का लालित्य, भाषा का माधुर्य देखते ही बनता है—

"अशोकनिर्भर्त्सितपद्मरागमाकृष्टहेमद्युतिकर्णिकारम् ।
मुक्ताकलापीकृतसिन्धुवारं वसन्तपुष्पाभरणं वहन्ती ॥ ५३ ॥
आवर्जिता किंचिदिव स्तनाभ्यां वासो वसाना तरुणार्करागम् ।
पर्याप्तपुष्पस्तबकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव ॥ ५४ ॥
स्रस्तां नितम्बादवलम्बमाना पुनःपुनः केशरदामकाञ्चीम् ।
न्यासीकृतां स्थानविदा स्मरेण मौर्वीं द्वितीयामिव कार्मुकस्य ॥५५॥
सुगन्धिनिःश्वासविवृद्धतृष्णं बिम्बाधरासन्नचरं द्विरेफम् ।
प्रतिक्षणं सम्भ्रमलोलदृष्टिः लीलारविन्देन निवारयन्ती ॥ ५
तां वीक्ष्य सर्वावयवानवद्यां रतेरपि ह्रीपदमादधानाम् ।
जितेन्द्रिये शूलिनि पुष्पचापः स्वकार्यसिद्धिं पुनराशशंस ॥

इस कोमल-कांत-पदावली में कैसा सुंदर चित्र खि हुआ है! पाठक मुग्ध हो जाते हैं। किंतु अब तो औ भी मधुर, और भी कोमल दृश्य सामने आ रहा है।

"भविष्यतः पत्युरुमा च शम्भोः समाससाद प्रतिहारभूमिम् ।
योगात्स चान्तःपरमात्मसंज्ञं दृष्ट्वा परं ज्योतिरुपारराम ॥ ५८ ॥
ततो भुजङ्गाधिपतेः फणाग्रैरधः कथञ्चिद्धृतभूमिभागः ।
शनैः कृतप्राणविमुक्तिरीशः पर्यङ्कबन्धं निबिडं बिभेद ॥ ५९ ॥
तस्मै शशंस प्रणिपत्य नन्दी शुश्रूषया शैलसुतामुपेताम् ।
प्रवेशयामास च भर्तुरेनां भ्रूक्षेपमात्रानुमतप्रवेशाम् ॥ ६० ॥

अब पार्वती अपने भावी पति शंकर के आश्र द्वार पर पहुँच गईं, और उसी समय दैवयोग से शि भी परमात्मा की ज्योति के दर्शन कर चुके, समाधि तोड़कर आसन-भंग किया। इसी समय उ द्वारपाल नन्दी ने अभिवादन करके पूजन करने को हुई पार्वती के प्रवेश के संबंध में पूछा। शिव ने भौं के संकेत से उनके आने की स्वीकृति दे दी, और पार्व का प्रवेश कराया गया।

नंदी के रूपक के संबंध में जो बात मैं कह चुका हूँ, यहाँ भी लागू होती है। शंकर की बाह्य इंद्रियाँ ही नं हैं। इसका विश्लेषण पहले प्रसंग में मैं कर ही चु हूँ। यहाँ भी इसकी संगति अच्छी तरह मिल जा है। शंकर ने समाधि से जागकर अपनी इंद्रियों चेतन कर दिया। उनकी नेत्र आदि इंद्रियों ने पार्वती उपस्थिति का अनुभव करके शंकर को सूचना दी। नंदी का कार्य हुआ।

अब कामदेव शंकर से लड़ाई छेड़ता है—

"तस्याः सखीभ्यां प्रणिपातपूर्वं स्वहस्तलूनः शिशिरात्ययस्य
व्यकीर्यत त्र्यम्बकपादमूले पुष्पोच्चयः पल्लवभंगभिन्नः ॥ ६
उमापि नीलालकमध्यशोभि विस्रंसयन्ती नवकर्णिकारम् ।
चकार कर्णच्युतपल्लवेन मूर्ध्ना प्रणामं वृषभध्वजाय ॥ ६

पहले पार्वती की सखियों ने उन्हें प्रणाम अपने हाथ से तोड़े हुए वसंत-ऋतु के फूल उनके पर चढ़ाए। उमा ने भी शंकर के सम्मुख अपना झुकाया, किंतु ऐसा करते समय उनके कृष्ण केश

से नया कर्णिकार का फूल और कान से कोमल पल्लव उनके आगे गिर पड़े ।

एक ही क्रिया को दो विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रकारों से कराकर कवि ने कैसा कौशल दिखाया है ! सखियाँ प्रणाम करती हैं और साथ ही फूल भी चढ़ाती हैं। किंतु उमा प्रणाम करती हैं, तो उनके शरीर से फूल गिरकर स्वयं ही चढ़ जाते हैं । इस कल्पना-मात्र ही में सौंदर्य होने पर भी शंकर पर इसका एक अद्भुत प्रभाव डालना कवि का प्रधान उद्देश्य है । इस प्राकृतिक भाव-भंगी से सचमुच शंकर मुग्ध हो गए होंगे ! पर अभी कवि ने उनके भाव को प्रकट नहीं कराया ।

"अनन्यभाजं पतिमाप्नुहीति सा तथ्यमेवाभिहिता भवेन ।
न ह्रीश्वरव्याहृतयः कदाचित्पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम् ॥६३॥"

शंकर ने आशीर्वाद दिया कि "अनन्यभाक् (जो तुम्हारे अतिरिक्त और किसी भी स्त्री को प्रेम न करे) पति पाओ !"

अब—

"कामस्तु बाणावसरं प्रतीक्ष्य पतंगवद्वह्निमुखं विविक्षुः ।
उमासमक्षं हरबद्धलक्ष्यः शरासनज्यां मुहुराममर्श ॥ ६४ ॥"

काम, समय निकट आया जान, उमा के सामने शंकर पर निशाना बाँधकर बार-बार प्रत्यंचा को छूता हुआ तीर छोड़ने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगा ।

अब कामदेव की करामात, कवि के कौशल और इस कथा के मुख्य भाग का सर्वोत्तम अंश आता है । काम यदि इस समय सफल हो गया, तो शंकर की हार है, पार्वती की जीत! देवताओं के बाजे बजने लगेंगे और फूल बरसने ! पर यदि कामदेव हार गया और शंकर जीत गए तो ? तब तो पार्वती और देवतागण सभो अत्यंत निराश हो जायँगे। देखें, कवि क्या कराता है ।

"अथोपनिन्ये गिरिशाय गौरी तपस्विने ताम्ररुचा करेण ।
विशोषितां भानुमतो मयूखैः मन्दाकिनी पुष्करबीजमालाम् ॥६५॥
प्रतिग्रहीतुं प्रणयिप्रियत्वात् त्रिलोचनस्तामुपचक्रमे च ।
सम्मोहनं नाम च पुष्पधन्वा धनुष्यमोघं समधत्त बाणम् ॥ ६६॥
हरस्तु किञ्चित्परिलुप्तधैर्य्यः चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।
उमामुखे बिंबफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ॥ ६७॥
विवृण्वती शैलसुतापि भावमंगैः स्फुरद्बालकदम्बकल्पैः ।
साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन ॥ ६८ ॥"

शंकर को प्रणाम करके, उनका आशीर्वाद पाकर पार्वती सूर्य की किरणों में सूखे हुए मंदाकिनी के कमलों के बीजों की माला अपने कोमल लाल-लाल हाथों में लेकर महादेव को पहनाने के लिये आगे बढ़ीं । अपने भक्त को प्रिय होने के कारण शंकर ने उस माला को अपने गले में डलवा लिया—और इसी समय कामदेव ने अपने धनुष पर 'सम्मोहन' नाम का अमोघ बाण चढ़ाया ! शंकर कुछ अधीर हो गए—ठीक उसी भाँति जिस प्रकार चन्द्रोदय के आरंभ में समुद्र का जल ! और उन्होंने बिंबाफल के समान रक्त अधर और ओंठवाले उमा के मुख की ओर ताका ! उनको अपनी ओर ताकते देख उमा के हृदय में भी भाव—प्रेम—उत्पन्न हुआ । उनके अंग छोटे-से कदंब के समान पुलकित हो गए ; और लज्जित होकर उन्होंने बड़ी सुंदरता से अपना मुख तिरछा करके आँखें नीची कर लीं ।

पर शंकर तो परम संयमी थे ! अधिक देर तक यह भाव उन पर अधिकार नहीं किए रह सकता था—

"अथेन्द्रियक्षोभमयुग्मनेत्रः पुनर्वशित्वाद्बलवन्निगृह्य ।
हेतुं स्वचेतोविकृतेर्दिदृक्षुः दिशामुपान्तेषु ससर्ज दृष्टिम् ॥ ६९ ॥
स दक्षिणापाङ्गनिविष्टमुष्टिं नतांसमाकुञ्चितसव्यपादम् ।
ददर्श चक्रीकृतचारुचापं प्रहर्तुमभ्युद्यतमात्मयोनिम् ॥ ७० ॥

उन्होंने बलपूर्वक अपने इंद्रिय-क्षोभ को रोक लिया और अपने चित्त-विकार के हेतु को देखने के लिये चारों ओर दृष्टि डाली । क्या देखते हैं कि वीरासन पर बैठा हुआ काम कंधा झुकाए, प्रत्यंचा खींचे—बस तीर छोड़ने ही वाला है ! (अर्थात् शंकर के विवेक ने उनके प्रबल काम-विकार की सूचना उन्हें दे दी !)

कैसा सुंदर वर्णन है ! कालिदास ने काम की क्रियाओं को बड़े उपयुक्त रूप में दिखाया है । कवि ने कामदेव को तीर नहीं छोड़ने दिया ; क्योंकि उसके तीर छोड़ने का अर्थ ही कामोत्पादन कर देना है । फिर तो शंकर कामविजयी नहीं कहा सकते । और न कवि ने यही किया है कि शंकर के मन में तनिक भी विकार उत्पन्न न हो । ऐसा होने पर भी काम-विजय में उन्हें कुछ अधिक श्रेय न मिलता । जिसके मन में विकार ही न आए, उसके काम को जीतने में कोई विशेष बात नहीं ! अतः कवि ने बड़ी सुंदरता से शंकर का मन कुछ चंचल करके एकदम उन्हें सम्हाल दिया है ।

और इस प्रकार मदन-दहन हो जाता है—

''ततः परामर्शविवृद्धमन्योर्भ्रूभंगदुष्प्रेक्ष्यमुखस्य तस्य ।
स्फुरन्नुदार्चिः सहसा तृतीयादक्ष्णः कृशानुः किल निष्पपात ॥७१॥
क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति ।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ॥ ७२ ॥

अंत को क्रुद्ध शंकर के तीसरे नेत्र (अर्थात विवेक-बुद्धि) से आग निकल पड़ी और आकाश में देवताओं की ख़ुशामद की आवाज़ फैलने भी न पाई थी कि काम-देव उस अग्नि से जलकर राख हो गया ।

देवताओं की आशा चूर्ण हो गई । शंकर को यह सबक़ मिल गया कि 'काम' से बचने के लिये स्त्री-सन्निकर्ष का त्याग करना अत्यंत आवश्यक है । वे वहाँ से चल दिए—

"तमाशु विघ्नं तपसस्तपस्वी वनस्पतिं वज्र इवावभज्य ।
स्त्रीसन्निकर्षं परिहर्त्तुमिच्छन्नन्तर्दधे भूतपतिः सभूतः ॥ ७४ ॥

कालिदास ने यहाँ अपने एक मत का भी प्रतिपादन किया है । संसार में कुछ लोगों का विचार है कि विकार-हेतु के रहने पर विकार किसी प्रकार दबाया ही नहीं जा सकता । यह आग और फूस का संबंध है, अतः वे ही महान् हैं, जो इनको साथ-साथ न रहने दें, विकार-हेतु को नष्ट कर दें; अपने मन को भी रोकें, पर विकारोत्पादक वातावरण से सदा दूर रहें । किंतु दूसरे प्रकार के लोगों का विश्वास है कि ऐसा तो सब कोई कर सकता है । किंतु महान् वही है, जो विकार के हेतु के रहने पर भी मन को वश में कर लें । उनके विचार से मन को संयत रखने का अभ्यास करने से यह साध्य है ।

कालिदास ने शंकर को दूसरे मत के प्रतिपादक के रूप में उपस्थित किया है । जब (पहले सर्ग में) हिमाचल ने पार्वती को शंकर के आश्रम में उनकी सेवा करने को भेजा, तब शंकर ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया । उन्होंने सोचा—

"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते
येषां न चेतांसि त एव धीराः" ॥ १ । ५९ ॥

किंतु अब वही शंकर इतना प्रयत्न करके भी अपने उस विचार के अनुसार कार्य करने में सफल न हो सके । अंत को उनका मन बदल गया । वे पहले प्रकार के विचार-वाले लोगों में मिल गए । उन्होंने भी स्वीकार किया कि विकार का हेतु रहने पर मन को वश में करना असंभव है । तभी तो—

'स्त्रीसन्निकर्षं परिहर्त्तुमिच्छन्
अन्तर्दधे भूतपतिः सभूतः ।'

वे स्त्री का सान्निध्य छोड़कर चले गए । इस प्रकार ज्ञा पड़ता है कि कालिदास भी पहले प्रकार के मतवाले लोगों में हैं, और उसी मत की विजय यहाँ उन्होंने कराई है ।

इस प्रकार एक ओर तो शंकर के विचारों में अव परिवर्तन होता है, और दूसरी ओर पार्वती चेतती हैं ।

''शैलात्मजापि पितुरुच्छिरसोऽभिलाषं,
व्यर्थं समर्थ्य ललितं वपुरात्मनश्च ।
सख्योः समक्षमिति चाधिकजातलज्जा,
शून्या जगाम भवनाभिमुखी कथञ्चित् ॥७५॥

पार्वती का जो यह विचार बन-सा गया था कि शं मेरे रूप को देखकर मुग्ध हो जायँगे और मेरे पिता तथा मेरी अभिलाषा पूरी होगी, उस पर बड़ा आघात पहुँचा । उन्हें अपना रूप बिलकुल फीका पड़ने लगा । इस पर भी सखियों के सामने यह अपमान ! बहुत लज्जित होकर पार्वती अपने घ लौट गईं ।

किंतु वास्तव में इस प्रकार पार्वती का कोई क्षति नहीं हुआ । उनके विचारों में भी बड़ा भारी परिवर्तन गया । वे समझ गईं कि प्रेम-साम्राज्य में रूप-सौं को कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है । रूप से प्रेमी को में नहीं किया जा सकता । इसके लिये तो प्रेम तप की आवश्यकता है । इसीलिये इन्होंने अपने रू अब व्यर्थ समझा—

'व्यर्थं समर्थ्य ललितं वपुरात्मनश्च ।'

पाँचवें सर्ग में हम पार्वती को तपस्या के लिये देखते हैं । वहाँ पार्वती इस सिद्धांत पर आ गई हैं—

"तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता
इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्म
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः

पार्वती ने अपने रूप की निंदा की; क्योंकि यदि प्रसन्न न हुआ, तो उस रूप से क्या लाभ ? अतः तपस्या करके शंकर का प्रेम पाने का निश्चय कर लि

इस प्रकार पार्वती रूप, विकार आदि की निम्न से उठकर प्रेम के विशाल साम्राज्य में आती हैं

त्याग-तपस्या का महत्त्व समझती हैं, और अंत में शंकर-पार्वती का विवाह होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मदन-दहन से, कालिदास के नायक और नायिका, दोनों ही के सिद्धांतों में बड़ा भारी परिवर्तन होता है। एक और चमत्कार है! पहले हम देखते हैं कि काम की जीत होने पर ही शंकर-पार्वती का विवाह संभव है। कवि पाठक पर इस प्रकार से यह प्रभावित कर देता है कि वह बराबर यही चाहता है कि काम की जीत हो और नायक-नायिका का सम्मिलन। पर बात-ही-बात में कवि पासा पलट देता है। पार्वती, देवता—सभी निराश हो जाते हैं और साथ-ही-साथ पाठक भी! पर कुछ देर में कवि वह कौशल दिखाता है कि सभी दंग रह जाते हैं। मदन-दहन होने पर भी शंकर-पार्वती का विवाह होता है। अब पार्वती, देवता, सभी की आशाएँ पूरी होती हैं, सभी प्रसन्न होते हैं, साथ-ही-साथ पाठक भी! पर पाठक अब एक दूसरे ही प्रकार के वायुमंडल का अनुभव करता है। वह देखता है कि यदि पहली सीढ़ी पर सफलता मिली होती, तो वह बहुत ही नीची श्रेणी की होती। किंतु यह तो अपूर्व है! कितनी सात्विक!

इस प्रकार तमोगुणी विजय से सतोगुणी विजय, रसातल से देवलोक, तालाब से समुद्र में पहुँचकर पाठक कवि की पूजा किए विना नहीं रह सकते।

यही है मदन-दहन का वास्तविक महत्त्व! किंतु अब हम गोसाईंजी की ओर लौटते हैं। गोसाईंजी का यह प्रसंग और ही ढंग का है। उनका शिव-पार्वती की भक्ति से परिप्लावित हृदय कालिदास की भाँति पार्वती को कामदेव का साधन बनाना सहन न कर सका। वे जगन्माता पार्वती का यह रूप कल्पना में भी नहीं देखना चाहते। किंतु यहाँ गोसाईंजी चूक गए हैं। वे कालिदास की छाया भी नहीं छू सके। मैं यह नहीं कहता कि गोसाईंजी में वह प्रतिभा नहीं थी। पर वे यहाँ कुछ भ्रम में अवश्य पड़ गए। उनकी भक्ति-प्रवणता और भावुकता के ही कारण यह सब हुआ।

किंतु दो कवियों के दो प्रसंगों की तुलनात्मक आलोचना करते समय इस प्रकार की छूट नहीं दी जाती। यहाँ पर काव्य-कार की आलोचना 'कवि'—'कलाकार' की दृष्टि से ही की जाती है, 'भक्त' की दृष्टि से नहीं! भक्त-हृदय क्षमा करें—गोसाईंजी यहाँ कालिदास से निश्चय ही बहुत पीछे रह गए हैं। इस भारी भ्रम के कारण तुलसीदास का यह प्रसंग बहुत फीका पड़ गया है। उन्होंने पार्वती को शिव के सामने उपस्थित न करके इस प्रसंग को प्राणहीन कलेवर-सा कर दिया है। इस प्रकार उन्होंने कामदेव को 'काम' (एक मानसिक विकार) न समझकर केवल एक व्यक्ति ही समझ लिया है। पर कालिदास ने काव्य-सौंदर्य की रक्षा के लिये काम को एक व्यक्ति का रूप तो दिया ही है! साथ ही वे एक महाकवि की भाँति उसके वास्तविक स्वरूप को भी नहीं भूले और इसीलिये उन्हें 'मदन-दहन' के प्रसंग में बड़ी अद्भुत सफलता मिली है।

तुलसीदास ने इधर का प्रसंग इस भाँति लिखा है—

"रुद्रहिं देखि मदन भय माना। दुराधर्ष दुर्गम भगवाना॥
फिरत लाज कछु कहि नहिं जाई। मरन ठानि मन रचेसि उपाई॥
प्रगटेसि तुरत रुचिर ऋतुराजा। कुसुमित नव तरुराज बिराजा॥
बन उपबन बापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा बिभागा॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहु मन मनसिज जागा॥
जागइ मनोभव मुएहु मन बन सुभगता न परै कही।
सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही॥
बिकसे सरन बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा।
कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा॥
सकल कला करि कोटि बिधि, हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि सिव, कोपेउ हृदय-निकेत॥
देखि रसाल बिटप बर साखा। तेहि पर चढ़ेउ मदन मन माखा॥
सुमन चाप निज सर संधाने। अति रिस ताकि स्रवन लगि ताने॥
छाँड़ेसि बिषम बिसिख उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे॥
सौरभ पल्लव मदन बिलोका। भयउ कोप कंपेउ त्रयलोका॥
तब सिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा॥"

इस प्रकार तुलसीदास ने अपने कामदेव से 'कोटि-विधि' से 'सकल कला' कराकर उसे हरा दिया। किंतु सिवा एक वसंतोद्दीपन के (जो अकेले वसंत ने ही कर डाला) उससे कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं कराया गया। फिर वह क्या-क्या कोटि विधि की सकल कला करके हार गया? क्या उसने शिव के सम्मुख कोई अपूर्व सुंदरी तरुणी भी खड़ी कर दी?

एक और भी अच्छा मज़ाक रहा। यह सारा का

सारा कार्य हो रहा है शिव-पार्वती के विवाह के लिये ! ऐसी अवस्था में जब कामदेव शंकर के मन को विकृत करने गया है, तब उसे निश्चय ही पार्वती को ही आलंबन बनाना चाहिए। यदि किसी अन्य सुंदरी को वह उनके सम्मुख ले जाता है और उस पर शंकर का मन चंचल हो जाता है, तब तो उनके उसी से विवाह करने की अधिक संभावना है। फिर इससे शंकर-पार्वती के विवाह में कौन-सी सुविधा होती ?

इसीलिये इस समय कालिदास ने जो सबसे उत्तम साधन इस समय हो सकता था, वही ग्रहण किया। वे साक्षात् पार्वती को और बड़े स्वाभाविक ढंग से वहाँ ले आए। किंतु तुलसीदास यों ही रह गए। कालिदास की पार्वती के कारण शंकर का मन विकृत होते देख उनका सिर लज्जा से नीचा हो गया। उन्हें कालिदास पर क्रोध आया, और साथ ही उनकी पार्वती पर भी ! उन्होंने पार्वती को अपने इस प्रसंग में आने ही न दिया।

समझ में नहीं आता—इस प्रकार गोसाईंजी का कामदेव क्या काम करने आया था ! यदि कामदेव की विजय ही हो जाती, जिसके लिये वह आया ही था और शंकर काम के वश में हो जाते, तब क्या वे (शिव) किसी काल में पार्वती के आने की प्रतीक्षा करते रहते ? या उनका कामातुर मन वहाँ जिसे पाता, उसी पर रम जाता ! हो सकता था कि ऐसी अवस्था में वहीं की किसी अप्सरा पर ही वे मुग्ध हो जाते, और कुछ देर तक आनंद भोग करके वे तृप्त हो चुकते और फिर यदि आगे (देवताओं की अभिसंधि से ?) पार्वती उनके पास आतीं, या पार्वती से विवाह करने का उनसे प्रस्ताव किया जाता, तब उस समय तक वे विकार-रहित हो चुके हुए रहते, और उन पर कोई भी प्रभाव न पड़ता। इस प्रकार कामदेव उन पर विजय प्राप्त करके भी कुछ काम न बना सकता। किंतु कालिदास के कामदेव की यदि जीत हुई होती, तो निश्चय ही शंकर-पार्वती का विवाह हो जाना निश्चित रहता। क्योंकि वे पार्वती के कारण ही काम से हारते—उन्हीं के कारण विकार-ग्रस्त होते। अस्तु।

कालिदास 'काम' के वास्तविक स्वरूप को भूले नहीं थे, यह केवल उतने ही से प्रकट नहीं होता। अनेक स्थलों पर इसके प्रमाण मिलते हैं। जिस समय ने शंकर को सिर नवाकर प्रणाम किया और उनके से फूल गिर पड़े, उस समय कामदेव ने अपनी को कई बार छुआ। इससे कवि का स्पष्ट संकेत है पार्वती की उक्त क्रिया से शंकर के मन में जो एक विकार का भाव उदय हुआ होगा, वही 'काम' का धनुष की प्रत्यंचा को छूना है। और इसीलिये, उस शंकर के मन में जिस किसी भी अंश में विकार हुआ, उसे कवि ने स्पष्ट शब्दों में प्रकट करना नहीं समझा। कवि समझता था कि 'काम' की इस का चित्र खींचने से ही शंकर के मन की का कथन हो जाता है।

इसके बाद जिस समय पार्वती ने शंकर के माला डालने को हाथ बढ़ाया और शंकर ने उसे कर लिया, उस समय पार्वती के कर-स्पर्श, आदि से के मन में जो विकार उत्पन्न हुआ, उसे स्पष्ट रूप कहकर कवि पाठकों का ध्यान काम की ओर करता है, जो अपने धनुष पर 'सम्मोहन' (मोहनेवाला नाम का अपना अमोघ बाण चढ़ा रहा था। अर्थात् मोहित हो गए !

कैसा क्रम-पूर्वक (Step by Step) कार्य हो रहा मानो कवि यहाँ 'काम' की पूरी व्याख्या ही करते हैं ! वह उसके धनुष-बाण का रहस्य समझा रहा है ! बता रहा है कि इस अपूर्व धनुष-धारी (काम) के चढ़ाने के पूर्व प्रत्यंचा को बार-बार छूने का क्या है, उसके धनुष पर तीर चढ़ाने का क्या अर्थ है उसको खींचने का ('चक्रीकृतचारुचापं'), छोड़ने तैयार होने का ('प्रहर्त्तुमभ्युद्यतम्') क्या भाव है कामदेव को तीर चढ़ाकर धनुष खींचने तक का देकर ही कालिदास रुक गए। उन्होंने उसका तीर न दिया। क्यों ? केवल इसीलिये कि यदि वह छूट तब तो ले हो बीतता ! उसका तीर 'अमोघ' है। यह स्पष्ट है कि तीर छूट जाने का—उनके शरीर में जाने का—अर्थ है उनका परास्त हो जाना, आधीन हो जाना।

कालिदास ने यहाँ काम के तीर छोड़ने की चार भागों में बाँट दिया है—प्रत्यंचा को छूना, पर तीर रखना, तीर खींचना, और उसे छोड़ देना।

पर पहले तीन कार्य तो हो चुके—बस चौथा ही न हुआ! मानो शंकर के सामने जब उनका एक शत्रु (मित्र के वेश में) आकर खड़ा हुआ, तब उन्होंने उसकी ओर ताका, उसके आने पर प्रसन्नता प्रकट की, उससे बातचीत की, पर इतने ही में (शायद उसकी बातचीत में कुछ अस्वाभाविकता-सी पाकर) वे उसे पहचान गए और उसे आत्म-समर्पण न होने दिया!

इस प्रकार कालिदास के शंकर 'काम-वासना' के वश में होकर संभवतः उसके क्रियात्मक होने के समय तक चेत गए और आत्म-दमन कर लिया—अथवा मदन-दहन कर दिया!

किंतु गोसाईंजी के मदन-दहन का कोई भाव नहीं है, कोई अर्थ नहीं!

अस्तु! कामदेव को देखकर, अर्थात् उसे शत्रु के रूप में अपने मन में प्रवेश किए देखकर कालिदास के शिव का तीसरा नेत्र खुल जाता है—उन्हें ज्ञान होता है, विवेक की विजय होती है—और कामदेव का नाश हो जाता है। कैसा सुंदर चित्र है!

कालिदास का कुमारसंभव-काव्य शिव-पार्वती के विवाह को लेकर ही रचा गया है और इसीलिये मदन-दहन का प्रसंग उनके लिये अत्यंत महत्त्व-पूर्ण था। पर गोसाईंजी तो राम-कथा के गायक कवि हैं। शायद राम की भक्ति प्राप्त करने के लिये ही उन्होंने शिव-चरित भी संक्षेप में कह दिया है, पर कुछ बेमन से, कुछ विरक्ति के साथ! अथवा यों कहिए कि यह उनका विषय नहीं था, इसमें उन्हें रुचि नहीं थी, इसका स्वाद उनके लिये मीठा न था, यह उनकी चटनी थी। इसीलिये गोसाईंजी ने शिव-चरित के एक छोटे-से अंश 'मदन-दहन' पर उतनी सूक्ष्मता से विचार न किया होगा, जितना कालिदास ने। यही कारण है कि इस प्रसंग के वर्णन में कालिदास से तुलसीदास की कोई समता नहीं।

यह तुलना तो मैंने यों ही कुतूहल-वश कर डाली है। वास्तव में पाठकों को कालिदास के इस अपूर्व कवित्व-कौशल की दिव्य झाँकी दिखाने के लिये ही मैंने इतना लिखा है।

सुमंगलप्रकाश

पवित्र-परिवर्तन

खोला भूतनाथ ने तृतीय नेत्र क्रुद्ध होके,
ज़ालिमों की ज़ालिम-जमात जलने लगी।
चालबाज़ियों का चक्रव्यूह चूर-चूर कर—
चाल चौगुनी से अग्निधारा चलने लगी।

सुतल-वितल औ रसातल-तलातल में,
गर्व की अदंड-मंडली भी गलने लगी।
पाप का प्रचंड अभिशाप दूर होके, आज—
पुण्य के प्रताप की सुवेलि फलने लगी!

रामसेवक त्रिपाठी

चोर

१

"अम्मा, क्या तुमने मेरी जेब से कुछ निकाला है ?"

"नहीं तो, मैंने तेरा कोट छुआ तक नहीं। क्यों क्या हुआ ?"

"कल मैंने जेब में ३२ रुपए रख दिए थे। दो रुपए तो पड़े हुए हैं लेकिन दस-दस के तीन नोट ग़ायब हैं।"

रामकिशोर की कालेज की पढ़ाई इसी साल इलाहाबाद में आरंभ हुई थी। जन्माष्टमी की छुट्टियों में वह घर आया था। छुट्टियाँ पाँच दिनों की थीं; परंतु समाप्त होने के एक दिन पहले ही इलाहाबाद जाने का उसका इरादा था। सब तैयारी हो गई थी। बाबूजी (पिता) से उसने एक महीने के ख़र्च के लिये तीस तथा रेल-ख़र्च के लिये दो रुपए ले लिए थे। लेकिन देर हो जाने के कारण गाड़ी छूटने की आशङ्का से उस दिन उसका जाना न हो सका। मा, चाची तथा छोटी बहन के कहने से वह एक दिन के लिये रुक गया था।

रुपए जेब में रखकर उसने कोट अपने कमरे में टाँग दिया। एक बार उसके मन में आया कि कहीं ऐसा न हो कि कोई उन्हें निकाल ले जाय। लेकिन उसका कमरा दुमंज़िले में था। वहाँ घर के लोग तथा कहार को छोड़कर कोई न जाता था। इसलिये उसने सोचा—यहाँ से रुपए कौन ले जायगा ? फिर एक दिन की बात है, कल तो चला ही जाऊँगा। कौन अब जेब से निकालकर बकस में रक्खे ?

उस समय का टँगा हुआ कोट दिन-भर औ रात-भर टँगा रहा। दूसरे दिन जब जाने क समय आया, तब उसने कोट उतारा। जेब देखा, तो तीस रुपए के नोट ग़ायब। सोच शायद अम्मा ने निकालकर रख लिए हों। चो के डर से वह ऐसा कई बार कर चुकी थी अम्मा का यह उत्तर सुनकर कि मैंने तो तेरा को छुआ तक नहीं, वह आश्चर्य में पड़ गया। को की जेबों को फिर से देखा, कमरे में चारों ओ देखा, किताबों को उलट-पलटकर देखा, पर नो का कहीं पता न लगा। खोने के लिये तो उस कई बार दो-दो एक-एक रुपए खो दिए थे, प घर से इस प्रकार उसके रुपए कभी नहीं हो थे। चाची से पूछा, बहन से पूछा, छोटे भाई पूछा ; परंतु जब किसी से भी कुछ पता न ल तब वह समझ गया कि किसी ने उन पर हा साफ़ कर दिया।

रामकिशोर की मा के लिये तीस रुपए खो जा की बात छोटी न थी। एक तो इतने रुपए खो ग दूसरे उसी के बेटे द्वारा। उसका कलेजा धक हो गया। एक ही क्षण बाद वह कहार के स आ खड़ी हुईं। उन्होंने पूछा—"बोल, तूने रुपए नहीं निकाले ?"

कहार बर्तन माँज रहा था। उसने उ दिया—"चाची, हमका जानी ? कैसे रुपइया

इतने ही में रामकिशोर की आँखें उस ओ गईं। उसने मा को बुला लिया और क "अभी थोड़ी देर ठहर जाओ ; जल्दी न क

देखो शायद यहीं कहीं मिल जायँ। अभी किसी से इसके बारे में कुछ न कहना।"

बहुत ढूँढ़ा, पर नोट न मिले। अब वह सोचने लगा कि चोर का पता किस प्रकार लगे? और फिर उसके साथ क्या करना चाहिए? सोचा—कहार को छोड़कर कोई दूसरा व्यक्ति मेरे कमरे में आता ही नहीं। वही कमरा साफ़ करने, चारपाई बिछाने तथा अन्य समय भी आता है। वह यहाँ हर समय आ सकता है। उसको छोड़कर यह काम किसी दूसरे का नहीं हो सकता। क्या करना चाहिए। उसे समझाऊँ? शायद चोरी स्वीकार कर ले।

कहार को बुलाकर पूछा, परंतु उसने उत्तर दिया—"मालिक, हमका नाहीं मालूम। हम तो कोट छुआ तक नाहीं। संझा का चरपइया बिछावत मा चाची का बुलाय लीन रहै। हम नहीं लीन।" रामकिशोर ने कहा—"अच्छा, जाओ।" वह चला गया।

उसके रुख से रामकिशोर को एक प्रकार का विश्वास-सा हो गया था कि उसी ने रुपए लिए हैं—"शाम को चाची के बुलाने की कौन ज़रूरत थी? क्या वह कमरे में अकेले नहीं जा सकता था? सफ़ाई देने के लिये वह चाची को बुला लाया। अवश्य उसी ने नोट निकाले हैं।" उसे पूरा विश्वास हो गया था कि कहार ही ने चोरी की है। वह जानता था कि इस प्रकार बिना देखे किसी पर शक न करना चाहिए। वह जानता था कि सारे सबूत होने पर भी संभव हो सकता है कि उसने रुपए न लिए हों। पर उसका हृदय नहीं मानता था। वह तर्क से काम लेने की बहुत चेष्टा करता था; पर उसका हृदय उसे बार-बार विश्वास दिलाता था कि कहार ही ने नोट निकाले हैं।

अब सवाल उठा कि करना क्या चाहिए। उसने सोचा—ग़लती तो मेरी ही थी। मैंने कोट में इस तरह रुपए रक्खे क्यों? मुझे इतना लापरवाह न होना चाहिए था। बाबूजी को मालूम होगा, तो बहुत क्रुद्ध होंगे। मैं तो किसी प्रकार उनका क्रोध सह भी लूँगा, पर उस बेचारे की मौत हो जायगी। उसे वह धमकायँगे पीटेंगे, पिटवायँगे, पुलिस में देकर जेल भिजवा देंगे। उसकी न-जाने क्या-क्या दुर्गति होगी!

वह सुना करता था कि ग़रीबों पर क्या-क्या अत्याचार होते हैं। आज उसे इस बात का दुःख था कि उसी के कारण एक ग़रीब पर मार पड़ेगी। वह सोचता था, एक तो यही निश्चित नहीं कि वही चोर है। फिर यदि हो भी तो उसका क्या दोष? दोष मेरा ही है। मैंने रुपए इस प्रकार छोड़ दिए। कोई भी—स्वयं बाबूजी—इस प्रकार रुपए पड़े पा जायँ, तो कौन कह सकता है कि उसकी नियत न डोल जायगी?

इस समय रामकिशोर के नेत्रों के सम्मुख—मानसिक नेत्रों के सम्मुख—उस बेचारे कहार की दयनीय दशा का नग्न चित्र खिंच रहा था—"बेचारे के दो छोटे-छोटे बच्चे हैं, उनकी न-जाने क्या दशा होगी? स्त्री है, उसका क्या हाल होगा? यों ही भारतवर्ष में स्त्रियों के प्रति इतना निर्दय व्यवहार होता है। उफ़! उस बेचारी ने क्या अपराध किया है, जिससे उसका प्राणाधार जेल की दीवारों के अन्दर सड़े? क्या करूँ? क्या यह बात फैला दूँ कि रुपए मिल गए? हाँ, अच्छा तो है—परंतु मेरे पास फिर रुपए कहाँ से आँवेंगे? महीने का ख़र्च किस प्रकार चलेगा? हर महीने यों ही ख़र्च की कमी रहती है, फिर तीस रुपए कहाँ से लाऊँगा? कोई ऐसा

मित्र भी तो नहीं है, जिससे इतने रुपए उधार ले सकूँ।"

इस समय रामकिशोर त्रिशंकु हो रहा था। एक ओर तो ग़रीबों के प्रति सहानुभूति और दूसरी ओर रुपए न होने के कारण वह निश्चय न कर पाता था कि क्या करना चाहिए। वह उस ग़रीब को कष्ट में न डालना चाहता था। सबसे अधिक तो उसे उसके बच्चों तथा उस अबला पर दया आती थी, जिसकी हर तरह से दुर्दशा होने की संभावना थी। पर वह यह भी जानता था कि उसे रुपए कहीं से नहीं मिल सकते।

अंत में उसने यह निश्चय किया कि उसे जेल तो न जाने दूँगा। बहुत करेंगे, तो बाबूजी इसे मार लेंगे। इसे थाने तक न भिजवाने दूँगा, फिर चाहे मुझे घर ही से क्यों न लड़ना पड़े।

२

"चाची, हमका बचाय लेओ, चाचा थाने भेज देहैं। चीप साहब औ एक सिपाही नीचे बैठ हैं। चाचा बजार गेहैं।"

"बचा तो मैं लूँ। पर क्या मालूम कि तूने चोरी नहीं की?"

"चाची, तुम्हरी नौकरी माँ चार बरस हुइगे, अब तक हमसे ऐस कबहूँ नहीं भा।"

वास्तव में कहार को रामकिशोर के यहाँ नौकरी करते पाँच वर्ष से भी अधिक हो गए थे। बहुत दिनों से वह चार ही वर्ष कहता आया है। अभी तक उसने पाँच वर्ष कहना आरंभ ही नहीं किया। वह पहले एक गाँव में रहता था। बेकारी के कारण उसे अपना गाँव छोड़ना पड़ा। आकर 'सहर' में रहने लगा। अपनी गँवारी भाषा का वह बहुत कुछ परित्याग कर चुका था, लेकिन फिर भी अभी वह 'सहर' की बोली नहीं बोल सकता था। उसकी भाषा में 'सहर' और देहात दोनों की झलक दिखाई देती थी।

रामकिशोर की मा ने कहा—"हाँ नौकरी करते तो बहुत दिन हो गए। पर क्या मालूम कि अब तो धीरे-धीरे सब गुन सीखता नहीं जाता?"

"चाची, रुपइया तो हम नहीं लीन। कैसे बताई। थाने में हमपै मार पड़ी। चार-छै रुपइया डाँड़ पर जैइहैं। लड़कन-बच्चन का पूँछवाला कौनौ न रही। उनकी का दसा होई?"

यह कहते हुए उसके आँखों में आँसू भर आए। आगे उससे कुछ कहते न बना। रामकिशोर की मा का हृदय बहुत कोमल था। वह उसके आँसू न देख सकीं। उन्हें उसकी दशा पर तरस आया। सोचा, "यह चोरी नहीं कर सकता। चोर की सूरत ही दूसरी होती है। फिर अगर इसने रुपए लिए भी हों, तो क्या थाने भिजवाने से मिल जायँगे?"

वह बेचारी रामकिशोर के पास गईं। कहा—"बेटा, उसको थाने भिजवाने से क्या होगा, क्या रुपए मिल जायँगे? सुना है, नीचे चीप साहब और एक सिपाही आए हैं। बाबूजी नहीं हैं। जाओ, चीप साहब को भगा दो, कह दो हमारे यहाँ चोरी-ओरी कुछ नहीं हुई, तुम यहाँ क्यों आए हो?"

रामकिशोर को मा की बात सुनकर संतोष हुआ। वह स्वयं चाहता था कि कहार पुलिस में न दिया जाय। उसने सोचा कि कम-से-कम अम्मा तो मेरा साथ देंगी।

उसने कहा—"मैं भी तो यही चाहता हूँ कि बेचारे की दुर्गति न हो। जाता हूँ, चीप साहब से बातें करूँगा। भगा तो नहीं सकता; क्योंकि बाबूजी के बुलवाने पर ही वे आए होंगे,

मैं हर तरह से कोशिश करूँगा कि वह पुलिस में न दिया जाय।”

३

रामकिशोर के बाबूजी ने जैसे ही इस चोरी का हाल सुना, वैसे ही उन्होंने कहार को बुलाकर उससे पूछा—“बता रुपए कहाँ रक्खे?” परंतु कहार ने यही कहा कि मैंने चोरी नहीं की। उन्होंने उसे डराया, धमकाया; पर कुछ फल न हुआ। एक तमाचा मारा, पर उसका भी कुछ असर न पड़ा। तो अब उन्हें चीप साहब को बुलवाना पड़ा। उन्हें पक्का विश्वास था कि मार से भूत भी भागते हैं। उन्होंने सोच लिया था कि यदि यह पुलिस की मार से चोरी स्वीकार कर लेगा, तो अच्छा है, नहीं तो जेल भिजवा दूँगा।

उन्होंने चीप साहब के पास आदमी भेजा। उत्तर आया कि आते हैं। जब आधे घंटे तक चीप साहब न आए, तो वह एक काम से बाज़ार चले गए। उनके बाज़ार जाने के लगभग बीस मिनट बाद ही चीप साहब एक सिपाही के साथ आ धमके। लोगों ने उन्हें कुर्सी पर बैठाया। बैठकर उन्होंने और आदमियों से चोरी के बारे में पूछना आरंभ कर दिया। उनके आने के १५ मिनट बाद रामकिशोर भी आ गया। उसे देखते ही चीप साहब दुआ-सलाम करने के बाद बोले—

“क्या आप ही के कोट से चोरी हुई थी?”

“जीहाँ, मेरा ही कोट था। तीस रुपए के नोट कोई ले गया। अच्छा है, उसी के काम आएँगे।”

“वाह! आपने भी ख़ूब कही। इसीलिये तो इतनी चोरियाँ होती हैं। अगर किसी को चोरी की सज़ा न मिली, तो उसकी हिम्मत बढ़ जाती है और वह धीरे-धीरे पक्का चोर बन जाता है। अगर पहली ही बार उसे सज़ा मिल जाय, तो फिर वह चोरी का नाम भी न लेगा।”

“सज़ा पाने से लोग और अधिक बिगड़ जाते हैं। यदि कोई एक बार जेल हो आए, तो फिर वह वहाँ जाकर पक्का बदमाश बन जाता है। अधिकतर लोग आरम्भ में ग़रीबी ही के कारण चोरी करते हैं। जब बेचारों के पास खाने को नहीं रहता, पहनने-ओढ़ने के कपड़े भी नहीं रहते, बाल-बच्चे भूखों मरते हैं, तभी वे चोरी करते हैं। उस समय उनके मस्तिष्क में अनुचित-उचित का विचार नहीं रह जाता। अगर वे दो-चार रुपयों की चीज़ें चुरा लेते हैं, तो उन पर मार पड़ती है, वे जेलों में ठूँस दिए जाते हैं। वहाँ पर उनके साथ अमानुषिक व्यवहार होता है, इधर घर में लड़के-बच्चे, बहन, भाई, माता-पिता सब भूखों मरते हैं। जब तक वे जेल से छूटते हैं, तब तक उनकी अच्छी मनोवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। समाज भी उनका तिरस्कार करता है। अंत में वे सब बुराइयाँ सीख लेते हैं—चोरी करते हैं, शराब पीते हैं। और जहाँ दो-चार बार जेल हो आए, फिर तो जेल से ज़रा भी नहीं डरते। वहाँ पर उन्हें घर से भी अधिक आराम मिलने लगता है। उन्हें जेल के अंदर भी बदमाशी करने का मार्ग मिल जाता है।”

“तो फिर आपका क्या मतलब? क्या आप यह चाहते हैं कि किसी को दंड दिया ही न जाय?”

“हाँ, मैं यही चाहता हूँ?”

“वाह, फिर तो एक दिन के अंदर ही दुनिया तबाह हो जाय, दिन-दहाड़े डाके पड़ें, चोरियाँ हों। किसी को ज़रा भी भय न रहे।”

“तो क्या इन सब बातों के रोकने का कोई दूसरा उपाय नहीं हो सकता?”

"दूसरा उपाय क्या होगा ? क्या आप यह चाहते हैं कि सबको उपदेश दिया जाय ? परंतु आपको यह समझ लेना चाहिए कि उपदेश से कहीं कुछ भी नहीं होता। सब जानते हैं कि झूठ बोलना बुरा है ; पर कितने मनुष्य हैं, जो कभी झूठ नहीं बोलते। उपदेश का असर बहुत देर तक नहीं रह सकता।"

"नहीं, मैं यह नहीं कहता कि उपदेश देने से ही बुराइयाँ दूर होंगी। मेरा तो यह कहना है कि जिन कारणों से बुराइयाँ होती हैं, उन कारणों को ही दूर कर दीजिए। चोरियाँ इसीलिये होती हैं कि लोग भूखों मरते हैं। सरकार को चाहिए कि ऐसा प्रबंध करे कि सबको खाने-पीने को मिलने लगे।"

'यह होना नामुमकिन है। और क्या आप यह समझते हैं कि ऐसा करने से दुनिया में चोरियाँ नहीं होंगी ?"

"चोरियाँ तो अवश्य होंगी, पर इतनी नहीं।"

"तब फिर दुनिया से चोरियाँ मिट नहीं सकतीं। और फिर चोरों को दंड देना ज़रूरी है।"

"पर उनके साथ अमानुषिक व्यवहार करना ज़रूरी नहीं है। ऐसा करने से आप उनका सुधार नहीं कर सकते, उलटा बिगाड़ देंगे। सरकार को चाहिए कि उन्हें शिक्षा दे और कला-कौशल सिखावे। उन्हें बिगाड़ने के बजाय डेढ़-दो साल के अंदर उनकी मानसिक एवं नैतिक शक्ति विकसित की जा सकती है। ऐसा करने से वे बदमाशी करने का नाम तक न लेंगे, और स्वतंत्रतापूर्वक अपना जीवन-निर्वाह कर सकेंगे। बहुत संभव है, उनकी वे शक्तियाँ, जो बुराई की ओर लगी थीं, अच्छाई की ओर लग जायँ, तथा वे साधारण मनुष्य से अधिक उन्नति कर संसार के इतिहास में अपना नाम अमर कर जायँ।"

"जैसा आप कहते हैं, वह न तो कभी हुआ और न हो ही सकता है। दुष्ट के साथ दुष्ट करनी चाहिए। आपकी बातें तो मेरी समझ में नहीं आतीं।"

इसी समय रामकिशोर के बाबूजी भी बाज़ा से लौट आए।

ये बातें चीप साहब की समझ में किस प्रका आतीं ? उनका जीवन तो दूसरे ही साँचे में ढ था। वह कहते थे कि चोर और डाकू बड़े नी हैं, उन्हें कड़ी-से-कड़ी सज़ा देकर ही उन अस्तित्व मिटाया जा सकता है। लेकिन य उनका अस्तित्व मिट जाता, तो शायद स अधिक विपत्ति इन्हीं के ऊपर आती-इन शान न रह जाती, इनकी छड़ी का जन्म सा न होता, मुँह से किसी को गालियाँ सुनने को मिलतीं, और न जेब ही गरम होती।

रामकिशोर के बाबूजी आते ही उनसे बो "कहिए चीप साहब, मिज़ाज़ तो ठीक हैं। आप चोरी का सब हाल तो मालूम ही हो गया होगा

"जीहाँ, मालूम तो हो गया, पर आपको कि पर शक है ?—उसी कहार पर ?"

"उसी ने चोरी की है, यह काम किसी दू का नहीं हो सकता। पर यह तो बताइए उसके साथ क्या किया जाय।"

"बस, उसे थाने में दे दीजिए। या तो व कबूल लेगा या जैसा किया है वैसा भुगतेगा।"

"पर बिना पक्का सबूत पाए आप उसे कै सकते हैं ? कोई आँखों का देखा सबूत तो है न

"हाँ, क़ानूनन तो नहीं ले सकता, पर क्या होता है। कोई दिखलाकर तो चोरी क नहीं। आप जानते ही हैं कि चोरी उसी ने वह चोर है, उसे सज़ा मिलनी ही चाहिए।

बाबूजी भी यही चाहते थे। वह केवल अपनी ओर से झूठा गवाह पेश नहीं करना चाहते थे। चीप साहब ने तो उनके मन की ही बात कह दी। वह बोले—"हाँ, बात तो ठीक है।"

चीप साहब बोले—"जीहाँ, बदमाश को तो सज़ा ज़रूर मिलनी चाहिए। अभी पंद्रह दिन की बात है, मैं ख़ज़ाने में रुपए लेने गया। गिनकर रुपए रक्खे, बीस रुपए की एक गड्डी वहीं रक्खी रह गई और मैं थाने चला आया। एक आदमी वहीं पर बैठा हुआ था, उसी ने रुपए उठा लिए। परंतु जब उससे पूछा, तो वह साफ़ इनकार कर गया। अब किसी भी डकैती के मामले में फँसाकर बीस की जगह बीस सौ ख़र्च करा दूँगा।"

रामकिशोर बाबूजी के सम्मुख चुपचाप बैठा था। वह उनकी बात को काटना नहीं चाहता था। वह यह जानते हुए कि वह बुरा कर रहे हैं, उन्हें किसी काम में रोकता न था। यहाँ तक कि वह स्वयं अच्छे-से-अच्छे काम को केवल इसीलिये नहीं करता था कि घरवाले बुरा मानेंगे। वह समझता था कि उसके सिर पर उनके ऋण का एक बोझ लदा हुआ है। यही बात उसके मार्ग में बड़ी रुकावट पैदा करती थी। लेकिन अब वह चुप न बैठ सका। वह नहीं चाहता था कि एक ग़रीब पर अत्याचार हो। इसलिये बोला—"पर यदि उसने चोरी की ही न हो? और यदि की भी हो, तो उस बेचारे को जेल भिजवाने से क्या फ़ायदा होगा? ज़्यादा-से-ज़्यादा यह कोशिश कीजिए कि अगर उसने चोरी की हो, तो स्वीकार कर ले। आपको रुपए लौटा दे, फिर उस पर और उसके घरवालों पर विपत्ति लादने से हमें क्या फ़ायदा होगा?"

पहले तो बाबूजी ने रामकिशोर की बात न मानी, पर अंत में उन्हें माननी पड़ी। रामकिशोर भी आज अपनी बात पर दृढ़ था। वह यह नहीं चाहता था कि कहार पर चीप साहब के कोड़े पड़ें। अंत में बाबूजी ने यह तय किया कि उसे सज़ा न हो, पर उससे चोरी स्वीकार कराई जाय। रामकिशोर समझता था कि डराने-धमकाने और ज़्यादा-से-ज़्यादा दो-एक घूँसे मारने से भी यदि वह स्वीकार न करेगा, तो छोड़ दिया जायगा।

बाबूजी को उसने अकेले में समझा दिया कि "यदि आप उसे थाने भेजिएगा, तो चीप साहब उससे कुछ रुपए लेकर छोड़ देंगे और कह देंगे कि मैं क्या करूँ, वह कबूलता ही नहीं।" अतः घर पर ही एक कमरे में चीप साहब के सामने कहार बुलाया गया।

कहार फुसलाया, डराया और धमकाया गया। परंतु जब इसका कुछ असर न हुआ, तो उस पर मार पड़ी। रामकिशोर इसे देख न सका। वह वहाँ से हट गया। कहार ने बाबूजी के हाथ जोड़े, पैर पड़े; पर जब तक वह चोरी स्वीकार न करता तब तक वे उसे किस प्रकार छोड़ सकते थे?

४

रामकिशोर की मा का विश्वास था कि कहार ने चोरी नहीं की। उन्होंने बाबूजी से कहा—

"क्या मालूम कि उसी ने चोरी की है?"

"अगर चोरी न करता, तो वह इतना भोला नहीं है कि तीस रुपए लाकर दे देता?"

"रुपए न देता, तो करता क्या? डरता था कि जेलख़ाने भिजवा दिया जाऊँगा। बेचारा घर के गहने गिरवी रखकर रुपए लाया। पहले तो वह तुम्हारे ही पास गहने लाया था! बेचारा कहता था कि गहने जमा कर लो और तनख़्वाह

से ३० रुपए काटते रहना। परंतु तुम उस पर उलटे गुस्सा हुए।"

"मैं उसकी सब चालाकी जानता हूँ। सोचता रहा होगा कि दया में आकर रुपए न लेंगे। गहनों का सब ढकोसला था। घर में रुपए रक्खे हैं। दो-एक दिन में गहने छुड़ा लेगा। और दिखाने के लिये यह हो गया कि उसने चोरी नहीं की।"

"मेरी समझ में तो उसने चोरी की ही नहीं फिर जैसा तुम समझो। अब उसे नौकरी से अलग न करना, तुम्हीं ने उसे विश्वास दिलाया था कि अगर चोरी स्वीकार कर लोगे, तो नौकरी से न हटाऊँगा।"

"हाँ, अभी तो न हटाऊँगा, पर सोचता हूँ कि दो-एक महीने में कोई दूसरा आदमी तलाश कर लूँगा। मैं नहीं चाहता कि मेरे घर में चोर रहे। आज उसने तीस रुपए चुराए। कल वह बड़ी चोरी कर सकता है। उसका क्या विश्वास?"

"विश्वास करने से धोखेबाज़ भी विश्वासपात्र बन जाते हैं, और अविश्वास करने से विश्वासपात्र भी धोखा देने लगते हैं।"

"ख़ैर, आप मुझे शिक्षा देने की कृपा न कीजिए। मैं स्वयं समझता हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए।"

इसके लिये रामकिशोर की मा के पास कोई उत्तर नहीं था। बेचारी पहले ही डरती थीं, समझती थीं कि पुरुषों के कामों में दख़ल देने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। जानती थीं कि दुनिया में उन्हें किसी को भी समझाने का कोई हक़ नहीं है। स्त्रियों को यदि किसी के समझाने का हक़ है, तो अपने ही को। उन्होंने भी यह सोचकर अपने को समझा लिया कि हाँ, ठीक है, जैसा वह कहते हैं, वही ठीक होगा। वह अधिक बुद्धिमान् हैं, अपना कर्तव्य अच्छी तरह जानते हैं। मैं भला कैसे कह सकती हूँ कि कहार ने चोरी नहीं की। मैं उसके पेट का हाल क्या जानूँ!

वह कभी किसी बात में अपने पति से बहस नहीं करती थीं। आज उनके हृदय में उस बेचारे कहार पर बहुत दया आई, इसीलिये उन्होंने इतनी बातें कीं। इन बातों में भी बहस करने का उनका विचार न था। उन्होंने तो साहस कर केवल अपने विचार प्रकट किए थे। इसी में उन्हें संतोष था। अपने पति को वह किसी प्रकार का मानसिक आघात नहीं पहुँचाना चाहती थीं। वह उनके मार्ग में रोड़े न अटकाकर फूल ही बिछाना चाहती थीं। ऐसा करने के लिये वह सब कुछ त्याग सकती थीं। अपने अधिकारों को स्वयं अपने पैरों से कुचल सकती थीं। यदि सच पूछा जाय, तो उन्हें किसी अधिकार की आवश्यकता न थी, वह अपने ऊपर भी अपना अधिकार नहीं चाहती थीं। उनके हृदय में जो तूफ़ान आया था, वह ज्यों-का-त्यों बैठ गया। वायुमंडल पहले की तरह फिर शांत हो गया।

× × ×

रामकिशोर ने सब कुछ देखा। कहार पर मार पड़ते उसने अपने चर्मचक्षुओं से तो अच्छी तरह नहीं देखा, परंतु कमरे के अंदर—कमरे के अंदर नहीं—अपने मस्तिष्क के अंदर उसने उसके चीख़ने, हाय करने और कराहने को सुना तथा चीप साहब के निर्दय प्रहारों को भी देखा।

एक ग़रीब और उसकी समझ में निरपराध व्यक्ति पर यह अत्याचार! और यह सब उसी के कारण हुआ! यदि वह रुपए ठीक तौर से रखता, तो यह सब क्यों होता? वह सोचता था, अगर इसकी जगह मैं होता, तो शायद डूब मरता। वह नहीं समझता था कि मामला यहाँ तक

जायगा कि उससे रुपए इस प्रकार वसूल किए जायँगे ।

अब क्या करना चाहिए, यही उसके सामने प्रश्न था । क्या वह चुपचाप बैठा रहे ? कहार के पिटवाने में उसका कोई हाथ नहीं था । उसका बस चलता, तो वह उससे कुछ कहता तक न । अतएव वास्तव में उसका कोई दोष न था । परंतु इससे क्या होता है ? वह तो यह समझता था कि मेरी लापरवाही से ही इसकी यह दुर्दशा हुई है, और अब मेरा कर्तव्य है कि मैं इसके लिये कुछ-न-कुछ अवश्य करूँ । वह अपनी मा की तरह चुप बैठनेवाला व्यक्ति न था । हाँ, वह दूसरों पर अपना अधिकार नहीं समझता था, परंतु अपने ऊपर तो वह अपना ही अधिकार मानता था । वह यह जानता था कि उसे अपने बाबूजी का कहना मानना चाहिए, परंतु वह यह भी भली भाँति जानता था कि कहार के प्रति उसका क्या कर्तव्य है ।

परंतु वह जो कुछ करना चाहता था, वह कर सकता था या नहीं ? घर की बातों में उसका कोई हाथ न था । घर का एक पैसा भी वह छू न सकता था । उसकी कुछ समझ में न आया कि क्या करे । बेचारा बड़ी देर तक बैठा इसी के बारे में सोचता रहा ।

५

इस चोरी के कारण रामकिशोर सवेरे की गाड़ी से इलाहाबाद न जा सका, अतः अब उसने शाम की गाड़ी से जाना निश्चय किया ।

घर से चलने में अब केवल पंद्रह मिनट रह गए थे कि उसने कहार को चुपचाप अपने कमरे में बुलाया ।

कहार बेचारा सहम गया । उसकी समझ में न आया कि रामकिशोर ने उसे क्यों बुलाया । रुपए तो ले ही लिए गए थे, अब उससे क्या काम है ? फिर भी वह संकेत पाते ही चुपचाप चला गया । रामकिशोर ने कहा—

"मुझे बहुत दुःख है कि मेरी लापरवाही के कारण तुम पर इतनी आफ़त आई ।"

कहार ने कुछ उत्तर न दिया, परंतु उसने मन में कहा—हाँ आफ़त तो आई, पर इससे आपको क्या मतलब ?

रामकिशोर ने फिर कहा—"मैं नहीं चाहता था कि बाबूजी चीप साहब को बुलाते । मेरा बस चलता, तो यह कुछ न होने पाता । भला तुम्हीं बताओ मैं क्या कर सकता था ।"

इस बार भी उत्तर देने का उसे साहस न हुआ । परंतु उसने अपने मन में कहा—कर तो सब कुछ सकते थे, परंतु यों कहो कि कुछ करना न चाहते थे । अब मीठी-मीठी बातें बनाने चले हैं । मैं सब समझता हूँ । मैं आपकी बातों में नहीं आ सकता ।

यद्यपि उसने कुछ उत्तर न दिया, पर उसकी मुखाकृति से रामकिशोर साफ़-साफ़ समझ गया कि वह उसकी बात से असंतुष्ट है ।

इस बार रामकिशोर ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—"भाई, तुम नहीं जानते कि मुझे कितना दुःख है । मैं ज़्यादा तो नहीं कर सकता, पर जिस प्रकार हो सकेगा तीस रुपए जमा करके तुम्हें दे दूँगा । तुम ज़रा भी दुःख न करो । जो कुछ हो गया वह अब हो गया । उसके लिये दुःख करने से क्या होगा ? अभी यह दस रुपए का नोट लो, और मैं जब-जब छुट्टियों में आऊँगा, तुम्हारे लिये रुपए ज़रूर लाऊँगा । यदि तुम्हारे पास कुछ रुपए हों, तो गहने छुड़वा लो, नहीं तो

मैं जल्दी-से-जल्दी छुड़वाने की कोशिश करूँगा। तुम्हारे ऊपर बहुत बुरा कलंक लग गया; और मेरे ही कारण—इसके लिये मैं हाथ जोड़कर तुम से क्षमा चाहता हूँ।"

कहार हक्का-बक्का हो गया। उसके मुँह से एक शब्द भी न निकल सका। रामकिशोर की आँखों से आँसू टपकने लगे।

अब वह अधिक देर तक न ठहरा। इक्के पर सामान लद चुका था। वह आँसू पोछकर जैसे ही कमरे से निकला, वैसे ही किसी ने उसे पुकारा। वह समझ गया कि इक्कावाला जल्दी मचा रहा है। ज़ीने से नीचे उतरा और बाबूजी के चरण-स्पर्श कर इक्के पर सवार हो गया। इक्के पर दो सवारियाँ पहले ही से बैठी थीं। उसके बैठते ही घोड़ा चल दिया।

इधर कहार नोट को मुट्ठी में लिए रामकिशोर के मुँह की ओर देखता ही रह गया। पहले तो बेचारा समझ ही न सका कि क्या हो रहा है। जब तक सब बातें उसकी समझ में आईं, जब तक उसने रामकिशोर का सच्चा रूप देखा, तब तक वह यह निश्चय न कर सका कि क्या करे। और जिस समय उसे पश्चात्ताप हुआ, जिस समय उसकी इच्छा हुई कि रामकिशोर के पैर पकड़कर अपने अपराध की माफ़ी माँगे और आँसुओं की धारा से अपने हृदय को साफ़ करे, उस समय तक रामकिशोर का इक्का चल पड़ा था।

रामकिशोर अपने हृदय का तूफ़ान उस बेचारे दोषी कहार के हृदय में छोड़ गया था। यह तूफ़ान दो-चार-छः घंटे या चार दिनों के अंदर शांत होनेवाला तूफ़ान न था। वह तो तभी शांत होगा जब रामकिशोर घर लौटेगा। क्या संसार में चोर को इससे भी कड़ा दण्ड दिया जा सकता है?

दामोदरदास

भारतीय वीर-देवियाँ *

१

केवल न कोमल कमल रहती हैं सदा,
काम पड़ता तो वज्र-रूप बन जाती हैं;
'रसिकेंद्र' हाथ दिखलातीं काट-छाँटवाले,
भूतल में वैरियों के बदन बिछाती हैं।
क्रोध करतीं तो जल उठती कराल ज्वाला,
पल में प्रबल खल-मंडल जलाती हैं;
शक्ति है अशेष देश भारत की देवियों की,
वीर-वेश धारतीं तो प्रलय मचाती हैं।

२

सौख्य की तुला में तुलतीं जो सुमनों से सदा,
डुलतीं समीर लगने से सुकुमारियाँ;
खींचती हैं चित्त में पवित्र पति-भक्ति-चित्र,
सींचती हैं प्रेम-वाटिका की नित्य क्यारियाँ।
वे ही जब वीरता की मूर्ति बनती हैं, तब—
धर्म पर आहुति की करतीं तयारियाँ;
अमरों की प्यारियाँ भी लेतीं बलिहारियाँ हैं,
होतीं पूज्य भारत में ऐसी वीर-नारियाँ।

× × ×

३

बरछी-बरौनियों से वेधती विमूढ़-बल,
कुटिलों को काटती कटाक्ष की कटारी से;
लंपटों की लालसा लचाती लाल लोचनों से,
अंत अधमों का करती हैं ओज-आरी से।
देख देह-दीप्ति दंभियों का दर्प दूर होता,
पातकी परास्त होते पति-प्रेम प्यारी से;
तरणि-सा तेज तचता है तरुणी का तब—
वैरी बन कौन बचता है वीर-नारी से?

'रसिकेंद्र'

---

* अप्रकाशित 'पारिजात-हरण'-नामक खंड-काव्य से

—लेखक

वायोलिन

प्राचीन आचार्यों के मत से वाद्य साढ़े तीन प्रकार के हैं—(१) चाम (२) तार (३) हवा से बजनेवाले, और आधे में मंजीरा, झाँझ-जातीय वाद्य माने गए हैं। विदेशी लोगों के साथ-साथ भारत में भी वहाँ के बाजे आ पहुँचे। हारमोनियम, प्यानो, वायोलिन, मेंडोलिन, कार्नेट, क्लेरियोनेट इत्यादि अँगरेज़ी राज्य के साथ-साथ भारत में आए हैं। इन दिनों भारतवर्ष में हारमोनियम का ख़ूब प्रचार है। छोटे-छोटे गाँवों तक में यह पहुँच चुका है। इसके प्रचार का एक मुख्य कारण यह है कि इसमें ज़्यादा बुद्धि ख़र्च करने की ज़रूरत नहीं है। स्वरों को मिलाने या दुरुस्त करने की कोई ज़रूरत नहीं पड़ती। धम्मन खोलकर ज्यों ही उसे दबाया कि आवाज़ निकली। हमेशा हर घड़ी तैयार है। सिर्फ़ बजाना सीखने की ज़रूरत है। सितार या सारंगी की तरह खूँटियाँ मरोड़कर स्वर मिलाने की ज़रूरत नहीं है।

पहले हारमोनियम का प्रचार योरप में बहुत ज़्यादा था। अब वहाँ इसका स्थान प्यानो ने छीन लिया है। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि हारमोनियम के कर्कश स्वर मस्तिष्क को हानि पहुँचाते हैं। भारत में हारमोनियम का प्रचार बहुत बढ़ रहा है। जर्मन या अमेरिकन रीड के सस्ते हारमोनियम बहुत बिकते हैं। इनसे दिमाग़ को अत्यंत हानि पहुँचती है। महँगे पेरिस के सरिल स्वर के हारमोनियम ही, जो बहुत महँगे होते हैं, अच्छे ट्यून किए हुए हों, तो हानि कम पहुँचाते हैं। इसीलिये विदेशी लोगों ने हारमोनियम का बुरी तरह बहिष्कार कर प्यानो बजाना शुरू कर दिया है। प्यानो महँगा वाद्य है, इसलिये सर्वसाधारण इसे ख़रीद सकने में भी असमर्थ हैं।

'वायोलिन', जिसके बजाने की विधि हम लिख रहे हैं, तंतुवाद्य है। यह वाद्य विदेशी है। इसका भारत में बंगाल को छोड़कर बहुत कम प्रचार है। यहाँ तक कि लोग इसके नाम तक से परिचित नहीं हैं—देखना तो दूर रहा! बंगाल में इसका बहुत प्रचार है। वहाँ लोग घर-घर इसे बजाते देखे जाते हैं। यह विदेशों से भी बनकर आता है और अब भारत में भी बनने लगा है। चित्र नं० १ के देखने से इसकी सूरत-शक्ल का पता लग जायगा। इस बाजे को अँगरेज़ी में वायोलिन (Violin) और भारतीय भाषा में बेला कहते हैं। हमारे देश में भी इस क़िस्म का एक बाजा होता है। उसे चिकारा कहते हैं। यह चिकारे का सुधरा हुआ रूप कहा जा सकता है। सारंगी भी इसी प्रकार की होती है, किंतु बहुत भिन्नता

सारंगी में नीचे फ़ौलाद या पीतल के तार होते हैं, जिन्हें तुरप कहते हैं, और ऊपर के तार ताँत के होते हैं। वायोलिन में सिर्फ़ चार ही तार होते हैं—देखिए चित्र नं० १ में चार तार साफ़ दिखाए गए हैं। इसका पहला तार रुपहला होता है और शेष तार ताँत या फ़ौलाद के मोटे या पतले क्रम से लगते हैं, देखो चित्र में अ, इ, उ और ए। ये तार बाज़ारू तार नहीं होते, ख़ास करके इसी के लिये तैयार किए जाते हैं, जो वायोलिन बेचनेवालों के यहाँ से मोल मिल सकते हैं।

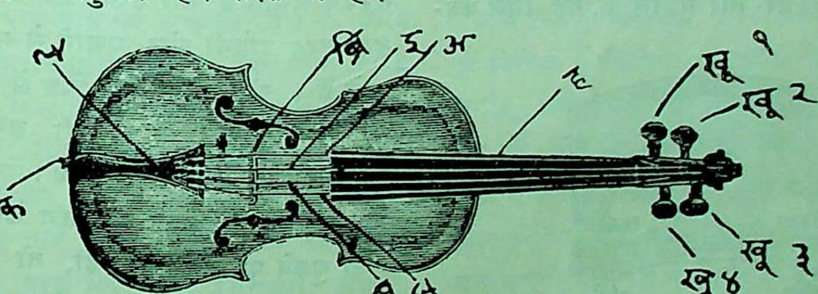

चित्र० नं० १

तार चढ़ाने का तरीक़ा यह है कि टेलपीस (Tail piece) (चित्र में देखो 'टे') में चार छिद्र होते हैं। उन चारों छेदों में एक-एक तार डाल देना चाहिए। इन तारों के एक छोर पर धातु की एक ऐसी छोटी-सी चीज़ बँधी रहती है, जो तारों को वहाँ से निकलने नहीं देती। यदि न बँधी हों, तो आप तार के सिरे पर गाँठ लगा दें या ऐसी कोई वस्तु बाँध दें, जिससे तार छिद्रों में अड़ जायँ। अब पहले तार को ब्रिज (देखो चित्र में ब्रि) के पहले गड्ढे में से ले जाकर खूँटी नं० १ (देखो चित्र में खूँ० १) के छेद में डालकर घुमाओ और कस दो। इसी प्रकार दूसरे तार को ब्रिज पर से ले जाकर दूसरी खूँटी में और तीसरे को तीसरी खूँटी में तथा चौथे तार को चौथी खूँटी में लगा दो। यहाँ समझाने के लिये प्रत्येक खूँटी पर नंबर डाल दिए गए हैं। अ तार खूँ० १ पर, इ तार खूँ० २ पर, उ तार खूँ० ३ पर और ए तार खूँ० ४ पर होगा। खूँटियों पर अच्छी तरह लिपट सके, इसलिये तार हमेशा ४-६ अंगुल बड़ा रखना चाहिए।

इस बाजे में चार तारों की चार खूँटियाँ होती हैं। इन्हें अँगरेज़ी में पेग्स (Pegs) कहते हैं। कुछ लोग इन्हें चाबी कहते हैं। जिस काली पटरी के ऊपर से ये तार खूँटियों तक पहुँचते हैं, उस भाग को टंग (Tongue) कहते हैं। देखो चित्र नं० १ में 'टे'। टेलपीस और टंग के बीच में जो एक लकड़ी का टुकड़ा-सा खड़ा किया जाता है और जिस पर तार गुज़रते हैं, वह ब्रिज कहलाता है। इसे हिंदी-भाषा में घोड़ी कह सकते है वायोलिन के चित्र नं० १ में यह साफ़ नहीं दिख पड़ती, परंतु चित्र नं० २ देखिए। यह ब्रिज का चित्र है यह ब्रिज कहाँ लगाया जाना चाहिए ? यह बात चि नं० १ में देखी जा सकती है। वायोलिन के पेंदे एक छोटा-सा आँकड़ा होता है। देखो चित्र नं० में 'क'। टेलपीस एक ताँत के टुकड़े से इस आँकड़े फँसाया जाता है।

तार चढ़ाने की दो पद्धतियाँ हैं—(१) पाश्चात्य औ (२) भारतीय। पाश्चात्य पद्धति में पहला तार रु हला होता है और शेष तार मोटी-पतली ताँत के अ से लगते हैं। भारतीय पद्धति में पहला तार स्पा और शेष तार फ़ौलाद के लगाए जाते हैं। इन दोनों पद्धतियों में से भारतीय पद्धति अच्छी है; क्योंकि ताँत तारों से जब मींड़ निकाली जाती है, तो उसके रेशे नि लने लगते हैं, किंतु तारों में यह दोष नहीं आने पा साथ ही भारतीय पद्धति के तारों से, संगीत में मा उत्पन्न होने के कारण, वह आकर्षक बन जाता है।

यह बाजा जिस वस्तु से बजाया जाता है, उसे (Bow) कहते हैं। हिंदी में इसे गज़ कहा जा सक है। सारंगी बजाने के गज़ से यह अधिक लंबा है। देखो चित्र नं० ३। गज़ के एक सिरे को जहाँ का अंक लिखा गया है, बाईं ओर घुमाने से नं० २ का सरकने लगता है और उसमें लगे बाल तंग हो जाते इसी तरह दाहनी ओर घुमाने से गज़ के बाल ढीले जाते हैं। अंक तीन इस चित्र में यह बता रहा है यह भाग अर्थात् सीधी छड़ी लकड़ी है और की ओर बाल हैं। देखो अंक ४। जब वायोलिन ब हो, तब गज़ के बालों को तंग कर लेना चाहिए बजा चुकने पर जब रखना हो, तो बालों को रूमा पोछकर और ढीला करके रख देना चाहिए। ब पहले गज़ के बालों को राजिंस (Rosins) पर

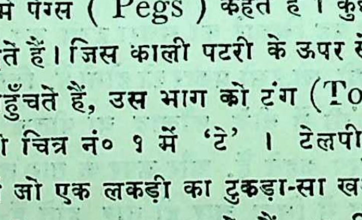

चित्र नं० २

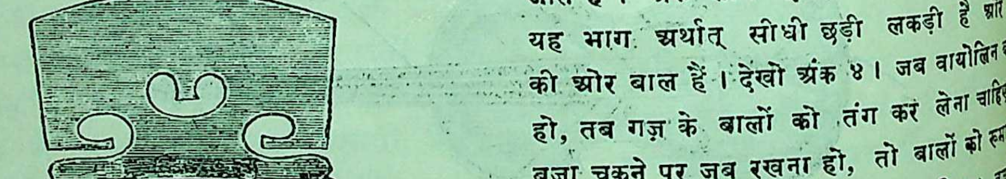

चित्र नं० ३

धीरे घिस लेना चाहिए। राजिंस को हिंदी में बेरची या बिरोजा कहते हैं। किसी भी वाद्ययंत्र-विक्रेता के यहाँ से राजिंस दो-तीन आने में ख़रीदा जा सकता है।

अब वायोलिन के स्वरों को मिलाना चाहिए। पहले तार को अर्थात् चित्र नं० १ में दिखाए गए 'अ' तार को स्वर में मिला लो। अर्थात् उसका स्वर क़ायम कर लो। अब दूसरा तार अर्थात् चित्र नं० १ के 'इ' तार को पहले तार के स्वर के पंचम में मिला लो। तीसरे तार को पहले तार के तीव्र स्वर में अर्थात् टीप में मिलाओ। अर्थात् वह पहले तार के स्वर से दुगुन स्वर में हो। इसी तरह दूसरे तार में चौथे तार को दुगुन में मिलाओ। समझने के लिये यों मान लीजिए कि हारमोनियम के प्रथम सप्तक के षडजस्वर में पहला तार, पंचम में दूसरा तार और दूसरे सप्तक के षडज में तीसरा तथा पंचम में चौथा मिला लो। पहलेपहल बिना किसी स्वर-वाद्य के वायोलिन का मिला सकना नौसिखिए के लिये कठिन होता है, इसलिये हारमोनियम आदि किसी बाजे से मिला लेना चाहिए और धीरे-धीरे बिना बाजे के तारों को स्वर में मिला सकने का अभ्यास बढ़ाना चाहिए।

वायोलिन बजने के लिये तैयार हो गया। अब उसे किस प्रकार पकड़ना चाहिए, यह बताना बाक़ी रह गया। इसके पकड़ने की दो तरकीबें हैं—एक देशी और दूसरी विदेशी। देशी पद्धति में वायोलिन ठुड्डी के नीचे दबा रहकर, बाएँ हाथ पर नाक की सीध में सामने रक्खा जाता है और विदेशी पद्धति के लिये चित्र नं० ४ देखिए। वायोलिन किस प्रकार पकड़कर बजाना चाहिए, यह बात चित्र नं० ४ से आपको भली भाँति समझ में आ सकती है। चित्र में अच्छी तरह देख लीजिए कि टंग के नीचे की लकड़ी के बाएँ ओर बाएँ हाथ का अँगूठा रहेगा और दाहनी तरफ़ शेष चारों उँगलियाँ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका टंग के दाहनी बाजू रहेंगी। इन्हीं उँगलियों को यथास्थान तारों पर रखने और उठाने से वायोलिन में स्वरों की उत्पत्ति होती है।

बाजे को बाएँ हाथ से थाम लो। और दाहने हाथ में गज़ (Bow) उठा लो। गज़ को उस जगह से पकड़ना चाहिए, जहाँ उसके दाहने भाग पर अँगूठा रखने के लिये स्थान बना होता है। एक तरफ़ अँगूठे का पहला पोर जमाकर दूसरी ओर तीन उँगलियाँ गज़ की लकड़ी पर झुकी हुई रखनी चाहिए और कनिष्ठिका को गज़ के स्क्रू (Screw) पर रखना चाहिए। गज़ को बिरोजा (Rosins) लगा लो। बिना बिरोजा लगाए आवाज़ अच्छी नहीं निकलेगी। ब्रिज और टंग के बीच में गज़ को रखकर चलाना चाहिए। इधर-उधर होने से अच्छी आवाज़ नहीं निकलती। ब्रिज की ओर गज़ जाने पर चर्र-चर्र की आवाज़ निकलने लगती है। गज़ को दूसरे सिरे से नौ इंच तक के हिस्से को ज़ोर से चलाना चाहिए। ऐसा करने से स्वर पर अधिकार हो जाता है। वायोलिन की आवाज़ कई दिनों तक बजने के बाद खुलती है।

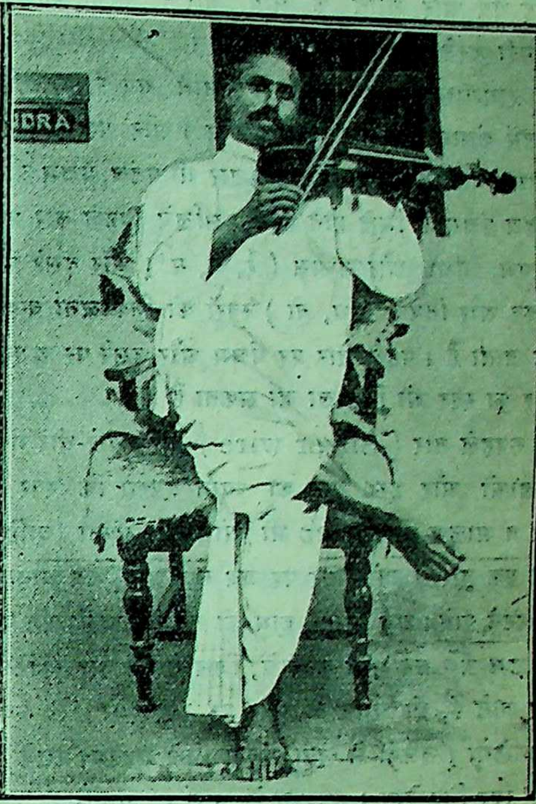

चित्र नं० ४

अब इस बाजे में से स्वर निकालना है, इसलिये उँगली रखकर स्वर निकालने का अभ्यास करो। इसमें परदे नहीं होते, इसलिये स्वर बाँधना बजानेवाले की उँगलियों और कानों पर अवलंबित है। पहलेपहल

बड़े धैर्य और शांति के साथ आरंभ करना चाहिए, जल्दी करने से काम बिगड़ जायगा।

रागशास्त्र में मुख्य स्वर सात मानें गए हैं। पाँच इनमें कोमल होते हैं। षडज (स्वर) और पंचम कभी कोमल नहीं बनते। वायोलिन के तार भी षडज, पंचम और षडज पंचम में मिले होते हैं। इसलिये पहले तार पर ऋषभ, गंधार और मध्यम (रे, ग, म) और दूसरे पर धैवत और निषाद (ध, नी) स्वरों को निकालना बाक़ी रह जाता है। पहले तार पर पंचम और दूसरे पर अगले तार का स्वर भी निकाला जा सकता है।

रुपहले तार (Silver wire) पर धीरे-धीरे गज़ चलाओ और इस बात का ध्यान रक्खो कि स्वर में टूट न मालूम हो और यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि एक तार से दूसरे तार पर जब गज़ आवे, तब आवाज़ न टूटने पावे। अब दाहने हाथ की तर्जनी उँगली टंग पर के उस ऊँचे उठे भाग के नीचे, जिस पर से तार खूँटियों पर जाते हैं, दो अंगुल के अंतर पर रखने से 'रे' स्वर निकलेगा। तर्जनी से सवा अंगुल नीचे मध्यमा रखने से 'ग' स्वर निकलेगा। मध्यमा के पास ही अनामिका रख देने से 'म' स्वर निकलेगा। अब सब उँगलियाँ उठाकर पास के दूसरे तार पर गज़ लाइए, यह पंचम 'प' है। इस दूसरे तार पर भी 'रे' निकालने की तरह दो अंगुल दूरी पर उँगली रखिए, 'ध' बन जायगा और उससे सवा अंगुल दूरी पर मध्यमा उँगली रखकर 'नी' और उसी के पास अनामिका रखकर 'सा' स्वर निकाल लेवें। इस प्रकार सा, रे, ग, म, प, ध, नी, एक सप्तक बन गया। अब शेष दो तारों पर भी इसी तरह सप्तक निकालो।

यह शुद्ध स्वरों के सप्तक निकालने की विधि बताई गई है। कोमल निकालने के लिये उँगलियों को शुद्ध स्थान से आगे-पीछे सरकाकर उनका अभ्यास कर लेना चाहिए।

अब हम आगे थोड़ा-बहुत आरंभिक सरगम देना चाहते हैं, इसलिये उनके विषय में यहाँ कुछ संकेतों को निश्चय कर लेना ज़रूरी है। हम पहले सप्तक के नीचे अक्षरों के बिंदु रक्खेंगे, मध्यम-सप्तक के अक्षरों पर कोई चिह्न न होगा। और टीप (तार) सप्तक के अक्षरों पर ऊपर बिंदु रक्खेंगे। कोमल के लिये '^' ऐसा चिह्न रक्खा जायगा। इससे अधिक झगड़े में हम नौसिखियों को डालना ठीक नहीं समझते। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ें, त्यों-त्यों अपना अभ्यास और अध्ययन बढ़ाते जायँ। प्रत्येक वाद्य के सरगम एक ही होते हैं। ऐसा नहीं हो सकता कि हारमोनियम के सरगम वायोलिन पर बजाने से वह न बजे। आगे चलकर किसी भी पुस्तक से सहायता ली जा सकती है। आरंभ में तो वायोलिन पर सरगम ख़ूब तैयार हो जाना चाहिए। 'सा' से 'नी' तक के चढ़ाव को राग-शास्त्र में आरोह और 'नी' से 'सा' तक के उतार को अवरोह कहते हैं। वायोलिन सीखनेवालों को सबसे पहले आरोह और अवरोह का ख़ूब अभ्यास कर लेना चाहिए। बाद में नीचे लिखी तरह सरगम तैयार कर लें।

(१) सारे. गम, पध, निसां

सांनी, धप, मग रे सा

(२) सारे सारेग, रेग रेगम, गम गमप, मप मपध पध पधनी, धनी धनी सां।

सांनी सांनीध, नीध नीधप, धप धपम, पम पमग, मग मगरे, गरे गरेसा।

(३) सारेग, रेगम, गमप, मपध, पधनी, धनीसां। सांनीध, नीधप, धपम, पमग, मगरे, गरेसा।

(४) सारेगम, रेगमप, गमपध, मपधनी, पधनिसां। सांनीधप, निधपम, धपमग, पमगरे, मगरेसा।

एक-एक गज़ के खिंचाव में एक-एक बोल निकलना चाहिए। जब चार-चार स्वर निकलने लगें, तब पाँच-पाँच छः-छः और सात-सात एवं आठ-आठ तक एक गज़ में बजाने का अभ्यास कर लेना चाहिए।

वायोलिन पर गायन बजाने के पूर्व नीचे लिखे सरगमों का अच्छा अभ्यास कर लेना चाहिए। ऐसा करने से उँगलियाँ अच्छी तरह चलने लगेंगी—

(१) सारे गरेसा

(२) सारेगम गरेसा

(३) सारेगमप मगरेसा

(४) सारेगमपध पमगरेसा

(५) सारेगमपधनी धपमगरेसा

(६) सारेगमपधनीसां नीधपमगरेसा

(७) सारेगमपधनीसांरें, सांनिधपमगरेसा

(८) सारेगमपधनीसांरेंगं रेंसांनीधपमगरेसा

(९) सारेगमपधनीसांरेंगंमं गरेंसांनिधपमगरेसा

(१०) सारेगमपधनीसांरेंगंमंपं मंगंरेंसांनिधपम

हाथ की अच्छी तैयारी हो जाने पर गायन बजाने का अभ्यास आरंभ करना चाहिए। सबसे पहले, सीधे और सरल गायन निकालनें चाहिए। फिर धीरे-धीरे आगे बढ़ते जाना चाहिए। यहाँ हम किसी गायन का सरगम देकर व्यर्थ ही स्थान नहीं रोकना चाहतें। और यदि एक-दो सरगम लिख भी दें, तो उससे लाभ भी क्या होगा? जिन्हें आगे जाननें की इच्छा हो, वे किसी भी ऐसी पुस्तक से, जिसमें राग-रागिनियों के सरगम लिखे हों, सहायता ले सकते हैं। हारमोनियम सिखाने की पुस्तकों में बहुत-से सरगमें होंगे, वे ही सरगमें वायोलिन पर बजाने से राग-रागिनियाँ बन जायँगे। हारमोनियम और वायोलिन के सरगमों में कोई भिन्नता नहीं है। आशा है, पाठक इस लेख से लाभ उठावेंगे।

गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इन्द्र"

कोकिल के प्रति—

बैठि अटान लौं ऊँची सिखान पै,
टेरिबे में तो कछू छति नाहीं;
भौंर की भीरनि मौरनि के मिस,
गाओ बसंत के गीत सदाहीं।

वे दिन बीते, पिरीते कहाँ, उन-
की तो रही कहनाउति नाहीं;
ये चढ़ि मेघ जुड़ावत भेकन,
रावरी तो सुधि आवति नाहीं।

मातादीन शुक्ल

मयूर-नृत्य

सुनि घहरनि धुनि गहिरि घटान केर,
मोर मतवारे भए प्रेम की तरंग में;
विपिन में बागन में नगन में हिलि-मिलि,
चुंबत अलिंगत कलोलत उमंग में।

नैन सुखवारे, नैनछापवारे पुच्छ पच्छ,
सुंदर फुलाए फहराए नाचैं रंग में;
हिय हुलसावैं मन मोद उपजावैं सिव,
लखत अनंद सब पावैं अंग-अंग में।

शिवनंदनसहाय

खोज

राका पट घूँघट रचाइ रुचिरानन पै,
प्रकृति-वधूटी दुरी प्रबिसि प्रतीची मैं;
झलकि परे जे जल-बिंदु अँखिया तैं वाके,
बिखरि परे ते नभ निलय दिशीची मैं।

ताके खोजिबे को कर लीन्हें मनि-दीप-ज्योति,
आकुल कढ़्यो है कौन उमँगि उदीची मैं;
पावत न खोज चोज वारो बढ़ि रोज-रोज,
हेरत हनोज बिश्वराट की बगीची मैं।

लक्ष्मीनारायणसिंह 'ईश'

गोलमेज़-सभा के लिये आयोजन

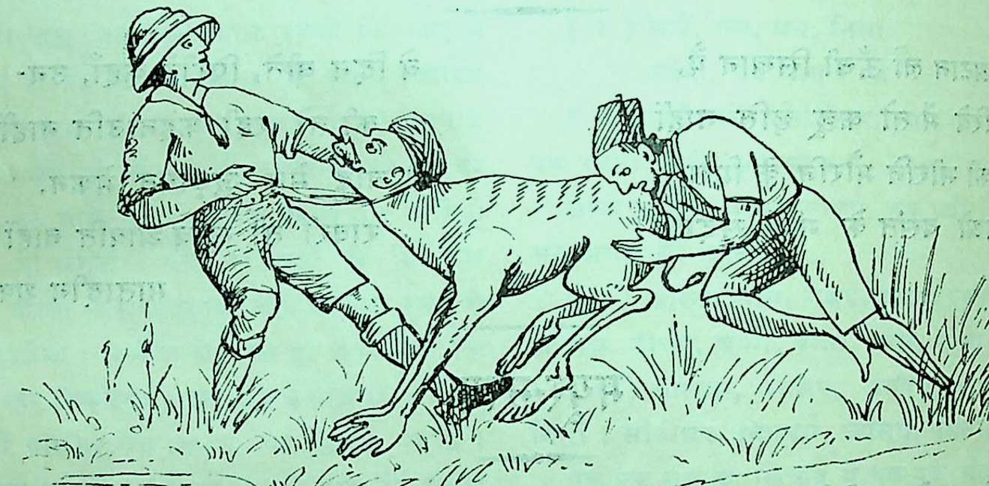

आलोचना और पुस्तक-परिचय

न्यायप्रदीप—लेखक, साहित्यरत्न श्रीदरबारीलाल न्यायतीर्थ ; प्रकाशक, साहित्यरत्न-कार्यालय, जुबिलीबाग, तारदेव, बंबई ; पृष्ठ-संख्या १३६ ; मूल्य एक रुपया ।

वास्तव में यह बड़े खेद की बात है कि हिंदी में दर्शन-ग्रंथों का अभाव-सा है । संस्कृत में दर्शन-शास्त्र के प्रत्येक विभाग में ऐसे अनेक ग्रंथ हैं, जिनको सरलता-दुरुहता के क्रम से प्रत्येक श्रेणी का विद्यार्थी पढ़ सकता है। प्रवेशिका के विद्यार्थी के लिये यदि तर्क-संग्रह मौजूद है, तो क्रम से सीढ़ी पार करते हुए जब वह आचार्य बन जाता है, तो उसके लिये शक्तिवाद रक्खा हुआ है । मीमांसा-परिभाषा से श्लोकवार्तिक तक ग्रंथों की सोपान-परंपरा बनी हुई है, जिन पर क्रमशः पाद-विन्यास करते हुए कोई भी पांडित्य के परम शिखर पर पहुँच सकता है । वेदांत, व्याकरण, अलंकार—सभी इसी प्रकार कृत-तीर्थ हैं । हद में भी इसी प्रकार से साहित्य-निर्माण की ओर जिस दिन संगठित रूप से हिंदी-भाषा-भाषी विद्वान् ध्यान देंगे, उसी दिन हमारी मातृभाषा में छोटे-बड़े सबके लिये सत्य-अर्थ को बतानेवाले प्रामाणिक ग्रंथ मिल सकेंगे । अभी तो सर्वत्र उच्छृंखलता है । प्रत्येक दर्शन के पृथक्-पृथक् छः विद्वान् भी अपने शास्त्र के लिये इस प्रकार क्रम-श्रृंखलित ग्रंथमाला निकालने पर ध्यान दें, तो बहुत शीघ्र इस अभाव की पूर्ति हो सकती है । इतना भूमिकारूप में है ।

प्रस्तुत ग्रंथ न्याय-दर्शन की प्रवेशिका श्रेणी से कुछ ऊँचे विद्यार्थियों के लिये अच्छा है । ग्रंथकार का कहना यह है कि उन्होंने 'अनेक शास्त्रों का सहारा लेकर प्रत्येक विषय पर बुद्धि के अनुसार चिंतन किया है, उसके अनुसार जो सामग्री उपलब्ध हुई, वही इसमें रक्खी गई है। फिर भी इसमें बहुत-सी त्रुटियाँ और अशुद्धियाँ रह गई होंगी । उनके लिये क्षमा माँगने के सिवा और क्या किया जा सकता है ?' हो सकता है कि लेखक ने ग्रंथ के लिखने में बहुत परिश्रम किया हो, पर वह अपने प्रयत्न में सफल नहीं हुए। मुख्य त्रुटि यह है कि उन्होंने ग्रंथ की कोटि या कक्षा (Standard) का ध्यान नहीं रक्खा । कहीं लक्षण ही लिखकर छोड़ दिए हैं, उदाहरण नहीं दिए। कहीं लक्षणों को भी स्पष्ट करने की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया गया। लेखक कुछ

जल्दी में लिखते हैं। न्याय का विषय यों ही बहुत सूखा है, उसको यदि पल्लवितं न किया जाय, तो बिलकुल ही नीरस हो जाता है। कहीं (पृ० ११ पर) वह शास्त्रार्थ में इतना चले गए हैं कि विना आचार्य के सिद्धांत सुगम नहीं हो सकते। पुस्तक को भिन्न-भिन्न वादों का क्रीड़ा-स्थल न बनाकर तर्क-शास्त्र की परिभाषाओं को ही विशेष स्पष्ट और निश्चित रूप से बताना चाहिए। किन्हीं अंशों में साहित्यरत्नजी ने इस ओर ध्यान दिया है, फिर भी दूसरे संस्करण में इसी ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। न्याय एक ऐसा विषय है, जिसमें आधुनिक लेखक को नया कुछ नहीं कहना है। उसे पूर्व-निर्धारित परिभाषाओं और लक्षणों को ही स्पष्ट करने की ओर विशेष ध्यान देना उचित है।

लेखक ने जैन-न्याय पर भी तीन अध्याय लिखे हैं, जो औरों से बहुत अच्छे हैं। गौतमीय न्याय पर लिखते हुए (चौथा अध्याय) तो उनके वाक्यों से बार-बार यही ध्वनि निकलती है कि ब्राह्मण तार्किकों ने थोथी चालाकियों और शास्त्रार्थ के कड़े बंधनों में ही जैन (या बौद्ध) दार्शनिकों को जकड़कर बोलने से वंचित कर दिया और मिथ्या हार घोषित कर दी। न्यायतीर्थजी हार-जीत के पचड़े में न पड़कर लक्षणों के उदाहरण विस्तार से लिखते, तो अच्छा होता।

चतुर्थाध्याय में सूक्ष्मतः देखने पर 'निग्रह-स्थान' के विवेचन में कई त्रुटियाँ मालूम पड़ीं। शास्त्रार्थ का निर्णय देनेवाले मध्यस्थों को यह अवश्य बताना पड़ता था कि किस स्थान पर (Stage indiscussion) वादी या प्रतिवादी का निग्रह हो गया, जिससे उसकी हार मानी गई। यदि निग्रह-स्थान के बाद भी शास्त्रार्थ जारी रहे, तो फिर वहाँ धौल-धप्पा मचने लगेगा। वादी ने एक प्रतिज्ञा की, प्रतिवादी से उसका उत्तर नहीं बन पड़ा। ऐसी हालत में प्रतिवादी अंड-बंड कहने लगे, तो परिषत् उसको निगृहीत कह देगी। गौतम ने बाईस तरह के निग्रह-स्थान बताए हैं। उन सबमें परस्पर सूक्ष्म भेद हैं। लेखक इसे भूल जाते हैं। 'न्यून' को वह निग्रह-स्थान नहीं मानते। प्रतिज्ञा के पाँच अवयव पूरे होने से साध्य पूर्ण होता है। 'न्यून को निग्रह-स्थान मानना बिलकुल व्यर्थ है, क्योंकि प्रतिज्ञा और हेतु से ही काम चल सकता है। इसलिये अगर उदाहरण उपनय-निगमन का प्रयोग न किया जाय, तो पराजय नहीं माना जा सकता।' (पृ० प्रश्न 'न किए जाने' का नहीं है, न कर सकने का है अगर उदाहरण माँगा जाय और आप न दे सकें, अवश्य आपकी हार हुई और परिषत् निर्णय कि 'न्यून' निग्रह-स्थान से आपकी हार हुई। 'अधि होने से कुछ नुक़सान नहीं है, क्योंकि इससे दृढ़ और स्पष्ट होता है। इससे पराजित होने का भी संबंध नहीं है।' (पृ० ९३) प्रतिज्ञा की सि के लिये जिन पाँच अंगों की आवश्यकता है, अधिक यदि वादी को कहने का मौक़ा दिया जाय, शास्त्रार्थ शैतान की आँत की तरह बढ़ाया जा सक है, एक की जगह दस-दस विभिन्न और असंबद्ध देने से भी वादी न रोका जा सकेगा। पर्वत में है, क्योंकि उसमें धुआँ भी है, और प्रकाश भी इस प्रकार दो हेतु देना अधिक है। यदि आप दोनों के पक्ष का मंडन कर ही न सकें, तो अवश्य है; क्योंकि विना एक हेतु की हार के दूसरा स्वतंत्र व्याप्तिमान् हेतु देना अनावश्यक है। इस प्रकार करने वादी सैकड़ों हेतु देने का दावा कर सकेगा। पहला जाने के बाद वह दूसरा देगा, दूसरे के बाद तीसरा यद्यपि सब हेतु कटते रहेंगे, तो भी वादी की हार न हो क्योंकि उसे फिर भी अधिक हेतु देने का अधि रहेगा। इसी तरह यदि एक ही शास्त्रार्थ में दो प्रतिज्ञ मिला दी जायँ, तो वाद कभी समाप्त ही न होगा।

न्याय में 'पुनरुक्त' (Repetition) भी निग्र स्थान अर्थात् हार का कारण है। लेखक कहते हैं इसे भी निग्रह-स्थान न मानना चाहिए। हम समझ में पुनरुक्त अवश्य निग्रह-स्थान है। एक एक वाक्य कहकर आप शब्दों की योजना से उसी को पचास बार नहीं कह सकते। यदि ऐसा ही लगे, तो सत्य-अर्थ का निर्णय कभी न हो। हारनेवा चाहे जब एक ही बात को घुमाकर फिर-फिर कहता और परिषद् बुद्धू की तरह सुनती रहे। कारण अर्थ को स्पष्ट करने के लिये भावार्थ को दोह पुनरुक्ति नहीं है; पर यदि कोई विपक्षी ऐसा ही का हठ करे, तो अवश्य उसकी हार कही जा लेखक ने 'अनुवाद' और पुनरुक्त के भेद को भु

बड़ी भूल की है। आप लिखते हैं—'पुनरुक्त को निग्रह-स्थान न मानना चाहिए ; क्योंकि शब्द की पुनरुक्ति तो यमक अलंकार में भी होती है' (पृ० ९१)। महर्षि गौतम इस बात को अच्छी तरह जानते थे और इसीलिये उन्होंने लिख दिया है—

अनुवादे त्वपुनरुक्तं शब्दाभ्यासादर्थविशेषोपपत्तेः । ५।२।१५

अर्थात् जहाँ शब्दों के दो बार कहने से किसी विशेष अर्थ की उद्भावना हो, वहाँ पुनरुक्त दोष है ही नहीं। उसका नाम अनुवाद है। वह सहेतुक होता है। यमक में अर्थविशेष के चमत्कार के लिये द्विरुक्ति होती है। पाणिनि ने भी नित्य और वीप्सा अर्थों में आम्रेडित संज्ञा कही है। हठपूर्वक पुनर्वचन करनेवाले को परिषद् रोके नहीं, तो क्या जयपत्र लिख दे !

इसी तरह 'अप्राप्तकाल' को भी आप निग्रह-स्थान नहीं मानते। न्याय (Syllogism) में अवयवों को उलटा-पलटा करके कहना अनुचित है। पहले प्रतिज्ञा, फिर हेतु, उदाहरण आदि क्रम से चलना चाहिए। मान लिया कि आपने पहले हेतु कहकर तब प्रतिज्ञा कही। यदि वादी ने अर्थ समझ लिया, तो शास्त्रार्थ में रुकावट न पड़ी। पर यदि उसने डाँटकर कहा कि पंचावयवों को ठीक-ठीक कहिए और फिर भी आप गड़बड़ाते ही रहे, तो परिषद् समझेगी कि निग्रह हो गया अर्थात् आपमें शास्त्रार्थ की क्षमता नहीं है कि विचारों को क्रम से सजा भी सकें। इसलिये अप्राप्त काल की गिनती निग्रह-स्थानों में है।

इसी तरह 'पर्यनुयोज्योपेक्षण' भी निग्रह-स्थान है, पर लेखक कहते हैं कि 'इस निग्रह-स्थान से पराजय मानना अनुचित है' (पृ० ९२)। जब विपक्षी निग्रह-स्थान में पड़ जाय और वादी उसे टोके नहीं, बल्कि उसकी उपेक्षा करके उसे बोलता रहने दे, तो परिषद् का धर्म है कि वादी को संकेत करे कि तुम्हारा विपक्षी निगृहीत होने के योग्य है। इतना चिताने पर भी यदि वादी उस दोष की उपेक्षा करके विपक्षी को बोलने ही दे, तो परिषद् का धर्म है कि वादी को ही निगृहीत कहकर शास्त्रार्थ बंद कर दे। इस निग्रह-स्थान का महत्त्व वहाँ मालूम होता है, जहाँ वादी-प्रतिवादी कूट अभिसंधि करके मिल जाते हैं (Collusive disputants). सिर्फ़ वहीं वादी प्रतिवादी को परिषद् के कहने पर भी निगृहीत नहीं करेगा। तो क्या परिषद् फ़ालतू है, जो इस प्रकार के धोखे को चलने दे ? इसकी सज़ा यही है कि उपेक्षा करनेवाले वादी को ही हारा हुआ घोषित किया जाय। इस प्रकार पर्यनुयोज्योपेक्षण (Overlooking to censure when there is an occasion for censure) बहुत महत्त्व का निग्रह-स्थान है। खेद की बात है कि लेखक ने इन परिभाषाओं के असली तत्त्व को नहीं खोला, जिससे भ्रम फैल सकता है। अच्छा हो, यदि लेखक अधिक सावधानी से पुस्तक का दूसरा संस्करण निकालें।

× × ×

तत्त्वचिंतामणि—लेखक, श्रीजयदयाल गोयन्दका ; प्रकाशक, गीता-प्रेस, गोरखपुर; पृष्ठ-संख्या ३९५; मूल्य ।||-)

समर्थ गुरु भगवान् रामदास ने कहा था कि उपासना करनी चाहिए। जिसे उपासना का बल नहीं होता, उसे चाहे जो कूट डालता है। इन 'चाहे जो' शब्दों में शरीर में बसनेवाले काम क्रोध लोभ मोह अहंकार आदि रिपु और बाहर रहनेवाले दुष्ट आततायी दोनों ही आ जाते हैं। शरीरस्थ आध्यात्मिक वैरियों से अपना बचाव करके, परम निःश्रेयस् की प्राप्ति का उद्देश्य करके संसार के यथाप्राप्त कर्मों को अनासक्ति से करते रहना सर्वोत्तम जीवन-सिद्धांत है। इसी का आश्रय लेकर श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ने कल्याण मासिक पत्र और गीता-प्रेस के द्वारा गोरखपुर में देश में फैले हुए मुमुक्षु और साधकों का एक बहुत ही सच्चा केंद्र स्थापित किया है। सत्य-भाव के साथ भगवान् की उपासना करना कल्याण से संबद्ध सब लोगों का मूलमंत्र है। उनमें कितने ही ऐसे पहुँचे हुए जन हैं, जो आत्मा को जानने के मार्ग में बहुत आगे बढ़ गए हैं। 'तत्त्वचिंतामणि' के लेखक श्रीजयदयालजी ऐसे ही सत्पुरुषों में हैं। उक्त पुस्तक उनके 'कल्याण' में समय-समय पर प्रकाशित उन्तीस लेखों का संग्रह है। पुस्तक में धर्म का भाव बड़ा जागरूक है, प्रत्येक पृष्ठ से सचाई और सात्त्विकी श्रद्धा प्रकट होती है। लेखक को अपने मत का प्रचार नहीं करना है, इसलिये उन्हें किसी बात का आग्रह नहीं है। उन्होंने जगत् के तत्त्वों को अपनी आँखों से अपने लिये देखने की कोशिश की है, यही उनको इसका अधिकारी बना देता है कि उनकी बात सुनी जाय। लैस्की

ने एच्० जी० वैल्स के लिये लिखा है—"Whoever sees the world genuinely through his own eyes challanges the world," अर्थात् जो सचाई के साथ संसार को स्वयं देखता है, वह औरों के मत को चुनौती देता है। इसलिये वह नए ढंग से बात कहता है और यह उसकी श्रवणार्ह योग्यता है। तत्त्वचिंतामणि इसी ढंग की पुस्तक है, जो श्रद्धालु मनुष्यों को स्वयं सोचने और सत्कर्म करने पर बाध्य करती है। प्रायः इस 'श्रद्धालु' शब्द की इस शताब्दी में बड़ी दुर्दशा हो रही है। अहंकार-विमूढ़ अविश्वासी जनों के लिये श्रद्धा भोंदूपन है। हम मानते हैं कि पुरानी दिए की बत्ती और आधुनिक बिजली के बल्ब में बहुत अंतर है। पर बिजली की चकाचौंध में रहनेवाले ही आज लैंबेथ कानफ़्रेंस में रो रहे हैं कि सात्त्विकी श्रद्धा के लोप हो जाने से पुरुष-जीवन और मनुष्य-समाज की नींव खोखली हो गई है। मानसिक जगत् का काम मशीनों से कौन ले सकता है? आधुनिक सभ्यता, धर्म और दर्शन को वास्तविक जीवन से परे हटा हुआ समझती है। व्यक्ति की नीति-विषयक स्वच्छंदता उच्छृंखलता में परिणत हो गई है। पुराने संयम के बंधन तोड़ तो डाले गए, पर उनके स्थान में उससे अच्छी कोई चीज़ प्रतिष्ठित न हो सकी। ऐसी दशा में जहाँ प्राचीन श्रद्धा के अनुसार मुक्ति-पथ के अनुरूप जीवन ढालने का सदुद्योग हो, वहाँ हमें सहसा हँस देने का अधिकार नहीं रह जाता। यों तो पुस्तक के सभी लेख सुपाठ्य हैं और उनमें धर्म का प्रबल भाव पाया जाता है, तो भी 'ज्ञान की दुर्लभता', 'निराकार-साकार-तत्त्व', 'भगवान् क्या है', 'गीता में भक्ति', 'सच्चा सुख,' 'गीतोक्त संन्यास' और 'निष्काम कर्मयोग का स्वरूप' तथा 'व्यापार-सुधार की आवश्यकता' और 'व्यापार से मुक्ति'-शीर्षक लेख बहुत ही सुंदर और लाभप्रद हैं। पिछले दो लेख तो अमृत-रूप हैं। यदि हमारा वर्तमान वैश्य या व्यापारी वर्ग गोयन्दकाजी के इन शब्दों पर ध्यान दें—'दूकानदार को यह बुद्धि रखनी चाहिए कि उसकी दूकान पर जो ग्राहक आता है, वह साक्षात् परमात्मा का ही स्वरूप है...' तो वित्त-मोह के कारण वे जिस कलिल में पड़े हुए हैं, उससे उनका अनायास ही छुटकारा हो जाय। 'संसार का सब धन परमात्मा का है, हम सब उसी की प्रजा हैं। परमात्मा ने योग्यतानुसार सबको ख़ज़ाना सँभलाया, हमें उसकी रक्षा और यथायोग्य व्यवहार की आज्ञा दी है।' इन उत्तम वचनों पर आज ध्यान देने की फ़िक्र किसे है?

श्रीजयदयालजी के वेदांत-विषयक विचार बहुत सधे हुए और सच्चे हैं। थोथे लोग, जो माया और असत्ता के तत्त्व को नहीं समझते, एकदम कह देते हैं कि जगत् कल्पित है, मानों वे वक्ता स्वयं सत्य हैं। श्रीजयदयालजी ने इसे स्पष्ट किया है—"वेद, शास्त्र और तत्त्ववेत्ता महापुरुषों का भी यह कथन है कि एक शुद्ध बोध ज्ञानस्वरूप परमात्मा ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, परंतु किसी भी व्यक्ति के द्वारा 'संसार असत् है' यों कहा जाना उचित नहीं; क्योंकि वास्तव में कहना बनता नहीं। संसार को असत् मानने से संसार के रचयिता सृष्टिकर्ता ईश्वर, विधि-निषेधात्मक शास्त्र, लोक-परलोक और पाप-पुण्य आदि सभी व्यर्थ ठहरते हैं, और इनको व्यर्थ कहना या मानना अनधिकार की बात है। जिस वास्तविकता में शुद्धब्रह्म के अतिरिक्त अन्य का आत्यंतिक अभाव है, उसमें तो कुछ कहना बनता नहीं; कहना भो वहीं बनता है, जहाँ प्रपंच है। और जहाँ कहना बनता है, वहाँ सृष्टि के रचयिता, संसार और शास्त्र आदि सब सत्य हैं और इन सबको सत्य मानकर ही शास्त्रानुकूल आचरण करना चाहिए।" (पृ० १७) शुष्क वेदांत की मरुभूमि में ज्ञान, भक्ति और कर्म में से कोई भो पौदा पल्लवित नहीं होता।

वासुदेवशरण

× × ×

हिंदू-भारत का उत्कर्ष (या राजपूतों का प्रारंभिक इतिहास)—लेखक, श्रीयुत चिंतामणि विनायक वैद्य एम० ए०, एल्-एल्० बी० ; अनुवादक. श्रीयुत भगवानदास ; प्रकाशक, ज्ञानमंडल, काशी ; सजिल्द ; पृष्ठ-संख्या ५२९ ; मूल्य ३॥)

श्रीयुत सी० वी० वैद्य ने अँगरेज़ी में मध्यकालीन हिंदू-भारत का इतिहास (History of Mediaeval Hindu India)-नामक एक इतिहास लिखा है। उसके तीन भागों में ई० स० ६०० से १२०० तक का हिंदू-भारत का इतिहास है।

प्रस्तुत पुस्तक उसी इतिहास के दूसरे भाग का हिंदी-अनुवाद है और इसमें ई० स० ७५० से १००० ईसवी तक का हाल है ।

इसके पहले अध्याय में राजपूतों की उत्पत्ति और उनके कुल आदि पर विचार किया गया है, दूसरे में उस समय के अन्यान्य हिंदू-राज्यों का इतिहास है, तीसरे में उस समय के रीति-रिवाजों का वर्णन है और परिशिष्ट में कुछ ख़ास बातों का उल्लेख है ।

वैद्य महाशय एक विद्वान्, अनुभवी और प्रतिभा-संपन्न पुरुष हैं । जिन्होंने आपके 'महाभारत-मीमांसा' आदि ग्रंथ पढ़े हैं, वे आपकी विद्वत्ता और विचारशैली से अवश्य ही परिचित होंगे ।

वैसे तो किसी ख़ास विषय पर दो ऐतिहासिकों में मतभेद होना एक स्वाभाविक-सी घटना है, परंतु वैद्य महाशय की सर्वतोमुखी गवेषणा और निर्णायक शक्ति को अंगीकार करने में किसी का मतभेद न होगा ।

आशा है, हिंदी-संसार इस पुस्तक का आदर कर वैद्य महाशय को अपनी अमूल्य पुस्तकों का अनुवाद हिंदी में प्रस्तुत करवाते रहने के लिये उत्साहित करेगा ।

इस पुस्तक के ऐसे सरल और सुंदर हिंदी-अनुवाद को प्रस्तुत करने के लिये हम, यहाँ पर, श्रीयुत भगवानदासजी को भी हार्दिक धन्यवाद देना आवश्यक समझते हैं ।

विश्वेश्वरनाथ रेउ

× × ×

अफ़ग़ानिस्तान—लेखक, पं० मातासेवक पाठक ; प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-मंदिर, २-३ चित्तरंजन एवन्यू (साउथ), कलकत्ता ; पृष्ठ-संख्या २७६ ; मूल्य २)

अफ़ग़ानिस्तान हमारा पड़ोसी देश है । इस देश का हमारे देश से प्राचीन काल से संपर्क रहा है । इसलिये हमें इस देश के भूगोल तथा इतिहास का जानना आवश्यक है । अभी तक हमने हिंदी में अफ़ग़ानिस्तान-विषयक कोई पुस्तक नहीं देखी थी । यह पुस्तक इस कमी को बहुत कुछ पूरा करती है । कुछ समय हुआ, अफ़ग़ानिस्तान के भूतपूर्व शाह अमानुल्ला के आकस्मिक ऐश्वर्य प्राप्त करने और फिर शीघ्र ही पारस्परिक कलह के कारण निर्वासित होने के कारण भारतवासी अफ़ग़ानिस्तान का आधुनिक इतिहास जानने के बहुत उत्सुक हो गए थे । इसलिये लेखक महाशय ने अफ़ग़ानिस्तान के इतिहास के इसी भाग पर विशेष ध्यान दिया है । पुस्तक सचित्र है, कवर पर "अफ़ग़ानिस्तान के उद्धार-कर्त्ता अमानुल्लाख़ाँ" का रंगीन चित्र है । भीतर भूतपूर्व शाह के जीवन-संबंधी कई चित्र हैं । अफ़ग़ानिस्तान का भौगोलिक वर्णन भी है ।

पुस्तक पढ़ने से यह साफ़ प्रकट होता है कि लेखक महाशय अमानुल्ला के भक्त हैं । लेखक महाशय का हृदय इस विषय में भारतीय हृदय का सच्चा प्रतिबिंब है । शाह अमानुल्ला की असफलता के लिये लेखक महाशय मुल्लाओं और अँगरेज़ों को उत्तरदायी ठहराते हैं । मुल्लाओं का दोष तो प्रकट ही है । अँगरेज़ों का कहाँ तक हाथ था, यह बताना कठिन है । परंतु यह निश्चय है कि कई अँगरेज़ राजनीतिज्ञों ने अमानुल्ला को पहले ही चेतावनी दे दी थी कि अफ़ग़ानिस्तान उजड्ड देश है, यहाँ बहुत शीघ्र सुधार की दौड़ लगाने का प्रयत्न न कीजिएगा । सच पूछिए तो शाह अमानुल्ला की असफलता का यही कारण था कि सच्चे देश-भक्त होते हुए भी उन्होंने देश की स्थिति के विरुद्ध बहुत शीघ्र उसे उन्नत करने का प्रयत्न किया । शाह अमानुल्ला के पतन से हमें यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि समाज स्वभावगत परंपरापूजक है; उसे ठीक मार्ग पर लाने के लिये धैर्य और शिक्षाप्रचार की आवश्यकता है । यदि शाह अमानुल्ला ३० वर्ष तक शिक्षाप्रचार पर ही ध्यान देते, तो जो सुधार वह चाहते थे, उनके लिये प्रजा तैयार हो जाती और तब सुधार भी दृढ़ होते ।

× × ×

राष्ट्रीय शिक्षा का इतिहास—लेखक, श्रीयुत कन्हैयालाल; प्रकाशक, काशीविद्यापीठ, काशी; पृष्ठ-संख्या २९१; मूल्य २)

भारतीय शिक्षा-प्रणाली का एक रूप तो वह है, जो सरकारी नियंत्रण में है, और दूसरा वह, जो सरकारी नियंत्रण से स्वतंत्र है । यद्यपि विस्तार के विचार से इस स्वतंत्र शिक्षा-प्रणाली का क्षेत्र अभी बहुत संकुचित है, तथापि राष्ट्रीय जागृति के नाते इसका महत्त्व किसी प्रकार से कम नहीं है । अभी तक हिंदी में कोई ऐसी पुस्तक न थी, जिसमें भारतीय शिक्षा के इतिहास की विवेचना होती और वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षालयों का विवरण

होता। इस कमी को काशी-विद्यापीठ के संचालकों ने श्रीकन्हैयालालजी की लेखनी द्वारा पूरा किया है। इस सेवाकार्य के लिये हम उन्हें हार्दिक बधाई देते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक महोदय ने सरकारी शिक्षा-प्रणाली के गुण-दोष की जाँच की है; राष्ट्रीय शिक्षा के मुख्य-मुख्य सिद्धांतों की विवेचना की है, और वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षालयों का विवरण देकर इन सिद्धांतों के व्यावहारिक रूप में लाने का जो कुछ प्रयत्न हो रहा है, उसे सफल या असफल समझने का भार पाठकों पर छोड़ दिया है। लेखक महाशय ने राष्ट्रीय शिक्षा के इतिहास को तीन भागों में विभक्त किया है, उनमें से अंतिम भाग सन् १६२० से प्रारंभ होता है। इधर यदि विचार कर देखिए, तो सरकारी शिक्षा के इतिहास में भी सन् १६२० से एक नए युग का आगमन होता है। सन् १६२० तक शिक्षा की नीति सरकार के हाथ में थी, परंतु सन् १६२० से शिक्षा की नीति जनता के हाथ में आ गई है। यह ठीक है कि कोष पर पूर्ण अधिकार न होने के कारण सरकारी शिक्षा-प्रणाली को राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के रूप में परिवर्तित करने में कुछ बाधाएँ पड़ी हों; परंतु शिक्षानीति पर जनता को जो कुछ अधिकार मिले, वह चाहे शिक्षाप्रसार में कुछ हद तक असमर्थ होते, परंतु शिक्षाप्रणाली में परिवर्तन करने के लिये यथेष्ट थे। यदि सरकारी शिक्षाप्रणाली अब भी राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं होने पाई है, तो इसमें हमारा, हमारे प्रतिनिधियों तथा अध्यापकों का ही दोष है।

इस समय जो आंदोलन हो रहा है, उसका और जो कुछ परिणाम हो, परंतु इसमें संदेह नहीं कि शिक्षा-क्षेत्र में जनता के अधिकारों में जो कुछ अभी तक अ रही है, वह पूरी हो जायगी। ऐसी दशा में हमारा क है कि हम अपने प्रतिनिधियों को आदेश दें कि वे स कारी शिक्षाप्रणाली को राष्ट्रीय आवश्यकताओं अनुकूल बनावें।

राष्ट्रीय शिक्षा के सिद्धांतों की जो विवेचना प्र पुस्तक में हम पाते हैं, उससे हमें विश्वास होता कि राष्ट्रीय शिक्षा और प्रचलित सरकारी शिक्षा में इत भारी भेद नहीं है कि एक का दूसरे से सम्मिलन हो सके। पृष्ठ ६७ में राष्ट्रीय शिक्षा के जो मुख्य सि दिए गए हैं, वे कोई ऐसे नहीं हैं, जिनके मानने प्रलय की संभावना हो। सूत कातने और रुई धुनने शिक्षा तथा खादी पहनना अनिवार्य करना तो असंभव हो, परंतु हमारे शिक्षाविभाग को इस बात मानने में कोई आपत्ति इस समय भी नहीं है अध्यापक और बालक ख़ुशी से खादी पहन सकें और सूत कातने तथा कपड़ा बुनने का काम सीख स हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि निकट भविष्य में रा शिक्षालयों के प्रतिनिधि तथा प्रांतीय शिक्षामंत्री शिक्षाविभाग के संचालक एक साथ बैठकर एक व्यापिनी शिक्षानीति निश्चित कर लें। अभी तो देश इने-गिने राष्ट्रीय शिक्षालय विस्तृत सागर में दीपगृह समान मार्गप्रदर्शक ही का काम दे रहे हैं, वे अ अंधकार के दूर करने में असमर्थ हैं। सरकारी शिक्षा राष्ट्रीयता के अनुकूल होने पर इनका प्रकाश देश कोने-कोने में व्याप्त हो जायगा।

कालिदास क

कृषि, शिल्प और वाणिज्य

१. हमारा समुद्रतट का व्यापार

अलिखित, किंतु अंतरराष्ट्रीय समझौते के अनुसार प्रत्येक देश को अपनी भूमि के ऊपर की वायु पर भी अधिकार है और उसे पूरा हक़ है कि दूसरे देश के वायुयानों को अपनी सीमा में उड़ने दे अथवा नहीं। किंतु वायुयान तो अभी बने हैं और वायु के प्रभुत्व का प्रश्न भी अभी छिड़ा है। हाँ, जल का उपयोग हज़ारों वर्षों से चला आया है और जल पर अधिकार करने के लिये लाखों जानें गई हैं तथा प्राचीन स्मार्टा, फ़ोयेनीशिया (Smartans and Phoenicians) यूनान, अरब तथा कुस्तुन्तुनिया साम्राज्य से लेकर नवीन युग तक कितने ही साम्राज्यों का पतन और अभ्युदय जल पर अधिकार के कारण, सामुद्रिक व्यापार के कारण तथा इस व्यापार पर अधिकार करने की चेष्टा के कारण हुआ है।

मोरक्को के मूर-मुसलमानों ने रोमन-साम्राज्य के नष्ट होने पर वेनिस नगर के अभ्युदय-प्राप्त व्यापार को नष्ट कर वेनिस का सत्यानाश कर डाला। फ्रांस, हालैंड तथा इँगलैंड सदियों तक केवल भारतीय व्यापार की कुंजी—भूमध्य-सागर (Mediternean sea)—के लिये लड़ते रहे। अस्तु, यह जल पर अधिकार का प्रश्न बड़ा विकट है और इसने सबसे उग्र रूप गत १९१४-१८ के महासमर में धारण कर लिया था। जिस प्रकार भूमि में "तटस्थ" अथवा न्यूट्रल (Neutral) राज्य थे, उसी प्रकार समुद्र में 'तटस्थ' पानी था और अमरीका सदृश मज़बूत तटस्थ 'राज्य के तटस्थ' जल में प्रवेश करने के अपराध और उसके तटस्थ जहाज़ "ल्यूसीरानिया" को डुबाने के पाप के कारण जर्मनी के शत्रुओं के साथ अमरीका भी मिल गया।

व्यवहार में "राज्य का जल" शब्द उसी समय अधिक प्रयोग में आया। किंतु बहुत समय से यह बात स्वीकृत है कि प्रत्येक देश को अपने तट के किनारे, कम-से-कम एक मील तक के जल पर अधिकार है। उसको पूरा हक़ है कि उस सीमा के भीतर दूसरे देश का जहाज़ आने दे, अथवा नहीं। उसे पूरा हक़ है कि उस सीमा के भीतर अपना ही व्यापार रक्खे या आनेवाले जहाज़ों से मनमाना किराया वसूल करे। प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्रवेत्ता स्वर्गीय जान स्टुअर्ट मिल ने

इस अधिकार को स्वीकार किया है। चुंगीरहित, अबाधित, मुक्त व्यापार (Free tarde) के सर्वोच्च पैग़ंबर तथा अर्थ-शास्त्र के जगत्-प्रसिद्ध पंडित मि० ऐडम स्मिथ ने भी अपने समुद्र-तट के व्यापार को "घरेलू व्यापार" तथा स्वतंत्र व्यापार का अपवाद माना है।

ब्रिटिश उपनिवेशों को भी यही अधिकार प्राप्त है। फ़्रांस, अमरीका, जर्मनी आदि स्वतंत्र राज्यों का तो कहना ही क्या है। आस्ट्रेलिया ने अपने तट के व्यापार को अपने ही हाथों में रख छोड़ा है। पिछले दो शताब्दियों तक जिस समय इँगलैंड को अपना व्यापार पुष्ट करना पड़ा था, ऐसा ही क़ानून बनाना पड़ा था। किंतु जब भारतीय अपना यह हक़ चाहते हैं और अपने व्यापार को अपने हाथ में लेकर अपना करोड़ों रुपया बाहर जाने से बचाना चाहते हैं, तो उन्हें मूर्ख अर्थ-शास्त्री कहा जाता है।

भारतीय समुद्र-तट का व्यापार इस समय दो ब्रिटिश कंपनियों के हाथ में है। एक है ब्रिटिश इंडिया स्टीम नेविगेशन कंपनी (British India Steam Nevigation Co.) और दूसरी है एशियाटिक स्टीम नेविगेशन कंपनी (Asiatic Steam Nevigation Co.). ७९-९० फ़ी सदी व्यापार इन्हीं के हाथों में है। बाक़ी के बचे-खुचे व्यापार में सिंधिया स्टीम नेविगेशन कंपनी (Sindhia Steam Nevigation Co.) तथा और भी कई साझेदार हैं।

व्यापार के लिये माल ले आने और ले जानेवाले कितने जहाज़ हैं—भिन्न-भिन्न देशों के कितने जहाज़ काम करते हैं, यह निम्न आँकड़ों से मालूम हो जायगा—

	महासमर के पूर्व	सन् १९२३ में
ब्रिटिश—	२५९३	२४५०
जर्मन—	२२५	४३
आस्ट्रो-हंगेरियन—	११९	—
जापान—	६२	१३९
फ़्रांस—	२८	४
रूस—	१२	—
अमेरिका—	—	८४
चीन—	—	४

और, भारत के हाथ केवल ११ प्रतिशत अपने स तट का व्यापार है तथा उसका विदेशी व्यापार पू विदेशी कंपनियों के हाथ में है, केवल दो प्रतिशत भार जहाज़ों को व्यापारिक अवसर मिलता है।

१९२३ में समुद्र-तट का व्यापार २२२ करोड़ रुप था। अधिकतर माल रंगून में उतरा था—और य हमारे पास पूरे आँकड़े नहीं हैं, जिससे यह ठीक अं लगाया जा सके कि उसमें से भारत को कितना मिला तथापि गोल शब्दों में स्वदेशी—निज तट-व्यापार के दू के हाथ में होने के कारण हर साल भारत का १२ क रुपया नुक़सान होता है और विदेशी व्यापार ए दूसरों के हाथ में होने के कारण, प्रवासी-व्यापार में केवल ४० करोड़ रुपए की वार्षिक हानि होती है।

१९२७ में मदरास में भारतीय औद्योगिक कां (Indian Indestrial Congress—192 अधिवेशन में अध्यक्ष-पद से श्रीमान् नरोत्तम मुरार हमारे उपरिलिखित शब्द दुहराए थे ! श्रीमान् सारा नेमचंद हाजी ने आज से छः वर्ष पूर्व कां मि० ए० टी० गिडवानी के संपादकत्व में प्रक होनेवाले "टु-मारो" (To-morrom) मासिक में इसी विषय पर बड़ा सारगर्भित लेख लि था। आप वर्षों से भारतीय समुद्रतट के व को भारतीयों के हाथ में लाने की चेष्टा कर रहे उनके उस लेख ने जनता में इस ओर बड़ी उत्पन्न कर दी थी। इस समय भी आप व्यवस्था महासभा के सदस्य हैं। वहाँ आपने इसी आशय एक प्रस्ताव बहुत समय से रख छोड़ा है। इस प्र का सबसे प्रबल विरोध योरपीय हित के साधक पियन एसोसियेशन, ब्रिटिश कंपनियों के वेतन राजनीतिज्ञ तथा स्वतः सरकार कर रही है। बड़ी नाई से यह प्रस्ताव एक "सेलेक्ट-कमिटी" के सुपुर्द गया और वहाँ से ख़राशने के बाद विचारणीय वि आया। लोगों को भय था कि अध्यक्ष पटेल के एके पद से त्यागपत्र दे देने के बाद, अधिकांश सदस्यों की ग़ैर-हाज़िरी के कारण, इस अव लाभ उठाकर सरकार प्रस्ताव को रद्द करा दे दैवयोग से ऐसा नहीं हो सका है और यह वि विषय अभी "विचारणीय" ही है।

बहुत समय से व्यवस्थापक-सभा द्वारा ऐसा निर्णय कराने का प्रयास किया जा रहा है, किंतु कोई सफलता नहीं हो रही है। बहुत ज़ोर देने पर १९२३ में सरकार ने एक भारतीय मर्केण्टाइल मेरीन कमेटी (Indian Mercantile Marine Committee) बनाई थी। उसमें ब्रिटिश इंडिया स्टीम नेविगेशन कंपनी के मैनेजिंग एजेंट (सर , आर्थर .फ़ूम को छोड़कर (आप भी कमेटी के एक मेम्बर थे !) और सबने तट-व्यापार के संरक्षण की सलाह दी थी। किंतु वह सलाह सुनी नहीं गई और परिणाम भविष्य के गर्भ में है।

भारत ने अपने तट के व्यापार को अपने हाथ में रखनें की पर्याप्त चेष्टा की, इसमें कोई संदेह नहीं। पिछले ५० सालों में (सन् १८७७ से १९२७ तक) ३२ भारतीय कंपनियाँ बनीं। किंतु विदेशो कंपनियों ने इनके विरुद्ध इतनी भयंकर प्रतिस्पर्द्धा (Rate-war) शुरू कर दी कि इनमें से २३ का दिवाला निकल गया और इनकी पूँजी आदि का १२ करोड़ रुपया ज़ाया गया। समय तथा धन की हानि के साथ ही साख भी मारी गई।

इस समय सबसे अधिक कारोबार ब्रिटिश इंडिया स्टीम नेविगेशन कंपनी का है। यह बंबई-रंगून के बीच कारोबार करती है। मूलधन ९ लाख ५७ हज़ार पाउंड (एक पाउंड साढ़े तेरह रुपए का) है। १९०१ से १९२५ के बीच में इस कंपनी को अपना पाई-पाई ख़र्चा निकाल देने पर भी ५१ लाख ७१ हजार पाउंड का लाभ था। पाठक इस लाभ की तुलना हमारी असफल कंपनियों से करें।

भारतीय कंपनियों में दो के नाम ही उल्लेखनीय हैं। एक तो सिंधिया स्टीम नेविगेशन कंपनी है। वह १९१९ में क़ायम हुई थी। इसका एक जहाज़ अपना है और ७ ख़रीदे हुए हैं। कारोबार काफ़ी होने पर भी विदेशी प्रतिस्पर्द्धा इसको मारे डालती है। यह शुद्ध भारतीय कंपनी है और यदि थोड़ा-सा त्याग कर भारतीय इसे अपना लें, तो थोड़े ही समय में, अपने सुप्रबंध, सुव्यवस्था तथा साराभाई हाजी के सुसंचालन में यह उपर्युक्त ब्रिटिश कंपनी से होड़ ले सकती है।

बंबई स्टीम नेविगेशन कंपनी भी स्वदेशी है, किंतु इसके मूलधन का कुछ भाग विदेशी भी है तथा मैनेजिंग एजेंट तो विदेशी हैं ही। सिंधिया कंपनी के पहले से इसका कारोबार चल रहा है, पर प्रतिस्पर्द्धा इसकी भी हानि कर रही है। विना क़ानूनी मदद के भारतीय कंपनियाँ नहीं पनप सकतीं।

परिपूर्णानंद वर्मा

× × ×

२. डबल एंट्री सिस्टम एकाउंट्स और हमारा बही-खाता

(१)

इतिहास

पाश्चात्य देशों में सन् १३०० ई० पर्यंत आय-व्यय-लेखनप्रणाली का कोई उत्कृष्ट ढंग नहीं था। सन् १३४० ई० में जेनोआ की गवर्नमेंट के कर्मचारियों की आय-व्यय-लेखनप्रणाली डबल एंट्री सिस्टम एकाउंट्स (Double Intry System Accounts)-सी पाई गई। बाद में कतिपय व्यवसायियों ने उक्त प्रणाली को उत्कृष्ट समझ अपना भी आय-व्यय का हिसाब वैसे ही रखना प्रारंभ कर दिया, यद्यपि उसमें इतनी शुद्धता और सरलता नहीं थी, जितनी कि आधुनिक समय में डबल एंट्री में बताई जाती है। जो हो, मिस्टर एफ़०-डब्ल्यू० पिकसले के मतानुसार सर्व-प्रथम सन् १४९५ ई० में इटली-निवासी मिस्टर लुकाइन डी बर्गो (Lucuin De Burgo) द्वारा डबल एंट्री सिस्टम का आविष्कार हुआ, और इन्होंने ही उक्त विषय के प्रथम ग्रंथ की रचना की। बस, इनके समय से ही डबल एंट्री सिस्टम का नियमपूर्वक प्रचार होना माना जाता है। सन् १७०० ई० में इटली से डबल एंट्री सिस्टम का पदार्पण इँगलैंड में हुआ। पश्चात् वहीं यह वर्धित हो, वर्तमान पूर्णावस्था को प्राप्त हुई है।

किंतु जब हम अपने बही-खातों के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं, तब निराश होना पड़ता है। बही-खाता का ही क्यों, समग्र भारतवर्ष का कोई प्रामाणिक प्राचीन इतिहास प्राप्त नहीं है। इसका कारण भारत पर क्रमबद्ध इतर जातियों के आक्रमण और उनका पुस्तकजारण-प्रेम बतलाया जाता है। जो हो, उपलब्ध प्रमाणों से यह अवश्य प्रकट होता है कि भारतवर्ष में आय-व्यय-लेखन का प्रचार अति प्राचीन समय से है। कुछ ही दिन हुए, 'कौटिल्य-अर्थशास्त्र'-नामक एक

महत्त्वपूर्ण ग्रंथ मैसूर के राजकीय पुस्तकालय से प्राप्त हुआ है। यह ग्रंथ साधारण अर्थशास्त्र का नहीं, किंतु असाधारण राजनीति का है। विद्वानों का मत है कि उक्त ग्रंथ ३२१ और ३०० बी० सी० के मध्य अर्थात् चंद्रगुप्त मौर्य के समय का, उसके महामान्य मंत्री चाणक्य (कौटिल्य) का लिखा हुआ है। उक्त ग्रंथ के 'अध्यक्ष-प्रचार-अधिकरण' में मोहकमे हिसाब, उसके निरीक्षकादि के कर्तव्यों और हिसाब के ४० प्रकार गबन (Embezzlement) के भिन्न-भिन्न उपायों का विशद वर्णन उपलब्ध होता है। आषाढ़-मास में गत वर्ष का हिसाब चुकता कर देने का आदेश है, और इस आज्ञा का उल्लंघन करने पर दंड का विधान भी लिपिबद्ध हुआ है ; परंतु यह हिसाब किन-किन बहियों में किस प्रकार रखना चाहिए, यह उक्त ग्रंथ से नहीं प्रकट होता। ऐसी ही दशा अन्य भारतीय अर्थशास्त्रों की है।

सिद्धांत

मिस्टर स्पाईसर और पेगलर ने स्वकृत 'बुककीपिंग एंड एकाउंट्स'-नामक पुस्तक में पाश्चात्य देशी हिसाब-लेखन-प्रणाली (डबल एंट्री सिस्टम एकाउंट्स) के सिद्धांत के विषय में लिखा है—

"The theory of Double Intry is not that for every debit there must be a Credit and vice-versa. Double Intry is that system of Book-keeping which takes advantage of the fact that every transaction that can be recorded in terms of account has two aspects ; the one envolving the recuving of benefit by one account or accounts, and the other the yielding of that benefit by another account or accounts."

अर्थात् डबल एंट्री (दोहरे इंदराज) का यह सिद्धांत नहीं है कि प्रत्येक जमा के लिये एक नावें और नावें के लिये एक जमा होना ही चाहिए। यह तो उस पद्धति का परिणाम-मात्र है। दोहरे इंदराजवाली (डबल एंट्री सिस्टम) बही-खाते की वह पद्धति है, जिसको प्रत्येक व्यापार के संपूर्ण प्रभावों की वास्तविक याददाश्त रखने का लाभ प्राप्त हो, और वे प्रभाव हिसाब के नियमानुसार सदैव दो स्थलों पर हुआ करते हैं—

(१) यह कि जिसमें एक अथवा अधिक लाभान्वित हुआ करते हैं अर्थात् उनमें वस्तु की होती है।

(२) यह कि जिसमें एक अथवा अधिक खाते लाभ देते हैं अर्थात् जो व्यय-ग्रस्त होते हैं।

हमारे बही-खातों में भी उपर्युक्त विवेचन का समावेश है अर्थात् किससे क्या कितना प्राप्त हुआ और किसको क्या कितना दिया गया है, अथवा है ; जब तक उभय पक्ष समानरूपेण हो, तब तक उक्त हिसाब-लेखन उचित समझा जाता। कथन का तात्पर्य यह है कि देशी आय-व्यय-लेखन-प्रणाली (डबल एंट्री एकाउंट) और भारतीय आय-व्यय-लेखन-प्रणाली (बही-खाता) का मूल-सिद्धांत सचमुच एक ही है।

खातों के प्रकार

डबल एंट्री सिस्टम के मतानुसार संपूर्ण खाते त्रय में विभक्त हो सकते हैं, वे किसी गवर्नमेंट के हों अथवा साय के। यथा—

(१) "वैयक्तिक" [जिनको अँगरेज़ी में एकाउंट्स (Personal Accounts) कहते हैं। वे सर्वखाते हैं, जिन व्यक्तियों के हम अथवा जो ऋणी हैं, उनके नामों से खोले जाते हैं।

(२) "वस्तुगत" [जिनको अँगरेज़ी में इम्पर्सनल एकाउंट्स (Real Impersonal ounts) कहते हैं।]—वे सर्व मालखाते उक्त अंतर्गत होते हैं; जिन वस्तुओं का व्यवसाय करता है अथवा जिनसे लाभ की आशा कर भले ही दैवयोग से बाद में उनसे हानि ही प्राप्त हो जो उन्हीं वस्तुओं के नामों से खोले जाते हैं।

(३) "अपदार्थिक" [जिनको अँगरेज़ी में नल एकाउंट्स (Nominal Impersonal ounts) कहते हैं)—वे सर्व खाते हैं, जो ऐसे उत्पन्न करते हैं, जिनसे राज्य अथवा आय या तो मुफ़्त में अधिक हो जायगी या कम हो जायगी अर्थात् जैसे लाभ, हानि और आय-व्ययों के, जो उनके नामों से ही खोले

खातों के विभाग भली भाँति अवगत हों, नीचे एक नक़्शा देते हैं—

खाता
- व्यक्तिगत
  - ऋणी
    - (१) खाता नारायणदास
  - ऋणदाता
    - (२) खाता मनीराम
- अव्यक्तिगत
  - वस्तुगत
    - (१) खाता नक़दी
    - (२) खाता आरायशी सामान
    - (३) खाता गेहूँ स्टोर
  - अपदार्थिक
    - (१) खाता हुंडावन डिस्काउंट
    - (२) खाता कर्मचारियों का पुरस्कार
    - (३) खाता किराया मकान
    - (४) खाता सायर ख़र्च
    - (५) खाता लाभ-हानि
    - (६) खाता पूँजी (कैपिटल)

भारतीय आय-व्यय-लेखन-प्रणाली के खातों के विषय में केवल इतना लिखना ही पर्याप्त होगा कि वे सब भी उपर्युक्त प्रकार-त्रय में ही विभक्त रहते हैं। यह सत्य है कि भारतीय आय-व्यय-लेखन-प्रणाली (हमारा बही-खाता) के नियमानुसार नक़दी का खाता नहीं डाला जाता । इसका कारण यथास्थान वर्णित होगा ।

आवश्यक पुस्तकें

डबल एंट्री सिस्टम के नियमानुसार निम्न-लिखित तीन पुस्तकें आवश्यक हैं—

(१) "किताब रोज़नामचा"—जिसको अँगरेज़ी में वेस्ट बुक (Waste Book) कहते हैं । इस पुस्तक में नित्य-प्रति के सब आय-व्यय, क्रय-विक्रय, कई प्रकार के ख़र्चे इत्यादि चाहे वे नक़द हों अथवा उधार, सब-के-सब तारीख़वार आवश्यक विवरण सहित लिखे जाते हैं । किंतु वर्तमान समय में रोज़नामचा का व्यवहार उठ-सा गया है, अधिकांश व्यवसायियों के यहाँ नहीं रक्खा जाता और रोज़नामचे का काम निम्न-लिखित कागज़ातों से लिया जाता है—

(१) चेक, (२) रसीदें, (३) वाउचर्स, (४) नक़दी बिक्री के पर्चे (कैशमेमो), (५) क्रय माल के बीजक, (६) विक्रय माल के बीजक, (७) डेबिट नोट व क्रेडिट नोट इत्यादि-इत्यादि ।

(२) "किताब नक़ल"—जिसको अँगरेज़ी में जरनल (Journal) कहते हैं । इस पुस्तक में रोज़नामचे की सब आय-व्ययों की रक़मों को अपने-अपने खातों में लिखने के लिये, जिन-जिन पर कि उनका प्रभाव पड़ता है, क्रमबद्ध किया जाता है जिससे खाते में लिखे (खत) जाने के बाद उनसे यह प्रकट हो सके कि व्यवसाय के मूलधन पर उनका क्या प्रभाव हुआ है । आधुनिक समय में विशेषत: अँगरेज़ी की नक़ल (जरनल) बही को दो भागों में विभक्त करना आवश्यक समझा जाने लगा है । यथा—

पहले में सब नक़दी के आय-व्यय के और दूसरे में सब उधार क्रय-विक्रय के जमाख़र्च लिपिबद्ध होते हैं ।

(३) "किताब खाता"—जिसको अँगरेज़ी में लेजर कहते हैं । इस पुस्तक में सब आय-व्यय अपनी-अपनी क़िस्मवारी में छाँटे जाकर इंदराज पाते हैं और यही पुस्तक हिसाब में सबसे उपयोगी है । रोकड़ बही कैशबुक (Cash Book) अँगरेज़ी बही-खातों में कोई स्वतंत्र बही नहीं है, वह खाताबही का ही एक अंगमात्र अर्थात् नक़दी का एक खाता होता है ।

भारतीय आय-व्यय-लेखन-प्रणाली में मुख्य निम्न-लिखित तीन बहियाँ आवश्यक हैं—

(१) रोकड़
(२) नक़ल
(३) खाता

उपर्युक्त रोकड़ और नक़ल बही पूर्वोक्त डबल एंट्री सिस्टम की नक़ल अर्थात् जरनल के भागद्वय के समान और खाता खाता के समान है। विभेद केवल बहियों की लेखन-शैली और स्वरूप में होता है, वह यथा-स्थान प्रदर्शित होगा।

अब यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि जिन गवर्नमेंटों अथवा व्यवसायियों के यहाँ नित्यप्रति शताधिक लेने-देने-वालों की भीड़ लगी रहती है, क्या उनके यहाँ भी उक्त पुस्तक-त्रय से कार्य-निर्वाह हो सकता है ? निरीक्षण कीजिए, वहाँ के हिसाब का सिद्धांत भी निस्संदेह उपर्युक्त पुस्तक-त्रय पर ही निर्भर करता है। उभय पद्धति में ही पूर्वोक्त सब प्रकार के काग़ज़ात आवश्यक हैं सत्य, किंतु मुख्य पुस्तक-त्रय भो नाना विभागों में विभक्त कर ली जा सकती है। यही नहीं, अन्य भी अनेक प्रकार की पुस्तकें प्रस्तुत की जा सकती हैं। उदाहरणार्थ—मज़दूरी लिखने का रजिस्टर, मालगोदाम की बही इत्यादि-इत्यादि। किंतु स्मरण रखना चाहिए कि यह पुस्तकें या किताबें या तो मुख्य पुस्तकों के अंग ही होती हैं, नहीं तो उनकी सहायक पुस्तक-मात्र।

आय-व्यय लिखने का रहस्य

पाश्चात्य देशी आय-व्यय-लेखन-प्रणाली (अँगरेज़ी बही-खाता) में भी भारतीय आय-व्यय-लेखन-प्रणाली (हमारा बहीखाता) की भाँति ही बाईं ओर जमा अर्थात् डेबिट (Debit) लिखा जाता है, और दाहनी ओर नावें अर्थात् क्रेडिट (Credit) लिखने का चलन है। तथापि पाश्चात्य देशी महानुभावों का और भारतीयों का आय-व्यय-लेखन का दृष्टिकोण सर्वथा विपरीत है। वे विपक्षी की दृष्टि से और भारतोय अपनो दृष्टि से आय-व्यय लिखते हैं। यदि डबल एंट्री सिस्टम और हमारे बही-खाते में कोई विभेद है, तो मुख्य यही; कांडज्ञान-हीन व्यक्ति इसको समझने में असमर्थ रहते हैं, तथापि वे अन्यों को भ्रम में निमग्न करने से विरत नहीं होते। अस्तु, प्रथम हम डबल एंट्री सिस्टम के नियमानुसार जैसे आय-व्यय लिखा जाता है, उसका दिग्दर्शन कराते हैं—

कल्पना कीजिए, यज्ञदत्त देवदत्त को ५००) दिए और देवदत्त ने उक्त प्राप्त ५००) कुंजवि को दे दिए। यदि देवदत्त अपना हिसाब अँ पद्धति से रखता है, तब तो वह उक्त आय-व्यय को नक़ल (जरनल) बही में निम्न प्रकार लिखेगा—

नक़दी के खाते में ५००) डेबिट (Debi अर्थात् जमा और यज्ञदत्त के खाते में क्रेडिट (Credit) अर्थात् दिए हुए अथवा

चूँकि देवदत्त की बही में नक़दी के खाते को ५००) का लाभ हुआ है, इसलिये वे नक़दी खाते में 'जमा' लिखे जायँगे, और यज्ञदत्त खाते के उक्त ५००) रुपए दिए हुए हैं, इसलिये वे दिए हुए अर्थात् 'नावें' लिखे जायँगे। इसके देवदत्त ने जो ५००) नक़द कुंजविहारी को हैं, वह देवदत्त ने अपनी बही नक़दी के खाते से इसलिये वे नक़दी के खाते में दिए हुए अर्थात् लिखे जायँगे, और कुंजविहारी के खाते ने ५००) प्राप्त किए हैं, इसलिये देवदत्त की बही में ही कुंजविहारी के खाते में प्राप्त अर्थात् 'जमा' जायँगे।

यदि देवदत्त अपना हिसाब भारतीय आय पद्धति से रखता है, तब वह उक्त ५००) को रोकड़-बही में निम्न प्रकार लिखेगा—

५००) यज्ञदत्त के खाते में 'जमा' क्योंकि वह के खाते में प्राप्त ए हैं: और ५००) कुंजविहा खाते में 'नावें', क्योंकि वह कुंजविहारी के दिए गए हैं।

अँगरेज़ो पद्धति के नियमानुसार जो 'जमा' 'नावें' है, वह हिंदुस्तानो पद्धति के नियमानुसार और 'जमा' लिपिबद्ध होगा। इसका कारण यह अँगरेज़ी पद्धति में खातों से खातों में, और हिंदु पद्धति में व्यवसायकर्ता को जिन खातों में जैसा व्यय होगा, वैसा लिपिबद्ध होगा। निस्संदेह जो सायी अपने बही-खाते अँगरेज़ी पद्धति पर रखता है भी वंध्या-पुत्रवत् सारे आय-व्यय का ज़िम्मेवार हो और भारतीय तो स्पष्टतर ही है।

दुर्गादत्त

बाल-महिला-मनोरंजन

१. प्रसून

(१)

दुग्ध-रूप जल से सिंचित,
होकर ही तुम बढ़ते हो !
मेरे नन्हे से उपवन को
सौरभ से भरते हो !

(२)

सुंदर सुखद सुशीतल हो तुम,
विकसित न्यारे फूल !
तव छवि निरख युगल दृग से,
अपनापन जाती भूल !

(३)

ओस-बिंदु अपने पर रख,
करते हो निज शृंगार !
तुमको और कहूँ क्या मैं ?
तुम हो मम प्रिय 'हियहार' !

सुशीला भल्ला 'हियहार'
(आयु १३ वर्ष)

× × ×

२. सोने का संदूक

किसी देश में एक सेठ रहता था। उसके पास इतना धन था कि वह उसको रखते-रखते हैरान हो गया था। उस गाँव में चोर ज्यादा थे। इससे उसका धन बहुधा वे ले जाया करते थे। सेठ बहुत हैरान था कि क्या करे ? उसका लड़का बड़ा बहादुर था। सबसे ज्यादा रंज उसी को था कि पिता के मर जाने पर मेरी क्या दशा होगी ? इसलिये वह हरएक आदमी से पूछता था कि मैं अपना

धन कहाँ रक्खूँ ? कई लोगों ने कहा कि धन को गाड़कर रख दो, तो चोर पता न पा सकेंगे। कई कारणों से लड़के को यह बात जँचती न थी। एक दिन वह लड़का बाज़ार में घूम रहा था, उसने वहाँ एक साधु को देखा। लड़का देखते ही उसके पास गया और बोला—"महाराज, मेरा धन चोर ले जाया करते हैं, यदि आप कोई युक्ति जानते हों, तो बतलाइए, जिससे मैं अपना धन हिफ़ाज़त से रख सकूँ।" साधु बोला—"भाई, उपाय तो कोई नहीं है, पर हाँ, मेरे जंगल के पास कुछ राक्षस रहते हैं, उनके पास एक संदूक़ है; वह सोने का है। पर ऊपर से लोहे का सा दिखाई देता है। इस संदूक़ में जो आदमी धन रखता है, फिर वह धन उस आदमी के सिवा और कोई दूसरा नहीं निकाल सकता।"

लड़के को साधु की बात जँच गई। बस, दूसरे ही दिन वह अपनी लड़ाई की पोशाक पहनकर उस जंगल की ओर चल पड़ा। चलते-चलते क़रीब तीसरे दिन वह एक निर्जन वन में जा पहुँचा। लड़का थक गया था, भूख भी सता रही थी, इससे वहीं ठहर गया। सबेरा होते ही वह फिर चल पड़ा, और एक ऐसी जगह पहुँचा जहाँ चार राक्षस रहते थे। पर जब लड़का पहुँचा, तब वहाँ एक छोटा लड़का इधर-उधर टहल रहा था। उस लड़के ने सेठ के लड़के को देखकर कहा—"भाई, तुम यहाँ कैसे आ निकले ? अब सम्हलो, तुम्हारी जान की ख़ैर नहीं।" लड़का बहादुर था, उसकी धमकी से बिलकुल न डरा; बरन् आगे बढ़कर बोला—"भाई, तुम तो हमारे भाई हो, हमीं से कहते हो, तुम्हारी ख़ैर नहीं।" राक्षस का लड़का बोला—अच्छा, तुम यहाँ कैसे आए हो ?" उस लड़के ने कहा—"ऐसे ही चला आया हूँ।" राक्षस का लड़का सोचने लगा कि लड़का बहादुर है, शायद संदूक़ लेने न आ हो। उसने उस लड़के को जादू से मक्खी बना डिब्बी में छिपा लिया।

शाम होते ही चारों राक्षस वहाँ पर आ ग लड़के को अकेला बैठा देखकर बोले—"यहाँ मनु की गंध आती है।" लड़का बोला—यहाँ मनु कैसे आ सकता है ?" चारों राक्षस थके-माँदे थे उन्होंने झटपट रोटी खाई और खाट पर लेट ख़र्राटे लेने लगे। जब सबेरा हुआ, तो चारों रा फिर अपने भोजन की सामग्री ढूँढ़ने निक राक्षस के लड़के ने उस लड़के को फिर मक्खी आदमी बना लिया। होते-होते कई दिन बीत गए। दिन दोनों लड़के एक मनोहर बग़ीचे में घूमने ग वहाँ सेठ के लड़के ने देखा कि एक पेड़ की में एक काला छोटा-सा संदूक़ रक्खा है। ल ताड़ गया कि हो-न-हो, यही 'सोने का संदूक़' दूसरे दिन फिर वे दोनों उस बग़ीचे में घूमने ग सेठ का लड़का बहादुर था; उसने देखा कि रा का लड़का फूल तोड़ने और फल खाने में लगा ठीक इसी समय उसने संदूक़ उठा ली और पर सवार हो भागा। घोड़ा तो चाबुक की खाते ही हवा हो गया। राक्षस का लड़का फल ही तोड़ रहा था। उसे इस बात का ज़रा भी न चला। जब वह शाम को घर लौटने लगा देखता क्या है कि लड़का लापता है। वह गया। पर अब हो ही क्या सकता था।

सेठ का लड़का कुछ दिनों बाद घर आया। अपने पिता को वह संदूक़ दिखलाया। पिता बड़ा हुआ। उस लड़के का नाम उस दिन से 'वीर रक्खा गया। सेठ के यहाँ फिर कभी चोरी नहीं

गौरीशंकर

× × ×

३. धूर्त कौवे

सभी लड़के कौवे को पहचानते होंगे। यह बड़ा ही साहसी और धूर्त होता है। यह अपनी शक्ति के अनुसार कोई वस्तु उठाकर भाग जाता है। कभी-कभी तो रुपयों की गठरी, क़लम, साबुन या ऐसी ही कोई वस्तु उठाकर भाग जाता है। इन्हीं कौवों की एक कहानी हम आज तुम्हें सुनाते हैं।

एक दिन कुछ कौवे पेड़ पर बैठे हुए एक कुत्ते को देख रहे थे। कुत्ता मांस का एक बड़ा टुकड़ा लिए खा रहा था। मालूम होता था कि कौवे कह रहे हैं—"यह टुकड़ा तुम्हारे लिये नहीं है।" एक 'काँव' के साथ ही सभी कौवे पेड़ से नीचे उतरे, मानों उस मांस के टुकड़े पर एक-एक चोंच मारकर भाग जायँगे। कुत्ता गुर्राता हुआ दाँत निकालने लगा, पर कौवे नहीं डरे। जैसे उस टुकड़े को ले ही लेंगे।

परंतु कुत्ता भी उस टुकड़े को चाहता था और वह उसी के अधिकार में था। वह उसे छोड़ना नहीं चाहता था। एक कौवा चुपचाप कुत्ते के पास तक चला गया और चोंच मारकर मांस का एक छोटा टुकड़ा नोंचकर पेड़ पर उड़ गया। सभी कौवे पेड़ पर चले गए और वहीं से 'काँव-काँव' करने लगे। उस टुकड़े में से लेशमात्र भी उन्होंने न खाया। वे संपूर्ण टुकड़ा चाहते थे। इसीलिये शायद वे सलाह कर रहे थे कि अब आगे क्या किया जाय।

कुछ देर के बाद मालूम हुआ कि उन्हें कोई युक्ति सूझ गई, क्योंकि 'काँव काँव' बंद हो गया था। सभी कौवे नीचे उतर आए और धीरे-धीरे उसके पास जाने लगे। इसी समय उस कौवे ने मांस के छोटे टुकड़े को उस कुत्ते के ठीक सामने गिरा दिया। मानों उसने कहा— "लो अपना टुकड़ा, हम इसे नहीं चाहते।" कुत्ता लालची जानवर था। वह बड़े टुकड़े को छोड़कर उस छोटे टुकड़े की ओर लपका। इसी समय 'काँव-काँव' करके सभी कौवे उस बड़े टुकड़े पर टूट पड़े और उसे चोंच में उठाकर पेड़ पर भाग गए। अब सभी कौवे मिलकर उस टुकड़े को खाने लगे। मालूम होता था कि वे 'काँव-काँव' करके उस कुत्ते को चिढ़ा रहे थे। कुत्ता बेचारा क्रोधित होकर ऊपर की ओर मुँह किए भूक रहा था।

बच्चनप्रसादसिंह

× × ×

४. 'मुख-शुद्धी'

राजनगर नाम का एक गाँव राप्ती नदी पर बसा है। इस गाँव में अहीरों की संख्या अधिक है। पंडित सूर्यनारायणजी त्रिपाठी इन लोगों के गुरु थे। वह साल-भर में एक या दो बार अपनी जजमानी में अवश्य चक्कर लगाते और वहाँ पर पंद्रह-बीस दिन तक ठहरकर अहीरों को उपदेश देते थे। अहीर लोग पंडितजी का ख़ूब आदर-सत्कार करते थे। कोई एक दिन निमंत्रित करता था, तो कोई दो दिन। दिन-भर पंडितजी के पास आदमियों की भीड़ लगी रहती थी। जजमान लोग तरह-तरह की चीज़ें पंडितजी को भेंट करते थे। कोई एक नदिया दही लेकर पहुँचता, तो कोई एक लोटा दूध ही पंडितजी को अर्पण करता। पंडितजी भी चेलों को उनकी इच्छानुसार आशीर्वाद देते थे। पंडितजी भोजन के पश्चात् कसइली काटकर खाया करते थे। एक दिन पंडितजी के पास कसैली चुक गई। पंडितजी ने अपने एक भक्त से कहा—चेथारु राउत, जरा दो पैसे की 'मुखशुद्धी' ला दो।

चेथारु—बाबाजी, मैं अभी बाजार जाकर लाए

देता हूँ। उसने बाज़ार जाकर दो पैसे की कसइली पंडितजी को ला दी।

चेथारु राउत ने पूछा—पंडितजी! इसको खाने से क्या लाभ है?

पंडितजी बोले—इसको भोजन के पश्चात् खाने से मुख शुद्ध हो जाता है और सबको 'मुखशुद्धी' भोजन के पश्चात् अवश्य खानी चाहिए।

पंडितजी दो-चार दिन और रहने के बाद अपने घर को चले गए।

पंडितजी के चले जाने के बाद एक दिन गाँव की चौपाल में अहीरों की सभा हुई। सब दूसरे मामले तय हो जाने के पश्चात् चेथारु राउत ने उपस्थित जनता में यह प्रस्ताव रक्खा कि भोजन के पश्चात् 'मुखशुद्धी' अवश्य खाई जाय; क्योंकि पंडितजी ने कहा था कि इसके खाने से मुँह पवित्र हो जाता है। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। अब हरएक अहीर के घर तीन-चार आने की कसैली रोज़ आने लगी और वे शौक़ से खाने लगे। इससे उन लोगों का खर्च बहुत अधिक हो गया। कुछ दिनों के बाद चौपाल में फिर सब लोगों की बैठक हुई। उसमें यह तय हुआ कि एक 'मुखशुद्धी' लाकर ताक पर रख दी जाय और लोग भोजन के पश्चात् आकर उसे जीभ से चाट लें और अपने काम पर चले जायँ। तब से यही होने लगा।

दूसरे वर्ष पंडितजी फिर चेलों में आए। उन लोगों ने पंडितजी का ख़ूब सत्कार किया। एक दिन सौभाग्यवश पंडितजी के पास 'मुखशुद्धी' चुक गई। पंडितजी ने एक चेले से उसके लिये कहा, वह दौड़ा गया और चौपाल से जूठी कसैली लाकर दे दी। पंडितजी ने उसे काटकर खाया। कुछ देर बाद एक अहीर भोजन करके आया और 'मुखशुद्धी' खोजने लगा। उसे पता लगा कि वह पंडितजी के पास है। उसने पंडितजी से माँगा।

पंडितजी ने उत्तर दिया—उसे मैं खा गया।

अहीर ने कहा कि हम लोगों के पास तो वह ६ महीने से थी।

जब पंडितजी को सब मामले का पता चला, तो वह बहुत क्रोधित हुए तथा पंचगव्य आदि पीकर शुद्धि के लिये प्रयाग गए। तब से यदि कोई 'मुखशुद्धी' कहे, तो पंडितजी क्रोधित होते थे।

लड़को! समझ-बूझकर काम करना चाहिए। मूर्खों को शिक्षा देने में होशियारी से काम लेना चाहिए।

फणींद्र गोरखपुरी

× × ×

पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी की लिखी हुई दोनों पुस्तकें प्रत्येक गृहस्थ को मँगाकर अवश्य पढ़नी चाहिए।

धर्मशिक्षा
मूल्य १)

गार्हस्थ्यशास्त्र
मूल्य १)

पता—तरुण-भारत-ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग।

५. आद्यशक्ति का जागरण

सन् १९३० ई० के भारत के सत्याग्रह में कुछ विशेषताएँ हैं।

एक विशेषता के संबंध में यहाँ पर कुछ लिखा जाता है।

इस बार सत्याग्रह-आंदोलन का कोई अङ्ग ऐसा नहीं है, जिसमें हमारी माताएँ और बहनें व्यावहारिक भाग न ले रही हों। शहरों में ही नहीं, छोटे-छोटे देहातों तक में अनेक बहनें तत्परता और परिश्रम से काम कर रही हैं।

सत्याग्रह-आंदोलन गत ६ एप्रिल से सार्वदेशिक रूप में आरंभ हुआ है और अब तक के थोड़े-से काल में ही सैकड़ों महिलाएँ जेल-प्रवासिनी बन चुकी हैं। यह बात नहीं कि शहर की बहनें ही जेल गई हों, गाँवों की अनेक देवियाँ भी आज जेल की चहारदीवारियों के भीतर हैं। सुशिक्षिता और अशिक्षिता का भी भेद नहीं रहा है। इँगलैंड की पढ़ी भी गई हैं और अधपढ़ वा अपढ़ भी।

और वह जो आजकल आंदोलन में भाग ले रही हैं, उनकी संख्या भी सैकड़ों में है। देश का कोई प्रांत, कोई नगर, कोई गाँव ऐसा नहीं, जहाँ आंदोलन के अगुआ पुरुष हों और वहाँ की स्त्रियाँ उनसे पीछे हों। जहाँ ज़रा भी काम है, वहाँ कोई-न-कोई—एक ही सही—महिला—भले ही परदे में रहकर—काम ज़रूर कर रही है।

यहाँ हम ऐसी ही कतिपय देवियों के सचित्र चरित्र देते हैं, इन चरित्रों को जान-बूझकर यहाँ बहुत संक्षिप्त रूप में दिया जा रहा है।

श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति

गत सन् २१ ई० के असहयोग-आंदोलन और वर्तमान सत्याग्रह-आंदोलन में भी मदरास-प्रांत की महिलाएँ सबसे पहले जेल गईं। सन् २१ में श्रीमती सुब्बमा गरू पहलेपहल जेल गईं। [आपका सचित्र चरित्र अन्य आदरणीया महिलाओं के चरित्र के साथ हम आगामी संख्या में लिखेंगे] और इस वर्ष भी भारत में सबसे प्रथम जेल जानेवाली देवी का नाम है श्रीमती ए० रुक्मिणी लक्ष्मीपति। आप एक परम विदुषी और देशसेविका महिला-रत्न हैं। आंध्र-देशवासी श्रीयुत लक्ष्मीपति की धर्मपत्नी हैं। आपके पति अपने प्रांत के प्रसिद्ध वैद्य हैं। श्रीमती रुक्मिणीजी मदरास-विश्वविद्यालय की सीनेट की सदस्य, 'वाइस

श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति

आफ़् यूथ' की संपादिका, मदरास-यूथ-लीग की अध्यक्षा और चिंगलपट-ज़िला-बोर्ड की मेम्बर हैं। प्रांत-भर में आपका बड़ा मान है, उच्च कोटि की शिक्षिता और अँगरेज़ी की पंडिता होने पर भी आपकी यह विशेषता है कि आप भारतीय सभ्यता और हिंदू-संस्कृति की परम भक्त हैं। लाहौर-कांग्रेस के साथ जो महिला-सम्मेलन हुआ था, उसकी सभानेत्री आप ही थीं।

श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय

श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय भारत की उन पाश्चात्य-शिक्षा-दीक्षित महिलाओं में हैं, जो पाश्चात्य प्रणाली पर भारत में स्त्री-आंदोलन की प्रमुख संचालिका हैं। इस दृष्टि से श्रीमतीजी बड़ी कर्तव्यपरायण महिला हैं, और भारत-महिला-परिषद् (Woman's Indian Association) की मन्त्रिणी की हैसियत से स्त्री-शिक्षा-प्रचार और सामाजिक सुधार के संबंध में वह कुछ-न-कुछ करती ही रही हैं। अब की बार के सत्याग्रह-आंदोलन की यह विशेषता है कि कितने ही ऐसे स्त्री-पुरुषों पर महात्मा गांधी के जादू का प्रभाव पड़ा है, जिनकी आशा नहीं की जाती थी। श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने सत्याग्रह-आंदोलन के आरंभ होते ही उसमें व्यावहारिक भाग लिया। गत ६ एप्रिल से वस्तुतः आंदोलन आरंभ हुआ है, और आपने उसके दूसरे ही दिन ७ एप्रिल को बंबई के महालक्ष्मी स्थान में सदलबल जाकर नमक बनाया और व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक रूप से हज़ारों रुपए में उसे बेचा। १५ मई तक आपने नमक-आंदोलन को बंबई में बड़े ज़ोरों से चलाया। आंदोलन की अन्य दिशाओं में भी बड़ी तत्परता से काम करती रहीं। बंबई की महिलाओं को संगठित करके सार्वजनिक क्षेत्र में लाने का बहुत कुछ श्रेय श्रीमती कमलादेवी को है।

श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय

श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय १६ मई को बंबई में गिरफ़्तार की गईं। इस आंदोलन में जेल जानेवाली भारतीय वीरांगनाओं में आपका नंबर दूसरा है। महात्माजी की भाँति इन्हें भी रात के सन्नाटे में बजे सोते हुए पकड़ा गया। इन पर नमक क़ानून की दफ़ा ४७ और ताज़ीरात हिंद की दफ़ा ११७ के अभियोग लगाए गए। १७ मई सन् १९३० ई० को श्रीमती जी को मजिस्ट्रेट मि० खण्डालावाला की अदालत से ९॥ मास की सादी क़ैद की सज़ा दी गई। मुक़दमे की कारवाई में इन्होंने कोई भाग नहीं लिया, बैठी केवल मुसकुराती रहीं।

श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय श्रीमती सरोजिनी नायडू के छोटे भाई श्रीयुत हरींद्रनाथ चट्टोपाध्याय की धर्मपत्नी हैं। हरींद्र बाबू अपनी विश्व-विख्यात कवयित्री बहन की भाँति उच्च कोटि के तो कवि नहीं हैं, लेकिन हैं वह प्रतिभाशाली कवि, निपुण गायक और कुशल नाट्यकार। वह इस समय भारत के बाहर हैं, और अपने मिशन 'भारत में नाट्यकला का नवीन आंदोलन' का प्रचार कर रहे हैं। उन्होंने अपने इन गुणों के कारण पर्याप्त धन और यश कमाया है। अपने पति के कला-संपन्न जीवन की छाप श्रीमती कमलादेवी पर भी पड़ी है। वह भी एक प्रवीण गायिका और रंगमंच की कलावती अभिनेत्री हैं। इस कला में उन्हें कमाल हासिल है। वह भारत में अपने पति के मिशन को पूरा कर रही हैं—नाट्यकला में संशोधन की अग्रणी हैं। अभी पिछले वर्ष वह रवींद्र बाबू के एक नाटक के फ़िल्म में के साथ अभिनय करनेवाली थीं। श्रीमतीजी पत्रकार और ओजस्विनी वक्ता भी हैं। आप मदरास से 'शमा'-नामक उच्च कोटि की एक त्रैमासिक अँगरेज़ी पत्रिका निकालती रही हैं। श्रीमती कमलादेवी अँगरेज़ी, फ़्रेंच, जर्मन आदि कई भाषाओं की ज्ञाता और अंतर-राष्ट्रीय महिला-प्रश्न की विशेषज्ञ हैं। अंतर महिला-सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत

वह बर्लिन गई थीं । योरप और अमेरिका भी घूम आई हैं ।

श्रीमती सत्यवती

धर्मवीर स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानंदजी को आज कौन नहीं जानता । आप उन्हीं की दौहित्री हैं । सत्यवती नाम भी उन्हीं का रक्खा हुआ है । दिल्ली में अपने पति श्रीबलभद्र विद्यालंकार के साथ रहती हैं । आपके पिता लाला धनीराम लुधियाने के रहनेवाले और दिल्ली के नामी ऐडवोकेट हैं । सत्यवतीजी की अवस्था इस समय २३ वर्ष की है । देशभक्ति का पाठ आपने अपने माता-पिता विशेषकर माता और नाना तथा मामा (प्रो० इंद्र) के संसर्ग से पढ़ा । सन् १९२१ ई० के सत्याग्रह-आंदोलन के समय भी आपने अपनी माता श्रीमती वेदकुमारी के साथ काम किया था । उस समय आप पंजाब-विश्वविद्यालय की प्राज्ञ-परीक्षा के लिये तैयारी कर रही थीं, लेकिन असहयोग आरंभ हो जाने के कारण फ़ीस दाख़िल कर देने पर भी, लाला धनारामजी ने आपको परीक्षा में नहीं बिठाया ।

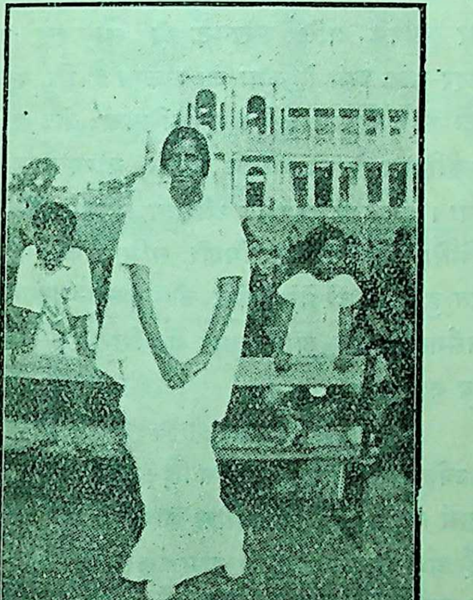

श्रीमती सत्यवती
(अपने बच्चों सहित)

आज से ९ वर्ष पूर्व जो अंकुर सत्यवतीजी के हृदय में पैदा हो चुका था, वह अनुकूल समय पाकर लहलहा उठा । दिल्ली के महिला-समाज में—और महिला-समाज में ही क्यों, सर्वसाधारण में—आज जो जीवन है, उसके उत्पन्न करने में आपका बहुत बड़ा भाग है । आंदोलन के आरंभ से ही आप घर-बार और अपने दोनों बच्चों के मोह को त्याग दिन और रात काम करती रहीं । दिल्ली नगर की महिलाओं को खद्दर के रंग में रँग दिया और परदे में रहनेवाली अनेक देवियों को बाहर आंदोलन में सम्मिलित किया है ।

२४ मई को आप दफ़ा १०८ के मुताबिक़ गिरफ़्तार की गईं । आप पर मुक़दमा चला । आपसे "नेकचलनी" की ज़मानत माँगी गई ।

श्रीमती सत्यवतीजी ने अदालत की काररवाई में कोई भाग नहीं लिया, अलबत्ता एक लिखित बयान पढ़ सुनाया ।

श्रीमती सुनीति मित्रा

श्रीमती सुनीति मित्रा बी० ए० हैं । सन् १९२० ई० में वह कलकत्ता-विश्वविद्यालय में इस क्लास की एक प्रतिभाशालिनी छात्रा थीं । उस समय आपका नाम

श्रीमती सुनीति मित्रा

कुमारी सुनीति चटर्जी था । युनिवर्सिटी से ग्रेजुएट होकर निकलने के बाद बँगाल-प्रांतीय शिक्षा-विभाग में बालिका-विद्यालयों की इंस्पेक्ट्रेस नियुक्त हुईं। इतने ही में महात्मा गांधी ने असहयोग-आंदोलन प्रारंभ किया। आपने उसी समय सरकारी नौकरी छोड़ दी।

कर्म-पथ की पथिक

उस समय देश के महिला-समाज में बहुत कम जागृति थी। सन् २१ में कलकत्ते में स्वर्गीय देशबंधु-दास की धर्मपत्नी श्रीमती वासंती देवी और देशबंधु की बहन श्रीमती उर्मिलादेवी बड़ी तत्परता से काम कर रही थीं। उन्होंने स्थानीय कांग्रेस-संगठन के अंतर्गत स्त्रियों के लिये "नारी कर्म-मंदिर"-नामक एक संस्था स्थापित कर रक्खी थी। आप भी इसमें सम्मिलित हो गईं और श्रीमती वासंतीदेवी एवं श्रीमती उर्मिलादेवी के साथ बंगाल के देहातों में भ्रमण करके वहाँ के स्त्री-समाज में ख़ूब काम किया।

इन दिनों कलकत्ते में असहयोग-आंदोलन ख़ूब ज़ोर पर था। प्रिंस ऑफ़् वेल्स आनेवाले थे, अतएव पुलीस ने आज्ञा जारी करके वालंटियर-टुकड़ियों को घूम-घूमकर खद्दर बेचने की मनाही कर दी थी। इस पर कांग्रेस की ओर से दल-के-दल स्वयंसेवक खद्दर बेचने के लिये बड़ा-बाज़ार की ओर भेजे गए। इसी दिन, ७ दिसंबर १६२१ ई० को दिन के क़रीब डेढ़ बजे कुमारी सुनीति देवी भी देश-बंधु की धर्मपत्नी और बहन के साथ खद्दर बेचने के लिये कुछ स्वयंसेवकों के साथ निकलीं और गिरफ़्तार हो गईं।

अधिकारियों ने तीनों महिलाओं से कहा कि वे ज़मानत पर छोड़ी जा सकती हैं, लेकिन इन्होंने इससे साफ़ इनकार कर दिया। तब वे विना शर्त के ही आधी रात के लगभग छोड़ दी गईं। इसके बाद भी कुमारी सुनीति चटर्जी काम करती रहीं। इसके बाद आंदोलन स्थगित हो गया।

गृहस्थी-प्रवेश

चार मास उपरांत, एप्रिल १६२२ ई० में, कुमारी चटर्जी ने कलकत्ते के 'इँगलिशमैन' के संपादकीय विभाग के श्रीयुत एन्० एम्० मित्र के साथ विवाह किया। मि० मित्र ने बाद को 'इँगलिशमैन' से नौकरी छोड़ दी और वह संयुक्त-प्रांत में भारत की समाचार-प्रसारक संस्था एसोशिएटेड प्रेस के प्रमुख प्रतिनिधि (Chief representative) नियुक्त हुए। श्रीमती सुनीति मि प्रयाग आ गईं और वहाँ के क्रास्थवेट-गर्ल्स-स्कूल अध्यापिका हो गईं। श्रीयुत मित्र ने, जो घरेलू कार्यों की वजह से कलकत्ते में रह गए थे, दिसंबर १६२२ ई० एसोशिएटेड प्रेस-आफ़िस का चार्ज लिया। थोड़े सम बाद श्रीमती मित्र भी प्रयाग से लखनऊ चली आई।

पुनः सार्वजनिक सेवा-क्षेत्र में

लखनऊ आते ही आपने स्त्री-शिक्षा और महिला-आंदोलन में गहरी दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी। वह हरिम गर्ल्सस्कूल की प्रबंधकारिणी की सदस्या निर्वाचित हुईं। लखनऊ-कांग्रेस-कमेटी में भी वह सम्मिलित हो गई।

जब साइमन-कमीशन लखनऊ आया, तब आप उसके बायकाट-आंदोलन में स्थानीय कांग्रेस-ने बाबू मोहनलाल सक्सेना के साथ ऐसा काम कि कि लखनऊ में कमीशन का बड़े ज़ोरों से बायकाट हुआ।

गत म्युनिसिपल निर्वाचन के समय आप भी गणेश-गंज वार्ड की ओर से मेम्बरी की उम्मीदवार हु और आपके प्रति लखनऊ की साधारण जनता आदर-भाव इसी से कूता जा सकता है कि बहुत ज़्याद वोटों से कामयाब हुईं। म्युनिसिपल बोर्ड की सद की हैसियत से भी आपने अपनी योग्यता का परि दिया। इसके फलस्वरूप श्रीमती मित्रा बोर्ड की शिक्ष समिति और शिशु-हितैषिणी समिति की सदस्या निर्वाचित हुईं। उन्होंने बोर्ड की कन्या-पाठशालाओं पुनर्संगठन किया और नगर में शिशु-रक्षा के काम ख़ूब बढ़ाया।

आंदोलन

ज्योंही सत्याग्रह-आंदोलन छिड़ा, श्रीमती सुनीति मि उसमें कूद पड़ीं। वह कांग्रेस-कार्यकारिणी की मेम्बर गईं और सत्याग्रहियों में नाम लिखा लिया। १४ एप्रि को बाबू मोहनलाल सक्सेना की गिरफ़्तारी के बा श्रीमतीजी लखनऊ की डिक्टेटर मनोनीत हुईं। आप विदेशी कपड़े की दूकानों पर बड़े ज़ोरों की पिके संगठित की। २२ मई को श्रीमती मित्रा तथा १५ कार्य-कर्ताओं के नाम गिरफ़्तारी का वारंट निकला, लेकिन बाद को अधिकारियों ने किसी महिला को पक ड़ने का विचार त्याग दिया, अतः श्रीमतीजी और श्रीमती बख़्शी बच गईं।

लखनऊका हज़रतगंज मुहल्ला यहाँ की सिविललाइंस है। गवर्नमेंट ने विना आज्ञा प्राप्त किए, इस बस्ती में से जलूस ले जानें की मनाही कर दी है। लेकिन लखनऊ की सत्याग्रह-संचालिका श्रीमती मित्रा ने २५ मई को इस हलक़े में होकर जुलूस ले जाना तय किया। उन पर सरकारी परवाना जुलूस न निकालने के लिये तामील किया गया; लेकिन आपने पुलीस के आर्डर को नहीं माना। वह सबसे आगे जुलूस को लेकर चलीं। लेकिन जुलूस हज़रतगंज से अभी बहुत दूर था कि श्रीमती मित्रा गिरफ़्तार कर ली गईं।

लखनऊ के इन अत्याचारों की जो सरकारी तहक़ीक़ात हुई थी, उसमें इन ज़ुल्मों का पर्दाफ़ाश हो चुका है, और तहक़ीक़ाती जज ने स्वयं इनकी निंदा की है।

जेल-यात्रा

३० मई को श्रीमती मित्र सिटी मजिस्ट्रेट मि० बशीर सिद्दीक़ की अदालत में ज़िला-जेल में पेश की गईं। उन्हें ताज़ीरात हिंद की दफ़ा १४५ का अपराधी क़रार दिया गया, और ६ मास की सादी क़ैद सुना दी गई। श्रीमती सुनीति मित्रा ने मुक़द्दमे की कार्यवाही में कोई भाग नहीं लिया और सज़ा के हुक्म को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। (क्रमशः)

मंगलदेव शर्मा

मुखबिलास मसाला
REG No.105
TRADE MARK
MUKH BILAS MASALA

मगाओ **मुफ्त** मगाओ

अगर आप पान खाने के शौकीन हैं तो हमारा मुखबिलास मसाला व ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट पान में ज़रूर खाइये खुशबूदार व खुश-ज़ायका है॥

(मुखबिलास मसाला)

कीमत मुखबिलास मसाला छोटी डि० फ़ी दरजन १|||=)बड़ी डि० फ़ी दरजन ३|||) कीमत ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट छोटी डि० फ़ी दरजन २|) बड़ी डिब्बी फ़ी दरजन ४||) फ़ैन्सी पुड़िया |||)|| सैकड़ा

[नोट] ज्यादा हाल जानने के लिये नमूना कैलेन्डर और नोटिस मुफ्त मंगाइये॥

पता— पं० प्यारेलाल शुक्ल
प्यारे लाल शुक्ला स्ट्रीट कानपुर॥

ताम्बूल अम्बरी टिकिया
पानमें खाइये
TAMBUL-AMBARI
TABLETS
TO BE USED WITH
BITTLES

(ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट)

विद्यार्थियों का सच्चा मित्र

आजकल के लड़के तथा नवयुवक जैसे निस्तेज, फीके उत्साहहीन, बलहीन और व्यसनी होते हैं यह बात किसीसे छिपी नहीं है। वे जवानी में ही बुड्ढे-से हो जाते हैं और अनेक तरह के रोगों से युक्त होकर थोड़े ही दिन की उमर में इस संसार से बिदा हो जाते हैं। यह पुस्तक इसी भयंकर परिस्थिति के सुधार के उद्देश्यसे सरल भाव में लिखी गई है। पुस्तक एक बार देखने से ही ज्ञात हो जायगा कि इससे हर एक विद्यार्थी का कितना बड़ा उपकार हो सकता है। मूल्य केवल ||≈)
रमा-सुलभ-कार्यालय महेंद्रु, पटना

साहित्य और विज्ञान

१. "कि"

यह एक छोटा-सा फ़ारसी-भाषा का शब्द है। उस भाषा में इसके कई प्रयोग हैं, जिनमें से प्रायः सभी उर्दू में और कई एक हिंदी में ले लिए गए हैं। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि हम लोग 'अगर' के बदले 'यदि' और 'मगर' के बदले 'परंतु' लिख सकते हैं; पर इस छोटी 'कि' से अपना पिंड नहीं छुड़ा सकते। इस शब्द (फ़ारसी-व्याकरण के 'हर्फ़') ने हमारी भाषा की एक वाक्यरचना ही बदल डाली है। किसी विदेशी शब्द के पर्यायवाचक प्रयोग से भाषा की उतनी हानि नहीं होती, जितनी उसके रचनात्मक प्रयोग से होती है। मालूम नहीं, किस समय और अवसर से इस 'कि' का प्रयोग हिंदी में चला है। शब्द-शास्त्रियों को इस विषय की खोज करनी चाहिए। इस खोज से उस समय का पता लगेगा, जब से हिंदी पर उर्दू के प्रभाव का आरंभ हुआ है और यह प्रश्न हिंदी-भाषा के इतिहास की दृष्टि से बड़े महत्त्व का है।

फ़ारसी के अनुसार "कि" के जो प्रयोग केवल उ में होते हैं, उनमें से कुछ ये हैं—

(१) संबंधवाचक—जैसे, "उनमें से एक ब नाकंद, कि होनहार था, वह भी मुझे दिया"। " चौक के ग़रबी ज़िले में बहुत बड़ा दरवाज़ा है आसमान से बातें करता है"।

(२) संयोजक—जैसे, "बाज़े लोग, कि वह हिंदू थे, उनका यह क़ायदा था"। "रात को श काफ़ूरी रोशन हुआ करती थी कि उसके ऊप पानी की चादर पड़ती थी"।

(३) कारणवाचक—

"बग्घियाँ नूर की तैयार कर अए नूए समन।
कि हवा खाने को निकलेंगे जवानाने चमन।"
"नसीम जागो, कमर को बाँधो,
उठाओ बिस्तर कि रात कम है।"

इसी प्रकार की रचना राजा शिवप्रसाद की पुस्तकों में पाई जाती है; जैसे, सरकार ने जेनरल

लोनी को कि अब ख़िताब मिलकर सर डेविड अक्टरलोनी हो गया था, नैपाल पर चढ़ाई करने का हुक्म दिया"।

हिंदी में इस प्रकार के फ़ारसी-रूपी उदाहरण तो नहीं पाए जाते; पर और अनेक अर्थों में "कि" का प्रयोग पाया जाता है। उदाहरण के लिये यहाँ कुछ प्रयोग लिखे जाते हैं—

(१) स्वरूप-वाचक—जैसे, "उसने कहा कि मैं जाता हूँ"। "सुनते हैं कि कल मंत्री आवेंगे"।

(२) उद्देशवाचक—जैसे, "हम तुम्हें वृन्दावन भेजा चाहते हैं कि तुम उनका समाधान कर आओ"। "रसीद लिख दी कि सनद रहे"।

(३) विभाजक—जैसे.

"कज्जल के कूट पर दीप-शिखा सोती है,
कि श्याम घन-मंडल में दामिनी की धारा है।
बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजे।
परंतु पूर्वापर सोच लीजे॥"

(४) संयोजक—जैसे, मैं जाने को ही था कि आप आ गए। वह अभी चार ही बरस का हो पाया था कि उसका बाप मर गया।

यद्यपि "कि" फ़ारसी का शब्द है, तथापि वह कई एक निरे हिंदी-शब्दों से भी मिलकर आता है; जैसे—क्योंकि, जो कि, यहाँ तक कि, इसलिये कि। फ़ारसी के चूँकि, हालाँ कि, ताकि, गोकि आदि शब्दों में "कि" का मिलना स्वाभाविक है; पर वह हिंदी-संबंधवाचक शब्दों से भी मिल जाता है; जैसे—जब कि, जहाँ कि, जैसे कि, जितना कि। कभी-कभी "कि" संबंध-वाचक शब्दों के पहले भी आ जाता है; जैसे—"किसी समय जा हरिश्चंद्र बड़ा दानी हो गया है कि जिसकी र्ति संसार में अब तक छाय रही है।" "कौन-कौन-से मय के फेर इन्हें झेलने पड़े कि जिनसे ये कुछ के हो गए।" इस प्रकार के प्रयोग अब हिंदी में बहुत हो गए हैं; पर उर्दू में उनकी बहुतायत है।

हिंदी की पुरानी कविता में 'कि" का स्वरूपवाचक ोग बहुधा नहीं पाया जाता। उसमें इसका ख विभाजक प्रयोग मिलता है; जैसे—

"रखिहैं भवन कि लैहैं साथा"। (राम०)

"सत्व सत्वगुण को कि सत्य ही की सत्ता शुभ,
सिद्धि की प्रसिद्धि कि सुबुद्धि-वृद्धि मानिए।"
(कवि०)

रमा कि राधा कै गिरा गिरिजा कै रति जानि।
(भारती०)

इस "कि" के प्रयोग में एक विशेष बात यह है कि यद्यपि फ़ारसी में इसका विभाजक प्रयोग पाया जाता है; जैसे, "ईं किताब मी ख़्वाही कि आँ" (यह किताब चाहते हो कि वह); तो भी उर्दू में 'या' के बदले 'कि' का प्रयोग बहुत कम मिलता है। कदाचित् वह अशिष्ट समझा जाता है। पर उसे हिंदी के गद्य में भी शिष्ट समझते हैं; जैसे—आप वहाँ जायँगे कि नहीं।

हिंदी के सिवा दूसरी पश्चिमी आर्य-भाषाओं में भी यह फ़ारसी "कि" किसी-न-किसी रूप और अर्थ में आती है, जिससे इस छोटे-से शब्द की व्यापकता स्पष्टतः प्रकट होती है। पूर्वी आर्य-भाषायों में "कि" के बदले 'जे' का प्रयोग होता है; जैसे उड़िया में "से कहिला जे मूँ जिबि" (उसने कहा कि मैं जाऊँगा)। पुरानी मराठी में भी 'कि' के बदले 'जे' का प्रयोग पाया जाता है; जैसे—"ते थें लिहिलें होतें जे सल्ला करून तुम्हीं आम्हीं एक व्हावें" (मराठी व्याकरण)। हिंदी में भी कई स्थानों में "कि" के स्थान में "जो" आता है; जैसे—आपने बड़ी कृपा की जो यह पुस्तक मेरे पास भेजी। ऐसा न हो जो इंद्र यह समझे।

संस्कृत में "कि" का अर्थ सूचित करने के लिये "इति" के साथ अथवा अकेला "यत्" आता है; जैसे—सत्योयं जन प्रवादो यत् संपत्संपदमनुबध्नाति इति (यह जनप्रवाद सत्य है कि संपत् संपत् का अनुगमन करती है)। इसी यत् से हिंदी का "जो" और बँगला का "जे" निकला है। हिंदी में "जो" का प्रचार अब कम हो गया है—केवल कुछ विशेष अर्थों में रह गया है और उसके स्थान में उर्दू-फ़ारसी का "कि" आ गया है।

यत् और इति की सहायता से संस्कृत में प्रत्यक्ष-भाषण-संबंधी दो प्रकार की रचना होती है; जैसे—"सोऽब्रवीत्, यथेच्छं गम्यताम् इति"। "मया एतावन्तं कालं न ज्ञातं, यत् त्वम् अत्र वससि"। इनमें से 'इति"-वाली रचना का प्रचार हिंदी को छोड़ अन्य कई आधुनिक आर्य-भाषाओं में पाया जाता है; जैसे, मराठी—मी बघेन म्हणून तो म्हणाला [मैं देखूँगा (यह) कहकर वह बोला]। बँगला—आमि देखिब बलिया से कहिल। उड़िया—मूँ देखिबि बोलि से कहिला। इन भाषाओं

में 'यत्'-वाली रचना भी पाई जाती है ; परंतु हिंदी में केवल इसी पिछली रचना का प्रचार है। हमारी भाषा में "इति" के अर्थ का कोई अव्यय भी नहीं है; पर मराठी, बँगला आदि भाषाओं के प्रभाव से जब कभी हिंदी में ऐसी रचना आ जाती है, तब उसमें "यह" वा "ऐसा" का प्रयोग होता है, पर इससे पूर्णतः वह "इति-वाली" रचना के समान नहीं जान पड़ती ; जैसे—"मैं देखूँगा, यह (ऐसा) उसने कहा।" तथापि हिंदी-भाषा की प्रवृत्ति ऐसी रचना की ओर नहीं है । हिंदी की जिन बोलियों पर मराठी अथवा बँगला (वा उड़िया) का निकट प्रभाव पड़ा है, उनमें अवश्य इति-वाली रचना का समावेश हुआ है। मध्यप्रदेश में छत्तीसगढ़ी एक ओर उड़िया से और दूसरी ओर मराठी से घिरी हुई है; इसलिये उसमें यह रचना पाई जाती है ; जैसे, मैं देखिहौं कहिके ओ-हर कहीस । छत्तीसगढ़ के शिक्षित और नगर-निवासी जब खड़ीबोली बोलते हैं, तब वे उसमें अपनी मातृभाषा के प्रभाव से बहुधा ऐसी ही रचना का प्रयोग करते हैं ; जैसे, मैं देखूँगा करके उसने कहा।

यद्यपि हिंदी के प्रायः सभी प्राचीन काव्यों में "कि" का प्रयोग नहीं है, तथापि उनमें यत्-संबंधी रचना का अधिक प्रचार है। राम-चरित-मानस में कहीं-कहीं इति-वाली रचना भी पाई जाती है ; जैसे—

भरत भुआल होयँ **यह** साँची।

× × ×

रा **अस** नाम सुनत दशकंधर।

× × ×

सोहमस्मि **इति** वृत्त अखंडा।

संस्कृत के समान प्राकृत में भी "इति"वाली रचना का प्रचार अधिक है। इस भाषा के उदाहरणों में हमें 'यत्'वाली रचना के उदाहरण नहीं मिले। "कर्पूरमंजरी" (प्राकृत) से लिए गए इतिवाली रचना के कुछ उदाहरण ये हैं—

(१) सा देवरणोहिं आदिट्ठा, एसा चक्कवट्टिघरिणी भविस्सदि त्ति । (सा दैवज्ञैरादिष्टा, एषा चक्रवर्त्ति-गृहिणी भविष्यति इति)।

(२) वअस्स, सव्वं एदं भैरवाणन्दस्स विजम्भिदं त्ति तक्केमि । (वयस्य, सर्वमेतत् भैरवानंदस्य विजृम्भितम् इति तर्कयामि)।

प्राकृत के पश्चात् अपभ्रंश का समय आता है। भाषा के जो उदाहरण यत्र-तत्र उद्धृत पाए जाते उनमें इति-वाली रचना नहीं मिलती।

उसके स्थान में यत्-वाली रचना के उदाहरण अधि से उपलब्ध होते हैं; पर संयोजक शब्द 'जो' (य का बहुधा लोप रहता है; जैसे—

"ढोल्ला, मइ तुहुँ वारिया, मा कुरु दीहा माणु।
निद्दए गमही रत्तड़ी, दड़वड़ होइ विहाणु॥"

(प्रिय, मैं तुम्हें रोकती हूँ कि बहुत मान मत क नींद में रात बीत जायगी और जल्दी सवेरा जायगा।)

"बिट्टीए, मइँ भणिय तुहुँ, मा कुरु वंकी दिट्ठि।
पुत्ति, सकण्णी भल्लि जिव मारइ हिअइ पइट्ठि॥"

(हे बेटी, मैं तुझसे कहता हूँ कि तू टेढ़ी दृष्टि कर। हे पुत्री, यह नुकीले भाले के समान हृदय में कर मारती है।)

"भल्ला हुआ **जु** मारिया, बहिणि महारा कंतु।
लज्जेज्जन्तु वयंसिअहु **जइ** भग्गा घर एन्तु॥"

[हे बहन, अच्छा हुआ जो मेरा कन्त मारा ग (क्योंकि) यदि वह भागा हुआ घर आता, (मैं सखियों में लज्जित होती।]

इन उदाहरणों में से केवल तीसरे में "कि" के में 'जु' आया है; अन्य दो में उसका अध्याहार हु है, जैसा वर्तमान हिंदी-गद्य में कभी-कभी और प्रा पद्य में बहुधा होता है। यह "जु" संस्कृत के "य का ही अपभ्रंश हो सकता है, "यदि" का नहीं; क्यों "यदि" का अपभ्रंश "जइ" इस उदाहरण की दू पंक्ति में आया है। अपभ्रंश का यही "जु" हिंदी का "जो" है, जिसके बदले अब "कि" का प्रयो अधिक होने लगा है।

पृथ्वीराज-रासो में भी जहाँ तक मैं पता सका हूँ "कि" का उपयोग नहीं है; पर उसमें भी 'य वाली रचना पाई जाती है, जैसा कि नीचे लिखे उ हरणों से प्रकट होता है—

उच्चिष्ठ छंद चंदह वयन सुनत सुजंपिय नारि।
तनु पवित्त पावन कविय उकति अनूठ उधारि।
कब्बी कब्बि चंद सु माधौ-नरिंदं।
सुरंतान भट्टं मधू-माद इंदं॥

इन सब उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि अपभ्रंश में और उसके पश्चात्, प्राकृत की इतिवाली रचना का लोप हो गया और हिंदी-गद्य में "यत्" के बदले "जो" का प्रयोग होने लगा। फिर उर्दू में "कि" का प्रचार बढ़ जाने से समागम के कारण हिंदी में "जो" का प्रयोग कम हो चला और उसके स्थान में "कि" प्रयुक्त होने लगा। यह प्रयोगांतर कब से हुआ, इसका निर्णय एक स्वतंत्र खोज का विषय है; पर ऐसा अनुमान होता है कि "खड़ीबोली" के प्रचार के समय से ही "कि" के प्रयोग का आरंभ हुआ है। व्रजभाषा के प्राचीन गद्य में और संभवतः आजकल भी "कि" के बदले "जो" ही प्रयुक्त किया जाता है।

कामताप्रसाद गुरु

× × ×

दिमाग़ को तरबतर रखने तथा उसे सफलीभूत बनाने के लिये आपने कोई उपाय किया है ?
किया हो, और उसमें असफलता प्राप्त हुई हो, तो आपको कोई दूसरा उपाय सूझा है ?
न सूझा हो तो ध्यान में रखिए,
कि,
दिमाग़ को शान्ति देना,
आवश्यकतानुसार बालों को खुराक पहुँचाना,
बालों को जीवनतत्त्व प्रदान करना,
अपने दिमाग़ को ताज़ा तथा सफलीभूत बनाना,
बालों को लम्बा और चमकदार रेशम-तुल्य बनाना
हो, तो

KAMENIA
OIL
for
HAIR

कामिनिया ऑईल (रजिस्टर्ड)
इस्तेमाल कीजिए

आजकल की वर्तमान स्थिति में अनेकों प्रकार के दूसरे-दूसरे नाम के तेल निकल रहे हैं, जिनके उपयोग से आपको तेलों के प्रति श्रद्धा जाती रहती है, परन्तु यहाँ तो लाखों व्यक्तियाँ इसकी प्रशंसा करके गारंटी देते हैं
कि,
कामिनिया ऑईल ही बालों का सर्वस्व है। हरएक मंगलमय त्योहारों के अरुणोदय में अपने केश-कलापों को कामिनिया ऑइल से सँवारिए। क़ीमत प्रति शीशी १)

प्रत्येक शहर तथा गाँव में प्रसिद्ध दूकानदार से मिल सकता है—बाहर से मँगाने में वी पी. ख़र्च ।≈) पृथक् पड़ता है ३ शीशी का २॥≈) पो० ख़र्च ॥।) आना पृथक्। आध आने के टिकट आने पर नमूना शी० मुफ़्त भेजा जाता है।

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)
रूमाल पर कुछ बूँद छिड़क देने से फुलवारी की तरह ख़ुशबू पसर जाती है। आज ही १ शीशी मँगाकर आज़माइश कर लीजिए।
मूल्य ½ औंस प्रति शी० २) ¼ औंस १।) रु०
,, १ ड्राम ,, ,, ॥।) डाक-व्यय पृथक्
दो आने के टिकट आने पर नमूना शीशी मुफ़्त भेजी जाती है।

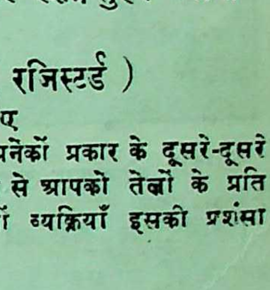

२०
सोल एजेंट—
दी ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी २८५, जुमा मसजिद मार्केट, बंबई नं० २

२.विज्ञान-वैभव

गोलाकार ताश के पत्ते

अब इँगलैंड में गोलाकार ताश के पत्ते बनने लगे हैं। पत्तों में छः-छः जगह छपे और नंबर लगे रहते

गोलाकार ताश के पत्ते

हैं, जिससे नंबर ताश की किसी भी अवस्था में सरलता से पढ़े जा सकते हैं। ताश के आकार में यह रद्दोबदल कई वर्षों के बाद हुआ है।

हवेलीनुमा स्वर्ग-निसेनी

न्युयार्क शहर में कालेजिएट-चर्च के पासवाली सड़क पर भी आने-जानेवालों की भीड़ अधिक रहती है; इससे वहाँ दुर्घटनाएँ—ताँगा-मोटर से पैदल चलनेवालों का दबना तथा सवारी-से-सवारी का भिड़ना—होने की अधिक संभावना रहती है। ख़ास कर पैदल चलनेवाले बहुत दबा करते हैं; इससे वहाँ हवेलीनुमा स्वर्ग-निसेनी बना दी है, जिससे पैदल चलनेवाले ऊपर से जायँ और सवारियाँ नीचे से।

बालकों के स्पर्द्धार्थ छोटे-छोटे पहिएदार हवाई जहाज़

फ़्रांस ने हवाई जहाज़ बनाने में उन्नति क्या की—वहाँ के बालक भी हवाई-बुद्धि (Air-minded) वाले हो गए और होड़ बदकर छोटे-छोटे पहिएदार

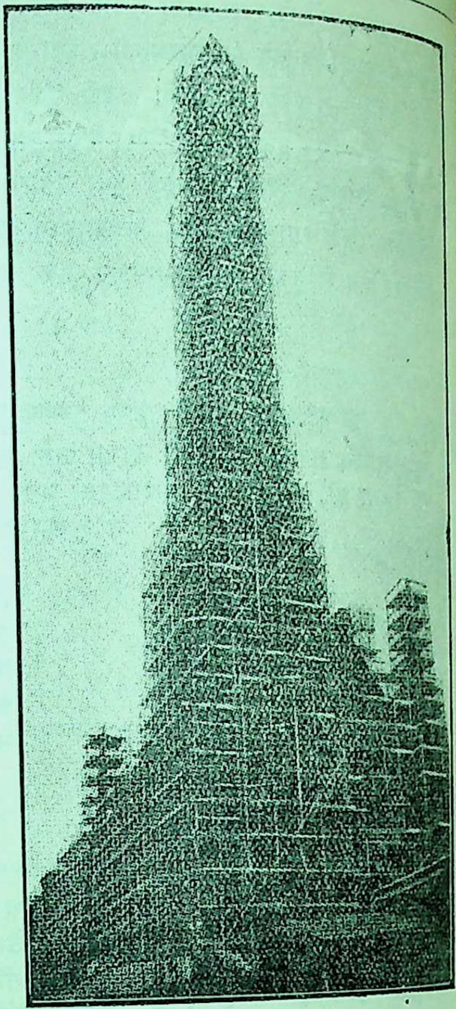

हवेलीनुमा स्वर्ग-निसेनी

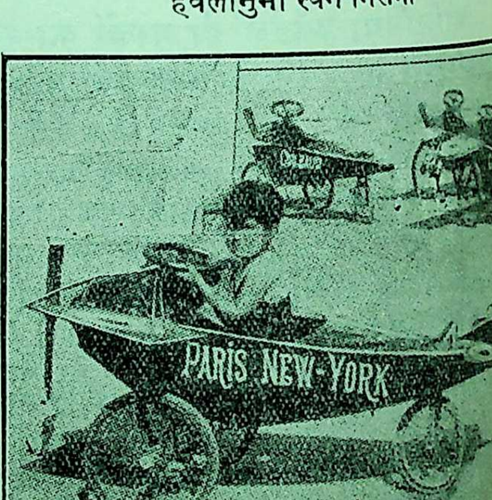

पहिएदार हवाई जहाज

हवाई जहाज़ों में दौड़ लगाते हैं। इन पहिएदार हवाई जहाज़ों में तीन-तीन चक्के होते हैं। जिस प्रकार तिपहिया साइकिल और पैर-मोटर चलाई जाती है, उसी प्रकार ये पहिएदार हवाई-जहाज़ चलाए जाते हैं।

लकड़ी के पैर से चलनेवाली गाय

डेनूमार्क की गाय जब किसी पैर से लँगड़ी हो जाती है या उसका कोई पैर टूट जाता है, तब उसके पैर में नाप से लकड़ी का पैर बाँध दिया जाता है। गाय बड़े मज़े में चलने लगती है। यहाँ एक गाय का चित्र दिया जाता है, जिसका एक पैर टूट गया था और

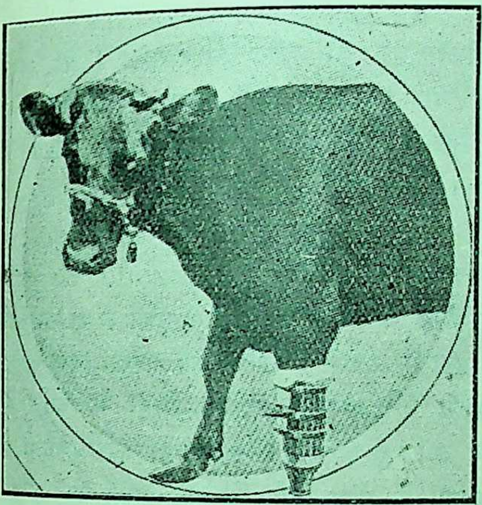

लकड़ी के पैर से चलनेवाली गाय

बेचारी को चलने में बड़ी तकलीफ़ होती थी; पर जब से उसे लकड़ी का पैर मिल गया, तब से वह बड़े आनंद से चला करती है। कहते हैं, जिस प्रकार अन्य गाएँ चला करती हैं, वैसो ही यह भी बड़ी सरलता से चलती है। भारतीय तो गाय को अपनी मा के समान मानते हैं। भारत में ऐसी हज़ारों गाएँ होंगी, जिनके पैर भी किसी-न-किसी कारण से ख़राब हैं। अच्छा होता यदि उक्त गायों के मालिक भी अपनी-अपनी गाय के लिये लकड़ी का पैर बनवा देते।

अजीब चूल्हा

यह मिट्टी का चूल्हा नहीं है, यह यंत्र है। इस यंत्र में छः मनुष्यों के लिये चार क़िस्म की तरकारियाँ और काफ़ी गोश्त एक ही समय में बना सकते हैं। बहुत जल्द और सुगंधित भोजन तैयार करनेवाला यह यंत्र बहुत ही उपयोगी है।

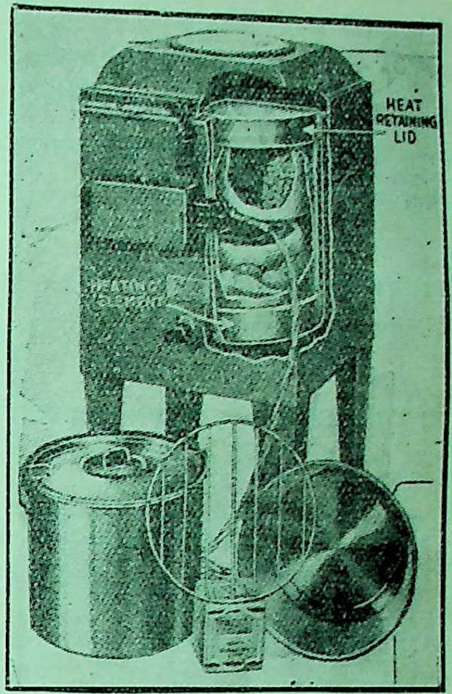

अजीब चूल्हा

झाड़ू या कपड़ा

यह बुहारी बड़ी जल्दी तैयार हो जाती है और

झाड़ू या कपड़ा

फ़र्श को इतनी अच्छी तरह साफ़ कर देती है, मानों फ़र्श कपड़े से पोंछ दिया गया हो । इससे दीवाल को भी झाड़ते हैं । दीवाल को यह खरोंचती तथा खोदती नहीं । यह झाड़ू अड़चन की जगहों को जहाँ दूसरी बुहारी पहुँच नहीं पाती, झाड़ देती है ।

गुलाब का तेल

क़रीब एक औंस गुलाब के तेल के लिये लगभग ४०,००० गुलाब की कलियाँ चाहिए ।

झटपट भोजन बनानेवाला डब्बा

आटे, दूध और अंडे आदि की लपसी इस डब्बे में छोड़ दी जाती है और एक छड़ से घोंटकर झटपट स्वादिष्ट एवं बलवर्द्धक भोजन तैयार कर लिया जाता है ।

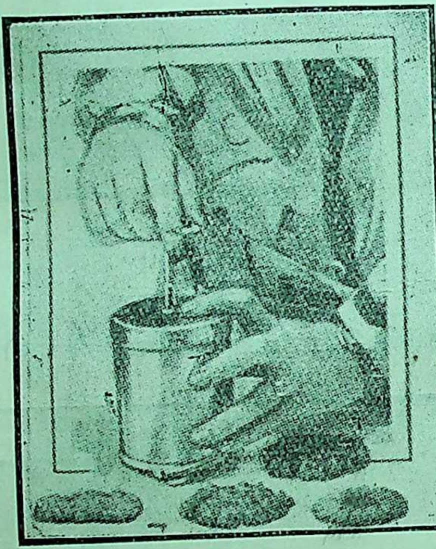

झटपट भोजन बनानेवाला डब्बा

पुलिस के कालर में बम

लंदन की पुलिस को उनके कालर में रखने के लिये टेनिस की गेंद के बराबर बम का गोला दिया जाता है । ये पुलिसवाले जब देखते हैं कि चोरों की मोटर जा रही है, तब ये मोटर के चक्कों पर बम फेंक देते हैं, जिससे टायर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते और मोटर के खड़ी होने पर वे उन्हें गिरफ़्तार कर लेते हैं ।

गाना गाकर जगानेवाली घड़ी

यह एक नई क़िस्म की घड़ी है, जो ग्रामोफ़ोन से जुड़ी रहती है । रात को अलार्म लगा दीजिए और ग्रामोफ़ोन पर जो प्लेट आप सवेरे (या जब आप चाहें) सुनना चाहें लगा दें ; आपको आ इच्छानुसार समय पर घड़ी गाना गाकर देगी ।

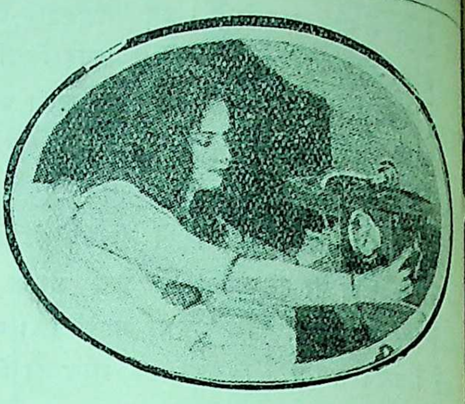

गाना गाकर जगानेवाली घड़ी

नागफनी का विशाल वृक्ष

अर्जना रेगिस्तान (Arizona desert हिंदुस्तानी नागफनी के विशाल वृक्षों से शक्कर निका हैं । इसका उपयोग अधिकतर शरबत बनाने के में होता है । शरबत चिकनी मिट्टी के बर्तन में किया जाता है और १-२ साल तक ख़राब नहीं हो नागफ़नी के फल वर्ष में एक बार काटे जाते औरतें लाल और पके फल बाँसों से तोड़ती हैं । में पत्थर के ढले हुए हुक (Hook) लगे रहते फलों से अँगूठी में लगे हुए नुकीले कीलों द्वारा (कुछ मुड़े रहते हैं) गूदा निकालते हैं । आधे दि एक मनुष्य (या औरत) लगभग १ सेर या १/४ गै गूदा निकाल सकता है । मर्द लोग भट्टी जलाते गूदों के अर्क को तब तक उबालते हैं, जब तक बर्तन में रखने योग्य शरबत नहीं बन जाता । नाग के फल से अचार या मुरब्बे भी बनाए जाते हैं । की तरकारी बनती है । मुर्ग़ियों आदि के बच्चों को बीज चुनाते हैं ।

तीन-तीन हवाई जहाज़ों का आपस में बँधकर उड़ना

अब तीन-तीन हवाई जहाज़ आपस में ४० लंबे रस्से से बँधकर उड़ा करते हैं । इस तरह ख़ वाले उड़ावे में हवाई जहाज़ों का अग्रभाग कभी-क तो १५ फ़ीट के अंतर में आ जाता है । ये हवाई ज

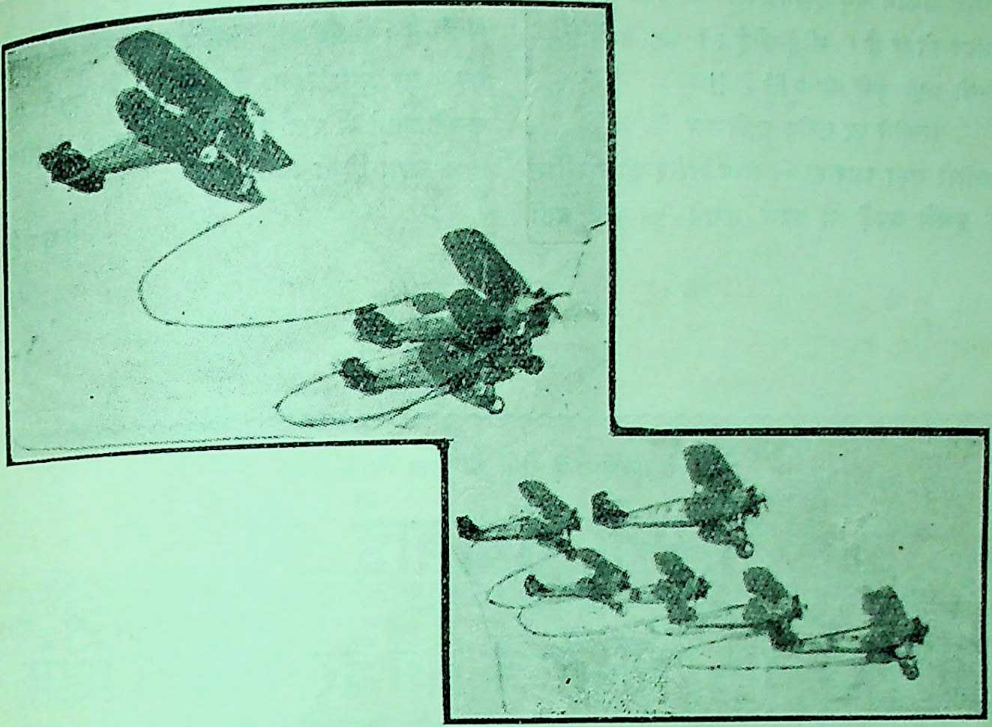

तीन-तीन हवाई जहाज़ों का आपस में बँधकर उड़ना

जब तीन-तीन के ग्रूप में उड़ते हैं, तब इनका नाम "Vee of Vees रहता है ; किंतु जब नौ-नौ का ग्रूप रहता है, तब "V" कहलाते हैं ।

डागहाउस

केलीफ़ोर्निया में एक ऐसा मकान है, जो कुत्ते की शक्ल का बना है । इसे 'डागहाउस' (Dog house)

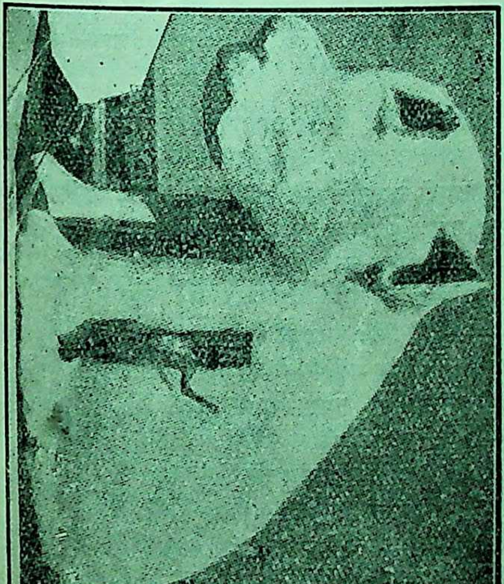

इसतीरी का नवीन आविष्कार

कहते हैं। यह मकान नए देखनेवालों को बड़ा आश्चर्य-कारक प्रतीत होता है। कोई-कोई तो कह उठते हैं—वाह ! कितनी बड़ी कुत्ते की मूर्ति है !!

इसतीरी का नवीन आविष्कार

यह इसतीरी बड़ी आराम की तथा शरीर को सुरक्षित रखती है। इससे कपड़े में आग लगने का भय नहीं रहता। रस्सी आप-ही-आप भीतर की चर्ख़ों से निक जाती है। रस्सी की रफ़्तार के लिये चर्ख़ी-घर के एक बटन लगा रहता है। काम हो जाने पर इस उसके खाने में रख दी जाती है तथा रस्सीवाले कार्क लगा दिया जाता है।

केशवप्रसाद वर्मा

स्त्रियों के गर्भाशय के रोगों की ख़ास चिकित्सिका

श्रीमती गंगाबाई की

पुरानी सैकड़ों केसों में कामयाब हुई, शुद्ध वनस्पति की औषधियाँ

वंध्यात्व और गर्भाशय के रोग दूर करने के लिये

गर्भजीवन प्रशंसापत्र

गर्भजीवन रजिस्टर्ड से ऋतु-संबंधी सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं। रक्त तथा श्वेत प्रदर, कमलस्थान ऊपर न होना, पेशाब में जलन, कमर का दुखना, गर्भाशय में सूजन, स्थान-भ्रंशी होना, मेद, हिस्टीरिया, जीर्ण तथा प्रसूति-ज्वर, बेचैनी, अशक्ति आदि और गर्भाशय के तमाम रोग दूर हो जाते हैं। यदि किसी प्रकार भी गर्भ न रहता हो, तो अवश्य रह जाता है। क़ीमत ३) मात्र। डाक-ख़र्च पृथक्।

गर्भरक्षक रजिस्टर्ड से गर्भ का कुसमय गिर जाना, गर्भ-धारण करने के समय की अशक्ति, प्रदर, ज्वर, खाँसी और ख़ून का स्राव आदि सभी बाधक बातें दूर होकर पूरे समय में सुंदर तथा तंदुरुस्त बच्चे का जन्म होता है। हमारी ये दोनों औषधियाँ लोगों को इतना लाभ पहुँचा चुकी हैं कि ढेरों प्रशंसा-पत्र आ चुके हैं। मूल्य ४) मात्र। डाक-ख़र्च अलग।

गर्भरक्षक प्रशंसापत्र

हाल के प्रशंसापत्रों में कुछ नीचे पढ़िए—लोग क्या कहते हैं !

चीरबलदा, डांग (डी० बालामोरा)। ता० २६।१।३०

आपकी दवाई का सेवन करने से फ़ायदा पहुँचा और लड़की का जन्म हुआ।

हिम्मतसिंह एम्० चौराणा

सिवा भाई एस० पटेल, C/o, नटवरलाल ऐंड कं०

लाडसा (डी० बालाघाट)। ता० २२।१।३०

मैंने आपके कारख़ाने से जो दवा गर्भ-जीवन मँगाया था उससे मेरी पत्नी का जो मृत-वत्सा रोग था वह इस दवा के सेवन के बाद एक कन्या उत्पन्न हुई। वह आगामी शिवरात्रि को चार वर्ष की होगी।—बृजलाल पटेल

पाचोरा (जि० खानदेश) ता० २५।१।३०

आपकी दवाई से मेरी पत्नी को संपूर्ण आराम हुआ उसके लिये बहुत कृतज्ञ हूँ।

कल्यानसिंह चावड़ा, C/o चावड़ ब्रादर्स

बालाघाट (सी० पी०)। ता० २५।१।३०

अब मेरे को पहले से फ़ायदा है, ऋतु मासिक बराबर महीने में होता है, ऋतु का रंग पहले काला था, अब रंग लाल है, भूख अच्छी लगती है, खाना हज़म होता है, दस्त बराबर होता है, पेशाब में जलन नहीं होती, कमर वग़ैरे में दर्द नहीं होता।—गिरजाबाई, C/o गनपतराय

याद रक्खो कि ऐसे एक दो नहीं, किंतु सैकड़ों प्रशंसा-पत्र मिल चुके हैं। २१

अपनी तकलीफ़ की पूरी हक़ीक़त साफ़ लिखो।

पता—गंगाबाई प्राणशंकर, गर्भजीवन औषधालय, रीची रोड, अहमदाबाद

जीवन-ज्योति

१. गौश उर्वी

'एकः शब्दः सुप्रयुक्तः सम्यक्ज्ञातः स्वर्गे लोके कामधुग् भवति'
—महाभाष्य

भारतवर्ष के इतिहास का माध्यमिक युग, जिसे हम दूसरे शब्दों में याज्ञिक काल भी कह सकते हैं, हमारे लिये एक अत्यंत दुर्बोध पहेली के समान है। इस पहेली का यथार्थ रूप समझने का प्रयास बहुत-से विद्वानों ने किया, मगर उस सारे प्रयास के बाद भी अगर हम ध्यानपूर्वक देखें, तो शायद किसी उर्दू-शायर की इस शेर को दोहरा देना कुछ अयुक्त न होगा—

…… …… …… ……मुद्दत से चूँचरा हुई ।
मगर ख़ुदा की बात जहाँ थी वहीं रही ।

भारतवर्ष सदा से धर्मप्रधान देश रहा है। धर्म ही उसकी जान है, धर्म ही उसकी शान है और धर्म ही उसका मान है। इसी धर्म की रक्षा के लिये एक दिन उसके सम्राट् महाराज हरिश्चंद्र ने उस अतुल ऐश्वर्य और भोग पर, उस अनंत वैभव और संपत्ति पर और उस चक्रवर्ती साम्राज्य पर लात मारकर एक चांडाल के यहाँ दासवृत्ति स्वीकार की । इसी धर्म के लिये मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र ने राजपाट ठुकराकर १४ वर्ष की घोर तपस्या—जिसका नाम लेते रूह काँप जाती है—करने के लिये जंगल का रास्ता पकड़ा था। हमारे इस याज्ञिक काल में भी भारतवर्ष का आदर्श वही था। वह अपने ध्येय पर अब भी उसी तरह अटल था, मगर उस धर्म के स्वरूप में—जो उसका अंतिम लक्ष्य था—अब भेद हो गया था। शरदृतु की वह निर्मल और पवित्र धारा, जिसे देखकर देवता भी मुग्ध हो जाते थे, चक्र के विकराल परिवर्तन के साथ वर्षाऋतु की गँदली और भयानक तूफ़ानी धार के रूप में परिवर्तित हो गई थी, जिसे देखकर सहृदय पुरुष घृणा से मुँह फेर लेते थे। भारतवर्ष का 'अहिंसा परमो धर्मः'वाला सिद्धांत आज का नया सिद्धांत नहीं है और न यह भगवान् बुद्ध का चलाया हुआ पंथ है, बल्कि यह है महर्षि मनु का आदेश और भगवान् वेद की अटल आज्ञा । यही गंगा की निर्मल धारा थी, जिसने इस याज्ञिक काल में, 'वैदिकी हिंसा अहिंसा' के रूप में अपने उस विशुद्ध स्वरूप को, मलिनता में परिवर्तित कर दिया। भारतवर्ष के आदर्श—इस नवीन धर्म—'वैदिकी हिंसा अहिंसा' के नाम पर

तात्कालीन भारत में सचमुच हिंसा और अत्याचार का नग्न नृत्य हो रहा था, जिसे देखकर महात्मा बुद्ध की आत्मा रो उठी और एक आस्तिक राजवंश में पैदा होकर भी बुद्ध ने इस प्रकार के घृणित आदेश देनेवाले (बुद्ध की समझ में) वेदों से घृणा के साथ मुँह फेर लिया। संस्कृत-साहित्य की आलोचना के बाद अगर हम उस समय के किसी ग्राम या नगर का काल्पनिक चित्र अपने दिमाग़ में खींचें, तो उसे देखकर स्वयं हमारे रोंगटे खड़े हो जायँगे। यह संभव नहीं कि कोई भी सहृदय पुरुष उस अत्याचार और नृशंसतापूर्ण घृणित चित्र को देखने के बाद भी तत्कालीन वैदिक धर्म के प्रति अपनी श्रद्धा और सहानुभूति क़ायम रख सके। थोड़ी देर के लिये उस समय के किसी अच्छे काल्पनिक शहर में घुसकर उसकी परीक्षा कीजिए। शहर में घुसते ही दिमाग़ सबसे पहले जलते हुए मांस की बदबू के मारे सड़ जायगा। कहीं घोड़े का मांस जल रहा है, तो कहीं गोमेध की आहुति में गाय काटकर जलाई जा रही है और कहीं इससे भी बढ़कर साक्षात् नरमेध की होलिका प्रदीप्त हो रही है। सड़क पर कहीं किसी की खोपड़ी पड़ी है, तो कहीं किसी की टाँग। एक ओर ख़ून से ज़मीन लाल हो रही है, तो दूसरी ओर चर्बी की भयानक दुर्गंध उठ रही है। याज्ञिक काल के वैदिक मतानुयायियों की इस आदर्श नगरी को देखकर ज़बान से बेअख़्तियार निकल पड़ता कि परमात्मा इस प्रेतपुरी में दुश्मन को भी न ले जाय। ख़ैर, जैसे-तैसे करके आप यहाँ से निकल भी गए और किसी गृहस्थ के घर अतिथि बने, तो सबसे पहले 'मधुपर्क' के द्वारा आपकी अभ्यर्थना की जायगी, और आपकी उस पूजा की सामग्री को जुटाने के लिये वह ग़रीब और

> अपि सदैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।
> वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या भूतिमिच्छता॥

का कट्टर अनुयायी गृहस्थ सरतोड़ परिश्रम करके भी एक पवित्र और निरपराध वत्सतरी बछिया को लाएगा, उसके गले पर धर्म के नाम पर हँसते-हँसते ज़हरीली कटारी फेर देगा; क्योंकि यही 'समांसो मधुपर्कः' धर्म का आदर्श है और यही भगवान् वेद की आज्ञा है। सारांश यह कि उस शहर को शहर के बजाय बूचड़ख़ाना कहने में भी शायद अत्युक्ति न होगी। आजकल के शहरों में बूचड़ख़ानों की संख्या एक-दो करके उँगलियों गिनी जा सकती है, मगर याज्ञिक काल के नगरों प्रत्येक घर बूचड़ख़ाना बना हुआ था और उस पर ख़ुसूसियत यह कि यह सब था केवल धर्म के नाम और वेद की दुहाई देकर!

हमारा विश्वास है कि वेद-ज्ञान ईश्वरीय देन वह अक्षय ज्ञान का भंडार है, उसमें मानव-जीवन की योगिनी समस्त विद्याएँ मूलरूप में पाई जाती हैं उसका उद्देश्य संसार में सुखसमृद्धि की वृद्धि मानव-जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करना है। प्रकार के वेदों से इस निर्दयतापूर्ण शिक्षा या आज्ञा आशा करना नितांत अयुक्त है। यह हम केवल विश्वास के आधार पर ही नहीं लिख रहे हैं, बल्कि के मर्मज्ञ ऋषियों की साक्षियों के आधार पर शब्दों में कह सकते हैं कि भगवान् वेद ने आज तक कभी आज्ञा नहीं दी। यह सब करतूत सिर्फ़ भाष्यकारों टीकाकारों के दिमाग़ की कल्पना है, जिन्होंने वेदों अर्थ को —

> जाकी रही भावना जैसी,
> प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।

समझ लिया है। टीकाकारों और भाष्यकारों के दि में एक भूत घूम रहा था। उन्होंने जहाँ गोमेधशब्द दे झट उसका अर्थ गौ काटकर किया जानेवाला यज्ञ दिया। और, अब संस्कृत के विद्यार्थियों के यह सं इतने प्रबल हो गए हैं कि उनके सामने जब गो शब्द आता है, तो वह इस बात की कल्पना भी नहीं सकते कि 'गोमेध' शब्द का इससे अच्छा एवं सुसंगत और भी अर्थ हो सकता है।

संस्कृत-साहित्य के विद्यार्थियों के लिये इस प्रकार समस्यायों का सामना करना एक साधारण-सी बात गई है। अपने विषय का अध्ययन करते समय सामने इस प्रकार की न-जाने कितनी समस्याएँ स्थित होती रहती हैं, जिनका हल न उनके पास है न उनके गुरुओं के और अगर अत्युक्ति न समझी जाय इससे एक क़दम और आगे बढ़कर मैं कह सकता हूँ कि समस्याओं का कोई ऐसा हल सारे संस्कृत-साहित्य पास नहीं, जो दृढ़ता-पूर्वक विषय को स्पष्ट कर सके मगर हाँ, Comparative study of religio

के विद्यार्थी के लिये इस प्रकार की पहेलियों की जटिलता कुछ कम अवश्य हो जाती है।

इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं कि वैदिक धर्म दुनिया के सारे धर्मों में सबसे प्राचीन है। और अब भारतीय और पाश्चात्य Researches ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि वैदिक धर्म ही सब धर्मों का आदिस्रोत है। इसलिये प्रायः हर एक धर्म पर वैदिक धर्म की गहरी छाप लगी हुई है और वैदिक धर्म के बहुत-से सिद्धांत एवं उपाख्यान ज्यों-के-त्यों संसार के अन्य धर्मों में पाए जाते हैं। वैदिक धर्म के बहुत-से ऐसे सिद्धांत हैं, जिनका प्रारंभिक युग अत्यंत उज्ज्वल और पवित्र था; परंतु काल-चक्र के परिवर्तन के साथ-साथ उनका विशुद्ध स्वरूप भी विकृत होता गया और इस प्रकार वैदिक धर्म के उस सिद्धांत का विशुद्ध रूप, बजाय वैदिक साहित्य के, उस-उस धर्म के साहित्य में सुंदर और उज्ज्वल रूप में देखने को मिलेगा। हम अपने आज के गोमेध-यज्ञ के सिद्धांत को भी अगर इसी कसौटी पर कसें, तो हम देखेंगे कि वास्तव में उसका अपना स्वरूप क्या है और वह कितना उज्ज्वल है। नीचे की पंक्तियों में हम गोमेध के उसी मनोरम रूप की एक झाँकी लेने का यत्न करेंगे।

हमारे याज्ञिक काल के यज्ञों में गोमेधयज्ञ का स्थान बहुत ऊँचा है। भगवान् मनु ने इसका उल्लेख 'गो सव' शब्द से किया है; यथा—

यजेत वाश्वमेधेन स्वार्जितं गोसवेनवा।

इस गोमेध या 'गो सव' शब्द से, जैसा कि हम पहले कह आए हैं, उस यज्ञ का ग्रहण होता हो जिसमें गाय काटकर उसके मांस को आहुति दी जाती है। परंतु हमारी समझ में इस नृशंसतापूर्ण कार्य का आदेश न भगवान् वेद ने दिया है और न दे सकते हैं। हमारी इस राय के विरोध में विपक्षी, वेद से गोमेध शब्द निकालकर दिखाने का यत्न करेंगे, मगर इससे क्या। हम यह तो नहीं कहते कि वेद में गोमेध शब्द आया ही नहीं; हमारा कथन तो सिर्फ़ इतना है कि गोमेध स्वरूप यह नहीं जो इस समय माना जाता है। अपने इस कथन की पुष्टि के लिये हम गोमेध की परीक्षा अपनी पूर्व निर्दिष्ट कसौटी पर करना चाहते हैं।

Zarostrian religion या पारसी-धर्म संसार का एक अत्यंत प्राचीन धर्म है। इस धर्म के विशेषज्ञों का कथन है कि इस धर्म के सिद्धांत वैदिक धर्म के सिद्धांतों से बिलकुल मिलते-जुलते हैं। और तो और, भाषाशास्त्र के पंडितों ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि—

The Avasta is written in a purely Aryan dilect, the elder sister of Sanskrit.

इसी संबंध में टिप्पणी करते हुए Asiatic Society के संस्थापक William Zones ने लिखा है—

When I persued the Zend glossory I was inexpressibly surprised to find six or seven words in ten are pure Sanskrit.

इसी पारसी-धर्म की धर्मपुस्तक ज़िन्दावस्ता 'गाथा' भाग के yooxxixवें एक उपाख्यान आता है, जो हमारे गोमेध के साथ बहुत कुछ टक्कर खाता है। हम अवस्ता के उस सारे लंबे-चौड़े प्रकरण को उद्धृत न करके Martin Maug के शब्दों में उसका सारांश उद्धृत करते हैं—

The Geushurva, the soul of animated creation, was crying aloud in consequence of attacks made upon his life, and innploring the assistance of the archangels..............
............Mazda answered that Geushurva was being cut into pieces for the benefit of the agriculturists...............

कुछ और आगे बढ़ डा० माग ने इस प्रकरण पर अपनी टिप्पणी करते हुए लिखा है कि—

Geushurva means the universal soul of the earth, the cause of all life and growth. The literal meaning of the word 'soul of the cow' inplies a simile; for the earth is compared to a cow. By its cutting and dividing ploughing is to be understood.

The meaning of the decree issued by Ahura mazda and the heavenly council is that the soil is to be tilled.

इन दोनों उद्धरणों से हम इस परिणाम पर बड़ी सरलता से पहुँच सकते हैं कि पारसी-धर्म का वह उपाख्यान—जिसमें गाय के मारे जाने का उल्लेख आता है—और जो दूसरे शब्दों में गोमेध का रूपांतर है—आलंकारिक रूप से कृषि का उपदेश देता है।

हमारी समझ में ठीक यही explanation वेदों में आए गोमेध शब्द के साथ भी बड़ी सुंदरता के साथ जोड़ा जा सकता है। वैदिक साहित्य के 'गोमेध' शब्द का 'गो' पारसी-साहित्य में अपने साथ उर्वा जोड़कर 'गौश उर्वा' के रूप में परिवर्तित हो जाता है और 'मेध' में मेद्ध हिंसापादवाले भाव की भी व्याख्या 'attack on his life' कर रहा है। फलतः वैदिक साहित्य का 'गोमेध' (गौ की हिंसा) और पारसी 'गौश उर्वा की हत्या' एक ही वस्तु के दो भिन्न रूप हैं।

'गोमेध' शब्द की पद (रूढ़िरूप) व्याख्या हमारी अपनी कल्पना नहीं है, बल्कि यह है एक सचाई, जिसका प्रकाश बीसवीं सदी के विधाता ऋषि दयानंद ने किया था।

स्वामी दयानंद के इस अर्थ ने वेदों के ऊपर से एक भारी कलंक का धब्बा मिटा दिया और 'गोमेध'-यज्ञ का यथार्थ और उज्ज्वल चित्र हमारे सामने रख दिया। मगर यह थी शायद सिर्फ़ Outlines—एक अस्पष्ट चित्र—उसमें गोमेध-यज्ञ के सौंदर्य का पूर्ण विकास नहीं हुआ था। सिर्फ़ Outlines और एक सर्वांग सुंदर चित्र में जितना अंतर है, उतना ही अंतर ऋषि दयानंद के गोमेध और उसके यथार्थ स्वरूप में था। आज इस 'गौश उर्वा' ने उस चित्र में रंग दे दिया है और इस 'गौश उर्वा' की बदौलत वैदिक साहित्य का 'गोमेध'-यज्ञ आज अपने यथार्थ और पूर्ण विकसित रूप में हमारे सामने उपस्थित है।

सूर्य की किरणें स्वयं नहीं दिखतीं। वह जब किसी वस्तुप्रतिच्छित होकर लौटती हैं, तभी उनका ज्ञान होता है—वैदिक गोमेध का यथार्थ स्वरूप संस्कृत साहित्य में नहीं दिखा, मगर 'गौश उर्वा' पद में प्रतिच्छित होकर वह जगमगा उठा।

विश्वेश्वर

× × ×

डॉ. वामन गोपाल

का

सार्सा परिला

AMAN GOPAL
REGISTE
POUND LIQUID EXTRA
F RED JAMAICA
ED SARSAPARILLA
Syphilitic diseases
Proprietors
amrao Kesheo & Son

बिगड़े लोहू को सुधार कर शरीर में शुद्ध रक्त की वृद्धि करता है। इसके सेवन से दूषित रक्त और सभी विकार, गर्मी, चाँदी-प्रमेह वग़ैरह सब निर्मल होते हैं। ७८ वर्षों से हज़ारों लोग लाभ उठा रहे हैं। अनेक सुवर्णपदक मिले हैं। मूल्य १।) और

डॉ. गौतमराव केशव की

धातु, रक्त, मनोत्साह और शक्तिवर्धक पौष्टिक

फॉस्फरस पिल्स

गो० डा० गौतमराव केशव अनसन ठाकुरद्वार, बंबई २

५००) इनाम

महात्मा-प्रदत्त— श्वेतकुष्ठ (सफ़ेदी) की अद्भुत वनौषधि तीन दिन में पूरा आराम। यदि सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों, विज्ञापनदाताओं की दवा करके निराश हो चुके हों तो इसे लगाकर आरोग्य हों। मू०२)

जिन्हें विश्वास न हो ‐) का टिकट लगाकर शर्त लिखा लें, न फ़ायदा साबित होने पर ५००) इनाम।

हज़ारों प्रशंसा-पत्रों में से एक—ता० २१।६।३० को रामगती शर्मा विशारद वैद्यशास्त्री गोरखपुर ज़िला से लिखते हैं—आपकी दवा तीन बार में मँगाया नोटिश के अनुसार पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। आप पुनः सच्ची दवा शीघ्रातिशीघ्र भेजने की कृपा करें।

पता—अखिलकिशोरराम

११६ नं० ३०, पो० कतरीसराय (गया)

एक नई ख़बर

एक नई पुस्तक "हारमोनियम तबला ऐंड बाँसुरी मास्टर" प्रकाशित हुई है। इसमें लगभग ५० नई-नई तर्ज़ों के गायनों की सरगम नंबरों द्वारा लिखकर फिर राग-रागिनी का वर्णन ख़ूब ही किया है। स्कूलों में आजकल संगीत का प्रचार हो रहा है, इसलिये विद्यार्थी भी इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं। अगर इसके ज़रिए विना उस्ताद के हारमोनियम, तबला या बाँसुरी बजाना न आवे, तो मूल्य वापिस देने की गारंटी है। मूल्य केवल १), डाकख़र्च ।‐)

१७४ पता—गर्ग एंड कंपनी, हाथरस।

२. भक्ति से मुक्ति

संसार के प्रत्येक प्राणी को दुःख के कारण जीवन अंधकारमय प्रतीत होता है। उससे बचने के लिये वह कई प्रकार के उपाय सोचता है।

शारीरिक, मानसिक और प्राकृतिक, जिन्हें आधि, व्याधि और उपाधि कहते हैं, आधिभौतिक दुःख कहलाते हैं। दो प्रकार के दुःख और हैं, जिन्हें आधिदैविक और आध्यात्मिक कहते हैं। इन दुःखों से मुक्त होना ही मोक्ष कहलाता है। इन दुःखों का प्रतीकार कैसे किया जाय, इस पर अनेक आचार्यों ने भिन्न-भिन्न विचार दिए हैं। जिस तरह जैसा रोग हो वैसी ही औषध दी जाती है, उसी तरह जीव को जैसा दुःख होता है, उसी प्रकार उससे मुक्त होने का उपाय भी किया जाता है। दुःख का अंत संसार के साथ है और संसार का अंत मुक्ति पाने पर होता है, इसलिये संसार से अलग होने के लिये मुक्ति की आवश्यकता है।

वेद-ग्रंथों में मुक्ति के कर्म, ज्ञान और भक्ति ये तीन उपाय बतलाए हैं। इन तीनों में कौन-सा श्रेष्ठ है, इसका विचार कई आचार्यों ने किया है। जिस प्रकार वैदिक विज्ञान में नवयुग नई-नई खोज कर रहा है, उसी तरह दुःख-निवृत्ति किस तरह हो, इस पर भी खोज हुई है।

सांख्यशास्त्र के रचयिता कपिल मुनि ने ऐसा माना है—प्रकृति और पुरुष के संबंध से संसार उत्पन्न होता है। प्रकृतिजाल में जीव पकड़ा जाता है और इसी कारण उसे दुःखाऽनुभव करना पड़ता है। इसलिये प्रकृति-पुरुष का संबंध ही न होने देना चाहिए। सत्व, रज और तम, इन भेदों से प्रकृति त्रिगुणात्मक है। इन गुणों के कारण पुरुष उस पर मोहित होकर कर्म में प्रवृत्त होता है। कर्म की प्रवृत्ति दुःख का मूलकारण है। कर्मप्रवृत्ति से दूर रहना ही मुक्ति का मुख्य साधन है।

योगशास्त्र-प्रणेता महर्षि पतंजलि का मत है कि केवल कर्म से दूर होकर ही मनुष्य मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता; इंद्रिय-निग्रह की भी आवश्यकता है, क्योंकि इंद्रियाँ विना लगाम के घोड़े हैं। योगसाधन के द्वारा इन्हें वश में कर, समाधिस्थिति को प्राप्त होकर, आधिदैविक तत्त्व में निमग्न होता हुआ संसार से निवृत्त हो जाता है।

नैयायिक तथा वैशेषिक सिद्धांतियों ने "ज्ञान द्वारा मोक्ष होता है" ऐसा माना है। यह ज्ञान कई प्रकार से उत्पन्न होता है। फिर भी उसके दो मुख्य भेद हैं। पहला विद्या और दूसरा अविद्या। अविद्या से वास्तविक वस्तु का ज्ञान नहीं होता, इसलिये विद्या से अविद्या का नाश कर लेना ही दुःखनिवृत्ति है।

जैमिनि मुनि ने यह लिखा है कि "कर्म के अनुसार ही मनुष्य को दुःख भोगने पड़ते हैं" इसलिये ऐसे कर्म करे, जिससे दुःख की निवृत्ति हो। बस, यही स्वर्ग है।

बादरायण व्यास के विचार इन विचारों से पृथक् हैं। आपने मोक्ष-प्राप्ति के लिये ज्ञान को मुख्य माना है।

वेद के पूर्व कांड में यज्ञ का वर्णन है, परंतु वेद का रहस्य केवल पूर्वकाण्ड में ही नहीं है; उपनिषद् भी वेद का ही अंग है। उन्हें भी देखना चाहिए। वहाँ (उपनिषदों में) ज्ञान को मुख्य माना है। इसलिये दुःख-समुद्र को पार करने के लिये ज्ञानरूपी नौका की आवश्यकता है। व्यासजी के बनाए हुए ब्रह्मसूत्र इस बात का अच्छी तरह से प्रतिपादन कर रहे हैं। इन सूत्रों का रहस्य जानने के लिये अनेक आचार्यों ने अपनी-अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखाया है, पर वे शंकराचार्य-लिखित भाष्य के सानी न हुए। आदि-आचार्य श्रीशंकरजी ने ही इस पर उत्कट भाष्य लिखा है।

जिस समय संसार में बौद्ध-धर्म के प्रचार से वैदिक धर्म का अनादर होने लगा था, श्रीशंकराचार्यजी ने ही वैदिक धर्म की स्थापना की थी।

श्रीशंकराचार्यजी के विचार से "मुक्ति साध्य नहीं किंतु सिद्ध है।" अज्ञान के कारण जीव निर्मुक्त रहता है और ज्ञानप्राप्ति के अनंतर मुक्त समझने लगता है।

श्रीमद्वल्लभाचार्य ने भक्तिमार्ग का उपदेश दिया। वेद के मुख्य दो काण्डों की ओर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि एक में कर्म और दूसरे में ज्ञान का प्रतिपादन किया गया है। परंतु वेद का तात्पर्य यहीं पर पूरा नहीं हो सकता। एक और भी उपाय वेद में कहा गया है और वह भक्ति है। यहाँ पर प्रेमलक्षणा भक्ति का उदाहरण दिया जाता है।

"पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशति त्वा
शवसावन् मनीषा। ऋ० मं० १-११-५-११

अर्थात् "हे बलिष्ठ प्रभो! जिस तरह पतिप्रेमा स्त्रियाँ

पति का स्पर्श करती हैं, उसी प्रकार मेरी वृत्तियाँ भी आपका स्पर्श करती हैं ।" इससे यह भी सिद्ध होता है कि श्रीकृष्ण की भक्ति अत्यंत प्राचीन है ।

कर्मयोग से मुक्ति होना इस कलियुग में अत्यंत दुर्लभ है। कारण, कर्मानुष्ठान के लिये मंत्र, द्रव्य, हवनकर्ता, देश ये सब शुद्ध होने चाहिए । यदि भाग्य से मिल भी गए, तो "स्वर्ग कामो यजेत" के अनुसार स्वर्गप्राप्ति के सिवा और कुछ नहीं; क्योंकि "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति" इत्यादि वाक्यों से यह ज्ञात होता है कि पुण्य-क्षय होने पर फिर मृत्युलोक की शरण लेनी पड़ती है। इसलिये केवल ज्ञानमार्ग को ही मुक्ति का साधन मानना पड़ेगा। परंतु यह भी ठीक नहीं जँचता । कारण, "ज्ञानमार्ग" में प्रपञ्च से दूर रहना पड़ता है, अर्थात् गृहस्थाश्रम को छोड़कर संन्यास धारण करना पड़ता है, और संन्यासी का ज्ञानमय जीवन हो जाता है और "अहं ब्रह्मास्मि" का भाव हृदयपटल पर पूर्ण रीति से अंकित हो जाता है । इसी तरह मानते-मानते वह ब्रह्म में लय हो जाता है । इस प्रकार वहाँ मोक्ष को प्राप्त होता है ।

परंतु इस प्रकार की दुःखनिवृत्ति से क्या लाभ ? जिस तरह बाँस के जल जाने पर भस्म शेष रह जाता है, उसी तरह ज्ञान से पूर्ण मोक्षप्राप्ति नहीं होती । भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—

"क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ।।"

गी० अ० १२ श्लोक ५ ।

उन सच्चिदानंद घन, निराकार, ब्रह्म में आसक्त चित्तवाले पुरुषों के साधन में क्लेश अधिक होता है, क्योंकि देहाभिमानियों द्वारा अव्यक्त-विषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है, अर्थात् जब तक शरीर में अभिमान रहता है, शुद्ध सच्चिदानंद घन, निराकार ब्रह्म में स्थिति होना कठिन है ।

"ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायंत उपासते ।। ६ ।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ।। ७ ।।

अर्थात्—जो सब कर्मों को मुझे अर्पण कर अनन्य भक्ति से मुझे भजते हैं, हे अर्जुन ! मैं उनको शीघ्र ही इस असार-संसार के बंधन से मुक्त कर देता हूँ—इत्यादि वाक्यों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कर्म और ज्ञान-मार्ग से भक्ति में कहीं विशेषता है । कर्मज्ञान का उपदेश केवल ब्राह्मण, वैश्य और क्षत्रियों को ही दिया जा सकता है, अन्य को नहीं, ऐसा शास्त्रांतर में मिलता है । इस तरह यदि शूद्र और स्त्रियों को अलग कर दिया जाय, तो बेचारों का उद्धार ही न होगा । वे निरंतर दुःख ही भोगा करेंगे । इसलिये उनके उद्धार के मार्ग की भी आवश्यकता है ।

भले ही शूद्रों और स्त्रियों को कर्मज्ञान का उपदेश न दे सकें, परंतु भक्ति का अधिकार सबको है। कर्म और ज्ञान प्रत्येक के उपयोगी नहीं हो सकते। इसलिये—

"स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति परां गतिम् ।"

के अनुसार सर्वसाधारण के लिये भक्ति ही एक मोक्षप्राप्ति का सच्चा मार्ग है ।

मनुष्य का उद्देश्य उस मोक्ष से नहीं है, जिससे पुण्य का क्षय हो और फिर संसार की शरण लेनी पड़े। इसलिये मोक्ष से भी अधिक फलप्राप्ति की इच्छा के लिये भक्ति ही श्रेष्ठ है । भक्ति-साधन मोक्ष से अधिक फल देनेवाला है ।

शांडिल्य-भक्तिसूत्र में कहा है कि "ईश्वरेऽतीवानुरागः स्नेहो भक्तिरभिधीयते"—ईश्वर में परम स्नेह को ही भक्ति कहते हैं ।

पुष्टिसिद्धांतानुसार यह भक्ति दो प्रकार की है—(१) शीतला और (२) उष्णा । शीतला भक्ति में भाव की शिथिलता रहती है और उष्णा भक्ति में भक्त का हृदय विरह के कारण क्षण-क्षण में दीर्घ और उष्ण निःश्वास निकालता है, प्रेम से विह्वल हो जाता है । नारदादि की भक्ति शीतला कही गई है । गोपियों की भक्ति उष्णा कही गई है । उष्णा भक्ति ही श्रेष्ठ है, इसलिये उसी का उदाहरण यहाँ दिया जाता है ।

रास-क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् जब गोपियों के मंडल में से अंतर्द्धान हो गए, तो गोपियाँ अत्यंत व्याकुल हो गईं । जिस तरह हथिनियों की टोली से हाथी बिछुड़ जाता है, उस समय जो हथिनियों की दशा होती है, इनकी अवस्था उससे भी अधिक बढ़ी-चढ़ी थी । उन्होंने श्रीकृष्ण को ढूँढ़ने का प्र

किया। वन-वन उन्मत्त की भाँति फिरने लगीं ! वृक्षों और वनस्पतियों से पूछने लगीं। हे वट-वृक्ष ! हे पीपल ! हे उदुंबर ! तुमने प्रेम तथा हास्य से हमारे चित्त को चुरानेवाले श्रीकृष्ण को देखा है ? यदि देखा है, तो बताओ वह हमें कहाँ मिलेंगे ? हे अशोक ! हे कदंब ! तुमने हमारे दर्प को हरण करनेवाले श्रीबलदाऊजी के छोटे भइया श्रीकृष्ण को यहाँ से जाते हुए देखा है ? हे तुलसी ! तू निरंतर श्रीकृष्ण के चरण-कमलों में रहती है, तूने तो हमारे श्रीकृष्ण को अवश्य देखा होगा। हे लताओ ! तुमने हमारे हृदय के भाव को जाननेवाले श्रीकृष्ण भगवान् को देखा है। जब इन प्रश्नों का किसी ने उत्तर नहीं दिया, तब गोपियाँ श्रीयमुनाजी की रमण-रेती में कृष्ण का गुण-गान करने लगीं। यहाँ तक कि गाते-गाते रोईं। नेत्रों से अश्रुपात होने लगे। कंठ गद्‌गद् हो गए। श्रीकृष्ण भगवान् ने, जो अदृश्य रूप से सब कार्य देख रहे थे, विचार किया कि अब इनका अहंकार चूर्ण हो गया है। इनमें दैन्यभाव पैदा हो चुका है। अब अधिक विलंब करने से ये प्राण छोड़ देंगी। इस प्रकार सोचते हुए भगवान् प्रकट हो गए। यह है अनन्य भक्ति का प्रगाढ़ परिचय। इसे कहते हैं उष्णा भक्ति।

इस प्रकार की भक्तिवाले भक्त की मुक्ति भी दूसरे प्रकार की है। इसे हम आत्यंतिक दुःख की निवृत्ति नहीं कह सकते। यह है अलौकिक आनंद का अनुभव। परब्रह्म अपरिछिन्न आनंदरूप है। उसके साथ सब प्रकार के मनोरथ सिद्ध करना कृष्णभक्ति के ही उच्छ्वास हैं। और इसे ही सर्वोत्कृष्ट मुक्ति या मोक्ष कहना चाहिए। अस्तु।

भक्ति के और भी कई ऐसे उदाहरण हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि उस परब्रह्म परमात्मा की अनन्य भक्ति से इस असार संसार से मुक्ति पा ब्रह्मरूप अर्थात् साक्षात् परमात्मा हो जाता है और फिर संसार में उसका कोई काम बाक़ी नहीं रह जाता।

आजकल की भक्ति और प्राचीन भक्ति में बहुत अंतर हो गया है। आजकल के भक्तों को तो—"टका धर्मष्टका कर्म टकैव परमं तपम्। यस्यगृहे टका नास्ति हा टका टकटकायते।"—टके से मतलब है। बगला-भक्ति के सिवा इनको और कुछ भी नहीं सूझता। बताइए फिर मुक्ति कहाँ से हो ! इसलिये मुक्ति का पथ इस संसार में अत्यंत सीधा होते हुए भी कठिन-सा प्रतीत होने लगा है। इसका कारण यदि देखा जाय, तो केवल व्यभिचार-मात्र है ! व्यभिचार की सीमा इतनी बढ़ी हुई है कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं। यदि व्यभिचार से मनुष्य अपनी मनोवृत्तियाँ संकुचित कर ईश्वर में अनुराग करे, तो अवश्य वह "अंतर्यामी" उसे इस संसार से पार लगा देगा। भाइयो ! व्यभिचार छोड़ो और ईश्वर से प्रेम करो। बस, इस ज़माने में यही मुक्ति है !

के० एल्० तैलंग

× × ×

जादूगरों का बाबा

मेस्मरेज़्म, योग, सम्मोहन, आकर्षण तथा तांत्रिक विद्या घर बैठे सीखने के लिये प्राचीन योगियों की यह गुप्त पुस्तक -) आने का टिकट भेजकर मँगावें; निराशा में आशा का रूप दिखाई देगा। सकल मनोरथ पूर्ण होंगे। अपना पता साफ़ लिखें।

पता—गुप्त विद्या प्रचारक आश्रम,
P. B. 150 लाहोर।

धातुपुष्ट की अद्वितीय दवा

"जाड़े में मज़ेदार जलपान
खाय बूढ़ तो होय जवान"

दिल दिमाग बल वीर्य वर्धक !!!

वीर्यराज-मोदक

क्या मेवा मिश्रित स्वादिष्ट पुष्टई है। इसके थोड़े ही दिनों के सेवन से देह में नई कांति झलकने लगती है। वीर्य को शुद्धकर गाढ़ा तथा लसीला बनाता है। धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन और नामर्दी को दूर कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ बनाता है। १) में १६ लड्डू।

पता—आयुर्वेदाचार्य आ० महोपाध्याय,
पं० श्रीधर्मनाथ मिश्र काव्यतीर्थ,
भास्कर महौषधालय, दानापुर कैंट।

३. हिंदुओं की जाति-पाँति और इस्लाम का भारत-प्रवेश

माधुरी की पूर्ण संख्या ८४ में उपर्युक्त-शीर्षक से एक लेख श्रीसंतरामजी का प्रकाशित हुआ है। लेख को आद्योपांत पढ़ने पर उसमें प्रौढ़ विचार का पूर्ण अभाव ही पाया जाता है। लेखक ने ब्राह्मणसमाज को कोसने और उसे संसार की दृष्टि में हेय बनाने की भरपूर चेष्टा की है। लेख से लेखक के खोखले ज्ञान और अदूरदर्शिता का भी पूर्णतः पता चलता है। इस स्थल पर उनकी सभी बातों का उत्तर देना अनुचित है। संतरामजी ने कोई नई बात नहीं कही है। आजकल हवा ही ऐसी बह रही है कि लोग शांतचित्त से किसी भी विषय पर बिना विचार किए ही समाचारपत्रों में दौड़ने का साहस कर बैठते हैं और मनगढ़ंत बातों को लेकर आकाश-पाताल एक किया करते हैं। वे यह नहीं समझते हैं कि उनका उत्तरदायित्व कितना है और उनके विचारों का प्रभाव जनता पर कैसा पड़ सकता है। संतरामजी समस्त जीवों को प्रेम का पाठ पढ़ाने चले हैं, परंतु ब्राह्मणजाति के प्रति उन्होंने जैसे भाव प्रकट कर उसके विरुद्ध अन्य लोगों को भड़काने की चेष्टा की है, क्या इसे ही सच्चे प्रेम का आदर्श समझा जा सकता है? क्या उनके ईसा और बुद्ध ने उन्हें यही आदर्श बताया है? जो हो, संतरामजी से मेरा कुछ कहना-सुनना नहीं है। ब्राह्मणजाति के संबंध में वह जैसे भाव रक्खें, उन्हें सतस्वातंत्र्य है, परंतु अलीक लांछनों से किसी को लांछित करना और किसी जाति-विशेष के प्रति घृणा उत्पन्न कराना तो सभ्यता, कुलीनता और उच्च शिक्षा के आदर्श की परिधि के बाहर है।

संतरामजी तथा इन्हीं की तरह अन्य कुछ लोग वर्ण-व्यवस्था को हानिकारक मानते हैं, परंतु इन्होंने वर्णव्यवस्था के तत्वों के अनुशीलन करने का कभी प्रयत्न ही नहीं किया है।

अनुशीलन के विषय पर विशेष कुछ लिखना अनावश्यक है, क्योंकि अनुशीलन का मार्ग एक ही है और उसे भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में इस प्रकार बताया है—

"तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥"

जिस जगह इस नियम पर ध्यान ही नहीं रक्खा जा है, वहाँ पर ज्ञान का काम ही क्या।

फूट और प्रमाद का कारण वर्ण-व्यवस्था को बता इतिहास का गला घोंटना है। यदि प्रमादरहित हो कभी विचार किया जायगा, तो पता चलेगा कि एक और शक्ति की उत्पादिका वर्ण-व्यवस्था ही है। हिंदू-शा निकों की तो बात दूर रहने दीजिए, पाश्चात्य विद्वा भी संतरामजी के उक्त विचारों से सहमत नहीं हैं। यहाँ पर मैं पाश्चात्य विद्वानों के मत का उल्लेख करूँगा, प पाठकों को यह नहीं भूलना चाहिए कि जिन पाश्चात्य विद्वानों के मत यहाँ पर लिखे जायँगे, वे भी हिंदू-सभ्य को कोसने में संतरामजी से किसी प्रकार कम नहीं हैं; परं वे संतरामजी के गुरु हैं, जिनके बहुत-से भावों लेकर संतरामजी तथा वैसे ही विचार रखनेवालों भारत में हो-हल्ला मचा रक्खा है। इतने पर भी व व्यवस्था के भीतर जो बुद्धिमत्ता संचारित हुई है, उस अनुभव किए विना पाश्चात्य विद्वान् भी नहीं रह सके हैं इन विद्वानों के मत के उल्लेख के पूर्व अँगरेज़ी वर्णव्यवस्था के लिये व्यवहृत होनेवाले शब्द Cas (कास्ट) के संबंध में कुछ विचार कर लिया जाय। कार संतरामजी ने अपने उपर्युक्त लेख में Caste शब्द जो अर्थ समझा है, उससे उनके अँगरेज़ी साहित्य के ज्ञान का भी पता लगता है, परंतु अपनी कमज़ोरी विना अनुभव किए ही ज़बर्दस्ती किसी भले आदमी पीछे पड़ उसे मूर्ख सिद्ध करने को उतारू होना शिक्षित कहे जानेवाले के लिये लज्जा की बात है। उ अधूरे ज्ञान का कुफल समाज पर कितना पड़ेगा, इस भी विचार उन्हें पहले करना चाहिए। Caste (का के संबंध में संतरामजी ने लिखा है कि "नाई नव्वाब श्रेणियाँ (Classes) हैं, ज़ातें (Castes) नहीं योरप में एक लुहार-लड़का........लार्ड (नवाब) सकता है। फिर वह लार्ड लोगों के यहाँ ब्याह-श कर सकता है" इत्यादि। इतिहास से पता लगता कि १६वीं सदी में पोर्तुगाल के कुछ असभ्य नावि वर्णव्यवस्था का नाम Caste (कास्ट) रक्खा था। राइट आनरेबल प्रो० मैक्समूलर के० एस्०-जैसे संस साहित्य के प्रगाढ़ विद्वान् ने Caste (कास्ट) के सं में लिखा है—

"This term caste has proved most mischievous and misleading and the less we avail ourselves of it the better we shall be able to understand the true state of society in ancient times of India."

मोक्षमूलर का कहना है कि Caste (कास्ट) शब्द बहुत ही क्षतिकर और भ्रमपूर्ण सिद्ध हो चुका है और प्राचीन भारतीय समाज को समझने के लिये इस का जितना कम प्रयोग किया जाय, उतना ही अच्छा हमारे लिये होगा।

मोक्षमूलर ने तो यहाँ तक कहा है—

"To ask what caste means in India would be like asking what caste means in England or what fetish (feitico) means in Portugal."

अर्थात् यह पूछना कि Caste (कास्ट) का क्या अर्थ भारत में है, वैसा ही प्रश्न है जैसे विलायत में कास्ट (Caste) और पोर्तुगाल में Fetish (फ़ेटिश) का क्या अर्थ है यह पूछना।

मैक्समूलर-जैसे धुरंधर विद्वानों ने Caste (कास्ट) के संबंध में जो मत प्रकाशित किया है, संतरामजी को उसका अनुशीलन करना चाहिए। जिन अँगरेज़ों ने भारतीय ग्रेजुएटों के दिमाग़ भ्रष्ट सिद्धांतों से बिगाड़ दिए हैं, आज उन्हीं विदेशियों में से एक विशिष्ट विद्वान् की प्रखर बुद्धि Caste (कास्ट) के संबंध में चकरा गई है और उसे बाध्य होकर अपने भाइयों को, जो प्राचीन भारत का अध्ययन करने की अभिलाषा रखते हैं, इस कास्ट शब्द की बुराइयों से सावधान करना पड़ा है।

क्या हम आशा कर सकते हैं कि मोक्षमूलर के उपदेशानुसार संतरामजी तथा उन्हीं की जैसी धारणा के सज्जन अपने भ्रम को हटाने की चेष्टा करेंगे और व्यर्थ के दुराग्रह का आश्रय ले भोलीभाली जनता को अपने अज्ञान से अज्ञान-मार्ग में घसीटने का दुस्साहस नहीं करेंगे।

Dubois ने लिखा है—

"The division of the people into castes existed also amongst the Egyptians. With them as with the Hindus the law assigned on occupation to each individual which was handed down from father to son. It was forbidden to any man to have two professions or to change his own.

Each caste had a special quarter assinged to it and people of a different caste were prohibitted from settling there."

अर्थात् इजिप्ट में भी हिंदुस्थान की तरह वर्ण-व्यवस्था थी। हिंदुओं की तरह उनके क़ानून ने भी प्रत्येक मनुष्य का पेशा नियत कर दिया था, जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलता था; एक मनुष्य को दो प्रकार के पेशे करने का अधिकार नहीं था और न वह अपना पेशा ही बदल सकता था। प्रत्येक वर्ण के लोगों के निवासस्थान निर्दिष्ट थे और एक वर्ण का मनुष्य दूसरे वर्ण के मुहल्ले में नहीं रह सकता था।

आगे चलकर Dobois ने कहा है—

And be it noted this plan of dividing the people into castes is not confined to the law-givers of India.

The wisest and most famous of all law-givers, Moses, availed himself of the same institution as being one which offered him the best means of governing the intractable and rebellous people of whom he had been appointed the patriarch."

अर्थात् यह ध्यान में रखना चाहिए कि मनुष्यों का वर्ण-विभाग करना केवल हिंदुस्थान के क़ानून बनानेवालों के ही दायरे के अंतर्गत नहीं था। सबसे बुद्धिमान् और क़ानून के सर्वश्रेष्ठ पंडित Moses (मोज़ेज़) ने भी इस भेद का उपयोग किया था; क्योंकि शासन की उपेक्षा करनेवालों और नियंत्रण के विरुद्ध चलनेवालों के शासन का यही सर्वोत्तम साधन था; उसे भी ऐसे ही लोगों का शासक होना पड़ा था।

संतरामजी वर्णव्यवस्था के नाम से ही चिढ़ते हैं; क्योंकि उन्हें इसमें दूषण-ही-दूषण समझाया गया है। पर उन्हें इन पंक्तियों को ग़ौर से पढ़ना चाहिए—

"It must be remarked, however, that the four great professions without which a civilised nation could not exist namely the army, agriculture, commerce and weaving are held everywhere in the highest esteem."

अर्थात् फ़ौज, कृषि, व्यवसाय और कपड़े बुनना सर्वत्र ही बड़े आदर से देखे जाते हैं। इनके बिना किसी सभ्य राष्ट्र का अस्तित्व ही नहीं रह सका।

हिंदू-स्मृतिकारों की कृतियों से जिनका कुछ संबंध रहा है, वे यह कह सकते हैं कि प्रत्येक वर्ण के भिन्न-भिन्न कर्म उनके स्वाभाविक गुणों के अनुसार निर्णय कर उन महात्माओं ने भारतवासियों का कैसा उपकार किया है। ऊपर की बातों से यह स्पष्ट है कि जिन चार बातों को पाश्चात्य विद्वान् किसी जाति के जीवन के लिये परमोपयोगी समझते हैं, भारत के त्रिकालदर्शी महर्षि उनसे सूक्ष्म विचार के बल पर ऐसी व्यवस्था कर चुके हैं, जिन्हें जीवन के अस्तित्व के लिये कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता है। यह इसी सुव्यवस्था की पुष्ट नींव है, जिसके कारण अनादि काल से शत्रुओं के आक्रमण होने पर भी हिंदू-जाति का ढाँचा गिरकर धूल में नहीं मिल पाया है।

जिन मनुष्यों की सभ्यता का इतिहास अभी प्रारंभ ही नहीं हुआ, परंतु जो अपने को संसार में सभ्यता के चूड़ांत शिखर पर पहुँचा समझते हैं, उनको भी बाध्य होकर आर्य-सभ्यता की प्रशंसा और समाज-संगठन की नीति की प्रशंसा करनी ही पड़ती है।

Dubois ने एक स्थल पर कहा है—

"I have heard some persons sensible enough in other respects, but imbued with all prejudices that they have brought with them from Europe, pronounce what appears to me an altogether erroneous judgment in the matter of caste divisions amongst the Hindus. In their opinion caste is not only useless to the body politic, it is also ridiculous and even calculated to bring trouble and disorder on the people. For my part having lived many years in friendly terms with the Hindus I have been albe to study their national life and character closely and I have arrived at a quite oppoite decision in this subject of caste. I believe caste division to be in many respccts the chef-dceuvre, the happiest effort of Hindu legislation. I am pursuaded that it is simply and solely due to the distribution of the people into castes that India did not lapse into a state of barbarism and that she preserved and perfected the arts and sciences of civilisation whilst most other nations of the earth remained in a state barbarism."

अर्थात् अन्य प्रकारों से बुद्धिमान् परंतु योरप लाए हुए अपने मिथ्या ज्ञान के कारण अपना Caste (कास्ट) वर्णविभाग के संबंध में जैसा करते हैं, वह मुझे नितांत ही भ्रमपूर्ण प्रतीत होता है। उनकी सम्मति में राजतंत्र में वर्णविभाग केवल ही नहीं है, परंतु यह हास्यास्पद और लोगों में विप और उच्छृंखलता का कारण है। हिंदुओं के साथ मि भाव से बहुत वर्षों तक मैं रहा हूँ और उन राष्ट्रीय जीवन तथा उनके आचरण का पूरा-पूरा अ यन किया है और इस वर्णविभाग के संबंध में उनसे ठीक विपरीत भाव रखता हूँ। मेरा विश्वास कि हिंदू-क़ानून-निर्माण में वर्णव्यवस्था कई प्रकार अत्यंत मनोहर उद्योग का फल है। मुझे यह विश्वास है कि वर्णविभाग के ही कारण हिंदुस्ता बर्बरता को नहीं पहुँचा है, उसने सभ्यता के ज्ञा और विज्ञान को पूर्ण किया और उन्हें सुरक्षित रक्खा इसके विपरीत संसार की अन्य जातियाँ ब अवस्था में रहीं।

अपने अनुभव से Dubois ने यह भी लिखा है—

"We can judge what the Hindus would ha been like had they not been held within t pale of social duty by caste regulations, we glance at neighbouring nations, west the peninsula and east of it beyond t Ganges so far as China...After much care thought I can discover no other reason exc caste which accounts for the Hindus not ving fallen into the same state of barbaris as their neighbours and as almost all natio inhabiting the Torid Zone."

अर्थात् भारत के पश्चिम और गंगा के पूर्व से तक के राष्ट्रों की ओर एक दृष्टि डालने से यह लगेगा कि यदि वर्णविभाग के नियमानुकूल हिंदु को सामाजिक बंधनों के अंतर्गत नहीं रक्खा जाता, आज उनकी क्या दशा होती। बहुत विचार करने मुझे यही तथ्य मिला है कि अपने पड़ोसियों की बर्बरता में न फँसने का कारण हिंदुओं के लिये व विभाग के सिवा दूसरा कुछ नहीं है।

(क्रमशः)

धन्नूलाल शर्मा

संगीत और विनोद

स्वरकार—गौरीशंकरसिंह
(संगीत-मास्टर क्षत्रिय हाईस्कूल, जौनपुर)
राग दुर्गा—ताल झपताल
शब्दकार—जगदीशसहाय माथुर

गीत

कैसा सुदिन आज, सुंदर मधुर साज ।
सुनता विजयनाद, भारत मा जयतु ॥
सुत तेरे अति वीर, सहते कठिन पीर ।
गाते हैं गंभीर, भारत मा जयतु ॥

स्थायी

					प		म		
प	—	मप	ध	ध	म	प	रे	सा	सा
कै	ऽ	साऽ	ऽ	सु	दि	न	आ	ऽ	ज
सा	सा	ध	ध	ध	म	प	रे	सा	सा
सु	ऽ	न्दं	रं	म	धु	र	सा	ऽ	ज
सा	सा	रे	म	म	प	ध	पध	सं	सं
सु	न	ता	ऽ	वि	ज	य	नाऽ	ऽ	द
म	प	मप	ध	ध	पम	प	रे	सा	सा
भा	ऽ	रऽ	ऽ	त	मा	ऽ	ज	य	तु

अंतरा

म	म	ध	—	संध	सां	सां	सां	—	सां
सु	त	तें	ऽ	रे	अ	ति	वी	ऽ	र
								प	
ध	ध	सां	—	रें	ध	सां	ध	म	म
स	ह	तें	ऽ	क	ठि	न	पी	ऽ	र
								प	
मं	पं	रें	सां	रें	ध	सं	ध	म	म
गा	ऽ	ते	ऽ	हैं	गं	ऽ	भी	ऽ	र
म	प	मप	ध	ध	म	प	र	स	स
भा	ऽ	रऽ	ऽ	त	मा	ऽ	ज	य	तु
×		२			०		३		

ग्रामीण गुरु

एक समय श्रीगुरुनारायण, मेरे घर पर आए थे,
एक गँवार साथ ही अपने चेला भी वे लाए थे;
दरवाज़े पर सघन वृक्ष थे, छाया हरदम रहती थी,
हृत्तल शीतल हो जाता था हवा जिस समय बहती थी।
लदी फलों से जामुन-शाखा झूम-झूम भू छूती थी,
टपक-टपककर पवन-झोंक से महुए-सी वह चूती थी;
उसी पेड़ के नीचे गुरुजी ठाकुर-पूजा करते थे,
अक्षत, फूल बेल की पत्ती धो-धो चेला धरते थे।
पूजा कैसी! आँख मूँदकर पिनक भंग की लेते थे,
उसी नशे में चूर-चूर हो चेला पहरा देते थे;
गुरुजी ने घंटों तक मल-मल ठाकुरजी को नहलाया,
चंदन पोत धूप का धूआँ दिया, दिया फिर दिखलाया।
भोग लगाने को कुछ घर से तब नौकर से मँगवाया,
चीनी-दही लबालब भरकर एक कटोरा वह लाया;
आसन पर उसको रखकर जब शंख बजाते बाबाजी,
सुनकर भों-भों करता दौड़ा आया तब टामी पाजी।
नहीं ख्याल कर उसका कुछ भी आँख मूँद फिर ध्यान किया,
पास पहुँचकर तब टामी ने भरा कटोरा साफ़ किया;
समझ वस्तु खाने की कोई ठाकुरजी को ले भागा,
उसके बाद आध घंटे पर तब जाकर पहरू जागा।
सिंहासन पर उनके बदले जामुन चूकर थी आई,
काले ठाकुर काली जामुन नहीं भिन्नता लख पाई;
आँख खोलकर श्रीगुरुजी ने जब इधर-उधर देखा भाला,
पूछा दही?—कह उठा चेला—ठाकुरजी ने खा डाला।
जामुन एक मिली आसन पर समझे खाने आए थे,
वे जल्दी के कारण से ही ऊपर पहुँच न पाए थे;
पोंछा दबा दही का छींटा बाहर आकर बीज पड़ा,
"यह क्या?" चेला बोला—इनको पानी दे-दे दिया सड़ा!

राजाराम त्रिपाठी 'शास्त्री'

सुमन-संचय

१. श्रीमती विमलादेवी 'रमा'

भारतवर्ष में अन्य प्रांतों के अतिरिक्त बिहार-प्रांत में भी स्त्रियों में काफ़ी जागृति के शुभ चिह्न दिखलाई पड़ते हैं। समाज में, राजनैतिक वायुमंडल में एवं हिंदी-साहित्य-क्षेत्र में सभी जगह उत्साहवर्धक चहल-पहल नज़र पड़ रही है। आदिशक्ति के इस स्फूर्तिमय जागरण ने देश को, प्रत्येक क्षेत्र में, पर्याप्त सहायता प्रदान की है। आशा की क्षीण रश्मियाँ प्रकृति का सामयिक सहयोग पाकर शरदृऋतु की पूर्णिमा के रूप में आकुल तथा संतप्त हृदयों को मनमानी शांति दे रही हैं। उज्ज्वल भविष्य की एक अमिट रेखा हमारे दृष्टिपथ पर अंकित हो रही है। हमारा चिर-सुख-सपना शीघ्र सफलीभूत होगा—ऐसा पूर्ण विश्वास हो रहा है। ईश्वर करे, ऐसा ही हो।

आज मैं बिहार-प्रांत की एक ऐसी सुयोग्य महिला का परिचय पाठकों को देना चाहती हूँ, जिन्होंने केवल अपनी घरू सनातन शिक्षा की बदौलत ऐसे सभी गुण प्राप्त किए, जिनका समाज और देश के लिये होना आवश्यकीय है।

आपका शुभ नाम सौभाग्यवती श्रीविमलादेवी "रमा" है। शाहाबाद के प्रसिद्ध वकील श्रीभगवत-सहायजी आपके पिता थे। वकील साहब बड़े ही समाज-सुधारक और स्त्रीशिक्षा के प्रेमी थे। उन्होंने इस संबंध में बहुत-से कार्य किए, और इसी भावना को लेकर उन्होंने अपनी पुत्री श्रीविमलादेवी को पठन-पाठन के अतिरिक्त संगीत और धार्मिक ज्ञान भी विशेष रूप से दिलाया। प्रसन्नता की बात है कि वकील साहब का ध्येय पूरा हुआ और देवीजी का जीवन-पथ वैसा ही बन गया, जैसा वह चाहते थे। देवीजी का जन्म ६ जून सन् १६०२ में और विवाह सन् १९१९ ई० में हुआ। इनका विवाह डुमराँव-राज्य के मुंतज़िम साहब के द्वितीय पुत्र श्रीमदनमुकुंदप्रसादजी के साथ किया गया। श्रीमदनमुकुंदप्रसादजी भी हिंदी के बड़े ही प्रेमी और समाज-सुधारक हैं। इस अनुकूल वायुमंडल को पाकर देवीजी का उत्साह और भी बढ़ा। आप गद्य और पद्य दोनों लिखती हैं। आर्यमहिला, मनोरमा और माधुरी आदि में भी आपकी रचनाएँ प्रकाशित

सौ० श्रीमती विमलादेवी "रमा"

होती रहती हैं। आपने "शिक्षा-सौरभ"-नामक पुस्तक भी लिखी है। इसमें अपनी रचनाओं के अतिरिक्त प्राचीन नवीन प्रसिद्ध लेखक-कवियों की कृतियों का चुनाव भी बड़ी उत्तमता से किया गया है। यह पुस्तक स्त्री-शिक्षा-दायिनी संस्थाओं में प्रचलित है। इस पुस्तक की भूमिका में इलाहाबाद के प्रो० ब्रजराज एम्० ए० बी० एस्-सी० एल्-एल्-बी० लिखते हैं कि—"मुझे पुस्तक देखकर बड़ा हर्ष हुआ। संपादन बड़ी उत्तमता से किया गया है। आपका अध्ययन गहरा है।...इस पुस्तक में साहित्य के सभी अंगों से संग्रह लिया गया है। मैं हिंदी-संसार और हिंदी-छात्रों से अनुरोध करता हूँ कि वे इस पुस्तक से अवश्य लाभ उठावें...।" आपकी हिंदी-प्रियता देखकर "शिवा-प्रतिभा"-नामक पुस्तक श्रीरामचंद्र शर्मा काव्य-कंठ ने आपको ही समर्पित की है। देवीजी ने बालकों और उनकी माताओं के लिये "शिशु-जननी" नामक एक और पुस्तक तैयार की है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगी। आपकी लगन और प्रेम का पता पाठकों को इतने से ही चल जायगा।

कालेज के सार्टीफ़िकटों से वंचित रहने पर भी, आपने नवीन युग के साथ उचित सहयोग करके जो सेवा-व्रत लिया है, वह अन्य स्त्रियों के लिये शिक्षा और गौरव की बात होनी चाहिए। हमारा तो विश्वास है कि नई पाश्चात्य शिक्षा के वायुमंडल से दूर रहकर, अपनी प्राचीन शिक्षा के द्वारा भी स्त्रियाँ उतना ही काम कर सकती हैं जितना इस युग में करना चाहिए। संपन्नता को पाकर भी सज्जनता, उदारता और नम्रता का जो आदर्श देवीजी ने अपने सामने रक्खा है, वह प्रशंसनीय है। आपके व्यवहार में शुद्धता और प्रेम में पवित्रता है। मुझे थोड़े दिनों के परिचय से जो आभास मिला है, उससे मेरी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। धन और संपन्नता पाकर आजकल स्त्रियों में फ़ैशन और विलासिता का भूत सर पर चढ़ जाता है, अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करने लगती हैं। नई रोशनी में पाश्चात्य-शिक्षा का रंगीन चश्मा उनकी आँखों को तिलमिला देता है। ऐसी बहनों को देवीजी के चरित्र से शिक्षा लेनी चाहिए। हमारी परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वे आपको चिरायु करें। आपके दिल में वह लगन लगावें, जिससे आपकी उदारता और कर्तव्यनिष्ठा प्रतिदिन बढ़ती जावे। सेवा के पवित्र मार्ग में विशुद्ध भाव से अग्रसर होती जावें। इस प्रकार अपना कल्याण कर और अपनी पिछड़ी हुई बहनों को सुमार्ग दिखा सकें।

ईश्वर करे, इस देश में ऐसी हज़ारों ललनाएँ उत्पन्न हों और अपनी सेवा द्वारा आदर्श उपस्थित करती हुई देश का मुख उज्ज्वल करें।

सुशीलादेवी त्रिपाठी

× × ×

२. पुष्प

(१)

आकाश के किसी अदृष्ट केंद्र से एक पुष्प टूटकर पृथ्वी पर आ गिरा। किंतु दुर्भाग्य ने उसे ऐसा स्थान दिया जहाँ बीहड़ वन के सिवा कुछ न था। उसने अपनी आँ

छोटी कोमल पँखुरियाँ फैलाकर दर्शकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहा, किंतु वहाँ कोई दर्शक ही न था। देखता कौन? वह वहाँ पड़ा-पड़ा पछताता और करुण क्रंदन करता रहा। किंतु उसकी कौन परवा करता। दिन को सूर्य की सुनहली किरणें उसकी पँखुरियों को सोने से मढ़ देती थीं और रात्रि को सुधांशु अमृत बरसाकर उसमें नवीन जीवन-ज्योति डाल देते थे। ओस के कण उस पर गिरकर मोती बन जाते थे और शीतल-मंद वायु उसके सम्पर्क से सुवासित हो समस्त वनप्रांत को एक अनिर्वचनीय स्वर्गीय सौरभ से परिपूर्ण कर देती थी। किंतु जिसके लिये संसार में उस देवलोकीय दुर्लभ पदार्थ की सृष्टि हुई थी, वह उससे बहुत दूर था। पक्षीगण उस पर बैठ-बैठकर तांडव नृत्य करते थे और वह पड़ा-पड़ा इस दुर्गति पर अपने को सैकड़ों बार धिक्कारता था। किंतु परवश था, कर ही क्या सकता था? वाराहादि पशुगण आकर उसकी ओर देख घूरते थे और एक ही फुंकार में उसे उड़ाकर दूर फेंक देते थे। वह धूल-धूसरित एवं क्षत-विक्षत हो तड़पने लगता और वे सब आमोदित हो, उत्फुल्ल मन से नाचने लगते। इतना कष्ट सहकर भी वह आकाश को लौटकर नहीं जाना चाहता था—जा भी नहीं सकता था। कारण, उसमें 'वासना' निहित थी!

(२)

दैववशात् एक दिन उस वन में मूसलधार वृष्टि हुई। प्रलयकाल की सूचना देनेवाले जल की एक बड़ी-सी बाढ़ ने उस वन को प्लावित कर दिया। उसमें एक कोमलाङ्गी राजकुमारी बहती हुई दिखलाई दी। जल भीषण गर्जन करता हुआ ऊपर आने लगा। भयविह्वल राजकुमारी ने और कोई अवलम्ब न देख प्राण-रक्षा के लिये एक वृक्ष की डाली पकड़ ली। पुष्प उसके पास ही था। ज्यों ही उसकी दृष्टि पुष्प पर पड़ी, त्यों ही वह उपस्थित प्राण-संकट को भूल-सी गई। उसने उत्कंठित हो पुष्प की ओर अपने दोनों हाथ बढ़ा दिए। किंतु इतने ही में जल की एक उत्ताल तरंग ने पुष्प को उठा पर्वतशिखर पर रख दिया। राजकुमारी के हाथ फैले ही रह गए। उसने जिस डाली को अवलंब मानकर पकड़ा था, वह भी जलमग्न हो न जाने कहाँ चली गई। उसने पीछे लौटकर देखा, किंतु वहाँ जल के सिवा कुछ न था, उसे अपनी मूर्खता पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। किंतु उपाय ही क्या था! "दुविधा में दोऊ गए माया मिली न राम" की कहावत चरितार्थ हो उठी। वह निरवलंब हो उसी असहायावस्था में पड़ी 'पुष्प-पुष्प' कहकर चिल्लाने लगी। किंतु वहाँ कोई न था।

(३)

धीरे-धीरे जल घटने लगा। राजकुमारी भी स्वस्थ हो धारा को चीरती हुई धीरे-धीरे पर्वत के किनारे जा लगी। वर्षा बंद हुई। आग के गोले की नाईं पूर्वाचल से निकलकर भगवान् भास्कर ने संसार पर अपनी प्रखर किरणें फैला दीं। राजकुमारी ने चमकती हुई बालू पर बैठकर अपने भीगे वस्त्र सुखाए। सिर का जूड़ा खोलकर लटें फैला दीं। सूर्य के प्रकाश में वे स्वर्ण की नाईं चमकने लगीं। वायु ने प्रेम से उनका चुम्बन किया और 'फर-फर' शब्द करती हुई उन पर से आनंद-पूर्वक बहने लगी। पक्षियों ने उसे देख कलरव प्रारंभ किया और वृक्षों ने झुक-झुककर स्वागत किया। किंतु इनकी ओर उसका कुछ भी ध्यान न था। वह टक लगाए पर्वत की ओर देख रही थी। अचानक एक पदार्थ पर उसकी दृष्टि पड़कर अटक गई। वह उसका ध्येय एकमात्र वांछित पदार्थ—वही पुष्प था। पुष्प ने भी उसे देखा। दोनों मिलन-लालसा से व्याकुल हो उठे। किंतु न तो पुष्प ही में इतनी शक्ति थी कि उड़कर राजकुमारी के पास आ जाता, न राजकुमारी ही में इतनी शक्ति थी कि पर्वत पर चढ़कर पुष्प से लिपट जाती। निदान वह वहीं पर्वत के किनारे बैठ उसकी आराधना करने लगी। पुष्प की आशा ने उसे संसार-चिंता-शून्य कर दिया! वर्षों बीत गए। शरीर सूखकर काँटा हो गया। रूपलावण्य एवं यौवनोन्माद उसे छोड़कर चल दिए। किंतु पुष्प की आशा नहीं गई। वह दिन-दूनी होती गई। वही आशा उसके प्राणों की यंत्रिका—जीवन की एकमात्र सहचरी थी। वही दुर्लभ स्वर्गीय वस्तु असार संसार की सत्यता थी। उसी में उसे पूर्ण संतोष की झलक दिखलाई दी। उसी को लेकर वह परम प्रसन्न थी। उसी के कारण वह उस बीहड़ वन को राजमहल से भी अधिक सौख्यपूर्ण समझती थी। उस पर्वत के आगे उसे संसार के बड़े-से-बड़े

और उच्च-से-उच्च राज्यसिंहासन तुच्छ प्रतीत होते थे। उसे उनकी किंचित् आकांक्षा नहीं थी।

(४)

राजकुमारी नित्य निर्मल स्रोत में स्नान कर फूलों की माला गूँथती और उन्हें पुष्प के लिये यत्न से रखती जाती थी। वह झरनों के झरझर शब्द के साथ पुष्प के लिये मधुर गीत गाती थी और रात्रि की चटक चाँदनी में उसकी कमनीय कांति देख मुग्ध हो उस पर तन-मन न्योछावर कर देती थी। वह मन-ही-मन कहती थी—यदि परमात्मा ने उसे पक्षी बनाया होता, तो वह उड़कर पुष्प पर—प्रियतम पुष्प पर—जा पड़ती। यही सोचकर वह बार-बार मानव-जीवन को धिक्कारती और भगवान् से यही याचना करती थी कि दूसरे जन्म में उसे पक्षी की ही योनि मिले! करुणा-वरुणालय जगदीश्वर ने उसकी पुकार सुन ली। एक दिन फिर वैसी ही मूसलधार जल-वृष्टि प्रारंभ हुई। बाढ़ के साथ-साथ राजकुमारी ऊपर चढ़ने लगी। और शीघ्र ही पुष्प के निकट पहुँच गई। उसने एक बार चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। सब जगह जल-ही-जल दिखलाई दिया। अन्य कोई उपाय न देख उसने पुष्प को हाथ में ले लिया। धीरे-धीरे जल राजकुमारी के चरणों का स्पर्श कर ऊपर चढ़ने लगा। राजकुमारी को डूबते देख पुष्प निकलने के लिये छटपटाने लगा। राजकुमारी ने यह कह-कर कि "रे कायर! अब कहाँ जा सकता है, मरना है, तो मेरे साथ मर, जीना है तो मेरे साथ जी" मुट्ठी बाँध ली। पुष्प की सारी पँखुरियाँ टूट गईं। शरीर क्षत-विक्षत हो गया। उसने निष्कृति पाने की आशा से एक बार ऊपर आकाश की ओर देखा। उत्तर मिला—"वह संसार है स्वर्ग नहीं। जो पदार्थ अनित्य है, उसमें इससे अधिक और मिल ही क्या सकता है?"

आत्माराम देवकर

× × ×

३. भीख

मैं आया—सोचा था—उर की जलती आग बुझाऊँगा;
दिल की व्यथा, हृदय का क्रंदन, तुमको आज सुनाऊँगा।
हृदय-पटल को अश्रु-सलिल से स्वच्छ बनाकर लाऊँगा;
तेरी सौम्य-मूर्ति उस पर ही, अंकित कर सुख पाऊँगा।
धुँधली आँखों से तुमको पहले जो देखा करता था;
निरख-निरखकर, परख-परखकर मूक बना मैं रहता था।
इस वियोग में इन आँखों को धोया .खूब विचारा था—
इन दोनों सुस्वच्छ पात्र से रूपसुधा को पीऊँगा।
पर हा! कहाँ छिपी हो कलिके! हृदय चूर क्यों करती हो?
अंतरपट से चित्रांकित यह—रम्य मूर्ति क्यों हरती हो?
अगर न तुम आती मुझको ही ज़रा पास आ जाने दे!
हाय! हृदय को वेग तोड़ मत अपनी हविस मिटाने दे!
मत रोना मेरे दुख पर तू हँसती ही रहना दिन-रात;
व्यथित हृदय की—करुण रुदन में—कह तो लेने दो दो बात!
नहीं चाहता हृदयरत्न तव—प्रेम नहीं मैं चाहूँगा;
विरही हूँ मैं विरह-राग को पल-पल निशिदिन गाऊँगा।
हृदय व्यथित हो तड़प-तड़पकर रहता—हाय! हुआ निरुपाय!
सुमनकली ऐ! अधिक नहीं तो झाँकी भी दिखला जा हाय!

यदुनंदनप्रसाद "नवल"

× × ×

४. स्वार्थ

भूखे, टूटे, सर्दी खाए,
पीड़ित जब नज़रों में आए,
प्रबल वेदना का झोंका जब लगा हृदय में आन,
अलापी उसने अपनी तान। १।
बनाया आहों ने तब सर्द;
दया ने किया हृदय में दर्द।
उसी दर्द के दलने को हम करते यत्न अनेक।
छोड़कर अपनी सबकी टेक। २।
कहो तब कहाँ हुआ उपकार?
स्वार्थ सम्मुख दिखता साकार।
इसे खुले शब्दों में कहते हैं हम, स्वार्थ महान्;
न जिसका होता है अवसान। ३।

"सम्राट्"

× × ×

५. मासिक पत्रों का राजा

यंग ईस्ट (Young East)-नामक मासिक पत्र में मि० सियजी नोमा (Mr. Seiji Noma) नाम के एक जापानी का जीवन-वृत्तांत प्रकाशित हुआ है, जो जापान की जनता में "Magazine King" अर्थात् मासिक पत्रों के राजा के नाम से विख्यात हैं। आपके जीवन-वृत्तांत से आपकी असाधारण कार्यकुशलता एवं जापानी जनता के समाचारपत्रप्रेम का जो परिचय मिलता है, वह भारतीय पाठकों के लिये विशेष शिक्षाप्रद होने के कारण उसका सारांश यहाँ प्रकाशित किया जाता है।

आज से बीस वर्ष पूर्व मि० सियजी नोमा जापान की एक प्रांतीय पाठशाला के एक स्वल्पवेतनभोगी शिक्षक के सिवा और कुछ भी नहीं थे। किंतु वही व्यक्ति आज एक लखपती होने के सिवा स्वेज़नहर के पूर्व के भूभाग का सबसे बड़ा पुस्तक एवं मासिक पत्र-प्रकाशक गिना जाता है। उनके द्वारा प्रकाशित विभिन्न पुस्तकों की संख्या देखने से वह कल्पनातीत जान पड़ती है। असंख्य पुस्तकों के प्रकाशक होने के अतिरिक्त आप नौ बड़े-बड़े मासिक पत्रों के अध्यक्ष हैं। इन मासिक पत्रों में "किंग" ("King")-नामक एक पत्र के १४ लाख ग्राहक हैं। इसके सिवा आपके और दूसरे-दूसरे पत्रों में से भी किसी के ग्राहक १ लाख से कम नहीं है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि आपके मासिक पत्रों के पाठकों की संख्या एक करोड़ से अधिक है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि प्रत्येक पाँच जापानी में एक आपके मासिक पत्रों का पाठक है।

अच्छा, अब आपकी इस अद्भुत सफलता का कारण क्या है, सो सुनिए। पाठक समझेंगे कि मि० नोमा ने कोई बड़ी भारी पूँजी लगाकर यह व्यवसाय शुरू किया था। किंतु बात ऐसी नहीं है। पूँजी तो आपके पास नाम-मात्र की भी नहीं थी। यदि हम यह कहें कि उपयुक्त अवसर से लाभ उठाकर सर्वसाधारण की रुचि के अनुकूल कार्य करने की असाधारण क्षमता मि० नोमा में वर्तमान थी, तो यह बात भी ठीक नहीं जँचती; कारण, उनमें ऐसी कोई असाधारण योग्यता नहीं पाई जाती। असल बात तो यह है कि जब से मि० नोमा ने अपना यह व्यवसाय प्रारंभ किया है, तब से आप बराबर सचाई एवं उत्साह के साथ परिश्रमपूर्वक कार्य कर रहे हैं। आपका यह विराट् व्यवसाय इसी अनवरत उद्योग के ऊपर निर्मित हुआ है। इसके निर्माण का और कोई दूसरा कारण नहीं है। मि० नोमा आज नौ बड़े-बड़े मासिक पत्रों के अध्यक्ष-रूप में उस गौरवरूप पद को प्राप्त हुए हैं, जिसे देखकर दूसरे लोगों के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न होती है। किंतु इतने बड़े धनाढ्य होने पर भी आप एक दिन भी आलस्य में नहीं व्यतीत करते। प्रातःकाल से लेकर संध्याकालपर्यंत आप अमानुषीय शक्ति के साथ कार्य करते रहते हैं। आपके दैनिक कार्यक्रम में भोगविलास एवं विश्राम के लिये कोई स्थान ही नहीं है। सभी समय में एकमात्र इसी समस्या पर आपका समस्त ध्यान लगा रहता है कि आपके मासिक पत्रों का प्रत्येक अंक उनके पिछले अंकों से किस प्रकार सुंदर प्रकाशित हो सके। कभी एक सफल संपादक के रूप में, कभी एक सुयोग्य लेखक के रूप में, कभी एक कुशल व्यवसायी के रूप में और कभी एक निपुण विज्ञापक के रूप में आप देख पड़ते हैं। आप दिन-भर में इतना काम कर लेते हैं, जितना पाँच या दस मनुष्य कर सकते हैं। आपके दृष्टांत से उत्साहित होकर आपके

अधीन काम करनेवाले कर्मचारीगण भी बड़े उत्साह एवं परिश्रम से आनंदपूर्वक काम किया करते हैं ।

आपके मासिक पत्रों का प्रत्येक पृष्ठ आपके व्यक्तित्व, आपके विचार एवं भावों का द्योतक है । आप इस बात को कभी नहीं भूलते कि आपके व्यावहारिक जीवन का आरंभ एक शिक्षक के रूप में हुआ था । अतएव आपकी यह सदैव इच्छा बनी रहती है कि आप अपना समस्त जीवन एक शिक्षक के रूप में ही समाज की सेवा करते हुए व्यतीत करें । यह कहना कुछ अत्युक्ति नहीं कि वर्तमान काल में आप जापान के सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय शिक्षकों एवं आध्यात्मिक नेताओं में से एक अन्यतम हैं । आपके द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रों में एक स्त्रियों के लिये, एक बालक-बालिकाओं के लिये, एक छोटे-छोटे बच्चों के लिये, एक और दूसरा केवल विशुद्ध मनोरंजन के लिये तथा और दूसरे दूसरे विषयों से संबंध रखनेवाले हैं । किंतु इन सबमें एक अनूठा मासिक पत्र "Xuben" अर्थात् वक्तृत्वशक्ति-नामक है, जो अपने ढंग का एक ही है और जिसके लिये मि० नोमा को विशेष अभिमान है । वक्तृत्वकला के संबंध में अनेक पुस्तकें पाई जाती हैं, किंतु जापान को छोड़कर संसार में कोई भी दूसरा देश नहीं है, जहाँ एकमात्र इसी विषय को लेकर कोई पत्र प्रकाशित होता हो । मि० नोमा का यह सब प्यारा मासिक पत्र है—सिर्फ़ इसलिये नहीं कि यह बेजो है, बल्कि विशेषतः इस कारण से कि इसी पत्र की बदौलत आप मासिक पत्रों के प्रकाशक के रूप में दृढ़तापूर्व क़दम बढ़ाने में समर्थ हुए हैं ।

जगन्नाथप्रसाद मिश्र

× × ×

६. मैं और वे

दूर होके मुझसे वे पाते हैं न चैन कभी,
ध्यान उन्हें प्रतिपल मेरा बना रहता।
होकर अकेले सुख मिलता मुझे भी नहीं,
आँखों में समाया उनका ही रूप रहता।
छाए रहते हैं घन आशा के हृदय पर,
मानस में मेरे भावसिंधु है लहरता।
दोनों ओर अब तो गई है लग प्रेम-आग,
देखें कान बुझता है और कौन जलता।

केदारनाथ अग्रवाल "बालेंदु"

× × ×

प्रसिद्ध डॉक्टरों से बहु परीक्षित और बड़े-बड़े
समाचार-पत्रों और समालोचनाओं से
उच्च प्रशंसित

REGD फस्फरिया-पिल

उत्थानशील पेशी के उत्तेजक, शक्तिवर्द्धक, श्रेष्ठ औषधि । पुरुषत्व-हानि, सुज़ाक, गर्मी (गनोरिया), स्वप्न-विकार, धातु-संबंधी रोगों और विकारों को दूर करने में इसके समान दूसरी दवा नहीं । अंत्रस्थ इनहिबेटारी नर्व के ऊपर क्रिया करके १ ख़ूराक में दीर्घ स्तम्भन-शक्ति आ जाती है । एजेंट चाहिये । मूल्य एक शीशी १॥), ३ शीशी ४।) महसूल अलग ।

जि. वी. सि. पि. वर्कस्, पो० हाटखोला (३९)
कलकत्ता

१९०० मुकद्दमे नदीया सेसन कोर्ट और १९१० मुकद्दमे फरीदपुर कोर्ट से विजयी, देश विदेश के बहु संभ्रांत मनुष्य से प्रशंसित, प्रत्यक्ष फलप्रद। कवच के साथ गारन्टी देते हैं।

लक्ष्मी-हनुमान-कवच—सर्व सिद्धिदाता। धारण से प्रचुर अर्थ, आयु, आरोग्य, स्वास्थ्यसौंदर्य, विद्या, सौभाग्य, बन्धु, पुत्रलाभ, लाटरी और घोड़-दौड़ में जयलाभ, परीक्षा में उत्तीर्ण, थोड़ा ही परिश्रम में व्यवसाय-वाणिज्य में शीघ्र उन्नति और काम लगना होता है । लक्ष्मी अचला होके बैठती है। मूल्य ५) डा० ख़र्च ।=) आना ।

सिद्धवशीकरणकवच — धारण में शत्रु मित्र हो, सभी वश होके अनुगत होते हैं, मूल्य ३॥) महसूल ।=)

आर. एन. शर्मा, शोभाबाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता
(१०८)

७. भारतीय चित्रकला

(१)

कला की उन्नति सभ्यता का एक प्रधान संकेत है। भिन्न-भिन्न कलाओं तथा विज्ञानों के सम्मिश्रण से ही सभ्यता की सृष्टि हुई है और उन्हीं के निरंतर प्रसार से इसकी श्रीवृद्धि होती है। मानव-हृदय की गूढ़तम प्रवृत्तियों एवं चेष्टाओं को विशद रूप देना ललित कला का मुख्य कार्य है। कलाओं के विकास से मनुष्य की प्रकृति-कल्पना तथा कार्य में सूक्ष्मता के संग श्रेष्ठता की मात्रा बढ़ती है, और इससे मनुष्य भावुक एवं कर्मशील बन सकता है। देखा भी जाता है कि असभ्य पुरुष की बुद्धि विमल एवं सूक्ष्म नहीं होती; परंतु सभ्यता के प्रकाश से मनुष्य अपने भावों का क्षेत्र बढ़ा सकता है और वह अपने विचार में ऐसी सूक्ष्मता प्रदर्शित कर सकता है, जो एक असभ्य के लिये सर्वथा असंभव है। पर्यायवाचक शब्द इस सिद्धांत की पुष्टि करते हैं। कोमल-पेलव-स्निग्ध-मसृण इत्यादि शब्दों में जो सूक्ष्म विभेद है, उसका समझना सभ्य पुरुष के लिये सहज है; परंतु असभ्य मनुष्य तो केवल कोमलता समझता है। कोमलता के भी भेद एवं मात्रा हो सकती हैं, इसका ज्ञान उसकी बुद्धि के बहिर्गत है। तात्पर्य यह है कि कलाओं की उन्नति से मनुष्य के कार्य तथा विचार-प्रणाली में विभिन्नता एवं विचित्रता आती है और इसके द्वारा उसका जीवन अतिशय गहन तथा सरस बन जाता है।

कला एक बड़ा व्यापक शब्द है। स्थान एवं प्रकरण के साहाय्य से इसकी द्योतकता निर्णीत होती है। महामति टालसटाय का मत है—

"Art is a means of union among men, joining them in the same feelings."

अर्थात् "समान भावों में संलग्न कर कला मानव-जाति को संयुक्त करती है"। ध्यान देने से ज्ञात होता है कि यह सिद्धांत सर्वथा निर्दोष है। यदि पाँच मनुष्य एक उत्तम तैल-चित्र की ओर देखें, तो चित्र के विषय के अनुसार उनके हृदय में समान भाव उत्पन्न होंगे। संभव है, व्यक्तिगत विकास के अनुसार उनके भावों की सूक्ष्मता में तनिक भेद हो; परंतु वस्तुमात्र की कल्पना में विभिन्नता असंभव है। यही कारण है कि असंख्य वर्षों से एक ही सभ्यता, आचार-व्यवहार एवं विचार-पद्धति में रहकर एक जाति अपनी व्यक्तिगत विशेषता धारण करती है और इसी के द्वारा वह अन्य जातियों से विभक्त की जा सकती है।

कला के अंतर्गत चित्र-रचना का स्थान अत्युच्च है—उत्कृष्ट आलेख्य अपना प्रभाव मानव-हृदय के अंतस्तल तक शीघ्र पहुँचाता है और मनुष्य इससे ख़ूब लाभ उठा सकता है। रेखा, रंग एवं छाया के द्वारा चतुर चित्रकार मनुष्य के प्रायः संपूर्ण भावों, चेष्टाओं तथा आकृतियों का चित्रण कर अपनी रचना को सजीव बना डालता है और उससे अस्वाभाविकता का बहिष्करण ही कला की चरम सीमा है। कवि अपनी गूढ़मयी वाणी से मनुष्य की आत्मा को प्रभावान्वित करता है, परंतु चित्रकार अपनी वर्णिका तथा वर्तिका की सहायता ले चक्षु-मार्ग से मानव-हृदय पर अधिकार स्थापित करता है। एक सिद्धहस्त चित्रकार का कथन है—

"A good painter has two chief objects to paint, viz (a) man, and (b) the intention of the soul. The first is easy and the second difficult, because he has to represent it through the altitude and movements of his limbs."

अर्थात् उत्तम चित्रकार के लिये दो प्रधान वस्तुओं का चित्रण आवश्यक है—(१) मनुष्य और (२) उसकी आत्मा की आकांक्षा। प्रथम का चित्रण तो सहज है, परंतु द्वितीय का कठिन है; क्योंकि अवयवों के परिचालन एवं उत्सेध के द्वारा उसका प्रदर्शन करना पड़ता है। पाठकों के मनोरंजनार्थ इन्हीं विचारों की सहायता से हम भारतीय चित्रकला की विशेषताओं पर दृष्टिपात कर उसकी श्रेष्ठता की परीक्षा करेंगे।

संस्कृत-ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है कि प्राचीन आर्य कला को विशेष आदर की दृष्टि से देखते थे और वे उसकी उन्नति भी करते थे। इन पुस्तकों में "चतुःषष्टि-कला" का वर्णन मिलता है और कहावत है कि भगवान् कृष्णचंद्र इन चौसठ कलाओं में प्रवीण थे। अवसादग्रस्त भारत से यह प्रथा क्रमशः अंतर्हित हो गई। शोक है कि आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था में एक भी कला के विकास का अवसर प्राप्त नहीं है। यदि भारत-चित्र की मूल-प्रकृति के विषय में हमारी धारणा स्पष्ट न हो, तो केवल भारतवर्ष में

रहकर अथवा भारतवर्षीय विषय का अवलंबन कर चित्रचर्चा करने से भारत-चित्र नहीं होगा—भारत-चित्र के प्रकृतिगत अनन्य साधारण विशिष्ट लक्षण ही इसके प्रकृत मानदंड हैं। भारत में यह कथा प्रसिद्ध है—

"यथा सुमेरुः प्रवरो नगानां, यथाण्डजानां गरुडः प्रधानः ।
यथा नराणां प्रवरः क्षितीशस्तथा कलानामिह चित्रकल्पः ॥

अर्थात् जैसे पर्वतमालाओं में सुमेरु सर्वलोक वरेण्य, अण्डजात जीवगण के बीच गरुड़ सर्वप्रधान तथा मनुष्य-जाति के बीच राजा सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार कलासमूह के मध्य चित्रकला सर्वमान्य है।

इस श्लोक के पाठ से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतवर्ष में चित्र-कला ने अत्यधिक गौरव एवं आदर प्राप्त किया था। उस समय जो वस्तुएँ थीं, वे अब प्राप्य नहीं; अभी तक जो कुछ शेष है, वह अजंतागुहा की चित्रावली है। परंतु वहाँ भी जो कुछ अवशिष्ट है, वह प्रकृत चित्र नहीं। केवल चित्राभास है। चित्र-संसार के मध्य ये प्राचीन भारत-चित्र के असम्यक् निदर्शन हैं। ये (चित्र) तो केवल साहित्य-दर्पण के "दोष-परिच्छेद" के अनायासलभ्य उदाहरणस्वरूप हैं। हमारा विश्वास है कि ये चित्र विलासव्यसनमुक्त, योगयुक्त, अनासक्त संन्यासी-संप्रदाय के निभृत-निवास के केवल भित्ति-विलेपन हैं; विचक्षण चित्रसमालोचक के निकट भक्ति भारावनत नमस्कार के योग्य होने पर भी ये भारत-चित्रोचित-प्रशंसा के अनुपयुक्त हैं। ये सब इस कला में एक श्रेणी के साधारण कर्म हैं और इनका प्रधान प्रयोजन अलंकरण है। इन चित्रों के दर्शन से जो कुछ चित्रगुण का परिचय प्राप्त होता है, वह पूर्णतः अयत्न-संभूत, आकस्मिक तथा अलौकिक है। किसी समय भारत में सभी घरों के लिये ऐसे भित्तिचित्र की व्यवस्था थी। किस प्रकार के घर में किस श्रेणी का चित्र अंकित किया जायगा, इसके लिये भी निर्दिष्ट नियम थे। इन भित्ति-चित्रों में कोई भी चित्र सौंदर्य की परा काष्ठा की आशा नहीं करता था; क्योंकि प्रतिमा के अनिंद्य निदर्शन के निमित्त भित्ति-स्थल उपयुक्त गण्य नहीं होता था।

स्थानं प्रमाणं भूलम्भो मधुरत्वं विभक्तता ।
सादृश्यं क्षयवृद्धी च गुणाष्टकमिदं स्मृतम् ॥
स्थानहीनं गतरसं शून्यदृष्टिमलीमसम् ।
चेतनारहितं वा स्यात्तदशस्तं प्रकीर्तितम् ॥

उस समय "स्थान, प्रमाण, भूलम्भ, माधुर्य, विभक्तता, सादृश्य, क्षय एवं वृद्धि, पारिभाषिक संज्ञानुसार चित्र के प्रधान गुण माने जाते थे। स्थानदोष, रसदोष तथा चित्रदोष विकार के कारण निंद्य थे। इन सब चित्रगुणों एवं चित्रदोषों के यथार्थ परीक्षक के लिये अजंतागुहा की चित्रावली भारत-चित्र के मध्य सर्वांग-सुंदर कहकर मर्यादा पाने में सर्वथा असमर्थ है। जिन लोगों की अध्यक्षता में ये भित्ति-चित्र अंकित किए गए थे, वे लोग पुरातन भारत में 'चित्रवित्' के नाम से गण्य नहीं हो सकते थे; वे नमस्कार के योग्य थे अवश्य थे, किंतु चित्र के हेतु नहीं वरन् चरित्र के कारण। उन साधुओं के भित्ति-चित्र प्रशंसा के योग्य हैं, परंतु उनमें कला-लालित्य नहीं, केवल विषय-माहात्म्य-मात्र है।

हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने चित्रकारों को यथार्थ समझने की पूर्ण चेष्टा की थी। वायु-संचार से जल में तरंगें उठती हैं—प्रज्वलित हो अग्नि-शिखा विकास करती है—धूम गगनमंडल में आरोहण करता है—पताका आकाश में वायुवेग से अंग-विस्तार करती है—सिद्धहस्त चित्रकार ही इन सब गतिभंगियों को यथार्थ रूप में चित्रित कर सकते हैं। सुप्तावस्था में मनुष्य के प्राण-स्पंदन की चेतना लुप्त नहीं होती, मृत्यु के पश्चात् ही उसका नाश होता है; शरीर के संपूर्ण अंश समान नहीं हैं। कोई अंग उन्नत है और कोई अंग अवनत—जो लोग इस सब पार्थक्य को प्रकट कर स्वाभाविक चित्र अंकित कर सकते हैं, वे ही यथार्थ चित्रवित् हैं। यथा—

तरङ्गाग्निशिखाधूमं वैजयन्त्यम्बरादिकम् ।
वायुगत्या लिखेद्यस्तु विज्ञेयः स तु चित्रवित् ॥
सुप्तञ्च चेतनायुक्तं मृतं चैतन्यवर्जितम् ।
निम्नोन्नतविभागं च यः करोति स चित्रवित् ॥

उपर्युक्त श्लोक से ज्ञात होता है कि केवल आकारांकन में सिद्धहस्त होने से ही कोई चित्रवित् कहला मर्यादा नहीं पा सकता है। प्राणहीन पदार्थ की गति का चित्रण अपेक्षाकृत सहज है, परंतु सजीव की स्थिति को अंकित करना अतिशय दुष्कर है; क्योंकि इस चेतना-व्यंजक शिल्प-कौशल की अत्यंत आवश्यकता है। इसी चेतना के साहाय्य से प्राणरहित वस्तु

प्राणमय जीव के मध्य पार्थक्य प्रदर्शित किया जा सकता है। ऐसे चित्र को इस प्रकार से बनाना चाहिए कि दर्शनमात्र से ही प्रकट हो जाय कि श्वास-प्रश्वास स्वाभाविक रूप से प्रवाहित हो रहे हैं और यही आलेख्य वस्तुतः चित्र के शुभ लक्षणों से संयुक्त भी होता है। चित्रशास्त्र में कहा है—'सश्वास इव यच्चित्रं तच्चित्रं शुभलक्षणम्' अर्थात् श्वासयुक्त चित्र अपने शुभगुणों से अलंकृत होता है।

भारत-चित्र के अनेकों विभाग प्रचलित हैं अर्थात् विषय-भेद, पद्धति-भेद, प्रयोजन-भेद इत्यादि। हमारे प्राचीन साहित्य में चित्र के लिये मुख्य प्रतिशब्द 'आलेख्य' मिलता है और इसका प्रधान विषय नायक-नायिका का चित्रण है। महामति वात्स्यायन के द्वारा यह प्रकरण पूर्णतः प्रतिपादित हुआ था—इस विषय को विशद करने के लिये टीकाकार यशोधर ने एक कारिका संपूर्णतः उद्धृत की है अर्थात्—

रूपभेदाः प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम् ।
सादृश्यं वर्णिकाभङ्ग इति चित्रं षडङ्गकम् ॥

यथार्थतः भारत-चित्र के ६ अंग होते हैं। सुतरां जिस चित्र में ये षडङ्ग वर्तमान न हों, वह आलेख्य अंगहीन केवल चित्राभास है।

प्रथम अंग—रूपभेद

रूप के भेद—साधन के अंतर्गत वस्तुतः रूप क्या है, इस विषय का ज्ञान नितांत आवश्यक है। प्रथमतः रूप की एक पारिभाषिक संज्ञा होती है। इसमें सौंदर्य का यथार्थ विवरण होता है। हमारा प्रत्येक अंग एक-एक रूप का विशेष आधार माना जाता है। चित्र-विज्ञान में एक रूप से अन्य रूप की विभिन्नता के दर्शन का नाम रूप-भेद है और यह चित्रगुण के विवरण में 'विभक्तता' के नाम से प्रसिद्ध है—साधारणतः लोग इसको 'रेखा-विन्यास' भी कहते हैं। रेखा-विन्यास से रूप-भेद की पद्धति तो ज्ञात होती है, किंतु इसकी सहायता से रूप का यथार्थ आशय व्यक्त नहीं होता। अलंकार-हीन होकर भी जिस शक्ति के प्रभाव से अंग-प्रत्यंग भूषित जान पड़े, उसी का नाम 'रूप' है। यथा—

अङ्गान्यभूषितान्येव केनचिद्भूषणादिना ।
येन भूषितवद्भाति तद्रूपमिति कथ्यते ॥

अलंकृत पदार्थ तो रूपमय नहीं है, वह तो सर्वथा अरूप है। विशुद्ध रूप अंग-प्रत्यंग की सहायता से स्वयं ही व्यक्त हो जाता है और वह मन को बलात् आकृष्ट कर लेने में समर्थ होता है। रूप वस्तुतः अनुभव करने के योग्य तथा अतींद्रिय है। वह तो आत्मोत्कर्ष से ही दृष्टिगम्य हो सकता है। भारतीय चित्रविद्या का मत है कि इस रूप के प्रदर्शन के लिये साधारण रेखा वस्तुतः रेखा नहीं है, रूप-रेखा ही रूप की पुष्टि करती है। रूप-रेखा जितनी ही विशुद्ध एवं स्वाभाविक होगी, चित्र उतना ही उत्कृष्ट एवं सुंदर होगा। चित्र के विविध प्रकार की अभिव्यक्ति से भिन्न-भिन्न रुचियुक्त मनुष्यों का मनोविनोद होता है, परंतु सभी में रूप केंद्र-स्थल है। आचार्यगण 'रेखा' की प्रशंसा करते, विचक्षणगण आलोक तथा छाया का गुण गाते, प्रदर्शकगण 'वर्तना' की स्तुति करते, रमणीगण भूषण-विन्यास के प्रति अनुरागी होता तथा अन्य साधारण पुरुष 'वर्णाद्यता' के ही पक्षपाती होते हैं। कहावत है—

रेखां प्रशंसन्त्याचार्या वर्तनां च विचक्षणाः ।
स्त्रियो भूषणमिच्छन्ति वर्णाद्यामितरे जनाः ॥

चित्र में प्रथम रूप-भेद की रचना अत्यावश्यक है। शिल्प-शास्त्र में इसकी पूर्ण विधि का उल्लेख मिलता है। प्रथम 'अनुलोम' तथा द्वितीय 'प्रतिलोम'-नामक दो प्रणाली हैं। मस्तक के चतुर्दिक् रेखा-विन्यास का नाम 'अनुलोम-पद्धति' है तथा चरणयुगल से रेखा के निर्माण का नाम 'प्रतिलोम-प्रणाली है। यही कारण है कि देव-मूर्ति के चित्रण में 'अनुलोम-पद्धति' का आश्रय अतिशय श्रेयस्कर माना जाता है। रूप-भेद में शरीर के संपूर्ण अवयवों का प्रदर्शन उचित नहीं है; क्योंकि सब अंग रूप के आधार नहीं होते हैं। रूप के आधार सभी अंगों को पृथक्-पृथक् भाव में प्रदर्शित करना चाहिए, नहीं तो 'चित्रदोष' की उत्पत्ति होती है। अविभक्तता ही इस सुपरिचित चित्रदोष की एक संज्ञा है। यही कारण है कि भारतीय चित्रों में कोई अंग तो अणुमात्र ही व्यक्त होता है तथा अन्य अंग सुनिर्दिष्ट रेखाविन्यास के द्वारा सुचारु भाव से विभक्त देख पड़ते हैं। भारतीय चित्रों में इस रूपभेद की सामान्य रीति की अनभिज्ञता के कारण पाश्चात्य देशों के कुछ ग्रंथकारों ने भारत-चित्र को 'रेखात्मक' कहकर गर्हित माना है; परंतु भारत-चित्र वस्तुतः रेखात्मक नहीं, वरन् रूपात्मक है।

द्वितीय अंग—प्रमाण

ताल-हीन संगीत की नाईं मानहीन चित्र भी रसबोध कराने में सर्वथा असमर्थ होते हैं। अंग-प्रत्यंग के मध्य एक परिमाण-पार्थक्य का वर्तमान रहना अत्युत्तम है। दैर्घ्य-विस्तार और वेध दोनों सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव से अंग-प्रत्यंग की स्थिति के सामंजस्य की रक्षा कर गति-विधान की सहायता करते हैं और यह रेखाविन्यास को सुसंयत कर चित्र-सौंदर्य को विकसित करता है। यह कोई अनावश्यक शासन-शृंखला नहीं और चित्र के निर्माण में इसकी अवहेलना का स्थान नहीं है। केवल एक स्थान में इसका व्यतिक्रम हुआ है और वह हास्यरस की अवतारणा में अभिव्यक्त किया जाता है। किंतु उस स्थान में भी साधारण परिमाण में व्यतिक्रम होने पर रसानुगत परिमाण सर्वथा अनतिक्रमणीय है। सीमा को सुनिर्दिष्ट कर चित्र को सुसंगत बनाना ही 'प्रमाण' का प्रधान कार्य है। शिल्प में इसके द्वारा स्वेच्छाचार की मात्रा कम हो जाती है, किंतु इससे प्रतिभा-प्रकाशन में उच्छृंखलता भी नहीं होने पाती है।

तृतीय अंग—भाव

भाव वस्तुतः अशारीरिक चित्त-वृत्ति है। यह तो विभावजनित शरीरेन्द्रिय वर्ग की विकार-विधायक चित्त-स्थिति है।

> शरीरेन्द्रियवर्गस्य विकाराणां विधायकाः।
> भावा विभावजनिताश्चित्तवृत्तय ईरिताः॥

भिन्न-भिन्न भावों की शक्ति से शरीरेन्द्रिय वर्ग में पृथक्-पृथक् विकार का जन्म होता है। अतएव मानव-चित्तवृत्ति रस का अनुगमन करती है और उसी के अनुकूल भाव नियमित रहता है—हम नेत्र के आकार-पार्थक्य की सहायता से इसका शीघ्र परिचय पा सकते हैं।

> चापाकारं भवेन्नेत्रं मत्स्योदरमथापि वा।
> नेत्रमुत्पलपत्राभं पद्मपत्रनिभं तथा॥
> शशाकृतिर्महाराज पञ्चमं परिकीर्तितम्।

नेत्र के आकार पाँच श्रेणियों में विभक्त किए गए हैं अर्थात् (क) चापाकार (ख) मत्स्योदर (ग) उत्पलपत्राभ (घ) पद्मपत्रनिभ (ङ) शशाकृति। चापाकार का यथार्थतः भाव धनुराकृति अतएव वक्ररेखा तुल्य है। शरीर एक सुपरिचित शरीरेन्द्रिय है। किसी निर्दिष्ट भाव के प्रभाव से शरीर में विकार देख पड़ता है और इसी के अनुसार उसके आकार में विशेष परिवर्तन होता है। यही कारण है कि सब अवस्थाओं में सभी स्त्री-पुरुषों के नेत्र का आकार एक समान नहीं हो सकता है। भि सूत्रोक्त पाँच प्रकार की आँखों में पाँच भिन्न-भिन्न लक्ष के आकार दृष्टिगोचर होते हैं और भिन्न-भिन्न भावों के प्रभाव से इन सब आकारों में पार्थक्य उत्पन्न होता है यथा—

> चापाकारं भवेन्नेत्र योगभूमिनिरीक्षणात्॥
> मत्स्योदराकृतिः कार्य्या नारीणां कामिनां तथा।
> नेत्रमुत्पलपत्राभं निर्विकारस्य शस्यते॥
> त्रस्तस्य रुदतश्चैव पद्मपत्रनिभं भवेत्।
> क्रुद्धस्य वेदनान्तस्य नेत्रं शशाकृतिर्भवेत्॥

योगभूमि के निरीक्षण से नेत्र की आकृति धनु नाईं हो जाती है—कामुक एवं विलासिनी रमणी के मत्स्योदराकृति के होते हैं, निर्विकार चित्तयुक्त पुरुष के उत्पलदल के समान होते हैं, त्रस्त अथवा रुद्यमान् म के चक्षु पद्मपत्र के सदृश और क्रुद्ध अथवा मनुष्य के नयन शशाकृतितुल्य होते हैं। शरीरेन्द्रि में एक प्रकार की विकार-विधायक चित्तवृत्ति का 'भाव' है। चित्र में इस भाव का त्याग नहीं हो स है। इसके अभाव से चित्रदोष की संभावना है।

चतुर्थ अंग—लावण्य

यह एक प्रकार का औज्ज्वल्य-साधन है और लावण्य-शब्द के व्यवहार से स्पष्टरूप में प्रकट होता जैसे मुक्ता के चारों ओर से एक तरंगायमान् प्रभा लती है, उसी प्रकार अंग-प्रत्यंग से प्रस्फुटित तरंगाय द्युति का नाम 'लावण्य-योजन' है—यह लावण्य एक पारिभाषिक शब्द है; यथा—

> मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
> प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्यं तदिहोच्यते॥

सभी स्त्री-पुरुष के संपूर्ण अंग-प्रत्यंग से अल्प मात्रा में एक तरंगायमान् आलोक झलकता हु पड़ता है—यह प्रभा जीवित मनुष्य को मृतक से दिखलाती है। जिस शिल्प-कौशल से यह द्युति प्र की जाती है, उसका नाम 'लावण्य-योजन' है। तरलता एक प्रधान गुण है, वस्तुतः यह छाया कांति की तरलता है। टीकाकारगणों ने इसे त मान् कहकर व्याख्या की है। लावण्य अंग-प्र

ऊपर तरंग की नाईं उठकर विलुप्त हो जाता है। सुतराम् उसमें केवल औज्ज्वल्य ही नहीं है, किंतु यह चलोर्मिवत् चलनोन्मुख है। इसी लावण्य के साहाय्य से चित्र निर्जीव होकर भी सजीव के समान देख पड़ता है।

चित्र-भंगी के मध्य इस तरह के लावण्य की गति-भंगी का संचार न होने से चित्र 'दौर्बल्य-दोष' के कारण उत्तम नहीं होता है। अविभक्तता अर्थात् रूप-भेद का अभाव एक चित्र-दोष है। यदि रूप-भेद को प्रकट करनेवाला रेखाविन्यास स्थूलता की अवतारणा करे, तो वह भी चित्र-दोष में गण्य हो जाता है और इसका साधारण नाम 'स्थूलरेखात्व' है—वर्णसांकर्य में भी इसी प्रकार का एक दोष है; यथा—

दौर्बल्यं स्थूलरेखत्वमविभक्तत्वमेव च ।
वर्णानां सङ्करश्चात्र चित्रदोषाः प्रकीर्तिताः ॥

पंचम अंग—सादृश्य

दृश्य के साथ तुल्यता का नाम 'सादृश्य' है। दृश्य के जाने बिना सादृश्य का समझना सहज नहीं है। प्रत्येक वस्तु में दो विषय वर्तमान रहते हैं अर्थात् (१) वस्तुसत्ता एवं (२) वस्तुदृश्य। गाय एक चतुष्पद जंतु है, किंतु सब प्रकार के अवस्थानों में उसके पद-चतुष्टय समानरूप में नहीं देख पड़ते हैं। मनुष्य जिस वस्तु को देख सकता है, उसका नाम 'दृश्य' है तथा इस दृश्य के साथ तुल्यता की संज्ञा 'सादृश्य' है। पाश्चात्य शिल्प-समालोचक रस्किन (Ruskin) ने भी इस विषय को समझने की चेष्टा की थी। अमुक वस्तु में जो कुछ है, इस ज्ञान के आधार पर चित्र बनाना उत्तम नहीं; बरन् वस्तु में जो देख पड़े, उसका चित्रण अतिशय प्रशंसनीय है। 'दृश्य' दो श्रेणी में विभक्त किया गया है अर्थात् बाह्य एवं अंतर। दृश्य बाह्य जगत् में वर्तमान हो अथवा उसकी कल्पना अंतर्जगत् में की गई हो, परंतु जो दृश्य है, उसी के संग सादृश्य का होना अत्यावश्यक है। पाश्चात्य देशों में भावात्मक एवं आकारात्मक-नामक शिल्प के दो विभाग किए गए हैं, किंतु भारतशिल्प में इसका विवरण अपरिज्ञात है। 'आकार' तो भारत-शिल्प का 'अविषय' है, परंतु दृश्य इस शिल्प का मुख्य विषय है और इसी की उन्नति से चित्र आनंददायक होता है। दृश्य तो वस्तुतः दृश्य ही है—यह आकार से सर्वथा विभिन्न है। आकार के अंतराल में रूप, भाव, लावण्य एवं दृश्य वर्तमान रहते हैं और यही भारत-चित्र के निर्माण के श्रेष्ठ विषय हैं। हमारे अधिकांश प्राचीन चित्र इसी प्रणाली के आधार पर चित्रित हुए हैं। इस कारण भारत-चित्र आकार का अनुकरण नहीं करता—इस चित्र के द्वारा अनुभूति की अभिव्यक्ति होती है और मानव-हृदय आनंद के स्रोत में मग्न हो जाता है। इसी से यह 'सादृश्य' शब्द सूचित हुआ है। यह सादृश्य शब्द तुल्यता नहीं, यह तो तुल्यता का केवल हेतुमात्र है।

षष्ठ अंग—वर्णिका-भंग

जिस वर्ण का समावेश जिस स्थान में आवश्यक है, उस स्थान में उस वर्ण-विन्यास का नाम 'वर्णिका-भंग' है। इस वर्ण-विन्यास के व्यतिक्रम से 'संकरता'-नामक दोष की उत्पत्ति होती है और यह एक सुपरिचित चित्र-दोष है। भारतीय चित्र-साहित्य में चित्र-वस्तु एवं चित्रांकण की वस्तु के उल्लेख मिलते हैं; ये दो श्रेणी की रचनाएँ दो नाम से विख्यात हैं, अर्थात् (१) चित्र-सूत्र तथा (२) चित्र-कल्प। चित्र की मूलपद्धति 'चित्र-सूत्र' में तथा चित्रांकण-पद्धति 'चित्र-कल्प' में लिपिबद्ध की गई है।

स्थान, काल एवं चेष्टा एक ही मनुष्य के दृश्य को अनेकों भाव में प्रदर्शित करते हैं, अतएव पूर्णरूप में चित्र आकारात्मक नहीं हो सकता है। यद्यपि दृश्य बाह्य वस्तु के आकार का अवलंबन कर अभिव्यक्त किया जाता है, तो भी यह आकारानुकृति नहीं, केवल दृश्य सृष्टि है। यह कहना कदापि संभव नहीं कि दृश्य के संग अस्थि-संस्थान-विद्या का संपर्क अत्यधिक है। अस्थि तो अदृश्य है—किसी-किसी स्थान में इसकी स्थिति स्पष्ट देख पड़ती है, किंतु दूरवर्ती दर्शन स्थान से यह अदृश्य ज्ञात पड़ती है, अतएव चित्र में इसका प्रदर्शन न्याय-संगत नहीं है। किंतु अंग-प्रत्यंग के अस्थि-शिरा-मांसपेशी प्रभृति स्वाभाविक संस्थान के लिये जो सब नतोन्नत दृश्य स्पष्ट ज्ञात होते हैं तथा जो दूर से भी दृष्टि-गोचर हो सकते हैं, उनका चित्रण परमावश्यक है; क्योंकि यही चित्र के पांडुलेख्य (Outline) के आधारस्वरूप हैं। भारत-चित्र में शिरा इत्यादि के प्रदर्शन के निषेध-वाक्य प्रचलित हैं, इस सिद्धांत से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि भारत-चित्र के विद्वान् अस्थि-संस्थान-विद्या को

उदाहरण-रूप में आत्म-प्रकाश करने के योग्य नहीं समझते थे। अतएव उन्होंने चित्र से इस विषय का बहिष्कार किया था। यही भारत-चित्र के मूल-सिद्धांत का संक्षिप्त विवरण है—हम इससे चित्रकला की उन्नति की मात्रा समझ सकते हैं। यह कला प्राचीन भारत में अपनी चरम सीमा (Zenith) पर आरूढ़ थी; पर आधुनिक कला की क्या दशा है !*

श्रीराजेश्वरीप्रसाद

× × ×

८. कलिका

(१)

किसने उस विकसित कलिका का—
सहसा आज विनाश किया ?
किस मतवाले बेदरदी ने—
मद में यह उपहास किया ?

(२)

जीवन के उपवन का मेरा
सारा सौरभ धूल हुआ ;
खोजूँ कहाँ, कहाँ मैं जाऊँ !
ईश्वर ही प्रतिकूल हुआ !

(३)

अन्वेषण है विफल और
सारी इच्छाएँ हैं निर्मूल।
उस कलिका के विना विश्व—
वैभव लगता है मुझको शूल।

कृष्णचंद्र मुग्दल 'दुःखित'

× × ×

९. भ्रांति

नाहक तूने मुझे भुलाया !
विकल वेदना का संचित धन,
आह पथिक कब कहाँ गँवाया ?
मैंने आँसू के झरने से,
विश्व अनेक बार नहलाया।
ओस-विंदु से धुली कली थी,
रोकर कैसी चुपकी माया।
प्रेम-विभोर करुण कंपन में,
मैंने विरह विधुर ही गाया।
क्षीण कंठ की आकुलता ने,
कभी न क्षण-भर मन बहलाया।
किंतु चेतना क्रांतिमयी थी,
फिर क्या लहर उठी थी काया।
दे युति धन जीवनवेदी पर,
दुख से सुख, रोकर अलसाया।

मुकंदीलाल गुप्त

---

* बँगला के एक लेख के आधार पर।

बवासीर

ख़ूनी या बादी, नई या पुरानी ख़राब-से-ख़राब चाहे जैसी बवासीर हो सिर्फ़ एक बार के सेवन से जादू के मानिंद असर कर अद्भुत फ़ायदा देता है। तीन रोज़ में जड़ से नाश। परहेज़ की कोई ज़रूरत नहीं, अधिक तारीफ़ व्यर्थ। फ़ायदा न हो तो चौगुने दाम वापस, क़ी० २)

फ़क़ीरी सुरमा

यह सुरमा आँख के तमाम रोगों पर जैसे फूला, माड़ा, परवाल, रतौंधी, दिनौंधी, रोहे, गुहेरी, लाली, मोतियाबिंद को विना चीर-फाड़ के आराम करने में रामबाण है। कुछ रोज़ के सेवन से चश्मा लगाने की आदत छूट जाती है। क़ी० १), तीन शीशी ३)

बहिरापन

कान के तमाम रोगों पर जैसे कान में पीब आना, कान बहना, जलन, खुजली, कान में भयंकर वेदना, तथा बहिरापन नाश करने में हमारा चमत्कारी 'बहिरादीपन तेल' अमोघ है, हज़ारों कम सुननेवाले अच्छे हुए। फ़ायदा न हो तो दाम वापस। क़ी० २)

पता—शक्तिसुधा कार्यालय, चौथा कुम्हारबाड़ा, बंबई नं० ४।

LALIMLI
PURE WOOL

लोइयाँ
कंबल
सरज
टुइल
फ़लालैन
कारडिगन
मोज़े
वग़ैरह वग़ैरह

लाल इमली के शुद्ध ऊनी कपड़े अथवा बुने हुए वस्त्रों के लिए यह ज़िम्मा लिया जाता है कि

१. इनको भारतवर्ष में भारतीय कारीगरों ने तैयार किया है
२. यह सौ प्रति सैकड़ा शुद्ध ऊन के बने हुए हैं
३. इनके दाम कम हैं
४. यह पहिनने में सुंदर लगते हैं
५. और अधिक समय तक चलते हैं

LALIMLI
REGISTERED
TRADE MARK

आप इनको पूरे इतमीनान के साथ लाल इमली के दूकानदारों के यहाँ से ख़रीद लीजिये और या सीधे हमारे विभाग नं० ६ से मँगवाइए।

दि कानपुर ऊलन मिल्स,
कानपुर

२

दो शक्तिशाली वस्तु सेवन कीजिए !

(१) शरीर पर बहार आवेगी !
(२) चेहरे की रंगत सुर्ख़ होगी !
(३) नेत्रों और मस्तिष्क का तेज बढ़ेगा !
(४) शरीर पुष्ट तथा कांतिमय होगा !

१

स्वादिष्ट

'डावर द्राक्षारिष्ट'

इसमें अंगूर का रस प्रचुर परिमाण में है। लगातार सेवन करने से शरीर की प्रत्येक इंद्री सबल, व सतेज व क्रियाशील होकर चेहरा उत्साहित व श्रीसंपन्न हो जाता है।

मूल्य है—आधा सेर की बोतल १॥), डाकमहसूल ॥≈)

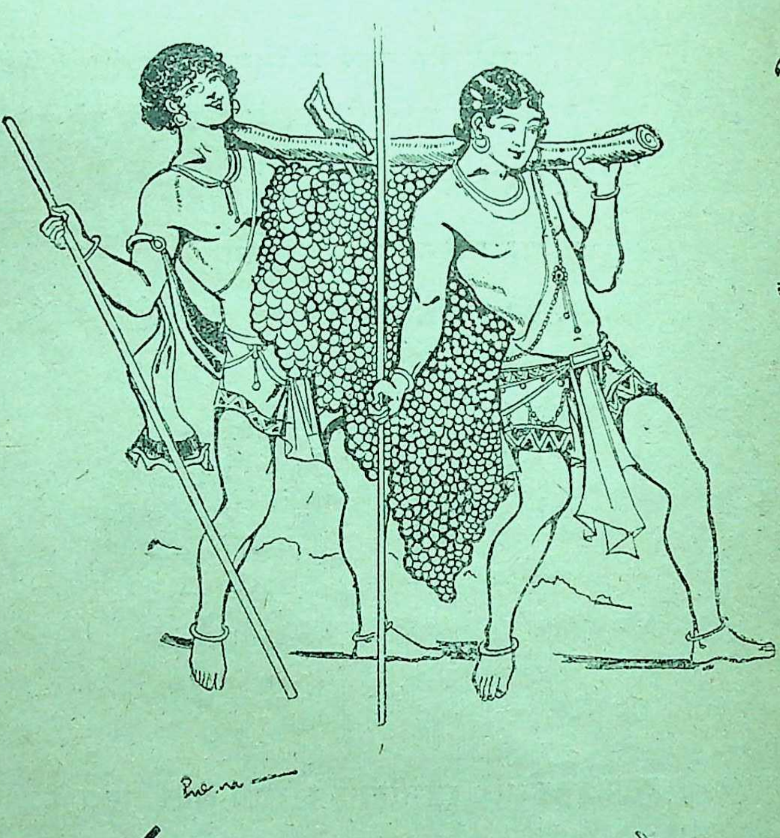

२

महारसायन

'डावर च्यवनप्रा

इसके विधि
सेवन करने से न के
रोग ही नष्ट होता है
प्रत्युत मनुष्य का जी
वन भी दीर्घ होजाता है

स्वस्थ शरीर
सेवन करने से
बढ़ता है। तथा
परिवर्तन के स
सेवन करने से
रोग होने का
नहीं रहता है।

मूल्य—एक पाव
२० मात्रा १॥), डा
महसूल ॥≈)

डाक्टर एस० के० बर्मन,

(विभाग नं० १३१) नं० ४, ताराचंददत्त स्ट्रीट,
कलकत्ता।

एजेंट—

लखनऊ (अमीनाबाद पार्क) में 'किंग मेडिकल हाल'।

ऐसा कौन है जिसे फ़ायदा नहीं हुआ

सुधासिंधु

कफ, खाँसी, हैज़ा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट दर्द, कै, दस्त, जाड़े का बुखार, बालकों के हरे-पीले दस्त और ऐसे ही पाकाशय की गड़बड़ से उत्पन्न होनेवाले रोगों की एकमात्र दवा, मुसाफिरी में लोग इसे ही साथ रखते हैं। कीमत ॥)

बालसुधा

बच्चों को बलवान्, सुंदर और सुखी बनाने के लिये सुख-संचारक-कम्पनी मथुरा का मीठा "बालसुधा" पिलाइये। कीमत ॥)

तत्काल गुण दिखानेवाली ४० वर्ष की परीक्षित दवाइयाँ सब दुकानदारों के पास मिलती हैं।

दद्रुगजकेशरी

दाद चाहे पुराना हो या नया, मामूली हो या पकनेवाला, इसके लगाने से बिना जलन और तकलीफ के अच्छा होता है। कीमत ।)

द्राक्षासव

तत्काल बल बढ़ानेवाली कब्ज, कमजोरी खाँसी और नींद न आना दूर करता है, बुढ़ापे के सभी कष्टों से बचाता है, पीने में मीठा स्वादिष्ट है, कीमत तीन पाव का बोतल १॥), छोटी ॥।≈) डाकखर्च जुदा।

डाकखर्चः—एक से दो सुधासिंधु या दद्रुगजकेशरी ।≈) और एक बालसुधा ॥)

मिलने का पता—सुख-संचारक-कम्पनी, मथुरा।

WHENEVER YOU ARE OUT FOR

SHOPPING

PLEASE DO NOT FORGET TO
VISIT THE FOLLOWING PLACES
and thus
You will save from 5% to 15%

1. **The Criterion Restaurant**
Confectioners & Caterers Hazratganj, Lucknow

2. **The Criterion Stores**
Wine & Provision Dealers Hazratganj, Lucknow

3. **The Criterion Stores**
Wine&General Merchants, Mullital Nainital.

Proprietor—M. P. Srivastava.

हिंदोस्तान का सबसे पुराना पाल एंड संसका

असली मोहन-फ्लूट

गारंटी ३ वर्ष

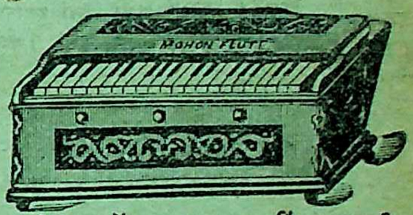

गारंटी ३ वर्ष

हारमोनियमों का राजा हिंदुस्तानी गाने और जलवायु के लिये उपयुक्त। मीठी आवाज़, देखने में सुंदर और टिकाऊ।

सिंगल पेरिस रीड ३५) से ४०) तक
डबल पेरिस रीड ६०) से ६५) तक

बेलज फ्लूट

सिंगल जर्मन रीड २२) से २५) तक
डबल जर्मन रीड ३५) से ४०) तक
ऑर्डर के साथ ५) पेशगी भेजिए।

पाल एंड संस, ६।१।२, आरपुली लेन,

तार का पता—
"मोहन-फ्लूट,
कलकत्ता"

(म) कलकत्ता। ३४

५०००) की चीज़ ५) में

मेस्मिरेज़मविद्या सीखकर धन व यश कमाइए

मेस्मिरेज़म के साधनों द्वारा आप पृथ्वी में गड़े धन व चोरी गई चीज़ का क्षण-मात्र में पता लगा सकते हैं। इसी विद्या के द्वारा मुक़द्दमों का परिणाम जान लेना, मृत पुरुषों की आत्माओं को बुलाकर वार्तालाप करना, बिछुड़े हुए स्नेही का पता लेना, पीड़ा से रोते हुए रोगी को तत्काल भला-चंगा कर देना, केवल दृष्टि-मात्र से ही स्त्री-पुरुष आदि सब जीवों को मोहित एवं वशीकरण करके मनमाना काम कर लेना आदि आश्चर्य-प्रद शक्तियाँ आ जाती हैं। हमने स्वयं इस विद्या के ज़रिए लाखों रुपए प्राप्त किये और इसके अजीब अजीब करिश्मे दिखाकर बड़ी-बड़ी सभाओं को चकित कर दिया। हमारी "मेस्मिरेज़मविद्या"-नामक पुस्तक मँगाकर आप भी घर बैठे इस अद्भुत विद्या को सीखकर धन व यश कमाइए। मूल्य सिर्फ़ ५) डाक-महसूल सहित, तीन का मू० मय डाक-महसूल १३)

हज़ारों प्रशंसा-पत्रों में से एक

(१) बाबू सीतारामजी बी० ए०, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता से लिखते हैं—मैंने आपकी "मेस्मिरेज़मविद्या" पुस्तक के ज़रिए मेस्मिरेज़म का ख़ासा अभ्यास कर लिया है। मुझे मेरे घर में धन गड़े होने का मेरी माता द्वारा दिलाया हुआ बहुत दिनों का सन्देह था। आज मैंने पवित्रता के साथ बैठकर अपने पितामह की आत्मा का आह्वान किया और गड़े धन का प्रश्न किया। उत्तर मिला "ईंधनवाली कोठरी में दो गज़ गहरा गड़ा है।" आत्मा का विसर्जन करके मैं स्वयं खुदाई में जुट गया। ठीक दो गज़ की गहराई पर दो कलसे निकले। दोनों पर एक-एक सर्प बैठा हुआ था। एक कलसे में सोने-चाँदी के ज़ेवर तथा दूसरे में गिन्नियाँ व रुपए थे। आपकी पुस्तक यथा नामा तथा गुणः सिद्ध हुई।

मैनेजर मेस्मिरेज़म हाउस, नं० ६, अलीगढ़।

पं० चंद्रशेखर वैद्यशास्त्री की अनुभूत औषधियाँ

ब्राह्मी बादाम पाक

बादाम तो वैसे ही शरीर और दिमाग़ को ताक़त देने में अपूर्व है। ६४ वीर्यवर्द्धक ओषधियों के साथ ब्राह्मी शामिल करके बादाम का यह सर्वोत्तम और स्वादिष्ठ पाक हमने बनाया है। यह अत्यन्त धातु-पौष्टिक है। प्रमेह बहुत शीघ्र ही इसके सेवन से जाता रहता है। जिनका वीर्य पतला पड़ गया हो, वे इसे अवश्य खायँ; यह वीर्य को गाढ़ा और पुष्ट करता है। जिन्होंने इसे आज़माया है उन्होंने ही इसकी तारीफ़ लिखी है। चाहे जैसी दिमाग़ी कमज़ोरी हो इसके सेवन से जाती रहेगी। स्मरण-शक्ति की कमी, पुराना सिर-दर्द, आँखों से पानी आना, कम दीखना, चक्कर आना आदि सबको अक्सीर है। इसके सेवन से एक माह में ही काफ़ी बल बढ़ जाता है। सूखा और मुर्झाया हुआ चेहरा इससे भर जाता है और दमकने लगता है। मूल्य १२) रु० सेर, आध सेर का ६॥), पाव भर के ३।=), १० तोले १॥।=)। शुद्ध शिलाजीत ॥) तोला।

मर्दकर्दम तिला—इसकी मालिश से गया-गुज़रा नामर्द भी मर्द हो जाता है। शिथिलता, वक्रता आदि ख़राबियाँ दूर करके यथेष्ट लम्बाई और स्थूलता प्रदान करता है। कुछ दिन लगकर लगाना काफ़ी है। मूल्य छोटी शीशी २), बड़ी शीशी ५)

मँगाने का पता—**ब्राह्मी औषधालय, अलीगढ़।**

२) में १०) रोज़ कमाइए

साइनबोर्ड बनानेवाले ख़ूब रुपया कमाते हैं। यही देखकर हमने 'फनपेन्टी या साइनबोर्डसाज़ी' नाम की पुस्तक इस इल्म के एक ऐसे उस्ताद से लिखवाई है, जो कि २५) से ५०) रु० रोज़ तक साइनबोर्ड बनाकर पैदा कर रहे हैं। यह एक हाथ की दस्तकारी है, जिसे सिर्फ़ तीसरे चौथे दरजे तक हिंदी या उर्दू जाननेवाला हर भाई आसानी से सीखकर २५) नहीं तो पाँच से १०) रोज़ तो पैदा कर ही सकता है। और आज़ादी से रोज़ी कमा सकता है। पुस्तक में ३०० से ऊपर चित्र हैं। पब्लिक ने इसे पसंद भी ख़ूब किया है। मू० २) डा०-म० ।=)।

मँगाने का पता – **मैनेजर, शारदा कम्पनी, अलीगढ़।**

काशी विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित

उत्तमोत्तम पुस्तकें

रक़ासिम—ले० श्रीहरिहरनाथ शास्त्री (भू-लेखक डा० बेनीप्रसाद) इसमें कम्पनी के कर्म- यों के साथ मीरक़ासिम के संघर्षण का सांगोपांग न दिया है। इसके पढ़ने से मीरक़ासिम के संबंध बहुत-सी भ्रान्तियाँ दूर हो जायँगी। मूल्य १॥)

अफ़लातून की सामाजिक व्यवस्था—ले० श्रीगोपाल दामोदर तामस्कर एम० ए०, एल० टी०। इस पुस्तक में सुप्रसिद्ध ग्रीक विद्वान् अफ़लातून की पुस्तकों के विवेचन के साथ-साथ समाज की आवश्यकताओं पर पूरा प्रकाश डाला गया है और यह भी दिखलाया गया है कि अफ़लातून की सामाजिक व्यवस्था भारतीय व्यवस्था से कहाँ तक मिलती है। मू० १।≈)

अँगरेज़ जाति का इतिहास—ले० श्रीगंगाप्रसाद एम० ए०। इसमें राजनीतिक घटनाओं के साथ-साथ राजा और प्रजा के पारस्परिक संघर्ष और प्रजा के प्रयत्नों का पूरा-पूरा विवरण है। इंग्लैंड के साहित्यिक, धार्मिक और सामाजिक विकास पर भी काफ़ी प्रकाश डाला गया है। मूल्य २॥)

हिंदू भारत का उत्कर्ष (राजपूतों का प्रारंभिक इतिहास)—ले० श्रीचिंतामणि विनायक, वैद्य, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। अरब-प्रवासियों के वर्णनों तथा शिलालेखों आदि के आधार पर यह पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गयी है। इसमें राजपूतों की उत्पत्ति, राज्यशासन, युद्ध आदि सभी बातों का वर्णन आया है और देश की तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थिति पर भी गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है। मूल्य ३॥)

शीघ्र प्रकाशित होंगी

हिंदी-शब्द-संग्रह—प्राचीन पद्य पढ़नेवालों के लिये विशेष उपयोगी। मूल्य लगभग ३॥)

पश्चिमी योरोप (दूसरा भाग)—मूल्य लगभग २)

१६६

मिलने का पता १—ज्ञानमंडल-कार्यालय, काशी। २—साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग।

स्त्रियाँ अच्छी चीज़ पसंद करती हैं

श्रीमती अन्नाचंदी, एम्० ए० (आनर्स)

संपादिका "श्रीमथी" कोट्टायाम।

लिखती हैं—

मैंने आपका लोध्रा इस्तेमाल किया
और मासिक-धर्म-संबंधी सभी
शिकायतों के लिये उसे सर्वश्रेष्ठ
औषध पाया। इसका सुंदर स्वाद,
स्वेच्छानुसार भोजन, इसके सेवन
की प्रसन्नता को बढ़ाते हैं।

अपने केमिस्ट से माँगो

या

केसरीकुटीरम्,

हिंदुस्तानी केमिस्ट्स और ड्रगिस्ट्स,
इग्मोर, मदरास

६२

जगत् विश्वनाथ तैल विख्यात

ট্রেড মার্ক
TRADE MAR
শ্রীকিশোরীলাল ক্ষে
KISHORI LALL KHETRIS
BISHAWNA TH OIL
PRICE 1.Re. PER PHIAL
বিশ্বনাথ তৈল
CALCUTTA

उपरोक्त तैल सुगंध और सच्चे गुणों में सब तेलों का राजा है

वर्त्तमान समय में सैकड़ों क़िस्म के केश-तैल बाज़ार में बिकते हैं। किंतु इनमें प्रायः सभी तैल ह्वाईट आयल (निर्गंध किये हुए केरासिन तैल) द्वारा बनाये जाते हैं। ऐसे तेलों से उपकार के बदले अपकार ही अधिक होता है और दिन प्रतिदिन ऐसा हो ही रहा है। यह तैल बालों को कोमल और शक्तिशाली करने के बदले रूखा और कमज़ोर बहुत जल्द कर देते हैं। अनेक युवकों के बाल इन्हीं तेलों के असर से सफ़ेद हो गये हैं और होते जाते हैं। इसीलिये हमने रूप और सुगंध अधिक ख़्याल न कर केश और गुण पर अधिक ध्यान दिया है।

हमारे तेलों के लगाने से बाल घूँघरवाले, चमकीले, लम्बे और भ्रमरवत् काले हो जाते हैं। सिरदर्द, बा का झरना, रूसी तथा ख़ुश्की दूर होती है. बालों की जड़ों को मज़बूत करके चित्त को प्रफुल्लित करता है, दिमा और आँखों में नवीन ज्योति पैदा करता है। हमारे तेलों की भीनी सुगंधि बालों में कई दिन तक उड़ती रहती है। एक बार परीक्षा करके देखिये, इसकी जितनी तारीफ़ की जावे, सब इनके गुणों के सामने थोड़ी है। दाम फ़ी शी १) रु०, ३ शीशी मय डाकख़र्च ३॥-), ६ शीशी मय डाकख़र्च ६।≈) आने, १२ शीशी मय डाकख़र्च ११॥)। ती शीशी से कम नहीं भेजी जायगी।

मिलने का पता:—श्रीकिशोरीलाल खत्री, ८६ बिडन स्ट्रीट, कलकत्ता.

KASHMIR
KUSUM

अति सुलभ, अत्युत्कृष्ट, सुवासित तैलों में अजीब चीज़

काश्मीर कुसुम

एक टीन काश्मीर-कुसुम से ख़ूब फायदा पहुँचानेवाले बढ़िया तैल की छः शीशी तैयार होती हैं!

काश्मीर-कुसुम को नारियल या तिल के तेल में मिलाने से तेल का रंग सुन्दर होता है और उसमें बड़ी आनंददायक सुगंध आ जाती है। इसमें तरह-तरह के ऐसे मसाले डाले गये हैं, जिन तैल के साथ इस्तेमाल करने से माथा ठण्डा रहता है। सिर घूमना, नींद न आना, सिर का दर्द, आँखें जलना, बालों का जल्द प जाना, गंज होना, सिर में ख़ुश्की या रूसी हो जाना इत्यादि रोग फ़ौरन् दूर हो जाते हैं, बाल जड़ से मज़बूत हो जाते हैं, बालों की चमक-दमक बढ़ जाती है, बाल घने होकर बढ़ जाते हैं और कुछ दिन के इस्तेमाल से याद्दाश्त यानी स्मरणशक्ति बढ़ जाती है। मुफस्सिल में दुकानदार लोग इसी से बढ़िया तैल बनाकर तेल का रोज़गार क रहे हैं। फिर एक टीन काश्मीर-कुसुम एसेन्स की एक शीशी भी दी जाती है।

काश्मीर-कुसुम का दाम—एसेन्स समेत काश्मीर-कुसुम के एक टीन का दाम केवल १) एक रुपया डाकख़र्च ।-) आने। इकट्ठा ३ टीन का दाम २॥) आने, डाक-महसूल आदि ॥) आना, ६ टीन का ५) पाँच रुपया चार आने डाक महसूल आदि १) एक रुपया। एक दर्जन टीन का दाम १०) रुपए, डाक-महसूल १॥)।

मिलने का पता—बी० साय, आयुर्वेद आश्रम,

४६, नीमू गोस्वामी लेन, पो० बक्स नं० ३४२, कलकत्ता

सच्ची शक्ति क्यों संग्रह नहीं करते ?

आँतों को ख़राब होने से रोकती हैं

पाचन-शक्ति ख़ूब बढ़ाती है
भारी-से-भारी भोजन पचाती हैं

ज्ञानतंतु की कमज़ोरी

साधारण कमज़ोरी

हर प्रकार की कमज़ोरी दूर करती हैं—

तंदुरुस्ती-ताक़त को बढ़ाती हैं।

—:०:—

प्रत्येक ऋतु में उपयोगी है।

क्या ?

झंडु की

सुवर्ण-मिश्रित

मकरध्वज गुटी

स्वल्प चंद्रोदय मकरध्वज
भैषज्य रत्नावली ध्व०

पूर्णचंद्रोदय तथा सुवर्ण और
चंद्रोदय का अनुपान मिलाकर
बनाई हुई सुनहरे खोलवाली

सुंदर मनोहर गोलियों से

सच्ची शक्ति का संग्रह करो

झंडु फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बंबई नं० १४

लखनऊ के एजेंट—ज्ञानेन्द्रनाथदे, कमला भण्डार, ८ श्रीरामरोड।
प्रयाग के एजेंट—लक्ष्मीदास एंड ब्रादर्स ४६, जॉनस्टनगंज।
दिल्ली के एजेंट—बालबहार फ़ार्मेसी, चाँदनी चौक।
कानपुर के एजेंट—पी० डी० गुप्ता ऐंड कं०, जनरलगंज।

क़ीमत एक तोला ८)

मकरध्वज का विवरणपत्र और
आयुर्वेदिक दवाइयों का सूचीपत्र आज ही मँगाइए।

प्रत्यक्ष फल देनेवाले अत्यंत चमत्का

यदि आपको यंत्रों से लाभ न हो तो दाम वापस किए जायँगे। हरएक यंत्र के साथ हम गारंटी-पत्र

इसको धारण करने से मुक़द्दमे में जीत, नौकरी मिलना, कामों की तरकीब।

नवग्रह-यंत्र

मूल्य ४)

सुखपूर्वक प्रसव, और वंश की रक्षा है. है।

शनि-यंत्र—इसके धारण करने से शनि का कोप होने पर भी संपत्ति नाश नहीं होती; बल्कि धन, आयु, यश, मानसिक शांति, कार्य-सिद्धि, सौभाग्य और विवाद में जीत होती है। मूल्य ३।=)।

सूर्य-यंत्र—कठिन रोगा से आराम होने की एक ही उत्तम औषध है। मूल्य ५≡)

धनदा-यंत्र—इसको धारण करने से ग़रीब भी राजा के समान धनी हो सकता है। मूल्य ७॥=)

महाकाल-यंत्र—वंध्या-बाधक और मृतवत्सा नारियों को सच्चा फल देनेवाला है। मूल्य ११॥-)

वँगलामुखी-यंत्र—शत्रुओं को वश और नष्ट करने में तत्काल फल देनेवाला है। मूल्य ६=)

महामृत्युंजय-यंत्र—किसी प्रकार के मृत्यु-लक्षण क्यों न देख पड़ें, उन्हें नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है। मूल्य ८=)

श्यामा-यंत्र—इसको धारण करने पर क़र्ज़ से छुटकारा, अधिक धन और पुत्र-लाभ का एक ही उपाय है। इस कवच के धारण करनेवाले की कुछ भी बुराई शत्रु से नहीं हो सकती और वे उसको हरा सकते हैं। मूल्य ६॥=)

नरसिंह-यंत्र—प्रदरबाधक, हिस्टीरिया (कभी-कभी मूर्च्छा होना) और मृगी को नष्ट करता है। वंध्या को भी संतान होती है। भूत, प्रेत, पिशाच से बचाता है। और वंश की रक्षा करने में ब्रह्मास्त्र है। मूल्य ७।-)

हाईकोर्ट के जज, एकाउंटेंट-जेनरल, गवर्नमेंट प्लीडर, नवाब, राजा, ज़मींदार महाशयों से अत्युत्तम प्रशंसा-पत्र और सहायता प्राप्त— **ज्योतिर्विद् पंडित श्रीवसंतकुमार भट्टाचार्य ज्योतिर्भूषण,**

Tele.—Astrologer, Calcutta २६ **हेड ऑफ़िस—१०५, ग्रे स्ट्रीट, कलकत्ता।**

संस्थापित सन् १८७९ मूल्य साधारण !! नियम उदार !!

अपर इंडिया कूपर पेपर मिल्स कं० लिमि०

लखनऊ

में

सब तरह के काग़ज़ बनते हैं

जैसे :—

सफ़ेद	बादामी	White	Badamies
क्रीमलेड्स	ब्राउन	Cream Laid	Brown
वोव्स्	रंगीन	Woves	Coloured
सुपीरियर बादामी	ब्लाटिंग	Superior Badami	Blotting इत्यादि

विना मूल्य नमूने और रेट के लिये सेक्रेटरी को लिखिए।

कुछ चुनी हुई स्त्रियोपयोगी पुस्तकें

आर्या-हित

अँगरेज़ी पुस्तक Advice to a wifeका हिंदी अनुवाद । मासिक-धर्म, गर्भाधान, प्रसव-पीड़ा और बच्चे को दूध पिलाना इत्यादि अनेक उपयोगी विषय बड़ी उत्तमता से वर्णन किए गए हैं। पृष्ठ-संख्या ३३०; मूल्य ।।।)

महिला-हितैषिणी

इसमें स्त्री-संबंधी सभी उपयोगी और ज्ञानप्रद विषयों का समावेश बड़ी सुंदर और सरल भाषा में किया गया है । प्रत्येक गृहिणी को इसकी एक प्रति अपने पास अवश्य रखनी चाहिए । पृष्ठ-संख्या २३०; मूल्य १)

स्त्री-उपदेश

आर्य-ललनाओं के लिये यह बड़ी उपयोगी है । इसमें अनेक शिक्षाप्रद और मनोरंजक उपदेश दिए गए हैं । भाषा भी ऐसी सरल है कि साधारण पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ इसे सहजही में समझ सकती हैं । पृष्ठ-संख्या १७८; मू० ॥)

स्त्री-सुबोधिनी

स्त्रियों के लिये इससे बढ़कर उपयोगी और उत्तम पुस्तक दूसरी कोई नहीं है । पृष्ठ-संख्या ८३६; मूल्य सजिल्द पुस्तक का २॥)

स्त्री-दर्पण

इसमें विद्यानुरागिनी लड़कियों और स्त्रियों का परमार्थ-साधन, गृह-कार्य की प्रवीणता और अनेक प्रकार की अमूल्य शिक्षाएँ अति सरलता-पूर्वक वर्णन की गई हैं । पुस्तक लड़कियों के पढ़ने-योग्य है । पृष्ठ-संख्या १६२ मू० ॥)

शिवनारायण-भजनमाला

संगीत और मनोरंजन का अपूर्व साधन । ग़ज़ल, ठुमरी, दादरा, कजरी, ख़्याल आदि में ईश्वर-संबंधी सुंदर और उत्तम भजनों का अनोखा संग्रह । पृष्ठ-संख्या २४०; मूल्य ॥)

पतिव्रता-स्त्रियों के जीवन-चरित्र

अगर आप चाहते हैं कि हमारी स्त्रियाँ वीर संतान उत्पन्न करें या हमारी बहनें और कन्याएँ सुचरित्रा एवं सुशीला बनें, तो एक बार इस पुस्तक को अवश्य उनके हाथ में दीजिए । पृष्ठ-संख्या ३५८; मूल्य १=)

नारी-चरितमाला

यदि आपको अपने देश की सुचरित्रा, आदर्श और विदुषी स्त्रियों के चरित्रों से अपनी प्यारी स्त्रियों, बहनों या कन्याओं को उत्तमोत्तम उपदेश देने हों, तो इस पुस्तक को अवश्य ख़रीदें । मूल्य ॥=)

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

भगवद्गीता भाषा

सुंदर, सचित्र और सरल भाषा में

अठारहों अध्याय माहात्म्य सहित, सुंदर और सरल भाषा में

टाइप बड़ा; पृष्ठ-संख्या ४८८; मूल्य १=)

संस्कृत न जाननेवाले वृद्ध स्त्री-पुरुषों के लिये यह अति उत्तम पुस्तक है

तुलसीकृत

रामायण गुटका

सुंदर ग्लेज काग़ज़ पर ॥)

रफ़ काग़ज़ ।=)

साहित्य-सेवियों और राम-भक्तों के लिये नित्य पाठ करने के लिये यह जेबी गुटका सर्वोत्तम है।

विनय-पत्रिका

टीकाकार स्व० बैजनाथजी।

यह पुस्तक बहुत दिनों से अप्राप्त थी। मूल्य ३)

हिंदी-अँगरेज़ी-शिक्षक

यानी

इँगलिश-टीचर

घर बैठे बहुत थोड़े समय में अँगरेज़ी सीखने की सर्वोत्तम पुस्तक। केवल इसी को पढ़कर काम चलाऊ अँगरेज़ी सीखी जा सकती है। तार या चिट्ठी आने पर इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मूल्य ॥)

कालिदास और सेक्सपीयर

संस्कृत और अँगरेज़ी न जाननेवालों के लिये संस्कृत और अँगरेज़ी साहित्य की ख़ूबी जानने के लिये इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। साहित्य-सेवियों के लिये तो यह बड़े काम की चीज़ है। दोनों साहित्य की ख़ूबियाँ इसमें ख़ूब दिखाई गई हैं। मूल्य २)

तुलसीकृत

रामायण मध्यम सू

मूल्य १।=)

अपनी ढंग की यह भी बहु सस्ती पुस्तक है। हरएक व्य को इसकी एक प्रति अ पास रखनी चाहिए।

बीजक कबीरदास

श्रीकबीरदासजी की वा का संग्रह। टीका श्रीवि नाथसिंहजी ने की है। मू सजिल्द ३)

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.

साहित्य-सुमन-माला की कुछ चुनी हुई पुस्तकें

बाल-कथा-कौमुदी

लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित

इसमें बालोपयोगी सुंदर, सुबोध और शिक्षाप्रद कहानियों का संग्रह है। कहानी सब एक-से-एक बढ़कर है। बड़ी चटपटी और मज़ेदार हैं। बालक उसे बड़े चाव से पढ़ते हैं। एक बार शुरू करके समाप्त किए बिना कभी नहीं छोड़ेंगे। बालकों में पढ़ने को इच्छा पैदा करने के लिये जैसी कहानियों की आवश्यकता है, इसमें की सब कहानियाँ वैसी ही हैं। बालक ही नहीं, बड़े स्त्री-पुरुष भी इनमें मनोरंजन का काफ़ी मसाला पाएँगे। बड़े टाइप और सरल भाषा में लिखी हुई पुस्तक का मूल्य केवल ॥=) रक्खा गया है।

प्यारी कहानियाँ

लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित

यह भी बालोपयोगी है। इसमें भी छोटी, सुंदर, मनोरंजक और सुबोध कहानियों का संग्रह है। मूल्य ॥)

निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं—

१ वैचित्र्य-चित्रण—लेखक, साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी। मूल्य ॥=)
२ अग्नि-समाधि और अन्य कहानियाँ—लेखक, श्रीप्रेमचंदजी। मूल्य १)
३ ठलुआ-क्लब—लेखक, श्रीगुलाबराय एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ।॥)
४ बाल-कथा-कौमुदी—लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित। मूल्य ॥=)
५ प्यारी कहानियाँ—लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित। मूल्य ॥)
६ मानव-शरीर-रहस्य (प्रथम भाग)—लेखक, डाक्टर मुकुंदस्वरूप वर्मा एम्० बी० बी० एस्० चीफ़ मेडिकल आफ़िसर, काशी विश्व-विद्यालय। मूल्य २॥)
७ काम-कुंज—लेखक, श्रीसंतराम बी० ए०। मूल्य २॥)
८ विज्ञान-वार्ता—लेखक, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी। मूल्य १।=)

—शीघ्र प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें—

१ मानव-शरीर-रहस्य (द्वितीय भाग)
२ कवित्त-रत्नाकर
३ तांन तिलंगे
४ डेविड कापर फ़ील्ड
५ सूक्ति-सुधा

मिलने का पता—नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.

साहित्य-सुमन-माला की नई और निराली पुस्तक

काम-कुंज

अश्लील नहीं है

विषय-सूची

स्त्री-सौंदर्य
गृहस्थों के प्रति
सखी-हृदय
स्त्रियों की मौन भाषा
संकेत
अजेय शक्ति
काम-शास्त्र और स्त्रियाँ
स्त्री प्रेम के लिये सर्वस्व दे सकती है
स्त्री की सहिष्णुता
सती-धर्म-पालन के कुछ उपाय
वेश्या-वृत्ति
स्त्री को पुरुष की संगति पसंद है या स्त्री की
पश्चिम की आधुनिक स्त्री
महाशक्ति
अबलाओं के आँसू

प्रत्येक गृहस्थ को इसे एक बार अवश्य पढ़ना चाहिए

काम-कुंज

मूल्य २॥)

लेखक — श्रीसंतराम बी० ए०

स्त्री-पुरुष-संबंधी कितनी ही ऐसी बातें हैं, जिनके न जानने से मनुष्य को जीवन का सच्चा सुख और आनंद नहीं मिलता। धन, जन और विद्या के होते हुए भी उनके चित्त को ईप्सित शांति नहीं मिलती। स्त्री-पुरुष-संबंधी शास्त्र की अनभिज्ञता के कारण सुविख्यात और लोकमान्य नेताओं को, उच्च पदाधिकारियों को, लक्ष्मी के लाड़लों को, सरस्वती के सपूतों को भी जीवन का सच्चा सुख नहीं मिलता। उस सुख की प्राप्ति के लिये वे निरंतर मथा करते हैं। जिसके अभाव से वे चिंताओं और अनेक प्रकार के रोगों के शिकार बने रहते हैं। पवित्र और सच्चा प्रेम उनको आकाश-कुसुमवत् मालूम होता है। कारण, वह स्त्री के हृदय को समझ नहीं सकते, स्त्री-प्रेम की परख नहीं कर सकते, उनकी मौन भाषा को समझने की उनमें शक्ति नहीं, उनके संकेत का उन्हें ज्ञान नहीं, उनकी सहिष्णुता का उनके यहाँ कोई आदर नहीं, उनके आचार-विचार के रहस्य समझने की बुद्धि नहीं, उनकी अजेय शक्ति का उन्हें भान नहीं, उनके प्राकृतिक सौंदर्य की सराहना नहीं; तब फिर जीवन का आनंद कहाँ? काम-कुंज को पढ़िए और इसके रहस्य को जानिए।

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

श्रीप्रेमचंदजी
की
नई पुस्तक

अग्नि-समाधि तथा अन्य कहानियाँ

मूल्य १।)

शीघ्र मँगाइए। अब थोड़ी ही प्रतियाँ रह गई हैं।

पढ़िए और लेखक की क़लम की करामात के क़ायल होइए।

वैचित्र्य-चित्रण

इसमें ६ अध्याय हैं—नराध्याय, वानराध्याय, जलचराध्याय, स्थलचराध्याय, उद्भिजाध्याय, प्रकीर्णकाध्याय जिनमें द्विवेदीजी ने सृष्टि की अजूबात का वर्णन बड़ी मार्मिक भाषा में किया है। पुस्तक में अनेक नई और आश्चर्य जनक बातें पढ़कर आनंद उठाइए। पढ़ने में उपन्यास से बढ़कर मज़ा आता है। मूल्य ॥=)

वैचित्र्य चित्रण

वैचित्र्य चित्रण

लेखक, श्रीमहावीरप्रसाद द्विवेदी

मैनेजर नवल-किशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

UNIQUE OPPORTUNITY ! AVAIL OF

A BOON TO BOOK-LOVERS

-at 25 % off-

As They Are Slightly Soiled.

Names of Books.	Price. Rs. a. p.		
Anderson's Popular Tales—			
Anderson's Fairy Stories	0	12	0
„ Stories for the Young ...	0	12	0
Beeton's Ready Reckoner ...	0	12	0
Bunyan's Pilgrim's Progress ...	0	12	0
The Bible, Students' Hand-book ...	0	12	0
Cobbett's English Grammar ...	0	12	0
County Court Hand-book ...	0	12	0
Conquerors and Captives ...	0	12	0
The Doctor by Geo. Black, M. B. (Edin.) and others.	0	12	0
Complete Etiquette for Ladies ...	0	12	0
Five Weeks in a Balloon ...	0	12	0
House-Holders' Law Book ...	0	12	0
How to Dance	0	12	0
The young wifes' Advice Book ...	0	12	0
Sea air and Sea Bathing ...	0	12	0
Sleep and How to obtain it ...	0	12	0
The skin Health and disease ...	0	12	0
Eyesight and How to care of it ...	0	12	0
Line Upon Line by the Author of Peep of Day, Part I	0	12	0
Line Upon Line by the above Author, Part II.	0	12	0
The Law of Landed Property ...	0	12	0
Mansfield Park	0	12	0
The Married Women's Property Act	0	12	0
Northanger Abbey ...	0	12	0
Our Nurses and the Work they have to do.	0	12	0
The Peer and the Woman ...	0	12	0
Hearing and How to keep it ...	0	12	0
Sick Nursing	0	12	0
Debit and Credit (novel) ...	2	8	0
Queechy	0	12	0
Sylvia's Illustrated Lady's Lace Book	0	12	0
The Students' illustrated Bible	0	12	0

Names of Books.	Price Rs.	a.	p
Dictionary.			
Sandford and Merton ...	0	12	
Dombey & Son ...	1	4	
Sandford and Merton by Thomas Day.	0	12	
Robinson Crusoe	0	12	
The Wide Wide World ...	0	12	
Concise Guide to Health	0	6	
Queechy	0	8	
Webster's Pocket Pronouncing Dictionary of the Eng. Language.	1	0	
Below the Surface	2	8	
The Essays of Adam Smith ...	2	8	
Memorable Men and Noteable Events, &c.	2	13	
Coil and Current or the Triumphs of Electricity.	2	8	
Famous Musical Composers ...	2	8	
Gressy and Poietiers ...	2	10	
The Karak-orams and Kashmir, an account of a journey.	7	8	
The Log of a Jack Tar ...	1	8	
Paul and His Friends ...	2	8	
How we kept the Flag Flying ...	2	4	
Hume's History of England in 3 Vols. complete.	7	8	
Hubert Ellis	2	8	
Master Missionaries	2	8	
History of Rome	2	13	
History of Greece	2	13	
Sydney Smith's Essay... ...	2	8	
Sandfort Merton	1	8	
Sandfort Merton (small edition) ...	1	2	
Robinson Crusoe	1	14	
The Story of the Nations Vedic India	3	4	

To be had of—Manager Book-Depot, N. K. Press, Lucknow.

साहित्य-सुमन-माला की अद्भुत और अनोखी पुस्तक

विज्ञान-वार्ता

लेखक

श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी

मूल्य १।=)

यह वैज्ञानिक युग है। ज़माने के साथ चलने के लिये हर एक व्यक्ति को विज्ञान-संबंधी थोड़ी-बहुत बातें जानना आवश्यक ही नहीं, बरन् अनिवार्य है।

हिंदी में अभी तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं नज़र आई जो जनता को आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञानों का दिग्दर्शन भी करा सके।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह विज्ञान-वार्ता निकाली गई है।

विषय-सूची से ही आपको इसे पढ़ने की और अनेक ज्ञातव्य बातें जानने की उत्कट इच्छा होगी।

एक बार इस पुस्तक को पढ़ जाइए और फिर देखिए आपने कितनी नई बातें मालूम कीं।

विज्ञान-वार्ता में क्या है?

- विज्ञान की महत्ता
- प्रतिभा
- पृथ्वी
- पृथ्वी की प्राचीनता
- अक्षांश और रेखांश
- मार्तंड-महिमा
- दीप्तिमंडल और सूर्याभास
- मंगल
- मंगल के चित्र
- मंगल ग्रह तक तार
- ग्रहों पर जीवधारियों के होने का अनुमान
- आँख की फ़ोटोग्राफ़ी
- शरीरके भीतरी भागों के फ़ोटो
- रंगीन छाया-चित्र
- भारत की चित्र-विद्या
- अध्यापक वसु के अद्भुत आविष्कार
- वानस्पतिक सज्ञानता
- कृत्रिम-प्राण-संचार की चेष्टा
- ध्वनि
- संगीत के स्वर
- विकास-सिद्धांत
- न्याय-शास्त्र का महत्त्व
- संपत्ति-शास्त्र
- रेडियम
- मूँगा
- तार द्वारा ख़बर भेजना
- हिसाब लगानेवाला यंत्र
- कुछ आधुनिक आविष्कार
- रक्त-विज्ञान

नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

साहित्य-सुमन-माला के

स्थायी ग्राहकों के नियम

(१) स्थायी ग्राहक-सूची में नाम लिखानेवाले सज्जनों को प्रवेश-शुल्क के ॥) पेशगी भेजने पड़ेंगे।

(२) स्थायी ग्राहकों को माला में प्रकाशित सभी ग्रंथ पौने मूल्य पर दिए जायँगे। प्रत्येक ग्राहक ग्रंथ-माला की प्रकाशित पुस्तकों की प्रतियाँ अपनी इच्छानुसार एक से अधिक हर समय मँगा सकते हैं।

(३) नवीन पुस्तकों के प्रकाशित होने पर सूचना दी जायगी। १५ दिन तक पत्रोत्तर का आसरा देखकर वी० पी० लेना स्वीकार समझकर पुस्तकें वी० पी० से भेज दी जायँगी। पुस्तकें यथासाध्य ४-५ एक साथ भेजी जायँगी, जिससे ग्राहकों को डाक-ख़र्च की बचत होगी।

(४) नवीन पुस्तकों में ग्राहकों को सभी पुस्तकें लेना आवश्यक नहीं है। यह उनकी इच्छा पर निर्भर है। परंतु वर्ष-भर में कम-से-कम ५) की पुस्तकें लेना प्रत्येक ग्राहक को आवश्यक है।

(५) जिस ग्राहक के यहाँ से दो बार वी० पी० वापस लौट आएगी, उसका नाम स्थायी ग्राहक-सूची से पृथक् कर दिया जायगा।

(६) स्थायी ग्राहकों को नवलकिशोर-प्रेस से प्रकाशित हिंदी और उर्दू-पुस्तकें (रीडरों को छोड़कर) पौने मूल्य पर दी जायँगी।

नोट—हमारी प्रकाशित पुस्तकों का सूचीपत्र सूचना मिलने पर मुफ़्त भेजा जाता है।

आदेश-पत्र

सेवा में—

व्यवस्थापकजी, बुकडिपो, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ.

प्रिय व्यवस्थापकजी,

आपकी ग्रंथ-माला के उद्देश्य और विशेषताएँ तथा स्थायी ग्राहकों के नियम पढ़े। सब स्वीकृत हैं। मैं आपकी ग्रंथ-माला का स्थायी ग्राहक बनना चाहता हूँ। कृपया मेरा नाम स्थायी ग्राहक-सूची में लिख लीजिए। प्रवेश-शुल्क के ॥) $\frac{\text{मनीऑर्डर से भेजता हूँ}}{\text{पहली वी० पी० में जोड़ लीजिए}}$ और नवीन पुस्तकें जो भी इस ग्रंथ-माला में प्रकाशित हों, उसकी सूचना नियमानुसार भेजते रहिए।

भवदीय

योग्य सेवा लिखिएगा।

[हस्ताक्षर कीजिए]

मेरा पता

[नोट—नाम और पता साफ़-साफ़ अक्षरों में लिखने की कृपा कीजिए]

लेख-सूची

पृष्ठ
१. जहाँगीर का दरबार (कविता)—[अप्रकाशित जहाँगीरचंद्रिका से] ... १३७
२. भारतीय संस्कृति और वैदिक धर्म—[लेखक, श्रीयुत सत्यव्रत सिद्धांतालंकार १३८
३. गीत (कविता)—[लेखक, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" १४३
४. निर्झर (कविता)—लेखक, श्रीयुत श्याम-सुंदर खत्री १४४
५. रोमांटिक पोश्कीन—[लेखक, श्रीयुत केशवदेव शर्मा १४४
६. नारद-मोह (कविता)—[लेखक, श्रीयुत गुरुभक्तसिंह "भक्त" बी० ए०, एल्-एल्० बी० ... ... १४६
७. माया (कविता)—[लेखक, श्रीयुत बलदेवप्रसाद टंडन "बिसारद" ... १५१
८. बाबूजी की सोहागरात (कहानी)—[लेखक, श्रीयुत श्रीशचंद्र शुक्ल, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ... ... १५२
९. निशीथ (कविता)—[लेखक, श्रीयुत रामकुमार वर्मा एम्० ए० ... ... १५६

पृष्ठ
१०. सत्यनारायण-व्रत-कथा—[लेखक, श्रीयुत वासुदेवशरण अग्रवाल एम्० ए० (ऑनर्स) १६१
११. निराली-दुनियाँ (कविता)—[लेखक, पं० रामसेवक त्रिपाठी १६७
१२. हमारी अजंटा-यात्रा (सचित्र)—[लेखक, श्रीयुत भगवतशरण उपाध्याय एम्० ए० ... ... १६७
१३. क्यों नहीं आए ? (कविता)—[लेखक, श्रीयुत हरीश जोशी १८४
१४. राय बहादुर गौरीशंकरजी ओझा के आक्षेपों का उत्तर—[लेखक, साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ ... १८५
१५. तुम्हारी याद (कविता)—[लेखक, पं० चक्रधर अवस्थी १९१
१६. रक्षा-बंधन (कहानी)—[लेखक, श्रीयुत सूर्यबलीसिंह १९२
१७. उपेक्षा (कविता)—[लेखक, श्रीविश्वनाथप्रसाद एम्० ए०, साहित्यरत्न ... २०१
१८. महाकवि नंददासजी—[लेखक, पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी २०१

प्रचार के लिये **च्यवनप्राश** आधा दाम
वीर्यविकार, धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, नपुंसकता, दमा, जीर्ण ज्वर, राजयक्ष्मा, फेफड़े और जिगर के रोगों पर रामबाण है। ४० तोले का मूल्य ४) रु०, १ सेर का ६) रु०, आधा दाम ४० तोला २) रु०, १ सेर का ३) रु०। डाकखर्च पृथक्।
सत शिलाजीत
मूल्य ५ तो० ५) रु०, १० तो० ९) रु०, आधा दाम ५ तोला २॥) रु०, १० तोले का ४॥) रु० ६६
पता—संजीवन कं०, नं० ३०, कनखल, (यू०पी०)

कन्याओं को बज़रिये डाक सिखलाते हैं
दी
इण्डियन टेलरिङ्ग कालेज
होशियारपुर (पंजाब)
११० लिबास सीखकर अपनी सूटिंग शाप खोल लें। याद रक्खो धनी पुरुष धनी नहीं, हुनरमंद ही धनी है। २मास कटाई, २मास सिलाई, नियम आजही मँगवाओ।
६८ **अद्वितीय पुस्तकें हिंदी-उर्दू**
५ कोट १७२ प्रश्न, कपड़ा लगाने पर ४८ चित्र १) १२ कमीज़, २५८ प्रश्न ५६चित्र ॥) अद्वितीय छत्री ॥) ८ पाजामें ॥)। फ्राक पिल्लीकोर ॥) दौलत दर्ज़ियां ५)

पृष्ठ

१६. विवश-पयान (कविता)—[लेखक, श्रीयुत बाबूलाल भार्गव "कीर्ति" बी० ए० २१०

२०. भारतीय चित्रकला की रूपरेखा—[लेखक, श्रीयुत गोपालस्वरूप भटनागर २११

२१. आलोचना और पुस्तक-परिचय—[लेखक, पं० चंडिकाप्रसाद अवस्थी ... २१५

२२. कृषि-शिल्प और वाणिज्य—[लेखक, श्री० जी० एस० पथिक बी० कॉम० और पं० जगन्नाथप्रसाद मिश्र बी० ए०, बी० एल० २१७

२३. बाल-महिला-मनोरंजन—[लेखकगण, श्रीहरिस्वरूप त्रिपाठी बी० ए०, कुमारी श्यामप्यारी श्रीवास्तव, श्री "संतोषिणी", श्रीयुत बाबूलाल भार्गव "कीर्ति" बी० ए०, श्रीमती हुक्मादेवी छात्रा और श्रीयुत रत्नचंद्र-छत्रपति बी० ए० (ऑनर्स) विशारद २२५

२४. साहित्य और विज्ञान—[लेखक, श्रीयुत जयकिशोरनारायणसिंह और श्रीयुत शिवशरणसिंह ... ...

२५. जीवन-ज्योति—[लेखक, श्रीयुत राजाराम पांडेय विशारद और श्रीयुत वृंदावनदास बी० ए०, एल्-एल्० बी० ...

२६. संगीत और विनोद—[लेखक, श्रीयुत गौरीशंकर वर्मा साहित्याचार्य तथा पं० नागेंद्रनाथोपाध्याय साहित्य-शास्त्री और पं० बृहस्पतिदत्त मिश्र और श्रीयुत-रामप्रसाद कपूर ... ...

२७. सुमन-संचय—[पं० पद्मकांत मालवीय, श्रीयुत कुँ० हरिश्चंद्र देव वर्मा "चातक", पं० त्रिभुवनशंकर त्रिपाठी, श्रीयुत चतुर्भुज माहेश्वरी "चतुर", पं० गिरिजाशंकर मिश्र "गिरीश", श्रीयुत शंकरसहाय वर्मा, साहित्यरत्न, एम्० ए०, पं० हृदयनारायण पांडेय "हृदयेश", पं० ब्रह्मदत्त मिश्र, श्रीमती चमारानी माथुर, पं० शांतिप्रिय द्विवेदी, श्रीयुत रमाशंकर जैतली "विश्व", श्रीयुत बच्चनप्रसादसिंह और श्रीयुत गिरींद्रनारायणसिंह ... ...

लाइफ़ इन्श्युरेंस
[बीमा]

मुफ्त

प्रबंधक हिंदुस्तानी
और हिंदुस्तानियों के लाभ के लिये।
सत्याग्रहियों के लिये विशेष सुविधा

यदि आप अधिक प्रीमियम (मासिक चंदा) नहीं दे सकते तो कोई सोच की बात नहीं। आप अपने बाल-बच्चों के लिये अच्छी पूँजी छोड़ जाने के लिये अपनी ज़िंदगी का बीमा स्वतंत्रता से

एजेंटों की आवश्यकता है।

न्यू बंबई बैंकिंग, कारपोरेशन, लिमिटेड
में कराइए।

हेड आफ़िस—१७, इलिफ़न्स्टन सर्किल, फोर्ट, बंबई।

चित्र-सूची

१—रंगीन

१. क़ैदख़ाने में जहाँगीर
२. माया
३. महाराजा पृथ्वीराज चौहान

२—व्यंग्य-चित्र

पृष्ठ
१. रस्साकशी १६६
२. अन्वेषण ! २१४

डॉ० आई० एम्० मल्लिक्स (एम्० ए०, एम्० डी०, बी० एल०) पेटेंट

इक-मिक-कुकर

शुद्ध, स्वस्थ, गर्म और स्वादिष्ट भोजन के लिये

नई ईजाद, उपयोगी और साइंटिफ़िक तरीक़े से बना हुआ

भोजन की ५ चीज़ों को एक साथ एक घंटे में विना देखे-भाले
१ पैसे की लागत के ईंधन में तैयार करता है।

सबसे अच्छा, सादा, हाथ में रखनेवाला, कम ख़र्च

सफ़र करनेवालों के लिये एक ज़रूरी चीज़ है और जिन्हें भोजन आसानी से नहीं पचता है, उनके लिये एक न्यामत है।

आजही आर्डर दें।

मैनेजर,
इक-मिक-कुकर्स लिमि०
२६, कॉलेज स्ट्रीट, कलकत्ता

टेली ग्राम "Ic Mic Cooker"
फ़ोन "B. B. 859"

पो० बा० नं० ७८०३
बऊ बाज़ार पो० आ०

"माधुरी"

हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका क्यों है ?

इसका कारण जानने के लिये

किसी बड़े स्टेशन पर, ए० एच्० ह्वीलर कंपनी के बुकस्टाल पर या अपने शहर या गाँव की किसी लाइब्रेरी में जाकर "माधुरी" की कोई भी संख्या उठाकर आप देखेंगे, तो आपको मालूम हो जायगा कि—

"माधुरी"

ही हिंदी की सर्वोत्तम पत्रिका है।

क्योंकि

"माधुरी"—साहित्य और कला की अभूतपूर्व प्रदर्शिनी है।

"माधुरी"—में हिंदी के सभी धुरंधर विद्वानों और नामी लेखकों के लेख रहते हैं।

"माधुरी"—के चित्र भाव-पूर्ण, मनोहर और कला की दृष्टि से उत्तम होते हैं।

"माधुरी"—काग़ज, छपाई, रूप-रंग, गेट-अप आदि में आदर्श है।

"माधुरी"—में महिलोपयोगी लेखों की विशेषता है।

"माधुरी"—हिंदुस्तान के कोने-कोने और प्रत्येक गाँव में पढ़ी जाती है।

"माधुरी"—का प्रचार हिंदुस्तान के बाहर विदेशों में भी बड़े ज़ोरों से बढ़ रहा है।

"माधुरी"—विज्ञापन का सबसे अच्छा साधन है।

"माधुरी"—में पाठ्य-विषय सबसे अधिक दिया जाता है और इसका प्रत्येक अंक स्थायी साहित्य की सर्वोत्तम सामग्री है।

इतने पर भी वार्षिक मूल्य केवल ६॥), छमाही मूल्य ३॥) है। अगर आप अभी तक "माधुरी" के ग्राहक न हुए हों, तो शीघ्र ६॥) मनीऑर्डर से भेजकर ग्राहक हो जाइए।

मैनेजर माधुरी, लखनऊ।

काशी विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित

उत्तमोत्तम पुस्तकें

मीरक़ासिम—ले० श्रीहरिहरनाथ शास्त्री (भूमिका लेखक डा० बेनीप्रसाद) इसमें कम्पनी के कर्मचारियों के साथ मीरक़ासिम के संघर्षण का सांगोपांग वर्णन दिया है। इसके पढ़ने से मीरक़ासिम के संबंध की बहुत-सी भ्रान्तियाँ दूर हो जायँगी। मूल्य १॥)

अफ़लातून की सामाजिक व्यवस्था—ले० श्रीगोपाल दामोदर तामस्कर एम० ए०, एल० टी०। इस पुस्तक में सुप्रसिद्ध ग्रीक विद्वान् अफ़लातून की पुस्तकों के विवेचन के साथ-साथ समाज की आवश्यकताओं पर पूरा प्रकाश डाला गया है और यह भी दिखलाया गया है कि अफ़लातून की सामाजिक व्यवस्था भारतीय व्यवस्था से कहाँ तक मिलती है। मू० १।=)

अँगरेज़ जाति का इतिहास—ले० श्रीगंगाप्रसाद एम० ए०। इसमें राजनीतिक घटनाओं के साथ-साथ राजा और प्रजा के पारस्परिक संघर्ष और प्रजा के प्रयत्नों का पूरा-पूरा विवरण है। इंग्लैंड के साहित्यिक, धार्मिक और सामाजिक विकास पर भी काफ़ी प्रकाश डाला गया है। मूल्य २॥)

हिंदू भारत का उत्कर्ष (राजपूतों का प्रारंभिक इतिहास)—ले० श्रीचिंतामणि विनायक, वैद्य, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। अरब-प्रवासियों के वर्णनों तथा शिलालेखों आदि के आधार पर यह पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गयी है। इसमें राजपूतों की उत्पत्ति, राज्यशासन, युद्ध आदि सभी बातों का वर्णन आया है और देश की तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थिति पर भी गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है। मूल्य ३॥)

शीघ्र प्रकाशित होंगी

हिंदी-शब्द-संग्रह—प्राचीन पद्य पढ़नेवालों के लिये विशेष उपयोगी। मूल्य लगभग ३॥)

पश्चिमी योरोप (दूसरा भाग)—मूल्य लगभग २)

१६६

मिलने का पता १—ज्ञानमंडल-कार्यालय, काशी। २—साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग।

अस्सी बीमारियों की एक दवा पीयूष रत्नाकर

सरकार से

हज़ारों प्रशंसा-पत्र-प्राप्त, जगत्-प्रसिद्ध औषधि

८० रोगों की एक ही दवा

पीयूषरत्नाकर

हर प्रकार का बुख़ार, कफ, खाँसी, दमा, ज़ुकाम, दस्त, मरोड़, अजीर्ण, हैज़ा, शूल, अतीसार, संग्रहणी, सिरदर्द, पेट, कमर, गठिया का दर्द, मिर्गी, मूर्च्छा, स्त्रियों का प्रसूति आदि, बच्चों के सर्व रोग यानी सिर से लेकर पाँव तक किसी रोग में दे दो, जादू का असर करता है। दाम १), बड़ी शीशी १॥), वी० पी०-ख़र्च ।=), १२ लेने से ६), बड़ी शीशी १२॥), वी० पी०-ख़र्च माफ़।

दद्रुनाशक

बिना जलन और तकलीफ़ के हर तरह के पुराने और नए दाद को २४ घंटे में जड़ से खोनेवाली शर्तिया दवा। दाम ३ शीशी ॥), वी० पी०-ख़र्च ।=), १२ लेने से २।), वी० पी०-ख़र्च माफ़।

बड़ा सूचीपत्र मय सौ साल के कलेंडर के मँगाकर देखें।

गोरे और ख़ूबसूरत बनने की दवा

सुगंधित फूलों का दूध—यह दवा विलायती ख़ुशबूदार फूलों का अर्क़ है। इसको ७ दिन बदन और चेहरे पर मालिश करने से चेहरे का रंग गुलाब के समान हो जाता है और बदन से ख़ुशबू निकलने लगती है, गालों के स्याह दाग़, मुहासे, छीप, झुर्रियाँ, फोड़ा, फुंसी, खुजली आदि दूर हो ख़ूबसूरती आ जाती है, जिल्द मुलायम हो जाती है। मँगाकर देखें। दाम १ शीशी १।), वी० पी०-ख़र्च ॥-), ३ लेने से ४), वी० पी०-ख़र्च माफ़।

ज़ीनते शबाब

दुनिया में सबसे अच्छा गारंटीवाला नायाब ख़िज़ाब—तीन मिनट में बरफ़-जैसे सफ़ेद बाल बग़ैर जलन व तकलीफ़ के भौंरे के माफ़िक़ काले-चमकीले, मुलायम हो जाते हैं। क़ुदरती हैं या ख़िज़ाब किए हुए—पहचान में नहीं आएँगे और जिल्द पर किसी क़िस्म का दाग़-धब्बा नहीं आता। विशेष तारीफ़ यह है कि जो बाल एक दफ़े के लगाने से काले हो जायँगे, वह फिर उमर-भर सफ़ेद नहीं होंगे। क़ीमत ।॥) वी० पी० ।-)।, १२ की ७) रु०, वी० पी० अलग। १२

पता—जसवंत ब्रादर्स नं० २, मथुरा।

शक्ति का खज़ाना यानी पृथ्वी पर का अमृत

मदनमंजरी

यह दिव्य गोलियाँ दस्त साफ़ लाती हैं, वीर्य-विकार-संबंधी तमाम शिकायत नष्ट करती हैं और मानसिक व शारीरिक प्रत्येक प्रकार की कमज़ोरी को दूर करके नया जीवन देती हैं। क़ी० गोली ४० की डिब्बी १ का १)

मेहमर्दनचूर्ण

सूज़ाक की हुक्मी दवा—क़ी डिब्बा १)

अंडवृद्धिहरचूर्ण

पोता बढ़ जाने की शर्तिया दवा। क़ी डिब्बा ३)

रमणविलासिनीवटिका

वीर्य-स्तंभन के लिये अक्सीर दवा। क़ी डिब्बी १)

राजवैद्य नारायणजी केशवजी ३८

हेड ऑफ़िस—जामनगर (काठियावाड़)

लखनऊ एजेंट—निगम मेडिकलहाल, नाला फ़तेगंज

३८ दिल्ली एजेंट—जमनादास कु० चाँदनी चौक

इलाहाबाद एजेंट—मेसर्स दुबे ब्रदर्स, चौक

सर्व रोग को दूर करनेवाला

(भारत-सरकार से रजिस्टर्ड)

जीवनधारा

र० ट्रेडमार्क "जेनस" नं० ३०२

हर समय अपने पास रखिए। यह पेट-संबंधी विक हैज़ा या दाढ़ का दर्द, सर्दी, सूजन, घाव, कमज़ोरी, प्र प्रमेह, हर तरह का बुख़ार, संधि-वात, सिर दर्द, ववास ज़हरी डंक, हाथ पाँव और बदन का दुखना आदि से दर्द को शर्तिया आराम करता है। दाम बड़ी शी १॥), आधी शीशी १), छोटी शीशी ॥), महसूल अल सूचीपत्र मुफ़्त मँगा देखिए। यह "जीवनधारा" जगह मिलता है।

पता—जे० एन० सेठना, मु० पो०

नड़ियाद [गुजरात]

साधना औषधालय

ढाका (बंगाल)

अध्यक्ष—जोगेशचंद्र घोष, एम्० ए०, एफ़्० सी० एस्० (लंडन)

भूतपूर्व प्रोफ़ेसर रसायनशास्त्र भागलपुर-कालेज

सच्ची और पूर्णतः पवित्र होने की गारंटी है। सभी औषधियाँ आयुर्वदशास्त्र के अनुसार ही तैयार की जाती हैं। सूचीपत्र फ़्री भेजा जाता है।

पूरा विवरण आने पर सावधानी से सभी रोगों की व्यवस्था फ़्री कर दी जाती है।

मकरध्वज (स्वर्ण-सिंदूर)

(पवित्र और असली सोने से युक्त)

सभी रोगों के लिए रामबाण है। शरीर की इस दवा के सेवन से पूरी-पूरी शुद्धि हो जाती है।

दाम ४) तोला

शुक्रसंजीवन

यह पुरुषत्व-हीनता आदि रोगों की अपूर्व औषध है। दाम १६) सेर १४०

सारिवादिसरस

आतशक और सूज़ाक के लिए आश्चर्य गुणकारक औषध है। इसमें धातु की सभी बीमारियाँ और ख़राबियाँ दूर हो जाती हैं।

अबलाबांधवयोग

स्त्रियों के सभी रोगों की इससे बढ़कर कोई औषध तैयार नहीं हुई है। प्रदर का नाम नहीं रहता और मासिक बिलकुल ठीक; दाम १६ मात्रा का २), ४० का ४)

सच्ची शक्ति क्यों संग्रह नहीं करते ?

आँतों को ख़राब होने से रोकती हैं

पाचन-शक्ति ख़ूब बढ़ाती है
भारी-से-भारी भोजन पचाती है

ज्ञानतंतु की कमज़ोरी

साधारण कमज़ोरी

हर प्रकार की कमज़ोरी दूर करती हैं—

तंदुरुस्ती-ताक़त को बढ़ाती है।

—:o:—

प्रत्येक ऋतु में उपयोगी है।

क्या ?

झंडु की

सुवर्ण-मिश्रित

मकरध्वज गुटी

स्वल्प चंद्रोदय मकरध्वज
भैषज्य रत्नावली ध्व०

पूर्णचंद्रोदय तथा सुवर्ण और
चंद्रोदय का अनुपान मिलाकर
बनाई हुई सुनहरे खोलवाली

सुंदर मनोहर गोलियों से

सच्ची शक्ति का संग्रह करो

झंडु फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बंबई नं० १४

लखनऊ के एजेंट—ज्ञानेन्द्रनाथदे, कमला भण्डार, ८ श्रीरामरोड।
प्रयाग के एजेंट—लक्ष्मीदास एंड ब्रादर्स ४६, जॉनस्टनगंज।
दिल्ली के एजेंट—बालबहार फ़ार्मेसी, चाँदनी चौक।
कानपुर के एजेंट—पी० डी० गुप्ता एँड कं०, जनरलगंज।

क़ीमत एक तोला ८)

मकरध्वज का विवरणपत्र और
आयुर्वेदिक दवाइयों का सूचीपत्र आज ही मँगाइए।

प्रत्यक्ष फल देनेवाले अत्यंत चमत्कार

यदि आपको यंत्रों से लाभ न हो तो दाम वापस किए जायँगे। हरएक यंत्र के साथ हम गारंटी-पत्र भेजते हैं।

इसको धारण करने से मुक़द्दमे में जीत, नौकरी मिलना, कामों की तरक़ीब।

नवग्रह-यंत्र

मूल्य ४)

सुखपूर्वक प्रसव, गर्भ और वंश की रक्षा होती है।

शनि-यंत्र—इसके धारण करने से शनि का कोप होने पर भी संपत्ति नाश नहीं होती; बल्कि धन, आयु, यश, मानसिक शांति, कार्य-सिद्धि, सौभाग्य और विवाद में जीत होती है। मूल्य ३।=)।

सूर्य-यंत्र—कठिन रोगों से आराम होने की एक ही उत्तम औषध है। मूल्य २≡)

धनदा-यंत्र—इसको धारण करने से ग़रीब भी राजा के समान धनी हो सकता है। मूल्य ७॥=)

महाकाल-यंत्र—वंध्या-बाधक और मृतवत्सा नारियों को सच्चा फल देनेवाला है। मूल्य ११॥-)

बँगलामुखी-यंत्र—शत्रुओं को वश और नष्ट करने में तत्काल फल देनेवाला है। मूल्य ६=)

महामृत्युंजय-यंत्र—किसी प्रकार के मृत्यु-लक्षण क्यों न देख पड़ें, उन्हें नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है। मूल्य ८=)

श्यामा-यंत्र—इसको धारण करने पर क़र्ज़ से छुटकारा,

अधिक धन और पुत्र-लाभ का एक ही उपाय है। इस कवच के धारण करनेवाले की कुछ भी बुराई शत्रु से नहीं हो सकती और वे उसको हरा सकते हैं। मूल्य ६॥=)

नरसिंह-यंत्र—प्रदरबाधक, हिस्टीरिया (कभी-कभी मूर्च्छा होना) और मृगी को नष्ट करता है। वंध्या को भी संतान होती है। भूत, प्रेत, पिशाच से बचाता है। और वंश की रक्षा करने में ब्रह्मास्त्र है। मूल्य ७।-)

हाईकोर्ट के जज, एकाउंटेंट-जेनरल, गवर्नमेंट प्लीडर, नवाब, राजा, ज़मींदार महाशयों से अत्युत्तम प्रशंसा-पत्र और सहायता प्राप्त— **ज्योतिर्विद् पंडित श्रीवसंतकुमार भट्टाचार्य ज्योतिर्भूषण,**

Tele.—Astrologer, Calcutta २६ हेड ऑफ़िस—१०५, ग्रे स्ट्रीट, कलकत्ता।

संस्थापित सन् १८७९ मूल्य साधारण !! नियम उदार !!

अपर इंडिया कूपर पेपर मिल्स कं० लिमि०

लखनऊ

में

सब तरह के काग़ज़ बनते हैं

जैसे :—

सफ़ेद	बादामी	White	Badamies
क्रीमलेड्स	ब्राउन	Cream Laid	Brown
वोव्स्	रंगीन	Woves	Coloured
सुपीरियर बादामी	ब्लाटिंग	Superior Badami	Blotting इत्यादि

विना मूल्य नमूने और रेट के लिये सेक्रेटरी को लिखिए।

अध्यक्ष-श्रीविष्णुनारायण भार्गव

वर्ष ९
खंड १

भाद्रपद, ३०७ तुलसी-संवत् (१९८७ वि०)

संख्या २
पूर्ण संख्या ९८

30

जहाँगीर का दरबार

शाहज़ादा ख़ुर्रम

उलक मुलक तजि भजि गई जाके डर उड़ि गई रज न बिराजति पठान मैं ;
जाकी सुनि-सुनि बात सीरे ह्वै ह्वै गात जात पातन ज्यों पियरात खंधारी जहान मैं।
उजबक अकुलाय उठत अकबकाय काँपै दिल 'केसोराय' चलदल पान मैं ;
ख़ुर्रम सभा मैं सोभा देखहु उदय जाकी खरकति खरीयै खरग खुरासान मैं।

(अप्रकाशित जहाँगीरचंद्रिका से)

भारतीय संस्कृति और वैदिक धर्म

आज हम लोग जहाँ खड़े हैं, वहाँ से हम आगे और पीछे दोनों तरफ़ देख सकते हैं। हमारे पीछे हमारे देश का गुज़रा हुआ ज़माना है, हमारे सामने आनेवाला ज़माना है। बीता हुआ समय 'भूत' कहलाता है, आनेवाला समय 'भविष्यत्' कहलाता है। मुझे आपको यही बतलाना है कि 'भूत' में वैदिक धर्म ने भारत की संस्कृति को क्या दिया और 'भविष्यत्' में यह धर्म इस देश की संस्कृति को क्या दे सकता है?

'संस्कृति' किसी देश की उन विचार-धाराओं का नाम है, जो उस देश के स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, धनी-निर्धन, बड़े-छोटे सबके दिमाग़ों में एक-सी बह रही हों; जिनके बिना वहाँ के मनुष्य दूसरी तरह से सोच ही न सकते हों; जो वहाँ के व्यक्तियों के लिये स्वतः-सिद्ध-सी हो चुकी हों; जिनको मानकर ही वहाँ के सब कारोबार चलते हों; जो विचार उस देश के मनुष्यों के लिये ऐसे स्वाभाविक हो गए हों, जैसे उनका साँस! ऐसे विचार ही, जो प्राणों के साथ मनुष्य के अंदर आते-जाते रहते हों, किसी देश की संस्कृति की नींव बना करते हैं।

प्राचीन भारत के प्राणों के साथ बहनेवाला विचार, जिसके बिना यह प्राण रुक-से जाते थे, 'धर्म' का था। यहाँ जो कुछ होता था, धर्म के पहलू से होता था--'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।' धर्म की रक्षा और अपने प्राणों की रक्षा को वे एक समझते थे। तभी तो यहाँ की संस्कृति का आधार भी धर्म ही था। धर्म के अमृतरूपी जल से संसार के मूर्धन्य इस देश की संस्कृति का सिंचन हुआ, इसलिये आज अपनी अमर संस्कृति के ही बल पर हमारा देश पार्थिव सम्पत्ति के लुट जाने पर भी सम्पत्तिशाली है; गुलामी की ज़ंजीरों में कसा हुआ भी स्वाधीनता के पुजारियों के लिये तीर्थ-स्थान है; सबसे पीछे खड़ा हुआ भी सबसे आगे है; गढ़े में पड़ा हुआ भी पहाड़ की चोटी पर है! भारत के साथ के बूढ़े देश आज बदल गए। उनकी सभ्यता, उनकी संस्कृति आज मिट गई। उन देशों में आज खँडहरों को छोड़कर कुछ नहीं रहा। मिसर तथा बेबीलोन की सभ्यता पर गर्व करनेवाले कहीं नहीं रहे। संसार का तख़्ता पलटा खा गया, परंतु भारत--यह बूढ़ा भारत--आज भी हिमालय की ऊँची लाठी पर शुभ्र केशों के सीस को टेके हुए साँस ले रहा है; आज भी इस भूखे, नंगे, धूलि-धूसरित तपस्वी के चरणों में चारों तरफ़ खड़े हुए नौजवान देशों और जातियों की आँखें गड़ी हुई हैं; आज भी भोगवाद का खोखलापन त्याग के इस देवता की तरफ़ जीवन की अंतिम आशा से निहार रहा है।

भारत की प्राचीन संस्कृति का प्राण वैदिक धर्म रहा है। इन दोनों का प्रारंभ इस सृष्टि में प्रथम प्रभात के उदय के साथ एक साथ ही हुआ होगा। तब से अब तक मुख्यतः वैदिक धर्म से ही यहाँ की संस्कृति के प्राण पुष्ट होते रहे हैं। वैदिक धर्म ने भारतीय संस्कृति को जो कुछ दिया है, उसमें सबसे बड़ा स्थान 'विश्वभ्रातृत्व' (Universal Brotherhood) का है। आज संसार की क़ौमें इस भ्रातृत्व के भाव के लिये तड़प रही हैं। एक जाति को दूसरी जाति पर विश्वास नहीं। एक ही देश में अनेक पार्टियाँ हैं, जो प्रतिक्षण एक दूसरे के भय में साँस ले रही हैं। देशों में अविश्वास है, जातियों में अविश्वास है, परिवारों में अविश्वास है, पिता-पुत्र में और पति-पत्नी में अविश्वास है। इस अविश्वास को 'यदि' और 'तो', 'किंतु' और 'परंतु' से दूर करने की कोशिश की जा रही है, इसलिये दुनिया की क़ौमें इस अविश्वास को मिटा देने के लिये तड़पती तो हैं; परंतु 'किंतुओं' और 'परंतुओं' से अविश्वास की मात्रा दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही है। आज मनुष्य अपने साथी मनुष्य को 'भाई' समझने के लिये तैयार नहीं; परंतु संसार में ऐसा भी धर्म था और है, जो मनुष्य तो क्या पशुओं को अपने जिगर का टुकड़ा समझता रहा है, और पशुओं को क्या वनस्पतियों को भी अपने-जैसा

चेतन-शक्ति का भंडार मानता रहा है। 'मित्रस्य त्वा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे' 'यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति, सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति' 'मैं प्राणीमात्र को ही नहीं, भूतमात्र को मित्र की आँखों से देखूँ,' 'मैं प्रत्येक पदार्थ को अपने जैसा समझूँ। मैं अपने में और परमात्मा की किसी रचना में भेद न करूँ'—यह वैदिक धर्म में 'विश्वभ्रातृत्व' का, संसार के प्रति 'मैत्री' का, आदर्श था और इसी आदर्श को लेकर भारतीय संस्कृति का विकास हुआ।

भारतवर्ष में ऐसा भी युग आया, जब कि यह आदर्श आँखों से ओझल हो गया। परंतु जब कभी 'विश्वभ्रातृत्व' का भाव लुप्त होने लगा, तभी उसकी राख से ऐसे महात्माओं ने जन्म लिया, जिन्होंने उस आदर्श को मिटने से बचा लिया। अजातशत्रु के समय में ऐसा ही एक महात्मा अपने मार्ग पर चला जा रहा था। उसने अपने सामने भेड़ों का एक गल्ला जाते हुए देखा। उस गल्ले का एक मेमना लँगड़ा रहा था। महात्मा ने उसे अपनी गोद में उठा लिया। गड़रिया महात्मा की दया को देखकर हँस पड़ा। उसने कहा, तुम इस मेमने पर कहाँ तक दया करोगे, इसकी तो अभी यज्ञ में बलि चढ़ जायगी। महात्मा ने पूछा, वह यज्ञ कौन कर रहा है? गड़रिए ने उत्तर दिया, इस देश का राजा, अजातशत्रु। वह महात्मा भेड़ों के गल्ले के पीछे-पीछे चलने लगा। कुछ देर बाद वह उस यज्ञवेदी के सामने आ खड़ा हुआ, जहाँ सहस्रों पशु खूँटे से बँधे अपने भाग्य की प्रतीक्षा कर रहे थे। यज्ञकुंड के चारों तरफ़ इस बीभत्स दृश्य को देखकर महात्मा का हृदय दहल गया। उसने राजा के सम्मुख एक तिनका तोड़कर रख दिया, और पूछा—"राजन्! क्या तुम इस टूटे तिनके को जोड़कर पूरा बना सकते हो?" राजा ने उत्तर दिया—"नहीं"। महात्मा ने फिर कहा—"तुम्हारी तो इतनी भी सामर्थ्य नहीं कि तुम एक तिनका भी बना सको। प्राणी का मूल्य तो तिनके से बहुत ज़्यादा है। जिस चीज़ को तुम बना नहीं सकते, उसे नष्ट करने का तुम्हें क्या अधिकार है?" महात्मा ने फिर कहा—"यदि तुम्हारा यज्ञ कुर्बानी के बिना पूरा नहीं होता, तो इन सहस्रों असहाय प्राणियों को छोड़ दो, ये तो अपनी रक्षा में अपनी ज़बान तक नहीं हिला सकते; यदि कुर्बानी ही करनी है, तो लो, मैं कुर्बानी के लिये तैयार हूँ, मुझे बलि चढ़ा दो, पर इन निहत्थे प्राणियों को छोड़ दो।" राजा महात्मा के वचनों को सुनकर उसके चरणों में गिर पड़ा। उसने उसी समय सभी प्राणियों को मुक्त कर दिया और हाथ जोड़कर उसके सम्मुख खड़ा हो गया। इस महात्मा का नाम था गौतम बुद्ध! गौतम बुद्ध 'विश्वभ्रातृत्व' का पुतला था, वह भारतीय संस्कृति के इस आदर्श का नमूना था, वह वैदिक धर्म के विश्वप्रेम के मंत्र का पाठी था। उसने अपने-आपको इस रंग में इतना रँगा कि इसके सिवा वह और सब कुछ भूल गया, वह इस गीत में इतना लीन हुआ कि इस गीत का ही एक स्वर बन गया।

जिस संस्कृति के प्रवाह में 'विश्वप्रेम' की धारा अखंड बह रही हो, उसके लिये आपस के विचार-विनिमय में मिठास का लाना आवश्यक हो जाता है। संसार के इतिहास में विचारों को फैलाने के लिये तलवारें भी उठीं, खून भी बहा; परंतु उनके मुक़ाबले में इस पवित्र भूमि का इतिहास इस कलंक से लगभग बचा हुआ है। यहाँ 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'—संसार-भर को आर्य बनाओ—के संदेश की गूँज के साथ-साथ 'सहिष्णुता' तथा 'विचारस्वातंत्र्य' का आदर्श भी अपने शिखर पर पहुँचा हुआ था। वैदिक धर्म का विश्वप्रेम का सिद्धांत यहाँ की संस्कृति में इतना घुल गया था कि इस देश ने अपने विचार फैलाने के लिये कभी तलवार का सहारा नहीं लिया। भारतवर्ष में विचारों की पूरी आज़ादी रही। इस आज़ादी के बिना कोई देश तरक़्क़ी भी नहीं कर सकता। जो व्यक्ति नास्तिक है—परंतु अपने तर्क के कारण, युक्ति के आधार पर नास्तिक है—उसके युक्ति तथा तर्क के ही बल पर कभी आस्तिक होने की संभावना बनी रह सकती है, परन्तु जो व्यक्ति बिना सोचे-समझे आस्तिक है, उसके बिना सोचे-समझे नास्तिक बनने की आशंका भी बनी रहती है। इसीलिये इस आस्तिक देश में 'तर्कः ऋषिः' तर्क को ऋषि कहा गया है, उसकी बड़ी-से-बड़ी प्रतिष्ठा की गई है। वैदिक धर्म, और उस पर आश्रित भारतीय संस्कृति हमें आज्ञा नहीं देती कि हम ईसाई, मुसलमान, नास्तिक अथवा किसी अन्य व्यक्ति के प्रति भिन्न धर्म का होने के कारण

घृणा का भाव रक्खें। भारतीय संस्कृति के इस ऊँचे भाव का ही परिणाम था कि इस देश में विचारों की धाराओं का संघर्ष होते हुए भी मनुष्यों का संघर्ष नहीं होता था; धर्मों की लड़ाई होते हुए भी वैयक्तिक द्वेष की भावना नहीं उत्पन्न होती थी। संसार के भिन्न-भिन्न कोनों से भिन्न-भिन्न जातियाँ इस देश में आईं और इस देश के स्वतंत्र वायुमंडल पर इतनी लट्टू हुईं कि बहुत-सी अपना घर भूलकर यहीं रहने लगीं, और यहाँ रहती-रहती इस देश में इतनी रम गईं कि यहाँवालों और बाहरवालों में कोई भेद ही न रहा।

भारत में आज धार्मिक सहिष्णुता कम दिखाई देती है, परन्तु यह फूट का पौदा इस भूमि की उपज नहीं। कहते हैं, अलाउद्दीन खिलजी लूट मचाता हुआ रामेश्वर तक जा पहुँचा। वहाँ पर उसने एक मसजिद बनवा दी। अलाउद्दीन लौटकर चला गया। परंतु वह मसजिद सदियों तक खड़ी रही। उसकी रक्षा करनेवाला एक भी मुसलमान नहीं था। परंतु सदियों पीछे जब अकबर की सेनाएँ रामेश्वर पहुँचीं, उन्होंने उस मसजिद की एक-एक ईंट को वैसा ही पाया। भारत की संस्कृति का हृदय संसार-भर की विषमताओं को स्थान देने के लिये पर्याप्त विशाल है। यहाँ सब प्रकार के विचारों के लिये स्वतंत्रता है और जब तक वे उच्छृङ्खलता की सीमा तक नहीं पहुँच जाते, उनके लिये स्थान भी है। मेरी सम्मति में आजकल जिस प्रकार के धार्मिक सम्मेलन होने लगे हैं, वे देश के भविष्य को उज्ज्वल बनानेवाले हैं; क्योंकि उनमें हम एक दूसरे से जुदा होने की जगह प्रेम-भाव बढ़ा रहे हैं, और भारतीय संस्कृति का, जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ, यही ध्येय है।

जहाँ तक दूसरों से संबंध है, वहाँ तक 'विश्वप्रेम' तथा 'पारस्परिक सहिष्णुता' भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व हैं। ये दोनों भाव, जैसा मैं कह चुका हूँ, एक ही भाव के विकास हैं। वह भाव है भूतमात्र में—केवल मनुष्य-मात्र अथवा प्राणिमात्र में ही नहीं, अपितु प्रकृति के एक-एक अणु में—समत्व-बुद्धि रखना। जैसे हम हैं वैसे ही जानवर हैं, वैसे ही वनस्पति हैं, इस समत्व-बुद्धि का विकास क्रियारूप (Active form) में 'विश्वप्रेम' तथा भावरूप (Passive form) में 'सहिष्णुता' के रूप में होता है। यह मूलभूत भावना वैदिक धर्म का आवश्यक अंग है। 'समष्टि' से संबंध रखनेवाले भारतीय संस्कृति के आदर्शों को छोड़कर हमें 'व्यक्ति' से संबंध रखनेवा भारतीय संस्कृति के तत्वों पर भी विचार करना चाहिए। व्यक्ति के विचार में भारतीय संस्कृति तथा वैदिक का क्या मंतव्य है ? यजुर्वेद में लिखा है 'ईशावास्य मिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत् तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा गृधः कस्यचिद्धनम्—प्रत्येक व्यक्ति संसार में निष्काम कर्म करता हुआ जीवन व्यतीत करे, वह जिस भो को भी भोगे, यही समझकर भोगे कि उसका त्याग है ! व्यक्ति को वैदिक धर्म का यही आदेश है। कौ मा का लाल है, जो संसार के भोगों को देखकर ललचा उठता ? परंतु भोगों के पीछे तो कीड़े-मकोड़े भागते हैं। एक मीठे की डली पर चींटे आ चिपटते हैं; यदि मनुष्य भी उस डली को देखकर लार टपका दे, उसमें और गली-कूचे के कीड़े में क्या भेद है ? एक छो कीड़ा है, एक बड़ा कीड़ा है—हैं दोनों विषयों से लि वाले कीड़े ही ! भारत के ऋषियों का कथन था 'श्रेय प्रेयश्च मनुष्यमेतः तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः। त श्रेयआददानस्य साधुर्भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते जीवनयात्रा के प्रारंभ में मनुष्य के सम्मुख दो रास्ते होते हैं—भोग का और त्याग का; इनमें जो भोग के पर क़दम बढ़ा देता है, वह कीड़ा है, उसमें और चींटे केवल शकल का भेद है; जो त्याग के मार्ग पर बढ़ाता है, वह संसारसमुद्र से तर जाता है—' शोकमात्मवित्।'

संसार के भोगों को त्याग की बुद्धि से भोगना वैदिक धर्म का आदेश है। प्रत्येक व्यक्ति के लिये त्याग आदर्श ही सबसे ऊँचा आदर्श है। यह आदर्श भार संस्कृति में ओत-प्रोत हो गया था। फ़्रांस के धनियों विषय में कहा जाता है कि वे जब शिकार खेलकर थे, तो अपनी थकावट मिटाने के लिये दो-एक गुला पेट चाक करवाकर उनकी आँतों के गर्मागर्म ख़ून में रखते थे, परंतु भारतीय संस्कृति में पले हुए इस बड़े-बड़े राजा जहाँ एक तरफ़ राज्य का चक्र चला वहाँ दूसरी तरफ़ एक छोटे-से कबूतर की जान ब लिये अपने शरीर के टुकड़े-टुकड़े काटकर देने के तैयार हो जाते थे। वे संसार के बड़े-से-बड़े भोगते थे, परंतु उन्हें, बिना एक सेकंड का नोटिस

इसे छोड़ सकते थे, जैसे कोई शरीर का कपड़ा उतारकर फेंक देता है। संसार के विषय क्यों बुरे हैं ? इसीलिये तो न, क्योंकि मनुष्य उनमें लिप्त हो जाता है, उनका गुलाम हो जाता है, उनकी दासता में अपनी आत्मा को खो बैठता है, भोक्ता होने के बजाय भोग्य हो जाता है, वह भोगों का शिकार हो जाता है, भोग उसे भोगने लगते हैं। यदि मनुष्य विषयों के साथ लगे इस नशे को, इस ज़हर को निकाल सके, तो फिर विषय काहे को बुरे हैं ? वैदिक धर्म तथा भारतीय संस्कृति ने 'भोग' के साथ 'त्याग' को मिलाकर विषयों में अंतर्निहित विष को दूर कर दिया था, बिच्छू का डंक तोड़ दिया था, गुलाब के फूल का काँटा निकाल दिया था। संसार में विचरण करते हुए यहाँ के विषयों में लिप्त न होना––एक ऐसी शिक्षा है, जिसकी आज की सभ्यता को बड़ी भारी ज़रूरत है, जिसके विना आज की उन्नति कल की अवनति है ! भारत का इतिहास 'त्यागमय भोग' के उदाहरणों से भरा पड़ा है। श्रीरामचंद्रजी का जीवन इस दृष्टि से आदर्श है। अयोध्यापुरी में उनके राज्यारोहण की तैयारियाँ हो बाज़ार सजाए जा रहे हैं, फूलों की मालाएँ जगह-जगह गलियों में लटक रही हैं, बाजे बज रहे हैं, धूम मची हुई है। ऐसे समय उनके पिता उन्हें बुलाकर एक दूसरी आज्ञा सुनाते हैं। उन्हें कहा जाता है, ये राजकुमारों के कपड़े उतार डालो, माथे का तिलक अपने हाथों से मिटा दो, कानों के सुवर्ण-कुंडल निकाल दो,-वल्कल धारण करो, हाथ में कमंडल लो और चौदह वर्ष तक वनवास का जीवन बिता आओ। आज यदि किसी करोड़पति का दस रुपए का नोट छीन लिया जाय या गुम हो जाय, तो वह कुहराम मचाकर ज़मीन-आस्मान एक कर दे। किसी नौजवान को ३० रुपए की नौकरी से बर्ख़ास्त कर दिया जाय तो वह गश खा जाय, उसका सिर फिर जाय, परंतु भारतीय वातावरण में पले नवयुवक को चक्रवर्ती राज्य के सिंहासन पर क़दम रखते हुए रोक दिया जाता है, वह पीठ फेरकर पूछता है, क्या कहा; उसके कानों में धीमी-सी आवाज़ आती है; पिता की आज्ञा बदल गई है, वे अब चौदह बरस जंगल में मारे-मारे फिरने का हुक्म देते हैं। यह सुनते ही वह नवयुवक उसी गंभीर मुख-मुद्रा में जंगल की राह चल देता है ! कवि इस नवयुवक के मुख को देखता-देखता एकदम कह उठता है––

'न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः।'

उसे राज्य-सिंहासन पर बैठने को कहा गया, उसके मुख पर कोई असाधारण खुशी नहीं थी; उसी समय उसे वनवास दे दिया गया, उसके मुख पर कोई रंज नहीं था। भारतीय संस्कृति ऐसा 'भोग' चाहती है; और भारतीय संस्कृति ऐसा ही 'त्याग' चाहती है। इन दोनों के अपूर्व मिश्रण में भारतीय संस्कृति का गौरव है और इसके लिये यह संस्कृति वैदिक धर्म की ऋणी है।

मैंने अब तक संक्षेप में यह बतलाने का यत्न किया है कि भूतकाल में वैदिक धर्म ने भारतीय संस्कृति की क्या सेवा की है। वैसे तो वैदिक धर्म और भारतीय संस्कृति इतनी मिली-जुली हैं कि इन्हें अलग-अलग नहीं किया जा सकता और ना ही वैदिक धर्म के उन सब सिद्धांतों पर, जिनका भारतीय संस्कृति के विकास में हिस्सा है, इस परिमित स्थान में लिखा ही जा सकता है। फिर भी मैंने यह तो बतलाने का यत्न किया है कि 'समाज' तथा 'व्यक्ति' के संबंध में क्रमशः 'प्रेम' तथा 'त्याग' हमारी संस्कृति के आधारभूत तत्त्व रहे हैं। इन्हीं का आदेश वैदिक धर्म ने दिया है और इन्हीं मूलतत्त्वों पर भारतीय संस्कृति का भूतकाल में विकास हुआ है। अब यह देखना है कि भविष्यत् में वैदिक धर्म भारत की संस्कृति के विकास में क्या हिस्सा बँटा सकता है ?

किसी देश की भी संस्कृति हो, उसका विकास सदा होता रहता है। भारत की संस्कृति का बहुत कुछ विकास हुआ, उस संस्कृति का बीच-बीच में ह्रास भी हुआ, परंतु यह विकास तथा ह्रास तब तक होता रहेगा, जब तक भारत रहेगा। वैदिक धर्म ने भारत की संस्कृति के विकास के लिये अब तक तो बहुत कुछ दिया, अब प्रश्न यह है कि यह धर्म इस देश की संस्कृति के आगे के विकास के लिये क्या कुछ और दे सकता है।

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह जो कुछ करने लगता है, उसमें 'अति' कर डालता है, हद कर देता है ! इस 'अति' का नतीजा यह होता है कि इसके विरुद्ध एक प्रतिक्रिया उत्पन्न हो जाती है, जो इसके दुष्परिणामों को दूर कर देती है। इसमें संदेह नहीं कि वैदिक धर्म सहिष्णुता सिखाता है, वैदिक धर्म विचारों की पूरी आज़ादी देता है। इसी का यह नतीजा हुआ कि भारत की संस्कृति में हरेक तरह के विचार को जगह मिलती रही।

यहाँ आस्तिक भी रहे, नास्तिक भी रहे, द्वैती भी रहे, अद्वैती भी रहे। परंतु इस सहिष्णुता को संसार की दूसरी क़ौमों ने कमज़ोरी समझा। उन्होंने अपने विचारों का, अपने धर्म का ज़बरदस्ती प्रचार किया, परमात्मा के नाम पर तलवार उठाई, धर्म के नाम पर खून बहाया। उस समय भी भारत की आत्मा सहिष्णुता का घूँट पिए ही बैठी रही। यह सहिष्णुता को अति तक ले जाना था; दूसरे शब्दों में यह सहिष्णुता का स्वाँग था, उसका मखौल था। धीरे-धीरे सचमुच यह सहिष्णुता कमज़ोरी में परिणत हो गई। इसने हमारी क़ौम को बुज़दिल बना दिया। क्षमा उसी की शोभा है, जो आँख उठाकर शत्रु के दिल को दहला सकता है; सहिष्णुता उसे सजती है, जो असहिष्णुता की लपट में दूसरे को भस्म कर सकता है। यदि राख तिनके से कहे कि मैं तुझे नहीं जलाऊँगी, तो तिनका हँस देगा; यदि आग की ज्वाला उसे अभयदान दे, तो वह उसके सामने झुक जायगा। हमारी क़ौम ने सहिष्णुता का जप इतना जपा कि वह कमज़ोर हो गई, इतनी कमज़ोर हो गई कि आज हम सहिष्णुता की माला जपते-जपते दूसरे क़ौमों के ग़ुलाम हो गए। वे हमें निगलती जा रही हैं, और हमें इसकी ख़बर तक नहीं। हमें आज फिर से याद करने की ज़रूरत है कि जिस वैदिक धर्म ने 'विश्वप्रेम' तथा 'सहिष्णुता' का राग अलापा था, उसी ने 'कृण्वन्तो विश्वमार्यं' का भी तो संदेश दिया था। ये सोती हुई आर्यजाति! तू उठ, तेरा संदेश संसार की संतप्त आत्मा को शांत कर सकता है, परंतु तू मोह की ऐसी निद्रा में पड़ी हुई है कि संसार के ऐरे-ग़ैरे तेरी छाती पर मूँग दल रहे हैं। भारत का विश्वप्रेम का संदेश दुनिया के थपेड़े खाने के लिये न था, यह निर्बलता का, कमज़ोरी का संदेश न था, यह संदेश आत्मबल का संदेश था। भारत यदि आज विश्वप्रेम का पुराना राग अलापना चाहता है, तो पहले उसे उस राग के अलापने की शक्ति संचित करनी होगी। वह अपनी आँच से संसार को न जलाने का वचन देगा, परंतु राख बनकर नहीं, आग बनकर; वह संसार में खून की नदियाँ न बहाने का वचन देगा, परंतु हाथ कटवाकर नहीं, हाथों में तलवार लेकर; वह दुनिया के बच्चे-बच्चे से प्यार करने का वचन देगा, परंतु अपने को लुटेरों से लुटवाकर नहीं, दुनिया की क़ौमों का सरताज होकर! एक महात्मा ने किसी अजगर को अहिंसा का उपदेश दिया था। वह अजगर फन ज़मीन पर डाले पड़ा रहा करता था। गाँव के बच्चे भी आकर उस पर लाठियाँ चलाया करते थे। उसके अंग-अंग से रुधिर टपकने लगा। महात्मा ने दुबारा आकर जब उसकी यह अवस्था देखी, तो उन्होंने कहा—मूर्ख! तुझे डसने से मना किया था या फन फैलाने से भी मना किया था; किसी को मार डालने से मना किया था या फुंकार मारने से भी मना किया था। वैदिक धर्म भारतीय संस्कृति में आज इसी अंश को डालना चाहता है। अरे विशाल अजगर! तू सबके गले में लिपट जा और किसी को मत डस, परंतु यदि कोई तेरा सिर कुचलने लगे, तो फन फैला ले और फुंकार मारकर जतला दे कि तुझे कुचलना आसान काम नहीं होगा।

भारतीय संस्कृति के मुख्यतः दो पहलुओं पर मैंने विचार किया है, और उन दोनों में मनुष्य के स्वभाव ने अति कर दी है। 'सहिष्णुता' के विषय में हमने अति की, इसके साथ ही 'त्याग' में भी हमनें सीमा का उल्लंघन कर दिया। परिणाम यह है कि आज 'सहिष्णुता' भी ढोंग बनी हुई है, 'त्याग' भी ढोंग बना हुआ है। आज इन दोनों में प्रतिक्रिया की ज़रूरत है। वैदिक धर्म का आदेश इकतरफ़ा आदेश नहीं है। मनुष्य के स्वभाव में इकतरफ़ापन है, इसलिये उसके कामों में इकतरफ़ापन आ जाता है। इस समय जहाँ हम कमज़ोरी को, निर्बलता को 'सहिष्णुता' समझे हुए हैं, वहाँ दरिद्रीपन को, आलस्य और सुस्ती को, अफ़ीमचियों की तरह ऊँघने को 'त्याग' समझ रहे हैं। 'त्याग' का उपहास इससे ज़्यादह क्या होगा कि हमने त्यागते-त्यागते सब कुछ त्याग दिया, अपना देश भी अपना न रहने दिया। जिसने भीख माँगने के लिये एक ठीकरा उठा लिया, वह हमारे लिये बड़ा भारी त्यागी हो गया। त्याग तो हवस का है। जिसने हवस को नहीं त्यागा उसने कपड़े भले ही उतार फेंके हों, वह विषयों की दलदल में ही फँसा हुआ है। जिसने हवस को त्याग दिया, वह संसार के विषयों में विचरता हुआ भी त्यागी है। आज देश त्याग-त्याग का नाम लेता हुआ आलसी और दरिद्र हो गया है, कर्मण्यता को छोड़ बैठा है। यहाँ तो 'को नृप होउ हमें का हानी, चेरि छाँड़ि भयऊ न रानी' की मनोवृत्ति बढ़ती जा रही है। देश का कुछ हो जाय, इससे मुझे क्या, और तुझे क्या!

इसे त्याग कहना त्याग का उपहास करना है । वैदिक धर्म की यह शिक्षा है कि ऐसे ढोंग का शीघ्र-से-शीघ्र अंत कर दिया जाय । वेद तो कहता है कर्मण्येवाधिकारस्ते ! अरे तुझे हाथ-पर-हाथ रखकर बैठने का तो अधिकार ही नहीं, यदि तू हाथ-पैर नहीं चलाता, तो तुझे रोटी के टुकड़े के खाने का भी अधिकार नहीं ! आज देश के त्याग का मार्ग उलटा हो गया है । सदियों पूर्व वैदिक धर्म ने भारतीय संस्कृति में 'त्याग' का संचार किया था, परंतु आज इस देश की संस्कृति की रक्षा के लिये वैदिक धर्म का संदेश 'कर्मण्यता' का संदेश है ।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि वर्तमान युग के जिन दो संदेशों की तरफ़ मैंने पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है, उनकी आज भारत को अत्यंत आवश्यकता है और उन पर अमल करने पर ही भारत का मस्तक गौरव से ऊँचा हो सकता है ।

अंत में मैं दो शब्द कहना चाहता हूँ । वह समय हमें भूला नहीं है, जब आर्यसमाज की वेदी शास्त्रार्थ के बिना सूनी समझी जाती थी । अब भी कई स्थानों पर ऐसा ही समझा जाता है । परंतु गुरुकुल ने 'संस्कृति-सम्मेलन' के रूप में एक नई दिशा की तरफ़ क़दम बढ़ाया है । इसकी अपेक्षा कि दूसरे के दुर्गुण दिखलाए जाएँ, अपने गुण बतलाना कहीं अच्छा है ; और इसकी अपेक्षा कि मनुष्य स्वयं अपने गुणों का वर्णन करे, दूसरे का उन गुणों का वर्णन करना और भी अच्छा है । शास्त्रार्थों की इस भीरु हिंदू-समाज को अत्यंत आवश्यकता थी और कई अंशों में है, परंतु शास्त्रार्थों से अपने को समर्थ बनाने के बाद दूसरा क़दम वही है, जो केवल संस्कृति या धर्मसम्मेलनों द्वारा लिया जा सकता है । इन सम्मेलनों से प्रत्येक धर्म की अच्छाई संसार के सम्मुख आती है । परंतु मैं तो समझता हूँ कि भारतीय संस्कृति के पूर्ण विकास के लिये एक अगला क़दम भी है । वह क़दम यही है कि प्रत्येक धर्म की अच्छाई की उस धर्म के माननेवाले ही दुंदभी न पीटते रहें, परंतु दूसरे लोग भी उसे स्वीकार करें । मैं तो उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ, जब आर्यसमाज की उसी वेदी पर जिस पर मुसलमानों और ईसाइयों से टक्कर ली जाती है, किसी समय मेरा मुसलमान भाई वैदिक धर्म के महत्त्व पर प्रकाश डालेगा । और आर्यसमाजी भाई इस्लाम की विशेषताओं पर निबंध पढ़ेगा । उस दिन धर्मों का ऊपरी खोल मिट जायगा और सचाई का शुद्ध तथा नग्न रूप प्रकट होगा । उस दिन की स्मृति में ही वेद ने कहा है—

"हिरण्येन पात्रेण सत्यस्यापि हितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥"

सत्यव्रत सिद्धांतालंकार

गीत

देख दिव्य छवि लोचन हारे ।
रूप अतंद्र, चंद्रमुख, रति-रुचि,
पलक तरल तम, दृग-द्वय तारे ।
द्वेष, दंभ, दुख पर जय पाकर
खिले सकल नव अंग मनोहर,
चितवन, संसृति की सीमा तर
खड़ी प्रेम के सिन्धु-किनारे ।
जग के रंगमंच की संगिनि,
अयि परिहास-हास-रस-रंगिनि
उर-मरु-पथ की तरल तरंगिनि,
दे अपने प्रिय स्नेह-सहारे ।

"निराला"

निर्झर

(१)

अपने अविरल कलकल रव में,
निर्झर झरते हो 'सुन्दर';
शिखनी-से हो नृत्य-निरत तुम,
थिरक रहे कैसे गिरि पर?
अपनी वीणा में स्वर भर
वही एक स्वर निर्झर-झर!

(२)

तुम सुधांशू से भी बढ़कर;
सुधाधार बरसाते हो;
धरती-तल पर धूमधाम से,
नव-जीवन भर जाते हो।
गिरिशृंगों से उतर-उतर,
वही एक स्वर निर्झर-झर!

(३)

मधु बाला के मृदु गीतों-सा,
कलरव-निहित तुम्हारा जल;
पृथुल शैल को काट बाट में,
दर्शाते हो निज कौशल।
अञ्जुलि में नभ सारा भर
वही एक स्वर निर्झर-झर!

(४)

चकित चकोरों-सी चञ्चलता,
अपने मुस्क्यानों में भर;
सिखा रहे हो हँसते रहना,
कर्ण-कुहर में फुस-फुस कर।
प्रणव गीतों में निज स्वर भर।
वही एक स्वर निर्झर-झर।

श्यामसुन्दर खत्री

रोमांटिक पोश्कीन

हमारे अधिकांश साँहित्य-प्रेमी पोश्कीन के नाम से अवश्य परिचित होंगे और उससे भी उसकी कहानियों से जिनका अनुवाद हिंदी में हो चुका है। इस छोटे-से लेख में उसी जगत्-विख्यात रूसी औपन्यासिक और कवि के जीवन की मुख्य घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन है। इसका आशय कवि के जीवन-वृत्तांत सुनाने का नहीं है, प्रत्युत उसके आंतरिक जीवन, उसकी हार्दिक भावनाओं, उसके मनोमानस का स्पष्टीकरण ही है।

पोश्कीन रूस के साहित्य-सरोवर का प्रथम कमल है। इससे पहले रूस ने किसी ऐसे महापुरुष को उत्पन्न नहीं किया था, जिसकी साहित्यिक प्रतिभा पर वह गर्व कर सकता, उसे अपना मान समझता। पोश्कीन एक औपन्यासिक की अपेक्षा कवि ही कहीं अधिक है। उसकी कविताओं और क्रिलौफ़ की कहानियों से ही वहाँ के साहित्य का आरंभ हुआ गिना जाता है, यद्यपि रूसी साहित्य का इतिहास-काल ग्यारहवीं शताब्दी तक कहा जा सकता है।

वह युग रोमांटिक साहित्य का था, अतः पोश्कीन की रचनाएँ भी रोमांटिक रंग में रँगी हुई हैं, लेकिन यह जानकर बड़ा आश्चर्य होता है कि साहित्यिक जीवन

की तरह ही वह महाकवि अपने आंतरिक जीवन में भी समानरूप से रोमांटिक (प्रेममयी और अद्भुतप्रिय) था। उसका जीवन एक उपन्यास हो जाता है और पोश्कीन उस उपन्यास का बड़ा विलक्षण चरित्र है।

सन् १७९९ में एक ज़मींदार के घर में पोश्कीन का जन्म हुआ था। अठारह वर्ष की अवस्था में इंपीरियल लाईसियम से वह ग्रेजुएट हो गया और आनंद से सामाजिक जीवन व्यतीत करने लगा। लेकिन साहित्य में अब भी उसकी बड़ी रुचि थी। शैशवकाल से ही उसे इससे प्रेम था। भाग्यवश पोश्कीन की नर्स के भी साहित्यिक होने के कारण उसे आरंभ में ही बड़ा प्रोत्साहन मिला।

पोश्कीन की सबसे पहली कविता Ode to Liberty है, जो १८१८ में लिखी गई थी। इस कविता को लिखकर पोश्कीन ने रूस के सम्राट् की राह में फेंक दिया। सम्राट् ने उसे उठाया और पढ़ा। उसमें उसके और उसके मृतक पिता के लिये बड़े कड़े शब्द लिखे थे। उसे प्रजापीड़क बताया गया था। लेकिन इतने पर भी ज़ार ने पोश्कीन को कुछ कड़ा दंड नहीं दिया, केवल उसे सेंटपीटरवर्ग छोड़ने को ही बाधित किया। पोश्कीन अपने घर कोफ़ में चला गया। किंतु कुछ ही समय बाद ज़ार ने उसे वहाँ से कौकेसस भेज दिया।

पोश्कीन का यह निर्वासन उसके लिये अप्रत्यक्ष रूप से बड़ा लाभकारी सिद्ध हुआ। यहाँ पर समाज के विषैले प्रभाव से मुक्त होकर उसने एकाग्र भाव से लिखना आरंभ कर दिया। कौकेसस पहाड़ी प्रदेश था। वहाँ की नीरवता ने बरफ़ से लदी हुई पहाड़ी चोटियों और झिलमिलाते हुए समुद्र के मनोहर दृश्य में मिलकर पोश्कीन के कवित्व-हृदय पर बड़ा विलक्षण प्रभाव डाला; उसमें उस करुण और उत्साह का उद्रेक किया, जिसके कारण कि रूस में विशेष रूप से उसका आदर होता है। यह वही समय था, जब कि बायरन अपनी कविताएँ लिख रहा था। इसी समय उसने The Prisoner of Caucausus-नामक कविता लिखी, जिसका स्थान कि बायरन की विख्यात कृति The Giaout के बराबर है।

पोश्कीन की ख्याति ने धीरे-धीरे फैलकर ज़ार को कुछ नम्र बना दिया और शीघ्र ही उसे अपने निवास-स्थान पर जाने की आज्ञा मिल गई। सेंटपीटरवर्ग जाना उसके लिये अब भी वर्जित था।

इसी समय ज़ार के विरुद्ध एक भयंकर षडयंत्र रचा जा रहा था। उसके एक नेता राईलीफ़ ने पोश्कीन को भी उसके अंतर्गत करना चाहा और इसके लिये बड़ा प्रयत्न किया, किंतु पोश्कीन को षडयंत्र की सफलता पर विश्वास न था, उसने नाहीं कर दी। लेकिन हृदय से पोश्कीन षडयंत्र से सहानुभूति रखता था और षडयंत्र की बड़ी-बड़ी घटनाओं के समय वहाँ उपस्थित रहने की इच्छा से, एक मित्र का पासपोर्ट लेकर, सेंटपीटरवर्ग चल दिया।

मार्ग में दो मील के लगभग चलने पर एक ख़रगोश रास्ता काट गया। रूसी लोग शकुनों के बड़े क़ायल होते हैं। उनमें यह वैसा ही अपशकुन माना जाता है, जैसे हमारे देश में बिल्ली का राह काटना और रोम में पत्थर से ठुकराना। कोचवान ने घूमकर लौट चलने के लिये पूछा, किंतु पोश्कीन ने विपत्ति की अवहेलना करते हुए बढ़े चलने का ही हुक्म दिया।

कुछ दूर चलने पर यही घटना फिर हुई। इस बार पोश्कीन ने एक क्षण तक कुछ सोचा और फिर फ्रांचभाषा में यह कहते हुए "हमारी भूलें जितनी कम हों, उतना अच्छा", वापिस चलने का आदेश दिया।

जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं के परिणाम भी कभी-कभी कितने गंभीर होते हैं। यदि पोश्कीन उस दिन सेंटपीटरवर्ग चला गया होता, तो कौन जानता है राईलीफ़ के साथ ही उसे भी फाँसी न दे दी गई होती या उसका निर्वासन न हो जाता।

पोश्कीन बड़े ही निडर और उपद्रवी स्वभाव का युवक था। आपत्तियों को निमंत्रण देने में उसे कुछ स्वाद मिलता था। जब उसने अपने षडयंत्रकारी मित्रों की दुःखांत कहानी सुनी, तो तुरंत ही एक कविता में ज़ार पर फिर एक तीव्र आघात किया।

षडयंत्रकारियों का मुक़द्दमा अभी सेंटपीटरवर्ग में चल रहा था। उसमें कुछ ऐसे काग़ज़ खुले, जिनमें षडयंत्र में सम्बद्ध होने से पोश्कीन ने मना किया था। इस पर ज़ार ने अत्यंत प्रसन्न होकर पोश्कीन को बुलावा भेजा। अन्य षडयंत्रकारियों को बड़ी-बड़ी कठिन सज़ाएँ मिलीं।

पोश्कीन ने जब ज़ार की आज्ञा को सुना, तो उसका दिल धक से हो गया। उसने समझा, ज़ार का क्रोध अभी शांत नहीं हुआ है, पहले अपराध की सज़ा अभी

और बाक़ी है या अवश्य ही मेरी नई कविता उसके पास पहुँच गई है। लेकिन सेंटपीटरबर्ग पहुँचने पर अपने असाधारण स्वागत को देखकर पोश्कीन दंग रह गया। उसे उसकी सत्यता पर विश्वास न होता था।

ज़ार ने उसे शाही ऐतिहासिक बना दिया और पहला काम उसे पीटर दी ग्रेट के राज्य का इतिहास लिखने का दिया। लेकिन पोश्कीन मन-ही-मन अपने नवीन पद से अप्रसन्न था। शाही परिवार से उसे घृणा थी। उसने उक्त इतिहास लिखने की अपेक्षा पूगाचेफ़ का षडयंत्र लिखा। केवल यही पुस्तक और छोटी-छोटी कहानियों का एक संग्रह ही उसकी गद्य-रचनाएँ हैं।

ज़ार की बहुमूल्य कृपा और अपने महान् पद का मान भी पोश्कीन को उसके क्रांतिकारी विचारों से विचलित न कर सका। वह हर समय अपने विपन्न और निर्वासित मित्रों की याद किया करता था, यहाँ तक कि कभी-कभी आवेश में आकर ज़ोर-ज़ोर से उनके दुर्भाग्य की कथा गाने लगता और ज़ार से बदला लेने की प्रेरणा से विह्वल हो उठता।

पोश्कीन ने जिस इंपीरियल लाईसियम (विद्यालय) में शिक्षा पाई थी, उसमें प्रति वर्ष उसकी संस्थापना के दिन एक उत्सव हुआ करता था। उसमें उसके पुराने विद्यार्थी भी भाग लेते थे। ऐसे ही एक भोज में पोश्कीन ने चार अनुपस्थित क्रांतिकारी ग्रेजुएटों (जिनमें से दो को जीवित गाड़ दिया गया था) की स्मृति में एक कविता कह सुनाई, जिसमें उनके अतीत जीवन की घटनाओं का बड़ा मर्मस्पर्शी और करुणाजनक वर्णन था। कविता समाप्त होने पर भी हाल में मृत्यु का-सा सन्नाटा छाया रहा। युवक विद्यार्थियों का रक्त सनसन करने लगा।

उस समय यद्यपि साठ विद्यार्थी उपस्थित थे, लेकिन उनमें चुगलख़ोर एक भी न था; नहीं तो निकोलस-जैसे ज़ार के समय में इस घटना का कैसा भयंकर परिणाम होता? पोश्कीन को किन-किन विपत्तियों का सामना करना पड़ता? इसकी कल्पना भी करना कठिन है।

इसी समय पोश्कीन को एक सुंदरी युवती से प्रेम हो गया और उसने उससे विवाह कर लिया।

पोश्कीन ने उत्कर्ष और लोकप्रियता के कारण ज़ार के कृपापात्र अमीर उससे बड़ा द्वेष रखते थे। जनता के हृदय में बड़े-से-बड़े अमीर के लिये भी पोश्कीन के समान आदर न था। युद्ध में उसकी कविताएँ लड़ाई के कोलाहल के ऊपर सुनाई पड़ती थीं। शांति में घर-घर में उनका गान होता था।

पोश्कीन की प्रसिद्धि के साथ-ही-साथ इनकी ईर्ष्या भी बढ़ती जाती थी, पर उनका कुछ बस न चलता था। उचित उपायों द्वारा उसका वे कुछ भी न बिगाड़ सकते थे। अंत में उन्होंने अपनी कुटिलता से काम लिया। पोश्कीन को प्रायः प्रति दिन एक गुमनाम पत्र मिलता, जिसमें उसकी स्त्री से एक डी ऐंथीस-नामक युवक के अनुचित संबंध होने की चर्चा रहती। डी ऐंथीस पोश्कीन के यहाँ बहुत आया-जाया करता था।

पोश्कीन ने उसे समझा दिया कि उसका आना-जाना उसे पसंद नहीं है, अतः अब वह कभी न आवे। डी ऐंथीस ने वही किया।

इसी तरह कुछ समय शांतिपूर्वक निकल गया। एक दिन अचानक पोश्कीन और डी ऐंथीस की ज़ीने में मुठ-भेड़ हो गई। पोश्कीन को अपने सारे संदेह सत्य प्रतीत होने लगे। क्रोध से पागल होकर उसने डी ऐंथीस की गर्दन पकड़ ली और गला घोटकर उसका प्राणांत कर देना चाहा; लेकिन डी ऐंथीस ने अपनी गर्दन छुड़ा ली और उसे समझाया कि वह उसकी स्त्री से मिलने नहीं आता है, बल्कि उसकी छोटी बहन से।

पोश्कीन इसे सुनकर कुछ शांत हुआ और बोला—यदि तुम अपने शब्दों को सत्य प्रमाणित करना चाहते हो, तो उसका केवल एक ही तरीक़ा है।

डी ऐंथीस ने कहा—"बताओ"।

"तुम मेरी साली से प्रेम करते हो?"

"हाँ"

"अच्छा, तो उससे विवाह कर लो"

"मैं उससे अवश्य विवाह कर लूँगा और कृपा करके तुम मेरी यह प्रार्थना उसके माता-पिता को सुना देना।"

एक महीने बाद डी ऐंथीस और पोश्कीन की साली का विवाह हो गया।

डी ऐंथीस ने यह विवाह करके पोश्कीन की स्त्री से अपने नाते की पवित्रता का यद्यपि यथेष्ट प्रमाण दे दिया था, और यह झगड़ा यहीं समाप्त हो जाना चाहिए था, लेकिन कोई अज्ञात शत्रु पोश्कीन को ख़ाक में मिला देने का प्रण किए बैठा था। गुमनाम पत्रों का आना फिर

आरंभ हो गया। वे कहते थे—यह विवाह केवल एक वाला है। दो प्रेमियों के मिलन में सुविधा उत्पन्न करने के एक साधन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

कुछ महीनों तक पोश्कीन ज़ब्त किए रहा। घृणा और ग्लानि के भयानक विष को पचाता रहा। पर अंत में उससे न रहा गया। डी ऐंथीस की सूरत उसके लिये असह्य हो उठी।

एक दिन उसने उससे कह दिया—तुम यह देश छोड़ दो अथवा मुझसे द्वंद्वयुद्ध स्वीकार करो।

डी ऐंथीस ने उसे बहुत समझाया, कहा कि उसका यह भयंकर भ्रम बिलकुल निर्मूल है। वह बिलकुल निर्दोष है। लेकिन यह सब व्यर्थ था; पोश्कीन जोश से पागल हो रहा था।

डी ऐन्थीस को अंत में द्वंद्वयुद्ध स्वीकार करना पड़ा, लेकिन उसने उसके लिये पंद्रह दिन का समय माँगा। उसे आशा थी, शायद इतने दिनों बाद पोश्कीन का क्रोध कुछ शांत हो जाय, और वह अपने दुर्विचार को बदल दे।

लेकिन अवधि समाप्त होने के दूसरे दिन प्रातःकाल ही पोश्कीन का नियत किया हुआ साक्षी करनल डांज़ा डी ऐंथीस के पास पहुँचा। डी ऐंथीस एक अत्यंत निडर और वीर पुरुष था। कायरता उसमें लेशमात्र भी न थी। लेकिन द्वंद्वयुद्ध से वह घृणा करता था, विशेष कर पोश्कीन के साथ। इसलिये उसने इस साक्षी के द्वारा फिर उस दिन अंतिम बार पोश्कीन को समझाने की चेष्टा की। लेकिन वहाँ तो आग लग रही थी। यह पंद्रह दिन ही बड़ी मुश्किल से कटे थे।

पिस्तौलें चुन ली गईं। संध्या-समय नेवा-नदी के उस पार दोनों प्रतिद्वंद्वी मिले।

पोश्कीन ने अपनी पिस्तौल बड़ी सावधानी से भरी; कहीं ऐसा न हो कि गोली ख़ता कर जाय। तीस क़दम गिन लिए गए और प्रतिद्वंद्वी पिस्तौलें तानकर खड़े हो गए। दोनों को दस-दस क़दम आगे बढ़कर एक दूसरे पर गोली छोड़ने की स्वतंत्रता थी। डी ऐंथीस वहीं खड़ा रहा और पोश्कीन जब तक आठ क़दम ही आगे बढ़ा था, उसने पिस्तौल छोड़ दी। गोली लग गई और पोश्कीन गिर पड़ा, लेकिन फिर उठकर अपना वार किया। गोली डी ऐंथीस की बाँह के मांस-भाग में लगकर एक बटन उड़ाती चली गई।

पोश्कीन चिल्लाया "ठहरो फिर", लेकिन उद्वेग का यह कड़ा हुक्म शरीर मानने से लाचार था। ख़ून तेज़ी से बह रहा था और उसके साथ ही शरीर की शक्ति भी निकल रही थी।

डी ऐंथीस अब पोश्कीन के पास आया। लेकिन पोश्कीन ने घृणा की तीव्रता से व्याकुल होते हुए उसे पीछे हटने का इशारा किया। डी ऐंथीस लौट गया।

दोनों ओर के साक्षियों ने आकर पोश्कीन का घाव देखा। गोली पेट के दाएँ भाग में लगकर जिगर और पसलियों में होती हुई आँतों में समा गई थी। पोश्कीन को गाड़ी में रखकर घर ले आए। उस समय संध्या के छः बजे थे। अंधकार होने लगा था।

नौकर पोश्कीन को सँभालकर ऊपर ले गया और उससे लेटने का स्थान पूछा। पोश्कीन ने कहा—मेरे अध्ययन के कमरे में मुझे ले चलो और यह ख़याल रखना कि मेरी स्त्री मुझे देखने न पावे।

मैडम पोश्कीन को अभी कुछ भी मालूम न था। रूस के नामी डाक्टर मि० हैरन के संरक्षण में पोश्कीन की चिकित्सा होने लगी; लेकिन उन्हें अपनी सफलता पर विश्वास न होता था।

पोश्कीन की इच्छानुसार उसकी स्त्री को उससे मिलने का अवसर बहुत ही कम दिया जाता था। वह बग़ल के कमरे में बैठी रहती थी। स्थिति की गंभीरता का यद्यपि उसे अभी वास्तविक ज्ञान नहीं हुआ था, लेकिन अज्ञात विपत्ति का अंधकार उसकी आँखों के सामने आने लगा था। उसे अपनी पवित्रता का दृढ़ आधार मिलता था, लेकिन वह यह जानती थी कि भयंकर उत्पात केवल उसी के कारण हुआ है और इसके लिये वह अपने को क्षमा करना नहीं चाहती थी। समय-समय पर चुपचाप पैर रखती हुई, भूत की तरह वह कमरे में आती, लेकिन पोश्कीन को—यद्यपि उसका मुँह दीवार की ओर था—उसी क्षण उसका आभास हो जाता और कहता—

"कृपा करके इसे यहाँ से ले जाओ।"

पोश्कीन अब भी अपनी स्त्री को हृदय से चाहता था, लेकिन उसे यह मंज़ूर न था कि वह उसे दुखी होता देखकर कमज़ोर समझ ले।

एक बार उसने कहा—

"उफ़ मेरी दीन स्त्री ! संसार उसके चरित्र की खूब धज्जियाँ उड़ावेगा; लेकिन वह पवित्र और निर्दोष है।"

पोश्कीन सब बातें अपने स्वाभाविक शांत स्वर में कहता था। उत्तेजना या घबराहट उसमें नाम को न थी। वह पोश्कीन जो अपनी स्वस्थ अवस्था में बहुत ही आतुर और भड़कीले स्वभाव का मनुष्य था, कुछ ही घड़ियों की उत्कट यातना को सहकर एकदम परिवर्तित हो गया। घृणा और संदेह का एक तूफ़ान जो उसके हृदय में बहुत समय से प्रचंड हो रहा था, अब बिलकुल शांत हो गया। एक शब्द भी असंतोष का सूचक उसके मुँह से न निकलता था। मालूम होता था, मानो मृत्यु की शांति में उसका प्रवेश हो चुका है; मानवयिता से परे पहुँच गया है।

वह अपने दुख को किसी को, विशेषकर अपनी स्त्री को, किसी तरह भी जताना न चाहता था। असह्य यंत्रणा सह ली, पर ज़बान ने आह न निकाली। केवल एक बार अपने हाथों को फेंकते हुए कहा—

"ओह, जी कैसा घबराता है। ऐसा मालूम होता है जैसे मेरा हृदय फटना चाहता हो, पर वह फट नहीं सकता।"

दूसरे दिन प्रातःकाल अंतिम समय की अपनी धार्मिक रीतियाँ पूरी कर लेने पर उसके मस्तिष्क की शांति और भी गंभीर हो गई। इस समय उसने कुछ अपने काग़ज़ माँगे और अपने ऊपर का कुछ ऋण लिखाया। लेकिन इतना परिश्रम उसकी क्षीण शक्ति के कहीं अधिक था। इससे वह इतना थक गया कि अपनी अन्य इच्छाएँ प्रकट करने की सामर्थ्य भी उसमें न रही। ऐसी तेज़ी से अपने को निर्जीव होता हुआ पाकर उसने समझा—अंतिम क्षण आ पहुँचे हैं। जल्दी-जल्दी साँस लेते हुए कहा—

"मेरी स्त्री ! मेरी स्त्री।"

मैडम पोश्कीन, जो दरवाज़े पर ही कान लगाए सुन रही थी, अंदर दौड़ आई; और इसके बाद जो सीन आरंभ हुआ, उसकी करुणा वर्णन-शक्ति के बाहर की बात है।

पोश्कीन ने अपने बच्चों को बुलाया। वे अभी सोए हुए थे, पर उन्हें जगाया गया और वे अबोध बालक अर्धनिद्रित अवस्था में अपने मरते हुए पिता के सामने आकर खड़े हो गए। बारी-बारी से एक-एक बच्चे को पोश्कीन ने बड़ी देर तक ताक-ताककर देखा और उनके सिर पर अपना हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। जब उसे अपने अधिकार का तस्मा हृदय के आवेग पर से टूटता दीखा, तो एक कठिन चेष्टा करके हाथ के इशारे से उन्हें अपने सामने से हटवा दिया।

जब पीड़ा और भी अधिक तीव्र होकर अपनी दारुणता बढ़ाने लगी, तो उसके हाथ काँपने लगे और हलकी-हलकी आहें उसके मुँह से निकलती सुनाई पड़ने लगीं। यह देखकर पोश्कीन के अनन्य मित्र डा० डाल ने कहा—

"मेरे दीन मित्र ! तुम्हें कैसी यातना हो रही है। उसे प्रदर्शित करने में तुम्हें क्या लज्जा है ? अपने ऊपर दया करो और सब खोलकर कह दो।"

घायल बोला—

"नहीं ! नहीं ! मेरी स्त्री सुन लेगी। और इसके उपरांत यह कितना घृणास्पद है कि पीड़ा-नाम की एक तुच्छ वस्तु मेरे आत्मबल से विजय पा जाय।"

तीसरे दिन दोपहर के दो बजे पोश्किन ने कुछ मोरोश्का, एक प्रकार का रसभरी के समान रूसी फल, का रस पीने को माँगा। जब वे फल लाए गए, तो नाहीं करते हुए कुछ सख़्त आवाज़ में कहा—

"मेरी स्त्री को बुला लो; मैं उसी के हाथ से पीना चाहता हूँ।"

वह आई और पलँग के बराबर घुटने टेककर अपने पति के मुँह में दो चम्मच मोरोश्का का रस डाला; फिर करुणा और शोक से आर्द्र होकर अपने आँसुओं से भीगे हुए कपोलों को उसके मुँह पर रख दिया। पोश्कीन प्रेम के आवेश से विह्वल होकर उसके शरीर को थपथपाने लगा और कहा—बस-बस अब मैं बहुत अच्छा हूँ। मुझे कुछ दुःख नहीं है।

पोश्किन का मस्तिष्क अब तक बिलकुल सही था, लेकिन अब उसे बेहोशी आने लगी। एक बार अपने मित्र डाल का हाथ लेकर उसे दबाते हुए कहा—

"मुझे उठा लो। चलो हम ऊँचे चढ़ चलें—खूब ऊँचे।"

यह क्या था—मृत्युसूचक भ्रांति का आरंभ या अनन्त की सैर ?

फिर एक बार अपना होश सँभालते हुए पुस्तकों की

अलमारियों की ओर संकेत करके कहा—मुझे ऐसा मालूम पड़ रहा था कि मैं और तुम इन अलमारियों पर इतने ऊँचे चढ़ रहे हैं कि मेरा सिर घूमने लगा है।

थोड़ी देर बाद आँखें बंद किए ही उसने डाल का हाथ टटोलकर देखा और कहा—

"आओ! आओ! हम तुम साथ-साथ चलें।"

इस पर डाल ने पोश्कीन के कष्ट का कुछ ख़याल न करते हुए उसे आधा उठा लिया। इससे कुछ चैतन्यता आ गई और उसने आँखें खोलीं, कहा—

"सब समाप्त हो गया। मैं जा रहा हूँ। अब मैं जाता हूँ।"

फिर अपने तकिए पर गिरते हुए कहा—

"ओह—अब साँस नहीं लिया जाता। गला घुट रहा है।"

उसके अंतिम शब्द थे। इसके बाद श्वास धीमे पड़ने लगे और अंत में बंद हो गए।

इस समय १८३७ की २९ जनवरी का दोपहर था—सवा तीन बजे थे। पोश्कीन का अड़तीसवाँ वर्ष समाप्त नहीं हुआ था।

केशवदेव शर्मा

नारद-मोह

(१)

'हिमगिरि' अचल समाधि निरत हो तन में धारे स्वेत विभूत,
जमा हुआ है ध्यान जमाकर अटल संयमी-सा मज़बूत।
हिला न उसका मन विकार से कितने ही झोंके आए,
ऊँचा ही सिर रहा निरंतर बहुत थपेड़े भी खाए।
लौ थी लगी हृदय में प्रभु की कभी न पिघला तापों से,
प्रेमअग्नि ही रही धधकती, जला नहीं संतापों से।
ठंडे मन से ध्यान लगाकर अपने चित को रक्खा शांत,
शांत नहीं होने दी फिर भी धुन, धूनी को लगा नितांत।
लगा समाधि इसी पर्वत पर नारद ऋषि भी इसी प्रकार,
आँख बंद कर ध्यान लगाए स्वाँस चढ़ाए हैं मन मार।
देख अटल व्रत सुरपति काँपा बड़ी-बड़ी आशंका कर,
डरा कहीं यह माँग न बैठे इंद्रासन पाने का वर।
सोचा कोइ उपाय कीजिए जिससे तप हो जावे भंग,
आया याद काम यह भारी कर सकता है पूर्ण अनंग।
तुरत बुलाकर कहा मदन से देखो आज तुम्हें रतिनाथ,
मुनि नारद का ध्यान भंग कर लेना है उनका मन हाथ।
बैठे हैं वह कोट बाँधकर मन को घेरे जैसे सर्प,
गढ़ को जीत पताका अपनी तुम्हें उड़ाना है कंदर्प।
वीर पंचसर! तुम विजयी हो! नहीं कभी चूका है तीर,
आओ बुझा तुरत चिनगारी जीत मुनीमन मनमथ वीर!
चला काम ले कुसुम-सराशन पहुँचा जहाँ मुनी का वास,
प्रिय वसंत की शोभा छाई उड़ने लगी सुगंध-सुवास।
कामग्रसित सब हुआ चराचर ऐसी की माया विस्तार,
करने लगे सुभग आलिंगन सभी मार की खाकर मार।
संगम जब पराग केसर का हुआ पुष्परज से मिलकर,
मधुकर ने मिल किया त्रिवेणी, फल दे गोद दिया है भर।
उठती यौवन की कलियों को पवन छेड़ता है छूकर,
लतिका हिलमिल झूल रही हैं खिल-खिलकर तरुशाखा पर।
सब पर चढ़ा रंग क्रीडा का, उठी मृगी, मदभरे कुरंग,
देख सरोज-उरोज मनोहर ताल हृदय में उठी तरंग।
है पर्वत की राल टपकती देख गोद में खिले सुमन?
या गिरि से निर्झर गिर-गिरकर सुना रहा अपना क्रंदन?
समा बँधा था रहसरंग का सुख का था सब साज सजा,
लगीं सुनाने गीत मुनी को अप्सराएँ आकर गा-गा।
चढ़ी-बढ़ीं नदियाँ बलखातीं मद में छकीं भरा अंग-अंग,
कलकल करके लगीं थिरकने गला मिला सखियों के संग।
लय सुनकर लयहुए सभी सुर बोल बाँध जब लिया अलाप,
धार थम गई सम पड़ते ही दी जो मृदअंगों पर थाप।
सारंग में उट्ठी स्वरलहरी देने लगे ताल भी ताल,
जलतरंग सुन दहिने - बाएँ ताली दे-दे झूमे साल।
सजीं सुंदरी प्रकृति-साज में पिकबैनी कोकिलकंठा,
भाव बताकर हाव-भाव से लगी रिझाने मन मुनि का।

अप्सरादि ने बहुत चलाए विष के बुझे काम के तीर,
आग लगा दी बुझे शरों ने प्रज्वलित कर मनोज की पीर।
पर माया यह तनिक न व्यापी कर न सकी विचलित मुनि-मन,
बैठे रहे शांति को धारे निश्चल मारे ही आसन।
बनीं गले का हार लिपटकर नाच-नाचकर तोड़ी तान,
खाई हार न तोड़ सकीं सब तान तोड़कर मुनि का ध्यान।
कुम्हला गया फूल-सा चेहरा, फूली साँस, हुई सब शल,
हाथ-पाँव फूले, गाढ़े में पड़ीं गुलबदन, कर मल-मल।
नहीं उठा रक्खा मनमथ ने गली नहीं उसकी कुछ दाल,
तान-तान कितने शर मारे हुआ न मुनि का बाँका बाल।
पानी घड़ों पड़ा रतिपति पर, लटक गया इतना-सा मुँह,
डूब गया बेपानी होकर क्या दिखलाए अपना मुँह।
पाँसा पलट गया था अब तो, गए जीतने, पाई हार,
आँखें नीची किए लाज से चरणों में बैठा मन मार।
कुंठित हुए पंचशर उसके उलटा चढा उसी पर चाप,
काँप गया मुनि श्राप न दे दें, लोट गया सीने पर साँप।
बार-बार स्तुति-विनती कर नाक रगड़कर पकड़ा कान,
भूल हुई है हमसे भारी क्षमा कीजिए कृपानिधान।
गर्व खर्व कर दिया हमारा भला किया तुमने हे तात,
जब पहाड़ के नीचे आए तब समझे अपनी अवकात।
मैं मर गया शर्म के मारे मरे हुए को मारे क्या,
चूक हुई है क्षमा कीजिए दयावान हो करो दया।
विनती सुन हँसकर ऋषि बोले क्षमा किया तुमको इस बार,
भूल इधर जो पाँव दिया फिर तो आफ़त समझो तुम मार।
जान बचाके चुपके उठके चलता हुआ मैन तत्काल,
जाकर सुरपति से बतलाया मुँह की खाने का सब हाल।
नारदमुनि भी उठे गर्व से जीत काम को शंकर-सा,
सोचा सिवा हमारे कोई जीत सके मनसिज बिरला।
चलो ज़रा शंकर से मिल लें वह भी होंगे चकित विशेष,
आँख बंद कर क्षण में पहुँचे जहाँ उमा-सँग रमे महेश।
आदर से बैठा नारद को पूछी शंकर ने कुशलात,
हँसते-हँसते बड़े गर्व से कह दी कामविजय की बात।
भोलानाथ विहँसकर बोले आप कहाँ और कहाँ मदन,
उसको क्या सूझी थी आख़िर जो देने आया गर्दन।
नहीं आपके लिये बड़ी है इतनी छोटी-सी यह बात,
ढुलक गया आँसू बनकर वह ज्यों पानी छू पुरइनपात।
स्वयंसिद्ध है नियम सदा यह मुनिमन को नहिं व्यापे काम,
फिर इसका कहना ही क्या है, नाम छोड़िए कहिए राम!
कुछ विक्षुब्ध हो मुनी सिधारे उन्हें न भाया शिव का ज्ञान,
ईर्षा बस यह नहीं देख सकते हैं, सोचा, कीर्ति महान।
यह समझे थे यही एक हैं मदन-दहन करनेवाले,
नहीं जानते थे नारद भी हैं आफ़त के परकाले।
चलूँ मिलूँ चतुरानन से तो देखें वह कहते हैं क्या,
विस्मित होंगे वह अवश्य ही सुनकर मेरी नई कथा।
ब्रह्मलोक पहुँचे निमेष में आसन दे विधि बोले आव,
बहुत दिनों के बाद किधर से भूल पड़े नारद महराज!
नारद बोले दर्शन करने यों ही आए इधर निकल,
चला कहाँ से? क्या बतलाऊँ? पड़ा पेट में हँसते बल।
हिमगिर के इक उच्च शृंग के अंचल में सरिता के तीर,
दीपशिखा को करे न चंचल, रोक एकदम स्वाँस समीर।
करता था तप, इसी बीच में किया काम ने बहुत प्रयत्न,
मेरा तपोभंग करने में उठा न रक्खा कोई यत्न।
किंतु न फँसा जाल में उसके अपना-सा मुँह ले भागा,
ठीक वहीं से आता हूँ मैं अभी ध्यान से हूँ जागा।
धन्य-धन्य हो मुनिवर तुम भी जीता खूब काम को धन्य,
तुम्हें छोड़कर शायद कोई, कर पावे यह कार्य जघन्य।
कहना मत विष्णू से ऐसा अवश बुरा वह मानेंगे,
स्वयं नहीं ऐसा कर पाते यह कटाक्ष वह जानेंगे।
अच्छा कह नारदजी आए जहाँ विष्णु करते थे सैन,
मिले प्रसन्नवदन लक्ष्मीपति कुशल-क्षेम पूछा मृदुबैन।
कह डाली सब रामकहानी नारदजी ने गर्वसहित,
कहा रमापति ने खुश होकर भला आपसे हो अनुचित!
बीन बजाकर आप नचावें काम-सरीखे कितने नाग,
मसल दिया होता चुटकी में आया था जो करने लाग।
यह सुन फूले मुनी सिधारे, सिर में भरा विजय-अभिमान,
पैर नहीं पड़ते थे भू पर था दिमाग़ पहुँचा असमान।
उगता देख भक्त के मन में अहंकार का अंकुर शूल,
किया विचार विष्णु ने इसको युक्ती से कर दूँ निर्मूल।
माया से बस तुरत बसाया, सुंदर रम्य मनोहर पुर,
जिसकी शोभा देख-देखकर लज्जित होता था सुरपुर।
प्रजा सुखी थी भूप शैलनिधि करता रहा प्रेम से राज,
उसी नगर में अकस्मात् ही आ पहुँचे नारद महराज।
रचा स्वयंवर था कन्या का राजा ने कर बहुत उछाह,
देश-देश के भूप आनकर लगे भाग की लखने राह।
पहुँचे नारद तो राजा ने बैठाकर आदर के साथ,
छूकर चरण, सुता का अपने लगे दिखाने मुनि को हाथ।

कहा भाग्य इसका तो कहिए कृपा दिखाकर करो कृतार्थ,
जो विधि ने लिख दिया हाथ में बतला दीजे हमें यथार्थ।
रूप सरोवर से कोमल कर कमलकली-सा उठा सनाल,
कुछ सकुचा, कुछ अंचल देखे, तिरछे लख सखियों को बाल।
पितु-आयसु से लगी दिखाने मुनि नारद को अपना हाथ,
वाम हथेली लगे देखने मुनिवर थाम हाथ में हाथ।
आँख गड़ाकर रेखाओं में, नचा-नचाकर पुतली को,
पढ़ने लगे हस्तरेखा को मुनिवर मंत्र मुग्ध-सा हो।
देख-देख रेखाएँ कर की खींच-खींचकर सुंदर चित्र,
आह खींचकर चित्र खिंचे-से खड़े रहे, थी दशा विचित्र।
जौ-रेखा की चाल देखकर उस बाला के हाथों में,
मलकर हाथ लगे घबड़ाने, मन न रहा निज हाथों में।
देखी मीन तैरती, उसकी कोमल सुघर हथेली में,
तड़प गए मछली-सा सोचा रखकर प्राण हथेली में।
फँसा लिया इसने मन मेरा फाँसू इसे लगा बंसी,
पा जाऊँ तो मौज उड़ाऊँ बजे चैन की फिर बंसी।
कमल-पुष्प पर मधुप हृदय यह इकदम हुआ निछावर है,
सामुद्रिक से निकल रहा यह भाग्यवान् इसका वर है।
प्रभु कैसे यह बरूँ कुमारी गजगामिनि यह आवे हस्त,
पी प्याला मदभरे नयन का हो जाता हूँ मैं मदमस्त।
क्या बतलाऊँ पा जाऊँ यदि विष्णु का मैं रूप ललाम,
तो पहिना देगी मोहित हो वरमाला मुझको यह वाम।
आँखें भर-भर देख प्रिया को नयन बंद कर लूटा सुख,
खींची जो तसवीर हृदय पर उतर गया अपना ही मुख।
देख मौन मुनिवर को इकदम, ठंढी ही निश्वासें छोड़,
विनयपूर्वक पूछा नृप ने छूकर चरण युगल कर जोड़।
हे मुनिनाथ नहीं कुछ कहते मेरे सुताभाग्य का हाल,
तुम त्रिकालदर्शी हो सब कुछ जान लिया होगा तत्काल।
फिर इतना संकोच मुनी क्यों, भला-बुरा जो कुछ हो फल,
कह दीजे विधि ने जो लिक्खा, इसमें किसका चलता बल।
यदि ललाट में दुःख लिखा है, नहीं कभी सकता है टल,
जो गृह हो बलवान बाल के तो कुदृष्टि नहिं सकती चल।
चौंक पड़े नारद सुन बानी मन में कुछ लज्जित होकर,
सोचा कैसी भूल हुई है, पाया क्या मन को खोकर।
बोले तुरत सँभल भूपति से भाग्यवान् यह है बाला,
होगा अमर अजर विजयी वर, जिसे पिन्हाएगी माला।
अचल रहे सिंदूर माँग में मनमोहन यह पावे वर,
वर देकर मुनिराय सिधारे चिंतित-हृदय झुकाए सर।

गुरुभक्तसिंह "भक्त"

माया

आशा नियराती न, निराशा नहिं आती पास,
काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद गुरु गरते;
धरते 'विसारद' न चिंता चित एकौ याम,
भारी भोग यातना के भाव न अखरते।
आनँद-लहरि बने ब्रह्म में विलीन होते,
शुद्ध एकरस सब काल मैं ठहरते;
लहि-लहि जन्म हम मरते न बार-बार,
एरे माया-जाल ! तेरे फंद जो न परते।

बलदेवप्रसाद टंडन 'विशारद'

बाबूजी की सोहागरात

मोहिनी बाल-विधवा थी। उसके पिता श्रीअवनीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय बनारस के समृद्धिशाली एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से थे। अवनीन्द्र बाबू के शहर में कई मकान थे, कुछ ज़मींदारी थी तथा पास में नक़द रुपया भी बहुत था। वे कट्टर सनातनधर्मावलम्बी हिंदू थे। विधवा-विवाह तथा शुद्धि आदि नवीन योजनाएँ सुनकर उनके शरीर में आग लग जाती थी। उनकी एकमात्र संतान मोहिनी दुर्भाग्यवश ७ वर्ष की आयु में ही, विवाह के एक मास पश्चात्, विधवा हो गई थी। बालिका मोहिनी को अपने वैधव्य तथा उसकी भाविनी यातनाओं का कुछ भी ज्ञान न हुआ। अपने विवाह को तो उसने एक बृहत् मनोरंजन का आयोजन समझकर खेल-कूद में ही बिता दिया और एक मास पश्चात् जब उसकी मा उषा अपनी एकलौती संतान को गोद में ले बार-बार उसका चुंबन करती हुई आर्तनाद से रोती थी, उस समय सरल-हृदया बालिका नवजात मृगशावक की तरह अपनी मा को एकटक देखती हुई उसके कपोलों पर हाथ फेरकर उसे आश्वासन देने का यत्न करती रही। मोहिनी यह न समझ सकी कि वैधव्य क्या होता है और उस दिन जो लड़का पीले कपड़े पहनकर उसके साथ खेलने आया था, उसे याद करके मा क्यों रोती है। आज मोहिनी अपनी मा के रोने का कारण भी नहीं समझ सकी। उसे इस बात का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं कि उसके ऊपर भीषण वज्रपात हो चुका है और अब उसे जीवनपर्यंत हिंदू-पिता के घर में जन्म लेने के कलुषित पाप का भयंकर परिणाम भोगना पड़ेगा। जब उसकी मा देर तक चुप नहीं हुई, तो बालिका का धैर्य जाता रहा। वह किसी प्रकार अपनी मा की गोद से उठकर भाग गई और बाहर लड़कियों के साथ दूल्हा-दुलहिन का खेल खेलने लगी।

× × ×

मोहिनी को विधवा हुए कई वर्ष व्यतीत हो गए। धीरे-धीरे उसने बाल्यकाल की मुग्धावस्था को समाप्त कर युवावस्था में पदार्पण किया। उसके अंग-प्रत्यंग नवविकसित कलियों की भाँति खिलने लगे तथा उसके बोलचाल में बाल्य-सुलभ चंचलता दूर होकर लज्जा का संचार होने लगा। बाल्यावस्था में ही वह अतीव सुंदरी थी, युवावस्था के समागम से उसका सौंदर्य खिलकर चमक उठा। उसका गौर मुखमंडल पूर्ण शरद्चन्द्र के समान शुभ्र निर्मल था तथा वस्त्राभूषणों से अत्यंत सुसज्जित न होते हुए भी उसका लावण्य दर्शकों को विमुग्ध कर देता था। मोहिनी को विधाता ने वास्तव में विशेष मोहिनी रूपराशि प्रदान की थी। उसने १६वें वर्ष में पदार्पण किया। अपनी सखियों तथा पड़ोसियों की विवाह-संबंधी बातें सुनकर उसे अपने वैधव्य का अनुभव होने लगा। उषा अपनी कन्या की अलौकिक रूपराशि को सौभाग्यहीन देखकर मन-ही-मन अत्यंत दुःखी हुआ करती थी। उसे रात-दिन यही चिंता रहती थी कि अब तक तो इस भुवनमोहिनी ने अपना वैधव्य खेल-कूद में ही व्यतीत कर दिया है; पर अब युवा होने पर वह इस वज्रपात को कैसे सहन कर सकेगी। उषा की हार्दिक इच्छा थी कि मोहिनी का दूसरा विवाह हो जाय; पर बाबूजी (अवनीन्द्र बाबू) के कारण वह इस प्रस्ताव के उठाने में भी डरती थी। अब मोहिनी को पूर्ण ज्ञान हो गया था कि विधवा होना क्या होता है तथा वह बाल-विधवा है। अपनी सखियों के विवाह को वह बड़ी उमंगों के साथ देखती थी और अपने अंधकारमय भविष्य को विचारकर कभी-कभी घंटों तक विचारसागर में डूबी रहती थी। उषा से अपनी कन्या का दुःख न देखा गया और मातृप्रेम के वश में उसने एक दिन साहस करके बाबूजी से भोजन करते समय मोहिनी के विवाह का प्रस्ताव कर ही डाला। बाबूजी खाना-पीना भूल गए और तपाक के साथ बोले—

"पागल हो गई है? विधवा-विवाह शास्त्रनिषिद्ध है। मोहिनी का दूसरा विवाह करने से मा-बाप को नरक में जाना पड़ेगा। हम किसी को मुँह दिखलाने के योग्य न रहेंगे। जब मोहिनी स्वयं इतनी अभागिन है कि

विवाह के एक मास बाद ही पति के मरने का कारण हुई, तो क्या बार-बार विवाह करने से इसका भाग्य फिर जायगा ?"

"मुझे नरक में जाना पड़ेगा, तो मैं सहर्ष चली जाऊँगी; पर इस लोक में ही अपनी नवविकसित कुसुम-कली-सी मोहिनी को नरक की यातना सहते मैं नहीं देख सकती। मेरी मोहिनी का सुहाग बचपन में ही पुँछ गया, उसने दुनिया नहीं देखी। क्या विधाता ने यह अनुपम सौंदर्य केवल इसकी व्यथा बढ़ाने को ही दिया है ? मैं तो उसे जीवनपर्यंत ऐसा नहीं देख सकती।"—यह कहकर उषा ने अपने प्रस्ताव का फिर समर्थन किया। अपनी स्त्री की ऐसी घृणित बातों को सुनकर बाबूजी का खून उबलने लगा और आवेश में थाली फेंककर उन्होंने चौके से जाते हुए कहा--

"चाण्डालिन, मोहिनी को लेकर घर से निकल जा। एक आदमी अपने लिये रख लेना और अपनी लाड़ली छोकरी का भी दूसरा विवाह कर देना। मेरा मुँह काला करने के लिये यहाँ मत रह।"

बाबूजी के जाते ही उषा रोने लगी। मोहिनी किवाड़ की ओट से सब वार्तालाप सुन रही थी। अपनी मा को रोते देखकर वह आ गई और उसे आश्वासन देने का यत्न करने लगी। उषा अपनी कन्या के सम्मुख रोना अनुचित समझकर तुरंत ही आँसुओं को पोंछकर कार्य में लग गई। मोहिनी के मानसपटल पर इस वार्तालाप ने चिरकाल के लिये गहरा घाव कर दिया। वह न-मालूम रात-दिन क्या सोचा करती थी। एक ओर तो उसकी मा उसके वैधव्य के कारण दुःखी रहती है, दूसरी ओर उसके बाबूजी पुनर्विवाह के विचारमात्र से ही समाज तथा नरक से डरते हैं, ऐसी दशा में मोहिनी की वैधव्य-व्यथा द्विगुणित हो उसे भयानक वेदना पहुँचाने लगी।

छः मास बीत गए। उषा एक मास से बड़ी रुग्ण थी, आज रात्रि को एकाएक वह सांसारिक सुख-दुःखों से मुक्त होकर स्वर्गधाम को सिधार गई। मोहिनी का अब इस संसार में कोई नहीं रहा। आज उसने अपने वैधव्य की पूर्ण वेदना अनुभव की। रोते-रोते उसके सुन्दर विशाल कमल-नेत्र सूज गए, उसका चारु चन्द्रानन मलीन हो गया; पर उसके चित्त को शान्ति न हुई। मोहिनी खेलना-कूदना भूल गई। अब वह रात-दिन बाबूजी की सेवा में लगी रहती थी।

× × ×

आज बाबू अवनीन्द्रनाथ का विवाह है। उनकी पहली पत्नी का देहावसान हुए पूरे साढ़े तीन मास से भी अधिक हो गए। अब बाबूजी से विना विवाह किए न रहा गया। बड़ी धूमधाम से सबेरे साढ़े छः बजे की गाड़ी से बरात इलाहाबाद गई। बरात जाने के समय मोहिनी अपने बाबूजी को नए वेश में बड़ी देर तक देखती रही। चार दिन बाद बाबूजी अपनी चतुर्दशवर्षीया नवविवाहिता वधू कुसुम के साथ घर लौट आए। आज सुहागरात है। पास-पड़ोस तथा संबंध की स्त्रियाँ दिन-भर मंगल-गान तथा हास्य-विनोद करती रहीं। घर में चारों तरफ़ चहल-पहल मची है, पूरी-पकवान बन रहे हैं, नौकर-चाकर भाई-बन्धु नातेदार सभी के मुख पर एक अपूर्व प्रसन्नता की झलक दिखाई पड़ती है। ऐसे समय में मोहिनी एक कमरे में पड़ी विचारसागर में निमग्न है। आज उसे बाबूजी का अपनी मा के साथ चौकेवाला वार्तालाप बार-बार स्मरण हो आता है। मा की याद कर उसका हृदय उससे मिलने के लिये छटपटाने लगा। उस दिन चौके की बात सुनकर वह अपने बाबूजी पर इसलिये श्रद्धा करने लगी थी कि वे अपने धर्म पर दृढ़ हैं तथा हिंदूशास्त्रानुसार अपनी विधवा कन्या का दूसरा विवाह नहीं करना चाहते। पर आज मोहिनी के हृदय में बाबूजी के प्रति घृणा हो गई। वह बाबूजी तथा हिंदू-समाज दोनों को बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखने लगी। बाबूजी तीन मास भी विना विवाह किए नहीं रह सके; पर उसे आजन्म वैधव्य-दुःख भोगना ही शास्त्रसम्मत है। ऐसे शास्त्रों को वह थोथे क़िस्से-कहानियों की पुस्तकें समझने लगी। हिंदूसमाज का रहस्य वह समझ गई--पाखंडी, स्वार्थलोलुप, मायावी पुरुषों की अधिकता। इस प्रकार मोहिनी के विचारों में आज एक भयानक परिवर्तन हुआ। अभी तक वह अपने वैधव्य-दुःख को सुखपूर्वक सहन करना एक परम पुनीत कर्तव्य समझती थी। पर आज वैधव्य को अपने ऊपर एक घृणित सामाजिक अत्याचार समझकर, वह समाज तथा लोक-लाज की बेड़ियों को तोड़कर फेंक देने का उपाय सोच रही है। जो घड़ी बाबूजी के जीवन की सौंदर्यमयी

शुभ्र सोहागरात है, वही मोहनी के जीवनपथ के लिये घनघोर घटायुक्त पावस अमावास्या की काली अँधेरी रात्रि है ।

× × ×

करुणेशनंदन चट्टोपाध्याय के पिता पोस्टआफ़िस में नौकर थे । क़रीब डेढ़ वर्ष हुआ, वे मिर्ज़ापुर से बदलकर बनारस आ गए थे। उन्होंने अवनींद्र बाबू के पड़ोस में एक मकान किराए पर ले लिया था तथा उनके दूर के रिश्तेदार भी थे। करुणेश एफ़० ए० में पढ़ता था। रूपवान् न होने पर भी उसमें यौवन-सुलभ ठाटबाट तथा विलासिता की कमी नहीं थी। वह बाबूजी के घर प्रतिदिन आया करता था और धीरे-धीरे घर के भीतर भी बेरोक-टोक आने-जाने लगा था । मोहिनी की मा उषा उसे पुत्र के समान प्यार करती थी । मोहिनी की अतुल रूपराशि देखकर करुणेश का चंचल मन उन्मत्त हो उठा और वह उषा की आँख बचाकर मोहिनी की रूपसुधा-पान कर अपने तृषित नेत्रों को तृप्त करके संतुष्ट न हुआ। ज्यों-ज्यों वह मोहिनी को देखता था, उसकी रूप-पिपासा शान्त होने की अपेक्षा द्विगुणित होती जाती थी । शनैः-शनैः करुण मोहिनी के साथ हास्य-विनोद तथा वार्तालाप करने का यत्न करने लगा । वह अवसर देखकर मोहिनी के सौंदर्य की प्रशंसा करता था। पर मोहिनी के शुद्ध मानस-पटल पर इन सब बातों का लेशमात्र भी प्रभाव न पड़ा। उसे अपने वैधव्य का ज्ञान हो चुका था। करुण से एकांत में बातचीत तथा हास्य-विनोद को वह अपने समान विधवा के लिये अत्यंत निंदनीय पाप समझकर सर्वदा उससे दूर रहने का यत्न करती थी। मोहिनी की उपेक्षादृष्टि ने करुण को पागल बना दिया । वह दिन में कई बार उषा के पास किसी-न-किसी बहाने से आता था। पर मोहिनी अपने पथ से विचलित नहीं होती और आँख उठाकर भी करुण की ओर नहीं देखती थी ।

× × ×

बाबूजी की सोहागरात हुए कई मास बीत गए। वे अपनी नव-विवाहिता कुसुम के प्रेमपाश में बद्ध हैं। कुसुम मोहिनी की मा है; पर उसमें वात्सल्य नहीं, यौवन-सुलभ चंचलता है ; उसमें शांति नहीं, तृष्णा है; उसमें मोहिनी के प्रति सहानुभूति नहीं, अपितु उसको उत्तेजित करनेवाले हाव-भाव तथा मादकता भरी है । बाबूजी तथा कुसुम के निरंतर प्रेमालाप तथा व्यंग-विनोद से मोहिनी के हृदय में वासना की जागृति होना प्रारंभ हो गया। बाबूजी की सुहागरात के दिन जो भयानक मानसिक परिवर्तन मोहिनी के विचारों में हुए थे, अब अपनी नवीन छोटी-सी मा के शृंगार तथा आमोद-प्रमोद को देखकर वह उन विचारों को कार्यरूप में परिणत करने का यत्न करने लगी। धीरे-धीरे उसकी लज्जा कम हुई, भय जाता रहा तथा हृदय में साहस का संचार हुआ। अभी तक तो उसकी दृष्टि नीचे की ओर रहती थी; पर अब करुण के आते ही मंदहास्य से उसका स्वागत कर मंत्रमुग्ध की भाँति उसे देखा करती थी । मोहिनी का चिंतित दुःखी मुखारविंद करुण को देखकर प्रसन्न हो उठता था; मंद मुसकराहट से उसका सौंदर्य द्विगुणित हो करुण के हृदय को प्रफुल्लित कर देता था। बाबूजी की सोहागरात उसके मानस-पटल पर अंकित हो चुकी थी । सोहागरात के एकांत-मिलन का सुख अनुभव करके बाबूजी की भीरुता, अन्याय तथा समाज के अत्याचारों का कठोर बदला लेना ही एकमात्र उसके जीवन का उद्देश्य था। इधर बाबूजी अपनी नवीन कुलवधू, मोहिनी की नन्हीं-सी मा, चतुर्दशवर्षीया कुसुम के रंग में इस प्रकार रँगे हुए हैं कि उन्हें इस आवरण के कारण मोहिनी के नवीन पथ का कुछ भी ज्ञान न हुआ।

× × ×

मोहिनी के वैधव्य-दुःख तथा उसकी मनोहारिणी सरल सौन्दर्यमयी मूर्ति ने शनैः-शनैः करुण के हृदय में रूपतृष्णा के स्थान पर प्रेम, सहानुभूति तथा श्रद्धा का संचार कर दिया। करुण पूर्ण युवक है। मोहिनी की दुर्दशा देखकर उसका दिमाग़ हिंदू-समाज की कुप्रथाओं के प्रति यौवन-सुलभ विद्रोह से भर गया। मोहिनी के वैधव्य ने करुण के नेत्रों के सामने लाखों हिन्दू-विधवाओं के जीते-जागते नारकीय जीवन का चित्र चित्रित कर दिया । हिंदू-विधवाओं पर होते हुए अन्याय, अत्याचार और निर्दयता के दृश्यों ने करुण को समाज के प्रति विद्रोह तथा ग्लानि से उन्मत्त कर दिया। वह घंटों तक अपने पढ़ने के कमरे में पुस्तकें बंद किए बैठे-बैठे हिंदू-समाज की वर्तमान दुर्दशा पर विचार किया करता था। ७ वर्ष की विधवा यदि युवावस्था प्राप्त

होने पर मुसलमान के साथ अपना जीवन व्यतीत करने में ही सुख समझती है, तो किसके अपराध से ? युवती विधवा यदि भ्रष्टाचरण की होकर भ्रूणहत्या तथा वेश्या-वृत्ति की ओर अग्रसर होती है, तो इसका पाप किसके ऊपर है ? मोहिनी हिमाचल के उत्तुङ्ग शिखर पर विद्य-मान शुभ्र हिमकण के समान पवित्र और निर्मल है; उसका अधःपतन अवश्यम्भावी है, इसका उत्तरदायित्व किस पर होगा ? निस्सन्देह ! उसके बाबूजी पर !! इस कलंकी हिंदू-समाज पर !!! इन विचारों ने करुण को उत्तेजित कर दिया । उसने मोहिनी के उद्धार का संकल्प कर लिया ।

× × ×

रात्रि के दस बज चुके हैं । बाबू अवनीन्द्रनाथ ८॥ बजे से ही अपनी अल्पवयस्का नववधू के साथ अटारी पर चले गए हैं । प्रेमालाप तथा हास्य-व्यंग-विनोद के बाद बाबूजी को प्रगाढ़ निद्रा ने आ घेरा । नौकर-चाकर सब यथास्थान सो रहे हैं । घर की महरी आँगन में जाग रही है । मोहिनी घर के पिछेवाले बैठके में खड़ी-खड़ी करुण के आने की प्रतीक्षा कर रही है । वह ठीक ग्यारह बजे आने का वचन दे गया है । उसके आने में घंटे-भर की देर है । मोहिनी अपने भविष्य जीवन पर विचार करने लगी—"क्या यह अनुपम सौन्दर्य, यह दुर्लभ जीवन सब व्यर्थ ही जायगा ? मैं बाल-विधवा हूँ; पर इसमें मेरा क्या दोष ? क्या एक पति के मरने पर दूसरा विवाह नहीं हो सकता ? क्या दूसरा विवाह करने से स्त्रियाँ नरक को जाती हैं ? नहीं ! नहीं ! यदि ऐसा होता, तो नरक में तिल रखने की भी जगह नहीं रहती । हिंदुओं को छोड़-कर अन्य सब धर्मावलंबियों में विधवाओं के विवाह होते हैं । पाश्चात्य देशों में प्रति दिन लाखों विधवाएँ विवाह करती हैं । हज़ारों मुसलमान-युवतियाँ पति के मरने पर विवाह करती हैं । क्या ईश्वरीय पाप-पुण्य के नियम भी हिंदू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी तथा अन्य लोगों के लिये पृथक्-पृथक् हैं ? कभी नहीं ! ऐसा नहीं हो सकता । फिर, यदि पाश्चात्य देश की स्त्रियाँ तथा मुसलमान-विधवाएँ सैकड़ों पतियों के बरने पर भी नरक को जाकर नहीं भर देतीं, तो क्या नरक केवल हिंदू-स्त्रियों के लिये ही बनाया गया है ? हिंदू-समाज ने, मेरे मूर्ख अज्ञानी पिता ने बाल्यकाल में ही मेरा विवाह करके अन्याय तथा घोर पाप किया है । उसके लिये मैं अपना सम्पूर्ण जीवन कष्टमय बनाकर सांसारिक सुखों से वंचित क्यों रहूँ ? पुरुष की स्त्री मरने पर वह लगातार विवाह करता ही चला जाता है ; पर स्त्रियाँ दूसरा विवाह नहीं कर सकतीं । ओह ! कितनी स्वार्थपरता है । कितना अन्याय है । मेरे बाबूजी ने मेरी मा के स्वर्गारोहण के तीन मास बाद ही एक बालिका को मेरी मा बनाकर घर में सोहागरात मनाई, पर मेरे विवाह से उन्हें नरक का भय लगता है, हिंदू-समाज के सामने मुँह काला हो जायगा, वे जात-बिरादरी से पृथक् हो जायँगे । छिः ! छिः !! धिक्कार है इस हिंदू-समाज को ; यहाँ स्त्रियों का आदर नहीं । यदि मेरा वश चले, तो घड़ी-भर के भीतर ऐसे हिंदुओं को बीन-बीनकर, रसातल पहुँचाकर इस पृथ्वीतल से ऐसे स्वार्थलोलुप, अन्यायी तथा पाखंडी समाज का नाम-निशान ही मिटा दूँ ।" इस प्रकार हिंदू-समाज को सैकड़ों गालियाँ देते हुए मोहिनी ने अंत में यही निश्चय किया कि "जो कर रही हूँ, वही उचित है; जो विचारती हूँ, वही श्रेयस्कर है तथा भविष्य में इसी में सुख है ।" ठीक इसी समय किसी ने धीरे से किवाड़ पर शब्द किया । मोहिनी सोते से जाग-सी उठी ; उसकी विचारावली भंग हो गई । करुण ने भीतर प्रवेश किया । मोहिनी महरी को सतर्क रहने का आदेश कर बैठकख़ाने में लौट आई ।

"तो अब देरी किस बात की है"—यह कहकर मोहिनी करुण के गले से लिपट गई ।

"मैंने आज तुम्हें अपने साथ ले चलने का वचन अवश्य दिया था, पर मैं बड़े असमंजस में हूँ । तुमको लेकर कहाँ जाऊँगा, कहाँ रहूँगा । इस घर से बाहर पैर रखते ही हम लोग अस्पृश्य तथा निंदनीय हो जायँगे और हमें भागकर किसी दूसरे शहर में कष्टमय जीवन व्यतीत करना पड़ेगा । उस दशा में तुम्हारे कष्ट को न देख सकूँगा । तुम्हारे सुख के लिये मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ, पर मुझे निश्चय है कि इस घर से ले जाकर मैं तुम्हें तृण-मात्र भी सुख और शांति न दे सकूँगा । शीघ्रता करने से पछताना पड़ेगा । इसलिये हमें विचार-पूर्वक कार्य करना चाहिए । धैर्य और शांति से काम लो, ईश्वर अवश्य तुम्हारा साथ देगा ।" मोहिनी को आज फिर निराश होना पड़ा । वह किवाड़ बंद कर दर्दभरी

आवाज़ से धीरे-धीरे रोती हुई पलँग पर जाकर लेट गई । निद्रा देवी ने भी हतभागिनी की सहायता नहीं की ।

× × ×

हनीफ़ बाबूजी के पड़ोस में रहनेवाले एक मुसलमान-सौदागर का लड़का था । वह एक सुंदर तरुण युवक था । उसका दोहरा शरीर अत्यंत गौर वर्ण तथा आकृति बड़ी ही लावण्यमयी थी । वह जितना ही रूपवान् था, उतना ही विलासी तथा दुर्व्यसनी था । मोहिनी को दूर से देखकर वह हाव-भाव द्वारा उसे अपने मायाजाल में घसीटने का यत्न बहुत दिनों से करता रहा था । अपने मकान की छत पर जाकर वह अनेकों इशारे करता था, सीटी बजाता था तथा मोहिनी को छत पर देखकर गाना गाने लगता था । मोहिनी के दर्शन-मात्र से ही हनीफ़ उन्मत्त होकर मन-ही-मन कहता था कि इसकी यौवन-कलिकाओं के विकास और सुंदर रूपराशि के सामने सुर-सुंदरियों का सौंदर्य भी लज्जित होता है ; उसके अंग-प्रत्यंग में एक अलौकिक लावण्य क्रीड़ा कर रहा है । हनीफ़ ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि किसी-न-किसी प्रकार इस रूपसुधा का पान अवश्य करेगा । मोहिनी को बाल-विधवा जानकर उसका आशालतांकुर लहलहा उठा था; पर मोहिनी की नीरस उपेक्षा दृष्टि ने उसे अधीर कर दिया; वह रात-दिन मोहिनी के रूप-पाश में बद्ध रहता तथा उसे प्राप्त करने के उपाय विचारा करता था ।

× × ×

करुण को मोहिनी के उद्धार का कोई सरल उपाय समझ में नहीं आया, इसलिये उसने यह विचारा कि यदि वह मोहिनी के घर जाना छोड़ दे, तो वह फिर पहले की तरह अपने वैधव्य में ही सुख समझने लगेगी । करुण यह समझता था कि मोहिनी के मानसिक परिवर्तन का कारण वह स्वयं है । उसे बाबूजी की सोहागरात के दिन मोहिनी के मन में पैदा हुए विषवृक्ष का कुछ भी पता नहीं था । अपने को ही दोषी ठहराकर इस विचार से कि मोहिनी उसे भूल जाय, उसने बाबूजी के घर जाना बिलकुल छोड़ दिया । करुण को मोहिनी के उद्धार की इच्छा थी, पर शक्ति नहीं थी । वह समाज से डरता था; रोटी का प्रश्न उसके सामने था । करुण ने मोहिनी को समाज की अत्याचारपूर्ण बेड़ियों से जकड़ा देखकर बड़ी वेदना अनुभव की, पर उसे उन बेड़ियों से मुक्त करने के प्रयत्न में अपने ही बँध जाने की आशंका ने उसका साहस तोड़ दिया और वह चुप होकर बैठ रहा । कई मास बीत जाने पर भी जब करुण न आया, तो मोहिनी उसे कायर तथा स्वार्थलोलुप समझकर बिलकुल भूल गई । पर बाबूजी की सोहागरात उसे नहीं भूली थी । हिंदुओं से तथा हिंदू-समाज से वह निराश हो चुकी थी । निदान उसके हृदय में हनीफ़ के सौंदर्य तथा प्रेम ने स्थान करना प्रारंभ कर दिया । छत पर जाकर घंटों तक उससे इशारों से बातचीत करके ही वह अपने को धन्य समझती थी । जिस हनीफ़ को वह एक धूर्त तथा नीच पुरुष समझती थी, जिसकी ओर वह नेत्र उठाकर देखना भी पाप समझती थी, आज उसी हनीफ़ को बिना देखे मोहिनी को चैन नहीं पड़ता । हनीफ़ के कुत्सित भ्रूभंग का अपनी मंद मुसकराहट से उत्तर देकर वह अपना जीवन सफल जानती थी । पर इतने से न तो हनीफ़ को संतोष था, न मोहिनी को शांति थी ।

× × ×

अमावास्या की काली अँधियाली रात है । घंटेघर से टन-टन टन-टन होकर १२ बजने की सूचना मिली । छोटी-छोटी बूँदे कभी-कभी गिरने लगती हैं, ठंडी हवा चल रही है । बाबूजी नीचे बरामदे में अचेत सो रहे हैं । मोहिनी दुमंज़िले पर अपनी छोटी कोठरी में एक धीमी मोमबत्ती की रोशनी में बैठी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो रही है । आधीरात बीत जाने पर इस वेशभूषा के धारण करने में अवश्य कोई रहस्य होगा । एक अत्यंत सुंदर किनारी लगी हुई मूल्यवान् रंगीन रेशमी साड़ी के ऊपर बारीक जाली का झालरदार पोलका सोने में सुगंध का काम कर रहा है । आज उसके सौंदर्य में एक तीव्र मादकशक्ति है । एक बड़े आईने के सामने खड़ी होकर मोहिनी अपने स्वर्गीय सौंदर्य की अनुपम छटा देखकर मन-ही-मन विचारने लगी—"आज धूर्त, बनावटी धर्मनिष्ठ हिंदू-समाज को दिखला दूँगी कि युवती विधवाएँ असहाय नहीं हैं, उन्हें अपने दूसरे विवाह के लिये हिंदू-समाज की खुशामद करने की, उसकी आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं । विधवाओं के सुख और ऐश्वर्य का मार्ग सरल और साफ़ है । आत्मघात करना पाप है, इसकी कोई आवश्यकता

नहीं; मा-बाप, ननद-भौजाई के अपमान सहन करने से कुछ काम नहीं । बस, त्याग—सब का त्याग ! बड़ी आशा थी कि इस बीसवीं सदी के नवयुवक डूबते हुए हिंदू-समाज की रक्षा करने में अपना तन, मन, धन लगा देंगे, पर व्यर्थ । उस कलमुँहे करुण को तो देखो; कितना भीरु, कितना कायर तथा कितना स्वार्थी निकला। वह केवल मेरे सौन्दर्य का भूखा था । मैं अपना जीवन, अपना लोक-परलोक सब उस पर निछावर करने को तैयार थी, पर मेरे विवाह के प्रस्ताव को सुनते ही वह अपनी भीरुता का परिचय देकर चुपचाप बैठ रहा । अहा! हनीफ़ कितना सुंदर है । उसके उस रमणीय स्वरूप, कान्तिपूर्ण उज्ज्वल मुख तथा मधुर कण्ठस्वर के सम्मुख मूर्तिमान् सौन्दर्य भी फीका लगता है । अपने सौभाग्य-सूत्र को उसके प्रेमसूत्र के साथ आबद्ध कर मैं स्वर्गीय आनन्द का उपभोग करूँगी । बाबूजी से और हिंदू-समाज से चिल्लाकर कहूँगी कि मेरे सुख और ऐश्वर्य को आँख खोलकर देखो और यदि बिलकुल बेशरमी धारण न कर ली हो, तो चुल्लू-भर पानी में डूब मरो ।" मोहिनी को इस प्रकार विचार-लहरों में डूबते-उतराते अपनी सुध-बुध भी नहीं रही । ठीक इसी समय कोठरी की पीछेवाली खिड़की पर एक तरुण युवक ने आकर मोहिनी का सुखस्वप्न भंग कर दिया । मोहिनी ने हनीफ़ का प्रेम से स्वागत कर ईश्वर को धन्यवाद दिया और उसकी सहायता से एक छोटी-सी भारी पोटली लेकर वह खिड़की से बाहर निकल गई । बीच के दो घरों की छतों पर होते हुए दोनों हनीफ़ के बैठकख़ाने में पहुँचे । बाहर सड़क पर एक बन्द गाड़ी खड़ी थी । माता-पिता तथा बंधुजन का मोह परित्याग कराके अत्याचार-पीड़िता बालविधवा मोहिनी को उसकी भ्रष्ट मति ने उसके सर्वनाश के लिये हनीफ़ के साथ गाड़ी में लाकर बिठला दिया । जिस समय गाड़ी अवनीन्द्र बाबू के घर के सामने से निकली, तो मोहिनी ने अपना सिर बाहर निकालकर मन-ही-मन बाबूजी को संबोधित करके कहा—

"ऐ अत्याचार और निर्दयता के पुतले, अब भी मोह-निद्रा त्याग दे । देख, मैं अपने ऊपर किए गए अन्याय और अत्याचार का पूरा प्रतिशोध कर चुकी । अब मैं वह मोहिनी नहीं, सलीमा हूँ ; अन्याय और यातनाओं को चुपचाप सहन कर घर के भीतर सिसक-सिसककर रोती हुई जीवन बितानेवाली अभागिन विधवा नहीं हूँ, अपितु ईश्वर के दिए अधिकार और सुखों को भोग करनेवाली तथा समाज के कट्टरपन को ठुकरानेवाली निर्भय-हृदया रमणी हूँ । यदि सौभाग्य से मरते समय होश में रही, तो ईश्वर से यही प्रार्थना करूँगी कि अगले जन्म में भूलकर भी मैं किसी ऐसे हिंदू के घर में पैदा न होऊँ ।"

× × ×

"निःसंदेह मोहिनी के अधःपतन का कारण मैं ही हूँ । उसकी कोठरी में मिले पत्र से यह स्पष्ट है कि वह किसी मुसलमान के साथ घर से निकल गई ।"—यह कहते हुए करुण एक ठंढी साँस लेकर आरामकुर्सी पर लेट गया । वह सोचने लगा—"यदि मैं समाज के डर से तथा घरद्वार के मोह से उस सुर-सुंदरी को निराश न करता, तो आज वह इस प्रकार विधर्मियों के मायाजाल में न फँसती । मेरी कल्पना कितनी निर्मूल थी; मैं समझता था कि मुझसे न मिलने से, वह स्वयमेव अपनी दशा में ही सुख समझने को बाध्य हो जायगी । मैंने यह जानते हुए भी कि वह निर्दोष है और समाज के अत्याचारों से पीड़ित है, उसे दुःख और चिंता की अग्नि में जलता ही छोड़ दिया । जिस हिंदू-समाज के डर से मैं इतने बड़े अन्याय के घूँट को चुपचाप पी गया, मोहिनी ने उसी हिंदू-समाज पर लात मारकर, ठीकरे की तरह थूककर, मेरी आँखों का पर्दा हटा दिया । अब यदि कहीं एक बार भी उसके दर्शन कर सकूँगा, यदि कहीं भी वह मुझे मिल जाय, तो लोकापवाद, घरद्वार, माता-पिता सबकी अवहेलना कर, उस रमणी-रत्न की रक्षा करूँगा । नहीं ! नहीं !! इतना पर्याप्त नहीं । मैंने भीषण पाप किया है, उसके भयानक परिणाम को मैं पूर्णरूप से सहन करूँगा । मोहिनी ने अपना कुल-जाति तथा मान-मर्यादा सभी पर लात मार दी है । मैं भी उसकी खोज में घर से बाहर निकल जाता हूँ । देश-देशांतरों में भ्रमण कर उसे ढूँढ़ता फिरूँगा और यदि कहीं भी उसका पता न लगा सका, तो लौटकर इसी बनारस-नगरी में अघनाशिनी, पतितपावनी गंगाजी की पवित्र धारा में समाकर इस पापमय जीवन का अंत कर दूँगा ।" इस प्रकार निश्चय कर करुण ने घर का दरवाज़ा खोला, बाहर निकलकर क्षण-भर तक वह एकटक से अपने

मकान की ओर देखता रहा । उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े । हृदय को कठोर कर, उसने अपने निश्चय को दृढ़ किया और फिर जल्दी से पीछे की ओर देखता हुआ न-जाने किधर चला गया ।

× × ×

हनीफ़ सलीमा को रात-ही-रात दूर एक दूसरे मुहल्ले के मकान में पहुँचाकर घर लौट आया । वह प्रतिदिन सलीमा के लिये अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण और खाने-पीने की चीज़ें लाया करता था । सलीमा उसे प्रेम करती थी ; हनीफ़ उसे अपने विलास की सामग्री समझता था । कई वर्ष बीत गए । सलीमा का स्वर्गीय सौंदर्य शनैः-शनैः विलीन होने लगा ; उभड़ते हुए यौवन की वह मदमाती चाल, वे शिकारी आँखें तथा वह आकर्षण-शक्ति न-जाने कहाँ चली गई । साथ ही सौंदर्य-पिपासु हनीफ़ का शरणहीना सलीमा के प्रति सरल सुविस्तृत प्रेम शनैः-शनैः संकुचित होने लगा । वह नीच वेश्यागामी था । सलीमा उसकी नज़रों से उतर चुकी थी । इसलिये अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिये उसने एक रूपवती तरुण वेश्या को लाकर उसी घर में रख दिया । सलीमा की आँखें खुलीं, तो अपने को अथाह जल में डूबते-उतराते देखा । अब वह हनीफ़ की हृदयेश्वरी बेगम सलीमा नहीं, अपितु उस वेश्या की दासी थी । एक टुकड़ा रोटी के लिये रात-दिन उसे नौकरानी की तरह उस वेश्या की आज्ञाओं का पालन करना पड़ता था । सलीमा रात-दिन दुःख और चिंतासागर में डूबी रहती थी । उसने अपना अनुपम सौंदर्य, लोक-परलोक, जाति तथा धर्म सब हनीफ़ पर निछावर कर दिया था । आज-तक उसे स्वप्न में भी यह ध्यान न था कि वह कपटी मुसलमान इस प्रकार उसके सौंदर्य का उपभोग कर उसे दूध की मक्खी की तरह अपने हृदय से निकालकर फेंक देगा । दुःख और चिंता के कारण सलीमा बीमार रहने लगी और उस वेश्या की भरसक सेवा करने पर भी उसे प्रसन्न न रख सकी । एक दिन उस वेश्या के कहने से हनीफ़ ने सलीमा को पैर से ठुकरा-ठुकराकर रात में घर से बाहर निकाल दिया । सलीमा गर्भवती थी, पैरों की चोट से व्याकुल होकर वह सड़क पर बेहोश होकर गिर पड़ी । होश आने पर वह बड़े कष्ट से उठी और सुनसान अँधेरे में एक पेड़ के नीचे धूल में लेट-कर, वह देर तक रोती रही । वह भ्रष्ट पतित हो चुकी थी ; मा-बाप के घर जाने का वह विचार भी नहीं कर सकती थी । वह सोचने लगी—"आत्मघात कर डालूँ! नहीं, आत्महत्या क्यों करूँ ? वेश्यावृत्ति क्यों न करूँ! सैकड़ों, हज़ारों स्त्रियाँ घर से निकलकर वेश्यावृत्ति द्वारा सुख से जीवन व्यतीत करती हैं । उनके रहन-सहन, खान-पान को देखकर अप्सराओं के मुँह में भी पानी आता है । ओफ़ !......वे...श...या... वृत्ति !! गुण्डे, बदमाश, रोगी, कोढ़ी सबके प्रति प्रेम का दिखावा करूँ! सबको आत्मसमर्पण करूँ ? क्यों ?... किस लिये ?... सिर्फ़, रोटी के एक टुकड़े के लिये...केवल इस अधम शरीर को जीवित रखने के लिये ? छिः-छिः, ऐसे जीवन से क्या लाभ ? एक दिन तो मरना ही है। मैं वेश्यावृत्ति कदापि नहीं करूँगी । फिर ? आत्मघात। आज ही रात को इसी घड़ी, इसी बरसते हुए समय में, गंगाजी की पवित्र धारा में आत्मसमर्पण कर इस कलुषित जीवन के संपूर्ण पापों का प्रायश्चित्त कर डालूँगी।" सलीमा उठकर गंगाजी की ओर चल दी ।

× × ×

करुण मोहिनी की खोज में घर से निकलकर न-जाने कहाँ-कहाँ गया, बड़े-बड़े कष्टों को सुखपूर्वक सहन किया। पर मोहिनी का कुछ भी पता न चला । करुण हताश हो गया । उसे निश्चयपूर्वक यह धारणा हो गई कि मोहिनी अब या तो इस संसार में नहीं है, या वह किसी ऐसे स्थान पर है, जहाँ पहुँचना असंभव है । मोहिनी के लापता होने के बाद ही से उसने अपने जीवन का एक-मात्र उद्देश्य उसका उद्धार करना ही बना लिया था। अब करुण को अपना जीवन वृथा मालूम पड़ने लगा। संसार उसके लिये सूना हो गया था । माता-पिता, भाई-बंधु, सबका मोह छोड़ ही चुका था । आज इस चमड़े के शरीर का मोह छोड़कर अपने जीवन के भार से मुक्त होने के लिये वह बनारस लौट आया है। रात्रि के २ बज चुके हैं । आकाश में काली विकराल घटा छाई हुई है । मूसलाधार पानी बरस रहा है । बादलों की घ घोर कड़कड़ाहट, भड़भड़ाहट और भयंकर गर्जन को सुनकर दिल दहल जाता है । ऐसा मालूम पड़ता है कि आकाश फटकर पृथ्वी पर गिरने ही वाला है। बीच-बीच में बिजली की चमचमाहट से संसार क्षण-भर के

लिये प्रकाशमय हो जाता है । तड़-तड़, पड़-पड़ कर ओलों की बौछार गिर रही है । ऐसे भीषण समय में करुण पानी में भीगता हुआ, ओलों की चोट खाता हुआ, बस्ती से निकलकर, घाटों से दूर गंगाजी के किनारे की ओर बढ़ा चला जा रहा है। सहसा उसे मालूम हुआ कि कोई उसका पीछा कर रहा है । घूमकर देखा। कुछ दूर अँधेरे में एक सफ़ेद-सी वस्तु की धुँधली-सी आकृति उसे अपनी ओर अग्रसर होती-सी प्रतीत हुई। करुण सहमकर एक वृक्ष की ओट में खड़ा हो गया। थोड़ी देर में एक मूर्ति सामने से निकलकर भागीरथी के पुण्य-प्रवाह की ओर धीरे-धीरे जाने लगी। करुण हतबुद्धि हो खड़ा-खड़ा उसे देखता रहा । एकाएक उसने विचारा कि शायद यह कोई अत्याचारपीड़िता स्त्री अपने दुःखों का अंत करने जा रही है। उसकी सहायता के लिये वह आगे बढ़ना ही चाहता था कि उसे भूत का भय लगा और वह ठिठककर खड़ा हो गया। क्षण-भर में सम्हलकर उसने सोचा कि आज मुझे तो अपना कलुषित जीवन समाप्त ही करना है। यदि भूत होगा, तो भी क्या भय है ? अन्यथा इस रमणी के उद्धार करने का यत्न करूँगा। इस विचार के आते ही वह उस मूर्ति की ओर तेज़ी के साथ दौड़ा । सुनसान अँधेरे में पानी बरसते समय किसी को इस प्रकार अपने पीछे दौड़ते देखकर वह मूर्ति भी तेज़ी से भागने लगी। करुण ने देखा कि वह किनारे पहुँच गई। धड़ाम के शब्द के साथ-साथ एक गहरी चीख़ सुनाई दी। करुण लपककर पानी में कूद गया। बड़े कष्ट और परिश्रम के बाद वह उस मूर्ति को बाहर निकाल लाया। पानी बरस रहा था। बिजली की चमक में करुण मोहिनी के मृत शरीर को अपनी गोद में पड़ा देखकर बेहोश होकर गिर पड़ा।

श्रीशचन्द्र शुक्ल

निशीथ

(२)

एक स्वप्न है प्रेम उसी का छोटा-सा है नाम ;
एक वासना करती है उसमें छिपकर विश्राम।
मेरी कविता में संचित है ऐसी शक्ति अपार ;
जिससे उसके नग्न रूप में आता है श्रृंगार।
उस कविता से गूँथूँगा
ऐसा काँटो का हार ,
बार-बार चुभकर हो जावे
किसी हृदय के पार।
मेरे मन के भाव बनेंगे रंग तूलिका-रूप ;
उनसे ही खींचा जावेगा ऐसा चित्र अनूप।
जिसमें होगा जीवित मेरी करुणा का आख्यान ;
और वेदना का विलाप हो विरहिणि-सा ध्वनिमान्।
छा जावे भूमंडल पर
ऐसे विलाप का नाद ;
प्रलय समीप पहुँच जावे
उसकी ध्वनि का संवाद।
आज लेखिनी में भर दूँगा ऐसी शक्ति अनंत।
जिसके द्वारा कंपित होगी सीमित दिशा दिगंत।
और सजाऊँगा अपने मन के सब ऐसे भाव।
हो जावे पाषाण हृदय पर उनका नम्र प्रभाव।
जाग-जाग मेरे मन के
चिरसंचित व्यथा विचार;
मेरी प्रिय कविता का होगा
तुझसे ही श्रृंगार।

दो तारक भिक्षक आए थे सांध्य गगन के द्वार ;
झिलमिल की कंपन में रह-रह कर वे रहे पुकार।
और दूसरी ओर रखा था सोने का भांडार ;
विषयी गगन दे रहा था क्या रजनी का उपहार।
पल-पल में रजनी का यौवन
होता था छविमान्।
यद्यपि उसके तन पर शोभित
था काला परिधान।
एक हृदय था जो अपनी गति में भरता था आह ;
दो आँखें थीं जिनमें होता स्मृतिमय अश्रु-प्रवाह।
कहते जिसको प्यार न उसका कुछ भी था तो ज्ञान;
हाय न-जाने किंतु किसी का रहता था नित ध्यान।
कहते हैं क्या प्यार इसी को
दुनिया में भगवान् !
प्रेम समझते हैं सब यदि है
ज़रा किसी का ध्यान।
जहाँ नेत्र तारक असंख्य खोले नभ में चुपचाप ;
अंधकार फैलाता था पृथ्वी पर काला पाप।
वृक्ष उदास बने बेचारे थे निश्चल छविहीन ;
कभी हिला लेते मन मारे कुछ पत्ते दो-तीन।
पतित पात सोते थे पृथ्वी
तल पर होकर म्लान ;
मानों वे हों एक विरहिणी
के सुंदर उपमान।
निशा रही थी छोड़ मंद झोंके के कुछ उल्लास ;
स्वप्न देखते थे प्रियतम अपनी प्रेयसि के पास।
शय्या पर उसका सुगंधिमय बिखरा था कचपाश ;
प्रियतम के सोते हाथों का था अविदित अधिवास।
पक्षी भी अपने नीड़ों में
लेते थे विश्राम ;
उनकी आँखों में सोते थे
उनके सारे काम।
क्षणभंगुर जीवन-सी आई एक समीर तरंग;
क्या जाने क्या कहकर उसने छुए वृक्ष के अंग।
वृक्ष हिले मानों जतलाते थे वे सात्विक भाव;
ओस टपकते थे मानों हों सुखद स्वेद अनुभाव।
प्रकृति सीखती थी मानों
जग का यह छवि शृंगार;
कितने भावों में डूबा है
यह छोटा संसार।
डाल झुकी थी किसी वृक्ष की जो थी धरा समीप;
उस पर फेंक रहे थे किरणें नक्षत्रों के दीप।
फूलों की निधियाँ संचित थीं बीच-बीच में भव्य;
कलियाँ नत हो पाल रही थीं अवला का कर्तव्य।
पतली पंखड़ियों की पलकें
थीं कोमलमय बंद ;
भर लेते थे उन्हें अंक में
झुक पल्लव सानंद।
चूम रहे थे मृत्यु-चरण कुछ पल्लव अवनत पीत;
वायुवेग से वृद्ध सुमन शंकित थे, थे भयभीत।
कहीं न उनकी पंखड़ियाँ ले जावे वायु प्रचंड;
किसका हाथ उठेगा उसको देने को कुछ दंड।
बिखर रहे थे कुछ प्रसून
आधे दल थे मृतप्राय।
उस बिखरे यौवन पर भी
घूमे कुछ अलि-समुदाय।
यह क्या था कुत्सित भावों में पूर्ण पगा संसार;
यहाँ पाप से भी होता है पुण्य समझकर प्यार।
कैसा है वह प्यार न जिसमें विमल भाव आवास;
पुण्य घूमते ही रहते हैं क्यों पापों के पास।
सोते थे सुगंधि-शय्या पर
फूलों के समुदाय ;
किंतु सूख जाने पर सौरभ
भाग गया क्यों हाय।

मृत्यु धूल है जो करती है जीवन जल का शोष;
उसके इस स्वभाव पर देना होगा लेश न दोष।
प्रकृति यही है किंतु नियम का यह कटुतर व्यवहार;
इससे ही शासित होता है यह निर्बल संसार।
विषम वेदना का बढ़ता है, यदि दिन-प्रतिदिन भार;
तो मीठे गायन से गाना होगा हाहाकार।
खिले हुए हैं फूल धूल को ही सकते हैं चूम;
फिर भी इतने इतराते हैं ये यौवन में झूम।
कितने रंगों में करते हैं ये सदैव ही स्नान;
इनके शीघ्र सूख जाने का क्या न इन्हें है ध्यान।
हाय अंत में रंग नहीं
पर होगी सूखी धूल;
और धूल ही कहलावेंगे
नहीं सुगंधित फूल।
वैसा ही यह यौवन है कब तक होगा आनंद;
अरे एक दिन हो जावेगी चंचल चितवन बंद।
यह समान मुसकान कर रही जिसमें सुधा-निवास;
बन जावेगी दंतहीन वृद्धा का अट्टाहास।
ये घुँघराले केश बनेंगे
मकड़ी के सित जाल;
गाल शुष्क हो जावेंगे
मानो हों सूखे ताल।

रामकुमार वर्मा

सत्यनारायण-व्रत-कथा

(२)

प्राचीन सत्यनारायण की कथा हिंदुओं के पौराणिक गल्प-शास्त्र का उत्कृष्ट नमूना है। वैसे तो सत्य की अनंत कथाएँ हैं। प्रत्येक युग देश, जाति और व्यक्ति के जीवन में सत्यरूप धरकर चरितार्थ होता है। वे सब कथाएँ शिक्षाप्रद, आदरणीय और ग्राह्य हैं। सत्यनारायण की व्यासगद्दी पर बैठनेवाले को उचित है कि सत्य की अनेक विजयशालिनी कथाओं को सुनाकर लोगों में सत्य-व्रत का प्रचार करें। हमारी प्रस्तुत कथा भी अपने ढंग की एक है। इसका आधार इतिहास नहीं; बल्कि कवि-कल्पना है। हिंदू-समाज चार वर्णों में बाँटा गया है। चातुर्वर्ण्य के द्वारा ही समाज अपने समस्त कार्यों की पूर्ति करता है। चारों वर्णों में ही सत्य का व्यवहार होना चाहिए। किसी एक के भी चूक करने से सत्य की गाड़ी अड़ जायगी। ब्राह्मण, शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय के क्रम से कथा में वर्णन किया गया है कि प्रत्येक वर्ण ने सत्य के पालन में सहयोग दिया। समाज की व्यवस्था में चारों का समवाय है, जिस प्रकार सत्य-व्रत से प्राप्त होनेवाले फलों में ज्ञान, बल, वैभव या महालक्ष्मी, महाकाली, महासरस्वती* का समन्वय है। चारों वर्णों का एक-एक प्रतिनिधि लेकर कथानक की रचना की गई है। इनमें ब्राह्मण और शूद्र सत्य के पालन करने में सहयोग करते हैं और अपनी नैसर्गिक दुरवस्था का परित्याग करके सुख को प्राप्त करते हैं। कथाकार ने संपत्ति और विपत्ति को, सुख और दुःख को, सत्य और असत्य को बराबर-बराबर स्थान दिया है।

सदानन्द ब्राह्मण और काष्ठक्रेता पहले दुःखी थे। सदाचार और विद्यासम्पन्न होते हुए भी काशी में रहने-

---

* महालक्ष्मी—दरिद्रो लभते वित्तं धनधान्यप्रवर्धनम्।
महाकाली—भीतो भयात्प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
सर्वत्र विजयप्रदम्।
महासरस्वती—परत्र मोक्षमाप्नुयात्। अन्ते सत्यपुरं व्रजेत्।

वाले सदानन्द ब्राह्मण को भूखा रहना पड़ता था और नित्य भिक्षाटन में उसका बहुत समय लग जाता था। सत्य-व्रत के प्रभाव से सदानन्द ने पूर्वजन्म-कृत समस्त पापों से छूटकर मोक्ष को प्राप्त किया । [सर्वपापविनिर्मुक्तः दुर्लभं मोक्षमाप्तवान् २ । १२] सदानन्द का इस जन्म का पाप नहीं था। उसके जन्मांतर-कृत संस्कार ऐसे थे, जिनसे वह दरिद्री था। सत्य के व्रत और आचरण से वह सुखी हुआ। भिक्षा में प्राप्त होनेवाले धन का विसर्जन उसने विष्णु के व्रत के निमित्त कर दिया और यही उसकी सम्पत्ति का कारण हुआ।

काष्ठक्रेता शूद्र था। वह उद्यम से धन उत्पन्न करता था। उसने सत्य-व्रत की शिक्षा सदानन्द से पाई। अपने धंधे में सत्य का पालन करने से उसके पास किसी चीज़ की कमी नहीं रही । आज लकड़हारे के समान ही और पेशेवाले भी अपने व्यवहारों में दयानतदारी बरतने लगें, तो विना संशय उनके पास पैसे की तंगी मिट जाय। समाज की एक सिरे से काया पलट जाय, यदि हर पेशेवर आदमी यह व्रत ले, जैसा काष्ठक्रेता ने लिया था--

तेनैव सत्यदेवस्य करिष्ये व्रतमुत्तमम् ।

बाक़ी बचे हुए दो वर्णों में वैश्य और क्षत्रिय हैं। वैश्य वर्ण का प्रतिनिधि साधु बनिया है और क्षत्रियों के प्रतिनिधि अंगध्वज राजा हैं । यह दोनों पहले सुखी थे, लेकिन इसी जन्म में किए हुए असत्य कर्मों से विपत्ति को प्राप्त हुए। कथा के १६२ श्लोकों में से १११ श्लोक और पाँच अध्यायों में से अंत के तीन अध्याय इनकी गाथा के वर्णन करने में लगे हैं। इससे ज्ञात होता है कि जन्मतः प्राप्त क्लेशों की तुलना में मनुष्य के अपने कर्मों से कमाए हुए क्लेश बहुत ज़्यादा हैं। संसार के सब मोहों में धन और सत्ता या बल का मोह सबसे ऊपर है। इसमें भी धन का मोह सबसे सिरमौर है। वस्तुतः धन की गृध्नुता ही बुरे-से-बुरे ज़ुल्म और पाप कराती हैं। वित्तमोह से मूढ़ मनुष्य धर्म-कर्म सब भूल जाता हैं, उसे बार-बार यमराज का द्वार झाँकना पड़ता है।*

गीधियापन में अंधी बनी हुई जातियों ने संसा ज़रखेज़ मुल्कों को झुलसाकर श्मशान-तुल्य बना र है। आजकल तो खुले आम कहा जाता है कि पुरुषार्थों में से अर्थ ही सब कुछ है, डालर की पूजा ईश्वर को भी अर्धचन्द्र दे दिया है। सूतजी ने भी के प्रलोभनों का सूक्ष्म विवेचन करने में सबसे अधि स्थान दिया है। साधु वैश्य की कथा दो अध्यायों और ९५ श्लोकों में समाप्त हुई है। संतानहीन धनाढ्यों की दशा का दिग्दर्शन कराने के लिये वह बहुत सौम्य है सत्य-व्रत सौभाग्य और सन्तति का भी देनेवाला है संतान की प्राप्ति में सत्य-व्यवहार ब्रह्मचर्य-साधन है साधु वैश्य सत्य का संकल्प करके बार-बार उसे तोड़ है। राजा चन्द्रकेतु के रत्नसारपुर में जब वह वाणि के लिये गया, तो मानो सत्यरूपी विष्णु ने शाप दि कि—हे वैश्य, तुम बार-बार अपनी प्रतिज्ञा से भ्रष्ट हु हो, इसीलिये तुम्हें अत्यंत दारुण दुःख भोगना पड़ेगा

भ्रष्टप्रतिज्ञमालोक्य शापं तस्मै प्रदत्तवान्;
दारुणं कठिनं चास्य महद्दुःखं भविष्यति।

मोहग्रस्त साधु को सबक़ सिखाने के लिये नि का उलटा चक्र चलने लगा। उसे चोरी न करने पर चोरों का दण्ड भोगना पड़ा। वास्तव में जो धन में लि होकर उसका दान नहीं करता, वह प्रत्यक्ष में चोरी करने पर भी समाज में चोर ही है, जिसने बेजा संच करके औरों के उचित हक़ को मूस लिया है। घर लीलावती-कलावती का सारा धन चोर चुरा ले गए बुरे से बुरा कष्ट भोगने के बाद भगवान् की माया अ कूल हुई। साधु वैश्य और उसका जामाता कारा से मुक्त कर दिए गए। इतने अनुभव के बाद भी का मोह न छूटा। एक दंडी स्वामी ने दर्शन देकर किया--'हे साधु, तुम्हारी नाव में क्या भरा है?' साधु के मानो प्राण निकल गए, बोले--

कथं पृच्छसि भो दण्डिन् मुद्रां नेतुं किमिच्छसि;
लतापत्रादिकं चैव वर्तते तरणौ मम।

महाराज! आगे चलो, क्या रुपया लूटने की स है, यहाँ कुछ नहीं है, नाव में सब घास-फूस भरा हु है। इस निष्ठुर वचन को सुनकर संन्यासी ने शांत से कहा—'सत्यं भवतु ते वचः' अर्थात् तुम्हारी बात स हो। लाखों की संपत्ति होते हुए भी दान का

---

* न सांपरायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्;
अयं लोको न पर इति मानी पुनः पुनः वशमापद्यते मे।

आते ही लोभी का धन घास-फूस के समान हो जाता है, उससे किसी का भला नहीं होता । कृपण का हृदय रेगिस्तान के समान है । कृपणता के समान बंधन का हेतु दूसरा नहीं है । आगे कथा में लिखा है कि बहुत दुःखी होकर साहुजी दंडी की तलाश में दौड़े और अपने असत्य पर पछताकर बहुत विनती की । दंडी-वेषधारी विष्णु ने पहले तो बड़ी फटकार बताई [ममाज्ञया च दुर्बुद्धे, लब्धं दुःखं मुहुर्मुहुः], लेकिन बाद को खोया हुआ धन फिर वैसे ही कर दिया । असल में धन कहीं था, कहीं गया नहीं था । सिर्फ़ साहुजी की निगाह में फेर था । सत्य से पराङ्मुख होकर वे दान के नाम से अपनी लाखों की संपत्ति को लता-पत्र समझते थे, तो वह लता-पत्र के समान थी ; सत्ययुक्त होकर उसे ठीक समझने लगे, तो वह पहले-जैसी हो गई ।

संचय का धर्म बड़ा कठिन है । वैश्य-वर्ण और गृहस्थ-धर्म के साथ संचय का घनिष्ठ संबंध है । इस जगत् में संचय के साथ-साथ त्याग का धर्म लगा हुआ है । बिना त्याग के संचय का मार्ग बंधन का हेतु, जड़ और फाँसी है । मनुष्य आयु के चार आश्रमों में केवल गृह-आश्रम के साथ संचय का धर्म है । शेष तीन भागों में अर्थात् ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास में अर्थ-संग्रह से मनुष्य को कुछ प्रयोजन नहीं । जीवन की आर्यनिर्दिष्ट व्यवस्था में आयु के एक चौथाई हिस्से में वित्त के उपार्जन को स्थान मिला है । यह बड़े महत्त्व की बात है कि जहाँ अन्य सभ्यताओं ने सर्वत्र धन को ही उपास्य बनाया है, हिंदुओं ने वित्तैषणा के क्षेत्र को सीमित करने की कोशिश की है । हिंदुओं में सब जगह समाहार (Synthesis) का भाव पाया जाता है, इसीलिये धन उनकी सभ्यता में उचित से अधिक स्थान नहीं प्राप्त कर सका । मनुष्य के चार पुरुषार्थों में धन को चौथाई स्थान है । चार आश्रमों में सिर्फ़ गृहस्थाश्रम वित्तोपार्जन के लिये है ; और चार वर्णों में वैश्य वर्ण का धन के साथ विशेष संबंध है । कथा में वित्त-मोह दिखाने के लिये साधु बनिए का उदाहरण दिया गया है ।

आर्य लोग जानते थे कि यद्यपि धन के लिये सिर्फ़ गृहस्थाश्रम में ही आदमी को इच्छुक होना चाहिए, तो भी संचय का मोह इतना प्रबल होता है कि उतने ही समय में मनुष्य उस कीचड़ में इतना अधिक फँस जाय कि उससे फिर निकल ही न सके । इसलिये संचय के साथ उन्होंने त्याग-धर्म को यह कहकर नत्थी कर दिया है कि प्रत्येक गृहस्थ को वैतरणी-नदी पार करनी चाहिए । अर्थात् जिस व्यक्ति ने संचय का धर्म स्वीकार किया है, उसे त्याग का धर्म भी भुलाना चाहिए । 'वैतरणी' शब्द के निरुक्त में ही त्याग या दान का अर्थ छिपा हुआ है । वितरण दान को कहते हैं । वितरण से वैतरणी बनता है । वैतरणी-नदी दान की नदी है, जिसे पार करना सब गृहस्थों का परम धर्म है । मनुष्य-जीवन की सफलता का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि वह वितरण की नदी को सफलतापूर्वक पार कर सका या नहीं । जिन्होंने सिर्फ़ जोड़ना ही सीखा है, और जो धन के साथ लगे हुए दानरूप आध्यात्मिक अंश को नहीं देखते, वे सोने और चाँदी के बोझ से उस नदी के बीच में ही ग़र्क़ हो जाते हैं । इसी मानवी जीवन में हमारी आँखों के सामने कितने ही जन जीवन के ध्येय (Philosophy of life) को ठीक प्रकार से समझकर इस वैतरणी-नदी को पार कर रहे हैं और वित्तमोह से मूढ़ कितने ही उसमें डूब रहे हैं । उस व्यक्ति के बहुत धनवान् होने से ही क्या जिसने अपनी ही भौतिक आवश्यकताओं को अपरिमित बनाकर उनकी पूर्ति में धन को एक-मात्र व्यय करना सीखा है ? उसके सोने और चाँदी के ढले हुए टुकड़े लतापत्रादिक के समान ही हैं । वैतरणी-नदी को पार करनेवाली उसकी हिरण्य-भरी नाव का लंगर मानों औंधा हो गया है और वह उसी में डूबा जाता है । इस दान की नदी में अपने-अपने विभव के विस्तारानुसार [यथाविभवविस्तरैः] हर एक को देय धन का निर्णय करना पड़ता है । सत्यता के साथ निर्णय करनेवाला अपना मन ही है । कोई दूसरा बहस करके नहीं बता सकता कि कितने अंश को मनुष्य अपने ऊपर ख़र्च करे और कितना दान करे । हर एक सभ्यता का यह भी काम है कि वह प्रत्येक नागरिक को जो अस्त्र उसने सौंपे हैं, उनके उचित प्रयोग का भी ज्ञान करा देवे । अन्य नागरिक शिक्षा के साथ यह शिक्षा भी मिलनी चाहिए कि मनुष्य दानधर्म को किस तरह पूरा करे । भारतीय संस्कृति में इसके लिये दान-मीमांसाओं की रचना हुई थी । गीता ने भी इस विषय

पर प्रकाश डाला है । दान देनेवाले का यह कर्तव्य भी है कि वह पात्र को पहचाने और ढूँढ़कर उसे दान दे । जो व्यक्ति वास्तव में पात्र है, उसे दाता के सामने दाँत न निपोरना पड़े और देनेवाला उसको देकर अपना परम सौभाग्य समझे, इस प्रकार की सूक्ष्म व्यवस्था भारतीय संस्कृति के समाजशास्त्र को छोड़कर अन्यत्र नहीं पाई जाती । इस आदर्श का सबसे उत्तम वर्णन कालिदास के कौत्स-रघु-संवाद में पाया जाता है । जहाँ रघु अधिक देना चाहते हैं और कौत्स गुरु को देने योग्य धन से अधिक नहीं लेना चाहते, वह आदर्शों की परमोच्चता भी भारतवर्ष के सिवा अन्यत्र नहीं मिलती । 'गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च' श्लोक ने दान के आदर्श के आगे विराम-चिह्न लगा दिया है ।

वैतरणी-नदी को पार करने के लिये गौ का दान केवल लाक्षणिक (Symbolical) है । आज लकीर को पीटनेवाले अन्धे * लोग बछिया की पूँछ पकड़कर समझते हैं कि वे वैतरणी पार हो जायँगे । इससे बढ़कर आत्महनन का उदाहरण और दूसरा नहीं हो सकता । वैतरणी का पार करना जन्मपर्यंत (Life-long) की समस्या है, जो किसी विशेष क्षण या बछिया से हल नहीं हो जाती । लेकिन विचारशील मनुष्य इसे देखते हैं, मूढ़ नहीं देखते--

विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ।—गीता

दान की समस्या वैयक्तिक (Individual) है । सारे समाज के लिये अपरिवर्तनशील विधान (Standardisation) नहीं बनाया जा सकता । वैतरणी के वास्तविक तात्पर्य को समझने से यह मालूम हो जाता है कि उसका वास्तविक अर्थ में पार करना (अपने-आपको सिर्फ़ धोखा न देना) जीवन की सच्ची स्थिति के लिये कितना महत्त्वपूर्ण (Vital) है । वैतरणी किसी ख़ास वर्ग या समाज के लिये नहीं है, यह सार्वभौम है । आज पश्चिमी सभ्यता वैतरणी में ग़र्क़ हो गई है । भारतवर्ष भी वैतरणी के सच्चे अभिप्राय को भूल गया है और इसलिये उसके दान की संस्था बिगड़ गई है, जिसका सबसे भीषण दुष्परिणाम पात्र और कुपात्र का अविवेक है । जिस मनुष्य ने अपने जीते-जी कुछ दान नहीं किया है, उसके उत्तराधिकारियों का फ़र्ज़ है कि उस कुत्सित धन का स्वयं उपभोग न करके उस पूर्वज के ही पुण्याभिवृद्धि के लिये उसको पात्र में अर्पित करें । सत्यनारायण की कथा साधु-वैश्य के उदाहरण से इस बात को बताती है कि वैतरणी-नदी में डोंगी डाले हुए कोई आदमी कभी यह कहने की भूल न करे कि मेरी नाव में सिर्फ़ घासफूस है--

लतापत्रादिकं चैव वर्तते तरणौ मम ।

यहाँ पाव-भर सत्तू का माहात्म्य करोड़ों अश्वमेधों से भी ज़्यादा है ।

सत्य के उल्लंघन का दूसरा उदाहरण क्षत्रियवर्ग में अंगध्वज राजा का है । अंगध्वज राजा ने गोपों के प्रसाद का परित्याग मिथ्याभिमान से अभिभूत होकर किया [राजा दृष्ट्वा तु दर्पेण न गत्वा तं ननाम सः] राजा के लिये इससे बढ़कर अपराध की कल्पना नहीं हो सकती कि वह अपने को प्रजा से ऊँचा समझे और प्रजा को नीच समझकर उनके साथ मिलने में अपनी हेटी समझे । यह सत्य का घोर अपलाप है । सारे अन्यायों की मूल यह है कि राजा अपने-आपको प्रजा का सेवक न समझकर मालिक समझे । अत्याचार और उद्दंडता का आरंभ यहीं से होता है । राजनीति के अंदर सत्य यह है कि राष्ट्र के साथ तन्मय हो, और राष्ट्र के हितों को अपना हित समझता हो । पृथुवैन्य के विषय में पुराणों में लिखा है कि उनके राज में प्रजाओं को संकल्प करते ही अन्न-धन मिलता था । गाएँ पुष्कल दूध देती थीं और छत्ते भरे हुए शहद से लहलहाते थे [पुटके पुटके मधु] । पृथु ने राजा बनकर राष्ट्रहित के जो अपूर्व काम किए, उनके कारण राजा और राष्ट्र, इन दोनों का अभेद संबंध हो गया । जो राजा वही राष्ट्र, जो राष्ट्र वही राज्य-शक्ति, इन दोनों में कोई पार्थक्य न रहा । ऐसा राज्य किसी व्यक्ति-विशेष का राज्य नहीं था, बल्कि वह सारे राष्ट्र का राज्य था । राष्ट्र और राज्य का अभेद ही भारतीय राजधर्म का सबसे ऊँचा आदर्श है, फिर इस प्रश्न की उलझन नहीं रहती कि राजशक्ति एक के हाथ में है या अनेकों के । तैत्तिरीय ब्राह्मण ने पृथु के अभिषेक का वर्णन करते हुए इस आदर्श पर बड़ा उत्तम प्रकाश डाला है—

---

* दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः —उपनिषद्

"पृथुवैन्य का अभिषेक हुआ। वह राष्ट्र के साथ एक न हो सका। उसने इन सांसारिक पार्थिव वस्तुओं को देखा और उन सबका राष्ट्रयज्ञ में हवन कर दिया। बस पृथु स्वयं राष्ट्र हो गया। जो इसी प्रकार दुनिया की चीज़ों से यज्ञ करता है, वह भी राष्ट्र हो जाता है।"*

राजा का वैभव कितना ही हो, राष्ट्र के लिये यदि उसका उत्सर्ग नहीं है, तो राजा राष्ट्र नहीं बन सकता। ऊँच-नीच के अभिमान के कारण अंगध्वज राजा की राष्ट्र के साथ एकता नहीं हुई। यही उसके जविन में भारी असत्य था। यद्यपि वह प्रजाओं के पालन में तत्पर था [प्रजापालनतत्परः], लेकिन भेद का भाव राजनीति के आध्यात्मिक सत्य पर कुठाराघात है। दर्परूपी असत्य ने अंगध्वज के धनधान्यादि का विनाश कर दिया। अंत में जब वह मन का मैल निखारकर गोपों से स्वच्छंद भाव से मिला, तब वह **सत्यसंध** राजा बन गया। पौराणिक सूतजी के साथ सभी इस बात को कहेंगे कि राष्ट्रों और मनुष्यों के जीवन को बनाने-बिगाड़ने में सत्य के माहात्म्य को पूरी तरह कौन जान सकता है—

सत्यदेवस्य माहात्म्यं ज्ञातुं वा केन शक्यते ?

हमारी नित्य की प्रार्थनाओं का मूलमंत्र यही है—

असतो मा सद्गमय।

क्या ही अच्छा हो यदि व्यक्ति और जातियाँ सत्य की शरण में जाकर निम्नलिखित घोषणा को अपनी राष्ट्रीय पताकाओं पर लिख लें—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥

महायुद्ध के बाद से राजनीति के अंदर जो गंदगी फैल गई है, और अंतर्राष्ट्रीय विधानों में जो सत्य का व्यवहार उठ-सा गया है, उससे त्राण पाने के लिये यह परम आवश्यक है कि सब देश सत्यनारायण के व्रत के भाव को अपने हृदयों में अंकित कर लें। अथर्ववेद के अनुसार मातृभूमि का भी हृदय होता है, जो परम व्योम में रहता है। उस हृदय की अच्युत स्थिति के लिये सबसे बड़ा गुण सत्य है। वस्तुतः आर्यों का राष्ट्रीय गीत इसी शब्द से शुरू होता है—सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्मयज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।

यह समझना ग़लत है कि पृथिवी को और देश या साम्राज्य को डूबने से बचानेवाले कुटिल राजनीतिज्ञ और ध्वंसकारी शस्त्रास्त्र (Armaments) तथा प्रलयंकरी सेनाएँ हैं। सभ्य कहलाते हुए भी संसार का यह बर्बर मोह दूर नहीं होता। ये चीज़ें तो बड़े वेग से सभ्यता को विनाश के गड्ढे में ढकेल रही हैं! देश और राज्यों के धारण करने के लिये आवश्यक गुण सत्य, ऋत, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ हैं। इनकी स्थिति में सभ्यताओं की उन्नति और इनके अभाव में सभ्यताओं का विनाश है। रोम-साम्राज्य का उत्थान उग्र ऋत से हुआ, उनके पतन का कारण तप का अभाव था। यूनान की उन्नति ब्रह्म से हुई, उनका क्षय दीक्षा का अभाव था। भारतवर्ष की श्रेष्ठता उसके यज्ञात्मक भाव से थी, उसका पतन सत्य के अभाव में हुआ। इन शाश्वत और अमर भावों की रक्षा से जातियाँ रक्षित होती हैं, इनके निराकरण से प्रकृति स्वयं उनको विनाश को प्राप्त करा देती है। आज अँगरेज़-जाति में ऋत, दीक्षा, तप और ज्ञान का भाव तो है, लेकिन यज्ञ और सत्य के भावों का उनमें सर्वथा लोप हो गया है।

वासुदेवशरण अग्रवाल

---

* पृथिवैन्यः अभ्यषिच्यत। स राष्ट्रं नाभवत्। स एतानि पार्थान्यपश्यत्। तान्यजुहोत्। तैर्वै राष्ट्रमभवत्। यत्पार्थानि जुहोति, राष्ट्रमेव भवति।

रस्साकशी !

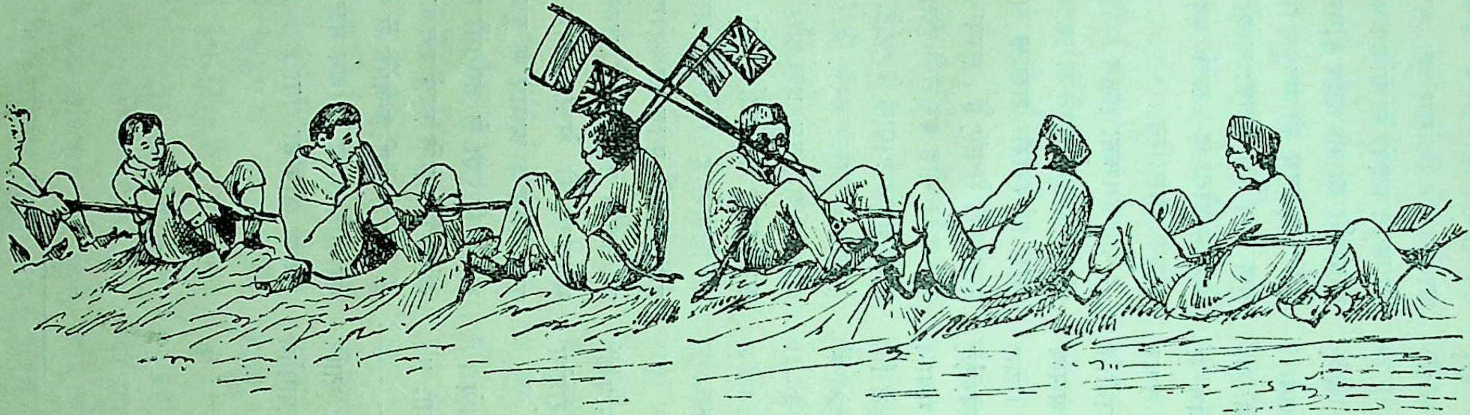

कुछ तुम खिंचे रहे तो कुछ हम खिंचे रहे,
इस कशमकश में टूट गया रिश्ता चाह का !

निराली-दुनियाँ

कैसी दग़ाबाज़ी का बिछा है जाल चारो ओर ,
दुष्टता का कैसा दुनियाँ में बोलबाला है !
कैसी भेद-नीति की मची है धूम, देखिए तो-
शुद्ध प्रेम का भी कैसा निकला दिवाला है !

मित्रो ! साम्य-भावना की फूटी तक़दीर कैसी ,
स्वार्थ ने भी न्याय के गले को घोंट डाला है !
'सेवक' सुजनता की साख ही नहीं है कहीं ,
आज विश्व का तो कुछ ढंग ही निराला है !!

रामसेवक त्रिपाठी

हमारी अजंटा-यात्रा

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥
——हितोपदेश

योरपीय इतिहास पढ़ते समय जब-कभी माइकेल एंजेलो अथवा रफ़ील के नाम आते कल्पनादृष्टि के सम्मुख अजन्टा की चित्रशाला नृत्य करने लगती थी, पर अब तक कोई ऐसा सुअवसर हाथ नहीं आया था कि प्राचीन भारतीय चित्रकला के आचार्यों की कारीगरी पर कुछ गर्व कर सकता । यह सुअवसर अब लखनऊ-विश्व-विद्यालय के भारतीय इतिहास के मुख्याचार्य डाक्टर श्रीराधाकुमुद मुकर्जी के सफल प्रयत्नों द्वारा मिला । अजन्टा की अमर कंदराओं में हमने जो सुंदर दृश्य देखे, उनके लिये हम डाक्टर साहब के कितने आभारी हैं, यह हमारा हृदय जानता है । उन्हीं की कृपा के फलस्वरूप हमें अजन्टा के मनोहर चित्र, एल्लोरा की गुफाओं का प्रसिद्ध अद्भुत कैलाशमंदिर और यादवों की प्राचीन देवगिरि के अजय दुर्ग तथा दौलताबाद के नगर-प्राचीर के भग्नावशेष के दर्शन हुए ।

डाक्टर साहब हमारे विद्यार्थी-दल को लिए ३०वीं सितम्बर के प्रातःकाल अजन्टा के राजकीय अतिथिभवन में पहुँचे । हम हैदराबाद-राज्य के अतिथि थे । अतः राज्य के मुख्यतम कलाविज्ञ एवं अजन्टा-गुफाओं के अध्यक्ष (Curator) श्रीसय्यद अहमद साहब ने हमारा सहृदय स्वागत किया ।

हम भोजनादि से निवृत्त होकर ग्यारह बजे गुफाओं के पास पहुँचे । Curator साहब हमारे साथ थे । गुफाओं के चतुर्दिक् जो मनोरम दृश्य देखे, उनका वर्णन लेखनी नहीं कर सकती । पारिजात वृक्षों की लंबी क़तार के बाद सौ सीढ़ियाँ चढ़ने पर अर्धचंद्र-रेखा में सहस्रों वर्ष की प्राचीन गुफाएँ दृष्टिगोचर होती हैं । लगभग चार फ़र्लांग तक फैली इन गुफ़ाओं के सम्मुख और ऊपर अमित प्राकृतिक सौंदर्यसागर लहरें मारता है । इनका पगप्रक्षालन करता हुआ एक सुंदर झरना हलकी लहरों में सदा बहता रहता है । क्या ही सुरुचि उन प्राचीनों की थी, जिन्होंने नगरों के कोलाहल से दूर सुंदर वन में अपने भिक्षुवर्ग के ध्यान-पूजन एवं पठन-पाठन के निमित्त नीरवस्थल ढूँढ़ निकाला । ये गुफाएँ जलगाँव-स्टेशन से ३५ मील दक्षिण (पाहूर-स्टेशन से लगभग १२ मील) और औरंगाबाद से ५५ मील उत्तर-पश्चिमीय घाट के सह्याद्रि-पर्वतों में बनी हुई हैं । इनका निर्माण २५० फ़ीट ऊँची, सीधी और ठोस चट्टानों को काटकर हुआ है । ईसा की सातवीं शताब्दी में भारतवर्ष में बौद्ध-धर्म के ह्रास के साथ ही अजन्टा के

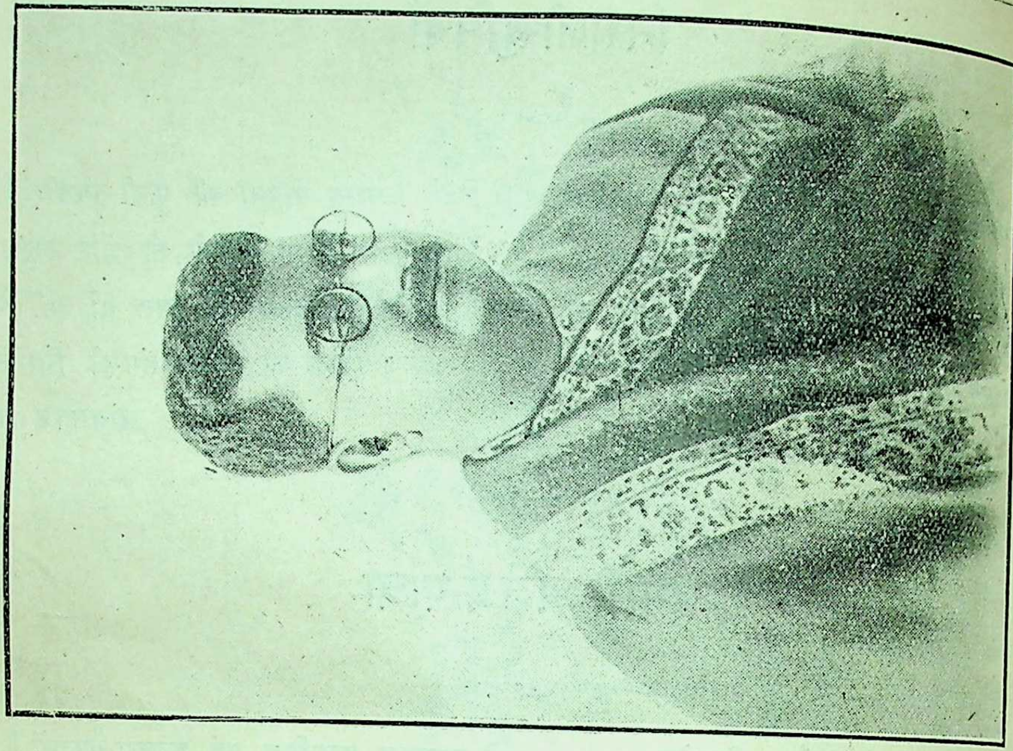

छात्राचार्य डॉक्टर श्रीराधाकुमार मुकर्जी

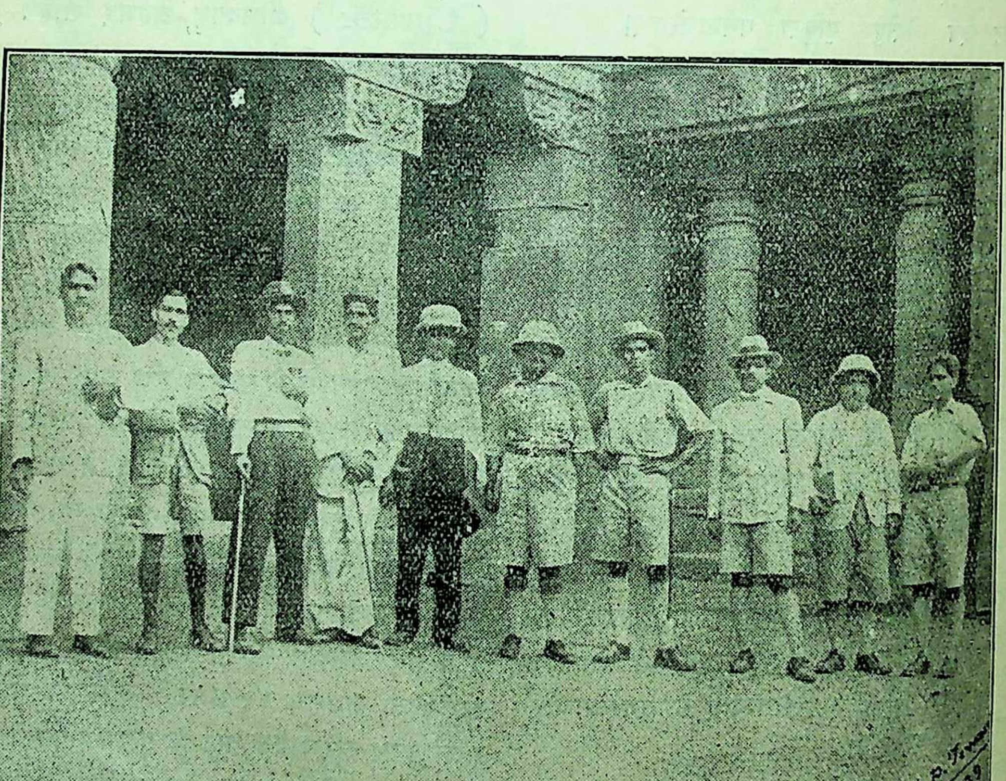

हमारा विद्यार्थी-दल

त्य और विहार भी धीरे-धीरे लोगों के स्मृति-पटल से ट गए और जब तक सन् १९१९ में ब्रिटिश-कम्पनी के न्य-शिक्षण के समय उनका पुनर्जन्म न हुआ, उनकी विस्मृति बनी ही रही। अजन्टा-ग्राम की बारहदरी में रह-र पहलेपहल मेजर राबर्ट गिल ने कुछ चित्रों का सप-श्रम नक़ल कर संसार के चित्रण में कुछ वृद्धि की।

गुफाओं के निर्माण के पूर्व इस स्थल का दृश्य कैसा रहा गा, यह झरने के दूसरे पार खड़ी पर्वतमाला पर टुक दृष्टिपात करने से सहज ही ज्ञात होता है। इनके बनाने कितना समय, कितना द्रव्य, कितना श्रम और कितने मजूर लगे होंगे, इसका अन्दाज़ा कुछ अपूर्ण गुफाएँ देखने से ड़ी आसानी से लग जाता है। ठोस शिलाओं को काटकर गों ने बड़े-बड़े चैत्य (सामूहिक उपासना के लिये हाल मरे) और उनमें खुलनेवाले प्रत्येक भिक्षु के ध्यान और विश्राम के लिये अलग-अलग छोटे कक्ष बनाए। इन मरों में वायु और प्रकाश की बहुत कम गुंजायश है। एक-एक और कहीं-कहीं दो-दो भिक्षुओं के विश्रामो-पासना के हेतु बने हुए हैं। इसीलिये किसी में एक और किसी में दो पत्थर के डेढ़ फ़ीट ऊँचे चबूतरे बने हैं। यथार्थ में ये आधुनिक छात्रावासों की भाँति प्राचीन काल में सैकड़ों भिक्षु-विद्यार्थियों के आवास थे।

ये गुफाएँ २६ (अथवा २९) की संख्या में खड़ी हैं। समय के विचार से इन्हें चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्राचीनतम दल ८, ९, १०, ११, १२ और १३ नं० की गुफाओं का है। बहुत सम्भव है कि अशोक से बहुत पूर्व यहाँ की प्राकृतिक एकान्त खोहों ने कुछ एकान्त-प्रिय भिक्षुओं को आकर्षित कर लिया हो और पश्चात् धार्मिक धनकुबेरों ने, जिनके लिये उन दिनों देवोत्तर कर्म मुख्य थे, अपना द्रव्य और श्रम व्यय कर सुंदर कंद-राएँ प्रस्तुत करा दी हों। पहले इन्हें साधारणतया खोद डाला होगा, फिर उन्हें सुंदर हाल कमरों के रूप में तैयार किया होगा और उत्तर, दक्षिण की दीवारें खोद-कर भिक्षुओं के निवास के लिये छोटी कोठरियाँ बना दी होंगी। हाल और छोटे कमरों के अलावा १३वीं गुफा में मिट्टी का एक बरामदा भी बना हुआ है। नं० ८ में यह भी नहीं है। नवीं और दसवीं में पूजा के लिये स्तूप बने हैं। इनमें बहुत कम चित्र बने ह और जो हैं, वे भी बहुत पीछे के हैं। स्तूप इस बात के प्रमाण हैं कि इन गुफाओं का निर्माणकाल महायान-सम्प्रदाय के प्रवर्तन से पूर्व था, जब बुद्धोपासक बुद्ध के चित्र अथवा उनकी मूर्त्तियाँ न बनाकर उनके अङ्ग-चिह्नों (हाथ, पाँव, स्तूप आदि) की उपासना किया करते थे। काष्ठ-शिल्प का अनुकरण भी इन गुफाओं के निर्माण में किया गया है, जो विद्वानों की राय में उस काल का परिचायक है जब शिल्प में काष्ठ-प्रयोग के अनन्तर प्रस्तर-प्रयोग की शैशवा-वस्था थी। सो इन नम्बर आठ से तेरह तक की गुफाओं का निर्माणकाल हमारे डाक्टर मुकर्जी ने ईसा-पूर्व लगभग द्वितीय शताब्दी बताई।

दूसरे दल में काल के विचार से नम्बर १९, १८, १७, १६, १५ और १४ की गुफाएँ बताई जाती हैं। ये लगभग ईसा की चौथी शताब्दी की बनी हैं: क्योंकि नम्बर सोलह-सत्रह गुफाओं के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि वे प्रतापी राजा 'गुप्त' महाराजदेव (चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, ईसवी सन् ३७५-४१३) के जीवनकाल या उनकी मृत्यु के कुछ समय ही पश्चात् एक राजा ने, जिससे चन्द्रगुप्त की पुत्री ब्याही थी, इन्हें खुदवाया। गुफाओं का तीसरा दल नम्बर ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ इनके थोड़े दिनों बाद खुदीं। अन्तिम दल अर्थात् नम्बर २६, २५, २४, २३, २२, २१ और २० का समय ईसा की छठवीं और सातवीं शताब्दी के लगभग बताया जाता है। इन्हीं में से कदाचित् १९वीं गुफा को ह्यूएनसांग ने सौ फ़ीट ऊँचा संघाराम और हाल में ७० फ़ीट ऊँची बुद्धमूर्त्ति बताई है। बहुत सम्भव है, बुद्धमूर्त्ति से उसका तात्पर्य उन्नीसवीं गुफा के स्तूप में खड़ी बुद्धमूर्त्ति से रहा हो।

यह तो हुआ इन गुफाओं का साधारण परिचय, अब हम मुख्य गुफाओं को एक-एक करके लेंगे। पर इसके पूर्व हम अजन्टा के चित्र-विज्ञान का कुछ परिचय दे देना चाहते हैं। हम अजन्टा में तीन दिन ठहरे और तीस सितम्बर को हमने एक से सात नम्बर तक की गुफाएँ देखीं। पहली अक्तूबर को बाक़ी सारी गुफाएँ समाप्त क दूसरी को मुख्य-मुख्य गुफाओं के चित्रों का विशेष अध्ययन किया। हमारे साथ प्रसिद्ध चित्रकार सय्यद अहमद साहब थे, जो कला की दृष्टि से चित्रों की व्याख्या करते थे और डाक्टर मुकर्जी हमें उनका ऐतिहासिक महत्त्व समझाते थे। सय्यद अहमद साहब ने अजन्टा की चित्र-

कला के संबंध में तो मुख्य बातें बताईं। उनकी पहली बहुत ही आवश्यक और विचित्र बात अजन्टा की चित्रशाला में प्रयुक्त रङ्ग के विषय में थी। उन्होंने हमें बताया कि वहाँ के चित्राचार्यों ने रंग के लिये बाज़ार नहीं ढूँढ़ा, प्रत्युत भारतीय प्राचीन ग्रामों की भाँति स्वावलम्बी रहे और चित्रों के लिये स्वयं रङ्ग तैयार किए। क्यूरेटर साहब ने हमें बताया कि सारे रङ्ग, जो वहाँ के चित्रों में प्रयुक्त हैं, सह्याद्रि की पहाड़ियों में ही मिल जाते हैं और हमें विश्वास दिलाने के लिये सचमुच ही उन्होंने कई ऐसे स्थल दिखाए, जहाँ की शिलाएँ पूर्णतः रङ्गी थीं। जैसे गेरूरङ्ग इसी नाम का पत्थर घिसकर निकाला जाता है, वैसे ही यहाँ की चट्टानों से, जो सब प्रकार के रंगों से भरी पड़ी हैं, सारे रङ्ग निकालते थे। हमने लाल, गुलाबी, हरे, नीले, काले आदि रङ्गों की शिलाएँ स्वयं देखीं। इस प्रकार वहाँ के चित्रकार स्वावलम्बी थे और अपनी आवश्यकता के लिये हर प्रकार के रङ्ग स्वयं तैयार किए। क्यूरेटर साहब का कहना था कि बाक़ी और रङ्ग जो मिश्रित होकर बनते हैं उन्हें वे इन रङ्गों के सम्मिश्रण से बनाते थे और इन्हें अच्छे प्रकार मिलाने और दूसरे गुणों के लिये वे एक प्रकार की गोंद, जो वहीं पर्वतों पर मिलती है, व्यवहार में लाते थे। वे स्वयं पहले रङ्गीन पत्थर लेकर उसका चूर्ण करते थे, फिर जल मिलाकर उससे रङ्ग तैयार कर लेते थे। यह सय्यद अहमद साहब की कुछ मौखिक कल्पना नहीं थी, बल्कि उन्होंने स्वयं सैकड़ों अजन्टा-गुफाओं के चित्रों की अद्भुत सुन्दर नक़लें इसी विधि से तैयार की हैं, जिन्हें हमने दूसरी अक्तूबर को उनकी चित्रप्रदर्शनी में, जो हमारे ही लिये की गई थी, देखा। आप वहाँ के चित्रों की जितनी भी नक़लें तैयार करते हैं, सबमें इन्हीं पहाड़ियों के रङ्गों का प्रयोग होता है। कुछ चित्र, जो इस लेख में दिए गए हैं, उनके ही परिश्रम के फल हैं। पहले इन्होंने ही उनकी मौलिक चित्रों से नक़ल की, फिर उनके चित्रों की फ़ोटो लेकर (फ़ोटो) प्रिंट तैयार किए। ऐसे बहुत-से आपके तैयार किए हुए चित्र शीघ्र हैदराबाद-सरकार के पुरातत्त्व-विभाग द्वारा इँगलैण्ड में प्रकाशित की जा रही चार जिल्दों में निकलेगी।

गुफाओं में नीचे की चिकनी फ़र्श को देखने से मालूम होता है कि दीवारें और छतें पहले किसी चीज़ से घिसकर चिकनी कर ली गई होंगी। बाद उन पर
प्रकार के पलस्तर (लेप) लगाए गए हैं। पहला प
मिट्टी और गोबर मिलाकर बनाते थे.। इसके लेप
दीवारें और छतें भरकर बिलकुल बराबर हो जाती
बाद इसके दूसरा पलस्तर वे चूने का लगाते थे,
उनमें कुछ चिकनाहट आ जाती थी और गोबर-मिट्टी
मैल जाती रहती थी। इस चूने में वे एक प्रकार
गोंद भी मिलाया करते थे। अन्त में तीसरा प
रङ्गों का होता था। यह असल में पलस्तर नहीं
बल्कि चित्र बहिराकार बनाकर उनमें रङ्ग भर देते

उनके चित्र बनाने की विधि यह थी कि आचार्य
साधारण पेंसिल की तरह की किसी वस्तु से
पर चित्रों का अस्थिपञ्जर (Sketch, outlin
खींच देते थे। चित्रों की विविध मुद्राएँ बनाना
ही कार्य था। फिर उनके शिष्य--साधारण कला
उनमें रङ्ग भरते थे और अन्त में आचार्य अपना
स्पर्श (Final touch) देते थे। इन चित्रों
दर्शन योरपीय विद्वानों को सदा इटली-चित्रकला
आचार्यों की याद दिलाते हैं, पर उन फ़्लोरेंस के
विदों की गति कहाँ तक थी, इसका प्रमाण हमें दोनों
समय पर दृष्टिपात करते ही मिल जाता है। एक
वर्ष पीछे तैयार होनेवाले चित्रों की भारतीय
से तुलना करना तो युक्तियुक्त है ही नहीं। फ़्लोरेंस
चित्र तब के बने हैं, जब चित्रकला में बहुत विकास
चुका था और रङ्गों की सैकड़ों खोजें हो चुकी थीं।
भी भारतीय रङ्गों की महत्ता सिद्ध होती है, जब हम
सोचते हैं कि दो सहस्र वर्षों से अजन्टा की दीवारों के
अब भी संसार के चित्रों की अग्रश्रेणी में हैं।
ने दोनों की तुलना करके कहा है कि तब के
कला से तब की भारतीय कला बढ़ी हुई थी। यह
भी फ़र्गुसन साहब ने बड़ी मीन-मेष के बाद
था। उनकी समझ में आज की योरपीय चित्र
प्राचीन भारतीय चित्रकला से बढ़ी हुई है।
पर हम तो तब जानें जब सचमुच दो हज़ार
तक जर्मनी के तैयार किए हुए रङ्ग बराबर बिना
सफ़ाई के उष्ण-शीत और सील सहते हुए टिक
हमारा यह सन्देह पुष्टतर हो जाता है, जब हम देख
कि योरप के बड़े-बड़े चित्रकलाविदों द्वारा भरे गए

भी दस वर्षों में ही मलीन पड़ जाते हैं। विंसेन्ट स्मिथ फ़र्गुसन साहब से भी ज़ोरदार शब्दों में इस सिद्धांत की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं कि भारत की चित्र आदि सभी कलाओं पर यूनानी और ईरानी आचार्यों का प्रभाव पड़ा है। यह इन योरपीय विद्वानों के विचारस्रोत में एक प्रकार की रीति सी चल गई है कि वे भारत की किसी कला को देशी होने का श्रेय नहीं दे सकते। योरप के यूनान आदि देश तो उन्हीं कलाओं का मौलिक अनुसंधान और विकास कर सकते थे, पर हम वही नहीं कर सकते थे। हम स्वयं तो स्मिथ साहब के विषय में कुछ कहना नहीं चाहते, पर उन्हीं के एक सजातीय किंतु निष्पक्ष आलोचक के विचार रक्खे विना भी नहीं रह सकते। अमरीका की भगिनी-निवेदिता (E. Margaret Noble) स्मिथ साहब के इस विचार की तीव्र आलोचना करती हुई कहती हैं——

"Vincent Smith is not better able to form an opinion than Fergusson. Indeed he is less fit in many ways.........What the one man knows out as a tentative suggestion the other ses as if it were an axiom.

इससे यथार्थ और उचित समालोचना स्मिथ साहब की और नहीं हो सकती। हम अपनी ओर से उनके प्रति कुछ कहना नहीं चाहते।

दूसरी आवश्यक बात जो सय्यद अहमद साहब ने बताई, वह यह थी कि चित्रकारों के पास इन गह्वरों में प्रकाश करने का एक विचित्र साधन था। जब कोई नया आदमी इनको देखने जाता है, सर्वप्रथम उसके हृदय में एक प्रश्न उठता है। वह देखता है कि गुफा के बहुतेरे भाग दिन के दोपहर में भी तमपूरित रहते हैं। विशेष कर हाल के पीछे का वह कमरा, जिसमें बोधिसत्व की विशाल मूर्त्ति स्थापित है, सदा अँधेरे में रहता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस अँधेरे कमरे की दीवारें भी चित्रों से रँगी पड़ी हैं। इस बात का अनुभव करके स्वतः यह प्रश्न उठता है कि इन अंधपूरित स्थानों को प्रकाशित करने के लिये उनके पास क्या साधन थे। इस बात की खोज का श्रेय सय्यद अहमद साहब की विचक्षण बुद्धि को है। उन्होंने इसका उत्तर यों दिया है—वे एक बहुत बड़ा शीशे का टुकड़ा गुफा के द्वार पर धूप में चमकाते थे और एक या कई बड़े-बड़े सफ़ेद कपड़े के टुकड़े अँधेरी जगहों में खड़े कर देते थे। इस प्रकार इन टुकड़ों का प्रतिबिंब दीवारों पर डालकर कोना-कोना प्रकाशित कर देते थे। यह साधन हमारे सामने भी काम में लाया गया और हमने प्रत्येक कोने को जगमगाते देखा। यह ध्यान देने की बात है कि जहाँ की दीवारें और छतें चित्रों से रँगी पड़ी हैं, वहाँ मशाल या ऐसी कोई लौवाली रोशनी नहीं कर सकते थे; क्योंकि हमने स्वयं वह दीवार देखी, जो पास ही भीलों के भोजन बनाने के कारण काली हो गई है और जिस पर के सारे चित्र मिट गए हैं। यह सन्देह नहीं किया जा सकता कि उन दिनों दर्पण नहीं था; क्योंकि नम्बर सत्रह की गुफा में हाथ में शीशा लिए शृङ्गार करती हुई एक स्त्री का चित्र बड़ी स्पष्टता और योग्यतापूर्वक खींचा गया है; पर एक बात है कि यह युक्ति केवल दिन के लिये हो सकती थी। फिर क्या वे रात में अँधेरे में रहते थे, सम्भव नहीं। अजन्टा-गुफाओं के व्यस्त जीवन के समकालीन कविवर कालिदास ने कुमारसम्भव में दरीगृहों (Cave-houses) का ज़िक्र किया है। "दरीगृहोत्संगनिषक्तभासः" पद में उन्होंने ओषधियों को 'अतैलपूर-प्रदीप' कहा है। मेघदूत में उत्तरमेघ श्लो० ५ तुंगार्चिवाले रत्नप्रदीपों का ज़िक्र है। इससे हम तो यही नतीजा निकालते हैं कि इन दरीगृहों की चित्रकारी करते समय रत्नदीपों से ही काम लिया गया था। जो धनी उपासक भिक्षुओं के लिये करोड़ों का व्यय कर गुफाएँ खुदवा सकते थे, उनके लिये रात्रि में प्रकाश के लिये गुफाओं में ऐसी मणियों का रख देना, जिनमें प्रकाश करने की प्रचुर सामर्थ्य थी, कुछ असम्भव नहीं था। बहुत सम्भव है, यही सत्य हो; क्योंकि उन दिनों अजन्टा की गुफाओं की ख्याति दूर-दूर तक रही होगी और कालिदास अवश्य वहाँ की रहन-सहन आदि से परिचित रहे होंगे। उन्होंने अवश्य इस बात को ही सम्मुख रखकर इस सत्य को लिख दिया था।

एक-एक गुफा पर अलग-अलग विचारने से पहले हम अजन्टा की चित्रकला पर ही कुछ विचार करेंगे। पहला सोचने का विषय तो यह है कि उन भिक्षुओं के लिये, जिन्होंने संसार का त्याग कर दिया था, चित्र क्यों बनाए गए। इसका उत्तर यह है कि शाक्यमुनि बुद्ध के सिद्धांत के मध्यमार्गीय थे। बौद्ध-सम्प्रदाय में समाधि का

इतना ऊँचा आदर्श नहीं है, जितना दूसरे हिंदू-मतों में है। बौद्ध शरीर-यातना को कोई प्रतिष्ठा नहीं देते। इसलिये भिक्षु एकान्तोपासना के साथ-साथ सामूहिक उपासना भी करते थे। चैत्यों का यही उद्देश्य था। इसीलिये आचार्यों ने बिचारा कि सर्वत्र आदर्श-कथाएँ भर दी जायँ। भिक्षु के लिये सारा विश्व ही ध्यानमग्न मूर्त्तियों से भरा पड़ा है। बुद्ध के जीवन को आदर्श बनाकर उसका अनुवर्तन करने से ही निर्वाण गति सम्भव है, यही विश्वास था। इसलिये आचार्यों ने प्रत्येक स्थल को चित्रित कर दिया। जहाँ दृष्टि जाती, आदर्श-विषय हृदय-पटल पर लिख जाता। दुष्कर्मों का विचार क्षण-भर भी नहीं टिक सकता था। इस आदर्श के निमित्त उन्होंने जातक-कथाओं अर्थात् बौद्ध-पुराणों से अपने विषय चुने और उनसे दीवारें और छतें तक भर दीं। यह बेगार का काम नहीं था। बरन् तन्मयता और कथाओं में भक्ति के कारण इस उत्कृष्टता को पहुँचा कि आज संसार की चित्रशालाएँ उसके सामने तुच्छ जँचती हैं। जब हम आँखें मींचकर अजन्टा के दृश्यों का स्मरण करते हैं, हमारे सम्मुख रङ्गमञ्च के दृश्यों की नाईं वहाँ की सैकड़ों दीवारों और स्तंभों पर बने फल-फूल, वन-पर्वत, मनुष्य, पशु-पक्षी, नगर, राजधानी, देव-दैत्यादि के सहस्रों विविध चित्र नृत्य करने लगते हैं। इन बातों को ध्यान में रखकर ही प्रोफ़ेसर विलियम रोथेनस्टेइन ने लिखा है कि "मनोवैज्ञानिक चित्रण के विचार से इन चित्रों में इतनी सत्यता है, यहाँ के मनुष्यों और पशुओं का चित्रण इतना अद्भुत है और भारतीय जीवन के आध्यात्मिक चित्रण में इतनी गम्भीरता है कि आज इस शीघ्र परिवर्तनशील युग में भी समकालीन चित्रणकला की अनुपस्थिति में ये चित्र भारतीय जनता की सभ्यता और चरित्र के प्रतिनिधि हैं।"

अजन्टा-चित्रणकला की तीन बातों में आचार्यों की कुशलता सिद्ध है। वे हैं यहाँ के चित्रित (१) नेत्र, (२) मुद्राएँ (भाव) और (३) स्त्रियाँ। इन तीनों को कल्पनाचक्षु के सम्मुख रखकर जो अजन्टा की चित्रकला का अध्ययन करेंगे, उनकी ही समझ में वहाँ की कला पूर्ण रूप से आ सकती है। भला उन योरपीय लोगों की समझ में यहाँ का नेत्र-चित्रण क्योंकर आए, जो हमारी प्राचीन सभ्यता से अनभिज्ञ हैं। उन्हें तो हमारे यहाँ की बादाम की शकल के नेत्र अस्वाभाविक जँचेंगे ही। यही कारण है कि अजंटा के भ्रमण करनेवाले सैकड़ों योरपीय विद्वानों की प्रशंसात्मक सम्मति से भरी वहाँ के 'सम्मति-रजिस्टर' (Visitors book) में एक-आध ऐसे व्यक्तियों की भी सम्मतियाँ हैं, जिन्होंने की चित्रण-कला को 'अतिनिन्द्य' (Very bad) लिखा है। इन्हें पढ़कर हँसी नहीं रुकती। उनकी सुंदरता के आदर्श तो बिडालाक्ष हैं।

नेत्रों का चित्रण इतना सुंदर हुआ है कि देखते ही बनता है——जैसे कमल अथवा आम की फाँकें रख दी हों। उन्होंने हमारे साहित्यिक आदर्श को सामने रख दिया है। भौहों का इतना सुंदर चढ़ाव-उतार है कि सचमुच ही अर्धधनुष का स्मरण हो आता है। कौड़ी की-सी आँखों में लाल डोरे झलकते हैं। यह हुए नेत्र, अब किञ्चित् भाव और मुद्राएँ लीजिए।

भाव और मुद्राएँ दर्शाना लेखनी का नहीं; प्रत्युत का काम है, फिर भी जहाँ तक हो सकता है, उन वर्णन किया जाता है। यहाँ के प्रत्येक चित्र की मुद्रा इतनी सुंदर है कि भाष्य की आवश्यकता ही नहीं रह जाती सारे भाव स्वयं स्पष्ट हो जाते हैं। पुरुष और स्त्रियों जितने भी चित्र बने हैं, सबमें मुद्रा को प्रचुर स्थान दिया गया है। ये मुद्राएँ इतनी स्वाभाविक हैं चित्र जीवित जान पड़ते हैं। उनके बैठने और खड़े के तरीक़े इतने स्वाभाविक हैं कि देखते ही बनता वाद्यवनिताओं में इतने बल डाले गए हैं कि उन स्वाभाविकता पर दर्शकों को आश्चर्य होता है। पाणि बोधिसत्व के शरीर में तीन स्थानों में बल कर जीवन डाल दिया है। इन सुनम्र गात्रों में, जो आदर्श दैवीभाव प्रस्फुटित होता है उसका ज्ञान भारतीयों को ही था। योरपीय चित्रकारों की उन्हें स्थान नहीं मिल सकता। हाथ इस रूप से मुड़े हैं कि उनकी सुन्दरता भारतीय रहन-सहन को जानने ही समझ सकते हैं। यों तो सभी हाथों का चित्रण है, पद्मपाणि का पद्मधारित्व हस्तकला की चरम का उदाहरण है। गोल कलाइयाँ, हथेली और उँग प्रार्थना, उपदेश, क्रोध और स्नेह आदि को प्रकट हैं। चित्रों में शरीर पर इस सुंदरता से वस्त्र डाला है कि उसकी बारीक़ी के कारण शरीर झलकता

चादर की सिकुड़नों ने एक अद्भुत स्वाभाविकता का शृङ्गार कर रक्खा है ।

अजंटा के आचार्यों ने कला को सजाने का काम स्त्रियों से लिया है । उनको उन्होंने अद्भुत हस्तलाघव और पूर्णता से चित्रित किया है । स्त्री-चित्रण में उनकी प्रधान कुशलता है । क्या राजसभा और क्या गली में, अजन्टा-वाटिका में सर्वत्र वे फूलों की भाँति बिखरी, सजी पड़ी हैं । उनके बिना कोई भी सामूहिक चित्र नहीं बनाया गया है । घरों की खिड़कियों में वे बैठती हैं, भिक्षा वे देती हैं, गाना-बजाना उनका काम है । सारांश यह कि कारीगरों ने सब स्थलों को उनसे ही सजाया है । यहाँ तक कि स्तम्भों पर भी वे कलियों की भाँति बिखरी पड़ी हैं । चित्रकारों ने जब कहीं और उनके लिये स्थान नहीं पाया, तो उन्हें वायु में उड़ती अप्सराओं के रूप में सजा दिया । उन्हें आश्चर्यजनक कुशलता से शृङ्गार करती हुई, बातें करती, सोती, बैठती, खड़ी सब प्रकार से चित्रित किया है । अपने बुद्धों को तो उन्होंने धर्म-पुस्तकों के उल्लेखानुसार चित्रित किया है, पर उनकी स्त्रियाँ साधारण जनसमूह की हैं, पूर्ण स्वाभाविक हैं । उन्होंने स्त्रियों को बैठाया नहीं, बरन् उनके बैठने के ढंग की ही नक़ल की है । स्त्रियाँ नियम से आबद्ध नहीं हैं क्योंकि वे ही नियमों की जन्मदात्री हैं । उनसे ही आचार्यों ने सीखा है । यहाँ पर अजन्टा में चित्रित स्त्रियों के विषय में कप्तान डब्ल्यू० ई० ग्लैडस्टन सालोमन साहब की राय उद्धृत करनी कुछ अयुक्तियुक्त न होगी । आप लिखते हैं——

"They struggled to reproduce every turn of her head, every curve of her form, every glance of her eye. She enthralled them with her airs and graces; enmeshed them in the mysteries of her toilet, more strongly than does the Parisienne the painter of to-day. They produced tirelessly and with a discriminating knowledge her bewildering coiffuces ; they decked her in painstaking manner with the more beautiful trinkets they could devise. When they could not paint her. then they painted her pearls and ornaments all round their columns. I can think of no parallel to this frank and chivalrous Woman-worship of Ajanta. No-where else perhaps has woman received such perfect and understanding homage. Even the beggar girl who asks for alms in the panel over the portal of the seventeenth Cave is beautiful. The truth is that they could not conceive woman otherwise. As she truly inspired them so they gave back to her in kind these graphic gifts of wholehearted admiration. Inspite of her obvious reality one feels at Ajanta that woman is treated not as an individual, but as a principle. She is there not female merely, but the incarnation of all the beauty of the world. Hence with all her gaiety, her charm, her insonciance, she never loses her dignity, and no-where is she belittled or besmirched. Everywhere in this garden of flowers we behold the fullblown rose in its pride and perfume ;—no-where the trampledlily. "Majesty and pawer" invest the women of Ajanta quite as clearly as the Mandorla of glory surrounds the saints of early Christian Art."

यह उद्धरण उचित प्रशंसा का एक सुंदर उदाहरण है और इससे बढ़कर दूसरा सुंदर और जीवित वर्णन नहीं हो सकता । सालोमन साहब का स्थान कला-विशेषज्ञों में बहुत ऊँचा है ।

इसी प्रकार यहाँ स्त्रियों के केश का भी बहुत ही सुंदर और विविध चित्रण है । इन चित्रों में हमें केश काढ़ने और सजाने के सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं । कभी-कभी घुँघराले केश ललाट पर अँगूठियों की भाँति बिखरे मिलते हैं, जो अब भारतवर्ष में देखने में नहीं आते । कभी पीछे बँधे सुंदर कृष्ण जूड़ों पर सुकोमल उज्ज्वल पुष्प अत्यंत सुंदरता से सजे हुए हैं । अथवा केशराशि में कहीं-कहीं कमल की कलियाँ बँधी हुई हैं । कहीं-कहीं स्त्रियों ने केशों की कई सुंदर वेणियाँ फूलों से सजाकर कानों की ओर बाँध रक्खा है और उनकी फनगियों पर सोने-चाँदी के फूल लगा रक्खे हैं । जंगली स्त्रियों ने प्रायः गोल केश-राशि में एक प्रकार का मयूरपक्ष खोंस रक्खा है ।

सच तो यह है कि केश काढ़ने और सजाने के जितने विविध ढंग यहाँ हैं, उतने और किसी प्रकार के चित्रण में नहीं।

अब हम मुख्य गुफाओं पर अलग-अलग विचार करेंगे।

गुफा-नंबर १--गुफा में प्रवेश करते ही बाएँ हाथ की दीवार पर शिबि-जातक की कथाएँ चित्रित मिलती हैं। फिर बाएँ हाथ सिंहल-जातक की कथाएँ भरी पड़ी हैं। सामने की दीवार पर चित्रकला की पूर्णता एक भव्य पद्मपाणि बोधिसत्व में प्रतिबिंबित है। यह चित्र प्रायः योरपियन विद्वानों को सीस्टाइन-गिरजे में माइकेल एंजेलो के बनाए चित्रों का स्मरण कराया करता है। गौतम संसार-त्याग के पूर्व हाथ में कमल लिए खड़े हैं। विचित्र मुद्रा है। अद्भुत चित्रकला है। नासिका, नेत्र, हाथ सभी सुंदर हैं। उनके पास ही यशोधरी खड़ी हैं। पद्मपाणि का वर्णन जैसा भगिनी-निवेदिता ने किया है, और कोई वैसा नहीं कर सकता। हम उसे नीचे देते हैं--

"......It is cave one that contains the masterpiece......A man—young, and of heroic size—stands gazing, a lotus in his hand, at the world before him. He is looking down and out into the Vihara......But the ornaments that he wears as well as his tall crown show that we have here Buddha the prince, not Buddha the ascetic. A wondrous compassion pervades his face and bearing, and on his left stands a woman, curving slightly the opposite way, but seeming in every line to echo gently the feeling that he more commonly expresses. This picture is perhaps the greatest imagination presentment of Buddha that the world ever saw. Such a conception could hardly occur twice......It is Buddha on the threshold of renunciation, suddenly realizing and pondering on the terrible furtility of the life of man. His wife awaits him, gently, lovingly, yet with a sympathy, an heroic potentiality that is still deeper than all her longing sweetness. Yasodhara had a place, it seems, in the dreams of the monk-painters of Ajanta, and it was the place of one who could cling in the hour of tenderness, and as easily stand alone and inspire the farewell of a higher call. It was the place of one who was true and faithful to the greatness of her husband, not merely to his daily needs. It was the place of one who attained as a wife, because she was already great as a woman."

इसके बाद हम उस दीवार के पास आते हैं, जहाँ भगवान् बुद्ध का ध्यान तोड़ने के लिये मार असंख्य प्रयत्न करता है। यह अत्यंत आश्चर्य का विषय है कि उसकी सेना का एक दैत्य आधुनिक बो (Bow) बाँधे हुए है। समझ में नहीं आता, इस बो से प्राचीनों का तात्पर्य क्या था। ठीक सामने बुद्ध के अद्भुत कृत्य (Miracles of Sravasti) श्रावस्ती-नगरी में चित्रित हैं। इस गुफा के स्तंभों पर अच्छा काम है और सारी छत आजकल की तरह की डिज़ाइनों के चित्रों से भरी पड़ी है। छत में एक स्थान पर कमलों और उनके पत्रों के बीच हंस बिचरते दृष्टिगोचर होते हैं। इसे देखकर यह विचार बिलकुल ही छोड़ देना पड़ता है कि यहाँ की कला पर यूनानी प्रभाव है; क्योंकि यूनानी कला का मुख्य उद्देश्य मनुष्य की शारीरिक पूर्णता दिखानी है। वनस्पति तथा पशु-चित्रण उनकी कला में है ही नहीं। दूसरी ओर भारतीय कला में इनका विशेष समावेश है। थोड़ी दूर पर ही सुंदर साँड़ों के एक जोड़े की लड़ाई चित्रित है। और एक सुंदर चित्रण में चार मृगों का एक ही सिर इस प्रकार बनाया है कि वह प्रत्येक का सिर जान पड़ता है। यह आधुनिक डिज़ाइन से बहुत मिलता है। गुफा नं० प्रवेश करते ही दाहिनी ओर की दीवार पर प्रसिद्ध ईरानी दौत्य चित्रण है। ख़ुसरो द्वितीय परवेज़ ने प्रतापी हर्ष-विजयी चालुक्यराज पुलिकेशिन प्रथम के पास सन् ६२६ ई० में दूत भेजे थे। कुलह़ और दाढ़ियाँ उनके ईरानी होने के प्रमाण हैं। इस चित्रण से यह बोध होता है कि अजन्टा की गुफाएँ केवल ईश्वरीय बोध के साधन ही नहीं थीं, प्रत्युत डाक्टर श्रीराधाकुमुद मुकर्जी के शब्दों में ये भारत की राष्ट्रीय चित्रशाला (National picture gallery) थीं, जहाँ जातीय विजयों को अमर

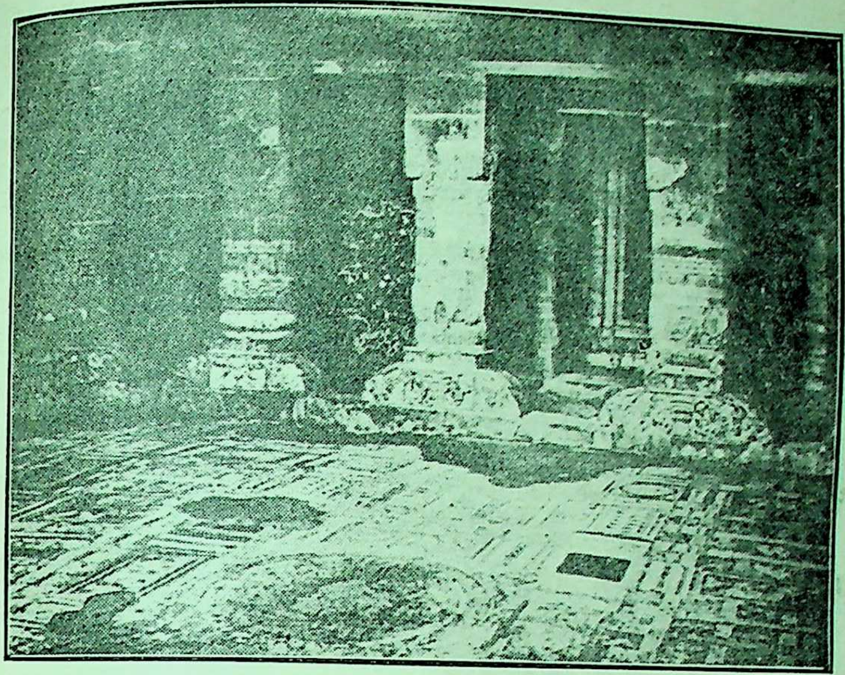

गुफा-नंबर १ का भीतरी भाग—स्तंभों के ऊपर की सुंदर नक़्क़ाशी

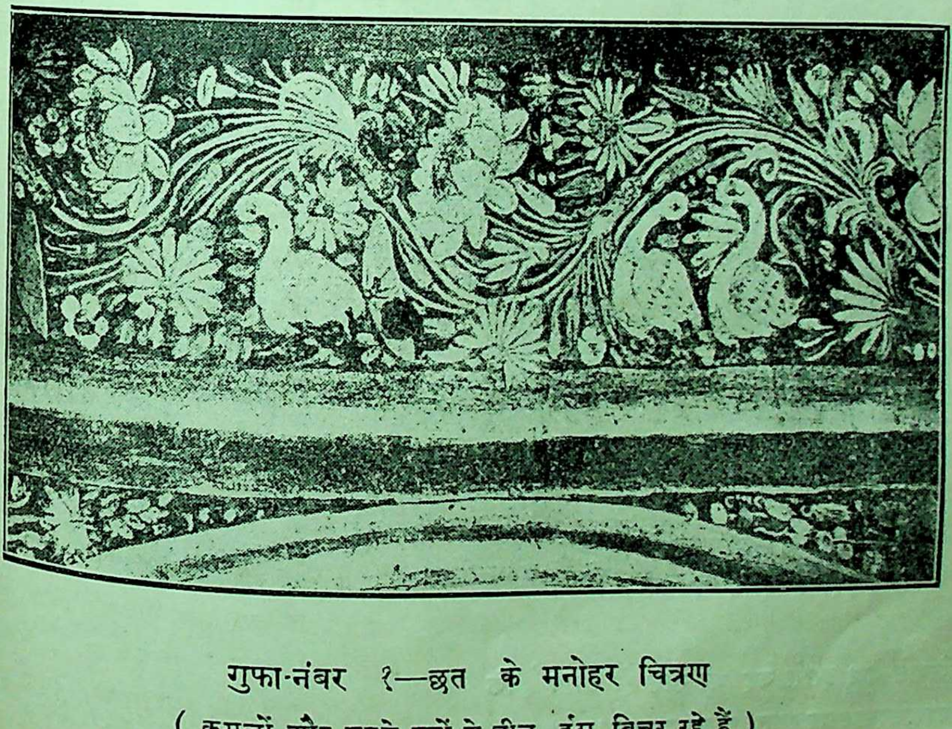

गुफा-नंबर १—छत के मनोहर चित्रण
(कमलों और उनके पत्रों के बीच हंस बिचर रहे हैं)

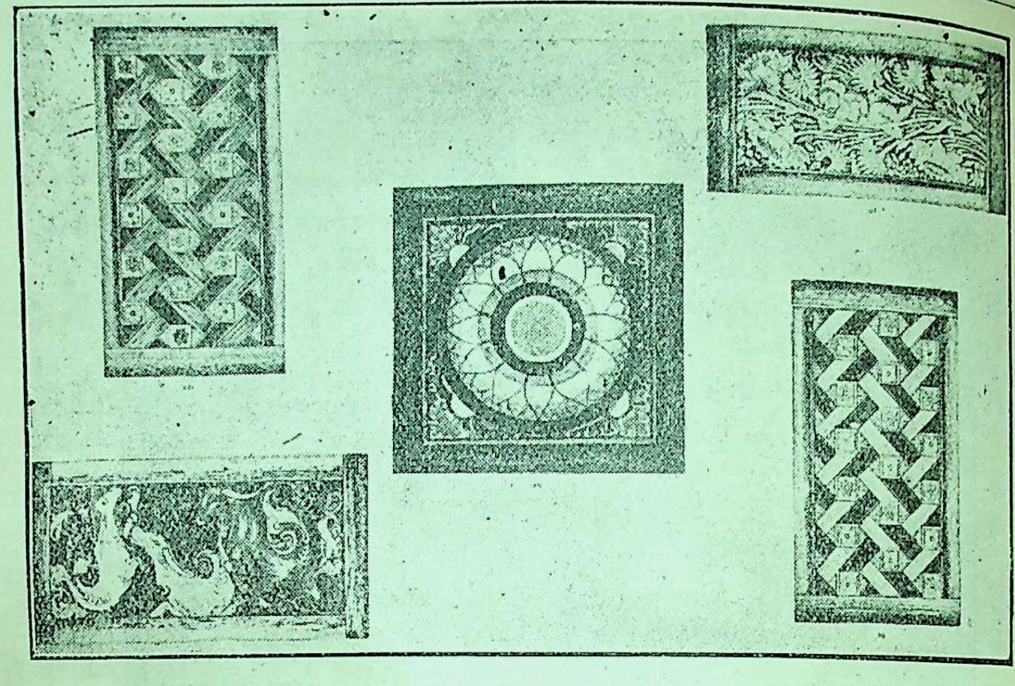

गुफा नंबर १—छत के मनोहर चित्रण

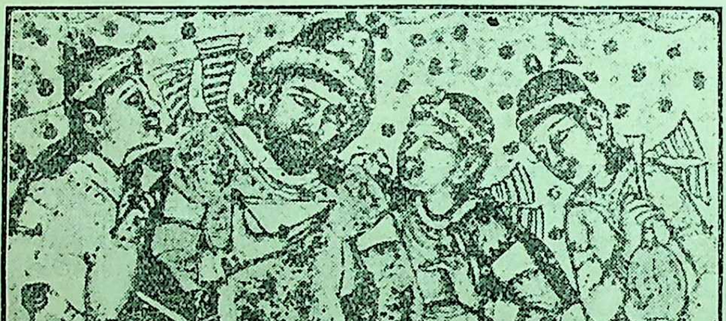

चालुक्यराज में आए हुए विदेशी
(ईरानी दौत्य चित्रण)

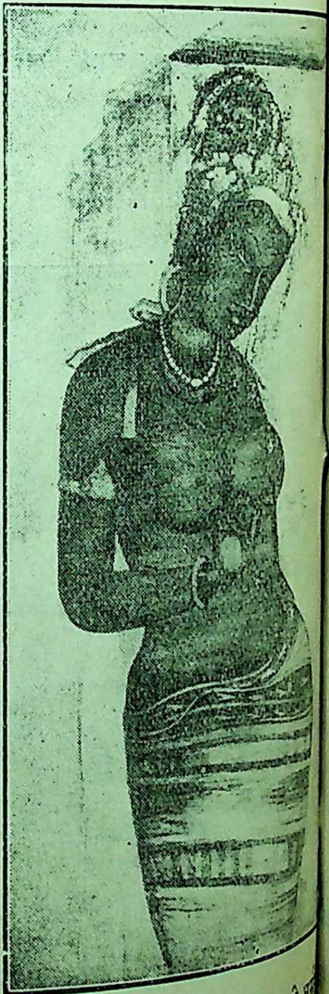

गुफा-नंबर १—भगवान् बुद्ध की

चित्रों में लिखते थे। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इस गुफा का चित्रणकाल सातवीं शताब्दी है।

गुफा नं० २---आजकल योरपीय वेश में नेकटाई और रूमाल का एक-सा होना आवश्यक समझते हैं। नं० २ की गुफा के बरामदे में छत के एक चित्र में मोज़ और टोपी का अच्छा मैच है। दोनों ही भूरी छींट के बने हैं। इसमें क्षांतिवादी, हंस, रुरु, विधुरपंडित आदि जातकों की कथाएँ एवं पूर्णावदान और बुद्ध के जीवन की दूसरी घटनाएँ यथा तुषित स्वर्ग, माया का स्वप्न, माया का लुंबिनी-वन-प्रस्थान आदि सविस्तर चित्रित हैं। यहाँ श्रावस्ती के सहस्र बुद्धों के चित्र हैं। राजदरबार का एक सुन्दर चित्र इस गुफा में मिलता है। कुबेर की

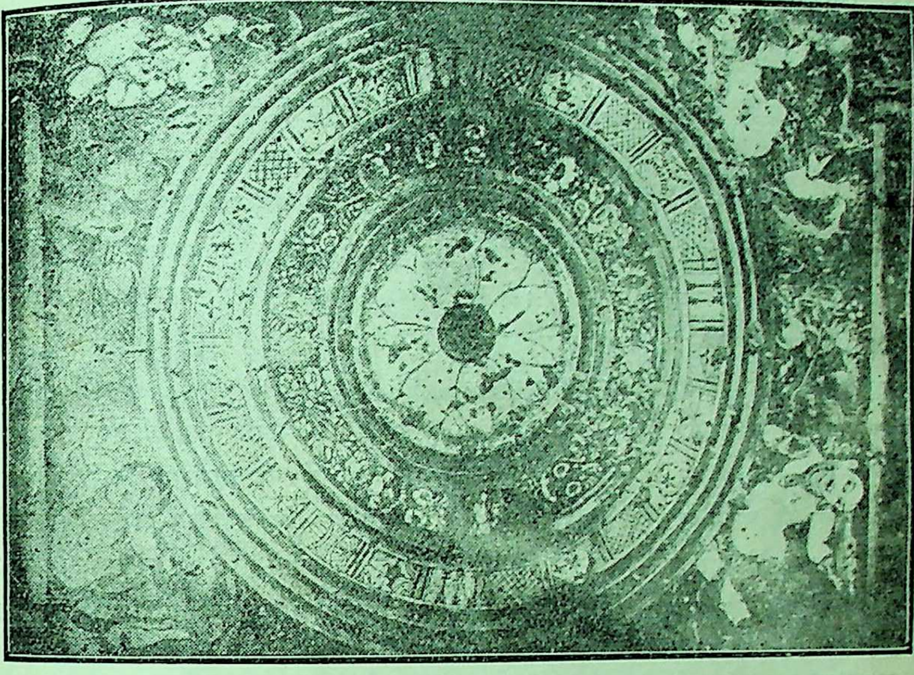

गुफा-नंबर २—छत के मनोहर चित्रण

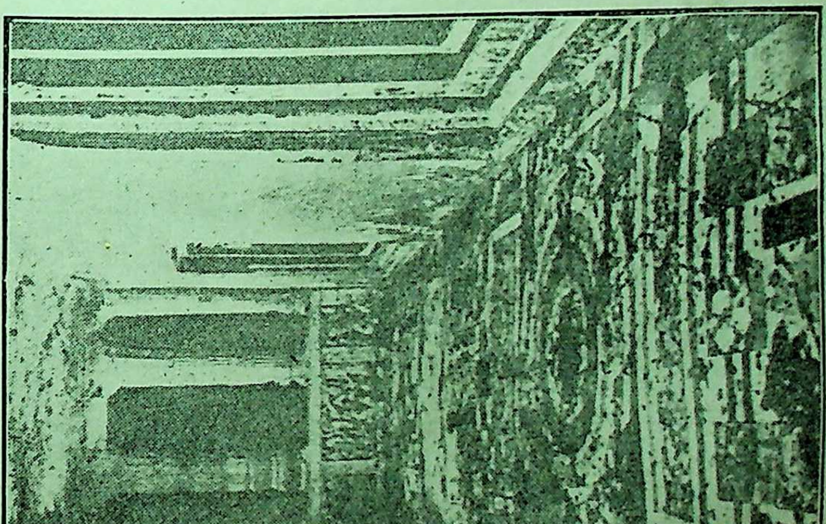

गुफा-नंबर ६—बरामदा और छत

एक विशाल बैठी प्रतिमा भी इस गुफा में है । इस प्रतिमा के हाथ में एक तोड़ा है और आधुनिक बनियों की भाँति बड़ा पेट निकला हुआ है ।

नं० ४—इस गुफा का हाल सबसे बड़ा है ।

नं० ८—सबसे प्राचीन गुफा है ।

नं० ९—यह गुफा चैत्य है । यहाँ के चित्रों में बोधिसत्व और उपासक भरे पड़े हैं । ये चित्र पीछे के हैं । यह और दसवीं गुफा हनियान-संप्रदाय की प्रबलता के समय की हैं, जैसा उनके स्तंभों की सादगी और लकड़ी के काम की पत्थर में नक़ल से मालूम होता है । दसवीं गुफा के शिलालेख से ज्ञात होता है कि इस चैत्य का स्तूप कठहदी-नामक किसी व्यक्ति का दान है । इसमें श्यामा-जातक की श्रवण-वधादि कथाएँ चित्रित हैं ।

नं० ११—इस विहार के सामने की दीवार पर एक सुंदर बोधिसत्व है, जिसके मोतियों से सजे सिर को दिखाकर हमें बताया था कि इतना सुंदर मुँह उन्होंने कहीं देखा ही नहीं ।

नं० १२—यह ईसा की प्रथम शताब्दी का बना हुआ विहार है । इसके हाल में छोटे-छोटे कमरे खुलते हैं, जिनमें भिक्षुओं के सोने के लिये दो-दो चबूतरे कढ़े हुए हैं, जिन पर पत्थर ही के तकिए बने हैं । इस गुफा के स्तम्भ काल के प्रभाव से बहुत ही भग्नावस्था में हैं, इसीलिये निज़ाम-सरकार ने नए खंभे खड़े कर दिए हैं ।

नं० १५ की गुफा में बोधिसत्व की सबसे सुंदर मूर्ति है । नं० १७ के शिलालेख से ज्ञात होता है कि हरिसेन ने, जिसने १६वीं और सत्रहवीं गुफाएँ खुदवाई थीं, और स्थानों के अतिरिक्त उड़ीसा और उज्जैन भी जीता था । वाकाठकों के मंत्री वाराहदेव ने इस गुफा को पूरी कराया था । इसमें पिछले पौराणिक देवता गंगा, यमुना आदि के चित्र हैं । इसकी चित्रकला विशेषतया सजावट का काम करती है । इसमें सुतसोम-जातक की कथाएँ, नंद का धर्म-परिवर्तन, सप्तमनूषी बुद्ध, माया का गर्भ, असितऋषि द्वारा प्रस्तुत जन्मपत्र, पाठशाला का दृश्य, राजगृह और सुजाता, त्रपुस्स और भल्लिक के यहाँ निमंत्रित बुद्ध के चित्र अंकित हैं ।

नं० १७—इसी गुफा की सुंदर और सर्वोत्कृष्ट कारीगरी ५२० ई० के लगभग किसी बड़े जागीरदार अथवा सामंत राजा के आदित्य-नामक मंत्री की तैयार कराई हुई है । यह अत्यंत सुंदर गुफा है । प्रथम तो इसके चित्र सब गुफाओं से अच्छी दशा में हैं, दूसरे इसकी चित्रकला

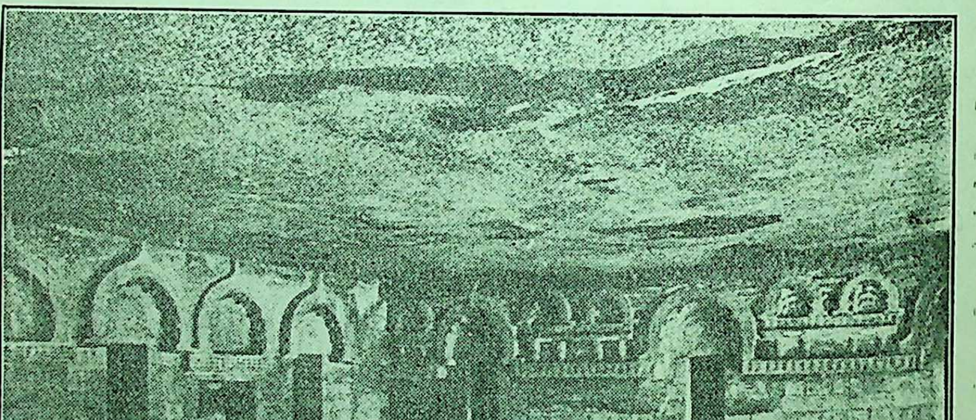

ईसा की प्रथम शताब्दी का बना बिहार

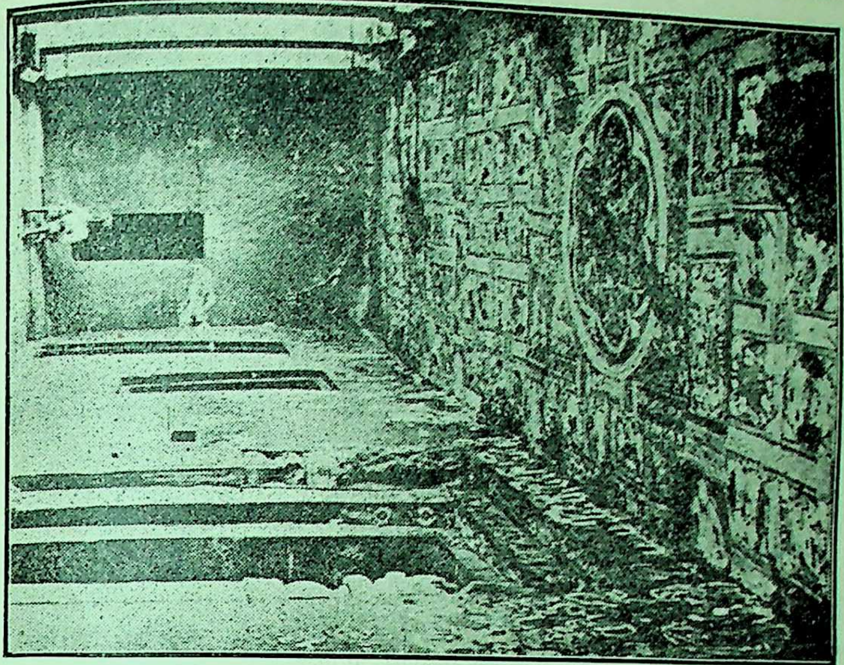

गुफा-नंबर १७—बरामदा और छत

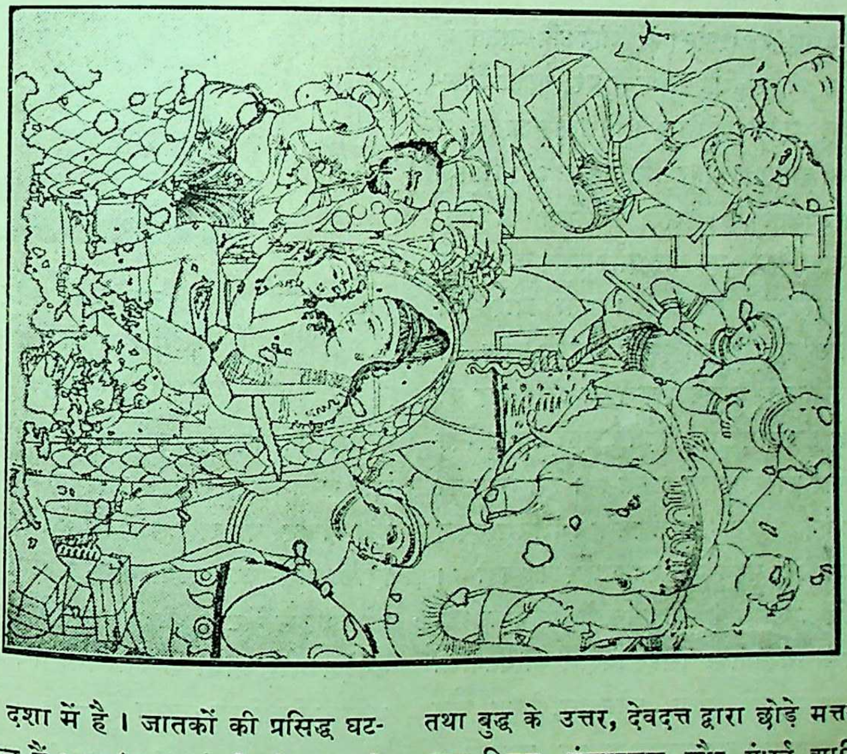

विश्वंतर-जातक का एक दृश्य

भी बहुत ही उन्नत दशा में है । जातकों की प्रसिद्ध घटनाएँ सब ओर अंकित हैं । षडदंत-जातक के सुंदर हाथी की प्रशंसा नहीं हो सकती । महाकपि, विश्वन्तर, सुतसोम, सरभ, मातृपोषक, मत्स्य, श्यामा, महिष, सिंहल, शिवि और मृगजातकादि के चित्र और सारिपुत्र के प्रश्न तथा बुद्ध के उत्तर, देवदत्त द्वारा छोड़े मत्तगजेंद्र का बुद्ध द्वारा विजय, संसारचक्र और गंधर्व आदि सभी दृश्य अत्यंत सुंदर हैं । बरामदे में वायु में उड़ते गंधर्व और अप्सराओं के मनोहारी चित्रों के अतिरिक्त इसी दीवार पर गुफा के अंदर के भाग में एक स्त्री बहुत ही सुंदर रूप

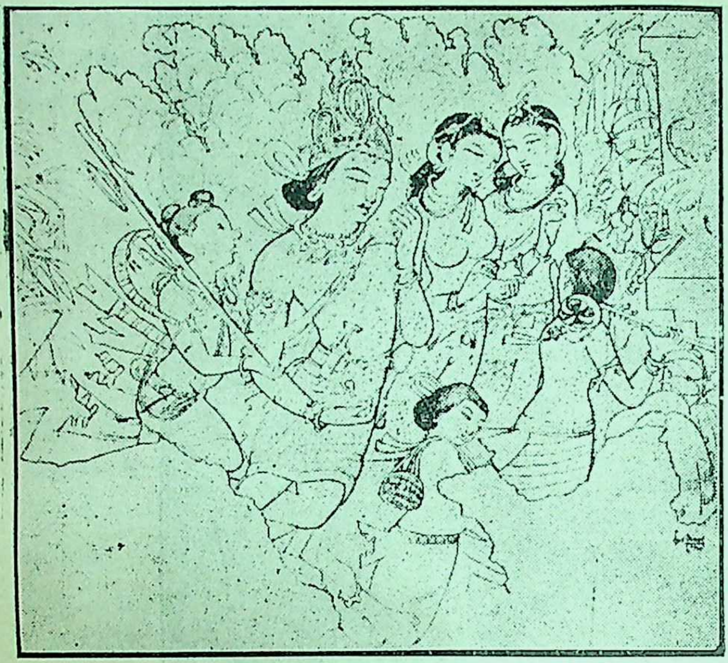

गंधर्व और अप्सराएँ

से बैठी दिखाई गई है । पास ही महाकपि-जातक के बंदरों का तालाब की स्फटिक सीढ़ियों पर बैठना बिलकुल जीवित दृश्य प्रदर्शन करता है । विश्वन्तर-जातक में वर्णित ब्राह्मण की क्रूरता इतनी स्वाभाविक नहीं है, जितनी उसके चित्र से टपकती है । उसके मुखमंडल की एक-एक सिकुड़न, दाढ़ी के एक-एक बाल और शरीर का प्रत्येक भाग उसकी क्रूरता के साक्षी हैं । माता और पुत्र (यशोधरा और राहुल) का सुंदर चित्रण-कला की पराकाष्ठा है । यशोधरा बालक राहुल को लिए बुद्ध को भिक्षा दे रही है । मुख पर एक दैवी अर्द्धस्फुट हास्यरेखा है । दोनों के सिर की स्थापना अद्भुत है । इस गुफा की एक दीवार पर एक सुंदर शृंगारदृश्य है । जिसमें दर्पण हाथ में लिए जाँघिया पहने एक स्त्री शृंगार कर रही है । संभव है, जाँघिया साड़ी के नीचे स्त्रियाँ पहनती रही हों । इस गुफा में विशेषतया सिंहलावदान की घटनाओं के चित्रण में हमने पर्दे, क्लिप, फ़ोल्डिंग, टेबुल और आराम-कुर्सियाँ देखीं । सिंहलावदान की घटनाएँ—जहाज़ का डूबना, सिंहल-नामक व्यवसायी का राक्षसियों के साथ विलास, उज्ज्वल बड़े बलह नाम के घोड़े पर आकाशमार्ग से भागना, राक्षसी द्वारा उसकी खोज, सिंहकल्प के अंतःपुर में उसका प्रवेश और सारे दरबारियों का भक्षण, सिंहल की प्रत्युत्पन्नमति, उसका साह और लंका-विजय—सब आश्चर्यजनक कुशलता से ए पूरी दीवार पर अङ्कित हैं । यह चित्र इतना सुंदर है कि इसका प्रति-चित्र गायकवाड़- बड़ोदा को निज़ाम-सरका की ओर से भेंट दिया जा रहा है । हंस द्वारा राजा के उपदेश और माया के लुम्बिनी-वन-प्रवेश को लक्ष्य क भगिनी-निवेदिता कहती हैं—

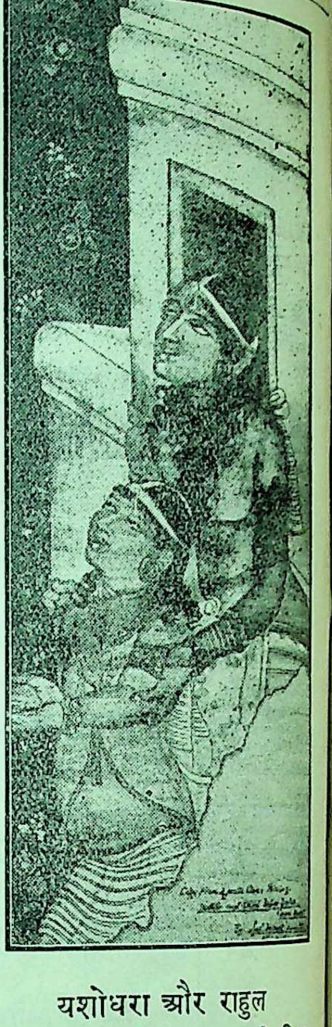

यशोधरा और राहुल

(यशोधरा अपने पुत्र राहुल को लिए हुए बुद्ध को भिक्षा दे रही है)

Now-here in the world could more beauti ful painting be found than in the king listen ing to the golden goose in Cave Seventee or than the mosque of spring—which I should have liked to interpret as the entrance o

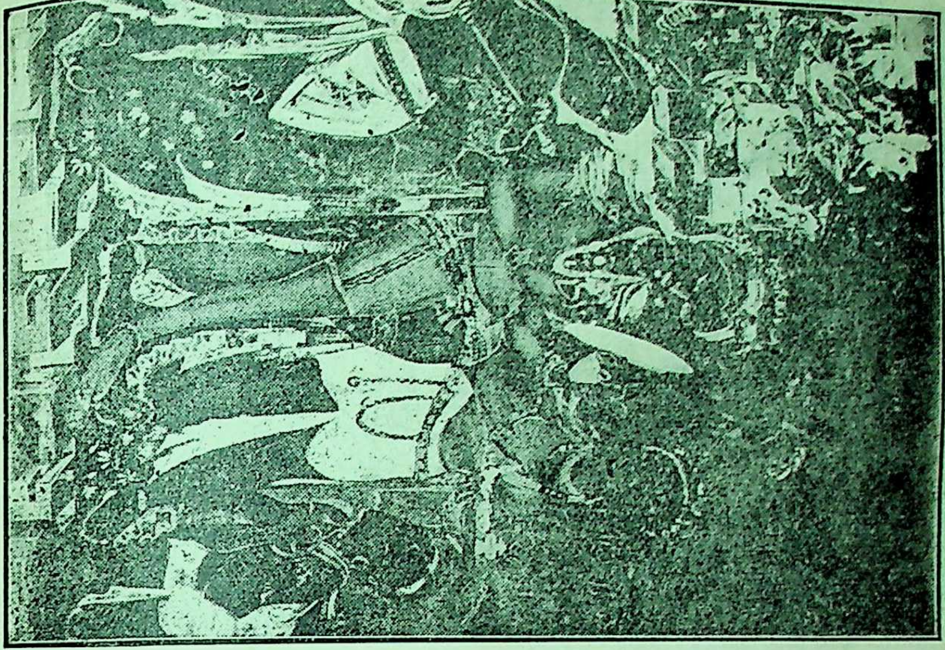

शृंगार-दृश्य

Queen Maya into the garden of Lumbini—on the top of a pilastor in the same Cave......... The anatomical knowledge shown in the modelling of limb and flesh is almost unapproachable.

नं० १८ की गुफा शिलाशिल्प में १७ वीं की नक़ल है। १८वीं और १९वीं भी आदित्य के ही परिश्रम के फल हैं। नं० १९ में महायान-सम्प्रदाय का समावेश हो गया है। इसमें बुद्ध कई प्रकार से चित्रित हैं। यह

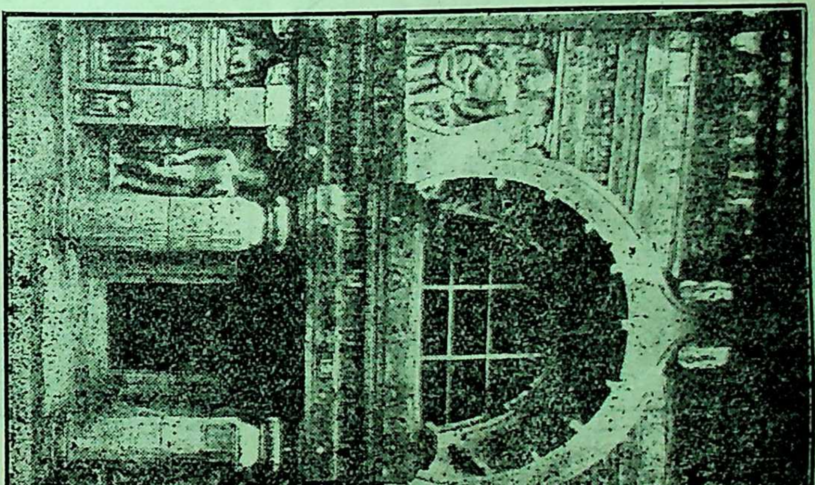

बुद्ध के विभिन्न चित्र

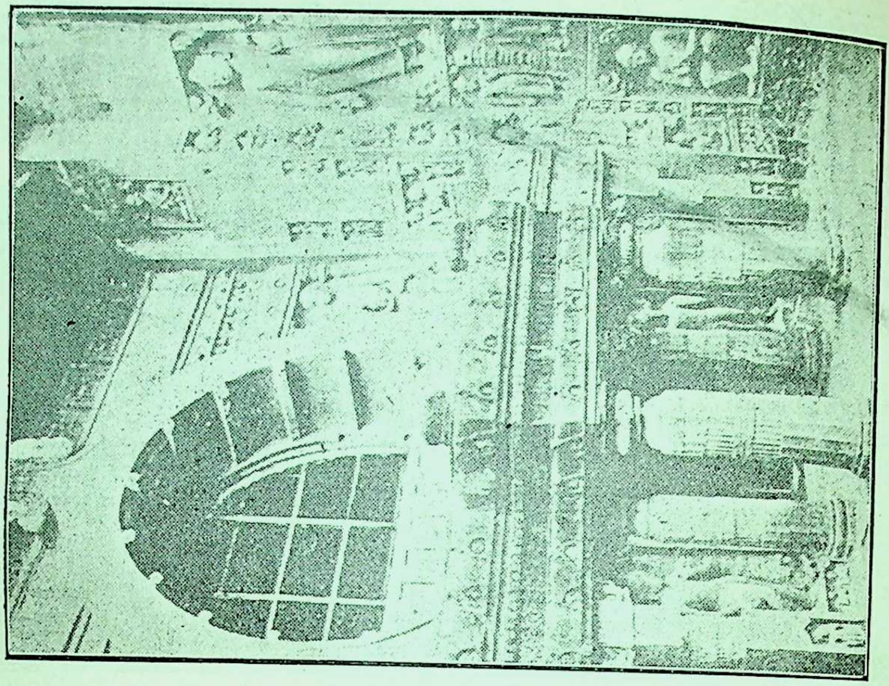

बुद्ध के विभिन्न चित्र

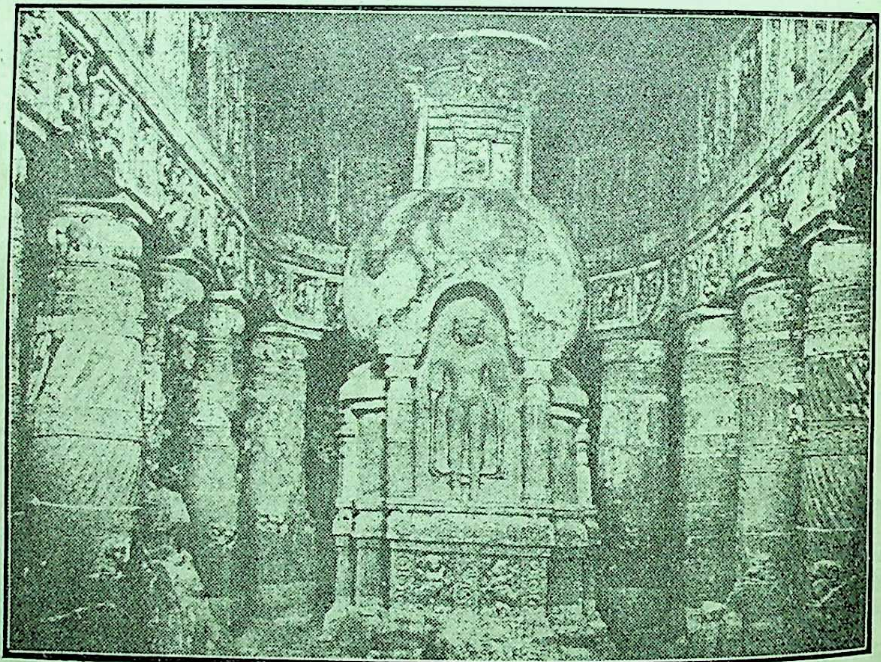

चैत्य-कमरे का भीतरी दृश्य

गुफा एक चैत्य है और इसके निर्माण में कुछ पश्चिमीय प्रभाव भी झलकता है । इसीलिये कलाविदों पर एक प्रकार की उच्छृङ्खलता आ गई है । इसका निर्माण-काल लगभग ई० ६०० है ।

नं० २० की गुफा एक प्रभावशाली और धनी व्यक्ति उपेंद्रगुप्त द्वारा बनवाई गई थी ।

२६वीं गुफा चैत्य है, जिसे संघाध्यक्ष बुद्धभद्र ने अपने आधीनाध्यक्ष धर्मदत्त और शिष्य भद्रबन्धु की सहायता

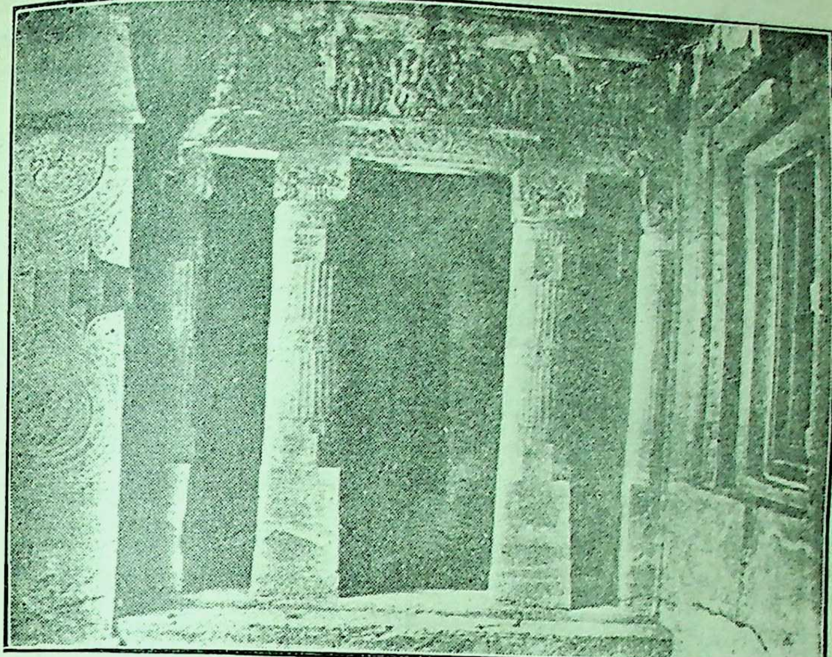

गुफा-नंबर २३—चैत्य के बीच का दृश्य

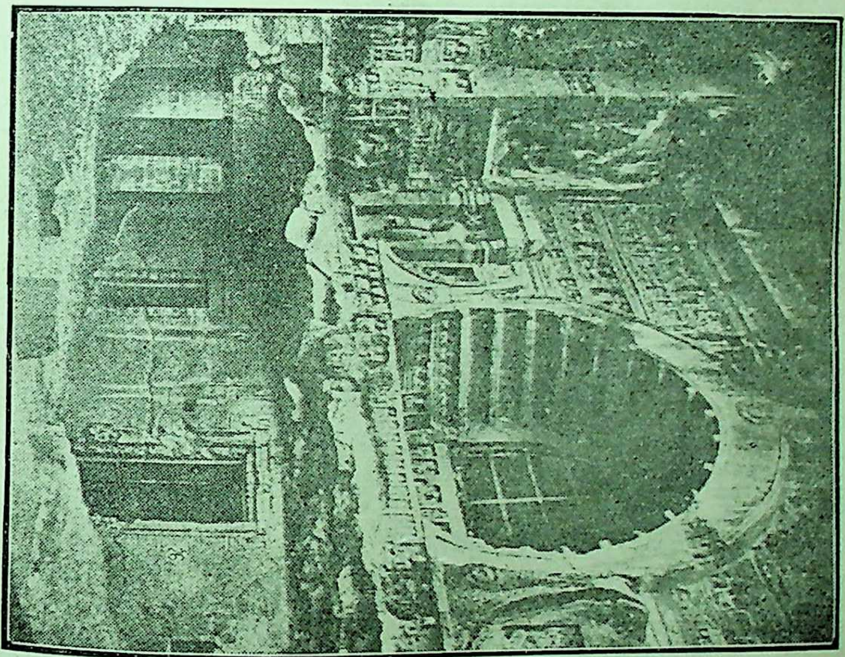

गुफा-नंबर २६—बुद्ध के विभिन्न चित्र

से ह्यूएनसांग के भ्रमण के बाद तैयार की थी। इसमें बुद्ध भगवान् की विशाल निर्माण-मूर्त्ति २३ फ़ीट लंबी लेटी हुई है। यह विचित्र मुद्रा अत्यन्त सुंदर है और जाँघें, बाहें, हाथ, उँगलियाँ सभी में सुंदर उतार है।

अब हम इस प्राचीन भारत की जातीय चित्रशाला का वर्णन समाप्त करते हैं। निज़ाम-सरकार जो केवल अतिथि-सत्कार पर ४० लाख रुपए प्रति वर्ष व्यय करती है और पुरातत्त्व-विषयक जिज्ञासुओं पर जिस द्रव्य का

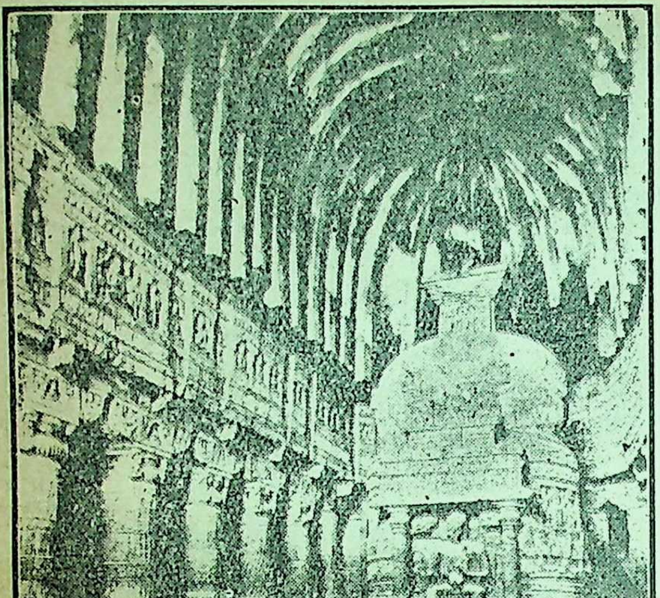

गुफा-नंबर २६—चैत्य-कमरे का भीतरी दृश्य

आधे से अधिक व्यय है, उसे अनेक धन्यवाद हैं। गुफाओं के जो स्थल प्राचीनता के कारण गिर रहे हैं या चित्रों में जहाँ का पलस्तर टूट रहा है, निज़ाम-सरकार परिश्रम और व्यय की चिन्ता न करके दुरुस्त कराती है। ऐसी सरकार को संसार की सर्वसुंदर चित्रशाला के अधिकारी होने का गौरव होना ही चाहिए। इस अजंटा की चित्रशाला की तीर्थयात्रा हमीं ने नहीं, प्रत्युत संसार के प्रत्येक कोने के निवासियों ने की है। अमेरिकन, नरवेजियन, अँगरेज़, फराँसीसी, इटैलियन, आस्ट्रियन, जर्मन सभी राष्ट्रीयता के लोगों ने यहाँ की कला की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। न-जाने कब वह दिन आएगा, जब अपने पूर्वजों की कला पर मुग्ध होकर हम केवल आश्चर्य न करके उनके आदर्श-सिद्धान्तों और कलाओं को संसार के सम्मुख सगर्व रक्खेंगे।

भगवतशरण उपाध्याय

क्यों नहीं आए ?

क्यों नहीं हाय तुम आए ?
खिलखिला उठे सब वन-कानन।
मृग-आनन फूल उठे धन-धन।
नभ में भी नाच उठे नव घन।
अब कैसे बैठा जाए ? किस तरह भुलाया जाए ?
क्यों नहीं हाय तुम आए ?
सूरज ने भी निज हीर-हार।
खोला है सुखद समीर-द्वार।
कर गरम उसासों का प्रचार,
हैं भव्य भाव फैलाए। सुख-सार सभी सरसाए।
क्यों नहीं हाय तुम आए ?
उस हिम के आलय ने निकाल,
सूरज सम्मुख रख एक थाल,
रवि-भाल प्रदीपित आज बाल,
ऐ लाल तेरे दिखलाए। माला जैसे पहनाए।
क्यों नहीं हाय तुम आए ?
फिर उसी वीरवर ने विशाल,
कर निज आँखों को लाल-लाल,
फैला गालों पर मेहजाल।
कुछ अश्रुबिंदु टपकाए। मन के मोती बिखराए।
क्यों नहीं हाय तुम आए ?
वह डूब गया सूरज कठोर।
यह उठी कलेजे में हिलोर।
चमका तारा है दूर भोर।
तब भी चितचोर न आए। मन में मन-मोर समाए।
क्यों नहीं हाय तुम आए ?
अपराधी मैं, तुम बने भूप,
शैवाल बना, तुम कालकूप,
जल जिसका वही अनूप रूप।
अब कैसे छूटा जाए ? सुख कैसे लूटा जाए!
क्यों नहीं हाय तुम आए ?

हरीश जोशी

प्रमेही, नपुंसक और धातु-रोगियों के लिए

ख़ुशख़बरी !!

कौन पढ़ा-लिखा नहीं जानता कि स्वास्थ्यरक्षा और चिकित्साचंद्रोदय के

लेखक

बाबू हरिदासजी

प्रमेह, धातरोग, शीघ्रपतन और नामर्दी के इलाज में पूर्ण अनुभवी हैं ? आपका लिखा

चिकित्साचन्द्रोदय

चौथा भाग

देखने से, वहमी से वहमी के दिल में यह विश्वास अटल हो जाता है कि उपरोक्त रोगों की चिकित्सा में, बाबू साहिब के समान अनुभवी बहुत कम चिकित्सक होंगे। उनका लिखा चिकित्साचंद्रोदय पढ़-पढ़कर अनेक वैद्य इन रोगों के इलाज में कामयाबी हासिल करके धन और मान कमा रहे हैं। हज़ारों रोगी केवल उनके ग्रंथ को पास रखकर और उसमें लिखे उपाय करके सफल-काम हुए हैं। आप एक बार उनके लिखे चिकित्साचंद्रोदय के सात भाग देखिए ता सही। अगर सातों भाग एकदम ख़रीदने की हिम्मत न हो तो पाँच रुपये दस आने का मोह छोड़कर उनका लिखा चतुर्थ भाग ही देखिए। उसे देखते ही आपको सातों भाग मँगाकर ही चैन आवेगा।

बहुत लिखने को स्थानाभाव है। अगर आप लड़कपन की नासमझी के कारण, कुसंगति के फलस्वरूप हस्तमैथुन–हैंड-प्रेक्टिस, मास्टरबेशन वग़ैरह करके अपने तईं संसार-सुख भोगने के अयोग्य बना चुके हैं, आपको ज़िंदगी भारस्वरूप मालूम होती है, प्रसंग में ज़रा भी आनंद नहीं आता, चैतन्यता नहीं होती, शीघ्र ही स्खलित होजाते हैं, अपनी लक्ष्मी की तृप्ति नहीं कर सकते, आपका वीर्य पाखाने के समय काँखने से निकल जाता है, आपका दिल काम-धंधे में नहीं लगता, हर समय उदासी छाई रहती है, स्मरण-शक्ति घट गई है, चेहरा लंबा हो गया है, आँखें खड्डों में घुस गई हैं, तो आप

हरिदास ऐंड कंपनी कलकत्ता के मालिक

बाबू हरिदासजी

को अपना पूरा हाल लिखिए। शर्म को उठाकर छप्पर पर रख दीजिए। आपके पत्र का वे ही ख़ुद देखेंगे। बंद पत्रों को उनके मैनेजर महाशय भी खोल नहीं सकते। साथ ही ॥) के पोस्ट-स्टाम्प क्लर्क की उज़रत वग़ैरह को साथ भेजिए। वे आपके रोग का नाम, आराम होगा या नहीं, अगर आराम होगा तो कितने दिनों में—क्या दवा सेवन करनी होगी। उसकी क़ीमत क्या होगी, लिख भेजंगे। फिर आपकी तसल्ली हा, तो उनसे दवा मँगाकर सेवन करें और अपना जीवन सफल करें।

पत्रव्यवहार—**हरिदास ऐंड कंपनी**

गंगा-भवन, मथुरा सिटी

के पते से करें, क्योंकि बाबू साहब बुढ़ापे के कारण, ज़ियादातर मथुरा में ही रहने लगे हैं। दूसरी वजह यह है कि वे दवा के मामले में किसी का भी विश्वास नहीं करते, अपने सामने दवाएँ मथुरा में ही बनवाते हैं। इसलिये ताज़ी दवाएँ मथुरा में ही मिलती हैं। वहीं से बन-कर कलकत्ते की दूकान पर आती हैं।

अच्छा, अगर आपको हमारी बातों पर विश्वास न हो, तो एक सज्जन की ख़ुश होकर लिखी हुई चिट्ठी नीचे देखिए। इससे ज़ियादा तसल्ली कराने का तरीक़ा हमें और नहीं मालूम।

❁ एक सच्चा प्रशंसा-पत्र ❁

बाबू नंदकिशोर शर्मा, हाई स्कूल, रायबरेली से लिखते हैं—

जिस रोग में आज भारत के ९० प्रतिशत पुरुष ग्रसित हैं, जिस रोग ने असंख्य नवयुवकों का जीवन निःसार बना दिया है, और जिस कराल व्याधि के कारण नित्य ही सहस्रों युवक प्राण तक त्यागते हैं—उसके निवारण करने का सच्चा मार्ग मैं बताता हूँ। आशा है, मेरे देशभाई इस राह पर चलकर अपने इस्ट स्थान—मंज़िल मक़सूद तक पहुँच सकेंगे।

"मेरे एक अनन्य मित्र... ...को प्रमेह, धातुरोग और नपुंसकता का मर्ज़ था, वह मृत्युदायक (Death dealing) हस्तमैथुन की कुटेव में फँस गए थे। उनके दुःख की सीमा नहीं थी, कारण कि वह अब क्लीवता (नामर्दी) को प्राप्त हो गए थे। युवती—उठती जवानी की स्त्री को इठलाती देखकर मरने पर तत्पर हो जाते थे। परंतु ईश्वर की दया से अथवा अपने भाग्यबल से, उन्होंने मुझसे, एक सच्चे मित्र के नाते, अपनी संपूर्ण मर्मस्पर्शी कथा कह दी। मैंने उन्हें आश्वासन (तसल्ली) दिया।

बाबू हरिदासजी वैद्य कलकत्ते वाले को, जो आजकल मथुरा में रहते हैं, मैं बहुत दिनों से जानता था। उनकी सुख्याति भी मैंने सुनी थी। अतएव अपने मित्र के लिये मैंने उक्त वैद्यजी से तिला नं० १—मूलिकादि तेल—लगाने के लिये और केशरपाक आदि खाने के लिये मँगवा दिया। नतीजा यह हुआ कि इन दवाओं के सेवन से मेरे मित्र महाशय पूर्ण नीरोग और संसारसुख भोगने योग्य हो गए। इन्द्रिय-दोष तो बिलकुल जाता रहा। वीर्य-रोग में थोड़ी-सी कसर है। इलाज चल रहा है, आशा ही नहीं प्रत्युत दृढ़ आशा है कि वह ज़रा-सी कसर भी हो पूरी जावेगी।

अंत में मेरी अपील अपने उन देशवासियों से है, जो उक्त व्याधियों के शिकार हो चुके हैं तथा अपने जीवन तक को खोने को तैयार हैं कि वे बिना किसी संदेह के, बिना अधिक देर किये, सीधे बाबू हरिदासजी वैद्य से अपना इलाज करावें। यहाँ किसी प्रकार की धोखेबाज़ी नहीं है। नपुंसकता, शीघ्रपतन और धातु-रोगियों का इलाज यहाँ सब जगह से अच्छा होता है। ओषधियों का लाभ सच्चा और निश्चित है। हाँ, बाबूजी के इलाज में देर भले ही हो। पर काम सच्चा तथा पक्का होता है।

पता—**हरिदास ऐंड कंपनी,**
गंगा-भवन, मथुरा यू० पी० (सिटी)

रायबहादुर गौरीशंकरजी ओझा के आक्षेपों का उत्तर

(माधुरी संख्या ८० से संबद्ध)

कार्तिक (संवत् १९८५) मास की माधुरी के पृ० ५४६ से ५५५ तक फिर श्रीमान् श्रद्धेय ओझाजी का उत्तर प्रकाशित हुआ है। हम उसका प्रत्युत्तर देने की चेष्टा करते हैं।

लेखारंभ में ही स्वर्गीय मुंशीजी की झूठी दुहाई देकर ओझाजी लिखते हैं कि--

"मुंशी देवीप्रसादजी ने महाराणा उदयसिंह का जीवनचरित्र प्रकाशित किया है। उसमें महाराणा उदयसिंह को दी हुई राव मालदेव की सहायता का कोई उल्लेख नहीं है। इसी तरह मुंशीजी ने जोधपुर के राव मालदेव का भी जीवनचरित्र लिखा है; उसमें भी महाराणा उदयसिंह को राव मालदेव की सहायता देने का कहीं उल्लेख नहीं है।"

इसके बाद आपने नैणसी का आश्रय लेने की चेष्टा करते हुए लिखा है--

"मुहणोत नैणसी ने भी अपनी ख्यात में मालदेव की इस सहायता का उल्लेख नहीं किया। उसने तो यह लिखा है कि महाराणा उदयसिंह ने सोनगरे अखैराज की पुत्री से विवाह किया था, जिससे वह कूँपा महराजोत आदि मारवाड़ के राठोर-सरदारों को भी अपने साथ ले आया था।"

इस प्रकार श्रद्धेय मुंशीजी और नैणसी के लेखों से मनमाने अवतरण देकर आगे वीर-विनोद पर भी आपने छींटे उड़ाए हैं। श्रीमान् ने लिखा है--

"मुंशीजी ने भी, जो मारवाड़ के इतिहास के विशेषज्ञ थे, महाराणा उदयसिंह के जीवनचरित्र में लिखा है कि सोनगरे अखैराज ने, जिससे अपनी बेटी महाराणा उदयसिंह को ब्याही थी, १०,००० सोनगरों से उसकी सहायता की थी। उन्होंने यह भी लिखा है कि उदयसिंह ने दूसरी शादी राठोर कूँपा महरोज की पुत्री से की थी, जिससे उसने भी १५,००० राठोरों से उदयसिंह की सहायता की। इस पर से पाठक जान जावेंगे कि मुंशीजी और नैणसी की पुस्तकों में कहीं मालदेव की सहायता का उल्लेख नहीं है। रेऊजी ने उदयपुर के प्रसिद्ध इतिहास वीर-विनोद का अपने कथन की पुष्टि में हवाला दिया है, परंतु वीर-विनोद में इस संबंध में जो कुछ लिखा गया है, वह मारवाड़ की ख्यात से ही लिया हुआ होने के कारण विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता।"

अब हम पाठकों से पूछना चाहते हैं कि वयोवृद्ध ओझाजी, जो बात-बात में अपने को हरिश्चंद्र का अवतार और दूसरे को कलियुग की मूर्ति बतलाने का प्रयत्न करते रहते हैं, क्या कभी स्वार्थवश लोगों को धोका देने का विचार भी कर सकते हैं? कभी नहीं। ऐसे श्रद्धेय विद्वान् के लिये ऐसे भाव का चित्त में उठना ही पाप है। परंतु साथ ही यह भी कहना ही पड़ेगा कि स्वार्थदेव की महिमा भी अपार है।

श्रीमान् ओझाजी ने मुंशीजी के लिखे जिस उदयसिंहजी के जीवन-चरित्र का अपने लेख में उल्लेख किया है, वह मुंशी देवीप्रसादजी ने आज से ३४ वर्ष पूर्व (वि० सं० १९५०) में लिखा था। उसमें लिखा है--

"उदयसिंहजी ने जालोर के सोनगरों से मदद माँगी। उस वक़्त सोनगरों का सरदार अखैराज मारवाड़ के राव मालदेवजी की सरकार में नौकर था; जिन्होंने मेवाड़ में दुराजा देखकर कई परगने उत्तर और पश्चिम के, जो मारवाड़ से मिले हुए थे, दबा लिए थे और राठोर कूँपा महराजोत को मदारिए में थानेदार रक्खा था। अखैराज राव मालदेवजी की मंजूरी से कूँपा महराजोत, राणा अखैराजोत और जैसा भैरूँदासोत वग़ैरा राठोर-सरदारों को लेकर उदयसिंहजी की मदद को आया।

"इन्होंने (उदयसिंहजी ने) चित्तौड़ में गद्दी पर बैठकर जब राठोर-सरदारों को सीख दी, तब राव मालदेवजी के वास्ते उस मदद के शुकराने में ४०,००० फ़ीरोज़ी और वसंतराय नाम का हाथी भेजा।"

महाराणा उदयसिंहजी के जीवनचरित्र के इन अवतरणों को पढ़कर दो ही ख़याल पैदा हो सकते हैं कि या तो ये अवतरण झूठे हैं या श्रीमान् ओझाजी का बार-बार अपनी सचाई दिखलाना कुछ भी मूल्य नहीं रखता।

रही मुंशीजी के लिखे मालदेवजी के जीवनचरित्र की बात, सो एक तो यह चरित्र उन्होंने आज से क़रीब ३८ वर्ष पूर्व (वि० सं० १९४६) में लिखा था, और दूसरा वह इतना छोटा है कि उसमें १४-१४ अक्षरों की कुल १६१ पंक्तियाँ ही हैं। फिर उनमें भी केवल उनके और मुसलमानों के साथ के झगड़ों का ही संक्षिप्त वर्णन है।

आगे मुहणोत नैणसी का भी पूरा अवतरण देते हैं—

"(उदैसिंह) सोनगरा अखैराज रिणधीरोत री बेटी परणी हुतो। पछै अखैराज ने उदैसिंघ कहाडियो अखैराज घणो साथ लेने आयो। कूँपो मैहराजोत राणों अखैराजोत, भदो कन्ह पंचायणोत जेसौ भैर वदा सोत मारवाड़ रो सारो साथ लेने उदैसिंघरी मदत अखैराज आयो।"

इससे भी स्पष्ट प्रकट होता है कि पाली के ठाकुर अखैराज से उनके जामाता उदयसिंहजी ने सहायता की प्रार्थना की और वह कूँपा आदि के साथ ही 'मारवाड़रो सारो साथ' अर्थात् मारवाड़ की सारी सेना लेकर मेवाड़ पहुँचा। पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि क्या मारवाड़-नरेश का एक सामन्त उनकी आज्ञा के विना ही मारवाड़ की सेना को दूसरे के स्वार्थ के लिये देश के बाहर लड़ने को ले जा सकता था?

इसी प्रकार ओझाजी ने अपने मत की पुष्टि में मुंशीजी की विद्वत्ता की दुहाई देकर महाराणा उदयसिंह का विवाह कूँपा की लड़की से होना दिखलाया है और इसी बहाने से इन दोनों का आपस का घनिष्ट संबंध प्रकट करने की भी चेष्टा की है।

परंतु राजपूताना के इतिहास के पृ० ७१६ की तीसरी टिप्पणी में स्वयं आप अपनी ही लेखनी से इस संबंध का खंडन कर चुके हैं। आपने वहाँ पर लिखा है—

"मुंशी देवीप्रसाद ने लिखा है कि उदयसिंह ने दूसरी शादी राठोर-कूँपा (महराजोत) की लड़की से की थी, जिससे वह भी १५,००० राठोरों के साथ आ मिला। परंतु नैणसी अखैराज का कूँपा को लाना लिखता है और शादी का उल्लेख नहीं करता। मेवाड़ के बड़वे की ख्यात में भी जहाँ उदयसिंह की रानियों की नामावली दी है, वहाँ कूँपा की पुत्री का नाम नहीं है।"

इसी प्रकार आगे आपने अपने मत के विरुद्ध होने के कारण वीर-विनोद के प्रमाणों को भी मारवाड़ की ख्यातों के आधार पर लिखा बतलाया है। परंतु हमें जहाँ तक स्मरण है, आप स्वयं वीर-विनोद बनानेवाली कमेटी के मंत्री रह चुके हैं। अतः इस प्रकार मौके पर अपने ही किए पर पानी फेर देना विद्वानों को शोभा नहीं देता।

इतना लिखने के बाद हम माधुरी के पाठकों से सादर पूछना चाहते हैं कि कार्त्तिक की माधुरी के पृ० ४११ के द्वितीय कालम में ओझाजी ने जो लिखा है कि "हम इस कथन को झूठी ख़ुशामद के सिवा और कुछ नहीं समझते" यह किसके लिये अधिक ठीक हो सकता है?

आगे आपने हमारी निम्न-लिखित पंक्तियों पर आक्षेप किया है। हमने ज्येष्ठ की माधुरी में लिखा था कि—

"राजस्थान के इतिहास के प्रथम भाग की भूमिका के पृ० २२-२३ में मारवाड़ के मुहणोत नैणसी की लिखी ख्यात की ख़ासी प्रशंसा की गई है। पृ० २३ में तो यहाँ तक लिखा है कि वि० सं० १३०० के बाद से नैणसी के समय (वि० सं० १७२२) तक के राजपूतों के इतिहास के लिये तो नैणसी की ख्यात मुसलमानों की लिखी हुई तवारीख़ों से भी कहीं-कहीं विशेष महत्त्व की है। ....फिर क्या कारण है कि राव जोधाजी के इतिहास में उसी मारवाड़ की ख्यात के बारे में लिखा गया है कि वह ख्यात वि० सं० १७०० के पीछे की बनी हुई होने से उसमें पुराना वृत्तांत भाटों की ख्यातों के आधार पर लिखा गया है। अर्थात् वह झूठा है। यह परस्पर विरोधी मत कैसा। फिर यदि पिछली उक्ति नैणसी की ख्यात के बारे में नहीं है, तो उसमें का लिखा मारवाड़ के राव रणमल्ल, जोधा आदि का इतिहास क्यों न मान्य समझा जाय? क्योंकि यह इतिहास भी तो (वि० सं० १३०० के बाद का) वि० सं० १४ का ही है।"

इस पर आक्षेप करते हुए ओझाजी लिखते हैं कि--

"वास्तव में यहाँ तो रेऊजी ने पाठकों की आँखों में धूल डालने में प्रशंसनीय चातुरी दिखलाई है।

"नैणसी की ख्यात और मारवाड़ की ख्यात दोनों भिन्न-भिन्न ग्रंथ हैं।

"ऐतिहासिक होने का दावा करनेवाले व्यक्ति के लिये ऐसी चेष्टाएँ कहाँ तक गौरवपूर्ण हो सकती हैं।

'नैणसी की ख्यात राजपूताने-भर की दूसरी सब ख्यातों से अधिक उत्तम है।

"नैणसी की ख्यात, टाडराजस्थान, वीर-विनोद आदि राजपूताने के इतिहास-संबंधी ग्रंथों में जो कुछ लिखा मिलता है, वह सबका सब ठीक है, यह कभी नहीं माना जा सकता ; जिस पुस्तक का जो अंश इतिहास की कसौटी पर ठीक जँचे, वही हमें मान्य हो सकता है। नैणसी के संवत् १४५० के इतिहास के लिये भी कसौटी नियत है।"

परंतु पाठक देखें कि हमारे लेख का भी तो यही तात्पर्य है कि यदि ओझाजी का यह उल्लेख नैणसी की ख्यात के बारे में ही है, जो स्वयं वि० सं० १७०० के पीछे की बनी हुई है, तो यह उनका पूर्वापर विरोधी मत है। ऐसी हालत में लोगों की आँखों में धूल झोंकने का अपराध हम पर कैसे लगाया जा सकता है। ख़ैर, यहाँ पर हम श्रीमान् से दो बातें पूछना चाहते हैं। उनमें से पहली तो यह है कि नैणसी की ख्यात से भिन्नता बतलाते हुए जिस ख्यात का आपने उल्लेख किया है, उसका लेखक कौन है ? और दूसरी यह कि नैणसी, वीर-विनोद और टाडराजस्थान में की जोधपुर और उदयपुर से संबंध रखनेवाली घटनाओं को आप किस कसौटी पर जाँचते हैं ? क्या जिसमें जोधपुर की महत्ता और उदयपुर की न्यूनता हो, वह घटना झूठी और इससे विपरीत हो, वह सच्ची समझ ली जाय, यही आपकी कसौटी है ? हमारी समझ में श्रीमान् को उचित तो यह था कि आक्षेपों का उत्तर देते समय उस कसौटी को और उसके जाँच के तरीक़े को भी आप जनता के सामने रखते। परंतु खेद है कि आपने इसके विपरीत मुंशीजी के लिखे महाराणा उदयसिंह के जीवनचरित-जैसे ग्रंथ के अवतरणों को भी किस बुरी तरह से काट-छाँटकर प्रमाणों में उद्धृत किया है, यह पाठकों ने देख ही लिया होगा। ऐसी हालत में यही लिखना पड़ता है कि न-मालूम कौन ऐतिहासिक होने का दावा कर लोगों की आँखों में धूल झोंक रहा है ?

आगे श्रीमान् ने हम पर शिलालेख को झूठा कहने का घोरतर अपराध लगाया है।

ज्येष्ठ की माधुरी में अपने लेख को समाप्त करते हुए हमने लिखा था कि राणपुर के (वि० सं० १४९६ के) लेख से पाया जाता है कि "उस समय तक महाराणा कुंभा ने अपने भुजबल से ऊपर लिखे अनेक (१०) क़िले जीत लिए थे और गुजरात और देहली के सुलतानों ने डरकर उसे छत्र भेट किए थे। क्या ये बातें सच्ची समझी जा सकती हैं ? उस समय महाराणा कुंभा की आयु केवल १२ वर्ष की होती है और यह उक्त (राजपूताने के) इतिहास के लेखानुसार राणा कुंभा के राज्य के ७ वर्षों का हाल है। तब क्या ५ वर्ष की आयु से ही उसने उपर्युक्त कार्य करने आरंभ कर दिए थे ? अतः या तो यह उक्त लेख के रचयिता का ही प्रभाव है या प्रकारांतर से यह सब रणमल्ल के ही प्रबंध की प्रशंसा है ; क्योंकि महाराणा के बालक होने के कारण वि० सं० १४९५ तक वही मेवाड़ का प्रबंध करता था और उसी वर्ष दुष्टों ने बालक महाराणा को बहकाकर धोके से उसे मार डाला।"

इसका उत्तर देते हुए श्रीमान् लिखते हैं कि इस लेख में के विजयों का उल्लेख अन्य शिलालेखों में भी मिलता है।

आपका लिखना बिलकुल सत्य है। परंतु हमारे उपर्युक्त आक्षेप का केवल इतना ही तात्पर्य था कि ५ वर्ष की अवस्था से १२ वर्ष की अवस्था तक महाराणा का अपने ही कौशल से १० क़िले विजय कर देहली और गुजरात के बादशाहों से छत्र भेट लेना नितांत असंभव-सा ही प्रतीत होता है, और यदि वास्तव में ये घटनाएँ हुई हों, तो इनका श्रेय मेवाड़-राज्य के प्रबंधक रणमल्ल को ही मिलना चाहिए।

स्वयं श्रीमान् ने भी राजपूताने के इतिहास के पृ० ५८३ के फ़ुटनोट नं० १ में राज्य पर बैठते समय मोकल की अवस्था १२ वर्ष की मानी है। यदि १४७७ में ये गद्दी पर बैठे हों और इनकी १७ वर्ष की अवस्था में ही इनके पुत्र कुंभाजी का जन्म हुआ हो, तो उनका जन्म वि० सं० १४८२ में मानना होगा।

इसके अनुसार उपर्युक्त शिलालेख के लिखे जाने के समय कुंभाजी की अवस्था १४ वर्ष के क़रीब आयगी। ऐसी हालत में आपके मतानुसार भी ७ वर्ष की अवस्था से १४ वर्ष की अवस्था तक महाराणा कुंभा का अपने ही कौशल से उपर्युक्त कार्य कर गुजरना कैसे संभव हो सकता है। हाँ, यह सब मेवाड़-राज्य के संरक्षक रणमल्लजी के सुप्रबंध और कौशल का नतीजा माना जाय, तो इसमें किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती।

इसके अलावा इसी लेख में जो देहली के बादशाह द्वारा राणा कुंभा को छत्र भेट किए जाने का उल्लेख है, उसे तो हम अब भी चंडूख़ाने की गप्प ही समझते हैं। इसी प्रकार इस लेख में जो बप्प को गुहिल का पिता लिखा है, उसे तो श्रीमान् भी अपने राजपूताने के पवित्र इतिहास के पृ० ४०७ में झूठ मान चुके हैं।

यहाँ पर हम श्रीमान् के लेख से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं--

"इतिहास में बड़े और छोटे का कोई प्रश्न नहीं है।* उसको लिखने के लिये हठधर्मी को छोड़कर निष्पक्षपात गवेषणा तथा पुष्ट प्रमाणों की आवश्यकता रहती है।"

पाठक देखें कि श्रद्धेय ओझाजी ने अपनी ही लिखी इन पंक्तियों का कहाँ तक पालन किया है।

आगे श्रीमान् लिखते हैं कि--"लेखांत में भवभूति या विल्हण के ग्रंथों से श्लोक लिख देने से उसका महत्त्व नहीं बढ़ जाता।"

वास्तव में आपका लिखना यथार्थ है। लेखांत में तो "माधुरी में प्रकाशित रेऊजी का यह सारा लेख प्रमाण-शून्य है।"+

इस प्रकार का फतवा देने से ही उसकी महत्ता बढ़ती है।

इसके बाद श्रीमान् लिखते हैं कि--

"रेऊजी का यह लेख इतिहास की शुद्धि के लिये नहीं बल्कि उसे भ्रष्ट करने के उद्देश्य से लिखा गया है। इतिहास-विषय में हमारे ही शिष्य होने के कारण रेऊजी के ऐतिहासिक ज्ञान से हम खूब परिचित हैं।"

इस पर हमारा नम्र निवेदन है कि अब तो माधुरी के पाठक स्वयं ही निर्णय कर लेंगे कि वास्तव में अथवा लोभवश इतिहास को भ्रष्ट करने का प्रयत्न कि से हो रहा है।

रही हमारी आपसे प्राचीन लिपि सीखने की बात, सो हम तो वि० सं० १८८२ की श्रावण की माधुरी में आपके इतिहास की समालोचना करते समय स्वयं ही इसका उल्लेख कर चुके हैं। परंतु श्रीमान् ने जो हमारे इतिहास ज्ञान के परिचय की बात लिखी है, सो वह तो श्रीमान् और स्वर्गीय श्रीचंद्रधर शर्मा गुलेरीजी द्वारा नागरी प्रचारिणी पत्रिका के लिये लेख भेजने के तक़ाज़ों के लिखे अनेक पत्रों से प्रकट ही है। इसके अलावा श्रीमान् की कृपा के फलस्वरूप इन परस्पर की लेखमालाओं से अब तो इसका थोड़ा बहुत परिचय शायद हिंदी-संसार को भी हो जायगा।

यहाँ तक तो श्रीमान् ओझाजी का उत्तर पक्ष था परंतु यहाँ से आपका पूर्व पक्ष प्रारंभ होता है।

पहलेपहल आप राठोरों और गाहड़वालों के भिन्न वंशी होने का उल्लेख करते हुए लिखते हैं--

"अब तक के शोध से ऐसा एक भी प्रमाण नहीं मिला, जिसके आधार पर निश्चित रूप से यह कहा जा सके कि गाहड़वाल और राठोर एक ही वंश के हैं।"

यह कितनी कमज़ोर उक्ति है। क्या आपको अब तक एक भी ऐसा प्रमाण मिला है, जिसके आधार पर आप निश्चित रूप से इनको भिन्न-वंशी सिद्ध कर सकें।

आगे आपने हमसे ३ प्रश्न किए हैं--

पहला प्रश्न--१६०० के पूर्व के राठोरों के किसी शिलालेख, ताम्रपत्र अथवा ऐतिहासिक ग्रंथ में कहीं भी उनका सूर्यवंशी होना नहीं लिखा है। धमोरी अमरावती से मिले कृष्णराज के सिक्के, जिन पर 'महादित्य पादानुध्यात' लिखा है, कृष्ण तृतीय के हैं और उसमें का 'महादित्य' पद या तो उसके पिता के नाम का या उपाधि का द्योतक है।

उत्तर--वास्तव में आपका लिखना ठीक ही है। परंतु राष्ट्रकूट गोविंदराज तृतीय के श० सं० ७३० (वि० सं ८६५) के राधनपुर से मिले दानपत्र में लिखा है--

"यस्मिन्सर्वगुणाश्रये क्षितिपतौ श्रीराष्ट्रकूटान्वयो
जाते यादववंशवन्मधुरिपावासीदलंघ्यः परैः।"

---

* माधुरी (कार्तिक) पृ० ५५०, कालम २।

+ माधुरी (कार्तिक) पृ० ५५१, कालम १।

अर्थात्--जिस गुणी राजा के उत्पन्न होने पर राष्ट्रकूट-वंश, श्रीकृष्ण के उत्पन्न होने पर यादववंश की तरह, शत्रुओं से अजेय हो गया था।

इससे ज्ञात होता है कि वि० सं० ८६५ तक राष्ट्रकूट-वंश यदि सूर्यवंशी नहीं समझा जाता था, तो भी यादव-वंश से तो अवश्य ही पृथक् समझा जाता था। पर पीछे से अमोघवर्ष प्रथम के श० सं० ७८२ के दानपत्र के लेखक ने राधनपुरवाले लेख में के यादववंश के उपमान और राष्ट्रकूट-वंश के उपमेय भाव को न समझ इस वंश को यादववंशी लिख दिया होगा तथा पिछली प्रशस्तियों के लेखकों ने और हलायुध ने उसी का अनुकरण कर लिया होगा।

कृष्णराज के सिक्के प्रथम कृष्णराज के हैं या तृतीय के, इस विषय में यद्यपि दोनों पक्षों के पास कोई प्रमाण नहीं है, तथापि भारतीय पुरातत्व-विभाग ने इन्हें कृष्ण प्रथम का ही अनुमान किया है। इस विषय का उक्त विभाग के डिपटी डाइरेक्टर जनरल का पत्र हमारे पास मौजूद * है। रही 'पादानुध्यात' के अर्थ की बात, सो ओझाजी ने इसका शब्दार्थ 'चरणों का ध्यान करनेवाला' लिखकर आगे लिखा है कि "संस्कृत-शिला-लेखों तथा ताम्रपत्रों में 'पादानुध्यात' शब्द से पूर्व का नाम उक्त शब्द से पिछले नामवाले राजा के पिता (या पूर्वाधिकारी) के नाम अथवा विरुद का सूचक होता है। महादित्य कृष्णराज के पिता का विरुद होना चाहिए, न कि वंशसूचक शब्द।"

हमारा श्रीमान् से नम्र निवेदन है कि आप कृपा कर कृष्णराज के पिता के अथवा उसके वंशजों के लेखों या ताम्रपत्रों में दिए हुए विरुदों में कहीं भी इस विरुद का उल्लेख बतला दें। हम तत्काल आपके मत को स्वीकार करने को उद्यत हैं। परंतु इसके विरुद्ध कपोलकल्पना-मात्र से या कसौटी का नामोल्लेख-मात्र कर देने से तो काम नहीं चल सकेगा। हमारे ख़याल में तो राष्ट्रकूट-नरेशों के विरुदों में इसका उल्लेख कहीं भी नहीं हुआ है। ऐसी हालत में 'परममाहेश्वरमहादित्यपादानुध्यात श्रीकृष्णराज' का सीधा अर्थ यही होगा कि 'परमशिव-भक्त सूर्य का अनुगामी श्रीकृष्णराज'। यहाँ पर अनु-गामी से पिता का पुत्र के समान अनुगमन करनेवाला अर्थात् वंशज ही मानना होगा। थोड़ा-सा विचार करने से स्वयं ओझाजी के ऊपर उद्धृत किए अर्थ से भी इसकी पुष्टि हो जायगी। क्योंकि जब 'महादित्य से कृष्णराज के पिता का कोई संबंध स्थिर न हो सकेगा, तब इससे कृष्णराज के मूल-पुरुष का ही संबंध मानना होगा'।

हमने जो राष्ट्रकूटों का आदि में सूर्यवंशी होना माना है, वह उनको और गाहड़वालों को एक अनुमान करके ही माना है। इसकी पुष्टि में हमारा निवेदन इस प्रकार है—

बदायूँ के राष्ट्रकूट लखनपाल के लेख में के चंद्र और गाहड़वाल चंद्र के कार्यों पर विचार करने से अनुमान होता है कि ये दोनों चंद्र एक ही थे। पहलेपहल राठोर चंद्र ने बदायूँ लेकर शीघ्र ही कन्नौज पर भी अधिकार कर लिया होगा। इसके बाद उसके बड़े पुत्र मदनपाल को तो कन्नौज का राज्य और छोटे पुत्र विग्रहपाल को बदायूँ की जागीर मिली होगी तथा कुछ काल में प्रतापी हो जाने से कन्नौज के राज्याधिकारी गाहड़वाल के नाम से प्रसिद्ध हो गए होंगे।

वास्तव में देखा जाय, तो सूर्य, चंद्र और अग्निवंशों का यह झगड़ा पौराणिक कल्पना-मात्र ही है।

दूसरा प्रश्न—"नहीं कह सकते कि राष्ट्रकूटों और यादवों में परस्पर विवाह होने से ही चंद्रवंशी राठोर सूर्यवंशी कैसे बन सकते हैं।"

उत्तर—राष्ट्रकूटों के वंश पर विचार करते हुए हमने इसे भी केवल अन्य दलीलों के साथ एक दलील मान-कर ही पेश किया है।

तीसरा प्रश्न—"अब रही राठोरों के द्वारिका के निकट रहने के कारण इन पर वैष्णव-मत का विशेष प्रभाव पड़ने और कालांतर में लोगों के इनको यदुवंशी समझने की बात। क्या वे बतला सकते हैं कि राठोर कब तो द्वारिका के पास रहे और कब तथा किन लोगों ने उन्हें सूर्यवंशी से चंद्रवंशी मान लिया। रेऊजी के कथनानुसार यदि लोगों ने उन्हें चंद्रवंशी मान लिया होता, परंतु राठोर यदि चंद्रवंशी न होते, तो वे अपने अनेक ताम्रपत्रादि में अपने को चंद्रवंशी कैसे लिख देते। कई राजा वैष्णव-धर्म के परम भक्त रहे हैं, परंतु ऐसी

---

* पत्र का नंबर २१—$\frac{६१७४}{५७००}$ और ता० २१-११-२१ है।

भक्ति के कारण उनके वंश का कभी परिवर्तन नहीं हुआ।"

उत्तर—बौधायन-धर्मसूत्र और श्रौत्रसूत्र में तथा महाभारत * में आरट्ट देश का उल्लेख मिलता है। इनमें के अंतिम ग्रंथ से ज्ञात होता है कि पंजाब का ही एक प्रदेश आरट्ट कहाता था और वहाँ का राजा शल्य था। कालांतर में यही आरट्टवासी लोग रटक, रट्ट, रस्टिक या राष्ट्रकूट के नाम से प्रख्यात हुए।

इससे अनुमान होता है कि ये लोग उत्तर-पश्चिम से ही दक्षिण में गए होंगे। इन्हीं की एक शाखा ने पहले कन्नौज में भी अधिकार कर लिया था। इसका प्रमाण सोलंकी त्रिलोचनपाल के श० सं० ९७२ (वि० सं० ११०७) के ताम्रपत्र के इस श्लोक से भी मिलता है—

कान्यकुब्जे महाराज ! राष्ट्रकूटस्य कन्यकाम् ।
लब्ध्वा सुखाय तस्यां त्वं चौलुक्याप्नुहि सन्ततिम् ॥ ९ ॥

अर्थात्—हे चौलुक्य! कन्नौज में राष्ट्रकूट राजा की कन्या से विवाह कर तू अपने वंश की वृद्धि कर।

द्वारका के निकट रहने के विषय में हम सम्राट् अशोक की, गिरनार-पर्वत पर खुदी, पाँचवीं धर्माज्ञा को उपस्थित कर सकते हैं। उसमें रिस्टिक नाम से इन राष्ट्रकूटों का उल्लेख आया है। यद्यपि उसमें इनके वहाँ पर रहने का कोई उल्लेख नहीं है, तथापि मानसेरा शाहबाज़गढ़ी और जूनागढ़ के लेखों + में ही इनका नाम होने से अनुमान होता है कि उत्तर-पश्चिम के मानसेरा और शाहबाज़गढ़ी की तरह जूनागढ़ से भी उस समय इनका कुछ-न-कुछ संबंध अवश्य ही रहा होगा। इसके अलावा संभव है, किसी अन्य कारण से ही इन पर वैष्णव-म का प्रभाव पड़ गया हो। इस पक्ष के समर्थन में विक्रम की सातवीं शताब्दी के क़रीब का राष्ट्रकूट राजा अभिमन्यु का ताम्रपत्र उद्धृत किया जा सकता है। उसकी मुहर में सिंहवाहिनी अंबिका की मूर्ति बनी है। परंतु राष्ट्रकूटों के पिछले ताम्रपत्रों में इसका स्थान गरु ने ले लिया है। किसी भी कारण से हो इनके प्रशस्ति-कार इन्हें श० सं० ७८२ (वि० सं० ९१७) के क़री से ही स्पष्टरूप से यदुवंशी लिखने लगे थे।

रही राठोरों के इस बात को क़बूल करने की बात, सो ओझाजी के मतानुसार उदयपुर-नरेश कुंभा के गु सूर्यवंशी क्षत्रिय होने पर भी उसकी स्वरचित गीतगोविं की टीका (रसिकप्रिया) में उसने अपने मूल-पुरुष ब का वैजवाप-गोत्री ब्राह्मण होना लिख दिया है। यथा—

"श्रीवैजवापेन सगोत्रवर्यः श्रीबप्पनामा द्विजपुङ्गवोऽभूत्।

मत के प्रभाव के कारण वंश-परिवर्तन का उदाहर भावनगर का गोहिल-वंश है। जिस समय इस वंश लोग मारवाड़ में रहते थे, उस समय सूर्यवंशी सम जाते थे। परंतु भावनगर में चले जाने के बाद से चं वंशी माने जाने लगे हैं।

इसके अलावा श्रद्धेय ओझाजी ने हलायुध के कवि रहस्य से और कृष्णराज तृतीय के श० सं० ८ (वि० सं० १०१४) के ताम्रपत्र से राष्ट्रकूटों का चं वंशी होना लिखा है। ये दोनों प्रमाण वि० सं० ९ के बाद के हैं। इसका खुलासा पहले किया जा चुका है।

जिनको इस विषय में अधिक देखना हो, वे गत ज्ये मास की सरस्वती में या हमारे भारत के प्राचीन रा वंश-नामक इतिहास के तृतीय भाग में देख सकते हैं।

विश्वेश्वरनाथ रे

---

* महाभारत, कर्णपर्व, अध्याय ४३, श्लोक ३१–३३।

+ धवली के लेख में भी 'लथिक' शब्द से राष्ट्रकूटों का उल्लेख हुआ है। अतः ज्ञात होता है कि उस समय इनका संबंध उड़ीसा-प्रांत से भी रहा होगा।

तुम्हारी याद

मन से तुमको सदा माने रहे हम गाते तुमारेई गाने रहे,
मिलने को तुम्हें किया क्या-क्या नहीं नए रोज़ ही रोज़ बहाने रहे।
मुखचन्द्र के चक्र चकोर बने दृगबानन के ही निशाने रहे,
तुमने जब से दिल ले लिया है तुम पै दिन-रात दिवाने रहे।

× × × ×

किससे कहैं क्या कहैं क्या है कहे विरहानल में दिल दाहा किए,
क्षण एक को जो मिले स्वप्न में तो उसी स्वप्न को जी से सराहा किए।
फँसके इस प्रेम के मारग में बस नेह का नाता निबाहा किए,
चित में धरे चौगुना चाव सदा तुम्हें चौगुनी चाह से चाहा किए।

× × × ×

कभी डूबें निराश के सागर में, कभी आशसरों में तिरा करते हैं,
अरमान हिए में भरे हुए हैं बनके वह आँसू गिरा करते हैं।
तसवीर सदा दिल में रहती अभिलाष के मेघ घिरा करते हैं।
मुँह फेरने से अब होता है क्या, जब वे नज़रों में फिरा करते हैं?

× × × ×

इस विश्व की सारी विभूतियों को कुछ तुच्छ ही चित्त ते चीते रहे,
द्विज चक्र सनेह के सागर में रस प्रेमपियूष को पीते रहे।
कभी होगा सँयोग अवश्य ही जो ये वियोग के बासर बीते रहे,
बरते बिरहानल हो में रहे पर औधि की आश में जीते रहे।

चक्रधर अवस्थी

रक्षा-बंधन

(१)

दफ़्तर से आते ही नित्यप्रति की भाँति आज भी सुरेश अपनी मा के कमरे में गए। वहाँ का दृश्य देखकर वे चकरा गए—मा कराहती हुई पड़ी थीं। उनकी आँखों से आँसू श्रावण के मेंह की भाँति गिर रहे थे। घबराई हुई आवाज़ में पूछा—मा, तुम्हें क्या हो गया है?

मा ने रोते-रोते उत्तर दिया—बेटा! आज मेरे शरीर में असह्य पीड़ा है। इससे अधिक उनसे बोला न गया। हाँ, आँसुओं का प्रवाह और भी बढ़ गया।

"अच्छा, मैं अभी डाक्टर को बुलाए लाता हूँ"—यह कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वे कमरे से बाहर हो गए। मा कुछ कह न सकीं।

सुरेश कुलीन घराने के हैं। जब वे पढ़ा करते थे, उनके एक मित्र थे, जिनका नाम केशव था। केशव उनसे प्रति दिन अपनी घर की स्त्री-कलह की कथा सुनाया करते थे। सुरेश को वह कथा सुनकर आश्चर्य होता था। वे कहते—भाई इसका सारा दायित्व स्त्री पर ही नहीं है। यदि पति स्त्री को अपने प्रेम-पाश में फँसा ले, तो स्त्री की क्या मजाल कि वह जीभ डोलावे। केशव कहते—नहीं भई, तुम ग़लती करते हो। ईश्वर न करे, किसी के यहाँ कर्कशा स्त्री हो जाय। नहीं तो उसका सम्हालना टेढ़ी खीर हो जाता है। किंतु कोई कितना भी सिर मारे, सुरेश इस बात को मानने के लिये तैयार न थे। भाग्यवश उनका ब्याह एक सुशीला स्त्री से हो गया था। उन्होंने उसे प्रेम से इतना जीत लिया था कि वह उनके हाथ की कठपुतली बनी हुई थी। वे उसे जैसे ही नचाते थे, नाचती थी। उनकी सबसे पहली शिक्षा यह हुई थी कि मा को किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे—मा की इच्छा के प्रतिकूल कोई काम न करना। उनकी यह बात सर्वदा रामा के मस्तिष्क में नाचा करती थी। सवेरे से शाम तक घर के काम-धंधे करती। रसोई बनाती। प्रेम-पूर्वक सबको खिलाती-पिलाती। रात को सबको सुलाकर तब सोने जाती। सोने जाने के पूर्व मा का पैर दबाना वह अपना नित्य-प्रति का कर्तव्य कर्म समझती थी। जिस दिन मा पैर दबाने से इनकार कर देतीं, उस दिन उसे ऐसा ज्ञात होता, मानो कुछ भूल रही हो।

यह सब देखकर सुरेश को बड़ी प्रसन्नता होती। यदि रामा से कभी छोटे-मोटे अपराध हो भी जाते, तो सुरेश उस पर ध्यान न देते। यहाँ तक कि वे उसकी चर्चा भी न करते, मानो वे उनके कर्ण-पुट में पड़े ही नहीं। उनके ऐसे बर्ताव देखकर कुछ दिनों से रामा को विश्वास होने लग गया था कि उसके अतिरिक्त और किसी दूसरे को सुरेश प्यार नहीं करते। बात भी कुछ अंशों में सच थी। रामा में कोई दोष न था। यदि दोष था, तो यह कि वह सोकर देर से उठा करती थी।

एक दिन सुरेश बिना खाए हुए ही दफ़्तर चले गए। मा को ज्ञात हुआ, तो सारा शरीर

वात्सल्य-रस से डूब गया। जब तक रामा नहीं आई थी, मा को अपने हाथ से रसोई पकानी पड़ती थी, सुरेश को कभी बिना खाए हुए न तो स्कूल जाना पड़ा और न दफ़्तर। मा से न रहा गया। वे रामा के पास गईं, और बोलीं—आज सुरेश दफ़्तर भूखा ही चला गया है। वह बड़ा सुशील है। कुछ नहीं बोलता। तुम्हारी सारी आदतें अच्छी होते हुए भी देर से सोकर उठने की आदत बहुत ही बुरी है। बहू-बेटियों को घर में सबसे पहले उठना चाहिए, नहीं तो बड़ी हँसी होती है।

यह कोई ऐसी बात न थी। कोई भी ग़लती होने पर उसकी ओर संकेत करना मा अपना कर्तव्य समझती थीं। बहू भी उस पर कभी कुछ न कहा करती थी। साधारण बातें कहकर मा का प्रबोधन कर देती थी। किंतु न-जाने आज उसकी कैसी मनोवृत्ति थी। वह अपने को संवरित न कर सकी। उसे मा की बात ईर्ष्यापूर्ण जँची। उसने छुटीली सर्पिणी की तरह घड़े से पानी उड़ेलते हुए कहा—ईश्वर जिसको सुलाता है, वही सोया करता है। मेरी लड़कपन की जो आदत पड़ी है, वह न छूटेगी।

मा ने कहा—बहू! लड़कपन की बहुत-सी बातें छोड़नी पड़ती हैं। इस आदत से निर्वाह न होगा। मैं तुम्हारी यह बुरी आदत नहीं देख सकती।

रामा ने ज़रा सरुष होकर कहा—भई, मैं तो कह चुकी कि मेरी यह आदत न छूटेगी। जिसे मेरा सोना अच्छा न लगे, वह आँख-कान बंद कर ले।

मा ने सोचा, आज बहू की मनोवृत्ति ठीक नहीं है। बात बढ़ जायगी। आज यदि इसका मुँह खुल जायगा, तो कल उसे बंद करना कठिन होगा। अस्तु, वे चुपचाप अपने कमरे में चली गईं और सुरेश के कपड़े जो इधर-उधर फैले थे, ठीक करने लगीं। मा के इस व्यापार से रामा को क्षोभ नहीं हुआ, प्रत्युत वह उमड़ उठी। उसने समझा मुँहतोड़ जवाब पाकर बुढ़िया दब गई है। अब ढेले का उत्तर ढेले से ही देने में ठीक होगा अन्यथा यह मुझे लड़की ही समझकर मुझे कोसा करेगी। मेरे पैर में वह जंज़ीर पड़ जायगी, जिसके कारण मैं कभी अपने मन की न करने पाऊँगी। मैं पतोहू हूँ सही, लेकिन इसलिये नहीं हूँ कि दिन-भर मुझे धौंस बतलाती रहे। सबके घर में बेटी-बहुएँ हैं, लेकिन ऐसा तो कोई नहीं खाए लेता।

(२)

मनुष्य की जब तक ज़बान न खुले, तभी तक ग़नीमत है। एक बार खुल जाने पर फिर उसका रोकना कुछ अंशों में असंभव-सा हो जाता है। यही दशा रामा की हुई। जो रामा मा की बात सुनकर सहम जाती थी—बात पेट से निकलकर कंठ में रुक जाती थी—वही रामा अब मा के एक कहने पर २१ कहती है। मा चाहे जिस भावना से जो बात कहें, किंतु रामा सर्वदा उसका अनर्थ करके अपने ऊपर घटित करती है और उसे अपने ऊपर ताना समझती है। उत्तर में गालियाँ बकती है। सारांश, जो भवन कुछ दिन पूर्व शांति-निकेतन बना हुआ था, वह अब कलह-भवन बना हुआ है। उठते-बैठते मा को रामा से गाली और ताने सुनने पड़ते हैं।

मा की कई बार इच्छा हुई कि बहू के व्यापार सुरेश से प्रकट कर दें। कभी-कभी तो वे यहाँ तक कर बैठी हैं कि रामा की शिकायत करने के लिये

सुरेश को अपने कमरे में बुलाया है, किंतु बात मुँह से नहीं निकल सकी है। वह सोचतीं कि यदि सुरेश से मैं कह दूँगी, तो वह बहू को दंड देगा। बहू रोवेगी। उसकी आत्मा मुझे कोसेगी। मुझे संताप होगा। जिन्हें मैं अपने प्राणों से अधिक मानती हूँ, उनके जीवन में दुख के बादल उमड़ पड़ेंगे। स्त्री-पति में यदि मनोमालिन्य हो गया, तो मैं विधाता के सामने क्या उत्तर दूँगी? वह गाँव में तो लड़ने नहीं जाती, मुझे ही जो कुछ कहती है, कहती है। यह अभी उसका लड़कपन है। जब उसे मेरा प्यार ज्ञात हो जायगा, सुरेश की तरह वह भी मुझे कभी कुछ नहीं कहेगी। उसे कभी-कभी यह भी आशंका होती कि सुरेश रामा को बहुत प्यार करता है। कहीं वह यह न सोच बैठे कि मा को मेरे प्यार से ईर्ष्या है, तब तो मुझे डूबने के लिये कहीं चुल्लूभर पानी भी न मिलेगा। यही सब सोच-सोचकर मा रह जातीं। उन्होंने कभी रामा की शिकायत नहीं की।

बेचारे सुरेश को इन बातों का पता ही न था। करते तो क्या करते? वे रामा से उसी प्रकार मिलते-जुलते। जब वे रस-वश रहते, रामा उनका भेद लेने के लिये कहती—आजकल मा की सेवा से जी नहीं ऊबता। दिन-रात उन्हीं के कोठे में बातें होती रहती हैं। बड़ी देर तक भेट न होने से मेरे दिल पर कैसी बनती है, इसका आपको क्या पता? जब मैं अविवाहिता थी, मेरी सखियाँ मर्दों की बेरहमी का क़िस्सा सुनाया करती थीं। इस पर मुझे विश्वास नहीं होता था। अब वह आँखों देख रही हूँ। मैं यह नहीं कहती कि आप मा के पास न जायँ, पर आप केवल उनके ही होकर न रहें। मेरे हृदय को भी ताकना आपका कर्तव्य है। मैं भी आपकी हूँ। सुरेश परिस्थिति से अनभिज्ञ थे, रहस्य को कैसे समझते? वे इसे प्रेम की ही बेचैनी समझते थे, अतः उसके इन बातों का बहुत ही मधुर और रसभरे शब्दों में उत्तर देकर उसका मुँह बंद कर देते थे।

इधर रामा सोचती कि यह कब संभव है कि मैं मा से इतनी तनी रहूँ और इन्हें पता न हो। ये सब बातें जानते हैं। लेकिन मेरे पैरों में बेड़ियाँ नहीं डालना चाहते। उनका हृदय उदार है। वे मेरी निर्दोषता अच्छी प्रकार समझते हैं। वे इन झंझटों में पड़ना ही नहीं चाहते, इसलिये सुनी अनसुनी करते जा रहे हैं। उसके हृदय में कभी-कभी यह भाव भी स्थान पाता था कि मैंने उन्हें प्रेम से जीत लिया है। वे मेरे प्रेम के भूखे हैं। मुझे दुख नहीं देना चाहते। वे अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं। उनके जीवन की एकमात्र सुख-सामग्री मैं ही हूँ। माता का आदर लोकाचार है। उसमें आडम्बर है। मेरा प्यार सच्चा है। इसमें स्वाभाविकता है। यदि ऐसा नहीं है, तो फिर क्यों मुझे विफलमनोरथ नहीं होना पड़ता।

(३)

बहुत दिन बीत गए। रामा की गोद एक पुत्र से भर गई। बहुत परिवर्तन हुए। उन परिवर्तनों के साथ कलह का भी रूप परिवर्तित हो गया। जो अब तक वाग्बाणों से प्रदर्शित होता है अब क्रियात्मक हो गया। मा को बुढ़ापे में खाने पीने में भी कष्ट होने लगा। हृदय-वेदना मुँह से निकाल देने से कुछ घट-सी जाया करती है, किंतु बुढ़िया के लिये यह साधन भी न था। पुत्र की प्रकृति परिवर्तन की आशंका से सुरेश से तो कुछ कह नहीं सकती थी और दूसरों

से अपना दुखड़ा रोना पाप समझती थी। उसका कोई साथी न था, कोई समवेदना प्रकट करनेवाला न था, प्रबोधन और आश्वासन देनेवाले का भी अभाव था। इस कठिन समय में उसका यदि कोई साथी था, तो वे थे अविरल आँसू। इसके अतिरिक्त भी दुख शांत करने का साधन एक और था और वह बहुत सच्चा तथा प्रबल था। वह था रामा का पुत्र। जिस समय मा उसे पा जातीं, उस समय संसार का सारा दुख, सारा मनोमालिन्य, सारा मनस्ताप हवा हो जाता। उस समय उन्हें वह शांति मिलती, जो शायद ही किसी को नसीब होती है।

एक दिन रात्रि में मा उसे लिए खेला रही थीं। खेलाते-खेलाते लड़का ऊँघने लगा। यद्यपि रामा ने उसे दिन डूबते खाना खिला दिया था; किंतु मा को विदित न था। उनकी समझ में लड़का भूखा सोया जा रहा है। उन्होंने दबी ज़बान से रामा को सुनाकर कहा—आज लड़का भूखा ही सोया जा रहा है। रामा ने इस बात पर कुछ भी ध्यान न दिया। मा की व्याकुलता बढ़ रही थी। उन्होंने फिर कहा—दिन-भर का भूखा लड़का यदि सो जायगा, तो मर रहेगा। ऐसा लड़का है कि यदि एक बार सो गया, तो जगाने से नहीं जगता। सुरेश न-जाने कब तक आवे।

रामा रसोई पका रही थी। उसने इस सीधी-सी बात पर बड़ा तूल बढ़ाया। उसने सोचा—लड़के को हटाने का बहाना है। फिर क्या था! वाग्बाण-वर्षा प्रारंभ हो गई—मैं तो पचासों बार कह चुकी कि मेरा लड़का भारू नहीं है। जिसे वह न अच्छा लगे, वह छुए ही नहीं। फिर क्यों कोई ममत्व दिखलाता है?

मा ने कहा—रामा, तुम व्यर्थ में बिगड़ रही हो। मुझे नहीं मालूम है कि लड़का खाए है या नहीं? मुझे लड़का भारस्वरूप नहीं है। वह तो मेरी आँखों की पुतली है। मेरी इस पर सुरेश से कम ममता नहीं है।

रामा ने कहा—मैं जानती हूँ, जो जिसे जितना मानता है। व्यर्थ बकने से कोई लाभ नहीं। जो मेहनत करके खिलाता है, वही जब आँखों से गिर गया, तो लड़के की क्या बिसात!

बात ख़तम भी न होने पाई थी कि लड़का रोने लगा। लड़के का रोना क्या था, बारूद के लिये धधकती हुई आग की चिनगारी था। रामा बाज़ की तरह रसोईघर से झपटी हुई आई और मा को ज़ोर का एक धक्का देकर लड़के को छीनकर चली गई, और कह गई—आज से तुझे सौगंध है, यदि मेरे लड़के को छू। तू डायन है। मेरे लड़के को लेकर ही छोड़ेगी।

मा ने आज तक ऐसा धक्का कभी नहीं खाया था। फिर भी वे धक्के की चोट को किसी सीमा तक सह सकती थीं। तिरस्कार के आघात ने मा को अशांत कर दिया। वे फूट-फूटकर रोने लगीं।

जब सुरेश का विवाह नहीं हुआ था—रामा नहीं आई थी—मा ने कल्पना का एक भवन बनाया था। हाय! वह कितना विस्तृत! कितना विशाल! कितना व्यापक! कितना दृढ़ था! उसमें संसार के सभी सुख और आमोद-प्रमोद केन्द्रित थे। बहू आवेगी। पैर दबावेगी। धोती फींचेगी। मेरी अँगुलियों पर नाचेगी। मैं उस पर बनावटी क्रोध प्रकट करूँगी। उसे वह सच मानकर दुखी हो जायगी। पहले मैं रूठी रहूँगी। लेकिन जब भोजन का समय आवेगा और वह खाना न खायगी, तो मैं उसको अपनी गोद में

लेकर समझाऊँगी। इस पर उसे बुरा लगेगा। वह रोने लगेगी। मैं उसके आँसू अपने अंचल से पोछूँगी। उसे खाना खिलाने के लिये पकड़ ले जाऊँगी। एक तश्तरी में सान दूँगी। वह लज्जित होकर मेरे पैरों पर सिर रख देगी। मैं उठाकर छाती से लगा लूँगी। इसके बाद अपनी बीती कह सुनाऊँगी। जब वह खाने लगेगी, मैं उठ आऊँगी। अपनी खाट पर बैठकर रानी की तरह हुक्म दूँगी। वह सिर के बल उनका पालन करेगी। जब ईश्वर उसकी गोद भरेगा, तब फिर मैं खाने-भर के लिये खाट के नीचे आऊँगी, नहीं तो रात-दिन बालक को लिए खाट पर बैठी रहूँगी।

कुछ दिन तक अपने को सफलमनोरथ होते देखकर प्रसन्न हुई थीं। अपने सारे मंसूबे एक-एक करके बरत रही थीं। उस दुखिया को कब पता था कि उसके ये सुख-स्वप्न ख़ाक में मिल जायँगे। सेवा कराना तो दूर रहा, उलटी सेवा करनी पड़ेगी। इतने पर भी देवी प्रसन्न न होंगी। अपनी थाली अपने हाथ धोनी पड़ेगी। इतना ही नहीं, मार भी सहनी होगी। कहना न होगा कि इन विचारों का जैसे ही प्रवाह आया, वैसे ही अनुताप भी बढ़ गया। आँखों ने भी ख़ूब उदारता दिखलाई, ख़ूब साथ दिया।

(४)

जब सुरेश मा को देखकर डाक्टर को बुलाने जा रहे थे, मार्ग में केशव से भेंट हो गई। केशव अभी सुरेश ही के घर से आ रहे थे। ये सुरेश के घर में मिलने गए हुए थे। दरवाज़े पर पहुँचते ही इन्होंने रामा का दुर्गा-रूप देखा। वे स्त्री-स्वभाव के पंडित थे, इसलिये घर के अंदर तो न घुसे, किंतु वहीं पर खड़े-खड़े सारा दृश्य देखा। केशव को देखकर मा का शोक और भी उमड़ पड़ेगा, यह सोचकर वे अंदर न जाकर वापस चले आए। जब सुरेश से भेंट हुई, पहले तो उन्होंने सोचा, सुरेश को बतलाना व्यर्थ है। वे कुछ कर नहीं सकते। मेरे मुख से सब हाल सुनकर इन्हें अपनी पुरानी बातों का स्मरण आ जायगा, जिसके कारण ये लज्जा ग्लानि और क्रोध से गड़ जायँगे। किंतु सहसा उन्हें मा का, जिसकी गोद में कई बार आँसू बहा चुके थे और वक्षःस्थल से लगकर शांति-लाभ किया था, जिसे उन्होंने कभी दुखी न देखा था, स्मरण हो आया। वे लाख प्रयत्न करने पर भी अपने को संवरण न कर सके, और बोले—

"मैं पहले ही कहता था कि ब्याह न करो। संसार की सारी झंझटें सिर पर लेकर जीवन दुखद न बनाओ। अब क्यों सूखे जा रहे हो।"

सुरेश को केशव की बात समझ में न आई। वे घबराकर बोले—"क्यों भाई, क्या बात है? ब्याह करने से मेरा जीवन कैसे दुखद हो गया?"

"दुखद नहीं हो गया, तो क्यों इधर-उधर मारे-मारे फ़िरते हो?"

"भई, पहेली मत गढ़ो। जो बात हो साफ़-साफ़ कहो। मेरा चित्त अव्यवस्थित है। मुझे तुम्हारी बातें और भी उत्पीड़ित कर रही हैं।"

"अभी तो कहते थे, मैं दुखी नहीं हूँ। अब क्यों चित्त अव्यवस्थित है। नाना के आगे ननिहाल की बातें करते संकोच नहीं होता?"

"केशव! जो कुछ कहना हो, साफ़-साफ़ कहो। मैं मा के लिये डाक्टर बुलाने जा रहा हूँ। तुमने मा को कभी रोते हुए न देखा होगा। आज वे दिल खोलकर फूट-फूटकर रो रही हैं।"

"तो डाक्टर आकर क्या करेगा?"

"केशव ! आज तुमने कोई नशा खाया है। तुम चेतनाहीन होकर बातें कर रहे हो । मुझे तुम्हारी अनर्गल बातें सुनने के लिये अवकाश नहीं है। मैं जाता हूँ।"

"सुरेश ! मानो । मैं पागल नहीं हूँ । मैं ठीक-ठीक कह रहा हूँ । डाक्टर आकर कुछ नहीं कर सकता। वह वेदना विधाता के ही टालने से टल सकती है। मैं तो कब से कह रहा हूँ कि कर्कशा स्त्री को वश में करना टेढ़ी खीर है, इस पर तुम्हें विश्वास नहीं होता था। आज मेरी बात की सत्यता अनुभूत करोगे।"

"तो क्या मा को शारीरिक आधि नहीं है ? क्या तुम उनकी हालत जानते हो ?"

"खूब जानता हूँ। कानों से सुना है। आँखों से देखा है। क्या तुम बिलकुल नहीं जानते ?"

"भई, मैं तुम्हारी सौगंध खाता हूँ। मैं सिवा इसके और कुछ नहीं जानता कि मा के शरीर में असह्य पीड़ा है। मैं जानूँ भी कैसे ? मैं ज्यों ही कमरे में घुसा, मा को रोते हुए पाया। उनका रोना मुझसे न सहा गया। मैं वहाँ ठहर भी न सका। केवल इतना पूछा--मा ! तुम्हें क्या हो गया है ? उन्होंने शरीर की पीड़ा बतलाई। मैं विना कुछ कहे डाक्टर को बुलाने के लिये रवाना हो गया।"

यद्यपि केशव को सुरेश की बातों पर आश्चर्य हुआ, तथापि रामा के विषय में आज तक जो कुछ देखा-सुना था, विस्तार-पूर्वक कह सुनाया।

केशव की बातें सुनकर सुरेश के आँखों के तले अँधेरा छा गया। वे आश्चर्य-चकित हो गए। उन्हें लगा—अच्छा होता, यदि इस समय पृथ्वी फट जाती और मैं उसमें समा जाता। उनसे विशेष कुछ कहते न बन पड़ा। केशव का हाथ पकड़कर कहा—"सुरेश के रहते मा को कोई दुख दे सकता है, यह मुझे आज ही ज्ञात हुआ है। खैर।" इतना कहकर वे घर की ओर दुखी हृदय लेकर चल दिए।

सुरेश स्त्रियों को मारना पाप समझते हैं, किंतु उस दुष्टा को, जो उनकी वृद्धा सुशीला माता को कष्ट दे, दंड देना अपना धर्म मानते हैं। वे घर में आते ही शेर की भाँति रसोईघर में घुस पड़े और रामा का केश पकड़कर बाहर घसीट लाए। माता की श्रद्धा और भक्ति स्त्री-प्यार को मात कर गई; किंतु केशव के कारण वे अपने हृदय के गुब्बारे को शांत न कर सके। साधारण धमकी देकर रामा को छोड़ देना पड़ा। इसके बाद मा के कमरे में जाकर कमर दबाने लगे। उधर मा कराहती थीं, इधर सुरेश आँसू गिराते थे।

अब सुरेश मा के मनोभाव के पूरे पंडित हो गए--मा का चिंतित और खिन्न चेहरा देखकर ही रामा की कृत्य समझ जाया करते थे। जब उन्हें संदेह होता, तो कभी प्रेमभरे शब्दों में समझाते, कभी धमकी देते और प्रायः मार बैठते। समझाना और धमकी देना तो कुछ ही दिन रहा, बाद में डंडेबाज़ी ही से काम निकालने का प्रयत्न करने लगे। रामा का शरीर भुरता हो गया; किंतु उसके स्वभाव में परिवर्तन न हुआ।

(५)

जब से सुरेश मा का पक्ष लेने लग गए थे, तब से रामा मा से और भी कुढ़ने लग गई थी। मौक़ा पाकर अब वह सुरेश से मा की शिकायत भी करने से न चूकती थी। पहले तो सुरेश शिकायत करने का मौक़ा ही न देते थे। शेर की तरह गरजकर ऊपर पड़ते, किंतु रामा

मनुष्य की कमज़ोरियों की पूर्ण पंडिता थी। उसने अपना घात कभी हाथ से नहीं जाने दिया। अवसर पाने पर वह कभी नहीं चूकी। फिर क्या था, "कहते-कहते पत्थर भी पहलू बदल लेता है।" सुरेश को उसका उलहना अब बहुत असंगत न जँचता। वे अब सोचने लग गए थे कि यह अबला यदि मुझसे अपना सुख-दुख न कहेगी, मैं न सुनूँगा, तो फिर यह किससे कहेगी और कौन सुनेगा ?

रामा उनका मनोभाव ताड़ गई। अब वह गढ़-गढ़कर ख़ूब बढ़ा-चढ़ाकर अपनी व्यथा सुनाती। झगड़ा का सारा दायित्व मा के ऊपर रखती। साधारण बात पर रोने लगती। मुसकराहट पर रीझनेवाले चाहे भले ही कम हों, किंतु आँसुओं पर मरनेवालों की संख्या कम नहीं है। फलतः सुरेश की प्रवृत्ति बदली। झगड़ा का दायित्व सुरेश मा पर अनुभूत करने लगे। धीरे-धीरे सुरेश की सहानुभूति मा पर से उठकर रामा पर आ गई। इसके साथ ही घर की झंझटें भी बढ़ती गईं। कभी रामा ठीक समय पर खाना न बनाती। कारण पूछने पर बतलाती—लड़का रो रहा था। उसे कोई छूनेवाला भी न था। मैं अकेली क्या-क्या करूँ। लड़के का रोना भी तो नहीं देखा जाता। कभी कहती—मा ताला लगाकर चली गईं। मैं कुंजी माँगती ही रही, लेकिन उन्होंने सब सुनी अनसुनी कर दी। धीरे-धीरे यह भी कह रही थीं कि दोनों को भूखों मारकर ही दम लूँगी। कभी कहती—नहाने के लिये धोती रक्खी। इतने में फलाँ काम आ गया। दौड़कर अंदर आई। अब तक बाहर आऊँ, धोती ग़ायब। आश्चर्य तो यह है कि कोई ग़ैर आदमी भी नहीं आया। एक दिन रामा का लड़का गिर पड़ा। उसके कुछ चोट भी आ गई। रामा ने सुरेश को सुनाकर अपने तईं कहा—यह लड़का हित-अनहित क्या जाने। ऐसी चंडालिन है कि सयानों का बदला लड़कों से लेती है। राम! राम! बेचारा बिलकुल फूट गया है।

सुरेश को खाना न मिले, इसे वह सह सकते थे। रामा का कष्ट भी देखा अनदेखा कर सकते थे; किंतु एक निरपराध बालक के साथ ऐसा घोर अन्याय सुरेश को सह्य न हुआ। उनके हृदय में प्रतिहिंसा का भाव जागृत हो उठा। उन्होंने निश्चय कर लिया कि मा को घर से अलग कर दूँगा, किंतु सभ्यताभिमान के मारे जीभ न खुली। हाँ, उनके पास आना-जाना बिलकुल बंद-सा हो गया। मा ने भी सारा रहस्य ताड़ लिया।

× × ×

एक दिन तबियत ख़राब हो जाने के कारण सुरेश समय के पूर्व ही आफ़िस से वापस आ गए। वे दरवाज़े पर पहुँचे ही थे कि रामा की आवाज़ सुन पड़ी। वे वहीं रुक गए और सुनने लगे। रामा कह रही थी—यदि मैं तुझे घर से न निकलवा दूँ, तो मैं अपने बाप की सच्ची बेटी नहीं। मा ने रोते-रोते कहा—बहू, ऐसा कहकर अपनी जीभ क्यों ख़राब करती हो ? यह तो मेरे भाग्य ही में लिखा है, नहीं तो क्या मेरा प्राणों से प्यारा सुरेश मुझसे रुष्ट हो जाता। जब से मैं सुरेश का मन अपनी ओर से खिंचा हुआ देखती हूँ, तब से मुझसे इस घर में रहा नहीं जाता, लेकिन क्या करूँ! ममता मारे डालती है। इस घर को छोड़कर और कहाँ प्यारे सुरेश को देखने को पाऊँगी। इससे अधिक मा से न बोला गया। गला भर आया और रोने लगीं।

सुरेश से रहा न गया। भक्ति का ऐसा प्रवाह आया कि हृदय की सारी मलिनता को धोते हुए आँखों से आँसू निकलने लगे। लज्जा का स्रोत उसे भी मात किए हुए था। पैर-तले की ज़मीन निकली जाती थी। मनस्ताप की ज्वाला ने विचलित कर दिया। उसे शांत करने के लिये माता की शरण में गए। दोनों के आँसुओं के प्रवाह ने दोनों के आत्माओं और हृदयों को धोकर निर्मल कर दिया।

आँसू रुके, तो सुरेश ने कहा—मा ! इस पिशाचिनी ने मुझे ऐसा जाल में फँसाया कि मेरा विवेक न-जाने कहाँ चला गया। उसने मुझे अंधा बना दिया। मैं अपनी पूज्या देवी को दुष्टा, और पिशाचिनी को देवी मानने लग गया। खैर, आज मेरे पापों का प्रायश्चित्त हो गया। मेरा सम्यक् प्रायश्चित्त यही है कि मुझे मर्मांतक वेदना हो चुकी। मेरे मनस्ताप ने मेरी कलुषता गला दी। अब मैं तुम्हारा वही निर्मल सुरेश हूँ, जिसने केवल तुम्हारी ही पूजा की है, जिसकी एक-मात्र तुम्हीं आराध्य देवी रह चुकी हो। मा से फिर भी कुछ न बोला गया।

सुरेश ने रामा से कुछ नहीं कहा।

(६)

आज नहीं बोले, तो क्या हुआ, कल वे अवश्य मुझे प्यार करेंगे। कल पुनः मैं उनकी हो जाऊँगी। वे सूने हृदय तो हैं नहीं कि मुझे त्याग दें। मनुष्य को यदि क्षमा की आशा न रहे, तो शायद संसार में इतने पाप और अन्याय न हों। संसार में मनुष्य बहुत-से अपराध क्षमा के बल पर ही करता है। अस्तु, रामा भी बड़ी आशावादिनी थी। उसे भी सुरेश की क्षमाशीलता पर विश्वास था। वह रोज़ आशा करती कि आज उनका संयोग होगा, किंतु मान और संकल्प के झमेले ने संयोग नहीं होने दिया। रामा की सारी इच्छाएँ, सारी आशाएँ सुख-स्वप्न ही रह गईं। दिन पर दिन जाने लगे। संसार में अनेक परिवर्तन हुए। प्रकृति भी कुछ की कुछ हो गई। शरद् खतम हुआ। शिशिर भी आकर चला गया। हेमंत का आगमन हुआ। देखते-देखते वसंत भी अकंटक राज्य करने लगा। वसंत के उद्दीपनों को भी जब सफलता न मिली, तो ग्रीष्म आकर झुलसाने लगा। किंतु सुरेश से किसी की एक न चली। वे अपने संकल्प पर उसी प्रकार दृढ़ रहे। उनका निश्चय था कि जब तक मुझे विश्वास न हो जायगा कि रामा मा से कदापि न लड़ेगी, तब तक मेरा और उसका कोई संबंध न रहेगा।

ग्रीष्म के संतप्त प्राणियों को शीतल करने के लिये वर्षा आई। वर्षा क्या आई सबके जान में जान आई। निर्जीव घास फिर हरी-भरी हो गई। चिकने भूरे मैदान हरी-हरी घासों से लहलहा उठे। वे मृगों के विनोदस्थली बन गए। जलाशय भर गए। दादुर, पपीहा, मोर प्रभृति के शब्द वियोगियों के हृदय को सालने लगे। प्रोषित-पतिका के लिये दिन-रात बराबर हो गया। प्रकृति ने उन सूखे वृक्षों को भी हरा कर दिया, जिनके जड़ों को एक मुद्दत से पानी नसीब नहीं हुआ था। किंतु सुरेश का हृदय अब भी मरुभूमि का मैदान ही बना रहा।

शायद इस मरुभूमि को हरा-भरा करने के लिये ही सारे गाँव ने बड़े समारोह से रक्षा-बंधन मनाने की ठानी। सारा गाँव आनंद-स्रोत में प्रवाहित होने लगा। ऐसा ज्ञात होता था, मानो यहाँ कोई दुखी ही नहीं है। लड़के तो बिना पर के उड़े जाते थे। उनके पैर पर पैर नहीं पड़ते थे। अनेक प्रकार के पकवानों ने घरों को सुगंधित

बना रक्खा था। चारों ओर कजली का बहार था। सब प्रसन्नचित्त थे। किसी में राग-द्वेष न ज्ञात होता था। छोटों ने अपने बड़ों से आशीर्वाद पाया था। ऐसे सुख के समय में भी एक उत्पीड़ित है—और वह है रामा।

आज उसे संसार का वैभव फीका लग रहा है। जिन वस्तुओं से दूसरे सुखी हो रहे हैं, उसे आज वे ही दुख का कारण हो रही हैं। उसे आज नारि-स्वभावोचित दूसरी स्त्रियों के शृंगार पर ईर्ष्या नहीं है, किंतु चिढ़ ज़रूर है। दो-चार सखियाँ दोपहर ही से आ गई हैं और उसे विभूषित करना चाहती हैं—उससे विनोद करने के लिये आकाश-पाताल एक कर रही हैं, किंतु आश्चर्य! आज उसकी अभिन्न-हृदया सखियों को भी हताश होना पड़ा। जब सखियाँ मेंहदी लगाने लगीं, रामा ने कहा—कल रात ही से ज्वर था, अभी नहाया नहीं है। मेंहदी कैसे लगाऊँ? जब स्नान ही नहीं हुआ, तो तेल लगाने और साड़ी बदलने का प्रश्न ही उठाना व्यर्थ था। सखियों ने इशारे से आपस में कुछ बातचीत की और बहाना बना-बनाकर बिदा माँग अपने-अपने घर की राह ली।

सखियों के चले जाने पर रामा उठी और अपने कमरे में जाकर फूट-फूटकर रोने लगी। आज उसे अनुभव हुआ कि वह वह रामा नहीं है, जो उस समय थी, जब सुरेश की प्यारी थी। आज वह सजन होते हुए भी परित्यक्ता अकेली है। आज संसार की सारी विभूतियाँ और शक्तियाँ भी उसे प्रसन्न करने में समर्थ नहीं हैं। आज उसका मिथ्याभिमान निकल गया और उसके स्थान में संसार का एक सत्य आ गया। उसे ज्ञात हो गया—स्त्रियों का सारा सुख पतियों पर ही केंद्रित होता है। उसके बिना यह सब सुख क्या संसार ही मिथ्या है, नरक है, वेदना-भवन है, जलाने के लिये चिता है।

रो चुकने पर रामा का हृदय हलका हुआ। वह उठी। उसे बाहर आते देखकर कोई नहीं कह सकता था कि यह वही रामा है, जो आध घंटे पहले कमरे के अंदर गई थी। अब उसका हृदय किसी गुप्त प्रेरणा से प्रसन्न हो गया था। अब वह भी दूसरी स्त्रियों की भाँति प्रसन्न थी। उसे भी शृंगार-सामग्री ने आकर्षित किया। वह भी अपने को सुंदरी और नवेली बनाने का प्रयत्न करने लगी। सारा शृंगार कर चुकने पर अपने कमरे में गई और छिपकर बैठी रही।

× × ×

सुरेश बाबू आए। सोने के लिये अपने बँगले में गए। किंतु नींद पास नहीं फटकती थी। आज वे भी रामा के दुख की अनुभूति से पीड़ित थे, किंतु संकल्प तोड़ना दुष्कर था। १२ बजने का समय आया। कुछ आहट सुन पड़ी। सामने देखते हैं, तो रामा खड़ी है। उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। उद्वेग में पूछा—कौन है? कुछ उत्तर न मिला। हाँ, आरती के दीपक के प्रकाश में रामा स्पष्ट दीख पड़ी। रामा ने आरती उतारी, रक्षा-बंधन हाथ में बाँध दिया और चरणों में मस्तक रख दिया और गरम-गरम आँसू बहाते हुए रुँधे कंठ से कहा—"रक्षा-बंधन की वांछित बधाई।"

सुरेश ने कहा—वह तो तुम्हारा ही था। हाँ, शर्त आड़े आती थी। अब मंज़ूर है न? 'हाँ' के अतिरिक्त और कुछ नहीं सुन पड़ा।

अब रामा गाँव की उन स्त्रियों में है, जिनकी कभी कोई किसी प्रकार की बुराई नहीं करता।

सूर्यबलीसिंह

उपेक्षा

उड़ा लोभ में बहका हमको
नाहक ही मन बढ़ा रहे हो !
रज-कण हैं हम क्षुद्र, हमें क्यों
आसमान में चढ़ा रहे हो।
खूब समझते हैं--हमसे निज
पथ की सीढ़ी गढ़ा रहे हो !

ऊँच-नीच के भेद-भाव का
पाठ हमें तुम पढ़ा रहे हो।
अरे बवंडर ! जाने दे,
हम रज हैं, रज में पड़े रहेंगे ;
देश-जाति से जुदा न कर,
हम वहीं क्षुद्र या बड़े रहेंगे।

विश्वनाथप्रसाद

महाकवि नंददासजी

और सब गढ़िया, नंददास जड़िया।

—एक लोकोक्ति

भक्ताग्रगण्य एवं कविता-कामिनी-कांत, कवि-शिरोमणि, जिन अनन्य महात्मा के प्रति यह सरस सूक्ति लोकोत्तर-आनंददायक यह लोकोक्ति अथवा यह रमणीक 'रिमार्क' है, जिनकी गह्वर गुण-गण-गरिमा से गुंफित प्रखर प्रतिभा का परिचायक है, जिनका सरस हृदय, साहित्य-स्रोतस्विनी का उद्गम स्थान है, अथवा जिनकी परम सरसता के सच्चे 'सर्टीफ़िकेट' स्वरूप उक्त उक्ति हैं, वह साहित्य-गगन के जगमगाते तारे व खूबियों से खचित ख़ज़ाने के देदीप्यमान हीरे हैं, जिनके सुयश गान को लालायित हो 'भक्तवर नाभादासजी' ने पुलकित हृदय इस प्रकार गाया है कि—

लीला-पद रस-रीति, ग्रंथ रचना में नागर ;
सरस उक्ति जुत-जुक्ति, भक्ति-रस गान उजागर।
प्रचुर पयोध लौं सुजस, रामपुर-ग्रामनिवासी ;
सकल सुफल सम्मिलित, भक्त-पद-रैनु उपासी।
चंद्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम-पथ में पगे ;
श्री 'नंददास' आनंद-निधि, रसिक सु प्रभुहित रँगमगे।

—भक्तमाल

ऐसे प्रेम की साक्षात् पवित्र प्रतिमा, व्रज-भाषा के चारु चंद्र, रुचिर रचना के रमणीय रत्नाकर, महाकवि "नंददासजी" की अनूठी उक्तियों से अलंकृत, दो-एक गुनन-गरूले ग्रंथों के सिवा, वर्तमान साहित्य-संसार कितना रंजित है, यह कहने-सुनने की बात नहीं; किंतु बड़े अफ़सोस की बात है।

व्रजभाषा-काव्य-कानन के इस कमनीय कलापी ने, कल-कंठी कोकिला से भी मधुर कलरवकारी ने, विधाता से भी विशद प्रतिभाशाली ने अथवा कोमलता के कुशल कारीगर ने अतुल सौंदर्य-भार से भूषित और नमित भाषा-भामिनी को मादकता-भरी भोली-भाली मस्ती के साथ जिस सद्-हृदयता से सजाया है, उसको निखरते हुए उन्मादकारी यौवन को जिस प्रकार सरसता की शान का अनोखा उद्-वर्तन चढ़ाकर, माधुर्यमयी मदिरा से नहलाकर और तबीयतदारी के तिलस्माती तौलिए से पोंछकर जो ललित लावण्यता मुकुलित की है वह थोड़े में—अर्थात् "रास-पंचाध्यायी, भ्रमर-गीत" आदि प्रचलित पुस्तकों में प्रस्फुटित है। इस लोचनाभिराम लहलहाते बग़ीचे के, बरबस हृदयहारी वाटिका के अर्ध-मुकु-

लित इन एक-दो ही कोमल कलिका के तनिक से प्रमत्तक पराग पर ही साहित्यक—लुब्ध भ्रमर-गण, मद-मत्त हो मँडराते हुए इठला-इठला कर इतराने लगे। पर—

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल ;
अली कली ही तैं बिंध्यो, आगे कौन हवाल।

—बिहारी-सतसई

अर्थात् जब आपकी संपूर्ण सरस रचना, साहित्य-रसिकों के संमुख उपस्थित होगी तब सरस हृदय, हृदय थाम-थामकर यही कहते नज़र आएँगे कि—

इधर आ कलेजे से तुझको लग लूँ ;
तुझी पै तो दिल आ गया है सभी का।

—कोई शायर

अतः इस समय हम आपके चारु चरित्र की चर्चा न करेंगे, अंधकार से अलंकृत आपकी जीवनी की तरफ़ भी आँखों को न अड़ाएँगे; यह सब "नंददास-ग्रंथावली" के लिये छोड़कर जो कि शीघ्र ही प्रकाशित हो रही है—इस समय सिर्फ़ इस अलौकिक अंशुमाली की तीव्र नहीं, किंतु कमनीय किरणों से ओत-प्रोत साफ़-सुथरी कृतियों को, आपके ही शब्दों के साथ—

सुंदर कोमल बचन अनूठे ;
कहति, सुनति, समुझति, रस-घूँठे।
नाहिंन उघरे, गूढ़ न ऐसे ;
मरहट - देस बधू - कुच जैसे।

—रूप-मंजरी

सद्-हृदयों के सम्मुख हुलसाए हृदय के साथ उपस्थित होते हैं, भूल-चूक लेनी-देनी। क्योंकि—

किं तेन काव्य-मधुना, प्लाविता-रस-निर्झरैः ;
जडात्मानोऽपि नो यस्य, मवन्त्यंकुरितान्तरा।

——कस्यचित्कवेः

सबसे प्रथम आपकी सुकोमल रचना से रंजित प्राण-स्वरूप अथवा प्रपंची-पंचतत्त्वों के भी तत्त्वस्वरूप, स्फुट-रचनात्मक——"रास-पंचाध्यायी" को ही आपके सु-मधुर शब्दों में रखते हैं। यथा——

श्रीभागवत सुभ नाम, परम अभिराम अमित गति ;
निगमसार, सुकुमार, विना गुरु-कृपा अगम अति।
ताही में पुनि अति रहस्य इहि पंचध्याई ;
तन में जैसे पंच प्रान, अस सुक मुनि गाई।

——रास-पंचाध्यायी

आपका, श्रीशुक का सुकुमार वर्णन, नयनाभि निरूपण भी निरखने लायक़ है, जैसे——

नीलोत्पल-दल-स्याम-अंग नव-जोबन भ्राजैं ;
कुटिल अलक मुख-कमल मनों अलि-अवलि बिराजैं।
सुंदर भाल बिसाल, दिपति मनों निकर-निसाकर ;
कृष्ण-भक्ति प्रतिबिंब तिमिर कों कोटि दिवाकर।
कृपा - रंग - रस - ऐन-नैन राजति रतनारे।
कृष्ण-रसासव-पान-अलस कछु घूम-घुमारे।
स्रवन-कृष्ण-रस-भरन, गंड-मंडल भल दरसैं ;
प्रेम-अनँद मिलि तासु मंद मुसक्यानि मधु बरसैं।
उन्नत नासा, अधर-बिंब सुक की छवि छीनी,
तिन बिच अदभुत भाँति लसति कछु इक मसि-मीनी।
कंबु-कंठ की रेखु देखु हरि-धरम प्रकासैं,
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह जिहि निरखति नासैं।
उर-बर पै अति छबिहिं भीर कछु बरनि न जाई,
जिहिं भीतर जगमगैं, निरतर कुँअर कन्हाई।
सुंदर उदर उदारु रुमावलि राजति भारी,
हिय-सरवर रसभरी, चली मनों उमँगि पनारी।
ता रस की कुंडिका-नाभि, सोभित अस गहरी ;
त्रिबली तामें ललित भाँति जनु उपजति लहरी।
अति सुदेस कटि-देस, सिंघ सोभित सघनन अस ;
जुव-जन-मन आकरसति, बरसति प्रेम-सुधा-रस।
गूढ़ जानु, आजानुबाहु मद-गज-गति लोलैं ;
गंगादिकन पवित्र करत अवनी पै डोलैं।
सुंदर पद-अरबिंद, मधुर मकरंद मुक्त जहँ ;
मुनि-मन-मधुकर-निकर, सदा सेवति लोभी तहँ।
राजति अंग बिभूति, अनेक बिबेक-प्रकासक ;
नख-सिख-रूप अनूप सकल जनु अघ के नासक।

—रास-पंचाध्या

आह....... कितना सुंदर वर्णन है, कितनी सुं शब्दावली से सुशोभित है......

महाकवियों की वाणी में कुछ अद्भुत प्रकार अलौकिकता, विवशकारी विशेषता होती है। उन रुचिर रचना में हृदयहारिणी शक्ति की परा काष्ठा हो है, उनकी सरस शब्दावली कर्णगोचर होते ही हृदय हलचल मचा देती है, विवशता बिखेर देती है। हृदय अपना हक़ीक़ी हक़दार बना लेती है।

यद्यपि श्रीमद्भागवतांतर्गत प्रथम स्कंध के अंत

श्रीशुक का सुकुमार वर्णन, नख-शिख-निरूपण सूक्ष्मतया अति सरस है, सुंदर है, जैसे कि—

तं द्व्यष्टवर्षं सुकुमारपादकरोरुबाह्वंसकपोलगात्रं
चार्वायताक्षोन्नसतुल्यकर्णसुभ्र्वाननं कम्बुसुजातकण्ठम् ;
निगूढजत्रुं पृथुतुङ्गवक्षः समावर्तनाभिं बलि-वल्गूदरं च
दिगम्बरं वक्त्रविकीर्णकेशं प्रलम्बबाहुं स्वमरोत्तमाभम् ।
श्यामं सदापीच्यवयोऽङ्गलक्ष्म्या, स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन।

—प्रथम स्कंध, १९ अध्याय

तथापि यह आलम ही निराला है, मज़ा ही दूसरा है, आनन्द ही अनोखा है । आह······जिस बृहत्ता की बारूद को वृत्यानुप्रास की बंदूक़ में भरकर और उत्प्रेक्षा की उँगली से लालित्य की लपलपी लपाकर इस भाग-र्णनांतर्गत—सूक्ष्मता के सरापे पर जो सीधा-सादा, ऊँचा-तुला, निराला निशाना मारा है, उसे भावुक हृदय ही जानते होंगे, वे ही इसकी चुलबुली चोट से तड़पते होंगे, अन्य नहीं । बात वही है, विशद वर्णन उसी का है, उसी की छबीली छटा से छादित है, किंतु जो मुकुलित मज़ा—

नीलोत्पल दल स्याम अंग, नव-जोबन भ्राजै ।

में है, वह "श्यामं सदापीच्यवयोऽङ्गलक्ष्म्या" में कहाँ है। जो उभरा हुआ आनंद—

कुटिल अलक मुख-कमल मनों आलि-अवलि बिराजै ।

में है, वह "दिगम्बरं वक्त्रविकीर्णकेशं" में कहाँ है, जो कुछ तर्ज़ तबियतदारी—

कृपा-रंग-रस-ऐन-नैन राजति रतनारे ।

में है, वह "चार्वायताक्षोन्नसतुल्य······", में कहाँ है, और—

उन्नत-नासा, अधरबिंब सुक की छबि छीनी ;
तिन बिच अदभुत भाँति लसाति कछु इक मसि-भीनी ।

का तो कुछ जवाब ही नहीं है । आह...कितने जादू-भरे शब्दों का जमाव है कि कुछ कहा नहीं जाता । "मसि-भीनी" पर कविवर "आलम" का एक सवैया याद आ गया है । यथा—

आ, सुंदर नंदकिसोर तरंगनि, अंग को संग अनंग गह्यो ;
बनिता सब मोहि रहीं ब्रज की, मनैं "आलम" रूप महा उमह्यो ।
भीजति कान्ह के आनन में लखि स्याम-सी रेखु को भेखु कह्यो ;
छबि पूरन इंदु के मध्य किधौं, दुतिया के सरूप ह्वै राहु रह्यो ।

—आलम

नित्य विहारस्थल श्रीवृंदावन का वर्णन भी आपने बड़ा हृदय-द्रावक किया है, यथा—

अब सुंदर श्रीवृंदावन कों गाइ सुनाऊँ ;
सकल सिद्धिदायक पै सबही बिधि सिधि पाऊँ ।
जहँ नग, खग, मृग, लता, कुंज बिरुधी-तन जेते ;
परत न काल-प्रभाव सदा सोभित हैं तेते ।
सकल जंतु अविरुद्ध जहाँ हरि, मृग-सँग चरहीं ;
काम, क्रोध, मद, लोभ रहित लीला अनुसरहीं ।
सब ऋतु संत बसंत, रहति जहँ दिन-मनि सोभा ;
आन बनन जाकी बिभूति करि सोभित सोभा ।
जो लछमी निज रूप रहति चरनन सेवित नित ;
भौं बिलसति जु बिभूति जगत, जग-मग रह जित-तित ।
श्री अनंत, महिमा अनंत को बरनि सकै कवि ;
संकरसन सों कछुक कही, श्रीमुख जाकी छवि ।
देवन में श्रीरमा-रमन नारायन-प्रभु जस ;
कानन में श्रीवृंदावन सब दिन सोभित अस ।
या बन की बन-बनिक आपु बन ही बनि आवै ;
सेस, सुरेस, महेस, गनेसहु पार न पावै ।

—रास-पंचाध्यायी

आहा......, सात्त्विकता से संयुक्त कितना सरस वर्णन है, यह साहित्यिक सज्जन ही जान सकते हैं, क्योंकि—

श्री अनंत, महिमा अनंत, को बरनि सकै कबि ;
संकरसन सों कछुक कही, श्रीमुख जाकी छबि ।

जिसकी थोड़ी ही छवि को—सुंदर शोभा को—संकरसन से श्रीमुख द्वारा कहा, उस अनंत महिमा से मंडित अनंत-श्री को कोई कवि क्या खाकर कहेगा, और फिर जिसके शेषावतार श्रीसंकरषण-से श्रोता धन्य हैं, धन्य हैं ।

कुछ-कुछ ऐसी ही श्रीवृंदावन की शोभा को आपने अन्यत्र भी रमणीयता से रंजित कर कहा है, जैसे कि—

सखि जब बृंदाबन महँ गई ;
बिपिन बिलोकि चकित अति भई ।
सब ऋतु बसति बसंत सम जहाँ ;
पात पुरान होति नहिं तहाँ ।
कुसुम-धूरि धूँधरि तहँ रहै ;
सीतल, सुगँध, पवन जहँ बहै ।
गुंजति पुंज-भँवर छबि छाजै ;
ठौर-ठौर मधु बीन ज्यों बाजै ।

सुधि न रही याहीं छबि गोहन ;
राग-मयी कै प्रेममयी बन।
जो मुख होंहिं अनंत सखि, रसना ताहि अनंत ;
बृंदाबन गुन कथन कों, तऊ न पावैं अंत।
—रूपमंजरी

कवि कोई सौंदर्यविहीन बात ही नहीं कहता, वह साधारण से भी साधारण बात में नया चोज़, नई अदा और नया शुरूर कुछ ऐसा भर देता है, कुछ ऐसी अलौकिकता से अलंकृत कर कहता है कि रसिकजन सौ जान से फ़िदा हो जाते हैं, फिर महाकवि की तो बात ही क्या है।

यद्यपि आप सहज रीति से ही उस सहज सौंदर्यमय माधुर्य की खान श्रीपरब्रह्म-परमात्मा कृष्णचंद्र का सुस्वरूप वर्णन करते हैं, तथापि वह अपने ख़ास ढंग के रंग में रँगकर, अपनी पुनीत प्रतिभा का पुट देकर। जैसे कि—

मधु-कमनीय-करनि का, सब सुख कंदर सुंदर ;
तहँ राजति ब्रजराज कुँवर-बर रसिक-पुरंदर।
निकर-विभाकर-दुति मेटति सुभ कौस्तुभ-मनि-अस ;
ज्यों हरि कों उर निबिड़ मध्य राजति उड़-पति जस।
मोहन अद्भुत रूप कहति छबि आइ न ताकी ;
अखिल-अंड-व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी।
परमातम-परब्रह्म सबन के अंतरजामी ;
नारायन-भगवान धरम करि सबके स्वामी।
बाल, कुमार, पुगंड, ललित आक्रांत लसत तनु ;
धरमी नित्त किसोर कान्ह मोहत सबके मनु।
मृदु, उज्जल, श्यामल सु-अंग अद्भुत सिंगारु करि ;
नवल-किशोर सुमोर-चंद्रिका सुभग सीस धरि।
गर मोतिन की माल ललित बन-माल धरे प्रिय ;
मंद मरुत-बस पीत बसन फरकति करखति हिय।
—रास-पंचाध्यायी

जैसा कुछ वासना से परे, साहित्यिक-छटा से छादित छवि-भरा यह कमनीय वर्णन है, वह तो है ही ; किंतु—

ज्यों हरि कों उर निबिड़ मध्य राजति उड़-पति जस।

अथवा—

मंद मरुत-बस पीत बसन फरकति करखति हिय।

में जो चंचल चित्त चुराने की शक्ति है, वह अकथनीय है, अवर्णनीय है। अनोखेपन की हद है, जोकि अब भी बार-बार हृदय में करखति—अर्थात् खटक रही है, और फिर—

ज्यों हरि को उर निबिड़ मध्य राजति उड़-पति जस।

की तो बात ही निराली है, अदा ही न्यारी आनंद ही दूसरा है।

यद्यपि कवि-कोकिल "बिहारीलाल" ने भी पीत वर्णन करने के लिये वस्तूत्प्रेक्षालंकार का आश्रय ले अनोखी ही 'उक्ति' कही है, जो नवीनता के नया भरी है, जैसे कि—

सोहत ओढ़ैं पीत पट, स्याम सलोने गात ;
मनों नील-मनि-सैल पर, आतप पर्‌यो प्रभात।
— बिहारी-सत

तथापि यह चपलतायुक्त पीत पट का फरकना हृदय में खटकना...आदि आनंद "बिहारी" के वर्णन कहाँ, वह तो वही है, दूसरा नहीं।

श्रीयुत नंददासजी के इस हृदयहारी भाव पर ही मनोरम उक्तियाँ "सीतल" ने भी कही हैं, यथा-

जब से वह फेंटा-गुलैनार, रँग-मगा सहज सज आया-
उपमा की मुझे तलाश रही, उपमान न दिल में भाया-
महि-सुत से सरस अरुण जेते, लखि दाड़िम-सुमन लजाया-
"सीतल" जिन देखा सो जानैं, मरगज़ा-सुरख़ बल खाया-

अथवा—

ऊदी-अलबेली अतर-मली, छबि देखति नैन समाय
जानी बुढ़हान-पुरी तेरी, आशिक़ के दिल को खाय
घायल-सा पड़ा सिसकता हूँ, अब तक मुख से नहिं हाय
इस 'लाल-बिहारी' की 'सीतल' बेतरह बैंजनी भाय

अथवा—

अलबेली-बँधन छबीले की, दिल देखे लेत न ताबी है।
इक पेचा पेच हज़ार करै, देखे से बड़ी ख़राबी है।
तिस पर कशमीरी अतर मला, मुख जग-मगान महताबी है।
कहु किसको दिलवर क़त्ल करन सिर पर यह सजी गुलाबी है।

अथवा—

ये सहज रंग जी लेवेगा, जो तूने अब छबि साजी है।
दिल चाहै दिलवर सो कीजै, हम धरी शीश पर बाज़ी है।
हममें तो इतनी ताब न थी, लाचार तुम्हारी राज़ी है।
ये ज़ख्म कल्ह के मिटे नहीं फिर तू सज आया प्याज़ी है।
—गुलज़ार-

श्रीभागवतांतर्गत "शुक" ने अभूतआनंददा अनुपम उक्ति द्वारा सिर्फ़ इतना ही कहकर अपना चला लिया कि—

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ;
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे, योगमायामुपाश्रितः ।
—दशम स्कंध पूर्वार्ध २९ अ०

अब ज़रा खूबियों के ख़ज़ाने, नूतनता की खान श्रीयुत 'नंददासजी' का विदग्धता-भरा वर्णन भी हृदय थामकर सुन लीजिए । यथा—

जदपि सहज माधुरी बिपिन सब दिन सुखदाई ;
तदपि रँगीली सरद समैं मिलि अति छबि छाई ।
ज्यौं अमोल नग जगमगात सुंदर जड़ाव-सँग ;
रूपवंत, गुनवंत, बहुरि भूषित भूषन अँग ।
रजनी-मुख सुख देखि ललित प्रफुलित जु मालतीय ;
ज्यौं नवजोवन पाइ लसति गुनवती बाल-तीय ।
छबि-सों फूले फूल, अवर अस लगी लुनाई ;
मनहुँ सरद की छपा छबीली बिहँसन आई ।
—रास-पंचाध्यायी

यद्यपि सब दिन ही श्रीवृंदा-विपिन की सहजमाधुरी अतीव सुखदायी है, हृदय को हरदम हर्षाने में हावी है, तो भी—

तदपि रँगीली सरद समैं मिलि अति छबि छाई ;

की तो बात ही निराली है, ग़ज़ब ढा दिया है, सारा सरापा छितिज पर छा दिया है । आह..., कितना प्यारा प्रकृति का पर्यवेक्षण है, कितना मनमोहक मज़मून है,......

जैसे अमोल रत्न-राशि सुंदर जड़ाव के साथ शोभा पाती हुई जगमगाती है, अथवा जैसे कोई रूपवंत और गुनवंत होने पर भी भूषणों से भूषित हो सुषमा का समूह-सा बरसाता विदित होता है, उसी तरह आपकी ये उक्त पंक्तियाँ विपुल वर्णन से सुशोभित हैं, एक-एक पद पर सारी शोभा निसार है, ज़रा भी आनाकानी की ज़रूरत नहीं । आह..., कितनी कमनीय कृतियाँ हैं कि बरबस मुख से वाहवाह निकल पड़ती है । देखिये न—

छबि सों फूले फूल अवर अस लगी, लुनाई ;
मनहुँ सरद की छपा छबीली बिहँसन आई ।

माथुर-कुल-भूषण श्रीयुत 'हरलालजी' ने भी अपने 'भागवतार्थ-विनोद'-नामक काव्य-ग्रंथ में "भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः" का अनुवाद करते हुए कहा है—

भगवानहु वह रजनी लखि उज्वल, श्रीरमनी रमनी अनुकूली ;
हरि चित्त विचित्र कियो रमये तब जोग-मया की उपासना जूली ।
सरदा-ऋतु सुच्छ प्रमोदभरी कमला करि मंजुलता लगि झूली ;
सुभ धीर समीर, सुगंधित तीर सु-मल्लिका, कुंद, कुमोदिनि फूली ।

कविवर "विहारीलाल" ने भी "शरद्-ऋतु" को कामिनी की कमनीयता से अलंकृत कर कैसी सुंदर सूक्ति कही है कि—

अरुन सरोरुह कर-चरन, दग खंजन, मुख चंद ;
समै आय सुंदरि सरद, काहि न करत अनंद ।
—सतसई, परिशिष्ट भाग

कविता-कानन के केसरियों ने यद्यपि कहने के लिये कुछ भी नहीं छोड़ा, अपनी प्रचुर प्रतिभा का प्रताप परखा दिया, बाक़ी की बेबाक़ी कर दी, गुंजाइश को भी ग़र्क़ कर दिया, तथापि प्राकृत कवि अपनी प्रकृति-वाटिका के रूखे-सूखे ठूँठों में भी प्रत्युत्पन्न-मति प्रतिभा द्वारा रमणीय रस का सरसता से संचार कर कुछ-का-कुछ कर दिखाते हैं, आँखों में खुभने और चित्त में चुभने लायक़ बना देते हैं । बस, यहीं उसकी कुशलतायुक्त कारीगरी का कोमल दिग्दर्शन है । जैसे कि—

तदोडुराजः कुकुभः करैर्मुखं, प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः ;
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ।
दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं, रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम् ;
वनं च तत्कोमलगोभिरञ्जितं, जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ।
—दशमस्कंध-पञ्चाध्यायी

को श्री नंददासजी ने अपनी सुंदर सूझ के सहारे कितनी सरसता के साथ सजा दिया है, अनंत-रस-प्लावित कर दिया है, प्राण संचार कर निर्जीव से सजीव बना दिया है । देखिए न, अनुवाद-सा होने पर भी कितना अनोखापन भर दिया है । यथा—

ताही छिन उडुराज उदित, रस-रास सहाइक ;
कुमकुम-मंडित प्रिया-बदन जनु नागर-नाइक ।
कोमल किरन अरुन नभ, बन में व्याप रही यों ;
मनसिज खेल्यो फागु, घुमड़ि घुरि रह्यो गुलाल ज्यों ।
स्फटिक-छटा-सी किरन, कुंज-रंध्रन ह्वै आई ;
मानहुँ बितन बितान, सु बेस तनाव तनाई ।
मंद-मंद चलि चारु चंद्रमा, अति छबि छाई ;
झलकति हैं जनु रमा-रमन-पिय कौतुक पाई ।
—रास-पंचाध्यायी

वाह..., सादृश्य से संयुक्त अनुपम अनुवाद होने पर भी जो निराली नवीनता है, चमत्कृत चमत्कार है, वह छुटीले चित्त को चंचल करने के लिये काफ़ी है, यथेष्ट है। भाषा-मात्र का भेद होने पर भी नंददासजी के वर्णन में जो विशेषता है, जो बाँकपन है, उसके सहृदय साक्षी हैं, गवाह हैं। आह कितनी उत्तम उक्ति है—

कोमल किरन अरुन नभ, बन में ब्याप रही यों;
मनसिज खेल्यों फागु घुमड़ि घुरि रह्यो गुलाल ज्यों।

अथवा—

मंद-मंद चलि चारु चंद्रमा, अति छबि छाई;
झलकति हैं जनु रमा-रमन-पिय कौतुक पाई।

उदित समय की अरुणता से अलंकृत 'चारु चंद' पर संदेहालंकार के सहारे कवि "मुकुंद" की भी अनुपम उड़ान है, देखिए—

पिय देखनि मनों रमा उझकी, मुख कुंकुम-रंजित भ्राजतु है;
रजनी उर कों अनुराग किधौं यह मूरतवंत सु छाजतु है।
किधौं पूरन चंद सु छंद उदोत, 'मुकुंद' सबै सुख साजतु है;
किधौं प्राची-दिशा-नव-बाल के भाल, गुलाल कों बिंदु बिराजतु है।

उदित उडुराज की प्रतिभा से प्रमुदित शरद्-निशा का नयनाभिराम वर्णन, कृष्णगढ़ाधीश, भक्तवर "नागरीदासजी" ने भी बड़ा रमणीक किया है। यथा—

उज्ज्वल पच्छिक रैन, चैन उज्ज्वल रस दैनी;
उदित भयों उड़राज, अरुन दुति मनहर लैनी।
महाकुपित ह्वै काम ब्रह्म-अस्त्रहि छोड़्यों मनु;
प्राची-दिसि तैं प्रज्वलित आवति अगिनि उठी जनु।
दहन-मानपुर, मगन मिलन को मन हुलसावत;
छावत छपा-अमंद-चंद, ज्यौं-ज्यौं नभ आवत।
जगमगात बन-जोति सोत-अमृत-धारा-सी;
नवद्रुम, किसलय-दलन चारु चमकति तारा-सी।
स्वेत रजत-सी रैन, चैन चित मैन-उमहनी;
तैसी मंद सुगंध पौन दिनमनि-दुख दहनी।
फैली चमकति चंद्रिका, बिच निकुंज, बन, बाग;
कतरि स्वेत-मुकेस मनु, रति-पति खेल्यों फाग।

—बिहार-चंद्रिका

"मनसिज खेल्यों फागु घुमड़ि घुरि रह्यो गुलाल ज्यौं" में और "कतरि स्वेत-मुकेस मनु रति-पति खेल्यों फाग" में कितना अनुरूप वर्णन है और कितनी साम्यता से संयुक्त शब्दावली है, वाह......। यदि उधर गुनन-गरूला गुलाल है, तो इधर मनमोहक मुक्के अर्थात्—अबीर है। दोनों ही आनंद को उन्मत्त बनाने के लिये उपयुक्त हैं। अतः—

तब लीनीं कर-कमल जोग-माया-सी मुरली;
अघटित-घटना चतुर बहुरि अधरामृत जुरली।
जाकी धुनि तैं निगम, अगम प्रगटति बड़-नागर;
नाद-ब्रह्म की जानि मोहनी सब सुखसागर।
पुनि मोहन सौं मिली कछुक कल गान कियो अस;
बाम बिलोचन बाल-तियन मनहरन होइ जस।
मोहन मुरली-नाद स्रवन कीनों सब किनहूँ;
जथा-जथा बिधि रूप, तथा बिधि परस्यो तितहूँ।

—रास-पंचाध्यायी

किसी अत्युत्कृष्ट अनुपम पदार्थ की प्राप्ति के लिये अथवा इच्छित उत्तेजना उपजाने के लिये साधन की ज़रूरत होती है, आश्रय की आवश्यकता होती है। अतः "योगमायामुपाश्रितः" की मौजूदगी में भी जो आपने "जोग-माया-सी मुरली" का ही आश्रय लिया, 'माया' का मोहत्याग 'मुरली' को ही मनोनीत किया, वह आपकी पुनीतता में पगी प्रेमयुक्त प्रचुर प्रतिभा का ही परिचायक है, भक्ति से विभूषित विमल हृदय की ही विभूति है। भला, भक्ति के सामने भकुई योग-माया की क्या बिसात, प्रेमिक की प्रेम-सत्ता के सामने माया का क्या प्रसार। माया से, जादू से किसी को अपने वशीभूत कर लेना, अनुरक्त कर लेना पवित्र प्रेम की भर्त्सना है, निरादर है, अवज्ञा है। किंतु दूतत्व में देदीप्यमान, "अघटित घटना" घटानेवाली चतुर और 'मनमोहन' के "अधरामृत-जुरली" मुरली की क्या बात है, उसकी मोहकता का क्या ठिकाना है। उसकी 'हक़ की' बनने की होड़ "योग-माया" बेचारी क्या खाक करेगी। वह देखिए...वह एक 'गोपी' विषभरी बंशी के प्रति उस "काले कलूटे कान्हा" से क्या पूछ रही है, कि—

औरु बिष जेते तेते प्रान के हरैया होति,
बंशी के कढ़े कीं कभू जाइ ना लहर है;
सुनति ही एकु संग रोम-रोम रीझि जाइ,
जोम जारि डारै पारै बेकली गहर है।
'ग्वाल कवि' लाल तोहिं जोरि कर पूँछति हौं,
साँचु कहि दीजै कछु मो पै जो महर है;

बाँसु में कि बेध में कि होंठ में कि फूँक में कि,
आँगुरी कीं दाब में कि धुनि में जहर है।
—ग्वालकवि-कृत वंशी-दीक्षा

बता दीजिए सरकार, बता दो मेरे राजा कि कहाँ-कहाँ इस बाँस की वंशी में विष बगरा दिया है, कौन-कौन-सी जगह को ज़हर के ज़हूर से जगमगा दिया है, बताइए न.....न बताओगे......न बताओ...... अजी हज़रत ? यह सब आपके इन अमृतभरे अरुण-अरुण अधरों की ही काली करतूत है, उन्हीं का तिलस्मात है, बेचारी वंशी की क्या बिसात, क्या औक़ात। जैसे कि—

पान किये हूँ दवानल कौं, जिहिं कों अधरा-रस नाहिं उढैरी ;
ताके लगी मुख सों यह जाइ तो क्यौं नहिं ज्वाल की तान गढैरी।
—गोकुल

दावानल का पान करने के पश्चात् भी जिनके उन्मादकारी अधरों का रस नहीं जला, उन्हीं अरुण-अधर से लगी वंशी ज्वालामयी तान क्यों न छेड़े।

"तब लीनी कर कमल योग-माया-सी मुरली" पर श्रीयुत "आलम कवि" का एक सवैया याद आ गया है, देखिए कितना सुंदर है। यथा—

अंग त्रिभंग किये मन मोहन कोटिक काम के लेति हरैं ;
चित चाँद चुम्यो बृषभानु-सुता-तन आँगुरी बाँसुरी बेद धरैं।
चंचल, चारु चलैं कर-पल्लव "आलम" नैकु न नैन टरैं ;
तजि रोष सुचारु सुधाकर पै, मनो नीरज के दल नृत्य करैं।

अतः श्रीनंददासजी ने मुरली को योग-माया-सी कहकर सोने में सुगंध भर दी है, मुरली से अनुपम नग को योग-माया के सोने में जड़ाव-सा जड़ दिया है। धन्य है.....धन्य है......।

सुरूरभरी सौतिनियाँ के सरापे में शराबोर बेदरद—वंशी पर व्रज-वधुओं द्वारा "श्रीसूर" से लेकर अनेक कृतविद्य कवियों ने अपनी-अपनी उक्तियाँ निराले-निराले अंदाज़ से कही हैं, हृदय-द्रावक रंग ढुरकाए हैं, क़यामत बरपा कर दी है, अनोखे अनुमान उड़ाए हैं। जैसे कि—

मुरली कौन तप तै कियौं ;
रहति गिरिधर-मुखहिं लागी, अधरन कौं रस पियौं।
सुंदर स्याम कमलदल-लोचन, तोहि तन-मन दियौं ;
सूर श्रीगोपाल बस भए, जगत में जस लियौं ॥
—श्रीसूर

पावन प्रेम में कुछ अद्भुत आकर्षण, उन्मादकारी "अट्रैक्शन", प्रेम की खूबियों से खचित कुछ और ही खिंचाव होता है। प्रेमिक की प्राप्ति की कामना कुछ और ही होती है। उसे प्रेमी-हृदय ही जान सकते हैं, अन्य नहीं।

पतंग यह जानकर भी कि दीपक की दिल लुभानेवाली 'लौ' पर पड़ते ही सौंदर्य का शिकार हो जाऊँगा, जल-भुनकर ख़ाक हो जाऊँगा, नहीं मानता और अपना सर्वस्व उस ''सौंदर्य-शिखा'' पर केवल पावन प्रेम के सहारे न्यौछावर कर देता है, जीवनोत्सर्ग का ज्वाज्वल्यमान प्रमाण रख देता है, फिर—"कोटिक काम लजावन हारे" मनमोहन के अधर-रस से रंजित मुखरा मनमोहिनी मुरली द्वारा अभिमंत्रित होने पर प्रेम की साक्षात् अवतार गोपियाँ "अनंगवर्धनं गीतं निशम्य" ''कृष्ण-दर्शन-लालसाः'' के उद्दाम कारण से कैसे चलीं, यह आपकी ही सुंदर सूक्ति द्वारा सुनिए। यथा—

सुनति चलीं व्रज-बधू, गीत-धुनिकौं मारग गहि ;
भवन-भीत द्रुम-कुंज-पुंज कित हू अटकी नहि।
नाँद अमृत को पंथ रँगीलौं सूच्छम भारी ;
तिहि मग व्रजतिय चलीं आनि कोउ नहिं अधिकारी।
सुद्ध प्रेममय रूप, पंच-भूतन तैं न्यारी ;
तिन्हैं कहा कोऊ कहै जोतिसी जगत उजारी।

अथवा—

ते पुनि तिहि मग चलीं रँगीली तजि गृह-संगम ;
जनु पिंजरनु तैं छुटे, घुटे तव-प्रेम-विहंगम।
—रास-पंचाध्यायी

आहा......, कैसी सुमधुर सूक्ति है, कितनी उन्मादिनी उत्प्रेक्षा है, पावन प्रेम की कैसी सुन्दर परा काष्ठा है, हृदयहारी बेबसी से विभूपित कैसी सुंदर पदावली है, वाह......।

जनु पिंजरनु तैं छुटे, घुटे तव-प्रेम-विहंगम।

और इस चपलतायुक्त चलने के समय, हुलसाए हृदय की हड़बड़ी से जो कुछ गड़बड़ी हुई है, उसके नयनाभिराम निरूपण पर तो आपने क़लम ही तोड़ दी है, ग़ज़ब ढा दिया है, देखिए न—

चलति अधिक छबि फबति स्रवन मनि-कुंडल झलकैं ;
संकित लोचन चपल, ललित जुत बिलुलित अलकैं।
—रास-पंचाध्यायी

धन्य नंददासजी ! धन्य है, कैसी सुन्दर सजावटदार तबीयतदारी की 'तसवीर' खींच दी, सुरूर से सरशार शब्दों में कैसी हृदयहारी हड़बड़ी भर दी कि—वाह... । चंचल चपलता से संयुक्त सशंकित लोचनों और विलुलित ललित अलकावली के पास ही—नज़दीक ही "स्रवन मनि-कुंडल झलकैं" ने एक निराली ही—अनुपम ही आभा अंकित कर दी । "स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः" का कैसा कमनीय अनुवाद है वाह...।

रसिकता की खान श्री"रसखानजी" भी विषभरी वंशी की विरुदावली का बखान करते 'बिहारी' की बेजा हरकत से परिपूर्ण वेदनामयी 'रिपोर्ट' पेश करते हुए कहते हैं—

दूध-दुह्यौं सीरों परयौं, तातों ना जमायों बीरु,
जामन दयों सो धर्यों-धर्योई खटाइगो ।
आन हाथ, आन पाँइ सबही के जब हीं तैं,
तब हीं तैं 'रसखान' तानन सुनाइगो ॥
ज्यों हीं नर, त्यों ही नारि तैसियै तरुनि बाल,
कहियै कहारी सब ब्रज बिललाइगो ।
जानियैं न आली, यह छोहरा जसोमति कों,
बाँसुरी बजाइगो कै बिष बगराइगो ॥

—सुजान-रसखान

श्रीशुकदेवजी ने भी इस चपल चटपटी की चित्त में चुभनेवाली चर्चा की है ; "निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं, व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः" का प्रस्फुटित परिणाम परखाया है, जैसे कि—

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः ;
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ।

—भागवतांतर्गत रास-पंचाध्यायी

आदि...किंतु वंशी द्वारा विताड़ित भवन-भीता भामिनियों के— शशि-समान सुमुखियों के तम-पुंजों से परिपूर्ण द्रुम-कुंजों से निकलकर आप—नंददासजी—ने कैसी उत्तम उत्प्रेक्षा उपजाई है...देखिए न—

कुंजन-कुंजन निसरति बर-आनन सोभित अस ;
तम-कौंने तैं निकर लसति राका-मयंक जस ।

—रास पंचाध्यायी

अर्थात् तम के—अंधकार के कोने से—गोद से निकलकर जैसे पूर्ण चंद्र शोभा पाता हो ।

आहा...तम में तड़फड़ाता हुआ या बदलियों में विलुलित चंद्रमा की लुका-लुकी कैसी सुंदर मालूम होती है । कैसी सुखकर प्रतीत होती है वाह...।

बाँकी छवि से छादित प्रेम का यह स्वाभाविक धर्म है कि बंक कहन और बंक चहन रूपी सुहागे के संमिश्रण से अधिकाधिक उज्ज्वलता आलिंगन करता जाय, उसका सारा सौंदर्य निखरता जाय । प्यारे के प्रेम-पगे बंक वचन कुछ अनूठे ही मीठे लगते हैं, लगन के लौन का कुछ ज़ायक़ा ही दूसरा होता है । अतः—

आइ उमंगि सों मिलीं रँगीली गोप-बधू अस ;
नंद-सुवन-सागर सुंदर सों प्रेम-नदी जस ।

—रास-पंचाध्यायी

के पश्चात् श्रीशुक ने भी 'भागवतांतर्गत' प्रेम-ध्वजा-स्वरूपिणी गोपियों के प्रेम को और भी उज्ज्वल करने के लिये ज़रा-सी फड़कीली फटकार अथवा प्रेममयी मधुर भर्त्सना अवश्य दी है, किंतु हृदय में डरते-डरते, जैसे कि-

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ;
व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ।

अथवा—

श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ;
न तथा संनिकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ।

पर पावन प्रेम के कोमल-बिरवा ने, माखन से भी मृदु नेह के निराले अंकुर ने इस अड़बड़-खड़बड़ से दूर ही रहकर पुनीत प्रेम को प्रश्रय देनेवाली अथवा चित्त में चुभनेवाली जो चुलबुली चुटकी भरी है, नेह के निराले नवांकुर को क्षणिक विरह के उत्ताप से जो ज़रा-सा उकसाया है, वह अकथनीय है, अवर्णनीय है । जैसे—

जब पिय कह्यौ घर जाहु, अधिक चिंता चित बाढ़ी ;
पुतरिन की-सी पाँति, रहि गईं इक-टक ठाढ़ी ।
दुख सों दबि छबि-सींव-ग्रीव लै चलीं नाल-सी ;
अलक-अलिन के भार नमित जनु कमल-माल-सी ।
हिय-भरि बिरह-हुतास उसासन सँग आवति भर ;
चले कछुक मुरझाइ मधुभरे अधर-बिंब वर ।

अथवा—

लाल रसालहिं बंक बचन सुनि चकित भईं यों ;
बाल मृगिन की माल सघन बन भूलि परीं त्यों ।
मंद परसपर हँसीं लसीं तिरछी आँखियन अस ;
रूप-उदधि इतरात रँगीली मीन-पाँति जस ।

—रास-पंचाध्यायी

सिर्फ़ "घर जाहु" इतना ही कहने से, तनक छेड़-छाड़ से, मामूली मज़ाक़ से ही गोपियों की दयनीय दशा का यह जीता-जागता दिग्दर्शन है । लाल रसाल के बंक वचन द्वारा चकित भईं गोपियों पर कैसी सुंदर उपमा जड़ी है कि वाह... । जैसे कि--

बाल-मृगिन की माल सघन बन भूलि परीं त्यों ।

वाह कैसा सीधा-सादा, भोला-भाला दैन्य-दशोचित चित्र है वाह...।

कुछ ऐसा ही विरह-विलुलित वर्णन नंददासजी ने और भी किया है, सुंदरता से ख़ूब सजाया है, जैसे कि--

सिसुपाल हि कों देति रुक्म, रुकमिनी बात सुनीं जब ;
चित्र-लिखी-सी रही, दई यह कहा भई अब ।
चकित चहूँ दिसि चहति, बिछुरि मनों मृगी माल तैं;
भयो बदन कछु मलिन, नलिन जनु गलित नाल तैं ।
भरि आए जल नैन, प्रेम-रस-ऐन सुहाए ;
जनु सुंदर अरबिंद, अलिन-दल बैठि हलाए ।
ह्वै गयो कछु बिबरन तन छाजति यों छबि छाईं ;
रूप अनूपम बेलि तनक मनु घाम में आई ।

—रुक्मिनी-मंगल

अहा......प्रेम की प्रबलता ही प्रियतम की प्राप्ति का पुनीत प्रश्रय है, अनन्यता से अलंकृत अखंड आश्रय ही 'उपास्य' को आलिंगन करने का उत्तमोत्तम मार्ग है, रसीला रास्ता है । जो मन-वाणी से भी परे है, वेदादि भी जिसे नेति-नेति कहकर ही निराशा की रस्सी लिए बेबसी का ढोल पीट रहे हैं, योगीजन भी जिसके अगम, अगोचर रूप को बरबस हृदय में स्थापन के लिये नाना भाँति के यत्नों में प्रवृत्त हैं, उस अजर बिहारी की सारी सिट्टी यहीं भूल जाती है, शोख़ी हवा हो जाती है, भावना के भव्य भाव में सारा अपनपा भूल जाता है, और कहने लगता है कि--

"प्रियं किं करवाणि वः"

अतएव, इस विवशता में जो आनंद है, जो सुख है, ज़रा-सी देर के बनने-बिगड़ने में जो माधुर्य है, वह भुक्त-भोगी ही जान सकते हैं, वे ही इसकी सरस सत्ता स्वीकार कर सकते हैं, अन्य नहीं ।

ज़रा-सा बिगाड़ हुआ, मान-महाराज मुकुलित हुए, युगल प्रेमी उस अनोखी अदा से अलंकृत अनुपम भाव-भंगी को निरखने के लिये मचल पड़े, आँखें उठीं, सामना हुआ कि हिजाब हाज़िर, लज्जा लिपट गई, प्रेम फूट पड़ा, सारा मान और ज़रा-सी देर का बनावटी क्रोध काफ़ूर हुआ, फिर वही बात, फिर वही आलम, युगल प्रेमियों में और नवीनता उत्पन्न हो गई । स्नेह और भी उबल पड़ा, मज़ा ही दूसरा हो गया, जैसे कि--

तब बोलीं ब्रज-बाला लाला मोहन अनुरागी ;
सुंदर गद्गद गिरा गिरिधरहि मधुरी लागी ।
अहो मोहन ! अहो प्रान-नाथ ! सुंदर सुखदाइक ;
क्रूर बचन जिन कहों नाहिं ए तुमरे लाइक ।
कुटिल अलक, मुख-कमल मनों मधुकर मतवारे ;
तिनमें मिलि गए चपल नैन ह्वै मीन हमारे ।
चितवनि मोहन मंत्र, भौंह जनु मनमथ-फाँसी ;
निपट ठगोरी आहि, मंद मुसकानि मृदु हाँसी ।
अधर-सुधा के लोभ भईं हम दासि तिहारी ;
ज्यौं लुब्धी पद-कमल, चंचला कमला-नारी ।
जो न देहु मधु-अधरामृत तौं सुनि सुंदर हरि ;
करि हैं इहि तन भसम बिरह-पावक में परि-परि ।
पुनि पद तुम्हरे परसि बहुरि धरिहैं सुंदर अँग ;
निधरक ह्वै फिरि अधरामृत पीवहिगीं सँग-सँग ।

अस्तु !

प्रेम-पगे सुनि बचन आँचि-सी आइ लगी जिय ;
पिघल चल्यों नवनीत मीत सुंदर मोहन-हिय ।
बिहँसि मिले नँदलाल निरखि ब्रज-बाल बिरह अस ;
जदपि आतमाराम रमत भए परम प्रेमबस ।
हरखि अंक भरि लईं रंक नव-निधि की नाईं ;
पुनि-पुनि पिय-हिय लाइ, सँजीवन-मूरहि पाईं ।

—रास-पंचाध्यायी

प्रेम की कुछ ऐसी ही उन्मादिनी शक्ति से सुशोभित सुंदर शब्दावली आपने रुक्मिणी द्वारा द्वारिकानाथ के प्रति भी कहलवाई है । यथा--

नागर, नगधर, नंदकुँअर जो करहु न दासी ;
तो पावक परि जरिहौं बरिहौं तन तिनका-सी ।
मर-मर धरि-धरि देह जु पैहौं सुंदर हरि बर ;
पै इहि कबहु न होइ छुएँ सिसुपाल स्याल कर ।

—रुक्मिनी-मंगल

अब संयोग से संयुक्त कतिपय सुंदर शब्दावली के साथ ही "रसिक-जीवन-प्राण"-नामक प्रथम अध्याय

की समाप्ति पर लेख की समाप्ति कर रहा हूँ, कारण—

भरे भवन के चोर भए बदलति ही हारे।

—नंददासजी

का-सा मामला हो रहा है, "कागद थोरों हित घनों" की घुमेड़ में घूम रहा हूँ; उल्लास उछल रहा है, पर दबा रहा हूँ; मन मचल रहा है, पर मनाने में लाचार हूँ; क्योंकि नंददासजी की कमनीय कृतियाँ, सहज-माधुरी, जिधर देखता हूँ उधर ही माधुर्य से लबालब भरी हैं, मन लुभाने के लिये पर्याप्त हैं, अनुपम शक्ति से सुशोभित हैं। अतः समुचित समय के लिये हृदय थामकर कुछ ही नयनाभिराम उत्तम उक्तियों को और रखता हूँ। यथा—

बिहरति बिपिन-बिलास उदार नवल नँद-नंदन ;
नव-कुंकुम घनसारु, चारु चरचित है चंदन।
अदभुत साँवल अंग बन्यों अदभुत पीताम्बरि ;
मुकट धरैं सिंगार प्रेम-अंबर ओढ़ैं हरि।
बिगलति उर बन-माल लाल जब चलति चाल बर ;
कोटि मदन की भीर उठति पुनि गिरति चरन-तर।
गोपी-जन मन-मोहन, मोहनलाल बने यों ;
अपनी दुति के उड़गन लै उड़पति खेलति ज्यों।
कुसुम-धूरि-धूँधरी-कुंज, छबि-पुंजन छाई ;
गुंजत मंजु अलिंद बैनु जनु बजति बधाई।
इत महकति मालतीं, चारु चंपक चित चोरत ;
उत घनसार-तुसार, मिली मंदार झकोरत।
इत लवंग-नवरंग एलची झेलि रहीं रस ;
उत कुरबक, केवरों, केतकी गंध बंधु-बस।
इत तुलसी छबि हुलसीं, छाँड़ति परमल-पूटैं ;
उत कमोद आमोद गोद भरि-भरि सुख लूटैं।
फूलन-माल बनाइ लाल पहिरत, पहिरावत ;
सुमन सरोज सुधाबर ओज मनोज बढ़ावत।

—रास-पंचाध्यायी

बस, इससे आगे सुनने के आप और हम अधिकारी नहीं हैं, अतः परमलम्।

जवाहरलाल चतुर्वेदी

विवश-पयान

प्रियतमे! सर्व विश्व था शांत,
सरस निद्रा में होकर लीन ;
किंतु मैं होकर अति ही क्षुब्ध
कर रहा मूक रुदन था दीन।
अचानक तुमने आ चुपचाप,
अधखिले सुमनों का इक हार ;
मुझे पहनाया था, है ख़्याल?
अहो! वह था कितना सुकुमार!
लगा था नभ में हँसने चन्द्र,
तुम्हारा देख प्रेम-व्यवहार ;
सदय हो उसने भी अत्यंत,
चुलाई थी अमृत की धार।
बिठाकर तुम्हें गोद में, मुग्ध-
हृदय का लेकर मृदु उपहार;
दिया था आलिंगन के साथ;
जताने प्रथम मिलन का प्यार।
हुए थे हम दोनों सुधहीन,
मधुरतम प्रेम-सुरा कर पान;
रटा करते थे केवल एक
यही रट हो उन्मत्त समान—

"लबालब है प्याला रसयुक्त,
हुआ खाली केवल कुछ बूँद ;
मधुरिमा छाई चारों ओर
पिए जाओ आँखों को मूँद ।"
बीतते गए दिवस इस भाँति,
नकटतर आता गया अनन्त ;
किंतु हम दोनों की अब भी न
वासनाओं का आया अंत ।
अचानक पड़ी कान में टेर,
दीखने लगा विश्व का छोर ;
विवश हो करना पड़ा पयान,
हमें इससे अनन्त की ओर ।

बाबूलाल भार्गव "कीर्ति"

भारतीय चित्रकला की रूपरेखा

पचास वर्ष से भी कम हुए योरपवासियों के मन में यह बात भली भाँति जमी हुई थी कि भारतवर्ष में चित्रकला नाम की कोई वस्तु नहीं है। भारतीय कला पर जो दो-चार पुस्तकें उस समय तक प्रकाशित हुई थीं, उनसे साफ़ ज़ाहिर होता था कि यह देश चित्रकला से बिलकुल कोरा है। इस कथन को मान लेने से भारतीय कला का अध्ययन बहुत सरल हो गया। यह ठीक है कि भारतवर्ष में समय-समय पर छोटे-छोटे रंगीन चित्र (Meneatures) मिलते रहे हैं, परंतु पश्चिम के कला-भवनों में वे प्रायः फ़ारसी समझे जाते थे और कभी-कभी तो चीनी! उनको कला के उत्कृष्ट उदाहरण तो क्या, चित्र भी न समझा जाता था; लोगों की दृष्टि में उनका मूल्य पुस्तकों की शोभा बढ़ाने के अतिरिक्त और कुछ न था।

इन बातों का कारण जान लेना कठिन नहीं। पश्चिम-वाले केवल पश्चिमी दृष्टिकोण से ही कला की परख करते थे। यदि कोई चित्र या शिल्प पाश्चात्य नियमों पर पूरा न उतरा, तो वह कला का आदर्श नहीं माना जाता था, बल्कि उसको उसकी विचित्रता के कारण प्राच्य-संग्रहालय में स्थान मिल जाता था।

सर्वप्रथम जापानी कला की सुंदरता की ओर पूर्वीय सभ्यता के प्रशंसकों का ध्यान गया। पूर्वीय कला की विशेषताओं के कारण थोड़े समय में यह स्पष्ट हो गया कि पाश्चात्य नियम ही कला की कसौटी नहीं है; कला की परख के लिये अधिक उदारता की आवश्यकता है।

जापान की चित्रकला को कला मान लेने के थोड़े ही दिन बाद भारतवर्ष भी कलाविदों का ध्यान आकृष्ट करने लगा। प्रत्येक तसवीर कपड़े पर बनी हो तथा चौखटे में जड़ी हो, यह भावना भी शीघ्र ही दूर हो गई और बौद्ध एवं मुग़ल-चित्रों की गिनती भारतवर्ष की उत्कृष्ट कला में होने लगी।

पूर्व और पश्चिम में अनेक बातों में भेद होते हुए भी दोनों प्राच्य-कला को कला मानने लगे। यह तो नहीं कहा जा सकता कि दोनों के दृष्टिकोणों में तनिक भी भेद नहीं रह गया। योरप को आश्चर्य में डाल देनेवाले चित्रकार होकुसाई को ही लीजिए, मिलेट और विस्लर उसकी प्रशंसा करते नहीं अघाते, परंतु अपने देश जापान में उसकी बहुत ही कम तारीफ़ हुई।

अब प्रश्न यह है कि पूर्व और पश्चिम इन दोनों में किसका मत ठीक है? हम भारतीय कला से ही उदाहरण लेते हैं। भारतीय आदर्शवादी बाह्य सौंदर्य की बिलकुल ही परवा नहीं करता, वह भीतरी भावना को ही सर्वप्रधान समझता है। दूसरी ओर, पाश्चात्य कलाविद् की दृष्टि चित्रण-कौशल पर जाती है। बस, यही अंतर प्राच्य और पाश्चात्य दृष्टिकोणों का है। पूर्वीय लोग पहले दार्शनिक हैं, पीछे कलाविद्; पश्चिमवाले पहले कलाविद् हैं,

पीछे दार्शनिक। परंतु भारतीय कला—विशेषकर चित्रकला—की सहृदय सराहना ने, जो पिछले कुछ वर्षों से जनता की जिह्वा पर है, अब एक निश्चित स्थान पा लिया है। अब पूर्व और पश्चिम एक दूसरे के आदर्शों को समझने लगे हैं।

वास्तव में पूर्वीय और पश्चिमीय सभ्यताएँ हर बात में एक दूसरे से जुदा हैं। अतः दोनों की कलाओं में भी कोई समानता नहीं पाई जा सकती। दोनों के उद्गम भिन्न हैं, उद्देश्य भिन्न हैं, और निर्दिष्ट स्थान भिन्न हैं। हाँ, दोनों की कुछ मुख्य-मुख्य असमानताओं का वर्णन किया जा सकता है और इस प्रकार भारतीय चित्रकला की कुछ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख हो सकता है।

पश्चिम की कला 'स्थूलता'-प्रधान है। पूर्व की कला 'रेखा'-प्रधान है। पाश्चात्य कलाकार प्रकाश, छाया और रङ्गों के समुचित प्रयोग से नैकट्य, दूरत्व और स्थूलता का भास कराता है। प्राच्य कला में इस प्रकार का स्पष्ट भास नहीं होता, स्थूलता एवं अंतर का केवल अनुमान कर लेना होता है। यह अनुमान रेखांकित एवं स्पष्टतया व्यक्त सीमा पर ही अवलंबित है। दूसरे शब्दों में, प्राच्य कला में भावना को प्रधान स्थान मिलता है तथा रेखा की बारीकी ही यहाँ सब कुछ है। इस दृष्टि से प्राच्य कला श्रेष्ठतर है। पाश्चात्य संगीत की भाँति पाश्चात्य कला भी सामूहिक है। अर्थात् एक ही समय में अनेक व्यक्ति इससे आनंद उठा सकते हैं। भारतीय कला से एक समय में केवल एक ही पुरुष को आनंद मिल सकता है।

भारतीय चित्रकला के तीन भाग किए जा सकते हैं—बौद्ध, हिंदू और मुसलिम। पंजाब के पहाड़ी राजपूत-प्रांतों के तथा राजपूताना के साथ संबंध होने से हिंदूकला को राजपूतकला भी कहते हैं; इसी प्रकार मुसलिमकला को मुग़लकला कहते हैं, क्योंकि मुग़ल-दरबार में ही इसे प्रोत्साहन मिला था। बौद्ध और राजपूत-कला भारतवर्ष के आध्यात्मिक जीवन की द्योतक हैं—इनका प्रमुख भाव धार्मिकता और अध्यात्मवाद है। इसके विपरीत मुग़ल-चित्रकला नितांत सांसारिक है—इसमें भौतिकता और यथार्थवाद का प्राधान्य है।

बौद्ध-चित्रकार का उद्देश्य अपने धर्म की भावनाओं और किंवदंतियों को सुंदर दृश्यरूप देकर जनता में प्रचारित करना था। इनका प्रभाव दर्शक के भावों पर पड़ता है, और इनमें ऐसा जादू होता है कि दर्शक अपने तुच्छ व्यक्तित्व को भूलकर महानता में विलीन हो जाता है। राजपूतकला का भी यही उद्देश्य है, पर कुछ बातों में वह बौद्धकला से बढ़ी-चढ़ी है। हिंदू-धर्म के पौराणिक नाटकों के अतिरिक्त इसमें सर्व-साधारण के घरेलू जीवन के दृश्य भी अंकित किए जाते थे। ये चित्र सर्वप्रिय और सहज ही स्थान-परिवर्तन के योग्य होते थे, इससे घर-घर में इनका प्रचार हो गया। इस प्रकार अपने उद्देश्य में राजपूत चित्रकार और भी ज़्यादा सफल हो सके। मुग़लकला यद्यपि रंगढंग में राजपूतकला से मिलती-जुलती है; परंतु भावना में उससे नितांत विभिन्न है। मुग़ल-चित्रण धार्मिक भावनामय नहीं; बल्कि यथार्थवादी होता था। इसमें भावाङ्क कमाल दर्जे का होता था, चित्रित व्यक्ति के भाव एवं चरित्र अज्ञातरूपेण ही व्यक्त हो जाते थे। इन शैलियों (Schools) के इतिहास तथा विवरण पर हम अलहदा विस्तृत लेख लिखेंगे।

भारतीय चितेरों के विषय में प्रायः कुछ भी नहीं विदित है। दूसरे पूर्वीय देशों के चित्रकार जीते-जागते व्यक्ति मालूम होते हैं। उनके रहन-सहन, चाल-चलन, और भाव-भावनाओं से लोग परिचित हैं। उदाहरणार्थ जापानी चित्रकार समाज के बंधनों से मुक्त एक ऐसा व्यक्ति था, जिसका जीवन उसकी कला पर निर्भर था। परंतु भारतीय चितेरों के विषय में—चाहे वे बौद्ध हों, अथवा मुग़ल हों—कुछ भी ज्ञात नहीं—उनके चित्रों से ही उनके अस्तित्व का अनुमान किया जा सकता है।

इस बात को मानने के लिये हमारे पास पर्याप्त साधन हैं कि बौद्ध-चितेरा बहुश्रुत एवं कलाकार धर्माधिकारी होता था। उसकी कार्य-प्रणाली कदाचित् वैसी ही थी, जैसी वर्तमान काल में तिब्बत में प्रचलित है। जब यह निश्चय हो जाता कि अमुक मंदिर को अलंकृत करना है अथवा अमुक प्रकार की मूर्ति तैयार करनी है, तब केंद्रीय धार्मिक संस्थाओं से उस स्थान पर कलाकार भेजे जाते थे, और वे काम पूरा होने तक स्थानीय मठों (संघों) में ठहरते थे। इस समय वे स्थानीय संघ के सदस्य माने जाते तथा उनका अशन-बसन आदर-सत्कार भी दूसरे धर्माधिकारियों अथवा भिक्षुओं के

समान ही होता था। शिल्पकारों और चित्रकारों के लिये एक ही नियम थे। बहुधा एक ही पुरुष शिल्पी और चितेरा, दोनों होता था। काम पूरा हो जाने पर वे लोग या तो केंद्रीय संघ को लौट जाते अथवा दूसरी जगह काम करने चले जाते। राजपूत-चित्रकार गाँव के दूसरे कारीगरों के समान ही मामूली आदमी होते थे। जो हैसियत शिल्पी जुलाहे और सुनार की थी, वही इनकी भी थी। ये प्रायः घरों अथवा राजमहलों के सजाने के लिये नौकर रख लिए जाते थे। बेकारी के वक़्त में ये पौराणिक कथाओं के चित्र बनाया करते थे। परंतु मुग़ल-चित्रकार बिलकुल ही दूसरे ढंग का आदमी होता था। वह राजदरबार का ही एक व्यक्ति अर्थात् राजपुरुष होता था। जिस बादशाह या उच्चाधिकारी का यह मातहत होता, उसी की आज्ञानुसार चित्र बनाता। मुग़ल-चितेरों को बँधी हुई तनख़्वाह नहीं मिलती थी; बल्कि कोई अच्छी तसवीर बनाने पर उपयुक्त इनाम मिल जाया करता था।

प्रायः सभी भारतीय चित्रकार अज्ञात हैं। बौद्ध और राजपूत-चितेरों के नाम कहीं मिलते ही नहीं। हाँ, मुग़ल-शैली के किसी-किसी चित्र में रचयिता के हस्ताक्षर पाए जाते हैं। कुछ कलाकारों के नामों का 'आईने-अकबरी' में उल्लेख है। एक बड़ी महत्त्वशालिनी बात यह है कि सर्वप्रथम भारतीय चित्रकार एक महिला थी। इसका नाम चित्रलेखा था और ईसा से कई शताब्दी पूर्व द्वापर युग में रचित 'द्वारिका-लीला'-नामक ग्रंथ की एक घटना से इसका संबंध था। इसके बाद बहुत काल तक किसी चित्रकार का पता नहीं मिलता। सत्रहवीं शताब्दी का एक इतिहासकार तारानाथ, बौद्ध-शैली के कुछ चितेरों का उल्लेख करता है। तारानाथ के वर्णन से यही पता चलता है कि ये कलाकार चित्र और शिल्प, दोनों में पारंगत थे। चीनी-ग्रंथों में कुछ बौद्ध-चितेरों के नाम मिलते हैं। ये लोग भारतवर्ष से उधर गए थे; परंतु उस देश में ऐसे हिलमिल गए कि भारतीय नहीं कहे जा सकते। राजपूत-स्कूल में पंजाब के कुछ पहाड़ी चित्रकारों के सिवा और किसी के नाम नहीं मिलते। अकबर के समय के चित्रकारों के विषय में यह अद्भुत बात पाई जाती है कि नीची जातियों से भी ऊँचे दर्जे के चित्रकार उत्पन्न हुए हैं। प्रसिद्ध चित्रकार दासवंत और केसू नाम के दो चितेरे कहार जाति के थे।

प्रांतों के लिहाज़ से भारतीय चित्रकला (मुग़ल और राजपूत) "क़लमों" में विभक्त है। चित्रण-शैली एवं प्रांतों के अनुसार देहली क़लम, दक्खिनी क़लम, काँगड़ा क़लम इत्यादि प्रसिद्ध हैं। राजपूतकला दो क़लमों में बँटी हुई है—जयपुर की क़लम और काँगड़ा की क़लम। मुग़ल-चित्रकला में कई क़लमें पाई जाती हैं। कुछ क़लमें ये हैं—देहलवी क़लम, लखनवी क़लम, दक्खिन की क़लम, ईरानी क़लम, कशमीरी क़लम, पटना की क़लम और जयपुर की मुग़ल-क़लम। इन क़लमों का वर्णन अगले लेखों में किया जायगा। *

गोपालस्वरूप भटनागर

---

* पर्सी ब्राउन की एक पुस्तक के आधार पर।

अन्वेषण !

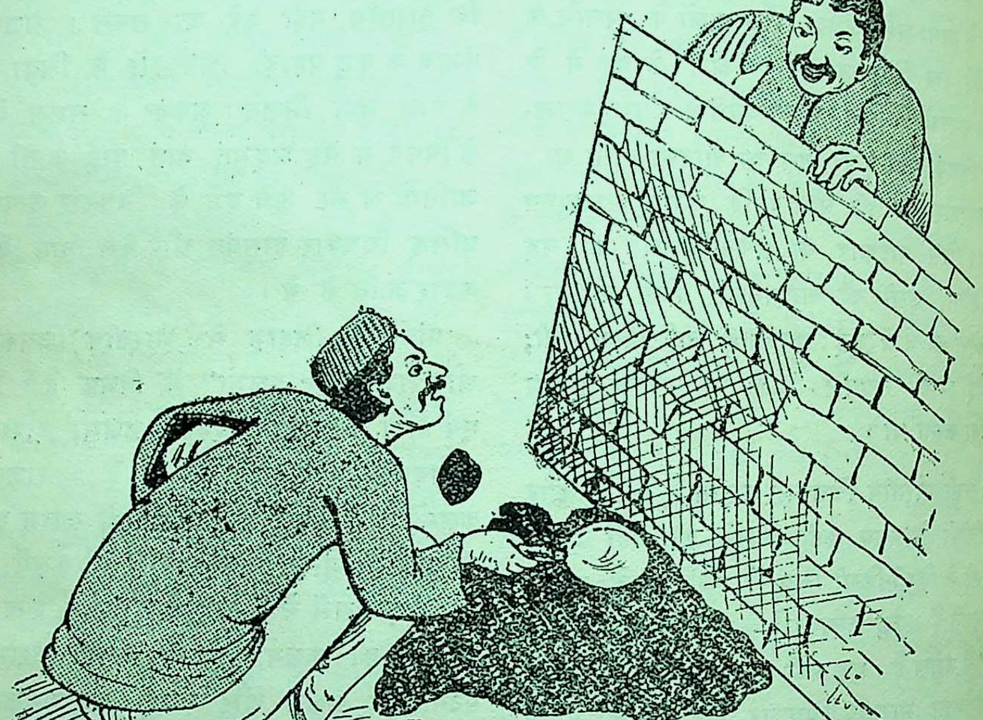

बंगाली महाशय—आप किसकी खोज कर रहे हैं ?

हिंदी-प्रेमी—मौलिकता की ।

बंगाली महाशय—मगर आईग्लास के द्वारा तो इसका पता चलना मुश्किल है । ज़रा, दिमाग़ लगाइए!

आलोचना और पुस्तक-परिचय

श्रीमुनिसुव्रत-काव्य (संस्कृत-टीका-सहित)—रचयिता, कविवर श्रीअर्हद्दास; हिंदी-अनुवादक तथा संपादक, पं० के० भुजबली शास्त्री और पं० हरनाथ द्विवेदी; प्रकाशक, श्रीजैन-सिद्धांत-भवन, आरा; छपाई साधारण; आकार रायल अठपेजी; पृष्ठ-संख्या २२१; मूल्य कपड़े की जिल्द २॥) सादी जिल्द २); प्रकाशक के ही पते से प्राप्य।

यह प्राचीन जैन-काव्य-ग्रंथ देवकुमार-ग्रंथमाला का प्रथम पुष्प है। इसका दूसरा नाम काव्यरत्न भी है। कवि ने जैनियों के उत्तर पुराण के आधार पर तीर्थंकर सुव्रतमुनि का जीवनचरित लेकर इस काव्य की रचना की है। इसमें दस सर्ग हैं। संस्कृत-टीकाकार ने अपना नाम गुप्त रक्खा है। हिंदी-अनुवादक पं० हरनाथ द्विवेदी का अनुमान है कि शायद काव्य के रचयिता ने ही टीका भी कर दी है। जो हो, पर टीका सरल और विस्तृत है। टीका देखकर साधारण संस्कृतज्ञ भी काव्य का अर्थ भली भाँति समझ सकता है। हिंदी-अनुवाद भी अच्छा है। प्रूफ सावधानी से नहीं पढ़े गए, जिससे अशुद्धियाँ रह गई हैं। अगले संस्करण में इसका ध्यान रखना चाहिए। कविवर श्रीअर्हद्दास के बनाए हुए दो ग्रंथ—पुरुदेव-चंपू और भव्यकंठाभरण—और भी प्राप्त हुए हैं। मालूम नहीं, ये ग्रंथ प्रकाशित हुए या नहीं।

श्रीजैन-सिद्धांत-भवन के मंत्री श्रीनिर्मलकुमार जैन अपने वक्तव्य में लिखते हैं—"इस भवन में हस्तलिखित ३००० जैन और अजैन-ग्रंथ एकत्र हैं। इस ग्रंथमाला में इन्हीं ग्रंथों के प्रकाशन की व्यवस्था की गई है।...मेरा ध्येय यही है कि मैं अपने आचार्यों की कीर्ति को अब भी सबके ऊपर देखूँ।" यदि आपने अपने ध्येय की पूर्ति में हस्तलिखित जैन-ग्रंथों को इस ग्रंथमाला में प्रकाशित किया, तो जैन-साहित्य का महान् उपकार होगा। हम हृदय से उनके ध्येय की पूर्ति और ग्रंथमाला की उन्नति चाहते हैं।

× ×

विधवा-विवाह—लेखक और प्रकाशक, पं० राधेलाल चतुर्वेदी, ७७, लूकरगंज, इलाहाबाद; आकार डबल क्राउन १६ पेजी; पृष्ठ ७४; काग़ज़ छपाई उत्कृष्ट।

लेखक महोदय ने इस पुस्तक में वैदिक और स्मार्त ग्रंथों के अनेक प्रमाण देकर विधवा का पुनर्विवाह शास्त्र-सम्मत सिद्ध किया है। पुराणों के भी एक-आध प्रमाण हैं। लेखक का परिश्रम श्लाघ्य है और पुस्तक विधवा-विवाह के समर्थक और विरोधी, दोनों महानुभावों के देखने योग्य है। पुस्तक पर मूल्य नहीं छपा है। पुस्तक प्रकाशक के पते से मिल सकती है।

चंडिकाप्रसाद अवस्थी

दिमाग़ को तरबतर रखने तथा उसे सफलीभूत बनाने के लिये आपने कोई उपाय किया है? किया हो, और उसमें असफलता प्राप्त हुई हो, तो आपको कोई दूसरा उपाय सूझा है? न सूझा हो तो ध्यान में रखिए,

कि,

दिमाग़ को शान्ति देना,
आवश्यकतानुसार बालों को खुराक पहुँचाना,
बालों को जीवनतत्त्व प्रदान करना,
अपने दिमाग़ को ताज़ा तथा सफलीभूत बनाना,
बालों को लम्बा और चमकदार रेशम-तुल्य बनाना
हो, तो

कामिनिया ऑईल (रजिस्टर्ड)

इस्तेमाल कीजिए

आजकल की वर्तमान स्थिति में अनेकों प्रकार के दूसरे-दूसरे नाम के तेल निकल रहे हैं, जिनके उपयोग से आपको तेलों के प्रति श्रद्धा जाती रहती है, परन्तु यहाँ तो लाखों व्यक्तियाँ इसकी प्रशंसा करके गारंटी देते हैं

कि,

कामिनिया ऑईल ही बालों का सर्वस्व है। हरएक मंगलमय त्योहारों के अरुणोदय में अपने केश-कलापों को कामिनिया ऑइल से सँवारिए। क़ीमत प्रति शीशी १)

प्रत्येक शहर तथा गाँव में प्रसिद्ध दूकानदार से मिल सकता है—बाहर से मँगाने में वी. पी. ख़र्च ।=) पृथक् पड़ता है। २ शीशीका २॥=) पो० ख़र्च ॥।) आना पृथक्। आध आने के टिकट आने पर नमूना शी० मुफ़्त भेजा जाता है।

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)

रूमाल पर कुछ बूँद छिड़क देने से फुलवारी की तरह खुशबू पसर जाती है। आज ही १ शीशी मँगाकर आज़माइश कर लीजिए।

मूल्य ½ औंस प्रति शी० २) ¼ औंस १।) रु०
,, १ ड्राम ,, ,, ॥।) डाक-व्यय पृथक्

दो आने के टिकट आने पर नमूना शीशी मुफ़्त भेजी जाती है।

सोल एजेंट— २०

दी ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी २८५, जुमा मसजिद मार्केट, बंबई नं० २

कृषि, शिल्प और वाणिज्य

१. भारतवर्ष की हुंडियामन का प्रश्न

भारतवर्ष में, आरंभ में, भिन्न-भिन्न स्थान में, भिन्न-भिन्न प्रकार के रुपए और सोने की मुहर का चलन था। किसी भी स्थान पर दोनों का एक साथ चलन नहीं था और न दोनों की क़ीमत का प्रमाण ठहरा हुआ था। पर उसके साथ ही ताँबे के भी सिक्के थे, और उनकी क़ीमत रुपए या सोने की मुहरों से ठहरी हुई थी। चलन के सिक्के के रूप में ताँबे के सिक्कों के लेन-देन की कोई हद थी कि नहीं, इस संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता। पर यह ध्यान में आता है कि ऐसी हद सरकार की ओर से न रही हो, तो भी साहूकार के व्यवहार में अवश्य होगी। भारतवर्ष में रुपए को प्रधान सिक्के का रूप देने का विचार भारत-सरकार ने १८०६ में किया। अनेक कठिनाइयाँ दूर करने के उपरांत १८६५ में सरकार ने अपने विचार को कार्यरूप में परिणित किया। उसके बाद जब चाँदी का भाव घटा, तब १८९३ में सरकार ने फिर अपना धोरण बदला। लोगों को खुले तौर पर रुपया देना सरकार ने बंद कर दिया। उसके उपरांत १८९९ में क़ानून बनाकर सोने का सिक्का भी जारी किया गया। उस समय भारतवर्ष में सोने का धोरण था, ऐसा कहा जाता है, पर वास्तव में रुपए का ही धोरण (Standard) था।

सोने का धोरण भारतवर्ष में क़ानून के रूप में होने पर भी व्यवहार में उसका अमल नहीं हुआ। उसके कई कारण थे। सोने के सिक्के के साथ रुपए की क़ीमत का जो प्रमाण रक्खा गया था, वह बहुत ऊँचा था। ११३ ग्रेन शुद्ध सोने का जो सिक्का पौंड के नाम से चलन में स्वीकार किया गया था, उसकी क़ीमत पंद्रह रुपए रक्खी गई थी।

जब तक बाज़ार में उसे देकर लोगों को पंद्रह से अधिक रुपए मिलते, तब तक वे उसे सिक्के के रूप में व्यवहार में न लाते। यही कारण है कि सोने का सिक्का कभी चलन में नहीं रहा। यदि सरकार उस समय रुपया बनाना बंद कर उसकी क़ीमत इतनी चढ़ा देती कि कोई पंद्रह रुपए भी एक पौंड के

लिये देने को तैयार न होता, तो १८९९ का क़ानून अमल में आ जाता और भारतवर्ष में आज भी सोने का सिक्का चलन में दिखाई देता। दूसरा कारण यह भी था कि सरकार ने चलन में रुपए की सिक्के के रूप में कोई हद नहीं रक्खी थी। यदि उसकी लेन-देन की हद होती, तो सोने का सिक्का चलन से न हटता। यदि सरकार रुपए की क़ीमत को पौंड के सिक्के में बाज़ार-भाव से घटाकर रखती, तो सोने का धोरण भारतवर्ष में स्थापित हो गया होता। पर १९१५ तक विदेश में हमारे रुपए की क़ीमत अर्थात् इँगलैंड पर की हुई हमारी हुंडी का भाव १६ पेंस से अधिक नहीं हुआ। पर सरकार ने अपने क़ानून से चलन में १६ पेंस की दर निश्चित की, इससे भारतवर्ष में रुपए का ही सिक्का जारी रहा। १९१४ के उपरांत युद्ध के समय में हुंडी का भाव बढ़ा और १६ पेंस से ऊपर चढ़ गया। उस समय यदि भारत-मंत्री ने हुंडी ख़रीदने की दर १६ पेंस रक्खी होती और उसे इससे ऊपर न चढ़ने देते, तो भारतवर्ष का रुपया विदेश गया होता या देश में ही गलाया गया होता और अंत में ऐसी अवस्था दिखलाई देती कि रुपए के सिक्के के बदले में रुपए के नोटों का प्रचार बढ़ गया होता। युद्ध समाप्त होने पर जब विदेश से सोना भारतवर्ष में आता, तब इन नोटों के स्थान पर चलन में उनके सिक्के होते। पर सरकार इँगलैंड पर की गई हुंडी की दर युद्ध के समय में अधिक-से-अधिक चढ़ाती गई, जिससे भारतवर्ष में सोने का सिक्का चलन में जारी होने से रह गया।

यदि संसार के सभी देशों में एक समान चलन होता अर्थात् सोने के सिक्के को चलन के सिक्के के रूप में अमुक हद तक स्वीकार करने का जो नियम इँगलैंड में है, वह नियम संसार के सभी देशों में होता, तो संयुक्त चलन की व्यवस्था में अधिक फेरफार होने की शायद ही कभी नौबत आती।

पर चीन में चाँदी का धोरण और उसका डालर से चलन होने से विदेशों के साथ उसकी हुंडी का संबंध संसार की चाँदी के भाव और सोने के सिक्के, दोनों से रहा, और उसमें फेरफार होने पर उसका असर संसार के सभी देशों के सिक्कों पर हुआ। इसका असर भारतवर्ष के चलन में इस रूप में हुआ कि चाँदी का भाव संसार-भर में घटने पर संसार के बाज़ार में की क़ीमत १६ पेंस से भी कम रह गई। यदि चाँदी के भी उस समय सोने का धोरण होता अथवा चीन के व्यापारिक संबंध अन्य किसी भी देश के साथ न होते, तो भारत-सरकार रुपए की क़ीमत को १६ पेंस से अधिक कर सकती थी। और, यदि सरकार तब करती, तो भारतवर्ष में सोने का सिक्का चलन में हो गया होता। १९१४ के उपरांत युद्ध-काल में चाँदी का भाव बहुत ही बढ़ा, तब सरकार ने भारतवर्ष के हित के लिये उससे लाभ उठाने के बजाय, क़ानून में फेरफार कर एक रुपए के बराबर सोलह पेंस के स्थान पर चौबीस पेंस गिनना ठहराया। इस फेरफार का यह परिणाम होना था कि भारतवर्ष में चाँदी का धोरण फिर से स्थापित हो। ऐसा संभव नहीं रहा और रुपए का धोरण जारी रहा। साथ ही सोने का धोरण भारतवर्ष में स्थापित होने से रह गया। रुपए का सिक्का संसार से बाहर चलन में जारी रहने से चाँदी के धोरण का असर भी भारतवर्ष में बना रहा और सोने के पौंड को भारतवर्ष में चलनी सिक्के के रूप में स्वीकार करने का १८९९ का क़ानून होने पर भी क़ानूनी किताबों में चित्रपट के समान अंकित रह गया। १८९९ के क़ानून को बदलकर जो अवस्था लाना सोचा गया था, वह मंसूबा सफल नहीं हुआ। चौबीस पेंस का रुपया बना रखने में सरकार को सफलता नहीं मिली। परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष का करोड़ों रुपया रिज़र्व फ़ंड से नष्ट हो गया, व्यापार के नाश का तो उल्लेख करना ही वृथा है। व्यापार तो संकट-जनक अवस्था में पहुँच गया। उससे भी अधिक चिंता का विषय रुपए की अस्थिर क़ीमत थी। अर्थात् उसकी क़ीमत इँगलैंड पर की गई हुंडी के भाव से अस्थिर चालू रही। इसे दूर करने के लिये प्रजा ने अनेक बार सरकार का ध्यान आकर्षित किया; पर कुछ भी दाद नहीं दी गई।

संयुक्त चलन की व्यवस्था में एक सिक्के को प्रधान स्थान देकर अन्य सबको गौण स्थान दिया जाता है। पर वह भी भारतवर्ष में नहीं हुआ। प्रधान रूप से मुख्य स्थान में सोने का सिक्का मानने की धारणा थी। पर तो भी चलन में उसका प्रसार नहीं हुआ। और, का सिक्का गौण रहने पर भी हमारे समस्त व्यापार में

रुपया ही चालू रहा । इससे चलन के प्रधान सिक्के के गुणों में से एक भी रुपए में नहीं आया । केवल सरकारी क़ानून के अनुसार चलन के सिक्के के रूप में माने जानेवाले सारे अवगुण रुपए में बने रहे ।

हमारे चलन के सिक्के की व्यवस्था के लिये इँगलैंड की ओर दृष्टिपात किया जाता है। पर इँगलैंड की व्यवस्था ऐसी है कि चाँदी का भाव छप्पन पेंस तक जाय, वहाँ तक व्यवस्था में कोई विघ्न नहीं पड़ता और चाँदी का सिक्का चलन में बना रहता है। भारतवर्ष के क़ानून में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है, जिसके परिणामस्वरूप रुपए की क़ीमत स्थिर रहे । १९२७ में जो क़ानून स्वीकृत हुआ है, उसमें कुछ ऐसी व्यवस्था की गई है ; पर उससे कुछ नहीं होने का । कारण स्पष्ट है कि सरकार सोना ख़रीदनेवालों को सोना दे सके, इतना स्टाक वह हमेशा नहीं रख सकेगी और वर्तमान मनोवृत्ति में सरकार सोने का काफ़ी स्टाक रक्खे, इसके भी लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते हैं । भारत-सरकार पर इँगलैंड के प्रभुओं का इतना अधिक ज़ोर है कि भारतवर्ष में सोने का धोरण निर्माण करने में सरकार सदैव अनिच्छा प्रकट करती है ।

हमारे इस विवेचन से पाठक चलन का धोरण नहीं समझे होंगे । हम उनकी जिज्ञासा के लिये संक्षेप में इतना ही बतलावेंगे कि मुख्य सिक्के में जो चार गुण होते हैं, वे इस प्रकार हैं—

(१) दूसरी चीज़ों की क़ीमत नियत करने का साधन ।

(२) क़ीमत नियत करने का निरंकुश साधन ।

(३) सिक्के के रूप में व्यवहार में आनेवाली चीज़ों की द्रव्यशक्ति ।

(४) माँगनेवाले को देनेवाला दे, तो वह सिक्के के रूप में क़ानून के अनुसार माना जाय । यदि यह अंतिम गुण सिक्के में हो और वह निरंकुश रूप से चलनेवाले सिक्कों में मुख्य स्थान रखता हो, तो उसका धोरण माना जायगा । यदि भारत-सरकार ऐसा क़ानून बनावे कि अब से चीनी को सिक्के के रूप में माना जायगा तो भारतवर्ष में चीनी का धोरण हो जायगा । ऐसा क़ानून बनने पर दूसरी चीज़ें अमुक हद तक सिक्के के रूप में चलन में हों, तो उनके व्यवहार में बाधा नहीं पहुँचती है । बात सिर्फ़ इतनी है कि दो सिक्के कभी एक साथ निरंकुश चलन के सिक्के के रूप में जारी नहीं रह सकते । इससे चलन में रहनेवाले मुख्य सिक्के का ही धोरण स्वीकार किया जाता है । और उसकी क़ीमत चाँदी या सोने के सिक्कों के माध्यम में नियत हो या न हो, तो भी वह क़ीमत स्थिर रखता है और यदि वह न रख सके, तो वह मुख्य सिक्का नहीं है ।

साहूकार अपनी रक़म वसूल करने के समय क़ानून और व्यवहार के अनुसार जिस चीज़ के पाने की आशा रखता हो, उसी सिक्के को धोरण के रूप में माना जा सकता है । यदि वह सोने का सिक्का हो, तो दुनिया में उसकी पैदायश से होनेवाली आमदनी और उसके व्यवहार से संसार की खपत होती है, इन दोनों के प्रमाण-रूप में क़ीमत में जो घटा-बढ़ी होती है, उसकी जोखिम उसके माँगनेवाले और देनेवाले पर होती है । इस जोखिम में किसी भी पक्ष के साथ कोई अन्याय न हो, यह देखने का कर्तव्य सरकार का है । उनकी क़ीमत की घटा-बढ़ी में सरकार कोई हस्तक्षेप न करे, तो उसमें अन्याय होने का कोई भय नहीं रहता है । पर जब सरकार ऐसा कोई काम करे, जिससे सोने और उसके सिक्के में घटा-बढ़ी हो, तो उसके परिणामस्वरूप एक पक्ष को अनुचित लाभ और दूसरे निर्दोष पक्ष को बेजा हानि उठानी पड़ती है । इसलिये सरकार को, चलन का सिक्का किस धातु का बनाया जाय, इसका प्रबंध करना पड़ता है ।

इस प्रकार नियत किए हुए सिक्के की क़ीमत बनी रहे, इसका ध्यान सरकार को रखना पड़ता है । पर सरकार अपने प्रयत्न से घटा-बढ़ी पैदा करे, तो उस अन्याय का कोई प्रतीकार ही नहीं हो सकता । सरकार ने १८९३ में रुपए का सिक्का देने का नियम हटा दिया था, और उसके बाद १८९९ में सोने के सिक्के को चलन के सिक्के के रूप में स्वीकार करने का क़ानून बनाया, इतने पर भी सरकार रुपया बनाकर देती रही ।

पर कितने लोगों का कहना है कि चाहे जिसका धोरण रक्खो, तो भी उसकी क़ीमत में घटा-बढ़ी न हो, ऐसा कभी माना नहीं जा सकता है । और दूसरे तो यहाँ तक कहते हैं कि उसके फेरफार में सरकार जो

कारवाई करे, तो उसे दूषित नहीं कहा जा सकता। केवल सरकार की सत्य-निष्ठा होनी चाहिए। इससे एक पक्ष को लाभ और दूसरे को हानि होने पर भी सरकार दोषी नहीं कही जा सकती है। ठीक है, हम भी इस तर्क को मान लेते हैं; पर इतना अवश्य चाहेंगे कि सरकार को फेरफार करने के लिये मजबूर ही होना पड़े, और यदि वह देश की व्यवस्थापिका परिषद् के ग़ैर-सरकारी प्रतिनिधियों की आज्ञा ले ले, तो उसका काम क्षंतव्य कहा जा सकेगा। पर चलन के नोटों के संबंध में परिषद् ने सरकार को जो अधिकार सौंपे हैं, उनके विपरीत कारवाई होते देखी गई। यह सब कैसे होता है, इसे भी ज़रा हमें देख लेना चाहिए। यदि चलन का नोट एक हल्के सिक्के की बराबरी में हो, तो जहाँ तक उसके बदले में मुख्य चलन का सिक्का मिलता रहे, वहाँ तक उसके संबंध में कुछ भी अनुचित नहीं कहा जा सकता। पर ऐसी अवस्था में यह भी तो आवश्यक है कि माँगनेवाले को देनेवाला कहाँ तक नोट देगा, इसकी हद होनी चाहिए। साथ ही चलन का धोरण प्रकट करनेवाले मुख्य सिक्के के साथ उसकी घटा-बढ़ी नहीं होनी चाहिए। पर यदि चलन के नोटों को मुख्य सिक्के के प्रतिनिधिरूप में ही माना जाय, तो जब तक उसके बदले में देने के लिये रक्षित कोष में काफ़ी रक़म हो, वहाँ तक इन नोटों का चलन योग्य माना जायगा। अब इस संबंध में यह कहा जाता है कि चलन के नोटों के उपयोग की कोई हद न रहे, और उनके लिये जो रक़म रक्षित कोष में रहती है, वह उसमें पड़ी न रहकर किसी अंश तक व्यवहार में आनी चाहिए। दूसरे इस काम को अनुचित बतलाते हैं। चलन के नोटों के रिज़र्व में इस प्रकार जितनी भी रक़म निकाल ली जाती है, उसे कभी अच्छा नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार दूध में से मलाई निकाल ले और बाक़ी के भाग को शुद्ध दूध कहकर बेचने पर भी उसकी कम क़ीमत मिले, ठीक उसी प्रकार चलनी नोट के कोष में से जितना भी हिस्सा निकाल लिया जाता है, तो उतने प्रमाण में सारे कोष की क़ीमत घटती है। अर्थात् उनके प्रमाण में देश के सारे चलन की क़ीमत घटती है। इसलिये कोष का रूप बदलने पर भी कोई भी हिस्सा ऐसा नहीं होना चाहिए, जिससे नोट वापस देनेवाले को रक़म न दी जा सके। इस रक़म का उपयोग ब्याज तथा धंधे में भी नहीं किया जा सकता। इस कोष का एक ही उद्देश्य है--नोट वापस लानेवाले को देना। इस उद्देश्य को पूरा करने के सिवा दूसरे किसी भी काम में इस कोष का कोई भी हिस्सा व्यवहार चोरी करने के समान है।

इँगलैंड में भी सरकार चलन के नोटों की दूसरे कामों में लगा देती थी। पर १८४४ में पार्लियामेंट को यह प्रस्ताव पास करना पड़ा कि आगे जितने नोट निकलें, उनकी अमानती रक़म कोष में के रूप में रहे। सिर्फ़ इतनी रियायत की है कि कुछ भाग चाँदी का भी रहेगा। यह एक अपवाद है। क़ानून बनाते समय यह अपवाद था, पर उसका योग वहाँ कभी नहीं हुआ। भारतवर्ष में भी नोटों की क़ीमत अमानत में रक्खी गई, पर उसका कितना ही अंश व्यवहार में लाई। रक़म रहने के उपरांत जो-जो नए नोट निकले उनकी पूरी-पूरी रक्षित कोष की रक़म सोने के रूप में या सोने के पाँसों में रहनी चाहिए थी। उसका बहुत थोड़ा भाग चाँदी या उसके रुपए में तो यह अपवाद क्षम्य भी है। पर उसमें भारत के ऋण की वृद्धि नहीं होनी चाहिए। और जो हो, तो वह विदेशी सरकार का न हो। यदि इतनी बातें हों, तो कोष की रक़म सोने के पाँसों के रह सकती है, किंतु उसके लिये माँगनेवालों की रहे। जब पावना वसूल करने का समय आवे, इन नोटों के बदले पाँसे या सोने के रूप में सोना मिलेगा। सोना पाँसों में रक्खा तो किंतु उसे चलनी सिक्के के समान परखनेवाले को दे सकें, ऐसा सरकारी क़ानून न हो, तो के सिक्के के रूप में कभी नहीं मान सकते। यदि ऐसा क़ानून बना दे, तो उस समय यह निश्चय पड़ता है कि कितना और कैसा सोना दिया किस प्रकार उसका कस और वज़न माना जब यह सब हो, तब सोने का पाँसा (सिक्का) स्थायी रूप से फिरता दृष्टिगोचर होगा और प्रजा माँग पूरी होगी। पर जो इस सोने के पाँसे को रूप में रखने की हिमायत करते हैं, वे इस ओर

दुर्लक्ष्य ही नहीं करते हैं, बल्कि नीचे लिखी हुई हानियों पर भी विचार नहीं करते हैं—

(१) सोने के. पाँसे का धोरण रखने का प्रलोभन देनेवाले भारतवर्ष के सोने के बाज़ार पर अपनी सत्ता जमाना चाहते हैं। कारण, तब सोने के जत्था बंद व्यापार का स्थान सरकार ले लेगी और भारतीय व्यापारियों का स्थान छोटे-छोटे व्यापारियों के समान हो जायगा।

(२) भारतवर्ष की खानों से जो सोना निकलता है, उसका चलन में किसी प्रकार उपयोग नहीं हो सकेगा।

(३) धीरे-धीरे रुपए के स्थान पर चलन के नोट फिरेंगे और तब इन नोटों के बदले मुख्य सिक्का नहीं मिल सकेगा।

(४) दूसरी चीज़ों की क़ीमत में फेरफार सोने के लिये ही होता है, ऐसी साधारण लोगों की आम धारणा है। हमारी सरकार सोने के पाँसे के धोरण के द्वारा अन्य वस्तुओं के भाव के आधार पर सोने की क़ीमत में घटा-बढ़ी करती है। सरकार के इस व्यवहार का कारण उसका स्वार्थ है। सोने की क़ीमत और पैदायश तथा खपत इन तीनों का कोई आधार स्थिर न कर सरकार इच्छानुसार घटाती-बढ़ाती है। इँगलैंड के सराफ़े, पूँजीपति और कारखानेवालों के हित में पगी नौकरशाही भारत का हित कैसे सोच सकती है! वह सब कुछ सुधार करने को कहेगी, पर वस्तुतः जो कुछ होगा, वह इँगलैंड के पूँजीपतियों के हित के लिये। सरकार के इस अनौचित्य की निंदा के लिये कोष में शायद कोई शब्द हों। इस पराधीनता ने तो हमें ऐसे कठोर शिकंजे में जकड़ रक्खा है कि उससे उद्धार होना कठिन हो गया है। उस पर मज़ा यह है कि सरकार अपने इस स्वेच्छाचार को बड़ी पालिसी से छिपाकर उलटे हम निरीह ३२ करोड़ प्रजाजनों पर उदारता प्रकट करती है। सरकार यदि हस्तक्षेप न करे, और तब सिक्के के रूप में सोने का व्यवहार हो, तो किसी को कोई आक्षेप न होगा। बात सिर्फ़ इतनी है कि यह घटना-बढ़ना सरकार की इच्छा पर निर्भर न रहे। अभी तो सरकार अपनी इच्छानुसार तेज़ी और मंदी लाने की शक्ति रखती है, और अन्य वस्तुओं के भाव की घटा-बढ़ी को अनुकूल करने के बहाने इसमें गड़बड़ करती है। पर किस समय वह किस उद्देश्य से वहाँ तक बाज़ार को ले जायगी, सो कुछ भी नहीं कहा जा सकता। सरकार की बाज़ार पर औरंग की हुकूमत रहती है। कारण, जो काम सरकार करती है, उसे योग्य और अयोग्य क़रार देना भी मुश्किल ही है।

(५) रुपए की क़ीमत भी कब कितनी रहेगी, सरकार उसकी आमदनी और खपत के आधार पर पहले से कुछ नहीं बता सकती। कारण, यदि सोने के आधार पर रुपए की क़ीमत निश्चित की जाय, और सोने की क़ीमत में सरकार इच्छानुसार फेरफार करे, तो फिर स्थिर क़ीमत क्या और अस्थिर क़ीमत क्या? उसका निराकरण करने के लिये कुछ भी आधार नहीं रहता है।

(६) यदि सोने के पाँसे के धोरण के बदले सोने का सिक्का धोरण हो, तो उपर्युक्त अनुचित लाभ नहीं होंगे।

(७) सोने के पाँसे का धोरण लँगड़ा रहेगा; क्योंकि जैसा कि हम ऊपर बता आए हैं, इसके ऊपर कितना ही अंकुश रहेगा। यदि सोने का धोरण हो, तो उसमें जो लाभ होगा, वह तो इँगलैंड के पाकेट में चला जायगा और नुक़सान बेचारे भारतवर्ष के मत्थे पर आवेगा। इस प्रकार की हिस्सेदारी है।

(८) सोने के पाँसे का धोरण इसी आधार पर क़ायम किया गया है कि जिससे सोने की क़ीमत घटे। यदि इस प्रकार सोने की खपत घटाने का प्रयत्न किया जायगा, तो कहाँ तक वह जाकर अटकेगी, यह बतलाना मुश्किल है। पर उससे यह निश्चय है कि सोने की क़ीमत पर बहुत बुरा असर पड़ेगा। इस प्रकार सोने के पाँसे के धोरण में तो और भी गंभीर अवस्था हो जायगी। यदि सोने का सिक्का काग़ज़ के रूप में रखने का उद्देश्य हो, तो सरकार को चाहिए कि उसके बदले में सोना या सिक्के कोषनिधि में रक्खे। पर यदि काग़ज़ न चलाकर पाँसे का धोरण सरकार जारी कर दे, तो उस समय न तो देश-विदेश के व्यवहार के लिये सिक्के के रूप में सोने का व्यवहार चालू रखने की ही आवश्यकता पड़े और न उस समय सोने की अधिक क़ीमत घटेगी।

(९) सोने के पाँसे का धोरण रखने का यह उद्देश्य है कि धातु के सिक्के चलन में से कम कर उनके स्थान पर काग़ज़ के नोट बहुतायत से चलने लगें। इन नोटों

का बट्टा हो, तो फुटकल सिक्के मिलें ; पर चलन का मुख्य सिक्का कदापि न मिले ।

(१०) सोने के पाँसे के धोरण में एक और नया प्रयोग सरकार ज़बर्दस्ती से कर रही है । इस प्रयोग में चाहे जो क्षति हो ; पर उसे भारतवर्ष की प्रजा ही सहे, यही हमारी न्यायप्रिय सरकार की इच्छा है । साथ ही उसने १८ पेंस का रुपया भी स्थिर रखने का उद्देश्य रक्खा है । यदि सरकार अपनी ज़िद पर यह कुछ न करती, तो भारतवर्ष में रुपए की दर १६ पेंस ही स्थिर रहती ; भारतवर्ष में सोने का सिक्का चलन में होता और उसका धोरण भारतवर्ष में नियत कर दिया गया होता । इस समय तो संसार में सोने के सिक्के का ही धोरण प्रामाणिक माना जाता है । उसकी साख़ है । बाक़ी दूसरे सब तो बर्बाद करनेवाले और अन्यायी हैं ।

(११) भारतवर्ष में सोने के सिक्के का चलन माँगने के कारण जान चुके । भारतीय व्यवस्थापिका परिषद् में श्रीयुत जमनादास मेहता ने सरकार की वर्तमान राजनीति के भयंकर परिणाम अच्छी तरह से दर्शाए थे । वहाँ उन्होंने कहा था कि सरकार की राजनीति कृत्रिम है और उसी राजनीति के लिये १९२१ से अब तक भारतवर्ष की प्रजा पर अनेक नए कर सरकार ने बढ़ाए हैं । उसमें थोड़ी कमी अभी की ही गई थी, पर ४९ करोड़ रुपए की वृद्धि तो चालू ही है । भारतीय रेलवे का विस्तार बढ़ता जाता है, पर आमदनी नहीं बढ़ती है । और भारतीय सैनिक ख़र्च सोने के मूल्य में देखा जाय, तो ज़रा भी नहीं घटाया गया है । सर बेसिल ब्लेकेट ने घटाने का प्रयत्न किया है, पर वह केवल हमारे दिखाने के लिये । इन सब बातों से भारतीय नेताओं का यह विश्वास हो गया कि भारत-सरकार की आर्थिक राजनीति इस देश को तबाह कर देनेवाली है । लोगों का यह विश्वास सरकार के कामों से स्पष्ट प्रमाणित होता है ।

(१२) सरकार ने रिज़र्व-बैंक आफ़ इंडिया की योजना कोने में डाल दी है । इसलिये हमें सरकार से यह कहने का अवसर मिल गया है कि विदेशों के साथ भारतवर्ष के व्यापार में आवश्यकतानुसार जितना सिक्का चाहिए, उतने सिक्के की पूर्ति की जाय । उसका उपयोग देश और विदेश सर्वत्र किया जा सके, ऐसा सिक्का होना चाहिए । १८९९ में सरकार ने जो क़ानून बनाया था, उसमें सोने का सिक्का भारतवर्ष के चलन में रखना स्वीकार किया था । पर उस क़ानून को १९२७ के क़ानून ने तोड़ रक्खा । इससे देश-विदेश के व्यवहार के लिये भारत में सिक्के की कमी है । ऐसा कोई भी सिक्का भारतवर्ष में नहीं है । शायद ही संसार में ऐसा कोई देश होगा, जहाँ ऐसी खोटी व्यवस्था हो । पर भारतवर्ष में ऐसी खोटी व्यवस्था रखने का उद्देश्य है । इससे भारतवर्ष का व्यापार बर्बाद होता है ।

(१३) भारत-सरकार की चाल नीचे की योजना से बख़ूबी देखी जा सकती है—"चलन के नोटों के लिये लागू पड़नेवाले क़ानून के अनुसार यह ज़ाहिर करना पड़ता है कि नोट बाहर निकालने के स्थानों में से लंदन एक है । वहाँ जो नोट भारतवर्ष के व्यवहार के लिये बाहर निकलेंगे, वे इँगलैंड में लीगल टेंडर (चलतू सिक्का) नहीं माने जायँगे । इससे वहाँ के प्राइवेट हुंडी के समान चल सकेंगे । पर वहाँ के आफ़िस में कोई जाकर, इन नोटों का बट्टा देकर, इँगलैंड का सिक्का पाने की माँग करे, तो वे वहाँ के सिक्के के बाज़ार-भाव में बदले जा सकते हैं । पर यह बदला भारतवर्ष में नहीं हो सकता। तो भी नोट क़ानून के द्वारा चलन में चलतू सिक्के क़रार दिए गए हैं । सरकार कहती है कि नोटों की क़ीमत पौंड-शिलिंग और रुपया दोनों में रहेगी । पर साथ ही यह भी चेतावनी भारतवासियों को दी जाती है कि ऐसे नोट इँगलैंड में भारतवर्ष की जितनी कोष-निधि हैं, उतने के ही भीतर निकलेंगे । निधि से बाहर नोटों की संख्या नहीं बढ़ सकेगी ! पर सरकार भारतवर्ष के व्यापार की ओर दृष्टिपात नहीं करती है । क्या भारतवर्ष के व्यापार के लिये इतने नोट काफ़ी हैं ? भारतवर्ष में भी इन नोटों के चलन में विशेष लाभ की संभावना नहीं है । पर व्यापार की अवस्था के अनुसार इन नोटों की संख्या घटनी-बढ़नी चाहिए । जिससे भारतवर्ष इँगलैंड के नोटों से लाभ उठावे, और इँगलैंड इन नोटों को भारतवर्ष में भेजकर भारतवर्ष की रफ़तनी का मूल्य चुकावे और भारतवर्ष उन्हें इँगलैंड भेजकर अपनी आमदनी के माल का चुकौता कर सके । ऐसी व्यवस्था करने वाले नोटों को निकालने के लिये सरकार पर ज़ोर देने की अत्यंत आवश्यकता है ।

जी० एस्० पार्थिक

× × ×

२. लकड़ी के कोयले की उपयोगिता

लकड़ी के कोयले से हम सभी लोग विशेष परिचित होने पर भी उसकी उपयोगिता से कोरे अनभिज्ञ रहते हैं और यही कारण है कि प्रतिदिन यह हमारे रसोई-घर से अन्य चीज़ों के साथ बेकार समझकर फेंक दिया जाता है। किंतु जैसा इसे हम समझते हैं वस्तुतः यह वैसा नहीं है और इसके अंदर बहुत-से ऐसे गुण भरे पड़े हैं, जिनका हम लाभप्रदरूप में उपयोग कर सकते हैं। लकड़ी का कोयला एक सर्वोत्तम संशोधक (Disinpetant) द्रव्य ही नहीं है, बल्कि इस प्रकार के द्रव्यों में यह सबसे बढ़कर सस्ता और आसानी से प्राप्त होनेवाला है।

गंधकमिश्रित हाइड्रोजिन, दुर्गंधयुत वाष्प रोगियों के शरीर से निकलती हुई रोगजन्य दुर्गंध तथा सड़ी हुई वस्तुओं के अंदर से निकलनेवाली अस्वास्थ्यकर गैस को यह आश्चर्यजनक रूप में शोषण करके अपने अंदर छोटे-छोटे छिद्रों में भरे हुए ऑक्सीजन वायु से उन्हें मिश्रित कर देता है। कमरे की कुछ गंदी चीज़ों पर यद्यपि इसका प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता, तो भी इन गंदी चीज़ों को उत्पन्न करनेवाले वातावरण को दूर करने में यह विशेष काम करता है। इसे अधिक कारगर बनाने के लिये इसका महीन सफ़ूफ़ कर लेना चाहिए। अस्पताल के चीरफाड़ करनेवाले कमरों में, रोगियों के वार्डों में नालियों में, पाख़ानों में तथा अन्य संसर्गजनित स्थानों में लकड़ी के कोयले का सफ़ूफ़ एक थाल में रखकर रख देना चाहिए। वायु के आवागमन का मार्ग यह शुद्ध करता है। हवा में जो गंदी गैस और दुर्गंधपूर्ण वाष्प रहता है, उन्हें अपने छिद्रों द्वारा यह सोख लेता है और फिर उन्हें अपने अंदर की आक्सीजन वायु की प्रक्रिया द्वारा नष्ट कर देता है। यदि कोई सड़ा हुआ मुर्दा हो और उसे लकड़ी के कोयले से ढक दिया जाय, तो उससे बदबू निकलना बिलकुल बंद हो जायगा। रोगियों के कमरे में यदि कोई अन्य संशोधक पदार्थ न मिले, तो कोयले का टुकड़ा किसी बर्तन में भरकर रख देना चाहिए या टोकरी में रखकर लटका देना चाहिए, जिससे उस कमरे की हवा विशुद्ध होती रहेगी। जलमिश्रित भाप के सोखने में भी लकड़ी का कोयला काम करता है। एक बार जले हुए कोयले को फिर जलाकर काम में लाया जा सकता है। संशोधक द्रव्य के रूप में जानवर की हड्डी, सींग आदि का कोयला सबसे अच्छा होता है।

पानी साफ़ करने के लिये भी लकड़ी का कोयला एक बहुत अच्छी चीज़ है। बड़े-बड़े शहरों को छोड़कर अन्य स्थानों में इसके द्वारा ही पीने का पानी साफ़ किया जाता है। हवा के समान पानी के अशुद्ध द्रव्यों को भी यह सोख लेता है। चीनी साफ़ करने के लिये भी इसका व्यवहार किया जाता है। किसी द्रव्य के रंग को बदल देने में यह एक ही चीज़ है। किसी घुले हुए द्रव्य के रंगीन अंश का शोषण करके और उसमें ऑक्सीजन मिश्रित करके उसके रंग को परिवर्तित कर देता है। इस काम के लिये जानवर की हड्डी, सींग आदि का कोयला अधिक कारगर होता है।

दवा के काम में भी इसका बहुत उपयोग होता है। विषाक्त वनस्पतियों—जैसे अहिफ़ेन, कुचिला, डकरा, अफ़ीम का सत आदि—के विरुद्ध इसकी क्रिया लाभप्रद होती है।

विषाक्त वनस्पतियों के विरुद्ध इसका प्रयोग करने के लिये इसका महीन सफ़ूफ़ करके इतना गर्म पानी में, जितना कि रोगी सहन कर सके, २० से लेकर ६० ग्रेन तक मिला देना चाहिए और फिर रोगी को पीने के लिये फ़ौरन् देना चाहिए। इस काम के लिये जानवर की हड्डी, सींग आदि का कोयला सर्वोत्तम होता है।

बदहज़मी, अपच, पेट फूलना, दस्त आना, खट्टी डकार, पेट का दर्द, आँत-पीड़ा, जी मचलाना, सविराम ज्वर, पाकाशय-प्रदाह, दुर्गंधयुत मलस्राव आदि बीमारियों में लकड़ी के कोयले का बिस्कुट, सफ़ूफ़ तथा एक प्रकार की मिठाई के रूप में व्यवहार होता है। पेट और आँत की गैस का शोषण करके पीड़ा को यह बंद कर देता है। किंतु पेट के अंदर की पीड़ा को शमन करने में ही यह गुणप्रद होता है। शरीर के ऊपर की पीड़ा पर इसका कोई असर नहीं होता। पाख़ाने के साथ अपरिवर्तित अवस्था में ही यह बाहर निकल आता है। अपच और पेट फूलने पर इसका सफ़ूफ़ दो से तीन चम्मच तक पानी में मिलाकर व्यवहार करना चाहिए।

सड़े हुए फोड़े और गलनेवाले घाव में भी इसका व्यवहार किया जाता है। घाव पर छिड़कने के लिये

सफ़ूफ़ या पुल्टिस के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। सुख की बदबू को दूर करने के लिये दंत-मंजन के रूप में इससे काम लिया जाता है। असमय में दाँतों को टूटने से भी यह बचाता है।

होमियोपैथिक चिकित्सा-पद्धति की प्रसिद्ध दवा Carbo-Vegetabilis लकड़ी के कोयले से ही तैयार होती है, जिसका प्रयोग पेट फूलने में, दाँत के हिलने में, मसूड़े से रक्तस्राव होने में तथा बीमारी की अंतिम अवस्था में, शरीर से पसीना चलने पर, शरीर बिलकुल ठंडा पड़ जाने पर अथवा इसी प्रकार की अन्य अवस्थाओं में, जब जीवनी शक्ति प्रायः क्षीण हो जाती है, किया जाता है।

जगन्नाथप्रसाद मिश्र

स्त्रियों के गर्भाशय के रोगों की खास चिकित्सिका

श्रीमती गंगाबाई की

पुरानी सैकड़ों केसों में कामयाब हुई, शुद्ध वनस्पति की ओषधियाँ

वंध्यात्व और गर्भाशय के रोग दूर करने के लिये

ग र्भ जी व न प्र शं सा प त्र

गर्भजीवन रजिस्टर्ड से ऋतु-संबंधी सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं। रक्त तथा श्वेत प्रदर, कमलस्थान ऊपर न होना, पेशाब में जलन, कमर का दुखना, गर्भाशय में सूजन, स्थान-भ्रंशी होना, मेद, हिस्टीरिया, जीर्ण तथा प्रसूति-ज्वर, बेचैनी, अशक्ति आदि और गर्भाशय के तमाम रोग दूर हो जाते हैं। यदि किसी प्रकार भी गर्भ न रहता हो, तो अवश्य रह जाता है। क़ीमत ३) मात्र। डाक-ख़र्च पृथक्।

गर्भरक्षक रजिस्टर्ड से गर्भ का कुसमय गिर जाना, गर्भ-धारण करने के समय की अशक्ति, प्रदर, ज्वर, खाँसी और ख़ून का स्राव आदि सभी बाधक बातें दूर होकर पूरे समय में सुंदर तथा तंदुरुस्त बच्चे का जन्म होता है। हमारी ये दोनों ओषधियाँ लोगों को इतना लाभ पहुँचा चुकी हैं कि ढेरों प्रशंसा-पत्र आ चुके हैं। मूल्य ४) मात्र। डाक-ख़र्च अलग।

ग र्भ र क्ष क प्र शं सा प त्र

हाल के प्रशंसापत्रों में कुछ नीचे पढ़िए—लोग क्या कहते हैं!

चीखलदा, डांग (डी० बीलीमोरा)। ता० २९।१।३०
आपकी दवाई का सेवन करने से फ़ायदा पहुँचा और लड़की का जन्म हुआ।
हिम्मतसिंह एम्० चौराणा

सिवा भाई एस० पटेल, C/o, नटवरलाल ऐंड कं०
लाडसा (डी० बालाघाट)। ता० २२।१।३०
मैंने आपके कारख़ाने से जो दवा गर्भ-जीवन मँगाया था उससे मेरी पत्नी का जो मृत-वत्सा रोग था वह इस दवा के सेवन के बाद एक कन्या उत्पन्न हुई। वह आगामी शिवरात्रि को चार वर्ष की होगी।—बृजलाल पटेल

पाचोरा (जि० खानदेश) ता० २५।१।३०
आपकी दवाई से मेरी पत्नी को संपूर्ण आराम हुआ उसके लिये बहुत कृतज्ञ हूँ।
कल्यानसिंह चावड़ा, C/o चावड़ ब्रादर्स

बालाघाट (सी० पी०)। ता० २५।१।३०
अब मेरे को पहले से फ़ायदा है, ऋतु मासिक बराबर महीने में होता है, ऋतु का रंग काला था पहले, अब रंग लाल है, भूख अच्छी लगती है, खाना हज़म होता है, दस्त बराबर होता है, पेशाब में जलन नहीं होता, कमर वग़ैरे में दर्द नहीं होता।—गिरजाबाई, C/o गनपतराय

याद रक्खो कि ऐसे एक दो नहीं, किंतु सैकड़ों प्रशंसा-पत्र मिल चुके हैं। २१

अपनी तकलीफ़ की पूरी हक़ीक़त साफ़ लिखो।

पता—गंगाबाई प्राणशंकर, गर्भजीवन औषधालय, रीची रोड, अहमदाबाद

बाल-महिला-मनोरंजन

१. दो बातें

आधुनिक समय में देखा जाता है कि नवाभ्युत्थिता टर्की तथा भारत की तुलना करते हुए कतिपय महाशय परदा-प्रथा तथा विधवापन को हिंदू-समाज की कुरीति तथा ह्रास का मूल-कारण मानते हुए सनातन-धर्म पर निर्मूल लांछन लगाते हैं। यह उनकी भ्रांति है। आशा है कि मैं ऐसे महोदयों को अपने लेख से समझाने में किसी अंश में सफल हूँगा।

परदा-प्रथा जिसके माने आप बक्स के अंदर बंद रहना तथा सूर्य और चद्रमा की ज्योति के भी दर्शन न होना लेते हैं, सनातनी प्रथा में लागू नहीं। जैसा कि हिंदू-धर्म में परदा है, वह इतना हानिकारक नहीं बरन् कितना लाभकारी है, हम आगे लिखेंगे। यह सभी लोग जानते हैं कि भारत की अधिकांश जन-संख्या ग्रामों में बसती है। वहाँ जैसा परदा है, हर एक जान सकता है। यह बिलकुल हानिकारक नहीं। स्त्रियों को शुद्ध वायु पर्याप्त तथा सरलता से मिलती है। वे टोलियों में बहुधा देवी-पूजनादि को बाहर जाया करती हैं। बड़े-बड़े नगरों में बसनेवाली महिलाओं की दशा अवश्य कथनीय है। वहाँ निर्धन गृहिणियों की अवस्था शोचनीय है। परंतु साथ ही में ऐसा कोई सनातनी नियम नहीं, जो उन्हें घर से निकलने के लिये मना करे। प्रश्न हो सकता है कि वे बाहर खुली हवा में कब निकलती हैं। इसका उत्तर केवल यह है कि उनको समय नहीं। वे अपने गृह-कार्य ही में लगी रहती हैं; उन्हें सुबह-शाम टहलने तथा ग़प्पें लड़ाने का अवकाश कहाँ। अब कहो, क्या वे मध्याह्न में मालरोड पर चहलक़दमी करें। हाँ, सनातन-धर्म ने साधारण परदे का आदेश अवश्य किया है। एक स्त्री को सर्व-साधारण अथवा जिस किसी के साथ सब कहीं नहीं जाना चाहिए। स्वजनों के साथ जाना अनुचित नहीं। स्त्रियाँ अवश्य ही बाहर जाकर शुद्ध वायु सेवन करें, इसी उद्देश्य से अमावास्या तथा पूर्णिमा को वे सर-सरिताओं में स्नान करतीं और देवी-पूजन को जाया करती हैं। यह तो हम लोगों की भूल है, न कि धर्म का दोष जो इतना भी नहीं करते।

कहते हैं, बड़े नगरों में तपेदिक़ की बीमारी पुरुषों

की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक होती है। कारण है परदा। कैसी अच्छी दलील है। हम कभी नहीं सोचते कि आधुनिक निर्धनता का भूत हमें कभी चैन नहीं लेने देता। गृह की कड़ी मेहनत, मानसिक व्यग्रता, इसके उपलक्ष्य में अपूर्ण पेट तथा असंतोष-प्रद भोजन। हा शोक, आर्थिक चिंताग्नि हमें भस्म किए जा रही है, न कि परदा। मैं हिंदू-समाज से अपील करता हूँ कि हिंदू-जाति की आर्थिक दशा को पहले सँभाला जाय। हसको कहना पड़ेगा कि पूँजी-पतियो! दो-चार के पास बहु संग्रहीत धन की दशा मनुष्य के शरीर के किसी एक अंग में बढ़े हुए बहु रक्त की तरह घृण्य है। आप अवश्य ही इसका आपरेशन करावें और उसे पूर्ण शरीर में वितरण कराने का प्रयत्न करें।

जो महाशय चाहते हैं कि स्त्रियाँ स्वतंत्र होकर जहाँ चाहें जावें, उनको कोई रोक-टोक न हो, उनका विचार या तो बोलशेविक रूस से मिलता-जुलता है कि संतान किसी एक व्यक्ति की नहीं, बरन् राष्ट्र की हैं, अथवा स्त्री-सतीत्व को वे विशेष आदर नहीं देते। पहले विचार का मैं कोई उत्तर देना उचित नहीं समझता। वह स्पष्ट है। रहा दूसरा, इस विषय में आपका प्रश्न हो सकता है कि हम लोग स्त्रियों को पुरुषों के साथ समागम करने से सतीत्व नष्ट होने का कैसे अनुमान कर लेते हैं। मेरा उत्तर है। (१) और देशों के उदाहरण आप देख सकते हैं (फ़ारेन सेंसज़ तथा हेल्थ रिपोर्ट पढ़िए), (२) भारत गर्म देश है। यहाँ काम का शासन बड़ा उत्कृष्ट है। स्त्री-पुरुष का मेल घी तथा अग्नि के संयोग के समान है। इसी को लक्ष्य रख कुछ साधुकर नियम बनाए गए। हम इसको कभी अच्छी दृष्टि से नहीं देखेंगे कि स्त्रियाँ 'गावः त्रण-मिव आरण्ये स्पृहन्ति नवम् नवम्' का मंत्र जपती हुई 'रीवर साइड रोड' पर टहलें। मेरे निकट परदे का अर्थ 'तृण धरि ओट कहति वैदेही' का है, जो कि सर्वथा लाभकारी तथा श्लाघनीय है। सुचारु रीति से गृहस्थी-रूपी रथ का संचालन हो, इस उद्देश्य से सनातन-धर्म ने उचित नियम बनाए। सांसारिक जीवन का लक्ष्य पार-मार्थिक है, भौतिक नहीं। इस सिद्धांत का पालन समय-समय पर सुकर और दुष्कर अवश्य होता रहा है। परंतु हमें याद रखना चाहिए कि ग्रीस और रोम, जिनका जीवन-सिद्धांत भौतिक रहा, आज के दिन धरा से सदैव के लिये ज़ाते रहे। हमारी समझ में भारत में परदे का कठिन पालन व्यक्तिगत है, समाजगत नहीं और जितना धार्मिक नियमानुकूल है, उतना तो आवश्यकीय भी है।

रही विधवा की समस्या, वह तो आधुनिक समय में धार्मिक विपत्ति प्रतीत होती है। परंतु यह भूल है। इस भूल का मूल-कारण, हम फिर कहेंगे, जीवन के उद्देश्य में है। यदि आप कहें कि जीवन का मुख्य उद्देश्य आनंद है, तो सनातन-धर्म की यह अवश्य ही निर्दयता है। वह सनातन-धर्म, जो चींटी से भी छोटे जानवर पर इतना दयाभाव रखता है, जो वृक्ष में भी आत्मा मान उसे दुःख पहुँचाना हिंसा मानता है, जीवन के एक प्रधान अंग स्त्री की कैसे अवहेलना कर सकता है। बात समझ के बाहर है। परंतु क्या ऐसा है नहीं। जीवन का उद्देश्य पारमार्थिक है, इंद्रियसुख नहीं; मोक्ष है, सांसारिक विलास नहीं। धर्म में अवश्य ही इंद्रियों का दमन लिखा है, अन्यथा पुरुष और पशु के धर्म में कोई अंतर नहीं—इंद्रियाँ बुद्धि से शासित हैं। उनके प्रत्येक काम में बुद्धि का प्राधान्य उचित है। यह बुद्धि की प्रेरणा है कि विधवा स्त्री विरागिनी है। वह सुख के बीच में रहती हुई सुख से अलग है। सती पति से सांसारिक वियोग सहती हुई पुनर्जन्म में चिरसंयोग के लिये प्रयत्न करती है। वह पशु-स्त्री नहीं, जो साल-साल अपने पति बदला करे। उसके लिये तो पति ही आराध्य देव हैं, सामने हों चाहे दूर, ज़मीन में हों, चाहे आसमान में। ऐसे सच्चे प्रेम की अवगणना कर केवल एकदेशीय सांसारिक सुख को प्रधानता देकर संकुचित बुद्धिवाले मनुष्य उच्च वाणी करते हैं कि सनातन-धर्म का विधवाओं पर कड़ा अत्याचार है। यदि इसी कारण आप उच्चादर्शी धर्म पर लांछन लगाते हैं, तो आपका विचार घृण्य है। मेरी समझ में आपके विचारानुसार अंधों, गूँगों पर ईश्वर का घोर अत्याचार है। आप यह भी कह सकते हैं कि जो वाक्-शक्ति होते हुए भी कुछ साल के लिये मौनव्रत कर रहा है, घोर अनाचार करता है। वह एकदेशीय इंद्रिय का ही तो उपयोग नहीं करता। भला आप ही समझें, ऐसी वाचनिका देना बच्चों का काम है कि समझदारों का।

हाँ, महाशयजी कहेंगे कि कल्याणभार्य के लिये क्या उत्तर है। वह तो एक स्त्री के मरने के बाद दूसरी यहाँ तक

कि सात-सात विवाह कर सकता है। क्या उसे पत्नीव्रत नहीं होना चाहिए? धर्म में तो ऐसा नहीं लिखा कि मनुष्य पाँच या सात विवाह करे। हाँ, यदि कल्याणभार्य के कोई पुत्र नहीं है, तो उसे दूसरी शादी कर लेना चाहिए—सांसारिक सुख के लिये नहीं, केवल पुत्रार्थ पितरों का ऋण चुकाने के लिये। कहा जा सकता है कि स्त्री पर पितरों का ऋण नहीं। स्त्री की गणना पुरुष से पृथक् मानी ही नहीं गई है। इसी कारण तो स्त्री का गोत्र बदल जाता है, पुरुष का नहीं। यदि आप इसे धार्मिक भूल कहें, तो आप तन्मयता की महिमा को घटाते हैं और प्रकृति-प्रदत्त पुरुष-प्राधान्य पर कुठाराघात कर रहे हैं। यदि सभी विधवाएँ शादी करने लगें, तो कौटुंबिक संस्था में कैसी आपत्ति पड़ जायगी, पतिप्रेम तथा सदाचार का ह्रास कितना हो जायगा—आप ही विचार कर देखें। स्त्री-पुरुष का संयोग गुड्डे-गुड्डियों का खेल हो जायगा। साधारणतः आप देख सकते हैं कि उच्च घराने की स्त्रियाँ विधवा होने पर पुनर्विवाह करना कभी नहीं पसंद करतीं—हिंदुओं में ही नहीं ईसाइयों में भी। यही नहीं वे इसे गौरव की दृष्टि से देखती हैं। ऐसी अवस्था में भी क्या कोई कहने को तैयार है कि सनातन-धर्म का विधवाओं पर किंचित्मात्र भी कठोरता का व्यवहार है।

उन्नतिशील पाश्चात्य ने प्राच्य पर अपना आधिपत्य जमा लिया है। परंतु इसके माने यह नहीं कि उनकी सभ्यता अक्षरशः अनुकरणीय है। उसमें दोष और गुण दोनों हैं। ईश्वर की रचना ही ऐसी है। उनके यहाँ स्त्रियों को सामाजिक उच्च स्थान प्राप्त है (वे बेटरहाफ़ हैं)। इसके माने यह कदापि नहीं कि यहाँ भी उन्हें वही पदवी देकर स्वयं उनका दास बना जाय। ईश्वर का नियम है कि जो एक जगह श्रेय है, वही दूसरी जगह निंद्य है। गले में बँधे जलते हुए कोयले देखने में लाल और सुंदर, ठंढ आइसलैंड में मनुष्य के लिये प्राण हैं, परंतु बीकानेर में काल। सारांश यह है कि हमको अंध अनुकरणशील नहीं होना चाहिए। सावधान होकर पुरुषसिंह की तरह पराक्रम दिखाना चाहिए।

हरिस्वरूप त्रिपाठी

× × ×

२. मातृभूमि

फैली जिसकी शैलराज पर है अलकावलि।
बनी हुई कल हृदय हार सुरसरि एकावलि।
चरणों में है भक्तिभाव से सिंहल अवनत।
करता प्रतिदिन पान अम्भ सो निधि चरणामृत।
जिसके संरक्षक हैं स्वयं, शैलराज हिमवंत ही।
उस मातृरूप पर बलि न जो, जग में जीवन्मृत वही॥ १॥
नयन युगल अरविंद चंद्र हरि दशन रत्न मणि।
विन्ध्य सुशोभित मध्य हिमालय बना शिरोमणि।
दे उपहार वसंत सौरभित कुसुमित सारी।
करे हरित तव अंग दिखाकर प्रतिभा न्यारी।
ले जाते सिंधु समीप नित, सिंधु गंग संदेश नव।
घनश्याम वारि बरसाय मनु, करते हों अभिषेक तव॥ २॥
माता तेरा छत्र बना गिरिराज हिमालय।
सहिष्णुता की मूर्ति वीरवर शैल हिमालय।
रजत सुऔषधि रत्न स्वर्ण आगार हिमालय।
वेद सभ्यता गोप्त त्रिविष्टिप अद्रि हिमालय।
नहलाती नित्य प्रभात में, रश्मि माल कलधौत से।
चमकते तुम्हारे अंग सब, कांचनरूप कपोत से॥ ३॥
खेले तेरी गोद अनेकों जीवनधारी।
मानव रत्न बढ़ाते तव यश बारी-बारी।
हुए तुझी में कौंतेय अतुलित बलशाली।
पाकर बली सुपुत्र हुई तव छटा निराली।
व्रजमंडल गुंजित किया था, मुरलितान से श्याम ने।
रास रचाया था यमुन-तट, बहती जो व्रज सामने॥ ४॥
यहीं सुनी थी मृदु मुरली की तान सुरीली।
लज्जित होती थी पिक सुन धुनि सरस रसीली।
हरिश्चन्द्र ने सत्यनिष्ठता यहाँ दिखाई।
कीर्ति-पताका यहीं राम ने भी फहराई।
दानवीर, रणवीर वर कर्ण हुए जग में अमर।
सुपथ दिखाया कृष्ण ने, गीतामृत उपदेश कर॥ ५॥
भीष्म द्रोण, कृप-विदुर आदि भी हुए तुझी में।
राम भरत रिपुदमन लक्ष्मण पले तुझी में।
कौशिक कुंभज अत्रि आदि ने कीर्ति बढ़ाई।
तव यश महिमा चारु चार वेदों ने गाई।
दर्शाय मैथिली ने जिसे, पतिव्रता माहात्म्य से।
रुकमिणि ने आदर से गहा उसी—उसी शुभ मार्ग को॥ ६॥

जनकनंदिनी द्रुपदसुता ज्योतिर्मय चंपा।
खल अलि नहिं पा सके तेज सौरभित अकंपा।
सावित्री दमयंती कुंती आदि सरोजिनि।
पातिव्रत सौरभ से जग में हुईं यशस्विनि।
वीरोचित उनके कर्म लख, होती थी तू हर्षयुत।
कुम्हलाता अब तव कमलमुख, देखि-देखि सब सुतासुत॥७॥

इस इसपाती युग में पीछे पिछड़ गई है।
बेबस है परवशता में तू जकड़ गई है।
खानें तुझमें बहुत चारु आचारों की हैं।
जानें तुझमें बहुत देश-भक्तों ने दी हैं।
इक साम्यवाद गुण रत्न से, हो जाते देवादि नत।
मुस्लिम हो या क्रिश्चियन हो पालन करती पुत्रवत्॥ ८॥

अशरणशरणा अन्नपूर्णा गौरवशालिनि।
शस्यश्यामला विमला सरला थी जगस्वामिनि।
यद्यपि माता दीन सकल सद्‌गुण से शोभी।
बैल कहाँ पा सकें होय गज दुबला तो भी।
थी प्रकृति ज्ञानविज्ञान की ख्याति अखिल ब्रह्मांड में।
क्षण-भर में ही काफ़ूर हो बिला गई किस लोक में?॥ ९॥

भूल गए हैं मातु आज हम विद्या अपनी।
ताक रहे मुख औरों का रक्षा-हित अपनी।
अंधकारमय ज्ञान-सिंधु में डूब रहे हैं।
देश रहे या बहे मस्त तो फ़ैशन में हैं।
साहब बन नित फूँकें स्वधन, बदलें प्रतिदिन न्यू‘पेयर’।
इस पर भी रँगे सियार हैं कहते मुझको नहिं ‘केयर’॥१०॥

कालिदास की रचनाओं को हम ठुकराते।
रामायण को तुच्छ समझते हैं मदमाते।
हम तो चाहें शेक्सपियर की इँगलिश रचना।
हम क्या जानें होता किन कर्मों से बचना।
नहीं जानते वेद क्या, किस चिड़िया का नाम स्मृति।
धर्म-कर्म भूले सभी, शुभ कर्मों में है न रति॥११॥

मधुर मेल के दिवस हो गए अब हैं सपने।
छूने में है घृणा जाति भाई को अपने।
मिल जाता यदि वही विधर्मी दल में जाकर।
तब हम करते पूज्य सदृश उसकी हैं ख़ातिर।
छूते नहिं देशी वस्तुएँ आशा हो तब कौन-सी?
यह हीन दशा रहते हुए कैसे भागे बेबसी॥१२॥

करती नहीं सुखी रखने में कोई भी त्रुटि।
पा तव मलय समीर थकावट जाती है मिट।
करती ऐसा कभी नहीं साथी हो सुख में।
रखती अधिक सनेह पड़ें जब भारी दुख में।
जब आई तुझ पर विपति तो क्या होना कर्तव्यच्युत?
अर्पित करते तव चरण पर सब कुछ अपना प्रेमयुत॥१३॥

कुमारी श्यामप्यारी श्रीवास्तव

× × ×

३. स्मृति के तट पर

समुद्र की तरंग नित्य निरंतर कूल से द्रुतगामी वेग से टकराया ही करती है। तट का आर्तनाद दिशाओं को पूर्ण करता है। वह नाद शांति से विहीन एक दग्ध हृदय का स्मारक है। एक शक्ति-संपन्न किंतु बाध्य प्राणी का हाहाकार है। इसी समुद्रतट पर मुझे बीते हुए प्रणय की सुध आई। मैंने जिस समय प्रणय के राज्य में अपना सिर झुकाया, उस समय मेरी अवस्था चित्रा के समान थी। प्रेम के पाश में मैं अबोध की नाईं सुख से चली गई और मन-ही-मन उस शक्ति-संपन्न दैव का खिलौना बन गई। मेरा हृदय पूर्णरूप से बंधन में पड़ गया, किंतु मैं इसे जान न सकी। मैंने सोचा—‘प्रेम’! हाँ, प्रेम तो मैं अवश्य करती हूँ। किंतु इससे क्या। मैं विवाह कदापि नहीं करूँगी, विवाह तो एक साधारण बंधन है और प्रेम अलौकिक है। मैं अपने प्रेम का सदैव गर्व करूँगी। किंतु उसे सांसारिक रूप से साधारण न होने दूँगी।

अहा! वे दो वर्ष कितने आनंद से बीते। हमारे मन में लज्जा कितनी प्रबल थी। इस लज्जा ही के कारण हमने कभी संलाप का अवसर न खोजा, न कभी मिलने ही की चेष्टा की। मैं अपने मन का भाव अपने प्रियतम से भी गुप्त रखना चाहती थी और सदैव उन पर ऐसा ही भाव जताया करती थी। उनके पत्र मुझे आनंद के सागर में निमग्न कर देते थे और मेरा मन-

मयूर उनके पाते ही उल्लास से नाच उठता था, किंतु तो भी उत्तर में मैं सदैव उन्हें उनकी विवश अवस्था पर धिक्कारा ही करती थी। मैंने लिखा—"वाह पत्र क्या लिखते हो कि पूरा काव्य! इस प्रकार अपने जीवन को भावुकता के क्षेत्र में स्वच्छंद मत छोड़ो, मेरे जीवन का मार्ग तुमसे भिन्न ही है"। मन में मैंने निश्चय किया कि मैं सदैव कुमारी ही रहूँगी। मैंने सोचा कि घर की चहारदिवारी में मेरा मन कदापि न लगेगा। मैं संसार के प्रत्येक कार्य का अनुभव करूँगी और साक्षात् शक्ति की तरह आगे बढ़ती जाऊँगी। मेरे ये निर्दय पत्र उन्हें अवश्य आहत करते थे, पर तो भी झे पत्र लिखते ही थे। मेरे गर्व का उल्लास इससे और भी बढ़ता था और मैं चाहती थी कि उनका आदर मेरे प्रति न घटे।

कैसी अनभिज्ञता थी। अपने भाव की प्रबलता को आप समझ न सकी। जिसकी स्मृति में रात-दिन, घूमते-फिरते, पढ़ते-लिखते मैं विस्मृत-सी रहती थी, उसी को नित्य जीवन-पथ से निकल जाने का आदेश देती थी। जिसके प्रेम का मुझे अभिमान था, उसी की वंचना करती थी। पर मन—छिपे-छिपे निकल ही गया। विशारद की परीक्षा थी ; मैंने पुस्तक खोली। अक्षर के बदले देखा कि भाव-साम्राज्य के एकाएक अधिपति मेरे सम्मुख उपस्थित हैं। सोचा—अवसर अच्छा मिला है, इस समय इनसे आलाप करने में न लज्जा भंग होगी, न मान ही। चेष्टा की, किंतु फल कुछ न हुआ। वहाँ पर भी, दोनों ओर की, लज्जा कम न हुई। एक आंद की लहर उठी और विलीन हो गई। मैं और कल्पना-मूर्ति निकटस्थ हो बैठ गए। इतने में मेरी सखी ने कमरे में प्रवेश किया। वह मुझसे आयु में कुछ अधिक थीं ; मैंने कहा आइए। उत्तर में उन्होंने कहा—"कल्पना के क्षेत्र में मनमोहन के साथ स्वच्छंद विचरण करने में मैं बाधारूप तो नहीं हुई"। मैंने कहा—"फिर वही उपालंभ—फिर वही व्यर्थ की छेड़छाड़"।

हाँ, यह सब बीती बातें हैं। हृदय न-जाने क्यों फिर इस पुराचिंतन में व्यस्त हुआ। एक बात तो कहना भूल ही गई। वह है हमारी अंतिम भेंट! वह आए थे कुछ हिम्मत बाँधकर; कुछ मैंने भी लज्जा त्यागकर उनका सामना किया। इस अवसर को मैंने फिर हाथ से निकाल दिया। मैंने कहा—ना, मैं विवाह न करूँगी, तुम मेरे चिरमित्र रहो और मैं भी तुम्हारे प्रति यह भाव सदा जागृत रक्खूँगी। मेरे प्रेमी अतृप्त चले गए, इधर मैं स्नेह से आकुल होकर मित्रों के पास चली गई। हृदय का हाल किसी से कह न सकी। हिम्मत डगमगाने लगी। मन ने कहा—"दौड़-दौड़ अपनी जीवनमूरि को जाने न दे। किंतु मैं एक मूक-शक्ति से बाधित वहीं खड़ी रह गई। मैंने तत्काल ही पत्र भेजा। उसमें पूर्व की-सी हठ थी, मान था और अनुरोध था। उत्तर की प्रतीक्षा व्यर्थ गई। मेरे ऊपर वज्र का आघात हुआ। वेदना से मैं विकल हो उठी। लोगों ने कहा, उन्माद है। मैंने भी आंतरिक भाव छिपाने के लिये कहा—हाँ उन्माद ही है। उस आंतरिक अग्नि को मैंने आँसुओं की असंख्य धार से बुझा दिया; किंतु अंदर-ही-अंदर धधक उपस्थित है। आज समुद्र-तट की वायु से वह अग्नि झकोरे खाकर फिर जाग उठी।

"संतोषिणी"

× × ×

४. तितली

सुंदर-सी साड़ी को पाकर,
फूली नहीं समाती हो ;
भला बताओ जल्दी-जल्दी,
किसे मोहने जाता हो ?
जब होकर स्वच्छंद विचरती
हो, तुम नभ में मनमानी ;
ऐसी दिखती हो, जैसे हो,
तुम ही परियों की रानी।
फूल-फूल पर क्यों जाती हो,
हो-होकर तुम मतवाली ;
क्यों फिरती हो फुदक-फुदककर,
इस डाली से उस डाली ?
क्या खोजा करती हो दिन-भर,
खोया हुआ हृदय अपना ;
या कि रात-दिन देखा करती
हो तुम कोई मृदु सपना।
या कि चुराने जाती हो, हर
फूलों पर शोभा प्यारी ;
जिसमें रँगकर पंख बनाया
करती नित्य हृदयहारी।
चार घड़ी के इस जीवन में,
तितली ! मत छलना सीखो ;
प्रेमी का दुख देख, उसी चिन-
गारी में जलना सीखो।

बाबूलाल भार्गव "कीर्ति"

× × ×

५. नारी-समाज में क्षय-रोग की वृद्धि का कारण

स्त्री-समाज के स्वास्थ्य की देखभाल करनेवाले बहुत-से समझदार व्यक्तियों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो रहा है कि वर्तमान स्त्रियों में उक्त रोग अधिकता से क्यों फैला हुआ है। ७-८ वर्ष तक चिकित्सा-व्यवसाय करने और अनेक स्त्री-रोगियों का निरीक्षण करने से हमारी समझ में क्षय-रोग के जितने कारण आए, पाठक-पाठिकाओं की ज्ञान-वृद्धि के लिये संक्षेपतः उनका नीचे उल्लेख किया जाता है।

(क) स्त्रियों में क्षय-रोग की वृद्धि का सबसे पहला और मुख्य कारण यह है कि जन्म होने के पश्चात् ही बालक और बालिका के खान-पान, रहन-सहन, पहनाव इत्यादि प्रत्येक बात में भेद होने लगता है। माता-पिता और अन्य संरक्षकों की इस दुरंगी चाल के कारण ही, बालकों के शरीर तो फल-फूलकर हृष्टपुष्ट होते हैं, परंतु बेचारी निर्दोष गऊस्वरूपा बालिकाओं के शरीरों का ह्रास होने लगता है। एक तो प्रकृति से उपर्युक्त संरक्षकगण बालिकाओं के शरीरों की उपेक्षा करते हैं ; दूसरे, उनका यह थोथे विचार कि—"यह तो पराए घर का धन है, थोड़े दिनों में यहाँ से चली जायगी, हमारा इनसे क्या लाभ होगा, विवाह करना होगा और दहेज़ आदि देने में बहुत-सा धन व्यय होगा इत्यादि—इस कारण इन्हें अच्छा खिलाना-पिलाना और बालकों की भाँति पालने से हमारा कुछ लाभ नहीं है"—उनसे और भी अधिक दुराव कराते हैं। "जितना गुड़ गेरो उतना मीठा होय" की लोकोक्ति के अनुसार इसका यह परिणाम होता है कि कन्याएँ कुमारों की अपेक्षा हर बात में पिछड़ी हुई रहती हैं। उनके शरीरों का विकास रुक जाता है, और इस प्रकार प्रारंभ से ही भेद-भाव होने से उनमें क्षय का बीज बोया जाता है। इस दोष को दूर करने में देश की माता बननेवाली स्त्रियों और पिता बननेवाले पुरुषों का बहुत बड़ा हाथ है। यदि वह पुत्र और पुत्री को एक

आँख से देखते हुए उनके खान-पान और लालन-पालन में समानता का व्यवहार करें, तो कन्या-वर्ग के फूलने-फलने से देश में वीर-माताओं की वृद्धि हो सकती है।

(ख) स्त्रियों में क्षय-रोग की वृद्धि करनेवाला दूसरा कारण महाबली राक्षस बाल-विवाह है, जिसके द्वारा बालिकाओं के स्वास्थ्य का भीषण ह्रास हो रहा है। कच्ची अवस्था में शरीर की वृद्धि एवं अंग-प्रत्यंग पूर्ण होने से प्रथम ही उनका शरीर नष्ट होने लगता है। एक ओर शरीरशास्त्र-विशेषज्ञों का कथन है कि जब कन्या का मासिक धर्म होने लगे और ३ वर्ष तक मासिक होकर उसका अस्तित्व शुद्ध हो जाय, गर्भाशय इत्यादि अंग पुष्ट और पूर्ण हो जायँ, ठीक एक-एक मास के पश्चात् ऋतुमती होने लगे और पूर्ण युवत्व के लक्षण प्रकट हो जायँ, तब उसका गर्भाधान-संस्कार कराना उचित है। सो भी केवल संतान-उत्पत्ति के निमित्त। परंतु शोक! दूसरी ओर बालविवाह की कृपा से बिलकुल इसका उलटा ही हो रहा है। अबोध बालिकाएँ गार्हस्थ्य के कर्म को समझतीं नहीं, युवत्व प्राप्त नहीं होता, मासिक धर्म प्रारंभ तक नहीं होता, खेलने-कूदने तथा पढ़ने-लिखने का समय होता है, शारीरिक और मानसिक विकास का समय होता है, उसी अवस्था में गृहस्थी के दृढ़बंधनों में बाँध दी जाती हैं, जिससे उनकी सब प्रकार की उन्नति पर पानी फिर जाता है। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि ग्यारह-ग्यारह बारह-बारह वर्ष की बालिकाएँ माता बन जाती हैं, जब वे स्वयम् माताओं की गोद में खेलने योग्य होती हैं। दूसरी ओर अज्ञानी पतियों की अज्ञानता के कारण, वह विषयभोगों की मशीन (यंत्र) बनकर अपने अमूल्य स्वास्थ्य और ईश्वरदत्त स्त्रीत्व से हाथ धो बैठती हैं, जिसका भयंकर परिणाम प्रतिदिन नेत्रों के सम्मुख दिखाई पड़ रहा है कि देश की नवयुवतियाँ वृद्धाओं के समान हो रही हैं और भयानक कठिन असाध्य, खाँसी, बुखार, रक्तप्रदर, सोमरक्तार्श, ग्रहणी, यक्ष्मा आदि रोगों के चंगुल में फँसी हुई हैं। उपर्युक्त रोगों का स्त्रीसमाज में इतना प्राबल्य है कि कोई भाग्यवान् ही इनसे बची हुई होंगी। इस प्रकार के असाध्य रोगों ने स्त्रीसमुदाय को जीर्ण-शीर्ण करके प्रलय का दृश्य उपस्थित कर रक्खा है। इसमें अत्युक्ति नहीं।

ऊपर जिन रोगों के नाम गिनाए गए हैं, यह सभी पुराने होकर क्षय का रूप धारण कर लेते हैं। जो व्याधि शरीर में दीर्घ काल तक बनी रहकर शारीरिक धातुओं का (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र या आर्तव) नाश करे, उसी का नाम क्षय है। शरीर के अवयव पुष्ट नहीं होने पाते कि बेचारी भोली बालाओं को काल-कोठरी में बंद करने लगते हैं। उनके पति बननेवाले महाशय (चाहे युवक हों या बालक) कामशास्त्र से सर्वथा अनभिज्ञ होते हैं, बस विषय-भोगों में मस्त रहना जीवन का सच्चा आनंद समझकर बालपत्नियों के शरीरों को जर्जर कर डालते हैं। अतियोग के कारण जब सोम, प्रदर, रक्तप्रदर आदि रोग लग जाते हैं, तो दो प्रकार से शरीर के धातु क्षीण होने लगते हैं। यदि उसी अवस्था में संतान भी हो जाती है, तो उसके लालन-पालन में परिश्रम करना पड़ता है और दुग्धपान कराने में शरीर का पौष्टिक अंश क्षय होता है। यह तीसरा क्षय प्रारंभ हो जाता है। इस प्रकार से जब चारों ओर से शरीर का क्षय होने लगता है, वे किसी असाध्य रोग का ग्रास

बनकर दीर्घ काल तक रोगिणी रहकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगती हैं और अकाल में ही काल का कलेवा बनकर इहलीला समाप्त कर देती हैं।

यदि देश के शुभचिंतक नारी-समाज का स्वास्थ्य सुधारना चाहते हैं, तो उनका सबसे प्रथम कर्तव्य है कि बाल-विवाह का मूल नष्ट करके पूर्ण युवत्व प्राप्त होने पर कन्याओं के विवाह की व्यवस्था करें। शरीर के अवयव पूर्ण और दृढ़ होने पर गर्भाधान संस्कार की रीति से संतान उत्पन्न करने से संतान और माता, दोनों का कल्याण होगा, और क्षय-रोग भस्मीभूत हो जायगा। अस्तु।

(ग) स्त्रियों में क्षय-रोग की वृद्धि करनेवाला तीसरा कारण है परदा। इस दुखदायिनी प्रथा के कारण महिला-मंडल के स्वास्थ्य का टट्टी की आड़ में ख़ूब शिकार खेला गया है। हमारा तो ऐसा विचार है कि इस राक्षसी प्रथा ने नारियों के स्वास्थ्य को जितनी अधिक हानि पहुँचाई है, संभव है, दूसरी ने न पहुँचाई हो। दश-दश वर्ष की बालिकाओं से लेकर पचास-साठ वर्ष तक की अवस्था की स्त्रियाँ बराबर परदे के अंदर रहती हैं। नवयुवती-बहुओं के लिये तो परदे का बड़ा भारी बंधन है। शुद्ध वायु, व्यायाम, भ्रमण, सभासमिति, सार्वजनिक उत्सव, सम्मेलन इत्यादि के लाभों से वह सर्वथा वंचित रहती हैं। हर समय शहरों के बीच की सड़ी गलियों में चहारदिवारी से घिरे हुए मकान, मकानों के अंदर भी चिक और परदेदार पिछाड़ी के बंद कमरे में डेढ़ हाथ का लंबा घूँघट निकालकर गर्दन झुकाए हुए उन्हें बैठा रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में इस प्रकार उनके शरीरों की हानि होती है।

शुद्ध वायु न मिलने से रक्त विकृत हो जाता है। व्यायाम न करने से शरीर के पुट्ठे ढीले पड़ जाते हैं। गर्दन झुकाकर बैठे रहने से फेफड़े दुर्बल हो जाते हैं, हर समय घूँघट के अंदर श्वास लेने से अंदर की निकली हुई वायु फिर शरीर में प्रवेश करती रहती है, जिससे हृदय आदि अंग दुर्बल होकर ठीक काम नहीं करते। भ्रमण आदि क्रिया न होने से रक्त का दौरा ठीक नहीं होता। पाचनशक्ति बिगड़ जाती है, विबंध रहने लगता है, जिससे अपवित्र परिमाणु मस्तिष्क की ओर चढ़कर उन्माद, हिस्टीरिया, मृगी आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। उपर्युक्त सब कारणों से शरीर में अनेक परिवर्तन होकर भयंकर प्राणनाशक राजयक्ष्मा आदि की उत्पत्ति हो जाती है।

इसके अतिरिक्त हर समय परदे की काली कोठरी में रहने के कारण अनेक प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने में भी रुकावट रहती है। इस रुकावट या क़ैद के कारण ही वर्तमान नारीमंडल पशुवत् बना हुआ है। पग-पग पर साधारण-सी बातों में भी परावलंबी होने का कारण भी यही है। यदि परदे की दीवार को हटाकर पुरुषों की भाँति स्त्रियों को भी अनेक प्रकार के ज्ञान प्राप्त करने का सुअवसर दिया जाय, तो बहुत कुछ सुधार हो सकता है, और इसमें नर और नारी दोनों ही वर्णों का कल्याण हो सकता है।

वर्तमान में पुरुषों पर जो स्त्रियों का भारी बोझा पड़ा हुआ है, वह भी हलका हो सकता है; क्योंकि जब स्त्रीरूपी पक्षी को पिंजरे से बाहर निकलने का अवसर मिलेगा, तो उन्हें अनेक प्रकार का सामाजिक, आर्थिक, सांसारिक, वैज्ञानिक, वैदेशिक ज्ञान होने से विशेष बोध होगा। इसके द्वारा उनमें साहस, कार्य-कर

दोषज तथा आगंतुक रोगों का बीमा

जो पैदा हुआ है उसको रोग होना भी संभव है। साधारण पुरुष न हर समय डाक्टर वैद्य को बुला सकते हैं, न मूल्यवान् ओषधियाँ ख़रीद सकते हैं। धनियों के लिये भी तो हर अवस्था में और हर स्थान पर डाक्टर बुलाना असंभव होता है। कभी थोड़ी-सी देरी भी हानिकारक होती है। परमात्मा का धन्यवाद है कि **पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य** ने एक ऐसी घरेलू ओषधि तैयार की है जिसको पास रखना एक योग्य चिकित्सक को पास रखना है। यह बहुत से व्यय, चिंता और दुःख से बचाती है—जिसका प्यारा नाम है—

"अमृतधारा"

(१) उन रोगों को जो अकस्मात् मनुष्य पर आक्रमण करते हैं जैसे—शिरपीड़ा, कानपीड़ा, दाँतपीड़ा, पेटदर्द, अफरा, वमन, मतली, अतिसार, पीड़ा, शोथ, शीतपित्त, ज़ुकाम आदि उनको अमृतधारा वैसे ही **अकस्मात् दूर कर देती है।**

(२) विषैले जीव-जंतु, जैसे—भिड़, मक्खी, बिच्छू सर्पादि के डंक की वेदना विष आदिक अमृतधारा से **तत्काल शांत होते हैं।**

(३) वबाई रोग जैसे प्लेग, हैज़ा, इंफ़्लूएंजा, डिंगू, मलेरिया के दिनों में इन रोगों से बचाती है और आक्रमण होने पर **इनको दूर करती है।**

यह अत्युत्तम रोगकीटाणुनाशक है।

(४) आगंतुक कष्टों जैसे—जलना, कटना, चोट, रगड़, शोथ, रक्तस्राव आदि में **विज्ञ सर्जन का काम देगी।**

(५) अन्य रोग जैसे—वातपीड़ाएँ, गठिया, कटिशूल, अपाचन, आमातिसार, कब्ज़, श्वास, कास, पांडु, कामला, ज्वर, पार्श्वशूल, अपस्मार, दद्रु, कंडू, फोड़ा, फिंस, घाव सबको यथावसर **खाने या लगाने से लाभ पहुँचाता है।**

लाखों सेवन करनेवालों में से ३० हज़ार लिखकर भेज चुके हैं। अमृतधारा सबको सदा पास रखनी चाहिए। पूरे हाल के वास्ते 'अमृत' पुस्तक मुफ़्त मँगावें। हाँ धोखे से बचना। इसकी बढ़ती देखकर बड़े लोग धोखा दे रहे हैं। मूल्य २॥), आधी शीशी १।), नमूना ॥) आना।

पता—अमृतधारा (१२), लाहौर।

लखनऊ एजेंट—एफ़० मिर्ज़ा एंड संस, खजुवा। इंदरचंद ऐंड कंपनी, चौक।

نوٹس بغرض ظاهر کرنے وجهه کے که اجرا کیوں نه کیا جاے

بعدالت جناب کنور رگهوراج بهادر صاحب منصف کننده مقام و ضلع پرتاب گڈه

نمبری مقدمه دیوانی نمبر ۱۵۸ سنه ۱۹۲۷ع

مقدمه اجراے ڈگری نمبر ۴۱۹ سنه ۱۹۳۰ع

پنڈت جگیسردت ولد بهدارام ساکن موضع توکل پور پرگنه و تحصیل پٹی ضلع پرتاب گڈه ڈگریدار

بنام

رام سهاے وغیره

بنام
۱—رام سهاے ولد سیتارام ساکن بسندهر پور
۲—مهادیو } پسران جگپت ساکنان بسندهر پور } پرگنه و تحصیل و ضلع مرزا پور
۳—گودر

هرگاه ڈگریدار نے عدالت هذا میں درخواست اجراے ڈگری بمقدمه نمبر ۱۵۸ سنه ۱۹۲۷ع اس بیان سے گذرانی هے که ڈگري مذکور اُس کے حق میں منتقل هوگئي هے لهذا تمکو اطلاع دی جاتي هے که تم بتاریخ آٹهه ۸ اکتوبر سنه ۱۹۳۰ع اس عدالت میں حاضر هوکر وجهه ظاهر کرو که اجراے کیوں نه کیا جاے *

آج بتاریخ ۱۰ ماه ستمبر سنه ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مهر عدالت سے جاري کیا گیا *

وقت حاضري بدفتر منصفی کننده دس ۱۰ بجے سے چار ۴ بجے تک

* * *

سمن بغرض انفصال مقدمه

مقدمه نمبر ۹۵۸ سنه ۱۹۳۰ع ابتدائي خفیفه

بعدالت خفیفه منصفی طرب گنج مقام گونڈه

بدل ولد دیرتارام قوم برهمن ساکن پوره شیودیال مشموله اُجیئي کلاں پرگنه و ضلع گونڈه مدعي

بنام بالک وغیره

بنام
۱—بالک
۲—بانتهے } پسران گوپتار اقوم کلوار ساکنان پوره ڈهان سکنه مزرعه } مدعاعلیهم
۳—گوری } موضع اُجیئی پور کلاں پرگنه و ضلع گونڈه

هرگاه مدعي نے تمهارے نام ایک نالش بابت مبلغ ۱۳۹ روپیه ۷ آنه کے دایر کي هے لهذا تم کو حکم هوتا هے که تم بتاریخ نو ۹ ماه اکتوبر سنه ۱۹۳۰ع بوقت ۱۰ دس بجے دن اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمه کے حال سے قرار واقعي واقف کیا گیا هو اور جو کل اُمور اهم متعلقه مقدمه کا جواب دے سکے یا جس کے ساتهه کوئي اور شخص هو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر هو اور جوابدهي دعویٰ مدعی مذکور کي کرو اور هرگاه وهي تاریخ جو تمهارے احضار کے لئے مقرر هي واسطے انفصال قطعي مقدمه کے تجویز هوئي هے پس تم کو لازم هے که اپنے جواب دعویٰ کي تائید میں جن گواهوں کي شهادت پر یا جن دستاویزات پر استدلال کرنا چاهتے هو اُسي روز اُن کو پیش کرو*

مطلع رهو که اگر بروز مذکور تم حاضر نه هوگے تو مقدمه بغیر حاضري تمهارے مسموع اور فیصل هوگا*

جج

آج بتاریخ ۴ ماه ستمبر سنه ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مهر عدالت سے جاري کیا گیا*

وقت حاضري بدفتر منصفي طرب گنج مقام گونڈه ۱۰ بجے سے ۴ بجے تک

शक्ति विशेषज्ञता और स्वावलंबी बनने एवं अपनी रक्षा करने की शक्ति उत्पन्न होगी।

(घ) स्त्रियों में क्षय-रोग की वृद्धि करनेवाला चौथा कारण है स्त्रियों का भोजन। जिस प्रकार बालावस्था में माता-पिता के द्वारा बालक और बालिकाओं के भोजन में भेदभाव रहता है, इसी प्रकार राजा से लेकर रंक तक के गृहस्थ-घरों में नर और नारियों के भोजन में अंतर रहता है। गृहस्थों के घरों का यह एक साधारण-सा नियम है कि पुरुष लोग बाहर से जितने भी उत्तम और पौष्टिक खाद्य पदार्थ लाते हैं अथवा मँगाते हैं, उन्हें सबकी घर की देवियाँ (माता, बहन, पत्नी आदि) पुरुषों को ही खिला दिया करती हैं। नित्य के भोजन रसोई आदि में भी यही संकीर्णता होती है। सद्गृहस्थों का यह नियम है कि पुरुषों से प्रथम स्त्रियाँ भोजन नहीं करतीं, पुरुष महाशय बाहर से आते हैं और उत्तम-उत्तम पदार्थों का बना हुआ भोजन करके अपनी विश्रामशाला में जाकर लेट जाते हैं। पीछे जो कुछ भी बचा-खुचा, थोड़ा-बहुत बासी-तत्ता भोजन शेष रह जाता है, उसे खाकर स्त्रियाँ अपना उदर भर लेती हैं। पुरुष महाशयों को इस बात की खबर तक नहीं रहती कि स्त्रियाँ क्या खाती हैं और क्या नहीं। बहुत-से साधारण घरों में तो नित्य प्रति स्त्रियाँ रूखा, बासी, जला-भुना भोजन खाकर ही अपना जीवन-निर्वाह करती हैं। इसमें प्रथम कारण तो स्त्रियों की अशिक्षा है, जिससे वह अज्ञानवश पुरुषों को विशिष्ट समझकर अपने जीवन को निरर्थक और निकम्मा समझती हुई अपने शरीर की उपेक्षा करती हैं।

दूसरा कारण पुरुषवर्ग की लापरवाही, स्वार्थ-लोलुपता और मिथ्याभिमान है कि वह अपने को विशेष समझता है, स्त्रियों के भोजनादि की परवा नहीं करता, अपना उदर पूर्ण करने के पश्चात् यह सुधि नहीं लेता कि स्त्रियाँ क्या खाती हैं और क्या नहीं।

इस प्रकार का निकम्मा, पुष्टताहीन, अनुपयुक्त, बासी बचा हुआ, रूखा, अपरिमाण और असमय में लापरवाही के साथ स्नेहविहीन किया हुआ भोजन भी स्त्रियों में क्षय-रोग की वृद्धि करनेवाला मुख्य कारण है।

आयुर्वेद-शास्त्र के सिद्धांत के अनुसार भोजन मनुष्यों के जीवन का आधार है। यदि उपर्युक्त दोषों से युक्त भोजन किया जाय, तो कुछ काल के पश्चात् भोजन करनेवाले को अवश्य ही क्षय-रोग हो जाता है। इस दोष को दूर करने के लिये घर के मुखिया स्वामियों को चाहिए कि वह गृह-देवियों के भोजन पर सदैव दृष्टि रक्खें। किसी समय भी कोई खाद्य पदार्थ घर में आवे, अपने हाथ से बाँटकर परिवार के सब नर-नारियों को दिया करें। नित्य की रसोई में भी इस बात की खोज रक्खें कि स्त्रियाँ पुरुषों के समान भोजन करें और दूध इत्यादि पीवें। इस प्रकार के प्रबंध से उनका शरीर पुष्ट होकर स्वास्थ्य सुधर सकता है।

(ङ) स्त्रियों में क्षय-रोग का बीजारोपण करनेवाला पाँचवाँ कारण है आयुर्वेद-शिक्षा का अभाव। शरीर और चिकित्सा-ज्ञान के अभाव के कारण वह अपने शरीर की कुछ भी बात नहीं समझ सकती। शोक है कि वर्तमान समय में पाठशालाओं में कन्याओं को अनेक ऐसे विषय तो पढ़ाए जाते हैं, जिनसे उनका कुछ भी लाभ नहीं होता, परंतु ज्ञातव्य शरीर-विज्ञान

से वे सर्वथा वंचित-सी ही रहती हैं। अनपढ़ और साधारण स्त्रियाँ तो स्वास्थ्य से हाथ धोए बैठी हैं अशिक्षा के कारण, परंतु दुःख होता है यह देखकर कि उच्च शिक्षिता बहनें पीतवर्ण, मुख मलीन और रोगों का ग्राह बनी हुई दृष्टिगोचर होती हैं।

अन्य कारणों की गणना के साथ भारतीय नारियों में अस्वस्थता का एक मुख्य कारण है स्वास्थ्य ज्ञान का अभाव। शरीर-शास्त्र का ज्ञान न होने से वह यह नहीं समझ सकती कि शरीर के कौन-से अंग कितने उपयोगी हैं, उनकी किस भाँति रक्षा करनी चाहिए, जिससे वह प्राकृतिक अवस्था में रहें। और यदि कारणवश उनमें कोई विकार (रोग) उत्पन्न हो जावे, तो उसे दूर करने के लिये क्या-क्या उपाय करने चाहिए। उपाय न करने से इसका कितना भयंकर परिणाम हो सकता है।

उपर्युक्त ज्ञान के अभाव के ही कारण स्त्रियाँ मिथ्या आहार-विहार करती हैं, और उसी दोष से शरीरों में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। परंतु वह शरीररूपी यंत्र के कल-पुरज़ों को नहीं समझती, इसी का कटु फल भोगना पड़ रहा है। उनके शरीर रोगों के आगार बन रहे हैं, परंतु वह कुछ भी नहीं समझती। स्त्री-रोगों की भयंकरता का मुख्य कारण उनका अज्ञान ही है। साधारण रोगों की कुछ परवा नहीं करती। जब वह भयंकर रूप धारण कर शरीर को जर्जर कर देता है, तब आग लगे पर कुआँ खोदने के सदृश सब प्रयत्न निष्फल हो जाया करते हैं।

रोग और शत्रु का बल बढ़ने देना ही महा अनिष्ट करनेवाला है। यदि रोग के प्रारंभ काल में ही उसका उपाय कर नष्ट कर दिया, तो चला जाता है। परंतु विपरीत इसके अधिक काल तक शरीर में बने रहने से वह शरीर के धातुओं के अंदर प्रवेश करके क्षय का रूप धारण कर लेता है। यही कारण है कि वर्तमान स्त्रियों में क्षय-रोग अधिकता से फैला हुआ है।

इस दोष को दूर करने का सबसे अच्छा यही उपाय दीख पड़ता है कि देश की सब स्त्री-शिक्षा-संस्थाओं में छात्राओं को १ वर्ष तक आयुर्वेद और डाक्टरी मतों के अनुसार स्वास्थ्य के साधारण नियमों का ज्ञान प्राप्त कराने का नियम अनिवार्य कर दिया जाय।

इसके अतिरिक्त एक "अखिल-भारतीय नारी-स्वास्थ्य-रक्षक परिषद्" की स्थापना करें, सब प्रांतों में उसकी शाखा खोली जावे। फिर ज़िले-ज़िले और नगर-नगर में उनकी उपशाखा स्थापित हों। उक्त परिषद् के द्वारा एक वृहद् "नारी-आयुर्वेद-विद्यालय" रहे, जिसके साथ "नारी-औषध-निर्माणशाला", "नारी-रुग्णालय", "नारी-चिकित्सालय" भी रहे। परिषद् की ओर से ऐसे उपदेशक रक्खे जावें, जो रात्रि के समय किसी सार्वजनिक स्थान में नगर की महिलाओं को एकत्रित करके न्यून-से-न्यून दो घंटे शरीर-विज्ञान और स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का उपदेश दिया करें। जो गृहस्थ-स्त्रियाँ स्कूल-कालेजों में जाकर शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकतीं, उनकी ज्ञान-वृद्धि की महती आवश्यकता है, क्योंकि अपनी और बालकों की स्वास्थ्यरक्षा एवं भोजनादि का उत्तरदायित्वपूर्ण भार उन पर है। उनके लिये यही उपाय लाभप्रद हो सकता है।

इस लंबे लेख को लिखने का मुख्य प्रयोजन यही है कि स्त्री-समाज के स्वास्थ्य की दुरवस्था

देखते हुए बड़ी लगन, शीघ्रता और तत्परता के साथ स्त्रियों के स्वास्थ्य का सुधार होना चाहिए। हमारे विचार में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ा हुआ है। अतः इस कारण पुरुषों से अधिक स्त्रियों में इस परमावश्यक आयुर्वेद-ज्ञान की आवश्यकता है। देश की प्रत्येक नारी जब तक स्वास्थ्य के साधारण नियमों का ज्ञान प्राप्त न कर लेगी, तब तक सुधार हो नहीं सकता। महिला-मंडल में जब तक क्षयरूपी घुन लगा हुआ है, तब तक देश शक्ति-संपन्न नहीं हो सकता। देश-हितैषियों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो, यही हमारी सद्-भावना है। अस्तु।

हुक्मदेवी छात्रा

× × ×

६. प्रश्न और उत्तर

खेल रही थी मैं फूलों से, मलयानिल ने करके प्यार,
मुझसे पूछा—कहो कामिनी क्यों करती हो तुम श्रृंगार ?

* * *

स्वर्ण-उषा के गगनाङ्गन से घूँघट-पट को फहराती,
लाखों भोली किरणें निकलीं वयःसंधि में मदमाती।
दूर खड़ी पर्वतमालाएँ लज्जा से तब लाल हुईं।
खिल उठीं रूप के प्रथम ज्वार से, शोभा की वे जाल हुईं।
सारी रात बिता स्वप्नों में लख प्रभात की मृदु मुस्कान,
कलियों ने तब आँखें खोलीं सुनकर अलियों का आह्वान।
अलियों का वह गुन-गुन गाना गूँज उठा उपवन में।
यौवन की वह अस्फुट भाषा गूँज उठी तन में, मन में।

* * *

प्राण-प्रांत के कण-कण में मैं पाती हूँ प्रियतम का प्यार,
इसीलिये हे मृदु मलयानिल ! करती हूँ अपना श्रृंगार।

श्रीरत्नचन्द्र छत्रपति

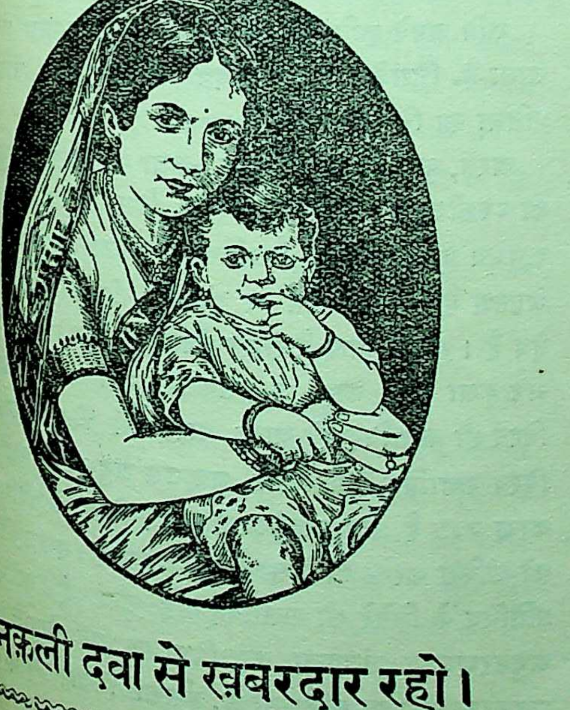

चिड़चिड़ाते कमज़ोर
बच्चे
डोंगरे का
बालामृत
पीने से
तन्दुरुस्त, ताक़तवर, पुष्ट
व आनंदी बनते हैं।

नक़ली दवा से ख़बरदार रहो।

क़स्बे-क़स्बे में बिकता है।

साहित्य और विज्ञान

१. स्वप्न और कवि

स्वप्न की सुषमा प्रकृति-पर्यवेक्षण की सबसे सच्ची और सरस अनुभूति है। इसका आविर्भाव उन क्षणों में होता है, जिन क्षणों का नियामक उनकी वर्णनातीत सरलता ही रहती है। सहृदय इससे जब परिचय प्राप्त करता है, तब उसका सजल हृदय इसके हौले-हौले पलनों के साथ ही उस स्वर्गीय उँचाई की ओर खिंच आता है, जिधर इसकी स्पर्शहीन कोमलता कवि के हृदय पर अपनी एक अमिट छाप छोड़ जाती है। यही कारण है कि किसी भी कवि की सबसे प्यारी-प्यारी चीज़ों के गणनावसर में कनगुलिए का अधिकार इसे ही प्राप्त होता है। प्रायः कोई भी मनचला कवि इसे न भूला होगा और किसी भी कवि का स्वप्न-वर्णन अरण्यरोदन की भाँति प्रभावहीन न होकर, पाठक के अंतस्तल को गुद-गुदाकर ही छोड़ा है। वही गुदगुदी इस लेख का आदि-कारण है। यह विषय मोटी-से-मोटी पुस्तकरूप में आ सकता है। मगर इस लेख में तो इसका दिग्दर्शनमात्र है।

कवि अपने कृति-मुकुर में इसका प्रतिबिंब-मात्र छोड़ जाता है, जिसके सहारे सहृदय पाठक इसकी सर्वांग प्रतिमा का निर्माण करते हैं।

अस्तु, कुछ विद्वानों ने काव्य-कला को 'सरस अनुभव का व्यक्तीकरण' कहकर संबोधित किया है। और सरस अनुभव का सामंजस्य नैसर्गिक जिज्ञासा के साथ ही श्रेष्ठतम है, जिसमें स्वप्न का अंतर्भाव भी समधिक उपादेय है। मगर केवल नैसर्गिक जिज्ञासा तथा सरस अनुभव कला नहीं कहा जा सकता, नहीं तो निखिल विश्व ही कलाविद् हो जाता, वास्तव में किसी अंश में विश्व कलाविद् है भी। ख़ैर, जब उस अनुभव का व्यक्तीकरण कला है, तब व्यक्तीकरण क्या? निसर्ग के प्रतिबिंब को अंकित करना ही उसका व्यक्तीकरण है। हम प्रकृति-प्रतिबिंब के चितेरे को कलाविद् कह सकते हैं, क्योंकि अनुकरणजन्य प्रांजलता का विधायक वह होता है। अनुकरण में क्या प्रांजलता है, इसका विचार इस छोटे लेख में नहीं हो सकता।

अस्तु, उसमें भी सबसे श्रेष्ठ कलाविद् वही होता है, जिसका अनुकरण चित्रण प्रकृति से जितना ही भेदहीन होता है।

अब नीचे के वर्णनों में पाठकगण देखें कि कौन उच्चतम कलाविद् है और किसका वर्णन भेदहीन है।

पहले महाकवि श्रीहर्ष का वर्णन देखिए—

निमीलितादक्षियुगाच्च निद्रया हृदोऽपि बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात्।
अदर्शि संगोप्य कदाप्यवीक्षितो रहस्यमस्याः स महन्महीपतिः ॥

"स्वप्न, बंद आँखों से और मुँदे हुए हृदय से भी छिपाकर, नलरूपी बड़े भारी अदृष्टपूर्व रहस्य को दमयंती के सामने उपस्थित कर दिया।"

वर्णन प्रांजल है, मगर मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि स्वप्न की सारी खूबी क्षण-भर के लिये चमककर छिप गई हो, और श्लोकोक्त रहस्य के सामने स्वप्न का सारा रहस्य फीका पड़ गया हो। क्योंकि कवि ने स्वप्न की बहादुरी दिखलाने के लिये अवतरण-वर्णन में पड़कर स्वयं ही इसे आनुषंगिक कर दिया है, तथापि इसमें अलंकारजन्य महत्ता ही बड़े मार्के की है।

कविता-कामिनी के विलास-स्वरूप कालिदास की सहृदयतारूपी घड़ी की सुई बहुत आगे बढ़ी हुई है। इनका मेघदूत बड़ा सजल है और घन-पटल पर अमर चित्र अंकित करने में इनकी विद्युत् की कूची खूब सफल हुई है। इस नाज़ुक अंदाज़ कवि का संदेश भी सचमुच बड़ा नाज़ुक है। मेरी समझ में कोई सरस पाठक ऐसे न होंगे, जो इसे पढ़ने के बाद लख़्तेजिगर थामकर न बैठ गए हों।

उस वर्णनात्मक श्लोक के सबसे सरस दो उत्तर चरण ये हैं—

"माभूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथञ्चित्।
सद्यःकण्ठच्युतभुजलताग्रन्थिगाढोपगूढम् ॥"

उत्तर-मेघ में यक्ष अपना व्याकुल संवाद बड़े विनीत शब्दों में कह रहा है। वह उपर्युक्त श्लोक के पूर्व दो चरणों में यह कहता है कि हे जलद! उस समय अगर मेरी स्त्री क्षण-भर के लिये ताप से विमुक्त होकर सोई हो, तब तुम अपना मंद्रनाद नहीं करना। क्यों नहीं करना, इसी का भाव इस उत्तर-चरणद्वय में है—

"क्योंकि कहीं स्वप्न में मुझे आलिंगन करती हुई वह तुम्हारे शब्द से जगकर मेरे उस आलिंगन से वंचित न हो जाय, उसकी वह भुजलता कहीं हठात् मेरे कंठ से च्युत न हो जाय।"

कितना दुर्बल हृदय के बल पर खड़ा होकर वह यह विनय कर रहा है और कैसी मधुर पीड़ा की अनुभूति इसमें छिपी है। हाँ, इस श्लोक के भाव को हम और भी कोमलतर एवं पुलकित तब देखते हैं, जब हमें उसी उत्तर-मेघ का एक चरण और याद आता है—

"कान्तोदन्तः सुहृदुपगतः संगमात् किञ्चिदूनः।"

अर्थात् मित्र द्वारा लाया गया प्रियतम का संदेश प्रिय-समागम से थोड़ा ही कम होता है।

अब देखिए स्वप्न की कल्पना कितनी सरस और सुखद की गई है। वह साक्षात् समागम के तुल्य अपने संदेश को जानकर भी कहता है कि उसे जगाकर और स्वप्न-संगम से वंचित करके मेरा यह संदेश भी नहीं कहना। कवि के अनुभव में साक्षात् संगम से भी स्वप्न-समागम का स्थान बहुत ऊँचा है। वह इतनी सरसता, उच्छ्वास और ऋजु-व्यथा का मधुमोद साक्षात् समागम में भी नहीं देखता है। यहाँ कालिदास ने स्वप्न के उन अंगों का सरस स्पर्श किया है, जिनमें अलंकार व्यवधान नहीं है।

एक कवि का स्वप्नलोक ऐसा है—

समायाते कान्ते कथमपि च कालेन बहुना,
कथाभिर्देशानां सखि! रजनिरर्धङ्गतवती।
ततो यावल्लीला कलहकुपितास्मि प्रियतमे,
सपत्नीवत्प्राची दिगियमभवत्तावदरुणा ॥

"बहुत दिनों पर किसी तरह प्राणनाथ के आने पर आधी रात तो परदेश-संबंधी बातचीत करते-करते ही कट गई। इसके बाद उत्तर-रात्रि में जब तक मैं प्रियतम के रति-प्रार्थना पर मान करती हूँ कि तब तक सौत की तरह यह प्राची दिशा आताम्र हो गई।"

इस वर्णन में कोई अवस्था-विशेष विश्लिष्ट नहीं है, अवस्था-विश्लेषण का उत्तरदायित्व सहृदय पाठकों के ऊपर ही है। यह वर्णन सत्य असंगम और स्वप्न-समागम दोनों का हो सकता है। सत्य-समागम का वर्णन मान लेने पर इसे इस तरह अनुप्राणित करना पड़ेगा कि दिवा मैथुन निषिद्ध है, अतएव प्राची की लाली से प्रभात की सूचना मिलने पर चिराभिलषित सूरत में विघ्न होने से नायिका यह कह रही है।

स्वप्नावस्था का वर्णन मान लेने पर यह स्वयं ही अनुप्राणित है। प्रभात के आगमन से नायिका की नींद स्वयं ही खुल गई, जिससे उसका वह प्यारा स्वप्न उसके पीड़ित अंतरतम प्रदेश से हठात् खींच लिया गया।

अब कहिए दोनों में भावुक कौन है। मेरी समझ में तो स्वप्न-वर्णन का जादू हटते ही वर्णन अपनी ही पीड़ा के अवसाद में अपना सारा प्रभाव गँवा बैठता है। और स्वप्न-पक्ष में ऐसा मालूम पड़ता है कि नायिका के हृदय की धीमी आवाज़ सदा के लिये उस स्वप्न में मिल गई हो; उसकी सदयदृष्टि क्रोध से अरुण होकर सपत्नी पर पड़ने के बदले आकुलता से और भी सदय और स्वच्छ होकर धीरे से अपनी सौत प्राची की ओर देख रही हो। इस तरह स्वप्न-वर्णन में भावुकता का नाज़ है और कवि के हृदय का सच्चा अनुभव।

और भी बहुत-से संस्कृत-कवियों के स्वप्न-वर्णन मेरे सामने उपस्थित हैं, मगर लेख कहीं लंबोदर न हो जाय, इस भय से मैं उन पर कुछ प्रकाश नहीं डाल सकता।

अब प्रिय पाठकों से प्रार्थना है कि वे लोग ज़रा अनंत की ओर भी ध्यान दें। अनंतवादी कवियों का भी स्वप्न बड़ा विचित्र है, उनके स्वप्न की रागिनियों से प्रत्येक तारक-दल प्रतिध्वनित हो जाता है। उनका स्वप्न उस मकरंद-कण के समान है, जिसमें अनंत ऋतुराज छिपा हुआ रहता है। पहले पथ-प्रवर्तक रवि बाबू का स्वप्न देखिए—

ऐसे छिल नीरव राते,
वीणा खानि छिल हाते,
स्वपनमाझे वाजिये गेल,
गभीर रागिणी।

"उस समय नीरव रात थी, और उसके हाथों में उसकी वीणा थी, जिसकी मूर्च्छनाओं से मेरा स्वप्न प्रतिध्वनित हो गया।"

यहाँ कवि का स्वप्नलोक वीणा से अनवरत झंकृत होता है। वह अपने स्वप्न के सामने किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहा है। इस स्वप्न में इतनी सरलता नहीं है, बल्कि यह स्वप्न एक बड़ा भारी रहस्य है, जिस पर कवि मुग्ध हो रहा है। फिर कहते हैं—

यदिवा तार पायेर शब्दे
घुम ना भाङे मोर,
शपथ आमार तोरा केह
भाङासूने से घोर।
चाइने जागते पाखीर रवे
न तुन आलोर महोत्सवे,
चाइने जागते हायोयाय आकुल
वकुल फुलेर वासे,
तोरा आमाय घुमुते दिस
यदि इवा से आसे।

"यदि उसके पैरों की आहट से मेरी नींद न खुले, तो शपथ है, उस समय कोई मुझे न जगावे। पक्षियों के कल-कलमय प्रातःकालीन आलोक के महोत्सव में भी मैं निराकुल निद्रा से नहीं उठना चाहता हूँ। यदि मेरा प्रभु द्वार पर आ भी जाय, तो भी शांति को नहीं भंग करना।"

यहाँ प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि कवि को अपनी निराकुल नींद में स्वप्न की बड़ी उत्कट अभिलाषा है। कवि पक्षियों के कलरव और पुष्पों की भीनी-भीनी सुगंध से सराबोर उषा के अरुण अंचल से भी अपने स्वप्न-प्रांत की कल्पना अधिक सुखद और शांत करता है। वह प्रभात के सदृश ही स्वर्णमय और प्रशांत अपने स्वप्न को देखने के लिये बड़ा उद्विग्न हो रहा है। इसी के आगे फिर कहता है—

ओगो आमार घुम जे भाल
गभीर अचेतने,
यदि आमाय जागाय तारि
आपन परशने।
घुमेर आवेश जेमनि टुटि
देखवतारि नयन दुटि
मुखे आमार तारिहासि
पड़वे सकौतुके—
सेयेन मोर सुखेर स्वपन
दांड़ावे सम्मुखे।

"मेरी प्यारी नींद, तू तो उस समय खुलेगी, जब वह तुम्हें स्पर्श करेगा। मेरे मुद्रित नेत्र, तू अपनी पलकें को उसकी मुसकान की ज्योति में खोलोगे, जब वह मेरे सामने स्वप्न के समान आकर खड़ा होगा।"

आख़िर रवि बाबू अपने उद्गार को नहीं रोक सके, उन्होंने जागृतावस्था में ही सपने का निर्माण करना चाहा है। कैसी विचित्र बात है और कवि अपनी बंद आँख और अपने निमीलित हृदय से स्वप्न का साक्षात्कार

करते हैं, तो ये अपनी पलकों को उठाकर ही उसकी बाँकी-झाँकी खींचने की कोशिश में हैं। मालूम होता है कि रवि बाबू स्वप्न की मुसकान-ज्योति में कई बार अपने हृदय को उघारकर देख चुके हैं। देखिए, एक जगह और उन्होंने स्वप्न की कैसी अच्छी उपमा दी है--

आमि भिक्षा करे फिरते छिलेम
ग्रामेर पथे पथे ,
तुमि तखन चले छिले
तोमार स्वर्ण रथे ।
अपूर्व एक स्वप्न सम
लाग्ते छिल चक्षे मम
कि विचित्र शोभा तोमार
कि विचित्र साज
आमि मने भावते छिलेम
ए कोन् महाराज ।

"जब मैं भिक्षा माँगने के लिये एक गाँव से दूसरे गाँव में फिर रहा था, उस समय स्वप्न के समान शोभामय तेरा स्वर्ण-रथ मुझे देख पड़ा। आह, उस समय तुम्हारी कैसी शोभा थी! मेरे मन में यह होता था कि वह राजराजेश्वर कौन है।"

क्या खूब, वह रथ तो स्वप्न के समान शोभामय था, वह ठीक स्वप्न के समान ही अपने आलोक में अपनी विचित्रता को बिखेरता हुआ धीरे-धीरे चल रहा था और जिस प्रकार स्वप्न जीवन के क्षणों को अपनी ही अज्ञानता से एकदम परिवर्तित कर देता है, उसी तरह उस रथ के दर्शन से कवि का दरिद्र जीवन सहसा एक अद्भुत आह्लाद में परिणत हो गया।

अस्तु, यह तो मैं पहले ही कह चुका हूँ कि ऐसे कवियों के स्वप्न का भावात्मक नियमित विश्लेषण करना मकरंदकण में व्यापक तथा विनोदमय मधुमास को ढूँढ़ निकालना है। कवि की विस्मृत दशा से निकले हुए इन असमबद्ध ध्वनिमय स्वरों को एक भावात्मक वृत्त में काट-छाँटकर एकदम सुशृंखलित करना वास्तव में टेढ़ी खीर है। तो भी इनके स्वप्न में जो ज्योत्स्ना की तरह एक अजानता और नीरव पूर्णिमा निशीथ की तरह अपरिमेय सौंदर्यानुभूति तथा समीर की तरह जो एक सरस सनसनाहट है, उसे प्रत्यक्ष करने की चेष्टा मैंने की है।

अब हिंदी-प्रेमी अपने संसार का भी अनोखा सपना देख लें। इन सपनों से तो उनका परिचय पूरा हार्दिक और पुराना है, तो भी इस छोटी कसौटी पर अन्य स्वप्न स्वर्ण की रेखाओं की पंक्ति में अपने सोने की लीक को भी समालोचनात्मक दृष्टि से देखें।

पंतजी ने सचमुच पल्लव के उमड़ते हुए वसंत द्वारा हिंदी-साहित्य के शिष्टाचार में एक बहुत बड़ा युगांतर ला खड़ा कर दिया है। उनकी स्वप्न कोकिला की तान शांत रजतराका में अपने छोटे-से नीड़ से छन-छनकर तुहिन-कणों के साथ संपूर्ण साहित्याकाश में व्याप्त हो गई है। वे अपने दिमाग़ के अंदर घुसते ही स्वप्न को अपने आलोक में अपना सौंदर्य न बिखेरने देकर अपने जादू से उसे तुरंत बेहोश कर दिए हैं। इस तरह बेहोश होकर उनका सुंदर स्वप्न स्वयं एक अजान स्वप्न देखने लगा है। जैसे--

जब शशि की शीतल छाया में
रुचिर रजत-किरणें सुकुमार
प्रथम खोलतीं नव कलिका के
अंतःपुर के कोमल द्वार ,
अलिबाला के सुन तव सहसा
जग है केवल स्वप्न असार
अर्पित कर देतीं मारुत को
वह अपने सौरभ का भार ,
हिम जल वन, तारक पलकों से
उमड़ मोतियों से अवदात ,
सुमनों के अधखुले दृगों में
स्वप्न लुड़कते जो नित प्रात ,
उन्हें सहज अंचल में चुनचुन ,
गूँथ उषा किरणों में हार
क्या अपने उर के विस्मय का
तूने कभी किया शृंगार ?

जैसे कलियाँ अलिबाला से यह सुनकर कि जग केवल असार स्वप्न है, अपना सौरभ मारुत के चरणों में चुपचाप अर्पित कर देता है; उसी तरह स्वप्न-जैसे कवि के मुँह से अपना नाम सुनकर सारा सरल सौंदर्य कवि के चरणों में अर्पित कर देता है। अगर सुमनों के अधखुले नयनों से नितप्रति स्वप्न लुड़कते हैं, तो स्वप्न के अधखुले हृदय में भी पंतजी नित दिन नवीन स्वप्न का उन्मेष

देखते हैं। पुष्पों के अधखुले नयनों में रहनेवाले स्वप्न उस तारक पलक से निकले हैं, जो स्वयं एक स्वप्न है।

"कवि राष्ट्र का निर्माता है" इस सिद्धांतवादी पंतजी के स्वप्न में भी एकाध जगह जागृति की बू है--

जग के निद्रित स्वप्न सजनि ! सब
इसी अन्धतम में बहते,
पर जागृति के स्वप्न हमारे
सुप्त हृदय ही में रहते ;

ठीक है, आख़िर पंतजी भी तो बीसवीं सदी के एक वाणी के वरपुत्र हैं।

पंतजी में सबसे अधिक तो इस शक्ति का उन्मेष है कि वह किसी भी भाव को रूपक उपमाओं की घाट उतारकर और नाप-तोलकर कोमल-से-कोमल और सुंदर-से-सुंदर बना देते हैं। उसी तरह यहाँ उद्धृत जागृति को भी पंतजी ने कोमलतर बना दिया है। सच बात तो यह है कि आप किसी भी विषय में स्वप्न जोड़िए, वह ख़ुद नाज़ुक हो जायगा।

यह लेख यहीं समाप्त होता है, पाठक वर्णन में उत्तम कला और कलाविद् को हमसे न कहवाकर स्वयं ढूँढ़ निकालें।

जयकिशोरनारायणसिंह

× × ×

२. इंजिनियरिंग

इंजिनियरिंग की परिभाषा पाश्चात्य कोष में इस प्रकार दी गई है– इंजिनियरिंग एक वृत्ति (Profession) है और इस नाते से यह वृत्ति क़ानून (Law) और वैद्यक (Medecine) वृत्तियों की समकक्ष है। इसका व्यापार (Trade) से घना संबंध होने पर भी यह व्यापार से भिन्न है। यद्यपि आजकल यह आधुनिक व्यवसाय (Business) की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बन गई है; परंतु इसे हम व्यवसाय भी नहीं कह सकते। भौतिक शास्त्र (Physics), रसायन-शास्त्र (Chemistry) और गणित (Mathematics)—इन सच्चे विज्ञानों के नियमों और खोजों पर पूर्णतः निर्भर रहने पर भी यह विज्ञानों से पृथक् वृत्ति है।

इंजिनियरिंग की उपर्युक्त परिभाषा को अधिक सरल और समझने योग्य बनाने के लिये हमको यह बतलाना आवश्यक है कि इस वृत्ति का उपयोग कहाँ-कहाँ होता है। इंजिनियरिंग का संबंध मनुष्य के लिये काम के नए नए क्षेत्रों का आविष्कार (Creation of services) और सार्वजनिक हित की वस्तुओं (Things for public use) के उपयोग में लाने का है। इस वृत्ति के उपयोग का मुख्य ध्येय नवीन प्रकार की, पहले से उन्नत और अधिक उपयोगी तथा अधिक सस्ती वस्तुओं के आविष्कार में उपर्युक्त सेवाओं व कार्यों को सरल बनाना है। इंजिनियरिंग का प्रयत्न सदैव विज्ञान के सब आविष्कारों (Discoveries) व खोजों (Researches) का मनन करके यह उद्योग करना है कि इनमें से कौन-से उपयोग व नियम उसकी किस नवीन वस्तु के निर्माण में कहाँ तक लाभदायक सिद्ध होंगे अथवा इनकी सहायता से हम किस प्रकार किसी वस्तु को तैयार करने में प्रचलित रीति से अच्छी व सुगम रीति जानकर सार्वजनिक आवश्यकता को सरल रूप में पूरा कर सकते हैं।

किसी वस्तु की प्राकृतिक अवस्था को, ऐसी तरकीब से जिससे कुछ उन्नत ढंग निकल आवे, प्रयोग-योग्य दशा में बदलना तथा उसकी व्यापारिक सफलता में सहायता देना तथा इसके साथ-साथ किसी नवीन वस्तु को सबसे अधिक किफ़ायत से तैयार करना यह वास्तव में (Strictly speaking) इंजिनियरिंग का काम है। इसमें इंजिनियर इन सब कामों में अपना उन कामों में से एक व अधिक आवश्यक (Important) या अधिक गूढ़ (Complecated) भागोंवाले दल (Interprize) के मार्गदर्शक वा शिल्प विशेषज्ञ (Technical expert) का काम करता है।

इस प्रकार इंजिनियरिंग वृत्ति दूसरे समूहों के कार्य-क्षेत्रों के बीच की श्रृंखला बन जाती है और इस प्रकार इसके क्षेत्र में सब व्यापारों का समावेश हो जाता है। मज़दूर और दक्ष-परिश्रम (Labour and skill) जो इंजिनियर के बनाए कार्य-क्रम व नक़शे के अनुसार असली काम करते हैं, साहूकार (Bankers) जिनका प्रबंध शिल्प-उद्योगों के लिये एक आवश्यक अंग है, व्यापारी जो माल बनानेवाले और उनके उपयोग में लानेवाले के बीच में काम करते हैं और सार्वजनिक हित से जिनका प्रति

संबंध है, राजतंत्र (Government) के उपयुक्त विभागों तथा औद्योगिक समितियाँ—इन सबके बीच में इंजिनियर का अपने विषय के विशेषज्ञ के नाते तथा उपयुक्त ज़ंजीर की एक आवश्यक कड़ी होने के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इंजिनियर के कुछ गुण वा विशेषण इस प्रकार बतलाए जा सकते हैं कि इंजिनियर सबसे अधिक मननशील, शांत, स्वच्छ, दूसरों को संतुष्ट करनेवाला (Satisfying), निःस्वार्थ खिलाड़ी है और उसका खिलवाड़ प्रकृति को उसी रूप में मनुष्य की सेवा के लिये तैयार करना है जिस प्रकार पुरुष को अपने सहयोगियों के साथ काम करते हुए परस्पर एक दूसरे को सहायता पहुँचाते हैं तथा अपने कर्तव्य को पूरा होते देख प्रसन्न होते हैं कि इसी प्रकार इंजिनियर आपकी सहायता व सेवा के लिये तैयार करने का खेल खेलता है और यह खेल संसार के सब खेलों से अधिक महत्त्व का उत्साहवर्द्धक और आनंददायक है।

व्यक्तिगत कार्य-क्षेत्र का इतना अधिक विस्तार होने पर और आधुनिक उन्नत जातियों के प्रत्येक क्षेत्र में इस प्रकार एक आवश्यक अंग होने पर भी यह एक आश्चर्यजनक बात है कि जनता के शिक्षित समूह का एक बहुत ही छोटा भाग यह अनुभव करता है कि इंजिनियरी का इतना महत्त्व और ऐसी विशेषताएँ हैं।

इंजिनियर की इस स्थिति के बहुत-से कारण दिए जा सकते हैं। परंतु उन सब कारणों में कदाचित् सबसे अधिक ज़ोरदार दलीलें इस प्रकार से ही हो सकती हैं कि इंजिनियर अपनी वृत्ति के लिहाज़ से काम करते समय मुख्य संचालक का ख्यातियोग्य स्थान लेकर उसके एक सहायक का स्थान ग्रहण करता है। वह किसी कार्य के निर्माण में वा किसी विभाग (Undertaking) के मार्गदर्शक के नाते किसी अन्य व्यक्ति, समिति अथवा राज्य के किसी अंग-विशेष के लिये काम कर रहा है और साधारण शिक्षित जनता केवल संचालक का नाम ही सुनती व जानती है, उसके सहायक का नहीं।

इस स्थिति का दूसरा कारण (Explanation) इंजिनियर की अपनी प्रकृति में मिल सकता है—जो कि मुख्यतः मनुष्यों के स्थान पर मुख्यतः वस्तुओं, पदार्थों और प्रकृति की शक्तियों (Forces of Nature) से संबंध रखने के कारण उन महत् प्राकृतिक विषयों में जिनके प्रयोग का वह प्रयत्न करता है तथा किसी उन्नति व अधिक लाभदायक रूप में सफल बनाने की धुन में इतना लाभ होता है कि उसने अपनी प्रकृति को व्यक्तिगत रूप से निःस्वार्थ बना लिया है और उसके परिणामस्वरूप से उसमें बातचीत करने के लिये अरोचकता उत्पन्न हो जाने के कारण उसका मन व्यर्थ बातें करने में समय नष्ट करने की ओर से घृणा करने लगता है। उसका अपना कर्तव्य और कार्य-क्षेत्र इतना महत् और विस्तृत और चित्ताकर्षक (Absorbing) है कि उसके आगे के काम का शब्दाडंबर(Mere words) बहुत तुच्छ (Trivia) है और इनमें पड़ना उसे अपने आवश्यक और बहुमूल्य समय का दुरुपयोग-मात्र ज्ञात होता है।

उसके लिये क्रियात्मक विज्ञान व इंजिनियरिंग के सिद्धांतों की प्रत्येक नवीन खोज, प्रत्येक आविष्कार व कार्य को सरल बनानेवाला प्रत्येक उन्नत ढंग (Emproved Method) आविष्कारों, सिद्धांतों, तरीक़ों और लाभदायक पदार्थों के एक नए कुटुंब के जन्मदाता हैं, और इन कार्यों की सफलता का रहस्य प्रतिवर्ष सिद्धांतों की वृद्धि और उनके लाभदायक कार्यों का बढ़ना है। इस सबके फल-स्वरूप इंजिनियरिंग का क्षेत्र एक बड़े उत्तरोत्तर वेग से (Acceleating rate) रेखागणित की वृत्ति (Arithmetical profession) के अनुसार अथवा चक्र-वृद्धि व्याज की मूलधन की वृद्धि के समान बढ़ रहा है। इस धारणा ने इंजिनियर को अपनी वृत्ति में लगे रहने तथा अपने कार्य को एक परिमित विभाग की सीमा में किसी एक मनुष्य का उस विषय का असली विशेषज्ञ होना संभव हो सकता है। इंजिनियरिंग वृत्ति के अलग-अलग इतने विभागों का क्या कारण है, इसका उचित उत्तर शायद ऊपर के कथन से मिल जाता है। इस प्रकार यह वृत्ति अपने अलग-अलग विभागों में विभाजित हो गई है और इनमें से प्रत्येक विभाग अब भी बढ़ रहे हैं और इस बात को मानने के काफ़ी कारण मौजूद हैं कि भविष्य में इन विभागों के और भी बहुत-से विभाग होंगे।

इंजिनियरिंग के मुख्य मोटे विभाग

इस समय यह वृत्ति चार बड़े भागों में बँटी हुई है।

१—माइनिंग व मैटिलरजिकल (खनिज) इंजिनियरिंग
२—सिविल इंजिनियरिंग
३—मिकैनिकल ,,
४—इलैक्ट्रिकल ,,

१—खनिज इंजिनियर का काम खनिज पदार्थों की खोज करना है। यथार्थ शब्द में खान से निकलनेवाले सब प्रकार के जलनेवाले वा ईंधन का काम देनेवाले पदार्थ, जैसे कोयला, मिट्टी के तेल की भिन्न-भिन्न क़िस्में जैसे पैट्रोल, मिट्टी का तेल, क्रूड आइल, लुब्रीकेटिंग आइल, Fuel oil (ईंधन की भाँति प्रयोग होनेवाला तेल) सब धातुओं के प्राकृतिक रूप (Ores) आ जाते हैं। खनिज इंजिनियर का मुख्य और विशेष काम और उन पदार्थों को भूगर्भ से निकालने के सबसे सस्ते तरीक़े को खोजना तथा उनको प्रयोग में लाने के सबसे सस्ते तरीक़े को खोजना तथा उनको प्रयोग में लाना है। इसके बाद उन पदार्थ-विषयक ज्ञान है जिसमें प्रयोग और विधियाँ उनको पृथ्वी से निकालने से लेकर प्रयोग के लिये बाज़ार में लाने तक होती हैं। उन सबकी देख-रेख और परिचालन का काम इस वृत्ति के भाग का है। इन पदार्थों में से कुछ पदार्थों के विषय वह उन पदार्थों के तैयार करने के तरीक़े में उन्नति करने का काम भी करता है अर्थात् ऊपर कहे अनुसार उसका मुख्य उद्देश्य इन तरीक़ों में इस प्रकार की उन्नति करना रहता है जिसमें कि वह कम-से-कम ख़र्च करके अधिक-से-अधिक लाभ देनेवाली व अधिक-से-अधिक मूल्यवान् वस्तु बना सके। इसी में धातुओं को प्राकृतिक (Ores) में प्राप्त करना और उस मिश्रित प्राकृतिक पदार्थ के प्रत्येक भाग को आवश्यक अंश में शुद्ध करके उनको व्यवहार में आनेवाली धातुओं में बदलना तथा उन धातुओं के प्रयोग में आनेवाले (Standard) की शकलों तथा नाम में बदलना यह सब इस विभाग का काम है।

२—सिविल इंजिनियर—बड़े-बड़े सार्वजनिक भवनों, मार्गों, रेल की सड़कों, पुलों, पर्वतगर्भ के मार्गों (Tunnels), नदियों व जहाज़ों के बंदरगाहों, नहरों जल के प्रयोग-स्थान में पहुँचाने व गँदले जल को हटाने जिसमें बड़े पैमाने का स्वास्थ्य-विभाग भी सम्मिलित है और ऊबड़-खाबड़ पृथ्वी को मनुष्यों के रहने योग्य बनाने (Improvement of Towns) और इसी प्रकार के दूसरे भवनों अथवा अन्य निर्माण-कार्य के नक़्शे बनाना तथा उनकी सहायता से उसमें जो व्यय होगा, उसका अनुमान करना इन कामों की मज़बूती का ध्यान रखकर सस्ते-से-सस्ता बनाना इस भाग के इंजिनियर का काम है।

३—मिकैनिकल इंजिनियर—यह सब प्रकार की मशीनों और औज़ारों से संबंध रखता है। इसका काम मशीनों और औज़ारों (Tools and implements of apperatus) को बनाना व उनमें से कम-से-कम ख़र्च करके अधिक-से-अधिक काम निकालना तथा धातुओं के बने सब औज़ारों के विषय में पर्याप्त जानकारी रखना है। इसमें शक्ति-उत्पादक (Power generating) के लिये किसी भी जलनेवाली वस्तु की शक्ति को व किसी ऊँचे जलस्रोत की शक्ति को लाभदायक कार्य के रूप में बदलना तथा वे मशीनें जो किसी काम के लिये शक्ति का उपयोग करती हैं जैसे कपास से आरंभ करके उसको कपड़े के रूप में बदलने व रँगने आदि के बीच में जितने प्रकार की मशीनों का उपयोग होता है। सिगरेट बनाने व उसकी डिब्बियाँ छापने की मशीनें, धातुओं व लकड़ी के काम में जो मशीनें व औज़ार व्यवहृत होते हैं। कोई मशीनें जो किसी ख़ास मतलब के लिये जैसे पानी के पंप, बर्फ़ जमाने की मशीनें, कमरे व अन्य वस्तुएँ गर्म करने व शुद्ध हवा के परिचालन (Ventilation) की मशीनें तथा इंजीनियरिंग के दूसरे भागों की मशीनों की आवश्यकताओं को समझना व पूरा करना, उदाहरणार्थ खानों में, आदमियों को भूगर्भ में काम के स्थान पर पहुँचाना व माल को ऊपर लाना, धातु गलाने के पंखे और मशीनें बनाना तथा इस विषय के रासायनिक प्रयोग के लिये मशीनें बनाना व चलाना यह सब मिकैनिकल इंजिनियर का काम है। इन सबके अतिरिक्त इस भाग में सबसे अधिक आवश्यक और बड़ा विभाग वस्तुओं व मनुष्यों का इधर-से-उधर ले जाना, जिसमें इंजिन, सवारी व मालगाड़ियाँ, मोटरकारें, मोटरशिप, मोटरबोट व वायुयान बनाना तथा इसके साथ-साथ इन सबकी मरम्मत करना व चलाना यह सब इस विभाग में शामिल है।

४—इलैक्ट्रिकल इंजिनियर—जैसा इसके नाम से प्रकट है। वह सब काम व मशीनें, जिसमें बिजली व चुंबक-शक्ति का प्रयोग होता है, इस विभाग में आती हैं। इलैक्ट्रिकल इंजिनियर विजली व चुंबक-शक्ति-विषयक सब सिद्धांतों के उपयोग का भार लेता है । ऐसी नई मशीनें बनाना व प्रचलित मशीनों में परिवर्तन करना जिससे सबसे अधिक क्रियात्मक व सस्ता फल मिले तथा उन मशीनों से कम ख़र्च में अधिक-से-अधिक काम करवाना यह मूल-उद्देश्य रहता है । इस विभाग की मशीनें डाइनमों (Electric generators of Dynamos) बिजली प्रवाहित करानेवाली मशीनें जिनसे इंजिनपाटर-वाहन की साधारण शक्ति बिजली की शक्ति में बदली जाती है विजली के मोटर (Elctric motor) जो बिजली की शक्ति को फिर साधारण शक्ति (Elctric gnerators) की शक्ति का सम्मेलन करके उस शक्ति को अलग-अलग स्थानों पर काम करनेवाले कई मोटरों में फिर (Mechanical power) साधारण वाहक शक्ति में बदला जाया करता है ।

शक्ति के बिजली के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के प्रयोग में उस विस्तृत रीति का समावेश ही आ जाता है जिससे कई बड़े-बड़े एक दूसरे से बड़ी दूरी पर स्थित केंद्रीय शक्ति-भंडार (Centre power stations) एक दूसरे से अपनी शक्ति का संबंध रखते हैं और जिनका संबंध फिर भिन्न-भिन्न स्थानों पर मोटरों के व दूसरे रूप में शक्ति के प्रयोग स्थानों से रहता है । इन सबका संचालक इलैक्ट्रिकल इंजीनियर होता है । इसके अतिरिक्त ऐसी अनगिनती बिजली की मशीनें और औज़ार गिनाए जा सकते हैं, जो बिजली का उपयोग करते हैं ; परंतु मोटर और डायनमों से भिन्न हैं। इस विभाग में बिजली से गर्मी पहुँचाने का क्षेत्र आता है, जिसमें शिल्प की बड़ी-बड़ी भट्टियाँ, आजकल प्रकाश का चित्ताकर्षक आधुनिक अंग बिजली के लैंप, आदि शामिल हैं । पाश्चात्य देशों में सब घरेलू काम जैसे खाना बनाना, कपड़े धोना, बाल बनाना, जाड़ों में पहनने के कपड़े व घर गर्म करना आदि बहुत-से काम अधिकतर इसी शक्ति से होते हैं और अनुमान किया जाता है कि संसार में इस शक्ति की सुविधाओं से बहुत लाभ उठाने के लिये क्षेत्र है । अंत में इसका सबसे आवश्यक और सबसे अधिक लाभदायक विभाग जिसमें दूसरी किसी वृत्ति को कभी इतना सफलता नहीं मिली वह समाचार का एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के काम में बिजली का प्रयोग करना है । बिजली की ही सहायता से बेतार की तारबर्की, टेलीफ़ोन आदि कार्य करते हैं, जिनका कि श्रेय इलेक्ट्रिकल इंजिनियर को है ।

शिवशरणसिंह

पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी की लिखी
हुई दोनों पुस्तकें प्रत्येक गृहस्थ
को मँगाकर अवश्य पढ़नी चाहिए।

धर्मशिक्षा
मूल्य १)
गार्हस्थ्यशास्त्र
मूल्य १)

पता—तरुण-भारत-ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग ।

जीवन-ज्योति

१. अनीश्वरवाद और ईश्वर

माधुरी के एक विशेषांक में मिश्रबंधुओं का "ईश्वर और अनीश्वरवाद"-शीर्षक लेख निकला है, जिसमें ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। लेख के अंत में विद्वान् लेखकों ने इच्छा प्रकट की है कि इस विषय के खंडन-मंडन में और भी लेख निकलें। यह केवल एक आकस्मिक योग है कि मुझे किसी मत-विशेष के मंडन में कुछ न लिखकर खंडन में ही लिखना पड़ रहा है। नहीं तो, उक्त लेखक-द्वय के प्रति मेरे हृदय में बड़ा आदर-भाव है।

लेख के आरंभ में लेखक महाशयों ने चार पंक्तियाँ स्वरचित पद्य में लिखी हैं, मेरे मत से ये पंक्तियाँ बड़ी ही अद्भुत, उच्छृंखल और अप्रातिभ हैं। विचार कीजिए — पहिली पंक्ति है—

"सब ईश्वर और अनीश्वरवादी, मान बहुत कुछ लेते हैं।"

क्या यह आकाश और पाताल का विचित्र समीकरण नहीं है? ईश्वरवादी निस्संदेह सब कुछ मान लेते हैं, क्योंकि विना माने उनका काम ही नहीं चलता। एक ईश्वर को "मान लेने" से अनेक शंकाओं के समाधान के लिये "बहुत कुछ" और भी "मान लेना" पड़ता है, जिस प्रकार कि एक झूठ बोलकर उसको पुष्ट करने के लिये अनेकों झूठ बोलना पड़ता है। (पाठकगण क्षमा करें। यह दृष्टांत केवल सरल होने के कारण लिखा गया है, द्वेष-बुद्धि से नहीं।) अनीश्वरवादी तो इसी "मान लेने" के सिद्धांत के ख़िलाफ़ होने के कारण ईश्वरवादी नहीं हो सकता। यदि वह "मान लेने" पर ही रुजू होता, तो ईश्वर को "मान लेने" में उसे आपत्ति ही क्या थी? यह "मान लेना" तो ईश्वरवादियों के ही हिस्से में आया है। दूसरी पंक्ति है—

"पर भोलेपन को अधिक अनीश्वरवादी आश्रय देते हैं।"

यह तो मानो "ऊँट को बिलैया ले गई है।" कोई बात केवल इसलिये स्वीकार कर ली जावे कि वह किसी प्राचीन ग्रंथ में लिखी है, अथवा किसी आधुनिक पत्रिका में छपी है, अथवा माता, पिता, गुरु, बांधव तथा मुहल्ला पड़ोस के ऐसा मानते हैं—यह भोलापन होगा अथवा यह कि जब तक वह उसी प्रकार शुद्ध तर्क से

सिद्ध न हो जावे जिस प्रकार कि गणित अथवा रसायन-शास्त्र की कोई समस्या—तब तक उसे न मानना ? ईश्वरवादी अधिक शंका न करके, अधिक खोज न करके "बाबा वाक्यं प्रमाणं" से ही ईश्वर का अस्तित्व और उसकी सत्ता श्रद्धापूर्वक मान लेता है। यह भोलापन हुआ अथवा अनीश्वरवादी का लोकमत की कुछ परवा न करके विना अकाट्य प्रमाणों के ईश्वर अथवा किसी विषय को स्वीकार न करना ? इस ग्रह पर रहनेवाली अधिकांश जनता विचारशील और मननशील नहीं हुआ करती। वह भूख और प्रेम की तुष्टि के लिये उन साधनों में अधिक में रत रहती है, जिनसे कि उसका अनिवार्य संबंध रहता है। कुछ थोड़े से लोग ही विचारशील हुआ करते हैं, और बाल की खाल निकालने में धुन के ऐसे पक्के होते हैं कि वे अपने-आपको और अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को सत्य की खोज में गला देते हैं। वे दारिद्र्य, उपहास, अप्रेम और बहिष्कार की कुछ चिंता न करके नासमझ समाज का कठिन-से-कठिन दंड सहन करते हैं। यह सब किस लिये ? केवल इसलिये कि वे सहसा किसी बात को मान लेना अनुचित समझते हैं। यदि गैलीलियो ने सामाजिक विरोध और उसके द्वारा मिलनेवाली यातना की कुछ चिंता की होती, तो क्या आज हम यही न समझते होते कि पृथ्वी चपटी है ? यदि हार्वे ने लोकमत का कुछ भी लिहाज़ किया होता, तो संसार के सामने यह कौन सिद्ध करके दिखाता कि शरीर में रक्त की गति परिक्रमणशील होती है ? और क्या शस्त्र-चिकित्सा की विस्मय-जनक उन्नति का एक ज़बर्दस्त पाया नदारद ही न होता ? यदि चार्ल्स डारविन अपने देश की दार्शनिक असहिष्णुता के इतिहास से डर गए होते, तो विकासवाद का सुंदर, व्यापक, अकाट्य और विलक्षण सिद्धांत आज कहाँ होता ? और यदि वाट् और स्टीफ़नसन ने ही असाधारण उत्साह और सामाजिक विरोध की तीव्र अवहेलना का प्रदर्शन न किया होता, तब क्या संसार में स्टीम-एंजिन द्वारा प्राप्त हुई व्यापार की सुलभता, और समाज को उससे प्राप्त हुआ वैभव, उत्कर्ष और समृद्धि हमें नसीब होती ? इन दृष्टांतों से प्रयोजन यह है कि सत्य की खोज चाहे वह वैज्ञानिक हो या दार्शनिक "मान लेना" वालों के हिस्से में नहीं आ सकती। देखिए। भोला (?) अनीश्वरवादी क्या करता है, वह आकाश के अनंत प्रदेश को भीमकाय दूर-दर्शक यंत्रों से देखता है, वह पृथ्वी से अगणित और कल्पनातीत दूरी पर स्थित ग्रहों का स्वरूप, अवस्था (उम्र) वज़न और गति तथा परिभ्रमण का क्रम बता दे सकता है। परंतु, बेचारा मजबूर रह जाता है। वहाँ उसे ईश्वर का अस्तित्व मानने का कोई कारण नहीं दिखता। स्थूल-से-स्थूल व्यापार और जगत् को देखकर जब वह ईश्वर को नहीं पाता, तब वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म जगत् की खोज करने के लिये अणुवीक्षण-यंत्र (माइक्रासकोप) का सहारा लेता है। जब यहाँ भी ईश्वर के अस्तित्व का लक्षण नहीं दिखाई देता, तब वह रश्मि-विश्लेषक यंत्र (स्पेक्ट्रास्कोप) से काम लेता है, परंतु ईश्वर की आभा उसे उसमें भी दिखाई नहीं पड़ती। अब वह अपनी रसायनशाला में अपने थर्मामीटर, टेस्ट-ट्यूब और क्रूसेबिल में सिर खपाता है और जहाँ वह संसार को अपनी खोजों द्वारा अनेक अमूल्य वैज्ञानिक सत्य और व्यवहारोपयोगी अनेक नई-नई सामग्रियाँ देता है, वहाँ ईश्वर के विषय में लाचारी दरजे यही कहता है कि जहाँ तक मैंने खोजा और जहाँ तक मेरी कल्पना और अनुमान काम कर सकते हैं, ईश्वर के अस्तित्व का अथवा उसकी सत्ता वा उपयोगिता को मान लेने के लिये मुझे कहीं थोड़ा-सा भी सहारा नहीं मिलता। कार्य और कारण का चक्र कहीं अंत होते नहीं दिखता। कल जो बात अत्यंत गूढ़ थी, आज अत्यंत सरल और स्पष्ट ज्ञात होती है। यही सब है न अनीश्वरवादियों का भोलापन ? वाहरे भोलापन ! अब तीसरी पंक्ति की बहार देखिए—

"यदि कहो कि हम ऐग्नास्टिक हैं तो चारा चरो सहर्ष"

यह तो मैंने भी सुना है कि दार्शनिक विषयों पर चर्चा करनेवालों की बुद्धि अक्सर चरने चली जाया करती है। पर यहाँ तो यह समझने के पहले ही कि ऐग्नास्टिक दरअसल है क्या बला—उसका सत्कार करना आरंभ कर दिया। ऐग्नास्टिक हुआ करते हैं "संदेहवादी"। संदेहवादी का अर्थ यह है कि वे सहज विश्वासी नहीं होते, और न किसी तत्त्व के शोध में वे निश्चेष्ट होकर आलस्य अथवा बुद्धिहीनता के कारण ही अपना निश्चित मत नहीं देते। वे किसी वस्तु पर

अपनी राय देखादेखी क़ायम नहीं कर देते, साथ ही हठधर्मी भी नहीं करते। संसार का सबसे बड़ा विद्वान्, अथवा सबसे प्रभावशाली लोकमत ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करे, या न करे ऐग्नास्टिक पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बुद्धिरूपी दीपक के प्रकाश में जब तक वह किसी विषय का स्वरूप सम्मुख नहीं देख लेता, तब तक मजबूरन् उसे वह बात अस्वीकार ही करनी पड़ती है। परंतु वह अत्यंत विनयशील और सहिष्णु होता है। वह विषय की गहनता और अपनी बुद्धि की परिमितता तथा साधनों की न्यूनता को स्वीकार करता है, और ईश्वरवादियों को यह संदेश देता है कि यदि किसी सुंदर प्रभात में मनुष्य अपने मस्तिष्क का विकास इतनी उन्नत दशा में प्राप्त हुआ पावे कि विशुद्ध तर्क द्वारा ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध किया जा सके, तो केवल वह ही नहीं, संसार की समस्त चारा चरनेवाली अतिथि-सेना ईश्वरवादी ही होगी और होगी कट्टर और निर्भ्रांत अपने नए विश्वास में। सारांश यह कि संदेहवादी ईश्वरवादियों का विरोध न करके, हठधर्मी और कुतर्क से दूर रहकर केवल उतनी ही बात स्वीकार करते हैं, जितनी कि उनकी समझ में आती है। कहिए, इससे अधिक न्याय्य विचार क्या हो सकता है? और क्या हो सकता है इससे अधिक बुद्धि-स्वातंत्र्य और दार्शनिक सहनशीलता; जिसका पुरस्कार उन्हें—सहर्ष चारा चराकर दिया जाता है। चौथी लाइन में तो गर्वोक्ति फूटी पड़ती है, मुलाहज़ा फ़रमाइए—

"पर अपनी बुद्धि-विभव का दिखलाओ फिर मत उत्कर्ष"

जो आज्ञा, पर क्या इसीलिये कि ईश्वरवाद का मंडन करने को आपको मैदान ख़ाली मिल जावे? अथवा आपको भय है कि कहीं आपको भी ऐग्नास्टिक न होना पड़े। मैं समझता हूँ कि कोई भी विचारशील मनुष्य किसी विषय पर मतभेद होने के कारण शिष्टाचार से इतनी दूर नहीं हट सकता। प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह अपनी "बुद्धि-विभव का उत्कर्ष" दिखलावे, ठीक उसी न्याय से जिससे कि आपने दिखलाया है।

मज़ा यह है कि आप फ़रमाते हैं कि "हमारी (निस्संदेह आपकी और फिर आपकी, सिवा आपके और कौन ऐसी पंक्तियाँ लिख सकता है?) उपर्युक्त चार पंक्तियों से हमारा जो कुछ मत इस गहन विषय पर है वह पूर्ण रूप से व्यक्त हो जाता है।" कुर्बान जाऊँ इस "पूर्णता" पर और इस "मत" पर।

हमें आश्चर्य होता है कि उक्त चार लकीरों के रचयिताओं ने आगे चलकर इसी लेख में लिखा है कि "ईश्वरास्तित्व जैसे कठिन विषय को कोई ऐसा हस्तामलक नहीं कर सकता कि उसके एक-एक रग-रेशे से पूर्ण अभिज्ञता प्राप्त कर ले, और संसार एवं ईश्वर-संबंधी और कोई भी ऐसा जटिल प्रश्न न रह जावे कि जिसका अत्यंत सरल एवं बुद्धि ग्राह्य प्रमाणों से पूर्णोत्तर न दिया जा सके।" फिर कुछ "बुद्धि का उत्कर्ष" दिखलाकर लेख समाप्त करते-करते आपने लिख मारा है कि "इन कारणों से जान पड़ता है कि ईश्वर अवश्य है और अनीश्वरवादिता के प्रमाण ठीक नहीं जँचते" मगर बंदानवाज़! अनीश्वरवादिता के वे कौन-से प्रमाण हैं जो ठीक नहीं जँचे, आपने तो एक का भी ज़िक्र नहीं किया। बल्कि यों कहिए कि दावा पेश होने के पहले ही मुक़द्दमा खारिज कर दिया। आप यह भी कहते हैं कि "न्यायपूर्वक एवं बुद्धिग्राह्य प्रमाणों से देखने पर अनीश्वरवादिता ही सिद्ध होती है और न उसकी संभावना तक ध्यान में आती है। फिर कैसे कहा जा सकता है कि ईश्वर नहीं है, या यह बात संदिग्ध ही है।" निस्संदेह आपका उत्साह और प्रयत्न सराहनीय है परंतु "न्यायपूर्वक एवं बुद्धिग्राह्य प्रमाणों" पर एक बार फिर नज़रसानी हो जाती, तो बेहतर हो जाता, या मुनासिब समझें तो ख़ाकसार की आँखों से देखिए कि क्या दिखाई देता है। आपने लिखा है कि "रेखागणित में कुछ बातें स्वयंसिद्ध होती हैं और कुछ यों ही मान ली जाती हैं तभी काम चलता है।" यह निर्विवाद है, परंतु ये स्वयंसिद्ध बातें केवल आरंभिक अत्यंत सरल और सर्वमान्य हुआ करती हैं; और गूढ़तर समस्याओं को सिद्ध करने के लिये काम में लाई जाती हैं। पर यहाँ तो मामला ही दूसरा है अर्थात् ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करना ही तो समस्या है और उसे ही आप चाहते हैं कि स्वयं-सिद्ध मान लिया जाय। आप जब उत्तरस्वरूप ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करने चले हैं तब बिसमिल्लाह ग़लत न कीजिए, उसे स्वयंसिद्ध मानकर तर्क की हत्या तो कीजिए। हम पहले मकान की नींव बनाकर दीवारें खड़ी करते हैं और फिर उन पर ठाट बिछाकर अँगरा

बाँधते हैं, परंतु आपके न्यायानुसार पहले ही मँगरा बाँध लेना उचित है और वह ईश्वररूप ही होना चाहिए, याने मोहरा साध लेना चाहिए, साधारण व सर्वमान्य बातें तो दीवार व नींवस्वरूप अपनी फ़िक्र आप कर लेंगी।

संसार में पाई जानेवाली नियमशीलता का आधार लेकर आपने कहा है कि "सूर्यचंद्र नियत समय पर निकलते और अस्त होते हैं, गेहूँ के पेड़ में आलू और बैंगन के पेड़ में चिरौंजी नहीं होती, मेज़-कुरसी इत्यादि विशेष अवस्था को प्राप्त न होकर दृढ़ और निर्दिष्ट स्वरूप बनाए रखती है, असंख्यों तारागण अति तीव्र गति से घूमते रहने पर भी टकरा नहीं जाते इत्यादि।" आपकी समझ के मुताबिक़ "यह नियम बिना किसी बनानेवाले के आप-ही-आप नहीं बन गए। आप-ही-आप कोई पदार्थ (?) बन नहीं जाया करते।" हमें यह ज्ञात न था कि नियम भी कोई पदार्थ हुआ करता है, और कुरसी-लालटेन रेल-तार" इत्यादि से उसकी समानता बतलाई जा सकती है।

यदि नियम का कोई नियामक है, तो उसका नियमों पर शासन भी होना चाहिए। यदि नियमों में फेरफार नहीं होता, तो नियामक का परिचय किस प्रकार हो सकता है? आपने यदि संसार के नियमों का कोई नियंता माना है, तो उसकी सत्ता तो अभी मालूम हो सकती है कि उसमें रद्दोबदल करने का उसे कुछ विकार भी हो। और यदि वह रचयिता ही संसार का सृष्टा है, तो उसमें आपको ईश्वरत्व कैसे नज़र आया? क्या आँधी, भूकंप, विप्लव, अनावृष्टि इत्यादि से होनेवाली अव्यवस्था, पीड़ा और हानि का उत्तरदायित्व उसी नियामक पर नहीं है? और भी विचार कीजिए कि संसार में पशु-पक्षी, जलचर, थलचर, नभचर सभी मत्स्य-न्याय से जीवन का निर्वाह करते हैं अर्थात् एक जीव दूसरे जीव को खाकर अपनी जीवन-रक्षा करता है और अपनी खाद्य-सामग्री प्राप्त करने के लिये अत्यंत क्रूर उपायों से काम लेता है। क्या इसमें नियंता की कोई श्रेष्ठता है? क्या वह सृष्टि की इससे अधिक अच्छी व्यवस्था नहीं कर सकता है? क्या प्लेग, हैज़ा, मलेरिया, डिसेंटरी इत्यादि घातक रोगों के उत्पादक कीटाणु (ब्यक्टेरिया) की सृष्टि किए बिना ईश्वर का ईश्वरत्व कुछ कम हो जाता? क्या सर्प का फन और बिच्छू का डंक भी इसी ईश्वर की रचना है? मनुष्यों को लीजिए—अरबों वर्षों तक पृथ्वी को जनहीन रखकर केवल दस-बीस सहस्र वर्षों से मनुष्य की सृष्टि करने को ईश्वर को क्या आवश्यकता आ पड़ी? फिर मनुष्यमात्र की संसार में एक ही जाति क्यों न हुई? उनका स्वभाव, बल, पौरुष, रुचि और भाव इत्यादि भिन्न-भिन्न क्यों हुआ करता है? यह सब होकर भी एक जाति दूसरी जाति पर अत्याचार क्यों करती है? उन्नत जातियाँ यदि ईश्वर को धन्यवाद दें कि वे अवनत जातियों पर शासन करती हैं, तब क्या अवनत जातियों को उसे इसलिये धन्यवाद देना चाहिए कि उसने उन्हें पराधीन और शासित जाति बनाया? उपर्युक्त बातों पर विचार करने से मालूम होगा कि यदि सचमुच में संसार का कोई रचयिता और नियंता है, तो वह अंधा, हृदयहीन और अविवेकी है। ऐसे नियंता का अथवा रचयिता को ईश्वर की संज्ञा कैसे दी जा सकती है? यदि संसार का कोई सृष्टा होता, तो वह सांसारिक नियमों की बागडोर अपने हाथ में अवश्य रखता। परंतु हम देखते हैं कि वे विशाल शक्तियाँ अंधाधुंधी के साथ अपना कार्य किए चली जाती हैं। उसके औचित्य और अनौचित्य से उनका कोई संबंध नहीं रहता। बड़े से भी बड़ा प्रतिभावान् परोपकारी व्यक्ति भी आग में जल जा सकता है, पानी में डूब जा सकता है, गोली से मारा जा सकता है, प्लेग और हैज़ा का शिकार हो जा सकता है, नियंता अथवा सृष्टा के पास कोई साधन उसकी रक्षा का नहीं रहता। यदि नियंता का सचमुच में कोई शासन होता और उसके हृदय होता, इंसानियत होती, तो वह गत महायुद्ध में बारूद की विस्फोटक शक्ति को अवश्य कुछ काल के लिये सस्पेंड कर देता। हम देखते हैं कि साधारण मनुष्यों के बराबर भी उसमें करुणा और विवेक नहीं पाया जाता।

फिर प्रश्न यह होता है कि ईश्वर महाशय सृष्टि बनाने के पश्चात् निश्चेष्ट होकर बैठ रहे अथवा सृष्टि का कार्यक्रम अभी भी जारी है। अच्छा, वे सृष्टि के पेश्तर क्या करते रहे? और उन्हें सृष्टि के बनाने का ख़ब्त ही क्यों सवार हुआ? ये सब समस्याएँ क्या केवल इसी लिये उत्पन्न नहीं होतीं, और निरुत्तरित दशा में नहीं

रह जातीं कि ईश्वर और उसके आचरणों को ज़बर्दस्ती मान लिया है। संसार में ५० वर्ष पहले क्लोरोफ़ार्म नहीं था। रासायनिक पदार्थों से इस यौगिक का आविष्कार किया गया। मनुष्य ने अनुसंधान से यह ज्ञान प्राप्त किया कि उसके सुँघाने से मनुष्य की चेतनाशक्ति कुछ समय के लिये लुप्त हो जाती है। क्लोरोफ़ार्म के इस स्वभाव का उपयोग अस्त्रचिकित्सा में बहुतायत से किया जाने लगा, जिससे आज तक करोड़ों आदमियों की जानें बचाई गईं। यहाँ प्रश्न यह होता है कि क्या ईश्वर ने सृष्टि बनाने के साथ ही यह नियम बना दिया था कि क्लोरोफ़ार्म का प्रभाव ज्ञान-तंतुओं पर उक्त प्रकार से पड़ेगा? परंतु उस समय तो क्लोरोफ़ार्म था ही नहीं, तब क्या इधर क्लोरोफ़ार्म का आविष्कार हुआ और उधर ईश्वर ने फ़रमान निकाला।

नियम पदार्थ न होकर किसी परिस्थिति-विशेष में होनेवाला एक अनिवार्य परिणाम-मात्र है। सौ में १० घटाने पर नब्बे, २० घटाने पर अस्सी, ४० घटाने पर साठ, और साठ घटाने पर चालीस हुआ करते हैं; इसका कारण कोई नियम अथवा नियंता की इच्छा नहीं है। कारण केवल यह है कि दूसरी स्थिति संभव ही नहीं। सूर्य, चंद्र इत्यादि नक्षत्रों की गति और वज़न और दूसरे नक्षत्रों से दूरी अथवा नज़दीकी, और उनके सापेक्षिक आकर्षण पर निर्भर है और यही कारण है कि गणित द्वारा उनकी गति का पता लग जाता है। इसी प्रकार गेहूँ के पेड़ में गेहूँ होने, और बैंगन के पेड़ में चिरौंजी न होने का कारण किसी वैयक्तिक सत्ता का प्रदर्शन नहीं है, नहीं तो हम गेहूँ के पेड़ में से आलू क्या आदमी भी पैदा हुए देखते। क्योंकि सर्वशक्तिमान् के लिये असंभव क्या है "परम शक्तिशाली सत्ता" जो न कर डाले, थोड़ा है। गेहूँ के पेड़ में गेहूँ इसलिये होता है कि करोड़ों वर्ष से क्षुद्रातिक्षुद्र अवस्था की कोई वनस्पति अगणित परिस्थितियों को पार करके आज जिस अवस्था को पहुँची है, वही गेहूँ का पेड़ है। उसे हम गेहूँ का पेड़ इसलिये कहते हैं कि उससे हमें गेहूँ प्राप्त होता है। उसके अनेकों अवयवों का पारस्परिक प्राकृतिक संगठन अपनी पिछली परिस्थितियों के कारण ऐसा हो गया है कि वह अपने वृद्धि-क्षेत्र से कुछ विशेष प्रकार के तत्त्वों को ही ग्रहण कर सकता है, जिन तत्त्वों से कि उक्त पौधे में गेहूँ के अतिरिक्त दूसरी वस्तु बन ही नहीं सकती। बैंगन के पेड़ से चिरौंजी न उत्पन्न होने का कारण भी उपरोक्त ही है। "तीसरी बात विचारिए।" मेज़-कुरसी इकदम बालू की भाँति नहीं बनाए गए हैं, वे बनाए गए हैं ठोस काठ से। और काठ में ठोसपन इस लिये है कि उसके असंख्य परमाणु किसी समय सजीव अवस्था में रहने के कारण एक दूसरे से पारस्परिक तारतम्य रखते थे, और उसके कारण एक दूसरे में इस प्रकार जकड़ और गुँथ गए थे जैसे कपड़े के धागे अथवा धागे में रुई के रेशे। उक्त सामग्री से यदि हम अपने कल्पना-कौशल और परिश्रम के द्वारा मेज़ बनाना चाहते हैं, तो काष्ठ का जो भाग मेज़ के स्वरूप के अनुरूप होता है, उसे जोड़ देते हैं, और जो नहीं होता तो शरीर की शक्ति और अस्त्रों के प्रयोग से उसे दूर कर देते हैं और बन जाती है मेज़ या जो कुछ आप बनाना चाहें।

सृष्टा के चातुर्य की एक झलक आपने आँख की बनावट के दृष्टांत द्वारा दिखलाने की कोशिश की है। निस्संदेह दूसरी वस्तुओं की तुलना में आँख का ढंग बड़ा ही क्लिष्ट, बड़ा ही सुंदर और सुव्यवस्थित है। परंतु आपने अगाड़ी पर ही ध्यान दिया है ज़रा पिछाड़ी भी देखिए। क्या मनुष्य की आँख आज ईसामसीह के २०वीं शताब्दी के २८वें वर्ष में भी उतनी ही उपयोगी है, जितनी कि सृष्टि के प्रभातकाल (?) में थी! क्या आज उतनी ज्ञानपिपासा, उत्कर्षलालसा और शोध प्रेरणा के वशीभूत होकर उसे दूरदर्शक यंत्र, अणुवीक्षण यंत्र, एक्सरेज़ का आविष्कार करके उनकी सहायता से अपनी आँखों का अधूरापन यथा संभव दूर करने का प्रयत्न नहीं करना पड़ता? यदि ईश्वर ने मनुष्य की आँख बनाई होती, तो उसमें कम-से-कम यह ताक़त तो होती जो मनुष्य के स्वनिर्मित साधनों की सहायता से उसे प्राप्त होती है। इसी बात पर रुष्ट होकर एक वैज्ञानिक तो यहाँ तक कह बैठा है कि यदि सचमुच ये मनुष्य की आँखें किसी व्यक्ति की बनाई हैं और मैं उनके समक्ष पहुँच सकता हूँ, तो मैं इस आँख को निकालकर उसके सामने उसी तरह फेंक दूँगा जैसा कि किसी अल्हड़ चश्मेवाले के ग़लत चश्मा दे देने पर उसका ग्राहक लानत-मलामत के साथ चश्मा उसकी दूकान पर फेंक आता है।

आप कहते हैं कि यदि "जितने टाइप तुलसीकृत-रामायण के छापने में लगते हैं वे सब एक भारी स्थान में इकट्ठे किए जावें और लाखों-करोड़ों वर्षों तक पछोरे जावें, तो क्या कोई विश्वास कर लेगा कि बिना तुलसीदास के परिश्रम के ही उक्त रामायण तैयार हो जाती अथवा अब तैयार हो सकेगी। निदान ऐसी बेसिर-पैर की अटकलें लड़ाना व्यर्थ ही प्रतीत होता है।" निस्संदेह "ऐसी बेसिर-पैर की अटकलें लड़ाना" व्यर्थ ही प्रतीत होता है। परंतु लड़ाता कौन है? केवल आपकी कल्पना।

यह अनंत विश्वमंडल मनुष्य के विश्लेषक ज्ञान के विकास के बहुत समय पहले भी वर्तमान था। अर्थात् रामायण पहले से ही मौजूद थी। विश्व के व्यापारों का सामूहिक दर्शन (कैवल्य) हमें हमारी इंद्रियों की शक्ति की परिमितता और बुद्धि के विकास की न्यूनता के कारण नहीं होने पाता। सारा विश्व-प्रसार एक ही वस्तु है, दो नहीं। परंतु मनुष्य के पास विश्लेषण-नामक ऐसी कला है कि जिससे वह उसके किसी विशेष अंश का परिचय किसी एक समय में प्राप्त किया करता है। विश्वरूपी रामायण में टाइप की क्या ज़रूरत और क्या ज़रूरत है उसके पछोरे जाने की? वह रामायण पहले से ही उसी प्रकार लिखी हुई है जैसे कि तुलसीदासजी के मस्तिष्क में रामायण पहले से ही मौजूद थी; बाद में लिखी या छाप ली गई। कृत्रिम व्यापारों की तुलना विश्व के व्यापारों से नहीं की जा सकती; क्योंकि कृत्रिम व्यापार सांत होते हैं और विश्व के व्यापार अनंत; सांत और अनंत की क्या तुलना और क्या उनका संबंध।

अब ज़रा दूसरे पहलू पर भी ग़ौर फ़रमाइए। क्यों साहब, स्रष्टा ने तो नागफनी में काँटे पैदा किए थे न? सर विलियम बरबैंक साहब ने इतनी गुस्ताख़ी कर डाली कि बिना काँटेवाली नागफनी पैदा कर दी जिसमें पशुओं की खाद्य सामग्री में एक बहुमूल्य, उत्तम और सुलभ वस्तु का समावेश हो सका। कई प्रकार के ऐसे फल, फूल और शाक इत्यादि रच गए जो पहले कभी थे ही नहीं। और यह देखिए, हाल में कोई डाक्टर साहब ने अमरीका में इंजेक्शनों द्वारा न मालूम किस द्रव्य का उपयोग करके मुर्गे को मुर्गी बना डाला और वह मुर्गी अंडे भी देने लगी। और सुना है कि निपट निर्जीव रासायनिक पदार्थों के योगमात्र से एक सजीव वस्तु "जैलीफिश" (एक छोटी-सी मछली) बना डाली। कहिए स्रष्टा के अधिकार-क्षेत्र पर यह एक प्रकार का व्यतिक्रमण हुआ या नहीं?

गरज़ यह कि विद्वान् लेखकद्वय को सृष्टि-विषय नियम "ज्ञानयुक्त और बुद्धिमत्ता" के साथ बनाए हुए दिखाई पड़ते हैं, ठीक उसी तरह जैसा कि एक पादरी साहब ने गिरजे में उपदेश देते हुए कहा था कि देखो "ईश्वर की व्यवस्था कितनी सुंदर और विलक्षण ज्ञानयुक्त है कि रविवार सदैव सप्ताह के अंत में आता है, बीच में नहीं, और इसी प्रकार मृत्यु बीच में न आकर जीवन के अंत में ही आती है। हमें उसकी दयालुता के लिये धन्यवाद देना चाहिए।" अब ज़रा यह भी विचार कीजिए कि यदि "विलक्षण ज्ञानयुक्त आत्मा" ने सृष्टि के नियम न बनाए होते तो क्या होता? दो क्या और दो मिलकर पाँच होते? क्या वृत्त की परिधि उसके व्यास से छोटी होती? क्या रस्सियों का एक ही सिरा हुआ करता? अथवा क्या पानी ऊपर को बहता?

नियम केवल एक परिणाम-विशेष का आभासमात्र है, किसी विशेष अवस्था में विशेष व्यापार का विशेष परिणाम ही हो सकता है, अन्य नहीं। परंतु अज्ञानवश हम उसे नियम कहा करते हैं और नियंता को खोजते फिरते हैं। इस अनंत संसार में ग्रहों की गति, भिन्न-भिन्न प्रकार के जल-वायु, अगणित प्रकार के जीव-जंतु, वनस्पति और मानसिक क्रियाएँ, बुद्धि, विवेक, स्मृति इत्यादि केवल परिस्थिति के आधीन हैं, अवस्थाविशेष में ही उनका विकास होता है, और समुचित अवस्था न रहने पर ह्रास। यदि परिस्थिति अनुकूल न हुई होती, तो संसार में बहुत से पदार्थ और उनकी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ पैदा ही न होतीं। इसी प्रकार भविष्य में नई-नई परिस्थितियाँ उपस्थित होने पर इस संसार में अनेक नई वस्तुएँ और उनके नये व्यापार दृष्टिगोचर होंगे।

आप कहते हैं कि "जब संसार में दृढ़ नियम वर्तमान है, तब उनका बनानेवाला कोई 'सज्ञान आत्मा' अवश्य होगा।" अच्छा अब आप ही बतलाइए कि क्या किया जाय, अभी तो ईश्वर का विषय ही विवाद-ग्रस्त हो रहा है और उस पर लाद दिया आपने आत्मा का बोझा, और वह आत्मा भी "ज्ञानयुक्त!" मुख्य विषय के अतिरिक्त अन्य कोई विवाद-ग्रस्त विषय युक्ति अथवा प्रमाणस्वरूप उपस्थित करने में तर्क कहाँ तक सार्थक

हो सकता है । और, यदि आत्मा कोई चीज़ हो भी तो ज्ञेय के अभाव में उसे ज्ञान कैसे हो सकता है ? आख़िर आत्मा को ज्ञान हुआ तो किस वस्तु से? संसार तो उस वक़्त था ही नहीं, संसार के अतिरिक्त और कौन ज्ञान उस आत्मा को हुआ ?

सूर्य, चंद्र, गेहूँ, बैंगन, चना, जौ आदि के दृष्टांतों का समाधान मैं पहले कर चुका हूँ, फिर से दुहराने के लिये क्षमा चाहता हूँ । पर आप जो यह कह रहे हैं कि "सारा संसार जो दृष्टिगोचर हो रहा है या तो किसी ने बनाया या आप-ही-आप उत्पन्न हो गया ।" उस पर भी विचार कर देखिए । आपने केवल दो सम्भावनाओं पर तो विचार किया है, पर तीसरी महान् और संतोषजनक संभावना पर आपका ध्यान ही नहीं गया । गुस्ताख़ी माफ़ हो ! मेरे मत से इसे न तो किसी ने बनाया और न यह आप-ही-आप उत्पन्न हो गया । वह तो सदैव से रहा है और सदैव रहेगा— यही वह तीसरी संभावना है—जिस पर आप कदाचित् इसलिये दृष्टिपात न कर सके कि आपने नियम के समान ही समय और स्थल को भी पदार्थ माना है और स्वीकार किया है उनका अनादित्व और अनन्तत्व ! हमें कुछ अफ़सोस नहीं, यदि तीसरी संभावना सही न करार दी जाकर आप ही का मत लिया जाय कि "बिना पदार्थों की सहायता के ईश्वर सदा से था और अपनी इच्छानुसार उसने पदार्थों एवं संसार की रचना की । मगर क्या बताएँ । हम मजबूर हैं कि हमारी कल्पना में यह बात नहीं आती कि शून्य से अथवा अपदार्थ से (ज्ञान युक्त आत्मा से) "यह सूर्य, चंद्र और असंख्यों नक्षत्रों एवं पृथ्वीयुक्त सुंदर नियमबद्ध संसार, तथा ऐसे ही ऐसे असंख्यों अन्य संसार (जिनका अस्तित्व विज्ञान द्वारा सिद्ध हो चुका है)" कैसे उत्पन्न हो सकते हैं ? क्या शून्य से शून्य के अतिरिक्त और भी कोई वस्तु उत्पन्न हो सकती है ? आपके मनोरंजन के लिये मैं यहाँ यह भी कह देना चाहता हूँ कि शून्य को शून्य से भाग देने में भजन-फल बड़ी-से-बड़ी संख्या भी हो सकता है। परंतु उस संख्या का मूल्य भी शून्य ही होगा। स्वरूप केवल काल्पनिक ही है । तब क्या "सारे संसार, सारे सूर्यमण्डल बरन् ऐसे ही असंख्य सूर्यमण्डल" शून्यमात्र हैं ? यदि ऐसा ही है, तो हम और आप, माधुरी और माधुरी के पाठक, यह नारंगी की शकलवाला मिट्टी का ढेला सब शून्य है । तब क्या ज़रूरत है शून्य के पीछे वृथा सिर पचाने की ? खेद इतना ही रहेगा कि "ज्ञानयुक्त आत्मा" ने केवल शून्य ही उत्पन्न किया।

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि विज्ञा-व्यसनी और साहित्य-जगत् के इन देदीप्यमान नक्षत्रों के हृदयपिंडों में विज्ञान द्वारा सिद्ध हुए निष्कर्षों को स्थान प्राप्त है । मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि "प्रत्येक पेड़, पौधे, जीव एवं मनुष्य कैसे छोटे पदार्थों से बनते और कैसे बढ़कर भारी हो जाते हैं ! एक छोटी-सी तितली के बनाव में क्या ही अद्भुत कारीगरी पाई जाती है ! मनुष्य प्रायः एक फुट का पैदा होकर बढ़ते-बढ़ते ४½ से ६ फ़ीट तक का कैसे हो जाता है, और उसकी हड्डियाँ बढ़ने में क्यों नहीं टूट जातीं, अथवा खाल क्यों नहीं फट जाती", इत्यादि शंकाओं की निर्वृत्ति के लिये, सृष्टि-विज्ञान (Cosmology), जीवनशास्त्र (Biology) और उसके अंतर्गत विकासवाद (Evolution) का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें, तो उन्हें मेरे तथा अन्य वैज्ञानिकों, नास्तिकों, न्यायवादियों और संदेहवादियों तक के सिद्धान्तों, विचारों और प्रमाणों को सुचारु रूप से समझने में अधिक सुविधा होगी । मैं तो समझता था कि लगभग दो वर्ष पहले माधुरी में "जीवाणुवाद" शीर्षक प्रसिद्ध लेख के प्रतिभा-संपन्न लेखकों को फिर जीवन-शास्त्र न पढ़ना पड़ेगा; परंतु आवश्यकता सब कुछ करा लेती है । कहा भी है "ग़र ज़रूरत बुअद बाशद"।

प्रकृति में वस्तुओं का स्वरूप अदलता-बदलता रहता है, परंतु वह किसी इच्छा और विकार के वशीभूत होकर नहीं । प्रकृति को न किसी घटना-विशेष से दुःख होता है और न सुख । पृथ्वी पर मनुष्य का अस्तित्व केवल एक आकस्मिक घटना है । प्रकृति का इस विश्व में कोई विशेष लक्ष्य नहीं जान पड़ता और यदि किसी दिन पृथ्वी मनुष्य के रहने योग्य न रहकर, उस पर से मनुष्य-जाति निःशेष हो जावेगी, तो भी प्रकृति को उसका कोई दुःख न होगा । आराम और तकलीफ़, उपकार और अपकार, जीवन और मृत्यु, अमृत और विष, उसकी दृष्टि में सब समान हैं । वह न क्रूर है, न दयालु, न वह पूजा से प्रसन्न हो सकती है, न आँसुओं से

द्रवित, और न निन्दा से क्रोधित, और न मंत्रों से आवाहित, सर्प के फन में रहनेवाला विष और माता के हृदय में रहनेवाला प्रेम उसके लिये एक समान है। अनुकूल परिस्थिति मिलते रहते-रहते मनुष्य का मस्तिष्क इस अवस्था को पहुँच गया है कि उसमें सौंदर्य, सत्य, प्रेम, तर्कसंबंधी भाव इत्यादि उत्पन्न होते रहते हैं।

हम यह नहीं कहते कि हमारा ज्ञान पूर्ण है अथवा जो कुछ हम कहते हैं—विशुद्ध सत्य है। परंतु हम यह जानते हैं कि तर्क की जो पद्धति आज समस्त सभ्य संसार को स्वीकार है, उसका भरसक उपयोग करने में हम पथ-भ्रष्ट नहीं हो रहे हैं। हम संसार को खुली आँखों से देखते हैं और जैसा देखते हैं वैसा ही कहते हैं। हम उसमें काल्पनिक बातों को मिलाकर अनोखी खिचड़ी नहीं तैयार करते हैं।

राजाराम पांडेय

× × ×

मुखबिलास मसाला
REG No. 157
TRADE MARK
MUKH BILAS MASALA

मगाओ मुफ्त मगाओ

अगर आप पान खाने के शौकीन हैं तो हमारा मुखबिलास मसाला व ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट पान में ज़रूर खाइये खुश्बूदार व खुशज़ायका है ॥

(मुखबिलास मसाला)

कीमत मुखबिलास मसाला छोटी डि० फ़ी दरजन १।।।=)बड़ी डि० फ़ी दरजन ३।।।) कीमत ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट छोटी डि० फ़ी दरजन २।) बड़ी डिब्बी फ़ी दरजन ४।।) फ़ैन्सी पुड़िया ।।।)।। सैकड़ा

[नोट] ज्यादा हाल जानने के लिये नमूना कैलेन्डर और नोटिस मुफ्त मंगाइये ॥

पता— पं० प्यारेलाल शुक्ल
प्यारे लाल शुक्ला स्ट्रीट कानपुर ॥

ताम्बूल अम्बरी टिकिया
पान में खाइये
TAMBUL-AMBARI
TABLETS
TO BE USED WITH
BITTLES

(ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट)

विद्यार्थियों का सच्चा मित्र

आजकल के लड़के तथा नवयुवक जैसे निस्तेज, फीके उत्साहहीन, बलहीन और व्यसनी होते हैं यह बात किसीसे छिपी नहीं है। वे जवानी में ही बूढ़े से हो जाते हैं और अनेक तरह के रोगों से युक्त होकर थोड़े ही दिन की उमर में इस संसार से बिदा हो जाते हैं। यह पुस्तक इसी भयंकर परिस्थिति के सुधार के उद्देश्यसे सरल भाषा में लिखी गई है। पुस्तक एक बार देखने से ही ज्ञात हो जायगा कि इससे हर एक विद्यार्थी का कितना बड़ा उपकार हो सकता है। मूल्य केवल ।।।≡)

रमा-सुलभ-कार्यालय महेंद्रु, पटना

२. पाश्चात्य साम्यवाद ! एक भ्रांति

वैषम्य प्रकृति के प्रधान नियमों में से एक है । जहाँ देखिए वहीं विषमता दिखाई देती है—जातियों में, स्त्री-पुरुषों में, परिवारों में और परस्पर व्यक्तियों में । इस प्रश्न का जहाँ तक मनुष्य से संबंध है, यह (प्रश्न) हमारे सामने इतिहास के आरंभ-काल से है ।

जैसे-जैसे समाज सभ्यता के शिखर की ओर अग्रसर होता गया, विषमता भी अधिकाधिक दृष्टिगोचर होने लगी । अनुन्नत जातियाँ "लकड़ी काटनेवाली और पानी खींचनेवालों की स्थिति" में रह गईं। उच्च जातियों में भी शारीरिक और मानसिक शक्तियों की विषमता ने 'सामाजिक स्थिति' में बड़े भेदभावों और संसार के उत्तम पदार्थों के अधिकार में अनियमों को जन्म दिया।

सामाजिक सुव्यवस्था और सदाचार को क़ायम रखने के लिये पूर्वी विद्वानों ने तीक्ष्ण बुद्धि से काम लिया । उन्होंने इन विषमताओं को 'कर्म' और 'आवागमन' के सिद्धांतों पर ठहराया । यदि कोई व्यक्ति निर्धन है अथवा दुःखी है, तो उसको यह समझकर धैर्य धारण करना चाहिए कि उसकी यह दशा उसके पूर्व-जन्म-कृत पापों के कारण है और यदि वह इस जन्म में सुकर्म करे तो उसको निश्चय ही, दूसरे जन्म में अच्छा पद प्राप्त हो सकता है । हमारे समाज-शास्त्र-विशारदों और नीतिकारों की कुशलता तो देखिए ! उन्होंने कर्म-सिद्धांत द्वारा एक दुःखित (विषमता के प्रहार से पीड़ित) मनुष्य को अपनी आर्तावस्था में भी संतुष्ट रहने को बाध्य कर दिया और 'आवागमन' का शान्तिपाठ पढ़ाकर उसको 'अविचलित होकर सत्कार्य करने की क्षमता' दे दी । अर्थात् आत्मोन्नति का मार्ग बतला दिया । इसप्रकार **समाज-संगठन और मनुष्य की उन्नति** दोनों महत्त्वपूर्ण काम सध गए ।

आध्यात्मिक मार्ग में अनेक पौर्वात्य सुधारकों ने समता का पाठ पढ़ाया है और भारत में वैष्णव, बौद्ध, कबीरपंथी, सिख, सतनामी आदि सम्प्रदायों का अस्तित्व उनके समीकरण प्रयत्नों का ज्वलंत उदाहरण है ।

परंतु पश्चिम में अवस्था बिलकुल इसके विपरीत है। पूर्व में विषमता (Ineqnality) को नष्ट करने का प्रयत्न महापुरुषों द्वारा नैतिक और आध्यात्मिक आधार पर किया गया और पश्चिम में इसके विपरीत उद्दंड नेताओं ने इस प्रश्न को अपने हाथ में लिया । उन्होंने इस आर्थिक दृष्टिकोण से देखकर इस पर श्रमजीवियों की छाप लगा दी ।

'फ़्रांस की क्रांति'(Frcuch Revolution) साम्यवाद को प्रचार करने का सबसे प्रथम प्रयत्न था । इस क्रांति का सिद्धांत था "सब मनुष्य जन्मतः समान हैं और अधिकारों में भी स्वतन्त्र और बराबर हैं" यह सिद्धांत बुद्धि एवं प्रकृति के प्रतिकूल है ।

लार्ड ब्रैमवैल कहते हैं—"समता—यदि इसका अर्थ धन अथवा स्थिति की समता से है, तो मैं कहूँगा ऐसी कोई वस्तु नहीं है, न कभी ऐसी कोई वस्तु किसी देश में थी । धन अथवा स्थिति का वैषम्य, जिसके अस्तित्व के विरुद्ध कुछ मूढ़-जन हमेशा चिल्ल-पों मचाए रहते हैं, संसार के आदि-काल से है और उसके अंत तक रहेगा। सब मनुष्य उपार्जन करने की शक्ति में समान नहीं हैं और न अर्जित वस्तु की रक्षा करने में ही उनकी योग्यता बराबर बराबर है । अतएव यह कथन कि सब मनुष्य बराबर हैं और समान अधिकार रखते हैं, असत्य एवं हास्यास्पद है ।

आधुनिक युग में श्रमजीवियों ने समता के सिद्धांत को विचित्र रूप में समझा है । वे उसको समाज-ध्वंसक उपायों द्वारा कार्यान्वित करना चाहते हैं । श्रमजीवियों का एक विराट् समूह है । संसार में कोई अत्याचार जन-समूह की उच्छृंखल नृशंसताओं के तुल्य नहीं है, विशेषतया रणोत्सुक वृत्तियोंवाले पाश्चात्य जन-समूह (Mob) से समाज अवश्य ख़तरे में है । फ़्रांस की राज्य-क्रांति का भयानक अभिनय फिर बोलशेविस्ट रूस में रचा गया । जैसी कि लैनिन को आशा थी, यह बिलकुल संभव है कि यह आग रूस तक ही परिमित न रहकर समस्त योरप में फैल जाय ।

साम्यवाद के समर्थक कार्य-क्षेत्र की स्वतंत्रता ही नहीं चाहते हैं, वे केवल यही नहीं चाहते हैं कि शक्तियाँ उपयोग में लाने का भरपूर मौक़ा दिया जाय, क्योंकि इन अधिकारों का तो वे ४० वर्षों से निरंतर उपभोग कर ही रहे हैं । इस काल में वस्तुतः बहुत-से वैज्ञानिक, शिल्पकार, राजनीतिज्ञ मज़दूरों में से ही हुए हैं । हाँ, यह बात ज़रूर है कि मध्यम श्रेणी में से निकले विद्वानों की अपेक्षाकृत इनकी संख्या बहुत कम है और इस कारण से वे इनमें मिल भी गए हैं ।

निर्धनों और धनवानों का परस्पर संघर्ष साम्यवाद का मूल-कारण है। जब निर्धन बलवान् हो जाते हैं, तो वे धनिकों को निकाल देते और उनका माल-असबाब कुर्क कर लेते हैं, यहाँ तक कि वे (१) ऋणों को अस्वीकार करना; (२) भूमि को नए रूप से विभाजित करना आदि उपायों का भी अवलम्बन कर बैठते हैं। इसी प्रकार धनवान् भी जब शक्तिशाली होते हैं, तब ग़रीबों से अच्छी तरह बदला लेते हैं। मालदार अपना माल नहीं छोड़ना चाहते और निर्धन भूखों नहीं मरना चाहते, बस दोनों ही लड़ते हैं।

मज़दूरों का दृढ़ विश्वास है कि जब तक अर्थ-वितरण (Distribution of wealth) समता (Equality) के सिद्धांत पर न किया जायगा, तब तक उनकी दुर्दशा का अंत न होगा। इसलिये उनका मुख्य ध्येय है आमदनी के मुख्य द्वारों पर अधिकार जमाना, भूमि, कानों और फैक्टरियों को राज्याधिकार में लाना आदि। वे इन तरकीबों से आमदनी को जन-संख्या में समान भाग में वितरण करना चाहते हैं।

परंतु इस प्रकार की प्रत्येक योजना घोर अन्यायपूर्ण है। हम इस 'अन्याय' को अपने शब्दों में व्यक्त न कर हर्बर्ट स्पेंसर के तर्कपूर्ण वाक्यों में लिखते हैं--"यदि ज़मीन की उपज का समान भाग प्रत्येक मनुष्य को, विना उसकी उस मिहनत के परिमाण और मूल्य का ख़्याल किए हुए जो कि उसने उस भूमि की प्राप्ति के लिये की थी, दे दिया जाना समता के प्रथम अथवा मूल सिद्धांत पर कुठाराघात करता है। 'सबको बराबर-बराबर भाग दे दिया जाय' ऐसा हमारा उद्देश्य कभी न होना चाहिए; परन्तु इसके विपरीत हमको चाहिए कि हम सब मनुष्यों के लिये उस वस्तु के लाभार्थ समान कार्य-क्षेत्र, समान वायुमंडल उत्पन्न कर दें। प्रत्येक मनुष्य को उसके इच्छित पदार्थों को प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना एक बात है और उन पदार्थों को ही स्वतः दे देना—चाहे उनकी प्राप्त्यर्थ समुचित प्रयत्न किया गया अथवा न किया गया—दूसरी बात है। प्रत्येक मनुष्य को अपने पड़ोसी के कार्य क्षेत्र को अतिक्रम किए विना अपनी उन्नति के लिये अथक प्रयत्न करने का पूर्ण अधिकार है। यदि कोई मनुष्य अपनी योग्यता, परिश्रम, अध्यवसाय, पराक्रम से अपने लिये अधिक संतोष-सामग्री लाभ करता है, तो नैतिक दृष्टि से वह उसका स्वामी है। उसको यह संतोष (Gratification) लाभ न करने देना अथवा उसको अपहरण कर दूसरे को देना सरासर अन्याय है।"

साम्यवाद अर्थात् समान अर्थ-वितरण के मार्ग में कई बाधाएँ हैं, जिनको इसकी ख़राबियाँ भी कह सकते हैं। इसका संचालन तलवार की धार पर ही हो सकता है। मज़बूत सेना और शक्तिसम्पन्न एवं सुदृढ़ शासन के विना इसका कार्यान्वित होना असम्भव है। राष्ट्र को दासत्व की बेड़ियों में जकड़े बग़ैर इसका चालू होना कठिन है।

पाश्चात्य साम्यवादक्रांतियों और प्रतिक्रांतियों का जन्म-दाता है। फ्रांस की राज्य-क्रांति के बाद भी एक प्रतिक्रांति (Counter-Revolution) हुई थी। साम्यवाद को पूर्णरूपेण चालू हालत में हम रूस में देखते हैं। वहाँ के प्रवाह को देखकर बहुत-से विद्वान् बोल्शेविस्ट रूप से ज़ारशाही को ही अच्छा समझते हैं।

आधुनिक साम्य-विचार आजकल की फैली हुई भीषण विषमता के परिणाम हैं। विषमता आधुनिक औद्योगिक क्रांति (Industriclism) के कारण बढ़ रही है। उद्योगवाद का नाश किए विना वैषम्य का अंत करने की चेष्टा विफल होगी। पूँजी-वाद (Capitalism) आधुनिक उद्योग-वाद का निश्चित फल है। हमको आधुनिक उद्योग-वाद (मैशीनरी-सिस्टम) का नाश करने के लिये प्राचीन उद्योग-धंधों पर जाना होगा, जो अधिक स्वास्थ्यकर है। प्राचीन उद्योग-धंधों को अपनाकर हम शीघ्र ही सुख और शांति का साम्राज्य स्थापित कर सकते हैं। इस प्रकार मूलद्रव्य की एकाग्रता (Concentration) भी न हो सकेगी।

वृंदावनदास

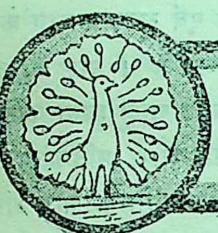

संगीत और विनोद

स्वरकार—गौरीशंकर वर्मा साहित्याचार्य] [शब्दकार—पं० नागेंद्रनाथोपाध्याय साहित्यशा

राग—मेघमलार

झपताल

उनई घुमरि घूमि, लँवरी बदरिया ॥
एक ओर मोर सोर, करत अमित घोर ।
रहि-रहि अति जोर, करत बदुरिया ॥
पथिक न मग माँहि, परत दिखाई एक ।
जलमय ह्वै गई, सगरी नगरिया ॥
चपला चमक अरु, घन को दमक धुनि ।
मन माहिं होत एक, विकट समरिया ॥

मात्रा—मृदंग-बोल

×		२			०		३		
१	२	३	४	५	६	७	८	९	
धा	गे	धा	गे	गे	ता	गे	धा	गे	

स्थायी

म	ग	म	र	स	र	र	र	सन
उ	न	ई	ऽ	घु	म	रि	घू	ऽ
नस	रग	म	ग	म	र	ग	म	प
सँ	व	री	ऽ	ब	द	रि	या	ऽ

अंतरा

प	न	—	न	सं	न	सं	—	सं
क	ओ	ऽ	र	मो	र	सो	ऽ	
सं	सं	रं	रं	न	सं	सं	नध	प
र	त	ऽ	अ	मि	त	घों	ऽ	र
न	न	—	न	सं	सं	सं	ध	प
हि	र	ऽ	हि	अ	ति	जों	ऽ	र
पध	प	मग	म	र	ग	म	प	—
र	त	ऽ	व	दु	रि	या	ऽ	ऽ

संचारी

र	र	—	र	ग	र	प	—	प
थि	क	ऽ	न	म	ग	साँ	ऽ	हि
ग	म	र	स	र	र	स	—	स
र	त	ऽ	दि	खा	ई	ए	ऽ	क
ग	म	—	म	प	—	प	म	प
ल	स	ऽ	य	ह्वै	ऽ	ग	ऽ	ई
सं	संनसंरं	ध	प	म	प	धप	प	म
ग	री	ऽ	न	ग	रि	या	ऽ	ऽ

आभोग

प	न	—	न	सं	सं	सं	—	सं
प	ला	ऽ	च	म	क	अ	ऽ	रु
सं	सं	रं	रं	न	सं	सं	नध	प
न	को	ऽ	द	म	क	सु	ऽ	नि
न	न	—	न	सं	सं	सं	ध	प
न	माँ	ऽ	हि	हो	त	ए	ऽ	क
पध	प	मग	म	र	ग	म	प	—
क	ट	ऽ	स	म	रि	या	ऽ	ऽ

जिन स्वरों के ऊपर बिन्दु हो, उन्हें तार सप्तक का, जैसे--'सं', जिन स्वरों के नीचे बिन्दु हो, उन्हें मन्द्र सप्तक का, जैसे--'सऩ', जिन स्वरों पर बिन्दु न हो, उन्हें मध्य सप्तक का समझना चाहिए। जैसे--'म'।

‿ इस प्रकार के चिह्न में जितने स्वर हों, उन्हें एक मात्रा में बजाना चाहिए। जैसे--"धप" यह राग आरोह में "स र ग म प न" इन छः स्वरों के बजने के कारण षाड़व तथा अवरोह में "सं न ध प म ग र स" इन सात स्वरों के कारण सम्पूर्ण है।

जिन स्वरों पर राग का दौरा या झपट अधिक होता है, उसे पकड़ कहते हैं। जैसे इस राग का पकड़—
"र ग म प म ग स स ऩ स र म ग म र र म प ध ध म प ध सं ध प म प म ग" है।

× × ×

२ घपला

(एक मौलिक चुटकुला)

कोई हास्यप्रिय जेंटिलमैन किसी वकील मित्र के यहाँ गए हुए थे। जितने लोग बैठे थे, एक-एक करके उठ गए और संयोगवशात्, जब वहाँ कोई नहीं था, तो आपने देखा कि दूर सम्मुखवाले कमरे में एक सन्दूक़ मेहागिन (मेहोगनी) लकड़ी की, बहुत ही बढ़िया, फ़ैशनेबुल और पालिश पोती हुई रक्खी है। वह बड़ी मूल्यवान् जान पड़ती थी। पास ही "चाक" (खड़िया मट्टी) शेल्फ़ में रक्खी थी। आपको क्या सूझा कि कुछ कौतुक करना चाहिए। चट खड़िया उठाया और शीघ्रता से, परंतु स्पष्ट अक्षरों में, संदूक़ पर यह वाक्य लिख दिया कि—

"कोई संदूक़ पर खड़िया मिट्टी से न-जाने क्या लिख गया है।"

यह लिखकर कमरे से बाहर निकल आए और गंभीर मुख मुद्रा बनाकर अपनी आरामकुरसी पर पूर्ववत् लेट गए। किसी को कुछ ख़बर न हुई। किंचित् काल में और लोग आ गए। तो कुछ ही देर बैठकर आपने बिदा माँगी। हैट उठा लिया, और "गुडबाई" बोलकर चलते बने। अस्तु।

वकील महोदय बैठे थे, नौकर को पुकारा कि "ओ रमचेहरा! वो मनीबाक्स ले आ! वो उस कमरे में रक्खा है!! जा!" नौकर गया, और चिल्लाने लगा कि "अरे, यह पर तौ कौनों गोद-गाद गवा है। मारिस नीक नीक संदूखि चापर किहेसि!" वकील महाशय चौकन्ने हुए कि मनीबाक्स (रूपए रक्खी जानेवाली संदूक़) पर किसका हाथ लगा।

इतने में उनकी एक लड़की आई, जो कन्या-पाठशाला के किसी कक्षा में पढ़ती थी। उसने नौकर की चिल्लाहट सुन लिया था। और वहाँ गई तो बोली—"लाला, किसी हिंदी पढ़े ने लिखा है।"

वकील—"और लिखा क्या है।"

लड़की—(पढ़ते हुए) "कोई संदूक़ पर खड़िया मिट्टी से न जाने क्या लिख गया है।"

वकील—"अरे क्या तू पढ़ नहीं सकती। यह क्या कहने ही भर को है कि मैं यह जानती हूँ, वह जानती हूँ?"

लड़की—"लाला हम हिंदी ख़ूब पढ़ सकती ह आठई कच्छा में पढ़ती हन। केतना एक रौंदा डारेन।"

वकील—"तब यह क्यों नहीं बताती कि क लिखा है।"

लड़की—"बतौती तौ हन। (फिर पढ़ती है) कों संदूक़ पर खड़िया मिट्टी से न जाने क्या………"

वकील—"हाय हाय, फिर वही बात। अरे, को गाली-गुप्ता-फ़ोहश लिख गया है, जो मारे शर्म के नह पढ़ती। या यों ही गोद-गाद गया है या कोई मतल वाली बात लिख गया है या और कोई……"

लड़की—"गाली-वाली नाहीं लिखा है।"

वकील—"दुत, तू अभी कुछ भी नहीं जानती (संदूक़ के निकट जाकर) क्या कहें उरदू या अँगरे में होता, तो हमी पढ़ लेते, ग़ैर के मुहताज न रहते हिंदी-पिंदी तो हम बिलकुल नहीं पढ़ सकते।"

इतने में कुलपुरोहित पंडित आ पहुँचे। वकील ने भीतर बुलाया, आते ही बोले—

"जजमान धर्मा अवतार कै जै होय! जो है सो दछ दच्छिना पत्रा पर चढ़ाइए सरकार।"

वकील—"महराज, यह पढ़िए क्या लिखा है।"

पंडित—"(संदूक़ पर ख़ूब घूरकर) धर्ममूर्ति इस पर तौ………(पढ़ते हुए) कोई संदूक़ प खड़िया मिट्टी से न जाने क्या लिख गया है।"

वकील—(झुँझलाकर)—"धन्य हौ, बलिहा महराज, बलिहारी। पालागी!"

पंडित—" चिरञ्जीव! ए बने रहौ सरकार 'ई को हजूर रुष्ट हौ।"

वकील—"रुष्ट-पुष्ट नहीं समझ सकते। एक ज़रा जुमला नहीं चलता, आपसे, और कहते हो कि वे पुरान को तोता ऐसा रटे हुए हैं। (क्रोध से ओं चबाते हैं)।"

पंडित—(वकील को प्रसन्न करने के लिये)—"पुरा बेद और नवा बेद की बात नहीं। रहा यह बात……

वकील—"ऊँ० चुप रहिए जी। देख ली, देख लियाक़ते बेढ़ब। जब मामूली हिंदी नहीं पढ़ सकते, संस्कृत ज़बान क्या पढ़ सकेंगे। ताज्जुब है कि आ पत्रा कैसे बाँच लेते हैं।"

एक दूसरे मित्र बोले—"किसी ने जिह्वाग्र करा दिया होगा।" यह व्यंग्यवचन पंडितजी के हृदय में बाण की भाँति लगे। परंतु "मौनं सर्वार्थसाधनम्।" स्मरण हो आया। इसलिये चुप रह गए।

वकील (इन्हीं मित्र से)—"कहिए मि० टी० के० मित्रा! आप ही पढ़कर बतलाइए। स्कूल में आप सिकेंड फ़ार्म में हिंदी लिए थे।"

मिस्टर मित्र—"हाँ, मैं पढ़ सकता हूँ। सुनिए (पढ़ते हुए) कोई संदूक़ पर खड़िया... ... ...।"

वकील—"ओह! खड़िया-हड़िया। हम भी देखते हैं कि खड़िया मिट्टी से लिखा है, क्या आप हमें अन्धा समझते हैं। लेकिन—For the sake of god, please tell me what does the writing mean?"

मित्र (मुस्किराते हुए)—Sorry to say, I can't. It is beyond my power.

वकील—"तब क्या हर दम मुँह मियाँ मिट्ठू बने रहते थे। इम्तहान के मानी यही हैं कि पोल खोल दे। इतने में एक दूसरे सज्जन विद्वज्जन आए, उन्होंने कहा कि हम पढ़ेंगे। यह हिंदी है, और हिंदी हमारी मातृ-भाषा है।

वकील—"आप ही पढ़कर बताइए कि क्या लिखा है। यह तो एक तिलिस्म हो गया।"

सज्जन (पढ़ते हुए)—"कोई अर्थात् कोई मनुष्य... ...संदूक़ अर्थात् मंजूषा पर......खड़िया मिट्टी या चाक से......न-जाने क्या लिख गया है अर्थात् गोद-गाद गया है। लीजिए पढ़ दिया।"

वकील—"ओ हो! अब मैंने समझा। या तो कुएँ ही में भंग पड़ी है या वह डैम या जो कोई हो कुछ बुरा बात या हमारा कुछ भेद लिख गया है (सब हँसते हैं)। क्या कहें हिंदी न जानने से यह तकलीफ़ हुई। आज ही से हम हिंदी सीखने लगेंगे। बस, आज ही पहली किताब लाते हैं। इतने में नौकर पानी से तर करके डस्टर ले आया और एक ही हाथ में मारी सारी समस्या समाप्त कर दी।

बृहस्पतिदत्त मिश्र

× × ×

३. एक पोस्टकार्ड की आत्म-कहानी

मेरा जन्म लखनऊ नगर की एक अनुपम वाटिका में हुआ। गुलाब के पुष्प, पुष्प-प्रेमियों के हाथ से बहुधा छुटकारा पाने के लिये मेरी ही शरण लेते थे। पुष्पों के सत्संग से मुझमें भी सुगंध आने लगी थी। मेरे दिन चैन से कटते थे। गुलाब के वृक्ष से मेरा एक घनिष्ठ संबंध हो गया था। मध्याह्न-काल में जिस समय सूर्य भगवान् का कोप वृक्षों पर पड़ा करता है, उस समय यह सूर्य-भगवान् के कठिन कोप को स्वयं सहन करता और मुझ पर ज़रा भी आँच नहीं आने देता। बर्फ़ व ओलों के कठिन आघात से भी सदा मेरी रक्षा करता। भीनी-भीनी सुगंधवाले पुष्पों का मेरा वक्षःस्थल, क्रीड़ा-स्थल हो रहा था। हरएक का इन पर हाथ छोड़ने का साहस न होता। इनकी रक्षा में मैं अपनी जान लड़ा देती। पहला मोर्चा मुझ ही से होता। जब तक मेरी कमर में सामर्थ्य रहती, मैं सामना करती। कमर टूट जाने पर विवश हो जाती। दूसरा मोर्चा विटपदेवता बर्छेरूपी अपने तीक्ष्ण काँटों से स्वयं करते। जिस प्रकार हनुमान्जी ऊपर से अर्जुन के रथ की रक्षा करते थे, ठीक उसी तरह से भौंराजी महराज अपना मधुर राग अलापते हुए हम लोगों की रक्षा करते और जब कभी शत्रुदल के किसी को आते देखते हम लोगों को पहले ही से सचेत कर देते। हम लोग लड़ाई के लिये तैयार हो जाते। मुझे खड्ग का दाँव बहुत ही रवाँ था। शत्रु पर मेरा यह दाँव ठीक खड्ग ही-सा काम करता था। जिन पर मेरा यह दाँव भरपूर पड़ जाता, उनका दुबारा मेरे पास आने का साहस न होता। लेकिन साथ-ही-साथ एक बार दाँव खाया हुआ दुबारा मुझको मौक़ा ही नहीं देता कि फिर मैं उस पर अपना दाँव लगा सकूँ। वह पहले ही से मेरी कमर तोड़ देता और मैं छटपटाया करती। लगभग वाटिका के सब ही लोग मेरे इस दाँव से परिचित थे।

सदा किसी के दिन समान नहीं रहते। जो सीढ़ी पर चढ़ते हैं, वे उतरते भी हैं। समय के फेर में पड़कर बड़े-बड़े राजाओं-महाराजाओं को, जिनकी ओर देखने तक का भी बड़े-बड़े सामंतों को एक दिन साहस न होता था, एक अदना-से आदमी की बात-बात में घुड़की सुननी पड़ती है। इंद्रपुरी के समान अट्टालिकाओं में रहकर जो अपना समय सदा भोग-विलास में बिताते थे, उन्हीं

को अपनी क्षुधा की तृप्ति के लिये घर-घर दर्वाज़ा खट-खटाना पड़ता है। जो धन और ऐश्वर्य के मद में आकर सीधे किसी से बात नहीं करते थे, उन्हीं को समय के फेर में पड़ने पर एक-एक आदमी के आगे नाक रगड़ना और गिड़गिड़ाना पड़ता है। अस्तु, मेरे भी ऐश्वर्य तथा चैन के दिन समाप्त हो गए। काल-चक्र ने मुझे भी आ घेरा।

प्रातःकाल का समय था। पुष्पों से स्पर्श करती हुई शीतल वायु के मंद-मंद झकोरे चित्त को प्रफुल्लित किए देते थे। वाटिका के स्वामी इस सुहावने समय का आनंद लेते हुए माली के साथ वाटिका का निरीक्षण कर रहे थे। एकाएकी उनकी दृष्टि मुझ पर पड़ी और मेरा समस्त ऐश्वर्य धूल में मिल गया। एक ही दृष्टि में मेरा सत्यानाश हो गया। माली की एक ही खुर्पी ने मेरी जीवन-लीला समाप्त कर दी। मैं ही नहीं, मेरे साथ कितनी ही मेरी निरापराध बहनों की इसी तरह जीवन-लीला समाप्त कर दी गई और ठेले पर लादकर एक निर्जन श्मशान भूमि पर पहुँचाई गई। सप्ताहों तक किसी ने अन्न-जल तक के लिये नहीं पूछा। सूखकर काँटा हो गई। रंग पीला पड़ने लगा। सारे दाँव-पेंच भूल गए। जो सूर्यभगवान् एक दिन, जब कि मेरा और वृक्षदेवता का घनिष्ठ संबंध था, मुसकिराते हुए मेरी ओर देखते थे उन्होंने मेरे विपत्ति-काल में अच्छा मौक़ा पाने पर मुझे झुलस दिया। मेरा समस्त अंग पीला पड़ गया। सच है, विपत्ति-काल में कोई साथी नहीं होता। अपने भी पराए हो जाते हैं।

इन दिनों मुझे कैसे-कैसे दुःखों से सामना करना पड़ा, कहते आज भी रोएँ खड़े होते हैं। जब मैं सूख कर बिलकुल पीली पड़ गई, तब एक डाक्टर द्वारा मेरा निरीक्षण कराया गया और कुछ औषधों के साथ स्नान कराने को बतलाया गया। अतः मैं अपनी बहुत-सी आपत्ति की मारी हुई बहनों के साथ पानी से भरे हुए एक डेग में भर दी गई। इस पानी में कुछ औषध मिली हुई थी। मैं अभी क्षण-भर भी विश्राम न करने पाई थी कि जल ने भी अपना शीतलता का गुण छोड़कर मुझे तपाना शुरू किया। औषध ने भी सान्त्वना देने की अपेक्षा मेरे शरीर को घुलाना अधिक पसंद किया। धीरे-धीरे मेरा समस्त शरीर घुल-घुलकर द्रव्य पदार्थ में परवर्तित हो गया। मुझे मेरे इस रूप में कई वेशों के दर्शन कराए गए। कई एक पौष्टिक पदार्थों का सेवन कराया गया। क्षण-मात्र में मेरा रूप बिलकुल बदल गया। द्रव्य से ठोस पदार्थ में परिवर्तित हो गया। व्याकरण ने भी स्त्री-लिंग से पुँल्लिंग में मेरी गणना की। अनेक कष्ट भोगने के उपरांत मेरा पुनर्जीवन हुआ। मुझे काग़ज़ से काटकर एक पोस्टकार्ड के रूप में दिया गया। इस यमलोक की दारुण यंत्रणा भोगने के उपरांत मेरा यहाँ से छुटकारा हुआ। मोटर की सवारी मिली। क्षण-भर के लिये सब पिछले दुःखों को भूल गया। मोटर यहाँ से चलकर एक स्थान पर ठहर गई। सामने दूसरा यमलोक दृष्टिगोचर हुआ। देखकर मेरे देवता कूच कर गए। मैं थर-थर काँपने लगा।

मोटर से उतरने में बहुत हीला-हवाला किया, लेकिन मज़दूर ने मुझे मोटर से उतार ही कर दम लिया। इस यमलोक में मुझे दो दिन कालकोठरी में बंद किया गया, तदुपरांत मेरे इंजेक्शन देकर काली दवा भर दी गई, जिससे कि किसी प्रकार की बीमारी न हो सके। मेरे अंग पर Post Card का शब्द लिख दिया गया। यहाँ यंत्रणा तो सहनी पड़ी, लेकिन उस यमलोक की अपेक्षा बहुत कम। अब मुझमें कुछ सुंदरता भी आ गई। वहाँ से मुझे एक सुसज्जित भड़कीली दूकान पर पहुँचाया गया। यहाँ मेरी अच्छी प्रतिष्ठा होती थी। दोनों वक्त एक नौकर कपड़े से मेरी गर्द झाड़ करके साफ़-सुथरा रखता। लेकिन विधाता ही मुझसे रुष्ट हो गया था। उससे मेरा इस तरह का रहन-सहन कब देखा जाता। एक साहब कुछ पैसों के बदले अकेले मुझ ही को नहीं, मेरे साथ में और भी मेरे ऐसे कितने ही को ले गए। मार्ग में उन्होंने अपनी जेब में बिठाकर हम लोगों को खूब सैर कराई। घर में भी एक सुसज्जित कमरे में बिछी हुई मेज़ पर बैठाकर अच्छा सत्कार किया। मैं समझा कि मेरे दिन अब यहाँ चैन से कटेंगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, मेरे भाग्य में अभी क्या-क्या कष्ट और भोगना है, सो पाठकों को आगे चलकर मालूम होगा।

एक साहब सबसे विचित्र निकले। झटपट वह खोलकर मेज़ के सामने कुर्सी पर आ डटे, और लगे सुइयाँ भोंक-भोंककर मेरा मुँह काला करने। बात-की-बात में मुँह ही नहीं, बरन् सारा शरीर काला

डाला। एक ओर काला करके दूसरी ओर भी अपनी वही करामात दिखलाई, लेकिन इस ओर वह अंधाधुंधी हाथ नहीं दिखलाए। न-मालूम किसके डर से इनको हद की पाबंदी करनी पड़ी। जब यह काम समाप्त कर चुके, तब मेरे बाएँ कंधे के ऊपर एक कोने में जार्ज पंचम की काग़ज़ पर खिंची हुई चौकोर मूर्ति की स्थापना की और मुझको एक नौकर के हवाले किया। नौकर साहब मुझे पाते ही लेकर बदहवास भागे और मुझे लगे पंखे की तरह हिलाने। मैंने भी मैदान साफ़ पाया और झट उसके हाथ से छूटकर गली के किनारेवाली नाली में एक डुबकी लगा ही तो ली। मेरा यह साहस देखकर नौकर का मुँह फक़ हो गया। इधर-उधर देखकर बड़ी हिम्मत करके उसने मुझे नाली से निकाला और अपने अँगौछे से मुझे पोंछकर एक लेटरबक्स के हवाले किया। एक खिड़की से मुझे पाताललोक में दे मारा। भाग्य-वश मुझे यहाँ अधिक समय तक न रहना पड़ा। कुछ ही समय के बाद पाताललोक का दरवाज़ा खुला। एक चपरासी ने मेरा टिटुआ पकड़कर यहाँ से बाहर किया और एक थैले में बंदकर मुझे ले चला। एकाएकी मेरा दम घुटने लगा, लेकिन थोड़ी ही देर में थैले का मुँह खोल दिया गया और मुझे बहुत-से साथियों के साथ एक मेज़ पर पटक दिया गया। यहाँ की लीला सबसे विचित्र थी। यहाँ सबकी छटाई हुई, जिस पर जार्ज पंचमकी मूर्ति विराजमान थी, उनको एक ओर और जो इस मूर्ति से रहित थे, दूसरी ओर रक्खे गए। मुझ पर मूर्ति रहते हुए भी मेरी गणना मूर्तिरहित ही वालों की ओर हुई, क्योंकि नाली के अशुद्ध जल में स्नान करने से जार्ज पंचम महाराज का विना एक आना डाकविभाग में प्रायश्चितस्वरूप दिए छुटकारा नहीं हो सकता था। मुझ पर दो मोहरें लगाई गईं और शुद्ध होने के लिये एक थैले में बंद करके मुझे डेडलेटर आफ़िस की हवा खिलाई गई। यहाँ मेरी तरह और भी बहुत-से मेरे भाई-बांधव शुद्धि ही कराने को आए हुए थे। मैं भी एक बाबू के हाथ में दे दिया गया। उसने आदि से अंत तक मुझ पर एक तीक्ष्ण दृष्टि डाली, और गोंद के द्वारा एक बादामी पीतांबर पहनाया। पीताम्बर पर लाल रोशनाई से एक मंत्र भी लिख दिया, जिससे कि किसी को मुझसे कोई प्रश्न करने की भी आवश्यकता न हुई और मैं एक थैले में बंद करके रेल पर बैठाया गया। यहाँ फिर मेरी जगह बदली गई। थैले से निकालकर कुछ देर तक एक छोटे-से झरोखे में बैठाया गया, लेकिन न-मालूम बाबूजी को क्या सनक सवार हुई कि फिर झरोखे से निकालकर थैले में भरकर सील मोहर करके एक प्लेटफ़ार्म पर पटक दिया। उस मंत्र में न-मालूम क्या जादू था कि चपरासी ने पाते ही थैले का मुँह खोलकर एक पोस्टमैन के हवाले मुझको कर दिया। पोस्टमैन साहब घूमते-घामते एक साहूकार के पास पहुँचे और मुझे दिखलाकर प्रायश्चित्त के एक आने का सवाल किया। पैसों का सवाल आने से साहूकार ने मुझसे किसी प्रकार का संबंध रखने से कोरा जवाब दे दिया। मैं फिर जैसे-तैसे एक थैले में बंद करके दुबारा शुद्धि कराने को डेडलेटर आफ़िस भेजा गया। यहाँ मेरे स्वामी का पूरा-पूरा पता लगाने के लिये तीक्ष्ण दृष्टि से मेरा निरीक्षण किया गया; लेकिन जब कोई चिह्न न मिला, तो एक आने के पीछे मुझ ही को झट प्राणदंड की आज्ञा सुना दी गई। मेरे बहुत गिड़गिड़ाने पर यह शर्त लगा दी गई कि यदि एक महीने तक मेरा स्वामी मेरी कुछ सुध लेगा और प्रायश्चित्त का दंड चुका देगा, तो मेरा छुटकारा हो सकेगा। मैं एक कालकोठरी में बंद कर दिया गया।

आज मुझे इस कालकोठरी में आए एक महीना हो गया। आज मेरा अंतिम दिन है। आज ही मुझे भीषण अग्नि का सामना करके अपने प्राण गँवाने पड़ेंगे। मेरे स्वामी ने आज तक मेरी कोई सुध नहीं ली। लेकिन मुझे अभी तक आशा है कि कोई-न-कोई पाठक मेरी इस विपत्ति-कहानी को मेरे स्वामी के कानों तक पहुँचा कर मेरे प्राणों की रक्षा करेगा और मेरा गला फाड़-फाड़कर अपनी आत्म-कहानी कहने के परिश्रम को सुफल करेगा।

रामप्रसाद कपूर

सुमन-संचय

१. निठुर संसार

किया था उसने मुझसे प्रेम
किया था मैंने उसको प्यार;
इसलिये मचा हुआ है बहुत
आज दुनिया में हाहाकार।
भव्य कालिमारहित जो प्रेम,
उसे कहते हैं पापाचार;
और कहते हैं ऐसे लोग
स्वयं जो पापमूर्ति साकार।
लजाता नहीं तनिक भी लोक
इस तरह करते स्वेच्छाचार;
दिखाता पाप उसे सर्वत्र
क्योंकि पापिष्ठी है संसार।
हृदय है उसका बस पाषाण
नहीं करुणा का कुछ संचार;
दो जुड़े हृदयों को कर विलग
हाय ! पाता है क्या संसार!
द्वेष प्रिय हैं क्यों इतने लोग,
न-जाने कैसे उनके भाव ?
जला करते हैं जो दिन-रात,
किसी में देख प्रीत अपनाव।
बुरी तो है दुनिया स्वयमेव
उसे इसका क्या है अधिकार;
बतावे उसको वह अपवित्र
धवल गंगा की है जो धार।

कहा मुझको क्या-क्या है नहीं,
मुझे पाकर ग़रीब असहाय;
न्याय कहलाता है यदि यही
तो किसे कहते हैं अन्याय ?
बचाने को मैं उसकी लाज
नहीं जाऊँगा उसके पास,

शुभ्र रखने को उसकी कीर्ति
स्वयं कर लूँगा अपना नाश।
किंतु विस्मृत करना मत इसे
अरे ओ पापिष्ठी संसार;
नहीं है कुछ भी यहाँ अनंत
दीन के आँसू हैं अंगार।
बीचि से चुंबित जो चट्टान
उगा उस पर तन तरु असहाय;
मुझे क्या? बह जाऊँगा उधर
भाग्य की जिधर ले जाय।

पद्मकांत मालवीय

× × ×

२. महाकवि देवजी के तीन छन्द

प्रकृति-कवि विलियम वर्ड्स्वर्थ ने The green linnet नाम्नी कविता में एक स्थान पर लिखा है "Thyself thy own enjoyment'' अर्थात् तेरे तईं तेरा अपना आनन्द है, ठीक यही शब्द महाकवि देवजी के लिये भी दुहराए जा सकते हैं। इनकी कविता में उक्ति चमत्कार के साथ शब्दों की जैसी सुष्ठु योजना है, वह सहृदय-हृदय सवेद्य है। विचार-मौलिकता (Originality of thought) के साथ कल्पनात्मक चमत्कारिकता (Vividness of imagination) का जैसा सुन्दर सामञ्जस्य इनके पद्यों में पाया जाता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। हिन्दी-संसार का यह दुर्भाग्य है कि वह अभी तक इन्हें अच्छी तरह नहीं समझ सका। एक बार माधुरी-सम्पादक पूज्य मिश्रजी ने 'देव-विहारी' पुस्तक लिखकर इनके धूल-धूसरित साहित्यरत्नों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया था, जिसमें वे बहुत कुछ सफल भी हुए हैं। परन्तु जब तकइस महाकवि के सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित नहीं होते, तब तक मैं तो यही कहूँगा कि "हम लोग अपने पूर्वज प्रतिभाशाली कवियों का आदर करना नहीं जानते. हमारा साहित्याभिमान मृषा है।" अस्तु, आज यहाँ इनके अप्रकाशित रसानंद-लहरी, नायिका-वर्णन आदि ग्रन्थरत्नों से तीन छन्द उद्धृत करता हूँ। यदि माधुरी-पाठकों ने उन्हें पसन्द किया, तो शीघ्र ही इनकी पिङ्गल तथा अलङ्कार-सम्बन्धी ग्रन्थों में से विशेष रूप से लिखूँगा*। सम्प्रति मेरे पास इनके निम्नस्थ ग्रन्थ हस्त-लिखित वर्तमान हैं। भवानीविलास, रसविलास, जातिविलास, भावविलास, अष्टयाम, रसानंद-लहरी, नायिका-वर्णन, अलंकार-सम्बन्धी एक सुन्दर ग्रंथ तथा पिङ्गल, साथ ही मैं इनके वृत्त-विलास की खोज में हूँ।

नभोदेश में पार्वण चन्द्र अपनी चारु ज्योत्स्ना विकीर्ण कर रहे हैं, प्रियतम का प्रेम प्रसाद पाकर वधू यामिनी का प्रणयालोक विरहित हृदय हर्षातिरेक से खिल उठा है। अवनि आकाश, निर्जन गिरिशिखर, सभी जगह हीरक खण्डों की वर्षा-सी हुई है। ऐसा मालूम होता है, मानों आकाश से आलोक का फेनिल समुद्र उमड़ पड़ा है। ऐसे ही सुन्दर समय में स्फटिक-समोज्ज्वल चन्द्र महल में शरत् लक्ष्मी की भाँति कल-हंस शुभ्र वसना कीर्तिकुमारी श्रीराधिकाजी तथा श्रीकृष्णजी दृग्गोचर होते हैं। उधर रजनी और रजनीश हैं, तो इधर भी देवजी की प्रतिभा राधिका और राधिकेश को ला उपस्थित करती

---

* महाकवि देवजी के निवासस्थान, कुसमरा जि० मैनपुरी, में मेरा ममाना है—इस कारण देववंशात्मज श्री पं० मातादीन-जी तथा केशवरामजी द्वारा देवजी के साहित्यान्वेषण में मुझे बहुत कुछ सहायता मिली है। एतदर्थ मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ।—लेखक

है। उभय ओर प्रणयि युग्म हैं, कैसा सुंदर सादृश्य है।

हाँ, तो दोनों प्रणयि-प्रणयिनी अमल धवल दुग्ध फेनोज्ज्वल शुक्ल परिधान धारण कर चाँदनी में छिपने की चेष्टा करते हैं—और चाँदनी में ऐसे मिल जाते हैं कि फिर परिजनों के खोजने पर भी नहीं दिखलाई पड़ते, प्रातः-काल सूर्योदय होने पर दृष्टि आते हैं। कवि की विदग्धता और सूक्ष्मदर्शिता सौ मुख से भी सराहने योग्य है। सुनिए—

पूरन सरद शशि, उदित मुदित दोऊ,
बिहँसि बिलसिबे को, देव रसभरे हैं;
छीरज बरन बनि, छबि सों छबीले छैल,
छबि ही की गैल, छिपिबे के भेख धरे हैं।
चाँदनी महल मिलि गए, मिलि चाँदनी मैं,
पून्यौं की रजनि, परिजन अनुसरे हैं;
मूढ़ भए ढूँढ़त, अगूढ़ गूढ़ पैयत न,
साँझ ते निहारे पै, सबारे सूझि परे हैं।
— रसानंदलहरी

मीलित * अलंकार की अनोखी छटा के साथ माधुर्य-गुण का सहज अकृत्रिम प्रवाह निष्प्राण हृदय को भी कवित्वरस में निमज्जित किए बिना नहीं मानता।

और सुनिए—मध्या नायिका है। कविवर पद्माकर ने मध्या का लक्षण यों कहा है—

इक समान जब ह्वै रहत, लाज मदन ये दोय;
जा तिय के तनु में तवै, मध्या कहिए सोय।
—पद्माक

उसी मध्या नायिका का पति परदेश जा र है, ऐसे कठिन समय में मध्या की सखी गमनोद्य नायक को किस कौशल से बाहर न जाने के लि प्रेरणा करती है; वह कहती है—

देव जो बाहर ही बिहरै, तौ समीर अमीरस बिंदु लै जै
भीतरै भौन बसै बसुधा ह्वै सुधा मुख सूँघि फनिंदु लै जै
जैए कहूँ यहि राखि गुबिंदु कै इंदुमुखी लखि इंदु लै जै
राखिहौ जो अरबिंदु हू मैं, मकरन्द मिलै तौ मलिंदु लै जै
—नायिका-न

अर्थात्, आप बाहर न जायँ, नहीं तो ब ग़ज़ब हो जायगा। क्योंकि आपसे एकाकी हुई आपकी प्रियतमा जब बाहर घूमने निकले तो समीर सब अमृत सुखा के दूर ले उड़े और, यदि धरती के भीतर महल में रहेगी, उसके सुरभित श्वासोच्छ्वास को सूँघकर नाग उसे पाताल ले भगेंगे। और फिर इन स बच भी गई, तो इंदुमुखी को इंदु महाराज छोड़ेंगे, निश्चय ही वे उसे चंद्रलोक में जायँगे। बड़ी आफ़त है; भीतर-बाहर, ऊपर कहीं उसके रक्षा का उपाय नहीं है यहाँ तक कि कमल में यदि उसे छिपाकर रखि तो मकरंद के लोभी मलिंद नहीं मानेंगे। इस आप इसे अपने साथ ही रक्खें।

धन्य! देवजी धन्य!! तुमने काव्य-चातुर्य पराकाष्ठा कर दी। प्रतिभा के पैंठ में पैठ तुमने जिन रत्नों को सुसज्जित किया है, वे अमूल हैं। शब्दों की स्वाभाविकता, भावों की प्रव भाषा की मधुरता, उक्ति की चतुरता सभी दूसरे से बढ़कर हैं।

बस, अब अंत में देवजी का शांतरसांत

---

* मीलित सो सादृश्य ते भेद न जबै लखाय;
अरुण बरण तियचरण पै, जावक लख्यो न जाय।
——भाषाभूषण

अर्थात्, लाल रंग के हीं स्त्री के चरण हैं और जावक, महावर का भी लाल रंग है, इसलिये दोनों का एक सादृश्य होने से भेद का भान नहीं होता—संस्कृत कुवलयानंद में भी मीलित के उपर्युक्त लक्षण ही किए हैं। यथा—

"मीलिते यदि सादृश्याद्भेद एव न लक्ष्यते" यानी सादृश्य से भेद न जाना जाए। देवजी के उपर्युक्त कवित्त में मीलित-अलंकार का चमत्कार देखिए।—लेखक

ज्ञान-वैराग्य* का एक कवित्त लिखकर पाठकों से शीघ्र पुनर्मिलन की आशा के साथ बिदा लेता हूँ।

अग नग नाग नर किन्नर असुर सुर,
प्रेत पशु पच्छी कोटि कोटिनु कढ़्यो फिरै ;
माया गुन तत्त्व उपजत बिनसत सत्त्व,
काल की कला को ब्यालखाल में मढ़्यो फिरै।
आपु हीं भषतु भषु आपु आपु हीं अलषु,
देव कहूँ मूढ़ कहूँ पंडित पढ़्यो फिरै ;
आपु हथियार आपु मारत मरतु आप,
आपु हीं कहाँर आपु पालकी चढ़्यो फिरै ।
—भवानीविलास

उपर्युक्त छंद में यथार्थ चित्रण के साथ कवि के दार्शनिक भाव कोटिशः हृदयाभिवंदित हैं। सचमुच देवजी ने आत्मैकत्व का अगाध ज्ञान परिमित शब्दों में भर दिया है।

हिंदी-भाषा-भाषियों के लिये वेदांत के तत्त्वमसि वाक्य की भाँति यह छंद सतत पठनीय, मननीय एवं संस्मरणीय है। मुझे यह छंद इतना प्रिय है कि मैं इसका प्रतिदिन कई बार पाठ करता हूँ।

कुँ० हरिश्चंद्र देव वर्मा "चातक"

× × ×

---

* "शांतरस निर्वेद बढ़ि होत ज्ञान-वैराग" (देव)
(निर्वेद) स्वशरीर एवं सांसारिक पदार्थों का तिरस्कार।— लेखक

गृहस्थी का सुख
जीवन का आनंद
अजेय शक्ति
महाशक्ति
काम-कुंज
मूल्य २॥)
सखी हृदय
स्त्री-सौंदर्य
अबलाओं के आँसू
मौन भाषा
नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ

३. रहने दो

मैं तो स्मृति के धुँधले प्रकाश पर खड़ा-खड़ा तुम्हारी किसी विस्मृति झाँकी का विचित्र चित्र खींच रहा था। आशा और अभिलाषा का लहराता हुआ आँचल का छोर छूकर निराशा के रंग से रँगी कूचियों को धोने की धुन में था, इतने में ही मेरी टूटी प्याली के किसी कोने में स्पष्ट आह का तुमने एक बूँद क्यों टपका दिया?

मैं तो अपनी नीरव वीणा के टूटे तारों को सुलझाकर तुम्हारे किसी अज्ञात स्वागत में अनंत के राग छेड़ रहा था, इतने में ही सहसा तुमने अपना झूठा प्रलाप छेड़कर मेरे सच्चे संगीतों को क्यों दबा दिया?

मैं तो किसी बिखरी हुई सूखी माला में एक अधखिली कली को गूँथकर बहुमूल्य उपहार बनाने में मस्त था, सहसा तुमने उसे वायु के एक मृदुल झोंके से क्यों गिरा दिया?

चारों ओर ऊषा की लाली अंशुमाली के आगमन की सूचना दे रही है, परंतु मेरे संसार में तो अभी नक्षत्रों ने जगमगाना तक नहीं प्रारंभ किया। किसी आनंद से आनंदित होकर पक्षी अपने कलरव में लगे हैं, परंतु मेरे छोटे-से संसार में तो अभी पक्षियों ने मधुर झपकियाँ तक नहीं लीं।

रहने दो प्यारे! मुझे इस निराशा में ही आशा है, इस वैराग्य में ही राग है, इस घोर अंधकार में ही तुम्हारे प्रकाश की एक किरण की झलक है, इस पीड़ा में ही मधुर मिठास है।

त्रिभुवनशंकर त्रिपाठी

× × ×

४. अभिलाषा!

उर-अंतर में व्यथा निरंतर,
बढ़ती जाती प्राणाधार!
विषम-वेदना से व्याकुल हूँ,
लगता है यह जीवन भार॥
प्रतिपल जलती ही जाती हूँ,
हुआ मुझे पावक संसार।
हृदय चीरकर देखो प्रियतम!
करती हूँ मैं कितना प्यार॥
मन-मंदिर में मूर्ति तुम्हारी,
रखती हूँ मैं हे प्रियवर!
नाथ! मुझे कृतकृत्य करो अब,
नेह-नीर से नहला कर॥

चतुर्भुज माहेश्वरी "चतुर"

× × ×

५. मानी

काहे घनश्याम रहो रूसे सबै याम तुम,
राम, राम, पानी नहीं पाहन समान हो;
लोगन समाई कैसे, लाओ हरियाई साथ,
बरसे सदाई मेरे जान तौ कृसान हो।
जानति हौं—निठुराई पघराई बुंद-बुंद,
करत "गिरीश" बघराई क्यों गुमान हो;
झरसी कितै ही भूमि तरसी नितैही रहै,
बरसी चितै ही में न आनत ये आन हो।

गिरिजाशंकर मिश्र "गिरीश"

× × ×

६. अपना सुख

अंशुमाली! तुम्हारी यह हँसी हमें इस समय विष-सी लगती है। पहले तो किसी भले आदमी के घर में वातायन में होकर झाँकना ही निंद्य है और उस पर भी भीतर हाथ बढ़ाकर मुझे निद्रादेवी की सुखमयी गोद से बलात् खींचना निंद्यातिनिंद्य है। तुम समझते हो कि निद्रा की गोद छोड़ने का समय हो चुका हो सकता है, परंतु रजाई की गोद छोड़ने के लिये

तो अभी देर है। थोड़ी देर हुई थी कि मूर्ख मुर्गों ने कुहराम मचा दिया था, पृथ्वी सिर पर उठा ली थी। बस, उसी समय से निद्रा मुझे छोड़ न-जाने कहाँ चली गई। मैं उसके वियोग से कातर हो उसके आराधनास्थल ही में उसका आवाहन कर रहा था कि तुमने आकर बाधा डाल दी। सारा गुड़ मिट्टी कर दिया।

ए, यह क्या? बढ़ते ही आते हो, मानोगे नहीं। मुझे उपदेश देते हो कि 'यह अति रमणीय प्रातःकाल है, इस समय शीतल मंद सुगंध वायु संचरित हो रही है।' वाह! निरे भोंदू हो। रमणीयता तो कोरी मानसिक कल्पना है। जिस रमणीयता का आनंद निठल्ले कवि प्रातःकाल के प्राकृतिक दृश्य में प्राप्त करते हैं, उस आनंद का चाचा तो अपने राम रजाई में लपटे हुए करवटें बदलने में ही पा जाते हैं। रही शीतल वायु की बात, यह तो कोई महा अबोध भी न कहेगा भला शीत-ऋतु में शीतल वायु तो वही चाहेगा, जिसका जी इस संसार से ऊब गया हो। यहाँ चाय के पैसे तो कोट-पैंट में घुस जाते हैं, फिर सवेरे-सवेरे रजाई में चक्कर काटती हुई जठराग्नि द्वारा उष्ण की गई वायु ही आधार रह जाती है।

तो क्या हठ करते ही जाओगे? मेरे दुर्बल शरीर पर उपहासपूर्ण व्यंग्य करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती। शरीर दुर्बल है, तो क्या? है तो मानुषी ढाँचा। मोटे शरीर से क्या बोझा ढोना है? मुझमें शक्ति कितनी है, यह तुम नहीं जानते? जिस समय मैं टाइटोप को अपनाकर चाटुकारिता का एक मंत्र पढ़कर फेंकता हूँ, उस समय अच्छे-अच्छे भी उल्लू बन जाते हैं और ऐसे-वैसों को तो भयावने विदूषक का मेरा वह स्वाँग ही पर्याप्त है।

अच्छा, तुम तो सिर पर ही चढ़े आते हो। कहते हो 'ईश्वर का ध्यान करो, भारत-जननी के उद्धार का प्रयत्न करो, इत्यादि-इत्यादि न-जाने क्या-क्या अंडबंड बक रहे हो। ठीक है, सारे आनंद को छोड़कर ऊटपटांग बातों में लग जायँ। ईश्वराराधना के लिये क्या हमीं रचे गए थे? क्या यह भी सरकारी बेगार है कि करना ही पड़े? क्या ईश्वर में इतनी भी विचारशक्ति नहीं कि हम-ऐसे महानुभावों को व्यर्थ में तंग न करें? और फिर भारत, भारत से मुझे संबंध ही क्या? उद्धार हो या रसातल को चला जाय, हमें तो सोने से काम। हाँ, अप-टू-डेट बनकर बाल सँवारने की चिंता अवश्य है। सो उठते ही पहले यह काम कर लेंगे, फिर हाथ-मुँह धोने की देखी जायगी।

कुछ समझे कि नहीं? बस, अब और अधिक तंग न करो। हाँ, तो मुझ-सरीखे सच्चे भक्तों की आश्रयदाता निद्रादेवी! मुझे एक बार फिर कुछ काल के लिये अपनी गोद में उठा ले; हे मेरी परम सहचरी रजाई, तू मेरे मुँह तक के ऊपर आकर इस ढीठ दिवाकर को हटा दे; हे मेरे वातायन के कपाटरूपी पहरेदार, तुम लपककर इस अनधिकारी को यहाँ से निकाल बाहर कर दो; हे मेरे आलस्यदेव, दुर्बल शरीर, टाइटोप, चश्मा आदि, मेरी लज्जा तुम्हारे हाथ में है; अंत में, हे मेरे चाटुकारितारूपी गुरुमंत्र, तेरी ही सर्वशक्तिमत्ता का मुझे भरोसा है।

शंकरसहाय वर्मा

× × ×

७. लज्जा से

आज तोड़ दूँगी मैं लज्जे!
तेरे सभी जटिल बंधन--
विरह-व्यथा से हो व्याकुल!

कितना अब तक झुलस चुकी हूँ
हृदय-दाह के तापों से,
कितनी कठिन वियोग-यंत्रणा
सही, हाय ! किन पापों से ;
अब न रुकेगा, प्रेम-वेग !
अति प्रवल, उमड़ करता गर्जन--
टूटा, लोक-लाज का पुल !
अगणित आशा-दीप प्रज्ज्वलित
हो, बुझ जाते अपने-आप ;
कितने भाव-कुसुम खिलखिलकर
हाय ! सूख जाते चुपचाप।
अवगुंठन-पिंजर में वंदी
अब न रहेंगे दृग-खंजन--
विना रूपरस पिए मृदुल !
व्यंग्य-शरों की सहन-तपस्या का,
प्रतिफल कब पाऊँगी ?
सजनि ! शशी-सी वन कलंकिनी
कब उर-दाह मिटाऊँगी ?
किस विधि जीवन धरे मयूरी
बिन देखे शुठि श्यामल घन ?
विना खिलाए मनोमुकुल !
अलियों का अंगुलि-उत्तोलन !
प्रमदाओं का भ्रू-संचार,
भीतर व्यथा, अवज्ञा वाहर
घृणा, भर्त्सना, हाहाकार ;
सजनि ! तुम्हीं रख हाथ निहारो
इस भोले दिल की धड़कन--
डसती है, वेदना विपुल !

हृदयनारायण पांडेय "हृदयेश"

× × ×

डॉ॰ वामन गोपाल
का
सार्सा परिला

AMAN COPAL'S
REGISTERED
COMPOUND LIQUID EXTRACT
OF RED JAMAICA
ED SARSAPARILLA
properties of the extract
by the presence of valuable
influence chiefly the blood
to be the efficacious in all
in Venereal, Scrofulous,
other disorders. It acts al
Syphilitic diseases.
Proprietors
amrao Kesheo & Son

बिगड़े लोहू को सुधार कर शरीर में शुद्ध रक्त की वृद्धि करता है। इसके सेवन से दूषित रक्त और सभी विकार, गर्मी, चाँदी-प्रमेह वग़ैरह सब निर्मल होते हैं। ७८ वर्षों से हज़ारों लोग लाभ उठा रहे हैं। अनेक सुवर्णपदक मिले हैं। मूल्य १।) और

डॉ॰ गौतमराव केशव की
धातु, रक्त, मनोत्साह और शक्तिवर्धक पौष्टिक
फॉस्फरस पिल्स

गो॰ डा॰ गौतमराव केशव अनसन ठाकुरद्वार, बंबई २

५००) इनाम

महात्मा-प्रदत्त विषनाशक जड़ी—इसे सिर्फ़ दिखाने से भयानक से भयानक बिच्छू, बिरनी (हड्डा) मधुमक्खी का विष तुरंत आराम हो जाता है। लाखों को आराम कीजिए। सैकड़ों वर्ष पड़ा रहे, गुण में ज़रा कमी नहीं आती, मूल्य १); बेफ़ायदा साबित करनेवाले को ५००) इनाम।

श्रीयुत रामाज्ञा द्विवेदी "समीर" एम्॰ ए॰ २।१०।२७ के लीडर में लिखते हैं—इसे मैंने बहुत गुणकारी पाया। एक जड़ी सैकड़ों आदमी को आराम कर सकती है।

पता—अखिलकिशोरराम
११६ नं॰ ३०, पो॰ कतरीसराय (गया)

एक नई ख़बर

एक नई पुस्तक "हारमोनियम तबला ऐंड बाँसुरी मास्टर" प्रकाशित हुई है। इसमें लगभग ५० नई-नई तर्ज़ों के गायनों को सरगम नंबरों द्वारा लिखकर फिर राग-रागिनी का वर्णन ख़ूब ही किया है। स्कूलों में आजकल संगीत का प्रचार हो रहा है, इसलिये विद्यार्थी भी इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं। अगर इसके ज़रिए विना उस्ताद के हारमोनियम, तबला व बाँसुरी बजाना न आवे, तो मूल्य वापिस देने की गारंटी है। मूल्य केवल १), डाकख़र्च ।-)

१७४ पता—गर्ग ऐंड कंपनी, हाथरस

८. तिब्बत की कुछ विचित्र रीतियाँ *

वर्तमान समय में तिब्बत में जो धर्म प्रचलित है, वह बौद्ध-धर्म से भिन्न है। उस देश में भूत-प्रेत-पूजा (Devil worship) ही अधिकांश में मानी जाती है, यद्यपि इसके कुछ नाम बौद्ध-धर्म की पुस्तकों से मिलते हुए हैं। तिब्बत के निवासियों के लिये प्रत्येक स्थान इन अलौकिक दुष्टात्माओं की निवास-भूमि है। इस देश में ग्राम के द्वार पर, जहाँ किसी नदी या नाले पर कोई पुल हो, या किसी पहाड़ी मार्ग के सिरे पर ध्वजा-पताका की एक श्रेणी दृष्टिगोचर होगी अथवा प्रार्थना का ऊँचा बाँस (डंडा) दिखाई देगा। मार्ग के प्रत्येक मोड़ पर दुष्टात्माओं की प्रसन्नता के लिये कुछ शांति-पाठ अथवा भेंट करना आवश्यक है। कुएँ, झील और नाले इन भूत-प्रेतों से भरे हुए हैं, जो कि लामाओं के नियमों के उल्लंघन होने पर अपना क्रोध जल में बाढ़ कर देने या ओलों की वर्षा से प्रकट करते हैं। प्रत्येक मार्ग या द्वार इसी प्रकार के भय के कारणों से युक्त है। इन दुरात्माओं की निवृत्ति केवल प्रार्थना या स्तुति से ही नहीं हो सकती है, जब तक कि लामा (तिब्बत का पुजारी) अपनी स्वीकृति प्रदान न कर दे। कोई नया कार्य, किसी मकान का बनाना, किसी नए पहिए का चलाना आदि कार्य इन धर्म-गुरुओं की आज्ञा बिना नहीं हो सकता है। इसके लिये केवल द्रव्य देना ही पर्याप्त नहीं है, परंतु उनके लिये बिना मज़दूरी कार्य भी करना पड़ता है, जो बेगार से भी अधिक कष्टदायक है।

घर के द्वार पर चार वस्तुएँ अवश्य होनी चाहिए—(१) प्रार्थना का ऊँचा डंडा या बाँस (२)। मिट्टी का एक टूटा हुआ चा का पात्र जिसमें एक प्रकार की सस्ती धूप जलाई जाती है, जिसकी गंध से दुष्टात्मा (भूत-प्रेत) भाग जाते हैं। (३) एक जाल रस्सियों का बुना हुआ जो कि तिनकों या एक प्रकार की घास से बने हुए डोरों से फैलाया जा सके, जो कि एक कुत्ते या भेंड़ के मस्तक के ऊपर के भाग पर लगा रहता है, जिसमें नेत्रों के स्थान पर काँच के टुकड़े लगाए जाते हैं। उन लोगों का यह विश्वास है कि इस प्रकार की आकृति से उस गृह में रहनेवाले, रोगों को उत्पन्न करनेवाले दुष्ट जीव खिचकर उस स्थान पर आ जाते हैं और शीतला या चेचक का रोग (small-pox) तो वहाँ हो ही नहीं सकता जो तिब्बत में बहुत फैलता है। चौथा स्वस्तिक (卐) का श्वेत या नीला चिह्न-विशेष, जिस पर सूर्य और चंद्रमा के भद्दे चिह्न बने रहते हैं। मार्ग पर कहीं-कहीं पत्थरों के ढेर लगा दिए जाते हैं। उन लोगों का यह विश्वास है कि जाते समय इनको बाएँ हाथ की तरफ़ रखना चाहिए, इससे भी उन दुष्ट जीवों का शमन होता है। कहीं-कहीं चौड़े पत्थर के टुकड़ों पर कुछ मंत्र खुदे हुए होते हैं। ग़रीब मनुष्यों के झोपड़ों की दीवारों पर पीले अभिमंत्रित काग़ज़ मढ़ दिए जाते हैं। लोग जब बाहर जाते हैं, तब गले में एक छोटी-सी पेटी लटकाते हैं, जिसमें मिट्टी की एक छोटी मूर्ति, कुछ मंत्रित गेहूँ के दाने और दो-तीन लिखित मंत्र रहते हैं। इनमें किसी-किसी में कुछ गोलियाँ भी होती हैं, जो कि उनके धर्मगुरु (Rinpoche) रिनपोक की भस्म का चिह्न समझा जाता है। इन सबके लिये उन लोगों को लामाओं को कुछ दक्षिणा देनी होती है। इस कथन से अत्युक्ति न होगी कि तिब्बत की संपत्ति का उपभोग प्रायः लामा ही करते हैं।

तिब्बत के निवासी पुनर्जन्म को मानते हैं। इनके सर्व-प्रधान लामा ने, जिसको दलाई लामा (Dalai Lama) कहते हैं, यह बात निर्धारित की कि लामाओं के धर्म का सुधारक सांग कपा (Tsong-Kapa) दूसरे जन्म में रूस का ज़ार (Tzar) सम्राट् हुआ। यद्यपि उसने यह राजनैतिक कारणों से किया था, तथापि इसका उस देश के निवासियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उस सम्राट् के प्रति उनके भाव आदर के हो गए। महारानी विक्टोरिया (Queen Victoria) को भी वे अपनी एक देवी का अवतार मानते थे।

तिब्बत की एक विचित्र प्रथा यह है कि स्त्री अपने पति के भाइयों को भी अपना पति ही समझती है। इस अद्भुत रीति से वहाँ किसी प्रकार का विवाद या उत्पात पारिवारिक जीवन में नहीं होता। उनका जीवन वैसा ही शांतिमय और सुखमय होता है, जैसा कि अन्य देशों में होता है।

---

* परसीवल लैंडन (Perceval Landon)-रचित ल्हासा (Lhassa) का वृत्तान्त-नामक पुस्तक के आधार पर लिखित।

यदि एक परिवार में तीन लड़के हैं, तो ज्येष्ठपुत्र घर के कामकाज को देखेगा और घर पर रहेगा, दूसरा पुत्र भेड़ों और पशुओं को चराने के लिये ले जायगा और तृतीय पुत्र लामा बनेगा । इस कारण दो भाई एक स्थान पर बहुत कम मिलते हैं और वह स्त्री यह निश्चय करती है कि किस समय किसके पास रहेगी । घर के कामकाज का भार गृहपत्नियों पर ही निर्भर है । वे अपने घर की वस्तुओं को अपने पति की अनुमति प्राप्त किए विना बेच सकती हैं या ख़रीद सकती हैं । इनमें से कतिपय रूपवती भी होती हैं ।

इस देश की भाषा न जानने के कारण और इन लोगों के पृथक् रहने के कारण इनके गृह-जीवन के विषय में हम अधिक नहीं जानते हैं ।

तिब्बत में चा भी छोटे-छोटे टुकड़ों ईंटों) में रक्खी जाती है । चा की पत्तियाँ एक प्रकार के गोंद से चिपका दी जाती हैं । अँगरेज़ लोग जिस प्रकार दूध डालकर चा बनाते हैं या चीनवाले जिस प्रकार सुगंध-युक्त द्रव्य डालकर चा बनाते हैं, उस प्रकार तिब्बतवाले चा नहीं बनाते । उस चा के टुकड़े में से एक छोटा टुकड़ा काटकर एक पात्र में पानी गर्म करके उसमें चा डाल दी जाती है । फिर उसको एक बाँस के पात्र में डालकर नोन (लवण) उसमें मिलाया जाता है । फिर इसमें थोड़ा-सा मक्खन डालकर उसको हाथ से हिला देते हैं । तब वह पीने के योग्य हो जाती है । चा पीने के पश्चात् वे एक प्याले (पात्र) में उबले हुए अंडे रखते हैं । इनको वे बड़े स्वाद से भोजन करते हैं । इनके साथ कुछ रोटियाँ (चपातियाँ) भी खाते हैं, जो कि नर्म होती हैं और अंत में कुछ मांस के टुकड़े, जो कि कचौड़ी के समान तले हुए होते हैं, खाए जाते हैं । मिठाई भी २०-२२ प्रकार की तैयार की जाती है । सबके अंत में एक प्रकार की मदिरा (Wine) का पान होता है, जो कि ह्विस्की (Whiskey) से मिलती हुई होती है ।

ये लोग कठिन शीत के कारण स्नान बहुत कम करते हैं, विशेषकर नीची श्रेणी के मनुष्य बहुत मैले और गंदे होते हैं । तिब्बत की स्त्रियाँ यात्रा बहुत कम करती हैं । जब वे बाहर जाती हैं, तो अपने शरीर को एक चद्दर या कम्बल में ढक लेती हैं, जिससे दूर से पहचानना भी कठिन हो जाता है । तिब्बत के निवासी अतिथि का सत्कार बहुत करते हैं और इनका आचरण भी सीधा सरल और अंतःकरण दयार्द्र होता है ।

ब्रह्मदत्त मिश्र

× × ×

६. हृदय

(१)

हृदय तुम वस्तु क्या हो और रचना क्या तुम्हारी है;
तुम्हारी रीति तो देखी, जगत् में सबसे न्यारी है।
सुना है, तुमसे वंचित होके, नृप बनते भिखारी हैं;
तुम्हारी शान कहते हैं, कि दुनिया से निराली है।

(२)

नहीं मालूम तुम प्रस्तर-रचित हो या कि फूलों से;
कि या नवनीत से, जल की तरलता से, कि शूलों से।
मधुर पयपूर्ण हो ! जुड़ते न, जो एक बार फट जाते;
हृदय सच-सच बता दो, जान पाते, हम न, थक जाते।

(३)

तुम्हें देखा निठुर ! मैंने सिसकतों पर विहँसते भी;
साथ में रोनेवालों के, सदय ! रोकर हिचकते भी।
प्रथम होकर परुष फिर मोम बन जाते तुम्हें देखा;
कुपित आतप से, शीतल सोम बन जाते तुम्हें देखा।

(४)

अचलता भी तुम्हारी मेरु-जैसी देख पाते हैं;
मगर—विद्युत्मयी गति, क्या तुम्हारी भूल जाते हैं।
कहो, फिर किस तरह तुम रंग अपने यों बदलते हो
तरंगों की तरह भावों की सरिता पर मचलते हो

(५)

न भीषण वज्रपातों से कभी तुम खिन्न होते हो;
हृदय ! क्योंकर कहो फिर पुष्प-शर से छिन्न होते हो!
धड़कते हो प्रतिक्षण, किस तरह तुमको अचल मानें;
जो मानें भी, तो कैसे, तुम भ्रमरते क्षण में मनमाने

(६)

अचल चंचल परुष कोमल अमृतमय औ गरल तुम हो;
हो वक्षस्थल के कोने में, मगर सीमा-रहित तुम हो
तुम्हारी देख लीला सब, सविस्मय, मुग्ध होते हैं
तुम्हीं को भेंट देते हैं, तुम्हीं पर लुब्ध होते हैं

* * *

तुम्हारा तत्त्व क्या है आज तक, जाना नहीं मैंने ;
तुम्हें पाया तो, पर अफ़सोस, पहचाना नहीं मैंने।

क्षमारानी माथुर

× × ×

१०. श्रांत पवन

मलयानिल ने कहा लता से
थका हुआ हूँ मैं अविराम।
अपने मंजुल मृदुल कुंज में
दोगी क्या मुझको विश्राम ?
किंतु लता ने शीश हिलाकर
कहा—"यहाँ विश्राम नहीं।"
तब निराश होकर मलयानिल
मन मारे चल पड़ा कहीं।

शांतिप्रिय द्विवेदी

× × ×

११. प्रभात

विजन प्रांत में—
अलि ! इन कुमुदों के अधरों पर
शुभ्र विहरणी यह मुस्कान
कम्पित अधरों से ऊषा का
प्रिय, क्यों करती है आह्वान ?
शत-शत खंडों में फैला है
किसी अचेतन का संसार ?
स्वर्णमयी अवनत किरणों में—
आँखमिचौनी खेल रहा है,
छाया का नन्हा आकार !
चंचल सरिता वक्ष मुकुर में—
क्यों डबडबा रहा संसार ?
मौन निमंत्रण भेज रहा है
मेरे पागलपन का भार !
वकुल-पंक्तियाँ बुला रही हैं
विजन तटों से किसे कुमारि ?
नव समीर के हृत्कंपन में,
थिरक रहा मेरा नव प्यार।

रमाशंकर जैतली "विश्व"

× × ×

१२. निर्धन छात्र और छात्रवृत्तियाँ

आजकल छात्रों की आर्थिक अवस्था संतोष-जनक नहीं है। बहुत-से निर्धन छात्र किसी-किसी तरह ट्यूशन या और किसी प्रकार से अपने खर्च का प्रबंध करके पढ़ रहे हैं। संतोष की बात है कि कई एक उपकारी सज्जनों ने या संस्थाओं ने 'स्कालरशिप' और 'फ़्री स्टुडेंटशिप' प्रदान करके इन ग़रीब छात्रों की सहायता करने का प्रयत्न किया है।

आज हम अपने इस नोट में यही विचार करेंगे कि इनसे ग़रीब विद्यार्थियों को कितना लाभ हुआ है। आज प्रायः प्रत्येक स्कूल और कालेज में फ़्री स्टुडेंटशिप दिए जाते हैं। ग़रीब विद्यार्थियों के लिये Poor boys' fund खुला हुआ है। पर जो विद्यार्थी इन सौभाग्यों का भोग करते हैं, उनमें से कितने इसके यथार्थ योग्य हैं? जहाँ तक मेरा अनुमान है, २५% ही ऐसे निकलेंगे, शेष ७५% तो ऐसे हैं, जो अच्छी तरह से अपना निर्वाह कर सकते हैं। ये उन बेचारे ग़रीब छात्रों का हक़ छीन लेते हैं, जो सहायता के अभाव में या तो पढ़ना छोड़ देते हैं या यदि पढ़ते भी हैं, तो उन्हें वह दुःख उठाना पड़ता है, जिसकी कल्पना भी उन विद्यार्थियों को नहीं है, जो उनका हक़ छीनकर उसे सिगरेट-पान या ऐसे ही कार्यों में फूँक देते हैं। तो इस प्रकार की सहायता में से ग़रीब छात्रों को क्या मिलता है ? यह प्रत्यक्ष है और यदि अधिकारीगण जाँच करेंगे,

तो विना खुले न रहेगा कि स्टुडेंटशिप पानेवाले सैकड़े पीछे ७५ घर के अच्छे हैं। मैं तो कई एक ऐसे विद्यार्थियों को जानता हूँ, जिन्हें फ़्री स्टुडेंटशिप और स्कालरशिप-ट्रस्ट से सहायता मिलती है और वे घर के बहुत अच्छे हैं। एक बार रुपया मिला और एक २५) का कोट या एक सूट सिल गया या बाज़ार की सैर में खर्च कर साथियों से वाहवाही लूट ली। और उन्हीं विद्यालयों में कितने ऐसे विद्यार्थी पड़े हुए हैं, जिनके लिये खाने का कोई ठिकाना नहीं है।

यही हाल किसी व्यक्ति या संस्था की सहायता के विषय में भी है। ये सहायताएँ सिफ़ारिश पर ही मिलती हैं, इसमें तो संदेह नहीं। अब निर्धन विद्यार्थियों को ऐसी सिफ़ारिश मिले, तो कहाँ से? जिन व्यक्तियों की सिफ़ारिश आवश्यक है, वे उन्हें या तो द्वार पर से ही कुत्तों की भाँति दुत्कार देते हैं या कहते हैं कि मैं तुम्हारी सिफ़ारिश कैसे करूँ? मैं क्या जानता हूँ कि तुम कौन हो? और कैसे हो? मैं तुम्हारी सिफ़ारिश नहीं कर सकता। चलिए साहब, बेचारे निर्धन विद्यार्थी तो अपना-सा मुँह लेकर लौट आए। अब वे प्रतिष्ठित व्यक्ति यदि किसी की सिफ़ारिश करेंगे भी, तो उन्हीं की, जो या तो स्वयं उनके परिचित हों या परिचितों के परिचित हैं। इस प्रकार यथार्थ में योग्य छात्रों के लिये जो सहायता रक्खी गई है, उसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों के परिचित लोग ठाट से उपभोग कर रहे हैं।

क्या इस विषय पर ऐसी सहायता देनेवालों का ध्यान कभी जायगा?

बब्बनप्रसादसिंह

× × ×

१३. वैशाली का अशोक-स्तंभ

प्राचीन भारतीय इतिहास में अशोक-काल बड़े मह का है। अशोक विलक्षण सम्राट् था। केवल एक कलि युद्ध के बीभत्स व्यापारों ने उसके हृदय को विह्वल क दिया था। घोर संग्राम की प्रलयकारी मार-काट और लोमहर्षण करुण दृश्यों को देख, वह अशांत हो उठा। अनुताप की कड़वी ज्वाला शांति के लिये बद्ध-परिक हुई। अशोक को वह शांति बौद्ध-भिक्षु उपगुप्त के द्वारा, बौद्ध-धर्म की दीक्षा के रूप में मिली। वह फूला न समाया। बौद्ध-धर्म की बारीकियों पर वह निछावर हो गया। भगवान् बुद्ध के प्रति उसकी श्रद्धा-भक्ति के भाव उमड़ पड़े। उसने युद्ध से संबंध रखनेवाले स्थानों के पर्यटन करने की उत्सुकता प्रकट की। उपगुप्त बुलाया गया, और उसी के साथ वह तीर्थ-यात्रा के लिये निकल पड़ा।

पाटलिपुत्र से चलकर वर्तमान मुज़फ़्फ़रपुर ज़िला एवं चंपारन होता हुआ वह नैपाल की तराइयों तक पहुँचा। सबसे पहले उसने बुद्ध की जन्मभूमि लुम्बिनी-वाटिका का दर्शन किया। फिर कपिलवस्तु गया। इसके बाद उसने बुद्ध-गया, सारनाथ, श्रावस्ती, कुशीनगर इत्यादि स्थानों का भ्रमण किया।

अशोक-जैसे निर्माता—(Builder) सम्राट् ने शायद ही संसार के किसी भू-भाग पर शासन किया हो। फिर, इस अवसर को वह व्यर्थ ही क्यों जाने देता? उसने इस यात्रा में पड़े हुए, प्रत्येक प्रसि स्थान पर स्मृति-चिह्नों का निर्माण कराया। वैशाली, अरराज, लउरिया, नंदनगढ़, रमपुरवा, लुम्बिनी-वाटिका तथा सारनाथ प्रभृति स्थानों पर उसने विशाल-विशाल स्मृति-स्तंभ बनवा दिए। लेकिन इन्हीं स्तंभों को लोगों ने अब अशोक-स्तंभ का नाम दे दिया है। इनमें से कई तो आज धराशायी हैं, कई खंडित हैं, मगर कई आज तक अखंडित ज्यों-के-त्यों खड़े हैं। आज पाठकों से इन्हीं में से एक वैशाली के अशोक-स्तंभ के विषय में कुछ कहूँगा। बड़े आश्चर्य की बात है कि इतने महत्त्व की चीज़ होने पर भी यह प्रायः ऐतिहासिकों की दृष्टि से अदृश्य ही रह जाता है। इसका उल्लेख बड़ी-बड़ी इतिहास-पुस्तकों में ही है। हिंदी में तो शायद ही किसी ने इस विषय में कुछ लिखा हो।

विशेषतः इन्हीं कारणों से इस छोटे-से लेख द्वारा वैशाली तथा उसके अशोक-स्तम्भ का याद दिलाया जाता है।

प्राचीन भारत का वैशाली एक प्रसिद्ध साम्राज्य था। वहाँ के आदि निवासियों को 'लिच्छवि' कहते हैं। यों तो उनका निवास-केंद्र सारा वर्तमान मुज़फ़्फ़रपुर-ज़िला था (जिसे उस समय वृज्जि-प्रदेश कहते थे) लेकिन उनकी राजधानी वैशाली में थी। पाँच-छः कोसों में फैला हुआ यह नगर अत्यंत ही प्रसिद्ध तथा समृद्ध था। लिच्छवियों के शासक भी यथेष्ट शक्तिशाली हुआ करते थे। इन्हीं वीर बाँकुरों के आक्रमण के बचाव के लिये अजातशत्रु को पाटलिग्राम में एक दुर्ग बनवाना पड़ा था। अजातशत्रु की माता भी इन्हीं लिच्छवियों की राजपुत्री थी। प्राचीन काल के भारतीय प्रजातंत्र राज्यों में भी वैशाली एक था और इसके बहुत पीछे, फिर भी खृष्टाब्द से सात-सौ वर्ष पहले, भारत के प्रधान-प्रधान नगरों में वह गण्य-मान्य था। उसकी कीर्त्ति-लतिका पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हो चुकी थी। वह धन-धान्य से भरा-पुरा एक महत्त्वपूर्ण नगर था। कुछ समय तक वैशाली मगध की राजधानी भी रहा। सारांश यह कि भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में वैशाली का एक विशेष स्थान है और वह भी आदरणीय तथा गौरवपूर्ण। लेकिन अजातशत्रु ने इसकी स्वतंत्रता नष्ट कर दी। परतंत्र वैशाली अपनी महत्त्व-माधुरी खोने लगा। परंतु फिर भी इसकी प्राचीन कीर्त्ति-कथा किसी भी प्राचीन साम्राज्य से कम प्रसिद्ध तथा गौरवास्पद ही नहीं, किंतु और भी आदरणीय तथा गौरव-पूर्ण है। महावीर वर्द्धमान की जन्मभूमि होने का गौरव वैशाली ही को है। वैशाली भगवान् बुद्ध के पवित्रतम पद-पद्मों से भी पवित्र हो चुका है। बौद्धों की द्वितीय महासभा की बैठक भी वैशाली में ही हुई थी। कहाँ तक कहा जाय? एक तो प्राचीन भारत के इतिहास का संक्षिप्त ब्योरा ही उपलब्ध है, फिर भी यदि वैशाली का प्राचीन इतिहास लिखा जाय तो एक अच्छा-सा ग्रंथ तैयार हो जाय। मगर यहाँ तो केवल वैशाली का संक्षिप्त परिचय मात्र देना है। विशेषकर इसी कारण से अब बहुत कुछ छोड़कर भी उसकी वर्तमान अवस्था की ओर आना पड़ता है।

मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार-प्रदेश) से प्रायः २० मील की दूरी पर आजकल वैशाली खँडहरों के रूप में पड़ा है। मीलों तक विशृंखलित खँडहर अपनी प्राचीन कीर्ति-कथा को रो-रोकर कहते हुए यह साफ़-साफ़ कह रहे हैं कि संसार का प्रत्येक ज़र्रा उत्थान और पतन के लिये बाध्य है। खँडहरों के निकट ही, वैशाली का अपभ्रंश 'बसाढ़'-नामक ग्राम इस बात की ठीक ही सूचना दे रहा है कि संसार भूलों से भरा पड़ा है। वैशाली के गगनचुंबी अट्टालिकाओं एवं गुंबदों के भग्नस्तूप पृथ्वी के समतलीभूत, ईंट पत्थरों का ढेर—

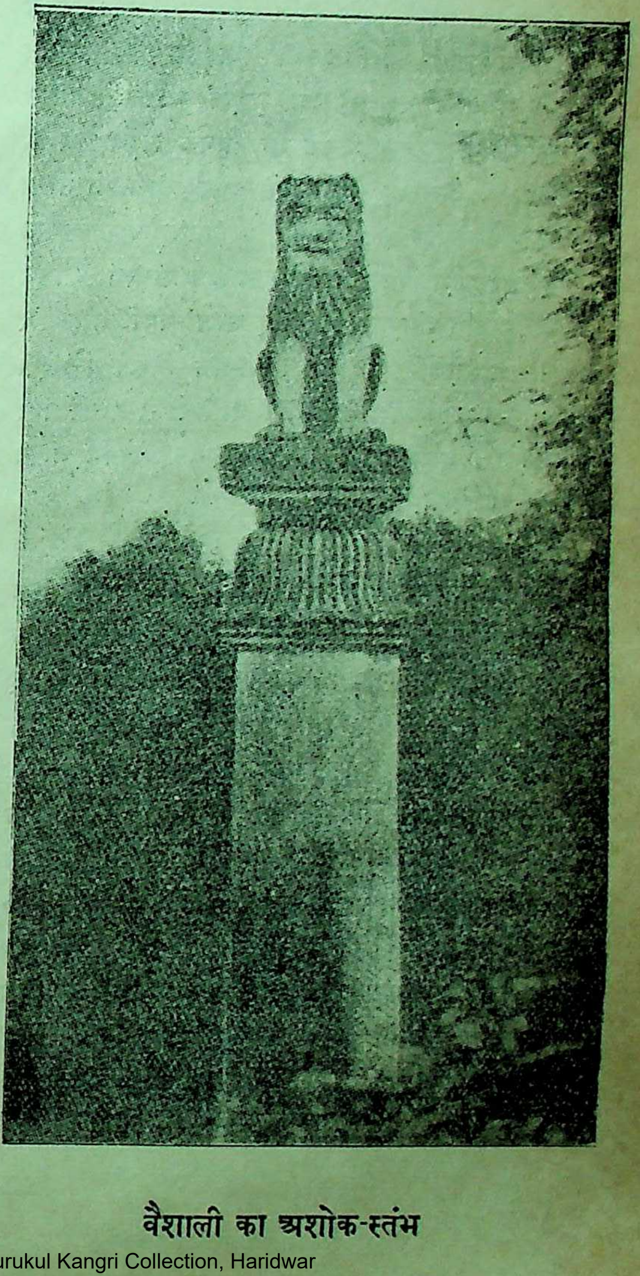

वैशाली का अशोक-स्तंभ

न गोरे सिकंदर न है क़ब्रे दारा ,
मिटे नामियों के निशाँ कैसे-कैसे ।

का ठीक ही याद दिला देती हैं । वैशाली की प्राचीन बहुमूल्य और आदर की सामग्रियाँ भू-गर्भ की शोभा बढ़ा रही हैं । लक्ष्मी खँडहरों को निवास के लिये अनुपयुक्त समझकर कब की, कहीं और चली गईं । अब न वह राम हैं, और न वह अयोध्या । केवल खँडहरों से भरे सुनसान मैदान ही शेष हैं । लेकिन नहीं, इस गई-बीती हालत में भी वैशाली का महत्त्व सहृदयों की दृष्टि में वही है । यद्यपि आज उसके वे प्राचीन राजप्रासाद, पवित्र मंदिर और पेचीले सैनिक निवास तथा अन्य इमारतों के भग्नावशेष ही शेष हैं, फिर भी उन्हीं के उन खँडहरों में आज वैशाली का महत्त्व अंकित है । इन आदरणीय खँडहरों के निकट ही, इनके हृदय पर ही समझिए, अशोक का वह स्मृति-स्तंभ आज भी गौरव से सिर उठाए खड़ा है ; जिसकी प्राचीनता और भव्यता को देखकर दंग रह जाना पड़ता है । प्राचीन खंडित मूर्तियों के अंग-भंग आकार भी आज यहाँ और-और ऐतिहासिक तीर्थों की तरह यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं । कलकत्ते का म्यूज़ियम यहाँ की प्राप्तियों से प्रकाशमान हो रहा है । आज भी यहाँ का कण-कण अपने गौरव के लिये आदरणीय है ।

अस्तु ! ऊपर जिस स्तंभ का चित्र दिया गया है, उसका निर्माता अशोक था । उसे निर्मित हुए दो हज़ार वर्ष से अधिक हो गए, फिर भी वह अभी नवनिर्मित-सा देख पड़ता है । 'पृथ्वीतल से ऊपर उसकी लंबाई ४४ फ़ीट, २ इंच है । क़रीब ६ फ़ीट, नीचे भी अवश्य ही होगा । इस तरह इसकी कुल लंबाई ५० फ़ीट हुई । इसका वज़न भी ५० टन कूता जाता है । स्तंभ के नीचे का भाग ऊपरी भाग से मोटा है । नीचे की गोलाई का व्यास ४९.८ इंच और ऊपर का ३८.७ इंच है । स्तंभ के शिखर पर ४½ फ़ीट ऊँचा एक सुंदर एवं विशाल सिंह की प्रतिमा स्थापित है । उसके नीचे भी ख़ूब बारीकी के साथ स्तंभ का मस्तक (Capital) बनाया गया है ।' शिखर के ऊपरवाले सिंह और उसके नीचे का भाग अत्यंत सुंदर और प्राचीन भारत की कुश कारीगरी के क़ाबिलेदीद नमूने हैं । इनकी सुंदरता के विषय में हिंदुस्थानी विद्वानों की कौन कहे, बड़े-बड़े विदे विद्वानों तक ने पृष्ठ-के-पृष्ठ रँग डाले हैं । वास्तव में स्तंभ देखने ही लायक़ है । विशाल और भव्य होने पर भी वह बड़ा ही सुंदर है । सारा स्तंभ चिकने पत्थर का बना हुआ, दो हज़ार वर्ष से अधिक समय से काल के घात-प्रतिघात को सहन करता हुआ आज भी बिलकुल अखंडित अवस्था में खड़ा है । सारांश यह कि स्तं अत्यंत ही 'पूर्ण' एवं सुरक्षित (?) है । यदि कुछ नहीं है तो एक स्तंभ-लेख ! मगर अब यह कहने का भी मौक़ नहीं रहा । कोड़ियों कीर्ति-लोलुप लाटों, ऐतिहासिकों, बड़े आदमियों (!) एवं साहबों के शुभ नाम ही अ स्तंभ-लेख की क्षति-पूर्ति कर रहे हैं ।

अस्तु, उपर्युक्त स्तंभ को उसके निकटनिवासी ग्र ग्रामीण 'भीमसिंह की लाठी' के नाम से पुकारते हैं । कुछ बूढ़ों का यह भी कहना है कि "लाठी" मंद से पृथ्वी में धँसी जा रही है ।

यहाँ पुरातत्त्व-विभाग की ओर से कुछ खुदाई का का भी हो चुका है । कलकत्ते का म्यूज़ियम यहाँ की प्राप्ति से भरा पड़ा है । लेकिन पता नहीं, यह काम आजक बंद क्यों है ।

एक बात और कहकर अब समाप्त करता हूँ वह यह कि 'बिहार' में विहार करते समय इतिहास-प्रे सज्जन एक बार इस स्तंभ का अवश्य ही अवलोकन लिया करें । एक आदरणीय और ऐतिहासिक चीज़ दर्शन के अलावा उन्हें एक फ़ायदा यह भी होगा कि की तरह वे अपनी पुस्तकों एवं लेखों से इस स्तं का बहिष्कार भी न कर सकेंगे ; प्रत्युत वे इसका उचि सम्मान करना सीख जायँगे ।

मुज़फ़्फ़रपुर से मोटर-लारी नित्य ही 'बखरा' (B khira) जाती है । वैशाली रास्ते में ही पड़ता है । तरह यह यात्रा अब पहले की तरह कष्टकर भी न हो

गिरींद्रनारायण

भारत सरकार से रजिस्टर्ड कराया हुआ

सञ्जीवन बूटी

प्लेग, हैज़ा, निमोनिया, कफ, खाँसी, दमा, शूल, संग्रहणी, बालकों के हरे-पीले दस्त व दूध पटकना आदि रोगों की ३० साल की परीक्षित अचूक दवा है—दाम ।शीशी ॥) डाक ख़र्च अलग दर्जन ५) मय डाक-ख़र्च।

माधुरी स्नो

चेहरे के काले दाग़, धब्बे दूर करके मुँह का रंग गोरा, मुलायम व सुर्ख़ बनाती है। मुँह से मनोहर सुगंध बराबर रात-दिन २४ घंटे आती है। दाम फी शीशी १) डाक-ख़र्च ।≡) तीन के ३।) मय डाक-ख़र्च कपड़ों में रखने के खुशबूदार कार्ड ॥।) दर्जन।

प्रभाकर आमला आइल

अद्भुत आयुर्वेदिक औषधियों से तैयार किया हुआ यह तेल सिर में दर्द, चक्कर आना, दिमाग़ी थकावट आदि को दूर करके ठंडक, आराम व गुदगुदापन पैदा करता हुआ बालों को मुलायम, चमकदार, लंबे वा भँवरे के समान स्याह करता है। इसकी मनोहर सुगंध को तो कहना ही पड़ेगा कि अद्भुत है—दाम १२ औंस की कुप्पी १॥) डाक-ख़र्च ॥।), छोटी शीशी ६ औंस की ॥।−) डाक-ख़र्च ॥−)।

प्रदरान्तक

स्त्रियों के सब प्रकार के प्रदर व मासिक-धर्म की ख़राबी कमज़ोरी कमर पेट पेड़ू के दर्द आदि को दूर करके शरीर को तंदुरुस्त ताकतवर फुर्तीला व ख़ूबसूरत बमाकर नीरोग औलाद पैदा करने योग्य बनाता है। दाम १ शीशी १॥) डाक-ख़र्क ।≡) तीन शीशी ५) मय डाक-ख़र्च।

ज़्यादा हाल जानने के लिये बड़ा सूचीपत्र मँगाइए।

सुखसागर-औषधालय, झाँसी

शास्त्रीय हिन्दी हार्मोनियम गाईड

बाजे की पेटी बजाने को सिखलानेवाली पुस्तक, ४० रागों के आरोह-अवरोह-लक्षण, स्वरूप, विस्तार, १०४ प्रसिद्ध गायनों का स्वर-ताल-युक्त नोटेशन सुरावर्त, तिल्लाने इत्यादि पूरी जानकारी-सहित, द्वितीय आवृत्ति, पृष्ठ-संख्या २००, क़ीमत १॥) रुपया डाक-ख़र्च ।=) विषयों का और गायनों का सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइए।

गोपाल सखाराम एण्ड कम्पनी
कालबादेवी रोड, बंबई नं० २

हर प्रकार की उत्तम रबर की मुहर
ऐसी २॥) रु०
सूची मुफ्त
जी. सी. खत्री। रबर स्टाम्प, काशी

सीधी लाइन की सादी मुहर (केवल अक्षरों की दो लाइनें, दो इंच लंबी और आधा इंच चौड़ी तक) छापने का सामान सहित मूल्य १), डाक-ख़र्च ।≡); बड़ी होने से दाम अधिक होगा। हिंदी, अँगरेज़ी, उर्दू तथा बँगला कोई भाषा हो। अंडाकार मुहर जैसी ऊपर नमूना है २॥) मय सामान। डाक-ख़र्च एक मुहर।≡), दो का ॥) और तीन का ॥≈); काम देखकर ख़ुश होंगे।

मिलने का पता—
जी० सी० खत्री, रबर स्टांपमेकर,
बनारस सिटी।

दो शक्तिशाली वस्तु सेवन कीजिए !

(१) शरीर पर बहार आवेगी !
(२) चेहरे की रंगत सुर्ख़ होगी !
(३) नेत्रों और मस्तिष्क का तेज बढ़ेगा !
(४) शरीर पुष्ट तथा कांतिमय होगा !

* * *

१

स्वादिष्ट

'डावर द्राक्षारिष्ट'

इसमें अंगूर का रस प्रचुर परिमाण में है। लगातार सेवन करने से शरीर की प्रत्येक इंद्री सबल, व सतेज व क्रियाशील होकर चेहरा उत्साहित व श्रीसंपन्न हो जाता है।

मूल्य है—आधा सेर की बोतल १॥), डाकमहसूल ॥।≈)

* * *

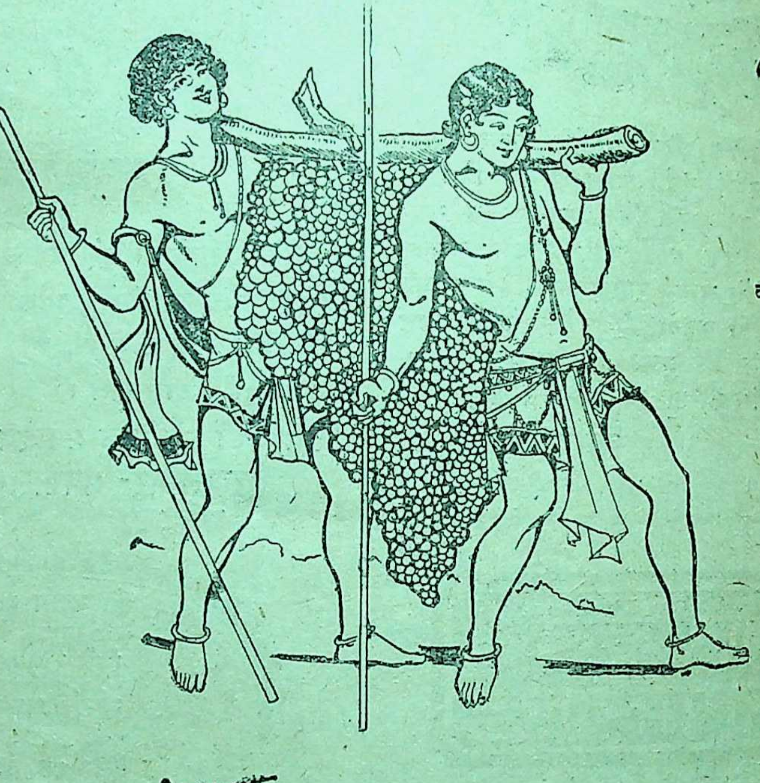

२

महारसायन

'डावर च्यवनप्रा

इसके विधि
सेवन करने से न केव
रोग ही नष्ट होता है
प्रत्युत मनुष्य का जी
वन भी दीर्घ होजाता है

स्वस्थ शरीर
सेवन करने से ब
बढ़ता है। तथा ऋ
परिवर्तन के सम
सेवन करने से को
रोग होने का
नहीं रहता है।

मूल्य—एक पाव
२० मात्रा १॥), डाक
महसूल ।ॽ)

* * *

डाक्टर एस० के० बर्मन,

(विभाग नं० १३१) नं० ४, ताराचंददत्त स्ट्रीट,
कलकत्ता ।

* * *

एजेंट—

लखनऊ (अमीनाबाद पार्क) में 'किंग मेडिकल हाल'।

THE

"His Master's Voice"

CAMP MODEL

"हिज़ मास्टर्स वायेस" केम्प माडेल।

यह मशीन जिस ख़ूबसूरती के साथ आवाज़ को तेज़ करती है वह बेशक आदमी की अक्ल से बाहर है। अपने क़ायदे के मुताबिक़ यह बाजा गाने के हर लफ़्ज़ को अलग-अलग और उसके सुर-ताल, राग-रागिनी और मुख़्तलिफ़ साज़ों की असली ख़ूबी का बिलकुल ठीक-ठीक नमूना अपने सुननेवाले के आगे पेश करता है।

लेकिन अगर आपको इसमें ज़रा भी शुभा हो तो मेहरबानी करके अपने आस-पास के किसी ग्रामोफ़ोन डीलर की दूकान पर जाकर ख़ुद उसकी ख़ूबियों का अन्दाज़ा कर लीजिए।

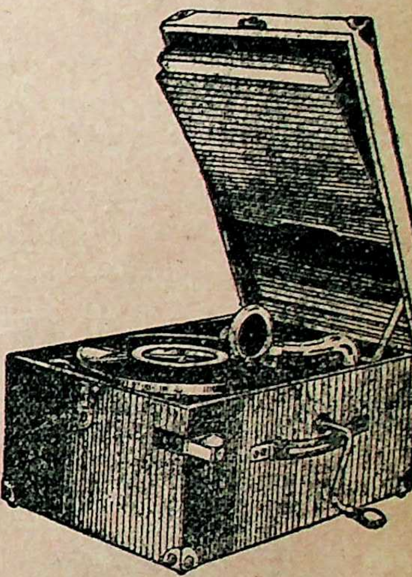

डबल स्प्रिंगवाला केम्प माडेल नं० ११२

मूल्य—१६५) रुपैया।

दी ग्रामोफ़ोन
कम्पनी लिमिटेड,
दमदम और बम्बई।

HIS MASTER'S VOICE

ऐसा कौन है जिसे फ़ायदा नहीं हुआ

सुधासिंधु

कफ, खाँसी, हैज़ा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट दर्द, कै, दस्त, जाड़े का बुखार, बालकों के हरे-पीले दस्त और ऐसे ही पाकाशय की गड़बड़ से उत्पन्न होनेवाले रोगों की एकमात्र दवा, मुसाफिरी में लोग इसे ही साथ रखते हैं। कीमत ॥)

बालसुधा

बच्चों को बलवान्, संदर और सुखी बनाने के लिये सुख-संचारक-कम्पनी मथुरा का मीठा "बालसुधा" पिलाइये। कीमत ॥।)

तत्काल गुण दिखानेवाली ४० वर्ष की परीक्षित दवाइयाँ सब दुकानदारों के पास मिलती हैं।

दद्रुगजकेशरी

दाद चाहे पुराना हो या नया, मामूली हो या पकनेवाला, इसके लगाने से विना जलन और तकलीफ के अच्छा होता है। कीमत।)

द्राक्षासव

तत्काल बल बढ़ानेवाली कब्ज, कमजोरी, खाँसी और नींद न आना दूर करता है, बुढ़ापे के सभी कष्टों से बचाता है, पीने में मीठा स्वादिष्ट है, कीमत तीन पाव का बोतल १॥), छोटी ॥।≈) डाकखर्च जुदा।

डाकखर्च:—एक से दो सुधासिंधु या दद्रुगजकेसरी।=) और एक बालसुधा ।)

मिलने का पता—सुख-संचारक-कम्पनी, मथुरा।

सुगंधित केश तैलों का राजा

केशरंजन तैल

सौन्दर्य्य ही रमणीयों की भूषण है।
केशरञ्जन के व्यवहार से सिर का ठन्डा हो केश बढ़ती है। क्योंकि आज कल केशरञ्जन ही एक मात्र सब तैलों से बढ़कर है।

पता—कविराज नगेन्द्र नाथ सेन एन्ड को॰ लि॰
१८/१, १९ लोअर चितपुर रोड, कलकत्ता।

४५ वर्ष की परीक्षित

अशोकारिष्ट

शीघ्र गुणकारी

सर्व प्रकार की स्त्रीरोग की अक्सीर दवा

इसके सेवन से ऋतु, शूलरोग, महीना न होना, श्वेतप्रदर, लालप्रदर शरीर की दुर्बलता आदि सभी स्त्री-रोग दूर होकर जरायु शुद्ध हो गर्भ धारण की शक्ति पैदा होती है। एक शीशी दवा और एक डिब्बी गोली मूल्य १॥), डा॰ म॰ ॥≈)

रतिवल्लभ रसायन

धातुदौर्बल्य वो नामर्दी की अक्सीर दवा

"रतिवल्लभ रसायन" पीने से शुक्रदौर्बल्य धातुदौर्बल्य, आदि दूर होकर शरीर में तेज़ी, फुर्ती, आनन्द और उत्साह पैदा होता है। दुबले-पतले शरीर को मोटा ताज़ा और ख़ूबसूरत बनाता है। एक शीशी दवा का दाम १।) डा॰ महसूल ॥=)

कविराज नगेन्द्रनाथ सेन एन्ड को॰ लिमि॰

१८। १–१९ लोअर चितपुर रोड, कलकत्ता।

डाक्तर एस॰ के॰ बर्मन की
कठिन रोगों की
सहज अचूक पेटेन्ट दवाएं।

तारा
ट्रेड SKB मार्क
रजिस्टर्ड

जब आपको मलेरिया बुखार हो तो

औषध

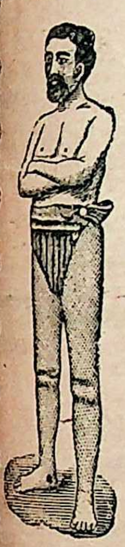

सेवन के पूर्व

औषध

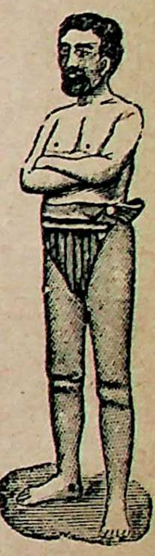

सेवन के वाद

"जूड़ी बुखार व तिल्ली की दवा"

सेवन कीजिये ! इस दवा से प्रतिवर्ष लाखों रोगियों की जानें बचती हैं। ४-५ खुराक में ही बुखार का आना बंद हो जाता है।

नियमपूर्वक सेवन करने से पुरानी-से-पुरानी तिल्ली भी समूल नष्ट हो जाती है। मूल्य— प्रति शीशी (छोटी) ॥-) डाक महसूल ॥), मू॰ प्रति शीशी (बड़ी) ॥।≡) डा॰ म॰ ॥≡)

"असली अर्क कपूर"

यह हैजे के लिये प्रसिद्ध और अचूक इलाज है ! समय पर इसके सेवन से सैकड़े ९० आदमी बचते देखे गये हैं।

हैज़ा के दिनों में रोज २-३ बूँद सेवन करने से हैज़ा होने का भय नहीं रहता है।

मूल्य—प्रति शीशी ।≈) डाक महसूल ।≈) तीन शीशी १≈) डाक महसूल ॥)

नोट—दवाएँ सब जगह दवाख़ाने में बिकती हैं। डाकख़र्च बचाने के लिये अपने स्थानीय हमारे एजेण्ट से ख़रीदिये। ११

(विभाग नं॰ १३१), पोस्टबॉक्स नं॰ ५५४, कलकत्ता।

एजेंट—लखनऊ अमीनाबाद पार्क, नं॰ २५, में किंग मेडिकल हाल।

स्त्रियाँ अच्छी चीज़ पसंद करती हैं

श्रीमती अन्नाचंदी, एम्० ए० (आनर्स)

संपादिका "श्रीमथी" कोट्टायाम।

लिखती हैं—

मैंने आपका लोध्रा इस्तेमाल किया और मासिक-धर्म-संबंधी सभी शिकायतों के लिये उसे सर्वश्रेष्ठ औषध पाया। इसका सुंदर स्वाद, स्वेच्छानुसार भोजन, इसके सेवन की प्रसन्नता को बढ़ाते हैं।

अपने केमिस्ट से माँगो

या

केसरीकुटीरम्,

६३ हिंदुस्तानी केमिस्ट्स और ड्रगिस्ट्स,
इग्मोर, मदरास

विश्वासी आयुर्वेदीय ओषधियाँ खरीदने के लिये पता नोट कर लीजिए—

दवा बढ़िया

श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती मारवाड़ी अस्पताल

११८ एमहर्स्ट स्ट्रीट कलकात्ता

क़ीमत कम

विशुद्ध बादाम का तैल

माथे की कमज़ोरी याने दिमाग़ की समस्त बीमारियों को दूर करने के लिये प्रधान दवा है। मूल्य १ शीशी का ।।।=)

दन्तमञ्जन—

खुशबूदार है। व्यवहार करने से दाँतों में किसी तरह की बीमारी नहीं होती और दाँत सदैव स्वच्छ तथा दृढ़ बने रहते हैं। मूल्य ।) डिब्बी

गृहलक्ष्मी तैल

विशुद्ध तिल तैल से निर्मित महासुगन्धित तैल है। लगाने से २४ घंटे तक बराबर खुशबू बनी रहती है।

कर्पूरासव—

बदहजमी को दूर करता है और भूख बढ़ाता है हैजे के लिये तो रामबाण दवा है। मूल्य ॥) शीशी

सपरिवार निरोग रहना चाहते हों तो हमारा सूचीपत्र मुफ़्त मँगाकर देखिए। दवा बेचनेवाले एजेंट, डाक्टर, वैद्य, धर्मार्थ औषधालयों के लिये विशेष सुविधा है। ४६

हिन्दुस्तानी एकेडेमी संयुक्तप्रान्त द्वारा प्रकाशित व्याख्यानमाला

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था

व्याख्यानदाता—अल्लामा अब्दुल्लाह यूसुफ़अली एम्० ए०-एल्-एल्, एम्० बी० बी० ई०, सुंदर छपाई, ऐंटिक काग़ज़, कपड़े की सुंदर सुनहली जिल्द, रायल साइज़ के १०० पृष्ठों का मूल्य उर्दू अथवा हिंदी केवल १।)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृत

व्याख्यानदाता—रायबहादुर महामहोपाध्याय गौरीशंकर-हीराचंद ओझा सुंदर छपाई, ऐंटिक काग़ज़, कपड़े की सुंदर सुनहली जिल्द, रायल साइज़ के २३० पृष्ठों और २४ हाफ़टोन चित्रों-सहित का मूल्य, केवल ३)

(३) कविरहस्य

व्याख्यानदाता—महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, सुंदर छपाई, ऐंटिक काग़ज़, कपड़े को सुंदर सुनहली जिल्द, रायल साइज़ के १२० पृष्ठों का मूल्य केवल १।)

नोट—आर्डर देते समय कृपया इस पत्र का उल्लेख कीजिये। २८

मिलने का पता—जनरल सेक्रेटरी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, यू० पी०, इलाहाबाद।

शास्त्रीय हिन्दी हार्मोनियम गाईड

बाजे की पेटी बजाने को सिखलानेवाली पुस्तक, ४० रागों के आरोह अवरोह, लक्षण, स्वरूप, विस्तार, १०४ प्रसिद्ध गायनों का स्वरताल-युक्त नोटेशन, सुरावर्त तिल्लाने इत्यादि पूरी जानकारी-सहित, द्वितीय आवृत्ति, पृष्ठ-संख्या २००, क़ीमत १॥) रुपया डाक-ख़र्च ।=) विषयों का और गायनों का सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइए।

गोपाल सखाराम एण्ड कम्पनी
कालबादेवी रोड, बंबई नं० २

हर प्रकार की उत्तम रबर मुहर
ऐसी २॥) रु०
सूची मुफ्त
जी. सी. खत्री रबर स्टाम्प, काशी

सीधी लाइन की सादी मुहर (केवल अक्षरों की दो लाइनें, दो इंच लंबी और आधा इंच चौड़ी तक) आपने का सामान सहित। मूल्य १), डाक-ख़र्च ।=); बड़ी होने से दाम अधिक होगा। हिंदी, अँगरेज़ी, उर्दू तथा बँगला कोई भाषा हो। अंडाकार मुहर जैसी ऊपर नमूना है, २॥) मय सामान। डाक-ख़र्च एक मुहर ।≈), दो का ॥) और तीन का ॥≈); काम देखकर खुश होंगे।

मिलने का पता—
जी० सी० खत्री, रबर स्टांपमेकर,
१५ **बनारस सिटी।**

DIABETES---HOW TO DETECT AND CHECK IT.

A multum in parvo and unique vade—mecum for diabetics in the form of a pocket size book written by G. H. Lyons, Ex: Diabetes Specialist, Lucknow, containing simple yet approved formulas for testing urine for sugar and albumin, diet suggestions and other concise information which diabetes ought to know written in simple language as an ideal quide for the layman. A few copies only now available.

Obtainable from:—
Newul Kishore & Co., Book Sellers and Publishers, Hazratganj, Lucknow.
Price Re. 0-8-0 only.

"माधुरी"

हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका क्यों है ?

इसका कारण जानने के लिये

किसी बड़े स्टेशन पर, ए० एच्० ह्वीलर कंपनी के बुकस्टाल पर या अपने शहर या गाँव की किसी लाइब्रेरी में जाकर "माधुरी" की कोई भी संख्या उठाकर आप देखेंगे, तो आपको मालूम हो जायगा कि—

"माधुरी"

ही हिंदी की सर्वोत्तम पत्रिका है।

क्योंकि

"माधुरी"—साहित्य और कला की अभूतपूर्व प्रदर्शिनी है।

"माधुरी"—में हिंदी के सभी धुरंधर विद्वानों और नामी लेखकों के लेख रहते हैं।

"माधुरी"—के चित्र भाव-पूर्ण, मनोहर और कला की दृष्टिसे उत्तम होतेहैं।

"माधुरी"—काग़ज़, छपाई, रूप-रंग, गेट-अप आदि में आदर्श है।

"माधुरी"—में महिलोपयोगी लेखों की विशेषता है।

"माधुरी"—हिंदुस्तान के कोने-कोने और प्रत्येक गाँव में पढ़ी जाती है।

"माधुरी"—का प्रचार हिंदुस्तान के बाहर विदेशों में भी बड़े जोरों से बढ़ रहा है।

"माधुरी"—विज्ञापन का सबसे अच्छा साधन है।

"माधुरी"—में पाठ्य-विषय सबसे अधिक दिया जाता है और इसका प्रत्येक अंक स्थायी साहित्य की सर्वोत्तम सामग्री है।

इतने पर भी वार्षिक मूल्य केवल ६॥), छमाही मूल्य ३॥) है। अगर आप अभी तक "माधुरी" के ग्राहक न हुए हों, तो शीघ्र ६॥) मनीऑर्डर से भेजकर ग्राहक हो जाइए। **मैनेजर माधुरी, लखनऊ।**

आरोग्यता की कुंजी क्या है ?

अपने शरीर, उसके अंग-प्रत्यंगों की रचना और उनकी क्रिया का ज्ञान।

कैसे प्राप्त हो ?

मानव-शरीर-रहस्य

को पढ़िए। मूल्य प्रथम भाग २॥)

इसके लेखक डाक्टर मुकुंदस्वरूप वर्मा, बी० एस्-सी०, एम्० बी०, बी० एस्०, चीफ़ मेडिकल आफ़िसर, हिंदू-विश्वविद्यालय को इस पुस्तक पर

रेडिचे पदक

और

२००) का पुरस्कार भी मिला है।

नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ

श्वेत कुष्ठ की फ़क़ीरी जड़ी

प्रिय पाठकगण, एक रोज़ के सिर्फ़ तीन ही बार के लेप से सफ़ेद दाग़ एकदम आराम न हो, तो दूना मूल्य वापस। जो चाहें एक आने का टिकट भेजकर प्रतिज्ञा-पत्र लिखा लें। मूल्य ३) रु०

पता—**वैद्यवर पं० कन्हैया मिश्र,**

विहार औषधालय,

नं० ११, मधुबनी, ज़ि० दरभंगा। २१

व्यापार-वृद्धि की कुंजी

विज्ञापन छपाने में है

तो

माधुरी में छपाइए

हिंदोस्तान का सबसे पुराना पाल एंड संस का

असली मोहन-फ़्लूट

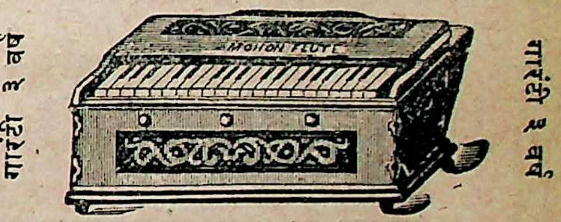

हारमोनियमों का राजा हिंदुस्तानी गाने और जलवायु के लिये उपयुक्त। मीठी आवाज़, देखने में सुंदर और टिकाऊ।

सिंगल पेरिस रीड ३५) से ४०) तक
डबल पेरिस रीड ६०) से ६५) तक

बैलेंज फ़्लूट

सिंगल जर्मन रीड २२) से २५) तक
डबल जर्मन रीड ३५) से ४०) तक
ऑर्डर के साथ ५) पेशगी भेजिए।

पाल ऐंड संस, ६।१।२, आरपुली लेन,

तार का पता—
"मोहन-फ़्लूट, कलकत्ता" (म) कलकत्ता । १४

हिन्दुस्तानी एकेडेमी संयुक्त-प्रांत

इलाहाबाद

की

त्रैमासिक पत्रिका

हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने निश्चय किया है कि एक त्रैमासिक पत्रिका हिंदी में प्रकाशित करे। पत्रिका में साहित्य, इतिहास, भाषा, पुरातत्त्व, दर्शन, विज्ञान आदि पर मौलिक और ऊँचे दर्जे के लेख होंगे; प्रकाशित पुस्तकों की समालोचना भी रहेगी। पत्रिका के हर अंक में रायल साइज़ (अठपेजी) के १०० पृष्ठ और समय-समय पर चित्र रहेंगे, सालाना चन्दा केवल ८) आठ रुपया होगा।

अच्छे लेखों पर उचित पुरस्कार दिया जायगा। समालोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आनी चाहिए। साहित्य-संबंधी विज्ञापनों को ही पत्रिका में छापा जायगा।

लेखकों और ग्राहकों से निवेदन है कि नीचे लिखे हुए पते से पत्र व्यवहार करें।

पत्रिका का पहला अंक जूलाई १९३० में निकलनेवाला था, पर हमें खेद है कि कुछ विशेष कारणों से पहला अंक जूलाई में न निकलेगा। निकलने की तारीख का विज्ञापन दिया जायगा।

जेनरल सिक्रेटरी
हिन्दुस्तानी एकेडेमी यू० पी०
इलाहाबाद

कुछ चुनी हुई स्त्रियोपयोगी पुस्तकें

भार्या-हित

अँगरेजी पुस्तक Advice to a wife का हिंदी अनुवाद । मासिक-धर्म, गर्भाधान, प्रसव-पीड़ा और बच्चे को दूध पिलाना इत्यादि अनेक उपयोगी विषय बड़ी उत्तमता से वर्णन किए गए हैं। पृष्ठ-संख्या २३०; मूल्य ।।।)

महिला-हितैषिणी

इसमें स्त्री संबंधी सभी उपयोगी और ज्ञातव्य विषयों का समावेश बड़ी सुंदर और सरल भाषा में किया गया है । प्रत्येक गृहिणी को इसकी एक प्रति अपने पास अवश्य रखनी चाहिए । पृष्ठ-संख्या २३०; मूल्य १)

स्त्री-उपदेश

आर्य-ललनाओं के लिये यह बड़ी उपयोगी है। इसमें अनेक शिक्षाप्रद और मनोरंजक उपदेश दिए गए हैं। भाषा भी ऐसी सरल है कि साधारण पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ इसे सहजही में समझ सकती हैं। पृष्ठ-संख्या १७८; मू० ॥)

स्त्री-सुबोधिनी

स्त्रियों के लिये इससे बढ़कर उपयोगी और उत्तम पुस्तक दूसरी कोई नहीं है । पृष्ठ-संख्या ८३६; मूल्य सजिल्द पुस्तक का २॥)

स्त्री-दर्पण

इसमें विद्यानुरागिनी लड़कियों और स्त्रियों का परमार्थ - साधन, गृह - कार्य की प्रवीणता और अनेक प्रकार की अमूल्य शिक्षाएँ अति सरलतापूर्वक वर्णन की गई हैं । पुस्तक लड़कियों के पढ़ने-योग्य है । पृष्ठ-संख्या १६४ मू० ॥)

शिवनारायण-भजनमाला

संगीत और मनोरंजन का अपूर्व साधन । ग़ज़ल, ठुमरी, दादरा, कजरी, ख़्याल आदि में ईश्वर-संबंधी सुंदर और उत्तम भजनों का अनोखा संग्रह । पृष्ठ-संख्या २४०; मूल्य ॥)

पतिव्रता-स्त्रियों के जीवन-चरित्र

अगर आप चाहते हैं कि हमारी स्त्रियाँ वीर संतान उत्पन्न करें या हमारी बहनें और कन्याएँ सुचरित्रा एवं सुशीला बनें, तो एक बार इस पुस्तक को अवश्य उनके हाथ में दीजिए । पृष्ठ-संख्या २५८; मूल्य १=)

नारी-चरितमाला

यदि आपको अपने देश की सुचरित्रा, आदर्श और विदुषी स्त्रियों के चरित्रों से अपनी प्यारी स्त्रियों, बहनों या कन्याओं को उत्तमोत्तम उपदेश देने हों, तो इस पुस्तक को अवश्य ख़रीदें । मूल्य ॥=)

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

भगवद्गीता भाषा

सुंदर, सचित्र और सरल भाषा में

अठारहों अध्याय माहात्म्य सहित, सुंदर और सरल भाषा में

टाइप बड़ा; पृष्ठ-संख्या ४८८; मूल्य १=)

संस्कृत न जाननेवाले वृद्ध स्त्री-पुरुषों के लिये यह अति उत्तम पुस्तक है

तुलसीकृत

रामायण गुटका

सुंदर ग्लेज काग़ज़ पर ॥)

रफ़ काग़ज़ ।=)

साहित्य-सेवियों और राम-भक्तों के लिये नित्य पाठ करने के लिये यह जेबी गुटका सर्वोत्तम है।

* * *

विनय-पत्रिका

टीकाकार स्व० वैजनाथजी।

यह पुस्तक बहुत दिनों से अप्राप्त थी। मूल्य ३)

हिंदी-अँगरेज़ी-शिक्षक

यानी

इँगलिश-टीचर

घर बैठे बहुत थोड़े समय में अँगरेज़ी सीखने की सर्वोत्तम पुस्तक। केवल इसी को पढ़कर काम चलाऊ अँगरेज़ी सीखी जा सकती है। तार या चिट्ठी आने पर इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मूल्य ॥।)

कालिदास और सेक्सपीयर

संस्कृत और अँगरेज़ी न जाननेवालों के लिये संस्कृत और अँगरेज़ी साहित्य की ख़ूबी जानने के लिये इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। साहित्य-सेवियों के लिये तो यह बड़े काम की चीज़ है। दोनों साहित्य की ख़ूबियाँ इसमें ख़ूब दिखाई गई हैं। मूल्य २)

तुलसीकृत

रामायण मध्यम मूल

मूल्य १।=)

अपनी ढंग की यह भी बहुत सस्ती पुस्तक है। हरएक व्यक्ति को इसकी एक प्रति अपने पास रखनी चाहिए।

* * *

बीजक कबीरदास

श्रीकबीरदासजी की वाणी का संग्रह। टीका श्रीविश्वनाथसिंहजी ने की है। मूल्य सजिल्द ३)

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.

साहित्य-सुमन-माला की कुछ चुनी हुई पुस्तकें

बाल-कथा-कौमुदी

लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित

इसमें बालोपयोगी सुंदर, सुबोध और शिक्षाप्रद कहानियों का संग्रह है। कहानी सब एक-से-एक बढ़कर है। बड़ी चटपटी और मज़ेदार हैं। बालक उसे बड़े चाव से पढ़ते हैं। एक बार शुरू करके समाप्त किए बिना कभी नहीं छोड़ेंगे। बालकों में पढ़ने की इच्छा पैदा करने के लिये जैसी कहानियों की आवश्यकता है, इसमें की सब कहानियाँ वैसी ही हैं। बालक ही नहीं, बड़े स्त्री-पुरुष भी इनमें मनोरंजन का काफ़ी मसाला पाएँगे। बड़े टाइप और सरल भाषा में लिखी हुई पुस्तक का मूल्य केवल ॥=) रक्खा गया है।

प्यारी कहानियाँ

लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित

यह भी बालोपयोगी है। इसमें भी छोटी, सुंदर, मनोरंजक और सुबोध कहानियों का संग्रह है। मूल्य ॥)।

निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं—

१ वैचित्र्य-चित्रण—लेखक, साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी। मूल्य ॥=)
२ अग्नि-समाधि और अन्य कहानियाँ—लेखक, श्रीप्रेमचंदजी। मूल्य १)
३ ठलुआ-क्लब—लेखक, श्रीगुलाबराय एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ।॥)
४ बाल-कथा-कौमुदी—लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित। मूल्य ॥=)
५ प्यारी कहानियाँ—लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित। मूल्य ॥)
६ मानव-शरीर-रहस्य (प्रथम भाग)—लेखक, डाक्टर मुकुंदस्वरूप वर्मा, एम्० बी० बी० एस्० चीफ़ मेडिकल आफ़िसर, काशी विश्व-विद्यालय। मूल्य २॥)
७ काम-कुंज—लेखक, श्रीसंतराम बी० ए०। मूल्य २॥)
८ विज्ञान-वार्ता—लेखक, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी। मूल्य १।=)

—शीघ्र प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें—

१ मानव-शरीर-रहस्य (द्वितीय भाग)
२ कवित्त-रत्नाकर
३ तीन तिलंगे
४ डेविड कापर फ़ील्ड
५ सूक्ति-सुधा

मिलने का पता—नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.

साहित्य-सुमन-माला की नई और निराली पुस्तक

काम-कुंज

मूल्य २॥)

लेखक—श्रीसंतराम बी० ए०

स्त्री-पुरुष-संबंधी कितनी ही ऐसी बातें हैं, जिनके न जानने से मनुष्य को जीवन का सच्चा सुख और आनंद नहीं मिलता। धन, जन और विद्या के होते हुए भी उनके चित्त को ईप्सित शांति नहीं मिलती। स्त्री-पुरुष-संबंधी शास्त्र की अनभिज्ञता के कारण सुविख्यात और लोकमान्य नेताओं को, उच्च पदाधिकारियों को, लक्ष्मी के लाड़लों को, सरस्वती के सपूतों को भी जीवन का सच्चा सुख नहीं मिलता। उस सुख की प्राप्ति के लिये वे निरंतर मथा करते हैं। जिसके अभाव से वे चिंताओं और अनेक प्रकार के रोगों के शिकार बने रहते हैं। पवित्र और सच्चा प्रेम उनको आकाश-कुसुमवत् मालूम होता है। कारण, वह स्त्री के हृदय को समझ नहीं सकते, स्त्री-प्रेम की परख नहीं कर सकते, उनकी मौन भाषा को समझने की उनमें शक्ति नहीं, उनके संकेत का उन्हें ज्ञान नहीं, उनकी सहिष्णुता का उनके यहाँ कोई आदर नहीं, उनके आचार-विचार के रहस्य समझने की बुद्धि नहीं, उनकी अजेय शक्ति का उन्हें भान नहीं, उनके प्राकृतिक सौंदर्य की सराहना नहीं; तब फिर जीवन का आनंद कहाँ? काम-कुंज को पढ़िए और इसके रहस्य को जानिए।

काम-कुंज अश्लील नहीं है

विषय-सूची

- स्त्री-सौंदर्य
- गृहस्थों के प्रति
- सखी-हृदय
- स्त्रियों की मौन भाषा
- संकेत
- अजेय शक्ति
- काम-शास्त्र और स्त्रियाँ
- स्त्री प्रेम के लिये सर्वस्व दे सकती है
- स्त्री की सहिष्णुता
- सती-धर्म-पालन के कुछ उपाय
- वेश्या-वृत्ति
- स्त्री को पुरुष की संगति पसंद है या स्त्री की
- पश्चिम की आधुनिक स्त्री
- महाशक्ति
- अबलाओं के आँसू

प्रत्येक गृहस्थ को इसे एक बार अवश्य पढ़ना चाहिए

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

श्रीप्रेमचंदजी

की

76325

नई पुस्तक

अग्नि-समाधि तथा अन्य कहानियाँ

मूल्य १।)

शीघ्र मँगाइए। अब थोड़ी ही प्रतियाँ रह गई हैं।

पढ़िए और लेखक की क़लम की करामात के क़ायल होइए।

वैचित्र्य-चित्रण

वैचित्र्य चित्रण

इसमें ६ अध्याय हैं—नराध्याय, वानराध्याय, जलचराध्याय, स्थलचराध्याय, उद्भिजाध्याय, प्रकीर्णकाध्याय जिनमें द्विवेदीजी ने सृष्टि की अजूबात का वर्णन बड़ी मार्मिक भाषा में किया है। पुस्तक में अनेक नई और आश्चर्य जनक बातें पढ़कर आनंद उठाइए। पढ़ने में उपन्यास से बढ़कर मज़ा आता है। मूल्य ॥=)

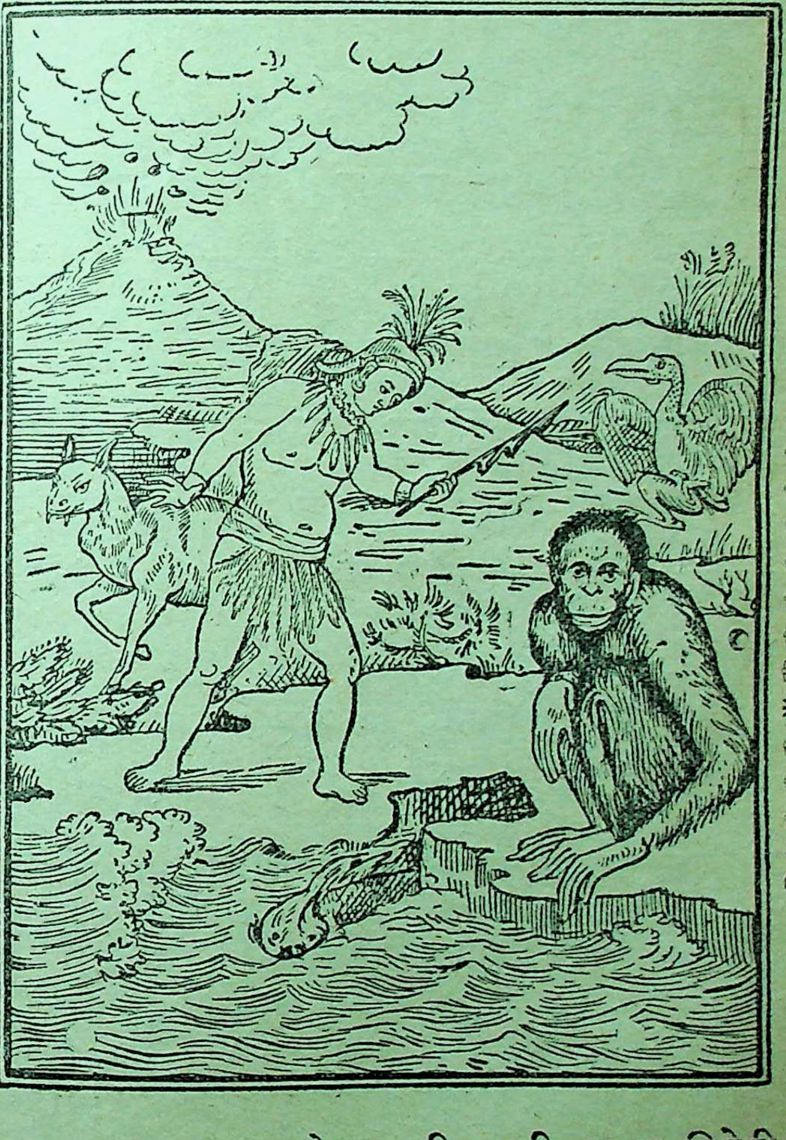

वैचित्र्य चित्रण

लेखक, श्रीमहावीरप्रसाद द्विवेदी

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

मुफ़्त ! एकदम मुफ़्त !! मुफ़्त !!!

माधुरी का विशेषांक

पृष्ठ-संख्या ४०४, तिरंगे-चौरंगे चित्र १८ सादे चित्र १०० से भी अधिक

हमारा दावा है कि—

ऐसा विशेषाङ्क आज तक किसी भारतीय भाषा में नहीं निकला।

वार्षिक ग्राहक बनने पर यह विशेषाङ्क मुफ़्त लीजिए।

ऐसा मौक़ा न चूकिए

६॥) भेजकर एक वर्ष तक माधुरी पढ़िए।

यह वही विशेषाङ्क है, जिसके निकलते ही हिंदी-संसार में चारों तरफ़ धूम मच गई थी। अब सिर्फ़ थोड़ी ही प्रतियाँ और बची हैं। इसलिए देर करने से पछताना पड़ेगा। याद रखिये ३१ अगस्त सन् **१९३० के बाद यह रियायत नहीं की जायगी।**

विशेषाङ्क के मनोहर चित्रों की झाँकी पर आँखें गड़कर रह जाती हैं; दर्शक छका-सा रह जाता है।

२॥) इस विशेषाङ्क का मूल्य कम करके एक प्रकार से "माधुरी" ४) में ही साल-भर तक पढ़ने को मिलती है।

ऐसी हालत में भी क्या आप अपने को तृप्त न करना चाहेंगे?

आज ही ६॥) भेजकर ग्राहक बनें और इस भारी रियायत से लाभ उठाएँ।

पता—मैनेजर "माधुरी"
लखनऊ

व्यापारियों के लिए हित की बात

बिक्री का मौसम आ रहा है

अस्तु

अभी से अपना विज्ञापन छपवाइए !

किसमें

हिंदी-संसार की प्रमुख मासिक पत्रिका जिसकी सर्वत्र पहुँच है और जिसमें विज्ञापन छपाने से लाभ अवश्यंभावी है। **माधुरी** में

कारण

१ माधुरी में विज्ञापन छपाने से आपका विज्ञापन देश भर में ही नहीं, किंतु विदेशों में भी जहाँ कहीं माधुरी जाती है, सरलता से पहुँच जायगा।

२ माधुरी के धनी-मानी, रईस, राजे-महाराजे आदि से लेकर साधारण स्थिति के लोगों की निगाह में आयेगा।

३ माधुरी में विज्ञापनदाताओं को अवश्य लाभ होता है। इसी कारण इसमें विज्ञापन भी अधिक छपता है।

इन बातों के अतिरिक्त

छपाई बहुत साधारण ली जाती है। अस्तु, समय न चूकें। आज ही अपना विज्ञापन भेजकर छपाना शुरू कर दें। स्थायी विज्ञापनदाताओं के लिए ख़ास रियायत की जाती है। विज्ञापन-छपाई के रेट उधर उलटकर देखिए।

निवेदक—

मैनेजर माधुरी, लखनऊ।

माधुरी के नियम

मूल्य

माधुरी का डाक-व्यय-सहित वार्षिक मूल्य ६॥), छः मास का ३॥) और प्रति संख्या का ॥=) है। वी० पी० से मँगाने में =) रजिस्ट्री के और देने पड़ेंगे। इसलिये ग्राहकों को मनीआर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८), छः महीने का ४) और प्रति संख्या का ॥=) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है, लेकिन ग्राहक बननेवाले चाहे जिस संख्या से ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्त संख्या

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो पिछली संख्या पाने के बाद से पूरे १ मास ७ दिन तक प्रतीक्षा करने के बाद अप्राप्त संख्या के लिये १५ दिन के अंदर ही कार्यालय को सूचना मिलनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट-आफ़िस में उसकी जाँच करके डाकख़ाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ आना चाहिए। उनको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। ठीक समय पर सूचना न मिलने से उस पर ध्यान नहीं दिया जाएगा और उस संख्या को ग्राहक ॥=) के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्रव्यवहार

उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र के साथ ग्राहक-नंबर का भी उल्लेख होना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना मैनेजर माधुरी नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिये पता बदलवाना हो, तो उसका प्रबंध डाकघर से ही कर लेना ठीक होगा। अधिक दिन के लिये बदलवाना हो, तो संख्या निकलने के १५ रोज़ पेशतर उसकी सूचना देनी चाहिए।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में, काग़ज़ की एक ओर, संशोधन के लिये इधर-उधर जगह छोड़कर, लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने लायक़ बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का, उसे घटाने-बढ़ाने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। जो नापसंद लेख संपादक लौटाना मंज़ूर करें, वे टिकट भेजने पर ही वापस किए जा सकते हैं। यदि लेखक लेना स्वीकार करते हैं, तो उपयोगी और उत्तम लेखों पर पुरस्कार भी दिया जाता है। सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को ही करना चाहिए। हाँ, चित्र प्राप्त करने के लिये आवश्यक ख़र्च प्रकाशक देंगे।

लेख, कविता, चित्र समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की २-२ प्रतियाँ और बदले के पत्र इस पते से भेजने चाहिए—

संपादक माधुरी

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

विज्ञापन

किसी महीने में विज्ञापन बंद करना या बदलवाना हो, तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे प्रकाशित है—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	... ३०)	प्रति मास
१/२ ,, या १ ,, ,,	... १६)	,, ,,
१/४ ,, या १/२ ,, ,,	... १०)	,, ,,
१/८ ,, या १/४ ,, ,,	... ६)	,, ,,

कम-से-कम चौथाई कालम विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। साल भर के विज्ञापनों पर उचित कमीशन दिया जाता है।

माधुरी में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण इसका प्रत्येक विज्ञापन हज़ारों पढ़े-लिखे, धनी मानी और सभ्य स्त्री-पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। सब बातों में हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार ख़ूब हो गया है, और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, एवं प्रत्येक ग्राहक से माधुरी ले-लेकर पढ़नेवालों की संख्या ४०-५० तक पहुँच जाती है।

यह सब होने पर भी हमने विज्ञापन-छपाई की दर अन्य पत्रिकाओं से अपेक्षाकृत कम ही रक्खी है। कृपया शीघ्र अपना विज्ञापन माधुरी में छपाकर परीक्षा तो लाभ उठाइए। कम-से-कम एक बार परीक्षा तो कीजिए।

मैनेजर माधुरी, लखनऊ

पृष्ठ

१. रूप की थाती (कविता)—[लेखक, श्रीयुत जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए० ७२१
२. महाकवि बाण के वंशज तथा वासस्थान—[लेखक, श्रीयुत परमेश्वरप्रसाद शर्मा एम्० ए० ... ... ७२२
३. जाग-जाग ओ' विराट् ! (कविता)—[लेखक, श्रीयुत मोहनलाल महतो 'वियोगी' साहित्यालंकार ७२७
४. रात (कहानी)—[लेखक, श्रीयुत केशवदेव शर्मा ७२९
५. अभागिनी आँखें (कविता)—[लेखक, श्रीयुत बलदेवप्रसाद टंडन "बिसारद" ७३३
६. एक स्वप्न की कुछ शेष स्मृतियाँ (सचित्र)—[लेखक, राजकुमार श्रीयुत रघुवीरसिंह बी० ए० ... ... ७३३

पृष्ठ

७. निशीथ (कविता)—[लेखक, श्रीयुत रामकुमार वर्मा "कुमार" एम्० ए० ... ७४८
८. मोरिशस और दक्षिण-अफ़्रीक़ा के हिंदू—[लेखक, श्रीयुत रामगोविंद त्रिवेदी वेदांतशास्त्री ७५०
९. परख (कविता)—[लेखक, पं० रामसेवक त्रिपाठी ७५५
१०. हिंदी-कविता का भविष्य और व्रजभाषा-विरोध—[लेखक, चतुर्वेदी उमरावसिंह पांडे ७५७
११. "मिलनि पतंग की" (कविता)—[लेखक, पं० मातादीन शुक्ल साहित्यशास्त्री, काव्यभूषण ७७०
१२. अशांत (कविता)—[लेखक, श्रीयुत प्रफुल्लचंद्र ओझा "मुक्त" ७७१

उत्तम भोजन जीवन का सार है

देशी चीनी व घी की टिकाऊ
फलहारी मिठाई।

अनेक राजा, महाराजा, कलकत्ता और काशी की प्रदर्शिनी द्वारा पदक प्रशंसा-पत्र प्राप्त

भारत-विख्यात "राम-भंडार" की मशहूर

फ़ी सेर २) **दूध की गिलौरी** फ़ी सेर २)

इधर 'भण्डार' ने सर्वसाधारण के लिये अपूर्व स्वादिष्ट और पुष्टिकारक "दूध की गिलौरी" तैयार किया है। इसकी उत्तमता के सम्बन्ध में इतना ही कहना है कि इसे थोड़ा मँगाकर चखिये और इसके गुण और स्वाद को स्वयं बखानिये। 'भंडार' की मिठाइयाँ बंगाल, बम्बई, पंजाब, नैपाल आदि समस्त देशों में जाती हैं और पन्द्रहियों नहीं ख़राब होतीं। क़ीमत दूध की गिलौरी २), मलाई की गिलौरी ६), ४), सेर

पपड़ी पिस्ता	३) सेर	बरफ़ी मेवा	२) सेर	मुरब्बा गन्ना असली	४) सेर
पपड़ी बादाम	३) ,,	लड्डू मेवा	३) ,,	मुरब्बा सन्दल	४) ,,
दालमोठ मेवा	२) ,,	बरफ़ी करनशाही	३) ,,	मुरब्बा आँवला	४) ३) २) १),,

पाँच रुपये से अधिक के आर्डर पर कुछ पेशगी आने से ही माल बाहर भेजा जाता है। ज़रूरत पर घर जाकर बनवा देने का भी सुचारु प्रबन्ध है। बड़ा सूचीपत्र मुफ़्त मँगा देखिए।

हनुमानप्रसाद मदनगोपाल गुप्त १ "रामभण्डार", चौखम्भा बनारस सिटी।

पृष्ठ
१३. भारतीय संगीत और ग्राम-स्वर-लिपि—[लेखक, "एक संगीत-प्रेमी ' ... ७७२
१४. जिज्ञासा (कविता)—[लेखक, पं० रमाशंकर मिश्र 'श्रीपति' ७७८
१५. अपूर्व-त्याग (कहानी)—[अनु०, श्रीयुत गणेश पांडेय ७७९
१६. गीत (कविता)—[लेखक, पं० गुलाबरत्न वाजपेयी "गुलाब" ७८४
१७ स्वदेशी प्रचार की उपयोगिता—[लेखक, पं० माधवलाल शर्मा ... ७८४
१८. सुमन (कविता)—[लेखक, पं० अंबिकाप्रसाद भट्ट "अंबिकेश" ... ७८९
१९. नोबेल पुरस्कार के साहित्यिक महारथी (११)—[लेखक, पं० रामाज्ञा द्विवेदी "समीर" एम्० ए० ... ...
२०. समालोचना-सार (कविता)—[लेखक, पं० गोविंदवल्लभ पंत ... ...
२१. आलोचना और पुस्तक-परिचय—[लेखकगण, पं० किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री, श्रीयुत कालिदास कपूर एम्० ए० एल्० टी०, पं० रामसेवक त्रिपाठी और श्रीयुत रामचंद्र संघी एम्०ए०एल्-एल्०बी०
२२. कृषि, शिल्प और वाणिज्य—[लेखकगण, श्रीयुत बी० एम्० चंदेल, पं०

समन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नं० २९७ सन् १९३० ई०

बअदालत जनाब मुंसिफ़ साहब बहादुर तरबगंज मुक़ाम गोंडा

बटोही तेली सा० बलीपुर……………… मुद्दई

बनाम

रामप्रसाद……………………मुद्दाअलेह

बनाम रामप्रसाद वल्द जगमोहन मिश्र क़ौम ब्राह्मण साकिन महँगूपुर परगना नवाबगंज

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत २४२।) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तु बतारीख़ ११ माह अगस्त सन् १९३० ई० बवक़्त १० बजे असालतन् या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल क़रारवाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमा का जवाब दे स जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़ की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तस हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्ता वेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ै होगा—आज बतारीख़ १२ माह जुलाई सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

तम्बीह—अगर बयानात तहरीरी की ज़रूरत हो तो लिखना चाहिये कि तुमको (या फलाँ फ़रीक़ को यानी जै कि सूरत हो) हुक्म दिया जाता है कि बयान तहरीरी तारीख़ ११ माह अगस्त सन् १९३० ई० तक गुज़रानो।

वक़्त हाज़िरी बदफ़्तर मु० तरबगंज हरदोई १० से चार बजे तक

पृष्ठ

जगन्नाथप्रसाद मिश्र बी० ए०, [illegible] और श्रीयुत परिपूर्णानंद वर्मा ८०१

२३. बाल-महिला-मनोरंजन—[लेखकगण, श्रीयुत शंभूदयाल त्रिपाठी "नेह", श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद शुक्ल, श्रीयुत लक्ष्मीनारायण-दीनदयाल अवस्थी, श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद-सिंह, श्रीयुत हरिश्चंद्रप्रसाद 'इंदु', श्रीयुत 'प्रेमोन्मत्त', श्रीयुत बाबूलाल भार्गव 'कीर्ति' बी० ए० और श्रीयुत श्रीशचंद्र शुक्ल एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ... ... ८१०

पृष्ठ

[illegible]. साहित्य और विज्ञान—[लेखकगण, श्रीयुत सुरेंद्रनाथ तिवारी और श्रीयुत विश्वेश्वर ब्रह्मचारी ८२४

२५. जीवन-ज्योति—[लेखकगण, श्रीयुत भगवदाचार्य ब्रह्मचारी और श्रीयुत शंकरलाल गुप्त एम्० बी० बी० एस्० ... ... ८३४

२६. संगीत और विनोद—[लेखकगण, श्रीयुत गौरीशंकर वर्मा विशारद साहित्याचार्य, श्रीयुत महादेवप्रसाद अग्निहोत्री, और श्रीयुत लक्ष्मण-बालकृष्ण सर्वटे ... ८४२

इम्ब्रोयडरी मॉडल

अर्थात्

ज़रदोज़ी के नमूने

अपराजिता देवी द्वारा। मुख्तलिफ़ तरह के बेल-बूटे काढ़ने के नमूने। जो आसानी से कपड़े पर छापे जा सकते हैं।

पहिली किताब—बच्चों और स्त्रियों के हर तरह के कपड़ों पर काढ़ने के लिए मुख्तलिफ़ तरह के नमूने (डिज़ाइन)।

दूसरी किताब—ऊपर लिखे हुए कपड़ों के लिए फ्रेंच-कट (अँगरेज़ी डिज़ाइन) के नमूने।

तीसरी किताब—मेज़-पोश, तकियों के गिलाफ़, बिस्तरे की चादर, सारी, ओढ़ने, पर्दे, किनारे, फूलदार कोने, अँगरेज़ी मकूले, और हरूफ आदि के नमूने जो हर तरह के कपड़ों पर जैसे कैनवस, टैमी क्लाथ, मोटे कपड़े आदि आदि पर काढ़े जा सकते हैं।

इन किताबों के द्वारा ८ या ९ वर्ष की लड़की भी आसानी से बड़े मुश्किल-से-मुश्किल नमूने कपड़ों पर बदल सकती है। सजिल्द हर किताब का दाम ॥≈)

आत्मकथा एक शिक्षिता पतिता की

मानदा देवी की जीवनी—स्वयम् कथित। अँगरेज़ी में मूल्य २), बँगाली और हिंदी में १॥)

मानदा देवी जो कि एक वकील की लड़की थी और जब बेथन-कालेज में पढ़ती थी, अपने चाचा द्वारा भगाई गई थी। इसी कारण वह पतित हो गई। लेकिन बड़े-बड़े जज, बैरिस्टर, ज़मींदार, पंडित, नेशनल लीडरों, प्रोफ़ेसरों, प्रसिद्ध डाक्टरों और विद्वानों ने जो उससे सहयोग रखते थे, समाज के शिर पर जिनके कि वे लीडर थे बेदाग रह गए। आप भी उनको अच्छी तरह जान जायँगे। आपको यह किताब इस कहावत की सचाई दिखा देगी कि—"Facts are Stranger than fiction."

(3) Mysteries of Married Life—Rs. 1/8 - (cloth) By J. C. Bhattacharya.

Herein you will find the unholly trangressions of married life made mostly by the members of the so-called liberal, educated and aristrocratic families of India, ruthlessly exposed even in the name and every detail whatsoever. The Book is with more facts than Renold's Mystries in the Court of London.

(4) Martyrs for Motherland (Re. 1/-) Lives of Jatin Das, Phungi and Macswingy.

N. B. Correspondence in English

VIDYASAGAR LIBRARY 35/ A, Badur Bagan Street, Calcutta.

२७. **सुमन-संचय**—[लेखकगण, श्रीयुत जैनेन्द्रकुमार, श्रीयुत ज्वालाप्रसाद मिश्र, बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०, श्रीयुत कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर", श्रीयुत अभिराम शर्मा, श्रीयुत "मुकुल", श्रीयुत त्रिभुवनशंकर तिवारी, श्रीयुत शंकरदेव विद्यालंकार, श्रीयुत ताराचंद जेनरल सेक्रेटरी हिन्दुस्तानी एकेडेमी, श्रीयुत शांतिप्रसाद वर्मा, श्रीयुत सुरेंद्रनाथ शुक्ल "सुरेंद्र", श्रीयुत पारसनाथ बी० ए०, श्रीयुत यमुनाप्रसाद चौधरी "नीरज" बी०ए० बी० एल्०, श्रीयुत साधुशरण और श्रीयुत भूपनारायण दीक्षित बी० ए० एल्० टी० ... ... ८४६

२८. **संपादकीय विचार** ८५६

२९. **चित्र-चर्चा** ८६४

चित्र-सूची

१—रंगीन

१. दीप-दान

२. सावित्री और सत्यवान्

३. अहिल्योद्धार

२—व्यंग्य-चित्र

१. आशा पर पानी ... ...

२. प्रगति-विरोध ... ...

سمن بغرض اِنفصال مقدمہ

مقدمہ نمبر ۱۲۱ سنہ ۱۹۳۰ع ابتدائی خفیفہ

بعدالت جناب بابو جگدمبا سرن صاحب بہادر بی-اے-ایل-ایل-بی اڈیشنل سب جج گونڈہ مقام گونڈہ

بنام

بابو پربھاکشورپرساد ولد بابو بدری نارائن برھمن اودھیا عمر ۳۷ سال پیشہ زمینداری ساکن موضع سینتل گنج گرنت پرگنہ و تحصیل اوترولہ ضلع گونڈہ مدعی

بقام بابو چندرچورپرساد

نام بابو چندرچورپرساد ولد بابو گورچرن لال برھمن اودھیا عمر ۴۵ سال پیشہ زمینداری ساکن موضع باسدیوپور گرنت پرگنہ بمبھنی پار تحصیل اوترولہ ضلع گونڈہ مدعاعلیہ

ہرگاہ مدعی نے تمہارے نام ایک نالش بابت مبلغ ۲۳۷ روپیہ ۳ آنہ ۹ پائی اصل معہ سود بذریعہ پرونوٹ کے دائر کی ہے لہذا تم کو حکم ہوتا ہے کہ تم بتاریخ ۲۵ پچیس ماہ اگست سنہ ۱۹۳۰ع بوقت ۱۰ دس بجے اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل اُمور اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھ کوئی اور شخص ہو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدہی دعویٰ مدعی مذکور کی کرو اور ہرگاہ وہی تاریخ جو تمہارے احضار کے لئے مقرر ہی واسطے انفصال قطعی مقدمہ کے تجویز ہوئی ہے پس تم کو لازم ہی کہ اپنے جواب دعویٰ کی تائید میں جن گواہوں کی شہادت پر یا جن دستاویزات پر تم اِستدلال کرنا چاہتے ہو اُسی روز اُن کو پیش کرو*

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ہوگے تو مقدمہ بغیر حاضری تمہارے مسموع اور فیصل ہوگا*

آج بتاریخ $\frac{۲۳}{۲۴}$ ماہ جولائی سنہ ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاری کیا گیا*

جج

وقت حاضری بدفتر اڈیشنل سب ججی گونڈہ ۱۰ بجے سے ۴ بجے تک

सच्ची शक्ति क्या संग्रह नहीं करते ?

आँतों को ख़राब होने से रोकती हैं

पाचन-शक्ति ख़ूब बढ़ाती है
भारी-से-भारी भोजन पचाती हैं

ज्ञानतंतु की कमज़ोरी

साधारण कमज़ोरी

हर प्रकार की कमज़ोरी दूर करती हैं—

तंदुरुस्ती-ताक़त को बढ़ाती हैं।

—:o:—

प्रत्येक ऋतु में उपयोगी है।

क्या ?

झंडु की

सुवर्ण-मिश्रित

मकरध्वज गुटी

स्वल्प चंद्रोदय मकरध्वज
भैषज्य रत्नावली ध्व०

पूर्णचंद्रोदय तथा सुवर्ण और
चंद्रोदय का अनुपान मिलाकर
बनाई हुई सुनहरे खोलवाली

सुंदर मनोहर गोलियों से

सच्ची शक्ति का संग्रह करो

झंडु फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बंबई नं० १४

लखनऊ के एजेंट—ज्ञानेन्द्रनाथदे, कमला भण्डार, ८ श्रीरामरोड।
प्रयाग के एजेंट—लक्ष्मीदास एंड ब्रादर्स ४६, जॉनस्टनगंज।
दिल्ली के एजेंट—बालबहार फ़ार्मेसी, चाँदनी चौक।
कानपुर के एजेंट—पी० डी० गुप्ता ऐंड कं०, जनरलगंज।

क़ीमत एक तोला ८)

मकरध्वज का विवरणपत्र और
आयुर्वेदिक दवाइयों का सूचीपत्र आज ही मँगाइए।

जगत् विश्वनाथ तैल विख्यात

TRADE MARK
श्रीकिशोरीलाल खेत्री
KISHORI LALL KHETRIS
BISHAWNATH OIL
PRICE 1.Rc. PER PHIAL
विश्वनाथ तैल
CALCUTTA

उपरोक्त तैल सुगंध और सच्चे गुणों में सब तेलों का राजा है

वर्त्तमान समय में सैकड़ों क़िस्म के केश-तैल बाज़ार में बिकते हैं। किंतु इनमें प्रायः सभी तैल ह्वाईट आयल (निर्गंध किये हुए केशलिन तैल) द्वारा बनाये जाते हैं। ऐसे तेलों से उपकार के बदले अपकार ही अधिक होता है और दिन प्रतिदिन ऐसा हो ही रहा है। यह तैल बालों को कोमल और शक्तिशाली करने के बदले रूखा और कमज़ोर बहुत जल्द कर देते हैं। अनेक युवकों के बाल इन्हीं तेलों के असर से सफ़ेद हो गये हैं और होते जाते हैं। इसीलिये हमने रूप और सुगंध अधिक ख्याल न कर केश और गुण पर अधिक ध्यान दिया है।

हमारे तेलों के लगाने से बाल घूँघरवाले, चमकीले, लम्बे और अमरवत् काले हो जाते हैं। सिरदर्द, बा का झरना, रूसी तथा खुश्की दूर होती है, बालों की जड़ों को मज़बूत करके चित्त को प्रफुल्लित करता है, दिमा और आँखों में नवीन ज्योति पैदा करता है। हमारे तेलों की भीनी सुगंधि बालों में कई दिन तक उड़ती रहती है एक बार परीक्षा करके देखिये, इसकी जितनी तारीफ़ की जावे, सब इनके गुणों के सामने थोड़ी है। दाम फ़ी शीशी १) रु०, ३ शीशी मय डाकख़र्च ३॥-), ६ शीशी मय डाकख़र्च ६=) आने, १२ शीशी मय डाकख़र्च ११॥)। शीशी से कम नहीं भेजी जायगी।

मिलने का पताः—श्रीकिशोरीलाल खत्री, ८६ बिडन स्ट्रीट, कलकत्ता.

KASHMIR
KUSUM

अति सुलभ, अत्युत्कृष्ट, सुवासित तैलों में अजीब चीज़

काश्मीर कुसुम

एक टीन काश्मीर-कुसुम से ख़ूब फायदा पहुँचानेवाले बढ़िया तैल की छः शीशी तैयार होती है!

काश्मीर-कुसुम को नारियल या तिल के तेल में मिलाने से ते का रंग सुन्दर होता है और उसमें बड़ी आनंददायक सुगंध जाती है। इसमें तरह-तरह के ऐसे मसाले डाले गये हैं जिन तैल के साथ इस्तेमाल करने से माथा ठण्डा रहता है. सिर घूम नींद न आना, सिर का दर्द, आँखें जलना, बालों का जल्द जाना, गंज होना, सिर में खुश्की या रूसी हो जाना इत्यादि रोग फौरन् दूर हो जाते हैं, बाल जड़ से मज़बूत जाते हैं, बालों की चमक-दमक बढ़ जाती है, बाल घने होकर बढ़ जाते हैं और कुछ दिन के इस्तेमाल से याद यानी स्मरणशक्ति बढ़ जाती है। मुफस्सिल में दुकानदार लोग इसी से बढ़िया तैल बनाकर तेल का रोज़गार रहे हैं। फिर एक टीन काश्मीर-कुसुम एसेन्स की एक शीशी भी दी जाती है।

काश्मीर-कुसुम का दाम—एसेन्स समेत काश्मीर-कुसुम के एक टीन का दाम केवल १) एक रुपया डाकख़र्च आने। इकट्ठा २ टीन का दाम २॥) आने, डाक-महसूल आदि ॥) आना, ६ टीन का ५) पाँच रुपया चार आने डाक महसूल आदि १=) एक रुपया दो आने। एक दर्जन टीन का दाम १०) रुपए, डाक महसूल १॥=)। ३६

मिलने का पता—बा० साय, आयुर्वेद आश्रम,

४६, नीमू गोस्वामी लेन, पो० बक्स नं ३४२, कलकत्ता

५०००) की चीज़ ५) में

मेस्मिरेज़मविद्या सीखकर धन व यश कमाइए

मेस्मिरेज़म के साधनों द्वारा आप पृथ्वी में गड़े धन व चोरी गई चीज़ का क्षण-मात्र में पता लगा सकते हैं। इसी विद्या के द्वारा मुक़द्दमों का परिणाम जान लेना, मृत पुरुषों की आत्माओं को बुलाकर वार्तालाप करना, बिछुड़े हुए स्नेही का पता लेना, पीड़ा से रोते हुए रोगी को तत्काल भला-चंगा कर देना, केवल दृष्टि-मात्र से ही स्त्री-पुरुष आदि सब जीवों को मोहित एवं वशीकरण करके मनमाना काम कर लेना आदि आश्चर्य-प्रद शक्तियाँ आ जाती हैं। हमने स्वयं इस विद्या के ज़रिए लाखों रुपए प्राप्त किये और इसके अजीब अजीब करिश्मे दिखाकर बड़ी-बड़ी सभाओं को चकित कर दिया। हमारी "मेस्मिरेज़मविद्या"-नामक पुस्तक मँगाकर आप भी घर बैठे इस अद्भुत विद्या को सीखकर धन व यश कमाइए। मूल्य सिर्फ़ ५) डाक महसूल सहित, तीन का मू० मय डाक महसूल १२)

हज़ारों प्रशंसा-पत्रों में से एक

(१) बाबू सीतारामजी बी० ए०, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता से लिखते हैं—मैंने आपकी "मेस्मिरेज़मविद्या" पुस्तक के ज़रिए मेस्मिरेज़म का ख़ासा अभ्यास कर लिया है। मुझे मेरे घर में धन गड़े होने का मेरी माता द्वारा दिलाया हुआ बहुत दिनों का सन्देह था। आज मैंने पवित्रता के साथ बैठकर अपने पितामह की आत्मा का आह्वान किया और गड़े धन का प्रश्न किया। उत्तर मिला "ईंधनवाली कोठरी में दो गज़ गहरा गड़ा है।" आत्मा का विसर्जन करके मैं स्वयं खुदाई में जुट गया। ठीक दो गज़ की गहराई पर दो कलसे निकले। दोनों पर एक-एक सर्प बैठा हुआ था। एक कलसे में सोने-चाँदी के ज़ेवर तथा दूसरे में गिन्नियाँ व रुपए थे। आपकी पुस्तक यथा नाम तथा गुणः सिद्ध हुई।

मैनेजर मेस्मिरेज़म हाउस, नं० ६, अलीगढ़।

पं० चंद्रशेखर वैद्यशास्त्री की अनुभूत औषधियाँ

ब्राह्मी बादाम पाक

बादाम तो वैसे ही शरीर और दिमाग़ को ताक़त देने में अपूर्व है। ६४ वीर्यवर्द्धक औषधियों के साथ ब्राह्मी शामिल करके बादाम का यह सर्वोत्तम और स्वादिष्ट पाक हमने बनाया है। यह अत्यन्त धातु-पौष्टिक है। प्रमेह बहुत शीघ्र ही इसके सेवन से जाता रहता है। जिनका वीर्य पतला पड़ गया हो, वे इसे अवश्य खायँ; यह वीर्य को गाढ़ा और पुष्ट करता है। जिन्होंने इसे आज़माया है उन्होंने ही इसकी तारीफ़ लिखी है। चाहे जैसी दिमाग़ी कमज़ोरी हो इसके सेवन से जाती रहेगी। स्मरण-शक्ति की कमी, पुराना सिर-दर्द, आँखों से पानी जाना, कम दीखना, चक्कर आना आदि सबको अक्सीर है। इसके सेवन से एक माह में ही काफ़ी बल बढ़ जाता है। सूखा और मुर्झाया हुआ चेहरा इससे भर जाता है और दमकने लगता है। मूल्य १२) रु० सेर, आध सेर का ६॥), पाव भर के ३।=), १० तोले १॥।=)। शुद्ध शिलाजीत ॥) तोला।

मर्दकर्दम तिला—इसकी मालिश से गया-गुज़रा नामर्द भी मर्द हो जाता है। शिथिलता, वक्रता आदि ख़राबियाँ दूर करके यथेष्ट लम्बाई और स्थूलता प्रदान करता है। कुछ दिन लगकर लगाना लाज़िमी है। मूल्य छोटी शीशी २), बड़ी शीशी ५)

मँगाने का पता—**ब्राह्मी औषधालय, अलीगढ़।**

२) में १०) रोज़ कमाइए

साइनबोर्ड बनानेवाले ख़ूब रुपया कमाते हैं। यही देखकर हमने 'फनपेन्ट्री या साइनबोर्डसाज़ी' नाम की पुस्तक इस इल्म के एक ऐसे उस्ताद से लिखवाई है, जो कि २५) से ५०) रु० रोज़ तक साइनबोर्ड बनाकर पैदा कर रहे हैं। यह एक हाथ की दस्तकारी है, जिसे सिर्फ़ तीसरे-चौथे दरजे तक हिंदी या उर्दू जाननेवाला हर भाई आसानी से सीखकर २५) नहीं तो पाँच से १०) रोज़ तो पैदा कर ही सकता है। और आज़ादी से रोज़ी कमा सकता है। पुस्तक में ३०० से ऊपर चित्र हैं। पब्लिक ने इसे पसंद भी ख़ूब किया है। मू० २) डा० म० ।=)।

मँगाने का पता—**मैनेजर, शारदा कम्पनी, अलीगढ़।**

गुन न हिरानो गुनगाहक हिरानो है।

आजकल इस असार संसार में विज्ञापनबाजी द्वारा ही प्रायः लोगों ने अपनी जीविका-निर्वाह का एक ढं निकाल रक्खा है और सब एक से एक अपनी वस्तु को उत्तम और गुणदायक बतला कर प्रशंसा का पुल बाँधा करते हैं। ऐसे समय में बिचारे भोले-भाले ग्राहकों का अनुमान करना भी कठिन हो जाता है कि किसकी वस्तु अच्छी है और किसकी बुरी। अपनी वस्तु को कोई बुरा नहीं कहता यह दुनियाँ की रीति है और इसी प्रकार हम भी अपनी वस्तुओं की प्रशंसा करते हैं। परंतु आप हमारी बातों पर मत जाइए! अपने गाँव, टोला और मुहल्ले के हुए मित्रों से पूछिए! जिस घर या गाँव में हमारा ४२ वर्षों का परीक्षित

ब्रह्मशक्ति

पहुँच गया है या जो लोग एक बार इसका सेवन कर चुके हैं वे स्वतः इसकी प्रशंसा करेंगे। यहाँ तक देखा गया कि जिसने एक बार ब्रह्मशक्ति को सफल पाया वह सदा के लिये इसका मित्र बन गया। कारण सरल और स्प कवि के शब्दों में ऊपर दिया गया है।

ब्रह्मशक्ति अद्भुत शक्ति देनेवाली उत्तमोत्तम औषधियों से विधि के अनुसार क्रियाकुशलता से प्रस्तुत की गई है। चाहे जिस कारण मनुष्य कैसा ही निर्वीर्य क्यों न हुआ हो ब्रह्मशक्ति तो अपना गुण दिखला ही देती है। सर्वां शिथिल मनुष्य को हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ बनाकर बुढ़ापे में नई जवानी का अपार आनन्द अनुभव करा देती है। स्वप्नदोष, वीर्य-स्राव, मूत्राघात पेशाब और दस्त के समय वीर्य स्खलित होना इत्यादि वीर्यसंबंधी सब रोग नष्ट होते हैं। निराशा को नाश करने की इच्छा हो तो ब्रह्मशक्ति को एक बार अवश्य आजमाइए। नीचे दिए हुए प्रशंसापत्रों से, हमें आशा है, आप यह मालूम कर सकेंगे कि व्यवहारकर्ताओं को इसका गुण कहाँ तक प्रतीत हुआ है:—

१. सोहनपुर ड्योढ़ी पो० रूपौली (पुर्णिया) से सत्यनिष्ठ, धर्मपरायण, ब्राह्मण और ज़मींदारों के मुखोज्ज्वलकारी श्रीयुत पलकधारीसिंहजी लिखते हैं:—"मैंने आपका विज्ञापन देखकर अनुमानतः एक मास हुआ एक शीशी ब्रह्मशक्ति मँगवाई थी। फलतः औषधि ने अनुपम गुण दिखाया, इसीलिये फिर भी आपके यहाँ एक शीशी ब्रह्मशक्ति के लिये लिखता हूँ। कृपया लौटती डाक से दवा भेजकर कृतार्थ करें।"

२. नामली से सरस्वती के वर पुत्र, सदाशय, स्वदेशप्रेमी, महामहिमान्वित श्रीपन्नालाल व्यास महोदय के शब्द हैं:—"इस लेखनी में इतनी शक्ति नहीं कि ब्रह्मशक्ति औषधि के गुणों की प्रशंसा करूँ। यद्यपि मैंने अभी एक ही शीशी उपयोग में ली है किंतु इस महौषधि नें अपने अपूर्व गुणों का इतने कमती समय में अद्भुत चमत्कार बतलाया कि मुझे आपको और १ शीशी भेजने के लिये कष्ट देना पड़ा—इसके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ। कृपया लौटती डाक से एक शीशी ब्रह्मशक्ति की और भेजें।" मूल्य १ शीशी ३।=), २ शीशी ६=), ३ शीशी ८।=), ४ शीशी १०।), ६ शीशी १४॥) और १२ शीशी २७॥) डाकव्यय सहित है।

स्त्रियों का प्रदर, गर्भपात, प्रसूति रोग आदि महाव्याधियों से बचने के लिये

अशोकरसायन

मँगवाइए यह दवा स्त्रियों की सब प्रकार की बीमारियों के लिये अक्सीर है। स्त्रियों की कोई भी बीमारी जैसे कि श्वेत व रक्त प्रदर में स्राव होना, धातु का जाना, शरीर सूख जाना, मूत्र-मार्ग की जलन हो, हाथ-पाँव के तलवे किंवा कमर में मस्तक में या छाती में शूल, शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में कलतर होती हो, जीर्णज्वर रहा करता हो, रक्त गुल्म हो, शरीर सूख रहा हो, अशक्ति हो, कार्य करने में जी न लगता हो, ज्वर, खाँसी, दम, पेट का दर्द, सोजा, वमन, होस्टीरिया, अरुचि, रक्त का पानी हो जाना, मासिकधर्म—संतानसंबंधी व्याधियाँ, गर्भाशय की पीड़ा, बारंबार गर्भपात होना, सूखा रोग, प्रभति किसी प्रकार की बीमारी हो उसका नाश करना यही इस दवा का काम है। **प्रजा न होती हो तो** प्रजा होती है शरीर पुष्ट होता है व दश्तान-संबंधी कोई शिकायत नहीं रहती। साथ ही गर्भाशय को गर्भ धारण करने योग्य पुष्ट बनाती है। पीने में स्वादिष्ठ है। मूल्य १ बोतल ३।=), २ बोतल ६=), ३ बोतल ८।=), ४ बोतल १०।), ६ बोतल १४।) और १२ बोतल २७।) डाकव्यय सहित है।

श्रीमती छोटी बहू साहिबा, तारामती देवीजी धर्मपत्नी के०एल०जी०एस० माफ़ीदार, स्टेट बिंद्रा, नवागढ़ राजमहल गिरियाबंद, ज़िला रायपुर सी० पी० से लिखती हैं:—"आपके औषधालय का अशोकरसायन मैंने अपनी एक रोगी बहिन को परीक्षार्थ सेवन करवाया। सचमुच वह स्त्रियों के प्रदर, लोहि व गर्भाशय के शोथ प्रभृति रोग पर अत्यंत उपयोगी व चमत्कारिक सिद्ध हुई। अतएव कृपापूर्वक ३ शीशी और भेजने का कष्ट उठावें।"

पता—बा० शंकरसिंह, प्रोप्राइटर, सत्य सुख संचारक ब्रह्मशक्ति कंपनी,
पोस्ट बहरामघाट (बाराबंकी) ब्रांच श्रीरामरोड, लखनऊ।

लेख-सूची (पद्य)

लेखक
... पं० रामसेवक त्रिपाठी ...
... श्रीयुत रामकुमार वर्मा
... पं० रामसेवक त्रिपाठी

हिंदी-संसार की सर्वश्रेष्ठ, सचित्र

मासिक पत्रिका

वर्ष ८, खंड २

माघ-आषाढ़, ३०६ तुलसी-संवत् (१९८६-८७ वि०)
फ़रवरी-जुलाई, (१९३० ई०)

संपादक—

पं० कृष्णविहारी मिश्र—श्रीप्रेमचंद—पं० रामसेवक त्रिपाठी
बी० ए०, एल्-एल्० बी०

अध्यक्ष—

श्रीविष्णुनारायण भार्गव

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

वार्षिक मूल्य ६॥)

छमाही मूल्य ३॥)

हिरानो गुनगाहक हि
विज्ञापनबाजी द्वारा ही प्रायः लोगों ने
अपनी वस्तु को उत्तम और गुणदायक
ाहकों का अनुमान करना भी कठिन हो
कोई बुरा नहीं कहता यह दुनियाँ की
आप हमारी बातों पर मत जाइए ! अ
हमारा ४२ वर्षों का परीक्षित

संख्या लेख ... लेखक

१. अतिथि ! ... ... श्रीयुत सुमंगलप्रकाश ... ...
२. अधर-माधुरी ... ... पं० मातादीन शुक्ल साहित्य-शास्त्री, काव्य-भूषण ...
३. अनुरोध ... ... श्रीयुत प्रतापनारायण श्रीवास्तव बी० ए० ... ...
४. अनुरोध ... ... श्रीयुत बाबूलाल भार्गव "कीर्ति" बी० ए० ...
५. 'अनोखे हैं' ... ... श्रीयुत द्वारकाप्रसाद गुप्त "रसिकेंद्र" ... ...
६. अभागिनी आँखें ... ... श्रीयुत बलदेवप्रसाद टंडन "विसारद" ... ...
७. अभिलाषा ... ... स्व० 'लेखराज' ... ...
८. अशांत ... ... श्रीयुत प्रफुल्लचंद्र ओझा "मुक्त" ... ...
९. अज्ञात ... ... श्रीयुत पद्मकांत मालवीय ... ...
१०. अज्ञात ... ... श्रीयुत सुधाकर दीक्षित 'सुधा' ... ...
११. आँखें ... ... पं० जगदंबाप्रसाद मिश्र "हितैषी" ... ...
१२. आतप ... ... पं० रामशंकर शुक्ल "रसाल" एम्० ए० ... ...
१३. आह ! ... ... पं० केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' विद्यालंकार बी० ए० ...
१४. आहुतियाँ ... ... पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र "अरुण" ... ...
१५. कविते ! ... ... श्रीमती रामेश्वरी देवी "चकोरी" ... ...
१६. कवि से ... ... पं० हृदयनारायण पांडेय "हृदयेश" ... ...
१७. क्रांति ... ... श्रीयुत श्यामसुंदर खत्री ... ...
१८. केलि ... ... श्रीयुत गुरुदयालसिंह 'प्रेमपुष्प' बी० ए०... ...
१९. क़ैदी ... ... श्रीयुत भगवतीचरण वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी० ...
२०. गीत ... ... पं० गुलाबरत्न वाजपेयी "गुलाब" ... ...
२१. गुलदावदी ... ... पं० महादेवप्रसाद अग्निहोत्री ... ...
२२. चटोरे भगवान् ... ... श्रीयुत सत्यपाल "उन्मुख" ... ...
२३. चरित्र-बल ... ... पं० रामसेवक त्रिपाठी ... ...
२४. जाग-जाग ओ' विराट् ! ... श्रीयुत मोहनलाल महतो 'वियोगी' ... ...
२५. जिज्ञासा ... ... पं० रमाशंकर मिश्र "श्रीपति" ... ...
२६. जुगुनू ... ... श्रीयुत राजाराम टंडन विशारद ... ...
२७. जौहरी ... ... पं० रमाशंकर मिश्र "श्रीपति" ... ...
२८. टेसू के फूल ... ... महाकवि सेनापति ... ...
२९. "तरवार की धार पै धावनो है" ... श्रीयुत बालकृष्ण राव "दिनेश" ... ...
३०. तस्कर-सुधाधर ... ... श्रीयुत सत्यव्रत शर्मा "सुजन" ... ...
३१. त्यौहार ... ... श्रीयुत मोहनलाल महतो 'वियोगी' ... ...
३२. नवरसमयी उषा ... ... श्रीयुत पुरुषोत्तमलाल भार्गव ...

संख्या लेख	लेखक	पृष्ठ
३३. निष्ठुर-हृदय	पं० रामसेवक त्रिपाठी	२११, ६३३
३४. निशीथ	श्रीयुत रामकुमार वर्मा "कुमार" एम्० ए०	५८६,७४८
३५. परख	पं० रामसेवक त्रिपाठी	७५५
३६. पवित्र-परिवर्तन	" " "	२०
३७. प्रलाप	पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र "अरुण"	३४७
३८. पार	श्रीयुत हरिकृष्ण "प्रेमी"	६००
३९. बंदी	" " "	८
४०. बसंत	श्रीयुत बलदेवप्रसाद टंडन "विसारद"	२६५
४१. ब्रह्म-द्रव	पं० श्यामनाथ शुक्ल "द्विजश्याम"	१४५
४२. बाँसुरी	पं० रमाशंकर दीक्षित "रमेश"	६५
४३. भ्रमर	श्रीयुत अवंतविहारी माथुर "अवंत"	७४
४४. भ्रमर	पं० केदारनाथ त्रिवेदी "नवीन"	५०६
४५. भ्रांत पथिक	पं० अनूप शर्मा "अनूप" बी० ए०, एल्० टी०	३०५
४६. भूल	पं० पद्मकांत मालवीय	१६
४७. मर्म-व्यथा	साहित्यरत्न पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"	१५६
४८. मा	पं० गंगाविष्णु पांडेय "विष्णु" विद्याभूषण	१८५
४९. "मिलनि पतंग की"	पं० मातादीन शुक्ल साहित्य-शास्त्री, काव्य-भूषण	७७०
५०. रूप की थाती	श्रीयुत जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए०	७२१
५१. लहर	श्रीयुत बलदेवप्रसाद टंडन "विसारद"	४४७
५२. विजयोल्लास	पं० मातादीन शुक्ल साहित्य-शास्त्री, काव्य-भूषण	६५०
५३. विरहिणी राधिका	पं० शिवदुलारे त्रिपाठी "नूतन"	२१८
५४. वीर भारतीय	श्रीयुत बलदेवप्रसाद टंडन "विसारद"	१६३
५५. वैभव-भार	प्रोफ़े० विश्वनाथप्रसाद एम्० ए०, साहित्यरत्न	३३४
५६. श्रीराम का तेज	महाकवि सेनापति	२८६
५७. समालोचना-सार	पं० गोविंदवल्लभ पंत	७६४
५८. सरसों के फूल	पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०	५६
५९. सुमन !	पं० अंबिकाप्रसाद भट्ट "अंबिकेश"	७८६
६०. सूक्ति-सुधा-विंदु	श्रीयुत सीतामऊ-नरेश	४७
६१. स्नेह	पं० श्यामनाथ शुक्ल 'द्विजश्याम'	४६८
६२. स्वेद-कण	श्रीयुत बलदेवप्रसाद टंडन 'बिसारद'	६०४
६३. हिमालय के प्रति	पं० उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश'	५६२

२—गद्य

संख्या	लेख	लेखक	
१.	अदृष्ट (कहानी)	श्रीयुत मंगलप्रसाद विश्वकर्मा विशारद ...	
२.	अपूर्व त्याग (कहानी)... ...	पं० गणेश पांडेय	
३.	अमृतसर के दर्शन (सचित्र) ...	श्रीयुत दीनदयालु शास्त्री	
४.	'अलंकार-पीयूष'	साहित्यरत्न श्रीयुत कन्हैयालाल पोद्दार	
५.	अहिंसा	श्रीयुत लक्ष्मणराव	२६०,
६.	आचार्य कौटिल्य और मैगस्थनीज़	श्रीयुत चंद्रगुप्त विद्यालंकार	
७.	आल्हा-ऊदल की कथा... ...	श्रीयुत भगवतीप्रसादसिंह बी० ए० ...	
८.	आलोचना और पुस्तक-परिचय ...	श्रीयुत राजेंद्रकुमार जैन, श्रीयुत जौहरीलाल शर्मा, डॉ० भवानीशंकर याज्ञिक एम्० बी० बी० एस्०, पं० रामसेवक त्रिपाठी, श्रीयुत वामननारायण देश पांडेय, साहित्याचार्य पं० गिरिजाप्रसाद द्विवेदी, पं० मातादीन शुक्ल साहित्य-शास्त्री काव्य-भूषण, श्रीयुत प्रेमचंद, पं० गयाप्रसाद शास्त्री 'श्रीहरि', पं० छन्नूलाल द्विवेदी, पं० भद्रदेव शुक्ल, पं० रामनारायण त्रिपाठी "मित्र", साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ, पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०, पं० लोचनप्रसाद पांडेय, साहित्याचार्य पं० शालग्राम शास्त्री, प्रोफ़े० पं० दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, श्रीयुत "वज्र", श्रीयुत कालिदास कपूर एम्० ए०, एल्० टी०, पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी, पं० किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री और श्रीयुत रामचंद्र संघी एम्० ए०	८२, २२५, ३६६, ५११, ६६१,
९.	इँगलैंड में शिक्षा (सचित्र) ...	डॉ० धनीराम 'प्रेम' एल्० सी० पी० एस्० ...	
१०.	उपन्यास और हिंदी के वर्तमान उपन्यास-लेखक	श्रीयुत प्रतापनारायण श्रीवास्तव बी० ए० ...	
११	एक स्वप्न की कुछ शेष स्मृतियाँ (सचित्र)	राजकुमार श्रीयुत रघुवीरसिंह बी० ए०	
१२.	किरातार्जुनीय और शिशुपालवध	पं० रामसेवक पांडेय साहित्योपाध्याय	
१३.	कृषि, शिल्प और वाणिज्य ...	श्रीयुत बलदेवसहाय निगम, पं० विश्वनाथ चतुर्वेदी, पं० उमाशंकर मेहता, प्रोफ़े० माधवलाल शर्मा, पं० जगन्नाथप्रसाद मिश्र बी० ए०, बी० एल्०, श्रीयुत बी० एम्० चंदेल, श्रीयुत गोपीकृष्ण मेहता, श्रीयुत अनंतप्रसाद जैन और श्रीयुत परिपूर्णानंद वर्मा ...	... ८६, २३४, ३८०, ५१५, ६६६, २८८, ४३२, ७२०,
१४.	चित्र-चर्चा	... ...	
१५.	जड़ में घुन	श्रीयुत मुकुटविहारीलाल वर्मा	

संख्या लेख	लेखक	पृष्ठ
१६. जीवन-ज्योति	श्रीयुत कृष्णदत्त भारद्वाज शास्त्री बी० ए०, श्रीयुत रामनारायण यादवेंदु, श्रीयुत बालेश्वरनाथ गुप्त, श्रीयुत उदयभानु, श्रीयुत सिद्धनाथ-माधव आगरकर बी० ए०, श्रीयुत भगवानदास केला, पं० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' बी० ए०, श्रीयुत रामशरण शर्मा शास्त्री, प्रोफ़े० घासीराम जैन एम्० एस्-सी०, श्रीयुत रामसेवक शास्त्री, श्रीयुत विश्वप्रकाश बी० ए०, श्रीयुत मोहनलाल, श्रीयुत श्रीभगवदाचार्य ब्रह्मचारी और श्रीयुत शंकरलाल गुप्त एम्० बी० बी० एस्०	११६,२६२,४०६, ५४०,६६३,८३४.
१७. दंड आर सुधार	श्रीयुत इक़बाल वर्मा सेहर	६०४
१८. दिल्ली में (कहानी)	श्रीयुत जैनेंद्रकुमार	४५७
१९. धिक्कार (कहानी)	श्रीयुत प्रेमचंद	५६
२०. नोबेल-पुरस्कार के साहित्यिक महारथी	पं० रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर' एम्० ए०	७८९
२१. पत्नी से पति (कहानी) ...	श्रीयुत प्रेमचंद...	३५९
२२. परख (कहानी)	श्रीयुत ऋषभचरण	१८०
२३. परिव्राजक के अनुभव (सचित्र) ...	श्रीयुत सत्यदेव परिव्राजक (जर्मनी से)	५७८
२४. प्राचीन भारत में दास-प्रथा ...	पं० रमाशंकर मिश्र एम्० ए०, बी० एल्०... ...	४३४
२५. पूने की पत्र-पत्रिकाएँ ...	श्रीयुत आनंदराव जोशी	६६
२६. पूस की रात (कहानी) ...	श्रीयुत प्रेमचंद...	५०५
२७. बच्चा सक़ा का आदि-अंत (सचित्र)	पं० बदरीदत्त पांडे संपादक "शक्ति"	१५७
२८. वंजारा (कहानी)	पं० कालिकाप्रसाद चतुर्वेदी	२०६
२९. बरवै-रामायण	प्रोफ़े० सद्गुरुशरण अवस्थी बी० ए०	१७४
३०. ब्रह्मदेश-भ्रमण (सचित्र) ...	श्रीयुत सत्यव्रत सिद्धांतालंकार	३२५
३१. बाल-महिला-मनोरंजन ...	पं० भूपनारायण दीक्षित बी० ए०, एल्० टी०, पं० गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इंद्र", श्रीयुत बब्बनप्रसादसिंह, श्रीयुत 'लहरी', पं० कामेश्वरनारायण शर्मा, श्रीयुत गुरुराम विश्वकर्मा, श्रीयुत नवलकिशोर बी० ए०, श्रीयुत केदारनाथ अग्रवाल 'बालेंदु', श्रीजगन्नाथप्रसादसिंह, रा० ब० लाला सीताराम बी० ए०, श्रीयुत जगदीशनारायण, पं० रामेश्वरप्रसाद शुक्ल, श्रीयुत तेजनारायण काक 'क्रांति', श्रीयुत 'कर्ण', पं० दुर्गादत्त जोशी, धर्मपत्नी पं० रामगोपाल मिश्र, श्रीयुत मुकुटविहारीलाल वर्मा, पं० हरिप्रसाद द्विवेदी, श्रीयुत जगतनारायण शंखधार, पं० अर्जुन त्रिपाठी 'मिलिंद', श्रीमती पूर्णादेवी शर्मा, श्रीयुत माहेश्वरी-	

संख्या	लेख	लेखक
		सिंह 'महेश', पं० अम्बादत्त, श्रीयुत श्यामनारायण कपूर, पं० शिवकुमार शुक्ल, श्रीयुत वृंदावनदास बी० ए०, एल-एल्० बी०, श्रीनेली तिमोथी, पं० शंभूदयाल त्रिपाठी 'नेह', पं० लक्ष्मीनारायण-दीनदयाल अवस्थी, श्रीयुत हरिश्चंद्र प्रसाद 'इंदु', श्रीयुत "प्रेमोन्मत्त", श्रीयुत बाबूलाल भार्गव "कीर्ति" बी० ए० और श्रीयुत श्रीशचन्द्र शुक्ल एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ६७, ३६१,४२१,६७२,
३२.	बुद्धू (कहानी)	श्रीयुत कुलदीपसहाय बी० ए० ... ...
३३.	भारत का पाश्चात्यीकरण:एक ख़तरा!	पं० मंगलदेव शर्मा ... ...
३४.	भारतीय इतिहास में शिवाजी महाराज का स्थान ...	श्रीयुत गोपाल-दामोदर तामस्कर एम्० ए०, एल्० टी० ...
३५.	भारतीय संगीत और ग्राम-स्वर-लिपि...	'एक संगीत-प्रेमी' ... ...
३६.	मजूर-सरकार (सचित्र) ...	पं० देवेंद्रनाथ सुकुल एम्० ए० रिसर्च-स्कालर ...
३७.	महाकवि भूषण की इतिहास-अनुकूलता...	श्रीयुत रामचंद्र-गोविंद काटे ... ...
३८.	महाकवि बाण के वंशज तथा वास-स्थान	पं० परमेश्वरप्रसाद शर्मा ... ...
३९.	मोरिशस और दक्षिण-अफ्रीका के हिंदू	पं० रामगोविंद त्रिवेदी वेदांत-शास्त्री ... ...
४०.	रात (कहानी)	पं० केशवदेव शर्मा ... ...
४१.	रामलला-नहछू	पं० के० पी० दीक्षित 'कुसुमाकर' ... ...
४२.	रामायण में राजनीति... ...	पं० शालग्राम शास्त्री, साहित्याचार्य ... ...
४३.	राव मालदेव	पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ साहित्याचार्य ...
४४.	रावी के तट तक (सचित्र) ...	पं० प्रेमनारायण त्रिपाठी और श्रीयुत मंगलप्रसाद विश्वकर्मा विशारद ... ...
४५.	"रुक्मिणी-मंगल"	पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी ... ...
४६.	रूप का नशा (कहानी) ...	श्रीयुत मुरलीमनोहर वर्मा ... ...
४७.	लेनिन (सचित्र)	श्रीयुत शिवनारायण टंडन ... ...
४८.	लैंसडौन और हरद्वार (सचित्र)	श्रीयुत गोवर्द्धनलाल एम्० ए०, बी० एल्० ...
४९.	"वह रो रहा था" (कहानी) ...	श्रीयुत कुं० विद्याभूषण ... ...
५०.	वीर-शताब्दी	पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित ... ...
५१.	शिमला के अंचल में (सचित्र) ...	श्रीयुत गिरींद्रनारायणसिंह ... ...
५२.	संगीत और विनोद	श्रीयुत सत्यव्रत निगम "कुसुम", श्रीयुत "अज्ञात", रायसाहब डा० भोलादत्त काला, श्रीयुत "करुणेश", साहित्याचार्य श्रीयुत गौरीशंकरसिंह विशारद, श्रीयुत

संख्या	लेख	लेखक	पृष्ठ
		बैजू बावरे, श्रीयुत बेचनरामसिंह बी० ए०,एल्० टी०, पं० बृहस्पतिदत्त मिश्रएम्० ए०,काव्यतीर्थ, कुं० प्रतापनारायण, श्रीयुत महादेवप्रसाद अग्निहोत्री और लक्ष्मण-बालकृष्ण सर्वटे	१२६,२६६,४१६,५५१,७०१,८४२.
३.	संपादकीय विचार	...	१३८,२८०,४२५,४६६,७१२,८५६.
४.	समस्या पूर्ति	पं० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' एम्० ए०	४७
५.	स्वदेशी-प्रचार की उपयोगिता	प्रोफ़े० माधवलाल शर्मा	७८४
६.	साहित्य और विज्ञान	पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०, श्रीयुत महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस्-सी०, विशारद, श्रीयुत गणेशशंकर 'विद्यार्थी' संपादक 'प्रताप', प्रोफ़े० भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, श्रीयुत अनूपलाल मंडल, पं० लज्जाराम मेहता, पं० नाथूराम शुक्ल बी० ए०, श्रीयुत शांतिप्रसाद वर्मा, श्रीयुत हरिश्चंद्र देव वर्मा "चातक", पं० रामनारायण मिश्र एम्० एस्-सी०, श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ तिवारी और श्रीयुत विश्वेश्वर ब्रह्मचारी	१०५, २५१,३६६,५३२,६८७,८२४.
७.	सुकुरू (कहानी)	पं० मातादीन शुक्ल साहित्य-शास्त्री, काव्य-भूषण	३४२
८.	सुभागी (कहानी)	श्रीयुत प्रेमचंद	२१८
९.	सुमन-संचय	श्रीयुत हेमेंद्रनाथ गर्गरी, पं० गोविंदप्रसाद द्विवेदी बी० ए०, एल्० टी०, श्रीयुत पडरौना-नरेश, पं० त्रिभुवनशंकर त्रिपाठी, पं० मातादीन शुक्ल साहित्य-शास्त्री, काव्य-भूषण, पं० प्रेमनारायण त्रिपाठी 'प्रेम', श्रीयुत महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस्-सी०, एल्० टी०, महात्मा मोहनदास-कर्मचंद गांधी, श्रीयुत शांतिप्रसाद वर्मा, पं० हृदयनारायण पांडेय "हृदयेश", पं० माधवप्रसाद मिश्र, श्रीयुत 'जीवन', श्रीयुत गंगाचरण दीक्षित "आकुल", श्रीयुत श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा, पं० श्यामनारायण पांडेय, पं० किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री, पं० विष्णुदत्त मिश्र 'तरंगी', श्रीयुत गुलाबचंद दरड़ा, श्रीयुत "मातृहीन", श्रीयुत त्रिलोकीनाथ मेहरोत्रा एम्० ए०, श्रीमती दुर्गादेवी, पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र एम्० एस्-सी०, पं० चंडिकाप्रसाद अवस्थी, श्रीयुत हनुमानप्रसाद गुप्त "प्रेमयोगी मान", श्रीयुत जैनेन्द्रकुमार, श्रीयुत ज्वालाप्रसाद मिश्र, श्रीयुत कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर", श्रीयुत अभिराम शर्म्मा, श्रीयुत "मुकुल", श्रीयुत शंकरदेव विद्यालंकार, श्रीयुत ताराचंद जेनरल सेक्रेटरी हिन्दु-	

संख्या लेख लेखक

स्तानी एकेडेमी, श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ शुक्ल "सुरेन्द्र", श्रीयुत पारसनाथ, श्रीयुत यमुनाप्रसाद चौधरी "नीरज" बी० ए०, बी० एल्०, श्रीयुत साधुशरण और श्रीयुत भूपनारायण दीक्षित बी० ए०, एल्० टी० ... ... ४१६,५५५,७०५

६०. सूर्य चलता है या पृथ्वी ? ... पं० शिवप्रकाश द्विवेदी ... ...

६१. सेवा-मार्ग (कहानी) ... ... पं० तारादत्त उप्रेती ... ...

६२. हमारा रंग-मंच और अभिनयकला ... ... श्रीयुत ललितकुमारसिंह "नटवर" ... ...

६३. हिंदी-कविता का भविष्य और व्रजभाषा-विरोध ... ... चतुर्वेदी पं० उमरावसिंह पांडे ... ...

६४. हिंदी-साहित्य में राजर्षि रघुराजसिंह का स्थान... ... श्रीयुत शत्रुसूदनसिंह कर्चुली... ...

चित्र-सूची

१—रंगीन

संख्या चित्र चित्रकार प्रकाशन-

१. अंतरंग और बहिरंग ... ... श्रीयुत अजितकुमार बसु ... ... (ज्ये

२. अमेरिका का वसंत ... ... (माघ

३. अर्जुन और चित्रांगदा ... प्रोफ़े० ईश्वरीप्रसाद वर्मा ... ... (माघ

४. अहिल्योद्धार ... ... श्रीयुत शारदाचरण उकील ... ... (आषा

५. जल-क्रीड़ा... ... ... प्रोफ़े० ईश्वरीप्रसाद वर्मा ... ... (चैत्र)

६. जौहर-व्रत... ... ... श्रीयुत नारायणप्रसाद वर्मा ... ... (माघ

७. दीप-दान ... ... श्रीयुत अजितकुमार बसु ... ... (आषा

८. पंखेवाली ... ... श्रीयुत ए० आर० असगर ... ... (वैशा

९. पंजाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह श्रीयुत रामनाथ गोस्वामी ... ... (चैत्र

१०. प्रतीक्षा ... ... श्रीयुत महावीरप्रसाद वर्मा ... ... (फाल्गु

११. पृथ्वीराज चौहान ... ... श्रीयुत दशरथलाल ... ... (वैशाख

१२. मारवाड़-नरेश राव मालदेव ... श्रीयुत विश्वेश्वरनाथजी रेउ की कृपा से प्राप्त ... (फाल्गु

१३. मूर्च्छित अवस्था में लक्ष्मणजी ... श्रीयुत श्यामनंदनप्रसाद वर्मा ... (वैशा

संख्या	चित्र	चित्रकार	प्रकाशन-मास
१४.	वासकसज्जा	श्रीयुत नारायणप्रसाद वर्मा	(माघ)
१५.	वीरान-भारत	,, ,, ,,	(ज्येष्ठ)
१६.	शिवाजी का प्रताप	,, ,, ,,	(ज्येष्ठ)
१७.	सम्राट् अकबर और स्वामी हरिदास	श्रीयुत रामनाथ गोस्वामी	(चैत्र)
१८.	सावित्री-सत्यवान	श्रीयुत नारायणप्रसाद वर्मा	(आषाढ़)
१९.	होली	श्रीयुत श्यामनंदनप्रसाद वर्मा	(फाल्गुन)

२—व्यंग्य-चित्र

संख्या	चित्र	पृष्ठ	संख्या	चित्र	पृष्ठ
१.	आशा पर पानी	७५६	८.	बटलर-विनोद	५१०
२.	आशीर्वाद या अभिशाप ?	६६८	९.	मजूर-सरकार का मनोरंजन	२८
३.	गजेंद्र-मृगेंद्र	४३६	१०.	मनोज की मरम्मत	८१
४.	छायावाद की छाया !	३२४	११.	विदेशी व्यापार का त्रिशंकु	६३०
५.	दीन-भक्त	६११	१२.	सुरुचि	१८४
६.	पतझड़	१९२	१३.	होली का सत्कार !	२०२
७.	प्रगति-विरोध	७९५	१४.	होली का हुरदंग	२२४

माधुरी के ग्राहकों को आवश्यक सूचना

जिन ग्राहकों का चंदा इसी 'आषाढ़' संवत् १९८७ पूर्ण संख्या ९६ से समाप्त हो रहा है, उनके ग्राहक-नंबर नीचे दिए जा रहे हैं। कृपालु ग्राहक अपने-अपने नंबर देखकर वार्षिक मूल्य मनी-आर्डर से शीघ्र भेज दें। इस अंक के पहुँचने की तारीख़ से २५ दिन तक कोई सूचना न आने से 'माधुरी' का अगला अंक (श्रावण सं० १९८७ का) प्रकाशित होने पर वी० पी० भेजा जायगा। आशा है, प्रेमी ग्राहक वी० पी० स्वीकार कर कृपाभाव बनाए रहेंगे।

पत्रव्यवहार या रुपया भेजते समय **'ग्राहक-नंबर'** का उल्लेख अवश्य कर दें।

निवेदक—

मैनेजर माधुरी, लखनऊ.

५०६, ५०८, ५१०, ५२१, ५२७, ५२८, ५२९, ५३३, ५३४, ५४९, ५५०, ५६४, ५६६, ५६८, ५८७,
५९१, ५९३, ५९५, ५९६, ६०३, ६०८, ६१६, ६२२, ६२३, ६३५, ६४२, ६४८, ६५६, ६६६,
६६७, ६६९, ६७१, ६८३, ६८६, ६९१, ६९२, ६९३, ७०९, ७१४, ७१७, ७१८, ७२३, ७२९, ७३६,
७४५, ७५१, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७६२, ७७५, ७७८, ७९३, ८०१, ८२०, ८२४, ८४३, ८४८,
८५८, ८६९, ८७१, ८७३, ८७४, ८८१, ९०४, ९१९, ९२४, ९५४, ९६०, ९७५, ९७८, ९९३, १०१२,
१०२३, १०४०, १०७४, १०९८, ११०२, ११०७, ११०८, ११२६, ११३६, ११४५, ११६५, ११७१,
११८६, ११८८, ११९०, ११९२, ११९७, ११९८, १२२७, १२२८, १२५३, १२५६, १२६४, १२६५,
१२७४, १२७६, १२७९, १२८१, १२८२, १२९०, १२९५, १३१९, १३३०, १३४०, १३४३,
१३५२, १३५३, १३६२, १३६५, १३७३, १३७८, १३८३, १३८७, १३९२, १४१३, १४२७, १४३८,
१४५६, १४७६, १४७७, १४८३, १४९८, २०४९, २०९८, २१०८, २१५१, २१६०, २२१०, २२४५,
२४१६, २४३१, २४५२, २५२९, २५८३, २६१२, २६६८, ४०५०, ४४४९, ४६४६, ४६७९, ४७७९,
४८२६, ४९२३, ४९२६, ४९३८, ४९४०, ४९९२, ४९९४, ६०२०, ६०२९, ६०७५, ६०७८,
६०८२, ६०९६, ६१०८, ६१३८, ६१४५, ६१६७, ६१८०, ६१८६, ६१९०, ६२०१, ६२०२, ६२२७,
६२३१, ६२५०, ६२७२, ६२७६, ६२९१, ६२९७, ६३२०, ६३४३, ६३५२, ६३५३, ६३५६, ६३९७,
६४२३, ६४२४, ६४४७, ६४६२, ६४७५, ६४९७, ६५०६, ६५४८, ६५५३, ६५५४, ६५६८, ६५७५,
६५९१, ६६०६, ६६१५, ६६७२, ६६७७, ६६७९, ६६८५, ६६९७, ६७०१, ६७१६, ६७२०, ६७२९,
६७३७, ६७४६, ६७६३, ६७६७, ६७७२, ६७७५, ६७८२, ६८०४, ६८०८, ६८२१, ६८२६, ६८३२,
६८३८, ६८४२, ६८४३, ६८४८, ६८६१, ६९००, ६९०८, ६९२०, ६९२९, ६९३३, ६९७०, ६९९३,
६९९८, ७००६, ७०१७, ७०२०, ७०२५, ७०२७, ७०३१, ७०५३, ७०५५, ७०५९, ७०६८, ७०७८,
७०९४, ७०९६, ७११२, ७१२५, ७१३१, ७१५८, ७१८०, ७१८२, ७१९४, ७१९९, ७२०१, ७२१८,
७२२२, ७२२४, ७२५१, ७२७४, ७२८४, ७२८७, ७२९६, ७३००, ७३२६, ७३३१, ७३५४, ७३७१,

७३७५, ७३९०, ७३९७, ७३९९, ७४०३, ७४०७, ७४६०, ७४६१, ७४७१, ७४८२, ७४९०,
७५३५, ७५४९, ७५९५, ७६१३, ७६१५, ७६१६, ७७१६, ७७३६, ७७६६, ७७७२, ७८२९,
७८६८, ७८७०, ७९१०, ७९१५, ७९४३, ७९४५, ७९६३, ७९८५, ९०१९, ९०७१, ९०७४,
९१२५, ९१३१, ९१३५, ९१३७, ९१४३, ९१६३, ९१९१, ९१९८, ९२०१, ९२०६, ९२०८,
९२३०, ९२७०, ९२७४, ९२९४, ९२९८, ९३२७, ९३३५, ९३६२, ९३६९, ९४०९, ९४१०,
९४४५, ९४५६, ९४६०, ९४७५, ९४७६, ९४८६, ९४९४, ९४९८, ९५०२, ९५२४, ९५२६,
९५५४, ९५६९, ९५७४, ९५७५, ९५८२, ९५८७, ९५९५, ९६५६, ९७०४, ९७११, ९७३१,
९७७३, ९८३०, ९८७४, ९९१८, ९९५२, १००५५, १००८९, १०१६३, १०१७६, १०२७७,
१०३१४, १०३४७, १०४१९, १०५०१, १०५०४, १०५२१, १०५४९, १०५७४, १०५८३, १०६१४,
१०७१७, १०७१९, १०७२१, १०७२२, १०७६९, १०७७७, १०७७९, १०७८१, १०७८९,
१०८०६, १०८०८, १०८१०, १०८११, १०८१७, १०८२९, १०८३३, १०८४०, १०८५५,
१०८८०, १०८८२, १०८९७, १०९१४, १०९२५, १०९३६, १०९४६, १०९४८, १०९५४,
१०९५९, १०९८०, १०९८४, ११०००, ११००१, ११००३, ११००७, ११००८, ११०२८,
११०३६, ११०५५, ११०९८, ११११५, १११२५, १११२९, १११३६, १११३९, १११५१,
१११६९, १११७८, १११९६, १११९७, ११२१०, ११२२०, ११२२८, ११२३५, ११२४४,
११२८४, ११२८७, ११२९२, ११३००, ११३०६, ११३१०, ११३१२, ११३१३, ११३२६,
११३४६, ११३६१, ११३६७, ११३८०, ११३९२, ११४१४, ११४२१, ११४३७, ११४३९,
११४८३, ११४९७, ११५०२, ११५०६, ११५१२, ११५३०, ११५६०, ११५८७, ११६०५,
११६१९, ११६९०, ११७०३, ११७१४, ११७२१, ११७२२, ११७२३, ११७६५, ११७८३,
११८५९, ११९७३, ११९८१, १२०००, १२०८४, १२२८६, १२२८७, १२३२१, १२३२९,
१२५८०, १२६२०, १२९९०, १३१७४, १३२२६, १३३६१, १३३७०, १३३७६, १३४८६,
१३६१७, १३६२३, १३६२५, १३६३१, १३६३५, १३६३९, १३६४३, १३६५१, १३६६५,
१३६९५, १३७१५, १३७२७, १३७२९, १३७३९, १३७४२, १३७४८, १३७४९, १३७५१,
१३७६१, १३८०१, १३८०२, १३८१४, १३८२३, १३८३८, १३८४४, १३८५३, १३८७४,
१३८९०, १३८९१, १३८९९, १३९२०, १३९२६, १३९२९, १३९३६, १३९३७, १३९५२,
१३९७९, १३९९२, १३९९६, १४००९, १४०१२, १४०४७, १४०४९, १४०६०, १४०६५,
१४०८७, १४०९३, १४०९६, १४११०, १४१११, १४११८, १४१६३, १४१६९, १४१८४,
१४२२४, १४२२८, १४२३४, १४३१९, १४३३६, १४३५७, १४४१४, १४४९५, १४५०१,
१४५८९, १४६००, १४६२४, १४७०३, १४७५०, १४८४६, १४८६४, १४९०४, १५३५४,
१५५४३, १५५६०, १५५९४, १५६२४, १५६५३, १५६५४, १५६५५, १५६७८, १५६७९, १५६८३,
१५७००, १५७०४, १५७१८, १५७२०, १५७२८, १५७३०, १५७३७, १५७४१, १५७४४, १५७६०,
१५७६५, १५७७१, १५७७६, १५७८६, १५७८९, १५७९९, १५८००, १५८०६, १५८१५,
१५८२६, १५८२७, १५८३०, १५८३२, १५८४२, १५८४५, १५८४९, १५८५३, १५८५५,
१५८६०, १५८७०, १५८७१, १५८८१, १५८८८, १५८९४, १५९०९, १५९३४, १५९६०,
१५९७२, १५९७३, १६००५, १६०१०, १६०१८, १६०२८, १६०४९, १६०५४, १६०६१,
१६०८९, १६०९३, १६१४८, १६२४२, १६३२५, १६३५५, १६३५७, १६४३५, १६४६५, १६४७२,
१६५२९, १६५६०, १६५६४, १६५७६, १६६५५, १६६७४, १६७५९, १६७६९, १६७७८, १६८०९,
१६८९०, १६९५४, १६९८७, १७०१०, १७०१३, १७०१४, १७०३४, १७०७५, १७०८२,
१७०९६, १७०९७, १७१०९, १७११०, १७११६, १७१२४, १७१२७, १७१३१, १७१३५,

१७१४५, १७१४७, १७१५५, १७१५७, १७१५८, १७१६०, १७१६३, १७१६४, १७१६६, १७१६७,
१७१७०, १७१७३, १७१८०, १७१८३, १७१८७, १७१९०, १७१९१, १७१९५, १७१९९, १७२०१,
१७२०७, १७२०९, १७२१३, १७२१६, १७२१७, १७२२१, १७२२९, १७२४२, १७२४९, १७२५२,
१७२६०, १७२७१, १७२७६, १७२८१, १७२८५, १७२८९, १७२९१, १७२९४, १७३०८, १७३१५,
१७३२३, १७३२४, १७३४३, १७३४९, १७३५५, १७३५६, १७३५८, १७३७२, १७३७५, १७३७७,
१७३८७, १७३९४, १७४०३, १७४२०, १७४२४, १७४५६, १७४५७, १७४६२, १७४७३, १७४७४,
१७४८२, १७४८७, १७४८८, १७४९०, १७४९२, १७४९३, १७४९७, १७४९८, १७५०२, १७५०६,
१७५०७, १७५१७, १७५२६, १७५४०, १७५४७, १७५५०, १७५५४, १७५६१, १७५६२, १७५६५,
१७५६६, १७५७५, १७५८०, १७५८५, १७५८९, १७५९७, १७६०१, १७६०३, १७६०५, १७६१३,
१७६२०, १७६३५, १७६५३, १७६८४, १७६९५, १७७०८, १७७३४, १७७३६, १७७५४, १७७६७, १७७६८,
१७७७९, १७७९०, १७७९४, १७७९५, १७८०६, १७८६४, १७९६६, १८००३, १८००८, १८०१०,
१८०१४, १८०४०, १८०८४, १८११९, १८१७८, १८१८४, १८१८९, १८१९८, १८२०६, १८२१३,
१८५७९, १८५८०, १८५८६, १८५८७, १८५८८, १८६०६, १८६९०, १८७०९, १८७४७, १८७६५, १८७६६,
१८७८०, १८७९९, १८८०२, १८८१५, १८८१६, १८८१७, १८८४३, १८८५७, १८८६०, १८८६२,
१८८६६, १८८७४, १८८७८, १८८८४, १८८८५, १८८८६, १८८८७, १८९०३, १८९०५, १८९२२,
१८९२६, १८९३८, १८९३९, १८९४२, १८९४५, १८९५३, १८९५४, १८९९४, १८९९५, १९००१, १९००९,
१९०२४, १९०२६, १९०२९, १९०३०, १९०३२, १९०३६, १९०३८, १९०४२, १९०४७, १९०४८,
१९०४९, १९०५०, १९०५३, १९०५७, १९०५८, १९०५९, १९०६१, १९०६२, १९०६३, १९०६४,
१९०६८, १९०७०, १९०७१, १९०८२, १९०८३, १९०८५, १९०९२, १९०९३, १९०९५, १९०९६,
१९०९८, १९१०१, १९१०३, १९१०५, १९१०९, १९११०, १९११२, १९११३, १९११५, १९१२१,
१९१२२, १९१२३, १९१२४, १९१२७, १९१३०, १९१३१, १९१३४, २९१३९, १९१४१, १९१४३,
१९१४४, १९१४६, १९१४८, १९१५५, १९१५६, १९१६०, १९१६१, १९१६८, १९१६९, १९१७१,
१९१७२, १९१८३, १९१८५, १९१८६, १९१८७, १९१९१, १९१९२, १९१९७, १९२०४, १९२०९,
१९२१४, १९२१५, १९२१८, १९२१९, १९२२०, १९२२३, १९२२४, १९२२५, १९२२७, १९२२८,
१९२२९, १९२३०, १९२३२, १९२३३, १९२३४, १९२३५, १९२३६, १९२३८, १९२३९, १९२४४,
१९२४५, १९२४७, १९२४८, १९२४९, १९२५०, १९२५३, १९२५४, १९२५५. १९२५६, १९२५७,
१९२५८, १९२५९, १९२६०, १९२६२, १९२६३, १९२६४, १९२६५, १९२६६, १९२६७, १९२६८,
१९२७०, १९२७१, १९२७२, १९२७३, १९२७४, १९२७५, १९२७६. १९२७७, १९२७८, १९२७९,
१९२८०, १९२८१, १९२८२, १९२८४, १९२८५, १९२८६, १९२८७, १९२८८, १९२९०, १९२९१,
१९२९२, १९२९३, १९२९५, १९२९६, १९२९८, १९२९९, १९३०२, १९३०५, १९३०६,
१९३०७, १९३१०, १९३११, १९३१५, १९३१६, १९३१८, १९३२१, १९३२६, १९३२७, १९३३०,
१९३३५, १९३३८, १९३३९, १९३४०, १९३४३, १९३४४, १९३४५, १९३४८, १९३४९, १९३५०,
१९३५४, १९३५६, १९३५९, १९३६४, १९३६५, १९३६८, १९३७०, १९३७१, १९३७८, १९३८०,
१९३८१, १९३८२, १९३९७, १९४०२, १९४०३, १९४०४, १९४०८, १९४०९, १९४१०, १९४१४,
१९४१५, १९४१६, १९४१९, १९४२०, १९४२२, १९४२४, १९४२६, १९४३८, १९४३९, १९४४०,
१९४४३, १९४४९, १९४५३, १९४५४, १९४५७, १९४५९, १९४६३, १९४६७, १९४६९, १९४७१,
१९४७५, १९४७६, १९४७७, १९४७९, १९४८१, १९४८९, १९४९६, १९४९७, १९४९८, १९४९९,
१९५००, १९५०१, १९५०२, १९५०३, १९५०५, १९५०९, १९५१०, १९५११, १९५१२, १९५१५,
१९५१६, १९५१७, १९५१८, १९५१९, १९५२१, १९५२३, १९५३२, १९५३३, १९५३४,

१९५४७, १९५४८, १९५४९, १९५५३, १९५५७, १९५५९, १९५६२, १९५६५, १९५७१, [illegible]
१९५७३, १९५७४, १९५७६, १९५७८, १९५८९, १९५९१, १९५९६, १९५९८, १९६०१, १९६०३, [illegible]
१९६०७, १९६०८, १९६०९, १९६१०, १९६११, १९६१२, १९६१४, १९६२४, १९६२६, [illegible]
१९६३३, १९६४१, १९६४६, १९६५१, १९६५२, १९६५५, १९६५३, १९६६१, १९६६२, [illegible]
१९६६९, १९६७१, १९६७२, १९६७४, १९६७६, १९६८१, १९६८२, १९६८५, १९६९४, [illegible]
१९६९६, १९७१०, १९७१४, १९७१६, १९७२०, १९७२९, १९७३१, १९७३२, १९७३८, [illegible]
१९७४८, १९७५२, १९७५३, १९७५७, १९७५८, १९७६४, १९७६६, १९७६८, १९७७०, [illegible]
१९७७८, १९७८५, १९७८६, १९७८९, १९७९४, १९७९५, १९८०६, १९८१५, १९८१६, [illegible]
१९८२१, १९८२७, १९८३१, १९८३३, १९८५०, १९८५२, १९८५३, १९८६१, १९८६४, [illegible]
१९८६९, १९८७२, १९८७४ १९८७५, १९८७६, १९८७८, १९८८२, १९८८३, १९८८७, [illegible]
१९८९५, १९९०५, १९९०६, १९९१०, १९९१४, १९९१५, १९९१८, १९९१९, १९९२०, १९९२२, [illegible]
१९९२५, १९९३१, १९९३४, १९९३५, १९९४५. १९९५२, १९९५७, १९९६०, १९९६५, २००१६, [illegible]
२०१०९, २०१२९, २०१३७, २०१७९, २०१८५, २०२०१, २०२०५, २०२२४, २०२७६, [illegible]
२०३५१, २०३६७, २०५७२, २०६०३, २०६०५, २०६८१, २०६८२, २०६८३, २०६८८, २०६९१, [illegible]
२०६९६, २०६९७, २०६९९, २०७००, २०७०३, २०७०६, २०७१४, २०७१५, २०७१६, २०७१७, [illegible]
२०७४३, २०७४७, २०७४८, २०७५०, २०७५१, २०७५२, २०७५५, २०७५६, २०७५७, २०७५८, [illegible]
२०७६०, २०७६३, २०७७३, २०७७४, २०७७५, २०७७६, २०७७७, २०७७८, २०७७९, २०७८०, [illegible]
२०७८३, २०७८४, २०७८५, २०७८६, २०७८७, २०७८९, २०७९०, २०७९१, २०७९२, २०७९३, [illegible]
२०७९६, २०७९७, २७७९८, २०८००, २०८१०, २०८१२, २०८१३, २०८१४, २०८१५, २०८१६, [illegible]
२०८२०, २०८२१, २०८२२, २०८२३, २०८२४, २०८३०, २०८३१, २०८३२, २०८३३, २०८३४, [illegible]
२०८४६, २०८४९, २०८५०, २०८५१, २०८५२, २०८५३, २०८५४, २०८५५, २०८५६, २०८५८, [illegible]
२०८६०, २०८६१, २०८६२, २०८६३ २०८६४, २०८६५. २०८६६, २०८६८, २०८६९, २०९०२, [illegible]
२०९०९, २०९१०, २०९११, २०९१२, २०९१३, २०९१५, २०९१६, २०९३५, २०९३६ २०९३७, [illegible]
२०९४०, २०९४२, २०९४३, २०९४४, २०९४५, २०९४६, २०९६१, २०९६२, २०९६३, २०९६४, [illegible]
२०९६६, २०९८१, २०९८२, २०९८३, २०९८४, २०९८६, २०९८७, २०९८९. २०९९७, २०९९८, [illegible]
२१०००, २१००१, २१००२, २१००३, २१००४, २१००५, २१००६, २१००७, २१००८, २१००९, [illegible]
२१०११, २१०१२, २१०१३, २१०१४, २१०३०, २१०३१, २१०३३, २१०३४, २१०३५, २१०३६, [illegible]
२१०३८, २१०३९, २१०४०, २१०४१, २१०४२, २१०४३, २१०४४, २१०४५, २१०४६, २१०४७, [illegible]
२१०४९, २१०५०, २१०५१, २१०५२, २१०५३, २१०५४, २१०५५, २१०५६, २१०५७, २१०५८, [illegible]
२१०७३, २१०७४, २१०७५, २१०७६, २१०७७, २१०७८, २१०७९, २१०८०, २१०८१, २१०८७, [illegible]
२१०८९, २१०९०, २१०९३, २१०९४, २१०९५, २१०९६, २१०९७ २१०९८, २१०९९, २११००, [illegible]
२११०२, २११०४, २११०५, २११०६, २११०८, २११०९, २१११०, २११११, २१११२, २१११३, [illegible]
२१११५, २१११६, २११२४, २११२५, २११२६, २११२७, २११२८, २११२९, २११३०, २११३१, [illegible]
२११३३, २११३४, २११३५, २११३६, २११३७. २११३८, २११५१, २११५२, २११५४, २११५५, [illegible]
२११५७, २११५८, २११५९, २११६०, २११६२, २११६३, २११६४, २११६५, २११६६, २११६७, [illegible]
२११६९, २११७०, २११७१, २११७२, २११७३, २११८७, २११८९, २११९३, २११९४, २११९५, [illegible]
२१२०७, २१२०८. २१२०९, २१२१०, २१२११, २१२२७, २१२२८. २१२२९, २१२३०, २१२३१, [illegible]
२१२३३, २१२३४. २१२४१, २१२४३, २१२४४, २१२४६, २१२६०, २१२६१. २१२६४, २१२६६, [illegible]
२१२७१, २१२७२, २१२७४, २१२७५, २१२९०, २१३०८, २१३०९, २१३११, २१३१२, २१३१३. [illegible]

२१३१५, २१३१६, २१३१७, २१३२२. २१३२३, २१३२८, २१३३४, २१३३५, २१३३६, २१३३७, २१३३८,
२१३४०, २१३४१, २१३४२, २१३४५, २१३४७, २१३४८, २१३५०, २१३५१, २१३५२, २१३५३, २१३५४,
२१३५५, २१३५६, २१३५८ २१३६०, २१३६१, २१३६२, २१३६३, २१३६४, २१३६५, २१३६७, २१३६८,
२१३७०, २१३७१, २१३७२, २१४७३, २१४७४, २१४७५, २१४७६, २१४७८, २१४७९, २१४८०, २१४८१,
२१४८२, २१४८३, २१४८४, २१४८५, २१४८६, २१४८७, २१४८८, २१४८९, २१४९०, २१४९१, २१४९२,
२१४९५, २१४९६, २१४९७, २१४९८, २१५००, २१५०१, २१५०२, २१५०३, २१५०४, २१५०५, २१५०६,
२१५०७, २१५०८, २१५०९, २१५१०, २१५११, २१५१२, २१५१३, २१५१४, २१५१५, २१५१६, २१५१७,
२१५१८ २१५१९ २१५२०, २१५२१, २१५२२, २१५२३, २१५२४, २१५२५, २१५२६, २१५२७, २१५२८,
२१५२९, २१५३०, २१५३१, २१५३२, २१५३३, २१५३४, २१५३५, २१५३६, २१५३७, २१५३९, २१५४०,
२१५४१, २१५४२, २१५४३, २१५४४, २१५४५, २१५४६, २१५४७, २१५४८, २१५४९, २१५५०, २१५५५,
२१५६७, २१५६९, २१५७०, २१५७१, २१५७२, २१५७३, २१५७४, २१५७५, २१५७६, २१५७७, २१५७८,
२१५७९, २१५८०, २१५८१, २१५८२, २१५८६, २१५८७, २१५८८, २१५८९, २१५९०, २१५९६, २१५९७,
२१५९९, २१६००, २१६०१, २१६०२, २१६०३, २१६०४, २१६०५, २१६०६, २१६०७, २१६०८, २१६०९,
२१६१०, २१६११, २१६१२, २१६१३, २१६१४, २१६१५, २१६२२, २१६२३, २१६२४, २१६२५, २१६२७,
२१६३१, २१६३२, २१६३३, २१६३४, २१६३५, २१६४०, २१६४१, २१६४२, २१६४४, २१६४५, २१६४६,
२१६४७, २१६४८, २१६४९, २१६५०, २१६५३, २१६५४, २१६५५, २१६५६, २१६५७, २१६५८, २१६५९,
२१६६०, २१६६१, २१६६५, २१६६६, २१६६८, २१६७०, २१६७१, २१६७३, २१६७४, २१६७५, २१६७६,
२१६७७, २१६७८, २१६७९, २१६८०, २१६८१, २१६८२, २१६८३, २१६८४, २१६८५, २१६८६, २१६८७,
२१६८८, २१७०१, २१७०२, २१७०३, २१७०४, २१७०५, २१७०६, २१७०७, २१७०८, २१७०९, २१७१०,
२१७११, २१७१२, २१७१३, २१७१४, २१७१५, २१७१६, २१७१७, २१७१८, २१७१९, २१७२०, २१७२१,
२१७२२, २१७२३, २१७२४, २१७२५, २१७२६, २१७२७, २१७२८, २१७२९, २१७३०, २१७३१, २१७३२,
२१७३३, २१७३५, २१७३६, २१७३७, २१७३८, २१७४०, २१७४१, २१७४२, २१७४३, २१७४४, २१७४५,
२१७४६, २१७४७, २१७४८, २१७४९, २१७५०, २१७५१, २१७५२, २१७५३, २१७५४ २१७५५, २१७५६,
२१७५७, २१७५८, २१७६५, २१७६६, २१७६७, २१७६८, २१७६९, २१७७०, २१७७१, २१७७२, २१७७३,
२१७७४, २१७७६, २१७७७, २१७७९, २१७८०, २१७८१, २१७८२, २१७८३, २१७८४, २१७८६, २१७८७,
२१७८८, २१७८९, २१७९०, २१७९१, २१७९२, २१७९६, २१७९७, २१७९९, २१८००, २१८०१, २१८०२,
२१८०३, २१८०४, २१८०५, २१८०६, २१८०७, २१८०८, २१८०९, २१८१०, २१८११, २१८१२, २१८१३,
२१८१४, २१८१५, २१८१६. २१८१७, २१८१८, २१८१९, २१८२०, २१८२१, २१८२२, २१८२३, २१८२४,
२१८२५, २१८२८, २१८२९, २१८३०, २१८३१, २१८३२, २१८३३, २१८३४, २१८३५. २१८३६, २१८३९,
२१८४०, २१८४२, २१८४३, २१८४४, २१८४५, २१८४६, २१८४७, २१८४८, २१८४९, २१८५०, २१८५१,
२१८५२, २१८५३, २१८५४, २१८५५, २१८५६, २१८५९, २१८६०, २१८६१, २१८६२, २१८६३, २१८६४,
२१८६६, २१८६७, २१८६८, २१८६९, २१८७२, २१८७३, २१८७४, २१८७५, २१८७६, २१८७७, २१८७८,
२१८७९, २१८८१, २१८८४, २१८८६, २१८८८, २१८८९, २१८९०, २१८९१, २१८९२, २१८९३, २१८९४,
२१८९५, २१८९६, २१८९७, २१८९८, २१८९९, २१९००, २१९०१, २१९०३, २१९१०, २१९११, २१९१२,
२१९१३, २१९१४, २१९१५. २१९१६, २१९२०, २१९२१, २१९२२, २१९२४, २१९२५, २१९२६, २१९२७,
२१९२८, २१९२९, २१९३०, २१९३१, २१९३२, २१९३३, २१९३४, २१९३५, २१९३६, २१९३९, २१९४०,
२१९४१, २१९४२, २१९४३, २१९४४, २१९४५, २१९४६, २१९४८, २१९५०, २१९५१, २१९५२, २१९५३,
२१९५४, २१९५५, २१९५६, २१९५७, २१९५८, २१९५९, २१९६०, २१९६१, २१९६२, २१९६३, २१९६४,
२१९६५, २१९६६, २१९७३, २१९७४, २१९७५, २१९७७, २१९७८, २१९७९, २१९८०, २१९८१, २१९८२,

२१९८३, २१९८४, २१९८६, २१९८७, २१९८८, २१९८९, २१९९०, २१९९३, २१९९४, २१९९६, २१९९९, २२०००, २२००१, २२००२, २२००३, २२००४, २२००५, २२००६, २२००९, २२०१०, २२०११, २२०१२, २२०१३, २२०१४, २२०१६, २२०१७, २२०१८, २२०१९, २२०२१, २२०२२, २२०२३, २२०२४, २२०२५, २२०२६, २२०२८, २२०२९, २२०३०, २२०३३, २२०३४, २२०३७, २२०३८, २२०३९, २२०४०, २२०४१, २२०४२, २२०४३, २२०४४, २२०४५, २२०४६, २२०४७, २२०४८, २२०४९, २२०५०, २२०५१, २२०५२, २२०५३, २२०५४, २२०५५, २२०५६, २२०५७, २२०५८, २२०५९, २२०६०, २२०६१, २२०६२, २२०६३, २२०६४, २२०६५, २२०६६ २२०६७, २२०६८, २२०६९, २२०७२, २२०७३, २२०७४, २२०७५, २२०७६, २२०७७, २२०७८, २२०७९, २२०८०, २२०८१, २२०८२, २२०८३, २२०८५, २२०८६, २२०८८, २२०९१, २२०९२, २२०९३, २२०९४, २२०९५, २२०९६, २२०९७, २२०९८, २२१०४, २२१०५, २२१०६, २२१०७, २२१०८, २२१०९, २२११०, २२१११, २२११२, २२११३, २२११५, २२११६, २२११७, २२११८, २२११९, २२१२०, २२१२२, २२१२३, २२१२४, २२१२६, २२१२७, २२१२८, २२१२९, २२१३१, २२१३२, २२१३५, २२१३६, २२१३७, २२१३८, २२१३९, २२१४०, २२१४२, २२१४३, २२१४४, २२१४५, २२१४७, २२१४८, २२१४९, २२१५०, २२१५२, २२१५३, २२१५४, २२१५५, २२१५६, २२१५७, २२१५९, २२१६०, २२१६१, २२१६२, २२१६३, २२१६४, २२१६५, २२१६६, २२१६७, २२१६८, २२१६९, २२१७०, २२१७१, २२१७२, २२१७३, २२१७५, २२१७६, २२१७७, २२१७८, २२१७९, २२१८०, २२१८२, २२१८३, २२१८५, २२१८६, २२१८८, २२१८९, २२१९१, २२१९३, २२१९४, २२१९६, २२१९७, २२१९९, २२२००, २२२०१, २२२०३, २२२०४, २२२०५, २२२०६, २२२०९, २२२११, २२२१३, २२२१४, २२२१५, २२२१८, २२२१९, २२२२८, २२२२९, २२२३०, २२२३२, २२२३४, २२२३६, २२२३७, २२२३९, २२२४०, २२२४२, २२२४४, २२२६०, २२२६३, २२२६४, २२२६६, २२२६८, २२२७०, २२२७६, २२२७८, २२२८१, २२२९३, २२२९७, २२३२०, २२३२१, २२३२२, २२३२३, २२३२४, २२३२५, २२३२६, २२३२७, २२३२८, २२३२९, २२३४६, २२३५६, २२३६८, २२३८०, २२३९१, २२४०८, २२४१५, २२४२२, २२४२६, २२४३५, २२४६२, २२४६९, २२४७०, २२५०६, २२५१२, २२५३८, २२५७७, २२५८४, २२५९७, २२६३० और २२६३५

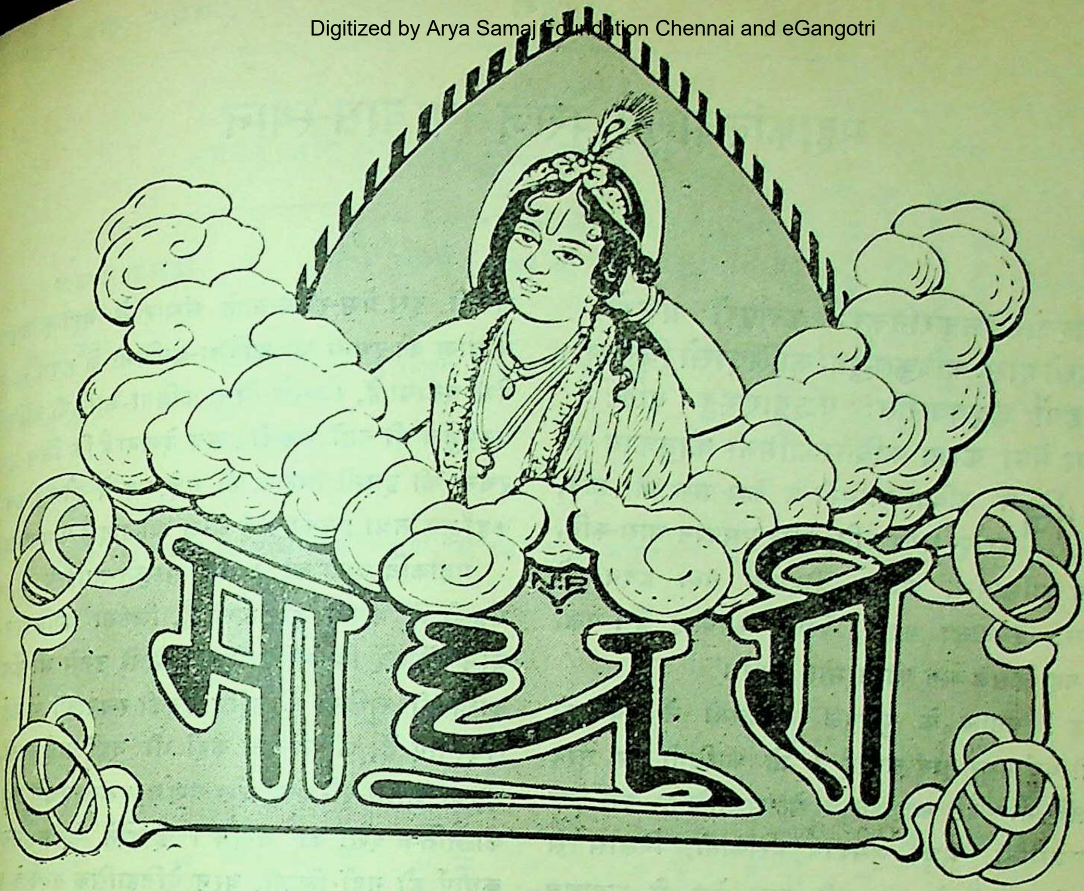

माधुरी

वर्ष ८
खंड २ } आषाढ़, ३०६ तुलसी-संवत् (१९८७ वि०) { संख्या ६
पूर्ण संख्या ९६

रूप की थाती

थाती राखि रूप की हमारी हाय छाती माहिं
वाल कौ सँघाती घाती वनि विलगायो है ;
कहै 'रतनाकर' सो सूधा न्याव ही तौ ऊधौ
मधुपुरि माहिं जो अरूप सो लखायौ है ।
परम अनूप एक कूवरी विरूप छाँड़ि
रूपवती जुवती न कोऊ मोहिं पायौ है ;
तातैं तुम्हैं अव मनभावन सुरूप सोई
हिय तैं हमारे काढ़ि ल्यावन पठायो है ।

"रत्नाकर"

महाकवि बाण के वंशज तथा वास-स्थान

“यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥”

“जिस कविता-कामिनी के केश-पाश चोर-कवि, कर्णपूर मयूर कवि, मधुर मुसकान भास-कवि, विलास कालिदास, आनंद श्रीहर्षजी तथा हृदय को खलबला देनेवाला काम (प्रेम) श्रीबाण हैं ; भला कहो, वह किसके मन को न मोह लेगी ।”

वाह ! बंगाल के बुलबुल जयदेवजी ने क्या ही सुरीली एवं मधुर तान लगाई । जो कामिनी इस तरह लंबे-लंबे भौंरे-जैसे कच-कलाप से सुशोभित, कर्ण-फूल से जगमगाती, मधुर मुसकान मुसकाती, विलास से अँगड़ाती, आनंद से उमड़ाती तथा प्रेम से लबालब भरी उफनाती हो, भला वह किस मुए के दिल में मुहब्बत की रूह न फूँक देगी, किस सहृदय के हृदय को अपने जादू-टोने से वश में किए विना छोड़ेगी, किस भावुक प्रेम-पुजारी को उँगली पर नाच नचाए विना बाज़ आवेगी । जहाँ इतनी-इतनी वशीकरण-सामग्रियों का संग्रह है, वहाँ भला कौन बचकर रह सकता । पर हाँ, इन सामग्रियों का भी दर्जा है; सबका एक ही-सा प्रभाव नहीं । सिर पर लंबे-लंबे केश भले ही छिटक रहे हों, कर्ण-फूल भले हीं कानों में झूम रहे हों, ओठों पर मधुर मुसकान भले ही छिटक रही हो, अंग-अंग से शोभा भले ही टपकती हो, आनंद की लहर भले ही चेहरे पर लहराती हो ; पर यदि हृदय प्रेम-विहीन है, शुष्क है, नीरस है, तब सब गुड़ फीका, सारी सामग्रियाँ कौड़ी काम की नहीं । सारे सौंदर्य का मज़ा किरकिरा हो जाता; इस सहारे की मरुभूमि में कोई प्रेम-पौदा लहलहा नहीं सकता, उगता तक नहीं; और यदि उगता भी तो झुलस जाता । तब वह कामिनी “कामिनी” ही न रहती । वह तो एक पत्थर की मूर्ति के रूप में परिणत हो जाती, जो अजायब-घर में ही शोभा दे सकती, इस प्रेम-राज्य-वाले संसार में नहीं। अंग्रे ने बाण की रचना को कविता-कामिनी के हृदय का प्रेम बताया है, जिसके विना कविता-कामिनी कामि पर पहुँच ही नहीं सकती। अब देखना है कि जिस बा रचना की इतनी तारीफ़ की गई, वह थे कौन ? अब कहाँ हुए तथा इनकी कोई आल औलाद है अथवा नहीं

महाकवि बाण का स्थान संस्कृत-साहित्य की मंडली में उतना ही ऊँचा है, जितना कालिदास बरन् यों कहें कि ऐतिहासिक दृष्टि से उनसे भी ऊँचा काव्य की ख़ूबियों को छोड़ इनकी रचनाओं में कई सुंदरताएँ हैं, जो अन्यत्र कहीं भी नहीं पाई जातीं इनका आत्म-परिचय, वंश-वर्णन, राज-वर्णन तथा की नैतिक दशा का वर्णन। इन्होंने केवल मनो कथाएँ ही नहीं लिखीं, बरन् ऐतिहासिक तथ्य के पर श्रीहर्षदेव का जो चरित लिखा है, वह संस्कृत- का एक अपूर्व भंडार है, जिससे बारह सौ वर्ष की बातों की झलक पाठकों की आँखों के सामने नाचने है। इस पुस्तक ने यथार्थ में संस्कृत-साहित्य की ऐति निर्बलता को बहुत कुछ अंशों में दूर कर यह प्रमाणि दिया कि भारतीय विद्वानों में भी ऐतिहासिक कूटकर भरे थे ; केवल सुअवसर की कमी थी।

वंश तथा वासस्थान

बाण ने स्वयं हर्षचरित के आरंभ ही में लिखा है ‘ हमारे पूर्वज ‘ऋषि वत्स’ महर्षि च्यवन के पोते महाराज शर्यात के नाती, च्यवन के बेटे दधीच सारस्वत नाम के अपने चचेरे भाई के साथ शोण तट पर प्रीतिकूट नाम का निवास बना रहा वही वत्स वात्स्यायनों के मूल-पुरुष हैं। का वात्स्यायनों के वंश की बड़ी वृद्धि हुई। बहुत दिनों उसी वंश में कुबेर का जन्म हुआ, जिनके पोते के पोते बाण हुए। कुबेर के चार पुत्र थे—अच्युत, हर और पाशुपत। पाशुपत के लड़के अर्थपति हुए ग्यारह पुत्रों में से एक चित्रभानु के महाकवि बाण हुए

वंशावली

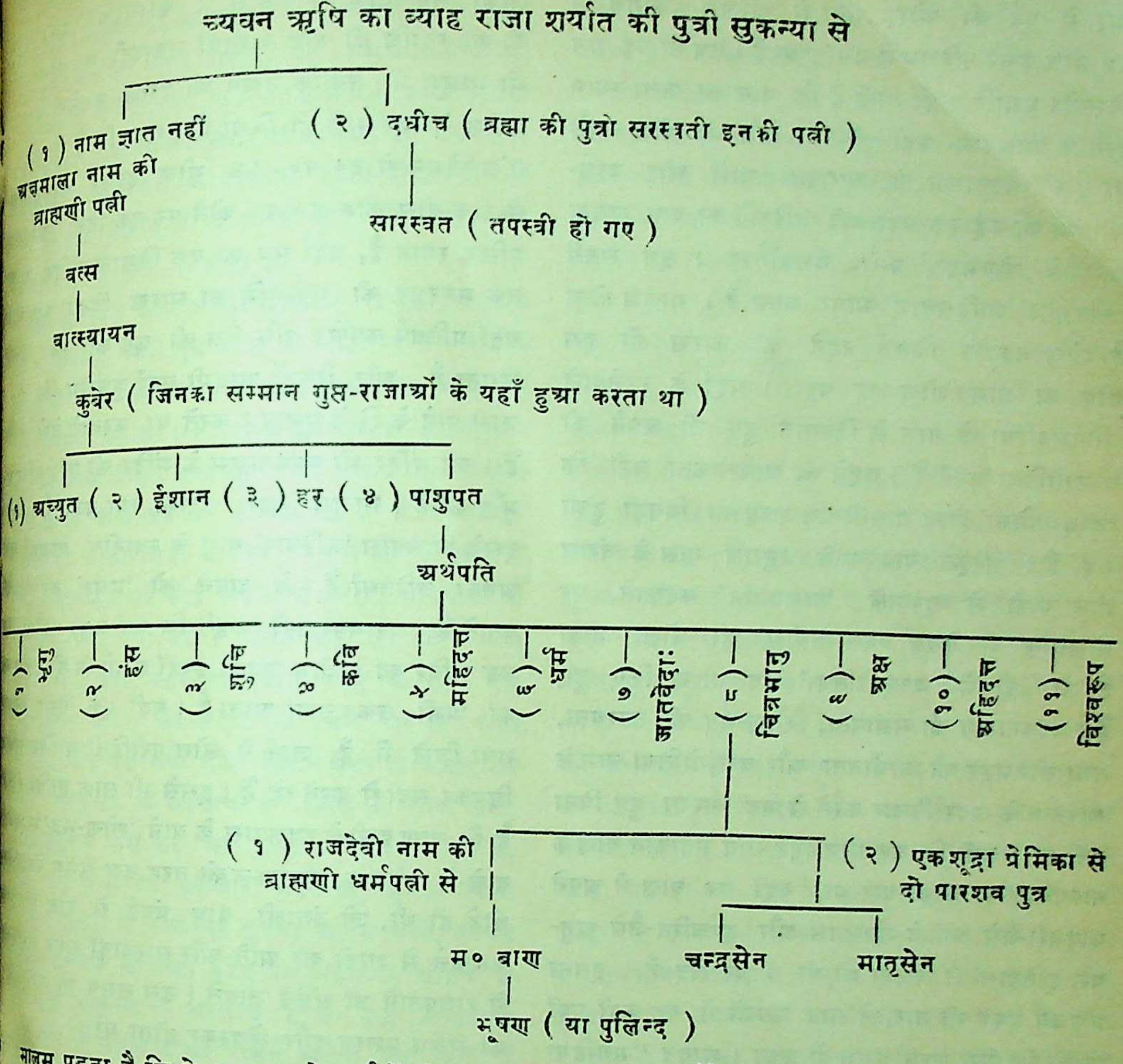
च्यवन ऋषि का ब्याह राजा शर्यात की पुत्री सुकन्या से
(१) नाम ज्ञात नहीं
अक्षमाला नाम की ब्राह्मणी पत्नी
(२) दधीच (ब्रह्मा की पुत्री सरस्वती इनकी पत्नी)
सारस्वत (तपस्वी हो गए)
वत्स
वात्स्यायन
कुबेर (जिनका सम्मान गुप्त-राजाओं के यहाँ हुआ करता था)
(१) अच्युत
(२) ईशान
(३) हर
(४) पाशुपत
अर्थपति
(१) भृगु
(२) हंस
(३) शुचि
(४) कवि
(५) महीदत्त
(६) धर्म
(७) जातवेदाः
(८) चित्रभानु
(९) त्र्यक्ष
(१०) अहिदत्त
(११) विश्वरूप
(१) राजदेवी नाम की ब्राह्मणी धर्मपत्नी से
(२) एक शूद्रा प्रेमिका से दो पारशव पुत्र
म० बाण
चन्द्रसेन
मातृसेन
भूषण (या पुलिन्द)

मालूम पड़ता है कि ये सब अपने पूर्वजों के वास-स्थान ही में रहते थे। इतनी वंशवृद्धि के साथ-ही-साथ वह गाँव भी बढ़कर ब्राह्मणों की एक भारी बस्ती हो गया था। बाण भी वहीं रहा करते थे।[1] अब विचारने की बात यह है कि यह बस्ती है कहाँ? यहाँ पर भी हमारा परिश्रम बाण के वर्णन से बहुत कुछ कम हो जाता, चूँकि उन्होंने स्वयं लिखा है कि च्यवन ऋषि का आश्रम शोण-नद के उस पार याने पूर्व तट पर दो कोस के फ़ासले पर है[1]। उसी प्रदेश में वत्स और सारस्वत दोनों चचेरे भाई प्रीतिकूट-नामक निवास बनाकर रहते थे।[2] शोण-नद के किनारे खोज करने से च्यवन ऋषि का आश्रम आजकल भी 'देवकुर'[3] (देवकुंड) के नाम से एक सुविस्तृत जंगल-झाड़ियों के बीच में गया

---

[1] राज्ञः समीपात् बाणः बन्धून् द्रष्टुं तं ब्राह्मणाधिवासमगात् (सं० ह० च०, ८ पृ०)

[1] इतश्च गव्यूतिमात्रमिव पारेशोणं च्यवनस्य च्यावनं नाम निवासः (सं० ह० च०, ३ पृ०)

[2] चकार च तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रीतिकूटनामानं निवासम् (सं० ह० च०, ४ पृ०)

[3] यहाँ ऊसर ज़मीन के बीच एक शिव-मंदिर पोखरे के किनारे पर है। मुँह इसका पश्चिम-ओर है।

ज़िले में, शोण-नहर के आसपास शोण की वर्तमान धारा से पूर्व की ओर, गया से पश्चिम रफीगंज से १४ मील उत्तर-पश्चिम में बसा हुआ है। तब तो यह बात निस्संदेह प्रमाणित हो जाती है कि बाण का जन्म-स्थान इसी के आसपास कहीं होगा। और भी खोज करने पर इस च्यवनाश्रम के आसपास चारों ओर वच्छ-गोतियों की कई एक बड़ी-बड़ी बस्तियों का पता लगता है, जैसे सोनभद्दर, परभै, बँधवा गैरह। इन सबमें 'सोनभद्दर' आदि-स्थान माना जाता है। मालूम होता है, शोण-भद्र के किनारे रहने के कारण ही इस गाँव का नाम शोण-भद्र पड़ा। यहाँ के रहनेवाले 'सोनभदरिया' के नाम से विख्यात हुए, जो अपने को बच्छगोतिया कहते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि 'बच्छगोतिया' शब्द वत्सगोत्रीय शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है। संस्कृत-व्याकरण के अनुसार वत्स के वंशज तीन पीढ़ी से दूरवाले 'वात्स्यायन' कहलाते, पर बोलचाल में केवल 'वत्सगोत्रीय' ही बोला जाता है, जो हिंदी में 'वच्छगोतिया' रूप धारण किए हुए हैं। च्यवनाश्रम की समीपता, शोण-भद्र की तटस्थता, तथा सोनभद्दर की प्राचीनता और वच्छगोतिया नाम के अस्तित्व के ऊपर विचार करने से यह धारणा हुए बिना नहीं रह सकती कि यह सोनभद्दर गाँव महाकवि बाण के बाल्यकाल का क्रीड़ास्थल था, यहीं पर बाण ने अपने कादंबरी-जैसे अनोखे उपन्यास और हर्षचरित-जैसे अनुपम इतिहास की रचना की थी। पर खेद है, इतना परिचय देकर भी बाण ने साफ़ लफ़्ज़ों में यह कहीं नहीं लिखा कि मेरा जन्म मगध में हुआ। शायद "मगहिया ब्राह्मण" कहलाने से घृणा करते थे; क्योंकि तब तक बौद्ध तथा जैनधर्म की बदौलत हिंदू-समाज में मगध की ख़ासी बदनामी हो चुकी थी, और पुराणों ने मगध में मरनेवालों को दूसरे जन्म में गधा होने का पूरा इंतज़ाम कर दिया था।

इस विषय में एक और बात विचारणीय है। मयूर-रचित सूर्य-शतक की टीका से ज्ञात होता है कि महाकवि बाण का विवाह मयूर की बहन से हुआ था, यद्यपि किंवदंती बाण की भार्या को मयूर की पुत्री क़रार करती है। पर जो हो, बाण की शादी मयूर के घर ज़रूर हुई थी। आगे चलकर टीका कहती है कि बहन के शाप से मयूर को कुष्ठ हो गया, जिससे उसको छुट मिला 'सूर्य-शतक' के पाठ से। काव्यरचना द्वारा की कुष्ठ-व्याधि की बात बारहवीं शताब्दी में मम्मट भी मालूम थी; क्योंकि उसने भी इसका उल्लेख का प्रकाश के आरंभ में ही किया है। गया ज़िले में गंज स्टेशन से द० प० १४ मील हटकर च्यवना से ठीक बीस कोस द० प० कोने पर एक 'देव' नाम प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ सूर्य का एक विशाल मंदिर तक मयूरभट्ट की तपोभूमि का स्मरण दिला रहा है यहाँ प्रतिवर्ष कार्त्तिक और चैत्र की छठ को बड़ा लगता है, और सैकड़ों आदमी यहाँ कुष्ठरोग से कारा पाने के लिये पूजापाठ करते या करवाते देखे हैं। यह मंदिर भी च्यवनाश्रम के मंदिर की तरह प मुँह का है। मालूम नहीं, इसकी क्या वजह है। इसके आसपास 'मरियार' नाम के स्थानीय ब्राह्मणों अनेकों बस्तियाँ हैं। वे अपने को 'मयूर' का बताते हैं, पर यह नहीं कहते कि यह मयूर कौन उक्त मंदिर का प्राचीन पुजारी इन्हीं लोगों के दौहित्र का अभी तक चला आता है। यही एक ऐसा गया ज़िले में है, जहाँ ये लोग पुरोहिती वग़ैरह छिपकर सदा से करते रहे हैं। इससे भी साफ़ ज़ाहिर है कि बाण इसी के आसपास के याने 'शोण-भद्र' के वाले थे। कारण, आजकल की तरह उस समय रेल थोड़े ही थी, जो बंगाली बाबू बंबई से दौड़ कलकत्ते से शादी कर आते और मारवाड़ी सुदूर से राजपूताने जा संबंध जोड़ते। उस समय तो का संबंध प्रशस्त और श्रेयस्कर होता था।

वंश की ख्याति

मगध के वात्स्यायन लोग बड़े ही नामी * थे। लोगों का उल्लेख पतंजलि अपने भाष्य में पद-पद करते हैं। इन्हीं में से एक मल्लदेव † वात्स्यायन ने सूत्र-जैसा अनूठा ग्रंथ बाण से तीन-चार सौ वर्ष ही लिखा था। दूसरे वात्स्यायन ने बाण से पहले न्याय-सूत्र पर भाष्य रचा। तीसरे एक नामी वैद्य इसी पंडित वंश ने ईसा की सातवीं शताब्दी में

---

* म० म० हरप्रसाद शास्त्री-कृत "मगध का साहि

† कामसूत्र के टीकाकार जयमंगल।

जैसा अद्वितीय कविरत्न पैदा किया । शायद शंकराचार्य को परास्त करनेवाली मंडनमिश्र की धर्मपत्नी सरस्वती देवी इसी वंश की थी । कारण, वह मगध-ब्राह्मण की कन्या बताई गई हैं, एवं काम-शास्त्र में बड़ी पारंगत थी। हो सकता है कि बपौती साहित्य जानकर ही देवीजी ने कामसूत्र के अध्ययन में परिश्रम किया हो ; नहीं तो पुरुष तो इस विज्ञान में दिलचस्पी लेते ही नहीं, स्त्री बेचारी कहाँ ले लेती । अस्तु ।

बाण के पूर्वज कुबेर भारी पंडित थे, इनका सम्मान गुप्त राजाओं के यहाँ ख़ूब होता था * शायद उन सबोंसे जागीर भी मिली थी। तभी तो बाण के घर पर खाने-पीने योग्य काफ़ी धन था † । भरसक इसी जागीर की बदौलत बाण का नाम श्रीहर्ष तक पहुँचा था । बात यह मालूम पड़ती है कि बाण १४ वर्ष की अवस्था में ही बिना मा-बाप का हो आवारागर्दी में दिन बिताने लगे । एक तो चढ़ती जवानी, दूसरे कोई देखनेवाला नहीं, तीसरे घर में प्रचुर धन, फिर क्या था ? उचित-अनुचित कोई काम इनसे बचा न रहा; यहाँ तक नौबत आई कि आप एक भारी जमात लेकर सैर-सपाटे के लिये घर से बाहर निकले ‡ और कई वर्षों बाद, कितने देशों में भ्रमण कर अनेकों गुरुकुलों के आचार्यों के दर्शन का लाभ उठा, अच्छा अनुभव प्राप्त कर घर लौटे । अनंतर मगध के, श्रीहर्ष की अधीनता स्वीकार करने पर, इनके किसी शत्रु ने महाराज के कान भर इनका अनिष्ट करने, शायद जागीर छिनवाने की चेष्टा की । पर महाराज श्रीहर्ष के चचेरे भाई श्रीकृष्ण ने अन्याय होता देख निष्कारण इनका पक्ष ले महाराज को "कितै अनैती जग करी, नै वय चढ़ती बार" की बातें समझा दीं । फिर बाण को अपना दूत भेज, बुलाकर महाराज के साथ मिला दिया । उसी दिन से यह प्रसन्नता-पूर्वक श्रीहर्ष के दरबार में रहने लगे । शायद श्रीकृष्णजी को भौरवरि-नरेशों द्वारा बाण के प्रगाढ़ पांडित्य के बारे में पता लगा हो । कारण, बाण के गुरु "भर्वु" भौरवरि-नरेशों के आश्रित थे * जिनके निकट बाण का अपने गुरु के साथ आना-जाना स्वाभाविक था । फिर 'भौरवरियों और वर्धनों का वैवाहिक संबंध तो प्रसिद्ध ही † है । अस्तु ।

बच्छगोतियों का एक बड़ा ज़बर्दस्त दल आज भी ग्रैंड-कार्ड-लाइन के उत्तर और दक्षिण ओर सोन-ईस्ट-बैंक और गया के बीच में बसा हुआ है, जो अपने को 'सोन-भद्दर' के वासी रहने के कारण सोन-भद्दरिया और वात्स्यायन होने के कारण बच्छगोतिया कहते हैं । विशेषतः इनका अड्डा च्यवन ऋषि के आश्रम के आसपास चारों ओर है । मगध के कुलीन ब्राह्मणों में इनका दर्जा बड़ा ऊँचा हैं । अन्यान्य ज़मींदार ब्राह्मण भी इनको प्राचीन तथा कुलीन समझते थे । ये लोग अब बड़े-बड़े ज़मींदार हैं । सरस्वती की जगह लक्ष्मी ने ली । इनको देख कौन कह सकता कि ये लोग तपस्वी च्यवन और दधीच के वंशज हैं, इनके तो बाबूपन की नक़ल मगध के दूसरे-दूसरे बाबू लोग करते हैं । यह बाबूपन इनका कुछ नया नहीं, वरन् बाण ही के समय में इन लोगों में विलासिता घुस चुकी थी । बाण के पिता धनी थे ही, बस क्या था । अपनी धर्म-पत्नी के देहांत होने पर इन्होंने एक शूद्रा स्त्री को अपनी प्रेमिका बना घर में रख लिया, जिससे इन्हें दो 'पारशव' पुत्र 'चंद्रसेन और 'मातृसेन' हुए, जिनका उल्लेख बाण ने हर्ष-चरित में दो बार किया ‡ है । फिर बाण ख़ुद ही पक्के बाबू थे, कृष्ण के बुलाने पर भी यह श्रीहर्ष के दरबार में जाकर नौकरी करना पसंद न करते थे । इतने बड़े विलासी बाबू से नौकरी कैसे होती । यह हज़रत चढ़ती जवानी की मस्ती का मज़ा लूटने से बाज़ न आए थे । इनकी आवारागर्दी की शिकायत महाराज हर्षदेव के कानों तक पहुँची थी । पीछे जवानी ढलने पर जब आँख खुली और अपने वंशगौरव को ख़तरे में पड़ा

---

* अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः. कुबेरनामांश इव स्वयंभुवः । कादंबरी ! ५. १० ।

† देशान्तरावलोकनगृहान्निरगात् । ह० च० ४२ ।

‡ ,, ,, ,,

* नमामि भर्वोश्चरणाम्बुजद्वयं सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्चनम्॥ कादंबरी प्रस्तावना ।

† हर्षवर्धन की बहन भौरवारि ग्रहवर्मा से ब्याही गई थी । ह० च० ।

‡ पारशवौ मे भ्रातरौ । ह० च० ४२ पृ० । यो ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुपपादयेत्सुतम् । स पारयन्नेव शवस्तस्मात् पारशवः स्मृतः । मनु सं० ९,१७८ । ब्राह्मण यदि शूद्रा को रखेलिन रख ले तब उसके पुत्र को पारशव कहते हैं ।

देखा, तब कहीं इनकी मस्ती का नशा टूटा । फिर विवाह कर गृहस्थजीवन व्यतीत करने लगे । श्रीहर्षदेव ने पहले ही भेंट में इन्हें बहुत फटकारा । बाण के सामने आते ही श्रीहर्ष ने कहा—"यह तो बड़ा भारी गुंडा है * ।" इस पर बाण झल्ला उठे और महाराज से बोले—"महाराज, मुझमें गुंडापन आप क्या देखते हैं ? हाँ, जवानी ने कुछ अवांछनीय काम मुझसे करवाए, पर अब तो मैं गृहस्थ बन विवाह कर पारिवारिक जीवन बिता अपने किए हुए का प्रायश्चित कर रहा हूँ ।" इनकी जो जमात सफ़र करने को निकली थी, वह तो आजकल की सरकस-कंपनी की जमात को भी मात कर देती थी । हर्षचरित † से पता लगता है कि उस जमात में ऐशोआराम की सामग्रियों का पूरा इंतज़ाम था। इसमें बाण के दो पारशव भाई, एक भाषा कवि ईशान, ‡ एक प्राकृतकवि, चित्रकार, गायक, नट, ओझागुनी, नचनिया, बही-खाता सँभालनेवाला मुंशी गोविंदजी, एक भिक्षुणी और तीन अन्यान्य औरतें पैर मलने और टहल टिकोला करनेवाली थीं । देखा आपने बाण का बबुआई ठाट ? भला इसको राजा-महाराजा का कैंप कहें कि विद्वान् का दल ? आज बारह सौ वर्ष बाद भी इनके वंशवालों में विलासप्रियता ज्यों-की-त्यों बनी हुई है । इन्हें ब्राह्मणत्व अतः विद्वत्ता का उतना गौरव नहीं जितना कि बाबूपन का ।

अस्तु । अब इनकी रचना और विद्वत्ता के विषय में भी दो-चार बातें कह देना मैं उचित समझता हूँ । इनकी लिखी तीन पुस्तकें संस्कृत-साहित्य में अमूल्य रत्न हैं—कादंबरी, हर्षचरित और पार्वती-परिणय । कादंबरी के विषय में इतना ही कहना काफ़ी होगा कि इसी के नाम के अनुकरण में मराठी भाषा में रोचक कथा-मात्र को कादंबरी कहते हैं, यद्यपि पीछे चलकर बंगालियों ने ऐसी कथाओं का नाम उपन्यास रक्खा है । श्रीहर्षचरित तो संस्कृत का अकेला ही इतिहास है । यद्यपि इसकी नक़ल कर पीछे अनेक ऐतिहासिक रचनाएँ हुईं, तो भी कोई भी हर्षचरित तक न पहुँच सकी । पार्वती-परिणय का भी स्थान नाटकों में अच्छा है । इनके सिवा चंडी-शतक और मुकुट-ताडितक भी इन्हीं की बताई जाती है * । कादंबरी को बाण पूरा नहीं कर पा शायद इनकी मृत्यु हो गई । तब इनके सुयोग्य पु भूषण बाण ने इसे पूरा कर दिया । पर तिलकमंजरी के धनपाल, बाण के पुत्र का नाम 'पुलिंद' बतलाते हैं, और बुह्लर का दिया नाम 'भूषण' । शैली इनकी निराली है । वेभर साहब ने इनकी रचनाओं को गहन वन बताया है जहाँ अज्ञात शब्दरूपी बनैले जानवर पाठकों पर बैठने की ताक में बराबर लगे रहते हैं † । यथार्थ में इन्होंने उपनिषद् और भाष्य के गद्य की सरल शैली को छोड़ पांचाली रीति का अवलंबन किया, जिसमें श और अर्थ दोनों को समान प्रधानता दी जाती है। संस्कृत भाषा पर तो इनका एकछत्र साम्राज्य था, जैसा च इसका प्रयोग करते । कल्पना देवी हाथ जोड़े इन सामने खड़ी रहती थी । छोटी-सी-छोटी बात के व में भी इनकी काल्पनिक ऊर्बरा-शक्ति कभी क्षी नहीं दिखाई पड़ती, इनकी क़लम सरपट भागी जा कहीं लड़खड़ाती तक नहीं, पाठक भले ही पढ़ते-प ऊब जायँ । समास तो इनके इतने बड़े-बड़े और दम दार हैं और सो भी थोक-के-थोक एक ही जगह र हुए कि बड़े-बड़े धुरंधर विद्वानों का भी नाकों दम देते हैं । महा० पं० हरप्रसाद शास्त्री के गुरु ने काद के एक समास को ज़मीन पर लिखकर नापा तो व ३६ फ़ीट ही हुआ !! केवल समास ही की भ रहती, तो कोई बात नहीं, श्लेष की भी ख़ासी भ है । बस 'एक तो करेली तीती, दूसरे नीम चढ़ी' । हाँ, इनका श्लेष सुबंधु के श्लेष की तरह ईख की गि नहीं, वरन् ईख ही है, चबाइए और रस चूसिए, इसके बल पर अलंकारों की बहार देखिए । वक्रोक्ति तो इनके जोड़ के सुबंधु और कविराज ही हैं, तीसरा को

---

* "महानयं भुजंगः" इत्यादि ।

† ह० च० ४२-४३ पृ० ।

‡ बाण के समय में भी 'भाषा' में अलग ही कविता होती थी ।

* असरुक-शतक की टीका में अर्जुन वर्मदेव ने बाण चंडीशतक का लेखक माना है । पी० वी० काणे ने ऐ है—"यदाह मुकुटताटके बाणः' । ऐसा ही नलचंपू के टी ने भी लिखा है ।

† Indian Streifeo I, 308-86.

नहीं। * अंत में मैं चंद्रदेवजी की सम्मति † बाण के विषय में दे देना चाहता हूँ। वह यों है—"कोई कवि श्लेष-प्रयोग में निपुण है, कोई शब्द-विन्यास में, कोई रस-विकास में, कोई अलंकार में, कोई सदर्थ-प्रदर्शन में, और कोई कथा-वर्णन में; पर बाण ही एक ऐसे कवि हैं, जो काव्यारण्य में विचरते हुए, कवि-कुंजरों के कुंभ को विदीर्ण करनेवाले सिंह हैं।"

हाँ, मैं भी आपकी आवाज़ में अपनी आवाज़ मिलाकर कहता हूँ कि पढ़नेवाले अपने दिमाग़ को पहले खूब मज़बूत बना लें, तब बाण की रचना के पास फटकें, नहीं तो उन्हें काँके * की हवा खानी पड़ेगी।

अंत में पाठकों को इनकी 'डींग' सुनकर भी आनंद ही मिलेगा। वीरों के मुँह से शूरता की डींग भी बड़ी ही शोभा देती है। हमारे कवि ने छाती ठोककर पार्वती-परिणय में कहा है—

"अस्ति कविः सार्वभौमो वत्सान्वयजलधिसम्भवो बाणः।
नृत्यति यद्रसनायां वेधोमुखलासिका वाणी ॥ †

अर्थात् वच्छगोतियों के बृहद्वंश ‡ रूपी समुद्र से बाण-नामक एक कविसम्राट् का जन्म हुआ, जिसकी जिह्वा पर सरस्वती यों नाचती है, जैसे ब्रह्मा बाबा के मुँह में वह सदा नाचती रहती है।

धन्य हैं आप कवे! हिंदू-संतानों का आपको शतशः प्रणाम।

परमेश्वरप्रसाद शर्मा

---

* सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा।

† श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरेऽ-
लंकार कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।
आसर्वत्र गभीरधीरकविता विन्ध्याटवी चातुरी
सञ्चारी कविकुम्भकुम्भभिदुरा बाणस्तु पञ्चाननः ॥
श्रीचन्द्रदेवस्य। पारखी द्वारा उद्धृत।

* राँची ज़िले में राँची शहर से अति निकट एक अस्पताल है जहाँ पागलों की चिकित्सा की जाती है।

† पार्वती-परिणय की प्रस्तावना।

‡ मुझे कोई वात्स्यायन न समझ ले, मैं तो 'सांकृतायन' फतुहाबादी मिश्र हूँ।

जाग जाग ओ' विराट् !

जाग जाग ओ' विराट्
जन्म-मरण-पाश काट।
वज्रनाद कर कठोर
काँप जाय ओर-छोर
ध्यान छोड़ त्याग घोर
हो रहा, निहार, भोर
जाग जाग ओ' विराट्
जन्म-मरण-पाश काट।
जाग जाग मनुष्यत्व
जाग जाग प्रेमतत्व
जाग जाग ओ' ममत्व
जाग जाग सत्यस्वत्व
जाग जाग ओ' विराट्
जन्म-मरण-पाश काट।
आसनहृत् ज्ञानहीन
नीच-चरण-भक्ति-लीन
परम मूढ़ परम दीन
तेजशून्य कांतिहीन
जाग जाग ओ' विराट्
जन्म-मरण-पाश काट।

जाग जाग अरे भ्रांत
होकर भी पदाक्रांत
होता है अब निशांत
तपोमग्न ओ' प्रशांत
जाग जाग ओ' विराट्
जन्म-मरण-पाश काट ।

छायामय-चकित-प्राण
त्यागो मिथ्याभिमान
त्यागो जप योग ज्ञान
निज का कर परित्राण
जाग जाग ओ' विराट्
जन्म-मरण-पाश काट ।

आदि-अंत हरण-तरण
जीवन का तत्व गहन
दुःख - क्लेश-घोर-दहन
भूल भूल भ्रांतकरण
जाग जाग ओ' विराट्
जन्म-मरण-पाश काट ।

यौवन का अंधकार
जीवन का मधुर भार
आशा का क्षणिक प्यार
होते हैं, देख, छार
जाग जाग ओ' विराट्
जन्म-मरण-पाश काट ।

तोड़ो अब अटल ध्यान
कर्मनिष्ठ - मूर्तिमान्
नाश-रहित - महाप्राण
चिंता-भय क्या महान् !
जाग जाग ओ' विराट्
जन्म-मरण पाश काट ।

मौनी अब मौन त्याग
त्याग घोरतर विराग
त्याग, त्याग सानुराग
धधका फिर क्षुधा-आग
जाग जाग ओ' विराट्
जन्म-मरण—पाश काट ।

गर्जन कर एक बार
गगन भेद हु-हुंकार
मानहीन - अनाचार
छिन्नभिन्न कर प्रचार
जाग जाग ओ' विराट्
जन्म-मरण-पाश काट ।

धधके अब प्रलय-ज्वाल
जागें मुरदे कराल
नाचें हर ले कपाल
किलके फिर महाकाल
जाग जाग ओ' विराट्
जन्म-मरण-पाश काट ।

श्रीमोहनलाल महतो "वियोगी"

रात

(१)

सुना था, योग ले लिया है। आराम और विलास के सभी सहायकों और साधनों का त्याग कर केवल उसी की स्मृति में दिन और रात बिता रही है। उसी के नाम की रट है। और यदि शीघ्र ही उसने वहाँ पहुँचकर, उसकी बाँह पकड़कर, हँसते-हँसते बाहर न निकाला, तो कौन जाने राधारानी वियोग और नैराश्य के अंधकार में विलीन हो जाय या किसी तीर्थस्थान में अज्ञातवास करने लगे।

प्राय: नित्य ही किसी-न-किसी नवीन ढंग से बेनी को यह सुनाई पड़ता, पत्रों में लिखा आता; लेकिन उसे प्रतीति न होती थी। उसके लिये यह कुछ नया विषय न था। वर्षों से इसी तरह सुनता चला आया है। राधारानी का चरित्र बेनी के लिये पृथ्वी का आधार हो रहा है। न-जाने उसे बेनी को जलाने, उसके जीवन की एक-एक घड़ी को बेचैनी और पागलपन की आग में भूनने में क्या आनंद मिलता है। पहले कहती है—आओ! फिर जब वह पास पहुँचता है, तो ख़ूब ऊँचे चढ़कर खड़ी हो जाती है और उस पर हँसती है।

उसके कुचले हुए, विष से शून्य हृदय में कुछ भी दृढ़ता नहीं रही है। कितनी ही बार प्रण कर चुका है—जो कुछ भी हो, अब उसकी सूरत न देखूँगा, चाहे प्राण ही क्यों न निकल जायँ। लेकिन ऐसा कमज़ोर हो गया है कि राधारानी को अपना शिकार अपने पास खींचने में ज़रा-सी दिक़्क़त भी नहीं पहुँचने देता। बरबस-सा खिंचकर चुपचाप चला जाता है, जैसे कोई दुखी प्राणी धीरे-धीरे चलता हुआ अंत में संध्या को अपने घर पहुँच जाता है, यद्यपि वहाँ का विचार ही उसके मनस्ताप का कारण है।

बेनी को एक-एक क़दम बढ़ाने में शंका होती थी। विश्वास जमा हुआ था कि राधारानी का कमरा आमोद-प्रमोद के बुलंद नारों से घोषित हो रहा होगा। उसके आगमन का शायद किसी को आभास भी न हो या जान-बूझकर उसके प्रति उदासीनता प्रकट की जाय; उसकी उपस्थिति राधारानी के प्रेमियों को काँटे की तरह खटकेगी। लेकिन तो भी उसका वहाँ जाना अमिट था; उसे रोकने की शक्ति किसमें थी? शायद राधारानी में भी नहीं।

भीतर घुसने के पूर्व दरवाज़े के सूराख़ से झाँककर देखा—संगीत की बैठक आज वहाँ नहीं है, लेकिन उस कमी की पूर्ति बड़े रोचक ढंग से हो रही है।

यह दिन राधारानी की प्रेमक्रीड़ा का था। इधर उसके नेत्रों से अनुराग और नशे का एक नद बह रहा था, उधर रवि बाबू की आँखें आसक्ति, विवशता और प्रशंसा के बोझ से झुकी पड़ती थीं।

बेनी का हृदय अत्यंत कोमल और शीघ्र ही द्रवीभूत हो जानेवाला था, लेकिन राधारानी की निरंतर निर्दय चोटों ने उसे अब कठोर बना लिया था। ऐसे दृश्यों को देखकर उसे अब पहले-जितना संताप न होता था, मानो लड़ते-लड़ते वह हारकर गिर पड़ा हो और उसमें चोटें सहने की क्षमता और भी बढ़ गई हो।

हाथों की कड़ी मुट्ठियाँ बाँधकर उन्हें हिलाता हुआ और मुँह से कुछ गुनगुनाता हुआ यह वहाँ से लौट पड़ा। किवाड़ों को तोड़ने की धमकी देकर उन्हें खुलवाना उसे पसंद न था।

(२)

अर्द्धरात्रि की गंभीर निस्तब्धता में गिरजे की घड़ी ने टन से एक बजाकर बेनी को जैसे उसकी तंद्रा से जगा दिया। अब उसे मालूम हुआ कि चलते-चलते वह नगर के एक अत्यंत दूरस्थ भाग में आ पहुँचा है, जहाँ से राधारानी मीलों की दूरी पर है। वह यहाँ कैसे आ गया? क्या तब से वह निरंतर चलता ही रहा है? नहीं, इतना वह कहाँ से चल सकता है। इतना तो शायद वह अपने जीवन में कभी गाड़ी पर बैठकर भी न चला होगा। तब क्या यह केवल एक

भ्रांति है ? घंटा गिरजे की घड़ी ने नहीं बजाया ? राधारानी के विशाल क्लाक की ध्वनि है ?

इसी समय उसे लंबे-लंबे काले वृक्षों के समूह देख पड़े। श्वेत चंद्रिका में उनकी छाया स्याही की तरह काली होकर उनके नीचे फैली हुई थी। बेनी का दुर्बल हृदय इसे देखकर अकारण ही दहल गया। उसे ऐसा भासित होने लगा, जैसे एकाएक वह मानवीय सत्ता से बाहर आ गया हो। यह स्थान उसके लिये नहीं है। उसे वहाँ से तुरंत चला जाना चाहिए। यथाशक्ति उसने अपने बिखरे हुए साहस और हृदय को संचित किया और वहाँ से जल्दी-जल्दी चलने लगा। पीछे देखने की उसकी हिम्मत न पड़ती थी।

नीलाकाश में आच्छादित तारागण, शरच्चंद्र में हँसती हुई नदी की लहरें, सड़क के ऊपर के फीके लैंप, गिरजे की नुकीली बुर्जियाँ—सभी अपनी भाषा में बेनी की, इतनी रात गए वहाँ आकर उनकी गोष्ठी में अनाहूत प्रवेश करने के लिये, भर्त्सना कर रहे थे। और, बेनी जितनी ही आतुरता से पैर उठाकर चलता था, थकान और निराशा उतनी ही तीव्रता से उसके पाँव पकड़ती थी। बहुत देर तक लगातार चलने के बाद उसने मार्ग का एक छोटा-सा भाग तय कर लिया, परंतु यह असंभव था कि इसी तरह चलता हुआ वह राधारानी के पास पहुँच जाय। बार-बार वह अपनी विवशता और मूर्खता पर क्षुब्ध होकर व्याकुल होता था। उसे कोई ऐसी शक्ति नहीं देख पड़ती थी, जो एक क्षण में उसे राधारानी के सम्मुख उपस्थित कर दे। रवि बाबू और राधारानी के सम्मिलित दृश्य को शायद वह उस समय तक बिलकुल भूल चुका था, या याद रहने पर भी उस दुखद विषय से अपने को निरुत्साहित करना न चाहता था।

इसी समय उसे एक अत्यंत जर्जर, दरिद्र गाड़ी मिली, जिसे एक घोड़े का कंकाल खींच रहा था और जो दिन की रोशनी में अपना वेश दिखाने में शायद शर्माती। अभागे ने उसे बुलाने के पूर्व यह भी न सोचा कि उसे उसके लिये क्या देना होगा और उतना उसके पास है भी या नहीं।

गाड़ी अपनी लंबी और कठिन यात्रा समाप्त करके अंत में जब राधारानी के मकान के नीचे आई, उस समय तीन बज चुके थे। सर्वत्र सन्नाटा छाया हुआ था। बेनी को भी उसमें अपनी छिन्न आवाज़ प्रतिध्वनित करने में एक बार भय मालूम हुआ, किंतु दूसरे ही क्षण राधारानी की स्मृति की एक लहर उसके हृदय-पटल पर फिर गई और उससे वह इतने आवेश में आ गया कि आवश्यकता से भी अधिक ज़ोर-शोर से चिल्लाकर नौकर से किवाड़ खोलने का आग्रह करने लगा।

राधारानी उस समय गहरी निद्रा में मग्न थी। उसे कुछ भी मालूम न था।

राधारानी के दास-दासियों के लिये उनकी सुंदरी मालकिन और बेनी का संबंध एक रहस्य था। इस तरह कितनी ही बार वह असमय आया है, और राधारानी ने उस अकिंचन मनुष्य को दुत्कार देने के बदले बड़े प्यार से उसका स्वागत किया है। इस बार भी जब राधारानी की दासी ने निर्भीकतापूर्वक उसे जगाकर बेनी के आगमन की सूचना दी, तो शीघ्र ही उसने बड़ी उत्कंठा और उल्लास से अपने को सँभाला और उसे अपने पास बुला लिया।

देखकर एक बार हँसी। फिर बोली—"आइए भगवन्! भक्तों की परीक्षा असमय में ही ली जाती है।"

बेनी ने अपने टूटे हुए स्वर में कहा—"कैसी भक्ति और कैसी परीक्षा ? राधारानी, यह क्या कह रही हो? तुम हमेशा ऐसी बातें करती हो, जिन्हें मैं घंटों सोचने के बाद समझ पाता हूँ।"

राधारानी ने शायद इसे नहीं सुना। वह अपने विनोदपूर्ण नेत्रों से बेनी के जीर्ण वस्त्रों और खुले हुए जूतों का निरीक्षण कर रही थी।

बेनी ने फिर कहा—"पहले मुझे कुछ खाने को दे दो। बड़ा भूखा हूँ।"

राधारानी ने स्वयं उठकर कुछ मिठाई और एक गिलास पानी भूखे के लिये ला दिया।

भोजन समाप्त हो जाने पर बेनी ने राधारानी की ओर एक विनयसूचक दृष्टि डाली, लेकिन राधारानी ने जैसे इसे देखा ही नहीं। परंतु घूमकर आने पर जब आँखें मिल गईं, तो राधारानी को एक ज़ोर की हँसी आ गई। हँसते-हँसते उसने कहा—"कहती हूँ, यह आदत छोड़ दो।"

"बस ज़रा-सी …… बिलकुल थोड़ी …… अपने

हाथ ही से दे दो राधारानी। बड़ी दूर से आ रहा हूँ। थकान से दम निकला जा रहा है।"

"निकल जाने दो।"

"नहीं राधारानी! बस, अब देर न करो।"

"ख़त्म हो गई।"

इस बार बेनी ने कुछ नहीं कहा, जैसे वह बहस के श्रम से थक गया हो। जहाँ बैठा था, वहीं लेटकर आँखें मींचने लगा।

राधारानी ने यह देखकर ख़ुशी के मारे अपने नीचे के होठ को दाँतों में दबा लिया।

मदिरा के पात्र को जब हाथ से टटोलकर देख लिया, तब बेनी ने आँखे खोलीं और आह्लाद से विगलित होकर जल्दी से उसे राधारानी के हाथों से ले लिया।

मद्यपान ने धीरे-धीरे उसे कुछ सचेष्ट और मस्त बना दिया। उसकी निष्प्रभ आँखें लाल और चमकीली होकर राधारानी के गुलाबी मुखड़े के चारों ओर नाचने लगीं। उसकी असंबद्ध बातचीत में उच्छ्रंखलता आने लगी। अंत में वह दुर्बल मनुष्य अपनी कर्तव्य-बुद्धि और सहज ज्ञान को खो बैठा और अपने पीले कृश हाथ-पैरों से अनेक प्रकार की बुरी-बुरी चेष्टाएँ करने लगा। यह देखकर राधारानी ने पलंग पर ही पड़ा हुआ एक बिजली का बटन दबाया। नौकर आकर बेनी को बग़ल के कमरे में सुलाने के लिये ले गया। इतने समय में उसके लिये बिस्तर तैयार हो गया था।

(२)

बेनी ने देखा, जैसे वह अंधकार के अथाह सागर में किसी जलजीव की तरह तैर रहा हो। नीचे जिस पर रात्रि के अशुभ सन्नाटे में उसके पैर पड़ रहे थे, वह भी अंधकार का ही मुलायम फ़र्श है। कोई दिशा ज्ञात नहीं है। टूटे हुए जहाज़ के तख़्तों की तरह उसका शरीर बहा जा रहा है।

इसी तरह कुछ देर तक चलने पर उसके विस्तृत हाथ किसी दीर्घ कड़ी वस्तु से जाकर लगे। यह कमरे की दीवाल थी। अब वह उसी के सहारे चलने लगा। बीच में कमरे की अनेक वस्तुएँ गिर-गिरकर उसके पैरों से टुकरातीं, जिससे कई बार वह गिर पड़ा; लेकिन शीघ्र ही फिर वह अपना आधार ढूँढ़कर चलने लगता। अंत में वह कमरे के द्वार पर आ गया। उसकी चटखनी को पाकर धीरे से उसे खोला और राधारानी के शयनकक्ष में प्रवेश किया।

वहाँ आकर एक क्षण के लिये रुकने कुछ सोचा, फिर पश्चात्ताप और आत्मग्लानि से विह्वल होकर फ़र्श पर लोटने लगा। उस समय उसे ऐसा मालूम पड़ने लगा, मानों उसके हृदय के हज़ारों टुकड़े होकर वायु में उड़ गए हों, उसका शरीर निरा धुएँ से भरा हो।

जब उसके अंतस्तल पर कोई तीव्र आघात होता और बड़ी कड़ी परीक्षा का समय आता, तो वह अपनी मुट्ठियों को ख़ूब ज़ोर सेकस लेता और उन्हें हिलाता हुआ बड़ी तेज़ी से चलने लगता था, जैसे उनसे वह संसार को चूर-चूर करने जा रहा हो। इस समय भी उसने ज़ोर से मुट्ठियाँ कस लीं, सँभलकर खड़ा हो गया और दौड़ने ही वाला था कि अंधकार से डरकर पीछे हट गया। अब वह अंधे की तरह हाथ फैलाकर धीरे-धीरे रेंगने लगा। सहसा उसका हाथ राधारानी के पलंग की मसहरी के खंभे से टकराया। बेनी उसे ज़ोर से पकड़कर एक निःस्वर हँसी हँसने लगा।

बाहर चाँदनी छिटकी हुई थी। बंद खिड़की की दरारों में से स्निग्ध प्रकाश की कुछ रश्मियाँ अंदर आ रही थीं। बेनी उन्हें देखकर पहले खिड़की की ओर गया और धीरे से उसके किवाड़ खोल दिए। इधर घूमने पर देखा कि अंधकार के काले परदे में राधारानी का मुखड़ा पूर्णचंद्र की तरह चमक रहा है।

बेनी इसे देखकर चकित रह गया। आह! आज उसने राधारानी के गूढ़ सौंदर्य का परिचय पाया। यह अनंत रूपराशि अभी तक उसकी आँखों से छिपी हुई थी। अच्छा ही हुआ, नहीं तो इससे प्रेम करने के लिये इतनी शक्ति वह कहाँ से लाता।

बड़ी देर तक इसी प्रकार मूर्तिवत् खड़ा हुआ दोनों हाथों से मुँह बंद करके वह एक मूक हास करता रहा; फिर कुछ निश्चयात्मक भाव से पास आया और पलंग के बराबर घुटने टेककर राधारानी के मुख के एक-एक अवयव को बड़े ग़ौर से देखने लगा।

किस कुसमय में राधारानी का प्रथम दर्शन हुआ था! उस समय क्या मालूम था कि प्रणय-जैसा मधुर रस भी जलता हुआ हलाहल हो जायगा और उसका पीना न पीना वश की बात न रहेगी। उफ़्-कैसी! भयानक

बात है कि उस विष से बचने के लिये मुझे उसके प्याले को, जो इतना ख़ूबसूरत है कि उसे होंठों से लगाए बिना नहीं रहा जाता, अपने हाथों ही से तोड़कर चूर-चूर करना होगा। इसके सिवा निस्तार का कोई दूसरा उपाय नहीं सूझता।

राधारानी के इस श्वेत वक्षःस्थल के भीतर...ओह... विष...कैसा भयानक विष होगा! यदि इसे कोई स्पर्श करे, तो शायद तत्क्षण निर्जीव होकर लोटने लगे।

यही आँखें हैं! कितनी भोली--कैसी निश्छल मालूम पड़ती हैं। लेकिन इनके अंदर रहनेवाला राक्षस कैसा भयानक है। कितने समय से वह मेरे हृदय का रक्तशोषण कर रहा है। कितनी बार इन आँखों की राह से घुसकर हृदय पर आघात किया है, उसे बाहर निकाल लाया है, उसे सुइयों से चलनी किया है, पददलित कर अपमानित किया है, परंतु वह?--वह अभागा तड़पकर भी अपनी वेदना की सूचना नहीं देना चाहता। कब तक इस खेल के पूरे होने की प्रतीक्षा की जाय? कब तक यह बड़वाग्नि छिप सकती है! नहीं अब...नहीं... ओह......!

इसी प्रकार की दुर्भावनाओं से प्रेरित होकर वह इतना विक्षुब्ध और उन्मत्त हो उठा कि राधारानी का प्राणांत ही उसे अपने हृदयदाह की शांति का एकमात्र साधन सूझ पड़ा, और साहस, जिसका उसके चरित्र में एकदम अभाव था, मानों चारों ओर से उसके रोम-रोम में संचारित होने लगा। झुककर राधारानी के मुख की तरफ़ उसने अपने पतले हाथों को बढ़ाया। धीरे-धीरे उसकी दुर्बल किंतु कड़ी उँगलियों ने बढ़कर लोहे के पंजे की तरह राधारानी की सुडौल गर्दन को कस लिया। उसकी सारी शक्ति सिमटकर उन सूखी उँगलियों में संगठित हो गई थी।

बेनी ने देखा, राधारानी का कोमल कलेवर कुछ हिला। उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा—बेनी......बेनी...कहाँ...।

इन शब्दों ने बेनी को बिलकुल निरस्त्र कर दिया। उसका रक्त ठंढा पड़ने लगा। हाथ एकाएक गले से अलग हो गए।

देखा—राधारानी की आँखें खुली हुई हैं, बंद नहीं हो रही हैं। बेनी जल्दी-जल्दी साँस लेते हुए आँखें फाड़कर उनके भीतर ताकने लगा। वह बड़ी-बड़ी सजीव आँखें इस समय संगमरमर की प्रतिमा की आँखों के समान निर्जीव हो रही थीं; ऐसी धुँधली, जैसे उन पर अभ्र चढ़ा हुआ हो। बेनी ने कुछ निर्भीक होकर उन पर उँगली लगाकर देखा--उफ़्! मृत्यु की भाँति ठंढी।

इसी समय खिड़की होकर वेग से घुसता हुआ अंधकार उसकी आँखों को ढकने लगा। चाँद एक विशाल भवन की ओट में छिप रहा था। मालूम होता था, जैसे सारा सीन जादू के खेल की तरह उसकी आँखों के सामने से विलुप्त हो रहा है, रात्रि उसे और राधारानी को अपने काले आँचल में लपेट रही है।

बेनी ने आँखें ऊपर उठाईं, तो देखा मानो उस अंधे संसार में चक्कर लगाती हुई काली मृत्यु की दो जलती हुई आँखें उसका पीछा कर रही हैं। देखते-देखते वे उसके अत्यंत समीप आ गईं और उनमें से अनेक रंगों की सम्मिश्रित भयावह किरणें निकलकर उसके हृदय-कपाट को बेधकर पार होने लगीं। प्राण सिसक रहे हैं, आँखों में होकर जीवन-ज्योति खिंची जा रही है, पर उधर से दृष्टि हटाने का उसे साहस नहीं होता। धीरे-धीरे प्रतारणा बढ़ने लगी और उसे ऐसा अनुभव होने लगा, जैसे वे घृणित किरणें उसके रोम-रोम में भिद गई हैं, और उसका सारा शरीर उनकी नारकीय ज्वाला में भस्म हो रहा है। एक हलकी-सी चीख़ उसके मुँह से निकली और राधारानी को बलपूर्वक अपनी बाहों में कसते हुए वह अचेत हो गया।

(४)

उसकी मूर्च्छा इतनी गहरी थी कि सुबह होने पर ग्यारह बजे से पहले उसे उससे छुटकारा नहीं मिला।

जब उसने आँखें खोलीं, तो देखा, वह पलंग पर पड़ा हुआ है। राधारानी प्रसन्नचित्त होकर दरवाज़े में से आती हुई सुनहली धूप में अपने केश-कलाप सुखा रही है।

यद्यपि उसकी आँखें खुली हुई थीं और दिन के उज्ज्वल प्रकाश में वह बिछौने पर लेटा हुआ था, तो भी रात की विभीषिकाओं की छाया अब भी उसे घेरे हुए थी, परिस्थिति पर विश्वास न होता था। उसने प्रयत्न करके देखा--वह बोल सकता था, लेकिन राधारानी के बोलने की प्रतीक्षा करना ही उसे उचित जान पड़ा।

केशवदेव शर्मा

अभागिनी आँखें

मीन-जलहीन औ कमलिनी मलीन अति,
पंख ते रहित भ्रमरी ह्व कहीं जायँगी ;
जाल-गत दीन खरी खोन हरिनी त्यों हाय,
खंजन खराब हाल जोरी ठहरायँगी।

भनत 'विसारद' चकोरी विय भोर ही की,
सहज सुरीति सों विचार बीच आयँगी ;
अखियाँ अभागिनी ये रावरे दरस विनु,
देखिए उपाधियाँ न कौन-कौन पायँगी।

वलदेवप्रसाद टंडन "विसारद"

एक स्वप्न की कुछ शेष स्मृतियाँ

"एक अंतर्हित स्वप्न की मूक दर्शिका उस परित्यक्त नगरी से अधिक सुंदर तथा अधिक शोचनीय वस्तु भारत में ढूँढ़े नहीं मिलती ।"

—लेनपूल

नवयौवन उमड़ रहा था। बाल्यकाल के उन विपत्तिपूर्ण दिनों को पार कर उन्होंने यौवन की देहली पर पदार्पण किया। दोनों का ही यौवन-काल आने लगा। यौवन ने अकबर के उस सुंदर गोरे-गोरे चेहरे पर काले-काले निशान अंकित कर संसार को अपने आगम की सूचना दी। बरसों की अशांति के बाद पुनः शांति छा रही थी। शांतिपूर्ण वातावरण को पाकर भारत में नवजीवन का संचार हुआ। शांतिसुधा की घूँट लेकर बूढ़े भारत ने अपना चोला बदला। उसने जीर्ण वृद्धकाय का त्याग कर नवीन स्वरूप प्राप्त किया। मुग़ल-साम्राज्य भी नवयौवन को पाकर इठलाने लगा।

अकबर का यौवन था ही। बाल्यकाल से ही उसनें राज्यश्री की उपासना आरंभ कर दी थी। बरसों की कठोर तपस्या तथा घोर तप के अनंतर वह अपनी प्रेमिका के चरणों पर अर्पण करने के लिये कुछ सामग्री एकत्रित कर चुका था; अनेकों भीषण संग्राम, हज़ारों पुरुषों का बलिदान करने के अनंतर ही वह कुछ साम्राज्य-निर्माण कर सका। किंतु तपस्या निष्फल न गई। जिस राज्यश्री को प्राप्त करने में वृद्ध अनुभवी हुमायूँ विफल हुआ था, वही राज्यश्री अनुभवहीन युवा अकबर के पैरों में लोटने लगी।

अनंतयौवना राज्यश्री अपने नए प्रेमी अकबर पर प्रसन्न हुई। अपने उपयुक्त प्रेमी को पाकर उसके हृदय में नई उमंगें उठने लगीं। उसके चिर युवा-हृदय में पुनः जागृति हुई। नई भावनाओं का उसके हृदय-रंग-मंच पर नृत्य होने लगा। अपने पुराने प्रेमी के दिए हुए आभूषणों से उसने मुँह फेर लिया। उसे नया शृंगार करने की सूझी, नवीन रत्नों के लिये उसने नए प्रेमी की ओर दृष्टि डाली।

× × ×

यौवन-मदिरा को पीकर उन्मत्त हुआ अकबर राज्यश्री को पाकर अधिक उन्मत्त हो गया। आँखों में नशे की लाली छा गई। इतने दिनों के घोर परिश्रम तथा अपने कठिन जीवन के बाद अपनी प्रेमिका राज्यश्री को पाकर अकबर को ऐश्वर्यविलास की सूझी। वह ढूँढ़ने लगा एक ऐसे अज्ञात, निर्जन स्थान को, जहाँ वह अपनी उठती हुई उमंगों और बढ़ती हुई कामनाओं को स्वच्छंद कर सके।

अकबर का हृदय एक मानव-युवा का हृदय था। प्रारंभिक दिनों की तपस्या उसकी उमड़ती हुई उमंगों को नहीं दबा सकी। विलासवासना की अग्नि अब भी अकबर के हृदय में जल रही थी, केवल उसकी ऊपरी सतह पर संयम की श्वेत राख चढ़ गई थी। परंतु राज्यश्री की प्रेम-मदिरा ने उस अग्नि को पूर्ण प्रज्वलित कर दिया। धूधू करके वह जल उठी। अकबर इस ज्वाला को नहीं सह सका। उसका रहा-सहा संयम इस भीषण अग्नि में जलकर भस्म हो गया। पतंग की नाईं अकबर विलास की दीप-शिखा के आसपास मँडराने लगा।

महान् साम्राज्य की सत्ता तथा सफलता के अनुकूल वातावरण में अकबर पर ख़ूब गहरा नशा छाया। नशे में चूर राज्यश्री का प्यारा अकबर इस भौतिक संसार को छोड़कर स्वप्न-संसार में विचरने लगा। राज्यश्री के हाथों युवा अकबर ने छककर मदिरा पी थी। अब बेहोश होकर राज्यश्री की गोद में पड़ा, एक स्पप्न देखने लगा। वह स्वप्न क्या था, भारतीय कला के इतिहास की एक महान् घटना थी, मध्यकालीन भारतीय गगन का एक देदीप्यमान धूमकेतु था। यह स्वप्न धूमकेतु की नाईं आया और उसी की तरह एकाएक अदृष्ट हो गया। वह विलीन हो गया, किंतु संसार में अपनी अमिट स्मृति छोड़ गया। जगत् के भूतल-पृष्ठ पर आज भी उस स्वप्न की कुछ स्मृतियाँ यत्र-तत्र अंकित हैं। ये स्मृतियाँ इतनी सुंदर हैं, उनका रहासहा छिन्न-भिन्न जर्जरित स्वरूप इतना हृदयग्राही है कि उनको देखकर ही मनुष्य का मस्तिष्क घूमने लगता और कल्पनाशक्ति के सहारे उन परित्यक्त खँडहरों के पुरातन प्राचीन वैभवपूर्ण दिनों की सैर करने को दौड़ पड़ता है। जब इन भग्न अवशेषों का, इन स्मृतियों का स्वरूप ही इतना आकर्षक है, तो वह स्वप्न कितना मनोरंजक, सुंदर तथा मादक रहा होगा, उसका पता मानवीय कल्पना नहीं लगा सकती।

उस सुखद स्वप्न का वर्णन करना, उसको चित्रित करना एक कठिन समस्या है। उस स्वप्न की स्मृतियाँ इतनी थोड़ी हैं, उन दिनों की याद दिलानेवाली सामग्री का इतना अभाव है कि रही-सही सामग्री पर समस्त स्वप्न का विशाल भवन-निर्माण एक असंभव बात है। आधुनिक लेखक तो क्या, उस स्वप्न के दृ
भी उसका पूरा-पूरा जीता-जागता वृत्तांत नहीं लि
सके। जिस किसी ने वह स्वप्न देखा, उसे ऐश्वर्य और विला
के उस उन्मादक दृश्य ने उन्मत्त कर दिया। वह आश्च
चकित हो, विस्फारित नेत्रों से देखता रहा—एक ट
देखता रहा। और जब नशा उतरा, कुछ होश आया,
तो नशे की ख़ुमारी के कारण लेखक की लेखनी में व
चंचलता, मादकता तथा स्फूर्ति न थी, जिनके बिना व
में कोई आकर्षण नहीं रहता।

× × ×

स्वप्न था। मादकता की लहर थी। ज़ोरों
नशा चढ़ रहा था। ऐश्वर्यविलास के भयंकर प्रवाह
अकबर बहा जा रहा था। अकबर इकबारगी स्व
संसार में विचरण करने लगा। राज्यश्री की गोद
पड़ा था, उसे किस बात की कमी प्रतीत होती। फि
भी एक बात उसे अखरती थी। अपनी गोदी सू
देखकर उसे कुछ दुःख अवश्य होता था। अपने क
प्यारे-प्यारे बच्चों को मृत्यु द्वारा छीने जाते देखकर उ
का हृदय विकल हो उठता था। क्रूर काल तथा अदृ
भाग्य से चिढ़कर वह अपना सिर पीट लेता था, अप
विवशता पर उसे क्रोध आता और वही क्रोध पा
बनकर आँखों की राह बह जाता था।

तालाब लहलहा रहा था, उसके पूर्वी किनारे प
एक पहाड़ी पर बैठे, संसार से विरक्त एक साधु ईश्वरभ
में लीन अपने दिन बिता रहे थे। अकबर ने सोचा, च
कुछ पुण्य इकट्ठा करें; ईश्वर की ही दो विरोधि
शक्तियों को आपस में लड़ाकर उससे कुछ लाभ उठा
दुर्भाग्य तथा क्रूर काल का सामना करने के लिये उस
पुण्य को अपनी ओर मिलाने का इरादा किया। अ
विगत जीवन में एकत्रित पुण्य पर विश्वास न कर व
दूसरों द्वारा संचित पुण्य की भीख माँगने के लि
रवाना हुआ।

एक अद्भुत दृश्य था। जो अकबर सहस्रों साधु
को राजा बना सकता था, वही आज एक अर्धन
साधु के पास अपना अंचल फैलाए आया। राज्य
के लाड़ले अकबर ने तप के सम्मुख सिर झुकाया।
तपस्या के चरणों में राज्यश्री ने साष्टांग प्रणाम किया।
जिस तपस्या ने सांसारिक जीवन छुड़वाया, भौति

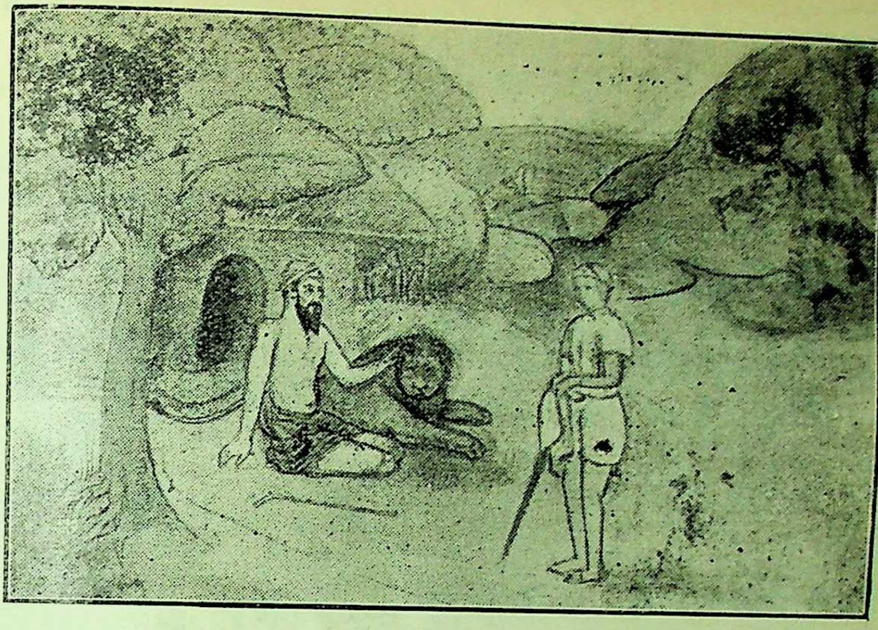

राज्यश्री का लाड़ला, एक अर्द्धनग्न साधु के पास भीख माँगने को आया।

सुखों तथा ऐश्वर्य-विलास की जिसने बलि दिलाई, उसी तपस्या ने अपना संचित पुण्य भी लुटा दिया। अकबर को मुँहमाँगा वरदान मिला। यथेष्ट शिक्षा पाकर अकबर लौट गया। शीघ्र ही सलीम का जन्म हुआ। काल की एक न चली, पुण्य के अभेद कवच को उसके पैने तीर भी न भेद सके।

× × ×

अकबर ने पुण्य की शक्ति देखी, किंतु वह उसकी महत्ता का अनुभव नहीं कर सका। राज्यश्री की गोद में सुख की नींद सोते हुए अकबर को तप अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सका। उन्मत्त अकबर की लाल-लाल आँखें शुद्ध श्वेत तप से निकलती हुई आभा को नहीं देख सकीं। साधु के संचित पुण्य को पाकर अकबर का मनोरथ सिद्ध तो हो गया, परंतु वह इस बात को नहीं समझ पाया कि यह पुण्य साधु की तपस्या का फल था। उसने उस स्थान को पवित्र समझा। अकबर ने सोचा कि 'क्यों न मैं इस पवित्र स्थान में निवास करके पुण्य तथा राज्यश्री दोनों को सहायता से अपनी समस्त वांछाओं को पूर्ण करूँ ?' जहाँ एक बीहड़ वन था, वहाँ अकबर ने एक सुंदर नगरी बसाने की सोची।

अंधकार में जैसे एकाएक बिजली चमकती और उतनी ही शीघ्रता के साथ विलीन हो जाती है, वैसे ही कुछ देर के लिये अकबर ने तप और संयम की चमक देखी। किंतु अनुकूल वातावरण न पाकर यह ज्योति शीघ्र ही विलीन हो गई और पुनः सर्वत्र तम का एकछत्र शासन छा गया। अकबर इस चमक को देखकर कुछ चौंका और उसकी ओर लपका था, किंतु कुछ ही आगे बढ़कर पुनः मूर्च्छित हो गया। गिरते हुए अकबर को राज्यश्री ने सँभाला। यौवन, धन और राजमद से उन्मत्त अकबर पुनः राज्यश्री की गोद में आँखें बंद करके लेट गया। उस बिजली की चमक का कुछ प्रभाव हुआ, तो केवल यही कि स्थान में परिवर्तन हुआ। यह चमक अकबर का नशा नहीं उतार सकी।

× × ×

अब अकबर को एक नई धुन सवार हुई। वह सोचने लगा कि उस पवित्र स्थान में एक नया शहर बसावे; एक ऐसी सुंदर नगरी का निर्माण करे जहाँ ऐश्वर्य-विलास की समस्त वस्तुएँ हों और जो अपनी सुंदरता तथा वैभव में अद्वितीय हो। मादकता की यह एक लहर थी, स्वप्न-संसार में विचरते हुए अकबर के मस्तिष्क की एक सनक थी। राज्यश्री के प्रेमी अकबर ने अपनी इच्छा-पूर्ति के लिये राज्यश्री का आह्वान किया। अलाउद्दीन के अद्भुत दीपक के भूत की तरह राज्यश्री ने भी अकबर की इच्छा को शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करने का प्रण किया।

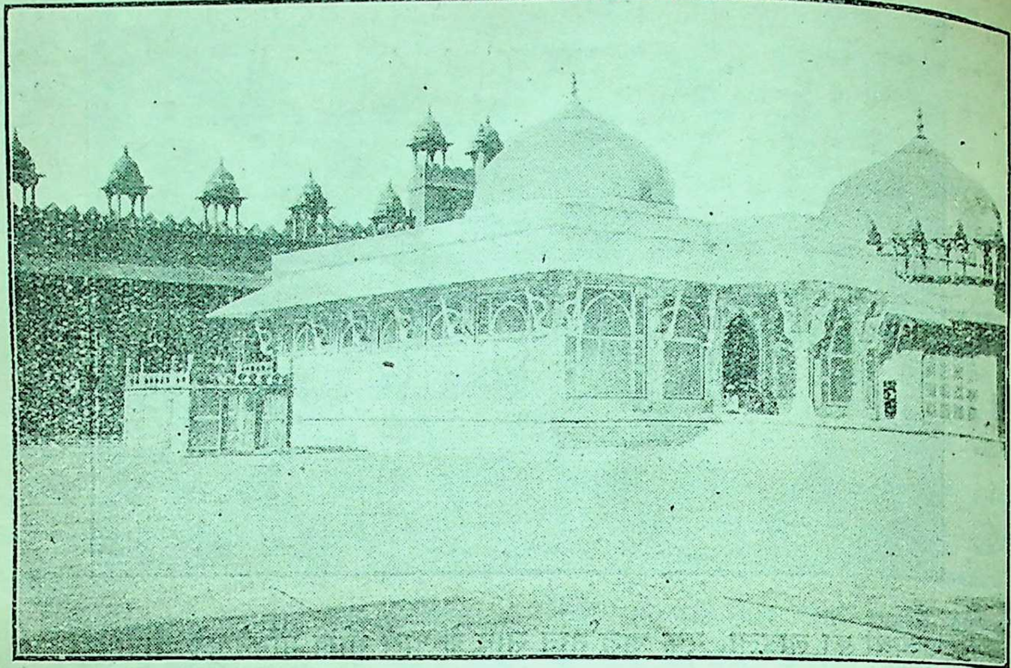

महलों के उद्यान का वह सुंदर सुगठित श्वेतपुष्प

जैसे जादूगर अपनी छड़ी घुमाता जाता है और धीरे-धीरे आम का पौदा बढ़ता जाता है, वैसे ही जहाँ एक बीहड़ वन था, वहाँ एक नगरी उठने लगी। नगरी की लाली उन्मत्त अकबर की आँखों की लाली थी। उन्मत्त अकबर के हाथों से यौवनमदिरा का प्याला छलक पड़ा; कुछ मदिरा ढलक गई, और इन्हीं कुछ बूँदों ने सारी नगरी को अपने रंग में रँग दिया। जहाँ विषम पहाड़ियाँ थीं, वहाँ सुंदर भवन दिखाई देने लगे।

सारा नगर लाल है। मुग़ल-साम्राज्य के यौवन की लाली आज भी इन छिन्न-भिन्न स्थानों में दिखाई देती है। अनंतयौवना राज्यश्री ने इस नगरी का अभिषेक किया था, यही कारण है कि आज भी यौवन की लाली ने इन पत्थरों का साथ नहीं छोड़ा है। यद्यपि मुग़ल-साम्राज्य के प्रारंभिक दिनों का यौवन समय के साथ नष्ट हो गया, तथापि उन दिनों की सुध आज भी उन रक्तवर्ण महलों को देखकर आ जाती है। ज्यों-ज्यों मुग़ल-साम्राज्य का यह यौवनमद उतरता गया, त्यों-त्यों लाली के स्थान पर सफ़ेदी का दौर-दौरा हुआ। मुग़लसाम्राज्य के बुढ़ापे के द्योतक श्वेत केश प्रथम बार शाहजहाँ के शासनकाल में दिखाई दिए। दिल्ली के क़िले के श्वेत-महल तथा आगरे का प्रसिद्ध ताज मुग़ल-साम्राज्य के ढलकते हुए यौवन में निकले हुए कुछ श्वेत केश हैं।

पानी की तरह धन बहा। धन से सींचे जाने पर ऊसर भूमि में भी अंकुर फूटा। विधवा-सी वेष-भूषावाली उजाड़ पहाड़ियों का सधवापन लौट आया। पाषाण-हृदय भी पिघल पड़ा। राज्यश्री ने अपनी जादू की लकड़ी घुमाई और उन ऊसर उजाड़ पहाड़ियों में धीरे-धीरे सुंदर लाल महलों का एक उद्यान दिखाई देने लगा। एक सुंदर सुगठित श्वेत पुष्प भी निकला। यों उस स्वच्छंद युवा सम्राट् ने उन्मत्त होकर अपनी कामनाओं को उद्दाम कर दिया। उसकी विलासवासना भीषण-तांडव करने लगी। अपने सुख-स्वप्न को सच्चा कर दिखाने के लिये सम्राट् ने कुछ भी उठा नहीं रक्खा, और इस तरह संसार को और विशेषतः भारत को कला का एक ऐसा अद्वितीय दृश्य दिखाया, जिसकी भग्नावशेष स्मृतियों को देखकर आज भी संसार अघाता नहीं है।

× × ×

वह स्वप्न था, और उसी स्वप्न में उस स्वप्नलोक की रचना हुई थी। स्वप्न के अंत होने के साथ ही उस लोक का भी पतन हुआ। परंतु आज भी उसकी कुछ

स्मृतियाँ विद्यमान हैं । आओ, कुछ समय के लिये विस्मृति की मदिरा का पान करें और इस भग्नावशेष में घूम-घूमकर उस स्वप्नलोक में विचरें । विस्मृतिमदिरा का पान कर कल्पनाशक्ति में इतनी शक्ति अवश्य आ जायगी कि वह हमें उस सुदूर लोक में पहुँचा दे ।

आओ ! कुछ सैर करें उस लोक की जहाँ राजमद की कुछ ढलकी हुई बूँदों ने सुंदरस्वरूप ग्रहण किया, जहाँ प्रथम बार मुग़ल-साम्राज्य का यौवन फूटा, और जहाँ मुग़ल-साम्राज्य तथा मुस्लिम सभ्यता ने भारतीय सभ्यता पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया । यही वह लोक

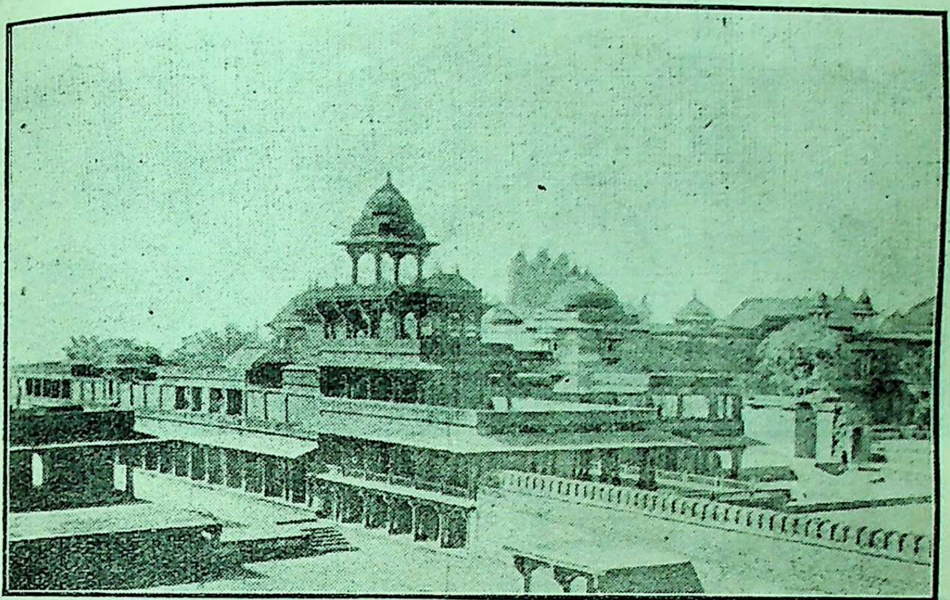

वह स्वप्नलोक

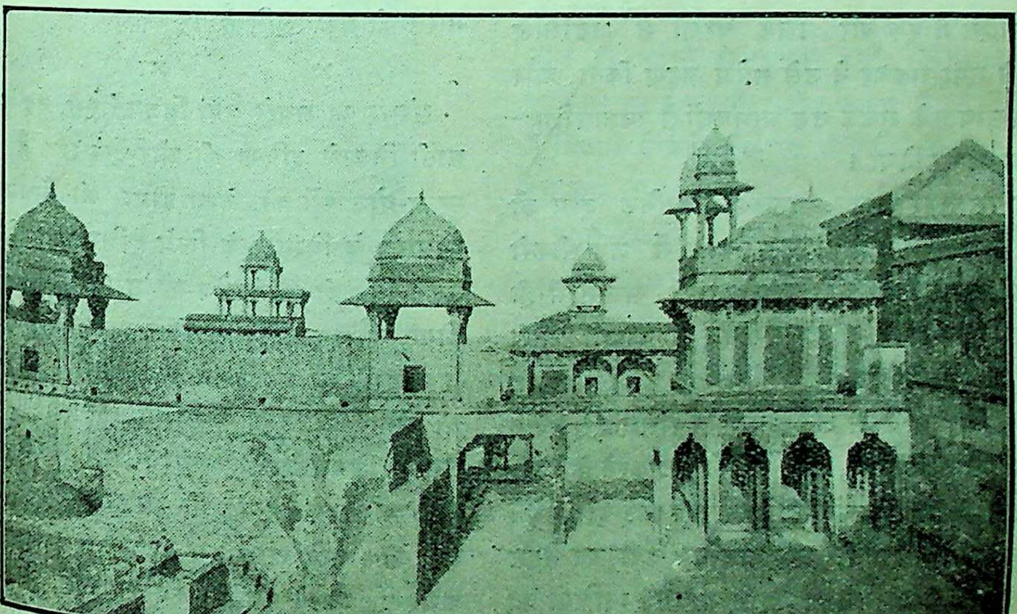

स्वप्नसंसार का वह सुनसान रंगमंच

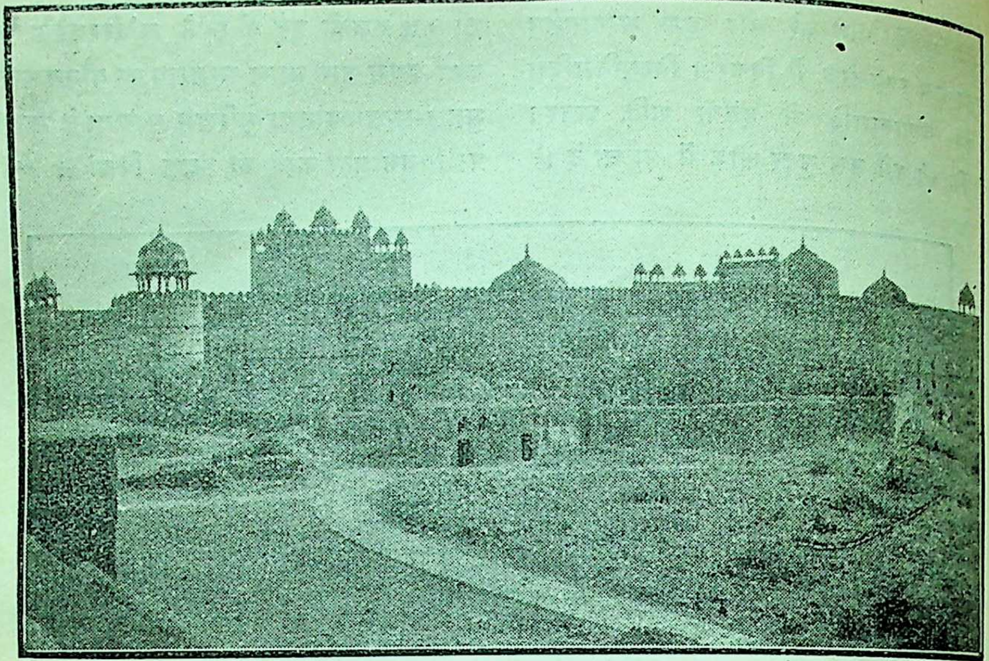

कुछ शेष स्मृतियाँ

है, जहाँ एक बढ़ते हुए साम्राज्य तथा नवयुवा सम्राट् की वासना को तृप्त करने के लिये राज्यश्री इठलाती थी। यहीं अकबर के हृदय की विशालता पर मुग्ध होकर समस्त भारत ने एक बार उसके चरणों में श्रद्धांजलि अर्पण की तथा अकबर ने उसे सप्रेम ग्रहण किया, और भारतीय सभ्यता के सूचक उन आभूषणों से नवजात शिशु-नगरी का श्रृंगार किया।

हृदय पर पत्थर रखकर, उसकी आधुनिक दशा को भूलकर चलो उस लोक में, उस काल में जब सीकरी भारत का प्रधान शहर था, जब उसको सजाने में ही भारतसम्राट् रत थे, तथा उस श्रृंगार में अपनी सारी योग्यता, अपना समस्त धन उन्होंने व्यय कर दिया। यह वह समय था, जब जन्म लेते ही समस्त संसार इस नवीन लोक पर मुग्ध हो गया, और उसको भेंट करने के लिये अपनी उत्तमोत्तम वस्तुओं को लेकर सब कोई दौड़ पड़े।

घूम लो सारे शहर में, और उन १९ वर्षों का बहुत कुछ इतिहास, उस समय के महान्-महान् व्यक्तियों का बहुत कुछ पता तुम्हें लग जायगा। अकबर पर राजमद चढ़ा था, किंतु फिर भी वह अपने साथियों, मित्रों को नहीं भूला था। वह ऐश्वर्य और विलासिता के सा
ग़ोता लगाने को उतरा, किंतु साथ ही अपने मित्रों
भी ले गया। सीकरी अकबर की ही नहीं, किंतु तत्का
भारत की एक स्मृति है।

× × ×

संसार का सबसे बड़ा विजयतोरण, वह बुलंद दरवा
छाती निकाले दक्षिण की ओर देख रहा है। इसने
मुग़ल-योद्धाओं को देखा होगा, जो सर्वप्रथम
साम्राज्य के विस्तार के लिये दक्षिण की ओर बढ़े
उसने विद्रोही औरंगज़ेब की उमड़ती हुई सेना को
होगा, और पास ही पराजित दारा के स्वरूप में
के आदर्शों को भी उसने देखा होगा। अंतिम मुग़लों
छः सेनाएँ भी इसी के सामने होकर निकली होंगी—
सेनाएँ जिनमें वेश्याएँ तथा स्त्रियाँ भी रणक्षेत्र पर
थीं, और रणक्षेत्र को भी विलासभूमि में परिवर्त
देती थीं। यदि आज इस दरवाज़े के जिह्वा हो जाय
अगर वह अपने पुराने संस्मरण कहने लगे, तो
कितना भारत का अज्ञात इतिहास ज्ञात हो जाय
न-जाने कितनी ग़लतियाँ दुरुस्त की जा सकें।

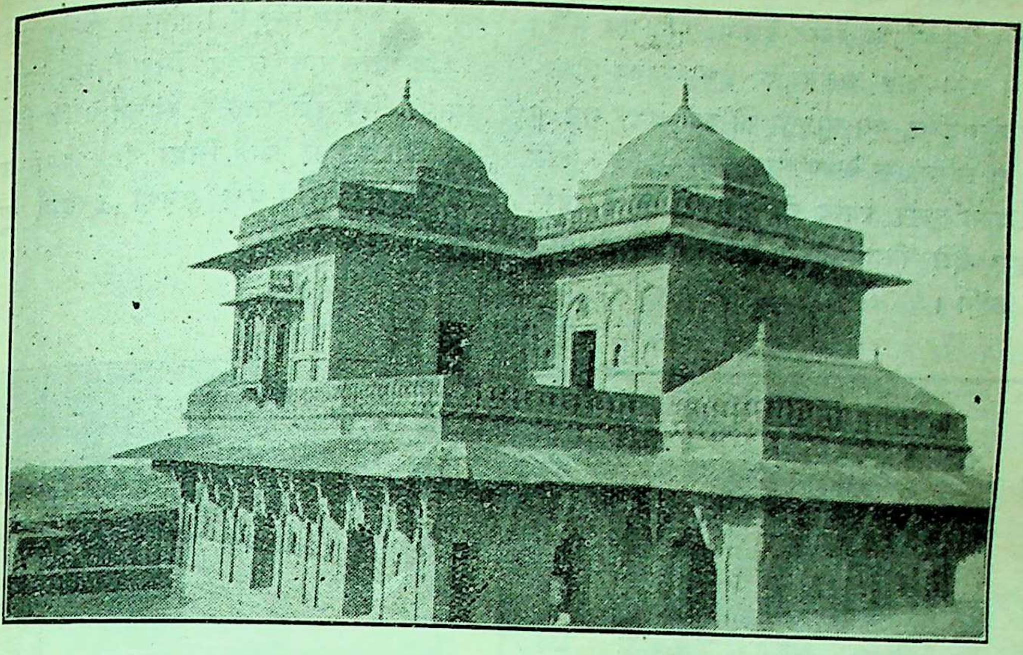

वीरबल का भवन

शाही दरवाज़ा

यह दरवाज़ा एक विजयतोरण है । खानदेश की विजय का एक स्मारक है । किंतु यदि देखा जाय, तो एक रह से यह अकबर द्वारा भारतीय सभ्यता पर प्राप्त की गई विजय का एक महान् स्मारक है । अकबर ने अपने हृदय की विशालता को उस दरवाज़े की विशालता में दर्शाया है ।

"यह संसार एक पुलिया है, इसके ऊपर से निकल जा । किंतु इस पर घर बनाने का विचार मन में न ला । जो यहाँ एक घंटा ठहरने का इरादा करता है, वह चिरकाल तक ठहरने का इच्छुक होगा । सांसारिक जीवन घड़ी-भर का है । उसे ईश्वर-स्मरण तथा भगवद्भक्ति में बिता । ईश्वरोपासना के अतिरिक्त सब कुछ व्यर्थ है, सब कुछ असार है ।"

सांसारिक जीवन की असारता-संबंधी इन पंक्तियों को एक विजयतोरण पर अंकित देखकर कुतूहल होता है । अकबर मानवजीवन की खोज लगाने तथा दो विभिन्न सभ्यताओं का सम्मिश्रण करने निकला था, किंतु वह वास्तविक वस्तु तक नहीं पहुँच सका । वह इनको ढूँढ़ने निकला था और मृगतृष्णा के जल की नाईं इन्हें भी खोजता रहा, किंतु इनका कहीं भी पता नहीं लगा । भोलेभाले बच्चे की तरह उसने हाथ फैलाकर कुछ उठा लिया । सोचता था, उसे वह रहस्य, वह इष्ट वस्तु मिल गई; किंतु जिसे उसने रत्न समझा था, वह काँच का टुकड़ा था । अपने जीवन-भर वह यही सोचता रहा कि उसे इच्छित रत्न मिल गया ।

अपने जीवन-भर अकबर भारतीय तथा मुस्लिम सभ्यता के सम्मिश्रण का स्वप्न देखता रहा । एक सुखद स्वप्न था । अतः जब अकबर के इस मानव-जीवन-स्वप्न का अंत हुआ, तब सभ्यता की वह विजय नष्ट हो गई और वह सम्मिश्रण केवल स्वप्नवार्ता रह गई । बुलंद दरवाज़ा, उसी सुखद स्वप्न की एक स्मृति है ; इस कारण हम इसे विजय-तोरण कहकर इसे "स्वप्न-स्मारक" कहेंगे ।

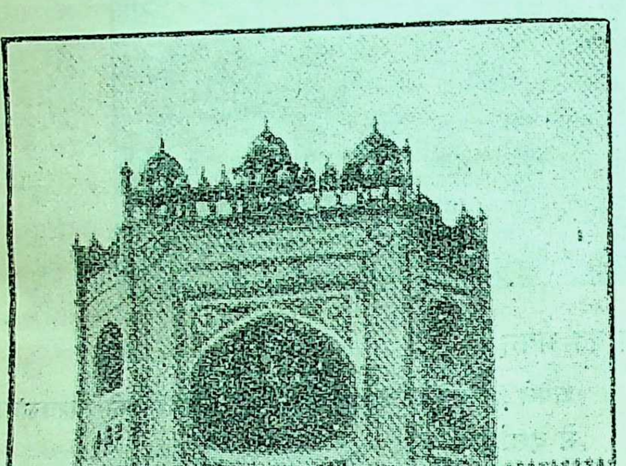

वह स्वप्नस्मारक

उस दरवाज़े में होकर, उस स्वप्न की याद करते हुए हम एक प्राकार में जा पहुँचते हैं । सामने ही दिखाई पड़ती है एक सुंदर श्वेत क़ब्र । यह उस साधु की क़ब्र है, जिसने अपने पुण्य को देकर, मुग़ल-घराने को नष्ट होने से बचाया था । अपनी सुंदरता के लिये, अपनी कला के यह एक अनुपम वस्तु है । प्रतिवर्ष समस्त उत्तरीय के हिंदू-मुसलमान आदि भिन्न-भिन्न धर्मानुयायी क़ब्र पर खिंचे चले आते हैं; सोचते हैं कि जिस जीते-जी अकबर को भिक्षा दी, क्या उसी की आत्मा स्वर्ग में बैठी उनकी इच्छाएँ पूर्ण न सकेगी ।

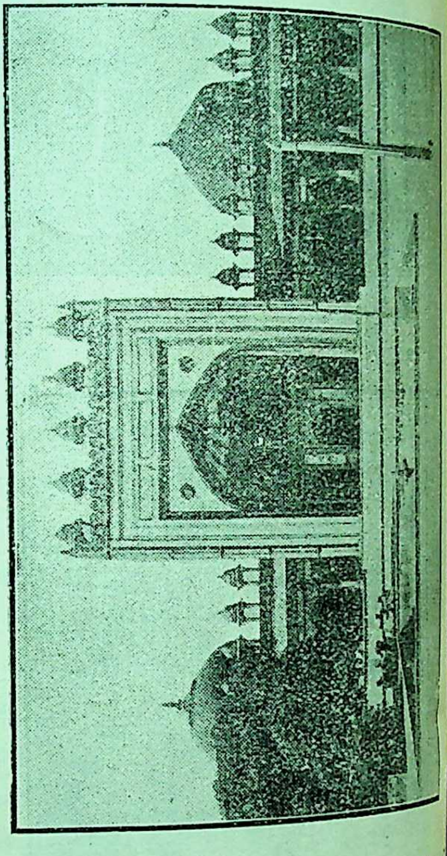

इस क़ब्र से चलें उस मसजिद में, जो यद्यपि मुस्लिम ढंग की है और यद्यपि अपनी सुंदरता लिये बहुत प्रसिद्ध नहीं है, फिर भी एक ऐसी के लिये वह प्रख्यात है जो किसी दूसरे स्थान नहीं हुई । इसी मसजिद ने एक भारतीय मुस्लिम को उपदेशक के स्थान पर प्रार्थना करते भारतीय मुस्लिम साम्राज्य के इतिहास में अनोखी, अद्वितीय घटना थी, और यह मसजिद में घटी थी ।

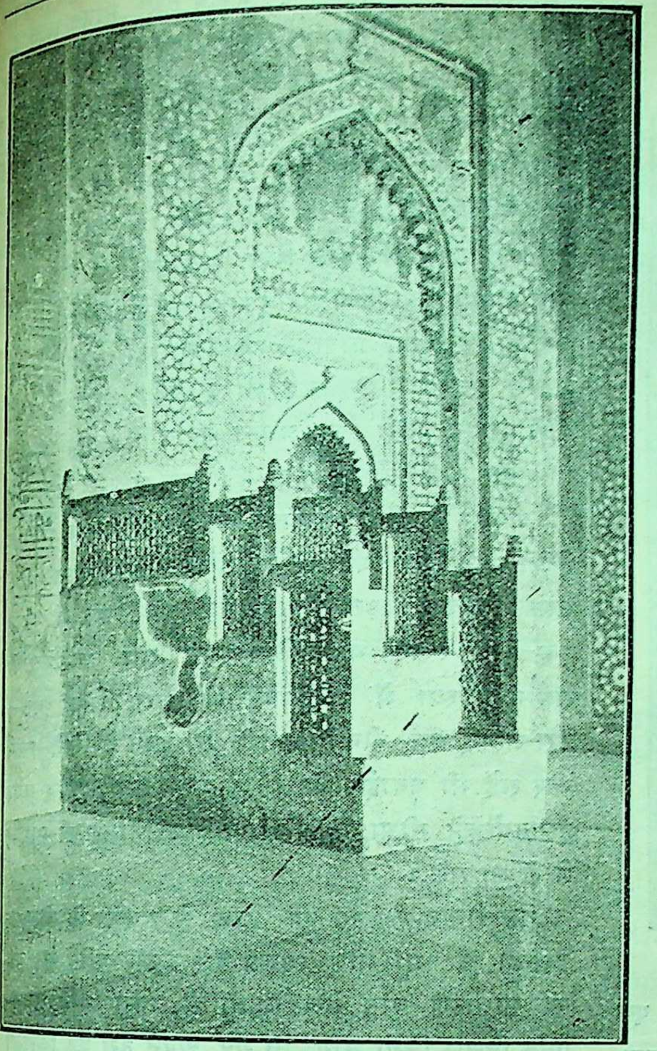

वह उच्चासन, जिस पर चढ़कर अकबर ने स्वयं धर्माधिकारी का पद ग्रहण किया था।

अकबर को सूझी थी कि इस्लामधर्म की असहिष्णुता को मिटा दे, उसकी कठोरता को भारतीय सहिष्णुता की सहायता से कम कर दे । उसे सूझी कि प्रारंभिक ख़लीफ़ाओं के समान वह स्वयं धर्माधिकारी के उच्चासन पर खड़ा होकर धर्मप्रचार करे। उसके साथी, अबुलफ़ज़ल और फ़ैज़ी ने उसके आदर्श को सराहा । एक दिन इस मसजिद में तैयारियाँ की गईं और एक दिन पूर्ण उत्साह के साथ आसन पर चढ़कर अकबर प्रार्थना करने लगा—

"उस जगत्-पिता ने मुझे साम्राज्य दिया। उसने मुझे बुद्धिमान्, वीर और शक्तिशाली बनाया । उसने मुझे दया और धर्म का मार्ग सुझाया और उसी की कृपा से मेरे हृदय में सत्य के प्रति प्रेम का सागर हिलोरें मारने लगा। कोई भी मानवीय जिह्वा उस परमपिता के स्वरूप, गुणों आदि का पूर्ण वर्णन नहीं कर सकती । अल्ला हो अकबर ! ईश्वर महान् है ।"

आह ! अपने सम्मुख, अपने चरणों में हज़ारों पुरुषों को एक साथ उस परमपिता की उपासना में रत, नतमस्तक होते देखकर अकबर स्तब्ध हो गया । अपने नए पद की महत्ता का अनुभव कर अकबर अवाक् रह गया, उसका गला भर आया, आँखें डबडबा गईं । उसने कपड़े में अपना मुँह छिपा लिया और आसन से उतर पड़ा। अकबर के अधूरे संदेश को शाही क़ाज़ी ने पूरा किया। अकबर ने स्वप्न देखा था, जिसमें वह महात्मा तथा नवीन धर्मप्रचारक की तरह खड़ा, उपदेश दे रहा है और समस्त प्रजा स्तब्ध खड़ी उसके संदेश को एकाग्र होकर सुन रही है। किंतु वास्तविक जीवन में उसका स्वप्न भंग हुआ ; उसे प्रथम बार प्रतीत हुआ कि स्वप्नलोक भौतिक संसार से बहुत दूर एक ऐसे स्थान में बसा है, जहाँ मनुष्य अपनी इच्छाओं से, अपनी आकांक्षाओं के साथ स्वच्छंदतापूर्वक खेल सकता है ।

भौतिक संसार को स्वप्नसंसार में परिणत करने का प्रयत्न करना मृग-मरीचिका से पानी पीने की आशा करने के समान है। जो इसे साधने क प्रयत्न करता है, वह इस संसार में उन्मत्त या बिगड़े हुए मस्तिष्कवाला पागल कहलाता है । इस भौतिक संसार में आकर वह स्वप्नलोक, सांसारिक जीवन की भीषण चोटें सहन कर चूर-चूर हो जाता है, और मनुष्य का वह छोटा हृदय उन भग्न अवशेषों पर रोता और इस दुःख को न सहकर टूक-टूक हो जाता है । संभव है, मनुष्य अपने लिये नए स्वप्नलोक का निर्माण कर सके; किंतु उसे नया हृदय कहाँ मिलेगा, जिसको प्राप्त करके वह अपने टूटे हृदय को भूल सके, अपने पुराने घावों को भर दे ; और उसके बाद उस स्वप्नलोक में सुखपूर्वक विचर सके। टूटे हुए हृदय को लेकर अपने भग्न स्वप्न-

संसार की स्मृति का बोझ उठाए नवीन स्वप्नलोक में घूमना एक असंभव बात है।

× × ×

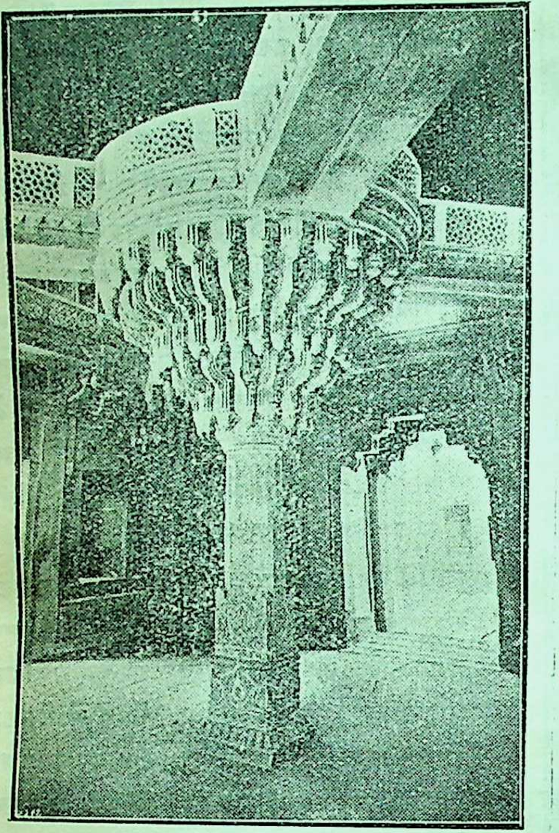

दीवान-ए-ख़ास का वह महान् स्तंभ

यह है अकबर का दीवान-ए-ख़ास। बाहर से एक साधारण दुमंज़िला मकान देख पड़ता है, किंतु भारतीय कला का यह एक अद्भुत नमूना है। एक ही स्तंभ पर सारी ऊपरी मंज़िल खड़ी है। इसका निर्माण करने में भारतीय कारीगरों ने अपनी बहुत कुछ बुद्धि व्यय की होगी। भारत में अपनी तरह का यह एक ही मकान है। इस मकान में अकबर के समय में क्या होता होगा, सो हम नहीं जानते। इस विषय पर इतिहासकारों का मतभेद अवश्य है कि इस मकान में धार्मिक विवाद होते थे या नहीं। किंतु यह कहा जाता है कि इसी स्थान पर अकबर बैठा भिन्न-भिन्न धर्मानुयायियों के कथन सुना करता था। अकबर इस महान् स्तंभ पर आसन लगाकर बैठ जाता था और नीचे चारों ओर बैठे भिन्न-भिन्न धर्मानुयायी बारी-बारी से अपने धर्म की व्याख्या करते थे।

अकबर का मस्तिष्क विश्व-बंधुत्व तथा मानव-भ्रातृत्व के विचारों का पूर्ण आगार था। भिन्न-भिन्न धर्मों का भीषण संघर्षण देखकर अकबर के इन विचारों पर कठोर आघात पहुँचता था। वह कुछ ऐसे मूल-तत्वों का संग्रह करके एक ऐसे मत का प्रारंभ करना चाहता था, जहाँ यह संघर्षण न हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह बैठा भिन्न-भिन्न मतानुयायियों के कथन सुना करता था। उस महान् स्तंभ पर बैठा हुआ अकबर चुपचाप इन वाद-विवादों को सुना करता था, और अंत में वह एक महान् सत्य को पा सका, जो संसार के चारों महान् धर्मों का प्रधान कथन है। उस महान् स्तंभ की तरह "ईश्वर एक है" इस महान् सत्य पर ही अकबर ने दीन-ए-इलाही का महान् भवन निर्मित किया। ज्यों-ज्यों यह स्तंभ ऊपर चढ़ता जाता था, उसका आकार बढ़ता जाता था, और अंत में उस पर एक ऐसा स्थान था, जिस पर सब धर्मानुयायी समान अवस्था में भाई-भाई की तरह मिल सकें। उस महान् धर्म दीन-ए-इलाही में आने के लिये उसने चार राहें भी बनाईं, जो हिंदू, मुसलमान, बौद्ध तथा ईसाइयों को सीधा विश्व-बंधुत्व के उस विशाल प्राकार में ले जा सके।

यह दीवान-ए-ख़ास एक तरह से अकबर के दीन-ए-इलाही का मूर्तिमान् स्वरूप है। ऊपरी दृष्टि से यह एक साधारण वस्तु देख पड़ती है, किंतु यदि ध्यान-पूर्वक विचार किया जाय, तो यह अपने ढंग का निराला ही था। इसी भवन में दीन-ए-इलाही का प्रारंभ हुआ था और इसी भवन के समान यद्यपि संसार विश्व-बंधुत्व की उस महान् भावना को आश्चर्यचकित होकर देखता है, तो भी उसे एक अव्यवहारिक आदर्श समझकर उसे प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करता। दीन-ए-इलाही के समान ही यह भवन परित्यक्त परंतु एक पूर्ण आदर्श है।

सीकरी के खँडहर ही विश्वबंधुत्व तथा मानव-भ्रातृत्व के नवजात शिशु-आदर्श की स्मशानभूमि है। मध्य-कालीन भारत ने उसे गला घोंटकर मार डाला और दफ़ना दिया। अपने प्यारे बच्चे की मृत्यु पर उसकी माता जगद्-शांति हाहाकार करती है और रात्रि के समय जब समस्त संसार शांत हो जाता है, और सुदूर आकाश में जब तारागण इस दुखी संसार को ताकते

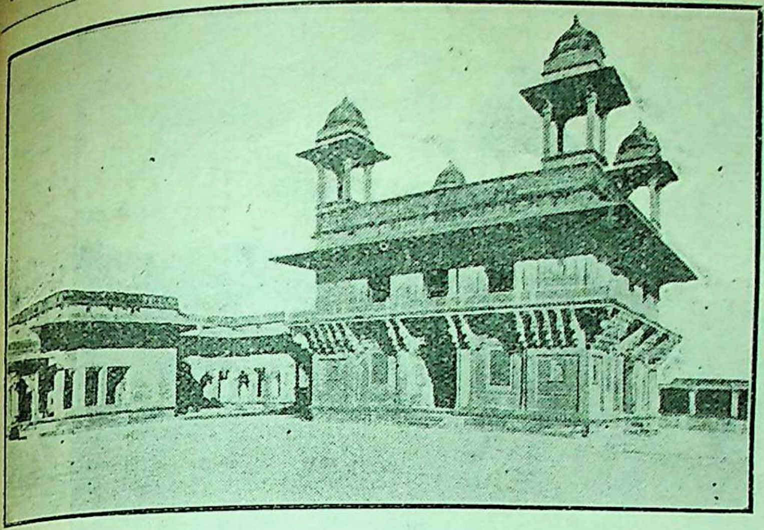

वह परित्यक्त संपूर्ण आदर्श

हैं तथा इसकी दशा पर मूक रुदन करते हैं, उस समय आज भी उन खँडहरों में उस दुखित माता का सिसकना सुनाई देता है।

× × ×

दीवान-ए-ख़ास के पास ही वह चौकोर चबूतरा है, जहाँ बादशाह अपनी साम्राज्ञियों या अपने प्रेमी मित्रों के साथ जीवित गुटों का चौसर खेला करते थे। प्रत्येक गुट के स्थान पर एक सुंदर दासी खड़ी रहती थी। पूर्णिमा की रात को जब आकाश साफ़ होगा और जब समस्त संसार पर शीतल चाँदनी छिटकी होगी, उस समय इस स्थान पर चौसर का खेल कितना मादक होगा! अकबर के उन्मत्त मस्तिष्क की यह एक अनोखी सूझ थी। जहाँ तक पढ़ा या सुना है, संसार में अकबर के सिवा किसी भी व्यक्ति ने जीवित गुटों का चौसर नहीं खेला।

यों तो प्रत्येक शासक अपनी प्रजा के जीवन, उसकी स्वतंत्रता तथा उसके समस्त कार्यों के साथ खिलवाड़ किया ही करता है। एक-आध ही शासक ऐसा होगा, जिसे यह मालूम हो कि उसकी आज्ञाओं का पालन करने में शासितों पर क्या-क्या बीतती होगी। जिन शासकों ने कभी आज्ञापालन का अभ्यास नहीं किया, जिन्होंने बाल्यकाल से ही मानव-जीवन के साथ खिलवाड़ किया, उनके लिये मानव-जीवन एक आमोद-प्रमोद की वस्तु है। वे दूसरों के जीवन के साथ खेलते हैं—उन बेचारों को यह पता नहीं कि उनका खिलवाड़ शासितों के लिये कितना भयंकर है।

परंतु अकबर का यह खिलवाड़ उतना ही अहिंसक था, जितनी एक स्वप्न की लड़ाई। संसार के लिये वह एक स्वप्न था। कुछ ही वर्षों के लिये, और वह भी गिनती बार, संसार ने यह दृश्य देखा। वह अतीत स्मृति हो गई। अकबर के स्वप्न का एक अनोखा दृश्य था। स्वप्नलोक का एक नया नाटक था। अकबर की रँगरेलियों के प्रोग्रेम की एक अद्वितीय मनोरंजक वस्तु थी।

× × ×

इस स्वप्नलोक में एक स्थान वह भी है, जहाँ अकबर अपने यौवन को तथा साम्राज्य के महान् भार को भूलकर कुछ समय के लिये आँख-मिचौनी खेलने लग जाता था। अकबर के भी वक्षःस्थल में एक छोटा-सा हृदय धुकधुकाता था। अपने महान् उच्च पद की महत्ता का भार निरंतर वहन करते-करते कई बार वह थकावट का अनुभव करता था। आठों पहर सम्राट् रहकर मानव-जीवन से दूर गौरव के ऊसर रेगिस्तान में पड़ा अकबर तड़पता था, उसका हृदय इन बनावटी बंधनों के अंदर पड़ा फड़फड़ाता था। इसी कारण जब उस छोटे हृदय में विद्रोहाग्नि धधक उठती थी, तब कुछ समय के लिये वह अपने पद की महत्ता तथा गौरव को एक ओर रखकर बालकों के उस सुखद भोलेभाले संसार में घुस पड़ता था, जहाँ मनुष्य-मात्र, चाहे वह राजा हो या रंक, एक समान हैं और सब एक साथ खेलते हैं। बालकों के साथ खेलकर अकबर वह जीवनरस पीता था, जिसके बिना साम्राज्य के गुरुतम भार से दबकर वह कभी का इस संसार से बिदा हो गया होता।

× × ×

स्वप्न-संसार का यह स्वप्नागार (ख़्वाबगाह) एक अनोखा स्थान है। स्वप्नलोक में रहते हुए भी स्वप्न देखने की अकबर की लत नहीं छूटी। स्वप्न-संसार में मस्त तो पड़ा था, फिर भी वह वास्तविक संसार को भूलना नहीं

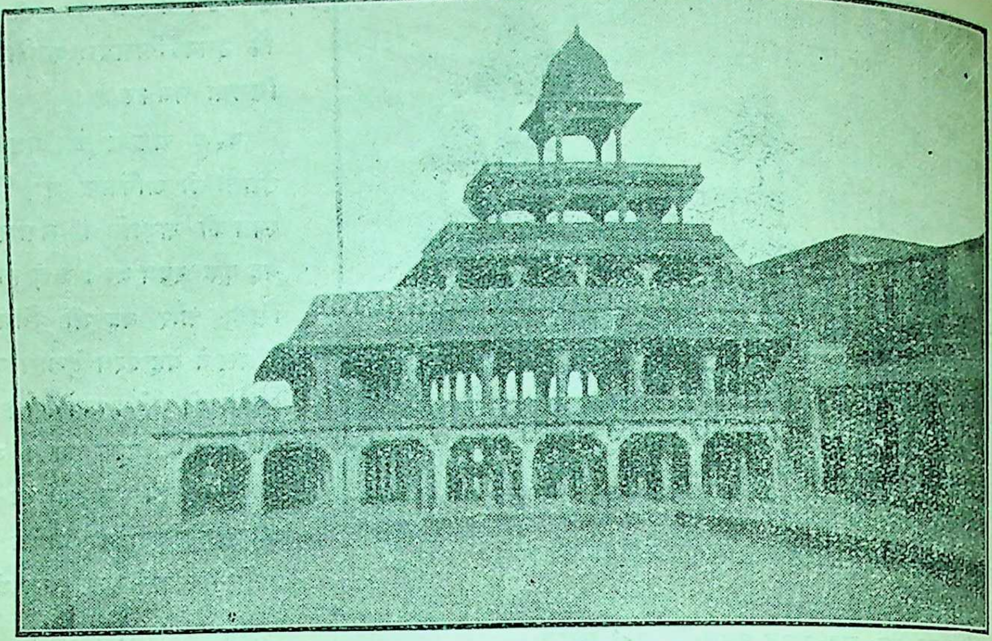

पंचमहल

चाहता था। भौतिक संसार के कार्यों से उसे निरंतर काम पड़ता था। ऐश्वर्य और विलासिता के सागर में गर्क़ रहते हुए भी उसे एक साम्राज्य का शासन करना पड़ता था। साम्राज्य का शासन करना तथा विस्मृति-मदिरा पीकर ऐश्वर्य-सागर में ग़ोते लगाना दो ध्रुवों की नाईं विभिन्न हैं। अतएव जब अकबर की इच्छा हुई कि कुछ काल के लिये इस महोदधि में ग़ोता लगावे, तो उसने सांसारिक बातों को, साम्राज्य-संचालन-सं कार्यों को, एक स्वप्न समझा। स्वप्न-लोक के स्व में पड़ा अकबर साम्राज्य-संचालन का स्वप्न देखा क था। राज्यकार्य करते हुए भी ऐश्वर्य-मदिरा का न उतरने देने के लिये ही अकबर ने इस स्वप्नागार सृष्टि की थी।

× × ×

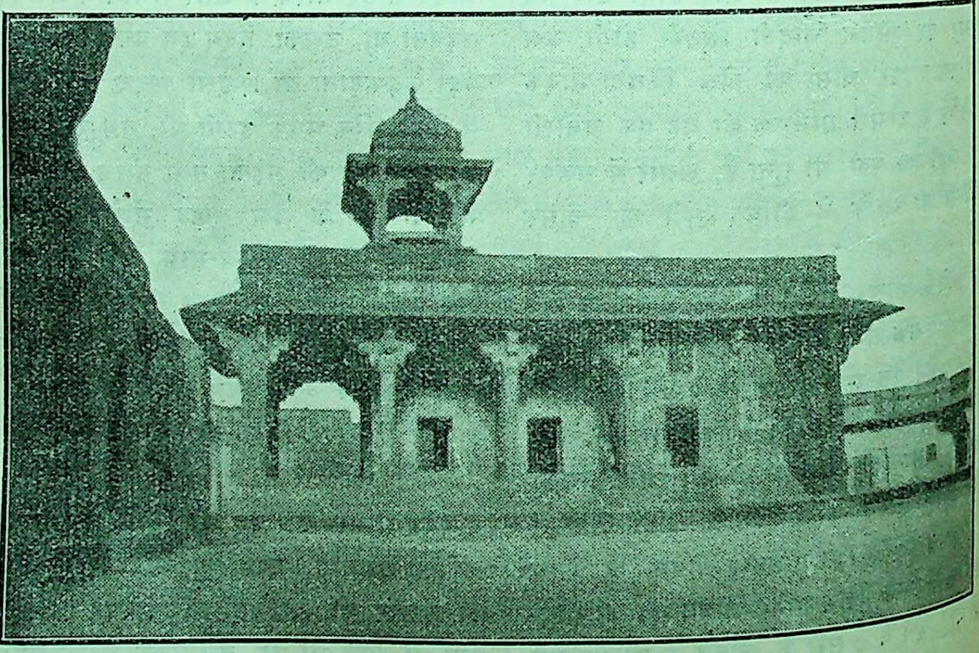

मरियम का भवन (सीकरी की शिल्पकला का एक उत्कृष्ट नमूना)

सीकरी का ताल सूख गया, उसके साथ ही मुस्लिम-साम्राज्य का विशाल वृक्ष भी सूखकर खोखला हो गया। करोड़ों पीड़ितों के आँसुओं से सींची जाकर उस विशाल वृक्ष की जड़ें ढीली हो गईं। अतः जब अराजकता, विद्रोह तथा आक्रमण की भीषण आँधियाँ चलने लगीं, युद्ध की लपलपाती हुई बिजलियाँ चमकीं, पराजय-रूपी वज्रपात होने लगे, तो यह साम्राज्यरूपी वृक्ष उखड़कर गिर गया, टुकड़े-टुकड़े हो गया, उसके शेष-अवशेष विलास और ऐश्वर्य की अदृष्ट अग्नि, असहायों के निःश्वास तथा शहीदों के भीषण फुंकार से जलकर भस्म हो गए। जहाँ एक सुंदर वृक्ष खड़ा था, जो संसार में एक अनुपम वस्तु थी, वहाँ कुछ ही शताब्दियों के लिये रह गए गंभीर गह्वर, उस वृक्ष के कुछ अधजले, झुलसे हुए यत्र-तत्र बिखरे टुकड़े तथा उस विशाल वृक्ष की भस्म। सीकरी के खँडहर उसी भस्म को रमाए खड़े हैं।

× × ×

सब कुछ सपना था। विलीन हो गया। दो आँखों को ही यह सारी करामात थी। प्रथम तो एकाएक झोंका आया, अकबर मानो सोते से जग पड़ा, स्वप्नलोक को छोड़कर भौतिक संसार में लौट आया। स्वप्न भंग हो गया था, स्वप्नलोक उजड़ गया था, एक अतीत स्मृति रह गई थी, किंतु दो आँखें—अकबर की आँखें—ऐसी थीं जिन्होंने यह सारा स्वप्न देखा था, जिनके सामने यह सारा नाटक कुछ काल के ही लिये क्यों न हो—एक सुंदर मनोहारी नाटक खेला गया था। और जिसमें अकबर स्वयं एक पात्र था, स्वप्नलोक के उस रंगमंच पर अपना पार्ट करता था। उन दो आँखों के बंद होते ही उस स्वप्न की रही-सही स्मृतियाँ भी लुप्त हो गईं। जो एक समय सच्चा नाटक था, बाद में एक स्वप्न था, अब उसका कुछ भी शेष नहीं रहा। शेष है तो केवल वह सुनसान भग्न रंगमंच, जहाँ यह स्वप्न आया था, जहाँ यह सारा नाटक खेला गया था, और जहाँ कुछ काल के लिये समस्त संसार को भूलकर अकबर ऐश्वर्य-सागर में ग़ोते लगाने के लिये कूद पड़ा था, जहाँ अकबर के यौवन की कामनाओं ने नग्न नृत्य किया था, जहाँ वह महान् तथा विजयी सम्राट् भी रँगरेलियाँ करता था। सीकरी वह स्थान है, जिसे देखकर मालूम होता है कि मनुष्य कितना ही बड़ा क्यों न हो, उसकी भी छाती में एक छोटा-सा कोमल भावुक हृदय धुकधुकाता है, उसके भी हृदय में कहीं भीषण संग्राम होते हैं और ऐसे पुरुष को भी मानवीय दुखदर्द, मानवीय कामनाएँ, वासनाएँ सताती हैं।

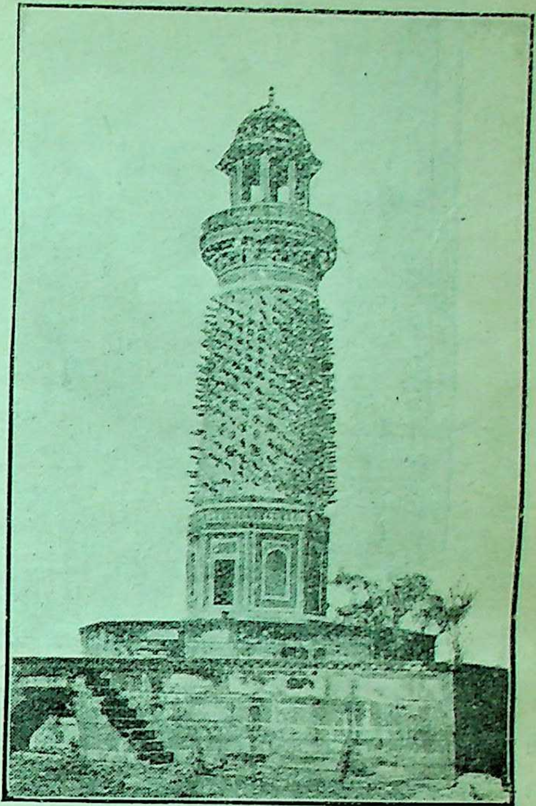
हीरा-मीनार

× × ×

स्वप्न ही तो था। बढ़ते हुए वैभव-सागर के साथ कमल की नाईं यह नगरी बढ़ी थी। किंतु लुप्त हो गया वह वैभव; अकबर लौट गया भौतिक संसार को। परंतु आज भी वह सूखे पंकज अवशेष कीचड़ में धँसे हुए हैं। पंकपूर्ण पृथ्वी का हृदय पंकज के इस पतन को देखकर भग्न हो गया, आँसुओं का प्रवाह निकल जाने पर उसकी सतह भी सूखकर टुकड़े हो गई।

वैभव से विहीन सीकरी के वे सुंदर, आश्चर्यजनक खँडहर मनुष्य की विलासवासना को देखकर आज भी बीभत्स अट्टहास करते हैं। अपनी दशा को देखकर उन्हें याद आती है उन करोड़ों मनुष्यों की, जिनका हृदय विलासिता के लिये कुचला गया था। आज भी

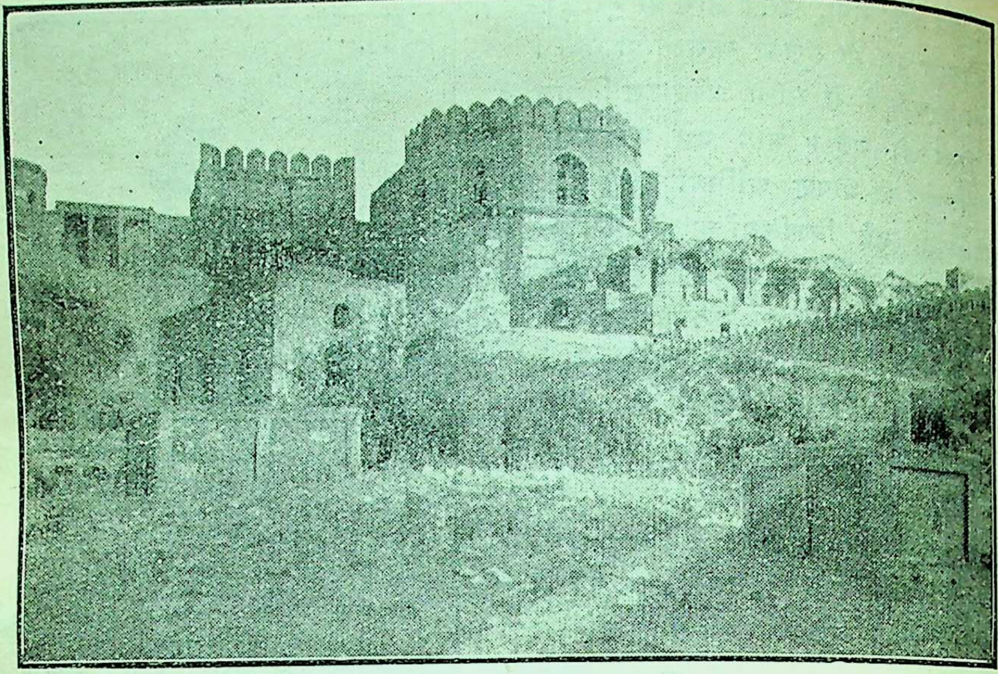

वैभव से विहीन वे आश्चर्यजनक खडहर !

उन भग्न खँडहरों में उन पीड़ितों का रुदन सुनाई देता है। अपने उस गौरवपूर्ण भूतकाल को याद करके वे रोते हैं। अपने इस बाल-वैधव्य को याद कर वह नगरी गर्म उसासें भरती है। विलासवासना तथा राजमद के विष से विषाक्त ये आहें इतनी विषैली हैं कि उनको सहन करना कठिन है। ये ही वे आहें हैं, जिनकी गरमी तथा जिनके विष से मुग़ल-साम्राज्य भस्मीभूत हो गया। अपनी दुर्दशा पर ढलके हुए आँसुओं के उस तप्त प्रवाह में वे रहे-सहे भस्मावशेष भी बह गए।

× × ×

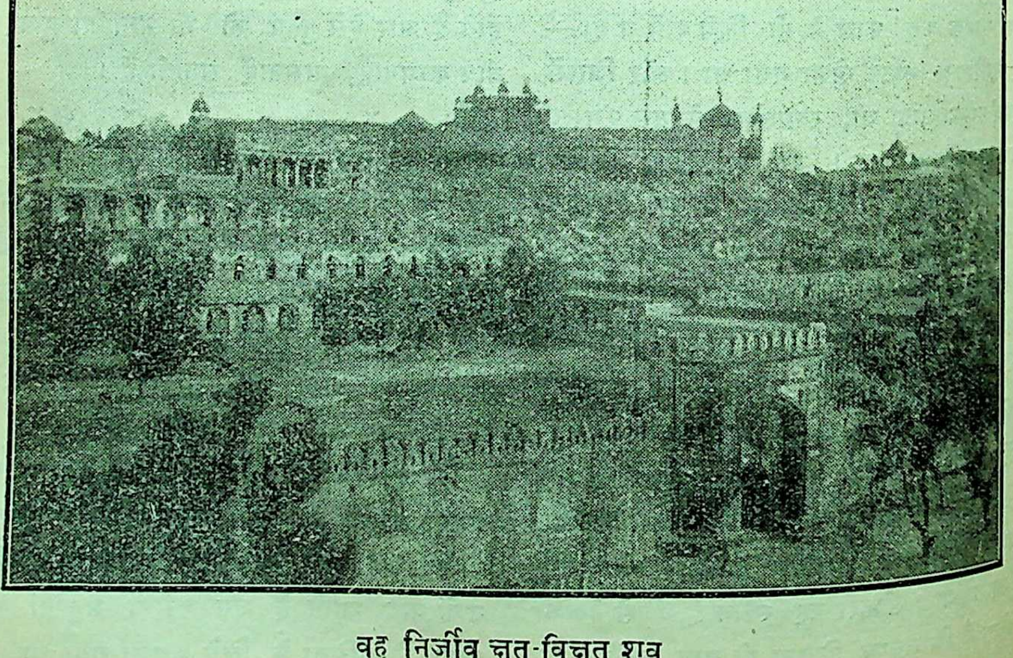

वह निर्जीव क्षत-विक्षत शव

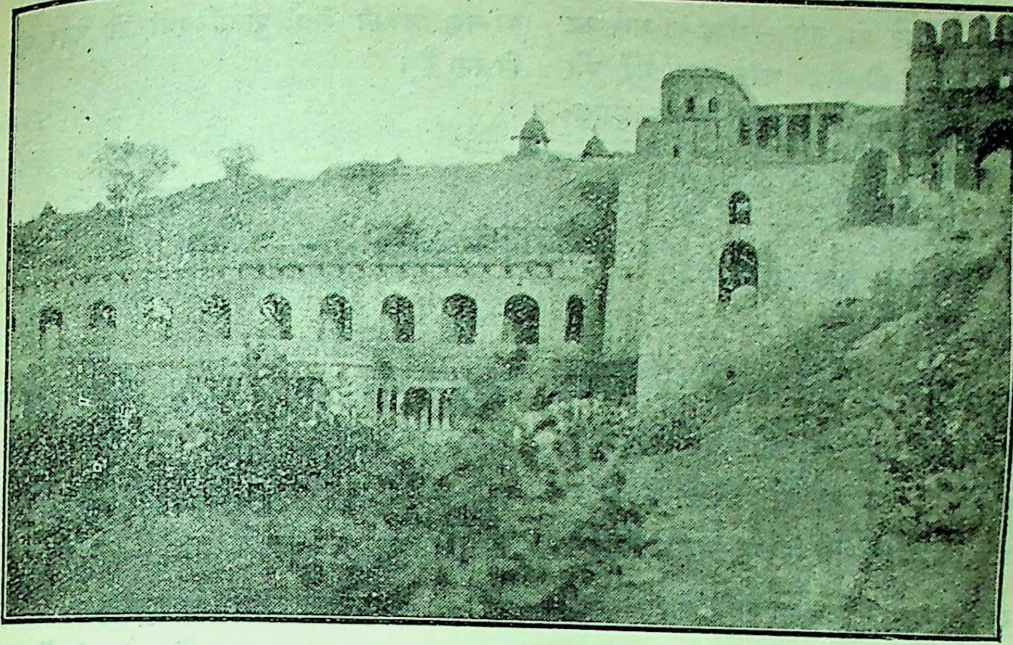

मानवीय आकांक्षाओं और वासनाओं की वह स्मशानभूमि

देख लो उस मृत शव को, अकबर के उस भग्न स्वप्न-संसार के सुनसान रंगमंच को, अकबर के स्वप्नलोक के उन टूटे-फूटे अवशेषों को। अकबर के ऐश्वर्य-विलास का अंत हुए शताब्दियाँ बीत गईं, किंतु उसकी ऐश्वर्य-इच्छा, विलास-वासना का वह मक़बरा आज भी खड़ा है। सीकरी के भग्न खँडहर मानवीय इच्छाओं, मनुष्य की सुख-वासना तथा आकांक्षाओं की स्मशानभूमि हैं। मानवीय अतृप्त वासनाओं का दृश्य देखकर आज वे पाषाण भी क्षुब्ध हो गए हैं। अपने असमय पतन पर टूटे हुए हृदयों की आहें आज भी उन भग्न महलों में सनसन करती हुई निकलती हैं।

अकबर ने स्वप्नलोक-निर्माण किया था, किंतु भौतिक जीवन के कठोर थपेड़े खाकर वह भंग हो गया। अपनी कृति की दुर्दशा तथा अपनी आशाओं और कामनाओं को निष्ठुर संसार द्वारा कुचले जाते देखकर अकबर रो पड़ा। उसका सजीव कोमल हृदय फट गया—उसके टुकड़े हो गए और वे टुकड़े सारे भग्न स्वप्नलोक में बिखर गए—निर्जीव होकर पथरा गए। सीकरी के लाल खँडहर अकबर के उस विशाल हृदय के रक्त से सने हुए टुकड़े हैं। टुकड़े-टुकड़े होकर अकबर का हृदय निर्जीव हो गया, निरंतर संसार की मार खाकर वह भी पत्थर की तरह कठोर हो गया। जिस हृदय ने अपना यौवन देखा, अपने वैभवपूर्ण दिन देखे, जो ऐश्वर्य में लोटता था, राज्यश्री की गोद में जिसने बरसों नींद निकाली, मद से उन्मत्त होकर जो स्वप्नसंसार के उस सुंदर लोक में वर्षों विचरा, वही आज भग्न, जीर्ण-शीर्ण, शताब्दियों से खड़ा सरदी, गरमी और पानी की मार खा रहा है।

× × ×

शताब्दियाँ बीत गईं और फिर भी सीकरी के वे खँडहर खड़े हैं। उस नवजात शिशुनगरी ने केवल १५ वर्ष ही शृंगार किया और फिर उसके प्रेमी अकबर ने उसे त्याग दिया, और ऐसा परित्याग किया कि फिर कभी भूलकर भी मुँह नहीं दिखाया। ऐश्वर्य-विलास में जिसका जन्म हुआ, अनंत-यौवना राज्यश्री ने जिसे पाला-पोसा और एक मदमाते युवा सम्राट् ने जिसका शृंगार कराने में अपना सर्वस्व लुटा दिया, उससे अपने प्रेमी का ऐसा तिरस्कार—घोर अपमान नहीं सहा गया। अकबर के समय से ही उसने वैभव को त्याग कर विधवा भेष धारण कर लिया। बिछुए

पहन लिए। अकबर की मृत्यु के साथ तो सब कुछ चला गया, हृदय विदीर्ण हो गया—शोक के मारे फट गया, अंग क्षत-विक्षत हो गए, आँखें पथरा गईं और आत्मा अनंत में विलीन हो गई। भारत-विजेता, मुग़ल-साम्राज्य के निर्माता विजयी अकबर की प्यारी नग का वह निर्जीव शव, शताब्दियों से पड़ा धूलधूसरि हो रहा है।

रघुवीरसिंह

निशीथ

वायु स्वरों में गाती थीं सूखे-से तरु की डाल;
मिला रहा फुफकार उसी में विष कुबेर-सा व्याल।
वह भीषण संगीत भागता था सरिता के कूल;
'टल-टल'कर,कर घृणा वेग से वह जाती प्रतिकूल।

उसी दिशा से निकला शशि-सा,
युवक एक सुकुमार;
जिसकी आँखों में प्रतिबिम्बित
था मादक संसार।

चितवन में यौवन-मदिरा थी रूखी-सी छविहीन;
चिंता मानों विष की धारा-सी उसमें थी लीन।
आँखें मादक थीं पर उनमें आँसू थे दो-चार;
उनमें घुला हुआ था कितना भीषण हाहाकार।

लेकर हाहाकार-भार
आँसू की टूटी धार;
मर्मस्थल की प्यास बुझाती
गिरकर बारम्बार।

एक शिला थी,जिस पर सज्जित था सूनापन खूब;
और अनाथों के मन-सी छोटी निकली थी दूब।
वर्षा के आँसू में घुलकर बनी हुई थी गोल;
मानों प्रकृति देवि का हो वह काला एक कपोल।

केशजाल से उन पर करते
सर्प-समूह विहार;
और कौन था जो करता इस
शून्य शिला पर प्यार।

कभी भूलकर आ जाता था भीषण सर्प-समूह;
रचता था अपने केचुल से वह बिखरा-सा व्यूह।
कभी लिपटकर बनते थे वे विषमय मालाकार;
काले-श्वेत रंग-हारों का दे अपना उपहार।

विषवाली जीभों से छूकर,
शिला अनेकों बार;
निश्चल रहकर मृत्यु-श्वास-सी,
देते थे फुफकार।

सघन वृक्ष की झुकी हुई थी उस पर तिरछी डाल;
जिस पर पक्षी बैठ, बिता देते थे संध्याकाल।
एक शब्द से उस सूनेपन को देते झकझोर;
और भाग जाते थे वे क्या जाने किसकी ओर।

वह उड़ान मथ देती थी
सोती-सी वायुतरंग;
उसी समय साँपों की भी
हो जाती निद्रा भंग।

भिक्षुक-कर-सा फन फैलाकर देख शब्द की ओर;
धीरे से संकुचित बनाकर फन का फैला छोर।
वैसे ही फिर सो जाते थे उसी शिला के अंक;
वायु निकल जाती चुप हो ऊपर से वन निःशंक।

वही विषमयी वायु कभी
छूती फूलों के गात;
विष मन में रखकर पापिष्ठा-
सी करती थी बात।

वहीं विहग के वाल, नीड़ से निकल स-श्रम सविनोद;
पा लेते थे हरी-हरी पल्लव की प्यारी गोद।
वहाँ परस्पर दिखलाते थे नए पंख के रंग;
और सीखते थे उड़ना गिर-गिरकर वालविहंग।
वह शैशव का सार कहाँ,
साँपों का कहाँ विहार;
शिला देखती थी चुप-सी ये
असम-विषम व्यापार।

उसी शिला की ओर देखकर सहम गया सुकुमार;
देखा उसने विष के काले हारों का शृंगार।
सुप्ति और जागृति के मिश्रण में सुनकर फुफकार;
चला गया वह किसी कल्पना के प्रांगण के पार।
मन में आने लगे न-जाने
कितने करुण विचार;
पाया उसके हाथों ने
झुकते सिर का सब भार।

आह! यही फुफकार साँप की यह भीषण फुफकार;
मेरे ही जीवन के दुख का रूप वनी इस वार।
हाय! हलाहल से जीवित है उसका श्वास-प्रवाह;
यहाँ एक उच्छ्वास उसी में कितनी मन की आह।
यही आह का गरल करेगा
क्या मेरा प्राणान्त;
फिर मेरे शव के मुख पर,
सूखेगा बनकर शांत।

हृदय एक है, उसमें कितनी ओर लगी है आग;
उसे शांत करने को लोचन अश्रु रहे हैं त्याग।
ज्वाला में दो निर्बल आँखों की निधियों का नाश;
देता है दो बूँद न उज्ज्वल बूँदों का आकाश।
आशा का विहंग उड़ता है,
नभ में चारों ओर;
या मृत मा से प्यार माँगता
शिशु उसको झकझोर।

काँप रहा है हृदय, कहूँगा कैसे मन की वात;
मचा रहे छोटी-सी आँखों में आँसू उत्पात।
हर्ष अतिथि-सा ही आकर रुकता है क्षण दो-चार;
किंतु शोक प्रियतम-सा आकर करता रहता प्यार।
किसे करूँ मैं प्यार यही है
मेरा करुण विचार;
मेरे मन का प्यार बना है
मेरे मन का भार।

उज्ज्वल काले तीक्ष्ण तीर से आते हैं दिन-रात;
हाय, तड़प जाता है मेरा यह निर्बल-सा गान।
उठे हाथ का शून्य-लोक में निर्बल शिथिल प्रहार;
विरही आँखों का भरना आँसू का पारावार।
ओ संसार, वता तुझमें
यह कैसा है व्यापार;
दी यदि अपनी गोद, न देता
ऐसा हाहाकार।

स्मृतियाँ इन साँपों-सी वनकर करतीं मन में वास;
विष की लहर वेदना का करती है क्या उपहास।
आँखें उठकर नीचे गिरती हैं, होकर निरुपाय;
लड़-लड़कर थक जाते हैं भावों के सब समुदाय।
देव! दया कर यदि पाओ
मेरे क्लेशों का पार;
तो तुम जानोगे कैसा है,
यह स्वरचित संसार।

लहरों-सा आता-जाता है विषम वेदना-भार;
पारावार सदृश है मेरे जीवन का विस्तार।
हृदय बना चक्कत है रहता घूम-घूमकर हार;
और उष्ण उच्छ्वास प्रभंजन करता कठिन प्रहार।
कहाँ शांति पाऊँगा तुझमें,
वतला ऐ संसार!
प्यार-रूप में मोह-पाश का
तू है कारागार।

रामकुमार वर्मा

मोरिशस और दक्षिण-अफ़्रीका के हिंदू

भारतवर्ष के बाहर, विदेशों में, लाखों भारतीय रहते हैं। आठ लाख से कुछ अधिक लंका में और नौ लाख से कुछ अधिक बर्मा में रहते हैं। आजकल बर्मा हिंदोस्तान में ही सम्मिलित है; परंतु प्राचीन भारत में बर्मा या ब्रह्मदेश शामिल नहीं था। इस बर्मा और इस सिलोन (लंका) के सिवा संसार के विभिन्न देशों में प्रायः सत्रह लाख भारतीय रहते हैं। इनमें से मोरिशस में २६४५२७, दक्षिण-अफ़्रीका में १४१३३६, डमरेरा (ब्रिटिश-गायना) में १२६४२६, ट्रिनीडाड में १२१४२०, ब्रिटिश मलाया में ६६०१००, फ़िजी में ६८०००, डच ईस्ट इंडीज में ५००००, सुरीनाम (डच गायना) में ३४९५७, पूर्व अफ़्रीका के केनिया में २६७५९, जमैका में १८४०१, पूर्व अफ़्रीका के युगांडा में ५६०४, जंजीबार में १२८४१, टांगानिका में ९४११, पोर्तुगीज़ पूर्व अफ़्रीका में ७९५०, मेडागास्कर में ५२७२, हाँगकाँग में २५५५, री-यूनियन में २१८४, आस्ट्रेलिया में २०००, कनाडा में १२००, न्यूजीलैंड में ६००, रोडेसिया में १३००, शीशल में ३३२, न्यासालैंड में ५१५, बसूटलैंड में १७९, निगेरिया में १००, जिब्राल्टर में ५०, और स्वाजीलैंड में ७ भारतीय रहते हैं। इनके सिवा जापान, कोरिया, चीन, केलीफ़ोर्निया, अमेरिका और योरप के विविध देशों, अरेबिया, मिसर आदि में भी डेढ़ लाख के क़रीब हिंदोस्तानी रहते हैं। इनमें व्यापारी, बैरिस्टर, डाक्टर, प्रोफ़ेसर, वकील, मज़दूर आदि सभी श्रेणियों के लोग हैं। प्रोफ़ेसर खानखोजे तो अमेरिका की एक रियासत के कृषि-मंत्री हैं। कई प्रवासी भारतीय जहाज़ों के कप्तान भी हैं। योरप के कई देशों में कई नामी भारतीय उड़ाके रहते हैं। विभिन्न देशों की कौंसिलों में भी भारतीय हैं। मोरिशस में आनरेबल तिलकसिंह, आनरेबल धनपत लाला और आन० मि० आछा कौंसिलर हैं। वहाँ मि० फोकीर राजनीति के पूर्ण पंडित हैं। डमरेरा की कौंसिल में दो भारतीय हैं। ट्रिनीडाड की कौंसिल में आनरेबल रेवरेंड सी० डी० लाला मेम्बर हैं। सोलोन, युगांडा, टांगानिका और जंजीबार में भी दो-दो भारतीय कौंसिल हैं। फीजी में आन० विष्णुदेव, आन० परमानंदसिं और आन० रामचंद्रजी निर्वाचित तथा आन० ब महाराज मनोनीत कौंसिलर हैं। मलाया कौंसिल में मि० अब्दुलकादिर निर्वाचित और आन० वीर स्वामी फेडरल कौंसिल में मनोनीत मेम्बर हैं। केनिया कौंसिल में चार निर्वाचित मेम्बर हैं और एक कार्यकारिणी में हैं। अमेरिका की सुप्रसिद्ध आयोवा युनिवर्सिटी में श्रीयुत सुधींद्र बोस प्रोफ़ेसर हैं। मोरिशस में फ़ी सदी ४० गन्ने के खेतों के स्वामी भारतीय हैं और ट्रिनीडाड में एक लाख एकड़ ज़मीन भारतीयों के हाथ में है। ब्रिटिश पूर्व अफ़्रीका में कुछ पंजाबी भारतीयों को छोड़कर प्रायः सब गुजराती व्यापारी हैं, और वे वहाँ उसी तरह रहते हैं, जिस तरह वे बंबई में तिजारत करते हैं। वे समुद्र-पार के सभी भारतीयों से उन्नत हैं। उनमें मज़दूर तो शायद ही कोई हो। मुझे इनके संबंध की अधिक चर्चा यहाँ नहीं करनी है। इस लेख में मुझे मोरिशस और दक्षिण अफ़्रीका तथा वहाँ के प्रवासी हिंदुओं के आँखों देखे वैलक्षण्य प्रकट करना ही अभीष्ट है। इस लेख में लाघव के लिये दक्षिण अफ़्रीका की जगह केवल अफ़्रीका ही व्यवहृत करूँगा। पाठकों को यह ध्यान में रखना चाहिए।

अंतरराष्ट्रीय दृष्टि से मोरिशस का सर्वाधिक महत्त्व है। ७३१ मील इसका क्षेत्रफल है। पूर्व-पश्चिम साढ़े अड़तीस मील लंबा और दक्षिण-उत्तर साढ़े अट्ठाईस मील चौड़ा है। परंतु ऐसा होने पर भी यह नन्हा-सा टापू ६०० मीलों में फैले हुए ११४ टापुओं की राजधानी है। इन टापुओं में सबसे बड़ा टापू रोट्रिग है, जिसमें ४८२९ मनुष्य रहते हैं। रोट्रिग का शासन, गवर्नर की सलाह से एक मजिस्ट्रेट करता है। शेष में दो मजिस्ट्रेट चक्कर लगा-लगाकर शासन करते हैं। मोरिशस का सुप्रसिद्ध शहर पोर्ट लुई राजधानी है। यह बंदरगाह

भी है और हिंद-महासागर के समुद्री लड़ाकों का प्राचीन अड्डा भी यहीं है।

१८६६ में स्वेज नहर बनी । इसके पहले पोर्ट लुई का अत्यधिक महत्त्व था; क्योंकि उन दिनों योरप के जहाज़, सेंट हेलेना और असेन्शन होते हुए, इसी रास्ते भारतवर्ष आते थे। जिन दिनों मोरिशस पर फ़्रेंचों का आधिपत्य था, उन दिनों इस रास्ते से आनेवाले अनेक अँगरेज़ी जहाज़ों को फ़्रेंच लोग डुबो दिया करते थे। फ़्रेंचों की इस करतूत से बेचारे अँगरेज़ परेशान रहते थे। अंत में फ़्रांस की राज्यक्रांति के समय, १८१० में, अँगरेज़ों ने मौक़ा देखकर इसे फ़्रेंचों से छीन लिया। प्रसिद्ध फ़्रेंच लड़ाका लाबुर्दोने पोर्टलुई से ही, अँगरेज़ों से लड़ने के लिये, मदरास पलटन भेजा करता था। यद्यपि स्वेज नहर बन जाने से अब इधर से प्रायः योरप के जहाज़ भारतवर्ष नहीं जाते, तो भी युद्ध-शास्त्र की दृष्टि से यह बड़ा ही गौरवशाली स्थान है। कारण स्पष्ट है। एशिया—आस्ट्रेलिया और अफ़्रीका—आस्ट्रेलिया में यदि युद्ध छिड़ जाय, तो पोर्ट लुई समुद्री अड्डा (Naval Bais) बन जायगा। यदि एशिया-योरप और आस्ट्रेलिया-योरप में संग्राम मच जाय, तो बहुत सम्भव है, स्वेज नहर बंद कर दी जाय। उस दशा में पोर्टलुई ही सागर-सामरिक केंद्र हो पड़ेगा। इसी आशंका से दूरदर्शी अँगरेज़ आजकल पोर्ट लुई में जहाज़ी बेड़ों का अड्डा बनवा रहे हैं।

मोरिशस को The end of the world भी कहा जाता है; क्योंकि इससे सदर्न लांजीट्यूड या दक्षिणी रेखा पर कहीं भी मानव-निवास नहीं है। बेल्जियम को छोड़कर इतनी थोड़ी ज़मीन पर औसतन इतने मनुष्यों का कहीं भी भरण-पोषण नहीं होता। यहाँ कुल पौने चार लाख मनुष्य रहते हैं। यहाँ कभी लू नहीं चलती—सदा वर्षा होती रहती है। सारा टापू सुजल-सुखद और शस्य-श्यामल बना रहता है। अथवा यों समझिए कि मोरिशस सदा मसूरी, दार्जिलिंग या नैनीताल बना रहता है। कीचड़ और धूलि भी नहीं पैदा होती; क्योंकि ज़मीन कँकरीली है। जल बहुत ही स्वास्थ्यकर है। सिंह, बाघ, बिच्छू, मच्छड़, मक्खी, भालू या अन्य कोई भी विषधर जीव नहीं होता; इसलिये कहीं भी मनुष्य निःशंक सो सकता है। टापू के चारों ओर लहराता सागर और हर ओर छहराता पार्वत्य सौंदर्य है। टापू में कभी कोई भूखा नहीं सोता। प्रत्येक मनुष्य ज़मीन का ख़ुद-मुख़्तार है—एक पैसा भी ज़मीन पर लगान नहीं देता। वेश्या-नृत्य नहीं होता। स्त्रियाँ तक गाली और झगड़े का नाम नहीं जानतीं। कोई भी स्त्री अपने संबंधी का पैर पकड़कर रोती नहीं। धोती पहनकर भारतीय कौंसिल तक में जाते हैं। भारतीयों में भात का भोज नहीं होता—पूड़ी का होता है। प्रति बुधवार को तीन बजे से छः तक स्वयं गवर्नर मज़दूर तक से मिलने के लिये बैठा रहता है। जहाज़ के ज़रिए किसी अपराधी का भाग जाना या नन्हे-से टापू में छिप रहना कठिन है; इसलिये लोग बहुत ही कम अपराध करते हैं। क़ानून में समता है। नेपोलियन कोड सिविल ला चलता है। फ़ौजदारी इँगलिश क़ानून है। फ़्रेंच दस हज़ार से कम और अँगरेज़ एक हज़ार से कम हैं; तो भी सुप्रीम या हाईकोर्ट को छोड़कर सभी जगह फ़्रेंच भाषा चलती है। सारी-की-सारी खेती भारतीय ही करते हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि परिश्रमशील भारतीयों के कारण गोरे मौज उड़ाते हैं और अपने दबंगपन के कारण इस हिंद-महासागर की चाभी को मुट्ठी में किए हुए हैं। यहाँ की सरकारी मुहर में लैटिन भाषा का यह वाक्य लिखा रहता है—Stalla clavis Maris que Indici. इस वाक्य को फ़्रेंच लोग अपनी भाषा में यों कहा करते हैं—Maurice ist L' e'toib et la clef de l' oce'an Indian. अँगरेज़ लोग कहते हैं—The star and the key of the Indian Ocean. हिंदी में इसका अर्थ हुआ—हिंद-महासागर का तारा और चाभी मोरिशस है। सचमुच जिसके हाथ यह कुंजी रहेगी, उसी के पंजे में हिंद-महासागर फँसा रहेगा। चूँकि भारतीय ही यहाँ के जीवनाधार हैं, इसलिये यदि चाहें तो यह कुंजी उनके हाथों में आ सकती है। इस दृष्टि से भारतीयों के लिये मोरिशस बहुत ही महत्त्व-पूर्ण स्थान है।

अब दक्षिण अफ़्रीका की भी कथा सुन लीजिए।

वह भी हमारे लिये बहुत ही महत्त्वशाली है; क्योंकि उसी ने भारतवर्ष को महात्मा गांधी-जैसा विश्व-वन्द्य महात्मा दिया है और वहीं पहलेपहल भारतीयों ने, महात्माजी के नेतृत्व में, सत्याग्रह-संग्राम छेड़कर डचों और अँगरेज़ों पर विजय प्राप्त की था। मोरिशस में जहाँ केवल डाक्टर मणिलाल ने वहाँ के भारतीयों की स्थिति सुधारी है, वहाँ दक्षिण-अफ़्रीका में म० गांधी, आन० श्रीनिवास शास्त्री, श्रीमती सरोजनी नायडू, मि० एंड्रूज, आर्य परमानंदजी, श्रीयुत कैलास-नाथ काटजू, स्व० मि० गोखले आदि नेताओं ने भारतीयों की शक्ति सुदृढ़ करने में यथेष्ट सहायता दी है।

लंदन जाते समय राजा राममोहनराय और नेपालियन बोनापार्ट का एकमात्र पुत्र दक्षिण-अफ़्रीका आए थे। शायद ही भारत में ऐसा कोई मनुष्य होगा, जो दक्षिण-अफ़्रीका की भारतीय स्थिति का कुछ ज्ञान न रखता हो। इस तरह हमारे लिये मोरिशस और दक्षिण-अफ़्रीका—दोनों ही महत्त्वशाली स्थान हैं; और इसीलिये इन दोनों देशों के प्रवासी भारतीयों (विशेषतः हिंदुओं) की सामाजिक, धार्मिक आदि स्थितियों की भी इस लेख में तुलनात्मक चर्चा की जायगी।

बहुत पुरानी बात है। यह उन दिनों की बात है, जिन दिनों माल के जहाज़ों पर मूर्ख और दरिद्र भारतीय टापुओं को भेजे जाते थे। बहुत कुछ तो कलकत्ते के कुली-डिपो में ही भोजनैक्य हो जाता था। दूसरे के हाथ का भात खा लेने से कितने ही हिंदू अपना धर्म नष्ट हुआ समझकर अपना जनेऊ समुद्रदेव के हवाले कर देते थे। जहाज़ पर उन्हें टीन के बर्तन और एक कंबल मिलता था। कितने ही जहाज़ी दुनिया से ऊबकर क़ै करते-करते अनंत निद्रा में सो जाते थे। विदेशों के डिपो में उतरने पर उन्हें मुसलमान और भंगी के हाथ तक का खाना पड़ता था। वहाँ से उन्हें गोरे अपनी-अपनी कोठियों में ले जाते थे। कोठियों में बदनसीब भारतीयों को सात फ़ीट ऊँची, बारह फ़ीट लंबी और तेरह फ़ीट चौड़ी कोठरी मिलती थी। एक कमरे में आठ-आठ, दस-दस तक पुरुष और उनके बीच एक स्त्री रहती थी। उनमें से ज़बर्दस्त पुरुष का ही स्त्री पर क़ब्ज़ा रहता था—चाहे स्त्री किसी की भी। हो उन दिनों प्रत्येक भारतीय मज़दूर को एक सर्टिफ़िकेट मिलता था जो एक डिबिया में बंद कर मज़दूर की बाँह में लटका दिया जाता था। यह इसलिये कि जब कभी कोई मज़दूर बाहर जाता था, तब अधिकारियों के पूछने पर डिबिया दिखानी पड़ती थी। पंद्रह दिन की बीमारी में किसी भी मज़दूर की पूरे महीने की तनख़्वाह काट ली जाती थी। गोरे पिशाचों को प्रसन्न करने के लिये भारतीय मज़दूरों को अपनी स्त्रियाँ तक समर्पण करनी पड़ती थीं। जो मज़दूर ऐसा नहीं करता था, उसे गोरे राक्षस मारकर गाड़ देते या पेड़ों पर फ़ाँसी पर लटका देते थे। यदि कोई अधमरा ही छूट जाता था, तो उसे गोरों के डर के मारे ऐसा कोई गवाह ही नहीं मिलता था, जो अधिकारियों के सामने उसकी निर्दोषिता का बयान दे सके। ऐसे दारुण दुःख-दग्ध प्राणी भला संसार में ईश्वर क्यों पैदा करता है? क्या कोई उत्तर है?

इसमें शक नहीं कि आरकाटियों द्वारा बहकाए हुए अत्यंत दरिद्र और अपराधी भारतीय ही अधिकतर कुली होकर टापुओं में गए थे। बहुधा ऐसा होता था कि गुरुतर सामाजिक अपराध करके प्रेमी और प्रेमिका दोनों घर से भागकर डिपो में भरती हो जाते थे। कोई अपनी चाची को लेकर भाग जाता और कोई भावज को, और वही उसकी ब्याही स्त्री प्रसिद्ध कर दी जाती थी। कितनी ही लावारिस स्त्रियाँ डिपो में भरती हो जाती थीं, जिनका किसी भी जाति के पुरुष के साथ संबंध हो जाता था। बहुतों का जहाज़ पर ही ब्याह हो जाता था। इस ब्याह में कोई देर नहीं लगती थी। बात हुई और स्त्री उसकी ब्याही मान ली गई। कितने ही ऐसे जहाज़ भी टापुओं को गए हैं, जिनमें १६० स्त्रियाँ रहती थीं, तो ७५० पुरुष। उन दिनों भारतीय कुलियों का ऐसा एक भी जहाज़ नहीं गया, जिसमें फ़ी सदी ३० से अधिक स्त्रियाँ गई हों।

उन देशों के डिपो में से जब कुली अपनी कोठियों में जाने को होते थे, तब सब स्त्रियाँ एक लाइन में खड़ी कर दी जाती थीं। उनका मुँह ढका रहता था। डिपो के बाहर के पुरुष भी इन स्त्रियों को ख़रीदने आते थे। अ.फ़्रीका में तो १९११ तक २० पौंड में स्त्रियाँ ख़रीदी जाती थीं। इसके पहले तो ३०) और ४०) पौंड में बिकती थीं। जिनका कोई ख़रीदार नहीं रहता था, वे

कुलियों के मत्थे मढ़ दी जाती थीं। जात पाँत का कोई विचार नहीं था। मतलब यह कि एक स्त्री के कई पति होते थे, अंतर्जातीय और अंतर्वर्णीय विवाह खुलकर होते थे। यही कारण है कि टापुओं में कहीं एक भाई ब्राह्मण है, तो दूसरा धोबी; एक भाई चमार है, तो दूसरा भूमिहार ब्राह्मण। किसी की माता ब्राह्मणी है, तो पिता कुर्मी; किसी की माता चुरिहारिन है, तो पिता क्षत्रिय। कितने ही तो गोरों और मुसलमानों के पुत्र भी आजकल ब्राह्मण कहाते हैं। फिजी और कहीं-कहीं अफ़्रीका में तो आज तक हिंदू, मुसलमान और ईसाई क़ौमों में परस्पर विवाह-संबंध होता है। मोरिशस में अंतर्वर्णीय विवाह ही अधिक होते हैं और हुए हैं। समुद्रपार के हिंदुओं में शायद ही कोई ऐसा कुल मिले, जिसमें कम-से-कम असवर्ण विवाह न हुआ हो। विधवा-विवाह तो खुल्लम-खुल्ला सभी करते हैं। वास्तव में उन देशों की परिस्थिति ही ऐसी है कि विधवा-विवाह, स्त्रियों का बहु-विवाह, अंतर्जातीय विवाह, असवर्ण-विवाह आदि आवश्यक हो गए हैं और हो चुके हैं। इसके लिये प्रवासी भाइयों को घृणित समझना हमारी दृष्टि में पाप है। हाँ, वहाँ जो ब्याहों में छोकरे नचाए जाते हैं, वह अवश्य ही घृण्य रीति है।

यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि उन देशों में सबका छुआ सब खाते हैं। किसी भी होटल में ब्राह्मण और दुसाध एक साथ बैठकर चावल-दाल खाते हैं। चीनाओं की बिस्कुट की दूकानें हैं। इन पर एक पलड़े पर मांस और एक पर बिस्कुट तोला जाता है; परंतु यह बिस्कुट सब खाते हैं। हरसू ब्रह्म, हरेराम ब्रह्म, हुलास ब्रह्म आदि भूत-प्रेतों की ओझाई भी ख़ूब होती है।

धर्म-भीरु लोग तीर्थ-प्रेमी होते हैं। ये लोग जहाँ रहते हैं, वहाँ तीर्थों और गंगा की कल्पना कर डालते हैं। भारत के अधिकांश हिंदू पाताल में गंगा, मर्त्यलोक में भागीरथी और स्वर्ग में मंदाकिनी—इस तरह तीन गंगा मानते हैं और मोरिशस के अधिकांश हिंदू "परी तालाब" को ही गंगा मानते हैं। उनका विश्वास है कि परी तालाब पर रात को प्रतिदिन स्वर्ग से परियाँ आकर नाचती हैं। अफ़्रीका (नेटाल) में एक मंदिर में स्व० मि० गोखले दर्शन करने गए थे। उसे आजकल लोग "जगन्नाथपुरी" कहते हैं। हनूमानजी की झण्डी का उड़ाना और सत्यनारायण-कथा—इन दो बातों ने दोनों देशों के हिंदुओं की धर्मभीरुता की जितनी रक्षा की है, उतनी वेद ने भी नहीं की। इन दोनों देशों में अधिक मदरासी हैं। इन मदरासियों में एक ऐसा संप्रदाय (शायद चीना बू) है, जो "मरी अम्मा" देवी का भक्त है। इन देवीजी के नाम पर यह संप्रदाय वर्ष में लाखों निरपराध मुर्ग़ियों, बकरों और भेड़ों का वध कर डालता है। इस दल के लोग आग पर चलते और अपने पर्व पर बाज़-बाज़ आदमी अपने दोनों गालों में सूए घुसेड़कर और सिर पर घड़ा रखकर नाचते-गाते देवीजी के दर्शनों को जाते हैं। गोरों के लिये यह ख़ासा मज़ाक़ है। मोरिशस में कहीं न तो रामजी का मंदिर है और न विजयादशमी ही मनाई जाती है। पहले हिंदू भी ताज़िया रखते और मुहर्रम मनाते थे; बल्कि अपना ताज़िया आगे निकालने के लिये कभी-कभी ये अक़्ल के दुश्मन भयंकर मारकाट भी कर बैठते थे। स्त्रियाँ मर्सिया गाती और शीरीनी-मलीदे चढ़ाती थीं। हिंदुओं के मुर्दे क़ब्र में गाड़े जाते थे। मोरिशस में तो पुरोहित लोग कभी-कभी पंचांग, सत्यनारायण की पोथी और सुपारी को ठाकुरजी बनाकर काम चला लेते थे। परंतु अब ये सब बातें नहीं हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि मोरिशस के मंदिरों में धर्म-भीरु लोग "उत्तर दिशा बदरीनाथजी" वाला गीत गाते और नेटाल के मंदिरों में "भजन करु भाई नेटलवा में आपके" गीत अलापते हैं।

अफ़्रीका की अपेक्षा मोरिशस के अधिकांश भारतीय उच्च शिक्षा प्राप्त हैं। जहाँ अफ़्रीका अर्थात् दक्षिण-अफ़्रीका के क़रीब आधे दर्जन विद्यार्थी योरप में और इतने ही भारतवर्ष में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, वहाँ मोरिशस के अठारह लड़के योरप में और दस भारत में विद्याध्ययन कर रहे हैं। मोरिशस में जहाँ तीन भारतीय कौंसिलर हैं, वहाँ अफ़्रीका में एक भी नहीं। अधिक तो क्या, म्युनिसिपल मताधिकार तक अफ़्रीका में भारतीयों को प्राप्त नहीं। मोरिशस के भारतीयों में तीन एम्० डी० (पेरिस), तीन बैरिस्टर, तीन सर्वेयर और आठ वकील हैं। अफ़्रीका में एम्० डी०, वकील या सर्वेयर कोई भारतीय नहीं है। हाँ, दो भारतीय क्रिश्चियन बैरिस्टर हैं। मोरिशस में एक भारतीय चीफ़ इंजिनियर और एक पुलिस-इंस्पेक्टर हैं; परंतु अफ़्रीका में यह बात

नहीं है। मोरिशसवालों का सम्मान भी अधिक है, क्योंकि अफ़्रीकावाले भारतीय गोरों के स्थान रेल-डिपो, होटल, अस्पताल, थियेटर, ट्राम सीट पर नहीं जाने पाते; परंतु मोरिशस में गोरों से सब बातों में भारतीयों की समानता है। अफ़्रीका में अच्छी ज़मीन गोरों ने अधिकृत कर रक्खी है; परंतु मोरिशस के शिमले (क्युरपिपरोड) में हज़ारों भारतीय रहते हैं और कितने ही गोरे भी भारतीयों के मकानों में, भाड़ा देकर, रहते हैं।

अच्छा, आगे की और विचित्र रामकहानी पढ़िए। मोरिशस और अफ़्रीका—दोनों जगह "जी" कम लोग लगाते हैं। लोग पंडितजी नहीं, पंडित कहते हैं। वग़ैरह की जगह मोरिशस में शह कहा जाता है। मोरिशस में कोई अपनी स्त्री का नाम नहीं लेता; अफ़्रीका में लेता है। दोनों जगह लोग अधिकतर शाम को ही नहाते हैं। कोई-कोई तो सप्ताह में एक दिन नहाते हैं; मोरिशस में कुछ ऐसे भी ब्राह्मण हैं, जो ठाकुरजी को भी सात दिन पर स्नान कराते हैं। मोरिशस में अधिकतर स्त्रियाँ लहँगा पहनती हैं और अफ़्रीका में साड़ी। लहँगे में पैसे रखने की जेब भी रहती है। मोरिशस में अधिक पुरुष धोती पहनते हैं और अफ़्रीका में पतलून। अफ़्रीका में देहातों में रहनेवालों में ही कुछ लोग धोती पहनते हैं। शहर में कोई शादी तक में धोती नहीं पहनता। लोग कहते थे कि दरबन में पंडित परमानंद नाम के एक पुराने ढर्रे के ऐसे पंडित रहते थे, जो धोती, मिरजई, चादर, माला, तिलक धारण करते और कंधे पर लोटा-डोर और झोली लटकाकर तथा खड़ाऊँ पहनकर गोरों के बीच विचरते थे। हाँ, गोरे उन्हें ट्राम पर नहीं बैठने देते थे। दोनों देशों में संस्कृत का कोई पंडित नहीं है। कुछ शुद्ध हिंदी लिखनेवाले मोरिशस में पंडित आत्माराम-विश्वनाथ और अफ़्रीका में भवानीदयाल संन्यासी को मैंने देखा। दोनों जगह लोग "आप जाओगे" "आप खाओगे" बोलते हैं। स्त्रीलिंग-पुंलिंग का भी नाम-मात्र का विचार है। मेरे लिये तो लोग सभाओं तक में कहते थे—"शास्त्रीजी निवेदन करेंगी।" कितने ही पुरुष "हम कहती हैं" भी बोलते हैं। मोरिशस में लोग गवर्नमेंट को "गबरेनवा" और चीनी लोगों को "चिनवा" कहते हैं। पिता तक के लिये एकवचनांत क्रिया का व्यवहार किया जाता। वहाँ के लोग बहुधा माता को मामा या म पुत्र को पूत और टिप्पणी को टिपावनी कहते हैं, मोरिशस के हिंदुस्थानी सिगरेट पीने के आदी हैं। के मुँह से बदबू निकलती रहती है। कुछ लोग ऐसे हैं, जो अब धोती पहनने में भी शर्म करते हैं। मो शस में बड़ी घुड़दौड़ महापर्व है। आबालवृद्ध कोसों से चलकर बिरहे, लोरकी, नमकवा गाते पोर्ट लुई पहुँचते हैं। लोग गोरों का पर्व मनाते हैं सबका मकान बँगलानुमा होता है—किसी के मकान आँगन नहीं होता। दोनों देशों में चावल, गेहूँ, आदि नहीं होते—गन्ना और तरह-तरह के फल- होते हैं। नतीजा यह होता है कि लोगों को विहीन पुराना अन्न खाने को मिलता है। मोरिश इक्का चलता है और अफ़्रीका में रिकशा। दोनों देशों रेलवे स्टेशनों और सभाओं में हल्ला नहीं हो मोरिशस में जब एक से दूसरा हिंदू मिलता है, हाथ मिलाता है और अफ़्रीका में ज़्यादातर 'पाव करता है। मोरिशस में अपने हस्ताक्षर में भी प्रायः अपने को बाबू और पंडित लिखते हैं। मोरिश लोग प्रायः एक ही बार टट्टी जाते हैं। कितने ही टीन के डिब्बों से आबदस्त ले लेते हैं। मोरिश लोग फ़्रेंच और किरोल स्त्रियों को बोंगू (प्रणाम करते हुए सिर का टोप उतार डालते हैं और अ स्त्रियों को प्रायः "रंडो" कहते हैं। मोरिशस के हिं ज़्यादातर शिखा-सूत्र रखते हैं, लेकिन अफ़्रीका के दोनों देशों में अनेक ब्राह्मण भी शिखा-सूत्र नहीं रखते। जेलों और अस्पतालों में हिंदू-रसोइए रहते। फ़्रेंचों की संगति के कारण मोरिशस में नृत्य देखने का लोगों को बड़ा शौक़ है। एक दिन लुई में "रेमो द्वे" नाम का प्रसिद्ध फ़्रेंच-नृत्य हो वाला था। उसमें मजिस्ट्रेट आदि "बड़े-बड़े लो आनेवाले थे। मुझे भी आनरेबल धनपत लाल दिखाने ले गए। नृत्य क्या था, बेहयाई की हद दो नौजवान फ़्रेंच स्त्रियाँ अपनी गुप्तेंद्रियों और पर ज़रा-सा चिरकुट लपेटे इस तरह थिरकती लोग पुलकित हो उठते थे। जब ये स्त्रियाँ बेशर्म नाच बंद करने लगती थीं, तब इतना होहल्ला

था कि मानों कान के परदे फटे पड़ते थे। बेचारी आकर फिर नाचती थीं। इस प्रकार जनता ने घंटों उन्हें नचाकर परेशान कर मारा। लाला साहब ने मुझसे पूछा—"कैसा नाच है शास्त्रीजी ?" मैंने कहा—"यह नाच क्या है, सभ्यता का दिवाला और यहाँ के हिंदुओं की कुरुचि का डंका है।" अंत को यहाँ के विषय में गवर्नमेंट से कहकर इस नृत्य को निषिद्ध भी करवा दिया।

दोनों देशों के हिंदुओं में व्यायामालय और संगीतालय नहीं है। किसी को भी मैंने संगीत और व्यायाम का प्रेमी नहीं पाया। कोई उल्लेखयोग्य गोशाला भी नहीं है। मोरिशस के बोनाके स्थान में मैंने ऐसे मुसलमानों को देखा, जो गाड़ी में गउएँ जोते हुए थे। घड़ी देखकर ग्वाले दूध पहुँचाते और मेहतर टट्टी साफ़ करते हैं। दोनों देशों में धोबी और बावर्ची का काम सब जानते हैं। लोग ख़ूब साफ़-सुथरे रहते हैं। उन देशों के मज़दूरों की चारपाइयों के बिस्तरे भी इतने साफ़ रहते हैं, जितने यहाँ के कितने ही रायबहादुरों के भी नहीं रहते। दोनों देशों में कितने ऐसे ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं, जो व्यापारिक दृष्टि से मुर्ग़ियाँ भी रखते हैं। सुखसंचारक कंपनी की दवाओं और कैलेंडरों तथा स्व० विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र की "दयानंदतिमिरभास्कर"-नामक पुस्तक का यथेष्ट प्रचार है। मोरिशस में मनोरथ ठकुरी, दुर्गा, अनिरुद्ध नाम के ढाके या गाँव भी हैं। मोरिशस की राजधानी पोर्ट लुई में बाम्बे, मदरास, कैलकटा, मराठा और मालाबार स्ट्रीट भी है। ग़रज़ यह कि इन दोनों देशों के हिंदुओं में पाश्चात्य और पौरस्त्य—दोनों सभ्यताओं का विचित्र मेल है। इनमें कितनी ही बुराइयाँ और अच्छाइयाँ भी हैं। यह बात सोचकर इन हिंदुओं की बार-बार प्रशंसा करनी पड़ती है कि विरुद्ध और विपत्तिमयी परिस्थिति में रहने पर भी इन्होंने अपनी सभ्यता, इतिहास और संस्कृति को बहुत कुछ बचा रक्खा है।

रामगोविंद त्रिवेदी

परख

ज्ञान ही नहीं तो लाभ जीवन का पाया कौन,
आन ही नहीं तो स्वाभिमान किस काम का?
दान ही नहीं तो द्रव्यवान् का है दावा झूठ,
मान ही नहीं तो मर्द कौड़ी का! छदाम का!
शान बलिदान की स्वदेश के लिये जो नहीं,
व्यर्थ शेखी शान है दिखाना धन-धाम का!
'सेवक' जो राम का नहीं है, दाम का है दास,
नाम मत लेना ऐसे नमक-हराम का।

रामसेवक त्रिपाठी

आशा पर पानी

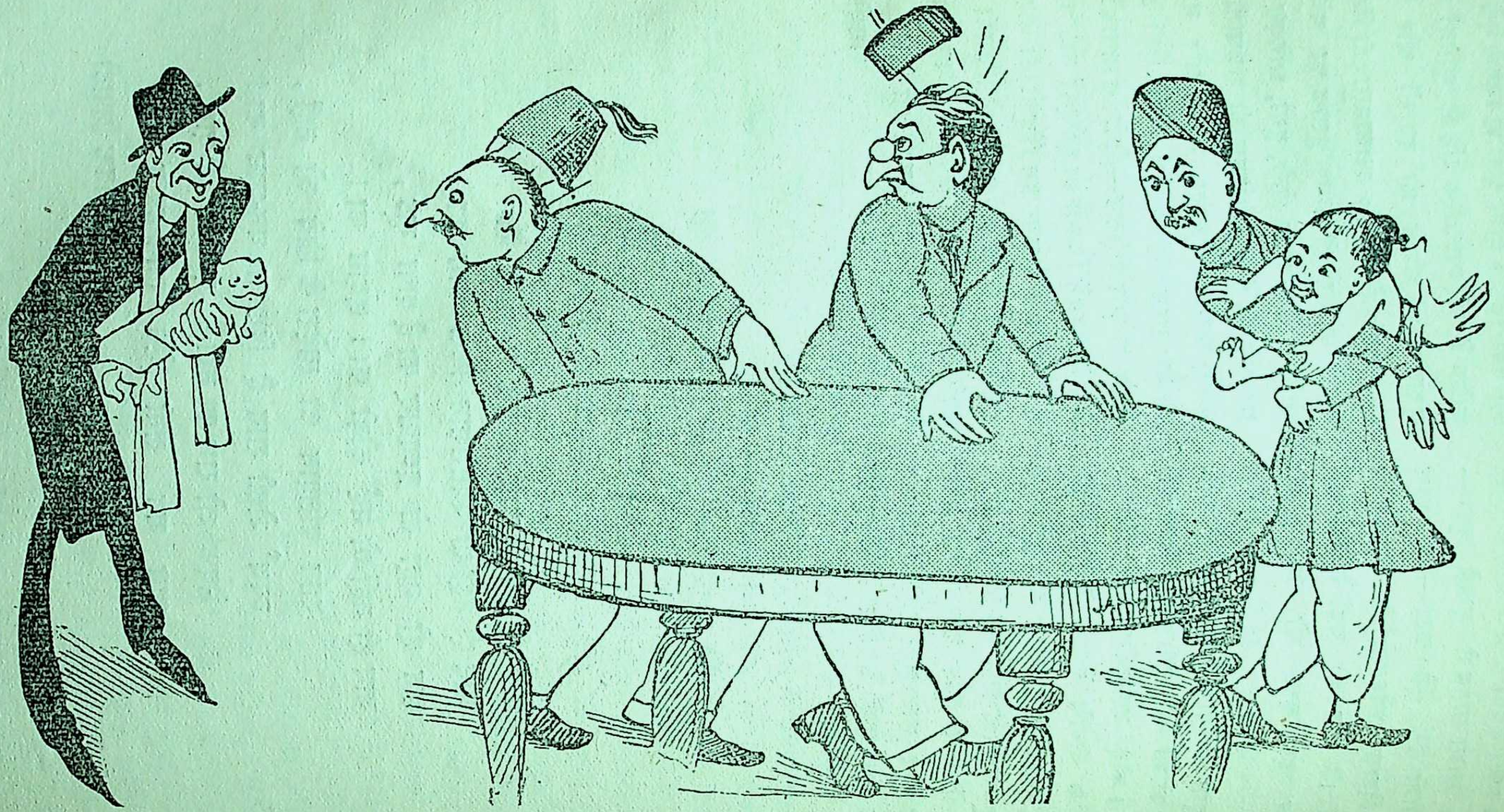

लखि रिपोर्ट सुंदर सुखदाई ;
आशावादी चले पराई ।

हिंदी-कविता का भविष्य और व्रजभाषा-विरोध

संसार परिवर्तनशील है। विकास और विनाश का चक्र सदा ही चलता रहता है—कोई ऊपर कोई नीचे, कोई आगे कोई पीछे। प्रकृति के कण-कण में यह परिवर्तन परिव्याप्त है। भुवन-भास्कर भगवान् भानुदेव प्रातः उदय होकर, मध्याह्न में तपकर, सायंकाल में अस्त हो जाते हैं। तारामंडली अर्द्धरात्रि के पूर्ण विकास में खिलखिलाकर हँसती है और उषःकाल में होनेवाली क्षीणावस्था को भूल ही जाती है। चंद्रदेव पूर्णिमा के विकास से प्रसन्न हो अपनी अपूर्व आभा का आभास संसार को कराते हैं और अकड़ते हैं, परंतु कुहू निशि के दिन काला मुँह कर जाने का भय उनके चित्त में आता ही नहीं।

प्राचीन रोमराज्य का विस्तार अब कहाँ है! विजयी सिकंदर की महत्ता अब केवल इतिहास-पटल पर ही है। नेपोलियन की उत्साहवर्द्धक विजय अब केवल कहानी रह गई है। भारत में ही रामराज्य का नाम अब कहाँ है? अब "विना युद्धेन दातव्यं शूचि अग्रेण केशव" कहनेवाले कौरव कहाँ समस्त वसुंधरा का सुख भोग करते दिखाई देते हैं? महाभारत करके भारत को नष्ट करनेवाले पांडव व कौरव अब कहाँ अपना ऐश्वर्योपभोग करते हैं? पृथ्वीराज और जयचंद का अस्तित्व अब कहाँ है? अकबर अब अपने आगरे के क़िले का यूनियन 'जैक' देखने कहाँ आता है। शाहजहाँ अब अपनी प्यारी मुमताज़ के भव्य मक़बरे की शोभा कहाँ देखता है, और औरंगज़ेब अब उसी दिल्ली से पास होनेवाले शारदा बिल से इस्लामी हितों की रक्षा कहाँ करता है।

भाषाक्षेत्र में रोमन और ग्रीक भाषाएँ अब कहाँ-कहाँ प्रचलित हैं और अब उनके कौन-कौन स्वरूप हैं? भारत की वेदवाणी क्या देववाणी में परिवर्तित नहीं हुई थी? वह देववाणी क्या अब मृतभाषा नहीं कही जाती? उसके बाद अपना एकछत्र राज्य स्थापित करनेवाली प्राकृत अब क्या प्रकृति-पट से विलीन नहीं हो गई है? भव्य भारती-हिंदी के स्वरूप में ही कितना अंतर हुआ है। आजकल के हिंदी के धुरंधर पंडित एक हज़ार वर्ष की हिंदी समझ ही नहीं सकते। यह तो बहुत दूर की बात है। बड़े-बड़े "साहित्य-संघ" और "साहित्य-भवन" के अधिपतियों को उस भाषा के अर्थगांभीर्य की तह तक पहुँचना कठिन हो गया है, जो गत पाँच सौ वर्षों से हिंदी-साहित्य पर अपना एकछत्र आधिपत्य स्थापित किए हुए हैं। उनकी दृष्टि में इसी अकारण कारण से अंगूर खट्टे हैं और वह हिंदी हिंदी-भाषा भी नहीं है।

समय और परिस्थिति के अनुसार ही सब कार्य होते हैं और इन्हीं के अनुसार मनुष्यों का विचार-प्रवाह होता है। भावों पर इनकी गहरी छाप रहती है और चूँकि भाव ही साहित्य और काव्य का एकमात्र आधार है, अतएव परिस्थिति का प्रभाव किसी समय के साहित्य पर भी अवश्यंभावी है।

संसार की समस्त वस्तुओं की तरह भाषाओं का परिवर्तन, परिवर्द्धन, विकास या विनाश सदा होता आया है। यही हाल हमारी हिंदी का भी है। हिंदी का विकास दिन-दिन हो रहा है, अभी बहुत होने को शेष है। कुछ काल से इस क्षेत्र में ऐसे अनर्गल विचार प्रकट हो रहे हैं, जिनसे हिंदी-प्रेमीजन-समुदाय में हिंदी-भाषा और उसकी स्थिति एवं इतिहास के संबंध में भ्रम उत्पन्न हो जाने की आशंका है। पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने पिछले अक्टूबर के 'विशाल-भारत' में अपनी "दिमाग़ी ऐयाशी" द्वारा जो विष उगला है और जो "हिंदी-कविता का भविष्य"-शीर्षकांतर्गत, प्रयाग-स्थित किसी साहित्यसंघ के अधिवेशन में, अनर्गल आलाप किया है, जो काशी के 'आज' के कालमों में प्रकाशित हुआ था, उसी के ऊपर विचार करना हमारा ध्येय है। आपने व्रजभाषा-साहित्य अथवा पुराने हिंदी-साहित्य पर "विहंगम दृष्टि" डालकर आघात किया है।

अब तक बेचारी व्रजभाषा का विरोध उसकी दुरूहता, असामयिकता और बोलचाल की प्रचलित भाषा से

पृथक्ता के कारण होता था। इसमें कोई हानि नहीं थी। यदि हमें ईश्वर ने उसके समझने की शक्ति नहीं दी, तो न सही। इसमें ब्रजभाषा का दोष ही क्या है? यदि हमारे चारु चखों के चश्मों से ब्रजभाषा का प्रवाह असामयिक प्रतीत होता है, तो होने दीजिए। बेचारी ब्रजभाषा इसके कारण न खड़ी ही हो सकती है और न पड़ी ही रह सकती है। यदि ब्रजभाषा को आपकी बोल-चाल की भाषा होने का गौरव नहीं प्राप्त है, तो न सही। वह बेचारी क्या करे।

> "आक औ कनकपात तुम जो चबात हौ,
> तौ षटरस व्यंजन न केहू भाँति लटिगो।"

ब्रजवाणी की स्वाभाविक मधुरता के तो सभी क़ायल हैं। उसमें ओज की खोज नहीं करनी पड़ेगी। उसके लिये चश्मेवाले चार-चार चारु चर्खा की आवश्यकता नहीं होगी। उसका प्रसाद-गुण भी किसी प्रासाद में बंद नहीं मिलेगा। उसमें तो सब गुण वर्तमान हैं। फिर भी कोई यदि निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करे, तो किया करे। "गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः"। जब विरोध इतना ही था, तब पुराने साहित्यिक महारथियों ने इस उलझन को दूर कर दिया था, और बड़े-बड़े वाद-विवादों के बाद यह प्रश्न हल हो चुका था। परंतु अब तो उसमें "दिमाग़ी ऐयाशी" की बू आने लगी। अब भारत-भर के भयंकर पतन का कारण वह बन गई, और अब तो व्यभिचार का अड्डा ब्रजभाषा की सराय हो गई।

ब्रजभाषा अब चोरी ही चोरी है, उसमें कुछ नहीं है। वर्तमान कायरता, सामाजिक अव्यवस्था, राजनैतिक दुरवस्था आदि-आदि की भी बेचारी ब्रजभाषा ही ठेकेदार है। यह कलंक की कालिमा उनके द्वारा पोती जाती है, जो उससे ही बने हैं—जो उस शीरीं-शकुन शीरीं के फ़रहाद थे और जो उस ललित लैला के मजनू थे। यहीं तक नहीं, यह चीत्कार तो यहाँ तक बढ़ गया है कि ब्रजभाषा हिंदी ही न मानी जाय। अब उसे हिंदी का अंग मानना भी कलंक की बात है।

आगे चलकर हम उन किए गए आक्षेपों पर विचार करेंगे जिन्हें त्रिपाठीजी ने अपने उन दोनों निबंधों द्वारा, जिनका उल्लेख हम कर चुके हैं, किया है। हम यह बतला देना चाहते हैं कि हम न तो ब्रजभाषा से कोई वृत्ति ही पाते हैं, न उसके अंधपक्षपाती ही हैं, न हमें त्रिपाठीजी से कोई विरोध ही है। अब अधिक खड़ीबोली में कविता होने लगी है और खड़ीबोली के "भारत-भारत की पुकार" से ऊबकर अध्यात्मवाद की छाया में छायावाद, मायावाद आदिक वाद-विवाद फलने फूलने लगे हैं। यह सब समय को देखते हुए [illegible] है। बहुत-से ब्रजभाषा के कट्टर पक्षपातियों ने भी खड़ीबोली में कविता की है। साथ ही बहुत-से खड़ी-बोली के महारथियों ने भी ब्रजवाणी में भवानी वाणी की अर्चना की है। मैं स्वयं खड़ीबोली में अपनी तुकबंदी भिड़ाया करता हूँ। कहने का तात्पर्य यह कि केवल सत्यहिंसा देखकर ही मैं लिखने को तत्पर हुआ हूँ। यदि त्रिपाठीजी द्वारा किए गए आक्षेप निराधार न होते, तो इसकी आवश्यकता न होती।

हिंदी-कवियों के दो दल (भाषा)—इस शीर्षक में आपने एक नया दल हिंदीवालों का बताया है और दूसरा ब्रजभाषावालों का। तात्पर्य यह कि आप हिंदी को ब्रजभाषा से अलग मानते हैं। आपकी यह [illegible] बिलकुल नई है। बड़े-बड़े विरोधी ब्रजभाषा के [illegible] हुए, परंतु आज तक यह कहने का साहस किसी को नहीं हुआ कि ब्रजभाषा अहिंदी है। फिर अब तो न समय है कि हिंदी की ब्रजभाषा और अन्य [illegible] सौरसेनी, पूर्वी व पश्चिमी प्रभृति इतनी मिल गई हैं कि उनके शुद्ध साहित्य का पृथक्करण करना असंभव है। उनमें ब्रजभाषा का ही प्राधान्य है। केवल खड़ीबोली ही ऐसी है, जिसका सम्मिलन आक और अंगूर का होता है। अतः हो ही नहीं सकता है। जैसे हिंदू नाम के अंदर अब जैन, बौद्ध, सिख, पारसी, बंगाली आदि परिगणित हैं और उनके अंतःविभेद मिटते जाते हैं, गवर्नमेंट ने दूसरी प्रबल जाति मुसलमान [illegible] मुस्लिम व नान-मुस्लिम कहकर भेद किया है, उसी प्रकार भाषाक्षेत्र में खड़ीबोली, जो और अंगों से भिन्न [illegible] सकती है, मुस्लिम व अन्य ब्रजभाषा आदिक नान-मुस्लिम कही जा सकती है।

हिंदोस्तान से अलहदा होनेवाले मुसलमान [illegible] मदीने की याद करें, तो उन्हें यह शिक्षा दी जाती कि तुम हिंदोस्तानी हो, तुम्हें यहाँ की जलवायु को [illegible] मानना चाहिए। परंतु यदि नान-मुस्लिम [illegible]

कर दिए जायँ, तो हिंदोस्तान की जातीयता व राष्ट्रीयता का दम कौन भरेगा? हिंदोस्तान किसके बल से हिंदोस्तान होगा? उसी प्रकार यदि व्रजभाषा हिंदी-साहित्य से अलहदा कर दी जाय, तो हिंदी किसकी होकर रहेगी—हिंदी में क्या होगा?

ध्यान देकर सोचने का विषय है कि व्रजभाषा के वे अमर कवि सूर, तुलसी, विहारी, देव आदि-आदि निकाल दिए जायँ, तो हिंदी क्या होगी—वह किसके बल से अन्य देशी व विदेशी भाषाओं के साहित्य की तुलना कर सकेगी? किस मुँह से हम इसे राष्ट्रीय कहने का और अंतरराष्ट्रीय बनाने का प्रयत्न कर सकेंगे?

हिंदुओं की निकालने की और किवाड़ बंद करने की पद्धति तो प्राचीन ही है। वे तो मिलाना बहुत कम जानते हैं। इसीलिये वे क्षीणकाय होकर अपने किए का फल भोग रहे हैं। यही हाल यदि अब भाषाक्षेत्र में भी हुआ, तो उसके कुफल भोगने के लिये प्रस्तुत रहना चाहिए। यदि यह आवाज़ किसी खूसट कट्टरवादी के दिमाग़ की प्रतिकृति होती, तो इतना दुःख न होता; परंतु यह तो पुकार है उनकी जो राष्ट्रीयता के हामी हैं, जिन्हें व्रजभाषा की "दिमाग़ी ऐयाशी" ने व्यभिचारी बना दिया है, और जो परिणामतः उससे समाज की रक्षा के लिये उतावले हो गए हैं।

आगे के अवतरणों से मैं यह सिद्ध करूँगा कि न केवल व्रजभाषा हिंदी है, प्रत्युत हिंदी व्रजभाषा ही है।

पश्चिमी हिंदी बोलनेवालों की संख्या का वर्गीकरण डाक्टर ग्रियर्सन महोदय ने किया था। उसका उल्लेख आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने अपनी "हिंदी-भाषा की उत्पत्ति" नाम की पुस्तक में किया है। वह इस प्रकार है—

भाषा	बोलनेवाले
हिंदुस्तानी (ख़ास)	७०,७२,७४५
और तरह की हिंदुस्थानी जिसमें फुटकर भाषाएँ भी शामिल हैं	५९,२१,३८४
व्रजभाषा	८३,८०,७२४
कन्नौजी	५०,८२,००६
बुंदेली	५४,६०,२८०
बाँगरू	२५,०५,१५८
दक्षिण	६२,९२,६२८

उर्दू बोलनेवाले भी हिंदुस्थानी में सम्मिलित हैं। व्रजभाषा बोलनेवालों की संख्या सबसे अधिक है।

पं० कृष्णविहारी मिश्र, संपादक माधुरी ने अपनी "देव और विहारी" नामी पुस्तक में लिखा है—

"व्रजभाषा प्रांतिक भाषा होते हुए भी हिंदी-पद्य-काव्य की एकमात्र भाषा रही है। उन स्थानों के लोगों ने भी, जहाँ वह बोली नहीं जाती थी, उसमें कविता की है। व्रजभाषा भाषाशास्त्र के स्वाभाविक नियमानुसार बड़ी ही श्रुतिमधुर भाषा है। उसके शब्दों में थोड़े में बहुत व्यक्त करने की शक्ति मौजूद है। यह अब भी प्रांतिक भाषा है और कई लाख लोगों द्वारा बोली जाती है।

"हिंदी-कविता का वैभव व्रजभाषा द्वारा बढ़ता ही गया। समय और आश्रयदाताओं का प्रभाव भी इस व्रजभाषा की कविता का कारण माना जा सकता है, पर सबसे बड़ा आकर्षण व्रजभाषा की मधुरता का था।"

अब श्रीधरजी पाठक, देखिए, क्या कहते हैं—

"व्रजभाषा-सरीखी रसीली वाणी को कविताक्षेत्र से बहिष्कृत करने का विचार केवल उन हृदयहीन अरसिकों के ऊसर हृदय में उठना संभव है, जो उस भाषा के स्वरूपज्ञान से शून्य हैं और उसकी सुधा के आस्वादन से बिलकुल वंचित हैं ... ... क्या उसकी प्रकृत माधुरी और सहज मनोहरता नष्ट हो गई है?"

श्रीयुत बाबू श्यामसुन्दरदासजी "हिंदी-भाषा का विकास"-नामक पुस्तक में लिखते हैं—

"इस भाषा की उत्पत्ति सौरसेनी प्राकृत से है। इसका प्राचीन प्रसिद्ध साहित्य अवधी के साहित्य से भी अधिक और बढ़ा-चढ़ा है। और उत्तर-भारत के इधर चार-पाँच सौ वर्षों के अधिकांश कवियों ने इसी भाषा में कविताएँ की हैं, जिनमें सूर, तुलसी, विहारी आदिक ... अमर हो गए हैं।

"प्रथम भाग में हिंदी की पुरानी बोलियाँ बदलकर क्रमशः व्रजभाषा, अवधी और खड़ीबोली का रूप धारण करती हैं और दूसरे भाग में उनमें प्रौढ़ता आती है, तथा अंत में अवधी और व्रजभाषा का मिश्रण-सा हो जाता है।"

श्रीयुत बदरीनारायणजी चौधरी 'प्रेमघन' ने तृतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति-पद से दिए गए अपने भाषण में कहा था —

"उसकी (हमारी भाषा की) यौवनावस्था का दूसरा रूप भाषा वा व्रजभाषा वा मिश्रित भाषा है, जिसका दर्शन कबीर, सूर, केशव, खुसरो, जायसी, तुलसी, विहारी, देव व द्विजदेव आदि की कविताओं में हम पाते हैं।"

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र, जिन्हें त्रिपाठीजी ने नए दल का प्रवर्तक बताया है, क्या कहते हैं? उनकी हिंदीभाषा-नामक पुस्तक में लिखा है —

"पश्चिमोत्तर देश की कविता की भाषा व्रजभाषा है। यह निर्णीत हो चुका है और प्राचीन काल से लोग इसी भाषा में कविता करते आते हैं। ... ... मैंने कई बार प्रयत्न किया कि मैं खड़ीबोली में कविता बनाऊँ, पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं बनी। इससे यह निश्चय होता है कि व्रजभाषा ही में कविता करना उत्तम होता है। इसी से सब कविता व्रजभाषा ही में उत्तम होती है।"

उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि व्रजभाषा हिंदी का मुख्य भाग ही नहीं है, प्रत्युत उसका एक महत्वपूर्ण अंग है, जिसके कारण ही हिंदी हिंदी बनी हुई है। अब आप स्वयं त्रिपाठीजी को देखिए, जो बात-बात में और क़दम-क़दम पर व्रजभाषा का हिंदी होना स्वीकार करते हुए भी इससे अलग भागते हैं।

आपने अपनी कविता-कौमुदी, प्रथम भाग, के पृष्ठ ३९ पर "हिंदी का पुराना नाम"-शीर्षक में लिखा है कि हिंदी का पुराना नाम "भाषा" है और उसे श्रीसुधाकर-जी द्विवेदी व तुलसीदास के निम्न-लिखित उद्धरणों से सिद्ध किया है—

"सो देखकै बनमाली शिष्यार्थ भाषा-टीका कीन"

"भाषा भनित मोर मति थोरी"

जब यह अवतरण व्रजभाषा में हैं और उसी व्रजभाषा से उनका संबंध है, तो व्रजभाषा ही हिंदी सिद्ध हुई।

आगे पृष्ठ ४९ पर आप लिखते हैं—"सूरदास और वल्लभाचार्य की संयुक्त शक्ति ने वैष्णव-संप्रदाय में कृष्ण-भक्ति की एक बाढ़-सी ला दी। इसी अवसर में स्वामी हरिदास, हितहरिवंश और नंददास की मधुर ध्वनि गूँजने लगी। वैष्णवदल में एक-से-एक प्रतिभाशाली कवियों ने जन्म लेकर हिंदी भाषा द्वारा जनता का मन ऐसा खींच लिया कि देश में चारों ओर हिंदी-कविता सहस्रधारा होकर उमड़ चली।"

इस अवतरण में प्रयुक्त "हिंदी" शब्द से किस भा का तात्पर्य है? इन लोगों की कविता तो शुद्ध व्रजभा में है और आपके कथनानुसार वही हिंदी सिद्ध होती है।

त्रिपाठीजी ने कविता-कौमुदी (प्रथम भाग) के पृ पृष्ठ पर, जिसे यदि केवल व्रजभाषा ही कहें, तो अनु चित न होगा "कविता-कौमुदी पहला भाग—हिंदी" लिखा है। और इसके अंतर्गत हिंदीभाषा के इतिहा और विकास पर भी विचार किया है। परंतु दूसरा भा जिसका अधिकांश खड़ीबोली है और जिसको आ आप हिंदी मानते हैं, हिंदी के नाम से वंचित है औ न इसमें कोई हिंदीभाषा के संबंध में विवेचना ही है। अस्तु, जब कि आपने बाद के भागों पर क्रमशः संस्कृ उर्दू व ग्राम्यगीत लिखा है, तो आपने भी यह सिद्ध कि है कि व्रजभाषा ही हिंदी है, अन्यथा अहिंदी के साथ हिं का नाम व उसकी कीर्ति-कलाप-कथा क्यों की जाती।

यदि व्रजभाषा हिंदी नहीं है, आपकी भाषा से उसका कोई संबंध नहीं है, तो आपके दिमाग़ में उसने स्फू क्यों उत्पन्न की? आप तो "हिंदी-कविता और उसका भविष्य" देखने चले थे। आप इस अहिंदी के चक्कर में कैसे आ गए; क्यों भ्रम हो गया? इससे आपको सरोका ही क्या था?

मालूम यह होता है कि किसी "वसंत" ने कि "ठाकुर" के इशारे पर आपको "मकरंद" बनाया है। और आप उसका शिकार होते ही यह असंबद्ध प्रला करने लग गए हैं।

आपकी "दिमाग़ी ऐयाशी" में "अरुण" "मकरं" से कहते हैं कि "रहते हैं यहाँ और कविता करते दो सौ कोस की भाषा में।" उत्तर में निवेदन है कि व्रजभाषा की माधुरी ही ऐसी थी, जिसमें दो सौ कोस क्या, सैकड़ों कोसों से चले हुए मुसलमान—रहीम रसखान, अनीस, मुबारक—आदि ने कविता की है। और जिसमें अब भी "नटवर" नृत्य करते हैं। दूसरे आपको मदरास, रंगून व पंजाब, हिंदी को ज़बरदस्ती माथे मढ़ते फिरते हैं। और वे क्यों उसे अपनाते हैं। गुणाः सर्वत्र पूज्यते।

अब समय इस चक्कर में पड़ने का नहीं था। वा वादविवाद प्रारंभिक काल के होते हैं। इनसे अ कोई लाभ नहीं है। प्राकृतिक परिवर्तन जो होते हैं वे

होते ही रहेंगे । उन्हें कोई रोक नहीं सकता । जब-जब सर्वसाधारण और पढ़ी-लिखी जनता की भाषा में अधिक अंतर हुआ है, तब-तब भाषा-क्षेत्र में क्रांति होती देख पड़ी है । वेदवाणी का स्थान देववाणी संस्कृत को क्यों मिला ? सुसंस्कृत संस्कृत से प्राकृत क्यों प्रबल पड़ी ? और प्राकृत के ऊपर व्रजभाषा का क्यों आधिपत्य स्थापित हुआ ? इन सबका यही कारण है कि जब-जब यह भाषाएँ दिन-दिन विकसित होकर सर्वसाधारण की भाषा से पृथक् होती गई हैं, उनका प्रयोग शिथिल होता गया है ।

कुछ समय पूर्व तो लिखने और बोलने की भाषा में अंतर ही नहीं था और यही कारण है कि उस समय की लिखने की भाषा बोलने की भाषा का सच्चा प्रतिबिम्ब है। उस समय यह भी धुन थी कि जो कुछ लिपिबद्ध हो, वह छन्दबद्ध भी होवे । अत: उस समय के जीवन-चरित्र, गणित, ज्योतिष व विज्ञान आदि विषयों के ग्रन्थ भी छन्दबद्ध ही मिलते हैं । परंतु जब से खड़ीबोली का प्रचार हुआ है, तब से लिपि और भाषा का अंतर होते हुए भी पद्य और गद्य की भाषा में और अंतर बढ़ गया है ।

घर में व गाँवों में जो प्रयोग भाषा के होते हैं, वे खड़ीबोली के नहीं हैं और न वे खड़ीबोली की पुस्तकों में प्राप्य ही हैं । जिस भाषा में आजकल की खड़ीबोली के ग्रंथ लिखे जाते हैं, उस भाषा के बोलनेवाले कितने प्रतिशत हैं ? शिक्षित समुदाय के कितने प्रतिशत मनुष्य गाँव में, घर में, उसी भाषा का प्रयोग करते हैं ? इस भाषा के बोलनेवालों की संख्या मिश्रित भाषा (व्रजभाषा) के बोलनेवालों की संख्या से कहीं कम है। बड़े-बड़े लेखकगण व बड़े-बड़े खड़ीबोली के प्रबल पक्षपाती ऐसे कितने हैं, जो घर और बाहर एक-से हैं? फिर यह भेद बढ़ाकर क्या यश लिया गया ?

कविता और गद्य की भाषा के अंतर के संबंध में विचार करने पर यह प्रत्यक्ष हो जायगा कि व्रजभाषा की कविता और गद्य में तो अंतर है ही, परंतु जो अंतर को दूर करने चले थे, उनकी खड़ीबोली के गद्य और पद्य में भी उतना ही अंतर है ; उतनी ही दुरूहता है । एक आफ़त और बढ़ गई है कि जो भाव व्रजभाषा के दोहा व बरवै में व्यक्त होते थे, उनके लिये बड़े-बड़े दण्डक, घनाक्षरी व षटपदों की आवश्यकता पड़ती है ।

यह विजय तब प्राप्त हो सकी है, जब पाठ्य-ग्रंथों में से व्रजभाषा गद्य तो गद्य, पद्य का भी बहिष्कार किया गया है ; जब पत्र-पत्रिकाओं के दरवाज़े व्रजभाषा के लिये बंद कर दिए गए हैं, उसके विरोध में नक्क़ारे बजाए गए हैं । इन सबका परिणाम यह भले ही हो कि खड़ीबोली के प्रचार में अधिक सफलता हो गई हो ; परंतु इसका सबसे भयंकर प्रभाव जो होगा, वह और थोड़े दिनों बाद मालूम होगा । अब कितने हैं, जो व्रजभाषा के अथवा हिंदी के उस साहित्य का जिसके बल से ही वह गौरवान्वित है, रसास्वादन कर सकते हैं—उसकी ओर रुचि रखते हैं ? कितने हैं, जो उन रत्नों की परख कर सकते हैं ; अपने महाकवियों की सत्कृतियों का समादर कर सकते हैं ? आधुनिक साहित्यिकों में अधिकतर दर्शनीय गउएँ होंगी । हिंदी-साहित्य-सम्मेलन अब उनके लिये व्रजभाषा-कोष बनवाने का या व्रजभाषा-विद्यापीठ बनाने का प्रस्ताव तो पास करने ही लगा । इसकी क्यों आवश्यकता पड़ी ? यह किसकी सत्कृतियों का परिणाम है ?

अब हम इस प्रश्न को अधिक नहीं बढ़ाना चाहते । व्रजभाषा की कविता की उपयोगिता के संबंध में अनेकों महारथियों की युक्तियाँ उपस्थित हैं । यदि उनके अवतरण दिए जायँ, तो अधिक स्थान की आवश्यकता होगी । परंतु 'थोरे महिं जानहहिं सयाने' के अनुसार मैं केवल एक उक्ति श्रीयुत पं० कृष्णबिहारीजी मिश्र की देता हूँ । आपने मतिराम-ग्रंथावली की भूमिका के पृष्ठ १३ पर लिखा है—

"कविता की भाषा में लचकीलापन, सामंजस्य पूर्ण भाषाप्रवाह एवं अलंकार-प्रस्फुटन की पात्रता होनी चाहिए । झटपट मतलब की बात तक पाठक को पहुँचा देना, वह भी सुंदरता के साथ तथा थोड़े शब्दों में, यह भी भाषा का एक विशेष गुण है । परंतु सबसे बड़ा गुण तो यह है कि भाषा ऐसी संपूर्ण होनी चाहिए कि कवि के भावों को पूर्ण प्रकार से प्रकट करने में समर्थ हो सके । कविता की भाषा में हृदय के द्रवीभूत करने की योग्यता भी होनी चाहिए । उसके प्रसाद, ओज, माधुर्य के दर्शन होने चाहिए तथा सरलता तथा सुष्ठु योजना का पूरा चमत्कार होना चाहिए । शब्दों की तोड़-मरोड़ किसी हद तक क्षम्य है, पर उसकी अधिकता

न होनी चाहिए। कविता के उपयुक्त जैसी भाषा का ऊपर उल्लेख किया गया है, व्रजभाषा उसी कोटि की भाषा है।''

भाव

भाषा-संबंध में इतना ही पर्याप्त होगा। अब भावों के संबंध में विचार कीजिए। भाव मनुष्य के हृदयस्थल से उद्भूत होते हैं। उनके ऊपर हृदय के संस्कारों की पूर्ण छाया रहती है। और हृदय पर परिस्थिति का पूर्ण प्रभाव पड़ता है। जो भाव चिर-चिंता से पीड़ित मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होंगे, वे निश्चिंत व्यक्ति के हृदय में जागृत होनेवाले भावों से भिन्न होंगे। जो भाव दीन-दुखी के द्रवित हृदय-देश में उत्पन्न होंगे, वे सर्वसाधन-समन्वित सुखी के भावों से नहीं मिल सकते। उसी प्रकार पराधीन, परतंत्र और परावलंबी मनुष्य के भावों में और स्वाधीन, स्वतंत्र एवं स्वावलंबी मनुष्य के भावों में अंतर होगा। जिस प्रकार किसी व्यक्ति की वैयक्तिक परिस्थिति उसके भावों पर प्रभाव डालती है, उसी प्रकार किसी जाति या समाज या मनुष्यसमूह-मात्र की किसी समय-विशेष की परिस्थिति उस जनसमाज के भावों पर, विचारों पर अथवा साहित्य पर अपना प्रभाव डालती है।

यदि किसी समय समाज में व्यक्तित्व की प्रधानता होगी, तो उस समय का साहित्य व्यक्तियों के आदर्श उपस्थित करेगा। यदि समष्टिवाद की प्रधानता है, तो साहित्य प्रत्यक्षतः समष्टिवाद से प्रभावान्वित परिदर्शित होगा। यदि समाज में क्रांति हो रही है, अपने-अपने अधिकारों अथवा स्वत्वों के रक्षणार्थ भयंकर उथल-पुथल मच रही है, तो उस समय के साहित्य में इन क्रांतियों का प्रत्यक्ष प्रदर्शन होगा। यदि राजा और प्रजा के संघर्ष किसी समय में बलवान् हैं अथवा गृहयुद्धों की प्रबलता है, तो साहित्य-क्षेत्र भी इन्हीं विचारों से परिप्लावित होगा। साहित्य समाज की दशा का दर्पण-मात्र होता है।

परिणामतः साहित्य का संबंध समाज से है, भाषा से नहीं। भाषा तो भावों के व्यक्तीकरण का माध्यम-मात्र है। किसी भी भाषा में रचे गए एक ही समाज की एक समय की परिस्थिति का चित्र एक ही-सा होगा। चाहे वह वेदवाणी हो या देववाणी या व्रजवाणी चाहे खड़ी, पड़ी या गढ़ी बोली हो। हाँ, किसी भाषा की पूर्णता और उसको व्यक्त करने की तुलनात्मक योग्यता वर्णन को अधिक अथवा न्यून रुचिकर बना सकते हैं, परंतु भावों का परिवर्तन भाषा की शक्ति के बाहर का काम है। ऐसी परिस्थिति में किसी भाषा के साहित्य से उस भाषा-भाषिणी समाज के साहित्य का ही बोध होता है।

हिंदी के प्रारंभकाल में जब कि चंद, जल्हन, नरपति प्रभृति राजकवि लोग अपना एकछत्र राज्य स्थापित किए हुए थे, व्यक्तित्व प्रधान था। और उस समय के काव्य और ग्रंथादिकों में व्यक्तित्व की प्रधानता पाई जाती है। पृथ्वीराज, आल्हा, ऊदल, बीसलदेव, हम्मीर आदि उस युग के पात्र थे।

बाद को यवन-प्रवेश प्रारंभ हुआ और भारतीय व विदेशी संस्कृति में संघर्ष होने लगा। हिंदू-संस्कृति का ह्रास यहीं से प्रारंभ हुआ और उसके पुनर्जीवन प्रदानार्थ धर्मप्रचारक उत्पन्न होने लगे और उनकी रचनाएँ उनके उद्देश्यपूर्ति का साधन बन गईं। विशेषतः यह साहित्य संस्कृत में था, तथापि हिंदी में भी यह धारा बह चली थी, और गोरखनाथ, रामानंद, कबीर, विद्यापति, चरणदास और नानक उस समय के साहित्य-संप्रवर्तकों में से थे।

धार्मिक संघर्षण के काल ही में मतप्रवर्तक जन्म लेने लगे और श्रीयुत वल्लभाचार्य व चैतन्य स्वामी ने अनन्य भक्ति का प्रचार किया। और उस समय के सूरदास-नंददास आदि अष्टछाप के सुकविगण इस शाखा को सींचने लगे। यह शाखा इतनी फली-फूली कि हिंदी-साहित्य पर इसका स्थायी प्रभाव पड़ा और साहित्य में जान पड़ गई। मीराबाई की अनन्यता इसी युग का फल है।

सख्य संप्रदाय की भक्ति-संबंधी कविता का प्रवाह बहुत बढ़ गया था, जिसके परिणामस्वरूप अभक्तजनों ने साधारण शृंगाररस के चरित्रचित्रणों में कृष्ण को प्रधान नायक बनाकर अपना कार्य किया।

यकायक तुलसीदास ने इस प्रवाह को रोककर रामभक्ति की ओर प्रवाहित किया और अपनी तीव्रतम लेखनी की धार से युगपरिवर्तन कर दिया। समाज के दुराचार कुसंस्कारों की इतनी प्रबलता हो गई थी कि उसके दूरीकरण के लिये तुलसीदास ऐसे सफल कवि की नितांत

आवश्यकता थी । यह अकबर के शासनकाल का समय था । इस समय में हिंदू और मुसलमानों का कुछ-कुछ मतैक्य और स्वरैक्य हो गया था, मुसलमानों को बसे हुए भी सदियाँ बीत गई थीं । अतः साहित्य-क्षेत्र में भी वही स्वरैक्य दिखलाई पड़ा । अकबर की रचना भी हिंदी में होने लगी । रहीम अपनी सूक्तियों से हिंदू-संस्कृति में प्रभाव डालने लगे । रसखान तो व्रजचंद के चरण-रज-चुंबन को चंचल हो उठे । केशवदास सूर के प्रभाव से प्रेम व शृंगार में रत हुए और तुलसी के प्रभाव से रामभक्ति को सम्हाला ।

फिर दोनों जातियों में अविश्वास व अनबन फैलने लगी और काट-छाँट होने लगी । औरंगज़ेब व शिवाजी के दाँव-पेंच चलने लगे और भूषण की कविता को जातीयता के जागृत करने का अवसर प्राप्त हुआ । यह समय था पद-दलित हिंदू-जाति के उत्थान का और विजयिनी यवन-जाति के मद चूर्ण होने का । अतः वीर-काव्य के लिये अनुपम उपयोगी अवसर था । भूषण के अतिरिक्त लाल आदि कवियों ने भी अपना चमत्कार दिखाया ।

बाद को जैसी अव्यवस्था भारतीय इतिहास में रही, वैसी ही साहित्य-क्षेत्र में भी रही । अब जब कि राजनैतिक क्षेत्र में प्रबल आंदोलन हो रहे हैं, तब उसी ओर साहित्य का प्रभाव बह चला है । और उसी प्रकार स्वामी दयानंद के काल में सामाजिकसुधार-संबंधी साहित्य की वृद्धि हुई थी ।

हिंदी-भाषा-भाषिणी समाज की उथल-पुथल का सूक्ष्म निदर्शन ऊपर किया गया है । इससे यह प्रकट होता है कि बेचारी व्रजभाषा के ऊपर कुभावों का जो लांछन लगाया जाता है, वह निराधार है । जितनी ही व्रजभाषा इसके लिये उत्तरदायी है, उतनी ही हिंदी की अन्य उपभाषाएँ भी हैं । स्पष्टतः सीतल का गुलज़ारचमन, बिहारचमन व आनंदचमन क्या खड़ीबोली की कविता नहीं है ? उनमें क्या वे ही भाव नहीं उपस्थित हैं, जिनके लिये व्रजभाषा के माथे धूल पड़ रही है और आजकल के युग में क्या गिरिधर, दीनदयाल, भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र, प्रेमघन, पूर्ण, प्रतापनारायण व व्रजभाषा-कोकिल सत्यनारायण कविरत्न की कविताओं में विविध आधुनिक विषयों का विवेचन नहीं है, जो किसी भी खड़ीबोली की कविता में प्राप्त हो सके ? उदाहरणों से निबंध की कलेवरवृद्धि होगी, अतः हम उन्हें उपस्थित नहीं करते । हम समझते हैं, त्रिपाठीजी ने इन कवियों के ग्रंथों का अवलोकन अवश्य किया है । त्रिपाठीजी का कहना है कि व्रजभाषा की कविता का क्षेत्र बहुत संकुचित है, तिस पर भावापहरण तो अधिकता से प्राप्य है । यही नहीं, आप कहते हैं कि व्रजभाषा-साहित्य में निरी चोरी है ।

उत्तर में निवेदन है कि कवि-हृदय संकुचित न होना चाहिए, भावों का क्षेत्र भले ही संकुचित हो । यही कारण है कि व्रजभाषा-साहित्य में एक ही विषय पर प्रतिभावान् कवियों ने गहरे-गहरे गोते लगाए हैं, और नए-नए रत्न उपस्थित किए हैं । आधुनिक काल में कितनी खड़ीबोली की कविताएँ प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में नहीं निकलतीं, जिनमें भावैक्य नहीं होता ? कौन-सा कवि है, जिसने "आँसू" न बहाए हों, "ओस" न चाटी हो ? चरख़ा और खद्दर भी प्रधान विषय हो रहे हैं । अब नमक का प्रश्न उपस्थित है, तो देखिएगा, कितनी नमकीन कविता बन जायगी । परंतु ये कविताएँ स्थायी साहित्य में स्थान नहीं पा सकती हैं । प्रत्युत व्रजभाषा की वे कविताएँ स्थायी साहित्य का अनिवार्य अंग हैं ।

इस संबंध में मैं पं० कृष्णविहारी मिश्र की उक्ति का उद्धरण करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता । आप मतिराम-ग्रंथावली की भूमिका के पृष्ठ १३ पर लिखते हैं—

"गोपी-उद्धव-संवाद कभी पुराना नहीं हो सकता । अन्य ऐसी घटनाएँ उसके स्थायित्व को पा नहीं सकतीं । कविता को विकसित करनेवाली विशिष्ट घटनाएँ संसार में थोड़ी ही मिलती हैं । यदि ध्यान देकर देखा जाय, तो मालूम पड़ेगा कि व्रजभाषा के कवियों ने जिन-जिन विशेष घटनाओं को बार-बार दुहराया है, उनमें रमणीयता उत्पन्न करनेवाली सामग्री अत्यधिक भरी हुई है । ऐसी घटनाएँ कभी पुरानी नहीं हो सकती हैं । उनका संबंध किसी समय-विशेष से नहीं है । वे सभी समय में जीती-जागती नेत्रों के सामने नृत्य करती हुई मौजूद हैं । माना कि ऐसी घटनाएँ थोड़ी हैं, परंतु कविता के लिये तो भरपूर उपयुक्त हैं । व्रजभाषा-

कविता में थोड़े विषयों पर बार-बार उन्हीं का वर्णन पाए जाने का यही रहस्य है। राधाकृष्ण की लीलाओं के ही अधिक वर्णन पाए जाने का कारण एक तो प्रेम-भक्ति की रमणीयता है तथा वृंदावन का कृष्ण-जीवन गोप-जीवन की मनोरम झलक भी दिखलाता है। विद्वानों का मत है कि यह जीवन नितांत सरल, निर्दोष और कुटिलता-शून्य है।......बस व्रजभाषा-काव्य में इसीलिये राधाकृष्ण के दर्शन मिलते हैं।"

इस उद्धरण से त्रिपाठीजी को यह भी ज्ञात हो जायगा कि व्रजभाषा में व्रजचंद्र कृष्ण और व्रजरानी राधा के क्यों दर्शन होते हैं और उसमें क्यों नहीं इटली के मिलन के पात्रों का सन्निवेश होता है।

इस संबंध में यह भी कह देना उचित होगा कि हिंदी के काव्य विशेषतः हिंदू-संस्कृति से संबंध रखते हैं, और उनका आधार हिन्दू-सभ्यता के आधार वेद-शास्त्र-पुराण आदिक हैं। उनकी ही गाथाओं का मंथन होता रहता है, चाहे कविता खड़ीबोली में हो, चाहे व्रजभाषा में। खड़ीबोली का एकमात्र महाकाव्य "प्रियप्रवास" क्या है? वही कृष्णराधा का गुणगान, वही "गोपी-उद्धव-संवाद" का कथा-कलाप। खंड-काव्य "जयद्रथवध", "मेघनादवध" कहाँ की नई घटनाएँ हैं? सब पुराने ही ग्रंथों का परिणाम हैं। "विरहिणी व्रजांगना" और 'वनवैभव' क्या हैं? यह सब देखते हुए भी बेचारी व्रजभाषा को कलंकित करना कहाँ तक न्यायपूर्ण है?

कृष्ण की बाँसुरी से न-मालूम आजकल कितने अपनी हृद्-तंत्री को निनादित नहीं करते हैं। वही कवींद्र रवींद्र की "वीणा" बनी है। उसी को त्रिपाठीजी अब उनके अलबेले चेले रहस्यवादियों के पास बतलाते हैं। उसी पर "पंत" जी ने गुनगुनाया है।

अब भाव-अपहरण व चोरी के लांछन देखिए। नवीन कवियों के विषय में यह अधिकतः सत्य बैठते हैं। वे किसी भी भाषा के कवि क्यों न हों, यह सब जगह प्राप्त हैं। यह मैं मानता हूँ कि खड़ीबोली में इस प्रकार के पर्याप्त प्राप्त उदाहरणों को उपस्थित करके हम व्रजभाषा के आक्षेप को नहीं मेट सकते, तथापि यह अवश्य दिखला सकते हैं कि त्रिपाठीजी का आक्षेप पक्षपातपूर्ण है। और बेचारी व्रजभाषा ही इसकी दोषी नहीं है। अच्छे भावों को अपनाने का प्रयत्न स करते हैं। होते-होते यह अपनाने का ढंग इतना बि गया है कि वह नक़ल ही हो गई है। हम लोग इस नक़ल को अपने नित्य नैमित्तिक कार्यों में, रोज़ी-रोज़गार में, खाने-पीने में, पहनने-ओढ़ने में, बोलने-चालने में भी अपनाने लगे हैं। इसका बड़ा भयंकर परिणाम हुआ है। परंतु कविता-क्षेत्र की यह नक़लबाज़ी इतनी नहीं बढ़ी है, जितनी अब गद्यक्षेत्र में प्रबल दिखाई पड़ती है। जिनके पास पुराने पत्रों की फ़ाइलें हैं, उन्होंने उनके पत्र पलटे और प्रतिमास उलट-फेर कर कुछ-न-कुछ भेज दिया।

आप देखें कि खड़ीबोली में भी वह चोरी या सीना-ज़ोरी है या नहीं, जिसके कारण त्रिपाठीजी व्रजभाषा पर नाराज़ हैं।

विरहिणी व्रजांगना के पृष्ठ १ पर तुलसीदास की चौपाई का साफ़ अपहरण है या नहीं। त्रिपाठीजी देखें—

"जो जन जिसे प्यार करता है, जाता है वह उसके पास"

(मधुप)

"जाहि जाहि पर सत्य सनेहू, सो तिहि मिले न कछु संदेहू।"

(तुलसी)

तिस पर भी मधुपजी "सत्य-सनेहू" कहाँ ला पाए, और "न कछु संदेहू" की दृढ़ और निश्चयात्मक उक्ति कहाँ है!

"उषा" के पृष्ठ २७ पर देखिए, "प्रिय-प्रवास" के प्रथम पद को पूर्णतः प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है। एक ओर प्रातःकाल का वर्णन है, दूसरी ओर सायंकाल का।

"प्राचीं-गगन-देश था लोहित हो चला"

(उषा)

"दिवस का अवसान समीप था; गगन था कुछ लोहित हो चला"

(प्रियप्रवास)

आगे देखिए, "शंकर" के अतिप्रसिद्ध छंद के भावों का कैसा उदय हुआ है (उषा पृष्ठ ३१)

"डर था, विरहिणि, विरहानल की लपट से,
चतुरानन की सृष्टि झुलस जावे नहीं"

(उषा)

"काहू विधि विधि की बनावट बचेगी नाहिं,
जो पै वा वियोगिनि की आह कढ़ि जायगी।"

(शंकर)

और देखिए, पृष्ठ ४३ पर जो माजरा है, उसके लिये तो बस यही कहना पड़ेगा कि "गिरा अनयन नयन बिनु बानी।"

"उसे बता सकती है केवल आँख ही।
पर उस आँख निगोड़ी को भी तो अहो।
विधि ने वर्णन साधन जिह्वा दी नहीं।
फलतः वह बेचारी भी असमर्थ है।"
(उषा)

"गिरा अनयन नयन बिनु बानी"
(तुलसी)

यही भाव खड़ीबोली के दूसरे कवि सीतल का भी देखिए—

'लोचन बिन गिरा, गिरा बिन लोचन,
क्योंकर सीतल बरनि सकै !'

गिरा उतनी असमर्थ नहीं है, जितने कुसुमजी जो एक चौपाई के १ चरण के भाव को ४½ लाइनों में भी समाप्त न कर सके।

आगे पृष्ठ ४४ पर देखिए—

"आई थी जो पूत प्रेम की हाट में;
हृदय मोल लेने, यह लो, वह स्वयं ही,
बिक जाने को सहसा उद्यत हो गई।"
(उषा)

क्या यह विहारी का साफ़ भावापहरण नहीं है?—

"आई जामन लेन को नेहै चली जमाय।'
(विहारी)

और देखिए, पृष्ठ ५७ पर—

"मेरी आँखों का तारा वह चाँद से मुखड़ेवाला प्यारा बेटा है कहाँ"
(उषा)

"प्रिय पति वह मेरा प्राणप्यारा कहाँ है।
वह हृदय हमारा नेत्रतारा कहाँ है।"
(प्रियप्रवास)

देखिए, मैथिलीशरणजी गुप्त क्या कहते हैं—

"श्रवणों में पड़ने लगी पद-नूपुर-झंकार,
मानो रतिपति की हुई ध्वनित धनुष-टंकार"
(गुप्तजी)

और तुलसीदास के इन चरणों से मिलाइए—

"कंकण किंकिणि नूपुर धुनि सुनि"
मानहुँ मदन दुंदुभी दीनी"
(तुलसी)

खड़ीबोली की कविता में से मैंने थोड़े-से उदाहरण उपस्थित किए हैं और यह पर्याप्त होंगे। अब त्रिपाठीजी के ही काव्य में देखिए जो ख़ुद व्रजभाषा की आँख में चोरी व अपहरण की फूली बतलाते हैं और अपनी प्यारी खड़ीबोली की आँख में सीनाज़ोरी करके जो टेंट कर दिया है, उसे नहीं देखते।

मानसी के पृष्ठ १२ पर "श्याम की शोभा"-शीर्षक में देखिए—

श्याम के है अंग में तरंगित अनंग द्युति
नित नित नूतन अकथनीय बात है।

……………………………………

……………………………………

दृग से अधर तक दृष्टि न पहुँच पाई,
दृग में उधर आई नई करामात है।
जैसे-जैसे … निहारिए निकट जाके,
बार-बार देखी अनदेखी होती ज्ञात है।

कहाँ "नित नूतन" का समय और कहाँ "दृग से अधर तक दृष्टि न पहुँच पाई" का समय? ख़ैर, अब आप संजीवन भाष्य में विहारी के "भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर" की व्याख्या में 'चित्र क्यों न खिच सका' का वर्णन पढ़िए और त्रिपाठीजी की कविता को देखिए।

आगे मानसी के ही पृष्ठ ३५ पर देखिए। "हार में जीत है"-शीर्षक—.

"सिर कटकर भी जो उड़ा उस दीप की देखो दशा।
दब रहा था जो अँधेरे के निरंतर भार से॥
पिस गई तब प्रेमिका के हाथ चढ़ चूनी गई।
मान मेंहदी को मिला है प्राण के उपहार से॥
तन दिया, पीसा गया अंजन बना तब काम का।
तब उसे रक्खा दृगों में प्रेमियों ने प्यार से॥
प्रेमपथ में दुःख में सुख हार में ही जीत है।
भक्त को भगवान् मिलते हैं हृदय की हार से॥"

अब आपके मित्र श्रीगोपालशरणसिंह की "माधवी" देखिए और "हास में विकास" पढ़िए—

रहता घिरा ही हुआ घोर कठिनाइयों से,
निशिदिन जीवन का मंजु उपहार है।
किसके गले में पड़ जाता जगतीतल में,
बारबार हार के बिना ही जय हार है।

कौन जानता है इस छोटी बात को भी नहीं,
दुःख के ही बाद सुख मिलता अपार है।
होता है विकास का विकास ह्रास से ही सदा,
जानता प्रकाश को अपार अंधकार है।

समसामयिक कवियों में बहुधा भावसाम्य हो ही जाता है। इसमें बेचारी खड़ीबोली को दोष ही क्या है! आगे पृष्ठ ४३ पर नीति के दोहे दिए गए हैं—

"नारिकेल सम हैं सुजन, अंतर दयानिधान।
बाहर मृदु भीतर कठिन, शठ हैं बेर समान॥"

इसे वृंद कवि के 'बेर बादाम अंगूर'' वाले दोहे से मिलाइए।

पथिक के पृष्ठ ५२ पर देखिए—स्वप्नदर्शन का वर्णन बिलकुल पुराना है।

"मिलने को उठती हूँ सौतिन आँख प्रथम उठ जाती"
और "सोकर खोती है दुनिया में हाय जागकर खोती"

अब इनको नीचे के छंदपाद से तुलना कीजिए—

"जौलौं वह मूरति निहारि भरि नैन देखौं,
तौलौं नैन छोड़ि नींद बैरिन बिदा भई।"

और—

'बीरन और तो सोय के खोवत,
मैं सखि प्रीतम जागि गँवाए''।

और देखिए पृष्ठ २ (पथिक)

"अंधे को दृग, महारंक को विश्वसंपदा सारी"

और तुलसीदास के निम्न छंदपाद पढ़िए—

"रंक धनद पदवी जनु पाई"
और "मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए"

त्रिपाठीजी, ब्रजभाषा बिलकुल चोरी है, मगर यहाँ तो चोर के घर में भी छिछोरा लगा है। ठाकुर का छंद अक्षरशः उतार दिया गया। देखिए—

"कहते थे तुम कोमलता नीरज की, ज्योति रतन की।
मोहकता शशि की, गुलाब की सुरभि, शांति सज्जन की॥
रति का रूप रंग कंचन का, लेकर स्वाद सुधा का।
विरचा है विधि ने मुख तेरा सुख लेकर वसुधा का॥
(पथिक पृष्ठ ८)

आप ही की कविता-कौमुदी प्रथम भाग पृष्ठ ३८२ में ठाकुर का वर्णन देखिए—

"कोमलता कंज ते, गुलाब ते सुगंध लैके,
चंद्र ते प्रकास कियो उदित उजेरो है;
रूप रतिआनन ते, चातुरी सुजानन ते,
नीर लै निवानन ते कौतुक निवेरो है।
... ...
... ...
कंचन को रंग लै, सवाद लै सुधा को,
वसुधा को सुख लूटि कै बनायो मुख तेरो है।

उपर्युक्त उद्धरणों से पाठकों को ज्ञात हो गया हो कि चोरी और सीनाज़ोरी बेचारी ब्रजभाषा ही में नहीं है, प्रत्युत त्रिपाठीजी की प्यारी खड़ीबोली में भी चोरी का माल गिरफ़्तार हुआ है। और त्रिपाठीजी स्वयं उसके मुल्ज़िम हैं। किंतु मैं तो यह पहले ही कह चुका हूँ कि यह भाषा-विशेष का दोष नहीं है, यह प्राचीन कवियों में सब जगह पाया जाता है।

नायिकाभेद

त्रिपाठीजी ने अपना रोष ब्रजभाषा की कविता में उपस्थित नायिकाभेद के ऊपर भी प्रकट किया है और उसे सब अनर्थ की जड़ बतलाया है।

हिंदीकाव्य में यह कला का अंश संस्कृतसाहित्य द्वारा उपार्जित किया गया है। और प्रत्येक भाषा में जहाँ नर-काव्य का विवेचन हुआ है, वहाँ पात्रों के चरित्रों का चित्रण किया गया है। संस्कृत-काव्य कला की दृष्टि से बहुत ऊँचा रहा है और उसके अंदर कला का सूक्ष्म विवेचन हुआ है। नायक-नायिकाओं के भेद व उपभेद, उनके लक्षण व चरित्र को कवि अपने ज्ञान व अनुभव से प्रकट करता है। यह कला का अंश है और इसका प्रस्फुटन जितना अच्छा संस्कृत और हिंदी काव्य में हुआ है, और कहीं नहीं हुआ। मनुष्य-समाज के लिये यह बड़े उपकार की वस्तु है और हिंदी साहित्य इसके बल से गौरवान्वित है। कविता मनुष्य-मात्र की सम्पत्ति है और प्रत्येक विचारावलंबी मनुष्य का इस पर समअधिकार है।

रही त्रिपाठीजी की बात, उसके संबंध में तो यही कहना है कि आजकल के जो नए मुल्ला होते हैं, वे प्याज़-ही-प्याज़ खाते हैं और अल्लाह-ही-अल्लाह करते हैं। सुधारवाद की ओर जब दृष्टि पड़ी है, तो उन्हें पुरानी चीज़ें बुरी लगने लगी हैं। बहुत तो बुरी हैं ही और बहुत-सी अपनी समझ में न आने के कारण भी बुरी प्रतीत होती हैं। यही कारण है कि कला के सूक्ष्म विवेचन को न समझनेवाले उसका मखौल उड़ाते हैं

परंतु "भूषन बसन कीन्हें व्याल गल खाल के तौ,
सुबरन साल को न पैन्हिबो पलटि गो।"

आप कहते हैं कि हिंदी-साहित्य में स्वकीयाओं का अभाव और परकीयाओं का ही प्रभाव है। मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप किसी भी कवि के इस विषय के ग्रंथ देखिए, उसमें सभी भेद-उपभेदों का वर्णन पावेंगे और उनके उदाहरण मिलेंगे। केवल परकीयाओं का र्णन नहीं किया गया है, जैसा कि त्रिपाठीजी मानते जब संसार स्वकीया और परकीया दोनों ही उपस्थित हैं, तो कवि अंधे नहीं हैं, जो कुछ को देखें और कुछ की ओर से आँख फेर लें।

देखनेवालों को तो हिंदी के व्रजभाषा-साहित्य में वेश्याएँ तक स्वकीया मिलेंगी, लेकिन जो परकीयाओं को ही देखें, उन्हें क्या कहा जाय। देखिए, प्रवीणराय पातुरी की उक्ति—

"आई हौं बूझन मंत्र तुम्हें निज स्वासन सों सिगरी मति गोई,
देह तजौं कि तजौं कुलकानि हिए न लजौं लजिहैं सब कोई;
स्वारथ औ परमारथ को पथ चित्त बिचारि कहौ तुम सोई,
जामें रहै प्रभु की प्रभुता और मेरो प्रतिव्रत भंग न होई।"

यह व्रजभाषा-साहित्य में ही है कि यहाँ की वेश्याएँ तक पातिव्रतधर्म के लिये चिंतित हैं।

उपमा व अतिशयोक्ति

व्रजभाषा-साहित्य-सरोवर से त्रिपाठीजी को इस प्रकार घृणा हो गई है कि उसके जीवजंतु उन्हें कीड़े-मकोड़े मालूम होते हैं। उसके सुभग-सरसिज मलयज-सुरभि समीर उन्हें ग्रीष्म के भीष्म-दाहक पवन के झकोरे प्रतीत होते हैं। उसके पद्मपराग उन्हें विषवत् प्रतीत होते हैं।

और तो और, आपको उसकी उपमाएँ तक अनुचित प्रतीत होने लगीं और यह हवा यहीं नहीं रुकी, व्रजभाषा-काव्य में अलंकारों का बाहुल्य भी आपको बुरी तरह खटका है। क्यों न हो, जब खड़ीबोली की खड़खड़ाहट में परुषावृत्ति के अधीन अलंकार न जम सके, तो उनका अड्डा हिंदी-क्षेत्र में से ही निकालना चाहिए। "ये तो खट्टे अंगूर" हो गए।

आपने व्रजभाषा-साहित्य में प्रयुक्त उपमाओं के औचित्य पर सूक्ष्मतः विचार नहीं किया। इस साहित्य में दी गई वे उपमाएँ हैं, जिनको बड़ी सूझवाले महाकवियों ने सार्थक समझकर ही प्रयुक्त किया था। उनकी सत्यता का प्रमाण यही है कि आधुनिक कवि भी उन्हें उसी प्रकार सत्य समझते हैं और खड़ीबोली के कवि आधुनिक काल की बहुज्ञता का ठेका लिए हुए भी उनका ही अनुकरण करते हैं। वे भी त्रिपाठीजी के बतलाए मार्ग का अनुसरण कर गजगामिनि या हंसगामिनि को मोटर-मटकनि या रेलरपटनि नहीं कहते। केहरिकटि को वे अब कुत्ताकटि नहीं कहते, कुच-कलश या कुचगिरि को वे रोमराज्य के पिरामिड (Pyramid) देख-जानकर भी, उनसे उपमा नहीं देते, कपोलकंठ को वे लोग उष्ट्रकंठी नहीं कहते। पिकबयनी को दादुरवचनी नहीं कहते। कीरनासिका की वे प्रायद्वीप (Peninsula) और अंतरीप (Cape) से उपमा नहीं देते। मृगनयनी को पेविल या टेलिस्कोप-नयनी नहीं बताते। आदि-आदि। औरों की क्या स्वयं त्रिपाठीजी ने ही इन उपमाओं का दिल खोलकर प्रयोग किया है। "पर उपदेश कुशल बहुतेरे"।

अलंकारों में उपमा के बाद यदि किसी पर आपकी बन पड़ी है, तो अतिशयोक्ति है। स्वभावोक्ति और अतिशयोक्ति के संबंध में बहुत काल से साहित्यिकों में मतभिन्नता चली आ रही है। कोई स्वभावोक्ति पसंद करते हैं, कोई अतिशयोक्ति। एक के रुचिकर होने से ही दूसरी त्याज्य नहीं हो जाती। फिर अतिशयोक्ति तो कविता की जान है। प्रभाव डालने के लिये यदि कोई शक्ति कविता के हाथ में है, तो वह अतिशयोक्ति ही है। इस अलंकार के इसी गुण से मोहित होकर खड़ीबोली के कवियों ने इसके प्रयोग की अतिशयोक्ति की है। त्रिपाठीजी भी अतिशयोक्ति से बचे नहीं हैं। उनकी "दिमाग़ी ऐयाशी" और यह निबंध अतिशयोक्ति के उत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं। आगे के उदाहरणों में आप देखेंगे कि खड़ीबोली के कवियों ने उन उपमाओं को अपनाया है या नहीं, और अतिशयोक्ति का प्रयोग किया है या नहीं।

उषा (पृष्ठ १८) पर उपमाओं का सादृश्य देखिए—

"मस्तक पर भी काली नागिन लोटती"
"उन्नत हिम पर्वत-सा भव्य ललाट था,
जिस पर हिम श्री थी शोभा दे रही"।
"वंकिम-भ्रू-प्रहरण-पालित युग नेत्र से,

थे कुरंग भी आँख लड़ा सकते नहीं ''।
''............................... ,
अधर देखकर बिम्बाफल भी म्लान था ''
''दशन प्रमुख दाड़िम कौड़ी के तीन थे ,
.... ''
'हंसावलि उसकी मस्तानी चाल से ,
चलने का लेती संतत उपदेश थी ''।

उषा (पृष्ठ ४०) पर अतिशयोक्ति देखिए—

''...............................रत्नजटित थीं भित्तियाँ ।
इतनी स्निग्ध कि जिन पर दिनकर कर-निकर फिसले
पड़ते थे चढ़ने के साथ ही ।
ज्यों रमणी के पिच्छिल मृदुल कपोल पर ;
दृष्टि फिसल पड़ती है सहसा पहुँचते ।

सीतल का गुलज़ारचमन पृष्ठ ३ देखिए—

''उसको दो दीन दरश होवें देखे जो तेरी कमर कहीं''

पृष्ठ ५ पर और देखिए—

''मालूम हुआ यह देखा है दिलवर का वाजूबंद कहीं''
''जो शशी-नवग्रह एक साथ आवें तो उपमा बने नहीं''

उपमा में त्रिपाठीजी की ''नारी'' की उपमाएँ पृष्ठ २१ पर देखिए—

''अलि अलकावलि, गुलाब गाल, कंज दग,
किंशुक-सी नाक कोकिला-सी किलकारी है ।
पल्लव अधर कुंद रदन, कपोत ग्रीव,
श्रीफल उरोज, रोमराजी लता प्यारी है ।
वापी नासि, कदली जघन, रंग चम्पक-सा,
मृदुता-सिरसि-सी सुरभि सुखकारी है ।''
... ...
... ...

क्यों साहब, यह किसके घर की स्त्री का वर्णन है ? आपको क्या पड़ी थी दूसरे की फुलवारी के वर्णन करने की ?

अतिशयोक्ति देखिए, पथिक के पृष्ठ ७ पर—

''सौ सुधांशु लाखों कमलों से मुख है मंजु तुम्हारा''

क्यों त्रिपाठीजी, क्या यह संभव है कि सौ चन्द्रमा और अगणित कमलों से भी तुम्हारा मुख मंजु हो ? यदि हाँ, तो ''कानन लौं अँखियाँ हैं तुम्हारी हथेली हमारी कहाँ लगि फैलिहैं'' क्यों असंभव है ? और क्यों साहब, यदि कोई कवि कृष्ण के उपर्युक्त कथन से आँख-मिचौनी खेलने को मना करता है, तो आप पूछते हैं कि तू क्यों परेशान है ? यदि ''मंडन''जी किसी स्त्री से जो पनघट पर पैर फिसल जाने से गिर गई थी और जिसे नंदलाल ने उठाकर खड़ा कर दिया था, कृष्णचन्द्र को उनके प्रत्युपकार में चिरंजीवी रहने का आशीर्वाद दिलाते हैं, तो आप क्यों उन पर मिथ्याभाषण और व्यभिचार-प्रचार का कलंक लगाते हैं ? स्त्रियों का ज़िक्र ही इस प्रकार क्या व्यभिचार का प्रचार माना जायगा ?

और देखिए, ''शंकर'' आपकी खड़ीबोली में किसकी माँग का विज्ञापन कर रहे हैं ? यह वही ''शंकरजी'' तो हैं न, जो बेचारी ब्रजवाणी में 'काहू विधि विधि की बनाई बचैगी नाहिं जो पै वा बियोगिनि की आह कढ़ि जायगी' लिखकर उसके कलेवर को कलंकित कर चुके हैं ! क्यों त्रिपाठीजी ?

' कज्जल के कूट पर दीपशिखा सोती है, कि
श्याम-घन-मंडल में दामिनी की धारा है।
मेदिनी के अंक में कलाधर की कोर है, कि
राहु के कबंध पै कराल केतु तारा है।
शंकर कसौटी पर कंचन की लीक है, कि
तेज ने तिमिर के हिए में तीर मारा है।
काली पाटियों के बीच मोहिनी की माँग है, कि
ढाल पर खाँडा कामदेव का दुधारा है।''

सीतलजी ने भी जो खड़ीबोली के आदि सफल कवि कहे जाते हैं, अपने लालविहारी के लहरिया और पगड़ी का ही वर्णन किया है । न-मालूम उन्हें हैट-बूट, चश्मा-नेकटाई-कालर, कोट-पेंट की क्यों न सूझी ? उनके तो क़दम-क़दम पर कलेजे में घाव लगे हैं, कहीं-कहीं पर तो वे आघातों से बेकस हो गए हैं ।

यह उदाहरण इन विषयों के पर्याप्त होंगे । और कविता-प्रेमी पाठकों को यह नित्यप्रति देखने को मिलते होंगे।

उपसंहार

अंत में हमें यह निवेदन करना है कि कविता का ध्येय भूखों को रोटी देना ही नहीं है, और न उसका ध्येय किसी संकुचित क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति ही करना है । काव्य मनुष्य-मात्र की सम्पत्ति है, और उसके अंदर मनुष्य-मात्र का हित भरा हुआ है, उसमें विश्वबंधुत्व के भाव चाहे उसके रचयिता के वैयक्तिक स्वार्थों पर ही क्यों न आघात करें । जितने ही विचार

विना उस्ताद के वैद्य-विद्या सिखानेवाला ग्रन्थ

चिकित्साचन्द्रोदय

सात भाग   लेखक—बाबू हरिदास वैद्य   संक्षिप्त सूची और मूल्य

पहला—इस भाग में वैद्यक-विद्या सीखनेवाले के आरंभ में जानने योग्य परिभाषाएँ, रोग पहचानने के तरीक़े, नाड़ी देखने की आसान विधियाँ और अरिष्ट ज्ञान आदि हज़ारों बातें लिखी । पृष्ठ-संख्या ३४० । मूल्य अजिल्द का ३) और सजिल्द का ३॥।)

दूसरा—इस भाग में ज्वर-चिकित्सा बड़े ही विस्तार से लिखी है । हिंदी क्या भारत की और भी किसी भाषा में ज्वर-चिकित्सा पर इससे अच्छा ग्रंथ नहीं है । न्यूमोनिया, टाइफाइड प्रभृति अँगरेज़ी ज्वरों की भी चिकित्सा लिखी है । इस भाग में ६०० सफ़े हैं । मूल्य अजिल्द का ५), सजिल्द का ५॥।)

तीसरा—इस भाग में अतिसार, संग्रहणी, बवासीर, पीलिया, कृमिरोग आदि का इलाज बहुत ही उत्तमता से लिखा है । सभी रोगों पर, दूसरे भाग की तरह, इसमें भी परीक्षित अमीरी और ग़रीबी नुस्ख़े लिखे हैं । इस भाग में ४१६ सफ़े हैं । मूल्य अजिल्द का ४।), सजिल्द का ५) है ।

चौथा—इस भाग में प्रमेह, धातुरोग और कमज़ोरी के निदान, लक्षण और चिकित्सा जिस ख़ूबी से लिखी है, उसकी तारीफ़ कर नहीं सकते । यह भाग कामशास्त्र का भी बाबा है । इसमें उपर्युक्त रोगों की चिकित्सा के सिवा नाना प्रकार के अपूर्व योग लिखे हैं । शेष में बंग, अभ्रक, सोना, चाँदी, मोती आदि की भस्में करने की निहायत आसान और आज़मूदा तरकीबें लिखी हैं । यह दूसरा संस्करण है । इसमें ६२२ सफ़े हैं । मूल्य अजिल्द का ४।), सजिल्द का ५) है ।

पाँचवाँ—इस भाग में साँप, बिच्छू, पागल कुत्ता आदि के काटने का इलाज, स्त्रियों के प्रदर आदि रोगों की चिकित्सा तथा राजयक्ष्मा का इलाज बड़ी ख़ूबी से लिखा है । इस भाग की हर घर में ज़रूरत है । पृष्ठ-संख्या ६३० । मूल्य अजिल्द का ५), सजिल्द का ५॥।) है ।

छठा—इस भाग में खाँसी, श्वास, ज़ुकाम, रक्तपित्त, अम्लपित्त आदि रोगों की चिकित्सा विस्तार से लिखी है पृष्ठ-संख्या ४१६ । मूल्य अजिल्द का ३॥), सजिल्द का ४।) है ।

सातवाँ—इस भाग में अपस्मार, उन्माद, वातरोग, हाथीपाँव, कोढ़ प्रभृति ४० रोगों की चिकित्सा चालीस हाफ़टोन चित्र देकर नए ही ढंग से लिखी है । यह भाग सबसे बड़ा है । पृष्ठ-संख्या १२११ । मूल्य अजिल्द का १०॥), सजिल्द का ११।) है ।

उत्तमता के प्रमाण

पहले भाग के तीन, दूसरे के तीन और चौथे के दो संस्करण हो जाना ही उत्तमता का काफ़ी सुबूत है । विश्वास न हो तो आप बतौर नमूने के केवल चौथा भाग मँगा देखें । अगर यह ग्रंथ हमारी लिखी तारीफ़ से सैकड़ों गुना अधिक होगा, तो आपको शेष छः भाग मँगाने ही होंगे ।

विशेष सूचना—सातों भाग सजिल्द का मूल्य ४०॥) और अजिल्द का ३५॥) है । एक साथ लेने से क्रमशः ६।-) और ५॥) कमीशन मिलेगा । १०) पेशगी भेजें और क़रीबी रेलवे-स्टेशन का नाम लिखें ।

अँगरेज़ी-हिंदी-शिक्षा ५ भाग

पहले भाग की पचास हज़ार और अन्य भागों की प्रायः बीस हज़ार प्रतियाँ निकल जाना ही इसकी उम्दगी का सच्चा सुबूत है । इस आदि अँगरेज़ी-शिक्षक से अच्छा इँगलिशटीचर और कहीं नहीं छपा । मूल्य पहले भाग का १) रु० । शेष चार भागों का दो-दो रुपया । कुल नौ रुपए । पाँचों भाग एक साथ मँगाने से सात रुपए लगेंगे । इस पर भी डाकमहसूल माफ़ । शीघ्रता कीजिए ।

पता—हरिदास ऐंड कंपनी, पो० बड़ा बाज़ार, कलकत्ता

कभी फ़ेल न होनेवाली तीस बरस की आज़माई हुई

वात-रोग और पेट के रोगों पर काम करनेवाली हुक्मी दवाएँ

बेकाम साबित करनेवाले को ५००) इनाम !

नारायण तैल

हमारा तीस साल का परीक्षित और विधि-पूर्वक तैयार किया हुआ "नारायण तैल" इसी से सारे भारत में ख़ूब ज़ोरों से बिकता है कि रोग का निदान ठीक होने से कभी बेकार साबित नहीं हुआ। हम दावे के साथ कहते हैं कि इससे अच्छा नारायण तैल और कहीं भी मिल नहीं सकता। इसके मालिश करने से अस्सी तरह के वात-रोग जैसे लक़वा, फ़ालिज, गठिया, बदन के किसी हिस्से का दर्द, सूनापन, जकड़न, शरीर सूखना, मुँह टेढ़ा होना वग़ैरह नाश हो जाते हैं। नीरोगी इसे सदा और ख़ासकर जाड़े में लगवाकर फलते-फूलते हैं। जिनके बदन में रूखापन हो, शरीर दुबला और कमज़ोर हो, चेहरे पर रौनक़ न हो, नामर्दी का-सा आज़ा हो, वे इसे कम-से-कम एक महीना लगवा देखें। इससे नीरोगियों का शरीर पुष्ट होगा, धातु बढ़ेगी, बदन और चेहरे पर रौनक़ आवेगी एवं कोई रोग पास न आवेगा। मूल्य आधपाव की शीशी का १॥), डाक-ख़र्च ॥)

कृष्णविजय तैल

इस तैल की परीक्षा तीस बरस से हो रही है। चमड़े या जिल्द के रोग नाश करने में यह अपना सानी नहीं रखता। शरीर में सूखी-गीली खुजली, फोड़े-फुंसी, दाफड़, दर्रोरे, चकत्ते, आतशक, उपदंश या गरमी के घाव, फोड़ों के घाव, सफ़ेद दाग़, कोढ़, भभूत, इंद्रिय पर की छोटी-छोटी फुंसियाँ, बालकों के बदन या सिर के फोड़े वग़ैरह-वग़ैरह चर्मरोग इससे निस्संदेह आराम होते हैं। जो काम आयडोफ़ार्म और कारबोनिक ऑयल नहीं कर सकते, वही यह करता है। बहुत क्या, सड़े हुए और कीड़े पड़े हुए घाव इससे आराम होते और गए हुए नाख़ून फिर निकल आते हैं। हर घर में एक पाव तैल रहना ज़रूरी है। बिना रोग गरमी में लगाने से तरी लाता और शरीर की रंगत सोने की-सी कर देता है। इसके साथ अगर हमारा "अर्क़ ख़ूनसफ़ा" भी पिया जाय, तो अठारह प्रकार के कोढ़ गारंटी के साथ नाश हो सकते हैं। दाम आधपाव का १), डाक-ख़र्च ।=)

अकबरी चूर्ण

हम लिख चुके हैं और फिर लिखते हैं कि मिथ्या लिखना हम घोर पाप समझते हैं। हमने वैद्यक और हिकमत की प्रायः सभी पुस्तकों का मक्खन निकाला, पर पेट के रोगों पर इस चूर्ण के समान दूसरा चूर्ण नहीं पाया। यह चूर्ण सम्राट्-कुल-तिलक शाहंशाह अकबर के लिये दर्जनों हकीमों ने सलाह करके तयार किया था। बादशाह के पेट का रोग इसी से नाश हुआ। हमें भी यह एक जगह मिल गया। हमनें तीस बरस में इसकी हज़ारों नहीं, लाखों शीशियाँ बेचीं। इसने सौ में सौ को फ़ायदा पहुँचाया। सच जानिए, आजकल के इश्तिहारी चूर्णों में कुछ भी नहीं। यह बेश-क़ीमत, लाजवाब और लासानी चूर्ण है। इससे पेट का कोई भी रोग खड़ा रह नहीं सकता। भूख न लगना, शुद्ध डकार न आना, पेट का भारी रहना, हवा न खुलना, पेट में गोला-सा फिरना, दर्द रहना, जी मचलाना, तिल्ली, जिगर बढ़ना, सभी रोग चंद रोज़ लगातार सेवन करने से आराम होते हैं। बिना रोग, भोजन के बाद ज़रा-सा खा लेने पर पेट हल्का रहता और भूख-पर-भूख लगती है। रात में रोज़ खा लेनें से कहीं का भी पानी नुक़सान नहीं करता। हर गृहस्थ और मुसाफ़िर को इस ज़ायक़ेदार चूर्ण की एक शीशी हर वक़्त पास रखनी चाहिए। बिना आज़मायश हमारी बात की सचाई मालूम नहीं हो सकती। एक बार हमें भी ठगाकर देख तो लीजिए। मूल्य छोटी शीशी का ॥), बड़ी का १), डाक-ख़र्च, पैकिंग ।=)

अग्निमुख चूर्ण

यह चूर्ण भी पेट के रोग नाश करने में अपना जोड़ नहीं रखता। सुस्वादु भी ख़ूब है। एक बार चाटने से बार-बार चाटने को दिल चाहता है। खाते ही पेट हल्का होता, भूख-पर-भूख लगती और दिल ख़ुश हो जाता है। कितने ही बरस तक परीक्षा करके बेचना आरंभ किया है। सफ़र में पास रखने से पेट के रोगों का ख़ौफ़ नहीं रहता। कैसा ही जी मचलाता हो, क़ै होती हो, हवा न खुलती हो, एक मात्रा खाते ही सब रोग काफ़ूर हो जाते हैं। मूल्य छोटी शीशी ॥) और बड़ी का १), डाक-ख़र्च ।=)

हरिवटी

इन गोलियों की तारीफ़ करना बेकार है। अतिसारनाशक हज़ारों दवाओं में से ये गोलियाँ सबसे उत्तम निकलीं, तभी तो बाबू हरिदासजी ने इनका नाम "हरिवटी" रक्खा। कैसा ही अतिसार हो, पतले दस्त आते हों, आँव और ख़ून गिरता हो, पेचिश और मरोड़ी हो—२ गोली खाते ही जादू का-सा तमाशा नज़र आवेगा। अगर दस्त लगकर बुख़ार चढ़ा हो यानी ज्वरातिसार हो, तो इन गोलियों से ज्वर और बुख़ार दोनों आराम होंगे। हैज़े के आरंभ में इनके देते ही हैज़ा शर्तिया आराम होता है। दाम ।।।) शीशी।

कर्पूरादि मरहम

सूखी-गीली खाज-खुजली, हर तरह के घाव, आग से जले घाव, बवासीर की जलन—ये सब इस मरहम से शर्तिया आराम होते हैं। दाम ॥) शीशी।

५००) रुपया इनाम

इस विज्ञापन में लिखी दवाओं में से किसी एक को भी अगर कोई सज्जन झूठी या बेकार साबित कर दें, तो कंपनी ऊपर लिखा हुआ इनाम देगी।

पता—हरिदास ऐंड कंपनी, २०१, हरिसन रोड, कलकत्ता।

व्यापक होंगे, उतना ही विचारों का संघर्षण होगा। उधर जितना ही क्षेत्र संकुचित किया जायगा, उतना ही व्यापक विचारों का विरोध होगा।

यदि कोई आततायी-समुदाय अपने काव्य द्वारा अपने समुदाय के दूसरों पर अत्याचार करने की उत्तेजना दे; दूसरी ओर यदि कोई पराधीन समुदाय किसी आततायी के पंजों से छुटकारा पाने के लिये अपनी मंडली को उद्बोधन करे—यदि धनी-समुदाय निर्धनों के रक्तशोषण के लिये उत्साहित किया जाता है और यदि निर्धन लोग धनियों को दीन बनाने के लिये प्रबोधित किए जाते हैं, तो कहाँ तक संसारव्यापी अशांति का अंत होगा और संसार का ध्येय शांति कैसे प्राप्त होगी।

कविता की परिभाषाएँ बड़े-बड़े विद्वानों ने की हैं। वे सभी माननीय हैं। एक महाशय कहते हैं कि कविता वह साधन है, जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ रागात्मक संबंध की रक्षा और उसका निर्वाह होता है। फिर त्रिपाठीजी जो कहें वही कविता मानी जाय और कुछ न मानी जाय। यह तो तभी संभव था, जब कविता की परिभाषा क़ुरान में होती और त्रिपाठीजी मुल्ला बनकर फ़तवा देते। आप ब्रजभाषा की कविता को तो कविता ही नहीं मानते, खड़ीबोली में भी भारत-भारत की पुकार आपको अरुचिकर है। नवीन पंथी छायावादियों की मूक हृदय की वेदना, और टूटी वीणा के राग में आपको दिवाला पिटता दिखलाई पड़ता है। फिर कविता बेचारी कहाँ है? ग्रामों में उसे पनाह मिली थी, सो उसे त्रिपाठीजी घेर लाए हैं।

मिथ्याभाषण का भी एक दोष है, जो ब्रजभाषा के कवियों के माथे मढ़ा गया है। उसके लिये साहित्यालोचन के पृष्ठ ८३ पर दिए गए "कवि कल्पना में सत्यता"-शीर्षक की ओर ध्यान आकर्षित करता हूँ—

"यह कहना कि कवि की कल्पना में सत्यता का अभाव रहता है, सर्वथा अनुचित है। सत्यता का जो अर्थ साधारणतया किया जाता है, उसे कविता में ढूँढ़ना ठीक न होगा। वह तो केवल विज्ञान में मिल सकता है। कविता में सत्यता से अभिप्राय उस निष्कपटता से है, जिसे हम अपने भावों या मनोवेगों के व्यंजन करने में, उनका हम पर जो प्रभाव पड़ता है उसके प्रत्यक्ष करने में तथा उनके कारण हमें जो सुख-दुख, आशा-निराशा, भय-आशंका, आश्चर्य-चमत्कार, श्रद्धाभक्ति आदि के भाव उत्पन्न होते हैं, उनकी अभिव्यक्ति करने में प्रदर्शित करते हैं।" आदि।

ब्रजभाषा के कवियों पर अन्य बहुत-से दोषों के साथ-साथ व्यभिचार-विवर्द्धन व अश्लीलता का भी दोष मढ़ा गया है। उत्तर में निवेदन है कि व्यभिचार व अश्लीलता के लिये कोई विशेष भाषा ही उपयुक्त नहीं है। यह सब भाषाओं में हो सकता है और है। इसका कारण यही है कि इस दुष्प्रवृत्ति के मनुष्य संसार में हैं और सदा रहेंगे। जब तक वे उपस्थित हैं, उनका साहित्य भी उपस्थित रहेगा। परंतु ब्रजभाषा इसकी दोषी नहीं हो सकती। ब्रजभाषा के कवि आचार्यों की पुरानी परिपाटी के अनुयायी रहे हैं और आचार्यों के निर्मित नियमों का पालन उन्होंने ध्यानपूर्वक किया है। यत्र-तत्र उपलब्ध अवहेलना अपवादस्वरूप ही है। वह आधुनिक खड़ीबोली के बेतुके रबड़छंदोंवाले कवियों की तरह का नियम नहीं हो गया है। फिर जिस अश्लीलता को आचार्यों ने काव्यदोष माना है, उसे वे कैसे अपना सकते हैं।

खड़ीबोलीवाले ही तो आचार्यों की आज्ञाओं के पालन में आनाकानी करते हैं। इस अश्लील और घासलेटी साहित्य की वृद्धि भी करते हैं। उनके उदाहरण भी दिए जा सकते हैं, परंतु आवश्यकता नहीं है।

इसका प्रमाण यही हो सकता है कि ब्रजभाषा के कवियों में अनेकों साधु-संन्यासी हो गए हैं—तुलसी, सूर, कबीर, नंददास, मीराबाई आदि प्रसिद्ध हैं। खड़ीबोली को यह गौरव नहीं है। यह ब्रजभाषा ही थी, जिसने "रसखान" को सुधारसपान कराया।

अंत में हमें त्रिपाठीजी का ध्यान इस ओर भी आकर्षित करना है कि इस खड़ीबोली के प्रबल युग में भी अब तक कोई ग्रंथ ऐसा नहीं है, जो हिंदी के आधुनिक ग्रंथों में सर्वोत्कृष्ट प्रमाणित हो सकता। हिंदी-भाषा का गौरव श्रीमंगलाप्रसाद-पारितोषक ब्रजभाषा के रत्नों के गुणगान करनेवाले, उस पर आन-बान और शान से मतवाले रहनेवाले, उसके पद्मपराग का पान करनेवाले पद्मसिंह को ही प्राप्त होता है, और उसके बाद भी उसका अनुकरण करनेवाले उसका

Imitation बनानेवाले "वीरसतसई"कार श्रीवियोगी हरिजी को मिलता है। दूसरी ओर वही पुरानी कथा का पिष्टपेषण करनेवाले और त्रिपाठीजी के मत से गंगा की गैल में मदार के गीत गानेवाले "गंगागौरव"कार श्रीजगन्नाथदासजी रत्नाकर को काशी की नागरीप्रचारिणी सभा और हिंदुस्थानी एकेडेमी से पुरस्कार मिलता है। हिंदी की आदरणीय संस्थाएँ जिसको गौरव दे रही हैं, वह तो "बानिन को महारानी है व्रजबानी"।

आप चाहे कुतुबमीनार से या ताजमहल की बुर्जी पर से चिल्लावें, चाहे अप-टु-डेट वायुयान पर चढ़कर उद्घोषणा करें, परंतु कहना यही होगा कि "ह्वै के जगदीस कीन्ह्यो बाहन बरद को तौ कहा सिव साहब गयंदन को घटिगो"।

हम त्रिपाठीजी का ध्यान निम्नलिखित उद्धरण की ओर और आकर्षित करते हैं—

"जिस भावहीन निर्जीव भाषा में नीरस कर्णकटु काव्यों की आए दिन सृष्टि हो रही है, इससे सुरुचि का संचार हो चुका। यह सहृदय समाज के हृदयों में घर कर चुकी। यह सूखी टहनी साहित्यक्षेत्र में बहुत दिनों तक खड़ी न रह सकेगी। कोरे कामचलाऊपन के साथ भाषा में सरसता और टिकाऊपन भी अभीष्ट है। तो इसके निस्सार शरीर में प्राचीन साहित्य के रस का संचार होना अति आवश्यक है......यदि अपनी भाषा को अलंकृत करना है, तो इस पुरानी काव्य-वाटि जिसे हज़ारों चतुर मालियों ने सैकड़ों व दिल के ख़ून से सींचा है, सदाबहार फूल चुने पड़ेंगे।"

(संजीवन भाष्य)

और खड़ीबोली के आचार्य व प्रबल पक्षपाती पं. महावीरप्रसादजी द्विवेदी के उस "संदेश" से भी, जि उन्होंने हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के द्वितीय वार्षिक अ वेशन के अवसर पर दिया था, एक छंद प्रार्थनास्व देता हूँ—

"दिव्य देव देववाणी की दुहिता,
मैं हूँ वह हिंदी प्राचीन।
तुलसी, सूर, विहारी आदिक,
रहे भक्ति में जिसकी लीन।
परित्याग उसका ही करके,
बनते हो विद्याधारी।
ऐसी अद्भुत गुणज्ञता की,
बलिहारी है बलिहारी।"

यदि अब भी उस "वसंत" का चक्र आपके ऊपर न हटा, तो हमें यही कहना है कि—

"सींतलतारु सुगंध की महिमा घटी न भूर।
पीनसवारो जो तज्यो सोरा जानि कपूर।"

चतुर्वेदी उमरावसिंह पाँ

"....मिलनि पतंग की"

स्रवन पिता को है न स्राप ताप पाप को है,
पिय की चिता है, सेज है न रसरंग की;
मानुस तौ जानै पसु-पंछी हू पिछानै, कैसी
मधुर मिठास वाकी उठनि—उमंग की।

प्रेम को अनूठो मठ पथ पै अनेक दीसैं,
रसना भुजंग की तरंग ज्यों अनंग की;
कोऊ छूटि पावै कोऊ मिलि अपनावै, जिमि
बिछुरनि मीन की औ मिलनि पतंग की।

मातादीन शुक्ल

अशांत

सजल जलद जब उमड़-घुमड़ घिर आते नील गगन में ;
अंतहीन क्रंदन क्यों भर जाता है आकुल मन में ?
चिर-अशांत, उत्ताल-तरंगित उच्छल-उदधि-किनारे,
छिपा एक पीड़ा क्यों बैठा रहता वह मन मारे ?
बड़े यत्न से क्यों जीवन में हाहाकार छिपाता ?
क्यों स्वर में वेदना मिला रागिनी अनोखी गाता ?
जीवन-नभ में सजल जलद-सा क्यों छाया यह तम है ?
क्यों वाणी में 'आह' हृदय में उष्ण उसास अगम है ?
सावन के घन-से क्यों झरझर झरते नयन युगल हैं ?
कौन आग है—जिसे बुझाने को उलीचते जल हैं ?
निर्जन, तम से भरी निशा में, जाकर नदी किनारे—
सूने मन से, जब, प्रेषित करता युग-दृग पर पारे—
अंधकार में जब भूले-से, भटके थके विलोचन—
खोए-से फिर आते, तब, अस्थिर हो उठता है मन।
हृदय शून्य है, जगत् शून्य है, शून्य शून्यतामय है ;
आँसू के प्रवाह में बह जाए न हृदय—यह भय है।
है अशांत, जीवन में सुख देखा न, ढूँढ़ता सुख है ;
क्या कहते हो ?—"इस जीवन का तो सुख केवल दुख है।"

श्रीप्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त'

भारतीय संगीत और ग्राम-स्वरलिपि*

अनेक समालोचक और संगीत-ग्रंथकार कहा करते हैं कि हम लोगों की प्रचलित स्वरलिपि में संगीत के स्वर, ताल, लय, माधुर्य आदि यथोचित रूप से प्रकाशित नहीं किए जा सकते। अतएव पाश्चात्यों की सांकेतिक लेखनप्रणाली (Staff Notation) को ही अपनाना चाहिए। इस संबंध में मेरा कहना यह है कि योरप में ऐकतानिक यंत्र-संगीत (Orchestral Music) जैसा उन्नत है, भारत में वैसा नहीं है और भारत में कंठसंगीत (Vocal Music) जैसा उन्नत है, वैसा उन्नत वह योरप में नहीं है।

भारतीय राग-रागिनियों के भीतर जो सूक्ष्म-से-सू परिवर्तन होते हैं और मींड़, गमक, आश आदि जिन्हें हम एक Continuous Curve शब्द संबोधित कर सकते हैं, वे भारतीय संगीत को पाश्चा संगीत से स्वतंत्र बनाए रहते हैं। इस स्वतंत्रता अक्षुण्ण रखकर स्वरलिपि में कंठसंगीत को लिपि करने के लिये स्वरलिपि की पद्धति में भी एक प्रकार भारतीय स्वतंत्रता रखनी होगी, नहीं तो स्टाफ-नो में लिखने से यह निश्चय है कि वह भी यंत्रसंगीत भीतर चला जायगा; क्योंकि स्टाफ-स्वरलिपि योरो संगीत के, विशेषतः यंत्रसंगीत के, उपयोगी बनाकर प्रस्तुत की गई है। उस समय उन लोगों को भार कंठसंगीत के रूप और प्रकृति का कुछ विचार नहीं था इसलिये स्टाफ-स्वरलिपि ऐकतानिक स्वर के ही उ योगी हो सकती है; भारतीय कंठसंगीत लिखने के लि उपयोगी नहीं।

हमारे देश में अब तक कंठसंगीत को जिस प्रक द्वारा स्वरलिपि की सहायता से लिपिबद्ध किया गया और किया जाता है, वह भी यंत्रसंगीत के अनुरू हो गया है, कंठसंगीत के अनुरूप नहीं। इसी से क जा सकता है कि हमारी प्रचलित स्वरलिपि भी योरो स्वरलिपि के कुछ-कुछ अनुकरण से ही प्रस्तुत हुई है इस प्रकार स्वरलिपि में गीत लिखने की प्रणाली पियानो बजाने की ही नक़ल आप-ही-आप हो गई है।

पियानो, जिसे योरप का सबसे बढ़िया वाद्ययंत्र क जा सकता है, ठोकर देकर बजाया जाता है, हारमोनियम भी। किंतु दोनों में भेद यह है कि पि में यदि एक स्वर के ऊपर लगातार स्थिति रखना हो, बराबर ठोकर देकर स्वर बाहर करना पड़ेगा। हारमोनियम में स्वर की चाभी दबाए रखने से ही की सहायता से स्वर बाहर किया जा सकता है।

---

* मैं उस समय संगीत के संबंध की कुछ बातों से हिंदी-प्रेमियों को परिचित कराने का लोभ संवरण नहीं कर सका, जब अपने प्रिय मित्र वंगीय साहित्य-सम्मेलन की संगीत शाखा के सभापति श्रीअनुकूलचंद्र दास का अभिभाषण पढ़ा। यह पटना-ट्रेनिंग स्कूल के कला और संगीत के शिक्षक हैं। इन दोनों के साथ ही साहित्य के भी यह परम प्रेमी हैं और बँगला में एक-दो पुस्तकें भी लिखी हैं। इनकी संगीत की कविताएँ भाषा, भाव और लालित्य की दृष्टि से बड़ी ही मार्मिक और हृदयाकर्षक होती हैं। 'संगीत-विज्ञान' आदि बँगला पत्र-पत्रिकाओं में इनके लेख बराबर निकलते रहे हैं। इन्होंने वैज्ञानिक और भारतीय ढंग से ग्राम-स्वरलिपि की नयी रचना की है। इस प्रकार संगीत, साहित्य और कला के यह मर्मज्ञ विद्वान् हैं। इन्होंने जो अपने भाषण में संगीत-संबंधी चर्चा की है, उसका जानना तब बहुत आवश्यक हो जाता है, जब कि आजकल प्रायः हिंदी की सभी मासिक पत्र-पत्रिकाओं में एक संगीत का स्तंभ रहा करता है और उसकी स्वरलिपि भी दी जाती है। आशा है, यह संकलन हिंदी-भाषाभाषी संगीत-प्रेमियों के लिये रुचिकर प्रतीत होगा।

एक बात और है। यद्यपि वर्णित विषय सचित्र आदर्श न देने के कारण समझने में कुछ कठिन प्रतीत होंगे, फिर भी इनकी चर्चा छिड़ जाय और लोगों की दृष्टि इस ओर आकर्षित हो, तो हम खुशी के साथ इसके संबंध में विशेष लिखने और सचित्र उदाहरण देने का प्रयास करेंगे।

—संकलयिता

जिस स्वर की प्रकृति तरंग की भाँति (Continuous Curve) है, उस प्रकृति के गीत के साथ पियानो नहीं बज सकता, पर हारमोनियम बज सकता है।

कुछ भी हो, किसी भी स्वरलिपि में गीत क्यों न लिखा जाय, मोटामोटी स्वर का अंदाज़ लगा लिया जा सकता है; क्योंकि गीत के उच्चारण से ही उसके टानटुन का अंदाज़ हो जाता है। फिर भी कहीं कमी-बेशी होने से गीत का रूप बदल भी जा सकता है, पर स्थूल रूप से एक प्रकार का स्वर बाहर कर लिया जा सकता है। किंतु स्वरलिपि में असली जो गोलमाल है, वह मात्राचिह्न की जटिल समस्या के कारण है। यह गोलमाल लड़कों ही के लिये नहीं, बल्कि बड़कों के लिये भी है। इसलिये स्वरलिपि की मात्रा की ही अर्थात् स्थिति-काल की जटिल चिह्न-समस्याओं के विषय की ही आलोचना की जाती है।

स्वरलिपि में स्वर के स्थितिकाल का बोध कई चिह्नों द्वारा कराया जाता है। जैसे स्वर के सिर पर या बग़ल में एक रेखा—एक मात्रा (एक मात्रा एक सेकंड मान ली जा सकती है), दो रेखाएँ दो मात्रा इत्यादि। अर्थात् पूर्ण मात्रा के हिसाब से अगर आठ सेकंड स्थिति हो, तो आठ रेखाएँ खींच देने से ही समझ में आ जा सकता है। योरपीय स्टाफ-स्वरलिपि में रेखा होने से ही केवल एक मात्रा का बोध सहज ही हो जाता है। इससे रेखा खींचने की स्थिति सहज ही समझ में आ जा सकती है। जिस प्रकार घड़ी के डायल में एक से चार तक को छोटे-छोटे लड़के और अपढ़ लोग भी सहज ही समझ लेते हैं—गाड़ी के डब्बे में रेखाएँ देख तीसरा दर्जा जान जाते हैं, किंतु इसके समान चार, पाँच, छः, नौ, ग्यारह आदि का समझना सहज नहीं है, इसी प्रकार रेखा खींचने पर भी स्वरलिपि में भग्न मात्रा को समझने में गोलमाल है। फिर रेखावाली स्वरलिपि में एक, दो, तीन, चार, पाँच इत्यादि पूर्णमात्रा को समझना जितना सहज है, उतना योरपीय स्वरलिपि में सहज नहीं है। और जहाँ एक ही स्वर में आठ मात्रा की स्थिति अपेक्षित है, वहाँ एक से अधिक स्वर लिखना होगा। किंतु रेखा खींचने में स्वर के सिर पर या बग़ल में आठ रेखा खींच देने से ही काम चल जायगा। इसी से स्थिति-काल समझने में स्टाफ की अपेक्षा रेखा रखना सहज है। किंतु रेखा की पद्धति में भी भग्न मात्राओं के सारे चिह्न न रखकर स्वर के ऊपर अंक लिख दिया जा सकता है। ऐसा होने से छोटे-छोटे लड़के भी अनेक प्रकार के जटिल चिह्नों को न पहचानकर, स्थिति का सहज ही ज्ञान कर सकते हैं। अब इस बात को लीजिए। यदि स्टाफ-पद्धति में अंक ही लिखा जाय, तो किसने समय सहज ही समझा जा सकता है। पद्धति के ख़याल से कहीं भरी हुई स्याहीवाले डिंबाकार के सामने एक क्षुद्र बिंदु, कहीं ख़ाली डिंबाकार के सामने एक क्षुद्र बिंदु, कहीं डिंबाकार पूँछ के अंत में एक, दो, तीन कोण बनानेवाली रेखा खींच देना आदि। इसकी अपेक्षा अंक लिख देना बहुत सहज है। अगर छापने की सुविधा के ख़याल से अंक न लिखकर अनेक प्रकार के चिह्न तैयार कर लिए जायँ, तो हमारी समझ में इनके कंपोज में भी अंक ही की भाँति असुविधा होगी। फिर भी यदि पद्धति की विशेषता की दृष्टि से ऐसा किया जाय, तो दूसरी बात है। स्वरलिपि-पद्धति का संक्षिप्त परिचय आगे लिखा जाता है।

शून्यमात्रिक पद्धति—स्वर के अगल-बगल शून्य, कामा आदि देकर स्थितिकाल लिखा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि (योरपीय Zonic Solfa स्वरलिपि का अनुकरण करके) स्वर्गीय द्विजेंद्रनाथ ठाकुर ने पहलेपहल इस पद्धति का उद्घाटन किया। उकार से कोमल स्वर और दीर्घ ईकार से तीव्र स्वर लिखा जाने लगा। स्वर्गीय श्रीकृष्णधन वंद्योपाध्याय-कृत गीतसूत्रसार और श्रीरजनीकांत राय कृत सरल संगीत और हारमोनियम-शिक्षक-नामक पुस्तकों में इस प्रणाली का प्रयोग किया गया है, पर अब कहीं नहीं देखा जाता।

दंडमात्रिक पद्धति—स्वर के सिर पर रेखा, चंद्रबिंदु, डमरू आदि चिह्नों द्वारा मात्रा का उल्लेख किया जाता है। कोमल और तीव्र स्वर के ऊपर त्रिकोण और पताका के रूप रहते हैं। अनेकों संगीत-पुस्तकें इसी पद्धति द्वारा प्रकाशित हुई हैं और हो रही हैं।

आकारमात्रिक पद्धति—मात्रा के चिह्न स्वर के बगल में लिखे जाते हैं। दंडमात्रिक की पूर्ण मात्रा की सूचक सिर के ऊपर रेखा स्वर के बगल में आकार के अनुसार व्यवहृत होती है। और शून्यमात्रिक का विसर्ग जहाँ एक मात्रा का ज्ञापक है, वह आधी मात्रा

में व्यवहृत हुआ है। कोमल और तीव्र स्वर व्यवहार्य अक्षर, ऋ, ञ, ह्म, द, ण, के द्वारा लिखे जाते हैं। यहाँ दंडमात्रिक के 'ऋ' आकार-मात्रिक में कोमल 'रे' के समान व्यवहृत हुआ है। आजकल अधिकांश पुस्तकों में इसी पद्धति से काम लिया जा रहा है ; क्योंकि दंडमात्रिक की अपेक्षा साधारण प्रेसों में इसके छपाने की सुविधा बहुत रहती है।

द्रुतगति-पद्धति—मैंने १६०२ में एक प्रकार की पद्धति तैयार कर ली थी। इस पद्धति में विशेष कुछ नहीं है, केवल सा रे ग म प ध नि सा इन सातों अक्षरों का कुछ-कुछ खंड व्यवहार है। जैसे, 'सा' के सामने की वक्र रेखा, 'रे' के सामने का कोण, 'ग' के ऊपर की वक्र रेखा 'म' के ऊपर से कुंडली तक 'प' के मुँह के नीचे का अंश, 'ध' की कुंडली और 'नि' की कुंडली। इसका लिखना बहुत शीघ्र होता है जैसे कि शार्ट-हैंड। कोमल और तीव्र स्वर को अलग न रख करके सबको उलट दिया था अर्थात् तीव्र 'सा' तीव्र 'गा' इत्यादि और स्टाफ के Sharp का चिह्न स्वर की बाईं ओर रक्खा जाता है। मात्रा का स्थितिकाल शून्य द्वारा प्रकट किया गया है।

कथामात्रिक पद्धति—यह पद्धति आकारमात्रिक पद्धति के ही अनुरूप है। केवल मात्राचिह्न स्वर में न लगाकर गीत के उच्चारण में ही आ, ए, उ, ऊ, ई द्वारा दिखलाया जाता है। मेरी 'खोकाखुकिर गान वाजना'-नामक बालक-बालिकाओं के गाने की पुस्तक इसी पद्धति पर छप रही है।

प्रचलित पद्धतियों के दोष और गुण

ऊपर जितनी पद्धतियाँ कही गई हैं, वे सब एक सरल रेखा द्वारा लिखी जाती हैं। इनमें से आजकल दंडमात्रिक और आकारमात्रिक ही अधिक प्रचलित हैं। स्वरलिपि-पद्धति को एक सरल रेखा द्वारा लिखकर यदि सरल करना ही उद्देश्य हो, तो दंडमात्रिक में तीव्र और कोमल मात्रा-चिह्न आदि स्वर के सिर पर रखने के कारण नज़र स्वर से स्वर के सिर पर भी दौड़ानी होगी। किंतु आकारमात्रिक में व्यवहार्य अक्षर के द्वारा एक ही सरल रेखा में लिखने के कारण और मात्राचिह्न को स्वर के बगल में रखने के कारण एक ही बार में नज़र पड़ जाती है। स्थितिकाल के मात्राचिह्न को स्वर के सिर पर न रखकर स्वर के बगल में रखने से उसका स्थायित्व पढ़ने के साथ ही नज़र पड़ जायगा। मात्रानुसार ताल का विभाग छोटा-बड़ा होगा। और दृष्टि को कभी प्रसारित और कभी कुंचित करना पड़ेगा। Staff Notation के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। किंतु आकारमात्रिक में हरएक भाग ही समान भाव से नज़र के सामने आवेगा। दंडमात्रिक में पूर्ण मात्रा और भग्नांश मात्रा में स्वर का सजाना इस प्रकार होता है—

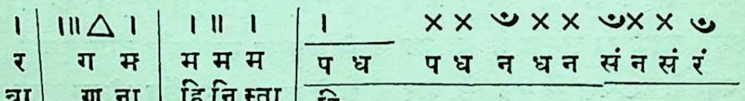

यहाँ पूर्ण मात्रा के छोटे-बड़े विभाग होने पर भी भग्नमात्रा के विभाग में नज़र को बहुत दौड़ाना पड़ता है।

मात्रा को स्वर के सिर पर रखने से ऊपर के त्राण शब्द का त्रा ण अ अ इस प्रकार अथवा त्रा आ आ ण इस प्रकार उच्चारण होगा। इसको लेकर विद्यार्थी को चक्कर में पड़ जाना पड़ेगा। बाद इसको कोई ठीक कर सकता है और कोई नहीं भी कर सकता। किंतु आकार-मात्रिक में पढ़ने के साथ ही नज़र पड़ेगी।

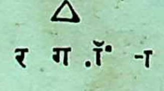

प्रचलित पद्धति में सा, रे, गा चिह्नों की सृष्टि और इन सा, रे, गा चिह्नों के ऊपर और नीचे शून्य, रेफ़्, हसन्त इत्यादि रखकर उदारा और तारा स्वर दिखाए जाते हैं। किंतु योरपीय स्टाफ़-स्वरलिपि में स्वर की घटती-बढ़ती (मंद्रतार) पर जैसे नज़र पड़ती है, वैसे प्रचलित पद्धति में नहीं पड़ती। यह स्वर पाँच सात रेखाओं के ऊपर और प्रत्येक रेखा के प्रत्येक दो रेखाओं के बीच में अंडाकार शून्य द्वारा लिखा जाता है। इस शून्य के उपर और नीचे पुच्छाकार रेखा खींचकर एक मात्रा-काल का निर्देश किया जाता है। अन्यान्य स्थिति और भग्नांश मात्रा भी अनेक प्रकार के चिह्नों द्वारा दिखाई जाती है।

त्रितल या त्रिसप्तक-पद्धति—स्वर्गीय क्षेत्रमोहन गोस्वामी ने स्टाफ-पद्धति की उपयोगिता को समझा था। इसी से उन्होंने अपने 'संगीतसार' में त्रिसप्तक के लिये तीन सरल रेखाओं का व्यवहार किया था। पर स्वर्गीय कृष्णधन वंद्योपाध्याय ने स्टाफ-पद्धति के विदेशी होने पर भी उसका क्रम ग्रहण किया था। किंतु उक्त स्टाफ-पद्धति में भी कोमल और तीव्र स्वर को शुद्ध स्वर के स्थान पर ही भिन्न-भिन्न चिह्नों द्वारा निर्देश किया जाता है। इसलिये जहाँ तक संभव है, स्वरांतर के नियमानुसार सब स्वर जिस पद्धति से अलग नहीं दिखाए जा सकते, वह पद्धति अब तक असंपूर्ण और भारतीय संगीत को सुग्रथित करने के लिये एकदम अनुपयोगी है।

स्वरलिपि में गीत लिखने की प्रचलित प्रणाली—बंगाल में गीत को स्वरलिपि की सहायता से लिखने व प्रकाशित करने के समय से अब तक स्वरलिपि में गाने की जो गठनप्रणाली चली आती है एवं चल रही है, उसमें इस समय परिवर्तन होना आवश्यक है। पहले ही कह आए हैं कि पाश्चात्य पद्धति की छाया लेकर बँगला स्वरलिपि तैयार होने के कारण गाने को स्वरलिपि की शृंखला में शृंखलित करने में पियानो बाजे के समान यंत्र-संगीत बनाया जा रहा है। जैसे—

पा पा पा | ना ना नसां | सां सां सां
सु ल च्च | ना चि ह्न | ना च त

सा सा सा | सा सा सा
वा मां ग | आ नं द

यहाँ यह प्रकट होता है कि गीत के पंद्रहों अक्षर तीन स्वर में वर्तमान हैं—पा नि और सा। ये तीनों स्वर अपने मात्रानुरूप क्रमान्वय (Continuous) स्थिति रखकर पियानों पर नहीं बजाए जा सकते। इसके लिये पंद्रह ठोकर दिए जायँगे, तो यंत्र के शब्द गाने के साथ सुने जायँगे। किंतु हम जब स्वयं यंत्र बजाकर गीत गाते हैं या कोई गायक स्वयं गाता है, तब क्या पंद्रह ठोकर देकर बाजा बजाया जाता है ? कभी नहीं। गायक ये तीनों स्वर तीन ही बार बजाता है और साथ-ही-साथ गीत के अक्षरों का उच्चारण करता है।

पा | ना——सा
सुलच्च | न चिह्न
ना च त | वामांग | आनन्द

उपर्युक्त आदर्श की कार्यतः परीक्षा करने से स्पष्ट प्रतीत होगा कि प्रचलित प्रणाली में गीत का संगठन जटिल है, गीत का श्रुतिमाधुर्य एकदम नष्ट हो जाता है और हमारी कथा-मात्रिक-पद्धति तभी सहज और श्रुति-मधुर होगी, जब कि गायक वास्तविक कार्य कर सकेगा। यह बड़े ही दुःख की बात है कि भारत के सारे प्रदेशों में ही गीत की स्वरलिपि बजानेवाले अब तक इस आवश्यक विषय को अनादर की दृष्टि से देखते हैं और अब भी देखते आ रहे हैं; क्योंकि गीत के जिन अक्षरों को एक ही स्वर में कहा जायगा, उन सब अक्षरों में से प्रत्येक अक्षर के ऊपर गत के साँचे में अलग-अलग स्वर न रखकर गीत के साँचे में पहले एक स्वर लिखकर उसके बगल में मात्रा का चिह्न रखने अथवा पड़ी रेखा खींचकर उसे स्वर में स्थायी गाने के अक्षरों का मात्रानुसार उच्चारण करने अथवा जहाँ-जहाँ अक्षरों का खिंचाव होगा, वहाँ-वहाँ मात्रानुयायी आ ए उ ई ऊ लिखकर दिखाने से शिक्षार्थी शीघ्र ही स्वर पकड़ने का खूब सहज ही श्रुतिमधुर स्वाभाविक मार्ग ढूँढ़ निकालेंगे। गाने के एक अक्षर के खिंचाव में जहाँ बहुत-से स्वरों का व्यवहार होगा, वहाँ बहुत-से स्वरों में प्रत्येक स्वर के नीचे इन अक्षरों का बारंबार लिखना भूल और अस्वाभाविक होगा। इसी प्रकार जहाँ एक ही स्वर में गाने की बातों में जिन कुछ अक्षरों का उच्चारण करना होगा, वहाँ बात के प्रत्येक अक्षर के सिर पर फिर-फिर उसी एक स्वर को रखना भी भूल और अस्वाभाविक होगा। और एक ही स्वर को बारंबार रखने से हारमोनियम की चाभी में कई बार उँगली रखनी पड़ेगी व कई बार कमानी घुमाना होगी। यह शिक्षार्थियों को भ्रामक मालूम होगा और इस प्रकार अस्वाभाविक ढंग से गीत के साथ स्वरयंत्र बजाने में ठीक छप्पर पीटने के समान मालूम होगा।

भारत में संगीत के प्रचार और प्रसार के प्रथम पथ-प्रदर्शक स्वर्गीय राजा सर सौरींद्रमोहन ठाकुर हैं। बंगाल में स्वरलिपि की सहायता से स्वर, ताल और लय के साथ गीत लिखने और प्रकाशित करने के आदर्श के बाद और-और प्रदेशों में इसका आरंभ हुआ है। फिर बंगाल में जिसकी जैसी इच्छा होती है, उसी पद्धति को ग्रहण कर लेता है और कुछ-कुछ उसमें परिवर्तन व परिवर्द्धन

कर लेता है। यही प्रकार बंगाल के बाहर और-और प्रदेशों में भी है। जो हो, अपनी-अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिये हम जैसे व्यस्त हैं, जैसा कि गत कई महीनों में बंगाल में आलोचना-प्रत्यालोचना से मालूम पड़ता है, वैसे ही बंगाल के बाहर भी हो रहा है। विगत जनवरी १९२९ की Indian Review पत्रिका में देखा था कि पंडित विष्णुदिगंबर शास्त्री ने पंडित भातखंडे की स्वरलिपि-पद्धति में Glaring defect दिखाया है। आश्चर्य और दुःख की बात है कि गीत की स्वरलिपि लिखने में सभी प्रदेशों के लोग वही ढोल पीटते आ रहे हैं।

भारतीय स्वरलिपि के संबंध में १९२२ के अगस्त महीने की १०वीं तारीख़ की अमृतबाज़ार-पत्रिका में Bombay Governor on Indian Music संवाद देखा था—

"He recognised that there were great defect in the way of introducing the teaching of music as an integral part of the school education, chief of them being that there is no recognised system of notation in Indian music."

इस मंतव्य के उत्तर में महाराज सर अधीतकुमार ठाकुर ने गवर्नर साहब को एक पत्र लिखा था। वह पत्र Notation of Indian Music नाम से संवादपत्र में प्रकाशित हुआ था। इस पर भारतीय और योरपीय स्वरलिपि के पक्ष और विपक्ष में अनेक लेख लिखे गए थे। मेरा भी १९२२ की २९वीं नवंबर को 'ग्राम-लिपि' के बारे में एक पत्र छपा था। पर आश्चर्य की बात है कि उसके संबंध में किसी ने कुछ भी नहीं लिखा।

ग्राम-स्वरलिपि—मैं जिस पद्धति की बात लिखता हूँ, उसमें ग्राम का व्यवहार आवश्यक है। उसमें ग्राफ़ काग़ज़ के 'ख' चिह्नित लंब रेखा (Vertical line) के ऊपर छोटे-छोटे गोल-गोल शून्य द्वारा स्वर और समतल रेखा (Horizontal line) के ऊपर उसके साथ पड़ी हुई पूँछ खींचकर स्थितिकाल (मात्रा) का निर्देश किया गया है। इन रेखाओं की लंबाई की कमी-बेशी किसी स्वर के साथ के ताल की मात्रा के परिणाम को प्रकाशित करती है। 'क' चिह्नित रेखा को मुदारा का 'स' मान लेने से सा रेखा के ऊपर की समांतराल रेखाएँ अन्यान्य स्वरों को प्रकट करेंगी। बाद के दो स्वरों तारतम्य रेखाओं के मध्यवर्ती स्थानों के परिमाण प्रकट होगा। उच्च ग्राम का 'तार' स्वर 'मुदारा' के रेखा के ऊपर चिह्नित होगा। सा रे गा मा इत्यादि क्या तीव्र क्या कोमल, सभी 'ख' रेखा के साथ उनकी रेखाएँ जहाँ सम्मिलित होंगी, वहाँ लिखे जायँगे। शिक्षार्थियों के सहज ही समझ में आ जाने के लिये सातों स्वर सातों रंगों की विभिन्न रेखाओं द्वारा दिखाए जा सकते हैं, पर उनकी ज़रूरत नहीं है।

उपर्युक्त मंतव्य को समझने के लिये हम एक मिश्रित स्वरसमूहों की सहायता लेंगे। इसमें एक अष्टक समान अंशों में विभक्त होगा। दो स्वरों का मध्यवर्ती काल अर्थात् दो स्वरों के Frequency का अनुपात अगर ग्राम के एक भाग द्वारा दिखाया जायगा, तो मध्यस्थ रेखा (Line of Reference) से प विभाग दूर की समांतराल 'रे' रेखा से समान दूरी पर रहेगा। किन्तु 'मा' रेखा 'गा' रेखा से अर्द्धविभाग की दूरी पर चिह्नित होगी और अन्यान्य स्वरों के बारे में इसी प्रकार काम लिया जायगा।

ग्राम-पद्धति-संगीत-विद्या की जितनी स्वरलिपियाँ हैं, वे किस प्रकार प्रकाशित की जा सकती हैं, इस विषय का विचार यहाँ किया जाता है। संगीत का पहला स्वर ख रेखा के ऊपर चिह्नित किया जाय और उसी के साथ समतल भाव से एक पूँछ बनाई जाय। इस पूँछ की लंबाई से ही इस स्वर की स्थिति व मात्रा दिखाई जायगी। इससे यदि एक विभाग से एक मात्रा का बोध हो, तो एक मात्रा का स्वर दिखाने के लिये एक विभाग पूर्ण करके पड़ी हुई एक रेखा खींचनी होगी। बाद का स्वर इस स्वरज्ञापक रेखा के ऊपर व नीचे अथवा आवश्यक हो तो इस समतल रेखा के ऊपर ही बिंदु-चिह्न अवश्य रहेगा। इसी प्रकार और-और स्वर भी दिखाए जा सकते हैं।

यदि दो स्वरों के बीच कालक्षेपन करके 'सा' उच्चारण के साथ ही 'रे' का उच्चारण करना हो, तो इस अवस्था में 'सा' ज्ञापकबिंदु की कोई पुच्छ रेखा न होगी करके 'रे' बिंदु को ठीक 'सा' बिंदु के ऊपर रखना होगा और इसके साथ ही पुच्छरेखा मात्रा के अनुरूप ही होगी। ये बिंदु परस्पर मिला दिए जा सकते हैं। 'ग्राफ़' के

स्थान पर ये संयोगरेखाएँ अविच्छिन्न होंगी, और विराम (Pause) के स्थान पर बीच में जगह छोड़ दी जायगी।

इन सब रेखाओं की भिन्न-भिन्न आकृत्तियों द्वारा स्पष्ट रूप से प्रमाणित होगा कि एकजातीय राग का संगीत अन्यजातीय राग के संगीत से अलग किया जा सकता है। भिन्न-भिन्न स्वर चिह्नित होने के बाद टेढ़ी रेखाओं की तरंगायित आकृति से गीत गाने के समय स्वर की कमी-बेशी के परिमाण का निर्णय होगा।

वर्तमान प्रचलित स्वरलिपियों की प्रणाली में 'गमक' और 'आश' की सत्ता को स्पष्ट रूप से नहीं दिखाया या परिचित कराया जा सकता। किंतु ग्राम-प्रणाली में इनके अद्भुत आकारों से गीत गाने की विशेषता मन में प्रकटित होगी।

ग्राम-स्वरलिपि की विशेषता—अनेकों भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों को टेढ़ी रेखाओं को ध्यानपूर्वक देखने से कितनी ही साधारण विशेषताएँ हम लोगों को दिखलाई पड़ेंगी। क्रोध-परिचायक राग के स्वर का मध्यवर्ती काल (Amplitude) देर तक रहता है और शोक या दुःख के परिचायक रागों का स्वर क्षुद्र एंप्लिचुड के साथ रहता है अर्थात् उनका मध्यवर्ती काल अल्पक्षणस्थायी होता है। इस बात को सब कोई जानते हैं कि किसी प्रकार की मानसिक अवस्था क्यों न हो, बाहरी आकार से प्रकाशित की जा सकती है। कोई आदमी जब क्रुद्ध हो जाता है, तब उसके बोलने का ढंग भिन्न हो जाता है और वही आदमी जब शोकार्त्त हो जाता है, तब उसके बोलने का तौरतरीक़ा दूसरा ही हो जाता है। ग्राम-स्वरलिपि में यह भाववैचित्र्य अत्यंत सुंदर रूप से प्रकाशित किया जा सकता है, जो अब तक की किसी वर्तमान पद्धति से प्रकाशित नहीं किया जा सकता।

मनोविज्ञान की दृष्टि से ग्राम-स्वरलिपि में एक और सुविधा है। कोई वादक या गायक इस प्रणाली के सीख लेने पर सहज ही समझ सकता है कि कितने मनोभाव कितनी विशेष रेखाओं के द्वारा व्यक्त किए जा सकते हैं। यह विषय समझ लेने पर वे जो रेखा जिस भाव की अभिव्यंजक होती है उसको उसी भाव के साथ संयुक्त करते हैं और संसर्गज नियमानुसार वह भाव स्मृतिपथ में सदा वर्तमान रहता है। ऐसा भी देखा जाता है कि बहुत-से लोग अँधेरी रात में भूतों की कल्पना करते हैं। इसके एक विषय की चिंता करने के साथ-ही-साथ अन्यान्य विषय भी मन में उदित हो उठते हैं। इसी प्रकार कोई एक रेखा मन में अपने संश्लिष्ट भाव का उद्रेक करती है। इसी से हम आशा करते हैं कि इस ग्राम-स्वरलिपि का व्यवहार करने से गायक औरों की अपेक्षा अपने अनुभव और हृदय के भाव प्रकाशित करने में समर्थ हो जायगा। मालूम होता है, इसी से हिंदुओं ने भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों की कल्पना भिन्न-भिन्न आकार और वर्ण के मनुष्य के रूप में की है।

संगीतविद्या सबके मन के ऊपर समान रूप से अपना आधिपत्य रखती है। चित्र और भास्कर्य स्वभाव के यथार्थ अनुकरण से इसे सब कोई समझ सकते हैं। आज तक गायन लिखने की भाषा भी एकदम कृत्रिम और अस्वाभाविक है। आशा है, ग्राम-स्वरलिपि के प्रयोग से यह स्वाभाविक और मनुष्यजाति के सर्व-दुःखहारी संगीतविद्या के ज्ञानालोक को विस्तृत करने में सुगम और सुखकर होगी।

एक संगीत-प्रेमी

जिज्ञासा

१

कोई कितना ही क्यों न तुमको पुकारे देव !
द्रवित न होते जब दया बिसराते हो ;
दूनी उपजाते दाह, वेदना बढ़ाते और,
कठिन कसौटी पर कष्ट की चढ़ाते हो ।
अपने-पराए सभी लेते मुख मोड़ आह !
वज्र टूटते हैं जब रूठ तुम जाते हो ;
हमको बता दो नाथ ! कैसे उठता है हाथ,
उसको बिगाड़ने में, जिसको बनाते हो ।

२

यह तो सुना है—"कहलाते आप दीनबंधु,
दीन-दुखियों को सदा दुःख से उबारते" ;
"भूल तुम जाते अपराध क्षण में ही नाथ !
भूल-चूक भूल से भी उर में न धारते"।
किंतु फिर जाती आँख, तब क्यों तुम्हीं हे देव !
कोप के कराल-ज्वाल-जाल में हो जारते ;
हमको दिखाओ दृग, जिसमें नहीं है शील,
कौन, जिससे कि दया-दृष्टि दे निहारते।

३

द्वार-द्वार भटक भले ही कोई हार जाय, कुछ भी ठिकाना कहीं आपका न पाते हैं ;
तीर्थ-मंदिरों में कोई ढूँढ़ते विपिन बीच, हिम-गिरि-शृंग पर कोई चढ़ जाते हैं ।
आती जब मन में तरंग आपके हे नाथ ! स्वयमेव नंगे पैर दौड़े चले आते हैं ;
आँखें बिछती हैं तो भी उठता नहीं है पग, चरण तुम्हारे कौन कंटक जो खाते हैं ।

४

बिलख-बिलख घोर संकट में कोई हाय,
कष्ट झेलता है तो भी पाता नहीं पार है ;
चूर-चूर हृदय हुआ है भव-व्याधियों में,
अपना जिसे हे नाथ ! जीवन भी भार है ।
अंत में पुकारता है, सुनते नहीं हैं आप,
मौन साधते हैं, वह करता गुहार है ;
बात मन की जो सुन लेते वह कान कौन,
ठेंठ किसमें जो नहीं सुनता पुकार है ।

५

चाहते हो जो कुछ भी करते वही हो नाथ !
तुमको किसी के दुःख-सुख का न ध्यान है;
पल में बनाना पल में ही मेट देना हाय !
यह तो तुम्हारा हँसी-खेल का विधान है।
जान पड़ते हो देखने में तो सरलचित्त
हृदय तुम्हारा स्वच्छ, करुणा-निधान है;
किंतु किस उर में निवास है कठोरता का,
इसकी हमें भी नहीं कोई पहचान है।

रमाशंकर मिश्र "श्रीपति"

अपूर्व त्याग

"टेरेसा, जँगले के पास बैठकर एकटक क्या देख रही हो ? क्या है, मुझे बताओ ? सुबह से ही बिस्तरे पर पड़ी हुई हूँ, अच्छा नहीं लग रहा है।"

"कोई ख़ास चीज़ नहीं देख रही हूँ मा, माउंट फेकली पहाड़ डूबते हुए सूर्य की किरणों से झलमल हो रहा है, उसे ही बैठे-बैठे देख रही हूँ।"

"रास्ते में कोई चल तो नहीं रहा है ?"

"कोई नहीं।"

"जो हो, आज सेना का कोई यहाँ नहीं आया, इससे ख़ुश ही हूँ। हमारे देश के लोगों का अनिष्ट करने में ही वे लोग व्यस्त रहते हैं। इससे मेरे दिल को बहुत चोट पहुँचती है।"

युवती बोली—"मा, सेना के सभी लोग बुरे नहीं होते। बुरे होते हैं वे लोग जो उन्हें लोगों के अनिष्ट करने का आदेश देते हैं। सिपाही तो केवल उनका हुक्म बजा लाते हैं। हमारे देश के सैनिक भी राज-कर्मचारियों के आदेशानुसार काम करते हैं। युद्ध भी भयानक वस्तु है। न-जाने भगवान् लोगों को मारकाट करने क्यों देते हैं ?"

"तुम्हारे से जिनके दिमाग़ बड़े हैं, वे बहुत दिनों से अनेकों बार इन सब बातों पर विचार कर चुके हैं, किंतु किसी निर्णय पर नहीं पहुँचे। देखो, यह आवाज़ कैसी है ? ज़रा जँगले के पास जाकर देखो तो।"

"हाँ, बहुत-से सैनिक आ रहे हैं। रास्ते के मोड़ पर उन्हें देख रही हूँ। शराब पीने के लिये वे लोग अवश्य दुकान पर आएँगे। मैं नीचे जाती हूँ।"

"तुम्हारा उन लोगों के पास जाना मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता। वे हमारे देश के शत्रु हैं। नहीं टेरेसा, तुम न जाओ। उन लोगों की जितनी ख़ुशी हो, ख़ुद शराब पीकर चले जायँ।"

युवती ने दीवाल पर लटकती हुई सेल्फ़ से एक बोतल निकालकर एक बर्तन में कुछ दवा ढाली; इसके बाद माता के सामने उसे रखकर बोली—"पाद्रे भेरिता ने तुम्हारे लिये यह ओषधि भेजी है। इससे तुम्हारा बुख़ार कम हो जायगा। मा, यह तो तुम जानती ही हो कि हम लोग रुपए-पैसे के लिये कितने मुहताज हो रहे हैं। अगर मैं नीचे जाऊँगी, तो सिपाही मुझे दाम देंगे। अगर न जाऊँगी, तो वे लोग बिना मूल्य दिए ही ख़ूब पिएँगे और साथ में कुछ-कुछ लेते भी जायँगे। यह नुक़सान क्या हम लोग सह सकेंगे ?"

"ठीक कहती हो बेटी, हम लोगों को रुपए की सख़्त ज़रूरत है। किंतु बेटी, ज़्यादा देर तक नीचे न रहना।"

युवती जिस समय नीचे आई, उस समय कमरा सैनिकों से भर गया था।

सैनिकों में से बहुतों ने उससे परिचित आत्मीय की तरह बातचीत की। वे इधर कई दिनों से जलपान और विश्राम करने के लिये आते हैं।

जिसको जिस चीज़ की ज़रूरत थी, युवती ने उसे वही देकर उसे संतुष्ट किया। उनके प्रश्न के उत्तर में सुंदरी ने कहा कि मेरी माता बीमार है और ऊपर बिस्तरे पर पड़ी है। यह सुनकर सैनिक मृदुस्वर में बातें करने लगे, उनमें से सभी ने उसकी विपत्ति में सहानुभूति प्रकट की। इसके बाद शराब के वाजिब दाम चुकाए।

इस सेनादल का सार्जेंट घर के एक कोने में बैठा हुआ था। उस युवक का डीलडौल लंबा, सिर के बाल सुंदर, नेत्रों से बालोचित सरलता टपकती थी। युवती ज्यों ही उसके पास गई, त्यों ही उसने उसे मूल्य देने के अभिप्राय से उसका हाथ स्पर्श किया। इसके बाद कोमल स्वर में कहा—"ये लोग अभी घोड़े पर सवार होंगे। क्या उस कुंज के नीचे मुझसे भेंट करोगी ? मैं तुमसे एकांत में कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

टेरेसा ने सिर हिलाकर अनुकूल मत प्रकट किया और चुपचाप दूसरी ओर को चली गई। इसके बाद जब सैनिक घोड़े पर सवार होने लगे, इतने ही में मौक़ा पा दूसरों की निगाह बचाकर खिड़की के रास्ते से वह बाहर

आई । आँगन पार कर धीरे-धीरे वह पास के कुंज के नीचे आकर खड़ी हो गई ।

थोड़ी ही देर में वह सिपाही उससे आ मिला ।

"प्राणाधिक टेरेसा, आज तुम्हें देखे तीसरा ही दिन है, किंतु इतने थोड़े समय के परिचय में ही तुम्हें कितना प्यार करने लगा हूँ ।"

युवक ने उसके कोमल हाथों को दृढ़ता से पकड़कर कहा—"मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ, तुम भी मुझे प्यार करती हो ?"

"फ्रांज, तुम तो यह जानते ही हो ।"

"जानता तो हूँ, किंतु तुम्हारे मुख से उच्चारित होने से संगीतध्वनि की तरह मेरे कर्णकुहर में जान पड़ेगा । वे अभी घोड़े पर सवार हो चल पड़ेंगे, इसलिये और विलंब करने से न चलेगा । मैं जो कहने के लिये आया हूँ, उसे पहले तुमसे कह डालूँ । टेरेसा, विद्रोहियों की तलाश में यह दिनरात की दौड़धूप शीघ्र ही बंद हो जायगी । बंद होते ही मेरा छुटकारा हो जायगा । यह सब मनुष्य का काम नहीं है । उस समय क्या तुम मुझसे शादी करोगी ?"

युवती अपने प्रणयी के पास हटकर गंभीर स्वर में बोली—"हाँ फ्रांज, मैं तुमसे विवाह करूँगी, लेकिन तुम यह शपथपूर्वक कहो कि तुम और कभी इस जन्म में सेनादल में प्रवेश न करोगे । मेरे स्वामी की तलवार मेरे देशवासियों की है—आत्मीय-स्वजन के विरुद्ध वह सदा खुली रहे, यह मुझसे कभी सहन नहीं हो सकता ।"

"तुम्हारे लिये मैं यह भी स्वीकार करता हूँ; किंतु कहीं अंत में ऐसा न हो कि तुम्हारे इटली के प्रति मेरे मन में ईर्ष्या पैदा हो ।"

"सो बात न होगी । जिस दिन तुम्हारे साथ मेरी शादी होगी, उस दिन से ही मेरे आत्मीय और माता मुझे अभिशाप देंगे । 'वालिडनी' दल का प्रत्येक व्यक्ति देश-प्रेमी है, केवल मुँह से नहीं, मनसा-वाचा-कर्मणा हम लोग जन्मभूमि के भक्त हैं । तुमसे विवाह करने पर मुझे अपने देश, गृह, स्वजन, सभी का परित्याग कर देना पड़ेगा । मैं सानंद इसके लिये भी तैयार हूँ, क्योंकि प्रेम ही स्त्री का धर्म है । स्वामी के लिये स्त्री सदा त्याग करती है । सिर्फ़ मैं इसी बात का ख़याल रक्खूँगी कि प्रेम के कारण मेरी जन्मभूमि इटली का कोई अनिष्ट न हो । फ्रांज, तुम्हारे प्रेम के ख़ातिर भी मैं ऐसा न कर सकूँगी ।"

"प्रिये, जो तुम इतना महान् त्याग स्वीकार करोगी, तो मेरा प्रेम निश्चय ही उस क्षति की पूर्ति कर सकेगा । किंतु इस समय और विलंब नहीं कर सकता । यह संकेत-ध्वनि सुनो । मैं चला । अगर पास में रहा, तो संभवतः आज रात को फिर वापस आऊँ । तुम कोई शंका न करना, जितनी भी देरी हो, मैं ठीक समय पर पहुँच जाऊँगा ।"

वह सैनिक चला गया । युवती घर को वापस आई । ऊपर कोठे पर उसकी रोगी माता उस समय सुख की नींद सो रही थी । चिकित्सक की दवा ने अपना प्रभाव दिखाया । मा को सोई हुई देखकर युवती दबे पाँव नीचे उतर आई । सदर दरवाज़े का अर्गला बंद कर उसने एक दीपक जलाया । इसके बाद बुझे हुए अग्निकुंड के बग़ल में बैठकर भविष्य की चिंता में निमग्न हो गई । आशा, आशंका, आनंद और निरानंद एक साथ उसके हृदय में पैदा हो रहे थे । उच्च चरित्रवाले प्रेमी के अकृत्रिम प्रेम के लिये वह सब तरह की यंत्रणा सहने के लिये तैयार थी ।

वह इतना तन्मय होकर सोच-विचार रही थी कि कब दंड-पर-दंड बीत गए, इसका उसे पता तक न चला । अकस्मात् रात की निस्तब्धता को भंग करते हुए राजमार्ग पर घोड़ागाड़ी का शब्द जान पड़ा । वह चकित होकर उठ खड़ी हुई । उसका हृदय शीघ्रता से स्पंदित हो रहा था । इतनी रात को कौन गाड़ी पर चढ़कर आया है ? शब्द क्रमशः पास आया । उसने सोचा, ज़रूर कोई भगेलू आया है । किंतु गाड़ी पर चढ़कर वह कैसे आ सकता है ? गाड़ी रुकी । दरवाज़े पर किसी ने धीरे से थपथपाया । युवती घर से बाहर आई । सीढ़ी के पास खड़ी होकर क्षण-भर उसने कान लगाकर सुना । कोठे पर कोई आवाज़ न सुनाई पड़ी । अर्गले पर हाथ रखकर वह मृदुस्वर में बोली—"कौन है ?"

वैसे ही स्वर में आवाज़ आई—"मित्र ।"

काँपते हुए हाथ से उसने भारी लोहे के अर्गले को खोल दिया ।

बाहर दो आदमी खड़े थे । एक किसान, दूसरा ऊँचे डीलडौलवाला पुरुष । उसका मुखमंडल, सिर की टो

से ढका था। शरीर पर लंबा अँगरखा था। सड़क पर एक गाड़ी खड़ी थी, उसके ऊपर और एक आदमी बैठा था। संभवतः वह बीमार था।

किसान बोला—"आप क्या अकेली हैं ?"

"हाँ, सिर्फ़ मेरी रोगी मा ऊपर कमरे में सोई हुई है ?"

अँगरखे वाला आदमी बोला—"सिनोरिना, हम लोगों को एक-एक प्याला गर्म क़हवा दे सकती हो ? हम लोग एक-आध घंटा आराम करना चाहते हैं। मेरा भाई बीमार है।" उसने युवती के मुँह पर निगाह डालकर देखा कि प्रार्थना व्यर्थ नहीं गई। क्षण-भर की भी देरी न कर वह पीड़ित मित्र के संधान के लिये गाड़ी की तरफ़ चला।

गाड़ी चली गई। युवती ने नवागंतुकों को घर में बुलाकर द्वार बंद कर लिया। इसके बाद बिना कुछ कहे हुए आग जलाकर क़हवा तैयार करने लगी।

साथी की पीड़ा के संबंध में दो-एक बातें पूछकर लंबे डीलडौलवाले पुरुष ने सिर से टोपी उतार डाली। उसके बाल चारों तरफ़ छिटक पड़े। आगंतुक ने मेज़ पर एक हाथ रखकर उस पर अपना मस्तक रक्खा और तुरंत ही गहरी नींद में सो गया। उस समय उत्कंठा अथवा आशंका का कोई चिह्न उसके मुँह पर न दिखाई पड़ा। उससे कम अवस्थावाला उसके शांत मुखमंडल की ओर ध्यानपूर्वक देखने लगा। उसके सुंदर चेहरे से यंत्रणा और भूख-प्यास की मुर्दनी प्रकट हो रही थी। लेकिन उसकी आँखों में नींद बिलकुल न थी।

युवती ने क़हवा तैयार कर मेज़ पर रक्खा। इसके बाद बंद जँगले के पास खड़ी होकर कान लगाकर सुनने लगी। उसे ऐसा जान पड़ा कि बहुत दूर सड़क पर घोड़े की टाप सुनाई पड़ रही है। वह मेज़ के पास आकर बोली—"अस्ट्रियन आप लोगों को खोज रहे हैं। वे इधर ही आ रहे हैं।"

जगे हुए व्यक्ति ने अपने साथी के कंधे पर हाथ रक्खा। वह एक छलाँग में उठ खड़ा हुआ।

"गेसिपी, वे हम लोगों की तलाश में आ रहे हैं।"

"मैं जानता था कि ऐसा ही होगा। किंतु इतनी जल्दी यह सब हो जायगा, इसकी स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी।"

मैदान तक गई हुई सड़क पर घोड़े की टाप अधिक स्पष्ट सुनाई पड़ने लगी। उनके गले की आवाज़ भी सुनाई पड़ने लगी।

युवती फुर्ती से रसोईघर की ओर चली गई। कपड़े वग़ैरह रखने के लिये एक बड़े ताक के ऊपर एक परदा लटका हुआ था। फुर्ती से हाथ से उस परदे को उतारकर वह बोली—"आप लोगों में से एक आदमी यहाँ आवे।" अवस्था में जो बड़ा था, उससे उसने कहा, आप ही जल्दी आइए।"

उसने दृढ़ स्वर में कहा—"नहीं, हम लोग दोनों साथ ही रहेंगे।"

"आप लोगों में से यदि एक ही को वे देख पाएँगे, तो मेरा अनुमान है कि मैं आप दोनों की जान बचा सकूँगी। किंतु यह मेरे पास रहें।"

"ईश्वर की दुहाई, इटली की दुहाई! सेनापति आप जायँ। यही हम लोगों की रक्षा का एक-मात्र उपाय है। मेरा विश्वास है कि जो यह कह रही है, वही करना ठीक होगा।"

"टेरेसा ने परदा गिरा दिया। इसके बाद एक पुराने बक्स से मज़दूरों के पहनने लायक़ एक नीला कुर्ता निकालकर युवक से कहा—"आप लाल कोट पर इसे पहन लीजिए, उसे कोई देख न सके।" इसके बाद कोमल स्वर में कहा—"सिनेरा, आप हिलेंडुलें नहीं, वे यह समझने न पावें कि आप लँगड़े हैं।"

दरवाज़े पर बार-बार खड़खड़ाहट सुनकर उसने द्वार खोल दिया।

"सुंदरी टेरेसा, तुम्हारी नींद तोड़कर तुम्हें कष्ट तो नहीं दिया ?"

"नहीं सेनापति महोदय, मैं जगी हुई थी सोई नहीं थी।"

"मैं अभी मेडिग्लियाना की ओर जाऊँगा। इसके पहले एक-एक गिलास शराब तो पी ली जाय। विद्रोहियों के पीछे व्यर्थ में भटकते-भटकते बहुत प्यास लगी है।"

युवती रास्ता छोड़कर खड़ी हो गई। सैनिकों ने एक-एक करके रसोई-घर में प्रवेश किया। फ्रांज ने सबके अंत में प्रवेश किया। उसने चलते-चलते उसका हाथ स्पर्श किया। उसे ऐसा जान पड़ा मानों सर्वत्र धुंध छाया है।

"टेरेसा, यह आदमी कौन है ? इतनी रात को यह अतिथि कहाँ से पाया ?"

"यह पास ही के एक गाँव से आए हैं। आप लोगों की तरह यह भी एक गिलास शर्बत पिएँगे।"

"ख़ैर, ज़रा देखा तो जाय। अजी, बातचीत न करो, क्यों जी, जवाब क्यों नहीं देते ? सिपाही, इसे गिरफ़्तार कर इसके कपड़ों की तलाशी लो। शत्रु की सेना का यदि कोई होगा, तो अभी इससे समझूँगा। यदि ऐसा न होगा, तो साथ लेता जाऊँगा।"

टेरेसा ने देखा--परदा कुछ हिल उठा। वह सामने की ओर बढ़ी। वह यह जानती थी कि वह जो बात कहने जा रही है, उसे कहने की अपेक्षा प्राण देना सहज है। किंतु उसका कंठस्वर बिलकुल विचलित न हुआ। उसने कहा—"सेनापति महोदय, मेरे ही कारण वह चुप हैं। किंतु उनकी होकर मैं सब कहती हूँ। वह मेरे प्रणयी हैं, इसी से वह यहाँ आए हैं। आज मैंने वाध्य होकर यह बात कही। महाशय, मैं हाथ जोड़कर निवेदन करती हूँ; इन्हें मेरे पास से अन्यत्र न ले जायँ।"

इटली का युवक बोल उठा—"यह क्या करती हो ?" किंतु सैनिकों की उच्च हास्यध्वनि में यह बात विलीन हो गई।

युवती अस्फुट स्वर में बोली—"चुप रहिए, इटली के लिये यह सब कर रही हूँ।"

"दो पहर रात हो गई, रोगी माता ऊपर सोई पड़ी है। स्त्री-चरित्र विचित्र है। क्यों फ्रांज, मैंने समझा था, तुम्हीं इस स्त्री के प्रेमी हो। यदि वह बात सच है, तो तुम्हारी रुचि की प्रशंसा करनी चाहिए !"

क्षण-भर के लिये टेरेसा ने फ्रांज की ओर देखा। उसका चेहरा पीला पड़ गया था। उस समय उसके चेहरे पर बालोचित सरलता की एक रेखा भी दिखाई न पड़ी। युवती मन-ही-मन मना रही थी—"हे भगवन्, वह हमारी इस बात पर विश्वास न करे।" किंतु वह जानती थी कि इस समय अविश्वास पैदा किए बिना सब चौपट हो जायगा।"

"सेनर फ्रांज को लेकर मैं जब-तब दिल्लगी कर बैठता हूँ, यह तो स्वाभाविक है। ऐसी सुनसान जगह में अकेला रहना बड़ा कठिन है। किंतु जी बहलाना छोड़कर हमारा दूसरा इरादा नहीं रहता। मैं अपनी प्रेमिका गोवानी पर सदा अनुरक्त हूँ। फ्रांज ने क्या सच ही समझ लिया था कि कोई इटालियन युवती शत्रु-पक्ष के युवक को कभी आत्मसमर्पण कर सकेगी ? बल्कि इसके पहले तो वह मृत्यु को वरण करेगी ?"

तब फ्रांज बोला—"सेनापति, आपने ठीक ही कहा था। मैं सचमुच इस स्त्री को अंतःकरण से चाहने लगा था। इससे ब्याह करने को भी राज़ी था। यदि मैं सेना से अलग हो जाऊँ और इसके देशवासियों के विरुद्ध अस्त्र न धारण करूँ, तो यह मुझसे शादी करेगी, आज ही ऐसी प्रतिज्ञा हुई थी। मैंने भी स्वीकार किया था कि अपने सैनिक धर्म, अपनी भावी उन्नति की आशा, सभी कुछ त्याग कर इसके मन के मुताबिक़ काम करूँगा। मैंने इसका उपयुक्त दंड पा लिया। स्त्री के प्रेम, पातिव्रत और पवित्रता में मैं विश्वास करता था, इस समय मुझे इसी पर आश्चर्य हो रहा है।" कुछ देर के लिये दोनों हाथों से उसने अपना मुँह ढक लिया। इसके बाद अकस्मात् उठकर खड़ा हो गया और बोला—"सेनापति, चलिए, शीघ्र ही यह स्थान छोड़ दीजिए।"

इटालियन युवक ने एक बार कुछ बोलना शुरू किया, लेकिन उसके बग़ल में बैठी हुई युवती ने उसकी ज़ख़्मी जाँघ को दबा दिया। युवक पीड़ा से छटपटाकर रह गया। युवती ने कोमल स्वर में कहा—"यह सब अभिनय इटली के लिये है, इसके लिये है।"

फ्रांज की बात सुनकर सैनिक कुछ देर तक चुप रहा। सेनापति ने सहकारी के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"हाँ चलो, यह स्थान अभी त्याग दिया जाय। इसकी शराब हम लोग छुएँगे भी नहीं। तो भी युवक, सुख रक्खो, आस्ट्रिया में तुम्हारे योग्य पवित्र हृदयवाली सुंदरी का अभाव नहीं। दक्षिण देश की युवतियाँ...।"

उसने अस्फुट स्वर में न-जाने क्या कहा। इसके बाद ओवरकोट लेकर चल पड़ा। सैनिक भी उसके पीछे-पीछे चले। फ्रांज पहले की तरह सबके अंत में कमरे से बाहर हुआ।

टेरेसा ने कातर नेत्रों से उसकी ओर देखने की चेष्टा की। यदि एक बार फ्रांज उसके नेत्रों की ओर देखता, तो देखते ही उसे पता चल जाता कि युवती ने जो

कुछ कहा है, वह सब सफ़ेद झूठ है। लेकिन वह स्त्री एक हाथ इटालियन युवक के कंधे पर रक्खे आँखें नीची किए ताकती रही।

टेरेसा ने देखा कि लंबे क़दवाला सैनिक उसके बग़ल से होकर जाते समय कोई सफ़ेद चीज़ ज़मीन पर फेंकता गया है। उसी दिन तीसरे पहर को टेरेसा ने उसे जो गुलाब का फूल दिया था, यह वही है। वह युवक जाते समय उस फूल को पैर से कुचलता गया।

"सेनोरिया, आपने यह क्या किया? प्रेम, मर्यादा सभी को विसर्जित कर दिया! आपने क्यों नहीं मुझे बात करने दी?"

टेरेसा ने युवक के मुँह पर पीड़ा, लज्जा और शोक का चिह्न देखा। उसने बहुत बातें झूठ कही थीं। और यदि दो-एक झूठी बातें कहकर किसी भले आदमी की मानसिक अशांति दूर कर दी जाय, तो इससे हानि क्या?

"महाशय, भय का कोई कारण नहीं। मैं इच्छा करने पर अपने प्रेमी के भ्रम को दूर कर सकूँगी।"

परदा हटा दिया गया। युवती ने देखा कि उज्ज्वल नीली आँखें उसके मुँह पर गड़ी हैं। उन नेत्रों में बालक की-सी सरलता है। युवती ने भक्ति से भरकर अपना हाथ उस अपरिचित के होठ की ओर बढ़ाया।

"सिनोरिना, जान पड़ता है, आपने मुझे पहचान लिया। जिसके लिये आपने इतना त्याग स्वीकार किया है, निश्चय ही उसे पहचाना है।"

"आप गैरीबाल्डी हैं।"

"केवल मेरे लिये आप इतना नहीं कर सकती थीं। इटली के पवित्र नाम पर मैंने आपका यह आत्मोत्सर्ग सिर पर लिया।"

जिसके लिये इतनी चेष्टा की गई, वह सफल हुआ। अब और अभिनय करना असंभव है। वह अब एकांत में बैठकर सोचना चाहती है। यह निराशापूर्ण जीवन वह किस प्रकार बिताएगी, एक बार एकांत में बैठकर यही सोचना चाहती है।

"राजमार्ग के दूसरी ओर एक गोल मकान है, वहाँ आज रात को आप लोग सो सकते हैं। वे लोग आज रात को लौटकर नहीं आएँगे। सवेरे एक आदमी आपके साथ दूँगी। वह बिलकुल आराम के साथ पहाड़ के रास्ते से ले जायगा।"

"सो मुझे विश्वास है। ईश्वर की कृपा से इटली की स्त्रियाँ इस भाव से प्रेरित हो आत्मोत्सर्ग करें, तो शीघ्र ही इसके अच्छे दिन लौट आएँगे।"

दूसरे दिन सेना लौट आई। वे प्रतारित हुए थे, इसलिये टेरेसा को बहुत तरह से लांछित किया—कष्ट दिया गया। युवती ने उन सब कष्टों पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया। एक व्यक्ति सेनादल के साथ नहीं आया। युवती जानती थी कि वह कभी नहीं आएगा। भागनेवाले उस समय पर्वत-समूह को पार कर समुद्र के पास पहुँच रहे थे। समुद्र-तीर पर पहुँचते ही उनकी रक्षा हो जायगी। उनकी रक्षा होने पर इटली के भविष्य की आशा रहो।

× × ×

दस वर्ष के बाद एक दिन फ्लारेंस से बोलेना तक सारा मार्ग दर्शकों से भर गया। प्रत्येक नगर, प्रत्येक गाँव से दर्शकों का दल इटली के उद्धारकर्ता को देखने के लिये इकट्ठा हुआ था।

सड़क के बग़ल में स्थित एक सराय के सामने एक गाड़ी खड़ी हुई। एक स्त्री उस गाड़ी के सम्मुख उपस्थित हुई। उसके मुँह पर विषाद की छाया थी। किंतु उसकी सौंदर्यराशि अब भी एकबारगी लुप्त नहीं हुई थी। गाड़ी पर बैठे हुए व्यक्ति ने आग्रह के साथ रमणी से हाथ मिलाया। एक दिन जन्मभूमि की रक्षा करनेवाले को इसी स्त्री ने जीवनदान किया था।

उसकी कीर्ति-कहानी पहले ही लोगों में फैल गई थी। दर्शक आपस में कह-सुन रहे थे कि देखो, स्त्री का कैसा सम्मान हो रहा है! इतने दिन बाद इसे उचित पुरस्कार मिला।

जिन्होंने उस स्त्री से हाथ मिलाया था, उन्हें छोड़कर और कोई नहीं जानता था कि उसने जैसा त्याग स्वीकार किया था, उसके उपयुक्त पुरस्कार पृथ्वी में कोई नहीं दे सकता। जीवन की नाट्यशाला में पुरुष आशा करते हैं, काम करते हैं; किंतु स्त्रियाँ सदा यंत्रणा सहन करती हैं।*

गणेश पांडेय

---

* अँगरेज़ी से अनुवादित।

गीत

नूतन प्रकाश फैला दो !
इस अंधकार दुनिया में—
आनन्द अनोखा ला दो ।
नूतन प्रकाश फैला दो !

(१)

चमकें आँसू की लड़ियाँ ;
आएँ मतवाली घड़ियाँ ।
पथ हाट सजे, पृथ्वी पर
प्यारा वसंत बरसा दो ।
नूतन प्रकाश फैला दो !

(२)

झूमें मारुत—तरु डोलें ;
कलिकाएँ घूँघट खोलें ।
आकाश तले कोकिल का
कोई मधु गान सुना दो ।
नूतन प्रकाश फैला दो !

(३)

नाचने लगे त्रिभुवन भी ;
आए जीवन-यौवन भी ।
मेरे हित रंग-स्थल में
थोड़ी-सी जगह दिला दो।
नूतन प्रकाश फैला दो !

"गुलाब"

स्वदेशी-प्रचार की उपयोगिता

हमारा पवित्र संसार रंगभूमि के समान है और हम उस रंगभूमि पर नाट्य करनेवाले पात्र हैं । इस बृहत् नाटक में मनुष्य अपने-अपने कार्यों को अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार पूर्ण करने की चेष्टा करते हैं । हर एक पात्र अपना कार्य करने के लिये उत्तरदाता है । वह किसी अंश में स्वतंत्र और किसी अंश में परतंत्र है । वह उस कार्य के करने में स्वतंत्र है, जिसका संबंध नाटक के किसी दूसरे पात्र से न हो, और जिसका संबंध दूसरे किसी पात्र से हो, उसमें वह स्वतंत्र नहीं । यदि वह दूसरे से संबंध रखनेवाले कार्य को अपनी इच्छानुसार करे और यदि उससे दूसरे पात्र के कार्य की पूर्ति में बाधा उपस्थित हो, तो इस मिथ्या स्वतंत्रता के लिये उस पात्र को अवश्य दंड मिलेगा और यदि दंड मिलने पर भी वह न मानेगा, तो वह बहिष्कृत कर दि जायगा । ठीक यही हाल हमारे नित्यप्रति के जीवन का है । हम उसी कार्य के करने में स्वतंत्र हैं, जिसका संबंध किसी दूसरे से न हो । किंतु जिस कार्य का दूसरे से संबंध हो, उसके करने में हम स्वतंत्र नहीं हैं।

यदि हमें समाज में रहना है, तो हमें ऐसे कार्य करने पड़ेंगे, जिनका संबंध दूसरों से हो और ऐसे कार्यों के संपादन करने में हम यह न विचारें हमारे कार्य से दूसरों को लाभ होगा या हानि, तो समझना चाहिए कि हममें मनुष्यत्व किसी अंश ही है । यदि हम अपनी हानि कर दूसरों को लाभ चावें, तो हम महात्मा गिने जायँगे । यदि हम हानि न करते हुए भी दूसरों को लाभ पहुँचावें, तो

यथार्थ मनुष्य की उपाधि धारण करने योग्य होंगे। किंतु अपनी हानि न होने पर भी या जान-बूझकर दूसरों को हानि पहुँचावें, तो हम निकृष्ट मनुष्यों की श्रेणी में रक्खे जाने योग्य बनेंगे। यदि हमारे कार्यों से कुछ मनुष्यों को हानि पहुँचे, तो वे मनुष्य हमारी निंदा करेंगे, हमसे घृणा करेंगे और शत्रु हो जायँगे। किंतु यदि हमारे कार्यों से समाज के अधिकांश मनुष्यों को या पूर्ण समाज को हानि पहुँचेगी, तो समाज हमें दंड देगी और दंड मिलने पर भी यदि हम न सुधरेंगे, तो समाज हमारा बहिष्कार कर देगी अथवा हमारा नाश तक कर डालेगी।

इस संसार में तीनों श्रेणियों के अनेक मनुष्य हो गए हैं एवं हैं, और इतिहास उनके दृष्टांतों को हमारे सम्मुख उपस्थित किए हुए है। हमारा कर्तव्य है कि उन दृष्टांतों पर मनन कर अपने आचरण को शुद्ध कर लें। मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम प्रथम वर्ग के दृष्टांतस्वरूप हैं और इसी कोटि में महात्मा बुद्ध, महात्मा ईसा, महात्मा गांधी, स्वर्गवासी लाला लाजपतराय प्रभृति महानुभावों को रख सकते हैं। दूसरी कोटि में स्व० सर आशुतोष मुकरजी, स्व० सर फ़ीरोज़साह मेहता आदि सज्जनों की गणना कर सकते हैं। तीसरी कोटि के मनुष्यों की संख्या इतनी अधिक है कि प्रत्येक मनुष्य के मुख पर दो-चार ऐसे महाशयों के नाम बने ही रहते हैं। कभी-कभी ऐसा देखने में आता है कि तीसरी श्रेणी के मनुष्यों को समाज कुछ दंड नहीं दे सकती है और न उनके कार्यों का प्रतिरोध ही कर सकती है। किंतु सूक्ष्म दृष्टि से देखने से इसके कारण समझ में आ जाते हैं। मुख्य कारण समाज का असंगठित होना ही होता है। यदि समाज उत्तम रीति से संगठित हो, तो ऐसे मनुष्यों में से बहुत कम दंड पाने से बच सकते हैं। दंड भी ऐसा जो "साँप मरे न लाठी टूटे" वाली कहावत को चरितार्थ करनेवाला हो। इसके लिये भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास देखिए। दूसरा कारण यह होता है कि ऐसे मनुष्यों के हाथ में अधिकाररूपी बलवान् अस्त्र रहता है, जिसके प्रभाव व डर से समाज खुल्लमखुल्ला न तो कुछ कह सकती और न कर ही सकती है। धन आदि अन्य शक्तियों के रहने से भी समाज दबी रहती है। कई लोग समझते हैं कि ये लोग दूसरों को हानि पहुँचाते रहने पर भी अपना जीवन उत्तम रीति से व्यतीत कर, सफल कर लेते हैं, किंतु यह वक्तव्य ध्रुव सत्य नहीं है। यह इस लोक में तभी सत्य दिखाई देता है, जब समाज असंगठित एवं निर्बल हो। इतिहास यह स्पष्ट रूप से सिद्ध करके दिखा रहा है कि इस श्रेणी के महाप्रतापशाली राजा-महाराज सदैव उद्वेगाग्नि से जलते रहते थे और उनके अत्याचारी कृत्यों का परिणाम उनके अपवित्र और समाज के पवित्र रुधिर से इतिहास की समयरूपी पोथी में सदा के लिये अंकित है।

ऊपर के वक्तव्य से यह सिद्ध हो गया कि सबल एवं संगठित समाज को हानि पहुँचाकर जीवित रहना पानी में रहकर मगर से वैर करने के समान है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि समाज को लाभ पहुँचाने से व्यक्ति-विशेष को क्या लाभ है? प्रश्न अत्यंत विशाल और गहन है, किंतु अविचारी एवं स्वार्थी को इसमें कुछ भी गहनता नहीं प्रकट होती है। केवल इसी एक प्रश्न पर अनेक दर्शनशास्त्रों की रचना हो चुकी है, जिनमें शास्त्रों के प्रणेता महात्माओं ने अपने-अपने विचारों के अनुसार इसको हल करने का प्रयत्न किया है। यहाँ तक कि महात्मा चार्वाक कहते हैं कि जब तक जिया जाय, तब तक सुख के साथ जीना चाहिए। उधार लेकर भी घी पीने की आवश्यकता हो, तो घी पीना चाहिए। जलकर राख हुई देह कहाँ से वापस आ जायगी। किंतु वर्तमान समय में क्या कोई समझदार इस मत का प्रतिपादन करेगा? यदि हम दर्शनों की युक्ति-प्रयुक्तियों का विचार करते हुए इस प्रश्न के उत्तर देने का प्रयत्न करें, तो एक तो हम सफल न होंगे, दूसरे हम निश्चित मार्ग से विचलित हो जायँगे। अतएव अधिकांश महात्माओं का अभिप्राय जान लेना ही पर्याप्त होगा और वह यह कि अपने भाइयों का उपकार करने से स्वयं हमारा दुगना उपकार और लाभ है।

इससे यह सिद्ध होता है कि "परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्।" किंतु प्रश्न यह उपस्थित होता है कि किस-किस का परोपकार करना चाहिए। परोपकार की सीमा होना निहायत ज़रूरी है। इस संसार में अनेक देश हैं, अनेक समाज और जातियाँ हैं। मनुष्य यदि यह चाहे कि वह संसार-भर का उपकार करे, तो उसके लिये यह असंभव-सा है; ऐसा केवल महात्मा

लोग ही कर सकते हैं। यद्यपि "वसुधैव कुटुंबकम्"-नामक उच्चादर्श हमारे सम्मुख रक्खा हुआ है, तथापि जिस देश और जिस समाज में मनुष्य का जन्म हुआ है, उसी का परोपकार करना उसका कर्तव्य है। अपने देश एवं राष्ट्र की सेवा करना प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य है। देशसेवा करने में उसे—

जननी अरु निज भूमि को, बड़ प्राणहु से देख ;
जाकी सेवा करन को, प्राण न कछु अवरेख।

हमारी तीन माताएँ हैं। एक वह जिसने जन्म दिया, दूसरी वह मातृभूमि जिसकी गोद में मनुष्य पलता है और जीवित रहता है, और तीसरी वह मातृ-भाषा जिसके द्वारा हम यह अपने विचार बाल्य से ही प्रकट करते हैं। इन तीनों के उपकार का ऋण हमारे सिर पर है। हम इन तीनों की सेवा करके अपने सिर चढ़े हुए ऋण का कुछ भाग पटा सकते हैं। जिस देश में हमारा जन्म हुआ है, जिस देश में हम पले हैं, जिस देश में हमारा पवित्र गृह है और जिस देश की भाषा बोलकर हमने अपनी आवश्यकताएँ प्रकट की हैं एवं ज्ञान-संपादन किया है, उसी देश को यदि हम प्यार न करें, तो हमारे बराबर अधम कोई न होगा। पशु-पक्षी तक अपने संबंधीजनों, गृह, देश, भाषा इत्यादि से उत्कट प्रेम रखते हैं। इसके अनेक दृष्टांत अवलोकन करने से मिल सकते हैं। एक अँगरेज़ कवि ने एक तोते के उत्कट देश एवं देश-भाषा-प्रेम पर कविता लिख डाली है, जिसका नाम है "आन मुलाज़ शोर।" दूसरे अँगरेज़ कवि ने यहाँ तक कहा है कि क्या कोई ऐसा प्राणहीन मनुष्य है, जो अपनी मातृ-भूमि का नाम प्रेम से नहीं लेता? जिसे अपनी मातृभूमि से प्रेम और अनुराग नहीं है, वह मनुष्य जीवित कदापि नहीं कहा जा सकता है। इसी भाव को हमारे मित्र श्रीकामताप्रसादजी गुरु ने इस प्रकार कहा है—

जिसे जन्म की भूमि भाती नहीं है,
जिसे देश की याद आती नहीं है ;
कृतघ्नी महा कौन ऐसा मिलेगा ?
उसे देख जी क्या किसी का खिलेगा ?
धनी हो बड़ा या बड़ा नामधारी ;
नहीं है जिसे जन्म की भूमि प्यारी।
वृथा नीच ने मान सम्पत्ति पाई ;
बुरे के बढ़े से हुई क्या भलाई।

इसी प्रकार पश्चिम के अनेक कवियों का कथन। और पश्चिम की जातियों के उत्थान का मुख्य कारण उनका यह स्वदेश-प्रेम है। स्वदेश की बातचीत करते हुए वे प्रेमविह्वल और गद्गद्-कंठ हो स्वदेश से दूर होने के कारण रोने लगते हैं। यदि हम अँगरेज़ों से कोई सबक़ पाठ सीख सकते हैं, तो वह यही स्वदेश-प्रेम है। हममें भी जब उस उच्च कोटि का स्वदेश-प्रेम उत्पन्न हो जायगा, तब हमारी उन्नति होने में देर न लगेगी। हमारे देश में भी पहले स्वदेश-प्रेम था और किसी अंश में इससे भी उच्च था। हमारे यहाँ के प्राचीन, अर्वाचीन और वर्तमान लेखकों, कवियों और वक्ताओं ने स्वदेश और उसकी सेवा के गीत गाए हैं और ये गीत ज़िंदादिल को फड़कानेवाले हैं। ये गीत हमारे देश के बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सबके मुख पर रहने चाहिए, जिनका पाठ वे अत्यंत आदर के साथ किया करें।

किंतु हम तो यही कहेंगे कि स्वदेश की सेवा करने में, स्वदेशी-प्रचार में एवं स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग में हम किसी दूसरे पर उपकार नहीं करते, वरन् स्वयं अपने ही ऊपर उपकार करते हैं। स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग से हमें स्वयं ही लाभ होता है। जब हम अपने देश-वासियों की सेवा करते हैं, तो देश में अधिक अमन-चैन होगा और हमारे देशवासी अधिक सुखी हो पहले की अपेक्षा अधिक और उत्तम काम करेंगे, एवं हमारी आफ़त के समय हमें भी मदद देंगे। उनकी सेवा करके हम उन्हें इस योग्य बनाते हैं कि वे कष्ट के समय हमारे काम आवें। दूसरे, जब वे अधिक कमावेंगे और सुखी रहेंगे, तो हमारे राष्ट्र की आय भी अधिक होगी और राष्ट्र हमें अधिक वेतन देगा, एवं हमारे लाभ के अधिक काम करेगा। साथ-ही-साथ हमारे देशवासियों के दुःखी एवं पीड़ित रहने से हमारे राष्ट्र का जो धन नष्ट होता है, वह भी बच जायगा और हमारे लाभ में लगाया जायगा।

इसी प्रकार स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग से भी हमें को लाभ होगा। जो पैसा बाहर चला जाता है, वह स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग से देश में ही रहेगा। जो लोग एक-एक पैसे को मुहताज रहते हैं, उन्हें भी अधिक पैसे मिलेंगे एवं पूँजीपतियों को भी

होगी; फलतः राष्ट्र की आमदनी बढ़ेगी। राष्ट्र एवं जनता की पीड़ित लोगों के कष्ट-निवारणार्थ जो पैसा ख़र्च करना पड़ता है, उसकी बचत होगी। पुनः स्वदेशी-प्रचार से हमारी माँगों को पूरा करने के लिये अधिक स्त्री-पुरुष व्यापार-धंधों में लगेंगे। इसका नतीजा यह होगा कि गृह-पति पर घर-ख़र्च का जो भार आजकल रहता है, जिसके कारण वह ज़रा-ज़रा में चिढ़ उठता है एवं जिसके चिंतारूपी शिकंजे से कसा जाकर दुबला-पतला हो जाता है, वह हलका हो जायगा। भारतवर्ष में बेकारी धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है। इस बीमारी को दूर करने की एक-मात्र दवा स्वदेशी-प्रचार है। क्या हमें यह देखकर तरस नहीं आता कि हमारे भाई तो भूखों मरते हैं और दूसरे देश के लोग हमारे पैसे से ही गुलछर्रे उड़ाते हैं? यदि ऐसा है, तो हमारे लिये चुल्लू-भर पानी ही काफ़ी है। कई लोग ऐसे हैं, जिन्हें अपने जीविकोपार्जन के कार्य से पर्याप्त अवकाश मिलता है। इससे उनके घर-ख़र्च के लायक़ काफ़ी आमदनी नहीं होती, कई तो आधे पेट और अर्ध-नग्न ही रहते हैं। लेकिन करें तो क्या करें? कोई ऐसा गौण धंधा नहीं, जिसे अपने फ़ुरसत के समय में करके वे अपनी आमदनी बढ़ा सकें; क्योंकि उनकी बनाई हुई वस्तु ख़रीदेगा कौन? यहाँ तो चटकीली-भड़कीली बनाई हुई विदेशी वस्तुएँ हर प्रकार की आती हैं, जो लोगों का मन लुभाकर सिर चढ़ जाती हैं। अतएव स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग से इन बेचारों की आर्थिक स्थिति भी सुधर जायगी एवं हमारा भी परोक्ष-अपरोक्ष रीति से लाभ होगा।

अब यह विचार उत्पन्न होता है कि यह देशसेवा किस प्रकार हो सकती है। क्या देश को केवल प्रेम करने से देशसेवा हो सकती है? देश की सेवा करने के कई मार्ग हैं, देश के वासियों को सुशिक्षित कर योग्य बनाना और देश के व्यापार एवं कृषि की वृद्धि कर देश को धनवान् बनाना, ये दो मुख्य हैं। प्रस्तुत लेख का संबंध दूसरे से है, अतएव स्वदेशी-व्यापार के प्रचार की आवश्यकता के विषय में ही विचार किया गया है।

समाज को तथा स्वयं को धनवान् बनाने का प्रधान सुसाधन व्यापार है। प्रामाणिकता और सदाचार से नौकरी कर धन जोड़नेवाले हज़ारों में दो-चार ही मिलेंगे। असद्व्यवहार से धन एकत्र करनेवाले हमको अनेक मिलेंगे। धनवानों के जीवनचरित्र पर यदि हम दृष्टिपात करें, तो हमको विदित होगा कि ९९ प्रतिशत व्यापार के द्वारा धनी हुए हैं और होते हैं। इसी प्रकार देश का भी हाल है। अमेरिका, इँगलैंड, जापान, जर्मनी इत्यादि जितने वर्तमान समय के शक्तिशाली और समृद्धिवान् देश हैं, वे इस स्थिति को प्रधानतः व्यापार के द्वारा ही पहुँचे हैं। वर्तमान समय में क्या, पुरातन काल में भी लोग एवं देश व्यापार से ही धनवान् होते थे। इतना अवश्य है कि कुछ जातियाँ दूसरी जातियों के माल व धन का अन्यायपूर्वक ज़बर्दस्ती से हरण कर मालदार हुई हैं, और होती हैं; किंतु धनवान् होने की यथार्थ रीति केवल व्यापार ही है।

समाज को धनवान् बनाने की नितांत आवश्यकता है; क्योंकि सर्वे गुणा कांचनमाश्रयन्ति, अर्थात् सर्व गुण कांचन में विद्यमान हैं। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिये हमें हरएक व्यापार में कुशलता हासिल करनी चाहिए। कुशलता प्राप्त किए विना हम संसार की अन्य जातियों से स्पर्द्धा नहीं कर सकते हैं। जब तक हम इस दौड़-दौड़ में भाग लेने के लिये समर्थ न होंगे, तब तक हम किसी प्रकार की उन्नति न कर सकेंगे। इसलिये सबसे प्रधान उपाय यह है कि पढ़-लिखकर दासता के पीछे सत्तू बाँधकर हम न पड़े रहें। केवल दासता के योग्य बनाना ही शिक्षा का उद्देश्य कदापि न होना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य बालकों को अपनी और समाज की सेवा करने के योग्य बनाना है और यह तभी हो सकता है, जब कार्य द्वारा शिक्षा दी जायगी। जब कार्य द्वारा शिक्षा दी जायगी, तब हमारे बालक व्यापार की ओर अधिक झुकेंगे, जिसके करने से मनुष्य दोनों उद्देश्यों की पूर्ति उत्तम रीति से कर सकता है। अतएव विद्याभ्यास समाप्त कर हममें से अधिकांश को व्यापार की ओर झुकना चाहिए। दूसरा उपाय यह है कि अपने यहाँ के व्यापार को उत्तेजन दिया जाय, इसके लिये सरकार का मुख न ताकना चाहिए। यह सत्य है कि सरकार के उत्तेजन से व्यापार में अत्यंत शीघ्र मनोनीत उन्नति हो सकती है, किंतु सरकारी सहायता की बाट देखना व्यर्थ समय को नष्ट करना है। इससे यह तात्पर्य नहीं कि सरकार की सहायता ही न माँगी जाय, या व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा स्वदेशी व्यापार की रक्षा के

क़ानून बनाने एवं बनवाने का प्रयास ही न किया जाय; नहीं सहायता अवश्य माँगी जाय, व्यवस्थापिका सभाओं में देशी व्यापार की रक्षा के क़ानून अवश्य बनाए जाएँ; और भी जितनी तरह से हो सके, उतनी तरह से स्वदेशी-व्यापार की वृद्धि करने के उपाय करने चाहिए; किंतु सरकार की सहायता न मिलने तक हाथ पर हाथ रखकर बैठ रहना उचित नहीं। ऐसा करना अपने हाथ से अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारना है। कार्य करके दिखाना चाहिए। सहायता आप-ही-आप हमको मिलती चली जायगी।

तीसरा उपाय यह है कि हम स्वयं सदैव स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करें और दूसरों को भी ऐसा ही करने का परामर्श दें। यदि हम दूसरों को सलाह नहीं दे सकते या नहीं देना चाहते, तो हमें स्वयं अपने मन ही पर पूर्ण अधिकार रखना चाहिए। जब किसी वस्तु के ख़रीदने का विचार हमारे मन में आवे या हमसे कहा जाय, तब सबसे पहले यह विचार करना चाहिए कि क्या इसका ख़रीदना नितांत आवश्यक है? यदि है तो फिर इसका शोध करना चाहिए कि वह वस्तु स्वदेश में बनती है कि नहीं; बनती हो, तो सहर्ष मोल ले लेना चाहिए। यदि न बनती हो, तो एक बार फिर विचार करना चाहिए कि उस वस्तु के बिना काम चल सकता है या नहीं; अथवा उसी के सदृश दूसरी देशी वस्तु के उपयोग से उक्त वस्तु की आवश्यकता क्या पूरी हो सकती है? यदि नहीं हो सकती और उस वस्तु को मोल लेना निहायत ज़रूरी है, तभी विदेशी वस्तु को मोल लेना चाहिए, अन्यथा कदापि नहीं।

कई लोग स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग से दूर भागते हैं। वे जान-बूझकर विलायती वस्तुएँ ख़रीदते और नेकनामी हासिल करने की कोशिश करते हैं। किंतु हमारी समझ में नहीं आता कि स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग में कौन-सा पाप समाया हुआ है। यदि बाज़ार की बनी हुई पूड़ी-कचौड़ी इत्यादि मिठाइयाँ न खायँ और घर की रोटी से प्रथम संतुष्ट रह धीरे-धीरे उत्तम-उत्तम मिठाइयाँ बनाना सीखकर बाज़ार से अच्छे पकान्न बनाने लगें, तो मिठाईवाला हमसे दुश्मनी नहीं कर सकता है। इसी प्रकार यदि विदेशों में बने हुए माल का उपयोग न करें और अपने देश में बनी हुई वस्तुओं का ही केवल उपयोग करें, तो हमसे इतर देश के लोग क्यों क्रुद्ध होने लगे। इसका किंचिन्मात्र संबंध राज से नहीं हो सकता और जो ऐसा समझते हैं, वे बड़ी भारी भूल करते हैं। अपनी वस्तुओं को अपनाना कोई पाप नहीं है, जिसके लिये परमात्मा या राजा हमें दंड दे सके। यदि अपनी वस्तुओं को हमीं न अपनावेंगे, यदि अपने देश के व्यवसाय को हमीं आश्रय न देंगे, तो देगा कौन? दूसरे देशवासियों में इतना देशाभिमान होता है कि विदेश में रहकर भी उस विदेश में बना हुआ माल न ख़रीदकर अपने देश का बना हुआ माल ही ख़रीदते हैं। हमारा स्वदेशाभिमान देखिए कि स्वदेश में रहकर भी स्वदेश में बना हुआ माल न लेकर विदेशी वस्तुएँ लेने दौड़ते हैं। किंतु अब लोगों की बुद्धि का परदा हट रहा है और स्वदेशी-प्रचार का काम ज़ोरों से चला है। हाँ, तो यह तीसरा उपाय है। इतना अवश्य है कि इस उपाय को उपयोग में लाने में हमें अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ेंगी; किंतु कठिनाइयों को झेले बिना सुफल की प्राप्ति होना असंभव है एवं सफलता जितने अधिक त्याग के उपरांत प्राप्त होती है, उतनी ही अधिक वह चिरस्थायी रहती है।

चौथा उपाय यह है—अपने देश में इस समय जो अनेक व्यापारिक संस्थाओं का जन्म हो रहा है, उनके हिस्से मोल लेकर अथवा उन्हें आर्थिक सहायता देकर व्यापार का आश्रयदाता बनना। जिनके पास काफ़ी पैसा हो, वे ख़ुद नए-नए कारख़ाने और पुतलीघर खोलें। अनेक व्यापारिक संस्थाएँ केवल आर्थिक अभाव के कारण अदृश्य हो जाती हैं। आर्थिक अभाव के कारण व्यापारिक संस्थाओं का टूट जाना समस्त भारतवासियों के लिये अत्यंत लज्जास्पद है, इससे बड़ा दूसरा कोई कलंक नहीं हो सकता। अतएव गाड़कर, गहनों में फँसाकर या ज़वाहरातों एवं दूसरी अमूल्य वस्तुओं में लगाकर पैसे को निरर्थक न बनाइए। उसी पैसे को व्यापार में लगाइए। ग़रीब से अमीर को इस दिशा में भरसक प्रयत्न करना चाहिए।

हमारी भलाई में देश की भलाई है; देश की भलाई में हमारी भलाई। हमारी और देश की भलाई स्वदेशी व्यापार से है। अतएव स्वदेशी व्यापार को हमें पूर्ण आश्रय देना चाहिए।

माधवलाल शर्मा

सुमन !

(१)

कलियों से लगते चुराने अलियों के मन,
देख तुम्हें कौन अपने को न विसारता ;
परिमल प्रचुर पराग मकरंद सभी,
देते कर दान, जान जग की असारता।
जीते तो विमुख कोई कार से न जाता कभी,
अंत भी न होती दूर नेक उपकारता ;
सुमन ! भरी है नस-नस में तुम्हारे अहो !
कितने-से जीवन में कितनी उदारता।

(२)

निज सरवस्व परस्वार्थ में न खोते यदि,
चढ़के सुरों के शीश आज तो न भूलते ;
गुँधकर हारों में न बिकते बज़ारों में यों,
यदि अलि-प्रेमियों के कंटक न शूलते।
लुट जाता कोष न पराग मकरंद का भी,
रूप-माधुरी के यदि गर्व में न भूलते ;
सूख के समूल कभी धूल में न जाते मिल
फूल तुम फूल-फूल यदि यों न फूलते।

अम्बिकाप्रसाद भट्ट "अम्बिकेश"

नोबेल-पुरस्कार के साहित्यिक महारथी

(११)

हेनरी बर्गसन

पाठकों को स्मरण ही होगा कि सर्वप्रथम नोबेल-पुरस्कार .फ्रांस के प्रसिद्ध कवि सली-प्रुडोम को मिला था और तीन वर्ष पश्चात् सन् १९०४ में ही दूसरे .फ्रांसीसी कवि मिस्त्रल को। इस बीच में कई वर्ष बाद रोमे रोलाँ को मिला और तब से .फ्रांस के किसी विद्वान् को यह सम्मान नहीं प्राप्त हुआ था। जर्मनी के चार विद्वानों को पुरस्कार मिल चुका था और अब की बारी .फ्रांस ही की थी। ऐसा ही हुआ और सन् १९२७ का पुरस्कार यहाँ के वयोवृद्ध दार्शनिक बर्गसन को दिया गया। यह पहले भी लिखा जा चुका है कि साहित्यिक पुरस्कार कभी-कभी दर्शनशास्त्र के धुरंधर पंडितों को भी दिया जाता है; क्योंकि पुरस्कार-समिति इसके लिये दर्शन को भी साहित्य के ही अंतर्गत मानती है। हाँ, यह बात अवश्य है कि जहाँ तक होता है, ऐसा कम ही किया जाता है; क्योंकि अभी तक २८ वर्षों के भीतर बर्गसन को लेकर कुल केवल तीन दार्शनिकों को ही यह पुरस्कार मिला है, जिनमें से दो तो, मामसन तथा यूकेन जर्मनी के ही निवासी हैं। मामसन की दार्शनिकता विशेषतः ऐतिहासिक क्षेत्र की है और इनका सर्वश्रेष्ठ सिद्धांत है 'इतिहास की एकता' (Unity of History), जिसके दृष्टिकोण से संसार-भर के विकास में ऐतिहासिक तत्त्व का इन्होंने विवेचन किया है। यूकेन का दर्शन प्रायः धार्मिक है और इन्होंने ईसाईधर्म तथा आदर्श-जीवन के रहस्यों पर लेखनी उठाई है। इस दृष्टि से यूकेन तथा बर्गसन में बहुत कुछ समानता भी है। बर्गसन ने सृष्टि के आंतरिक रहस्यों की विवेचना की है, तो यूकेन ने विकासपूर्ण आधुनिक जीवन को सुधारने का प्रयत्न किया है। आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व इन दोनों विद्वानों पर एक तुलनात्मक ग्रंथ लिखा गया था, जिसमें एक स्थान पर लेखक ने कहा है—"Eucken

stands before us to-day as perhaps the greatest thinker of our age and the protagonist of a new idealism which satisfies our demand for moral reality × × × × × His philosophy of life is an insistence upon the supremacy of the spiritual. His defence of freedom is a doctrine of spiritual liberty rooted in the saving initiative of god and our dependence on Him."*

इस सम्मति से मतभेद हो सकता है और यह सरलता से कहा जा सकता है कि वास्तविक दर्शन की दृष्टि से बर्गसन के ग्रंथ कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि यूकेन की दार्शनिकता प्राय: सामाजिक कल्याण तक ही संकुचित रह जाती है, पर बर्गसन ने जीवन तथा सृष्टि के गूढ़ रहस्यों का अभूतपूर्व प्रतिपादन किया है। यह बात सत्य है कि शंकराचार्य अथवा कपिल-कणाद की भाँति इन्होंने किसी भिन्न विचार-पद्धति अथवा शाला का प्रवर्तन नहीं किया है, जिसमें उच्च कोटि की मौलिकता हो। पर विचार करने का इनका अपना ढंग निराला ही है और उसमें यह बड़ी निर्भीकतापूर्वक सफल भी हुए हैं।

इनका पूरा नाम है हेनरी लुई बर्गसन (Henri Louis Bergson)। इनका जन्म १८५९ ई० में हुआ था और यद्यपि इनके पिता अँगरेज़ तथा माता यहूदिन थी, तथापि यह निरंतर .फ्रांस ही में रहे हैं और .फ्रेंच भाषा में ही लिखते भी रहे हैं। छात्रावस्था में यह पढ़ने-लिखने में बहुत मन लगाते और अपनी कक्षा में प्राय: सर्वश्रेष्ठ रहते थे। प्रारंभ से ही साहित्य एवं दर्शन, दोनों में ही इनकी रुचि थी और इसी से बहुत दिन तक कुछ निश्चित न कर सके कि किस क्षेत्र में जीवन बिताएँ। अंत में दर्शन की ही ओर झुके और तब से .फ्रांस के कई कालेजों में दर्शनशास्त्र के यह अध्यापक भी रहे। इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ L'evolution Creatrice सन् १९०७ में प्रकाशित हुआ था * जिसमें इन्होंने विश्व के विकास के सिद्धांतों पर सराहनीय प्रकाश डाला है। थोड़े ही दिन पश्चात् इन्होंने हास्यरस और उसके महत्त्व पर एक दूसरा ग्रंथ लिखा, जिसका अनुवाद सन् १९१३ में प्रकाशित हुआ। †

१९१४ ई० में जब योरप की लड़ाई छिड़ी, तो इन्होंने अध्यापनकार्य छोड़ दिया और तभी से अंतर-राष्ट्रीय सहानुभूति एवं संधि के लिये निरंतर परिश्रम कर रहे हैं। इस दृष्टि से, संभव है, इन्हें दूसरा पुरस्कार Nobel Peace Prize भी शीघ्र ही दिया जाय, जो संसार में शांति स्थापित करने के लिये सबसे अधिक कार्य करने वाले व्यक्ति को मिलता है। तभी से इनका महत्त्व और भी बढ़ गया और इनके ऊपर कई अच्छे-अच्छे ग्रंथ भी लिखे गए हैं, जिनमें एक तो ‡ लड़ाई के ही दिनों में प्रकाशित हुआ था। युद्ध समाप्त होते ही .फ्रेंच एकेडमी (Academie Francaise) ने इन्हें अपना सदस्य बना लिया, जो .फ्रांस में सर्वोच्च गौरव समझा जाता है। तदनंतर जब अंतर-राष्ट्रीय संघ (League of Nations) ने भिन्न-भिन्न देशों के विचार-विनिमय के लिये एक International Committee of Intellectual Co-operation नाम की संस्था स्थापित की, तो आप उसके सभापति निर्वाचित हुए। तभी से संसार में शांति को स्थायी बनाने की ही चिंता में प्रवृत्त रहते हैं और यही इनके जीवन का ध्येय हो गया है।

रही इनके दार्शनिक विचारों की बात, उनमें सबसे मुख्य सिद्धांत है विश्व में परिवर्तन की व्यापकता। इनका कहना है कि जीवन में प्रत्येक क्षण में परिवर्तन-ही-परिवर्तन व्याप्त है, जिसके कारण भूत, भविष्य तथा वर्तमान में कुछ अंतर ही नहीं रह जाता—भूत परिवर्तित होकर वर्तमान में लीन हो जाता है और वर्तमान आगे बढ़कर

---

* *Eucken and Bergson: Their Significance for christian thought by* E. Hermann (The Pilgrim Press, Boston) page 87 (1912).

* *Creative Evolution*, translated from the French (1914).

† *Laughter: an essay on the meaning of the comic*, translated by C. Brercton & F. Rothwell (1913).

‡ *A Study in the Philosophy of Bergson* by G. W. Cunningham (1916)

भविष्य बन जाता है। या यों कहिए कि तीनों ही केवल वर्तमान के रूप में रह जाते हैं। इस विषय पर एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ भी लिखा गया है * यद्यपि इनकी अन्यान्य पुस्तकें भी अँगरेज़ी में अनूदित हो गई हैं, जिनकी संक्षिप्त सूची नीचे दी जा रही है। †

सिग्रिड अनसेट

सन् १९२८ का पुरस्कार भी कुछ आश्चर्य का कारण रहा; क्योंकि किसी को आशा न थी कि जब दो ही वर्ष पूर्व यह एक महिला-लेखिका को मिल चुका है, तो इतने शीघ्र फिर दूसरी महिला विदुषी को दिया जायगा। पर सच पूछें तो सिग्रिड अनसेट के ग्रंथों की ख्याति ग्रेजिया डेलेड्डा के उपन्यासों से कुछ कम न थी। और हर्ष की बात तो यह है कि सेल्मालेजरलाफ़ की भाँति यह भी उसी देश की रहनेवाली हैं, जहाँ के पुरस्कारदाता डाक्टर नोबेल स्वयं थे। अंतर केवल यही है कि सेल्मा अविवाहिता हैं और अपने स्वदेश तथा गाँव से अतिशय प्रेम रखती हैं, पर अनसेट गृहस्थ-जीवन की उपासिका हैं और अपने बच्चों के स्नेह को संसार-व्यापी सुयश से भी अधिक श्रद्धा की दृष्टि से देखती हैं। इसका सबसे स्पष्ट प्रमाण यह है कि जब गतवर्ष पुरस्कार की घोषणा की गई, तो अनेक समाचार-पत्रों के प्रतिनिधि इनके पास पहुँचे, पर इन्होंने सबको धता बताया; क्योंकि यह अपने बच्चों को सुलाने जा रही थीं, और सबसे यही साफ़-साफ़ कह दिया—

"Don't ask me any questions. I have just received a cable that I have been awarded the Nobel Prize, but I have no time for philosophic chatter. I an going to put my children to bed. Naturally I am glad of the honour bestowed on me, but nothing compares with the happiness I feel among my children in my home."

अर्थात् मुझे दार्शनिक ग़पशप करने का समय नहीं है और पुरस्कार से मुझे उतना सुख भी नहीं जितना घर में अपने बच्चों के साथ रहने में है।

इन शब्दों से स्पष्टवादिता के अतिरिक्त माता के हृदय की सच्ची ममता एवं स्त्रीजाति की स्वाभाविक सरलता टपकती है। ठीक इसी आशय के शब्द उस समय रवि बाबू के मुँह से भी निकले थे, जब उन्हें पुरस्कार मिलने का समाचार दिया गया था। उन्होंने कहा था—"They have taken away my refuge." अर्थात् लोगों ने मेरी शांति छीन ली। वास्तव में बड़े हो जाने का यही दंड मिलता है कि संसार बड़े लोगों को तंग करने लगता है। अनसेट की इस शांतिप्रियता का एक मुख्य कारण यह है कि उनका जीवन प्रायः देहात में बीता है और आधुनिक नगरों के रहन-सहन से यह बहुत घबराती हैं। इनके पिता पुरातत्व-विभाग के एक अच्छे कर्मचारी थे और इनका जन्म डेनमार्क में स्वदेश के बाहर ही हुआ। बाल्यकाल में यह प्रायः गाँव में ही रहीं, जहाँ इनके घरवालों की दशा कुछ अच्छी नहीं थी। इनका जन्मकाल सन् १८८२ ई० है और इस हिसाब से पुरस्कार के समय इनकी अवस्था सेल्मालेजरलाफ से भी कम ही रही है। यह गौरव इँगलैंड के प्रसिद्ध लेखक किप्लिंग को ४२ वर्ष की आयु में और सेल्मा को ५१ वर्ष में प्राप्त हुआ; पर अनसेट इस समय अपने ४७वें वर्ष में हैं।

घर की दशा अच्छी न होने के कारण १० वर्ष तक यह एक दफ़्तर में क्लर्क रहीं, जिससे इन्हें शहरों के अर्वाचीन जीवन का साक्षात् अनुभव प्राप्त हुआ। इस अनुभव का आपने अपने उपन्यासों में समुचित प्रयोग भी किया है। वर्णन करने में यह बहुत ही सिद्धहस्त हैं और चाहे प्रकृति के दृश्यों का चित्र हो अथवा मानव-हृदय के विभिन्न भावों का, इनकी लेखनी की विस्तार-शक्ति का परिचय सर्वत्र एक-सा मिलता है। चित्रण-कला का प्रादुर्भाव इनमें नैसर्गिक जान पड़ता है और इनकी जीवनी से पता भी लगता है कि पहलेपहल इनकी इच्छा चित्रकारी ही करने की थी। पर छोटी अवस्था में ही

---

* *The Philosphy of Change* by W. Carr.

† विशेष अध्ययन के लिय ये पुस्तक देखिये—१ *Mind Energy:* Lectures and Essays by H. W. carr, २—*Introduction to Metaphysics* (1913), ३—*Matierect Memoire* (1914), ४—*Time* and free Wie—an essay on the immediate date of consciousness, translation, by F. W. Pagson, ५—*A Study of Berygson's Attack on Intellcctualism* by Kartin Stephen (1922).

पिता की मृत्यु हो जाने से घर का सारा भार इन्हीं पर आ पड़ा, जिससे इन्हें उच्च शिक्षा न मिल सकी। नौकरी करके दफ़्तर के काम से अवकाश मिलने पर ही यह कुछ लिखा करतीं, धीरे-धीरे इनका नाम होने लगा। इनका पहला ग्रंथ १९०७ में प्रकाशित हुआ, जब इनकी अवस्था २५ वर्ष की थी। चार वर्ष बाद इनका एक उपन्यास 'जेनी' (Jenny) नाम से प्रकाशित हुआ, जिससे इनकी गणना उच्चकोटि के लेखकों में होने लगी। इनके प्रसिद्ध उपन्यासों में से बहुतों का अँगरेज़ी में अनुवाद हो गया है, जिनमें एक तो दो मोटी-मोटी पोथियों में है। इसका नाम है "The Mistress of Hasaby" और इसमें प्रणयलीला का विशद वर्णन है, विशेषतः महिला-स्वभाव का चित्रण तो इसमें देखते ही बनता है। दूसरा उपन्यास है "माला" (The Garland), जिसमें कल्पना का प्रचुर साम्राज्य है। "The Snake-Pit" नाम का एक ग्रंथ अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। पर इन सभी पुस्तकों में हास्यरस कहीं छू तक नहीं गया है, जो अनसेट की प्रतिभा में लांछनस्वरूप समझा जाता है। यह गुण अथवा अवगुण कुछ लोगों की सम्मति में इनकी माता के पक्ष से इन्हें स्वभावतः प्राप्त हुआ है; क्योंकि इनकी माता स्काटलैंड के एक प्राचीन वंश की थीं और स्काच लोग प्रायः रूखे कहे जाते हैं।

इनका सबसे बड़ा उपन्यास है "Kristin Lavransdatter" जो आज से सात-आठ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था और तीन भागों में छपा है। इस कथा में भी एक व्यक्तित्व संपन्न स्त्री का चित्र है जिसका नाम है क्रिस्तिन। प्रेम के साथ-साथ शक्ति, आकांक्षा—इन्हीं दो प्रतिद्वंद्वी भावों का विकास कथा में मिलता है। अपने पति के प्रेम को तिलांजलि देकर पत्नी, वैभव तथा सामाजिक श्रेष्ठता के पीछे दौड़ती है—इसीलिये अपने पुत्रों की घृणा का भी पात्र बनती है—और अंत में कुछ भी हाथ नहीं आता, वही दशा होती है—

"दुविधा में दोऊ गए, माया मिली न राम।"

जब क्रिस्तिन को वृद्धावस्था में कहीं भी सच्चा सुख नहीं प्राप्त होता, तो वह अंत में धर्म की शरण लेती है और संन्यासिनी बन जाती है। यह सारी कथा आजकल की नहीं, तीन-चार सौ वर्ष पूर्व की है जब योरप-भर में पार्थिव शक्ति का धर्म के ऊपर अत्याचार, अपने रूप में, हो रहा था। इसके लिये अनसेट को अच्छे दिनों की धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का विशेष रूप से अध्ययन करना पड़ा था, जिसका ही फल शायद यह हुआ कि यह उन्हीं दिनों रोमन कैथलिक धर्म की अनुयायिनी हो गईं।

इसी प्रकार के इनके और कई ऐतिहासिक उपन्यास हैं, जिनमें मध्य-कालीन योरप के जीवन की झलक है और जिसके वर्णन करने में इन्हें अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। पर जिस पुस्तक पर विशेषतः इन्हें पुरस्कार का सम्मान मिला है, वह अभी थोड़े ही दिन पूर्व छपी है और उसका नाम है "The Growth of the Soil"। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह उतने महत्त्व की नहीं है, पर आजकल योरप-भर में एक प्रकार के उपन्यासों का आदर हो रहा है, जिनमें प्रांतीयता की प्रधानता रहती है। बोलचाल, रहन-सहन तथा भाव-भंगी सभी बातों में प्रांतिकता की छाप इन ग्रंथों में मिलती है और राष्ट्रीयता अथवा अंतर-राष्ट्रीय भावों का भी इनके सम्मुख उतना आदर नहीं होता। इँगलैंड में इस प्रकार के उपन्यासों के प्रवर्तक टामस हार्डी और इटली में सन् १९२६ का पुरस्कार पानेवाली महिला ग्रेज़िया डेलेड्डा हैं। इस विषय में डेलेड्डा तथा अनसेट में बहुत कुछ समानता भी पाई जाती है। जिस प्रकार डेलेड्डा के ग्रंथों में इटली तथा सिसिली द्वीप के किसानों के जीवन का सहानुभूति-पूर्ण विवरण मिलता है, वैसे ही अनसेट ने भी अपने उपन्यासों में अपने प्रांतीय जीवन की मुहर लगा दी है, जिससे प्रायः वहाँ की परिस्थिति से अपरिचित लोगों को इनकी कथाएँ रोचक ही नहीं प्रतीत होतीं।

पर नारवे में और उत्तर योरप-भर में इनकी पुस्तकों का बहुत सम्मान है। एकआध ग्रंथों की तो पाँच-पाँच लाख से भी अधिक प्रतियाँ बिक गई हैं। इसका फल यह हुआ है कि अनसेट अब बहुत धनाढ्य हो गई हैं और अपने गाँव में इन्होंने एक बढ़िया प्रासाद बनवा लिया है, जो योरप के मध्यकालीन युग के महलों के नमूने का है। ऐसा जान पड़ता है कि उस समय के जीवन तथा रंग-ढंगों से इन्हें प्रगाढ़ प्रेम हो गया है और कल्पना की सहायता यह प्रायः उसी समय की परिस्थिति में अपना जीवन भी व्यतीत करती हैं।

क्योंकि वैसे भी इनके विचारों में आधुनिक सभ्यता का प्रभाव नहीं पड़ा जान पड़ता। स्त्रियों की स्वतंत्रता अथवा दंपतियों के समानाधिकार में इनका विश्वास नहीं है—यह ऐसे भावों की घोर विरोधिनी हैं। एक स्थान पर इन्होंने निर्भीकता-पूर्वक कहा है—

"Women are in no need of equality. Personally I find domestic work enchanting. Most authoresses in Norway have a domestic leaning and love to cook a good dinner. A woman who fails to see the beauty of a butcher's wares is not quite as she should be. I have never loved work outside my home. × × × × × × I would rather have polished my father's boots than have had to obey orders from a man whom I do not know."

कितने स्पष्ट शब्द हैं और कितने मौलिक विचार हैं। ठीक इसी भाव के विचार श्रीमती सरोजिनी नायडू ने अमेरिका में प्रकट किए थे और यही एक अँगरेज़ी कवि ने भी कहा है—

"Nothing lovelier can be found for woman
Than to study household good."

पर आजकल के समाज-सुधारकों तथा राजनीति-प्रिय महिलाओं को स्त्री-पुरुषों की समानता में ही संसार का कल्याण देख पड़ता है, यद्यपि भारतीय नीतिकारों का कहना है कि "स्त्री स्वातंत्र्यं नार्हति।" अनसेट ने अपने इस सिद्धांत के लिये युक्ति-संगत कारण भी दिए हैं और वह कहती हैं—

"All words about comradeship lead to nothing. It deprives the man of his feeling of obligation and responsibility towards the family, and leads him away from his natural position as a bread-winner and protector of his children."

बात बहुत पते की है और सचमुच जब मर्दों और औरतों की बराबरी का यह प्रश्न और जटिल हो जायगा, तो गृहस्थी के सुख में भी बाधा पड़ने लगेगी और पारस्परिक कृतज्ञता एवं सहायता की मात्रा नगण्य हो जायगी। सच पूछिए, तो अनसेट के इन विचारों में बड़ी दूरदर्शिता है, और एक विदुषी महिला के मौलिक विचार होने के कारण ये हमारे मनन तथा अनुशीलन के योग्य हैं।

नारवे के ही उपन्यासकार नट हैमसन के भी नोबेल-पुरस्कार-प्राप्त ग्रंथ का नाम वही है, जो अनसेट के इस उपन्यास का और दोनों की भाषा, उनका लक्ष्य तथा वायुमंडल बहुत कुछ एक-से हैं। नारवे में आजकल इस प्रकार के कथानकों का बहुत प्रचार है और ये दोनों ही वहाँ के अमर लेखकों में उच्च स्थान के अधिकारी होंगे। अनसेट तो अपने गाँव से इतना प्रेम करती हैं कि शायद ही कभी बाहर निकलती हों। प्रातःकाल लिखती हैं, फिर घर का कारबार देखती और अपने बच्चों की देखरेख करती और शाम को प्रायः बग़ीचे में रहती हैं। इन्हें रंग-बिरंग के फूलों का बहुत शौक़ है और गाँव में एक छोटा-सा बच्चों का थियेटर भी इन्हीं के प्रोत्साहन से चलता है, जिसके लिये यह स्वयं नाटक भी लिखती हैं। रात को फिर यह बहुत देर तक लिखने-पढ़ने में ही व्यस्त रहती हैं। इनका जीवन अतीव सरल तथा खान-पान भी बहुत सादा है और शिक्षित महिलाओं के लिये सचमुच इनका रहन-सहन आदर्श-स्वरूप है।

साहित्य के लिये नोबेल-पुरस्कार का सन् १९२८ तक का विवरण इस प्रकार समाप्त होता है। प्रारंभ से आज तक यह कुल २५ बार दिया गया है, जिनमें सब मिलाकर २७ विद्वानों का आदर इसके द्वारा हुआ है; क्योंकि दो वर्ष १९०४ तथा १९१७ में, यह दो-दो लेखकों में बराबर-बराबर बाँट दिया गया था। इस प्रकार जर्मनी तथा फ़्रांस को चार-चार बार, नारवे को तीन बार, स्वीडन, इटली, पोलैंड, स्पेन और आयरलैंड को दो-दो बार तथा भारतवर्ष, बेल्जियम, डेन्मार्क और स्वीज़रलैंड को एक-एक बार यह गौरव प्राप्त हो चुका है। महिलाओं को तीन बार दिया गया है, पर विज्ञान का यही पुरस्कार केवल एक विदुषी स्त्री मैडम कुरी को ही मिला है, जिन्होंने अपने पति प्रोफ़ेसर कुरी के साथ-साथ रेडियम का पता लगाया था। यद्यपि डाक्टर नोबेल की पुरस्कार-संबंधी शर्तों में स्वदेश-विदेश, काले-गोरे अथवा स्त्री-पुरुष इत्यादि विभेदों के विषय में कुछ भी उल्लेख नहीं है, बल्कि उलटे यही स्पष्टतः लिखा है कि

"I declare it to be my express desire that in the awarding of the prizes no consideration whatever be paid to the nationality of the candidates, that is to say, that the most deserving be awarded the prize. × × ×"

तथापि इन विस्तृत विवरणों से पाठकों को सार की साहित्यिक प्रगति का बहुत कुछ लगेगा।

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी "समीर"

समालोचना-सार

[१]

स्नान से हो शुद्ध मैंने पुलिन में पूछा अहो !—
"सुंदरी हूँ मैं न, हे प्रतिबिंब ! सब सच-सच कहो।"
"नियम-भ्रष्ट अधोमुखी हो"—हाय यह उत्तर दिया,
निम्नगा ने कटु वचन से व्यर्थ ही अपयश लिया।

[२]

कक्ष में आकर प्रमुख ही दृष्टि दर्पण पर पड़ी,
पूछने मैं लगी उससे वही प्रश्न खड़ी-खड़ी।
पारखी ने इस अरंजित सत्य में उत्तर दिया—
"सुमुखि ! अपने ही समान अनूप हो तुम पतिप्रिया।"

[३]

प्रेम से आकृष्ट प्रभु ने जब मुझे दर्शन दिया,
विनय नीरव हुई तब, जो था सभी अर्पित किया।
प्राणपति ने कहा तत्क्षण—"अल्प इसमें अति नहीं,
सुंदरी ! तू श्रेष्ठ है, तव प्रमुख कुछ भी रति नहीं।"

गोविंदवल्लभ पंत

प्रगति-विरोध

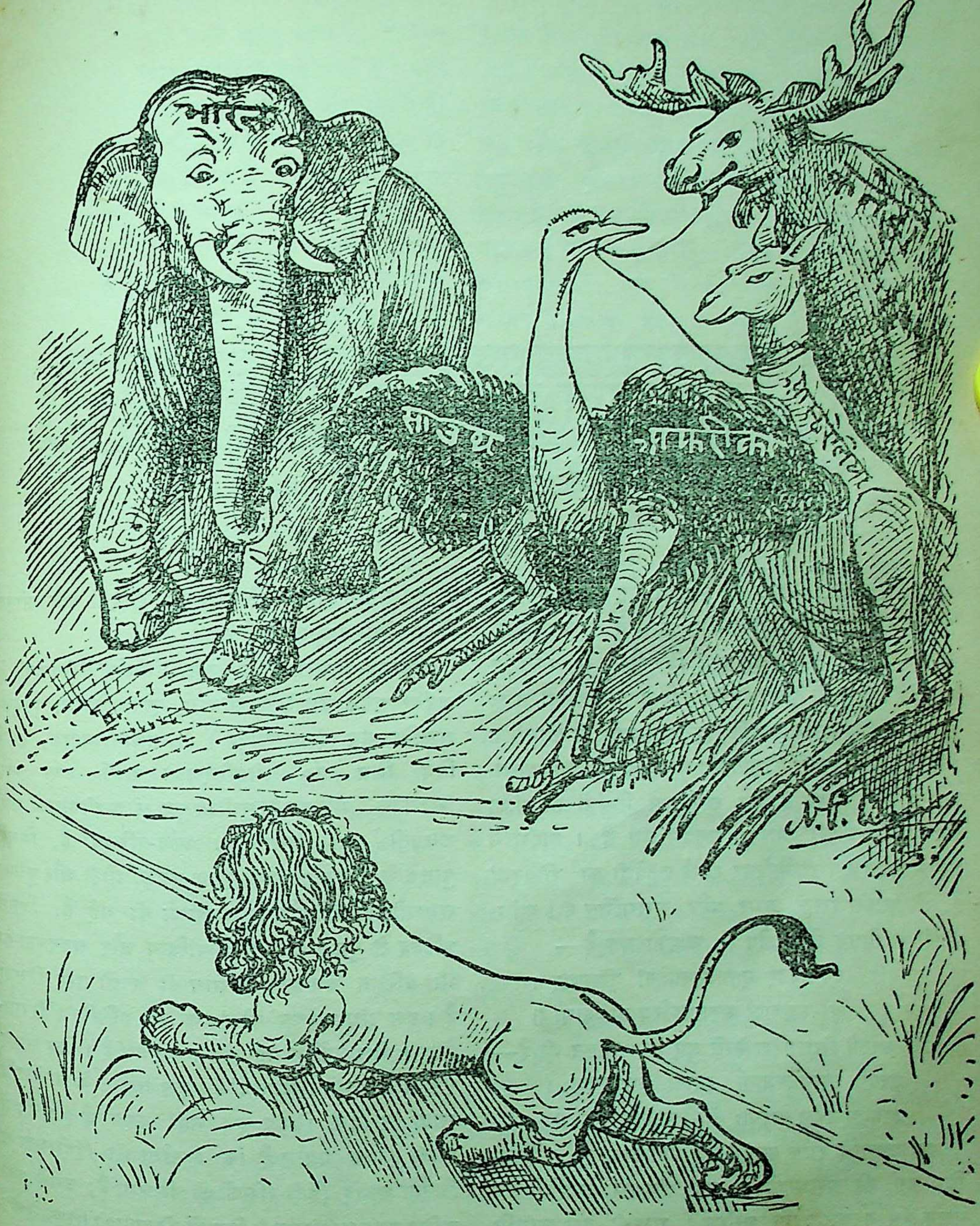

आलोचना और पुस्तक-परिचय

प्रबंध-मंजरी—ढाई सौ पृष्ठों की यह सुंदर संस्कृत-पुस्तक सम्मान्य पं० श्रीपद्मसिंह शर्मा ने 'काव्य-कुटीर' नायक-नगला, पो० चाँदपुर (बिजनौर) से प्रकाशित कराई है। चीज़ को देखते हुए डेढ़ रुपए कोई मूल्य नहीं, तुच्छ न्यौछावर ही समझना चाहिए। संस्कृत-भाषा के आधुनिक विद्वानों में पंडितजी श्रीहृषीकेश भट्टाचार्य का स्थान असाधारण है। आपके ही दस सर्वोत्कृष्ट निबंधों का संग्रह यह 'प्रबंध-मंजरी'-नामक अनुपम ग्रंथ है। प्रारंभ में महामहोपाध्याय श्रीगिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का 'निवेदन' है, जो अत्यंत सरस, मधुर और सारगर्भित है। प्रबंध-मंजरी के विषय में, संक्षेप में, आपका मत है—

> मुद्रयति वदनविवरं मृतभाषावादिनां मुहेराणाम् ।
> स्मरयति च भट्टबाणं भट्टाचार्य्यस्य सा वाणी ॥

और आपने सिफ़ारिश करते हुए आशा प्रकट की है—

> अस्यां प्रबन्धमञ्जर्य्यां रमन्तां बुधषट्पदाः ।
> जायन्तां जगती चास्याः सौरभोल्लाससम्भृताः ॥

इस आशा के साथ आपने यह भी लिखा है कि विश्व-विद्यालयों की परीक्षाओं में यह ग्रंथ-रत्न अनतिविलंब पाठ्य-ग्रंथ बनाया जाना चाहिए। आपकी इस सम्मति से हम सर्वथा सहमत हैं। वस्तुतः सदियों बाद संस्कृत में यह ऐसी रचना हुई है।

महामहोपाध्यायजी के इस 'निर्मायं निवेदनम्' के अनंतर अनेक शास्त्रों के आचार्य, कृतश्रुतिश्रम, गुरुकुल-महाविद्यालय (ज्वालापुर) के प्रधानाध्यापक, हमारे प्रिय मित्र पं० श्रीहरिदत्तजी शर्मा तथा स्वयं 'सम्पादक' महोदय के सुयोग्य पुत्र श्रीकाशीनाथजी शर्मा काव्यतीर्थ का लिखा हुआ 'ग्रंथ-परिचय' है, जिसमें पुस्तक के प्रत्येक प्रबंध की पृथक्-पृथक्, मीठी और चुटीली समालोचना कवितामयी भाषा में की गई है, जिससे प्रतिपद से युगल विद्वानों के पांडित्य और सहृदयता का भी परिचय ग्रंथ-हृदय के साथ ही अच्छी तरह मिलता है। इस 'ग्रंथ-परिचय' को ग्रंथ का पूर्ण प्रतिबिम्ब ही समझिए। बीस पृष्ठों में यह मोहन परिचय है। फिर सोलह पृष्ठों में संपादकीय 'वक्तव्य' है। इस वक्तव्य के भावों और भाषा पर हमें विशेष कुछ नहीं कहना है। संक्षेप में इतना इशारा पर्याप्त है कि शर्माजी की हिंदीरचना से जितना आनंद हिंदी-रसिकों को मिलता है, उससे कहीं अधिक उल्लास संस्कृत के विद्वानों को आपकी संस्कृत-रचना

से मिलता है । आपकी रचना-चातुरी हिंदी, उर्दू और संस्कृत में अप्रतिहत सामर्थ्य रखती है । इस निवेदन में आपने संस्कृत-भाषा की अधोगति पर अपने सहज कारुण्यमय हृदय से जो चार गरम आँसू बहाए हैं, वे पत्थर को भी पिघलाकर द्रवीभूत कर देने की शक्ति रखते हैं । यहीं आपने 'प्रबंधमंजरी' की जन्मकथा दी है, और कितनी ही उपयोगी बातें लिखी हैं, जो संस्कृतवालों के बड़े काम की हैं। माननीय भट्टाचार्य के विषय में, उनके दिव्य पांडित्य और लोकातिक्रांत गुणों के कारण, आपकी श्रद्धा सर्वथा आपके ही अनुरूप और अनुपम है। इस ईर्ष्या के युग में यह गुण अधिक व्यक्तियों में नज़र नहीं आता । हिंदी में कविवर विहारीलाल और उर्दू के महाकवि अकबर के प्रति आपकी जो अनन्य भावना है, वही संस्कृत के आधुनिक वाण श्रीहृषीकेश भट्टाचार्यजी के प्रति है । आप इन तीनों विद्वानों की रचनाओं पर मुग्ध हैं, उनका मर्म समझकर परमानंद-संदोह प्राप्त किया है, अतएव उनके प्रति आपकी कृतज्ञता पद-पद पर टपकती है । वस्तुतः इसी भावना ने आपको इस असाधारण कार्य में प्रवृत्त किया है; अन्यथा इस युग में संस्कृत-जैसी भाषा के पुराने प्रबंधों को, इतने कष्ट और व्यय सहकर, घोर परिश्रम कर, कौन संपादित करता है ? आजकल तो सब 'रुपए' के लिये लिखते-पढ़ते हैं ! एक तो यों व्यय और श्रम, फिर उसे प्रकाशित भी ख़ुद ही कर बैठे ! केवल उन प्रबंधों पर मोहित होकर ! अन्यथा, जान-बूझकर वह कैसे अपने श्रम-समुपार्जित पैसे को इस काम में लगाते, जिसके वापस आने में अटल संदेह है ? संस्कृत के पुराने पंडितों में ऐसी अभिरुचि कहाँ, जिससे कुछ आशा की जाय ? जो कुछ भी हो, इस महत् कार्य से आपकी निःस्वार्थ साहित्य-सेवा और बुजुर्गों के प्रति अदब के साथ-ही-साथ प्राचीन संस्मरणों की रक्षाभावना का पता चल जाता है, जो शायद आपके ही हिस्से में पड़ी है ।

संपादकीय वक्तव्य के बाद महामहोपाध्याय पंडित श्रीहरप्रसादजी शास्त्री एम्० ए०, पी० एच्० डी०, सी० आई० ई० का अँगरेज़ी-भाषा में लिखा हुआ वक्तव्य है। आप भट्टाचार्यजी के शिष्य-श्रद्धालुओं में अन्यतम हैं। आपके इस वक्तव्य के अनंतर भट्टाचार्यजी का, सुंदर ब्राह्मणजनोचित वेश और कर्तव्य में, चित्र है और तब आगे आपका संक्षिप्त जीवन-चरित्र सिर्फ़ बाईस पृष्ठों में है । अवश्य ही आप आधुनिक ऋषि थे, इसमें कुछ भी संदेह नहीं ।

बस, इसके बाद मूल-ग्रंथ प्रारम्भ होता है । आपके प्रत्येक निबंध की आलोचना करने के लिये यहाँ स्थान नहीं है और सच्ची बात तो यह है कि ऐसी कृतियों की आलोचना से सच्चा आनंद आ ही नहीं सकता, जब तक उनका प्रत्यक्ष रसास्वाद न लिया जाय । आपके भाव बड़े सुंदर और सुथरे हुए हैं । संस्कृत में आपका वही स्थान है, जो उर्दू में अकबर का । आप संस्कृत में एक नया पाठ आरम्भ करते हैं । आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी और प्रसन्न है । और भाषा ? वाह ! क्या कहना है । संस्कृत के बड़े-बड़े महामहोपाध्यायों ने आपकी भाषा को कादम्बरी के जोड़ की बतलाया है । हम इसे कादम्बरी की नयी कुमारी अथवा 'दश-कुमार' की सगी बहन कह सकते हैं । भट्टाचार्यजी की भाषा में वे गाढ़ियों विशेषण वैसे नहीं हैं, जैसे कादम्बरी में । यही कारण है कि कादम्बरी की अपेक्षा प्रबंध-मंजरी की भाषा अधिक मनोहर, सरस और सुरभित है । अवश्य ही इस 'मंजरी' का पोषण कादम्बरी' के अमृत से हुआ है । परंतु कादम्बरी की अपेक्षा मंजरी की विशेषताएँ किसे न देख पड़ेंगी ?

आपके निबंधों में हास्यरस का पुट सोने को सुगंधित कर देता है । इसे कहते हैं हास्य । एक हमारे यहाँ हिंदी के 'हास्यरस-लेखक' हैं ! क्या वे इन प्रबंधों से कुछ शिक्षा लेंगे ? भट्टाचार्यजी ने हँसी-विनोद में ही गंभीर से-गंभीर आध्यात्मिक, धार्मिक और सामाजिक विचारों को बड़े मज़े से व्यक्त किया है, जो सर्वथा आपके अनुरूप है । प्रसन्नता की बात है कि आपके ये विचार सर्वथा परिष्कृत हैं । आपने अपने राजनैतिक विचार भी प्रकट किए हैं, जो भारत के वर्तमान वायुमंडल के अनुकूल नहीं हैं ! हाँ, 'पंडित-मंडली' को अवश्य ही ये विचार पसंद आएँगे ।

ख़ैर, इस विषय में, इच्छा होते हुए भी, स्थानाभाव से हम कुछ न कहेंगे । अवश्य ही ऐसे विचार हमें 'प्रबंध-मंजरी' में चंद्रांक के समान देख पड़ते हैं, जो मर्षणीय हैं । अपने-अपने विचार ही तो ठहरे ! फिर आप भी तो आख़िर संस्कृत के पुराने पंडित ही थे ! इसके अतिरिक्त और कुछ हमें आपके भावों में चिन्त्य अंश नज़र नहीं आया । सर्वं साधु ।

हाँ, इसी समय 'संपादकजी' के विषय में भी एक उपालम्भ है। आपने संजीवन-भाष्य की भूमिका में, संस्कृत के मुक़ाबले में, हिंदी की कैसी कुछ प्रशंसा की है, सो छिपी नहीं, छपी है। आप हिंदी के अनन्य उपासक हैं और पिछले साल सम्मेलन के सभापति हो चुके हैं। ऐसी दशा में आपकी क़लम से निकले हुए ये शब्द सामंजस्य नहीं रखते—

"प्रबलेऽस्मिन् कलिकाले...सबहुमानं प्राकृतगुणगानं गायति 'लीडर'-लोके, कर्णविवरं वधिरयति राष्ट्रभाषा-डिण्डिमनादे, सन्ध्यार्चनादिधर्म्मानुष्ठानेभ्योऽपि बहिष्कृत्य देवभाषां, तत्स्थाने बलादादेष्टुमिष्टायां राष्ट्रभाषायां, संस्कृतप्रचारव्यापारो हि प्रमत्त-जनव्यवहारमनुहरतीति नाऽस्ति सन्देहलेशोऽपि।"

बस, इस उलहने के अतिरिक्त, सोचने पर भी, और कोई त्रुटि नहीं मिलती।

'प्रबंध-मंजरी' की और अधिक प्रशंसा क्या करें? इसी से समझ लीजिए कि प्रखर समालोचक शर्माजी उस पर लट्टू होकर सब कुछ न्यौछावर कर चुके हैं, और बहुत बड़े-बड़े महामहोपाध्याय इसकी प्रशंसा मुक्तकंठ से कर चुके हैं। इनमें से जिन विशिष्ट विद्वानों की सम्मतियाँ पुस्तक के अंत में छपी हैं, उनके नाम ये हैं—१ श्रीकाशीनाथजी शर्मा ('संपादक' जी के संस्कृत-गुरु) २ श्रीविधुशेखर भट्टाचार्य ('मित्रगोष्ठी'-संपादक) विश्व-भारती, शांतिनिकेतन, ३ महामहोपाध्याय श्रीदुर्गाचरण शर्मा, ४ महामहोपाध्याय श्रीअनंतकृष्ण शास्त्री (कलकत्ता-विश्वविद्यालय), ५ महामहोपाध्याय श्रीगणनाथजी शर्मा, एम्० ए०, एम्० एल्० एस्० (भट्टाचार्यजी के साहित्यिक शिष्य), ६ श्रीयोगेंद्रनाथजी शर्मा (कलकत्ता-संस्कृत-कालेज), ७ श्रीसकलनारायणजी शर्मा, ८ गांगेय श्रीनरोत्तम शास्त्री, ९ श्रीवनमालीजी शर्मा वेदांत-शास्त्री (आसाम-प्रांतीय-संस्कृत-शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष)। इन विशिष्ट विद्वानों ने 'प्रबंध-मंजरी' की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है, जो उसके गुणों के अनुरूप ही है।

ऐसी उत्तम संस्कृत-पुस्तक के संपादन और प्रकाशन पर हम श्रद्धेय पं० श्रीपद्मसिंहजी शर्मा के प्रति बड़ी नम्रता से कृतज्ञता प्रकट करते हैं और संस्कृत के विद्वानों तथा ऊँचे दर्जे के विद्यार्थियों से इसे पढ़ने की सिफ़ारिश करते हैं, साथ ही आशा भी करते हैं कि संस्कृत-परीक्षाओं के पाठ्य-ग्रंथों में इसे शीघ्र ही स्थान मिलेगा, जिससे इसका अधिकाधिक प्रचार होगा। बी० ए०, एम्० ए० आदि परीक्षाओं में यदि ऐसी पुस्तकें रक्खी जायँ, तो अवश्य ही संस्कृत की ओर रुचि बढ़े और अनायास एक बड़ा भारी काम हो जाय।

किशोरीदास वाजपेयी

× × ×

कविता-कुंज—लेखक, श्रीयुत जी० पी० सिंहाई; प्रकाशक, साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या मूल्य ।।।=)

प्रस्तुत पुस्तिका में लेखक महाशय ने बड़े परिश्रम से अँगरेज़ी काव्य के कुछ फुटकर रत्नों का हिंदी-पद्य में रूपांतर किया है। अपने प्रयत्न में सिंहाईजी बहुत कुछ सफल हुए हैं, यद्यपि इतना कहने की जगह अवश्य है कि जो परिश्रम आपने अनुवाद करने में ख़र्च किया, उसी को स्वतंत्र कविता करने में प्रयोग करते, तो हिंदी-साहित्य में एक मौलिक कविता-कुंज की सृष्टि होती। ख़ैर, अभी हम इस अनुवाद ही का इस आशा से स्वागत करते हैं कि आगे चलकर आप मौलिक काव्य-रचना भी करेंगे। 'कविता-कुंज' हाई-स्कूल तथा इंटरमीडियेट-कक्षा के विद्यार्थियों के लिये तो विशेष उपयोगी होनी चाहिए।

× × ×

शेक्सपियर—लेखक, श्रीसूर्यनारायणसिंह; प्रकाशक, आनंद-पुस्तक-माला-कार्यालय, पूर्णियाँ; पृष्ठ-संख्या मूल्य ॥=)

हिंदी-साहित्य में शेक्सपियर-विषयक बहुत कम ग्रंथ हैं, इसलिये जो अँगरेज़ी नहीं पढ़े हैं, उन्हें शेक्सपियर के जीवन तथा उसकी कला से बहुत कम परिचय है। इस विचार से यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। कम अँगरेज़ी पढ़े युवकों को इसे पढ़कर शेक्सपियर के नाट्य-रस के आस्वादन करने की उत्सुकता होगी। यों नवयुवक पाठकों के लिये यह एक बहुत अच्छी पुस्तक है।

× × ×

ब्रिटिश-साम्राज्य-शासन—लेखक, श्रीदयाशंकर दुबे और भगवानदास केला; प्रकाशक, भारतयि-ग्रंथमाला-कार्यालय, वृंदावन; पृष्ठ-संख्या १९६; मूल्य ।।।=)

राजनैनिक आंदोलन के समय प्रजा में इस ज्ञान के प्रचार की बड़ी आवश्यकता है कि ब्रिटिश-साम्राज्य का शासन इस समय क्योंकर हो रहा है। डोमीनियन

क्या है ? ग्रेट-ब्रिटेन की शासन-पद्धति क्या है ? इन विषयों के ज्ञान के विना साधारण जनता उन सुधार-विषयक प्रस्तावों पर राय नहीं क़ायम कर सकती, जो सरकार या नेताओं की ओर से समय-समय पर निकलते रहते हैं। अध्यापक दुबे तथा उनके मित्र केलाजी ने इस कमी को इस पुस्तक द्वारा बहुत कुछ पूरा किया है। विषय रोचक नहीं है, परंतु है बड़े काम का। ऐसी पुस्तकों का अधिकाधिक प्रचार होने में देश का भला है। इसलिये इनका प्रचार करना भी देशसेवा का कार्य है।

× × ×

शिक्षा की एक योजना—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत छेदी मिश्र असिस्टंट मास्टर, थिवासोफ़िकल नेशलन स्कूल, बनारस ; पृष्ठ-संख्या २६ ; मूल्य ।)

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक महाशय बड़े उत्साही अध्यापक मालूम होते हैं। आपने आधुनिक शिक्षा के आदर्श की व्याख्या करने की इस पुस्तक में सफल चेष्टा की है। यदि अपने दिन-प्रतिदिन के अध्यापन-कार्य में हम अपने आदर्श का दशमांश भी अनुसरण कर सकें, तो शिक्षा से बालकों का वास्तविक लाभ हो। ऐसी शिक्षा से वे एंट्रेंस ही न पास कर लेंगे, उनके चरित्र-संगठन और उनकी स्वास्थ्य-वृद्धि में भी हम सहायता दे सकेंगे।

हिंदी में शिक्षा-साहित्य का क्षेत्र बिलकुल सूना है। इसलिये ऐसी पुस्तकों का हमें स्वागत करना चाहिए। साथ ही भावी लेखकों से हमें निवेदन करना है कि इस साहित्य द्वारा हमें बालकों के मातापिता की भी ज्ञान-वृद्धि करना है। इसलिये शैली को जहाँ तक बने, सरल और रोचक रखने की आवश्यकता है। प्रस्तुत पुस्तक में इस बात की कमी है।

× × ×

पद्य-प्रवेशिका—लेखक, कविवर सुवर्णसिंह वर्मा 'आनंद'; प्रकाशक, मुकुंद-मंदिर, बेलनगंज, आगरा; पृष्ठ-संख्या ११७ ; मूल्य ॥)

पिंगलशास्त्र पर कई पुस्तकें हैं। परंतु बालोपयोगी पुस्तकों की कमी है। इस पुस्तक में इस कमी को पूरा करने की चेष्टा की गई है। पहले पिंगल के नियम हैं, फिर रस तथा अलंकार की संक्षिप्त व्याख्या है। इसके पश्चात् हिंदी-साहित्य से भिन्न-भिन्न छंदों के नमूने एकत्रित किए गए हैं। पुस्तक बालकों के लिये बड़े काम की होनी चाहिए। अगले संस्करण में इस बात का ख़याल रहे कि शुद्धाशुद्ध पत्र न लगाना पड़े।

कालिदास कपूर

× × ×

बैरिस्टर की बीवी (या बी० ए० की बरबादी)—संपादक, पं० उमाशंकर मेहता; प्रकाशक, एस्० एस्० मेहता एंड ब्रदर्स, काशी; मूल्य २); पृष्ठ-संख्या ३३३।

गुजराती उपन्यास का यह हिंदी-अनुवाद है। इसमें वर्तमान शिक्षा, सभ्यता और सुधार के दुष्ट फल का अच्छा चित्रण किया गया है। कालेज-जीवन की भी झलक दिखलाई गई है। पाश्चात्य शिक्षा के कुफल का भी बड़ा अच्छा वर्णन किया गया है। पुस्तक वर्तमान युवकों और युवतियों के लिये अवश्य लाभकारी है।

× × ×

महाकवि अकबर और उनका उर्दू-काव्य—लेखक, श्रीउमरावसिंह कारुणिक बी० ए०; प्रकाशक, चौधरी शिवनाथसिंह शांडिल्य, ज्ञानप्रकाशमंदिर, पोस्ट माछरा, ज़िला मेरठ; मूल्य १।=)

इस पुस्तक का यह तीसरा संस्करण है। स्वर्गवासी महाकवि अकबर इलाहाबादी के नाम से पठित समाज भली भाँति परिचित है। आपका अंदाजे-बयान और मुहाविरों की रवानी तथा भाषा की ख़ूबी अपना सानी नहीं रखती। अपने ढंग के वह अद्वितीय कवि कहे जा सकते हैं। पुस्तक में कवि के संक्षिप्त जीवनचरित्र के साथ कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ भी दी गई हैं। आरम्भ में कवि का एक सादा चित्र भी है। छपाई-सफ़ाई साधारण है। काव्यप्रेमियों के लिये यह संग्रह पढ़ने योग्य है।

× × ×

यौवन, सौंदर्य और प्रेम—लेखक, ठाकुर श्रीनाथसिंह; प्रकाशक, साहित्य-मंदिर, दारागंज, प्रयाग; मूल्य १॥); छपाई-काग़ज़ बढ़िया।

भारतीय दाम्पत्य जीवन के अनेक पहलुओं पर इस पुस्तक में बड़े ही सुंदर ढंग से रोशनी डाली गई है। स्त्रीजीवन के विकास के लिये यौवन, सौंदर्य और प्रेम की कैसी आवश्यकता है, यह भली भाँति समझाया गया है। विषय विभाग ४३ शीर्षकों के अंतर्गत किया गया है।

अँगरेज़ी पुस्तक-पत्रों से भी पुस्तक को सारगर्भित बनाने के लिये सहायता ली गई है। भाषा सुंदर और बामुहाविरा है। यद्यपि हम पुस्तक में वर्णित प्रत्येक विषय की उपयोगिता से सहमत नहीं हैं, फिर भी इस बात के कहने में हमें ज़रा भी संकोच नहीं है कि पुस्तक का अभिप्राय निस्संदेह दाम्पत्य जीवन में एक सुखकर क्रांति उत्पन्न कर देना है। हमें आशा है, दम्पतिगण इससे अवश्य लाभ उठावेंगे। ठाकुर साहब को हम उनके परिश्रम के लिये बधाई देते हैं।

× × ×

अनासक्ति-योग—(श्रीमद्भगवद्गीता का अनुवाद)—लेखक, पूजनीय महात्मा गांधी; मिलने का पता, शुद्ध खादी-भंडार, १३२। १ हरिसन रोड, कलकत्ता।

गुजराती में महात्माजी लिखित 'अनासक्ति-योग' का यह हिंदी-संस्करण है।

विभिन्न लेखकों द्वारा संपादित गीता-संस्करणों को पढ़कर महात्माजी ने जो कुछ समझा और अपने दीर्घ-कालीन ३८ वर्षों के आचरण-अनुभव से जो कुछ प्राप्त किया, वही इस 'अनासक्ति-योग' के अंदर दिया हुआ है। महात्माजी कहते हैं—"इस अनुवाद के पीछे अड़तीस वर्ष के आचार के प्रयत्न का दावा है।" बस, इतना ही इस पुस्तक के संबंध में परिचय करा देना पर्याप्त है।

समालोचना तो अधिकारी विभूतियाँ ही कर सकती हैं, मे जैसे क्षुद्रजीव नहीं। इस पुस्तिका का मूल्य =) है। प्रत्येक हिंदी-प्रेमी को एक प्रति मँगाकर अवश्य पढ़नी चाहिए।

रामसेवक त्रिपाठी

× × ×

सरल भारतीय शासन—लेखक, श्रीभगवानदास केला; प्रकाशक, व्यवस्थापक भारतीय ग्रंथमाला, वृंदावन; पृष्ठ १३२; मूल्य ॥)

यह पुस्तक विशेषत: माध्यमिक कक्षा के विद्यार्थियों के लिये लिखी गई है। लेखक महोदय ने अपने विषय को १४ पाठों में विभक्त किया है। इन पाठों में 'ज़िले का शासन', 'प्रांतीय व्यवस्थापक परिषदें', 'भारतीय व्यवस्थापक मंडल', 'पार्लिमेंट और भारतीय शासन-सुधार', 'स्थानीय स्वराज्य' आदि पाठ मुख्य हैं। इन पाठों में विषय का प्रतिपादन बहुत अच्छे ढंग से किया गया है। अंत में कुछ उपयोगी परिशिष्ट भी जोड़ दिए गए हैं और पारिभाषिक शब्दों की एक तालिका भी दे दी गई है। अतएव पुस्तक सर्वथा उपादेय है। हाँ, जिन कक्षाओं के लिये यह लिखी गई है, उनके परिमित भाषा-ज्ञान का विचार कर यदि भाषा कुछ और सरल कर दी जाती, तो अच्छा होता।

रामचंद्र संघी

कृषि, शिल्प और वाणिज्य

१. शकरकंद की खेती

शकरकंद शब्द से ही साफ़ ज़ाहिर होता है कि यह एक तरह की जड़ है। शकर शब्द का तात्पर्य है "शकर" और शकर मीठी होती है, इसलिये "शकर" का अर्थ है "मीठा"। और "कंद" का अर्थ है "जड़" इसलिये शकरकंद का अर्थ हुआ "मीठी जड़", अँगरेज़ी में इसे "Sweet potatoes" और हिंदी में "मीठा आलू" भी कहते हैं। कोई-कोई महाशय इसे आलू भी कहते हैं।

यह एक प्रकार का पौदा होता है, जिसमें बेलें होती हैं जो फलती और चारों तरफ़ छिछड़ती हैं। इसकी जो जड़ रहती है, वह क़रीब ६ इंच लंबी होती है और दोनों तरफ़ नुकीली और बीच में मोटी होती है। यही जड़ शकरकंद कहलाती है, और जब पकाई या भूनी जाती है, तो लोग इसे बड़े शौक़ से अपनाते हैं।

शकरकंद पहले भारतवर्ष में नहीं होती थी। इसका निजी घर अमेरिका है, जहाँ से यह पहलेपहल भारतवर्ष में लाई गई थी। आजकल तो भारतवर्ष में इसकी फ़सल इतनी बढ़ गई है कि यह भारत के कोने-कोने में उगाई जाती है। यह फ़सल अधिकतर सीमाप्रांत देशों में ही पैदा होती है।

शकरकंद दो प्रकार की होती है—एक लाल बकले की और दूसरी सफ़ेद बकले की। अधिकतर देखा गया है कि लोग ज़्यादातर सफ़ेद शकरकंद को अधिक पसंद करते हैं। सफ़ेद शकरकंद के पौदों में सफ़ेद फूल और लाल शकरकंद के पौदों में लाल फूल निकलते हैं।

ज़मीन—शकरकंद किसी भी ज़मीन में उगाई जा सकती है, परंतु अधिक मीठी और स्वादिष्ठ रेतीली मिट्टी में ही होती है। वैसे तो यह रेतीली मिट्टी से लेकर काली मिट्टी तक में होती है। परंतु यह बहुधा देखा गया है कि यह भारी या मोटी ज़मीन में अच्छी तरह से नहीं पैदा होती; क्योंकि इसमें इसका पौदा अच्छी तरह बढ़ने नहीं पाता। स्यारी के मौसम (Kharif season) में शकरकंद को रेतीली ज़मीन में लगाना लाभदायक है; क्योंकि इस मौसम में हम चाहते हैं कि पानी ज़मीन में भरने न पावे और साफ़ छनकर निकल जाय। यही कारण है कि बरसात के दिनों में इसकी फ़सल के लिये रेतीली मिट्टी ही पसंद की जाती है।

ठंढ के मौसम में, चूँकि ज़मीन को अधिक पानी चाहिए, इसलिये फ़सल को मामूली मोटी ज़मीन में लगाने से कोई भी हानि नहीं होती है ।

ज़मीन की तैयारी (Cultivation)—इस फ़सल के लिये और फ़सलों की अपेक्षा अधिक गहराई तक जोतना अति आवश्यक है । ज़मीन को क़रीब १२ इंच की गहराई तक जोतना चाहिए । यदि फ़सल बरसात के मौसम में लगानी हो, तो जोतना-बखरना अप्रैल के अंत तक ख़त्म हो जाना चाहिए । यदि फ़सल ठंढ में लगानी हो, तो ज़मीन आक्टोबर के अंत तक तैयार हो जानी चाहिए । ज़मीन जोतने के बाद खाद डालना उचित है । यदि सिर्फ़ गोबर की ही खाद है, तो फिर ४० गाड़ी फ़ी एकड़ के हिसाब से देना ज़रूरी है । यदि इतनी खाद मिलनी कठिन हो, तो सिर्फ़ २० गाड़ी और किसी खाद के साथ देनी चाहिए। फ़ी एकड़ १६० पौंड Ammonium Sulphate, ८० पौंड Potassium Sulphate और ४०० पौंड Super Phosphate से काम चल सकता है । यदि खली मिलती है, तो ६०० पौंड खली और २० गाड़ी गोबर की खाद Farmgard manure से काम निकल सकता है । यदि Fertilizers देना हो, तो पहले २० गाड़ी गोबर की खाद फ़ी एकड़ के हिसाब से देनी चाहिए और फिर ज़मीन को फिर से जोत देना चाहिए । जोतने के बाद बखर या कल्टीवेटर (Cultivator) का उपयोग करो, जिससे यदि ज़मीन में खाद के कोई भी ढेले रह गए हों, तो फूट जायँ । इसके बाद Spring tooth harrow को ज़मीन में चलाओ, जिससे नीचे के ढेले ऊपर आ जायँ और फिर Disc harrow से काम लेना चाहिए, जिससे ज़मीन बिलकुल साफ़ और अच्छी हो जाय । इसके बाद जिन Fertilizers का नाम और फ़ी एकड़ की दर ऊपर दी गई है, उन सबको मिलाना चाहिए । इसके बाद ज़मीन में खाद को मिलाना चाहिए और फिर एक बार Disc harrow चलाना चाहिए, जिससे ये खाद ज़मीन में अच्छी तरह से मिल जायँ । फिर दो या तीन बार और बखरना उचित है । परंतु ऐसी खेती करना तभी ठीक है, जब फ़सल अधिक ज़मीन में लगाई जाय । छोटे-से टुकड़े में—जैसे १२ फ़ुट लंबे और १२ फ़ुट चौड़े में—सिर्फ़ मज़दूर लोग ही अपने हाथ से काम कर सकते हैं, बखरने-जोतने की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

फ़सल लगाने का मौसम—ख़रीफ़ के मौसम में अप्रैल के अंत से जून के महीने तक फ़सल लगाई जा सकती है और ठंढकाल में आक्टोबर के महीने ही में फ़सल लगाना उचित है । फ़सल सिर्फ़ पाँच महीने में तैयार हो जाती है । जो फ़सल जून के महीने में लगाई जाती है, वह आक्टोबर और नवंबर के महीने में तैयार हो जाती है, और जो फ़सल आक्टोबर में लगाई जाती है, वह मार्च के महीने में तैयार हो जाती है।

बीज और बोनी—स्यारी के मौसम में जो फ़सल लगाई जाती है, उसके लिये बेलों की जो आवश्यकता पड़ती है, उस पर विशेष ध्यान चाहिए । इसके लिये गरमी के दिनों में सिंचाई की अधिक आवश्यकता है क्योंकि यदि सिंचाई में कुछ गड़बड़ी हुई तो वे ख़राब हो गईं या सूख गईं और फिर लगाने के काम की न रहीं । इसलिये इस पर विशेष ध्यान चाहिए, जिससे बेलों को कोई हानि न हो । ठंढकाल की फ़सल के लिये बरसात की फ़सल की जो बेलें रहती हैं, वे दूसरी फ़सल लगाने के काम में अच्छी तरह से आ सकती हैं।

जब बेलें लगाने के लिये तैयार हो जायँ, तो फिर उनके छोटे-छोटे टुकड़े (Sets) करना चाहिए। ये टुकड़े अक्सर ऊपर के सिरे, नीचे के सिरे के और बीच के हिस्से के होना चाहिए । परंतु बीच के हिस्से के टुकड़े अच्छे होते हैं और उनसे फ़सल भी अच्छी होती है।

बेलों के टुकड़े बहुधा क्यारियों में, पारियों में और बँधियों में लगाए जाते हैं । इसके सिवा वे खेत में वैसे ही लगाए जाते हैं । यह तो किसानों की सहूलियत पर निर्भर है कि वह जैसे चाहे लगा सकता है। पौदों को क़रीब १ फ़ुट के अंतर से लगाना चाहिए क़तारों को क़रीब ३ या ४ इंच की दूरी से लगाना उचित है । एक एकड़ के लिये क़रीब ३,६००: टुकड़ों की ज़रूरत है । हर एक टुकड़े में क़रीब तीन चार गाँठें रहनी चाहिए, जो बिलकुल नीरोग हों । टुकड़ों के बीच की गाँठों को ज़मीन में गाड़ देना चाहिए और दोनों सिरों की दो बाहर रहनी चाहिए । बीच की गाँठें जो ज़मीन के अंदर हैं, जड़ों को पैदा करती हैं और दोनों सिरे की गाँठों से पौदा निकलता है या बेलें फूटती

हैं। बोनी के लिये हमेशा समय में लगाना चाहिए, जब बादल घिरे हों या शाम के समय लगाना बहुत ही ठीक है।

बोनी के बाद विशेष ध्यान—बोनी करने के बाद फ़सल पर विशेष ध्यान देना चाहिए। बेलें लगाने के बाद ही फ़सल को अच्छी तरह सींचना चाहिए। निंदाई सिर्फ़ तीन या चार बार और ज़्यादातर कूड़े-कचरे पर निर्भर है। निंदाई हमेशा तब तक जारी रखनी चाहिए, जब तक फ़सल अधिक बढ़ न जाय। जब बेलें दो महीने की हो जायँ, तो उनको उठाकर हिला देना चाहिए, जिससे हर एक गाँठ में जड़ें न फूटने पावें, नहीं तो उनमें से पतली और छोटी शकरकंद निकल पड़ेगी, जो किसी काम की न होगी। उसके बाद ख़रीफ़ मौसम में कोई विशेष ध्यान देने की ज़रूरत नहीं है। परंतु ठंड के मौसम में जो फ़सल लगाई जाती है, उस पर ध्यान देना ज़रूरी है। इस समय हर ७वें या १०वें दिन पानी देना बहुत ही आवश्यक है।

शकरकंद की खुदाई—शकरकंद पाँच महीने में तैयार हो जाती है। जब जड़ों के पास के पत्ते पीले पड़ जायँ, तो समझ लेना चाहिए कि अब खुदने का समय आ गया। पहले सब बेलें तोड़कर अलग हटाकर फेंक देना चाहिए, फिर आलू खोदने का हल (Potatodigger plough) चलाकर शकरकंद निकाल लेनी चाहिए। यदि थोड़ी-सी ज़मीन में ही फ़सल हो, तो सिर्फ़ कुदाल या दूसरी चीज़ जैसे काँटे से निकाल देनी चाहिए।

पैदावार—इस फ़सल की औसत पैदावार क़रीब ६ टन याने १७० मन फ़ी एकड़ होती है। ख़रीफ़ की फ़सल से ठंड की फ़सल की अपेक्षाकृत अधिक पैदावार होती है। ज़मीन में दो फ़सलें लेना लाभदायक नहीं है। ऐसा करने से पैदावार कम हो जाती है और पौदों में कई तरह के रोग हो जाते हैं।

एक एकड़ की पैदावार बेचने से क़रीब ४०० या ५०० रुपए मिलते हैं और कुल ख़र्चा फ़ी एकड़ २५०) लगता है। इससे क़रीब २५०) रुपए का लाभ फ़ी एकड़ होता है।

रोग—एक प्रकार का कीड़ा होता है, जिसको बैबिल कहते हैं। यह अक्सर शकरकंद की फ़सल में पाया जाता है, और इस फ़सल का सत्यानाश कर देता है। कभी-कभी शकरकंद में छिद्र हो जाते हैं और इस तरह वे ख़राब हो जाती हैं। इनमें कीड़े पड़ जाते हैं और ये खाने के काम की नहीं रहती; क्योंकि इनसे बुरी बास आने लगती है। जब ज़मीन फटती है और उसमें छिद्र हो जाते हैं, तो उनमें से होकर कीड़े अंदर जाते हैं और शकरकंद में अपना घर बनाकर उसी में अंडे देते हैं। इस तरह ये बढ़ते जाते हैं और फ़सल को नुक़सान पहुँचाते हैं। इस रोग के रोकने की अभी तक कोई ख़ास रीति नहीं निकली, जिससे इसका सर्वनाश हो जाय। परंतु खुदाई के समय एक भी शकरकंद ज़मीन के अंदर न रहने पावे। हमेशा एक ही फ़सल न लगाने से इस रोग का इलाज हो सकता है, वरना और कोई इलाज नहीं है।

शकरकंद का उपयोग—लोग शकरकंद की शाक-भाजी बहुत पसंद करते हैं। वैसे ही भूनकर व उबालकर भी बहुधा खाते हैं। उपवास के दिन इसका फलाहार भी करते हैं। इसके सिवा इसका और कोई विशेष उपयोग नहीं है।

बी० एम्० चंदेल

× × ×

२. नृत्यकला-विशारद श्रीयुत उदयशंकर

किसी समय भारतवर्ष अपनी नृत्यकला की विशेषता के लिये विश्वविख्यात था। संगीत, वादनकला एवं नृत्य-कला में अति प्राचीन काल में ही भारतीय कलाविदों ने जिन सूक्ष्म एवं चमत्कारपूर्ण भावों का परिचय दिया था, वे इस समय भी संसार के कलाविदों के लिये स्पर्द्धा की वस्तु हो रहे हैं। किंतु कालचक्र के प्रभाव से भारत की सर्वांगीन अवनति के साथ-साथ उसकी ललित-कलाओं का भी अधःपतन शुरू हो गया और विदेशी सभ्यता एवं संस्कृति के मोहाडम्बर में पड़कर हम इतने निश्चेष्ट हो गए कि हमें अपनी सभ्यता, संस्कृति, विद्या, कला-कौशल आदि के सौंदर्य, लालित्य एवं विशिष्टताओं का कुछ ज्ञान ही नहीं रहा। हमारे इस सांस्कृतिक अधःपतन के युग में भी यदि हमारे देश की ललित-कलाओं का सर्वथा लोप नहीं हुआ है और समय-समय पर हमें उनकी उत्कृष्ट विशेषताओं का आभास मिल जाया करता है, तो इसका श्रेय हमें नहीं बल्कि हमारे देश के उन कतिपय कलाविशारदों को है, जो इस समय भी उन कलाओं को

हृदय से लगाए अपने देश के प्राचीन गौरव को एकबारगी लुप्त होने से बचाए हुए हैं। इतना ही नहीं बल्कि वे कलाविशारद अपनी निपुणता दिखाकर आज भी प्राचीन भारतीय ललित-कलाओं की विशेषताओं से आधुनिक कलाविदों को विस्मय-विमुग्ध कर रहे हैं। इस लेख द्वारा हम "माधुरी" के पाठकों को एक ऐसे ही कलाविद् का परिचय कराना चाहते हैं, जिन्होंने अपनी नृत्यकला-निपुणता दिखाकर संसार के नृत्यकलाविदों की दृष्टि में भारतीय नृत्यकला की उत्कृष्टता सिद्ध कर दिखाई है।

इन नृत्यकला-विशारद का नाम श्रीयुत उदयशंकर है। आपका जन्म, इतिहास-प्रसिद्ध मेवाड़-राज्य की राजधानी उदयपुर में हुआ था, और इस जन्मस्थान के नाम पर ही आपका नाम उदयशंकर रक्खा गया। किशोरावस्था में आपको नृत्यकला की शिक्षा झालावाड़ के सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं भारतीय कलाओं के संरक्षक स्वर्गीय महाराज राणा की संरक्षकता में दी गई। आपके पिता पंडित श्यामशंकर, जो उस समय झालावाड़ राज्य के परराष्ट्र-सचिव थे एक अद्वितीय पंडित हैं। छः विश्वविद्यालयों से आपको "विद्याविभूषण" की उपाधि मिली है। अपने विद्वान् पिता की देखरेख में युवक उदयशंकर की शिक्षा क्रमशः उन्नतिशील होती गई।

लंदन की नाट्यशालाओं में पहलेपहल भारतीय नाटकों के अभिनय कराने का श्रेय पं० श्यामशंकर को ही प्राप्त है। सन् १९२४ के मार्च मास में लंदन के Royal Opera में आपका अंतिम नाटक पूर्ण सफलता के साथ अभिनीत हुआ। Wembley की सुप्रसिद्ध प्रदर्शिनी में, जो बैंड बाजा रक्खा गया था, उसमें भी आपके रचित संगीत गाए गए थे। सन् १९२४ के अगस्त महीने में आपकी ही सहायता से भारतीय संगीत-नाट्य-कला की बृहत् प्रदर्शिनी संगटित हुई थी। इसी साल इन्होंने पहलेपहल इँगलैंड में भारतीय वाद्ययंत्रों के साथ भारतीय संगीत का रेडियो द्वारा सर्वत्र प्रचार कराया था।

सन् १९२० में झालावाड़ के महाराज राणा नें उदयशंकर को लंदन के Royal College of Arts में भर्ती करा दिया। वहाँ विद्यार्थी-अवस्था में रहते हुए युवक उदयशंकर ने अपने पिता के रचित अभिनयों में अनेक प्रकार से सहायता पहुँचाई। पं० श्यामशंकर नें झाड़ावाड़ के राणा के अतिरिक्त पोरबंदर के महाराज तथा सेठ मुफतलाल-गगलभाई की औदार्यपूर्ण सहायता से लंदन की कतिपय नाट्यशालाओं एवं संगीतशालाओं को अपने अभिनय के प्रदर्शन के लिये किराए पर ले रक्खा था। उदयशंकर इन प्रदर्शनों में पाँच-पाँच प्रकार के भारतीय वाद्ययंत्रों पर कुशलतापूर्वक खेलकर अपने पिता को विशेष सहायता पहुँचाया करते थे। उपर्युक्त महानुभावों के सिवा बीकानेर और जासनगर के महाराज तथा लिंबडी के युवराज भी पं० श्यामशंकर को साहाय्य-प्रदान किया करते थे।

कई प्रकार के भारतीय वाद्यों को अत्यंत निपुणता के साथ बजाने का एक-मात्र गुण ही युवक-विद्यार्थी उदयशंकर में हो, सो बात नहीं थी। सन् १९२२ ई० में लंदन के Royal Court Theatre में इन्होंने भ्रम में डालने वाला एक ऐसा खेल (Illusion) दिखाया था, जिसे देखकर लंदन के सुप्रसिद्ध दैनिकपत्र "Daily Mail" के शब्दों में समस्त दर्शकमंडली विमुग्ध-सी हो गई थी। Arts Gallery में चित्रकलाओं की एक प्रदर्शिनी में श्रीयुत उदयशंकर को प्रथम श्रेणी के दो पुरस्कार मिले थे। सन् १९२३ ई० में Royal College of Arts से परीक्षोत्तीर्ण होकर उदयशंकर ने डिप्लोमा प्राप्त किया। इस प्रकार सन् १९२३ ई० के ग्रीष्मकाल तक यह निर्णय नहीं हुआ था कि यह युवक-कलाविद् ललित-कलाओं में किस विषय का अनुसरण करेगा। अंततः पाश्चात्य देश की विश्वविख्यात नर्तकी Madam Anna Pavlora से आपका साक्षात् कराया गया और उसी समय आपने नृत्यकला के विषय में अपना अंतिम निश्चय कर लिया। Pavlora ने उदयशंकर को Royal Opera और Covent Garden की संगीतशालाओं में उसके साथ सम्मिलित होकर भारतीय नृत्यकला के प्रदर्शन का प्रबंध करने के लिये आमंत्रित किया। उदयशंकर ने उसके इस निमंत्रण को फ़ौरन् स्वीकार कर लिया। इसके साथ-साथ यह भी निश्चय ठहरा कि अमेरिका का भ्रमण किया जाय।

इसके बाद श्रीयुत उदयशंकर ने राधाकृष्ण-विषयक संपूर्ण संगीतमय नाटक के अभिनय का प्रबंध कर डाला और उसमें भाग लेनेवाली गोपिकाओं को भारतीय नृत्य-कला की शिक्षा देना आरम्भ कर दिया। उन्होंने

इस अभिनय में कृष्ण का पार्ट लिया और Pavlora ने राधा का। लंदन में और संपूर्ण अमेरिका में राधा-कृष्ण-विषयक इस नृत्यमय नाटक की बड़ी प्रशंसा हुई और Povlora के नृत्यपूर्ण अभिनय का यह एक उत्कृष्ट विषय माना जाने लगा। इसी समय से उदयशंकर भीरक प्रतिभाशाली कलाविद् के रूप में परिगणित होने लगे। Royal College of Arts के प्रिंसिपल अध्यापक Rothenstein को उदयशंकर के इस रुख़ पर निराश होना पड़ा। उन्होंने पं० श्यामशंकर से अपनी इस निराशा को व्यक्त करते हुए कहा था कि "भारतीय कलाओं के शिक्षार्थी छात्रों में से मेरे एक अत्यंत होनहार छात्र को Pavlora ने ले लिया है।"

अमेरिका के विस्तृत भ्रमण से वापस लौटकर श्रीयुत उदयशंकर ने Wembley की प्रदर्शिनी में भारतीय नारी-दिवस के उपलक्ष्य में नृत्य किया था। उस अवसर पर उनकी नृत्यकला-कुशलता को देखकर श्रीमती दोराबजी ताता, स्वर्गीय एस्० आर० दास की पत्नी तथा अन्य कतिपय भारतीय महिलाओं ने आपकी बड़ी प्रशंसा की थी। फिर लंदन की संगीतशालाओं में अपनी कला का प्रदर्शन करने के बाद सन् १९२४ ई० में उदयशंकर ने Pavlora का साथ छोड़कर स्वतंत्र रूप से पेरिस में भारतीय नृत्यकला के प्रदर्शन का आयोजन किया।

अपने इस निश्चय को कार्यरूप में परिणत करने में उदयशंकर को घोर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पूरी तड़क-भड़क साज-सामान से सज्जित हुए विना और किसी विश्वविश्रुत अभिनेत्री को भी संगिनी बनाए विना एक भारतीय नृत्यकार का योरप की जनता स्वागत करने के लिये तैयार नहीं थी। इसके सिवा योरप की सर्व-साधारण जनता की दृष्टि में भारतीय नृत्यकला लोक-प्रिय भी नहीं थी। उदयशंकर के पास इतना तो साधन था ही नहीं कि वह बड़ी-बड़ी नाट्यशालाओं को किराए पर लेते जैसा कि Madam Pavlora उच्च श्रेणी के श्रोताओं के लिये लिया करती थी, जो उत्कृष्ट कलाओं का रसास्वादन करने में सक्षम हों। उदयशंकर के पिता ने झालावाड़ राज्य की नौकरी से पृथक् होकर क़ानूनी पेशा अख़्तियार किया और इसके बाद वह अंतर-राष्ट्रीय शांति एवं विश्वबंधुत्व आदि के कार्यों में संलग्न हो गए। उदयशंकर की अंतरात्मा भारतीय कलाओं की प्रतिष्ठा एवं उत्कृष्टता को जानते हुए यह गवारा नहीं कर सकती थी कि एक ऐसे उत्तम आदर्श को घसीटकर संगीत-शालाओं के गर्त में गिरा दिया जाय, जहाँ उन्हें नाट्य-शालाओं के एजेंटों और संचालकों के भाड़े के टट्टू के रूप में उनकी मर्ज़ी के अनुसार अपनी कला का प्रदर्शन करना पड़े।

चार वर्ष तक श्रीयुत उदयशंकर अकेले ही इन आत्म-घातिनी विरुद्ध शक्तियों का सामना करते रहे। उन्होंने पाश्चात्य कलाविदों को पौर्वात्य नृत्यकलाओं की—जिसमें भारत, मिसर, बर्मा और जावा की नृत्यकलाएँ सम्मिलित थीं—शिक्षा देना आरंभ कर दिया और अपने साथ अभिनय करने के लिये कई लड़कियों को तैयार कर लिया। इतनी तैयारी कर लेने पर भी उनके पास साज-सामान की कमी थी और संपूर्ण अभिनय प्रदर्शन के लिये कोई सम्माननीय नाट्यशाला किराए पर लेने का साधन नहीं था। इन सब कठिनाइयों का सामना करते हुए अंततः गत वर्ष पेरिस के कतिपय उदाराशय सज्जनों एवं महिलाओं की सहायता से जो भारतीय कलाओं की उच्चता एवं उत्तम तत्वों में रुचि रखते हैं—उदयशंकर ने अपनी एकमात्र संगिनी सिमकी (Simki) के साथ भारतीय नृत्यकला का संपूर्ण अभिनय प्रदर्शन करने में सफलता प्राप्त की और केवल अपने अभिनय के लिये ही नाट्यशालाओं को किराए पर लिया। सिमकी नाम की इस अभिनेत्री को उन्होंने स्वयं ही कई महीने तक शिक्षा देकर तैयार किया है। पेरिस में उन्हें फ़ौरन् सफलता मिली और इसके बाद उन्होंने योरप के अन्य-कलाकेंद्रों जनेवा, वायना, बूडापेस्ट, बर्लिन और टुरिन आदि स्थानों में भी अपनी नृत्यकला का प्रदर्शन आरंभ कर दिया। इन सब स्थानों में जहाँ कहीं वे गए सभी जगह उनकी प्रशंसा हुई और उनका स्वागत किया गया। समाचारपत्रों में उनकी नृत्यकला की जो आलोचनाएँ प्रकाशित हुईं, उनमें इस बात का निर्देश किया गया कि उदयशंकर ने भारतीय नृत्यकला के जो प्रदर्शन किए हैं, उनका पाश्चात्य कलाविदों पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा है। उनकी नृत्यकला-विषयक योग्यता अपूर्व है और यदि उन्हें भारतीय नृत्यकला के रहस्यपूर्ण परिणाम के अनुरूप भारतीय संगीत का साहाय्य प्राप्त हो सके, तो

उसके अभिनय-प्रदर्शनों का पाश्चात्य संसार के भविष्य पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ सकता है । उदयशंकर की इस विशिष्ट योग्यता के प्रधान लक्षण इस प्रकार हैं—

उन्होंने आधुनिक भारतीय नृत्यकलाओं में उनके ताल, लय आदि की उनके मौलिक अभिव्यक्ति द्वारा सौंदर्य, महत्ता एवं भाव का केवल समावेश ही नहीं कर दिया है, प्रत्युत उन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृत-ग्रंथों एवं प्रस्तर-मूर्तियों से तांडव, रास आदि लुप्तप्राय शास्त्रीय नृत्य-कलाओं का पुनरुद्धार भी किया है। साधारण संगीतशालाओं एवं रंगमंचों के सहवास से अथवा नाटकीय एवं छाया-चित्रविषयक अभिनयों के भद्दे प्रदर्शन से, जिनमें नृत्यकला का बड़ा ही हास्यास्पद एवं विकृत प्रदर्शन किया जाता है, भारतीय नृत्यकला को ऊँचा उठाकर उन्होंने उसे उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया है । दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि उन्होंने भारतीय नृत्यकला को आध्यात्मिकता के रंग में रँग दिया है ।

भारतीय कला-विषयक रचनाओं के प्रति—जिनके गुण-ग्राहक अभी तक इने-गिने ही थे—इन्होंने व्यापक एवं गम्भीर रुचि उत्पन्न कर दी है और उनके लिये वास्तविक माँग भी पैदा कर दी है । इस संबंध में सबसे पहले जितने प्रयत्न किए गए थे, सब व्यर्थ सिद्ध हुए । श्रीयुत उदयशंकर को भविष्य में अपने अभिनयों के व्यापक प्रदर्शन के लिये योरप के बड़े-बड़े नाट्यशालाधिपतियों के वचन प्राप्त हुए हैं ।

किंतु पं० उदयशंकर और उनके योरपीय सहायक इस बात का अभाव बहुत अनुभव कर रहे हैं कि पाश्चात्य वाद्यकारों के स्थान में उनके साथ भारतीय वाद्यकारों की एक मंडली हो, जो भारतीय स्वरों के अनुसार वाद्यंत्र बजाने का आयोजन करे । इस अभाव की पूर्ति के लिये पं० उदयशंकर का स्वदेश-आगमन हुआ है । आपकी इच्छा है कि भारतीय कलाविदों की एक मंडली संगठित करके योरप ले जाया जाय । Melle Alier Boner के साथ पं० उदयशंकर गत २२ जनवरी को जहाज़ द्वारा बंबई पहुँचे थे ।

Alier Boner एक विदुषी महिला हैं और कलाओं के प्रति उन्हें अगाध प्रेम है । कलाओं को वह धर्म के समान आदरणीय वस्तु समझती हैं । Sculpture कारु-कार्य कला आपके अध्ययन का ख़ास विषय है और आप अपनी इस यात्रा में इस विषय का ही अध्ययन कर
और पं० उदयशंकर को उनके अभिलषित कार्य
सहायता पहुँचाना चाहती हैं । भगवान् करे पं० उदय-शंकर अपने उद्देश्य में सफल-काम होते हुए भार
नृत्यकला का समुज्ज्वल यशोप्रसार करने में समर्थ हों

जगन्नाथप्रसाद मिश्र

× × ×

३. भारत के बंक

[प्रति वर्ष भारत के बंकों में कुल मिलाकर १०
करोड़ रुपया जमा होता है, यानी आबादी के
लिहाज से फ़ी आदमी ३) प्रति वर्ष—अर्थात् ।)
प्रति मास या १.५ पाई प्रति दिन। २ प्रति
शत सूद के हिसाब से ३ पाई फ़ी आदमी
आय हुई । इससे यह साफ़ पता लगता है कि
रुपया बचाने की हमारी आदत या
कितनी गिरी हुई है ।

संपादक 'माधुरी']

बंकों का इतिहास

राष्ट्र के आर्थिक जीवन में बंकों का प्रधान हाथ है
बिना व्यापार के देश उन्नति नहीं कर सकता और बि
बंक के वर्तमान समय में सच्चा व्यापार नहीं हो सकता
बंक हुंडियों के भुगतान से लेकर रुपए के परिवर्तन तक
का काम करते हैं । इनमें रुपया रखने से वह आप-से-
आप सूद से बढ़ता ही नहीं, बल्कि उसी रुपए से दे
के नए उद्योग-धंधे खोले जाते हैं, इसलिये बंक में रु
रखना अपना फ़ायदा—अपने देश का फ़ायदा
अपनी सरकार का फ़ायदा करना है ।

लगभग ८० वर्ष तक हमारे देश में—इस बड़े मु
में—भारत-सरकार की कृपा से सिर्फ़ तीन ही प्रमुख
थे—बंगाल, बंबई तथा मदरास में एक-एक । यह बंक प्रे
डेंसी बंक कहलाते थे तथा १८६२ के पहले तक उन्हें
नोट तक चलाने का भी अधिकार था, किंतु सरकार द्वा
प्रत्यक्ष रीति से इनका नियमन होता था । १८
इनसे नोट चलाने का अधिकार छीन लिया गया,
सरकार के एजंट के तौर पर काग़ज़ी मुद्रा चलाने
अधिकार दे दिया गया और घाटा पूरा करने के लि
सरकार ने अपने ख़ज़ाने का उपयोग करने का भी अधिका
दे दिया । सरकार ने नियंत्रण का अधिकार

हाथ में रक्खा, पर उनको बहुत कुछ स्वाधीनता दे दी। १८६६ में प्रबंध पुनः दुहराए गए। काग़ज़ी मुद्रा का अधिकार सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। इनसे विदेशी विनियम का भी अधिकार छीन लिया गया। किंतु सरकार ने इनको स्व-प्रबंध में अधिक स्वाधीन कर दिया। सरकारी ख़ज़ाने भी अलग खुल गए। यह परिवर्तन १८७६ के प्रेसीडेंसी-बंक-क़ानून के अनुसार हुआ और १९२० तक चलता रहा।

१९२० का क़ानून

१९२० के नए क़ानून के अनुसार (इंपीरियल बंक आफ़् इंडिया एक्ट XLVIII) बंकों का संरक्षण लाटों के एक केंद्रीय बोर्ड तथा कलकत्ता, बंबई और मदरास के स्थानीय बोर्डों की अधीनता में आ गया।

भारत में एक केंद्रीय बंक का विचार सबसे पहले १८३६ में ही आया था। १८६९ में उस समय के अर्थ-सदस्य श्रीजेम्स विलसन ने इस आशय का आवेदन-पत्र भी दिया था। १८६७ में बंगाल-बंक के मंत्री श्रीडिक्सन ने एक आवेदनपत्र में तीनों प्रेसीडेंसी बंकों को मिलाने का तरीक़ा बतलाया था। १९१३ में चैंबरलेन-कमीशन ने भी यही सलाह दी थी। महासमर के बाद बंकों ने भी यही इच्छा प्रकट की। २७ जनवरी १९२१ को यह तीनों बंक मिलने से इंपीरियल बंक बन गया तथा क़ानून के अनुसार यह भारत-सरकार के संपूर्ण बंक का काम करेंगे, सरकारी केंद्रों का ख़ज़ाना रक्खेंगे, सार्वजनिक क़र्ज़ का प्रबंध करेंगे। बंक अपने काम के वास्ते क़र्ज़ लेने के लिये लंदन में भी एक कार्यालय खोलेगा तथा स्थापना के पाँच वर्ष के भीतर सर्वत्र भारत में १०० शाखाएँ खोल लेगा। कहना नहीं होगा कि यह सब शर्तें पूरी हो गई हैं। अयोग्य भारतीयों को उच्च पद न देने में भी बंक सतर्क है। किंतु यह बंक राज्यकार्य की विशेष सुविधा के लिये है, न कि व्यापार के लिये।

बंकों की श्रेणियाँ

इंपीरियल बंक के अलावा तीन प्रकार के बंक और हैं—(क) विनिमय-बंक, (ख) भारतीय संयुक्त-स्टाक-बंक, (ग) सहौद्योगिक बंक।

प्रथम श्रेणी के बंक विदेशी बंक हैं, जिनमें विदेशी पूँजी तथा विदेशी कार्यकर्ता हैं। कुछ तो भारत में काम करते हैं, पर ज़्यादातर विदेश में काम करते हैं। इनका काम भारत के रुपए के लेनदेन में तथा व्यापारिक आयात-निर्यात में सिक्का-परिवर्तन का कमीशन कमाना है। दूसरी श्रेणी के बंक भारत में ही हमारे रुपए से बने हैं। तीसरी श्रेणी के बंक विशेषतः क़र्ज़ देने के लिये भिन्न-भिन्न प्रांतों में रजिस्टर किए गए हैं। नीचे दिए ख़ाक़े से इनकी संख्या की वृद्धि समझ में आ जायगी।

	विनिमय-बंक		संयुक्त-स्टाक-बंक	
वर्ष	अ श्रेणी	ब श्रेणी	अ श्रेणी	ब श्रेणी
१८७०	३		२	
१८८०	४		३	
१८९०	५		५	
१९००	८		९	
१९०५	१०		९	
१९१०	९		१६	
१९१५	१०		२०	२५
१९१६	११		२०	२८
१९१७	१५		१८	२५
१९१८	१०		१९	२८
१९१९	११		१८	२९
१९२०	१५		२५	३३
१९२१	१७		२७	३८
१९२२	१८		२७	४१
१९२३	५	१३	२६	४३
१९२४	५	१३	२९	४१
१९२५	५	१३	२८	४६
१९२६	५	१३	२८	४७
१९२७	६	१२	२९	४८
	कुल—१८		७७	

सहौद्योगिक बंक

वर्ष	अ श्रेणी	ब श्रेणी
१९१८-१९	४	२९
१९१९-२०	२	२९
१९२०-२१	५	३६
१९२१-२२	५	४६
१९२२-२३	५	६२
१९२३-२४	८	७२
१९२४-२५	८	९२
१९२५-२६	१०	१०४
१९२६-२७	१२	११९
१९२७-२८	१६	१२५
	कुल—१४१	

इस विषय में दो बातें जान लेनी चाहिए। 'अ' श्रेणी में वे बंक आते हैं, जिनकी पूँजी और कोष ५ लाख से ऊपर है। जिनकी पूँजी १ लाख व ५ लाख के बीच में है, वे 'ब' श्रेणी में आते हैं। संयुक्त-स्टाक-बंक का वर्ष ३१ दिसंबर को समाप्त होता है, पर सहौद्योगिक बंकों का वर्ष भिन्न प्रांतों में भिन्न वर्ष में समाप्त होता है।

श्रेणीविभाग का फल

ऊपर की संख्या से पाठकों को बंकों की तरक़्क़ी का अंदाज़ लग जायगा। जब से इनका श्रेणी-विभाग हुआ है, तब से संख्या बहुत तेज़ बढ़ने लगी है और थोड़े में हम यह कह सकते हैं कि दस वर्षों में विनिमय-बंकों की संख्या ८० प्रतिशत, संयुक्त-स्टाक-बंकों की ६४ प्रतिशत और सहौद्योगिक बंकों की ३२७ प्रतिशत बढ़ गई है। इसके अलावा, अकेले बंगाल में ६०० क़र्ज़ देनेवाली कंपनियाँ हैं, जो अधिक साझा न होने के कारण संयुक्त-स्टाक-कंपनी की श्रेणी में नहीं आ सकतीं।

किंतु बंकों की संख्या की वृद्धि जिस प्रकार हुई है, उसी प्रकार यदि इनमें उसी अनुपात में रुपए भी जमा होते, तो कितने आनंद की बात थी। किंतु आँकड़ों के देखने से पता लगता है कि यद्यपि संख्या बढ़ी है, फिर भी रुपया उतना नहीं जमा हुआ।

व्यवहार की रक़में

१९१८ में हर प्रकार के जमा करने की रक़म मिलाकर इंपीरियल बंक में ५९,१९,०३,०००) थी, पर १९२७ में यह रक़म बढ़कर केवल ७९,२७,४५,०००) हुई। विनिमय-बंकों में १९१८ में ५१,८५,६०,०००) था। १९२७ में यहाँ ६८,८६,२३,०००) हुआ। संयुक्त-स्टाक-बंकों में १९१८ में ४२,१४,८३,०००) रुपया था, तो १९२७ में ६४,२९,६९,०००) हुआ। सहौद्योगिक बंकों में क़र्ज़ के लिये प्राप्त रक़म लेकर १९१८ में २,९२,८१,०००) था, तो १९२७ में २१,९९,९२,०००) हो गया। कुल मिलाकर, सहौद्योगिक बंकों को छोड़कर, क्योंकि उनमें क़र्ज़ भी शामिल है, जमा की रक़म २,६४,३९,४२,०००) हो जाती है। इससे पता चला कि कुल जमा की रक़मों में, साख के तथा स्थिरता के विश्वास के कारण २७ प्रतिशत अकेले इंपीरियल बंक में, ३३ प्रतिशत विनिमय-बंकों में और ३० प्रतिशत संयुक्त-स्टाक-बंकों में रुपया जमा हुआ।

सहौद्योगिक बंकों की संख्या भी कम नहीं है बहुत कुछ बढ़ी है। संयुक्त स्टाक-बंकों की विदेशी रक़म यदि जोड़ ली जाय, तो उनकी रक़म हमारी रक़म से कहीं ज़्यादा हो जायगी। साथ ही यह भी मालूम हो जायगा कि विनिमय-बंकों में स्थिति उतनी अनिश्चित नहीं रही है, जितनी संयुक्त-स्टाक-बंकों में। इसका प्रधान कारण यह है कि संयुक्त-स्टाक-बंकों पे जनता की दरिद्रता—रुपया जमा करने की शक्ति—की सबसे प्रथम और प्रबल छाप पड़ती है। गत चार वर्षों से इंपीरियल बंक की रक़म ८० करोड़ के लगभग रही है। विनिमय-बंक कभी इस रक़म तक नहीं पहुँच पाए। स्टाक-बंक केवल १९२१ में यहाँ तक पहुँच पाए थे। यदि इन दस वर्षों में इनकी आय का आनुपातिक पृथक्करण किया जाय, तो इस प्रकार होगा—

बंक	रुपए
इंपीरियल बंक	७७,६२,४६,०००)
विनिमय-बंक	७०,९६,३०,०००)
संयुक्त-स्टाक-बंक	६१,१२,२६,०००)
सहौद्योगिक बंक	११,१४,२५,०००)

रक़म का अंदाज़

१ लाख रुपए की पूँजी से ऊपर वाली संस्थाओं के देखने से जिनमें वे नहीं शामिल हैं जिन्होंने कई कारणों से अपने आँकड़े स्पष्ट नहीं किए हैं, यह अनुमान निकलता है कि चारों श्रेणी के बंक ५५ करोड़ रुपए से ऊपर का काम प्रति वर्ष करते हैं। भारतीय बंकों का सालाना 'डिपॉज़िट' ५३ करोड़ रुपए से ऊपर है। इसके अनुमान से यह भी अनुमान लग सकता है कि कम-से-कम १०० करोड़ प्रति वर्ष भारत के हर प्रकार के बंकों में जमा होता है। अर्थात् ३) रुपया प्रति वर्ष फ़ी आदमी पीछे या चार आना प्रति मास या १·५ पाई प्रति दिन।

५ प्रतिशत सूद के हिसाब से हमारी सूद की दौलत आय ३ पाई प्रति दिन हुई। यह भी इस कारण कि बंकों में अधिकांश रुपया सरकारी है या सरकार द्वारा दिया हुआ है। यदि यह रुपया हटा लें, तो हमारी दरिद्रता कितनी भयंकर मालूम होती है।

हमारी ग़रीबी

रुपयों के अभाव के दो कारण हो सकते हैं। हमारी ग़रीबी या हमारा अज्ञान। प्रति वर्ष कुल मिलाकर

ग़रीबी के समय में भी करोड़ों रुपए के गहने बनते हैं। यह रक़म देश का कितना उपकार कर सकती है, पर उधर क्यों नहीं जाती? इसका स्पष्ट कारण अज्ञान है—अशिक्षा है। पर दूसरा तथा सर्वोपरि कारण ग़रीबी है। खाने को मिलता नहीं, तो बंक कहाँ से आया जाय। किंतु इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का यह गोल जवाब ठीक नहीं। इसके लिये अलग लेख की ज़रूरत पड़ेगी। इस लेख में भारतीय बंकों की अवस्था, उनकी परिस्थिति, रुपया जमा करने की हमारी शक्ति तथा सूद से हमारी आय और बंकों का हाल बतलाना था। अब हम 'रिज़र्व बंक' के विषय में अत्यंत संक्षेप में बतलाकर यह लेख समाप्त करेंगे।

रिज़र्व बंक

हिल्टन-यंग-कमीशन या रायल-कमीशन (१९२५-२६) ने विनिमय की दर १८ पेंस करते समय मुद्राचलन को नियमित करने, बंकों का बंक होने, नोट-चलन को अपने हाथ में लेने तथा सरकारी ख़ज़ाने को रखने के लिये एक रिज़र्व बंक खोलने की सलाह दी थी। यदि यह बंक स्थापित हो जाता, तो भारत के बंकों का रुख़ व कार्य ही आधा पलट जाता।

सरकार ने कमीशन की सिफ़ारिश मानकर जनवरी १९२७ में एक बिल इसी आशय का व्यवस्थापक महासभा में पेश किया था। यह बंक साझेदारों का बंक होता। इसका नियंत्रण सरकारी नामज़द सदस्य करते। इंपीरियल बंक को कई रुकावटों से मुक्त कर दिया जाता। किंतु यद्यपि यह बंक भारत की संपूर्ण आर्थिक शक्ति का पालक-पोषक होता, सरकारी ख़ज़ाने का स्वामी और नोट-चलन का केंद्र होता, तो भी इस पर महासभा का—जनता का कुछ भी प्रभाव न रहता। केंद्रीय बंक की अत्यंत आवश्यकता है—पर साझेदारों के बंक की नहीं—राज्य-बंक की। यही बात व्यवस्थापक महासभा की कमेटी ने बहुमत से कहा। देश के नेताओं का कथन था कि यह बंक महासभा के प्रति ज़िम्मेदार हो, यह साझेदारों का बंक न होकर राज्यबंक हो; रिज़र्व बंक के लिये विशेष पूँजी की ज़रूरत नहीं है, अतः हिस्सेदार बनाने की ज़रूरत नहीं है। यदि इसमें हिस्सेदारों को रक्खा जायगा, तो यह विदेशी पूँजीपतियों या भारत के बड़े नगरों के पूँजीपतियों के हाथ की कठपुतली हो जायगा।

व्यवस्थापक महासभा के सामने यह बिल किस प्रकार आया और रद्द हुआ, यह कहानी दुहराने की ज़रूरत नहीं है। किंतु यदि सरकार भारतीय हित का ख़याल कर विरोधी पक्ष के संशोधनों के अनुसार रिज़र्व बंक खोलने का प्रयत्न करती, तो बड़ा काम होता।

परिपूर्णानंद वर्मा

बाल-महिला-मनोरंजन

१. बरसात

देखो भाई वर्षा आई ;
भूतल पर बहार है छाई ।
मंद-मंद पुरवाई चलती ;
तन पर पंखा-सी है ढलती ।
घोर घटाएँ हैं घिर आई ;
बरसाने को जल भर लाई ।
बिजली चमक-चमक डरवाती ;
चकाचौंध आँखें कर जाती ।
बादल गड़-गड़ गरज रहा है ;
पानी रिमझिम बरस रहा है ।
बालक झूला झूल रहे हैं ;
मन में कैसे फूल रहे हैं ।
पानी भरे सरों के तट पर ;
मेंढक बोल रहे हैं टर-टर ।
मन बहलाती है हरियाली ;
हरे-भरे पेड़ों की डाली ।
पशु-पक्षी आनंद मनाते ;
मधुर शब्द "कवि नेह" सुनाते ।
सबके ही मन में उछाह है ;
वर्षा-ऋतु की वाह-वाह है ।

शंभूदयाल त्रिपाठी "नेह"

× × ×

२. विजय

शहर से दूर—एक पहाड़ी के नीचे एक झोपड़ी थी । उस झोपड़ी में एक बालक अपनी बूढ़ी मा के साथ रहता था । बालक की उमर लगभग १४ व की थी । जब वह १० वर्ष का था, तभी उसके मा पिता उसे उसकी वृद्धा माता के हाथों में सौं स्वर्गारोहण कर चुके थे । इन ४ वर्षों तक वे नि

के रक्खे हुए धन से अपना निर्वाह करते रहे । एक दिन उसकी माता ने उसे बुलाकर कहा—"प्यारे विजय, तुम्हारे पिता की कमाई अब ख़त्म हो चली। उसके बाद—मुझे मालूम होता है, हमको उपवास करके दिन काटने होंगे । हाय ! जीवन के इन अंतिम दिनों में मुझे यह भी देखना बदा था।" यह कहते-कहते उसका गला भर आया । वह रोने लगी । अपनी मा को रोते देख विजय की आँखों में भी आँसू उमड़ आए । वह भी रोने लगा । अंत में विजय ने आँसू पोंछकर कहा—"अम्मा, ऐसा क्यों कहती हो ? ईश्वर ने हमें बनाया है—जन्म दिया है, तो पेट-भर खाने को भी देगा । मैं तड़के ही जंगल से लकड़ी तोड़ शहर में बेच आया करूँगा—जो कुछ मिलेगा उसका अनाज ले आया करूँगा । तुम रोओ मत।" मा कुछ न बोली । संध्या हो गई थी, इसलिये दोनों खा-पीकर सो रहे ।

दूसरे दिन से विजय बड़े तड़के उठता तथा जंगल से लकड़ी तोड़ शहर में बेच आता ; परंतु लकड़ी में उसे दो या तीन आने से अधिक न मिलते थे। इस कारण दोनों का निर्वाह बहुत कठिनता से होता था। अंत में एक दिन विजय ने सोचा कि लकड़ी बेचने से गुज़ारा न होगा । कोई दूसरा उपाय ढूँढ़ना चाहिए । एकाएक उसे याद आया कि शहर के लोग बाँसुरी-प्रेमी हैं । शायद बाँसुरी बनाकर बेचने से कुछ लाभ हो । बस, दूसरे दिन कुछ बाँसुरी बनाकर शहर की ओर ले चला । लोगों ने बाँसुरी देखी—वे बड़ी अच्छी बनी थीं, इसलिये थोड़ी ही देर में सब-की-सब बिक गईं और विजय पैसे लिए ख़ुशी-ख़ुशी घर लौट आया ।

दूसरे दिन वह ५० के लगभग बाँसुरी लेकर शहर की ओर चला । इन बाँसुरियों को उसने और उसकी मा ने बड़े परिश्रम से बनाया था । शाम होते न होते वे सब बिक गईं । वह उन पैसों का अनाज लेकर घर लौट आया । उस दिन से अब वह रोज़ बाँसुरी लेकर शहर आता और उन्हें बेचकर घर लौट जाता था । इस व्यापार से उसे बहुत लाभ हुआ । कुछ दिनों बाद उसने बहुत-सा रुपया इकट्ठा कर लिया !

उसकी बाँसुरी की बिक्री देख कुछ लोग, जो स्वयं बाँसुरी बेचते थे, उससे डाह करने लगे ; क्योंकि अब उनकी बाँसुरी कोई ख़रीदता ही न था । उनकी शत्रुता यहाँ तक बढ़ी कि वे विजय के मार डालने का उपाय सोचने लगे । इस अभिप्राय की पूर्ति के लिये उन्होंने आपस में सलाह कर विजय को निमंत्रण दिया । विजय ने स्वीकार कर लिया ।

दूसरे दिन विजय ने उनका निमंत्रण पूरा किया। सबने साथ बैठकर मिठाई उड़ाई । विजय को मिठाई से घृणा थी, परंतु निमंत्रण में उसे खाना ही पड़ा । वह थोड़ी-सी मिठाई खाकर उठ खड़ा हुआ। थोड़ी देर तक उनसे बातें कर वह घर जाने के लिये विदा हुआ, परंतु अभी थोड़ी ही दूर गया था कि उसे चक्कर आने लगा—पैर लड़खड़ाने लगे । वह सिर पकड़कर बैठ गया और बेहोश हो गया । उन लोगों की ज़हरमिली मिठाई विजय पर अपना असर दिखाने लगी । वे लोग उसे उठाकर जंगल में फेंक आए ।

जंगल में एक महात्मा रहते थे । वह जल लेने के लिये नदी की ओर चले जा रहे थे, परंतु रास्ते में मुर्दा पड़ा देख रुक गए और उसके मारनेवाले का पता लगाने लगे । ध्यान लगाकर उन्होंने विजय के मारनेवालों का पता लगा लिया । अब उन्होंने विजय की ओर देखकर मन में कहा—"आह ! संसार कितना स्वार्थी है । एक दूसरे की उन्नति नहीं देख

सकता । अपने स्वार्थ के लिये उन दुष्टों ने इस निरपराध बालक को ज़हर दे दिया ।" महात्माजी ने पास के वृक्ष से पत्ती तोड़ उसका रस निचोड़कर विजय के कान में डाला । कुछ देर बाद विजय को होश आया । उसने आँखें खोलीं । महात्माजी ने उससे पूछा—"बच्चा, तबियत कैसी है ?" विजय ने उठकर महात्माजी के पैर छुए और कहा—"आपकी कृपा से अच्छी है ।" इसके बाद महात्माजी ने कहा—

"बच्चा, तुझे ज़हर दिया गया था । यदि मैं कुछ देर और न आता, तो तेरे प्राणपखेरू उड़ गए होते । परंतु आज से किसी अपरिचित व्यक्ति पर एकाएक विश्वास न कर बैठना और न उसका कहना मानना, मैं तुझे सावधान किए देता हूँ । अब जा, फिर कभी मेरी कुटी पर आना, तो मैं तुझे कुछ उपदेश दूँगा ।"

विजय महात्मा को प्रणाम कर घर लौट आया । घर पहुँचने पर उसने अपनी मा को अपना रास्ता देखते हुए पाया । मा-बेटा दोनों ने मिलकर भोजन किए ; क्योंकि अभी तक दोनों में से किसी ने भी भोजन नहीं किया था । खाते-खाते विजय ने मा से अपना सारा हाल कह सुनाया । मा ने महात्मा की बड़ाई करते हुए कहा—"महात्मा लोग ऐसे ही होते हैं ।"

दूसरे दिन विजय फिर बाँसुरी लेकर शहर पहुँचा । जिन मनुष्यों ने उसे ज़हर दिया था, वे उसे ज़िंदा देख बड़े चकराए और अब की बार उसको क़त्ल करने का विचार किया ; परंतु इसी समय विजय उन लोगों के पास आकर बैठ गया और बोला—"तुम लोग मुझे क्यों मार डालना चाहते हो ?" उनमें से एक ने उत्तर दिया—"तुम्हारी बाँसुरी के सामने हमारी बाँसुरी कोई नहीं खरीदता और हम सब भूखों मरते हैं, इसलिये तुम्हें मारना चाहते हैं ।"

विजय यह सुनकर हँसा । उसने अपनी पास की सब बाँसुरी उन लोगों को दे दीं और कहा—"लो, इन्हें बेचकर अपना गुज़र करो ।"

विजय के इस कार्य ने उनके हृदय के विचार बदल दिए । उन्होंने विजय के पैर छू-छूकर अपने अपराधों की क्षमा माँगी और कहा—"आप इतने उदार हैं, हम लोग यह नहीं जानते थे । हमें माफ़ कीजिए । हम लोग बड़े पापी हैं । क्षमा कीजिए । आप मनुष्य नहीं, देवता हैं ।"

विजय सुनकर हँस पड़ा । उसने उन सबको गले से लगाकर कहा—"मैं देवता नहीं, मनुष्य हूँ, और आज से तुम्हारा सच्चा मित्र हूँ ।" उन्होंने सहर्ष विजय की मित्रता स्वीकार की । इसी समय किसी ने कहा—"विजय ने सच्ची विजय पाई ।"

रामेश्वरप्रसाद शुक्ल

× × ×

३. वृक्ष और अमरबेलि

कहा वृक्ष ने—"अमरबेलि,
था उचित नहीं ऐसा करना ।
जिसने तुझको अपनाया था,
प्राण न था उसके हरना ।
यदि मैं तुझे न अपनाता,
तो सूख-साखकर मर जाती ।
इस प्रकार से हरी-भरी,
तू कभी न ऐसी हो पाती ।
दशा देखकर तेरी मैंने,
तुझको हृदय लगाया था ।
खान-पान-सम्मान आदि दे,
सिर पर तुझे चढ़ाया था ।
पत्ते, फूल और फल जो थे,
सबका तू ने किया विनाश ।

शेष डाल अब रही, देख लो,
उसका कृपया करो न नाश।"
यह सुनकर वह अमरबेलि
बोली उससे, यों हँस करके—
"वृक्षराज, तुम हो बुद्धू,
अब रोते हो क्यों सिर धर के।
जब तक जान तुम्हारी है,
मैं जा न सकूँगी हट करके।
सूखो तुम, मैं हरी रहूँगी,
चूस-चूस रस डट करके।"

* * *

नष्ट अन्त अन्यायी होगा,
अमरबेलि का लय निश्चय;
पौदा हरा-भरा फिर होगा,
होगी धर्म-विजय निश्चय।

लक्ष्मीनारायण-दीनदयाल अवस्थी

× × ×

स्त्रियों के गर्भाशय के रोगों की खास चिकित्सिका

श्रीमती गंगाबाई की

पुरानी सैकड़ों केसों में कामयाब हुई, शुद्ध वनस्पति की ओषधियाँ

वंध्यात्व और गर्भाशय के रोग दूर करने के लिये

ग
र्भ
जी
व
न
प्र
शं
सा
प
त्र

गर्भजीवन
रजिस्टर्ड

से ऋतु-संबंधी सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं। रक्त तथा श्वेत प्रदर, कमलस्थान ऊपर न होना, पेशाब में जलन, कमर का दुखना, गर्भाशय में सूजन, स्थान-भ्रंशी होना, मेद, हिस्टीरिया, जीर्ण तथा प्रसूति-ज्वर, बेचैनी, अशक्ति आदि और गर्भाशय के तमाम रोग दूर हो जाते हैं। यदि किसी प्रकार भी गर्भ न रहता हो, तो अवश्य रह जाता है। क़ीमत ३) मात्र। डाक-ख़र्च पृथक्।

गर्भरक्षक
रजिस्टर्ड

से गर्भ का कुसमय गिर जाना, गर्भ-धारण करने के समय की अशक्ति, प्रदर, ज्वर, खाँसी और ख़ून का स्राव आदि सभी बाधक बातें दूर होकर पूरे समय में सुंदर तथा तंदुरुस्त बच्चे का जन्म होता है। हमारी ये दोनों ओषधियाँ लोगों को इतना लाभ पहुँचा चुकी हैं कि ढेरों प्रशंसा-पत्र आ चुके हैं। मूल्य ४) मात्र। डाक-ख़र्च अलग।

ग
र्भ
र
क्ष
क
प्र
शं
सा
प
त्र

हाल के प्रशंसापत्रों में कुछ नीचे पढ़िए—लोग क्या कहते हैं!

दीरबलदा, डांग (डी० बालांमोरा)। ता० २६।१।३०
आपकी दवाई का सेवन करने से फ़ायदा पहुँचा और लड़की का जन्म हुआ।
हिम्मतसिंह एम्० चौराणा

सिवा भाई एस० पटेल, C/o, नटवरलाल ऐंड कं०
लाडसा (डी० बालाघाट)। ता० २२।१।३०
मैंने आपके कारख़ाने से जो दवा गर्भजीवन मँगाया था उससे मेरी पत्नी का जो मृतवत्सा रोग था वह इस दवा के सेवन के बाद एक कन्या उत्पन्न हुई। वह आगामी शिवरात्रि को चार वर्ष की होगी।—बृजलाल पटेल

पाचोरा (जि० खानदेश) ता० २५।१।३०
आपकी दवाई से मेरी पत्नी को संपूर्ण आराम हुआ उसके लिये बहुत कृतज्ञ हूँ।
कल्यानसिंह चावड़ा, C/o चावड़ ब्रादर्स

बालाघाट (सी० पी०)। ता० २५।१।३०
अब मेरे को पहले से फ़ायदा है, ऋतु मासिक बराबर महीने में होता है, ऋतु का रंग काला था पहले, अब रंग लाल है, भूख अच्छी लगती है, खाना हज़म होता है, दस्त बराबर होता है, पेशाब में जलन नहीं होता, कमर वग़ैरे में दर्द नहीं होता।—गिरजाबाई, C/o गनपतराय

याद रक्खो कि ऐसे एक दो नहीं, किंतु सैकड़ों प्रशंसा-पत्र मिल चुके हैं।

अपनी तकलीफ़ की पूरी हक़ीक़त साफ़ लिखो। २१

पता—**गंगाबाई प्राणशंकर, गर्भजीवन औषधालय, रीची रोड, अहमदाबाद**

४. महामायाप्रसादसिंह

आज हम अपने पाठकों का एक ऐसे युवक से परिचय कराते हैं, जिसने अपनी मानसिक उन्नति की ओर ध्यान देते हुए भी शारीरिक उन्नति में काफ़ी तरक़्क़ी की है। आपका नाम है बाबू महामायाप्रसादसिंह। आप जाति के श्रीवास्तव (दूसरे) कायस्थ हैं और सारन ज़िलांतर्गत कायस्थों की प्रसिद्ध बस्ती पटेढ़ी ग्राम के निवासी हैं। आपका जन्म १ली मई (१९०९ ई०) को हुआ था। ४ या ५ वर्ष की उम्र में आपने पढ़ना प्रारंभ किया था। आप बराबर पढ़ने में तेज़ रहे। सन् १९२५ ई० में पंजाब-विश्वविद्यालय से आपने मैट्रिक्यूलेशन की परीक्षा डिवीज़न में पास की थी। फिर काशी-हिंदू-वि विद्यालय से सन् १९२८ में आई० ए० की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की। इसी बीच में आपके मँझले भाई का देहांत ट्यूबरक्लोसिस से हो गया और इसी कारण आपको एक वर्ष तक पढ़ना छोड़ना पड़ा। आपके बड़े भाई भी बहुत पहले यक्ष्मा रोग के शिकार हो चुके थे। दोनों भाइयों के मर जाने से स्टेट का सब कार-बार महामाया बाबू पर ही आ पड़ा और आपने पढ़ना स्थगित ही कर दिया।

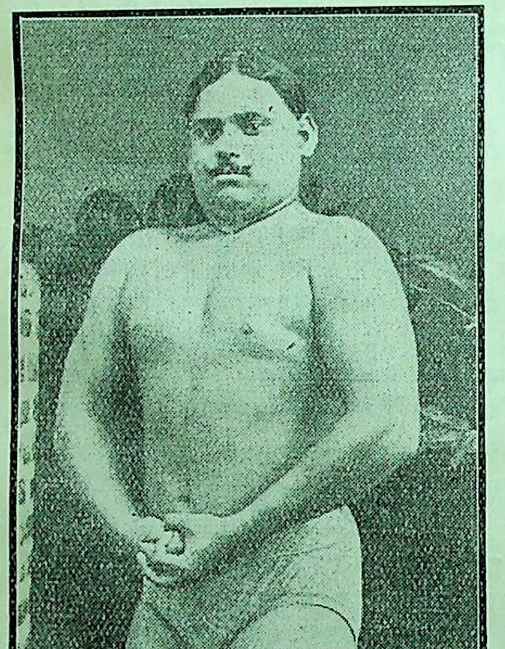

बाबू महामायाप्रसादसिंह

प्रायः देखा जाता है कि धनी लोगों में विद्या का प्रवेश किसी प्रकार हो तो हो, परंतु व्यायाम से वे सदा दूर ही भागते हैं। भारत के ९९ फ़ी सदी ज़मींदारों की यही हालत है। परंतु हमारे महामाया बाबू एक बड़े धनी ज़मींदार होते हुए भी और साथ ही ज़मींदार एसोसिएशन के सदस्य होकर भी इस रोग से मुक्त हैं। आपको लड़कपन से ही व्यायाम का शौक़ है। उस समय आप बहुत दुबले-पतले थे, परंतु लगन एक ऐसी चीज़ है, जो बड़े-से-बड़े कामों को भी आसान बना देती है। महामाया बाबू में शारीरिक उन्नति करने की धुन सवार है सही, परंतु पारिवारिक परिस्थितियों के कारण आपको समय-समय पर कसरत और कुश्ती से अलग हो जाना पड़ता है। लगातार छः-आठ महीने से अधिक आपने कभी व्यायाम को नहीं अपनाया। एक बार तो जब आपके मँझले भाई की मृत्यु हुई थी, उस शोक में आपका वज़न १ मन ३७ सेर से घटकर १ मन सेर हो गया और तन्दुरुस्ती यहाँ तक ख़राब हुई कि आपके मुँह से ख़ून आने लगा। कुछ डाक्टरों ने तो यहाँ तक कह दिया था कि आपमें भी यक्ष्मा के कीटाणु प्रवेश कर गए हैं। परंतु महामाया बाबू को

अपने ऊपर विश्वास था। उन्होंने उसी दशा में व्यायाम को अपनाया और कुछ ही दिनों में आपका वज़न बढ़कर २ मन १० सेर हो गया। इस समय आपकी शारीरिक अवस्था बड़ी अच्छी है। भारतीय पहलवानों में आपके पुट्ठे (Muscle) बहुत अच्छे हैं और शरीर भी सुंदर है। इस समय आप अपनी पूरी ताक़त से एक ही दिशा में एक साथ दौड़ती हुई दो मोटरों को रोक लेते हैं, अपनी छाती पर ४० मन का भार रख लेते हैं और ८ इंच उसे फुला लेते हैं। आपका कहना है कि आप इस समय किसी भी योरपीय पहलवान से मोर्चा ले सकते हैं।

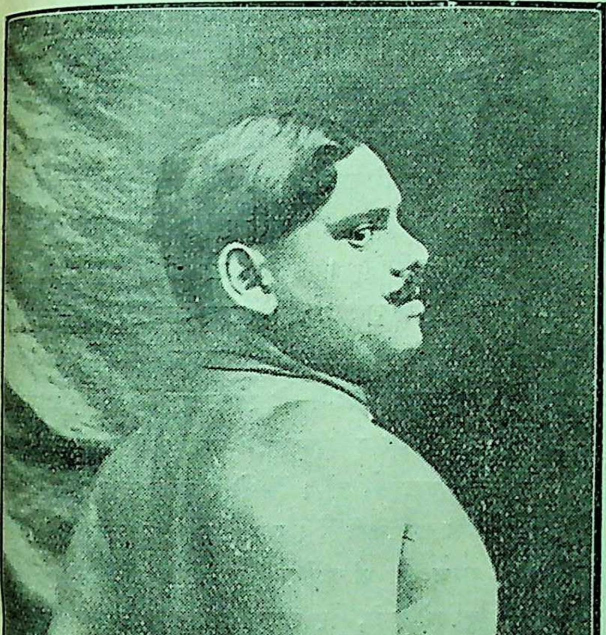

बाबू महामायाप्रसादसिंह
(छाती फुलाने पर)

महामाया बाबू लगभग डेढ़ घंटे तक व्यायाम करते हैं। आपका मुख्य व्यायाम दंड और बैठक है, परंतु उसके साथ ही आप डंबल का भी प्रयोग अवश्य किया करते हैं। कुश्ती के फ़न में भी आप पक्के उस्ताद हैं। दो-तीन पहलवान बराबर आपके आश्रित होकर रहते हैं।

आप बहुत सादा और थोड़ा भोजन करते हैं। सुबह कुछ मेवे और एक ग्लास दूध, दोपहर में भात, दाल, तरकारी और घी, संध्यासमय कुछ मेवे और रात में चार-छः फुलके और शाक आदि।

हाँ, एक बात महामाया बाबू के विषय में हम और भी कह देना चाहते हैं। वह यह कि आपने संप्रति व्यायाम आदि को एक-डेढ़ महीने से छोड़कर कांग्रेस के आज्ञानुसार सत्याग्रह-संग्राम में भाग लेना प्रारंभ कर दिया है और आप अपने ज़िले के प्रमुख कार्य-कर्ताओं में से एक हैं। आपको बहुत पहले से कांग्रेस और खद्दर में अटल विश्वास और प्रेम है।

जगन्नाथप्रसादसिंह

× × ×

५. क्रोध

१

हे बालकवृंद किसी पर
तुम क्रोध कभी मत करना ;
कोई दो बातें कह ले
तो उसको भी चुप सहना।

२

यह क्रोध सभी पापों की
जड़—दुर्गुण का यह घर है;

जलता रहता क्रोधानल--
में, नित ही क्रोधी नर है।

३

रावण का नाश हुआ था
इस क्रोध-पाप के कारण;
संग्राम महाभारत में
सब नष्ट हुए कौरवगण।

४

क्रोधी नर का है क्षण में
संसार शत्रु हो जाता;
कोई न सहायक उसका
सुख से दिन वह न बिताता।

५

पुरखों की कीर्ति कमाई
क्रोधी क्षण में हैं खोते;
निज मान-ज्ञान को खोकर
विष-बीज सभी में बोते।

६

यह क्रोध सदा क्रोधी को
मद से पागल कर देता;
है यह अनर्थ करवाता
सब ज्ञान-बुद्धि हर लेता।

७

दुर्बल अति क्षीण-बदन तो
हैं स्वास्थ्यहीन हो जाते;
सब सहनशक्ति मिट जाती,
हैं विविध दुःख वे पाते।

८

जो करे भूलकर कोई
कुछ क्रोध तुम्हारे ऊपर;
निज मधुर नम्र वचनों से,
तुम शांत तुरत ही होकर।

९

ईर्षा द्वेषादिक को तज
गंभीर धीर बन जाओ;
तुम हँसी-ख़ुशी से अपना
जीवन सुख-सहित बिताओ।

श्रीहरिश्चन्द्रप्रसाद 'इन्दु

× × ×

६. वह मेरे कौन हैं ?

अब रात के चार बजे होंगे—यह समय तो उनके जा का है। वह जागने के बाद श्रीगंगाजी के निर्मल जल में स्ना करती हैं। अब वह धूप, दीप, रोरी आदि से किसी दे की आराधना कर रही होंगी—हृदय कहता है कि अ कर रही होंगी। मैं भी तो इसी समय अपनी चित्रशा में प्रति-दिन जाया करता हूँ, किंतु मेरे मंदिर में केवल ए ही देवी है, उसी के बहु-प्रकार चित्र हैं। किसी चित्र में श्रीयमुनाजी के निकट नंदनवन को सुसज्जित कर रही हैं कि में वह कोमल कमनीय करों द्वारा वीणा का स्वर मधु में अलाप रही हैं । इसी तरह मेरी देवी के भिन्न-भि चित्र मंदिर में लगे हुए हैं। ईश्वर जाने, कितनी आशाओं कितनी अभिलाषाओं से मैं उस मंदिर में प्रवेश क हूँ, किंतु प्रवेश करते ही स्वप्नावस्था में पड़ जाता हूँ स्थूल शरीर की सुध-बुध ही नहीं रहती। मैं इस सम ऐसी ही दशा में हूँ। मैं तो स्वयं देख रहा हूँ कि अब पूजा पर बैठी हैं। वह देखो! उनके उपास्य चि का रंग बदला और मेरा चित्र उनको दिखाई देने लगा, हाथ काँपने लगे, पैर लड़खड़ाने लगे, और वह अ पूजा के स्थान पर गिर पड़ीं। मैं इस समय अपने मं में बैठा था कि एक लहर-सी आई, जैसी कि बैठे-बै सोनेवालों को आती है और फिर अपनी इष्ट-देवी चरणों में फूल चढ़ाने लगा। फूल तो चढ़ाने लगा, प फिर शरीर का नाता टूट गया। क्या देखता हूँ कि मंदिर के द्वार पर वही खड़ी हैं। मैं उसी अवस्था में चिल्ला पड़ा, क्या आ गईं? नहीं यह स्वप्न है। हा क्या मेरी आराधना पूरी हुई। नहीं! यह सब जा या कोई माया का षड्यंत्र है। आशा के ऊँचे शि पर मुझे चढ़ाना चाहता है, फिर गिराने का यत्न करे दो पग मेरी ओर बढ़कर उन्होंने कहा—मैं ही हूँ।

तार का पता—"गोल्डमाइन" कलकत्ता टेलीफोन नं०—बड़ा बाजार १५१०, कलकत्ता

सोना, चाँदी और जवाहरात के ज़ेवरों का

अपूर्व संग्रह-स्थान

"इस प्रतिष्ठित फ़र्म के संचालकों से हमारा पूर्ण परिचय है। यहाँ किसी प्रकार का धोखा होगा, इस बात का स्वप्न में भी भय न करना चाहिए। सारा काम संचालकों की देखभाल में सुंदर और ईमानदारी से होता है: हमें इसका पूर्ण विश्वास है।"

—संपादक 'चाँद'

सोना, पुखराज और इमीटेसन मानिक की बहुत सस्ती नाक की कील हमारे यहाँ मिलेगी।

सोने चाँदी का हरएक क़िस्म का ज़ेवर हमारे यहाँ तैयार रहता है और आर्डर देने से बहुत शीघ्र इच्छानुसार बना दिया जाता है!

हीरे-पन्ने, मोती-मानिक की हरएक चीज़ हमारे यहाँ तैयार मिलेगी नमूना-सूची मँगा कर देखिए!

हरएक क़िस्म के चाँदी के बर्तन और चाँदी की फ़ैंसी चीज़ें हमारी नोवेल्टी है।

पता—मुरारजी-गोविंदजी जौहरी, १५६, हैरिसन रोड, कलकत्ता

नोट—कृपया अब सूचीपत्र न माँगें क्योंकि अब स्टॉक में नहीं रहा। २०

वैद्यक की अद्वितीय पुस्तकें

डॉक्टर, हकीम, वैद्यों और सर्वसाधारण को बराबर लाभदायक

अमृतधारा के आविष्कारक, तीन वैद्यक-पत्रों के संपादक कविविनोद, वैद्यभूषण

श्री पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य-रचित

ये पुस्तकें लोक-प्रिय हो रही हैं। जिस विषय को उठाया है कमाल किया है!

प्लेग-प्रतिबंधक

ताऊन रोकने के विषय में वैद्यों, हकीमों व डॉक्टरों ने आजतक जितना अनुसंधान किया है, सब इसमें अंकित है। मूल्य ॥=), उर्दू में ।≡)॥

मैलेरिया

मौसमी या जूड़ी-ज्वर के वर्णन में यह पुस्तक अद्भुत है। डॉक्टरी, वैद्यक और यूनानी पूरी व्याख्या देखने के योग्य है। मूल्य ॥=), उर्दू ।-)॥

शीतला का वर्णन

शीतला जब आरंभ होती है, उस समय लोगों को होश आता है। इस पुस्तक के भीतर शीतला का सविस्तर वर्णन है। इसके विषय में, जो सार्वजनिक विचार हैं, उनकी व्याख्या, शीतला के रोगी के लिये वे संपूर्ण सावधानियाँ जिनसे वह शीघ्र स्वस्थ हो और कोई अंग ख़राब न हो, शीतला के टीका से हानि, लाभ, सब बातों का पूरा-पूरा वर्णन है मूल्य १)

कोष्ठबद्धता

कोष्ठबद्धता रोगों की माता है और कोष्ठबद्धता ही आजकल बढ़ रही है। इस पुस्तक में आमाशय व अँतड़ियों की व्याख्या, कोष्ठबद्धता के कारण, उसके भेद और उसकी चिकित्सा आदि सब ऐसी विधि लिखी हैं कि सर्वसाधारण वैद्य और हकीम सब एक-सा लाभ उठा सकते हैं। मूल्य ॥।)॥ उर्दू ॥=)॥

हिस्ट्रिया

इस नाम से तो लोग परिचित हो गए हैं, पर रोग समझता कोई नहीं। वैद्य कोई नाम नहीं धरते, दूसरे यह नहीं जानते कि यह रोग क्या है? पुरुषों को भी होता है। यदि सब कुछ जानकर चिकित्सा करनी या करवानी है तो इसको मँगवावें। मूल्य।), उर्दू।)

इंफ़्ल्यूएंज़ा

युद्ध-ज्वर अब भी बराबर होता रहता है। सबको यह पुस्तक पढ़नी चाहिए। इसमें कारण, रूप और चिकित्सा भली प्रकार लिखी है। मूल्य।), उर्दू।=)

सोज़ाक का वर्णन

८६ पृष्ठों की वैद्यक, यूनानी और डॉक्टरी के सर्व अनुसंधान दिखानेवाली पूर्णांग पुस्तक है। इसमें दो सौ से अधिक सर्व प्रकार के योग भी दिए गए हैं। सोज़ाक-रोग और तत्संबंधी व्याधियों पर इससे उत्तम कोई पुस्तक नहीं मिल सकती। मूल्य ॥।), उर्दू ।)॥

शीघ्रपतन

समस्त दुनिया में ६६ प्रति सैकड़ा से भी अधिक इस रोग में ग्रस्त हैं। इस पुस्तक में उनकी पूर्ण व्याख्या की गई है और पश्चात् सविस्तर चिकित्सा और सब प्रकार के प्रयोग भी दिए गए हैं। मूल्य ।=)॥, उर्दू ।-)॥

अन्य पुस्तकों के नाम तथा मूल्य

क्या हम पुत्र या पुत्री अपनी इच्छानुसार उत्पन्नकर सकते हैं? ।)॥, घर का वैद्य ।)॥, क्या मैं स्वस्थ हूँ? ।)॥, हर्ड़ ।)॥, प्रसूतकाल ॥=), विषचिकित्सा प्रथम भाग ।≡), विषचिकित्सा द्वितीय भाग १।=), ऋतुचर्या १।), शिशुपालन १), ब्रह्मी -), मीठी निद्रा व स्वप्नरहस्य १।), स्वास्थ्यरक्षा के दस नियमों का वर्णन ॥।), भोजन और स्वास्थ्य १।), मेरे डॉक्टर चचा ने मुझे दांपत्य संबंधी शिक्षा कैसे दी? ।), काम व रतिशास्त्र ६), दोषज्ञान ॥।), वीर्य ॥=), भारतवासियोंकी शारीरिक निर्बलता के कारण और उनके उपाय॥।), डॉक्टर लुई कोहनी के चार स्नान =)॥, रस हृदयतंत्र ॥।) सब पुस्तकें उर्दू में भी मिल सकती हैं।

पत्र तथा तार का पता--"अमृतधारा" १२ लाहौर

विज्ञापक—मैनेजर, देशोपकारक-पुस्तकालय, अमृतधारा-भवन, अमृतधारा पोस्ट, लाहौर।

ड़ाओ मत, मैं एक प्रचंड शक्ति द्वारा वायु में उड़ती हुई यहाँ चली आई हूँ (एक फूलों का हार मेरे गले में डालते हुए)लो ! यह है प्रेमोपहार, तुम्हारी आराधना का फल, अब मैं जाती हूँ ।"

"नहीं अभी ठहरो, सुशीला अभी ठहरो ।"

"नहीं मैं ठहर नहीं सकती, प्रभात होने पर बड़ा अमङ्गल होगा, विदा दो।"—यह कहती हुई वह तो अन्तर्द्धान हो गई ।

मैं कहता रह गया—"सुशीला ! सुशीला ! आशालता को तोड़कर किधर जा रही हो ?" और भूमि पर गिर पड़ा ।

पाठकगण ! चलिए अब उस ओर का भी हाल देखें। "दीदी ! दीदी" किसी ने आवाज़ दी—"क्या आज सोती ही रहोगी ? पूजा पर जाकर तुम सो गई थीं या अचेत हो गई थीं । मैंने तुम्हें पलंग पर लिटा दिया था । बताओ तो अब क्या हाल है ?"

सुशीला—"तुम अब जाओ, मैं अच्छी हूँ—सिर में दर्द था ।"

दासी चली गई ।

(सुशीला की ज़बानी)

दासी के जाने के पश्चात् मैंने देखा कि मेरी पूजा के फूल वैसे-के-वैसे ही रक्खे हुए हैं । उस दिन मुझसे और पूजा न हो सकी । मुझे केवल रह-रहकर यही विचार आता था कि जो मनुष्य इतना प्रेम कर सकता है, वह देवता ही है और पूजने योग्य है। मैं अपना सर्वस्व भी उसको दे सकती हूँ । मैंने पहले उनकी प्रेम-परीक्षा कभी न की थी, उनका अतीत कष्ट, उनका आत्मस्नेह उनकी विचित्र दशा तथा उनकी चित्रशाला देखकर मेरा हृदय उमड़ आया । उनकी एक-मात्र स्मृति भी मेरी अतुलनीय सुख की सामग्री हो गई । अब मैं उनकी स्मृति को आठों पहर गाँठ में बाँधे रहूँगी, इससे उनके तप्त हृदय को शांति मिलेगी—मेरे तो वह जीवन-धन हैं ।

एक दिन वह मेरे नगर में आए, मेरे घर भी आए, मेरे पास आकर मेरे पैरों की ओर देखने लगे—आँसू के दो बूँद मेरे पैरों पर गिरे, तब मुझे उनके कष्ट का ज्ञान हुआ । वह मुझे प्रणाम करके चले गए । मैंने पुकारा भी, पर वह न लौटे, मुझे बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ । जितनी देर वह रुके, मुझे उनके असहनीय वियोग तथा अकथनीय प्रेम का अनुभव होता रहा । मेरे नगर से उनका कोई मित्र लौटा । उन्होंने उससे पूछा—"केशव कैसे हैं ? क्या हृदयेश परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया ? कमलकुमारी का क्या हाल है ? सुशीला तो अच्छी हैं ?" मित्रगण भी इन साधारण प्रश्नों का उत्तर दे दिया करते थे, जिससे उन्हें मेरा समाचार तो ज्ञात हो जाता था, किंतु मुझे उनका कुछ भी हाल मालूम न होता था । अब मुझे उनका बड़ा स्मरण रहता है । उस स्वप्न के बाद से तो मैं पगली-सी हो गई हूँ । एक दिन मैं अपनी सखियों के साथ गंगा-तट पर गई । स्नान करने के बाद हम सब फुलवारी देखने गईं । मैं कुएँ पर जाकर बैठ गई और चिंता-सागर में निमग्न हो गई । सूर्य अस्ताचलगामी हो रहे थे । मैं टकटकी बाँधकर लाल, पीले, हरे, गुलाबी बादलों को देखने लगी । जिस प्रकार डूबते सूर्य के प्रकाश में आकाश प्रतिक्षण रंग बदलता था, उसी प्रकार मेरा भी डूबता हुआ हृदय आशाओं, अभिलाषाओं तथा चिंताओं के बादलों पर क्षण-क्षण में नवीन-नवीन रंग चढ़ा रहा था । हृदय कैसी कठिन समस्या में फँसा था ! आँख बन्द करके फिर सोचने लगी । सोचते-सोचते चिल्ला पड़ी—"प्राणेश्वर ! प्राणवल्लभ ! प्राणनाथ ! जीवनधन ! जीवनाधार !" आँखें खुल गईं, फिर से विचार करने लगी तथा आकाश की ओर देखकर कहने लगी—"नहीं-नहीं, जीवन-सूर्य के अस्त होने के पश्चात् वह मेरे कोई भी हों, किंतु इस जीवन में वह मेरे कौन हैं।" जंगलों से, पर्वत-कंदराओं से, गंभीर गुफाओं से तथा कूपान्तरों से यही शब्द प्रतिध्वनित हुए—"वह मेरे कौन हैं ?" मैं उस विश्व-मंडल की ध्वनि को सुनकर कुएँ पर अचेत होकर गिर पड़ी । सखियाँ मुझे घर उठा ले गईं । वह कठिन समस्या हल हो जाने पर भी अन्तरंग हृदय से हल न हुई; क्योंकि हृदय अब भी कभी-कभी पूछ उठता है—"ऐ सुशीला, बता तो सही, वह तेरे कौन हैं ?" मैं कह देती हूँ, मैं स्वयं ही नहीं जानती । *

"प्रेमोन्मत्त"

× × ×

---

* इसके चरित्र सब काल्पनिक हैं ।—लेखक

७. विवाह

सुंदर सुरभित फूल, चंद्रमा भी है सुंदर।
है सुंदर आकाश, और नदियाँ भी सुंदर॥
सुंदर कोकिल-गान, और अलियों का गुंजन।
सुंदर वर्षा में मयूर का नचना वन-वन॥
सुंदर तारों का समूह झिरनों का कलकल।
सुंदर लतिका-कुंज, और सुंदर गंगाजल॥
सुंदर है आकर्ण ललित नारी के लोचन।
सुंदर रसमय बिंब-अधर प्यारे दुखमोचन॥
सुंदर अमृतभरी स्वर्ण की मोहक प्याली।
सुंदर है रवि-उदय-समय ऊषा की लाली॥
पर अति ही सुंदर विवाह का प्यारा बंधन।
उसके आगे सुंदर कोई नहीं एक कन॥
बिना बास का फूल, बिना यौवन की नारी।
बिना फूल की अथवा जैसे नीरस क्यारी॥
बिना प्राण के ज्यों शरीर, जल बिना सरोवर।
त्यों विवाह बिन यह मनुष्य-तन है दुख का घर॥
बिन घरनी है, सत्य, भवन भूतों का डेरा।
रहता उसमें क्रूर विपद का नित्य बसेरा॥
बिन घरनी के विफल पूर्ण यह मानुष-जीवन।
और लोक परलोक आदि के सारे साधन॥
प्रातकाल स्वच्छन्द विहग का कलरव प्यारा।
अथवा पपिहा की 'पी-पी' ध्वनि की मधुधारा॥
झिल्ली की झंकार, कूक कोयल की प्यारी।
प्रेमी के आह्वान-हेतु केवल तैयारी॥
नृप बेशक है सुखी राज्यवैभव को पाकर।
धन-जन से संपन्न मनुज सचमुच सुख का घर॥
है त्रिलोकपति इंद्र, सत्य ही संपति-शाली।
कोष सभी के पर विवाह सुख आगे खाली॥
बिन गौरी के कहाँ शंभु की होती पूजा?
पुजते कैसे विष्णु न होती उदधि-तनूजा॥
सीता के बिन, कहो! राम कैसे यश पाते?
द्रौपदि बिन क्यों पांडुपुत्र स्त्रीव्रत कहलाते?
नहीं चणिक है प्रेम, हमें है यह बतलाता।
लगा हुआ इसमें भारी भविष्य का नाता॥
बिन विवाह के मिलन, क्रिया पशु की है केवल।
अथवा ज्ञान-विहीन वासना का है मदजल॥
है विवाहगृह में सुख का सुंदर फ़व्वारा।
बहती जिससे सदा मधुरतम रस की धारा॥
कर देती जो सारे जग का ही-तल शीतल।
हर लेती तनताप और मन का सारा मल॥
भक्ति और कर्तव्य-ज्ञान उपजानेवाला।
आत्म-त्याग अरु सेवा-व्रत सिखलानेवाला॥
मधुर, पूत, अरु उच्च भाव का वितरण कर घन।
धनी बनाता तू, मनुष्य का सूना जीवन॥

बाबूलाल भार्गव "कीर्ति"

× × ×

८. वेश्यावृत्ति के मूल-कारण

आज से प्रायः दस वर्ष पूर्व वेश्यावृत्ति के विषय पर कुछ कहना या विचार करना अनुचित समझा जाता था, पर समय के परिवर्तन से अब केवल सामाजिक सुधारकों ने ही नहीं, किंतु विचारशील जनता ने भी इस विषय की उचित समीक्षा प्रारंभ कर दी है। समाज के दृष्टि-कोण में इस परिवर्तन का कारण यही है कि जनता ने वेश्यावृत्ति के द्वारा वर्तमान जनसमुदाय तथा भावी संतानों की भयंकर शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक क्षति का अनुभव करना प्रारंभ कर दिया है। इस समस्या का संबंध किसी व्यक्ति-विशेष अथवा अमुक जन-संप्रदाय से नहीं किंतु देश के प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख, चाहे वह किसी जाति का हो, कोई धर्मावलम्बी हो, धनी हो या दीन, यह प्रश्न एक ही विकराल रूप में उपस्थित है। किसी भी व्यक्ति को यह समझकर निश्चिंत नहीं रहना चाहिए कि वह स्वयं तथा उसकी संतान इस दुर्व्यसन से मुक्त हैं। इस दुर्व्यसन के परिणामस्वरूप जननेन्द्रिय-संबंधी भयानक छूतवाले रोग हो जाते हैं, और जो लोग स्वयं सदाचारी हैं उनको भी घूम-फिरकर इन बीमारियों के लगने या रोगग्रस्त पुरुषों के साथ अथवा उनके परिवार में विवाह आदि संबंध होने से इस नारकीय कार्य का थोड़ा बहुत प्रसाद मिलने का भय बना ही रहता है।

वेश्यावृत्ति के दो पहलू हैं, जिनका पृथक्-पृथक् विवेचन तथा निराकरण आवश्यक है। वेश्याओं की बाज़ार में दिनोंदिन बढ़ती हुई माँग तथा उनकी संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि यह दोनों साथ-साथ चलते हैं। परंतु अभी तक प्रायः इस प्रश्न के एक ही पहलू पर विचार किया गया है। बहुधा देखा गया है कि कुलीन घरानों की

स्त्रियाँ दुर्दशा के जाल में पड़कर वेश्यावृत्ति के लिये वाध्य हो जाती हैं। अनेकों सधवाएँ तथा विधवाएँ समाज के अत्याचारों से पीड़ित हो हिंदू-समाज को गालियाँ देती हुई इस भ्रष्ट पथ की ओर अग्रसर हो जाती हैं। छोटी-छोटी कन्याएँ, जिन्हें समुचित प्रकार से वस्त्र पहनना भी नहीं आता, विधवा हो जाती हैं! इन दुधमुही विधवाओं की जो दुर्दशा इस देश में तथा हिंदूजाति में होती है, वह शायद सभ्य संसार में रोगी कुत्तों की भी नहीं होती। पुरुष चाहे कितने ही कुमार्गगामी हों, वे सुधार के अधिकारी हैं। नीचातिनीच जघन्य कार्य करने पर भी वे समाज के सम्मुख ऊँचा सिर करके चल सकते हैं। बड़े-से-बड़े दुराचरण के लिये थोड़ा-सा प्रायश्चित तथा खेद उनकी शुद्धि के लिये पर्याप्त है। किसी कुमारी अथवा विधवा से व्यभिचार करनेवाले पुरुष को हिंदू-समाज क्षमा करके अपना लेता है। पर बेचारी बालिका, जिस पर वस्तुतः उस पाप का उत्तरदायित्व पुरुष से कम है, एकदम सर्वदा के लिये अस्पृश्य हो जाती है! कितनी विषम समस्या है, सामाजिक सुधार-संस्थाओं (Social reformatories) में स्त्रीजाति के लिये स्थान ही नहीं है। प्रायः देखा गया है कि एक बार भी ऊँचा-नीचा पैर पड़ जाने पर वे सर्वदा के लिये घृणित तथा दूषित समझी जाने लगती हैं। उन्हें घर-द्वार तथा जाति में रहना असंभव-सा हो जाता है और वे अनिच्छा होते हुए भी वेश्यावृत्ति की ओर एक प्रकार से ज़बर्दस्ती ढेल-सी दी जाती हैं। वे व्यभिचारिणी-कलंकिनी हो जाती हैं, उनके सजातीय तथा मातापिता तक उन्हें दूर भगाते हैं। उन्हें अपने को सुधारने का एक भी अवसर नहीं दिया जाता है। इसलिये वे नीचातिनीच पथ की ओर लुढ़कती ही चली जाती हैं, और अपनी भावी संतानों को सर्वदा के लिये उसी वृत्ति का दास बना देती हैं।

दूसरी ओर वेश्यागामी पुरुषों की प्रतिदिन वृद्धि के कारण भी वेश्याओं की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। वर्तमान समय में शहरों की बढ़ती हुई जन-संख्या के कारण, सुव्यवस्थित गृहों के अभाव से, वेश्यागामी पुरुषों की वृद्धि होती है। निर्धन परिवारों में बच्चों तथा मातापिताओं के एक ही कमरे में सोने की असभ्यतापूर्ण आवश्यकता के कारण बच्चे वैवाहिक बातों को छोटी आयु में ही जानने तथा उनका अनुभव करने लगते हैं। जो पुरुष गाँवों से शहरों में कार्य करने चले आते हैं, वे अत्यंत ग़रीबी के कारण या सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा के शनैः-शनैः उठ जाने से अपने परिवार को ग्रामों में ही छोड़कर अकेले शहर में आ जाते हैं। वे कहीं पर दो-तीन अपने ही-सरीखे एकाकी पुरुषों के साथ एक सस्ते कमरे में रहते हैं; खाना बना लेते हैं या कहीं बाज़ार, होटल में खा आते हैं तथा अपनी कामवासना की तृप्ति के लिये शनैः-शनैः वेश्यागामी बन जाते हैं। इस तरह लाखों आदमी शहर में व्यय अधिक होने से या अच्छा सस्ता घर न मिलने के कारण अपनी स्त्रियों को घरों में छोड़कर स्वयं बाहर नौकरी करने निकल जाते हैं। इनमें से अधिकांश अवश्यमेव वेश्यागामी हो जाते हैं।

शिक्षा-प्रणाली

साधारणतः नवयुवकों में सदाचार का आदर्श अत्यंत नीचा होता है। लार्ड कर्ज़न ने अपने एक वक्तव्य में कहा था कि "धार्मिक शिक्षा तथा सदाचार का प्रबंध सरकारी युनिवर्सिटियाँ न कर रही हैं, न कर सकती हैं"। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली केवल साहित्य तथा विज्ञान के पोथों को नवयुवकों के दिमाग़ में भर देने की मशीनरी है। दुर्भाग्यवश शिक्षा के सबसे आवश्यकीय अंग अर्थात् नवयुवकों को सदाचारी बनाने के विषय में वर्तमान प्रणाली केवल निरपेक्ष ही नहीं है, अपितु दूषित पुस्तकों को पढ़ने-पढ़ाने तथा कुसंगति में पड़ने से नवयुवकों को भ्रष्ट पथ की ओर अग्रसर होने में उत्साह तथा अवसर देती है। मा-बाप बच्चों को घर में उत्तम शिक्षा देने के बदले चार या पाँच वर्ष की आयु में ही किंडरगार्टन-स्कूल भेज देते हैं और समझते हैं कि अध्यापक सब ठीक कर लेंगे। दूसरी ओर पढ़ाने के कार्य की ओर प्रथम श्रेणी के उन्नतिशील पुरुष वेतन कम होने से नहीं आते, मध्यम तथा निकृष्ट श्रेणी के पुरुषों पर ही पढ़ाने तथा आगामी संतान को शिक्षित करने का भार रहता है। ऐसे लोगों से आचार-संबंध में बड़ी आशाएँ रखना भयंकर भूल है। अस्तु, ठीक प्रबंध तथा देखरेख न होने से बहुत-से लड़के-लड़कियाँ स्कूल के घंटों में ही बुराई में फँसी रहती हैं और उनके मातापिता को इसका तब तक लेशमात्र भी पता नहीं

चलता, जब तक कि बुराइयाँ बढ़कर असाध्य रोग का रूप धारण नहीं कर लेतीं। बहुत-से लड़के बुरी संगति में पड़कर छोटी आयु में ही चोरी से सिगरेट तथा मद्य का सेवन प्रारंभ कर देते हैं। पुरुषों तथा स्त्रियों में सिगरेट तथा मद्य पीने की आदतें बहुत ही बुरी होती हैं। शराब हमारे देश के बहुत-से नवयुवकों के स्वास्थ्य, सुख तथा उन्नति में बड़ी बाधक होती है और वेश्यावृत्ति का यह एक बड़ा भारी कारण है। इसके नशे में पुरुष अपने को भूल जाता है और कामवासना अत्यंत तीव्र हो जाती है। मद्य तथा सिगरेट शारीरिक तथा सामाजिक अधोगति के सरल मार्ग हैं।

सदाचार की दुहरी कसौटी

वर्तमान समय में पुरुषों के आचार तथा स्त्रियों के सतीत्व के दो भिन्न-भिन्न आदर्श समझे जाते हैं। पुरुषों के लिये यह मिथ्या भ्रम फैला हुआ है कि नितांत सदाचारी जीवन स्वस्थ युवक के लिये असंभव तथा हानिकारक है। इसलिये यदि पुरुष विवाहित होने पर भी अपनी कामवासना की तृप्ति इधर-उधर करते रहें, तो भी कोई हानि नहीं। इसी अंधविश्वास के कारण बहुत-से युवकों का जीवन उनके मूर्ख मातापिता अपने देखते-ही-देखते सर्वदा के लिये दुःखमय बना डालते हैं। बहुत-से पुरुषों के जीवन का ध्येय केवल कामवासना की तृप्ति करना ही होता है और प्रायः उनकी स्त्रियाँ इसलिये दुःखित रहती हैं कि यदि किसी कारणवश वे उनकी कामजन्य उत्तेजना को पूर्णतः शान्त करने में असमर्थ हैं, तो वे नितांत निरर्थक तथा भाररूप समझी जाती हैं। बहुत-से पुरुष इस विषय में इतने गिरे होते हैं कि उन्हें पाशविक नहीं पैशाचिक वृत्ति का कहना चाहिए; क्योंकि पशु भी देश-काल के अनुसार कभी अति नहीं करते, पर कामलोलुप पुरुषों को अपनी घृणित वासनाओं की तृप्ति के लिये नीचातिनीच पथ का अनुसरण करने में भी ज़रा सा संकोच नहीं होता। समाज के हित तथा भावी संतान के सुधार की दृष्टि से पुरुषों के लिये इंद्रियदमन की उतनी ही आवश्यकता है जितनी स्त्रियों के लिये। पूर्ण इंद्रियदमन किसी प्रकार भी हानिकारक नहीं हो सकता तथा कामवासना कितनी ही प्रबल हो, अन्य वासनाओं की तरह इसे भी रोका जा सकता है। इसके लिये अच्छी बातों का अभ्यास, मन के ऊपर अधिकार तथा पुरुषोचित व्यायामादि अत्यंत लाभप्रद है। स्त्रियों की प्रकृति को कम-ज़ोर बतलाया जाता है, तो भी उनसे इंद्रियदमन के संबंध में पुरुषों से अत्यधिक आशा की जाती है और पुरुष चाहे कितना ही भ्रष्ट क्यों न हो, विवाह करने पर यही चाहता है कि उसकी स्त्री पवित्र तथा मूर्तिमती सती हो। क्या सामाजिक न्याय यही है? क्या स्त्रियों को अपनी तथा अपनी संतानों की भलाई के लिये अपने पतियों से शुद्ध पवित्राचरण की आशा रखने का अधिकार नहीं है? क्या ऐसी स्थिति में उत्तम संतान की स्वप्न में भी आशा की जा सकती है? क्या एक सती-साध्वी कुमारी को जन्मपर्यन्त के लिये एक नीच आचा-चरणवाले पुरुष के हाथों में सौंप देना ख़ूनी अन्याय तथा नीचतम पाप नहीं है? हिंदूजाति की वर्तमान वास्तविक परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए इन प्रश्नों पर विचार करने से हृदय काँप उठता तथा मस्तिष्क चक्कर खाने लगता है। हिंदू-ललनाओं की जीवन-कथाओं को हृदय थामकर पढ़ डालिए। एक-एक पंक्ति उनके उष्ण अश्रुप्रवाह से लिखी गई है, एक-एक शब्द उनके करुण आर्तनाद से भरा हुआ प्रतीत होता है। हज़ारों देवियाँ अपने भाग्य को इस देश में जन्म लेने के कारण कोसती हुई तथा समाज को लाखों गालियाँ देती हुई अपनी जीवनलीला समाप्त कर देती हैं!

प्रायः यह समझा जाता है कि स्त्रियों के लिये पवित्राचरण का मार्ग अधिक सरल है। अपने बचाव के लिये कुछ भी कहा जाय, पर यह मिथ्या भ्रम है। स्त्रियों में भी वे ही वासनाएँ हैं और उन्हें भी अपने को दमन करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बहुधा वे एक बार भी कुमार्ग में पैर पड़ने पर उसके भयंकर परिणामों को ही विचार कर सीधे मार्ग में तत्पर रहती हैं। आचारभ्रष्ट पुरुषों के साथ-साथ आचारभ्रष्ट स्त्रियों की संख्या में वृद्धि होना स्वाभाविक ही है। कितनी भयानक समस्या है कि जहाँ एक ओर स्त्रियाँ, असंख्य प्रलोभन तथा अनेकों कष्ट-यातनाओं के पड़ने पर ही यदि एक बार भी कुमार्ग में पैर रख दें, तो उन्हें लज्जा, अपमान तथा घृणा के गड्ढे में सर्वदा के लिये ढकेल दिया जाता है, वहाँ दूसरी ओर पुरुष, जिन पर पाप का वास्तविक उत्तरदायित्व होता है, बिना माँगे ही क्षमा

प्राप्त कर समाज में पूर्ववत् विचरण करते रहते हैं। सबसे अधिक शोक की बात तो यह है कि ऐसे नीच पुरुषों के साथ भी कन्याओं के माता-पिता अपनी लड़कियों के विवाह करने को उद्यत हो जाते हैं।

स्त्रियों तथा पुरुषों के आचार की यह दुहरी कसौटी ईश्वरीय नियम के विरुद्ध है, भावी संतान के स्वास्थ्य तथा भलाई के लिये विष-तुल्य है, शनैः-शनैः इसके द्वारा स्त्रियों का आचार तथा सतीत्व भ्रष्ट हो जाते हैं, पारिवारिक जीवन क्लेशमय हो जाता है तथा देश की शक्ति क्षीण हो जाती है। इससे भी अधिक घृणा तथा लज्जा का विषय तो यह है कि कुछ लोग अच्छी स्त्रियों की मान-मर्यादा के रक्षार्थ वेश्याओं का होना आवश्यक समझते हैं; उनका विचार यह है कि यदि पुरुषों के लिये वेश्याएँ नहीं होंगी, तो वे अच्छी पारिवारिक स्त्रियों को ही चरित्रभ्रष्ट करने का यत्न करेंगे। इसका स्पष्ट शब्दों में यही तात्पर्य है कि नीच पुरुषों को दंड देकर समाज से बहिष्कृत करने की अपेक्षा समाज उनकी वासना की तृप्ति के लिये वेश्याओं की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि करता रहे। क्या यह किसी भी सभ्य समुदाय को सह्य हो सकता है?

सार्वजनिक स्थानों पर दुश्चरित्रा स्त्रियों का निवास

बहुधा वेश्याओं तथा अन्य भ्रष्ट चरित्रवाली स्त्रियों के घर सार्वजनिक सड़कों पर हुआ करते हैं। किसी शहर में चले जाइए, बस्ती के अच्छे-से-अच्छे भाग में वेश्याओं का अधिवास मिलता है। ये वेश्याएँ वहाँ से निकलते हुए युवकों की ओर कुत्सित संकेत करती हैं तथा इनके दलाल बराबर नीचे घूमा करते हैं। युवकों को इस प्रकार प्रतिदिन बाज़ार से निकलने पर शनैः-शनैः वेश्यागामी बनने का प्रलोभन होने लगता है तथा बच्चों के नवकुसुमित हृदयों में शनैः-शनैः इन वेश्याओं तथा उनसे सम्बंधित अन्य बातों के जानने की कौतूहलपूर्ण उत्कंठा उत्पन्न होने लगती है और वे समझते हैं कि वेश्यावृत्ति सामाजिक संगठन का एक अनिवार्य अंग है। यह नितांत आवश्यक है कि प्रत्येक शहर में वेश्याओं को सार्वजनिक सड़कों से पृथक् दूर हटकर स्थान दिया जाय। यदि उन्हें शहर की बस्ती से बिलकुल अलग रक्खा जाय, तो बहुत ही श्रेयस्कर होगा। ऐसा करने से भावी संतान के भ्रष्ट होने की आशंका बहुत कम हो जायगी तथा जो वेश्यागामी हैं, उनकी प्रवृत्ति में भी अवश्य थोड़ा-बहुत परिवर्तन होगा; क्योंकि यदि पुरुष को बुरे कार्य के लिये अवसर तथा सुविधाएँ न दी जायँ, तो शनैः-शनैः उसमें सुधार स्वभावतः ही होगा। इलाहाबाद तथा लखनऊ की म्युनिसिपैलिटियों ने इस ओर कुछ-कुछ ध्यान दिया है, पर वास्तविक सुधार वेश्याओं को एक सड़क से उठाकर दूसरी सड़क पर बसा देने से ही नहीं हो सकता। आवश्यकता इस बात की है कि वेश्याएँ किसी ऐसे स्थान पर रक्खी जायँ, जहाँ बच्चों तथा नवयुवकों से उनका सम्पर्क न हो सके। इस प्रकार शहर के एक भाग से दूसरे भाग में आने-जानेवाले पुरुषों को वेश्याओं के देखने तथा उनके इशारों से होनेवाले प्रलोभन एकदम बन्द हो जायँगे।

सामाजिक कुप्रथाओं का प्रभाव

हिन्दूसमाज में फैली हुई अनेकों कुप्रथाओं का वेश्यावृत्ति की वृद्धि में बहुत बड़ा भाग है। हिंदू-स्त्रियाँ जो सहस्रों की संख्या में प्रतिवर्ष इस वृत्ति की ओर अग्रसर होती जा रही हैं, इसका तीन-चौथाई उत्तरदायित्व बालविवाह, वृद्धविवाह होना, विधवाविवाह का न होना तथा स्त्रियों के प्रति नीचतम व्यवहार आदि अनेकों सामाजिक कुप्रथाओं के ऊपर है। किसी-किसी जाति में कुछ घराने ऐसे हैं, जिनमें वेश्यावृत्ति परम्परागत चली आती है, और बहुत-सी कुमारियों को इच्छा होने पर भी विवाह नहीं करने दिया जाता और वेश्यावृत्ति से अत्यन्त घृणा तथा अनिच्छा होने पर भी उन्हें इसी का अनुसरण करना पड़ता है। यह प्रथा मदरास तथा यू० पी० प्रान्तों की कुछ पहाड़ी जातियों में अत्यन्त प्रचलित है। इन बातों का विचार आते ही हृदय में यह धारणा होती है कि भारत को सुखस्वप्न देखने से पूर्व सैकड़ों असाध्य और कष्टसाध्य बीमारियों की दवा करना बाक़ी है।

दूसरी भयंकर बीमारी, जो हिंदूसमाज को भीतर-ही-भीतर खोखला किए डालती है, बाल तथा युवती-विधवाओं की समस्या है। भारतवर्ष में लाखों विधवाएँ हैं, जो हिंदू-प्रथा के अनुसार पति के मरने पर अपना दूसरा विवाह नहीं कर सकतीं। यह हिंदूत्व की मारी विधवाएँ सैकड़ों यातनाओं को सहती हुई अत्यन्त कष्टमय जीवन व्यतीत करती हैं और असंख्य गर्भपात

तथा तड़पते हुए नन्हे दुधमुँहे बच्चों को जीता हुआ फेंकने या मारकर चोरी से गाड़ देने की हज़ारों हृदय-विदारक विषादपूर्ण घटनाएँ भी इसी कुप्रथा के कारण सर्वदा कहीं-न-कहीं हुआ ही करती हैं। किसी-किसी जाति में विधवाओं की विशेषकर संतानहीन विधवाओं की बड़ी दुर्दशा होती है। वे परिवार में एक व्यर्थ का भार समझी जाती हैं, और यदि किसी शुभ कार्य के समय वे दिखाई पड़ जायँ या कहीं बाहर कार्यवश जाते समय वे सामने आ जायँ, तो बड़ा भारी अशकुन समझा जाता है। बहुधा अभागिनी युवती विधवाएँ इस प्रकार हिंदूघरों में रहने की अपेक्षा मरना अच्छा समझकर आत्मघात कर डालती हैं। पुरुष आधा दर्जन औरतों के मरने के बाद भी आँखों में काजल लगा पीले वस्त्र पहनकर साढ़े बारह वर्ष की कुमारी को घर में लाकर बिठला सकता है; पर विधवाओं को चाहे उन्होंने पति के दर्शन भी न किए हों, यह अधिकार प्राप्त नहीं। साथ ही बालविवाह तथा वृद्धविवाह की कुत्सित प्रथाएँ विधवाओं की संख्या को दिनोंदिन बढ़ाकर शनैः-शनैः बीमारी को असाध्य बना रही हैं।

प्रायः स्त्रीविहीन पुरुष दूसरा, तीसरा, चौथा विवाह तक छोटी-छोटी कन्याओं से करते हैं और जब तक उनकी स्त्री अल्पवयस्का रहती है, तब तक वे कामवासना की तृप्ति के लिये वेश्यागामी होकर फिर सदैव के लिये इसमें फँस जाते हैं। यदि समाज में व्यवस्थापक सभाओं द्वारा या सामाजिक आन्दोलन से कोई ऐसा नियम या प्रथा प्रचलित हो जाय, जिसके अनुसार दूसरा विवाह करनेवाले पुरुष केवल विधवाओं से ही विवाह कर सकें, तो इससे पुरुष तथा स्त्रियाँ दोनों ही समान लाभ उठाते हुए हिंदुओं की गिरी हुई दशा को बहुत कुछ सुधार सकते हैं। इस प्रथा से विधवाओं तथा वेश्यागामी पुरुषों की संख्या बहुत कम हो जायगी। वर्तमान हिंदू-समाज में धनवान् पुरुष यदि चाहे, तो मरणासन्न होने पर भी ९ वर्ष की छोकरी को, जिसकी आयु उनकी पोती से भी कम हो, घर में पत्नी बनाकर बिठा सकते हैं। ऐसी कन्याएँ अपनी कामोत्तेजना शान्त करने के लिये अवश्यमेव भ्रष्टाचरण हो जाती हैं और बुढ़ऊ के मरने पर यदि वे भागकर कहीं खुल्लमखुल्ला वेश्यावृत्ति न भी करने लगीं, तो गर्भपात इत्यादि भयंकर विषादपूर्ण घटनाएँ अवश्यम्भावी हो जाती हैं। सठियाए पुरुष का एक १२ या १४ वर्ष की बालिका से विवाह होना सुनकर ही शिक्षित देशों के पुरुष आश्चर्य तथा अविश्वास से दाँतों तले उँगली दबाकर रह जाते हैं, पर इस देश में इन घटनाओं का सुनना तथा देखना एक साधारण-सी बात है। ऐसी ही प्रथाओं के कारण शिक्षित भारतीय पुरुषों को अवसर पड़ने पर विदेशियों के सम्मुख अपना सिर झुकाना पड़ता है।

कुप्रथाओं का निवारण

इसमें संदेह नहीं कि अब शनैः-शनैः ये दूषित प्रथाएँ हमारे देश से उठ रही हैं। आर्यसमाज-सदृश समाज-सुधारक संस्थाओं ने भारत के सामाजिक जगत् में उथल-पुथल मचा दी है। परन्तु ये समस्याएँ इतनी विषम हैं, तथा इनका सिक्का भारत के ग्राम-ग्राम के अशिक्षित समुदाय में इस दृढ़ता के साथ जमा हुआ है और इन प्रश्नों का भारत के राजनैतिक तथा आर्थिक प्रश्नों से इतना जटिल सम्बन्ध है कि प्रत्येक शिक्षित भारतीय युवक का यह परम पुनीत कर्तव्य होना चाहिए कि वह अपने जीवन के न्यूनातिन्यून भाग को इन दूषित प्रथाओं के दूर करने में व्यतीत करे। भारत के नेताओं तथा राजनीतिज्ञों का यह मुख्य कर्तव्य होना चाहिए कि वे व्यवस्थापक सभाओं द्वारा देश को इन विषम रोगों से मुक्त करने का प्रयत्न करें। युनीवर्सिटी से निकलनेवाले हज़ारों विद्यार्थी एक या दो वर्ष तक नौकरी की तलाश में घूमते फिरते हैं। यदि वे नवयुवक, जिन्होंने १४ या १६ वर्ष तक देश के धन से अपने को शिक्षित किया है, फौरन् अपने स्वार्थसाधन तथा पेट पालने के प्रबन्ध में न लगकर केवल ६ मास तक ही ग्राम-प्रचार का कार्य किया करें, तो भारत का अशिक्षित टिड्डीदल अनति विलंब शिक्षित हो जाय और देश में नवयुग का प्रारम्भ हो जाय। सबसे अच्छा तो यह हो कि सरकारी युनीवर्सिटियों से बी० ए० तथा एम्० ए० की परीक्षा पास करनेवाले विद्यार्थियों को कनवोकेशन के अवसर पर उस समय तक उपाधि न दी जाय, जब तक कि वे इस बात का प्रमाणपत्र प्रस्तुत न करें कि उन्होंने परीक्षा पास करने के बाद कम-से-कम ६ मास तक अर्थात् कनवोकेशन के अवसरपर्यन्त प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं द्वारा नियुक्त की हुई किसी सामाजिक संस्था के निरीक्षण में समाज-

सेवा का कार्य किया है। गवर्नमेंट लाखों रुपए प्रजा से करस्वरूप लेकर प्रतिवर्ष युनीवर्सिटियों तथा कालेजों के सहायतार्थ दे देती है। इसके बदले में प्रजा को तथा गवर्नमेंट को न्यायानुकूल पूर्ण अधिकार है कि युनीवर्सिटियों से निकलनेवाले विद्यार्थियों को बाध्य करें कि वे अपने इस प्रकार प्राप्त किए हुए ज्ञान का कुछ भाग अपने दुःखी भाइयों में वितरण कर दें। भारतवर्ष में आज स्वराज्य की पुकार मची हुई है, परन्तु जब तक देश में इन कुप्रथाओं की तूती बोलती रहेगी, जब तक पुरुष स्त्रियों का आदर करना तथा उन्हें मातृपिक दृष्टि से देखना नहीं सीखेंगे, जब तक देश के किसी कोने में भी बालविधवाएँ समाज के अत्याचारों से पीड़ित होकर मानमर्यादा का मोह परित्याग करके वेश्यावृत्ति की ओर अग्रसर होती रहेंगी या अश्रुजल से रातदिन आँचल भिगोती हुई जीवन को शून्य अन्धकारमय समझ, अपने खिले हुए यौवन को मसलकर आत्मघात करती रहेंगी, तब तक विदेशियों को हम पर गहरे लाञ्छन लगाकर हमें स्वराज्य के अयोग्य बताने का अवसर बना ही रहेगा। पश्चिमी देशों के जलवायु में मिस मेयो-जैसी अविचारपूर्ण अनर्गल प्रलापिनी भयंकर भूतनियाँ बहुतायत से पैदा होती हैं। इनके अनर्गल प्रलाप तथा मिथ्यापवादों का सबसे ज़बर्दस्त उत्तर यही है कि हम शीघ्र-से-शीघ्र अपनी सामाजिक दशा को पूर्णतः सुधार कर इँगलैंड और अमेरिका को यह बतला दें कि इन नीचतापूर्ण हथकंडों से हमारा घर ज़रा भी नहीं बिगड़ सकता।

श्रीशचन्द्र शुक्ल

५००) इनाम

महात्मा प्रदत्त विष नाशक जड़ी—इसे सिर्फ़ दिखाने से भयानक से भयानक बिच्छू, बिरनी (हड्डा) मधुमक्खी का विष तुरंत आराम हो जाता है। लाखों को आराम कीजिये। सैकड़ों वर्ष पड़ा रहे, गुण में ज़रा कमी नहीं आती, मूल्य १)

श्रीयुत रामाज्ञा द्विवेदी "समीर" एम्० ए० २।१०।२७ के लीडर में लिखते हैं—इसे मैंने बहुत गुणकारी पाया। एक जड़ी सैकड़ों आदमी को आराम कर सकती है।

११६ पता—**अखिलकिशोरराम** नं० ३०, पो० कतरीसराय (गया)

कन्याओं को वज़रिये डाक सिखलाते हैं

दी इण्डियन टेलरिङ्ग कालेज

होशियारपुर (पंजाब)

११० लिबास सीखकर अपनी सूटिंग शाप खोल लें। याद रक्खो धनी पुरुष धनी नहीं, हुनरमंद ही धनी है। २मास कटाई, २मास सिलाई, नियम आजही मँगवाओ।

अद्वितीय पुस्तकें हिंदी-उर्दू

५ कोट १७२ प्रश्न, कपड़ा लगाने पर ४८ चित्र १) १२ कमीज़, २५८ प्रश्न ५६चित्र ॥।) अद्वितीय छत्री॥।) ८ पाजामें ॥)। फ्राक पिन्नीकोर ॥) दौलत दर्ज़ियाँ ५)

एक नई ख़बर

एक नई पुस्तक "हारमोनियम तबला ऐंड बाँसुरी मास्टर" प्रकाशित हुई है। इसमें लगभग ५० नई-नई तर्ज़ों के गायनों को सरगम नंबरों द्वारा लिखकर फिर राग-रागिनी का वर्णन ख़ूब ही किया है। स्कूलों में आजकल संगीत का प्रचार हो रहा है, इसलिये विद्यार्थी भी इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं। अगर इसके ज़रिए बिना उस्ताद के हारमोनियम, तबला व बाँसुरी बजाना न आवे, तो मूल्य वापिस देने की गारंटी है। मूल्य केवल १), डाकख़र्च ।-)

पता—**गर्ग एंड शर्मा कंपनी, हाथरस**

साहित्य और विज्ञान

१. दृश्यकाव्य की उत्पत्ति का प्राचीन इतिहास *

वैदिक संहिता के संवाद-सूत्र

हिंदुओं के निकट वेद अनादि अपौरुषेय तथा महेश्वर के निःश्वास-स्वरूप कहकर विवेचित होते हैं। इसको अस्वीकृत करने पर भी वैदिक साहित्य को भारत का—आज भारत का ही क्यों संपूर्ण जगत् का—प्राचीनतम साहित्य कहा जाता है। दो-एक को छोड़कर अधिकांश प्राच्य-विद्या-विद् वैदेशिक पंडित भी इस मत का परिपोषण करते हैं। वैदिक साहित्य में भी ऋग्वेद-संहिता ही प्राचीनतम है। यही भाषा-तत्व-विद् जनों का मत है।

ऋग्वेद-साहित्य में इस प्रकार के कई सूत्र हैं, जिनमें दो व्यक्तियों के कथनोपकथन का आभास पाया जाता है। इनमें किसी प्रकार का विनियोग नहीं है। साधारणत: ये संवाद-सूत्र के नाम से अभिहित हैं। इनमें यम और यमी (१०।११), पुरुरवा और उर्वसी (१०।९५), नेम भार्गव और इंद्र (८।१००), अगस्त, लोपमुद्रा और उनके पुत्र (१।१७९), इंद्र, अदिति और वामदेव (४।१८), इंद्र, इंद्राणी और वृषाकर्म (१०।८६), सरमा और पणिगण (१०।१०८), अग्नि और देवगण (१०।५१-५३), विश्वामित्र और नदीगण (३।३३), बशिष्ठ और उनके पुत्र (७।३३), इंद्र और मरुद्गण (१।१६५ और १७०) प्रभृति ही विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त भी कई एक "एक जनोक्ति" (Monologue) के भी उदाहरण पाए जाते हैं। परस्पर वार्तालाप में कभी-कभी दो से तीन अथवा अधिक व्यक्तियों के कथनोपकथन भी मिलते हैं। परंतु इनको परस्पर वार्तालाप (Diologue) कहना उचित न होगा। ऐसे सूत्रों में अधिकांश अत्यंत अस्पष्ट और दुर्बोध हैं।

सन् १८६९ में अध्यापक मैक्समूलर ने अपना पहला मत प्रकट किया कि १।१६५ सूत्र के विनियोग लुप्त होने का इसके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है कि प्राचीन काल में यज्ञ करने के समय मरुद्गण के उद्देश्य से परस्पर वार्तालाप (Diologue) की आवृत्ति करनी पड़ी। यह भी संभव है कि ऋत्विक लोग दो भागों में विभक्त हो गए हों और एक भाग ने इंद्र के आचार्य और कथन तथा दूसरे ने मरुद्गण के आचार्य और कथन की आवृत्ति की

---

* अनूदित।

हो। कालक्रम से अब यह रीति क्रमशः अप्रचलित हो गई, तब भी इन सूत्रों का विनियोग ठीक नहीं हुआ। सन् १८६० ई० में अध्यापक लेवी (Levi) महाशय इसी बात की प्रतिध्वनि करके कहते हैं कि सामवेद दर्शन से इस बात का पता चलता है कि वैदिक युग में संगीत को कितनी परिपूर्णता मिली। ऋग्वेद में (१।६२) विचित्र-वसनोज्ज्वला, नृत्यकुशला, प्रेमिक-हृदय-हारिणी बालाओं का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद में भी (१२।१।४१) नृत्य, गीत और उत्सववाद्यों का उल्लेख पाया जाता है। अतएव वैदिक युग में धर्म के आवरण में आवृत्त नाटकीय प्रथा किसी-न-किसी रूप में थी, इसमें संदेह नहीं। पुरोहित लोग इस कार्य के अभिनेता थे। यज्ञ के समय देवताओं का भाग इनको मिलता था।

अध्यापक श्रोयेडर (Schroeder) इसी पर रंग चढ़ाकर कहते हैं कि यह रहस्यमय वैदिक कथोपकथन प्राचीनतम 'इंडो-योरपियन' युग से बीजाकाररूप में संग्रहीत होकर चला आता है। जातितत्व-विज्ञान (Ethnology) की सहायता से यह भी जाना जाता है कि विभिन्न जातियों में भी नृत्य, गीत और अभिनय में एक ख़ासा ऐक्य पाया जाता है।* ग्रीस और मेक्सिको में "लैंगिक नृत्य"(Phallic dances) नाट्योत्पत्ति का मूल कहकर प्रसिद्ध हैं। ऋग्वेद में धरण-नृत्य अथवा लिंग-पूजा का कोई विशेष प्रबंध न पाने पर भी ये संवादसूत्र अथवा कथोपकथन रीतिमतरूपक का कार्य करते हैं (With actual dramatis personoe and stage direction) अतएव उनके मत से याज्ञिक दृश्यकाव्य, इंडो-योरपियन नाट्य-बीज का मूल-अंकुर न होने पर भी एक बार उस संपर्क से रहित भी नहीं है। इन्हीं कारणों से प्राचीन भारतीय नाट्य में गंधर्व और अप्सराओं का जो उल्लेख मिलता है, उससे भारतीय नाट्य-साहित्य में लैंगिक (Phallic) देवता का प्रभाव अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

डाक्टर हरटेल (Hertel) ने उक्त सूत्रों को संपूर्ण स्वतंत्र भाव से "Mystery plays in nuce" कहकर समर्थन किया है। उनका यह भी मत है कि ये ही सूत्र नाट्यकला का आदि हैं और इनके स्वरूप के साथ गीतगोविंद की अच्छी तुलना की जा सकती है। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि उनका यह विश्वास है कि "सुपर्णाध्याय" एक सुविस्तृत दृश्य-काव्य है।

इन सभी विभिन्न सिद्धांतों की पर्यालोचना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि संवाद-सूत्र ही भारतीय नाट्य-साहित्य के आदि-स्वरूप हैं। इंद्र की उन्मत्तता वर्णन के साथ कोरा (Cora) जाति के मद्योत्सव का एक रूप दिखाकर जाति-तत्व-वैज्ञानिक सादृश्य दिखाया जाना तथा सुपर्णाध्याय में एक रूपक के अस्तित्व का आविष्कार किया जाना एक सुविवेचना का कार्य नहीं है। अध्यापक कीथ (Keeth) महोदय ने इस संबंध में जो कुछ कहा है, सर्वदा स्मरणीय है। इसके अतिरिक्त १।१६९, १७०, १७१ इन तीन सूत्रों में इंद्र के साथ वृत्त का युद्ध-वर्णन है। वृत्त-वध और मरुद्गण का जो वर्णन पाया जाता है, उसमें अस्त्र-नृत्य का भी आभास मिलता है। अस्त्रधारी युवक मरुद्गण का भाग ग्रहण करते थे। Roman salu. Greek couretes, Phrygian korybantes और जर्मन खड्ग-नृत्यकारों का नृत्य, यह सभी अस्त्र-नृत्य से ही उद्भूत हुआ है। प्रथम सिद्धांतों को मान लेने पर इस अस्त्र-नृत्य को भी नाटक का बीज-स्वरूप मानना पड़ेगा।

अध्यापक Windisch Oldenberg और Pischel की धारणा कुछ और ही है। ये सूत्र उनके मत से प्राचीन तो अवश्य हैं, लेकिन इनमें इंडो-योरपियन गंध वर्तमान है। सूत्र मुख्यतः काव्य हैं। इनका ऋक्समूह पूर्वकाल में नाटकीय पद्य-वाक्यांश द्वारा परस्पर संयोजित था। गद्यांश के संबंध में विशेष बंधन न था, जो कालवश आदरहीन हो जाने से लुप्त हो गया और असंबद्ध पद्यांश अवशेष रह गया। Pischel साहब के मत से वे वैज्ञानिक दृश्य और श्रव्य दोनों काव्यों के उत्पत्ति-स्थल हैं। Oldenberg भी इस मत के प्रधान परिपोषक हैं। विशेषतः उनका गद्योत्पत्ति का सिद्धांत इसी

---

* "……the curious phenomenon that vedic religion knows of gods as dancers can not be explained satisfactorily save on the assumption that the priests were used to see performed ritual dances in themselves imitations of the cosmic dance in which the world was on one view created"—Sanskrit drama, page 17.

पर स्थापित है । ऐतरेय ब्राह्मण का 'शुन:शेपोपाख्यानं' और शतपथ-ब्राह्मण का 'पुरुरवा और उर्वशी' के उपाख्यान की सहायता से वे प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं कि संवाद-सूत्रों ने मध्यस्त बीजभूत गल्पांश में किस प्रकार गद्य व पद्य-काव्य के आकार में विस्तृति प्राप्त की है ।

Geldner साहब किसी समय Oldenberg साहब के एक प्रधान भक्त थे । लेकिन उन्होंने भी क्रमशः पुरातन मत परित्याग करके सूत्रों को चारण-गीत (Ballad) कहकर अपना सिद्धांत प्रकट किया है ।

वैदिक यज्ञादि अनुष्ठान में नाटकीय घटना का आभास

पूर्वोक्त आलोचना द्वारा यह स्पष्ट रूप से प्रतिपन्न हो जाता है कि वैदिक संवाद-सूत्रों में दृश्यकाव्य-रचना का यथेष्ट उपादान वर्तमान है ।

सोमयज्ञ में इसी प्रकार एक अपूर्व घटना का उल्लेख पाया जाता है । सोम-विक्रेता अंत में सोम-मूल्य पाने से बिलकुल वंचित और ईंट-पत्थरों के प्रहार से जर्जरित हो जाता था । इससे सोम-व्यवसाय के विरुद्ध आपत्ति की सूचना का आभास पाया जाता है । जो कुछ भी हो, सोम-रक्षक गंधर्वगण के पास से सोम प्राप्त करने में अभिनय न होने पर भी बहुरूपाभास अच्छी तरह पाया जाता है । बहुत-से सज्जन प्रहृत और वंचित क्षुद्र सोम-विक्रेताओं के साथ मध्ययुग के रहस्याभिनय में शैतान का सादृश्य दिखाते हैं । जो इस प्रकार नए-नए मतों के आविष्कर्ता हैं, वे इस चरित्रानुकरण के साथ, प्रकृत रूपकाभिनय से क्या पार्थक्य है, इसे सहज ही भूल जाते हैं । जब अभिनेतृवृंद स्वयम् और साथ-साथ दूसरों को आनंद देने के निमित्त इस प्रकार अभिनय करते हैं, तभी उसको 'प्रकृत अभिनय' कहा जा सकता है । और जब इस प्रकार चरित्रानुकरण का उद्देश्य विमल आनंद अथवा केवल अभिनय न होकर किसी रूप में सूक्ष्म देवफलादि हो, तो उसको 'याज्ञिक अनुकरण' कहा जा सकता है ।

वैदिक 'महाव्रत' के यज्ञानुष्ठान में हम दृश्य-काव्य का यथेष्ट उपादान पाते हैं । श्वेतवर्ण, गोलाकृति चर्मखंड लेकर वैश्य और शूद्र का विवाद और अंत में वैश्य की विजय—यही 'महाव्रत' की मूल-घटना होती है । ब्राह्मण-ग्रंथों में इसी प्रकार की और भी अभिनयानुकूल अवस्थाओं (Dramatic Situation) आभास पाया जाता है । महाव्रत की यह घटना रू मात्र होती है । आर्यवंशसंभूत अतएव गौरवर्ण वै सहित अनार्य अतएव कृष्णवर्ण शूद्र का विवाद आलोक के साथ अंधकार का—ग्रीष्म के साथ शि का संघर्ष, क्या एक ही नहीं है ? केवल यही न इसके आनुषंगिक भाव में एक ब्रह्मचारी और पुं गणिका के परस्पर अकथ्य कथन (गालीगलौज) वर्णन है । प्राचीन काल में इन दोनों का सम्मिलन दिखाया जाता था, परंतु बाद को अश्लील कहकर त्यक्त हो गया । इसके अनुरूप घटना का उल्लेख अश मेध में पाया जाता है । प्रधान राजमहिषी पुत्रलाभ आशा से छिन्नशिर अश्व के साथ मिलने को होती है । यह सब "उर्वरता साधक अनुष्ठान' रूपक-मात्र है । इसको दृश्यकाव्य का उपादान कहा सकता है । किंतु पूरी मात्रा में दृश्य कहना उचि होगा । इसका और भी कारण है । यजुर्वेद में भिन्न-भि पेशों और पेशादारों का उल्लेख है । फिर भी नट- अथवा व्यवसाय का उल्लेख कहीं नहीं मिलता तो फिर उस समय अभिनय वर्तमान था, यह कहा जाय !

उधर यजुर्वेद में 'शैलूष' शब्द का प्रयोग जाता है । इसको अध्यापक Hillebrandt प्रकृत- विषयक दृश्यकाव्य बताते हैं । अध्यापक 'स कण्व' (Steu konow) का मत भी यही है। उनका यह भी कहना है कि इसका उपादान उस में प्रचलित "लौकिक निर्वाक् आंगिक अभिनय (Popular mime) से लिया गया है। कथोपकथन, गाली-गलौज, मार-पीट, नृत्य, गीत वाद्य यह समस्त इसी लौकिक अभिनय के अं था । अंतिम तीनों का 'कौशीतक्यब्राह्मण' कहा नाम से अभिहित किया है । 'पारस्कर-गृहसूत्र' मुख्यत: तीन वर्णों के पक्ष में निषेध कहा गया संसार के किसी देश में 'लौकिक निर्वाक् अभिनय' विषयक-अभिनय की अपेक्षा प्राचीनतर प्रमाणित होता । अतएव Hillebrandt का मत ग्राह्य पर भी 'कण्व' (Konow) का सिद्धांत अग्राह्य उचित है ।

वैदिक साहित्य में दृश्यकाव्य के अन्यान्य उपादानों का भी अस्तित्व पाया जाता है, जिनमें सामवेद में गान और याज्ञिक नृत्य का मसाला प्रथम है। 'महाव्रत' में वृष्टि-उपादान के लिये अग्नि के चारों ओर कुमारियों का नृत्य, विवाहोत्सव में सधवा गृहिणियों का वर-वधू के लिये सौभाग्योत्पादक नृत्य, मृत्यु के बाद मृतक के शेष स्मृतिचिह्न एकत्रित करके उनके चतुर्दिक् शोक-नृत्य प्रभृति अनेक प्रकार के नृत्य-प्रयोगों की कथाएँ प्राचीन साहित्य में पाई जाती हैं। भारतीय रंगमंच की प्रतिष्ठा के साथ नृत्य का अति निगूढ़ संपर्क है। और भी शिव अथवा विष्णु-कृष्णोपासना में भी नृत्य एक अपरिहार्य अंग माना जाता है। अध्यापक Oldenberg ने इन्हीं कारणों से धर्म-नृत्य को ही दृश्यकाव्योत्पत्ति का मूलकारण बताया है। क्रमशः इसके साथ निर्वाक् अंग-संचालन का सयोग है। इसके बाद संगीत का मिश्रण, बाद को कथोपकथन और इसी प्रकार दृश्यकाव्य की उत्पत्ति हुई।

अध्यापक श्रीपाद कृष्ण विल्वालकर (S. K. Belvalkar) कहते हैं कि वैदिक युग में धर्म-विषयक दृश्यकाव्य का उपादान यथेष्ट था, यह निस्संदेह बात है। इसी संबंध में अध्यापक Winternitz ने जो कहा है, वह भी अधिक संगत मालूम होता है।

"Some of the diologue hymns are ballads others are remnants of a narrative...... ; while still others are speeches that belonged to a ritualistic drama."

अर्थात् संवाद-सूत्रों में कौन चारणगीत, कौन केवल गल्प और कौन याज्ञिक दृश्यकाव्य का कथोपकथन है, इसको मत-चतुरता के साथ कोई भी सिद्ध नहीं कर सकता।

इस सुविस्तृत आलोचना के बाद यह सर्वतोभावेन मान लेना पड़ेगा कि 'भरत-नाट्य-शास्त्र' में जो कहानी पाई जाती है, वह केवल उपकथा नहीं है। साथ ही नाट्यशास्त्र वेद-बहिर्भूत नहीं है, प्रत्युत भारतीय दृश्यकाव्य का मूल-उपादान है, जो समस्त वैदिक साहित्य से संग्रहीत किया गया है—यह भी निस्संदेह प्रमाणित हो जाता है। इसके अतिरिक्त मेक्सिको में जो इसी प्रकार के याज्ञिक अभिनय का प्रचार था और भारत में भी तदनुरूप था, इस प्रकार के अनुमान में विशेष कोई हानि नहीं है। इसमें विभिन्नता केवल यही है कि मेक्सिको के याज्ञिक अभिनय में केवल दृश्यकाव्य का ही उपादान था, परंतु भारत में ऐसे संवादसूत्र दृश्य और काव्य दोनों के परिचायक हैं।

सुरेंद्रनाथ तिवारी

× × ×

२. प्रकाश-विज्ञान

अवतरणिका

Soil of ancient India, cradle of humanity hail ! hail venerable and efficient nurse ! whom centuries of brutal invasion have not yet buried under the dust of oblivion. Hail *Fatherland* of faith, of love, of poetry and *of science* ! may we hail a revival of thy past in our western future.

—M. Louis Jocalliat

योरपीय विद्वानों के दृष्टिकोण से संसार के सुदूरवर्ती इतिहास में आज की बीसवीं सदी सभ्यता और उन्नति की चरम सीमा समझी जाती है, क्योंकि वह उस जगदाराध्य—'विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः' वाले—विज्ञानदेव की उपासिका है। उसने अपना अमूल्य हृदय—अनन्य भक्ति—अशेष श्रद्धा—सब-का-सब हँसते-हँसते अपने आराध्य देव के श्रीचरणों पर निछावर कर दिया है, उसकी उस अतुल धन-संपत्ति ने अपने उपास्य देव के नैत्यिक भोग में सर्वात्मना आत्मसमर्पण कर दिया और अंत को अपने उस धर्म को भी, जो उसे इस संसार से तारनेवाला है, विज्ञान की वेदी पर बलि दे दिया। इसीलिये यह युग विज्ञान का युग कहलाता है।

'गुणाः गुणज्ञेषु गुणाः भवन्ति'—योरप ने गुणों का आदर करना सीखा है—वह जानता है कि भारतीय कवियों की कामधेनु की कल्पना अगर कहीं चरितार्थ होती है, तो वह केवल शिल्पविज्ञान के विषय में। इसीलिये वह मनसा-वाचा-कर्मणा और तन-मन-धन से उसका उपासक हो रहा है। वह अपना पेट काटकर रात-दिन अपने इष्टदेव की आराधना की सामग्री जुटाया करता है और उसके नाम पर हँसते-हँसते अपने जीवन को भी निछावर कर देता और कर सकता है। उसकी इसी अनन्य श्रद्धा और अटूट भक्ति के कारण प्रसन्न होकर ही विज्ञान भगवान् ने उसको यह वरदान दिया

है, जिससे वह आज दुनिया में सर्वोत्कृष्ट राष्ट्र समझा जाता है।

यह स्पष्ट है कि संसार के जिस राष्ट्र ने भी इस लौकिक ऐश्वर्य और उन्नति के मार्ग में क़दम बढ़ाने की कोशिश की है, उसे सबसे पहले इन्हीं विज्ञानदेव की शरण लेनी पड़ी है। इसीलिये भारतवर्ष ने भी अगर पूर्ण रूप से नहीं, तो भी किसी अंश तक इनकी आराधना की है और—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वंस्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥
—मनुः

के अनुसार कभी गुरु की गद्दी पर बैठकर संसार को इसका भी पाठ पढ़ाया है, यद्यपि भारत आज वह भारत नहीं रहा—जिसके आगे दुनिया सिर झुकाती थी—संसार जिसकी शक्ति का लोहा मानता था। और जिसे अभिमान था अपनी अतुल धन-संपत्ति का, वही भारत आज इस जीर्ण-शीर्ण अवस्था में रोटियों का मोहताज हो रहा है। उसकी धन-संपत्ति गई, विद्या और बल गया, कला और कौशल गया। अब उसके पल्ले रह ही क्या गया? आज वही भारत, जो एक दिन दुनिया की आवश्यकताएँ पूरी करता था, अपनी आवश्यकताओं के लिये दूसरों का मुँह ताकता है; मगर फिर भी उसका प्राचीन वैभव अतीत के गर्भ से पुकार-पुकारकर उसकी साक्षी दे रहा है, जिसकी प्रतिध्वनि कभी-कभी पश्चिम की दीवार से टकराकर हमारे कानों तक पहुँचती है। आज हम उसी का पवित्र स्मरण करने बैठे हैं, जिससे आज इस पतित अवस्था में भी हमारा सिर गर्व से ऊपर उठ जाता है। मि० जैकालियट की ऊपर उद्धृत की हुई पंक्तियों को पढ़ते-पढ़ते हमारी आँखों में आनंद के आँसू बहने लगते हैं। हम देखते हैं कि पश्चिम में एक बिजली चमक रही है। वह उग्र है—चंचल है—दीप्त है और शानदार है। मगर फिर भी शायद पूर्व में दिखाई देनेवाले उस सुमेरुगिरि के स्वर्णशिखर के बहुत नीचे है।

हमें इस सत्यता का पता उस समय चला, जब वे किरणें पश्चिम से प्रतिक्षिप्त होकर एक बार हमारे पास पहुँचीं। अपने आराध्य देव विज्ञान की पवित्र वेदी पर तन-मन-धन और इससे भी बढ़कर प्राणों को हँसते-हँसते निछावर कर देनेवाले विज्ञान के अनन्य भक्त योरप और अमेरिका ने आज विज्ञान के बहुत गुप्त रहस्यों का पता लगाया है और उन्हें वह इस बीसवीं सदी की Discovery या Invention कहते हैं। इस वैज्ञानिक संसार की उन अन्वेषणाओं में प्रकाश (Light) के सिद्धांत अत्यंत महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं और उनके आविष्कार का सेहरा पश्चिम के सिर बँधा दिखाई देता है। परंतु हमारे आश्चर्य की सीमा न रही--प्रसन्नता और गर्व से हमारी छाती फूल गई, जब हमने देखा कि प्रकाश-संबंधी वही सारे सिद्धांत, जिनके आविष्कार पर आज पश्चिम नाज़ करता है, उतने ही स्पष्ट और नियमित रूप में साहित्य के अनेकानेक ग्रंथों में बिखरे हुए पाए जाते हैं।

हम Physics को उठाकर उसमें से Light के सारे प्रकरण की आलोचना करें, तो हम देखेंगे कि इस विषय के वास्तविक नियम, जिनको हम मूल-सिद्धांत कह सकें, बहुत थोड़े और गिने-चुने हैं। शेष Light का विस्तृत विवरण जो कुछ लिखा गया, वह केवल उन्हीं सिद्धांतों का विस्तार है और उसकी सृष्टि पूर्णतः इन्हीं गिने-चुने नियमों के आधार पर हुई है। संस्कृत-साहित्य के उन बचे-खुचे ग्रंथों में, जो अत्याचारी मुसलमान बादशाहों के हम्मामों की राख में दबे-दबाए बच रहे हैं, हमें इन्हीं नियमों का यही स्वरूप यत्र-तत्र दिखाई देता है। नीचे की पंक्तियों में हम उन्हीं "बिखरे हुए फूलों को" एक सूत्र में गूँथने की कोशिश करेंगे और देखेंगे कि "पूर्व" में उदय हुए सूर्य की किरणों ने ही पश्चिम में पहुँचकर उसे प्रकाश (Light) से प्रकाशित किया; परंतु

Light is in itself invisible के सिद्धांत के अनुसार "The rays of the sun are seen on account of the particles of the dust in the air, which reflect."

प्रकाश और प्रत्यक्ष

"Non-luminous bodies are only rendered luminous and visible when in the presence of luminous bodies."

आधुनिक विज्ञान का यह एक प्रधान सिद्धांत है। उसके अनुसार किसी वस्तु के ऊपर से किरणें प्रतिक्षिप्त होकर जब मनुष्य की आँख में पहुँचती हैं, तब उसका चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है। अगर किरणें वहाँ से प्रतिक्षिप्त न हों, तो वस्तुतः उन किरणों के पड़ने न पड़ने से चाक्षुष-प्रत्यक्ष

पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता, केवल प्रकाश की किरणों का वस्तु के साथ संपर्क कोई विशेष अर्थ नहीं रखता।

लगभग इसी आशय को स्पष्ट करनेवाली कुछ पंक्तियाँ हमने सांख्यसूत्रों पर लिखे हुए 'विज्ञानभिक्षु' के 'सांख्य-प्रवचन' में पढ़ी हैं और हम उन्हें यहाँ भी उद्धृत करते हैं—"अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वाल्लोहवदधिष्ठातृत्वम्" इस सूत्र का भाष्य करते हुए विज्ञानभिक्षु ने लिखा है कि—

"सूर्य्यादेः स्वप्रतिविम्बरूपसम्बन्धेन जलादितत्स्थवस्तुभासकत्वदर्शनात्। किरणैरेव तदुभयभासनात्॥"

अर्थात् सूर्य या कोई प्रकाशमान् पदार्थ (Luminous body) केवल अपने प्रतबिंबरूप संबंध से न तो जल को दृश्य Visible बना सकता है और न "तत्स्थ" जलादि गत किसी दूसरी वस्तु को। अर्थात् किसी 'प्रकाशमान्' (Luminous) पदार्थ का जल या किसी वस्तु के साथ साधारण संपर्क, जिसमें किरणों का Reflection नहीं हो रहा है, उसे Visible नहीं बना सकता। अपनी बात की पुष्टि के लिये विज्ञानभिक्षु ने हेतु दिया है—"किरणैरेव तदुभयभासनात्" अर्थात् जल और जल में स्थित वस्तु दोनों को Visible बनाने की शक्ति अगर किसी में है, तो वह किरणें है। अर्थात् जब किरणें जल या जल में स्थित पदार्थ से प्रतिक्षिप्त होकर मनुष्य की आँखों में पहुँचती हैं, तभी वस्तु का प्रत्यक्ष होता है अन्यथा एक नहीं लाख सूर्य (Luminous bodies) का कैसा ही संपर्क होता रहे, सब व्यर्थ और अनुपयुक्त है।

आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं ने इस सिद्धांत पर जो कुछ अब तक लिखा या जो अब भविष्य में लिखेंगे, उसे अगर संक्षेप में कहना चाहें, तो विज्ञानभिक्षु की इन्हीं सूत्ररूप पंक्तियों का भाष्य कह सकते हैं। विज्ञानभिक्षु ने गिने-चुने शब्दों में जिस प्रकार सुंदरता और पूर्णता के साथ इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया, वह निस्संदेह सराहनीय है।

प्रतिबिंब-वैपरीत्य

पाश्चात्य लेखकों ने Plane mirrors का वर्णन करते हुए Lateral inversion का उल्लेख किया है और उस प्रकरण में उन्होंने लिखा है—

"As we stand in front of plane mirror, our right hand appears as the left hand of the image."

अर्थात् यदि हम दर्पण के सामने खड़े हों, तो हमारा दाहना हाथ प्रतिबिंब का बायाँ हाथ मालूम होता है। उदाहरण के लिये—

देवदत्त एक आदमक़द आइने के सामने खड़ा है। उसका मुँह पश्चिम की ओर है और वह सामने रक्खे आइने में अपना प्रतिबिंब देखता है। प्रतिबिंब अ से ह तक अक्षरशः देवदत्त का प्रतिबिंब है और इस नक़ल (Virtual image) और असल देवदत्त में साधारणतः कोई भेद नहीं है।

परंतु विज्ञान की दृष्टि में सब कुछ समानता रहने पर भी एक विषमता है और वह विषमता मिथ्या या काल्पनिक नहीं, सत्य है। इस आदमक़द आइने में पड़े हुए देवदत्त के Virtual image और असली देवदत्त के Position में निस्संदेह ३६ के छः और तीन का संबंध है। असली देवदत्त का मुँह जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, पश्चिम की ओर है और इस Virtual image का मुँह पूर्व की ओर दिखाई पड़ता है। फलतः असली देवदत्त का Position प्रतिबिंब (Image) में पहुँचकर परिवर्तित—उलटा हो जाता है। असली देवदत्त का दाहना प्रतिबिंब (Image) का बायाँ हाथ हो जाता है और बिंब का दक्षिण कान प्रतिबिंब में बाम कर्ण का रूप धारण कर लेता है। इसी बात को पश्चिम ने लिखा है—

"......Our right hand appears the left hand of the image."

आधुनिक विज्ञान के प्रतिबिंब-वैपरीत्यवाले इस सिद्धांत का मूल पौरस्त्य संस्कृत-साहित्य में बड़ी स्पष्टता के साथ पाया जाता है। 'महाकवि शूद्रक' संस्कृत-साहित्य के एक बड़े और नामी-गामी कवि हैं। 'मृच्छकटिक' उन्हीं की लेखनी से निकला हुआ एक उच्च कोटि का नाटक है। इसी 'मृच्छकटिक' नाटक के प्रथमांक में शूद्रक ने अपने विदूषक के मुँह से कहलाया है—

"भो न गमिष्यामि, अन्यः कोऽपि प्रयुज्यताम्। मम पुनर्ब्राह्मणस्य सर्वमेव विपरीतं परिणमति आदर्शगता इव छाया वामतो दक्षिणा दक्षिणतो वामा"। विदूषक की इस

उक्ति के अंतिम शब्द हमारे प्रकृत विषय के संबंध में अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। 'विपरीतं परिणमति आदर्शगता इव छाया आदर्श-दर्पण (Plane mirror) में जैसे छाया-प्रतिबिंब (Image) विपरीत परिणमति—उलटा हो जाता है, इसी प्रकार मेरे काम का फल उलटा ही होता है। विपरीतं परिणमति का अर्थ ऊपर का नीचे और नीचे का ऊपर नहीं, बल्कि 'दक्षिणतो वामा और वामतो दक्षिणा' है। शूद्रक की इन पंक्तियों और पश्चिम के ...Our right hand appears as the left hand of the image में कितना अद्भुत सादृश्य है।

मृग-तृष्णा

संस्कृत-साहित्य एवं वर्तमान समय में हिंदी-साहित्य में 'मृग-तृष्णा' शब्द इतना प्रचलित हो गया है कि वह प्रकृत साहित्य-क्षेत्र को छोड़कर बोलचाल की भाषा में आ गया है। परंतु इस 'मृगतृष्णा' का रहस्य और इसके भीतर जो वैज्ञानिक सिद्धांत काम कर रहा है, उसका परिचय हममें से कम को ही होगा। हाँ, Physics का विद्यार्थी बहुत सरलता से कह सकता है कि 'मृगतृष्णा' (Mirage) का रहस्य प्रकाश (Light) के नियमों के भीतर छिपा है।

इस रहस्य का पूर्णतः उद्घाटन करना इस समय हमारे लिये असंभव है, परंतु फिर भी हम उन बातों और नियमों का उल्लेख कर देना चाहते हैं, जिनका हमारे विषय के साथ विशेष संबंध है।

आधुनिक विज्ञान का प्रकाश की गति के संबंध में साधारण सिद्धांत है "In a homogeneous medium light is propagated in straight lines."

अर्थात् समान माध्यम में प्रकाश की किरणें सीधी रेखा में चलती हैं, परंतु जहाँ माध्यम समान नहीं होता, वहाँ विरल माध्यम से घन माध्यम में प्रविष्ट होती हुई किरणें कुछ नार्मल (Normal) की ओर झुक जाती हैं।

"When light passes from air to a denser medium, part is bent towards the normal."

मृगतृष्णा की तह में यही 'कुछ झुक जानेवाला' सिद्धांत काम कर रहा है। वायुमंडल का घनत्व, ज्यों-ज्यों हम उतरते आवें, बढ़ता जाता है और हम उस वायुमंडल में घनत्व की दृष्टि से भिन्न-भिन्न सतहों की कल्पना कर सकते हैं—

"The atmosphere is less dense as we a cend, we can suppose it to be made u layers."

कभी-कभी अत्यंत गर्मी के समय किसी पक्के पर देखा जाय, तो उसके ऊपर कुछ लहरें-सी दि देती हैं। इसका कारण पृथ्वी की ऊष्मा के संपर्क से वा मंडल के घनत्व में अत्यंत वेग से होनेवाला प वर्तन है।

ठीक यही कारण मृगतृष्णा का है। ग्रीष्म में भौ ऊष्मा के कारण पृथ्वी के समीप वायुमंडल का घ अपेक्षाकृत कम हो जाता है और उसके ऊपर क्र बढ़ता जाता है।

इसी भ्रम—मिथ्या ज्ञान—का नाम मृगतृष्णा है और यही भौम ऊष्मा के कारण किरणों का किंचि उस मृगतृष्णा का मूल-कारण है। वास्तव में मृगतृ में हमें जो कुछ जहाँ दिखता है, वह वहाँ नहीं हो वह केवल किरणों का खेल है और किरणों में अ वस्तु का ही हमें किसी स्थल-विशेष पर भान होता है।

मृगतृष्णा के विषय में यह आधुनिक विज्ञान खोज है।

पौरस्त्य संस्कृत-साहित्य में इस मृगतृष्णा के त का उद्घाटन हमें दो ग्रंथों में बहुत ही सुंदर औ रूप में देखने को मिला है।

एक है 'न्यायदर्शन' पर 'वात्स्यायन-भाष्य' दूसरा है सांख्यसूत्रों पर विज्ञानभिक्षु का 'सां प्रवचनम्'। वात्स्यायन ने न्याय के "इन्द्रियार्थसन्निक त्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्र क्षम्।" न्या० अ० १, आ० १, सूत्र ४।

इस सूत्र के भाष्य में लिखा है—

"ग्रीष्मे मरीचयो भौमेनोष्मणा संसृष्टाः स्पन्दमाना स्थस्य चक्षुषा सन्निकृष्यन्ते, तत्रेन्द्रियार्थसन्निकर्षादुद ज्ञानमुत्पद्यते।"

वात्स्यायन की ऊपर उद्धृत की हुई पंक्तियाँ बि स्पष्ट हैं। इन थोड़े-से शब्दों में इतने विस्तृत सिद्धां रखकर वात्स्यायन ने निस्संदेह 'गागर में साग दिखाया है। इन पंक्तियों का हरएक शब्द रह है, परंतु फिर भी इस 'स्पन्दमानाः' शब्द के प्रयो तो हम मुग्ध हैं। जितना ही उसकी तह में घुसते

है, प्रयोग का सौंदर्य और उसकी उपयोगिता भी उतनी ही बढ़ती जाती है। संस्कृत में यह शब्द 'स्पदि किञ्चिचलने' धातु से बना है। जिसका अर्थ है किंचिच्चलन—अपने स्थान से थोड़ा-सा हट जाना, अपनी गति में थोड़ा-सा परिवर्तन कर देना—चाहे इधर या उधर। आधुनिक विज्ञान के अनुसार भी मृगतृष्णा में किरणों में स्पंदन किंचिच्चलन ही है। वे प्रत्येक सतह पर किंचिच्चलित होती हैं—उनकी गति में थोड़ा परिवर्तन होता है, चाहे नार्मल की ओर हो या उससे परे।

Law of signs का यही अर्थ है। और इस 'स्पन्दमाना' एक शब्द के भीतर Law of signs के विस्तृत सिद्धांत का अंतर्भाव अद्भुत सौंदर्य के साथ होता है।

जैसा कि हम पहले कह आए हैं, 'विज्ञानभिक्षु' ने भी इस सिद्धांत पर प्रसंगवश थोड़ा-सा प्रकाश डाला है। उन्होंने लिखा है—

"मरुमरीचिकादौ तु स्वाध्यस्तजलादिभासमत्त्वं दृष्टमेव।"

अर्थात्—मृगतृष्णा में हमें सत वस्तु की प्रतीति नहीं होती, बल्कि किरणों में अध्यस्त वस्तु का ही भान होता है। किरणें ही इस धोखे का कारण हैं। विज्ञानभिक्षु ने यह पंक्ति उस प्रकरण में लिखी है, जिसका उल्लेख हम पहले कर आए हैं। इसलिये पूर्व उद्धृत की हुई पंक्तियों के साथ मिलाकर पढ़ने से इसका अर्थ बिलकुल स्पष्ट हो जाता है।

किरणों का विश्लेषण

वैज्ञानिकों ने बड़े परिश्रम और विविध प्रकार के परीक्षणों के बाद सूर्य की किरणों का विश्लेषण कर इस रहस्य का पता लगाया है कि उनमें सात रंग होते हैं। हमें इस सिद्धांत के संबंध में विशेष नहीं कहना है। हम केवल पाठकों का ध्यान उस सूर्यसप्ताश्व वर्णन की ओर दिला देना चाहते हैं, जिससे वैदिक, पौराणिक और प्रकृत साहित्य भरा पड़ा है। पौराणिक साहित्य ने अथवा उसके उत्तरवर्ती लेखकों ने 'अश्व' शब्द का नैरुक्तिक अर्थ भूलकर उसका केवल रूढ़ि अर्थ ग्रहण किया और उसी के आधार पर उन्होंने सूर्य के साथ सात घोड़ों का संबंध जोड़ा। यह संबंध हमें पौराणिक साहित्य में जगह-जगह दिखाई देता है।

वास्तव में वैदिक साहित्य के 'सप्ताश्व' सूर्य की किरण में दिखनेवाले सात रंग ही हैं और संभवतः पौराणिक साहित्य ने भी जान-बूझकर उन सप्ताश्वों का अलंकार-रूप में वर्णन किया है। फलतः सात किरणों का सिद्धांत संस्कृत-साहित्य में बड़े स्पष्ट रूप से पाया जाता है।

प्रतिस्वर (Focus)

आधुनिक भौतिक विज्ञान (Physics) के विद्यार्थी के लिये Focus एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण वस्तु है। प्रकाश-संबंधी अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों की हस्ती केवल Focus की हस्ती के ऊपर निर्भर है। इसलिये 'प्रकाश' (Light) पर क़लम उठानेवाले के लिये Focus के संबंध में कुछ आलोचना करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो जाता है। प्रकाशविज्ञान में इस फोकस (Focus) का उपयोग इतनी जगह होता है कि उसका पूर्णतः उल्लेख इस छोटे-से लेख में कर सकना हमारे लिये प्रायः असंभव ही है। इसलिये इस प्रकरण में हम उसके केवल एक ही प्रकार के उपयोग की आलोचना करेंगे और यह दिखलाने का यत्न करेंगे कि यह वृद्ध भारतवर्ष, जिसके चरणों में बैठकर एक दिन संसार ने आचार-व्यवहार, शिक्षा और सभ्यता का पाठ पढ़ा, जो संसार को अध्यात्मज्ञान का प्रकाश दिखलानेवाला है, भौतिक विज्ञान के लिये योरप, अमेरिका या पश्चिम का ऋणी नहीं है, बल्कि उसके वह लंगोटबंद और जंगलों में रहनेवाले ऋषि ही, जिन्हें आज जंगली और वहशी कहा जाता है, इस भौतिक विज्ञान के जन्मदाता हैं और वह मानवीय लैबोरेटरी में नहीं बल्कि प्रभु की इस विशाल लैबोरेटरी में बैठकर उन सिद्धांतों की आलोचना उतनी ही और कदाचित् उससे भी अधिक विद्वत्ता, दृढ़ता और सुंदरता के साथ कर सकते थे, जितनी आज सभ्यता के ठेकेदार और विज्ञान के उपासक पश्चिमी वैज्ञानिक।

हमारे पाठक प्रायः आतिशी शीशे से परिचित होंगे। आतिशी शीशे को धूप में सूर्य के सामने रखकर उसकी दूसरी ओर एक नियमित दूरी पर अगर हम कोई चीज़ रक्खें, तो हम देखेंगे कि शीशे की शक्ति के अनुसार जल्दी या देर से उसमें अग्नि पैदा हो जायगी और यदि शीशे में तीव्र शक्ति है, तो वह चीज़ स्पष्टतः और अच्छी तरह जलने लगेगी। पश्चिमी विज्ञान के शब्दों में हम इस सचाई को इस रूप में प्रकट कर सकते हैं—

"Heat is also reflected to the focus, and if the glass be large, paper can be ignited."

वैज्ञानिक कोष में इस शीशे का एक नाम Burning mirror भी है, और वह बिंदु, जिसका संकेत हमने नियमित दूरी शब्द से किया है, वैज्ञानिकों की भाषा में Focus कहा जाता है।

पाश्चात्य विज्ञान का फोकस और उसका प्रयोग प्रायः इसी प्रकार का है।

संस्कृत-साहित्य में भी हमें यह फोकस-बिंदु उतने ही उज्ज्वल और प्रकाशमान् रूप में दिखाई पड़ता है, जितना वैज्ञानिक साहित्य के प्रकृत क्षेत्र में। संस्कृत-साहित्य का अनुशीलन करनेवाले विद्वानों से 'यास्कमुनि' का काफ़ी से ज़्यादा परिचय होना चाहिए। इन्हीं यास्कमुनि ने निघंटु के भाष्यरूप 'निरुक्त' की सृष्टि भी की। निरुक्त में दैवतकांड के प्रथमाध्याय के छठे पाद में उन्होंने वैश्वानर की विवेचना की है और वैश्वानर की उसी आलोचना के प्रकरण में हमें इस Focus का स्वरूप दिखाई देता है। उन्होंने लिखा है—

"उदीच्चिप्रथमसमावृत्य आदित्ये कंसं वा मणिं वा परिमृज्य "प्रतिस्वरे" यत्र शुष्कगोमयसंस्पर्शन्धारयति तत्प्रदीप्यते।"

यास्कमुनि की ऊपर उद्धृत की हुई पंक्तियाँ इतनी स्पष्ट हैं कि हमें उनकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। परंतु फिर भी इन पंक्तियों में दो ऐसे रहस्यपूर्ण शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जिनके संबंध में कुछ न लिखना केवल उन शब्दों के साथ ही नहीं बल्कि सारे संस्कृत-साहित्य के साथ अन्याय करना है। संस्कृत-साहित्य का हर एक शब्द रहस्यमय और भावपूर्ण है। उसके एक-एक शब्द के भीतर लंबा-चौड़ा और विस्तृत अर्थ भरा हुआ है। संस्कृत-शब्दों की इसी विशेषता, इसी ख़ुसूसियत पर हमीं नहीं सैकड़ों और हज़ारों पूर्वी और पाश्चात्य विद्वान् हज़ार जान से कुर्बान हैं। उपर्युक्त पंक्तियों में प्रयुक्त हुए (१) 'प्रतिस्वर' और (२) 'कंस' शब्द भी इसी प्रकार के रहस्यमय शब्द हैं। हम ज्यों-ज्यों उनकी तह में घुसते जाते हैं, त्यों-त्यों उनके सौंदर्य का विकास होता जाता है और अंत तक पहुँचते-पहुँचते हम स्तंभित होते हैं, मुग्ध होते हैं और ऋषियों के उस दिव्य दिमाग़ की, जिसने इसकी सृष्टि की, हज़ार बार मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं।

(१) प्रतिस्वर—संस्कृत-व्याकरण के अनुसार स्वर शब्द 'स्व शब्दोपतापयोः' धातु से सिद्ध होता जिसका एक अर्थ उपताप है और दूसरा शब्द। अर्थ प्रतिस्वर शब्द में जिस अद्भुत सौंदर्य के घटते हैं, उसे देखकर ज़बान से बेअख़्तियार निकल है—क्या ख़ूब ! कमाल है !! शब्दों की इतनी सार्थकता और गूढ़ार्थता की ओर नज़र करते हुए उनके बनाने-वालों को दाद दिए बग़ैर नहीं रहा जाता। धन्य हो ऋषियों के दिव्य दिमाग़ धन्य हो !! काश पश्चिम के आँखें हों, और वह तुम्हारी उस अलौकिक सृष्टि को देख पाए। अगर वह तुम्हारे उस दिव्य स को पहचान सके, तो आज पश्चिम का सर नाज़ से उठा न रहेगा। वह श्रद्धा और भक्ति के प्रबल आवेश तुम्हारे क़दमों पर झुक जायगा और एक बार नहीं बार लुई जैकालिट के शब्दों को दुहरायगा।

हाँ, हम कह रहे थे कि 'स्व' धातु का एक अर्थ उपताप और दूसरा अर्थ शब्द है। वैज्ञानिक संसार Focus का उपयोग भी दो प्रकरणों में होता है— Light या Heat के प्रकरण में और दूसरा Sound शब्दवाले अध्याय में। 'स्व' धातु के दोनों अर्थ इन दो भिन्न-भिन्न प्रकरणों में प्रयुक्त होनेवाले भिन्नार्थक एकरूप प्रतिस्वर-शब्द के बोधक हैं। Light या Heat के प्रकरण में आए हुए Focus शब्द के पर्याय में प्रतिस्वर शब्द उपतापार्थक स्व धातु से सिद्ध होता है। उपताप में आया हुआ उप ठीक उसी अर्थ का बोधक है, जिस उपप्रधान का उप। एक ताप होता है, और सीधा सूर्य से आता है, परंतु इस शीशे से प्राप्त होनेवाला ताप सचमुच ताप नहीं है, वह उपताप है। इन दोनों तापों में यही भेद है कि एक ताप है, दूसरा उपताप। प्रतिस्वर का संबंध ताप से नहीं, उपताप से है। अर्थात् प्रतिस्वर फोकस-बिंदु प्राप्त होनेवाला ताप सीधा सूर्य से नहीं आया है, बल्कि वह उन किरणों का उपताप है, जो एक शीशे द्वारा प्राप्त हुआ है। स्व धातु से उत्पन्न हुए स्वर शब्द के साथ 'प्रति' जोड़कर उस शब्द को और भी भावपूर्ण और रहस्यमय बना दिया गया है। यह संस्कृत-साहित्य की विशेषता है और यह पौर्वात्य दिमाग़ों की क्षमता है। धन्य है संस्कृत-भाषा और धन्य हैं उसके विधाता ऋषि।

'स्वृ' धातु का दूसरा अर्थ शब्द है, यह हम पहले ही लिख आए हैं। साथ ही अभी ऊपर की पंक्तियों में हम यह भी बतला आए हैं कि आधुनिक विज्ञान में Focus का उपयोग Lihgt के साथ ही Sound में भी होता है। फलतः 'स्वृ' धातु का दूसरा अर्थ लेकर ही प्रतिस्वर शब्द Sound में आए Focus का वाचक होता है।

जिस प्रकार फोकस-बिंदु से Heat का विशेष प्रभाव देखा जा सकता है, इसी प्रकार Focus बिंदु Sound के विविध प्रभावों को भी स्पष्ट कर सकता है। Physics की पुस्तकों में इस प्रकार के अनेक परीक्षण दिए हैं, परंतु हम यहाँ उनका उल्लेख न करेंगे। जिस प्रकार Focus बिंदु के द्वारा प्राप्त होनेवाला ताप, ताप नहीं उपताप के रूप में परिवर्तित हो जाता है, इसी प्रकार Focus के द्वारा प्राप्त होनेवाला Sound शब्द, शब्द-स्वर नहीं बल्कि उपशब्द—उपस्वर—प्रतिस्वर के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

वाह! क्या ख़ूब!! कमाल है!!! एक ज़रा-से शब्द के भीतर इतना रहस्य छिपा हुआ है! गागर में सागर भरना और किसे कहते हैं?

कंस—हम ऊपर लिख आए हैं कि निरुक्त की उद्धृत की हुई पंक्तियों में आया हुआ कंस शब्द भी उसी प्रकार का गूढ़ार्थक शब्द है। आधुनिक वैज्ञानिक जिस—कंस—शीशे के फोकस द्वारा उपताप प्राप्त करते हैं, उसे अपनी भाषा में प्रायः लैंस कहते हैं। फलतः निरुक्त में आया हुआ कंस शब्द उसी लैंस का वाचक होना चाहिए। कंस शब्द का मूल है 'कसि गति शिक्षणे' धातु, जिसका अर्थ है गति सीखना—गति को नियमित करना। लैंस की सारी प्रक्रिया पर अगर ध्यान दें, तो हम देखेंगे कि उसका काम सिर्फ़ सूर्य की आती हुई किरणों की गति में परिवर्तन कर देना, उसे नियमित कर देना ही है अर्थात् कंस शब्द का धात्वर्थ उसमें जिस सुंदरता के साथ बैठता है, उसे देखकर भारतीय ऋषियों की सूझ पर आश्चर्य होता है। क्या जंगली-वहशी—विज्ञान के रहस्यों से अनभिज्ञ—लोग इस प्रकार के रहस्यमय शब्दों की सृष्टि कर सकते हैं?

आँख

प्रकाश (Light) के विद्यार्थियों के लिये पाश्चात्य विज्ञान में आँख का विषय अत्यंत मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण है। आँख की बनावट और चाक्षुष-प्रत्यक्ष का बहुत कुछ संबंध इस प्रकाशविज्ञान के साथ है। चाक्षुष-प्रत्यक्ष के लिये वैज्ञानिकों ने आँख के साथ मस्तिष्क से आई हुई एक नाड़ी की कल्पना की है, जिसे वे रेटीना (Ratina) नाम से पुकारते हैं। आँख की बनावट में उसके लैंस (Lans) इस प्रकार रक्खे गए हैं कि उनका Focus बिंदु इस Ratina पर रहे। और इस प्रकार Ratina पर प्रतिबिंब पड़कर उसी के द्वारा हमें चाक्षुष-प्रत्यक्ष होता है। परंतु जब किन्हीं कारणों से Lans का Focus बिंदु Ratina से हट जाता है, उसी अवस्था में आँख में विकार पैदा हो जाता है। पाश्चात्य विज्ञान ने आँख के संबंध में अब तक यह अंतिम निर्णय किया है।

पौरस्त्य साहित्य में भी आँख के संबंध में हमें इसी प्रकार की क्रिया और इसी प्रकार का उल्लेख दिखाई पड़ता है। उसमें भी आँख में इसी प्रकार दो नाड़ियों की कल्पना की गई है, जिन्हें इस साहित्य ने क्रमशः 'गांधारी और हस्तजिह्वा'' के नाम दिए हैं। 'शिवस्वरोदय' में जहाँ शरीर की तमाम नाड़ियों का वर्णन किया गया है, उसी प्रकरण में आँख का वर्णन करते हुए उसने लिखा है—

"...............गान्धारी वामचक्षुषि।
दक्षिणे हस्तजिह्वा च...............॥"

इस प्रकार इस संक्षिप्त लेख में हमने देखा कि 'प्रकाशविज्ञान' में वे सिद्धांत, जिनके आविष्कार का सेहरा आज पश्चिम के सिर बाँधा जा रहा है, उतने ही स्पष्ट रूप में संस्कृत-साहित्य में भी पाए जाते हैं। यद्यपि आज संस्कृत-साहित्य का अक्षय भांडार बहुत कुछ लूटा जा चुका है और जो कुछ बचा है वह ऐसी अँधेरी कोठरी में बंद है, जहाँ साधारण आदमियों की पहुँच असंभव नहीं तो दुःसाध्य अवश्य है, फिर भी हमारा दृढ़ विश्वास है कि उसके अंदर बड़े-बड़े अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। वृद्ध भारत की इस जीर्णशीर्ण गुदड़ी में आज भी लाखों लाल भरे पड़े हुए हैं, केवल आवश्यकता है उनका पता लगानेवालों की—

"न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्।"

विश्वेश्वर

जीवन-ज्योति

१. वाल्मीकि-रामायण

निखिल ब्रह्मांडैकनायक भगवान् श्रीरामचंद्र के प्रोज्ज्वल प्रताप और पुण्यकीर्ति का कीर्तन करने के लिये अनेक धुरंधर कवियों ने अपनी लेखनी उठाई है। अनेक कवियों द्वारा विरचित रामायण भी आज अनेक विद्यमान हैं। जब अनेक कवि एक ही वस्तु का वर्णन करते हों, तो यह स्वाभाविक है कि वर्णनशैली में विभेद उत्पन्न हो। कवि प्रायः अपने हृदय के भावों का ही उल्लेख अपने काव्य में किया करता है। अपने समय की रीति और नीति को नायक-समकालीन मानकर उसी का वर्णन करता है। अतः कवियों के वस्तुवर्णन में भेद उत्पन्न हो जाता है। श्रीरामचंद्र के चरित्र के विषय में भी यही बात है। जो कवि जिस समय हुआ है, वह अपने समय की परिस्थिति के आधार पर त्रेता की परिस्थिति समझाने में महान् प्रयास करता हुआ देख पड़ता है। ऐसी अवस्था में उन लोगों के लिये भगवान् श्रीराम का चरित्र अत्यंत संशयास्पद बन जाता है जो संस्कृत भाषा में लिखे हुए ग्रंथमात्र को आर्ष और प्रामाणिक मानने के लिये विवश हैं। इतना होते हुए भी यह तो भारत के मस्तक में आज भी गूँज रहा है श्रीवाल्मीकि मुनि-कृत रामायण ही सर्वप्राचीन है परंतु वह सर्वप्राचीन है अतः वही अत्यधिक प्रामा भी है, यह बात आज सबके गले में नहीं उतरती आज का हिंदू हृदय में जितने अंश में वाल्मीकीय राम को प्रामाणिक मानता है, उतने ही अंश में अध्य रामायण और कवि-सम्राट् श्रीतुलसी-कृत रामायण भी प्रामाणिक मानने के लिये विवश है। यह भयंकर ही मानी जा सकती है।

अध्यात्म-रामायण किस समय में बनी है, निश्चित कथन मैं नहीं कर सकता। परंतु उसकी अपने जन्मकाल को बहुत ही स्पष्टता के साथ वर्ण रही है। उसमें स्थल-स्थल पर अद्वैतवाद—श्रीशं का अनुसरण किया गया है, जिससे यह तो स्पष्ट ही है श्रीस्वामी शंकराचार्यजी के पश्चात् इसका निर्माण होगा। अँगरेज़-विद्वान् डा० फर्कुहर साहब ने तो है कि वाल्मीकि-रामायण में श्रीराम का वर्णन राज और राजा के रूप में किया गया है और मह सीता का स्वस्वरूप में रावण द्वारा हरण कराया गया

यह बात पीछे के भक्तों को रुचिकर न हुई । अतः उन लोगों ने स्वमनः प्रशस्ति के लिये अध्यात्म-रामायण की रचना की ।

भविष्यपुराण में लिखा है कि कृष्णचैतन्य महाप्रभु की आज्ञा से उनके शिष्य रामशर्मा ने अध्यात्म-रामायण की रचना की है ।

इन दोनों विषयों पर मैंने स्वरचित श्रीरामानंद-दिग्विजय की भूमिका में पर्याप्त प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है । मैं यह तो निर्विवादरूप से मानता हूँ कि अध्यात्म-रामायण बहुत नवीन रचना है और वह अवश्य ही किसी विशेष कारण को लेकर ही की गई है ।

गोस्वामीजी की रामायण तो सर्वप्रसिद्ध है और निर्विवाद रूप से यह मान लिया गया है कि वह तीन सौ वर्षों से पूर्व की नहीं है । इस रामायण के पढ़ लेने के पश्चात् यह कहना नितांत सत्य है कि गोस्वामीजी ने अध्यात्मरामायण का अनेक स्थलों में क्रमशः अनुवाद किया है । गोस्वामीजी को वाल्मीकि की रचना बहुत प्रिय प्रतीत नहीं हुई है । वाल्मीकि-रामायण से कुछ नवीनता ले आने के लिये ही अध्यात्म-रामायण की रचना हुई है, अतः वह अवश्य ही नवीनतापूर्ण है और उसका अनुकरण करनेवाली गोस्वामीजी की रामायण भी अत्यंत नवीनतापूर्ण है । ऐसी स्थिति में मैं तो यही मान सकता हूँ कि वाल्मीकि-रामायण प्रामाणिकता की प्रथम श्रेणी में देदीप्यमान है और अध्यात्म और तुलसी-रामायण मनोरंजन की एक प्रतिभामयी सामग्री हैं ।

जब यह मान लिया गया कि श्रीवाल्मीकि मुनि-कृत रामायण ही श्रीरामचरित के लिये प्रमाण है, तब इस रामायण के ऊपर बड़ा भारी उत्तरदायित्व आ पड़ता है । नायक का चरित निष्कलंक रूप से वर्णित हो, इसका विचार कवि को अवश्य करना पड़ता है । मेरा आशय यह नहीं है कि नायक के दोषों का गोपन कवि-कर्तव्य है, प्रत्युत यह कि ऐसे नायक का चरित कवि को चित्रित करना चाहिए जो निष्कलंक हो ।

श्रीराम के लिये संसारमात्र की धारणा है कि उनका व्यक्तित्व असाधारण और परम विशुद्ध था । परब्रह्म के अवतार-शरीर में कालुष्य का होना संभव भी नहीं हो सकता । परंतु श्रीवाल्मीकि-रामायण के पढ़ने पर, इस धारणा में महान् विक्षेप उत्पन्न होता है । शूर्पणखा का अंगच्छेद करना, बालि को छिपकर मारना, जंगल में मृग-मांस-निषेवण, श्रीसीताजी की अग्निपरीक्षा, अग्नि-परीक्षा के समय श्रीसीताजी को कटु शब्द-प्रहार द्वारा उनके त्याग की सूचना करना इत्यादि ऐसी घटनाएँ हैं, जो किसी भी व्यक्ति की उत्कृष्टता में अपकर्ष-उन्मीलन करती हैं । इन सबसे बढ़कर रोमांचोत्पादक वह घटना है, जो श्रीसीता को एक कुलटा और दुराचारिणी के समान, भगवान् के राज्यारोहण के पश्चात्, सदा के लिये जंगल में छोड़ आती है । भवभूति इस घटना पर लीपापोती करने के लिये यह कह सकते हैं कि—

'जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धा-
स्त्वं वाल एवासि नवं च राज्यम् ।
युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्या-
स्तस्मायशो मत्परमं धनं वः ॥'

× × ×

'स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥'

परंतु क्या इतने से ही वस्तुतः पुरुषोत्तम श्रीराम की पुरुषोत्तमता का संरक्षण हो सकता है ? प्रजा के संरक्षण के लिये क्या किसी के साथ अन्याय किया जा सकता है ? श्रीजानकी निर्दोष हैं, यह जानते हुए भी उनका त्याग कर देना क्या यह पतिधर्म हो सकता है ? क्या यह राजधर्म हो सकता है ? क्या यह मनुष्यधर्म हो सकता है ? क्या 'अन्तरात्मा च मे वेत्ति सीतां शुद्धां यशस्विनीम्' यह कहते हुए भी श्रीसीता के त्याग करने में श्रीराम आत्मघात नहीं कर रहे हैं ? क्या प्रजा को संतुष्ट करने के लिये अन्य मार्ग नहीं था ? लंका में भी जब वज्रहृदय श्रीराम ने सीता से कहा था कि—

'प्राप्तचारित्रसन्देहा मम प्रतिमुखे स्थिता ।
दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढा ॥'
'तद्गच्छ त्वानुजानेऽद्य यथेष्टं जनकात्मजे ।
एता दशदिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया ॥'

उस समय श्रीसीताजी की विशुद्धि जिस प्रकार हुई थी और जिस प्रकार सर्वदेवों ने सीता की शुद्धि में साक्ष्य दिया था, क्या वह ढंग इस समय अनुष्ठित नहीं हो सकता था ? क्या देव पुनः साक्षी नहीं दे सकते थे ? क्या अग्नि पुनः परीक्षा नहीं कर सकता था ? तब इतना

निष्करुण कर्म करने के लिये श्रीराम क्यों बाध्य हुए ? यह एक बड़ा भारी प्रश्न है, जिसका संबंध हिंदुओं के जीवन और मरण से है। श्रीराम सीता को चाहे जैसा भी पवित्र समझते रहे हों; परंतु संसार ने तो उन्हें उस समय एक दुराचारिणी के रूप में ही देखा, जिस समय छल के साथ उनका निर्वासन हुआ। वाल्मीकि की रामायण ने इस प्रकार श्रीराम की मर्यादा को, हिंदू-मर्यादा को और धर्म-मर्यादा को पददलित करने में अल्पमात्र भी कृपणता नहीं की है।

परंतु विचार यह करना है कि क्या वस्तुतः यह घटना भी वाल्मीकिमुनि के काव्य में वर्णित है ? क्या वाल्मीकि के द्वारा इस चित्र के चित्रित करने की कल्पना भी की जा सकती है ? मेरा तो उत्तर है कि नहीं, कभी नहीं। जो वाल्मीकि श्रीराम को परब्रह्म का अवतार मान रहे हैं, जो वाल्मीकि श्रीसीता को अयोनिजा मान रहे हैं, वही वाल्मीकि सीता और राम को इस प्रकार कभी कलंकित नहीं कर सकते।

'सह संवृद्धभावेन संसर्गेण च मानद।
यदि तेऽहं न विज्ञाता हता तेनास्मि शाश्वतम् ॥'
'त्वया तु नृपशार्दूल रोषमेवानुवर्तता।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम् ॥'
'अपदेशो मे जनकान्नोत्पत्तिर्वसुधातलात्।
मम वृत्तं च वृत्तज्ञ बहु तेन पुरस्कृतम् ॥'
'न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये मम निपीडितः।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम् ॥'

जिन वाल्मीकि ने श्रीसीता के मुख से निकले हुए इन पवित्र और मर्मभेदी शब्दों को सुचारु रूप में प्रतिबिम्बित किया है, वही वाल्मीकि श्रीसीता के परमोत्कृष्ट व्यक्तित्व के ऊपर इस प्रकार का कभी भी दुर्निरीक्षणीय प्रहार नहीं कर सकते।

कहनेवाले कहेंगे कि उत्तरकाण्ड में श्रीवाल्मीकि ने इस कथा का वर्णन किया है—तब यह घटना असत्य कैसे मानी जा सकती है ? इसके उत्तर में मैं बलपूर्वक कह सकता हूँ कि उत्तरकांड श्रीवाल्मीकि मुनि-विरचित ही नहीं है। यह प्रक्षिप्त कांड है। जब लंकाकांड के अंत में कवि ने फलश्रुति वर्णन कर दिया, तो वह ग्रंथ पूर्ण हो गया। वहाँ तक ही कवि की कृति मानी जा सकती है। यदि उत्तरकांड उनका बनाया हुआ होता, तो वह लंकाकांड के अंत में फलश्रुति को निबद्ध न करके उत्तर में ही करते।

उत्तरकांड के प्रक्षिप्त मानने में दो कठिनाइयाँ आ हैं। एक तो यह कि वाल्मीकि-रामायण के बालकांड चतुर्थ सर्ग में लिखा है कि—

चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः।
तथा सर्गशतान् पञ्चषट्काण्डानि तथोत्तरम् ॥'

इससे दो बातें सिद्ध होती हैं। एक तो यह कि उत्त कांड भी श्रीवाल्मीकि का ही बनाया हुआ है, तो चौबीस सहस्र श्लोक रामायण में हैं। भूषण टीकाकार वाल्मीकि के श्लोकों की गणना की है। लंकाकांड पर्यंत की गणना में उन्होंने २१०१९ श्लोक लिखे हैं मैंने गुजराती प्रेस बम्बई की रामायण से गणना की तो लंकाकांडपर्यंत १९३८४ श्लोक होते हैं। भूषणकार गणना के अनुसार उत्तरकांड में ३२३४ श्लोक हैं। कु मिलाने पर भूषणकार के मत से वाल्मीकि में २४ श्लोक होते हैं। उत्तरकांड की श्लोक-गणना में नहीं सका। यदि २४ सहस्र ही श्लोक होने चाहिए, तो दो तिरपन श्लोक कैसे बढ़े और भूषणकार ने इस विचार क्यों नहीं किया, यह एक आश्चर्य की बात है संभव है, उनको इस २४ सहस्र की नियमित पर आस्था न हो।

मेरे मत में यह संख्या वाल्मीकिकृत नहीं है। कांड के चार सर्ग भी वाल्मीकि के नहीं हैं। चारों सर्गों में से ही संख्या की गणना मिलती है। यह संख्या वाल्मीकिकृत नहीं है, तो २४ सहस्र के को लेकर कितनी ही असम्बद्ध और अन्याय्य कथाओं अस्तित्व स्वीकार करना बड़ा भयंकर कार्य है। रामायण का आरंभ आदिकांड के पंचम सर्ग से है। पंचम सर्ग ही प्रथम सर्ग है। लंकाकांडपर्यंत रामायण है। इन छः कांडों में भी अनेक सर्ग हैं। अप्रक्षिप्त सर्गों में कितने ही श्लोक प्रक्षि जिनका संशोधन करना परम आवश्यक है।

मैं आदिकांड के चार सर्गों को वाल्मीकिकृत मानता हूँ। उसमें निम्न-लिखित युक्तियाँ हैं—

चार सर्ग तक जितनी कथा है, वह सब कुछ लव के द्वारा उपवर्णित है।

(१) नारद और वाल्मीकि का संवाद अन्य पुरुष की क्रियाओं द्वारा वर्णित है।

(२) इन चार सर्गों में जहाँ-तहाँ वाल्मीकि के लिये महात्मा और भगवान् आदि विशेषण दिए गए हैं, जैसा कोई कवि अपने लिये स्वयं नहीं कर सकता।

(३) लव और कुश ने जब अभी तक इस रामायण का गान भी नहीं किया है, तब यह कहना कि--

(४) 'मध्येसभं समीपस्थाविदं काव्यमगायताम्' आश्चर्यजनक है।

(५) लव और कुश कहते हैं कि यह रामायण वाल्मीकिजी ने बनाई है। तब 'रामायण बनाई है' कहने से रामायण की रचना तो लवकुश के पूर्व हुई है, यह सिद्ध है और वह रामचरित के श्लोक रामायण में रह सकते हैं, परंतु लव और कुश ने जो कुछ इस समय अपनी ओर से कहा है, वह वाल्मीकि को रचना कैसे हो सकती है और वह रामायण का अंग कैसे हो सकता है?

इनके अतिरिक्त भी अनेक हेतु दिए जा सकते हैं जिनसे यह सिद्ध हो जा सकता है कि आदिकांड के ४ सर्ग रामायण के अंग नहीं। जब यह रामायणांग नहीं और वाल्मीकि-विरचित नहीं, तब उसके चौबीस सहस्रवाली गणना पर भार नहीं दिया जा सकता। और तब यह कहना बहुत सुगम हो जाता है कि उत्तरकांड वाल्मीकि का नहीं है और इसलिये उसमें उपनिबद्ध सीताविवासन भी वाल्मीकिकृत नहीं है। अन्यत्र जहाँ-जहाँ लिखा है, उसका उत्तरदायित्व उनके लेखकों पर है। उसकी सत्यता का आधार लेखक की सत्यता पर ही हो सकता है।

इस विषय में मैं विशेष रूप से पुनः कभी लिखूँगा। इतना तो विचारार्थ लिखा है और इस विचार में भगवान् श्रीराम के जीवन में बताए गए अनेक दोषों में से एक दोष के ही निराकरण का मार्ग यहाँ प्रदर्शित किया है। इस पर यदि कोई विद्वान् अपना विचार प्रदर्शित करें, तो वह मुझे इतनी सूचना अवश्य करें कि उनका लेख किस पत्र के किस अंक में प्रकाशित है।

श्रीभगवदाचार्य ब्रह्मचारी

× × ×

दांपत्य-प्रेम की कुंजी ! बीसवीं सदी का आश्चर्य आविष्कार !!

संतान-वृद्धि-निग्रह-रसायन

भारत के प्रमुख नेताओं तथा सुसंचालित पत्रों ने देश की निर्धनता का उपाय अधिक बच्चों की पैदायश का रोकना ही बताया है। अतएव कृत्रिम किंतु अस्वाभाविक यंत्रों का प्रयोग अथवा दुःसाध्य ब्रह्मचर्यपरिपालन ये ही दो उपाय भी बताए हैं। परंतु पहला स्वास्थ्य और दांपत्य-प्रेम का नाशक और दूसरा एकांत दुःसाध्य अतएव असंभव है। इसी दुरूह सिद्धिको आयुर्वेद-पारंगत ने आविष्कार कर असाध्य को साध्य कर दिखाया है। पूर्वोक्त रसायन के प्रयोगसे न तो स्वास्थ्य को ही धक्का लगता है और न सहवास-सुख से ही वंचित होना पड़ता है। प्रत्युत स्त्री-पुरुषों में अपूर्व शक्तिका संचार एवं दांपत्य-प्रेम का पारावार उमड़ चलता है। तसदीक़ की कोई आवश्यकता नहीं। जो दंपति अविश्वासवश परीक्षा लेना चाहें, आवें। अन्यत्र मूल्य जमाकर परीक्षा कर सकते हैं। केवल एक दंपति के लिये उपर्युक्त १०) मात्र। डाक-व्यय पृथक्।

पीनोन्नतस्तनी सौभाग्य सुभगा

छोटी-छोटी अवस्था में ही शिथिल-यौवनसाम्राज्या युवतियों के लिये उनके पतियों का असमय वैराग्य यमयातना-तुल्य हो जाता है। पूर्वोक्त दोनों औषधें योनि-व्याधि को नष्ट, गुह्येंद्रिय का नव्य-संकोचन एवं शिथिल स्तनों को कंदुक-कठोर कर युवतियों को फिर से पूर्ण कामिनी और मानिनी बनाती हैं। दोनों का १०) मात्र, अलग ५) मात्र। डाक-व्यय पृथक्।

नोट:—औषध-मूल्य मनीआर्डर द्वारा पेशगी आने पर पोस्टेज आदि माफ़। कठिन-से-कठिन चिकित्सा एवं बड़ी-से-बड़ी औषधि-प्राप्ति का एक-मात्र पता— ३२

मैनेजर, आयुर्वेदभवन, हुसेनगंज, लखनऊ।

२. क्षयरोग में खुली हवा

इतिहास—अधिकांश लेखकों का कथन है कि सबसे पूर्व डा० ब्रीमर ने सन् १८५९ ई० में, अपनी स्वास्थ्यशाला में, क्षयोपचार में खुली हवा के महत्त्व का प्रतिपादन किया था। परंतु वास्तविक बात यह है कि इस विषय में उसके अनेक पूर्वज थे। सन् १८४० ई० में डा० बोडिंगटन ने अपने एक निबंध में क्षयरोगियों को बंद जगह में रखने का घोर विरोध किया था। क्षयोपचार में उस समय की प्राचीन औषधियों की सारता के विरुद्ध लिखते हुए उन्होंने पुष्ट भोजन और शुद्ध वायु के सेवन पर ज़ोर दिया था। उनके समकालीन चिकित्सकों ने उनका इतना घोर विरोध किया कि बेचारे को निरुत्साहित होकर अपनी स्वास्थ्यशाला को बालुकालय (Lunatic Asylum) में परिवर्तित कर देना पड़ा। कुछ दिनों के उपरांत जर्मनी में डा० ब्रीमर और अमेरिका में डा० ट्रूडो ने फिर इस प्रश्न को उठाया। इनका भी घोर विरोध हुआ। परंतु इस बार विरोधियों को सफलता प्राप्त नहीं हुई।

पश्चिमी देशों में खुली वायु के शुभ समाचार को रोगियों तक पहुँचाने के लिये अब प्रचारकों की आवश्यकता नहीं रही। अब तो क्षयोपचार का वह एक मुख्य और सर्वमान्य स्तंभ समझा जाता है। चिकित्सकों में अब केवल इस विषय पर मतभेद रह गया है कि शुद्ध वायु से कहाँ और किस प्रकार सबसे अधिक लाभ उठाया जा सकता है। कुछ लोग अपने रोगियों को ऐसे प्रदेशों में भेजते हैं, जहाँ की वायु में कोई क्षयनिवारक विशेष गुण बतलाया जाता है; कुछ लोग अपने रोगियों को स्वास्थ्यशालाओं में भेजते हैं, जहाँ जलवायु के अतिरिक्त इलाज की अन्य विशेष व्यवस्थाएँ भी मिल सकती हैं; और कुछ लोगों का यह दृढ़ विश्वास है कि यह सब सुविधाएँ रोगी के घर पर ही प्राप्त हो सकती हैं।

परंतु खेद है, भारतवर्ष में अभी तक इस विषय में बहुत कम जानकारी हुई है। यहाँ पर रोगी को निर्वात स्थान में बंद कर रखने की प्रथा अभी चली जा रही है।

खुली हवा का इलाज कहाँ मिल सकता है—वायूपचार का, चाहे वह किसी स्थान पर हो, अर्थ यह है कि क्षय-रोगी को दिनरात शुद्ध वायु का सेवन करना चाहिए। जहाँ तक संभव हो, रोगी को घर से बाहर रहना चाहिए और यदि घर ही में रहना पड़े, तो रोगी के कमरे में हवा के आने-जाने के लिये पर्याप्त स्थान होना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह बात देहात या किसी आरोग्यशाला में सबसे अच्छी तरह हो सकती है। परंतु शहर के अधिकांश रोगी बहुत दिनों के लिये अपने घर को नहीं छोड़ सकते, और न किसी देश में इतनी आरोग्यशालाएँ ही हैं, जहाँ सब रोगी जाकर इलाज करा सकें। भारतवर्ष में ऐसी संस्थाओं की इतनी कमी है कि कदाचित् उनमें प्रति सहस्र एक रोगी को भी स्थान न मिल सके।

शुद्ध वायु के लिये घर छोड़कर बाहर जाना इतना आवश्यक नहीं है, जितना लोग समझते हैं। साधारण घरों में खुली हवा का प्रबंध हो सकता है, और इससे उतना ही लाभ हो सकता है, जितना किसी संस्था-विशेष में जाने से। हाँ, यह अवश्य है कि बहुत-से शहरों की संकीर्ण गलियों के मकानों में, जहाँ सहन या तो होते ही नहीं और होते भी हैं तो बहुत-छोटे, खुली हवा का उचित प्रबंध करना कठिन है।

बड़े शहरों में क्षयी-परिवारों को नगर की निकटस्थ बस्तियों (Suberbs) में चला जाना चाहिए। इसमें अधिक व्यय भी नहीं होता, प्रत्युत शहर की अपेक्षा ऐसे स्थानों में मकानों का किराया कम होता है; दूसरे नगर के निकट रहने से रोगियों का कारोबार भी नहीं छूटता।

बहुधा रोगियों को अच्छी जलवायु के प्रदेशों में भेजने का आदेश दिया जाता है। परंतु हर एक रोगी ऐसे स्थानों में जाने के योग्य नहीं होता। कुछ रोगियों को तो ऐसे स्थानों में जाना निषिद्ध होता है। इसके विपरीत घर पर रहकर प्रत्येक रोगी का इलाज हो सकता है। सब रोगियों का, रोग के हर एक रूप और अवस्था में और हर प्रकार की जलवायु में, घर पर इलाज हो सकता है। परंतु सफलता के लिये विधिपूर्वक और चिकित्सक के निरीक्षण में उसके आदेशानुसार इलाज होना चाहिए।

निश्चल वायु के दोष—बंद जगहों की निश्चल वायु दूषित होती है। परंतु इसके दूषित होने का कारण

क्या है, इसका अभी तक पूरा ज्ञान नहीं हुआ है। वैज्ञानिकों के अन्वेषण से यह विदित होता है कि न कार्बन द्वैओषित (Carbon-di-oxide) की अधिकता और न आक्सिजन (Oxygen) की न्यूनता निश्चल वायु के हानिकारक होने का कारण है। दूषित-से-दूषित वायु में भी एक प्रतिशत से अधिक कार्बन द्वैओषित वाष्प नहीं पाई जाती। दूसरी ओर पहाड़ी प्रदेशों की उत्तम वायु में आक्सिजन (Oxygen) वाष्प इतनी कम होती है जितनी किसी बंद जगह में नहीं होती। अभी तक बंद जगह की वायु में कोई विषैले पदार्थ भी नहीं पाए गए हैं। आधुनिक खोज से विदित होता है कि निश्चल वायु के हानिकारक होने का कारण वायु की उष्णता और आर्द्रता होती हैं, जो बंद जगहों में रहनेवालों के शरीर से उत्पन्न होती हैं। इस संबंध में दो प्रयोग उल्लेखनीय हैं। एक यह कि कुछ मनुष्यों को लेकर किसी स्थान में बंद कर उस स्थान को गरम करने से उनको बड़ी बेचैनी होती है और यह बेचैनी नली द्वारा बाहर से शुद्ध वायु की श्वास लेने से भी दूर नहीं होती। दूसरा प्रयोग यह है कि इन मनुष्यों को, हवा के न बदलने पर भी, केवल उस जगह को ठंडा रखने से कोई बेचैनी नहीं होती।

न्यूयार्क (अमेरिका) रियासत के कमीशन की खोज से, जो वायु-संचार के संबंध में परीक्षा करने को नियत हुआ था, यह विदित होता है कि कमरे का ताप-परिमाण बढ़ने पर उस कमरे में रहनेवाले मनुष्यों का ताप और उनकी नाड़ी का वेग बढ़ जाता है। कमीशन की खोज डा० हिल् के इस कथन का भी समर्थन करती है कि किसी कमरे की वायु के अधिक गरम होने से रहनेवालों के श्वासमार्ग की रोगग्रहणशीलता बढ़ जाती है।

क्षय-रोग में वायु की निश्चलता से रोगी की भूख कम हो जाती है। इस संबंध में उपर्युक्त कमीशन ने जिन दो प्रकार की प्रयोगावलियों से काम लिया था, वे उल्लेखनीय हैं। एक प्रयोगावली में कुछ रोगियों को निश्चल वायु में और कुछ को खुली शुद्ध वायु में रखकर देखा कि वे कितना खाना खाते हैं। ज्ञात हुआ कि निश्चल वायु की अपेक्षा खुली वायु में रखने पर रोगी १३ प्रतिशत अधिक खाना खाते हैं। दूसरी प्रयोगावली से शीत-ऋतु में काम लिया गया। उसमें भी यही अनुभव हुआ कि शीत-ऋतु में भी निश्चल वायु में रहने की अपेक्षा खुली हुई शुद्ध वायु में रहने से रोगी को भूख अधिक लगती है। निश्चल वायु में रहने से रोगी को बेचैनी प्रतीत होती है, आलस्य बढ़ता है और भूख कम हो जाती है। खुली हवा के सेवन में सब दोष दूर हो जाते हैं।

खुली वायु से इलाज की विधि—यदि रोगी का मकान बड़ा और खुला हुआ हो और उसके रहने के लिये हवादार कमरा हो और यदि मकान किसी तंग गली और घनी बस्ती के बीच में न हो, तो रोगी के घर पर रहने में कोई हानि नहीं। परंतु यदि वह शहर की मैली-कुचैली तंग गली के किसी बंद मकान में रहता हो, तो उसको शहर के खुले हुए साफ़-सुथरे भाग में हटा देना चाहिए। यदि उसके तथा उसके घरवालों के व्यवसाय को अधिक हानि न पहुँचे, तो उसको शहर के निकटस्थ किसी बस्ती में हटाना अधिक अच्छा है।

आजकल शहर में क्षय-रोगी के अपने घर पर खुली हवा में रहने के लिये, शयनालय, डेरे, खिड़की में लगाने के डेरे इत्यादि अनेक प्रकार की वस्तुओं का आविष्कार हुआ है। परंतु साधारण रोगियों के लिये प्रायः ऐसी मूल्यवान् वस्तुएँ उपलब्ध नहीं होतीं। शहरों के बीच में घनी बस्तियों में इन डेरे इत्यादि का लगाना कई कारणों से कठिन भी होता है। यदि रोगी का कमरा खुला या हवादार हो, तो इन कृत्रिम साधनों की आवश्यकता नहीं। एक बात अवश्य होनी चाहिए। वह यह कि रोगी का कमरा बड़ा हो, जिसका विस्तार कम-से-कम ३००० से ३५०० घनफीट होना चाहिए। परंतु यह स्मरण रखना चाहिए कि कमरे का विस्तृत होना व्यर्थ है, यदि उसमें हवा आने-जाने के लिये पर्याप्त साधन न हो।

क्षय-रोगी के कमरे की खिड़की बाहर सड़क की ओर या लंबे-चौड़े सहन की ओर होनी चाहिए और हर समय खुली रहनी चाहिए। तंग गलियों की ओर खिड़की खुलने से कोई लाभ नहीं। नीचे की मंज़िल की अपेक्षा ऊपर की मंज़िल के कमरे रोगी के लिये अधिक उपयोगी होते हैं। मकान के पास यदि अधिक वृक्षादि हों, जिनसे कमरे में वायु और प्रकाश के पहुँचने में रुकावट हो, तो उनको कटवा देना चाहिए। कमरे की खिड़कियाँ ऐसी जगह पर होनी चाहिए, जिनसे सूर्य का प्रकाश भली भाँति कमरे के अंदर जा सके।

कमरे की दीवारें सफ़ेदा से पुती हुई होनी चाहिए। उन पर काग़ज़ इत्यादि न चिपका होना चाहिए। रोगी के कमरे की दीवारों से पर्दे, चित्र इत्यादि सजावट के तथा और अनावश्यक सब सामान हटा देना चाहिए। कमरे के फ़र्श से दरी इत्यादि भी हटा देना चाहिए, जिससे कमरा भली भाँति साफ़ किया जा सके।

ज्वररहित रोगियों को, जिनको घर से बाहर टहलने इत्यादि की आज्ञा है, जितना कम हो सके मकान के अंदर रहना चाहिए। प्रातःकाल कुछ खा-पीकर रोगी को शहर से बाहर किसी पार्क इत्यादि में जाकर जितना अधिक हो सके, समय बिताना चाहिए।

ऋतु का, रोगी के घर से बाहर रहने में, कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जाड़े या गरमी सभी ऋतु में रोगी का बाहर रहना उपयोगी होता है। केवल जब बहुत सरदी हो, पानी बरसता हो, गरमी की धूप तेज़ हो और लू चलती हो, तब रोगी को बाहर न निकलना चाहिए।

रोगी का शयनागार—क्षय-रोगी को जहाँ तक हो सके, खुली हुई हवादार जगह में सोना चाहिए। शयनागार के द्वार तथा सब खिड़कियाँ खुली रहनी चाहिए। मकान की छत के ऊपर यदि कोई छप्पर हो, तो यह बहुत अच्छा है। जाड़े के दिनों में भी द्वार तथा खिड़कियाँ खुली रहनी चाहिए। यदि सरदी अधिक हो, तो ओढ़ने के कपड़े बढ़ा लेने चाहिए। क्षय-रोगी को सदा मुँह खोलकर सोना चाहिए। यदि ठंढ लगे, तो उससे बचने के लिये ऊनी कंटोप पहनने में कोई हानि नहीं। गरमी के दिनों में खुली हुई छत पर सोना श्रेष्ठ है। क्षय रोगी के लिये एक आदर्श शयनालय का चित्र यहाँ दिया जाता है।

क्षय-रोगी को थियेटर, सिनेमा, मेला तथा अन्य भीड़-भाड़ की जगहों में न जाना चाहिए। यह देखा गया है कि जिन रोगियों की दशा अच्छी होती है, किसी भीड़ के स्थान पर जाने से उनमें भी रोग-प्रत्यागमन हो जाता है।

रोगियों का खुली हवा में इलाज—ज्वर-ग्रसित रोगियों को ज्वर के छूटने के समय तक चारपाई पर लेटकर आराम करना चाहिए। इसलिये रोगी का कमरा ऐसा होना चाहिए, जिसकी खिड़कियाँ बाहर की ओर खुलती हों, जिससे उसको न केवल स्वच्छ वायु ही मिले, परंतु साथ-ही-साथ खिड़कियों से बाहर के सब दृश्य भी दिखाई पड़ें। ज्वरवाले रोगियों को खुली हवा में रहने से अत्यंत लाभ होता है। उनकी शारीरिक अवस्था सुधरने लगती है, उनको यह प्रतीत होने लगता है कि वे अच्छे हो रहे हैं और निराशा के स्थान पर आशा का संचार होने लगता है। उसकी शक्ति बढ़ने लगती है, खाने में रुचि होकर पाचनशक्ति की वृद्धि होती है और कष्टदायक खाँसी कम होने लगती है।

भारतवर्ष में अधिकांश वैद्य और जनता का विश्वास है कि ज्वर-ग्रसित रोगियों को निर्वात स्थान में रखना चाहिए। यह एक बड़ी भूल है। क्षय-रोग में शुद्ध वायु अमृत का काम करती है।

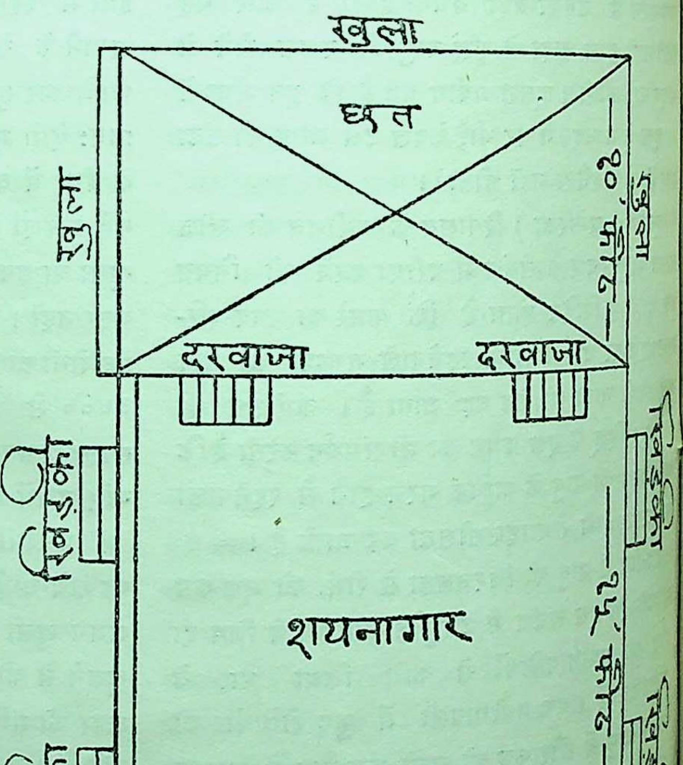

खुली हवा का दुरुपयोग—आजकल खुली हवा के समर्थकों के अत्यधिक जोश के कारण कभी-कभी उस का दुरुपयोग भी होता है। सभी क्षय-रोगी बारहों मास खुली हवा में रहने योग्य नहीं होते। बहुत-से स्वस्थ मनुष्य ऐसे होते हैं, जो शारीरिक संघटन तथा स्वभाव से शीत वायु को नहीं सहन कर सकते। सरदी लगने से इनको हानि होती है और ज़ुकाम, पार्श्वशूल इत्यादि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। कितने ही क्षय-रोगियों को सर्दी के कारण नींद ठीक नहीं आती। इसलिये रोगी की सामर्थ्य पर विचार करते हुए खुली जगह में सोने का आदेश करना चाहिए। रक्तहीन, जीर्ण और वृद्ध क्षय-रोगी बहुधा ठण्ढ को नहीं सहन कर सकते।

क्षय-रोगी का कमरा खुला अवश्य रखना चाहिए, परंतु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हवा के झोंके सीधे उसके शरीर को स्पर्श न करें। कमरे से बाहर खुली और ठंढी हवा में जाते समय रोगी को गरम कपड़े पहनना चाहिए। जब सरदी अधिक हो और हवा तेज़ चलती हो, तो रोगी को खुली सवारियों में बैठकर बाहर न घूमना चाहिए।

खुली वायु के इलाज का फल—खुली वायु के इलाज का परिणाम कई बातों पर विशेषकर रोग की अवस्था और तीव्रता पर निर्भर होता है। उग्र और वर्द्धमान क्षय में अन्य इलाजों की भाँति शुद्ध वायु से भी किसी विशेष लाभ की आशा नहीं की जा सकती। अल्पोग्र क्षय में रोग का वेग प्रायः कम हो जाता है। खुली वायु के इलाज का सर्वोत्तम फल पुरातन क्षय की प्रारंभिक अवस्था में स्पष्ट दिखाई देता है। अधिकांश रोगियों को इससे निःसंदेह लाभ होता है। दस-पंद्रह दिन के अंदर ही रोगी की अवस्था बिलकुल बदल जाती है और क्रमशः दिनोंदिन सुधरने लगती है। रोगी की भूख बढ़ जाती है, खाना आसानी से पचने लगता है, ज्वर कम हो जाता है और रात को पसीना, अनिद्रा और खाँसी, सब कम हो जाते हैं। प्रायः यह देखा गया है कि जो ज्वर अन्य प्रकार के इलाजों से महीनों तक नहीं गया, वह खुली हवा में थोड़े दिन रहने से ही छूट गया है। बहुत-से रोगी स्वयं यह अनुभव करने लगते हैं कि कमरे की खिड़कियाँ खुली रखने से उनको लाभ होता है और नींद अच्छी आती है। खिड़कियाँ बंद रखने पर खाँसी, रात में पसीना, अनिद्रा तथा आलस्य होने लगता है।

रोग-संप्राप्त अवस्था में भी खुली वायु से लाभ होता है। रोगी का कष्ट दूर होकर आशा का संचार होने लगता है। रोग की चरम अवस्था में रोगी का कष्ट कम होकर लाभ प्रतीत होने लगता है तथा उसके जीवन के शेष दिन कम कष्टदायक हो जाते हैं।

खुली वायु का निषेध—बहुत-से रोगी ऐसे होते हैं, जो जाड़ा या खुली हवा को नहीं सहन कर सकते। जिन रोगियों को क्षय के साथ कास रोग भी होता है, उनको खुली हवा का इलाज अनुकूल नहीं पड़ता। इसी प्रकार उन रोगियों को भी ठंढी हवा अनुकूल नहीं होती, जिनके जोड़ों में ठंढ से शूल होने लगता है और जो अत्यंत जीर्ण हो जाते हैं; क्योंकि रक्त-संचालन के मंद होने के कारण ठंढी वायु से हाथ-पैर ठंढे हो जाते हैं, होठ और नख नीले पड़ जाते हैं और खाँसी तथा श्वास बढ़ जाती है। रक्तहीन, वृद्ध और जीर्ण रोगी अधिक शीत को नहीं सहन कर सकते।

इन सबके लिये भी खिड़की बंद करने की अपेक्षा कमरे को गरम करने और खिड़कियाँ खुली रखने से अधिक लाभ होता है। रोगी के कमरे के द्वार और खिड़कियाँ कभी न बंद करनी चाहिए; क्योंकि उससे रोगी का दम घुटने लगता है और कष्ट होता है।

शंकरलाल गुप्त

संगीत और विनोद

[शब्दकार तथा स्वरकार—श्रीयुत गौरीशंकर वर्मा आचार्य]

राग पीलू—त्रिताल

उमड़ि-घुमड़ि घन छाए देखु सखि सावन मो मन भावे।
रिमझिम-रिमझिम बूँदें टपकें,
हहर-हहरकर पुरवा झटके।
मतवारी पिक सुमधुर कुहके।
विरहागिन दुख पाय मेरो मन प्रियतम छबि को ध्यावे।
ठुमकि-ठुमकिकर मोरवा नाचे,
पपिहा पिय-पिय धुनि मन लावे।
प्रिय रूसे कोउ जाय मनाओ,
विरहागिन दुख पाय मेरो मन प्रियतम छबि को ध्यावे।

स्थायी

०				१				×				३			
स	प	प	प	प	प	ध	पम	मप	ग	ग	स	ग	म	प	मग
उ	म	ड़ि	घु	म	ड़ि	घ	न	छा	ऽ	एं	दे	ऽ	खु	स	खि
ग	म	ध	पम	म ग	रे	स	रे	न̣	रे	स	—	प̣	स	प̣	स
सा	ऽ	व	न	मो	ऽ	म	न	भा	ऽ	वे	ऽ	हाँ	ऽ	हाँ	ऽ

अंतरा

रे	ग	रे	मप	मग	गर	रे	स	रे	म	रे	म	रे	मपध	ध (प)	प
रि	म	झि	म	रि	म	झि	म	बूँ	ऽ	दें	ऽ	ट	प	कें	ऽ
सं न	न	न	न	सं नध	सं	ध	ध	नसं	रं	संन	नध	ध	सनं	प	—
ह	ह	र	ह	ह	र	क	र	पु	रु	वा	ऽ	झ	ट	के	ऽ
सं	सं	सं	—	सं	—	रें	सं	सं न	ध	सं नि	ध	न	ध	सं न	धप
म	त	वा	ऽ	री	ऽ	पि	क	सु	म	धु	र	कु	हु	के	ऽ
प	प	प	—	प	प	ध	पम	मप	ग	ग	स	ग	म	प	मप
वि	र	हा	ऽ	गि	न	दु	ख	पा	ऽ	य	मे	रो	ऽ	म	न
गम	पध	प	म	म ग	ग	रे	स	न̣	रे	स	—	प̣	स	प̣	स
प्रि	य	त	म	छ	बि	को	ऽ	ध्या	ऽ	वे	ऽ	हाँ	ऽ	हाँ	ऽ

दूसरा अंतरा भी इसी तरह बजेगा।

संकेत-परिचय

१—जिस स्वर के नीचे बिंदु हो, उसे मंद्रसप्तक का समझिए । जैसे—प ।

२—जिस स्वर के ऊपर बिंदु हो, उसे तारसप्तक का समझिए । जैसे—रें, सं ।

३—जिस पर कोई बिंदु न हो, उसे मध्यसप्तक का समझिए । जैसे—ग, स ।

४—जिस स्वर के नीचे पड़ी लकीर हो, उसे कोमल समझिए । जैसे ध ।

५—‿ यह चिह्न जिस स्वर के नीचे हो, उसमें जितने स्वर हों, उन्हें एक मात्रा में समझना चाहिए । जैसे—मप, मपध ।

६—जिस स्वर के किनारे ऊपर को कोई स्वर हो, उसे कण (स्पर्श) समझिए । जैसे—सं न ।

७—जिस स्वर के दोनों ओर ( ) ऐसा कोष्ठक हो, वहाँ उस स्वर के साथ आगे का स्वर तथा पिछला स्वर लगाकर बजाइए । जैसे—(प) प ध म प ।

८—× यह चिह्न सम का तथा ० यह ख़ाली का और जिन पर अंक हैं, वे ताली के चिह्न हैं ।

× × ×

२. नवीन सभ्यता

१

लोल लटैं लहराती ललाट पै दूरि भयो सबै चंदन टीको ;
स्वच्छ सरोज-से आनन को लखि, लाजत है मुखहू युवती को ।
राजत है कर मैं कछू अद्भुत, टोकरी को भ्रम होत श्रमी को ;
लाज-समाज भयो बिन काज, लला पहिर्यो जबै नेकर नीको ।

२

चीकनी चारु सुगंध सनी, पटियान मैं माँग बनी सुख दैनी ;
फ़ैशनी फ़ैसन सों भ्रम होत, युवा यह है किधौं पंकजनैनी ।
बिस्कुट केक शराब सुगंधित, चाखतै होत महामति पैनी ;
हाल निहाल करै सबको कछू, चाल निरालिए जेंटिलमैनी ।

३

सूरता तो सरमानी तभी जब, सुंदर सीस मैं माँग बनाई ;
दासता की जयमाल गले बिच, सोहती नीकी नई नेकटाई ।
लाज समाज की नेक रही नहीं, नेकर ने सब धोय बहाई ;
का कहिए बिधि को जिनने हमें, मूँछ दई नहीं पूँछ लगाई ।

महादेवप्रसाद अग्निहोत्री

× × ×

३. 'तीन' की व्यापक शक्ति

"त्यागभूमि" के तृतीय वर्ष के चतुर्थ अंक में "अंक दो"-शीर्षक लेख में महोदय श्रीरामचंद्र गौड़जी ने "दो" का महत्त्व दिखलाने का जो प्रयत्न किया है और प्रमाणार्थ जो उदाहरण उद्धृत किए हैं, उनको पढ़कर मुझे अत्यंत दुःख हुआ है । मैं यह स्पष्ट कह सकता हूँ कि उक्त महोदय "तीन" के पक्ष में घोर अन्याय करके जनता में भ्रम उत्पन्न कर रहे हैं । इसलिये मैं यह अपना परम कर्तव्य समझता हूँ कि जनता के सामने निष्पक्षपात बुद्धि से प्रमाणों-सहित यह सिद्ध करके दिखा दूँ कि "तीन" किस प्रकार समस्त संसार में व्यापक है, "तीन" का जिसको सौभाग्य से योग्य मिला किंवा "तीन" का जिसने आश्रय लिया है, उसकी संसार में कितनी प्रतिष्ठा है । परंतु इसके पूर्व गौड़जी के प्रमाणों का खंडन करना अनुचित न होगा । इसलिये मैं गौड़जी से प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे इस धृष्टता के लिये क्षमा-प्रदान करेंगे ।

महोदय ने अपने लेख का प्रारंभ "सच देखा जाय तो 'दो' से ही संसार है" इस वाक्य से करके मानो अपशकुन दिखाया है । कारण, स्थूल दृष्टि से देखने से ही सिद्ध होता है कि संसार "तीन" से बना है । स्पष्टीकरण के लिये "संसार" के भाग करना आवश्यक है । अक्षर-विचार से "संसार" के भाग "सं, सा, र" इस प्रकार होते हैं । अब बतलाइए, कितने भाग हुए ? अर्थात् "तीन", ऐसा आपको मानना पड़ेगा । इन्हीं "तीन" भागों से "संसार" बना है, यह निर्विवाद सिद्ध हुआ । अब सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें । सूक्ष्म दृष्टि का अर्थ ज्ञान भी हो सकता है । यह ज्ञान वेदों से मिलता है, इसीलिये वेदों का भी अर्थ ज्ञान बतलाया जाता है । इन वेदों में सर्वसंसार ॐ से उत्पन्न हुआ, ॐ में स्थित है और ॐ में ही लय होगा—ऐसा वर्णन मिलता है । अब मैं यह सिद्ध करके दिखाने जा रहा हूँ कि यह "तीन" से बना है । यह सिद्ध हो जाने के पश्चात् रेखागणित की पद्धति से यह भी स्वयंसिद्ध हो जायगा कि समस्त ब्रह्मांड 'तीन' से बना है, न कि "दो" से, जैसा कि उक्त महोदय ने लिखा है । ॐ में "अ उ म्" इनका समावेश है । और ये "तीन" ही हैं ।

लेखक के दूसरे प्रमाण का खंडन भी ऐसा ही हो जाता है। आप कहते हैं कि संसार दो से है। उदाहरणार्थ पृथ्वी के दो ध्रुव होते हैं। ध्रुव का नाम लेने से भूमध्य-रेखा का, जिसके दोनों अंतिम बिंदु की ध्रुव-ऐसी संज्ञा है, अर्थ प्रतिध्वनित होता है। अर्थात् एक भूमध्यरेखा और उसके दो ध्रुव, इस प्रकार "तीन" हुए।

तीसरा विधान स्त्री-पुरुष का दिया है। परंतु जब तक उनमें प्रेम का बंधन नहीं है, तब तक कुछ नहीं, अर्थात् तीन पदार्थ हुए। दूसरी बात, संसार में स्त्री-पुरुष के अतिरिक्त अर्धनारी नटेश्वर (हिजड़े) भी होते हैं। संसार में स्त्री और पुरुष ही होते, तो नपुंसकलिंग की क्या आवश्यकता थी।

दिमाग़ को तरवतर रखने तथा उसे सफलीभूत बनाने के लिये आपने कोई उपाय किया है!
किया हो, और उसमें असफलता प्राप्त हुई हो, तो आपको कोई दूसरा उपाय सूझा है ?
न सूझा हो तो ध्यान में रखिए,

KAMINIA
OIL
for
HAIR

कि,
दिमाग़ को शान्ति देना,
आवश्यकतानुसार बालों को ख़ूराक पहुँचाना,
बालों को जीवनतत्त्व प्रदान करना,
अपने दिमाग़ को ताज़ा तथा सफलीभूत बनाना,
बालों को लम्बा और चमकदार रेशम-तुल्य बनाना
हो, तो

कामिनिया ऑइल (रजिस्टर्ड)
इस्तेमाल कीजिए

आजकल की वर्तमान स्थिति में अनेकों प्रकार के दूसरे-दूसरे नाम के तेल निकल रहे हैं, जिनके उपयोग से आपको तेलों के प्रति श्रद्धा जाती रहती है, परन्तु यहाँ तो लाखों व्यक्तियाँ इसकी प्रशंसा करके गारंटी देते हैं

कि,
कामिनिया ऑईल ही बालों का सर्वस्व है। हरएक मंगलमय त्योहारों के अरुणोदय में अपने केश-कलापों को कामिनिया ऑइल से सँवारिए। क़ीमत प्रति शीशी १)

प्रत्येक शहर तथा गाँव में प्रसिद्ध दूकानदार से मिल सकता है—बाहर से मँगाने में वी. पी. ख़र्च ।=) पृथक् पड़ता है
३ शीशीका २॥=) पो० ख़र्च ॥।) आना पृथक्। आध आने के टिकट आने पर नमूना शी० मुफ़्त भेजा जाता है।

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)
रुमाल पर कुछ बूँद छिड़क देने से फुलवारी की तरह ख़ुशबू पसर जाती है। आज ही १ शीशी मँगाकर आज़माइश कर लीजिए।
मूल्य ½ औंस प्रति शी० २) ¼ औंस १।) रु०
,, १ ड्राम ,, ,, ॥।) डाक-व्यय पृथक्
दो आने के टिकट आने पर नमूना शीशी मुफ़्त भेजी जाती है।
सोल एजेंट— २०
दी ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी २८५, जुमा मसजिद मार्केट, बंबई नं० २

एक प्रमाण आपने ताली का दिया, परंतु मेरी समझ में यह नहीं आता कि बिना शब्द (आवाज़) के ताली कैसे बजाई जाती है। कोई महाशय यदि इस प्रकार ताली बजाकर दिखला दें, तो मैं इस प्रमाण को स्वीकार कर सकता हूँ। अन्यथा मैं यही कहूँगा कि ताली कहने से दो हाथ और एक शब्द इन "तीन" का बोध होता है।

आगे चलकर आपने गुरु-शिष्य का उदाहरण दिया है। यहाँ फिर मैं यह कहूँगा कि गुरु-शिष्य का शब्द उच्चारण करते ही ज्ञान का अर्थ प्रतिध्वनित होता है। बिना ज्ञान प्राप्त किए या दिए गुरु-शिष्य का संबंध हो ही नहीं सकता।

महोदय ने यह लिखा है कि यदि मनुष्य वैद्य और डाक्टरों का आवागमन अपने घर न होने देना चाहता है, तो उसको 'दो' बातें करनी चाहिए। पहली बात, भोजन के पश्चात् लघुशंका और दूसरी बात बाईं करवट सोना। परंतु मेरे शास्त्र में इन दो बातों के अतिरिक्त तीसरा काम वैद्यकशास्त्र-सम्मत यह है कि भोजन के पश्चात् 'शतपदी'—(सौ क़दम चलना) करना चाहिए।

स्थलाभावात् मैं अधिक नहीं लिख सकता, परंतु पाठक समझ सकते हैं कि जैसी गति इन प्रमाणों की हुई, वैसी इतर प्रमाणों की भी हो जायगी। कारण, जहाँ प्रमाणों की बुनियाद—आधार—कमज़ोर है, वहाँ प्रमाण कैसे सुदृढ़ हो सकते हैं।

अब "तीन" ने किस तरह ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर लिया है, "तीन" की संगत होने से, वस्तुमात्र को संसार में किस तरह उच्च स्थान मिला है, इस ओर आपका ध्यान आकर्षित करते हैं।

१. संसार की उत्पत्ति "तीन" से है जैसा ऊपर बताया है।

२. देवताओं में प्रमुख देवता तीन हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश।

३. लोक तीन—स्वर्ग, मृत्यु, पाताल।

४. गुण तीन—रज, तम, सत्।

५. काल तीन—भूत, वर्तमान, भविष्य।

६. लिंग तीन—स्त्रीलिंग, पुलिंग, नपुंसकलिंग।

७. अवस्था तीन—बाल्य, तारुण्य, जरा।

८. नाड़ी तीन—आदि, मध्य, अंत्य।

९. दशा तीन—उत्पत्ति, स्थिति, लय।

इत्यादि।

तीन अक्षरवाले शब्द भी श्रेष्ठ समझे जाते हैं। देखिए—

१०. देशों में सर्वोत्तम देश भारत।

११. तीर्थों में सबसे बड़ा तीर्थ प्रयाग।

१२. सुंदरता में सबसे बड़ा शहर पैरिस।

१३. गांधी बाबा "तिलक" महाराज को अपना गुरु मानते हैं "तिलक" में भी तीन अक्षर हैं।

१४. सरोवर में सबसे बड़ा सरोवर मानस।

१५. मंत्रों में सबसे बड़ा मंत्र गायत्री।

१६. वर्णों में सबसे बड़ा ब्राह्मण—तीन अक्षर।

१७. शरीर में सबसे बड़ा मस्तक—तीन अक्षर।

१८. यज्ञोपवीत में तीन वेष्टण होते हैं।

१९. देवताओं की संख्या ३३ करोड़ बतलाई जाती है। इस संख्या में भी तीन का महत्त्व दर्शाया है।

२०. चूल्हा भी तीन पत्थरों का बनाया जाता है।

साधारण बात तो यह है कि "दो" "तीन' से बड़ा हो ही नहीं सकता, चाहे आप रूल आफ़ थ्री (त्रैराशिक) से देखिए अथवा रेखागणित से।

चलते-चलते मैं गौड़जी से पुनः क्षमा-याचना करूँगा कि मैंने यह लेख केवल आत्मीय भाव से विनोदार्थ लिखा है। इसलिये मित्रभाव से किए मेरे इन आक्षेपों का विषाद न मानिए, कारण मैं न "तीन" में हूँ न "१३" में।

लक्ष्मण-बालकृष्ण सर्वेंट

सुमन-संचय

१. रूप !

रूप !

कवियों की कविता ने विश्व की तमाम मधुरिमा तुम्हारे वर्णन में खपा डाली । मैं अब तुम्हें क्या कहूँ ?

हलाहल ? पर तुम अमृत के समान मीठे हो । तुम्हें पाने के लिये संसार आत्मोत्सर्ग कर देने के अरमान मसोसे बैठा है ।

अमृत ? पर तुम ज़हर की तरह तेज़, ज़हर की ही तरह अचूक और घातक हो । तुमसे बचे रहने के लिये संसार हाथ जोड़े प्रार्थना करता रहता है ।

लेकिन फिर भी तुम्हारी—ज़हर की ? अमृत की ?—एक बूँद लाली चख सकने के लिये कौन क्या न कर डालेगा ? तुमने अपनी मस्ती के ज़हर में किस जादू से बसे हुए अमृत की मिश्री घोल रक्खी है ?

वज्र–संहननी विश्व–विजेताओं की सुभटता तुम्हारी प्रखरता को न सँभाल सकी, वज्र–मनस्वी तापसियों की तपस्या तुम्हारी मोहकता में पिघलकर बह गई । पर स्वप्न-वशा षोडशी के रसभरे, आकुल अधर-पल्लवों पर तुम सदा खेलते रहते हो ! उसकी लता-सरीखी मंजुल देह पर, और लता-सरीखी मंजुल भावनाओं से बुने हुए उसके मन पर अपनी भीषणता और जलन को लेकर जा उतरने में क्या तुम्हें टुक दया नहीं आती ? वह विमुग्धा, अपरिचिता, तुम्हें नहीं जानती—नहीं चाहती ? क्या इसी अपराध में सारे संसार की दृष्टि की जलन उस पर टूट पड़ने देना चाहते हो ? हे रूप, तुम्हारी यह नृशंसता कैसी ?

रूप, तुम क्या हो ? तत्वज्ञता की पकड़ में तुम नहीं आ पाते । उससे आँखमिचौनी खेलकर तुम उसे थका डालते हो, और अपने रस की जहाँ-तहाँ पड़ी हुई दो-एक बूँदों में ही अपनी हविस का स्वाद ले लेने देते हो। विज्ञान के विश्लेषण में तुम बाल की खाल की न-जाने किस परत में विलीन हो जाते हो । विज्ञान के घेरे की सूक्ष्मता के अनंत सूक्ष्म प्रदेश में जा रमते हो । विज्ञान को तुम खिझा डालते हो । तुम क्या हो ?—भीतर आत्मा की अनंत सुंदरता की विभूति का प्रतिबिम्ब हो, या बाहर परमात्मा-विकास की विभूति की एक झलक हो ! वस्तु में हो, या आत्मा में हो ? दृश्य में हो, या द्रष्टा में हो ?—या दृष्टि में हो ? कहाँ हो ?—तुम क्या हो !

ओह, तुम्हारा आकर्षण बड़ा दारुण है—अनिवार्य है । दिखला तो ऐसा है, मानो तुम स्वयं खिंच जाना चाहते हो ! खिंचने की चाह रखते हो, जभी शायद खिंच पाते हो ।......तुम क्या चाहते हो ?—उत्सर्ग, या उत्सर्ग हो जाना ? शायद दोनों ।

......और तुम लुक-छिपकर क्यों प्रकट होते हो, और प्रकट होते-होते छिपने का स्वाँग क्यों भरते हो ! बताओ न, तुम क्या चाहते हो ? प्रकाश में तपे रहना या अंधकार में गड़ जाना ?...या झिलमिलाती अँधेरी में से चमकते रहना ? तुम्हारा भेद क्या है ?...तुम क्या ढूँढ़-से रहे हो ?—अपने अधिष्ठान का आधार या अपनी लिप्साओं का आखेट ? सुकोमल आलिंगन के लिये नर्म-नर्म प्रेममयिता या मसककर चूर्ण कर डालने के लिये वज्रमयी लौहमूर्ति ?...या तुम केवल मुँह छिपा लेने के लिये एक ओट की खोज में हो !...तुम्हारे शरीर में से यह जो चाह की महक फूट रही है—सो क्या है ?

और यह तुम काँप क्यों रहे हो ? तुम्हारा हास देखो हवा की लहरों के साथ हिलोरें ले रहा है। तुम्हारे लावण्य में रह-रहकर कंपन हो आता है। शरीर तुम्हारा

कंटकित हो रहा है—रोमांच कैसे खड़े हैं! यह क्यों? अपने वशवर्ती के आलिंगन की आशा के उद्वेग में, या उसे पीस डालने की उद्दाम तृप्ति की कामना के आवेश में?...क्या तुमने ठानी है उस दीर्घ तापस के कठोर शुष्क तपस्या के सूखे प्रवाह में अपने रस के मद्य का सोत बहाकर धन्य होंगे, या उस गाँव की गँवई भोली किशोरिका को अपने प्रणय में फाँसकर नष्ट कर अपनी कसक मिटाओगे? मधुर लावण्य की मूर्ति, निष्ठुरता का यह खिलवाड़ कैसा?

पर दीनों पर अनुग्रह रखना, अपेक्षा रखना, बाबा! तुम्हारा वर्णन सुनता हूँ, नशे में मस्त हो उठता हूँ। तुम्हें देख पाऊँगा—क्या कुछ न कर गुज़रूँगा?...ना भाई, मैं दीन हूँ। मुझ पर उपेक्षा ही रखना।...जी न मानेगा, मनाऊँगा; मचलेगा, पर मनाऊँगा। बहुत हुआ तो अब-तब झीनी चादर के आवरण से, रस नहीं, तेरा ज़रा—बिलकुल ज़रा—रूप दिखाकर, फुसलाकर मनाऊँगा। फिर भी मचल बाक़ी रही हो, तो?—तो क्या करूँगा? भाई रूप! मैं नहीं जानता। मैं तो खो जाऊँगा, खो दूँगा।

जैनेन्द्रकुमार

× × ×

२. माँझी के प्रति—

माँझी अब क्या देरी है;
खोल-खोल जीवन - नैया
यह छोटी-सी जो मेरी है।
दिन-भर दुनिया को बेकल कर;
देखो गर्वभरा यह दिनकर।
अब लज्जा से मुख अवनत कर;
डूब रहा है अस्ताचल पर।
मिटता जाता है प्रकाश सब
घिरती घनी अँधेरी है।
माँझी अब क्या०।
अंधकार बढ़ता आता है;
मुझसे नहीं रहा जाता है।
मेरा धैर्य बहा जाता है;
तू बैठा मलार गाता है।
कहाँ रहूँगा अब जब सबने
मुझसे आँखें फेरी हैं।
माँझी अब क्या०।
ओ माँझी यह खेल भुला दे;
नज़र ज़रा इस ओर फिरा दे।
यह नैया उस पार लगा दे;
मुझ पर इतनी दया दिखा दे।
कैसा निठुर हुआ है तू यह
कैसी लीला तेरी है।
माँझी अब क्या०।

ज्वालाप्रसाद मिश्र

× × ×

३. चंद्र-कलंक

प्रकृति के भंडार में कुछ ऐसे पदार्थ—विषय हैं कि जिनके चित्रण में, अनेक सिद्धहस्त कवियों ने अपनी रचना-चातुरी प्रदर्शित की है, परंतु वे आज भी नवीन ही बने हुए हैं और भविष्य के कवियों को भी उन पर रचना करने का उतना ही मैदान है, जितना कि किसी पूर्ववर्ती कवि को था।

ऐसे विषयों में 'चंद्र-कलंक' का नाम भी उल्लेखनीय है। इस पर अनेक लब्ध-प्रतिष्ठ कवियों ने अपनी-अपनी सूझ-बूझ के अनुसार रचनाएँ की हैं। उनमें से माधुरी के पाठकों को कुछ का आस्वादन कराना ही इस छोटे-से लेख का अभिप्राय है।

नवरत्न-शिरोमणि, महाकवि श्रीतुलसीदासजी ने अपने अमर ग्रंथ 'रामचरित-मानस' (लंकाकांड) में भगवान् रामचंद्रजी के द्वारा 'चंद्र-कलंक' के विषय में प्रश्न किया है—

कह प्रभु शशि महँ मेचकताई। कहहु कहा निज-निज मति भाई॥

इसके उत्तर में सुग्रीव आदि ने अपना-अपना अनुमान प्रकट किया है। भगवान् राम ने इस विष की श्यामता और भक्तशिरोमणि श्रीहनुमानजी ने चंद्र-हृदय में बसी हुई राममूर्ति का प्रतिबिम्ब कहा है।

देखिए वर्णनशैली कितनी हृदयहारिणी है—

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई।
शशि महँ प्रकट भूमि कै छाई ॥ १ ॥
मारेउ राहु शशिहि कह कोई।
उर महँ परी श्यामता सोई ॥ २ ॥
कोउ कह जब विधि रतिमुख कीन्हा।
सार भाग शशि कर हरि लीन्हा ॥ ३ ॥
छिद्र सो प्रकट इंदु-उर माहीं।
तेहि मग देखिय नभ-परिछाहीं ॥ ४ ॥
कह प्रभु गरल बंधु शशि केरा।
अति प्रियतम उर दीन्ह बसेरा ॥ ५ ॥
विष संयुत कर निकर पसारी।
जारत बिरहवंत नर-नारी ॥ ६ ॥
कह हनुमन्त सुनहु प्रभु, शशि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति तेहि उर बसत, सोई श्यामता भास ॥ ७ ॥

चौपाई संख्या ३ एवं ४ में कथित भाव को, सुकवि भंजन ने ज़रा परिवर्तन के साथ पल्लवित किया है। वे कहते हैं कि "इस चंद्र-चिह्न के विषय में कवियों के विभिन्न मत हैं, परंतु मेरी सम्मति में तो ब्रह्माजी ने चंद्रमा का मध्यभाग काटकर, उससे श्रीराधा का मुख बना दिया है, जिससे चंद्रमा में छिद्र हो गया है। और उस छिद्र में से आकाश की नीलिमा दृष्टिगोचर होती है—

कोऊ कहै है कलंक, कोऊ कहै सिंधु-पंक,
कोऊ कहै छाया है, तमोगुन के भास की।
कोऊ कहै मृग-मद, कोऊ कहै राहुरद,
कोऊ कहै नीलगिरि आभा आसपास की ॥
'भंजन' जू मेरे जान, चंद्रमा को छीलि बिधि,
राधे को बनायो मुख, शोभा के बिलास की।
ता दिन ते छाती छेद भयो है छपाकर के,
वार पार दीखत है नीलिमा अकास की ॥ १ ॥

नवरत्न-परिगणित, महाकवि मतिरामजी कहते हैं "श्रीराधाजी के सुंदर मुख की चारुता का निरीक्षण करने को चंद्रमा गया, तो वहाँ इसे चोर समझ श्रीविष्णु ने मुख में कलंकरूप कालिख लगाकर, देवालय के चारों ओर घूमने की सज़ा दी।" मतिरामजी ने यहाँ किसी विशेष उत्प्रेक्षा की आवश्यकता न समझ, कलंक को कलंक ही रहने दिया है और उसका उत्पत्ति-इतिहास वर्णन क में ही अपना काव्य-कौशल प्रदर्शित किया है—

सुंदर बदन राधे, शोभा को सदन तेरो,
बदन बनायो चारि बदन बनाय कै,
ताकी रुचि लैन को उदित भयो रैनपति,
मूढ़मति राख्यो निजकर बगराय कै।
'मतिराम' कहै निसिचर चोर जानि याही,
दीनी है सजाय, कमलासन रिझाय कै,
रातोंदिन फेरै अमरालय के आसपास,
मुख में कलंक मिस कारिख लगाय कै ॥ १ ॥

यह तो हुई पुराने कवियों की बात, अब ज़रा हिंदी के लब्ध-यशानव सुकवि ठाकुर श्रीगोपालशरणसिंहजी के सूक्त भी सुनिए। आप कहते हैं—

है मयंक अंक में कलंक कहता है कोई,
कोई बतलाता उसे मेदिनी की छाया है।
कोई कहता है, वह पंक है पयोनिधि का,
उसे मृगशावक किसी ने ठहराया है।
मेरी जान, मन में विरंची ने विचारा जब,
कैसा कमनीय मैंने विधु को बनाया है।
लग जाय डीठ न कहीं पै यह भय मान,
रुचिर डिठौना चंद्रभाल में लगाया है ॥ १ ॥

एक कवि कहते हैं कि "यह कलंक नहीं है, किंतु वि रीत-रतिखिन्ना नायिका रजनी, अपने नायक चंद्रमा के उरस्थल पर लेट रही है।"

इसी प्रकार अन्य अनेक कवियों ने भी इ विषय पर रचनाएँ की हैं। आशा है, तुलनात्मक दृष्टि से इनका अध्ययन; पाठकों के लिये मनोरंजक होगा।

उपर्युक्त रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ कौन है? इस प्रश्न क निर्णय मैं अपने प्रेमी पाठकों पर ही छोड़ता हूँ।

कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर"

× × ×

४. "तेरा प्रेम"

(१)

तेरे मिलने की प्रिय जब से सुनी है बात,
भूला जा रहा हूँ सुधि-बुधि निज तन की।
देखता जहाँ हूँ वहाँ तू ही प्रतिबिम्बित है,
चित्रित विचित्रता है तेरी चितवन की।

चारों ओर चकित मयूर-सा निहारता हूँ ,
वाह 'अभिराम' हो रही है प्रेम-घन की।
व्यथित बड़ा हूँ देख कब से खड़ा हूँ आह ,
राह देखता हूँ तेरे शुभ-आगमन की।

(२)

देखा नहीं तो भी मूर्तिमान लोचनों में तू है ,
खोजता तुझे हूँ, परवाह नहीं तन की।
अब 'अभिराम' वह छवि तो दिखा दे आके ,
सुनके पुकार एक बार निज जन की।
भेंट को तुम्हारे सब कुसुम गए हैं सूख ,
चकित-चकोर-चित्त; चाह दरशन की।
लेके उपहार देखो आया हूँ तुम्हारे द्वार ,
खोल दो किवार, आश पूरी करो मन की।

(३)

सुस्मृति के पट पै बनाया कल्पना ने चित्र ,
ऐसा ही विचित्र चित्र कैसे हा बनाऊँ मैं।
मिलन हुआ था स्वप्न ही में 'अभिराम' तेरा ,
जागृति दशा में तुझे कैसे कहाँ पाऊँ मैं।
जाने किस लोक में छिपा है छविधाम मेरा ,
भटक रहा हूँ, किस ओर कहाँ जाऊँ मैं।
व्यथित बड़ा हूँ,प्राण प्रण से अड़ा हूँ नाथ ,
मुझको बता दे कैसे तेरे पास आऊँ मैं।

अभिराम शर्मा

× × ×

५. शाप

वे तड़ाग-तट पर हरी-भरी दूब पर खड़े हुए सरोवर-शोभा देख रहे थे, और मैं निहार रहा था उनके मुख-मंडल की ओर। दूब पर मोती बिखरे हुए थे। दूर पर पहाड़ियों में से अरुणोदय हो रहा था। तालाब में उस ओर कमल अपने प्रिय को देख-देख प्रसन्न हो रहा था, खिल रहा था, अपने प्रेमी का स्वागत कर रहा था, उसे बार-बार प्रणाम कर रहा था, प्रसन्नता के मारे मस्त हो रहा था, झूम रहा था, झुक रहा था; और न-मालूम कर रहा था क्या-क्या। उनकी दृष्टि वहीं जम गई। और मेरी ? निकट ही मौलिश्री का वृक्ष था। पुष्प नीचे बिखरे हुए पड़े थे। उनकी सुगंध से आस-पास की भूमि सुगंधित हो रही थी। मैं फूल बिनने लगा। वे उसी ओर देखते रहे। मैंने बहुत-से फूल एकत्र कर लिए। क्यों ? आज मैंने एक हार बनाकर उन्हें पहनाने की बात सोची थी। मेरे पास पर्याप्त फूल हो गए। रूमाल में रख लिए। वे इस समय भी टकटकी लगाए उस ओर देख रहे हैं। वे क्या देख रहे हैं। मैंने भी उधर देखा। एक काली वस्तु कमल को बेतरह तंग कर रही थी। बार-बार उसके मुख पर आकर बैठती और जब वह सिटपिटाने लगता, तो भाग जाती। सूरज से न रहा गया। वह कमल की रक्षा के लिये आगे बढ़ा। पहाड़ियों की चोटियों पर आ पहुँचा। वह वस्तु फिर उसके पास न आई। वे शायद इसी को देख रहे हों। मेरा ध्यान उधर से हट गया। दूसरी ओर देखने लगा। वे भी दूसरी ओर देखने लगे होंगे ! मैंने एक बार उनकी ओर देखा। वे अब भी उसी ओर देख रहे थे। मैं उनकी ओर देखने लगा। और वे—वे कमल की ओर देख रहे थे। और कमल—कमल देख रहा था सूर्य की ओर। मैं उनसे बातचीत करना चाहता था। और वह उस ओर मौन हो देख रहे थे। मैंने उनका ध्यान दूसरी ओर आकर्षित करने के लिये कहा—"मद-मंद मारुत के कारण जल में छोटी-छोटी लहरें उठती, बढ़ती और उसी में विलीन हो जाती हैं।" उन्होंने उसी ओर देखते हुए कहा—'और मनुष्य...'। इसके आगे वे कुछ न बोले।

हार के लिये एक बड़े फूल की आवश्यकता थी। वे उसे बहुत चाहते हैं। उसे ही क्यों न इसमें गूँथा जाय। मैंने सोचा, वह उनको बहुत प्रिय है। उनके वक्षःस्थल पर अति सुंदर मालूम पड़ेगा, और वे उसका तोड़ लाना भी सहर्ष स्वीकार कर लेंगे। मैंने कहा—मैं उसे तोड़ लाऊँ? बोले —'नहीं'। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। झुँझलाकर बोला—'तब उस ओर क्या देख रहे हो ?' बोले —'प्रतिबिंब'। मैंने पूछा—'किसका ?' बोले—'तुम्हारा'। 'मेरा ?'—मैंने कहा। उन्होंने उत्तर नहीं दिया। उस ओर फिर देखने लगे। पर मुझे सुनाई पड़ा—'हाँ।' मैंने कहा, फिर मुझे ही क्यों नहीं देखते ? वे मुस्किराते

हुए बोले—'उसमें भले मालूम पड़ते हो।' मैंने अपना प्रस्ताव फिर रक्खा। "अच्छा तो मैं उसे तोड़े लाता हूँ। फिर तुम उसे ख़ूब देखा करना।" वे बोले, नहीं ऐसा करने से उसकी कमनीयता मिट जायगी और फिर तुम उसमें दिखलाई न दोगे। मैंने सोचा, यह तो कोरी बहानेबाज़ी है। असल में तो वे यह नहीं चाहते कि ऐसे शीतकाल में मैं पानी में पैर रक्खूँ। मैंने देखा, वे वहीं देख रहे थे। सूर्य को यह कब अच्छा लगने लगा? उसने उन्हें वहाँ से हटाने का प्रयत्न किया। उसकी तेज़ किरणें उनके मुख पर पड़ने लगीं। उनका चेहरा चमक उठा। थोड़ी देर तक वे वहीं खड़े रहे, पर फिर वहाँ से हटकर दूसरी ओर चले गए और फिर वहीं से उसे देखने लगे। सूर्य की वहाँ पहुँच न थी। उसने अपनी किरणों को—उन्हें वहाँ से हटाने के लिये—पानी के पास भेजा। पानी ने उसकी बात मानी। उनकी आँखें चौंधिया गईं। वे वहाँ से भी हट गए। दूसरी ओर जा खड़े हुए और फिर देखने लगे। मुझे उनकी यह बात अच्छी न लगी। मैं उनसे गप्पें लड़ाना चाहता था और वे उसे देखने में तन्मय हो रहे थे। मैंने सोचा, न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। यहाँ से चल ही दो। तब फिर वे क्या देखेंगे? मैंने कहा—'धूप तेज़ हो रही है। चलो।' वे बोले—'ज़रा और ठहरो।' मैंने कहा, मुझे भूख लग रही है। 'तो जल्दी चलो'—उन्होंने कहा। और वे चल दिए। जब तक कमल दिखा, वे उसे मुड़मुड़कर देखते जाते थे। मैं बोलने की कोशिश करता और वे न बोलने की। रास्ते-भर न-मालूम क्या सोचते रहे।

और घर पर? घर पर वे भोजन करने के पश्चात् लेट गए, और पढ़ने लगे एक पुस्तक। उसका नाम था 'कमलकथा'। मुझे आश्चर्य हुआ, क्या वह उन्हें इतना पसंद है? मैं हार गूँथने लगा। उसमें तन्मय हो गया। घंटों की मेहनत के बाद वह बना। पर मेरे मन का न बना। किसी बड़े पुष्प का अभाव हृदय में खटक रहा था। मैंने उसे तोड़ दिया। फिर गूँथूँगा। उनकी ओर देखा। वे सो रहे थे। उनका मुखकमल इस समय कितना सुंदर और शांत था? सैकड़ों हज़ारों नहीं, लाखों प्रात:काल के कमल उनके मुख पर न्योछावर कर देने को जी चाहता था। मैं उनकी ओर देखने लगा। एक मच्छड़ उनको बार-बार तंग कर रहा था। अ को भी तो सवेरे......। मैंने उसे भगा दिया। मेरा ध्यान न-मालूम क्यों—उस ओर से नहीं हटा। मैं बराबर उनकी ओर जब तक वे उठे नहीं, देखता रहा। उनके मुख पर धीरे-धीरे भाव बदलते थे। सहसा वे उठे। बोले, 'जल्दी चलो।' मैंने कहा—कहाँ? बोले—'ओफ़! मैं स्वप्न देख रहा था।' तब क्या वह कमल उन्हें इतना प्रिय है? मैं उसे अवश्य ही अपने हार में गूँथूँगा और उन्हें पहनाऊँगा। वे हाथ-मुँह धोने अंदर चले गए और मैं फूल उठाकर तालाब की ओर कपड़े उतारकर पानी में कूद पड़ा। तैरता हुआ कमल के क़रीब पहुँचा। कठोर कर उस पर टूट पड़ा। कि ने कहा, सौंदर्य केवल देखने की वस्तु है, नष्ट करने की नहीं। मैं न माना। उसे तोड़ ही डाला। तोड़ते मैंने सूर्य की ओर देखा। वह दुःखी था। और कमल वह पूर्ण प्रसन्न था। मैंने सोचा, कमल का तो दु सौभाग्य है कि वह अपने प्रेमी के जाने के पहले ही अपना अस्तित्व खो बैठा। पर सूर्य को कितना दुःख हुआ होगा? उसे तोड़कर मुझे प्रसन्न होना चाहिए था पर मैं दुखित हुआ? क्यों? मैंने किसी को कठिन दिया है। इसी बोझ से मेरा मन दबा जा रहा था धीरे-धीरे तट तक पहुँचा! बैठकर हार गूँथने लगा हार तैयार हो गया। कमल बंधन में पड़ गया। वहाँ से चल दिया। चलते हुए एक बार फि सूर्य की ओर देखा। अपने जीवन की अंतिम घड़ि में वह विरहानल से जल रहा था। मेरे उस ओर देखते ही उसने विकल और लाल होकर मुझे मानो शा दिया। मुझे श्रवण-वध की कथा याद आ गई। अ को दशरथ के रूप में पाया। एक क्षण के लिये हुआ, पर फिर प्रसन्नता आ गई। उनके देखते हु अगर मेरे......। पर फिर उनका क्या होगा? मैं फि उदास हो गया। चिंतित और दुखित हार लिए हु घर पहुँचा। दरवाज़े पर ताँगा खड़ा हुआ था। ए धक्का-सा लगा। क्या वे कहीं जा रहे हैं? मैं अं पहुँचा। वे अंदर से चले आ रहे थे। मुझे देख बोले—'इतनी देर से कहाँ गए थे? यह तार आया है। मैं जा रहा हूँ।' मुझे मानो काठ मार गया। ग रुँध गया। नेत्र सजल हो गए। जी भर आया। हृ

फूटे शब्दों में कहा—'कुछ कहना चाहता हूँ।' बोले—'तुम्हारी आँखों ने सब कुछ कह दिया।' मैंने कहा—'तो शीघ्र ही लौटना।' 'हाँ' कहकर वे ताँगे में बैठ गए। मैंने उन्हें हार पहना दिया। ताँगा चल दिया। मैं उनकी ओर देखने लगा और वे मेरी ओर। तब मैं नीचे की ओर देखने लगा। वे दूर निकल गए। मैंने एक बार फिर उनकी ओर देखा। वे वक्षःस्थल के कमल की ओर देख रहे थे। कमल सूर्य की ओर देख रहा था, सूर्य मेरी ओर देख रहा था। और मैं—मैं देख रहा था प्रत्यक्ष सूर्यशाप।

"मुकुल"

× × ×

६. उपहार

(१)

स्वच्छ कर हृदमंदिर को आज,
हटाकर क्रोध, लोभ, संताप;
साजकर स्वागत के सब साज,
निमंत्रण देता हूँ चुपचाप।

(२)

आ गई है सुस्मृति की बाढ़,
वह चला है उतराता प्यार;
कठिन है मिलना प्यारे! पार,
डूबकर संभव हो निस्सार।

(३)

जलाता हूँ फिर आशा-दीप,
मिलाता हूँ वीणा के तार;
प्रतीक्षा में फिर प्यासे नैन,
फेंकता हूँ पथ में इस बार।

(४)

ग़रीबी का यह कोमल हृदय,
बना लेने को अनुपम हार;
तुम्हें प्रियतम देता "उपहार"
कृपाकर कर लेना स्वीकार।

त्रिभुवनशंकर तिवारी

× × ×

७. स्वर्गीय इतिहासवेत्ता श्रीराखालदास बनर्जी

बड़े खेद का विषय है कि भारतीय विद्वत्समाज के स्वरूप, महान् इतिहासवेत्ता, पुराविद् एवं प्राचीन मुद्राशास्त्र के ज्ञाता प्रो० राखालदास वंद्योपाध्याय अब इस लोक में नहीं रहे। एक लंबी बीमारी के उपरांत, अपने निवासस्थान कलकत्ते में, गत २३ मई को आप परलोक सिधार गए।

भारतीय इतिहास के अन्वेषण-विषयक क्षेत्र में वे एक बड़ा काम और नवीन दिशा बतला गए हैं, जिस दिशा में भविष्य के ऐतिहासिक एक शताब्दी तक काम कर सकते हैं। उन्होंने सिंधुनदी की तराई के प्राचीन इतिहास तथा सभ्यता का गहरा अध्ययन प्रारंभ किया था। यह कार्य अभी तक समाप्त नहीं हुआ है। प्रोफ़ेसर महोदय प्राचीन शिलालेखों की लिपि पढ़ने में तथा पुराने सिक्कों के पहचानने में बहुत निपुण थे। संप्रति वे हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी में इतिहासशास्त्र के प्रोफ़ेसर थे। मृत्यु के समय आपकी आयु केवल ४८ वर्ष की थी। उन्हें स्वयं यह विश्वास नहीं था कि मैं ४८ वर्ष तक भी जी सकूँगा या नहीं। और अपने इसी विश्वास के कारण वे दुगनी शक्ति के साथ कार्य किया करते थे। प्रख्यात इतिहासवेत्ता श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल महोदय ने उनकी मृत्यु के विषय में लिखा है—

"पूरी क्षमतावाले दस आदमी मिलकर एक समय में जितना काम करते हैं, उन सबसे अधिक काम करने की शक्ति अकेले श्रीराखालदास महोदय में थी। देश का एक महान् ऐतिहासिक स्कालर, एक महान् पुरातत्त्वशास्त्री खो गया! उसकी प्रतिभा अनुपम थी।"

वे एक अच्छे भाषाविज्ञ भी थे। संस्कृत के अतिरिक्त वे भारत की कई प्राचीन भाषाएँ जानते थे। भारत की चार-पाँच प्रांतीय भाषाओं के साथ फ़ारसी और अँगरेज़ी का उनको अच्छा ज्ञान था। बंग-भाषा में उन्होंने कई उपन्यास तथा ऐतिहासिक पुस्तकों का निर्माण किया है। भारत के प्राचीन इतिहास के आधार पर आपने 'करुणा' और 'शशांक'-नामक दो सुंदर उपन्यास लिखे हैं, जो अपने ढंग के अनूठे हैं। उनका हिंदी-भाषांतर भी प्रकाशित हो चुका है।

वे अपनी शक्ति की पूर्णता पर पहुँचे ही थे कि बीच में वे चल बसे! वे 'उड़ीसा का इतिहास'-नामक एक विशाल एवं उत्कृष्ट पुस्तक लिख गए हैं, जो अभी आधी ही छप पाई है। अपने जीवन-काल में यदि वे उक्त ग्रंथ को पूर्ण छपा हुआ देख पाते, तो उनकी अंतरात्मा

को कितना संतोष और आनंद होता । परंतु भगवान् को यह सब मंज़ूर न था । उनकी साधना का फल प्राप्त होनेवाला ही था कि अकाल में ही वे हमसे छीन लिए गए । प्रो० राखालदास महोदय के स्थान की पूर्ति होना बहुत कठिन है । भगवान् उस स्वर्गीय आत्मा को शांति प्रदान करे, यही अभ्यर्थना है । दैवी विचित्रा गतिः ।

शंकरदेव विद्यालंकार

× × ×

८. हिंदुस्थानी एकेडेमी की सूचना

हिंदुस्थानी एकेडेमी ने निम्न-लिखित विषयों पर लिखित सर्वोत्तम ग्रंथ पर पाँच-पाँच सौ रुपयों के तीन पारितोषिक हिंदी में और तीन उर्दू में देने का निश्चय किया है, ग्रंथ पहली जनवरी सन् १९२७ ई० के बाद के प्रकाशित हों—

(१) सर्वोत्तम गद्य-ग्रंथ, जिसका विषय साहित्यिक समालोचना, निबंध या साहित्यिक इतिहास हो।

(२) निम्न-लिखित विषयों पर लिखे हुए कि एक सर्वोत्तम ग्रंथ पर—

(क) प्रकृति-विज्ञान—अर्थात् भौतिक, रसा यन, पशुविद्या, वनस्पतिशास्त्र तथा प्रकृ संबंधी कोई अन्य वैज्ञानिक विषय।

(ख) समाज-विज्ञान—अर्थात् अर्थ-शास्त्र, राजनीति-शास्त्र, नागरिक-शास्त्र, राज्य-प्रबं संबंधी इतिहास तथा समाज-संबंधी को और वैज्ञानिक विषय ।

पारितोषिक के लिये पुस्तकें १५ अगस्त १९३ पहले आ जानी चाहिए । निश्चित तिथि के पहले ए डेमी के दफ़्तर में पारितोषिक के संबंध में भेजे जानेवा पुस्तकों की सात-सात प्रतियाँ आ जानी चाहिए।

ताराचंद
जेनरल सेक्रेटरी

× × ×

बच्चों की ताक़त बढ़ानेवाली दवा

डोंगरे का बालामृत

इससे
बच्चों का बदन भरकर वज़न
बढ़ता है ।

दाम फ़ी शीशी
चौदह आना
डा०-म० नौ आना

मालिक—
के० टी० डोंगरे कं०
गिरगाँव, बं

१४

९. क्या ?

उनकी डोंगी सदा लहरों पर ही तैरा करती थी। न कोई मल्लाह थे, न कोई पथप्रदर्शक। केवल कुछ मुर्दा संकेत थे, जिनकी अवहेलना करने का उनका स्वभाव ही पड़ गया था।

लहरों के थपेड़े खाती हुई एक दिन वह डोंगी तूफ़ान में जा फँसी। बड़े ज़ोर का तूफ़ान था। लहरें ऊपर उछल जाती थीं। काला महासागर मृत्युमय हो रहा था।

चारों ओर कुहरा था। उनके हृदय में भी। वे कुछ नहीं जानते थे। केवल एक खलबली-सी मची हुई थी। बिना सोचे-समझे वे सब एक स्थान पर एकत्र हो गए और प्रार्थना करने लगे—"हे ईश्वर, ऐसी आपत्ति के समय हमें एक मल्लाह की आवश्यकता है।"

अचानक एक कोने का कुहरा खुला-सा। और कुछ जीर्ण संकेत-चिह्न चमक उठे। एक क्षण में फिर अंधकार हो गया।

और वे सब अपने हृदय की सारी शक्ति के साथ प्रार्थना करते रहे—"हे ईश्वर, ऐसी आपत्ति के समय हमें एक मल्लाह की आवश्यकता है।"

दूसरे कोने का कुहरा खुला। एक मूर्ति—निश्चल, निश्चेष्ट और नैसर्गिक—खड़ी थी। उनमें से कुछ ने उसे देखा। वे चिल्ला उठे—"यह शैतान की लीला है।" और उस मूर्ति को हाथ पैर बाँधकर एक ओर पटक दिया।

फिर भी वे सब मूर्ख नौका के एक कोने में खड़े हुए चीख़-चीख़कर प्रार्थना कर रहे थे—"हे ईश्वर, ऐसी आपत्ति के समय हमें एक मल्लाह की आवश्यकता है।"

शांतिप्रसाद वर्मा

× × ×

१०. पावस और घनश्याम

पावस जुन्हाई इत ब्रजचंद मुख उत,
इत तड़िताभ उत दसन-उदोति है;
मघवा कमान इत बनमाल सोह उत,
इत उडगन उत माल मनि-मोति है।
मंडूक मयूर पिक चक सोर घोर इत,
उत मनमोहन मुरलि धुनि होति है;
इत घनश्याम घुँघुरारी हैं अलक उत,
इत हैं खद्योत उत छत्रहीर ज़ोति है।

सुरेंद्रनाथ शुक्ल "सुरेंद्र"

× × ×

११. चंद्र का लौह-स्तम्भ

गुप्तवंशी राजाओं में चंद्र-नामक राजा भी अत्यंत बलशाली तथा पराक्रमी थे। ईश्वर के प्रति इनकी धारणा बड़ी ही भक्तिपूर्ण थी। ये विष्णु भगवान् के सच्चे उपासक थे। पर साथ-ही-साथ युद्ध-कला में अत्यंत प्रवीण और शत्रुसंहार करने में परम दक्ष थे। इनके मरणोपरांत एक लौह-स्तम्भ मेहरौली में स्थापित किया गया, जिस पर इनके पराक्रम तथा जीवनकाल का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। उस स्तम्भ के लेख यों हैं—

(१)

यस्योद्वर्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून् समेत्यागतान्
वङ्गेष्वाहववर्तिनोऽभिलिखिता खड्गेन कीर्तिर्भुजे।
तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लिका
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलैर्दक्षिणैः॥

अर्थ—जो वंग-देश में समर करते हुए दलबद्ध शत्रुओं को अपनी छाती के बल से परास्त करते थे, सिंधु नदी के सातों मुहानों को पार करके रणक्षेत्र में जिन्होंने वाह्लिकों को पराजित किया था और जिनके पराक्रमरूपी दक्षिण वायु से रत्नाकर आज भी सुरभित हो रहा है, उनकी भुजा पर खड्ग के द्वारा कीर्ति लिखी गई थी।

(२)

खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेः गामाश्रितस्येतरां
मूर्त्त्या कर्मजितावनिं गतवतः कीर्त्या स्थितस्य क्षितौ।
शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महान्
नाद्याप्युत्सृजति प्रणाशितरिपोर्यत्नस्य शेषः क्षितिम्॥

अर्थ—जो नरनाथ मानो खिन्न हो इस लोक को त्याग परलोक सिधार गए, जो सशरीर ही स्वकर्मविजित लोक को प्रस्थान कर गए, और जो अपने यश के कारण मानो आज भी इस संसार में जीवित-सदृश हैं, वन में बुझी हुई अग्नि के महान् ताप के सदृश उन नरपाल की विशद पराक्रम-प्रतिभा आज भी उनकी शत्रुसंहार-कारिणी शक्ति के अवशिष्ट अंश की नाईं इस भू-लोक से अंतर्हित नहीं होती है।

(३)

प्राप्तेन स्वभुजार्जितं च सुचिरं चैकाधिराज्यं क्षितौ
चन्द्राह्वेन समग्रचन्द्रसदृशीं वक्त्रश्रियं बिभ्रता ।
तेनायं प्रणिधाय भूमिपतिना भावे न विष्णौ मतिं
प्रांशुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः ॥

अर्थ—जिन नरनाथ ने अपने बाहुबल से चिरकाल तक इस पृथ्वी पर एक साम्राज्य उपार्जित किया था, जिनकी वदनकांति पूर्ण निशानाथ की नाईं चमकती थी, और जिनका ध्यान विष्णु भगवान् में लगा रहता था, उन चंद्र-नामक राजा ने विष्णु भगवान् की यह ध्वजा विष्णुपद-पर्वत के शिखर पर स्थापित की ।

पारसनाथ

× × ×

१२. स्मृति

आह! हृदय क्यों व्यथित हो उठा छलक पड़े क्यों दृग से नीर;
क्या हो गया अचानक मुझको होता है क्यों चित्त अधीर ।
बिखरे केश, आँख में आँसू भरे, दीन यह किसकी मूर्ति ;
आकर हृदय रुला देती हर लेती है सारी स्फूर्ति ।
हो तुम कौन, कहाँ रहती हो किस कोने में छिपी हमेश ;
आती हो तुम अभी अचानक कहने को कैसा संदेश ।
लखकर ही जब रूप तुम्हारा दृगपट हो जाते हैं सिक्त ;
होगा फिर क्या हाल हमारा सुनकर वह संदेश विचित्र ।
ठहरो देवि, सँभल जाने दो, तब देना निज हृद्‌पट खोल ;
सुन लूँगा, हा थाम कलेजा, सुन लूँगा जो दोगी बोल ।

यमुनाप्रसाद चौधरी 'नीरज'

× × ×

१३. हे झरने !

सुकवि-कल्पना-निर्झरिणी में
मग्न चेतना भूल ;
निर्निमेष मग भूल पथिक सुन,
हो स्तंभित तव कूल ।
जिसको सुन छाता मुग्धा के,
यौवन में उन्माद ;
हे झरने ! इस कलरव में क्या,
सुना रहे संवाद
शैलशिखर से अधःपतित हो,
क्या करते चीत्कार;
प्रेममिलन की आशा में या,
भरते हृदयोद्‌गार ?
या चिड़ियों की चहकचातुरी
का करते अवमान;
हे झरने ! इस कलरव का क्या,
कभी नहीं अवसान ?

क्या अतीत की कथा सुनाते,
या भविष्य संदेश;
फलाभिलाषा त्याग, कर्म नित
करने का आदेश ?
या कि सत्य शिव सुंदर की ध्वनि
नभ में मीठी बोल;
हे झरने ! या शिशु-सा करते,
किलकारियाँ अलोल ?

प्रकृतिप्रिय के अभिनय का क्या,
करते हो शुचि गान;
हृत्तंत्री के किस तरतल से,
उठती यह मृदु तान ?
हे प्रियतम ! नित रहो सुनाते,
यही स्वर्ग-संगीत;
विश्वक्रांति हो लय तव रव में,
फैले प्रेम पुनीत ।

साधुशरण

× × ×

१४. समुद्री सिवार

सिवार (संस्कृत में शैवाल) एक प्रकार का पौध होता है, जो पानी में पैदा होता है । बँधे पानी में य बहुतायत से पाया जाता है । समुद्री सिवार कई प्रकार

का होता है और उसका अध्ययन बड़ा ही मनोरंजक है। उसकी कुछ भिन्न-भिन्न क़िस्मों का हाल नीचे दिया जाता है—

उत्तरीय अटलांटिक और मैक्सिको की खाड़ी में एक प्रकार का सिवार होता है, जो "खाड़ी के सिवार" के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी ख़ूबी यह है कि यह किसी एक स्थान में नहीं रहता, बल्कि बड़े-बड़े टुकड़ों में इधर-उधर तैरा करता है। इसके कोई-कोई टुकड़े मीलों लंबे होते हैं। समुद्र में जिस स्थान पर यह होता है, वहाँ समुद्र बिलकुल दिखलाई नहीं पड़ता—बल्कि ऐसा मालूम पड़ता है, मानो पके हुए अनाज का खेत खड़ा हो। जहाँ यह जम जाता है, तेज़-से-तेज़ हवा के चलने पर भी वहाँ समुद्र बिलकुल शांत रहता है, और उसमें एक भी लहर नहीं उठ सकती।

लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि इसके भीतर से होकर पुरानी चाल के पालवाले जहाज़ों का निकलना भी मुश्किल हो जाता है। स्टीमर तो जानो इसके अंदर से होकर जा ही नहीं सकते।

इसका रंग पीला और देखने में बहुत सुंदर मालूम होता है। इसकी पत्तियाँ पतले फ़ीतें की तरह लंबी होती हैं और इसमें बेर के आकार का फल भी लगता है। पर यह फल इतना कड़ुआ और बदज़ायक़ा होता है कि इसे कोई नहीं खाता। समुद्री जीव-जंतुओं में भी संभवतः इसे कोई नहीं खाता।

यह सिवार समुद्री केकड़ों का मुख्य निवास-स्थान है। पर इसमें जो केकड़े रहते हैं, वे दूसरे समुद्री केकड़ों की अपेक्षा छोटे होते हैं। उड़नेवाली मछलियों के भी भरण-पोषण का यह स्थान है।

दक्षिणी समुद्रों में एक दूसरी ही तरह का सिवार पाया जाता है। यह इधर-उधर बहता कम है—अधिकतर एक ही स्थान पर स्थायी रहता है। यह समुद्र के नीचे ज़मीन में उगता है और उसके पानी को फोड़कर ऊपर निकल आता है। इसकी पत्तियाँ लगभग एक फ़ुट चौड़ी और छः फ़ीट लंबी होती हैं और उनका रंग काला होता है। इसका डंठल मोटे-ताज़े आदमी की भुजा की तरह मोटा और बहुत ही लंबा होता है। जहाँ यह सिवार होता है, समुद्र भारी-से-भारी तूफ़ान के अवसर पर भी बिलकुल शांत रहता है।

एक तीसरे प्रकार का सिवार और होता है, जो प्रायः सभी समुद्रों में पाया जाता है। यों देखने से इसका पता नहीं चलता और पानी स्वच्छ मालूम होता है। पर यदि उसमें लकड़ी का टुकड़ा डाल दिया जाय, तो थोड़ी ही देर में उस पर एक हरी-हरी पतली तह जम जाती है, जो खुरचने और सुखाने पर बहुत सुंदर घास मालूम पड़ती है।

भूपनारायण दीक्षित

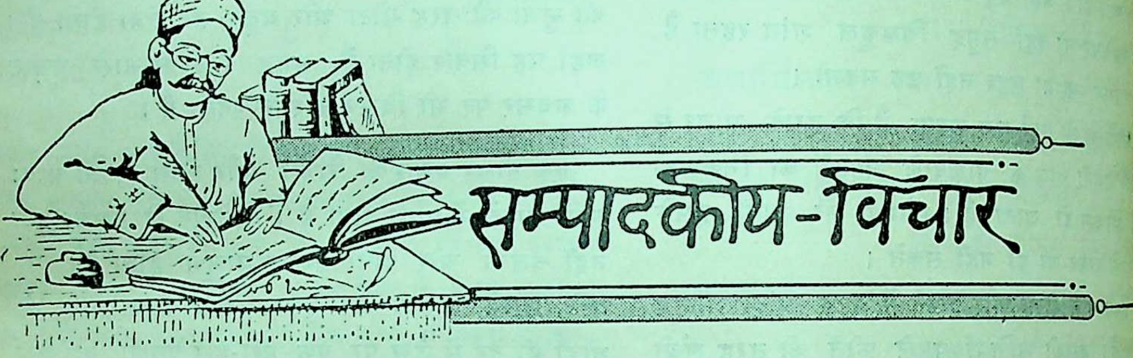

सम्पादकीय-विचार

१. राष्ट्रीयता की तीन तरंगें

पिछले २५ वर्षों में भारत के राजनीति-रंगमंच पर तीन प्रधान अभिनय खेले गए हैं। इनमें से पहला अभिनय वंगभंग के संबंध का था, दूसरा असहयोग का और तीसरा वर्तमान अभिनय सविनय-क़ानून-भंग का है। वंगभंग के आंदोलन ने देश के सामने स्वराज्य की समस्या स्पष्ट शब्दों में रक्खी। उसने स्वदेशी की आवश्यकता का अनुभव किया और बायकाट की शक्ति को परखा। राष्ट्रीय शिक्षा की उपयोगिता पर भी उसने दृष्टिपात किया। स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा को राष्ट्रीय जीवन का अंग बनाने का उसनें उद्योग किया; पर इसमें उसे आंशिक सफलता ही मिली। वंदेमातरम् का विजय-घोष वंगभंग-आंदोलन का विजय-स्मारक है। यद्यपि वंगभंग-आंदोलन ने देशव्यापी रूप धारण किया था, तथापि उसका उद्गम प्रांतीय था। उसमें मुसलमान बहुत कम सम्मिलित थे। वे लोग एक प्रकार से आंदोलन के विरोधी थे। फिर भी असफल होते-होते भी इस आंदोलन ने लार्ड मार्ली के निश्चित तथ्य (Settled fact) को अनिश्चित कर दिया। वंगभंग रद्द हो गया। दूसरा आंदोलन असहयोग का हुआ। यह समग्र देशव्यापी था। इसके साथ ख़िलाफ़त का आंदोलन भी जुड़ा हुआ था, इस कारण मुसलमान भी असहयोग के साथ पूर्णरूप से सम्मिलित थे। ख़िलाफ़त प्रश्न के साथ होने से यह आंदोलन सर्वथा राष्ट्रीय नहीं रह गया। फिर भी यह इतना प्रबल था कि इसने देश में उथल-पुथल मचा दी। 'महात्मा गांधी की जय' इस आंदोलन का विजयघोष था। इस आंदोलन में प्रांतीयता नहीं थी। इसने त्याग, निर्भयता, आत्मनिर्भरता का पाठ राष्ट्र को पढ़ाया। इसने स्वदेशी की जड़ और चरखे को प्रधानता देते हुए इसने स्वदेशी की जड़ मज़बूत की। राष्ट्रीय शिक्षा पर इसने भी बहुत ज़ोर दिया और यद्यपि वंगभंग-आंदोलन की अपेक्षा इसमें इसको सफलता भी अधिक मिली, फिर भी राष्ट्रीय शिक्षा की समस्या यह भी हल न कर सका। इस आंदोलन की समाप्ति करुणाजनक है। इस आंदोलन के संचालक

महात्मा गांधी ने स्वयं इसे रोक दिया; क्योंकि इसमें अहिंसा को छोड़कर हिंसा अपनाने के लक्षण दिखलाई देने लगे थे। ख़िलाफ़त की समस्या भी यह हल न कर सका। लोग हतोत्साह हो गए। फिर भी इसने स्वराज्य के आदर्श को औपनिवेशिक स्वराज्य के रूप में बहुत स्पष्ट कर दिया। विदेशों का ध्यान भारतीय स्वराज्य-समस्या की ओर इसने बहुत अधिक आकर्षित किया। सामाजिक बुराइयों और आर्थिक कठिनाइयों के दूर करने में भी इस आंदोलन ने अच्छी सफलता पाई। वर्तमान सविनय-क़ानून-भंग-आंदोलन संपूर्ण रूप से राष्ट्रीय है। कुछ लोग इसे शांत और अहिंसामय होने के कारण वैध मानते हैं, पर सरकार इसको बिलकुल अवैध और खुली अराजकता समझती है। इस आंदोलन का स्वराज्य, औपनिवेशिक स्वराज्य के आगे संपूर्ण स्वराज्य है। इसका जयघोष 'इनक़िलाब ज़िंदाबाद' है। यह आंदोलन धनी, ग़रीब, शिक्षित, अशिक्षित, हिंदू-मुसलमान, ईसाई, सिख, जैन, पारसी सभी में किसी न किसी रूप में व्याप्त हो गया है। इस आंदोलन ने बायकाट के अमोघ अस्त्र का प्रयोग जिस सफलता के साथ किया है. इसके पूर्व वैसा प्रयोग और कभी न हुआ था। जेल, लाठी और गोली के डर को इसने बहुत कुछ दूर किया है। परंतु इस आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता है भारतीय नारी-समाज का इसमें पूर्ण बल के साथ सम्मिलित होना। भारत के नारी-जगत् में इसने क्रांति उत्पन्न कर दी है। सुकुमार रमणियों के कुसुम-कोमल शरीर को इसने भद्दे और खुरखुरे खद्दर से ढक दिया है। परदे के भीतर रहनेवाली अबलाओं को परदे के बाहर लाकर इसने उन्हें वीरांगनाओं का रूप दिया है। यदि इस आंदोलन का और कोई फल न भी निकले, तो भी नारी-जगत् की इस क्रांति को ही हम इस आंदोलन की सबसे बड़ी सफलता समझेंगे। बिना रक्तपात के शांत और अहिंसामय उपायों से खुल्लमखुल्ला सविनय क़ानून-भंग करके और उसके परिणामस्वरूप प्रसन्नता के साथ दंड भोगने को उद्यत होकर स्वाधीनता प्राप्त करना संसार के इतिहास में एक नवीन आदर्श है। यदि भावी संसार में यह सविनय-क़ानून-भंग-आंदोलन हिंसामय युद्ध का स्थानापन्न हो जाय तो कहना होगा कि भारत ने सभ्यता के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा। संसार इसीलिये इस आंदोलन को ध्यान से देख रहा है।

× × ×

२. भूकंप-प्रकोप

पृथ्वी के अंतस्तल में उग्र गड़बड़ी होने से भूकंप होता है। इस समय के वैज्ञानिकों ने भूकंप के कारणों का विस्तार के साथ वर्णन किया है। भूगोल की साधारण पुस्तकों में यह वर्णन मौजूद है। पुराने विचारों के लोग भूकंप को भावी अनिष्ट की सूचना समझते हैं। धार्मिक ग्रंथों में भूकंप के कुछ और ही कारण बतलाए गए हैं। बात कुछ भी हो, परंतु समय-समय पर भूकंप के कारण संसार का बहुत बड़ा अनिष्ट हुआ है। हाल में भारत में भी भूकंप से बड़ी हानि हुई है। आसाम, ब्रह्मदेश एवं पूर्वी बंगाल में भूकंप के धक्कों ने तहलका मचा दिया था। फिर दक्षिण अमेरिका से भूकंप-प्रकोप के समाचार मिले। अब इटली भूकंप से त्रस्त हुआ है। समाचार-पत्रों में जो समाचार प्रकाशित हुए हैं, उनसे जान पड़ता है कि भूकंप के कारण इटली में प्रायः दो सहस्र मनुष्य काल के विकराल गाल में समा गए हैं, तथैव आहतों की संख्या चार सहस्र से भी ऊपर है। गाँव-के-गाँव नष्ट हो गए हैं। बड़े-बड़े उच्च भव्य भवन धराशायी हो गए हैं। जिस उर्वरा भूमि में पहले उदार प्रकृति के वैभव से चहल-पहल मची थी, वहाँ आज भयंकर स्मशान-भूमि के दर्शन हो रहे हैं। चारों ओर चीत्कार मचा है। लोगों का सर्वस्व नष्ट हो गया है। भोजनों का ठिकाना नहीं रह गया है। इटालियन सरकार हवाई जहाज़ों के द्वारा भोजन-सामग्री के पैकेट भूकंपग्रस्त स्थानों पर गिरा रही है और उसी से लोग क्षुधा निवारण कर रहे हैं। आज से सात-आठ वर्ष पूर्व, सन् १९२३ में, जापान भूकंप के भयानक प्रकोप से संत्रस्त हुआ था। इटली के वर्तमान भूकंप से सन् १९२३वाला जापानी भूकंप बहुत अधिक विकराल था। उसमें धन और जन की अत्यधिक हानि हुई थी। यहाँ तक कि जापान के जहाज़ी बेड़े का एक बड़ा अंश भी ध्वस्त हो गया था। उस प्रलयंकर भूकंप के बाद इटली के वर्तमान भूकंप का नंबर है। परंतु इटली देश चिरकाल से भूकंपों का शिकार रहा है। सन् १८५७ में इटली में जो भूकंप हुआ था, उसमें १२,००० मनुष्यों की मृत्यु हुई थी। इसके बाद १९०८ में उसी देश में भूकंप ने प्रलय के दृश्य उपस्थित किए थे। उस बार तो मृत्यु-संख्या ७७,००० से भी ऊपर थी। मसीना तो ध्वस्त ही हो

गया था एवं कलेब्रिया और सिसली भी वीरान हो गए थे। १९२० में उत्तरीय और मध्य इटली में भूकंप से सैकड़ों लोग मर गए थे। भूकंपों के अतिरिक्त एटना और विसूवियस पर्वतों के अग्नि-उद्‌गार के कारण भी समय-समय पर इटली को भारी हानि उठानी पड़ी है। सन् १७५५ में स्पेन के लिस्बन नगर में भी भारी भूकंप हुआ था। इसमें ५०,००० मनुष्य काल-कवलित हुए थे। १९०६ में सान फ्रानसिस्को में भयंकर भूकंप से जन-धन की अपार हानि हुई थी। सन् १९०७ में जमैका द्वीप को भी भूकंप की विकरालता का कटु अनुभव हुआ था। भूकंपों का जो कुछ पूर्व इतिहास उपलब्ध है, उससे जान पड़ता है कि अधिकतर उष्ण देशों पर ही इस प्रलयंकरी विपत्ति का प्रकोप प्रचुर परिमाण में होता है। शीत-प्रधान देशों पर भूकंप के आक्रमण कम होते हैं और जो होते भी हैं, उनका प्रभाव हलका और क्षणिक होता है। भूमध्यसागर के तटवर्ती देश, दक्षिण अमेरिका एवं जापान के आसपास की भूमि भूकंपों की प्रिय विहार-स्थली जान पड़ती है। इटली के वर्तमान भूकंप से योरप में तहलका मच गया है। इस भूकंप-प्रकोप की एक विशेषता यह है कि इसमें मृत व्यक्तियों में बालकों की संख्या सबसे अधिक है। भूकंप-कष्ट-निवारण के लिये इटली में चंदे की व्यवस्था की जा रही थी। योरप और अमेरिका के अन्य देश भी चंदा इकट्ठा करके भूकंपकष्ट से पीड़ित लोगों की सहायता करने को तैयार थे, परंतु इटली के वर्तमान वीर भाग्यविधाता मुसोलिनी ने चंदे से मदद करनेवालों को धन्यवाद देते हुए साफ़-साफ़ कह दिया कि पीड़ितों की सहायता स्वयं इटली-सरकार करेगी; उसे और लोगों की सहायता की आवश्यकता नहीं है। इटली-सरकार का यह स्वावलंबी उत्तर सर्वथा प्रशंसनीय है। इटली के इस भूकंप को लेकर एक ईसाई धर्म-प्रचारक ने कुछ अद्‌भुत बातें कह डाली हैं। उनका कहना है कि प्रभु ईसामसीह के समय में संसार की जो दशा थी, वही इस समय भी दिखलाई पड़ती है। जो-जो विशेष घटनाएँ उस समय घटती थीं, वही इस समय भी घट रही हैं। इन सब बातों के उल्लेख और तुलना से आपने यह निष्कर्ष निकाला है कि शीघ्र ही प्रभु ईसामसीह का प्रादुर्भाव होनेवाला है। भूकंप से संत्रस्त इटली-निवासियों से इस दैवी विपत्ति में हमारी पूर्ण सहानुभूति है।

× × ×

३. समझौता

कांग्रेस और सरकार के बीच में भारतीय स्वराज्य-समस्या को लेकर जो संघर्ष आज चार-पाँच महीने से चल रहा है, वह दिन-पर-दिन अधिक जटिल, गंभीर, कटु और भयावह होता जा रहा है। दोनों पक्ष इस बात पर तुले हुए हैं कि अपने प्रभाव और शक्ति का प्रदर्शन परा काष्ठा तक पहुँचा दें। विलायती कपड़े का बहिष्कार, शराब और ताड़ी की दुकानों पर पिकेटिंग एवं कई सरकारी क़ानूनों का भंग करना जैसे इस समय कांग्रेस का ध्येय हो रहा है, वैसे ही सरकार भी उग्र और आतंक उत्पन्न करानेवाले क़ानूनी उपायों से कांग्रेस के आंदोलन को दबा रही है। कांग्रेस कहती है, वैध आंदोलन से सरकार भारत को कुछ नहीं दे रही है, ऐसी दशा में शांतिमय क़ानून-भंग का मार्ग ही भारत के लिये श्रेयस्कर है। इसी का प्रभाव सरकार पर पड़ेगा। सरकार कहती है, क़ानून-भंग-आंदोलन अवैध है। कोई भी सरकार उसे बर्दाश्त नहीं कर सकती है। भारत-सरकार भी उसे कुचल करके ही छोड़ेगी। उसका यह भी कहना है कि वैध आंदोलन का आश्रय लेकर भारत, लंदन में होनेवाली गोलमेज़-सभा के द्वारा, अभीष्ट शासन-सुधार प्राप्त कर सकता है। कांग्रेस सरकार की बात नहीं मान रही है और सरकार भी कांग्रेस से दबकर कुछ करना नहीं चाहती है। बस, संघर्ष जारी है। कांग्रेस के प्रभाव से देश में राष्ट्रीय भावों का सागर उमड़ पड़ा है। निर्भयता, त्याग, कष्ट-सहिष्णुता और संगठन के अपूर्व दृश्य देखने में आ रहे हैं। यद्यपि कांग्रेस के आंदोलन की भित्ति शांति और अहिंसा पर है और अधिकांश में वह अहिंसामय और शांतिपूर्ण है, तथापि खेद के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि अल्पांश में ही सही, कहीं-कहीं आंदोलन अशांत भी हो गया है। इस आंदोलन की प्रगति रोकने में सरकार को जिस दमन-नीति का आश्रय लेना पड़ा है, उसके कारण कई स्थानों पर गोलियाँ चली हैं। बहुत-से आदमी मरे हैं। कांग्रेस के जलूसों को ग़ैर-क़ानूनी घोषित करके उनके तितर-वितर करने में लाठियों का प्रयोग भी बहुत अधिक स्थानों में किया गया है। इससे बहुत-से लोग आहत हुए हैं और अनेक काल के गाल में भी पड़ गए हैं।

इसके अलावा कारावास-दंड से तो सहस्रों की संख्या में लोग दंडित हुए हैं। इस समय कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता सरकारी जेलों में हैं। फिर भी नेताओं के अभाव में भी आंदोलन बराबर जारी है। उसका अंत नहीं दिखलाई पड़ रहा है। सरकार और कांग्रेस के इस संघर्ष के कारण देश में ऐसा संक्षुब्ध वायुमंडल उपस्थित हो गया है कि व्यापार आदि के काम सब बंद-से हैं। सभी उद्विग्न और चिंतित हैं और चाहते हैं कि किसी प्रकार इस संघर्ष का अंत हो। पर अंत के उपाय दो ही हैं--एक पक्ष की संपूर्ण पराजय अथवा दोनों पक्षों में आपस का समझौता। परंतु समझौते के लिये दोनों पक्षों में से कोई पक्ष भी पहले अग्रसर नहीं होना चाहता है; क्योंकि प्रत्येक पक्ष समझौते के लिये पहले अग्रसर होना अपनी पराजय समझता है। तब समझौता हो कैसे ? इसके लिये एक तीसरे मध्यस्थ पक्ष की आवश्यकता है। हर्ष की बात है कि श्रीयुत जयकर और श्रीयुत तेजबहादुर सप्रू ने सरकार और कांग्रेस में समझौता कराने का बीड़ा उठाया है। सरकार ने उनके इस काम को पसंद किया है और एतदर्थ उनको जेल में महात्मा गांधी, पं० मोतीलाल नेहरू और पं० जवाहरलाल नेहरू से भेंट करने की आज्ञा दे दी है। सर सप्रू और श्रीजयकर महात्मा गांधी से दो दिन मिले और प्रतिदिन उनसे तीन-चार घंटे बातचीत की। महात्मा गांधी ने सर सप्रू को पं० मोतीलाल के नाम एक पत्र दिया। इसके अतिरिक्त इन दोनों सज्जनों ने जेल में सरोजिनी नायडू से भी भेंट की, एवं जेल के बाहर सरदार वल्लभ भाई पटेल तथा डाक्टर अंसारी से परामर्श किया। पिता-पुत्र नेहरू से भी भेंट हो गई। अब ये दोनों सज्जन शिमले जाकर लार्ड अरविन से मिलेंगे और फिर एक बार महात्मा गांधी से मुलाक़ात करेंगे। तब कहीं समझौते की सफलता अथवा असफलता का हाल जान पड़ेगा। अभी तो दोनों सज्जन इस संबंध में कुछ भी नहीं बतलाते हैं। यरवादा जेल से निकलने के बाद जब प्रेस के प्रतिनिधियों ने सर सप्रू को प्रेस-इंटरवीउ के लिये बहुत घेरा, तो उन्होंने भी ख़ासा परिहास किया। उन्होंने कहा कि मैं जब जेल में गया, तो मुझे गांधीजी, लार्ड अरविन और वेजउड बेन के पास बैठे मिले और वहीं पर पं० मोतीलाल और जवाहरलाल भी थे तथा प्रधान मंत्री रैम्ज़े मैक्डानेल्ड भी आनेवाले थे, पर उस समय तक आए न थे, शायद उनका हवाईजहाज़ कहीं अटक गया था। सर सप्रू के इस परिहास को सुनकर फिर प्रेस के प्रतिनिधियों को अधिक पूँछ-ताछ करने की हिम्मत न पड़ी। यद्यपि श्रीजयकर और सर सप्रू भेंट के विषय में स्वयं कुछ भी नहीं बतलाते हैं, फिर भी उनकी भाव-भंगी में प्रसन्नता और मुख-मंडल पर संतोष और मृदु हास्य के जो चिह्न पाए गए, उससे लोगों का अनुमान यही है कि इन सज्जनों को अपने समझौते के उद्योग में सफलता मिलने की आशा है। सर सप्रू तो बहुत प्रसन्न-वदन दिखलाई पड़ते थे और श्रीजयकर ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि मैं निराश नहीं हूँ। जो हो, यदि इस समय समझौता हो जाय, तो देश का बहुत बड़ा कल्याण हो। कांग्रेस ने अपनी शक्ति का पूर्ण प्रदर्शन कर दिया है। उसने दिखला दिया है कि देश उसके साथ है। सरकार भी यह समझ गई है कि कांग्रेस की उपेक्षा करना ठीक नहीं है। कोई भी शासन-सुधार का क़ानून देश में तब तक सफलता-पूर्वक व्यवहार में नहीं लाया जा सकता है, जब तक कांग्रेस भी उसको स्वीकार न करे। ऐसी दशा में गोल-मेज़ की सफलता तभी संभव है, जब उसमें कांग्रेस के प्रतिनिधि भी सम्मिलित हों। और, कांग्रेस के प्रतिनिधि गोलमेज़-सभा में तभी जा सकते हैं, जब सरकार के और कांग्रेस के बीच समझौता हो जाय। इसलिये प्रत्येक दृष्टि से सरकार और कांग्रेस के बीच में समझौता होना आवश्यक है। ईश्वर करे, सर तेजबहादुर सप्रू और श्रीजयकर को अपने इस शांति के सदुद्योग में सफलता प्राप्त हो। माधुरी की आषाढ़ की संख्या श्रावण में निकल रही है, इसलिये श्रावण की घटनाओं की चर्चा हमें इसी आषाढ़ की संख्या में करनी पड़ रही है। श्रावण की संख्या निकलने के समय तक तो इन घटनाओं की चर्चा असामयिक हो जायगी।

× × ×

४. सर आर्थर कैनन डूवायल

इँगलैंड के बहुत बड़े औपन्यासिक और परलोक-विद्या-विशारद सर आर्थर कैनन डूायल का हाल में स्वर्गवास हो गया। कैनन डूायल महोदय के जासूसी उपन्यासों की संसार में धूम थी। लेखन-व्यवसाय से

उन्होंने धन और मान दोनों ही प्राप्त किए। अँगरेज़ी-साहित्य-संसार में उनका विशिष्ट स्थान था। जिन भारतीयों को अँगरेज़ी समझने में कुछ भी गति है, उन्होंने शरलक हाम्स के नाम से प्रसिद्ध जासूसी कहानियाँ अवश्य पढ़ी होंगी। सर आर्थर ने इन कहानियों के लिखने में अपूर्व प्रतिभा और औपन्यासिक कला के ज्ञान का परिचय दिया। उन्होंने बहुत-से उपन्यास लिखे हैं और परलोकवास के पहले तक औपन्यासिक पत्रिकाओं में जासूसी कहानियाँ लिखा करते थे। इधर कई साल से उन्हें परलोक-विद्या पर पूर्ण विश्वास हो गया था और वह अपना अधिक समय उक्त विद्या की छान-बीन में लगाया करते थे। इँगलैंड में परलोक-विद्या के प्रधान स्तंभों में दो व्यक्ति थे—एक तो सर आर्थर कैनन डायल और दूसरे सर आलिवर लाज। परलोक-विद्या पर भी सर आर्थर ने कई पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें New Revelation मुख्य है। आप बड़े सरल-चित्त और निष्कपट सहृदय पुरुष थे। परलोक-विद्या के मामले में कई बार कई धूर्तों ने आपको बेतरह ठगा और इसके कारण समाज में कई बार आपको कुछ लज्जित भी होना पड़ा। यों भी परलोक-विद्या को मानने के कारण इँगलैंड के शिक्षित समाज में आपकी गंभीरता को धक्का लगा था, परंतु इसकी परवा न करके आपने जिस बात को सत्य समझा, उसको खुल्लमखुल्ला मानने में ज़रा भी न हिचके। परलोक-विद्या के संबंध में ज्ञानोपार्जन करने के लिये इन्होंने अफ़्रीका की दुरूह यात्रा की थी। इनकी स्त्री को भी परलोक-विद्या में पूर्ण विश्वास है। सर आर्थर की मृत्यु हो जाने पर वह ज़रा भी विचलित नहीं हुईं। उनके परिवार में मृत्युशोक बिलकुल नहीं मनाया गया। लेडी कैनन डायल का विश्वास है कि सर आर्थर सूक्ष्म शरीर से अब भी मौजूद हैं और उनसे बातचीत करते हैं। उन्होंने केवल शरीर-त्याग किया है। उनकी आत्मा अमर है। उसका कभी नाश नहीं हो सकता। सर आर्थर की मृत्यु के कुछ दिन बाद एक सभा की गई थी, उसमें आठ हज़ार परलोक-विद्या में विश्वास करनेवाले लोग एकत्रित थे। लेडी कैनन डायल की कुर्सी के पास एक ख़ाली कुर्सी परलोकगत सर आर्थर कैनन डायल के बैठने के लिये रक्खी गई थी। परलोकगत आत्माओं का प्रत्यक्ष दर्शन करनेवाली एक रमणी ने सर आर्थर को आकर उस कुर्सी पर बैठते देखा। आत्मा ने अपनी पत्नी को संदेश भी दिया, जिस पर लेडी कैनन डायल का पूर्ण विश्वास है।

× × ×

५. संगीताचार्य प्रोफ़े० कृष्णनारायण स्वामी

माधुरी के पाठकों को आज हम एक ऐसे कलाविद् से परिचित कराते हैं, जिन्होंने संगीत में कमाल हासिल किया है। आपका शुभ नाम है प्रोफ़े० कृष्णनारायण स्वामी। आप मदरासी ब्राह्मण हैं। भारत का दक्षिणी भाग आज भी कलाओं का केंद्र माना जाता है, वहीं ट्रावनकोर में आपका जन्म हुआ। इस समय आपकी अवस्था लगभग २४-२५ वर्ष की है। अँगरेज़ी भी आप एफ़० ए० तक पढ़े हैं, परंतु निस्संदेह संगीतकला के मास्टर ही नहीं, डाक्टर भी कहे जायँगे। प्रो० साहब की एक बड़ी विशेषता यह है कि आप हिंदुस्थानी और कर्नाटक दोनों संगीत-स्कूलों के विशेषज्ञ, अभ्यस्त एवं पंडित हैं। कौंसिल आफ़ स्टेट के सदस्य राजा नवाबअलीख़ाँ तालुक़दार ने आपके संबंध में लिखा है—"He can produce meed, the essential characteristic for Indian tunes, out of Bansuri." अन्य कितने ही सम्माननीय व्यक्तियों ने भी आपको प्रमाण-पत्र दिए हैं। हमारे संयुक्त-प्रांत के गवर्नर सर मालकमहेली ने आपकी कला के संबंध में यह लिखकर हर्ष प्रकट किया है—He has a most wonderful mastery over his instruments. He gave us some very interesting talk about Indian music. इसी प्रकार बिहार और उड़ीसा के गवर्नर ने भी लिखा है—His performace on his native flute was distinctively clear which showed him to be complete master of this particular instrument.—यू० पी०-गवर्नर के प्राइवेट सेक्रेटरी लिखते हैं—Prof. Krishna Narayan Swami proved himself to be an accomplished flute player. यह सब इस बात का प्रमाण है कि भारतीय कला में अभी जीवन है, कलाकार एवं कलाविद् मौजूद हैं। हाँ, कलाविदों को प्रोत्साहित करने-

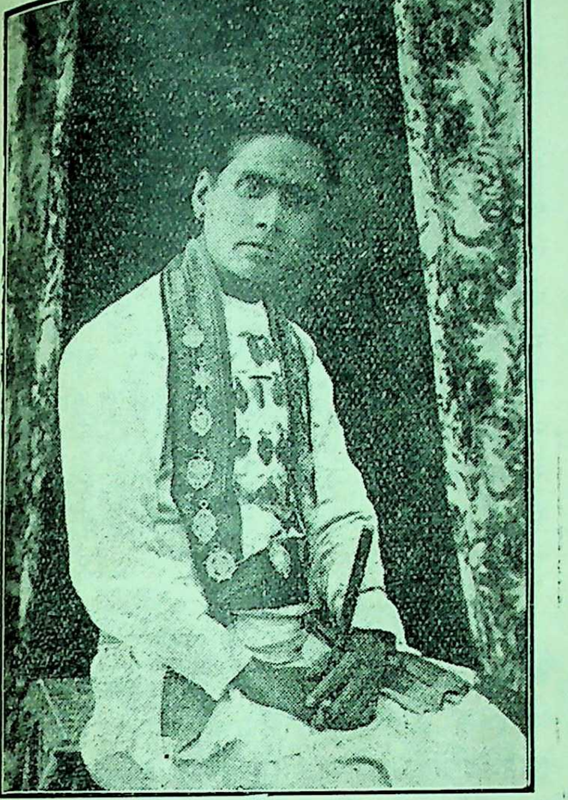

प्रोफे० कृष्णनारायण स्वामी फ़्लूटिस्ट

वालों की कमी है। हमने स्वयं प्रोफ़ेसर साहब के संगीत-प्रदर्शन का आनंद उठाया है और हमें यह कहने में संकोच नहीं कि आप गायन और वादन दोनों ही में कमाल रखते हैं। आप जब बाँसुरी बजाते हैं, तो ऐसा जान पड़ता है कि स्वर आप-से-आप फूट रहे हैं।

आप भिन्न-भिन्न प्रांतों—बंबई, बंगाल, विहार, यू० पी०, सी० पी०, पंजाब आदि—का भ्रमण कर चुके हैं और निकट भविष्य में भारतीय संगीत के गौरव-प्रदर्शन के लिये विदेश जाने का विचार कर रहे हैं। भगवान् करे, आपका विचार शीघ्र कार्यान्वित हो और आपके प्रदर्शन भारतीय संगीत का गौरव विदेशों में स्थापित करने के साधन बनें। तथास्तु।

× × ×

६. ब्रजबोली और गोविंददास

बंगाल के पुराने वैष्णव-कवियों में से कई ने बँगला भाषा से इतर एक अन्य भाषा में, जिसे बंगाली विद्वान् 'ब्रजबुली' या 'ब्रजबोली' कहते हैं, कविता की है। 'भानुसिंह' के कल्पित नाम से विश्वकवि श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर ने इसी भाषा में, इस आधुनिक काल में भी, अनेक पद्यों की रचना की है। बंगाली विद्वान् 'ब्रजबोली' के श्रुतिमाधुर्य के प्रशंसक हैं। अभी तक बंगाली विद्वानों का यह ख़याल था कि 'ब्रजबोली' ब्रजप्रदेश की 'ब्रजभाषा' का ही किंचित् परिवर्तित रूप है। उनका कहना था कि वैष्णवधर्म के प्रचार के साथ-साथ बंगाल में 'ब्रजबोली' का भी आदर हुआ। वैष्णवधर्म के केंद्र वृंदावन से बंगाली वैष्णव 'ब्रजबोली' को बंगाल में लाए और धार्मिक पक्षपात एवं श्रुति माधुर्य के कारण बंगाली कवियों ने 'ब्रजबोली' का यथेष्ट आदर किया। प्रसिद्ध बंगाली विद्वान् श्रीयुत नगेंद्रनाथ गुप्त ने 'ब्रजबोली' के संबंध में अब तक स्वीकृत विचारों का खंडन किया है। उनका कहना है कि 'ब्रजबोली' का उद्गम मिथिला के अमर कवि विद्यापति की मधुर रचना से हुआ है। विद्यापति ने जिस विशुद्ध मधुर भाषा में कविता की है, वह मैथिली है, ब्रजभाषा नहीं; अतएव 'ब्रजबोली' भी मैथिली का ही रूपांतर है। इस संबंध में श्रीयुत नगेंद्रनाथजी गुप्त ने Hindustan Review में अपने विचार विस्तार के साथ प्रकट किए हैं। उनका कहना है—

"As a matter of unquestionable fact there is no such language or dialect as Braja Boly anywhere in India. There is such a dialect as Braja Bhakha but it bears no resemblance to the language used by Vidyapati and his Bengali imitators and in any case Bengali poets could not be expected to have any knowledge of such a language, much less to know it so well as to be able to compose verses in it × × × × × × × There can be no more astonishing claim than that Maithil and Brajboli are two distinct languages. This is wholly untrue. Brajboli was a word coined in Bengal at a time when it was forgotten that the language in which Vidyapati wrote was Maithil."

श्रीनगेंद्रनाथजी गुप्त का कथन है कि प्राचीन समय में मिथिला संस्कृत-शिक्षा का प्रधान केंद्र था। बंगदेश के विद्यार्थी भी संस्कृत-शिक्षा के लिये मिथिला में आते थे। आज से २०० वर्ष पूर्व तक संस्कृत-शिक्षा में मिथिला गुरु था और बंगाल शिष्य। विद्यापति संस्कृत के धुरंधर विद्वान् थे। जो बंगाली विद्वान् मिथिला में

शिक्षा के लिये आते थे, उन्हीं के द्वारा विद्यापति के ग्रंथ बंगाल में पहुँचे। आज भी विद्यापति बँगला-साहित्य के पिता माने जाते हैं।

"Even the preservation of the beautiful poems of Vidyapati is due to the accident that they were taken to Bengal by Bengali Students in Mithila and were extensively admired by the Vaishnavas of Bengal. Vidyapati along with Chandidas is still regarded as the father of Bengali poetry. × × × Bengal owes a great deal to Mithila; Mithila owes nothing to Bengal."

पहले बंगाली विद्वान् विद्यापति को वंगदेश का निवासी समझते थे और उनके नाम के साथ भट्टाचार्य शब्द जोड़ा जाता था, परंतु अब यह बात निर्विवाद रूप से प्रमाणित हो गई है कि विद्यापति मैथिल थे। श्रीयुत नगेंद्रनाथजी ने अपने लेख में एक बात और भी मार्के की लिखी है। बंगाल में गोविंददास के नाम से 'ब्रजबोली' में अनेक कवियों ने कविता की है। अब तक बंगाली विद्वान् इन सबको वंगदेश के निवासी मानते आए हैं, परंतु श्रीनगेंद्रनाथजी का कहना है कि गोविंददास नाम के सबसे प्रधान और प्रतिष्ठित कवि मैथिल थे। गुप्तजी को ताड़वृक्ष के पत्रों पर लिखी हुई गोविंददासजी की पदावली ख़ास मिथिला में मिली है। और भी कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिली हैं। ये सब बहुत प्राचीन हैं। इनकी भाषा और महावरे मैथिल भाषा के व्याकरण की दृष्टि से अत्यंत शुद्ध हैं। बंगाल में गोविंददासजी के जो पद मिलते हैं, वे भाषा और व्याकरण की दृष्टि से विकृत और अशुद्ध हैं। मिथिला में गोविंददासजी की प्रसिद्धि गोविंददास झा के नाम से है और इस प्रसिद्धि का समर्थन पुष्ट प्रमाणों पर अवलंबित है। अनेक बंगाली विद्वानों को यह बात बहुत अरुचिकर प्रमाणित हुई कि गोविंददासजी मैथिल माने जायँ। श्रीनगेंद्रनाथजी के विरुद्ध समालोचकों ने कठोर आक्षेप भी किए, परंतु गुप्तजी ने इन सब आक्षेपों का समुचित उत्तर दिया। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि गोविंददासजी मैथिल कवि थे। उनके ये उद्गार कितने सुंदर हैं—

"I was greatly surprised to find that the principal poet of the name of Govinda Das was a Maithil and copies of his poems can be found in Mithila. Was I to keep back this knowledge and help the maintenance of the delusion that this poet was a Bengali? I confess that my provincial patriotism invariably yields homage to the Sovereign majesty of truth. It is my bounden duty to establish the truth and to brush aside ignorant criticism."

श्रीनगेंद्रनाथजी गुप्त का कहना है—"क्या इस बात को जानते हुए कि गोविंददासजी मैथिल थे, मैं लोगों को इस भ्रम में रख सकता हूँ कि वे बंगाली थे? जहाँ पर सत्य और प्रांतीय स्वदेशभक्ति का संघर्ष होता है, वहाँ पर मैं तो सत्य का ही समर्थन करता हूँ। मेरा यह कर्तव्य है कि सत्य की स्थापना करूँ और अज्ञानपूर्ण आलोचना को न मानूँ"। सारांश यह कि गुप्त महोदय की राय है कि बंगालियों की पुरानी 'ब्रजबोली' मैथिल भाषा का रूपांतर है तथा गोविंददास नाम के प्रधान कवि मैथिल ब्राह्मण थे, बंगाली न थे।

× × ×

७. बायकाट

सन् १८७९ में आयलैंड के पारनेल तथा अन्य कई नेताओं ने एक सभा स्थापित की। इसका नाम था 'आइरिश लैंड लीग'। इसका उद्देश्य यह था कि आयलैंड में भूमि-कर में कमी कराई जाय और यदि अधिकारी-मंडल भूमि-कर कम कर देने को तैयार न हो, तो उसका देना बंद कर दिया जाय। आयलैंड के होमरूल-आंदोलन को इस लीग से बड़ी मदद मिली थी। जिस समय इस लीग का दौर-दौरा था, उस समय आयलैंड में कप्तान बायकाट नाम के एक पुरुष थे। आप 'आइरिश लीग' के विरोधी थे, उसकी बात नहीं मानते थे। लीग ने आपसे बिलकुल संबंध न रक्खा। इससे आप बड़ी मुसीबत में पड़ गए। आपका सामाजिक जीवन कठिन हो गया। आपके विरुद्ध बहिष्कार इतना प्रबल था कि आपके नित्य के जीवन के मामूली काम भी न हो पाते थे। उसी समय से जिस किसी से समाज या कोई संस्था सामूहिक रूप से संबंधविच्छेद करती है, तो यह कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति या वस्तु का बायकाट किया गया। इस समय बायकाट शब्द बहिष्कार का पर्यायवाची हो गया है। कुछ भी हो, कप्तान बायकाट का नाम तो इस प्रकार अमर हो गया। संसार की वर्तमान राजनीति में बायकाट-नीति का प्रबल प्रभाव है। भारतीय राजनीति-रंग-मंच पर बायकाट-नीति का स्पष्ट प्रदर्शन वंगभंग-आंदोलन के समय हुआ। उस

समय भारत में उग्रदल के नेता बायकाट के समर्थक थे और नर्मदल के नेता उसके विरोधी। बायकाट नीति को अपनाने-न-अपनाने का प्रश्न लेकर भारतीय कांग्रेस में बड़ा विवाद हुआ था। लोकमान्य तिलक बायकाट के समर्थक थे और श्रीगोखलेजी बायकाट के स्थान में स्वदेशी के समर्थक थे। धीरे-धीरे भारत के राजनीति-मंच पर बायकाट का स्थायी प्रभाव हो गया। अनेक नर्मदल के नेता भी इसके समर्थक हो गए। इस समय तो कांग्रेसवाले बायकाट को अपना प्रधान और अमोघ अस्त्र मानते हैं। अति शांत और नर्म विचारों से काम लेनेवाले राष्ट्रपूज्य श्रीयुत पं० मदनमोहनजी मालवीय भी इस समय इँगलैंड की बनी वस्तुओं के बायकाट के पूर्णपक्ष में हैं। 'लीडर' पत्र के संपादक तथा अपूर्व प्रतिभाशाली एवं आश्चर्यजनक स्मरणशक्ति से संपन्न श्रीयुत सी० वाई० चिंतामणिजी भी इस समय बायकाट का पूर्ण बल के साथ समर्थन कर रहे हैं। यह बायकाट का ही प्रभाव है कि विगत अप्रैल से जून मास तक विलायत से भारत में आनेवाले माल में साढ़े बारह करोड़ रुपए की कमी हुई है। बायकाट के कारण विलायत में बहुत-से कारख़ाने बंद हो गए हैं। भारत-सरकार की भी बायकाट की बदौलत करोड़ों रुपए की हानि हुई है। इस समय बंबई में ९०,००० कपड़े की गाँठें पड़ी हैं, जिनको बायकाट के भय से व्यापारी नहीं छुड़ा रहे हैं। कप्तान बायकाट बदनाम होकर भी अपना नाम कर गए। आज भारत में घर-घर बायकाट की चर्चा है।

श्वेतकुष्ठ
की
अद्भुत जड़ी

प्रिय पाठकगण! औरों की भाँति मैं प्रशंसा करना नहीं चाहता। यदि इसके तीन बार के लेप से इस रोग की सफ़ेदी जड़ से आराम न हो, तो दूना मूल्य वापस दूँगा। जो चाहें -) का टिकट भेजकर प्रतिज्ञा-पत्र लिखा लें। मूल्य १) १६

वैद्यराज
पं० महावीर पाठक,
नं० ५, दरभंगा।

मुखबिलास मसाला
REG No 109
TRADE MARK
MUKHBILAS MASALA

मगाओ **मुफ्त** मगाओ
अगर आप पान खाने के शौकीन हैं तो हमारा मुखबिलास मसाला व ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट पान में जरूर खाइये खुश्बूदार व खुश-ज़ायका है॥

(मुखबिलास मसाला)

कीमत मुखबिलास मसाला छोटी डि० फ़ी दरजन १।।।=)बड़ी डि० फ़ी दरजन ३।।।)
कीमत ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट छोटी डि० फ़ी दरजन २।) बड़ी डिब्बी फ़ी दरजन ४।।)
फ़ैन्सी पुड़िया ।।।)।। सैकड़ा

[नोट] ज्यादा हाल जानने के लिये नमूना कैलेन्डर और नोटिस मुफ्त मंगाइये॥

पता— पं० प्यारेलाल शुक्ल
प्यारे लाल शुक्ला स्ट्रीट कानपुर॥

ताम्बूल अम्बरी टिकिया
पानमें खाइये
TAMBUL-AMBARI
TABLETS
TO BE USED WITH
BITTLES

(ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट)

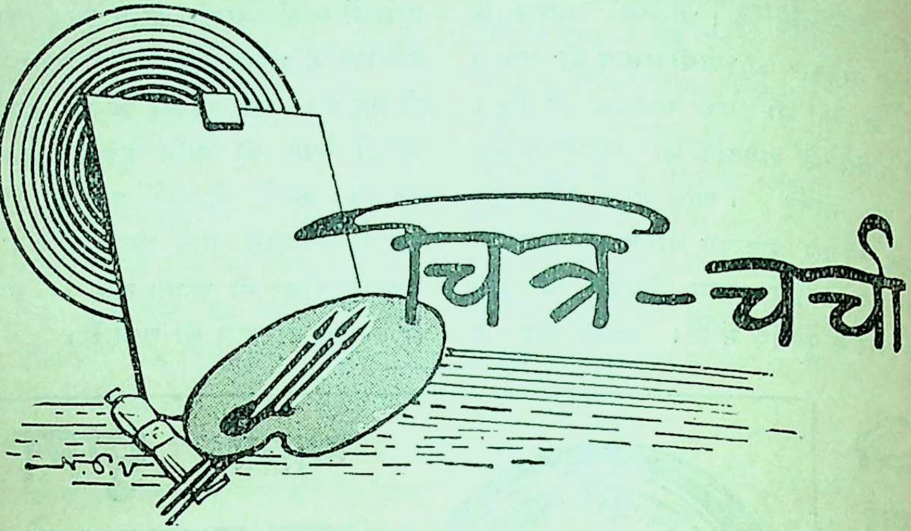

चित्र-चर्चा

१. दीपदान

जीवन और मरण, दोनों संसार की व्यापक पहेलियाँ हैं। अंधकार में ही जीवन उद्भुत होकर और पुनः प्रकाश में आलोकित होता है तथा अंत में तब तक उसी अंधकार में लीन रहता है, जब तक प्रकाश उसकी ओर संकेत न करे। प्रस्तुत चित्र में चित्रकार ने जीवन की नश्वरता की ओर बहुत सफलता-पूर्वक संकेत किया है। यद्यपि क़ब्र पर दीपक जलाने की यह एक सामाजिक प्रथा अथवा दूसरे शब्दों में धार्मिक विश्वास का पालन-मात्र है, तथापि इसके अंदर जीवन-मरण का रहस्य भी कितना अधिक व्यापक है। अंधकार और प्रकाश का संयोग, मृत्यु और जीवन का तारतम्य तथैव विनाश और विकास का सामंजस्य चित्र-भर में सर्वत्र अंकित है और उसमें इतना अधिक स्वरैक्य है कि चित्रकार की प्रशंसा किए विना रहा नहीं जाता। इस चित्र के चित्रकार श्रीयुत अजितकुमार बोस अपने कुशल चित्र के लिये बधाई के पात्र हैं।

२. सावित्री और सत्यवान्

इस चित्र की रचना एक पौराणिक कथानक आधार पर हुई है। सती सावित्री अपने पतिदेव शव अपनी गोद पर रक्खे हुए बैठी है और उस सतीत्व की परीक्षा मृत्युदेव कर रहे हैं। अंत में अप सतीत्व के कारण ही वह अपने पति को पुनः जीवि प्राप्त करती है।

३. अहिल्योद्धार

यह चित्र रामायण के एक प्रसिद्ध कथानक के आधा पर बनाया गया है। अहिल्योद्धार की कथा सभी जान हैं, जब रामावतार होने पर वह शिला से स्त्री-रूप परिणत हुई थी। उसी घटना का यह चित्रांकण सुप्रसि चित्रकार श्रीयुत शारदाचरण उकील महाशय ने किया है।

[स्थापित सन् १८५८ ई०]
पौने दामों में धार्मिक ग्रंथों की लूट

विश्व-विख्यात प्राचीन प्रकाशक

नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो)

हज़रतगंज, लखनऊ

के

धार्मिक ग्रंथों के मूल्य में ख़ास रियायत

३० जूलाई से २ अक्टूबर १९३० ई० तक

"केवल दो मास के लिये"

प्रिय पाठकगण !

आप लोगों को प्रायः ज्ञात है कि हम प्रतिवर्ष श्रावण-सुदी ५ से आश्विन शुक्ल १० तक विद्या-प्रेमी महाशयों के लिये उपनिषद्, वेदांत, योग, धर्मशास्त्र, कर्म-कांड, नीति, पुराण, माहात्म्य, व्रत-कथा, स्तोत्र, मंत्र-शास्त्र, महाभारत, रामायण, उपन्यास, संस्कृत-भाषा-काव्य, संगीत-राग-भजन, कोष, वैद्यक, आल्हा, जीवन-चरित्र, व्याकरण, क़िस्से-कहानी आदि की बहुत-सी उपयोगी पुस्तकें तीन-चौथाई मूल्य में अर्थात् एक रुपए का माल बारह आने में देते हैं। उसी नियम के अनुसार इस वर्ष भी हम परमात्मा की असीम कृपा से उक्त कार्य करने में समर्थ हुए हैं। आशा है, सदा की भाँति सभी देश और साहित्य के प्रेमी इस वर्ष भी अपनी इच्छा के अनुसार अमूल्य ग्रंथ-रत्नों का संग्रह करके हमारे उत्साह को बढ़ावेंगे और ऐसे सुयोग को हाथ से न जाने देंगे।

निवेदक—

विष्णुनारायण भार्गव
मालिक
नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ.

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
१. उपनिषद्		
पं० यमुनाशंकर-कृत टीका-सहित		
ईशावास्योपनिषद्	०, ३, ०	०, २, ३
ऐतरेयोपनिषद्	०, ४, ०	०, ३, ०
कठवल्ली उपनिषद्	०, ६, ०	०, ४, ६
केनोपनिषद्	०, ३, ६	०, २, ९
छांदोग्योपनिषद्	१, ८, ०	१, २, ०
तैत्तिरीयोपनिषद्	०, ८, ०	०, ६, ०
प्रश्नोपनिषद्	०, ६, ०	०, ४, ६
मांडूक्योपनिषद्	१, ०, ०	०,१२, ०
मुंडकोपनिषद्	०, ६, ०	०, ४, ६
बा० ज़ालिमसिंह-कृत टीका-सहित		
ईशावास्योपनिषद्	०, ३, ०	०, २, ३
ऐतरेयोपनिषद्	०, ४, ६	०, ३, ६
कठवल्ली उपनिषद्	०, ८, ०	०, ६, ०
केनोपनिषद्	०, ३, ६	०, २, ९
छांदोग्योपनिषद्	३, ४, ०	२, ७, ०
तैत्तिरीयोपनिषद्	०,११, ०	०, ८, ३
प्रश्नोपनिषद्	०, ८, ०	०, ६, ०
बृहदारण्यकोपनिषद्	३, ०, ०	२, ४, ०
मांडूक्योपनिषद्	०, ३, ०	०, २, ३
मुंडकोपनिषद्	०, ८, ०	०, ६, ०
२. वेदांत और योग-संबंधी पुस्तकें		
ईश्वरभक्ति	०, २, ०	०, १, ६
अपरोक्षानुभव	०, १, ०	०, ०, ९

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य
	रु. आ. पा.
बीजक कबीरदास	३, ०, ०
अवतार-सिद्धि	०, २, ०
अष्टावक्र-गीता (सटीक)	१, ८, ०
छप्पै रामगीता (सटीक)	०, ०, ९
प्रमोद-वन-विहार	०, ३, ०
भगवती-गीता (सं० टी० स०)	०, ३, ०
भक्तांबु-निधि गुन्दा	१,१०, ०
युगल-संवाद-बोध-प्रकाश	०, ४, ०
विवेक-प्रकाश	०, ५, ०
ज्ञान-आभूषण	०, ३, ०
ज्ञान-तरंग	०, ७, ०
अष्टावक्र-गीता (सं०टी०स०)	०, ४, ०
आत्म-बोध (भा० टी० स०)	०, १, ०
आनन्दामृतवर्षिणी	०,१२, ०
ईश्वर-दीपिका (सटीक उर्दू)	०, ३, ६
जप-ग्रंथ (साधुसिंह-कृत)	१, ०, ०
सफ़्ला सर्वसंग्रहादर्श	०, १, ६
दोहावली (गोस्वामि तुलसीदास-कृत)	०, २, ०
नृत्यराघव-मिलन	०, १, ९
परापूजा (भा० टी० स०)	०, ४, ०
पारसभाग (नवीन संस्करण)	४, ०, ०
पंचदशी (भा० टी० स०)	३, ८, ०
,, (सं० टी० स०)	१, ०, ०
भक्तमाल (प्रतापसिंह)	२, ८, ०
भक्तमाल सटीक (श्रीसीताराम-शरण भगवानप्रसादजी-कृत)	३,१२, ०
भक्ति-सागर (सजिल्द)	२, ८, ०
भगवद्गीता पंचरत्न मूल	०, ८, ०
भगवद्गीता सटीक (मुंशी हरिवंशलाल-कृत)	०, ६, ०

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
भगवद्गीता (आनन्दगिरि)	३, ०, ०	२, ४, ०
भगवद्गीता सटीक गुटका (मुंशी हरिवंशलाल-कृत)	०, २, ०	०, १, ६
भगवद्गीता सटीक (पं० गिरिजाप्रसादजी द्विवेदी-कृत)	०,१२, ०	०, ९, ०
भगवद्गीता सटीक (पं० सूर्यदीनजी सुकुल-कृत सजिल्द)	१, ४, ०	०,१५, ०
(अजिल्द)	१, ०, ०	०,१२, ०
भगवद्गीता सटीक (बा० ज़ालिमसिंह-कृत सजिल्द)	२, ८, ०	१,१४, ०
भगवद्गीता भाषा (हरिवल्लभ-कृत)	०, ४, ०	०, ३, ०
भगवद्गीता भाषा (बा० हरिराम-कृत) रश्मी काग़ज़	०,१४, ०	०, ९, ६
,, ग्लेज काग़ज़	१, २, ०	०,१३, ६
भागवत गुटका	०, ५, ०	०, ३, ९
भ्रम-नाशक	०, २, ०	०, १, ६
मुक्ति-मार्ग सजिल्द	१,१०, ०	१, ३, ६
याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-संवाद	०, ४, ०	०, ३, ०
योगवासिष्ठ (भाषा-वार्तिक)	९, ०, ०	६, १२, ०
राम-गीता सटीक (पं० सूर्यदीनजी सुकुल-कृत)	०, १, ३	०, १, ०
राम-गीता सटीक (पं० गिरिजाप्रसादजी द्विवेदी-कृत)	०, २, ०	०, १, ६
रामगीता (बा० ज़ालिमसिंह कृत)	०,१०, ०	०, ७, ६
राम-हृदय	०, १, ०	०, ०, ९
विवेक-दिवाकर (भाषा-पद्य)	०, ४, ०	०, ३, ०
विहार-वृंदावन	१, २, ०	०,१३, ६
वेदांत-सार-शिरोमणि	०, २, ६	०, २, ०
वैराग्य-प्रदीप	०, ४, ०	०, ३, ०
सांख्य-कारिका-तत्त्व-बोधिनी सटीक (बा० ज़ालिमसिंह-कृत)	०, ६, ०	०, ४, ६

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
सिद्धांत-प्रकाश	०, ७, ६	०, ५, ९
सुंदर-विलास	०, ४, ६	०, ३, ६
हरिहर-सगुण-निर्गुण-पदावली	०, ३, ०	०, २, ३
ज्ञान-प्रकाश	०, ६, ०	०, ४, ६
ज्ञान-स्वरोदय	०, १, ०	०, ०, ९
३. धर्मशास्त्र-संबंधी पुस्तकें		
याज्ञवल्क्य-स्मृति	०,१२, ०	०, ९, ०
प्राच्य-शिक्षा-रहस्य	०,१२, ०	०, ९, ०
मनुस्मृति सटीक (पं० गिरिजाप्रसादजी द्विवेदी-कृत)	२, ८, ०	१,१४.
मनुस्मृति भाषा-भाष्य-सहित (पं० मेहरचंदजी-कृत)	५, ०, ०	३,१२, ०
मनुस्मृति हिंदी-उर्दू	२, ०, ०	१, ८, ०
मानव-धर्म-सार (सटीक)	०, २, ०	०, १, ६
चातुर्वर्ण्य शिक्षा	३, ०, ०	कमीशन १५ फ़ी सदी
कुलोचित-धर्म-शिक्षा (भा० टी० स०)	१, ४, ०	०,१५, ०
निर्णयसिंधु (मूल)	२, ०, ०	१, ८, ०
भगवंत-भास्कर	०,१०, ०	०, ७, ६
मानव-धर्म-सार का सार	०, १, ०	०, ०, ९
जप्पजी (परमानंद)	२, ४, ०	१, १५, ०
४. कर्मकांड-संबंधी पुस्तकें		
उपनयन-पद्धति (सटीक)	०, ४, ०	०, ३, ०
कातीयपितृ-तर्पण	०, १, ६	०, १, ३
पार्वण-श्राद्ध-प्रयोग	०, १, ०	०, ०, ९
विवाह-पद्धति (सटीक)	०, ६, ०	०, ४, ६
५. नीति-संबंधी पुस्तकें		
चाणक्य-नीति-दर्पण (सटीक)	०, ३, ०	०, २ ३
शुक्र-नीति भाषा	०, ८, ०	०, ६, ०
मंडलीमंडन (सटीक) अर्थात् चाणक्यनीति	०, ३, ६	०, २, ९

मिलने का पता—मैनेजर, नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो), हज़रतगंज, लखनऊ.

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
६. पुराण		
आदिब्रह्म-पुराण भाषा	१, ८, ०	१, २, ०
इतिहास-समुच्चय भाषा	०,१०, ०	०, ७, ६
गरुड़-पुराण (भा० टी० स०)	०, ९, ०	०, ६, ९
गणेश-पुराण भाषा	०, १, ०	०, ०, ९
जैमिनि-पुराण भाषा	१, ४, ०	०, १५, ०
नरसिंह-पुराण भाषा	०,१२, ०	०, ९, ०
मत्स्यपुराण (सटीक)	४, ८, ०	३, ६, ०
मार्कण्डेय-पुराण (सटीक)	२,१२, ०	२, १, ०
श्रीमद्भागवत (भाषा पद्य प्रथम स्कंध)	०, ४, ०	०, ३, ०
पद्म-पुराण भाषा		
सृष्टि-खंड	२, ८, ०	१, १४, ०
भूमि-खंड	२, ८, ०	१, १४, ०
स्वर्ग-खंड (बड़ा)	२, ८, ०	१, १४, ०
स्वर्ग-खंड छोटा	१, ४, ०	०,१५, ०
ब्रह्म-खंड	०, १०, ०	०, ७, ६
पाताल-खंड	२, १२, ०	२, १, ०
क्रियायोग-सार-खंड	१, ८, ०	१, २, ०
बृहन्नारदीय-पुराण भाषा	०, ९, ०	०, ६, ९
ब्रह्मोत्तर-खंड भाषा	०, ५, ६	०, ४, ३
भविष्य-पुराण भाषा	२, ८, ०	१, १४, ०
मार्कंडेय-पुराण (मूल)	०, १२, ०	०, ९, ०
लिंग-पुराण भाषा	१, ९, ०	१, २, ९
वामन-पुराण भाषा	१, ६, ०	१, ०, ६
वाराह-पुराण भाषा	१, ९, ०	१, २, ९
शिव-पुराण भाषा सजिल्द सचित्र	४, ८, ०	३, ६, ०
श्रीमद्भागवत सचित्र भाषा टीका	२१, ०, ०	१५,१२, ०
श्रीमद्भागवत दशम-स्कंध सटीक काग़ज़ बादामी (पत्राकार)	२, ४, ०	१,११, ०
तथा सफ़ेद काग़ज़ सचित्र सटीक	४, ८, ०	३, ६, ०
सुख-सागर गुटका	२, ४, ०	१,११, ०

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
सुख-सागर सचित्र (साधारण अक्षर)	४, ८, ०	३, ६,
सुख-सागर सचित्र(बड़ा टाइप)	९, ०, ०	६,१२,
सेतु-माहात्म्य-खंड भाषा	१, ०, ०	०,१२,
स्कंद-पुराण (टीका सहित)		
ग्लेज़ काग़ज़	४०, ०, ०	३०, ०,
स्कंद-पुराण तथा रस्मी कागज़	३५, ०, ०	२६,
श्रीकाशी-खंड काग़ज़ सफ़ेद	६, ०, ०	४, ८
श्रीकाशी-खंड काग़ज़ रस्मी	५, ८, ०	४, २
नागर-खंड ,, सफ़ेद	६, ०, ०	४, ८
,, ,, रस्मी	५, ८, ०	४, २
प्रभास-खंड ,, सफ़ेद	६, ०, ०	४, ८
,, ,, रस्मी	५, ०, ०	३,१२
ब्रह्म-खंड ,, सफ़ेद	६, ०, ०	४, ८
,, ,, रस्मी	५, ८, ०	४, २
महेश्वर-खंड ,, सफ़ेद	६, ०, ०	४, ८
,, ,, रस्मी	५, ८, ०	४, २
अवंती-खंड ,, सफ़ेद	५, ८, ०	४, २
,, ,, रस्मी	५, ०, ०	३,१२
वैष्णव-खंड ,, सफ़ेद	६, ०, ०	४, ८
७. माहात्म्य-संबंधी पुस्तकें		
कार्तिक-मास-माहात्म्य	१, ८, ०	१, २
काशी-माहात्म्य	०, २, ९	०,
जगन्नाथ माहात्म्य	०, २, ९	०,
८. व्रत-कथा-संबंधी पुस्तकें		
व्रतार्क (भा० टी० स०)	२, ८, ०	१,१४
महारामायण अर्थात् विशू-चिका-आख्यान	०, १, ६	०,
सत्यनारायण मूल (पत्राकार)	०, २, ३	०,
सत्यनारायण-व्रत-कथा (सटीक)	०, २, ०	०,
सत्यनारायण भाषा	०, २, ०	०,
,, इतिहास समुच्चय	०, २।६,	०,

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
९. स्तोत्र-संबंधी पुस्तकें		
आदित्य-हृदय	०, १, ९	०, १, ३
गोपाल-सहस्रनाम (गुटका तावीज़ी)	०, १, ९	०, १, ३
गोपाल-सहस्रनाम (गुटका)	०, २, ३	०, १, ९
गोपाल-सहस्रनाम (पत्राकार)	०, २, ०	०, १, ६
गोपाल-सहस्रनाम (उर्दू-हिंदी)	०, १, ६	०, १, ०
राम-स्तवराज	०, १, ०	०, ०, ९
लक्ष्मी-हृदय-स्तोत्र	०, २, ०	०, १, ६
विष्णु-सहस्रनाम(गुटकातावीज़ी)	०, २, ६	०, २, ०
विष्णु-सहस्रनाम (गुटका) नया	०, २, ०	०, १, ६
विष्णु-सहस्रनाम सटीक (बद्रीदास-कृत)	०, ३, ०	०, २, ३
विष्णु-सहस्रनाम (सटीक बाबू ज़ालिमसिंह)	०,१२, ०	०, ९, ०
वेद-स्तुति (सटीक)	०, १, ६	०, १, ३
शिवलहिम्न-स्तोत्र (मूल)	०, १, ०	०, ०, ९
शिवमहिम्न-स्तोत्र (उर्दू-हिंदी)	०, १, ६	०, १, ३
श्रीविष्णु-सहस्रनाम (सजिल्द)	०, ६, ०	०, ४, ६
श्रीशिवतांडव-स्तोत्र	०, १, ३	०, १, ०
स्तोत्र-संग्रह मूल (सजिल्द)	१, ५, ०	०, १५, ९
,, ,, ,, (अजिल्द)	१, ०, ०	०,१२, ०
१०. स्तोत्र-संबंधी भाषा-पुस्तकें		
गंगालहरी (मूल) नक़ल बम्बई	०, १, ६	०, १, ३
शिव-सहस्रनामावली	०, १, ६	०, १, ३
परम-स्तोत्र-सार-संग्रह	०, २, ६	०, २, ०
ज्ञान-दीपिका	०, २, ०	०, १, ६
हनुमान-बाहुक (सटीक)	०, २, ०	०, १, ६
११. देवताओं के तख़्ते		
तख़्ता चित्र हनुमानजी	०, ०, ९	०, ०, ६

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
तख़्ता राम-नाम सीताराम	०, १, ०	०, ०, ९
तख़्ता श्रीकृष्ण-महिमा-दर्पण	०, १, ३	०, १, ०
१२. मंत्र-शास्त्र-संबंधी पुस्तकें		
मन्त्रमुक्तावली	०, ०, ३	०, ०, ३
दुर्गा-सप्तशती (पत्राकार)	०, ५, ०	०, ३, ९
दुर्गा-पाठ भाषा-टीका	०, ५, ०	०, ३, ९
दुर्गा-पाठ सं० टीका (नागोजी-भट्ट-कृत)	०, ७, ०	०, ५, ३
दुर्गा-सप्तशती (बंबई-अक्षर)	०, ८, ०	०, ६, ०
यजुर्वेदीय-संध्या	०, १, ३	०, १, ०
सप्तशती-सर्वस्व (सं० भाष्य-सहित अजिल्द)	१, १४, ०	१, ६, ६
संध्योपासन (स्वा० दयानंद-संगृहीत)	०, १, ६	०, १, ३
मेरुतंत्र (मूल)	३, ४, ०	२, ७, ०
१३. भाषा में महाभारत आदि पुस्तकें		
आदि-पर्व	२, ४, ०	१,११, ०
सभा-पर्व	०,१४, ०	०,१०, ६
वन-पर्व	३, ४, ०	२, ७, ०
विराट-पर्व	०,१२, ०	०, ९, ०
उद्योग-पर्व	२, ८, ०	१,१४, ०
भीष्म-पर्व	१,१२, ०	१, ५, ०
द्रोण-पर्व	२,१२, ०	२, १, ०
कर्ण-पर्व	१, ८, ०	१, २, ०
शल्य और गदा-पर्व	१, ४, ०	०,१५, ०
सौप्तिक और स्त्री-पर्व	०,१०, ०	०, ७, ६
शांति-पर्व	४, ४, ०	३, ३, ०
अनुशासन-पर्व	२, ४, ०	१,११, ०
अश्वमेध-पर्व	१, ४, ०	०,१५, ०

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
आश्रमवास-पर्व, मुशल-पर्व, महाप्रस्थान-पर्व और स्वर्गारोहण-पर्व	०,१२, ०	०, ९, ०
महाभारत-दर्पण (अर्थात् महाभारत काशी-नरेश पद्यानुवाद)	११, ०, ०	८, ४, ०
महाभारत भाषा वार्तिक कामिल अजिल्द	२५, ०, ०	१८,१२, ०
महाभारत भाषा वार्तिक सजिल्द	२७, ०, ०	२०,१२, ०
महाभारत, सजिल्द (सबलसिंह चौहान-कृत पद्य में)	२, ४, ०	१,११, ०

१४. संस्कृत में रामायण आदि पुस्तकें

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
मूल-रामायण	०, १, ६	०, १, ३

१५. गो० तुलसीदास-कृत रामायणादि पुस्तकें

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
कवितावली-रामायण (मूल)	०, २, ६	०, २, ०
" " (सटीक)	१, ४, ०	०,१५, ०
छंदावली रामायण (सटीक)	०, १, ६,	०, १, ३,
छप्पैरामायण (मूल)	०, ०, ६,	०, ०, ६
कुंडलिया-रामायण (सटीक)	०,१०, ०	०, ७, ६
गीतावली (मूल)	०, ५, ०	०, ३, ९
तुलसीकृत रामायण सटीक पत्रादार (सुखदेवलाल-कृत)	२, ४, ०	१,११, ०
तुलसीकृत-रामायण (मूल) छोटा गुटका	१, १, ०	०,१२, ९
तुलसीकृत-रामायण (मूल) मँझोला गुटका	१, ६, ०	१, ०, ६
रामायण गुटका मूल	०, ६, ०	०, ४, ६
तुलसी-कृत रामायण (मूल)	२, ४, ०	१,११, ०

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
तुलसी-कृत रामायण मूल		
बाल-कांड	०, ६, ०	०, ४,
अयोध्या-कांड	०, ४, ०	०, ३,
आरण्य-कांड	०, २, ०	०, १,
किष्किंधा-कांड	०, ०, ९	०, ०,
सुंदर-कांड	०, १, ६	०, १,
लंका-कांड	०, ४, ६	०, ३,
उत्तर-कांड	०, ३, ०	०, २,
तुलसी-कृत रामायण सटीक (बाबा रामचरणदासजी-कृत)	१०, ०, ०	७, ८,
तुलसी-कृत रामायण सटीक (सुखदेवलाल-कृत)	४, ८, ०	३, ६,
तुलसी-कृत रामायण सटीक और सचित्र गुटका (पं० सूर्यदीनजी सुकुल-कृत)	३, ४, ०	२, ७,
तुलसी-कृत रामायण सटीक और सचित्र (पं० सूर्यदीनजी सुकुल-कृत)	४, ८, ०	३, ६,
तुलसी-सतसई (मूल)	०, ४, ०	०, ३,
तुलसीसतसई (सटीक)	१, ८, ०	१, २,
तुलसी-कृत मानस-दीपिका	०, २, ०	०, १,
तुलसी-कृत मानस-प्रचारिका	०, ७, ०	०, ५,
विनय-पत्रिका (मूल)	०, ५, ०	०, ३,
विनय-पत्रिका सटीक (पं० सूर्यदीनजी सुकुल-कृत सजिल्द)	१, १२, ०	१, ५,
" " (अजिल्द)	१, ८, ०	१, २,
विनयपत्रिका (श्रीबैजनाथ)	३, ०, ०	२, ४,
विजय-दोहावली	०, १, ०	०, ०,
श्रीरामचरितमानस विशुद्ध	३, ०, ०	२, ४,
श्रीमानस-रामायण-प्रश्नोत्तरार्थ-प्रकाश	०, १०, ०	०, ७,

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
१६. अन्य रामायणादि पुस्तकें		
अद्भुत रामायण	०, १, ९	०, १, ३
गीत-रामायण	०, २, ०	०, १, ६
राम-चंद्रिका सटीक	२, ०, ०	१, ८, ०
रामायण अध्यात्म-विचार (भाषा)	४, ८, ०	३, ६, ०
श्रीराम-व्याहोत्सव	०, ६, ०	०, ४, ६
सीता-स्वयंवर	०, ४, ०	०, ३, ०
उभय-प्रबोधक रामायण	१, ४, ०	०, १५, ०
वृंद रामायण	०, २, ०	०, १, ६
भक्ति-शिरोमणि	०, १२, ०	०, ९, ०
रामनिवास-रामायण	१, ०, ०	०, १२, ०
रामायण उमराव-कृत	०, १०, ०	०, ७, ६
रामायण रामानुरागावली	०, ४, ०	०, ३, ०
रामाश्वमेध छंदोबद्ध	०, १२, ०	०, ९, ०
संक्षिप्त रामाश्वमेध	०, ३, ०	०, २, ३
१७. उपन्यास		
आज़ाद-कथा (दो खंड)	४, ८, ०,	३, ६, ०
चित्त-विलास (दोनों भाग)	०, ८, ६	०, ६, ६
पथिक-दर्शन	०, ६, ०	०, ४, ६
फूल में काँटा	०, १२, ०	०, ९, ०
प्रताप	०, १०, ०	०, ७, ६
मन-दर्पण	०, १२, ०	०, ९, ०
मनोरंजन	०, ६, ०	०, ४, ६
राम-प्रताप	०, ८, ०	०, ६, ०
बंगाली दुलहिन	०, १२, ०	०, ९, ०
मार आस्तीन (दोनों भाग)	१, २, ०	०, १३, ६
मृणालिनी	०, ८, ०	०, ६, ०
१८. संस्कृत-काव्य		
गीतगोविंद (सं० टी० स०)	०, ५, ०	०, ३, ९
गीतगोविंदादर्श (भाषा-प्रतिबिंब)	०, ३, ६	०, २. ९
मेघदूत (मल्लिनाथी टी० स०)	०, १०, ०	०, ७, ६
रघुवंश ,,	१, ०, ०	०, १२, ०
सार्थ-पुष्पांजलि	०, १, ३	०, १. ०
१९. भाषा-काव्य		
अनुराग-लतिका	०, २, ६	०, २, ०
अनुराग-वर्द्धिनी	०, ३, ६	०, २, ९
उपदेश-चंद्रिका	०, २, ६	०, २, ०
कवि-प्रिया (मूल)	०, ७, ०	०, ५, ३
काव्य-कलासिनी	०, २, ०	०, १, ६
कुंडलिया (गिरिधरराय)	०, १, ३	०, १, ०
कृष्ण-बाललीला	०, १, ०	०, ०, ९.
गर्ग-संहिता	१, ०, ०	०, १२, ०
चित्र-चंद्रिका	०, ५, ०	०, ३, ९
दुर्गा-विजय (भाषा)	०, २, ०	०, १, ६
द्वादश-महावाक्य-प्रश्नावली	०, १, ३	०, १, ०
नख-शिख-वर्णन सटीक	०, ४, ०	०, ३, ०
नवीन संग्रह	०, ५, ०	०, ३, ९
नासिकेतोपाख्यान	०, ३, ६	०, २, ९
पंच-पचीसी	०, १, ०	०, ०, ९
पावस-कवित्त-रत्नाकर	०, २, ०	०, १, ६
प्राणप्यारी	०, १, ६	०, १, ३
कृष्ण-प्रिया	०, १४, ०	०, १०, ६
कृष्ण-सागर	०, ६, ६	०, ५, ०
जानकी-पंचाशिका	०, १, ०	०, ०, ९
दुर्गायन	०, १२, ०	०, ९, ०
नाथ-संग्रह	०, ५, ६	०, ४, ३
नाथ-सरोज	०, ४, ०	०, ३, ०
नानार्थ नव-संग्रहावली	०, १०, ०	०, ७, ६
प्यारे-विनोद	०, १, ६	०, १, ३
प्रयागनारायण-विलास	०, ६, ०	०, ४, ६
भुवनेश-भूषण	०, १, ६	०, १, ३
माधव-विलास	०, ३, ०	०, २, ३

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
युगल-नाममाला	०, १, ०	०, ०, ९
युगल-विलास	०, १, ६	०, १, ३
रस-तरंग	०, २, ६	०, २, ०
रसिक-मोहन	०, ४, ०	०, ३, ०
रस-प्रबोध	०, ३, ०	०, २, ३
राधा-विषादमोचनावली	०, १४, ०	०, १०, ६
रामानंद-विहार	०, १, ३	०, १, ०
रंभा-शुक-संवाद	०, १, ०	०, ०, ९
विजय-विशाल	०, ३, ६	०, २, ९,
विनय-पत्रिका गंगादास (चारों भाग)	०, ५, ६	०, ४, ३
शशिमौलि	०, २, ६	०, २, ०
शिवराम-सरोज	०, १, ६	०, १, ३
शिवरत्न-संग्रह	०, २, ६	०, २, ०
शैवी-निधि	०, ५, ०	०, ३, ९
शृंगार-प्रदीप	०, १, ६	०, १, ३
श्याम-केलि	०, १, ६	०, १, ३
षट्ऋतु-वर्णन	०, १, ०	०, ०, ९
समर-विजय	०, १, ६	०, १, ३
सीताराम-नख-शिख	०, १, ६	०, १, ३
सीताराम-विवाह-संग्रह	१, ४, ०	०, १५, ०
सुजान-सरोज	०, १, ६	०, १, ३
गोवर्धन-विलास	१, ०, ०	०, १२, ०
बिहारी-सतसई (सटीक)	१, ०, ०	०, १२, ०
भाषा-काव्य-संग्रह	०, ५, ६	०, ४, ३
भारती-भूषण	०, १, ३	०, १, ०
रघुराज-विलास	०, ६, ०	०, ४, ६
रसिक-प्रिया (सटीक)	०, ९, ०	०, ६, ९
राम-सुधा	०, १, ३	०, १, ०
रामशलाका व रामाज्ञा	०, ५, ०	०, ३, ९
विचित्रोपदेश	०, १, ३	०, १, ०
विजय-चंद्रिका	०, ६, ०	०, ४, ६

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौ मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ.
विजय-मुक्तावली	०, ६, ६	०, ५,
विश्राम-सागर (मध्यम)	२, ०, ०	१, ८,
,, (गुटका)	१, २, ०	०, १३,
व्रज-विलास (सजिल्द)	२, ८, ०	१, १४,
,, (स्टिक कवर)	२, ४, ०	१, ११,
,, (गुटका)	०, १५, ०	०, ११,
व्रज-विलास-सारावली	०, ४, ०	०, ३,
शिव-पार्वती-चरित्र	०, ८, ०	०, ६,
शिवराज-भूषण	०, ३, ०	०, २,
शिवसिंह-सरोज	२, ०, ०	१, ८,
शंकर-दिग्विजय (भाषा)	०, १०, ०	०, ७,
षट्ऋतु-काव्य-संग्रह	०, ५, ६	०, ४,
षट्ऋतु-हज़ारा	१, ०, ०	०, १२,
सत्संग-सागर	०, ६, ०	०, ४,
सभा-विलास	०, २, ६	०, २,
सुदामा-चरित्र सरदार कवि	०, ४, ०	०, ३,
सुंदरी-चरित्र (दुर्गापाठ भाषा)	०, २, ०	०, १,
सुंदरी-तिलक	०, २, ६	०, २,
सूरदास का दृष्टिकूट	०, ८, ०	०, ६,
हरि-प्रबोधिनी	०, ४, ०	०, ३,
२०. संगीत-राग भजन-आदि-संबंधी पुस्तकें		
अनिरुद्ध-परिणय	०, २, ६	०, २,
अर्ज-पत्रिका	०, २, ०	०, १,
आनंदसागर प्रथम भाग	०, १०, ०	०, ७,
आनंद-सागर(सचित्र)दूसराभाग	०, ८, ०	०, ६,
ख्याल मातादीन	०, ३, ०	०, २,
गोपीचंद भरथरी	०, १, ६	०, १,
धीलाल रसिक-मनहरण (पाँचों भाग)	०, ४, ६	०, ३,
धर्म-प्रेम-तरंग	०, ४, ०	०, ३,
धर्मोपदेश	०, २, ०	०, १,

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
नवरत्न-भाष्य वृंदावन-विलास	०, ३, ०	०, २, ३
नवीन ग़ज़ल-संग्रह	०, २, ६	०, १, ९
नवीनगज़लसंग्रह	०, २, ६	०, १, ९
प्रह्लाद-नाटक	०, १, ६	०, १, ३
प्रावृट-प्रिया	०, १, ३	०, १, ०
प्रेम-रत्न	०, २, ६	०, २, ०
प्रेम-रसामृत	०, १, ०	०, ०, ९
प्रेमावली	०, १, ३	०, १, ०
भक्त-रसनामृत	०, १, ०	०, ०, ९
भजन-प्रभाती	०, १, ६	०, १, ३
भजन-बत्तीसी (भक्ति-दीपक)	०, १, ०	०, ०, ९
भजन-माला	०, १, ३	०, १, ०
भजन-रत्नाकर	०, १, ६	०, १, ३
भजन-रामायण	०, १, ६	०, १, ३
भजन-विनय-पचीसी	०, १, ३	०, १, ०
भजनावली रामायण	०, २, ०	०, १, ६
मनहरण-भजनावली (चारों भाग)	०, ६, ६	०, ५, ०
राम-विनय-वाटिका	०, १, ६	०, १, ३
ललन-कवित्तावली	०, २, ०	०, १, ६
ललन-चंद्रिका (सटीक)	०, ४, ०	०, ३, ०
ललन-प्रकाश	०, १, ६	०, १, ३
ललन-प्रदीपिका	०, ३, ०	०, २, ३
अष्टयाम	०, ४, ०	०, ३, ०
काशी-भजनावली	०, १, ६	०, १, ३
इंद्र-प्रकाश	०, ४, ०	०, ३, ०
बहार-प्रेम-सुधा	०, ०, ६	०, ०, ३
भक्ति-सुमन	०, १, ०	०, ०, ९
भजन-संग्रह	०, ३, ०	०, २, ३
मान-प्रकाश	०, २, ०	०, १, ६
रहस्य-चंद्रिका	०, १, ६	०, १, ३
राग-प्रकाश	०, ३, ६	०, २, ९

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
राग-संग्रह	०, ३, ३	०, २, ६
राग-विनोद (बड़े साइज़ का)	०, ४, ०	०, ३, ०
राग-विनोद	०, १, ३	०, १, ०
राम-राग	०, २, ६	०, २, ०
रासलीला (बड़ी)	१, ०, ०	०,१२, ०
संगीत-शिक्षा	०, २, ६	०, २, ०
संगीत-गुंजपरी	०, ५, ०	०, ३, ९
सीताराम-संयोग-पदावली	०, २, ६	०, २, ०
ललन-प्रबोधिनी	०, १, ०	०, ०, ९
ललन-प्रभाकर	०, २, ०	०, १, ६
ललन-प्रमोदिनी	०, १, ०	०, ०, ९
ललन-प्रमोहिनी	०, २, ०	०, १, ६
ललन-रत्नाकर	०, १, ९	०, १, ३
ललन-रस-मंजरी	०, ३, ०	०, २, ३
ललन-रसिया	०, १, ०	०, ०, ९
ललन-लतिका	०, २, ६	०, २, ०
ललन-विनोद	०, ५, ०	०, ३, ९
ललन-विलास	०, २, ६	०, २, ०
ललन-शिरोमणि	०, १, ६	०, १, ३
लावनी पंचरत्न	०, १, ६	०, १, ३
लावनी बनारसी	०, ४, ०	०, ३, ०
विनय-प्रकाश	०, १, ०	०, ०, ९
विनय-विलास	०, १, ६	०, १, ३
विनय-विहार	०, २, ०	०, १, ६
विश्व-विनय	०, १, ३	०, १, ०
विष्णु-गीतावली	०, ३, ०	०, २, ३
वीणा-प्रकाश	०, ९, ०	०, ६, ९
बंशी-राग-माला	०, २, ६	०, २, ०
व्रज-विलास-कवितावली	०, ४, ३	०, ३, ३
शिवनारायण-भजनमाला	०, ८, ०	०, ६, ०
श्रीज्ञान-रूपया	०, १, ३	०, १, ०
सदाबहार (चारों भाग)	०, ६, ०	०, ४, ६
साईं के सौ ख़्याल	०,१४, ०	०,१०, ६

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
सांगीत प्रह्लाद	०, १, ६	०, १, ३
खिया-स्वयंवर	०, ३, ०	०, २, ३
हीर राँझा	०, २, ०	०, १, ६
२१. नाटक		
अभिज्ञान-शकुंतला-नाटक	०, ८, ०	०, ६, ०
आनंद-रघुनंदन-नाटक	०, ४, ०	०, ३, ०
प्रबोध-चंद्रोदय-नाटक (पं० भूदेव दुबे-कृत)	०, २, ०	०, १, ६
प्रबोध-चंद्रोदय-नाटक (महात्मा अनाथजी-कृत)	०, ४, ०	०, ३, ०
प्रबोधद्युमणयुदय (आध्यात्मिक) नाटक	०, १, ६	०, १, ३
मयंक-मंजरी-नाटक	०, ५, ०	०, ३, ९
रामरसामृत-सागर-नाटक	१, १, ६	०,१३, ३
विद्याविलासी व सुख-संबंधिनी नाटक	०, ३, ०	०, २, ३
हनुमन्नाटक	०, ५, ०	०, ३, ९
हनूनाटक	०, १, ६	०, १, ३
२२. आल्हा-छंद की पुस्तकें		
आल्ह-खंड	१, ८, ०	१, २, ०
पद्मावती-खंड	०, ३, ६	०, २, ८
रामायण किष्किन्धा कांड आल्हा छन्दों में	०, ३, ६	०, २, ८
रामायण सुंदर कांड ,,	०, ६, ०	०, ४, ६
रामायण लंका कांड ,,	०, ८, ०	०, ६, ०
२३. जीवन-चरित-संबंधी पुस्तकें		
गुरु-भक्त-प्रकाश (छंदोबद्ध)	०,१०, ०	०, ७, ६
वेदज्ञ मैक्समूलर	०, ६, ०	०, ४, ६
शुकदेवजी का जीवन-चरित्र	०. ५. ०	०. ३. ९

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ.
२४. व्याकरण		
लघुसिद्धान्त कौमुदी	०, ६, ०	०, ४,
सारस्वत (भा० टी० स०)	२, १२, ०	२, १,
सिद्धान्तचन्द्रिका उत्तरार्ध (सटीक)	३, ८, ०	२,१०,
सारस्वत व्याकरण सूत्र (सजिल्द)	०, ६, ०	०, ४,
२५. क़िस्से-कहानी की पुस्तकें		
दृष्टान्तप्रदीपनी (पहला भाग)	०,१२, ०	०, ९,
,, (चौथाभाग) पूर्वार्ध	०,१०, ०	०, ७,
,, ,, उत्तरार्ध	१, ८, ०	१, २,
कथा-सरित्-सागर (सजिल्द)	३, ८, ०	२,१०,
दास्तान अमीरहमज़ा(नीम कदर)	२, ०, ०	१, ८,
पद्मावत भाषा (छंदोबद्ध)	०,१२, ०	०, ९,
वचन-तरंगिणी	०, ४, ०	०, ३,
विचित्र-चरित्र	३, ०, ०	२, ४,
सहस्र-रजनी-चरित्र (अलिफ़लैला)	३, ८, ०	२,१०,
२६. संस्कृत व भाषा-कोष		
अमर-कोष(भाषा-भाष्य-समेत)	३, ०, ०	२, ४,
अमर-कोष(संस्कृत-व्याख्या-समेत	३, ८, ०	२,१०,
अमरकोष प्रथम कांड नवीन (सं० टी० स०)	०, ५, ०	०, ३,
शब्दार्थ-संग्रह-कोष	१,१०, ०	१, ३,
चतुर्वेदी-संस्कृत-हिंदी-कोष (सजिल्द)	३, ०, ०	२, ४,
२७. गणित-संबंधी पुस्तकें		
गणित-दर्पण	०, २, ६	०, २,
क्षेत्र-माप-प्रक्रिया	०, ६, ०	०, ४,
क्षेत्र-सुगमता	०,१२, ०	०, ६,
सिद्धान्ततत्त्वविवेक	४, ८, ०	कमीशन
२८. वैद्यक-संबंधी पुस्तकें		
अर्क-प्रकाश (भा०टी०स०)	०,१२, ०	०, ६,

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
मदनपालनिघंटु भाषा	०, १४, ०	०,१० ६
मानवशरीररहस्य (प्रथमभाग)	२, ८, ०	१,१४, ०
अमर-विनोद भाषा	०, ३, ६	०, २, ९
ओषधि-रत्न-माला (छंदोबद्ध)	०, ६, ०	०, ४, ६
औषध-पीयूष (छंदोबद्ध)	१, ८, ०	१, २, ०
औषध-संग्रह-कल्पवल्ली	०, ३, ६	०, २, ९
कवि-तरंग (भाषा)	०, ७, ०	०, ५, ३
द्-तिमिर-भास्कर (भाषा)	६, ०, ०	४, ८, ०
चिकित्सोपदेशिका (भाषा)	१, ०, ०	०,१२, ०
द्विजगन-चिकित्सा (छंदोबद्ध)	०, ५, ०	०, ३, ९
नयनानंद-बोधिनी (भा०टी०स०)	०,१२, ०	०, ९, ०
निघंटु-रत्नाकर भाषा (दो खंड)	६, ८, ०	४,१४, ०
बृहत्पाकावली (भा०टी० स०)	०, ८, ०	०, ६, ०
माधव-निदान (भा०टी०सजिल्द)	२, ०, ०	१, ८, ०
स-मंजूषा (भाषा)	०, ५, ०	०, ३, ९
म-विनोद (भाषा)	१, ०, ०	०,१२, ०
-प्रिया (भाषा-छंदोबद्ध)	१, ०, ०	०,१२, ०
-जीवन (सं० टी० स०)	०, ५, ६	०, ४, ३
वंगसेन-संहिता सजिल्द (भा० टी० स०)	९, ०, ०	६, १२.०
शालहोत्र (भा० छंदोबद्ध)	०, ४, ०	०, ३, ०
राज-निदान (भा०टी०स०)	०, ८, ०	०, ६, ०
९. ज्योतिष-संबंधी पुस्तकें		
आश्चर्यप्रश्न विज्ञान	०, ०, ९	०, ०, ६
कर्मविपाक-संहिता (मूल)	०, ५, ०	०, ३, ९
,, (सटीक)	१, ४, ०	०, १५, ०
जातक-पारिजात (मूल)	०, २, ०	०, १, ६
जातकाभरण (मूल)	०, ५, ६	०, ४, ३
,, (सटीक)	१, ८, ०	१, २, ०
जातकालंकार (सटीक)	०, ३, ३	०, २, ६
ज्योतिष-भूषण (भाषा)	०, ५, ०	०, ३, ९
द्भुत-तरंगिणी (मूल)	०, ८, ०	०, ६, ०
चंद्-दीपण	०, २, ६	०. २. ०

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
शकुनावली (भड्डुलीकृत)	०, १, ०,	०, ०, ९
मुहूर्त-गणपति पत्राकार (मूल)	०, ७, ०	०, ५, ३
मुहूर्त-चिंतामणि (सं०टी०स०)	०, ८, ०	०, ६, ०
मुहूर्त-कल्पद्रुम (मूल)	०, ४, ०	०, ३, ०
शिशुबोध	०, २, ६	०, २, ०
सामुद्रिक (मूल)	०, १, ६	०, १, ३
ज्योतिष-सिद्धांत-सारसंग्रह	०, ५, ०	०, ३, ९
ज्योतिःसारावली	०, २, ६	०, २, ०
ज्योतिश्चन्द्रार्क (सं० टी० स०)	३, ०, ०	२, ४, ०
तुलसी-शब्दार्थ-प्रकाश	०, ६, ६	०, ५, ०
नीलकंठी (सटीक)	१, ४, ०	०,१५, ०
प्रश्न-विद्या-द्रेष्काण-निरूपण	०, ४, ०	०, ३, ०
बाल-विवेकिनी	०, १, ०	०, ०, ९
बीज-गणित (सटीक)	२, ०, ०	१, ८, ०
बृहज्जातक (सटीक)	१, ०, ०	०,१२, ०
बृहज्ज्योतिस्सार (सटीक)	१, ८, ०	१, २, ०
मुहूर्त-गणपति (सटीक)	०, १४, ०	०, १०, ६
मुहूर्त-चंद्रिका	०, १, ३	०, १. ०
मुहूर्त-चिंतामणि (सटीक)	०, १३, ०	.०, ९, ९
मुहूर्त-दीपक (सटीक)	०, २, ६	०, २, ०
रमल-नवरत्न	०, २, ९	०, २, ३
लग्नचन्द्रिका	०,१२, ०	०, ९, ०
लघु पाराशरी (सटीक)	०, १, ९	०, १, ३
शीघ्रबोध (नकल बंबई)	०, ६, ०	०, ४, ६
,, ,, (सटीक)	०, ६, ०	०, ४, ६
षट्पञ्चाशिका (सटीक)	०, १, ६	०, १, ३
सामुद्रिक-शास्त्र (सटीक)	२, ८, ०	१,१४, ०
सिद्धांत-शिरोमणि गोलाध्याय (सटीक)	१, १४, ०	१, ६, ६
सिद्धान्तशिरोमणि गणिताध्याय (सटीक)	२, ८, ०	१,१४, ०
होरा-मकरंद	०, २, ६	०, २, ०
३०. बालकोपयोगी पुस्तकें		
छोटा भूगोल-हस्तामलक	०. २. ६	०, २. ०

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन-चौथाई मूल्य
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
पत्र-दीपिका	०, २, ०	०, १, ६
विद्या-चक्र	०, १, ०	०, ०, ६
३१. क़ानूनी पुस्तक		
कमीशन बड़ौदा	२, ८, ०	१,१४, ०
३२. फुटकर पुस्तकें		
कामकुंज	२, ८, ०	१,१४, ०
विज्ञानवार्ता	१, ६, ०	१, ०, ६
चरणव्यूह	०, १, ०	०, ०, ६
गुरु-भक्त-प्रकाश	०,१०, ०	०, ७, ६
धर्माधर्म-विचार	०, ४, ०	०, ३, ०
वचनामृत	०, २, ०	०, १, ६
कान्यकुब्ज-वंशावली	१, ०, ०	०,१२, ०
खेल-शतरंज	०, ४, ०	०, ३, ०
गोवर्धननाथ के प्राकट्य की वार्ता	०, २, ६	०, २, ०
गृहस्थ-ज्ञान-प्रकाश	०, १, ०	०, ०, ६
छन्द-प्रदीप	०, २, ६	०. २, ०

नाम पुस्तक	साधारण मूल्य	तीन
	रु. आ. पा.	रु. आ.
जुग़राफ़िया (दुनिया)	०, २, ०	०,
तवारीख़-रूस	२, ०, ०	१,
द्वारकाश्रम-यात्रा-दर्पण	०,१२, ०	०,
भारत की नागरिक जनता और गोपालन	०, २, ०	०,
महाकवि कालिदास	०, ४, ०	०,
महाकवि भवभूति	०, ५, ०	०,
महाजनीसार	०, २, ०	०,
वल्लभाख्यान	०, २, ०	०,
शिक्षा-पत्र	०, २, ०	०,
षडंग	०, ४, ०	०,
सिल-दिक़ का सही इलाज	०, ८, ०	०,
हरद्वार-दर्पण	०, ३, ०	०,
ज्ञान-चालीसा	०, ०, ६	०,

छप गया ! शीघ्र मँगाइए ! ! आज ही ! ! !

श्रीमद्भागवत

(भाषाटीका-सहित)

[४७५ दृष्टान्तों से युक्त सचित्र संस्करण]

यह एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है, अतएव इसकी प्रशंसा करना अथवा इसमें वर्णन किये हुए विषयों के बारे में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान व्यर्थ है । इतना ही लिख देना यथेष्ट होगा कि यह पुराण सब पुराणों में श्रेष्ठ है ।

जिस ग्रन्थ के लिए हमारे पास हज़ारों आर्डर आ रहे थे, जिसके लिए जनता बहुत दिनों से उत्सुक थी, जो ग्रन्थ कई वर्षों से हमारे स्टाक में नहीं था, जिसके तैयार करने में हमको कई वर्ष लग गये, वह ग्रन्थ अब बड़े सज-धज से छपकर तैयार हो गया है। यद्यपि इसके तैयार करने में बहुत देर लगी और पाठकों को बहुत दिन इसकी प्रतीक्षा करनी पड़ी, किन्तु हर्ष की बात है कि वे इसकी छपाई-सफ़ाई, टीका की शुद्धता और इसमें प्रकाशित १५, १६ तिरंगे चित्र देखकर सन्तुष्ट हो जायँगे और विलम्ब के लिए हमको क्षमा करेंगे । इसकी टीका कई धुरंधर विद्वानों से शुद्ध कराई गई है । भाषा सरल और मुहाविरेदार है । मूल श्लोक में ऐसा कोई शब्द आपको न मिलेगा, जिसका अर्थ न कर दिया गया हो । इसके सिवा मौक़े-मौक़े पर अनेक टिप्पणियाँ और दृष्टान्त देकर इस ग्रन्थ को और भी अधिक उपयोगी बना दिया गया है । सप्ताह बाँचनेवाले पण्डितों के लिए तो यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है, उन्हीं की सुविधा के लिए पत्राकार छापा गया है । बीच में, मोटे अक्षरों में मूल श्लोक और ऊपर-नीचे भाषाटीका है । सबकी सुविधा के लिए यथासम्भव मूल्य बहुत कम, अर्थात् केवल २१) रियायती मूल्य १५॥।) रक्खा गया है ।

पारस भाग

इसमें वेदांतमतानुसार काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और अहंकार आदि दूर करने के उपाय, व्रत, दान करने के लाभ और प्रीति, दया, सत्य, असत्य, चोरी, ईर्ष्यादि बहुत-से देहसंबंधी कर्मों का निर्णय इतिहास और कथा के रूप में वर्णित है। जो वेदान्त के गूढ़ विषयों को नहीं समझ सकते, उनके लिये यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी है। इसकी भाषा ऐसी सरल है कि थोड़ा पढ़ा भी मनुष्य भले प्रकार समझ सकता है। सर्वसाधारण ने इसे ऐसा पसंद किया है कि हज़ारों पुस्तकें बिक चुकी हैं। इस बार छपाई, सफ़ाई, काग़ज़ आदि उत्तम और एक तिरंगा चित्र भी दे दिया गया है। मूल्य केवल ४) रियायती मूल्य ३) रक्खा गया है।

चातुर्वर्ण्य शिक्षा

(वेददृष्टि-सहित)

[रचयिता महामहोपाध्याय

पं० श्रीदुर्गाप्रसाद द्विवेदी]

मनुष्य अपना कर्म न जानने के कारण ही संसार में कष्ट उठाता है। प्रत्येक हिंदू को अपने जाति-कर्म को जानना आवश्यक है। प्रत्येक वर्ण की शिक्षा इसमें विस्तारपूर्वक दी हुई है। धर्मशास्त्री और व्याख्यानदाताओं को भी समय-समय पर प्रमाण उद्धृत करने में बड़ी उपयोगी हो सकती है। मूल्य ३)

स्त्रियोपयोगी पुस्तकें

नारी-चरित-माला—संग्रहकर्त्ता हैं, पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी। इसमें सती, गांधारी, सुकन्या और लीलावती आदि पंद्रह पौराणिक काल की और कृष्णाकुमारी, दुर्गावती और जीजाबाई आदि दस ऐतिहासिक काल की उन पतिव्रता स्त्रियों के पवित्र जीवन-चरित्र हैं, जो आजकल देवी-स्वरूप मानी जाती हैं। पुस्तक की भाषा अति उत्तम और सरल है। पृष्ठ-संख्या २०४; मूल्य ॥=)

पतिव्रता स्त्रियों के जीवनचरित्र—इसमें मदालसा, दमयंती, कैकेयी, अहल्या, मीराबाई, देवी भवानी, संयोगिता और तारा आदि कोई तीस पतिव्रता स्त्रियों का पवित्र जीवनचरित्र है। यदि आप चाहते हैं कि हमारी स्त्रियाँ वीर संतान उत्पन्न करें, यदि आप चाहते हैं कि हमारी बहनें एवं कन्याएँ सुचरित्रा और सुशीला बनें, तो एक बार इस अमूल्य पुस्तक को उनके हाथों में अवश्य दीजिए। इस बार पुस्तक के टाइटिल पर सुंदर तिरंगा चित्र भी दे दिया गया है। भाषा भी परिमार्जित कर दी गई है। पृष्ठ-संख्या ३५८; मूल्य १=)

भार्या-हित—अनुवादक, चौबे रघुनाथदास। इसमें मासिक धर्म, गर्भाधान, प्रसवपीड़ा और बच्चे को दूध पिलाना इत्यादि अनेक विषय बड़ी उत्तमता से वर्णन किए गए हैं। पृष्ठ-संख्या ३३०; मूल्य ॥।)

महिला-हितैषिणी—लेखक पं० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी। इसमें सुंदरता, लज्जा, विनय, गंभीरता, सरलता, संतोष, श्रमशीलता, ममता, अतिथिसेवा, सुजनता, आदि स्त्रियों के गुण एवं विलासिता, स्वेच्छाचारिता, कलह, पर-निंदा, अपव्यय और अमितव्यय आदि स्त्रियों के दोष गर्भिणी स्त्रियों के जानने योग्य-बातें, दी गई हैं। अपूर्व ग्रंथ-रत्न छपकर तैयार है, इसे शीघ्र मँगाकर अपनी माताओं, बहनों एवं देवियों को दीजिए। इसमें इस बार टाइटिल पर तीनरंगा चित्र भी दे दिया गया है। पृष्ठ-संख्या २३०; मूल्य १)

स्त्रीसुबोधिनी—स्त्रियों के लिये इससे उपयोगी और उत्तम पुस्तक आज तक हिंदी-संसार में कहीं नहीं छपी। इसमें पाँच भाग हैं। पहले भाग में गृह-धर्म, गृह-कार्य और व्यय आदि का प्रबंध एवं अनेक अमूल्य शिक्षाएँ हैं। दूसरे भाग में अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बनाने की विधि, शिल्प-विद्या, चित्रकारी और सीना-पिरोना आदि कितने ही सुंदर और उपयोगी विषयों का वर्णन है। तीसरे भाग में गर्भ-रक्षा, धात्री-शिक्षा, स्त्री-रोग की अनेक अनुभूत औषधियाँ तथा स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी अनेक उपदेश हैं। चौथे भाग में बालकों का पोषण, बालरोग-चिकित्सा और बालक-संबंधी अनेक उपयोगी और अति आवश्यक शिक्षाओं का समावेश है। पाँचवें भाग में धर्मोपदेश एवं अनेक प्रकार की रीति-नीति और व्रत-त्योहारों का वर्णन है। स्त्रियों के लिये सब प्रकार का परमोपयोगी शिक्षाओं से पूर्ण यदि कोई पुस्तक है, तो यही है। पृष्ठ-संख्या ८३६ ; मूल्य केवल २॥)

मिलने का पता—**मैनेजर—नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो), लखनऊ.**

शिवनारायण-भजनमाला

गाने का गाना और समय का सदुपयोग।

स्त्री-पुरुष दोनों के काम की पुस्तक। ग़ज़ल-क़व्वाली की बाज़ारू दो-दो पैसेवाली पुस्तकों ने किस प्रकार भारतीय ललनाओं का चरित्र भ्रष्ट किया है, यह किसी से छिपा नहीं है। संगीत-प्रिय स्त्री या पुरुष को मनोरंजन अथवा ईश्वर-भजन के लिये इसे अपने पास अवश्य रखना चाहिए। सभी प्रकार के राग-रागिनियों में उत्तम, शिक्षाप्रद, सार-गर्भित भजन सुंदर, सरल और सुबोध भाषा में हैं। पढ़िए और आनंद उठाइए। पुस्तक सदा अपनी जेब में रख सकते हैं और जब कभी काम से तबियत ऊबे, चट आप इसके भजन गाकर अपना मनोरंजन कर सकते हैं। मूल्य केवल ॥), रियायती मूल्य ।≈)

हिंदी-अँगरेज़ी-शिक्षक

अँगरेज़ी सीखने की सर्वोत्तम पुस्तक। बिना किसी की सहायता के आप इसे पढ़कर घर बैठे बहुत थोड़े समय में अँगरेज़ी सीख सकते हैं। हरएक को अँगरेज़ी जानना आवश्यक है। तार लिख लेना, तार का मतलब समझ लेना, चिट्ठी पर नाम-पता लिख लेना, हुंडियाँ आदि लिख-पढ़ लेना आपके लिये चार-छः महीने में एक मामूली बात हो जायगी। व्यापारियों के लिये तो यह एक अमूल्य पुस्तक है। कोई भी इसके द्वारा बहुत थोड़े समय में अँगरेज़ी का साधारण ज्ञान प्राप्त कर सकता है। पृष्ठ-संख्या १७६; मूल्य ।॥), रियायती मूल्य ॥-) डाक-ख़र्च अलग।

उर्दू-अँगरेज़ी संस्करण भी तैयार है। दाम वही।

शिवपुराण भाषा

(नवीन संस्करण)

इसमें शिवजी के निर्गुण-सगुण-स्वरूप, ब्रह्मा के पसीने से चौंसठ योगिनियों की उत्पत्ति, सती का शिव से विवाह होना, विष्णु से वीरभद्र का युद्ध, शिव और पार्वती का विवाह, स्कंद के जन्म लेने की कथा, जलंधर आदि दानवों से शिव का युद्ध, गिरिजा समेत काशी में जाकर विश्वनाथ की पूजा करना, शिवजी के अट्ठाईस अवतारों का वर्णन, लिंगों की महिमा, नाम-महिमा, भस्म-माहात्म्य रुद्राक्ष की प्रशंसा, शिवजी के द्वादश व्रतों का निरूपण, जम्बूद्वीप, उपद्वीप और सगर इत्यादि राजाओं का वर्णन, विस्तार-पूर्वक अति सरल भाषा में किया गया है। पुस्तक मोटे काग़ज़ पर बड़े अक्षरों में छापी गई है, जिसमें साधारण पढ़े-लिखे और बूढ़े मनुष्य भी इससे लाभ उठा सकें। प्रत्येक हिंदू को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। पृष्ठ-संख्या १०४८; मूल्य केवल ४॥), रियायती मूल्य ३।≈)

श्रीमद्भागवत दशमस्कंध

(भाषा-टीका-सहित, पत्राकार)

यह भागवत का दसवाँ स्कंध है। इसमें भगवान् श्रीकृष्णचंद्र का संपूर्ण जीवनचरित्र वर्णित है। सफ़ेद, चिकने काग़ज़ पर अत्यंत शुद्धता-पूर्वक, बंबई के मोटे अक्षरों में छापा गया है। पृष्ठ-संख्या ४००। मू० ४॥), रियायती मूल्य ३।≈)

मिलने का पता—**मैनेजर, बुकडिपो, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ.**

साहित्य-सुमन-माला की पुस्तकें

संपादक—औपन्यासिक सम्राट् श्रीप्रेमचंदजी

वैचित्र्य-चित्रण

लेखक

साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

मूल्य ॥=)

सृष्टि की अजूबात का वर्णन। नर, वानर, जलचर, स्थलचर, उद्भिज्ज और प्रकीर्णक छः अध्याय हैं। जिसमें अद्भुत और विलक्षण

जी
व व व
स्तु तथा जं का र्ण
ओं तु न
ओं

अग्नि-समाधि

तथा

अन्य कहानियाँ

लेखक

श्रीप्रेमचंदजी

मूल्य १)

प्रेमचंदजी की

सर्वोत्तम आठ

क
हा
नि
यों

का अपूर्व संग्रह

ठलुआ-क्लब

लेखक

श्रीगुलाबराय एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

मूल्य ॥)

हास्य और व्यंग्य की अपूर्व पुस्तक।

मधुमेही लेखक, बेकार वकील, आफ़त का मारा दार्शनिक, विज्ञापनयुग में सफल नवयुवक, निराश कर्मचारी, समालोचक, प्रेमी वैज्ञानिक, आलस्य-भक्त, सिद्धांती की बातें

प हँ
ढ़ि और ख़ूब सि
ए ए

बाल-कथा-कौमुदी

और

प्यारी कहानियाँ

लेखिका

श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित

मूल्य ॥=)
बालोपयोगी कहानियों का
अपूर्व संग्रह।

मूल्य ॥)
सुंदर, सरल भाषा में लिखी
हुई मनोरंजक कहानियाँ।

नोट—ऊपर लिखी पुस्तकें पौने मूल्य में केवल उन्हीं सज्जनों को दी जायँगी, जो ॥) भेजकर अपना नाम स्थायी ग्राहकों में लिखा लेंगे अथवा वी. पी. में ॥) जोड़ने की आज्ञा देंगे। कार्ड डालकर शीघ्र अपना नाम लिखाइए और लाभ उठाइए।

मिलने का पता—मैनेजर बुकडिपो, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ.

सुप्रसिद्ध साहित्य-सुमन-माला की नई निराली और उपयोगी पुस्तकें !!!

मानव-शरीर-रहस्य

[दोनों भाग, मूल्य ५)]

ले०—श्रीडाक्टर मुकुन्दस्वरूप वर्मा एम्० बी० बी० एस्

शरीर-संबंधी ज्ञान का अभाव ही शारीरिक दुर्बलता का मुख्य कारण है। इस विषय की पुस्तकें अभी हिन्दी में नहीं निकली हैं। यह ग्रंथ डाक्टर साहब ने बड़े परिश्रम और अनुभव से तैयार किया है। विषय वैज्ञानिक है, पर लेखक ने इसे ऐसे ढंग से लिखा है कि साधारण पुरुषों, डाक्टरी और वैद्यक के विद्यार्थियों के लिए ही नहीं; किन्तु डाक्टरों, हकीमों और वैद्यों के भी बड़े काम की चीज़ है। मूल्य सजिल्द प्रथम भाग २॥), द्वितीय भाग २॥)

काम-कुंज

ले०—श्रीसन्तरामजी बी० ए०

स्त्री-पुरुष-संबंधी कितनी ही ऐसी बातें हैं, जिनके न जानने से मनुष्य को जीवन का सच्चा सुख और आनन्द नहीं मिलता। पवित्र और सच्चा प्रेम उनको आकाशकुसुमवत् मालूम होता है। कारण, वह स्त्री के हृदय को समझ नहीं सकते, स्त्री-प्रेम की परख नहीं कर सकते, उनकी मौन-भाषा को समझने की उनमें क्षमता नहीं और उनके संकेत का उन्हें ज्ञान नहीं।

पुस्तक अश्लील नहीं है।

सच्चे पथ की प्रदर्शक है, आपत्तियों से उबारनेवाली है और आनंदोत्पादिनी है। अनेक रंगीन चित्रों से सुसज्जित सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥)

आपके लाभ की बात

यदि आप हमेशा रुपये का माल बारह आने में लेना चाहते हैं तो साहित्य-सुमन-माला की फ़ीस सिर्फ़ ॥) एकबार भेजकर अपना नाम साहित्य-सुमन-माला के स्थायी ग्राहकों में लिखा लीजिए, तो आपको नवलकिशोर-प्रेस से प्रकाशित सभी पुस्तकें (रीडरों को छोड़कर) सदा तीन चौथाई क़ीमत पर मिलेंगी अर्थात् रुपये का माल ॥।) में।

भगवद्गीता भाषा

सुन्दर, सचित्र और सरल भाषा में
हिन्दी में अपने ढंग की नई और निराली गीता है।
अठारहों अध्याय माहात्म्य-सहित। सरल
और सुबोध भाषा में लिखे गए हैं।

संस्कृत न जाननेवाले स्त्री-पुरुष जो गीता का नित्य पाठ करते हैं, उनके लिये यह एक अमोघ पदार्थ है। वृद्ध स्त्री-पुरुषों के लिये यह अति उत्तम पुस्तक है; क्योंकि यह बड़े टाइप में सरल भाषा में छपी है। पृष्ठ-संख्या ४८८। इतने पर भी प्रचारार्थ इस पुस्तक का मूल्य १=) रफ़ काग़ज़ का ॥।=) डाकख़र्च अलग। शीघ्र मँगाइए वर्ना पछताना पड़ेगा, क्योंकि पुस्तकें थोड़ी रह गई हैं।

कालिदास और शेक्सपीयर

अपने ढंग का नया और निराला समालोचनात्मक ग्रंथ। प्राच्य और पाश्चात्य साहित्य का अनुपम विश्लेषक और दिग्दर्शक। दो अद्वितीय महाकवियों की रचनाओं का अगर आपको आनंद लेना हो, तो इसे एक बार अवश्य पढ़िए। प्रत्येक साहित्यसेवी को तो इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी लिखते हैं—"यह ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है।" पढ़ने में उपन्यास-सा आनंद आता है मूल्य २) रियायती मूल्य १॥)

निवेदक—मैनेजर, बुकडिपो, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ.

काशी विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित

उत्तमोत्तम पुस्तकें

मीरक़ासिम—ले० श्रीहरिहरनाथ शास्त्री (भूमिका लेखक डा० बेनीप्रसाद) इसमें कम्पनी के कर्मचारियों के साथ मीरक़ासिम के संघर्षण का सांगोपांग वर्णन दिया है। इसके पढ़ने से मीरक़ासिम के संबंध की बहुत-सी भ्रान्तियाँ दूर हो जायँगी। मूल्य १॥)

अफ़लातून की सामाजिक व्यवस्था—ले० श्रीगोपाल दामोदर तामस्कर एम० ए०, एल० टी०, इस पुस्तक में सुप्रसिद्ध ग्रीक विद्वान् अफ़लातून की पुस्तकों के विवेचन के साथ-साथ समाज की आवश्यकताओं पर पूरा प्रकाश डाला गया है और यह भी दिखलाया गया है कि अफ़लातून की सामाजिक व्यवस्था भारतीय व्यवस्था से कहाँ तक मिलती है। मू० १।≈)

अँगरेज़ जाति का इतिहास—ले० श्रीगंगाप्रसाद एम० ए०। इसमें राजनीतिक घटनाओं के साथ-साथ राजा और प्रजा के पारस्परिक संघर्ष और प्रजा के प्रयत्नों का पूरा-पूरा विवरण है। इंग्लैंड के साहित्यिक, धार्मिक और सामाजिक विकास पर भी काफ़ी प्रकाश डाला गया है। मूल्य २॥)

हिंदू भारत का उत्कर्ष (राजपूतों का प्रारंभिक इतिहास)—ले० श्रीचिंतामणि विनायक, वैद्य, एम० ए०, एल-एल० बी०। अरब-प्रवासियों के वर्णनों तथा शिलालेखों आदि के आधार पर यह पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गयी है। इसमें राजपूतों की उत्पत्ति, राज्यशासन, युद्ध आदि सभी बातों का वर्णन आया है और देश की तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थिति पर भी गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है। मूल्य ३॥)

शीघ्र प्रकाशित होंगी

हिंदी-शब्द-संग्रह—प्राचीन पद्य पढ़नेवालों के लिये विशेष उपयोगी। मूल्य लगभग ३॥)

पश्चिमी योरोप (दूसरा भाग)—मूल्य लगभग २)

१६६

मिलने का पता १—ज्ञानमंडल-कार्यालय- काशी, २—साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग।

सस्ती
बीमारियों
की
एक
दवा
पीयूष
रत्नाकर

सरकार से

हजारों प्रशंसा-पत्र-प्राप्त, जगत्-प्रसिद्ध औषधि

८० रोगों की एक ही दवा

पीयूषरत्नाकर

हर प्रकार का बुख़ार, कफ, खाँसी, दमा, जुकाम, दस्त, मरोड़, अजीर्ण, हैज़ा, शूल, अतीसार, संग्रहणी, सिरदर्द, पेट, कमर, गठिया का दर्द, मिर्गी, मूर्च्छा, स्त्रियों का प्रसूत आदि, बच्चों के सर्व रोग यानी सिर से लेकर पाँव तक किसी रोग में दे दो, जादू का असर करता है। दाम १), बड़ी शीशी १॥), वी० पी०-ख़र्च ।≡), १२ लेने से ६), बड़ी शीशी १२॥), वी० पी०-ख़र्च माफ़।

दद्रुनाशक

बिना जलन और तकलीफ़ के हर तरह के पुराने और नए दाद को २४ घंटे में जड़ से खोनेवाली शर्तिया दवा। दाम ३ शीशी ॥), वी० पी०-ख़र्च ।≶), १२ लेने से २।), वी० पी०-ख़र्च माफ़।

बड़ा सूचीपत्र मय सौ साल के कलेंडर के मँगाकर देखें।

गोरे और खूबसूरत बनने की दवा

सुगंधित फूलों का दूध—यह दवा विलायती ख़ुशबूदार फूलों का अर्क़ है। इसको ७ दिन बदन और चेहरे पर मालिश करने से चेहरे का रंग गुलाब के समान हो जाता है और बदन से ख़ुशबू निकलने लगती है, गालों के स्याह दाग़, मुहासे, छीप, झुर्रियाँ, फोड़ा, फुंसी, खुजली आदि दूर हो ख़ूबसूरती आ जाती है, जिल्द मुलायम हो जाती है। मँगाकर देखें। दाम १ शीशी १।), वी० पी०-ख़र्च ॥-), ३ लेने से ४), वी० पी०-ख़र्च माफ़।

ज़ीनते शबाब

दुनिया में सबसे अच्छा गारंटीवाला नायाब ख़िज़ाब—तीन मिनट में बरफ़-जैसे सफ़ेद बाल बग़ैर जलन व तकलीफ़ के भौंरे के माफ़िक़ काले-चमकीले, मुलायम हो जाते हैं। कुदरती हैं या ख़िज़ाब किए हुए—पहचान में नहीं आएँगे और जिल्द पर किसी क़िस्म का दाग़-धब्बा नहीं आता। विशेष तारीफ़ यह है कि जो बाल एक दफ़े के लगाने से काले हो जायँगे, वह फिर उमर-भर सफ़ेद नहीं होंगे। क़ीमत ॥) वी० पी० ।-)।, १२ की ७) रु०, वी० पी० अलग। १२

पता—जसवंत ब्रादर्स नं० २, मथुरा।

NOW or NEVER

Follow the lead and help your motherland by patronizing INDIAN INDUSTRIES.

We deal in everything INDIAN for HOT & COLD WEATHER Wear:—

DHOTIES, SARIES, SUITINGS, SHIRTINGS, TWILLS, TOWELS, LONGCLOTHS, FANCY GOODS, SOAPS, HAIROILS, PERFUMERIES, ETC., ETC.

We Specialise in Assam Endi and Mooga, **SANTIPUR** and **DACCA SARIES, BENGAL SILK, PRINTED SARIES,** (Silk and Cotton) Kashmir and Benares Saries.

Our Prices are moderate and we can guarantee satisfaction and best value for your money.

THE SWADESHI BHANDAR
29, Aminabad Park,
१६२ *LUCKNOW.*

केवल

मोहिनी फ़्लूट हारमोनियम

ख़रीदो

क्योंकि आजकल वही एक चलताऊ और विश्वास करने योग्य हारमोनियम है।

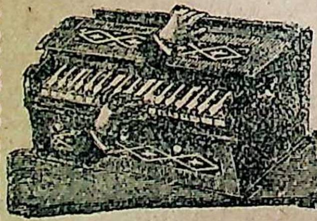

मूल्य सिंगल रीड २५), ३०), ३५), ४०) डबल रीड ४०), ५०), ६०)

वायोलिन बाजा और फ़िडिल्स (Fiddles), मूल्य १२) से

आर्डर के साथ ५) पेशगी भेजो और सबसे नज़दीक रेलवे स्टेशन का पता दो।

२४ पत्र आने पर सूचीपत्र मुफ़्त।

पता—मोहिनी फ़्लूट कम्पनी,
६।२, आरपुली लेन, (M.) कलकत्ता.

SHAW FRIEND & CO'S

NIM OINTMENT

REGISTERED TRADE MARK

SURE CURE FOR

CUTS, BURNS, SCALDS, DHOBISITCH, ECZEMA, BILSTER SCABIES ULCER, GANGRENE, CHAPPED FINGER AND TOES, PILES EXTERNAL & INTERNAL ALSO DOGS MANGE AND ANY STUBBORN SORE ON ANIMALS.

AS. 8 PER POT.

२१

SHAW FRIEND & Co.
P. O. JHAJHA, E. I. R.
DIST. MONGHYR.

प्रचार के लिये आधा दाम

च्यवनप्राश

वीर्यविकार, धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, नपुंसकता, दमा, जीर्ण-ज्वर, राजयक्ष्मा, फेफड़े और जिगर के रोगों पर रामबाण है। ४० तोले का मूल्य ४) रु०, १ सेर का ८) रु०, आधा दाम ४० तोला २) रु०, १ सेर का ४) रु०। डाकख़र्च पृथक्।

सत शिलाजीत

मूल्य ५ तो० ५) रु०, १० तो० ९) रु०, आधा दाम ५ तोला २॥) रु०, १० तोले का ४॥) रु० ११

पता—संजीवन कं०, नं० ३०, कनखल (यू०पी०)

चूहा-घूसनाशक दवाई

RATINE
रॅटाईन
DR. GUNE. KARAD, (S.M.C.)

इससे चूहे और घूसमर जाते हैं और बाक़ी बचे हुए सब भाग जाते हैं। खेत, बग़ीचे और मकान में सर्वत्र इसका व्यवहार किया जा सकता है। मूल्य प्रति पुड़िया =), १२ का १), ४० का ३), १२ पैकेट से कम का वी० पी० नहीं भेजा जाता। पोस्टेज ४० पैकेट तक का ।) १११

डा० गुने, पो० कराड, ज़ि० सतारा।

शक्ति का ख़ज़ाना यानी पृथ्वी पर का अमृत

मदनमंजरी

यह दिव्य गोलियाँ दस्त साफ़ लाती हैं, वीर्य-विकार-संबंधी तमाम शिकायत नष्ट करती हैं और मानसिक व शारीरिक प्रत्येक प्रकार की कमज़ोरी को दूर करके नया जीवन देती हैं। क़ी० गोली ४० की डिब्बी १ का १)

मेहमर्दनचूर्ण

सूज़ाक की हुक्मी दवा—फ़ी डिब्बा १)

अंडवृद्धिहरचूर्ण

पोता बढ़ जाने की शर्तिया दवा। फ़ी डिब्बा ३)

रमणविलासिनीवटिका

वीर्य-स्तंभन के लिये अक्सीर दवा। फ़ी डिब्बी १)

राजवैद्य नारायणजी केशवजी ३८

हेड ऑफ़िस—जामनगर (काठियावाड़)

लखनऊ एजेंट—निगम मेडिकलहाल, नाला फ़तेगंज

दिल्ली एजेंट—जमनादास कु० चाँदनी चौक

इलाहाबाद एजेंट—मेसर्स दुबे ब्रदर्स, चौक

सर्व रोग को दूर करनेवाला

(भारत-सरकार से रजिस्टर्ड)

जीवनधारा

र० ट्रेडमार्क "जेनस" नं० ३०२

हर समय अपने पास रखिए। यह पेट-संबंधी विकार, हैज़ा या दाढ़ का दर्द, सर्दी, सूजन, घाव, कमज़ोरी, प्रदर, प्रमेह, हर तरह का बुख़ार, संधि-वात, सिर दर्द, बवासीर, ज़हरी डंक, हाथ पाँव और बदन का दुखना आदि बहुत से दर्द को शर्तिया आराम करता है। दाम बड़ी शीशी १॥), आधी शीशी १), छोटी शीशी ॥), महसूल अलग। सूचीपत्र मुफ़्त मँगा देखिए। यह "जीवनधारा" सब जगह मिलता है।

पता—जे० एन० सेठना, मु० पो०
नड़ियाद [गुजरात]

साधना औषधालय

ढाका (बंगाल)

अध्यक्ष—जोगेशचंद्र घोष, एम्० ए०, एफ़्० सी० एस्० (लंडन)

भूतपूर्व प्रोफ़ेसर रसायनशास्त्र भागलपुर-कालेज

सच्ची और पूर्णतः पवित्र होने की गारंटी है। सभी औषधियाँ आयुर्वेदशास्त्र के अनुसार ही तैयार की जाती हैं। सूचीपत्र फ़्री भेजा जाता है।

पूरा विवरण आने पर सावधानी से सभी रोगों की व्यवस्था फ़्री कर दी जाती है।

मकरध्वज (स्वर्ण-सिंदूर)

(पवित्र और असली सोने से युक्त)

सभी रोगों के लिए रामबाण है। शरीर की इस दवा के सेवन से पूरी-पूरी शुद्धि हो जाती है।

दाम ४) तोला

शुक्रसंजीवन

यह पुरुषत्व-हीनता आदि रोगों की अपूर्व औषध है। दाम १६) सेर

सारिवादिसरस

आतशक और सूज़ाक के लिए आश्चर्य गुणकारक औषध है। इसमें धातु की सभी बीमारियाँ और ख़राबियाँ दूर हो जाती हैं।

अबलाबांधवयोग

स्त्रियों के सभी रोगों की इससे बढ़कर कोई औषध तैयार नहीं हुई है। प्रदर का नाम नहीं रहता और मासिक बिलकुल ठीक; दाम १६ मात्रा का २), ५० का ५)

१४०

प्रत्यक्ष फल देनेवाले अत्यंत चमत्कार

यदि आपको यंत्रों से लाभ न हो तो दाम वापस किए जायँगे। हरएक यंत्र के साथ हम गारंटी-पत्र भेजते हैं

इसको धारण करने से मुक़द्दमे में जीत, नौकरी मिलना, कामों की तरकीब।

शनि-यंत्र—इसके धारण करने से शनि का कोप होने पर भी संपत्ति नाश नहीं होती; बल्कि धन, आयु, यश, मानसिक शांति, कार्य-सिद्धि, सौभाग्य और विवाद में जीत होती है। मूल्य ३।=)।

सूर्य-यंत्र—कठिन रोगों से आराम होने की एक ही उत्तम औषध है। मूल्य २≡)

धनदा-यंत्र—इसको धारण करने से ग़रीब भी राजा के समान धनी हो सकता है। मूल्य ७॥=)

नवग्रह-यंत्र

मूल्य ४।)

महाकाल-यंत्र—वंध्या-बाधक और मृतवत्सा नारियों को सच्चा फल देनेवाला है। मूल्य ११॥-)

बगलामुखी-यंत्र—शत्रुओं को वश और नष्ट करने में तत्काल फल देनेवाला है। मूल्य ६=)

महामृत्युंजय-यंत्र—किसी प्रकार के मृत्यु-लक्षण क्यों न देख पड़ें, उन्हें नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है। मूल्य ८=)

श्यामा-यंत्र—इसको धारण करने पर क़र्ज़ से छुटकारा, सुखपूर्वक प्रसव, गर्भ और वंश की रक्षा होती है।

अधिक धन और पुत्र-लाभ का एक ही उपाय है। इस कवच के धारण करनेवाले की कुछ भी बुराई शत्रु से नहीं हो सकती और वे उसको हरा सकते हैं। मूल्य ६॥=)

नरसिंह-यंत्र—प्रदरबाधक, हिस्टीरिया (कभी-कभी मूर्च्छा होना) और मृगी को नष्ट करता है। वंध्या को भी संतान होती है। भूत, प्रेत, पिशाच से बचाता है। और वंश की रक्षा करने में ब्रह्मास्त्र है। मूल्य ७।-)

हाईकोर्ट के जज, एकाउंटेंट-जेनरल, गवर्नमेंट प्लीडर, नवाब, राजा, ज़मींदार महाशयों से अत्युत्तम प्रशंसा-पत्र और सहायता प्राप्त— **ज्योतिर्विद् पंडित श्रीवसंतकुमार भट्टाचार्य ज्योतिर्भूषण,**

Tele.—Astrologer, Calcutta २६ हेड ऑफ़िस—१०५, ग्रे स्ट्रीट, कलकत्ता।

संस्थापित सन् १८७९ मूल्य साधारण !! नियम उदार !!

अपर इंडिया कूपर पेपर मिल्स कं० लिमि०

लखनऊ

में

सब तरह के काग़ज़ बनते हैं

जैसे :—

सफ़ेद	बादामी	White	Badamies
क्रीमलेड्स	ब्राउन	Cream Laid	Brown
वोव्स्	रंगीन	Woves	Coloured
सुपीरियर बादामी	ब्लाटिंग	Superior Badami	Blotting इत्यादि

विना मूल्य नमूने और रेट के लिये सेक्रेटरी को लिखिए।

THE

"His Master's Voice" CAMP MODEL

"हिज़ मास्टर्स वायेस" केम्प माडेल ।

यह मशीन जिस ख़ूबसूरती के साथ आवाज़ को तेज़ करती है वह बेशक आदमी की अकल से बाहर है । अपने क़ायदे के मुताबिक़ यह बाजा गाने के हर लफ़्ज़ को अलग-अलग और उसके सुर-ताल-राग-रागिनी और मुख़्तलिफ़ साज़ों की असली ख़ूबी का बिलकुल ठीक-ठीक नमूना अपने सुननेवाले के आगे पेश करता है ।

लेकिन अगर आपको इसमें ज़रा भी शुभा हो तो मेहरबानी करके अपने आस-पास के किसी ग्रामोफ़ोन डीलर की दूकान पर जाकर ख़ुद उसकी ख़ूबियों का अन्दाज़ा कर लीजिए ।

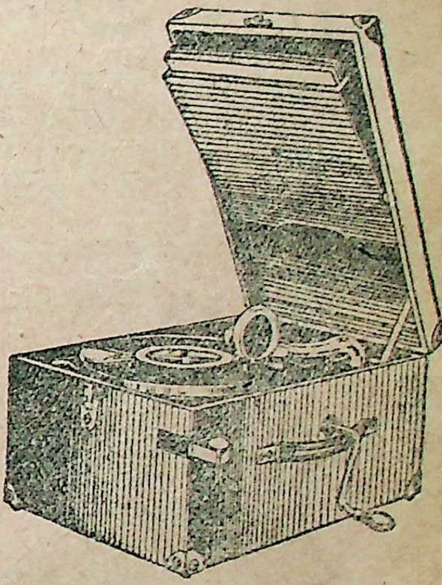

डबल स्प्रिंगवाला केम्प माडेल नं० ११२

मूल्य—१६५) रुपैया ।

दी ग्रामोफ़ोन
कम्पनी लिमिटेड,
दमदम और बम्बई ।

HIS MASTER'S VOICE

ऐसा कौन है जिसे फ़ायदा नहीं हुआ

सुधासिन्धु

कफ, खाँसी, हैजा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट दर्द, कै, दस्त, जाड़े का बुखार, बालकों के हरे-पीले दस्त और ऐसे ही पाकाशय की गड़बड़ से उत्पन्न होनेवाले रोगों की एकमात्र दवा, मुसाफिरी में लोग इसे ही साथ रखते हैं। कीमत ॥)

बालसुधा

बच्चों को बलवान, सुंदर और सुखी बनाने के लिये सुख-संचारक-कम्पनी मथुरा का मीठा "बालसुधा" पिलाइये। कीमत ॥।)

तत्काल गुण दिखानेवाली ४० वर्ष की परीक्षित दवाइयाँ सब दुकानदारों के पास मिलती हैं।

दद्रुगजकेशरी

दाद चाहे पुराना हो या नया, मामूली हो या पकनेवाला, इसके लगाने से विना जलन और तकलीफ के अच्छा होता है। कीमत ।)

द्राक्षासव

तत्काल बल बढ़ानेवाली कब्ज, कमजोरी खाँसी और नींद न आना दूर करता है बुढ़ापे के सभी कष्टों से बचाता है, पीने में मीठा स्वादिष्ट है, कीमत तीन पाव की बोतल २) छोटी १) डाकखर्च जुदा।

मिलने का पता—सुख-संचारक-कम्पनी, मथुरा।

सुगंधित केश तैलों का राजा

केशरञ्जन तैल

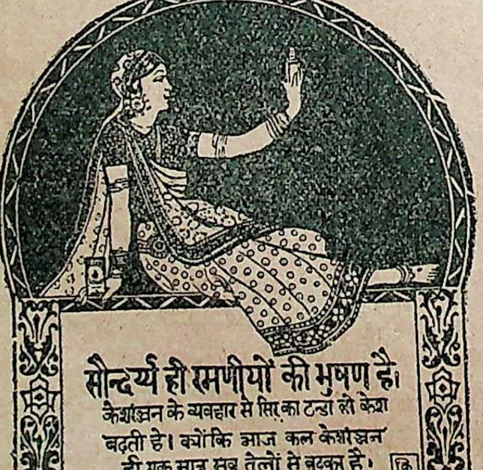
सौन्दर्य ही रमणीयों की भुषण है।
केशरञ्जन के व्यवहार से सिर का ठन्डा हो केश बढ़ती है। क्योंकि आज कल केशरञ्जन ही एक मात्र सब तैलों से बढ़कर है।
पता—कविराज नगेन्द्र नाथ सेन ऐन्ड कों लि
१८/१, १९ लोअर चितपुर रोड, कलकत्ता।

४५ वर्ष की परीक्षित

अशोकारिष्ट

शीघ्र गुणकारी

सर्व प्रकार की स्त्रीरोग की अक्सीर दवा

इसके सेवन से ऋतु, शूलरोग, महीना न होना, श्वेतप्रदर, लालप्रदर शरीर की दुर्बलता आदि सभी स्त्री-रोग दूर होकर जरायु शुद्ध गर्भ धारण की शक्ति पैदा होती है। एक शीशी दवा और एक डिब्बी गोली मूल्य १॥) डा० म०॥=)

रतिवल्लभ रसायन

धातुदौर्बल्य वो नामर्दी की अक्सीर दवा

"रतिवल्लभ रसायन" पीने से शुक्रदौर्बल्य धातुदौर्बल्य, आदि दूर होकर शरीर में तेज़ी, फुर्ती, आनन्द और उत्साह पैदा होता है। दुबले-पतले शरीर को मोटा ताज़ा और ख़ूबसूरत बनाता है। एक शीशी दवा का दाम १) डा० महसूल ॥=)

कविराज नगेन्द्रनाथ सेन एन्ड को० लिमि
१८। १-१९ लोअर चितपुर रोड, कलकत्ता

प्रत्यक्ष फल देनेवाले अत्यंत चमत्कार

यदि आपको यंत्रों से लाभ न हो तो दाम वापस किए जायँगे। हरएक यंत्र के साथ हम गारंटी-पत्र भेजते हैं।

नवग्रह-यंत्र

मूल्य ४।)

इसको धारण करने से मुक़द्दमे में जीत, नौकरी मिलना, कामों की तरकीब।

सुखपूर्वक प्रसव, गर्भ और वंश की रक्षा होती है।

शनि-यंत्र—इसके धारण करने से शनि का कोप होने पर भी संपत्ति नाश नहीं होती; बल्कि धन, आयु, यश, मानसिक शांति, कार्य-सिद्धि, सौभाग्य और विवाद में जीत होती है। मूल्य ३।=)।

सूर्य-यंत्र—कठिन रोगों से आराम होने की एक ही उत्तम औषध है। मूल्य ५≡)

धनदा-यंत्र—इसको धारण करने से ग़रीब भी राजा के समान धनी हो सकता है। मूल्य ७॥=)

महाकाल-यंत्र—वंध्या-बाधक और मृतवत्सा नारियों को सच्चा फल देनेवाला है। मूल्य ११॥-)

बगलामुखी-यंत्र—शत्रुओं को वश और नष्ट करने में तत्काल फल देनेवाला है। मूल्य ६=)

महामृत्युंजय-यंत्र—किसी प्रकार के मृत्यु-लक्षण क्यों न देख पड़ें, उन्हें नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है। मूल्य ८=)

श्यामा-यंत्र—इसको धारण करने पर क़र्ज़ से छुटकारा, अधिक धन और पुत्र-लाभ का एक ही उपाय है। इस कवच के धारण करनेवाले की कुछ भी बुराई शत्रु से नहीं हो सकती और वे उसको हरा सकते हैं। मूल्य ६॥=)

नरसिंह-यंत्र—प्रदरबाधक, हिस्टीरिया (कभी-कभी मूर्च्छा होना) और मृगी को नष्ट करता है। वंध्या को भी संतान होती है। भूत, प्रेत, पिशाच से बचाता है। और वंश की रक्षा करने में ब्रह्मास्त्र है। मूल्य ७।-)

हाईकोर्ट के जज, एकाउंटेंट-जेनरल, गवर्नमेंट प्लीडर, नवाब, राजा, ज़मींदार महाशयों से अत्युत्तम प्रशंसा-पत्र और सहायता प्राप्त— **ज्योतिर्विद् पंडित श्रीवसंतकुमार भट्टाचार्य ज्योतिर्भूषण,**

Tele.—Astrologer, Calcutta २६ हेड ऑफ़िस—१०५, ग्रे स्ट्रीट, कलकत्ता।

संस्थापित सन् १८७९ मूल्य साधारण !! नियम उदार !!

अपर इंडिया कूपर पेपर मिल्स कं० लिमि०

लखनऊ

में

सब तरह के काग़ज़ बनते हैं

जैसे :—

सफ़ेद	बादामी	White	Badamies
क्रीमलेड्स	ब्राउन	Cream Laid	Brown
वोव्स्	रंगीन	Woves	Coloured
सुपीरियर बादामी	ब्लाटिंग	Superior Badami	Blotting इत्यादि

विना मूल्य नमूने और रेट के लिये सेक्रेटरी को लिखिए

शक्ति का ख़ज़ाना यानी पृथ्वी पर का अमृत

मदनमंजरी

यह दिव्य गोलियाँ दस्त साफ़ लाती हैं, वीर्य-विकार-संबंधी तमाम शिकायत नष्ट करती हैं और मानसिक व शारीरिक प्रत्येक प्रकार की कमज़ोरी को दूर करके नया जीवन देती हैं। क़ी० गोली ४० की डिब्बी १ का १)

मेहमर्दनचूर्ण

सूज़ाक की हुक्मी दवा—क़ी डिब्बा १)

अंडवृद्धिहरचूर्ण

पोता बढ़ जाने की शर्तिया दवा। क़ी डिब्बा ३)

रमणविलासिनीवटिका

वीर्य-स्तंभन के लिये अक्सीर दवा। क़ी डिब्बी १)

राजवैद्य नारायणजी केशवजी ३८

हेड ऑफ़िस—जामनगर (काठियावाड़)

लखनऊ एजेंट—निगम मेडिकलहाल, नाला फ़तेगंज

दिल्ली एजेंट—जमनादास कं० चाँदनी चौक

इलाहाबाद एजेंट—मेसर्स दुबे ब्रदर्स, चौक

र० ट्रेड मार्क **अमृतगुटिका** "जेनस" नं० २०१

अशक्त स्त्री-पुरुषों के लिये ताक़त की बढ़िया दवा.

इसके सेवन से कमर का दर्द, पिंडलियों का दुखना, आँखों की कमज़ोरी, बदन की सुस्ती, काम-काज में दिल न लगना, नया या पुराना प्रमेह, बदन और इंद्रियों की शिथिलता, मुख, बग़ल या पेशाब के रास्ते से धातु स्खलित होना, शौच के समय धातु गिरना, मग़ज़ ख़ाली पड़ जाना, चेहरा शुष्क इत्यादि बहुत से दर्द को दूर करके जवानी का मज़ा लूटने के लिये बदन मोटा और ज़ोरदार होता है। हरएक मौसम में उपयोग हो सकता है। दाम ३२ टिकियों की एक ट्यूब का २) रु०, डाकख़र्च अलग। सूचीपत्र मुफ़्त मँगा देखिए। हर जगह दवाफ़रोशों के यहाँ भी मिलेगी।

पता—जे० एन० शेठना,
मु० पो० नडीआद (गुजरात)

साधना औषधालय
ढाका (बंगाल)

अध्यक्ष—जोगेशचंद्र घोष, एम्० ए०, एफ़० सी० एस्० (लंडन)

भूतपूर्व प्रोफ़ेसर रसायनशास्त्र भागलपुर-कालेज

सच्ची और पूर्णतः पवित्र होने की गारंटी है। सभी ओषधियाँ आयुर्वेदशास्त्र के अनुसार ही तैयार की जाती हैं। सूचीपत्र फ़्री भेजा जाता है।

पूरा विवरण आने पर सावधानी से सभी रोगों की व्यवस्था फ़्री कर दी जाती है।

मकरध्वज (स्वर्ण-सिंदूर)

(पवित्र और असली सोने से युक्त)

सभी रोगों के लिए रामबाण है। शरीर की इस दवा के सेवन से पूरी-पूरी शुद्धि हो जाती है।

दाम ४) तोला

शुक्रसंजीवन

यह पुरुषत्व-हीनता आदि रोगों की अपूर्व औषध है। दाम १६) सेर

सारिवादिसरस

आतशक और सूज़ाक के लिए आश्चर्य गुणकारक औषध है। इससे धातु की सभी बीमारियाँ और ख़राबियाँ दूर हो जाती हैं।

अबलाबांधवयोग

स्त्रियों के सभी रोगों की इससे बढ़कर कोई औषध तैयार नहीं हुई है। प्रदर का नाम नहीं रहता और मासिक बिलकुल ठीक; दाम १६ मात्रा का २), ५० का ५)

१४०

सस्ती
बीमारियों
की
एक
दवा
पीयूष
रत्नाकर

सरकार से

हज़ारों प्रशंसा-पत्र-प्राप्त, जगत्-
प्रसिद्ध ओषधि

८० रोगों की एक ही दवा

पीयूषरत्नाकर

हर प्रकार का बुख़ार, कफ, खाँसी, दमा, जुकाम, दस्त, मरोड़, अजीर्ण, हैज़ा, शूल, अतीसार, संग्रहणी, सिरदर्द, पेट, कमर, गठिया का दर्द, मिर्गी, मूर्च्छा, स्त्रियों का प्रसूत आदि, बच्चों के सर्व रोग यानी सिर से लेकर पाँव तक किसी रोग में दे दो, जादू का असर करता है। दाम १), बड़ी शीशी १॥।), वी० पी०-ख़र्च ।≡), १२ लेने से ६), बड़ी शीशी १५॥।), वी० पी०-ख़र्च माफ़।

दद्रुनाशक

बिना जलन और तकलीफ़ के हर तरह के पुराने और नए दाद को २४ घंटे में जड़ से खोनेवाली शर्तिया दवा। दाम ३ शीशी ॥।), वी० पी०-ख़र्च ।≡), १२ लेने से २।), वी० पी०-ख़र्च माफ़।

बड़ा सूचीपत्र मय सौ साल के कलेंडर के मँगाकर देखें।

गोरे और ख़ूबसूरत बनने की दवा

सुगंधित फूलों का दूध—यह दवा विलायती ख़ुशबूदार फूलों का अर्क़ है। इसको ७ दिन बदन और चेहरे पर मालिश करने से चेहरे का रंग गुलाब के समान हो जाता है और बदन से ख़ुशबू निकलने लगती है, गालों के स्याह दाग़, मुहासे, छीप, झुर्रियाँ, फोड़ा, फुंसी, खुजली आदि दूर हो ख़ूबसूरती आ जाती है जिल्द मुलायम हो जाती है। मँगाकर देखें। दाम १ शीशी १।), वी० पी०-ख़र्च ॥-), ३ लेने से ४), वी० पी०-ख़र्च माफ़।

जीनते शबाब

दुनिया में सबसे अच्छा गारंटीवाला नायाब ख़िज़ाब—तीन मिनट में बरफ़-जैसे सफ़ेद बाल बग़ैर जलन व तकलीफ़ के भौंरे के माफ़िक़ काले-चमकीले, मुलायम हो जाते हैं। कुदरती हैं या ख़िज़ाब किए हुए—पहचान में नहीं आएँगे और जिल्द पर किसी क़िस्म का दाग़-धब्बा नहीं आता। विशेष तारीफ़ यह है कि जो बाल एक दफ़े के लगाने से काले हो जायँगे, वह फिर उमर-भर सफ़ेद नहीं होंगे। क़ीमत ॥।) वी० पी० ।-)। १२ की ७) रु०, वी० पी० अलग।

पता—जसवंत ब्रादर्स नं० २, मथुरा।

श्वेत कुष्ठ की फ़क़ीरी जड़ी

प्रिय पाठकगण, एक रोज़ के सिर्फ़ तीन ही बार के लेप से सफ़ेद दाग़ एकदम आराम न हो, तो दूना मूल्य वापस। जो चाहे एक आने का टिकट भेजकर प्रतिज्ञा-पत्र लिखा लें। मूल्य ६) रु०

पता—वैद्यवर पं० कन्हैया मिश्र,
बिहार औषधालय,
नं० ११, मधुवनी, ज़ि० दरभंगा।

२८

होम्योपैथिकमेटीरिया मेडिका

डाक्टर मुकर्जी-लिखित हिंदी की बृहत् होमियोपैथिकमेटीरिया मेडिका छप गई। यह पुस्तक समस्त होमियोपैथिकशास्त्र का सार है। ऐसी पुस्तक आज तक नहीं छपी होमियोपैथिक की समस्त गूढ़ बातें इसमें वर्णन की गई हैं। इस पुस्तक को बिना पढ़े होमियोपैथिक चिकित्सा करना असंभव है। घर बैठे डाक्टरी सीखने का यह अपूर्व सुअवसर है। पृष्ठ-संख्या ९००, मू० १५)

प्रकाशक—N. Ando & Sons, Farrukhabad, U. P.

२७

हिंदोस्तान का सबसे पुराना पाल एंड संस का

असली मोहन-फ़्लूट

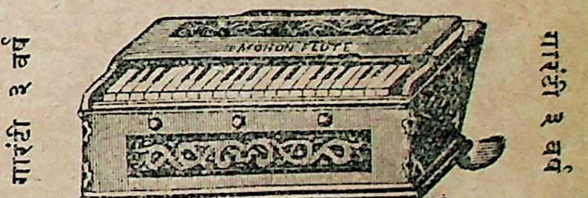

हारमोनियमों का राजा हिंदुस्तानी गाने और जलवायु के लिये उपयुक्त। मीठी आवाज़, देखने में सुंदर और टिकाऊ।

सिंगल पेरिस रीड ३५) से ४०) तक
डबल पेरिस रीड ६०) से ६५) तक

चैलेंज फ़्लूट

सिंगल जर्मन रीड २२) से २५) तक
डबल जर्मन रीड ३५) से ४०) तक
ऑर्डर के साथ ५) पेशगी भेजिए।

पाल ऐंड संस, ६।१।२, आरपुली लेन,
तार का पता—
"मोहन-फ़्लूट, [illegible]" (म) कलकत्ता। ३४

ثمن بغرض قرارداد أمور تنقیح طلب

مقدمہ نمبر ۴۶ سنہ ۱۹۳۰ع دیوانی

عدالت جناب پنڈت بوجنانتھ زتشی منصف صاحب بہادر صفی‌پور مقام اوناؤ

رامدیال ولد رامچرن قوم بقال ساکن قصبہ صفی‌پور تحصیل صفی‌پور ضلع اوناؤ مدعی

بنام رگھبیرسہائے وغیرہ مدعاعلیہ

بنام رگھبیرسہائے ولد لالہ لالتاپرساد قوم کایستھ ساکن قصبہ صفی‌پور حالوارد بارہ‌بنکی محلہ کٹرہ برمکان بابو راج‌بہادر اہلمد بٹوارہ عدالت مال مدعاعلیہ

واضح ہو کہ مدعی نے تمہارے نام ایک نالش بابت ۲۳۱ روپیہ ۱ آنہ ۲ پائی کے دایر کی ہے لہذا تم کو حکم ہوتا ہے کہ تم بتاریخ ۴ چار ماہ اگست سنہ ۱۹۳۰ع بوقت ۱۰ بجے دن اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل أمورات اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھہ کوئی اور شخص ہو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدہی دعوی مدعی مذکور کی کرو اور تم کو ہدایت کی جاتی ہے کہ جملہ دستاویزات کو جن پر تم بتائید اپنی جوابدہی کے استدلال کرنا چاہتے ہو پیش کرو *

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ہوگے تو مقدمہ تمہارے غیرحاضری میں مسموع اور فیصل ہوگا
آج بتاریخ ۲۷ ماہ مئی سنہ ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاری کیا گیا *

جج

تنبیہہ—اگر بیانات تحریری کی ضرورت ہو تو لکھنا چاہئے کہ تم کو (یا فلاں فریق کو یعنی جیسی کہ صورت ہو) حکم دیا جاتا ہے کہ بیان تحریری معہ جملہ کاغذات بتاریخ ۲۸ ماہ جولائی سنہ ۱۹۳۰ع تک گذرانو
اگر کوئی عدالت بموجب آرڈر ۵ قاعدہ ۳ مجموعہ ضابطہ دیوانی مدعاعلیہ کی اصالتاً حاضری کی ضرورت سمجھے تو فارم (O-1) (یا O-2) استعمال کرے اور محض الفاظ "یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل امور اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھہ کوئی اور شخص ہو کہ جواب ایسے سوالات کا دے سکے" قلمزد کر دے *

وقت حاضری بدفتر ۱۰ دس بجے سے ۴ چار بجے تک *

حسب آرڈر ۵ قاعدہ ۲۰

ثمن بغرض قرارداد أمور تنقیح طلب

مقدمہ نمبر ۵۹ سنہ ۱۹۳۰ع

عدالت جناب منصف صاحب بہادر مسافرخانہ مقام سلطان‌پور

بھروسے مدعی

بنام بھبھوت سنگھہ مدعاعلیہ

بنام بھبھوت سنگھہ ولد ٹھاکر بخش سنگھہ ساکن موضع سرمی پرگنہ گورا جانوں تحصیل مسافرخانہ ضلع سلطان‌پور مدعاعلیہ

واضح ہو کہ مدعی نے تمہارے نام ایک نالش بابت کے دایر کی ہے لہذا تمکو حکم ہوتا ہے کہ تم بتاریخ ۲۳ تئیس ماہ جولائی سنہ ۱۹۳۰ع وقت ۱۰ بجے دن اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل امورات اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھہ کوئی اور شخص ہو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر ہو اور جوابدہی دعوی مدعی مذکور کی کرو اور تم کو ہدایت کی جاتی ہے کہ جملہ دستاویزات کو جن پر تم بتائید اپنی جوابدہی کے استدلال کرنا چاہتے ہو پیش کرو *

مطلع رہو کہ اگر بروز مذکور تم حاضر نہ ہوگے تو مقدمہ تمہاری غیر حاضری میں مسموع اور فیصل ہوگا *
آج بتاریخ ۲۸ ماہ مئی سنہ ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مہر عدالت سے جاری کیا گیا *

جج

تنبیہہ—اگر بیانات تحریری کی ضرورت ہو تو لکھنا چاہئے کہ تم کو (یا فلان فریق کو یعنی جیسی کہ صورت ہو) حکم دیا جاتا ہے کہ بیان تحریری بتاریخ ۱۸ ماہ جولائی سنہ ۱۹۳۰ع تک گذرانو *
اگر کوئی عدالت بموجب آرڈر ۵ قاعدہ ۳ مجموعہ ضابطہ دیوانی مدعاعلیہ کے اصالتاً حاضری کی ضرورت سمجھے تو فارم (O-1) (یا O-2) استعمال کرے اور محض الفاظ "یا معرفت وکیل کے جو مقدمہ کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا ہو اور جو کل امور اہم متعلقہ مقدمہ کا جواب دے سکے یا جس کے ساتھہ کوئی اور شخص ہو کہ جواب ایسے سوالات کا دے سکے" قلمزد کردے *

وقت حاضری بدفتر ۱۰ بجے سے ۴ بجے تک *

काशी विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित

उत्तमोत्तम पुस्तकें

मीरक़ासिम (भूमिका-लेखक डा० बेनी-प्रसाद)—इसमें कम्पनी के कर्मचारियों के साथ मीरक़ासिम के संघर्षण का सांगोपांग वर्णन दिया है। इसके पढ़ने से मीरक़ासिम के संबंध की बहुत सी भ्रान्तियाँ दूर हो जायँगी। मूल्य १।।)

अफ़लातून की सामाजिक व्यवस्था—इस पुस्तक में सुप्रसिद्ध ग्रीक विद्वान् अफ़लातून की पुस्तकों के विवेचन के साथ-साथ समाज की आवश्यकताओं पर पूरा प्रकाश डाला गया है और यह भी दिखलाया गया है कि अफ़लातून की सामाजिक व्यवस्था भारतीय व्यवस्था से कहाँ तक मिलती है। मू० १।≈)

अँगरेज़ जाति का इतिहास—इसमें राजनीतिक घटनाओं के साथ-साथ राजा और प्रजा के पारस्परिक संघर्ष और प्रजा के प्रयत्नों का पूरा-पूरा विवरण है। इंग्लैंड के साहित्यिक, धार्मिक और सामाजिक विकास पर भी काफ़ी प्रकाश डाला गया है। मूल्य २।।)

हिंदू भारत का उत्कर्ष (राजपूतों का प्रारंभिक इतिहास)—अरब-प्रवासियों के वर्णनों तथा शिलालेखों आदि के आधार पर यह पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गयी है। इसमें राजपूतों की उत्पत्ति, राज्यशासन, युद्ध आदि सभी बातों का वर्णन आया है और देश की तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थिति पर भी गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है। मूल्य ३।।)

शीघ्र प्रकाशित होगी

हिंदी-शब्द-संग्रह—प्राचीन पद्य पढ़नेवालों के लिये विशेष उपयोगी। मूल्य लगभग ३।।)

पश्चिमी योरोप (दूसरा भाग)—मूल्य लगभग २)

मिलने का पता १—ज्ञानमंडल-कार्यालय, काशी, २—साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग।

سمن بغرض قرار داد امور تنقیح طلب

مقدمه نمبر ۹۱ سنه ۱۹۳۰ع

عدالت ديواني اڈیشنل منصف صاحب بهادر کهيري مقام لکهیم پور

صاحب ڈپٹي کمشنر بهادر - منیجر کورٹ آف وارڈس علاقه اویل ضلع کهيري مدعي

بنام رام سروپ اهير مدعاعليه

بقلم رام سروپ اهير ولد للو ساکن موضع رگهوناتهه پور پرگنه سوہان ضلع شاهجهان پور مدعاعليه

واضع هو که مدعي نے تمهارے نام ایک نالش بابت دخلیابي کے دایر کي هے لهذا تم کو حکم هوتا هے که تم بتاریخ ۱۹ اُنیس ماه جولائي سنه ۱۹۳۰ع وقت ۱۰ دس بجےدن پر اصالتاً یا معرفت وکیل کے جو مقدمه کے حال سے قرار واقعي واقف کیا گیا هو اور جو کل امورات اهم متعلقه مقدمه کا جواب دے سکے یا جس کے ساتهه کوئي اور شخص هو جو جواب ایسے سوالات کا دے سکے حاضر هو اور جوابدهي دعوی مدعي مذکور کي کرو اور تم کو هدایت کي جاتي هے که جمله دستاویزات کو جن پر تم بتائید اپني جوابدهي کے استدلال کرنا چاهتے هو پیش کرو

مطلع رهو که اگر بروز مذکور تم حاضر نه هوگے تو مقدمه تمهاري غیر حاضري میں مسموع اور فیصل هوگا *

آج بتاریخ ماه سنه ۱۹۳۰ع میرے دستخط اور مهر عدالت سے جاري کیا گیا *

جج

تنبیهه—اگر بیانات تحریري کی ضرورت هو تو لکهنا چاهئے نه تم کو (یا فلاں فریق کو یعنی جیسی که صورت هو) حکم دیا جاتا هے که بیان تحریري بتاریخ ۱۶ سوله ماه جولائي سنه ۱۹۳۰ع تک گذرانو *

اگر کوئی عدالت بموجب آرڈر ۵ قاعده ۳ مجموعه ضابطه دیواني مدعاعلیه کی اصالتاً حاضري کي ضرورت سمجهے تو فارم (۱-O) (یا ۲-O) استعمال کرے اور محض الفاظ " یا معرفت وکیل کے جو مقدمه کے حال سے قرار واقعی واقف کیا گیا هو اور جو کل امور اهم متعلقه مقدمه کا جواب دے سکے یا جس کے ساتهه کوي اور شخص هو که جواب ایسے سوالات کا دے سکے " قلمزد کردے *

وقت حاضري بدفتر منصفي ۱۰ دس بجے سے ۴ چار بجے تک *

NOW or NEVER

Follow the lead and help your motherland by patronizing INDIAN INDUSTRIES.

We deal in everything INDIAN for HOT & COLD WEATHER Wear:—

DHOTIES, SARIES, SUITINGS, SHIRTINGS, TWILLS, TOWELS, LONGCLOTHS, FANCY GOODS, SOAPS, HAIROILS, PERFUMERIES, ETC., ETC.

We Specialise in Assam Endi and Mooga, **SANTIPUR** and **DACCA SARIES, BENGAL SILK, PRINTED SARIES,** (Silk and Cotton) Kashmir and Benares Saries.

Our Prices are moderate and we can guarantee satisfaction and best value for your money.

THE SWADESHI BHANDAR
29, Aminabad Park,
LUCKNOW.

केवल

मोहिनी फ़्लूट हारमोनियम

ख़रीदो

क्योंकि आजकल वही एक चलताऊ और विश्वास करने योग्य हारमोनियम है।

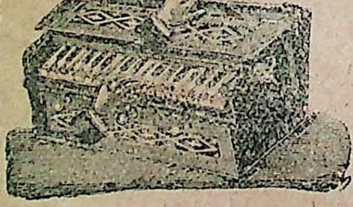

मूल्य सिंगल रीड २५), ३०), ३५), ४०) डबल रीड ४०), ५०), ६०)

वायोलिन बाजा और फ़िडिल्स (Fiddles), मूल्य १२) से

आर्डर के साथ ५) पेशगी भेजो और सबसे नज़दीक रेलवे स्टेशन का पता दो।

२४ पत्र आने पर सूचीपत्र मुफ़्त।

पता—**मोहिनी फ़्लूट कम्पनी,**
६।२, आरपुली लेन, (M.) कलकत्ता.

SHAW FRIEND & CO'S

NIM OINTMENT

REGISTERED TRADE MARK

SURE CURE FOR

CUTS, BURNS, SCALDS, DHOBISITCH, ECZEMA, BILSTER SCABIES ULCER, GANGRENE, CHAPPED FINGER AND TOES, PILES EXTERNAL & INTERNAL ALSO DOGS MANGE AND ANY STUBBORN SORE ON ANIMALS.

AS. 8 PER POT.

SHAW FRIEND & Co.
P. O. JHAUHA, E. I. R.
DIST. MONGHYR.

२१

प्रचार के लिये आधा दाम

च्यवनप्राश

वीर्यविकार, धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, नपुंसकता, दमा, जीर्ण ज्वर, राजयक्ष्मा, फेफड़े और जिगर के रोगों पर रामबाण है। ४० तोले का मूल्य ४) रु०, १ सेर का ६) रु०, आधा दाम ४० तोला २) रु०, १ सेर का ३) रु०। डाकख़र्च पृथक्।

सत शिलाजीत

मूल्य ५ तो० ५) रु०, १० तो० ९) रु०, आधा दाम ५ तोला २॥) रु०, १० तोले का ४॥) रु०

पता—संजीवन कं०, नं० ३०, कनखल (यू०पी०)

चूहा-घूसनाशक दवाई

RATINE
रॅटाईन
DR. GUNE. KARAD. (S.M.C.)

इससे चूहे और घूस मर जाते हैं और बाक़ी बचे हुए सब भाग जाते हैं। खेत, बग़ीचे और मकान में सर्वत्र इसका व्यवहार किया जा सकता है। मूल्य प्रति पुड़िया =), १२ का १), ४० का ३) १२ पैकेट से कम का वी० पी० नहीं भेजा जाता। पोस्टेज ४० पैकेट तक का।)

११२

डा० गुने, पो० कराड, ज़ि० सतारा

लेख-सूची

पृष्ठ

१. अभिलाषा (कविता)—[लेखक, स्व० श्रीयुत "लेखराज" ५७७
२. परिव्राजक के अनुभव (सचित्र)—[लेखक, श्रीयुत सत्यदेव परिव्राजक (जर्मनी) ५७८
३. निशीथ (कविता)—[लेखक, श्रीयुत रामकुमार वर्मा एम्० ए० ... ... ५८६
४. "अलंकार-पीयूष" (२)—[लेखक, श्रीयुत कन्हैयालाल पोद्दार ५८६
५. हिमालय के प्रति (कविता)—[लेखक, श्रीयुत उमाशंकर वाजपेयी "उमेश" ... ५९२
६. "वह रो रहा था" (कहानी)—[लेखक, कुँअर विद्याभूषण ५९३
७. पार (कविता)—[लेखक, श्रीयुत हरिकृष्ण 'प्रेमी' ६००
८. आल्हा-ऊदल की कथा—[लेखक, श्रीयुत भगवतीप्रसादसिंह बी० ए० ... ६०१
९. स्वेद-कण (कविता)—[लेखक, श्रीयुत बलदेवप्रसाद टंडन विसारद'... ... ६०४
१०. दंड और सुधार—[लेखक, श्रीयुत इक़बाल वर्मा 'सेहर' ६०४
११. अज्ञात (कविता)—[लेखक, श्रीयुत सुधाकर दीक्षित 'सुधा' ६१२
१२. राव मालदेव—[लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ साहित्याचार्य ६१२
१३. जौहरी (कविता)—[लेखक, श्रीयुत रमाशंकर मिश्र 'श्रीपति' ६२५
१४. रामलला-नहछू—[लेखक, श्रीयुत के० पी० दीक्षित 'कुसुमाकर' ६२६
१५. निठुर-हृदय (कविता)—[लेखक, श्रीयुत रामसेवक त्रिपाठी ६३३

पृष्ठ

१६. "रुक्मिणी-मंगल"—[लेखक, श्रीयुत जवाहरलाल चतुर्वेदी ६३४
१७. आतप (कविता)—[लेखक, श्रीयुत रामशंकर शुक्ल 'रसाल' एम्० ए० ... ६३८
१८. अदृष्ट (कहानी)—[लेखक, श्रीयुत मंगलप्रसाद विश्वकर्मा 'विशारद' ... ६३९
१९. विजयोल्लास (कविता)—[लेखक, श्रीयुत मातादीन शुक्ल साहित्यशास्त्री, काव्यभूषण ६५०
२०. त्योहार (कविता)—[लेखक, श्रीमोहनलाल महतो "वियोगी" साहित्यालंकार... ६५१
२१. रावी के तट तक—(सचित्र)—[लेखक, श्रीयुत प्रेमनारायण त्रिपाठी और श्रीयुत मंगलप्रसाद विश्वकर्मा ६५१
२२. आलोचना और पुस्तक-परिचय—[लेखकगण, श्रीयुत कालिदास कपूर एम्० ए० एल्-टी० श्रीयुत लक्ष्मीधर वाजपेयी, श्रीयुत रामसेवक त्रिपाठी, श्रीयुत कृष्ण-

WHENEVER YOU ARE OUT FOR

SHOPPING

PLEASE DO NOT FORGET TO
VISIT THE FOLLOWING PLACES
and thus
You will save from 5% to 15%

1. The Criterion Restaurant
Confectioners & Caterers Hazratganj, Lucknow

2. The Criterion Stores
Wine & Provision Dealers Hazratganj, Lucknow.

3. The Criterion Stores
Wine-General Merchants, Mullital Nainital

Proprietor—M. P. Srivastava.

पृष्ठ

बिहारी मिश्र बी० ए० एल्-एल्० बी० और श्रीयुत "वज्र" ६६१

२३. कृषि, शिल्प और वाणिज्य—[लेखक, श्रीयुत अनंतप्रसाद जैन ६६६

२४. बाल-महिला-मनोरंजन—[लेखकगण, श्रीयुत माहेश्वरीसिंह "महेश", श्रीयुत अंबादत्त, श्रीयुत केदारनाथ अग्रवाल "बालेंदु", श्रीयुत श्यामनारायण कपूर, श्रीयुत शिवकुमार शुक्ल, श्रीयुत वृंदावनदास बी०ए० एल्-एल्०बी० और श्रीनेली तिमोथी ६७२

२५. साहित्य और विज्ञान—[लेखकगण, श्रीयुत हरिश्चंद्रदेव वर्मा "चातक" और श्रीयुत रामनारायण मिश्र एम्० एस्-सी० ६८७

२६. जीवन-ज्योति—[लेखकगण, श्रीयुत घासीराम जैन एम्० एस्-सी०, श्रीयुत रामसेवक शास्त्री, श्रीयुत विश्वप्रकाश बी० ए० और श्रीयुत मोहनलाल ६९३

२७. संगीत और विनोद—[शब्दकार तथा स्वरकार, रायसाहब डाक्टर भोलादत्त काला और श्रीयुत कुँअर प्रतापनारायण ७०१

पृष्ठ

२८. सुमन-संचय - [लेखकगण, श्रीयुत दुर्गाप्रसाद मिश्र एम्० एस्-सी०, श्रीयुत चंडिकाप्रसाद अवस्थी और श्रीयुत हनुमानप्रसाद गुप्त "प्रेमयोगी मान" ... ७०५

२९. संपादकीय विचार ७१२

३०. चित्र-चर्चा ७२०

चित्र-सूची

१. रंगीन

१. अंतरंग और बहिरंग
२. वीरान भारत
३. शिवाजी का प्रताप

२. व्यंग्य-चित्र

पृष्ठ

१. दीन-भक्त ६११
२. विदेशी व्यापार का त्रिशंकु ६६०

नोटिस निस्बत दिखाने वजह के (नमूना समेत)

बअदालत अडिशनल सबजजी गोंडा मुक़ाम गोंडा

मुक़द्दमा नम्बर ९ १९३० ई०
जैमंगल दुबे

बनाम

मुहम्मदखां वग़ैरह

बनाम मुहम्मदख़लीलखां नाबालिग़ ब वलायत अशरफ़खां व अहसानउल्लाखां नाबालिग़ व वलायत बहादुरखां चचा खुद वो मुहम्मदखलीलखां नाबालिग़ ब वलायत अशरफ़खां मुसल्मान साकिन महुआ मसमूले टेढ़वा परगना उतरौला जिला गोंडा ।

हरगाह मुसम्मे जैमंगल दुबे ने दरख़ास्त इस अदालत में गुजरानी है कि तुम वली नाबालिग़ान क्यों न मुक़र्रर किये जाओ ।

लिहाजा तुमको इत्तिला दी जाती है कि तुम असालतन या मार्फत किसी वकील के जो हालात मुक़द्दमे से बख़ूबी वाक़िफ़ है बवक़्त, १० बजे बतारीख़ १५ माह जौलाई सन् १९३० ई० इस अदालत में हाज़िर होकर दरख़्वास्त के खिलाफ़ वजह दिखाओ, अगर ऐसा न करोगे तो दरख़्वास्त मज़कूर तुम्हारी ग़ैर हाज़िरी में समाअत की जावेगी ।

आज बतारीख़ २० माह मई सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया ।

जज

वक़्त, हाज़िरी बदफ़्तर अडिशनल सबजजी गोंडा १० बजे से ४ बजे तक

"माधुरी"

हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका क्यों है ?

इसका कारण जानने के लिये

किसी बड़े स्टेशन पर, ए० एच्० ह्वीलर कंपनी के बुकस्टाल पर या अपने शहर या गाँव की किसी लाइब्रेरी में जाकर "माधुरी" की कोई भी संख्या उठाकर आप देखेंगे, तो आपको मालूम हो जायगा कि—

"माधुरी"

ही हिंदी की सर्वोत्तम पत्रिका है।

क्योंकि

"माधुरी"—साहित्य और कला की अभूतपूर्व प्रदर्शिनी है।

"माधुरी"—में हिंदी के सभी धुरंधर विद्वानों और नामी लेखकों के लेख रहते हैं।

"माधुरी"—के चित्र भाव-पूर्ण, मनोहर और कला की दृष्टि से उत्तम होते हैं।

"माधुरी"—काग़ज, छपाई, रूप-रंग, गेट-अप आदि में आदर्श है।

"माधुरी"—में महिलोपयोगी लेखों की विशेषता है।

"माधुरी"—हिंदुस्तान के कोने-कोने और प्रत्येक गाँव में पढ़ी जाती है।

"माधुरी"—का प्रचार हिंदुस्तान के बाहर विदेशों में भी बड़े जोरों से बढ़ रहा है।

"माधुरी"—विज्ञापन का सबसे अच्छा साधन है।

"माधुरी"—में पाठ्य-विषय सबसे अधिक दिया जाता है और इसका प्रत्येक अंक स्थायी साहित्य की सर्वोत्तम सामग्री है।

इतने पर भी वार्षिक मूल्य केवल ६॥), छमाही मूल्य ३॥) है। अगर आप अभी तक "माधुरी" के ग्राहक न हुए हों, तो शीघ्र ६॥) मनीऑर्डर से भेजकर ग्राहक हो जाइए। **मैनेजर माधुरी, लखनऊ।**

व्यापारियों के लिए हित की बात

बिक्री का मौसम आ रहा है

अस्तु

अभी से अपना विज्ञापन छपवाइए !

किसमें

हिंदी-संसार की प्रमुख मासिक पत्रिका जिसकी सर्वत्र पहुँच है और जिसमें विज्ञापन छपाने से लाभ अवश्यंभावी है ।

माधुरी में

कारण

१ माधुरी में विज्ञापन छपाने से आपका विज्ञापन देश भर में ही नहीं, किंतु विदेशों में भी जहाँ कहीं माधुरी जाती है, सरलता से पहुँच जायगा ।

२ माधुरी के धनी-मानी, रईस, राजे-महाराजे आदि से लेकर साधारण स्थिति के लोगों की निगाह में आयेगा ।

३ माधुरी में विज्ञापनदाताओं को अवश्य लाभ होता है । इसी कारण इसमें विज्ञापन भी अधिक छपता है ।

इन बातों के अतिरिक्त

छपाई बहुत साधारण ली जाती है । अस्तु, समय न चूकें । आज ही अपना विज्ञापन भेजकर छपाना शुरू कर दें । स्थायी विज्ञापनदाताओं के लिए ख़ास रियायत की जाती है । विज्ञापन-छपाई के रेट उधर उलटकर देखिए ।

निवेदक—

मैनेजर माधुरी, लखनऊ ।

व्यापार-वृद्धि के लिए

विज्ञापन छपाना अत्यन्त आवश्यक है

इसके लिये

माधुरी सबसे उपयुक्त पत्रिका है

अस्तु

आप भी अपना विज्ञापन इसमें छपायें। परीक्षा प्रार्थनीय है।

विज्ञापनी नियम

(क) विज्ञापन छपाने के पूर्व कंट्रैक्ट-फ़ार्म भरकर भेजना चाहिए। कितने समय के लिये और किस स्थान पर छपेगा इत्यादि बात साफ़-साफ़ लिखना चाहिए।

(ख) झूठे विज्ञापन के ज़िम्मेदार विज्ञापनदाता ही समझे जायँगे। किसी तरह की शिकायत साबित होने पर विज्ञापन रोक दिया जायगा।

(ग) साल-भर का या किसी निश्चित समय का ठेका तभी पक्का समझा जायगा, जब कम-से-कम तीन मास की विज्ञापन-छपाई पेशगी जमा कर दी जायगी और बाक़ी छपाई भी निश्चित समय पर अदा कर दी जायगी। अन्यथा कंट्रैक्ट पक्का न समझा जायगा।

(घ) अश्लील विज्ञापन न छापे जायँगे।

ख़ास रियायत

साल-भर के कंट्रैक्ट पर तीन मास की पेशगी छपाई देने से ६।) फ़ी सदी, ६ मास की देने से १२॥) और साल-भर की पूरी छपाई देने से २५) फ़ी सदी, इस रेट में, कमी कर दी जायगी।

विज्ञापनी-रेट

साधारण पूरा	पेज	३०)	प्रति	बार
,, ½	,,	१६)	,,	,,
,, ¼	,,	१०)	,,	,,
,, ⅛	,,	६)	,,	,,
कवर का दूसरा	,,	५०)	,,	,,
,, तीसरा	,,	४५)	,,	,,
,, चौथा	,,	६०)	,,	,,
दूसरे कवर के बाद का	,,	४०)	,,	,,
प्रिंटिंग मैटर के पहले का	,,	४०)	,,	,,
,, ,, बाद का	,,	४०)	,,	,,
प्रथम रंगीन चित्र के सामनेका		४०)	,,	,,
लेख-सूची के नीचे आधा	,,	२४)	,,	,,
,, ,, चौथाई	,,	१५)	,,	,,
प्रिंटिंग मैटर में आधा	,,	३०)	,,	,,

पता—मैनेजर "माधुरी", नवलकिशोर-प्रेस, हज़रतगंज, लखनऊ

कुछ चुनी हुई स्त्रियोपयोगी पुस्तकें

भार्या-हित

अँगरेजी पुस्तक Advice to a wife का हिंदी अनुवाद। मासिक-धर्म, गर्भाधान, प्रसव-पीड़ा और बच्चे को दूध पिलाना इत्यादि अनेक उपयोगी विषय बड़ी उत्तमता से वर्णन किए गए हैं। पृष्ठ-संख्या ३३०; मूल्य ॥)

महिला-हितैषिणी

इसमें स्त्री-संबंधी सभी उपयोगी और ज्ञातव्य विषयों का समावेश बड़ी सुंदर और सरल भाषा में किया गया है। प्रत्येक गृहिणी को इसकी एक प्रति अपने पास अवश्य रखनी चाहिए। पृष्ठ-संख्या २३०; मूल्य १)

स्त्री-उपदेश

आर्य-ललनाओं के लिये यह बड़ी उपयोगी है। इसमें अनेक शिक्षाप्रद और मनोरंजक उपदेश दिए गए हैं। भाषा भी ऐसी सरल है कि साधारण पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ इसे सहजही में समझ सकती हैं। पृष्ठ-संख्या १७८; मू० ॥)

स्त्री-दर्पण

इसमें विद्यानुरागिनी लड़कियों और स्त्रियों का परमार्थ-साधन, गृह-कार्य की प्रवीणता और अनेक प्रकार की अमूल्य शिक्षाएँ अति सरलता-पूर्वक वर्णन की गई हैं। पुस्तक लड़कियों के पढ़ने योग्य है। पृष्ठ-संख्या १६५ मू० ॥)

स्त्री-सुबोधिनी

स्त्रियों के लिये इससे बढ़कर उपयोगी और उत्तम पुस्तक दूसरी कोई नहीं है। पृष्ठ-संख्या ८३६; मूल्य सजिल्द पुस्तक का २॥)

शिवनारायण-भजनमाला

संगीत और मनोरंजन का अपूर्व साधन। ग़ज़ल, ठुमरी, दादरा, कजरी, ख़्याल आदि में ईश्वर-संबंधी सुंदर और उत्तम भजनों का अनोखा संग्रह। पृष्ठ-संख्या २४०; मूल्य॥)

पतिव्रता-स्त्रियों के जीवन-चरित्र

अगर आप चाहते हैं कि हमारी स्त्रियाँ वीर संतान उत्पन्न करें, या हमारी बहनें और कन्याएँ सुचरित्रा एवं सुशीला बनें, तो एक बार इस पुस्तक को अवश्य उनके हाथ में दीजिए। पृष्ठ-संख्या ३५८; मूल्य १=)

नारी-चरितमाला

यदि आपको अपने देश की सुचरित्रा, आदर्श और विदुषी स्त्रियों के चरित्रों से अपनी प्यारी स्त्रियों, बहनों या कन्याओं को उत्तमोत्तम उपदेश देने हों, तो इस पुस्तक को अवश्य ख़रीदें। मूल्य ॥=)

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

भगवद्गीता भाषा

सुंदर, सचित्र और सरल भाषा में

अठारहों अध्याय माहात्म्य सहित, सुंदर और सरल भाषा में

टाइप बड़ा; पृष्ठ-संख्या ४८८; मूल्य १=)

संस्कृत न जाननेवाले वृद्ध स्त्री-पुरुषों के लिये यह अति उत्तम पुस्तक है

तुलसीकृत

रामायण गुटका

सुंदर ग्लेज काग़ज़ पर ॥)

रफ़ काग़ज़ ।=)

साहित्य-सेवियों और राम-भक्तों के लिये नित्य पाठ करने के लिये यह जेबी गुटका सर्वोत्तम है।

* * *

विनय-पत्रिका

टीकाकार स्व० बैजनाथजी। यह पुस्तक बहुत दिनों से अप्राप्त थी। मूल्य ३)

हिंदी-अँगरेज़ी-शिक्षक

यानी

इँगलिश-टीचर

घर बैठे बहुत थोड़े समय में अँगरेज़ी सीखने की सर्वोत्तम पुस्तक। केवल इसी को पढ़कर काम चलाऊ अँगरेज़ी सीखी जा सकती है। तार या चिट्ठी आने पर इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मूल्य ॥)

कालिदास और सेक्सपीयर

संस्कृत और अँगरेज़ी न जाननेवालों के लिये संस्कृत और अँगरेज़ी साहित्य की ख़ूबी जानने के लिये इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। साहित्य-सेवियों के लिये तो यह बड़े काम की चीज़ है। दोनों साहित्य की ख़ूबियाँ इसमें ख़ूब दिखाई गई हैं। मूल्य २)

तुलसीकृत

रामायण मध्यम मूल

मूल्य १।=)

अपनी ढंग की यह भी बहुत सस्ती पुस्तक है। हरएक व्यक्ति को इसकी एक प्रति अपने पास रखनी चाहिए।

* * *

बीजक कबीरदास

श्रीकबीरदासजी की वाणी का संग्रह। टीका श्रीविश्वनाथसिंहजी ने की है। मूल्य सजिल्द ३)

मैनेजर नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.

साहित्य-सुमन-माला की कुछ चुनी हुई पुस्तकें

बाल-कथा-कौमुदी

लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित

इसमें बालोपयोगी सुंदर, सुबोध और शिक्षाप्रद कहानियों का संग्रह है। कहानी सब एक-से-एक बढ़कर है। बड़ी चटपटी और मज़ेदार हैं। बालक उसे बड़े चाव से पढ़ते हैं। एक बार शुरू करके समाप्त कि बिना कभी नहीं छोड़ेंगे। बालकों में पढ़ने की इच्छा पैदा करने के लिये जैसी कहानियों की आवश्यकता है, इसमें की सब कहानियाँ वैसी ही हैं। बालक ही नहीं, बड़े स्त्री-पुरुष भी इनमें मनोरंजन का काफ़ी मसाला पाएँगे। बड़े टाइप और सरल भाषा में लिखी हुई पुस्तक का मूल्य केवल ॥=) रक्खा गया है।

प्यारी कहानियाँ

लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित

यह भी बालोपयोगी है। इसमें भी छोटी, सुंदर, मनोरंजक और सुबोध कहानियों का संग्रह है। मूल्य ॥)।

निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं—

१ वैचित्र्य-चित्रण—लेखक, साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी। मूल्य ॥=)
२ अग्नि-समाधि और अन्य कहानियाँ—लेखक, श्रीप्रेमचंदजी। मूल्य १)
३ ठलुआ-क्लब—लेखक, श्रीगुलाबराय एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ॥)
४ बाल-कथा-कौमुदी—लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित। मूल्य ॥=)
५ प्यारी कहानियाँ—लेखिका, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित। मूल्य ॥)
६ मानव-शरीर-रहस्य (प्रथम भाग)—लेखक, डाक्टर मुकुंदस्वरूप वर्मा एम्० बी० बी० एस्० चीफ़ मेडिकल आफ़िसर, काशी विश्व-विद्यालय। मूल्य २॥)
७ काम-कुंज—लेखक, श्रीसंतराम बी० ए०। मूल्य २॥)
८ विज्ञान-वार्ता—लेखक, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी। मूल्य १।=)

—शीघ्र प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें—

१ मानव-शरीर-रहस्य (द्वितीय भाग)
२ कवित्त-रत्नाकर
३ तीन तिलंगे
४ डेविड कापर फ़ील्ड
५ सूक्ति-सुधा

मिलने का पता—नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ.

साहित्य-सुमन-माला की नई और निराली पुस्तक

काम-कुंज

मूल्य
२॥)

लेखक—श्रीसंतराम बी० ए०

स्त्री-पुरुष-संबंधी कितनी ही ऐसी बातें हैं, जिनके न जानने से मनुष्य को जीवन का सच्चा सुख और आनंद नहीं मिलता। धन, जन और विद्या के होते हुए भी उनके चित्त को ईप्सित शांति नहीं मिलती। स्त्री-पुरुष-संबंधी शास्त्र की अनभिज्ञता के कारण सुविख्यात और लोकमान्य नेताओं को, उच्च पदाधिकारियों को, लक्ष्मी के लाड़लों को, सरस्वती के सपूतों को भी जीवन का सच्चा सुख नहीं मिलता। उस सुख की प्राप्ति के लिये वे निरंतर मथा करते हैं। जिसके अभाव से वे चिंताओं और अनेक प्रकार के रोगों के शिकार बने रहते हैं। पवित्र और सच्चा प्रेम उनको आकाश-कुसुमवत् मालूम होता है। कारण, वह स्त्री के हृदय को समझ नहीं सकते, स्त्री-प्रेम की परख नहीं कर सकते, उनकी मौन भाषा को समझने की उनमें शक्ति नहीं, उनके संकेत का उन्हें ज्ञान नहीं, उनकी सहिष्णुता का उनके यहाँ कोई आदर नहीं, उनके आचार-विचार के रहस्य समझने की बुद्धि नहीं, उनकी अजेय शक्ति का उन्हें भान नहीं, उनके प्राकृतिक सौंदर्य की सराहना नहीं; तब फिर जीवन का आनंद कहाँ? काम-कुंज को पढ़िए और इसके रहस्य को जानिए।

काम-कुंज
अश्लील नहीं है

विषय-सूची

स्त्री-सौंदर्य
गृहस्थों के प्रति
सखी-हृदय
स्त्रियों की मौन भाषा
संकेत
अजेय शक्ति
काम-शास्त्र और स्त्रियाँ
स्त्री प्रेम के लिये सर्वस्व दे सकती है
स्त्री की सहिष्णुता
सती-धर्म-पालन के कुछ उपाय
वेश्या-वृत्ति
स्त्री को पुरुष की संगति पसंद है या स्त्री की
पश्चिम को आधुनिक स्त्री
महाशक्ति
अबलाओं के आँसू

प्रत्येक गृहस्थ को इसे एक बार अवश्य पढ़ना चाहिए

नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ।

श्रीप्रेमचंदजी
की
नई पुस्तक

अग्नि-समाधि तथा अन्य कहानियाँ

मूल्य १)

शीघ्र मँगाइए। अब थोड़ी ही प्रतियाँ रह गई हैं।

पढ़िए और लेखक की क़लम की करामात के क़ायल होइए।

वैचित्र्य-चित्रण

वै चि त्र्य चि त्र ण

इसमें ६ अध्याय हैं— नराध्याय, वानराध्याय, जलचराध्याय, स्थलचराध्याय, उद्भिजाध्याय, प्रकीर्णकाध्याय जिनमें द्विवेदीजी ने सृष्टि की अजूबात का वर्णन बड़ी मार्मिक भाषा में किया है। पुस्तक में अनेक नई और आश्चर्यजनक बातें पढ़कर आनंद उठाइए। पढ़ने में उपन्यास से बढ़कर मज़ा आता है। मूल्य ॥=)

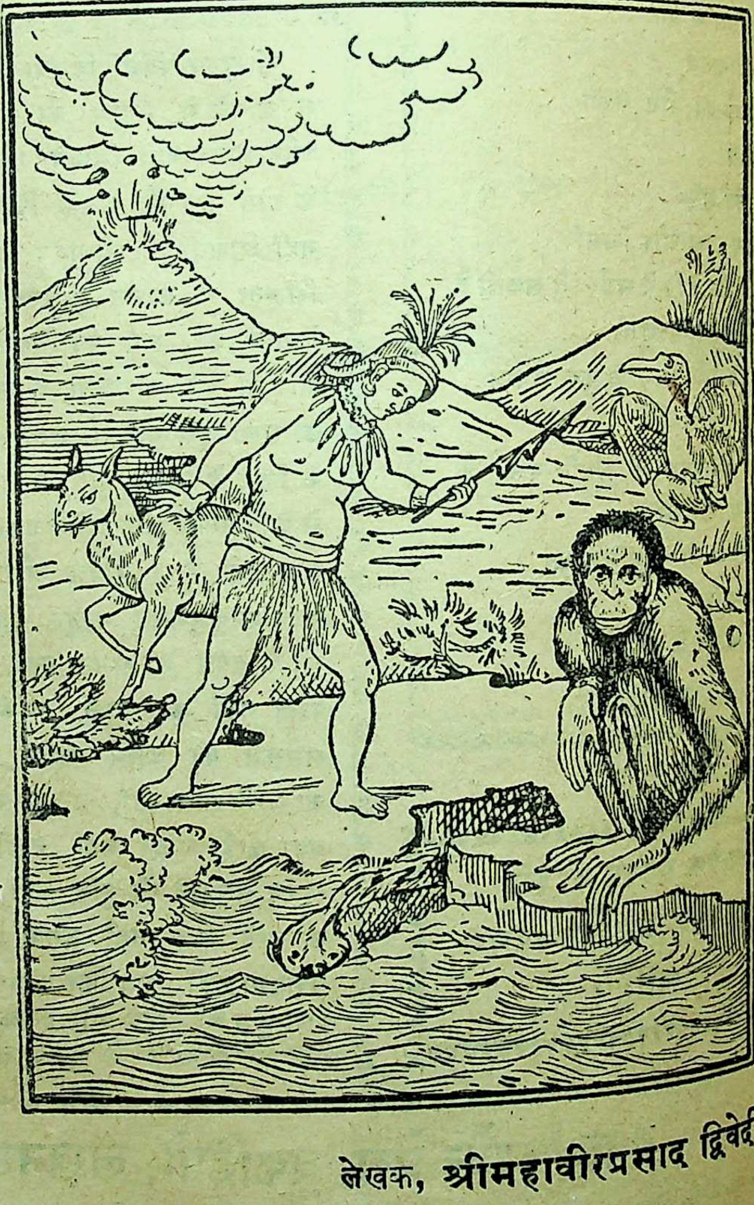

लेखक, **श्रीमहावीरप्रसाद द्विवेदी**

मैनेजर बुकडिपो, नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

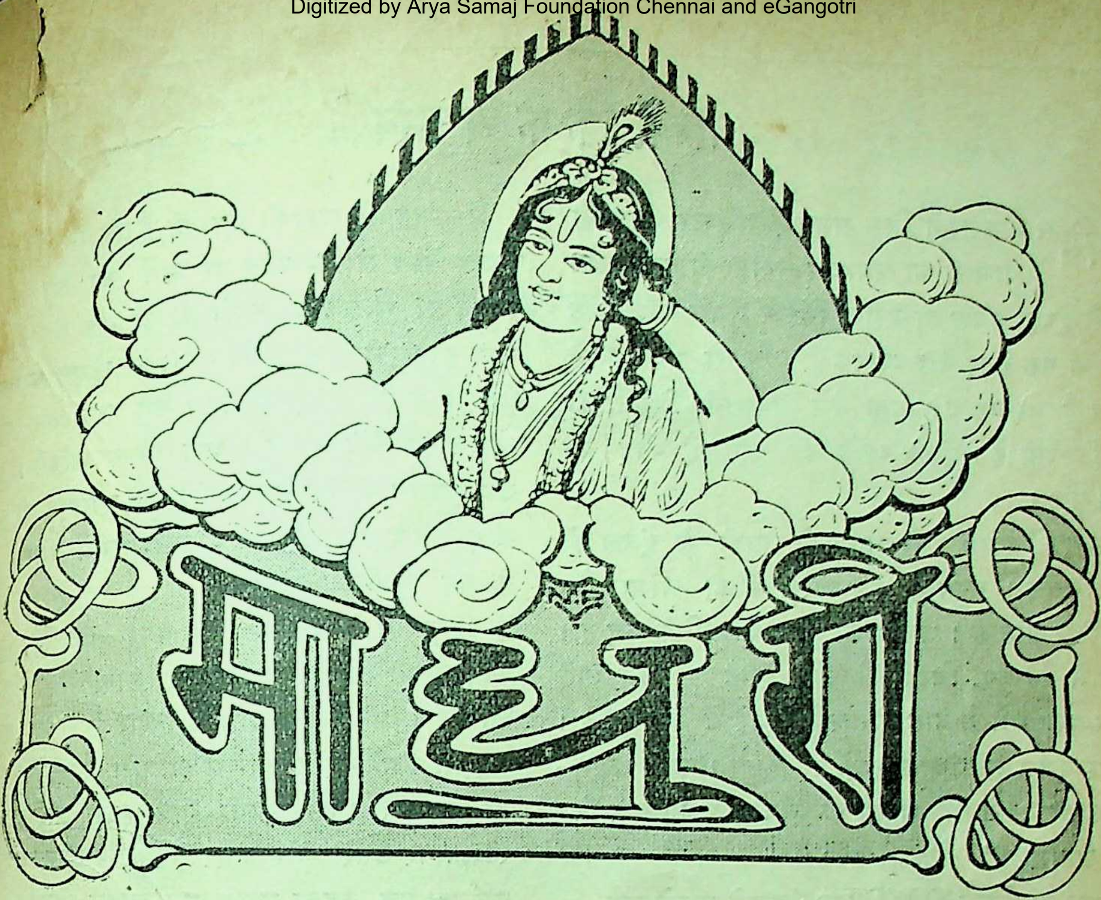

वर्ष ८
खंड २

ज्येष्ठ, ३०६ तुलसी-संवत् (१९८७ वि०)

संख्या ५
पूर्ण संख्या ९५

अभिलाषा

श्वान औ शृगाल वृक बदन बिशाल करैं कोटि मुख लाल बाल कच्छ मच्छ घेरे री ;
लहरि हिलोरे जनु झूलत हिंडोरे माँहि पवन झकोरे बोरे देत चहुँ फेरे री।
'लेखराज' यहै अभिलाख अभिलाखै तो तैं गंगाजू न आन अभिलाख मन मेरे री ;
काक गृद्ध भीर चाम लेत चीर-चीर कब देखिहौं सरीर निज नीर तीर तेरे री।

"लेखराज"

परिव्राजक के अनुभव

मिस स्टेडलर ने जिस समय मुझे मिस्टर एंजल की बीमारी का समाचार सुनाया तो उन्हें देखने की मेरी इच्छा प्रबल हो उठी। मिस्टर एंजल कोलोन के निकट के एक नगर में अध्यापक हैं। आपसे पहचान तो नई ही है पर वह नई मानो वर्षों की पुरानी मित्रता की याद दिलाती है। एंजल व्यक्ति ही ऐसा है कोई करे क्या। ख़ैर।

हम दोनों रविवार को प्रातः की गाड़ी से एंजल को देखने निकले। रास्ते में कल-कारख़ानों की भरमार है। यह सुंदर प्रांत है। जर्मनी का मुख्य औद्योगिक केंद्र है। गाड़ी में बैठे हुए, चिमनियों के ठट्ठ देखते हुए चले जाते थे। ग्यारह बजे के बाद बीमार के कमरे में जा पहुँचे। मिस्टर एंजल हमें देखकर बड़े प्रसन्न हुए। कहने लगे—"बस, आज से मैं अच्छा हो गया। अब बुखार फिर नहीं आएगा।"

लगा वार्तालाप होने। मिस्टर एंजल ने मुझसे पूछा—

"मिस्टर मिसरा के साथ आप भी बान्न और मेरिया-लाख गए थे क्या?"

मैंने कहा—"हाँ गया था।"

मि० ए०—"सुनाइए सारा हाल-चाल। पहले उस होटलवाले की बात कहिए। उसने कुछ लबड़धोंधों तो नहीं मचाई थी?"

हँसकर मैंने उत्तर दिया—

"अरे यार, उसकी बात क्या पूछते हो। जब आप होटल से चले गए तो मैंने मि० गौरीशंकरप्रसाद से कहा कि मेरे साथ चलकर होटलवाले का बिल निपटा दीजिए, नहीं तो पीछे वह धूर्त बाही-तबाही बकेगा। सो हम दोनों नीचे मैनेजर के पास गए। वह दुष्ट तो हवा के घोड़े पर सवार था। मुझे लगा डाँट-डपट करने। फिर मैंने भी "हो" का जवाब "खो" में दिया। बस बिल का मुआमला साफ़ हो गया। मैनेजर ने मेरे साथ हाथ मिला लिया।"

मिस्टर एंजल ख़ूब हँसे। बोले—"बस योरप की यही दवाई है। आप योरपवालों को ख़ूब पहचानते हैं। फिर आगे क्या हुआ?"

मैं—यह तो आपको पता ही है कि मिस्टर मिसरा ने डाक्टर बेकर से टेलीफ़ोन पर बातें कर ली थीं। बान्न स्टेशन पर मिलने की ठहरी थी पर भूल यह हो गई कि बेकर साहब ने बिजली की गाड़ी का स्टेशन कहा था और मिसरा समझे रेलगाड़ी का। सो जब बान्न पहुँचे तो स्टेशन पर कोई न था। लगे बगलें झाँकने। इधर से उधर लोगों को देखते ताकते थे, बेकर साहब को हममें से कोई पहचानता नहीं था। उस समय मिस्टर प्रसाद ने यह चुटकिला सुनाया।

हिंदुस्थान में बनारस एक बड़ा शहर है, यह तो आप जानते ही हैं। वहाँ हज़ारों लाखों लोग गंगा नहाने आते हैं। बनारस के पास गोरखपुर ज़िले का एक बू आदमी गंगा नहाने बनारस आया। उसके पास सामान की एक गठरी थी। अपनी गठरी-मुठरी सहित जब स्टेशन पर उतरा और बाहर सड़क पर आया तो १८-१ वर्ष का एक लड़का उसके पास आकर बोला—

"चच्चा हो, चच्चा!"

वह बूढ़ा, जिसका नाम लोचन था, बड़ा हैरान हु और उस लड़के से पूछने लगा—

"कैसे मैं तुम्हारा चच्चा लगता हूँ?"

उस लड़के ने एक नई बात गढ़कर उसे इस ढंग समझा दिया कि बूढ़े को विश्वास हो गया। लड़ सामान उठाकर उसके पीछे-पीछे चला। गंगा-कि घाट पर जब पहुँचे तो लोचन लड़के को सामान सौं कर नदी में नहाने लगा। जब नहा-धोकर बाहर आ तो गठरी-मुठरी नदारद! अब वह हैरान खड़ा हु इधर-उधर ताकने लगा। वह लोगों से बार-बार पूछता था—"मैं किसका चाचा लगता हूँ?"

"सो भाई ऐसे ही बान्न स्टेशन पर हम लोग ताक रहे थे, मानो पूछते थे 'कि हम किस डा बेकर के मेहमान हैं।"

मि० एंजल लेटे हुए थे। सिर उठाकर ख़ूब हँसे। फिर पूछने लगे—"तो डाक्टर बेकर मिला नहीं?"

मैंने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"मिले क्यों नहीं।"

मि० एंजल—"फिर?"

मैं—डाक्टर बेकर समझदार आदमी निकले । वह पहले बिजली की गाड़ीवाले स्टेशन पर गए थे । वहाँ से लौटकर रेल-स्टेशन पर आ गए । सो हम लोग दूसरी गाड़ी में बैठकर मेरियालाख की ओर चले । मध्याह्न में एक छोटे-से स्टेशन पर पहुँचे, वहाँ से मोटर-बस में लदकर डेढ़ बजे हम लोग मेरियालाख आ गए ! वाह ! क्या रमणीक स्थान है । सात पहाड़ों में यह झील मोती की तरह जड़ी हुई है । जब हम वहाँ के प्रमुख होटल के

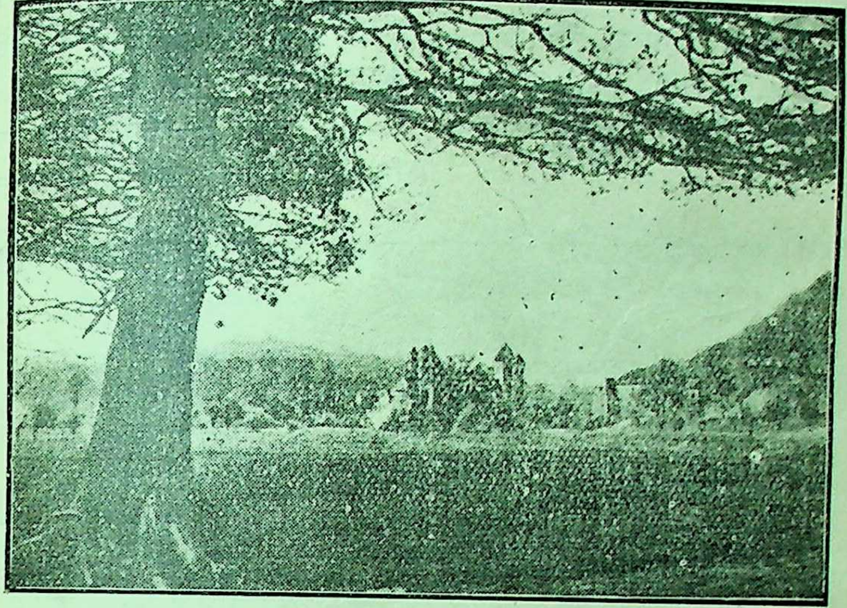

मेरियालाख का नैसर्गिक दृश्य

मेरियालाख की झील

बाहर के बरामदे में कुर्सियों पर बैठकर प्राकृतिक छटा देखने लगे तो मन यहीं रह जाने का प्रलोभन देने लगा। वृक्ष आडुओं और नास्पातियों से लदे हुए झूम रहे थे। सबसे पहले हम लोग भोजन पर टूट पड़े और भर पेट खाया। दो रुपए फ़ी आदमी खा गए!"

मि० एंजल—"मेरियालाख महँगी जगह है।"

मैं—भोजनोपरांत यहाँ का प्रसिद्ध मठ देखने गए। यह तो आप जानते ही हैं कि यह सेंट बेनिडिक्ट का मठ है।"

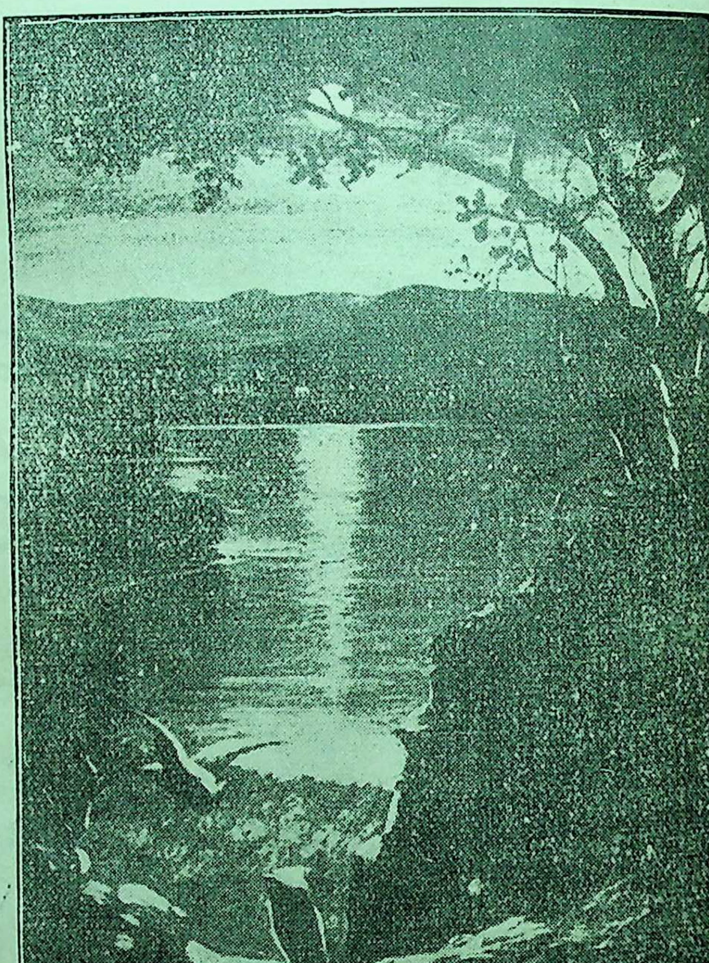

मेरियालाख झील में चंद्र की विचित्र छटा

मि० एंजल—"ख़ूब जानता हूँ। ग्यारहवीं-बारहवीं सदी का पुराना यह मेरियालाख का मठ है। सेंट बेनिडिक्ट के चेले ज्ञान-ध्यान की शिक्षा देते हैं।"

मैं—"हाँ, उस गिरजे और मठ में हम लोग गए थे। पुरानी निर्माण-कला तथा स्थापत्य-कला के नमूने देखे पुस्तकालय भी देखा। वहाँ पुरानी-पुरानी इंजीलें रक्खी हैं। भिक्षु भी देखे पर उनके कमरों में जाने की इजाज़त नहीं है।"

मि० एंजल—नहीं, वे सब बड़ी सादी ज़िंदगी बिताते हैं और सैकड़ों वर्षों के पुराने ढंग से रहते हैं। आपकी किसी से बातचीत भी हुई?"

मैं (हँसकर)—"हुई और अच्छी तरह हुई। मिस्टर बेकर एक भिक्षु को पकड़ लाए। बिलकुल जवान पट्ठा! अच्छी अँगरेज़ी बोलता था। हमारे मि जी उससे लगे वादविवाद करने। ख़ूब बातें हुईं। मां खाने के मसले पर मिश्रजी ने उसे ख़ूब आड़े हाथों लिया। उस भिक्षु को बिलकुल निरुत्तर कर दिया।"

मिस्टर एंजल खिलखिलाकर बोले—मिस्टर मिसरा बड़ी तीव्र बुद्धि का व्यक्ति है। मेरियालाख मठ के भिक्षु तो एकांगी हैं। वे अपने मठ से बाहर की बातों पर कम ध्यान देते हैं। उनके संप्रदाय की कोई बड़ी तादाद तो है नहीं।”

मैं—“उनकी संख्या बढ़े चाहे न बढ़े, उनके मठों के साथ ग्राम लगे हैं। उनकी आमदनी से ये लोग बैठे माला फेरते हैं और ईसा-ईसा करते हैं।”

मठ का पश्चिमी दृश्य

मि० एंजल—“अब आप भोजन करने जाइए। वहाँ से लौटकर आएँगे तो बाक़ी बातें होंगी।”

मिस स्टेडलर और मैं भोजन करने होटल में गए। यहाँ भी डेढ़ रुपया भोजन में लग गया। खाया क्या—उबले हुए मटर, मूली, टमाटो और मुरब्बा।

× × ×

भोजनोपरांत आए तो देखा मिस्टर एंजल के कुछ मित्रगण उनसे मिलने आए हुए हैं। उनमें एक लड़का गहरे गेहुएँ रंग का था। जब वे चले गए तो मुझे मिस्टर एंजिल ने बतलाया कि वे सब यहूदी हैं। योरप में यहूदी ही पूँजीपति हैं और वही क्रांतिकारी भी हैं। रूस में यहूदियों के हाथ में सरकार है। जर्मनी, आस्ट्रिया और फ्रांस में यहूदियों के हाथ में बैंक और अख़बार हैं। इँगलैंड के राथ्सचाइल्ड तो संसार-प्रसिद्ध हैं ही। साम्राज्यवाद में यहूदी को सामाजिक अधिकार न थे। क्रांति होने पर उसे अपनी बुद्धि आज़माने का पूरा मौक़ा मिल जाता है। वह मज़दूर कभी नहीं था और न अब बनेगा ही। वह प्रत्येक अवस्था में बुद्धि द्वारा विजय करना जानता है सो अपने बुद्धि-वैभव से ऊँचे पदों पर आसीन हो जाता है।

वह लड़का जो पक्के गेहुएँ रंग का था, पूछने पर पता लगा, टाइरोल (आस्ट्रिया) से आया है। गर्मियों में योरप के लोग अपना बदन जलाने के लिये नंगे धूप में पड़े रहते हैं। जिसका बदन जितना अधिक धूप से झुलस जाय वह उतना ही अधिक तंदुरुस्त समझा जाता है। सो उस लड़के ने अपना बदन धूप में लाल कर लिया था। कोलोन के स्टाडिओं में जब मैं तैरने आया करता था तो वहाँ कई लड़कों को बिलकुल धूप-दग्ध पाता

था। बाग़ों में मैं प्रायः साए में बैठा करता और मेरे साथी धूप में। जब वे मुझसे धूप में बैठने को कहते तो मैं मुस्कराकर उत्तर देता—"मेरे हिस्से में काफ़ी धूप आ चुकी है।"

× × ×

मिस्टर एंजल से फिर मेरियालाख की बातें होने लगीं। मैंने फिर कहना शुरू किया—"मेरियालाख से हम लोग साढ़े पाँच बजे शाम को निकल पड़े। सूर्यदेव पर्वतों में छिपने की तैयारी कर रहे थे। जब बान्न पहुँचे तो अँधेरा हो गया था। कैसा नीरोग जल-वायु यहाँ का है। होटल में जितना खाया था वह सब न-जाने कहाँ चला गया। बान्न पहुँचकर भूख से विकल हो गए। यहाँ काफी-हाउस में खाने गए। मौक़े की बात है, इस काफी-हाउस में दूध अच्छा नहीं मिला; नहीं तो यहाँ जर्मनी में बड़ा अच्छा दूध मिलता है—सब जगह। ख़ैर, यहाँ मिस्टर मिश्र ने एक चुटकुला सुनाया। बड़ी उत्सुकता से मि० एंजल उछल पड़े। बोले—"क्या?" मैंने मुस्कराकर कहा—"लेट जाइए, मैं बताता हूँ।"

मि० एंजल—"हाँ-हाँ, बतलाइए।"

मैं—"अच्छा सुनिए। हमारे यहाँ कानपुर एक बड़ा शहर है। वहाँ एक गृहस्थ बाज़ार में एक हलवाई की दुकान पर दूध लेने गया। हलवाई को उसने दस फ़ेनिग (एक आना) दिया। हलवाई ने एक मिट्टी के बर्तन में उसे दूध दे दिया। ग्राहक ने जब बर्तन का दूध देखा तो उसमें एक मक्खी तैर रही थी। उस मरी मक्खीवाले दूध को हलवाई के सामने धरकर ग़ुस्से से उसने कहा—'ऐसा दूध दिया, जिसमें मक्खी'!"

घृणा का भाव दिखलाते हुए हलवाई ने जवाब दिया—"और एक आने में क्या हाथी-घोड़ा लोगे!"

मि० एंजल खाट पर उछल पड़े और हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए। फिर कहने लगे—"बस मेरा बुढ़ापा तो इन चुटकुलों ने चाट लिया। अब मैं बिलकुल नीरोग हो गया।"

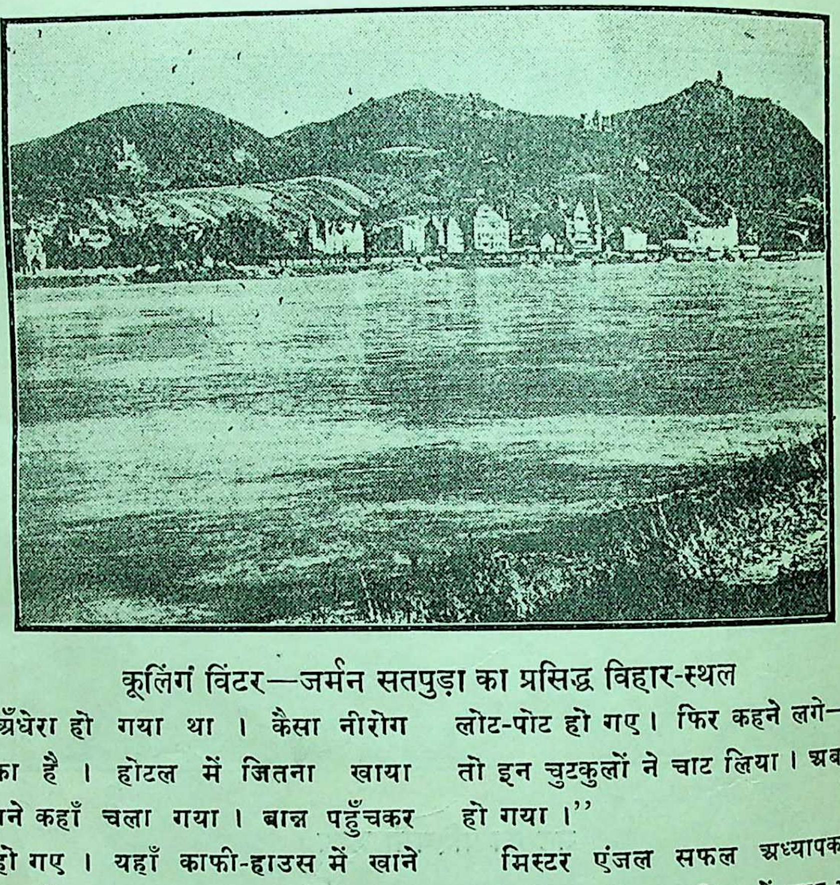

कूलिंग विंटर—जर्मन सतपुड़ा का प्रसिद्ध विहार-स्थल

मिस्टर एंजल सफल अध्यापक हैं। डेन्मार्क की अंतर-राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद् में आप गए थे। वहीं आपसे काशी के पं० रामनारायण मिश्र तथा बाबू गौरीशंकर-प्रसादजी से भेंट हुई थी। क्रांतिकारी शिक्षा-प्रणाली के आप पक्षपाती हैं, उसके कारण पुराने ढर्रेवालों से आप की पटती नहीं। आप भारत-भक्त हैं। मुझसे वर्ण-व्यवस्था के विषय में पूछने लगे। जब मैंने कहा, मिस्टर मिसरा ब्राह्मण हैं तो आप बड़े आश्चर्य में आए। जात-पाँत का मौजूदा बेढंगापन जब मैंने बतलाया तो वह पूछने लगे—"इस जात-पाँत का असली रहस्य क्या है! मुझे समझाइए।"

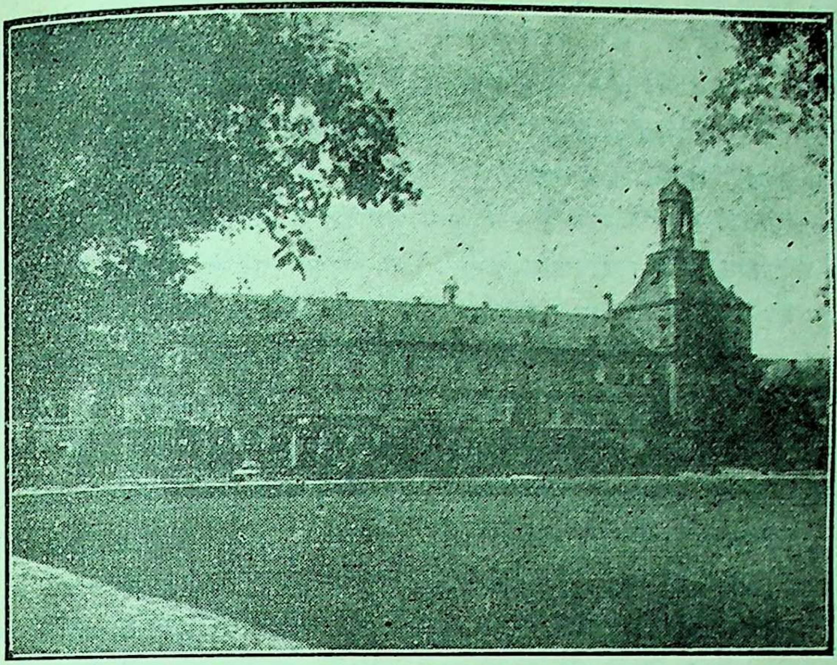

बान्न का विश्वविद्यालय
(यहाँ संस्कृत के दो प्रोफ़ेसर हैं)

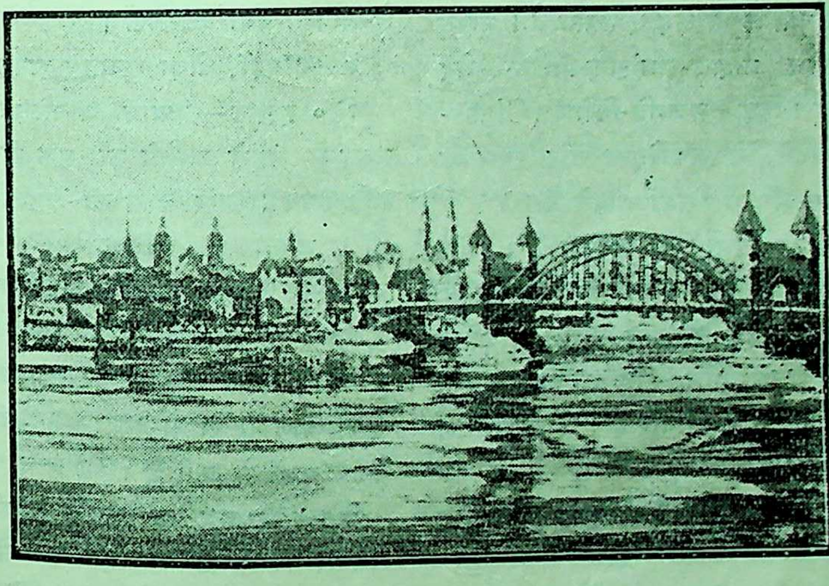

राइन के किनारे बान्न-नगरी का दृश्य

मैंने गम्भीर होकर कहना शुरू किया—"देखिए, आज जो रोटी का सवाल योरप में है इसकी तह में बात यह है कि रुपए ने समाज की सारी शक्ति को ख़रीद लिया है। रुपए को पहले कभी ऐसी महान् प्रभुता नहीं मिली थी जैसी कि अब मिल गई है। अब क्षत्रिय, ब्राह्मण और शूद्र सभी वैश्य के गुलाम हो गए हैं। इसी कारण योरप में रोटी का हाहाकार और योरपियनों की दया से भारत तथा दूसरे देशों में भी क्षुधा-

चंडी नाचने लगी है। पहले रुपया और शक्ति समाज में बटी हुई थी। अब प्रजातंत्र आ जाने से चालाक पूँजीपतियों के हाथ में सारी शक्ति आ गई है। वे लेखकों, सम्पादकों, व्याख्यानदाताओं, वकीलों, वोटरों—सभी को रुपए के बल से ख़रीदकर शासन-शक्ति सँभाल लेते हैं और फिर उससे मनमाना लाभ उठाते हैं। हिंदू लोग रुपए की इस खौफ़नाक ताक़त को समझते थे, इसीलिये उन्होंने रुपए को शक्ति न मानकर सेवा और त्याग को समाज की कसौटी बना लिया था और अपना आदर्श 'ब्राह्मणत्व' बनाया था। ब्राह्मण वह है जिसके पास कोई जायदाद न हो। जिसने अपना सर्वस्व समाज में लगा दिया हो, वही ब्राह्मण कहलाता था। इसका परिणाम यह होता था कि सभी सामाजिक सदस्य उस ब्राह्मण आदर्श को सिद्ध करना ही अपना अहोभाग्य समझते थे। तब पूँजीवाद के लिये कोई गुंजाइश नहीं थी, क्योंकि पूँजीवाला ब्राह्मण को नमस्कार करता था। हिंदुओं ने समाज के आर्थिक प्रश्न को बड़ी ख़ूबसूरती से हल किया था। योरपवाले सम्प्रदाय-युद्ध, श्रेणि-विरोध और शक्तिसंघर्ष पर विश्वास करते हैं इसीलिये इङ्गलैण्ड फ्रांस और जर्मनी को लड़ाए रखता है। भारत में हिंदू-मुस्लिम विरोध, ब्राह्मण-अब्राह्मण-विरोध—भेद नीति—इसी कारण है। हिंदू इस जाति-विरोध (Class-war) को नहीं मानते, वे सचरित्रता और त्याग के आधार पर सामाजिक संगठन रखना चाहते हैं।"

मि० एञ्जल—"क्या महात्मा गांधी ब्राह्मण हैं।

मैं—महात्मा गांधी मौजूदा जातपाँत के मुताबिक़ तो ब्राह्मण नहीं हैं पर वह हिंदू-संस्कृति के इस आदर्श के अनुसार ब्राह्मण हैं। उनके पास कोई जायदाद नहीं। समाज उन्हें सब शक्ति देने को तैयार है। हिंदुस्थान में इस समय नवयुग हो रहा है।"

मि० एञ्जल—"महात्मा गांधी की आप लोग पूजा करते हैं ?"

मैं—मैं तो विकासवादी हूँ। मैं आदमियों की पूजा का कट्टर विरोधी हूँ। मैं पीर, पैग़म्बर, अवतार, मुक्तिदाता आदि कुछ नहीं मानता। मैं बड़े-से-बड़े महापुरुषों के मौलिक ज्ञानतत्त्व की पूजा करता हूँ अर्थात् आदर देता हूँ। जो मौलिक ज्ञानतत्त्व (Contrilution to Knowledge) महात्मा गांधी ने दिया है, बस उतना ही मैं उनका भक्त हूँ। आदमी का भक्त होने से तो फिर उसकी सारी ज़िन्दगी की ज़िम्मेवारी उठानी पड़ती है, जैसे मुसलमानों ने हज़रत मुहम्मद का उसकी ग़लतियों के साथ बोझा उठाया है, ईसाइयों ने ईसा का गट्ठर सिर पर लादा है, इसी प्रकार मेरे देश में भागवत के कृष्णभक्तों ने कृष्ण की गोपियों का ढेर पीठ पर ले रक्खा है। ऐसे लोगों का अपना-अपना व्यक्तित्व (Personality) नष्ट हो जाता है और वे भारवाहक हो बने रहते हैं। दूसरों के ख़यालातों की व्याख्या और भाष्य करने में ही उनका सारा मस्तिष्क लग जाता है।

मि० एञ्जल प्रसन्न होकर बोले—"आपसे मैं पूर्णतः सहमत हूँ। जर्मनी में जो इस समय युवक-आन्दोलन उठा है उसकी जड़ में यही बातें हैं।"

मैं—"यह भी मौक़े से बात निकल आई है, ज़रा युवक-आन्दोलन की बातें तो सुनाइए।"

मिस्टर एञ्जल उत्साहित होकर बोले—"आप तो अब इन घुमक्कड़ युवकों से दोस्ती रखते हैं, उनके साथ जंगलों में घूमते हैं, उनके व्याख्यानों में जाते हैं, अब मैं आपको क्या बतलाऊँ।"

मैं—"नहीं, थोड़ा सुनाइए अपना दृष्टिकोण।"

मि० एञ्जल—"आप जानते ही हैं कि योरप-महासमर से पहले जर्मनी का एक ही आदर्श था—जंगी-शक्तिसंचय। सारी क़ौम की ताक़तें उसी पर केन्द्रीभूत थीं। जनता युद्ध-अधिकारियों की ग़ुलाम थी। इस महासमर के बाद जर्मनी का मस्तिष्क स्वतंत्र हो गया है। अब जनता स्वयं सोचने लगी है। आप यह देखते ही हैं कि प्रत्येक रविवार को प्रभात से ही लोगों के ठट्ठ के ठट्ठ पीठ पर खाना-दाना धरे बिजली की गाड़ियों में बैठ जंगलों में जाते हैं।"

मैं—"सचमुच यह नई बात हो गई है। योरपीय रविवार को ग्यारह बजे दिन तक सोया करते थे, जर्मनी में कायापलट हो रहा है। छोटे बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्रियाँ सभी खाने को झोले में डाल रविवार को सवेरे ही जंगलों की ओर चल देते हैं और दिन-भर वहीं सैर-सपाटा, कुदक्की, व्यायामादि करते हैं।"

मिस्टर एञ्जल—"यह भी आप देखते हैं कि लड़कियाँ बिना ज़ुर्राबों के बूट पहनकर घूमती हैं। लड़के कालर-

ाई की कुछ परवा नहीं करते । पुरानी सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध विप्लव मच रहा है ।"

मैं—"सचमुच ज़र्मन लोग बहुत बदल गए हैं । अब इनमें नई बातों की भूख ख़ूब हो रही है । हिंदुस्थान की बातें सुनने के बड़े अनुरागी हैं ।"

मि० एञ्जल—"हाँ, सारी बात तो आपने पूरी नहीं की। बान्न के बाद मिसरा साहब कहाँ तशरीफ़ ले गए ?"

मैंने हँसी के लहज़े में उत्तर दिया—"अब बाद में क्या रह गया है। रात को हम लोग बान्न के एक रोमन केथोलिक बोर्डिङ्ग हौस में रहे । सवेरे विश्वविद्यालय की झाँकी लगाई । दस बजे के क़रीब मिस्टर मिश्र की पार्टी पूर्व की ओर रवाना हुई और मैं कोलोन लौट आया ।"

× × × ×

रात नौ बजे मैं और मिस स्टेडलर डूशबर्ग से चले । मिस ज़रा उदास-सी थी । सेकण्ड क्लास के डिब्बे में खिड़की की ओर मुँह किए बैठी थी । पहले तो मैंने कुछ कहना अनुचित समझा, पर बाद में मैंने पूछा—

"क्यों मिस स्टेडलर, यह उदासी कैसे है ?" आह छोड़ते हुए उसने उत्तर दिया—मिस्टर देव, आप दुनिया की झंझटों में नहीं हैं । आपने आज बहुत-सी बातें सुनाई हैं । मुझे भी आपसे एक ज़रूरी सवाल पूछना है ?"

उत्सुकता से मैंने उत्तर दिया—वाह, इससे अच्छा मौक़ा आपको कहाँ मिलेगा । पूछिए ।"

मिस०—"यह तो आपको पता ही है कि मिस्टर एञ्जल के साथ मेरा विवाह होनेवाला है । मिस्टर एञ्जल की पहली स्त्री उसके साथ मुक़द्दमा कर रही है । वह न-जाने कब ख़तम होगा । मुझे आपसे यही पूछना है कि विवाह का आपका क्या आदर्श है ?"

मुस्कराते हुए मैंने जवाब दिया—आपने ऐसा प्रश्न एक अविवाहित पुरुष से किया है । ख़ैर, चूँकि आपके दिल की बात समझता हूँ, इसलिये आपका समाधान करना मेरा कर्तव्य है । सुनिए ।

मानव-समाज का इतिहास पढ़ने से पता चलता है कि मनुष्य सदा स्त्री पर अत्याचार करता रहा है । वह उसे भोग की वस्तु—बच्चे पैदा करने की मशीन—समझता रहा है । उसने कभी उसे अपने बराबर नहीं समझा । उस अत्याचार के चिह्न सभी जातियों में अभी तक विद्यमान हैं । मनुष्य सदा पशुबल का उपासक रहा है । उसने कभी अध्यात्मदृष्टि से जीवन को नहीं देखा । इसी कारण लाखों वर्षों से निरन्तर यत्न करने पर भी अभी तक मनुष्य अपने जंगलीपन में डूबा हुआ है ।

स्त्री, अध्यात्म-शक्ति का केन्द्र है । उसके विकास पर मानव-समाज का विकास अवलम्बित है । विवाह अत्यन्त पवित्र संबंध है । वह आत्म-शोध का मार्ग है । स्त्री अपने अध्यात्म-बल से पुरुष का पशुपन दूर करती हुई उसे आत्म-दर्शन की ओर ले जाती है । जब तक समाज विवाह को अध्यात्म-स्वरूप नहीं समझ लेता, जब तक वह स्त्री को विषय-भोग का साधन समझना नहीं छोड़ता, जब तक समाज में विवाह का शुद्ध निर्मल और विकसित आदर्श नहीं फैलता, कभी समाज अपनी व्याधियों और जटिल समस्याओं से छुटकारा नहीं पा सकता । मि० एञ्जल ने दो विवाह किए । संतान दोनों से है । अब आपके साथ तीसरा विवाह होगा । यह क्या है ? मैं जानता हूँ कि आप कहेंगी—वह उन स्त्रियों को पहचानते नहीं थे—अब आप समझती हैं कि आप दोनों एक दूसरे को पहचानते हैं । मेरी प्यारी मिस साहबा, आप दोनों का कोई दोष नहीं । सारा समाज ही पथ-भ्रष्ट हो रहा है । स्त्री अभी तक केवल विषय-लम्पटता की वस्तु समझी जाती है ।

यदि मनुष्य दुःखों से छूटना चाहता है, यदि उसे पूर्ण शान्ति की इच्छा है, यदि वह संसार को स्वर्ग बनाने का अभिलाषी है, यदि सचमुच उसकी इच्छा अपना जन्म सार्थक करने की है तो उसे विवाह-संबंध को अत्यन्त निर्मल, अत्यन्त उज्ज्वल बनाना होगा । विवाह के विकसित आदर्श पर ही मानव-समाज का भविष्य निर्भर है ।

सत्यदेव परिव्राजक

निशीथ

[प्रवेश]

ओ नीले आकाश, त्याग तारों का सारा तेज
उन्हें बना मेरी जलती-सी व्यथा अग्नि की सेज
बन जावें तारे पल भर में लाल-लाल अंगार
जल जावे जिससे छलमय वसुधा का यह शृंगार
फिर न कभी जतलावे कोई
अपना झूठा प्यार ;
अश्रु प्रलय-पावस-सा बनकर,
डुबा सके संसार ।
वायु सम्हलकर ले स्वगोद में मेरी कविता बाल
पागल-सी बनकर उपवन में झोंके अब न उछाल
क्रंदन-स्वर भयभीत बना दे कहीं न तुझको हाय !
सुन शिशु-से जावे न मचल तेरे तरंग समुदाय
मुक्त करूँगा उन्हें सरस है,
मेरा सरल स्वभाव ;
अपराधी-से तड़प रहे हैं,
मेरे मन के भाव ।
आग, आज तेरी ज्वाला का भावों में रँग डाल
तेरी लपटों की भीषणता से सज्जित कर ताल
निकट मृत्यु के भय-सा अस्थिर कर अपना संगीत
आज बहाकर कर दूँगा संसार, सुना, भयभीत
सभी दिशाएँ काँप-काँपकर,
ध्वनित बनें इस बार ;
उस ध्वनि में हो एक शब्द,
वह क्या हो—हाहाकार!

रामकुमार वर्मा

"अलंकार-पीयूष"

(आलोचना)

(२)

अच्छा, अब हम शुक्लजी द्वारा की गई—संस्कृत-ग्रंथों के सिद्धांतों की हत्या का दिग्दर्शन कराते हैं । आपने संस्कृत-साहित्य-ग्रंथों के सिद्धांत जो निर्णीत करके पीयूष में प्रदर्शित किए हैं, वह भी अन्यत्र अलभ्य हैं । श्रीमदानंदवर्द्धनाचार्य के—

(१४) 'ध्वन्यालोक' पर भी आपके कृपाकटाक्ष का प्रपात हुआ है । उनके सिद्धांत भी आपने निश्चित किए हैं । ध्वन्यालोक के विषय में आप लिखते हैं—

"आनंदवर्द्धनाचार्य जो ध्वनिसिद्धांत के प्रथम और प्रधान आचार्य हैं... उन्हीं अलंकारों की सत्ता मानते हैं जो ध्वनि के परिपोषक हैं । किंतु उन पर कारिका लिखनेवाले सदस्य महाराज यह दिखाने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं कि ध्वनि अलंकारों के ही अंतर्गत है और अलंकारों ही से समुद्भूत होती है ।" पृ० १२०)

शुक्लजी का यह कथन बड़ा ही आश्चर्यकारक है, केवल हमको ही क्या, 'अपि वागधिपस्य दुर्वचं वचनं विदधीत विस्मयम् ।' ध्वन्यालोक में कारिका और वृ दोनों हैं। आप आज्ञा करते हैं कि 'उन पर कारिका लि नेवाले ।' प्रश्न होता है कि किन पर कारिका लिखनेवाले शायद आपका अभिप्राय आनंदवर्द्धनाचार्य पर कारि लिखनेवाले से हो । अच्छा; आनंदवर्द्धनाचार्य को ध्वन्यालोक की कारिका लिखनेवाले मानते हैं या लिखनेवाले ? यदि इन्हें आप कारिका लिखनेवाले हैं तो इनकी कारिकाओं पर दूसरी कारिकाओं का ध्वन्यालोक में कहीं नहीं चलता है । यदि आप वृत्ति लिखनेवाले मानते हैं, तो वृत्ति तो कारिका ही लिखी जाती है न कि वृत्ति पर कारिका, फिर इस महाभाष्य की पंक्ति का अर्थ आपके सिवा कौन समझ सकता है । अस्तु ध्वन्यालोक की कारिका वृत्तियों के लेखक कोई भी हों, किंतु आपके लि

सिद्धांत का कारिका या वृत्ति किसी से भी समर्थन नहीं हो सकता, प्रत्युत आपका निकाला हुआ सिद्धांत कारिका और वृत्ति दोनों के ही विरुद्ध हैं । आप लिखते हैं कि आनंदवर्द्धनाचार्य उन्हीं अलंकारों की सत्ता मानते हैं जो ध्वनि के परिपोषक हैं। प्रथम तो आपने 'परिपोषक' पद का प्रयोग बड़ा विलक्षण किया है । कृपया यह तो कहिए, वे कौन-से अलंकार-विशेष हैं जो ध्वनि के परिपोषक माने गए हैं। हाँ, अलंकार दो प्रकार के अवश्य माने गए हैं। एक वाच्यार्थ रूप और एक ध्वन्यार्थ रूप। यदि आपने ध्वन्यार्थ रूप अलंकारों को ही ध्वनिपरिपोषक संज्ञा प्रदान की हो, तो भी यह सिद्धांत ध्वन्यालोक की कारिकाओं और वृत्तियों का कदापि नहीं है कि ध्वन्यात्मक अलंकारों को ही अलंकार कहना चाहिए। वाच्यार्थ रूप अलंकारों की सत्ता नहीं, क्योंकि वहाँ उक्त दोनों प्रकार के अलंकारों की ही सत्ता स्वीकार की गई है। देखिए—

"प्रधानगुणभावाभ्यां व्यङ्ग्यस्यैवं व्यवस्थिते ।
काव्ये उभे ततोऽन्यद्यत्तच्चित्रमभिधीयते ॥
चित्रं शब्दार्थभेदेन द्विविधं च व्यवस्थितम् ।
तत्र किञ्चिच्छब्दचित्रं वाच्यचित्रमतः परम् ।"

ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, कारिका ४२।४३ !

समझे ! इन कारिकाओं में कहा गया है—(१) प्रधान व्यंग्य-ध्वनि, और (२) गुणीभूत व्यंग्य से अतिरिक्त काव्य के तीसरे भेद चित्र अर्थात् अलंकारों की सत्ता इनमें स्पष्ट स्वीकार की गई है। अच्छा, आप कह सकते हैं कि कारिकाओं के लेखक भिन्न हैं, हम आनंदवर्द्धनाचार्य को वृत्ति-लेखक मानते हैं। जो आज्ञा, दूर न जाइए इन्हीं कारिकाओं की वृत्ति देखिए—

'व्यङ्ग्यस्यार्थस्य प्राधान्ये ध्वनिसंज्ञितकाव्यप्रकारः। गुणीभावे तु गुणीभूतव्यङ्ग्यता। ततोऽन्यद्रसभावादितात्पर्यरहितं......केवल-वाच्यवाचकवैचित्र्यमात्राश्रयेणोपनिबद्धं......तच्चित्रम् ।"

ऊपर के अवतरण में दूसरा सिद्धांत आपका निकाला हुआ यह है कि "कारिका लिखनेवाले सहृदय महाराज यह दिखाने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं कि ध्वनि अलंकारों के ही अंतर्गत है और अलंकारों से ही समुद्भूत होती है। यह लिखकर तो आपने आश्चर्य की पराकाष्ठा ही कर दी है।" खेद है कि यह बात ध्वन्यालोक की किसी भी कारिका से सिद्ध नहीं हो सकती कि ध्वनि अलंकारों के ही अंतर्गत है अर्थात् ध्वनि की स्थिति अलंकारों से स्वतंत्र नहीं। प्रत्युत आपके निकाले हुए इस सिद्धांत के विरुद्ध यह सिद्धांत है कि वाच्यार्थभूत अलंकारों का शोभातिशय ध्वन्यार्थ पर ही निर्भर है—

'मुख्या महाकविगिरामलंकृतिभृतामपि ।
प्रतीयमानच्छायैषा भूषा लज्जेवयोषिताम् ॥'

ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत का०, ३८

इस विवेचन द्वारा स्पष्ट है कि शुक्लजी ने ध्वन्यालोक के जो सिद्धांत निश्चित किए हैं, वे नितांत भ्रांत हैं। वे ध्वन्यालोक के सिद्धांत नहीं, आपके मत्त प्रलापमात्र हैं। यही नहीं आप इसके बाद यह भी लिखते हैं—

"अब आइए आनंदवर्द्धनाचार्य के ध्वन्यालोक की ओर। इसके द्वारा......यहाँ तक कि ध्वनि (सूच्यार्थ) तथा व्यंग्य का काव्य में प्राधान्य हो गया।......यहाँ तक कि ध्वनि-संबंधी अलंकारों की सत्ता स्वतंत्र रूप से पृथक् हो गई (जैसे प्रौढ़ोक्ति, अन्योक्ति)। (पेज ६६)

अच्छा, श्रीमन्, आपके आज्ञानुसार हम ध्वन्यालोक की ओर तो आ गए हैं। पर इसके आगे हम आपके गतानुगतिक होकर अनुगामी नहीं हो सकते। बात यह है कि आप अपने अज्ञात मार्ग के ग्रहण करने के कारण इसमें पद-पद पर पथ-भ्रष्ट हो रहे हैं। प्रथम तो आप ध्वनि और व्यंग्य को दो पृथक्-पृथक् वस्तु समझ रहे हैं—ध्वनि को तो आप सूच्यार्थ कहते हैं, किंतु व्यंग्य को आप सूच्यार्थ तो मानते ही नहीं—उसे तो आपने ध्वनि की स्पष्टता में ही रजिस्टर्ड कर दिया है। फिर आप व्यंग्य को क्या समझते हैं, उसकी स्पष्टता भी आप नहीं कर सके हैं, इसी से कहते हैं कि आप इस मार्ग से सर्वथा अज्ञात हैं। इसकी दुर्गमता अभी स्पष्ट न करके, जब आप फिर इसका अवलंबन करके अच्छी तरह दलदल में फँसेंगे तभी यह स्पष्ट करना उचित होगा कि यह मार्ग आपके लिये अगम्य है। यहाँ तो आपके द्वारा मुख्यतः स्वीकृत मार्ग (अलंकार विषय) के विषय में, जिसको आपने कंटकाकीर्ण बना डाला है और जिसके विषय में बहुत कुछ उल्लेखनीय है, दो शब्द निवेदन करने की आज्ञा लेते हैं। यह तो बताइए 'प्रौढ़ोक्ति' और अन्योक्ति अलंकार का ध्वनि से क्या विशेष संबंध है, जिस संबंध से इन दोनों को आपने ध्वनि-संबंधी अलंकार कहा है ? श्रीमन्, जिस 'प्रौढोक्ति' का नामोल्लेख

आपने ध्वनि-प्रकरण में देखकर भ्रांत होकर प्रौढ़ोक्ति को ध्वनि-संबंधी अलंकार समझ लिया है, वह ध्वनि-संबंधी प्रौढ़ोक्ति अन्य वस्तु है न कि अलंकार। और न केवल अन्योक्ति का ही ध्वनि-संबंध में विशेषतः उल्लेख किया जा सकता है। यह सब प्रमाद आपके साहित्य-विषय से अनभिज्ञ होने का परिणाममात्र है। अच्छा, अब मम्मटाचार्य के—

'काव्यप्रकाश'

जो सिद्धांत शुक्लजी ने प्रदर्शित किए हैं, वह देखिए। वह बड़े ही अद्भुत और आश्चर्यजनक। आप लिखते हैं—

(१) श्रीमम्मटाचार्यजी अपने 'काव्यप्रकाश' में कहते हैं—'काव्यशोभायाः कर्तारोधर्मगुणाः। तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः'—अर्थात् काव्य में शोभा लानेवाले को गुण कहते हैं, उनके अतिशय या उत्कर्ष के हेतु अलंकार हैं, इस प्रकार अलंकारों को काव्य-सौंदर्यकारी गुणों का उत्कर्ष माना है। इसका कारण यह है कि आप गुण एवं रीति-सिद्धांत के अनुयायी थे।" (अलं० पीयूष पृ० ३१)

इस अवतरण की अन्य बातों की विवेचना के प्रथम अंतिम वाक्य के विषय में शुक्लजी का ध्यान आकर्षित करते हैं कि आप इस प्रथम अवतरण में मम्मटाचार्य को गुण और रीति-सिद्धांत के अनुयायी बतलाते हैं। और फिर आप (पेज ११८ में) यह लिखते हैं—

(२) "वामन के गुणसिद्धांत को आपने (मम्मट ने) ठीक न मानकर उनका खंडन करते हुए अपने मत का प्रदर्शन यों किया है—"काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः। तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः।"

श्रीमन्, आप यह क्या कह रहे हैं! आप तो मम्मट को पहले गुण-सिद्धांत का अनुयायी कह चुके हैं जैसा कि हम पहले अवतरण में दिखा चुके हैं, और यहाँ उनको आप गुण-सिद्धत का खंडन करनेवाले कह रहे हैं। यहीं तक नहीं फिर आप हमारे दिखाए हुए दूसरे अवतरण के विरुद्ध उसी प्रथम अवतरण का पिष्ट-पेषण करते हुए (पेज १३२ में) कहते हैं—

(३) "आपका काव्यप्रकाश नामी ग्रंथ...... । किंतु गुणों पर ज़ोर देते हुए अलंकारों को उनका परिपोषक मानते तथा उनको विशेषता देनेवाले मानते हैं।"

और इसके प्रमाण में पादटिप्पणी में पहले वही दो बार (जैसा कि प्रथम और द्वितीय अवतरण में दिखाया गया है) दिखलाया हुआ 'काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः' सूत्र तीसरी बार उद्धृत करते हैं। कहिए पाठक, इससे बढ़कर, क्या आश्चर्य हो सकता है। शुक्लजी मम्मट को प्रथम और तृतीय अवतरण में गुण-सिद्धांतवादी फ़रमाते हैं और दूसरे अवतरण में उनको गुण-सिद्धांत के खंडन करनेवाले। इसके अतिरिक्त इनमें एक जादू का चमत्कार और भी दिखाया गया है। गुण-सिद्धांत के समर्थन में आपने जिन 'काव्यशोभायाः' इत्यादि सूत्रों को उपर्युक्त अवतरण नं० १ और नं० ३ में दिखाया है, उन्हीं सूत्रों को गुण-सिद्धांत के खंडन में अवतरण नं० २ में उद्धृत किया है। यह लोकातिरिक्त वैचित्र्य अन्यत्र कहीं नहीं दृष्टिगत हो सकता है। बड़े-बड़े वैरिस्टर भी न्यायालयों में जिस नज़ीर को अपने किसी सिद्धांत के समर्थन में पेश करते हैं, उस नज़ीर को स्वयं उस सिद्धांत के खंडन में पेश करने की शक्ति नहीं रखते। यहीं क्या आपने एक और भी ग़ज़ब ढा दिया है। उपर्युक्त 'काव्यशोभायाः इत्यादि' सूत्रों को आपने मम्मटाचार्य का सिद्धांत समझा है। शुक्लजी चाहे सो समझ लेतें, इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। किंतु शोक का विषय तो यह है कि एक-दो बार ही नहीं तीनों बार—ऊपर के तीनों अवतरणों में—आपने दूसरों को भी यही समझाया है। किंतु न तो यह सिद्धांत ही मम्मटाचार्य का है और न ये सूत्र ही उनके हैं। बात और ही है। यह सूत्र इस सिद्धांत के माननेवाले वामनाचार्य के हैं, और उनके मम्मटाचार्य ने उद्धृत करके प्रत्युत इनका खंडन किया है—जिनको आप मम्मटाचार्य के सूत्र समझकर इनका सिद्धांत प्रकाशित कर रहे हैं। तब न सही, अब ज़रा एक बार काव्यप्रकाश को उठाकर तो देखिए, उसमें आरंभ उद्धृत अंश के प्रथम स्पष्ट 'यद्यप्युक्त' ' और अंत में 'तदपि न युक्तम्' लिखा हुआ मिलेगा। अर्थात् यह इस प्रकार है—

"यद्यप्युक्तम्—काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणास्तद-तिशयहेतवस्त्वलङ्काराः—इति तदपि न युक्तम्।" अब फिर भी आप न मानें तो वामनाचार्य का 'काव्यालंकार सूत्र' भी देख लीजिए, उसके तृतीय अध्याय के आदि में ही ये दोनों सूत्र मिल जायँगे। अब इन सूत्रों की पीयूष-पूरित विषाक्त व्याख्या भी देखिए—"तदतिशयहेतवस्त्व

लंकाराः"। इस सूत्र की व्याख्या की गई है—"अलंकार को काव्यसौंदर्यकारी गुणों का उत्कर्षक माना है।" शुक्लजी, यह तो कहिए किसने माना है ? न तो मम्मटाचार्य ने माना है और न इन सूत्रों के प्रणेता वामनाचार्य ने; केवल आप ही मानते हैं। आप ही अलंकार को गुणों का उत्कर्षक घोषित कर रहे हैं। वामनाचार्य ने तो इन सूत्रों की वृत्ति में यह लिखा है—'तस्याः काव्यशोभायास्तदतिशयस्य हेतवः'—अर्थात् अलंकार काव्यशोभा के उत्कर्षक माने गए हैं, न कि आपके कथनानुसार गुणों के उत्कर्षक। सुविज्ञ पाठकवृंद ! अभी क्या है, देखते जाइए, इससे भी बढ़कर आपने फिर लिखा है—

"मम्मटजी ने भी गुणों को रसों का अंगी धर्म, शौर्यादिक आत्मांगी धर्मों के समान तथा रसों को उत्कर्ष के हेतु मानते हुए अलंकारों को हारादि भूषणों के समान, अंग द्वार से उन गुणों का उपकार करनेवाला कहा है।" (पेज ३२)

आपने अपने निकाले हुए मम्मट के इस सिद्धांत के समर्थन में काव्यप्रकाश की निम्नलिखित कारिकाएँ भी उद्धृत की हैं—

"ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ।।
उपकुर्वन्ति तं सन्तं येङ्गद्वारेण जातुचित् ।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ।।"

खेद है कि इन कारिकाओं का आपने जो अर्थ लिखा है वह अर्थ नहीं—भयंकर अनर्थ है। आपने प्रथम कारिका के प्रथम पाद—'ये रसस्याङ्गिनो धर्माः का अर्थ किया है—'गुणों को रसों का अंगीधर्म'। किंतु इसका अर्थ 'प्रदीप' और 'उद्योत' आदि काव्यप्रकाश की टीकाओं में किया गया है—'अङ्गिनः प्रधानरसस्य धर्माः' अर्थात् अंगीभूत रस को प्रधान माना है, पर आप गुणों को अंगी (प्रधान) मानते हैं। फिर इसी कारिका के तीसरे चरण—'उत्कर्षहेतवस्ते स्युः' का अर्थ आप 'रसों को उत्कर्ष के हेतु' करते हैं। पर यह तो कहिए, आप रसों को किसके उत्कर्ष के हेतु कर रहे हैं ? पर आप जब गुणों को अंगी या प्रधान कहते हैं तो शायद गुणों के उत्कर्ष के हेतु ही रसों को बतलाते हैं। क्योंकि आपने वामन के उपर्युक्त सूत्रों का भी यही अर्थ किया है—अलंकारों को गुण के उत्कर्षक कहा है। किंतु 'उत्कर्षहेतवस्तेस्युः' भी गुणों को ही कहा गया है। इसका अर्थ 'प्रदीप' आदि में किया गया है कि—'ते (गुणा) रसस्य उत्कर्ष हेतुभूता-रसोत्कर्षका' और चक्रवर्ती टीका में यह किया गया है कि—स्वव्यञ्जकस्य काव्यस्योत्कर्षकाश्च'। अर्थात् गुण हैं वे रस के (या काव्य के) उत्कर्षक हैं—न कि आपके कथनानुसार रसों को गुण के उत्कर्षक कहा गया है। दूसरी कारिका का आपने अर्थ किया है—'अलंकारों को हारादि भूषणों के समान अंगद्वार से उन गुणों का उपकार करनेवाला कहा है'। जनाब, किसने कहा है ? आप ही ऐसा कह रहे हैं। मम्मटाचार्य ने तो अलंकारों को रसों का उपकारक कहा है न कि आपके कथनानुसार गुणों का। आपने उनके सिद्धांत निर्णीत क्या किए, प्रत्युत उनके सिद्धांतों की हत्या कर डाली। उन्होंने क्या कहा है और आप उनके कथन का क्या अर्थ कर रहे हैं, इस अनर्थ-परंपरा का भी कुछ ठिकाना है। सुविज्ञ पाठक ! उद्विग्न न होइएगा, उद्विग्नता का कारण तो अवश्य है। आपकी पीयूष के आनंद की आशा निरानंद में परिणित हो रही है। और पीयूष में विष प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। फिर भी घबड़ाते क्यों हैं, इसे हृदयस्थ करने में ही हानि हो सकती है। आप केवल पीयूष में विष-मिश्रण वैचित्र्य के दर्शनमात्र से मनोरंजन करते रहिए। देखिए तो कैसे अद्भुत दृश्य आपके सम्मुख उपस्थित किए जाते हैं। शुक्लजी फिर लिखते हैं—

'गुण सिद्धांत को आपने ध्वनि (शब्द-शक्ति, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना) के साथ ही उठाया और उसे रीति से संयुक्त करने का प्रयास किया है।" (पेज ७१)

बड़ी विचित्र विवेचना है ! प्रिय शुक्लजी, यह तो कहिए, मम्मटाचार्य ने गुण-सिद्धांत को ध्वनि के साथ किस प्रकार और कहाँ उठाया है ? उन्होंने तो आपके इस कथन के विरुद्ध, वामनाचार्य के रीति-सिद्धांत का खंडन किया है, जैसा कि हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं। फिर आपने ब्रेकेट में ध्वनि की स्पष्टता लिखकर तो ध्वनि को समझाने के लिये बहुत ही सरलता कर डाली है ! केवल यही नहीं (इसी पृष्ठ पर) आपने काव्यप्रकाशोक्त काव्यभेद दिखाते हुए 'ध्वनि' की स्पष्टता इस प्रकार की है—

भेद

उत्तम ध्वनिप्रधान | मध्यम व्यंग्यप्रधान | अधम चित्रप्रधान

इस काव्यभेद के चक्रव्यूह में पड़कर तो आप बहुत ही बुरी तरह फँस गए हैं। वस्तुतः आप काव्य-मर्मज्ञों की दृष्टि में दया के पात्र हो गए हैं। आप काव्यप्रकाश के मतानुसार उत्तम काव्य को ध्वनि-प्रधान और मध्यम काव्य को व्यंग्य-प्रधान बतला रहे हैं! धन्य हैं आप। ध्वनि-प्रधान और व्यंग्य-प्रधान को भिन्न-भिन्न श्रेणी का काव्य कह रहे हैं। इस अनर्गल प्रलाप का भी कुछ ठिकाना है! श्रीमन्, प्रधान व्यंग्य और ध्वनि दो वस्तु नहीं, व्यंग्य-प्रधान काव्य ही ध्वनि है। आश्चर्य है कि जिस काव्य-प्रकाश के सिद्धांत आप स्पष्ट कर रहे हैं, उसके प्रथमोल्लास के प्रारंभ के अंश पर भी आपने कभी कटाक्षपात किया है, या नहीं? संभव है न किया हो। अच्छा अब तो देखिए उसमें क्या लिखा हुआ है—

"इदमुत्तममतिशयनि व्यङ्ग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधैः कथितः"।—काव्यप्रकाश प्रथमोल्लास का० ३—समझ लीजिए, इसमें कहा गया है, वाच्यार्थ से जहाँ व्यंग्य में अतिशय (चमत्कार) हो अर्थात् व्यंग्य-प्रधान हो उसे 'ध्वनि' कहते हैं। किंतु आप व्यंग्य-प्रधान को उत्तम काव्य या ध्वनि नहीं समझते, मध्यम काव्य को व्यंग्य-प्रधान बना रहे हैं। खेद है कि आपकी बताई हुई व्यंग्यप्रधानता को तो उसके आविष्कारक आचार्यों ने उत्तम काव्यध्वनि को देकर उसी की मंजूषा में बंद कर दिया है। अतः एक तो उसे वहाँ से स्थानांतरित करने की चेष्टा के अभियोग में आप अभियुक्त हो गए हैं। और द्वितीय बेचारा मध्यम काव्य आपकी दी हुई प्रधान व्यंग्यता से बंचित होकर हाहाकार कर रहा है, अतः इस अभियोग से भी आप निर्मुक्त नहीं हो सकते हैं। प्रिय शुक्लजी, यह तो कहिए, स्थानांतरित करने का यह अभ्यास आपने क्यों डाल लिया, इसी के कारण प्रधान व्यंग्य एक और भी मानहानि-अभियोग साहित्य-समाज के सम्मुख आप पर लगा रहा है। बात यह है कि उसकी प्रधानता को भी आपने स्थानांतरित करने की चेष्टा की है। आपने व्यंग्यार्थ की स्पष्टता इस प्रकार की है—

व्यंजना (व्यंग्यार्थ)

गुणीभूत व्यंग्य | अगुणीभूत व्यं

व्यंग्यार्थ में आपने गुणीभूत का स्थान प्रथम औ अगुणीभूत का दूसरा रक्खा है, इससे ज्ञात हो है कि आपने गुणीभूत को प्रधान और अगुणीभू को अप्रधान समझा है। इसके सिवा 'अगुणीभूत से आपका अन्य अभिप्राय क्या समझा जा सक है। काव्यप्रकाश में तो (जिसके सिद्धांत आप लि रहे हैं) अगुणीभूत का कहीं उल्लेख मिलता नहीं, यह नाम आपने ही नवीन आविष्कृत किया है आपके ग्रंथ में यदि रमणीयता है तो यही है कि ए से-एक बढ़कर नवीनता का साम्राज्य है, कहा भी है—'प्रतिक्षणं या नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः और भी नवीनता देखिए, आप (पेज ११७ मे कहते हैं—

"अब लीजिए मम्मट के काव्य-प्रकाश को।...आ ध्वनि काव्य को उत्तम, व्यंग्य को मध्यम तथा चित्र अधम माना है। रस को उतना महत्त्व आप नहीं जितना ध्वनि और व्यंग्य के सिद्धांत को"।

अच्छा, जो आज्ञा, आप काव्यप्रकाश को इसके प्र भी कई बार ले चुके हैं, फिर सही। जो बात आ (पेज ७१ में) कह चुके हैं उसी का पिष्टपेषण है हाँ, इसमें एक बात अवश्य नवीन है। अब तक आ 'ध्वनि' को ही व्यंग्य से भिन्न दूसरी वस्तु कह रहे इस बार आप कहते हैं—'रस को उतना महत्त्व आ (मम्मट) नहीं देते जितना ध्वनि और व्यंग्य के सिद्धां को'। इस कथन से स्पष्ट है कि आप रस को भी ध्व और व्यंग्य से भिन्न तीसरी वस्तु समझते हैं। खेद कि जिस प्रकार आप ध्वनि और व्यंग्य से अपरिचि हैं उसी प्रकार आप 'रस' से भी अनभिज्ञ हैं कि क्या वस्तु है।

इसके अतिरिक्त आपने यह लिखकर भी भयं प्रमाद किया है कि 'मम्मटाचार्य ने रस को महत्त्व दिया'। उन्होंने एक स्थान पर ही नहीं बारंबार रस को असाधारण महत्त्व प्रदान किया है। यदि आपने काव्य प्रकाश का प्रथम उल्लास—जिसमें अधिक नहीं केवल पाँच ही कारिकाएँ हैं—देखा होता तो आप इस प्रकार

कभी न लिखते। ग्रंथारंभ में दूसरी कारिका की वृत्ति में ही देखिए, रस के महत्त्व के विषय में उन्होंने क्या लिखा है—

"सकलप्रयोजनमौलिभूतं समनन्तरमेवर सास्वादसमुद्भूतं विगलितवेद्यान्तरमानन्दम्"।

यह इसकी महत्ता है, या क्या है? फर वह रस विवेचना के प्रारम्भ में भी लिखते हैं—

["पानकरसन्यायेन चर्व्यमाणः पुर इव परिस्फुरन् हृदयमिव प्रविशन् सर्वाङ्गीणमिवालिङ्गन् अन्यत् सर्वमिव तिरोदर्धत् ब्रह्मानन्दमिवानुभावयन् अलौकिकचमत्कारकारी शृङ्गारादिको रसः"। चतुर्थ उल्लास।]

अब हम आपसे ही पूछते हैं कि इससे बढ़कर रस को क्या महत्त्व दिया जा सकता है? यही नहीं, 'ये रसस्याङ्गिनो धर्माः' इत्यादि कारिकाएँ जो आपने (२२ पेज में) उद्धृत की हैं, उनमें गुण जिनके अन्तर्गत 'रीति' भी हैं, अङ्गीभूत रस के धर्म और उत्कर्षक कहे गए हैं। यदि आप इन अवतरणों के समझने का भी कष्ट न उठाना चाहें तो एक छोटा-सा और अत्यन्त सरल वाक्य ही सप्तमोल्लास में देख लीजिए—'रसश्च मुख्यः'। इसमें क्या कहा गया है। इतने पर भी आप कहते हैं 'मम्मटाचार्य ने रस को महत्त्व नहीं दिया'। कहिए संस्कृत-ग्रंथों की शुक्लजी द्वारा कैसी विचित्र और सारगर्भित आलोचना की गई है। अस्तु, ध्वनि विषय को तो शुक्लजी न समझे तो न समझें, क्योंकि यह विषय बड़ा जटिल है। यद्यपि आप जैसे एम्० ए० की उपाधि लब्ध विद्वान् के लिये—जिन्होंने ध्वनि सिद्धान्त के प्रधानाचार्य श्रीमदानन्दवर्द्धनाचार्य एवं मम्मटाचार्य के सिद्धान्तों पर आलोचना लिख डाली है—यह बात नितान्त शोचनीय है। तो भी अलंकार विषय से तो जिस पर आपने ७०० पेज का 'पीयूष' लिख डाला है—कम से कम आपको भली भाँति अवगत होकर लेखनी उठानी चाहिए थी, किन्तु हा हन्त! अलंकार विषय के सूक्ष्म रहस्यों की बात, जिनकी आलोचना प्रसङ्गानुसार की जायगी, दूर रही, साधारण स्थूल बातों को भी आप कितना समझ सके हैं इसका दिग्दर्शन कीजिए। काव्यप्रकाशोक्त शब्दालंकारों का विवरण आप (पेज ७२ में) इस प्रकार देते हैं—

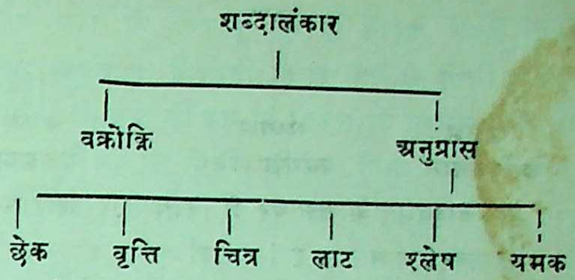

इनमें से आप 'चित्र', 'श्लेष' और 'यमक' को काव्यप्रकाश के मतानुसार अनुप्रास के अन्तर्गत उपभेद बतलाते हैं। शुक्लजी, आप कह क्या रहे हैं! कुछ विचार तो कीजिए आप काव्यप्रकाश के मत को स्पष्ट कर रहे हैं, वहाँ तो शब्दालंकारों में अनुप्रास से भिन्न ही यह तीनों चित्र, श्लेष और यमक—स्वतंत्र अलंकार माने गए हैं—जिनको आप अनुप्रास के उपभेद दिखा रहे हैं। खेद है कि इसी स्थानान्तरित करने के अभ्यास ने फिर आपको फँसा दिया। इसी प्रकार आप फिर (पेज १३२ में) लिखते हैं—

मम्मट ने भी अलंकारों का यही वर्गीकरण रक्खा है। (१) शब्दालंकार, (२) अर्थालंकार और (३) चित्र, जिसके दो भेद किए हैं (१) शब्दचित्र और (२) अर्थचित्र। यही विशेषता आपमें पाई जाती है किन्तु चित्र को आपने शब्दालंकारों के अन्तर्गत ही माना है"।

मान्यवर, आपने जो विशेषता मम्मटाचार्य में बताई है, वह उनमें तो स्वप्न में भी नहीं, किन्तु वह विशेषता ही नहीं, विशेता की चरमावधि श्रीमानों में अवश्य प्रत्यक्ष पाई जाती है। आपने शब्दालंकार और अर्थालंकार के अतिरिक्त जो तीसरा भेद चित्र घोषित किया है, उसे तीसरा भेद नहीं मुख्य १ भेद माना है और चित्र को ही मम्मटाचार्य ने अवर काव्य अर्थात् अलंकारात्मक काव्य कहा है और उसी के दो भेद अर्थचित्र (अर्थालंकार) और शब्दचित्र (शब्दालंकार) माने हैं—जिसे आप विशेषता समझ रहे हैं। शुक्लजी, आपकी अद्भुत गवेषणा है आप चाहे सो समझें। पर यह तो कहिए हम क्या समझें? काव्यप्रकाश को आपका अनुभूत समझें या अननुभूत? पीयूष में उल्लिखित संस्कृत ग्रंथों को आपके दृष्ट समझें या अदृष्ट? और आपकी उपलब्ध की हुई विद्वानों की सम्मतियों का भी क्या मूल्य समझें? हम तो यह समझते हैं कि वे सम्म-

तियाँ केवल आपके कृपालु गुरुजनों की कृपा और सहृदय मित्रों की मैत्री पर ही निर्भर हैं । उनका मूल्य तो तभी समझा जा सकता था जब कि ग्रंथ की परीक्षा करके वे लिखी जातीं, क्योंकि किसी भी ग्रंथ के सारासार का निर्णय दृढ़ परीक्षा पर ही निर्भर है, कहा है--

> नो शक्य एव परिहृत्य दृढां परीक्षां
> ज्ञातुं मितस्य महतश्च कवेर्विशेषम् ।
> को नाम तीव्र पवनागममन्तरेण
> भेदेन वेत्ति शिखिदीपमणिप्रदीपौ ॥
> मंङ्क० ॥

किन्तु पीयूष पर सम्मति प्रदानकर्ता उदारचेता महाशयों ने इसकी कहाँ तक परीक्षा की है, इसकी का पीयूष स्वयं दे रहा है--जिसे आपने अपने अपरि और अगम्य साहित्यमार्ग में पथ-भ्रष्ट होकर, गर्त में गिरकर भ्रान्त प्रलापों से परिपूर्ण कर दिया है। क्षमा कीजिए यह अनधिकार चेष्टा आप जैसे विद्वानों के लिये वास्तव में लज्जाजनक है । कहाँ तक कहें आपने साहित्य-ग्रंथों की विवेचना क्या की है उन पर घोर वज्रपात किया है । अस्तु इस प्रकरण के दृश्य पर अब जवनिकापात करके कुछ अवकाश के अनन्तर अन्य विचित्र दृश्यों के प्रदर्शन के लिये हम अपने प्रिय पाठकों को प्रस्तुत रहने के लिये निवेदन करते हैं ।

कन्हैयालाल पोद्दार

हिमालय के प्रति—

(१)

उठु उठु त्यागु आजु थिरता हिमंचल तू,
मेरी हाँक सुनि क्यों न ऊपर उछरतो ;
मौन बनि बैठ्यो तोहिं लाज हू न आवै मूढ़,
कैसे निज गौरव को हाय ! तू बिसरतो ।
सुकवि 'उमेश' बोलि लेतो क्यों न बंधुन को
क्यों न बढ़ि बैरिन पै बज्रपात करतो ;
देखि देखि दीनन की दारुन दसा को आजु
कुटिल कुचालिन पै टूटि क्यों न परतो ।

(२)

तू तो पच्छधारी रह्यो बिदित धरा मैं, तातैं
लच्छ लच्छ भाँति तैं पराक्रम अकैंठै क्यों न;
धरमबिनासिन की देखि कै नृसंसता को
एक बार क्रुद्धित ह्वै काल हू तें ऐंठै क्यों न;
सुकबि 'उमेश' बक्र शक्र को न मानि आजु
चक्र के समान उड़ि शत्रु को उमैंठे क्यों न;
तोकूँ जदि बैठिबोई भावत हिमंचल, तो
उछरि विपच्छिन के बृंदन पै बैठे क्यों न ।

उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश'

"वह रो रहा था"

व

"मुँह दिखाने लायक़ भी न रहोगे कृष्णा"—भालचन्द्र ने कहा ।

"तुम सभी बातें जानकर भी क्यों ऐसा कहते हो ?"—कृष्णा ने कहा ।

"सत्य ही कहता हूँ, कुछ झूठ तो नहीं कह रहा हूँ"—भालचंद्र ने कहा ।

"किन्तु अब मेरे लिये पीछे हटना असंभव है"—कृष्णा ने कहा ।

"क्यों बुद्धिहीन-जैसी बातें कह रहे हो ? कृष्णा, तुम भला-बुरा सब समझते हो; क्या तुम्हें अपनी निंदा का तनिक भी ध्यान नहीं है ?"

"सभी कुछ जानता हूँ, किंतु क्या करूँ हृदय नहीं मानता ।"

"इसे मनाओ ।"

"भाई, अब मेरे वश की बात नहीं रही ।"

"अच्छी बात है, किंतु तुम यह सोच लो कि अपने हाथों अपने पाँव में कुलहाड़ी मार रहे हो । मैंने एक संबंधी तथा मित्र के नाते तुम्हें अपना कर्तव्य समझकर समझाया है, करोगे तो तुम वही जो ठान चुके हो, परंतु फिर भी... ।"

"हाँ ! चुप क्यों हो गए ? यही न कि करुणा के हृदय पर कितना आघात पहुँचेगा ? इसकी मुझे चिंता नहीं है ।"

"यदि तुम यहाँ तक निश्चय किए बैठे हो, तो मैंने समझाकर अवश्य मूर्खता की ।"—भालचंद्र बोला ।

"मैं तो मूर्ख बताता नहीं, तुम स्वयम् जो भी बन लो ।"

"अच्छा, अब आज्ञा दीजिए ।"

"और थोड़ी देर बैठो ।"

"नहीं, कुछ काम है ।"

"जैसी आपकी इच्छा ।"

ह

दुःख की तीव्र ज्वाला से हराभरा मनोहर जीवन भी मुरझा जाता है । सुख-शांति की गोद में पला हुआ भी वह पलकें भिगोता था । उसका जीवन राजकुमारों की भाँति कटा था; कहाँ पलक झपते ही सवेरा हुआ करता, कहाँ प्रायः आँखें रात्रि से लड़ा करती थीं । उसका हृदय था भोला और दर्पण की भाँति स्वच्छ, उसके प्रेममय व्यवहार पर सभी मुग्ध थे ।

गोरा-गोरा सुंदर चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें, हृदय को लुभानेवाली मुसकान । मन-ही-मन सब उसको अपना समझते थे । जो देखता, उसे आँखों में बसा लेता था । किंतु सभी नष्ट हो गया, उसने अपना जीवन यों ही नष्ट कर दिया । उसके संसार में तीन मनोहर प्राणी थे, एक स्वयम्, दूसरी सोने-सी पवित्र उसकी अर्द्धांगिनी, तीसरी हीरे-सी शुभ्र किरणोंवाली उसकी कन्या । इन्हें भी ज़रा-सी भूल से अनाथ कर गया ।

कृष्णा का संसार में एक ही मित्र था, और वह था उसका साला भालचंद्र । उसके हृदय में भालचंद्र से छिपा हुआ कोई विषय ही न था । अत्यंत स्नेह होने के कारण प्रायः भालचंद्र उसके पास ही रहता था । यदि किसी कारण उसे दो-चार दिन के लिये अपने घर जाना पड़ता था, तो दोनों का हृदय रो देता था ।

एक दिन दोनों जलपान कर रहे थे, इतने में नौकर ने आकर कहा, सरकार वह नए डिपटी साहब आए हैं ।

"उन्हें ड्राइङ्ग-रूम में बैठाओ, कहो आते हैं ।"

"बहुत अच्छा"—कहकर नौकर चला गया ।

"कौन-से नए डिपटी हैं ?"—भालचंद्र ने पूछा ।

"पं० श्यामस्वरूप—क्यों जानते हो न ?"—कृष्णा ने पूछा ।

"नहीं, मैं नहीं जानता ।"

"लीजिए ! अरे तुम्हारे ही यहाँ के तो Sub Divisional Officer हैं; और तुम जानते भी नहीं ।"—कृष्णा ने हँसते हुए कहा ।

"तुम तो जानते ही हो, मैं आफ़िसरों से मेलजोल नहीं बढ़ाता । इसमें व्यर्थ की झंझट होती है; क्योंकि आफ़िसर लोग अपने को समाज से बहुत ऊँचा समझने लग जाते हैं ।"

"बात तो तुम्हारी सत्य है; परंतु यह तो बड़ा शिष्ट पुरुष प्रतीत होता है। जब यह आगरे से बदलकर यहाँ आया, तो इसकी दावत ला० रामदास ने की; मैं भी उस दावत में गया था, वहीं परिचय हुआ। तब से बेचारा प्रायः आया ही करता है। मैं भी कभी-कभी इसके यहाँ जाता रहता हूँ। चलो, तुम्हारा भी परिचय करा दूँ।"—कृष्णा ने कहा।

"नहीं, मुझे आवश्यकता नहीं है। संभव है, यही समझें कि कुछ काम निकालना है।"

"नहीं, ऐसा आदमी नहीं है।"—कृष्णा ने गम्भीर भाव से कहा।

"न सही, तुम जाओ, मुझे जलपान करने में देरी लगेगी।"

"तो तुम जलपान करके जल्दी आओ, मैं नीचे जाता हूँ।"

"जाओ।"

कृष्णानंद ड्राइङ्ग-रूम में पहुँचा, तो डिपटी साहब बोले—"क्या कर रहे थे? बड़ी देर लगा दी।"

"ज़रा जलपान कर रहा था, भालजी साथ थे—वह ज़रा धीरे-धीरे खाते हैं।"

"हैं! तभी-तभी, क्यों नहीं! सारी खुदाई एक तरफ़ और...।"—मुसकराते हुए डिपटी साहब ने कहा।

"आपके लिये भी मँगवाऊँ।"—कृष्णा ने पूछा।

"नहीं, बिलकुल नहीं, आज छुट्टी थी, अभी जलपान करके निकला हूँ; हाँ, पान अवश्य खाऊँगा।"

"अच्छी बात है"—कहकर कृष्णा ने एक नौकर को बुलाकर कहा—"हरिया, जा दौड़के बरफ़ में दबी (Vunto) और लेमोनेड की बोतलें तो ले आ और देख किसी के हाथ पान भेज।"

"जो आज्ञा"—कहकर नौकर चला गया और थोड़ी देर में सब सामान लाकर मेज़ पर रख दिया।

"कृष्णाजी! हमने एक दिन बाज़ार में Vunto पी थी; मगर कुछ पसंद न आई।"—डिपटी साहब बोले।

"पहले रोज़ मुझे भी अच्छी नहीं लगी, मगर जब से लेमोनेड के साथ मिलाकर पीने लगा हूँ, बड़ी स्वादिष्ट प्रतीत होती है।"

"लो! आज लेमोनेड के साथ भी देखे लेते हैं।"

इतने में भालचंद्र भी आ पहुँचे। कृष्णा ने उनका परिचय पं० श्यामस्वरूप से करा दिया।

"आज तक तो आपकी तारीफ़ ही सुनता था, आज आपके दर्शनों से मेरा हृदय प्रफुल्लित हो गया"—डिपटी साहब ने किञ्चित् मुस्किराते हुए कहा।

"अजी आप बड़ों की कृपा है, मैं किस योग्य हूँ।"—भाल ने उत्तर दिया।

कृष्णा ने गिलास भरकर डिपटी साहब को दिया, तो भालचंद्र ने कहा—"भाई, हमारा भी हिस्सा है या नहीं।"

"क्यों नहीं, सबसे पहले।"—कहते हुए पं० श्यामस्वरूप ने गिलास उठाकर उसके मुँह से लगा दिया।

"हैं! हैं!! आप तो पीजिए मैं भी पी लूँगा"—भालचंद्र सकुचाते हुए बोले।

"तो क्या मैं भागा जा रहा हूँ, जो नहीं पिऊँगा।"

Vunto पीके डिपटी साहब ने कहा—"वाह कृष्णाजी! लेमोनेड के साथ तो इसका स्वाद कुछ और ही हो जाता है—आज बहुत अच्छी मालूम हुई।"

"अरे भाई, पान तो मँगवाओ"—अकस्मात् भाल ने कहा।

"तुम्हें कौन ज़रूरत है, तुम तो खाते ही नहीं।"

"मैं न सही, तुम और डिपटी साहब तो खाते हो।"—भालचंद्र ने उत्तर दिया।

"अभी आ रहा है"—कृष्णा ने कहा।

इतने में पान आए। पान खाकर डिपटी साहब ने कहा—"कृष्णाजी, हमने आज एक मोटर-साइकिल ख़रीदी है।"

"और हमसे पूछा भी नहीं; अरे कम-से-कम तुम सलाह तो न मिलती"—कृष्णा ने मुस्किराते हुए कहा।

"इसी कारण तो तुम्हारे पास आया ही हूँ कि ज़रा चल देख लो, कैसी है। यदि तुम्हें पसंद न आई, तो न लूँगा।"

"तो क्या अभी चलूँ।"—कृष्णा ने कहा।

"और नहीं तो कब चलिएगा, ज़रा देखना ही तो है।"

"अच्छा चलता हूँ।"

"क्यों भालजी, तुम भी चलोगे?"—कृष्णा ने पूछा।

"नहीं, मुझे इस समय कुछ आवश्यक काम है।"

"चलो न।"—डिपटी साहब बोले।

"यदि आवश्यक कार्य न होता, तो आपका अनुरोध न टालता, इस समय तो क्षमा कीजिए।"

"जैसी तुम्हारी मर्ज़ी ।"—डिपटी साहब ने कहा । मोटर मँगवाई गई और उस पर सवार होकर कृष्णा को डिपटी साहब अपने बँगले पर ले गए ।

रो

कृष्णा और डिपटी साहब मोटर से उतरे । देखा, बँगले के मैदान में १०-१२ वर्ष का डिपटी साहब का पुत्र मोटर-साईकिल पर चढ़ने की चेष्टा कर रहा है । पास ही एक रूपवती तरुणी, जो यौवन की तरणी पर हिलोरों का आनंद ले रही थी, कह रही है—"भैया ! पहले मुझे चढ़ा दो ।" डिपटी साहब को देखते ही वह लड़की तो झट आड़ में हो गई और उनका पुत्र मोटर-साईकिल छोड़ अंदर ज़नाने में जा छिपा । कृष्णा ने डिपटी साहब से पूछा—"क्या यह आपकी कन्या है ?"

"जीहाँ"—डिपटी साहब ने कहा ।

"मैंने तो इसे आज ही देखा है ।"

"हाँ, मैं बाहर कम निकलने देता हूँ"—कहकर डिपटी साहब ने उस षोड़शी को पुकारा—"शांता, यहाँ आओ बेटा ।" शांता नीची आँखें किए, शांत गति से अपने पिता के पास आकर खड़ी हो गई । उसकी शांत ते हृदय को मोहे लेती थी । प्रसन्नमुख की आभा मा के चाँद-जैसी थी । कृष्णा का हृदय धड़कने गा, एक क्षण के लिये उसने शांता को निर्निमेष नेत्रों देखा, परंतु फिर सँभल गया और हृदय को धैर्य र उसने शांता से पूछा—"क्या पढ़ती हो शांता ?"

"बाबूजी से अँगरेज़ी पढ़ती हूँ ।"—शांता ने उत्तर या ।

"क्यों ! क्या स्कूल में पढ़ने नहीं जातीं ?"—ष्णा ने पूछा ।

"नहीं, जब हिंदी पढ़ती थी, तो जाया करती थी ।"

"हिंदी कहाँ तक पढ़ी हो ?"

"केवल विद्याविनोदिनी-परीक्षा ही पास कर पाई कि बाबूजी ने मुझे स्कूल से उठा लिया ।"

"शांता बेटी, पान तो तुम लाईं ही नहीं, जाओ इनके ये पान तो ले आओ ।"—डिपटी साहब ने कहा ।

जब शांता मराल-गति से पान लेने चली गई, तब ष्णा ने डिपटी साहब से कहा—"सचमुच आप बड़े ग्यशाली हैं, आप सच्चे गृहस्थ का सुख भोगते हैं । अपने ही को इस विषय में भाग्यशाली समझता था, किंतु नहीं, आप भी मुझसे कम नहीं हैं । जिसके ऐसे सुशील, सुंदर, स्वस्थ बच्चे हों, उसे और क्या चाहिए । वास्तव में आपकी कन्या बड़ी ही सुशीला प्रतीत हुई । और, कितने बच्चे हैं आपके ?"—कृष्ण ने पूछा ।

"इस समय तो केवल एक पुत्र और एक कन्या ही है । जीते तो छः भाई-बहन होते । तीन पुत्र और एक कन्या का देहांत हो गया । पहला पुत्र तो तुम्हारी अवस्था का होता ।"—कहते हुए डिपटी साहब की आखें छलछला आईं ।

"शांता का विवाह तो कर दिया न आपने ?"

"नहीं, अभी नहीं, संबंध निश्चित कर चुका हूँ ।"

"कहाँ निश्चित किया है ?"

"देहली के रईस पं० आनंदप्रसादजी के पुत्र सुशील के साथ ।"

"नाम तो मैंने भी सुना है । लड़का पढ़ा-लिखा है न ?"

"हाँ, बी० ए० पास कर चुका है, एल्-एल्० बी० पास करने का विचार कर रहा है । लड़का तो खुले विचारों का है, परंतु पिता पुरानी प्रकृति के मनुष्य हैं । उन्होंने कहला भेजा कि पढ़ना अब बंद करा दो । बताइए पढ़ना छुड़ाने से उन्हें क्या लाभ हुआ ?"

"बेचारे सीधेसादे आदमी, अंधविश्वासी ऐसे ही हुआ करते हैं । आपको ईश्वर ने इस योग्य बनाया है, आप घर पर पढ़ाइए ।"

"सो तो कर ही रहा हूँ ।"

ये बातें हो ही रही थीं कि शांता पान ले आई । पान लेते समय क्षणमात्र के लिये दोनों की आँखों ने एक दूसरे को परखा । शांता ने आँखें नीची कर लीं और पान देकर, हृदय पर एक माठा भार वहन करती हुई चली गई । उसके पान में जादू था—कृष्णा उस दिन से उसी का हो गया ।

र

"बोलो, बोलो, कुछ तो बोलो शांता ।"

"क्षमा करो कृष्णा, मैं डरती हूँ ।"

"किससे ?—प्रेम से ।"

"यही समझ लो ।"

"तो क्यों मेरे प्रति प्रेम का भाव दिखाया था, आग लगाकर अलग होना चाहती हो ?"

"नहीं, मैं अलग नहीं होना चाहती, किंतु इसे अन्याय समझती हूँ ।"

"जब यहाँ जीवन-मरण का प्रश्न सामने आया, तो तुम न्याय-अन्याय विचारने लगीं । देखो शांता, प्यारी शांता! अब ज़्यादा विकल होने की शक्ति मुझमें नहीं है ।"

"कृष्णा ! मैं तुमसे शुद्ध प्रेम करती हूँ । कहते हुए दुःख होता है, किंतु अब तुम जाओ, बाबूजी आते ही होंगे । कल बाबूजी दौरे पर जायँगे; यदि संभव हो सका, तो मैं कल अवश्य आऊँगी—निश्चिन्त रहो, आऊँगी ।

कृष्णा प्रायः नित्य ही उस रोज़ से पं० श्यामस्वरूप के यहाँ जाया करता था और अपनी मोटर की आवाज़ के साथ ही किसी मूर्ति को अपनी ओर झाँकते देखा करता था । कभी-कभी पान भी उसी के हाथों मिलने पर अपने भाग्य को सराहा करता था । एक दिन ज़रा जल्दी ही डिपटी साहब के यहाँ पहुँच गया । अकस्मात् शांता उसे द्वार पर ही मिल गई और इसी कारण उसे इतना अवसर बात करने का मिल गया । हृदय में आग लगी रहने पर भी चुंबन की शीतलता से बुझाने का साहस वह न कर सका ।

शांता ने कृष्णा के हृदय में आँधी-सी मचा दी थी । वह उससे प्रेम करती अवश्य थी, किंतु इस विचार ने भी उसे दबा रक्खा था कि तेरा विवाह शीघ्र ही होनेवाला है । तेरा तन, मन और धन सब तेरा पति ही होगा; परंतु कृष्णा के सरल प्रेम पर भी वह मुग्ध थी । वह मन में विचारती—नहीं, कृष्णा भी तो तेरा आराध्यदेव है । न-जाने क्यों कृष्णा की प्यारी मूर्ति उसके अंतःस्थल में विराज गई थी । क्यों पिताजी मेरा विवाह कृष्णा से नहीं कर देते; जाति भी एक ही है । आह ! मेरा जीवन कितना सुखमय हो जाय, यदि कृष्णा ही मेरा जीवनसर्वस्व बने । दोनों का हृदय बेचैन था । इधर शांता दुखित थी और उधर कृष्णा ।

हा

दूसरे दिन शांता निश्चित समय पर न पहुँची । उसके पिता कुछ अधिक कार्य रहने के कारण देर करके दौरे पर गए थे ।

कृष्णा कोठी के बरामदे में बैठा हुआ अपलक दृष्टि से उसका मार्ग निहार रहा था । राह देखते-देखते उसकी आँखें पथरा गईं । भगवान् अंशुमाली भी कृष्णा को दुखी छोड़ अस्ताचल की गोद में जा छिपे । किंतु वह न आई । अँधेरे ने अपना प्रभाव जमा लिया कुछ-कुछ बदली भी थी । निराश कृष्णा उठकर प्राइवेट रूम की ओर चला । अंधकार के पैर में ठोकर लगने से गिर पड़ा । अब दो-दो पी उसे व्यथित करने लगीं । कमरे में जाकर उसने बि की बत्ती बंद कर दी और एक काउच पर लेट वह अपनी पीड़ा को भुलाना चाहता था, किंतु वह जाती थी । उसके नौकर ने यह समझ कि इस लैंप नहीं जला, आकर लैंप जलाने की चेष्टा किंतु कृष्णा के यह कहने पर लैंप मत जलाओ कमरे के बाहर चले जाओ, बेचारा डरता हुआ गया और आश्चर्य के साथ यह सोचने लगा कि क्या बात हो गई है । कुछ अपराध तो मुझसे नहीं पड़ा है—आज किसका मुँह देखकर उठा हूँ । की घंटी बजी; कृष्णा न उठा । नौकर आया—"सा भोजन तैयार है, माताजी राह देख रही हैं ।"

"कह दो भोजन कर लें; मैं नहीं खाऊँगा, त ठीक नहीं है ।"

पत्नी ने कन्या को भेजा—"बेटी, जाओ बाबूजी को बुला लाओ ।"

"तन्नो बाबू को ?"

"हाँ"

कृष्णा की ३ वर्ष की बालिका उसे कन्नो बा करती थी । कन्नो कृष्णा का दुलार का नाम था । बालिका ने अपनी दादी से कन्नो कहना सीखा बालिका के दुलार का नाम रानी बिटिया था । रानी ने नीचे आकर पुकारा—"अले पहले पल तौ

"क्या हुक्म है रानी बिटिया ।"—कहते हुए ने उसे गोदी में उठा लिया ।

"देखो हमें तन्नो बाबू के पास पहुँचा दो ।"

"अच्छा रानी बिटिया ।"

पहरेदार ने एक नौकर बुलाकर रानी को पास भेज दिया ।

रानी ने दूर से ही चिल्लाकर कहा—"तन्नो, यहाँ लोछनी क्यों नहीं जलवाई ।" कृष्णा ध्यान में लीन था । चौंककर बोला—"क्या है रानी

"तन्नो, तुम बोत थराब हो । कों नी लोछनी

कृष्णा ने उठकर बत्ती जला दी ।

"हाँ, तुम लाजा हों । अत्थे तन्नो बाबू, तल्लो थाना लो ।"

"बेटी, भूक नहीं है !"

"तो में बी नी थाउँगी ।"

कृष्णा ने लड़की को गोद में उठाकर चूम लिया और कहा—"क्यों, तू क्यों नहीं खाएगी बेटी ।"

"अम्मा वी नी थाएगी और में वी नी थाउँगी ।"

बालहठ के सामने कृष्णा परास्त हुआ और बोला—

"बेटी, मैं चलता हूँ ।"

अन्यमनस्क होकर कृष्णा ने थोड़ा-सा भोजन किया और फिर वापस आकर उसी काउच पर लेट गया ।

लगभग साढ़े आठ बजे का समय था । आषाढ़ मास था । संध्या से ही बादलों ने आकाश को धूमिल बना रक्खा था । हलकी-हलकी फुहारें वायु के साथ मिलकर ग्रीष्म-पीड़ित मनुष्यों को सुख का अनुभव करा रही थीं—दुखी था केवल कृष्णा । वह शान्ता के ध्यान में लीन होकर सोच रहा था—

"आह ! शान्ता तुम क्यों नहीं आईं ! तुमने मुझे प्रेम के बदले में चिन्ता दी है । मैं मानता हूँ, मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ । किन्तु आह शान्ता ! क्यों हृदय को यातनाएं दे रही हो । मैंने तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा । मैं प्रेम करता हूँ, क्या यह उसी का प्रतिफल है । उसकी आँखों से उष्ण जल का झरना बह रहा था । सहसा शान्ता ने कमरे में प्रवेश किया । उसने देखा, वह रो रहा था । दोनों ने एक दूसरे को देखा और जी भर कर देखा ! अपने-अपने हृदय में दोनों एक स्वर्गीय स्वप्न की कल्पना कर रहे थे ।

"शान्ता तुम आ गईं, अच्छा किया ।"

"कृष्णा ! तुम रोते हो—मुझ तुच्छ वस्तु के लिये ।"

"उपदेश मत दो शान्ता । इससे हृदय पर ठेस लगती है । मैं प्रेम करता हूँ । क्यों करता हूँ, नहीं जानता ! तुममें कौन-सी ऐसी शक्ति है, जिसने मेरे हृदय पर अधिकार प्राप्त किया है—उसे भी नहीं जानता । इतना ही जानता हूँ कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ ।"

"कृष्णा, तुम्हारे इसी सरल प्रेम के कारण यह शान्ता पगली हो गई है । कृष्णा ! सत्य कहता हूँ, यदि तुम्हारे किसी काम मेरा हृदय भी आवे, तो मैं इसी समय चीर-कर देने को तैयार हूँ ।"

"इसी आशा पर तो जीवित हूँ । परन्तु तुमने इतनी देर क्यों लगाई ? क्या मुझे तड़पाना चाहती थीं ?"

"नहीं कृष्णा ! मेरी ओर से शंकित न होना । पिताजी देर करके दौरे पर गए, उनके रहते कैसे आती । अब भी माताजी से बहुत प्रार्थना करने पर आने की आज्ञा मिली, सो भी तुम्हारी पत्नी के कारण कि वह सिनेमा जा रही हैं ।"

"ख़ैर ! मुझे संतोष है, तुम आ तो गईं । चलो छत पर टहल आवें । समय अच्छा है ।"

कृष्णा ने बरसात की ऋतु के लिए कोठी की छत पर फ़र्स्ट क्लास ऐसा शयनागार बनवा रक्खा था । दोनों वहीं पहुँचकर प्रेम की वंशी से मदमाते स्वर निकलने लगे ।

कृष्णा चाँदी की तश्तरी में कुछ फल तथा नमकीन ले आया । शांता उसे और वह शांता को फल तराशकर खिलाने लगा । वे एक दूसरे की सरलता पर मुग्ध थे । उनका प्यार सच्चा था । बुरी भावना दोनों के हृदय में न थी—था केवल प्रेम !

वे फल तथा नमकीन खाते जाते और बातचीत करते जाते थे । कृष्णा ने पूछा—"डिपटी साहब दौरे पर से कब तक लौटेंगे ?"

"एक मास से तो कम नहीं लगेगा ।"—शांता ने उत्तर दिया ।

"यदि तुम चाहो, तो नित्य आ सकती हो ।"

"नहीं, कदापि नहीं; मेरी माता मुझे तुम्हारे ही यहाँ आने देती हैं ।"

"यह उनकी व तुम्हारी कृपा है ।"

बादल ज़ोर से गरजने लगे ।

"नहीं ! वह तुम्हारी बालकों-जैसी सरलता पर मुग्ध है ।"

पानी की फुहारें कुछ भारी हो चलीं ।

"और तुम"

"उँह ! मैं क्यों मुग्ध होने लगी ।"

फुहारों ने बूँदों का रूप धारण कर लिया ।

"सच ! तुम मुझसे प्यार नहीं करतीं ?"

पानी ज़ोर से पड़ने लगा ।

"नहीं"—कहकर शांता हँस दी और आकाश की ओर देखकर बोली—"देखो ! कैसे-कैसे काले बादलों का समूह है । पानी ज़ोर से पड़ रहा है ।"

"देखो ! बिजली चमकी, थोड़ी चमककर रह गई ।

"तुम्हें मेरी क़सम, सच बताओ, मुझसे प्यार करती हो या नहीं ?"

"हाँ, करती हूँ"—कहकर शांता ने आँखें नीची कर लीं। अकस्मात् बिजली बड़े ज़ोर से गरजी। शांता डरकर कृष्णा की ओर खिसक गई। कृष्णा ने उसे वक्षःस्थल में छुपाकर चूम लिया, दोनों नतमस्तक हो गये।

× × ×

निस्तब्धता भङ्ग करते हुए कृष्णा ने शांत भाव से शांता से पूछा—"क्या अप्रसन्न हो गईं शांता ?"

"नहीं–हाँ...मैं अब घर जाऊँगी !" शांता ने चिंताकुल होकर कहा।

"अपराध क्षमा करके जा सकोगी।"

"भविष्य में तो ऐसा नहीं करोगे।"

"नहीं !"

"तो क्षमा कर दिया–अच्छा अब जाना ही चाहिए।"

"सिनेमा समाप्त होने का समय भी हो गया है।"

"अपने हृदय को कैसे जाने दूँ।"

"नहीं, जल्दी गाड़ी मँगवाओ।"

कृष्णा ने अपनी एक लैंडोवाडी की मोटर पर सवार कराकर शांता को विदा किया।

दोनों प्रफुल्लित थे। कृष्णा के पैर में ठोकर लगने से काफ़ी चोट आ गई थी, किंतु जब तक शांता उसके पास रही उसे उसका ध्यान भी न आया। इस समय वह पीड़ा और प्रेम दोनों का आनन्द ले रहा था।

था

पाँच मास पश्चात्।

शांता का विवाह-कार्य समाप्त हो चुका था। आज वह पति के साथ प्रथम बार अपनी ससुराल जा रही थी। कृष्णा ने उसके विवाह में तन, मन, धन से पं० श्यामस्वरूप की सेवा की थी–हज़ारों के रत्नजड़ित आभूषण तो उसकी पत्नी ने शांता को दिए थे। विदा होते समय कृष्णा सोचने लगा—आह ! आज शांता चली जायगी और मेरा हृदय सदैव के लिये यों ही तड़पता रह जायगा। मेरी आँखें उसे देखने के लिये तरसती ही रह जायँगी। क्यों न उसके साथ देहली ही चलूँ। कृष्णा ने शांता के पति का हृदय भी अपनी सरलता और सेवा के कारण मोह लिया था और उस पर पं० श्यामस्वरूप ने यह कहकर कि "यदि मैं संसार में सबसे ज़्यादा प्रेम करता हूँ, तो कृष्णा से अथवा अपने बालकों से" सोने सुहागे का काम कर दिया था।

कृष्णा ने डिपटी साहब से पूछा—"आपको चीज़ देहली से तो नहीं मँगवानी है। मैं देहली जा रहा हूँ। किसी वस्तु की आवश्यकता हो, तो लेता आऊँ।"

"अकस्मात् ऐसा विचार क्यों हुआ ?"—पं० श्यामस्वरूप ने पूछा।

"एक आवश्यक काम याद आ गया।"—कृष्णा ने उत्तर दिया।

"तो शांता के साथ ही चले जाओ; इससे भी आराम रहेगा और उसे भी।"

"अच्छा !"—

यह तो वह चाहता ही था। अंधा क्या चाहे, दो

× × ×

"क्यों भई, कुतुबमीनार देखने चलोगे ?"—सु ने पूछा।

"चलो !"—कृष्णा ने उत्तर दिया।

"तो मैं अंदर पूछ आऊँ, सम्भव है शांति भी च

"पूछ आओ।"

सुशील की माता, शांता, कृष्णा और सुशील कार पर सवार होकर कुतुबमीनार पहुँचे। यही निश्चय किया कि पहले मीनार पर चढ़ जाय, तब वहाँ के अन्य प्राचीन स्थान देखेंगे। पर चढ़ते समय सुशील की वृद्धा माता बीच में कर बैठ गईं। शांता, सुशील और कृष्णा जल्दी चढ़ने के कारण उनसे कुछ ज़्यादा ऊपर चढ़ गए सुशील को कुछ मंद-मंद स्वर में सुनाई दिया—'सुशील सुशील, ज़रा यहाँ तो आओ बेटा'। उसने पीछे देखा, माता साथ में नहीं थी। सुशील ने कृष्णा कहा—"नीचे उतरो, शायद मा पुकार रही हैं।"

"नीचे जाकर फिर ऊपर आना पड़ेगा, तुम आओ; यदि आवश्यकता पड़े, तो बुला लेना।"

"ठीक कहते हो। शांता तुम भी यहीं

—कहकर सुशील नीचे की तरफ़ चला गया।

कृष्णा को आज एक क्षण के लिये फिर मिला। उसका हृदय धड़कने लगा। डरते हुए शांता को अपने वक्षःस्थल में छुपाकर उसके गुलाबी करने के विचार से हाथ फैलाए। शांता ने की तरह गरजकर कहा—"बस कृष्णा ! बस, तुम

हो, परस्त्री की ओर तुम्हें हाथ बढ़ाते हुए लज्जा नहीं आती! भूल गए अपनी प्रतिज्ञा? धिक्कार है तुम्हें।” वह पीछे हट गया और पाषाण-मूर्ति की तरह निश्चल खड़ा हो गया। इतने में सुशील आ पहुँचा और आते ही कहने लगा, देखो जो मैं कहता था, वही हुआ न; माताजी थककर नीचे बैठ गईं। मैं उन्हें दूसरे मंज़िल की खिड़की में बैठा आया हूँ। चलो हम लोग ऊपर से देहली का दृश्य देखेंगे।

कृष्णा भी उनके साथ धीरे-धीरे सीढ़ियों पर चढ़ रहा था। अब वह लज्जा के मारे गड़ा जा रहा था—आह! मृत्यु भी नहीं आती; अन्यथा इस दुःख से छुटकारा पा जाता। तीनों मीनार के ऊपरी भाग में पहुँच गए थे। सुशील शांता से कह रहा था—“देखो, यहाँ से रायसीना भी दिखाई देता है।”

“रायसीना क्या है?”

“वैसे तो यह एक गाँव का नाम है। परंतु अँगरेज़ों ने जब से नया क़िला व दफ़्तर बनाया है, तब से नई देहली के नाम से पुकारा जाता है; किंतु देहली के रहनेवाले इसे रायसीना ही पुकारते हैं। देखा है, तो यहाँ से दूर; परंतु इसके ऊपर से भी सभी दिखाई देता है। मकान कैसे छोटे-छोटे दिखाई दे रहे हैं। यह पृथ्वीराज का पुराना क़िला है। इधर पुरानी दिल्ली थी। वह देखो, भूलभुलैया है। हठात् शांता की बाईं आँख फड़क उठी, उसने देखा कृष्णा वहाँ नहीं है। नीचे शोर मच गया। कौन गिरा! कैसे गिरा! नीचे की ओर झाँकते झाँई आती थी।

कृष्णा ने अपने सभी बंधन संसार से तुड़ा लिए थे। सुशील और शांता नीचे उतर रहे थे। दोनों अंधों की तरह टटोल-टटोलकर सीढ़ियाँ समाप्त कर रहे थे। शांता का तो दम घुटा जा रहा था। आह! कब समाप्त होंगी सीढ़ियाँ! रोशनदान की क्षीण आलोक-रेखा को द्वार समझकर कहती—“जल्दी चलो, द्वार आ गया। ज़रा मेरा हाथ पकड़ लो, मैं गिर जाऊँगी।”

सुशील के सिर पर चिन्ता के बादल मँडरा रहे थे। वह स्वयं मृत्यु को निमंत्रण दे रहा था। “कैसे कुसमय घर से चला। पाँव फिसल गया होगा। रेलिंग न पकड़ रक्खी होगी! आह! संसार को कैसे मुँह दिखाऊँगा।” दोनों चिंता में लीन असंख्य वर्षों की-सी नरक की भीषण यातना से तड़पते हुए नीचे पहुँचे। कृष्णा के अंग भंग होकर यत्र-तत्र बिखरे पड़े थे। सुशील ने अत्यंत दुःख से मुँह फेर लिया। और शांता! वह तो शांत हो गई थी। पश्चात्ताप के आँसुओं की नदी में बाढ़ आ गई थी, उसने सभी कुछ देखा, किंतु अब कुछ न था। तारों के क्षीण आलोक में सब कुछ मिट गया।

उसे वह दिन याद आया, जब वह पहुँची थी और वह रो रहा था।

कुँअर विद्याभूषण

पार

१

किसी किनारे से आती है
हृदय हिलाती मादक तान!
मैं अपनी जर्जर तरणी ले
लहरों में आ पड़ा अजान!
कैसे और किधर को जाऊँ
है अनन्त यह पारावार!
कब तक इन दुर्बल हाथों से
प्रभो, सम्हालूँगा पतवार!

२

अब तक जाने कहाँ-कहाँ पर
खोली मैंने अपनी नाव!
गया जहाँ भी, वहीं फूल ने
बनकर शूल किए हैं घाव!
जिस उपवन को अपना समझा
उससे गया निकाला, आह!
कहाँ-कहाँ भटका, पर प्रियतम
के घर की न मिली है राह!

३

कहीं-कहीं मदिरा की प्याली,
पीकर हुआ हृदय बेहोश—
आँखें खुलीं, हृदय प्यासा था,
हुआ न उस मद से संतोष!
फिर प्यासा मानस लेकर मैं
गया सजल सरिता के पास!
पर जगती के जल से मेरे
उर की बुझ न सकी है प्यास!

४

लहरें उठती हैं सागर से
हो जातीं फिर उसमें लीन!
उठते हैं, फिर मिट जाते हैं
कहीं बुदबुदे जल के क्षीण!
मैं ही क्यों बिछुड़ा जल-कण-सा
कब से ढुलक रहा बेकार!
मृत्यु पूर्णता है, उससे क्यों
डरता है कायर संसार!

५

लोचन मूँद, अकिंचन जीवन
करता हूँ लहरों का दान—
तुम ही आकर अपने प्याले
में भर लेना मेरे प्राण!
मेरा रोना, मान तुम्हारा,
घुल-मिलकर हों एकाकार—
तरणी डूबे तो अपने में
मुझे मिला लो प्राणाधार!

६

कब तक दूर बैठकर प्यारे,
सुनता रहूँ तुम्हारा गान!
जगत सुने मुझको ही, यदि मैं
बनूँ तुम्हारी मादक तान!
मेरी लय पर थिरक-थिरककर
नाचेगा सारा संसार!
मेरे संकेतों पर कितनी
नौकाएँ पावेंगी पार!

हरिकृष्ण "प्रेमी"

76325

आल्हा-ऊदल की कथा

आल्हा और ऊदल का नाम तो प्रायः सभी ने सुना होगा, पर इनके अस्तित्व और इतिहास को अधिकांश लोग नहीं जानते। साधारणतः लोग इन वीरों को कल्पित व्यक्ति समझते हैं; पर यथार्थ में ये दोनों वीर ऐतिहासिक पुरुष हैं और आज हम पाठकों को इनका चरित्र संक्षेप में सुनावेंगे।

सम्राट् हर्षवर्धन् गत भारतवर्ष के इतिहास में अंतिम हिंदू-सम्राट् हुए हैं। इनकी मृत्यु सन् ६४८ ई० में हुई और उसी दिन से हिंदू-राज्य का अंत समझना चाहिए। हर्ष के मरते ही देश में भयानक अराजकता व्याप्त हो गई। नोच-खसोट शुरू हो गई। जिसे जहाँ अवकाश मिला, वह वहीं राजा बन बैठा। इस प्रकार अनेकानेक छोटे-छोटे राज्यों और जातियों का उदय हुआ। बुँदेलखंड-प्रांत में उस समय गहरवार राजाओं का प्रादुर्भाव हुआ। इनकी राजधानी वर्तमान छतरपुर-राज्य के अंतर्गत खजुराहो-नामक स्थान में थी। यहाँ अब भी अनेक सुंदर-सुंदर और दर्शनीय प्राचीन देव-मंदिर वर्तमान हैं। कालांतर में गहरवारों की जगह परिहारों का राज्य हुआ और उनके स्थान में ईसा की दसवीं शताब्दि के प्रारंभ में चंदेल राजाओं का उदय हुआ। कोई २०० वर्षों तक चंदेलों का वीररस-पूर्ण आधिपत्य इस प्रदेश में रहा और इसी बीच में बुँदेलखंड के वर्तमान प्राचीन ऐतिहासिक स्थानों की सृष्टि हुई। महोबा और कालिंजर इन्हीं लोगों ने अच्छी तरह बसाया। खजुराहो में भी इन्होंने अनेक मंदिर निर्मित कराए। अस्तु, उस समय की राजधानी महोबा थी, जो मानिकपुर-झाँसी लाइन पर रेल का एक स्टेशन है। सन् ११६५ ई० में महोबे के सिंहासन पर राजा परमार्धिदेव या परमाल आरूढ़ हुए। आल्हा और ऊदल परमाल राजा के भतीजे थे।

राजा परमाल ३ भाई थे। अन्य दो भाई दक्षराज और वत्सराज कई कारणों से महोबे से ३ मील दूर पर वर्तमान दशरापुर-नामक स्थान पर महल बनवाकर रहने लगे। इन्हीं दक्षराज के पुत्र आल्हा और ऊदल थे।

बुँदेलखंड के दक्षिण में मांड़ौ (वर्तमान मंडला) के राजा जंभी उस समय बड़े प्रतापी हो रहे थे। उनके एक लड़का था, जिसका नाम करिंगा था। एक समय करिंगा बिठूर के मेले में जाने लगा, तब उसकी बहन ने उससे कहा कि मेले से हमारे लिये कोई अनमोल वस्तु लाना। तथास्तु कहकर करिंगा ने कुछ सेना लेकर मेले के लिये प्रस्थान किया।

इसी मेले में राजा परमाल की रानी मलना देवी अपनी बहन देवला देवी (जो दक्षराज को ब्याही थी) और अपने भाई माहिल (जो परमाल का मंत्री था) के साथ गई थीं। माहिल एक बड़ा ही दुष्ट पुरुष था और मन-ही-मन परमाल का विनाश चाहता था। मंत्री पद पर आते ही उसने उस आलसी और दृढ़ताशून्य राजा को ऐयाशी में लगा दिया था। माहिल से मेले में करिंगा से भेंट हो गई और दोनों में बातचीत होते-होते उस अनमोल सौगात का प्रसंग आ गया, जिसे करिंगा की बहन ने माँगा था। माहिल को एक अवसर मिल गया। उसने सोचा कि किसी तरह करिंगा को परमाल से लड़ा देना चाहिए। इस विचार से उसने करिंगा से कहा कि देवला देवी को जो हार मलना रानी ने दिया है, उससे बढ़कर अनमोल चीज़ इस मेले में दूसरी नहीं। बस, इशारे की देर थी, करिंगा ने रानी की मुट्ठी भर सेना पर हमला कर दिया, और देवला का हार छीनने ही वाला था कि एक दैवी सहायता रानी की मदद को आ गई। गोरखपुर के बनरस गाँव के तालन सैय्यद उस समय वहाँ आ निकले। उन्होंने रानियों के आर्तनाद को सुनकर करिंगा को मार भगाया। इसके बाद रानी महोबे लौट आईं और करिंगा मांड़ौ चला गया। तालन सैय्यद को रानी ने अपना धर्म-भाई बना लिया और उसे अपने साथ-साथ ले गईं।

एक दिन करिंगा और उसका बाप राजा जंभी रात्रि के समय दक्षराज के महल पर चढ़ आए और दोनों भाई दक्षराज और वत्सराज उनके हाथ से मारे गए। जंभी ने उन दोनों का सिर काट लिया और देवला देवी का हार छीन लिया। दक्षराज का महल तोड़-ताड़कर गिरा

दिया गया। जंभी ने दोनों कटे हुए सिर अपने महल की दीवार पर कीलों से गड़वा दिए।

प्रातःकाल जब यह ख़बर महोबे पहुँची, तो बड़ा हाहाकार मच गया। दुःखी परमाल ने अपनी दोनों भौजाइयों और उनके लड़कों को अपने पास ही बुला लिया। दक्षराज के लड़के आल्हा और ऊदल थे और वत्सराज के मलखान और सुलखान थे। इन अबोध बालकों को अपने पिताओं की मृत्यु का कुछ भी हाल न मालूम हुआ। कालांतर में जब ये बालक बड़े हुए, तब माहिल को फिर शङ्का हुई। उसने युक्ति लगाकर इन दोनों वीर युगलों को अपने मार्ग में से हटाना चाहा। प्रसंगवश ताने में उसने दक्षराज और वत्सराज की मृत्यु का हाल उन वीरों को सुना दिया और उनके दिलों में करिंगा और जंभी के प्रति प्रतिहिंसा का भाव जागृत कर दिया। इसका फल यह हुआ कि चारों युवक तालन सैय्यद को साथ लेकर थोड़ी-सी फ़ौज के सहारे लड़ाई के लिये निकल पड़े। पहले तो ये लोग योगी बनकर मांड़ौ नगरी की सेना और बनावट का अंदाज़ कर आए। फिर युक्तियों द्वारा कुछ लोगों को अपनी ओर मिला लिया। तब मांड़ौ की प्रसिद्ध लड़ाई छिड़ गई और उसमें करिंगा, जंभी इत्यादि सब मारे गए। देवला का प्रसिद्ध नौलखा हार फिर उसे अर्पित किया गया और दक्षराज और वत्सराज की खोपड़ियों का विधिवत् क्रियाकर्म हुआ।

इसके बाद आल्हा, ऊदल और मलखान के विवाह बहुत लड़ाई-भिड़ाई जादू-टोना इत्यादि के बाद हुए। उस समय राजकन्याओं के विवाह कोई साधारण चीज़ न थे। बिना लड़ाई-भिड़ाई के कोई कन्यादान न करता था और इन्हीं झगड़ों के कारण कन्यावध की प्रथा चल निकली, जो कुछ-कुछ अंश में अब भी विद्यमान है।

उस समय जब कन्या सयानी होती थी, तब वर ढूँढ़ने के लिये पुरोहित, नाई इत्यादि नारियल लेकर देश-देशांतर में घूमते थे और योग्य कुमार को पाकर बात पक्की करते और नारियल भेंट करते थे। तब वर-पक्ष की बारात सैनिक ठाट-बाट से ब्याह करने निकलती थी। वधू के घर पहुँचने पर इनकी वीरता की परीक्षा होती थी। प्रायः किसी छोटी-सी बात पर सैकड़ों योद्धा दोनों ओर से कट मरते थे। फिर यदि वरपक्षवाले न हारे, तो कन्यादान होता था, पर कन्या की विदा न होती। डोला या गौ बाद में होता और उस अवसर पर फिर घमासान यु होता। इसी ख़ून-ख़राबे में अनेकानेक राज्य लुप्त हो हो गए।

जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं, उस समय उ- रीय भारत में तीन प्रधान राज्य थे। महोबे के राज्य का उल्लेख तो ऊपर आ ही गया है। बाक़ी दो राज्य दिल्ली और कन्नौज के थे। दिल्ली के सिंहासन पर उस सम पृथ्वीराज विराजमान थे और कन्नौज में राजा जयचंद। जिस प्रकार राठौर राजा जयचंद की कन्या संयोगिता विवाह के कारण चौहान पृथ्वीराज का क्या, पूर्ण भार का ही नाश हुआ, उसी प्रकार पृथ्वीराज की कन्या बे और परमाल के लड़के ब्रह्मजित के विवाह से महोबे नाश का सूत्रपात हुआ।

जब पृथ्वीराज की कन्या बेला विवाहयोग्य हुई, पुरोहित इत्यादि वर की खोज में निकले। पर पृथ्वीरा ने उन्हें महोबे जाने से मना कर दिया था; क्योंकि चंदे को वे अच्छा क्षत्रिय न मानते थे और कन्या देकर उन पैर पूजना अपना घोर पतन समझते थे। पर ईश्वर की लीला अपरंपार है और होनी होकर ही रहती है। रा में इन लोगों को मलखान मिल गए और इनको कि तरह महोबे ले ही गए और वहाँ उनसे ब्रह्मजित के लि नारियल रखवा लिया। इसके बाद बारात दिल्ली ग और वहाँ कई लड़ाइयों के बाद ब्रह्मजित का वि बेला के साथ हुआ। पर पृथ्वीराज इस संबंध से अ तुष्ट ही रहे। माहिल को यह अवसर अच्छा जान प और वह फिर अपनी घात में लग गया।

थोड़े ही दिनों बाद पृथ्वीराज के कुछ सरदार क एक राजा के यहाँ से लड़-झगड़कर आहत अवस्था चंदेल राज्य में होकर निकले। दुर्भाग्यवश उनसे यु चंदेलों से लड़ाई हो गई और मामला बढ़ते-बढ़ते पृथ्वी राज के कानों तक पहुँचा। बस, माहिल की बन आई छिपे-छिपे वह चौहानों से मिला और उनको मदद दी आशा दी कि वे परमाल को हराकर माहिल को आ राज दे देवें। पर साथ-ही-साथ माहिल को आल्ह ऊदल का महोबे में होना शंकास्पद प्रतीत हुआ। अ उसने अपनी चाल और चुग़लख़ोरी से परमाल को आल्ह पर क्रुद्ध करा दिया। दोनों भाई आल्हा और ऊद

बुंदेल राज्य से निर्वासित किए गए। इस पर इन वीरों ने दुःख के साथ अपने देश को छोड़कर कन्नौज के लिये प्रस्थान किया।

आल्हा और ऊदल के हटते ही माहिल के संकेत से दिल्ली की सेना ने धावा बोल दिया। पहले मलखान ने सिरसागढ़ पर बड़ा घमासान युद्ध किया, पर वह बेचारा क्या चीज़ था। आख़िर रण में काम आया। तब परमाल की आँखें खुलीं और जब शत्रु-सेना सिर पर आ धमकी, तब आल्हा को मनाकर लौटा लाने के लिये सुप्रसिद्ध जगनिक भाट भेजे गए। जगनिक का मनावन बड़ा ही हृदयस्पर्शी है। आख़िर आल्हा और ऊदल को महोबे की रक्षा के लिये आना ही पड़ा। पर महोबे के अंतिम दिन आ गए थे, किसी का क्या चारा था। दूसरा घनघोर संग्राम उरई के मैदान में हुआ। यह सन् ११७४ ई० की बात है। दोनों ओर के लाखों योद्धा काम आए और अंत में आल्हा ने पृथ्वीराज को बाँध लिया। कहा तो यह जाता है कि आल्हा ने ही इसी अवसर पर पृथ्वीराज की आँखें निकाल लीं। पर पृथ्वीराज मारे नहीं गए। उन्हें तो लौटकर इस भारत-पतन नाटक के अंतिम अंक में भी मुख्य पार्ट खेलना था, और यवन के हाथ से संसार से विदा होना था। मुख्य योद्धाओं में ब्रह्मजित और ऊदल भी मारे गए। इन सबकी स्त्रियाँ इसी उरई के मैदान में सती हुईं। बेला भी पिता और पति, दोनों के कुलों का संहार कर स्वयं भी सती हुई। उसने ठीक ही कहा कि—"ख़ून की प्यासी यह बेला है पानी ते यह नाँय अघाय।" ठीक ही है, जिस जाति में ऐसे भयंकर रीति-रिवाज हैं, उसका नष्ट हो जाना ही अच्छा। इस महाप्रलय के बाद आल्हा विरक्त होकर जंगलों में चले गए और बहुतों का विश्वास है कि वह अब भी दर्शन देते हैं; क्योंकि इष्टदेवी शारदा (जिनका स्थान मैहर में मानिकपुर के पास G. I. P. Ry. पर है) के प्रसाद से वह अमर हो गए हैं। कहा जाता है कि मैहर की भवानी के मंदिर में रात्रि को कोई नहीं रहता; क्योंकि लाल वस्त्र धारण किए हुए आल्हा रात्रि को भगवती के दर्शनार्थ आते हैं।

आल्हा-ऊदल की गाथा उनको मनानेवाले भाट जगनिक ने आल्हा नामक छंद में की थी। वह अब तक किसी-न-किसी परिवर्तित रूप में इस प्रांत-भर में गाई जाती है। यह छंद ऐसा वीररसोत्पादक है कि मैंने बुँदेलखंड के अल्हैतों को वर्णन करते-करते उठ-उठकर लपक पड़ते देखा है। कैसा भी कायर क्यों न हो, एक दफ़ा झूमने अवश्य लगता है। गत महायुद्ध के अवसर पर जब सिपाहियों की भरती हो रही थी, तब आल्हा के गाने ने मारू बाजे का काम कर दिखलाया था।

जगनिक के अतिरिक्त महाकवि चंदबरदाई ने भी अपने पृथ्वीराजरासो के महोवा-खंड में इस गाथा का कुछ वर्णन दिया है।

आल्हा-छंद के "माँड़ो की लड़ाई", "नैनागढ़ की लड़ाई और आल्हा का ब्याह', "नरवरगढ़ की लड़ाई और ऊदल का ब्याह" और "आल्हा का मनावन" आजकल विशेष प्रचलित हैं, और छपे हुए पुस्तकाकार में मिलते हैं।

आल्हा-ऊदल-संबंधी अनेक महल, मंदिर, बैठक इत्यादि अब भी टूटी-फूटी अवस्था में बुँदेलखंड में कई स्थानों पर (विशेषकर महोबे में) मिलते हैं। इन इमारतों के देखने से इस युक्त-प्रांत की वीर-भूमि बुँदेलखंड के अतुल गौरव का कुछ परिचय मिलता है और चित्त में जातीय गौरव का संचार होता है। दशरापुर, जहाँ आल्हा के पिता दक्षराज रहते थे, अब भी विद्यमान है। यह स्थान महोबे से तीन-चार मील पर पक्की सड़क पर है और यहाँ एक बड़ा प्राचीन तालाब है, जिसकी सीढ़ियों में अनेक भीषणकाय अजगर रहते हैं। इस लेखक को वहाँ दो ऐसे अजगर सीढ़ियों पर धूप खाते मिले थे, जिनकी मोटाई मनुष्य की जंघा के बराबर थी और लंबाई कम-से-कम पंद्रह-बीस फ़ुट रही होगी।

महोबे में अनेक आश्चर्यकारी प्राचीन इमारतें हैं, जो देखने योग्य हैं और जिनको देखकर भारतीय इतिहास पर दूसरी ही झलक पड़ती है।

भगवतीप्रसादसिंह

स्वेद-कण

सुंदर सरोरुह में कैधौं मकरंद-बुंद
साजत सु-साज सुचिसोभा-रस लीन है ;
कैधौं सेब ऊपर अमोल अति ओस-मोती
छावत छबिहिं जाते सीपी-सुत खीन है ।

सुबरन-आम्र-तल स्वच्छ हीर-नग कैधौं
भ्राजत 'बिसारद' जू सुखमा सों पीन है ;
कैधौं चारु चिबुक पै चित्त को हरनवारो
राजत प्रसेद-कन ललित नवीन है ।

बलदेवप्रसाद टंडन

दंड और सुधार

अनुकरणशीलता प्राणिमात्र का सहज स्वभाव है। मनुष्य भी इससे पृथक् नहीं। वह भली वा बुरी परिस्थितियों से निरंतर प्रभावित होते हुए, तद्वत् आचरण करना अपना कर्तव्य-कर्म समझता है। ऐसा करने में प्रायः न उसे सुख होता है, न दुःख। अभ्यास से संस्कारों का निर्माण होता है। यही संस्कार वंशपरंपरा के प्रवाह द्वारा साधारणतः अधिक पुष्ट हो जाते हैं और तदनुसार स्वभाव में परिवर्तन का आभास दिखने लगता है। इस प्रकार मनुष्य रूढ़ियों का क्रीतदास बन जाता है। विचारों की परिपकता पर उसे बुरा-से-बुरा काम भी तात्कालिक दृष्टि से कुछ-न-कुछ सुखकर ही प्रतीत होता है। आत्मा की प्रताड़क शक्ति क्रमशः क्षीण होती हुई लगभग विलुप्त हो जाती है। दंड से सुधार चाहनेवाले मनुष्यों के विषय में यही बात कही जा सकती है, तथा उन मनुष्यों के विषय में भी जो दंडनीय समझे जाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह प्रकट है कि दोष दोनों ही पक्षों पर आरोपित किया जा सकता है—एक पर अमानुषिक उपायों द्वारा शांति-व्यवस्था क़ायम करने का और दूसरे पर वैसे ही उपायों द्वारा उसी व्यवस्था को भंग करने का। परंतु दोनों ही विवश हैं—यह भी हम दिखा चुके हैं। विवशता को समुचितरूपेण ध्यान में रखते हुए भी उभय पक्ष में से अधिक दोषी कौन प्रमाणित होता है? निस्संदेह पूर्व पक्ष। कारण कि वह प्रायः सुसभ्य हुआ करता है तथा उसमें साधारण ज्ञान का आधिक्य होता है। अतः यदि उसकी आत्मा में किसी कृत्य से तनिक भी ग्लानि उत्पन्न हो, तो निश्चय ही उसके कंधों पर अधिक जवाबदेही का बोझ तुरंत आ पड़ता है। मनुष्यों के होने में मनुष्यता का जिस सीमा तक विकास हुआ है, उसे देखते हुए यह कदापि नहीं माना जा सकता कि आत्मा में मनुष्योचित भावनाओं का स्फुरण किसी समय तथा किसी अंश में भी न होता हो। ऐसी दशा में दंडनीति का समर्थक मानव-समुदाय स्वयं ही अधिकतर दंडनीय ठहरता है। वह मानवता के प्रति अपराधी होता है और अपराध का प्राचरिचत होना न्यायसंगत ही है।

दंड किसी के लिये लाभप्रद नहीं। उससे न तो दंड देनेवाले का हितसाधन होता है और न दंड पानेवाले का। दोनों मनुष्यता से च्युत होते हैं। दोनों का स्वभाव बिगड़ता है। हिंसा और प्रतिहिंसावाले भावों में संघर्ष होता रहता है। इस प्रकार वाह्य शांति के अंतस्तल में अशांति स्वच्छंदतापूर्वक विहार करती है। दंडनीति का आधार भय है। दंडकारक समुदाय प्रायः सबल समुदाय हुआ करता है। निर्बलों के प्रति भय-प्रदर्शन द्वारा यहाँ उसकी आत्मा में भीरुता तथा अन्यायप्रियता का संचार होता है। वहाँ भय प्रदर्शितों को भी मानव-समाज के साथ वैसा ही बर्तने की अप्रत्यक्ष किंतु प्रभावपूर्ण शिक्षा मिलती है, जिसका परिणाम अशांति के अतिरिक्त और कुछ हो नहीं सकता। फिर अभ्यास से भय का महत्व

भी मिट जाता है और अभ्यास से ही अपराधी को भावी अपराधों के प्रति प्रोत्साहन भी मिलता है। इसके अतिरिक्त हृदय में कुवासनाओं की सत्ता बराबर बनी ही रहती है, जिसमें आधुनिक बंदीगृहों की विषाक्त परिस्थितियों द्वारा क्रमशः परिवर्द्धन होता ही रहता है। अस्तु। यहाँ जगद्विख्यात आंग्ल दार्शनिक हर्बर्ट स्पेंसर के ये उद्गार विचारणीय हैं—

Out of the many methods of criminal discipline that have been proposed and legally enforced, none have answered the expectations of their advocates, artificial punispments have failed to produce reformation, and have in many cases increased the criminality. *

अर्थात्, “दंड-व्यवस्था के उन विविध उपायों में से, जो निर्धारित तथा क़ानून द्वारा प्रचलित किए गए हैं, किसी ने अपने समर्थकों की आशाएँ पूरी नहीं कीं। बनावटी सज़ाओं से सुधार नहीं हुआ, प्रत्युत अनेक दशाओं में तो पापाचार की ही वृद्धि हुई है।” सुप्रसिद्ध जर्मन-पंडित नीट्शे का भी कथन है कि “आधुनिक दंड-विधि बड़ी विलक्षण है। उससे न तो अपराधियों की चित्त-शुद्धि होती, न उनके हृदय में प्रायश्चित के भाव उदय होते हैं। सच तो यह है कि पाप से मनुष्य जितना कलंकित नहीं होता, उतना इन संशोधनागारों के कुसंसर्ग से होता है। † इन विद्वानों ने यहाँ उन दोषों का उल्लेख नहीं किया, जिनसे दंडप्रदाताओं के अनीतिमूलक तथा अमानुषी व्यवहार द्वारा समस्त मानव-समाज भी दूषित हुए विना नहीं रहता। समष्टिरूपेण दंडनीति का प्रवर्तक उक्त समाज ही तो है।

हमें यहाँ एडवर्ड कार्पेंटर (Edward Carpenter) के निम्न वाक्यों पर भी विचार करना उचित जान पड़ता है। यह महानुभाव अपनी “सभ्यता : उसका कारण और संशोधन” (Civilisation: Its Cause and Cure) नामक पुस्तक में कहते हैं—

As a matter of fact society keeps changing its opinion. How then are we to know when it is right and when it is wrong ?

अर्थात् “समाज की धारणाओं में सदैव ही परिवर्तन होता रहता है। तो फिर हम यह किस प्रकार जान सकते हैं कि उचित क्या है और अनुचित क्या है ?” हम इसे वहीं तक मानने के लिये तैयार हैं, जहाँ तक कि इसका संबंध कुछ निश्चित अपराधों के अतिरिक्त अन्य कितने ही साधारण अपराधों से है। पर हमें यह बात तो प्रत्येक दशा में ध्यान में रखनी ही होगी कि किसी अपराधी को उसकी वर्तमान परिस्थिति में विवशतापूर्वक लाने के लिये उक्त समाज कहाँ तक उत्तरदायी है; और इस प्रकार सोचने पर संभव है कि अपराधी का घोरतम अपराध भी नितान्त क्षम्य ही ठहरे *। अतः ऐसी अनिश्चित तथा अव्यवस्थित अवस्था होते हुए यह सोचने की बात है कि केवल कल्पित अपराधियों के सुधार (?) के निमित्त आधुनिक

---

* स्पेंसर महोदय की “शिक्षा” (Education) नामक पुस्तक से।

† फ़र्वरी, सन् २४ की “सरस्वती” से उद्धृत।

* शायद इसी ख़याल से कार्पेंटर महोदय अपनी उपर्युक्त पुस्तक में लिखते हैं—

There is nothing to show that the poor thief is really more immoral or unsocial than the respectable montey grubber.

अर्थात्, यह प्रमाणित करने के लिये कोई साधन नहीं है कि ग़रीब चोर किसी प्रतिष्ठित धन-अपहरण करनेवाले की अपेक्षा वस्तुतः अधिक अनाचारी वा असामाजिक है।

और भी लिखते हैं......But is he there in the dock, the patch-coated brawler or burglar really harmful to society ? Is he more harmful than the mild old gentleman in the wig who pronounces sentence upon him ? That is the question —“परंतु प्रश्न यह है कि क्या वह कटघरे में खड़ा हुआ थेगड़ेदार वस्त्रों से आच्छादित झगड़ा करने या नक़ब लगानेवाला अपराधी वस्तुतः समाज के लिये हानिकर है ? क्या वह उस मीठे वृद्ध सज्जन से अधिक हानिकर है जो न्याय का टोप धारण कर उसे दंड की आज्ञा सुनाता है ?” प्रश्न टेढ़ा है और उसकी दृष्टि में इतनी व्यापकता है कि वर्तमान कलिकालीन वायु में श्वास लेनेवाला कोई भी मनुष्य उससे बमुश्किल तमाम ही बच सकता है।

अमानुषी दंड-प्रणाली का प्रयोग कहाँ तक युक्तियुक्त एवं न्याय-संगत है। विशेषतः जब यह प्रयोग ऐसों द्वारा किया जाता है जिनके विषय में महाकवि तुलसीदास की—"पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे।" वाली चौपाई चरितार्थ होती है। हम तो इसे और कुछ न कहकर निरा अंधेर ही कहेंगे जिसके लिये मानव-समाज को किसी दिन कठिन प्रायश्चित करना होगा—उनका प्रारंभ तो वर्तमान जगद्व्यापक अशांति के रूप में अभी हो गया है। पर दुःख तो यह है कि सब कुछ देखते-सुनते हुए भी मानव-समाज जड़ ही बना हुआ है। कारण, वह अपने को अपराधिवर्ग से सर्वथा पृथक् ख़याल करता है। यही उसकी मूर्खता है। उसे स्वयं मनुष्य होते हुए भी मनुष्यत्व पर संदेह है, और यही संदेह उसे अमानुषी आचरण अख़्त्यार करने पर बाध्य कर रहा है।

दंड के वर्तमान अमानुषिक उपायों में जघन्यतम उपाय है प्राणदंड की आधुनिक प्रथा। इस बीसवीं शताब्दि का मनुष्य भी कितना निर्दय एवं क्रूर हो सकता है—यह प्रथा इस बात को प्रत्यक्ष प्रमाणित करती है। हाँ, यह देखकर संतोष होता है कि संसार में इसके विरुद्ध आंदोलन शुरू हो गया है, यहाँ तक कि कई योरपीय देशों—जैसे रूस, स्वीज़रलैंड, जर्मनी इत्यादि में तो प्रायः इस प्रथा का उन्मूलन भी हो चुका है। इँगलैंड में भी इसके विरुद्ध लोकमत बन रहा है जैसा कि वहाँ की वर्तमान मज़दूर सरकार के प्रसिद्ध समाचार-पत्र "डेली हेरल्ड" के निम्न शब्दों से प्रकट है *—

All the evidence goes to show that capital punishment is no real deterrent and that its existence is more of a stimulus to brutality than a check.........An open decision in favour of the abolition of capital punishment would have a great moral influence in the country.

अर्थात् इस पत्र ने अभी हाल ही में लिखा है कि "सभी प्रमाणों से यह प्रकट है कि प्राण-दंड वस्तुतः पापावरोधक नहीं, प्रत्युत ऐसा न होकर वह पशुत्वपूर्ण कृत्यों के लिये उत्तेजक ही होता है......इस दंड को मिटा देने के निमित्त एक खुले निर्णय का प्रभाव देश के लिये अधिक ही सुधारजनक होगा।" कितनी ठीक बात है। यहाँ हमें इतना ही और कहना है कि जो बात प्राण-दंड के विषय में कही गई, वही वस्तुतः समूची दंड-प्रथा के विषय में कही जा सकती है।

प्रसंगवश उन लोगों के विषय में कुछ विशेष कहना आवश्यक प्रतीत होता है, जिन्हें राजनीतिक अपराधी मानकर दंडित किया जाता है। हम अभी कह आए हैं कि दंड-प्रयोग द्वारा दंडकारक पक्ष का चारित्रिक एवं मानसिक पतन ही होता है, प्रथमतः यही कथन यहाँ भी लागू होता है। परंतु जहाँ साधारण क़ैदियों की दशा में दंडजन्य भय अथवा मानव-समाज से विलग होने के कारण उक्त समाज में अस्थायी शांति का कुछ-न-कुछ आभास दिखने लगता है, वहाँ राजनीतिक अभियुक्तों को दंडित करने पर उस हद तक ऐसा होना भी संभव नहीं। कारण, इससे मानव-समाज स्वयमेव ही शीघ्रतापूर्वक प्रक्षुब्ध हो जाता है। उसके हृदय में प्रारंभ ही से होनेवाली अनीति के प्रति, प्रतिरोधात्मक निर्भयता का अस्तित्व होता है। फिर ऐसे कल्पित अपराधों की संख्या भी इतनी बढ़ जाती है कि अपराधियों को शेष मनुष्यों से पृथक् कर देने के लिये कोई अवकाश ही नहीं रह जाता। * दंड से साधारण अपराधों की भी संख्या-वृद्धि होती है और संभव है कि इससे भी किसी वक़्त पूर्ण अशांति का समय आ जाय। यदि ऐसा हो सकता है, तो मुद्दत के बाद, तथा निस्संदेह वह समय होगा—घोर निराशा और पतन का समय! परंतु राजनीतिक अपराधों का धर्म से थोड़ा-बहुत लगाव होता है। अतः उक्त समय शीघ्रतर उपस्थित हो जाता है, जिसमें होती है आशा और उत्थान की झलक! मानव-समाज किसी सीमा तक किसी सर्वोपयोगी विषय के निमित्त से दंड ही के रूप में उस सदोषता का प्रत्यक्ष

---

* भारत की बड़ी व्यवस्थापिका सभा में भी इस प्रथा के विनाश का उद्योग हो रहा है। पर अपनी परतंत्रता को देखते हुए हमें तो इस उद्योग की सफलता अभी बड़ी दूर की बात जान पड़ती है।

* जैसा हम विगत असहयोग-आंदोलन के समय प्रत्यक्ष देख चुके हैं।

अनुभव करता है, जिसे उसने दंड-नीति के संचालन द्वारा अपने-आप में आरोपित कर रक्खा है। उसी समय वह अपस्वार्थी दंडदायकों से पृथक् हो जाता है और क्रांति का आश्रय लेते हुए दोषोन्मूलन के लिये प्रयत्न करता है। इसका निश्चित पर अंतिम परिणाम सफलता तथा मानव-समुदाय का सुधार है, जिसमें दंड-प्रदाताओं को भी सम्मिलित किया जा सकता है—चाहे यह सुधार थोड़ा हो, चाहे साध्य विषय की विस्तीर्णता के अनुसार बहुत। किंतु पूर्ण एवं यथार्थ सुधार के लिये यह नितांत आवश्यक है कि क्रांतिमूलक प्रयत्नों में प्रेम का ही समुचित समावेश हो।

इस प्रकार हम दिखा चुके कि साधारण अपराधों की अपेक्षा राजनैतिक अपराधों के लिये दंड का प्रयोग अधिक निरर्थक है। साधारण अपराधों का होना बुराई के लिये है। दंडप्रदान में भी बुराई है जो दंड—विधायक पक्ष की सबलता से पर्याप्त सहायता प्राप्त करती है। ऐसी दशा में बुराई से बुराई दबती हुई प्रतीत हो सकती है। राजनैतिक अपराधों का संघटन भलाई के लिये होता है, जिसे प्रायः सार्वजनिक सहानुभूति की भेंट मिलती है। इसका कारण है भलाई की नैसर्गिक उत्तमता। दंडजनित बुराई का भलाई से संपर्क होने पर इन दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों में संघर्षण होने लगता तथा उक्त सहानुभूति क्रियाओं के रूप में परिणत होने लगती है। फलतः भलाई की स्वाभाविक सशक्तता अधिक सशक्त हो जाती है और बुराई निःशक्त। ऐसा होने ही के कारण राजनैतिक अपराधों के प्रति दंडनीति का प्रयोग उपयुक्त भी ठहराया जा सकता है। किंतु इससे उक्त नीति की वास्तविक बीभत्सता में कोई फर्क़ नहीं आता और न वह केवल इसी कारण क्षम्य हो सकती है।

सुविज्ञ पाठकों के हृदय में एक शंका उत्पन्न हो सकती है, जिसका समाधान आवश्यक है। प्रश्न हो सकता है कि हमारे पूर्वज शास्त्रकारों ने भी दंडविधान की रचना क्यों उचित समझी और इस प्रकार एक दूषित प्रथा का क्यों आविष्कार किया। हम बतला चुके हैं कि दंड-प्रयोग द्वारा भी न्यूनातिन्यून एक अस्थायी शांति की स्थापना हो सकती है। मानव-समुदाय अपनी प्रारंभिक अवस्थाओं में अत्यंत सरल स्वभावी तथा निष्पापी होता है। वह पाप तथा दंड के भय से शीघ्र प्रभावित हो जाता है। न उसमें स्वतः अपराधी बनने का साहस होता है और न दंड की तात्कालिक कठोरता * उसे प्रायः अपराधी बनने देती है। इस प्रकार दंड-प्रयोग से उत्पन्न होनेवाले अहित की संभावना बहुत ही कम हो सकती है। फलतः वैसी दशा में शांति भी अधिक टिकाऊ होती है। इसके अतिरिक्त मनुष्य की आदि-कालीन स्थिति को दृष्टि में रखते हुए दंडप्रथा के प्रचलित करने का एक और कारण जान पड़ता है। उस समय समस्त जन-समुदाय असभ्य तो नहीं, किंतु साधारणतः अशिक्षित अवश्य ही होता है। वैसी दशा में उसे अधिकांश में शिक्षित बना देना कोई सहल काम नहीं है। इसका कारण शिक्षकों तथा शिक्षाप्रचार के अन्य साधनों की अनुपलब्धि है। परिणामस्वरूप सर्व मनुष्यों की मानसिक शक्तियाँ इतनी उन्नत अवस्था में नहीं होतीं कि वे दोषमयी प्रवृत्तियों के संशोधनार्थ सूक्ष्म मनुष्योचित उपायों को समझ सकें और तदनुसार आचरण कर सकें। यह बात दण्ड देने-वालों तथा दण्ड पानेवालों—दोनों के विषय में कही जा सकती है। हाँ, सभी मनुष्यों में स्वभावतः इतना ज्ञान तो होता ही है कि वे ठोस बातों का स्वयं अनुभव कर सकें तथा वैसा अनुभव अन्यों को भी करा सकें। फिर वैसी स्थिति में भी सम्भावित अपराधों की रोकथाम के निमित्त कोई प्रबन्ध तो होना ही चाहिए था। अतः उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए दण्डविधान की रचना उचित समझी गई। परन्तु यह न समझना चाहिए कि हमारे प्रतिभासम्पन्न ऋषियों के मस्तिष्क दूरदर्शितावाले भावों से नितान्त रिक्त थे। ऋषिगण निस्सन्देह उन बुराइयों से अभिज्ञ थे, जिनका दण्डप्रयोग के साथ समवाय-संबंध है। उन्होंने आदर्शवादिता की दृष्टि

---

* कठोर दंड चाहे कठोरता का सूचक भले ही माना जाय, परंतु पापावरोधन का सामर्थ्य होता है उसी में। सरल दंड-प्रणाली विशेषतः जब उसमें व्यवसायात्मक प्रयोजनों का समावेश हो, बिलकुल निकम्मी होती है। इंद्रियों की वासनाएँ अतीव बलवती होती हैं। दंड की सरलता उनका दमन नहीं कर सकती। फिर उक्त प्रयोजनों की विद्यमानता में दंड-प्रदाताओं का मुख्य उद्देश्य आर्थिक लाभ ही हो जाता है, न कि अभियुक्तों का सुधार—यदि दंड से सुधार हो सकता हो।

से हिंसा को प्रत्येक दशा में त्याज्य ही ठहराया था। वे यह भी जानते थे कि थोड़ी-से-थोड़ी बुराई भी अपनी आकृतियों द्वारा किस प्रकार घनत्वपूर्ण होकर, कालांतर में मनुष्यों के लिये अत्यंत अनिष्टकर हो सकती है। उनके दिल में स्थायी अथवा दीर्घकालीन शुद्ध शांति की स्थापना के निमित्त भी काफ़ी ख़याल था। अतः उन्होंने दण्डविधान के साथ ही प्रायश्चित-विधान की भी रचना करके अपनी वास्तविक पुण्यप्रियता का परिचय दिया है।

प्रायश्चित आत्मा के शुद्धिकरण की एक अचूक विधि है। यह भी एक प्रकार का दण्ड ही है, परन्तु साधारण दण्ड से जो बुराइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं, उनकी यहाँ तनिक भी गुंजाइश नहीं। आत्मा स्वयं अपने अपराधों को स्वीकार करता तथा उनके द्वारा जिस सार्वजनिक अहित का प्रकट या अप्रकट रूप से घटित होना अवश्यम्भावी है, उसे भी अनुभव करता है। अतः वह अपने-आप दण्ड भोगने को तैयार हो जनता के समक्ष एक अनुकरणीय उदाहरण रखता है। ऐसा करने में उसे सदैव हर्ष ही होता है। वह प्रायश्चित को हिंसायुक्त दंड नहीं, प्रत्युत निजी उन्नति का साधन समझता है, अतः स्वयं उन्नत हो सार्वजनिक उन्नति का साधन बनता है। परिणाम, मानव-समाज के लिये सर्वथा हितकर ही है; तथा इस प्रकार जिस शान्ति का प्रादुर्भाव हो सकता है, उसका मूल्य अचिन्त्य है। फिर यह कहने की ज़रूरत नहीं कि शांति की स्थापना के लिये ही दंड-भोग अनिवार्य है।

कहा जा सकता है कि ईश्वरीय दंड-प्रवाह संसार में अहर्निश जारी है, जिसमें काफ़ी कड़ाई दिखती है, तो मनुष्य भी वैसा ही क्यों न करे; हम कहेंगे कि ईश्वर के सामने मनुष्य का होना न होने के बराबर है। यही बात उसके ज्ञान के विषय में भी कही जा सकती है। वस्तुतः मनुष्य न तो यही समझता है कि अमुक अपराध कैसा है और न यही कि उसके लिये दंड कितना होना चाहिए। उसमें यह भी सामर्थ्य नहीं कि दंड को काम में लाते हुए वह अपने में वैसी शान्ति बनाए रक्खे जैसी प्रकृत जगत् में स्वतः बनी रहती है। फिर सभी दशाओं में "बगुला हंस की चाल चलना चाहता है"—सो क्यों ? यह समझ में नहीं आता। यहाँ यह बात भी विचारणीय है कि कुचेष्टाओं के उत्पन्न होने से मानवीय आत्माओं में सहज पश्चात्ताप का भाव न्यूनाधिक अंश में किसी-न-किसी समय स्वयं ही पैदा हो जा है। आत्मा में उचित विकास होने पर उक्त भाव ही उचित प्रायश्चित का रूप धारण कर सकता है। निष्क निकलता है कि दंडप्रदान के पूर्व * दयालु परमात्मा भी पापों की निवृत्ति और भावी सुधार के लिये मनुष्य को प्रायश्चित ही की ओर प्रेरित करता है। यदि प्रायश्चितरूपी तपस्या में कमी-वेशी हुई, तो भी कोई हर्ज नहीं। दोनों दशाओं में तपस्वी का सुधार ही होता है—कमी की दशा में आंशिक सुधार शनैः-शनैः पू (जितना पूर्ण हो सकता है) सुधार का हेतु ब जाता है।

यह ठीक है कि मनुष्यों में मनुष्यत्व भी है और पशुत्व भी। ऐसा न होता, तो न उत्थान होता न पतन न मुक्ति होती और न बंधन होता। संक्षेप में ऐसी दशा में सृष्टि की ही आवश्यकता न थी। यह द जीवात्मा की अपूर्णता की परिचायक है। किंतु इससे न समझना चाहिए कि मनुष्यों के लिये पशुत्व कार्यों का करना भी उचित है। मनुष्य का अस्ति उत्थान के लिये है। उसमें क्रियमाण कर्मों के सं दनार्थ सामर्थ्य है। परंतु इसके लिये शरीर इंद्रियों का होना अनिवार्य है। † इंद्रियों में भलाई है और बुराई भी। भलाई के लिये उनका दमन है। इस दमन के मानी है उन्हें कुमार्ग से हटाकर सु पर चलाना। सुमार्ग में न हिंसा है, न अनीति। मानवीय अपूर्णता के आधार पर दंडप्रथा का सम करना केवल भ्रम है। अपूर्णता में आधिक्य होना ठीक नहीं। उसमें तो निरंतर न्यूनता ही होनी चाहि

यहाँ तक हमने युक्तियों द्वारा दंडनीति का अ चित्य दिखलाने की कोशिश की है। अब सुधार-संबंधी उपायों का भी वर्णन करेंगे। पूर्व लि पंक्तियों से यह बात प्रकट हो जाती है कि पापमार्जन

---

* भोग का निर्माण संचित कर्मों के अनुसार ही होता है— सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः (योगदर्शन–२-१३)

† चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम् (न्यायदर्शन १-११) अ क्रिया, अर्थ और इन्द्रियों के आश्रय को शरीर हैं।

सर्वोत्तम उपाय प्रायश्चित है। परंतु संसार की वर्तमान दशा में यह आशा नहीं की जा सकती कि जनता समष्टि-रूपेण स्वयं ही प्रायश्चित के लिये उद्यत हो। इसके लिये ज़रूरत है पर्याप्त आत्मिक विकास की। यह काम शिक्षाप्रचार द्वारा हो सकता है—हाँ, शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जिसमें धर्म के कम-से-कम साधारण एवं सर्व-मान्य तत्त्वों का पूर्ण समावेश हो। प्रयत्न श्रमसाध्य अवश्य ही है, परंतु परिस्थितियों के सुधार द्वारा जिस स्थायी अथवा दीर्घकालीन उन्नति एवं शांति का होना निश्चित है, उसे देखते हुए वह पराजीय भी अवश्य ही है। मानवी जीवन का लक्ष्य अत्यंत पवित्र तथा उच्च है, जिसके माध्यम हैं उन्नति एवं शांति। अस्तु। अनेक भली-बुरी परिस्थितियों में होकर गुज़रने तथा विविध अनुभवों की प्राप्ति होने के कारण, आदि-कालीन अवस्थाओं की अपेक्षा सम्प्रति समझने और करने के ख़याल से, मनुष्य में इतनी क्षमता है कि वह सुधार के निमित्त उक्त विधि का अवलंब ग्रहण करे।

अपराधों का एक हेतु और माना गया है—वह है अपराधियों में मस्तिष्क-विकार का होना। आज कतिपय योरपीय विचारकों का यही मत है। अशिक्षित रहना भी उक्त विचार का कारण हो सकता है। यह त्रुटि तो शिक्षा से दूर हो सकती है। बहुधा ऐसा भी हो सकता है कि स्वास्थ्य-संबंधी विकार मानवी मस्तिष्क को ही शिक्षा-प्राप्ति के अयोग्य बना दे। इसके लिये आवश्यकता है उचित चिकित्सा की, पूर्व इसके कि शिक्षा द्वारा सुधार का उद्योग किया जाय। फिर यह सोचने की बात है कि चाहे मस्तिष्क-विकार का हेतु शिक्षणाभाव हो चाहे अस्वस्थता, परंतु ऐसी दशा में अपराधी आधुनिक दंडप्रथा के अनुसार दंडनीय क्योंकर हो सकता है? हाँ, वह दंडनीय अवश्य है। यदि दुष्कृत्यों से आत्मा में कभी कुछ घृणा भी पैदा होती है, तो वह घृणा के मर्म तथा अपने उत्तरदायित्व के महत्त्व को पर्याप्तरूपेण नहीं समझता।

बहरहाल समुचित समाज-संगठन, शिक्षा तथा चिकित्सा द्वारा अपराधी की आत्मा को इतना उन्नत किया जा सकता है कि वह मनुष्योचित कर्तव्यों को जानते हुए मनुष्य की तरह दुनिया में रहना सीखे। इस प्रकार न केवल प्रकट अपराधों, प्रत्युत अप्रकट पापवासनाओं की भी निवृत्ति हो सकती है। हाँ, उपर्युक्त सभी उपायों के असफल होने पर अपराधी को एकांतवास की दशा में रखकर मानव-समाज को उसके द्वारा पहुँचनेवाली हानि से बचाया जा सकता है। पर उपर्युक्त बातों के न होते हुए यह तो प्राय: प्रत्येक दशा में अत्यंत आवश्यक ही है कि अपराधी को सदैव ऐसे वातावरण में रक्खा जाय, जो सत्संगजनित, प्रेममय एवं स्वच्छ प्रभाव से परिपूर्ण हो, जहाँ रहकर उसकी आत्मा को कुछ-न-कुछ सोचने समझने तथा सुधरने का ही अवसर मिले। यह भी एक प्रकार की शिक्षा ही है और ऐसी शिक्षा जिसमें पर्याप्त शक्ति होते हुए भी विशेष सुविधा एवं सरलता है। इतना भी न होना अपराधिवर्ग तथा मानव-समाज के प्रति घोर अन्याय है—वह समाज जिसे फलत: पापवृद्धि के कारण अधिकाधिक ही भुगतना पड़ेगा। अस्तु।

मनुष्य को सर्वप्रथम मनुष्य बनकर कर्तव्यपालन करना चाहिए। शारीरिक दंड की व्यवस्था को केवल ईश्वर पर छोड़ देना होगा जिसे ऐसा करने में किसी मानवी साहाय्य की अपेक्षा नहीं। बहुत संभव है कि अब से बहुत पूर्व किसी बीच के समय में संशोधन के ये सभी उपाय संसार में प्रचलित रहे हों। परंतु मनुष्य अल्पज्ञ है, अत: तनिक-तनिक-सी भूलचूक से उसकी अवनति हो सकती है—चाहे वह जितना उन्नत हो जाय, जिस प्रकार कि वह ज्ञानोपलब्धि द्वारा सावधानी से चलते हुए अवनत दशा से भी क्रमश: उन्नत हो जाता है। अस्तु। हमारा ख़याल ठीक है, तो उन उपायों को काम में लाने की पुन: आवश्यकता है।

किंतु वस्तुत: सबसे पहले ज़रूरत है आधुनिक दंडप्रथा को बिना शर्त एकदम उठा देने की और महामति स्पेंसर (Herbert Spenser) के शब्दों में यह समझने की कि—

The truth is that savageness begets savageness and gentleness begets gentleness.

अर्थात् सच तो यह है कि बर्बरता से बर्बरता और शालीनता से शालीनता की उत्पत्ति होती है। इसका प्रभाव बड़ा ही उत्तम होगा—पहले परोक्ष फिर प्रत्यक्ष! यह समझना भूल है कि इससे अपराधों की संख्या बढ़ जायगी। वह तो अब भी ख़ूब बढ़ी हुई है

और बढ़ भी रही है । अमानुषिक दंडप्रणाली उक्त वृद्धि के रोकने में नितांत असफल रही है । तब क्या उसे केवल मिटा देने से तनिक भी सफलता हो सकती ? इतना तो अवश्य होगा कि दंडजनित कुप्रथाओं से दंड पानेवाले तथा देनेवाले दोनों बच जावेंगे । परिणाम होगा, अपराधों में न्यूनता का हो जाना । इस न्यूनता को न्यूनतर बनाने में साधारण मनुष्यत्वपूर्ण परिस्थिति मदद देगी जो उस समय आकर स्वतः उपस्थित होगी । इस प्रकार समस्त जनसमुदाय सहज ही शुद्धतर अतः शांत दिखने लगेगा । महर्षि पतंजलि कहते हैं—मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्याऽपुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्—अर्थात् 'सुखियों में मित्रता, दुखियों पर दया, पुण्यात्माओं पर हर्ष और पापियों में उपेक्षा की भावना से चित्त निर्मल होता है ।* इस कथन का संबंध मानवी आदर्श से है, जिसकी प्राप्ति के लिये ही प्रयत्नशील होना मनुष्यों का कर्तव्य है ।

काम को बुरा जानते हुए भी करते रहना पूरी बेहयाई और पाप मोल लेना है । अब मनुष्य यह जानने में प्रायः समर्थ है, किंतु उसे आध्यात्मिकता में इतना विश्वास नहीं कि वह शांति का यथोचित प्रबंध किए विना हमारे उक्त प्रस्ताव को स्वीकार कर ले । ऐसी दशा में हम यही ग़नीमत समझेंगे कि वह महात्मा गांधी के निम्नलिखित वाक्य पर ध्यान देते हुए अपराधियों के सुधार के निमित्त कोशिश करे—

Imperfect ourselves, we must be tender towards others.†

अर्थात्, स्वयं अपूर्ण होते हुए हमें अन्यों के प्रति आर्द्र होना चाहिए । यहाँ कार्पेंटर (Carpenter) महोदय का यह कथन भी विचारणीय है कि—

No man can in act or externally be quite true to the ideal though in spirit he may be. If he is to live in this world and be mortal, it must be by virtue of some partiality, some defect. ‡

अर्थात्, "कोई मनुष्य कार्यमूलक वा बाह्य रीति पर आदर्श का सच्चा और पूरा उपासक नहीं हो सकता, चाहे वह मानसिक रीति पर भले ही हो । यदि उसे इस लोक में मर्त्य प्राणी होकर ही रहना है, तो वह निश्चय ही किसी पक्षपात या क़िसी त्रुटि के आधार पर ऐसा कर सकेगा ।" अतः यदि हम वस्तुतः सुधार के इच्छुक हैं, तो हमें सामूहिक दृष्टि से अपनी अपूर्णताओं में यथासाध्य पूर्णता लाने का प्रयत्न करना होगा । फिर प्रयत्नों का तो सदैव ऐसा ही होना ज़रूरी है, जो उसे हमारी अपूर्णता में बढ़ती न करे ।

इक़बाल वर्मा सेहर

---

* योगदर्शन, स्वामी तुलसीराम-कृत भाष्य से उद्धृत ।

† यंग-इंडिया (Young India) नामी पुस्तक से ।

‡ Civilisation: Its Cause and Cure वाली पुस्तक से ।

दीन-भक्त

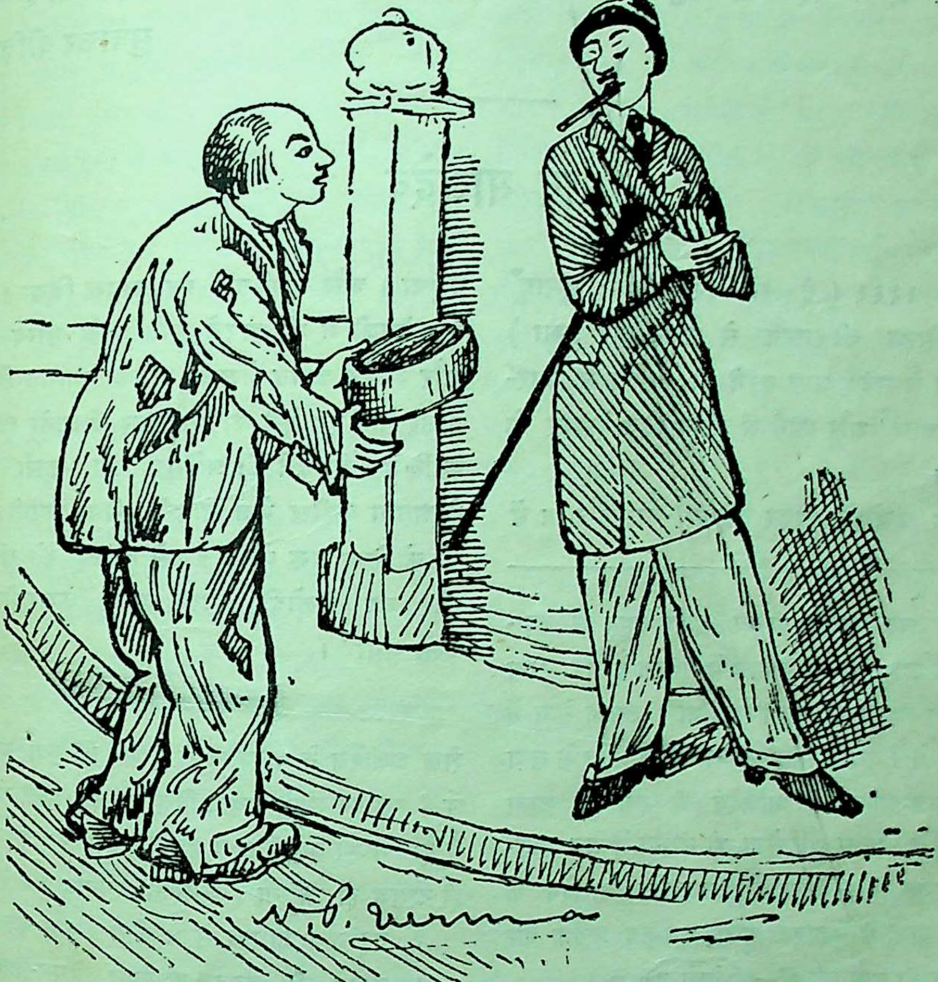

अज्ञात

किस अनजाने प्राणधन का अनूठा गान—
गूँजता है रातदिन कानों में सितार-सा।
किस अनदेखे रूपवान् का अनूप रूप—
हृदय पै छाया रहता है मृदु भार-सा।

किसके लिये न-जाने अपने ही आप कभी—
आँसुओं की धार ही से बन जाता हार-सा।
किसके लिये न-जाने सागर के ज्वार-जैसा—
मानस के घट से छलकता है प्यार-सा।

सुधाकर दीक्षित 'सुधा'

राव मालदेव

वि० सं० १५९९ (ई० स० १५४२) में हुमायूँ (सिन्ध की तरफ़ से उच्च होता हुआ) राव मालदेवजी से मदद प्राप्त करने की आशा से मारवाड़ की तरफ़ चला[1] और मार्ग में तीन दिन देरावर के क़िले में रहा[2]।

वहाँ से वह फलोदी होकर देईभ्रर[3]-नामक गाँव में पहुँचा। और जोगीतर्थ पर मुकाम किया। इस पर रा मालदेवजी ने भी अपने अतिथि के योग्य ही ख़िलअ और मोहरें आदि भेजकर उसका स्वागत किया तथा ह प्रकार से मदद देने का वादा कर बीकानेर का परगना के लिये सौंप देने की प्रतिज्ञा[1] की। इसी बीच शेर ने अपना वकील भेज मालदेवजी को अपनी तरफ़ मिला की कोशिश शुरू की। इससे हुमायूँ को संदेह हो ग और वह फलोदी होता हुआ ऊमरकोट की त चला गया[2]।

---

[1] उस समय राव मालदेवजी का प्रताप बहुत ही बढ़ा-चढ़ा था। तुज़ुक जहाँगीरी की भूमिका में लिखा है कि 'राव मालदेव एक बहुत बड़ा प्रभावशाली राजा था। उसकी सेना में ८०,००० सवार थे। यद्यपि राना सांगा, जो कि बाबर से लड़ा था, धन और साज-सामान में मालदेव की समानता करता था, तथापि राज्य के विस्तार और सेना की संख्या में राव मालदेव उससे बढ़कर था। इसके अलावा जब-जब मालदेव के सैनिकों का राना सांगा से मुक़ाबला हुआ, तब-तब प्रत्येक बार विजय मालदेव के ही हाथ रही।'—(देखो पृ० ७)

तबकाते अकबरी में लिखा है कि बादशाह हुमायूँ लाचार होकर मालदेव की तरफ़, जो उस समय हिंदुस्थान के बड़े राजाओं में था और जिसकी ताक़त और फ़ौज की बराबरी दूसरा कोई राजा नहीं कर सकता था, रवाना हुआ।—(देखो पृ० २०५)

[2] यह क़िला उस समय मारवाड़ और जैसलमेर की सरहद पर था और इस पर मालदेवजी का अधिकार था। हुमायूँ का आफ़ताबची जौहर अपनी 'तज़करे अल् वाक़यात'-नामक पुस्तक में लिखता है कि 'देरावर के क़िले को देखकर शेख़ अलीबेग ने बादशाह से पूछा कि क्या यह क़िला लूँ ? इस पर उसने जवाब दिया कि इस क़िले को लेने से मैं दुनिया का बादशाह न हो सकूँगा, पर राव मालदेव ही नाराज़ हो जायगा (अँगरेज़ी अनुवाद पृ० ५३)।

[3] यह गाँव जोधपुर से ४ कोस ईशान कोन में है।

[1] हुमायूँ की बहन गुलबदन बेगम-लिखित (हु नामा) इतिहास में इस घटना का उल्लेख है। (नागरी-प्र सभा काशी द्वारा प्रकाशित हिंदी-अनुवाद पृ० १०२)।

[2] फ़ारसी तवारीख़ों में लिखा है कि शेरशाह के भनों से राव मालदेवजी ने हुमायूँ को पकड़कर उसके हाथ देने का इरादा कर लिया था और इसी से जब हुमायूँ की तरफ़ भागने लगा, तब उन्होंने उसको पकड़ने के अपनी सेना उसके पीछे रवाना की। परंतु इसमें उसे हो लौटना पड़ा।

पहले लिखा जा चुका है कि वीरमदेव और भीम नित्य ही शेरशाह को मालदेवजी के विरुद्ध भड़काते रहते थे। परंतु इस हुमायूँवाली घटना से उन्हें इसके लिये और भी अच्छा मौक़ा मिल गया। इस प्रकार

मारवाड़ की हस्तलिखित ऐतिहासिक पुस्तकों में यह घटना इस प्रकार लिखी मिलती है —

शेरशाह से हारकर जब बादशाह हुमायूँ मालदेवजी से सहायता प्राप्त करने को जोधपुर के निकट आकर ठहरा, तब रावजी ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। इसके बाद हुमायूँ ने जोधपुर के निकट रहना अनुचित समझ फलोदी में अपना मुक़ाम करने की इच्छा प्रकट की। इसे इन्होंने भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। जब इसी के अनुसार वह देईझर से फलोदी को रवाना हुआ, तब मार्ग के ग्रामों में होनेवाले उपद्रव को रोकने के लिये इन्होंने अपने कुछ सैनिक भी उसके पीछे भेज दिए। परंतु शाही लश्कर को इससे उलटा यह संदेह हो गया कि शायद ये लोग मार्ग में हमको मारकर शाही ख़ज़ाना लूटने को ही साथ हुए हैं।

इसके बाद एक दुर्घटना और हो गई। जिस समय हुमायूँ फलोदी पहुँचा, उस समय उसके कुछ सैनिकों ने मिलकर एक गाय को मार डाला। इससे रावजी की सेना में घोर असंतोष फैल गया। यह देख हुमायूँ का संदेह और भी बढ़ गया और वह फलोदी को छोड़ सिंध की तरफ़ चल पड़ा। परंतु रावजी के सैनिकों ने समझा कि हिंदुओं के धर्म का अपमान करने को ही शाही सैनिकों ने यह गोवध किया है। इससे वे लोग उत्तेजित हो गए और उन्होंने जाते हुए बादशाह का पीछा किया। सातलमेर में पहुँचते-पहुँचते दोनों पक्षों के बीच मुठभेड़ हो गई। परंतु अंत में अपने पुरुषों की संख्याधिकता के कारण हुमायूँ बचकर निकल गया और जैसलमेर होता हुआ ऊमरकोट जा पहुँचा।

हमारी समझ में मारवाड़ की ख्यातों का लेख ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है, क्योंकि यदि वास्तव में राव मालदेवजी शेरशाह से मिलकर बादशाह हुमायूँ को, जो कि अपने बिगड़े हुए समय में जोधपुर से ४ कोस के फ़ासले पर ठहरा हुआ था, पकड़ना चाहते, तो न तो ८०,००० सैनिकों के व्यूह से बचकर उसका निकल भागना ही संभव होता, न उसके फलोदी जाने के समय वे इतने थोड़े सैनिक ही उसके पीछे भेजते कि जिनसे सातलमेर में इतनी आसानी से वह बचकर निकल जाता। अकबरनामे के अनुसार उस समय हुमायूँ के साथ केवल २० अमीर और कुछ थोड़े अनुचर तथा सैनिक थे। उसमें यह भी लिखा है कि मालदेव के विरोध का हाल मालूम होने पर हुमायूँ ने तरदद्दुदी बेगख़ाँ और मुनअमख़ाँ को कुछ फ़ौज देकर हुक्म दिया कि वे लोग सामने जाकर मालदेव की सेना का मार्ग रोकें। परंतु ये अमीर रास्ता भूलकर दूसरी तरफ़ निकल गए। इससे जैसे ही बादशाह फलोदी से चलकर सातलमेर के पास पहुँचा, वैसे ही उसे मालदेव की सेना दिखाई दी। इस पर बादशाह ने ज़नानी सवारियों को पैदल करके उनके घोड़े अपने सैनिकों को सवारी के लिये दे दिए और उनके ३ दल बनाकर फ़तेहअलीबेग को उसके ३-४ भाइयों के साथ शत्रुसेना के सामने भेजा। उसने भी तत्काल वहाँ पहुँच एक तंग जगह से निकलती हुई मालदेवजी की सेना पर हमला कर दिया। इससे थोड़ी ही देर के युद्ध में राजपूत सैनिक परास्त होकर भाग गए। इसके बाद बादशाह जैसलमेर की तरफ़ रवाना हुआ और उसके वहाँ पहुँचते-पहुँचते रास्ता भूले हुए वे अमीर भी लौटकर उससे आ मिले।

(देखो भाग १, पृ० १८१)

परन्तु 'तबक़ाते अकबरी' में मालदेवजी की सेना के मुक़ाबले में जानेवाले शाही सैनिकों की संख्या कुल २२ ही लिखी है। यहाँ पर तबक़ाते अकबरी की एक घटना का उल्लेख कर देना और भी उचित समझते हैं। इससे राव मालदेवजी के वीर सैनिकों की वीरता का कुछ अनुमान हो जायगा—

जिस समय बादशाह हुमायूँ मालदेव के इलाक़े से ऊमरकोट की तरफ़ रवाना हुआ, उस समय राव के दो हिन्दू जासूस शाही सेना में आए हुए थे। परंतु जब वे पकड़े जाकर बादशाह के सामने लाए गए और बादशाह ने उनसे असली हाल जानने की कोशिश शुरू की, तब उन दोनों ने अपने को बंधन से छुड़वाकर पास में खड़े हुए दो मनुष्यों के कटार छीन लिए और तत्काल शाही सेना के १७ पुरुषों और बादशाह की सवारी के घोड़े के साथ कई अन्य घोड़ों को मारकर वीरगति को प्राप्त हुए।

(देखो पृ० २०६)

गुलबदन बेगम के हमायूँनामे से भी इस बात की पुष्टि होती है।

(देखो पूर्वोक्त अनुवाद पृ० १०३)

हुमायूँ के ऊमरकोट पहुँचने पर उसी की मदद से सोढा राजपूतों ने फिर से ऊमरकोट पर अधिकार कर लिया था।

उनके बहुत कुछ कहने-सुनने और प्रलोभन देने से वि० सं० १६०० (ई० सन् १५४३) में शेरशाह ने आगरे से मालदेवजी पर चढ़ाई कर दी। इसकी सूचना पाते ही ये भी अपनी सेना तैयार कर अजमेर की तरफ़ आगे बढ़े और उसके आने की प्रतीक्षा करने लगे। उस समय रावजी के पास ८०,०००[1] वीर योद्धा थे। जब इनके इस प्रकार तैयार होकर सम्मुख रणांगण में प्रवृत्त होने का समाचार शेरशाह को मिला, तब उसका सारा उत्साह ठंडा पड़ गया और वह मार्ग से ही लौट जाने का विचार करने लगा। परंतु वीरमदेव आदि ने उन सरदारों को भी, जिनके प्रदेशों पर मालदेवजी ने ज़बरदस्ती अधिकार कर लिया था, शेरशाह से मिलाया और हर तरह से उसका उत्साह बढ़ाकर पीछे लौटने से रोक दिया। इसके बाद शेरशाह ने एक सुभीते के स्थान पर अपनी छावनी डाल दी और उसकी रक्षा के लिये रेत से भरे बोरों को चारों तरफ़ ऊपर-तले रखवाकर सुदृढ़ कोट-सा तैयार करवा लिया। क़रीब एक मास तक दोनों सेनाएँ मोरचे बाँधे एक दूसरे के सामने पड़ी रहीं। हाँ, समय-समय पर इन दोनों के बीच अनेक छोटे-बड़े युद्ध भी होते रहते थे, परंतु राव मालदेवजी की वीर राठोड़वाहिनी के सामने शेरशाह की एक न चली। इससे हताश होकर वह एक बार फिर लौट जाने का विचार करने लगा। यह देख वीरम ने उसे बहुत कुछ समझाया। परंतु जब इस पर भी वह सम्मुख युद्ध में लोहा लेने की हिम्मत न कर सका, तब अंत में वीरम ने उसे यह भय दिखाया कि यदि आप इस प्रकार घबराकर लौटेंगे, तो रावजी की सेना पीठ पर आक्रमण कर आपके बल को आसानी से नष्ट कर डालेगी। परंतु जब इतने पर भी शेरशाह युद्ध के लिये सहमत न हुआ, तब वीरमदेव ने एक कपटजाल रचा। उसने मालदेवजी के बड़े-बड़े सरदारों के नाम कुछ झूठे फ़रमान लिखवाकर रावजी की सेना में भिजवा दिए और साथ ही ऐसा प्रबंध करवा दिया कि वे सब फ़रमान उन सरदारों के पास न पहुँचकर रावजी के पास पहुँच गए[1]। इससे रावजी को अपने सरदारों पर संदेह हो गया। यद्यपि सरदारों ने हर तरह से अपने स्वामी का समाधान करने की चेष्टा की, तथापि उनका संदेह निवृत्त न हो सका और वे रात्रि में ही पीछे लौट पड़े। यह देख इनके जैता, कूँपा आदि कई सरदारों ने गिररी (जैतारण परगने के गाँव) से पीछे हटने से इनकार कर दिया। उन्होंने निवेदन किया कि इसके आगे का प्रदेश तो स्वयं आपने ही विजय किया था, अतः यदि उसे छोड़ दिया जाय, तो हमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। परंतु यहाँ से पीछे का देश आपके और हमारे पूर्वजों का विजय किया हु इसलिये यहाँ से हटना हमें किसी प्रकार भी

---

[1] तबक़ाते अकबरी और तारीख़ फ़रिश्ता में राव मालदेवजी की सेना में ५०,००० सैनिकों का होना लिखा है।

(देखो क्रमशः पृ० २९२ और जिल्द १, पृ० ३३७)

[1] मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि इधर तो वीरम ने इन फ़रमानों को ढालों के अन्दर की गद्दियों में सिलवाकर उन्हें अपने गुप्तचरों द्वारा मालदेवजी के सरदारों के हाथ बिकवा दीं और उधर रावजी को सूचना दी कि यद्यपि आपने मेरे साथ बहुत ज़्यादती की है, तथापि मैं आपको सूचना दे देना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि आपके कई सरदार शेरशाह से मिल गए हैं। यदि आपको विश्वास न हो तो, उनकी नई ढालों की गद्दियाँ फड़वाकर स्वयं देख लें। इस पर राबजी ने जब वे ढालें मँगवाकर उनकी गद्दियाँ खुलवाईं, तब उनमें से वे जाली फ़रमान निकल आए।

मारवाड़ की तवारीख़ों में यह भी लिखा है कि जिस समय यह कपट रचा गया था, उस समय बादशाह का मुक़ाम [illegible] और मालदेवजी का गिररी में था।

मुन्तख़बुललुबाब में लिखा है कि ये जाली पत्र चालाकी से राव के पास पहुँचा दिए गए थे। इनमें एक पत्र गोविंद (कूँपा) के नाम का भी था। इस गोविंद (कूँपा) ने राव के युद्धस्थल से हट जाने पर पठानों से ऐसी वीरता से युद्ध किया कि उसने हज़ारों आदमी मार डाले। साथ ही उसके हमलों से शेरशाह की फ़ौज के पैर उखड़ गए और वह युद्धस्थल से भाग ही चुकी थी कि इतने में नई फ़ौज के साथ जलालख़ाँ जलवानी एकाएक वहाँ आ पहुँचा। इससे पठान विजयी हो गए।

(देखो जिल्द १, पृ० १००-१०१)

कहीं-कहीं पत्रों के साथ ही सामान ख़रीदने के बहाने रावजी की सेना में फ़ीरोज़ी सिक्कों के भिजवा देने का भी उल्लेख मिलता है।

अंगीकार नहीं हो सकता। इसपर भी मालदेवजी को उनके कहने पर विश्वास नहीं हुआ और वे जोधपुर की तरफ़ रवाना हो गए। यह देख जैता, कूँपा आदि कुछ सरदार १२,००० सवारों के साथ पलट पड़े और रात्रि के अंधकार में ही शेरशाह की सेना पर हमला कर देने को रवाना हुए। परंतु भाग्य की कुटिलता से ये लोग अंधकार में मार्ग भूल गए, अतः प्रातःकाल के समय इनमें से आधे के क़रीब योद्धा सुमेल के पास शेरशाह के मुक़ाबले पर पहुँचे। यद्यपि ऐसे समय ६,००० राजपूत सैनिकों[1] का ८०,००० पठान सैनिकों से भिड़ जाना बिलकुल ही अनुचित था, तथापि वीर राठोड़ों ने इसकी कुछ भी परवा नहीं की और अपनी मर्यादा की रक्षा के लिये शत्रुसेना में घुसकर वह तलवार बजाई कि एक बार तो पठानों के पैर तक उखड़ गए। शेरशाह भी अपनी इस पराजय से दुखित हो भागने को तैयार हो गया। परंतु इतने ही में उसका एक सरदार जलालख़ाँ जलवानी एक बड़ी और ताज़ा-दम फ़ौज लेकर वहाँ आ पहुँचा। राठोड़ सरदार तो पहले से ही संख्या में अल्प थे और अब तक के युद्ध में उनकी संख्या और भी अल्पतर हो चुकी थी। इससे पासा पलट गया। सारे-के-सारे राठोड़ योद्धा अपने देश और मान की रक्षा के लिये सम्मुख रण में जूझकर मर मिटे। जब यह संवाद शेरशाह को मिला, तब इस पर पहले तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ; परंतु कुछ देर बाद उसके दिल का बोझ हलका हो जाने पर उसके मुँह से ये शब्द निकल पड़े[2]—

"ख़ुदा का शुक्र है कि किसी तरह फ़तह हासिल हो गई, वरना मैंने एक मुट्ठी बाजरे के लिये हिंदुस्थान की बादशाहत ही खोई थी।"

जिस समय राव मालदेवजी को अपने सरदारों की इस वीरता और स्वामिभक्ति का सच्चा समाचार मिला, उस समय वे बहुत ही दुःखी हुए। परंतु समय हाथ से निकल चुका था। साथ ही प्रधान-प्रधान सरदार भी युद्ध में मारे जा चुके थे। अतः सिवा चुप रहने के और कोई मार्ग ही नहीं था। इससे वे सिवाने की तरफ़ चले गए।

इस प्रकार कपट और भाग्य की सहायता से विजयी होकर शेरशाह ने जोधपुर के क़िले को घेर लेने का प्रबंध किया। यद्यपि वहाँ के सरदारों ने भी बड़ी बहादुरी के साथ इसका मुक़ाबला किया, तथापि अंत में वे सब-के-सब मारे गए[1]। इस प्रकार वि० सं० १६०१ (ई० स० १५४४) में यह क़िला भी शेरशाह के अधिकार में चला गया! इसी अवसर पर उसने मेड़ता राव वीरमदेव को और बीकानेर राव कल्याणमलजी को लौटा दिया, तथा अपनी विजय की यादगार में जोधपुर में दो मसजिदें बनवाने की आज्ञा दी। इनमें की एक तो क़िले पर और दूसरी थूलेलाव तालाब के पास बनवाई गई[2] थी। इसी प्रकार उसके सेनापति ने क़िले के उत्तर-पूर्व की तरफ़ से बाहर आने-जाने के लिये एक रास्ता भी निकाला था। इसके बाद चारों तरफ़ अपने थाने बिठाकर[3] और जोधपुर का प्रबंध ख़वासख़ाँ को सौंप[4] कर वह (अजमेर से)

---

[1] तबक़ाते अकबरी में २०,००० सैनिक लिखे हैं। परंतु उसमें यह भी लिखा है कि इन बीस हज़ार सवारों में से रात में रास्ता भूल जाने के कारण सिर्फ़ ५ या ६ हज़ार सवार शेरशाह की सेना के क़रीब पहुँचे। बड़ी घमसान लड़ाई हुई। यहाँ तक कि राजपूत घोड़ों से उतरकर शेरशाह की फ़ौज से चिमट गए और कटार तथा जमधर से ख़ूब लड़े। परंतु शेरशाही फ़ौज बहुत ज़्यादा थी। इसी से उसने चारों ओर से घेरकर बहुत-से राजपूतों को मार डाला। इस फ़तेह के पीछे, जो शेरशाह की ताक़त से बाहर थी, वह (शेरशाह) रणथंभोर की तरफ़ रवाना हुआ।—(देखो पृ० २३२)

[2] इस युद्ध का हाल अधिकतर फ़ारसी तवारीख़ फ़रिश्ता और मुन्तख़िबुललुबाब से ही लिया गया है। (तवारीख़ फ़रिश्ता भा० १, पृ० २२७-२२८ और मुन्तख़िबुललुबाब हिस्सा १, पृ० १००-१०१)

[1] उस समय क़िले की रक्षा करने में जो बड़े-बड़े सरदार मारे गए थे, उनमें के कुछ की छतरियाँ अब तक क़िले में विद्यमान हैं।

[2] पहली मसजिद का चिह्नस्वरूप एक छोटा-सा पीर का स्थान जैपोल से क़िले में घुसते ही दाहिने हाथ की तरफ़ अब तक मौजूद है और दूसरी का अवशिष्टांश शहर में फुलेलाव तालाब के दरवाज़े के भीतर का पीर का ताक है।

[3] ख्यातों के अनुसार उसी समय नागोर पर भी शेरशाह का अधिकार हो गया था।

[4] इसकी क़बर आजकल शहर में ख़वासख़ाँ (ख़ासगा) पीर की दरगाह के नाम से प्रसिद्ध है।

रणथंभोर की तरफ़ चला गया। परंतु वि० सं० १६०२ (ई० स० १५४५) में ही कालिंजर में उसकी मृत्यु हो गई।

क़रीब डेढ़ वर्ष तक तो मारवाड़ में मुसलमानों का ही ज़ोर रहा। परंतु इसके बाद राव मालदेवजी ने जालोर और परबतसर के परगनों से सेना संग्रह कर पाती-नामक गाँव (भाद्राजण के पास) में अपना निवास क़ायम किया और कुछ समय के भीतर सब प्रबंध ठीक हो जाने पर वि० सं० १६०३ (ई० स० १५४६) में भांगेसर (पाली परगने) के शाही थाने पर हमला कर दिया। कुछ ही देर के घमसान युद्ध के बाद पठान भाग गए। इस प्रकार वहाँ पर रावजी का अधिकार हो जाने पर इन्होंने जोधपुर से भी पठानों को मार भगाया।

अगले वर्ष (वि० सं० १६०४, ई० स० १५४७ में) इनकी सेना ने हम्भोर[1] से फलोदी छीन ली।

इसी वर्ष राव मालदेवजी के और उनके ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह के बीच मनोमालिन्य हो गया। इससे इन्होंने रामसिंह और उसकी माता (कछवाहीजी) को गूंदोज (पाली परगने) में भेज दिया[2]। भटियानी उमादे ने इस राम को अपना दत्तक पुत्र मान लिया था। इसलिये वह भी उसी के साथ वहाँ चली गई।

ख्यातों से ज्ञात होता है कि वि० सं १६०५ (ई० स० १५४८) में रावजी की आज्ञा से जैतावत राठोड़ पृथ्वीराज ने फिर मुसलमानों को भगाकर अजमेर पर अधिकार कर लिया था। यह देख महाराना उदयसिंहजी ने उसे इनसे छीन लेने के लिये अपनी सेना रवाना की। परंतु युद्ध में हारकर उसे लौटना पड़ा।

वि० सं० १६०७ (ई० स० १५५०) में मालदेवजी ने राठोड़ नगा और बीदा[3] को सेना देकर पौकरण पर अधिकार करने के लिये भेजा। उस समय वहाँ पर जैतमाल[1] का अधिकार था। यद्यपि उसने भी रावजी की सेना का सामना करने में कोई कसर उठा न रक्खी, तथापि अंत में वहाँ पर मालदेवजी का अधिकार हो गया और जैतमाल क़ैद कर लिया गया। परंतु जब कुछ ही समय बाद उसे छुटकारा मिला, तब फिर उसने अपने श्वसुर जैसलमेर के रावल मालदेवजी की सहायता से फलोदी पर अधिकार कर लिया[2]। इसकी सूचना पाने पर स्वयं राव मालदेवजी ने फलोदी पर चढ़ाई की। यद्यपि जैतमाल के सहायक भाटियों ने फलोदी की रक्षा का बहुत कुछ उद्योग किया, तथापि राठोड़ वीरों के सामने उन्हें भागना पड़ा और वहाँ पर फिर मालदेवजी का अधिकार हो गया। जिस समय ये भागे हुए भाटी मार्ग में बाहड़मेर के पास पहुँचे, उस समय इनकी विश्रृंखलित दशा को देख वहाँ के रावत भीम ने इनके १,००० ऊँट पकड़ लिए। परंतु रावजी की आज्ञा के अनुसार कुछ ही दिन बाद राठोड़ जैसा और जैतावत पृथ्वीराज ने आकर भीम से वे ऊँट छीन लिए। इस अवसर पर रावत भीम स्वयं भी पृथ्वीराज के हाथ से घायल होकर पकड़ा गया। परंतु रावजी के पास लाए जाने पर उन्होंने उसे छोड़ दिया और पृथ्वीराज की वीरता से प्रसन्न होकर उसे अपने सेनापति का पद दिया।

परंतु रावत भीम ने इस अपमान का बदला लेने के लिये बाहड़मेर पहुँचते ही मालदेवजी के राज्य में उपद्रव शुरू कर दिया। यह देख वि० सं० १६०९ (ई० स० १५५२) में रावजी ने राठोड़ रतनसी और सिंघण को सेना देकर बाहड़मेर पर अधिकार कर लेने की आज्ञा दी। इसी के अनुसार उन्होंने वहाँ पहुँच बाहड़मेर और कोटड़े पर अधिकार कर लिया। रावत भीम हारकर जैसलमेर पहुँचा और उसने रावलजी से कहा कि बाहड़मेर और कोटड़ा जैसलमेर के द्वाररूप हैं। यदि यहाँ पर मालदेवजी के पैर जम गए, तो कुछ काल में ही वे जैसलमेर को भी दबा बैठेंगे। अतः आपको पुराना

---

[1] यह राव सूजाजी का पौत्र और नरा का पुत्र था।

[2] कुछ दिन बाद महाराणा उदयसिंहजी ने अपने जामाता राम को मेवाड़ में बुलवाकर अपने पास रख लिया और बाद में उसे केलवा की जागीर दी। इस पर वह भी सकुटुम्ब वहीं जाकर रहने लगा।

[3] ये बाला राठोड़ भारमल के पुत्र थे।

[1] यह राव सूजाजी के पुत्र नरा का पौत्र और गोविंददास का पुत्र था। तथा समय-समय पर मालदेवजी के राज्य में लूटमार किया करता था। इसी से यह चढ़ाई की गई थी।

[2] कहीं-कहीं पर पूंगल के भाटी जैसा का भी फलोदी पर चढ़ाई करना और हारकर लौटना लिखा मिलता है।

वैर भूलकर[1] मेरी सहायता करनी चाहिए। यह सुन रावल मालदेवजी ने अपने पुत्र हरराज को मय सेना के उसके साथ कर दिया। जब इसकी सूचना रावजी को मिली, तब इन्होंने भी रतनसी और सिंघण को उनका सामना करने की आज्ञा भेज दी। युद्ध होने पर कुछ समय तक तो भाटियों ने भी जमकर राठोड़ों का सामना किया; परंतु अंत में उनके पैर उखड़ गए और भीम का सारा साज-सामान लूट लिया गया।

जैसलमेरवाले अब तक दो बार मालदेवजी के विरुद्ध सेना भेज चुके थे। अतः राव मालदेवजी ने उन्हें दंड देने का निश्चय किया। इसी के अनुसार जब सेना की तैयारी हो चुकी, तब इन्होंने चांपावत (भैरूँदास के पुत्र) जैसा और जैतावत पृथ्वीराज[2] को जैसलमेर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। इन दोनों ने वहाँ पहुँच जैसलमेर को घेर लिया। इसके बाद कुछ ही दिनों के धावों में नगर पर राठोड़ों का अधिकार हो गया और रावलजी को क़िले में घुसकर बैठना पड़ा। अंत में रावलजी ने दण्ड के रूप में कुछ रुपए देकर राव मालदेवजी से सुलह कर ली।

वि० सं० १६१० (ई० स० १५५३) में मालदेवजी ने वीरमदेव के पुत्र और मेड़ते के शासक जैमल को जोधपुर में उपस्थित होने की आज्ञा भेजी[3], परंतु जब उसने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, तब रावजी ने क्रुद्ध होकर स्वयं मेड़ते पर चढ़ाई की और उक्त नगर को घेर लिया। यह देख जयमल भी युद्ध के लिये तैयार हुआ। इसी बीच दूत द्वारा उसने बीकानेर के राव कल्याणमलजी के पास भी सहायता के लिये सेना भेजने की प्रार्थना लिख भेजी। युद्ध होने पर यद्यपि एक बार तो नगर पर रावजी की सेना का अधिकार हो गया, तथापि बाद में बीकानेरवालों की सहायता पहुँच जाने से इन्हें वहाँ से लौट आना पड़ा। इस युद्ध में मालदेवजी का सेनापति पृथ्वीराज और भारमल का पुत्र राठोड़ नगा मारा गया था। अतः वीर देवीदास ने अपने भाई पृथ्वीराज का बदला लेने का विचार कर मालदेवजी से मेड़ते पर चढ़ाई करने की आज्ञा माँगी। इन्होंने भी उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपने पुत्र चंद्रसेनजी को सेना देकर उसके साथ कर दिया। ये लोग मार्ग के गाँवों को लूटते हुए मेड़ते पहुँचे। यह देख जयमल भी युद्ध के लिये तैयार हो गया। इसी अवसर पर विवाह करने को बीकानेर जाते हुए महाराना उदयसिंहजी उधर आ निकले और उन्होंने इस गृहकलह को शांत करने के लिये समझा-बुझाकर देवीदास को तो जोधपुर की तरफ़ लौटा दिया और जयमल को अपने साथ ले लिया। इससे मेड़ते पर बिना युद्ध के ही मालदेवजी का अधिकार हो गया।

पहले लिखा जा चुका है कि वि० सं० १५९५ (ई० स० १५३८) के पूर्व ही जालोर पर बलोचों का अधिकार हो गया था और पठान भागकर गुजरात की तरफ़ चले गए थे। परंतु वि० सं० १६०९ (ई० स० १५५२) के क़रीब मलिकख़ाँ की अधीनता में पठानों ने जालोर पर प्रत्याक्रमण कर वहाँ के बहुत-से बलोचों को मार डाला। इस पर बलोचों के कामदार गंगादास ने सींधलों से मिलकर मालदेवजी से सहायता मांगी। इन्होंने भी अपनी सेना के द्वारा उन्हें क़िले से सही-सलामत निकलवाकर पाटन (गुजरात में) पहुँचवा दिया और जालोर के क़िले पर अपना अधिकार कर लिया। परंतु राठोड़ सेना उस क़िले में पूरी तौर से अपने पैर भी न जमाने पाई थी कि मलिकख़ाँ ने उस पर प्रत्याक्रमण कर दिया। पठान लोग क़िले में रह चुकने के कारण वहाँ की हर एक बात से परिचित थे। अतः राठोड़ों को

---

[1] यह पुराना वैर भागते हुए भाटियों से १,००० ऊँटों के छीन लेने का था। इसका उल्लेख ऊपर आ चुका है।

[2] कहते हैं कि इस युद्ध में एक बार पृथ्वीराज एक बड़ के दरख़्त की आड़ से शत्रुओं पर आक्रमण कर रहा था। अतः शत्रुओं ने उस बड़ को ही काट डालने का इरादा किया। परंतु वीर पृथ्वीराज ने उन्हें सफल नहीं होने दिया। तभी से वह बड़ का वृक्ष 'पृथ्वीराज के बड़' के नाम से मशहूर हो गया।

[3] किसी-किसी ख्यात में मालदेवजी का वि० सं० १६०३ (ई० स० १५४६) में भी मेड़ते पर फ़ौज भेजना और उसी समय बीकानेरवालों का मेड़तेवालों की सहायता करना लिखा मिलता है। परंतु वि० सं० १६१० (ई० स० १५५३) की चढ़ाई के समय उक्त सहायता का उल्लेख छोड़ दिया गया है। इसी प्रकार राव वीरम की मृत्यु का समय भी कहीं पर वि० सं० १६०० और कहीं पर १६०४ लिखा मिलता है।

लाचार होकर क़िला छोड़ देना पड़ा। यह घटना वि० सं० १६१० (ई० स० १५५३) की है। इसके कुछ काल बाद ही अगली पराजय का बदला लेने के लिये रावजी की सेना ने फिर जालोर पर चढ़ाई की। मलिकख़ाँ क़िला छोड़कर भाग गया। और वहाँ पर रावजी का अधिकार हो गया। परंतु दो वर्ष बाद इधर-उधर के लोगों को जमाकर मलिकख़ाँ ने एक बार फिर क़िले पर चढ़ाई कर दी। यद्यपि इस अचानक होनेवाले आक्रमण से मालदेवजी की सेना क़िले में घिर गई, तथापि वह बराबर सात दिन तक शत्रु का सामना करती रही। परंतु इसी बीच इधर तो रसद की कमी हो गई और उधर क़िले के कुछ अन्य निवासी विश्वासघात कर पठानों के प्रलोभनों में पड़ गए। इस पर लाचार हो राठोड़-सेना को क़िला छोड़ना पड़ा[1]।

वि० सं० १६१३ (ई० स० १५५६) में राव मालदेवजी ने बगड़ी के ठाकुर जैतावत देवीदास की अधीनता में हाजीख़ाँ[2] पर सेना भेजी। यह देख उसने महाराना उदयसिंहजी से सहायता माँगी, उन्होंने भी इसे स्वीकार कर अपने सैनिक उसकी मदद में भेज दिए। राठोड़ सेनानायक ने पहले से ही अपनी सेना की संख्या कम होने और महाराना के हाजीख़ाँ से मिल जाने के कारण युद्ध करना उचित न समझा। महाराना की मदद से इसी अवसर पर जैमल ने भी मेड़ते पर फिर से अधिकार कर लिया। परंतु इसके कुछ ही दिनों बाद राना उदयसिंहजी के और हाजीख़ाँ के बीच झगड़ा हो गया[3] और स्वयं महाराना ने बीकानेर के राव कल्याणमलजी और जयमल को साथ लेकर हाजीख़ाँ पर चढ़ाई कर दी। यह देख खान ने मालदेवजी से सहायता चाही। इस पर रावजी ने भी पहले के अपमान का बदला लेने के लिये देवीदास की अधीनता में १,५०० सवार हाजीख़ाँ की मदद को भेज दिए। हरमाड़ा गाँव (अजमेर प्रांत) के पास पहुँचने पर रानाजी के सेना से इनका मुक़ाबला हुआ। यद्यपि सीसोदिए सरदार भी बड़े बहादुर थे, तथापि वे राठोड़ों की तलवार का तेज न सह सके और कुछ ही देर बाद युद्ध से भाग खड़े हुए। इस युद्ध में रानाजी की तरफ़ के योद्धाओं में बालेचा सूजा[1] भी मारा गया था। यह युद्ध वि० सं० १६१३ की फागुन वदि ९ (ई० स० १५५७ की २४ जनवरी) को हुआ था[2]।

इसी बीच रावजी ने मेड़ते पर भी एक सेना भेज दी थी। अतः जिस समय जयमल लौटकर मेड़ते पहुँचा, उस समय तक वहाँ पर भी मालदेवजी का अधिकार हो चुका था और राव मालदेवजी का पुत्र जैमल

---

[1] तारीख़ पालनपुर। जिल्द १ पृ० ७३-७६।

[2] वि० सं० १६१२ के श्रावण (ई० स० १५५५ की जुलाई) में ईरान की सेना की मदद से हुमायूँ ने देहली और आगरे पर फिर अधिकार कर लिया था। परंतु वि० सं० १६१२ के माघ (ई० स० १५५६ की जनवरी) में उसकी मृत्यु हो गई और उसका पुत्र अकबर गद्दी पर बैठा। इस पर पठान हाजीख़ाँ ने जो शेरशाह का गुलाम था अलवर से आकर अजमेर और नागोर पर अधिकार कर लिया। उस समय अजमेर रानाजी के अधिकार में था।

(ईलियट्स हिस्ट्री आफ़ इंडिया भा० ६, पृ० २१)

[3] कहते हैं कि महाराना उदयसिंहजी ने मालदेवजी के विरुद्ध दी हुई मदद के बदले हाजीख़ाँ से रंगराय-नामक नर्तकी को माँगा था। परंतु हाजीख़ाँ के उसको देने से इनकार कर देने पर रानाजी नाराज़ हो गए और उस पर चढ़ाई कर दी।

[1] ख्यातों में लिखा है कि बालेचा सूजा मेवाड़ से आकर मालदेवजी की सेवा में रहने लगा था। परंतु जिस समय इन्होंने वि० सं० १६०७ (ई० स० १५५०) के क़रीब कुंभलगढ़ पर चढ़ाई की, उस समय वह इनका साथ देने से इनकार कर मेवाड़ को वापिस लौट गया। इस पर महाराना ने उसे फिर अपने पास रख लिया। जिस समय रावजी ने देवीदास को इस युद्ध में भेजा था, उस समय उसे सूजा से बदला लेने का खास तौर से आदेश दे दिया था। इसके बाद जब मेवाड़ की सेना को परास्त कर और सूजा को मारकर देवीदास वापिस लौटा, तब रावजी ने उसकी वीरता की बड़ी प्रशंसा की और उसे मेड़ते की रक्षा के लिये भेज दिया।

[2] इसी वर्ष (वि० सं० १६१३=हि० सं० ९६४=ई० स० १५५७ में) अकबर की आज्ञा से मुहम्मद कासिमख़ाँ नेशा- पुरी ने हाजीख़ाँ से अजमेर और नागोर छीन लिया।

(ईलियट्स हिस्ट्री आफ़ इंडिया, भा० ६, पृ० २२)

[3] वि० सं० १६१५ (ई० स० १५५८) का एक शिलालेख इस महाराज कुमार जैमल का मेड़ते परगने के रैण-नामक गाँव से मिला है। इसमें राव मालदेवजी के राज्य समय उक्त राजकुमार (जैमल) द्वारा भूमिदान किए जाने का

और वीरवर देवीदास वहाँ की रक्षा पर नियत थे। इससे उसे मेड़ते की आशा छोड़कर महाराना के पास वापस लौट जाना पड़ा। इस पर उदयसिंहजी ने भी उसकी वीरता और सेवाओं का विचारकर उसे बदनोर की जागीर दे दी[1]।

वि० सं० १६१४ ई० सं० १५५७=हि० सं० ९६५ में कासिमखान (अजमेर के सूबेदार) की आज्ञा से सैयद मेहमूदबाराह और शाह कुलीख़ाँ ने जैतारण पर चढ़ाई की। इस पर वहाँ के स्वामी ऊदावत रतनसी ने मालदेवजी से सहायता माँगी। परंतु रावजीने उससे अप्रसन्न होने के कारण[2] इधर ध्यान ही नहीं दिया। इससे युद्ध में रतनसी मारा गया और जैतारण पर मुसलमानों का अधिकार हो गया[3]।

इसके बाद राव मालदेवजी ने मेड़ते में के वीरमदेव और जयमल के बनवाए हुए स्थानों को गिरवाकर वहाँ पर एक नया क़िला बनवाया और उसका नाम अपने नाम पर मालकोट रक्खा। साथ ही वहाँ के नगर को भी नए सिरे से बसाया।

ख्यातों से ज्ञात होता है कि वि० सं० १६१६ (ई० स० १५५९) में जैतावत देवीदास को जालोर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी गई थी। इसी के अनुसार पहले तो उसने बिहारी पठानों से जालोर छीन लिया और इसके बाद बदनोर पर भी आक्रमण कर दिया। इससे जैमलजी को उक्त प्रदेश छोड़ देना पड़ा।

वि० सं० १६१८ (ई० स० १५६२) में जिस समय अकबर बादशाह[1] अजमेर को आता हुआ मार्ग में सांभर ठहरा हुआ था, उस समय जयमल जाकर उससे मिला और अपना सारा वृत्तांत कहकर अपने पैतृक राज्य मेड़ते पर अधिकार करने में सहायता चाही। बादशाह ने भी आपस की फूट से अपने पिता का बदला लेने का अवसर आया देख तत्काल ही मिरज़ा शरफ़ुद्दीन को मय सेना के उसके साथ कर दिया। इन लोगों ने मेड़ते पहुँच वहाँ के क़िले को घेर लिया[2]। परंतु कई दिन बीत जाने पर भी जब

और साथ ही इस दान का जगमाल द्वारा पालन किए जाने का उल्लेख है। इस लेख में का जगमाल मेड़तिया राठोड़ जयमल का छोटा भाई था और उसको मालदेवजी ने मेड़ते का आधा हिस्सा जागीर में दे दिया था। वि० सं० १६१८ (ई० स०१५६१) में जब बादशाह अकबर की सेना ने मेड़ता विजय करते समय मालकोट की दीवार को सुरंग से उड़ा दिया, उस समय यह जगमाल अपने कुटुंबियों के साथ बाहर निकल गया था।

[1] कहीं कहीं वि० सं० १६११ के आश्विन (ई० स० १५५४ के सितंबर) मास में इस जागीर का दिया जाना लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि जिस समय देवीदास और महाराजकुमार चंद्रसेनजी ने मेड़ते पर चढ़ाई की थी और महाराना उदयसिंहजी बीच-बचावकर जयमल को अपने साथ बीकानेर ले गए थे, उस समय वहाँ से उदयपुर लौटने पर ही शायद यह जागीर उसे दी गई होगी।

[2] वि० सं० १६१० (ई० स० १५५३) में मेड़ता विजय करते समय यद्यपि रतनसी राव मालदेवजी की तरफ़ से युद्ध में सम्मिलित हुआ था, तथापि लड़ाई के समय उसने जयमल के पक्ष के ऊदावत डूँगरसी को वार में आ जाने पर भी अपना कुटुंबी समझ छोड़ दिया था। इसी से मालदेवजी उससे नाराज़ हो गए थे।

[3] इलियट्स हिस्ट्री आफ़ इंडिया भा० ६, पृ० २२ (अकबरनामा दफ़ा २, पृ० ६६)

मारवाड़ की ख्यातों में इस घटना का कासिमख़ाँ द्वारा वि० सं० १६१६ (ई० स० १५५९) में होना लिखा है। परंतु यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

[1] तबकाते अकबरी में लिखा है—

जब हि० ९६७ (वि० सं० १६१७=ई० स० १५६०) में बादशाह अकबर ख़ानख़ानान् बेहरामख़ाँन से नाराज़ हो गया, तब उसको हज का बहाना करना पड़ा। परंतु जिस समय वह इस यात्रा के लिये गुजरात की तरफ़ चला, उस समय उसे ख़याल आया कि इस मार्ग में तो मेरा प्रबल शत्रु जोधपुर का राजा मालदेव निवास करता है, जिसके पास बहुत अधिक साज-सामान है। यह सोच उसने अपना रास्ता ही बदल लिया और वह नागोर से बीकानेर चला गया। वहाँ पर कल्याणमल और उनके पुत्र रायसिंह ने उसकी बड़ी मेहमानदारी की। अतः वहाँ पर कुछ दिन आराम कर वह पंजाब की तरफ़ चला गया। (— देखो पृ० २५२)

[2] कहीं-कहीं यह भी लिखा है कि राव मालदेवजी ने अपने महाराजकुमार चंद्रसेनजी को सेना देकर मेड़तेवालों की सहायता के लिये भेज दिया था। परंतु वहाँ पहुँचने पर उनके साथ के सरदार अपने से कहीं बड़ी शाही सेना से सामना करना हानिकारक जान उन्हें जोधपुर वापस ले आए।

वे लोग राठोड़ों की वीरता के सामने सीधी तरह क़िले पर अधिकार न कर सके, तब उन्होंने सुरंग लगाकर क़िले का एक बुर्ज ही उड़ा दिया। इसके बाद शाही सैनिक इस रास्ते से अंदर घुसने का जी तोड़ प्रयत्न करने लगे। परंतु मुट्ठी-भर राठोड़ वीरों ने वह बहादुरी दिखलाई कि शाही सेना को ठिठककर रुक जाना पड़ा। रात्रि में युद्ध बंद हो जाने पर क़िलेवालों ने भी बड़ी कोशिश के साथ वह बुर्ज फिर से खड़ा कर लिया, इससे शाही सेना का सब प्रयत्न विफल हो गया। परंतु इसके कुछ दिन बाद जब क़िले की रसद बिलकुल ही समाप्त हो चुकी, तब बचे हुए राठोड़ों ने क़िला छोड़कर बाहर निकल जाने का इरादा प्रकट किया। शाही सेना के अफ़सर तो इन वीरों की वीरता का लोहा पहले से ही मान चुके थे। अतः उन्होंने भी इसमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की और वे क़िले के दरवाज़े से हटकर खड़े हो गए। इस पर जगमाल तो क़िले से निकलकर चला गया। परंतु जिस समय देवीदास अपने ४०० सवारों-सहित शाही सेना के सामने से जाने लगा, उस समय लोगों के भड़काने से मिरज़ा ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़[1] दी और उसके निकलने पर उसका पीछा किया। कुछ ही दूर जाने पर जब देवीदास को इस बात का पता चला, तब वह वीर राठोड़ वापिस लौटकर उससे भिड़ गया। यद्यपि उस समय राजपूतों ने बड़ी बहादुरी से मुग़लों का सामना किया, तथापि संख्या की अधिकता के कारण विजय मुसलमानों के ही हाथ रही। वीर देवीदास युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। यह युद्ध सोगावास और मेड़ते के बीच हुआ था।

इसके बाद शरफुद्दीन ने मेड़ते का अधिकार तो जयमल को सौंप दिया, परंतु स्वयं उसे साथ लेकर नागोर पहुँचा। वहीं पर इन दोनों के बीच किसी बात पर झगड़ा हो गया। अतः जयमल उसे छोड़कर चित्तौड़ चला गया। कुछ ही काल के भीतर

इसी प्रकार ख्यातों में यह भी लिखा है कि मेड़तेवालों की सहायता के लिये रीयां के राठोड़ साँवलदास ने भी अपनी सेना लेकर अचानक ही शाही फ़ौज पर हमला कर दिया था। परंतु युद्ध में घायल हो जाने के कारण उसे लौट जाना पड़ा। इसका बदला लेने को यवन सेना के एक भाग ने जाकर रीयां को घेर लिया। इन्हीं के साथ के युद्ध में साँवलदास मारा गया।

[1] अकबरनामे में लिखा है कि उस समय मेड़ते पर मालदेव का अधिकार था, जो कि उस समय के सबसे बड़े राजाओं में से था और उसकी तरफ़ से वहाँ की रक्षा का भार एक बड़े सरदार जगमाल को सौंपा हुआ था। साथ ही उसकी मदद के लिये ५०० सवारों के साथ वीरवर देवीदास भी नियत था। (देखो भा० २, पृ० १६०)

तबक़ाते अकबरी में उस समय मेड़ते के क़िले का जैमल के अधिकार में होना लिखा है।—(देखो पृ० २५६) यह ठीक नहीं है। उस समय के वहाँ के क़िलेदार का नाम जगमाल ही था।

अकबरनामे में यह भी लिखा है कि देवीदास संधि के विरुद्ध अपना साज-सामान जलाकर क़िले से निकला था। इसीलिये शरफ़ुद्दीन ने उसका पीछा किया। उसी पुस्तक में आगे लिखा है कि देवीदास ने युद्ध में वह काम किया कि रुस्तम का नाम और निशान तक दुनिया से मिटा दिया। अंत में युद्ध करता हुआ वह घोड़े से गिर पड़ा। इसी समय बहुत-से सैनिकों ने धावा कर उसे मार डाला।—(देखो भाग २, पृ० १६२)

मारवाड़ की ख्यातों और फ़ारसी तवारीख़ों में देवीदास का एक सन्यासी द्वारा बचाया जाना और कुछ वर्ष बाद चंद्रसेनजी के समय वि० सं० १६३३ (ई० स० १५७६) में वापिस लौटकर आना भी लिखा है।

'मुन्तख़िबुल लुबाब'-नामक इतिहास में लिखा है कि हि० सं० ९६८ (वि० सं० १६१८) में बादशाह अकबर ने मिरज़ा शरफ़ुद्दीन को मारवाड़ फ़तह करने के लिये मालदेव पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। अतः उसने जोधपुर पहुँच वहाँ के क़िले को घेर लिया। कुछ दिन बाद मालदेव ने संधि का प्रस्ताव किया। इस पर यह तै हुआ कि मालदेव तो जाकर सिवाने के क़िले में रहे और उसका छोटा भाई ७ दिन में अपने परिवार को हटाने का प्रबन्ध करके साज-सामान-सहित क़िला शाही सैनिकों को सौंप दे। परंतु मालदेव के चले जाने पर उसके भाई और शरफ़ुद्दीन के बीच किसी बात पर झगड़ा हो गया। अतः राव का भाई ५०० सवारों के साथ क़िले से निकलकर सम्मुख रण में मारा गया। (देखो पृष्ठ १५९-१६०)

हमारी समझ में इस इतिहास के लेखक ने ग़लती से मेड़ते पर की चढ़ाई को जोधपुर की चढ़ाई लिख दिया है और देवीदासवाली घटना का सम्बन्ध मालदेवजी के भाई के साथ दिया है।

बादशाह अकबर ने अजमेर के सूबे का प्रबंध कर मारवाड़ के परपतसर और मेड़ते[1] के परगनों पर अधिकार कर लिया। समय का प्रभाव देख मालदेवजी ने भी शांति धारण कर ली। वि० सं० १६१९ की कार्त्तिक सुदि १२ (ई० स० १५६२ की ७ नवंबर) को इन प्रबल पराक्रमी नरेश राव मालदेवजी का स्वर्गवास हो गया।[2]

राव मालदेवजी बड़े वीर और प्रतापी थे। जिस समय ये राज्य के अधिकारी हुए, उस समय इनका प्रताप उदय होते हुए बाल रवि के समान अदूरव्यापी अर्थात् केवल जोधपुर और सोजत प्रांतों तक ही फैला हुआ था। परंतु होते-होते १० वर्षों के भीतर इनका वही बालप्रताप मध्याह्न के सूर्य के प्रखर तेज के समान समग्र राजस्थान को पारकर दूर-दूर देहली और आगरे के पास तक अर्थात् हिंडौन, बयाना, फतैपुर, सीकरी और मेवात तक फैल गया था। इसी से हुमायूँ-जैसे बादशाह को भी शेरशाहरूपी अंधकार से त्राण पाने के लिये इन्हीं की शरण लेनी पड़ी थी। यदि मूर्ख शाही सैनिकों ने कुछ समझ से काम लिया होता और गोवध न कर क्षत्रिय राठोड़ वीरों का दिल न दुखाया होता तथा वीरमजी के और मालदेवजी के बीच फूट का बीज न उत्पन्न हुआ होता, तो उस समय का भारतीय इतिहास भी कुछ और ही दृश्य दिखलाता। परंतु ईश्वर की माया-मरीचिका के प्रभाव से इन घटनाओं के हो जाने के कारण एकाएक पासा पलट गया और साथ ही वि० सं० १६०० (ई० स० १५४३) में शेरशाहरूपी राहु के संयोग से पूर्ण ग्रहण का योग आ उपस्थित हुआ। यद्यपि कुछ ही काल में राव मालदेवजी ने अपने को उसके ग्रास से बचाकर एक बार फिर तेज प्रकट किया था, तथापि वह ढलते हुए सूर्य के समान ही रहा। उसमें वह प्रचंडता न आ सकी।

इन्होंने अपने राज्यकाल में कुल मिलाकर ५२ युद्ध किए थे और छोटे-बड़े अनेक परगनों पर एक समय इनका अधिकार रहा था। उनके नाम इस प्रकार लिखे मिलते हैं—

१ सोजत, २ मेड़ता, ३ अजमेर,[1] ४ सांभर,[2] ५ बधनोर,[3] ६ रायपुर,[4] ७ भाद्राजण,[5] ८ नागोर,[6] ९ खाटू, १० लाडणू, ११ डीडवाना, १२ फतैपुर, १३ कासली, १४ रेवासा, १५ चाटसू, १६ जहाजपुर, १७ मदारिया,[7] १८ टोंक, १९ टोडा, २० चित्तौड़ के पास के प्रदेश, २१ पाली, २२ वणवीरपुर, २३ सिवाना[8] (अणखला),[9] २४ लोहगढ़, २५ नाडोल, २६ जोजावर, २७ कुंभलमेर (के पास का प्रदेश), २८ जालोर,[10] २९ साचोर,[11] ३० भीनमाल, ३१ बीकानेर, ३२ पौकरन, ३३ फलोदी, ३४ चौहटन,[12] ३५ पारकर,[13] ३६ कोटड़ा,[14] ३७ बाहडमेर,[15] ३८ खावड़,[16] ३९ अमरसर,[17] ४० उदयपुर (पवांरों का—छोटा), ४१ उमरकोट,[18] ४२ छापर, ४३ जूँझणू, ४४ जेखल, ४५ जैतारण,[19] ४६ जोधपुर, ४७ नारनौल, ४८ नराणा, ४९ बँवली (बोनली), ५० मलहारणा, ५१ समईगाँव, ५२ सातलमेर, ५३

---

[1] वि० सं० १६१९ (हि० सं० ९७०) में बादशाह अकबर मिर्ज़ा शर्फ़ुद्दीन से नाराज़ हो गया। इसी से उसने उसके स्थान पर हुसैन कुलीं को नियत कर दिया। इस पर हुसैन कुलीं ने मिर्ज़ा को भगाकर अजमेर जालोर नागोर और मेड़ते के परगने उससे छीन लिए। इसके बाद उसने बादशाह की आज्ञा से मेड़ता जयमल से लेकर जगमाल को दे दिया। यह देख जयमल मेवाड़ की तरफ़ चला गया और वि० सं० १६२४ (ई० स० १५६७) में महाराना उदयसिंहजी के क़िला छोड़कर पर्वतों में चले जाने पर चित्तौड़ के क़िले की रक्षा करता हुआ अकबर के हाथ से मारा गया। यद्यपि अकबरनामा (भा० २, पृ० १९६) आदि फ़ारसी तवारीख़ों में जयमल से मेड़ता लेने का उल्लेख है, तथापि वास्तव में मेड़ता जयमल से न लिया जाकर शर्फ़ुद्दीन से ही लिया गया था। जयमल तो शर्फ़ुद्दीन से नाराज़ होकर पहले ही नागोर से मेवाड़ की तरफ़ चला गया था।

[2] उस समय इनके पुत्र चंद्रसेनजी सिवाने में थे। अतः इनकी मृत्यु का समाचार पाते ही वे वहाँ से जोधपुर चले आए। कार्तिक सुदि १३ को मंडोर में रावजी की अंत्येष्टिक्रिया की गई। इनके पीछे १० रानियाँ सती हुई थीं।

[1] वीरमदेव से, [2] बादशाही हाकिम से, [3] रानाजी से, [4] सींधल राठोड़ों से, [5] सींधल राठोड़ों से, [6] खानज़ादों से, [7] रानाजी से, [8] जैतमालोत राठोड़ों से, [9] रानाजी से, [10] बिहारी पठानों से, [11] चौहानों से, [12-13] पवाँरों से [14-15] मल्लिनाथजी के वंशज राठोड़ों से, [16] पवाँरों से, [17] शेखावाटी के कछवाहों से, [18] सोढों से, [19] ऊदावत राठोड़ों से छीना था।

मालपुरा,[१] ५४ कोसीथल,[२] ५५ केकरी,[3] ५६ पुरमांडल,[४] ५७ लालसोट, ५८ राधनपुर[५] ।

इनके अलावा किसी-किसी ख्यात में मालदेवजी का सीरोही के प्रांत को विजय कर वहाँ के रावल को वापस सौंप देना भी लिखा मिलता[६] है ।

राव मालदेवजी ने अनेक क़िले आदि भी बनवाए थे । उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

पहलेपहल जोधपुर के क़िले का विस्तार बढ़ाकर उसके पास के रानीसर-नामक तालाब के इर्दगिर्द कोट बनवाया । इससे युद्ध के समय क़िलेवालों को पानी का सुभीता हो गया । इसी प्रकार चिड़ियानाथ के झरने को भी कोट से घेरकर क़िले का एक भाग बना दिया । जोधपुर नगर के चारों तरफ़ शहर-पनाह बनवाई । कहते हैं कि इन सबके बनवाने में ९०,००,०० फदिए (क़रीब १,१२,५०० रुपए) लगे थे ।

इसके बाद वि० सं० १६०८ (ई० स० १५५१) में इन्होंने पोकरण का नया क़िला बनवाया । इसके बनवाने में सातलमेर के पुराने क़िले का सामान काम में लाया गया था । इसी प्रकार वि० सं० १६१४ (ई० स० १५५७) में मेड़ते में अपने नाम पर मालकोट-नामक क़िला बनवाना प्रारंभ किया । यह क़िला वि० सं० १६१६ (ई० स० १५५९) में समाप्त हुआ था ।

इनके अलावा सोझत, सारन, रायपुर (वहाँ के पहाड़ पर), पीपलोद, रीयाँ, फलोदी (यहाँ का क़िला नरा के पुत्र हम्मीर के वि० सं० १५४५—ई० स० १४८८—में बनवाए क़िले पर ही बनवाया गया था ।), चाटसू और बीकानेर आदि में क़िले बनवाए । भाद्राजण, सिवाना, और नाडोल में शहर-पनाहें बनवाईं । नागोर की शहरपनाह का जीर्णोद्धार करवाया । अजमेर के क़िले में बींटली का कोट और बुर्ज बनवाए और वहाँ से क़िले पर पानी चढ़ाने का प्रबंध किया । इनके अलावा गूँदोज, पीपाड़ और धूनाड़ा आदि में भी निवासस्थान बनवाए ।

इनकी रानी झाली स्वरूप देवी ने अपने नाम पर स्वरूपसागर-नामक तालाब बनवाया था । यह आजकल बहूजी के तालाब के नाम से प्रसिद्ध है ।[१]

राव मालदेवजी के २२ पुत्र थे ।

१ राम[२], २ रायमल, ३ उदयसिंहजी, ४ चंद्रसेनजी, ५ रत्नसिंह, ६ भोजराज, ७ भांण, ८ विक्रमादित्य, ९ आसकरण, १० गोपालदास, ११ जसवंतसिंह १२ महेशदास, १३ तिलोकसी, १४ पृथ्वीराज, १५ डूंगरसी, १६ जैमल, १७ नेतसी, १८ लिखमीदास, १९ रूपसी, २० तेजसी, २१ ठाकुरसी, २२ कल्याणदास ।

रावजी ने छोटे-बड़े क़रीब २५ गाँव दान[3] किए थे ।

---

१. पवाँरों से, २. रानाजी से, ३-४. शाही हाकिम से, ५. पवाँरों से छीना था, ६. इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता ।

१. यह तालाब कागे से मंडोवर की तरफ़ जाते हुए बाएँ हाथ पर है ।

२. इसने हि० सं० ९८० (वि० सं० १६२९=ई० स० १५७२) में बादशाही सेना के साथ रहकर इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा को हराने में अच्छी वीरता दिखाई थी । (अकबरनामा भा० ३, पृ० ३५ और तबकाते अकबरी पृ० ३०१) इसी राम ने अथवा इसके वंशज ने अमझेरे (मालवे) में एक छोटे राज्य की स्थापना की थी । परंतु वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) में यहाँ के शासक के बागियों के साथ मिल जाने से भारत-सरकार द्वारा वह राज्य सिंधिया के हवाले कर दिया गया ।

३. १ खेड़ापा, २ ढंढोरिया, ३ भैंसेर, ४ भैंसेर खुर्द (चारों जोधपुर परगने के), ५ बीकरलाई आधी (जैतारण परगने की), ६ मालपुरिया बड़ा (सोझत परगने का), ७ बड़ा खुर्द (बीलाड़े परगने का), ८ धोलेरिया (भाद्राजण परगने का), ९ कोलरियांरी वासनी (जोधपुर परगने का), १० कालीयवास और ११ नारवा (दोनों जालोर परगने के) सेवड पुरोहितों को, १२ वींढासनी (जोधपुर परगने का), १३ सूरजवास, १४ जेसलवास (बीलाडे परगने का) श्रीमाली ब्राह्मणों को, १५ कानावास (जोधपुर परगने का), १६ मायल (भाद्राजण परगने का), १७ मालपुरिया छोटा (सोझत परगने का) पुष्करणे ब्राह्मणों को, १८ लोरड़ी खुर्द पल्लीवाल ब्राह्मणों को, और १९ वासणी भूटा आसियांरी, २० खेड़ी, २१ रताव २२ मामलोवास, २३ छोलिया, २४ इकडाणी खुर्द तथा २५ रोहड़ांरोवास (पिछले तीनों सिवाने परगने के) चारणों को दिए थे ।

आगे फ़ारसी तवारीख़ों से राव मालदेवजी के प्रभाव, पराक्रम और ऐश्वर्य के विषय की कुछ उक्तियाँ उद्धृत करते हैं—

मालदेव, जो उसकी १६वीं पुश्त में है, बहुत बड़ा बड़ा है, क़रीब था शेरख़ाँ का भी उसके मुक़ाबले में काम तमाम हो जाता। वैसे तो इस मुल्क में बहुत-से क़िले हैं; लेकिन उनमें अजमेर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, उमरकोट, आबूगढ़ और जालौर के क़िले ख़ास हैं।

(आईने अकबरी, दफ्तर २, पे० ५०८)

हि० स० ९६९ साल जुलूस ७ में बादशाह (अकबर) ने मिर्ज़ा शर्फ़ुद्दीन हुसैन को मेड़ते का परगना और क़िला फ़तेह करने के लिये भेजा और उसकी मदद के लिये बहुत-से बड़े-बड़े शाही अमीर साथ किए गए। यह मेड़ते का क़िला उस समय राय मालदेव के अधिकार में था, जो तमाम दूसरे रायों और राजाओं से हिंदुस्थान के रिवाजों और नाम में बढ़ा हुआ था। तथा शान-शौकत में भी बढ़कर था।

(अकबरनामा, जिल्द २, पे० १६०)

मेड़ते पर कब्ज़ा कर लेने के बाद जब हि० स० ९७१, साल जलूस ८ में बादशाह (अकबर) मिर्ज़ा शर्फ़ुद्दीन की तरफ़ से फ़ारिग़ हो गया, तो क़िले जोधपुर के, जो उस मुल्क के मज़बूत क़िलों में से है, फ़तेह करने का इरादा किया। यह क़िला राय मालदेव की, जो हिंदुस्थान के बड़े राजाओं में दरजा, इज्ज़त, फ़ौज और मुल्क की अधिकता में सबसे बढ़कर था, राजधानी था।

(अकबरनामा, जिल्द २, पे० १९७)

आख़िरकार मालदेव की तरफ़, जो हिंदुस्थान के मोतबिर ज़मींदारों में से था और उस ज़माने में हिंदू-रईसों में ताक़त और फ़ौज में उसके बराबरी का कोई न था, रवाना हुआ।

(तबकाते अकबरी, पे० २०५)

मालदेव कि जो नागोर और जोधपुर का मालिक था, हिंदुस्थान के राजाओं में फ़ौज और ठाट (हशमत) में सबसे बढ़कर था। उसके झंडे के नीचे ५०,००० राजपूत थे।

(तबकाते अकबरी, पे० २३१-२३२)

पहले-पहल मालदेव पर कि जो नागोर और जोधपुर के मुल्क का मालिक था और हिंदुस्थान के राजाओं में फ़ौज और ठाट की अधिकता में बढ़कर था तथा ५०,००० सवार के क़रीब उसके झंडे के नीचे जमा थे, गया।

(फ़रिश्ता, जिल्द १, पे० ३२७)

जो (मालदेव) बड़े राजाओं में दबदबेवाला था और उसकी फ़ौज में ८०,००० सिपाही थे। हालांकि राना सांगा, जो कि हुमायूँ से लड़ा था, दौलत और ठाट में मालदेव के बराबर था, मगर मुल्क की और फ़ौज की ज़्यादती में राव मालदेव उससे बड़ा था। कई बार मालदेव के फ़ौजी अफ़सरों को राना सांगा[1] से लड़ाई करनी पड़ी थी। मगर हर बार जीत मालदेव की ही तरफ़ रही।

(तुज़ुक जहाँगीरी, दीबाचा, पे० ७)

यह लाल (जिसकी क़ीमत ६०,००० रुपए की गई है) पहले राव मालदेव के पास था, जो राठौड़ों का सरदार और हिंदुस्थान के बहुत बड़े राजाओं में से था।

(तुज़ुक जहाँगीरी, पे० १४१)

मालदेव हिंदुस्थान के बड़े ज़मींदारों में से था। राना की बराबरी करनेवाला ज़मींदार वही था, बल्कि एक लड़ाई में उसने राना पर फ़तेह भी पाई थी। उसका हाल अकबरनामे में तफ़सील से लिखा है।

(तुज़ुक जहाँगीरी पृ० २८०)

इसके बाद शर्फ़ुद्दीन हुसैन को राजा मालदेव को सज़ा देने और उसके मुल्क को फ़तेह करने के लिये भेजा। ये (मालदेव) जसवंत के बाप-दादाओं में था, जो क़दीम ज़माने से हिंदुस्थान के मशहूर राजाओं में गिने जाते थे और देहली के बादशाहों की मातहती नहीं करते थे। साथ ही जोधपुर, मेड़ता और सिवाना

---

[1] महाराना सांगाजी का समय वि० सं० १५६६ (ई० स० १५०९) से १५८४ (ई० स० १५२८) तक था और राव मालदेवजी वि० सं० १५८८ (ई० स० १५११) में गद्दी पर बैठे थे। अतः इस घटना का संबंध ठीक प्रतीत नहीं होता। हाँ, इस घटना का संबंध उसके छोटे पुत्र विक्रमादित्य और उसके उत्तराधिकारियों से हो सकता है अथवा यह भी संभव है कि मालदेवजी के समय के कुछ सेनानायक, जो इनके पूर्व से ही मारवाड़ की सेना का संचालन करते आए थे, उससे लड़े हों। उद्धृत पंक्तियों में भी सेनापतियों का ही उल्लेख है।

के से मज़बूत क़िलों के भरोसे पर मग़रूर सरकशों में मशहूर थे।

(मुन्तखबुल्लुबाब, हिस्सा १, पे० १५६)

मारवाड़ का ज़मींदार राय मालदेव हिंदुस्थान के बड़े राजाओं में से था और अपने साज-सामान और फ़ौज के लिये मशहूर था। मारवाड़ अजमेर के सूबे का एक इलाका है, जो १०० कोस लंबा और ६० कोस चौड़ा है। अजमेर, जोधपुर, सीरोही, नागोर और बीकानेर इसमें दाख़िल हैं।

(मआसिरुल उमरा, भा० २, पृ० १७६)

इन विरोधी, विधर्मी और विदेशी लेखकों के लिखे इतिहासों के अवतरणों से भी प्रकट होता है कि वास्तव में राव मालदेवजी अपने समय के सर्वश्रेष्ठ और प्रबल पराक्रमी राजा थे।

कर्नलटाड ने अपने राजस्थान[1] में लिखा है कि वि० सं० १६२५ (ई० स० १५६६) में जिस समय अकबर अजमेर में था, उस समय मालदेव ने अपने द्वितीय पुत्र चंद्रसेन को नज़राने के साथ उसके पास भेजा था। परंतु उसका यह लिखना बिलकुल सत्य से परे है, क्योंकि राव मालदेवजी तो इस समय से क़रीब ६ वर्ष पूर्व अर्थात् वि० सं० १६१६ (ई० स० १५६२) में ही इस असार संसार को छोड़ चुके थे।

विश्वेश्वरनाथ रेउ

---

[1] १. राजस्थान का इतिहास (डब्ल्यू. क्रूक संपादित) भा० २, पृ० ६५८।

श्वेतकुष्ठ
की
अद्भुत जड़ी

प्रिय पाठकगण! औरों की भाँति मैं प्रशंसा करना नहीं चाहता। यदि इसके तीन बार के लेप से इस रोग की सफ़ेदी जड़ से आराम न हो, तो दूना मूल्य वापस दूँगा। जो चाहें ≡) का टिकट भेजकर प्रतिज्ञा-पत्र लिखा लें। मूल्य १) १६

वैद्यराज
पं० महावीर पाठक,
नं० ५, दरभंगा।

मुखबिलास मसाला
REG No. 185?
TRADE MARK
MUKH BILAS MASALA

मगाओ मुफ्त मगाओ
अगर आप पान खाने के शौकीन हैं तो हमारा मुखबिलास मसाला व ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट पान में जरूर खाइये खुश्बूदार व खुश-जायका है॥

(मुखबिलास मसाला)

कीमत मुखबिलास मसाला छोटी डि० फ़ी दरजन १।।।=) बड़ी डि० फ़ी दरजन ३।।।) कीमत ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट छोटी डि० फ़ी दरजन २।) बड़ी डिब्बी फ़ी दरजन ४।।) फ़ैन्सी पुड़िया ।।।)।। सैकड़ा

[नोट] ज्यादा हाल जानने के लिये नमूना कैलेन्डर और नोटिस मुफ्त मंगाइये॥

पता— पं० प्यारेलाल शुक्ल
प्यारे लाल शुक्ला स्ट्रीट कानपुर॥

ताम्बूल अम्बरी टिकिया
पान में खाइये
TAMBUL-AMBARI
TABLETS
TO BE USED WITH BITTLES

(ताम्बूल अम्बरी टेबिलेट)

जौहरी !

(१)

पारखी ये पुखराज के हैं नहीं,
क्या इनको मणिमाल दिखाना ;
लेंगे भला यह माणिक क्या ? जब—
कंचन, काँच का भेद न जाना।
आब नहीं इस आँख में है वह.
आब को है जिसने पहिंचाना ;
जौहरी ! पास पड़ी हो कहीं यदि—
गुंजा-लड़ी इन्हें एक दिखाना।

(२)

है यह हाट ठगों की, जुड़े ठग,
जालियों में न कहीं फँस जाना ;
कोई यहाँ परखा करता नहीं,
खोटा-खरा नया माल पुराना।
बोली बढ़ा करती बस बात की,
जानते हैं सब बात बनाना ;
जौहरी हो तुम जौहर के ज़रा—
जौहर जाँच के, मोल चुकाना।

(३)

पात्र-अपात्र का ज्ञान गया कहाँ, व्यर्थ बलाहक मोती चुगाना ;
कौन प्रवीणता ! कोल किरात को, पारस के गुण-दोष बताना।
मौक्तिक-माल दिखाकर कीश को, जौहरी ! क्या मन में पछिताना ;
मढ़ हुए तुमने ख़ुद ही नहीं, जौहर को अपने पहिंचाना।

(४)

भील न चाहते भस्म प्रवाल की,
मौक्तिक-सार इन्हें नहीं खाना ;
नील के रंग रँगे इनको नहीं—
नीलम से अपने को सजाना।
सीप की माल इन्हें छजती जब,
कौस्तुभ क्या इनको पहिनाना ;
जौहरी ! चाहते जो अपना भला,
भूल से भी कभी पास न जाना।

(५)

आते रहे तुमसे कितने यहाँ,
साथ लदाकर बानिज बाना ;
पारखी रत्न के थे बसते सभी,
मोल दिया करते मनमाना।
दूर गए दिन वे तो मिटे सब,
जौहरी ! क्या उनके गुण गाना ;
क्रूर बचे, अब तो यहाँ आकर—
है बस कंटकों में फँस जाना।

रमाशंकर मिश्र "श्रीपति"

रामलला-नहछू

माधुरी के विशेषांक में "रामलला-नहछू"-शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेख में लेखक ने तुलसीदासजी के इस ग्रंथ के विषय में बहुत कुछ लिखा है, जिससे यह सिद्ध होता है कि "रामलला-नहछू" तुलसीदासजी का आदि-ग्रंथ है और संवत् १६४० के पूर्व लिखा गया था। लेखक ने भी डा० ग्रियर्सन महोदय के मतानुसार "नहछू" में रामचंद्रजी के उपनयन-संस्कार का वर्णन माना है। परंतु उन्होंने डा० ग्रियर्सन की नाईं इसको तुलसीदासजी की प्रतिभा-पूर्ण लेखनी से लिखित होने में कोई संदेह नहीं प्रकट किया है। वास्तव में लेखक महोदय ने जो कुछ लिखा है, वह परिश्रम और विद्वत्ता के साथ लिखा है। खेद है कि हमें उनकी कुछ बातें ठीक नहीं जान पड़तीं। आशा है, विज्ञ पाठक इसका निर्णय करेंगे।

हमें इस बात का कोई भी ठीक प्रमाण नहीं मिलता, जिससे हम निश्चय के साथ इस बात को स्वीकार कर सकें कि वास्तव में "नहछू" ही तुलसीदासजी का आदि-ग्रंथ है। जो कुछ प्रमाण दिए जाते हैं, उनमें कोई तत्त्व नहीं दिखाई देता। "नहछू" की भाषा में भी कोई बात ढूँढ़ने पर नहीं मिलती, जो इस मत का समर्थन करे। हाँ, इतना अवश्य माना जा सकता है कि "जानकी-मंगल" और "नहछू" दोनों मिथिलापुरी ही में और लगभग एक ही समय में लिखे गए। "जानकी-मंगल" पहले लिखा गया था या नहछू, यह भी विवादग्रस्त विषय है, परंतु दोनों की भाषा, दोनों की शैली और दोनों का कथानक इस बात का पूर्ण प्रमाण है कि दोनों एक ही समय में लिखे गए। बहुत संभव है कि जानकी-मंगल पहले लिखा गया हो, क्योंकि मिथिलापुरी में पहुँचने पर श्रीजनक-नंदिनी की विवाह-स्मृति ने तुलसीदासजी के भक्ति-भाव-भूषित हृदय में अपनी आराध्य देवी के प्रति अनुराग अवश्य उत्पन्न किया होगा। उसी अनुराग-सागर की तरल तरंगों में तुलसीदासजी को इन ग्रंथ के लिखने की सूझी होगी। भक्ति-भाव से सराबोर हृदय में यह नूतन विचार उत्पन्न होना कोई कठिन काम नहीं।

हमें एक साहित्य-प्रेमी सज्जन से तुलसीदासजी-लिखित एक "बारहमासा" प्राप्त हुआ है। हम अभी तक यह नहीं कह सकते कि यह पुस्तक पूज्य गोस्वामीजी ने ही लिखी है, तो भी इसके विरुद्ध में मत प्रकट करना सरल काम नहीं। यदि यह ग्रंथ उसी अमर कवि की जादूभरी ललित लेखनी द्वारा लिखा गया है, तो यह कहना पड़ेगा कि यही ग्रंथ तुलसीदासजी का प्रथम प्रयास है। यही उनके कविजीवन का श्रीगणेश है और इसी साधारण भेंट को लेकर उन्होंने सरस्वती के महिमा-मंडित मनोहर मंदिर में प्रवेश किया होगा। संभव है कि ग्रामीण जीवन के आनंद ने उनके हृदय की उर्वराभूमि में काव्यानुराग की यह छोटी-सी बेल लगाई हो। यदि तुलसीदासजी ने ही इस "बारहमासा" को लिखा है, तो यह मानना पड़ेगा कि उन्होंने संसार से विरक्त होने के पहले ही यह कार्य संपादन किया होगा। सांसारिक जीवन से विरक्त होने के पहले तुलसीदासजी अपनी स्त्री से बड़ा प्रेम करते थे, यह बात सब कोई जानता है। अतएव यह भी संभव है कि उन्होंने अपनी प्रेयसी के गाने के लिये ही इसकी

रचना कर डाली हो। इस पुस्तक की भाषा ठीक नहीं है; यतिभंग इत्यादि दोष भी कहीं-कहीं दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिये हम उनका "अगहन"-वर्णन पाठकों के सम्मुख रखते हैं—

अगहन

अगहन अधिक सनेह भरतहिं, पादुका उर लावहीं।
सियराम-चरण-सरोज-रज, चित सुमिरि सुर सुख पावहीं।
प्रभुचरण पावन गहत गोतमनारि चरण बिच तरि गई।
यहि चरण धोय निषादहित सों, हरषि पादोदक लई।
यहि चरण ते निकरी सुरसरी, शंभु निज माथे धरी।
तेइ चरण मम उर में बिराजत, बिसरति न एकौ घरी।
घरी एकौ टरत नाहीं, लगति है अति प्रिय नये।
कहि दास तुलसी हमहिं तजि, सियराम दंडकवन गये।

"बारहमासा", "जानकी-मंगल", "पार्वती-मंगल" और "रामलला-नहछू" इनमें से चाहे जो ग्रंथ तुलसीदासजी का आदि-ग्रंथ हो, परंतु यह मानना पड़ेगा कि इनमें से किसी में भी रागतत्त्व, कल्पना-तत्त्व और बुद्धितत्त्व किसी भी तत्त्व का प्रचुर प्रकाश नहीं दिखाई देता। परंतु तुलसीदासजी इन तत्त्वों की परवा करनेवाले पुरुष नहीं थे। श्रीरामचंद्रजी और जगज्जननी जानकीजी की अनुपम कीर्ति का गुणगान करना ही उनकी वाणी का मुख्य ध्येय था। तत्त्व, रस, अलंकार, ध्वनि, व्यंग इत्यादि कविता की समस्त सामग्रियाँ तो आप-ही-आप उनके पीछे फिरा करती थीं। "वे तो कोरे कागद पर सत्य लिखनेवाले" थे। उन्होंने अपनी कलित काव्य-पुष्पांजलि अपने आराध्यदेव को समर्पित की थी। भगवान् स्वयं रीझे हों या न रीझे हों; परंतु यह बात निर्विवाद माननी पड़ेगी कि प्रत्येक हिंदी-भाषा-भाषी उनकी इन मधुर रचनाओं पर अवश्य रीझा है।

माधुरी में लेखक महोदय ने "रामलला-नहछू" में आए हुए "लला" शब्द को व्रजभाषा का माना है, परंतु यह बात ठीक नहीं जँचती। लला शब्द तो "बुंदेलखंडी" है। व्रजभाषा के कवियों ने इसका प्रयोग अवश्य किया है, परंतु यदि अँगरेज़ी या फ़ारसी के शब्द हिंदी में आते हैं, तो हम उन्हें हिंदी का कदापि नहीं कह सकते। अजू, हाहा और लला इत्यादि "बुंदेलखंडी" शब्दों का व्यवहार व्रजभाषा में स्वच्छंदता से होता था; क्योंकि व्रजभाषा उन्नति के शिखर पर पहुँच चुकी थी। वह प्रांतीय भाषा बनने का तो सौभाग्य प्राप्त कर ही चुकी थी, इसके अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं पर भी उसका प्रभाव पड़े बिना न रहा। "लाल" और "लालन" शब्द व्रजभाषा के ही हैं और अधिकतर कविगण इन्हीं का प्रयोग करते थे—

यशोदा हरि पालने झुलावैं।
हलरावैं दुलराइ मल्हावैं,
जोई सोई कछु गावैं।
मेरे लाल को आउ निदरिया
काहे न आनि सुवावैं।

× × ×

जो सुख "सूर" अमर मुनि दुर्लभ
सो नँद-भामिनि पावैं।

—सूरदास

मैं बलि ऐसी आरि न कीजै,
जो चाहौ सो मोपै लीजै॥
कहत लाल रोवै दुख पावै।
ऐसो को जो तोहि खिझावै॥

—व्रजवासीदास

"देव" कछू अपनो बसु न रस लालच
लाल चितै भईं चेरी।

देखति बूड़ि गईं अँखियाँ
पखियाँ मधु की मखियाँ भईं मोरी ॥
—देव

लाल सखीन में बाल लखी
"मतिराम" भयो उर आनँद भीनो।
—मतिराम

लाल गोपाल की चाल बकौअन
"दासजू" देखत ही बनि आवत ।
—दास

पहिरौ चुनरी चुनिकै दुलही
सँग लाल के झूलहु झूकन री ।
—बेनी

सोई तिया अरसाय के सेज पै
सो छवि लाल विचारत ही रहे ॥
—हरिश्चंद्र

भारतेंदु हरिश्चंद्रजी ने "हिंदी-भाषा" नाम का एक ग्रंथ लिखा है। उसमें उन्होंने विभिन्न भाषाओं के उदाहरण दिए हैं। हिंदी के अतिरिक्त बँगला, मारवाड़ी और पंजाबी इत्यादि भाषाओं के भी उदाहरण उस पुस्तक में दिए गए हैं। "व्रजभाषा" और बुंदेलखंडी के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

व्रजभाषा

अहो पिय लाल लडैती के झूमका
सरस सुर गावत सब ब्रजनारि ।

बुंदेलखंडी

बैठे अकेले रहे रँगरावटी प्यारी पठाई गई तहँ नाइन ।
देखत ही रहे रीझि लला सब वाके सरूप सुसील निकाइन ॥
कै बिनती उलटीं ही भई सुगही उन बाँह परी तब पाइन ।
एजू अजू अजू ऐसी न कीजिए हाहा हमैं झुकिहैं ठकुराइन ॥

लाल और लला शब्द वात्सल्य-संबोधन के काम में आता है, परंतु नायिका नायक को भी इसी शब्द से संबोधन करती हैं। बुंदेलखंड में तो अब भी बहुत स्थानों पर स्त्रियाँ अपने पति को पुकारने में इसी शब्द का व्यवहार करती हैं। तुलसीदासजी ने स्वयं लाल शब्द ही का अधिक प्रयोग किया है—

"बहुरि बच्छ कहि लाल कहि, रघुबर रघुपति तात।"

"नहछू" में जिस संस्कार का वर्णन है, वह यज्ञोपवीत (जनेऊ) के पूर्व का संस्कार नहीं है। स्वयं "नहछू" की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

गोद लिए कौसिल्या बैठी रामहिं वर हो।
सोभित दूलह सीस पर आँचर हो॥
दूलह कै महतारि देखि मन हरपइ हो।
कोटिन दीन्हेउ दान मेघ जनु बरखइ हो॥

जिसका यज्ञोपवीत होता है, उसके लिये "दूलह" या "वर" शब्द का प्रयोग कहीं भी नहीं होता। यह शब्द ब्याह के अवसर पर ही काम में आते हैं अन्यथा नहीं। "वरायन" भी विवाह में आता है, जनेऊ में नहीं। "वरायन" का अर्थ "कंकन" नहीं होता। वरायन दूसरी वस्तु है। विवाह के अवसर पर एक घड़ा आता है, जिसमें दूलह का नहाया हुआ पानी भर लिया जाता है और इसी से दुलहिन नहलाई जाती है। यह घड़ा बरात के साथ लड़के के घर से लड़की के घर जाता है। अवध में यह प्रथा अब भी भली भाँति प्रचलित है। "विहँसत आउ लोहारिन हाथ बरायन हों" के स्थान पर "विहँसत आउ कुम्हारिन हाथ बरायन हो" होगा। जिस नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तुलसीदासजी के आदरणीय ग्रंथों में "मरमबचन सीता जब बोला" तथा "बिधु बैनी बधू" इत्यादि छप सकता है, उसमें कुम्हारिन के स्थान पर लोहारिन छपना कोई बड़ी

बात नहीं। विवाहके समय लोहारिनका आना उतना मंगलजनक नहीं जान पड़ता, जितना कुम्हारिन का। हम इसे विवाह का "नहछू" मानते हैं; परंतु यह साधारण प्रथा के अनुसार विवाह के पूर्व नहीं हुआ था; क्योंकि विवाह के लिये रामचंद्रजी अयोध्या में नहीं गए थे, विश्वामित्रजी उन्हें अपने आश्रम से जनकपुर ले गए थे। अतएव जो आवश्यक कार्य विवाह के पहले अयोध्या में होना चाहिए, वे विवाहोपरांत अयोध्या में अवश्य हुए होंगे। अब भी कुछ लोगों के यहाँ "चतुर्थी" इत्यादि कन्यागृह में न होने पर बरात लौटने पर वरालय में ही होते हैं। रामचंद्रजी के धनुष तोड़ने पर जनकजी ने सतानंदजी को अयोध्या भेजा था। राजा दशरथ विवाह-समाचार सुनते ही बरात लेकर मिथिला को चल दिए थे। वसिष्ठजी से लगन पूछ ली गई थी—

नृप सुनि आगे आइ पूजि सनमानेउ।
दीन्ह लगन कहि कुशल राउ हरषानेउ ॥ १३१ ॥
सुनि पुर भयो अनंद बधाव बजावहिं।
सजहिं सुमंगल कलस वितान बनावहिं ॥ १३२ ॥
राउ छाँड़ि सब काज साज सब साजहिं।
चलेउ बरात बनाइ पूजि गनराजहिं ॥ १३३ ॥

—जानकी-मंगल

केवल गणेशजी का पूजन कर लिया गया और बरात चल दी। यदि कहा जाय कि उस समय अन्य उपचार नहीं होते थे, तो ठीक नहीं जान पड़ता। जनकजी के यहाँ सब कार्य हुए थे—

गुनिगन बोलि कहेउ नृप मांडव छावन।
गावहिं गीत सुबासिन, बाज बधावन ॥ १२७ ॥
सीय-राम-हित पूजहि गौरि गनेशहिं।
परिजन, पुरजन सहित प्रमोद नरेसहिं ॥ १२८ ॥
प्रथम हरदि वेदन करि मंगल गावहिं।
करि कुलरीति, कलस थपि तेलु चढ़ावहिं ॥ १२६ ॥

—जानकी-मंगल

यदि भली प्रकार मनन किया जाय, तो "जानकी-मंगल" और "रामलला-नहछू" दोनों का बड़ा घनिष्ठ संबंध है। "जानकी-मंगल" में मिथिलापुरी में विवाहोत्सव-वर्णन और नहछू में अयोध्यापुरी में विवाहोत्सव वर्णन है। यज्ञोपवीत में जूते नहीं पहने जाते, खड़ाऊँ ही आती है। इस "नहछू" में तो तुलसीदासजी ने लिखा है—

सोचित बदन सकोचित हीरा माँगन हो,
पनहि लिए कर सोभित सुंदर आँगन हो।

बिना विवाह के नख नहीं काटे जाते, यह बात संयुक्तप्रदेश में तो भली भाँति प्रचलित है। यज्ञोपवीत में जो नहछू (नाखुर) होता है उसमें केवल पैरों में महावर लगा दिया जाता है; परंतु यहाँ तो—

नख काटत मुसक्याहिं बरनि नहिं जातहि हो;
पदुम-पराग मनि मानहुँ कोमल गातहि हो।

यज्ञोपवीत-संस्कार तो ब्रह्मचर्य-आश्रम में प्रवेश करने का उत्सव है। इस समय ऋषि-मुनियों का भाग लेना आवश्यक था, परंतु वहाँ तो केवल हाव-भाववाली स्त्रियाँ ही दिखाई पड़ती हैं। यह नहछू तो निश्चय ही विवाह-संस्कार का एक अंग है, जो रामचंद्रजी के अयोध्या लौट आने पर मनाया गया था। यदि तुलसीदासजी का ध्येय यज्ञोपवीत-नहछू वर्णन करना होता, तो वे उसका विशद बखान अवश्य करते। इस "नहछू" में तो उनका मुख्य उद्देश्य "जानकी-मंगल" के शेष भाग को पूरा करना था। अस्तु।

"रामलला-नहछू" में नहछू-संस्कार का जितना विशद वर्णन हो सकता था, उतना तुलसीदासजी ने किया है। खंडकाव्य कितना विशद होना चाहिए, यह किसी भी लक्षण-ग्रंथ में नहीं लिखा है। अतएव इसे खड-काव्य के अतिरिक्त और किसी नाम से अलंकृत करना उचित नहीं जान पड़ता। स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे "व्याकरण भाषा की क़ब्र है"। सचमुच अधिक नियम-उपनियम बनाना साहित्य की उन्नति को शिथिल और पंगु करना है।

अधिकतर यह देखा जाता है कि लोग तुलसीदासजी को शृंगार-वर्णन से क्षुब्ध रखने का उद्योग करते हैं। "नहछू" की आलोचना के लेखक ने भी यही किया है। हम नहीं समझते कि नव-शिक्षित समाज शृंगाररस के वर्णन से इतना क्यों घबड़ाता है। शृंगाररसपूर्ण काव्य पाप क्यों माना जाता है? आधुनिक लेखक जो पुरानी बोतलों में नई शराब भरने का ठेका ले चुके हैं, वे भी शृंगार-वर्णन से नहीं चूकते; परंतु इन भारती के पुरातन पुजारियों के प्रति सदा अश्रद्धा के उद्गार निकाला करते हैं। तुलसीदासजी ने शृंगार-सागर में ग़ोते लगाए हैं, परंतु साहित्य-विधातागण इनको उससे सदैव बचाने का प्रयत्न किया करते हैं। तुलसीदासजी ने "नायिका-भेद" या "नखशिख" पर कोई ग्रथ नहीं लिखा, जो वे शृंगारार्णव की गहराई तक पैठकर अधिक चमत्कारपूर्ण रत्न निकाल लाते। उन्होंने जो कुछ लिखा है वह और ही वस्तु है। रामायण ऐसे महाकाव्य में अधिक शृंगार की आवश्यकता नहीं थी। विनयपत्रिका भगवान् रामचंद्र और जगत्-जननी जानकीजी की प्रार्थना में लिखी गई है। अन्य ग्रंथों में रामचंद्रजी की कीत का गान करना तुलसीदासजी का प्रधान कार्य था। इन ग्रंथों में भी शृंगार का सुमधुर स्वाद जितना पाठकों को चखाना चाहिए था, उतना तुलसीदासजी ने चखाया है।

राम सीय सिर सेंदुर देहीं;
उपमा कहि न जात विधि केहीं।
अरुण पराग जलज भरि नीके;
ससिहिं भूष अहि लोभ अमी के।
कुंदकली दाड़िम दामिनी;
सरद कमल शशि हे भामिनी।
वरुणपास मनोज धनु हंसा;
गज केहरि निज सुनत प्रशंसा।
श्रीफल कनक कदलि हरखाहीं;
नेकु न संक समुझ जिय माहीं।

—रामचरितमानस

चंपक हरवा अंग-रंग मिलि अधिक सोहाइ।
जानि परै सिय हियरे, जब कुम्हिलाइ ॥५॥
सिय तुव अंग-रंग मिलि अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावों चंपक होत ॥६॥

—बरवै-रामायण

रूपराशि जेहि ओर सुभाय निहारइ,
नील-कमल-सर श्रेनि मयन जनु डारइ;
रामसीय वय समौ, सुभाय सुहावन,
नृप जोबन छबि पुरइ चहत जनु आवन।

—जानकी-मंगल

राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परिछाहीं;
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारत नाहीं।

—कवितावली

सुरुचिपूर्ण शृंगार का कितना सुंदर वर्णन है। नहछू में "उनरत जोबनु देख नृपति मन भावइ हो" लिखना तुलसीदासजी को शोभा नहीं

देता। "उनरत जोबनु" ही लिख देते, तो भी कोई बड़ी बात न थी। "नृपति मन भावइ हो" लिखकर तो तुलसीदासजी अपने आदर्श से पतित अवश्य हो गए हैं। यह वर्णन राजा दशरथ ऐसे संयमी के महल का था, वहाँ पर यह शब्द लिखना रघुकुल की कीर्ति पर धब्बा लगाना है।

वैष्णवधर्म की भित्ति प्रेम पर निर्भर है और प्रेम शृंगाररस का स्थायी भाव है, अतएव यदि वैष्णवधर्म के विकास के साथ-साथ शृंगार-रस की ओर लोगों की रुचि बढ़ गई, तो आश्चर्य की बात नहीं। भारतेंदु हरिश्चंद्र की नाईं प्रत्येक वैष्णवमतावलंबी पुकार-पुकारकर कह रहा था—

> श्रीराधा माधव युगल प्रेम का अपने मन को मस्त बना,
> पी प्रेमपियाला भर-भरकर कुछ इसमें का भी देख मजा।
> इतबार न हो तो देख न ले क्या हरीचंद का हाल हुआ।
>
> —श्रीप्रेम०

सूर और तुलसी दोनों इसी वैष्णव-साहित्य के महान् स्तंभ हैं। तुलसीदासजी के आराध्य-देव मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचंद्रजी और "सूर" के आनंदकंद रसिकविहारी श्रीकृष्ण थे और यही कारण है, तुलसीदासजी को शृंगार की उतनी गहराई तक पहुँचने का अधिकार न था जितना कि अन्य कविगणों को जो राधिका-व्रजेश के गुणगान में लीन थे। सूर के उपास्यदेव उनके सखा और तुलसी के उपास्यदेव उनके स्वामी थे, यह कहना भी ठीक नहीं जँचता। स्वयं तुलसीदासजी लिखते हैं—

> ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ही ठाकुर, हौं चेरो,
> तात, मात, गुरु, सखा, तू सब बिधि हितू मेरो।
> तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिए जो भावै;
> ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरन-सरन पावै।
>
> —विनयपत्रिका

वास्तव में "तोहिं मोहिं नाते अनेक" वाली बात ही ठीक है। "सूर" और "तुलसी" दोनों का यही हाल था। दोनों अपने-अपने आराध्य-देव की ललित लौकिक लीलाओं का वर्णन करते-करते कभी-कभी ब्रह्म और जीव की कल्पना में भी लीन हो जाते थे—

> आतुर नंद आए तहाँ जहँ ब्रह्म मुरारी,
>
> × × ×
>
> जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नंदभामिनी पावै।
>
> —सूर

पृथ्वी पर सौंदर्य की कल्पना करना यह वैष्णवतत्त्व ही की शक्ति में था। कवींद्र रवींद्र ने "स्वर्ग से विदा" में इसी तत्त्व का प्रतिपादन किया है। अँगरेज़ी का सुप्रसिद्ध कवि ब्राउनिंग भी इसी पथ का पथिक था। वास्तव में वैष्णवतत्त्व ने संसार में भी स्वर्ग की सुखमा उपस्थित कर दी थी। यदि हमें दोनों के उपास्यदेव के लिये एक ही नाम ढूँढ़ना पड़े, तो "प्रियतम" शब्द ही उपयुक्त जान पड़ता है। सूर के प्रियतम कृष्ण थे और गोस्वामीजी के राम। श्रीसीताजी "ब्रह्म जीव बिच माया जैसी" और राधाजी की भक्ति आत्मा और परमात्मा के संबंध को एक सुनहले रेशमी डोरे में बाँध आनंद से भवसागर पार करने का मार्ग निर्दिष्ट कर रही थी।

यह वह प्रेम नहीं था जिसके लिये आर० ब्रूक नाम के एक अँगरेज़ ने लिखा था "Dies from kiss to kiss" यह वह प्रेम है जिसमें ईश्वर की

सत्ता रहती थी और जो सर वालटर स्काट के शब्दों में स्वयं ईश्वर है।

"नहछू" में उस समय की दशा का विशेष कुछ भी पता नहीं लगता और न यहीं सिद्ध होता है कि तुलसीदासजी का "सम्पर्क सब प्रकार की महिलाओं से रहा है"। यहाँ तो केवल नाइन, तमोलिन और मालिन ही का वर्णन है। सो भी उर्दू-कवियों की तरह नज़ाकत का। कोई वैज्ञानिक वर्णन नहीं है। काम-काज के समय स्त्री-समुदाय में आजकल भी परजों को उतनी ही स्वतंत्रता है जितनी पहले थी। रानियों के वर्णन में तो तुलसीदासजी अधिक लिख ही न सके।

राजन्ह दीन्हें हाथी, रानिन्ह हार हो;
भरिगे रतन पदारथ सूप हजार हो।

यही अयोध्या-नरेश और राजांगनाओं का वर्णन हो सकता था। तुलसीदासजी चाहते, तो बहुत कुछ लिख सकते थे; परंतु उन्हें तो नारी-समाज से कुछ चिढ़ थी। राज-समाज का वर्णन देखना हो, तो स्वर्गीय रघुराजसिंह के ग्रंथ देखिए।

माधुरी में लेखक ने उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के उदाहरण में "गजमोती की चौक" को बताया है। गजमोती की चौक में न उपमा ही है और न उत्प्रेक्षा, यह लेखक की अनधिकार चेष्टा है। कालिदास के "मेघदूत" में वर्णित मणियों के दीपक भी, संभव है, इस सिद्धांत के अनुसार उपमा और उत्प्रेक्षा में मान लिए जायँ। जान पड़ता है जो बातें आजकल संसार में नहीं दिखाई देतीं, उन्हें लेखक ने उत्प्रेक्षा और उपमा की उपाधि दे डाली है। तब तो रामचंद्रजी का अवतार होना, रावण का राक्षस होना, हनुमान्‌जी का बंदर होना इत्यादि रामायण में वर्णित सभी बातें उत्प्रेक्षा और उपमा हैं। समस्त रामायण का नाम "उपमा-उत्प्रेक्षा" रख दिया जाय, तो अच्छा। लेखक ने एक ही बात में उपमा और उत्प्रेक्षा दिखाकर अपनी असाधारण योग्यता का परिचय दिया है।

गोस्वामीजी के इस छोटे-से ग्रंथ में जो तत्त्व छिपा हुआ है, उसका स्थिरीकरण करना वास्तव में प्रत्येक साहित्यप्रेमी का कर्तव्य है। यदि इस लेख में किसी बात का पूर्ण समाधान न हो सका हो, तो विद्वान् लेखक उस पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

के० पी० दीक्षित "कुसुमाकर"

निष्ठुर-हृदय

(१)

वह भूलके याद करेंगे नहीं,
यहाँ चिंतना में घुले जा रहे हैं।
उनकी अब अर्चना में अपना—
हम जीवन भेंट चढ़ा रहे हैं।
जिन्हें नाम से काम नहीं अपने,
उनके गुण "सेवक" गा रहे हैं।
नज़रों से रहें वही दूर सदा,
नज़रों में यहाँ जो समा रहे हैं।

(२)

जितना उन्हें चाहो, वही उतना —
कलपाके हमें कल पा रहे हैं।
दया-दृष्टि से देखना दूर रहा,
उलटे तलवार चला रहे हैं।
सुख भोगते हैं वे भुलाके हमें,
हम बैठके आँसू बहा रहे हैं।
वह देखते जो जलने का मज़ा,
तो यहाँ अपने को जला रहे हैं।

रामसेवक त्रिपाठी

श्रीरामतीर्थ-ग्रंथावली

मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान विना कभी शांति नहीं पा सकता। जब तक मनुष्य परिच्छन्न "तू-तू-मैं-मैं" में आसक्त है, वह वास्तविक उन्नति और शांति से दूर है। आज भारत इस वास्तविक उन्नति और शांति से रहित दशा में पड़ जाने के कारण अपने अस्तित्व को बहुत कुछ खो चुका है और दिन प्रतिदिन खोता जा रहा है। यदि आप इन बातों पर ध्यान देकर अपनी और भारत की स्थिति का ज्ञान, हिंदुत्व का मान और निज स्वरूप तथा महिमा की पहचान करना चाहते हैं, तो

ब्रह्मलीन परमहंस स्वामी रामतीर्थजी महाराज के
उपदेशामृत का पान क्यों नहीं करते ?

इस अमृत-पान से अपने स्वरूप का अज्ञान व तुच्छ अभिमान सब दूर हो जायगा और अपने भीतर-बाहर चारों ओर शांति ही शांति निवास करेगी। सर्वसाधारण के सुभीते के लिये रामतीर्थ-ग्रंथावली में उनके समग्र लेखों व उपदेशों का अनुवाद हिंदी में प्रकाशित किया गया है। मूल्य भी बहुत कम है, जिससे धनी और ग़रीब सभी रामामृत पान कर सकें। संपूर्ण ग्रंथावली में २८ भाग हैं।

मूल्य पूरा सेट (२८ भाग) सादी जिल्द का १०), तथा आधा सेट (१४ भाग) का ६)
,, ,, ,, उत्तम काग़ज़ पर कपड़े की जिल्द १५) तथैव ,, ,, ,, ८)
फुटकर प्रत्येक भाग सादी जिल्द का मूल्य ॥), कपड़े की जिल्द का मूल्य ॥।)
स्वामी रामतीर्थजी के अँगरेज़ी व उर्दू के ग्रंथ तथा अन्य वेदांत का उत्तमोत्तम पुस्तकों का सूचीपत्र मँगाकर देखिए। स्वामीजी के छपे चित्र, बड़े फोटो तथा आयल पेंटिंग भी मिलते हैं। ६१

पता—श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ।

रुक्मिणी-मंगल

[महाकवि नंददासजी-प्रणीत]

रुक्मिणी-मंगल, रुक्मिणी-हरण अथवा रुक्मिणी-विवाह श्रीव्यास-प्रणीत और श्री-शुकदेवजी द्वारा राजा परीक्षित के प्रति कथित श्रीमद्भागवतांतर्गत दशम स्कंध उत्तरार्ध की एक कथा है जो कि—

भगवानपि गोविन्द उपमेये कुरुद्वह ।
वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियोमात्रां स्वयंवरे ॥

से लेकर

द्वारिकायामभूद्राजन् महामोदः पुरौकसाम् ।
रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥

तक वर्णित है । यद्यपि रुक्मिणी-मंगल को विशद रूप से और-और कवियों ने भी, जिनमें श्री-'सूर' प्रधान हैं, वर्णन किया है, पर इतना सरस, इतना सरल, इतना सुंदर, जैसा कि "नंददास-जी" ने गागर में सागर भरा है, थोड़े में जो तथ्य का तिलस्मात दिखलाया है, वैसा औरों ने नहीं । इसी से आपके विषय में यह 'लोकोक्ति' परम प्रसिद्ध है कि—

"और सब गढ़िया, नंददास जड़िया ।"

अस्तु । कुछ ऐसी ही ख़ूबियों से खचित या इससे भी विशेष "कवि-कुल-चूड़ामणि नंददासजी" का सुयश अथवा गुण-गान भक्त-शिरोमणि नाभा-दासजी ने इस प्रकार वर्णन किया है—

लीला-पद रस-रीति ग्रंथ-रचना में नागर ;
सरस-उक्ति-जुत-जुक्ति, भक्ति-रस-गान उजागर ।
प्रचुर पयोध लौं सुजस, रामपुर-ग्राम-निवासी ;
सकल सुफल सम्मिलित भक्त-पद-रैनु उपासी ।
चंद्रहास-अग्रज सुहृद, परम-प्रेम-पथ में पगे ;
श्री"नंददास" आनंद-निधि रसिक सु प्रभुहित रँग-मगे।
—भक्तमाल

यद्यपि भक्ताग्रगण्य, प्रेम के साक्षात्-स्वरूप और ब्रज-भाषा के पूर्ण चंद्र, कविता-कामिनी-कांत श्रीयुत नंददासजी का जीवन-वृत्तांत सिवा उक्त पद के औरों की भाँति ही अब तक अंधकार में है, तथापि आपका सुयश, आपकी सुमधुर, सरस और सरल प्रसाद-गुण से परिपूर्ण रुचिर रचना द्वारा अब भी चमचमा रहा है—प्रखर प्रतिभा का परिचय दे रहा है, ब्रज-भाषा को अपने अनुपम माधुर्य से ओत-प्रोत कर रहा है।

ध्रुवदासजी ने भी आपके चारु चरित को 'नाभादास'जी से भी विशेष गुण-गरिमा से गुंफित कर बड़े ही हृदय-हारी शब्दों में इस प्रकार चित्रित किया है। यथा—

नंददास जो कछु कह्यौ, राग, रंग में पागि ;
अच्छर सरस सनेह-जुत, गुनति सु मन उठि जागि।
रसिकदसा अदभुत हुती, करति कवित्त सु-ढार ;
बात प्रेम की सुनति ही, छुटै नैन-जल-धार।
बौरौं सौं रस में फिरै, खोजति नेहिन-बात ;
आछे-रस के बचन सुनि बेगि बिबस ह्वै जात।

सबसे प्रथम दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता के रचयिता अखंड-भूमंडलाचार्य सुप्रसिद्ध शुद्धा-द्वैत-संप्रदाय के संरक्षक और पोषक रसस्वरूप श्रीगोकुलनाथजी ने और-और बातों के साथ जन्म-तिथ्यादि, वंश-विवरण और जाति-जल्पना को छोड़कर "नंददासजी तुलसीदासजी के छोटे भाई हुते" इतना ही लिखकर छोड़ दिया है, पर "नाभादासजी"-कृत भक्तमाल को आधार मानकर "शिवसिंहजी सेंगर" ने अपने सरोज में, और इसी प्रकार जात-पाँत के जंजाल से जटित मान-

नीय "मिश्र-बंधुओं" ने तथा "कविता-कौमुदी"-कार को छोड़कर "वियोगी-हरिजी" ने आपको (नंददास को) कान्यकुब्ज, वा सनाढ्य ठहराया है और आपका कविता-काल जन्मादि की इतिश्री के बाद संवत् १६२३ विक्रमीय माना है तथा आपकी प्रशस्त प्रतिभा के परिचायक—दशम-स्कंध,—भागवत, रास पंचाध्यायी, भ्रमर-गीत, रुक्मिणी-मंगल, दान-लीला, मान-लीला, रस-मंजरी, रूप-मंजरी, विरह-मंजरी, नाम-मंजरी, ज्ञान-मंजरी, नाम-चिंता, मणि-माला, अनेकार्थ-नाम-माला, स्याम-सगाई, हितोपदेश और गद्य-मय नासकेतु-पुराण बतलाए हैं। इनमें से दशम स्कंध उत्तरार्ध, स्याम-सगाई, हितोपदेश को छोड़कर अन्य ग्रंथ-रत्न इस तुच्छ लेखक के पास मौजूद हैं और शीघ्र प्रकाशित हो रहे हैं।

अतः आपका अविकल जीवन-वृत्तांत मिले या न मिले, पर नंददासजी की ओजस्विनी किंतु माधुर्य से मुकुलित मनोहारिणी कविता के सभी क़ायल हैं, रुचिर रचना पर सभी रीझ रहे हैं, प्रच्छन्न प्रतिभा के सभी प्रेमी हैं। साफ़, सुथरी, सरल, रोचक एवं भावपूर्ण भाषा की सभी सराहना करते हैं।

अतएव अष्टछाप के इन उदीयमान अलौकिक अंशुमाली की आह्लादकारी रचना से रंजित केवल "रुक्मिणी-मंगल" की कुछ सुमधुर सूक्तियाँ हम यहाँ पर देते हैं, पाठक इसकी कमनीयता और मनोहरता को देखें और विचारें।

सबसे प्रथम श्रीकृष्ण के प्रबल प्रेम में पगी, विरहिणी रुक्मिणी की दीन दशा का जो मार्मिक चित्र चित्रित किया है, जो दयनीय दशा दर्शायी है, उसे देखिए। यथा—

सिसुपालहि कौं देति, रुक्मिणी बात सुनीं जब ;
चित्रलिखी-सी रही, दई यह कहा भई अब।
चकित चहुँ दिसि चहँति, बिछुरि मनौं मृगी माल तैं ;
भयौ बदन कछु मलिन, नलिन जनु गलित नाल तैं।
भरि आए जल नैन प्रेम-रस-ऐन सुहाए ;
जनु सुंदर अरविंद, अलिन-दल बैठि हलाए।

और इसके बाद—

अलि पूँछति बलि बात, कहौ नैननि क्यों पानी ;
पुहुप-रैनु उड़ि पर्यौ, कहति तिन सौं मधु बानी।

वाह……, कैसी कमनीय कृति है कि कुछ कहा नहीं जाता। सरलता की पराकाष्ठा है, रमणीयता की इतिश्री है।

यद्यपि दिल के दीपक में वियोग की बत्तियाँ बल रही हैं, दग्ध हृदय दहक रहा है, विकलता, खुद दिलबिला रही है, पर लज्जा से लजीली 'ललना' बात उड़ाने को कह देती है कि

पुहुप-रैनु उड़ि पर्यौ कहति तिन सौं मधु बानी।

आह कैसी सुकुमार सूक्ति है—कैसा पुर-दर्द बयान है कि वाह……।

द्वारिका का दिव्य वर्णन भी आपने बड़ा सुंदर किया है। जैसे—

पुरी परम माधुरी विप्र चहँ रह्यौ चकित चित ;
श्रीनिवास को निज निवास पुनि का कहिए तित।
बन, उपवन के रूख, भूख भाजै तिहि देखैं ;
अमृत-फलन सौं फले फरे सुर-बर मन लेखैं।
ललित लतन की झूलनि फूलनि अति छबि छाजैं ;
जिन पै अलि-बर राजैं, मधुर जंत्र से बाजैं।
सुक, पिक, चातक-सबद सु-मिठी-धुनि अस रटहीं ;
मनौं मार-चटसार सुढार चटा से पढ़हीं।
उज्ज्वल मनि-मय अटा, घटा सौं बातैं करईं ;
जगमग-जगमग जोति होति रवि, ससि सो अरईं।

चपल पताका फरिकै, अरिकै अरक-किरन जहँ ;
घाम न कबहूँ परसै, नित ही छाँह रहति तहँ ।
कृष्ण-भावती पुरी निरखि द्विज हरख भयों अस;
जगत-द्वंद तै छुट्यों, मिल्यों आनंद महा जस ।

रुक्मिणी की द्विज-वर द्वारा प्रेम-पत्रिका की प्राप्ति पर अथवा त्रय-तापहारी-विहारी की व्याकुलता पर तो कवि ने कलेजा निकालकर रख दिया है, देखिए न—

मुद्रा खोलि गुविन्द-चंद जब बाँचन आँचे;
परम प्रेम-रस साँचे—अच्छर परति न बाँचे ।
श्री-हरि हियेँ सिरावति लावति लै-लै छाती;
लिखी बिरह के हाथ सु-पाती अजहूँ ताती ।
हिय लगाइ, स-चुपाइ बहुरि द्विज-वर कों दीनीं;
रुकमिनि-अँसुवन-भीनीं पुनि हरि-अँसुवन भीनीं ।

और इसके पश्चात् "कुंडन-पुर" चलने की अरबर में, जल्दी में, खसे—सर के पीताम्बर का द्विज द्वारा देना तो और ही ग़ज़ब गुजार रहा है, जैसे कि—

सुनि रुकमिनि की पाती, छाती पुनि लगाइ कैं;
सारथि पै रथ माग्यों, रुकुम पै अति रिसाइ कैं ।
तुरत चढ़े, छबि बढ़े चढ़ति बानक बनि आयों;
अरबर में खसि पर्यो पीत पट द्विज पकरायों ।

कुंडनपुर पहुँचने पर "कृष्ण-दर्शन-लालसा" से लालायित लोगों का वर्णन भी बड़ा ही ललित किया है, यथा—

पुर के लोगन सुनी कै श्रीसुंदर-बर आए ;
जहँ-तहँ, तै आए देखनि हरि बिसमय पाए ।
कोटि काम-लावन्य अंग-सुख दैन जु हित के;
जे तित दौरे परे, ते भए तित ही तित के ।

अथवा—

कोऊ जु रहे चकचौंधि रुचिर पीतांबर-छबि पर;
मनों छबीली छटा थिरकि रही सुंदर घन पर ।
कोऊ इकु नैननि अटकि गए जे लोभ-लुभारे;
भरे भवन के चोर भए बदलति हीं हारे ।

इसी प्रकार आपने अपनी अनोखी आभा से अलंकृत कमनीय कृतियों से, देवी-पूजनोपरांत, हरण का सुमधुर विशद वर्णन करके अल्पाति-अल्प में युद्ध की यवनिका गिरा इन पंक्तियों द्वारा ग्रंथ-रत्न की समाप्ति की है—

इहि बिधि सब रन जीति, हरी रुकमिनि लै आए;
बिधिवत कियों बिबाह, तिहूँ पुर मंगल छाए ।

और—

हरि-रुकमिनि मन-भावै, सो सब मंगल पावै;
नंददास यौं अपने प्रभु कों मंगल गावै ।

आपका उक्त "रुक्मिणी-मंगल" संपूर्ण रमणी रोला-छंद में वर्णित है । जैसे छप्पय में नाभादास जी, कुंडलिया में गिरिधरदासजी, दोहे में बिहारी लालजी और बरवै में अब्दुलरहीम खानखाना सफलता प्राप्त की है, उसी तरह रुचिर रोला छं में आपने सफलता का सेहरा प्राप्त किया है, आपके विविध ग्रंथों में देख पड़ता है ।

आपकी-सी स्वच्छ और निर्मल, भव्य भा शायद ही कोई लिख सका है, जैसे कि—

मिटि गई भूख औ प्यास, पास कोऊ और न भावै;
कौनैं जाइ उसास-भरै दुख कहति न आवै।
आगि लागि जरि जाउ लाज सो काज बिगारै;
सुंदर नँद-कुँवर नगधर सों अंतर पारै।
जानि प्रिया की आरति हरि अरबर सों धाए;
मन की-सी गति करें चले कुंडनपुर आए।
अली-अंस भुज धरै निहारत, अलक सुधारत;
सर-कटाच्छ सन भरे, सुतकि-तकि भूपन मारत।

और-और कवियों की तरह आपने अनुप्रास अन्वेषण में अपनी आनंदवर्धिनी कमनीय कविता

का माधुर्य नष्ट नहीं किया है, किंतु स्वाभाविक रूप से ही जो आ गए हैं, वे ही अपूर्व हैं। यथा—

कबहु मनहि मन सोचत, मोचत स्वाँस-ढरारे ;
मोंहन-सोंहन-स्याम न होंइहैं पिया हमारे।
इहि बिधि धरि मन धीर, चीर अँसुवनि सिराइकैं ;
लिख्यौं पत्र सुविचित्र, चित्र रुकमिनी बनाइकैं।
मंजुल, मृदुल, महीन, नवीन सु-पट पहिराए ;
खान, पान बहु मान पान निज पानि खवाए।
विधिवत देबी अरचि, चरचि बहु बंदन करिकैं ;
बिनती कीनौं कुँवरि गवरि-पद-पंकज परिकैं।

अन्य गुणों के साथ-साथ प्रसाद और माधुर्य तो आपकी कविता की जान ही ठहरे। देखिए न कैसा पद-पद से माधुर्य टपक रहा है, मद-भरे वर्णों की 'बहार' बिखरी पड़ती है—

मिट गई भूँख औ प्यास, पास कोऊ औरु न भावै ;
कौनैं जाइ उसास भरै, दुख कहति न आवै।
मंगल-दुंदुभि सुनैं धुनैं धुनि जो-जो मन माहीं ;
निरखि-निरखि कर-कंकन दृग-जल भरि-भरि आँहीं।
टप, टप, टप, टप, टपकि नैन सौं अँसुवा ढरहीं ;
मनु नव नील-कमल-दल पर तै मुतिया झरहीं।
करति विचारि मनहि मन अब धौं कैसी कीजै ;
लोक-लाज, कुल-कानि किएं मोंहिं सरबसु छीजै।
तब इक द्विज-बर बोलि, खोलि निज बात कही सब ;
अहो देव, द्विज-देव पिया पै तुरत जाहु अब।
यह पाता मो नाथ-हाथ लै तुमहीं दीजो ;
काहू नाहिं पतीजो, बलि-बलि एती कीजो।
द्विज न गयौं निज भवन, गवन कियौं धरि जु पवन-गति ;
आरति लखि रुकमिनी और श्रीकृष्ण-चरन रति।

उपमा के अनंतर उत्प्रेक्षा और रूपक तो आपकी कविता की जान ही ठहरे, देखिए न—

ह्वै गयौं कछु बिबरन तन छाजति यौं छबि छाई ;
रूप-अनूपम-बेलि तनकि मनु धाम में आई।
सुभग सरोवर निरमल मनु मुनि कौ मन जैसैं ;
प्रफुलित बरुई इंदु सरोवर राजति तैसैं।
कुंज-कुंज प्रति पुंज भँवर गुंजत अनुहारे ;
मनु रवि-डर तम भजे, तजे रोवति है बारे।
कहति विप्र सौं हँसति लसति बिकसति सुंदर मुख ;
जनु कमोद-घर चल्यौं चंद्रमा दैन परम सुख।
चढ़ि-चढ़ि अटन-झरोखन झाँकति नवल किसोरी ;
चँद उदै बिनु जैसैं आतुर त्रिषित चकोरी।
घूँघट-पट दियौं हुतो, सु-खोलि दयौं बदन डहडह्यौं ;
जनु अंबुज तै अबहीं निकस्यौं चँद गहगह्यौं।
छुटकी सुंदर-खुभी, चुभी सबके मन ऐसैं ;
काम-कलभ की अबहीं उलही दतियाँ जैसैं।
इमि रुकमिनि चलि आई, हरि लै रथ बैठाई ;
घन तैं बिछुरि बीजुरी मनु घन मैं फिरि आई।
लसति साँवरे सुंदर सँग, सुंदरि आभा-सी ;
जनु नव नीरद निकट चारु चंद्रिका प्रकासी।

यद्यपि आपके—नंददासजी के—पूर्व का भाषा-काव्य बहुत कम मिलता है—जिससे यह दिखाया जा सके कि अमुक-अमुक कवियों का भाव आपने अपनाया है, तथापि कहीं-कहीं श्रीमद्भागवत से कथानक और कुछ-कुछ श्रीसूर के भावों को आपने ग्रहण किया है। जो इस छोटे-से परिचय में स्थानाभाव के कारण एक ही दो दिखलाए जाते हैं। यथा—

तदवेत्यासितापाङ्गी वैदर्भी दुर्मना भृशम्,
विचिन्त्याप्तं द्विजं कञ्चित्कृष्णाय प्राहिणोद्द्रुतम्।
—भागवत दशम स्कंध।

सिसुपालहि कौं देति रुकमिनी बात सुनी जब ;
चित्रलिखी-सी रही दई यह कहा भई अब।
—नंददास।

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रियः,
गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम्॥
—भागवत दशम स्कंध।

जब तैं तुम्हरे गुन-गन मुनि-जन नारद गाए ;
तब तैं औरु न भाए, अमृत तें अधिक सुहाए ।

—नंददास ।

द्विज, द्वारावति देखि न आवति ;
नारदादि, सनकादि महा-मुनि,
लौं, अवलोकि प्रीति उपजावति ।
विद्रुम, स्फटिक पची कंचन-खचि,
मनि-मय मंदिर बने बनावति ;
जितने तरु, नर, नारि अत्र खग,
सबहिन कों प्रतिबिंब दिखावति ।
जल, थल रँग बिचित्र बहुत बिधि,
अवलोकति आनंद बढ़ावति ;
भूलि रहे अति चतुर चितैं चित,
कौंन सत्य कछु मरम न पावति ।
बन, उपबन, फल, फूल, सुभग सर,
सुक, सारिका, हँस, परावति ;
चातक, मोर, चकोर, वदत पिकु,
मनहु मदन चटसार पढ़ावति ।
धाम-धाम संगीत सरस गति,
बीना, बैनु, मृदंग बजावति ;
अति आनंद प्रेम पुलकति तनु,
जहँ-तहँ जदुपति कों जस गावति ।
निसि-दिन रहति बिमान रूढ़ि रुचि,
सुर-बनितनि सँग सब आवति ;
'सूर' स्याम क्रीड़त कौतुक-बस,
अमरन अपनों भवन न भावति ।

—सूर-सागर ।

पुरी परम माधुरी, विप्र चहँ रह्यो चकित चित ;
श्रीनिवास कों निज निवास पुनि का कहियै तित ।
बन, उपबन के रूख भूँख भाजति तिहि देखैं ;
अमृत-फलन सों फले फरे सुर-बर मन लेखैं ।
ललित लतन की फूलन झूलन अति छबि छाजै ;
जिन पै अलि-बर राजै, मधुर जंत्र से बाजै ।
सुक, पिक, चातक, सबद सु-मिठी धुनि अस रटहीं ;
मनो मार-चटसार, सुढार चटा से पढ़हीं ।
औरु बिहंगम रँग-भरे बोलत हिय हरहीं ;
मनु तरु-बर रस-भरे परसपर बातैं करहीं ।
सुभग सरोवर निरमल मनु मुनि को मन जैसैं ;
प्रफुलित बसईं इंदु सरोवर राजति तैसैं ।
कुंज-कुंज प्रति-पुंज भँवर गुंजति अनुहारे ;
मनु रबि-डर तम भजे, तजे रोवति है बारे ।
उज्जल मनिमय अटा, घटा सों बातैं करईं ;
जगमग, जगमग जोति होति रवि ससि सों अरईं ।
चपल पताका फरिकै, अरिकै अरक-किरन जहँ,
घाम न कबहूँ परसै, नित ही छाँह रहति तहँ ।
जाल-रंध्र मग अग्र, धूम जनु जल-धर धुरवा ;
आनँद भरि-भरि उरवा, नाँचति मधुरे मुरवा ।
बगर-बगर सब नगर रही नव-गुड़ी उड़ी छबि ;
मनों गगन में अगन चौंखटे-चंद रहे फबि ।
जैसेई देव-विमान, द्वारिका देखनि आए ;
देखि-देखि मन हरखे बरखे सुमन सुहाए ।
कृष्ण-भावती पुरी निरखि द्विज हरख भयों अस ;
जगतद्वंद तैं छुट्यों मिल्यों आनंद महा जस ।

आपके मनोरम भव्य भावों को परवर्ती कवियों ने भी अधिकता के साथ अपनाए हैं, पर इस ख़ूबी से नहीं, अतः ऐसे उदाहरण देने में इस समय स्थानाभाव के कारण हम असमर्थ हैं, किंतु इतना निवेदन और करके इस लेख को समाप्त करते हैं कि हमारे परम श्रद्धेय मिश्र-बंधुओं ने आपको—नंददास को—पद्माकर की श्रेणी में संयुक्त किया है। इसे तो सु-रसिक साहित्य-मर्मज्ञ ही जानें, पर हम तो आपको व्रज-भाषा का "जयदेव" ही कहेंगे ।

जवाहरलाल चतुर्वेदी

आतप

(१)

आतप को प्रखर प्रताप तपि रह्यो ताप,
भाषत "रसाल" ज्वाल-जाल बगरायो है ;
प्रखर प्रभंजन की लपट लपट सम,
भभकत भूमि भारो भार ज्यों जरायो है।
जाति छिपि छाँह-रवि करनि डरनि दौरि,
तीर ह्वै बफ़ारो उड़ि निजहिं दुरायो है ;
जानि परै अगिन दिशा सों देव वैसानर—
रवि सँग लोकन विलोकन को आयो है।

(२)

छायो है प्रखर ताप दाप को प्रताप-पुंज,
कुंज औ निकुंज लूक हूक सों सतायो है ;
तायो है तवा सों जासों भूतल भभकि भूरि,
नीरस निदाघ कोपि जग बिकलायो है।
लायो है मयूखन मयूख भरि भानु इत,
अगिन दिसा सों कोऊ कहै कढ़ि आयो है ;
आयो है तहाँ सों ह्वै तपित रवि-रथ-हेम—
कहत "रसाल" यह ताको ताप छायो है।

रामशंकर शुक्ल "रसाल"

अदृष्ट

(१)

दोपहर का समय था। हरिहर ज़मीन पर, एक दरी बिछाकर, अपने कमरे में अकेला बैठा हुआ था। थोड़ी देर पहले वह नर्मदा से आया था। बहुत से लोगों के साथ प्राणाधिका सुधा के अवशिष्ट फूलों को नर्मदा में विसर्जन करने के लिये गया था।

उसके परिवार में अधिक लोग नहीं थे। स्त्रियों में उसकी एक-मात्र विधवा सास इस दुर्योग के समय साथ देने के लिये देहात से आई थी। उसी के साथ, हरिहर के पड़ोस में रहनेवाली, दूर के रिश्ते की, मौसेरे भाई की एक तरुण विधवा योग दे रही थी। विधवा का नाम था सावित्री।

सावित्री ने कमरे में प्रवेश कर हरिहर से कहा—आप यहाँ अकेले बैठे हुए हैं। कितनी देर हुई आए ?

हरिहर ने कहा—अभी थोड़ी देर हुई आए।

सावित्री ने आँचल सँभालते हुए कहा—ऐसा जानती, तो ज़रा पहले आ जाती। मैंने समझा था कि लोग जब यहाँ से ८-९ बजे सुबह गए हैं, तब दो बजे के पहले नहीं आ सकते।

हरिहर ने उत्तर में समाधान करते हुए कहा—लोग जल्दी इकट्ठे हो गए और काम भी जल्दी हो गया। कोई ज़्यादा देर नहीं लगी। यही घंटे-दो घंटे में घाट का काम कर लोग स्नानादि कर चले आए।

हरिहर की सास सूने घर में जाकर चूल्हा जलाने का उपक्रम करने लगी। सावित्री ने हरिहर से इस प्रकार बातचीत करना शुरू किया—तुमने तो सुना होगा, बेचारी सुधा का चेटका अभी ठंढा भी नहीं हुआ और लोग विवाह की बातें चलाने लगे। मैं ऐसा कदापि नहीं होने दूँगी। सुधा साक्षात् सती थी। आज प्रातःकाल घर की स्त्रियों ने उसके हाथ की उतारी हुई चूड़ियाँ हाथ में पहनी हैं। उसका सौभाग्य कैसा था ? सूर्य के समान देदीप्यमान और गर्व-पूर्ण। कौन हैं, जो विवाह की चर्चा चलाते हैं ? जब तक सुधा के चेटके पर चौमासे का पानी न पड़ जायगा, तब तक विवाह का नाम नहीं लिया जा सकता।

हरिहर आँखें नीचे किए हुए सुनता रहा। सावित्री कहती गई—इतनी बड़ी गिरस्ती है। छोटी-सी लड़की के साथ मुझे क्या शादी करनी है। गुड़िया-गुड्डे के विवाह

तो अब करना नहीं है। इतनी बड़ी गिरस्ती और दुधमुँही बच्ची से विवाह ? राम-राम, ऐसा नहीं हो सकता। अब तो ऐसी सयानी बहू चाहिए, जो आते ही घर का काम-काज हाथों-हाथ ले-ले और पिताजी को और तुम्हें किसी तरह की तकलीफ़ न हो। पिताजी (हरिहर के पिता) भी अब बूढ़े हो चले हैं। आँखों से साफ़ दिखाई नहीं देता। अब उन्हें भी तो लोटे-भर पानी का सहारा चाहिए। तुम कोई चिंता न करो। मैं सब प्रबंध कर दूँगी। घर को ऐसा न रक्खूँगी, जिसमें कोई चिराग़ जलानेवाली बहू भी न हो।

हरिहर ने कहा—बात तो ठीक है पर...

सावित्री ने छेड़कर कहा—पर, पर की ज़रूरत नहीं। मैं सब ठीक कर लूँगी। ज़रा भी चिंता न करो।

सावित्री की एक और सगी विधवा बहन थी। उससे छोटी थी। गौरी उसका नाम था। सावित्री ने गौरी का उल्लेख करके कहा—गौरी को तो तुमने अच्छी तरह से देख ही लिया है। उसी का नाम तुम्हारे सामने लेती हूँ। इतना कहकर उसने ज़रा मुस्करा दिया।

हरिहर के कलेजे पर छुरी चल गई। नदी के घाट पर स्नान करते समय भी, सावित्री की इसी छोटी विधवा बहन का नाम कानों-कान उसने सुना था। उसने यह भी सुना था कि ऐसा हो जाने से गिरस्ती बिगड़ेगी नहीं, वरन् सँभल जायगी। अब तो ऐसी ही बहू की ज़रूरत है।

दुबारा वही बात सुनकर उसका विरह-विदग्ध हृदय मसोसने लगा।

सावित्री ने कहा—आहा, सुधा कैसी थी, कैसी भोली-भाली, अपने काम में चुस्त-दुरुस्त, कभी किसी ने उसका घूँघट खुला हुआ नहीं पाया। कभी किसी ने, किसी बहाने से, तुमसे बातें करते नहीं देखा। अपने किसी आवश्यक कार्य के लिये इशारा करते भी नहीं देखा, ससुर ने इतने वर्षों में एक बार भी उसके पैर का अँगूठा तक न देखा। सुधा—सुधा थी। लाखों में सुधा-सरीखी सती बहू नहीं मिल सकती। बहू क्या थी, मानों देवी थी। घर के, गिरस्ती के, बिरादरी के—सभी स्त्री-पुरुष जिसे देखो वही आदर के साथ सुधा का नाम लिया करते थे।

सुधा की प्रशंसा सुनते-सुनते हरिहर के आँसू टपकने लगे।

सावित्री ने कहा—रोओ, कितना रोओगे, किन-किन बातों को याद करके रोओगे। ज़िंदगी-भर रोने के लिये पड़ी है। जिसने सुधा की मृत्यु सुनी, आश्चर्य से चकित हो गया। पड़ोस की जिस स्त्री ने उसका मरण सुना, एक बार आँखों से आँसू बहा दिए।

कहते-कहते आवेग और आंतरिक प्रेम तथा श्रद्धा के कारण निर्मल-हृदया सावित्री के भी आँसू आ गए। आँचर से आँसू पोंछकर सावित्री ने कहा—अपने आँसू पोंछो, अधीर होकर आँसू बहाना ठीक नहीं है।

हरिहर बहुत सख़्त हृदय का नौजवान था। आज तक उसने आँसू का नाम तक न सुना था। सावित्री की असीम सहानुभूति का प्रश्रय पाकर वह अत्यधिक विह्वल होकर फूट-फूटकर रोने लगा। सावित्री ने कहा—अब रोना ही सार है। पर, ऐसा रोना किस काम का जिसे देखकर लोग हँसें और कहें, स्त्री मर गई है तो रोते हैं। मर्द भला औरतों के लिये रोते हैं। औरतें तो मर्दों के पैर की जूती हैं। धीरज धरो, अधीर न होओ।

हरिहर ने हाथ पसारकर कहा—नहीं-नहीं, सावित्री, मैं मर जाऊँगा, अब ज़िंदा नहीं रह सकता। ऐसा ही जान पड़ता है—मुझे आँखों में ऐसा ही दिखाई पड़ता है।

सावित्री कहने लगी—ईर्षाजन्य कटाक्ष करके कहने लगी—झूठी बातें हैं। अभी रोते हो, पर कल के दिन सुधा का नाम तक भूल जाओगे। मेरा कहना सच निकले, तो कहना, सावित्री झूठ बोलती थी—उसका कहना झूठ निकल गया।

हरिहर चुप रहा।

सावित्री ने कहा—अच्छा, मेरे सिर की क़सम खाकर कहो, अब तुम्हारा क्या विचार है ? शादी करोगे, गौरी के साथ...

हरिहर ने कहा—कुछ कह नहीं सकता। क्योंकि जो सोचता हूँ, वह तो होता ही नहीं। सुधा को देहात भेजने के पहले मैंने निश्चय किया था और उससे, कहा था—इस घर में तुम्हें तकलीफ़ होती है, पर अब मैं तुम्हें कोई तकलीफ़ न होने दूँगा। मैं अब इस मकान को तिमंज़िला बनवा दूँगा। ऊपर छत रख दूँगा जिससे तुम्हें काफ़ी धूप, उजेला और हवा मिल सके। बुधवार के दिन जब मैं देहात गया, तब मैंने कहा था—सोमवार के

दिन से ही मकान में मज़दूर लगाकर काम शुरू करा दूँगा। महीने-भर के अंदर मकान का ऊपरी हिस्सा बनकर तैयार हो जायगा। पर हाय, सोमवार से पहले, इतवार को सुधा—सुधा चल बसी। सोचता था, मकान खड़ा करूँगा। पर, मकान गिर पड़ा। इसलिये सावित्री, कहता हूँ, कुछ कह नहीं सकता, मैं क्या करूँगा या क्या न करूँगा, जो होना होगा, वह होगा और होकर रहेगा। मेरे-तुम्हारे सोचने से और तय करने से क्या होगा। प्रारब्ध के भँवर में मैंने अपने तृण-समान जीवन को छोड़ दिया है। भँवर उसको कहाँ ले डूबेगा, इसका कौन ठिकाना है।

सावित्री कहने लगी—जाऊँ, ज़रा देखूँ, चूल्हे का क्या हाल है? देरी काहे की हो रही है। माजी ने खाना तैयार किया या नहीं, पर जाने के पहले कहे जाती हूँ, गौरी को न भूलना। बड़ी अच्छी लड़की है। सीधी-सादी है। बिलकुल तुम्हारे लायक़ है। ऐसी चीज़ हाथ से न जाने देना, नहीं तो पछताओगे।

"माजी चूल्हा बला या नहीं"—कहते-कहते सावित्री रसोईघर की ओर चली गई।

(२)

जिस दिन सुधा का देहांत हुआ था, ठीक उसके पतीसवें दिन हरिहर ने एक कुँवारी पंद्रहवर्षीया लड़की का पाणि-ग्रहण किया।

सुधा के मरने के चौथे दिन, रात को वह खुली हुई छत पर चटाई बिछाकर लेटा हुआ था। उसका विरह से व्यथित शोकाकुल हृदय भीतर से बारंबार आर्तनाद कर रहा था। उसने अपनी इस अवस्था को सामने रखकर विचार किया। सुधा—सुधा अब इस जीवन में नहीं मिल सकती। परंतु, तौभी घर-गिरस्ती का ख़याल कर एक स्त्री के बिना उसका जीवन नहीं कट सकता। जितने दिन वह स्त्री के लाने में विलंब करेगा, उतने ही दिन उसको अधिकाधिक कष्ट उठाना पड़ेगा। आज परिवार की अन्य स्त्रियाँ आई हैं, घर में चिराग़ जलाने का इंतज़ाम हो जाता है, किसी-न-किसी प्रकार खाना पकाकर, कोई-न-कोई एक बार खिला जाता है. परंतु सदा तो ऐसा नहीं हो सकता? दूसरे की स्त्रियों के ऊपर अपना अधिकार ही क्या है? इसलिये चाहे जो हो और चाहे जैसे हो, इस कठिनाई की और दुख की अवस्था में आज उसे एक अवलंबदायिनी अपनी स्त्री का होना अत्यंत आवश्यक जान पड़ा। उसने सोचा, सुधा की देवी मूर्ति को सामने रखकर कहने लगा—प्यारी, ईश्वर जानता है, मैं तुमसे कोई छलना नहीं कर रहा हूँ। मैं तुम्हारे साथ वंचना नहीं कर सकता। अँधेरी रात के संख्यातीत नक्षत्र मेरी मर्मव्यथा को और मेरी वर्तमान परिस्थिति को देख रहे हैं। मैं तुम्हारे साथ जान में या अनजान में किसी तरह का धोखा नहीं करना चाहता हूँ। मैं अपनी ओर से स्त्री रखने अथवा विवाह के संबंध में कोई विचार प्रकट न करूँगा। तुम मेरी सती गृहिणी और प्राणाधिका हो, मुझे दूसरी स्त्री की तरफ़ निगाह न डालनी चाहिए। दूसरी स्त्री की कल्पना करना मेरे लिये पाप होगा। घर-गिरस्ती को चलाने के लिये स्त्री की ज़रूरत दिखाई पड़ती है, परंतु नहीं-नहीं, मैं इस क्षुद्र कार्य के लिये स्त्री नहीं रक्खूँगा—देखूँगा जब एक बार तुम्हें सदा के लिये खो चुका हूँ, तब देखूँगा, कैसे होता है और कैसे-कैसे होता है।

दूसरे दिन प्रातःकाल हरिहर को पिताजी ने बुलाया। पिताजी कमरे में अकेले बैठे हुए थे। पिताजी ने कहा—हरिहर तुमने सुना, तुम्हारे चचेरे बड़े भाई, एक लड़की का ज़िक्र चला रहे हैं। कहते हैं, लड़की तुम्हारी भाभी की सगी बहन है। देखने-सुनने में उसी के समान है। काम-काज सँभाल लेती है। इसके अलावा बेटा, देहात की लड़की है। जैसा पढ़ाओगे वैसा पढ़ेगी, जैसा कहोगे वैसा करेगी।

हरिहर को स्मरण आया। कल संध्या समय सावित्री ने आकर इसी नवीन लड़की का समाचार दिया था। हँसते-हँसते सावित्री ने कहा था—सुना तुम्हारे बड़े भैया कहते हैं, लड़की ने बड़ी तपस्या की है। पूर्व जन्म में इतनी महान् तपस्या किए बिना, ऐसा सुंदर वर कैसे मिल सकता है। पढ़ा-लिखा और हज़ार पाँच-सौ लोग जिसकी इज़्ज़त करें। सावित्री ने कहा था—ओहो, कुँवारी के सामने भला राँड़ के भाग जग सकते हैं। लड़की की तो क़िस्मत फट पड़ी है। पंद्रह वर्ष तक कोई लड़का न मिला, मानों तुम्हारे लिये ही बड़ी अधीर प्रतीक्षा के साथ उसका अदृष्ट देवता सुधा के ऊपर अपना ब्रह्मास्त्र छोड़कर अपनी लीला दिखाना चाहता था। कुँवारी के भाग्य से ब्याही के भाग्य फूट गए।

इस पर हरिहर ने कहा था—सावित्री, बात तो ठीक है, परंतु मैं तो विवाह के बारे में कुछ नहीं कह रहा हूँ। मैं तो इस संबंध में कोई जवाब किसी को नहीं देना चाहता।

परंतु आज प्रातःकाल ही हरिहर के पिता ने उसी एक बात की मीमांसा करने के लिये, उसी एक बात की जिज्ञासा करने के लिये और जिज्ञासा करके निश्चयात्मक उत्तर प्राप्त करने के लिये उसे बुलवा भेजा है। हरिहर का मुख पिता की बातें सुनते-सुनते विवर्ण हो गया। मानो वह मूर्च्छा खाकर गिर ही पड़ेगा, परंतु फिर भी उसने अपने को शरीर का सारा बल लगाकर सँभाला और खड़ा रक्खा।

पिता ने कहा—बेटा, मैं बूढ़ा हुआ, सिर के तमाम बाल पक गए। दुनिया ख़ूब देखी है। आजकल के लड़कों की तबियत को मैं पहचानता हूँ। तुम्हारे बड़े भाई ने कहा था—यदि हरिहर न मानें, तो मेरे साथ लड़की देखने के लिये भेज दो। जब लड़की चाँद के समान सुंदर है, तब उसको कौन पसंद न करेगा, खरा सोना, चाहे कसौटी पर कसो, चाहे बाज़ार में दिखाओ, खरा ही उतरेगा। पिता ने आगे कहा—बेटा, मेरी इच्छा मिट गई। अब मुझे लड़की देखकर करना ही क्या है। तुम ख़ुद जाकर लड़की पसंद कर लो। पसंद करना तुम्हारा काम है और विवाह करना मेरा काम। इसके अलावा, उसकी बड़ी बहन मुझसे कहती है, यदि लड़की घर का काम-काज न सँभाल सकेगी, तो मैं धरना देकर उसको इस काम के लायक़ बनाऊँगी। आप कोई चिंता न करें।

पिता ने कहा—बेटा, हर तरह का सुभीता है। तकलीफ़ कुछ न होगी। जैसा कहोगे, वैसा हो जायगा।

हरिहर ने सिर झुकाए हुए कहा—पिताजी, मैं इस संबंध में क्या कहूँ?

पिताजी ने उत्साह और आत्मगर्व के साथ कहा—ठीक है बेटा, जब मैं मौजूद हूँ, तब घर-गिरस्ती के मान की-दृष्टि से और लोकाचार के लिहाज़ से तुम्हारा इस बात में दख़ल देना ठीक न होगा। मैं ही लड़की को देख आऊँगा। तुम जाओगे, तो बड़ी निंदा होगी, लोग कहेंगे, आजकल के लड़के लड़कियों की सूरत देखकर शादी करते हैं। इसके अलावा लोग यह भी कहेंगे, घर का सयाना बूढ़ा बाप मौजूद है, तब लड़के ने ऐसी हरक क्यों की? पिता कुछ है ही नहीं, क्या लड़का ही सब कुछ है?

हरिहर ने सोचा, चिंता करने की बात नहीं है। पिताजी अभी लड़की देखने जाते ही हैं। लड़की देखकर आएँगे और फिर मुझसे बातें करेंगे। परंतु जब उसने देखा कि पिताजी बड़े भैया को साथ लेकर लड़की को देखने के लिये गए, लड़की पसंद कर आए, लड़की की झोली भर दी और पंडितजी से विवाह का मुहूर्त तय कर लिया, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, साथ ही उसे दुख भी हुआ। परंतु उसने सोचा, घर में अभिभावक के नाम से अ पिताजी ही शेष बचे हैं और यथेष्ट वृद्ध भी हो चुके हैं, तब उनकी आत्मा को किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाना ठीक भी नहीं है। उनके प्रति इस असहाय अवस्था में मैं अपने पुत्र-जन्य कर्तव्य का जितना पालन कर सकूँ, उतना ही अच्छा है। हरिहर का मस्तक गर्व और श्रद्ध से ऊपर उठ गया और उसने सोचा, मैं अपने पि के निश्चय को नहीं टाल सकता। इस अवस्था में उनकी समस्त आज्ञाओं का मानना मेरा कर्तव्य है। यदि उनकी किसी भी आज्ञा की उपेक्षा करूँगा, तो नरक में जाऊँगा और प्रायश्चित्त करने के लिये भी उसे मौक़ा न मिलेगा।

दिन-भर निमंत्रण में आए हुए भोजन करनेवालों लोगों की कमी न रही। भोजन बनानेवालों और परोसनेवालों को दम मारने की फ़ुरसत न मिली। चौबेजी ने बढ़कर हरिहर के पिता से कहा—बाबा, दिन-भर गाँजे की दम तक न लगाई। चिंता न कीजिए। हज़ारों लोगों को बात-की-बात में मैंने भोजन बना खिलाया है, फिर तो यह मिठाई है, हलवाई के यहाँ की बनी हुई है। इसमें कौन देर लगती है। चौबेजी ने एक पानी देनेवाले को ज़रा बैठे हु देखा, तो कहने लगे—पाँड़ेजी, फिर बैठना, ज़रा एक नज़र देख आओ, जीमनेवालों के पास पानी को घा तो नहीं भयो है।

विवाह हो जाने के पश्चात् के विरामहीन जन-कल रव और समारोह में हरिहर को आज एक विचि उत्साह दिखाई पड़ा। उसमें भी मानों आनंद-कलरव एक आनंदमयी तरंग उसके समग्र अंगों में एक कि प्रकार के हर्ष को लेकर उत्थित हुई। एक नव्य स्फूर्ति

और एक उद्दाम शक्ति उसके सारे रोम-रोम में, रग-रग में विरहाकुल विह्वलता को निकाल फेंककर अपना आसन जमा बैठी। उसने सोचा, सुधा मर गई, तो मैं क्या करूँ। मैं उसकी मृत्यु का कारण नहीं हूँ। कल तक उसका भाग्योदय था और आज दूसरे का सौभाग्य-सूर्य उदय हुआ है।

उसने सोचा, रात को सुहाग-मंदिर में प्रवेश करूँगा। यदि किशोरी दरवाज़े की ओर मुँह किए हुए बैठी न होगी, तो पीछे से दबे पैर जाकर उसका घूँघट खोल दूँगा। दोनों हाथों से आँखें मीचकर अपने प्रथम मिलन के प्रेम-परिणय के परिचय-स्वरूप उसके अरुण कपोलों पर अपने स्निग्ध चुंबन का दाग़ छोड़ दूँगा और अपने हृदय से चिपटा लूँगा।

हरिहर ने रात को कोई दस-साढ़े दस बजे सुहाग-मंदिर का एक पट धीरे से खोला। सारा कमरा बिजली की रोशनी से जगमगा रहा था। इत्र की तेज़ ख़ुशबू से सारा कमरा महक से भरा हुआ था। कमरे के बीच में एक मसेरीदार पलँग बिछा हुआ था। मसेरी के चारों ओर बेले के ताज़े हार अपनी मतवाली सुगंध से झूल रहे थे। पलँग के चारों ओर आइने जड़े हुए थे। आइनों में बिजली की बत्तियों की रोशनी झलक रही थी।

हरिहर ने भीतर से दरवाज़ा बंद कर लिया। देखा, किशोरी घूँघट खोले हुए बैठी है। उसको देखकर उठ खड़ी हुई। कहने लगी, जीजी ने यह मिठाई आपके लिये भेजी है।

किशोरी के साथ आँखमिचौनी खेलने की बात और फिर उसे अपने प्रगाढ़ चुंबन से चौंका देने की बात हरिहर भूल गया। उसने देखा, उसने जो सोचा था, ठीक उसके विपरीत हुआ। सहसा इतनी जगमग रोशनी के होते हुए उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उसे मूर्च्छा-सी आने लगी। वह गिरते-गिरते पलँग पर निर्बल रोगी की तरह बैठ गया।

उसने किशोरी के समान बेहया औरत नहीं देखी थी। उसने कभी सुधा का घूँघट खुला हुआ नहीं पाया। आज अपनी ही नवीना स्त्री का खुला हुआ घूँघट देखकर एक आत्मधिक्कार, प्रवंचना और तिरस्कार से उसकी संमग्र आनंद-कल्पना पराभूत हो गई। उसने सुधा को अब तक इशारे के साथ बातचीत करते हुए देखा था—उसने किशोरी की-सी आज़ाद औरत कभी नहीं देखी।

हरिहर ने इस समय के पहले किशोरी को नहीं देखा था। किशोरी के मुख के ऊपर एक वक्र दृष्टि डालकर उसने दूसरी ओर मुँह फिरा लिया। हरिहर स्त्रियों में कितने ही गुणों का होना आवश्यक समझता था, पर सबसे बड़े जिस गुण को वह महत्त्व देता था, वह था उनमें स्त्रियोचित लज्जा का होना। उसे सुधा और किशोरी में एक घोर असामंजस्य और ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ दिखाई पड़ने लगा। उसे स्मरण आया। सुधा के सुहाग-दिवस की बातें उसकी आँखों के सामने दिखाई पड़ने लगीं। उसे याद आया, प्रार्थना करने पर भी सुधा ने अपना घूँघट खोलकर अपना मुखड़ा नहीं दिखाया था। असीम लज्जालु होने के कारण उसका स्पर्श करना तक उसे बड़ा कठिन था। सुधा--सुधा तो केवल उस दिन अपने हृदय के भीतर, प्रेम के एक असीम समुद्र को लेकर—एक असीम प्रेम-प्रणय को लेकर एकमात्र क्षुद्र दासी की तरह नारी-जीवन की अपनी समग्र गरिमा को अर्पण करने के लिये हरिहर के श्रीचरणों में मस्तक झुकाने के लिये आई थी और किशोरी?—किशोरी तो जैसे अपना एक स्वाभाविक अधिकार प्राप्त करने के लिये आई है। यदि पुरुप प्रेम करना जानता है, तो वह भी प्रेम पाने का अधिकार रखती है। स्त्रियों के जो स्वाभाविक अधिकार हैं, वे अपने को उनसे वंचित हुआ नहीं देखना चाहतीं।

हरिहर का हृदय विचलित हो उठा। उसने सोचा, उसे सुधा चाहिए—किशोरी को लेकर वह क्या करेगा? सुधा उसे अमर बना सकती है, किशोरी उसे नारकीय कीड़ा बनाकर छोड़ेगी। किशोरी-जैसी अधिकारिणी स्त्री उसे नहीं चाहिए, उसे चाहिए सुधा-जैसी विनम्र सेविका। हरिहर हाथ मलने लगा। बिजली की सारी बत्तियाँ उसने बुझा दीं। उसकी आँखों के आँसू किसी बाधा को न मानकर टप-टप करके गिरने लगे। उसने उठकर खिड़की खोल दी।

किशोरी ने नम्रता के साथ कहा—अपनी चरण-रज दीजिए और कहकर हरिहर के पैरों पर अपना मस्तक झुका दिया।

खिड़की के उस पार नील आकाश-मंडल में चतुर्दशी का चंद्रमा, नक्षत्र-खचित रजनी की निस्तब्धता में अपनी प्रेयसी ज्योत्स्ना के साथ क्रीड़ा कर रहा था। मंगल-मय विवाहोत्सव के उपलक्ष्य में शहनाई अत्यंत मधुर स्वर में बज रही थी।

ज्योत्स्ना का मिलन-आनंद, शहनाई का अत्यधिक मधुर स्वर हरिहर को कैसा जान पड़ता था, उसके हृदय की क्या अवस्था थी—ये बातें केवल अंतर्यामी भगवान् ही जानते थे।

(३)

कितने ही दिन बीत गए। हरिहर ने देखा, किशोरी एक अत्यंत निर्बल लड़की है। उसके शरीर पर नाममात्र को लावण्य नहीं है। है तो केवल हड्डियों का एक श्रीहीन पिंजरमात्र। हरिहर का हृदय अपने इस दुर्भाग्य को देखकर भीतर-ही-भीतर कचोटने लगा। वह किशोरी के बारे में कुछ नहीं जानता है। किशोरी कौन है, उसके मा-बाप हैं या नहीं, उसके भाई-बंधुओं का क्या हाल है, क्या करते हैं? उसकी कौटुंबिक अवस्था और आर्थिक अवस्था कैसी है। हरिहर इन बातों की जिज्ञासा करना चाहता था, परंतु जब किशोरी अपनी सूरत-शकल से, अपने मधुर भाषण से उसे प्रसन्न नहीं कर सकी, तब उसने उससे कोई बात पूछना भी ठीक न समझा। परंतु एक दिन इतना सब होते हुए भी उसने सोचा—किशोरी अब मेरी गृहिणी बनकर आई है। उसके बारे में हरएक बात उससे जानना चाहिए।

हरिहर ने पूछा—अच्छा किशोरी, भला यह तो बताओ, तुम्हारी यह शादी एकाएकी किस प्रकार लगी? पिताजी जब तुम्हें देखने के लिये गए थे, तब तुम्हारे दिल में कैसे-कैसे विचार उठे थे? इसके अतिरिक्त हरिहर ने और कुछ प्रश्न पूछे।

किशोरी ने बताया—एकाएकी जीजा पिताजी को लेकर घर आए। मा से कहने लगे, ज़रा किशोरी की तैयारी कर रक्खो, मेरे चाचा उसे देखने आए हैं। भोजन करने के बाद दोपहर के उपरांत लड़की देखेंगे।

किशोरी ने बताया, जीजा के कहने के बाद किस प्रकार उसके हृदय में एक प्रकार का विचार हलचल मचाने लगा। किस प्रकार मा ने आकर मुझे स्नान के लिये कहा, किस प्रकार उसने एक फटी हुई धोती स्नान करके पहनी, किस प्रकार उसकी उतारी हुई गीली धोती को पहनकर मा ने मेहमानों के लिये भोजन बनाया, लज्जा और संकोच के कारण किशोरी ठिठककर रह गई। क्षण-भर रुककर फिर उसने बताया, किस प्रकार भोजन के उपरांत, देहात के पंचों के बीच आपके पिताजी ने मेरी झोली में बतासे और नारियल डालकर मेरे मस्तक पर सौभाग्य का मुकुट पहना दिया।

हरिहर अब तक आश्चर्य से चकित होकर ये बातें सुन रहा था। उसने सुना था, किशोरी के चार भाई हैं, घर में खेती-किसानी है, फिर भी इतनी दरिद्रता! हरिहर ने पूछा—क्यों किशोरी, क्या तुम्हारे यहाँ खाने का भी ठिकाना नहीं है?

किशोरी ने उत्तर दिया—भाइयों और भौजाइयों का कौन सहारा है। तीन भाई अपनी-अपनी स्त्रियों को लेकर तीन गाँवों में दूर-दूर बसे हैं। मैं और मा केवलमात्र बड़े भैया के लड़के की बाँह पकड़कर गाँव में रह रहे हैं। बड़े भैया जब से मरे, तब से सब भाइयों ने मा और बिटिया का तल्ला छोड़ दिया। अच्छा हुआ, पिता तीन बड़ी बहनों की शादी कर गए थे। नहीं तो मा तो चिंता में घुलकर मर जाती। मा मुझे देखकर कहा करती थी, अब तेरे जले भाग्य में जो कुछ लिखा होगा—होगा, चिंता करके जले हृदय को क्यों जलाऊँ।

किशोरी ने बताया, किस प्रकार मा-बिटिया, घोर जंगल में जाया करती थीं। किस प्रकार सूखी लकड़ियों को बटोरकर बोझा बनाकर लाया करती थीं और देहात में बेचकर अपने पापी पेट की ज्वाला बुझाया करती थीं। किस प्रकार मा बेटी जंगल में, दोपहर की धूप में, नाले के किनारे आम की छाया में बैठकर नमक के साथ चने की रोटी खाकर घंटे-भर के लिये आराम किया करती थीं और मा घंटे-भर के बीच में उसे कहानी सुनाया करती थी।

मा कहानी सुनाती—किस प्रकार एक राजकुमार एक दिन जंगल में शिकार खेलने के लिये गया। शिकार के पीछे घोड़ा दौड़ाते-दौड़ाते वह कैसे बियाबान जंगल में आ गया। किस प्रकार वह दोपहर के समय प्यास बुझाने के लिये पानी की पुकार मचाने लगा। इस समय कैसे एक देहाती गोंड़ की लड़की ने भरपेट मीठा पानी पिलाकर राजकुमार की प्यास बुझाई और फिर किस

प्रकार राजकुमार उसे अपनी रानी बनाकर राजमहलों को ले गया। मा अंत में कहती—जैसे गोंड़ की लड़की के दिन फिरे, भगवान् वैसे दिन सबके फेरें।

हरिहर का आश्चर्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया। उसने सोचा, किशोरी के अच्छे दिन अब फिरे हैं और जैसे आज वह रानी बनकर सुख-सौभाग्य एवं वैभव से परिपूर्ण घर में आई हुई है। बड़े भैया ने कहा था, लड़की ने बड़ी तपस्या की है। हरिहर ने सोचा, आज उसी एकमात्र तपस्या के कारण वह उसकी धर्मपत्नी बनकर आई है। अयाचित भाव से, प्रारब्ध के संकेत-मात्र से उसने इस वैभव-परिपूर्ण घर में राजरानी की तरह अपना स्थान पा लिया है। यह स्थान तो उसका स्वाभाविक अधिकार था। वह भला उससे कैसे वंचित रह सकती। किशोरी अपने दरिद्र घर में, देहात की सहानुभूतिहीन संस्कृति में अवहेलना और अनादर के साथ पली है। हरिहर ने प्रथम रात्रि में प्रथम दृष्टिपात करते ही उसका जो निर्बल, निर्जीव एवं निस्तेज चेहरा देखा था, उसी से उसकी हीन अवस्था का उसे कुछ अनुमान हुआ था। आज थोड़े ही दिन की अपने ससुर की यथेष्ट सहानुभूति और घर के, उसकी स्वयं अपनी दृष्टि में, अपरिमित वैभव ने उसकी समग्र निर्बलता और निर्जीवता को पल-भर में उखाड़कर फेंक दिया है। अब किशोरी के मुख-मंडल पर चांचल्य वर्जित लावण्य के साथ नवयौवन की सरस स्निग्धता का संचार हो रहा है। हरिहर ने उसके इस आश्चर्य-जनक विकास को देखा है। उसने सोचा, सुधा भी तो देहात की लड़की थी। उसके मुख-मंडल पर इस तरह आश्चर्य-जनक सुख का विकास तो नहीं हुआ था। किशोरी—देहात की एक कंगाल लड़की ने सुधा को सौभाग्य-सिंहासन से ढकेलकर महीने-भर के थोड़े-से समय में अपना आसन जमा लिया है। किशोरी को चाहे अपने सौभाग्य-सूर्य के उदय होने से अपरिमित उल्लास हो, परंतु किशोरी हरिहर की दृष्टि में एक अतीव नग्न अवस्था में दिखाई पड़ी। उसके हृदय के भीतर प्रतिकार की प्रचंड भावना अपना उग्र रूप लेकर धूमकेतु की भाँति उठ पड़ी। ऐसा धूमकेतु जो किशोरी के समग्र नारी-जन्म-ऐश्वर्य के विशाल भवन को, फूस की झोपड़ी के समान क्षण भर में जलाकर भस्म कर देगा।

हरिहर कई दिनों से सावित्री के यहाँ नहीं गया था। पहुँचते ही सावित्री ने मुसकुराकर कटाक्ष के साथ पूछा—अब इस तरफ़ आप क्यों आएँगे ? नई बहू दम मारने की छुट्टी ही न लेने देती होगी। सुनाइए, बहू का काम-काज, रसोई आदि पसंद आती है या नहीं ?

सावित्री का कठोर परिहास और कटाक्ष हरिहर के हृदय को बेध गया। परंतु उसने किसी तरह उस भाव को दबाकर कहा—काम-काज और रसोई क्या पसंद आयगी ? देहात की गँवार लड़की है। शहर का नाम सुना हो तब न ? वहाँ तो अन्न देखने का तो क्या खाने का ठिकाना भी न था। बनाए तो क्या अपना सिर ?

सावित्री ने कहा—बड़ी क़िस्मतवाली लड़की है। उसके घर में खाने का ठिकाना नहीं था, तो परमेश्वर ने तो उसे अब भरपूर सौभाग्य दिया है। शहर की लड़कियों के भी भाग्य ऐसे बड़े नहीं होते।

हरिहर ने कहा—तो सावित्री, मैं ऐसी भाग्यवान् लड़की को लेकर क्या करूँगा, जिसे खाना पकाने तक की तमीज़ न हो।

सावित्री कहने लगी—तो क्या करोगे ? ऐसी बातें ज़बान पर भी लाना अब पाप है। लोग जंगल का पंछी पकड़कर पिंजड़े में डाल लेते हैं और जैसा चाहते हैं, वैसा उसे पढ़ा लेते हैं। किशोरी लड़की है, तो उसे गिरस्ती का काम-काज सिखाने के लिये उसकी बड़ी बहन तो मौजूद है।

हरिहर को याद आया, उसकी बड़ी बहन ने कहा था कि वह रोज़ धरना देकर उसको काम-काज सिखाएगी; परंतु जब से विवाह हुआ है, तब से तो उसकी सूरत तक न दिखाई पड़ी। हरिहर ने कहा—उसे काम-काज कौन सिखाएगा ? उसकी बड़ी बहन को तो अपनी बहन की भाँवरें पड़नी थीं। भाँवरें पड़ीं और उसका काम पूरा हो गया। घर बिगड़े, चाहे बने।

सावित्री ने कहा—इसीलिये तो मैंने कहा था कि अब सोच-समझकर काम करना चाहिए। गौरी कितनी कुशल लड़की है, पर जलमुँही के तो भाग्य ही फूट गए हैं। ख़ैर, जो हुआ सो हुआ, हरिहर बाबू, अब तो तुम्हें ही सब काम सँभालना होगा। किशोरी काम-काज नहीं जानती, तो ख़ुद सिखाओ-पढ़ाओ।

हरिहर ने उत्तर दिया—मैंने सिखाने-पढ़ाने के लिये

स्कूल थोड़े ही खोला है। मैं अपने सिर पर ज़िम्मेदारी क्यों उठाऊँ? देखूँगा, किशोरी कैसी भाग्यवान् लड़की है। उसने मेरी बनी-बनाई सोने की गिरस्ती बिगाड़ दी है—मेरा भाग्य बिगाड़ दिया है—अब मैं उसकी क़िस्मत बिगाड़ दूँगा। आवेश के साथ उसने कहा—किशोरी मेरी गिरस्ती नहीं निबाह सकती सावित्री। उसे मैं घर की न घाट की, कहीं की न रक्खूँगा। उससे मैं अपना बदला लूँगा, छोड़ूँगा नहीं।

सावित्री आश्चर्य में पड़कर कहने लगी—यह आप क्या कहते हैं? मंडप-तले अग्नि देवता को साक्षी रखकर और आकाश के सप्त-ऋषियों की उपस्थिति में आपने किशोरी का हाथ पकड़कर क्या शपथ ली थी? याद करो, किसी की बाँह पकड़कर उसे मँझधार में छोड़ देना महा पातक है हरिहर बाबू!

हरिहर पराजित हो गया। परंतु उसने उसी प्रकार आवेश में कहा—मैं यह सब कुछ नहीं मानता। उसने मेरी क़िस्मत बिगाड़ी है; मैं उसकी क़िस्मत बिगाड़ दूँगा। बदला, बदला और केवल बदला के सिवा मुझे कुछ नहीं दिखाई पड़ता। सावित्री, मैं नरक में जा रहा हूँ, तुम मुझे मत रोको, मैं नरक में जाऊँगा।

सावित्री ने उत्तेजित होकर कहा—पागल हो गए हैं क्या?

सावित्री के इस पागल शब्द के भीतर असीम सहानुभूति का जो विराट् समुद्र आलोड़ित हो रहा था, उसकी शीतलता और सरसता से हरिहर का व्यथित और उत्तेजित हृदय सहसा शांत हो गया।

(४)

इस घटना के तीन दिन बाद किशोरी को मायके पहुँचाने का प्रसंग आया। किशोरी मायके चली गई। उसके मायके जाने के चौबीस घंटे पहले हरिहर घर में किसी से बिना कहे-सुने अचानक बाहर चला गया। हरिहर के बाहर जाने का क्या कारण है—इस प्रकार अनायास बाहर चले जाने का क्या रहस्य है, मायके जाते वक़्त, किशोरी यही प्रश्न अपने हृदय में बारबार करती थी, परंतु उससे इस जटिल प्रश्न की मीमांसा न हो सकती थी। उसके हृदय में एक और चोट लगी, जब उसके ससुर—हरिहर के पिता—ने यह प्रकट किया कि वह भी इसका कोई कारण नहीं जानते। उन्हें तो विश्वास था कि लड़का मुझसे कुछ नहीं कह गया है, तो बहू से ज़रूर कुछ कह गया होगा। परंतु जब बहू ने भी कहा कि मुझसे कुछ नहीं कह गए, तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और बहू पर क्रोध भी आया। उन्होंने बहू से कहा—ब्याही-बरी लड़की हो, कुछ तो होश होना चाहिए। यदि घर का आदमी कहीं जाता है, तो कुछ पूछना भी तो चाहिए।

किशोरी मायके गई। उसने सोचा, कहीं बाहर दो-चार दिन के लिये गए होंगे, आ जायँगे। छोटी-सी बात के लिये इतनी माथापच्ची करने की ज़रूरत नहीं है। किशोरी मायके में जाकर रही। वह अपनी हमजोली की सखियों की क्रीड़ा के मध्य समय काटती, परंतु उसका मन ससुराल में बना रहता। सोचती, मेरे ही कारण, मेरी ही अल्पज्ञता, अनभिज्ञता के कारण रुष्ट होकर चले गए हैं। मेरी मूर्खता के कारण ही उन्हें क और दुख उठाना पड़ रहा है। किशोरी सोचती और सोचते-सोचते उसके हृदय में एक अभिनव एवं करुण व्यथा का भाव जागृत हो उठता। उसने सोचा, मैं यहाँ न रहूँगी। वहाँ जाकर उनकी सेवा में निरत होऊँगी। और अपने को उनकी सच्ची सेवा के लिये तैयार करूँगी।

किशोरी पंद्रह दिन के भीतर ही मायके से ससुराल आने के लिये तड़प रही थी। वह अपनी मा से कैसे कहे कि वह ससुराल जाना चाहती है। इसी बीच में सौभाग्य से ससुराल से संदेशा आया—बहू का यहाँ आ जाना बहुत ज़रूरी है। रोटी पकानेवाला कोई नहीं है – घर में बड़ी तकलीफ़ होती है।

किशोरी अपने स्वामी का समाचार जानने के लिये दरवाज़े की ओट में कान लगाए हुए थी। परंतु उसके स्वामी का तो कोई समाचार नहीं सुनाया गया। अनेक प्रकार की आशंकाओं से उसका नारी-हृदय अभिभूत हो रहा था। किशोरी ने ससुराल की तैयारी कर ली और तैयारी करने में बड़ा उत्साह दिखाया। वह अपनी ससुराल पुनः असीम लज्जा और संकोच को लेकर आई! उसके स्वामी तब भी घर लौटकर नहीं आए थे। उसने समझा था, पंद्रह दिन हो गए, अब तो आ ही गए होंगे, परंतु अपने एकमात्र अवलंब जीवनस्वामी को न पाकर उसके ऊपर वज्रपात-सा हुआ। वह अपनी इस

मार्मिक व्यथा को कैसे प्रकट करे और किस पर प्रकट करे, वह भी वह न जान सकती थी और न सोच सकती थी।

महीना बीत गया और इसके बाद एक और पूरा महीना बीत गया, हरिहर परदेश में भ्रमण करता रहा। कभी एक स्थान पर जमकर नहीं रहा। एक स्थान से दूसरे स्थान की भ्रमण-संबंधी विचित्रता को लेकर उसका नैराश्यपूर्ण अंतस्तल कुछ सांत्वना पाता रहा। उसका हृदय परदेश में सावित्री की उस दिन की असीम सहानुभूति को लेकर व्यस्त रहा। उसके निभृत अंतर्प्रदेश में इस लावण्यमंडिता सुंदरी विधवा का मुखमंडल प्रदीप्त होकर दिखाई देता रहा। हरिहर जिस दिन नर्मदा में सुधा के फूल बहाकर आया था, उस दिन सावित्री ने अपनी सगी विधवा बहन गौरी के बारे में जो बातें की थीं, उस दिन हरिहर सावित्री से कुछ कहना चाहता था, परंतु वह कुछ न कह सका। उसने सावित्री से कहा था—प्रारब्ध के भँवर में मैंने अपने तृण-समान जीवन को बहा दिया है। भँवर उसको कहाँ ले डूबेगा, इसका कौन ठिकाना है। अपनी इस वाणी के भीतर हरिहर ने अपने एक और अंतस्तल-व्यापी भाव को अभिव्यक्त करने का विफल प्रयास किया था। परंतु, अच्छा हुआ, वह भाव व्यक्त नहीं हुआ। यदि वह भाव उस दिन व्यक्त हो जाता, तो उसका क्या दुष्परिणाम होता, हरिहर इस प्रवास के दिनों में उसे सोचकर काँप-काँप उठता था। वह जानता था कि उसने सावित्री के प्रस्ताव को तिरस्कृत किया है—और तिरस्कृत किया केवल अपने एक स्वार्थ के कारण। परंतु, वह यह सोचकर भी न सोच सकता था कि उसका भाग्य-देवता उसे किसी अन्य प्रबल धारा में फेंककर बहा ले जाना चाहता है।

तथापि अपनी इस हीन और दुखदाई परिस्थिति में हरिहर ने सोचा, सावित्री घर का कार-बार कितना अच्छा समझती है। व्यवहार में कितनी कुशल है और इसकी अपेक्षा उसके हृदय में सहानुभूति का कैसा एक अथाह समुद्र लहरा रहा है। सुधा भी ऐसी ही थी। वह घर के कारबार में अपना सानी न रखती थी। उसका व्यवहार स्नेह से भरा हुआ रहता था और उसका प्रेम ऐसा था, जिसमें हरिहर ने कितनी बार ग़ोता लगाया, पर उसकी थाह तक न पा सका। हरिहर सोचने लगा, यदि सावित्री उसे मिल जाय, तो उसका समग्र दुख-दर्द पल-भर में मिट जाय। उसके समान सुखी आदमी उसे कोई न मिल सकेगा। बात-की-बात में वह ऐसा ही सुखी हो सकेगा, जैसे वह सुधा को लेकर सुखी रहा। हरिहर को विश्वास होने लगा, मानों सावित्री के समक्ष उसने अपनी अज्ञेय प्रार्थना को विनम्र शब्दों में अभिव्यक्त किया है और सावित्री ने उसके प्रेम को न ठुकराकर स्नेहमयी प्रेममयी स्त्री के समान स्वीकार कर लिया है। हरिहर कल्पना के घोड़े पर बैठकर समग्र विश्वमंडल में दौड़ लगाने लगा और सोचने लगा कि सावित्री का अभिषेक करने के लिये उसे स्वर्गोपम स्थान कौन-सा मिल सकता है। उसके कर्ण-कुहरों में मानों एक बार मंगलमय विवाह के आनंद-कलरव के बीच में शहनाई की सरस रागिनी का स्वरसुधा ढालने लगा। सुधा के समान सावित्री का स्निग्ध सरस कोमल स्पर्श उसे विवाह की रंगरेलियों के बीच उद्भ्रांत करने लगा।

हरिहर के रोम-रोम में, रग-रग में प्रेम की मधुर कल्पना की उल्लासप्रद तरंगों ने बारंबार स्पर्श कर उसे विभोर बना डाला। हरिहर दो महीनों के बाद, परदेश से अपने विजय-गर्व को लेकर लौटा। अपने कमरे में पैर रखते ही उसने देखा, विरह-विदग्धा, मलिना, म्लान-मुखी धूल-धूसरिता किशोरी उसके कमरे को झाड़-बुहार रही है। हरिहर का समग्र आनंदोल्लास क्षण-भर में धूल में मिल गया।

किशोरी ने एक ओर झाड़ू फेंककर अपने स्वामी की चरण-धूलि ग्रहण की। उसने अपने स्वामी की ओर एकटक होकर देखा। उसके भग्न एवं भाराक्रांत हृदय की संचित वेदना संपूर्ण रूप से, आँखों की राह से, आँसुओं की प्रबल धार के रूप में फूट पड़ी।

हरिहर में सब कुछ दोष हो सकते थे, परंतु वह किसी के प्रति निर्दय न हो सकता था। किशोरी की इस अवस्था को देखकर उसका मानव-हृदय रो उठा। हरिहर ने किशोरी को अपने वक्षःस्थल से लगाकर उसकी वेणी के ऊपर हाथ रक्खा।

अभागिनी भारतीय रमणी केवलमात्र अपने स्वामी के प्रेम के अतिरिक्त और क्या चाहती है? किशोरी तो अपने स्वामी के प्रेम की ही भूखी थी। वह तो अपने

स्वामी से उसी प्रेम की भिक्षा पाने के लिये भिखारिणी बनकर आई थी।

दूसरे दिन संध्या समय दरवाज़े पर हरिहर के किसी मित्र ने हरिहर का नाम लेकर पुकारा। हरिहर और किशोरी दोनों कमरे में बैठे हुए थे। हरिहर ने विनोद के भाव से खड़े होते हुए कहा—किशोरी, मेरे एक मित्र मुझे बुलाने आए हैं। रात की गाड़ी से मैं फिर बाहर जा रहा हूँ।

किशोरी ने हरिहर की कमर में दोनों हाथ, दोनों बाज़ुओं से डालकर रोकते हुए कहा—अब तुम मुझे छोड़कर नहीं भाग सकते। जहाँ तुम जाओगे, वहाँ मैं भी चलूँगी। मैं भला इस घर में अकेली रहकर क्या करूँगी।

तीन घंटे के बाद जब हरिहर लौटा, तो उसने देखा, किशोरी ने परदेश जाने की पूरी तैयारी कर रक्खी है। हरिहर सहसा ज़ोर से हँस पड़ा। किशोरी इस अकारण हँसी का कारण न समझ सकी।

(५)

और कई दिन बीत गए। हरिहर ने सोचा कि अब वह किशोरी के प्रति किसी प्रकार की उपेक्षा का भाव दिखाकर उसे दुखी नहीं रक्खेगा। उसने एक बार जब उसे अग्नि-देवता को साक्षी रखकर सहधर्मिणी स्वीकार कर लिया है, तब न तो उसका अनादर करना ठीक होगा और न उसके प्रति किसी प्रकार की अवहेलना दिखाना ही उचित होगा। उसने निश्चय किया, वह अब किशोरी की समस्त मूर्खता, अल्पज्ञता आदि को भुलाकर कर्तव्य की महत्ता को सामने रखकर उसके साथ मनुष्योचित व्यवहार करेगा। उसमें जो कमी है, उसे दूर कर वह उसे अपनी सच्ची सखी-सहेली गृहिणी बनाकर अपनी सर्वथा अज्ञेय जीवन-यात्रा का साथी बनाएगा।

हरिहर का मस्तक सुप्त कर्तव्यनिष्ठा के मंगलमय जागरण से और जागरण की नव्य आलोक-रश्मि-माला से प्रदीप्त हो उठा। सबेरे-सबेरे वह मुँह-हाथ धोकर बैठा हुआ था और रसोईघर का जो सामने का दरवाज़ा खुला हुआ था, उससे वह अनभ्यस्त किशोरी को उसके लिये चाय छानते हुए देख रहा था। उसने देखा, आधी चाय छन जाने के पश्चात् सहसा किशोरी के हाथ से केटली छूटकर गिर पड़ी और बाक़ी बची हुई चाय ज़मीन में फैल गई। हरिहर यह सोचकर मुसकराया—भला देखो, किशोरी को अभी तक चाय छानने तक की लियाक़त न आई।

किशोरी छनी हुई चाय को प्याले में रखकर हरिहर के लिये लाई। हरिहर ने कहा—किशोरी, तुम्हें भला अभी तक चाय छानना न आया। गिरस्ती का काम तुम कैसे सँभालोगी ?

किशोरी अत्यंत भीरु भाव से सिर झुकाए खड़ी रही। हरिहर ने प्लेट में, प्याले से चाय उड़ेलते हुए कहा—इस तरह चुप रहने से काम न चलेगा। जो काम तुम्हें बता चुका हूँ, उसे तो तुम्हें २-३ बार में सीख लेना चाहिए।

किशोरी उसी प्रकार दृष्टि गड़ाकर ज़मीन की ओर ताकती रही। हरिहर ने प्लेट को ओठों से लगाते ही हटा लिया और गरजकर कहा—अरे यह क्या किया! चाय की सारी शक्कर तुम्हीं पी गईं। मेरे लिये एक क़तरा भी न छोड़ा।

किशोरी चौंक पड़ी, मानों किसी ने उसकी पीठ पर चाबुक मार दिया। उसे याद आया, वह चाय में शक्कर डालना बिलकुल भूल गई है। किशोरी कुछ न कह सकी। क्या उत्तर देती ? सारा अपराध तो उसी का था। हरिहर क्रोध को न रोक सका। आपे से बाहर हो गया। प्याले को ज़ोर से टेबुल पर पटक दिया और दूसरे हाथ से टेबुल गिरा दी। चाय सारे कमरे में फैल गई। हरिहर ने कुल्ला किया और किशोरी की ओर लाल-लाल आँखें दिखाते हुए सिर पर टोपी लगाकर और हाथ में बेंत लेकर घर से बाहर निकल गया।

किशोरी अवाक् सर्वथा निस्पंद होकर मंत्र-मुग्ध की तरह हरिहर की ओर देखती रही।

कई महीने बीत गए। हरिहर ने देखा, हज़ार बार बताने पर और समझाने पर किशोरी के दिमाग़ में कोई बात नहीं घुसती। किशोरी को सुधारकर, उसे घर-गिरस्ती के काम के लायक़ तैयार करना उसे सर्वथा असंभव-सा दिखाई देने लगा। उसने सोचा, ओहो! सुधा के लिये तो उसने ऐसी माथा-पच्ची नहीं की थी। इतना सिर-तोड़ परिश्रम तो नहीं किया। सुधा घर में आई थी। मानों वह उसे घर का कोई काम सिखाना नहीं पड़ा। मानों वह अपना सारा काम सीखकर, स्वामी को अपने सरल एवं

विराम्यस्त प्रेम से संपूर्ण परितृप्ति देने के लिये आई थी और किशोरी ?—किशोरी तो जैसे हरिहर के मार्ग की संगिनी न होकर कंटक होकर आई है। ऐसा कंटक जिसने उसके समस्त मार्गों को एक प्रकार से अवरुद्ध कर रक्खा है। ऐसा कंटक जो न हटाया जा सकता है और न उसको पार कर वह अपने जीवन-यात्रा के पथ में अग्रसर ही हो सकता है।

उसे याद आया, सुधा और उसकी उम्र हमजोली की उम्र थी। दोनों घर-गिरस्ती के दायित्व और मंगलमय विकास से संपूर्णतया अनभिज्ञ थे। किस प्रकार ईश्वर के परम अनुग्रह से दोनों के जीवन का कल्पनातीत विकास हुआ। सुधा प्रेम की मोहनी वाणी से सर्वथा अपरिचित थी और न हरिहर ही प्रेम करना जानता था। दोनों में किस प्रकार एक अंध और उद्भ्रांत प्रेम उदित हुआ था। किस प्रकार दोनों का जीवन प्रभात-वेला की अरुणवर्ण हास्यमयी उषा के समान निर्मल-से-निर्मल होता गया। किस प्रकार सुधा हरिहर के लिये—हरिहर की संपूर्ण परितृप्ति के लिये तैयार होती गई। हरिहर को इस निखिल विश्व-मंडल में केवलमात्र सुधा के उद्भ्रांत प्रेम की सरस वीणा की रागिनी सुनाई पड़ती थी और सुधा को केवल, शरद्पूर्णिमा के पूर्णचंद्र की निखिल विश्व-व्यापिनी ज्योत्स्ना के समान उसके प्रेम का उज्ज्वल, स्निग्ध और स्वर्गीय विकास दिखाई पड़ता था। हाय, यह क्या हुआ ? हरिहर को विश्वास होने लगा जैसे किसी ने उसे स्वर्ग के तोरणद्वार से ढकेलकर नरक में ला पटका है। हरिहर का हृदय हाहाकार कर उठा।

हरिहर समग्र विश्व के कोनों-कोनों में खोज करने लगा। उसने सोचा, इस संसार में अब उसे सुधा के समान कौन साथी मिल सकता है, जो फिर उसके जीवन-वसंत को उसी प्रकार आनंदमय और प्रेममय बना सकता है ? कौन ऐसा व्यक्ति है, जो उसकी समग्र वेदना को क्षण-भर में मिटाकर वे ही सुख के दिन—वे ही आनंद-तरंगों से परिपूर्ण दिनों को उपभोग करने के लिये उसके सामने उपस्थित कर सकता है।

सावित्री और केवलमात्र सावित्री उसके चर्मचक्षुओं के सामने ऐसी देवी के रूप में अवतीर्ण हुई, जिसके कृपाकटाक्ष से उसकी अभीष्टसिद्धि हो सकती है।

हरिहर ने सोचा कि वह सावित्री से जाकर अपनी कष्ट-कथा सुनाएगा और उससे अपनी जीवन-प्राण बनने के लिये प्रार्थना करेगा—उत्कट अनुरोध करेगा।

वह अपनी समग्र आशा-आकांक्षा को लेकर सावित्री के सामने उपस्थित हुआ। पर, सहसा सावित्री के सामने जाते ही न-जाने कैसे उसकी ज़बान रुक गई। उससे कुछ भी कहते न बन पड़ा।

सावित्री ने पूछा—बहुत दिनों में आने का कष्ट किया। कहिए, प्रसन्न तो हैं ?

हरिहर ने उत्तर दिया—प्रसन्न ? प्रसन्न अब क्या रहूँगा ? प्रसन्नता तो सुधा की चिता के साथ जल गई।

सावित्री ने उत्सुक होकर कहा—क्यों-क्यों ? क्या अभी तक बहू रास्ते पर नहीं आई ?

सावित्री ने भीतर-ही-भीतर एक भैरवी कटाक्ष किया। हरिहर तड़प उठा।

हरिहर ने कहा—उसका नाम मत लो सावित्री, उसका नाम लेने से मुझे दुख होता है। मैं तो अपना दूसरा इंतज़ाम करूँगा।

सावित्री ने कहा—दूसरा इंतज़ाम क्या करोगे ? विवाह ?

"नहीं, अब विवाह क्या करूँगा, किसी विधवा के साथ—"

सावित्री ने आश्चर्य के साथ कहा—विधवा के साथ विवाह करोगे ! विधवा—विधवा तो अभागिनी होती है। जिस कुल में वह जाती है, वह कुल अपवित्र हो जाता है। उसे कुल-देवता को पूजने का अधिकार नहीं रहता।

हरिहर चाहता था कि जब वह भीतर की बात प्रकट नहीं कर सकता, तो सावित्री ही अपने कौशल से उसके आंतरिक संकेत को समझे। उसने कहा—चाहे जो हो, मैं विधवा से ही अपना संबंध करूँगा और किशोरी को निकाल दूँगा।

सावित्री ने कहा—विधवा रख सकते हैं हरिहर बाबू, परंतु किशोरी को नहीं निकाल सकते।

हरिहर ने दृढ़ता के साथ कहा—मैं निकालकर बताऊँगा।

सावित्री अवाक् रह गई।

हरिहर ने प्रसंग छोड़कर एक दूसरी बात छेड़ी।

कहा—अच्छा सावित्री, तुमने सुना है, अपने शहर में एक प्रसिद्ध हाथ देखनेवाला ज्योतिषी आया है।

सावित्री ने कहा—नहीं, क्या तुमने अपना हाथ दिखाया है ?

हरिहर ने कहा—दिखाया है। उसने बताया है कि मेरा संबंध थोड़े ही समय में किसी स्त्री से होगा। इस स्त्री से तुम्हें सब प्रकार का सुख मिलेगा। हरिहर ने सावित्री से पूछा—तुम्हें अपना हाथ दिखाना हो, तो बुलवा दूँ।

सावित्री का चेहरा मलिन हो गया। सने कहा—मैं अब हाथ दिखाकर क्या करूँगी। मैं तो जैसी हूँ, वैसी रहूँगी। दस वर्ष काट दिए, अब ज़िंदगी काटने में कौन बड़ी कठिनाई होगी।

हरिहर चला गया। सावित्री का सतत निराशा-व्यथित हृदय पुनः एक आघात पाकर घायल हरिणी की तरह रो उठा। दो बूँद गरम-गरम आँसू उसके अरुण कपोलों पर और कपोलों पर से वक्षःस्थल पर टपककर धूल में मिल गए।

निराशा और वेदना की चोट से कंटकित होकर हरिहर रात को घूमता-घामता अपने घर लौटा। किशोरी रसोईघर में बैठी हुई रोटियाँ बेल रही थी। हरिहर ने कहा—मैं ब्यालू नहीं करूँगा। चौका उठा देना। हरिहर ने सोचा, किशोरी—केवलमात्र किशोरी के कारण ही उसकी यह अवस्था हुई है। यदि किशोरी ने जन्म न लिया होता, तो सुधा का अंत न हुआ होता और न स्वयं उसका सौभाग्य-सूर्य अस्त हुआ होता।

भीतर से दरवाज़ा बंद कर हरिहर बिस्तर पर लेट गया। आज उसने अपने सुख के पीछे एक सती विधवा के निष्कलंक जीवन को पतित मार्ग पर खींचने की चेष्टा की। सोचने लगा, उफ़ हरिहर—हरिहर, तुम कैसे पापी हो ?—कैसे नरपिशाच हो ? तुम अपने मनुष्योचित कर्तव्य को भूल गए !—तुम अपने मानवी धर्म को भूल गए ! तुम-सरीखा नीच और पाखंडी संसार में और दूसरा कौन होगा।

एक विराट् पश्चात्ताप की उग्र विभीषिका से हरिहर का अंग-प्रत्यंग जलने लगा। रात बहुत हो चुकी थी, परंतु उसका प्रज्ज्वलन वैसा ही और उससे कहीं अधिक भयंकरता के साथ हू-हू करके बढ़ रहा था।

घंटाघर के घंटे में उसने दो बजते हुए सुना। हरिहर ने तय किया—चारों तरफ़ सन्नाटा छाया हुआ है। यदि वह इस समय, घर से निकलकर भाग सके तो उसे कोई नहीं देख सकेगा। उसने निश्चय किया चाहे जो हो मैं सारे बंधनों को तोड़कर निकल भागूँगा। किसी की शक्ति नहीं, जो मुझे इस समय रोक सके।

दरवाज़ा खोलकर हरिहर ने ज्यों ही भागने का उपक्रम किया, त्यों ही उसने देखा—किशोरी देहरी के नीचे, माघ की ठंढ में, बिना कुछ ओढ़े हुए, सिकुड़ी हुई, अपने मुख पर आँचल डालकर निद्रित अवस्था में बैठी हुई है।

हरिहर ने किशोरी को देखते ही दरवाज़ा बंद कर लिया और माथा ठोंककर बिस्तर पर गिर पड़ा।

मंगलप्रसाद विश्वकर्मा

विजयोल्लास

आजु हरि हाँथन अस्त्र गह्यो।
जागे भाग राग सब भागे जीवन लाहु लह्यो।
प्रतिपाल्यो मेरो प्रन निज तजि, पायहुँ जौन चह्यो।
सफल जनम पुरुषारथ स्वारथ बिजयबेलि उलह्यो।
जो सुख आजु लह्यो इन नैननि सो नहिं जात कह्यो।
मन बूड़त उतरात हुलासनि बाँसन उछरि रह्यो।
मद-मतसर-अभिमान जात सब प्रेम प्रवाह बह्यो।
दूजो को दयालु प्रभु सों जग भक्तन भीति दह्यो।
सेवक-हित साहिबी बिसारेहु हारेहु जीति लह्यो।

मातादीन शुक्ल

त्योहार

मोम के दीपों का त्योहार !
तिल-तिल कर पल-पल घुलना है कैसी नीति उदार,
विचलित करता है प्राणों को साँसों का गुरुभार
हृदय नहीं अब सह सकता है हृदयहीन का प्यार,
लाया है प्याले में भरकर व्यापक हाहाकार
भर दे इन निद्रित नयनों में ज्वालामयी खुमार,
मिट जाता है जलबुद्बुद् का छन में ही संसार
यह धाता की भावुकता है या है अत्याचार,
कुछ पगले अपने ही सर का करते हैं व्यापार
वधिक, चूम लेने दे इनको रक्तभरी तलवार,
मोम के दीपों का त्योहार !

श्रीमोहनलाल महतो "वियोगी"

रावी के तट तक—

लाहौर में रावी-तट की समीपस्थ भूमि पर अभी पिछले दिसंबर में भारतीय कांग्रेस ने अपना वार्षिक अधिवेशन समाप्त किया है । परंतु हम लोगों ने अधिवेशन के पहले ही लाहौर पहुँचने का निश्चय किया था । यह निश्चय इसके और कुछ दिन पहले ही कर लिया गया था । परंतु ऐन मौक़े पर इन पंक्तियों के लेखकों में मतभेद हो गया । एक का मत था कि लाहौर अवश्य जाना और दूसरे का मत था कि न जाना । पल भर में सारे कार्य-क्रम पर पानी फिर गया । एक व्यक्ति लाहौर किस प्रकार जायगा, किस प्रकार कार्य-क्रम को पूरा होगा, यही चिंता वस्तुतः सामने थी । नियति अंतराल बैठकर किस प्रकार पलभर में मंसूबों का प्रलय कर ी है, यही एक आश्चर्यजनक बात है । अनादि काल अनेक साधु-महात्माओं ने, जिज्ञासुओं ने केवल-मात्र इसके कारण को जानकर अपने असीम कौतूहल की निवृत्ति करने की सफल चेष्टा की है । इस चेष्टा में उन्होंने परम सत्य की खोज के लिये अनेक गहन मार्गों की सृष्टि की । दूसरे क्षण क्या होगा—सुख या दैन्य, हास्य या रोदन, अच्छा या बुरा—इन्हीं सब अज्ञात बातों को जानने के लिये उन्होंने ज्योतिष-शास्त्र का निर्माण किया, सामुद्रिक शास्त्र के गंभीर ग्रंथ लिखे, और इस विशाल शास्त्र के अंतर्गत अन्य-अन्य शाखाओं का भी विवेचन किया । अनेक मार्गों द्वारा उसी एक की खोज के लिये अघोर चेष्टा की गई है । लक्ष्य सभी का एक ही है । साथ-ही-साथ इनमें जो प्रगाढ़ एवं पारस्परिक संबंध है, वह ज्ञान-चक्षु के बिना दृष्टिगोचर नहीं होता । यथार्थ में यदि देखा जाय, तो प्रायः सभी शास्त्रों में घनिष्ट संबंध है । कहने में आयुर्वेद और ज्योतिष दो भिन्न-भिन्न शास्त्र हैं ।

इनकी क्रियाएँ, ज्ञान और प्रयोग भी सर्वथा विभिन्न हैं, परंतु यथार्थ में इन दोनों में आनंदजनक एक सामंजस्य है।

अपनी कौतूहल-निवृत्ति के लिये हम लोगों ने भी सामुद्रिक शास्त्र की गवेषणा की और ज्यों-ज्यों हमारे अनुभव तथा भविष्य-कथन जिस परिमाण में सत्य उतरते गए, त्यों-त्यों हमारे उत्साह की वृद्धि होती गई। हमारी आंशिक सफलता ने ही हमें आज उन्मत्त जिज्ञासु बना दिया है। अव्यक्त को व्यक्त करने में जो आनंद है—उस आनंद का जब-जब हमें आंशिक रस-पान करने के लिये मिला, तब-तब हम लोग वास्तविक आनंद से विभोर हो गए। एक अँगरेज़ विद्वान् का कथन है—

"Know thyself", the motto of the ancients is the simplest but the grandest sermon that can ring our ears. By the knowledge of the nature, do we honour nature; let us then consider the study that can give such *Knowledge:* for by the knowledge of self may we master self and by the improvement of self may we also improve mankind—to the advancement of the race, to the honour of the world, and to the glory of those who, in the march of time, will fill life's broken ranks, and some day take our place."

और यह सब सोचकर हम लोगों ने इस कार्य के लिये अपना समय दिया और अर्थ-व्यय भी किया।

एकाएकी मतभेद हुए इन पंक्तियों के लेखकों में न-जाने कैसे मतैक्य हो गया और हमने २२ दिसंबर की एक बजे रात की एक्सप्रेस से, लाहौर को लक्ष्य रखकर, यात्रा प्रारंभ कर दी। जब हम लोग इलाहाबाद पहुँचे, तब यह आश्चर्य हो रहा था कि एक बार स्थगित की हुई यात्रा क्यों हुई? इस आश्चर्य ने वस्तुतः हम दोनों को अभिभूत कर रक्खा था। परंतु स्मरण आया, इस समय जो एक लंबी यात्रा का सूत्रपात्र हुआ है, उसका भविष्य हमारी डायरी में ता० १२—६—२९ को ही लिखा जा चुका था। इस यात्रा में अपने ही भविष्य को सार्थक एवं सत्य करने की यह घटना—एक ऐसी घटना थी, जिसने हमारे अंतस्तल में आनंद की एक बड़ी लहर को उठाकर कल्लोलित कर दिया।

एक और आवश्यक कार्य के लिये हमें कानपुर सीधा लाहौर न जाकर लखनऊ जाना पड़ा। ता० जून २९ को हमें "माधुरी" पत्रिका के स्वामी श्रीमान् मुंशी विष्णुनारायणजी भार्गव का एक विस्तृत जीवन-फल लिखने का अवसर मिला था। उस भविष्य-फल प्रत्येक बात हमने स्पष्ट की थी। निकट भविष्य की यथेष्ट चर्चा की गई थी। हमारे भविष्य-कथन में लिखा गया था कि श्रीमान् मुंशीजी यदि अपने नव के पदार्पण के पश्चात् अपने स्वास्थ्य की अधिक न करेंगे, तो अवश्य ही अस्वस्थ हो जायँगे। हमने समय का उल्लेख किया था, वह समय अक्टूबर से ले दिसंबर २९ तक का था। एक दिन हमें यह जान अत्यंत खेद हुआ कि मुंशीजी अस्वस्थ हो गए हैं। जानकर हमने रोग से मुक्ति पाने के लिये कुछ सोच रक्खे थे। इन्हीं उपायों की चर्चा करने के हमें लखनऊ जाना पड़ा। दिसंबर का अंतिम सप्ताह और मुंशीजी इस समय स्वस्थ हो रहे थे। प्रबल होने पर भी समयाभाव के कारण हम उनसे न सके, परंतु उनके स्वास्थ्य-सुधार का समाचार पाकर प्रसन्नता हुई। हमने उनके दीर्घजीवन को सुख-शांति व्यतीत होने के लिये ईश्वर से आंतरिक कामना की हमारी इच्छा लाहौर से लौटकर एक बार मुंशीजी मिलने की अवश्य थी, परंतु यह उत्कट इच्छा बार समय की संकीर्णता एवं यात्रा की परिस्थिति कारण पूरी न हो सकी।

सामुद्रिक शास्त्र की गवेषणा करने के लिये हम दिनों से प्रयत्नशील हैं। किसी प्रकार के प्रयत्नों का होना वातावरण और जनता की अभिरुचि पर अधि धिक निर्भर रहता है। कुछ वर्षों की अवधि में इस विषय की ओर जो कुछ भी थोड़ा बहुत सके हैं, उसमें हमें अब तक चार हज़ार हाथ देखने अवसर प्राप्त हुआ है! इस विषय की अधिक प्राप्त करने के लिये हमने लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् तथा व्यक्तियों के छापे एकत्र किए हैं। हमारे रिका वकील, बैरिस्टर, जज, लक्षाधीश और ग़रीब सभी हाथों के छापे मौजूद हैं, यहाँ तक कि चोर-डाकू आदि भी छापे मौजूद हैं। हमें इस विषय को अधि धिक अध्ययन करने के लिये क़त्ल करनेवालों या

चोट खाए हुए लोगों के छापों की आवश्यकता प्रतीत हुई। यह ऐसी कठिनाई थी, जो सहसा दूर होनी असंभव-सी प्रतीत होती थी । परतु इस कठिनाई को दूर करने में स्थानीय डिस्ट्रिक्ट एण्ड सेशंस जज महोदय ने हार्दिक सहानुभूति दिखाई । यह निश्चय है कि यदि इन महानुभाव ने हमें प्रोत्साहन न दिया होता, तो हमें कातिलों के हाथों के छापे न मिल सकते । उनकी इस कृपा ने वस्तुतः हमें अधिकाधिक कृतज्ञ बना लिया है। आगे चलकर हमारा कार्य-क्षेत्र विस्तृत होते ही हमें संसार-प्रसिद्ध भारतीय नेताओं आदि के हाथों का अध्ययन करने की प्रबल इच्छा हुई । साथ ही हमारे कतिपय विद्वान् मित्रों ने हमें यह सुझाया कि यदि कांग्रेस के समय हम लाहौर जायँ, तो एक ही स्थल पर तथा अल्प व्यय से ही अनेकों जगत्प्रसिद्ध पुरुषों तथा स्त्रियों के हाथों के छापे बड़ी सरलता से मिल सकेंगे । इस तरह हर प्रकार के व्यक्तियों का रिकार्ड तैयार हो सकेगा। वस्तुतः हमने अपने मित्रों की इस सहानुभूति को समक्ष रखकर ही समय और अर्थ का व्यय कर यह यात्रा की।

जिस दिन प्रातःकाल हम लाहौर पहुँचे, उस दिन बहुत से ज़्यादा कुहरा छाया हुआ था। पिछले दिन के प्रातःकाल पानी का एक अच्छा झला बरस जाने के कारण सड़कें कीचड़ से ख़राब हो गई थीं। सर्दी ख़ूब पड़ रही थी। वायुमंडल को देखते हुए ऐसे दिन अपना कार्य होना हर प्रकार से कठिन दिखाई देता था। फिर भी हमने एलफ़िन्सटन होटल में ठहरने का समुचित प्रबंध कर तत्काल ही अपना कार्य प्रारंभ कर दिया।

हमारी इच्छा थी कि यदि महात्मा गांधी, पिता-पुत्र नेहरू, श्रीमती नायडू, श्रीयुत पी० सी० राय आदि प्रसिद्ध व्यक्तियों के हाथों के छापे अथवा फोटो प्राप्त हो सकें, तो हमारे रिकार्ड के लिये पर्याप्त सामग्री हो सकेगी। हमने पहलेपहल महात्माजी से ही मिलने का निश्चय किया। परंतु आवेदन-पत्र को वापस लाकर एक स्वयं-सेवक ने कहा—"महात्माजी इस पत्र को स्वीकार नहीं करते।" मालूम नहीं यह संदेशा स्वयं-सेवक के चपल मस्तिष्क की नीरस उपज थी अथवा ठीक महात्माजी के शब्द। हमें महात्माजी के सहर्ष मिलने में पूरा विश्वास था। किंतु उन्होंने जो अस्वीकृति दी, वह निराशाप्रद तथा विस्मयजनक अवश्य थी। यदि महात्माजी से साक्षात् हो सका होता, तो संभवतः हम उनकी अस्वीकृति पर उनसे कुछ निवेदन कर सकते और कदाचित् उनके विचारों की आलोचना करने का भी हमें अवसर प्राप्त होता। हमारी उत्सुकता बढ़ी और दूसरे दिन हमने पुनः महात्माजी से मिलने का निश्चय किया, परंतु वह प्रयास भी विफल हुआ। ठीक इसी समय हमें स्मरण आया कि प्रयाग में एक सज्जन ने हमें यह बताया था कि महात्मा गांधी सामुद्रिक विज्ञान के विरोधी हैं तथा इसके विरोधात्मक कुछ लेख भी उन्होंने लिखे हैं। तब तो हमें स्वयं-सेवक के कथन पर विश्वास-सा हो गया और हमने सोचा, कदाचित् यही कारण है कि महात्माजी ने हाथ के छापे अथवा फोटो देने की इस तरह अस्वीकृति दे दी। यदि यह बात सत्य है, तो हम कह नहीं सकते, महात्माजी कहाँ तक अपने इस कथन की पुष्टि करते हैं या करेंगे। हम तो मनुष्यमात्र से इस शास्त्र का एक अतिशय निःसंदिग्ध घनिष्ट संबंध बताएँगे। यहाँ इतना कह देना यथेष्ट होगा कि हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने जिन विषयों का विश्लेषण कर अपनी लेखनी उठाई है, प्रायः वे सभी विषय प्राणिमात्र के वास्तविक कल्याण के लिये हैं। शास्त्र एवं शास्त्रकार सत्य के आधार पर हो आज भी समस्त संसार में अपना मस्तक ऊँचा किए हैं। महात्माजी चाहे स्वीकार न करें, किंतु संसार के किसी भी देश के विद्वान् ने हमारे शास्त्रों को असत्य सिद्ध करने के लिये अब तक लेखनी उठाने का अथवा कुछ कहने का साहस नहीं किया। वरन् उन्हें इँगलैंड-जैसे देश के विद्वानों ने, जहाँ सामुद्रिक शास्त्र किसी प्राचीन समय में जुर्म समझा जाता था, मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए कहा है—

"We must remember that the people who gathered and fastered this science were famous for their study of mankind: they studied men as in our age we study machinery: and is it not probable that they brought their act to as much perfection as we have done with our wonders of electric cables, photographs and so forth?"

अब देखिए, यही महाशय इस विज्ञान का आदि-स्थान बताते हुए लिखते हैं—

"Where the first idea originated that the hand was the index of the mind and consequently of the soul,.........it is sufficient, for our purpose to find that in the Aryan civilization -- the oldest in the world—this study was known and practised and that since then it has had an almost unbroken record in that cradle of the orient philosophy—the India of the East."

अस्तु। कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष डा० शैफ़ुद्दीन किचलू से मिलकर हमने अपने आने का उद्देश्य और मंतव्य कह सुनाया। हमने कहा कि हमें महात्माजी तथा पिता-पुत्र नेहरूजी के हाथों के छापे चाहिए और आप भी अपने हाथ के छापे दीजिए। किचलू साहब ने कहा—"मेरे छापे लेकर क्या कीजिएगा? महात्माजी तथा श्रीयुत जवाहरलालजी नेहरू का हाथ देखकर आप यह बताइए कि भारतवर्ष को स्वराज्य कब मिलेगा?" इस पर हमने कहा कि समग्र भारतवर्ष का भविष्य निश्चय-पूर्वक महात्माजी तथा नेहरूजी के हाथों से बता सकना एक असंभव-सी बात है। महात्माजी का हाथ देखकर संभावनाओं की रूप-रेखा अवश्य ही खड़ी की जा सकती है। महात्माजी भारतवर्ष को स्वराज्य दिलाने में सफल हों या विफल, यह इस शास्त्र की दृष्टि से उनके जीवन की सफलता या विफलता नहीं हो सकती। इसी प्रकार की अनेक बातें उत्तरस्वरूप किचलू साहब के सामने रक्खी गईं, परंतु वह उस समय लाजपतरायनगर में स्वराज्य का जो सुख-स्वप्न देख रहे थे, उसके सामने उन्हें सहायता पहुँचाने की छुट्टी ही कहाँ थी।

इसके पश्चात् ही अनायास श्री० पुरुषोत्तमदासजी टंडन से भेंट हो गई। उनसे भी हाथ के छापे देने की बात कहते हुए हमने महात्माजी तथा पिता-पुत्र नेहरूजी आदि के हाथों के छापे प्राप्त कर सकने के लिये युक्ति पूछी। पर, टंडनजी ने शिष्टाचार की बहिया में बेचारी विचार-धारा को बहाकर हाथ के छापे न देने के कार्य से किसी तरह मुक्ति पाई। उन्होंने कहा—"यदि आपके पास आपके नगर के किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति का सर्टिफ़िकेट हो, तो आपको छापे लेने में अधिक सुविधा होगी।" उत्तर में कहा गया—हम लोग जो कार्य कर रहे हैं, अपने ही
पर कर रहे हैं। अब तक हमें अपनी इस प्रकार की
के लिये किसी सज्जन से सर्टिफ़िकेट लेने की
नहीं पड़ी। हमारी इच्छा केवलमात्र सचाई के साथ
किसी प्रकार का शुल्क लिए हो सामुद्रिक शास्त्र-
गवेषणा करने का है। उनसे यह भी कहा गया
यदि आपको हमारे परिश्रम और कार्य का प्रमाण
तो हमारे पास इस समय एतद्देशीय वकील,
जज-हकीम, धनी-दरिद्र, चोर-डाकू हत्यारे और
घातक लोगों के जो कुछ छापे हैं, उन्हें देख लीजिए;
टंडनजी ने इस सामग्री को देखने की उदारता प्रकट
की। वह उदारता समयाभाव के कारण फिर
समय प्रसव होने के लिये गर्भ में स्थित हो गई।
अत्यंत आश्चर्य तब हुआ, जब उन्होंने अपनी
सिलसिले में यह भी कहा कि सर्टिफ़िकेट न
संदेह की संभावना रहती है। यह सुनते ही हम
लगे कि जगत्प्रसिद्ध विद्वान् श्रीस्वामी
जैसे महात्मा अपने ही देश में नहीं—यहाँ से
मील दूर अमरीका में—पाश्चात्य हस्तरेखा-
अँगरेज़ को अपने हाथ का छापा देने में संकोच
करते। सहर्ष छापा दे देते हैं, चाहे उक्त शास्त्र से
विरोध ही क्यों न हो। किंतु वे उपकार की
अथवा किसी विषय की खोज में केवल अपना
देकर ही सहायता और यश के भागी बन जाने
नहीं समझते। उन्हें विदेशीय व्यक्ति पर संदेह
कल्पना भी नहीं होती। इधर हमसे सर्टीफ़िकेट
बात कही जाती है।

आसन्न संध्या के समय, लाहौर आने की
आशा की विफलता के शव को लेकर ग्लानि और
की अग्नि से जलाने के लिये हम लोग वहाँ पहुँचे,
रावी के तट पर पंजाब-केसरी लाला
शव का दाह-संस्कार किया गया था। आशाओं
परिवर्तन और परिवर्द्धन नैसर्गिक है, वह
संभाव्य है। अपनी आशा का भी दाह-संस्कार
गया। वह आशा अब दूसरे रूप में प्रस्फुटित
आशा मिट गई है, परंतु उसका जो स्फुरण
और सहानुभूति के तोरण-द्वार से हुआ है, वह
और पवित्र है।

76325

रावी का जल पिछले दिनों की अंधाधुंध वर्षा से मटियाला हो गया था । जब उसकी यह उग्रता दूर होगी, जब उसमें स्थिरता का साम्य होगा, तब उसका जल छनकर सुधा के समान शीतल तथा शांति-सुखद हो जायगा । इसी विचार को लेकर जब हम रावीतट को छोड़कर चले, तब उस समय संध्या के गंभीर अंधकार में रावी का मटियाला जल अपनी मलिनता और दरिद्रता को दूर फेंक देने के लिये दीर्घ श्वास भरता हुआ तड़प रहा था ।

इसी प्रकार एक अत्यंत साधारण गृहस्थ ने, रावी के तट पर बाहर के प्रचंड आघात सहकर संसार से विरागी होकर, सिर मुड़ाकर, गेरुए वस्त्र पहन लिए थे । उसके अंतस्तल में गूँज रहा था—खोजो, अपने को खोजो । उसकी यह महान् तृष्णा—उसकी यह विचित्र 'खोजने' की भावना एक दिन अदम्य उत्साह और अथक परिश्रम से परिपूर्ण हुई । वह व्यक्ति था स्वामी रामतीर्थ । सहसा असीम श्रद्धा के भाव से मस्तक नत हो गया । राम बादशाह के हुक्मनामे ने हमें अपने गुरुतर कर्तव्य का स्मरण दिला दिया ।

२८ दिसंबर के प्रातःकाल हम लोग लाहौर से अमृत-

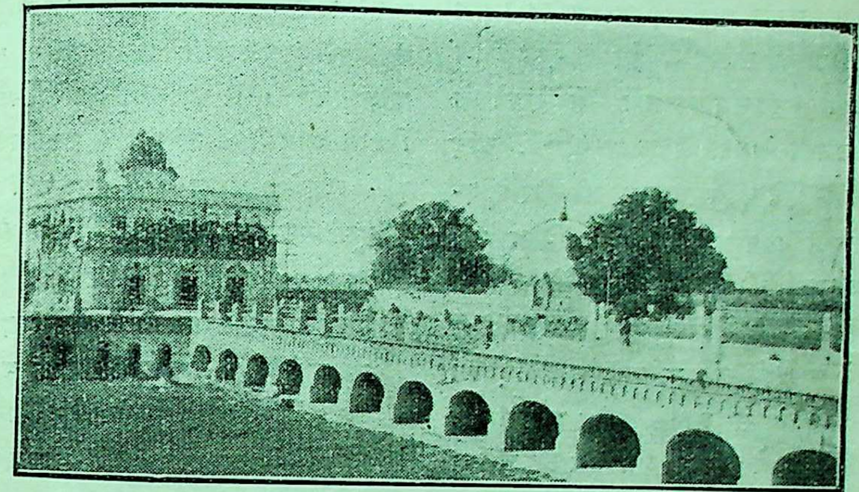

श्रीलक्ष्मीनारायणजी का मंदिर (दुर्गियाना, अमृतसर)

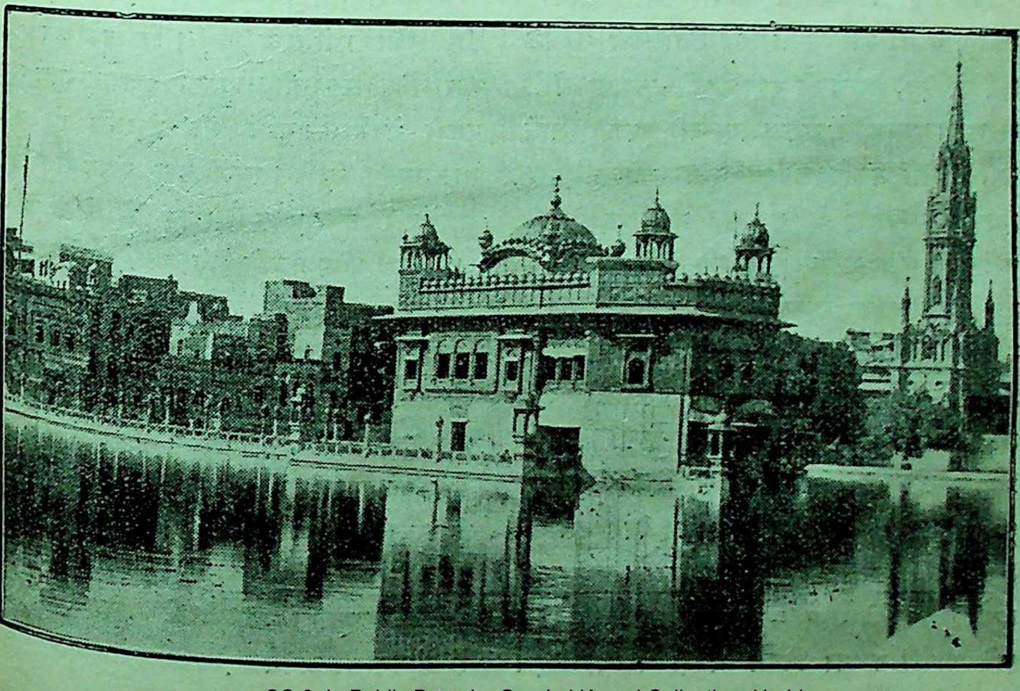

स्वर्णमंदिर (अमृतसर)

सर आए। दुर्गियाना में श्रीलक्ष्मी नारायणजी के मंदिर की आरती में सम्मिलित होकर सिक्खों के गुरुद्वारे स्वर्ण-मंदिर में आए। सामने दूर पर स्वर्ण-मंदिर के सामने लगे गए ऊँचे भगवे झंडे का एक किनारा मुक्त आकाश में वायु के झकोरों के कारण उड़ रहा था। सोचने लगे, गुरु नानक और गुरु गोविंदसिंह की महिमामयी महीयसी देवत्वपूर्ण मूर्ति को सामने रखकर सोचने लगे—देव, तुमने बहादुर सिक्खों को पैदा किया है। शत्रुओं से भरपूर बदला लेने के लिये बाज़ुओं में लटकता हुआ कृपाण दिया है, उनकी उन्नत भुजाओं में भीम की शक्ति दी है, उनके हाथों में शेर के ख़ूनी पंजे की ताक़त दी है, उनके सर्वांग में शेर के ऐसा क्रोध दिया है; पर क्या यह सब आँखों से देखने के लिये! देव, यदि उनकी बाज़ुओं में क़ूवत दी थी, यदि उनके हाथों में शेर के पंजे की तरह शत्रु को चीर-फाड़कर ख़ून पीने की उग्र पिपासा को ज्वलंत किया था, तब उन्हें अपनी बाज़ुओं की ताक़त आज़माने के लिये मौक़ा क्यों नहीं दिया? उन्हें शत्रु को शेर-जैसे पंजे से चीरकर ख़ून पीने के लिये झपटने क्यों नहीं दिया। तुमने उन्हें क्षमा के देवत्व से आकंठ निरीह और पागल क्यों बना दिया है? तुमने अपना मंत्र फूँककर असीम सहिष्णुता और क्षमा के भावों से निर्बल और निरीह क्यों बना दिया है? आज उनको अवसर मिला होता? आज उनको पान का बीड़ा खिलाकर मैदान में उतरने दिया होता? पर देव, तुमने तो यही कहा—कृपाण बाँधो पर उठाओ मत। बाज़ुओं में ताक़त पैदा करो, पर आज़माने के लिये नहीं। ऐसा अकल्पित व्यवहार क्यों किया देव? इस अकल्पित व्यवहार के कारण, आत्म-संकोच के साथ या आंतरिक मुक्त भावना के कारण—क्षमा-क्षमा—केवल क्षमा के देवत्व के कारण ही आज तुम्हारा यह भगवा झंडा मुक्त नील आकाश में फहरा रहा है। देव, इस अमृतसर में जो अमृत है, उसे पिलाकर क्या तुमने अपने शिष्यों को अमर बना लिया है?

रात के आठ बजे हम अमृतसर से दिल्ली के लिये रवाना हूए। डिब्बे में कई भलेमानुस पैर फैलाकर सो रहे थे। बड़ी कठिनाई से स्थान मिला। कई रातों के जागरण से आँखों में नींद का नशा चढ़ा हुआ था। न-मालूम किस स्टेशन पर डिब्बे में दो पठान आए। बैठने के लिये उन्हें जगह न मिल रही थी। जो सो रहे थे, उनमें से एक का बिस्तर पकड़कर उनमें एक ने हिलाते हुए कहा—उठो, मुझे भी बैठने के लि जगह दो। सोनेवाला एकदम गरज उठा—कंबख़्त अदबी से पेश आता है। नालायक़, देखता नहीं, सिर चोट मार दी—ये हज़रत भी पठान ही थे। बातें सु कर पठान ने कहा—मेहरबान, ज़रा ज़बान सँभाल बोलिए। ज़्यादा बातें करेंगे, तो ज़बान खींच लूँगा यदि तुम्हें मारना होगा, तो सोते हुए को मारने कायरता मैं नहीं करूँगा। तुम्हारे हाथ में एक दूँगा और अपने हाथ में लाठी लेकर ललकार कहूँगा—अब आओ और अपने बाज़ुओं की आज़माओ। मैं पठान हूँ, अकेले-दुकेले, निर्बल निहत्थे आदमी के ऊपर हाथ उठाना नामर्दी समझ हूँ—समझे। पठान कभी ऐसा नहीं कर सकता।

दूसरे पठान ने बेंच पर पैर सिकोड़ते हुए क- तुम कहाँ के रहनेवाले हो?

उत्तर मिला—वहीं क्वेटा के पास, पहाड़ी मुल्क

पठान ने कहा—क्वेटा के पास का तो मैं भी हूँ

दोनों में मैत्री हो गई। पर, क्या यह मैत्री देशीय होने के कारण हुई थी या बाज़ुओं की ता कारण?

दिल्ली से होते हुए आगरा आए। बड़े तड़के रा की धर्मशाला से चल पड़े। निरभ्र आकाश में आनं स्वरा चिरहास्यमयी उषा का स्वागत-गान सुनकर नगरी में कर्म-प्रवृत्ति की जागृति हो रही थी। ताजमहल पहुँचे। ताजमहल नगर से थोड़ी दूर के गिनारे बना हुआ है। दूर से ऐसा जान पड़ता जैसे चारों ओर प्रकृति की अखंड निस्तब्धता को करके वह अपने असंपूर्ण प्रणय की अतृप्ति को हाहाकार कर रहा है। सैकड़ों वर्ष बीत गए, वेदना-कंटकित वाणी आज भी मर्मस्थल को भेदकर थल, गगन, पवन, चतुर्दिक सभी दिशाओं में तड़प रही

ताजमहल के भीतर गए। मुमताज की समाधि बीच बनी हुई है। उसे देखते-देखते सोचने लगे— वर्ष बीत गए, इस आलोक-सामान्या, लावण्य- रूपसी नवयुवती महिषी ने उन्मत्त प्रणयी शा के जीवन को अपने दिव्य प्रेम से सार्थक कर रक्खा

विना उस्ताद के वैद्य-विद्या सिखानेवाला ग्रन्थ

चिकित्साचन्द्रोदय

सात भाग लेखक—बाबू हरिदास वैद्य संक्षिप्त सूची और मूल्य

पहला—इस भाग में वैद्यक-विद्या सीखनेवाले के आरंभ में जानने योग्य परिभाषाएँ, रोग पहचानने के तरीक़े, नाड़ी देखने की आसान विधियाँ और अरिष्ट ज्ञान आदि हज़ारों बातें लिखी हैं। पृष्ठ-संख्या ३४०। मूल्य अजिल्द का ३) और सजिल्द का ३।॥)

दूसरा—इस भाग में ज्वर-चिकित्सा बड़े ही विस्तार से लिखी है। हिंदी क्या भारत की और भी किसी भाषा में ज्वर-चिकित्सा पर इससे अच्छा ग्रंथ नहीं है। न्यूमोनिया, टाइफाइड प्रभृति अँगरेज़ी ज्वरों की भी चिकित्सा लिखी है। इस भाग में ६०० सफ़े हैं। मूल्य अजिल्द का ४), सजिल्द का ४॥)

तीसरा—इस भाग में अतिसार, संग्रहणी, बवासीर, पीलिया, कृमिरोग आदि का इलाज बहुत ही उत्तमता से लिखा है। सभी रोगों पर, दूसरे भाग की तरह, इसमें भी परीक्षित अमीरी और ग़रीबी नुस्ख़े लिखे हैं। इस भाग में ४१६ सफ़े हैं। मूल्य अजिल्द का ४।), सजिल्द का ५) है।

चौथा—इस भाग में प्रमेह, धातुरोग और कमज़ोरी के निदान, लक्षण और चिकित्सा जिस ख़ूबी से लिखी है, उसकी तारीफ़ कर नहीं सकते। यह भाग कामशास्त्र का भी बाबा है। इसमें उपर्युक्त रोगों की चिकित्सा के सिवा नाना प्रकार के अपूर्व योग लिखे हैं। शेष में बंग, अभ्रक, सोना, चाँदी, मोती आदि की भस्में करने की निहायत आसान और आज़मूदा तरकीबें लिखी हैं। यह दूसरा संस्करण है। इसमें ६३२ सफ़े हैं। मूल्य अजिल्द का ४।), सजिल्द का ५) है।

पाँचवाँ—इस भाग में साँप, बिच्छू, पागल कुत्ता आदि के काटने का इलाज, स्त्रियों के प्रदर आदि रोगों की चिकित्सा तथा राजयक्ष्मा का इलाज बड़ी ख़ूबी से लिखा है। इस भाग की हर घर में ज़रूरत है। पृष्ठ-संख्या ६३०। मूल्य अजिल्द का ५), सजिल्द का ५॥) है।

छठा—इस भाग में खाँसी, श्वास, ज़ुकाम, रक्तपित्त, अम्लपित्त आदि रोगों की चिकित्सा विस्तार से लिखी है पृष्ठ-संख्या ४१६। मूल्य अजिल्द का ३॥), सजिल्द का ४।) है।

सातवाँ—इस भाग में अपस्मार, उन्माद, वातरोग, हाथीपाँव, कोढ़ प्रभृति ४० रोगों की चिकित्सा चालीस हाफ़टोन चित्र देकर नए ही ढंग से लिखी है। यह भाग सबसे बड़ा है। पृष्ठ-संख्या १२११। मूल्य अजिल्द का १०॥), सजिल्द का ११) है।

उत्तमता के प्रमाण

पहले भाग के तीन, दूसरे के तीन और चौथे के दो संस्करण हो जाना ही उत्तमता का काफ़ी सुबूत है। विश्वास न हो तो आप बतौर नमूने के केवल चौथा भाग मँगा देखें। अगर यह ग्रंथ हमारी लिखी तारीफ़ से सैकड़ों गुना अधिक होगा, तो आपको शेष छः भाग मँगाने ही होंगे।

विशेष सूचना—सातों भाग सजिल्द का मूल्य ४०॥) और अजिल्द का ३२॥) है। एक साथ लेने से क्रमशः ६।-) और ५॥) कमीशन मिलेगा। १०) पेशगी भेजें और क़रीबी रेलवे-स्टेशन का नाम लिखें।

अँगरेज़ी-हिंदी-शिक्षा ५ भाग

पहले भाग की पचास हज़ार और अन्य भागों की प्रायः बीस हज़ार प्रतियाँ निकल जाना ही इसकी उम्दगी का सच्चा सुबूत है। इस आदि अँगरेज़ी-शिक्षक से अच्छा इँगलिशटीचर और कहीं नहीं छपा। मूल्य पहले भाग का १) रु०। शेष चार भागों का दो-दो रुपया। कुल नौ रुपए। पाँचों भाग एक साथ मँगाने से सात रुपए लगेंगे। इस पर भी डाकमहसूल माफ़। शीघ्रता कीजिए।

पता—हरिदास ऐंड कंपनी, पो० बड़ा बाज़ार, कलकत्ता

कभी फ़ेल न होनेवाली तीस बरस की आज़माई हुई

वात-रोग और पेट के रोगों पर काम करनेवाली हुक्मी दवाएँ

बेकाम साबित करनेवाले को ५००) इनाम !

नारायण तैल

हमारा तीस साल का परीक्षित और विधि-पूर्वक तैयार किया हुआ "नारायण तैल" इसी से सारे भारत में ख़ूब ज़ोरों से बिकता है कि रोग का निदान ठीक होने से कभी बेकार साबित नहीं हुआ। हम दावे के साथ कहते हैं कि इससे अच्छा नारायण तैल और कहीं भी मिल नहीं सकता। इसके मालिश करने से अस्सी तरह के वात-रोग जैसे लकवा, फ़ालिज, गठिया, बदन के किसी हिस्से का दर्द, सूनापन, जकड़न, शरीर सूखना, मुँह टेढ़ा होना वग़ैरह नाश हो जाते हैं। नीरोगी इसे सदा और ख़ासकर जाड़े में लगवा-कर फलते-फूलते हैं। जिनके बदन में रूखापन हो, शरीर दुबला और कमज़ोर हो, चेहरे पर रौनक़ न हो, नामर्दी का-सा आज़ार हो, वे इसे कम-से-कम एक महीना लगवा देखें। इससे नीरोगियों का शरीर पुष्ट होगा, धातु बढ़ेगी, बदन और चेहरे पर रौनक़ आवेगी एवं कोई रोग पास न आवेगा। मूल्य आधपाव की शीशी का १॥), डाक-ख़र्च ॥)

कृष्णविजय तैल

इस तैल की परीक्षा तीस बरस से हो रही है। चमड़े या जिल्द के रोग नाश करने में यह अपना सानी नहीं रखता। शरीर में सूखी-गीली खुजली, फोड़े-फुंसी, दाफड़, ददोरे, चकत्ते, आतशक, उपदंश या गरमी के घाव, फोड़ों के घाव, सफ़ेद दाग़, कोढ़, अभ्रत, इंद्रिय पर की छोटी-छोटी फुंसियां, बालकों के बदन या सिर के फोड़े वग़ैरह-वग़ैरह चर्मरोग इससे निस्संदेह आराम होते हैं। जो काम आयडोफ़ार्म और कारबोनिक ऑयल नहीं कर सकते, वही यह करता है। बहुत क्या, सड़े हुए और कीड़े पड़े हुए घाव इससे आराम होते और गए हुए नाख़ून फिर निकल आते हैं। हर घर में एक पाव तैल रहना ज़रूरी है। बिना रोग गरमी में लगाने से तरी लाता और शरीर की रंगत सोने की-सी कर देता है। इसके साथ अगर हमारा "अर्क़ ख़ूनसफ़ा" भी पिया जाय, तो अठारह प्रकार के कोढ़ गारंटी के साथ नाश हो सकते हैं। दाम आधपाव का १), डाक-ख़र्च ।=)

अकबरी चूर्ण

हम लिख चुके हैं और फिर लिखते हैं कि मिथ्या लिखना हम घोर पाप समझते हैं। हमने वैद्यक और हिकमत की प्रायः सभी पुस्तकों का मक्खन निकाला, पर पेट के रोगों पर इस चूर्ण के समान दूसरा चूर्ण नहीं पाया। यह चूर्ण सम्राट्-कुल-तिलक शाहंशाह अकबर के लिये दर्जनों हकीमों ने सलाह करके तयार किया था। बादशाह के पेट का रोग इसी से नाश हुआ। हमें भी यह एक जगह मिल गया। हमने तीस बरस में इसकी हज़ारों नहीं, लाखों शीशियां बेचीं। इसने सौ में सौ को फ़ायदा पहुँचाया। सच जानिए, आजकल के इश्तिहारी चूर्णों में कुछ भी नहीं। यह बेश-क़ीमत, लाजवाब और लासानी चूर्ण है। इससे पेट का कोई भी रोग खड़ा रह नहीं सकता। भूख न लगना, शुद्ध डकार न आना, पेट का भारी रहना, हवा न खुलना, पेट में गोला-सा फिरना, दर्द रहना, जी मचलाना, तिल्ली, जिगर बढ़ना सभी रोग चंद रोज़ लगातार सेवन करने से आराम होते हैं। बिना रोग, भोजन के बाद ज़रा-सा खा लेने पर पेट हलका रहता और भूख-पर-भूख लगती है। रात में रोज़ खा लेने से कहीं का भी पानी नुक़सान नहीं करता। हर गृहस्थ और मुसाफ़िर को इस ज़ायक़ेदार चूर्ण की एक शीशी हर वक़्त पास रखनी चाहिए। बिना आज़मायश हमारी बात की सचाई मालूम नहीं हो सकती। एक बार हमें भी ठगाकर देख तो लीजिए। मूल्य छोटी शीशी का ॥), बड़ी का १), डाक-ख़र्च, पैकिंग

अग्निमुख चूर्ण

यह चूर्ण भी पेट के रोग नाश करने में अपना जोड़ नहीं रखता। सुस्वादु भी ख़ूब है। एक बार चाटने से बार-बार चाटने को दिल चाहता है। खाते ही पेट हलका होता, भूख-पर-भूख लगती और दिल ख़ुश हो जाता है। कितने ही बरस तक परीक्षा करके बेचना आरंभ किया है। सफ़र में पास रखने से पेट के रोगों का ख़ौफ़ नहीं रहता। कैसा ही जी मचलाता हो, क़ै होती हो, हवा न खुलती हो, एक मात्रा खाते ही सब रोग काफ़ूर हो जाते हैं। मूल्य छोटी शीशी ॥) और बड़ी का १), डाक-ख़र्च ।=)

कर्पूरादि मरहम

सूखी-गीली खाज-खुजली, हर तरह के घाव, आग से जले घाव, बवासीर की जलन—ये सब इस मरहम से शर्तिया आराम होते हैं। दाम ॥) शीशी।

हरिवटी

इन गोलियों की तारीफ़ करना बेकार है। अतिसारनाश हज़ारों दवाओं में से ये गोलियाँ सबसे उत्तम निकलीं तभी तो बाबू हरिदासजी ने इनका नाम "हरिवटी" रक्खा। कैसा ही अतिसार हो, पतले दस्त आते हों, आंव और ख़ून गिरता हो, पेचिश और मरोड़ी हो—२ गोली खाते ही जादू का-सा तमाशा नज़र आवेगा। अगर दस्त लगकर बुख़ार चढ़ा हो यानी ज्वरातिसार हो, तो इन गोलियों से ज्वर और बुख़ार दोनों आराम होंगे। हैज़े के आरंभ में इनके देते ही हैज़ा शर्तिया आराम होता है। दाम ॥) शीशी

५००) रुपया इनाम

इस विज्ञापन में लिखी दवाओं में से किसी एक को भी अगर कोई सज्जन झूठी या बेकार साबित कर दें, तो कंपनी ऊपर लिखा हुआ इनाम देगी।

पता—हरिदास ऐंड कंपनी, २०१, हरिसन रोड, कलकत्ता।

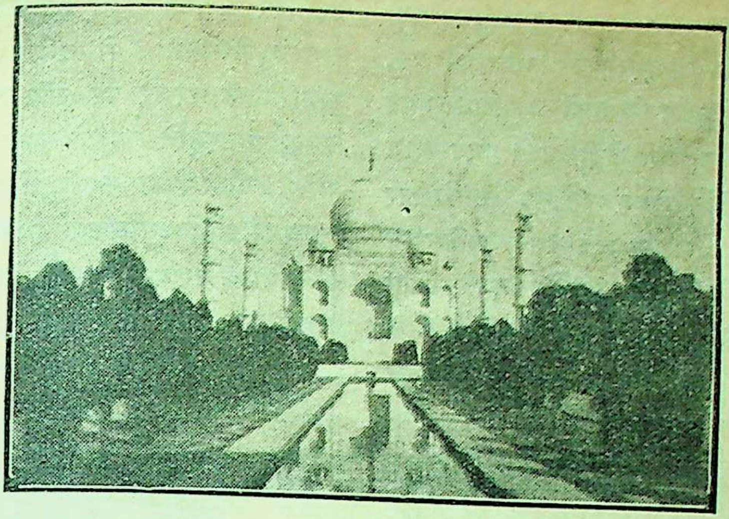

ताजमहल (आगरा)

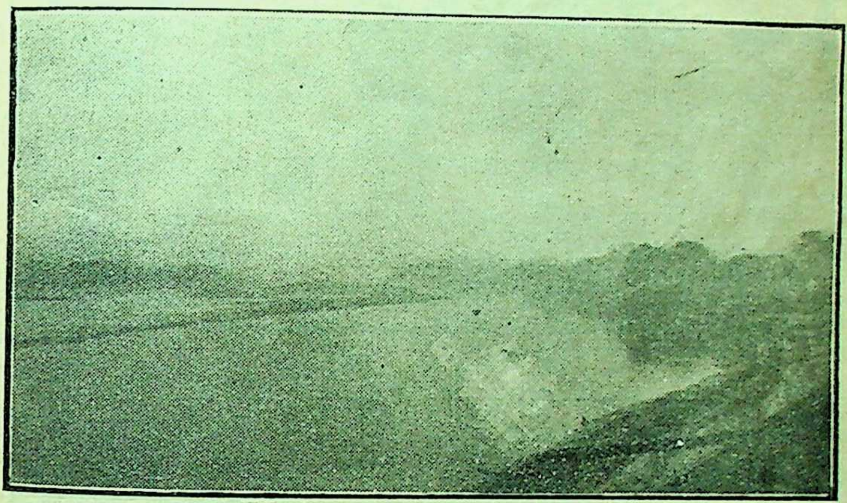

ताजमहल से यमुना का दृश्य (आगरा)

विक्टोरिया-पार्क से ताजमहल (आगरा)

उसकी एक-एक मुसकान पर हज़ारों अलंकारभूषिता दासियाँ उसके कोमल-कुसुम-समान श्रीचरणों पर, देवता के अर्घ के समान दुर्लभ वस्तुओं का अर्घ देकर अपने जीवन को सार्थक कर लेती थीं। पुण्य-पराग गंधवाही वायु में सम्मिलित होकर धूप की सुगंधि पर बलि-बलि जाता था। समग्र राज-भवन आवेगमय संगीत-प्रवाह से दिग्दिगंत को मुखरित कर उठता था। अखंड उल्लास-हिल्लोल, आकुल वायु-प्रवाह के समान तोरण-द्वारों पर वातायनों पर और झरोखों से टकराकर उल्लसित हो उठता था। स्निग्धज्योत्स्ना समस्त राजमार्गों से प्रविष्ट होकर दासों के समान सम्राज्ञी के चरणों पर लोट जाया करती थी। उसकी चंचल प्रतिच्छवि सामने बहते हुए अमृत के झरनों से आँखमिचौनी खेला करती थी और सम्राट् शाहजहाँ—प्रणय का पवित्र उपासक शाहजहाँ सम्राज्ञी के अनिंद्य प्रेम को—उसके प्रणय-संभार को अपने सजग और उमंगपूर्ण विह्वल अनुराग से सार्थक करता था।

हाय, कैसे दिन, कैसी घड़ियाँ, कैसे पल, एक विराट

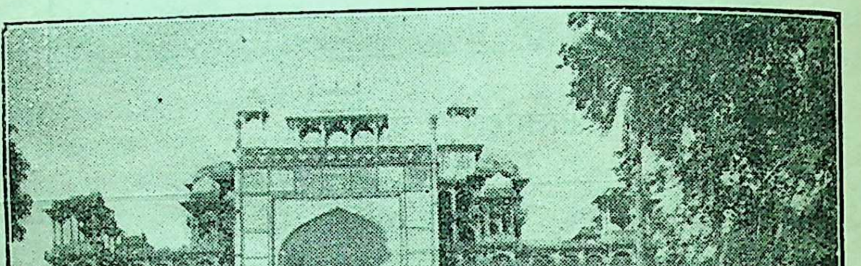

सम्राट् अकबर की समाधि (सिकंदरा, आगरा)

सम्राट् अकबर की समाधि का ऊपरी भाग (सिकंदरा, आगरा)

आनंद-रागिनी की मूर्च्छा और छाया को छोड़कर एक सुख-स्वप्न की तरह बीत गए। मुमताज चली गई। वंचना-व्यथित अदृष्ट की भयंकर चोट खाए हुए अभागे प्रणयी शाहजहाँ को विरह की प्रचंड ज्वाला में विदग्ध होने के लिये छोड़कर चली गई। कितना ऐश्वर्य अबाध प्रणय-प्रवाह की उन्मुक्त धारा में वह गया। कितनी अतृप्त वासना, कितनी अधीर प्रतीक्षा, कितना मधुर मिलन, कितने कंपित चरण-भंग, कितना गुप्त सस्नेह संभाषण, कितना चंचल आवेशमय कटाक्ष, लोल लोचनों का संकेतपूर्ण मौन विनिमय, प्रणय का विह्वल निवेदन, कितनी वेदना, कितना विरह, कितना वियोग, सुख-दुख आज सम्राट् की प्रेयसी मुमताज की समाधि के पास—चारों ओर और केवल-मात्र सीमाहीन, दिशाहीन निस्तब्ध प्रकृति की अनंत शांति-समाधि को भंग करता हुआ अपनी समग्र अपूर्णता को लेकर प्रतिध्वनित हो रहा है। केवल-मात्र यमुना सम्राट् शाहजहाँ और सम्राज्ञी मुमताज के अखंड प्रेम-परिणय और प्रणय की साक्षी-स्वरूप ताजमहल के किनारे से आँसुओं की अबाध धारा को बहा रही है। सम्राट् की प्रेयसी और श्रेयसी के मधुर मिलन और प्रणय के दिन उसने देखे हैं। उसमें अखंड शांति से परिपूर्ण स्निग्ध ज्योत्स्नामयी यामिनी में प्रेमी और प्रेमिका की मौन, विस्मयपूर्ण, प्रणय-वाणी को, नाव-निवरिया खेलते हुए व्यक्त और निःसृत होते हुए देखा है। उसमें मुमताज का वेदना-व्यथित, निराश और असहाय अवस्था में जीवन को म्रियमाण करते हुए—महाप्रस्थान देखा है। उसमें अभागे शाहजहाँ की प्रेयसी की एक-मात्र अंतिम अभिलाषा को परिपूर्ण करने में—ताजमहल बनवाते हुए, करोड़ों रुपया लुटवाते हुए देखा है। उसको उस समाधि में, सम्राट् के कंपित हाथों से प्रणय के कंकाल को रखते हुए देखा है—और उसके पश्चात् यमुना ने देखा है—शाहजहाँ का उसी ताजमहल के आइने में प्रतिच्छवि देखते हुए, वेदनापूर्ण अवसान और अवसाद के पश्चात् मुमताज की समाधि की बाज़ू से समाधि में प्रतिष्ठित होना।

यमुना दीर्घ श्वास भरता हुई जैसे आज भी दो उद्भ्रांत प्रेमियों की प्रणय-कथा को सुना रही है। कहती है—क़यामत के दिन दोनों प्रेमी क़ब्र से उठेंगे और दोनों प्रेमियों के अखंड प्रेम का फ़ैसला होगा। दोनों प्रेमी जैसे पुनर्मिलन के लिये और जागृति के उद्बोधन के लिये असीम और आकुल प्रतीक्षा में तड़प रहे हैं।

हम ताजमहल के बाहर निकले। देखा, संसार के कोने-कोने से असंख्य यात्री इसको देखने के लिये आते हैं। शायद उनको विश्वास है, सबसे बढ़कर प्रेम-तीर्थ संसार में इससे दूसरा नहीं हो सकता। सैकड़ों चित्र रोज़ लिए जाते हैं—शायद इसलिये कि जीवित प्रणय की इससे अच्छी समाधि संसार में दूसरी नहीं मिल सकती। एक अँगरेज़ महिला और एक अँगरेज़ चित्रकार विक्टोरिया-पार्क में बैठे हुए ताजमहल का चित्र बनाकर रंग रहे थे। उनको अगाध विश्वास था, मानो इसका चित्र बनाए विना उनकी जीवन-साधना सार्थक न हो सकेगी। उसको आँख-भर देखे विना जैसे हमारी यह लंबी यात्रा भी सफल न हो सकती, इसलिये हमने भी वहाँ से उसका एक चित्र ले लिया।

प्रेमनारायण त्रिपाठी
मंगलप्रसाद विश्वकर्मा

विदेशी व्यापार का त्रिशंकु

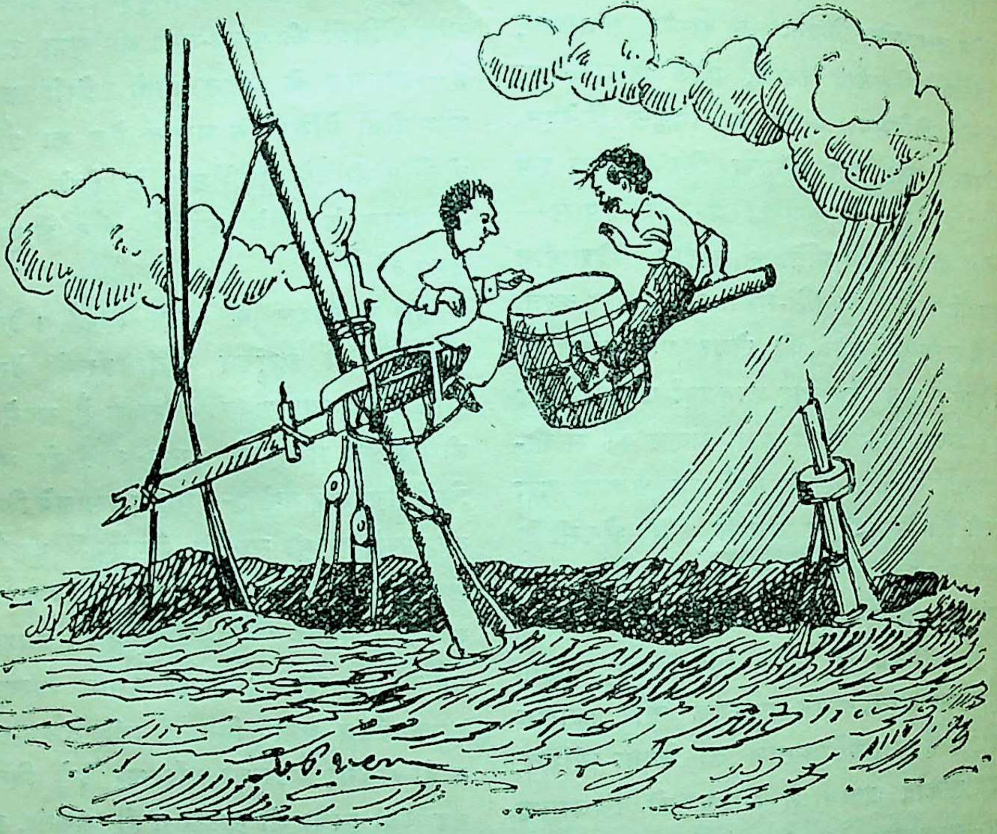

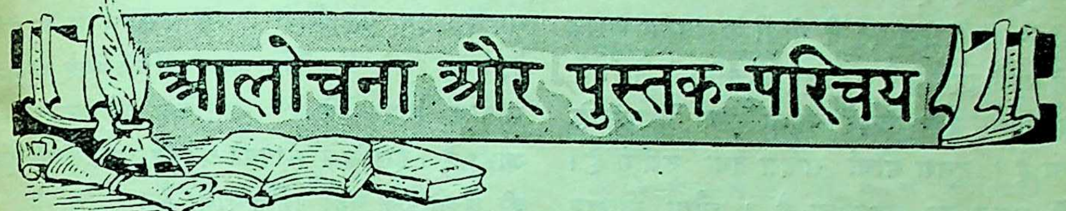

आलोचना और पुस्तक-परिचय

विशाल भारत का इतिहास (प्रथम भाग)—लेखक, श्रीयुत वेदव्यास एम्० ए० हंसराज, प्रोफ़ेसर आफ़ एंशेंट इंडिया हिस्ट्री, पंजाब-विश्वविद्यालय ; प्रकाशक, दयानंद-कालेज, रिसर्च-डिपार्टमेंट, लाहौर ; पृष्ठ-संख्या २७७; मूल्य ५)

कोई समय था, जब हम अपनी सभ्यता और अपने धर्म का अपने देश के बाहर भी प्रचार कर सके थे, जब अपने बाहुबल से हमने अपने राज्य भारत के पूर्ववर्ती द्वीपों—जावा, सुमात्रा, कंबोडिया इत्यादि में स्थापित किए थे। अपने देश के इस प्राचीन गौरव का अनुसंधान करने के लिये कलकत्ते में ग्रेटर इंडिया-सोसाइटी-नामक एक संस्था है। इस संस्था ने भारतवर्ष के औपनिवेशिक गौरव के प्रकाशन के उद्देश्य से कई छोटे-छोटे ग्रंथ छपाए हैं। यह सब ग्रंथ अँगरेज़ी में हैं। हिंदी-भाषा-भाषी जनता के लिये भारत के प्राचीन गौरव के इस अंग को समझने के लिये कोई साधन न था। इस कमी को अध्यापक वेदव्यासजी ने पूरा करने का बीड़ा उठाया है। विशाल भारत के इतिहास का प्रथम भाग हमारे सामने है। इसमें लेखक महोदय ने कंबोज अर्थात् आधुनिक कंबोडिया-स्थित प्राचीन हिंदू-राज्यों का विवरण दिया है। अब यह देश फ़रांसीसियों के हाथ में है, परंतु उसके गौरवकाल के कुछ भग्नावशेष, शिलालेख और ग्रंथ अभी प्राप्य हैं। इनका संकलन करके अपने प्राचीन कंबोज के हिंदू-राज्य की गाथा का प्रस्तुत पुस्तक में विवरण दिया है।

अध्यापक महोदय का उत्साह सराहनीय है। परंतु मालूम होता है कि आपने पुस्तक विद्वानों के लिये ही लिखी है, क्योंकि भाषा क्लिष्ट है और यद्यपि अनेक चित्रों द्वारा पुस्तक की शोभा बढ़ गई है, तथापि कंबोज देश का कोई मानचित्र नहीं है। आशा है, विषय के नाते—भाषा के नाते न सही इस पुस्तक का हिंदी-संसार में आदर होगा, और पहले संस्करण के चुक जाने पर दूसरा संस्करण निकालते समय आप सरल शैली के अनुसरण करने का प्रयत्न करेंगे। हिंदी भाषा-भाषी जनता के सामने अभी हमें अपनी खोज का शुष्क विवरण नहीं रखना है। अभी सरल और रोचक शैली में उसे सुलभ ज्ञान प्राप्त करने के साधन ही मिलने चाहिए।

सुना है कि अध्यापक वेदव्यासजी बहुत शीघ्र एक ऐसी पुस्तक लिखना चाहते हैं जिसके द्वारा आप भारत के औपनिवेशिक गौरव का सरल भाषा और शैली में साधारण जनता को ज्ञान प्राप्त करा सकेंगे। आशा है, आप अपने उद्देश्य में बहुत शीघ्र सफल होंगे।

× × ×

जीवनयुद्ध—लेखक, श्रीदेवकीनंदन 'विभव' ; प्रकाशक, प्राचीन कवि-माला-कार्यालय, काशी ; पृष्ठ-संख्या १५५; मूल्य १)

बहुत समय पश्चात् मुरझाए हुए हृदयों में आशा के जीवन-रस संचार करनेवाली पुस्तक सामने आई। हमारा जीवन एक युद्धक्षेत्र है। इसमें विजय क्या है और हम विजयी क्योंकर हो सकते हैं, इस पर नौ मोर्चों के अंतर्गत लेखक महोदय ने अपने हृदय से निकली हुई ओजस्विनी शैली में बड़े गंभीर विचार प्रकट किए हैं। पहला मोर्चा निर्णयशक्ति और दृढ़ता है। दूसरा मोर्चा साहस तथा उद्योग है। तीसरे में समय का सदुपयोग है। चौथा स्वास्थ्य के लिये आदेश देता है। पाँचवाँ हमें अपने सामने उच्चादर्श तथा महत्त्वाकांक्षा रखने के लिये प्रोत्साहित करता है। छठे मोर्चे में प्रफुल्लता तथा आकर्षणशक्ति की जीवन-ओषधि मिलती है। सातवें में गार्हस्थ्य जीवन का आदर्श सामने रक्खा गया है। आठवें में व्यवसाय के आवश्यक गुण बताए गए हैं। और नवें में सदाचरण की शिक्षा है। उपसंहार में जिन शब्दों में आपने जीवनयुद्ध के विजय की व्याख्या की है, उसका एक वाक्य नीचे उद्धृत है—

स्मरण रक्खो, यदि तुमने कोई साम्राज्य स्थापित नहीं किया, बहुत-सा धन एकत्रित करने में सफल नहीं हुए, सरकार में उच्च स्थान नहीं पाया, समाज में लोग तुम्हारी जय-जयकार नहीं करते, पत्रों में तुम्हारी प्रशंसा के पुल बँधते नहीं दिखलाई पड़ते, तो भी यदि तुमने अपना जो ध्येय स्थिर किया है, उसे प्राप्त करने के लिये तूफ़ान की तरह आगे बढ़ने की चेष्टा की है, यदि तुम श्रम से कभी पीछे नहीं हटे हो, यदि तुमने औरों का जीवन सुखी बनाने के लिये त्याग किया है, यदि अपनी ख़ुश तबियत से जहाँ गए वहाँ पुष्प बरसाने का प्रयत्न किया है, यदि तुमने अपने आश्रितों को सुखी बनाने की चेष्टा की है, तो फिर इसमें कोई संदेह नहीं कि तुमने अपने जीवन का काम कर लिया है। तुमने अपनी विजय-पताका भी फहरा दी है।

हम लेखक महोदय को इस आशामय पुस्तक के लिये हृदय से बधाई देते हैं। क्या हम यह आशा करें कि जीवनयुद्ध के वीर अपने हथियार रखने के पहले इस पुस्तक के संदेश को सुनने का प्रयत्न करेंगे।

× × ×

भूली बात—लेखक, श्रीविनोदशंकर व्यास; प्रकाशक, पुस्तक-मंदिर, काशी ; पृष्ठ-संख्या १२० ; मूल्य १)

प्रस्तुत संग्रह में व्यासजी की कुछ छायात्मक कहानियों का संग्रह है। आपकी 'तूलिका' के संबंध में, आप की कला के विषय में कुछ विचार-अन्यत्र प्रकट कि गए हैं। इन कहानियों में भी उसी कला का समावे है, परंतु इनके भावचित्र कुछ अधिक स्पष्ट हो गए हैं भाव के स्पष्ट होने में छायाचित्र का आनंद कम जाता है। इसलिये आपका प्रस्तुत गल्प-संग्रह 'तूलिक की श्रेणी तक नहीं पहुँच पाया है।

९ कहानियाँ हैं। प्रथम 'भूली बात' है, जो संग्रह नामकरण करती है। इस कहानी में मनुष्य के अप प्रेयसी के भूलने की कहानी है। वह प्रेम ही क्या, इतना क्षणभंगुर हो। वास्तव में यह यौवनमद-ज लालसा है, जिसे हम प्रेम के नाम से बदनाम करते हैं फिर 'अभिनेता' में स्त्री के अपने प्रेमी के भूलने कहानी है। अंतिम दृश्य इतना भयावह हो गया है करुणा के लिये उसमें जगह नहीं रह जाती। 'अपरा के चित्रण में करुणा की अच्छी झलक है। प्रेम मनु में उत्साह और धैर्य का संचालन करता है। प 'अपराध' में वह उसे कर्महीन बनाता है। इसलि इसमें भी प्रेम की आड़ में लालसा का ही प्रभाव है 'अंधकार' में द्रौपदी के अपने दत्तक पुत्र के प्रति इ लालसा का हास्यमिश्रित करुणा का दृश्य है। 'विद्रोही शीर्षक कहानी में लेखक ने बहुत अच्छी सफ प्राप्त की है। हल्दीघाटी की वीरभूमि में शक्ति और प्रताप के पारस्परिक विद्रोह के जातीयता के प्रवाह में विलीन होने का दृश्य बड़ा आशा-जनक है व्यासजी देहाती जीवन के चित्रण में इतने दक्ष नहीं जितने कि प्रेमचंदजी हैं। इसलिये मोती का अ जमींदार के प्रति 'बदला' लेने का दृश्य कुछ फी

और कृत्रिम मालूम पड़ता है। आपका 'चिड़ियावाला' अपनी एक झलक ही दिखा पाता है। उसकी जीवन-समस्या हमें कुछ समय के लिये एक भ्रम में डाल देती है और लेखक की कला का जादू काम कर जाता है। 'विधाता' में निराशा का भाव बहुत लज्जा-जनक है और 'छलिया' में वेश्या का अपने प्रेमी के प्रति इतना शीघ्र त्याग का भाव प्रकट करना कुछ कृत्रिम मालूम होता है।

व्यासजी से एक निवेदन है। 'भूली बात' में अधिकतर कहानियाँ जीवन की निराशाओं को ही प्रकट करती हैं। क्या कभी आप हमारे हृदय में आशा और उमंग के संचार का भी प्रयत्न करेंगे? यह अवश्य है कि इस समय हमारे जातीय जीवन में भी निराशा का ही भाव है। परंतु आशा की उषा का समय आ रहा है। क्या आप उसकी अरुण शिखा लेकर उसकी सूचना हमारे हृदय को भी देंगे?

× × ×

एक घूँट—लेखक, श्रीयुत जयशंकर 'प्रसाद'; प्रकाशक, पुस्तक-मंदिर, काशी; पृष्ठ-संख्या ४६; मूल्य ।।)

जयशंकर 'प्रसाद'जी छायावादी कवि हैं, दार्शनिक नाट्यकार हैं, और विशुद्ध हिंदी के लेखक हैं। इसलिये आपके नाटक उच्च श्रेणी के होते हुए भी न अभिनय करने योग्य हैं, न सुबोध हैं। प्रस्तुत नाटक में प्रेम के प्रणय में परिवर्तित होने और परास्त होने का अभिनय नाट्यकार ने अरुणाचल-आश्रम में आनंद और प्रेमलता द्वारा कराया है। अरुणाचल-आश्रम का आदर्श है—स्वास्थ्य, सरलता और सौंदर्य का सम्मिश्रण। नाट्यकार उसमें प्रेमजल मिलाकर उसके 'एक घूँट' का आनंद लेने का अवसर हमें भी देते हैं। यह बात दूसरी है कि इस 'एक ही घूँट' से हमें उतना आनंद नहीं मिलता, जितना शायद आपको मिलता होगा।

जयशंकर 'प्रसाद'जी बनारसी हैं। परंतु 'जीवन की झंझटें' में कुछ पंजाबी की झलक है। यह क्यों?

कालिदास कपूर

× × ×

गीतारहस्य—लोकमान्य तिलक के "गीतारहस्य" के पहले इसी नाम से एक पुस्तक बँगला में स्वर्गीय नीलकंठ मजूमदार एम्० ए० ने लिखी थी। उसी का यह हिंदी-अनुवाद है। अनुवादक हैं श्रीकृष्णानंदजी गुप्त। पृष्ठ-संख्या ४०० के लगभग है। पुस्तक सजिल्द है, और मूल्य २।।)

लेखक ने गीता के अठारह अध्यायों का दो मित्रों के द्वारा एक-एक दिन में संवाद कराकर गीता के पूरे विषय को सरल रूप में समझाने का प्रयत्न किया है। अंत में गीता के सब श्लोकों के अनुवाद भी दे दिए हैं। अनुवादक ने भूमिका में लिखा है "गीता एक ऐसा ग्रंथ है, जिसके लिये एक अच्छे भाष्य का अभाव सदा बना ही रहेगा। प्रस्तुत भाष्य इस अभाव की आंशिक पूर्ति है।" पर मेरी सम्मति में लोकमान्य तिलक के ग्रंथ के बाद हिंदी में इस ग्रंथ के अनुवाद की कोई तादृश आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि इसके विचार बहुत पुरानी शैली के हैं। स्वामी विवेकानंद और लोकमान्य तिलक के ग्रंथों ने गीता का जो रहस्य प्रकट किया है, उस रहस्य के आगे तो इस ग्रंथ के विचार जाते ही नहीं, बल्कि कहीं-कहीं पीछे ज़रूर रह जाते हैं। मेरी सम्मति में तो पंडित लक्ष्मणनारायण गर्दे की "सरल गीता" इस "गीतारहस्य" से हिंदी-वालों के लिये विशेष उपयुक्त है। अनुवाद की भाषा कहीं-कहीं इतनी जटिल हो गई है कि समझने में कठिनाई पड़ती है। "पृथ्वी का हित" इत्यादि प्रयोग चिन्त्य हैं। गीता में एक पारिभाषिक शब्द "लोक-संग्रह" आता है, उसी के अर्थ में शायद उपर्युक्त शब्द प्रयुक्त किया गया है। श्लोकों का अर्थ भी बँगला से अनुवादित किया गया है, अतएव कहीं-कहीं थोड़ा-बहुत भावांतर हो गया है। दूसरे संस्करण में इसकी भाषा और भावों का, मूल-ग्रंथ के अनुसार, परिमार्जन हो जाना चाहिए।

इतना होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि गीता के प्रेमियों को इस ग्रंथ से कोई लाभ न होगा। नहीं, इस ग्रंथ के पढ़ने से भी साधारण पाठकों को गीता के ज्ञान के संबंध में बहुत कुछ जानकारी होगी। लोकमान्य तिलक के गीतारहस्य के साथ इसका तुलनात्मक अध्ययन करने से पाठकों की विवेचनाशक्ति बढ़ेगी। इसलिये अध्यात्मज्ञान के जिज्ञासुओं को इस ग्रंथ का भी पाठ अवश्य करना चाहिए।

लक्ष्मीधर वाजपेयी

× × ×

'मानव-धर्म' तथा 'साधन-पथ'—नामक दो पुस्तिकाएँ गीता-प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित हुई हैं। उक्त प्रेस से प्रकाशित होनेवाली परमार्थ-ग्रंथमाला के यह द्वितीय एवं तृतीय पुष्प हैं। लेखक हैं कल्याण-संपादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, मूल्य क्रमशः =) और =)॥ हैं।

मानव-धर्म में मनुष्य के लिये आवश्यक दस धर्मों का सुंदर विवेचन किया गया है और उनकी उपयोगिता बताई गई है। साधन-पथ में जीवन का परम ध्येय वैराग्य, एक लालसा, साधन के विघ्न, साधन के सहायक भगवान् के सामने दीनता और प्रभु को आत्मसमर्पण स्तंभों के अंतर्गत बड़े ही सरल शब्दों में साधना का सच्चा मार्ग एवं ईश्वर-प्राप्ति के उपाय बताए गए हैं। दोनों पुस्तिकाएँ उपयोगी हैं। जिज्ञासुओं को अवश्य मँगाकर पढ़ना चाहिए।

× × ×

सोहराब-रुस्तम—लेखक, श्रीसुदर्शनजी, पृष्ठ-संख्या १०१ ; मूल्य ॥=) ; प्रकाशक, इंडियन-प्रेस, प्रयाग।

इस कहानी को फ़ारसी से सरल हिंदी में परिवर्तित किया गया है। कहानी बच्चों के लिये बड़ी ही उपयोगी है। शांति से लाभ, लोभ से हानि, झूठ का बुरा फल, बुरों के साथ से बुराई की उत्पत्ति आदि अनेकों शिक्षाएँ इस पुस्तक से प्राप्त की जा सकती है। छपाई-सफ़ाई अच्छी है, टाइप भी बालकों के पढ़ने लायक़ बड़ा है।

× × ×

बालकविता-माला—यह भी इंडियन-प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुई है। मूल्य ।=) है। इसके रचयिता श्रीदेवीदत्तजी शुक्ल हैं।

इसमें कुल ३० कविताएँ हैं। सभी रचनाएँ बालकों की रुचि को बढ़ानेवाली और ज्ञानवर्धक हैं। इस पुस्तक में कुछ एकरंगे चित्र देकर इसकी उपयोगिता और भी बढ़ा दी गई है।

× × ×

सहस्र अमूल्य हीरे—संग्रहकर्ता, श्रीहरिकिशनलाल अग्रवाल विशारद ; प्रकाशक, भार्गव-पुस्तकालय, गायघाट, बनारस सिटी।

इस पुस्तक में ऋषियों, महात्माओं और सभी देशी-विदेशी आदरणीय मान्य पुरुषों के दिव्य संदेशों और सूक्तियों का संग्रह किया गया है। कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ रहने के लिये यह संदेश बड़े ही मूल्यवान् हैं। पुस्तक सर्वथा संग्रहणीय है।

× × ×

घर-जमाई (या दुनियाँ का नक़्शा)—अनुवादक, श्रीरामनाथलाल 'सुमन'; प्रकाशक, भार्गव-पुस्तकालय, काशी; मूल्य १॥), सजिल्द १॥।); साइज़ क्राउन सोलह पेजी; पृष्ठ-संख्या ३०४; छपाई और काग़ज़ साधारणतया अच्छा।

प्रस्तुत पुस्तक बँगला के एक उपन्यास का अनुवाद है। मूल-लेखक चारु बाबू बंगभाषा के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखकों में गिने जाते हैं। अनुवाद की भाषा सरल और मुहाविरेदार है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस पुस्तक में दुनिया का नक़्शा बड़े ही मार्मिक ढंग से खींचा गया है।

जीवन की विभिन्न गतियों और सिद्धांतों का भी हृदयग्राही चित्रण है। प्रत्येक गृहस्थ को यह उपन्यास ज़रूर पढ़ना चाहिए। अनुवाद के परिश्रम के लिये 'सुमनजी' को बधाई।

रामसेवक त्रिपाठी

× × ×

लोकमान्य—इस नाम का सचित्र हिंदी-साप्ताहिक पत्र चार-पाँच महीने से कलकत्ते से निकलने लगा है। इसमें 'लीडर' आकार के १२ पृष्ठ रहते हैं। इसका वार्षिक मूल्य २॥) है और इसके संपादक पं० रामशंकर त्रिपाठी हैं। यह पत्र "व्यवस्थापक लोकमान्य-कार्यालय, १६० हरिसन-रोड, कलकत्ता" के पते से मिल सकता है।

लोकमान्य राष्ट्रीय दल की नीति का समर्थक है। यद्यपि हिंदी के अन्य राष्ट्रीय पत्रों के समान ही लोकमान्य भी राजनीति-प्रधान पत्र है, फिर भी इस पत्र को बिलकुल एकांगी—केवल राजनीति की चर्चा से ओत-प्रोत—नहीं कह सकते हैं। इसमें व्यापार, साहित्य, कला-कौशल एवं अन्य उपयोगी विषयों पर भी लेख रहते हैं। इसका संपादन परिश्रम के साथ होता है और संपादकीय विचार प्रौढ़ एवं सुपाठ्य होते हैं। इसमें 'नोक-झोंक' नाम का भी एक स्तंभ रहता है, जिसमें परिहास की सामग्री पाई जाती है। संपादकजी से प्रार्थना है कि वह परिहास में व्यक्तिगत आक्षेपों एवं कटुता को न आने दें। सुनने में आया था कि यह पत्र शीघ्र दैनिक रूप में निकलेगा। इसी प्रतीक्षा में अब तक 'माधुरी' में इसकी आलोचना नहीं की गई थी। विश्वास है, हिंदी-संसार इस आदरणीय पत्र को अपनावेगा। 'माधुरी' हृदय से 'लोकमान्य' की उन्नति चाहती है।

कृष्णविहारी मिश्र

× × ×

वीर बंदा वैरागी (नाटक)—लेखक, श्रीयुत सुवर्ण-सिंह वर्मा 'आनंद'; प्रकाशक, श्रीयुत शिवरामदास गुप्त, उपन्यास-बहार-आफ़िस, काशी ; पृष्ठ-संख्या लगभग १२०; मूल्य ॥≈); छपाई-सफ़ाई साधारण; काग़ज़ अच्छा ।

देवतास्वरूप भाई परमानंदजी द्वारा रचित "वीर बंदा वैरागी" के जीवन-चरित्र को केवल सात रात्रियों के परिश्रम से नाटक का रूप दे डाला गया है। लेखक महोदय के शब्दों में यह एक वीररस-प्रधान नाटक है ; किंतु हमें उसमें उक्त रस का परिपाक पूर्णरूप से हुआ नहीं दिखता । चरित्रचित्रण भी उचित रूप से सुसङ्गठित नहीं हुआ । ईदगाह में इकट्ठे हुए मुल्लाओं के खेमे में आग लगवा देना हिंदू सभ्यता की दृष्टि से वीरता का कार्य समझा जायगा, इसमें भारी संदेह है । वीर बंदा वैरागी के और किसी वीरत्वपूर्ण कार्य का समुचित वर्णन नाटक-भर में नहीं मिलता । कुछ डाकुओं के हाथों से एक पुरुष तथा एक स्त्री को बचाना, या एक धनी को दंड देना अथवा गंगाराम ब्राह्मण से गुरुपुत्रों का बदला लेना किसी अपूर्व शौर्य के उदाहरण नहीं समझे जा सकते ।

पहले अंक के चौथे दृश्य में गुरु गोविंदसिंहजी ने महाभारत का दृश्य तथा निज पुत्रों के दीवार में चुने जाने का दृश्य वैरागी को साक्षात् दिखला दिया, यह बात कुछ असाधारण-सी जँचती है ; क्योंकि गुरु गोविंदसिंहजी के असाधारण योगी होने का हाल कहीं भी सुनने में नहीं आता । अस्तु, लेखक की यह कल्पना कुछ अस्वाभाविक-सी हो गई है ।

जगह-जगह पद्यों की भरमार है । यह सब प्रायः उर्दू-ढंग की तुकबंदियाँ हैं । गद्य भी प्रायः उर्दू की मुक़फ़्फ़ा इबारत का-सा लिखा गया है, जैसा फ़साना-ए-अजायब में । यह ढंग पुराना हो गया है ।

कहीं-कहीं छापे की ग़लतियाँ भी खटकती हैं—जैसे सेबक श्रीमान् खौभाग्य आदि । ये तीनों ग़लतियाँ "दो शब्दों" के पहले पृष्ठ की एक ही पंक्ति में पाई जाती हैं ।

करीम और वीरेंद्र के चरित्र हिंदू-मुस्लिम ऐक्य और गोरक्षा का उपदेश देने के लिये जोड़े गए हैं । जहाँ तक उपदेश और शिक्षा का संबंध है, वहाँ तक कहा जा सकता है कि लेखक महोदय अपने उद्देश्य में कृतकार्य हुए हैं ; किंतु नाटक के अन्य गुणों का परिपाक (Developement) अच्छा नहीं हुआ है।

जो लोग स्त्रीपात्र-रहित शिक्षाप्रद नाटक पढ़ना या खेलना चाहते हों, यह नाटक उनके लिये सर्वथा उपयोगी है । स्कूलों के छात्रों द्वारा इसका अभिनय सरलतापूर्वक किया जा सकता है। अस्तु । ऐसे लोगों को यह नाटक अपनाकर लेखक महोदय का उत्साह बढ़ाना चाहिए। आशा है, दूसरे संस्करण में ऊपर दिखलाई गई त्रुटियों के दूर करने का प्रयत्न किया जायगा ।

"वज्र"

हिंदी में अपने ढंग की नितांत नई पुस्तक !

बोल्शेविक-रूस !

लेखक—श्रीशिवनारायण टंडन

भूमिका-लेखक—प्रताप के ख्यातनाम संपादक श्रीगणेशशंकरजी विद्यार्थी

पृष्ठ-संख्या ३००, पचासों चित्र, मूल्य ३)

पुस्तक में क्या होगा—

(१) क्रांति से पहले का पूरा हाल––ज़ारों की अत्याचार-कहानियाँ । (२) ज़ार की स्पेशल कारो का जाना––ज़ार का सपरिवार वध । (३) क्रांतिकाल और ख़ूनी क्रांति की सफलता । (४) बोल्शेविक नेताओं के सचित्र जीवनचरित्र । (५) कम्यूनिस्ट पार्टी का पूरा हाल । (६) सोवियट की शासन रचना । (७) बोल्शेविक-रूस की अद्वितीय शिक्षाप्रणाली । (८) पुनर्निर्माण—Economic Organization of the Soviet. (९) बोल्शेविक-रूस में किसानों की सुखी हालत । (१०) श्रमजीवियों का संगठन, उनके हक़ और वर्तमान रूस में उनका स्थान । (११) स्त्रियों के अधिकार । (१२) धर्म की समस्या का वैज्ञानिक रूप से हल होना ।

अभी से जो १) पेशगी भेजकर ग्राहक बन जायँगे, उन्हें पुस्तक २) में दी जायगी ।

पुस्तक मिलने का पता—**मैनेजर प्रताप-कार्यालय, कानपुर ।**

कृषि, शिल्प और वाणिज्य

भारतीय रुई

हम सचित्र लंदन न्यूज़ (ता० २० अक्टूबर सन् १८५५) में प्रकाशित दूसरा लेख प्रकाशित करते हैं, जिसकी खोज के लिये हम श्रीयुत नेनअर्ड डिक्सन के उतने ही आभारी हैं, जितने कि उस लेख के लिये जो हमारी गत अक्तूबर की संख्या में प्रकाशित हुआ है—अग्रायर काटन ग्रोइङ्ग रिविऊ ।

ढाके के धागे

वे उपाय जो इस लेख में बतलाए गए हैं, और अंकित किए गए हैं, बहुधा अब नहीं पाए जाते हैं और नाश को प्राप्त हो रहे हैं : क्योंकि सस्ती साधारण उपज का सामना नहीं कर सकते । परंतु उक्त लेख कातनेवालों, बुननेवालों और मुख्यतः मशीन में संलग्न पुरुषों द्वारा पठनीय है । उनको इन व्याख्याओं में विचारणीय बातें मिलेंगी; क्योंकि वे उपाय, जिनके द्वारा भारतीय रुई ३२० या ४८० अंक तक काती जा सकती हो, सहज में दृष्टि से ओझल नहीं किए जा सकते । इस कलाकौशल के बुद्धिवाद की शाखा में पेरिश-विश्वप्रदर्शिनी में प्रदर्शित कुछ सुंदर नमूनों ने एक नवीन उत्तेजना सम्मिलित कर दी है । वे कौन-से उपाय हैं, जिनके द्वारा भारती कोमल मलमलें बनाई जा सकती हैं । जिनमें से कु ऐसे आश्चर्यजनक बारीक धागों से तैयार की जाती है जिनकी लंबाई आध सेर रुई के कत जाने पर २५० मी होती है । हमारे आविष्कार की बुद्धिमत्ता और हम आश्चर्योत्पादक मशीनरी और कला अब तक भी इ योग्य नहीं हुई है कि ढाके की मलमल का सामना क सके । जिस मलमल के विषय में टैवरनियर ने कहा है, वे ऐसी सुंदर होती हैं कि आप अपने हाथ में यह अनुभ ही नहीं कर सकते कि मलमल है । सत्रहवीं शताब्दी के एक लेखक ने घृणा से उसको 'वस्तु की छाया' कहा है परंतु उच्चतर रुचि के लोगों ने उसकी अमूल्य सुंदर और बराबरी की सराहना की है, उसको 'कती हुई ह के धागे' कहा है ।

इस कौतुकजनक कला के विषय में साधारण वि ऐसा है कि यह असम और अयंत्रित उपकरणों से जाती है । भारतीय इसके संचालन में अपने सहज द्वारा प्रेरित किया जाता है । वह एक प्रकार उँगलि से असावधानी से काम करता है । बुननेवाला रुई

मछली की अस्थि से साफ़ करता है, अपने चरख़े को किसी नदी के तट के वृक्षों पर टाँग देता है और पृथ्वी में अपनी टाँगों के लिये एक गड्ढा खोदकर चंद्र-मेघ के समान वे धागे बुनता है, जिनको प्राचीनकाल की साम्राज्ञियों ने अभिमान से पहना है।

उपर्युक्त व्याख्या में कुछ तथ्य अवश्य है, परंतु यह धारणा कुछ महत्त्व नहीं रखती कि भारतीय एक अनियंत्रित शिल्पकार है। वह अपना माल निर्माण करने में बड़ी सावधानी से काम करता है और प्रत्येक प्रकार से अपने शताब्दियों के ज्ञान से माल को अच्छा बनाता है। क्योंकि पूर्व की यह मलमलें व्यापार की सबसे पुरानी वस्तुओं में हैं। ऋग्वेद के एक सूत्र में भी जो हमारे सन् से पूर्व बना है चरख़े की रुई का ज़िक्र है। इसमें कुछ आश्चर्य भी नहीं है कि भारतीय एक ऐसा माल निर्मित करने में दक्षता रखते हैं, जो वंशपरंपरा से चला आता है, जो उनकी पृथ्वी के लिये उपयुक्त है और जिसके धागे उनके जलवायु के अनुकूल हैं। हैरोडोटस् ने भारत के विषय में कहा है—उस देश के वनजन्य विटपों से भेड़ से भी अधिक सुंदर ऊन निर्माण होती है और भारतीय इन वृक्षों से कपड़े बनाकर पहनते हैं।

रुई के गुणों का ज्ञान

रुई जिससे भारतीय अपनी सुंदर-से-सुंदर मलमलें बुनते हैं, घटिया दर्जे की है। सर्वपरिचित मैनचेस्टर शिल्पकार कहते हैं कि भारतीय रुई भद्दी है, बाज़ार में कम मिलती है और कातने के लिये अमेरिकन सी आइलैंड काटन के सामने जो केवल उस देश में बरती जाती है, अनुपयुक्त है। अमरीकन रुई बहु ध्यान से जोती जाती है और अँगरेज़ी माल के वास्ते छँटी हुई सबसे अच्छी वस्तु है। विरुद्ध इसके भारतीय रुई का कृषक एक असावधान व्यक्ति है—वह ध्यान नहीं देता कि कपास कैसे पृथ्वी से उठाई जाती है और उसको कैसे एकत्रित किया जाता है, जिसके करने से वह पश्चात् के परिश्रम से बहुत बच सकता है। फिर भी भिन्न-भिन्न प्रकार की रुई के भेदों के गुणों से वह अनभिज्ञ नहीं होता है। इसलिये अपनी असावधानी को उस परिश्रम और कष्ट से पूरा करता है, जो माल को फिर तैयार करने में उसको उठानी पड़ती है। वह जानता है कि ढाके के पूर्व में उगी हुई रुई का धागा उसी ऋतु में बर्तना चाहिए, जिस ऋतु में वह उगाया जाता है, अन्यथा यह सुखाने पर नहीं बढ़ेगा। इस बढ़ाने की प्रक्रिया में ही वह भेद है, जिससे घटिया और बढ़िया रुई में विवेक किया जा सकता है। उँगलियों से कातने में छोटा तंतु उतना ही उपयुक्त है, जितना मशीनरी के लिये बड़ा।

साफ़ करने, उठाने और कंघी करने के उपाय

रुई खेत से स्वच्छता से नहीं उठाई जाती है। इसलिये यह आवश्यक है कि सावधानी से कपास को खेत से उठाकर उँगलियों से सब पत्ते, डंठल और छोटी-छोटी पत्तियों को पृथक् कर देना चाहिए। रुई को कपास से पृथक् करने के पहले ढाके के हिंदू कपास में कंघी करते हैं। इस कंघी के लिये वे मछली के जबड़े की अस्थि का उपयोग करते हैं। यह इस ओर अधिकता से पाई जाती है, जिससे धूल आदि सब दूर हो जाती है। यह हमारे नुकीले लोहे के उपकरण पाइक के चित्र-जैसी होती है।

धुनना

दूसरा उपाय धुनने का है। इसका नाम धुनकी पर पड़ा है। इसी कारण एक प्रकार की रुई का नाम बीड़ ज्यारजियन पड़ा है। कमान या धुनकी अब अमरीका में उपयोग में नहीं लाई जाती है। यह उपकरण एक प्रकार की कमान होती है, जो मकान की छत में लटका दी जाती है और प्रायः दूसरी कमान की डोरी में बाँध दी जाती है। डोरी एक सूच्याकार मुद्गर से रुई की टक्कर में लाई जाती है, जिससे रुई का स्वेत मेघ बन जाता है और रुई की धूल सब दूर हो जाती है। यह उपकरण अब भी हमारी कुछ फ़ैक्टरियों, शिल्पशालाओं में—उदाहरणतः हेटफ़ैक्टरी शिल्पशाला में उपयोग में लाया जाता है। परंतु ढाके की मलमलें एक और नम्र वस्तु की कमान से धुनी जाती हैं। यह बाँस की बनी हुई होती हैं, जिसकी डोरी में शिरों पर दो और रपटनेवाली धुनकियाँ लगाई जाती हैं। डोरी मोरगा सिल्क, कैटगट केला और बेत की ख़ूब बटकर बनाई जाती है। बाँस की धुनकियाँ घुमाई जा सकती हैं और ज्यों-ज्यों वे खींची जाती हैं और फिर हटाई जाती हैं, त्यों त्यों डोरी घटती और बढ़ती है। सब ऐसी होती हैं कि सहज में ही पकड़ी जा सकती हैं।

कातना

धुनकी से रुई इस प्रकार बहुत बारीक की जाती है, फिर फैलाई जाती है और एक गोल लकड़ी के डंडे द्वारा लपेटी जाती है, जो पोनी की आकृति की बन जाती है। यह फिर दो चपटे तख़्तों के बीच दबाई जाती है, फिर क़लम जैसे डंडे द्वारा, जिस पर केशर और बर का गोंद आदि चढ़ा हुआ होता है, पोनी की आकृति में लाई जाती है। अंत में कूचिया मछली की नर्म खाल में रक्षित की जाती है और इस प्रकार कातते समय हाथ में धूल आदि से बचाई जाती है। ३० वर्ष से कम आयु-वाली स्त्रियाँ बारीक सूत कातती हैं और यह उनके ही हाथों की कोमलता और स्पर्श का परिणाम होता है, जिससे उनकी बुद्धिकला से अनुपमेय नमूने निर्माण होते हैं!

कातने के उपकरण में, जो एक टोकरे में रक्खा रहता है और प्राचीन पुरुषों के कौलोदियर्स के नाईं होता है, रुई की पोनी, एक बारीक तकुवा, एक मिट्टी में लिपटा हुआ शंख का टुकड़ा और एक छोटा खोखला पत्थर जिसमें चाकमिट्टी-जैसा स्वेत चूर्ण होता है और जिसमें कातनेवाली पुनः-पुनः अपनी उँगलियों का प्रयोग करती है, सम्मिलित होते हैं। तकुवा मोटी सूई से अधिक मोटा नहीं होता है, जिसके नीचेवाले जोड़ में एक छोटी कच्ची चिक्कण मिट्टी की गोली लगी हुई होती है, जो बोझ को सम रखती है। यह शंख में लगी रहती है। स्त्री एक हाथ के अँगूठे और उँगली से तकुवे को घुमाती है और दूसरे हाथ से पोनी से तकुवे पर सूत उतारती है। कभी-कभी वायु की आर्द्रता (सजलता) प्राप्त करने के लिये यह भी आवश्यक होता है कि जल के निकट काता जावे। साधारण कार्यों के लिये उपर्युक्त उपायों के अतिरिक्त रुई कभी-कभी एक मोटे कपड़े पर फैला दी जाती है और मोटे-मोटे डंडों से पीटी जाती है, जिससे बिनौले पृथक् हो जाते हैं। बिनौले को रुई से पृथक् करने के लिये पुराने उपाय के अतिरिक्त रुई एक तख़्ते पर डाल दी जाती है और एक लोहे का लट्ठा आगे और पीछे को इसके ऊपर को चलाया जाता है। यह लट्ठा हाथ से या पैर से प्रयोग में लाया जाता है। इस प्रकार रुई से बिनौले विना टूटे पृथक् हो जाते हैं। हाथ से लट्ठा बंग-देश में और पैर से महाराष्ट्र में प्रयोग में आता है। साधारणतः चरख़ा अर्थात् रुई ओटने की मशीन समग्र भारत में प्रयोग में लाई जाती है। इसके पास आमने-सामने दो सूराख़ होते हैं, जो मार्चमीडियन कला के नमूने-वाले पेंच पर घूमते हैं। यह उपकरण आकृति में अच्छा नहीं है। पर अपना काम अच्छी प्रकार पूरा कर देता है। रुई सूराख़ में दी जाती है। बिनौले अंदर नहीं जा सकते, अतः नीचे गिर पड़ते हैं और रुई को कोई आपत्ति नहीं होती है।

घटिया रुई, जो ढाके की पहाड़ियों में उत्पन्न होती है और जिसको भोग-कपास कहते हैं, घटिया धागे के बनाने में प्रयोग में लाई जाती है। यह भी साधारण चरख़े से ओटी जाती है और साधारण उपाय से ही धुनी जाती है। यह चरख़ा पुरानी आकृति का होता है। बड़ी आकृति होने के कारण इसको बड़ा चरख़ा भी कहते हैं। परंतु भारतीय चरख़ा यद्यपि प्रत्यक्ष में भद्दा होता है, तो भी काम करने में सुलभ है, जो घुमाने से अनुभव किया जा सकता है। चरख़े का प्रांत लकड़ी और धातु का बना हुआ न होकर डोरी का बना हुआ होता है, जिससे दृढ़ता और स्थायित्व आ जाता है। चरख़े को घुमा-कर जब तकुवा चलाया जाता है, तो अपूर्ण और पर्यटन-शील धागा तकुवे से ढालू आकृति में रहता है। तकुवे के प्रत्येक घुमाव पर धागा उसकी नोक से फिसलता है और विना उस पर लिपटे बट जाता है।

पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी की लिखी
हुई दोनों पुस्तकें प्रत्येक गृहस्थ
को मँगाकर अवश्य पढ़नी चाहिए।

धर्मशिक्षा
मूल्य १)
गार्हस्थ्यशास्त्र
मूल्य १)

पता—तरुण-भारत-ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग।

तंतुकार द्वारा सूत की तैयारी

तंतुकार का तैयार किया हुआ सूत प्रथम पानी में भिगोया जाता है। छोटे-छोटे बाँस के खोखले टुकड़ों पर लिपटा हुआ सूत एक लंबी बाँस की छड़ी में लगा दिया जाता है। यह बाँस के टुकड़ों पर से उतारकर एक और बाँस की लकड़ी पर चढ़ाकर रील की आकृति में ले आया जाता है। तंतुकार छड़ी को अपने पैर के अँगूठे में पकड़ लेता है, रील से सूत को उतारता है और दूसरी रील पर चढ़ाता है, जिसको वह अपने दूसरे हाथ में रखता है और नारियल के छिलके के छोटे चिकने प्याले पर चारों ओर लपेटता है। सबसे अच्छा धागा बाने के लिये पृथक् कर लिया जाता है और शेष ताने में काम में आता है, जो कई-कई रोज़ पानी में भीगा रहता है। पानी बदलता रहता है। फिर रील पर लपेटा जाता है और सुखाया जाता है। फिर सुलभ मोइए बनाए जाते हैं, और पानी में भिगोए जाते हैं, जो दो डंडियों से ऐंठे जाते हैं। यह फिर धूप में सुखाए जाते हैं, खोले जाते हैं और दो दिवस तक चारकोल-मिश्रित जल में डुबोए जाते हैं। फिर स्वच्छ जल से धोए जाते हैं और छाया में सुखने दिए जाते हैं। प्रत्येक मोइया फिर रील किया जाता है, एक रात्रि तक पानी में डूबा रहता है, दूसरे दिन खोला जाता है, एक चपटे तख़्ते पर फैला दिया जाता है, हाथ से चिकना किया जाता है और फिर लरी या चावलों की माँडी और जल में मिश्रित थोड़े चूने से रगड़ा जाता है। मोइए बड़े मोइयों की आकृति में बना लिए जाते हैं। धागे पृथक्-पृथक् कर लिए जाते हैं और धूप में सुखाए जाते हैं। धागा फिर रील किया जाता है और प्रायः तीन विभागों में विभाजित कर लिया जाता है। लंबे और चित्रित धागे के साने का सूत कुछ घड़ों को एकत्रित बाँटकर तैयार किया जाता है अर्थात् डोरिए के वास्ते दो लंबे धागे और चारख़ाना मलमल के वास्ते चार। बाने के वास्ते सूत बुनने से दो दिवस पहले तैयार किया जाता है, यह पानी में भिगोया जाता है, धोया जाता है, बड़ी-बड़ी रीलों पर लपेटा जाता है, सहज-सहज चावल की लही इस पर चढ़ाई जाती है, फिर रील किया जाता है, छाया में सूखने के लिये छोड़ दिया जाता है और प्रतिदिन प्रयोग में लाया जाता है।

ताना

बुनने में जो धागा प्रयोग में लाया जाता है, उसके दो भेद हैं। लंबाई में जो प्रयोग किया जाता है, उसको ताना कहते हैं और वह साधारणतः सबल, कड़ा और अधिक बटा हुआ होता है। बाने का धागा इतना सबल, कड़ा और बटा हुआ नहीं होता है। सूत तैयार कर लेने के पश्चात् ऐसा करना चाहिए कि ताने के वास्ते उसको बराबर तनकर एक समक्षेत्र बना लेना चाहिए। हिंदू इस कार्य को खुली हवा में करता है। वह नाप-नापकर इच्छित कपड़े की लंबाई के अनुसार पृथ्वी में बाँस के चार छोटे-छोटे डंडे गाड़ता है। फिर दो बराबर-बराबर पंक्तियों में चार-चार फीट के अंतर पर कुछ और डंडों के जोड़े लगाता है। तंतुकार, जिसके हाथों में सूत का चक्र होता है, चक्र को चार डंडों में से एक डंडे पर ले जाता है, पंक्तियों के समानांतर चलता है, अपने हाथों को प्रत्येक डंडे के जोड़े में ले जाकर दो-दो धागे रखता जाता है। और अंत में चलनेवाले डंडे के सामने आ जाता है। यहाँ से वह उसी प्रकार बढ़ता और हटता है, जैसा उसको धागे रखने होते हैं। छोटी-छोटी रीलें, जिन पर ताने का सूत लिपटा हुआ होता है, बाँस की सुंदर छेपटियों और धागों की बनी हुई होती हैं। प्रत्येक सीधा एक लकड़ी पर लगा लिया जाता है, जिसके सिर पर मोटे काँच का छल्ला लगा हुआ होता है। सूत इसमें ही निकलता है। चित्रित और रंगीन मलमलें दो प्रकार की रीलों से बुनी जाती हैं। एक रील में केवल एक तार का सूत होता है और दूसरी में बटा हुआ। यह तनने का एक सीधा मार्ग है, जिसके लिये योरप में तनने का ढाँचा या तनने की मशीन, जिसमें हैक-बोक्स लगा हुआ होता है, तनने के धागे को प्रत्येक हील्ड के वास्ते दो बराबर-बराबर टुकड़ों में लीज़ में विभाजित करती है।

रीड का ताने में प्रयोग

स्त्री इस कार्य को ताने के पश्चात् करती है या कभी-कभी वीविंग के पश्चात्। रीड इस कारण से कहलाया क्योंकि आरंभ में यह बाँस की सुंदर छेपटियों से बनाया गया, जो बाँस को फाड़कर उसकी खरपंच के बीच में लगाया गया। टेलर महाशय का कथन है कि ढाके के चरख़ों में ४० इंच की दूरी में २८०० पेनीवेट प्रमाण

रीड होते थे। ताने के सूत का मोइया बनाकर तंतुवाय की झोपड़ी में लटका दिया जाता था, जिसका एक सिरा खोल दिया जाता था. जो पृथ्वी से एक या दो फीट ऊँचा टँगा रहता था। रीड दो हलके धागों से मोइए और लटकते हुए डंडों से बाँध दिया जाता है और ताने के खुले हुए भाग के सामने लटका रहता है। तंतुवाय रीड के सम्मुख बैठता है और दूसरा कार्यकर्ता उसकी दूसरी ओर। ताने के सिरे चाकू से काटे जाते हैं। तंतुवाय सामने से रीड के पहले भाग द्वारा एक लोहे का तार दौड़ाता है। दूसरा कार्यकर्ता पहले दो धागों के सिरे इस पर बाँध देता है। रीड वापस खींच लिया जाता है और इस प्रकार धागा आता है। इस प्रकार क्रमानुसार दो-दो धागे रीड द्वारा खींचे जाते हैं। धागों के सिरे पाँच या छः की गुच्छी में एकत्रित कर लिए जाते हैं और उनमें गिरह लगाई जाती है। एक छोटा बाँस गिरहों के सूराख़ में डाला जाता है।

वीविंग अर्थात् ताने को चरख़े के गोल सिरे में लगाना

यह कार्य भी ताने की तरह खुली हवा में किया जाता है। कार्यकर्ता रीड को जिस पर ताना लिपटा हुआ और एक गट्ठर की शक्ल में होता है अपने हाथ में लेता है। उसका सिरा खोल दिया जाता है और बाँस की पतली खरपंचक उसमें लगाई जाती है। फिर लंबा किया जाता है, चरख़े के गोल सिरे से लगाया जाता है। और डोरी के छोटे-छोटे धागों से उसे बाँध दिया जाता है। चरख़े का गोल सिरा सूत से बने हुए दो सूराख़ों में जो दो डंडों में होते हैं लगा रहता है और एक उपकरण से घुमाया जाता है। ताने के धागे इसी तरह लगाए जाते हैं, जिस प्रकार इस देश में लगाए जाते हैं, जिसको उन्होंने अनुमानतः पूर्व से सीखा है। सबसे पहला धागा कपड़े की इच्छित चौड़ाई के अनुसार लेकर ताने का कुछ भाग खोल दिया जाता है और गट्ठर लेनेवाला पुरुष उसको फैलाव पर रखता है। दो कार्यकर्ता धागों के बीच में ठीक करने के लिये चलते हैं। इस कार्य को वे एक बेत द्वारा करते हैं, जिसका एक सिरा छेदकर नरम ब्रुश की आकृति में कर लिया जाता है और फिर सहज-सहज एक लचकीले बेत द्वारा जो कमान की आकृति का होता है सम करते हैं। तानें का जितना भाग साफ़ होता रहता है, होशियारी से गोल डंडे पर लपेटा जाता रहता है। अन्य धागे डोरियों से चार छोटे बाँस के डंडों से बाँधे जाते हैं। ऊपर के दो डंडे जब चरख़े में लगाए जाते हैं, हेडिल्स (हमवार गिरहदार धागे जिनसे ताने के सूत के लिये सूराख़ बनाए जाते हैं) में लगे हुए होते हैं। नीचे के दो डंडे टेडिल्स-नामक उपकरण में लगे रहते हैं। टेडिल्स एक प्रकार का उपकरण होता है, जिससे गति में सहायता मिलती है।

चरख़ा और बुनना

प्रायः भारत में तंतुवाय अपने चरख़े को दो वृक्षों के बीच में लगा देता है और टेडिल्स को गड्ढे में डाल देता है, जहाँ वह अपनी टाँग लटकाता है। परंतु ढाके का चरख़ा हारिज़ेंटल (दिगंतसम) होता है और सदैव छत के नीचे लगा रहता है। चरख़ा तंतुवाय के घर में लगा रहता है या ऐसे छप्पर के नीचे जो मुख्यतः इस कार्य के लिये बनाया गया है। बाँस के चार डंडे पृथ्वी में गाड़े जाते हैं, जिनके ऊपर और दो डंडे लगाए जाते हैं। इन दो डंडों पर एक तिरछा डंडा और लगाया जाता है, जिसमें लकड़ी के टुकड़े वा बटन द्वारा हेडिल्स बाँधे जाते हैं। गोल डंडे के सिरे पर लिपटा हुआ धागा जिस पर रीड और हेंडिल्स भी लगे हुए होते हैं, चरख़े तक लाया जाता है और सामने के गोल डंडे पर बाँस के खरपच्चक द्वारा लगा दिया जाता है, जो ताने के सूराख़ों में पिरोया जाकर लंबा बुना जाता है। नीचे और सामने के गोल डंडे चार खड़े डंडों से लगे हुए होते हैं। ये कटुवे द्वारा घुमाए जाते हैं। बटन या लकड़ी के टुकड़े में, जो तिरछे डंडे पर लगा हुआ होता है, दो चपटे और लकड़ी के टुकड़े सम्मिलित होते हैं, जिनके सिरों पर रीड को लेने के लिये सूराख़ होते हैं। रीड अपनी जगह लोहे या लकड़ी के पिनों द्वारा स्थित रहता है। लकड़ी के टुकड़े के सिरों में होकर लगते हैं। रीड तिरछे डंडे से छोड़ा जाता है। यह पेंच द्वारा छोड़ा जाता है। पेंच आरी से चिरी हुई नारियल की चादर के टुकड़ों में लगा हुआ होता है। इन नारियल के टुकड़ों में अंतर घटाया-बढ़ाया जाता है। पेंचों को छोटा और बड़ा कर देने से अंतर घट और बढ़ सकता है। ऐसा करने से बटन या लकड़ी के टुकड़े का संचलन घटता और बढ़ता है। यह संचलन बाना बुनने में बहुत सहायता देता है। इस उपकरण को तंतुवाय ने यदि अच्छी तरह से और

कर दिया, तो वह उसको चरखे के कार्य में एक बहुत अच्छा कार्य समझता है। हैंडिलस भी तिरछे डंडे पर लगाए जाते हैं। ट्रेडिलस, जो लकड़ी के बने हुए होते हैं, पृथ्वी में खुदे हुए एक गड्ढे में रक्खे रहते हैं।

सूत्रवेष्टन

यह सुपाड़ी की लकड़ी का बना हुआ होता है और इसमें लोहे की नुकीली कीलें होती हैं। इसकी लंबाई १० से १४ इंच तक होती है। चौड़ाई एक इंच की तीन चौथाई होती है। तौल में यह दो औंस होता है। मध्य में लंबी खुली जगह होती है, जिसमें लंबा करके एक चलनेवाला लोहे का तार लगाया जाता है, जिस पर बाने का रीड चक्कर खाता है और यह इतनी शीघ्रता से घूमता है कि पलक झपने ही में सूत्रवेष्टन के नीचे आ जाता है। बुनते समय कपड़े को चरखे में रखने के लिये एक उपकरण दो डंडों का बना हुआ होता है, जो एक धागे में लगे हुए होते हैं। इसके बाहर के दोनों सिरों पर पीतल के दो हुक या पिन लगे हुए होते हैं। यह भीतर की ओर कपड़े के किनारों में नत्थी कर दिए जाते हैं। मशीन जब इस प्रकार फिट हो जाती है, तो यह भद्दी दृष्टिगोचर होते हुए भी अपने कुल अंगों में पूर्ण हो जाती है। तंतुवाय धागों का जाल लगाकर अपनी वह कला दिखलाता है, जिससे बुनी हुई वायु के धागे बुने जाते हैं। यह कला ऐसी होती है कि इसकी बराबरी किसी ने नहीं की। ताने के दो धागे आपस में टकरा न जायँ, इसलिये सूत्रवेष्टन रीड और बटन या लकड़ी का टुकड़ा तेल से चिकने किए जाते हैं। जब १० या १२ इंच अर्थात् ४ या ५ गिरह कपड़ा तैयार हो जाता है, तो उस पर चूने का पानी छिड़का जाता है। ऐसा करने से कपड़े को कीड़े नहीं लगते। फिर यह कपड़ा लट्ठे पर चढ़ा दिया जाता है। कभी-कभी यह भी आवश्यक होता है कि ताने के सूत के नीचे पानी के कुछ बरतन भी रक्खे जाते हैं—ऐसा करने से पानी की भाप से धागे सजल रहते हैं और टूटते नहीं। मलमल के एक थान को पूर्ण करने के लिये कितना समय चाहिए, यह शिल्पकार की बुद्धिमत्ता और चातुर्य और कपड़े की जाति पर अवलंबित है। दस गज़ा सबसे बढ़िया मलमल का थान, जिसकी चौड़ाई एक गज़ होती है और जो एक वर्ष से कम में तैयार नहीं हो सकता, १४०) और १६०) मूल्य का होता है। नवीनपुरी जहाज़ी मलमल, जिसका मूल्य दो रुपया होता है, एक सप्ताह में तैयार होता है। जामदानी और फूलदार मलमलें तैयार करने के वास्ते दो तंतुकार बैठते हैं। तंतुकार काग़ज़ पर खिंचा हुआ नमूना ताने के नीचे रख लेते हैं। ताने के धागों के टुकड़े कर लेते हैं और फूल और नमूने की आवश्यकतानुसार उनको बाने के धागों में लगाते रहते हैं। फिर दो छोटी नुकीली बाँस की डंडियों से प्रत्येक धागे को फूल वा नमूने की चौड़ाई के अनुसार ताने के धागों में निकालते हैं। सब धागे ताने के धागों में ले आए जाते हैं। उनको बटन के ज़ोर से परस्पर मिला दिया जाता है। सूत्रवेष्टन धागे में घुमाया जाता है, और कपड़ा तैयार हो जाता है।

अनंतप्रसाद जैन

५००) इनाम

महात्मा प्रदत्त विष नाशक जड़ी—इसे सिर्फ़ दिखाने से भयानक से भयानक बिच्छू, बिरनी (हड्डा) मधुमक्खी का विष तुरंत आराम हो जाता है। लाखों को आराम कीजिये। सैकड़ों वर्ष पड़ा रहे, गुण में ज़रा कमी नहीं आती, मूल्य १)

११६

श्रीयुत रामाज्ञा द्विवेदी "समीर" एम्० ए० २।१०।२७ के लीडर में लिखते हैं—इसे मैंने बहुत गुणकारी पाया। एक जड़ी सैकड़ों आदमी को आराम कर सकती है।

पता—अखिलकिशोरराम नं० ३०, पो० कतरीसराय (गया)

बाल-महिला-मनोरंजन

१. मनोकामना

सुधा-धारा छल-छल-छल गिरा
करूँ प्लावित सारा संसार ;
चयन कर नभ का तारा-सुमन
बना दूँ कम्बु-कंठ का हार।
महासागर का कल-कल नाद
पकड़ लाऊँ वीणा के पास ;
खेलती हँसती संध्या-उषा
बिठा गालों पर कर दूँ नाश।
छीनकर मलयानिल-माधुर्य
हृदय-प्रांगण में कर दूँ ढेर ;
मरुस्थल में लहरा दूँ लता
भारती रव दूँ यहाँ बिखेर।
सुधाकर के बालों को पकड़
निशा में करूँ कारुणिक खेल ;
खींच लूँ जलधर-ज्वाला-ताड़ित
गिराऊँ रथ से भानु ढकेल।
शांति-सरिता दूँ जग में बहा
तिमिर में देखूँ दिव्य प्रकाश ;
विश्व में भर दूँ मीठी हँसी
'अहम्' का कर दूँ पूर्ण विकास।

माहेश्वरीसिंह 'महेश

× × ×

२. चूहे की इच्छा

पुराने ज़माने में किसी नदी के किनारे एक चूहा रहता था। चूहे ने अपने पुरुषार्थ से उस बिल में सभी वस्तुएँ इकट्ठी कर रक्खी थीं। बिल के मध्य में चूहे ने अपने बैठने के लिये एक आसन रक्खा था, जिस पर बैठकर वह कभी-कभी कुछ सोचा करता था।

चूहे की शादी होने के तीन वर्ष बाद उसके एक अति रूपवान् लड़की हुई। उसका लालन-पालन बड़े चाव से होने लगा। चूहे ने उसकी देख-रेख करने के लिये एक धाय रख दी। धीरे-धीरे चूहे की लड़की ने बाल्यावस्था से युवावस्था में प्रवेश किया।

एक रोज़ चूहा जब भोजन करके अपने आसन पर बैठा, तो वह किसी बात की चिंता में डूबा हुआ दिखाई देने लगा। इतने में उसकी स्त्री भी भोजन करके अपनी लड़की-सहित आ पहुँची। आते ही उसकी निगाह अपने पति के चेहरे पर पड़ी। उसने व्याकुलता से अपने पति से कहा—"हे पतिदेव! आज आपका मुख मलीन दिखाई देता है, इसका क्या कारण है? शीघ्र ही कहकर मेरी व्याकुलता को दूर कीजिए।"

इस पर चूहे ने कहा—"कुछ नहीं। इसी प्रकार सोचते-सोचते मुझे अपने स्वर्गीय बड़े भ्राता की याद आ गई, इसी से तुम मुझे चिंतित देख रही हो।" ऐसा कहकर चूहा न-जाने फिर क्या सोचने लगा, चुप होकर गंभीर भाव धारण किए पूर्ववत् बैठ गया।

चूहे की स्त्री ने जब अपने पति की व्याकुलता पहले से भी बढ़ती हुई देखी, तो उसने कुछ आवेश में आकर कहा—"क्या अब आप मुझसे अपने मन की कोई बात न कहेंगे! मुझसे ऐसा क्या क़सूर हो गया है, जिससे अब आप बोलते तक नहीं? यदि अनजान में कोई क़सूर भी हो गया हो, तो कृपया मुझे क्षमा कर मुझसे अपने चिंतित होने का सच्चा हाल कह दीजिए।" तब चूहे ने कहा—"मेरी दुःख-सुख-संगिनी, मेरी प्यारी! मैंने आज तक तुझसे कोई भी बात नहीं छिपा रक्खी है। अतः मैं अपने चिंतित होने का सच्चा हाल तुझसे कहता हूँ, ध्यान लगाकर सुनो—

"अब यह लड़की युवती हो गई है, मुझे इसके उपयुक्त वर ढूँढ़ने की चिंता लगी है। इसके रूप-गुण को देखकर मैंने प्रण कर लिया है कि जो इस संसार में सबसे बड़ा होगा, उसी को मैं अपनी इकलौती बेटी ब्याहूँगा! हे प्रिये, बहुत सोचने पर मुझे 'सूर्य' ही सबसे बड़ा जान पड़ा है, अतः उसी के पास जाकर अपनी लड़की का पाणिग्रहण करने की प्रार्थना करूँगा। इसमें तुम भी मुझे उचित सलाह दो।"

पहले तो स्त्री भी अपने स्वामी के प्रस्ताव को सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई, पर जैसे ही उसे 'सूर्य' की प्रचंड किरणों का ख़याल आया, उसने अपने स्वामी से इस प्रकार कहना शुरू किया—"हे स्वामी! आपका कहना सत्य है, पर आप लड़की के स्नेह में पड़कर ऐसी भूल न करें। भला, सोचिए तो सही, आप उस आकाशगामी 'सूर्य' के पास क्योंकर पहुँच सकेंगे? यदि किसी प्रकार पहुँच भी गए, तो क्या 'सूर्य' इस बात को स्वीकार करेगा? मुझे तो यही विश्वास है कि वह जैसे ही इस बात को सुनेगा, जल-भुनकर आग बबूला हो जायगा और तुम्हें अपनी प्रचंड किरणों से भस्म कर डालेगा।"

स्त्री की ऐसी बातें सुनकर चूहे ने उससे पुनः कहा—"हे प्रिये! स्त्रियों का हृदय स्वभाव से ही

कोमल होता है। उनका हृदय तनिक विपत्ति का सामना करने के लिये काँपता है। अब मैं अपने प्रण से पीछे हटनेवाला नहीं, अतः तुम व्यर्थ ही घबराई हो। अब मैं इसी समय सूर्य के पास जाने के लिये रवाना होता हूँ। तुम देखना कि मैं किस प्रकार अपना कार्य साधन कर शीघ्र ही लौट आता हूँ।" यह कहकर चूहा चला गया।

जाते-जाते कई महीनों में वह 'सूर्य' के दरबार में पहुँचा। 'सूर्य' ने बड़ी नम्रता से कहा—"हे मूषकराज! आज आपने मुझे किस लिये याद किया है? कृपा करके शीघ्र कहिए। मैं यथासाध्य प्रयत्न करूँगा।" चूहे ने जब अपनी इच्छा के अनुसार सूर्य को कहते सुना, तो वह फूला न समाया, और बड़ी शान से कहने लगा—"हे प्राणियों के आधार! मैंने संसार में आपको सबसे महान् समझकर अपनी लड़की का ब्याह आपसे करने का निश्चय किया है, इसी कारण मेरा यहाँ आना हुआ है।"

चूहे की बातों को सुनकर सूर्य ने उससे कहा—"मूषक! तुमने मुझे बड़ा गिना है। यह मेरा सौभाग्य है, पर वास्तव में मुझसे बड़े 'मेघराज' हैं, वे जब चाहें, मुझे अपनी ओट में ढक देते हैं। अतएव आप उन्हीं के पास जाकर अपनी कामना पूरी कीजिए।"

सूर्य की बातें सुनकर चूहा मेघराज के पास गया, और अपने आने का कारण कहकर बैठ गया। 'मेघराज' ने कुछ सोचकर कहा—"हे चूहे, आपने मुझे बड़ा समझा है, पर मेरा इतना सौभाग्य कहाँ, जो आपकी लड़की का पाणिग्रहण करूँ। क्योंकि मुझसे बड़ी तो हवा है। वह जब चाहे तब मुझे भगा देती है, अतः आप उसी के पास जाइए।"

मेघराज को प्रणाम करके चूहा हवा के पा गया और प्रार्थना करने लगा कि "तू मेरी लड़की से अपना ब्याह कर।" चूहे की बातें सुनकर हवा ने उत्तर दिया—"तुमने मेरे यहाँ पधार कर मुझे कृतज्ञ किया है। अतः धन्यवाद है। लेकिन मैं असमर्थ हूँ; क्योंकि मुझसे बड़े पहाड़ हैं, जो मुझे एक ओर से सीधे दूसरी ओर जाने नहीं देते।

हवा को प्रणाम करके चूहा पर्वत के पास गया और आदि से अब तक की सब कथा कह सुनाई। तब पर्वत ने उत्तर दिया—"हे चूहे, मुझसे ब तो तुम्हीं हो, क्योंकि तुम मेरी जड़ में से मि निकाल-निकालकर मुझे बिलकुल नष्ट क देते हो।"

पर्वत की बातों को सुनकर चूहा इतना प्र हुआ कि उसे अपने तन-बदन की सुध न रही। वह 'पर्वत' को कोटि-कोटि धन्यवाद दे अपने घर को बड़ी प्रसन्नता से रवाना हुआ। उ सबसे अधिक इस बात की प्रसन्नता हुई संसार में सबसे श्रेष्ठ जाति हमारी ही है। कु दिनों के बाद वह अपने घर आ पहुँचा। उसकी स्त्री और लड़की, जो उसके जीवन से बिलकु निराश हो गई थीं, इस प्रकार उसे पुनः पा इतनी प्रसन्न हुईं कि उससे कुशल पूछना भी गईं। खाने के बाद चूहे ने अपनी रामक आदि से अंत तक अपनी स्त्री को कह सुनाई।

कुछ दिनों के बाद चूहे ने अपनी लड़की योग्य एक चूहा ढूँढ़कर बड़ी धूमधाम से अ लड़की का विवाह उसके साथ कर दिया। इ प्रकार चूहे की उच्चाकांक्षा चूहे तक पहुँच समाप्त हुई।

अंबाद

× × ×

३. विवशता

इस राह का जाना भला है नहीं
इसको हम पूर्व से जानते हैं;
दिल टूटते हैं चल थोड़ी-सी दूर
इसे हम सत्य ही मानते हैं।

फिर भी इस शूल-भरे पथ पै
हम दौड़ने की हठ ठानते हैं,
कर ही सकते हैं भला हम क्या
पथ एक यही जब जानते हैं।

केदारनाथ अग्रवाल 'बालेंदु'

× × ×

दिमाग़ को तरबतर रखने तथा उसे सफलीभूत बनाने के लिये आपने कोई उपाय किया है ?
किया हो, और उसमें असफलता प्राप्त हुई हो, तो आपको कोई दूसरा उपाय सूझा है ?
न सूझा हो तो ध्यान में रखिए,

कि,
दिमाग़ को शान्ति देना,
आवश्यकतानुसार बालों को खूराक पहुँचाना,
बालों को जीवनतत्त्व प्रदान करना,
अपने दिमाग़ को ताज़ा तथा सफलीभूत बनाना,
बालों को लम्बा और चमकदार रेशम-तुल्य बनाना
हो, तो

KAMINIA
OIL
for
HAIR

कामिनिया ऑईल (रजिस्टर्ड)
इस्तेमाल कीजिए

आजकल की वर्तमान स्थिति में अनेकों प्रकार के दूसरे-दूसरे नाम के तेल निकल रहे हैं, जिनके उपयोग से आपको तेलों के प्रति श्रद्धा जाती रहती है, परन्तु यहाँ तो लाखों व्यक्तियाँ इसकी प्रशंसा करके गारंटी देते हैं

कि,

कामिनिया ऑईल ही बालों का सर्वस्व है। हरएक मंगलमय त्योहारों के अरुणोदय में अपने केश-कलापों को कामिनिया ऑइल से सँवारिए। क़ीमत प्रति शीशी १)

प्रत्येक शहर तथा गाँव में प्रसिद्ध दूकानदार से मिल सकता है—बाहर से मँगाने में वी. पी. ख़र्च ।=) पृथक् पड़ता है ३ शीशी का २॥=) पो० ख़र्च ॥।) आना पृथक्। आध आने के टिकट आने पर नमूना शी० मुफ़्त भेजा जाता है।

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)

रूमाल पर कुछ बूँद छिड़क देने से फुलवारी की तरह ख़ुशबू पसर जाती है। आज ही १ शीशी मँगाकर आज़माइश कर लीजिए।

मूल्य $\frac{१}{२}$ औंस प्रति शी० २) $\frac{१}{४}$ औंस १।) रु०
,, १ ड्राम ,, ,, ॥।) डाक-व्यय पृथक्
दो आने के टिकट आने पर नमूना शीशी मुफ़्त भेजी जाती है।

सोल एजेंट—
२०
दी ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी २८५, जुमा मसजिद मार्केट, बंबई नं० २

४. "समुद्र कैसे खारी हुआ ?"

बहुत दिन हुए एक नगर में दो भाई रहते थे। उनमें से बड़ा भाई तो धनी था, परंतु छोटा भाई बहुत ग़रीब था। उसको बहुधा अपने उदरपोषण के लिये अपने बड़े भाई से माँगकर लाना पड़ता था। एक बार एक त्योहार के दिन छोटे भाई के यहाँ खाने को भूँजी भाँग भी न थी। वह बेचारा बड़ा परेशान हुआ। त्योहार का दिन होने के कारण वह अपने भाई के यहाँ भी न जाना चाहता था। परंतु न जाय, तो करे क्या, त्योहार के दिन भूखे रहना पड़ेगा। सब लोग तो मालपुवे उड़ावें और मैं मुँह बंद किए पड़ा रहूँ। "सब दिन चंगा, त्योहार के दिन नंगा।" भला यह कैसे होगा। यही सोचकर, अंत में हारकर वह अपने धनी भाई के यहाँ खाना माँगने गया। धनी भाई उसे अपने पास आते देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और दूर ही से उसका स्वागत करने के लिये आगे बढ़ा। कहने लगा—भाई यदि तुम मेरा कहना मानो, तो मैं तुम्हें आज एक टोकरा बहुत बढ़िया पकवान दे सकता हूँ। छोटे भाई ने कहा—अच्छा मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, जो तुम कहोगे करूँगा।

तब उसके बड़े भाई ने कहा—"अच्छा लो, यह एक टोकरा पकवान है। इसे ले जाओ, परंतु यहाँ पर फिर कभी इस प्रकार से भोजन माँगने के लिये भिखारी बनकर मत आना।" बेचारा ग़रीब भाई वहाँ से अपना पकवान लेकर जल्दी से लौट पड़ा। वह तमाम दिन चलता रहा। सायंकाल गोधूलि के समय उसे एक सन के समान सफ़ेद दाढ़ीवाला वृद्ध पुरुष मिला। उस वृद्ध को देखकर उसने कहा—"काका, राम-राम।"

वृद्ध ने कहा—"राम-राम बेटा, तुम इस समय कहाँ जा रहे हो ?"

छोटे भाई ने कहा—"मैं अपने घर जा रहा हूँ। आज त्योहार का दिन है। बड़े भाई से पकवान माँगकर लाया हूँ।"

वृद्ध ने कहा—"बेटा, मैं तुम्हें एक बात बतलाता हूँ। तुम घर जाने से पहले थोड़ी दूर तक इसी सड़क पर और चले जाओ। थोड़ी दूर जाने के बाद तुमको एक जादू का महल मिलेगा। तुम उसके अंदर बेखटके घुस जाना, तुमको महल के अंदर देखकर जादूगर की परियाँ आकर तुम्हारे चारों ओर इकट्ठा हो जायँगी और तुम्हें इस पकवान को बेच देने की पार्थता करेंगी। वे तुम्हें इसके लिये बहुत-सा धन भी देने को कहेंगी। तुम इस पकवान को कभी मत बेचना, चाहे वें तुम्हें इसके लिये कितना ही धन दें। परियाँ पकवान खाने की बड़ी लोभी होती हैं और वे तुमसे इसके लेने के लिये बड़ी ज़िद करेंगी। तुम उनसे पकवान के मूल्य में एक पुरानी चक्की माँग लेना। वह चक्की दरवाज़े के पास रक्खी है। पहले तो परियाँ उस चक्की को देने में आनाकानी करेंगी। लेकिन तुम अपना पकवान बग़ैर उस चक्की के लिए मत देना। जब तुम्हें चक्की मिल जाय, तो तुम मेरे पास चले आना और मैं तुम्हें उसका उपयोग बतला दूँगा।

उस ग़रीब आदमी ने वृद्ध को धन्यवाद दिया और उस जादू के महल की ओर चला। उसने फाटक को धक्का मारकर फाटक खोला। अंदर जाने पर उसने महल के अंदर सब चीज़ें वैसी ही पाईं, जैसा वृद्ध ने बतलाया था। अंदर पहुँचते ही शीघ्र हो बहुत-सी परियाँ उसे चारों ओर से घेरकर खड़ी हो गईं और उससे पकवान माँगने लगीं।

उसने परियों से कहा—आज पर्व का दिन है और यह पकवान मैं घर लिए जा रहा हूँ। इसे मैं अपने बाल-बच्चों को खिलाऊँगा। यदि तुम्हें इसे खाने की बहुत चाट है, तो मैं तुम्हें केवल एक शर्त पर दे सकता हूँ। मैं तुमसे इस पकवान के बदले एक अत्यंत तुच्छ वस्तु मागूँगा। यदि तुम मुझे वह वस्तु दे दोगी, तो मैं तुम्हें सब पकवान दे दूँगा।

परियों ने आग्रह-पूर्वक पूछा—"बतलाओ, बतलाओ, वह कौन-सी वस्तु है।"

उसने कहा—"पहले आप लोग प्रतिज्ञा कर दें, तो बतलाऊँगा।"

परियों ने कहा—"पहले बतलाओ तो, यदि हम देने योग्य होगी, तो अवश्य देंगी। अभी प्रतिज्ञा करती हैं।"

उस निर्धन युवक ने कहा—"मैं जो वस्तु माँगता हूँ वह यही पुरानी चक्की है, जो किवाड़ के पीछे पड़ी है। तुम लोग मुझे यह चक्की दे दो। मैं तुम्हें अपना सारा पकवान अभी दे डालूँगा।"

परियों ने कहा—"तुम हमसे बहुत-से रुपए ले लो, इस टूटी-फूटी पुरानी चक्की का क्या करोगे ?"

उस व्यक्ति ने रुपया लेने से इनकार कर दिया ।

परियों ने कहा—"यदि तुम रुपए नहीं लेते, तो हम तुम्हें एक गाड़ी रत्न और हीरे दे देंगी । तुम जीवन-भर उनका उपयोग करना ।"

ग़रीब आदमी ने कहा—"मुझे देर होती है । यदि पकवान लेना हो, तो चक्की देकर ले लो । मैं रुपया-पैसा, रत्न आदि कुछ नहीं चाहता ।"

थोड़ी देर तक आपस में इसी तरह की बातचीत होती रही । अंत में परियों ने चक्की देना स्वीकार कर लिया और उस युवक से पकवान ले लिया ।

चक्की लेकर वह निर्धन युवक सड़क पर वापस आया । उसको वह वृद्ध पुरुष उसी स्थान पर टहलता हुआ मिला । उस वृद्ध ने उसको चक्की का उचित उपयोग बतलाया । उसने कहा—चक्की चलाने के लिये तुम्हें अपनी इच्छा-मात्र प्रकट करने की आवश्यकता है । जिस वस्तु की आवश्यकता हो, चक्की से कह दो, चक्की चलने लगेगी और तुम्हारी इच्छित वस्तु तुम्हारे सामने आ जायगी और जब तुम इसे बंद करना चाहो, तो इसे उलटकर इसका खूँटा निकाल लो, यह स्वयं बंद हो जायगी ।

वह निर्धन आदमी चक्की पाकर और उसके चलाने और बंद करने की तरकीब जानकर बड़ा प्रसन्न हुआ । वह उस वृद्ध पुरुष को कोटिशः धन्यवाद देकर अपने घर की ओर चल दिया :

जब वह घर पहुँचा, तब अँधेरा हो गया था । उसकी स्त्री उसके लिये बड़ी चिंतित हो रही थी । उसको देखते ही बोली—"प्रिय, अब तक तुम कहाँ थे ? मैं बड़ी देर से तुम्हारी राह देख रही थी । आज त्योहार का दिन है, अभी तक सब बच्चे भूखे पड़े हैं । घर में नाज का एक दाना भी नहीं है, और देखती हूँ, तुम दिन-भर बाहर रहने के बाद एक टूटी चक्की लेकर लौटे हो । हे भगवान् ! कैसे काम चलेगा ।"

वह निर्धन आदमी बोला—"बस, कुछ पूछा जाँचा भी कि लगी बड़-बड़ करने । तुम इस चक्की का उपयोग तो नहीं जानतीं । जब जानोगी, तब तुम इसकी प्रशंसा के पुल बाँध दोगी ।"

इतना कहकर उसने चक्की को एक स्वच्छ स्थान में रख दिया और स्वस्थ होकर एक आसन पर बैठ गया । साथ ही अपनी स्त्री को भोजन के लिये बर्तन लाने को कहा । बर्तन आ जाने पर उसने भगवान् का नाम लेकर चक्की को बहुत बढ़िया भोजन लाने की आज्ञा दी और उसका खूँटा घुमा दिया । उसके सामने शीघ्र ही एक सुंदर थाल में नाना प्रकार के भोजन आकर उपस्थित हो गए । और कमरे में सुंदर प्रकाश फैल गया । इसी प्रकार और भी जो आज्ञाएँ उस चक्की को दी गईं, उन सबका पूर्ण रीति से विधिवत् पालन हुआ । इस प्रकार उस निर्धन युवक, उसकी पत्नी और बच्चों को सुंदर और स्वादिष्ट भोजन प्राप्त हुए ।

उसकी पत्नी चक्की के इतने लाभदायक और बहुमूल्य उपयोग को देखकर तो आश्चर्यचकित हो गई और प्रसन्नता के मारे फूली न समाई । उसने अपने पति से कई बार विनयपूर्वक पूछा कि चक्की कहाँ से आई, किंतु उसने उसका भेद किसी प्रकार भी न बतलाया । वह कहने लगा—तुम्हें इन बातों में सिर धुनने से क्या मतलब है । जो कुछ इस चक्की से प्राप्त हो, उसका आनंदपूर्वक उपभोग करती रहो ।

तीन-चार दिन के बाद उन्होंने एक बड़े भोज का प्रबंध किया । उस भोज में उन्होंने सब इष्टमित्रों को आमंत्रित किया । उसका बड़ा भाई भी उस भोज में सम्मिलित हुआ था । वह अपने निर्धन भाई के इस वैभव को देखकर बहुत आश्चर्यान्वित हुआ और दाँतों में उँगली दाब ली । उस समय तो वह कुछ नहीं बोला, पर जब सब लोग विदा हो गए और वहाँ पर केवल वह और उसका भाई रह गया, तो उसने पूछा—"अभी चार दिन पहले तो तुम मुझसे भीख माँगकर लाए थे, तुम इतने शीघ्र इतने धनी कैसे हो गए कि इतने बड़े भोज का प्रबंध कर लिया । इस प्रकार के भोज तो केवल राजा-महाराजाओं ही के यहाँ संभव हैं । तुम्हारे पास यह सब धन कहाँ से आ गया ?"

छोटा भाई अपना भेद गुप्त रखना चाहता था । पहले तो उसने बड़ी टाल-मटोल की, लेकिन जब बड़े भाई ने उसकी बहुत ख़ुशामद की, तब उसने बतलाया कि यह सब एक चक्की की कृपा है, जो उसे त्योहार के दिन घर के पिछवाड़े पड़ी हुई मिल गई थी । उस दिन तो बड़ा

भाई चला गया। दूसरे दिन वह फिर आया और उस चक्की की बातचीत करने लगा; अपने छोटे भाई की बड़ी तारीफ़ की, और उसकी ख़ुशामद करने लगा। छोटा भाई अपनी तारीफ़ सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ और अपने भेद को वह अधिक न छिपा सका। भाई को उसने चक्की पाने का पूरा हाल विस्तारपूर्वक कह सुनाया। अब बड़े भाई को मन-ही-मन उस चक्की को छोटे भाई से ले लेने की फ़िक्र पड़ गई। उसने छोटे भाई को बहुत-से प्रलोभन दिए, लेकिन वह किसी प्रकार से तैयार न हुआ। अंत में यह निश्चित हुआ कि वसंत-ऋतु के बाद छोटा भाई ३००० सुवर्णमुद्राएँ पाने पर उसे एक वर्ष के लिये अपने बड़े भाई को दे देगा।

छोटे भाई ने सोचा कि इतने दिनों में मैं चक्की की सहायता से बहुत-सा धन इकट्ठा कर लूँगा और वह धन एक वर्ष के लिये पर्याप्त होगा। वास्तव में उसने किया भी वैसा ही। उसने चक्की को एक दिन के लिये भी बेकार न रक्खा। उससे बराबर कुछ-न-कुछ काम कराता ही रहा। और जब वसंतऋतु बीत गई, उसने अपनी प्रतिज्ञानुसार वह चक्की अपने भाई को दी। मारे ख़ुशी के बड़ा भाई उससे चक्की को बंद करने की विधि पूछना भूल गया।

जब बड़ा भाई चक्की लेकर घर पहुँचा, तो रात हो गई थी। उस दिन तो उसने चक्की वैसे ही रख दी। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही अपनी स्त्री से तो मज़दूरों को लेकर खेत को जाने के लिये कहा और स्वयं घर पर भोजन बनाने के बहाने रुक गया। भोजन के समय उसने चक्की को अपने सामने रखकर मछली, दूध और खीर आदि लाने का आदेश दिया। थोड़े ही समय में उसकी रसोई में जितने बर्तन थे, सब भोजनसामग्री से भर गए। खाने की इस बहुलता को देखकर पहले तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ, परंतु जब सारा कमरा भर गया, तो वह घबड़ा उठा और उसने चक्की को बंद करने का प्रयत्न किया। इसी निमित्त वह चक्की कभी इधर और कभी उधर घुमाने लगा, लेकिन चक्की किसी भाँति भी बंद न हुई। शीघ्र ही इतना दूध और खीर घर में भर गई कि वह स्वयं उसमें डूबने लगा। उसने कमरे का दरवाज़ा खोला और शीघ्रतापूर्वक घर के बाहर निकला और बेतहाशा दौड़ना शुरू किया। लेकिन जिस रास्ते से वह बाहर आया, वह रास्ता भी दूध और मछलियों से भर गया। दूध, मछली और खीर की वह प्रबल धारा उसके बाग़ से होकर बहने लगी और वह उसी में उतराने लगा।

उधर उसकी स्त्री देर होते देखकर घबड़ाई और सोचने लगी कि मेरे पति ने मुझे इस समय तक भोजन के लिये क्यों नहीं बुलाया। फिर उसने सोचा कि शायद वह खाना न बना सका हो, इसलिये मुझे घर चलकर उसकी सहायता करना चाहिए। यह सोचकर वह अपने मज़दूरों को लेकर घर की ओर चली। जब वह घर के निकट पहुँची, तो उसे रास्ते में दूध और खीर की एक नदी-सी आती हुई मिली और उसमें उसने बहुत ही मछलियाँ भी तैरती हुई देखीं। आगे बढ़ने पर उसने अपने पति को भी उसी नदी में उतराता हुआ पाया। वह नदी प्रति क्षण आगे की ओर बराबर बढ़ रही थी। अपनी स्त्री और मज़दूरों को आते देखकर वह चिल्लाने लगा—बचो, बचो, मुझे भी बचाओ, यह भयंकर भोजन की नदी तुम्हें खा लेगी—इससे शीघ्र ही बचो।

बड़ी कठिनाई से इस विचित्र भोजनप्रवाह से अपना पिंड छुड़ाकर वह बड़ी तेज़ी से अपने छोटे भाई के घर की ओर दौड़ा। वह इस तरह बेतहाशा दौड़ा जा रहा था, मानो कोई बहुत बड़ा विकट राक्षस उसका पीछा कर रहा हो। छोटे भाई के घर पहुँचकर वह उसके हाथ जोड़कर कहने लगा—"बचाओ, बचाओ, मुझे इस भयंकर चक्की से बचाओ, मेरी रक्षा करो, यह चक्की मुझे खा लेगी। चक्की को शीघ्र ही बंद करो। यदि तुम चक्की नहीं बंद करोगे, तो सारा गाँव इसमें डूबकर मर जायगा। तुम अपनी चक्की वापस ले लो, मैं अब इसका स्वप्न में भी नाम न लूँगा।"

छोटा भाई अपने बड़े भाई की इस दशा को देखकर चकित हो गया और कहा कि भाई, साफ़-साफ़ बतलाओ, मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आता।

इस पर बड़े भाई ने सब हाल कह सुनाया और उससे चक्की बंद करने की फिर प्रार्थना की। इस बार उसने फिर ३००० अशर्फ़ियाँ लेकर चक्की बंद करना स्वीकार किया। 'मरता क्या न करता' बड़े भाई को अशर्फ़ियाँ देनी पड़ीं, चक्की वापस करनी पड़ी।

इतना रुपया पाकर छोटा भाई और भी मालामाल हो गया। उसने इस रुपए और चक्की की सहायता से

अपने रहने के लिये एक सुंदर और विशाल भवन बनवाया। यह महल समुद्र के निकट एक ऊँची जगह पर बना था। इसकी दीवारें सोने से मढ़ी थीं। जब इस पर सूर्य की किरणें पड़ती थीं, तब यह चमचमा उठता था। ऊँचे टीलों पर होने के कारण यह बड़ी दूर तक दिखाई पड़ता था, और इसका प्रतिबिंब समुद्र में बनकर इसकी सुंदरता को चौगुना कर देता था। शीघ्र ही इस महल के स्वामी की प्रसिद्धि चारों ओर हो गई। और प्रति दिन बहुत-से आदमी दूर-दूर से इसे देखने आने लगे।

एक दिन एक बहुत बड़ा जहाज़ भी उधर से गुज़रा। उसके कप्तान को भी चक्की का पता लग चुका था। उसने चक्की देखने की इच्छा प्रकट की। चक्की देखकर उसने पूछा कि क्या यह नमक भी पैदा कर सकती है। चक्की के स्वामी ने उत्तर दिया— हाँ, हाँ, नमक भी बना सकती है। जहाज़ के कप्तान ने यह जानकर चक्की ख़रीदना निश्चय कर लिया और उसने चक्की के लिये एक लाख मुद्राएँ देने को कहा। उसने सोचा कि मेरे देश में नमक कम होता है। सैकड़ों मनुष्य नमक की खोज में इधर-उधर घूमा करते हैं। यदि मुझे चक्की मिल गई, तो मैं घर बैठे नमक बनाया करूँगा। इस प्रकार से बिना पैसे-कौड़ी के ख़र्च के जितना चाहूँगा, उतना नमक बना सकूँगा, और इस नमक को बेंचकर ऐसी अनेक लाख मुद्राएँ संग्रह कर लूँगा।

वह कप्तान बहुत देर तक चक्की माँगता रहा। अंत में बहुत-सा रुपया और देने पर चक्की का सौदा हो गया। चक्की लेकर वह कप्तान शीघ्र ही अपने जहाज़ पर वापस आया, और जहाज़ को बड़ी तेज़ी से चलाने की आज्ञा दी। जब तक वह दस पंद्रह मील आगे न निकल गया, वह डरता रहा कि कहीं चक्की का स्वामी उससे अपनी चक्की वापस न माँग ले। पंद्रह मील निकल जाने पर उसने चक्की को नमक बनाने की आज्ञा दी। चक्की से ढेरों नमक निकलने लगा। यहाँ तक कि पूरा जहाज़ नमक से भर गया। जहाज़ भर जाने पर कप्तान ने चक्की बंद करना चाहा, परंतु वह किसी प्रकार बंद ही न हुई। जिस ओर वह चक्की घुमाता था, उसी ओर नमक का ढेर लग जाता था। जहाज़ पर इस क़दर नमक इकट्ठा हो गया कि भारी बोझ के जहाज़ टूट गया और शीघ्र ही समुद्र में डूब गया। जहाज़ के साथ-ही-साथ वह चक्की भी समुद्र में डूब गई। वह चक्की अब भी समुद्र में पड़ी है और बराबर नमक बना रही है। इस चक्की ने इतना अधिक नमक बनाया है कि समुद्र का सारा-का-सारा पानी खारी हो गया है। *

श्यामनारायण कपूर

× × ×

५. स्नेह-सत्कार

इस शरीर के अंग-अंग सब,
प्रियतम का सत्कार करें ;
कोण-कोण में प्रबल वेग से,
आनँद का संचार करें।

बहुत दुःख के बाद आज वे,
दुखिया के अपनाने को ;
आए हैं इस दीन कुटी में,
उसको सुखी बनाने को।

सुमधुर स्वर से कंठ हमारा,
स्वागत में लय तान भरे ;
प्रभु के गुणगण गीतों का ही,
संतत सस्वर गान करे।

सभी शिराएँ वाद्य बजावें,
विविध भाँति के साज मिले ;
ताल-ताल में नाचें सुख से,
रोम-रोम सब साथ मिले।

मन की सुंदर स्वच्छ कुटी में,
अतिशय कोमल बिछे हुए ;
हृदय पद्म के आसन में प्रभु,
बैठें पथ के थके हुए।

प्राण पवन है मंद वेग से,
बहता खेद मिटाने को ;
भावपुष्प भी खिले हुए हैं,
मधुर सुगंधि सुँघाने को।

जलती है अनुराग आग में,
जीवन-धूप धुपाने को ;
इच्छाओं की सहस शिखाएँ,
हैं प्रभु दीप दिखाने को।

---

* अँगरेज़ी से अनुवादित।

जन्म-जन्म के कर्मों के ही,
भोग अश्रु का नीर यहाँ ;
सेवा को दयनीय दास हम,
आज हुए तैयार यहाँ ।

नयन कपाट लगा दें अब तो,
द्वार बंद हो जाने दें ;
छोटी है यह कुटी किसी को,
भीतर मत अब आने दें ।

बैठें हम एकांत देश में,
चरण पूजते रहें सदा ;
मोहन मंजुल मूर्ति प्रेम से,
विघ्नहीन हो लखें सदा ।

प्रिय प्रेमी का मेल हुआ है,
सचमुच आज मनोहारी ;
क्षीर नीर संयोग हमारा,
मधुर हुआ है सुखकारी ।

दो रस मिले रहेंगे कैसे,
एक पत्र में भिन्न हुए ;
या तो क्षीर बनेंगे हम ही,
अथवा नीर बनेंगे वे ।

शिवकुमार शुक्ल

× × ×

स्त्रियों के गर्भाशय के रोगों की खास चिकित्सिका

श्रीमती गंगाबाई की

पुरानी सैकड़ों केसों में कामयाब हुई, शुद्ध वनस्पति की औषधियाँ

वंध्यात्व और गर्भाशय के रोग दूर करने के लिये

गर्भजीवन प्रशंसापत्र

गर्भजीवन रजिस्टर्ड से ऋतु-संबंधी सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं। रक्त तथा श्वेत प्रदर, कमलस्थान ऊपर न होना, पेशाब में जलन, कमर का दुखना, गर्भाशय में सूजन, स्थान-भ्रंशी होना, मेद, हिस्टीरिया, जीर्ण तथा प्रसूति-ज्वर, बेचैनी, अशक्ति आदि और गर्भाशय के तमाम रोग दूर हो जाते हैं। यदि किसी प्रकार भी गर्भ न रहता हो, तो अवश्य रह जाता है। क़ीमत ३) मात्र। डाक-ख़र्च पृथक्।

गर्भरक्षक रजिस्टर्ड से गर्भ का कुसमय गिर जाना, गर्भ-धारण करने के समय की अशक्ति, प्रदर, ज्वर, खाँसी और ख़ून का स्राव आदि सभी बाधक बातें दूर होकर पूरे समय में सुंदर तथा तंदुरुस्त बच्चे का जन्म होता है। हमारी ये दोनों औषधियाँ लोगों को इतना लाभ पहुँचा चुकी हैं कि ढेरों प्रशंसा-पत्र आ चुके हैं। मूल्य ४) मात्र। डाक-ख़र्च अलग।

गर्भरक्षक प्रशंसापत्र

हाल के प्रशंसापत्रों में कुछ नीचे पढ़िए—लोग क्या कहते हैं !

चीरबलदा, डांग (डी० बालामोरा)। ता० २९।१।३०
आपकी दवाई का सेवन करने से फ़ायदा पहुँचा और लड़की का जन्म हुआ।
हिम्मतसिंह एम्० चाराणा

सिवा भाई एम० पटेल, C/o, नटवरलाल ऐंड कं०
लाडसा (डी० बालाघाट)। ता० २२।१।३०
मैंने आपके कारख़ाने से जो दवा गर्भजीवन मँगाया था उससे मेरी पत्नी का जो मृतवत्सा रोग था वह इस दवा के सेवन के बाद एक कन्या उत्पन्न हुई। वह आगामी शिवरात्रि को चार वर्ष की होगी।—बृजलाल पटेल

पाचोरा (जि० खानदेश) ता० २५।१।३०
आपकी दवाई से मेरी पत्नी को संपूर्ण आराम हुआ उसके लिये बहुत कृतज्ञ हूँ।
कल्यानसिंह चावड़ा, C/o चावड़ ब्रादर्स

बालाघाट (सी० पी०)। ता० २५।१।३०
अब मेरे को पहले से फ़ायदा है, ऋतु मासिक बराबर महीने में होता है, ऋतु का रंग काला था पहले, अब रंग लाल है, भूख अच्छी लगती है, खाना हज़म होता है, दस्त बराबर होता है, पेशाब में जलन नहीं होता, कमर वग़ैरे में दर्द नहीं होता।—गिरजाबाई, C/o गनपतराय

२१

याद रक्खो कि ऐसे एक दो नहीं, किंतु सैकड़ों प्रशंसा-पत्र मिल चुके हैं।
अपनी तकलीफ़ की पूरी हक़ीक़त साफ़ लिखो।

पता—गंगाबाई प्राणशंकर, गर्भजीवन औषधालय, रीची रोड, अहमदाबाद

६. पाश्चात्य तलाक़-प्रथा का नग्न चित्र

'माधुरी' के गत माघ के अंक में पाश्चात्य सभ्यता-दोष-निरूपण-विषयक कई लेख हमने पढ़े। जैसे 'भारत का पाश्चात्यीकरण: एक ख़तरा', 'टुडे-स्मृति' और 'पाश्चात्य शिक्षा और हम' आदि। तीनों लेख पांडित्यपूर्ण हैं तथा पतनोन्मुखी पाश्चात्य सभ्यता पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। आज हम भी अपनी योग्यतानुसार पश्चिम की अति प्रचलित तलाक़-प्रथा का नग्न चित्र 'माधुरी' के सुयोग्य पाठकों के सम्मुख रखते हैं।

पश्चिम में 'तलाक़' एक साधारण-से-साधारण बात समझी जाती है। स्त्री-पुरुष के संबंध-विच्छेद पर आश्चर्य एवं घृणा के भाव प्रदर्शित नहीं किए जाते हैं। संयुक्त राज्यों (United States, America) में सन् १९२५ में १४६०९९ तलाक़ दिए गए। प्रसिद्ध अँगरेज़ी-पुस्तक (The Revolt of Modern Youth) के पृष्ठ २१२ पर जज लिंडसे लिखते हैं—"सन् १९२२ में डैनवर में प्रत्येक विवाह पीछे एक संबंध-विच्छेद था। दो विवाहों की आज्ञा (License) पीछे एक तलाक़ का मुक़दमा दायर होता था। यह बात नहीं है कि डैनवर में ही ऐसा होता हो, युनाइटेड स्टेट्स के बहुत-से नगरों में ऐसा ही होता है।" सन् १९२४ में संयुक्त-राज्यों के कुछ नगरों के विवाहों और तलाक़ों की संख्या इस प्रकार है—

अटलांटट, गा	
विवाह	३३५०
तलाक़	१८४५
लास एंजिलस	
विवाह	१६६०५
तलाक़	७८८२
कंसास सिटो	
विवाह	४८३१
तलाक़	२४००
क्लीवलैंड	
विवाह	१०१३२
तलाक़	५२५६

पोर्टलैंड, सीटिल, मैम्फिस, ओमाहा आदि बहुत-से नगरों में यही अनुपात था।—Uncle Sham Page 104.

जज लिंडसे के निम्न-लिखित वाक्य तलाक़-प्रथा की वृद्धि के परिचायक हैं—"वस्तुतः यही दशा है। यदि हम वर्तमान वस्तुस्थिति और गत वर्षों की गणना (Statistics) का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करें, तो हमको ज्ञात होगा कि तलाक़ और विच्छेद (Separation) बराबर बढ़ ही रहे हैं, और यह कि यदि इसी तरह ढर्रा चलता रहा—हमारा दृढ़ विश्वास है कि कुछ वर्षों तक अवश्य इस प्रकार चलता रहेगा—तो यह निर्विवाद है कि जितने आज्ञा-पत्र विवाह-संबंध के लिये दिए जायँगे, उतने ही तलाक़ के मुक़दमे दायर किए जायँगे। एक बात यह भी है कि गणना में वे विच्छेद सम्मिलित नहीं हैं, जो गृहस्थ-जीवन में स्त्री-पुरुष की परस्पर स्वीकृति से हुए हैं। तलाक़ के लिये वही लोग मुक़दमे दायर करते हैं, जिनको परिस्थिति ऐसा करने को बाध्य करती है। तलाक़ के लिये आज्ञा-पत्र प्राप्त करना कोई आसान काम नहीं है। इसमें बहुत ख़र्च, परेशानी और तरद्दुद उठाना पड़ता है। सहस्रों ऐसे मामले होते हैं, जो येन-केन प्रकारेण अदालत के बाहर ही तय हो जाते अथवा कर लिए जाते हैं। लाखों उदाहरण ऐसे हैं, जिनको तलाक़ का नाम तो नहीं दिया जाता है, परंतु उनका वास्तविक स्वरूप एवं परिणाम तलाक़-जैसा ही होता है। वस्तुतः इनकी भी तलाक़ों की संख्या के अंतर्गत ही गणना की जानी चाहिए। पूर्ण सादृश्य के कारण ऐसा कोई कारण नहीं है कि इनको 'तलाक़' न कहा जाय। परंतु इनको और ही संज्ञा दी गई है। इनको 'असफल विवाह-संबंध' के नाम से परिभाषा की जाती है।"

इँगलैंड में तलाक़ विशेष कारणों के घटित होने पर ही अदालत द्वारा दिया जाता है। उदाहरण-स्वरूप, यदि पति को पत्नी की ओर से व्यभिचार की शिकायत हो अथवा पत्नी को पति की ओर से निर्दयता और व्यभिचार की शिकायत हो, तो इन दो दशाओं में ही अदालत से तलाक़ की स्वीकृति होती है। परंतु अमेरिका में तो बिलकुल साधारण-से-साधारण घटना के घटित होने पर ही तलाक़ दे दिया जाता है।

यदि हम तह में घुसकर देखें, तो हमें पता चल जायगा कि तलाक़-प्रथा स्त्रियों को अनुचित परिमाण में स्वतंत्रता प्रदान करने का भयंकर दुष्परिणाम है। हम देख रहे हैं

कि आजकल पाश्चात्य स्त्रियाँ बहुत ही स्वेच्छाचारिणी हो चली हैं। निम्न-लिखित वृत्तांतों से यह बात भली भाँति स्पष्ट हो जायगी कि पाश्चात्य देशों में विवाह-संबंध का दंपति पर कुछ भी बंधन नहीं है एवं विवाह-संबंध एक खिलवाड़ समझा जाता है। पश्चिमी वैवाहिक जीवन में भारत के उज्ज्वल आदर्श, पवित्रता, प्रेम, सदाचार की एक झलक भी दिखाई नहीं देती है। निम्न-लिखित उदाहरणों से, आशा है, पाठकों का मनोरंजन भी होगा—

(१) "हाँ, मेरा विवाह भी दुःखांत हुआ। हमने एक दूसरे को नमस्कार कर लिया है, मेरे पति ने मुझको और मैंने उसको। यह सब उसी का अपराध था, जैसा कि मैंने उससे कह दिया। वह नवीन युग में पुराने ढंग का पति था। वह प्रत्येक बात पर शिकायत करता रहता था, ख़ास विषय बच्चों का था। मैंने कहा—'दो बच्चे काफ़ी हैं, क्या तुमने मेरे आकार, सौंदर्य को विकृत करने की ठान ली है?' बस, हम दोनों में मतभेद हो गया और हम दोनों पृथक्-पृथक् हो गए। (Physical Culture Magazine, July, 1928.)

(२) "मेरा विवाह-काल भी समाप्त हुआ। कारण मेरा पति बहुत रूखे स्वभाव का था। मैं वर्षों से रुग्ण थी, अकारण उदासीनता, मंदाग्नि, थकावट, स्नायु-दौर्बल्य आदि अनेक रोगों से ग्रसित थी। जब मैं उससे (अपने पति से) चुंबन करने को कहती, तो वह कमरे के बाहर टहल जाता। मुझमें सहानुभूति है और वह बड़ा रूखा आदमी है।" (Physical Culture Magazine, July, 1928.)

(३) अभी हाल की बात है, बर्लिन के एक जज ने केवल इसी आधार पर कि पति-पत्नी तलाक़ चाहते थे, तलाक़ मंज़ूर कर लिया। अदालत का बहुत-सा समय दंपति के पालतू कुत्ते के भविष्य पर विचार करने में गया। पत्नी ने कहा (अदालत से)—"जब तक मुझे कुत्ता नहीं मिलेगा, मैं तलाक़ के लिये रज़ामंद नहीं होऊँगी। मैं अपने प्राण विसर्जन कर सकती हूँ, परंतु कुत्ते को न छोड़ूँगा।" जज ने दोनों तरफ़ की बहस सुनी और अंत में तलाक़ स्वीकृत करते हुए यह फ़ैसला दिया कि पति ही कुत्ते को रक्खे और पत्नी हफ़्ते में एक बार चार घंटे को सैर कराने के लिये कुत्ते को ले जा सकती है।

(४) फ्रो, कैथरीना ओरीवा, प्राग (Prague) के एक मज़दूर की स्त्री ने विवाह के कुछ ही हफ़्तों बाद यह मालूम किया कि उसका पति उसके सुंदर-मुख की अपेक्षा फ़ुटबाल का खेल अधिक पसंद करता है। उसने अदालत की शरण ली। तलाक़ देकर उसने शपथ खाई कि अब की बार वह ऐसे पुरुष से हरगिज़ विवाह न करेगी, जिसे फ़ुटबाल की लत हो।

(५) आस्ट्रिया हंगेरी के एक सिविल सर्वेंट ने जज से कहा कि उसकी स्त्री उसे भूखा मारती है। "वह एक प्राकृतिक चिकित्सा के विशेषज्ञ की शिष्या है।" उसने जज के प्रति कहा—"और वह मुझको कच्ची तरकारी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं देती है।" उसका तलाक़ स्वीकृत हो गया।

(६) सिनसिनाटी नगर की एक महिला मिसेज़ डीमेट्री को उसका पति प्रति सप्ताह जेब-ख़र्च को ३ पेंस दिया करता था। इसमें से भी वह यह चाहता था कि उसकी पत्नी कुछ चर्च के साप्ताहिक चन्दे में दिया करे। मिसेज़ डीमेट्री को यह बात बहुत अरुचिकर होती थी। उसने अदालत से 'तलाक़' हासिल कर लिया।

(७) इसी प्रकार दृष्टांत का अनुसरण कैलीफ़ोर्नियाँ की अदालत ने भी किया। उन्होंने केवल इसी बिना पर कि उसकी पत्नी उसको गर्म गोभी दिया करती थी, जब कि उसको ठंडी की इच्छा रहती, सो० क्रिसटैनसन का तलाक़ मंज़ूर कर दिया।

(८) मिसेज़ अलास वर्जेस का पति बहुत ही ख़ुश-मिजाज़ था। वह अपनी स्त्री से चार बातों पर मज़ाक किया करता। वह इतना विनोदी था कि हर दफ़ा भोजन के समय, मित्रों की उपस्थिति में भी, वह अपनी पत्नी से उन चार बातों पर विनोद करता। मिसेज़ वर्जेस पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता। वह खिसिया जाया करती, यहाँ तक उसे स्वप्न में भी वही अपने पति का 'क्लेशपूर्ण' विनोद दिखाई देता। अंत में उसने न्यायालय की शरण ली। आश्चर्य तो यह है कि जज को उसकी कथा सुनकर कुछ भी कौतूहल न हुआ और उसने (जज ने) मिसेज़ वर्जेस का तलाक़ स्वीकृत कर लिया।

(९) मिस्टर विलियम स्नल्स-बरी को ७३ वर्ष की अवस्था में यह विचार उत्पन्न हुआ कि विवाह करके उसने एक भूल की। उसका विवाह ५० वर्ष पहले हुआ था और उसके ३२ बच्चे थे। उसका तलाक़ मंज़ूर कर लिया गया।

(१०) मिसेज़ हेलेन कारविन, आयोवा, को यह शिकायत थी कि उसका पति ब्रेकफ़स्ट (कलेवा) के समय टोप नहीं उतारता है। इसका तलाक़ भी स्वीकृत हुआ।

(११) मिसेज़ रूथबाल्डवर्थ के पति की एक आदत थी। वह चारपाई में चुहिया रख दिया करता था। उसकी पत्नी इस बात से क्रुद्ध हुई। उसने तलाक़ दे दिया।

(उदाहरण नं० ३—११ तक हिंदुस्तान टाइम्स से लिए गए हैं)

उपर्युक्त उदाहरणों से उन महानुभावों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, जो भारत में भी तलाक़-प्रथा प्रचलित करने के पक्षपाती हैं। क्या भारत में तलाक़-प्रथा के प्रचलित होने पर पूर्वी संस्कृति, तेजमय पातिव्रत-धर्म, आदर्श एकपत्नी-व्रत, जो भारत की पुण्यभूमि की बहुमूल्य निधियाँ हैं, देखने को भी शेष रहेंगी ? क्या इस प्रथा से भारत का आदर्श दाम्पत्य-प्रेम घोर अशांति और अविश्वास में परिणत न हो जायगा ?

वृंदावनदास

× × ×

७. जबलपुर का जान्सन्-गर्ल्स-हाई स्कूल

यह संस्था अमेरिका के मेथोडिस्ट एपिसकोपल चर्च की स्त्रियों की विदेशी मिशनरी सभा के शासन में है। इसका आरंभ सन् १८९३ में हुआ, जब मिसेज़ टी० एस्० जान्सन् ने अपने बँगले के बरामदे में, जो १८० सिविल लाइन में है, तीन लड़कियों को शिक्षा देना आरंभ किया। ये लड़कियाँ मिशन हाते में मिट्टी के एक घर में रहती थीं। एक ही साल में लड़कियों की संख्या २२ तक बढ़ गई। इस कारण उनके रहने के लिये एक सुबीते का स्थान लिया गया जो पहले स्त्रियों का सरकारी नार्मल स्कूल था, और अब नंबर १५० सिविल लाइन में "पीली कोठी" के नाम से पुकारा जाता है। सन् १८९६ में ५० लड़कियाँ भरती की गईं। इसके पश्चात् बड़ा अकाल पड़ा, जिसमें कोड़ियों अनाथ भरती किए गए और उनकी सुध ली गई।

फिर से लड़कियों की संख्या बढ़ जाने के कारण सन् १८९७ में इस पाठशाला ने अपना वर्तमान घर बनवाया, जो हवाबाग़ में नर्मदा-सड़क के किनारे है। इस काम के लिये २० एकड़ ज़मीन का एक टुकड़ा लिया गया था। सन् १८९७ के अप्रैल के पहले ३०० लड़कियाँ इस पाठशाला में ली गईं। उनमें कई एकों की दशा सुधरने के बाहर थी; तिस पर भी बहुतों की रक्षा कर ली गई।

सन् १८९८ में रहने के घर बनकर तैयार हो गए और पहली पाठशाला १९०० में बनाई गई। इसी साल अकाल के कारण १०० लड़कियों को आश्रय दिया गया।

जैसे-जैसे स्कूल बढ़ता गया, वैसे-वैसे नए विभाग खुलते गए। मिडिल स्कूल १९०६ में, हिंदी-नार्मल-स्कूल १९२० में और कुछ समय पश्चात् हाईस्कूल की कक्षाएँ खोली गईं। सन् १९२२ में पहलेपहल एक लड़की मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण हुई। इससे पहले १९२० में यह स्कूल इलाहाबाद-युनिवर्सिटी के साथ मिलाया गया था। इसके बाद छः साल में २३ लड़कियाँ इसी परीक्षा में उत्तीर्ण हुईं।

जब मध्यप्रदेश का शिक्षा-बोर्ड बनाया गया, तब यह स्कूल इलाहाबाद को छोड़कर नागपुर-युनिवर्सिटी में मिला दिया गया।

सन् १९२० में यह जायदाद और बढ़ाई गई। इंग्लिश वेसलियन मिशन ने जबलपुर में अपना काम बंद कर दिया। उसकी ज़मीन, जो सड़क के उस पार स्कूल के समानांतर पड़ी थी, ले ली गई। यह ज़मीन सब मिलाकर ५२ एकड़ है और वर्तमान समय में इस संस्था के उपयोग के लिये पर्याप्त है।

इस बीच में कक्षाएँ संख्या में बढ़ने लगीं। जैसे-जैसे अकाल के दिन बीतते गए, वैसे-वैसे लड़कियों की संख्या कम होने लगी। तो भी माता-पिता धीरे-धीरे अपनी लड़कियों को भेजने लगे। इसलिये अनाथालय के बदले यह स्कूल छात्रावास हो गया। इस नई जायदाद के मिल जाने से तीन कक्षाएँ उसके एक छोटे बँगले पर भेज दी गईं। ऐसा करने से कुछ भीड़ कम हो गई। दो वर्ष पश्चात् दो और कक्षाओं के लिये जगह की आवश्यकता हुई और इस नई ली हुई जायदाद के एक बड़े बँगले में यह जगह मिल गई। इस स्कूल में वर्तमान समय तक हाईस्कूल और मिडिल स्कूल की ऊँची कक्षाएँ लगती रहीं।

फिर भी संख्या बढ़ती ही गई और बँगले का बाक़ी हिस्सा बची हुई कक्षाओं के लिये काफ़ी न हो सका। सो कुछ समय के लिये एक छोटे बँगले में दो कक्षाओं को

जगह दी गई। तब तक उनके लिये एक दूसरा प्रबंध किया गया। दूसरी जगह १९२७ में बनाकर तैयार की गई।

एक मोटर-लारी प्रतिदिन शहर में उन लड़कियों के लिये चक्कर लगाती है, जो घर से पढ़ने आती हैं। तीस लड़कियाँ इसका उपयोग करती हैं, बाक़ी गाड़ियों पर या पैदल चलकर आती हैं। घर से पढ़ने आनेवाली लड़कियों की संख्या ८३ है, जिनमें से ३५ हिंदू या मुसलमान हैं। नवंबर १९२७ में स्कूल की नई इमारत में काम शुरू हो गया, जो अब ख़तम होने पर है।

जुलाई १९२८ में इंग्लिश ट्रेनिंग क्लास खोलने का से इनकार कर दिया गया; क्योंकि होस्टल में जगह न थी। ऊँची कक्षाओं की लड़कियों के लिये नया होस्टल बनाने का प्रबंध हो रहा है, और आशा है कि यह आनेवाले बारह महीनों में बनकर तैयार हो जायगा।

इस पाठशाला की उन्नति का एक मुख्य कारण यह है कि इसका प्रबंध विना हेरफेर के एक-सा होता चला आ रहा है। यह प्रबंध अधिकतर १९१२ से ठीक हुआ है, जब मिस क्लिंटन एम्० ए० इसकी अध्यक्ष बनाई गई थीं। स्वदेश जाने की छुट्टी को छोड़ तब से वही इस पाठशाला की व्यवस्था कर रही हैं। इतने सालों में हाईस्कूल का बनना, इंग्लिश ट्रेनिंग विभाग का खुलना

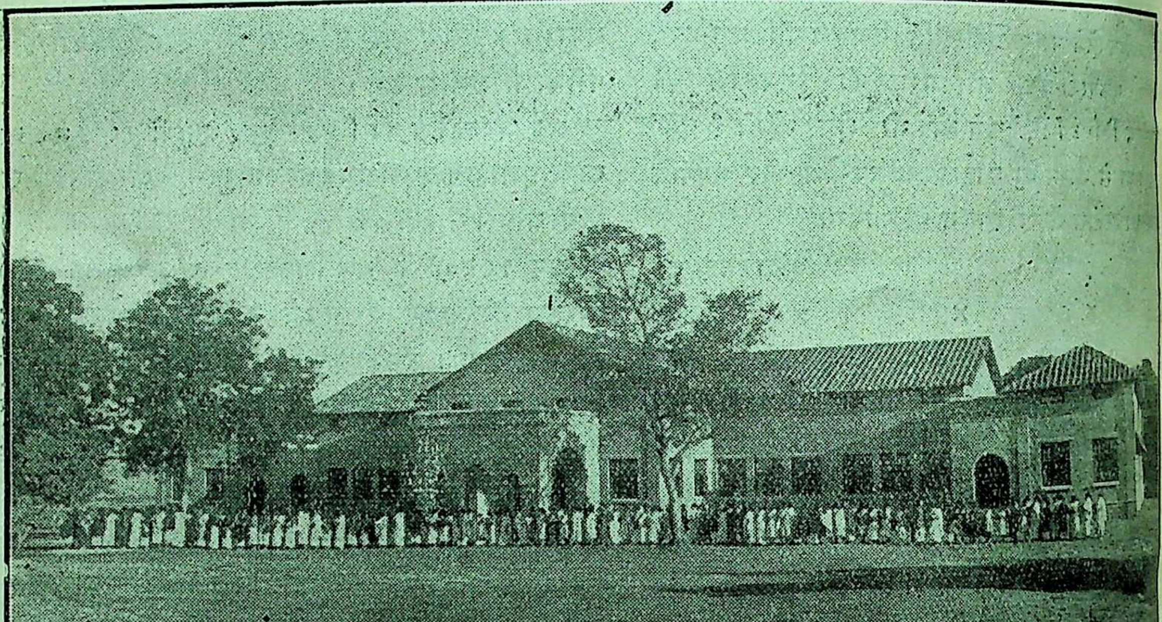

स्कूल की नई इमारत

सबसे पिछला काम उन लड़कियों के लिये हुआ, जो मैट्रिक पास कर चुकती हैं। इसके पहले ये लड़कियाँ 'इज़ाबेला थोबर्न कालेज'' लखनऊ भेजी जाती थीं, पर पिछले दो सालों से यह संस्था मध्यप्रदेश की लड़कियों को लेने में असमर्थ रही।

वर्तमान समय में लड़कियों की संख्या ४२८ है। जुलाई १९२८ में २५ या ३० लड़कियों को स्कूल में लेने

और सुंदर इमारत का बनना उनकी दूर-दृष्टि और यत्न का प्रतिफल है। इन सारी बातों में उनके साथ काम करनेवालों की सहायता उनको मिली है।

इन पैंतीस सालों में, जब पहली लड़की डाक्टर मिसेज़ जान्सन् के पास आई थी, १३५६ लड़कियाँ इस स्कूल से निकल चुकी हैं। कई एक कुछ समय तक रहीं; फिर चली गईं। उस प्रेम, ज्ञान और प्रभाव का

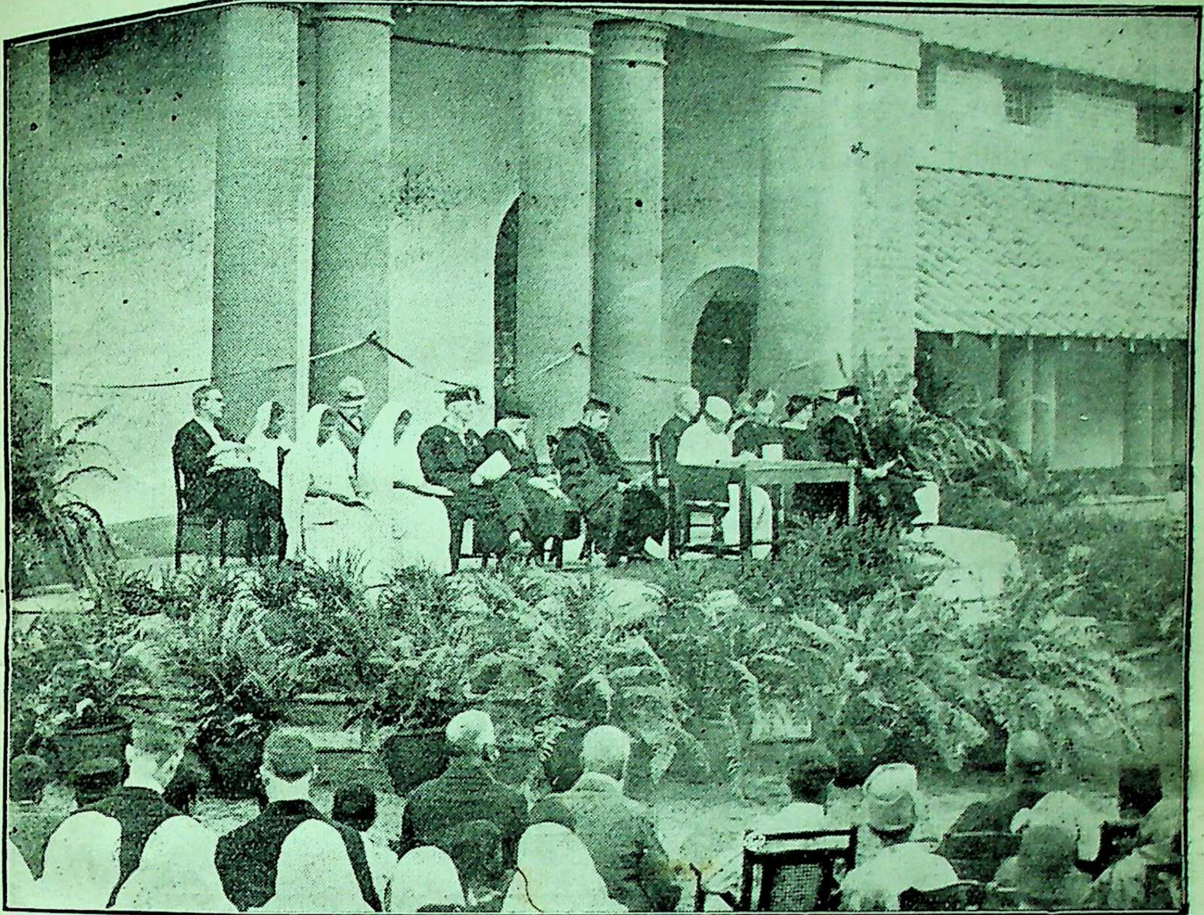

नए स्कूल-भवन का उद्घाटन-समारंभ

जो दूसरों को दिया गया अथवा उनसे प्राप्त किया गया, पूरा-पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता। हम आशा करती हैं कि जो इस स्कूल से किसी भी प्रकार का संबंध रखते हैं, उनकी यह सम्मति होगी कि जो उपाय किया गया है, वह सफल हुआ है। यद्यपि कितनी ही निराशा और उत्साहहीनता हुई है, तो भी सदा हर एक बात में इसके साथ ही "परम आनंद" सीमा-रहित हुआ है।

अब यह जानना आवश्यक है कि इतने बड़े काम के लिये पैसा कहाँ से आता है? सरकार की ओर से एक निश्चित धन मिलता है, जो पूरे ख़र्च का एक तिहाई हिस्सा है। इंस्पेक्ट्रेस आफ़ स्कूल्स, डायरेक्टर आफ़ पबलिक इंसट्रक्शन और शिक्षा-विभाग के मंत्री ने इस द्रव्य के मिलने में बहुत सहायता की है। बाक़ी ख़र्च अमेरिका के मेथोडिस्ट एपिसकोपल चर्च की स्त्रियों की विदेशी सभा से मिलता है, जो इस काम का आरंभ करनेवाली हैं। इसको पूरा करने के लिये बच्चों की एक समाज भी है। इन लड़के-लड़कियों को अपना अधिकार दूसरे के संग बाँटना सिखाया गया है। ये अपने जेब-ख़र्च से दूसरे देश की शिक्षा और बच्चों की ट्रेनिंग के लिये मदद देते हैं। १९२६ में नई इमारत के ख़र्च का दो तिहाई हिस्सा उन्होंने दिया। इस काम के लिये उन बच्चों ने दान दिया है, जो हमारे यहाँ के बच्चों के बराबर हैं।

कभी-कभी भेंट करनेवाले पूछते हैं कि पाठशाला में लड़कियाँ कहाँ से आती हैं? उनके पिता क्या काम करते हैं? इत्यादि। इन बातों का उत्तर यह है कि आरंभ में बहुत-सी लड़कियाँ बिना मा-बाप की थीं, पर आज वह बात नहीं है। आज ४३८ लड़कियों में से,

जो अब हमारे स्कूल में हैं, पचास लड़कियाँ विना माता-पिता की हैं। बाक़ी मध्यप्रदेश के और सब भागों से आई हैं। ये लड़कियाँ १४ भिन्न-भिन्न प्रकार के मिशनों से संबंध रखती हैं। ८३ घर से पढ़ने आनेवाली लड़कियाँ हैं, जिनमें से ३५ हिंदू या मुसलमान हैं। इन लड़कियों के पिता भिन्न-भिन्न पेशेवाले हैं। सब घरानों की लड़कियाँ एक साथ रहती, एक साथ काम करती और एक साथ अभ्यास करती हैं। अब संख्या बढ़ाने को स्थान नहीं है, क्योंकि स्कूल की संख्या काफ़ी बढ़ी है। हमें यह सुनकर बहुत ख़ुशी है कि जबलपुर में कुछ दिनों के बाद एक हाईस्कूल लड़कियों के लिये खुलनेवाला है।

नेली तिमोथी

आरोग्यता की कुंजी क्या है ?
अपने शरीर, उसके अंग-प्रत्यंगों की रचना और उनकी क्रिया का ज्ञान।
कैसे प्राप्त हो ?
मानव-शरीर-रहस्य
को पढ़िए। मूल्य प्रथम भाग २॥)
इसके लेखक डाक्टर मुकुंदस्वरूप वर्मा, बी० एस्-सी०, एम्० बी०, बी० एस्०, चीफ़ मेडिकल ऑफ़िसर, हिंदू-विश्वविद्यालय को इस पुस्तक पर
रेडिचे पदक
और
२००) का पुरस्कार भी मिला है।
नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो, लखनऊ

साहित्य और विज्ञान

१. स्वर्गीय श्रीमहाराज यशवंतसिंहजी का काव्य-कलाप

साधारण मनुष्य कोई असाधारण कार्य करे, तो भी उसकी उतनी ख्याति नहीं होती, जितनी कि एक असाधारण मनुष्य के साधारण कार्य करने से होती है। फिर यदि असाधारण मनुष्य से कोई असाधारण कार्य हो जाय, तो उसे लोक-विश्रुत होते देर नहीं लगती। भर्तृहरि, भोज, श्रीहर्ष एवं राजर्षि रघुराजसिंहजी के नाम आज प्रत्येक साहित्यसेवी की ज़बान पर क्यों हैं? कारण, वे साधारण मनुष्य से कहीं अधिक क्षमताशाली राजकीय जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति थे, साथ ही अप्रतिभ प्रतिभासम्पन्न भी थे। इसलिये उनकी यत्किंचित् साहित्य-सेवा भी होती, तो भी अन्यों की अपेक्षा अधिक आदर की दृष्टि से देखी जाती, लेकिन जब उनकी साहित्य-सेवा अधिक और महत्त्व की है, तब उन्हें सर्वोपरि स्थान तथा प्रधान विशेषत्व मिलना ही चाहिए।

आज माधुरी के पाठकों के सम्मुख हम एक ऐसे ही स्वर्गीय नरेश श्रीयशवंतसिंहजी की साहित्य-सेवा का उल्लेख करेंगे। पाठक देखें कि राज्य का कठिन भार वहन करते हुए भी महाराज ने मातृभाषा की कैसी स्तुत्य सेवा की है। राजा साहब का जन्म फ़र्रुख़ाबाद-स्थित तिर्वा राज्य में हुआ था। आप बघेले अर्थात् व्याघ्रवंशीय क्षत्रिय थे। आपका एक शृंगारशिरोमणि-नामक अप्रकाशित रीतिग्रंथ, जिसमें साहित्य के अंग-प्रत्यंग का विशद विवेचन है, तथा अनेक स्फुट छंद हमें श्रीभाई सूर्यपालसिंहजी द्वारा प्राप्त हुए हैं। हिंदी-संसार का यह दुर्भाग्य है कि ऐसा अपूर्व ग्रंथ अब तक अप्रकाशित है। क्या हम आशा करें कि राजा साहब के सुयोग्य वंशज श्रीदुर्गानारायणसिंहजी वर्तमान तिर्वाधिपति, अपनी इस प्राचीन कीर्ति को अक्षुण्ण रखते हुए, शीघ्र ही उसके प्रकाशन का समुचित प्रबंध करेंगे?

अब आइए ज़रा राजा साहब की कविता का रसास्वादन करें। प्रेम-गर्विता का उदाहरण देखिए—

"देह दई सुख दीन्हो दई है,
नई नई रोज करो रुचि सौना।
भाग भट्ट जसवंत बिलोकिये
रूप बढ़ावत कान तरौना।
कोटि कलाधर ते वर है—
अब एक कलाधर ऐसो करौना।
यों कहि प्रानपियारो हमारो—
हमैं अब देन न देत दिठौना।"
—'यशवंतसिंह'

कैसा कवित्वपूर्ण कथन है। प्रणयिनी के प्रति प्रणयी के प्रेमातिशय्य का सजीव चित्रण देखते ही बनता है। मालूम होता है जैसे एक प्रणयिनी दिठौना लगाने को तत्पर है, और उसका प्रणयी 'कोटि कलाधर ते वर है, अब एक कलाधर ऐसो करौना', कहता हुआ उसे उसके इस कार्य से रोक रहा है। प्रेमगर्विणी का अपने प्रति प्रियतम के इस उत्कट अनुराग एवं तज्जनित गर्व को, प्रियतम के शब्दों द्वारा ही प्रकाशित करना, कवि-कौशल की परा काष्ठा है। नायिका स्वयं ही यदि अपने प्रेम की डौंड़ी पीटती, तो काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से कोई विशेष चमत्कार न होता। नीचे हम एतद्विषयक अन्य प्राचीन पटुत्व-प्राप्त कवियों के भी दो-एक वर्णन देते हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जायगा कि किस कवि की कृति में क्या विशेषता है?

राति दिवस हौसैं रहति, मान न ठिकु ठहराय;
जेतो औगुन ढूँढ़िये, गुनै हाथ परि जाय।
—'विहारी'

नायक की प्रेमातिशयता का ही एक चित्र है, परंतु चित्रण कुछ बहुत ऊँचे दर्जे का नहीं है।

आँखिन मैं पुतरी ह्वै रहै, हियरा मैं हरा ह्वै सबै सुख लूटैं।
अंगनि संग बसै अँगराग ह्वै, जीवतैं जीवन-मूरि न फूटैं॥
'देवजू' प्यारे के न्यारे नरी गुन सो मन मानिक ते नहिं टूटैं।
और तियान सौं तौ बतिया कहैं मों छतिया तैं छिनौ जब छूटैं॥

× × ×

ए बिन गारी दएँ गुरु लोगन टेरई सैननु नैननु टेरई।
'देव' कहैं दुरि द्वार लौं जात कितो करि हारी तऊ हरि हेरई॥
पापु जहीं घर बैठि रहौ जु तौ वे मिलि खेल न आवत मेरई।
घैरु करैं घर बाहिर के अरु ए सु फिरैं घर बाहिर घेरई॥
—"देव"

कितनी प्रेमपूर्ण उक्ति है। प्रियतम कृष्ण आँखों में पुतली, हृदय में हार और अंगों में अंगराग होकर वास करते हैं। उस पर "देवजू प्यारे के न्यारे नरी गुन मो मन मानिक तें नहिं टूटैं" कहकर तो कवि ने निरतिशय माधुर्य का भंडार ही खोल दिया, प्रेम की स्वर्गीय ज्योति ही दिखला दी! इसी प्रकार दूसरे छंद में "घैरु करैं घर बाहिर के अरु ए सु फिरैं घर बाहिर घेरई" अर्थात् घर बाहर के तो चवाव करते हैं और यह हज़रत घर बाहर घेरते फिरते हैं! कैसा साभिप्राय कथन है। उपर्युक्त छंदों में आलंकारिकता, भावुकता, मौलिकता सभी कुछ भावुकजन-संवेद्य है। फिर भी पं० रामचंद्र शुक्ल की दृष्टि में देवजी कुछ नहीं के बराबर हैं?

मो बिन माय न खाय कछू 'पदमाकर' त्यों भई भाभी अचेत है।
बीरन आए लिबाइबे को तिनकी मृदुबानि हू मानि न लेत है॥
प्रीतम को समुझावति क्यों नहीं ए सखी तू जु पै राखति हेत है।
और तो मोहिं सबै सुख री दुख री यहै मायके जान न देत है॥
—"पद्माकर"

इन्हें तो प्रेम-गर्विता का वर्णन करना था, इसी से उसका वर्णन किया है, परंतु साहित्य का सौष्ठव स्वल्पांश भी नहीं ला सके। कहना नहीं होगा कि राजा साहब का वर्णन देवजी को छोड़कर शेष सभी कवियों से बढ़कर है। अनूढ़ा का वर्णन पढ़िए—

मानसिक मानसर जल सौं पखारे पाँय,
पलक अँगौछन अँगौछे कै विधान मैं;
आसन हिए के कमलासन पधारे लाल,
बाल अनुराग के तिलक देति दान मैं।
चंपक बरन करो बरन सुनैनन सौं,
सैनन सौं दिए 'जसवंत' प्रति पान मैं;
मंद मुसकानि मुकताहल के हार दैकै,
श्रीफल उरोज फल दीन्हे फल दान मैं।
—"यशवंतसिंह"

सब कुछ तो दे डाला, इससे अधिक और दिया ही क्या जा सकता था। मानस से पद-प्रक्षालन और पलकें से अंगप्रोक्षण का काम ठीक ही है। हृदय-कमलासन पर प्रियतम को प्रतिष्ठित कर अनुराग के तिलक की व्यवस्था भी उत्तम है। नेत्रों से वरण कर संकेत से पान देना, मंद मुसकानरूपी मोतियों के हार पिन्हाना तथा फलदान में श्रीफल उरोज का दान सभी श्लाघ्य है।

माधुरी के ग्राहकों को आवश्यक सूचना

जिन ग्राहकों का चंदा इसी 'ज्येष्ठ' संवत् १९८७ पूर्ण संख्या ९५ से समाप्त हो रहा है, उनके ग्राहक-नंबर नीचे दिए जा रहे हैं। कृपालु ग्राहक अपने-अपने नंबर देखकर वार्षिक मूल्य मनी-आर्डर से भेज दें या वी० पी० भेजने की आज्ञा दे दें। इस अंक के पहुँचने की तारीख से २५ दिन तक कोई सूचना न आने से 'माधुरी' का अगला अंक (आषाढ़ सं० १९८७ का) प्रकाशित होने पर वी० पी० भेजा जायगा। आशा है, प्रेमी ग्राहक वी० पी० स्वीकार कर कृपाभाव बनाए रहेंगे।

पत्रव्यवहार या रुपया भेजते समय 'ग्राहक-नंबर' का उल्लेख अवश्य कर दें।

निवेदक—

मैनेजर माधुरी, लखनऊ.

२१८२, २४१६, ४३३६, ४८८५, ४८९३, ४९०९, ४९३०, ४९६४, ६००३, ६०५६, ६१०६,
६१६०, ६१७७, ६३७६, ७८९९, ७९३६, ९३३२, ९३८१, १००५२, १०२०३, १०३६७,
१०४२७, १०४३८, १०५५४, १०६४०, १०७७६, १०९८१, ११०७७, ११२२३, १२१७१, १२२२३,
१२२७८, १२२८१, १२२९०, १२३४२, १२३९३, १३३९७, १३४४१, १३४६१, १३४६२, १३४६४,
१३४७९, १३४८०, १३५५१, १३६१२, १३६१३, १३९०१, १३९०२, १४४५६, १५३१०,
१५३२०, १५४३६, १५४४३, १५५२६, १५५७२, १५५७५, १५५८१, १५५८३, १५६०१,
१५६०२, १५६१३, १५६१७, १५६४३, १५६४४, १५६४६, १५६५७, १५६६९, १६२९५,
१६३९४, १६९१७, १६९६४, १६९६९, १६९७८, १६९९४, १७०००, १७०१९, १७०३०,
१७०५४, १७०५६, १७०९२, १७०९३, १७०९४, १७१०४, १७१०५, १७३२७, १७७७०,
१७८८३, १८५६७, १८५९१, १८६१२, १८६२७, १८६३२, १८६३५, १८६३६, १८६३८,
१८६३९, १८६४४, १८६५०, १८६५१, १८६५८, १८६६४, १८६७१, १८६७५, १८६७६,
१८६८६, १८६९३, १८६९४, १८७०३, १८७०५, १८७१०, १८७२२, १८७२३, ८७२४, १८७२५,
१८७३१, १८७३२, १८७३३, १८७३४, १८७३५, १८७३६, १८७४८, १८७५१, १८७५६,
१८७६८, १८७७१, १८७७२, १८७८५, १८७८९, १८८०१, १८८०३, १८८०५, १८८१९,
१८८२२, १८८२३, १८८२९, १८८३१, १८८३२, १८८३४, १८८३५, १८८३७, १८८४०, १८८४९,
१८८५६, १८८६१, १८८६४, १८८८९, १८८९२, १८८९४, १८८९५, १८८९६, १८८९८,
१८९००, १८९०१, १८९१२, १८९१६, १८९२३, १८९२८, १८९४९, १८९५१, १८९५२, १८९६०,
१८९७६, १८९८१, १८९८५, १८९८८, १९०००, १९०१२, १९०४४, १९०५२, १९३४७,
१९७४६, २०१७१, २०३९७, २०६४६, २०६५९, २०६६०, २०६८४, २०६८७, २०६९२,
२०६९३, २०६९४, २०६९८, २०७०२, २०७०४, २०७०७, २०७०८, २०७०९, २०७१०, २०७११,

२०७१२, २०७१३, २०७१८, २०७२२, २०७२३, २०७२४, २०७२५, २०७२६, २०७२७,
२०७२८, २०७२९, २०७३१, २०७३४, २०७३८, २०७३९, २०७४०, २०७४१, २०७५२,
२०७५४. २०७६१, २०७६७, २०७६९, २०७७०, २०७७२, २०७८२, २०७८८, २०८०२,
२०८०३, २०८०४, २०८०५, २०८०८, २०८२५, २०८२६, २०८२७, २०८२९, २०८३५,
२०८३६, २०८३७, २०८३८, २०८३९, २०८४०, २०८४२, २०८४३, २०८४४, २०८४५,
२०८४७, २०८७०, २०८७१, २०८७२, २०८७३, २०८७४, २०८७५, २०८७६, २०८७७, २०८७८,
२०८७९, २०८८१, २०८८२, २०८८३, २०८८४, २०८८५, २०८८६. २०८८७, २०८८८,
२०८८९, २०८९०, २०८९१, २०८९२, २०८९३, २०८९४, २०८९५, २०८९६, २०८९७,
२०८९८, २०८९९, २०९००, २०९०१, २०९०४, २०९०५, २०९०७, २०९१७, २०९१८,
२०९१९, २०९२०, २०९२१, २२९२२, २०९२३, २०९२४, २०९२५, २०९२६, २०९२७, २०९२८,
२०९२९, २०९३०, २०९३१, २०९३२, २०९३३, २०९३४, २०९४१, २०९४८, २०९४९,
२०९५०, २०९५१, २०९५२, २०९५३, २०९५४, २०९५५, २०९५६, २०९५७, २०९५८,
२०९५९, २०९६७, २०९६८, २०९६९, २०९७०, २०९७१, २०९७२, २०९७४, २०९७५,
२०९७६, २०९७७, २०९७८. २०९७. २०९८०९, २०९९०, २०९९१. २०९९३, २०९९४,
२०९९५, २०९९६, २१०१६. २१०१७, २१०१९, २१०२०, २१०२१, २१०२२, २१०२३,
२१०२४, २१०२५, २१०२६. २१०२७, २१०२८. २१०२९, २१०६०. २१०६१, २१०६२,
२१०६३, २१०६४, २१०६६, २१०६७, २१०६८, २१०६९, २१०७०, २१०७१, २१०७२, २१०८३,
२१०८४, २१०८५, २१८६, २१०११७. २१११८, २१११९, २११२१, २११२२, २११३९,
२११४०. २११४१, २११४२, २११४३, २११४४, २११४६, २१०४७. २११४८, २११४९, २११५०,
२११७४, २११७५, २११७६, २११७७, २११७८, २११७९, २११८०, २११८१, २११८२,
२११८३, २११८४, २११८५, २११८६, २११८८, २११९०, २११९१, २११९२, २११९६,
२११९७, २११९८, २११९९, २१२००, २१२०१, २१२०२, २१२०३, २१२१५, २१२१६, २१२१७.
२१२१८, २१२१९. २१२२०, २१२२१, २१२२२, २१२२३, २१२२४, २१२२६. २१२३५,
२१२३७, २१२३८, २१२३९, २१२४०, २१२४७, २१२४८. १२४९, २२१२५०, २१२५१
२१२५२, २१२५३, २१२५४, २१२५५, २१२५७. २१२५८, २१२५९. २१२६२. २१२६५, २१२६७,
२१२६८, २१२७६, २१२७७, २१२७८, २१२८०, २१२८१, २१२८३, २१२८४, २१२८५,
२१२८६, २१२८७, २१२८८, २१२८९, २१२९०, २१२९१, २१२९३, २१२९४, २१२९५,
२१२९६, २१२९७, २१२९८, २१२९९, २१३००, २१३०१, २१३०२, २१३०३, २१३०४,
२१३०६, २१३२०, २१३२१. २१३२४, २१३२५, २१३२६, २१३२७, २१३२९, २१३३०,
२१३३१, २१३३२, २१३३३, २१३३९. २१३४९, २१३५९, २१३६९, २१७८५, २२१४६, २२२१८,
२२२९१, २२२९२, २२२९६, २२२९८, २२३०१, २२३१७, २२३३३, २२३३५, २२३३६, २२३५२,
२२३७२, २२३७४, २२३७५, २२३७७, २२३९३, २२४०५, और २२४१२

मुफ़्त !   एकदम मुफ़्त !!   मुफ़्त !!!

माधुरी का विशेषांक

पृष्ठ-संख्या ४०४,   तिरंगे-चौरंगे चित्र १८   सादे चित्र १०० से भी अधिक

हमारा दावा है कि—

ऐसा विशेषाङ्क आज तक किसी भारतीय भाषा में नहीं निकला।

वार्षिक ग्राहक बनने पर यह विशेषाङ्क मुफ़्त लीजिए।

ऐसा मौक़ा न चूकिए

६॥) भेजकर एक वर्ष तक माधुरी पढ़िए।

यह वही विशेषाङ्क है, जिसके निकलते ही हिंदी-संसार में चारों तरफ़ धूम मच गई थी। अब सिर्फ़ थोड़ी ही प्रतियाँ और बची हैं। इसलिए देर करने से पछताना पड़ेगा। **याद रखिये ३१ अगस्त सन् १९३० के बाद यह रियायत नहीं की जायगी।**

विशेषाङ्क के मनोहर चित्रों की झाँकी पर आँखें गड़कर रह जाती हैं; दर्शक छका-सा रह जाता है।

२॥) इस विशेषाङ्क का मूल्य कम करके एक प्रकार से "माधुरी" ४) में ही साल-भर तक पढ़ने को मिलती है।

ऐसी हालत में भी क्या आप अपने को तृप्त न करना चाहेंगे ?

आज ही ६॥) भेजकर ग्राहक बनें और इस भारी रियायत से लाभ उठाएँ।

पता—मैनेजर "माधुरी"
लखनऊ

माधुरी के नियम

मूल्य

माधुरी का डाक-व्यय-सहित वार्षिक मूल्य ६॥), छः मास का ३॥) और प्रति संख्या का ॥=) है। वी० पी० से मँगाने में =) रजिस्ट्री के और देने पड़ेंगे। इसलिये ग्राहकों को मनीआर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ६), छ महीने का ५) और प्रति संख्या का ॥।=) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है, लेकिन ग्राहक बननेवाले चाहे जिस संख्या से ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्त संख्या

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो पिछली संख्या पाने के बाद से पूरे १ मास ७ दिन तक प्रतीक्षा करने के बाद अप्राप्त संख्या के लिये १५ दिन के अंदर ही कार्यालय को सूचना मिलनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट-आफ़िस में उसकी जाँच करके डाकख़ाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ आना चाहिए। उनको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। ठीक समय पर सूचना न मिलने से उस पर ध्यान नहीं दिया जाएगा और उस संख्या को ग्राहक ॥=) के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्रव्यवहार

उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए। अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र के साथ ग्राहक-नंबर का भी उल्लेख होना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना मैनेजर माधुरी नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिये पता बदलवाना हो, तो उसका प्रबंध डाकघर से ही कर लेना ठीक होगा। अधिक दिन के लिये बदलवाना हो, तो संख्या निकलने के १५ रोज़ पेश्तर उसकी सूचना देनी चाहिए।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में, काग़ज़ की एक ओर, संशोधन के लिये इधर-उधर जगह छोड़कर, लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने लायक़ बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने का, उसे घटाने-बढ़ाने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। जो नापसंद लेख संपादक लौटाना मंज़ूर करें, वे टिकट भेजने पर ही वापस किए जा सकते हैं। यदि लेखक लेना स्वीकार करते हैं, तो उपयोगी और उत्तम लेखों पर पुरस्कार भी दिया जाता है। सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को ही करना चाहिए। हाँ, चित्र प्राप्त करने के लिये आवश्यक ख़र्च प्रकाशक देंगे।

लेख, कविता, चित्र समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की २-२ प्रतियाँ और बदले के पत्र इस पते से भेजने चाहिए—

संपादक माधुरी

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

विज्ञापन

किसी महीने में विज्ञापन बंद करना या बदलवाना हो, तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे प्रकाशित है—

१	पृष्ठ	या २	कालम	की छपाई	...	३०)	प्रति मास
१/२	,,	या १	,,	,,	...	१६)	,, ,,
१/४	,,	या १/२	,,	,,	...	१०)	,, ,,
१/८	,,	या १/४	,,	,,	...	६)	,, ,,

कम-से-कम चौथाई कालम विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। साल भर के विज्ञापनों पर उचित कमीशन दिया जाता है।

माधुरी में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण इसका प्रत्येक विज्ञापन हज़ारों पढ़े-लिखे, धनी मानी और सभ्य स्त्री-पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। सब बातों में हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार ख़ूब हो गया है, और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, एवं प्रत्येक ग्राहक से माधुरी ले-लेकर पढ़नेवालों की संख्या ४०-५० तक पहुँच जाती है।

यह सब होने पर भी हमने विज्ञापन-छपाई की दर अन्य पत्रिकाओं से अपेक्षाकृत कम ही रक्खी है। कृपया शीघ्र अपना विज्ञापन माधुरी में छपाकर लाभ उठाइए। कम-से-कम एक बार परीक्षा तो कीजिए।

मैनेजर-माधुरी, लखनऊ

प्रणय-परिचय का ऐसा सर्वांग समीचीन वर्णन, रूपक का ऐसा सत्कार, अन्यत्र विरल है।

अब संचारी भावों में से दैन्य के उदाहरण पर कवि की मार्मिक सूक्ति पढ़िए और सराहिए—

"प्रीतम बिदेस को सँदेस हू न आयो अब,
सोचि-सोचि सोचन सौं ऊँची साँस बलकी ;
ताप तन तापत सँताप मन हू मैं आइ,
छोभ छतिया मौं भरि दीनताई झलकी।
अँसुआ उमड़ि अँखियान तें झुमड़ि,
छितु परत उरोजन पै आनि छबि छलकी ;
नैन प्रिय देखन की कामना करेई मानौं,
ढारत महेस पै अखंड धार जल की।
—"यशवंतसिंह"

प्राणप्यारे परदेश में स्थित हैं, नायिका को उसका कोई संदेश भी नहीं मिला, अतः ऐसी स्थिति में सोच के कारण उसके स्वासोच्छ्वास की गति तीव्र हो रही है, शरीर विरह-ताप से तप्त हो रहा है, मन भी उद्विग्न है। हृदय क्षोभ से परिव्याप्त है तथा आकृति से स्पष्ट दैन्यभाव झलक रहा है। आँखों से उरोजों पर अजस्र अश्रु-वर्षण हो रहा है। इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो प्रिय-दर्शन की कामना से ही आँखें शिवजी पर अविश्रांत जल-वर्षा कर रही हैं। कैसा वेदनामय विदग्धतापूर्ण वर्णन है। राजा साहब ने दैन्यावस्था का चित्र-सा खींच दिया है। सच पूछिए तो महाकवि देव, पद्माकर, चिंतामणि आदि सभी कवियों के वर्णन से यह वर्णन अच्छा है। इसी तरह संचारी भावांतर्गत (स्मृति का) वर्णन भी कम मनोहर नहीं है। देखिए—

रीति अनंतर ही बिपरीति करी बहिरंतर के सुख छाए;
नूपुर मौन बजै कटि किंकिनी, आनँद कौन पै जात गनाए।
छूटि परे झुमका 'जसवंत' सु-कानन तें कुच ऊपर आए;
पूरब बैर छमापन कौं मनो मैन महेस पै छत्र चढ़ाए।
—"यशवंतसिंह"

उपर्युक्त छंद में उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार का चमत्कार एक बार नहीं सहस्र बार दर्शनीय है। कवि की सूक्ष्मदर्शिनी प्रतिभा महेश के प्रति की गई मदन की धृष्टता का स्मरण ही नहीं कराती, किंतु उसके लिये क्षमायाचना की सुंदर आयोजना भी करती है। स्थल-संकोच के कारण अब केवल मुग्धा-खंडिता की अनूठी उक्ति ही पाठकों की भेंट कर लेख समाप्त किया जाता है।

लाल के भाल में पावक सी अवलोकति जावक जोति जगाए;
दौरि कै गोरी भरे अँसुआ 'जसवंत' सखी सौं कहै चितु लाए।
दीजै हमैं जु बताय हमारी सौं बूझत तोहिं हितू हितु पाए;
कालि तौ द्वैज को टीको हतो, अब आजु कहौ ये कहाँ है लगाए ?
—"यशवंतसिंह"

रोरुद्यमाना खंडिता नायिका की ऐसी व्यंग्यमय मीठी चुटकी, पर साथ ही वाक्चतुरतापूर्ण दूसरी हिंदी-संसार में है ही नहीं। "यह रंग ही नया है, कूचा ही दूसरा है", इसे हम दावे के साथ एक बार नहीं हज़ार बार कह सकते हैं।

राजा साहब के उपर्युक्त छंदों में आई हुई अनेक बारीकियों को साहित्यमर्मज्ञ ही जानें, हममें इतनी योग्यता नहीं है कि हम उनका सम्यक् रूप से विवेचन कर सकें। हाँ, साहित्य के इन छिपे हुए अमूल्य रत्नों का पता देने-भर का हमारा काम था, अब आगे साहित्य के विधायकगण ही यह निश्चय करें कि राजा साहब का हिंदी-साहित्य में क्या स्थान है ?

समयानुसार राजा साहब-विषयक किंवदंतियाँ एवं उनके अन्य स्फुट छंद भी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किए जायँगे। इस लेख के लिखने में हमें श्रीभाई भारतेंदुजी "इंदु" से यथेष्ट सहायता मिली है।

हरिश्चंद्रदेव वर्मा 'चातक'

× × ×

२. राष्ट्र-भाषा के अज्ञात प्रचारक

इंदौरवाले साहित्य-सम्मेलन के बाद से भारत में राष्ट्र-भाषा हिंदी का प्रचार बड़े ज़ोरों पर चल रहा है। मदरास आदि प्रांतों में, जहाँ की भाषाएँ बँगला और मराठी आदि की भाँति हिंदी से मिलती-जुलती नहीं हैं, अनेक स्कूल खुल गए हैं, जिनमें हिंदी पढ़ाने का प्रबंध किया गया है। अनेक प्रचारक भी इसी अभिप्राय से उधर कार्य कर रहे हैं। स्वामी सत्यदेव सरीखे व्याख्यान-दाताओं ने भी अपने व्याख्यानों से इस कार्य में बड़ी सहायता पहुँचाई है। समाचार-पत्रों ने तो इस संबंध में बहुत ही सेवा की है। सबसे पहली बैठक राष्ट्र-भाषा-प्रचार के लिये मैंने लखनऊ में कांग्रेस के अवसर पर देखी थी। गणेशगंज के ग्रेन-मार्केट के मैदान में जो

पंडाल आर्यसमाज ने बनाया था, उसी में महात्मा गांधी के सभापतित्व में एक भाषा-सम्मेलन हुआ था। उसमें भाग लेनेवाले नेताओं में प्रायः देश के सभी प्रांतों के निवासी थे। मदरास के सर रामस्वामी अय्यर ने अँगरेज़ी में बोलते हुए हिंदी को ही भारत की भावी राष्ट्र-भाषा कहा था, और अपनी हिंदी में बोल सकने की अयोग्यता पर खेद प्रकट किया था। श्रीमती एनी बेसेंट का भाषण भी इसी आशय का था। मालवीयजी की जो मधुर वाणी उस समय खुली थी, उसके संबंध में क्या कहा जाय? उनके आनंद का पार न था। इतने अधिक नेताओं को हिंदी से सहानुभूति करते देखकर सभा में उपस्थित स्वामी सत्यदेव से न रहा गया। आख़िर उन्होंने समय के संकीर्ण होते हुए भी महात्मा गांधी से अनुनय-विनय करके चंद मिनट माँग लिए। मेज़ के ऊपर कूदकर चढ़ गए; और शायद एक ही दो मिनट में उन्होंने अपने आनंदातिरेक के कारण बढ़े हुए अरमानों को निकाल डाला। अस्तु। कहने का प्रयोजन यह कि राष्ट्र-भाषा के प्रचारकों में आज तक वे ही नाम सामने आते हैं, जिन्हें हम पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ते हैं, और जिन्हें हिंदी-प्रचार की समस्त कीर्ति मिलती है। निःसंदेह ऐसे अवैतनिक अथवा वैतनिक कार्यकर्ता हम लोगों के संमुख आदर के पात्र हैं; उनका कार्य, उनका त्याग और उनकी संलग्नता सराहनीय है। किंतु इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग भी अज्ञात रूप से राष्ट्र-भाषा का प्रचार कर रहे हैं, जिनकी ओर शायद अभी तक हमारा ख़याल नहीं गया। इन्हें स्वतः नहीं मालूम कि ये कितने महत्त्व का कार्य कर रहे हैं। इन अज्ञात प्रचारकों में पाँच विशेष उल्लेखनीय हैं—

(१) मारवाड़ी व्यापारी, (२) मुसलमान व्यापारी और ताँगेवाले, (३) सिख कारीगर, (४) कुली और चपरासी, (५) गाने-बजानेवाले।

१—आप भारत-देश के प्रायः सभी प्रांतों में, देहातों तक में, मारवाड़ी दूकारदारों को पावेंगे। इनकी दूकानें, जैसा कि सुनने में आया है, बंबई के आगे भी—अदन—तक हैं। ये लोग प्रायः राष्ट्र-भाषा ही बोलते हैं, और इनसे क्रय-विक्रय करते समय लोग अनायास ही हिंदी सीख जाते हैं। मैंने बरार आदि प्रांतों के देहातों में, जहाँ लोगों की भाषा मराठी है, स्वतः देखकर इसका अनुभव किया है। मैंने सोचा, यदि मारवाड़ी व्यापारी यहाँ न आए होते, तो इन मराठी बोलनेवाले देहाती भाइयों को हिंदी सीखने में बड़ी कठिनाई होती। यह निर्विवाद है कि जिस हिंदी का प्रचार इन व्यापारियों द्वारा होता है, वह बिलकुल अशुद्ध हिंदी है, उसमें उस प्रांत की भाषा का मिलान ज़रूर रहता है। जैसे—

आपको क्या **होना** (अर्थात् चाहिए) ? आपको भुख लगी है **करके** (अर्थात् इसीलिये), आप घर जाने की इतनी जल्दी कर रहे हैं। कहिए, कैसा क्या है (अर्थात् क्या समाचार है) ?

बंबई के पारसियों में "आईंगा", "खाईंगा" "जाईंगा" का बहुत व्यवहार पाया जाता है।

फिर भी—इन अशुद्धियों के होते हुए भी—मारवाड़ी दूकानदारों ने शुद्ध राष्ट्र-भाषा के भावी प्रचार-कार्य को कितना सुगम कर दिया है।

२—मुसलमान व्यापारी यद्यपि अपनी प्रांतीय भाषा ही आपस में बोलते हैं, तथापि उनमें जो कुछ पढ़े-लिखे हैं, वे उर्दू बोलने में अपना गौरव समझते हैं। विशेषकर ताँगेवाले तो सुदूर मैसूर-राज्य में बंगलोर तक बजाय कनाड़ी भाषा के अपनी टूटी-फूटी उर्दू अथवा हिंदुस्थानी बोलने में ही प्रसन्न रहते हैं। अतएव इन व्यापारियों और ताँगेवालों से व्यवहार करनेवालों को अपने आप कुछ वाक्य हिंदुस्थानी के याद हो जाते हैं, और निरंतर अभ्यास के कारण आख़िर उन्हें लँगड़ी ही सही—हिंदुस्थानी आ ही जाती है। इन व्यापारियों में मैं उन लेक्चरबाज़ एजंटों को भी रखता हूँ, जो अपनी दवाइयों की बिक्री के लिये चौराहों पर लच्छेदार किंतु अशुद्ध उर्दू में लेक्चर देते रहते हैं। इनके हाव-भाव-पूर्ण भाषण हिंदी के प्रचार में सहायक ही होते हैं।

३—सिख कारीगर, जिनमें प्रायः बढ़ई और कुछ मोटर आदि का काम करनेवाले होते हैं, जहाँ कहीं जाते हैं, अपनी पंजाबी ढंग की हिंदुस्थानी ही बोलते हैं। इन लोगों का काम भी साधारण जनता के लिये बड़ा आवश्यक रहता है, इसलिये आम बाज़ार में ठेकेदारों और इमारती कामों में मज़दूरों से और साधारण जनता से भी इन्हें अपने विचारों का आदान प्रदान करना पड़ता है, और ये लोग जब हिंदुस्थानी ही बोलना शुरू करते हैं, तो क्रम से अपने ग्राहकों से

अज्ञात रूप से अपनी भाषा अंशतः सिखा लेते हैं। अथवा यों कहिए कि जनता इन लोगों से बातचीत करने में जिस भाषा का प्रयोग आवश्यक समझती है, उसे सीख ही लेती है।

इस विषय में अँगरेज़ी पढ़े हुए लोग हानिकारक होते हैं; क्योंकि वे दूसरे प्रांतों में शिक्षित लोगों में इस विदेशी भाषा के द्वारा बातचीत करके काम निकाल लेते हैं। ईश्वर को कोटिशः धन्यवाद है, इन सिख कारीगरों में बहुत कम अँगरेज़ीदाँ होते हैं। अतएव इनके द्वारा जो हिंदी का प्रचार अज्ञात रूप से अन्यान्य प्रांतों में हो रहा है, उसके लिये हमें इनका आभार मानना चाहिए।

४—कुली और चपरासी प्रायः समस्त देश में उत्तरीय हिंदी-भाषी प्रांतों से और कुछ छत्तीसगढ़ से भी जाते हैं। इन्हें अँगरेज़ी तो आती नहीं, इसलिये दफ़्तरों के बाबुओं को अपने ऐसे चपरासियों के साथ, और मुसाफ़िरों को ऐसे कुलियों के साथ जैसे बन पड़ता है, येन-केन प्रकारेण हिंदी में ही बोलना पड़ता है। मैंने ऐसे दफ़्तर देखे हैं, जहाँ एक भी बाबू हिंदी-भाषी प्रांत का नहीं है। वे या तो मदरासी हैं, या बंगाली अथवा पारसी। इन बाबुओं को जब हिंदी-भाषी चपरासियों से उन्हें कुछ काम देने के लिये बोलना पड़ता है, तो वे अपनी अद्भुत हिंदी में ही बोलते हैं।

जब इन बाबुओं को हिंदी बोलने का काफ़ी अभ्यास हो जाता है, तो वे आपस में भी, अर्थात् एक बंगाली अपने मदरासी अथवा पारसी साथी से हिंदी में ही बातचीत करता है। इस प्रकार को बातचीत करते हुए मैंने भिन्न-प्रांत-निवासी बाबुओं को न केवल दफ़्तरों में देखा है, प्रत्युत जब कभी वे बाज़ार में या शाम को बग़ीचे में सैर करते हुए मिलते हैं, तब भी उन्हें बजाय अँगरेज़ी के हिंदी में ही बोलते सुना है। यह निर्विवाद है कि वह हिंदी शुद्ध हिंदी नहीं होती, प्रत्युत एक प्रकार की खिचड़ी भाषा होती है, पर उसे हिंदी के अतिरिक्त और कुछ नहीं कह सकते।

बंगाली अपने विचित्र गोल उच्चारण के साथ बोलता है, "मुदलियार बाबू, कल से हमारा वाइफ़ (Wife) का आँख दुखता है।" इत्यादि। मुदलियार महाशय अपनी समस्त सहानुभूति को नेत्रों में एकत्र करके मदरासी लहज़े में कहते हैं—"गोप (घोष) बाबू, आजकल जिदर (जिधर) देको (देखो) उदर (उधर) आँख का जेनरल कंप्लेंट (Genral Complaint) है।" इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। नागपुर के महाराज़बाग़ में शाम को यत्र-तत्र घास पर बैठी हुई गोष्ठियों में इसी प्रकार की हिंदी के कुतूहलप्रद नमूने सुनने को मिलते हैं। पर मुझे तो बजाय खटकने के यह गतिविधि अत्यंत सुख और संतोष देती है। ऐसी बातचीत के सुनने से इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाता है कि हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा (Lingua franca) हो सकती है। कौन ऐसा राष्ट्रभाषा-प्रेमी है, जिसका हृदय भारत के विभिन्न-प्रांतीय मित्रों के प्रेमालापों में हिंदी को अँगरेज़ी का स्थान ग्रहण करते देखकर आनंद-पुलकित न हो उठे? शुद्ध भाषा के हिमायतियों को भी इस बात की आशा रखनी चाहिए कि क्रम से कुछ वर्षों में वे लोग जिन्होंने अभी विकृत हिंदी बोलना शुरू किया है, शुद्ध हिंदी भी उसी अधिकार के साथ बोलने लगेंगे, जिस अधिकार के साथ वे सात-समुद्र-पार की भाषा (अँगरेज़ी) बोल लेते हैं। और यदि अन्य प्रांतों में जहाँ लोगों की मातृ-भाषा हिंदी नहीं है, अशुद्ध हिंदी ही से रोज़ाना का कारोबार चले, तो भी प्रचार की दृष्टि से हमें उससे संतोष ही होना चाहिए। बँगलापन, मराठीपन, गुजरातीपन, पंजाबीपन इत्यादि अनेक पनों का सम्मिश्रण हिंदी की राष्ट्रभाषा बनने की योग्यता और क्षमता को निरंतर बढ़ाता ही जाता है। इस प्रकार का सम्मिश्रण राष्ट्र की भावी एकता की दृष्टि से न केवल क्षम्य है, बल्कि सादर स्वागत के योग्य है। यह रुग्ण भारत के स्वास्थ्य का वह प्रारंभिक चिह्न है, जो भविष्य की उस प्रचंड शक्ति की ओर संकेत करता है, जिसे राष्ट्रीय कहते हैं और जिसको कल्पना-मात्र ही हृदय को एकदम आशा, उत्साह और उल्लास से ओतप्रोत कर देती है।

डाकबँगलों के ख़ानसामे भी इसी श्रेणी के अंतर्गत हैं।

५—गाने-बजानेवाले यद्यपि हिंदी-भाषी प्रांतों में उतने ऊँचे दर्जे के कम मिलते हैं, जितने मदरास आदि प्रांतों में, जहाँ लोगों की मातृभाषा हिंदी नहीं है, फिर भी ऐसे प्रांतों में भी उर्दू ग़ज़लें और क़व्वालियाँ तथा ठुमरियाँ प्रसिद्ध मुसलमान संगीतज्ञों और गायिकाओं

द्वारा प्राय: गाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त कबीर, मीराबाई, तुलसी और सूर सरीखे भक्तजनों के भजन भी वे लोग, जो ज़रा भी हिंदी समझते अथवा हिंदू-धर्म में श्रद्धा रखते हैं, बड़े चाव से गाते और गवाते हैं। बाज़ारू लोगों में उर्दू ग़ज़लों का इतना प्रचार है कि जहाँ लोग देवनागरी-लिपि पढ़ नहीं सकते, वहाँ तद्देशीय लिपि में ही ऐसी ग़ज़लों के संग्रह छपे हुए बिकते हैं।

उदाहरणार्थ—

"लैला को तू ने ऐ यार मजनूँ बना के मारा"

और

"ख़ुदाया कैसी मुसीबतों में ए हिंदवाले पड़े हुए हैं।
क़दम-क़दम पर हमारी ख़ातिर सितम के भाले खड़े हुए हैं।

इसी प्रकार की ग़ज़लें व "मुख से राधेकृष्ण बोल, तेरो क्या लगै है मोल" आदिक भजनावलियाँ दक्षिण में मैसूर-राज्य से लेकर उत्तर में काश्मीर तक तथा पश्चिम में बंबई से लेकर पूर्व में कलकत्ते नहीं—नहीं रंगून तक सुनने को मिलती हैं। मधुकरी वृत्तिवाले गायक वैरागी लोग प्राय: तीर्थाटन के निमित्त सुंदर भक्तिभावपूर्ण भजन गाते हुए फिरते हैं। इनके द्वारा अनजाने तौर पर राष्ट्र-भाषा का जो प्रचार हो रहा है, वह अत्यंत व्यापक, प्रभावशाली और स्थायी है। इस श्रेणी में हमें उन मुसलमान साईं लोगों को भी रखना चाहिए, जो प्रात:-काल चिड़ियों के चहचहाने से पहले बस्तियों में "ना घर मेरा, ना घर तेरा, चिड़िया रैन बसेरा रे" अथवा "मौला के प्यारे तेरी नगरी में डोलता" आदि वैराग्य-पूर्ण गीत गाते हुए घूमते रहते हैं।

आम जनता में ग़ज़लों और गानों का प्रचार करने में सिनेमा-कंपनियों, रास व नाटक-मंडलियों, कीर्तनकारों और अंतर्प्रांतीय प्रतिष्ठावाली नर्तकियों ने बड़ी सहायता की है। और ऐसे गानों व ग़ज़लों ने जिनमें संभवत: किन्हीं-किन्हीं में शायद अश्लीलता की पुट भी मौजूद हो, एक-मात्र राष्ट्र-भाषा-प्रचार की दृष्टि से, बड़ी सहायता की है। यह निर्विवाद है कि ख़राब गानों का प्रभाव किशोर हृदयों पर अच्छा नहीं पड़ता। अस्तु।

कबीरपंथी भजनों व गोस्वामी तुलसीदास की रामायण ने अहिंदी जनता में हिंदी सीखने की बहुत रुचि पैदा की है, और आजकल बरेली-निवासी राधेश्यामजी की रामायण भी इस दिशा में काफ़ी कार्य कर रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जितना प्रचार राष्ट्र-भाषा का उन शक्तियों ने किया है, अथवा करना आरंभ किया है, जिनका उद्देश ही प्रचार करना है, उतना ही अथवा उससे किन्हीं अंशों में अधिक प्रचार उनके द्वारा हो रहा है, जिन्हें अपने भव्य कार्य के मंगलमय महत्त्व का किंचिन्मात्र ज्ञान नहीं है।

इस संबंध में, इसी प्रकार के और कई अज्ञात प्रचारक होंगे, किंतु अपने अनुभव की कमी के कारण उनका उल्लेख यहाँ पर मैं नहीं कर सका। मैंने उन्हीं मुख्य श्रेणियों का ज़िक्र इस सिलसिले में किया है, जिन्हें स्वत: मैंने देखा है, और जो इस समय मेरी दृष्टि में हैं। राष्ट्र-भाषा के प्रचार-कार्य में जो संतत सहायता इनके द्वारा हमें मिल रही है, हमें उसके लिये इनका ऋणी होना चाहिए; इनके महत्त्व को मानना चाहिए, और इन्हें उचित श्रेय देना चाहिए।

आशा है, मुझसे अधिक अनुभवी विद्वान् इस विषय पर और प्रकाश डालेंगे।

रामनारायण मिश्र

जीवन-ज्योति

१, अमृत की खोज

आश्विनमास की माधुरी में 'अमृत और अमर जीवन'-शीर्षक के अंतर्गत हमने इस विषय पर अपने विचार प्रकट किए थे। उसके पश्चात् हमको अथर्ववेद के एक भजन का अँगरेज़ी-अनुवाद देखने को मिला। उसे हम यहाँ उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं। वह निम्न प्रकार है—

I have partaken wisely of the sweet food,
That stirs good thoughts,
Best banisher of trouble,
The food round which all
Deities and mortals
Calling it honey mead collect together.
We have drunk Soma and
become immortal,
We have attained the height
the gods discovered.
What can hostility now do against us.
And what immortal God,
the spite of mortals,
Of this thy Juice,
Pressed out with mind devoted,
We would partake as of paternal riches,
Prolong the years of life for us, King Soma,
As Surya lengthens out
the day of spring time.

अर्थ—उत्तम विचारों की जागृति करनेवाला, सब कष्टों की अमोघ ओषधि, ऐसा वह मधुर भोजन मैंने बड़ी बुद्धिमानी से ग्रहण किया है। इस भोजन को प्राणी-मात्र व देवता सभी मधु के समान चाहते हैं। यह सोम-रस है, जिसका हमने पान किया है और जिसको पीकर हम अमर हो गए हैं। हम उस शिखर पर पहुँच गए हैं, जहाँ देवताओं का वास है। अब कोई भी प्राणी द्वेष अथवा वैर के वशीभूत होकर हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता; क्योंकि हे अजर अमर प्रभु, हमने भक्तिप्लावित होकर तेरे रस का पान किया है। इसे हम अपनी पैतृक संपत्ति मानकर ग्रहण करेंगे। हे सोमदेव, हमारे जीवन की काल-अवधि को बढ़ा, जिस प्रकार सूर्य वसंत ऋतु के दिनों को बढ़ाता है।

इस सोमरस के संबंध में अनेक पौराणिक व अर्द्ध-पौराणिक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं । ऋक्संहिता के अनुसार इसका उत्पत्तिस्थान मुजवान पर्वत है । इसीलिये इसे मौजवत भी कहते हैं । इसी संहिता में यह भी कहा गया है कि श्येन पक्षी ने इसे स्वर्ग से लाकर इंद्र को दिया था ! वैद्यक में इसकी गणना दिव्य ओषधियों में की गई है और लिखा है कि इसके पंद्रह पत्ते होते हैं, जो शुक्ल पक्ष में—प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक—एक-एक करके उत्पन्न होते हैं और फिर कृष्ण पक्ष में—प्रतिपदा से अमावस्या तक—पंद्रह दिनों में एक-एक करके वे सब गिर जाते हैं। इस प्रकार अमावस्या को सोमलता पत्रविहीन हो जाती है । इतिहासकारों का भी मत है कि प्राचीन काल में वैदिक ऋषि सोमरस का पान किया करते थे । यह रस पीले रंग का और मादक होता था । पत्थर से कुचलकर यह रस निकाला जाता था और फिर किसी ऊनी कपड़े में छानकर व्यवहृत होता था । यह रस यज्ञ में देवताओं को चढ़ाया जाता था और अग्नि में इसकी आहुति भी दी जाती थी । इसमें दुग्ध अथवा मधु भी मिलाया जाता था । वेदों में इसकी शक्ति और गुणों की बड़ी स्तुति की गई है । इसी का एक उदाहरण प्रारंभ में दिया गया है । इसे यज्ञ की आत्मा और अमृत कहा गया है । देवताओं की यह परम प्रिय वस्तु थी । उपर्युक्त भजन से यह स्पष्ट झलकता है कि यह रस अत्यधिक बलवर्द्धक, उत्साहवर्द्धक अनेक रोगों का नाशक, अमृत के समान आयुवर्द्धक दिव्य पेय समझा जाता था । कहते हैं, इसके पान से हृदय की अशुभ भावनाओं का नाश तथा सत्य और धर्मभाव की वृद्धि होती थी। इस लता को लताओं का पति एवं राजा कहा गया है ।

आर्यों की ईरानी शाखा में भी इसका प्रचार था, किंतु बहुत काल से इसका लोप हो गया था । इसके पहचाननेवाले न रहे ; यहाँ तक कि सुश्रुत आदि आचार्यों के समय में भी यह निरी कल्पना ही रह गई । पारसी लोग आज भी अपने कर्मकांड में एक 'होम' नाम की लता का प्रयोग करते हैं, किंतु यह असली 'सोम' नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है । सर जगदीशचंद्र वसु की प्रयोगशाला में अभी एक ऐसी ही लता के रस के अमृततुल्य गुणों का वर्णन पत्रों में प्रकाशित हुआ है । मरे हुए मेढकों को पुनर्जीवित करने में यह रस आश्चर्यकारी सिद्ध हुआ है । अस्पतालों में भी इसका प्रयोग Cancer सरीखे असाध्य रोगों में किया जा रहा है और सुना गया है कि इस प्रयोग से संतोष-जनक लाभ हो रहा है । जिस लता का यह रस है, उसका विशेष वर्णन अभी तक प्रकट नहीं हुआ है । संभवतः यह भी कोई 'सोम' की बहन हो ।

गत शताब्दी के मध्य से जब कि फ्रांस के प्रसिद्ध डाक्टर लुई पास्च्युर (Louis Pasteur) की Germ theory (कीटाणुवाद) का प्रादुर्भाव हुआ, वैज्ञानिकों ने अमृततुल्य किसी भौतिक पदार्थ की कल्पना की, जिसके ऊपर जीवन-मरण का प्रश्न अवलंबित है। यहीं से अमृत की खोज का आधुनिक प्रयत्न प्रारंभ होता है। धैर्य के मूर्तिमान् अवतार प्रो० कैरी (Carrey) ने अपनी विज्ञानशाला में मानवीय शरीर के प्रत्येक अंग को शरीर से पृथक् कर कृत्रिम उपायों द्वारा जीवित रक्खा है । जीवित रहने का लक्षण यह था कि वह भग्नखंड अब भी उसी गति से वृद्धि को प्राप्त होता रहा है जैसा कि वह शरीरस्थ दशा में वृद्धि को प्राप्त होता । इस प्रकार वर्षों से धैर्यपूर्वक प्रयोग करते हुए वह इस प्रश्न का मनन कर रहे हैं कि यदि कृत्रिम प्रयोगों द्वारा जीवकोष जीवित रक्खे जा सकते हैं, तो मृत्यु आख़िर क्या बला है, जो अकस्मात् ही सारे कोषों को विषपूर्ण कर देती है ।

एक पशु के अवयवों को काटकर दूसरे पशुशरीर में सफलतापूर्वक लगा देना इन्हीं का काम था । इनके पास एक कुत्ता है, जिसके दूसरे कुत्ते की टाँग लगी हुई है और जो अपना कार्य भी प्राकृतिक रूप से करती है। इसी प्रकार अमेरिका के डा० कैरल (Dr. Alexis Carrel) ने एक मुर्ग़ी के बच्चे का दिल उसके शरीर से पृथक् कर १२ वर्ष तक जीवित अवस्था में रक्खा। डा० कैरल सरजरी-विज्ञान के सर्वश्रेष्ठ विशेषज्ञ समझे जाते हैं। उन्होंने उस नन्हें से धड़कते हुए हृदय को विशेष प्रकार की रासायनिक ओषधियों में रक्खा और तब से अब तक यह अवयव अपने प्रारंभिक शारीरिक परिमाण का पाँचवाँ भाग बढ़ गया है और अभी बढ़ता जा रहा है। प्रति दो या तीन वर्ष के उपरांत नवीन रसायन बदल दी जाती है और इसी रसायन में समय-समय पर युवा तथा वृद्ध मुर्ग़ियों का रक्त मिलाया जाता है। प्रयोगों से विदित

हुआ है कि वृद्धाओं के रक्त से वृद्धिक्रम में घटी हुई और युवाओं के रक्त द्वारा वृद्धिक्रम में वृद्धि हुई। इससे वैज्ञानिकों ने अनुमान किया है कि युवाओं के रक्त में कोई ऐसा रासायनिक पदार्थ विद्यमान है, जो वृद्धों के रक्त में नहीं है। इन प्रयोगों की उपस्थिति में वैज्ञानिक संसार को यह विश्वास हो चला है कि अवश्य ही जीवन का कोई मूल-रस है, जिसका पृथक्करण भविष्य में संभव है।

अमृत-सरीखा भौतिक पदार्थ कोई अवश्य है, ऐसा अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है। देखें, कब विज्ञान को इस संबंध में पूर्ण सफलता मिलती है। मिलेगी भी अथवा नहीं, यह भी संदेहजनक-सा ही है।

घासीराम जैन

× × ×

२. 'यवीयसी' शब्द का वास्तविक अर्थ

अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम्॥

याज्ञवल्क्य-स्मृति के इस पद्य में आए हुए 'यवीयसीम्' पद को देखकर भ्रम से कई सुलेखकों ने युवति कन्या का विवाह सिद्ध करने का प्रयास किया है। यह उनकी भारी भ्रांति अथच अज्ञान है। हम इस शब्द की विवेचना सुज्ञ पाठकों के लाभार्थ करते हैं। इससे ज्ञात होगा कि याज्ञवल्क्य का तात्पर्य क्या है। एक महाशय ने 'यूनस्तिः' इस पाणिनिसूत्र से सिद्ध ह्रस्व इकारांत युवति शब्द से अतिशयार्थक 'ईयसुन्' प्रत्यय मानकर यवीयसी अर्थात् बहुत बड़ी जवान स्त्री का—ढली जवानी अवस्थावाली का—विवाह बताया है। परंतु उन्होंने यह विचार न किया कि महर्षि याज्ञवल्क्य ने उक्त श्लोक के आगे—

अप्रयच्छन् समाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ।
गम्यन्त्वभावे दातॄणां कन्या कुर्य्यात् स्वयंवरम्॥

इस पद्य में रजस्वला होने से पूर्व कन्या का दान न करनेवाले पितादि, जब-जब वह ऋतुमती होती है तब-तब भ्रूणहत्या के अपराधी होते हैं, यह स्पष्ट लिखा है। अब महाशयजी बतावें कि याज्ञवल्क्यजी को अत्यंत युवती कन्या का विवाह इष्ट था, तो उन्होंने पितादि कन्या-दाताओं को बाल-हत्या के अपराधी क्यों कहा? इसलिये मानना होगा कि यौवना कन्या का विवाह याज्ञवल्क्य को माननीय नहीं।

उपर्युक्त उलझन को दूर करने के लिये 'यु' मिश्रणे धातु से शतृ और ङीप् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न दीर्घ ईकारांत युवती शब्द से यवीयसी शब्द की सिद्धि माननी चाहिए। इस युवती शब्द का अर्थ जवान स्त्री नहीं, बल्कि पाणि-ग्रहणपूर्वक पति को मिलनेवाली स्त्री है। अर्थात् जिस कन्या का जिस कुल के साथ मिश्रण हो सके, वही विवाहनीय है। इस प्रकार अतिशयता से—पूर्ण रूप से—शास्त्र-व्यवस्थानुसार युवती अर्थात् पति-कुल में मिश्रित होने योग्य कन्या, यवीयसी पद-वाच्य है।

इसी अभिप्राय को मन में रखकर मिताक्षरा टीकाकार ने 'यवीयसीम्' का—वयसा प्रमाणतश्च न्यूनाम्—वर से अवस्था में और शरीर-प्रमाण में छोटी कन्या—अर्थ, यथार्थ ही किया है। 'ज्येष्ठो यवीयसो भार्य्याम्' 'यवीयोऽवरजानुजाः' इस मनुवचन और कोशप्रमाण से यवीयस् शब्द—अवरज, अनुज, (छोटे) अर्थ का वाची हमारे सहयोगियों को मान्य है। फिर भी उन्होंने सत्यार्थ को छिपाकर इस शब्द की छीछालेदर की है। ऐसी दशा में टीकाकारों के अर्थ को अशुद्ध बताना तथा अन्य विद्वानों के ऊपर दोषारोप करना शास्त्र-विरुद्ध कल्पना है।

आनो अग्ने सुमतिं सम्भलो गमेदिमां कुमारीं सहनो भगेन,
जुष्टा वरेषु सुमनेषु वल्गु रोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै।

(अथर्व० ५६—२)

इस मंत्र में—सुमतिम् इमां कुमारीं वरः भगेन सह आगमेत्—तेजस्वी ब्रह्मचारी वर को सुबुद्धिमती कुमारी कन्या को प्राप्त करना चाहिए, ऐसा स्पष्ट कहा है। अतः कुमारी कन्या का ही विवाह वेदानुमोदित है। यौवना कन्या का नहीं। वेद-विरुद्ध स्मृतियों का अनर्थ करना शोचनीय है। 'पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने' इत्यादि शतशः प्रमाणों से कुमार-अवस्था यौवन से प्रथमावस्था है। इसी कारण वेदमर्मज्ञाता क्या सनातनी क्या समाजी कोई भी सद्विद्वान् अतिशययौवना कन्या अर्धजरती का विवाह नहीं मानेंगे। हाँ, अपठित जनता को अंडबंड अर्थ करके भले ही फँसाया जाय।

हमारे प्रतिपक्षी लेखक ने, अतिशयेन युवती यवीयसी, इस प्रकार युवती शब्द से ही यवीयसी की सिद्धि की है। उसे मैं उचित समझता हूँ।

उक्त विवेचना द्वारा हमने स्मृतिकार के वचन की संगति लगा दी है। पाठकों को जैसा रुचे वैसा सिद्धांत स्थिर कर लें।

रामसेवक शास्त्री

× × × •

३. अल्पमत का प्रतिनिधित्व

आश्विन की "माधुरी" में श्रीचंद्रगुप्तजी विद्यालंकार ने मि० हेअर की स्कीम पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की है। उन्होंने वर्तमान "अल्पमत" प्रणाली का खंडन करते हुए मि० हेअर की स्कीम का प्रतिपादन किया है। कुछ अंशों में यह स्कीम सफल हो सकती है, पर इसमें भी अनेकों दोष हैं, जिन पर विचार अवश्य करना चाहिए।

इस लेख को पढ़ने से एक बात तो समझ में आ सकती है कि वर्तमान प्रणाली में जो मत दिया जाता है, वह अल्पमत है। दिए हुए उदाहरण से यह बात बिलकुल प्रत्यक्ष हो जाती है। पर अब हमको मि० हेअर की स्कीम की विवेचना करनी चाहिए। इसके अनुसार संपूर्ण देश एक निर्वाचन-विभाग हो जाता है और प्रत्येक मतदाता एक ही पुरुष को मत न देकर जितने सभासद प्रतिनिधि-सभा में होते हैं, उतने मत अवश्य दे सकता है। इसके साथ-साथ प्रत्येक मतदाता जिसको सर्वोत्कृष्ट समझे, उसका नाम सर्वप्रथम, जो उससे कम हो उसका नाम द्वितीय तथा इसी प्रकार आगे लिखेगा। इसमें अब प्रत्येक सभासद को निश्चित मत मिलने चाहिए। उसकी संख्या का निश्चय इस प्रकार किया जायगा। जितने प्रतिनिधि सभा के सभासद होंगे, उससे मतदाताओं की संख्या का भाग किया जाय। मान लीजिए कि एक देश की प्रतिनिधि-सभा के १०० सभासद होंगे और मतदाताओं की संख्या १,००,००० है। तो प्रत्येक सभासद को कम-से-कम १,००० मत मिलने चाहिए। इसी को "कोटा" मान लिया जाय।

यहाँ पर संक्षेप में मि० हेअर की स्कीम विद्यालंकारजी के लेख से उद्धृत कर दी है। अब हमको इसके दोषों पर विचार करना है। इसके अनुसार संपूर्ण देश निर्वाचन-विभाग हो जायगा। इसका अर्थ यह होगा कि प्रयाग नगर के मतदाता लाहौर की जनता की ओर से प्रतिनिधि चुना करेंगे। भारतवर्ष में वर्तमान प्रणाली के अनुसार प्रत्येक ज़िले से एक प्रतिनिधि चुना जाता है, पर मि० हेअर की स्कीम ऐसा न करने देगी। इसका सबसे बड़ा प्रभाव तो यह पड़ेगा कि प्रतिनिधि-सभा में एक ही प्रांत के संपूर्ण सभासद चुने जा सकेंगे। उदाहरणार्थ, भारतवर्ष की समस्या को ले लीजिए। भारतवर्ष के कुछ प्रांत के निवासियों में अपने प्रांत-वासियों से विशेष प्रेम होता है। बंगाल-प्रांत को ही लीजिए। यहाँ के रहनेवाले इस भाव के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। वे अपने ही लोगों से व्यवहार रखते हैं और उनको जितना बढ़ाया जा सकता है खूब बढ़ाते हैं। यही दशा अन्य प्रांतों की भी है—पंजाब, मदरास, बंबई आदि की। ऐसी दशा में यह संभव है कि दो प्रांतवाले आपस में समझौता कर लें। बंगाल और बिहार बहुत पास-पास है। एक प्रांत दूसरे प्रांतवाले ही को मत दे, अन्य को नहीं। इस प्रकार दो प्रांत मिलकर उस कोटा की पूर्ति कर लेंगे। और इस कारण अन्य प्रांतों के लोग प्रतिनिधि-सभा के सभासद न हो सकेंगे।

संभव है, लोग इस बात की शंका करें कि भारतवर्ष की दशा के साथ तुलना करना व्यर्थ है। पाश्चात्य देशों में ये बातें नहीं हो सकतीं और इतनी प्रान्तीयता भी नहीं पाई जाती। पर वहाँ पर भी यही बातें पाई जाती हैं। ग्रेट-ब्रिटेन की पार्लियामेंट को ही उदाहरणार्थ लीजिए। उसमें इँगलैंड, स्काटलैंड, आयरलैंड तीनों के ही प्रतिनिधि आते हैं और इस बात की संख्या निश्चित है कि कितने प्रतिनिधि भेजे जायँ। यदि मि० हेअर की स्कीम का वहाँ प्रयोग किया जाय, तो वहाँ पर भी वैसी ही दशा हो जायगी जैसी कि भारतवर्ष की है। इँगलैंड और स्काटलैंड मिलकर आयरलैंड को घुसने न देंगे; इँगलैंड और आयरलैंड मिलकर स्काटलैंड का एक भी प्रतिनिधि न चुनने देंगे, आयरलैंड और स्काटलैंड मिलकर इँगलैंडवालों को निकाल बाहर करेंगे। अमेरिका की काउनटीज़ में भी यही दोष मिलेगा।

वर्तमान प्रणाली में सबसे बड़ा गुण यही है कि कोई प्रांत या ज़िला बचने नहीं पाता और सभी स्थानों के प्रतिनिधि चुन लिए जाते हैं। बहुत-से लोग इसको गुण न समझते होंगे, पर मैं तो इसको एक विशेष गुण समझता हूँ। बंगाल-प्रांत का निर्वाचित प्रतिनिधि पंजाब के मतदाताओं की आपदाओं का अनुभव नहीं

कर सकता। इस समय पंजाब के प्रतिनिधि उनकी इच्छाओं को अच्छी तरह समझा सकते हैं। अन्य प्रतिनिधि भी आवश्यक बातें उन्हीं से पूछ सकते हैं; किसी घटना का अनुसंधान भी ऐसे ही प्रतिनिधि कर सकते हैं। इस प्रणाली में वैमनस्य भी नहीं होता और प्रत्येक नागरिक समझता है कि इस नगर से कोई-न-कोई अवश्य ही प्रतिनिधि चुना जायगा। मैं तो इसको इन्हीं कारणों से एक विशेष गुण समझता हूँ।

एक बड़ा अवगुण विद्यालंकारजी ने बताया है, वह है अल्पमत का। गणना से यह बात सिद्ध की गई है कि प्रतिनिधि-सभा में कोई विषय बहुमत से स्वीकृत होने पर भी अल्प ही है। इसके निवारण की दूसरी विधि मैं बताता हूँ। बहुमत भी अल्पमत इस कारण से हो गया कि प्रत्येक निर्वाचन-विभाग से अनेकों उम्मेदवार हो जाते हैं। निर्वाचित पुरुष ५००० मत पाता है और उसके दो प्रतिवादी ४०००+३०००=७०००। इस दोष को दूर करने का उपाय यह है कि एक स्थान से केवल दो ही उम्मेदवार बनने पावें। यदि दो ही उम्मेदवार बनेंगे, तो किसी भी तरह से अल्पमत न होने पावेगा।

पर प्रश्न यह उठता है कि यह संभव नहीं कि दो ही उम्मेदवार हों। चार हो सकते हैं, दस हो सकते हैं और इस बात में स्वतंत्रता है। यह भी दो प्रकार से हो सकता है।

(१) प्रत्येक निर्वाचन-विभाग में एक समिति बना दी जाय और उम्मेदवारों के प्रार्थनापत्र भी इसी के सम्मुख आया करें। यह समिति या तो सरकार ही बना दे (यदि भारतवर्ष के समान परतंत्रता हो) या मतदाता स्वयं ही इसको चुन लें। सब प्रार्थनापत्र इसी के सामने आवें। यदि संयोग से दो ही पुरुष उम्मेदवार हों, तो किसी भी बात का झगड़ा नहीं है। यदि अधिक हों, तो यह समिति अपने बहुमत के अनुसार उम्मीदवारों की संख्या दो कर दे। इन्हीं दो उम्मीदवारों को मत माँगने की आज्ञा मिले। जब दो ही उम्मीदवार होंगे, तो १२,००० मत में से निर्वाचित प्रतिनिधि के अवश्य ही ६,००० से अधिक होंगे और अल्पमत दूर हो जायगा।

यह समिति या तो निर्वाचन के समय ही आवश्यकता पड़ने पर चुन ली जाय या स्थायी बना दी जाय। जब उसका सभासद त्यागपत्र दे दे या मर जाय, तो नया सभासद चुन लिया जाय। यदि और भी अधिक झगड़ों की आशंका हो, तो यह नियम बना दिया जाय कि समिति के सदस्य उम्मीदवार न बन सकें और यदि बनना चाहें, तो अपना त्यागपत्र दे दें।

(२) दूसरी विधि इस प्रकार हो सकती है कि समिति का निर्वाचन न किया जाय। यदि दो से अधिक उम्मीदवार हों, तो निर्वाचन दो बार किया जाय। पहले निर्वाचन में दो उम्मीदवारों को जो सबसे अधिक मत पावें, उम्मीदवार बनने की आज्ञा मिले। दूसरी बार जो निर्वाचन हो, उसमें जिसके सबसे अधिक वोट आवें, वही प्रतिनिधि चुना जाय।

मि० हेअर की स्कीम बड़ी जटिल है। इसमें सब मतदाताओं के पत्रों की गणना करनी पड़ती है और जितने उम्मीदवार खड़े हो रहे हों, उन सबके विषय में लोगों को समझाना पड़ेगा। भारतवर्ष के समान देश में जहाँ के मतदाता एक उम्मीदवार का पूरा नाम भी याद नहीं रख सकते, सैकड़ों की गिनती गिनना कठिन है। यदि यह हो भी जाय, तो बरसों प्रतिनिधियों का निश्चय होने में लगें। स्विट्ज़रलैंड या दक्षिणी अमेरिका की कुछ रियासतें, या म्यूनिसिपैलिटी का निर्वाचन ही मि० हेअर की स्कीम से हो सकता है, जहाँ पर थोड़े-से मतदाता हों। भारतवर्ष-ऐसे विशाल राज्य में जहाँ के मतदाताओं की संख्या कई करोड़ हो, यह विधि स्वप्नमेव रहेगी। विचारने और करने में एक बहुत बड़ा अंतर है और मि० हेअर की स्कीम का सर्वप्रिय न होना ही इस बात का बहुत भारी प्रमाण है कि उसमें गुण की अपेक्षा दोष अधिक हैं।

विश्वप्रकाश

× × ×

४. ऑरा या तेजस्

पुराने समय के राजा-महाराजा, ऋषि, अवतार अथवा महापुरुषों के चित्र व मूर्तियों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि हर एक के मस्तक के चहुँ ओर एक गोलाकार आलोक बना हुआ है। महात्मा बुद्ध की मूर्ति लंका में है। उसमें आलोक की किरणें साफ़-साफ़ दिखलाई गई हैं। अथर्ववेद व महाभारत में भी

इसका वर्णन पाया जाता है। इससे मालूम होता है कि आजकल ही नहीं, हज़ारों वर्षों से मनुष्यों में इस आलोक के होने पर विश्वास पाया जाता है। हर एक जाति के मनुष्य इसको किसी-न-किसी रूप में मानते रहे हैं। संस्कृत में इसे तेजस् कहते हैं। मुसलमान लोग इसे नूर कहते हैं। पश्चिमी विद्वान् इसे Magnetism, Personal magnetism, Animal magnetism, Aura अथवा Human electricity आदि अनेक नामों से पुकारते चले आते हैं। Bulwer Lytton ने इसको Vril कहा है। Evangelists ने अपने ग्रंथों में लिखा है कि Master याने गुरु से Virtue निकलकर बीमारों को तुरंत अच्छा कर देती है। यह ठीक है, क्योंकि Virtue, Virility आदि शब्द Latin के "Ver" शब्द से निकले हैं, जिसके मायने हैं "एक श्रेष्ठ पुरुष"। साधारण पुरुष को Latin में Homo कहते हैं। इससे भी साफ़ मालूम होता है, ये लोग भी Personl magnetism को मानते थे। अलावा इसके यह सर्वसाधारण के अनुभव की बात है कि किसी मनुष्य की प्रकृति, किसी की वाणी व किसी का मन इतना प्रभावशाली होता है कि लोग एकदम मोहित हो जाते हैं। Nepoleon, Burk, Swami Ram Tirth, Swami Viveka Nand आदि अनेक पुरुष ऐसे ही मुग्ध कर देनेवाले हो गए हैं। कई पुरुष ऐसे हैं कि उनके पास बैठने से सुख व शांति प्राप्त होती है। अनेक ऐसे हैं कि उनके पास बैठने से अशांति, दुःख, क्रोध, ईर्षा-द्वेष आदि बुरे विचार पैदा होते हैं। कई स्थान ऐसे हैं, जहाँ जाने से चित्त प्रसन्न व शांत हो जाता है और अनेक जगहें ऐसी हैं कि वहाँ जानेवाले को अशांति, डर व दुःख के भाव पैदा होते हैं। इन उपर्युक्त बातों पर विचार करने से साफ़-साफ़ समझ में आता है कि हर एक मनुष्य के अंदर व चहुँ ओर एक बहता हुआ सूक्ष्म पदार्थ का घेरा रहता है। यह घेरा साधारण मनुष्य के दो फ़ीट हर तरफ़ रहता है और इसका आलोक अंडाकार होता है। सिर्फ़ मनुष्य के ही नहीं, परंतु पशु, वनस्पति इत्यादि प्राणिमात्र अथवा सृष्टि के तमाम पदार्थों के भीतर-बाहर यह आलोक व्याप्त रहता है।

इसको दिव्य दृष्टिवाले याने Clairvoyant पुरुष प्रत्यक्ष रूप मे देख सकते हैं और इनको इसमें तरह-तरह के रंग दिखाई देते हैं। इसी पदार्थ के कारण आकर्षण-विकर्षण होते हैं, इसी तत्व के होने से एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है, इसी के द्वारा एक स्थान से दूसरी जगहवाले पुरुष के पास विचार भेजे जा सकते हैं, इसी से एक स्थानवाला दूरस्थ स्थानवाले का उपचार कर सकता है, यही प्रभावोत्पादक तत्व औरा, तेजस् आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है।

औरा निर्माण करना व प्रबल बनाना

विचार अत्यंत ही प्रबल शक्ति है। विचारों ही से हर एक वस्तु सूक्ष्म से स्थूल रूप में आती है। विचारों ही के प्रबल प्रभाव से औरा बनता है। परंतु औरा के निर्माण में हमारी इंद्रियों द्वारा सेवन किए गए खान, पान, श्रवण, दर्शन आदि विषयों की भी सहायता कुछ-न-कुछ अवश्य पहुँचती है। मनुष्य जैसे विषयों का सेवन करता है, वैसा ही उसका औरा बनता चला जाता है। औरा शुद्ध करने के लिये अथवा प्रबल बनाने के लिये पवित्र व प्रबल विचारों की अथवा नियमानुसार प्राणायाम की अत्यंत आवश्यकता है। पाश्चात्य विद्वानों के कथनानुसार सूचना Suggestions से भी औरा सुधारा जा सकता है। जो जैसा सोचता है, वह अवश्यमेव वैसा ही हो जाता है। विचारों की लहरें विद्युत् की लहरों से भी अधिक बलवती हैं। अतः जो सदा उन्नति, शांति, शक्ति, उत्साह, आनंद आदि के विचारों को अपने मन में हरा-भरा रखता है, उसका जीवन अधिकाधिक सुखी, शांत और शक्तिसंपन्न बनता जायगा। दूसरे के भेजे हुए बुरे विचारों से अपने को बचाने के लिये सदा प्रबल, पवित्र विचारों से अपने मन को पूर्ण रक्खो। इससे अपना औरा इतना प्रबल हो जाता है कि दूसरों के बुरे विचार कभी असर नहीं डाल सकते। बुरे विचार उसी अपवित्र आत्मा के पास वापस जायँगे, और उसी को उचित फल चखावेंगे, इसलिये अपने विचारों को सदा पवित्र रखना चाहिए।

औरा के नियम

(१) औरा अनेक रंग का होता है। इसका रंग मनुष्य की भावनाओं के अनुसार बराबर बदलता रहता है। सूक्ष्म दृष्टिवालों को रंग इस प्रकार दिखाई पड़ते हैं—

जो सदा सबके हित का ध्यान करता है और परहित के काम में लगा रहता है, उसका औरा शुद्ध उज्ज्वल रहता है। द्वेष, ईर्षा के भाववाले का औरा घने काले बादलों के रंग का दिखाई देता है। क्रोधी पुरुष के औरा में गहरे सुर्ख़ रंग की धारियाँ होती हैं। अगर क्रोध शुद्ध सात्विक है, तो रंग चमकदार होगा।

विद्वानों व बुद्धिमानों के औरा में पीला रंग होता है, लाभ की इच्छावाले के औरा में नारंगी रंग, प्रेम में किरमिजी, पवित्र प्रेम में चमकदार गुलाबी रंग, मज़हबी विचारवाले के नीला रंग, आध्यात्मिक शक्तिवाले के हलका नीला रंग, महान् पुरुषों के औरा में सफ़ेद चमकदार रंग और दुष्ट व अपवित्र मनुष्यों के औरा में काला रंग दिखाई पड़ता है।

(२) प्रत्येक मनुष्य अपने औरा का भला या बुरा प्रभाव दूसरों पर अवश्य डालता है। इसलिये अथर्ववेद में कहा गया है कि अमुक-अमुक बीमारीवाले पुरुष को दो हाथ से कम फ़ासले पर नहीं आने देना चाहिए, और इसी लिये दुष्टों की संगति की मनाही की गई है, और अच्छी संगति के लिये प्रशंसा की गई है। सर्वसाधारण के अनुभव में आता है कि जब एक क्रोधी एक शांत के पास आता है, तो उसका क्रोध सचमुच कम होने लगता है। बुरा मनुष्य अपने चहुँ ओर बुरे विचारों की लहरें पहुँचाता रहता है और अशांत अशांति की, जिससे सबको हानि उठानी पड़ती है। प्रेम, शांति, दया, आनंद व भक्ति के विचारों से चहुँ ओर शुद्धता फैलती है।

(३) सादृश्य-औरा में आकर्षण होता है, क्रोध के भाव होने से दूसरों के औरा से क्रोध के भाव खिंच आते हैं, जिससे क्रोध और अधिक बढ़ जाता है। जो पुरुष जैसा होता है, वह वैसा ही औरा अपनी तरफ़ खींचता रहता है और अपनी भावनाओं की उत्तरोत्तर वृद्धि करता रहता है। बुरे विचारवाला बुरा होता चला जाता है और अच्छे विचारवाला अच्छा। बुरे औरा के बढ़ने से दुष्ट, दुराचारी व अधर्मी पुरुषों की शक्ति बढ़ती है और धर्म दिन-ब-दिन घटती को पहुँचता चला जाता है। बुरे औरा के अधिक फैलने से Plague, Cholera Influenza आदि भयंकर बीमारियाँ फैलती हैं और आपस की कलह, वैमनस्य और युद्ध बढ़ते हैं। इनका नाश अच्छे औरा से हो सकता है। जो मनुष्य अहंकाररहित लोकहितार्थ निष्काम कर्म करते हैं, उनका औरा अत्यंत पवित्र होता है और मीलों दूर तक फैला रहता है।

औरा के भेद

औरा ७ तरह का होता है।

स्वास्थ्यतेजस् (Health Aura)—यह बिलकुल बेरंग होता है और यह असंख्य समानान्तर रेखाओं से बना हुआ होता है, जो सारे शरीर से बराबर बाहर निकलती रहती हैं। जब शरीर के किसी अंग में बीमारी फैलती है, तो उस अंग की लकीरें आड़ी-टेढ़ी व तितर-बितर हो जाती हैं और सारे शरीर की लकीरों में भी कुछ गड़बड़ हो जाती है।

प्राणतेजस् (Pranic Aura)—प्राण जब शरीर के भीतर सञ्चार करता रहता है, तब उसका रंग हलका नीला सफ़ेदी लिए होता है; परन्तु जब यह शरीर से बाहर आता है, तब इसका रंग-रूप ऐसा दिखाई पड़ता है, जैसी गर्मी के दिनों में गर्म ज़मीन से निकलती हुई हवा। इसी से Mesmerism के तमाम कार्य होते हैं। प्राण के सदा बहते रहने ही के कारण Health Aura की लकीरें सीधी व समानान्तर होती हैं। जब तक प्राण की धारा बराबर बहती रहती है और औरा की लकीरें समानान्तर रहती हैं, तब तक मनुष्य हर बीमारी से बचा रहता है; किंतु जब कभी कमज़ोरी, थकावट अथवा किसी घाव व किसी ज़्यादती के कारण शरीर में प्राण की अधिक आवश्यकता हो जाती है, तभी शरीर से बाहर निकलते हुए प्राण में फ़र्क़ पड़ जाता है और इस हालत में बीमारियों के कीटाणुओं से बचना मुश्किल हो जाता है। परन्तु प्रबल इच्छाशक्ति व नियमानुसार प्राणायाम के द्वारा शरीर के चहुँ ओर एक दीवार अपनी संरक्षा के लिये बनाई जा सकती है।

कामतेजस् (Kama Aura)—इसमें हर तरह की इच्छाएँ रहती हैं। इसी के द्वारा निद्रावस्था में महापुरुष अपने Astral शरीर में घूम-फिर सकते हैं। इसके रंग व रूप हर समय बदलते रहते हैं, लेकिन इनकी तसवीर आकाशतत्त्व में सदा के लिये बनी रहती है।

साधारण मनः तेजस् (Aura of the lower manas)—वे इच्छाएँ जो प्रबल हैं, अपना रंग

सदा के लिये मानसिक औरा पर चढ़ा देती हैं। अतः इसमें हर एक ममुष्य के पिछले जीवन की अच्छे व बुरे चरित्र की तस्वीरें दिव्य दृष्टिवाले देख सकते हैं। जब मनुष्य निद्रावस्था में स्थूल शरीर के बाहर चला जाता है, तब यही औरा साथ में जाता है। लेकिन इसके साथ कुछ हिस्सा तीसरे औरा का भी जाता है।

उच्च मनः तेजस् (Aura of the high manas)—यह बहुत ही सूक्ष्मतर तत्वों का बना होता है, और यह बहुत ही कम मनुष्यों में मिलता है। परंतु जहाँ भी मिलता है, यह बहुत ही सुंदरता से भरा होता है। वह बिलकुल ऐसा दिखाई पड़ता है कि मानो एक जीवित ज्योति हो। इसका शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता। यह उन्हीं तत्वों का बना होता है, जिनसे शरीर बनता है। कारण, शरीर एक जीवन है। एक जीवन से दूसरे जीवन में जाता रहता है और इसी कारण शरीर का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करने से मनुष्य की उन्नति की दशा ज्ञात होती है। यही शरीर है, जिसमें नया शरीर धारण करनेवाली आत्मा वास करती है।

इनका अस्तित्व संभव है, परन्तु इनके विषय में किसी विद्वान् व सूक्ष्मदर्शी ने आज तक कुछ प्रकाश नहीं डाला है।

मोहनलाल

बच्चों की ताक़त बढ़ानेवाली दवा

डोंगरे का बालामृत

इससे
बच्चों का बदन भरकर वज़न
बढ़ता है।

दाम फ़ी शीशी
चौदह आना
डा०-म० नौ आना

मालिक—
के० टी० डोंगरे कं०
गिरगाँव, बंबई

१४

संगीत और विनोद

[शब्दकार तथा स्वरकार—रायसाहब डाक्टर भोलादत्त काला]

भीम पलासी—ताल झप

स्थायी

ज्योति प्रकाश रहत घट-घट बीच, सतचित आनंद तोहि,
योगिंद्र ध्यावें तेरो ज्योति० ।

अंतरा

तु हि अजर तु हि अमर, निरगुण सगुण रूप ।
तोहि सिद्ध साधक अरु संत गावें तेरो ज्यो० ॥

संचारी

तु हि आदि तु हि अंत, तू एक तू अनंत ।
व्यापक अखिल लोक, तू एक भगवंत ॥

आभोग

अशरण शरण दीन पालक जगतईश ।
तोहि सुमिरि भवजीव, सुखशांति पावें तेरो ज्यो० ॥

स्थायी

×		२			०		३		
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
							म	ऽ	ऽ
							ते	ऽ	रो

नी	ऽ	सा	ऽ	म	ग	रे	सा	ऽ	ऽ
ज्यों	ऽ	ति	ऽ	प्र	का	ऽ	श	ऽ	र
नी	सा	ग	ऽ	म	प	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
ह	त	घ	ऽ	ट	घ	ट	बी	ऽ	च
नी	ऽ	ऽ	ऽ	ध	सां	नी	ध	ऽ	प
ल	त	चि	त	आ	नं	द	तों	ऽ	हि
म	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ग	प	म	ऽ	ऽ
यों	ऽ	गिं	ऽ	द्र	ध्या	वें	तें	ऽ	रो

अंतरा

प	ऽ	ग	ऽ	म	प	नी	सां	ऽ	ऽ
तु	हि	अ	ज	र	तु	हि	अ	म	र
नी	सां	नी	रें	सां	नी	ध	प	ऽ	ऽ
नि	र	गु	ण	स	गु	ण	रू	ऽ	प
प	मं	गं	रें	सां	नी	ध	प	ऽ	ऽ
तों	हि	सि	ऽ	द्ध	सा	ऽ	ध	ऽ	क
म	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ग	प	म	ऽ	ऽ
अ	रु	सं	ऽ	त	गा	वें	तें	ऽ	रो

संचारी

सा	प	ऽ	ऽ	ऽ	नी	ध	प	ऽ	ऽ
तु	हि	आ	ऽ	दि	तु	हि	अं	ऽ	त
नी	सां	नी	रें	सां	नी	ध	प	ऽ	ऽ
तू	ऽ	ए	ऽ	क	तू	अ	नं	ऽ	त
नी	ऽ	ध	ऽ	प	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
ध्या	ऽ	प	क	अ	खि	ल	लों	ऽ	क
ग	म	प	नी	सां	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
तू	ऽ	ए	ऽ	क	भ	ग	वं	ऽ	त

आभोग

प	ऽ	ग	ऽ	म	प	नी	सां	ऽ	ऽ
अ	श	र	ण	श	र	ण	दी	ऽ	त
नी	सां	नी	रें	सां	नी	ध	प	ऽ	ऽ
पा	ऽ	ल	क	ज	ग	त	ई	ऽ	श
प	मं	गं	रें	सां	नी	ध	प	ऽ	ऽ
तों	हि	सु	मि	रि	भ	व	जी	ऽ	व
म	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ग	प	म	ऽ	ऽ
सु	ख	शां	ऽ	ति	पा	वें	ते	ऽ	रो
नी									
ज्यों									

इस रागिनी का ध्यान इस प्रकार है—

वीणां दधाना कमलायताक्षी गम्भीरनादा सुरपुष्पगन्धी।
कलामयी सा कमनीयमूर्त्तिः भीमापलासी कथिता मुनीन्द्रैः॥

उत्पत्ति

धनाश्री धानिसंयुक्ता वागीश्वरीसुमिश्रिता।
भीमापलासी जायेत करुणारौद्रसंयुता॥

अंशन्यासादि

पञ्चमांशग्रहन्यासं ऋषभो वर्जितस्वरः।
षाडवास्तु सुविज्ञेया सुष्ठु भीमपलासिका॥

यह रागिनी मालकोश की पुत्रवधू कही गई है। प्राचीन काल में जैसा ऊपर कहा गया है, यह खाडव दो प्रकार मानी जाती थी। अब यह औडव संपूर्ण रूप में गाई जाती है। इसके आरोही में रि० धै० वर्जित है। अवरोही संपूर्ण है। प्रचलित संगीतपद्धति के अनुसार यह काफ़ी ठाट में गिनी गइ है। कतिपय संगीतज्ञ इसे भैरवी ठाट की रागिनी मानते हैं। इसका वादी स्वर कोई पंचम और कोई मध्यम मानते हैं। चूँकि भैरवी का वादी स्वर मध्यम और काफ़ी का पंचम है, इसलिये दोनों प्रकार के रूप का वादी स्वर भी पृथक्-पृथक् माना गया है। प्रचार में दोनों प्रकार देखने में आते हैं। दोनों रूप अत्यंत मधुर हैं। काफ़ी प्रकार में ग० नि० और भैरवी में रि० ग० ध० नी० कोमल हैं। इसके गाने का समय दिवा तृतीय पहर है। विशेषतः इसमें करुणा और रौद्ररस की चीज़ें गाई जाती हैं। ऊपर्युक्त पद काफ़ी ठाट पर है।

× × ×

२. रसीली रसना

(१)

पावन-उज्ज्वल-वर्ण और जो हैं स्वधर्म में दृढ़ भरपूर—
ऐसे श्रेष्ठ द्विजों[1] से तेरा रहा सीख लेना तो दूर—
उलटा तू उनसे करती है महा-शत्रु का-सा बरताव;
अरे जीभ ! तू क्यों रखती है अपना ऐसा दुष्ट-स्वभाव ?

(२)

स्वयं रसों का अनुभव करके, विघ्न काम[2] में उनके डाल—
और उन्हें ही निर्दय[3] कहकर बनती है तू उनका काल।
देख, रसों में डूब-डूब वे कभी न होते उनमें लीन—
किंतु लिप्त तू हो जाती है जिह्वा[4] ! क्यों है ऐसी हीन ?

(३)

वेदों का उच्चारण कर तू कहलाती अज्ञान महान !
और सदा नीरस ही रहती सभी रसों की कर पहचान !
निर्दोषी को दोषी कहती कटु वचनों के मार प्रहार—
झूठ बोलती, उसे छिपाती द्वेष-कलह का बन आधार !

---

[1] दाँत, [2] चर्वण-कार्य, [3] दाँतों के बीच में ख़ुद आकर, [4] संस्कृत में जिह्वे।

(४)

एक स्थान पर स्थित होकर भी है तू अस्थिरता की खान ?..
लक्ष्मी से भी चपल और तू वाणी से वाचाल महान !
मतवाले मन की भी दासी जगत-रसों की प्यासी और—
ऐसी तू है, नरक-बीच भी है न कहीं मिलने को ठौर ॥

(५)

तू मेरी इस सही बात को सदा सर्वदा रखना याद—
रसना ! तू रसना न बनेगी बिना लिए उस रस का स्वाद—
जिसका पावन-आदि धाम है राम-श्याम का नाम-ललाम—
जिसको बड़ी भक्ति से भजते कामवाम[1] भी आठों याम ॥

कुँअर प्रतापनारायण

---

[1] कामदेव के वैरी महादेव ।

उन देश-प्रेमियों के लिए

जिनके हृदय में देशोद्धार में भाग लेने की उत्कट अभिलाषा है, परंतु शारीरिक अवस्था किसी रोग, आलस्य या निर्बलता के कारण मजबूर है—हमने यह निश्चय किया है कि वह रोग का तमाम विवरण (जो गुप्त रक्खा जायगा) स्पष्ट लिख दें। हम उनकी चिकित्सा बिना शुल्क करेंगे ।

स्वस्थ सज्जन आरोग्य रहने के नियम मँगा लें।
बिना मूल्य

चिकित्सा-विभाग
श्रीधन्वन्तरि-कार्यालय
विजयगढ़ (अलीगढ़)

सूचना

इँगलिश सीखने की अभिलाषा है ?

तो घर बैठे, डाक द्वारा सिखानेवाले इस आफ़िस के नियम मँगाइए या माधुरी के इस वर्ष के प्रथम अंक पृष्ठ ३४६ पर देखिए !

अँगरेज़ी शिक्षक आफ़िस
विजयगढ़,
अलीगढ़ ।

तार का पता—"गोल[illegible]" कलकत्ता टेलीफोन नं०—बड़ा बाज़ार १५६०, कलकत्ता

सोना, चाँदी और जवाहरात के ज़ेवरों का

अपूर्व संग्रह-स्थान

"इस प्रतिष्ठित फ़र्म के संचालकों से हमारा पूर्ण परिचय है। यहाँ किसी प्रकार का धोखा होगा, इस बात का स्वप्न में भी भय न करना चाहिए। सारा काम संचालकों की देखभाल में सुंदर और ईमानदारी से होता है: हमें इसका पूर्ण विश्वास है।"

—संपादक 'चाँद'

सोना, पुखराज और इमीटेसन मानिक की बहुत सस्ती नाक की कील हमारे यहाँ मिलेगी।

सोने चाँदी का हरएक क़िस्म का ज़ेवर हमारे यहाँ तैयार रहता है और आर्डर देने से बहुत शीघ्र इच्छानुसार बना दिया जाता है!

हीरे-पन्ने, मोती-मानिक की हरएक चीज़ हमारे यहाँ तैयार मिलेगी नमूना-सूची मँगा कर देखिए!

हरएक क़िस्म के चाँदी के बर्तन और चाँदी की फ़ैंसी चीज़ें हमारी नोवेल्टी है।

पता——मुरारजी-गोविंदजी जौहरी, १५६, हैरिसन रोड, कलकत्ता

२०

नोट—कृपया अब सूचीपत्र न माँगें क्योंकि अब स्टॉक में नहीं रहा।

गुन न हिरानो गुनगाहक हिरानो है।

आजकल इस असार संसार में विज्ञापनबाजी द्वारा ही प्रायः लोगों ने अपनी जीविका-निर्वाह का एक ढंग निकाल रक्खा है और सब एक से एक अपनी वस्तु को उत्तम और गुणदायक बतला कर प्रशंसा का पुल बाँधा करते हैं। ऐसे समय में बिचारे भोले-भाले ग्राहकों का अनुमान करना भी कठिन हो जाता है कि किस की वस्तु अच्छी है और किस की बुरी। अपनी वस्तु को कोई बुरा नहीं कहता यह दुनियाँ की रीति है और इसी प्रकार हम भी अपनी वस्तुओं की प्रशंसा करते हैं। परंतु आप हमारी बातों पर मत जाइए! अपने गाँव, टोला और मुहल्ले के इष्ट मित्रों से पूछिए! जिस घर या गाँव में हमारा ४२ वर्षों का परीक्षित

ब्रह्मशक्ति

पहुँच गया है या जो लोग एक बार इसका सेवन कर चुके हैं वे स्वतः इसकी प्रशंसा करेंगे। यहाँ तक देखा गया कि जिसने एक बार ब्रह्मशक्ति को सफल पाया वह सदा के लिये इसका मित्र बन गया। कारण सरल और स्पष्ट कवि के शब्दों में ऊपर दिया गया है।

ब्रह्मशक्ति अद्भुत शक्ति देनेवाली उत्तमोत्तम औषधियों से विधि के अनुसार क्रियाकुशलता से प्रस्तुत की गई है। चाहे जिस कारण मनुष्य कैसा ही निर्वीर्य क्यों न हुआ हो ब्रह्मशक्ति तो अपना गुण दिखला ही देती है। सर्वांग शिथिल मनुष्य को हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ बनाकर बुढ़ापे में नई जवानी का अपार आनन्द अनुभव करा देती है। स्वप्नदोष, वीर्य-स्राव, मूत्राघात पेशाब और दस्त के समय वीर्य स्खलित होना इत्यादि वीर्यसंबंधी सब रोग नष्ट होते हैं। निराशा को नाश करने की इच्छा हो तो ब्रह्मशक्ति को एक बार अवश्य आजमाइए। नीचे दिए हुए प्रशंसापत्रों से, हमें आशा है, आप यह मालूम कर सकेंगे कि व्यवहारकर्ताओं को इसका गुण कहाँ तक प्रतीत हुआ है:—

१. सोहनपुर ड्योढ़ी पो० रूपौली (पुर्णिया) से सत्यनिष्ठ, धर्मपरायण, ब्राह्मण और ज़मींदारों के मुखोज्ज्वलकारी श्रीयुत पलकधारीसिंहजी लिखते हैं:—"मैंने आपका विज्ञापन देखकर अनुमानतः एक मास हुआ एक शीशी ब्रह्मशक्ति मँगवाई थी। फलतः औषधि ने अनुपम गुण दिखाया, इसीलिये फिर भी आपके यहाँ एक शीशी ब्रह्मशक्ति के लिये लिखता हूँ। कृपया लौटती डाक से दवा भेजकर कृतार्थ करें।"

२. नामली से सरस्वती के वर पुत्र, सदाशय, स्वदेशप्रेमी, महामहिमान्वित श्रीपन्नालाल व्यास महोदय के शब्द हैं:—"इस लेखनी में इतनी शक्ति नहीं कि ब्रह्मशक्ति औषधि के गुणों की प्रशंसा करूँ। यद्यपि मैंने अभी एक ही शीशी उपयोग में ली है किंतु इस महौषधि ने अपने अपूर्व गुणों का इतने कमती समय में अद्भुत चमत्कार बतलाया कि मुझे आपको और १ शीशी भेजने के लिये कष्ट देना पड़ा-इसके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ। कृपया लौटती डाक से एक शीशी ब्रह्मशक्ति की और भेजें।" मूल्य १ शीशी ३।=), २ शीशी ६=), ३ शीशी ८।=), ४ शीशी १०), ६ शीशी १४॥) और १२ शीशी २७॥) डाकव्यय सहित है।

स्त्रियों का प्रदर, गर्भपात, प्रसूति रोग आदि महाव्याधियों से बचने के लिये

अशोकरसायन

मँगवाइए यह दवा स्त्रियों की सब प्रकार की बीमारियों के लिये अक्सीर है। स्त्रियों की कोई भी बीमारी जैसे कि श्वेत व रक्त प्रदर में स्राव होना, धातु का जाना, शरीर सूख जाना, मूत्र-मार्ग की जलन हो, हाथ-पाँव के तले किंवा कमर में मस्तक में या छाती में शूल, शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में कलतर होती हो, जीर्णज्वर रहा करता हो, रक्त गुल्म हो, शरीर सूख रहा हो, अशक्ति हो, कार्य करने में जी न लगता हो, ज्वर, खाँसी, दम, पेट का दर्द, सोजा, वमन, होस्टीरिया, अरुचि, रक्त का पानी हो जाना, मासिकधर्म—संतानसंबंधी व्याधियाँ, गर्भाशय की पीड़ा, बारंबार गर्भपात होना, सूखा रोग, प्रभृति किसी प्रकार की बीमारी हो उसका नाश करना यही इस दवा का काम है। प्रजा न होती हो तो प्रजा होती है शरीर पुष्ट होता है व दस्तान-संबंधी कोई शिकायत नहीं रहती। साथ ही गर्भाशय को गर्भ धारण करने योग्य पुष्ट बनाती है। पीने में स्वादिष्ट है। मूल्य १ बोतल ३।=), २ बोतल ६=), ३ बोतल ८।=), ४ बोतल १०), ६ बोतल १४॥) और १२ बोतल २७॥) डाकव्यय सहित है।

श्रीमती छोटी बहू साहिबा, तारामती देवीजी धर्मपत्नी के०एल०जी०एस० माफ़ीदार, स्टेट बिंद्रा, नवागढ़ राजमहल गिरियाबंद, ज़िला रायपुर सी० पी० से लिखती हैं:—"आपके औषधालय का अशोकरसायन मैंने अपनी एक रोगी बहिन को परीक्षार्थ सेवन करवाया। सचमुच वह स्त्रियों के प्रदर, लोहि व गर्भाशय के शोथ प्रभृति रोग पर अत्यंत उपयोगी व चमत्कारिक सिद्ध हुई। अतएव कृपापूर्वक ३ शीशी और भेजने का कष्ट उठावें।"

पता—बा० शंकरसिंह, प्रोप्राइटर, सत्य सुख संचारक ब्रह्मशक्ति कंपनी,

पोस्ट बहरामघाट (बाराबंकी) ब्रांच श्रीरामरोड, लखनऊ।

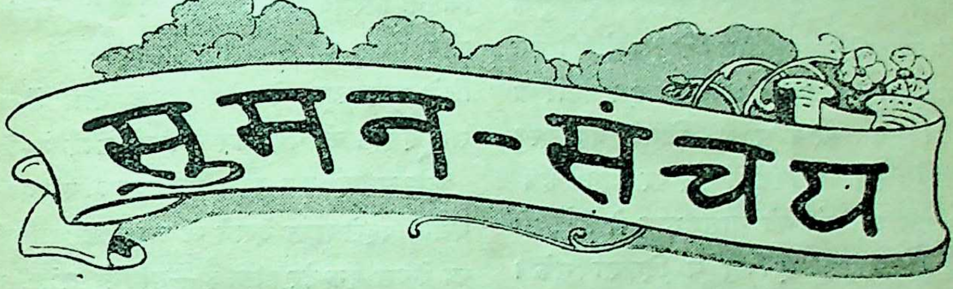

सुमन-संचय

१. सम्भव है, प्रयोगशाला प्राण पैदा कर सके ।

बहुत वर्ष नहीं गुज़रे जब यह विचार कि मनुष्य कभी जीवधारी वस्तुओं के द्रव्य को दुहराने में सफल-मनोरथ होगा या नहीं, बिल्कुल गुमान से भरा हुआ और असम्भव समझा जाता था । फिर भी आज प्रयोगशाला में रसायनज्ञों द्वारा जीवित अवयवों में पाए जानेवाले बहुत-से ऐन्द्रिक सम्मेलन, जैसे मौत्रिक (Urea), माड़ी, शकर तथा बहु संख्यक और पदार्थ, वास्तव में निर्मित किए गए हैं । ऐसी कोई बात—जैसे पदार्थों की सांश्लेषिक उत्पत्ति जो हम लोगों के शरीरों की बनावट में हुआ करती है—पर्याप्त निपुणता और ज्ञान के होने से नितान्त सम्भव जान पड़ती है ।

हम पूछ सकते हैं—तो फिर क्यों नहीं रसायनज्ञ अथवा भौतिकज्ञ एक क़दम और आगे बढ़ सकते हैं और जीवन को स्वयं पैदा कर सकते हैं ?

सृष्टि की एक ऐसी दुष्प्राप्ति को सम्भाव्य कहने से इनकार करने के स्थान में मुझे कहना चाहिए कि ऐसा संभव (Probable) है । वास्तव में ऐन्द्रिक रसायन के विद्यार्थी और जीव-रसायनज्ञ—जो जीवन के मौलिक पदार्थ का अध्ययन करते हैं जिसको हम आदि-पंक कहते हैं—आज हमको बतलाते हैं कि यदि वे प्रयोगशाला में ऐन्द्रिक सम्मेलनों के निर्माण को विस्तृत करने का प्रयत्न यहाँ तक कर सकें कि हमको आदिपंक का एक ढेर मिल जाय, और वे उसके साथ उचित व्यवहार करने में समर्थ हो जायँ, तो वे इससे प्राणशक्ति दिखलाने की आशा करेंगे और जीवन की एक या दूसरी निकृष्ट जातियों को प्रकट करनेवाला समझेंगे ।

किसी-न-किसी दृष्टिकोण से मैं इस साध्य को न केवल युक्तियुक्त समझता हूँ वरन् सम्भव समझता हूँ। कारण स्पष्ट है । यह एक असंदिग्ध बात है कि हमारा ग्रह एक समय गले हुए पदार्थ या चमकती हुई गैस का भी एक ढेर था, जिसमें जीवन, जैसा हम उसको जानते हैं, असम्भव था । तथापि हम जानते हैं कि जीवधारी वस्तुएँ इस ग्रह पर प्रकटित हुई हैं । अतः हमको मान लेना चाहिए कि इसी प्रकार की कोई बात भूतकाल में हुई होगी—उचित प्रकार से तैयार किए हुए पदार्थ या

आदिपंक में जीवन का कोई प्रथम प्रकटीकरण । और भूतकाल में जो कुछ हुआ है, वर्तमान काल में भी हो रहा होगा तथा भविष्य का मनुष्य उसको चिंत्यरूप से अधिकतर समझ और सँभाल सकता है ।

इसके प्रथम कि मनुष्य उस तथा दूसरे आश्चर्यजनक लक्ष्यों को दुष्प्राप्त करने की आशा कर सके, किसी प्रकार भी हमको जीवन और जिन अप्राणि-वस्तुओं को हम भूत कहते हैं उनके साथ उसके संबंधों के विस्मय का अपना ज्ञान और बोध अत्यधिक बढ़ाना चाहिए ।

प्रथम जीवन की तुच्छतर मूर्तियों पर विचार करो । एक जीव या प्रत्येक जीवन गोलक, ऐसा मालूम होता है, स्वयं सहत्संख्यक परमाणुओं का बना हुआ है । इन परमाणुओं में से प्रत्येक अब एक वैद्युतीय हृद्‌बिंदु के परितः परिभ्रमण करते हुए बारीक विद्युत्कणों की एक संहति मालूम होता है । उन्होंने अपने को इस प्रकार के जटिल अणु में संहत कर रक्खा है, जिससे वह वस्तु बनती है, जिसको हम आदिपंक के तौर पर जानते हैं ।

यदि हम इस आदिपंक को नाशकभाव से छेड़ें, तो सम्भवतः यह जीवन के कोई चिह्न न दिखला सके । इसके प्रतिकूल यदि हम इसकी सुचारु रूप से रक्षा करें, तो बीज अँखुआएगा, उसमें कलियाँ खिलेंगी और तन्मात्रीय जगत् के अवशेष से अणुओं और शक्ति को तब तक सञ्चित करता जायगा, जब तक वह एक पौदे या प्राणी का प्रौढ़ और सुंदर साँचा न बना लेगा; और उतने ही आश्चर्य के साथ वह इस प्रणाली को पिण्ड-प्रति-पिण्ड विना सीमा के चला सकता है ।

तो भी बीज या जीवाणु की कितनी ही परीक्षा करने से वह अपनी प्राणशक्ति को न मालूम होने देगा । इसके अन्तर्गत कोई अपने को न बतलानेवाली वस्तु है, जो न केवल इसको विदेशी पदार्थ से साँचा बनाने में समर्थ करती है, बरन् उस पदार्थ को इस प्रकार अपने अधिकार में रखती है कि उससे एक नियत आकार और विशिष्ट नमूने का साँचा खड़ा हो जाता है—जैसे कोई कारीगर शिल्पकारी के एक नियत आकार का एक बड़ा महल बना सकता है ।

यह आकार किस प्रकार का होगा, यह बात उसको बनानेवाली तन्मात्रीय वस्तुओं पर ही बिलकुल निर्भर नहीं है, बरन् सर्वभाव से भीतर रहनेवाली प्राणशक्ति पर निर्भर है, जिसकी तन्मात्र केवल गाड़ी है ।

जीवन या प्राणशक्ति के इस प्रकटीकरण का विनाश करना बहुत सरल है । आज हम इसके फूलने-फलने में सहायता करना या इसकी अवनति करना जानते हैं । परन्तु हम इसका और कोई दूसरा वशीकरण और कोई वास्तविक बोध नहीं रखते । जीवन का सत हमसे परे है । हम नहीं जानते, यह कहाँ से आता है और (न यह कि) किधर जाता है । यहाँ तक हमारा वर्तमान ज्ञान है । कोई जीवन विना पूर्व जीवन के नहीं होता, जो एक जीवाणु से दूसरे जीवाणु को मिलता रहता है ।

इस बात के जानने के लिये कि जीवन का कार्य कितना विस्मयकारक है, हमको केवल अपने आसपास के जीवधारियों का समीक्षण करना चाहिए । उदाहरण के लिये शाहबलूत के केवल एक बीज में शाहबलूत के सम्पूर्ण वन को पैदा कर देने की शक्ति उपस्थित है ।

कुछ सप्ताहों तक गरम किया हुआ चिड़िया का अण्डा—यद्यपि पहलेपहल देखने में अनुत्पन्न आदिपंकीय पदार्थ का केवल एक ढेर होता है—हड्डियों, मांस, नाड़ीसम्प्रदाय और आँखों-सहित परदार जानवर में परिणत हो सकता है—जो अपने आप ही निकल सकता है, खा सकता है, और खड़ा होकर विचारपूर्वक चोंच मार सकता है । शायद वह केवल एक उत्पत्तियंत्र (Incubator) में सेया गया है और तुच्छ प्रोटोजोअन (Protozoan) या अमीबा (Ameba) की गतियाँ भी, जब कि वह रेंगता और भोजन खींचता है, बढ़ता, अवांतरविभक्त होता और संख्या बढ़ाता है, किसी ऐसी वस्तु से अधिकतर हैं जिसका हम तन्मात्र के गुणों के रूप में वर्णन कर सकें ।

जब हम जीवन की उच्चतर श्रेणियों और विशेष करके स्वयं मनुष्य की ओर निगाह दौड़ाते हैं, तो प्राण-शक्ति की विस्मिति बढ़ जाती है ; क्योंकि यहाँ हम मन (आत्मा) के प्रकटीकरण पर पहुँचते हैं ।

मैं प्राण और मन में कोई मौलिक भेद नहीं देखता, यद्यपि मन में अपनी विज्ञप्ति होती है, और प्राण में प्रायः वह नहीं होती । मैं प्राण को मन की अपरिपक्व दशा मानता हूँ, और मन को प्राण का विज्ञप्त शिखर । ऐसा कहना चाहिए कि वे एक ही वस्तु हैं, परन्तु विकास का

भिन्न-भिन्न दशाओं में कोई भी जटिल तन्मात्रीय वस्तु का केवल विकार नहीं है ।

हमारा शारीरिक यंत्र केवल पुट्ठों का ही नहीं बना हुआ है, जिनके द्वारा हम बाह्य जगत् पर कार्य करते हों, वरन् इसमें एक और नाड़ीसम्प्रदाय है, जो इन पुट्ठों को वश में रखता और उन्हें काम में लाता है तथा हमारी ज्ञानेन्द्रियों से प्रतिपत्ति प्राप्त करता है । तथापि मस्तिष्क (Brain) केवल मुख्य साधन है, जिसको मन या प्राण प्रयोग में लाता है, और जिसके द्वारा सब अवशिष्ट पूरा किया जाता है। यदि मस्तिष्क को चोट पहुँचती है या वह क्रमहीन हो जाता है, तो प्राण का विकास अपूर्ण हो जाता है या सम्भवतः बिलकुल बंद हो जाता है। इस ज्ञात तथ्य ने कुछ लोगों से कहलाया है कि मन की मस्तिष्क से पृथक् कोई सत्ता नहीं है—यह कि मस्तिष्क मन का इतना साधन नहीं है, जितना वह स्वयं मन है और यह कि जब मस्तिष्क विनष्ट कर दिया जाता है, तो मन भी विनष्ट हो जाता है ।

यह सारांश कभी नहीं निकलता । वास्तव में, यह सब दृष्टांतों के प्रतिकूल है। मस्तिष्क की एक अच्छी परीक्षा से विचार का अर्थ समझ में नहीं आ सकता, यद्यपि इससे हमको यह यंत्र-जाल मालूम हो जायगा जिससे विचार उस तन्मात्रीय रूप में पुनरुत्पन्न होता है, जिसको हम मालूम कर सकते हैं। किसी संगीत-मंदिर के बाजों या बेला के तारों की परीक्षा से अनुप्रास या ध्वनि कभी नहीं मिलेगी ; तो भी ये बाजे उसकी पुनरुत्पत्ति या प्रकटीकरण के लिये आवश्यक हैं । बाँसुरी के अंतर्भाग में घूमनेवाला एक जंगली संगीत के बोध के समीप बिलकुल नहीं होगा; और न वह अपने मार्ग में खण्डे को हिलाकर संगीत को विनष्ट ही कर सकता है, यद्यपि वह औरों को उसकी प्राप्ति से अवश्य वंचित कर सकता है। इसी प्रकार यदि हम मस्तिष्क के अणुओं में प्रचलित रीतियों को देख भी लें, तो ताल अवश्य रुचिकर होगा ; परंतु संगीत-मंदिर में संगीतनायक और बेला बजानेवालों की गतियों को ही केवल देखने की अपेक्षा हमको कोई अधिकतर ज्ञान न प्राप्त होगा ।

तो फिर जो मन या प्राण या प्राणशक्ति, यद्यपि प्रकट में तन्मात्रीय वस्तु से भिन्न है, तन्मात्र के साथ घनिष्ठ आघात करती है, और इन्हीं आघातों से अपने को प्रकट करती और अपने मनोरथों को दुष्प्राप्त करती है, उस सर्ववंश मन या प्राण या प्राणशक्ति की गूढ़ रीतियों का अन्वेषण हम कैसे करेंगे ?

प्रत्येक जन जानता है कि तन्मात्र भौतिक संसार को भी पूरा नहीं कर पाता । आकाश को या जो कुछ भी उसका पर्याय हो, काम में लाना पड़ेगा, यद्यपि यह और सब तन्मात्र पर वस्तुएँ—जैसे सौंदर्य, बुद्धि, अधि-स्पृहा, श्रद्धा, आशा, प्रेम—हमको अपने तन्मात्रीय संगति ही से ज्ञात हैं । उदाहरण के लिये हमने अन्विष्ट किया है कि प्रकाश एक आकाशीय अभीरण है; परंतु जो कुछ हम देखते हैं वह स्वयं प्रकाश नहीं है, वरन् वह तन्मात्रीय वस्तुएँ हैं, जिन पर वह गिरता है ।

यदि आकाश संस्थापित है, जैसा कि मैं समझता हूँ कि वह है, तो उसे महाशक्ति का स्थान होना चाहिए, वह शक्ति आवश्यकतया अनंत नहीं होनी चाहिए। परंतु जिस शक्ति का हमें कुछ भी ज्ञान है, उस सब शक्ति से परे अवश्य हो । वह तमाम शक्तियाँ जिनका हम तन्मात्र में अनुभव करते हैं, आकाशीय शक्ति का केवल एक छोटा और बचा हुआ अंश हैं—उस आकाश शक्ति का जिसका वे एक निर्बल प्रकटीकरण हैं ।

मेरा विमर्श है कि इस सोमाक्रांत आकाश को, जो इस प्रकार शक्ति से भरा हुआ है, प्रत्येक स्थान पर कोई वस्तु प्रयोग में लाती है और इसमें व्याप्त भी है, उस वस्तु को हम प्राण और उच्च श्रेणी में मन कह सकते हैं; और यह कि वह आदर्श का घर है, और सब प्राण और आत्मा जिसका हमको ज्ञान है, इस वास्तविकता का केवल एक छोटा अंश है ।

मैं आकाश को इस महा मन की सवारी या भौतिक साधन समझता हूँ । हो सकता है कि आत्मा एक सुष्ठुतर पद है। वह आत्मा प्रत्येक वस्तु में व्यापक और व्याप्त है, वह वस्तुओं के दृश्य और स्पृश्य साँचे को वश में, और स्थित रखता है और उसी ने इन साँचों को सत्ता का रूप दिया है ।

मुझे यह धीरे-धीरे विश्वास हो गया है कि भौतिक आकाश अक्षरशः और भौतिकतया प्राण और मन (आत्मा, Mind) द्वारा वक्रसर्पण कर रहा है अथवा नाड़ी की भाँति चल रहा है । यह ऐसा है मानो

हम इसको जीवन का एक बड़ा भारी आगार समझते हैं, जिसमें से पृथक् वैयक्तिक अंश समय-समय पर वैसे ही खींचे जा सकते हैं जैसे किसी गोदाम के कच्चे माल के भण्डारे में से । जीवन वास्तव में उत्पन्न नहीं होता, परंतु तन्मात्र (प्रकृति) के जाल में फँस जाता है । और इसलिये, सम्भवतः या कुछ शताब्दियों के पश्चात्, हमारे लिये यह सम्भव हो सकता है कि हम एक कार्यक्षम जाल बना सकें और इस प्रकार अन्यतया शुद्ध आकाशीय जीवन को एक तन्मात्रीय (प्राकृतिक) निवास-स्थान दे सकें ।

मैं जानता हूँ, बहुत से लोग ऐसे निगमन से भयभीत होंगे । वे कहेंगे कि जीवन की उत्पत्ति के लिये ऐसा स्वयंकृत यत्न संसार से एक यत्नशील और उत्पादक मन (आत्मा) की आवश्यकता को निराकृत कर देगा, और इसलिये किन्हीं गहरे तौर पर गड़े हुए निसर्गों और धार्मिक विचारों के साथ सुयोग न हो सकेगा । ये भय मुझे युक्तिशून्य ज्ञात होते हैं । जिस रीति को हमने प्रयोगशाला में किसी दिन सम्भाव्य माना है, वह निस्संदेह स्वयंकृत रीति बिलकुल नहीं है । जो रसायनज्ञ भविष्य में आदिपंक (Protoplasm) के निर्माण और उसकी प्राणप्रतिष्ठा करने का अन्वेषण करेगा, वह स्वयं कोई स्वयंकृत यंत्र नहीं है । निस्संदेह वह ज्ञान, यत्न और संकल्प से भरा हुआ है, और बोध और अभिप्रायों से भरे हुए कार्यों को कर रहा है । इसलिये जीवन, जब वह प्रकट होता है, विना प्राथमिक जीवन के नहीं प्रकट हो सकता । जो रसायनज्ञ अथवा भौतिकज्ञ इसको करेगा, वह जीवित होगा और किसी बलवान् मन के कर्तृत्व से ही इसको संकल्पित और परिपूर्ण कर सकेगा । घटना ऊटपटाँग रीति से या विना विचार के न हो सकेगी । रीति में कोई ऐसी बात नहीं है, जिसका अपवाद किया जाय, बरन् इसका धार्मिक लोग भी स्वागत करेंगे, केवल इस बात के दिखलाने के लिये कि वास्तविक सत्ता की कोई नक़ल पैदा करने के लिये कितने विचार की आवश्कता है । यदि हम बुद्धिमान् हैं, तो हम ज्ञान की किसी उन्नति से भयभीत नहीं होंगे । हम विज्ञान की दुष्प्राप्तियों का विरोध या अवरोध कभी नहीं करेंगे ।

संप्रति कुछ लोग ऐसे हैं जो यह कहने की कोशिश करेंगे कि आकाश सत्तावान् नहीं है, और यह कि तन्मात्रिक शरीर (Organism) की संगति के अतिरिक्त जीवन और मन की सत्ता को सोचना एक अन्धकार-गमन है । किंतु वे यह नहीं देखते कि वास्तविक अनोखी बात यह है कि जीवन और मन तन्मात्र की संगति में क्योंकर आए । वे थोड़ी देर के लिये यह भी नहीं मानते कि वे किसी नित्य वस्तु के अवतार हैं जो तन्मात्रिक नहीं है । और वे सत्ता की किसी दूसरी प्रकार की सम्भावना से इनकार करते हैं ।

सत्यता यह है कि सत्ता का केवल अवशेष या तारतम्य, जब उचित दृष्टिकोण से देखा जाता है, अनिवार्य मानना पड़ेगा । केवल सविवेक प्रश्न वैयक्तिक अवशेष की बाबत है । और वह प्रश्न उन सत्य घटनाओं की जाँच-पड़ताल द्वारा हल किया जा सकता है, जो घटनाएँ अधिक-से-अधिक हमारे मनोयोग पर धीरे-धीरे बलात्कार रूप से आ रही हैं, परन्तु जिन घटनाओं को अब भी प्राचीन प्रथावलम्बी विज्ञानों में से कोई भी न तो स्वीकार करता है और न उनका अध्ययन करता है । वास्तव में, वे इतने सरल, इतने अविभाज्य और दैनिक जीवन के साधारण अनुभवों के इतने समान हैं कि वैज्ञानिक वेधकों का बहुमत उनको रुचिकर नहीं कह सकता, और इसलिये यद्यपि सरल व्यक्ति उनको अंशतः समझता है, तो भी इन सत्य घटनाओं की साधारणतः वे लोग परवा नहीं करते, जो अपने तईं बुध और चतुर समझते हैं ।*

दुर्गाप्रसाद मिश्र

× × ×

२. भारतीय वर्णमाला का समस्या

भारतवर्ष की कई प्रधान भाषाएँ दिन-प्रतिदिन उन्नति कर रही हैं । उर्दू, हिन्दी और बँगला आदि थोड़े ही दिनों में शक्तिशाली भाषा के रूप में परिणत हो गई हैं । किन्तु इन सब भाषाओं की वर्णमाला वैसी अच्छी नहीं जँचती । भाषा को अच्छी बनाने के लिये तो पाण्डित्य की आवश्यकता है, पर वर्णमाला का

---

* दी पापुलर साइंस मंथली से माडर्नरिव्यू मार्च १९२८ में उद्धृत सर ओलिवर लाज के एक लेख का अनुवाद ।

कार्योपयोगी बनाने के लिये पाण्डित्य के साथ-साथ शिल्प और सौन्दर्य-ज्ञान की भी सहायता लेनी पड़ती है। इस सम्बन्ध में, हमारे देश में, कहाँ तक विचार किया गया और कौन कहाँ तक अग्रसर हुआ, इसका अच्छी तरह प्रचार नहीं हुआ। प्राचीन रीति के व्याकरण के आधार पर ही देशी भाषाएँ लिखी जाती हैं।

हमारे देश में सौ से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं और वे चालीस प्रकार से अधिक वर्णमाला में लिखी जाती हैं। इनमें देवनागरी वर्णमाला का प्रभाव सबसे अधिक है। भारत की बहुत-सी भाषाओं में देवनागरी का प्रभाव देखा जाता है। उर्दू को छोड़कर अधिकांश भाषाओं का गठन और उच्चारण देवनागरी से मिलता-जुलता है।

भारतीय वर्णमाला की समस्या जब सामने आती है, तब सबसे पहले उसके वर्णसंयुक्त अक्षरों पर दृष्टि जाती है। सामान्यतः ४६ मूलवर्ण और कम-बेश ढाई सौ संयुक्त-वर्ण देखे जाते हैं। किंतु संयुक्त-वर्ण कितने होने चाहिए, यह निर्णय करना बहुत कठिन है। एक तो मूलवर्णों का आकार यों ही विलक्षण होता है, उस पर दो-तीन वर्ण और जोड़ देने से वे और जटिलरूप धारण कर लेते हैं। उससे अधिक असुविधा यह है कि संयुक्त अक्षरों में, कोई-कोई अक्षर, मूलवर्ण के साथ सामंजस्य रखकर बनाने में सुविधा न होने से, बिलकुल स्वतन्त्र रूप धारण करके और भी जटिल बन जाते हैं। बालक-बालिकाओं को इस वर्णमाला के सीखने में प्रायः दो वर्ष का समय लग जाता है। सीखना तो कठिन है ही, सीख लेने पर पढ़ते समय भी पढ़नेवालों के मस्तिष्क और आँखों को बड़ा परिश्रम पड़ता है। इन बातों को सोचकर भारतीय वर्णमालाओं की एक सरल और उपयोगी व्यवस्था करना बहुत आवश्यक है।

वर्णमाला की उपर्युक्त असुविधाओं से छापने के काम में कितनी कठिनता पड़ती है, इसके जानने का सुयोग भाषा के मर्मज्ञों में से बहुतों को मिला होगा। प्रेस में देवनागरी या बँगला वर्णमाला के अक्षर इस समय तक छः सौ के लगभग बन चुके हैं। पाइका, स्माल पाइका और बर्जिस आदि छोटे-बड़े सब प्रकार के टाइपों में, प्रत्येक श्रेणी में छः-छः सौ प्रकार के टाइप काम में लाए जाते हैं। किन्तु इतने पर भी संयुक्त अक्षरों का अभाव बना रहता है। एक तो इतने अक्षरों से ही छापने के काम में भारी असुविधा का सामना रहता है, उस पर जिन संयुक्त अक्षरों का अभाव है, उनसे कुछ कम कठिनता नहीं उठानी पड़ती। प्रेस में देखने से मालूम होगा कि जहाँ अँगरेज़ी का कम्पोज़ करने के लिये एक प्रकार के टाइपों का एक केस होता है, वहाँ देशी टाइपों के लिये चार केस काम में लाए जाते हैं। इ, ई, उ, ऊ, ऋ, रेफ और चन्द्रबिन्दु आदि मूल अक्षरों में अच्छी तरह जुड़ नहीं सकते। छापते समय कोई मात्रा टूट जाती है और कोई अपने स्थान से हट जाती है। संयुक्त अक्षरों और मात्राओं के कारण देशी टाइप, अँगरेज़ी टाइपों की तरह पैकटबन्दी करके बाहर नहीं भेजे जा सकते, क़ाग़ज़ की पुड़ियों में ही बाँधकर भेजना पड़ता है।

अब देखना यह है कि मूल-अक्षरों में कमी कैसे हो सकती है। दो प्रकार की 'इ' (ह्रस्व और दीर्घ) और दो प्रकार के (उ) एक ही प्रकार के हो सकते हैं। दो 'न' (न और ण), दो 'ज' (ज और य), तीन 'स' (श, ष, स,), इन अक्षरों के उच्चारण में भेद होने पर भी अक्सर एक ही तरह से उच्चारित होते हैं। यदि ये अक्षर एक-एक रक्खे जायँ, तो काम चल सकता है। वर्ग के पहले और तीसरे वर्ण के साथ 'ह' जोड़ने से दूसरा और चौथा वर्ण बन सकता है। जैसे—क + ह = ख, ब + ह = भ इत्यादि। इस प्रकार एक नया 'ह' गढ़कर, वर्ग के पहले और तीसरे वर्ण के साथ जोड़कर, दूसरे और चौथे वर्ण के निकाल देने से पाँच वर्गों से दस वर्ण कम हो सकते हैं। ऐसा करने से कम सुविधा नहीं है। इसी तरह वर्ण कम करने के और भी बहुत-से दृष्टान्त दिए जा सकते हैं।

वर्ण कम कर देने से ही काम नहीं चलेगा, कुछ परिवर्तन और परिवर्धन करना भी आवश्यक है। इतने अधिक मूल और संयुक्त अक्षर होने पर भी कहीं-कहीं शब्दों का ठीक उच्चारण नहीं हो सकता। हम इस विषय में कोई निर्धारित धारा नहीं बता रहे हैं, केवल असुविधाओं की कुछ आलोचना करते हैं। स्वर-युक्त और स्वर-रहित व्यंजन वर्ण के उच्चारण में जो भेद है, लिखने में उसकी कोई अच्छी व्यवस्था नहीं है। व्याकरण के अनुसार स्वर-रहित व्यंजन में एक हलन्त (्) लिखने

की व्यवस्था है सही, किन्तु कहीं-कहीं उसके प्रयोग का सुयोग नहीं होता। 'विमला' और 'शमन' इनके 'म' का उच्चारण अकारान्त है, किन्तु 'आमलकी' और 'यम' इनके 'म' में अकार नहीं है। लिखने में इसका भेद प्रकट करने की कोई व्यवस्था नहीं है। स्वर्‌युक्त व्यंजन में कोई पृथक् चिह्न होना चाहिए। मूल-अक्षर द्वारा संयुक्त अक्षर प्रकट करने की व्यवस्था होने से सुविधा होगी या नहीं, यह भी विचारने की बात है। जैसे 'व्यक्ति' को 'व्यकृति' और दार्जिलिं को दार्‌जिलिं। इस तरह लिखने से स्वर-रहित व्यंजन में कोई चिह्न लगाना आवश्यक होता है। कोई चिह्न अथवा अक्षर मूल-अक्षर के ऊपर नीचे जोड़ने की अपेक्षा बग़ल में जोड़ने से सुविधा होगी। छापने के काम में और भी अधिक सुविधा हो सकती है।

अब हम लिखने के अक्षरों के संबंध की कुछ आलोचना करेंगे। भारतीय वर्णमाला के किसी भी वर्ण के आकार की कोई नाप नहीं है। अनुमान ही से अक्षरों के अवयव बनाए जाते हैं। अक्षरों के लिखने की कोई विशेष धारा नहीं है, इसी से गठे हुए अक्षर लिखने की सुविधा नहीं होती। अक्षरों में त्रिकोण अंश अधिक रहने से अक्षर सुंदर नहीं बन पाते। देवनागरी अक्षरों की अपेक्षा बँगला अक्षरों में त्रिकोण अंश अधिक हैं। लिखते समय इन कोणों का तोड़ना बहुत कठिन हो जाता है। बँगला अक्षरों के कोण प्रायः अधिकांश स्थानों में गोलाकार बनाने से लिखने में सरलता हो जाती है। अँगरेज़ी में छापने के अक्षरों में कुछ रूपांतर करके लिखने के अक्षर बना लिए गए हैं, और उनके लिखने में यह सरलता है कि प्रत्येक अक्षर के अंतिम भाग में आगे के अक्षर मिलाकर लिखे जाते हैं। हम स्वयं यह अनुभव करते हैं कि बँगला अक्षर लिखते समय, प्रत्येक अक्षर में जितनी बाधा पड़ती हैं, अँगरेज़ी लिखने में उतनी बाधा नहीं पड़ती। अब विचारने की बात है कि अँगरेज़ी वर्णमाला की तरह भारतीय वर्णमाला में भी रूपांतर करके लिखने की पृथक् वर्णमाला गढ़ने की आवश्यकता है या नहीं। यह आशंका अवश्य होती है कि अक्षरों की बहुलता और भी बढ़ जायगी।

मात्राएँ अक्षरों को सुनियंत्रित तथा सुगठित अवश्य करती हैं, परंतु प्रत्येक अक्षर में स्वतंत्रभाव से एक-एक मात्रा के लगाने में जैसी असुविधा होती है, वैसी ही शीघ्र लिखने में भी होती है। उड़िया भाषा के अक्षर, बँगला के अक्षर के ऊपर एक गोलाकार बड़ी मात्रा देकर लिखे जाते हैं। सीधे अक्षर लिखने की अपेक्षा तिरछे अक्षर लिखने में सुविधा और शीघ्रता होती है। शीघ्र लिखना ही लिखने का एक विशेष गुण है। लिखते समय लेखनी जितनी ही कम उठानी पड़े, उतनी ही सुविधा और शीघ्रता होती है। अँगरेज़ी और अरबी-फ़ारसी के अक्षर ऐसे ढंग से बनाए गए हैं कि उनके लिखने में यथेष्ट सुविधा है। भारतीय वर्णमाला की लेखन-प्रणाली में भी कुछ परिवर्तन करके शीघ्र लिखने की सुविधा करने की आवश्यकता है।

देशी भाषाओं की वर्णमाला का क्रम भी बहुत जटिल है। कोष में शब्दों को देखने में बहुतों को भ्रम पड़ जाता है। बँगला-व्याकरण में सरलता से समझने योग्य इसकी एक सूची होने की आवश्यकता है। बँगला-भाषा बोलने में जो क्रियाओं में रूपांतर हो जाता है, उसके उच्चारण के अनुसार लिखने के अक्षरों का एक-मात्र अभाव है। जैसे—'करिब', इस शब्द के उच्चारण में 'करब' 'क'रब 'कोरब' 'कर्ब' 'करबो' 'कर्बो' इत्यादि अनेक प्रकार से लिखने पर भी उच्चारण का ठीक-ठीक रूप नहीं आता। आजकल उलटा 'कामा' देकर कोई कोई इन उच्चारणों के अनुसार लिखने की चेष्टा करते हैं किंतु वे भी कोई नियम नहीं बना सके।

एक विशेष बात यह है कि भारतवर्ष की बहुत-सी भाषाओं की अनेक प्रकार की वर्णमालाओं को एक तरह की वर्णमाला में परिणत किया जा सकता है या नहीं; इस विषय में ध्यान देना उचित है। देश-भर की भाषा एक हो जाती, तो बहुत अच्छा था, किंतु वह स्वभावतः जो हो गई है, उसका परिवर्तन करना असंभव है। किंतु उद्योग करने पर देश-भर के लिये एक विशेष प्रकार की वर्णमाला बना लेना असंभव नहीं है। हिंदी-भाषा भारतवर्ष के प्रायः सब स्थानों के रहनेवाले थोड़ी बहुत समझ लेते हैं और उसी प्रकार देवनागरी-वर्णमाला का भी सर्वत्र प्रभाव है। देवनागरी-वर्णमाला में भारतवर्ष की सब भाषाओं का लिखना चल सकता है। किंतु दूसरे प्रांतों के निवासी अपनी वर्णमाला छोड़कर उसे अपनी भाषा में ले लेंगे, ऐसी आशा नहीं होती।

अपनी विशिष्टता को नष्ट करके बाहर की कोई श्रेष्ठ वस्तु को भी उसके स्थानापन्न करना प्रायः आपत्तिजनक हो जाता है, किंतु जातीयता के जिन अंशों का परिवर्तन हम लोगों को संकीर्णता की सीमा से विस्तृत क्षेत्र में ला सके और जिससे सार्वजनिक ऐक्य में भी सुविधा हो, वह परिवर्तन करना उचित है। अँगरेज़ी वर्णमाला हमारे देश की सब जातियाँ सीखती हैं और वह इस समय संसार-भर की शिक्षित जातियों में व्याप्त है। अँगरेज़ी वर्णमाला हमारे देश की सब भाषाओं में व्यवहृत हो सकती है या नहीं, हम यह प्रश्न उठाते हैं। योरप के सब देशों में विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं, किंतु वर्णमाला अँगरेज़ी से मिलती-जुलती हैं। टर्की में स्वतंत्र वर्णमाला व्यवहृत होती थी, पर वहाँ के लोग अब अपनी भाषा अँगरेज़ी वर्णमाला में लिखने लगे हैं। इससे उनकी भाषा को कुछ हानि नहीं पहुँची, बल्कि वृद्धि हो रही है। अँगरेज़ी वर्णमाला में कुछ परिवर्तन करके हमारे देश की सब भाषाएँ लिखी-पढ़ी जा सकती हैं। उच्चारण के अनुकूल होने से विद्वान् लोग यदि रोमन वर्णमाला को अँगरेज़ी की अपेक्षा अधिक उपयोगी समझें, तो उसमें भी हमको कोई आपत्ति नहीं है।

आजकल चिट्ठियों के पते हर एक भाषा के जाननेवाले अँगरेज़ी में लिखते हैं। उससे विशेष सुविधा होती है। अँगरेज़ी 'कामा', 'सेमीकोलन' और 'डैश' आदि चिह्न हमारे देश की सब भाषाओं में लगाए जाते हैं। सिंहल में तीन-चार भाषाएँ व्यवहृत होती हैं, किंतु उनमें अँगरेज़ी अंक लिखे-पढ़े जाते हैं। वहाँ के लोगों ने अपनी भाषा में अँगरेज़ी के अंक लेकर एक सुविधा कर ली है। मिशनरी साहबों ने बाइबिल के कुछ अंशों का अनुवाद भारतवर्ष की कई भाषाओं में अँगरेज़ी अक्षरों में किए हैं। उनके पढ़ने में देश की भाषाओं का ठीक-ठीक उच्चारण होता है। भारतीय भाषाओं में अँगरेज़ी वर्णमाला के उपयोग करने का प्रस्ताव कुछ दिन पहले एक बार और उठाया गया था। किंतु देश के बहुत-से विद्वानों ने उसका समर्थन नहीं किया। हम अपने देश के विद्वानों से अनुरोध करते हैं कि वे इस प्रकार की एक-एक बालकों की पाठ्य-पुस्तक बनाकर इसकी सुविधा-असुविधा की परीक्षा करें। जब उसकी उपयोगिता का अनुभव हो जायगा, तब जातीय महासभा की सहायता से इसे कार्य-रूप में परिणत किया जा सकेगा। हमारी समझ में ऐसा करने से जातीयता नष्ट नहीं होगी, बल्कि बढ़ेगी। भारतवासियों को भारत की विभिन्न भाषाओं के सीखने का आग्रह बढ़ेगा, भारत की सब जातियों में भाव के आदान-प्रदान की सुविधा होगी, जिससे जातीय ऐक्य के बंधन दृढ़ होंगे। विदेशी लोगों में भी भारतीय भाषाओं के सीखने का आग्रह बढ़ जायगा। छापने के काम में इतना झंझट न रह जायगा, उसमें सरलता हो जायगी और वृद्धि होगी। हम सब भारतवासियों से इसकी सुविधा और असुविधा के विषय में आलोचना करने का विशेष रूप से अनुरोध करते हैं।*

चंडिकाप्रसाद अवस्थी

× × ×

३. अनंत आराधन

सारी बैस बीती जानि
सोचि यौं सनेहवारो,
सोचि कै दरस बारि
रीतो हिय ह्वै गयो;
सैतुक दरस औ
परस की है बात कहा,
सपनो निहारो बादि
सपनो सौ ह्वै गयो।

नैसुक न पायौ चैन
रैन दिन रह्यौ खिन्न,
तातैं सबै त्यागि कै
समाधि माहिं ह्वै गयो;
साधनाहिं साधि साधि
साध माहिं साधौ एक,
ते रोई आराधिबो
अनंत साधि ह्वै गयो।

—[illegible]

---

* बँगला मासिक पत्रिका 'मातृमंदिर' से।

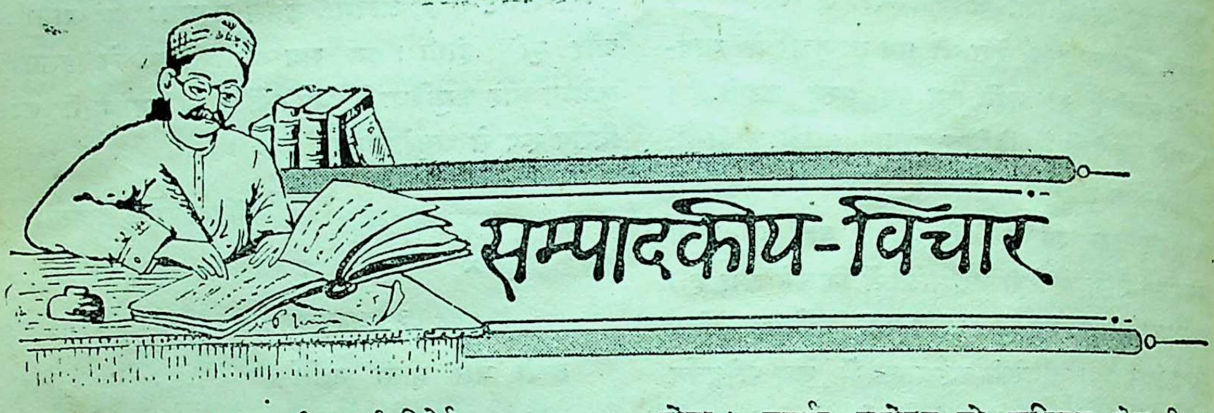

सम्पादकीय-विचार

१. साइमन-कमीशन की रिपोर्ट

"सोर भयो घोर चहुँ ओर महिमंडल मैं
आए घन आए घन आय कै उघरिगे ।"

कविवर सोमनाथजी की उपर्युक्त अन्योक्ति में निराशा की जो मर्मवेदना भरी हुई है, साइमन-कमीशन की रिपोर्ट के प्रकाशित होने पर कुछ वैसे ही भाव उन भारतीयों में पाए जाते हैं जिन्होंने राष्ट्रीय महासभा के आदेश की परवा न करके उक्त कमीशन से सहयोग किया था । आज साइमन-कमीशन के प्रधान समर्थक मुसलमान और ज़मींदार भी उससे असंतुष्ट दिखलाई पड़ते हैं । सिख, अछूत, अब्राह्मण यहाँ तक कि ऐंग्लो-इंडियन दल में भी कमीशन की सिफ़ारिशों को लेकर खलबली मच गई है । मसल मशहूर है कि हाथी के दाँत दिखाने के और होते हैं, और खाने के और । साइमन-कमीशन की सिफ़ारिशों के संबंध में यह कहावत अक्षरशः चरितार्थ दिखलाई पड़ती है । प्रत्येक प्रांत को संपूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होगी, यहाँ तक कि क़ानून और शासन का महकमा भी मंत्रियों के हाथ में रहेगा । ऊपर से देखने पर यह सिफ़ारिश कितनी उदारतापूर्ण जान पड़ती है, पर जब इसकी अंतरंग परीक्षा की जाती है तब बात कुछ और ही निकलती है । मंत्रियों का निर्वाचन प्रांतीय व्यवस्थापिका परिषद नहीं करेगी, वरन् यह अधिकार गवर्नर का होगा । गवर्नर महोदय को अधिकार होगा कि वह मंत्रियों की नियुक्ति चाहे परिषद के निर्वाचित सदस्यों में से करें, चाहे अन्य बाहरी लोगों में से । इन बाहरी लोगों में सरकारी नौकर भी हो सकते हैं । फिर यदि परिषद गवर्नर के मनोनीत मंत्रिमंडल पर अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे, तो उस दशा में गवर्नर उन्हीं मंत्रियों को फिर से भी नियुक्त कर सकता है । यदि इन मंत्रियों में कोई सरकारी नौकर हो और वह भी इस्तीफ़ा देने पर वाध्य किया जाय, तो उसे सरकार से पेंशन भी मिल सकेगी । इसके अतिरिक्त शासन-संबंधी प्रत्येक विषय में गवर्नर के विशेष अधिकार सुरक्षित रहेंगे । यदि वह चाहेगा, तो परिषद की राय को न मानकर मनमानी कर सकेगा । साइमन साहब ने ऐसी ही प्रांतीय स्वतंत्रता की सिफ़ारिश अपनी रिपोर्ट में की है । ऐसे ही उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की डुगडुगी पीटकर भोले भारतीयों को भ्रमजाल में डालने का उद्योग किया गया है । शहद में लपेटे ऐसे ही कंकड़-पत्थर सहयोगी भारतीयों के सामने रिपोर्टरूपी तश्तरी में रखकर पेश किए गए हैं । अब बड़ी व्यवस्थापिका परिषद की ओर आइए । कमीशन की सिफ़ारिश है कि उक्त परिषद में जो सदस्य आवेंगे, उनका निर्वाचन प्रांतीय परिषदों से होगा । यद्यपि ऐसे निर्वाचनों से सर्वभारतीय प्रतिनिधित्व

111027

की महत्ता नष्ट हो जायगी और प्रांत-प्रांत के पारस्परिक द्वेष और स्पर्धा को प्रोत्साहन मिलेगा; परंतु यदि इतनी ही असुविधा होती, तो कोई वैसी बात नहीं थी। पर यहाँ तो मामला और भी बेढब है। सरकारी सेना के मामले में इस परिषद् को एक शब्द भी बोलने का अधिकार न होगा। केवल प्रतिवर्ष चुपचाप ५५ करोड़ रुपए सैनिकव्यय के लिये स्वीकार कर देना होगा। सिफ़ारिश के अनुसार यह सेना इँगलैंड-सरकार की सेना होगी और उक्त सरकार के एजंट की हैसियत से गवर्नर जेनरल महोदय उसकी देखरेख करेंगे। साइमन साहब ने भारत को अच्छा स्वराज्य दिलवाया। धन्य है स्वराज्य-प्राप्त भारत जिसके पास स्वदेशरक्षा के लिये एक सैनिक भी न हो! अब देशी राज्यों के प्रश्न पर आइए। इनका संबंध ब्रिटिश भारत से न होकर इँगलैंड की सरकार से होगा। एक 'विशाल भारत' परिषद् की नवीन आयोजना की जायगी। इसमें ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के प्रतिनिधि मिलकर उन प्रश्नों का निपटारा किया करेंगे, जिनमें दोनों पक्षों का समान हित हो। ब्रह्मदेश भारत से पृथक् कर दिया जायगा, परंतु गवर्नर जनरल के अधीन सेना इस देश की रक्षा का भी प्रबंध करती रहेगी। प्रांतीय गवर्नरों के समान ही गवर्नर जेनरल के विशेषाधिकार संरक्षित रहेंगे। मनमानी करने में उनको भी कोई रोक न सकेगा। पृथक् निर्वाचन का नियम अब भी ज्यों-का-त्यों बना रहेगा। इंडियन सिविल सर्विस की महिमा बराबर बनी रहेगी और ली कमीशन की सिफ़ारिशों के अनुसार उन्हें उदारतापूर्वक वेतन मिलेगा। साइमन साहब की रिपोर्ट में डोमीनियन स्टेटस अथवा औपनिवेशिक स्वराज्य शब्द का प्रयोग भारतीय स्वराज्य के अर्थ में भूलकर भी नहीं किया गया है। संक्षेप में साइमन साहब की सिफ़ारिशों का यही आशय है। सेना को भारतीय सरकार से अलग करके मानों यह बात स्पष्ट बतला दी गई है कि इँगलैंड की सरकार अनिश्चित काल तक भारत को अपने अधिकार-क्षेत्र से बाहर न जाने देगी। इँगलैंड में दो-एक पत्रों को छोड़कर शेष सभी पत्र एक स्वर से इस रिपोर्ट का समर्थन कर रहे हैं और उसे अँगरेज़-राजनीतिज्ञता का एक उत्कृष्ट नमूना बतलाते हैं। इसके विपरीत भारत के कुछ ऐंग्लो-इंडियन पत्रों को छोड़ शेष सभी पत्रों ने इस रिपोर्ट की घोर निंदा की है। भारतीय नेता भी एकमत से रिपोर्ट का बड़े-बड़े शब्दों में विरोध कर रहे हैं। इस रिपोर्ट के प्रकाशित होने से गोलमेज़-सभा की सफलता संदिग्ध हो गई है। गोलमेज़-सभा से सहयोग प्राप्त करने का इच्छुक दल भी पुकार-पुकारकर कह रहा है कि सरकार या तो घोषणा कर दे कि गोलमेज़-सभा में औपनिवेशिक स्वराज्य की ही चर्चा होगी और साइमन साहब की रिपोर्ट को महत्त्व नहीं दिया जायगा, अथवा हम लोग उस सभा में सम्मिलित न हो सकेंगे। 'माधुरी' की यह ज्येष्ठ की संख्या आषाढ़ में देर से निकल रही है, इसलिये साइमन-रिपोर्ट की चर्चा इसी अंक में कर दी गई है। आगामी संख्या के प्रकाशित होने तक इसकी चर्चा असामयिक हो जाती।

× × ×

२. गांधी-टोपी

किसी भी सभ्य देश में कोई पुरुष जैसी पोशाक चाहे वैसी पहनने को स्वाधीन है। विशेष प्रकार की पोशाक प्रचलित फ़ैशन के भले ही विरुद्ध हो और इस कारण वैसी पोशाक पहननेवाला तत्कालीन सभ्य समाज में भले ही हँसा जाय; परंतु क़ानून के बल पर वह वैसी पोशाक पहनने से नहीं रोका जा सकता है। हमारे युक्तप्रदेश में एक प्रकार की किश्तीदार टोपी पहनने का रिवाज बहुत पुराने समय से चला आता है। ख़ास करके पुरानी प्रथा के रईसों में आज भी वैसी टोपी पहनने की चाल है। यह टोपी आजकल की गांधी-टोपी से कुछ मिलती है। इधर गांधी-टोपी का देश में व्यापक प्रचार हो रहा है। सत्याग्रही लोग तो इसे पहनते ही हैं; पर जो लोग सत्याग्रही नहीं हैं, जिनका राष्ट्रीय महासभा से संबंध नहीं है, वे लोग भी कभी-कभी राष्ट्रीय आंदोलन की सहानुभूति के ख़याल से और कभी-कभी केवल प्रचलित फ़ैशन के अनुराग से गांधी-टोपी का व्यवहार करते हैं। भारत के दंड-विधान में यह बात कहीं नहीं पाई जाती है कि गांधी-टोपी देना अपराध है। फिर भी न-जाने क्यों सरकार के कुछ अधिकारियों को गांधी-टोपी से चिढ़-सी है। शोलापुर की बाबत समाचार-पत्रों में यह संवाद प्रकाशित हुआ था कि वहाँ लोगों के सिर से गांधी-टोपियाँ उतार ली जाती हैं, परंतु ऊपर के अधिकारीवर्ग ने इसका खंडन किया। पार्लमेंट में कहा गया कि गांधी

टोपी के पहनने में रुकावट डालना सरकार का उद्देश नहीं है। लखनऊ में गोली चलने के बाद इस प्रकार की अफवाहें सुनने में आई थीं कि कुछ लोगों की गिरफ़्तारियाँ गांधी-टोपी पहनने के कारण हुईं। पर इन अफ़वाहों का कोई ऐसा दृढ़ प्रमाण न था, जो अदालत में पेश किए जाने योग्य हो। ऐसी दशा में अफ़वाहों का जो मूल्य होता है, वही उनका भी था। हाल में समाचारपत्रों में मदरास-प्रांत के अंतर्गत गंटूर-प्रांत का समाचार प्रकाशित हुआ है। उस स्थान के मजिस्ट्रेट साहब ने दफ़ा १४४ के अनुसार यह आज्ञा निकाली है कि गंटूर के सार्वजनिक स्थानों पर दो महीने तक कोई गांधी-टोपी लगाकर न जाय; क्योंकि ऐसी टोपी के उपयोग करनेवाले सत्याग्रह-आंदोलन से सहानुभूति रखनेवाले जान पड़ते हैं। इत्यादि। इस समाचार को पढ़कर हम चकित रह गए। हम नहीं जानते हैं कि ऊपर के अधिकारीवर्ग गंटूर के मजिस्ट्रेट की इस आज्ञा के संबंध में क्या राय देंगे। शायद उनसे पूछ करके ही यह आज्ञा निकाली गई हो। परंतु जिस किसी को भारतीय दंड-विधान का अल्पांश में भी ज्ञान है, वह १४४ दफ़ा के अंतर्गत ऐसी आज्ञा को निकलते देखकर आश्चर्याभिभूत हुए विना नहीं रह सकता है। बंबई के प्रसिद्ध पत्र Indian Daily Mail के विख्यात अँगरेज़-संपादक Mr. Wilson (भूतपूर्व Pioneer-संपादक) ने Guntur के मजिस्ट्रेट के इस कार्य की जिन शब्दों में आलोचना की है, उसे हम नीचे उद्धृत करते हैं। कितनी चुभती हुई मार्मिक आलोचना है—

Of all the most unutterable rubbish that anybody in authority in this country has ever delivered himself of, this order easily wins the first place. It will be remembered that when accusations have been made at various times that Gandhi Caps have not been altogether a pleasing sight to our empire-losers, strenuous denials have immediately been issued, and the public has been told that such interference with the legitimate liberties of the people was not approved of by the authorities and that such an action was never for a moment contemplated. This weak-kneed attitude has apparently beeu repudiated by th Clive of Guntur, and for two months no one i to be allowed to wear this form of head-gear in any place frequented by the public. I look forward in the very near future to seeing thi gentleman's name included in the honours list.

इस पर विशेष टीका-टिप्पणी करना व्यर्थ है। हमें इ आशा है कि मजिस्ट्रेट साहब के ऊपर के अधिकारी इस आज्ञा को शीघ्र रद्द कर देंगे। तथास्तु।

× × ×

३. चरख़ा

सत्याग्रह-आंदोलन के व्यापक प्रचार के साथ-साथ देश में चरख़ा-आंदोलन का प्रचार भी बढ़ रहा है। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक है कि चरख़े की उपयोगिता के संबंध में लोग तरह-तरह की बात कह रहे हों। कुछ लोग तो इसकी उपयोगिता को मानते हैं, पर कुछ लोग इसके अधिक व्यवहार को शक्ति का दुर्व्यय समझते हैं। चरख़ा-आंदोलन के प्रधान सूत्रधार महात्मा गांधी ने इस विषय पर २४ अगस्त १९२४ के 'हिंदी-नवजीवन' में एक नोट लिखा था। इस समय पाठकों को वह बहुत मनोरंजक सिद्ध होगा, इसलिये हम उसे यहां पा प्रकाशित करते हैं—

शक्ति का दुर्व्यय ?

गत मई मास के 'वेलफ़ेअर'-नामक अँगरेज़ी-पत्र के एक लेख की ओर एक मित्र ने मेरा ध्यान खींचा है, जो श्री एम्० एन्० राय का लिखा हुआ है और जिसमें उन्होंने कोकनाडा की खादी-प्रदर्शिनी के उद्घाटन के अवसर पर की हुई आचार्य राय की वक्तृता की आलोचना की है। मेरे काग़ज़-पत्रों में उस लेख की प्रति कोई दो महीनों से रक्खी हुई थी। खेद है, मैं उसे अब तक न पढ़ पाया था। पढ़ चुकने के बाद ऐसा मालूम हुआ कि आचार्य राय के विचारों के श्री एम्० एन्० राय द्वारा किए गए खंडन का खंडन मेरे लेखों में कई बार आ चुका है! पर पाठकों की स्मृति अल्पजीवी होती है, इसलिये अच्छा होगा कि फिर एक बार यहाँ मैं अपनी युक्तियों को सिलसिलेवार पेश कर दूँ। आचार्य राय के ये आलोचक महाशय मानते हैं कि चरख़े के लिये जो इतना उद्यम किया जा रहा है, यह महज़ 'शक्ति का

दुर्व्यय' है । आचार्य राय की दलीलों का मुख्यांश यह है कि चरख़ा ख़ास कर किसानों के लिये अपना एक संदेश रखता है और वह यह कि 'तुम मेरे द्वारा अपने फ़ुरसत के वक़्त का सदुपयोग कर सकते हो ।' पर श्रीराय का कहना है कि किसानों के पास फ़ुरसत का वक़्त होता ही नहीं । और जो कुछ फ़ुरसत उन्हें रहती है, उसकी उन्हें ज़रूरत भी है । यदि चार महीने फ़ुरसत उन्हें रहती है, तो इसकी वजह यह है कि वे आठ महीनों तक हद से ज़्यादा काम करते हैं, और अगर इन फ़ुरसत के ४ महीनों में भी उन्हें चरख़े पर काम करना पड़े, तो उन आठ महीनों में काम करने की उनकी क़ूवत हर साल कम होती जायगी । दूसरे शब्दों में कहें, तो आलोचक महाशय की राय में भारत के पास चरख़ा कातने का समय नहीं है ।

ऐसा जान पड़ता है कि राय महाशय को भारत के किसानों का तजरबा बहुत ही कम है । और न वे इस बात का चित्र ही अपनी आँखों के सामने खड़ा कर पाए हैं कि चरख़ा किस तरह काम करेगा—नहीं, आज भी कर रहा है । किसानों को चरख़े का ग़ुलाम हो जाने की ज़रूरत नहीं है । बल्कि उसके ज़रिए कड़ी मिहनत के बाद किसानों को बड़ी तफ़रीह का मौक़ा मिलता है । इससे उनका दिल खिल उठेगा । हाँ, भारत की महिलाओं को अलबत्ते यह स्थायी वस्तु के रूप में भेंट किया गया है । वे जब-जब मौक़ा पड़ेगा, चरख़ा कातेंगी । यदि अधिकांश मिहनत-मज़दूरी अर्थात् शारीरिक श्रम करने-वाले लोग औसतन सिर्फ़ आधा घंटा रोज़ चरख़ा कातें, तो न केवल अपने लिये काफ़ी सूत कात सकेंगे, बल्कि औरों के लिये भी बचा सकेंगे । वह शख़्स कम-से-कम रु० १-११-० हर साल अधिक कमावेगा, जो फ़ुरसत के वक़्त की कमाई के ख़याल से कम नहीं है । इस बात को सब लोग मानते हैं कि आज भारत में हाथ-करघे और जुलाहे तो इतने तादाद में मौजूद हैं कि हमारी ज़रूरत का तमाम कपड़ा बुन सकते हैं, ऐसी हालत में सवाल सिर्फ़ सूत-कताई का ही रह जाता है । यदि किसान भाई उसे अपने हाथ में ले लें, तो विना ही बहुतेरी पूँजी लगाए भारत के वस्त्र-स्वातंत्र्य का सवाल बात-की-बात में हल हो सकता है । इसके मानी यह होंगे कि कम-से-कम ६० करोड़ रुपए उन करोड़ों सूतकारों, हज़ारों धुनियाओं और जुलाहों के अंदर आता-जाता रहेगा, जो अपनी झोपड़ी में बैठे-बैठे काम करेंगे और उसी हद तक किसानों की आमदनी बढ़ाने की क्षमता भी बढ़ेगी ।

तमाम दुनिया का यह तजरबा है कि किसानों के लिये एक ऐसे धंधे की ज़रूरत रहती है, जिससे वह फ़ुरसत के समय में कुछ कमाई कर सके—अपनी आमदनी बढ़ा सके । इस मौक़े पर यह बात हरगिज़ न भूल जाना चाहिए कि बहुत दिनों की बात नहीं है, भारतवर्ष की महिलाएँ उसके कपड़े के लिये फ़ुरसत के वक़्त में चरख़ा कात-कातकर सूत देती थीं । और चरख़े के इस जीर्णोद्धार ने तो इस बात की सत्यता को बड़ी अच्छी तरह प्रदर्शित कर दिया है । यह ख़याल करना ग़लत है कि चरख़े की हलचल असफल हुई । हाँ, कार्यकर्ता अलबत्ते कुछ अंशों में काम नहीं कर पाए हैं । लेकिन जहाँ कहीं उन्होंने दिल लगाकर काम किया है, वहाँ बराबर चरख़े का काम चल रहा है । हाँ, यह बात सच है कि अभी उसकी जड़ नहीं जम पाई है । इसका कारण है व्यवस्था और संगठन की अपूर्णता । एक कारण यह भी है कि सूतकारों को अभी यह यकीन नहीं हो पाया है कि हमें काम निरंतर मिलता रहेगा । मैं श्रीराय का आवाहन करता हूँ कि वे पंजाब, करनाटक आंध्र और तामिल नाड के कुछ हिस्सों का अवलोकन और मनन करें और वे ख़ुद देख लेंगे कि चरख़े में कितनी करामात है ।

भारतवर्ष को अकालों की भूमि ही समझिए । उनमें हमारे भाई-बहनों के लिये कौन-सी बात अच्छी है—सड़कों पर मिट्टी फोड़ना या रुई धुनकना और सूत कातना ? लगातार अकालों से पीड़ित रहने के कारण उड़ीसा की प्रजा भिखमंगे होने की हद तक पहुँच गई है, यहाँ तक कि अब उनसे काम लेना भी मुश्किल हो गया है । वे धीरे-धीरे मौत के मुँह में जा रहे हैं । उनके लिये अगर कोई ज़िंदगी की आशा है, तो वह है यह चरख़ा ।

श्रीराय सुधरे हुए तरीक़ों से खेती करने पर ज़ोर देते हैं । हाँ, इसकी ज़रूरत है पर चरख़े की तजवीज़ कृषि-सुधार के साधनों की जगह नहीं की जा रही है, बल्कि उलटे यह तो उसका अग्रगामी अंग है । इस सुधार के रास्ते में भारी-भारी कठिनाइयाँ हैं । हमें सरकार की

अनिच्छा से पार पाना होगा, पूँजी का अभाव और तीसरे नए तरीक़ों को अपनाने से किसानों का दृढ़ता के साथ इनकार करना। परंतु चरख़ाकताई के निस्बत इतनी बातों का दावा किया जाता है—

(१) यह उन लोगों को एक तैयार काम देना है, जिन्हें फ़ुरसत रहती है और दो पैसे ज़्यादा कमाने की ज़रूरत रहती है।

(२) हज़ारों लोग इससे वाक़िफ़ हैं।

(३) इसे आसानी से सीख सकते हैं।

(४) इसके लिये पूँजी की वस्तुतः बिलकुल ज़रूरत नहीं।

(५) चरख़ा आसानी से बहुत कम दाम में बन सकता है। बहुतेरे लोग यह भी नहीं जानते कि चाँतली या फिरकी पर भी सूत काता जा सकता है।

(६) लोग इसे हिकारत की निगाह से नहीं देखते।

(७) अकालों और मँहगी के दिनों में तुरंत संकट-निवारण का सबसे अच्छा साधन है।

(८) विलायती कपड़े की ख़रीदी के रूप में हिंदुस्थान के बाहर जानेवाले धन-प्रवाह को बंद करने का सामर्थ्य अकेले चरख़े में ही है।

(९) इस तरह बची हुई रक़म को वह करोड़ों ग़रीबों के घर पहुँचा देता है।

(१०) थोड़ी-सी सफलता भी उस हद तक लोगों को तुरंत फ़ायदा पहुँचाती है और

(११) लोगों के अंदर सहयोग उत्पन्न करने और फैलाने का सबसे अधिक समर्थ साधन है।

इसके रास्ते में जो कठिनाइयाँ हैं वे ये हैं—(१) मध्यम-वर्ग के लोगों के मन में इसके प्रति श्रद्धा का अभाव, और मध्यम श्रेणी के ही लोगों में अच्छी तादाद में कार्यकर्ता मिल सकते हैं, (२) चटकीले दिखाई देनेवाले विदेशी कपड़ों के बजाय खादी पहनने की ओर लोगों की अरुचि। यह और भी बड़ी कठिनाई है। (३) इस संक्रमण अवस्था में खादी की मँहगी एक और कठिनाई है। यदि कताई के प्रस्ताव को लोग अच्छी तादाद में अपना लें, तो खादी मिल के कपड़े का मुक़ाबला कर सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस हलचल की सफलता के लिये लोगों को कुछ त्याग करने की ज़रूरत है। यदि सरकार हमारी अपनी होती, जो किसानों की ज़रूरतों का ध्यान रखती और विदेशियों के मुक़ाबले में उनकी रक्षा करने का निश्चय रखती, तो हमें इस प्रत्यक्ष त्याग की भी ज़रूरत न होती। पर राष्ट्रीय सरकार के अभाव में वही काम जो राष्ट्रीय सरकार कर सकती है, मध्यम-वर्ग के लोगों के कुछ समय के लिये थोड़ा-सा त्याग करने से हो सकता है।

और शक्ति के दुर्व्यय का तो सवाल ही नहीं है। आचार्य राय पहले ग़रीब बहनों को मुफ़्त में अन्न करते थे। अब वे चरख़े के रूप में उन्हें एक प्रतिष्ठित पेशा देकर कुछ अंशों में या सर्वांश में स्वावलंबी बना रहे हैं। क्या यह शक्ति का दुर्व्यय है? भीख माँगने या भूखों मरने के अलावा उनके पास दूसरा कोई काम करने को न था। क्या नवयुवकों का गाँवों में जाना, उनकी ज़रूरतें मालूम करना, उनके दुःख से दुखी होना और उन्हें सहायता करना शक्ति का अपव्यय है? क्या हज़ारों हैसियतदार नवयुवकों और युवतियों का करोड़ों अध-पेट रहनेवाले दरिद्र लोगों का ख़याल करते रहना और धर्म-भाव-पूर्वक उनके लिये आधा घंटा चरख़ा कातना शक्ति की फ़िज़ूलख़र्ची है? जब कि कुछ काम हो, किसी पुरुष या स्त्री का चरख़ा कातकर कुछ पै कमाना उतना ही फ़ायदा है। इसी प्रकार त्याग के भाव से किसी का चरख़ा कातना भी उतना ही फ़ायदा है। अगर कोई ऐसी हलचल है, जिसमें हर तरह लाभ ही लाभ है, हानि कुछ नहीं, तो वह चरख़ाकताई है।

× × ×

४. प्रेस-आर्डिनेंस

इस समय देश-भर में महात्मा गांधी द्वारा संचालित भद्र अवज्ञा-आंदोलन ज़ोरों पर चल रहा है। भारत सरकार का ख़याल है, भारतीय समाचार-पत्र इस आंदोलन के प्रधान प्रचारक हैं। सरकार का कहना है कि भारतीय पत्रों का संपादन बहुत उग्रतापूर्वक होता और इस नाज़ुक समय में उनका नियंत्रण परमावश्यक है। इसी उद्देश्य का उल्लेख करके भारतसरकार ने एक नया प्रेस आर्डिनेंस अथवा छापेख़ाने का क़ानून बनाया है। इस क़ानून के अनुसार सरकार चाहे जिस छापेख़ाने से ज़मानत तलब कर सकती है और जब चाहे ज़मानत

Compiled
1999-2000